

मुद्रक तथा मालिक
हनुमानप्रसाद योहार
सीताप्रेम शेरखण्ड

सं १९९७ से २ ८ तक २२ २५
स २ १३ तृतीय संस्करण १
सं २ १८ चतुर्थ संस्करण १

कुल ४२ २५

मूल्य दोनों खण्डोंका १५ ००
(पंद्रह रुपये)



श्रीकृष्ण धारण मम

निरखि किज नयना होहु निहाल ।

कति मद्धुत मानैव-मम्युव-सी सोहत सो सुखया सुयिसाल ॥ १ ॥

नीरव-सनु वामिनि-सी दमकत छिन्न-छिन्न छवि-कल झरत रसाल ।

भग-भंग मनिगत दुखि राजत छिन्नमिलाव अनु उहुगन जाल ॥ २ ॥

माखत मम मयूर अति उममइ निरखि इन्द्रधनु-सी बममाल ।

पुनि पुनि अति मानैव उर उमंगल सुनि-सुनि बसीगाव रसाल ॥ ३ ॥

मुख-मयंक पै मुकुट मनोहर लसत बज्र अत्रु कलक-मराल ।

मधुर-मधुर मुखकान मनोहर मारत मगई मार सर झाल ॥ ४ ॥

क्याम-खनेह-सुधा नित बरसत परसत बँपत कुटिल कलिकाल ।

सो सुठि सुधा पान करि दयि सो भजहु निरक न किमि मैदसाल ॥ ५ ॥

नटवर नागर



यद्यपि नटवरपुत्रः कण्ठ्याः काण्ठ्याः विभक्तं यास्तः कण्ठ्याः विभक्तं च मात्मान् ।
रामान् यणारधरसुधया पूरयन् गापयुर्नृपुन्वारण्य स्वपदमण प्राविताद् गीतकीर्तिः ॥

द्वितीय संस्करणका नम्र निवेदन

भीमङ्गावत साक्षात् भगवान्का स्वरूप है। इसीसे भक्त-भागवतगण भगवद्भाषासे अन्धापूर्वक इसकी पूजा आराधना किया करते हैं। भगवान् व्यास-सरिता भगवत्स्वरूप महापुरुषको जिसकी रचनासे ही शान्ति मिली। जिसमें सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधन-ज्ञान, सिद्धिज्ञान साधनभक्ति साध्यभक्ति, वैधी भक्ति, प्रेमा भक्ति मयादा मार्ग, अनुग्रहमार्ग द्वैत भद्वैत भीर द्वैताद्वैत आदि सभीका परम रहस्य बड़ी ही मधुरताके साथ भरा हुआ है जो सारे मतमेंसे ऊपर उठा हुआ अथवा सभी मतमेंसे ऊपर समन्वय करनेवाला महान् ग्रन्थ है—उस भागवतकी महिमा क्या कही जाय। इसके प्रत्येक अङ्गसे भगवद्भाषापूर्ण पारमहंस्य ज्ञान-सुधा-सरिताकी बाढ़ आ रही है 'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममल ज्ञानं पर गीयते। भगवान्के मधुरतम प्रेम-रसका छनकता हुआ सागर है—भीमङ्गावत। इसीसे भावुक भक्त गण इसमें सदा भगवाहन करते रहते हैं। परम मधुर भगवद्भक्तसे भरा हुआ स्वादु-स्वादु पद-पद पेसा प्रथम वस, यह एक ही है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। विद्याका तो यह भण्डार ही है। 'विद्या भागवताधभिः प्रसिद्धा है। इस परमहंससंविदा'का यथार्थ ज्ञान तो उन्हीं सौभाग्यशाली भक्तोंको किसी सीमा तक मिल सकता है जो हृदयकी सभी लगनके साथ अज्ञात भक्तिपूर्वक केवल 'भगवत्प्रेमकी प्राप्ति' के लिये ही इसका पारायण करते हैं। यों तो भीमङ्गावत आशीर्वादरसक प्रभू है, इसके पागयण से लौकिक-पारलौकिक सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसमें कई प्रकारके अमोघ प्रयोगोंके उल्लेख है—जैसे 'पारायण-कथन' (स्क० १ अ० ८) से समस्त विष्णोका नाश तथा विजय आरोग्य और वैश्वर्यकी प्राप्ति, 'पुस्यन-धृत' (स्क० ६ अ० १९) से समस्त कर्मजानाशोकी पूर्ति, गजेन्द्रस्तयन (स्क० ८ अ० ३) से ज्ञानसे मुक्ति शत्रुसे छुटकारा और बुभाम्यका नाश, पयोधृत (स्क० ८ अ० १६) से मनोवाञ्छित सन्तानकी प्राप्ति, 'सप्ताहप्रयण' या पारायणसे प्रेतत्यसे मुक्ति। इन सब साधनोंका भगवत्प्रेम या भगवत्प्राप्तिके लिये निष्कर्मभावसे प्रयोग किया जाय तो इनसे भगवत्प्राप्तिके पथमें बड़ी सहायता मिलती है। भीमङ्गावतके सेवनका यथाय आनन्द तो भगवत्प्रेमी पुरुषोंको ही प्राप्त होता है। जो लोग अपनी विद्या-बुद्धिका अभिमान छोड़कर और केवल भगवत्प्राप्ति का आश्रय लेकर भीमङ्गावतका अध्ययन करते हैं वे ही इसके भावोंको अपने मनने अधिकारके अनुसार हृदयकर्म कर सकते हैं।

गीताप्रेमके द्वारा भीमङ्गावतके प्रकाशनका विचार अगभग चौबीस पचीस वर्ष पहलेसे हो रहा था। परन्तु कई कारणोंसे उसमें देर होती गयी। फिर पाठका प्रश्न आया। जो ज्ञान आरम्भ हुआ टीकाओं और पुरानी प्रतियोंको देखा गया। अन्तमें पृथक्पाठ गोलोकपासी भीमम्भयगौडसम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीश्रीमद्वेङ्कटेश्वरी शास्त्री और गवर्नमेण्ट सरस्वत कालेजके भूतपूज पितृपुत्र परम भद्रेय विद्वाद् वर डा० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्. ए. से परामर्श किया गया। श्रीकविराज महोदयके परामर्श प्रयत्न और परिश्रमसे कदाचित् सरस्वती सरस्वती भवन पुस्तकालयमें सुरक्षित प्रायः आठ सौ वर्षकी पुरानी प्रति देखी गयी और गीताप्रेमके विद्वान् शास्त्रियोंके द्वारा उससे पाठ मिलाया गया। इसके लिये हम भद्रेय श्रीकविराजजीके हृदयसे कृतज्ञ हैं। इसके पाठनिर्णयमें मधुराके प्रसिद्ध वैष्णव विद्वान् भद्रेय पं० जयाहरलालजी चतुर्वेदीसे बड़ी सहायता मिली थी यतदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं।

इसी समय भीमङ्गावतके अनुपादकी बात भी खड़ी और मेरे अनुरोधसे प्रिय धीमुनिनाथजी (पतमानमं भद्रेय स्वामी सनानन्देश्वरी) ने अनुपाद करना स्वीकार किया और भगवद्भाषात उन्हींसे स० १९८९ के आषाढ़में उसे पूरा कर दिया। उक्त अनुपादका संशोधन श्रीयसुभक्तसम्प्रदायके महाविद्वान् गोविल्लासाजी भद्रेय देवर्षि पं० श्रीरामानाथजी भट्ट अपने ही साथ पं० श्रीरामानाथपण्डितजी शास्त्री और भार्गव हरिचन्द्रासजी गोपबन्धुके द्वारा करवाया गया। सन् १९९७ में भीमङ्गावतका अनुपादमहिन पाठमेवकी पाठ-टिप्पणियोंसे युक्त संस्करण दो वर्षोंमें प्रकाशित किया गया जिसके भावुक पाठकोंमें बहुत ही अप्रत्याश। इसीके साथ-साथ मूल पाठका शुद्ध संस्करण भी निश्चयता गया, जिसकी अपेक्षा ३८ २५० प्रतियाँ छप चुकी हैं।

इसके अन्तर संवत् १९९८ में बर्याण का भागवतानु' प्रकाशित किया गया। इसमें अनुपाद की ऐसी शुद्ध बर्याण ही गयी। इस अनुपादका अधिकांश हमारे अपने ही पं० श्रीशान्तनुविद्वारीजी द्विवेदी



द्वितीय मस्करणका नम्र निवेदन

श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान्का स्वरूप है। इसीसे भक्त-भागवतगण भगवद्भाषमासे भद्रापूर्वक इसकी पूजा-आराधना किया करते हैं। भगवान् व्यास-सरीखे भगवत्स्वरूप महापुरुषको जिसकी रचनासे ही शान्ति मिली। जिसमें सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधन-ज्ञान सिद्धज्ञान साधनभक्ति, साध्यभक्ति, पैधी भक्ति प्रेमा भक्ति मर्यादा मार्ग, मनुप्रहमार्ग, द्वैत, भद्वैत और द्वैताद्वैत आदि सभीका परम रहस्य यही ही मयुरताके साथ भरा हुआ है जो सारे मतमेंसे ऊपर उठा हुआ अथवा सभी मतमेंसे का समन्वय करनेवाला महान् ग्रन्थ है—उस भागवतकी महिमा क्या कही जाय। इसके प्रत्येक अङ्गसे भगवद्भाषापूर्ण पारमहंस्य ज्ञान-सुधा-सरिताकी पाइ आ रही है। यस्मिन् पारमहंस्यमेकममल ज्ञान पर गीयते। भगवान्के मयुरतम प्रेम-रसका छलकना हुआ सागर है—श्रीमद्भागवत। इसीसे भावुक भक्त गण इसमें सदा अथगाहन करते रहते हैं। पद्म मयुर भगवद्भक्तसे भरा हुआ स्यादु-स्यादु पद्मे पद्मे ऐसा प्रथय यस, यह एक ही है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। विद्याका तो यह भण्डार ही है। विद्या भागवतावधि प्रसिद्ध है। इस पद्महससंहिताका यथार्थ ज्ञानम् तो उन्हीं सौभाग्यशाली भक्तोंको किसी सीमातक मिल सकता है, जो हृदयके सच्ची लगनका साथ भद्रा-भक्तिपूर्वक केवल 'भगवत्प्रेमकी प्राप्ति के लिये ही इसका पारायण करते हैं। यों तो श्रीमद्भागवत आशीर्वादत्रयका ग्रन्थ है, इसके पारायण से भौतिक पारलौकिक सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसमें कई प्रकारके अमोघ प्रयोगोंके उल्लेख हैं—जैसे 'पारायण-कथय' (स्क० १ अ० ८) से समस्त विघ्नोंका नाश तथा विजय, आरोग्य और वैश्वयकी प्राप्ति; 'पुस्तयन-मत' (स्क० ६ अ० १९) से समस्त क्षमनामोक्ष पूर्ति; गजेन्द्रस्तयन (स्क० ८ अ० ३) से ज्ञानसे मुक्ति शत्रुने छुटकारा और दुर्भोग्यका नाश; पयोधत' (स्क० ८ अ० १६) से मनोवाञ्छित सन्तानकी प्राप्ति; 'सप्ताहभयण' या पारायणसे प्रेतन्यसे मुक्ति। इन सब साधनोंका भगवत्प्रेम या भगवत्प्राप्तिके लिये निष्कर्मभावसे प्रयोग किया जाय तो इनसे भगवत्प्राप्तिके पथमें यही सहायता मिलती है। श्रीमद्भागवतके सेवनका यथार्थ ज्ञानम् तो भगवत्प्रेमी पुरुषोंको ही प्राप्त होता है। जो लोग अपनी विद्या-बुद्धिका अभिमान छोड़कर और केवल भगवत्पूजाका आश्रय लेकर श्रीमद्भागवतका अध्ययन करते हैं वे ही इसके भाषोंको अपने अपने अधिकारके अनुसार हृदयग्रहण कर सकते हैं।

गीताप्रेसके द्वारा श्रीमद्भागवतके प्रकाशनका विचार अगमग खोबीस पचीस वर्ष पहलेसे हो रहा था। परन्तु कई कारणोंसे उसमें देर होती गयी। फिर पाठका प्रश्न आया। खोज आरम्भ हुई, टीकाओं और पुरानी प्रतियोंको देखा गया। अन्तमें पूम्पपाद गोलोकयासी श्रीमन्मध्वाजीहसम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीशामोदरसालाजी शास्त्री और गवर्नमेंट सरकारी कालेजके मृतपूर्व प्रिन्सिपल परम भद्रेय विद्वाद्द्वारका श्रीगोपीनाथजी कथिराज एम्० ए० से परामर्श किया गया। श्रीकथिराज महोदयके परामर्श, प्रयत्न और परिश्रमसे काशीके सरकारी सरम्बन्धी-अथवा पुस्तकालयमें सुरक्षित प्रायः आठ सौ वर्षकी पुरानी प्रति देखी गयी और गीताप्रेसके विद्वान् शास्त्रियोंके द्वारा उससे पाठ मिलाया गया। इसके लिये हम भद्रेय श्रीकथिराजजीके हृदयसे कृतज्ञ हैं। इसके पाठनिर्णयमें मयुराके प्रसिद्ध वैष्णव विद्वान् भद्रेय ए० जगद्गुरुसालाजी चतुर्थैश्वर्ये यही सहायता मिली थी, पतृर्षय हम उनके कृतज्ञ हैं।

इसी समय श्रीमद्भागवतके अनुपादकी बात भी खली और मते अनुरोधसे प्रिय श्रीमुनिराजजी (वत्समानमें भद्रेय स्वामी सनातनदेवजी) ने अनुपाद करना स्वीकार किया और भगवत्पूजासे उन्होंने स० १९८९ के आषाढ़में उसे पूरा कर दिया। उक्त अनुपादका सन्तोषन धीरान्धसम्प्रदायके मदान् पिद्वान् गोलोकयासी भद्रेय देवर्षि ए० श्रीरामानाथजीभट्ट अपने ही साथी ए० श्रीरामानाथपण्डितजी शास्त्री और भाई हरिहृन्नाशास्त्री गोयम्बरके द्वारा करवाया गया। तदन्तर संवत् १९९७ में श्रीमद्भागवतका अनुपादमहिन पाठमेंसे पाद-दिपणियोंसे युक्त सम्स्करण दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया जिसके भावुक पाठकोंने बहुत ही अप्पनाया। इसीके साथ-साथ मूल पाठका मुद्रका-सम्स्करण भी निजामा गया, जिसकी मयतक ३० २५० प्रतियाँ छप चुकी हैं।

इसके अनन्तर संवत् १९९८ में 'वन्त्याण कथ भागवताद्' प्रकाशित किया गया। इसमें अनुपाद की होती कुछ बदल ही गयी। इस अनुपादका अधिकांश हमारे अपने ही ए० श्रीशान्तनुपिदारीजी द्विपरी

(वतमानमें अक्षेय स्वामी श्रीमच्छण्डानम्बुजी सरस्वती महाराज) ने किया। कुछ श्रीमुनिसाहजजी तथा प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीने भी किया। फिर द्वितीय महापुरुषके कारण कई तरहकी भङ्गवर्तन आ गयीं। श्रीमद्भागवतके ये दोनों खण्ड और श्रीभागवताद्द दोनों ही अग्राप्य हो गये। पुनः प्रकाशनाकी बात बराबर चलती रही पर कुछ-न-कुछ भङ्गवर्तन आती ही रहीं। 'भागवतम्बु' बाकी मयी शैलीके अनुसार अनुवादमें संशोधन करना हमारे प० श्रीधम्मन्तल्लजी गोस्वामी एम्० ए० शास्त्रीने आरम्भ भी किया। परन्तु मन्थान्य कार्योंमें अत्यधिक व्यस्त रहनेके कारण उनसे यह कार्य आगे नहीं बढ़ सका। गत फरवृत्त-में अक्षेय स्वामीजी श्रीमच्छण्डानम्बुजी महाराज गोरखपुर पधरे, यों ही प्रसङ्गवश बात खट गयी और उन्होंने कृपापूर्वक इस कामको करना स्वीकार कर लिया। तदनुसार कार्य आरम्भ हो गया और भगवत्कृपा से अब यह उपकर पाठकोंके सामने प्रस्तुत है। अक्षेय श्रीस्वामीजी महाराज महीनोतक लगातार भयक परिश्रम करके यह कार्य नहीं करते तो अब इस रूपमें इसका प्रकाशित होना सम्भव नहीं था। इसलिये हमबेग तो स्वामीजी महाराजके कृतज्ञ हैं ही भागवतके प्रेमी पाठकोंको भी उनका कृतज्ञ होना चाहिये।

इस संस्करणमें अधिकांश अनुवाद 'भागवताद्द' (मुख्यतया पं० श्रीधम्मन्तल्लुविहारीजीके द्वारा अनुवादित) के अनुसार ही है। कुछ अनुवाद तथा बहुत-सी अन्य सामग्री पूर्वप्रकाशित श्रीमद्भागवतक दोनों खण्डों (श्रीमुनिसाहजजीके द्वारा अनुवादित) के अनुसार भी है। 'भागवताद्द' के भावानुवादमें भी प० श्रीधम्मन्तल्लुविहारीजीके साथ-साथ श्रीमुनिसाहजजी और प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीका कुछ हाथ था। उही प्रकार इसमें भी है। इसीसे अनुवादकके रूपमें किन्हीं एक महानुभावका नाम नहीं दिया गया है। नाम-रूपक परित्यागी पुन्यद्वय संस्थासी महोदय (अक्षेय श्रीमच्छण्डानम्बुजी महाराज और अक्षेय श्रीचान्तनन्देयजी महाराज) तो नाम न देनेसे प्रसन्न ही होंगे। हम तो इसको इन दोनों ही महानुभावोंका कृपाप्रसाद मानते हैं और दोनोंके ही कृतज्ञ हैं। पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री सम्पादकीय विभागके सदस्य हैं। अतः उनके नामकी पूरक व्याख्यायकता भी नहीं। पाठकोंकी जानकारीके लिये यह परिचय दिया गया है। यस्तुतः अनुवादक महोदयोंके लिये इसकी कोई भावश्यकता नहीं थी। उन्होंने जो कुछ किया है कृपापूर्वक ही किया है और उनके कृपा तथा सद्भावना हमें सब सहज ही प्राप्त है।

इसमें स्तोत्रोक्त केवल अक्षरानुवाद नहीं है। पाठकोंको स्तोत्रोक्त भाव अस्वीभौति समझानेके लिये स्तोत्रोंमें आये हुए प्रत्येक शब्दके भावकी पूर्ण रसा करते हुए छोटे छोटे वाक्योंमें उनकी व्याख्या की गयी है साथ ही बहुत विस्तार न हा इसका भी ध्यान रक्खा गया है। इसे अनुवाद न कहकर सरल संक्षिप्त व्याख्या कहना अधिक उपयुक्त होगा। ध्यान-स्वामिपर, विशेष करके व्रतम स्वरूपमें कई जगह श्रीभगवाद् की मधुर लीलाओंका रसास्वादनके लिये और बीजाराहस्यको समझनेके लिये मयी-नयी दिव्यविषयों भी दे दी गयी हैं जिससे इसकी उपादेयता और सुन्दरता विदोष बढ़ गयी है। साथ ही आरम्भमें स्कन्दपुराणोक्त एक छोटा साहाय्य श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि आदि सहाय पारायणकी विधि तथा आवश्यक सामग्रीकी सूची एव अन्तमें स्कन्दपुराणोक्त भागवतमाहात्म्य और विष्णु प्रयोग-विधि दे दी गयी है। इसलिये पहले संस्करणकी अपेक्षा इसमें पृष्ठ भी बहुत बढ़ गये हैं। जिस भी अधिक दिये गये हैं। ये कुछ इस संस्करणकी विशेषताएँ हैं।

इसके पाठ-संशोधन अनुवाद प्रकाशरोधन आदिमें गोस्वामी श्रीधम्मन्तल्लुजी और पं० श्री रामनारायणदत्तजी शास्त्रीने बड़ा काम किया है। सभी बातोंमें सावधानी रक्खी गयी है तथापि इतने बड़े प्रणयकी छगारमें जहाँ-तहाँ भूलें अवश्य रही होंगी। कृपातु पाठकोंसे प्रार्थना है कि उन्हें पाठ अनुवाद या छपाईमें जहाँ भूल दिखलाई दे कृपा न प्योरेयाह लिख दें जिससे आगामी संस्करणमें यथायोग्य संशोधन कर दिया जाय। सहृदय पाठकोंसे प्रार्थना है कि असाधपानतापका होनेवाली भूखों लिये ये क्षमा करें।

अन्तमें निवेदन है कि यह सब जो कुछ हुआ है इसमें भगवत्कृपा ही कारण है, और सब तो निमित्तमात्र है। मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूँ और अपने प्रति श्रीभगवान्की बड़ी कृपा मानता हूँ जिससे इधर कर महीन मायाः श्रीमद्भागवतक ही पठन-चिन्तन आदिमें छगे।

इनुमानप्रसाद पोद्दार

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
श्रीमद्भागवतमाहात्म्य		द्वितीय खण्ड	
१-देवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट	१	१-प्यान-विधि और भगवान्‌के विराट स्वरूपका वर्णन	१४५
२-भक्तिका द्वारा दूर करनेके लिये नारदकी उद्योग	८	२-भगवान्‌के स्वरूप और वृद्ध रूपकी धारणा तथा	
३-भक्तिके फलकी निश्चिधि	१४	क्रमबुद्धि और सत्ताबुद्धिके वर्णन	१४९
४-गणकजोषाकान प्रारम्भ	२१	३-अयनाओंके अनुसार विभिन्न देवताओंकी उपासना	
५-सुशुभ्रपीठो प्रत्येनिकी प्राप्ति और उससे उद्धार	२८	तथा भगवद्भक्तिके प्राधान्यका निरूपण	१५६
६-उत्ताद्वयकी विधि	३६	४-राधाका सुप्रियरूपका प्रथम और शुद्धदेवकी	
प्रथम खण्ड		कथाप्रारम्भ	१५९
१-भौतकीने धौनसिद्धि श्रुतिबोधका प्रथम	४७	५-सुप्रिय-वर्णन	१६२
२-भगवत्कथा और भागवत्भक्तिका माहात्म्य	८०	६-विराटस्वरूपकी विभूतियोंका वर्णन	१६७
३-भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन	८४	७-भगवान्‌के लीलावतारोंकी कथा	१७२
४-महर्षि व्यासका भक्तवर्णन	५९	८-राधा परीक्षितके विविध प्रान	१८१
५-भगवान्‌के यम-कीर्तनकी महिमा और देवर्षि नारदकी		९-ब्रह्माकी भगवद्भक्तिके कारण और भगवान्‌के द्वारा	
का पूर्ववर्णन	६२	उन्हें कृष्ण देवकी भागवतका उपदेश	१८४
६-नारदकी पूर्ववर्णनका योग भाग	६७	१०-भागवतके दश स्कन्ध	१९०
७-अध्यात्मिकता केपरीक्षा पुत्रोंका मार्ग जाना और		तृतीय खण्ड	
अनुनयके द्वारा अध्यात्मिकता मानमर्दन	७२	१-उद्भव और विदुरकी भेंट	१९९
८-मार्गमें परीक्षितकी शक्त, कुसीने द्वारा भगवान्‌की		२-वृद्धकीद्वारा भगवान्‌की पाठ्यलीलाओंका वर्णन	२०५
रहस्य और सुप्रियका योग	७८	३-भगवान्‌के अल्प स्वीता-परिचयका वर्णन	२०९
—सुप्रियविधि का भीष्मकीका पत्र जाना और भगवान्‌		४-उद्भवकीने विष्णु होकर विदुरकीका मैत्रेय श्रुतिके	
भीष्मकीकी रहस्य करने हुए भीष्मकीका		पात्र जाना	२१२
मायामाग करना	८४	५-विदुरकीका प्रश्न और मैत्रेयकीका सुप्रिय-वर्णन	२१७
१-भीष्मकीका द्वाराका गमन	९	६-विराट् शरीरकी उत्पत्ति	२२३
११-द्वाराका भीष्मकीका राक्षसोंके व्यापन	१४	७-विदुरकीका प्रश्न	२२७
१२-परीक्षाका नाम	९	८-ब्रह्माकीकी उत्पत्ति	२३१
१३-विदुरकीका उपदेशम भूतगण और गान्धारीका		९-ब्रह्माकीद्वारा भगवान्‌की श्रुति	२३६
बनने जाना	११	१०-दश प्रश्नकी सुप्रियका वर्णन	२४२
१४-भगवान्‌के देवर्षि भगवान्‌के सुप्रियका द्वारा करना		११-भगवान्‌कीद्वारा विभागका वर्णन	२४५
और भगवान्‌के नारदके श्रोतना	११	१२-सुप्रियका विभाग	२५०
१५-सुप्रियकीद्वारा पाण्डवोंका परीक्षितकी द्वारा		१३-सुप्रियका भगवान्‌का वर्णन	२५५
नेत्र मग विचारना	११४	१४-निष्ठा मगभाषण	२६१
१६-विदुरकीका उत्तर तथा भगवान्‌कीद्वारा लवाद	१२१	१५-उद्भवकीका वर्णन का वर्णन	२६७
१७-भगवान्‌के वाराभीष्मकीका द्वावृत्तका वर्णन	१२६	१६-सुप्रियकीका वैदुरकीका वर्णन	२७०
१८-भगवान्‌कीद्वारा भीष्मकीका वर्णन	१३१	१७-सुप्रियकीका द्वारा विभागका वर्णन	२७५
१९-सुप्रियकीका वर्णन और उद्भवकीका वर्णन	१३७	द्वाराका वर्णन	२८०

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१८-हिरण्यवाके काय बाराह भगवान्का युद्ध	२८३	१-महापद्म प्रभुकी यज्ञशास्त्रमें श्रीनिष्णुभगवान्का			
१९-हिरण्यवाच-वच	२८७	प्राहुर्मात्र			४९४
२०-ब्रह्माभीकी रथी हुई अनेक प्रभुकी दक्षिणार्धवर्णन	२९२	२१-महापद्म प्रभुका अपनी प्रभुको उपदेश			४९९
२१-कर्मवीरकी तपस्या और भगवान्का बरदान	२९७	२२-महापद्म प्रभुको सनकादिभ्यो उपदेश			४७९
२२-देवदूतिके काय कर्म प्रत्यक्षिका विवाह	३४	२३-एता प्रभुकी तपस्या और परब्रह्म-गमन			४८३
२३-कर्म और देवदूतिके विहार	३८	२४-प्रभुकी वधपरम्परा और प्रवेष्टाओंको भगवान्			
२४-भीष्मपिबदेवकीका कर्म	३१५	ब्रह्मका उपदेश			४८८
२५-देवदूतिके प्रथम तथा भगवान् करिबाराह मरिच-		२५-पुराणनिरास्मानका प्रारम्भ			४९७
वोगकी महिमाका वर्णन	३१९	२६-एता पुराणनका शिखर लेखने वनमें जाला और			
२६-महापद्म भिन्न-भिन्न तपोंकी उत्पत्तिके वर्णन	३२४	रानीका कुपित होना			५३
२७-प्रकृति प्रकृते विवेकते योग-प्राप्तिका वर्णन	३३२	२७-पुराणनपुरीपर बण्डवैद्यकी कहाई तथा काळकल्याणका			
२८-अष्टाङ्गयोगकी विधि	३३६	वर्णन			५७
२९-मरिचक मर्म और काठकी महिमा	३४२	२८-पुराणनको श्रीमोनिषी प्राप्ति और अतिशयके			
३-देव-नौहमें आत्मक प्रकृतिकी अयोग्यताका वर्णन	३४७	उपदेशसे उत्पन्न मुक्त होना			५१०
३१-मनुष्ययोगिके प्राप्त हुए जीवकी गतिका वर्णन	३५०	२९-पुराणनोपस्थानका तत्पर्य			५१७
३२-भूमिमात्र और अविद्यमान मार्गसे जानेवालोंकी गतिका		३-प्रवेष्टाओंको श्रीनिष्णुभगवान्का बरदान			५२७
और अतिशयकी उत्कृष्टताका वर्णन	३५७	३१-प्रवेष्टाओंको श्रीनारदकी उपदेश और जनक			
३३-देवदूतिके उत्तरार्ध एवं मोक्षपथकी प्राप्ति	३६१	परम्परा-समय			५३३
चतुर्थ स्कन्ध		पञ्चम स्कन्ध			
१-स्वाध्याय प्रभुकी कन्याओंके वधाका वर्णन	३६९	१-मिश्रत-वर्णन			५४१
२-भगवान् शिव और वध प्रत्यक्षिका मनोवाञ्छिका	३७५	२-व्यासी-वर्णन			५४८
३-मतीभ पिताके यहाँ बहोरुपमें जाके विदे		३-एता नामिका वर्णन			५५२
आग्रह करना	३७९	४-श्रृंगमदेवकीका उत्पत्तिके			५५६
४-कटीक अग्निप्रवेश	३८३	५-श्रृंगमदेवकी अपने पुत्रोंको उपदेश देना और			
५-श्रीमद्भक्त वधवर्णनके और वधवध	३८८	स्वयं अवभृतादि प्राण करना			५५९
६-ब्रह्मादि देवताओंके कैलास जाकर श्रीमहादेवकी		६-श्रृंगमदेवकीका देहत्याग			५६५
मनाजा	३९१	७-मरत-वर्णन			५६९
७-वधवधकी पूर्ति	३९७	८-मरतकीका युगके मोक्षमें लँककर युग-मोक्षमें			
८-सुगन्ध वन गमन	४०३	कर्म करना			५७१
९-सुगन्ध पर पाकर पर लौटव	४१५	९-मरतकीका अक्षयकुक्षी कर्म			५७७
१०-उत्तमका माघ बन्धन मुक्तका वधोंके कायमुक्त	४२४	१०-बहमरत और एता रङ्गावधकी भेद			५८१
११-स्वाध्याय प्रभुका सुगन्धीको युद्ध बंद करनेके लिये		११-एता रङ्गावधको मरतकीका उपदेश			५८६
तमनामा	४२७	१२-रङ्गावधका प्रथम और मरतकीका तमनामा			५८९
१२-मरतकीका सुगन्धका बरदान और निष्णुकोकी प्राप्ति	४३१	१३-मरतकीका वर्णन और रङ्गावध के वधनाथ			५९२
१३-सुगन्धका वधन एता अत्रका वर्णन	४३७	१४-मरतकीका रथीकरण			५९६
१४-एता केनरी कथा	४४२	१५-मरतको वधका वर्णन			६४
१५-महापद्म प्रभुका भाविर्मात्र और रङ्गावधके	४४७	१६-सुगन्धकीका वर्णन			६७
१६-नीलमन्त्राण महापद्म प्रभुकी स्तुति	४५१	१७-मरतकीका विवरण और भगवान् चन्द्रकृत			
१७-महापद्म प्रभुका शरीर कुपित होना और प्रकृति		नक्षत्रपथकी स्तुति			६११
हारा उनही स्तुति करना	४५३	१८-मिश्र निम्न वर्णन			६१५
१८-प्रकृति-होना	४५७	१९-किष्कंध और मरतवर्णन			६१९
१९-महापद्म प्रभुके ली अक्षय्य वध	४६१	२-अनन्तः श्रीपतिवाकोऽनन्तः परंपरा वधन			६२७

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२१—पुनः २५ और उसकी गति का वर्णन		६३४	४—हिरण्यकशिपु के अत्याचार और प्रह्लाद के गुणों का वर्णन ७९०		
२२—भिन्न-भिन्न प्रदोषी स्थिति और गति का वर्णन		६३७	—हिरण्यकशिपु के द्वारा प्रह्लाद की वचन प्रत्यक्ष		७९६
२३—विशुद्धाचार का वर्णन		६३९	५—प्रह्लाद की अमुर-नाटक को उपदेश		१३
२४—प्राहु म्यादिकी स्थिति, अतल्लहि नीचे के ओझों का वर्णन		६४२	७—प्रह्लाद की माता के गर्भ में प्राप्त हुए नारद की उपदेश का वर्णन		८८
२५—मोक्षपथ का विवरण और स्तुति		६४८	८—रुद्रिह भगवान् का प्रादुर्भाव, हिरण्यकशिपु का वध		
२६—नरका की विभिन्न गति यों का वर्णन		६५१	एव महादि देवताओं का भगवान् की स्तुति		८१४
पञ्च स्कन्ध			९—प्रह्लाद की द्वारा रुद्रिह भगवान् की स्तुति		८२४
१—मन्त्राधिकार का प्रारम्भ		६६१	१०—प्रह्लाद की रत्नाभि के और विपुल दहन की कथा		८३४
२—विष्णु वृत्तों द्वारा मातृत्व धर्म-निरूपण और अन्ध मित्र परम धाम-गमन		६६९	११—मानव धर्म वर्णन और धर्म का निरूपण		८४२
३—धर्म और धर्म वृत्तों का उदाहरण		६७७	१२—ब्रह्मचर्य और धर्म प्रत्यक्ष आश्रमों के नियम		८४६
४—दक्ष के द्वारा भगवान् की स्तुति और भगवान् का प्रादुर्भाव		६८२	१३—यति धर्म का निरूपण और अवधूत-प्रह्लाद-संवाद		८५
५—मीनार की उपदेश से दक्ष पुत्रों की विरक्ति तथा नारद की दक्ष का शृणु		६८९	१४—पृथ्वी स्कन्ध की सदाचार		८५५
६—दक्ष ब्राह्मण की साठ कन्याओं के वंश का विवरण		६९५	१५—पृथ्वी के द्विजे मोक्ष धर्म का वर्णन		८६०
७—पृथ्वी के द्वारा देवताओं का स्वाग और विधिरूप का हेतु के रूप में धरण		६९९	अष्टम स्कन्ध		
८—नागपक्ष का उपदेश		७४	१—मन्त्र उपाय का वर्णन		८७३
९—विश्वरूप का वध हृत्नासुर द्वारा देवताओं की हार और मन्त्राङ्गी प्रेरणा से देवताओं की दक्षिण श्रुति के पाठ करना		७९	२—प्राह्मण द्वारा गजेन्द्र का पक्ष का वर्णन		८७७
१०—देवताओं द्वारा दक्षिण श्रुति की अस्त्रियों से धन-निर्माण और हृत्नासुर की सेना पर आक्रमण		७९८	३—गजेन्द्र के द्वारा भगवान् की स्तुति और उसका संकट से मुक्त होना		८८१
११—हृत्नासुर की वीरवाणी और मन्त्राङ्गी		७९९	४—राज और प्राह्मण पूर्ववर्तिन तथा उनका उदाहरण		८८६
१२—हृत्नासुर का वध		७९९	५—देवताओं का महाधी के पाठ करना और महाहृत् भगवान् की स्तुति		८८९
१३—हृत्नासुर का आक्रमण		७९९	६—देवताओं और दैत्यों का मिश्र कर समुद्र मन्थन के द्विजे उद्योग करना		८९६
१४—हृत्नासुर का पूर्ववर्तिन		७९९	७—समुद्र मन्थन का आरम्भ और भगवान् का हृत्नासुर का विपणन		९१
१५—विश्वरूप का अस्त्र और नारद की उपदेश		७९९	८—समुद्र से अमृत का प्रकट होना और भगवान् का मोहिनी-अवतार ग्रहण करना		९७
१६—विश्वरूप का वैराग्य तथा सङ्कर्षण के वर्णन		७९९	९—मोहिनी-रूप से भगवान् के द्वारा अमृत बाँटा करना		९३
१७—विश्वरूप का पावन का धारण		७९९	१०—देवासुर-संघाम		९६
१८—महिष और दिक्षिणी तन्त्राङ्गी तथा मन्त्राङ्गी उदाहरण का वर्णन		७९९	११—देवासुर-संघाम की स्थिति		९२९
१९—मुक्तकनयनी की विधि		७९९	१२—मोहिनी रूप से देव और महादेव की माहित होना		९८
नवम स्कन्ध			१३—आगामी सात मन्त्राङ्गी का वर्णन		१४
१—नारद-मुनिष्ठिर-संवाद और अन्ध-विश्वरूप की कथा		७९९	१४—मनु आदि के वृष-वृष-कर्मों का निरूपण		१७
२—हिरण्यकशिपु का वध होने पर हिरण्यकशिपु का अपनी माता और कुम्भियों के समझना		७९८	१५—राजा बलि की स्वर्ग पर विषय		११८
३—हिरण्यकशिपु की उपस्था और वरप्राप्ति		७९९	१६—कश्यप की द्वारा अग्नि के पयोऋत का उपदेश		४३
			१७—भगवान् का मन्त्र होकर अग्नि के वर देना		१४९
			१८—नामन भगवान् का मन्त्र होकर राजा बलि की वरप्राप्ति पधारना		१५३

अध्याय	शिरष	दृष्ट-संख्या	अध्याय	शिरष	दृष्ट-संख्या
११-भगवान् कामनका बलिसे तीन पग पृथ्वी भोगना			२२-बलिके द्वारा भगवान्की स्तुति और भगवान्का		
बलिप्रपन्न देना और द्वाष्टाचार्यकी उम्हें रोचना १५९			उत्तर प्रपन्न होना		१७
२०-भगवान् कामनकी विराट् रूप होकर दो ही पगसे			२३-बलिके बन्धनसे छूटकर सुतल लोकको जाना		१७
पृथ्वी और स्वर्गको नष्ट करना	१६९		२४-भगवान्के महाप्रवतारकी कथा		१७
२१-बलिके बाँधा जाना	१६९				

चित्र-सूची

१-मठकर नाम	(बहुरंगा)	अरम्भमें	६-मुबपर अनुग्रह	(बहुरंगा)	१९
२-मठचक्रचिह्न	'	१	७-मठकाकीके द्वारा ब्रह्मपुत्रकी स्था		५४
३-मुकुटदेव-चरित्र	"	४७	८-नाम-साधारण	"	६६
४-भगवान् विष्णु	'	१५५	९-भगवान् वसिष्ठकी	"	७७
५-पार्यहोसे संक्षिप्त श्रीकृष्णकी			१०-भगवान्-बामन		८५
वक्षित भगवान् विष्णु	१ १				

चतु श्लोकी भागवत

अहमेवासमेवाग्रं नान्यत् यत् सदसत् परम् । पश्चादहं यदेतच्च योजयन्मिथेव सोऽस्म्यहम् ॥१॥
 अहमेऽर्थे यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभातो यथा तमः ॥२॥
 यथा महान्ति भूतानि भूतेषु चावेषेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३॥
 एतन्नदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः । अन्ययस्यतिरेकस्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥४॥

सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही मैं वा । मेरे अतिरिक्त न स्थूल वा न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण, ब्रह्म । न
 यह सृष्टि नहीं है, नहीं मैं ही मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी मैं
 और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ ॥ १ ॥ वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु
 अतिरिक्त मुझ परमात्मा में दो अन्तर्माओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, जन्मा विबन्धन होनेपर
 आकाश-सम्बन्धके तन्त्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी क्या समझना चाहिये ॥ २ ॥
 प्राणिमण्डलके पञ्चभूतचित्त छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमात्राभूत तम शरीरोंके कायरूपसे निर्मित होने
 कारण प्रवेश करते ही मैं और पहलेसे ही तम स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे निष्कान रहनेके कारण
 प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही तम प्राणिमण्डलके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्म्याके रूपसे प्रवेश किये हुए
 और वास्तवदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण तममें प्रविष्ट नहीं भी हूँ ॥ ३ ॥
 ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं—इस प्रकार नियमकी पद्धतिसे और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है—इस अल्प
 पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वाधीन एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं, वे
 वास्तविक तत्त्व हैं । जो आत्मा अपना परमात्माकर तत्त्व जानना चाहते हैं उन्हें केवल इतना
 ध्यानकी आवश्यकता है ॥ ४ ॥ (श्रीमद्भाग २।१।१२-१५)

श्रीमद्भागवत माहात्म्य

(सब श्रीमद्भागवतके भीषणसे ब्रह्मजीके प्रति कथित)

श्रीमद्भागवत नाम पुराण लोकविश्रुतम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारणम् ॥ १ ॥

लोकविश्रुत श्रीमद्भागवत नामक पुराणका प्रतिदिन
श्रद्धायुक्त होकर श्रवण करना चाहिये । यही मेरे
सन्तोषका कारण है ।

नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः ।
प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलाक्षाननं फलम् ॥ २ ॥
जो मनुष्य प्रतिदिन भागवतपुराणका पाठ करता
है, उसे एक-एक अक्षरके उच्चारणके साथ कपिल गौ
दान देनेका पुण्य होता है ।

स्लोकार्थं स्लोकापूर्वं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
पठते शृणुयाद् यस्तु गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥
जो प्रतिदिन भागवतके आधे श्लोक या चौथाई
श्लोकका पाठ अथवा श्रवण करता है, उसे एक हजार
गोदानका फल मिलता है ।

यः पठेत् प्रथमो नित्यं स्लोकं भागवतं सुत ।
अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः ॥ ४ ॥
पुत्र । जो प्रतिदिन पवित्रचित्त होकर भागवतके
एक श्लोकका पाठ करता है, वह मनुष्य अठारह
पुराणोंके पाठका फल पा लेता है ।

नित्यं मम कथा यमं तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ।
कलिघाता नरास्ते वै येऽर्चयन्ति सदा मम ॥ ५ ॥
वहाँ नित्य मेरी कथा होता है, वहाँ विष्णु-आपरा
प्रभाव आदि विद्यमान रहते हैं । जो मनुष्य सदा मेरे
भागवत-शास्त्रकी पूजा करते हैं, वे कलिके अधिकारसे
बचते हैं उनपर कलिकरा का नहीं चढ़ता ।

वैष्णवानां तु शास्त्राणि येऽर्चयन्ति शूद्रे भवतः ।
सद्यपापघनिमुक्ता भवन्ति सुरपश्रिता ॥ ६ ॥
जो मानव अपने घरमें वैष्णव-शास्त्रोंकी पूजा करते हैं,
वे सब पापोंसे मुक्त होकर देवताओंका श्रद्धित होते हैं ।
येऽर्चयन्ति शूद्रे नित्यं शास्त्रं भागवतं कृतौ ।
मात्सर्ययन्ति पलायन्ति तथा प्रीतो भवाम्यहम् ॥ ७ ॥
जो लोग कठिणगर्भे अपने घरके भीतर प्रतिदिन
भागवत-शास्त्रकी पूजा करते हैं, वे [कठिने निह

होकर] तात् ठोकते और उच्छ्रित-कूदते हैं, मैं उनपर
बहुत प्रसन्न रहता हूँ ।

याचद्दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं शूद्रे ।
तायत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूक्कम् ॥ ८ ॥

पुत्र ! मनुष्य कितने दिनोंतक अपने घरमें भागवत-
शास्त्र रक्ता है, उतने समयतक उसके पिएर दूध,
घी, मधु और मीठा जल पीते हैं ।

यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये ।
कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ॥ ९ ॥

जो लोग विष्णुमक पुरुषको मक्तिपूर्वक भागवत
शास्त्र स्मरण करते हैं, वे हजारों करोड़ परमेश्वर
(अनन्तकारुणिक) मेरे वैकुण्ठ-धाममें काम करते हैं ।

येऽर्चयन्ति सदा मेहे शास्त्रं भागवतं नरा ।
प्रीयिष्याम्येव विबुधा यावन्नामृतसमृद्धम् ॥ १० ॥

जो लोग सदा अपने घरमें भागवत-शास्त्रका पूजन
करते हैं, वे मानो एक कल्पतकके लिये सम्पूर्ण देवताओं
को तृप्त कर देते हैं ।

स्लोकार्थं स्लोकापूर्वं वा नरं भागवतं शूद्रे ।
शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रममहै ॥ ११ ॥

यदि अपने घरपर भागवतका आत्रा द्योव या
चौथाई श्लोक भी रहे, तो यह बहुत उत्तम बात है,
उसे छोड़कर सैकड़ों और हजारों तरहके अन्य
ग्रन्थोंके संग्रहसे भी क्या काम है ?

न यम्यं तिष्ठते शास्त्रं शूद्रे भागवतं कृतौ ।
न तस्य पुनरावृत्तियाम्यपाशात् कदापन ॥ १२ ॥
कठिणगर्भे जिस मनुष्यके घरमें भागवत-शास्त्र मौजूद
नहीं है, उसको यमराजके पाशसे कभी छुटकारा नहीं
मिलता ।

कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कृतौ ।
शूद्रे न तिष्ठत यम्यं श्रवणादधिके हि मः ॥ १३ ॥
इस कठिणगर्भे जिसके घर पर भागवत-शास्त्र मौजूद
नहीं है उसे कैसे वैष्णव समझा जाय ? वह तो
आग्राह्यसे भी बढकर नीच है ।

जो मानव खा हाकर श्रीमद्भागवतको प्रणाम करता है, उसे मैं घन, श्री, पुत्र और अपनी भक्ति प्रदान करता हूँ ।

महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतं स्तुत ।
शृण्वन्ति ये महाभक्त्या सेवां यद्यो भवाम्यहम् ॥२९॥

हे पुत्र ! जो लोग महाराजोचित सामर्थ्यसे युक्त होकर भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथा सुनते हैं, मैं उनका वशीभूत ॥ जाता हूँ ।

ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् ।
शृण्वन्ति य नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुमत ॥३०॥

वत्सालदुरयोः पुष्पैर्घृणदीपोपहारकैः ।

वशीकृतो ह्यहं तैश्च सत्प्रिया सत्प्रियया ॥३१॥

सुवन ! जो लोग मेरे पत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी उत्सवोंमें मेरी प्रसन्नताके लिये फूल, आभूषण, पुष्प, घूप और दीप आदि उपहार अपना करते हुए परम उत्तम श्रीमद्भागवतपुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं, वे मुझे उसी प्रकार अपने वशमें कर लेते हैं, जैसे पतिव्रता श्री अपने साधुसमाजवाले पतिके घरमें कर लेती है ।

श्रीशुकदेवजीको नमस्कार

य प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं

द्वैपायनो विरहकातर आशुहाव ।

पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु

स्तं सर्वमृतहृदयं मुनिमानतोऽसि ॥

(१ । २ । १)

जिस समय श्रीशुकदेवजीका यशोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुगठं लौकिक-वैदिककर्मके अनुष्ठानका व्यवहार भी नहीं आया था, उन्हें अकले श्री संप्राप्त होनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विह्वले कतर होकर पुनर्रतने लगे—'बेटा ! बेटा ! उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी आत्मे वृद्धोंने उत्तर दिया । ऐसे, जबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेव मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ ।

य म्वातुभाषमखिलधृतिमारमक

मध्यात्मगीपमवित्तितीर्षतां समोऽन्धम् ।

ममारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुणं

तं न्यामन्नुपपयामि शुभं सुनीनाम् ॥

(१ । २ । २)

यह श्रीमद्भागवत भक्त गायनीय-महामात्मक पुराण है। यह भगवान्स्वरूप अनुभव करानेवाला और समस्त बेने-

का सार है । ससारमें फँसे हुए जो लोग इस घोर अहानान्ध कासे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक तत्त्वों को प्रकाशित करनेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है । वास्तवमें उन्होंने पर करुणा करके बड़े-बड़े मुनियोंके आचार्य श्रीशुकदेवजीने इसका वणन किया है । मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ ।

स्वसुखनिमृदचेतास्तद्विष्युदस्तान्पमात्रो

ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।

अतनु त कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं

तमखिलज्जिनर्णं व्यासस्रज्जुं नतोऽस्मि ॥

(१ । २ । ३)

श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मनन्दमें ही निमग्न थे । इस अखण्ड अद्वैत स्थितिसे उनकी भेदछटि सर्वा निवृत्त ॥ शुद्ध थी । फिर भी मुलीकमाहर 'यामसुन्दर की मधुमयी, मधुरमयी मनोहारिणी लीलाओंने उनकी रुचियोग्य अपनी ओर आकर्षित कर दिया और उन्होंने अगस्त्यके प्राणियोंर कृपा करके भगवत्स्वरूप प्रकाशित करनेवाले इस महापुरुषका विचार किया । मैं उनकी कृपा-द्वारा भगवान्स्वरूप प्राप्त करके श्रीशुकदेवजीर चरणोंमें अमङ्गल करता हूँ ।

श्रीमद्भागवतकी महिमा

श्रीमद्भागवतकी महिमा में क्या लिखूँ ? उसके आदिके तीन श्लोकोंमें जो महिमा कहा दी गयी है, उसके बराबर तीन कह सकता हूँ । उन तीन श्लोकोंको कितनी ही बार पढ़ चुकनेपर भी जब उनका स्मरण होता है, मनमें अद्भुत भाव उद्भित होते हैं । कोई अनुवाद उन श्लोकोंकी गम्भीरता और मधुरताको पान नहीं सकता । उन तीनों श्लोकोंसे मनको निर्मल करके फिर इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान कीजिये—

ध्यायतश्चरणाभ्युद्यत भावमिजितचेतसा ।
लौकिकवाधुक्कनास्रस्य हृषासीमे धानैर्हरिः ॥
प्रेमातिमर्तमिर्निघ्नपुण्ड्रकाक्षोऽसिदिवितः ।
आनन्दसङ्गच्छये क्षीनो नापश्यनुभय मुने ॥
रूप भगवतो यत्तस्मिन्कार्त्तं शुषापहम् ।
अपश्यन् सखसोचस्ये वैद्विभ्यान् दुर्मना इव ॥

मुझको श्रीमद्भागवतमें अत्यन्त प्रेम है । मेरा विश्वास और अनुभव है कि इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्यका ईश्वरका सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है और उनके चरण-कर्ममें अक्षय्य मक्ति होती है । इसके पढ़नेसे मनुष्यको बड़ा निश्चय हो जाता है कि इस ससारको रचन और पालन करनेवाली कोई सर्वव्यापक शक्ति है—

एक ब्रह्मन् त्रिकाक्ष सच चेतन शक्ति विनाश ।
निराकृत पावत इरत कण मङ्गिमरमिजकृत ॥

इसी एक शक्तिको ज्येष्ठ ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा इत्यादि अनेक नामोंसे पुकारते हैं । भागवतके पहले ही श्लोकमें वेदव्यासजीन ईश्वरके स्वरूपका वर्णन किया है कि जिससे इस संसारकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं, वो त्रिकार्षके सत्य है—अर्थात् जो सत्ता रहा भी है मी और खोगा भी—और जो अपने प्रकाशसे अन्यकारको सत्ता दूर रखता है उस परम सत्यका हम ध्यान करते हैं । उसी म्यानमें श्रीमद्भागवतका स्वरूप भी इस प्रकारसे संक्षेपमें वर्णित है कि इस भागवतमें—
जो दूसरोंको बड़ी देखकर डाह नहीं करते, ऐसे सत्पुरुषोंका सब प्रकारके कार्यसे रहित परम धर्म और वह जाननेके योग्य ज्ञान वर्णित है जो वास्तवमें सब कल्याणका देन नामा और आधिभौतिक, आधिभौतिक और आधिआत्मिक—इन तीनों प्रकारके तपकों मिष्टमहाला

है । और प्रयोंसे क्या, जिन सुहृत्सिंघेन पुण्यके कर्म कर रखे हैं और जो अद्भुतसे भागवतको पढ़ते या सुनते हैं, वे इसका सेवन करनेके समझसे ही अपनी मक्तिसे ईश्वरको अपने हृदयमें अविलक्षणरूपसे स्थापित कर लेते हैं । ईश्वरका ज्ञान और उनमें मक्तिका परम साधन—ये दो पदार्थ जब किसी प्राणीको प्राप्त हो गये तो कौन-सा पदार्थ रह गया, जिसके लिये मनुष्य कामना करे और ये दोनों पदार्थ श्रीमद्भागवतसे पूरी मात्रामें प्राप्त होते हैं । इसीलिये यह पवित्र ग्रन्थ मनुष्यमात्रका उपकारी है । जबतक मनुष्य भागवतको पढ़े नहीं और उसकी इसमें ब्रह्मा न हो, तबतक वह समझ नहीं सकता कि ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका यह कितना विशाल समुद्र है । भागवतके पढ़नेसे उसको यह विमल ज्ञान हो जाता है कि एक ही परमात्म प्राणी-प्राणीमें बैठ हुआ है और अब उसको यह ज्ञान हो जाता है, सब वह वर्णन करनेका मन नहीं करता, क्योंकि दूसरोंको भोग पहुँचाना अपनेको चोट पहुँचानेके समान हो जाता है । इसका ज्ञान होनेसे मनुष्य स्वयं धर्ममें स्थिर हो जाता है, क्षमाशीलसे दया-धर्मका पालन करने लगता है और किसी अधिस्तक प्राणीके ऊपर बार करनेकी इच्छा नहीं करता । मनुष्योंमें परस्पर प्रेम और प्राणिमात्रके प्रति दयाका भाव स्थापित करनेके लिये इस्ते बहुर कर साधन नहीं । वर्तमान समयमें जब संसारके बहुत अधिक भागमें मर्यादर बुद्धि का हुआ है, मनुष्य मात्रको इस पवित्र धर्मका उपदेश अत्यन्त कल्याणकारी होगा । जो मन्त्रब्रह्म है और श्रीमद्भागवतके मन्त्रवक्त्रे जानते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि मनुष्यके लोक और परलोक दोनोंके बचानेवाले इस पवित्र ग्रन्थका सब दशोंकी मायाओंमें अनुवाद कर इसका प्रचार करें ।

मदन मोहन मालवीय

श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि तथा विनियोग, न्यास एव ध्यान

प्रातः कष्ट गानके पश्चात् अपना नियम नियम समाप्त करके पहले भगवत्सम्बन्धी स्तोत्रों एवं पर्णिके द्वारा मङ्गल्य धरण और वन्दना करे । इसके बाद आचमन और प्राणायाम करके—

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम वेद्यां भद्रं पश्ये
मास्तभियजत्राः । म्पिरैरङ्गैस्तुष्टुयाश्चस्तनूभि
र्व्यदोम इवहित यदायुः ॥*

—रह्यादि मन्त्रोंसे शान्तिपाठ करे । इससे पश्चात् भगवान् श्रीरुष्ण, श्रीम्यासजी, पुस्तकदेवजी तथा श्रीमद्भागवत मन्त्रकी पोद्दशोपचारसे पूजा करनी चाहिये । यहाँ श्रीमद्भागवत पुस्तकके पोद्दशोपचार पूजनकी मन्त्र सहित विधि दी जा रही है, इसीके अनुसार श्रीरुष्ण आदिकी भी पूजा करनी चाहिये । निम्नाह्ति वाक्य पढ़कर पूजन शिथे संरत्न करना चाहिये । संकल्पके समय दाहिन हाथकी अनामिका-अङ्गुलिसे बुद्धि, पवित्री पहने और हाथमें जल लिये रह । संरत्नवाक्य इस प्रकार है—

ॐ तस्यत् । ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णु ओमये-
 तस्य मन्त्रा द्वितीयपरां श्रीरतेवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे
 भरतगण्ड आचार्यनेन्दुदत्तान्तर्गत पुण्यस्थाने इति युग
 इति प्रथमचरणं अमुग्मवत्सरे अमुग्मपादे अमुग्मपञ्च
 अनुत्तयोगशरांशद्वितीयमुह्यतचरणान्वितायां द्युभपुण्यतियी
 अनुत्तगतसरे अनुत्तगन्तोत्तमस्य अमुक्काम्य (पर्येण
 गुप्तस्य वा) नमः सन्तुष्टुभ्यस्य सपरिहारस्य श्रीगोवर्धन
 परमपरागारविप्रशान्तान् स्वस्त्युद्दिष्टान् स्वयं भगवान्नु
 सहस्रभगवन्तीप्रथमोत्तमस्य वा श्रीभगवत्पामात्मस-
 भगवत्स्त्वन्तीभगवत्स्त्वम् पाठप्रतिपादितस्य
 श्रीमद्भागवतस्य इति पञ्चनं चण्ड इति ।

● देवधारी ! हम अन्ते जान न हम ही ब्रह्म भुवनेश्वरी
 किं न तत्त्वमसि ब्रह्मावस्थायी हो । हम ब्रह्मसमे भव्य
 शर अन्ती इन अन्तमे नमः शुभ-ही-शुभ देवो—
 भूत न बन्नी दयन न हो । हमस्य नरि भूत उग्र
 भव्य गिर हो—पुत्र न भूत नमः पादपद्मी शुभ—
 ब्रह्मेश्वरी नमः ब्रह्म शुभ हम एमी भव्युषा उग्रयोग ब्रह्म
 देव नमः शिवस्य न देवधारी नमः शिवस्य देव नमः
 देवस्य देव नमः ।

इस प्रकार सकल्प करके—

तद्वस्तु मित्रायरुणा तदग्ने
शंशोऽस्मभ्यमिदमस्तु वास्तम् ।
भग्नीमहि गाधमुत प्रतिष्ठा
नमो द्विषे वृहते सादनाय ॥

—यह मन्त्र पढ़कर श्रोमश्रागविकी सिंहासन या अन्य किसी वाहनपर स्थापना करे। तत्पश्चात् पुनर्मूलके एक-एक मन्त्रश्राव क्रमशः षोडश उपचार आण करते हुए पूजन करे।

ॐ सहस्रशीपा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो दृष्ट्वात्यतिष्ठद्दशाक्षुस्म ॥ १ ॥
श्रीभागवतात्मकस्वरूपिणं श्रीभागवताय नमः ।
आवाहयामि ।

—इस मन्त्रसे भाषानुके नामस्वरूप श्रीमद्भागवतको
नमस्कार करते आयाहन करे ।

† परमात्मन् । आप लक्षकं मिश्र—दिवराय हानिके कारण 'मिश्र' नामसे पुकारे जाते हैं, लक्षणे घर—भेद हानिके कारण वरुण है लक्षका प्रदण करनेवाले हानिक कारण अग्नि है । हम आरुण इन् मिश्र, वरुण एव अग्नि नामोंसे सम्बोधित करके प्रायना करत हैं कि वह लक्ष (आपक मुखध पूज यह भीमद्रागारुण्य मुन्दर उक्ति) अथवा प्रदण हो—नर्तेय हानिक नाथ ही इनकी क्वाति एव प्रकार है । तथा वह लक्ष हमकागों के जिन एका मुग, एनी शान्ति प्रदान करे, जिनसे मुग वा अशान्ति का मत न हो । अथात् इसने जित्य मुग जित्य शान्ति दात है । हम चाहते हैं अग्निपन श्विति हम चाहते हैं शाधत प्रतीक्षा । इन इन लक्षके द्वारा हम प्राप्त कर लेंगे । दययेय । यह को आरुण अत्यन्त प्रकाशमान परम परान् लभयत स कोडा । आधयभूता 'श्व' नमस्कृत्य है हम हम लक्ष ही नमस्कार करने हैं ।

१—मरणात्पि परमात्मा एव शमना कल्याणरी
नृसिंहः सार आरम आग करक शिवा है और हमने एव
अनुस लख भी है । यय १ कल्याणरी एवक एव कु य
हम एव भी है । उन परमात्मा कथाक मय भा
क मरिनी और बाग भा क मरिनी एव है—
कल्याण है ।

ॐ पुरुष एवेत् सर्वं यद् मूत यच्च भव्यम् ।
उतामृतस्य स्पेक्षानो यदन्तेनातिरोहति ॥ २ ॥

श्रीभागवतामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः ।
आसनं समर्पयामि ।

—इम मन्त्रसे अस्तन समर्पण करे ।

ॐ पठाधानम्य महिम्यतो ज्यायार्थं पूरुषः ।
पात्रोऽस्य विभ्रा भूतानि त्रिषाधस्यामृत निधिः ॥ ३ ॥
श्रीभागवतामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः ।
पात्रं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे पैर पञ्चानेके लिये जल समर्पण करे ।

ॐ त्रिषाधूर्त्वं बदैत् पुरुषः पात्रोऽस्येहाभवत् पुनः ।
तस्ये विष्वक् प्यक्षमात् साधुभक्तान्ते अभिः ॥ ४ ॥
श्रीभागवतामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः ।
ज्यं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे ज्यं निवेदन करे ।

ॐ तस्माद् विराडजायत विराजो अभि पूरुषः ।
स जातो भस्परिच्यत पश्चाद् भूमिमधो पुरः ॥ ५ ॥

२—यह जो कुछ इस समय वर्तमान है उस परमात्मा-का ही स्वरूप है—भूत और भविष्य काही भी परमात्मा ही है । इत्यादी ही नहीं वह परमात्मा कृत्तिका स्वामी है । तथापि ये जो अन्तरे उत्पन्न होनेवाले जीव हैं उन सबका भी शासक—उसको निकमके अन्तर रखनेवाला वह परमात्मा ही है ।

३—भूत भविष्य और वर्तमान कालसे सम्बन्ध रखने वाला कितना भी बड़ा है—यह सब इस पुरुषकी महिमा है इस परमात्माका विभूति-विचार है । उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है वह पुरुष इत ब्रह्माण्डमय विराट् स्वरूपसे भी बहुत बड़ा है । वह खरा किन्—ये तीनों ओर से उसके एक पादमें हैं उसकी एक जीवार्थमें समाप्त हो जाते हैं । अभी उसके तीन पाद और दोष हैं यह विषय स्वरूप समुद्र है—अग्निपापी है और परम प्रकाशमय शुद्धोक्त अर्थात् अपने स्वरूपमें ही स्थित है ।

४—यह विषय पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात् वह परमात्मा अज्ञानके कर्मभूत इस सत्तासे पूषक् तथा यहाँके गुण-दोषोंमें अलूता रहकर ऊँची शक्तिमें विराजमान है । उसका एक भ्रंशमात्र भाषाके लक्ष्यमें आकर यहाँ काहूँके रूपमें उत्पन्न हुआ फिर वह भाषाबद्ध बह-चेतन मयी गमना प्रकाशकी दृष्टिके रूपमें स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया ।

५—उत्त अग्निपुरुष परमात्माले विराट्की उत्पत्ति हुई—यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ । इस ब्रह्माण्डके ऊपर

श्रीभागवतामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः
आचमनीयं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे आचमनके लिये जल या गङ्गाजल जपण करे ।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यजमतभ्यत ।
वसन्तो बस्यासीशान्यं व्रीष्म इध्म शरद्वधिः ॥ ६ ॥
श्रीभागवतामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः ।
स्नानीयं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे स्नानके लिये जल जपण करे ।

ॐ तं यजं वरिषि प्रौसन् पुरुष जातमप्रत ।
तज देवा अयजन्त साध्या श्रुपयन्त ये ॥ ७ ॥
श्रीभागवतामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः ।
कनं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे कन समर्पण करे ।

ॐ तस्मात्पश्चात्सर्वभूतः समुत्त पूषदात्मन् ।
पशून् तौक्यो वायुम्यान्तरण्यान् प्राग्यान् ये ॥ ८ ॥

इसका अग्निमान्नी एक पुरुष प्रकट हुआ । तात्पर्य यह कि परमात्माने अपनी भाषासे सिराट् ब्रह्माण्डकी रचना कर स्वयं ही उसमें जीवरूपसे प्रवेश किया । वही जीव ब्रह्माण्डका अग्निमान्नी देवता (शिरःवर्गम्) हुआ । इस प्रकार उत्पन्न होकर वह सिराट् पुरुष पुनः देवता त्रिपक् और अनुज आदि अनेकों रूपोंमें प्रकट हुआ । इसके बाद उसने भूमिको उत्पन्न किया फिर जीवोंके शरीरोंकी रचना की ।

६—उत्त समय देवताओंने वस करना चाहा परन्तु वसकी ओर लासरी उपलब्ध न हुई । तब उन्होंने पुरुषके स्वरूपमें ही इविष्यकी श्रवणा की । वस पुरुषरूप इविष्यले ही देवताओंने वसका विचार किया उस समय उनके मनुष्या-मुत्तर कलत्राश्रुत की हुई प्रोक्षकश्रुते समिधाका काम दिया और शरद्विश्रुते विशेष प्रकारके चक्र-मुद्रावादि इविष्यकी आकल्पकता पूर्ण हुई ।

७—उत्तसे पहले उत्पन्न हुआ वह पुरुष ही उत्त समय वसका लक्षण वा देवताओंने उसे लक्ष्म्यवाद्य रूपमें देखा हुआ पशु मन्ता और उत्त मानविक बन्नें उत्त लक्ष्मियत्-पशुका मायनाहाय ही प्रोक्षक अग्नि उत्पन्न भी किया । इस प्रकार उत्पन्न किये हुए उत्त पुरुषकी आगे द्वारा देवताओं व्याप्तों और श्रुतिबोधे उत्त मानविक वस्तुओं पूर्ण किया ।

८—कितने लक्ष कुक्ष इवन किया गया उत्त पुरुषरूप यकले बड़ी-सी आदि सामग्री उत्पन्न हुई । पुरुषने वनमें उत्पन्न होनेवाले हिरण आदि और गोबोमें होनेवाले गाय

श्रीभगवन्नामस्तुत्स्विणि श्रीभागवताय नमः ।
यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत अर्पण करे ।

ॐ तस्मात्तस्मात्सर्वभूत भ्यश्च सामानि अर्चिरे ।
छन्दासि जज्ञिरे तस्मात् यज्ञस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

श्रीभगवन्नामस्तुत्स्विणि श्रीभागवताय नमः ।
चन्दनं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे चन्दन चढ़ाये ।

ॐ तस्मादद्या अजायन्त ये के क्षोभयात्तः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माच्छाता अजायता ॥ १० ॥

श्रीभगवन्नामस्तुत्स्विणि श्रीभागवताय नमः ।
पुष्पं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये ।

ॐ यन्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुक्तं किमस्य कौ बाहू का ऊरु पादा उप्येते ॥ ११ ॥

श्रीभगवन्नामस्तुत्स्विणि श्रीभागवताय नमः ।
घूपमाघ्रापयामि ।

—इस मन्त्रसे घूप सुँचाये ।

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुक्तमासीद्बाहू यजम्या कृता ।
ऊरु तदस्य यद्वक्ष्यं पद्भ्यां शूत्रे अजायत ॥ १२ ॥

भोहे भाणि बापुदेवतासम्पत्ती प्रसिद्ध पशुभोंका भी उत्पन्न किया ।

१-किंवन्तै वर कुछ इनन किया गया है, उस यशपुरुषसे श्रुतिदे और नामवेद प्रकट हुए उर्ध्वसे गायत्री आदि छन्दोंकी भी उत्पत्ति हुई तथा उर्ध्वसे यज्ञवेदका भी प्रादुर्भाव हुआ ।

१०-उस यशपुरुषसे ही बाड़े उत्पन्न हुए, इनक अक्षि क भी वह नीचे-ऊपर दोनों ओर दोह रत्ननेषाह पञ्चरत्नदेह अर्थात् प्राणी हैं ये भी उत्पन्न हुए । उगीसे गोर्ध उत्पन्न हुई और उगीसे भेड़ों तथा बकरीयोंकी उत्पत्ति हुई ।

११-अथ प्राणमय देवताओंने इस यशपुरुष (प्राजापति) का प्रकट किया उस समय इसका अल्पबोध रूपमें कितने विभाग किये ! इस पुरुषका मुँह क्या था दन्तों कीटें क्या थी ! दोनों आँधों और दानों पैर कौन थे ।

१२-प्राणमय इसका मुख था अथवा मुखम ब्राह्मणका उत्पत्ति हुई । दन्तों मुखपर छत्रिय आदि बनीं अथवा उनसे अन्तरात्मा आस्त्य हुआ । इन पुरुषकी दन्तों तथा पैरों पर हुई-बलभोजने सेव्य आदि की उत्पत्ति हुई और दन्तों पैरोंसे शूद्र जाति प्रकट हुई ।

श्रीभगवन्नामस्तुत्स्विणि श्रीभागवताय नमः ।
दीप दर्शयामि ।

—इस मन्त्रसे दीप दीप मलाकर दिखये और उसके बाद हाथ धो ले ।

छन्दमा ममसो ज्ञातव्यस्तोः सूर्यो भजायत ।
मुक्ताविम्व्रज्जगन्निष्ठ प्राणाव् वायुरजायत ॥ १३ ॥

श्रीभगवन्नामस्तुत्स्विणि श्रीभागवताय नमः ।
नैवेद्यं निवेदयामि ।

—इस मन्त्रसे नैवेद्य अर्पण करे ।

ॐ नाम्ना आसीदन्तरिक्ष दीप्तीं द्यौः समयतंत ।
पद्भ्या भूमिर्विंशः भोजान्तासाक्षोर्कौ मकल्पयन् ॥ १४ ॥

श्रीभगवन्नामस्तुत्स्विणि श्रीभागवताय नमः ।
एतात्पद्मपुगीफलचर्चूरसहितं ताम्बूलं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे पलक चढ़ा अर्पण करे ।

ॐ सप्तास्यासन्नपरिधयस्त्रिंशत्स समिधः कृताः ।
देवा यजन्तं तन्महाना अवब्रून् पुरुष पशुम् ॥ १५ ॥

श्रीभगवन्नामस्तुत्स्विणि श्रीभागवताय नमः ।
दक्षिणां समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे दक्षिणा समर्पण कर ।

यदाहमेत पुरुष महान्तम्
मादित्यवर्णं तमसरतु पारे ।

सर्वाणि रूपाणि विचिन्त्य धीराः
नामानि कृत्वाभियदन् यदात्मन ॥ १६ ॥

११-इसका मनसे चत्रमा उत्तरम हुए, नैऋति मूर्धकी उत्पत्ति हुई । मुखसे इन्द्र और अग्नि प्रकट हुए तथा प्राणम वायुका प्रादुर्भाव हुआ ।

१४-नामिसे अन्तरिक्ष क्षेत्री उत्पत्ति हुई, मस्तकसे अर्धक्षेत्र प्रकट हुआ, पैरों पृथ्वी हुई और मनसे दिवादे प्रकट हुई । इस प्रकार उन्होंने तमस्त सेवोंकी कल्पना की ।

१५-प्रजापतिने प्राणरूपी देवताओंने जब मानसिक यशस अनुष्ठान करते समय तपस्यराष्ट्र पुरुषरूपी पशुका सम्पन्न किया था उस समय सात सपुत्र इस वरकी वरिधि प और इस व प्रसारण छन्दोंकी कल्पना हुई । (गायत्री आदि ७ अक्षरवाणी आदि ७ और एति भा ७—ये ही इयीस छन्द हैं ।)

१६-धीर पुरुष समस्त स्वरों परमात्मका ही मन्त्र विचारकर उनके निम्न-निम्न नाम एतत्तर विना एक नामका ही यन्त्राण और अन्तरिमन्त्र कल्प गन्ता है अथवा

धीमगवधामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः ।
नमस्करोमि ।

—इस मन्त्रसे नमस्कार करे ।

घाता पुरस्ताद्यमुदाग्रद्वार
दाक् प्रविष्टान् प्रविष्टाश्चतस्रः ।
तमेयं विद्वानमृत इह भवति
मान्यः पथा भयनाय विद्यते ॥ १७ ॥

धीमगवधामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः ।
प्रदक्षिणां समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे प्रदक्षिणा करे ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा
स्तानि भर्माणि प्रथमाम्यासन् ।
त इ वाकं महिमानः सचम्य
यज्ञं पूर्वं साम्याः सन्ति वचाः ॥ १८ ॥

धीमगवधामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः ।
मन्त्रपुण्यं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे मन्त्रपाठपूर्वक पुण्याञ्जलि अर्पण करे ।

प्रार्थना

बन्धे श्रीकृष्णदेव मुरनरकभिर्षं वेद्वेदाम्भवेयं
कोके भक्तिप्रसिद्ध यदुक्तलज्जभी प्रायुषसीवपारे ।
यस्यासीद् रूपमेव त्रिभुवनतरणे भक्तिवध स्वतन्त्रं
शास्त्रं रूपं च कोके प्रकटयति मुदाया स मो मूर्तिहेतुः ॥

जो इस अगस्तमें भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं, त्रिभुवन
तत्त्व वेत् और वेदान्तके द्वारा ही जानने योग्य है, जो
अपार वादवहारी समुद्रमें प्रकट हुए थे, मुर और
बानी पुरुष इस प्रकार जानते हैं—अविद्यारूपी अन्धकारसे
परे आदिब्रह्मके समान स्वप्रकाश इस महात्मा पुरुषको मैं अपने
आत्मा' रूपसे जानता हूँ ।

१७—जसाहीने पूर्वकालमें शिष्य स्तवन किया था
इसने उस दिष्टा-निरिष्टाभीमें किते भ्यात बना था उस
परमात्माको जो इस प्रकार जानता है वह इस बीजनमें ही
अमृत (मुक्त) हो जाता है । माध्व भगवा भगवत्प्राप्तिके
छिने इसके विना दूसरा मार्ग नहीं है ।

१८—देवताओंने पूरोंक मानसिक यज्ञके द्वारा पञ्चस्व
पुरुष—महापतिमें आपनना की । इस आराधनासे समस्त
कामको कारण करनेवाले है पूर्ण आदि मुख्य भूत प्रकट
हुए । इस पञ्चमी उपासना करनेवाले महात्माओंग उस
स्वर्गलोकमें प्राप्त होते हैं जहाँ प्राचीन साध्यदेवता निवास
करते हैं ।

नरकासुरको मारनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं सादर
सप्रेम प्रणाम करता हूँ । जो इस संसारमें अपने स्वरूप
तथा शास्त्रको प्रसन्नपूजक प्रकट किया करते हैं तथा
सधमुध ही त्रिभुवन स्वरूप इस त्रिभुवनको तरनेके लिये
भक्तिके समान सतन्त्र नौकररूप है, ये भगवान् श्रीकृष्ण
हमकोगोंका वरूपण करें ।

ममः कृष्णपद्मास्ताय भक्ताभीष्टप्रदायिने ।
आरक्त रोषयेच्छब्दममामके हृदयाम्बुजे ॥

कुल-कुल बालिका लिये हुए श्रीकृष्णका जो चरण-
कमल मेरे हृदयकमलमें सदा दिव्य प्रकाश फैलाता रहता
है और भक्तजनोंकी मनोवाञ्छित कृपमनाएँ पूर्ण किया
करता है, उसे मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।

धीमगवधतरुण तत् पूजयेद् भक्तिपूर्वकम् ।
अर्चकापाथिलान् कृमान् प्रयच्छति न सदाया ॥

धीमद्भागवत भगवान्पुत्र स्वरूप है, इसका भक्ति
पूर्वक पूजन करना चाहिये । यह पूजन करनेवालेकी
सारी कृपमनाएँ पूर्ण करता है, इसमें तनिक भी
सन्देह नहीं है ।

विनियोग

दाहिने हाथकी अनामिकामें कुशकी पत्रित्री पहन
ले । फिर हाथमें जल लेकर नीचे लिखे वाक्यको पढ़कर
भूमिपर गिरा दे—

ॐ अस्य श्रीमद्भागवतात्मस्तोत्रमन्त्रस्य नारद
श्रुतिः । बृहती छन्दः । श्रीकृष्णः परमात्मा देवता ।
मन्त्र बीजम् । भक्तिः शक्तिः । ज्ञानवेराग्ये धीलकम् ।
मम श्रीमद्भगवत्पदादिसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः ।

भूत श्रीमद्भगवत्स्तोत्र-मन्त्रक देवर्षि नारदजी
श्रुति हैं, बृहती छन्द है, परमात्मा श्रीकृष्णमन्त्र देवता
हैं, मन्त्र बीज है, भक्ति शक्ति है, ज्ञान और वेराग्य
कीलक हैं । अपने ऊपर भगवान्की प्रसन्नता हो, उनकी
कृपा बराबर बनी रहे—इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये पाठ
करनेमें इस भागवत्स्तोत्र विनियोग (उपपाग) किया
आता है ।

न्यास

विनियोगमें व्यापे हुए श्रुति आदिकर तथा प्रधान
देवताक मन्त्राक्षरोंका अपने शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें जा

स्वाप्त किया जाता है, उसे 'न्यास' कहते हैं। मन्त्रका एक-एक अक्षर विमल होता है, उसे पूर्तिमान् देवताके रूपमें देखना चाहिये। इन अक्षरोंके स्वाप्तसे साधक स्वयं मन्त्रमय हो जाता है, उसके हृदयमें दिव्य चेतनाका प्रकाश फैलता है, मन्त्रके देवता उसके स्वरूप होकर उसकी सवका रक्षा करते हैं। इस प्रकार वह 'देवो मूला देव यजेत्' इस श्रुतिके अनुसार स्वयं देवस्वरूप होकर देवताओंका पूजन करता है। श्रुति आदिका न्यास सिर आदि कतिपय अङ्गमें होता है। मन्त्रपत्रों अथवा अक्षरोंका न्यास प्रायः हाथकी अँगुलियों और हृत्पादि अङ्गमें होता है। इन्हें क्रमशः 'कृत्न्यास' और 'अङ्गन्यास' कहते हैं। किन्हीं-किन्हीं मन्त्रोंका न्यास सर्वाङ्गमें होता है। न्याससे बाह्य-भीतरकी शुद्धि, दिव्य कल्पी प्राप्ति और साधनाकी निर्बल पूर्ति होती है। यहाँ क्रमशः श्रुत्यदिन्यास, कृत्न्यास और अङ्गन्यास दिये जा रहे हैं—

श्रुत्यादिन्यास

भारद्वयं नमः शिरसि ॥ १ ॥ पुहतीच्छन्दसे नमो
मुते ॥ २ ॥ मीहृण्यपरमारमदेवतायै नमो हृदये ॥ ३ ॥
महबीजाय नमो गुह्ये ॥ ४ ॥ भक्तिस्तव्यं नमः पादयोः
॥ ५ ॥ ज्ञानचैराग्यवर्त्तकाम्या नमो नाभौ ॥ ६ ॥
विनिबोधाय नमः सर्वाङ्गे ॥ ७ ॥

ऊपर न्यासके सात वाक्य उद्धृत किये गये हैं। इनमें पहला वाक्य पङ्कत दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे सिरका स्पर्श करे, दूसरा वाक्य पङ्कत मुखका, तीसरे वाक्यसे हृत्पत्र, चौथेसे गुण्डा, पाँचवेंसे दोनों पैरोंका, छठेसे नाभिका और सातवें वाक्यसे सम्पूर्ण अङ्गोंका स्पर्श करना चाहिये।

कृत्न्यास

इसमें 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्रके एक-एक अक्षरका प्रणवसे सम्पुटित करके दोनों हाथोंकी अङ्गुलियोंमें स्थापित करना है। मन्त्र मँचे लिये जा रहे हैं—

ॐ ॐ ॐ नमो दक्षिणतर्जण्याम् ऐसा उच्चारण करके दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी तर्जनीका

स्पर्श करे। ॐ नं ॐ नमो दक्षिणमध्यमायाम्—यह उच्चारण कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी मध्यमा अङ्गुलिका स्पर्श करे। ॐ मो ॐ नमो दक्षिणानामिकायाम्—यह पङ्कत दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी अनामिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। ॐ भं ॐ नमो दक्षिणकनिष्ठिकायाम्—इससे दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। ॐ नं ॐ नमो वामकनिष्ठिकायाम्—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी कनिष्ठिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। ॐ व ॐ नमो वामानामिकायाम्—इससे बायें हाथ के अँगूठेसे बायें हाथकी अनामिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। ॐ तं ॐ नमो वाममध्यमायाम्—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी मध्यमा अङ्गुलिका स्पर्श करे। ॐ वां ॐ नमो वामतर्जण्याम्—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी तर्जनी अङ्गुलिका स्पर्श करे। ॐ तुं ॐ नमः ॐ दें ॐ नमो दक्षिणाङ्गुल्यणो—इसकी पङ्कत दाहिने हाथकी तर्जनी अङ्गुलिसे दाहिने हाथके अँगूठेकी दोनों गोटोंका स्पर्श करे। ॐ वां ॐ नमः ॐ यं ॐ नमो वामाङ्गुल्यणो—इसका उच्चारण करके बायें हाथकी तर्जनी अङ्गुलिसे बायें हाथके अँगूठेकी दोनों गोटोंका स्पर्श करे।

अङ्गन्यास

यहाँ द्वादशाक्षर मन्त्रके पदोंका हृत्पादि अङ्गोंमें न्यास करना है—

ॐ नमो नमो हृदयाय नमः—इसकी पङ्कत दाहिने हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंसे हृत्पत्र स्पर्श करे। ॐ भगवते नमः शिरसे स्पर्श—इसका उच्चारण करके दाहिने हाथकी सभी अङ्गुलियोंसे सिरका स्पर्श करे। ॐ वासुदेवाय नमः शिखायै वपुः—इसका दाया दाहिने हाथसे शिखाका स्पर्श करे। ॐ ममा नमः कक्षाय ह्रुम्—इसका पङ्कत दायें हाथकी अङ्गुलियोंसे बायें कंधे का और बायें हाथकी अङ्गुलियोंसे गायें कक्षिका स्पर्श करे। ॐ भगवते नमः नेत्रत्रयाय वीपद्—इसका पङ्कत दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रोंका तथा मध्यमाके मध्यभागमें गुण्डासे स्थित तृतीय नेत्र (अनन्तशु) का स्पर्श करे। ॐ वासुदेवाय नमः

जबान फट—इसका उच्चारण करके दाहिम हाथको मिरके ऊपरसे उल्टा बर्बाद बायी ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले जाये और तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर साड़ी बनाये ।

अङ्गन्यासमें आये हुए 'साहा', 'भरट्', 'हुम्', 'वौपट्' और 'फन्'—ये पाँच शब्द देवताओंके उद्देश्यसे किये जानेवाले हस्तसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं । यहाँ इनका आत्मसुद्धिके लिये ही उच्चारण किया जाता है ।

ध्यान

इस प्रकार न्यास करके बाहर-भीतरसे शुद्ध हो

मनको सब ओरसे ढटाकर एकाम मात्रसे मगान्त्व ध्यान करे—

किरीटकेयूरमहाहर्निष्के

मण्युत्तमाब्जकृतसर्वगायम् ।

पीताम्बर

कञ्जानभिधनय

मालाधर केरायमम्युपैमि ॥

जिनके मस्तकपर किरीट, बाहुओंमें मुजबब और गलेमें बहुमूल्य हार शोभा पा रहे हैं, मणियोंके सुन्दर गहनोंसे सारे अङ्ग सुशोभित हो रहे हैं और शरीरपर पीताम्बर पहन रहा है—सोनेके तारद्वारा विचित्र रीतिसे बँधी हुई वनमाला धारण किये, उन मगान्त्व श्रीकृष्ण-चन्द्रका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ ।

श्रीमद्भागवत-सप्ताहकी आवश्यक विधि

पुराणोंमें श्रीमद्भागवतके सप्ताहपाठमयण तथा अथवा बड़ी गरी महिम्य क्तधर्म्यी गयी है, अत यहाँ श्रीमद्भागवत-मैत्रियोंके लिये संक्षेपसे सप्ताह-पद्धती आवश्यक विधिकर निर्देशन करया जाता है ।

सुहृत्विचार—यहले विद्वान् ज्योतिषीकी बुद्धिपर उनके द्वारा कमा-मारम्भके लिये शुभ सुहृत्विचार कर लेना चाहिये । मछुत्रोंमें हस्त, चित्रा, ज्ञाती, विद्यावा, जनुवा, पुनर्बुध, पुष्य, रेवती, अश्विनी सुगमिषा, अश्विनी, बनिष्ठा तथा पूर्वाभाद्रपदा उत्तम हैं । तिथियोंमें द्वितीया, तृतीया पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशीको इस कार्यके लिये धष्ट बतलाया गया है । सोम, बुध गुरु एवं शुक्र—ये चार सप्ताह हैं । तिथि चार और नक्षत्रका विचार करनेके साथ ही यह भी देख लेना चाहिये कि शुक्र या गुरु अस्त, बाध अथवा बृद्ध तो नहीं हैं । कथारम्भका सुहृत् अश्विनी श्रोतेसे रहित होना चाहिये । उस दिन पृथ्वी जागती हो । वक्ता और श्रोताका चन्दबल ठीक हो । अग्नें शुभ ऋतुका योग अथवा उनकी दृष्टि हो । शुभ ऋतुकी स्थिति केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो उत्तम है । आगाह ध्याना, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और मार्गशीर्ष अग्रहण—ये मास कथा आरम्भ करनेके लिये श्रेष्ठ कल्पये गये हैं । किन्हीं विद्वानोंके मनमें चैत्र और वैशाखे श्रेष्ठकर सभी मास मान्य हैं ।

कथाके लिये स्थान—सप्ताहकथाके लिये उत्तम एवं पवित्र स्थानकी व्यवस्था हो । जहाँ अधिक लोग सुविधासे बैठ सकें, ऐसे स्थानमें कथाका आयोजन उत्तम है । नदीका तट, उपवन (बगीचा), देवनन्दिर अथवा अपना निवास-स्थान—ये सभी कथाके लिये उपयोगी स्थान हैं । स्थान स्थिर-पुष्टा स्वच्छ हो । नीचेकी भूमि गोबर और पीछी मिट्टीसे ढीपी गयी हो । अथवा पक्का आँगन हो तो उसे भी दिया गया हो । उसपर पत्रि एवं सुन्दर आसन बिछे हों । ऊपरसे चँदोश तना हो । चँदोश आदि किसी भी कार्यमें नीले रंगके वस्त्रका उपयोग न किया जाय । परमामकके हाथसे सौज्ज्द हाथ कथा और उतना ही चौका कथा-मण्डप बने । उसे केलेके छत्रोंसे सज्जया जाय । हरे बाँसक छत्रे लगाये जायें । नूतन पल्लवोंकी बँदनवारों पुष्पमालाओं और कथा-मालाओंसे मण्डपको मछीमौलि सुसज्जित किया जाय । उसपर ऊपरसे सुन्दर चँदोश तान दिया जाय । उस मण्डपके दक्षिण-पश्चिम भागमें कथावाचक और मुख्य श्रोताक बैठनेके लिये स्थान हो । शेष भागमें वेक्ताओं और कल्पा आदिकों का स्थान किया जाय । कथावाचकके बैठनेके लिये ऊँची चौड़ी रखी जाय । उसपर धुव आसन (नय गद्दा) बिछाया जाय । पीछे तथा पार्श्वभागमें मसन एवं तलिये रख दिये जायें । श्रीमद्भागवतको स्थापित करनेके लिये एक

खर्चमण्डन* छोटी-सी चौकी या आधारपीठ बनवाकर उसपर पवित्र कक्ष बिछा दिया जाय। उसपर आगे बत्ती जानेवाली बिधिके अनुसार अष्टदल कमल बनाकर पूजन करके श्रीमद्भागवतकी पुस्तक स्थापित की जाय। कथावाचक भिन्न, सर्वशास्त्रकुशल, दृढान्त देकर श्रोताओंको सम्माननेमें समर्थ, सदाचारी एवं सद्गुणसम्पन्न प्राज्ञ हों। उनमें सुशीलता, कुत्सीनता, गम्भीरता तथा श्रीहृष्य-भक्तिकर होना भी परमावश्यक है। वक्ताको बसूया तथा परनिन्दा आदि दोषसे सज्जित रहित एवं निरुद्ध होना चाहिये। श्रीमद्भागवतकी पुस्तकको रेशमी कलसे आच्छादित करके छत्र चैवरके साथ डोलीमें बपवा अपने मस्तकपर रखकर कथामण्डपमें खाना और स्थापित करना चाहिये। उस समय गीत-वाद्य आदिके द्वारा उत्सव मनाया चाहिये। कथामण्डपसे अनुपयोगी वस्तुएँ हटा देने चाहिये। इतर-उपर दीक्षाओंमें भगवान् और उनकी श्रीलाओंके स्मारक चित्र लगा देने चाहिये। वक्ताका मुँह यदि उत्तरकी ओर हो तो मुख्य श्रोताका मुख पूर्वकी ओर होना चाहिये। यदि वक्ता पूर्वामुख हो तो श्रोताको उत्तरामुख होना चाहिये।

सप्ताह-कथा एक महान् यज्ञ है। इसे सुसम्पन्न करनेके लिये अन्य सुष्ठु सम्पत्तिकोशों की सहायक बना लेना चाहिये। अर्चकी भी समुचित व्यवस्था पहलेसे ही कर लेना उचित है। पौष-सात दिन पहलेसे ही दूर-दूर तक कथाका समाचार भेज देना चाहिये और सबसे यह अनुरोध करना चाहिये कि वे स्वयं उपस्थित होकर समाह्वय्य भ्रमण करें। अधिक समय न वे सकें तो भी एक दिन अवश्य पधारकर कथा-प्रवचन लाभ लें। दूरसे आये हुए अतिथियोंके टहने और भोजनादिकी व्यवस्था भी करनी चाहिये। वक्ताको व्रत प्रवृत्ति करनेके लिये एक दिन पहले ही क्षौर करा लेना चाहिये। सप्ताह-प्राप्त होनेके एक दिन पूज ही देवस्थापन पूजमादि कर लेना उचित है। वक्ता प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व ही खानादि करके संश्लेषसे सत्पन्था-वन्दनादि नियम पूरा कर ले और कणमें कोई चिन्ता न आये, इसके लिये निम्नलिखित गोपनीयता पूजन कर लिया करें।

सप्ताहके प्रथम दिन यजमान स्नान आदिसे शुद्ध हो नित्यकर्म करके आभ्युदयिक ब्राह्मण करे। आभ्युदयिक ब्राह्मण और पहले भी किया जा सकता है। यद्यपि इसी दिन पहले भी आभ्युदयिक ब्राह्मण करनेका विधान है। उसके बाद गणेश, ब्रह्मा आदि देवताओंसहित नवग्रह, षोडश मातृका, सप्त चिरञ्जीवी (अम्बार्यामा, वलि, ब्यस, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य तथा परशुरामजी) एवं कलशकी स्थापना एवं पूजा करे। एक चौकीपर सज्जित-मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें ताक्षकलश स्थापित करे। कलशके ऊपर भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी खर्चमयी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। कलशके ही बगलमें भगवान् शाङ्गग्रामका सिंहासन बिज्रजमान कर देना चाहिये। सर्वतोम्र-मण्डलमें स्थित समस्त देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् भगवान् नर नारायण, गुरु, बापु, सरस्वती, शेष, सनकादि कुमार, सांख्यपण, पण्डित, गृहस्थपति, मैत्रेय तथा उदकका भी आवाहन, स्थापन एवं पूजन करना चाहिये। फिर प्रप्यारुणि आदि छ पौरुणिकोंका भी स्थापन-पूजन करके एक अलग पीठपर उसे सुन्दर कलसे आवृत करके, श्री-नारायणीकी स्थापना एवं अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर आधारपीठ, पुस्तक एवं ब्यस (वक्ता आचार्य) का भी यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजन करना चाहिये। कथा निर्धिष्ट पूर्ण हो—इसके लिये गगन-मन्त्र, ब्राह्मशास्त्र मन्त्र तथा गायत्री मन्त्रका जप और त्रिगुणसहस्रनाम एवं गीताका पाठ करनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार सात, पौष या तीन ब्राह्मणोंका व्रण करे। श्रीमद्भागवतपत्र भी एक पाठ अथवा ब्राह्मणद्वारा कराये। देवताओंकी स्थापना और पूजाके पहले खस्तिवाचनपूर्वक हाथमें पवित्री, अम्बन, कृप, जब और ब्रह्म स्मर एक मण्डपारूप कर लेना चाहिये। सङ्कल्प इस प्रकार है—

ॐ तत्सदय श्रीमहाभगवतो विष्णोरासया प्रयते मानस्य ब्रह्मणो द्वितीय पराये श्रीरवेतपाराहस्ये यन्मुद्रिणे भरतस्तन्मे आचार्यते त्रिगुणप्रापतिभ्यो नैरस्यन अनुभोम्यैकसततियुगचतुष्टयामर्गतादापितितमवलि-प्रयमकरणे योदानगारे अमुहसंपरने अमुगपने

● इस चौकीपर तीन लेख लेना मुद्दा होना चाहिये। इसकी शक्ति न हो तो अपनी शक्ति अनुकर ही कर सक-विद्वान् यनवाये। परन्तु शक्ति होने हुए सोमकल नकोच न करे।

घट, माला, दूर्वादल, आयुष्ण, सुगन्ध (इत्रका फाहा),
 भूप, दीप, नैवेद्य (मिष्ठान एवं गुड़, मेवा आदि) तथा
 अमृतस्य अर्पण करे । गङ्गाजलसे आधमन कराकर
 मुखमुद्रिके लिये सुपारी, लवंग, इलायची और कपूर
 सहित ताम्बूल अर्पण करे । अन्तमें दक्षिणा-द्रव्य एवं
 विशेषार्घ्य, प्रदक्षिणा एवं साष्टाङ्ग प्रणाम निवेदन करके
 प्रार्थना करे ।

ॐ लम्बोदर परमसुखरमेकदन्तं
 रत्नाम्बरं त्रितयनं परमं पवित्रम् ।
 उपादिपादरक्तगोमयललापकान्त
 विज्येश्वर सच्चयिप्रहर तमामि ॥
 त्वां वेद्य विमर्शमेति च सुखरेति
 भक्तप्रियेति सुखमिति फलप्रयेति ।
 विद्याप्रदेत्यप्रहरति च ये स्तुतिरिति
 तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ॥

—‘अनया पूजया गणपति प्रीयतां न मम ।’ यो
 कहकर गणेशावीकी पुण्याञ्जलि दे ।

इसके बाद ॐ भूर्भुवः स्व मां ब्रह्मविष्णु-
 शिवसहितसूर्यादिनवग्रहा इहागच्छतेऽ तिष्ठत मम पूजां
 गृहीत । इस प्रकार या वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक
 ब्रह्मादिसहित नवग्रहोंका आवाहन करे । फिर पूर्ववत्
 उपचार-मन्त्रोंसे अथवा ‘ॐ ब्रह्मण नमः, ॐ विष्णवे
 नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ सूर्याय नमः, ॐ चन्द्रमसे
 नमः, ॐ मौन्याय नमः, ॐ बुधाय नमः, ॐ शुक्रेत्येतये
 नमः, ॐ मार्गाय नमः, ॐ जैत्रेय्य नमः, ॐ
 राहवे नमः, ॐ कतवे नमः —इन नाममन्त्रोंसे पाप,
 अप्य आदि सब उपचार सम्पन्न करके निम्नाङ्कित मन्त्र
 पढ़कर प्रार्थना करे—

ॐ यक्षा मुषारिम्भिपुत्रान्तकारी
 भानुः शशी भूमिसुतो सुषमा ।
 गुरुश्च शुक्रः दानिराहुस्तपः
 सर्वे प्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥

—‘अनया पूजया ब्रह्मविष्णुशिवसहितसूर्यादिनवग्रहा
 प्रीयतां न मम ।’ यो कहकर पुण्याञ्जलि चढ़ाये ।

एतद्वाद ॐ भूर्भुवः स्व मां गौर्वादिगो-मातर
 इहागच्छत मम पूजां गृहीत । इस प्रकार आवाहन करके
 नाम-मन्त्रोंद्वारा पाप-अप्य आदि निवेदन करे—१ ॐ
 धैर्ये नमः । २ ॐ पद्माय नमः । ३ ॐ शाये नमः ।
 ४ ॐ मेधाय नमः । ५ ॐ मातृभ्यै नमः । ६ ॐ

विजयायै नमः । ७ ॐ नयायै नमः । ८ ॐ
 देवसेनायै नमः । ९ ॐ स्वभायै नमः । १० ॐ
 स्वाहायै नमः । ११ ॐ मातृभ्यो नमः । १२ ॐ
 सांक्रमातृभ्यो नमः । १३ ॐ इष्टायै नमः । १४ ॐ
 पुष्टायै नमः । १५ ॐ सुष्टायै नमः । १६ ॐ
 आरम्भसुखदेवतायै नमः ॥ पूजनके पश्चात् प्रार्थना करे—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
 देवसेमा स्वभा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥
 इष्टिः पुष्टिस्तथा सुप्रियात्मनाः सुखदेवता ।
 इत्येता मातरः सर्वा वृद्धिं कुर्वन्तु म सदा ॥

—‘अनया पूजया गौर्वादिगो-मातर प्रीयतां न मम ।’
 इस प्रकार सम्पन्नपूर्वक पुण्याञ्जलि निवेदन करे ।

तदनन्तर ‘मो अक्षयामादिसतचिरजीविन इहागत्य
 मम पूजां गृहीत । इस प्रकार आवाहन करके पूर्ववत् नाम-
 मन्त्रसे पूजा करे—

१ ॐ अक्षय्यायै नमः । २ ॐ वसुधेयै नमः । ३ ॐ
 व्यासाय नमः । ४ ॐ हनुमते नमः । ५ ॐ विभीषणाय
 नमः । ६ ॐ कृपाय नमः । ७ ॐ परशुरामाय नमः ॥

पूजाके पश्चात् हाथमें छत्र लेकर निम्नाङ्कित
 रूपसे प्रार्थना करे—

अक्षय्यायामा वसिष्ठासो हनुमांश्च विभीषणा ।
 कृपा परशुरामश्च सत्यैते चिरजीविनः ॥
 यजमानगृहे नित्यं सुखदा सिद्धिदा सदा ॥

—‘अनया पूजया अक्षय्यामादिसतचिरजीविन
 प्रीयतां न मम ॥’ यह कहकर छत्र चढ़ा दे ।

इसके अनन्तर सर्वतोमद्र-मण्डलस्थ देवताओंका
 आवाहन-पूजन (दक्षिणापद्धतियोंके अनुसार) करके
 मध्यमें ताम्र-कट्टा स्थापित कर । उसके मंथिन विधि
 यह है—‘ॐ मूर्तिः’ इत्यादि मन्त्रसे भूमिकी प्राप्ति
 करके हाथसे (कट्टाके नीचेकी) भूमिकी स्पर्श करे ।
 उस समय ‘ॐ गृहीतं धीं पृथ्वीं च न इमं यः
 मिमिक्षताम् । विमृतासो धीममि ।’ इस मन्त्रको पढ़ना
 चाहिये । उसी भूमिकी कुत्रुम आपत्ति अक्षय्य मन्त्र
 बनाकर उसके ऊपर ‘ॐ धायमस्मि’ इत्यादि मन्त्रोंसे
 सतपन्थ स्थापित करे । फिर उस सतपन्थपर कट्टा
 स्थापित करे उस समय ‘ॐ आत्रिप कट्टा’ इत्यादि
 मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये । इसके बाद ‘ॐ

इसके बाद 'नरनारायणाय नमः' इस मन्त्रसे भगवान् नर-नारायणका आवाहन और पूजन करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

यो मायया विरचित निजमात्मनीय
 खे रूपमेवमिष तत्प्रतिषक्षणाय ।
 एतेन धर्मसत्त्वेन श्रियमूर्तिमाध
 प्राबुद्धकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥
 सोऽयं स्थितिस्थितिकरोपशमाय च्छात्र
 सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतस्मा ।
 हृदयाद्ब्रह्मकर्मणेन विद्वोऽग्नेन
 यच्चमिक्तेतममल क्षिपतापविश्वम् ॥

—'अनया पूजया भगवन्तौ नरनारायणौ प्रीयतां न मम ।'

तत्पश्चात् ब्रह्मा और द्योताओंके सब विकारोंको दूर करनेके लिये वायुदेवताका आवाहन एवं पूजन करे—

ॐ वायवे सर्वकल्याणकर्त्रे नमः ।' इस मन्त्रसे पाषाण आदि निवेदन करके निम्नाह्वित रूपसे प्रार्थना करे—
 अन्तः प्रविष्ट्य मृतमि यो विभर्त्यारमकेतुभिः ।
 अन्तर्गामीश्चरा साक्षात् पातु नो यक्षो रुद्रतमः ॥
 —'अनया पूजया सर्वकल्याणकर्ता वायु प्रीयतां न मम ।'

वायुकी पूजाके पश्चात् गुरुका ॐ गुरुवे नमः । इस मन्त्रसे पूजन करके प्रार्थना करे—

प्रमत्स्यानसरोऽन्नमप्ययिलसज्जीवागुपीठस्थित
 रुद्रैर्बलैर्दण्डि यराभयकर कर्पूरकुण्डलज्योत्स्नम् ।
 ह्येतत्सर्वसमादुलेपनयुत विपुद्गुणा कान्तया
 सखिलघ्रातनुं प्रसन्नयदन बन्धे गुरु साध्वरम् ॥

—'अनया पूजया गुरुदेव प्रीयतां न मम ।'

तदनन्तर 'नेत्रपुष्प आदिसे सुरक्षित्वे नमः' इस मन्त्रद्वारा सरस्वतीका पूर्ववत् पूजन करके प्रार्थना करे—

या कुन्देऽधुनारहास्त्रयला या शुभ्रवस्त्राभृता
 या वीणावत्स्वन्दमण्डितकण या ह्येतपद्मासना ।
 या प्रह्लादपुतशङ्करमूर्तिभिर्देवैः सत्रा धर्मिता
 मामां पातु नरस्वती भगवती निःशेषजात्यापहा ॥

—'अनया पूजया भगवती सरस्वती प्रीयतां न मम ।'

सरस्वतीपूजनके पश्चात् 'योगाय नमः', 'समस्तभूतारण्य नमः', 'साक्षात्पनाय नमः', 'पराशराय नमः', 'बृहस्पतये नमः', 'मैत्रेयाय नमः', 'उद्भवाय नमः'—इन मन्त्रोंसे शेष आगिकी पूजा करके प्रार्थना करे—

शयः समस्तभूतारण्य साक्षात्पनाय नमः ।
 बृहस्पतिभ्य मैत्रेय उद्भवाय नमः ।
 मत्पूजयन् सतत हरन्तां पूजिता मया ।

—'अनया पूजया शेषसमस्तभूतारण्यारण्यनपरशर बृहस्पतिमैत्रेयोदया प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद 'श्रव्याय नमः', 'क्षत्रपाय नमः', 'शमशिष्याय नमः', 'अक्षुत्तत्रायाय नमः', 'वैशम्पायनाय नमः', 'हारीताय नमः'—इन मन्त्रोंसे त्रय्यारुणि आदि ॥

पौराणिकोंकी पूर्ववत् पूजा करके प्रार्थना करे—

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च रत्नशिष्योऽङ्कुराग्रजः ।
 वैशम्पायनमहारीतो यश्चै वीराणिका इमे ॥
 सुखदाः सन्तु मे नित्यमनया पूजयाचिताः ।

—एतया पूजया त्रय्यारुणिप्रभृतय यद् पौराणिका प्रीयतां न मम ।'

तत्पश्चात् ॐ मन्त्रसे व्यासाय नमः' इस मन्त्रसे भगवान् व्यासदेवकी स्थापना और पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामितवेजसे ।
 पुपुर्णानमय सौम्य यमुस्मास्तुतवत्सवम् ॥

—'अनया पूजया भगवान् व्यास प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद सप्ताह-बहके उपदेशक भगवान् सूर्यकी स्थापना करके प्रतिदिन उनकी भी पूजा करे । उनकी पूजाका मन्त्र 'सूर्याय नमः' है । पूजनके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

छोकेदा त्व जगद्यन्तुः सत्कर्म तव भाषितम् ।
 करोमि तव्य निर्विघ्न पूर्णमस्तु त्वधर्चमात् ॥

—'अनया पूजया सप्ताह्यज्ञापदद्या भगवान् सूर्य प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद दशाक्षरोंकी तथा शुकदेवजीकी भी यथास्थान स्थापना करके पूजा करनी चाहिये ।

तदनन्तर नारदपीठ और पुस्तकपीठ दोनोंकी एक ही साथ पूजा करे । पहले उन दोनों पीठोंका जलसे अभिषेक करके उनपर चन्दनादिसे अट्टल कमल बनावे । फिर ॐ आधारशास्त्रे नमः, ॐ मय-प्रकृतये नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ 'देवनीराय नमः', ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ रत्नमण्डपाय नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः—इन मन्त्रोंसे दोनों पीठोंमें आधारशक्ति आगिकी भावना करके पूजा करे । फिर चारों दिशाओंमें पूर्वादिके अक्षसे धर्माय नमः, 'शानाय नमः', 'वैराग्याय नमः', 'ऐश्वर्याय नमः'—इन मन्त्रोंद्वारा ध्यानकी भावना एवं पूजा करे । फिर पीठोंके मध्यभागमें 'अनन्तय

कृष्णस्योत्पन्नमसि' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए कलशको छुद जलसे भर दे । तत्पश्चात् 'ॐ स्थितो मय' इत्यादि मन्त्र पढ़कर कलशको ऐसा सुस्थिर कर दे, जिससे वह झिजने-बुझने या गिरने कायक न रह जाय । फिर उस कलशको पूर्वभागमें 'ॐ अग्निमीळे' इत्यादि मन्त्रसे श्वाभेदक, दक्षिणभागमें 'ॐ इये श्वोर्मेत्या' इत्यादि मन्त्रसे पशुभेदक, पश्चिम भागमें 'ॐ अन्न आयाहि वीतये' इत्यादि मन्त्रसे सामभेदक तथा 'ॐ शसो देवी' इत्यादि मन्त्रसे उत्तर भागमें अपरभेदक स्थापन करे । पाँच कलशों को तो पूषक-पूषक कलशोंपर बेदेकी स्थापना करनी चाहिये । इसके अनन्तर आम, दूध, पीपल, पाकर और गूखरके फलशोंको कलशमें डाले और 'ॐ अन्नस्ये' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे । फिर 'ॐ कण्डात्कण्डात् प्रोहन्ती' इत्यादि मन्त्रसे कलशमें दूर्वादल छड़, 'ॐ पवित्रे त्वे' इत्यादि मन्त्रसे कुत्रा, 'ॐ या फलिनी' इत्यादि मन्त्रसे दूरीफल, 'ॐ हिरण्यगर्भ' इत्यादि मन्त्रसे सोनेकी छिकड़ी, 'ॐ परिवाजपति' से पञ्चरत्न, 'ॐ या भोजवी' इत्यादिसे सर्वोषधी, 'ॐ गन्धद्वारा' इत्यादिसे गन्ध और 'ॐ अक्षमीमहन्त' इत्यादिसे अक्षतको कलशमें छोड़े । तदनन्तर 'श्रीध ते वक्षीष' इत्यादिसे फूल छोड़ । 'ॐ धूरसि' इत्यादिसे धूपकी आहुति अग्निमें छोड़ । 'ॐ अग्निर्व्योति' इत्यादि मन्त्रसे अन्ना दीप जलाकर रख दे । उसके बाद कलशमें तीर्थोदक डाले और 'ॐ पञ्चनभ' इत्यादि मन्त्रको पढ़े । फिर 'ॐ उपह्वरे' इत्यादि मन्त्रसे नगी-संगमका जल डाले । तत्पश्चात् 'ॐ समुद्राय त्वा' इत्यादि मन्त्रसे समुद्रका जल कलशमें डाले । फिर 'ॐ स्वोना धूमिनि' इत्यादिसे सुसृष्टिका बज्रकर 'ॐ वसो पवित्रमसि' इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए जल कलशसे कलशको आच्छादित करे । तदनन्तर 'ॐ पूर्णा दर्शि' इत्यादि मन्त्रसे एक पूर्णपात्र (चाकलसे मग हुआ कौसी या तीर्थिका पात्र) कलशके ऊपर रखे । इसके बाद 'ॐ श्रीध ते' इत्यादि मन्त्रसे उस पूर्णपात्रपर जल कपड़ेमें लपेटा हुआ श्रीफल (गरीकगोला या मारिफल) रखे । फिर हाथमें अक्षत ले 'ॐ मनो नृनि' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए कलशपर अक्षत छोड़ और इस प्रकार कलशकी प्रतिष्ठा सम्पन्न करे । तदनन्तर 'मर्वे ममुद्रा मसि' इत्यादि श्लोकोंका

पाठ करते हुए कलशमें तीर्थोदक आवाहन करे । फिर गन्ध आदि उपचारोंसे तीर्थोदक पूजन करके कलशकी प्रार्थना करे—

देववानवसवावे मध्यमाने जलार्थये ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विभूतो विष्णुना स्थयम् ॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे स्थिति स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतास्मि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवा स्वय त्वमेवासि विष्णुस्तथ च ब्रह्मापतिः ।
अपित्वा वसवो वज्रा विश्यदेवाः सपैदकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः क्षामफलप्रदा ।
त्यात्मसादादिम् यथं कर्तुमीहे जगन्नाथ ॥
सामिष्य कुड मे देव प्रसन्नो भव सयवा ।
ब्राह्मणैर्मितस्त्व हि मन्त्रैरेवानुतोद्भवैः ॥
प्रार्थयामि च कुम्भ त्वां वाञ्छितार्थे वदस्व मे ।

पुनरिदं चण्डिका पितामहेन
महोत्सवानां प्रथमो वरिष्ठः ।

ब्रह्माप्रसादस्य सुपुण्यवैयुक्
करोतु धाम्नि कलशः सुखादाः ॥

इस प्रार्थनाके अनन्तर कलशमें 'प्राप्तां त्वा' इत्यादिसे गणेशका तथा 'तत्पापमि' इत्यादि मन्त्रसे वरुण देवताका आवाहन करके इनका षोडशोपचारसे पूजन करे । पात्र, अर्घ्य, आघमनीय, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और पुष्पाब्जलि—ये ही षोडश उपचार कहे गये हैं । पूजनके पश्चात् अनया पूज्या कृष्णावावाहित-वेक्ता प्रीयन्ताम् कहकर फूल छोड़ दे ।

तदनन्तर कलशक ऊपर सुवर्णमयी छत्तीनाउपयन-प्रतिमाको संस्कार करके स्थापित कर । पुरुषसूक्तके षोडश मन्त्रोंसे षोडश उपचार चढ़ाकर पूजन करे । साथ ही शास्त्रग्रामवीथी भी पूजा करे । (षोडशोपचार पूजनविधि अन्यत्र इसीमें 'श्रीमद्भगवत्की पूजमविधि' शीर्षक लेखमें दी गयी है) पूजाके पश्चात् इस प्रकार भगवान्से प्रार्थना करे—

ब्रह्मसर्वं करिष्यामि तवानुग्रहतो विभो ।
तर्षिर्विष्णो भवदेव इमानाथ समस्व मे ॥

—अनया पूज्या अक्षरीसहितो भगवाद्यायग्य प्रीयतां न मया यो कहकर पुष्पाब्जलि चढ़ाये । ऐसा ही सर्वत्र करे ।

इसके बाद 'नरनारायणाम्हा नमः' इस मन्त्रसे भगवान् नरनारायणका आवाहन और पूजन करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

यो मायया विरचित मित्रमात्मनीयं
मे रूपमेन्द्रमिह तत्प्रतिबिम्बमाय ।
एतेन धर्मसद्गते श्रियिर्मूर्तिमाय
प्रादुर्भाकारं पुरुषाय नमः परस्मै ॥
सोऽयं स्थितिभ्यतिक्रमेपशमाय सृष्ट्या
सत्येन नः सुरुण्याननुमेयतत्त्वा ।
हृदयाद्ब्रह्मकल्पेन विद्योक्तेन
वक्ष्यम्रीकेतममलं क्षिपतापविश्वम् ॥

—'अनया पूजया भगवन्तो नरनारायणो प्रीयतां न मम ।'

तत्पश्चात् कथा और श्रोत्रार्थोंके सब विकारोंको दूर करनेके लिये वायुदेवताका आवाहन एवं पूजन करे—

ॐ वायवे सर्वकल्याणकर्त्रे नमः ।' इस मन्त्रसे पाप आदि निवेदन करके निम्नाङ्कित रूपसे प्रार्थना करे—

अन्तः प्रविश्य मूर्तानि यो विभर्त्यारमकेतुभिः ।
अन्तर्गामीश्वरा साक्षात् पातु नो यद्गते स्फुटम् ॥

—'अनया पूजया सर्वकल्याणकर्ता वायु प्रीयतां न मम ।'

नामुकी पूजाके पश्चात् गुरुका 'ॐ गुरवे नमः' इस मन्त्रसे पूजन करके प्रार्थना करे—

प्रह्लादस्नानसरोजमभ्यभिषिक्तसंछीतांशुपीठस्थित
स्फूर्तैस्त्वर्पवर्षि वराभयकर्त कर्पूरकुम्भोऽम्बुजम् ।
द्वेतस्त्रयवसानुलपनयुत विष्णुश्या कान्तया
सद्विषयधतनु प्रसन्नवदनं दन्दे गुरु सावरम् ॥

—'अनया पूजया गुरुदेव प्रीयतां न मम ।'

तदनन्तर श्वेतपुष्प आदिसे 'सरस्वत्यै नमः' इस मन्त्रद्वारा सरस्वतीका स्तुति एवं पूजन करके प्रार्थना करे—

या कुन्देऽनुनासहारार्धयक्षा या शुभ्रवस्त्रावृता
या शीघ्रावरण्डमण्डितकरा या द्वेतपद्मासना ।
या प्रह्लादपुत्रादशरूपमूर्तिभिर्द्वैः सदा धर्मिता
सामां पातु सरस्वती भगवती मित्रोपशान्त्यापहा ॥

—'अनया पूजया भगवती सरस्वती प्रीयतां न मम ।'

सरस्वतीपूजनके पश्चात् 'शेषाय नमः', 'सनत्कुमाराय नमः', 'संस्थापनाय नमः', 'पराशराय नमः', 'बृहस्पतये नमः', 'मैत्रेयाय नमः', 'उद्वायाय नमः'—इन मन्त्रोंसे शेष आदिकी पूजा करके प्रार्थना करे—

ॐ सनात्कुमारस्य संस्थापनपराशरी ।
बृहस्पतिश्च मैत्रेय उद्वायश्च कर्मणि ॥
मत्पूजयन् सनत हरन्तां पूजिता मया ।

—'अनया पूजया शेषसनत्कुमारसंस्थापनपराशर बृहस्पतिमैत्रेयोद्वाया प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद 'त्रय्यारुणये नमः', 'कन्दर्पाय नमः', 'रामशिष्याय नमः', 'अक्षतत्रणाय नमः', 'वैशम्पायनाय नमः', 'हारीताय नमः'—इन मन्त्रोंसे त्रय्यारुणि आदि छ पौराणिकोंकी पूर्ववत् पूजा करके प्रार्थना करे—

त्रय्यारुणिः कन्दर्पश्च रामशिष्योऽक्षतत्रण ।
वैशम्पायनहारीतो पट्ट धै पौराणिक इमे ॥
सुखदा सन्तु मे नित्यमनया पूजयाधिताः ।

—'एतया पूजया त्रय्यारुणिप्रभृतय पट् पौराणिका प्रीयतां न मम ।'

तत्पश्चात् 'ॐ भगवते व्यासाय नमः' इस मन्त्रसे भगवान् व्यासदेवकी स्थापना और पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामितवेजसे ।
पुण्ड्रानमय सौम्य यन्मुक्ताम्बुवहासधम् ॥

—'अनया पूजया भगवान् व्यास प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद सप्ताह-वर्षके उपदेशक भगवान् सूर्यकी स्थापना करके प्रतिदिन उनकी भी पूजा करे । उनकी पूजाका मन्त्र 'सूर्याय नमः' है । पूजनके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

ओम् नमः त्वेव जगद्यन्तः सत्कर्म तव भाषितम् ।
करोमि तव मिर्विष्णु पूर्वमस्तु त्वदर्चनात् ॥

—'अनया पूजया सप्ताहपञ्चदश भगवान् सूर्य प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद दशावतारोंकी तथा ब्रह्मदेवकी भी यथाम्यान स्थापना करके पूजा करनी चाहिये ।

तदनन्तर नारदपीठ और पुष्पकपीठ दोनोंकी एक ही साथ पूजा करे । पहले उन दोनों पीठोंका जलसे अभिषेक करके उनपर सन्दिनादिसे अष्टदक्ष कन्य बनावे । फिर ॐ आपाराशक्ये नमः, ॐ मूक-प्रह्लाये नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ श्वेतदीपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ रामपञ्चपाय नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः—इन मन्त्रोंसे दोनों पीठोंमें आपाराशक आदिकी भाषना करके पूजा करे । फिर चारों दिशाओंमें पूरार्णिके कल्पसे 'धर्माय नमः', 'ज्ञानाय नमः', 'वैराग्याय नमः', 'ऐश्वर्याय नमः'—इन मन्त्रोंद्वारा धर्मादिकी भाषना एवं पूजा करे । फिर पीठोंके मध्यभागमें 'अनन्ताय

वह्न्यस्योत्थमनमसि' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए कलशको शुद्ध जलसे भर दे । तत्पश्चात् 'ॐ स्थितो भव' इत्यादि मन्त्र पढ़कर कलशको ऐसा सुस्थिर कर दे, जिससे वह झिझने-झुलने या गिरने लक्ष्य न हो जाय । फिर उस कलशको पूर्वभागमें 'ॐ अग्निमीळे०' इत्यादि मन्त्रसे आग्नेयदेक्ष, दक्षिणभागमें 'ॐ इये त्वोर्जेत्या' इत्यादि मन्त्रसे यजुर्वेदका, पश्चिम भागमें 'ॐ अन्न आयाहि वीतये०' इत्यादि मन्त्रसे सामवेदका तथा 'ॐ शानो देवी' इत्यादि मन्त्रसे उत्तर भागमें अथर्ववेदका स्थापन करे । पौष कलश हो तो पूषक्-पूषक् कलशोंपर वेदोंकी स्थापना करनी चाहिये । इसके अनन्तर आम, बड़, पीपल, पाकर और गूलरके पत्तलोंको कलशमें डाले और 'ॐ वज्रतये' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे । फिर 'ॐ काण्डाकाण्डात् प्ररोहन्ती' इत्यादि मन्त्रसे कलशमें दूर्वादल छोड़े, 'ॐ पवित्रे त्वा' इत्यादि मन्त्रसे कुशा, 'ॐ या फल्ग्वी' इत्यादि मन्त्रसे शीपल, 'ॐ हिरण्यार्भ' इत्यादि मन्त्रसे सोनेकी टिकड़ी, 'ॐ परिश्रमपति' से पञ्जरक, 'ॐ या ओयधी' इत्यादिसे सर्षपबी, 'ॐ गन्धर्वा' इत्यादिसे गन्ध और 'ॐ अक्षमनीमदन्ता' इत्यादिसे अक्षतकी कलशमें छोड़े । तदनन्तर 'धीक्ष से अक्षनीक्ष' इत्यादिसे छल छोड़े । 'ॐ वृष्टि' इत्यादिसे बूँपकी आड़ुति अग्निमें छोड़े । 'ॐ अग्निर्गोति' इत्यादि मन्त्रसे अक्षग दीप जलकर रख दे । उसके बाद कलशमें तीर्थोदक डाले और 'ॐ पञ्चनद्य' इत्यादि मन्त्रको पढ़े । फिर 'ॐ उपहारे' इत्यादि मन्त्रसे नदी-संगमका गङ्गा डाले । तत्पश्चात् 'ॐ समुद्राय त्वा' इत्यादि मन्त्रसे समुद्रका जल कलशमें डाले । फिर 'ॐ स्थोना पुषिभि' इत्यादिसे समुद्रविकट टालकर 'ॐ वसो पवित्रमसि' इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए अक्ष कलसे कलशको आच्छादित कर । तदनन्तर 'ॐ पूर्णा दर्वि' इत्यादि मन्त्रसे एक पूर्णपात्र (चाकलसे भरा हुआ कौसी या तौवेका पात्र) कलशके ऊपर रखे । इसके बाद 'ॐ धीक्ष से' इत्यादि मन्त्रसे उस पूर्णपात्रपर अक्ष कपड़ेमें लपेटा हुआ श्रीफल (गरीक गोजा या नारिकेल) रखे । फिर हाथमें अक्षत ले 'ॐ मनो ज्ञ्मि' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए कलशपर अक्षत छोड़े और इस प्रकार कलशकी प्रतिष्ठा सम्पन्न करे । तदनन्तर 'मर्षे समुद्रा मरुति' इत्यादि श्लोकोंका

पाठ करते हुए कलशमें तीर्थोंका आवाहम करे । फिर गन्ध आदि उपचारोंसे तीर्थोंका पूजन करके कलशकी प्रार्थना करे—

देवप्रायश्चर्यवादे मध्यमाने अर्वाण्ये ।
 वत्पथोऽसि तदा कुम्भा पिप्लुतो विष्णुना स्वयम् ॥
 त्वच्छोये सर्वेतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
 त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
 शिवा स्वय त्वमेवासि विष्णुस्त्य व प्रभारपतिः ।
 भवित्वा वसयो वज्रा विद्वदेयाः सपैतकाः ॥
 त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामपक्षप्रदाः ।
 त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलमृग्य ॥
 सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सदा ।
 प्राज्ञैर्निर्मितस्तव हि मन्त्रैरेवामृतोद्भवैः ॥
 प्राचयामि च कुम्भं त्वा वामिष्ठतार्च्यं वत्स्य मे ।

पुरा हि खण्ड्य वितामहेन
 महोत्सवानां प्रथमो वरिष्ठः ।

इवामसाक्षरायसुपुत्रवैपुक्
 करोतु शान्तिं कलशः सुखासा ॥

इस प्रार्थनाके अनन्तर कलशमें 'गणानां त्वा' इत्यादिसे गणेशका तथा 'तत्त्वायमि' इत्यादि मन्त्रसे ब्रह्म देवताका आवाहन करके इनका पोद्गोपचारसे पूजन करे । पाष, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, वृष, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और पुष्पाक्षति—ये ही पोद्गोपचार कहे गये हैं । पूजनके पश्चात् 'अनया पूज्या कलशावाहित-देवता प्रीयन्ताम्' कहकर छल छोड़ दे ।

तदनन्तर कलशक ऊपर मुचणमयी अक्षनीनारायण-प्रतिमाको संस्कार करके स्थापित कर । पुरातनछके पोद्गोपचार मन्त्रोंसे पाद्मश उपचार वडाकर पूजन करे । साथ ही शाळग्रामश्रीक्षी भी पूजा करे । (पोद्गोपचार पूजनविधि अन्यत्र इसीमें 'धीमहागन्तकी पूजनविधि' शीर्षक लेखमें दी गयी है) पूजाके पश्चात् इस प्रकार मालान्ते प्रार्थना करे—

ब्रह्मसर्वं करिष्यामि त्वानुमदतो विभो ।
 तत्तिर्विर्णं भवदेव त्मानाय शमस्तु मे ॥

—अनया पूज्या अक्षीसहितो मन्त्रानारायण प्रीयतां म मम' यों कहकर पुष्पाक्षति बड़ाये । ऐसा ही सर्वत्र करे ।

इसके बाद 'नरनारायणाभ्यां नमः' इस मन्त्रसे भगवान् नर-नारायणका आवाहन और पूजन करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

यो मायया विरचित निजमात्मनीव
 श्वे रूपमेवमिव तत्प्रतिष्ठस्थाय ।
 पतेन धर्मसदमे श्रुपिर्मूर्तिमाद्य
 मादुःखकार पुत्रपाप नमः परस्मै ॥
 सोऽयं स्थितिभ्यतिकरोपशमाय सुखाय
 सत्येन नः सुरभण्णानुमेयतस्वः ।
 इत्यादौ श्रुत्वा ज्ञेयं विद्वोऽन्तेन
 यच्चप्रीनिकेतममल सिततारविन्दम् ॥

—'अनया पूजया भगवन्ती नरनारायणी प्रीयतां नमः ।'

उपश्वाद् 'ॐ' मगते भ्यासाय नमः' इस मन्त्रसे भगवान् व्यासदेवकी स्थापना और पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

भगवन्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे ।
 पपुकोनमय सौम्य यन्मुक्ताम्युहासवम् ॥
 —'अनया पूजया भगवान् व्यास प्रीयतां नमः ।'

इसके बाद सप्ताह-व्रतके उपदेशक भगवान् सूर्यकी स्थापना करके प्रतिदिन उनकी भी पूजा करे । उनकी पूजाका मन्त्र 'सूर्याय नमः' है । पूजनके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

प्रसन्नमानसोऽन्नमभ्यक्षिसञ्छीताशुपीठस्थित
 सूर्योत्तरार्धेन वराभयकर कर्पूरकुम्भोऽग्न्यक्षम् ।
 श्वेतवस्त्रावसनानुलेपनयुत विमुमुक्षा कात्तया
 सखिस्रष्टाभतनुं प्रसन्नमहर्षं वन्दे गुह्य साधनम् ॥

—'अनया पूजया गुरुनेव प्रीयतां नमः ।'
 तदनन्तर श्वेतपुष्प आदिसे 'सरस्वत्यै नमः' इस मन्त्रद्वारा सरस्वतीकी पूर्ववत् पूजा करके प्रार्थना करे—

या कुन्तेवसुधाह्वारपवला वा शुभ्रपद्माभृता
 वा कीपावरावृक्षमण्डितकपा वा श्वेतपद्मासना ।
 वा प्रह्लाभ्युत्तराह्वरममुतिभिर्वैशैः सदा वन्दिता
 सामां पातु सरस्वती भगवती त्रिशोपमाभ्यापहा ॥

—'अनया पूजया भगवती सरस्वती प्रीयतां नमः ।'
 सरस्वतीपूजनके पश्चात् 'शैलयाय नमः', 'सप्तकुमारयाय नमः', 'सौख्यपाय नमः', 'पराशराय नमः', 'शुद्धस्तये नमः', 'मैत्रेयाय नमः', 'उद्धवाय नमः'—इन मन्त्रोंसे ये आदिकी पूजा करके प्रार्थना करे—

सप्त सप्तकुमारका सांख्यायनपराशरी ।
 हरस्त्वित्यै मैत्रेय कश्यपाय कर्मणि ॥
 पृथ्वीय सप्त हरस्तां पूजिता मया ।

—'अनया पूजया शेषसप्तकुमारसांख्यायनपराशर बृहस्पतिमैत्रेयोद्धवा प्रीयतां नमः ।'

इसके बाद 'त्रय्यारुण्ये नमः', 'कश्यपाय नमः', 'रामशिष्याय नमः', 'ब्रह्मव्रजाय नमः', 'वैशम्पायनाय नमः', 'हारीताय नमः'—इन मन्त्रोंसे त्रय्यारुणि आदि छ पौराणिकोंकी पूर्ववत् पूजा करके प्रार्थना करे—

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च रामशिष्योऽब्रुतमणः ।
 वैशम्पायनहारीता पृथु वै पौराणिका इमे ॥
 सुखदा सन्तु मे नित्यमनया पूजयार्चिताः ।

—'एतया पूजया त्रय्यारुणिप्रभृतय पद् पौराणिक प्रीयतां नमः ।'

उपश्वाद् 'ॐ' मगते भ्यासाय नमः' इस मन्त्रसे भगवान् व्यासदेवकी स्थापना और पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

भगवन्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे ।
 पपुकोनमय सौम्य यन्मुक्ताम्युहासवम् ॥
 —'अनया पूजया भगवान् व्यास प्रीयतां नमः ।'

इसके बाद सप्ताह-व्रतके उपदेशक भगवान् सूर्यकी स्थापना करके प्रतिदिन उनकी भी पूजा करे । उनकी पूजाका मन्त्र 'सूर्याय नमः' है । पूजनके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

लोकोश त्व जगद्यष्टाः स्वर्गं तव भाषितम् ।
 करोमि तव निर्विघ्नं पूर्णमस्तु त्वत्पूजाय ॥

—'अनया पूजया सप्ताहव्यापदेव भगवान् सूर्य प्रीयतां नमः ।'

इसके बाद दशावतारोंकी तथा शुक्रदेवजीकी भी पद्याख्यान स्थापना करके पूजा करनी चाहिये ।

तदनन्तर नाखपीठ और पुस्तकपीठ दोनोंकी एक ही साथ पूजा करे । पहले उन दोनों पीठोंका जलसे अभिषेक करके तमपर धन्वनादिसे वष्टद्वय कमन बनावे । फिर 'ॐ आचारशक्तये नमः', 'ॐ मूलप्रभृतये नमः', 'ॐ श्रीरसमुद्राय नमः', 'ॐ देवकीनाथ नमः', 'ॐ कश्यपहृदाय नमः', 'ॐ सप्तमण्डपाय नमः', 'ॐ रत्नसिंहासनाय नमः'—इन मन्त्रोंसे दोनों पीठोंमें आचारशक्ति आदिकी भावना करके पूजा करे । फिर चारों दिशाओंमें पूर्वदिशि कमसे 'धर्माय नमः', 'ज्ञानाय नमः', 'वैराग्याय नमः', 'ऐश्वर्याय नमः'—इन मन्त्रोंद्वारा धर्मादिकी भावना एवं

नमः' से अनन्तकृति और आद्यापन्थाय नमः' से महापद्मकी पूजा करे। फिर यह चिन्तन करे—उस महापद्मका कन्द (मूलभाग) आनन्दमय है। उसकी नाड संविक्षरूप है, उसके दल प्रकृतिमय हैं, उसके केसर विकृतिरूप हैं, उसके बीज पद्माशय कर्णसरूप हैं—और उन्हींसे उस महापद्मकी कर्णिका (गरी) विभूति है। उस कर्णिकामें अर्कमण्डल, सोममण्डल और वह्निमण्डलकी स्थिति है। वही प्रबोधनमय सत्य, रज एव तम भी विद्यमान हैं। ऐसी भावनाके पश्चात् उन सबकी पञ्चोपचरसे पूजा करे। मन्त्र इस प्रकार हैं—'आनन्दमय-कन्दाय नमः', 'संविन्नात्म्य नमः', 'प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः', 'विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः', 'पद्माशयर्कबीजभूतितायै कर्णिकायै नमः', 'ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः', 'ॐ सं सोममण्डलाय नमः', 'ॐ वं वह्निमण्डलाय नमः', 'ॐ स प्रबोधनमने सत्याय नमः', 'ॐ रं रजसे नमः', 'ॐ तं तमसे नमः'। इन सबकी पूजाके पश्चात् कम्बुके सब ओर पूर्वदि आठे दिशाओंमें क्रमशः 'विष्णवे नमः', 'उत्कर्षिण्यै नमः', 'ज्ञानायै नमः', 'क्रियायै नमः', 'योगायै नमः', 'श्रद्धायै नमः', 'सत्यायै नमः', 'ईशानायै नमः'—इन मन्त्रोंद्वारा विष्णु आदि आठ शक्तियोंकी पूजा करे और कम्बुके मध्यभागमें 'अनुग्रहायै नमः' से अनुग्रहा नामकी शक्तिकी पूजा करे। तदनन्तर 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वमूलमम बासुदेवाय पद्मपीठस्थने नमः' इस मन्त्रसे सम्पूर्ण पद्मपीठका पूजन करके उसपर घुम्नर बना डाल दे और उसीके ऊपर स्थापित करनेके लिये श्रीमद्भागवतकी पुस्तकको हाथमें लेकर 'ॐ ध्रुवा चोर्ध्वा पृथिवी ध्रुवा सा पर्वता इमे। ध्रुवं विक्षमिन् ब्रह्म ध्रुवो राजा विशामसि ॥' इस मन्त्रको पढ़ते हुए ठक पीठपर स्थापित कर दे। फिर 'ॐ नमो ज्ञानि ०' इस मन्त्रसे पुस्तककी प्रतिष्ठा करके पुरुषसूक्तको पढ़कर मन्त्रोंद्वारा पुरुषोपचार-विधिसे पूजा करे। यह विधि पहले 'श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि' शीर्षक लेखमें दी गयी है। तत्पश्चात् द्वितीय पीठको पकेत कबसे व्याख्यादित करके उसपर देवर्षि मारदको स्थापित करे और 'ॐ सुरर्षिस्त-नमदाय नमः' इस मन्त्रसे उनकी विधिवत् पूजा करके निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना करे—

ॐ नमस्तुभ्य भगवते ज्ञानवैद्यग्यशास्त्रिण ।
मारदस्य सर्वलोकाभूतिताय सुरर्षये ॥

—'अनया पूजया देवर्षिर्नारद प्रीयतां न मम ।'

इस प्रकार पूजनके पश्चात् यजमान पुण्य, चन्दन, ताम्बूल, बज्र, दक्षिणा, सुपारी तथा रक्षासूत्र हाथमें लेकर 'ॐ अष्टाभुक्तानाममुकप्रवराममुकशर्मणाम् आक्षिप्त-मेभिर्वरणश्रेष्ठ सर्वेष्टाश्रीमद्भागवतकथनकेन भवन्तमर्ह-भूणे—इम प्रकार कहते हुए कथावाचक आचार्यका करण करे। हाथमें ली हुई सब सामग्री ठमको दे द। वह सब लेकर कथावाचक व्यास 'बृहस्पति' यों कहें। इसके बाद पुन उन्हीं सब सामग्रियोंसे हाथमें लेकर जप और पाठ करनेवाले आक्षिप्तोंका करण करे। इसके लिये संक्षेपवाक्य इस प्रकार है—'अष्टाहममुक-गोत्रानमुकप्रवरानमुकशर्मणो व्यासकृपाकान् आक्षिप्त-नेभिर्वरणश्रेष्ठैर्गाथाविष्णुपानोदार्थं गणेशपद्मप्रीणसुदेव मन्त्रवक्तात्मेन गीताविष्णुसहस्रनाम्नाऽऽकर्तृत्वेन च ये विमम्य भूणे ।' इस प्रकार संक्षेप करके प्रत्येक आक्षिप्तोंको करणसामग्री अर्पित करे। सामग्री लेकर वे आक्षिप्त कहें 'हृदा स्म'। इसके बाद पहले कथावाचक आचार्यके हाथमें दिये हुए रक्षासूत्रको लेकर उन्हींके हाथमें बाँध दे। उस समय आचार्य निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे—'अमेन दीक्षाम्पानोनि दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा अक्षाम्पानोति अक्षया सत्यमाप्यते ।' रक्षा बाँधनेके अनन्तर यजमान उनके लक्ष्मणमें कुङ्कुम (रोखी) और अक्षतसे तिलक करे। इसी प्रकार अपकर्तृ आक्षिप्तोंके हाथमें भी रक्षा बाँधकर तिलक करे। तदनन्तर पीछे अक्षत लेकर यजमान चारों दिशाओंमें रक्षाके लिये बिखरे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रोंका पाठ भी करे—
पूर्वे नारायणः पातु वारिवाङ्मय दक्षिणे ।
पश्चिमे पातु गोविन्द उत्तरे मनुजन्दन ॥
ऐशान्यां वामेन पातु चामेभ्यां च जनार्दनः ।
नैर्ऋत्या पश्चामाभय वाम्या माघवतस्या ॥
उषं गोवर्धनपथे ह्यस्तगच्छ त्रिविक्रमः ।
रक्षाहीनं तु यत्कान् तत्सर्वं रक्षता हरिः ॥
इसके बाद कथा आचार्य यजमानके हाथमें—
येन ब्रह्मो ब्रह्मी राजा धर्मकेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वां प्रतिष्ठास्यामि रक्षे मा ब्रह्म मा कल ॥
इस मन्त्रको पढ़कर रक्षा बाँधे और—

आदित्या वसवो इन्द्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
तिस्रस्तु ते प्रपद्यन्तु धर्मकर्मार्थसिद्धये ॥

—इस मन्त्रसे उसके लक्षणमें निम्न कर दे । फिर यजमान व्यासासनकी चन्दन-पुष्प आदिसे पूजा कर । पूजनपत्र मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ व्यासासनाय नमः’ । तदनन्तर कथाशेषक आचार्य माहणों और बृद्ध पुरुषों की आज्ञा लेकर त्रिप्रार्थको नमस्कार और गुरुचरणोंका ध्यान करके व्यासासनपर बैठे । मन-ही-मन गणेश और नारदादिका स्मरण एवं पूजन करें । इसके बाद यजमान कम पुण्यपुरुषोत्तम्याय’ इस मन्त्रसे पुन पुस्तकपत्नी गन्ध, पुष्प, तुम्हीदल एवं दक्षिणा आदिके द्वारा पूजा करे । फिर गन्ध, पुष्प आदिसे वक्ताका पूजन करते हुए निम्नाङ्कित श्लोकपठ पाठ करे—

अथ विपराशरत्नः सत्यवतीहृद्यनमनो व्यासा ।
पद्यास्यकमलगच्छित धारुण्यममृतं जगत्प्रियसि ॥
तत्पराभाद् भीचे त्रिसे ह्ये श्रेयोकोको पङ्कज
प्रार्थना करे—

शुककप प्रषोष्य सर्वशास्त्रविदारद् ।
एतत्कथाप्रकाशेन भद्रशान्ति दिताराय ॥
ससारसागरे मग्नं वीन मां कदम्बानिधे ।
कर्मप्राहृष्टदीप्ताः मामुद्धर भयार्णवात् ॥

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् निम्नाङ्कित श्लोक पङ्कज श्रीमद्भागवतपर पुष्प, चन्दन और मारिकन आदि चढ़ाये—

श्रीमद्भागवताव्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ शुक्लवर्ण भयसागरे ॥
मनोरथ्या मर्षावोऽयं सयथा सफलस्यया ।
निर्विघ्नमेव कृतम्यो दासोऽहं तव वेशय ॥

पद्य-मङ्गलमें वायुग्यशरी आतिशयिक ‘सीरबाले श्रीकविनेरके त्रिप एक सान गौर्ग शोमक भी स्थापित कर देना चाहिये ।

तत्पश्चात् वक्ता मन्त्रार्था स्मरण करके उभय त्रिप श्रीमद्भागवतमहात्म्यकी कथा मय धानाओंका सुनाये और दूसरे त्रिपमें प्रसिद्धि स्वयं पुनः तथा व्यसकी पूजा एवं आरती । जानेये पश्चात् कथाका प्रारम्भ कर । मन्त्रार्थ कथाकी समझि जानकर भी नित्य प्रति पुनः तथा कथाकी पूजा नथ अरती, प्रमाण मुन्योत्तरादिरग भगवन्नामकानन एवं ‘हृदयनि कृता पाठिप । कर्त्तव्य प्रारम्भमें और बीच-बीचमें भी

जब कथाका विषय हा तो समपानुसार भगवन्नामकानन करना चाहिये ।

यकाको चाहिये कि प्रसिद्धि पाठ प्रारम्भ करनेसे पूर्व एक सौ आठ बार ‘ॐ नमः भगवते वासुदेवाय’ इस द्वादशाक्षर मन्त्रका अथवा ‘ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनकल्पाय स्वाहा’ इस गोपात्र-मन्त्रका जप करे । इसके बाद निम्नाङ्कित वाक्य पङ्कज विनियोग परे—

ॐ अस्य श्रीमद्भागवतात्म्यस्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः बृहतीष्टन्दः श्रीहृण्यपरमार्त्मा देवता ब्रह्मपीत्र भक्तिः शक्तिः ज्ञानवैराग्यभक्तिर्त्वं मम श्रीमद्भागवत् प्रसादसिद्धयर्थे पाठे विनियोगः ।

विनियोगके पश्चात् निम्नाङ्कित रूपसे व्यास करें—

कथादिन्यासः—नारदपर्ये नमः शिरसि । बृहती ष्टन्दसे मयः मुले । श्रीहृण्यपरमात्मदेवतायै नमः हृदि । ब्रह्मपीत्राय नमः गुह्ये । भक्तिस्तव्य नमः पादयो । ज्ञानवैराग्यभक्तिरभ्यां मयः नाभौ । श्रीमद्भागवत्प्रसादसिद्धयर्थकथाविनियोगाय नमः सर्वान्ते ।

द्वादशाक्षर मन्त्रसे कर्त्तव्यास और अङ्गन्यास करना चाहिये अथवा नीचे लिखे अनुसार उसका सम्पादन करना चाहिये—

कर्त्तव्यास —ॐ क्लीं अङ्गुष्ठान्यां नमः । ॐ क्लीं तर्जनीन्यां नमः । ॐ क्लीं मध्यमाङ्ग्यां नमः । ॐ क्लीं अनामिकाङ्ग्यां नमः । ॐ क्लीं कनिष्ठिकाङ्ग्यां नमः । ॐ क्लीं करतलतलपृष्ठान्यां नमः ।

अङ्गन्यास —ॐ क्लीं हृदयाय नमः । ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्लीं शिरस्यै पद् । ॐ क्लीं कवचाय हुम् । ॐ क्लीं मन्त्रवाच बीजत् । ॐ क्लीं अश्रवाय पद् ।

इसमें बाह निम्नाङ्कित मन्त्रसे ध्यान कर—

बन्धुनात्मिकं समष्टयदत्तं यत्तद्व्यास बन्धुभूतं
मायाय परमात्मिकं कर्त्तव्यं यतुः परं बन्धुसम् ।
मयाहं हरिगच्छं बन्धुनिधे कथं च मुनयपत्नी
गात्रनीतिरिषयिता पित्रात्त गोपात्रदृष्टामणिः ॥
भक्तिं व्यञ्जनीकृतप्रियमन्त्रस्तोत्रप्रशस्तान्
यन्तु बन्धुभयगुणदत्तद्वीनिपातनिष्ठाहृदयम् ।
ब्रह्मब्रह्मनिबन्धनीतिविन्यस्तद्व्यासीमद्व्यास
हृदयव्यञ्जनीकृतप्रियमन्त्रस्तोत्रप्रशस्तान् विन्यासनि ॥

अन्तिम दशकत्वे कई बार ठब खरसे पड़ना चाहिये । कथा-सामयिके दूसरे दिन बहों स्थापित हुए समूग देवताओंका पूजन करके हवनकी बेगीर पद्म-संस्कार, अग्निस्थापन एवं कुशकण्डिका करे । फिर विधिपूर्वक दूध ब्राह्मणोंद्वारा हवन, तपण एवं मार्जन कराकर श्रीमद्भागवत्की शोभायात्रा निकाले और ब्राह्मण-मोहन कराये । मधु-मिश्रित खीर और तिल आदिसे मागवतके ओंकार दशांश (अर्थात् १८००) आहुति देनी चाहिये । खीरके अमावसे तिथि, चावल, जौ, मेवा, छुद्र बी और चीनीको भिन्नकर हवनीय पदार्थ तैयार कर लेना चाहिये । इसमें सुगन्धित पदार्थ (कद्दू काचरी नागरमोषा, छबछबीला, अगर-तगर, चन्दन चूर्ण आदि) भी मिलावे चाहिये । पूर्वोक्त अवसर ही आहुति गायत्री-मन्त्र अथवा दशमस्कन्धके प्रति श्लोकसे देनी चाहिये । हवनके अन्तमें दिक्काम आदिके लिये बकि, क्षेत्रपाल-पूजन, छायापात्र-दान, हवनका दशांश तर्पण एवं तपणका दशांश मार्जन करना चाहिये । फिर आरतीके पश्चात् किसी नदी, सरोवर या कृपादिपर

जाकर अवधूष-स्नान (यक्षान्त-स्नान) भी करना चाहिये । इसके लिये समूहके साथ शोभायात्रा निकालकर गात्रे-बाजेके साथ कीर्तन करते हुए जाना चाहिये । यज्ञमान श्रीमद्भागवत ग्रन्थको अपने मस्तकपर रखकर उसकी शोभायात्रा निकाले, जिसमें बच्चा तथा सब धोता सम्मिलित हों । हरिकीर्तन होता चले । मागवत-ग्रन्थपर चैकर जुलते रहें । भकियाल, छप्पा, झोंह, शङ्ख आदि बजसे रहें । जो पूर्ण हवन करनेमें असमर्थ हो, वह यथाशक्ति हवनीय पदार्थ दान करें । अन्तमें कम-से-कम बारह बाइसोंको मधुपुष्प खीरका मोहन करना चाहिये । प्रत्येकी पूर्तिके लिये सुवर्ण-दान और गोदान करना चाहिये । सुवर्ण-सिंहासनपर विराजित सुन्दर अश्वमें डिस्त्रिण श्रीमद्भागवत्की पूजा करके उसे दक्षिणावर्त्तित कथावाचक आचार्यको दान कर देना चाहिये । अन्तमें सब प्रकरकी मुष्टियोंकी पूर्तिके लिये त्रिपुण्ड्रहस्त्रनाम्न पाठ कथावाचक आचार्यके द्वारा सुनना चाहिये । निरक्त श्रोतार्योंको 'गीता' सुननी चाहिये ।

सप्ताह-कथाके प्रारम्भमें सग्रहणीय सामग्रीकी सूची

पूजन-सामग्री—गङ्गाजल, रोनी (कुङ्कुम), मोक्षी (रश्मिपत्र), चन्दन, छुद्र केसर, कद्दू, पुष्प, पुष्पमाला, मुम्हरीदल, बिन्दपत्र, दुर्वादल, धूप, छुद्र अगरबत्ती, पद्मामृत (दूध ५१, दही ५, मधु दो पैसे भर, चीनी ५, बी छट्ठीक मर), दीप (यथासम्भव छुद्र गोहृत और रुई), पानका पत्ता पचास, सुवारी पचीस, यज्ञोपवीत पचीस, हल्दीपत्री, बीज, पेड़ा ५१, मेवा ५१, गुड ५१, चावल ५१, गेहूँ ५५, कुण्डे मिथीके दो गेहूँ बोनेके लिये, सरसो पीन्ही, लबीर, गुण्डाळ, श्रुतपत्र—केज-संतरा आदि, कसबा सफेद ५ गज, कसबा धरुप ५ गज, कसबा पीला ५ गज, कसबा छुद्र रेशमी ११ गज, सर्वतोमूर्तिक रचनाके लिये हथ, धातु, काल, पीषा और गुग्गुली रंग, गोबर, नारियल दो या सात, छुद्र हथ, कुशा, सिन्दूर, झये-रेवगी पैसे, आरतीका पात्र, छप्पा, भकियाल शङ्ख, झोंह आदि, कोसा पचास, दियासलाई, चीनी एक सर्वतोमूर्तिके लिये, चौकी एक नारदजीक लिये, चौकी एक नवग्रह, पोडारामातृका और गणेशके

लिये, चौकी एक न्यास, छुद्रदेव, सप्तचिरमित्री तथा पीरगिर्जोंके लिये, पाठ एक शेष-सप्तकुसुमादिके लिये ।

कलशस्थापनकी सामग्री—कलश तौबेका एक, तौबे या कदोपीका पात्र एक, ककश मिथीके पाँच, सप्तधान्य (जौ गेहूँ घान, जिल, रौंली, सौंवा, चीना), पद्मपत्र (आम, पीपल, पाक, गूस्व और बड़के पत्ते) दूर्वा, कुश, सुवारी, सुवर्णकी पिकरी चार, पञ्चरत्न (हीरा, मीलम, खज, मोती और सोना, अमवसे यथासाध्य सुवर्ण), चन्दन, अमृत, दूध, तीर्थोत्क, समुद्रजल, सप्तमृत्तिका (पुष्यसम्बरी, शायीशालाकी, दीपककी, नदीसंगमकी, राजद्वारकी, गोदाद्वारकी, तालाबकी), सर्वोपधि (कूट, बटामाशी, हट्टी गोंठ २ रामट, मुग, शोल्म, चन्दन, बचा, चम्पक और मागर मोषा—अमावसे केज हट्टी), नगीमगमका जप, श्रीलक्ष्मीनारायणकी स्रणमयी प्रणिमा (बार तोल मोनकी अथवा कम्पी शक्तिक अनुसार) ।

कथामण्डपक लिय सामग्री—चंदोवेका कसबा

चौकोर मण्डप, केनके छम्हे चार, चौसके छम्हे, मण्डपको चारों ओरसे मात्र, छत्र और पत्तोंसे सजाना, चारों दिशाओंमें झंडी छानाना, बरख और गोटे आदिसे सजाना, चौकी ब्यासके लिये, गद्दी, गसनद, तकिये, कम्बल, चर, पौच झंडियों, पुस्तकका बेदन, पुस्तकके लिये चौकी, आम्ने पत्तोंकी बदनधार ।

गणेशजी, देवता, श्रीमद्भागवत और आचार्यकी पूजाके लिये प्रतिदिन चन्दन, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीपादि सामग्री ।

वरणकी सामग्री—बच्चाके लिये चानर, चोती, गमछा, आसन, दक्षिणा, स्वाक्षमात्र, तुलसीमाला, जलपात्र आदि, जप करनेवालोंके लिये मी यथासम्भव बरख-द्रव्य आदि ।

पाठके लिये पुस्तक—भागवत, रामायण, गीता, सहस्रनाम आदि ।

इवनके लिये सामग्री—जेनीके लिये स्वच्छ बाढ़ एक बोरा, सूखी आमकी छकड़ी दो मन, कुदाकण्डिकाके लिये कुत्ता, दुर्वा, अग्नि छनके लिये दो कांस्यपात्र, एक पूर्णपात्र पीतलका बड़ा-सा, यज्ञपात्र—घणीता,

प्रोक्षणी, सुषा, सुक्, पूर्णाहुतिपात्र, चरुस्वात्री, आज्यस्वात्री (कांसिका बड़ा-सा कटोरा), इक्कीय पदार्थ—मधुमिश्रित खीर, छायापात्र-दामके लिये कांस्यकी छोटी एक कटोरी तथा उसके लिये धी ।

निल १० सेर, चावल ५ सेर, जौ २॥ सेर, कुद्द धी ४ सेर, कुद्द चीनी २॥ सेर, पञ्चमेवा २ सेर (पिस्ता, बादाम, किशमिश, अखरोट और काँज) —इन सबको मिश्रकर इवनसामग्री बमायी जाती है । फिर इसमें सुगन्धित द्रव्य (कसूरकाचरी, छबलझीन्ध, नागरमेया, अगर-तगर, चन्दनचूर्ण आदि) आवश्यकतानुसार मिला देने चाहिये । बच्चके लिये पापड़, उबद, दाही, चावल, काँजी बत्ती, दक्षिणा, क्षेत्रफल-बल्लिके, लिये हँसिया, काजल, सिंदूर, दीपक, दक्षिणा आदि । पूर्णाहुतिके लिये नारियलका गोण इत्यादि, कितरणके लिये प्रसाद । ब्राह्मण-मोजनके लिये मधुमिश्रित खीर तथा अन्यन्य मधुर पकवान, पूरी-साम आदि । इक्ककर्ता ब्राह्मणोंके लिये करण और दक्षिणा आदि ।

कथा-समाप्तिके पश्चात् कथावाचकको मंत्र देनेके लिये बरख, आभूषण, नक्त रूपये आदि ।



वन्दनम्

सर्गस्थितिनिरोधार्थं कामाकाममयो हि यः ।

त काम कामकर्मण्य कामाभावात् कामये ॥

यत्कामिनीचेष्टिकृत्वापकुण्ठितः कामोऽप्यकामो यिमदो बभूव ह ।

तं मालिनीमानवमानद् सदा श्रीमोहन मोहनमाकृत्योऽस्म्यहम् ॥

यस्याहमिषद्भुजपरागपरम्भावाद् भूत्वा कृती हृदिमता स्तुतिमाचरामि ।

त सद्गुरु सततसबन्धुल सदाय्य यन्त्रे सदा यिमस्योषधन्त चित्रिणम् ॥

भ्यास व्यासकर्म यन्त्रे मुनि नारायण स्वयम् ।

यतः प्राप्तकपालोका खेच्य मुक्ताः कलेप्रहाद् ॥

यस्य गुण्डाच्छ्रयुतद्वृत्तो राजतेऽय रसाम्भुजः ।

तमच्छ्रयुतकयाकुञ्जो सुकृजत शुक्ल भजे ॥

श्रीधर श्रीधर यन्त्रे श्रीधरेकपरायणम् ।

यस्यैव श्रीप्रसादन श्रीधरेय कृति कृता ॥

राधा भक्तिहृदिष्ठात ताभ्यां या च समन्विता ।

तां श्रीभागवतीं गाथां यन्त्रे मुगलकपिणीम् ॥

चौकर मण्डप, बेलके खम्भे चार, शौंसेके खम्भे, मण्डपको चारों ओरसे माला, झूठ और पतोंसे सजाना, चारों निशजमें झंडी छाना, बरह और गोट आदिसे सजाना, शौंसे ब्यासके छिये, गरी, मसन, तकिये, कपड, चरर, पाँच झंडियाँ, पुस्तकका बेटन, पुस्तकके छिये चौकी, आमके पतोंकी बदनवार ।

गणेशजी, देवता, धीमन्नागत और आचार्यकी पूजाके छिये प्रतिदिन चन्दन, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीपादि सामग्री ।

वरणकी सामग्री—बकाले छिये चादर, बोती, गमछा, आसन, दक्षिणा, रुद्राक्षमाला, तुलसीमाला, जम्पात्र आदि, जप करनेवालोंके छिये भी यथासम्भव बल-द्रव्य आदि ।

पाठके लिये पुस्तक—भागवत, रामायण, गीता, सहस्रनाम आदि ।

हवनके लिये सामग्री—केरीके छिये स्वच्छ बाख़ एक बोरा, सूखी आत्मकी छकड़ी दो मन, कुशकण्डिकके छिये कुशा, दुर्वा, अग्नि छानके छिये दो कंसेपात्र, एक पूर्णपात्र पीतकका बड़ा-सा, यज्ञपात्र—मणीमा,

प्रोक्षण्णी, सुबा, सुक्, पूर्णाहुतिपात्र, चरुखाडी, आगारखाडी (कंसीका बड़ा-सा कटोरा), इक्कीप पदार्थ—मधुमिश्रित खीर, छायापात्र-दामके छिये कंसेकी छोटी एक कटोरी तथा उसके छिये धी ।

मिछ १० सेर, चाकल ५ सेर, जौ २॥ सेर, छुद्र धी ४ सेर, छुद्र चीनी २॥ सेर, कश्मेश २ सेर (पिस्ता, बादाम, किरामिश, कसरोट और कौनू)—इन सबको मिश्रकर हवनसामग्री बनायी जाती है । फिर इसमें सुगन्धित द्रव्य (कसूरकचरी, छबछडील, नगरमोषा, अगर तगर, चन्दनचूर्ण आदि) आवश्यकानुसार मिला देने चाहिये । बकाले छिये पापड़, उबद, दही, चाकल, कुरकी बत्ती, दक्षिणा, क्षेत्रपाल-बकाले छिये हँसिया, काजल, सिंदूर, दीपक, दक्षिणा आदि । पूर्णाहुतिके छिये नारियलका गोख इत्यादि, निस्तरणके छिये प्रसाद । ब्रह्मण-भोजनके लिये मधुमिश्रित खीर तथा अन्यान्य मधुर पक्वान, पूरी-साग आदि । हवनकर्त्ता ब्राह्मणोंके छिये करण और दक्षिणा आदि ।

कथा-समाप्तिके पश्चात् कथावाचकको में देनेके छिये बल, आमपुण, नक्त रुपये आदि ।



वन्दनम्

सर्गस्थितिनिरोधार्यं कामाकाममयो हि यः ।

त कामं कामकामम् कामाभावाच्च कामये ॥

यत्कर्मिणीष्वेति कलापकुण्डितः कामोऽप्यकामो विमदो वभूव ह ।

तं मानिनीमानदमानद् सदा श्रीमोहन मोहनमाकृतोऽस्म्यहम् ॥

यस्याः कम्पिपद्मपरागपरप्रभावाद् मृत्या कृती हृतिमतां स्तुतिमाचरामि ।

त सद्गुरु सततसर्पसुख सद्ग्रय बन्धे सदा विमल्योधघन विविजम् ॥

व्यास व्यासकर बन्धे मुनि नारायण स्वयम् ।

यतः प्राप्तकृपास्त्रोका लोका मुखाः कलेर्ग्रहात् ॥

यस्य मुष्काण्म्युतद्व्यूतो राक्षसेऽय रसात्मकः ।

तमभ्युतकथाकुञ्जे सुकूञ्जत शुक् भजे ॥

श्रीधर श्रीधर बन्धे श्रीधरैकपरायणम् ।

यस्यैव श्रीमसात्रेन श्रीधरेय कृतिः कृता ॥

राधा भक्तिर्हृदिर्मान ताभ्यां या ख सप्तम्बिता ।

तां श्रीभागवतीं गाथा बन्धे युगलरूपिणीम् ॥

॥ श्रीहृदि ॥

श्रीमद्भागवतकी आरती

आरति अतिपावन पुराणकी ।
धर्म भक्ति विज्ञान ज्ञानकी ॥
महापुराण भागवत निरमल ।
शुक्-मुख-विगलित निगम-कल्प-फल ।
परमानन्द सुधा-रसमय फल ।
लीला-रति-रस रसनिधानकी ॥ आ •
कलि-मल-मयनि • त्रिताप-निवारिनि ।
जन्म-मृत्युमय भव भय-हारिनि ।
सेवत सतत सकल सुख कारिनि ।
सुमहौषधि हरि-चरित-गानकी ॥ आ •
विषय विलस विमोह विनाशिनि ।
विमल विराग विवेक विकाशिनि ।
भगवच्चरित्र-रहस्य प्रकाशिनि ।
परम ज्योति परमात्म ज्ञानकी ॥ आ •
परमहंस-मुनि-मन उल्लासिनि ।
रसिक-हृदय रस-रास विलासिनि ।
मुक्ति, मुक्ति, रतिप्रेम सुदासिनि ।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजानकी ॥ आ •

॥ श्रीहरि ॥

श्रीमद्भागवतकी आरती

आरति अतिपावन पुराणकी ।
धर्म भक्ति-विज्ञान खानकी ॥
महापुराण भागवत निरमल ।
शुक-मुख-विगलित निगम-कल्प-फल ।
परमानन्द मुखा रसमय कल ।
लीला-रति-रस रसनिधानकी ॥ आ •
कलि-मल-मथनि • त्रिताप निवारिनि ।
जन्म-मृत्युमय भव भय-हारिनि ।
सेवत सतत सकल सुख कारिनि ।
सुमहोषधि हरि-चरित-गानकी ॥ आ •
विषय विलास विमोह विनाशिनि ।
विमल विराग विवेक विकाशिनि ।
भगवत्तत्त्व-रहस्य प्रकाशिनि ।
परम ज्योति परमात्म-ज्ञानकी ॥ आ •
परमहंस-मुनि-मन उल्लासिनि ।
रसिक-हृदय रस-रास विलासिनि ।
मुक्ति, मुक्ति, रतिप्रेम मुदासिनि ।
कथा अकिञ्चनप्रिय मुजानकी ॥ आ •





श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

इष्णो मारायण वन्दे कृष्ण वन्दे प्रजप्रियम् ।

कृष्ण द्वैपायनं वन्दे इष्णो वन्दे पूषामृतम् ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

वेवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट

सखिदानन्दरूपाय विमोक्षस्यादिहृतवे ।

तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नमः ॥ १ ॥

य प्रसन्नन्तमनुपेतमपेतकृत्व

द्वैपायनो विरहकृतर आजुहाव ।

पुत्रति तन्मयतया तरसोऽभिनेदु

स सवभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥

नैमिष घृतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।

वायुतरमाभ्यादङ्गुलल श्रौनकोऽप्रवीन् ॥ ३ ॥

शौनक उवाच

अगलध्वान्तरिष्यमकास्मिन्समप्रभ ।

घृताभ्यादि कथामारं मम कणारमायनम् ॥ ४ ॥

भक्तिज्ञानविरागाप्तो विवशः कथत महान् ।

मायामाह्निरामस बन्धनं त्रिषत कथम् ॥ ५ ॥

इह पोर कर्ता प्राया जीरन्मासुरतां गत ।

हृत्पाकान्तस्तत्पर्व गाधन किं परापाम् ॥ ६ ॥

सखिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको हम नमस्कार करते हैं, जो नागवृक्षी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशक हस्त तथा व्याप्यात्मिक, आधिदैविक और आधिमानविक—तीनों प्रकारके तापोंका नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥

जिस समय श्रीशुकदेवजीका यथापकीन-संस्कार भी नहीं हुआ था तथा लौकिक-वैदिक कर्माणि अनुष्ठानकर अक्षुर भी नहीं आया था, तभी उन्हें अकेल ही मर्यादा सेनेके लिये घरसे आते देखकर उनका पिता व्यामजी विरहसे कृतर होकर पुकारन लगे—“धन ! वेद्य ! तुम कहाँ जा रहे हो ?” उस समय वृश्नि तन्मय होकर कहकर श्रीशुकदेवजीकी ओरसे उठकर दिया था । ऐसे सवभूतहृदय-स्वरूप श्रीशुकदेवजीने भी नमस्कार करना है ॥ २ ॥

एक बार मगधकपायुतका रमावतन करनेमें कुशक मुनिक शौनकजीन नैमिरारण्य क्षेत्रमें विरजमान मन्मथि सूनरीको नमस्कार करके उनसे पूरा ॥ ३ ॥

शौनकजी बात—मृगी ! अगर ज्ञान अगल-ध्वान्तको मगध करने लिये करोहो मृगि मगध है । अगर हमारे कामोंके लिये रमावतन—अनुत्पन्न मगध मगध कथा कहिये ॥ ४ ॥ भक्ति, ज्ञान और वरुणाग्र प्रस होनेपर मगध विरहकी वृद्धि कित प्रकर दारी है तथा वेद-व्यास विम लक्ष इस मगध-मगधे जाना पीछे लुप्त है ॥ ५ ॥ इस बात कथिताने जीर प्रस अनुगी लक्षक हो ग्य है, विरह-मगधसे कथन इन मगध-मगध (६६-मगध) कथनकर मगध-मगध कथ है ॥ ६ ॥

धेयसां यद्भवेच्छ्रय पावनानां च पावनम् ।

कृष्णप्राप्तिकरं श्रद्धासाधनं सद्ब्रह्मणुना ॥ ७ ॥

चिन्तामणिलङ्घनसुखं सुरदुः स्वस्तिसम्पदम् ।

प्रयच्छति गुरु प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥ ८ ॥

सूत उवाच

प्रीतिं शौनक चित्तं तं क्षतो वप्ति विचार्य च ।

सर्वमिद्वान्तनिष्पन्नं ससारभयनाशनम् ॥ ९ ॥

भक्त्योषधवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषद्विदुषम् ।

तदहं त्वेभिधास्यामि सत्त्वधानतया मृषु ॥ १० ॥

कालव्यालमुखग्रामग्रामनिर्णाशहेतवे ।

भीमद्भागवतं श्राव्यं कलौ कीरणं भाषितम् ॥ ११ ॥

एतस्मादपरं किञ्चिन्मनःशुद्धयै न विद्यते ।

जन्मान्तरं भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ १२ ॥

परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां सम्मिते श्रुके ।

सुधादुग्धं गृहीत्वा दत्तस्तत्र सभागमन् ॥ १३ ॥

शुकं नत्वा तन् सवस्वकार्यकुञ्जला सुरा ।

कथासुधां प्रयच्छन्व गृहीत्वा सुधामिमाम् ॥ १४ ॥

एष विनिमय जातः सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ।

प्रपास्यामा वयं सर्वे भीमद्भागवतामृतम् ॥ १५ ॥

क सुधा क कथा रा क क काश क मणिर्महान् ।

भद्रगता विचार्य तदा दद्याद्ब्रह्म ह ॥ १६ ॥

अभक्तांस्तान् विज्ञाप्य न ददौ स कथामृतम् ।

भीमद्भागवतीं यत्ना सुराणामपि दुर्लभा ॥ १७ ॥

राज्ञा मायं तथा पीयन् पुरा धातापि विभित ।

सूतजी ! आप हमें कोई ऐसा शाश्वत साधन बताइये, जो सबसे अधिक कल्याणकारी तथा पवित्र करनेवालोंमें भी पवित्र हो तथा जो भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करा दे । ७ । चिन्तामणि केवल जीवित सुख दे सकती है और कल्प-वृक्ष अधिक-से-अधिक स्वर्गाय सम्पत्ति दे सकता है; परन्तु गुरुदेव प्रसन्न होकर भगवान्का योगिदुर्लभ नित्य वैकुण्ठ वाम दे देते हैं ॥ ८ ॥

सूतजीने कहा—शौनकजी ! हमारे हृदयमें भगवान्का प्रेम है इसलिये मैं विचारकर तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका निष्कर्ष सुनाता हूँ, जो जन्म-मृत्युके मयका नाश कर देता है ॥ ९ ॥ जो मक्तिके प्रवाहको बढाता है और भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका प्रवाण कारण है, मैं तुम्हें यह साधन बताता हूँ, उसे साधवान होकर सुनो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कलियुगमें जीवोंके कामरूपी सर्पके मुक्तता प्राप्त होनेके प्रासन्न आव्यन्तिक नाश करनेके लिये भीमद्भागवतशास्त्रका प्रवचन किया है ॥ ११ ॥ मनकी शुद्धिके लिये इससे बढकर कोई साधन नहीं है । जब मनुष्यके जन्म-जमान्तरका पुण्य उत्पन्न होता है, तभी उसे इस भागवतशास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ जब शुकदेवजी राजा परीक्षितको यह कथा सुनानेके लिये सभामें विद्यमान हुए, तब देवता-लोग उनके पास अमृतका कट्या लेकर आये ॥ १३ ॥ देवता अपना काम बनानेमें बड़े कुशल होते हैं; कत यहाँ भी सबने शुकदेवमुनिको नमस्कार करके कहा, 'आप यह अमृत लेकर बरल्लेमें हमें क्यामृतका दान दीजिये ॥ १४ ॥ इस प्रकार परस्पर विनिमय (क्यावदकी) हो जानेपर राजा परीक्षित अमृतका पान करें और हम सब भीमद्भागवतका अमृतका पान करेंगे' ॥ १५ ॥ इस संमार्गमें कहाँ कौंच और कहाँ म्हादुग्ध मणि तथा कहाँ सुधा और कहाँ कषा ? श्रीशुकदेवजीने (यह सोचकर) उम मय्य देवताओंकी हँसी उड़ा दी ॥ १६ ॥ उन्हें मक्तिरूप (कयाका अनधिकारी) जानकर कषा-मृतका दान नहीं दिया । इस प्रकार यह भीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुःख है ॥ १७ ॥

इसलिये भीमद्भागवतके धरगते ही राजा परीक्षित की मुक्ति देउर ब्रह्माजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था ।

सत्यलोके तुलां वदुष्वातोत्पत्त्याधनान्यज* ॥१८॥
 लघून्यन्यानि जप्तानि गौरवेण इदं महत् ।
 तथा अपिगणा सर्वे विस्मये परम ययु ॥१९॥
 मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं फलां ।
 पठनाच्छ्रवणात्मघो वंकुष्ठफलान्यथम् ॥२०॥
 सप्ताहं धृतं चैतत्सर्वथा मुक्तिपथकम् ।
 मनकाद्यं पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरं ॥२१॥
 यद्यपि ब्रह्मसम्पत्त्या पूतमेतत्सुरर्षिणा ।
 सप्ताहध्वजविधिः कुमारस्तस्य भाषित ॥२२॥

गीतक उवाच

लोकविप्रहमुत्तस्य नारदस्सामिरस्य च ।
 विधिश्च वदत प्रीतिं ममोगा कुत्र तं मह ॥२३॥

सूत उवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तियुक्तं कथानकम् ।
 शुक्लं मम वत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥२४॥
 एषा हि विशालायां चत्वारः श्रवणोऽमला ।
 सत्सङ्गार्थं समायाता दृष्टुं नारदम् ॥२५॥

कुमारा उवाच

कथं ब्रह्मन्दीनमुखं कुतश्चिन्तितुगे भवान् ।
 त्वरितं गम्यत कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥२६॥
 इहानीं शून्यचित्तोऽमि गतविद्यो यथा जन ।
 तव मुक्तमङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ॥२७॥

नारद उवाच

अहं तु पृथिवीं यत्नां प्रत्या मवाचमामिति ।
 पुष्पं च प्रयागं च काशीं गान्धारीं तथा ॥२८॥
 हस्तिप्रं कुरुप्रं भीरुप्रं सेतुपन्धनम् ।
 पञ्चमाणि तीर्थेषु भ्रममाणं इत्यन्त ॥२९॥
 नापश्यं इयचिच्छमं मनम्पतापरारुम् ।
 कर्मनाथममिष्ये धर्मं याचनापुना ॥३०॥

उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बौध्दक मय साधनोंको
 लीख ॥ १८ ॥ अन्य सभी साधन तीर्थमें हलके पद
 गये, अपने मूल्यके कारण माग्यन ही सबसे भारी रहा ।
 यह देखकर सभी श्रमियोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ १९ ॥
 उन्होंने कलियुगमें इस भगवद्रूप भागवतशास्त्रको ही
 पढ़ने-सुननेसे तत्काल मोक्ष देनेवाला निश्चय किया ॥ २० ॥
 सप्ताह-विधिसे ध्यान करनेपर यह निश्चय भक्ति प्रधान
 करता है । पूर्वकालमें इसे दयाप्रापण सनकादिन देवर्षि
 नारदको सुनाया था ॥ २१ ॥ यद्यपि देवर्षिने पहले ब्रह्मा-
 जीके मुखसे इसे ध्यान कर लिया था, तथापि सप्ताहध्वज-
 की विधि तां उन्हें सनकादिने ही बतायी थी ॥ २२ ॥

श्रीनृकजीने पूछा—सांसारिक प्रपञ्चसे मुक्त एवं
 विचरणाशील नारदजीका सनकादिक साथ संयोग कहाँ
 हुआ और विधि-विधानके ध्वजमें उसकी प्रीति कैसे
 हुई ! ॥ २३ ॥

सूतजीने कहा—अब मैं तुम्हें वह भक्तिपूर्ण कथानक
 सुनाता हूँ, जो श्रीशुक-देवजीने मुझ अपना अनन्य
 शिष्य जानकर एकात्मसे सुनाया था ॥ २४ ॥ एक दिन
 विशालपुरीमें वे चारों निर्मल श्रमि सम्पन्न हो
 आये । वहाँ उन्होंने नारदजीको देखा ॥ २५ ॥

सनकादिने पूछा—ब्रह्मन् ! आपका मुख उन्मत्त
 क्यों हो रहा है ? आप चिन्तितुर क्यों हैं ? इहानी
 जन्दी-जन्दी आप कहाँ जा रहे हैं ? और आपका आगमन
 कहाँसे हो रहा है ? ॥ २६ ॥ हम ममय तो आप
 उस पुरुषके समान व्याकुल जान पड़ते हैं किन्तु साध
 वन दृष्ट गया हो; अप-जसे आत्मतिरस्ति पुत्रोंके
 लिये यह उचित नहीं है । हमका कारण बताइये ॥ २७ ॥

भारतजीने कहा—मैं ममोत्तम पात्र समस्तत्र तीर्थोंमें
 आया था । यहाँ पुष्कर, प्रयाग, काशी गान्धारी
 (नासिक), हरिद्वार, कुशीनर, श्रीश्रृं और सेतुपन्ध
 आदि सब तीर्थोंमें मैं इधर-उधर गिरता रहा किंतु
 मुझ कहाँ भी मनका यन्त्र दृष्ट नहीं पाई ।
 इस ममय अपमक मद्रापरा कर्मपुन-मर्ग
 श्रुतीका पीढ़ित पर रसम है ॥ २८-३० ॥

सत्य नाम्नि तपः शीघ्रं दया दानं न विद्यते ।
 उदग्मरिणा जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥३१॥
 मन्दा सुमन्दस्तयो मन्दभाम्या अपहृताः ।
 पास्तण्डनिरता सन्तो विरक्ता सपरिग्रहाः ॥३२॥
 तरुणीप्रभृता गह्वे श्वालकरो बुद्धिदायकाः ।
 कन्याविक्रमिणो लोभादम्यतीनां च कल्कनम् ॥३३॥
 आश्रमा यवनै रुद्रास्तीर्थानि सरितस्तथा ।
 वंशतापतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूतिशः ॥३४॥
 न योगी नैव सिद्धो बान ब्रह्मी मत्किणो नरः ।
 कलिदावानलेनाप साधनं यस्तथा गतम् ॥३५॥
 अंशुशला जनपदा द्विषशला द्विजातयः ।
 क्षामिन्य केशशूलिन्य सम्भवन्ति कलाविह ॥३६॥
 एवं पश्यन् कन्दर्पोपात् पर्यटन्नवनीमहम् ।
 यासुर्न तदमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥३७॥
 तत्राभय मया द्रष्टुं भूयतां सन्मुनीम्भराः ।
 एकस्मिन् तरुणी तत्र निपण्णा सिद्धमानसा ॥३८॥
 हृद्वी द्वा पतिव्री पार्श्वे निःश्वसन्वाचकेतनौ ।
 क्षुभ्रपन्ती प्रबोधन्ती रुद्री च तयोः पुरः ॥३९॥
 दशदिक्षु निरीक्षन्ती रश्मिगत निम्ब वपुः ।
 शीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥४०॥
 दृष्ट्वा दृग्गतं सोऽहं कौतुकल तदन्तिकम् ।
 मां दृष्ट्वा चातिशया घाता विह्वला चाग्रवीर्यवत् ॥४१॥

वात्येवाय

मां मां माधो धनं तिष्ठ मयिन्तामपि नाशय ।
 दधनं तव लाकस्य मन्वाधपहर परम् ॥४२॥

अथ यहाँ सत्य, तपः, शीघ्र (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया, दान आदि कुछ भी नहीं हैं। बेचारे जीव केवल अपना पेट पास्तनेमें लगे हुए हैं, वे असत्यमापी, आलसी, मन्दबुद्धि, माग्यहीन, उपव्रजप्रसक्त हो गये हैं। जो साधु-संत कहे जाते हैं, वे पूरे पास्तण्डी हो गये हैं, देखनेमें तो वे विरक्त हैं, किन्तु छी-धन आदि समीक्षा परिहृष्ट करते हैं। घरोंमें भियोंका राज्य है, साल सम्प्रदायकार बने हुए हैं, त्रेमसे भोग कन्याविक्रय करत हैं और ली-मुहूर्तोंमें कलह मचा रहता है ॥ ३१-३३ ॥ मन्दाभामोंके आश्रम, तीर्थ और नरियोंपर यन्त्रों (विचर्मियों) का अधिकार हो गया है, उन दुष्टोंने बहुत-से देवालय भी नष्ट कर दिये हैं ॥ ३४ ॥ इस समय यहाँ न कोई योगी है न सिद्ध है, न ब्रह्मी है और न सत्कर्म करनेवाला ही है। सारे साधन इस समय कलिरूप दावानलसे जलकर भस्म हो गये हैं ॥ ३५ ॥ इस कलियुगमें सभी देशवासी धार्मापणें बल बेचने लगे हैं, शास्त्राभोग पैसा लेकर केद पढ़ाते हैं और स्त्रियों के यन्त्रविसे निर्बाह करने लगी हैं ॥ ३६ ॥

इस तरह कलियुगके दोष देखता और पृथ्वीपर निचरता हुआ मैं यमुनाजीके तटपर पहुँचा, यहाँ मगलान् श्रीकृष्णकी अनेकों स्तुति हो चुकी है ॥ ३७ ॥ मुनिको। मुनिये, यहाँ मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा। यहाँ एक युक्ती की किन्तु मनसे बैठी थी ॥ ३८ ॥ उसके पास दो बड़े पुरा अनेक अवस्थामें पड़े जोर-भोले सोंस ले रहे थे। वह तरुणी उनकी सेवा करती हुई कभी उन्हें पत करानेका प्रयत्न करती और कभी उनके अगो रोने लगती थी ॥ ३९ ॥ वह अपने शरीरके लक्षक परमात्मको दर्शों दिशाओंमें देख रही थी। उसके चारों ओर सैकड़ों स्त्रियों उसे पंखा झल रही थी और बार बार समझाती जाती थी ॥ ४० ॥ वृत्ते यह सब वरित देखकर मैं कुप्रावृत्ता उसके पास चला गया। मुझे देखकर वह युक्ती खड़ी हो गयी और वही म्याकुल होकर कदने लगी ॥ ४१ ॥

पृथ्वीमें कहा—अनी मन्त्रमात्री। क्षणमर टहर जाइये

और मेरी किन्ताको भी मार कर दीजिये। आपका दशन तो संसारके सभी पापोंको सर्वत्र नष्ट कर देनेवाला है ॥ ४२ ॥

बहुधा तव वाक्येन दुःखशान्तिर्मविव्यति ।
यदा भाग्य भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥४३॥

नारद उवाच

कासित्वकाविमौ चेमानार्य का पथलोचना ।
वद देवि भविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥४४॥

वालोवाच

अहं भक्तिरिति ख्यस्ता इमौ मे तनयौ भवौ ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ फलयोगेन वर्जितौ ॥४५॥
गङ्गाया मरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागता ।
तथापि न च मे श्रेयं सेवितायाः सुरैरपि ॥४६॥
इदानीं शृणु मन्त्रार्तां सचिवस्त्वं तपोधन ।
वाता मे वितताम्पत्तिं तां भुत्वा सुखमाप्स्यसि ॥४७॥
उत्पन्ना ब्रविहे साहं वृद्धिं कर्णाटकं गता ।

कचित्कचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे श्रीर्णतां गता ॥४८॥
तत्र घोररुलेयौगात्पाखण्डैः तण्डिताङ्गका ।

दुर्बलाहं चिरं याता पुत्रान्यां महं मन्दताम् ॥४९॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेषु मरुपिणी ।

जताहं युवती सम्पन्नपुरुषा तु साम्प्रतम् ॥५०॥
इमौ तु शयितवाग्र सुतौ मे हृदिभ्यस्त भ्रमात् ।

इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥५१॥
जठरत्वं समाप्यतां तनं दुःखेन दुःखिता ।

साहं तु तरुणी कक्षात्सुतोद्भाविमौ कुत ॥५२॥
त्रयाणां महत्प्राग्विदार्दपरीत्य कुत श्रितम् ।

घण्टे जठरा मला तरुणां तनपाविति ॥५३॥
अतः प्राचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानया ।

वद यागनिधं धीमन् कारणं चात्र किं भवत् ॥५४॥
नारद उवाच

आपके बचनोंसे मेरे दुःखकी भी बहुत कुछ शान्ति हो जायगी । मनुष्यका जब बड़ा भाग्य हाँसा है, तभी आपके दर्शन हुआ करते हैं ॥ ४३ ॥

नारदजी कहते हैं—तब मैंने उस क्षीसे पूछा—
देवि । तुम कौन हो ? ये दोनों पुरुष तुम्हारे क्या होते हैं ? और तुम्हारे पास ये कमलमयी देवियों कौन हैं ?
तुम हमें विस्तारसे अपने दुःखका कारण बताओ ॥ ४४ ॥

युक्तीने कहा—मेरा नाम मक्ति है, ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे पुत्र हैं । समयके फेरमे ही ये पसे वर्जित हो गये हैं ॥ ४५ ॥ ये देवियों गङ्गाजी आदि मरिचों हैं । ये सब मेरी सेवा करनेके लिये ही आयी हैं । इस प्रकार साक्षात् देवियोंके द्वारा सेविता होकर भी मुझे सुख-शान्ति नहीं है ॥ ४६ ॥ तपोधन ! अब ध्यान देकर मेरा वृत्तान्त सुनिये । मेरी क्या वैसे तो प्रसिद्ध है, तब भी उसे सुनकर आप मुझे शान्ति प्रदान करें ॥ ४७ ॥

मैं ब्रविह देशमें उत्पन्न हुई, कर्णाटकमें बड़ी, कहीं-कहीं महाराष्ट्रमें सम्मानित हुई, निष्ठ गुजरातमें मुझको मुझाने आ घेरा ॥ ४८ ॥ वहाँ घोर कष्टियुगके प्रभावसे पाखण्डियोंने मुझे अङ्ग-भङ्ग कर दिया । चिर फण्टक यह अवस्था रहनेके कारण मैं अपने पुत्रोंके साथ दुर्बल और निरस्तेज हो गयी ॥ ४९ ॥ अब जन्ममें मैं वृन्दावन आयी, सबसे पुनः परम सुखी सुखपत्नी नवयुक्ती हो गयी हूँ ॥ ५० ॥ किंतु माम्ने पड़ हूँ ये श्रेणों मेरे पुत्र बके-मरिच दुखी हो रहे हैं । अब मैं यह स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना चाहती हूँ ॥ ५१ ॥ ये श्रेणों बूढ़े हो गये हैं—इसी दुःखसे मैं दुःखी हूँ । मैं तरुणी क्यों और ये श्रेणों पुत्र मेरे बूढ़े क्यों ? ॥ ५२ ॥ हम तीनों साथ-साथ रहनाचाले हैं । तब यह विरगता क्यों ? होना तो यह चाहिये कि मला बूढ़ी हो और पुत्र तरुण ॥ ५३ ॥ इसीसे मैं अध्यात्म-चित्तसे अपनी इस अवस्थापर गौरव करनी लगती हूँ । अब परम बुद्धिमन् एवं योगिनिभि हैं; इसका क्या कारण हो सकता है, बताइये ! ॥ ५४ ॥

नारदजीने कहा—सावित्री ! मैं अपने हृदयमें ज्ञानरश्मिसे तुम्हारे सम्मुख दुःख का कारण जाना हूँ । तुम्हें निराश नहीं करना चाहिये । धीरे-धीरे तुम्हारा कष्ट-कारण दूर होगा ॥ ५५ ॥

ज्ञाननात्माने पश्यामि सर्वमेतत्तपाननम् ।
न विपादस्त्वया कस्यो हरिः शतं करिष्यति ॥५५॥

मृत उवाच

क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥५६॥

नारद उवाच

शृणुष्वादिता धाले युगोऽयं दारुणः कलि ।

तेन ह्यस्यः सदाचरः योगमार्गस्तपांसि च ॥५७॥

वना अवाप्तुरायन्ते शत्रुदुष्कर्मकारिण ।

इह सन्तो विपीदन्ति प्रहृष्यन्ति समाभव ।

धत्त वैर्यंतु यो धीमान् स धीरः पण्डितोऽथवा ॥५८॥

अस्पृश्यान्वलोकयेयं शेषभारकरी धरा ।

वर्षे वर्षे क्रमाज्जता मङ्गलं नापि दृश्यते ॥५९॥

नत्वामपि सुते साकं कोऽपि पश्यति साम्प्रतम् ।

उपेक्षितानुरागान्वैर्ज्वरत्केन संमिता ॥६०॥

हृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्व तरुणी नवा ।

धन्य हृन्दावन तेन भक्तिनृत्पति यत्र च ॥६१॥

अत्रेमौ प्राद्वक्ष्यमाकाशं अरामपि मुञ्चत ।

किंकिटतमसुखेनैह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥६२॥

मलितवाच

कथपरीक्षिता राक्षा त्वापितो बभूवुः कलिः ।

प्रवृत्तं तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥६३॥

करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीभ्यते ।

धर्मं न सन्नयतिष्ठिन्त्यद्वाचा सुमिताम्यहम् ॥६४॥

नारद उवाच

यदि पृष्टस्त्वया बाल प्रेमत भवर्षां कुरु ।

सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रं कर्मलं ते गमिष्यति ॥६५॥

यदा मुकुन्दो भगवान् स्थां त्यक्त्वा सपदं गत ।

तद्दिनान्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥६६॥

प्यो दिग्विजये राक्षा दीनवच्छरणं गत ।

सूतजी कहते हैं—मुनिकर नारदजीने एक क्षणमें ही उसका कारण जानकर कहा ॥ ५६ ॥

शत्रुजीने कहा—देवि । सातवाहन होकर सुनो ।

यह दारुण कलियुग है । इसीसे इस समय सदाचार,

योगमार्ग और तप आदि सभी छुप्त हो गये हैं ॥ ५७ ॥

सोग शठता और दुष्कर्मों काफिर अवाप्तुर बन रहे हैं ।

संसारमें जहाँ देखो, वहाँ सत्पुरुष दु खसे मग्न हैं

और दुष्ट सुखी हो रहे हैं । इस समय जिस बुद्धिमान्

पुरुषका धैर्य बना रहे, वही बड़ा हानी या

पण्डित है ॥ ५८ ॥ पृथ्वी क्रमशः प्रतिक्रम शेषजीके

लिये माररूप होनी जा रही है । अब यह छूने

योग्य तो क्या, देखने योग्य भी नहीं रह गयी है और

न इसमें कहीं मङ्गल ही दिखायी देता है ॥ ५९ ॥

अब किमीको पुत्रोंके माय तुम्हारा दर्शन भी नहीं होता ।

विययानुपमके कारण अंधे बने हुए जीवोंसे उपेक्षित

होकर तुम जर्जर हो रही थी ॥ ६० ॥ हृन्दावनके

संयोगसे तुम फिर नवीन तरुणी हो गयी हो । अब

यह हृन्दावनचाम धन्य है, जहाँ भक्ति सर्वत्र नृत्य कर

रही है ॥ ६१ ॥ परन्तु तुम्हारे इन दोनों पुत्रोंका

यहाँ कोई प्राद्वक्ष्य नहीं है, इसलिये इनका युवाया नहीं छूट

रहा है । यहाँ इनको कुछ आश्रमसुख (भगवत्पराजित

आनन्द) की प्राप्ति होनेके कारण ये सोतेसे चान

पकते हैं ॥ ६२ ॥

भक्तिने कहा—राजा परीक्षितने इस पापी कलियुग-

को क्यों रहने दिया ? इसके आते ही सब वस्तुओंका

सार न जाने कहीं चला गया ॥ ६३ ॥ करुणामय

श्रीहरिसे भी यह अधर्म कैसे देखा जाता है ? मुन । नेरा

यह सतेह दूर कीजिये, आपके कथनोमें मुझे कहीं

शान्ति मिली है ॥ ६४ ॥

शत्रुजीने कहा—बाह । यदि तुमने पूछा है, तो प्रेम्से

सुनो कल्याणी । मैं तुम्हें सब क्लार्जेंजा और तुम्हारा दु ख

हर हो जायगा ॥ ६५ ॥ जिस दिन मग्नान् श्रीहरि

हम भूलोकको छोड़कर अपने परमचामको पधारो, उसी

दिनसे यहाँ संपूर्ण साधनोंमें वाचा दण्डनेचाम कलियुग

आ गया ॥ ६६ ॥ दिग्विजयके समय राजा परीक्षितकी

दधि पकनेपर कलियुग गीनके समान उनकी शरणमें

न मया मारणीयोऽय मरुद् इव सारमुक् ॥६७॥
 यत्फल नास्ति तपमा न योगेन ममाधिना ।
 यत्फलं लभते मम्यक्तलै केष्टवर्तिनात् ॥६८॥
 एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्पारनीरसम् ।
 विष्णुरासः स्यापित्तवान् कलिजानां सुरलाय च ॥६९॥
 कुकर्माचरण्यात्मा सर्वतो निर्गतोऽधुना ।
 पदार्था सम्यक्ता भूमौ वीजहीनास्तुषा यथा ॥७०॥
 विप्रैर्भगवती वस्तु गोह गोहे जने जने ।
 कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥७१॥
 अत्युग्रभूरिक्मर्माणो नान्तिका रौरवा जनाः ।
 तेऽपि विद्वन्ति तीर्थेषु तीर्थमारस्ततो गत ॥७२॥
 कामक्रोधमहालोभतृष्णाभ्याकुलचेतसः ।
 तेऽपि विद्वन्ति तपमि तपस्मारस्ततो गत ॥७३॥
 मनसश्चाजयाहोभादम्भान्पाण्डुमभयात् ।
 शास्त्रानम्यसनार्च्य च ध्यानयोगफलं गतम् ॥७४॥
 पण्डितास्तु फलप्रेण रमन्ते महिषा इव ।
 पुत्रशोत्वाने दक्षा जन्धा मुक्तिमाधने ॥७५॥
 न हि वृण्वता कुत्र सम्प्रापयपुरम्परा ।
 एष प्रलयतां प्राप्तां वस्तुमार म्यल व्यल ॥७६॥
 अयं तु युगधमा हि वर्तते कस्य दूषणम् ।
 अगस्त्य पुण्डरीकाय महत् निकटे स्थित ॥७७॥
 नृत् उवाच
 इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मय परमं गता ।
 भक्तिरूपे वचो भूय श्रूयतां तस्य गौनक ॥७८॥
 भक्तिरूपः
 सुपे त्वं हि धन्याऽसि मद्भावनं ममागत ।
 साधूनां दशमं लोकं सर्वमिदिकरं परम् ॥७९॥

जाया । भ्रमरके समान सारमाही राजाने यह निश्चय
 किया कि इसका कथ मुझे नहीं करना चाहिये ॥६७॥
 क्योंकि जो फल तपस्या, योग एव समाधिमें भी नहीं
 मिलता, कलियुगमें कही फल श्रीहरिकीर्तनसे ही मली-
 भोजि मिल जाता है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार साधुही होने-
 पर भी उसे इस एक ही दृष्टिसे सायुक्त देखकर उन्होंने
 कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले जीतोंके सुखके लिये ही इसे
 खदे दिया था ॥ ६९ ॥

इस समय लोगोंके कुकर्ममें प्रवृत्त होनेके कारण सभी
 वस्तुओंका सार निकल गया है और पृथ्वीके सारे पदार्थ
 वीजहीन भूसीके समान हो गये हैं ॥ ७० ॥ ब्राह्मण
 केवल वन-वनादिके लोभका घर-घर एवं जन-जनको
 मागधनकी कथा सुनाने लगे हैं, इसलिये कपाक सार
 चला गया ॥७१॥ तीर्थोंमें नाना प्रकारके व्ययत घोर कर्म
 करनेवाले, नास्तिक और नारकी पुरुष भी खदे लगे हैं,
 इसलिये तीर्थोंका भी प्रभाव जाता रहा ॥ ७२ ॥
 जिनका चित्त निरन्तर काम, क्रोध, मदान् लोभ और तृष्णा-
 से तपना रहता है, वे भी तपस्याका भोग करने लगे
 हैं, इसलिये तपका भी सार निकल गया ॥ ७३ ॥
 मनपर कब्ज न होनेके कारण तथा लोभ, दम्भ और
 पाण्डुका आशय लेनेका कारण एवं शास्त्रका अम्यास
 न करनेसे ध्यानयोगका फल मित्र गया ॥ ७४ ॥ पण्डितों-
 की यह दशा है कि वे अपना चियोंके साथ भोगोंकी
 तरह खग करते हैं, उनमें संन्यस पैदा करनेकी ही
 कुशाख्या पामी जाती है, मुक्तिमाधनमें वे सबका अकुशा-
 हैं ॥ ७५ ॥ सम्प्रणयानुसार प्राण इष्ट वैष्णवता भी
 कहीं दखनेमें नहीं आती । इन प्रकार जगह-जगह
 सभी वस्तुओंका सार लुप्त हो गया है ॥ ७६ ॥ यह
 तो हम युगका व्यापार ही है, हममें किसीका दोष नहीं
 है । इसीसे पुण्डरीकाय महान् पटुन मनीस रहते हुए
 भी यह सब सह रहे हैं ॥ ७७ ॥

सुनारी कहते हैं—गौनकी । इस प्रकार दर्पण
 नाशक वचन सुनकर भक्तिरूप वरा आश्चर्य हुआ,
 फिर उसने जो कुछ कहा, उसे सुनिये ॥ ७८ ॥

भक्तिरूप कहा—दर्पण । अतः धन्य है । मग वरा
 भोग्य था, जो जगह मगधन हुआ । संन्यासमें सुपुत्रों
 का दान ही सनस निदिपेय फल कारण है ॥ ७९ ॥

जयति जगति मायां यस्य कायाध्वस्ते
 वषनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ।
 ध्रुवपदमपि यातो मत्कृपातो ध्रुवोऽयं
 सकलकुञ्जलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतासि ॥८०॥

आपका केवल एक बारका उपदेश धारण करके कयाध्व
 कुम्भर प्रह्लादने मायापर विजय प्राप्त कर ली थी । ध्रुवने
 भी आपकी कृपासे ही ध्रुवपद प्राप्त किया था । आप
 सर्वमङ्गलमय और साक्षात् श्रीमहात्मा की पुत्र हैं, मैं आपको
 नमस्कार करती हूँ ॥ ८० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्ति-
 नन्दसमग्रस्यो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भक्तिका तुल्यं कूर करनेके छिये नारदजीका उद्योग

नारद उवाच

इवा खेदापसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ।
 श्रीकृष्णचरणाम्भोजं सरं दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥
 द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकर्मलात् ।
 पाल्त्रागोपसुन्दरः स कृष्णः कापि नागतः ॥ २ ॥
 त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सत्तत् प्राणतोऽधिका ।
 स्वयाऽऽहृतस्तु भगवान् पालिनीचण्डहृषपि ॥ ३ ॥
 सत्यादित्रिपुणे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ।
 कलौ तु कबला भक्तिर्ब्रह्मसाधुन्यकारिणी ॥ ४ ॥
 इति निमित्त्य चिद्वपः सदर्पा स्वां ससर्ज ह ।
 परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरी कृष्णबल्लभाम् ॥ ५ ॥
 पद्मधाडालिं स्वयां पृष्टं किं करोमीति चैकदा ।
 त्वां सदाऽऽप्रापयत्कृष्णो मङ्गलान् पोषयेति च ॥ ६ ॥
 अनीकृतं त्वया तद्वं प्रमथोऽभूद्वरिस्तदा ।
 मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यप्रविभौ ॥ ७ ॥
 पोषणं म्वेन रूपेण बह्वृष्टे त्वं करोषि च ।
 भूमौ भक्तविरापाय छायाभर्षं स्वयां कृतम् ॥ ८ ॥

नारदजीने कहा—बाले ! तुम व्यर्थ ही अपनेको
 क्यों खेदमें डाल रही हो ? अरे ! तुम इतनी चिन्तातुर
 क्यों हो ? भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन
 करो, उनकी कृपासे तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जाएगा
 ॥ १ ॥ चिन्तोंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रौपदीकी रक्षा
 की थी और गोपसुन्दरियोंको सनाय किया था, वे श्रीकृष्ण
 कहाँ चले पोछे ही गये हैं ॥ २ ॥ फिर तुम तो भक्ति
 हो और सना उन्हें प्राणोंसे भी प्यारी हो, तुम्हारे धुल्लनपर
 तो भगवान् नीचोंके घरोंमें भी चले जाते हैं ॥ ३ ॥
 सत्य, श्रेता और हापर—इन तीन युगोंमें ज्ञान और
 वैराग्य मुक्तिके साधन थे, किंतु कलियुगमें तो केवल भक्ति
 ही ब्रह्मसाधुन्य (मोक्ष) की प्राप्ति करनेवाली है ॥ ४ ॥
 यह सोचकर ही परमानन्दचिन्मूर्ति ज्ञानस्वरूप श्रीहरिने
 अपने सरस्वरूपसे तुम्हें रखा है, तुम साध्याव ध्यात्मगन्ध
 की प्रिया और परम सुन्दरी हो ॥ ५ ॥ एक बार जब तुमने
 हाप जोड़कर पूजा या कि 'मैं क्या करूँ ' तब भगवान् ने
 तुम्हें प्यारी आवा दी थी कि 'मेरे मन्त्रोंका पोषण करो ।'
 ॥ ६ ॥ तुमने भगवान् की यह आज्ञा स्वीकार कर ली;
 इससे तुमपर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और तुम्हारी सेवा
 करनेके छिये मुक्तिको तुम्हें दासीके रूपमें दे दिया और इन
 ज्ञान-वैराग्यको पुत्रोंके रूपमें ॥ ७ ॥ तुम अपने सम्भाव
 स्वरूपसे वैकुण्ठधाममें ही भक्तोंका पोषण करती हो,
 भूयोक्तों तो तुमने उनकी पुष्टिके छिये केवल छायास्वरूप
 धारण कर रखा है ॥ ८ ॥

मुक्तिं ध्यानं विरक्तिं च मह कृत्वा गता भुवि ।
 कृतादिद्रापरम्यान्त महानन्तं संस्थिता ॥ ९ ॥
 कलां मुक्तिं ध्यय प्राप्ता पाल्पण्डामयपीडिता ।
 त्वदाक्षया गता शीघ्र वैकुण्ठ पुनरव मा ॥ १० ॥
 स्मृता त्वयापि धार्त्र्यं मुक्तिरापाति याति च ।
 पुत्रीकृत्य त्वमेमां च पादौ स्वसंख रक्षितौ ॥ ११ ॥
 उपश्रुत कलां मन्दां दृष्ट्वा जातां मुतां तव ।
 तथापि चिन्तां ब्रुष त्वमुपाय चिन्तयाम्यहम् ॥ १२ ॥
 कलिना मद्य क्वापि युगो नास्ति वगनने ।
 तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गह गेह जने जने ॥ १३ ॥
 अन्यधर्मान्तरिष्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ।
 तदा नाह हरर्त्तमो लोक त्वां न प्रवर्तये ॥ १४ ॥
 त्वं न्विताश्च य जीवा भविष्यन्ति कलाविह ।
 पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्मय कृष्णमन्दिरम् ॥ १५ ॥
 यपां चित्त वनेद्भक्तिं भवता प्रेमरूपिणी ।
 न त पश्यन्ति कीनाश स्वप्नेऽप्यमलमूर्तय ॥ १६ ॥
 न प्रता न पिशाचो वा गन्धमाबसुगोऽपि वा ।
 भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शे न प्रभुर्भवत् ॥ १७ ॥
 न तपाभिर्न वन्ध न ध्यानेनापि कमणा ।
 हरिर्हि माप्यत भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिका ॥ १८ ॥
 नृणां जन्ममहस्रण भक्तां प्रीतिर्हि बापते ।
 कलां भक्ति कलां भक्तिमत्तया कृष्ण पुर मित १९
 भक्तिद्राहका य च न मीनन्ति जगत्प्रय ।
 दुःखमा दृग्मापन्न पुन भक्तिनिन्दक ॥ २० ॥
 अन् प्रवर्तनं सार्थगलं सार्थगलं मयं ।
 अन् ध्यानस्थानां भक्तिर्कर मुक्तिदा ॥ २१ ॥

तब तुम मुक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे साथ छिये पृथ्वी
 तलपर आयी और सस्ययुगसे द्वापरपर्यन्त बड़े आनन्दसे
 रही ॥ ९ ॥ कलियुगमें तुम्हारी गयी मुक्ति पाल्पण्डरूप
 रोगसे पीड़ित होकर क्षीण होने लगी थी, इसलिये वह
 सो तुरन्त ही तुम्हारी आश्रसे बैकुण्ठलोकको चली गयी
 ॥ १० ॥ इस लोकमें भी तुम्हारे स्मरण करनेसे ही वह
 अन्ती है और फिर चली जाती है, किन्तु इन ज्ञान वैराग्य-
 को तुमने पुत्र मानकर अपन पास ही रख लोका है ॥ ११ ॥
 फिर भी कलियुगमें इनकी उपेक्षा हानक कारण तुम्हारे
 ये पुत्र उन्साहहीन और बूढ़ हो गये हैं, फिर भी तुम
 चिन्ता न करो, मैं इनके नववीकनकर उपाय सोचता
 हूँ ॥ १२ ॥ सुमुखि ! कलिके समान कोई भी युग
 नहीं है, इन युगमें मैं तुम्हें घर-घरमें प्रत्येक पुरुषके हृदयमें
 स्थापित कर दूँगा ॥ १३ ॥ देखो, अन्य सब धर्मोंका
 दबाकर और भक्तिविरूपक महोत्सवोंको आग राखकर
 यदि मैंने लोकमें तुम्हारा प्रचार न किया तो मैं श्रीहरिक
 दाम नहीं ॥ १४ ॥ इस कलियुगमें जो जीव तुमसे मुक्त
 होंगे, वे पापी होनेपर भी बख्ते के भगवान् श्रीकृष्णक
 समय कामको प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥ जिनके हृदयमें
 निरन्तर प्रमत्तगिणी भक्ति निवास करती है, वे शुद्धान्त
 करण पुरुष स्वप्नमें भी यमराजका नहीं देखते ॥ १६ ॥
 जिनके हृदयमें भक्ति महारानीका निवास है, उन्हें प्रत,
 पिशाच, राक्षस या दैत्य आदि तपरा करनेमें भी समर्थ
 नहीं हो सकते ॥ १७ ॥ भक्तान् तप, वेनाप्ययन,
 ज्ञान और ब्रह्म आदि किसी भी साधनमें बरमें नहीं किये
 जा सकत वे पराउ भक्तिसे ही परीम्त हाते हैं ।
 इसमें श्रीगोपीजन प्रमाण है ॥ १८ ॥ मनुष्योंका सहस्रों
 जन्मका पुण्य-प्रतापसे भक्तिमें अनुराग होना है । कलियुगमें
 पराउ भक्ति, कलउ भक्ति ही सार है । भक्तिसे तो साधन
 श्रीकृष्णचन्द्र सामन उरस्थित हो जात है ॥ १९ ॥
 जो भगव भक्तिसे होइ परत है, व सीतों लोकमें दुःखही
 दुःख पाते हैं । पुरुषयुगमें भक्त्या तिरस्कार करनेवाले
 दुःखमा अविश्व बड़ा कष्ट उग्रता पड़ा था ॥ २० ॥
 बय, बय । बय, तीव्र, पागल यन धार धानपर्या आदि
 बहुभन्म साधनोंसे का कारव्ययता नहीं है परन्तु
 भक्ति ही मुक्ति दान-नी है ॥ २१ ॥

सूत उवाच

इति नारदनिर्णीतं स्वमाह्वानं निशम्य मा ।
मर्वाङ्गुष्ठिसयुक्ता नारद वाक्यमप्रवीत् ॥२२॥

भक्तिवाच

अहा नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निम्बला ।
न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्तं म्यास्यामि सर्वदा ॥२३॥
कृपास्तुता त्वया माधो मद्राधा ध्वमिता धृषात् ।
पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥२४॥

सूत उवाच

तस्या वच समाकर्ष्य कारुण्यं नारदो गत ।
तयोर्बोधनमारमे कराम्रेण विमर्दयन् ॥२५॥
मुन्य मयोज्य कर्णान्तं स्रग्दमुञ्चैः समुत्थरन् ।
ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं र वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥२६॥
वेदकान्तधोपेक्ष गीतापाठैर्मूर्धुम्ह ।
बोधमालां तदा तन कर्मचिन्तोत्थितां कलात् ॥२७॥
नेत्रैरनवलम्बन्तां वृम्भन्तौ सल्लसाबुधौ ।
कवचत्पलितौ प्राय शुष्ककाष्ठममाङ्गकौ ॥२८॥
मुत्थामौ तौ निरीक्ष्य पुन व्यापपरायणौ ।
अपिधित्तापरो ज्ञात किं विधेयं मयति च ॥२९॥
अहा निद्रा कथं याति बुद्धयं च महत्तरम् ।
चिन्तयमिति गात्रिन्दं सारयामास भागव ॥३०॥
भ्योमथाणी तर्वाभृन्मा ध्रुप स्विघतामिति ।
उद्यम मफलस्तस्य भविष्यति न मंशयः ॥३१॥
एतन्ध तु मत्स्यं मुरपे त्व समाचर ।
तत्त कमाभिधास्यन्ति माधव माधुभूषणा ॥३२॥
मन्यमणि कृत तस्मिन् मनिद्रा शृङ्खलानया ।
गमिष्यति धनाष्टकिं गवत प्रमगिष्यति ॥३३॥
इत्यासन्नयम स्पष्टं तत्प्रमगिष्यति विभूतम् ।
नारदा विन्मयं सभ नद ज्ञानमिति ध्रुवन् ॥३४॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार नारदजीके नियम किये हुए अपने माहात्म्यको सुनकर भक्तिके सारे बन्ध पुट हो गये और वे उनसे कहने लगे ॥ २२ ॥

भक्तिम कहता—नारदजी ! आप धन्य हैं । आपकी मुझमें निश्चल प्रीति है । मैं सदा आपके हृदयमें रहूँगी, कभी आपका अङ्कुर नहीं जाऊँगी ॥ २३ ॥ साथे । आप बड़े कृपालु हैं । आपने क्षणभरमें ही मेरा सारा दुःख दूर कर दिया । किंतु कभी मेरे पुत्रमें बेचना नहीं लगी है, आप इन्हें शीघ्र ही सचेत कर दीजिये, जगा दीजिये ॥ २४ ॥

सूतजी कहते हैं—भक्तिके ये कवन सुनकर नारद जीको बड़ी करुणा आयी और वे उन्हें हाथसे बिलम्ब-बुलबुलकर जगाने लगे ॥ २५ ॥ फिर उनके कनक के पास मुँह लगाकर जारसे कहा, 'आ ज्ञान ! जल्दी जग पको, ओ वैराग्य ! जल्दी जग पको ।' ॥ २६ ॥ फिर उन्होंने वेदध्वनि, वेदान्तबोध और बार-बार गीतापाठ करके उन्हें जगाया, इससे वे जैसे-तैसे बहुत जोर व्याकर ठठे ॥२७॥ किंतु आनन्दके कारण वे दोनों जैमाई लेते रहे, नेत्र उठाकर देख भी नहीं सक । उनके बाल बगुलैकी तरह सफ़द हाँ गये थे, उनका अङ्ग प्राय सूखे कठके समान निस्तेज और कठोर हो गये थे ॥ २८ ॥ इस प्रकार भूख प्यासके गारे झूलता दुर्बल होनेके कारण उन्हें फिर सोते देख नारदजीको बड़ी चिन्ता हुई और वे सोचने लग, 'अब मुझ क्या करना चाहिये ? ॥२९॥ इनको यह नींद और इससे भी बढ़कर इनकी बुद्धावस्था कैसे दूर हो ?' शीघ्रजी ! इस प्रकार चिन्ता धरते-करते वे मगधान्ध स्मरण करने लग ॥ ३० ॥ उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि 'मुने ! खेद मत करो, तुम्हारा यह उद्योग नि संदेह महत्तर होगा ॥ ३१ ॥ देखो ! इसरुखिये तुम एक सत्कर्म करो, यह कर्म तुम्हें संतानिगे मणि महानुभाव बनायेगे ॥ ३२ ॥ उस सत्कर्मका अनुष्ठान करते ही क्षणभरमें इनकी नींद और बुद्धावस्था पकी जायेगी तथा सर्वत्र भक्तियत्न प्रसार होगा' ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी हुई सुधीन माधव-माधुनाथ सुनायी गी । हमने नारदजीको बड़ा विन्मय हुआ और वे कहने लगे, 'मुझ का समय बहुत आशय समझने नहीं आया' ॥ ३४ ॥

नारद उवाच

अनयाऽऽकाशवाण्यापि गोप्यत्वन निरूपितम् ।
किं वा तत्माधर्नं कार्यं येन काय भवेत्तयो ॥३५॥
न भविष्यन्ति सन्तप्ते कथं दास्यन्ति माधनम् ।
मयात्र किं प्रकर्तव्यं यदुक्तं श्योमभाषया ॥३६॥

सूत उवाच

तत्र ब्रह्मणि संस्थाप्य निर्पतो नारदो मुनि ।
तीर्थं तीर्थं त्रिनिष्कम्पं पृच्छन्मार्गं मुनीश्वरम् ॥३७॥
वृत्तान्तं भूपते सर्वं किञ्चिद्विहितं नोच्यते ।
अत्रार्थं केचन प्रोजुर्दुमेयमिति चापरे ।
मूक्यमृत्तान्तधन्वे तु कियन्तस्तु पलायिता ॥३८॥
हाहाकारो महानामीत्रलोक्ये विस्मयावह ।
वेदवेदान्तपोषं गीतापाठं विबोधितम् ॥३९॥
भक्तिज्ञानविरागाणां नोत्तिष्ठत्त्रिकं यदा ।
उपायो नापरोऽस्तीति कर्म कर्मोऽजपञ्जना ॥४०॥
योगिना नारदनापि स्वयं न ध्यायते तु यत् ।
तत्कथं शक्यत वस्तुमिवरिह मानुष्यः ॥४१॥
एवमुपिगर्णः पृच्छन्निर्णीयोक्तं दुरामदम् ॥४२॥
ततश्चिन्तितुं मोऽथ क्षरीवनमागत ।
तपश्चरामि चाव्रति तथ कृतनिश्चयः ॥४३॥
सर्वदृशं पुरतः मनसादीन्मुनीश्वरम् ।
क्षत्रियपुत्रमभामानुवाच मुनिमत्तम ॥४४॥

नारद उवाच

इत्नीं मूर्तिभाष्येन भवद्वि मगमाऽभवत् ।
कुमागं ध्रुवतां गीमं कृपां कृत्वा ममापि ॥४५॥
भवन्ता योगिन मर्वे बुद्धिमन्ता यदुधृता ।
पञ्चदशयनमपुन्ता पूर्वेषामपि पृथगा ॥४६॥

नारदजी बोले—इम आकशवाणीने भी गुप्तपमें
ही बात कही है । यह नहीं यथाय कि यह कौन-सा माधन
किया जाय, जिससे इनका कार्य सिद्ध हो ॥ ३५ ॥
वे सत न जाने कहाँ मिलेंगे और किस प्रकार उस
साधनको बनायेंगे ? अब आकशवाणीने जो कुछ कहा
है, उसके अनुसार मुझ क्या करना चाहिये ? ॥ ३६ ॥

सूतजी कहते हैं—श्रीनक्षत्री । तब ज्ञान-वीर्यम दोनों
को वहीं छोड़कर नारदमुनि श्रुति से चल पड़ और प्रत्येक
तीर्थमें जा-जाकर मार्गमें विप्लवेवाले मुनीश्वरोंसे वह साधन
पूछन लगे ॥ ३७ ॥ उनकी उस बातको सुनते तो
सब ये, किंतु उनके विषयमें कोई भी निश्चित उत्तर न
देता । किन्हींने उसे असाध्य बनाया, कोई बोले—
'भस्कर ठीक-ठीक पत्ता लगाना ही करिज है ।' कोई
सुनकर चुप रह गये और कोई-कोई तो अपनी अज्ञा
होनेके मयसे बातको टाक-टूटकर झिंक गये ॥ ३८ ॥
त्रिपुरीमें महान् आश्चर्यजनक हाहाकार मच गया । लोग
आपसमें कहनाछसी करने लगे—'भाई ! जब वेदध्वनि,
वेदान्तबोध और बार-बार गीतापाठ सुनानेपर भी शक्ति,
ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगये जा सके, तब
और कोई उपाय नहीं है ॥ ३९ ४० ॥ स्वयं योगराज
नारदको भी जिसका ज्ञान नहीं है, उसे दूसरे संसारी
लोग कैसे बना सकते हैं ? ॥ ४१ ॥ इस प्रकार निर-
न्तिन श्रुतियोंसे इसके विषयमें पृथक् पृथक्, उन्होंने निर्यय
करके यही कहा कि यह बात दुःसाध्य ही है ॥ ४२ ॥

तब नारदजी बहुत चिन्तातुर हुए और क्षरीवनमें
आये । ज्ञान-वीर्यमको जगानके विषय कहीं उन्होंने यह
निश्चय दिया कि 'मैं तो करूँगा' ॥ ४३ ॥ इसी समय
उन्हें अपने मामन बराबों सुपवि समान तेजस्वी
सनकादि मुनीश्वर विष्णुपि पिये । उन्हें देखकर वे मुनिश्रेष्ठ
कहने लगे ॥ ४४ ॥

नारदजीन कहा—महत्माआ ! इस समय बड़े
साध्यमें मैं अत्रागोंके साथ मन्दगल हुआ हूँ, आप
मुझपर क्या प्रकार शीघ्र ही क्या माधन बनाइयें ॥ ४५ ॥
आप सभी लोग यह कही बुद्धिमान् आदि रहित हैं ।
आप ज्ञानमें पूर्णयोग करके साधन जल
पकृत हैं, किंतु मैं प्रतीक भी दूर ॥ ४६ ॥

मदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्परा ।
लीलामृतरमान्मता कथामात्रैकजीविनः ॥४७॥
हरिः शरणमव हि नित्यं यथां मुखे वच ।
अतः कलममादिष्टा जरा युष्माकं बाधते ॥४८॥
यथां भूभङ्गमात्रेण द्वारपालौ हरे पुरा ।
मूमौ निपतितौ मद्यो यत्कृपास्त पुर गतौ ॥४९॥
अहो भाग्यस्य योनेन दर्शनं भवतामिह ।
अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयालरै ॥५०॥
अशरीरनिरोक्त यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ।
अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥५१॥
भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यत कथम् ।
म्यापनं सर्ववर्णेषु प्रमपूर्वं प्रयत्नत ॥५२॥

कुमारा उवाच

मा चिन्तां कुरु द्रव्येषु हर्षं चित्तं समावह ।
उपायः सुखसाध्याऽग्नं वर्तते पूर्वं एव हि ॥५३॥
अहो नारद धन्याऽग्नि विरक्तानां द्विरोमणि ।
मया भीकृष्णदामानामप्रणीर्वीर्यगभास्कर ॥५४॥
त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ।
घटतः कृष्णदामस्य भक्तं मम्यापना मया ॥५५॥
अपिभिरहो लोकं पन्थानं प्रकटीकृता ।
भममाध्यास्य स मयै प्रायः स्वयंकृत्प्रया ॥५६॥
वैकुण्ठमाधकं पन्था म तु गाध्या हि वर्तते ।
तस्यापन्थां पुरुषं प्राया भाग्येन सम्पत् ॥५७॥
मन्त्रम तव निर्दिष्टं म्यामराथा तु यन्पुगा ।
तदुच्यत शृणुष्याव म्यगन्धित प्रमन्तभी ॥५८॥

आखण्डे सदा वैकुण्ठनाममे निरास करते हैं, निरन्तर
हरिकीर्तनमें तत्पर रहते हैं, भावहीनमृतमय सत्साधन
कर सदा उसीमें उमर रहते हैं और एकमात्र भगवत्कथा ही
आपके जीवनका आधार है ॥४७॥ 'हरि-शरणम्' (ममत्तन्
ही हमारे रक्षक हैं) यह वाक्य (मन्त्र) सर्वदा आपके मुखमें
रहता है इसीसे कालप्रेरित वृद्धावस्था भी आपको बाधा
नहीं पहुँचाती ॥ ४८ ॥ पूर्वकाशमें आपका भूमिमात्रसे
भगवान् विष्णुके द्वारपाल जय और विजय तुरत पृथ्वी-
पर गिर गये थे और फिर आपकी ही कृपासे वे पुनः
वैकुण्ठप्रेरके पहुँच गये ॥४९॥ कथ्य है, इस समय आपका
दर्शन बड़े सौम्यमनसे ही हुआ है । मैं बहुत दीन हूँ और
आपलोग स्वभावसे ही दयालु हैं, इनलिये सुप्रणव आसक्त
अन्य कृपा करनी चाहिये ॥ ५० ॥ कथ्य है—आकाश
बाणीने जिसके विषयमें कहा है, वह कौन-सा साधन
है, और मुझ किन्त प्रकर उसका अनुष्ठान करना चाहिये ।
आप इसका विचारसे कर्ण करिये ॥५१॥ भक्ति, ज्ञान
और वैराग्यको किन्त प्रकर सुख मिल सकता है ? और
किन्त तरह इनकी प्रेक्षार्थ सब वर्णोंमें प्रसिद्धा की जा
सकती है ? ॥ ५२ ॥

सनकादिने कहा—देवों ! आप चिन्ता न करें,
मनमें प्रसन्न हों, उनके उद्धारकर एक सदा उपाय पदमेसे
ही विद्यमान है ॥ ५३ ॥ नारदजी ! आप धन्य हैं ।
आप विरक्तोंके द्विरोमणि हैं । श्रीकृष्णानामोंक शशक्त
पथ-प्रदर्शक एवं भक्तियोगके भास्कर हैं ॥ ५४ ॥ आप
भक्तिके लिये जो उद्योग कर रह हैं, यह आपके विषय कार्य
आकर्षणीय बात नहीं सम्पत्नी चाहिये । भगवान्क भक्तके
लिये तो भक्तिकी मन्त्र-म्यापना करना सदा उचित ही
है ॥५५॥ अग्निमें संधारमें अनर्क मग प्रकाशित है; किन्तु
वे सभी कष्टमाय हैं और परिणाममें प्रायः स्वर्गकी ही प्राप्ति
करनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ अर्थात्क मगवान्की प्राप्ति करने-
वाला मग ना सुख ही रहा है । उमर उपदेश करनेवाला
पुरुष प्रायः भाग्यसे ही मित्रता है ॥ ५७ ॥ आपका
आश्रयवाणीन किम मयर्कमत्र संकत किया है, उसे हम
बनगए हैं आप प्रमन्त और सम्पत्तिवित्त होकर
सुनिय ॥ ५८ ॥

द्रव्ययज्ञस्तपोयज्ञा योगयज्ञस्तथापरे ।
 स्वाध्यापज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविधुक्क ॥५९॥
 मत्कर्मधुक्करो नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो युषै ।
 श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतं श्रुत्वादिभि ॥६०॥
 भक्तिज्ञानविरागाणां तदुद्योपेण धलं महत् ।
 व्रजिष्यति द्वयोः कर्तुं सुख भक्तेर्मविष्यति ॥६१॥
 प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ।
 फलेर्लोपा इमे भवन्ति सिंहस्यदादु बुद्धि इव ॥६२॥
 ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्ति प्रेमरमावहा ।
 प्रतिगोहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥६३॥

नारद उवाच

वेदवेदान्तधोषं गीतापाठं प्रबोधितम् ।
 भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठस्त्रिकं यदा ॥६४॥
 श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधयेष्यति ।
 तत्कथंस्तु वेदार्थं श्लोके श्लोके पदे पदे ॥६५॥
 छिन्दन्तु मंशप ज्ञानं भवन्तोऽमोघदर्शना ।
 विलम्बो नात्र कर्तव्यः क्षणगागत्वत्सला ॥६६॥

कुपरा उचुः

वेदोपनिषत्सु माराज्जाता भागवती कथा ।
 अत्युत्तमा ततो भाति शृङ्गमृता फलाकृतिः ॥६७॥
 आमूलार्धं रमतिष्ठमास्ते न स्वाधत्ते यथा ।
 स भूयः सम्पृथग्भूत फले विद्यमनोहरः ॥६८॥
 यथा दुग्धे मितं मर्षिर्न स्वाधोपपक्ष्यते ।
 शृङ्गमूर्तं हि तद्वर्ष्य देवानां रमयधनम् ॥६९॥
 शृङ्गामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ।
 शृङ्गमृता च ना मिला तथा भागवती कथा ॥७०॥
 १६ भागवत नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।

नारदजी । द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ और स्वाध्याप-
 रूप ज्ञानयज्ञ—ये सब तो स्वर्गादिकी प्राप्ति करानेवाले
 कर्मकी ही ओर संकेत करते हैं ॥ ५९ ॥ पण्डितोंने
 ज्ञानयज्ञको ही सत्कर्म (मुक्तिदायक कर्म) का सूचक
 माना है । यह श्रीमद्भागवतका परामर्श है, जिसका गहन
 शुक्रादि महापुरुषोंने किया है ॥ ६० ॥ उनके शब्द
 सुननेसे ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बढ़ा बन मिलेगा ।
 इससे ज्ञान-वैराग्यका कष्ट मिट जायगा और भक्तिको
 आनन्द मिलेगा ॥ ६१ ॥ सिंहजी गर्जना सुनकर जैसे
 भेड़िये भाग जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे
 कर्मियुगके सारे दोष नष्ट हो जायेंगे ॥ ६२ ॥ तब
 प्रेमरस प्रवाहित करनेवाली भक्ति ज्ञान और वैराग्यको साथ
 लेकर प्रत्येक घर और व्यक्तिके हृदयमें क्रीडा करेगी ॥ ६३ ॥

नारदजीने कहा—यैने वेद-वेदान्तकी ध्वनि और
 गीतापाठ करके उन्हें बहुत जगाया, किंतु फिर भी भक्ति,
 ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगे ॥ ६४ ॥ ऐसी
 स्थितिमें श्रीमद्भागवत सुनानेसे वे कैसे जगेंगे ? क्योंकि
 उस कथाके प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पदमें भी वेदोंका
 ही तो सारंश है ॥ ६५ ॥ आपनोग शरणार्थनभक्त हैं
 तथा आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं होना, इसलिये मेरा
 यह संदेश बुरा कर दीजिये, इस कार्यमें किम्बत न
 करीजिये ॥ ६६ ॥

सनकादिने कहा—श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और
 उपनिषद्के सारसे कनी है । इसलिये उनसे अग्रा उनकी
 फलरूपा होनेका कारण यह बड़ी उत्तम जान पड़ती
 है ॥ ६७ ॥ जिस प्रकार रस वृक्षकी जड़में ऐक्य शास्त्रा-
 पर्यन्त रहता है, किंतु इस स्थितिमें उमका आव्याप्तन
 नहीं किया जा सकता, वही सब अग्रा हावत फलक
 रूपमें आ जाता है, तब समारमें मधुमेरे प्रिय छाने
 छाना है ॥ ६८ ॥ दुग्धमें घी रहता ही है, किंतु उस
 समय उसका अग्रा स्वाद नहीं मिश्रा, वही जब उमसे
 अग्रा हो जाता है, तब दन्ताजिकि चिये भी स्वादवर्क
 हो जाता है ॥ ६९ ॥ खीर इसके ओर-ओर और
 बीचमें भी व्याप्त रहती है, तथापि अग्रा होनपर उमकी
 कुछ और ही मिश्रस होती है । पसी ही यह भागवतकी
 कथा है ॥ ७० ॥ यह भागवतपुराण वर्णोंके समान है ।

भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥७१॥
 वेदान्तवेदसुखाते गीताया अपि कर्तरि ।
 परितापवति व्यासे मुमुक्षुज्ञानसागर ॥७२॥
 कदा त्वया पुरा प्रार्त्तं चतुःश्लोकमन्वितम् ।
 तदीयभ्रमणात्सद्यो निबाधो बादरायणः ॥७३॥
 तत्र ते विषयं कलं यतः प्रभवको भवान् ।
 श्रीमद्भागवतं भाव्यं शोकदुःखविनाशनम् ॥७४॥

नारद उवाच

यदर्थं न च विनिश्चिन्त्यश्रुभानि सद्यः
 भयस्तनोति भवदुःखदवादितानाम् ।
 निश्चयेपक्षेपमुत्तरीतकर्मकपाना
 प्रेमप्रकाशकृतये ध्वरणं गतोऽसि ॥७५॥
 भाग्योदयेन बहुजनसमर्पितेन
 सत्सर्गं च लभते पुरुषो यदा वै ।
 अज्ञानहस्तकृतमोहमदन्धकार
 नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥७६॥

श्रीभ्यासदेवने इसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापनाक
 लिय प्रकाशित किया है ॥ ७१ ॥ पूर्वकात्मे जिस समय
 वेद-वेदान्तक पाशामी और गीताकी भी रचना करनेवाले
 भगवान् भ्यासदेव खिन होकर अज्ञानसमुद्रमें गोते खा
 रहे थे, उस समय आपन ही उन्हें चार श्लोकमें इसका
 उपदेश किया था । उसे सुनते ही उनकी सारी चिन्ता
 दूर हो गयी थी ॥ ७२-७३ ॥ फिर इसमें आपको
 आश्चर्य क्यों हो रहा है, जो आप हमसे प्रश्न कर रहे
 हैं ? आपको उन्हें शोक और दुःख का विनाश करनेवाला
 श्रीमद्भागवतपुराण ही सुनाना चाहिये ॥ ७४ ॥

नारदजीने कहा—महानुभावो ! आपको दर्शन
 जीवके सम्पूर्ण पापोंको तत्काल नष्ट कर देना है और जो
 संसार-दुःखरूप दावानलसे तपे हुए हैं, उनपर शीघ्र ही
 शान्तिकी कृपा करता है । आप निरन्तर शेरजीके सहस्र
 मुखोंसे गाते हुए भाग्यकामकृतज्ञ ही पान करते रहते हैं । मैं
 प्रेमकाणा भक्तिप्रकाश करनेके उद्देशसे आपकी शरण
 लेता हूँ ॥ ७५ ॥ जब अनेकों जन्मोंके संकित पुण्य-
 पुण्य उदय होनेसे मनुष्यको संसृष्ट मिथ्या है, तब
 वह उसके अज्ञानजनित मोह और मदरूप अन्धकारका
 नाश करके विवेक उदय होता है ॥ ७६ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादे

नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भक्तिके कष्टकी निवृत्ति

नारद उवाच

ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुक्रशस्त्रकयाज्ज्वलम् ।
 भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥
 कुप्यं कार्यो मया यज्ञः स्वर्लं सद्वाच्यतामिह ।
 महिमा शुक्रशस्त्रस्य भक्त्यो वेदपार्श्वे ॥ २ ॥
 क्रियद्भिर्दिव्यैर्धाप्या श्रीमद्भागवती कथा ।
 यो विभित्त्वा पठाम्या ममदं भुवतामितं ॥ ३ ॥

नारदजी कहते हैं—क्यों मैं भक्ति, ज्ञान और
 वैराग्यको स्थापित करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक श्रीशुक्रदेव-
 जीक कहें हुए भगवन्नामकी कथाएँ उज्ज्वल ज्ञान
 यज्ञ करूँगा ॥ १ ॥ यह यज्ञ मुझ कहाँ करना चाहिये,
 आप इसके लिये कोई स्थान बता दीजिये । आपसे
 बरक पाशामी हूँ, इसलिये मुझे इस शुक्रशस्त्रकी
 महिमा सुनाइये ॥ २ ॥ यह भी बताइये कि श्रीमद्भाग-
 वतकी कथा कितने निमित्त सुनानी चाहिये और
 उसके सुननेकी विधि क्या है ॥ ३ ॥

कुमारा जय

शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवर्किने ।
 गङ्गाद्वारमयी तु तटमानन्दनामकम् ॥ ४ ॥
 नानाध्वनिगर्जनुष्ट दधमिद्वनिपेक्षितम् ।
 नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवातुकम् ॥ ५ ॥
 रम्यमेकान्ततटस्थ इमपयसुसारभम् ।
 मत्तमीपस्यजीवानां वरं येतसि न म्यितम् ॥ ६ ॥
 ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ।
 अपूर्वरसूया च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥
 पुरःस्थ निर्मलं चैव जराजीर्णफलवरम् ।
 तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्रागमिष्यति ॥ ८ ॥
 यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ।
 कथाश्रवणं ममाकर्ण्य तत्त्रिकं तद्व्यासते ॥ ९ ॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा कुमारास्त नारदन ममं ततः ।
 गङ्गातटं ममाजगु कथापानाय मत्सरा ॥ १० ॥
 यत्र यातास्त ते तु तत्र कालाहलाऽप्यमृत् ।
 भूलकिं दवलोकं च ब्रह्मलोकं तथैव च ॥ ११ ॥
 भीमभावतपीयूषशानाय गमलम्यगः ।
 धावन्ताऽप्यायसु मयं प्रथमं य च वषण्वा ॥ १२ ॥
 भृगुर्गमिष्टदन्ववनश्च गौतमो
 मधातिथिर्वलद्वर्गात् ।
 रामस्तथा गाधिसुतश्च द्राक्षन्तो
 मृकण्डपुत्राद्विजपिप्पला ॥ १३ ॥
 यागधरां व्यासपराशरां च
 छापाशुक्रो जात्रलिङ्गमुष्मन् ।
 मयऽप्यमी मुनिगणा महपुत्रादिभ्यः
 मयस्त्रीभिगमपुरतिप्रणयनयुता ॥ १४ ॥
 कालानि च वनाश्च मन्त्राश्चान्या ममूर्तेय ।
 दशमस्य पुराणानि पट्गालाणि तथाऽऽयु ॥ १५ ॥

सनकादि चोले—नारदजी ! आप वड़े विनीत और विवेकी हैं। सुनिये, हम आपको ये सब बातें बताते हैं। हृदयारक पास आनन्द नामक एक वाट है ॥ ४ ॥ वहाँ अनकों अग्नि रहते हैं तथा देवता और मिद्वलोग भी उसका सेवन करते रहते हैं। मौनि-मौनिक वृक्ष और लताओं के कारण वह वड़ा सज्जन है और वहाँ बड़ी कोमल नवीन वायु किरी हर है ॥ ५ ॥ वह वाट वड़ा ही सुरम्य और एकान्त प्रदर्शने है, वहाँ हर समय सुनहल कमलोंकी सुगन्ध आया करती है। उसका आसपास रहनवाल् सिद्ध, हाथी आदि परस्पर-विरोधी जीवोंके चित्तमें भी वैरभाव नहीं है ॥ ६ ॥ वहाँ आप बिना किसी विशेष प्रयत्नके ही ज्ञानयज्ञ आरम्भ कर दीजिये, उस स्थानपर क्यामें अर्ध रमका उदय होगा ॥ ७ ॥ भक्ति भी अपनी आँखोंके ही सामान निर्बल और जराजीर्ण-अवस्थामें पड़ कर ज्ञान और बरायको साथ लेकर वहाँ आ जायगी ॥ ८ ॥ क्योंकि वहाँ भी श्रीमद्भागवतकी कथा हानी है, वहाँ ये भक्ति आदि अपने-आप पहुँच जाते हैं। वहाँ करनेमें क्याक शब्द पढ़नेसे ये तीनों तद्वत् हो जायेंगे ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रश्न कहकर नारदजीके

साथ सनकादि भी श्रीमद्भागवतकथामृतका पान करनेके लिये वहाँसे तुरंत गङ्गातटपर चले आए ॥ १० ॥ जिस समय वे तटपर पहुँचे, मृत्युक, दध्नाक और ब्रह्मदेव—सभी बगल इस कथाका हल्ला हो गया ॥ ११ ॥ जो जो भगवत्कथाक रसिक किन्तुमक्त थे, वे सभी श्रीमद्भागवतकथामृतका पान करनेके लिये सबसे आगे तैक-तैककर आने लग ॥ १२ ॥ धृग, वसिष्ठ, प्यवन, गान्धर्वा, मेधातिथि, लव, दशरथ, परशुराम, विश्वामित्र, द्राक्षर, मृकण्डेय, दत्तात्रेय, विषयन्, योगेश्वर व्यास और पराशर, छायाशुक्र, जात्रकि और जहू आदि सभी प्रधान-महात्म मुनिगण अपने-अपने पुत्र, शिष्य और शिष्योपमन यह प्रमत्ते वहाँ आये ॥ १३ १४ ॥ इनक सिवा य, वामन (उपनिषद्), मन्त्र, तन्त्र, मन्त्र पुराण और छोटो शास्त्र भी बर्हिमान् हाथर वहाँ उपस्थित हुए ॥ १५ ॥

गङ्गाया सरितस्तत्र पुष्करादिसारणि च ।
 क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादिष्वनानि च ॥१६॥
 नगादयो ययुस्तत्र दनगन्धर्वानन्ता ।
 गुरुन्वातत्र नायातान्मृगुः सम्बोध्य चानयत् ॥१७॥
 दीक्षिता नमदनाथ दत्तमामनमुत्तमम् ।
 कुमारा वन्दिता सर्वनिपेदुः कृष्णसत्परा ॥१८॥
 वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यामिनो ब्रह्मचारिण ।
 सुतभागे म्पितास्ते च तत्रैव नारद म्पिताः ॥१९॥
 एकभागे अपिगणास्तदन्यत्र द्विबौकसः ।
 वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियाऽन्यतः ॥२०॥
 जपशब्दा नमश्शब्दः शङ्खशब्दस्तर्जय च ।
 शृणुलाजप्रक्षलानां निक्षेप सुमहानमूत ॥२१॥
 विमानानि समारूढा किमन्तो देवनायका ।
 कल्पवृक्षप्रभर्तस्तान् सर्वान्तत्र समाकिन् ॥२२॥
 सूत उवाच
 एव तेज्वक्चिचपु श्रीमद्भागवतस्य च ।
 माहात्म्यमृचिर स्पष्ट नारदाय महात्मने ॥२३॥
 कुमार उवाच
 अथ ते वर्ण्यतेऽस्माभिर्महिमा शुकश्रावणः ।
 यस्य ध्वजमात्रेण मुक्तिं कर्ततल म्पिता ॥२४॥
 मदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
 यस्याः ध्वजमात्रेण हरिश्चितं समाप्नयेत् ॥२५॥
 ग्रन्थोऽष्टादशमाहसो द्वापञ्चमन्त्रसम्पित ।
 परीक्षिन्शुकमवादः शृणु भागवतं च तत् ॥२६॥
 तावत्समाचक्षतेऽस्मिन् अमतेऽज्ञानतः पुमान् ।
 यावत्कृष्णगता नास्ति शुकश्रावणकथा क्षणम् ॥२७॥
 किं श्रुत्यर्हमुभि शार्ङ्गं पुण्यं च अमावर्ह ।
 एतं भागवतं शार्ङ्गं मुक्तिदानं गजति ॥२८॥

गङ्गा आदि नदियों, पुष्कर आदि सरोवर, कुम्भक्षेत्र
 आदि समस्त क्षेत्र, सारी दिशाएँ, दण्डक आदि वन,
 द्विपलस्य आदि पर्वत तथा देव, गन्धर्व आदि दानव
 आदि सभी कथा सुनने वाले आये । जा लोग अपने
 गौरवक कथन नहीं आये, मूर्धनि भृगु उन्हें सम्मान-
 युक्तकर ॥ आये ॥ १६ १७ ॥

तत्र कथा सुनानेके लिये दीक्षित होकर धीरुष्ण-
 पयण सनकादि नारदजीके लिये हुए क्षेत्र आसनपर
 विराजमान हुए । उस समय सभी श्रोताओंने उनकी
 कन्दना की ॥ १८ ॥ श्रोताओंने वैष्णव, विरक्त,
 संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग आगे बैठे और उन सबके
 आगे नारदजी विराजमान हुए ॥ १९ ॥ एक और
 अग्निगण, एक ओर दक्ष, एक ओर वेद और उप-
 निषदादि तथा एक ओर तीर्थ बैठे, और दूसरी ओर
 कियों बैठी ॥ २० ॥ उस समय सब ओर जप-जपकर,
 नमस्कार और शङ्खोंकर शब्द होने लगा और नदी-
 शुक्ल, खीर एवं क्षौद्रकी लव्ध कर्मा होने लगी ॥ २१ ॥
 कर्ष-कर्ष देखते ही ता विमानोंपर चढ़कर, वहाँ बैठे हुए
 सब ओरोंपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी कर्मा करने लगे ॥ २२ ॥

सूतजी कहते हैं—दस प्रकार पूजा समाप्त होनेपर
 जब सब लोग एकत्रविच हो गये, तब सनकादि ऋषि
 महात्मा नारदको श्रीमद्भागवतका महात्म्य स्पष्ट करके
 सुनाने लगे ॥ २३ ॥

सनकादिने कहा—अब हम आपको इस महात्म्य-
 शास्त्रकी महिमा सुनाते हैं । इसके ध्वजमात्रसे
 मुक्ति हास ल्या जाती है ॥ २४ ॥ श्रीमद्भागवतकी
 कथाका सदा-सर्वदा सेवन, आस्तान करना चाहिये ।
 इसका ध्वजमात्रसे श्रीहरि हृदयमें आ विराजते
 हैं ॥ २५ ॥ इस ग्रन्थमें अष्टादह हजार श्लोक और
 बारह स्कन्ध हैं तथा धीरुष्णेश्वर और राजा परीक्षित
 का संवाच है । आप यह समाग्रशास्त्र ध्यान देकर
 सुनिये ॥ २६ ॥ यह जीव तभी तक अज्ञानका इस
 संसारचक्रमें मग्नता है, जबतक क्षणभरके लिये भी
 कर्माके इस शुकश्रावणकी कथा नहीं पढ़ती ॥ २७ ॥
 बहुत-से शास्त्र और पुराण सुननेसे क्या लाभ है । इससे
 तो स्पष्टतः भय बढ़ता है । मुक्ति देनेके लिये तो
 एकमात्र भागवतशास्त्र ही गरज रहा है ॥ २८ ॥

कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्वृष्टम् ।
 तद्वृष्टं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥२९॥
 अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
 शुकशास्त्रकथायाश्च कर्त्ता नार्हन्ति पोदघ्नीम् ॥३०॥
 तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवमन्ति तपोधना ।
 यावत्तु भूपते सम्पत् श्रीमद्भागवतं नरं ॥३१॥
 न गङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ।
 शुकशास्त्रकथायाश्च फलनं समतां नयेत् ॥३२॥
 श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
 पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥३३॥
 वृन्दिर्वेदमत्ता च पौरुषं श्रुतमेव च ।
 त्रयी भागवतं चैव ब्रह्मशास्त्रं एव च ॥३४॥
 ब्रह्मशास्त्रात्मा प्रयागश्च कालः सप्तस्तरात्मकः ।
 ब्राह्मणाध्यामिहोत्रं च सुगन्धिर्ब्राह्मणी तथा ॥३५॥
 तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च ।
 एतपा तत्त्वतः ब्राह्मणं पूज्यम्भाव इष्यते ॥३६॥
 यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्धतोऽनिशम् ।
 जन्मफोटिच्छते पापं नश्यतः नात्र संशयः ॥३७॥
 श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ।
 नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजश्यामश्वमेधयो ॥३८॥
 उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् ।
 तुलसीपूजणं चैव घेनूनां सेवनं समम् ॥३९॥
 अन्तकाले तु यन्त्रं भूयतः शुकशास्त्रवाक् ।
 श्रुत्वा तत्सर्वं वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ॥४०॥
 हममिहयुतं चैतद्द्रव्यं वा ददाति च ।
 कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमान्स्त्वभवे ह्ययम् ॥४१॥

आजन्ममात्रमपि येन शठनं किंचि

चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीठा ।

चाण्डालवच्च खरवद्वतं सन नीत

मिथ्या मन्त्रं नननीचिन्दु मन्त्रा ॥४२॥

जिस कर्म नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह तीर्थरूप हो जाता है और जो लोग उसमें रहते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २९ ॥ हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस शुकशास्त्रकी कथाका सोच्छ्रवणों अंश भी नहीं हो सकते ॥ ३० ॥ तपोधनो ! जन्तक लोग अच्छी तरह श्रीमद्भागवतका श्रवण नहीं करते, तभीतक उनके शरीरमें पाप निवास करते हैं ॥ ३१ ॥ पत्थरी छटिसे इस शुकशास्त्रकथा की सम्मता गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर या प्रयाग—कोई तीर्थ भी नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

यदि आपको परम गन्तिकी इच्छा है तो अपने मुखसे ही श्रीमद्भागवतके आधे अथवा चौथाई श्लोकका भी नित्य नियमपूर्वक पाठ कीजिये ॥ ३३ ॥ उच्चारण, गह्वरी, पुरुषसूक्त, तीनों वेद, श्रीमद्भागवत, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—यह ब्राह्मणोक्त मन्त्र, बारह मूर्तियोंवाले सूर्यमन्त्रान्, प्रयाग, सप्तस्तररूप काष्ठ, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, ब्राह्मणी तिथि, तुलसी, वसन्त ऋतु और भगवान् पुरुषोत्तम—इन सबमें बुद्धिमान् लोग वस्तुतः कोई अन्तर नहीं मानते ॥ ३४—३६ ॥ जो पुरुष ब्रह्मनिंश अर्पयति श्रीमद्भागवतं शास्त्रं वा पठति, उसके करोड़ों जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ ३७ ॥ जो पुरुष नित्यप्रति भागवतका आधा या चौथाई श्लोक भी पढ़ता है, उसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल मिलता है ॥ ३८ ॥ नित्य भगवन्तका पाठ करना, भगवान्का चिन्तन करना, तुलसीको सींचना और गौकी सेवा करना—य चारों समान हैं ॥ ३९ ॥ जो पुरुष अन्तस्समये श्रीमद्भागवतका वाक्य सुन लेता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् उसे वैकुण्ठधाम दत्ते हैं ॥ ४० ॥ जो पुरुष इसे सोनके सिंहासनपर रखकर विष्णुमन्त्रके दान करता है, वह अल्प ही भगवान्का सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

जिस दुष्टन अपनी सारी आयुमें बिचका एकत्र करके श्रीमद्भागवतमूलका पाठान्ता भी रसास्वादन नहीं किया, उसन तो अपना सारा जन्म चाण्डाल और गधक समान व्यर्थ ही गँवा दिया वह तो अपनी मानाके प्रसन्न-पीठा पहुँचानक श्रिय ही उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥

जीवन्त्यो निगदित स तु पापकमा
मन धृतं शुक्रकथावचनं न किञ्चित् ।
धिकृत नर पशुमयं मृषि भाररूप
मेवं वर्तन्ति दिवि त्वमसाजमुष्या ॥४३॥

दुर्लभं व फला लाक भीमद्भागवतोद्भवा ।
काण्डिजन्मममृत्युषं पृथ्पेनैव तु लभ्यत ॥४४॥

तन योगनिधे धीमन् धोतव्या सा प्रयत्नत ।
दिनानां नियमा नास्ति मवदा भवर्ण मतम् ॥४५॥

मत्यंन ब्रह्मचर्येण मवदा भवर्ण मतम् ।
अशक्त्यत्वात्कलां बोध्या विश्वोऽत्र शुक्रकथा ॥४६॥

मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ।
वीक्षा कर्तुमशक्त्यत्वात्सहाह्रभवण मतम् ॥४७॥

भद्रात भवण नित्य माध तावद्धि यत्फलम् ।
तत्फलं शुक्रदेवन सप्ताहभवणे कृतम् ॥४८॥

मनसभाजयाद्रागापुंसां चैवायुषः क्षयात् ।
कलहोपबहुत्वाच्च सप्ताहभवण मतम् ॥४९॥

यत्फलं नास्ति तपसा न यागेन समाधिना ।
जनायासंन तत्त्वय सप्ताहभवण तमेत् ॥५०॥

यन्नाद्रजति सप्ताह सप्ताहा गजति मत्वात् ।
तपसो गजति श्रोत्रैस्तीर्थाभित्य हि गर्जति ॥५१॥

यागाद्रजति सप्ताहा प्यानाज्ज्ञानाण गर्जति ।
किं भूमा गजनं तस्य र र गर्जति गर्जति ॥५२॥

श्लोक उवाच

माभ्यर्थमेतन्कथितं कथानयं
ज्ञानादिधामान् विगणय्य माम्प्रतम् ।
नि भयस भागवतं पुराणं
जान इहा यागविनिश्चयम् ॥५३॥

जितने इस शुक्रशास्त्रक बोद्धे से भी बचन नहीं सुन, वह
पापात्मा तो जीता हुआ ही मुर्दे के समान है । 'पृथ्वीक मार
स्वरूप उस पशुतुल्य मनुष्यको विकार है'—यों स्वगर्भोक्तमें
देवताओंमें प्रधान इन्द्राणि कहा करते हैं ॥ ४३ ॥

संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथाका मिथुना अवश्य ही
कठिन है जब कठोर्को जर्मोक पुण्य होता है, तभी
इसकी प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ नादजी ! आप बड़
ही बुद्धिमान् और योगनिधि हैं । आप प्रयत्नपूर्वक कथा
का ध्वन्य करिये । इसे सुननेक क्रिय निर्वोक्त कोई
निष्पन्न नहीं है इसे तो सर्वत्र ही सुनना अच्छा है ॥ ४५ ॥
इसे सत्यभाषण और कथाचयपालनपूर्वक सर्वदा ही सुनना
श्रेष्ठ मन्ना गया है । किंतु कस्मियुगमें ऐसा होना कठिन
है, इसलिये इसकी शुक्रदेवजीने जो विशेष विधि बनायी है,
वह जान लेनी चाहिये ॥ ४६ ॥ कस्मियुगमें बहुत निर्वो-
क्त विचकी वृत्तिपूर्वको कथामें रहना, निष्पत्तिमें बंधे रहना
और किसी पुण्यकृत्यके लिये तीक्ष्ण रहना कठिन है
इसलिये सप्ताह-अवर्णकी विधि है ॥ ४७ ॥ भद्रापूर्वक
कभी भी श्रवण करनेसे अथवा माधमयमें श्रवण करनेसे
जो फल होता है, वही फल श्रीशुक्रदेवजीने सप्ताहश्रवणमें
निर्धारित किया है ॥ ४८ ॥ मनक असंयम, ऐश्वर्यकी बहुलता
और आयुकी अल्पताक कारण तथा कस्मियुगमें अनेकों
प्राणोंकी सम्भावनासे ही सप्ताहश्रवणका विधान किया
गया है ॥ ४९ ॥ जो फल तप, योग सौर समाधिसे
भी प्राप्त नहीं हो सकता, वह सर्वज्ञस्वरूपमें सप्ताहश्रवणसे
सहजमें ही मित्र जाता है ॥ ५० ॥ सप्ताहश्रवण यन्त्रसे
बढ़कर है, कृते बढ़कर है, तपसे कहीं बढ़कर है,
तीर्थसेवनसे ता सप्ताह ही बढ़ा है, योगसे बढ़कर है—
यशोविक्रम वि ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़कर है, अजी !
इसकी विशेषताका बहोविक्रम ज्ञान करें, यह ता समीसे
बढ़ बढ़कर है ॥ ५१ ५२ ॥

श्रीशुक्रजीने पूछा—सूतजी ! यह ता आपने बड़
आश्चर्यकी बात कही । अवश्य ही यह मागधनपुराण
योगवक्ता ब्रह्माजीक भी आतिशय्य धीनाराधनका
निष्पत्त्य करता है परंतु यह यशोविक्रम प्राप्तिमें ज्ञानाणि
सभी माधमयोंक निरस्तकर करक हम युगमें उनसे भी
कैसे बढ़ गये ? ॥ ५३ ॥

मृत उवाच

यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ।
एकलक्षं परिभृत्याप्युदबो वाक्यमब्रवीत् ॥५४॥

उद्यत उवाच

त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ।
मधित्ते महती चिन्ता तां धृत्वा सुखमावह ॥५५॥
आगतोऽप्यकलिघोरो भविष्यन्ति पुनः खला ।
तत्सङ्गेनैव मन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ॥५६॥
तदा भागवती भूमिगौरूपेय कमाधरं च ।
अन्यो न दृश्यते प्राप्ता त्वत्त कमललोचन ॥५७॥
अतः मत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा ब्रज ।
भक्तार्थं सगुणो ज्ञातो निराकाराऽपि चिन्मयः ॥५८॥
त्वद्विभोगेन तं भक्ता कथं व्यास्यन्ति भूतल ।
निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ॥५९॥
इत्युदवच च धृत्वा प्रभासेऽश्विन्तयद्वरिः ।
भक्तवलम्बनार्थाय किं विवेकं मयति च ॥६०॥
स्वकीयं यद्वेषेत्तत्तच्च भागवतेऽन्धात् ।
तिरोधाय प्रविष्टाऽयं श्रीमद्भगवतार्पणम् ॥६१॥
तनेय वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरः ।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥६२॥
सप्ताहभवनं तन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ।
माधनानि तिरस्कृत्य कलां धर्मोऽयमीरित ॥६३॥
दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ।
कामक्रोधजयार्थं हि कलां धर्मोऽयमीरित ॥६४॥
यन्पथा वंज्यावी माया त्वैवगपि सुदुर्मयना ।
कथं त्यज्या भवपुम्भि सप्ताहाऽतः प्रकीर्तित ॥६५॥

सूतजीन कथा—शौनषजी ! जब भगवान् श्रीकृष्ण
इम धरावामक्रे छोड़कर अपन नित्यधामक्रे जान
ल्ये तब उनके मुखारविन्दसे एकदश स्वत्वका ज्ञानो
पदेन सुनकर भी उद्वजजीन पूछ ॥ ५४ ॥

उद्यतजी बोल—गाविन् ! अब आप ता अपन
मर्कोक कथ करके परमधामका पधारना चाहते हैं,
किंतु मेरे मनमें एक बड़ी चिन्ता है । उस सुनकर
आप मुझ शान्त कीजिये ॥ ५५ ॥ अब घोर कष्टियोग
आया ही समझिये, इमलिये संसारमें कि अनेकों दुष्ट
प्रकट हो जायेंगे उनके संगर्भसे जब अनेकों मनुष्य
भी उग्र प्रहलिके हा जायेंगे तब उनका भगम स्वकर
यह गेस्किणी पृथ्वी तिमकी शरणमें जायगी ।
कम्पनयन ! मुझे तो आपका हाइकर इमकी रक्षा
करनबाला कहे दूसरा नहीं दिखायी देता ॥ ५६ ॥ इत-
लिये मक्कसन् ! आप साधुओंपर कृपा करक य्हसि
मत्त जाइये । भगन् ! आपन निराकार और विमय
हाकर भी मर्कोक लिये ही ता यह मगुण रूप धारण
किया है ॥ ५८ ॥ फिर मग, आफ्का वियोग होनपर
वे मक्कजन पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे । निगुणोपासनामें
तो बका कद है । इसलिये कुछ और विचार
कीजिये ॥ ५९ ॥

प्रभामश्रुत्यं उद्वजजीक ये वचन सुनकर भगवान्
साधने क्या कि मक्कोकि अकम्पक लिये मुझे क्या
मक्कमा करनी चाहिये ॥ ६० ॥ ज्ञानवजी ! तब
भगवान् अपनी सारी शक्ति भागवतमें रख दी, वे
अन्तर्धान होकर इय भागवतमसुत्रमें प्रकाश कर गये ॥ ६१ ॥
इमलिये यह भगवान्की माहात् "मर्म" मयी मूर्ति है ।
इसके सेवन, श्रवण, पाठ अपना दर्शनसे ही मनुष्यके
सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२ ॥ इसीसे इसका
महाहोमक मयमे बहकर माना गया है और कष्टियोगमें ता
अन्य मय मायोंको छोड़कर यही प्रधान धम बनया
गया है ॥ ६३ ॥ कष्टियोगमें यही पमा धम है जा
दुःख, त्रिदा, दुर्मय और पापोंकी सफा कर ला
है तथा कर्मका गति "सुख" और विमय कियाता
है ॥ ६४ ॥ कम्पय, भगवान्की इम मायासे पीडा
छुड़ाना तथाओंक जिय भी करिन् ह मनुष्य तो इसे
हाइ ही कैसे मकन है । अब इमसे दुःखन लिय
भी महाहोमक विमान किया गया है ॥ ६५ ॥

सुम उवाच

एवं नगाहध्वजान्धर्मै
प्रकाशमाने अपिभि मभाषाम् ।
आश्चर्यमेकं समभूतगानीं
तदुच्यत मंशुषु शौनके त्वम् ॥६६॥
भक्ति सुतो तौ तरुणी गृहीत्वा
प्रेमरूपा सहसाऽऽविराभीत् ।
श्रीकृष्ण गोविन्द हर मुरारे
नायेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥६७॥
तां चागतां भागवतार्थभूषां
सुचारुवेपां ददधुः मदस्मा ।
कथं प्रविष्टा कथमतायेष
मप्य मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥६८॥
ऊचु कुमारा वचनं तानीं
कथार्भतो निष्पतिताधुनेयम् ।
एव गिर मा मसुता निष्कम्प
मनत्कुमारं निजगाढ नम्रा ॥६९॥
मक्तिरुवाच
भवद्विरघैव कृतासि पुष्टा
कलिप्रणष्टापि कथारसेन ।
कवाहं तु विष्णुमधुना ध्रुवन्तु
प्रक्ष्मा इ तां गिरमूचिरे व ॥७०॥
भक्त्यु गोविन्दस्वरूपकरीं
प्रमदधरीं भवरागहन्त्री ।
मा त्व च निष्ठम्य सुधैरमभया
निरन्तरं वषण्वमानमानि ॥७१॥
तवाऽपि दाया कलिजा इम त्वां
द्रष्टुं न शक्ता प्रभवाऽपि लोक ।
एव तदाप्यारमरऽपि भक्ति
मत्त निषण्णा हग्निसमिन् ॥७२॥

मकलभुवनमप्य निधनामनाऽपि धन्या

निरमति इति यतां श्रीहरमन्त्रिका ।

हगिपि निवन्तां मन्त्रधारा विनाय

प्रतिनिधि इति ततां भक्तिगुणापन ॥७३॥

सुताजी कहते हैं—शौनकजी । जिस समय मनकादि
मुनीश्वर इस प्रकार सप्ताहध्वजकी महिमाका बखान
कर रहे थे, उस समयमें एक बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे
मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ ६६ ॥ वहाँ
कृष्णकृष्णको प्राप्त हुए अपने दोनों पुत्रोंको साथ
लिये किमुद्र प्रेमरूपा भक्ति बार बार 'श्रीकृष्ण । गोविन्द ।
हरे । मुरारे । हे नाथ । नारायण । वासुदेव ।' आदि
भाषनामोंको उच्चारण करती ॥ अकस्मात् प्रकट हो
गयीं ॥ ६७ ॥ सभी सदस्योंने देखा कि परम सुन्दरी भक्तिरानी
भागवतके अर्थोंको आभूषण पहने वहाँ पधारों । मुनियों
की उम्र समयमें सभी यह तर्क-वितर्क करने लगे कि ये वहाँ
कैसे आयीं, कैसे प्रविष्ट हुईं ॥ ६८ ॥ तब सनकादिने
कहा—'ये भक्तिदेवी अभी-अभी कृष्णके अपने निवसनी
हैं ।' उनके ये वचन सुनकर भक्तिने अपने पुत्रोंसमेत
अप्यन्त विनम्र होकर सनकुमारजीसे कहा ॥ ६९ ॥
भक्ति बोली—'मैं कष्टियुगमें नष्टप्राय हो गयी थी,
आपने कृपापूर्वक सींचकर मुझे फिर पुष्ट कर दिया ।
अब आप यह बताइये कि मैं कहाँ रहूँ । यह
सुनकर सनकादिने उससे कहा—॥ ७० ॥ 'तुम भक्तों-
का भावानुका स्वरूप प्रगट करनेवाली, अनन्यप्रेमका
सम्पादन करनेवाली और संसार-रोगको निर्मूल करने-
वाली हो, अब तुम धैर्य धारण करके निष्प-निरन्तर
विष्णुभक्तोंके हृदयमें ही निवास करो ॥ ७१ ॥ ये
कष्टियुगके लोग भक्त ही मारे संसारपर अपना प्रभाव
डालें, किंतु वहाँ तुम्हारा इनकी दृष्टि भी नहीं पड़
सकती । इस प्रकार उनसे आशा पाते ही भक्ति तुरन्त
भागवद्भक्तोंके हृदयमें जा बिराजी ॥ ७२ ॥

जिनके हृदयमें एवमात्र श्रीहरिदेवी भक्ति निवास
करती है व त्रिशक्तिमें अथवा त्रिन तानर भी परम
रूप है क्योंकि इस भक्तिमें त्रिभिरे वैयक्त
नो म तत् भावन भी अना परमशय ऐक्य
उनके हृदयमें आकर बस जात है ॥ ७३ ॥

भूमोऽद्य ते किमधिक महिमानमेव
ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ।
यत्सम्भवाभिगन्ति ते लभते सुवक्ता
भोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥७४॥

मूनेकमें यह भागवत साक्षात् परब्रह्मत्र निष्ठ है, हम इसकी महिमा कहनेक वर्णन करें। इसका आश्रय लेयत इसे सुननेसे तो सुनने और सुनानेवाले दोनोंको ही महान् श्रीकृष्णकी सम्प्ता प्राप्त हो जानी है। अतः इसे छोड़कर अन्य धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ७४ ॥

इति श्रीपद्मपुराण उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्ति-

कव्यनिकर्तन नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

शोकपूर्णोपाख्यान प्रारम्भ

दूत उवाच

अथ वैष्णवचित्तेषु हृद्ग्राम भक्तिमलौकिकीम् ।
निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तयत्सल ॥ १ ॥
वनमाली घनदयाम पीतवास्रा मनोहर ।
काञ्चीकलापरुषिरो लभन्मुकुटकुण्डलम् ॥ २ ॥
त्रिभङ्गललितभारुकीस्तुमेन विराजितः ।
कोटिमन्मथलवण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥ ३ ॥
परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ।
आतिवेद्य स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ ४ ॥
वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादस्य ।
तत्कथाभवनार्थं ते गूढरूपेण मयिता ॥ ५ ॥
तदा जयजयान्तो गम्पुष्टिरलौकिकी ।
षृणुप्रद्यतषृणिषु मुहुः शङ्करवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥
तन्ममाम्भितानां च दहगेहान्मविस्मृति ।
हृद्ग्राम तन्मयाश्रमां नानदो वाक्यमग्रवीत् ॥ ७ ॥
अलौकिकाऽय महिमा मुनीधरा
मसाहज्योऽय विलोकिष्यो मया ।
मृदा द्रष्टा य पशुपक्षिणाऽय
मर्वेऽपि निष्पापतया भवन्ति ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं—मुनिक ! उस समय अपने मकोंके चित्तमें अलौकिक भक्तिक प्रारुर्भाव हुआ देख मक्तकसूत्र योग्यावान् अपना घाम छोड़कर यहाँ पधारे ॥ १ ॥ उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी, धीअङ्ग सज्ज बलवरके समान श्यामवर्ण था, उसपर मनोहर पीताम्बर सुशोभित था, कटिप्रदेश कतघनीकी लङ्घियोंसे सुसज्जित था, सिरपर मुकुटकी छक और कानमें कुण्डलौकी शङ्ख देखते ही बनती थी ॥ २ ॥ वे त्रिभङ्गस्थित माकसे खड़े हुए चित्तको चुराये लेते थे। कप्त स्वरपर कौस्तुभमणि दमक रही थी, साग धीअङ्ग हरिचन्दनमे चर्चित था। उस रूपकी शोभा क्या कहें, उसन तो मनो कदाहों कमलेश्वरी रूपधधुरी छीन सी थी ॥ ३ ॥ वे परमानन्दचिन्मूर्ति मधुरनिमग्न सुन्दरीधर ऐसी अनुपम छविसे अपने मकोंके निर्मल चित्तमें आनिमूत हुए ॥ ४ ॥ भगवन्क निरवस्थकनिवासी मीन्यपरिहर उद्धासित यहाँ गुनरूपसे उस कथाको सुननेके लिये आये हुए थे ॥ ५ ॥ प्रसुक प्रकट होते ही चारों ओर 'जय हो ! जय हो !' की प्यनि हान लगी। उस समय भक्तिरसक अद्भुत प्रकट भग, धार-धार अदीर गुप्यन्त और पुष्पोंकी बग नया दाह्यपनि होन लगी ॥ ६ ॥ उस समयमें जो लोग भग थे, उन्हें अपने दह, गेह और आश्रमकी भी कोई सुधि न रही। उनका पसी तन्मय्य दमकर नारजी कहन लगे—॥ ७ ॥

मुनीधरगण ! आज समाह-धरगकी मिन यह बड़ी ही अजीबिज महिमा लगी। यहाँ ता जा बड़ मूय, दुर और पशुपक्षी भी हैं, बसभी अल्प निष्पाप हा गय हैं ॥ ८ ॥

सूत उवाच

एवं नगाहभ्रवणोरुभ्रमे
प्रकाशमाने ष्वपिभि सभाषाम् ।
आश्चर्यमेकं सममूचतानी
तदुच्यते संगृष्ट शौनक त्वम् ॥६६॥
भक्ति सुतो तौ सरुणौ गृहीत्वा
प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ।
श्रीकृष्ण गोविन्द इर मुगरे
नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥६७॥
तां चागातां भागवतार्थभूषां
सुचाल्वेषां ददृशुः सदस्या ।
कथं प्रविष्टा कथमागतये
मध्ये मुनीनामिति तर्कयन्त ॥६८॥
ऊचुः कुमारो वचन उदानी
कथार्थतो निष्पत्तिताधुनेयम् ।
एवं गिरः सा ससुता निष्ठम्य
सनत्कुमार निजगाद नम्रा ॥६९॥
भक्तिरूपेण
भवन्निरघैव कृतासि पुष्टा
कलिप्रणष्टापि कथारसेन ।
कथाई तु तिष्ठाम्यधुना ध्रुवन्तु
ब्रह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ॥७०॥
भक्तेषु गोविन्दस्वरूपकथी
प्रेमैकधर्मी भवरोगहन्त्री ।
सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंभवा
निरन्तरं वैष्णवमानसानि ॥७१॥
तद्योऽपि दोषा कलिञ्चा इमं त्वां
ब्रह्मं न शक्ता प्रभवाऽपि लाक ।
एव तदाऽपि तमरेऽपि भक्ति-
स्तदा नियन्ता इतिगमचित् ॥७२॥

मकलमुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या

निवसति इदि भणा भीहरर्मक्तिरेका ।

इरिपि निजलार्कं मर्षधातो विहाय

प्रविशति इति तपां भक्तिग्रन्थापनद्धः ॥७३॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! जिस समय सनकदि

मुनीश्वर इस प्रकार सहाइश्रवणकी महिमका बखान
कर रहे थे, उस समयमें एक बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे
मे तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ ६६ ॥ वहाँ
तक्षणवस्थाको प्राप्त हुए अपने दोनों पुत्रोंको साथ
लिये विशुद्ध प्रेमरूपा भक्ति बार बार 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द !
हरे ! मुगरे ! हे नाथ ! नाथपण ! वासुदेव !' आदि
भगवान्नामोंका उच्चारण करती हुई अकस्मात् प्रकट हो
गयीं ॥ ६७ ॥ सभी सदस्योंने देखा कि परम सुन्दरी भक्तिरानी
भागवतके अपूर्वका आयुषण पहने वहाँ पधारीं । मुनियों-
की उस समयमें सभी यह तक-वितर्क करने लगे कि ये यहाँ
कैसे आयी, कन्ने प्रसिद्ध हुईं ॥ ६८ ॥ तब सनकदिने
कहा—ये भक्तिदेवी अभी-अभी कपाके अर्धसे निकली
हैं ।' उनके ये कथन सुनकर भक्तिने अपने पुत्रोंसमेत
अत्यन्त तिनच होकर सनत्कुमारजीसे कहा ॥ ६९ ॥
भक्ति बोली—मैं कश्चिमुगले नष्टप्राय हो गयी थी,
आपने कथासूतसे सींचकर मुझे फिर पुष्ट कर दिया ।
अब आप यह बताइये कि मैं कहाँ रहूँ ? यह
सुनकर सनकदिने उससे कहा—॥ ७० ॥ 'तुम भक्तों-
का भगवान्का स्वरूप प्रदान करनेवासी, अनन्यप्रेमका
सम्पादन करनेवाली और संसार-रोगको निर्मूल करने-
वाली हो अतः तुम धैर्य चारण करके नित्य-निरन्तर
नित्यभक्तोंके हृदयमें ही निवास करो ॥ ७१ ॥ ये
कश्चिमुगले दोष मल ही सारे संसारपर अपना प्रभाव
बालें, किंतु वहाँ तुम्हारा इनकी दृष्टि भी नहीं पड़
सकेगी । इस प्रकार उनकी आज्ञा पाते ही भक्ति तुरंत
भागवतको हृदयमें जा बिराजी ॥ ७२ ॥

जिनके हृदयमें एकग्रधर श्रीकृष्णकी भक्ति निवास
करती है, वे त्रिजेकीमें अत्यन्त निर्धन होनेपर भी परम
धन्य हैं, क्योंकि इस भक्तिनी बोरीसे बैचकर
तो माझाव भगवान् भी अपना परमधाम छोड़कर
उनके हृदयमें आकर बस जाते हैं ॥ ७३ ॥

मूमाञ्ज ते किमधिक महिमानमेवं
ब्रह्मात्मकस्य सवि भागवताभिधस्य ।
यत्सभयाभिगाप्तिं लभते सुवक्ता
भोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्म ॥ ७४ ॥

मूलोक्तें यह भागवत साक्षात् परब्रह्म निग्रह है, हम इसकी महिमा कहनेक वगन करें । इसका आशय हैक इसे सुनानसे तो सुनन और सुनानशक्ति दोनोंको ही मानान श्रीकृष्णकी सम्प्रा प्राप्त हो जाती है । अतः इसे छोड़कर अन्य धर्मसे क्या प्रयोजन है ॥ ७४ ॥

इति श्रीपद्मपुराण उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्ति-

कल्पनिश्चयनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गोकर्णोपाख्यान प्रारम्भ

सूत उवाच

अथ वैष्णवचिन्तु इष्टा भक्तिमर्लाङ्गिकीम् ।
निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सल ॥ १ ॥
वनमाली वनश्याम पीतश्यामा मनोहरः ।
कञ्चीकलापरचिरो लम्बसुकुण्डल ॥ २ ॥
त्रिभङ्गललितभारुकीस्तुमेन विराजितः ।
कटिमन्मथलक्ष्म्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥ ३ ॥
परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ।
आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ ४ ॥
वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्वेगिनः ।
तत्कथाश्रवणार्थं त गृह्णन्पण संश्रिता ॥ ५ ॥
तदा जयजयारवां रसपुष्टिर्लाङ्गिकी ।
चूणप्रमूनवृष्टिषु मुहुः क्षणवोऽप्यमूर्त् ॥ ६ ॥
तत्प्रभासंश्रितानां च दहगहात्मविस्मृतिः ।
इष्टा च तन्मयावस्थां नाटो वाक्यमश्रवीत् ॥ ७ ॥
अर्लाङ्गिकोऽय महिमा मुनीश्वराः
महाहज्योऽय निरोक्षिता मया ।
मृदा गृहा ये पशुपक्षिणाऽत्र
सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ॥ ८ ॥

स्वामी कहते हैं—मुनिक ! उस समय अपन भक्तोंके चित्तमें अर्लाङ्गिक भक्तिक प्रारम्भ हुआ देख भक्तकर्मन् श्रीमान् अपना धाम छोड़कर वहाँ पवारे ॥ १ ॥ उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी, शीशङ्ग सुवज्र जन्धरके मन्थन श्यामवर्ण था, उसपर मनोहर पीताम्बर सुशोभित था, कटिप्रदेश करवनीकी चिह्नसे सुसज्जित था, सिरपर मुकुटकी लटक और कानोंमें कुण्डलोंकी शृङ्खल देखते ही बननी थी ॥ २ ॥ वे त्रिभङ्गललित मानसे खड़े हुए चित्त को चुगये लेते थे । केश मन्थपर कान्तुममणि दमक रही थी, साय शीशङ्ग हरिचन्दनसे चर्चित था । उस रूपकी शोभा क्या कहें, उसन तो मनो कणों कामनेकी रूपमधुरी हीन ही थी ॥ ३ ॥ वे परमानन्दचिन्मूर्ति मधुरानिमधुर मुरलीधर प्यो अनुपम इन्धिसे अपन भक्तोंके निर्मल चित्तोंमें आविर्भूत हुए ॥ ४ ॥ भगवान्के निरालक्षणीवासी लीलापरिकर उद्वेगदि वहाँ गुनरूपमे उम कथाका सुननक नित्य आये हुए थे ॥ ५ ॥ प्रसुक प्रवृत्त होत ही चरों और त्रय हो । जय हो ॥ की जनि हान करी । उस समय भक्तिमक वज्रुन प्रकट जग, बारबार अविर गुयन् और पुण्योकी जग तथा काह्यनि हान करी ॥ ६ ॥ उस समयमें आ धमक बैठे थे, उन्हें अपन गेह, गृह और आत्मकी भी काइ सुधि न रही । उनकी प्यी लम्पका देखकर नाटकी कहन समे—॥ ७ ॥

मुनीश्वरणा ! आज समाह-धरगकी मिन यह बड़ी ही

अर्लाङ्गिक महिमा गयी । यहाँ ता जो बड़ मूल्य, दुष्ट और पशु-पक्षी भी हैं, वे सभी अत्यन्त निष्पाप हो गये हैं ॥ ८ ॥

अता नृलाफ ननु नामि किंचि-
 चित्तस्य शोषाय कलां पवित्रम् ।
 अर्षावधिष्वमकर तथैव
 कथाममार्तं श्रुति नास्ति चान्यत् ॥ ९ ॥
 क क विशदयन्ति वदन्तु मर्षा
 मसाहयघ्नन कथामयन ।
 कृपासुभिलोकिहित विचार्य
 प्रकाशित कोऽपि नवीनमार्गः ॥ १० ॥

कुमारा जगुः

य मानवा पापकृतस्तु सर्वदा
 मदा दुराचारगता विमार्गगा ।
 क्रोधाग्निग्धा कुटिलाश्च क्षामिन
 मसाहयघ्नन कलां पुनन्ति त ॥ ११ ॥
 मत्पुन हीना पितृमातृदूषका-
 मृष्यान्तुलाभाधमधर्मवर्जिता ।
 य दाम्भिका मन्मथिषाऽपि हिंसका
 मसाहयघनेन कलां पुनन्ति त ॥ १२ ॥
 पञ्चाग्रपापाच्छलछत्रकारिण
 क्रूरा पिशाचा इव निन्त्याश्च य ।
 प्रसम्यपुष्टा व्यभिचारकारिण
 मसाहयघ्नन कलां पुनन्ति त ॥ १३ ॥
 वापन वारा मन्मापि पातकं
 नित्यं प्रकुयन्ति गठा हटन य ।
 परम्पुष्टा मलिना दुर्गमया

मसाहयघ्नन कलां पुनन्ति त ॥ १४ ॥

अप्र त क्रीतपिप्पाम इतिहास प्रगलनम् ।
 यम्भ श्रवणमात्रेण पापहानि प्रजायत ॥ १५ ॥
 तुल्लभदानं पृथममृत्युजनमुत्तमम् ।
 यत्र यथा मधमेण मयमन्वयतन्त्रम् ॥ १६ ॥
 आमत्य पुर तस्मिन् सर्वविविगात् ॥
 धर्ममर्त्येण निष्पाता त्तिताय इव भास्वत् ॥ १७ ॥
 भिक्षुना भिक्षुवांछाङ्ग तत्रिषा पुष्टुर्गं स्मृता ।
 मगधपणाविका नित्यं मुन्नी मुदुताद्रवा ॥ १८ ॥

अत इममें मनेह नहीं कि कष्टिकालमें भित्तकी क्षुब्धि
 क लिय इस मागधकृपाके समान मन्मथेकमें पापपुष्टक
 नाग करनबाध कोइ दूसरा पवित्र सामन नहीं है
 ॥ ९ ॥ मुनिवर । आपलोग यह कृपाछ है, आपन मंसार
 के कल्याणका विचार करने यह विष्णु निराशा ही मग
 निकम्प है । आप कृपा यह ता बताइये कि इस कथा
 रूप समाहयघ्नके द्वारा समारमें कौन-कौन लोग पवित्र हो
 जाते हैं ॥ १० ॥

सप्तकाशिन कह्यो—जो लम्हा सदा तरह-तरहके पाप
 किया करते हैं, निरन्तर दुष्टचारमें ही तत्पर रहते हैं और
 ठग मर्गोंसे जल्ते हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जल्ते रहने-
 वाले, कुत्ति और कामपरम्पण हैं, वे ममी इस कष्टियुगमें
 सप्ताहयघ्नसे पवित्र हो जाते हैं ॥ ११ ॥ जो सत्यसे
 म्पुन, माना-पिताकी निन्ता करनेवाले, दृष्टाके मारे
 म्पुन, आधम्यधर्मसे रहित, दम्भी, दूसरोंकी ठगनि
 यत्कर कुड्गन्याले और दूसरोंको दुःख देनेवाले हैं, वे
 भी कष्टियुगमें मसाहयघ्नसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १२ ॥
 जो मरिचपान, ब्रह्महत्या, सुवर्गकी चोरी, गुरुकीमल
 और विद्यासवात—ये पाँच महापाप करनेवाले, छत्र
 छत्रपरम्पण, क्रूर, पिशाचोंके सम्मान निर्दयी, ब्राह्मणोंके
 धनसे पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कष्टियुगमें
 मसाहयघ्नसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १३ ॥ जो दुष्ट आमदुर्वैक
 सबदा मन, वागी या क्षीरसे पाप करते रहते हैं, दूसरे
 क धनसे ही पुष्ट होते हैं तथा मन्त्रि मन् और दुष्ट ह्म-
 वाले हैं वे भी कष्टियुगमें मसाहयघ्नसे पवित्र हो
 जाते हैं ॥ १४ ॥

मरन्दी ! अब इस तुम्हें इस विषयमें एक प्राचीन
 इतिहास सुनाते हैं, उसका सुननेसे ही सब पाप नष्ट हो जाते
 हैं ॥ १५ ॥ पूर्वजन्ममें तुम्हें मन्त्रीक तत्पर एक अनुपम
 मग यमा हुआ था । कभी मन्त्री बर्गाक लोग अदन
 अदन मर्गस आधरण करत ह्म मग आ मन्त्रमर्ग
 तत्पर रहत थ ॥ १६ ॥ उस नगरमें मममन्त्र केोका
 निन्त्या और धीन-मन्त्र करमि निपुण एक अमन्त्र
 नमर ब्राह्मण रहता था व मा ताव दूसरे मर्गके
 ममनमन्त्रमी था ॥ १७ ॥ व मर्ग हानन भी भिक्षातीवी
 था । उसकी पत्नी पत्नी पुष्टुर्ग कुर्गीन पर मुन्नी
 मनेन भी मग आनी बनन अ जानन्दी की ॥ १८ ॥

लोकवार्तरिता वृत्रा प्रायशो बहुजल्पिका ।
 गृग च गृहकृत्येषु कृपणा फलहप्रिया ॥१९॥
 एव निवमतो प्रमृणा दम्पत्यो रममाणयो ।
 अर्था कामान्तपारागमनं मुखाय गृहात्किम् ॥२०॥
 पश्चाद्दर्मा ममागन्धान्ताम्यां मतानइतव ।
 गोमूहिर्गम्पवात्सामि टीनेभ्या यच्छत मदा ॥२१॥
 धनार्थं धर्ममार्गेण ताम्यां नीत तथापि च ।
 न पुत्रा नापि वा पुत्री ततश्चिन्तातुरो भृशम् ॥२२॥
 एकताम द्विजाद् ग्वाद् गृहं त्यक्त्वा वनं गत ।
 मध्याह्नं वृषितो जलस्तदागं मधुपयिवान् ॥२३॥
 पीत्वा जलं निपण्णान्तु प्रजादु खेन कर्णित ।
 गृहं तपि तथैव मन्यामी कश्चित्पात ॥२४॥
 दृष्ट्वा पीतजलं न तु विप्रा यत्नस्तन्तिकम् ।
 नन्वा न पात्यान्तस्य नि क्षमन् संखित पुर ॥२५॥

अनिन्वाच

कथं रात्रिपि निप्रत्य क्यं न गिन्ता पत्नीयमी ।
 वत् त्वं मन्त्रं मयं मयस्य दृग्मस्य कागणम् ॥२६॥

मात्रग उवाच

किं प्रशामि श्रेयं दृग्मं पूजापानं मधितम् ।
 मया पूजायाय फराण्यमुपसृजत ॥२७॥
 मरुतं नैव गृहन्ति प्रीत्या त्वा द्विजातयः ।
 प्रजादु मेन गन्त्या दृग्मणाभ्यस्तुमिहागत ॥२८॥
 धिग्दीप्ति प्रजाहानं धिग्गृहं च प्रजा रिना ।
 धिग्धनं गानाचम्य धिग्गृहं मरुत रिना ॥२९॥

उसे लगोकी घान करनेमें सुख मित्रा या । स्वभाव
 या मूर । प्राय कुत्र न कुत्र धक्का करती रहती थी ।
 गृहकार्यमें निपुण थी, धूमण थी और थी मगदाष्ट भी
 ॥ १० ॥ इस प्रकार ब्राह्मण दम्पति प्रममे अपन घरमें
 रहत और विहार करते थे । उनका पाम अथ और भोग-
 निगमकी सामग्री बहुत थी । बर-शर भी सुन्दर थे,
 परंतु उससे उन्हें सुख नहीं था ॥ २० ॥ जब
 अकम्हा बहुत रूख गयी, तब उन्होंने सतानके गिये
 तत्त-महक पुष्पकत्र आरम्भ किए और व तीन-दुस्रियों
 को गा, पृष्ठी, सुवर्ग और क्वालि नान करन लग
 ॥ २१ ॥ इन प्रकार वममार्गमें उन्होंने अपना आधा
 धन ममात कर दिया, तो भी उन्हें पुत्र या पुत्री किसी-
 का भी सुख देखनका न मिय । इसगिय जब वह ब्राह्मण
 बहुत ही चिन्तातुर रहन लगा ॥ २२ ॥

एक दिन वह ब्राह्मणगन्वा बहुत दुःखा हाकर घरसे
 निकलकर वनका चला गया । दापहरक समय उसे प्यून
 लगी, इसगिय वह एक तागकर आय ॥ २३ ॥
 संतानक अभावक दुःख उमक शरीरका बहुत सुखा
 दिया था, इसगिय एक जानक करण ज पौकर वह
 खी री गया । ता चही वीननर यहाँ एक मन्यामी
 मरुतमा आय ॥ २४ ॥ जब ब्राह्मणगन्वान गया कि ये
 जल या चुक हैं, तब वह उनका पाम गया और बरगने
 नमस्कार करनेक या माफन लड़ हाकर लड़ी-लड़ी मौमें
 खन लगा ॥ २५ ॥

मन्यामीम पूछ—कहा, ब्राह्मणगन्वा ! गत क्यों
 हा ? पत्नी तुम्हें क्या मागी चिन्ता है ? तुम लकी ही सुख
 गन लपकर करण बनाओ ॥ २६ ॥

ब्राह्मणम कहा—मरुतमा ! मैं अपन पूवजमर
 पणोंसे संखित दुःख का पान करूँ । अब मरुतमा
 मरुतमा ही दुःख जराभ्रान्तिक बरुत जनी चिन्ता
 जलित मौमसे पुन गम करके पीत ॥ २७ ॥ तब
 और ब्राह्मण मरुतमा हुआ प्रमत्त मनमे गीरग मरी
 करत । संतानक गिय में इतना दुःख हा गया है कि
 मुझ मरुतमा मरुतमा गिन्ता ॥ २८ ॥ मैं ब्राह्मण गान
 क गिय कनी अरु ॥ २९ ॥ संतानक वीननर
 रिजत द, संतानक गिन्ता ॥ २९ ॥ मरुतमा तब
 रिजत द और संतानक गिन्ता ॥ २९ ॥

पत्न्यतया मया धनुः सावध्या सर्वथा भवतु ।
 यो मया रोपितो वृक्ष सोऽपि बध्यत्वमाभयेत् ॥३०॥
 यत्फलं मय्यगृह्णायात् तच्च क्षीघ्रं विनश्यति ।
 निर्भाम्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥३१॥
 इत्युक्त्वा स रोगोन्मत्तस्तपार्श्वं दुःस्वपीडितः ।
 तदा तस्य यतश्चित् करुणामूर्तरीयसी ॥३२॥
 तद्भालाक्षरमालां च धावयामास योगवान् ।
 सर्वं ज्ञात्वा यति पद्माद्रिप्रयूषे सचिस्तरम् ॥३३॥

वतिलवाच

मुखाद्भानं प्रजारूपं वलिष्ठा कर्मणो गति ।
 विषयं तु ममास्तापं त्यज ससारवासनाम् ॥३४॥
 शृणु विप्र मया तज्य प्रारब्धं तु विलोकिताम् ।
 सप्तजन्मावधिं सद्यः पुत्रा नैव च नैव च ॥३५॥
 सततं मगरो दुःस्वप्नवापाङ्गं पुरा तथा ।
 रमुखात्पुं कुटुम्बाशां मन्यसे सर्वथा सुखम् ॥३६॥

भाषण उवाच

विषयकं भवत्किं मे पुत्रं दहि फलान्पि ।
 नाचेत्यजन्महं प्राणांस्त्वत्राशक्तमूर्च्छित ॥३७॥
 पुत्राप्तिमुग्रहीनोऽयं सन्मामं शुष्क एव हि ।
 गृह्ण्य मग्नां ताकं पुत्रपौत्रसमन्वित ॥३८॥
 इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राग्रहीन्म उपपन्नः ।
 विश्रक्तुगतं फलं विधिलम्बविमाजनात् ॥३९॥
 न माम्यमिं सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ।
 अता इदं पुताऽमिं दधिनि किं यताम्यहम् ॥४०॥
 तस्याग्रहं ममात्माकय फलमर्कं मे दत्तवान् ।

मैं निम गायकरो पावता हूँ, वह भी सर्वथा यौक्त हो जाती है, जो पेड़ मरगाता हूँ, उसपर भी फल-फल नहीं लगते ॥ ३० ॥ मेरे घरमें जो फल आता है, वह भी बहुत जल्दी खर्च जाता है । जब मैं ऐसा अमागा और पुत्रहीन हूँ, तब फिर इस जीवनको ही रखकर मुझ क्या करना है ॥ ३१ ॥ यों कहकर वह भाषण दुःखसे व्याकुल हो उन संन्यासी महात्माके पास फल-फलकर गेने लगा । तब उन यत्निकके हृदयमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ वे योगनिष्ठ थे, उन्होंने उसके ललाटकी रेखाएँ देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहन लगे ॥ ३३ ॥

सन्ध्यासीने कहा—भाषणदेवता । इस प्रजाप्राप्तिकर मोह त्याग दो । कर्मकी गति प्रकट है, निर्विकल्प आश्रय लेकर संसारकी वासना छोड़ दो ॥ ३४ ॥ विप्रक ! सुनो, मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखकर निश्चय किया है कि सात जन्मक तुम्हारे कर्मों से सनात किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ पूर्वजन्ममें राजा सगर एवं अङ्गको सनातके कारण दुःख भोगना पड़ा था । भाषण ! अब तुम कुटुम्बकी आशा छोड़ दो । संन्यासमें ही सब प्रकारका सुख है ॥ ३६ ॥

भाषणने कहा—महात्मजी ! विषयमें मग्न क्या होगा । मुझ तो कष्टपूर्ण पुत्र दीर्घिये नहीं तो मैं आपके सामन ही शोकमूर्च्छित होकर अपने प्राण त्यागता हूँ ॥ ३७ ॥ जिसमें पुत्र-पौत्री आदिक सुख नहीं है, ऐसा संन्यास तो सबका नीरस ही है । लोक-में सरस तो पुत्र-पौत्रारिसे भरा-भरा गृह्णान्धम ही है ॥ ३८ ॥

भाषणकर ऐसा आग्रह देखकर उन तपाधननं कहा, 'विधानात् लेखका मित्रानेका इष्ट धरनेसे राजा विश्रक्तुपते बड़ा पत्र उठाना पड़ा था ॥ ३९ ॥ इसलिये दैव जिसका उपागको पुत्रक देता है, उस पुरुषक समान तुम्हें भी पुत्रसे सुख नहीं मिल सकता । तुमन ना बड़ा इत पत्र रखता है और अर्थात् रूपमें तुम मेरे मामन उपस्थित हो । पत्नी गायामें तुमसे क्या कहूँ ॥ ४० ॥

जय भगवान्जीन गाय नि य किं किसी प्रकार अपना आग्रह नहीं छाँटता मग उन्होंने उसे एक पत्र दकर

इ भयं पत्न्या त्व तत् पुत्रो भविष्यति ॥४१॥
 मन्य श्रोत्र दया दानमेकभक्त तु भाजनम् ।
 वर्षादधि स्त्रिया कथं तत् पुत्राऽस्तिनिर्मलः ॥४२॥
 पञ्चमुक्त्वा यया योगी विप्रस्तु गृहमागत ।
 पत्न्या पाणो फल दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥४३॥
 तरुणी कुत्रिला तस्य मन्थय च रुद्रो ह ।
 अहो चिन्ता ममात्मा फल चाह न भवये ॥४४॥
 फलभक्षेण गर्भं म्याहर्मेणोत्तरद्विता ।
 स्वल्पभक्ष ततोऽप्यक्तिर्गृहकार्थं कथं भवत् ॥४५॥
 देवाद् घाटी ब्रजद्रोम पलायद्गर्भिणी कथम् ।
 शुक्रभिवसेद्रमस्त कुत्रे कथमुत्सृजेत् ॥४६॥
 तिर्यक्चेन्नागतो गमस्तन् मे मरणं भवत् ।
 प्रसूतां दारुण दुःखं सुकुमारी कथं मह ॥४७॥
 मन्त्राणां मयि मवम्बं ननात्मा मंहरचदा ।
 मत्प्राज्ञानिनिपमा दुरागच्छ न दृश्यत ॥४८॥
 लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ।
 वन्ध्याया विधवा नारी सुखिनी चेति म मति ॥४९॥
 एवं भुक्तयागत तत्फलं नैव भवितम् ।
 पत्न्या शृष्टं फलं भुक्तं सुक्तं चेति वयसितम् ॥५०॥
 एषद्वा भगिनी मत्पाम्नाद्गृह स्वच्छयाऽऽगता ।
 तदग्र कथित मय चिन्तय महती हि म ॥५१॥
 दुःखता तन दुःखन सनुज कथाणि किम् ।
 मायर्निमम गभोऽस्ति त दास्यामि प्रयति ॥५२॥
 गार्हास्त्य मगर्भेन शुभा तिष्ठ गृह सुखम् ।
 विप्र न मत्पतयन् मत्त न मत्पति पत्नरम् ॥५३॥

कहा—इसे तुम अपनी पत्नीका स्थिर बना, इससे उसका एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ सुप्रहारी स्त्रीको एक सत्यक सत्य, दास, दया, दान और एक समय एक ही अन्न खानेका नियम रखना चाहिये । यदि वह ऐसा करेगी तो बालक बहुत शुद्ध स्वभावका होगा ॥ ४२ ॥

यों कहकर ये योगिगज चले गये और माझग अपन घर लौट आया । वहाँ आकर उसने वह पत्र अपनी स्त्रीके हाथमें दे दिया और स्वयं वहाँ चला गया ॥ ४३ ॥ उसकी स्त्री तो कुत्रि नामाकरि थी ही, वह गंवार अपनी एक मखीसे कहन लगी—‘सखी ! मुझे तो बड़ी चिन्ता हो गयी, मैं तो यह फल नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥ पत्र खानसे गर्भ रहगा और गममे पत्र कड़ जायगा । फिर कुछ खया-यीया जपगान नहीं, इससे मेरी शक्ति क्षीण हो जायगी, तब क्या, घरका पंथा कम् होगा ? ॥ ४५ ॥ और—देवता—यदि यहाँ गाँवमें बाकुओंका आक्रमण हो गया तो गर्भिणी स्त्री कत्ने मरेगी । यदि सुकृष्णबीर्य तरह यह गभ भी देगें ही रह गया तो इसे बाहर फेंक नियन्त्रा जायगा ॥ ४६ ॥ और वहाँ प्रसवकरक समय वह टका हा गया तो फिर प्राणोंसे ही हाथ धाना पड़ेगा । यों भी प्रसवक समय बड़ी मयकर पीड़ा होगी ई मैं सुकुमारी मय, यह मय कत्ने सह सँझूँगी ? ॥ ४७ ॥ मैं तब दुःख पड़ जाऊँगी, तब ननरागी आकर घरका सब माल-मना मसल लायेंगी । और सुभ्रम तो मन्त्र-शौचादि निष्फोक्त पावन होना भी कठिन ही जान पड़ता है ॥ ४८ ॥ जा स्त्री कथा जननी है, उमे उस बच्चेक लालन-पालनमें भी बड़ा कष्ट होता है । मर विचारम ता कथा वा विषय जियौ ही सुयी है ॥ ४९ ॥

मनमें एम ही तरह-तरहक कृतय उत्पन्न उसन वह फल नहीं लया आर जब उसक पतिन पूरा—‘कथय त्रिया’ तब उसन कथ त्रिया—‘हाँ, मय त्रिया’ ॥ ५० ॥ एक दिन उमरी यहिन अपन-अप ही उमय घर आयी, तब उसन अपनी बनिनरा माग हुआम सुनायन कहा कि मर मनमें इसरी कयी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ मैं इस दुःखकथागणिनिन दूषरी हा गयी हूँ । बनिन ! मैं क्या करूँ ? बनिन पत्रा, मर मनमें कथ है प्रसव हानार यह बात मैं मुन द हूँगी ॥ ५२ ॥ तबत गगर्भनीक मदन धर्म सुकृष्ण सुखम् म । मर पतिन कुट पन न दगी ता य मुन अन्ता कथक म रेग ॥ ५३ ॥

पालयते या मया चेत्तु साधय्या सर्वथा भवेत् ।
 यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि बन्ध्यत्वमाश्रयेत् ॥३०॥
 यत्फलं भद्रगृहायातं तच्च क्षीघ्रं चिनश्चति ।
 निभाम्यस्थानपत्यस्य किमता जीवितेन मे ॥३१॥
 इत्युक्त्वा स रुद्रादाञ्चैस्तत्पार्श्वं दुःखपीडितः ।
 तदा तस्य यतेष्विष कुरुणामृद्गरीयसी ॥३२॥
 तद्गालाघुरमालां च वाचयामास योगवान् ।
 सर्वं ज्ञात्वा यति पद्माद्रिप्रमूचे सविस्तरम् ॥३३॥

मतिक्रमाद्य

मुञ्चाद्भानं प्रजारूपं धलिष्ठा कर्मणो गतिः ।
 विवर्कं तु समामाद्य त्यज ससारधामनाम् ॥३४॥
 मृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारम्भं तु विलोकितम् ।
 सप्तव्रन्मात्राधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥३५॥
 मरते सगरो दुःखमवापाङ्ग पुरा तथा ।
 र मुञ्चाद्य कुटुम्बाद्यां संन्यासे मवथा सुखम् ॥३६॥

शास्त्रेण उच्यते

विवर्कन भवत्किं न पुत्र दहि बलादपि ।
 नाधर्यजाम्यहं प्राणास्त्वदग्र शोकमूर्च्छित ॥३७॥
 पुत्रान्निमुजहीनाऽयं मन्याम शुष्क एव हि ।
 गृहस्थः मरमो ठाक पुत्रपौत्रममन्वितः ॥३८॥
 इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राप्नवीत्स तपोधन ।
 चित्रफल्गुगतं कष्टं विधित्सविविमार्वनात् ॥३९॥
 न भाम्यमि सुखं पुत्राद्यथा दैवदत्तायाम् ।
 अत्रा हटनं पुत्राऽपि सार्धिनं किं यन्माम्बहम् ॥४०॥
 यन्माग्रहं ममात्मास्य फलमयं न दत्तवान् ।

मैं जिन गायको पावना हूँ, वह भी सर्वथा बौद्ध हो जाती है, जो पेड़ लगाता हूँ, उसपर भी फल-फल नहीं ग्यते ॥ ३० ॥ मेरे घरमें जा फल जाता है, वह भी बहुत जल्दी सब जाता है । जब मैं ऐसा अभाग और पुत्रहीन हूँ, तब फिर इस जीवनका ही रखकर मुझे क्या करना है ॥ ३१ ॥ यों कहकर वह शास्त्रण दुःखसे व्याकुल हा उन संन्यासी महात्माके पास फट-फटकर गये ल्या । तब उन यतिकर हृदयमें बड़ी कुरुणा उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ वे योगनिष्ठ थे, उन्होंने उसके ललटकी रेखाएँ देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहने लगे ॥ ३३ ॥

संन्यासीने कहा—शास्त्रणदेवना । इस प्रजाप्राप्तिकर मोह त्याग दो । कर्मकी गति प्रबल है, विवेकका आश्रय लेकर संसारकी वासना छोड़ दो ॥ ३४ ॥ विप्रवर ! सुनो, मैंने इस समय तुम्हारा प्रारम्भ देखकर निश्चय किया है कि सात जन्मक तुम्हारे कोई स्नान किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ पूर्वकालमें राजा सगर एवं अज्ञानसे सनानक कारण दुःख भोगना पड़ा था । शास्त्रण ! अब तुम कुटुम्बकी आश छोड़ दो । संन्यासमें ही सब प्रकारका सुख है ॥ ३६ ॥

शास्त्रणने कहा—महात्माजी ! विवेकने मेरा क्या होगा । मुझे तो वर्षपूर्वक पुत्र दीजिय, नहीं तो मैं आपके सामने ही शोकमूर्च्छित होकर अपन प्राण त्यागता हूँ ॥ ३७ ॥ जिसमें पुत्र-की आदिकर सुख नहीं है, ऐसा संन्यास तो सबका नीरस ही है । लोक-में सरस तो पुत्र-पौत्रादिकसे भरा-भरा गृहस्थाश्रम ही है ॥ ३८ ॥

शास्त्रणका ऐसा आग्रह देखकर उन तपाधनने कहा, 'विधानाक लेखको मित्रानेका हट करनसे राजा चित्रफल्गुगत बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था ॥ ३९ ॥ इसलिये दैव जिसका उपायका बुझा देता है, उस पुरुषक समान तुम्हें भी पुत्रसे सुख नहीं मिल सकगा । तुमन ता बड़ा हट पड़क रहा है और अर्थात् रूपमें तुम मर सामन उपस्थित हा, पत्नी आदिमें मैं तुमसे क्या कहूँ ॥ ४० ॥

जब शास्त्रणजीन दया कि यह विन्ती प्रपन्न अपना आग्रह नहीं छोड़ता, तब उन्होंने उसे एक पत्र देकर

इदं भक्ष्यं पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥४१॥
 मन्यं शौचं दद्यात् दानमेकभक्तं तु भोजनम् ।
 सर्पावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽसिनिर्मल ॥४२॥
 एवमुक्त्वा ययौ योमी विप्रस्तु गृहमागतः ।
 पत्न्याः पार्ष्णां फलं दत्त्वा मयं यावत्सु पुत्रचित् ॥४३॥
 तरुणीं कुण्डला तस्य मन्मथे च स्मृतो ह ।
 अहो चिन्ता ममात्पथा फलं चाहं न भक्षये ॥४४॥
 फलभक्षेण गर्भं स्थाप्येणोदग्बुद्धिता ।
 स्वल्पमद्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कर्त्तुं भवेत् ॥४५॥
 दैवात् धनीं ब्रजेष्टामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ।
 शुक्रवशिवसेष्टमस्तं कृषे कथमुत्सृजेत् ॥४६॥
 तिर्यक्वेदागतो गर्भस्तस्मात् मे मरणं भवत् ।
 प्रसूतो दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सह ॥४७॥
 मन्त्राया मयि मर्षस्य ननान्दा सहरेचदा ।
 सत्यशौचादिनिषमा दुर्गताप्यं मं दृश्यते ॥४८॥
 लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ।
 वक्ष्या वा विध्वानरी मुखिनी चेति मे मतिः ॥४९॥
 एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भवितुम् ।
 पत्न्या पृष्टं फलं दत्तं युक्तं चेति तयस्मितम् ॥५०॥
 एकस्मिन् भगिनी तस्याम्नाद्गृहं स्वेच्छयाऽऽगता ।
 तन्म्रे कथितं सर्वं चिन्तयं महती हि मं ॥५१॥
 दुर्बला तनं दुःखेन अनुजं व्रथाणि किम् ।
 माप्रवीन्मम गर्भोऽस्ति च दास्यामि प्रसूतिः ॥५२॥
 वायव्यं मममेव गुप्ता तिष्ठ गृहं सुखम् ।
 विभं त्य मन्त्यनर्पच्छं मं तं दास्यामि पालकम् ॥५३॥

कहा—इसे तुम अपनी पत्नीका खिला देना, इससे उसके एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ तुम्हारी स्त्रीको एक साधनक सत्य, शौच, दया, मन और एक समय एक ही अन खानेका नियम रखना चाहिये । यदि वह ऐसा करेगी तो वायक बहुत सुख स्वभाववाला होगा ॥ ४२ ॥

यों कहकर ये योगिराज चले गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया । वहाँ आकर उमने वह फल अपनी स्त्रीके हाथमें दे दिया और स्वयं वहाँ चन्द्र गया ॥ ४३ ॥ उसकी स्त्री तो कुण्डल स्वभावकी थी ही, वह रो-रोकर अपनी एक सलीसे कहन लगी—‘सखी ! मुझे तो बड़ी चिन्ता हो गयी, मैं तो वह फल नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥ फल खानेसे गर्भ रहेगा और गर्भमे पैदा बच्चा होगा । फिर कुछ खाना-पीना जायगा नहीं, इससे मेरी शक्ति क्षीण हो जायगी, तब क्या, भस्म चंदा कैसे होगा ? ॥ ४५ ॥ और—दक्षिण—यदि कहीं गौमें शकुआँक आक्रमण हो गया तो गर्भिणी स्त्री कैसे भागेगी । यदि शुक्रदेवजीकी तरह वह गम भी पैदा ही रह गया तो इसे बहिर कैसे नियंत्रण जायगा ॥ ४६ ॥ और कहीं प्रसवकायक समय वह टंका हा गया तो फिर प्राणोंमे ही हाथ भोना पड़ेगा । यों भी प्रसवक समय बड़ी भयकर पीड़ा होगी है मैं सुकुमारी मन्दा, यह सब कैसे सह सकेगी ? ॥ ४७ ॥ मैं जब दुर्बल पड़ जाऊँगी, तब ननदरानी आकर धरका सब माल-मत्ता समेत ले जायेंगी । और मुझसे तो सत्य-शौचादि निषेधोंका पालन होना भी कठिन ही जान पड़ता है ॥ ४८ ॥ जो स्त्री दया जननी है, उसे उस बच्चेके लक्षण-पालनमें भी बड़ा कष्ट होता है । मेरे निचारम तो कल्याण या विधा किपौ ही सुखी हैं ॥ ४९ ॥

मनमें ऐसा ही तरह-तरहका कुतर्क उठनेसे उसने वह फल नहीं खाया और जब उसके पतिने पूछा—‘कल खा लिया ?’ तब उमने कहा दिया—‘हाँ, खा लिया ॥ ५० ॥ एक दिन उसकी बहिन अपने-आप ही उसके घर आयी, तब उसने अपनी बहिनका साथ ब्रतान सुनावन कहा कि मेरे मनमें इसकी बड़ी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ मैं इस दुःखके कारण दिनोदिन दुर्बली हो रही हूँ । बहिन ! मैं क्या करूँ ?’ बहिनन कहा, ‘मेरे पन्नेमें मन्त्रा है, प्रसव होना-र वह वायक मैं तुम दे दूँगी ॥ ५२ ॥ तबका तू गर्भकीक ममान बरसे गुप्तमन्त्रमे सुखमे रह । तू मेरे पतिसे कुछ धन दे देगी ता तू तुम अपना वायक दे देगी ॥ ५३ ॥

पत्न्यत या मया घेनु सा वध्या मर्वथा भवत् ।

यो मया रोपितो बृधः माऽपि वध्यत्वमाश्रयत् ॥३०॥

यत्फल मद्गृहायातं तच्च शीघ्रं विनश्यति ।

निभाम्यस्यानपत्यस्य किमता जीवितेन म ॥३१॥

इत्युक्त्वा मरुतोऽर्च्यस्तत्पादवैदुः स्वपीडित ।

तदा तस्य यतश्चित् करुणामुद्ग्रीयमी ॥३२॥

तद्गालाक्षरमालां च बाधयामास योगवान् ।

नव ध्रुत्वा यति पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥३३॥

यतिरुवाच

मुञ्चात्मानं प्रजातपं वलिष्ठा कर्मणो गति ।

विवर्कं तु समामाद्य त्यज ममारुषामनाम् ॥३४॥

मृणु विप्र मया तद्य प्रारब्धं तु विलोकिताम् ।

मत्तत्रन्मावधि तव पुत्रा नैव च नैव च ॥३५॥

मनत मगरो दुःस्वमवापाङ्ग पुरा तथा ।

र मुञ्चाद्य दुःस्वमार्गां मन्यास सवधा सुखम् ॥३६॥

शासन उवाच

विवर्कत भवन्ति म पुत्र दहि बलद्वयि ।

नाचर्यज्ञाम्यह प्राणांस्त्वग्रश्चाकर्म्युच्छित ॥३७॥

पुत्राप्तिमुग्रहीनोऽप्य मन्यास गुप्स एव हि ।

गृह्य मग्ना राक पृथर्पायममन्वितः ॥३८॥

इति विप्राग्रह दृष्ट्वा प्रावर्तन्म तपोधनः ।

चित्रकटुगतं च विधित्स्वविभाजनात् ॥३९॥

न यास्यमि सुप्त पुत्राद्यथा दवहतायम ।

अना दठन युक्ताऽपि मर्धिनं किं वनाम्पहम् ॥४०॥

मन्याग्रह ममानावय कृतमर्कं म दक्षवान् ।

मैं जिस गाफले पालता हूँ, वह भी सर्वथा बर्बाद हो जाती है, जो पेड़ ल्यागा हूँ, उसपर भी फल-फल नहीं लगते ॥ ३० ॥ मेरे घरमें जा फल आता है, वह भी बहुत जल्दी मड़ जाता है । जब मैं ऐसा अमाणा और पुत्रहीन हूँ, तब फिर इस जीवन्मरण ही रखकर मुझ क्या करना है ॥ ३१ ॥ यों कहकर वह शासन दुःखसे व्याकुल हो उन संन्यासी महात्माके पास फल-फलकर गेन ल्या । तब उन यतिकर इदममें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ व यागनिष्ठ थे, उन्होंने उसके ललाटपर रेखाएँ देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहने लगे ॥ ३३ ॥

संन्यासीमें कहा—शासनदेवता ! इस प्रजाप्राप्तिकर मोह त्याग दो । कर्मकी गति प्रबल है, विवेकमय आत्म्य लेकर संसारकी वासना छोड़ दो ॥ ३४ ॥ विप्र । सुनो, मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखकर निश्चय किया है कि सात जन्मक तुम्हारे कोष्ट सन्तान मिलती प्रकार नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ पूर्वकालमें ठाका सगर एवं आजका सन्तानक कारण दुःख भोगना पड़ा था । शासन ! अब तुम कुटुम्बकी आशा छोड़ दो । संन्यासमें ही सब प्रफरफर सुख है ॥ ३६ ॥

शासनने कहा—महात्माजी । विवेकमें मर क्या होगा । मुझ तो कर्णपूर्वक पुत्र दीजिय, नहीं तो मैं आपके सामने ही शोकमूर्च्छित हाकर अपने प्राण त्यागता हूँ ॥ ३७ ॥ जिसमें पुत्र-की आत्मा सुख नहीं है, ऐसा संन्यास तो सबच नीरस ही है । लोकमें सरस तो पुत्र-पौत्राप्तिसे मग-मृग गृहत्यागमें ही है ॥ ३८ ॥

शासनका ऐसा आग्रह देखकर उन तपाधनन कहा विधानाक लक्षणे मित्यनन्तर दृष्ट करनसे राजा चित्रकटुका बड़ा फल उदयात पड़ा था ॥ ३९ ॥ इत्ययि देख जिसके उपागको बुचक दया है, उस पुरुषक ममान मुझे भी पुत्रमें सुख नहीं मिल सकता । तुमन ना क्या हट पडन रम्य है और अर्थकि रूपमें तुम भरे सामन उपस्थित हा । मी रगामें मैं तुमसे क्या कहूँ ॥ ४० ॥

जब मनायाजीन दया कि यह किसी प्रकार अपना आग्रह नहीं छोड़ता तब उन्होंने उसे एक फल दकर

इ भक्षय पत्न्या त्व तत् पुत्रो भविष्यति ॥४१॥
 मत्पुत्रीं च त्वया दानमेकभर्तुं तु भोजनम् ।
 वपावधि स्त्रिया कथं तत् पुत्रोऽस्तिनिमल ॥४२॥
 एवमुक्त्वा यथा योगी विप्रस्तु गृहमागत ।
 पत्न्या पाणी कलं च स्त्रिया स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥४३॥
 तरुणी कुटिला तस्य सन्ध्या च काल इ ।
 अहा चिन्ता ममान्धत्वा फल चाह न भक्षय ॥४४॥
 फलभक्षेण गम म्यादृशेणोत्तरवृद्धिता ।
 मन्व्यभक्ष तताऽऽत्तिगृहकार्यं कथं भवत् ॥४५॥
 देवात् घाप्ती प्रजेद्भाम पलायद्भिर्भी कथम् ।
 शुक्रयभिवसेद्रमत्त कुशे कथमुत्सृजत ॥४६॥
 तियक्चैवमातो गमस्तथा म मरणं भवत् ।
 प्रयुतां दारुणा दुःखं सुकुमारी कथं मह ॥४७॥
 मन्वाया मयि सर्वम् ननान्ता महरत्ना ।
 मत्पुत्रीचापिनियमा दुःखाय म दृश्यत ॥४८॥
 लालने पालनं दुःखं प्रयुतायाश्च वर्तते ।
 बन्ध्या या विधवा नाती सुखिनी चेति म मति ॥४९॥
 पर्वं कुतः कथागानं तत्फलं नैव भवितम् ।
 पत्न्या पृष्टं फलं सुक्तं सुक्तं चेति तयगितम् ॥५०॥
 एकता भगिनी तस्यान्तद्रह स्वच्छयाऽऽगता ।
 तत्र प्र कथितं मय चिन्तय महती हि म ॥५१॥
 दुबला तन दुःखेन अनुज कथाणि किम् ।
 माधवीन्मम गभोऽस्मि त दायामि प्रयति ॥५२॥
 तावन्कालं मगमत्त गुमा तिष्ठ गृह सुखम् ।
 विस त्व मन्वययत्तु म त्व त्वमपि पातकम् ॥५३॥

कहा—धृसे तुम अपनी पत्नीका स्त्रिया जाना, इसमें उसका
 एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ तुम्हारी स्त्रीका एक सन्तान
 सुख, शीघ्र, त्वया, जल और एक समय एक ही अम
 खानका नियम रखना चाहिये । यदि वह ऐसा करेगी
 तो वायव्य बहुत शुद्ध स्वभावका होगा ॥ ४२ ॥

यों कहकर वे यमिस्तत्र चले गये और शस्त्रग्न अपन
 घर लौट आया । वहाँ आकर उसने वह पत्र अपनी स्त्रीक
 हाथमें दे दिया और स्वयं वहाँ चला गया ॥ ४३ ॥
 उसकी स्त्री तो कुछ स्वभावकी थी ही, वह ग-गनर
 अपनी एक सुखसे कहन लगी—(स्त्री) । सुख तो बड़ी
 चिन्ता हो गयी, मैं तो यह पत्र नहीं खाऊँगी ॥४४॥ पत्र
 खानसे गम रहगा और गममें पत्र बढ़ जायगा । फिर कुछ
 खाया-पीया जायगा नहीं, इससे मेरी गति श्रीग हा जायगी,
 तब क्या, परका धंवा कस हागा ॥४५॥ और—कहा—
 यदि वहाँ गौमें डालूँगी काकमण हा गया तो गर्भिणी स्त्री
 फल मरेगी । यदि दुःख-वर्तीका तब यह गम भी पेशमें
 ही रह गया तो इसे बाहर फल निकाल जायगा ॥४६॥
 और वहाँ प्रसन्नकरक समय वह टका हा गया तो फिर
 प्राणों ही हाथ घाना पड़गा । यों भी प्रसन्नक समय
 बड़ी मयकर पीडा होगी है मैं सुकुमारी मन्वा, यह सब
 कस सहूँगी ॥४७॥ मैं जब दुःख पद खाऊँगी, तब
 ननदरानी अफर वाक्य सुव मा-मन्वा सुम् ल जायगी ।
 और सुभसे ना मन्वा-पीचापि नियमोंका पालन जाना भी
 पहिने ही जान पड़ता है ॥४८॥ ना श्रीकथा जननी है,
 उम उम धन्वेक लक्ष्मण-पालने में भी बड़ा कष्ट होता है ।
 मेरे विवाहम ना बन्ध्या या विधवा स्त्रियों ही सुखी हैं ॥४९॥

मनमें एम ही तरह-तरहक चुनक उठनेम उसने वह
 पत्र नहीं खिया और जब उसका पतिन पूरा—कस
 स्त्रिया तब उसने कस स्त्रिया—हाँ, खा लिया ॥५०॥
 एक दिन उसकी पहिने अपन अप ही उसका घर आयी,
 तब उसने अपनी पहिनेका मारा इत्तान सुनाकर कहा
 कि मर मनमें इसरी बनी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ मैं इस
 दुःखका कारण निम्नलिखित दुःखी हा रही हूँ । पहिने मैं क्या
 करूँ ॥ पहिनेन क्या धोने परम क्या है प्रसन्न होकर
 वह वाक्य मैं सुन द हूँगी ॥ ५२ ॥ तबतर मन्वसीक
 मनान धामे गुमामे सुखम ॥ ५३ ॥ मन्व पतिन कुछ
 धन दोगी या वे सुख जाना वाक्य ॥ ५३ ॥

पालयते या मया घेनुः मा वच्चा सर्वथा भवत् ।
 यो मया रोपितो वृक्ष सोऽपि वन्यत्वमाधयेत् ॥३०॥
 यत्फलं मद्गृह्णायात् सच्च शीघ्रं विनश्यति ।
 निर्भाम्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥३१॥
 इत्युक्त्वा स रुद्राणोर्ध्वस्तत्पार्श्वं दुःखपीडित ।
 तदा तस्य यतेष्विच्छे कल्याणमूढरीयसी ॥३२॥
 तद्गालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ।
 सर्वं ज्ञात्वा यति पश्चाद्विप्रमूये सविस्तरम् ॥३३॥

धर्तृत्वमात्र

मुञ्चध्यानं प्रजारूपं वलिष्ठा कर्मणो गतिः ।
 विषर्कं तु समासाद्य त्यज्य मसारवासनाम् ॥३४॥
 शृणु विप्र मया तस्य प्रारब्धं तु विलोकिताम् ।
 सप्तजन्माद्यधि तव पुत्रा नैव च नैव च ॥३५॥
 संतते सगरो दुःखमवापाङ्गः पुरा तथा ।
 र मुञ्चाय कुटुम्बार्तां संन्यास सर्वथा सुखम् ॥३६॥

प्राज्ञा उवाच

विवर्कन भवार्त्तिकं म पुत्रं दहि यत्नपि ।
 नाथत्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रं शक्तिमूर्च्छितः ॥३७॥
 पुत्रार्तिमुत्तहीनाऽयं मन्यामं शुष्कं एव हि ।
 गृह्यं मग्नां लाकं पुत्रप्राप्तसमन्वित ॥३८॥
 इति विप्रप्रदं दृष्ट्वा प्राप्रवीत्स तपश्चन ।
 चित्रकस्तुर्गतं कष्टं विधित्स्वविमार्जनात् ॥३९॥
 न यास्यमि सुखं पुत्राद्यथा देवहतोषमः ।
 अता इटन युक्तोऽमि सधिनं किं यदाम्यहम् ॥४०॥
 तस्याग्रहं ममात्माक्यं फलमकं म दत्तवान् ।

मैं जिन गायकरो पालता हूँ, वह भी सर्वथा वैध हो जाती है, जो पेड़ लगाता हूँ, उसपर भी फल-फल नहीं प्यते ॥ ३० ॥ मेरे घरमें जो फल आता है, वह भी बहुत जल्दी सब जाता है । जत्र मैं ऐसा अमागा और पुत्रहीन हूँ, तब फिर इस जीवनको ही रखकर मुझे क्या करना है ॥ ३१ ॥ यों कहकर वह प्राज्ञ दुःखसे व्याकुल हो उन संन्यासी महात्माके पास फल-फलकर गेने लया । तब उन यतिकसे हृदयमें बड़ी कल्याण उत्पन्न हुए ॥ ३२ ॥ वे योगनिष्ठ थे, उन्होंने उसके लक्ष्यकी रक्षाएँ देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहन लगे ॥ ३३ ॥

संन्यासीने कहा—प्राज्ञदेवक्य ! इस प्रजाप्राप्तिक मोह त्याग दो । फलकी गति प्रकट है, विवेकका आग्रह लेकर संसारकी वासना छोड़ दो ॥ ३४ ॥ विप्रक ! सुनो, मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखकर निश्चय किया है कि सान जन्मक तुम्हारे कोई स्तान सिटी प्रकार नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ पूर्वजन्ममें राजा सार एव अज्ञके स्तानके कारण दुःख भोगना पड़ा था । प्राज्ञक ! अब तुम कुटुम्बकी आशा छोड़ दो । संन्यासमें ही सब प्रकारका सुख है ॥ ३६ ॥

प्राज्ञाणने कहा—महात्माजी ! विवेकसे मरु क्या होगा । मुझे तो कल्पपूर्वक पुत्र दीजिये, नहीं तो मैं आपके सामन ही शोकमूर्च्छित होकर अपने प्राण त्यागता हूँ ॥ ३७ ॥ जिनमें पुत्र-भी आत्कि सुख नहीं है, ऐसा संन्यास तो सर्वथा नीरस ही है । व्येक-में सरस तो पुत्र-प्राप्तिये भग-रूप गृहस्थधर्म ही है ॥ ३८ ॥

प्राज्ञाणक पसा आग्रह देखकर उन तपोधनन कहा, 'विधानाके लक्ष्यके मित्रानेक इट करनसे राजा चित्रकस्तुको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था ॥ ३९ ॥ इसलिये मैं जिसके उपयोगको बुझ देता हूँ, उस पुरुषके समान तुम्हें भी पुत्रमें सुख नहीं मिल सकता । तुमन तो बड़ा इट पड़क रह्या है और अर्थकि रूपमें तुम मेरे सामन उपस्थित हा, पसी दानमें मैं तुमसे क्या कहूँ ॥ ४० ॥

जब महात्माजीने देया कि यह किसी प्रकार अपना आग्रह नहीं टाकता, तब उन्होंने उसे एक फल दकर

इदं भक्ष्यं पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥४१॥
 सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ।
 वर्षाविधिं स्त्रियां कर्म तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥४२॥
 पञ्चमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ।
 पत्न्या पत्नीं फलदत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥४३॥
 तरुणीं कुटिलां तस्य मन्थये च क्रोदः ।
 अहो चिन्ता ममात्मजा फलं चाहं न भक्षये ॥४४॥
 फलभक्षेण गर्भं स्वाद्रभेणोदग्बद्धिता ।
 स्वल्पभक्षं ततोऽप्यतिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥४५॥
 दंष्ट्राद् घाटीं ब्रजेद्वामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ।
 शुक्लभिवसेद्गर्भस्तं कुक्षे कथमुत्सृजेत् ॥४६॥
 तिर्यक्चेत्प्रातो गमस्तं मे मरणं भवत् ।
 प्रधृतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं महे ॥४७॥
 मन्त्रायां यपि सर्वम्ब ननान्दा सहस्रधा ।
 सत्यं चादिनियमो दुरागाय म इदमत् ॥४८॥
 लालने पालने दुःखं प्रधृतायां वर्तते ।
 वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति म मति ॥४९॥
 एवं क्लृप्तयागनं सत्फलं नैव भक्षितम् ।
 पत्न्या शृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तथारितम् ॥५०॥
 एषा भगिनी तस्यान्तर्द्रव्यं स्वेच्छयाऽऽगता ।
 तन्म्रे कथितं मयं चिन्तयं महती हि म ॥५१॥
 दुर्बला तनं दुःखं गतं हानुजं कृत्वाणि किम् ।
 मात्रवर्त्तनम् गभाऽस्ति तं दास्यामि प्रवृत्तितः ॥५२॥
 तावत्कालं मगर्भेण गुप्ता तिष्ठ शृङ्गं सुखम् ।
 रिक्तं स्वमन्थनयच्छं मत्तं दाम्पनिं यान्त्रिकम् ॥५३॥

कहा—पूरे तुम अपनी पत्नीको खिन्ना करना, इससे उसके एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ तुम्हारी स्त्रीको एक साधनक सत्य, शौच, दया, दान और एक समय एक ही अन्न खानेका नियम रखना चाहिये । यदि वह ऐसा करेगी तो बालक बहुत शुद्ध स्वभाववाला होगा ॥ ४२ ॥

यों कहकर वे योगिराज चल गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया । वहाँ आकर उसने वह फल अपनी स्त्रीके हाथमें दे दिया और स्वयं कहीं चला गया ॥ ४३ ॥ उसकी स्त्री तो बुद्धि स्वभावकी था ही, वह रो-रोकर अपनी एक सखीसे कहन लगी—‘सखी ! मुझे तो यही चिन्ता हो गयी, मैं तो यह फल नहीं खाऊँगी ॥४४॥ फल खानेसे गर्भ रहगा और गर्भसे पैर बढ़ जायगा । फिर कुछ खाया-पीया जायगा नहीं, इससे मेरी शक्ति क्षीण हो जायगी, तब क्या, क्या रीति करन होगा ? ॥४५॥ और—देवकी—यदि कहीं गौतमें बालुओंका आक्रमण हो गया तो गर्भिणी स्त्री कैसे भागेगी । यदि शुक्रदेवकीकी तरह यह गर्भ भी पैरमें ही रह गया तो इसे बाहर किस निकाल जायगा ॥४६॥ और कहीं प्रसवका के समय वह पैदा हो गया तो फिर प्राणोंमें ही हाथ धाना पड़गा । यों भी प्रसवक समय बड़ी भयंकर पीड़ा होती है, मैं सुकुमारी मय, यह सब कैसे सह सकूँगी ? ॥४७॥ मैं जब दुःख पड़ जाऊँगी, तब नन्दरानी आकर घरका सब माल-मत्त ममेने ले जायँगी । और मुझमें तो मन्थ-सीचापि नियमोंका पालन होना भी कठिन ही जान पड़ता है ॥४८॥ जा स्त्री क्या बनती है, उसे उस बच्चेके स्पर्शन-गर्भमें भी क्या कर होता है । मेरे विचारमें तो कन्या या विधवा स्त्रियों ही सुखी हैं ॥४९॥

मनमें पम ही तरह-तहक कुतूहल उत्पन्न हो पड़ नहीं खाया और जब उसके पतिन दूत्र—‘कन्या स्त्रियां’ तब उसने वह दिया—‘हाँ, खा लिया’ ॥ ५० ॥ एक दिन उसकी बहिन अपने-आप ही उसका घर आयी, तब उसने अपनी बहिनका माल ब्रह्मन् सुनाकर कहा कि मेरे मनमें इसकी बड़ी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ मैं इस दुःखके कारण गतिनोतिन दुःखी हो रही हूँ । बहिन ! मैं क्या करूँ ? बहिन ने कहा—‘मेरे घरमें क्या है प्रसव होना है वह बाहर मैं गुप्त दे दूँगी ॥ ५२ ॥ तब तब गर्भस्थीक समान घरमें गुप्तगुप्तमें सुप्त रह । तब पतिन कुछ धन देगी या तब मुझ अन्ना बाहर लेग ॥ ५३ ॥

पालयत या मया चेनु साधय्या सर्वथा भवेत् ।
 या मया रोपितो बृध साऽपि बाध्यत्वमाश्रयत् ॥३०॥
 यत्फलं मद्गृहापातं तच्च क्षीघ्रं विनश्यति ।
 निभाम्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितान मे ॥३१॥
 इत्युक्त्वामरुणो चैस्तत्पाशं दुःखपीडित ।
 तदा तस्य यतश्चित् करुणामृदूरीयमी ॥३२॥
 ठङ्गलाघरमालां च बाचयामास योगवान् ।
 सर्वं ज्ञात्वा यति पश्चाद्विप्रमूषे सविस्तरम् ॥३३॥

वितरुणा

मुञ्चाच्चान्नं प्रजारूपं विलिष्टा कर्मणा गति ।
 विवर्कं तु ममात्माद्य त्यज ममारवामनाम् ॥३४॥
 शृणु विप्र मया तज्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ।
 सप्तत्रन्मात्राधि तर पुत्रा नैव च नैव च ॥३५॥
 मततः सगरो दुःखमवापाङ्ग पुरा तथा ।
 र मुञ्चाद्य कुटुम्बाद्यां मन्थासे सर्वथा सुखम् ॥३६॥

भाषण उवाच

विवर्कल भवत्किं म पुत्रं दहि कलपि ।
 नाचेत्यजाम्यहं प्राणांस्त्वग्रशोकमूर्च्छित ॥३७॥
 पुत्रान्मुसहीनाऽयं सन्ध्याम् शुष्क एव हि ।
 गृहस्य मग्ना लाक पुत्रप्राप्तमभन्विष ॥३८॥
 इति विप्रग्रहं दृष्ट्वा प्राप्सवीन्म तपोधन ।
 चित्रकस्तुगत फलं विधित्सविमावनात् ॥३९॥
 न याम्यमि मुनं पुत्राद्यथा दैवहतायम ।
 अगा हन्म युताऽमि हार्थिनं किं यदाम्यहम् ॥४०॥
 नम्याग्रं नमाम्नाक्य फलमक म दत्तवान् ।

मैं जिस गायको पालता हूँ, वह भी सर्वथा बौध हो जाती है, जो पशु ल्याता हूँ, उसपर भी फट-फट नहीं लगते ॥ ३० ॥ मेरे घरमें जो फल आता है, वह भी बहुत जल्दी सब जागा है । जब मैं ऐसा अमागा और पुत्रहीन हूँ, तब फिर इस जीवनको ही रखकर मुझे क्या करना है ॥ ३१ ॥ यों कहकर वह ब्राह्मण दुःखसे व्याकुल हो उन संन्यासी महात्माके पास फट-फटकर गेने लगा । तब उन यतिके बड़े-बड़े बड़ी करुणा उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ वे योगनिष्ठ थे, उन्होंने उसके क्लेशकी रेलारें देखकर सारा कृतान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहने लगे ॥ ३३ ॥

सन्ध्यासीने कहा—ब्राह्मणदेवना ! इस प्रजाप्राप्तिकर मोह त्याग दो । कर्मकी गति प्रकट है, विवेककर आश्रय लेकर संसारकी वासना छोड़ दो ॥ ३४ ॥ विप्र ! सुनो मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखकर निश्चय किया है कि सप्त जन्मक तुम्हारे कोई सन्तान किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ पूर्वकाममें राजा सगर एवं अज्ञके सन्तानके कारण दुःख भोगना पड़ा था । ब्राह्मण ! अब तुम कुटुम्बकी आश छोड़ दो । संन्यासमें ही सब प्रकारका सुख है ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणने कहा—महात्माजी ! विवेकसे मरा क्या होगा । मुझे तो बन्धुर्हक पुत्र दीजिये, नहीं तो मैं आपके सामने ही शोकमूर्च्छित होकर अपने प्राण त्यागता हूँ ॥ ३७ ॥ जिसमें पुत्र-ही आशिक सुख नहीं है, ऐसा संन्यास तो सबथा नीरस ही है । व्येक-मे सरस तो पुत्र-प्राप्तिरित भग-यूय गृहस्थधर्म ही है ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणका ऐसा आग्रह देखकर उन तपोधनने कहा, 'विद्यालाके रखको मित्रनेक हट करनसे राजा चित्रवतुको बड़ा कर उठना पड़ा था ॥ ३९ ॥ हमजिये देव जिसक उपागका चुकक देता है, उस पुरुषक सम्यन तुम्हें भी पुत्रसे सुख नहीं मिल सकतम । तुमन तो बड़ा हट फल रखता है और अर्थाकि रूपमें तुम मेरे सामन उपस्थित हा, ऐसी दशामें मैं तुमसे क्या कहूँ ॥ ४० ॥

जब महात्माजीन देगा कि फल किसी प्रकार अपना आपह नहीं आदत, तब उन्होंने उसे एक फल दकर

इत्थं भवत्यस्य त्वं ततः पुत्रा भविष्यसि ॥४१॥
 तस्यैव च दया तावताभ्यं तु भ्रात्रात् ॥
 यथापि त्रिषा यत्र ता यथाऽस्ति निर्मला ॥४२॥
 गन्धपुष्पा यथा यानी विप्रसु मृतागतः ॥
 तस्याः पामो कलं तथा स्यात्तावत्तु कृत्रिम् ॥४३॥
 तस्मिन् कुटिल तस्य तस्मिन् च स्याद् ॥
 अदा चित्ता समान्यता कलं चार्त्तं न भवत्य ॥४४॥
 कलभञ्ज गरीः स्याद्दर्शनान्दृष्टिना ॥
 स्वतभ्यं तदाऽस्ति कृत्रिम् कथं भवत् ॥४५॥
 तेषां पत्नी प्रोक्ताना यथाप्यहर्निशी कथम् ॥
 नृपत्यग्निसहर्षीनां कृत्रिः कथम् युजत ॥४६॥
 त्रिपुत्रपुत्रागता गमस्तान् न गमन् भवत् ॥
 प्रपत्तां तान् दूतं युक्तानां यथं गत् ॥४७॥
 गन्तायां गति गम्यं तावन्दा गंदरपता ॥
 गन्धर्वादिनिगता दृगाग्याः न दृश्यत ॥४८॥
 गन्ता पतन दूतं भयानायां यमिने ॥
 पत्न्या या विभानानी युष्मिनी गमि म गमिः ॥४९॥
 गमं कृत्रिपुत्रागता तत्कलं तव भविष्य ॥
 पत्न्या कृत्रि कलं युक्तं युक्तं गति तस्यगिम् ॥५०॥
 पत्न्या भविनी तस्यास्तद्वृत्तं कथयता गता ॥
 तस्मिन् पथितं गम चित्तं गमि द्वि ग ॥५१॥
 कृत्रि गत दूतान् दूतान् कृत्रिपुत्राणि विम् ॥
 गम्यतां गम गमतां गमि म गम्यामि प्रयगिः ॥५२॥
 गम्यतां गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥
 गमि म गम गमतां गम गम्यामि कथयत् ॥५३॥

गता--इति तदा अपाती कृत्रिपुत्रा विना गता, इत्येव उक्तं
 एव पुत्र कथा ॥ ४१ ॥ गृहस्थी स्त्रीनां एव साधन
 स्यात्, स्त्रीणां, दया, तावत् जीव एव गम्य एव ही अस
 मा भवति त्रिषा स्मृता भविष्य । यदि यत् एता गमि
 तां यावत् वृत्त युम् गम्यागता कथा ॥ ४२ ॥
 गौ कथयत् न गमिगता भव गम्य जीव साधन अपा
 पर गीत अपा । ततो आकर उक्त । तत् कल अपा ती स्त्रीनां
 कथाम् च त्रिषा जीव स्वयं कलं चित्ता गता ॥ ४३ ॥
 उक्तानि स्त्री तां युक्तिं गम्यागति भा मी, यत् गमिगता
 अपा ती एव गम्यागति गता । ततो -- गम्यागति । युम् तां यत्
 त्रिषा तां गमि, त्रि तो यत् कलं कलं भा मी ॥ ४४ ॥ यत्
 एता गमि गम्यागति जीव गम्यागति यत् कलं गम्यागति । त्रि युम्
 कथयतां गता गम्यागति, इत्येव गमि कथिता स्त्रीनां भा म्यामि
 गम्यागति, यत् कलं गम्यागति कथा ॥ ४५ ॥ जीव -- दूतानां --
 यदि कलं गौ त्रि यत् कलं गता गता भा मी ॥ ४६ ॥ यत्
 कलं गता भा मी त्रि यत् कलं गता भा मी ॥ ४७ ॥ यत्
 जीव कलं गता गता भा मी ॥ ४८ ॥ यत् कलं गता भा मी
 भा मी भा मी कलं गता भा मी ॥ ४९ ॥ यत् कलं गता भा मी
 यत् कलं गता भा मी ॥ ५० ॥ यत् कलं गता भा मी ॥ ५१ ॥
 यत् कलं गता भा मी ॥ ५२ ॥ यत् कलं गता भा मी ॥ ५३ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ५४ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ५५ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ५६ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ५७ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ५८ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ५९ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६० ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६१ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६२ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६३ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६४ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६५ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६६ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६७ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६८ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ६९ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७० ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७१ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७२ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७३ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७४ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७५ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७६ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७७ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७८ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ७९ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८० ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८१ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८२ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८३ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८४ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८५ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८६ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८७ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८८ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ८९ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९० ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९१ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९२ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९३ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९४ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९५ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९६ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९७ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९८ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ ९९ ॥
 गमि म गम गमतां गुप्ता त्रि मृता गुप्तम् ॥ १०० ॥

पाप्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ।
 तं बाल पापयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥५४॥
 फलमर्पय धनं त्व परीक्षार्थं तु साम्प्रतम् ।
 तत्तदाचरित सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावत ॥५५॥
 अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ।
 आनीय जनको बाल रहस्यं धुन्धुलीं ददौ ॥५६॥
 तया च कथित भर्त्रे प्रसूतं सुखमर्मकः ।
 लोकस्य सुखद्वैतममममदेवप्रजोदयात् ॥५७॥
 ददौ दानं द्विजातिभ्यां ज्ञातकर्म विधाय च ।
 गीतवादित्रयोपोऽमृचवृद्धारं मङ्गलं बहु ॥५८॥
 भर्तुरग्रेऽप्रवीक्षाक्यं स्तन्य नास्ति कुचे मम ।
 अन्मस्तन्यन निर्दुग्धा कथं पुष्यामि बालकम् ॥५९॥
 मत्स्त्वमुम प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ।
 तामाकर्ष्य गृहे रह सा तेऽर्जं पोषयिष्यति ॥६०॥
 पतिना तत्कृतमर्षं पुनरक्षणहेतवे ।
 पुत्रस्य धुन्धुकीरिति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥६१॥
 त्रिमासे निर्गते चाथ मा धेनुः सुपुवऽर्मकम् ।
 मवाङ्गसुन्दरं निष्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥६२॥
 दृष्ट्वा प्रमथो विप्रस्तु सत्कारान् स्वयमाप्नोच ।
 मत्वाऽऽश्चर्यं जनाः सर्वे दिष्टार्थममागताः ॥६३॥
 भाग्यादयाऽपुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ।
 धन्या बाल प्रसूतस्तु दवस् पीति कौतुकम् ॥६४॥
 न घ्रात तद्रहस्यं तु कनापि विधिमागत ।
 गाक्ष्म स सुतं दृष्ट्वा गाक्ष्म नाम चाकरोत् ॥६५॥
 नियन्त्रात्न तां जतां तस्यां तनयाकुभौ ।
 गाक्ष्म पण्डिताग्रानी पुन्धुकीरि महाबल ॥६६॥

(हम एसी युक्ति करेंगे) कि जिसमें सब लोग यही कहें कि इसका बालक छ महीनेका होकर मर गया और मैं नित्यप्रति तेरे घर आकर उस बालककर पालन-पोषण करती रहूँगी ॥ ५४ ॥ त इस समय इसकी बाँच करनेके लिये यह फल गौको खिला दे ।' ब्राह्मणीने बीसमयकका जो-जो उसकी बहिनन कहा था, वैसे ही सब किया ॥ ५५ ॥

इसके पश्चात् सम्मानानुसार जब उस बीके पुत्र हुआ, तब उसके पितान चुपचाप लक्ष्मर उसे धुन्धुलीको दे दिया ॥ ५६ ॥ और उसने आत्मदेवको सूचना दे दी कि मेरे सुख-पूर्वक बालक हो गया है । इस प्रकार आत्मदेवके पुत्र हुआ सुनकर सब लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणने उसका जानकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दान दिया और उसके द्वारपर गाना-बजाना तथा अनेक प्रकारके माहल्लिक कृत्य होने लगे ॥ ५८ ॥ धुन्धुलीने अपने पतिसे कहा, 'मेरे स्तनोंमें तो दूध ही नहीं है फिर गौ आदि किसी अन्य जीवके दूधसे मैं इस बालकका किन प्रकार पालन करूँगी ?' ॥ ५९ ॥ मेरी बहिनके अभी दान्यव हुआ था, वह मर गया है उसे धुल्लकर अपने यहाँ रख लो तो वह आपके इस बच्चेका पालन-पोषण कर लेगी ॥ ६० ॥ तब पुत्रकी रक्षाके लिये आत्मदेवने बैसा ही किया तथा माता धुन्धुलीने उस बालकका नाम धुन्धुकीरि रख ॥ ६१ ॥

इसके बाद तीन महीन बीननेपर उस गौके भी एक मनुष्याकार बच्चा हुआ । वह सर्वाङ्गसुन्दर, निष्य, निर्मल तथा सुवर्णकी-सी कान्तिवाला था ॥ ६२ ॥ उसे देखकर ब्राह्मणदेवकाको बड़ा आनन्द हुआ और उसने स्वयं ही उसके सब सत्कार किये । इस समाचारसे और सब लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और वे दान्यवको देखनके लिये आये ॥ ६३ ॥ तथा आपसमें कहने लगे, 'देखो, माई ! अब आत्मदेवका बैसा माग्य उदय हुआ है ! कैसे आश्चर्यकी बात है कि गौके भी ऐसा निम्नरूप बालक उत्पन्न हुआ है ॥ ६४ ॥ देवयोगसे इस गुप्त रहस्यका विस्तीर्ण भी फल न लया । आपनेअन उस दान्यवके गौके-से ब्रजन देवप्र उमका नाम धोषण रख ॥ ६५ ॥

पुत्र काज बीननपर वे दोनों यादव नष्ट हो गये । उनमें गाक्ष्म ता यका पण्डित और शानी हुआ, किंतु धुन्धुकीरि बना ही दुष्ट निकला ॥ ६६ ॥

स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्मयी क्रोधवर्धित ।

दुष्परिग्रहकता च श्वहस्तेन भोजनम् ॥६७॥

चार सर्वजनदेयी परवेत्तमग्रणीपक ।

लालनाथार्मकान्धृत्वा मद्य कूपं न्यपातयत् ॥६८॥

हिंसक शस्त्रधारीच दीनान्धनां प्रपीडकः ।

चाण्डालाभिरतो नित्य पाशुहन्त श्वमंगत ॥६९॥

तेन वेश्याकुम्भेन पिश्र्यं विचं तु नाशितम् ।

एकं पितरं श्राद्धं पात्राणि स्यमाहृत ॥७०॥

सत्पिता कृपणः प्रोज्ज्वैर्घनहीनो स्त्रोद ह ।

वन्ध्यत्व तु समीचीन इषुत्रो दुःखदायक ॥७१॥

क विष्णुमि क गच्छामि स्तो मे दुःस्व व्यपोहयेत् ।

प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संन्यितम् ॥७२॥

तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ।

बोधयामास अनकं वैराग्य परिदर्शयन् ॥७३॥

असार खलु संसारो दु खस्वी विमोहक ।

मुत कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्जलतेऽनिग्रम्॥७४॥

न घेन्द्रस्य सुम्ब किञ्चिन्न सुम्बं चक्रवर्तिन ।

सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरकान्तर्वाधिन ॥७५॥

मुञ्चाम्भान प्रवारूपं मोहता नरक गति ।

निपतिष्यति दहाऽयं सुष स्यन्त्वा वनं यज ॥७६॥

तद्वाक्यं तु ममावर्ष्य गन्तुकाम पितामहवान् ।

किं पश्याम्य धने तात तस्य यद् मविम्लगम् ॥७७॥

अन्धस्य स्नेहपात्रे यद् दृष्टं तद्वत् ।

जान-शौचादि ब्राह्मणाचित आचारोंका उममें नाम भी न था और न खान-पानका ही कोई परहेज था । क्रोध उसमें बहुत बढ़ा चढ़ा था । वह घुरी-घुरी वस्तुओंका संग्रह किया करता था । मुर्देके हाथसे छुआया हुआ अन्न भी खा लेता था ॥ ६७ ॥ दूसरोंकी चोरी करना और सब लोकोसे द्रव्य चढ़ाना उसका स्वभाव बन गया था । छिपे-छिपे वह दूसरोंके घरोंमें आग लगा देता था । दूसरोंके घाल-क्योंको छेड़ानेके छिपे गोदमें सेना और उन्हें चट कुर्में डाल देता ॥ ६८ ॥ हिंसाका उसे ध्यसन-सा हो गया था । हर समय वह अस्त्र-शस्त्र धारण किये रहता और बेचारे अंधे और दीन-दुखियोंको स्पर्श तंग करता । चालडालोंमें उसका विशेष प्रम था, बस, हाथमें फंदा लिये कुर्चोंकी टोनीके साथ शिखरकी टोहमें घूमता रहता ॥ ६९ ॥ बेझाज्जेके जायमें फँसकर उमने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी । एक दिन माना-पिनाको मार पीनकर घरके सब बतन-मोटे उड़ल ले गया ॥ ७० ॥

इम प्रकार जब सारी सम्पत्ति ख़ाफ़ा हो गयी, तब उसका कृपण पिता छूट छूटकर रोने लगा और बोला—
‘इससे तो इसकी मौक़ब बौब ख़ना ही अच्छा था, कुसुम तो बका ही दुःखदायी होना है ॥ ७१ ॥ अब मैं कहाँ रहूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे इम सफ़रको काल काटण ? हाय ! मेरे ऊपर तो बड़ी निरति आ पड़ी है, इस दुःखके कारण अवश्य मुझे एक दिन प्राण छोड़ने पड़ेंगे ॥ ७२ ॥ उसी समय परम हानी गोकर्णजी वहाँ आये और उन्होंने निम्नको कृपणका उपदेश करते हुए बहुत समझाया ॥ ७३ ॥ वे बालक, पिताजी ! यह संसार असार है । यह अल्पकाल दुःखमय और मोहमें डालनेवाला है । पुत्र किन्तु क्या ? धन किन्तु क्या ? स्नाहवान् पुङ्गव एतन्नि नैपत्यक समान जल्प रहता है ॥ ७४ ॥ इन्को और चाकधनी राजाको कुछ भी सुख नहीं है सुख है तो क्या निकर, एकजन्मकी ही मुनिको ॥ ७५ ॥ यह मरा पुत्र है ! इस अहानका छोड़ दीजिये । माहमे नरपत्नी प्राप्ति हानी है । यह हीरी सा मर हाण ही । इसलिये सब कुछ छोड़कर बनमें चले जाइय ॥ ७६ ॥

गोमतीके वचन सुनकर अमदेव स्वयं जानेरे
 त्रिये संपर हा गया और उनमे करन लया बया ! बन
 में रहकर मुझ कथा करना चाहिये, पर मुझमे निमिरावृष
 कहा ॥ ७७ ॥ मैं बड़ा मूर्ख हूँ अकल्प बमरारा
 स्नेह-प्राप्ते पौ हूँ आ जगदी मीन इस दरम्य

कर्मणा पतितो नूतं मामुदर दयानिधे ॥७८॥

गोर्क्षार्ज उवाच

वहेऽन्विमांसरुधिरेशभिमर्ति त्वज त्व

आयस्तुतादिषु सदा ममतां विशुद्धम् ।

पद्म्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठ

वैराग्यरत्नरमिको भव भक्तिनिष्ठ ॥७९॥

धर्म भजस्व मतुतं त्वज लोकधर्मान्

सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतप्ष्याम् ।

अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाद्यु मुक्त्वा

सेवत्स्वभारसमहो नितरां पिव त्वम् ॥८०॥

एवं सुतोक्तिवञ्चतोऽपि गृहं विहाय

यातो वनं विरमस्तिर्गतपटिषर्षः ।

युक्तो हरेरनुदिनं परिकर्षयामासौ

श्रीकृष्णमाप नियत दशमस्य पाठात् ॥८१॥

अंधेरे कुर्मैं ही पका खा हूँ । तुम यह दयालु हो,
इससे मेरा उद्धार करो ॥ ७८ ॥

गोर्क्षार्ज कहता—पिताजी । यह शरीर हड्डी, मांस
और रुधिरका पिण्ड है, इसे आप 'मैं' मानना छोड़ द
और श्री-पुत्रादिको 'अपना' कमी न मानें । इस संसारका
रात-दिन क्षणमक्षुर देखें, इसकी किसी भी वस्तुको
स्वामी समझकर उसमें राग न करें । वर, एकमात्र
वैराग्य-रमके रसिक होकर भगवान्की भक्तिमें लगे
रहें ॥ ७९ ॥ भगवान्जन ही सबसे बड़ा धर्म है,
निरन्तर उसीका आश्रय लिये रहें । अन्य सब प्रकारके
औकिक धर्मोंसे मुक्त मोक्ष लें । सत् साधुजनोंकी सेवा
करें । भोगोंकी लालसाको पास न फटकन दें तथा
जन्दी-से-जन्दी दूसरोंके गुण-भोगोंका विचार करना
छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान्की कृपाओंके
रसका ही पान करें ॥ ८० ॥

इस प्रकार पुत्रकी वाणीसे प्रभावित होकर आत्मदेवने
घर छोड़ दिया और वनकी यात्रा की । परमि उसकी आयु
उस समय साठ वर्षकी ही चुकी थी, फिर भी बुद्धिमें पूरी
वृद्धि थी । वहाँ रत-दिन भगवान्की सेवा-पूजा करनेसे
और नियमपूर्वक माग्नस्तवे दशमस्कन्धका पाठ करनेसे
उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त कर लिया ॥ ८१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भगवत्पद्माष्टाव्यम्

स्त्रिमोक्षो माम् चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सु-पुत्रकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और इससे उद्धार

मूल उवाच

पितर्युपरत तेन जन्मनी ताडिता मृशम् ।

क विचं तिष्ठति ब्रूहि इतिप्ये लघया न चेत् ॥ १ ॥

इति तद्वाक्यमंत्रसाजनन्या पुत्रदुःखत ।

कृप पान कृतो गर्वां तेन मा निधनं गता ॥ २ ॥

गाकर्णमन्तीर्धयात्रार्थं निर्माता योगमन्वित ।

न दुःखं न मुख तस्य न बरी नापि बान्धव ॥ ३ ॥

सुताजी कहता है—सौनकजी । पिताके वन घने
जानेपर एक दिन पुत्रपुत्रारीन अपनी माताको बहुत
पीटा और कहा—'धन्या, वन कहाँ रक्खा है ?' नहीं
तो अभी तेरी लुआखी (जन्मनी लकड़ी) से खबर
लूँगा ॥ १ ॥ उसकी इस धमकीसे डरकर और पुत्रके
उपद्रवोंसे दुखी होकर वह रात्रिक समय कुर्मैं जा
गिरा और इसीसे उसकी मृत्यु हो गयी ॥ २ ॥
योगमित्र गोर्क्षार्ज श्रीमद्भगवत्पद्माष्टाव्ये लिपे निरुक्त गये । उन्हें
इन वचनाओंसे कोई सुख या दुःख नहीं होता था,
क्योंकि उनका न कोई मित्र था न शत्रु ॥ ३ ॥

धुन्धुकारी वभूवाथ महान् प्रेतः कुर्मतः ॥१६॥
 वात्पास्तपधरो नित्यं धावन्दशविधोऽन्तरम् ।
 शीततपपरिक्षिप्तो निराहारः पिपासितः ॥१७॥
 न लेभे शरणं क्वापि हा वैवेति मुहुर्वदन् ।
 किमत्कलेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥१८॥
 अनाथ स विदित्वैव गयाभद्रमचीकृतम् ।
 यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र भाद्रमवर्षयत् ॥१९॥
 एवं ब्रम्ह स गोकर्णं स्वपुरं समुपमिवान् ।
 रात्रौ गृहाङ्गणं स्वप्नुमागताऽलक्षितः परैः ॥२०॥
 तत्र सुप्त स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वयन्स्वम् ।
 निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥२१॥
 सकृन्मेघ सकृद्वस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ।
 सकृदिन्द्रः सकृच्चासिः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥२२॥
 वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो घैर्यसंयुतः ।
 अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तममवीत् ॥२३॥

गोकर्ण उवाच

कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशमिमाम् ।
 किं वा प्रेतः पिशाचो वा रक्षसोऽसीति द्रष्टुं न ॥२४॥

सुत उवाच

एव पृष्टस्तदा तेन स्त्रोदोन्वै पुन पुनः ।
 अशक्तो वचनोच्चारं संज्ञामात्रं चकार ह ॥२५॥
 ततोऽञ्जलौ बलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदैरयत् ।
 तस्तेकहवपापोऽसौ प्रवक्तुमुपपन्नम् ॥२६॥

प्रेत उवाच

अहं भ्राता स्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ।
 स्वकीयनैव दोषेण ब्रह्मस्य नाशितं मया ॥२७॥
 कर्मणो नास्ति संस्था मे महाम्भाने विवर्तितं ।
 लाजानां हिंसकः साऽहं स्त्रीभिर्दुःस्वेन मारित ॥२८॥

पति ये । और धुन्धुकारी अपने कुकर्मों के कारण
 भयंकर प्रेत हुआ ॥ १६ ॥ वह कब्र के रूप में सर्वदा
 दसों दिशाओं में भटकता रहता था तथा शीत-धाम से
 सन्तप्त और मूख-म्यास से व्याकुल होने के कारण 'हा हैव !
 हा हैव !' चिल्लाता रहता था । परन्तु उसे कहीं भी कोई
 आश्रय न मिला । कुछ काल बीतने पर गोकर्ण ने भी त्यों-की-
 मुझसे धुन्धुकारी की मृत्यु का समाचार सुना ॥ १७-१८ ॥
 तब उसे अनाथ सम्भ्रमर उन्होंने उसका गया-नी में आश्रय
 किया, और भी जहाँ-जहाँ वे जाते थे, उसका आश्रय अवश्य
 करते थे ॥ १९ ॥

इस प्रकार घूमते-घूमते गोकर्ण ने अपने नगर में
 आये और रात्रि के समय दूसरी की दृष्टि से बचकर
 सीधे अपने घर के आँगन में सोने के लिये पहुँचे ॥ २० ॥
 वहाँ अपने भाई की सेवा देख आधी रात के समय
 धुन्धुकारी ने अपना बड़ा विकृत रूप दिखाया ॥ २१ ॥
 वह कभी मेघा, कभी हाथी, कभी मँसा, कभी इन्द्र
 और कभी अग्निका रूप धारण करता । अन्त में वह
 मनुष्य के आकार में प्रकट हुआ ॥ २२ ॥ ये विपरीत
 अवस्थाएँ देखकर गोकर्ण ने निश्चय किया कि यह कोई
 दुर्गतिको प्राप्त हुआ जीव है । तब उन्होंने उससे
 वैपरीत्यक पूछा ॥ २३ ॥

गोकर्ण ने कहा—तु कौन है ? रात्रि के समय ऐसे
 म्यानक रूप क्यों दिखा रहा है ? तेरी यह दृष्टि कैसे
 हुई ? हमें क्या तो सही—तु प्रेत है, पिशाच है अपना
 कोई राक्षस है ? ॥ २४ ॥

सुत भी कहते हैं—गोकर्ण कि इस प्रकार पूछने पर
 वह बार-बार जोर-जोरसे रोने लगा । उसमें बोलने की
 शक्ति नहीं थी, इसलिये उसने केवल संकेतमार्ग
 किया ॥ २५ ॥ तब गोकर्ण ने अङ्गुलि में जल लेकर
 उसे अभिमन्त्रित करके उसपर छिड़का । इससे उसके
 पापों का कुछ क्षमन हुआ और वह इस प्रकार कहने
 लगा ॥ २६ ॥

प्रेत बोला—मैं तुम्हारा भाई हूँ । मेरा नाम है
 धुन्धुकारी । मैंने अपने ही दोष से अपना नाशण्ड
 नष्ट कर दिया ॥ २७ ॥ मेरे कुकर्मों की मिनती नहीं
 की जा सकती । मैं तो मरान् ब्रह्मानन्द चकरा कर
 रहा था । इसीसे मैंने लोगों की बड़ी हिंसा की । अन्त में
 कुलपति कियो ने मुझे सब-पात-पाकर मार डाला ॥ २८ ॥

अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ।
 वाताहारणं जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥२९॥
 अहो यन्मो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोक्षय ।
 गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाजवीत् ॥३०॥

गोकर्ण उवाच

त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दक्षो विधानतः ।
 तत्तत्र नैव मुक्तोऽसि ममाध्वर्यमिह महत् ॥३१॥
 गयाभ्रातृभ्य मुक्तिर्भेदुपायो नापरस्तिवह ।
 किं विधेयं मया प्रेत तत्त्व वद सविस्तरम् ॥३२॥

प्रेत उवाच

गयाभ्रातृभ्यतेनापि मुक्तिर्म न भविष्यति ।
 उपायमपरं कंचिच्च विचारय साम्प्रतम् ॥३३॥
 इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ।
 क्षतभार्द्वर्न मुक्तिर्भेदसाध्य मोक्षन तव ॥३४॥
 इदानीं तु निजं स्यान्मातिष्ठ प्रेत निर्मय ।
 त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्य विचार्य च ॥३५॥

धुन्धुकरो निजस्यैव तेनापि तत्त्वतो गतः ।
 गोकर्णश्चिन्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥३६॥
 प्रातस्तमागत इष्टा लोका प्रीत्या समागता ।
 उत्सर्वं कथितं तन यज्जज्ञं च यथा निशि ॥३७॥
 विद्वांसो योगनिष्ठश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ।
 तन्मुक्तिं न च नऽपश्यन् पश्यन्तः शस्त्रसंघपान् ॥३८॥
 ततः सर्वं धर्मवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ।
 गोकर्णः स्तम्भनं चक्रं सूर्यवेगस्य वै तदा ॥३९॥
 तस्य नमो ब्रह्मतामसिन् ब्रह्म मे मुक्तिहेतुकम् ।
 तपस्त्वा दूतं सूर्यं स्फुटमित्यभ्यभाषत ॥४०॥

इसीसे अब प्रत-योनिमें पबकर यह दुर्दशा मोग रहा
 हूँ । अब देवता कर्मफल उदय होनेसे मैं कर्म
 वायुमक्षण करने की रहा हूँ ॥ २९ ॥ मा० 'तुम
 दयाके समुद्र हो, अब किसी प्रकार जन्दी ही मुक्त इस
 योनिसे छुड़ाओ ।' गोकर्णने धुन्धुकरकी सारी बातें
 सुनीं और तब उससे बोले ॥ ३० ॥

गोकर्णसे कहा—भाई ! मुझे इस वाक्पत्र वशा आश्चर्य
 है—मैंने तुम्हारे छिये विविध रूप गयाजीमें पिण्डदान
 किया, फिर भी तुम प्रेतयोनिसे मुक्त कैसे नहीं
 हुए ? ॥ ३१ ॥ यदि गया-भ्रातृसे मैं तुम्हारी मुक्ति
 नहीं कर, तब इसका और कोई उपाय ही नहीं है ।
 अष्ट्र, तुम सब बात खोष्टकर कहो—मुझ अब
 क्या करना चाहिये ? ॥ ३२ ॥

प्रेतने कहा—मरी मुक्ति मैकहाँ गया-भ्रातृ करनेसे
 भी नहीं हो सकती । अब तो तुम इसका कोई और
 उपाय सोचो ॥ ३३ ॥

प्रेतकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा आश्चर्य
 हुआ । वे कहने लगे—यदि सैकड़ों गया-भ्रातृसे भी
 तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती, तब तो तुम्हारी मुक्ति
 असम्भव ही है ॥ ३४ ॥ अच्छा, अभी तो तुम
 निर्मय होकर अपने स्थानपर रहो, मैं विचार करके
 तुम्हारी मुक्ति के छिये कोई दूसरा उपाय करूँगा ॥ ३५ ॥

गोकर्णकी आज्ञा पाकर धुन्धुकरी वहाँसे अपने
 स्थानपर चला आया । फिर गोकर्णने रतन विचार
 किया, तब भी उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा ॥ ३६ ॥
 प्रातःकाल उनके आया देख लोग प्रेमसे उनसे मिलन
 आये । तब गोकर्णने रतनमें जो कुछ त्रिस प्रकर हुआ
 था, वह सब उन्हें सुना दिया ॥ ३७ ॥ उनमें जो
 लोग विद्वान्, योगनिष्ठ, ज्ञानी और वदस्य थे, उन्होंने
 भी उनके दासोंको उल्ट-पल्टकर देख तो भी उस-
 की मुक्तिका कोई उपाय न मिला ॥ ३८ ॥ तब सब
 की निश्चय किया कि इस विषयमें सूनारायण जो
 आज्ञा करें, वही करना चाहिये । अब गोकर्णने अन्न
 तपोकष्टसे सर्वत्र गतिमें रोक दिया ॥ ३९ ॥ उन्होंने स्तुति
 की—भगवन् ! आप सारे समारम्भे साक्षी हैं, मैं आपको
 नमस्कर करता हूँ । आप मुझ क्या करने धुन्धुकरकी
 मुक्तिका साधन बनाइये । गोकर्णकी यह प्रार्थना सुनकर

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिं सप्ताह वाचनं कुरु ।

इति ध्रुवश्च सर्वधर्मरूपं तु निष्कृतम् ॥४१॥

सर्वेऽधुवन् प्रयत्नेन कर्तव्यं मुक्तं स्विदम् ।

गोक्षर्णो निश्चय कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तित ॥४२॥

तत्र सभषणार्थाय देशप्रामाजना शयुः ।

पङ्क्वन्धुदमन्दाच्च तेऽपि पापक्षयाय वै ॥४३॥

ममाजस्तु महाज्ञातां देवविषयकरकः ।

यदैवासनमाव्याय गोक्षर्णोऽकथयत्कथाम् ॥४४॥

म प्रतोऽपि तदाऽऽयातः स्यान्पश्यन्निस्तत् ।

सप्तग्रन्थिभुव तत्रापस्पत्कीचकमुचिष्टम् ॥४५॥

तन्मूलच्छिद्रमाविश्य भवणार्थं स्थितो हसौ ।

वातरूपी स्थिति कर्तुमशक्ता बंधमाविष्टः ॥४६॥

वैष्णवं ब्राह्मणं मुष्मं भोतार परिकल्प्य म ।

प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमारख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥४७॥

दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ।

बंधकग्रन्थिमेदोऽमृत्संशब्द पञ्चमतां सताम् ॥४८॥

द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिमेदनम् ।

तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रन्थिमेदनम् ॥४९॥

एवं सप्तदिनैश्चैव सप्तग्रन्थिभिमेदनम् ।

कृत्वा म द्वादशस्कन्धभषणात्प्रेततां जहौ ॥५०॥

निर्व्यरूपधरो जातस्तुलमीदाममण्डित ।

पीतवस्त्रा घनघ्नामो मुङ्गनी कुण्डलान्वित ॥५१॥

ननाम भ्रातरं मघो गार्क्षर्णमिति चाश्रयीत् ।

स्वयाह माधिता यन्धां कृपया प्रवक्तव्यलात् ॥५२॥

सूर्यदेवने दूरसे ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा—‘श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है, इसलिये तुम उसका सप्ताह-पाठ करना करो ।’ सूर्यका यह धर्मस्य कवन कहाँ समझे सुना ॥ ४०-४१ ॥ तब सचन यही कहा कि ‘अप्यनपूर्वक यही करो, है भी यह साधन बहुत मूल । अतः गार्क्षर्ण-जी भी तदनुसार निश्चय करके कथा सुनानेके लिये तैयार हो गये ॥ ४२ ॥

देश और गँवोंसे अनेकों छोग कथा सुननेके लिये आय । बहुत-से लंगड़े-खुले, अंधे, बूढ़े और मन्दबुद्धि पुरुष भी अपने पापोंकी निवृत्तिके उद्देशसे वहाँ आ पहुँचे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वहाँ इतनी भीड़ हो गयी कि उसे देखकर देवताओंको भी आश्चर्य होत प्रया । जब गार्क्षर्णजी व्यासजीपर बैठकर कथा कहने लगा, तब वह प्रेत भी वहाँ आ पहुँचा और श्वर-उत्तर बैठनेके लिये स्थान ढूँढन लगा । इतनेमें ही उत्सर्ग दृष्टि एक सींचे रखने हुए मात गौँके बाँसपर पड़ी ॥ ४४-४५ ॥ उसीके नीचेके छिद्रमें घुसकर वह कथा सुननेके लिये बैठ गया । वायुरूप हानक कारण वह बाहर कहाँ बैठ नहीं सकता था, इसलिये बाँसमें घुस गया ॥ ४६ ॥

गोक्षर्णजीन एक वैष्णव ब्राह्मणका मुख्य श्रोता बनाया और प्रथमस्कन्धसे ही स्पष्ट शब्दोंमें कथा सुनानी आरम्भ कर दी ॥ ४७ ॥ सायंकालमें जब कथाको विराम दिया गया । तब एक बड़ी विचित्र बात हुई । वहाँ ममासर्णोक देखते-पेछते उस बाँसकी एक गौँ तब-तब शब्द करती पड़ गयी ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार दूसरे दिन सायंकालमें दूसरी गौँ पड़ी और तीसरे दिन उमी समय तीसरी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सप्त दिनमें मागों गौँओंको पोजकर पुष्पुकरी बारहों स्कन्धोंके सुननेसे पश्चि होकर प्रतयोनिते मुक्त हो गया और पिच्छरूप धारण करके मक्क सामने प्रकट हुआ । उसका मेघके समान श्याम शरीर पीनाम्बर और तुष्पीकी गालोंसे घुरोभिन् या तथा सिरपर मनोहर मुकुट और फर्नोंमें कमनीय कुण्डल त्रिउमिन्म रहे थे ॥ ५०-५१ ॥ उसने दूरत अपन माई गोक्षर्णको प्रणाम करके कहा—‘माई ! तुमने श्या करके मुझ प्रतयोनिकी यजनाओंसे मुक्त कर दिया ॥ ५२ ॥

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ।
 सप्ताहोऽपि तथा धन्यं कृष्णलोकफलप्रदं ॥५३॥
 कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहभ्रवणे स्मिते ।
 अस्माकं प्रलयं सद्य कथा चेयं करिष्यति ॥५४॥
 आर्द्रशुष्कं लघु स्पूलवाक्पान् कर्मभिः कृतम् ।
 भवर्णं विदहेत्पापं पापकः समिधो यथा ॥५५॥
 अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरभिर्देवसंसदि ।
 अकथाप्राविणांपुंसां निष्कल जन्म कीर्तितम् ॥५६॥
 किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन क्लीक्या ।
 अघ्रुवेण शरीरेण शुक्रशक्ताक्यां विना ॥५७॥
 अजित्तमं आयुषदं मांसशोणितलेपितम् ।
 चर्मत्वनदं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥५८॥
 जराशोकविपाकस्तं रोगमन्दिरमातुरम् ।
 दुष्पूरं दुर्घरं दुष्टं सदोषं क्षणभङ्गुरम् ॥५९॥
 कृमिनिर्द्भमसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् ।
 अस्थिरं स्थिरं कम कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥६०॥
 यत्प्रातः संस्कुर्वन् चान्नं सार्धं तच्च चिन्तयति ।
 तदीयरससम्पुष्टं कश्यप क्व नाम नित्यता ॥६१॥
 सप्ताहभ्रवणाद्धोकं प्राप्यतः निकटे हरि ।
 भगवां दापनिदृष्ट्यर्धमितद्वचं हि साधनम् ॥६२॥

यह प्रेतपीडाका नाश करनेवाली श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है । तथा श्रीकृष्णचन्द्रके धामकी प्राप्ति करानेवाला हस्तका सप्ताह-पारयण भी धन्य है । ॥ ५३ ॥ जब सप्ताहभ्रवणका योग लगता है, तब सब पाप धरती उठते हैं कि अब यह भागवतकी कथा जल्दी ही हमारा अन्त कर देगी ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार आग गीली-खुसी, छोटी-बड़ी—सब तरहकी लकड़ियोंको जला बालती है, उसी प्रकार यह सप्ताहभ्रवण मन, वचन और कर्म-द्वारा किये हुए नये-पुराने, छोटे-बड़े—सभी प्रकारके पापोंको भस्म कर देता है ॥ ५५ ॥

विद्वानोंने देवताओंकी समामें कहा है कि जो लोग इस भारतवर्षमें श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म बुरा ही है ॥ ५६ ॥ मर्या, मोहपूर्णक लालन-पालन करके यदि इस अनित्य शरीरको छद्म-पुष्ट और बलवान् भी बना लिया, तो भी श्रीमद्भागवतकी कथा सुने बिना इससे क्या लाभ हुआ ? ॥ ५७ ॥ अस्थियाँ ही इस शरीरके आधारस्तम्भ हैं, नस-नाडीरूप रस्सियोंसे यह बँधा हुआ है, ऊपरसे इसपर मांस और रक्त बोधकर इसे चर्मेसे ढँक दिया गया है । इसके प्रत्येक अङ्गमें दुर्गन्ध आती है क्योंकि है तो यह मल-मूत्रका भाण्ड ही ॥ ५८ ॥ बुढ़ावस्था और शोकके कारण यह परिणाममें दुःखमय ही है, रोगोंका तो घर ही उद्घाटन । यह निरन्तर किसी-न-किसी कामनासे पीड़ित रहता है, कभी इसकी तृप्ति नहीं होती । इसे चारण किये रहना भी एक मार ही है इनके रोम-रोममें दोष मरे हुए हैं और नष्ट होनमें इसे एक क्षण भी नहीं लगता ॥ ५९ ॥ अन्तमें यदि इसे गाड़ दिया जाता है तो इसके कड़ेबू बन जाते हैं, कड़ेबू पशु खा जाता है तो यह विघ्रा हो जाता है और अस्मिन्में अन्ध दिया जाता है तो मस्मकी ढरी हो जाता है । ये तीन ही इसकी गणियाँ बनायी गयी हैं । ऐसे अस्थिर शरीरसे मनुष्य अविनाशी फल देनेवाला कब कबों नहीं बना लेता ? ॥ ६० ॥ जो अन्न प्रातःपञ्चम पक्षपा जाता है, वह मायंकामदत्त विगड़ जाता है फिर उसीके रससे पुष्ट हुए शरीरकी नित्यता बँटती ॥ ६१ ॥

इस सोचमें सप्ताहभ्रवण करनेसे भगवान्की क्षीर ही प्राप्ति हो सकती है । अतः सब प्रकारके शोथोंकी निवृत्ति के लिये एकमात्र यही साधन है ॥ ६२ ॥

धृदधृता इव तोषेषु मशका इव जन्तुषु ।
 जायन्ते मरणायैव कथाध्वजवर्जिताः ॥६३॥
 जटस्य शुष्कर्यशस्य यत्र ग्रन्थिविमेहनम् ।
 चित्र किमु स्याच्चित्रग्रन्थिभेदः कथाभवात् ॥६४॥
 भिद्यत इदमग्रन्थिच्छिद्यन्त सर्वसंशया ।
 क्षीयन्त चास्य कमाणि मसाहभरणे कृते ॥६५॥
 संसारवर्त्मालपप्रक्षालनपटीयमि ।
 कथातीर्थे स्थित चित्तं मुक्तिरिव ध्रुवैः स्मृता ॥६६॥
 एव कृतिरिव तस्मिन् विमानमागमच्छदा ।
 वक्त्रुष्टवामिभिर्भुक्तः प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥६७॥
 मर्षेषां पश्यतां भज विमानं धुन्धुलीसुत ।
 विमानेवप्यवाल धीरस्य गोकर्णो वाक्यमप्रवीतु ॥६८॥

गोकर्ण उवाच

अथैव यद्वह सन्ति भातारो मम निर्मला ।
 आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कृत ॥६९॥
 भवणं ममभागनं सवपाभिह दृश्यत ।
 फल्गुना क्ता ज्ञातं प्रभुवन्तु हरिप्रियाः ॥७०॥

हरिदाता उवाच

भवणस्य निभानं फल्गुनाऽथ ममित ।
 भवणं तु कृतं मदनं तथा मननं कृतम् ।
 फल्गुनाऽन्ता जाता भजनाऽपि मानः ॥७१॥
 गमगायमुपायैव प्रतनं भरणं कृतम् ।
 मननाऽपि तथा तनं स्थिरपिच कृतं मृष्टम् ॥७२॥
 अहं न हतं गानं प्रमादनं हतं धृतम् ।
 गन्धियाऽपि हनामन्त्राऽप्यग्रिणा हता उषः ॥७३॥
 अग्रज्याऽहता गता हतं भाद्रमपात्रकम् ।
 हतमभाप्रियं तनमनापात्रं हतं कृतम् ॥७४॥

जो लोग भागवतकी कथासे वञ्चित हैं, वे तो अन्तमें दुःखसे
 और जीर्णमें मच्छरोंके समान धक्का मरनेके लिये ही
 पड़ा होते हैं ॥ ६३ ॥ मश, जिसके प्रभुसे बड़
 और सूखे हुए बोंसकी गोंठें फट सकती हैं, उस
 भागवतकथाका अर्थ अर्थ करनेसे चित्तकी गोंठोंका सुल
 जाना कौन बड़ी बात है ॥ ६४ ॥ ससाह-अर्थ
 करनेसे मनुष्यके हृदयकी गोंठें सुल जाती हैं, उसके
 समस्त संसार टिन्न-मिन्न हो जाते हैं और सारे कर्म
 क्षीण हो जाते हैं ॥ ६५ ॥ यह भागवतकथाका ही
 संसारके धीचबुद्धी धोनेमें बड़ा ही पटु है । विद्वानोंका
 कथन है कि जब यह हृदयमें स्थित हो जाता है, तब
 मनुष्यकी मुक्ति निश्चित ही सम्पन्न हो जाये ॥ ६६ ॥

जिस समय धुन्धुलीरी पे सब बातें कह रहा था,
 जिसके लिये वैकुण्ठवासी पार्ष्णिये सहित एक विमान
 उतरा, उससे सब ओर मण्डराकार प्रकाश फैल रहा
 था ॥ ६७ ॥ सब लोगोंके सामने ही धुन्धुलीरी
 उस विमानपर चढ़ गया । तब उस विमानपर आये हुए
 पार्ष्णियोंके देखकर उनसे गोकर्णने यह बात कही ॥ ६८ ॥

गोकर्णने पूछा—भगवान्के प्रिय पार्ष्णिये ! यहाँ
 तो हमारे अनेकों दुःखद्वय प्रोतागण हैं, उन सबके
 लिये आपयोग एक साथ यज्ञतसे किम्पन क्यों नहीं
 लये । हम देखते हैं कि यहाँ सभीने समानरूपसे
 कथा सुनी है, फिर फल्गुने इस प्रकारका भेद क्यों
 हुआ, यह बताइये ॥ ६९-७० ॥

भगवान्के सपत्नीने कहा—हं मानः । इस फल्गु-
 भेदका कारण इनके धर्मका भेद ही है । यह ठीक
 है कि धर्म या सत्तन समानरूपसे ही किया है,
 किन्तु इसके-जमा मनन नहीं किया । इसीसे एक
 माय मनन करनेपर भी उसके फल्गुमें भेद रहा ॥ ७१ ॥
 इस प्रश्न सान्ति निवेदन निवारण रखकर धर्म किया
 था तथा सुन हुए विरक्त स्थितिसे यह स्पष्ट मनन
 निष्पन्न भी कर रहा था ॥ ७२ ॥ जा प्राण दृष्ट
 नहीं गया था स्पष्ट हो गया है । इसी प्रकार प्राण न
 मनने धर्मका मनन करने पर और विरक्त हृदय-उपर
 मनन करनेसे प्राण भी पार पार नहीं होता ॥ ७३ ॥
 धर्मका मनन प्राण प्राण कर रहा था प्राण
 भावन अत्रात्रिन्ध्रिया प्राण हुआ प्राण एवं आयालीन
 हुए—इन सबका मान ही जाता है ॥ ७४ ॥

विश्रामो गुह्याक्षेपु खमिन्दीनत्वभावन ।
मनोदोषजयश्चैव कथायां निबला मति ॥७५॥
एवमादि कृत चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ।
पुन श्रवान्ते मर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्धुवम् ॥७६॥
गोर्क्षस्य गोविन्दो गोलोक दास्यति स्वयम् ।
एवमुक्त्वा ययु सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तना ॥७७॥
श्रवणे मासि गोर्क्षं कथामूचे तथा पुन ।
सप्तरात्रवर्ती भूय श्रवणं तं कृतं पुनः ॥७८॥
कथासमाप्ता यज्ञात् श्रूयसां तच्च नारद ॥७९॥
विमानै सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ।
जयशब्दा नमश्शब्दस्तत्रासन् यद्वदन्तः ॥८०॥
पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वम हरि ।
गोर्क्षं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृश हरि ॥८१॥
भोतृनन्यान् धनस्यामान् पीतकौशेयवासस ।
किरीटिन कुम्भलिनस्तथा चक्रे हरि क्षणात् ॥८२॥
तद्गमे ये स्मिता जीवा आश्चर्यालज्जतयः ।
विमाने स्थापितास्तेऽपि गोर्क्षं कृपया तदा ॥८३॥
प्रपिता हरिलोकं ते यत्र गच्छन्ति योगिन ।
गोर्क्षेन स गोपालो गोलोक गोपबल्लभम् ।
कथाम्भवणत प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥८४॥
अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण मंगता ।
तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥८५॥
यत्र सूर्यस्य सोमस्य मिद्वानां न गति कदा ।
त लोके हि गतास्ते तु भीमद्वामवतथवात् ॥८६॥
भ्रूओऽत्र त किं फलं बुद्धमुज्ज्वलं
मसाहयप्रन कथसु मचितम् ।
धर्मेन गोर्क्षकथाश्रोत यं
पीतम् ते गर्भगता न भूय ॥८७॥

गुरुवचनोर्मि विश्राम, दीनताका भाव, मनक
दायोपर विजय और कथामें विचकी एकाग्रता इत्यादि
नियमोंका यदि पाठ्य किया जाय तो श्रवणकर यथार्थ
फल मिश्रता है । यदि ये श्रोता फिरसे श्रीमद्भागवतकी
कथा सुनें तो निश्चय ही सबको वैकुण्ठकी प्राप्ति
होगी ॥ ७५-७६ ॥ और गोर्क्षजी ! आपको तो
भागवान् स्वयं आकर गोलोकधाममें ले जायेंगे । यों
कहकर वे सब पार्षद हरिकीर्तन करते वैकुण्ठलोकको
चले गये ॥ ७७ ॥

श्रावण मासमें गोर्क्षजीने फिर उमी प्रकार समाह
क्रमसे कथा कही और उन श्रोताओंने उसे फिर
सुना ॥ ७८ ॥ नारदजी ! इन कथाकी समाप्तिपर
जो कुछ हुआ, वह सुनिये ॥ ७९ ॥ वहाँ मर्त्तसे भरे
हुए विमानोंके साथ भावान् प्रकट हुए । सब ओरसे
स्वयं जय-जयकार और नमस्कारकी ध्वनियाँ हान
रगीं ॥ ८० ॥ भावान् स्वयं हरिनि होकर अपने
पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि करन लगे और उन्होंने
गोर्क्षको हृदयमें लपकाकर अपने ही ममन बना
लिया ॥ ८१ ॥ उन्होंने क्षणभरमें ही अन्य सब
श्रोताओंको भी मेवके समान धामवर्ण, रशमी पीताम्बर
धारी तथा किरीट और कुण्डलादिसे विभूषित कर
लिया ॥ ८२ ॥ उस गौवमें कुत्ते और चाण्डालपयन
जितने भी जीव थे, वे सभी गोर्क्षजीकी कृपासे
किम्नोपर चढ़ा लिये गये ॥ ८३ ॥ तथा जहाँ
योगिजन जाते हैं, उस भावद्वाममें वे भेज लिये गये ।
इस प्रकार मत्तकुल भावान् श्रीकृष्ण कथा
श्रवणसे प्रसन्न होकर गोर्क्षजीको साथ ले अपने
गान्धर्वार्यके प्रिय गोक्षेकधाममें चले गये ॥ ८४ ॥
पूर्वकालमें जैसे अयोध्यावासी भावान् श्रीरामके साथ
साकतधाम निहारें थे, उमी प्रकार भावान् श्रीकृष्ण
उन सबको योगिदुर्लभ गोलोकधाममें ले गये ॥ ८५ ॥
जिस लोकमें सूर्य, चन्द्रमा और मिद्वोंकी भी कमी
गति नहीं हो सकती, उसमें वे भीमद्वामावन श्रवण
करलसे चले गये ॥ ८६ ॥

नारदजी ! सप्ताहपत्रके द्वारा कथा श्रवण करनेसे
जैसा उच्छ्रित फल संचित होता है, उमके विषयमें
हम आपसे क्या कहें ? अजी ! जिन्होंने अतन कथा-
पुत्रसे गोर्क्षजीकी कथाएँ एक अक्षरका भी पान
किये था, वे फिर मायाके गर्भमें नहीं जायें ॥ ८७ ॥

वाताम्बुपर्णश्चनदहशोपयै

स्तपोभिरग्रंथिरकालसचितै ।

योगैश्च सयान्ति न तां गतिं वै

सप्ताहगाथाभ्रवणेन यान्ति याम् ॥८८॥

इतिहासमिम पुण्य श्राष्टिल्योऽपि मुनीश्वरः ।

पठते चित्रकूटलो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥८९॥

आस्थानमेतत्परम पवित्र

भुत सकृद्वै विदहेदधौषम् ।

भाद्र प्रयुक्तं पितृवृत्तिमावहे

चित्पं सुपाठादपुनर्भव च ॥९०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमहात्म्ये गोकर्णमोक्ष

कर्मणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

सप्ताहयज्ञकी विधि

कुमारा उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्याम सप्ताहभ्रवणे विधिम् ।

महास्यैर्वसुभिश्चैव प्राय साध्वोविधि स्मृतः ॥ १ ॥

देवज्ञ तु समाह्वयं ब्रह्मर्षे पृच्छय यत्नतः ।

विवाहे यादृशं चित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥

नमस आश्विनोर्वाँ च मार्गशीर्षः शुक्लर्तिभा ।

एत मासा कथारम्भे धोतृणां मोक्षलक्षणाः ॥ ३ ॥

मामानां विप्र हयानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ।

महायाज्ञेतर तत्र कर्तव्याः सोधमाध य ॥ ४ ॥

दशे दश तथा सेयं वासा प्रप्या प्रयत्नतः ।

भविष्यति कथा चात्र अमन्तस्य कुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥

दूरहरिकथा कचिदूर्वाच्युतकर्तृना ।

श्रियः "गुडप्रत्या" ये च सप्तां बाधो यतो भवत् ॥ ६ ॥

दशे दश विरक्ता सर्वेष्वपि कथितान्त्वकाः ।

तत्त्व एतं प्रप्यं च सत्सम्बन्धमितीरितम् ॥ ७ ॥

मनां ममात्रा भविता मत्तगर्थं सुदुर्लभ ।

अप्यगमरूपं कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥

मिस गतिको लोग धायु, जल या पत्ते खकर शरीर सुखने से बहुत काकाक घोर तपस्या करनेसे और योगात्मकसे भी नहीं पा सकते, उसे वे सप्ताहभ्रवणसे सहजमें ही प्राप्त कर लेते हैं ॥ ८८ ॥ इस परम पवित्र इतिहास-का पाठ चित्रकूटपर विद्वान्मान मुनीश्वर शाश्वतस्य श्री ब्रह्मानन्दमें मन होकर करते रहते हैं ॥ ८९ ॥ यह कथा बड़ी ही पवित्र है । एक बारके भ्रवणसे ही सम्पन्न पापराशिको मम्म कर देती है । यदि इसका आह्वेक सम्पन्न पाठ किया जाय, तो इससे पितृगणको बड़ी लुप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ९० ॥

श्रीसप्तकादि कहते हैं—नारदजी । जब हम आपको

सप्ताहभ्रवणकी विधि बताते हैं । यह विधि प्राय लोगोंकी सहजता और धनसे साध्य कही गयी है ॥ १ ॥ पहले तो कलापूर्वक ओनिधीकी बुझकर मुहूर्त ठहाना चाहिये तथा निवाहके लिये अतिने धनका प्रबन्ध किया जाता है, उतने ही धनकी व्यवस्था इसके लिये करनी चाहिये ॥ २ ॥ कथा आरम्भ करनेमें आश्विन, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और आश्विन—ये छ महीने मोक्षार्थके लिये मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं ॥ ३ ॥ देखें । इन महीनोंमें भी मद्रा-म्यनीपात आदि कुयोगोंको सर्वथा त्याग देना चाहिये । तथा दूसरे लोग जो उस्ताही हों, उन्हें अपना सहायक बना लेना चाहिये ॥ ४ ॥ फिर प्रयत्न करके दश-मेशान्तरेमें यह संवाद भेजना चाहिये कि यहाँ कथा होगी, सब लोगोंको सपरिहार पधारना चाहिये ॥ ५ ॥ श्री और श्रद्धाणि भगवत्कथा एवं संकीर्तनसे दूर पड़ गये हैं । उनके भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥ दश-दशमें जो किरत बेण्णव और हरिकीर्तनके प्रेमी हों, उनके पास निष्प्रणयत्र अन्त्य भेजे । उसे छिक्नेकी विधि इस प्रकार बनायी गयी है ॥ ७ ॥ म्हातुमन्त्र । यहाँ सात दिनत्र सप्तगुरुओंका बड़ा दुर्लभ समायाम रहेगा और अर्द्ध रामकी श्रीमद्भागवतकी कथा होगी ॥ ८ ॥

श्रीभागवतपीयूषपानाय रमलम्पटा ।
 भवन्तश्च तथा शीघ्रमापन्त प्रेमतत्परा ॥ ९ ॥
 नतकाश कदाचिच्चैदिनमात्रं तथापि तु ।
 सर्वथाऽऽनामनं कार्यं शृणोऽत्रैव सुदुर्लभ ॥ १० ॥
 एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं त्रिनयेन च ।
 आगन्तुकानां सर्वेषां वामम्यानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥
 तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा अवर्षणं मतम् ।
 विद्वत्ता वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथात्म्यलम् ॥ १२ ॥
 शोधनं मार्जनं मूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ।
 गृहोपस्करमुद्वृष्टम् गृहकोणे निवशयेत् ॥ १३ ॥
 अर्वाक्षिप्राहृतो यन्नादस्तीर्णानि प्रमेलेयेत् ।
 कर्तव्यो मण्डपः प्रोक्ष्यं कदलीखण्डमण्डित ॥ १४ ॥
 फलपुष्पदलैर्विष्वन्वितानेन विराजितः ।
 चतुर्दिक्षु ध्वजतोपो बहुसम्पद्गिराजित ॥ १५ ॥
 ऊर्ध्वं सप्तैव लाङ्काश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ।
 तेषु विप्रा विरक्ताश्च न्यापनीया प्रबोध्य च ॥ १६ ॥
 पूर्वं तेषामामनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ।
 वक्तुमपि तदा निष्यमामनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥
 उदङ्मुखो भवेद्भक्ता भोता वै प्राङ्मुखस्तदा ।
 प्राङ्मुखश्चेद्भक्त्या भोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥
 अथवा पूर्वदिग्गेषा पूज्यपूजकमभ्यत ।
 भोतृणामागमे प्रोक्तो दक्षकालादिकोविदः ॥ १९ ॥
 निरक्तो वैष्णवो विशेषे वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
 पृथन्तश्चालाधीरो वक्ता कायाऽतिनि स्पृहः ॥ २० ॥
 अनेकधर्मविप्रान्ता रूपा पाण्डवादिन ।
 शुक्लाक्षकथोधारत्याज्यान्ते यन्नि पण्डिता ॥ २१ ॥
 वक्तुं पात्रं महापार्यमन्य न्याप्यस्तथाविध ।
 पण्डित मग्नयच्छेष्टा लाङ्कबोधनतत्परा ॥ २२ ॥

आपलोग मग्नयसके रहित हैं, अन श्रीमागवत-
 मृतक पान करनेके लिये प्रमूर्खक शीघ्र ही
 पवारनेकी ह्वा करें ॥ ९ ॥ यदि आपको विशेष
 अवकाश न हो, तो भी एक दिनके लिये तो अवश्य
 ही कृपा करनी चाहिये, क्योंकि यहाँक तो एक क्षण भी
 अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १० ॥ इस प्रकार निमपूर्वक उन्हें
 निमन्त्रित करे और जा आग आये, उनके लिये यथोचित
 निवासस्थानका प्रबन्ध करे ॥ ११ ॥

कथाका अक्षण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने
 घरपर भी अच्छा माना गया है । जहाँ छत्र-चौड़ा
 मैदान हो, वहाँ कथास्थल रखना चाहिये ॥ १२ ॥
 भूमिमा शोधन, मर्दन और लेपन करके रंग-विरगी घातुओंसे
 चौक पूरे । घरकी सारी सामग्री उठाकर एक कोनेमें रख
 दे ॥ १३ ॥ पाँच दिन पहलेसे ही यन्पूर्वक बहुत-से किटाने-
 के बरत एकत्र कर ले तथा केलेक लोभसे सुशोभित एक ऊँचा
 मण्डप तैयार कराये ॥ १४ ॥ उसे सब ओर फल, पुष्प, पत्र
 और चंदेरेसे अलङ्कृत करे तथा चारों ओर झंडियाँ लगाकर
 तरह-तरहके सामानोंसे सजा दे ॥ १५ ॥ उस मण्डपमें कुछ
 ऊँचाईपर सप्त विशाल ध्येकैकी कल्पना करे और उनमें
 प्रियतम भाषणोंको सुन-सुनकर बैठाये ॥ १६ ॥ आगेकी ओर
 उनके लिये वहाँ यथोचित आसन तैयार रखे । इनके
 पीछे बत्ताके लिये भी एक दिव्य सिंहासनका प्रबन्ध
 करे ॥ १७ ॥ यदि बत्ताका मुख उत्तरकी ओर रहे तो
 श्रोता पूर्वमुख होकर बैठे और यदि बत्ता पूर्वमुख रहे
 तो श्रोताका उत्तरकी ओर मुख करके बटना चाहिये ॥ १८ ॥
 अथवा बत्ता और श्रोताको पूर्वमुख होकर बैटना चाहिये ।
 देश-काल आदिको जाननेवाले म्हातमजनों श्रोताक लिये
 ऐसा ही नियम बताया है ॥ १९ ॥ जा वे-शास्त्रकी
 स्पष्ट व्याख्या करनेमें समर्थ हो तरह-तरहक इष्टान्त दे
 सकता हो तथा सिक्केकी और अन्यन्त नि स्पृह हो, ऐसे
 विरक्त और विष्णुमक्त ब्राह्मणको बत्ता बनाना चाहिये
 ॥ २० ॥ श्रीमद्भागवतके प्रवचनमें ऐसे लोगोंका नियुक्त
 नहीं करना चाहिये जो पण्डित होनेपर भी अनेक धर्मोंके
 अक्षरमें पड़े हुए, ली-लम्पट एवं पाण्डवक प्रकारक
 हैं ॥ २१ ॥ बत्ताके पास ही उत्तरी सहयन्त्रके लिये
 एक बैसा ही विशन् और न्यायिन करना चाहिये ।
 वह भी सब प्रकारके संशयोकी निश्चिती करनेमें मनप
 और स्मरणोंको समझानेमें कुशल हो ॥ २२ ॥

वाताम्बुपर्णानन्दहोषणै

स्तपाभिरुग्रैरिक्तकालसंचितैः ।

योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै

महाहगाथायवणेन यान्ति यस्म ॥८८॥

इतिहाममिम पुण्य श्राब्दिल्लोपि मुनीश्वर ।

पठते क्षिप्रकृत्यो ब्रह्मानन्दपरिप्लुत ॥८९॥

आम्यानमेतत्परम पवित्र

भुत सृष्टिद्वै विद्वेदघौषम् ।

भाद्र प्रयुक्तं पितृवृत्तिमावहे

भित्त्य सुपाठस्तु पुनर्मथ च ॥९०॥

जिस गनिको लोग वासु, जल या पत्ते खाकर शरीर सुखान-
से बहुत कालसक घोर तपस्या करनेसे और योगाभ्यासे
भी नहीं पा सकते, उसे वे सप्ताहभ्रमणसे सबन्धमें ही
प्राप्त कर सकते हैं ॥ ८८ ॥ इस परम पवित्र इतिहास-
का पाठ क्षिप्रकृत्य पर विराजमान मुनीश्वर शाब्दिल्लोपि भी
ब्रह्मानन्दमें मग्न होकर करते रहते हैं ॥ ८९ ॥ यह
कथा बड़ी ही पवित्र है । एक बारके श्रवणसे ही
सम्पन्न पापराशिको मम कर देती है । यदि इसका
ब्राह्मके सम्य पाठ किया जाय, तो इससे पितृगणको
बड़ी खुशी होती है और नित्य पाठ करनेसे मोक्षकी
प्राप्ति होती है ॥ ९० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्ष-
वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पद्मोऽध्यायः

सप्ताहयज्ञकी विधि

कुमारा उवाच

अथ ते मन्त्रवक्ष्यमः सप्ताहभ्रमण विधिम् ।

महार्पणसुभिश्रवणं प्राप्य साध्वो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥

देवद्य तु ममाह्वयं मुहूर्तं पूज्यं चतुतः ।

विवाहं यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयत् ॥ २ ॥

नभस्य आश्विनोर्जा च मागशीर्षं शुचिर्नभा ।

एतं माम्ना कथामन्त्रे धोतुर्ना मासघ्नचक्र ॥ ३ ॥

माम्ना विप्र ह्यनानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ।

महायाज्ञैश्चैतत्तत्र कर्तव्या माघमास्य य ॥ ४ ॥

दण्डं दण्डं तथा सेयं कर्ता प्रप्या प्रयत्नतः ।

भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यकुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥

दूरदूरिकथा कचिद्दूरभाष्युतर्कितना ।

ग्रियं गृह्णादया यच्च तर्पा पाथो यतो भवेत् ॥ ६ ॥

गृह्णा द्यन्नं विरक्ता यर्षण्णाः कीदृशोन्मुक्ता ।

तत्पत्रं पत्रं प्रप्यं च तत्त्वम्बनमितीरितम् ॥ ७ ॥

मतां ममाज्ञा भविता ममगणं सुदुलभः ।

अप्युपगम्यते कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥

श्रीपद्मपुराणे कहते हैं—नारदजी ! अब हम आपको

सप्ताहभ्रमणकी विधि बताते हैं । यह विधि प्रायः अमोक्षकी
सहायका और धनसंसाधन कही गयी है ॥ १ ॥ पहले तो
यन्त्रपूर्वक ओम्निरीको बुझकर मुहूर्त पूजना चाहिये तथा
विवाहके लिये जितने धनका प्रबन्ध किया जाता है, उतने ही
धनकी व्यवस्था इसके लिये करनी चाहिये ॥ २ ॥ कथा आरम्भ
करनेमें माघपू, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और
भाद्रपद—ये छ महीने धोताओंके लिये मोक्षकी प्राप्तिके
कारण हैं ॥ ३ ॥ देखें ! इन महीनोंमें भी मन्त्राभ्यासपाठ
आदि कुपुष्पोंको सबका त्याग देना चाहिये । तथा दूसरे
लोग जो उस्ताही हों, उन्हें अपना सहायक बना लेना
चाहिये ॥ ४ ॥ फिर प्रयत्न करके देश-देशान्तर्गते यह
संवाद भेजना चाहिये कि यहाँ क्या होगी, सब लोगोंको
सपरिहार पधारना चाहिये ॥ ५ ॥ स्त्री और शूद्रादि
भगवत्कथा एवं संकीर्तनसे दूर पक्ष गये हैं । उनसे भी
सुचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥ दश-
देशमें जो बिरक्त कृष्ण और हरिकीर्तनके प्रेमी हों, उनके
पास निमग्नगणत्र अवश्य भेजें । उसे छिन्नकी मिथि इस
प्रकार बतायी गयी है ॥ ७ ॥ गृहानुसंधान । यहाँ सात
दिनका सत्पुरुषोंका बड़ा दुर्लभ सम्पन्न रहना और
नर्या रमणीय श्रीमद्भागवतकी कथा हागी ॥ ८ ॥

श्रीभागवतपीपूपानाय रमलम्पटा ।
 भवन्तश्च तथा श्रीघ्नमायात प्रेमसत्परा ॥ ९ ॥
 नक्षत्राश्च कदाचिच्चदिनमात्रं तथापि तु ।
 सर्वथाऽऽगमनं काम ध्वगोऽर्थं सुदुर्लभ ॥ १० ॥
 एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ।
 आगन्तुकानां सर्वेषां वत्सल्यानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥
 तीर्थं वापि वने वापि गृहं वा श्रवणं मतम् ।
 विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथाम्बलम् ॥ १२ ॥
 शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ।
 गृहोपस्करमुद्बृत्त्य गृहकोषे निवेशयेत् ॥ १३ ॥
 अर्वाक्षमाहृतो ब्रह्माडस्तीर्णानि प्रमेलयेत् ।
 कर्तव्यो मण्डप प्रोक्षः कदलीखण्डमण्डित ॥ १४ ॥
 फलपुष्पदलैर्विवस्वितानेन विराजित ।
 घटर्दिसु ध्वजतोपा बहुसम्पद्विराजित ॥ १५ ॥
 ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीया सविस्तरम् ।
 तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्यापनीया प्रबोध्य च ॥ १६ ॥
 पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ।
 वक्तुं वापि तथा दिव्यमामनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥
 उदङ्मुखो भवेद्भक्ता भोता वै प्राङ्मुखस्तदा ।
 प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्भक्ता भोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥
 अथवा पूर्वदिग्धया पूज्यपूजकमध्यत ।
 आभूषामागमे प्रोक्तो दक्षकल्लादिकोविदः ॥ १९ ॥
 विरक्ता वैष्णवो विप्रो वंशशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
 पण्डितकृत्लोधीगेवक्ता कायाऽतिनिःस्पृहः ॥ २० ॥
 भनकधर्मविप्रान्ता खंभा पातण्डवादिनः ।
 कुम्भासूत्रधोधारत्याज्यास्त यदि पण्डिता ॥ २१ ॥
 एक पादं सहायार्थमन्य स्याप्यस्तथाविधः ।
 पण्डित मन्त्रयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥

आपखोग मगधसके रसिक हैं, अतः श्रीभागवत-
 मृतक पान करनेके लिये प्रेमपूर्वक शीघ्र ही
 पतारनेकी कृपा करें ॥ ९ ॥ यदि आपको विशेष
 अवकाश न हो, तो भी एक दिनके लिये तो अवश्य
 ही कृपा करनी चाहिये, क्योंकि यहाँका तो एक क्षण भी
 अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १० ॥ इस प्रकार निनयपूर्वक उन्हें
 निमन्त्रित करे और जो लोग आयें, उनके लिये यथोचित
 निवासस्थानका प्रबंध करे ॥ ११ ॥

कथाका श्रवण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने
 घरपर भी अच्छा माना गया है । जहाँ छत्र-चौड़ा
 मैदान हो, वहाँ कपासका रखना चाहिये ॥ १२ ॥
 भूमिका शोधन, मार्जन और लेपन करके रंग-बिरंगी धातुओंसे
 चौक धरे । घरकी सारी सामग्री उठाकर एक कोनेमें रख
 दे ॥ १३ ॥ पाँच दिन पहलेसे ही कनपूर्वक बहुत-से बिछाने-
 के बग एकत्र कर ले तथा केलेके छोंसे सुशोभित एक ऊँचा
 मण्डप तैयार कराये ॥ १४ ॥ उसे सब ओर फल, पुष्प, पत्र
 और चँदविसे अलंकृत करे तथा चारों ओर झड़ियाँ लगाकर
 लह-लहके सामानोंसे सजा दे ॥ १५ ॥ उस मण्डपमें कुछ
 ऊँचाईपर मातः विशाल छोकरीय कल्पना करे और उनमें
 किरक ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर बैठाये ॥ १६ ॥ आगेकी ओर
 उनके लिये वहाँ यथोचित आसन तैयार रखने । इनके
 पीछे बक्काके लिये भी एक दिव्य सिंहासनका प्रबंध
 करे ॥ १७ ॥ यदि बक्काका मुख उत्तरकी ओर रहे तो
 भोता पूर्वामुख होकर बैठे और यदि बक्का पूर्वामुख रहे
 तो भोताको उत्तरकी ओर मुख करके बैठना चाहिये ॥ १८ ॥
 अथवा बक्का और भोताको पूर्वमुख होकर बैठना चाहिये ।
 देश-भक्त आदिको जाननेवाले यथानुमानेन भोताके लिये
 ऐसा ही नियम बनाया है ॥ १९ ॥ जा वेद-शास्त्रकी
 स्पष्ट व्याख्या करनेमें समर्थ हों लह-लहका दण्ड दे
 सकता हो तथा विवेकी और अत्यन्त निस्पृह हो, ऐसे
 किरक और विष्णुभक्त ब्राह्मणको बक्का बनाया चाहिये
 ॥ २० ॥ श्रीमद्भागवतके प्रवचनमें ऐसे छद्मोक्त निपुण
 नहीं करना चाहिये जा पण्डित होकर भी अन्तः कर्षे
 चक्षुमें पड़ डूए, श्री-मन्त्र एवं पञ्चगव्य प्रकृत
 हों ॥ २१ ॥ बक्काका पाद ही उत्तरा मूल्यके लिये
 एक पैसा ही विशाल और स्थिति करना चाहिये ।
 वह भी सब प्रकारक संशयोक्ति निवृत्ति करने के लिये
 और छद्मोक्तों ममत्तनमें बुद्धि ॥ २२ ॥

यत्र धौं प्रकर्तव्यं दिनावर्गप्रतापये ।
 अरुणोऽयं निर्वर्त्य द्यौः स्थानं समाचरेत् ॥२३॥
 नित्यं संवेष्टः कृत्वा संप्रदायं स्व प्रयत्नतः ।
 कथाविभविषाताय गणनार्थं प्रपूजयेत् ॥२४॥
 पितृन् मंतव्यं शुद्धपर्यं प्रापयितुं समाचरेत् ।
 मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥२५॥
 कृष्णामुरिष्य मन्त्रेण चरत्पूजाविधिं क्रमात् ।
 प्रदक्षिणनमस्कारान् पूजन्ते स्तुतिमाचरेत् ॥२६॥
 संसारमागरे मन्त्रं दीनं मा कुरुष्वानिधे ।
 कर्ममोहदृष्टीताम्रं मामुद्धर भवाभवत् ॥२७॥
 श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रभवतः ।
 कृत्या विधिना प्रीत्या घृणदीपममन्त्रिता ॥२८॥
 ततस्तु भीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ।
 स्तुतिं प्रसन्नचित्तन कृतव्या केवलं तदा ॥२९॥
 श्रीमद्भागवतागमोऽयं प्रत्यक्षं कृष्ण एव हि ।
 स्वीकृतोऽगमि मया नाथ सुकथ्यं भवमागरे ॥३०॥
 मनोरथो मनीषोऽयं सफलं सवधा त्वया ।
 निर्विघ्नं च कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥३१॥
 एवं दीनवचं प्रोच्य वक्तारं वाप पूजयेत् ।
 मन्मूष्य वस्त्रमूपाभि पूजान्तं तं च मस्तवेत् ॥३२॥
 शुक्लं प्रबोधय सर्वशास्त्रविशारद ।
 एतत्कथाप्रकाशनं मन्मथानं विनाशय ॥३३॥
 तदग्रं नियमं पश्चात्कृतव्यः श्रयसे मुनि ।
 सप्तारवं यथाशक्त्या धारणीयं स एव हि ॥३४॥
 वर्णं पञ्चविंशत्या कथाभङ्गनिवृत्तयः ।
 कृतव्यं तद्वैर्जायं द्वादशाक्षरविधया ॥३५॥
 प्राप्नोतान्वर्षणवाधान्यान्वाया कृतनकारिणः ।
 न्यामन्मूष्य दमाश्रम्यमागमनाविशन् ॥३६॥

कथा-प्रारम्भके दिनमें एक दिन पूर्व व्रत ग्रहण करनेके
 लिये यत्नाको क्षीर बना लेना चाहिये । तथा अरुणोपके
 सम्य शोधसे निवृत्त होकर अच्छी तरह स्नान करे ॥२३॥
 और संप्रदाय अपने नित्यकर्मोंका संश्लेषसे समस्त करके
 कथाके विधौकी निवृत्तिके लिये गणेशकी पूजन करे
 ॥ २४ ॥ मन्त्रनन्तर पितृगणका तर्पण कर पूर्व पापोंकी
 क्षुद्रिके लिये प्रापयित करे और एक मण्डल बनाकर
 उसमें श्रीहरिको स्थापित करे ॥ २५ ॥ फिर मन्त्र
 श्रीकृष्णको कथ्य करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः प्रोक्षण-
 चारविधसे पूजन करे और उसके पश्चात् प्रदक्षिणा तथा
 नमस्कारादि कर इस प्रकार स्तुति करे ॥ २६ ॥ 'कुरु-
 निधान । मैं संसार-सागरमें डूबा हुआ और बड़ा दीन
 हूँ । कर्मोंके मोहकूपी ग्राहने मुझे पकड़ रक्खा है । आप
 इस संसार-सागरसे भग उद्धार कीजिये' ॥ २७ ॥ इसके
 पश्चात् घृण-दीप आदि सामग्रियोंसे श्रीमद्भागवतकी भी
 कथे उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि-विधानसे पूजा करे
 ॥ २८ ॥ फिर पुस्तकके आगे नारियल रखकर नमस्कार
 करे और प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार स्तुति करे— ॥ २९ ॥
 'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र ही
 विप्रेयमान हैं । नाथ । मैं भक्तसागरसे छुटकर पानेके
 लिये आपकी शरण ली है ॥ ३० ॥ भग यह मनोरथ
 आप बिना किसी विघ्न-बाधाके साक्षोपाक्ष पूर्य करें ।
 केशव । मैं आपका दास हूँ ॥ ३१ ॥

इस प्रकार दीन बचन कहकर फिर कथाका पूजन
 करे । उसे सुन्दर कथामूर्णोंसे विभूषित करे और फिर
 पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे— ॥ ३२ ॥
 'शुक्लरूप भगवन् ! आप समग्रानेकी कथामें कुशल
 और सदाशक्तियोंमें परिपूर्ण हैं ; कृपया इन कथाने प्रकाशित
 करके मेरा अज्ञान दूर करें' ॥ ३३ ॥ फिर अपने कृत्यगणके
 लिये प्रसन्नतापूर्वक उससे सामन नियम ग्रहण करे और
 सान्निध्य-यथाशक्ति उपासका पावन करे ॥ ३४ ॥
 कथामें विघ्न न हो, इसके लिये पौष मासगोत्र और
 परण करे यथाशक्त मन्त्रद्वारा मन्त्रान्तर्गते नामो-
 क्त जप करे ॥ ३५ ॥ फिर ब्राह्मण, अन्य विष्णुभक्त
 एवं कीर्तन करनेवालोंका नमस्कार करके उनसे पूजा
 करे और उनसे आज्ञा पाकर स्वयं भी आसनपर बैठे

लोकवित्तभनगारपुत्रचिन्ता व्युदस्य च ।
 कथाचित्तः शुद्धमति म लमेत्कलमुचमम् ॥३७॥
 आद्ययोन्यमारम्य सार्वत्रिग्रहान्तकम् ।
 वाचनीया कथा मम्यगधीरकण्ठं सुधीमता ॥३८॥
 कथाविराम कर्तव्यो मम्याह धनिकाग्रयम् ।
 तत्कथामनु काय वै कर्तित्वं वैष्णवैस्तदा ॥३९॥
 मन्त्रमूत्रजयार्थं हि लब्धाहार सुखावहः ।
 हविष्यान्नेन कर्तव्यो ब्रह्मवत् कथार्थिना ॥४०॥
 उपोष्य सप्तरात्र वै शक्तिश्चेष्टृशुभाचदा ।
 घृतपान पयःपानं कृत्वा नै शृणुयात्सुखम् ॥४१॥
 फलाहारण वा भाष्यमेकभोजनं वा पुन ।
 सुत्तमाच्यं भवेद्यत् कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥४२॥
 भोजनं तु यर मन्ये कथाश्रवणकारकम् ।
 नोपवामो वर प्रोक्त कथाविघ्नकरो यदि ॥४३॥
 मसाहमृतिनां पुमां नियमाश्च शृणु नागद ।
 विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥४४॥
 ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावर्यां च भोजनम् ।
 कथाममार्तां मुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाश्रयी ॥४५॥
 द्विदल मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ।
 मधुदुग्धं पर्युपितं ज्ञायान्नित्यं कथाश्रयी ॥४६॥
 काम श्रोत्रं मर्दं मानं मन्सरं लोभमेव च ।
 दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयन् कथाश्रयी ॥४७॥
 केवलं च विप्राणां गुरुगोवतिनां तथा ।
 धीराश्रमहता निन्दार्थं वर्येणः कथाश्रयी ॥४८॥
 रत्नमालावत्पद्मस्यैव पतितव्रतस्यैव तदा ।
 दिशदिश्वन्मांसं च न घटयन् कथाश्रयी ॥४९॥
 सत्यं शौचं दया मौनमार्जव्यं विनयं तथा ।
 उत्तरं मानसं तद्वद्वं कुर्यात्कथाश्रयी ॥५०॥
 दंष्ट्रिषु क्षयी रोगी निर्माश्रयः पापकर्मवान् ।
 अनप्यो मोक्षकाम शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥५१॥
 मयुष्या कायवन्त्या च वन्त्या याच मृतार्थकम् ।

जाय ॥ ३६ ॥ जो पुरुष लोक, सम्यक्, धन, घर और
 पुत्रादिकी चिन्ता छोड़कर 'पुद्गलचित्तसे केवल' कथामें ही ध्यान
 रखता है, उसे इससे श्रवणकण उत्तम फल मिथ्या है ॥ ३७ ॥

बुद्धिमान् वक्ताको चाहिये कि सूर्योदयसे कथा आरम्भ
 करके सांके तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी तरह कथा
 बोलें ॥ ३८ ॥ दोपहरसे समय दो घण्टीक कथा ब्रह्म
 रखें । उस समय कथामें प्रसङ्गके अनुसार वैष्णवोंको
 मगधान्के गुणोंका कीर्तन करना चाहिये—व्यर्थ बातें
 नहीं करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ कथाके समय मन्त्र-मूत्रके
 वेगको काबूमें रखनेके लिये कन्याहार सुखकारी होना है,
 इसलिये ओता केवल एक ही समय हविष्यान्न भोजन
 करें ॥ ४० ॥ यदि शक्ति हो तो सातों दिन नियुद्धार
 रहकर कथा सुने अथवा केवल घी या दूध पीकर सुख-
 पूर्णक श्रवण करें ॥ ४१ ॥ अथवा फलाहार या एक समय एक
 अन्नक ही मांभन करें । जिससे जैसा नियम सुनीतेसे सब
 सके, उसीको कथाश्रवणके लिये ग्रहण करें ॥ ४२ ॥ मैं तो
 उपवासकी अपेक्षा भोजन करना अच्छा समझता हूँ, यदि
 वह कथा श्रवणमें सहायक हो । यदि उपवाससे श्रवणमें
 बाधा पहुँचनी हो तो वह किसी फलमकर नहीं ॥ ४३ ॥

नरदजी । नियमसे समाप्त सुननेवाले पुरुषोंके निष्कम
 सुनिये । विष्णुमणिकी दीक्षासे उचित पुरुष कथाश्रवणकर
 अधिकारी नहीं है ॥ ४४ ॥ जो पुरुष निष्कमसे
 कथा सुने, उसे ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना और
 नित्यस्नान कथा समाप्त होनेपर पञ्चममें भोजन करना
 चाहिये ॥ ४५ ॥ दाल, मधु तैल, गरिष्ठ अन्न, मावदूधिन
 पदार्थ और बासी अन्न—इनका उसे सर्वदा ही त्याग
 करना चाहिये ॥ ४६ ॥ काम, क्रोध, मत्सर, मान, मन्सर,
 लोभ, दम्भ, मोह और द्वेषका तो अपने पास भी नहीं पकड़ने
 देना चाहिये ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्म, ब्रह्मण्य, ब्रह्मण्य, गुरु,
 गोसेवक तथा श्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दा भी
 बचो ॥ ४८ ॥ निष्कमसे कथा सुननेवाले पुरुषको रत्नमाला भी
 अस्वयं स्लेष्ट पत्तिन, गायत्रीहीन द्विज ब्राह्मणोंसे दूर
 करनेवाला तथा भक्तों न माननेवाले पुरुषोंसे दान नहीं
 करनी चाहिये ॥ ४९ ॥ मन्त्र मन्त्र, शौच, दया, मौन,
 सरलता, विनय और उत्तारनाका बर्णन करना चाहिये
 ॥ ५० ॥ धनहीन श्रमणी, किसी व्यय रोगसे पीड़ित,
 मायुहीन, पापी, पुत्रहीन और मुमुक्षु भी यह कथा
 श्रवण करें ॥ ५१ ॥ जिस क्षीय रोगोंमें रक्त गया
 हो जिसके पय ही संगत होकर रह गयी हो, जो

सर्वहर्मा च मा नारी तथा भ्राव्या प्रयत्नतः ॥५२॥
 एतत्पु विधिना भावे तदक्षयतरं भवेत् ।
 अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटिबलफलप्रदा ॥५३॥
 एवं कृत्वा व्रतविधिसुधापनमथाचरत ।
 अन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥५४॥
 अर्किचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ।
 भवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥५५॥
 एवं नगाद्वयद्वेऽसिन समाने भोवृभित्तदा ।
 पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्याविभक्तिः ॥५६॥
 प्रसदत्तुलसीमाळा भोवृम्भबाध दीपताम् ।
 मृदञ्जलाललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥५७॥
 जयशब्दं नम शब्दं शङ्खशब्दं च कारयत् ।
 विघ्नेभ्यो याचकेभ्यश्च विघ्नमर्घं च दीपताम् ॥५८॥
 विरक्तश्वेद्वचच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽङ्गिनि ।
 गृहव्यश्वेतदा इमः कर्तव्यः कर्मक्षान्तये ॥५९॥
 प्रतिश्लोकं तु जुहुयाद्विधिना दक्षमस्य च ।
 पायनं मधु मर्पिष तिलाभादिकसंपुतम् ॥६०॥
 अथवा हवनं कुर्याद्रात्रय्या सुसमाहितः ।
 तन्मयत्वात्सुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥६१॥
 होमादुक्तं शुभो हौम्य दद्यात्तत्फलमिदमे ।
 नानाच्छिद्रनिगोधार्यं न्यूनताधिकष्ठानयोः ॥६२॥
 दोषयो प्रक्षमाय च पठेन्नामसहस्रकम् ।
 तन स्वात्मफलं सव नाम्पसादधिकं यतः ॥६३॥
 द्वादश ब्राह्मणान पञ्चान्नाजयन्मधुपायसैः ।
 दद्यात्सुवर्णं घेनुं च व्रतपूर्णत्वदत्तये ॥६४॥
 शर्त्ता पलत्रयमिदं स्वर्णमिह विधाय च ।
 तत्रास्य पुस्तकं म्याप्य लिखितं ललिताक्षरम् ॥६५॥
 सम्पूज्यावह्नार्घ्यसदुपचारं सदधिणम् ।
 वस्त्रमूपणगन्धार्यं पूजिताय यतात्मने ॥६६॥

बोझ हो, जिसकी संतान होकर मर जाती हो कथा
 जिसका गर्भ मर जाता हो, वह मरतक इत कथको
 सुने ॥ ५२ ॥ ये सब यदि विधिवत् कथा सुनें तो इन्हें
 कथ्य फलकी प्राप्ति हो सकती है । यह अत्युत्तम दिव्य
 कथा कर्तव्यों यहाँका फल देनेवाली है ॥ ५३ ॥

इस प्रकार इस कथकी विधियोंका पालन करके फिर
 उपापन करे । जिन्हें इसके विशेष फलकी इच्छा हो, वे
 जन्माष्टमी-कथके समान ही इस कथाका उपापन करें
 ॥५४॥ किन्तु जो मगानके अकिञ्चन मक्त हैं, उनके
 लिये उपापनका कोई आग्रह नहीं है । वे अकलसे ही
 पवित्र हैं, क्योंकि वे तो निष्काम भगवत्प्रेम हैं ॥ ५५ ॥

इस प्रकार जब मत्तहृष्ट समाप्त हो जाय, तब
 श्रोताओंको अत्यन्त मक्तिपूर्वक पुस्तक और कथाकी पूजा
 करनी चाहिये ॥ ५६ ॥ फिर बत्ता श्रोताओंको प्रसदत्
 तुलसी और प्रसदी मालाएँ दं तथा सब लोग मृदङ्ग
 और शौङ्गकी मनोहर ध्वनिसुन्दर कीर्तन करें ॥ ५७ ॥
 जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खध्वनिका घोष कल्पे
 तथा ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्न दे ॥ ५८ ॥
 श्रोता निरक्त हो तो कर्मकी शान्तिके लिये दूसरे दिन
 गीतापाठ करे, गृहस्थ हो तो हवन करे ॥ ५९ ॥
 उस हवनमें दशमस्तकचक्र एक-एक श्लोक पढ़कर
 विघ्नपूर्वक खीर, मधु, घृत, तिल और अन्नादि
 सामग्रियोंसे आहुति दे ॥ ६० ॥

अथवा एकत्र पितृस गायत्री-मन्त्रद्वारा हवन करे,
 क्योंकि तत्त्वत यह महापुराण गायत्रीरूप ही है ॥६१॥
 होम करनेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके
 लिये ब्राह्मणोंका हवनसामग्री दान कर तथा नाना प्रकारकी
 श्रुष्टियोंको दूर करनेके लिये और विघ्नें फिर जो न्यूनताभिकता
 रह गयी हो, उसके दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनाम-
 का पाठ करे । उससे सभा कर्म मध्य हो जाते हैं क्योंकि
 कोई भी कर्म इससे बढ़कर नहीं है ॥ ६२ ६३ ॥

फिर बारह ब्राह्मणोंको खीर और मधु आदि उत्तम-उत्तम
 पदार्थ लिये तथा कथकी पूर्विक लिय गी और सुकर्ण
 का दान करे ॥ ६४ ॥ सामग्य हो तो तीन ताले
 सोमेका एक सिंहासन बनवाये, उसपर सुन्दर केशरोंमें
 शिथी हुई श्रीमद्भागवतकी पाथी रखकर उसकी आग्रहमात्र
 विविध उपचारोंमें पूजा करे और फिर निजेलिय
 आचार्यको—उमका कथ आभूषण एवं गन्धादिसे
 पूजनकर—श्रिगाके महित समर्पण कर दे ॥६५-६६॥

आचार्याय सुधीर्दृष्ट्वा मुक्तः साक्षादवबन्धनै ।

एव कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥६७॥

फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ।

धर्मकर्मार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न मनुजम् ॥६८॥

कुमारा उवाच

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्मिते ॥६९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ते महात्मान प्रोत्तुर्भागवतीं कथाम् ।

सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥७०॥

शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ।

यथाविधि ततो देवं तुष्टुषु पुरुषोत्तमम् ॥७१॥

तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्ट्या परा ।

तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोरमम् ॥७२॥

नारदश्च कृतायोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरमे ।

पुलकीकृतसर्वाङ्गः परमानन्दसम्प्लुतः ॥७३॥

एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ।

प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥७४॥

नारद उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽसि भवद्भिः करुणापरैः ।

अद्य मे भगवोक्तं सर्वपापहरो हरि ॥७५॥

भवयं सर्वधर्मस्यो वरं मन्ये तपोधना ।

वैकुण्ठस्यो यतः कृष्णः भवणादस्य लभ्यते ॥७६॥

सूत उवाच

एव ह्रवति वं तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ।

परिभ्रमन् समायात शुक्लो यागधरस्तदा ॥७७॥

तत्राययौ पौण्ड्रशार्पिकस्तदा

व्यासात्मजो ज्ञानमहाशिवचन्द्रमाः ।

कथावसाने निजलाभपूर्णः

प्रम्था पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥७८॥

यों करनेसे यह बुद्धिमान् दाता जन्म-मरणके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है । यह सप्ताहपारायणकी विधि सब पापोंकी निवृत्ति करनेवाली है । इसका इस प्रकार ठीक-ठीक पालन करनेसे यह मातृव्य भागवत-पुराण अमीष्ट फल प्रदान करता है तथा धर्म, धन, काम और मोक्ष—चारोंकी प्राप्ति साधन हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७-६८ ॥

सनकादि कहते हैं—नारदजी ! इस प्रकार तुम्हें यह सप्ताहपरायणकी विधि हमने पूरी-पूरी सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो ? इस श्रीमद्भागवतसे भोग और मोक्ष दोनों ही हाथ ध्या जाते हैं ॥ ६९ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकाजी ! यों कहकर महामुनि सनकादिने एक सप्ताह तक विविध प्रकार के कथाप्रवचन, परम पवित्र तथा भोग और मोक्ष प्राप्त करनेवाली मागककथाका प्रवचन किया । सब प्राणियों ने निष्कर्षक इसे श्रवण किया । इसके पश्चात् उन्होंने विविध प्रकार के मागवत पुरुषोत्तमकी स्तुति की ॥ ७०-७१ ॥ कथाके अन्तमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे बड़ी पुष्टि मिली और वे तीनों एकत्र तत्त्व होकर सब जीवोंका चित्त अपनी ओर आकर्षित करने लगे ॥ ७२ ॥ अपना मनोरथ पूरा होनेसे नारदजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई, उनका सारे शरीरमें रोमाञ्च हो गया और वे परमानन्दसे पूर्ण हो गये ॥ ७३ ॥ इस प्रकार कथा श्रवणकर भागवतके प्यारे नारदजी हाथ जोड़कर प्रमगद्गद वाणीसे सनकादिसे कहने लगे ॥ ७४ ॥

नारदजीने कहा—मैं वन्द्य हूँ, आप लोगों ने करुणा करके मुझे बड़ा ही अनुगृहीत किया है, आज मुझे सर्व पापहारी भगवान् श्रीहरिकी ही प्राप्ति हो गयी ॥ ७५ ॥ तपोधनो ! मैं श्रीमद्भागवतश्रवणसे ही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ मानता हूँ, क्योंकि इसके श्रवणसे वैकुण्ठ (गोकोक)-विहारी श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकाजी ! वैष्णवश्रेष्ठ नारदजी यों कह ही रहे थे कि यहाँ धूमकेतु-निरते योगेश्वर शुक्लदेवजी आ गये ॥ ७७ ॥ कथा समाप्त होते ही व्याससन्तान श्रीशुकदेवजी यहाँ पधारे । सोनूद कर्कश-सी आयु, आत्मगाम्भीर्यपूर्ण, ज्ञानरूपी महासागरका सर्वधन करनेके नियम चन्द्रमाक समान वे प्रमत्ते धीरे धीरे श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे थे ॥ ७८ ॥

इष्टा सदस्या परमोऽरुतेजस
सद्यः समुत्थाय दधुर्महासनम् ।
प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयन्मुनिं
म्वितोऽवदत्समृशुतामलां गिरम् ॥७९॥

श्रीशुक उवाच

निगमकल्पतरोर्गलित फलं
शुकमुत्तमदमृतद्रवसंयुतम् ।
पियत भागवत रसमालयं
सुहृद्गो रसिकश्च भुवि भाषुका ॥८०॥

धर्म प्रोज्झितकंसवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वस्तुत्वमत्र वस्तु शिवदत्तप्रयोनमूलनम्
श्रीमद्भगवते महामुनिकृतं किं वा परैरिभ्यः
सद्यो हृद्यवरुच्यतेऽत्र कृतिभिः शुभ्रभूषितस्तत्त्वज्ञानम् ८१
श्रीमद्भगवत पुराणतिलकं भद्रैष्यवानां धनं
यस्मिन् परमहंसमेवममलं ज्ञानं पर गीयते ।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिमद्वित नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तत्त्वदृष्टान् प्रपठन् विचारजपरा भक्त्या विमुक्त्येव
म्यगं सत्यं च कैलासे बंङ्गुलं नास्त्ययं रम ।
अतः पिकन्तु सङ्गाम्या मा मा मुञ्चत कदिष्वित् ॥८२॥

सूत उवाच

एवं ब्रुवाण मतिं यात्रारायणौ
मध्यं सभायां हरिगविरासीत् ।
प्रहाडयत्पुद्गवपास्युनाभिभिः
शुतं सुरर्षिस्तमपूजयन् तान् ॥८४॥
इष्टा प्रमत्तं महत्प्रमत्तं हरिं
त चक्रिन् भीतनमप्रतन्त्रम् ।
भवा भवान्या फलामनन्तु
तयागमन्कीर्तनानाय ॥८५॥

प्रहात्मालभार्गी तरलग्नितया आदृष्ट फांम्यधारी

परम तेजस्वी शुकदेवजीको देखकर सारे समासद्
कल्प हो गये और उन्हें एक ऊँचे आसनपर
बैठाया । फिर देवर्षि नारदजीने उनका प्रेमपूर्वक पूजन
किया । उन्होंने मुखपूर्वक बैठकर कहा—‘आपलोग मेरी
निर्मल वाणी सुनिये’ ॥ ७९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—रसिक एवं भाषुक जन ।
यह श्रीमद्भगवत वेदरूप कल्पद्रुमका परिष्कृत फल है ।
श्रीशुकदेवका शुकके मुखका संयोग होनेसे अमृतससे
परिपूर्ण है । यह रस-ही-रस है—इसमें न छिछका है
न गुठली । यह इसी ओकमें सुख है । जबतक शरीरमें
चेतना रहे, तबतक आपजोग बार-बार इसका पान
करें ॥ ८० ॥ महाभुनि व्यासदेवने श्रीमद्भगवत महा-
पुराणकी रचना की है । इसमें लिख्य—लिख्यम
परम धर्मका निरूपण है । इसमें ब्रह्मन्तःकरण सत्पुरुषों-
के जानने योग्य कल्पाणकारी वास्तविक वस्तुका वर्णन
है, जिससे तीनों तारोंकी शान्ति होती है । इसका आश्रय
लनेपर दूसरे शास्त्र अपना साधनकी आवश्यकता नहीं
रहती । जब कभी पुण्यात्मा पुरुष इसके अवगति ईच्छा करते
हैं, तभी इन्हीं अकिल्मष उनके हृदयमें अवस्थित हो
जाता है ॥ ८१ ॥ यह भागवत पुराणोंका निष्कल और
वैष्णवोंका धन है । इसमें परमहंसोंके प्राप्य विद्युद्ब्र
ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और
भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया
है । जो पुरुष मच्छिद्रक इसका अवग, पठन और मनन
में लग्न रहता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥
यह रस स्वर्गलोक, स्वर्गलोक, कैलास और वैकुण्ठमें
भी नहीं है । इसलिये भाग्यवान् श्रोताओं ! तुम इसका
न्यत्र पान करो; इसे कभी मत छोड़ो, मत छोड़ो ॥ ८३ ॥

सूतजी कहते हैं—श्रीशुकदेवजी इस प्रकार कह
ही रहे थे कि उम समाके श्रीचोवीच प्रहाद, बलि,
उदय और अर्जुन आदि पार्थिवोंके सहित साक्षात् श्रीहरि
प्रकट हो गये । तब देवर्षि नारद नम्रगान् और उनके
भक्तोंकी यथोक्ति पूजा की ॥ ८४ ॥ भगवान्का प्रसन
देखकर देवर्षिन उन्हें एक विशाल महासनपर बैठा
दिया और मन्त्रादि उनके सामने संयोजित करने लगा । उस
कीर्तनको सुनकर लिये श्रीपार्थिवीरु सहित महादेवजी
और ब्रह्माजी भी आय ॥ ८५ ॥ कीर्तन आरम्भ हुआ ।
प्रहादजी तो चक्षुमणि (कुर्निक) हाथके कारण
कटाक्ष यमान गग, उदयजीने हाथों उदय ली,

वीणाधारी सुरपिः स्वरकुण्डलतया रामकर्तारुनोऽमृत।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमार।
यत्राप्रे भाववक्ता सरमरचनया व्यामपुत्रो वमूषा ८६।

ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र
भक्त्यादिकानां नन्वत्सुतेजसाम् ।

अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य
हरि प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्त ॥८७॥

मनो वर भाववृत्तात् वृणुष्व
प्रीतः कथाकीर्तनवोऽपि साम्प्रतम् ।

श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्ना
प्रेमार्द्रचित्ता हरिपूविर ते ॥८८॥

नगाहगाथस्तु च सर्वभक्तै
रेभिस्त्वया भाष्यमिति प्रयत्नात् ।

मनोरथोऽथ परिपूरणीय
स्तवेति चोक्तत्वान्तरधीयताम्युत ॥८९॥

ततोऽनमत्तश्चरणेषु नारद
स्तथा शुकदीनपि तापनाथ ।

अथ प्रहृष्टाः परितटमोहाः
सर्वे ययुः पीतक्यामृतास्ते ॥९०॥

भक्ति सुताम्यां सह रक्षिता सा
शास्त्रे स्वकीयेऽपि सदा शुकैः ।

अतो हरिर्भागवतस्य सेवना-
धिर्त्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥९१॥

दारिद्र्यदुःखान्तरदाहितानां
मात्पापिन्धार्थपरिमर्दितानाम् ।

र्ममारसिन्धौ परिपास्तितानां
क्षेमाम वै भागवतं प्रगर्वति ॥९२॥

मौनक उवाच

शुकलोक कदा रामे गोकर्णेन कदा पुन ।

सुरपये कदा ब्रह्मैश्वर्यं मे संपश्यं त्विमम् ॥९३॥

सुत उवाच

माकृष्यनिर्गमादिशृङ्गार्थभिकगते कलौ ।

नवमीतो नभस्ये च कयारम्भं शुकोऽकरोत् ॥९४॥

परीक्षिन्प्रवणान्तं च फलां वर्षशतद्वय ।

छन्द शुचीं नवम्यां च घेनुजोऽकथयन्कथाम् ॥९५॥

देवर्षि नारद वीणाधारी ध्वनि करने लगे, स्वर-सिंहान (गान विधा) में कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अछापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग वज्राना आरम्भ किया, सनकादि वीच-वीचमें अथबोध करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह तरहकी सरस अङ्गमङ्गी करके भाव बनाने लगे ॥ ८६ ॥

इन सबके बीचमें परम तेजस्वी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे । ऐसा अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये और हम प्रकार कहने लगे—॥ ८७ ॥ 'मै गृहस्थी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हैं, तुम्हारे भक्तिभाक्ते इस समय मुझे खरने वरमें कर लिया है । अतः तुम्हें मुझसे कर माँगो ।' भगवान् के ये वचन सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और प्रेमार्द्र चित्तसे भगवान् से कहने लगे ॥ ८८ ॥

'भगवन् ! हमारी यह अम्बिकाया है कि भक्तियोग में भी जहाँ-कहाँ सदाशक्तता हो, वहाँ आप इन पार्श्वोंके सहित अक्षय पवारें । हमारा यह मनोरथ पूर्ण कर दीजिये ।' भगवान् 'क्षपास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये ॥ ८९ ॥

इसके पश्चात् नारदजीने भगवान् तथा उनके पार्श्वोंके चरणोंको लक्ष्य करके प्रणाम किया और फिर शुकदेवजी आदि तपस्वियोंको भी नमस्कार किया । कथा श्रुत्वा पान करनेसे सब लोगोंको बड़ा ही आनन्द हुआ, उनका साग मोह नष्ट हो गया । फिर वे सब लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ९० ॥ उस समय शुकदेवजीने भक्तियों उसके पुत्रोंसहित अपने शस्त्रमें स्थापित कर दिया । इसीसे मयाकृष्ण सेक्त करनेसे श्रीहरि वैष्णवोंके हृदयमें आ किराजते हैं ॥ ९१ ॥

जो लोग दक्षिणके दुष्कृत्यकी आलसे दग्ध हो रहे हैं, जिन्हें मया-पिशाचीने रौंद डाला है तथा जो संसार समुद्रमें डूब रहे हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत सिंहाद बर रहा है ॥ ९२ ॥

श्रीमद्भागवतीने पूछा—सूतजी ! शुकदेवजीने राजा परीक्षितको, गोकर्णने धनुषकरीको और सनकादिन नारदजीको किस्त-किस्त समय यह भन्व सुनाया था—मेरा यह संशय दूर कीजिये ॥ ९३ ॥

सूतजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णके स्वधाममानके बाद कलियुगके तीस वरसि कुछ अधिक वीत जानेपर मात्रपद भासकी श्रुति नक्षत्रीके शुकदेवजीन कथा आरम्भ की थी ॥ ९४ ॥ राजा परीक्षितक कथा सुननेके बाद कलियुगक दो सौ वर्ष वीत जानेपर आपाद भासकी श्रुति नक्षत्रीके गोकर्णजीने यह कथा सुनायी

इष्टा सदस्या परमोस्तजस
सद्य समुत्थाय ददुर्महासनम् ।
प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं
स्वितोऽवदत्समृणुतामलां गिरम् ॥७९॥

श्रीभूक्त उवाच

निगमकल्पतरोर्मलितं फलं
शुक्लमुत्तममृतद्रवसंयुतम् ।
पिवत भगवत रसमालयं
मृदुरहो रसिका श्रुति भाषुका ॥८०॥

धर्म श्रोत्रितकैतवोऽत्र परमा निर्मल्यराणां सर्वा
वद्य वास्तवमत्र वस्तु दिवदं तापत्रयोन्मृउनम् ।
श्रीमद्भागवत महासुनिकृते किं वा परैरिष्वरः
मया ह्यवच्छ्रुतेऽत्र कृतिभिः श्रुधूपभिस्तत्त्वणात् ८१
श्रीमद्भागवत पुराणतिलकं यद्विष्णवानां धन
यस्मिन् पारमार्थ्यमेवममलं ज्ञानं पर गीयते ।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिमहित नैककर्म्यामाविष्कृत
तत्त्वमृण्वन् प्रपठन् विचारणपरा भक्त्या विमुच्येश्वरः
स्वर्गे सत्य च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्यय रसः ।
अत पिबन्तु सद्भाग्या मा मा शुभत कश्चिच्चिन् ॥८२॥

सून उवाच

एवं धृवाण मति वात्सरायणौ
मन्ये सभायां हरिराविरासीत् ।
प्रहायत्युदयफाल्गुनादिभि
श्रुत सुरर्षिस्तमपूजयत् तान् ॥८४॥
इष्टा प्रमन्नं महत्यामे हरिं
त चक्रि रकीर्तनमप्रतस्तदा ।
भया भवान्या फमलापनस्तु
सत्रागमत्कीर्तनार्थनाथ ॥८५॥
प्रह्लादमालभागी तरलगनितया आदय कर्मस्थधारी

परम तेजसी शुकनेत्रवीर्यो देखकर सारे सम्पत्
सम्पत् खड़े हो गये और उन्हें एक ऊँचे आसनपर
बैठया। फिर देखीं नारदजीने उनका प्रेमपूर्ण पूजन
किया। उन्होंने सुसूक्ष्म कहकर कहा—‘आपलोग मेरी
निर्मल वाणी सुनिये’ ॥ ७९ ॥

श्रीभूक्तनेत्रजी बोले—रसिक एव भाषुक जन ।
यह श्रीमद्भागवत के रूप कल्पलताका परिपक्व फल है ।
श्रीभूक्तनेत्रका शुकनेत्र के मुखका संयोग होनेसे धूम्ररससे
परिपूर्ण है। यह रस-ही-रस है—इसमें न छिछका है
न गुठली। यह इनी छोकेमें सुकम है। जम्कत शरीरमें
केना रहे, तबतक आपलोग बार-बार इसका पान
करें ॥ ८० ॥ मधुमुनि व्यासदेवने श्रीमद्भागवत म्हा-
पुराणकी रचना की है। इसमें निष्कण्ट—निष्कण्ट
परम धर्मका निष्कण्ट है। इसमें श्रुदान्त-करण स्तुत्यमें
के जानने पाय कल्याणकारी वास्तविक वस्तुका वर्णन
है, जिससे तीनों तापोंकी शान्ति होनी है। इसका आनन्द
लेनेपर दूसरे शास्त्र अपना साधनकी वास्तविकता मही
रखती। जब धमी पुण्यात्मा पुरुष हमके अकाली इच्छा करते
हैं, तभी ईश्वर अविलम्ब उनके हृदयमें अवकट हो
जाता है ॥ ८१ ॥ यह भागवत पुराणोंका तिनक और
वैष्णवोंका धन है। इसमें परमार्थोंके प्राप्य विष्णु
ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और
भक्तिके महित निष्ठितमार्गको प्रकाशित किया गया
है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक हमका अकण, पठन और मनन
में तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥
यह रस स्वर्गलोक, सत्यलोक, वैष्णव और वैकुण्ठमें
भी नहीं है। इसलिये भागवान् श्रीलाजो। हम इसका
नूब पान करा, इसे कभी मत छोड़ो, मन छोड़ो ॥ ८३ ॥

सूनजी कहते हैं—श्रीभूक्तनेत्रजी इस प्रकार कह
ही रहे थे कि उस समाके बीचोबीच प्रहाद, बलि,
उदय और अर्जुन आपि पार्थोंके सहित साष्टाक्ष श्रीहरि
प्रकट हो गये। तब देखीं नारदन मन्मथन् और उनके
भक्तोंकी यथोचित पूजा की ॥ ८४ ॥ मन्मथको प्रसन्न
देखकर हर्षाने उन्हें एक विशाल मिश्रमनार देकर
दिया और मन्मथ लोग उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस
कीर्तनको देखनेके लिये श्रीपार्थजीक सहित महर्षि
और ब्रह्माजी भी आये ॥ ८५ ॥ कीर्तन आरम्भ हुआ।
प्रह्लादजी तो अचलगति (पुनलि) होनेके कारण
कन्याउ बगाने लगे, उदयजीने हाँसे उठा मी,

श्रीराधाकृष्णाय नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

प्रथमः स्कन्धः



यो लीलास्यस्यलभो गतोऽलोलोऽपि खलताम् ।
स लीलावपुषः पालयन् लीलार्थमिदमे ॥

तस्मात्पि कलौ प्राप्ते त्रिशद्वर्षगत मति ।
 ऊषुस्त्रे सिते पथे नवम्यां व्रजण सुताः ॥९६॥
 इमेतत्ते समाख्यात यत्परोऽहं त्वयानव ।
 कलौ भगवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥९७॥

कृष्णप्रियं सकलकल्पनाशन च
 शुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ।

मन्त कथानकमिह पिबतानरेण
 लोके हि तीर्थपरिघीलनसेवया किम् ॥९८॥

स्वपुलमपि वीक्ष्य पादहस्त
 वदति व्रतः किञ्च तस्य कर्णामूले ।

परिहर भगवत्कथासु मवान्
 प्रसुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥९९॥

अतारे संसार विषयविषयसङ्गतुलविष
 क्षणार्थं क्षेमार्थं पिबत शुक्रगाथातुलसुधाम् ।

किमर्थं चर्य भो व्रजत कुपये कृत्सितकथे
 परीक्षित्वाही यन्मृगजगत्सुखयुक्तिरूपेनो ॥१००॥

गसप्रवृत्तसंस्थेन श्रीशुकैर्नेरिता कथा ।
 कण्ठे सम्बध्यत येन स वैकुण्ठप्रभुर्मवेत् ॥१०१॥

इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं
 मपदि निगदितं तं शास्त्रपुञ्जं विनाक्ष्य ।

जगति शुक्रकथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित्
 पिब परसुखद्वयोर्द्वन्द्वसकभसारम् ॥१०२॥

पतां यो नियततया शृणोति भक्त्या
 यश्चर्त्तनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्र ।

तौ सम्मानविभक्तपास्तुलं लभेते
 याथाभ्यासिहि सुवने किमप्यमाप्नुय ॥१०३॥

पी ॥०५॥ इसके पीछे कलियुगके तीस वर्ष और निरुक्त
 ज्ञानेपर कार्तिक शुक्ल नवमीसे मनःशान्तिने कथा आरम्भ
 की थी ॥९६॥ निष्ठाप शौनकाजी ! आपने जो कुछ कहा
 था, उसका उत्तर मैंने आपको दे दिया । इस कलियुगमें
 भागवतकी कथा भवरोगकी रामबाण औषध है ॥९७॥

सतजन ! आपलोग आदरपूर्वक इस कथामुक्तक पान
 कीजिये । यह श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय, सम्पूर्ण पणोंका
 भारा करनेवाला, मुक्तिकर एकमात्र कारण और मक्तिकर
 प्रधानवाला है । लोकमें अन्य कल्याणकारी सामर्थ्यका
 विचार करने और तीर्थोंका सेवन करनेसे क्या होता
 ॥ ९८ ॥ अपने हुक्मों हाथमें पाश छिये देखकर यमराज
 उसको कानमें कहते हैं— देखो, जो भगवान्की कथा-
 शतमें मत्त हो खड़े हों, उनसे दूर रहना, मैं औरोंको ही
 दण्ड देनेकी शक्ति रखता हूँ, वैष्णवोंको नहीं ॥ ९९ ॥
 इस असार संसारमें विषयकर्म निरुद्ध आसक्तिके कारण
 व्याकुल बुद्धिवाले पुरुषों । अपने कल्याणके उद्देश्यसे आगे
 छानके छिये मैं इस शुक्लकथारूप अनुपम सुवाक्य पान
 करो । प्यारे माहव्यो ! निन्दित कथाओंसे मुक्त कुत्रहमें व्यर्थ
 ही क्यों मत्त रहे हो ? इस कथाके कानमें प्रवेश करते
 ही मुक्ति हो जाती है, इस बातके साक्षी एका परीक्षित
 हैं ॥ १०० ॥ श्रीशुकदेवजीने प्रमत्तके प्रवाहमें स्थित होकर
 इस कथाको कहा था । इसका जिसके कण्ठसे सम्बन्ध
 हो जाता है, वह वैकुण्ठका स्वामी बन जाता है ॥ १०१ ॥
 शौनकाजी ! मैंने जनेक शास्त्रोंको देखकर आपको यह परम
 गोप्य रहस्य अभी-अभी सुनाया है । सब शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका
 यही निबोध है । संसारमें इस शुक्लप्रससे अधिक पवित्र
 और कोई वस्तु नहीं है, जन आपलोग परमनन्दकी प्राप्तिके
 छिये इस शुद्धशक्तिकरूप रसकर पान करें ॥ १०२ ॥
 जो पुरुष नियमपूर्वक इस कथाका मक्ति-माध्यसे श्रवण
 करता है और जो शुद्धान्तकरण समाधिकात्मिक सामने इसे
 सुनाता है, वे दोनों ही विविधा भू-भूत पापन करनेके
 कारण इसका यथाय पत्र पाते हैं—उनके छिये निजकीमें
 कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता ॥ १०३ ॥

इति श्रीमद्भागवतपुराण उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये
 श्रवणनिर्भक्तियनं नाम पटोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ ममात्मभिर्दं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम् ॥

॥ इति च तत्सप्त ॥

गुरुद्व-परीक्षित



भीष्मकृष्णजीस परीक्षितकी प्राप्तिमा

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

प्रथमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

भीसूतजीसे शौनकादि ऋषियोका प्रस
मद्वारा

ब्रह्मायस्य यतोऽन्वयादितरत

धार्थव्यभिच म्पराद्

तने प्रज्ञ हदा य आन्कित्रय

प्रायन्ति यत्सूरय ।

तज्ज्ञोऽगिमृगं यथा विनिमया

यत्र त्रिमूर्तोऽमृता

धाम्ना म्यन गता निम्नदृष्ट

मृत्यं पर धामहि ॥ १ ॥

धम प्राज्झितर्कनराज्य परमा

निमन्मगणां मतां

वप यान्तरमेव यन्तु मिद

तापत्रयान्मूलनम् ।

भाष्यद्रागवत महामुनिहृत

रिं षा पर्गेश्वर

गणपतः स्वर्गस्थः नृपतिभिः

गुह्यपुत्रिभिराज्ञात् ॥ २ ॥

निगदच्छतगगप्तिने वने

तुम्भुगामृतं रक्तपुनम् ।

विमने इम जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रत्यक्ष होते हैं—
 क्योंकि यह मर्मा मन्त्र पत्राणि अनुगत है और
 अमर पत्राणि वृषत् है, जन्म नहीं, चरन है;
 परतन्त्र नहीं, स्वयंप्रकाश है, जो प्रकाश जगत् दिव्यमार्ग
 महर्षि प्रयुक्त ठहरे आने में अत्यन्त ही विमने उग रेखातानत्र
 तन किया है विमरु गन्धधर्म बड़-बड़ विद्वान्
 भी मानित हो जाते हैं जैसे साधव गुरुरक्षिणों में जन्म
 वर, ब्रह्मे स्वयंवर और स्वयंमे तन्त्रा धर्म होता है, ऐसे
 ही विमने यह विगुणमयी जगत्-स्वप्न-सुषुप्ति
 सृष्टि किया जानर भी अभिमान-मत्तामे गन्धर्व प्रवृत्त
 हो गयी है, उस अपनी स्वयंप्रकाश गणित मारा और
 मन्त्र मया और मायकर्ममे दुगत मुक्त शनरात्र
 एव गन्धर्व तन्त्रमात्र हय एव बन है ॥ १ ॥
 मासुनि जन्मारे दुग निमित्त इम धीनद्वारा
 मन्त्रागुणों में साधकान् वर्य वरनन गति एव
 अनन्त निरन्तर हुआ है । इमने दुष्ट-वर्ण मासुनी
 व जननरूप एव बनित वरु तन्त्रमात्र निरन्तर
 हुआ है, ज्ञानियों के लिये तन्त्र नान वरनरूप एव तन्त्र
 पन्थान बनरूप है । अर अर शिष्टी मानन एव तन्त्रमे
 वर प्रवृत्त । विमनर भीगुणों दुष्ट इम तन्त्रा
 इम वर है इम यही तन्त्र अन्तर एव है वर
 अन्तर वर वर एव है ॥ २ ॥ एव तन्त्रा
 वर तन्त्रा वर वर वर वर वर वर वर
 है । तन्त्र तन्त्र वर वर वर वर वर वर
 वर वर वर वर वर वर वर वर वर वर

पिबत भागवतं रममालयं

सुहृदो रमिक भुवि भाषुकाः ॥ ३ ॥

कथाप्रारम्भ

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे श्रपयः शौनकादयः ।

तत्र स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥

त एकदा तु मुनयः प्रातर्हृतहृताधयः ।

सत्कृतं हृतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५ ॥

कथय उचुः

त्वमा लुह पुराणानि सेतिहामानि चानघ ।

आस्पृशान्पुष्पवीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ ६ ॥

यानि कदविदां श्रेष्ठो भगवान् वादरायणः ।

अन्ये च मुनयः हृत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ।

भूयः स्निग्धस्य स्निग्धस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥

तत्र तत्राह्वसाऽऽयुष्मन् भवता यद्विनिश्चितम् ।

पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तत्र शसितुमर्हसि ॥ ९ ॥

प्रायेणात्पायुषः सम्य कलाशमिन युगे जना ।

मन्दा सुमन्दमतयो मन्दभाग्या अप्युताः ॥ १० ॥

भूरीणि सूरिकर्माणि भोतव्यानि विभागाश्च ।

अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ।

ब्रूहि नः भद्रधानानां येनात्मा सम्प्रसीदति ॥ ११ ॥

श्रुत्वा, गुह्यं आदि व्याख्यं अंशं तनिक भी नहीं है । यह मूर्तिमान् रस है । जबतक शरीरमें चेतना रहे, तब-तब इस विन्य भगवद्-रसका निरंतर बार-बार पान करते रहो । यह पृथ्वीपर ही सुख है ॥ ३ ॥

एक बार भगवान् विष्णु एवं देवताओंके परम पुण्यस्थ क्षेत्र नैमिषारण्यमें शौनकादि श्रुतियोंने भगवत्-प्राप्तिकी इच्छासे सहस्र वर्षोंमें पूरे होनेवाला एक भगवान् यहका अनुष्ठान किया ॥ ४ ॥ एक दिन उन ऋषीोंने प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि नियुक्तियोंसे निवृत्त होकर स्नातीका पूजन किया और उन्हें ऊँच आसनपर बैठाकर बड़े आदर-से यह प्रश्न किया ॥ ५ ॥

श्रुतियोंने कहा—सूत्रा । आप लिप्याप हैं । आपने समस्त इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रोंका विनिर्मुक्त अध्ययन किया है तथा उनकी मस्तीमौति व्याख्या भी की है ॥ ६ ॥ वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् बादरायणने एवं भगवान्के स्मृण-निर्गुण रूपकी जानकारीवाले दूसरे मुनियों-ने जो कुछ जाना है—उन्होंने जिन विषयोंका ज्ञान है, वह सब आप वास्तविक रूपमें जानते हैं । आपका हृदय बड़ा ही सरल और शुद्ध है, इसीसे आप उनकी कृपा और अनुग्रहके पात्र हुए हैं । गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यको गुप्त-से-गुप्त बात भी बता दिया करते हैं ॥ ७-८ ॥ आयुष्मन् । आप कृपा करके यह मतकाइये कि उन सब शास्त्रों, पुराणों और गुरुजनोंके उपदेशोंमें कष्टियुगी जीवोंके परम कल्याणकर सहाज साधन आपने क्या निश्चय किया है ॥ ९ ॥ आप संन-समानके मूरण हैं । इस कष्टियुगमें प्रायः लोगोंकी आयु कम हो गयी है । साधन करनेमें लोगोंकी इच्छा और प्रवृत्ति भी नहीं है । श्रेष्ठ व्याख्या हो गये हैं । उनका धारण ही मन्द है ही, समझ भी थोड़ी है, इसका साथ ही वे नामा प्रचारकी विषय-वाचाओंसे घिरे हुए भी रहते हैं ॥ १० ॥ शास्त्र भी बहुत-से हैं । परन्तु उनमें एक निश्चित साधनका नहीं, अनेक प्रकारके कर्मोंका वर्णन है । साथ ही वे इतने घड़े हैं कि उनका एक अंश सुगना भी कठिन है । आप परोपकारी हैं । अपनी बुद्धिसे उनका सार निकालकर प्राणियोंके परम कल्याणके लिये ॥ यद्वाच्यंको सुनाइये, जिससे हमारे अन्तःकरणकी बुद्धि प्राप्त हो ॥ ११ ॥

घृत जानामि भद्रं ते भगवान् मात्स्वतां पति ।

द्वर्ष्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥१२॥

तत्र शुभ्रपमाणानामर्हस्यज्ञानुवर्णितम् ।

यस्यावतरो भूतानां वेमाय च भवाय च ॥१३॥

आपन्न ममृति पौरां यक्षाम विषयो गृणन् ।

ततः सद्यो निमुच्येत यद्विमेति स्वयं भयम् ॥१४॥

यत्पाप्ममभया घृत मुनयः प्रशमायनाः ।

सद्य पुनन्त्युपस्पृष्टां स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥१५॥

को वा भगवत्तत्तस्य पुण्यश्लोकेऽववर्त्मन ।

शुद्धिक्वमो न मृणुयाद्यश्च कलिमलापहम् ॥१६॥

तस्य कर्मोपुदराणि परिगीतानि हरिभि ।

ब्रूहि नः भद्रधानानां लीलया दधतः फलाः ॥१७॥

अधाम्प्याहि हरर्धमवतारकथाः शुभा ।

लीला विदधतः स्वर्गमीश्वरस्यात्ममायया ॥१८॥

वयं तु न चित्प्याम उक्तमश्लोकविक्रमे ।

यत्पृष्वतां रमन्नानां स्वादु म्यादु पद पदे ॥१९॥

कृतवान् किल धीयाणि सह रामेण कथय ।

अतिमर्त्यानि भगवान् गूढं कपटमानुषः ॥२०॥

कलिमागतमाश्रय क्षेत्रजमिन् वैष्णववयम् ।

आमीनां दीपध्वज कथायां मधुणा हन् ॥२१॥

तर्तनः मंदर्जिना धात्रा दुर्मर्तं निमिषीपताम् ।

कलिं मत्स्वहं पुमां कण्ठपाश इराणशम् ॥२२॥

प्यरे मुनजी । आपका कल्याण हो । आप तो जानते ही हैं कि यदुवशियोंके रक्षण भक्तकर्मका भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीके गर्भमें क्या करनेकी इच्छासे अक्रीय हुए थे ॥ १२ ॥ हम उमे सुनना चाहते हैं । आप क्या करके हमारे प्रिये उसका वर्णन कीजिये, क्योंकि भगवान्का अवतार जीवोंके परम कल्याण और उनकी भगवद्भक्त्यर्थी समृद्धिके लिये ही होता है ॥ १३ ॥ यह जीव जन्म-मृत्युके घोर चक्करमें पड़ा हुआ है—इस स्थितिमें भी यदि वह कभी भगवान्के मङ्गलमय नामका उच्चारण कर ले तो उसी क्षण उससे मुक्त हो जाय, क्योंकि स्वयं मय भी भगवान्से डरता रहता है ॥ १४ ॥ सुनजी ! परम बिरुद और परम ज्ञान्त मुनिजन भगवान्के श्रीवर्णोंकी शरणमें ही रहते हैं, अतएव उनके स्वर्धुन्यासे संसारके जीव तुरंत पवित्र हो जाते हैं । इधर गाढ़ाजीके जल्यक्त बहून दिनोंक सेवन किया जाय, तब कहीं पवित्रता प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ ऐसे पुण्यात्मा मक्त जिनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं, उन भगवान्का कलिमशहारी पवित्र यश मखा, आत्मशुद्धिकी इच्छावात्त ऐसा क्वैन मनुष्य होगा, जो ध्वज न करे ॥ १६ ॥ वे लीलासे ही अवतार धारण करते हैं । नारदादि महारमाओंने उनके उदार कर्मका गान किया है । हम श्रद्धालुओंके प्रति आप उनका वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

शुद्धिमान् सुनजी ! सबमम्य प्रभु अपनी योगमाया से स्रष्टृन्द रीम करते हैं । आप उन धीहरिकी मङ्गलमयी अवतार-कथाओंका अव वर्णन कीजिये ॥ १८ ॥ पुण्यकिर्ति भगवान्की रीत्या सुननेसे हमें कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि रसज्ञ आनन्दोंका पद-पद पर भगवान्की लीलाओंमें नयनसे रसमय अनुभव होता है ॥ १९ ॥ भगवान् धीरूष्ण अपनेकर दियाये हुए थे, योगोंके समस्त एमी चेष्टा करत थे मानो कोई मनुष्य हों । परन्तु उन्होंने कदापिभीके साथ एमी लीलाएँ भी की हैं, ऐसा पदक्रम भी प्रकट किया है, जो मनुष्य नहीं कर सकते ॥ २० ॥ कश्चिद्गुणों आया जानकर हम वैष्णवक्षेत्रमें हम श्रीवर्णकीन मयका संरक्ष्य करके बैठे हैं । श्रीहरिकी कथा सुननेके लिये हमें अरुण्य प्राप्त है ॥ २१ ॥ यह कश्चिद्गुण अन्य पदोंकी पवित्रता और शक्तिका माश करनेवाला है । इससे पार पामा कटित है । जैसे समुद्रसे पार जाननेमेंसे कर्णधर मिल जाय, उसी प्रकार हमसे पार पानकी इच्छा एतन्नाह हम-

मृदि यागधरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मधर्मणि ।

लोगोंसे ब्रह्माने आपको मित्रिया है ॥ २ ॥ धर्म-
रक्षक, ब्राह्मणभक्त, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके जाने
घाममें पधार जानेपर धर्मने अब विस्तकी क्षण छी
है—यह बताइये ॥ २१ ॥

म्यां क्षाप्रामघ्नोपत धम कं शरणं गत ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथम-
स्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्याय

भगवत्कथा और भगवत्कथिका माहात्म्य

प्राप्त उवाच

इति मम्प्रभमं दृष्टा विप्राणां रामहर्षणि ।

प्रतिपूज्य वचस्तपो प्रवक्तुमुपपन्नम् ॥ १ ॥

सूत उवाच

य प्रव्रजन्तमनुपतमपतकृत्यं

द्वैपायनो विरहकातर आशुदाय ।

पुत्रति तन्मयतया तस्मैऽभिनेदु

स्त्वं मधुभूतहृदय मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥

य ध्यानुभासमन्त्रिभूतिगात्रमक

मध्यान्मर्त्तपमवितिनीपतां तमाऽन्धम् ।

ममारीणां करुणसाऽह पुण्यगुहं

मं ध्यानुमनुपयामि गुरुं मृनानाम् ॥ ३ ॥

नागायण नमस्कृत्य नरं च नगणमम् ।

दर्शी मग्धनीं ध्याय मना उपमुनीयम् ॥ ४ ॥

श्रीन्यासजी कहते हैं—दौनकादि ब्रह्मजाती श्रुतियों
के ये प्रथम सुनकर रोम्हर्षणके पुत्र उपप्रभवाको बड़ा ही
आनन्द हुआ । उन्होंने श्रुतियोंके इस महत्त्वमय प्रभ-
व अभिनन्दन करके कहना आरम्भ किया ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—निष्ठ सम्म श्रीशुकदेवजीका
यहोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां सैमिक-वैदिक
कर्मोंके अनुष्ठानका अस्तर भी नहीं आया था, उन्हें
अकेले ही संन्यास लम्बेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके
पिता न्यासप्री सिद्धसे कान्त होकर पुकारने लगे—
'बेटा ! बेटा !' उम समय तन्मय होनेके कारण श्री-
शुकदेवजीकी ओरसे वृक्षों उत्तर लिया । ऐसे सबके
हृदयमें विद्यमान श्रीशुकदेव मुनिजी में नमस्कार करता
हूँ ॥ २ ॥ यह श्रीमद्भागवत अत्यन्त गोपनीय—रहस्यात्मक
पुराण है । यह भागवतस्वरूपका अनुभव करनेवाला
आर सम्म वर्गोंका सार है । संसारमें कैसे हुए जो
योग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं,
उमके त्रिये आप्पासिक् सत्सोंको प्रसन्नित करनेवाला
यह एक अद्वितीय गीतर है । बाल्यमें उन्हींपर बह्या
करके बड़-बड़ मुनियोंक आकाश श्रीशुकदेवजीन इसका
बगन किया है । मैं उनकी मरम ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥
मनुष्योंमें मधुप्रभ भगवान्क अन्तर मर-मातृपण श्रुतियों
का मरमन्त्रि देखीये और श्रुत्यमन्त्रिजीको नमस्कार
करके मधु मंगर और अन्त-करणक सम्म निराश्रय
नित्रय प्राप्त करनेवाला इस श्रीमद्भागवत महापुराणका
एक फलना बनिय ॥ ४ ॥

धनमः साधु पृथोऽह भवज्जिलोकमङ्गलम् ।
 यत्कृतं कृष्णमम्भो येनात्मा सुप्रसीदति ॥ ५ ॥
 स वै पुमां परो धर्मो यतो भक्तिरधोऽध्वजे ।
 अद्वैतस्यप्रतिहता यमाऽऽत्मा मम्भमीदति ॥ ६ ॥
 वस्तुदश भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
 जनयन्त्याहु वैराम्यं ज्ञानं च यदद्वैतकम् ॥ ७ ॥
 धर्मं खनुष्ठितं पुंसां विष्वक्तेनकृत्यसु यः ।
 नोत्पादयेद्यदि रतिं भ्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥
 धर्मस्य क्षापवर्मस्य नार्थोऽर्थायोपकृत्यते ।
 नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥
 कर्मस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवत यावता ।
 जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥
 वदन्ति तत्त्वविस्तृत्तं यज्ज्ञानमद्रथम् ।
 व्रजेति परमात्मेति भगवानिति क्षम्यते ॥ ११ ॥
 तच्छ्रवणां मुनयो ज्ञानवैराम्यपुंक्तया ।
 पश्यन्त्यात्मनि चरमानं भक्त्या भुतगृहीतया ॥ १२ ॥
 अतः पुम्भिर्द्विजधेया वर्षाभ्रमविभागशः ।
 खनुष्ठितस्य धर्मस्य समिद्धिर्हरितोपणम् ॥ १३ ॥
 तद्वादेन मनसा भगवान् सत्त्वतां पतिः ।
 श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ज्येष्ठ पूज्यश्च नित्यदा ॥ १४ ॥
 यदनुष्मामिना युक्ताः कर्मप्रन्थिनिकन्धनम् ।
 छिन्दन्ति कोविदान्तस्य को न कुर्यात्कारसिम् ॥ १५ ॥

श्रियो ! आपने सम्पूर्ण विश्वके वस्तुवाणके लिये
 यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है, क्योंकि यह प्रश्न श्री-
 कृष्णके सम्बन्धमें है और इससे मन्त्रीमौलि आत्मशुद्धि हो
 जाती है ॥ ५ ॥ मनुष्योंके लिये सर्वप्रथम धर्म कही
 है, जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो—भक्ति भी ऐसी,
 जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो और जो नित्य-
 निरन्तर बनी रहे, ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप
 परमात्मकी उपलब्धि करके कृष्णहृदय हो जाता है ॥ ६ ॥
 भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति होते ही, अनन्य प्रेम्से उनमें
 विश्व जोड़ते ही निष्काम ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव
 हो जाता है ॥ ७ ॥ धर्मका ठीक-ठीक अनुष्ठान
 करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयमें भगवान्की छीछ-
 कभावोंके प्रति अनुरागका उत्पन्न न हो तो वह निरा-
 क्षम-ही-क्षम है ॥ ८ ॥ धर्मका फल है मोक्ष । उसकी
 सार्थकता अर्थ-प्राप्तिमें नहीं है । अर्थ केवल धर्मके लिये है ।
 भोगविनास उसका फल नहीं माना गया है ॥ ९ ॥ भोग-
 विनासका फल इन्द्रियोंके तृप्त करना नहीं है, उसका
 प्रयोजन है केवल जीवन-निर्वाह । जीवनका फल भी तत्त्व-
 जिज्ञासा है । बहुत कर्म करके स्वर्गपति प्राप्त करना उसका
 फल नहीं है ॥ १० ॥ तत्त्ववेत्ताके ज्ञान और वेदके मेदसे
 रहित अखण्ड अक्षितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानको ही
 तत्त्व कहते हैं । उसीको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और
 कोई भगवान्के नामसे पुकारते हैं ॥ ११ ॥ अन्धाल
 मुनिजन भगवत्-ध्वजसे प्राप्त ज्ञान-वैराग्यसूक्त भक्तिसे
 अपने हृदयमें उस परमात्मरूप परमात्मका अनुभव करते
 हैं ॥ १२ ॥ शौनकादि श्रियो ! यही कारण है कि
 अपने-अपने कर्ण तथा आद्यमके अनुसार मनुष्य जो
 धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसकी पूर्ण सिद्धि इसीमें
 है कि भगवान् प्रसन्न हों ॥ १३ ॥ इसलिये एकत्र
 मनसे भक्तकृत्य भगवान्की ही नित्य-निरन्तर ध्वज,
 कीर्तन, ध्यान और आराधन करना चाहिये ॥ १४ ॥
 कभीकी गौं बड़ी कभी है । विचारवान् पुत्र भगवान्-
 के कितनकी तलवारसे उस गौंको काट सकते हैं ।
 तब भय, ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो भगवान्की
 छीछकाममें प्रेम न करे ॥ १५ ॥

शुभ्राः श्रद्धानस्य वस्तुबन्धकारुचिः ।
स्यान्महत्सेवया विप्रा पुष्पतीर्थनिषेवणात् ॥१६॥

शृण्वतां स्वकर्मा कृष्ण पुण्यभ्रवणकीर्तनः ।

इयन्तःस्वोद्भवाणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥१७॥

नष्टप्रापेष्वाभद्रपु नित्य भोगवतसेवया ।

भगवत्पुत्रमशोक भक्तिर्मवति नैष्ठिकी ॥१८॥

तदा रजस्तमोभावा कामलोभादयश्च ये ।

चेत एतैरनाविद्धं स्थितं मत्स्ये प्रसीदति ॥१९॥

एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगात् ।

भगवत्त्वविद्वानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥२०॥

भिद्यते हृदयप्रस्थिच्छिद्यन्ते सर्वसंश्रयाः ।

धीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरं ॥२१॥

अतो वै क्वचो नित्य भक्ति परमया मुदा ।

वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥२२॥

मत्स्यं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै

युक्तः परः पुरुष एक इहास्य भवे ।

मित्यादये हरिविरिञ्चिहरति संज्ञाः

श्रेयांसि तत्र स्वलु सच्चतनानृणां स्युः ॥२३॥

पार्थिवादारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ।

तमसस्तु रजस्तमान्स्त्व यद्वादर्शनम् ॥२४॥

मेजिरे मुनयोऽथाग्र भगवन्तमधोऽजम् ।

मत्स्यं विगुहं क्षेमाय कल्पन्तं यऽनु तानिह ॥२५॥

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।

शौनकादि श्रुतियो ! पवित्र तीर्थाङ्ग सेवन करनेसे म्हासेवा, तदनन्तर श्रवणकी इच्छा, फिर अन्ध, तत्पश्चात् भगवत्-कथामें रुचि होती है ॥ १६ ॥ भगवान् धीकृष्णके यत्कत्र श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करनेवाले हैं । वे अपनी कथा सुननेवालोंके हृदयमें आफर स्थित हो जाते हैं और उनकी अश्रुम वासनाओंको नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे संतोंके निरस्तुष्ट हैं ॥ १७ ॥ जब भीमप्रणवत अपना भगवद्भक्तोंके निरन्तर सेवामें अश्रुम वासनार्थ नष्ट हो जाती है, तब पवित्रकीर्ति भगवान् धीकृष्णके प्रति स्थायी प्रेमकी प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥ तब रजोगुण और तमोगुणके माय-काम और मोमादि शान्त हो जाते हैं और विच इनसे रहित होकर सत्त-गुणमें स्थित एवं निर्मल हो जाता है ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान्की प्रेम्मयी भक्तिसे जब संसारकी समस्त आसक्तियों मिट जाती हैं, हृदय आनन्दसे भर जाता है, तब भगवान्के तत्त्वका अनुभव अपने-आप हो जाता है ॥ २० ॥ हृदयमें आत्मस्वरूप भगवान्का साक्षात्कार होते ही हृदयकी प्रस्थि टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते हैं और कर्मकण्ड क्षीण हो जाता है ॥ २१ ॥ इसीसे बुद्धिमान् योग नियम-निरन्तर बड़े आनन्दसे भगवान् धीकृष्णके प्रति प्रेम-भक्ति करते हैं, जिससे आत्मप्रसादकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त रज और तम । इनको स्वीकार करते इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके लिये एक अद्वितीय परमत्मा ही किण्व, ब्रह्मा और इन्द्र—ये तीन नाम ग्रहण करते हैं । फिर भी मनुष्योंका परम कल्याण तो सत्तगुण स्वीकार करनेवाले श्रीहरिसे ही होता है ॥ २३ ॥ जैसे पृथ्वीके विकार लकड़ीकी अपेक्षा धूर्तों श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ है अग्नि—क्योंकि पेटोफ यज्ञ-यागाग्निके द्वारा अग्नि स्रस्ति देनेवाला है—वैसे ही तमोगुणसे रजोगुण श्रेष्ठ है और रजोगुणसे भी सत्तगुण श्रेष्ठ है क्योंकि यह भगवान्का दर्शन करनेवाला है ॥ २४ ॥ प्राचीन युगमें महाभारतमें अपने कल्याणके लिये विद्युत् सत्तमय भगवान् भिक्षुकी ही आराधना किण्व करते थे । अब भी जो लोग उनका अनुसरण करते हैं, वे उन्हींके सम्पन्न कल्याणमानन होते हैं ॥ २५ ॥ जो लोग इस संसारसागरमें पार जाना चाहते हैं वे यद्यपि किसीकी निन्दा तो नहीं करते, न किसी-में दोष ही देखते हैं फिर भी घोररूपवाले—तमोगुणी

नारायणकलां शान्तां भजन्ति ह्यनमूयव ॥२६॥

रजस्तम प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ।

पितृभृतप्रजेष्वाग्नीन धियर्धर्म्यप्रजेष्मव ॥२७॥

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मग्ना ।

वासुदेवपरा योगा वासुदेवपरा क्रिया ॥२८॥

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तप ।

वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गति ॥२९॥

न एकं समजगि भगवानाममायया ।

सदमद्रूपया चामां गुणमय्यागुणा विभुः ॥३०॥

तथा विलम्बितेष्वेपु गुणेषु गुणवानिव ।

अन्तःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भित ॥३१॥

यथा स्वहितो वह्निर्लघ्वेकः ग्वयोनिषु ।

नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥३२॥

अमां गुणमर्धर्भाविर्भूतमूर्ध्वमेन्द्रियारमभि ।

स्वनिमित्तेषु निर्विघ्ना सङ्गे भूतषु तद्गुणान् ॥३३॥

भावययप मरुधन लाङ्गान् वै लाङ्कभावन ।

लीलावतागुग्ना दयतिर्षद्भनगिषु ॥३४॥

रजोगुणी मरुतादि भूतपनियोंकी उपासना न करके सत्त्वगुणी विष्णुमगवान् और उनके अंश—कलाम्बन्धोका ही भजन करते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु जिनका स्वभाव रजोगुणी अथवा तमोगुणी है, वे धन, ऐश्वर्य और मंगलकी कामनासे भूत, पितर और प्रजापतियोंकी उपासना करते हैं, क्योंकि इन लोगोंका स्वभाव उन (भूतादि) से मिथ्या-जुद्धता होता है ॥ २७ ॥ वेदोंका तात्पर्य श्रीकृष्णमें ही है । यज्ञोंके उद्देश्य श्रीकृष्ण ही हैं । योग श्रीकृष्णके लिये ही विषे जाते हैं और समस्त कर्मोंकी परिसमाप्ति भी श्रीकृष्णमें ही है ॥ २८ ॥ ज्ञानसे ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णकी ही प्राप्ति होनी है । तपस्या श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये ही की जाती है । श्रीकृष्णके लिये ही धर्मोक्त अनुष्ठान होता है और सब गनियों श्रीकृष्णमें ही समा जानी हैं ॥ २९ ॥ यद्यपि मगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अनित हैं, फिर भी अपनी गुणमयी मायासे, जो प्रपञ्चकी दृष्टिसे है और तत्त्वकी दृष्टिसे नहीं है—उन्होंने ही सगके आदिमें हम संसारकी रचना की थी ॥ ३० ॥ वे सत्त्व, रज और तम—तीनों गुण उसी मायाके विद्यमान हैं, इनका भीतर रहकर मगवान् इनसे मुक्त-सरीखे मायूम पड़ते हैं । वास्तवमें तो वे परिपूर्ण विज्ञानानन्दजन हैं ॥ ३१ ॥ अग्नि ता बस्तुन एक ही है, परन्तु जब वह अनेक प्रकारकी लक्ष्मियोंमें प्रकट होती है तब अनेक-सी मायूम पड़ती है । वैसे ही सबके आत्मरूप मगवान् तो एक ही हैं परन्तु प्राणियोंकी अनेकतासे अनेक-रीसे जान पड़ते हैं ॥ ३२ ॥ मगवान् ही मूल्य भूत—तन्मात्रा, इन्द्रिय तथा अन्त करण आदि गुणों के विकारभूत मायोंके द्वारा नाना प्रकारकी यानियोंका निमाण करते हैं और उनमें विभिन्न-विभिन्न जीवों का अपने प्रवेश करके उन-उन योनियोंका अनु रूप ग्रहण करता उपभाग करने-करोते हैं ॥ ३३ ॥ ये ही सम्पूर्ण लोकोकी रचना करने हैं और देवता, पण्डित भी मनुष्य आदि यानियोंमें मीन बनार प्रवृत्त करके सत्त्वगुणक द्वारा जीवोंका पावन पोषण करने हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पद्मोऽध्यायं संहितायां

प्रथमस्कन्धे नमिषीवायस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भगवान्के अवतारोंका वर्णन

सूत उवाच

अगृहे पौत्र्यं रूपं भगवान्महदादिभि ।

सम्भूतं योदशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥

यस्याम्भसि श्रयानस्य योगनिद्रां विसन्वत ।

नाभिह्रदाम्बुजादमीदृशा विश्वसृजां पतिः ॥ २ ॥

भस्यावयवसंस्थाने कल्पितो ठाकविस्तरः ।

तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥

पश्यन्त्यदा रूपमदभ्रजक्षुपा

सहस्रपादोरुशृङ्गान्नामुत्तम् ।

महस्रमूर्धभवशाधिनासिकं

सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोच्छ्रितम् ॥ ४ ॥

एतन्मृगानावतारार्था निधानं बीजमव्ययम् ।

यस्यांशोऽंशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्मनरादयः ॥ ५ ॥

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमाप्सित ।

चत्वारं दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमसंख्यितम् ॥ ६ ॥

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलमार्तां महीम् ।

उद्गरिष्यन्नुपपद्य यज्ञशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥

तृतीयमृषिसगं च देवर्षित्वमुपस्य सः ।

तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८ ॥

तुयं धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।

श्रीसूतजी कहत हैं—सृष्टिये आदिमें भगवान्ते लोकोंके निर्माणकी इच्छा की । इच्छा होते ही उन्होंने महत्त्व आदिसे निष्पन्न पुरुषरूप ग्रहण किया । उसमें दस इन्द्रियों, एक मन और पौंड्र भूत—ये सोष्ट कर्मएँ थीं ॥ १ ॥ उन्होंने कारण-जलमें शयन करते हुए जब योगनिद्राका विस्तार किया, तब उनके नाभि-सरोवरमेंसे एक कमल प्रकट हुआ और उस कमलसे प्रजापतियोंके अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ भगवान्के उस किष्ण रूपके अङ्ग-अल्पमें ही समस्त लोकोंकी कल्पना की गयी है, वह भगवान्का विशुद्ध सत्त्वमय शरीर रूप है ॥ ३ ॥ योगीश्वर निम्नदिशिसे भगवान्के उस रूपका दर्शन करते हैं । भगवान्का वह रूप हजारों पैर, जोंवें, मुण्डों और मुखोंके कारण अत्यन्त किञ्चुण है, उसमें सहस्रों सिर, हजारों कान, हजारों आँखें और हजारों नासिकाएँ हैं । हजारों सुकुट, कमर और कुण्डल आदि आभूषणोंसे वह उच्छ्रित रहता है ॥ ४ ॥ भगवान्का यही पुरुषरूप जिसे नाटकण कहते हैं, अनेक अवतारोंका अक्षय कोष है—इसीसे सारे अवतार प्रकट होते हैं । इस रूपके छोटे से-छोटे अंशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि धीनियोंकी सृष्टि होती है ॥ ५ ॥

उन्हीं प्रभुने पहले कौमारसर्गमें सनक, सनन्दन, सनतन और सनकुमार—इन चार ब्राह्मणोंके रूपमें अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अस्त्राण्ड ब्रह्मचयका पाठन किया ॥ ६ ॥ दूसरी बार इस संसारके कल्याणके लिये समस्त यज्ञोंके स्वामी उन भगवान्ने ही रसातलमें गयी हुई पृथ्वीके निकट लानके विचारसे सूक्तरूप ग्रहण किया ॥ ७ ॥ ऋणियोंकी सृष्टिये उन्होंने देवर्षि नाटकके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत तन्त्रका (जिसे 'नार'-पाञ्चरात्र कहते हैं) उपदेश किया उसमें कर्मोंके द्वारा किन्तु प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिली है, इत्यत्र कर्मन है ॥ ८ ॥ धर्मपत्नी मुनिके गर्भसे उन्होंने नर-नारण्यणके रूपमें चौथा अवतार ग्रहण किया । इस अवतारमें उन्होंने ऋषि

मृत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमक्तोऽ दुष्परं तपः ॥ ९ ॥
 पञ्चम कपिलो नाम सिद्धेश कालविच्छिद्यम् ।
 प्राधाचामुरय सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥
 पण्ड अत्रेरपत्यत्व इव प्राप्नोऽनस्यया ।
 आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रहादादिभ्य ऊचिषान् ॥ ११ ॥
 ततः सप्तम आकृत्यां रुचैर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
 स यामार्धं सुरगणैरपत्स्वायम्भुवान्तरम् ॥ १२ ॥
 अष्टमे मेरुदभ्यां तु नामेर्जात उरुक्रम ।
 दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाभिमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥
 धूपिभिषोचितो मेजे नवम पार्थिवं वपुः ।
 दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तनार्यं स उग्रधम ॥ १४ ॥
 रूपं स जगृह मात्स्यं चाशुषोदधिसम्भवे ।
 नाभ्यारोप्य महीमन्यामपार्श्ववस्त्रं मनुम् ॥ १५ ॥
 सुरसुराराणमुदधिं मग्नतां मन्दराक्षतम् ।
 दध्न कमठरूपेण प्रुष्ट एकादशे विभुः ॥ १६ ॥
 धान्वन्तर द्वादशमं त्रयादशममेव च ।
 अपाषपत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् क्रिया ॥ १७ ॥
 अतुर्दश नारसिंहं त्रिभुवन्प्रभूजितम् ।
 ददार परज्वलस्पर्शं कण्ठकथं ॥ १८ ॥
 पञ्चमं वामनकं कृत्वागान्धर्वं धले ।
 पद्मत्रयं याचमानः प्रत्यादिन्मुखिनिष्ठम् ॥ १९ ॥
 अवतार पाङ्गम पद्मजं ब्रह्महो नृपान् ।
 त्रि मसकृन्व इपितो निःश्वशामकृतान्महीम् ॥ २० ॥

वनकर मन और इन्द्रियोक्त सर्वथा संपन्न करके वशी
 कठिन तपस्या की ॥ ९ ॥ पौंचवें अवनारमें वे सिद्धोंके
 स्वामी कपिल्के रूपमें प्रकट हुए और तत्त्वोंका निर्णय
 करनेवाले सांख्य-शास्त्रका, जो सम्प्रदके परसे उत
 हो गया था, आसुरि नामक ब्राह्मणको उपदेश
 किया ॥ १० ॥ अनस्ययके वर मँगनेपर छुटे अवनारमें
 वे अत्रिकी संतान—दत्तात्रेय हुए । इस अवनारमें उन्होंने
 अर्क एवं प्रह्लाद आदिके प्रसन्नानका उपदेश
 किया ॥ ११ ॥ मानवीं वार रुचि प्रजापतिकी आकृति
 नामक पत्नीसे यहके रूपमें उन्होंने अवनार ग्रहण किया
 और अपने पुत्र याम आदि देवताओंके साथ स्वस्मन्व
 मन्वन्तरकी रक्षा की ॥ १२ ॥ राजा नाभिधी पत्नी
 मेरुदेवीके गर्भसे ऋषभदेवके रूपमें भगवान् आगँवों
 अवतार ग्रहण किया । इस रूपमें उन्होंने परमहंसोक्त
 वह माता, जो सभी आश्रमोंके लिये वन्दनीय है,
 दिखाया ॥ १३ ॥ ऋषियोंकी प्रार्थनासे नवीं वार वे राजा
 पृथुके रूपमें अवतीर्ण हुए । शीनप्रति ऋतियो । इस
 अवनारमें उन्होंने पृथ्वीसे सम्पन्न आश्रमोंका दोहन
 किया था, इससे यह अवनार मयक लिये बड़ा ही
 कल्याणकारी हुआ ॥ १४ ॥ चाक्षुष मन्वन्तरके
 अन्तमें जब सारी विश्वकी समुद्रमें डूब रही थी, तब
 उन्होंने मत्स्यके रूपमें तृतीय अवनार ग्रहण किया और
 पृथ्वीरूपी नीकापर क्षेत्रकर आग मन्वन्तरके अग्निपति
 वैश्वत मनुकी रक्षा की ॥ १५ ॥ जिस समय दन्वा और
 तस्य समुद्र-मण्डपक रहे थे, तब समय प्यारहवीं अवनार
 धारण करके कष्टरूपसे भगवान् मन्वाचक्षुष अग्नी
 पीत्तर धारण किया ॥ १६ ॥ बारहवीं वार धन्वन्तरिक
 रूपमें अमृत रखत मनुष्यमें प्रकट हुए और तेजस्वी धार
 मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंको माहित करते हुए
 देवताओंको अमृत पिलाया ॥ १७ ॥ चौदहवें अवनारमें
 उन्होंने नरसिंहरूप धारण किया और अत्यन्त घटान्
 दैत्यरान क्षिण्यक्षिण्युषी पत्नी अपन नयनोंसे अनायाम इस
 प्रकार पद्म वाली जैसे पद्म पर धननद्याय सीकृत और
 आप्लाई ॥ १८ ॥ पंद्रहवीं वार वामनप्र रूप धारण
 करके भगवान् दैत्यराज यक्षि यमें गए । वे आहत
 तो थे त्रियोक्तीका राज्य परन्तु मोगी उन्होंने
 केवल तीन पग कृपी ॥ १९ ॥ गान्धर्वे पराक्रम
 अवनारमें जब उन्होंने गान्धर्व राजा-प्राप्तोंके
 द्रोही हो गये हैं तब क्रामेन हार्य उन्होंने कृषीको

ततः सप्तदशे जात सत्यवत्पां पराश्वरात् ।
 चक्रं घटतरो धाम्ना दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधम ॥२१॥
 नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्ष्णिक्कीर्षया ।
 समुद्रनिप्रहादीनि चक्रं धीर्माप्स्यतः परम् ॥२२॥
 एकानविंशे विंशतिम वृष्टिपु प्राप्य जन्मनी ।
 रामकृष्णविति सुवो भगवानहरहरम् ॥२३॥
 ततः कलौ सम्प्रवृत्त सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
 बुद्धो नाम्नार्बनसुत कीकटपु भविष्यति ॥२४॥
 अधस्तौ युगार्मघ्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
 जनिता विष्णुयुगस्तो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥२५॥
 अवतारा धर्मस्येया हरः सत्त्वनिवेद्भिजाः ।
 यथाविदासिनः कुन्त्याः सरस स्युः सहस्रशः ॥२६॥
 श्रृपयो मन्त्रा द्वा मनुपुत्रा भद्रौजसः ।
 कलाः सर्वे हररेव सप्रजापतयत्नया ॥२७॥
 एत वांश्चकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
 इन्द्रारिष्याङ्गलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥२८॥
 जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ।
 सायं प्रातर्गृह्यन् भक्त्या तु सन्नामा विमुच्यते ॥२९॥

इसीस बार क्षत्रियोंमें शून्य कर दिया ॥ २० ॥ इसके बाद मगधमें अश्वनारमें सम्पत्नीके गर्भसे फग्वरजीके द्वारा वे व्यामक रूपमें अक्षीर्ण हुए, उम समय जेठोंकी समग्र और धारणाशक्ति कम देखकर आपने बेदरूप शूद्रकी फर शास्त्रों बना दी ॥ २१ ॥ अठारहवीं बार देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेकी इच्छासे उन्होंने राजाके रूपमें रामायनार ग्रहण किया और सेतु-सन्धन, उषम-वच आदि वीरतापूर्ण बहुत-सी शीखों का ॥ २२ ॥ उसीसवे और वीरमें अक्षतारोंमें उन्होंने यदुवंशमें बभ्रुम और श्रीकृष्णके नामसे प्रकट होकर पृथ्वीका भार उतारा ॥ २३ ॥ उसके बाद फलियुग आ जानेपर मगधदेश (विहार) में श्वताओंके द्वेपी दैत्योंको मोहित करनेके लिये अश्वनके पुत्ररूपमें आपका बुद्धाकार होगा ॥ २४ ॥ इसके भी बहुत पीछे जब कल्कियुगका अन्त समीप होगा और राजात्मग प्राय सुठरे हो जायेंगे, तब जगत्के रक्षक भगवान् विष्णुका नामक ब्राह्मणके रूप कल्किरूपमें अक्षीर्ण होंगे ॥ २५ ॥

शौनकाणि श्रुत्ये ! जैसे अगवच सरोवरसे हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं, वैसे ही सत्त्वनिधि मगधन श्रीहरिके अस्तस्य अक्षतार हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ श्रुति, मन्त्र, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली हैं वे सबके-सब भगवान्के ही अंश हैं ॥ २७ ॥ वे सब अक्षतार ता मगवान्के अंशाक्षतार अपना कल्पनार हैं, परन्तु मगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् (अक्षतारी) ही हैं । जब लोग दैत्योंके व्याघारसे घमकुल हो उठते हैं, तब युग-युगमें अनन्त रूप धारण करके भगवान् उनको रक्षा करते हैं ॥ २८ ॥ भगवान्के दिव्य जन्मोंकी यह कथा अक्षन्त गोपनीय—रहस्यमयी है, जो मनुष्य एकाग्र चित्तसे नियमपूर्वक साधना और प्रातःकाल प्रेमसे इसका पाठ करता है, वह सब दुःखोंसे छूट जाता है ॥ २९ ॥

१ प्रा पा०—किन्तुता ।

• यहाँ बार्हस अक्षरोंकी गणना की गयी है परन्तु भगवान्के चौबीस अक्षतार प्रसिद्ध हैं । कुछ विद्वान् चौबीसकी संख्या को पूर्ण करते हैं—राम-कृष्णके अतिरिक्त बीस अक्षतार तो उपर्युक्त हैं ही बाध चार अक्षतार श्रीकृष्णके ही अंश हैं । स्वयं श्रीकृष्ण तो पूर्ण परमेश्वर हैं वे अक्षतार नहीं अक्षतारी हैं । अतः श्रीकृष्णको अक्षतारोंकी गणनामें नहीं गिनते । उनके चार अंश दे हैं—एक तो वेदग्रन्थ अक्षतरु दृष्ट्य सुगता तथा पृथिवर कृष्य करनेवाला अक्षतरु तीसरा संकर्मज-कर्मग्राम और चौथा फग्वर । इस प्रकार इन चार अक्षतारोंसे विशिष्ट पौनर्वे साधक भगवान् मान्यवर्ष हैं । दूसरे विद्वान् देख मानते हैं कि बार्हस अक्षतार तो उपर्युक्त हैं ही इनके अतिरिक्त दो और हैं—इम और हयग्रीव ।

स वेद धत्तुः पदवीं परस्य

दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्ग्याणां ।

योऽस्मात्पया संततमानुबुत्त्या

भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥३८॥

अयेह धन्या भगवन्त इत्थं

यद्वासुदेवेऽस्तिललोक्षनाये ।

कुर्वन्ति सर्वस्मकमारमभावं

न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥३९॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।

उत्तमश्लोकचरितं चक्रत भगवानृषिः ॥४०॥

नि श्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ।

तदिदं ब्राह्मणमास सुतमात्मवतां वरम् ॥४१॥

सर्ववेदेतिहामानां सारं सारं समृद्धवृत्तम् ।

स तु संभ्रातृचामास महाराजं परीक्षितम् ॥४२॥

प्रायोपविष्ट गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः ।

कुण्डो स्वधामोपगत धर्मज्ञानादिभिः सह ॥४३॥

कलौ नष्टध्यामेव पुराणार्कोऽधुनोदित ।

तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्मूर्तिरेजसः ॥४४॥

अहं चाध्वमम तत्र निविष्टस्तदनुग्राहात् ।

सोऽहं व भ्रातृपिप्पामि यथाधीत यथामति ॥४५॥

चक्राणि मगधान्की शक्ति और पराक्रम अन्तर्गत हैं—
उनकी कोई पाह नहीं पा सकता । वे सारे जगत्के निर्माता होनेपर भी उससे सत्पा परे हैं । उनके स्वरूप को अपना उनकी छीजाके रहस्यको कभी जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कण्ट माफसे उनके चरणसम्पर्क की दिव्य गन्धका सेवन करता है—सेवा-भावसे उनके चरणोंका किन्तन करता रहता है ॥ ३८ ॥ शौनकाणि श्रियो । आपलोग कब ही सौमन्यवाली तथा धन्य हैं जो इस जीवनमें और किन-बाधाओंसे भरे इस संसारमें समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे वह सर्वात्मक आरामभाव, वह अनिर्वचनीय अनन्य प्रेम करते हैं, जिससे फिर इस जन्म-मरणरूप संसारके मयंकत चक्करमें नहीं पड़ना होगा ॥ ३९ ॥

मगधान् वेदभ्यासने वह वेदोंके समान मगधचरित्रसे परिपूर्ण भागवत नामका पुराण बनाया है ॥ ४० ॥ उन्होंने इस छावनीय, कल्याणकारी और महान् पुराणको ज्योंके परम कल्याणके लिये अपने आत्मज्ञानि विरोधमणि पुत्रको प्रहण करवाया ॥ ४१ ॥ इसमें सारे बंद और इतिहासोंका सार-सार संग्रह किया गया है । शुक्रदेवजीने राजा परीक्षितको यह सुनाया ॥ ४२ ॥ उस समय वे परमर्षियोंसे विरे हुए आम्रण अनशनका मत लेकर गङ्गातटपर बैठे हुए थे । भगवान् श्रीकृष्ण जब धर्म ज्ञान आदिके साथ अपने परमचाम्को पचार गये, तब इस कब्ययुगमें जो लोग अज्ञानरूपी अन्धकारसे अंधे हो खड़े हैं, उनके लिये यह पुराणरूपी सूर्य इस समय प्रकट हुआ है । शौनकाणि श्रियो । जब महातेजस्वी श्रीशुक्लदेवजी महाराज कहीं इस पुराणकी कथा कह रहे थे, तब मैं भी वहाँ बैठा था । कहीं मैंने उनकी कथापूर्ण अनुमतिसे इसका अध्ययन किया । मेरा जीसा अध्ययन है और मेरी बुद्धिनि जितना जिन प्रकार इसको प्रहण किया है, उसीके अनुसार इसे मैं आपसौगोंको सुनाऊँगा ॥ ४३-४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यं संहितायां प्रथमस्कन्धे

नैमिरीयोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

महर्षि व्यासकथं भक्तस्तोष

व्यास उवाच

इति ध्रुवाय मंस्तुय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ।

बृहद् ब्रह्मपतिं स्रष्टव्यं ह्येव शौनकेऽजयीत् ॥ १ ॥

शौनक उवाच

स्रष्ट स्रष्ट महाभाग वद नो वदतां वर ।

कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवांश्शृणु ॥ २ ॥

कस्मिन् युगे प्रवृत्तये व्याने वा क्व इतुना ।

कुलः सचोदितः कृष्णः कृतवान् महितां मुनि ॥ ३ ॥

तस्य पुत्रो महायोगी मम ब्रह्म निर्विकल्पक ।

एकान्तमतिरुचिष्ठो गृहो मूढ इवेयते ॥ ४ ॥

ब्रह्मलुपान्तमृषिमात्मजमप्यनेन

दध्यो हिया परितर्धुर्न सुतस्य चित्रम् ।

वहीत्य वृच्छति मुनौ जगदुत्सवान्ति

ह्रींशुम्भिन न तु सुतस्य विविक्तम् ॥ ५ ॥

कथमाश्रित पौरं मग्न्यात् पुरुजाङ्गलान् ।

उन्मथाम्बुजवद्विचरन् गजमादय ॥ ६ ॥

कथं वा पाण्डवपथ्यं राजर्षेभ्यो नमः ।

मया ममभूता यथा मानवता धृति ॥ ७ ॥

व्यासजी कहते हैं—उस दीर्घवर्षीय सत्रमें सम्मिलित हुए मुनियोंमें विष्णुको बृहद् ब्रह्मपति शौनकजीने सूतजीकी पूर्णक वात सुनकर उनकी प्रशंसा की और कहा ॥ १ ॥

शौनकजी बोले—सूतजी ! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं तथा बड़े माम्यशाली हैं । जो कथा भगवान् श्रीशुकदेवजीने कही थी, वही भगवान्की पुण्यमयी कथा हवा पढ़के आप हमें सुनाइये ॥ २ ॥ वह कथा किस युगमें, किस स्थानपर और किस कारणसे हुई थी ? मुनिक श्रीहृणादपामनने किसकी प्रणतिसे इस परम्पराकी संहिताका निर्माण किया था ? ॥ ३ ॥ उनके पुत्र शुकदेवजी बड़े योगी, सम्पदशील, भेद-अव्य-रहित, संसार-निद्रासे अगे एवं निरन्तर एकमात्र परमात्मामें ही स्थित रहते हैं । वे छिपे रहनेके कारण मूढ़-से प्रतीत होते हैं ॥ ४ ॥ व्यासजी जब संपासके लिये उनकी ओर जाते हुए अपने पुत्रका पीछा कर रहे थे, उस समय जन्म स्थान बननेवाली स्थितिमें नगे शुकदेवजी देखकर तो क्रोध धारण नहीं किया, परंतु कम पहन हुए व्यासजीको देखकर लज्जासे काढ़ पहन लिये थे । इस आश्चर्यसे देखकर जब व्यासजीने उन त्रिपोंसे इसका कारण पूछा, तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'आपकी दृष्टिमें तो अभी श्रीपुरुषाय नमः' यथा हुआ है, 'तब आपने पुत्रजी सुद दृष्टिमें था भगवन्' ॥ ५ ॥ पुरुषाङ्गल दानमें परेश्वर दमिनापुत्रों व पाण्डव, गौरी तथा जड़य मनान रिक्तने होय । मगरभयिओंन उन्हे वैसे पांचाला ॥ ६ ॥ पाण्डवनन्त राजर्षि पतिनिश्रय इन कीर्ती दुरात्मकीर मय मंशा वंमे हुआ त्रिमैयं य मगात्मनि कर्ता गयी ॥ ७ ॥

गोदोहनमार्गं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
 अवेक्षते महाभागस्तीर्थार्थैर्वस्तुदात्रमम् ॥ ८ ॥
 अभिमन्युसुत सत प्रादुर्भागवतोत्तमम् ।
 तस्य जन्म महाधर्म्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९ ॥
 स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः ।
 प्रायोपविष्टो गङ्गायामनाहत्याभिराद्भियम् ॥ १० ॥
 नमन्ति यत्पादनिषेधमात्मनः
 शिवाय हानीय धनानि क्षत्रवः ।
 कर्म स वीरः भियमङ्ग दुस्तयत्वां
 युवैपतोत्सङ्गमहो सहस्रभुभि ॥ ११ ॥
 शिवाय लोकस्य भवाय भूतये
 य उत्तमस्तोत्रपरायणा जनाः ।
 जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रय
 सुमोक्ष निर्विघ्नं कृतः कलेवरम् ॥ १२ ॥
 तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किञ्चन ।
 मन्ये त्वां विपये वार्त्तां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥ १३ ॥
 सूत उवाच
 द्वापरे समनुप्राप्ते दृतीये युगपर्यये ।
 जातः पराश्वराद्येमी वामभ्यां कडया हरेः ॥ १४ ॥
 स कदाचित्तरम्भस्या उपस्पृश्य बलं श्रुचि ।
 विविक्तदेश आसीन उदिते रश्मिम्बले ॥ १५ ॥
 परावरह्य स ऋषिः कालेनान्यकर्तृहृता ।
 युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं श्रुवि युगे युगे ॥ १६ ॥
 भौतिकानां च मावतां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ।
 अभ्युदयानाभिः मन्वान्दुर्मेधान् हसितायुष ॥ १७ ॥
 दुर्मगांश्च जनान् भीक्ष्य मुनिर्दिग्भ्येन चक्षुषा ।

महाभाग श्रीशुकदेवजी तो गृहस्थोंके घरोंको तीर्थस्वरूप
 घना देनेके लिये उसनी ही दर उनके दरवाजेपर रहते
 हैं, जितनी देखें एक गांव दुही जानी है ॥ ८ ॥ सूतजी ।
 हमने सुना है कि अभिमन्युनन्दन परीक्षित भगवान्के
 बड़े प्रेमी मक थे । उनके अत्यन्त आश्चर्यजन्य जन्म
 और कर्मोंका भी वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ वे तो पाण्डव
 वंशके गौरव बढ़ानवाले सम्राट् थे । वे भग्न,
 किंस करणसे साक्षात्कर्मकीच परित्याग करके गङ्गा-
 तटपर मृत्युपर्यन्त अनशनका व्रत लेकर बैठे थे ॥ १० ॥
 शत्रुगण अपने मलेके लिये बहुत-सा धन छकर उनके
 चरण रखनेकी चौकीको नमस्कार करते थे । वे एक
 वीर युक्त थे । उन्होंने उस दुस्तयज्ज छस्मीको, अपने
 प्राणोंके साथ मझा, क्यों त्याग देनेकी इच्छा की ॥ ११ ॥
 जिन छोटीका जीवन भगवान्के आश्रित है, वे तो ससतके
 परम कल्याण, अम्युदय और समृद्धिके लिये ही जीवन
 धारण करते हैं । उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं
 होता । उनका शरीर तो बूखोंके झिल्लेके लिये था,
 उन्होंने फिरक होकर उसका परिष्कार क्यों किया ॥ १२ ॥
 वेदवाणीको छोड़कर अन्य समस्त शास्त्रोंके व्याप
 पाददर्शी विद्वान् हैं । सूतजी । इसलिये इस समय जो
 कुछ हमने आपसे पूछा है, वह सब ज्ञाया करके हमें
 कहिये ॥ १३ ॥

सूतजीने कहा—इस वर्तमान चतुर्गुणीके तीसरे युग
 द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा ऋष्य-कन्या स्वरूपकीके गर्भसे
 भगवान्के कलववतार योगेश्वर व्यासजीका जन्म
 हुआ ॥ १४ ॥ एक दिन वे सूर्योदयके समय सरस्वतीके
 पवित्र जलमें स्नानादि करके एकान्त पवित्र स्थानपर
 बैठे हुए थे ॥ १५ ॥ महर्षि भूत और भविष्यको जानते
 थे । उनकी दृष्टि अचूक थी । उन्होंने देखा कि
 जिसको लोभ नाम नहीं पाते, ऐसे समयके फेरसे
 प्रत्येक युगमें धर्मसङ्कटा और उसके प्रयत्नसे मौलिक
 वस्तुओंकी भी शक्तिको ह्रास होता रहता है ।
 संसारके लोभ भ्रष्टाहीन और शक्तिवृद्धि हो जाते हैं ।
 उनका पुत्रि कर्तव्यका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाती
 और आयु भी कम हो जाती है । लोगोकी इस
 मायवीनताको देखकर उन मुनीवरने अपनी निम्नस्थिति

सर्ववर्णाभमाणा मदध्यौ हितममोषदम् ॥१८॥

चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैष्णिकम् ।

व्यदधातुमन्तव्यं वदमेकं चतुर्विधम् ॥१९॥

अग्न्यनुःसामाधर्वाख्या वृणावत्वार उद्भूता ।

इतिहामपुराणा च पञ्चमो वेद उच्यते ॥२०॥

तत्रन्वेदधर पैल मामगो जमिनि रुषि ।

दैगम्यायन एवंको निष्पातो यनुषामुत ॥२१॥

अधर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्गण्यो मुनि ।

इतिहामपुराणानां पिता मे रोमहर्षण ॥२२॥

त एत अयसो व स्व स्व व्यस्यभनेकधा ।

गिर्यं प्रगिर्यंस्तच्छिर्यंवेदोस्तं शान्तिनोऽभवत् ॥२३॥

त एव वना दुर्मर्षवर्षयन्ते पुरुषं र्षभा ।

एव चकार भगवान् व्यास कृष्णवत्सल ॥२४॥

सौगुहद्विवक्नुनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।

कर्मधममि मृदानां श्रेय एवं भवेतिह ।

इति भातमागव्याल कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥

एव प्रवृत्तस सत्ता सूतानां ययमि द्विजा ।

मर्वा मकृतापि यना नातुप्यदृष्टय एत ॥२६॥

नातिप्रसीदद्दृष्टय मग्न्यायान् शुभं ।

वितकपन् विविकल्प इदं प्रावान् भयवित् ॥२७॥

एतयनम हि मया एतान्मि शुभोऽग्रय ।

ममस्त वर्णों और आश्रमोंका हित कर्ते हो, इसपर विचार किया ॥ १६—१८ ॥ उन्होंने सोचा कि वेदोंका चातुर्होत्र* काम लोगोंका हृदय शुद्ध करनेवाला है । इस दृष्टिसे यथोक्त विस्तार करनेके लिये उन्होंने एक ही वेदके चार विभाग कर लिये ॥ १० ॥ व्यासजीके द्वारा अग्न्यनु, यजुः, साम और अधर्व—इन चार वेदोंका उद्धार (वृथक्करण) हुआ । इतिहास और पुराणोंको चौचौ वेद कहा जाता है ॥ २० ॥ उनमेंसे अग्न्यनुके पैल, सामगानके विश्वामित्र जैमिनि एवं यजुर्वेदके एकमात्र स्नानक वैशम्पायन हुए ॥ २१ ॥ अथर्ववेदमें प्रसीग हुए दक्षगन्धर्व सुमन्तु मुनि । इतिहास और पुराणोंके स्नातक मेरे पिता रोमहर्षण थे ॥ २२ ॥ इन पूर्वोक्त अरिषेने अपनी-अपनी शास्त्रोंको और भी अनेक भागमें विभक्त कर दिया । इस प्रकार द्रिष्य, प्रक्षिप्य और उनके द्विष्योद्धार वेदोंकी बहुत-सी शाखें बन गयीं ॥ २३ ॥ कम सम्प्रदास पुरुषोंपर कृपा करनेके भावनात् वेदव्यस्तने इसलिये ऐसा विभाग कर दिया कि जिस लोगोंको स्मरणशक्ति नहीं है या कम है, वे भी वेदोंको धारण कर सकें ॥ २४ ॥

जी, गृह और पत्नि दिवानि—सीनों ही वेद-अथर्ववेदके अधिपति नहीं हैं । इसलिये वे कल्याणकारी शास्त्रोंका कमकि आचरणमें मूल्य कर बैठते हैं । जब इसके द्वारा उनके भी कल्याण हो जाय, यह सोचकर मनुष्योंने व्यस्यजीने यही कृपा करनेके महाभारत इतिहासकी रचना की ॥ २५ ॥ सीनगरणि अरिषे । ययमि व्यस्यजी हम प्रपन्न अपनी पूरी शक्तिके साथ-साथ प्रागिर्ये कल्याणमें ही रूपा रह, तथापि उनके हृदयपर मन्दाह नहीं हुआ ॥ २६ ॥ उनके मन पुन विविकल्प हो गया । मग्न्यायी मर्वा ययि मग्न्य एवमपि वेदपर धर्मवेषा व्यस्यजी मन-ही-मन विचार करने हुए इस प्रकार कहन लगे— ॥ २७ ॥ मैंने विचार करके प्रपन्न अरिषे मग्न्य एवमपि रहने हुए वेद, शुद्ध मन और

मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥२८॥
 भारतव्यपदेशेन श्राम्नायार्थं दर्शित ।
 दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥२९॥
 तथापि क्व मे दैवो ह्यत्मा चैवात्मना विमुक्त ।
 असम्पन्न इवाभाति ब्रह्मवर्षस्य सत्तम ॥३०॥
 किं वा भगवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ।
 प्रियाः परमहंसानां स एव ब्रह्म्युत्प्रियाः ॥३१॥
 तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य स्विद्यतः ।
 कृष्णस्य नारदोऽम्यसात्वात्मनं प्रसुदात्तम् ॥३२॥
 तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय गत शुनिः ।
 पूजयामास विभिवन्नातद सुरपूजितम् ॥३३॥

अग्निर्गोत्रं सम्मान किया है और उनकी आज्ञाका पालन किया है ॥२८॥ महाभारतकी रचनाके अन्त में वेदके अर्थको खोल दिया है—निससे भी, शूद्र आदि भी अपने-अपने धर्म-कर्मका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥२९॥ यद्यपि मैं ब्रह्मतेजसे सम्पन्न एवं समर्थ हूँ, तथापि मेरा हृदय कुछ अपूर्णकाम-सा जान पड़ता है ॥ ३० ॥ अक्षय्य ही अवतक मैंने भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले धर्मोंका प्रत्यक्ष निरूपण नहीं किया है । वे ही धर्म परमहंसोंको प्रिय हैं और वे ही भगवान्‌को भी प्रिय हैं (हो-न-हो मेरी अपूर्णताका यही कारण है) ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण-हैपापन व्यास इस प्रकार अपनेको अपूर्ण-सा मानकर जब खिन्न हो रहे थे, उसी समय पूर्वोक्त आश्रमपर देवर्षि नारदजी आ पहुँचे ॥ ३२ ॥ उन्हें आया देख व्यासजी तुरन्त खड़े हो गये । उन्होंने देवतावर्गके द्वारा सम्मानित देवर्षि नारदकी विविधपूर्व पूजा की ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे परमहंस्यं संज्ञितायां प्रथमस्कन्धे
 नैमिषीयोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवान्‌के पदा-कीर्तनकी महिमा और देवर्षि नारदजीका पूर्वचरित्र

सूत उवाच

अथ तं सुखमास्तीनं उपसीनं बृहदृज्ज्वा ।
 देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं धीणात्पाणिः सप्तभिः ॥ १ ॥

नारद उवाच

पारदार्यं महाभाता भवत कश्चिदात्मना ।
 परितुष्यति शरीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥
 जिज्ञासितं सुमम्यन्नमपि तं महदभूतम् ।
 कृतवान् भारतं यस्त्व सवार्थपरिवृद्धितम् ॥ ३ ॥
 जिज्ञामितमधीर्तं च यत्तद्गुण सनातनम् ।
 अधापि श्रोत्रस्यात्मानमकृतार्थं इव प्रभा ॥ ४ ॥

स्वामी कहते हैं—तदनन्तर सुखपूर्वक बैठे हुए धीणापाणि परम यशस्वी देवर्षि नारदने सुसक्ताकर अपने पास ही बैठे नारद व्यासजीसे कहा ॥ १ ॥

नारदजीने प्रश्न किया—महाभामा व्यासजी ! आपके शरीर एवं मन—दोनों ही अपने कर्म एवं चिन्तनसे समुद्यत हैं न ? ॥ २ ॥ अक्षय्य ही आपकी जिज्ञासा तो भणीमौनि पूर्ण हो गयी है; क्योंकि आपने जो यह महाभारतकी रचना की है, वह बड़ी ही अद्भुत है । यह धर्म आदि सभी पुरुषार्थोंसे परिपूर्ण है ॥ ३ ॥ सनातन ब्रह्मतरङ्गको भी आपने सूत्र निष्कारा है और ज्ञान भी किया है । फिर भी प्रभु ! आप अकृतार्थ पुरुषके समान अपने चिन्तनमें शोक क्यों कर रहे हैं ? ॥ ४ ॥

१ बर्तों मापीन प्रतिमे नारदस्यधर्मं दृष्ट्वा पाठ अभिः ॥ १ ॥ या ॥ ०—तथापि ।

प्यास उवाच

अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं
तथापि नत्मा परितुष्यते मे ।

तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं

पृच्छामह त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥ ५ ॥

स वै भवान् वेदमममगुह्य-

मुपामितो यत्पुरुषः पुराण ।

परावरशो मनसुर्व विद्वं

सुव्रत्यवत्पत्तिं गुणैरमङ्ग ॥ ६ ॥

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकी

मन्तव्यो वायुरिवात्मसाक्षी ।

परावर ब्रह्मणि धर्मतो यत्तं

ज्ञातस्य मे न्यूनमल निश्चय ॥ ७ ॥

भीमार्ज उवाच

भयतालुन्तिप्राप यज्ञो भगवतोऽमलम् ।

येनैवार्मा न तुष्यत मन्य तद्दर्शनं त्विलम् ॥ ८ ॥

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिर्व्यानुकीर्तिता ।

न तथा वसुधैव कुटुम्बकमिह ॥ ९ ॥

न यद्वन्नविश्वपदं हरर्यशा

जगन्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचिन् ।

तद्वापम तीर्थमुगन्ति मानसा

न यत्र हमा निरमन्पुण्ड्रिषया ॥ १० ॥

तद्वामिमगा जनतापविप्रया

यमिन् प्रतिष्ठाप्यद्वयवत्पि ।

नामान्यनन्तस्य यथाऽद्वितीयानि यन्

शृण्वन्ति गायन्ति शृण्वन्ति गाथा ॥ ११ ॥

नष्टमप्यप्यव्युत्तभारवर्जित

न गाथत शानमनं निरुज्ज्वलम् ।

प्यासजीने कहा—आपन मे विषयमें जो कुछ
कहा है, यह सब ठीक ही है । बंसा होनपर भी मेरा हृदय
सन्तुष्ट नहीं है । पना नहीं, इसका क्या कारण है ।
आपका ज्ञान अगाध है । आप साक्षात् ब्रह्माजीके मानस-
पुत्र हैं । इसलिये मैं आपसे ही हमका कारण पूछता
हूँ ॥ ५ ॥ नारदजी ! आप ममम् गोपनीय रहस्योंको
जानते हैं; क्योंकि आपने उन पुरुषपुरुषकी उपमना की
है, जो प्रहृति-गुरुय नौनोंके सामी हैं और अमङ्ग रहते हुए
ही अपन सङ्कल्पमात्रसे गुणोंके द्वारा संसारकी सृष्टि,
स्थिति और प्रणय करते रहते हैं ॥ ६ ॥ आप स्वकी
भोनि तीनों लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं और योगवत्-
से प्राणवायुके समान सबके भीतर रहकर अन्तःकरणोंके
साक्षी भी हैं । योगानुगुण और निष्कामोंके द्वारा परब्रह्म
और शब्दब्रह्म नौनोंके पूर्ण प्राप्ति कर लनपर भी मुझमें
जो कमी कमी है, उसे आप क्या करके पूर्ये ॥ ७ ॥

नारदजीने कहा—प्यासजी ! आपन भाषणोंके निर्मल
यशस्व गान प्राप नहीं किया । मरी पत्नी मन्थना है कि
जिससे भाषान् मनुष्य नहीं होता, यह शयन या ज्ञान अधूरा
है ॥ ८ ॥ आपन धम आदि पुरुषार्थोंका जमा निरूपण
किया है, भाषान् श्रीकृष्णकी महिमाका बंसा निरूपण
नहीं किया ॥ ९ ॥ जिस वागीने—चाह ब्रह्म रस-भाव
अनुरागान्तिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्को पवित्र
करनवाले भाषान् श्रीकृष्णके यशस्व कमी गान नहीं होता,
यह तो कांक्षित लिये उच्छिष्ट कथनेक भालक गमान
अपवित्र मानी जानी है । मानसरोवरक वस्त्राव कसलनमें
मिथनयात्र हंमोस्र भोनि द्वयभाममें विगु वरनयन
भाषणरगावत्किन्तिन परमम भक्त कमी उपमें समग
नहीं करत ॥ १० ॥ इस विधि, जिसमें सुन्दर रचना
भी नहीं है और जो दूनि नौनोंसे युक्त भी है, परतु
जिसका प्रयत्न भक्त भाषान्क सुवाच्यता मायोंसे युक्त
है, वह कभी लोकोक मारे वाग्योस नगा कर नहीं है क्योंकि
मनुष्य ऐसा ही कभीस भक्त लन अतः बरान शिर
करने है ॥ ११ ॥ वह निष्ठा ज्ञान भी, जो भाषा
प्राप्तिर मन्थत् मथन ह किन्तिन नृकी मन्थिने
द्विज हा ना भाषा उपाती गान नही हाती । नि
जो भाषन और विधि गानों ही लनने गान ही

कृतः पुनः शब्दभद्रमीधरे
 न चापितं कर्म यदप्यकारणम् ॥१२॥
 अथो महाभाग भवानमोघदृक्
 शुचिभवाः सत्परतो भूतव्रतः ।
 उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये
 समाधिनातुसर तद्विचेष्टितम् ॥१३॥
 ततोऽन्वया किंचन यद्विवक्षतः
 धृषगृह्यस्तत्कृतरूपनामभिः ।
 न ह्यवचित्कापि च दुःस्विता मति
 उमेत वत्ताहवनौरिवास्पदम् ॥१४॥
 शुगुप्सितं धर्मकृतऽनुशासतः
 स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमाः ।
 यद्वाक्मयो धर्म इतीतरः स्मितो
 न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥१५॥
 विचक्षणोऽस्त्वार्हति वेदितुं विभो-
 रन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ।
 प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मन-
 स्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभो ॥१६॥
 त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्भुजं हरे
 र्मज्जन्मपक्षोऽथ पतेस्ततो यदि ।
 यत्र क वाभद्रममृदुमुप्य किं
 क्व वार्य आतोऽभजतां स्वधर्मतः ॥१७॥
 तस्यैव इतोः प्रयतेत केचिदो
 न रुम्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।

अमङ्गलरूप है, वह काम्य कर्म, और जो भगवान्‌को
 अर्पण नहीं किया गया है, ऐसा अविदुक्त (निष्काम)
 कर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता है ॥ १२ ॥ म्हाभाग
 व्यासजी ! आपकी दृष्टि अमोघ है । आपकी कीर्ति
 पवित्र है । आप सत्यरामण एवं दृढव्रत हैं । इसलिये अब
 आप सम्पूर्ण जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये समाधि-
 के द्वारा अचिन्त्यशक्ति भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण
 करनिये ॥ १३ ॥ जो मनुष्य भगवान्‌की स्मरणके अति-
 रिक्त और कुछ करनेकी इच्छा करता है, वह उस इच्छा-
 से ही निर्मित अनेक नाम और रूपोंके चक्रमें पड़
 जाता है । उसकी बुद्धि भेदभावसे भर जाती है । जैसे
 हवाके झरोखेसे बगमगाती हुई बेंगीको कहीं भी ठहरने-
 का ठौर नहीं मिलता, वैसे ही उसकी चक्षुस्बुद्धि कहीं
 भी स्थिर नहीं हो पाती ॥ १४ ॥ संसारी लोग स्वभाव-
 से ही विषयोंमें पड़े हुए हैं । धर्मके नामपर आपने उन्हें
 निन्दित (पण्डितसाधु) सक्राम कर्म करनेकी भी
 आज्ञा दे दी है । यह बात ही उल्टी बात हुई, क्योंकि
 मूर्खयोग आपके बच्चोंसे बूझकर निन्दित कर्मको ही
 धर्म मानकर—यही मुख्य धर्म है। ऐसा निन्द्य करके
 उसका निषेध करनेवाले बच्चोंको ठीक नहीं मानते ॥ १५॥
 भगवान् जनत हैं । कोई विषास्यन् बानी पुरुष ही
 संसारकी ओरसे निवृत्त होकर उनके स्वरूपभूत परमा-
 नन्दका अनुभव कर सकता है । क्त ओ लोग
 पारम्परिक बुद्धिसे रहित हैं और गुणोंके द्वारा नवाये जा
 रहे हैं, उनके कर्मयोगके लिये ही आप भगवान्‌को लीलाओं-
 का सर्वसाधारणके हितकी दृष्टिसे वर्णन करनिये ॥ १६ ॥
 जो मनुष्य अपने धर्मिक परिपाग करके भगवान्‌का चरण-
 कमलेंका मजन-लेकन करता है—मजन परित्याग हो
 जानेपर तो जान ही क्या है—यदि इससे पूर्व ही उसका
 भजन दृष्ट जाय तो क्या कहीं भी उसका कोई अमङ्गल
 हो सकता है ? परंतु जो भगवान्‌का मजन नहीं करते
 और केवल स्वधर्मका पाठन करते हैं, उन्हें कौन-सा लाभ
 मिलता है ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह
 उसी वस्तुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करे, जो तिनकेसे लेकर
 स्वापर्यन्त समस्त जैवी-जीवी योनियोंमें कदाकि कदा-
 स्वरूप आन-जानेपर भी स्वयं प्राप्त नहीं होनी । ससारके

तल्लम्पते दुःखवदन्यत सुख
 कालेन मवत्र गभीरहसा ॥१८॥
 न वै जनो जातु कथचनाग्रजे-
 न्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग मसृत्तिम् ।
 मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहन पुन-
 र्निहातुमिच्छेन्न रसप्रदो यत ॥१९॥
 इदं हि विश्व भगवानिषत्तरो
 यता जगत्यान्निरोधसम्भवा ।
 तद्धि स्वयं वद भवांस्तथापि वै
 प्रादशमात्रं भवत प्रार्थितम् ॥२०॥
 त्वमात्मनाऽऽत्मानमवब्रूमोषडक्
 परस्य पुम परमात्मन फलाम् ।
 अत्र प्रजात जगत त्रिवाप त
 न्महातुभावाभ्युत्थोऽधिगम्यताम् ॥२१॥
 इदं हि पुमस्तपम श्रुतस्य वा
 म्निष्टम्य द्रक्तस्य च बुद्धिदत्तयो ।
 अविच्युतार्थ कविभिर्निरूपितो
 यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥२२॥
 अह पुरातीतभवऽभव ध्वने
 दासास्तु कम्पाधन कथातिनाम् ।
 निरूपिता पाठक एव योगिनां
 शुश्रूषण प्रापुपि निर्विविधताम् ॥२३॥
 त मध्यपेताम्लित्वापलऽर्मके
 दान्तऽश्रुतऽरीडनकऽनुवर्तिनि ।
 धनु कृपां यद्यपि तुल्यपान्ना
 शुश्रूषमाण मुनयोऽन्यभाषिणि ॥२४॥
 उच्छिष्टलपाननुमातिता द्विवे
 मकृन्म मुञ्ज मत्पाप्मकिन्मिप ।

विषय-सुख तो जैसे बिना चेष्टाके दुःख मिश्रिते हैं
 वैसे ही, कर्मके फलरूपमें अचिन्त्यानि समयके फलसे
 सबको सत्रत्र स्वभावसे ही मिला जाते हैं ॥ १८ ॥
 व्यासजी ! जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दका सेवक
 है, वह मजन न करनेवाले कर्मी मनुष्योंके समान देवात्
 कमी घुरा भाव हो जानेपर भी जन्म-मृत्युसम संसारमें
 नहीं आता । वह भगवान्के चरणकर्मणोंके आशिर्जनकर
 स्मरण करके फिर उसे छोड़ना नहीं चाहता, उसे
 रसका चसका जो ल्या चुका है ॥ १९ ॥ जिनसे ज्ञातृपरी
 उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं, वे भगवान् ही हम
 विश्वके रूपमें भी हैं । पता होनेपर भी वे हमसे विश्वरूप
 हैं । इस बातको आप स्वयं जानते हैं, तथापि मैंने
 आपको संकेतमात्र कर दिया है ॥ २० ॥ व्यासजी !
 आपकी इष्टि अमोघ है, आप इस बातका जानिये कि
 आप पुरुषोत्तम भगवान्के कृत्यकार हैं । आपन अजमा
 होकर भी जगत्के कल्याणक क्रिये जम ग्रहण किया है ।
 हमलिये आप विशेषरूपसे भगवान्की लीलाओंका वर्णन
 कीजिये ॥ २१ ॥ विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया
 है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय,
 ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्य-
 कीर्ति श्रीकृष्णक गुणों और लीलाओंका वर्णन दिया
 जाय ॥ २२ ॥

मुन ! पिछले कथमें आपन पूर्वजीवनमें मैं कृष्णाजी
 शासनोपरी एक दासीका लक्ष्य था । वे यमी बर्ग क्रतुमें एक
 स्थानपर बानुमाम्य कर रह थे । बचपनमें ही मैं उनकी
 सेवामें नियुक्त कर दिया गया था ॥ २३ ॥ मैं यपरि
 बालक था, फिर भी किसी प्रकारकी चक्षुःशक्ति नहीं करना
 था, निमन्द्रिय था, स्नेह-हृत्स दूर रहता था और आत्मा
 मुझा उनकी सेवा करता था । मैं बाल्या ही बहुत कम
 था । मेरे इस शीघ्र-व्याकरण दायर मम-शर्मा मुनियेन
 मुझ सेवकपर अत्यन्त अनुग्रह किया ॥ २४ ॥ उनकी
 अनुमति प्राप्त करके बरतनोमें लय हुआ जैन मैं एक
 बरतन लिया करता था । हमने मेरे मरतन पुन
 गये । हम प्रत्यक्ष उनकी सेवा करत-करत मैं हृत्पुनद ।

एष प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसः
 सत्त्वम एव त्मरुचि प्रजायते ॥२५॥
 तत्रान्वह कृष्णकथा प्रगायता-
 मनुग्रहेणाभूषण मनोहरा ।
 ता भद्रया मेऽनुपद विभूष्वत*
 प्रियधवस्रङ्ग ममाभर्वदुचि ॥२६॥
 तस्मिन्तन्ना लब्धरुचेर्महामुने
 प्रियभवस्यस्तवलिता मतिर्मम ।
 यथाहमतत्सदसत्त्वमायथा
 पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पित परे ॥२७॥
 इत्थ शरत्प्राद्विषावृत्त हर
 विभूष्वतो मेऽनुभव यशोऽमलम् ।
 मक्रीर्त्यमान मुनिभिर्महत्प्रभि
 मक्ति प्रवृत्ताऽऽमरजस्तमोऽपेहा ॥२८॥
 तस्य मेऽनुरक्तस्य प्रभितस्य हृत्तनमः ।
 भद्रधानस्य धत्तस्य शान्तस्यानुभरस्य च ॥२९॥
 धानं गुह्यतम यत्तत्माध्वङ्गवतोऽन्तितम् ।
 अन्ववोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सला ॥३०॥
 यन्वाह भगवतो वामुदवस्य वधसः ।
 मायानुभावमविन यन गच्छन्ति तत्पणम् ॥३१॥
 तत्तमं प्रवृत्त प्रप्रन्नापप्रवचिन्वितम् ।
 यनीश्वर भगवति कम ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥
 आमया यम भूतानां जायत यन गुह्यत ।
 तस्य धामपं द्रव्यं न पुनाति चिन्मिमतम् ॥३३॥
 त्वं नृणां प्रियापागा सर्वे मंमुनिहतर ।
 न त्वामविनाप्राप्य कल्पन्त कल्किता पर ॥३४॥
 यत्र क्रियत यम भगवत्प्रणिपादम् ।
 ज्ञानं यमदर्शनं हि भक्तियागममरितम् ॥३५॥

गया और वे लोग जैसा मनन-पूजन करते थे, उसीमें मेरी भी रुचि हो गयी ॥ २५ ॥ प्यारे व्यासजी ! उस सत्त्वममें उन लीलागानपरायण महात्माओंके अनुग्रहसे मैं प्रणिप्ति श्रीकृष्णकी मनाहर कथाएँ सुना करता । ब्रह्मार्पण एक-एक पद श्रवण करते-करते प्रियकीर्ति भगवान्में मेरी रुचि होगयी ॥ २६ ॥ महामुने । जब भावान्में मेरी रुचि हो गयी, तब उन मनोहरकीर्ति प्रभुमें मेरी मुक्ति भी निश्चय हो गयी । उस घुदिसे मैं इस सम्पूर्ण सत् और अस्त रूप जगत्को अपने परब्रह्मरूप आत्मामें मायासे कल्पित देखने लगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार शरद् और कर्क-इन दो ऋतुओंमें तीनों समय उन महात्मा मुनियोंने श्रीहरिके निर्मल यशस्वरसङ्गीर्तन किया और मैं प्रमत्त प्रत्येक वान सुनता रहा । अवचित्तके रजोगुण और तमोगुणको नाश करनेवाली मक्ति-का मेरे हृदयमें प्रादुर्भाव हो गया ॥ २८ ॥ मैं उनका वक्ता ही अनुगामी था, विनयी था, उन लोकोकी सेवसे मेरे पाप नाश हो चुके थे । मेरे हृदयमें श्रद्धा थी, इन्द्रियोंमें सत्त्व था एवं शरीर, वाणी और मनसे मैं उनका आश्रयकारी था ॥ २९ ॥ उन दीनकृत् महात्माओंने जाते समय कहा करते मुझे उस गुह्यतम ज्ञानका उपदेश किया, त्रितय उपदेश स्वयं भगवानने अपने श्रीमुखसे किया है ॥ ३० ॥ उस उपदेशसे ही जगत्क निर्माता ममान् श्रीकृष्णकी मायाके प्रभावसे मैं जान सका, त्रितयके ज्ञान स्नेहपर उनके परमपत्नी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३१ ॥

सम्पत्संश्लेष व्यामयी । पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति संपन्न कर्षोक्ते समर्पित कर देना ही संसारक तीनों तपोकी एकमात्र आरधि है यह ध्यान मैंने आपका वक्ष्य ही ॥ ३२ ॥ प्राणिपौत्रो जिन पशुपक्षि सेमसे जो राग हा जाता है वही पशुपक्षि चित्तिरागिनिधे अनुमार प्रयोग यत्रनगर क्या उम रोगप्रद दूर नहीं करता ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार यद्यपि सभी कम मनुष्यों का जन्म-मृत्युरूप समावेश यत्रमें ज्ञानराज है, तथापि जब वे भगवात् का समर्पण कर दिय जाते हैं तब उनका परमपत्नी ही मत् हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस लक्ष्यमें जो शास्त्रादित वच भगवत्की प्रमत्तता विन विप लते है, उहीसे जगभक्तिपुत्र धारण प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिष्यासकृत् ।
 गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुसरन्ति च ॥३६॥
 नमो भगवते तुभ्य वसुदेवाय धीमहि ।
 प्रधुम्नापानिरुद्राय नमः सकर्षणाय च ॥३७॥
 इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ।
 यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनं पुमान् ॥३८॥
 इमं स्वनिर्गमं ब्रह्मब्रवेत्य भद्रनुष्ठितम् ।
 अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन् भाव्यं च केचन ॥३९॥
 त्वमप्यदब्रह्मवृत्तं विभुतं विभो
 समाप्यते येन विदां बुद्धयस्सतम् ।
 आप्त्याहि दुःस्वैर्मुहुरदितात्मनां
 मङ्गेशनिर्वाणमुञ्चन्ति नान्यथा ॥४०॥

उस भगवद्भक्त कर्मके मार्गमें भगवान्‌के आह्वानुसार आचरण करते हुए लोग बार बार भगवान्‌ की कृष्णक गुण और नामोंका कीर्तन तथा स्मरण करते हैं ॥३६॥ भ्रमो ! आप भगवान्‌ की शिष्यासकृते नमस्कार है । हम आपका ध्यान करते हैं । प्रधुम्न, अनिरुद्र और सकर्षणको भी नमस्कार है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जो पुरुष चतुर्व्यूहस्पर्षी भगवन्‌मूर्तियोंके नामधारा प्राप्त-मूर्तिरहित अप्राकृत मन्त्रमूर्ति भगवान्‌ या पुरुषका पूजन करता है, उसीका ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मन् ! जब मैंने भगवान्‌की आवाका इस प्रकार पाठन किया, तब इस बातको जानकर भगवान्‌ श्रीकृष्णने मुझे आत्मज्ञान, ऐश्वर्य और अपनी मावस्था प्रेमात्मकिक दान किया ॥ ३९ ॥ व्यसनी ! आपका ज्ञान पूर्ण है, आप भगवान्‌की ही कीर्तिकार—उनकी प्रेममयी स्तुतिकर कर्णन करिजिये । उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है । जो लोग दुःखोंके द्वारा बार-बार रँदि जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है, और कष्ट उपाय नहीं है ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहन्स्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
 भ्यामनारदसभादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पष्ठोऽध्यायः

नारदसंकीर्णपूर्वचरित्रकथनं शेषं भाग

सूत उवाच

एव निशम्य भगवान्‌द्वर्षेर्जन्म कर्म च ।
 भूयः प्रमच्छ तं ब्रह्मन्‌ व्यास सत्यवतीसुत ॥ १ ॥

व्यास उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसितं विज्ञानादप्युभित्त्वं ।
 वर्तमानो वमस्याद्य ततः किमकरोद्भवान् ॥ २ ॥
 व्यासमुवाच कथां हृष्या वर्तितं तं परं वयः ।
 कथं येदमुन्मत्ताः कालं प्राप्ते कलत्रम् ॥ ३ ॥
 प्राकृत्यविषयामतां सृष्टिं ते सुरमयम् ।
 न वाप्यभ्यवसात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥ ४ ॥

श्रीसुतजी कहते हैं—वौनकजी ! देवर्षि नारदके जन्म और सावनाकी बात सुनकर सत्यवतीनन्दन भगवान्‌ की श्रुतिमत्तजीने उनसे फिर यह प्रश्न किया ॥ १ ॥

श्रीव्यासजीने पूछा—नारदजी ! जब आपको ज्ञानोपदेश करनेवाले आत्मगण कहते गये, तब आपन क्या किया ? उस समय तो आपकी लक्ष्म्या बहुत छोटी थी ॥ २ ॥ स्वायम्भुव ! आपकी शेष जायु विस्र प्रकर व्यतीत हुए और मृत्युके समय आपने किस विधिसे अपने शरीरका परित्याग किया ? ॥ ३ ॥ देवर्षि ! काल तो सभी वस्तुओंको नष्ट कर देता है, उसन आपकी इस पूर्वकृत्यकी सृष्टिका कैसे नाश नहीं किया ? ॥ ४ ॥

नारद उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विद्वानादप्युभिर्मम ।
 वर्तमानो वयस्साधे तत् एतदकारणम् ॥ ५ ॥
 प्रकारमजा मे जननी योपिन्मूढा च किंकरी ।
 मय्यात्मजेऽनन्यगतौ यक्मे स्नेहानुकम्पनम् ॥ ६ ॥
 साम्प्रतन्त्रा न कस्याऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती ।
 इत्थं हि वक्षे लोको योषा वारुण्यी यथा ॥ ७ ॥
 अहं च तद्भक्तकुले उपवितास्तदपेक्षया ।
 दिग्दक्षकालाव्युत्पत्ता बालक पञ्चदशवर्ष ॥ ८ ॥
 एकदा निर्गता गद्गादुहन्ती निशि गां पथि ।
 सपौंद्दशत्यदा स्पृष्टः कुपणां कालचोदित ॥ ९ ॥
 तदा तदहमीदृशं भक्तानां क्षमभीप्सतः ।
 अनुग्रहं मन्यमानं प्राप्तिष्ठ दिक्षुचराम् ॥ १० ॥
 स्मीताञ्जनपदान्तरं पुरग्रामप्रजाकरम् ।
 श्वेतस्वर्गवाट्रीं वनान्युपवनानि च ॥ ११ ॥
 चित्रधातुविचित्राद्रीनिभमप्रसुजहुमान् ।
 बलाश्रयाच्छिवजलामलिनी सुरसेविता ॥ १२ ॥
 चित्रमूर्धनं पत्ररूपेर्विभ्रमद्विभ्रमरभिष ।
 नलवशुभ्रमम्बकुलीचकगर्दरम् ॥ १३ ॥
 एकं पयातिपत्ताहमप्यत्र विपिनं महत् ।

भीमारज्जने कहा—मुझे अनोपदेश करनेके
 बहुतभाग्य जन्म चले गये, तब मैंने इस प्रकार अपना
 जीवन व्यतीत किया—क्यापि उस समय मेरी अस्वा
 बहुत छोटी थी ॥ ५ ॥ मैं अपनी माता इकलैता
 कहकर था । एक तो वह ही थी, दूसरे मुझ और
 तीसरे दासी थी । मुझे भी उसके सिवा और कोई सहा
 नहीं था । उसने अपनेको मेरे स्नेहपाशसे जकड़
 रक्खा था ॥ ६ ॥ वह मेरे योगक्षेमकी चिन्ता ता
 बहुत करती थी, परंतु परवीन होनेके कारण कुछ
 कर नहीं पाती थी । जैसे कठपुतली नचानेवाँकरी इच्छाके
 अनुसार ही नाचती है, वैसे ही यह सारा संसार ईश्वर
 के अधीन है ॥ ७ ॥ मैं भी अपनी माके स्नेहबन्धनमें बँधकर
 उस भाव्य-वस्तीमें ही रहा । मेरी अवस्था केवल
 पाँच वर्ष की थी, मुझे निशा, देश और कालक सम्बन्ध
 में कुछ भी ज्ञान नहीं था ॥ ८ ॥ एक दिनकी रात
 है, मेरी मा गौ दुहनेके लिये उनके समय घरसे बाहर
 निकली । रास्तेमें उसके पैरसे सोंप छू गया, उसने
 उस बेचारीको बस किया । उस सोंपका क्या दोष,
 काव्यकी ऐसी ही प्रेरणा थी ॥ ९ ॥ मैंने समझा, मर्कटका
 मज्जु चढ़नेवाले मगशान्कष यह भी एक अनुग्रह ही
 है । इसके बाद मैं उत्तर दिशाकी ओर चला पड़ा ॥ १० ॥
 उस ओर मार्गमें मुझे अनेकों वन-वनस्पति
 सम्पन्न देश, नगर, गाँव, जहाँकी चकती-मिरती
 बस्तियाँ, खानें, लेइ, मदी और पर्वतोंके लक्ष्मी पहाड़,
 वायिकरणें, वन उपवन और रंग भिगी घातुओंसे
 युक्त विचित्र पर्वत निखली पड़े । कहीं-कहीं
 जंगली वृक्ष थे, जिनकी बड़ा-बड़ी शाखाएँ हाथियोंके
 लोभ डाली थी । वीर्य जलसे भरे हुए जलशय्य थे,
 जिनमें देवताओंके कानमें आनेवाले कमल थे, उनपर
 पक्षी तरह-सहस्रकी बोली चोप रहे थे और मरि मँडरा रहे
 थे । यह सब देखना हुआ मैं आगे बढ़ा । मैं अकेला
 ही था । इतना उदा मार्ग ही करनेपर मैंने एक घर
 गहन जंगल दशा । उसमें नरकट, बाँस, सेंद्र, कुश,
 केशव आदि खड़े थे । उसकी उचाई चौड़ाई भी

१ मा पा—वायिकम् । २ मा पा—श्वेतम् । ३ मा पा—रत्नरेणु । ४ मा पा—नीचमरमरि ।

५ मा पा—एकामि ।

घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोल्लसन्निवाजिरम् ॥१४॥
 पश्चिमान्तन्त्रियामाहं तृदूपीतो बुभुक्षित ।
 स्रज्वा पीत्वा हृद नद्या उपस्पृष्टो गतधम ॥१५॥
 तस्मिन्निर्मनुनेऽरण्ये पिप्पलोपम्य आम्बित ।
 आत्मनाऽऽन्मानमारम्य यथाभ्युत्पन्नचित्तयम् ॥१६॥
 व्यापतध्वगाम्भोज भावनिजितचेतसा ।
 आत्कृष्टाभ्युक्ष्णाक्षस इदाम्सीन्मे शनैर्हरि ॥१७॥
 प्रेमातिभगतिभिर्बुधैः कालोऽस्तिनिष्ठम् ।
 आनन्दमस्त्रव लीना नापश्यमुभय मुने ॥१८॥
 रूपं भगवतो यत्तन्मन कान्तं गुहापहम् ।
 अपश्यन् महमात्मस्य ध्वजस्यामुना इव ॥१९॥
 त्रिदशुन्मदहं भूय प्रणिधाय मनो हृदि ।
 वीक्षमाणाऽपि नापश्यमवित्त इवातुर ॥२०॥
 एवं यतन्त विज्जन मामाहाणाचरा गिराम् ।
 गर्भीरसृक्षया रात्रा गुच प्रथमयक्षि ॥२१॥
 इन्तामिज्जन्मनि भगन्मा मा द्रष्टुमिहाहनि ।
 अरिपक्षकयापाणां दृष्ट्वाऽहं वृथागिनाम् ॥२२॥
 मरुद्वयं त्रिजितं रूपमन्तःप्रमाय मज्जनम् ।

बहुत पी और वह सौंप, तन्त्र, स्थार आदि भयंकर
 जीवोंका घर हो रहा था । देवनेमें बड़ा भयावता लगता
 था ॥ ११-१४ ॥ चन्दते-कटने मेरा शरीर और
 इन्द्रियों शिथिल हो गयीं । मुझे बड़े जोरसे प्यास लगी,
 भूख तो था ही । अहाँ एक नयी मिनी । उसके कुण्ड
 में मैंने स्नान, जलपान और आचमन किया । इससे
 मेरी यक्षक मित्र गयी ॥ १५ ॥ उस विज्जन वनमें
 एक पीपलके नीचे आसन लगाकर मैं बैठा गया । उन
 महात्माओंसे जेसा मैंने सुना था, हृदयमें रहनेवाले
 परमात्माके उमी स्वरूपका मैं मन-ही-मन ध्यान करने
 लगा ॥ १६ ॥ भक्तिभावसे वशीकृत चित्तद्वारा मन्त्रान्के
 चरणकमलोंका ध्यान करते ही भगवद्-प्राप्तिकरी उत्कृष्ट
 कालसासे मेरे नयनोंमें आँसू छलछल आय और हृदयमें धीरे
 धीरे भगवान् प्रकट हो गये ॥ १७ ॥ व्यासजी ! उस
 समय प्रमथयके अत्यन्त उद्वेगसे मेरा ऐम-ऐम पुडकित
 हा उठ्य । हृदय अत्यन्त शान्त और शीतल हो गया ।
 उस आनन्दकी वज्रमें मैं प्यसा डूब गया कि मुझ अन्ता
 और ध्येय वस्तुका तनिक भी भान न रहा ॥ १८ ॥ भगवान्
 का वह अनिर्बचनीय रूप समस्त शार्ङ्गयज्ञ नारा करन
 वाला और मनक निये अत्यन्त सुभावना था । सहसा
 उसे न देख मैं बहुत ही चिक्का हा गया और अनमना
 मा होकर आसनसे उठ खड़ा हुआ ॥ १९ ॥

मैंने उस स्वरूपका दर्शन करि कराना चाहा, फिर
 मनको हृदयमें समाहित करके बार-बार दर्शनकी चेष्टा
 करनेपर भी मैं उसे नहीं देख सका । मैं अनुराग
 मगान आतुर हा उठ्य ॥ २० ॥ इस प्रसंग निज्जन
 वनमें मुझ प्रपन्न करन दस स्वयं भगवान्ने, जो वगीक
 प्रिय नहीं हैं बड़ा गर्भीर और मरु वगीसे मर
 होकरा शान्त करन दूर-से कहा— ॥ २१ ॥ फिर ई
 कि हम जगमें तुम मा भगन नहीं कर सकाग ।
 त्रिनकी वस्तुने पूजनया गाम्य नहीं हा गयी है, उन
 अरुधर वशिष्ठोंसे मा दर्शन अत्यन्त दुखम है ॥ २२ ॥
 निज्जन वगीर 'तुम्हारा हृदयमें मुझ प्रपन्न करनेकी लाला
 जगत् करनेक प्रिय ही मैंने पर बार तुम्हें अनन्य

मत्काम' शून्यकः साधु मर्षान्मुञ्चति हृष्टयात् ॥२३॥

सत्सवयादीर्घपापि चावा मयि दृष्टा मयि ।

द्वित्वद्यमिर्मं लोकं गन्ता मञ्जनतामसि ॥२४॥

मतिर्मयि निवदेय न विपद्येत कर्हिषित् ।

प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्थितिषु भदनुग्रहात् ॥२५॥

एतावदुक्त्वोपरराम तन्महत्

मृत नभोतिष्ठमलिङ्गमीश्वरम् ।

अहं च तस्मै महता महीयसे

गीर्वाणनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥२६॥

नामान्यनन्दस्य इतत्रपः पठन्

गुह्यानि भद्राणि कृतानि च करन् ।

गां पर्षत्स्तुष्टमना गतस्तृह

फलं प्रतीक्षन् विमदो विमत्सर ॥२७॥

एवं कृष्णमतर्पणसत्तत्सामान्यतमन ।

कल प्रादुरभूक्ताते तद्वित्सांगमनी यथा ॥२८॥

प्रपुन्यमान मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ।

आरब्धभूतनिवाणा न्यपतन् पाशभोक्तिकः ॥२९॥

कृत्वान्त इमादाय शयानञ्जमस्युन्नत ।

त्रिप्रपिपाशुप्राणं विविदाज्जगद विधा ॥३०॥

महामृगपयन्त उधासं मिमुक्षत ।

मगीनिमिभा श्रपय प्राणम्याहं च जयि ॥३१॥

अन्नवदिष तासंगान् पयैर्म्यम्भन्दिनयत् ।

की शब्दक पित्रायी है । मुझे प्राप्त करनेकी आकांक्षासे मुझ

साधक कीरे-धीरे हृदयकी सम्पूर्ण वासनार्थक मयीमैत्रि

त्याग कर देता है ॥ २३ ॥ अत्यन्तहीन संतसेवासे ही तुम्हारी

विचलित मुझमें स्थिर हो गयी है । अब तुम इस प्राचीन-

मन्त्रि शरीरको छोड़कर मेरे पास हो जाओगे ॥ २४ ॥

मुझे प्राप्त करनेका तुम्हारा यह इद निश्चय कभी निती

प्रकार नहीं दूँगा । समस्त सृष्टिका प्रलय हो जानेपर

भी मेरी कृपामें तुम्हें मेरी स्थिति कभी रहेगी ॥ २५ ॥

अत्यन्तशक्ति समान अत्यन्त सर्वशक्तिमान् मन्त्रान् परमात्म

इतना कहकर चुप हो रहे । उनकी इस कृपाकर अनुमति

करके मैं उन श्रोत्रोंमें भी अन्तर भावनाएँ सिर हलक

कर प्रणाम किया ॥ २६ ॥ तभीसे मैं लज्जा-संकोच

छोड़कर मगधाके अत्यन्त रहस्यमय और महत्त्वमय

मधुर नामों और कीलार्थक कीर्तन और स्मरण करने

लगा । सृष्टि और म-मर मेरे हृदयसे पहले ही

निष्पन्न हो चुके थे, अब मैं आनन्दसे कृत्यकी

प्रतीक्षा करता हुआ धृष्टीपर निश्चरने लगा ॥ २७ ॥

व्यासजी । इस प्रकार भावानुकी कृपामें मेरा हृदय

शुद्ध हो गया, आसक्ति विन गयी और मैं श्रोत्राण्यपराग

हो गया । कुछ समय बाद, जैसे एकएक बिजली

कौंध जाती है, वैसे ही अपने समयपर मेरी मृत्यु

आ गयी ॥ २८ ॥ मुझे शुद्ध भावक्याप्त-शरीर प्राप्त

होनेका अक्सर आनन्द प्रारब्धधर्म समाप्त हो जानेके

कारण पाशभोक्ति करि मय हो गया ॥ २९ ॥ कल्पके

अन्तमें जिस समय भावान् मारुतग पञ्चगव (प्रलय-

कालीन समुद्र) के जलमें शयन करते हैं उस समय उनके

हृदयमें शयन करनेकी इच्छासे इरा मारी सृष्टिके सम्पूर्ण

ब्रह्माजी जब प्रपश करम लगे, तब उनका आत्मक माग में

भी उनका हृदयमें प्रवेश कर गया ॥ ३० ॥ एक गदस

चतुर्गुणी शीत जानवर जब ब्रह्मा जगे और उन्होंने सृष्टि

करनेकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंमें मगीर आति

शक्तियुक्त माग में भी प्रवेश हो गया ॥ ३१ ॥ तभीसे

मैं भावानुकी कृपामें नृपुत्रमिमें और तीनों गणोंमें

बदर और भीम बिना शक्यता विरग्न किया करता हूँ ।

अनुग्रहान्महाविष्णोर्विधातुमिति क्वचित् ॥३२॥

दवत्तामिमां गीणा म्वरत्रणविमृषिताम् ।

मूर्च्छयिन्वा हरिकथा गायमानमगम्यहम् ॥३३॥

श्रापयन् म्वरीर्याणि तीर्थपात्रं प्रियभवा ।

आहूत इव मं शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥३४॥

एतद्वधातुरजितानां मात्राम्पर्णाच्छया मुहुः ।

भवन्मिधुप्रवा दृष्टा हरिचर्यानुवर्णनम् ॥३५॥

यमाप्तिभियात्तपर्थं कामलोभहतो मुहुः ।

सुकुन्दसत्रया यद्वत्तथाऽऽत्मादा न ज्ञाम्यति ॥३६॥

राव तन्दिभ्याग्न्याल यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।

जमरुमरुहस्य मं भवतश्चात्मतोषणम् ॥३७॥

मृत उपाय

तत्वं सम्भाष्य भगवान्भारता वामवीसुतम् ।

आमन्त्र्य वीगा गायन् ययां यादृच्छिकं मूनि ॥३८॥

अहा त्वर्षिषपाय यस्कीर्तिं प्राप्नुधन्वन् ।

गायन्माघदितं सन्त्या गमयत्यातुर जगत् ॥३९॥ करने रहते हैं ॥ ३० ॥

मेरे जीवनका व्रण मगधव्रजन अलङ्काररूपसे चत्रा रहता है ॥ ३० ॥ भगवान्की दी हुई इस स्वयंसे-विभूति वीगापर तान छड़कर मैं उनकी वीगाओंका गान करता हुआ सारे संसारमें विचरता हूँ ॥ ३१ ॥ जय मैं उनकी वीगाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके करगक्रम सम्पन्न तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका परागान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, धुल्लये हुएकी भूमि तुरन् मेरे हृदयमें आकर दहन दे देते हैं ॥ ३२ ॥ जिन लोगोंका चित्त निरन्तर विषय-भोगोंकी कामनासे आतुर हो रहा है, उनके लिये भगवान्की वीगाओंका कीर्तन संसार-मागरसे पार जानका जहाज है, यह मेरा अपना अनुमर है ॥ ३५ ॥ काम और लोभकी चोम्मे बार बार घायन हुआ हृदय धी-धी-से-से जसी प्रत्यक्ष शान्तिकर अनुभव करता है, यम-निषम आदि योगभंगासे पैसी शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ३६ ॥ व्यासजी ! आप निष्कार हैं । आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब अपने जन्म और साधनका रहस्य तथा आपकी आत्मसुष्टिकर उपाय मैंने बताया दिया ॥ ३७ ॥

भीष्मजी कहते हैं—श्रीनरकः श्रमियो ! देवर्षि नारदन व्यासजीसे इस प्रकार कहकर जानेकी अनुमति दी और वीगा बढ़ाते हुए स्वयंसे विचरण करनेके लिये वे चत्र पड़ ॥ ३८ ॥ अहा ! ये देवर्षि नारद धन्य हैं, क्योंकि य गात्रपाणि भगवान्की कीर्ति-की-अरुनी वीगापर गा-गाकर स्वयं तो अन्तर्गमन दान दी हैं, माघ-माघ इस विचारनम जातका भी आनन्दित हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीनरकः श्रमियो नारायण पादमहर्ष्या सुष्टिकारो प्रथमस्कन्ध

सम्पन्नारम्भेन यथाऽऽपन्न ॥ ६ ॥

१. न. पा. — अनुग्रहान्महाविष्णोर्विधातुमिति । २. न. पा. — य वीर्षि ।

• ३८३. हृदय हृदय म यन् वन्त येन अरे निरर-ये नो नर हृदयभूत हरे न । ४। हृदय यत् ३८३ ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

अध्यायामाश्रया द्रौपदीके पुत्रोक्तं भाग्यं जाना और
अर्जुनके द्वारा अध्यायामाका मानमर्पण

श्रीमद उवाच

निर्गते नारद स्रुत भगवान् बादरायण ।
श्रुतवांस्तु भिषत तत किमकरोद्विशुः ॥ १ ॥

सूत उवाच

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रय पथिमे तटे ।
शम्पाप्राप्त इति प्रोक्तं श्रुतीनां मन्त्रवर्षनः ॥ २ ॥

तस्मिन् स्व आश्रयं व्याप्तो वदरीस्तुष्टमण्डिते ।
अस्मीनोऽप उपसृष्ट्य प्रसिद्धीमनः स्वयम् ॥ ३ ॥

भक्तियागन मनमि मम्यक् प्रणिहितेऽमल ।
अपदम्यसुरूप पूत्र मायां च तत्पाशमाम् ॥ ४ ॥

यया मम्मोहितो जीव अतमानं त्रिगुणात्मकम् ।
पराऽपि मनुतऽनर्थं तत्कृत चाभिपद्यत ॥ ५ ॥

अनर्थोपपन्नं साप्ताङ्गक्तियोगमधोक्षजे ।
सारम्याज्ञानता विद्वाश्चक्र मास्वतमहिताम् ॥ ६ ॥

यस्यां वै धयमाणायां कृष्ण परमपूरुषे ।
भक्तिरूपद्यत पुनः प्राकमाहभयापहा ॥ ७ ॥

न मंदितां भागवतीं कृत्वानुकम्प्य चात्मजम् ।
पुत्रमप्यापयामास निवृत्तिनिगतं मुनि ॥ ८ ॥

श्रीमद उवाच

ग य निवृत्तिनिगतं मयप्रापधका मुनिः ।
यस्य वा वृहतीमतामा मागम ममम्यम् ॥ ९ ॥

सूत उवाच

भाग्यमारामाय सुनया निवृत्त्या अप्युरुक्तम् ।

श्रीशौनकाजीने पूछा—सूतजी ! सबस एव सर्व-
शक्तिमान् व्यासभगवान् नारदजीका अभिप्राय सुन लिया ।
फिर उनके चले जानेपर उन्होंने क्या किया ? ॥ १ ॥

श्रीसूतजीने कहा—ब्रह्मनदी सरस्वतीके पश्चिम
तटपर शम्पाप्राप्त नामका एक आश्रम है । वहाँ ऋषियोंके
यज्ञ चल्ते ही रहते हैं ॥ २ ॥ वहाँ व्यासजीका अपना
आश्रम है । उसके चारों ओर केवल सुन्दर वन है ।
उस आश्रममें बैठकर उन्होंने आचमन किया और स्वयं
अपने मनका सम्प्राप्ति किया ॥ ३ ॥ उन्होंने भक्ति-
योगके द्वारा अपने मनको पूजितया एकत्र और निर्मल
करके आदिपुरुष परमात्मा और उनके आश्रयसे रहनेवाली
मायाको देखा ॥ ४ ॥ इसी मायासे मोहित होकर यह
जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक
मान लेता है और इस भ्रमनाके कारण होनेवाले
अनर्थोंको भोगता है ॥ ५ ॥ इन अनर्थोंकी शान्तिक
साक्षात् साधन है—वेद भगवान्का भक्तियाग । परंतु
संसारके लोग इस बातको नहीं जानते । वही समझकर
उन्होंने इस परमहंसोंकी सहिता श्रीमद्भागवतकी रचना
की ॥ ६ ॥ इसके ध्वजमात्रसे पुरुषोत्तम भगवान्
श्रीकृष्णक प्रणि परम प्रमथी भक्ति हो जाती है, जिससे
जीवके लोक, मोह और मय नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥
उन्होंने इस भागवत-महिताका निर्माण और पुनरावृत्ति
करके इसे अपने निवृत्तिपरायण पुत्र श्रीमुनिरूपजीको
पढ़ाया ॥ ८ ॥

श्रीशौनकाजीने पूछा—श्रीमुनिरूपजी ता अत्यन्त
निवृत्तिपरायण हैं उन्हें किसी भी वस्तुकी अपेक्षा
महती है । वे मन आत्मासे ही रमण करते हैं । फिर
उन्होंने किसीके इस विषय प्रत्यक्ष अप्युक्त
किया ? ॥ ९ ॥

श्रीसूतजीने कहा—जो लोग नहीं हैं, किसी
अभिप्रायकी अपेक्षा नहीं है और जो मन आत्मासे ही रमण

□ ■ ◆ ● ○

पराव्रतत्राणपरीप्सुरुष्या

यावद्रम रुद्रमयाद्यथार्कः ॥१८॥

यदाश्रयणमात्मन्यैवत आन्तर्वाजिनम् ।

असं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजामत्र ॥१९॥

अथोपमृश्य सलिलं संदधे तस्ममाहितः ।

अजलन्तुपसंहारं प्राणकुञ्ज उपमिते ॥२०॥

ततः प्रादुक्षत तेजः प्रचण्ड सर्वतोदिशम् ।

प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं विष्णुरुवाच ॥२१॥

अर्जुन उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामभयंकर ।

त्वमेको दहमानानामपवर्गोऽसि संसृते ॥२२॥

त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वर प्रकृते पर ।

मायां व्युदस्य चिच्छकस्या कव्यस्य मित आत्मनि २३

म एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ।

विभक्तं स्वन वीर्येण श्रयो धर्मादिलक्ष्यम् ॥२४॥

तथाय चावतारस्तं श्रुत्वा भारजिहीर्षया ।

स्वानां चानन्यभक्तानामनुध्यानाय चासकृत् ॥२५॥

किमिदं वित्तुतो वति देवदत्त न ब्रह्मम्हम् ।

सर्वतोमुखमायासि तेजः परमदारुणम् ॥२६॥

श्रीमगवायुवाच

चेत्येदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममर्त्यं प्रदर्शितम् ।

नैवात्मा वद सहारं प्राणवाध उपमितं ॥२७॥

न हस्यान्यतमं किंचित्सं प्रत्ययकथनम् ।

जलमृतं च अश्रुमस्रमा शस्त्रतजमा ॥२८॥

प्राणोक्ती रक्षाके लिये पृथ्वीपर जहाँतक माग सकता

था, उससे मयभीत सूयकरी मौलै मागता रहा ॥ १८ ॥

जब उसने देखा कि मेरे रथके घोड़े भक्त गये हैं और

मैं विष्णुल अकेला हूँ, तब उसने अपनेको ब्रह्मन्तर

एकमात्र साधन ब्रह्माक्ष ही समझा ॥ १९ ॥ पक्षी

उसे ब्रह्माक्षको छोटानेकी निधि माछम न थी,

फिर भी प्राणसाङ्ग दसकर उसने आचमन किया और

ध्यानस्थ होकर ब्रह्माक्षका सन्धान किया ॥ २० ॥

उस अक्षसे सब दिशाओंमें एक बड़ा प्रचण्ड तेज फैल

गया । अर्जुनने देखा कि अब तो मेरे प्राणोंपर ही आ

कनी है, सब उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की ॥ २१ ॥

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण ! तुम सन्निदानन्दस्वरूप

परमात्मा हो । तुम्हारी शक्ति अनन्त है । तुम्हीं भक्तों-

को अयय देनेवाले हो । जो संसारकी वक्करी हुई

आगमें जल रहे हैं, उन जीवोंको उससे उबारनेवाले

एकमात्र तुम्हीं हो ॥ २२ ॥ तुम प्रहृतिसे परे रहनेवाले

आदिपुरुष साक्षात् परमेश्वर हो । अपनी चिद्-शक्ति

(स्वरूप-शक्ति) से बहिरङ्ग एव त्रिगुणमयी मायाकी

दूर मगाकर अपने अद्वितीय स्वरूपमें स्थित हो ॥ २३ ॥

कही तुम अपने प्रभावसे माया-मोहित जीवोंके लिये वर्माणि

रूप कल्याणका विधान करते हो ॥ २४ ॥ तुम्हारा यह

अक्षर पृथ्वीका मार हरण करनेके लिये और तुम्हारे

अनन्यप्रेमी भक्तजनोंके निरन्तर स्मरण-ध्यान करनेके लिये

है ॥ २५ ॥ स्वप्नप्रकाशस्वरूप श्रीकृष्ण ! यह मयद्वार

तेज सब ओरसे मेरी ओर आ रहा है । यह क्या है,

फहँसो, क्यों आ रहा है—इसका मुझे वित्तुक्त पता नहीं

है ॥ २६ ॥

भगवाणने कहा—अर्जुन ! यह अक्षरमात्रा का चक्षुष्य

हुआ ब्रह्माक्ष है । यह जान समझ लो कि प्राण-संका उप

१ प्राचीन प्रसिद्ध अर्जुन उवाच इत्यादि नहीं है । २ या पा०—महामाया । ३ या पा०—आनाममय ।

● शिष्यभक्त विष्णुमाक्षी दसकर जब अपने दस निवा तब गुरुराक्षर अक्षित । भगवान् वर विष्णु दायमें छकर
उनकी ओर दौड़ । उक्त छप्पय श्रुति मागल-भागे पृथ्वीपर काशीमें आकर गिरे, इसीसे वहाँ उवाच अक्षरार्क नाम पड़ा ।

सुत उवाच

धृत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ।
 स्पृष्ट्वास्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्मणं संदधे ॥२९॥
 महत्यान्योन्यमुभयोस्तजसी शरसंभवे ।
 आहत्य रोदसी न च वधधातेऽर्कवहिवत् ॥३०॥
 दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तपोवीर्येभ्योऽन्वदहन्माहत् ।
 दक्षमानाः प्रजाः सर्वाः सौवर्तकममवत् ॥३१॥
 प्रजापञ्चवमालम्ब्य लोकान्तिकं च तम् ।
 मत्तं च वत्सुदेवस्य संसृष्टात्सुतो ह्ययम् ॥३२॥
 ततः अस्ताद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ।
 बन्धनार्मस्तान्नाश पशु रघुनया यथा ॥३३॥
 क्षिबिराय निनीवन्त दाम्ना बध्ना रिपु क्लृताः ।
 ग्राह्यर्जुनं प्रकुपितो भगवान्मुज्जेषुणः ॥३४॥
 सैनं पार्थाहसि ग्राह्यं ब्रह्मकन्धुमिम अहि ।
 याऽस्तावन्नास सुप्तानवधीन्निशि घालकान् ॥३५॥
 मत्तं द्रमचद्वन्मत्तं सुप्तं बालं क्षिप्यं जडम् ।
 प्रपन्नं विरथ भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥३६॥
 स्वप्नान् यः परप्रभैः प्रपुण्यात्पशुषु स्वतः ।
 तद्वधस्तस्य हि श्रयो यदोपाधात्यधः पुमान् ॥३७॥
 प्रतिश्रुतं च भवता पाश्चात्त्यै शृण्वतो मम ।
 बाहुरित्ये खिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥३८॥
 तदसौ वध्मतां पापं आस्तताय्यात्पशुपुङ्गव ।
 भद्रं विप्रिय वीरं कृतवान् कुरुपांसज ॥३९॥
 एषं परीक्षता धर्मं पार्थं कृपान् चोदितः ।

सुतजी कहते हैं—अर्जुन विपक्षी वीरोंको मारनेमें बड़े

प्रवीण थे । मगधान्की बात सुनकर उन्होंने आचमन
 किया और मगधान्की परिक्रमा करके ब्राह्मणके निवारणक
 लिये ब्राह्मण ही मन्त्रान किया ॥ २९ ॥
 गणोंसे वेधित उन दोनों ब्राह्मणोंके तेज प्रत्यक्षकीन
 सृष्ट्य एव कर्मिके समान आपसमें टकराकर मारे
 आपका और निशाचरोंमें फैल गये और बहने लगे ॥ ३० ॥
 तीनों लोकोंका जलनेवासी उन दोनों ब्रह्मोंकी
 बड़ी हुई अपटमें प्रजा जलने लगी और उसे देखकर
 सबने खड़ी सम्झा कि यह प्रत्यक्षाल्की सांकीर्ण अग्नि
 है ॥ ३१ ॥ उस आगसे प्रजाका और लोकोंका नाश होते
 देखकर मगधान्की अनुमतिसे अर्जुनने उन दोनोंको ही
 खेत्य लिया ॥ ३२ ॥ अर्जुनकी ओरसे गोवसे लाल-लाल
 हो रही थी । उन्होंने शपथकर उस क्रूर अश्वपामको
 पकड़ लिया और जैसे कोई रस्तीसे पशुको बाँध ले वैसे
 ही बाँध लिया ॥ ३३ ॥ अश्वपामको बलपूर्वक बाँध
 कर अर्जुनने जब क्षिबिरकी ओर ले जाना चाहा, तब
 उनसे वस्त्रमयन मगधान् श्रीकृष्णने कुपित होकर
 कहा— ॥ ३४ ॥ अर्जुन । इस ब्राह्मणाधमको जेबना
 रीक नहीं है, हमको तो मार ही जाले । इसने रातमें
 सोये हुए निरपराध बालकोंकी हत्या की है ॥ ३५ ॥
 धर्मविता पुरुष अस्ताववान्, पतकाले, पागल, सोये हुए,
 बालक, बी, निवेकज्ञानशून्य, शरणागत, रक्षणी और
 भयभीत शत्रुको कभी नहीं मारत ॥ ३६ ॥ परन्तु जो दुष्ट
 और क्रूर पुरुष दूतोंको मारकर अपने प्राणोंका पोषण
 करता है उसका तो बच ही उसके लिये कल्याणकारी है,
 क्योंकि वैसी आदतको देखकर यदि वह जीता है तो और
 भी पाप करता है और उन पापोंके कारण नरकनामी जाता
 है ॥ ३७ ॥ फिर मेरे सामने ही मुझे प्रीतिसे प्रतिज्ञा
 की थी कि 'मानकी । जिसने तुम्हारे पुत्रोंका बच किया
 है, उसका मिर मैं उतार लाऊँगा' ॥ ३८ ॥ इस पापी
 पुरुषका आत्मतापीने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया है और
 अपने क्षत्रीय दूतोंको भी दुःख पहुँचाया है । इसलिये
 अर्जुन । इसे मार ही जाले ॥ ३९ ॥ मगधान् श्रीकृष्णने
 अर्जुनके धर्मवीर परीक्षा देनेके लिये इस प्रकार प्रेरणा
 की, परन्तु अर्जुनका हृदय मगधान् था । यद्यपि अश्वपामने

नैच्छन्तु गुरुमुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥४०॥

अथापत्य स्वशिविरं गोविन्दप्रियसारथिः ।

न्यबेदयत्प्रियायद्यत्किन्त्या आत्मजान् हतान् ॥४१॥

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्ध

मवाह्मुत्सं कर्मजुगुप्सितन ।

निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरो मुतं

वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥४२॥

उषाघ चासहन्त्यस्य वन्धनानवर्नं सती ।

सूच्यतां सूच्यतामेव ब्राह्मणो निवरां गुरुः ॥४३॥

सरहस्यो धनुर्वेदः सविमर्गोपसंभमः ।

अस्त्रप्रमथ भवता सिधितो यदनुग्रहात् ॥४४॥

स एव भगवान् द्रोण प्रजारूपेण वर्तते ।

तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यान्ते नान्वगादीरस्यः कृपी ॥४५॥

तद् धमश्च महाभाग भवद्विगर्तव्यं कुठम् ।

इत्तिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्ण्य ॥४६॥

मा रादीदस्य जननी गौडमी पतिदेवता ।

यथाहं मृतवत्माऽऽता रादिभ्यस्तुली मृदु ॥४७॥

यैः क्षेपितं ब्रह्मकुलं राजन्परजितात्मभि ।

तद् कुलं प्रदहत्याशु सानुवन्धं श्लुषार्पितम् ॥४८॥

सूत उवाच

धर्म्यं न्याय्यं सकलं निर्धलीकं मम महत् ।

राजा धमनुतो राक्षसा प्रन्थनन्दश्चा द्विजाः ॥४९॥

नन्दन महदवध गुपुधानो धनजयः ।

भगवान् देवकीपुत्रो ये शान्य याश्च यापित ॥५०॥

उनके पुत्रोंकी हत्या की थी, फिर भी अर्जुनके ममे गुरुपुत्रको मारनेकी इच्छा नहीं हुई ॥ ४० ॥

इसके बाद अपने मित्र और सारथि श्रीकृष्णके साथ वे अपने युद्ध-शिविरमें पहुँचे । वहाँ अपने मृत पुत्रोंके लिये शोक करती हुई द्रौपदीको उससे मौन लिया ॥४१॥ द्रौपदीने देखा कि अश्वत्थामा पशुकी तरह बाँधकर बंध गया है । निन्दित कर्म करनेके कारण उसका मुख नीच-की ओर झुका हुआ है । अपना अनिष्ट करनेवाले गुरु-पुत्र अश्वत्थामाको इस प्रकार अपमानित देखकर द्रौपदीका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने अश्वत्थामाको नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ गुरुपुत्रका इस प्रकार नीच कर दिया जाना सही द्रौपदीको सहन नहीं हुआ । उसने कहा—छोड़ दो इन्हें, छोड़ दो । ये ब्राह्मण हैं, हम लोगोंके अल्पत पूजनीय हैं ॥ ४३ ॥ निन्दकी कृपासे आपने रहस्यके साथ सारे धनुर्वेद और प्रयोग तथा उपसंहारके साथ सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है, वे आपके आचम्य द्रोण ही पुत्रके रूपमें आपके सामने खड़े हैं । उनकी अपाङ्गिनी कृपी अपने भीर पुत्रकी ममता-से ही अपने पतिका अनुगमन नहीं कर सकी, वे कभी जीवित हैं ॥ ४४ ४५ ॥ म्हात्मन्यवान् कार्यपुत्र । आप तो बहु धर्मज्ञ हैं । जिस गुरुद्वाराकी निच पूजा और कन्दना करनी चाहिये, उतीका भ्रष्टा पहुँचाना आपका योग्य कर्म नहीं है ॥ ४६ ॥ वैसे अपने बन्धोंके मर जानेसे मैं दुखी होकर तो रही हूँ और मेरी आँखोंसे बार-बार आँसू निकल रहे हैं वैसे ही इनकी माता पतिव्रता गौडमी न रोये ॥ ४७ ॥ जो उच्छृङ्खल राजा अपने कुलधर्मोंसे बाह्यकुलधर्मों को कुम्भित कर देता है, वह कुम्भित ब्राह्मणकुल उन राजाओंका सपरिवार शोकस्मि-में बालकर शीघ्र ही भस्म कर देता है ॥ ४८ ॥

सूतजीने कहा—शौनकाजी श्रुतियो । द्रौपदीकी बात धर्म और न्यायके अनुकूल थी । उसमें कष्ट नहीं था कल्याण और सफला थी । अतएव राजा मुचिञ्जिने रानीके इन व्रतमरे श्रेष्ठ बचनोंका अमिनन्दन किया ॥ ४९ ॥ साथ ही नकुन्द, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, सय भगवान् श्रीकृष्ण और वहाँपर उपस्थित सभी नर नारिणोंने द्रौपदीकी बातका सम्बन्ध किया ॥ ५० ॥

तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य भयान् वध स्मृत ।
 न भर्तुर्नात्मन्यर्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून् वृथा ॥५१॥
 निशम्य भीमगदित द्रौपद्याश्च चतुर्भुज ।
 आलोक्य वदनं सम्पुन्रिदमाह हम्भिव ॥५२॥

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मवन्द्युर्न हन्तव्य अस्ततापी वधोर्ध्व ।
 मयैवोभयमाम्नातं परिपाप्मानुशामनम् ॥५३॥
 कुरु प्रतिश्रुत सत्य यत्तत्साम्त्वयता प्रियाम् ।

प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मममव च ॥५४॥

सूत उवाच

अर्जुन सहसाऽऽज्ञाय हरहर्षमधामिना ।
 मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य महामूर्ध्वजम् ॥५५॥
 विमुच्य रथनावदं यत्नहत्याहसप्रभम् ।
 तज्जमा मणिना हीनं शिखिभिरयापयत् ॥५६॥
 वपनं द्रविणहस्तं म्यानाभिर्यापणं तथा ।
 एष हि ब्रह्मभूतां वधो नान्योऽस्मिर्दहिक ॥५७॥
 पुत्रशोकप्रतुरा मर्वे पाण्डवा मह कृष्णया ।
 खानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्द्विगण्टिकम् ॥५८॥

उस समय क्रोधित होकर भीमसेनने कहा, 'जिसने सोते हुए बच्चोंको न अपने लिये और न अपने स्वामीके लिये, बल्कि व्यर्थ ही मार डाला, उसका तो वध ही उत्तम है' ॥५१॥ भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदी और भीमसेनकी बात सुनकर और अर्जुनकी ओर देखकर कुछ हँमते हुए-से कहा ॥५२॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'यदि ब्राह्मणका भी वध नहीं करना चाहिये और आत्मन्यीको मार ही डालना चाहिये'—शास्त्रोंमें मैंने ही ये दोनों बातें कही हैं । इसलिये मेरी दोनों आज्ञाओंका पालन करो ॥ ५३ ॥ तुमने द्रौपदीको सम्त्वना देते समय जो प्रतिज्ञा करी थी, उसे भी सत्य करो, साप ही भीमसेन, द्रौपदी और मुझे जो प्रिय हो, वह भी करो ॥ ५४ ॥

सूतजी कहते हैं—अर्जुन भगवान्के हृदयकी बात श्रुत ताड़ गये और उन्होंने अपनी तन्त्रारसे वस्त्रत्याग-के सिरफ़ी मणि उमके चारोंके साप उतार ली ॥ ५५ ॥ बाल्योकी हत्या करनेसे वह श्रीहीन तो पहले ही हो गया था, अब मणि और ब्रह्मतेजसे भी रहित हो गया । इसके बाद उन्होंने रस्सीका बन्धन छोड़कर उसे शिखि से निकाल लिया ॥ ५६ ॥ मूर्धना, घन छील लेना और म्यानसे बाहर निकाल देना—यही ब्राह्मणाधर्मोक्त वध है । उनका लिये हमसे भिन्न शारीरिक बंधन विधान नहीं है ॥ ५७ ॥ पुत्रोंकी मृत्युसे द्रौपदी और पाण्डव सभी शोकप्रतुर हो रह थे । अब उन्होंने अपने मरे हुए भाई कन्वुओंकी दाहान्ति अन्वेषित किया करी ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भगवत् महापुराणे पारमर्हस्या संहितायां प्रथमस्कन्धे

श्रीगणेशाय नमः समाप्तम् ॥ ७ ॥



१ २ प्राचीन प्रतिभे द्वारा दण्डम स्तर श्रीकृष्ण उवाच' के भी लक्ष्य निम्न पंक्ति दृश्य है तथा उक्तमें 'कृष्ण उवाच श्रीकृष्ण भगवानुवाच पाठ है । ३ प्रा पा —वपहृ ॥ ४ प्रा पा —नाना कृत्या । ५ प्रा पा —प्राचीन प्रतिभे 'मौघिनिम' नाम'की कृष्ण शरीरिण' पाठ है ।

अष्टाष्टमोऽध्यायः

गर्भमें परीक्षितकी रक्षा कुन्तीके द्वारा भगवान्की
स्तुति और युधिष्ठिरका शोक

तूत उवाच

अथ ते' सम्परेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ।
दक्षं सकृन्ना गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः क्षियः ॥ १ ॥
ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च मृश पुनः ।
आप्नुवा हरिपद्माञ्जरजःपूतसरिमले ॥ २ ॥
तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहाजुजम् ।
गान्धारीं पुत्रशोकरतां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३ ॥
सान्त्वयामास मुनिभिर्हृतबन्धून् शुचार्चितान् ।
मृतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥
साधयित्वा तत्राश्रितः स्वं राज्यं किञ्चैर्हृतम् ।
पातयित्वास्ततो रक्षः क्वस्पर्शश्चतायुष ॥ ५ ॥
याजयित्वाभ्यमेवैस्त विभिरुत्तमकल्पकैः ।
सप्तश पावनं दिष्टु क्षतमन्योरिवातनोत् ॥ ६ ॥
असम्भ्य पाण्डुपुत्रांश्च धीनेयोद्वर्ततपुत ।
द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥
गन्तुं कृतमतिमग्नान् द्वारकां रथमास्थित ।
उपलेभेऽभिधावन्दीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥

उपशोभा

पाहि पाहि महापागिन्दवद्व जगत्पत ।

सुखजी कहते हैं—इसके बाद पाण्डव श्रीकृष्णके साथ जलाशयके इच्छुक भरे हुए खजनोंका नर्पण करने के लिये क्षियोंको आगे करके गङ्गातटपर गये ॥ १ ॥ वहाँ उन सबने धृत बन्धुओंको जल दान दिया और उनके गुणोंका स्मरण करते बहुत क्षिण किया । तत्पश्चात् भगवान्के चरण-कर्मभोंकी धूम्रिसे पवित्र गङ्गाजलमें पुन स्नान किया ॥ २ ॥ वहाँ अपने माहयोंके साथ कुरुपति महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, पुत्रशोकरसे व्याकुल गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदी—सब बैठकर भरे हुए खजनोंके लिये शोक करने लगे । भगवान् श्रीकृष्णनं वीर्यादि मुनियोंके साथ उनका सान्त्वना दी और सम्झाया कि संसारके सभी प्राणी कालके अधीन हैं, मौतसे किसीको कोई बचा नहीं सकता ॥ ३ ४ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अनातप्राप्तु महाराज युधिष्ठिरको उनका वह राज्य, जो धृति छलसे छीन लिया था, वापस मिलाया तथा द्रौपदीके कशोक तथा कलसे जिनकी बाध क्षीण हो गयी थी, उन दुष्ट राजाओंका भव करमा ॥ ५ ॥ साथ ही युधिष्ठिरके द्वारा उक्त सम्प्रियोसे तथा पुरोहितोंसे तीन कर्ममेव यज्ञ करायें । इस प्रकार युधिष्ठिरके पवित्र यशको सी यज्ञ करनेवाले इसके पश्चात् तब सब ओर फैल दिया ॥ ६ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने वहाँसे जानेका निश्चय किया । उन्होंने इसके लिये पाण्डवोंसे विना सी और म्यास आदि मांसोंका सत्कार किया । उन ध्योगों भी भगवान्का वषा ही सम्मान किया । तत्पश्चात् सायकि और उदयके साथ द्वारका जानेके लिये वे रथपर सवार हुए । उसी समय उन्होंने देखा कि उत्तरा भयसे विह्वल होकर सामनेसे दीड़ी कधी आ रही है ॥ ७-८ ॥

उत्तरा ने कहा—देवाधिदेव ! अगदीधर ! आप महायोगी हैं । आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।

नमोऽकिंचनविद्याय निवृत्तगुणवृत्तये ।

आत्मात्रामाय ध्वान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विश्वम् ।

समश्चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥

न वेड कश्चिद्भगवद्विधीर्षितं

तवेहमानस्य नृणां विहम्बनम् ।

न यस्य कश्चिद्विद्यतोऽस्ति कश्चिद्विदुः

द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम् ॥२९॥

जन्म कर्म च विद्यान्मभ्यस्याकर्तुरात्मन ।

तिर्षक्नु'पिपु यद सु तदत्यन्तविहम्बनम् ॥३०॥

गोप्यलदे त्वयि कृतागतिराम तावद्

या ते दैवाश्चकलिलाञ्जनसम्प्रमाद्यम् ।

वक्त्रं निनीय भयभावनया म्विसस्य

मा मां विमाहयति भीरपि यस्मिमेति ॥३१॥

केचिदाहुरज जात पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।

यदो प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥३२॥

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽम्भगात् ।

अनस्त्वमस्य धेमाम यथाय च सुरदिपाम् ॥३३॥

आप निर्धनोकि परम धन हैं । मायाका प्रपञ्च आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता । आप अपने आपमें ही विश्वास करनेवाले, परम शान्तस्वरूप हैं । आप ही कैवल्य मोक्षके अधिपति हैं । आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥२७॥

मैं आपको अनादि, अनन्त, सवश्यापक, सबके नियन्ता, कालरूप परमेश्वर समझती हूँ । संसारके समस्त पदार्थ और प्राणी आपसमें टकराकर विषमताके कारण परस्पर विरुद्ध हो रहे हैं, परन्तु आप सबमें समानरूप से बिचर रहे हैं ॥ २८ ॥ भगवन् ! आप जब मनुष्यों-की-सी छीला करते हैं, तब आप क्या करना चाहते हैं—यह कोई नहीं जानता । आपका कभी कोई न प्रिय है और न अधिप । आपके सम्बन्धमें लोगोंकी बुद्धि ही विषम हुआ करती है ॥ २९ ॥ आप विश्वके अहम्मा हैं, विश्वरूप हैं । न आप जन्म लेते हैं और न कर्म ही करते हैं । फिर भी पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जल-चर आदिमें आप जन्म लेते हैं और उन योनियोंके अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं । यह आपकी छीला ही तो है ॥ ३० ॥ जब वक्त्रपनमें आपने दुषकी मन्की फोबकर यशोग मैयाको खिन्ना दिया था और उन्होंने आपको बौचनेके लिये हाथमें रस्ती ली थी, तब आपकी औखिमें औसू छन्य आये थे, कानल कपोलोंपर बह जाऊ था, नेत्र चञ्चल हो रहे थे और मन्दकी माकनासे आपने अपने मुखको नीचेकी ओर झुका लिया था । आपकी उस दशाक—छीला-छत्रिका ध्यान करके मैं मोहित हो जाती हूँ । भग, जिससे मय भी भय मानता है, उसकी यह दशा ॥ ३१ ॥ आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया है, इसका कारण अनन्तते हुए कोई-कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जैसे मल्लयाचनकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय मल्ल पुण्यश्लोक राजा यदुकी कीर्तिपर विस्तार करनेके लिये ही आपने उनके वंशमें अनन्तर प्रादुर्भाव किया है ॥ ३२ ॥ दूसरे जेमा यों कहते हैं कि वसुदेव और देवकीने पूर्वजन्ममें (सुतपा और पृथिके रूपमें) आपसे यही करदान प्राप्त किया था, इसीप्रिय आप अजन्मा होते हुए भी जगत्के कल्याण और दीर्घके नाशके लिये उनके पुत्र बने हैं ॥ ३३ ॥

भारावतारणापात्तं भुवो नाव इवोद्भवौ ।
सीदन्त्या भूरिभारेण आतो ब्राह्मणस्यार्थितः ॥३४॥
भवेऽस्मिन् छिन्त्यमानानामविद्याकर्मकर्मभिः ।
भ्रवणसरणार्हाणि करिष्येन्निति केचन ॥३५॥

मृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीष्टमृष

सरन्ति नन्दन्ति तवेक्षितं जना ।

त एव पश्यन्त्यचिरेण तावत्कं

मवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहितं प्रभो

जिहससि खित्सुद्वदोऽनुजीविनः ।

यपां न चान्यद्भवत पदाम्बुजात्

परायणं राजसु योजितां हसाम् ॥३७॥

क वयं नामरूपाभ्यां भुभिः सह पाण्डवाः ।

भवतोऽर्चनं यहि हृषीकण्मामिवेक्षितुः ॥३८॥

नयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाभर ।

त्वत्पदं रङ्गिता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥३९॥

इमं जनपदां सदा सुपद्मैपधिवीरुध ।

वनाट्टिनघुदन्वन्ता ब्रधन्ते तव वीर्क्षितैः ॥४०॥

अथ विश्वश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते सकृप मे ।

स्नेहपाशमिमं छिन्धि ददं पाण्डुपु इष्णिपु ॥४१॥

त्वयि मज्जन्यविपया मतिर्मग्नपतेऽसकृत् ।

रतिमुद्वदतोऽदा गङ्गेवीपमुदन्वति ॥४२॥

कुछ और लोग यों कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्योंके अत्यन्त भारसे समुद्रमें डूबते हुए जहाजकी तरह डगमगा रही थी— पीड़ित हो रही थी, तब ब्रह्मास्त्री प्रार्थनासे उसका भार उतारनेके लिये ही आप प्रकट हुए ॥ ३४ ॥ कोई मूर्ख-पुरुष यों कहते हैं कि जो लोग इस संसारमें अज्ञान, कर्मना और कर्मोंके बन्धनमें जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं, उन लोगोंके लिये अर्पण और स्मरण करनेयोग्य छीन करनेके विचारसे ही आपने अन्तर ग्रहण किया है ॥ ३५ ॥ मनुष्यन बार-बार आपके चरित्रका अर्पण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं, वे ही अकिन्म्व आपके उस चरणकमलका दर्शन कर पाते हैं, जो जन्म-मृत्युके प्रवाहको रुकाके लिये रोक देता है ॥ ३६ ॥

मनुजान्मकल्पतरु प्रभो ! क्या अब आप अपने आश्रित और सम्बन्धी हमयोगोंको छोड़कर जाना चाहते हैं ? आप जानते हैं कि आपके चरणकमलोंके अनि-रिक्त हमें और निरसीका सहाय नहीं है । पृथ्वीके राजाओंके तो हम यों ही किरोची हो गये हैं ॥ ३७ ॥ जैसे जीवके बिना इन्द्रियों शक्तिहीन हो जाती हैं, वैसे ही आपके दशन बिना यदुवदित्योंके और हमारे पुत्र पाण्डवोंके नाम तथा रूपका अस्तित्व ही क्या रह जाता है ॥ ३८ ॥ गदाधर ! आपके किष्कण चरणविहंससे चिह्नित यह कुरु-राज्य-देशकी भूमि आज जैसी शोभामयान हो रही है, वैसी आपके चले जानेके बाद न रहेगी ॥ ३९ ॥ आपकी हृदिके प्रभावसे ही यह देश पकी हुई फसल तथा लता-वृक्षोंसे समृद्ध हो रहा है । ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपकी हृदिके ही हृदिके प्रात हो रहे हैं ॥ ४० ॥ आप विश्वके स्वामी हैं, विश्वके आत्म हैं और विश्व रूप हैं । यदुवदियों और पाण्डवोंमें मेरी बड़ी ममता हो गयी है । आप कृपा करने स्वयंके साथ जोड़े हुए इस स्नेहकी दृढ़ फौसीको काट दीजिये ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्ण ! जैसे गङ्गाकी लक्षण बार समुद्रमें गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि किन्नी हूँ और न जानकर आपमें ही निरन्तर प्रेम करती रहे ॥ ४२ ॥

१ म्र पा — करिष्ये हति । २ म्र पा — यदम्भ । ३ म्र पा — स्वद्वेक्षित । ४ म्र पा —

वीरिणः । ५ म्र पा — रतिमुद्वदतां ददात् ।

कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाह कल्पो व्यपोहितम् ॥५१॥

यथा पक्कन पक्काम्म सुरमा वा सुराकृतम् ।

मृतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥५२॥

मैं गृहस्थाचित यज्ञ-यागादिकोंके द्वारा मार्जन करनेमें सम्यक् नहीं हूँ ॥ ५१ ॥ जैसे कीचड़से गँदला जल सफ़ा नहीं किया जा सकता, मंदिरसे मंदिरकी अपवित्रता नहीं मिटायी जा सकती, वैसे ही बहुत-से हिसाबबुझ यज्ञोंके द्वारा एक भी प्राणीकी हत्याका प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमर्हस्यो संहितायां प्रथमस्कन्धे
तुन्तीस्तुतिर्युधिष्ठिरनुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

युधिष्ठिरादिका भीष्मजीके पास जाना और भगवान् भीष्मजीकी स्तुति करते हुए भीष्मजीका प्राणत्याग करना

सूत उवाच

इति भीत प्रजाद्रोहस्तत्सर्वधर्मविविस्तया ।
ततो विनम्रं न प्रागात् यत्र देशयतोऽपतत् ॥ १ ॥
तत्र त आत्तर सर्वे सन्द्भैः स्थणभूपितैः ।
अन्वगच्छन् रथैर्विभ्रा व्यस्तधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥
भगवानपि विप्रपे रथेन सधनं जय ।
म तैर्धर्मराजत नृप कुम्भर इव शुभर्क ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा निपतितं भूमौ निवहन्त्युतमियामरम् ।
प्रणम्य पाण्डवा भीष्मं मानुगा सह चक्रिणाः ॥ ४ ॥
तत्र ब्रह्मपय सर्वे द्रवपयश्च सलम ।
गजपयश्च तन्नामन् द्रुपुं भरतपुङ्गवम् ॥ ५ ॥
परता नाग्या धौम्या भगवान् वादरायण ।
पृहत्या भगद्वाज मशिव्या रणरासुत ॥ ६ ॥
वसिष्ठ इन्द्रप्रमथिता शृम्भमनाऽमित ।
वर्षीयान् गान्माऽग्रिय कौणिराधसुदान ॥ ७ ॥
अन्य च मुनया मन्त्रन् ब्रह्मगताऽप्यमना ।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा युधिष्ठिर प्रजा-द्रोहसे मयभीत हो गये । फिर सब धर्मात्मा ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्होंने कुरुक्षेत्रकी पान्ना की, जहाँ भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए हैं ॥ १ ॥ शौनकादि ऋषिगण । उस समय उन सब भार्योंने स्वर्णजडित रथोंपर, विनम्र अष्टे-अष्टे घोड़े जुते हुए थे, सबार होकर अपने मार्ग युधिष्ठिरका अनुगमन किया । उनके साथ व्यास, धौम्य आदि ब्राह्मण भी थे ॥ २ ॥ शौनकाजी । अर्जुनके साथ भगवान् भीष्मजी भी रथपर चढ़कर बने । उन सब भार्योंके साथ महासज्ज युधिष्ठिरकी पेंसी शोभा हुई, मनो क्लेशसे चिरे हुए स्वयं कुम्भर ही जा रहे हों ॥ ३ ॥ अपने अनुचरों और भगवान् भीष्मजीके साथ वहाँ जाकर पाण्डवोंने दाय्य कि भीष्मपितामह स्वयं गिरे हुए दण्डाके समान पृथ्वीपर पड़े हुए हैं । उन लोगोंने उन्हें प्रणाम किया ॥ ४ ॥ शौनकाजी । उसी समय मन्त्रयश्मिणों के गौरवस्वरूप भीष्मपितामहका दण्डके शिखे सभी मन्त्रियों, दक्षिण और राजर्षि वहाँ आय ॥ ५ ॥ परम, नारद, धौम्य, भगवान् व्यास, पृहत्या, भद्राज, शिष्योंके साथ परगुणमन्त्री, वसिष्ठ इन्द्रप्रमथ, विन, शृङ्गमन्, अमिन, वर्षीयान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुमान तथा और भी दुर्योधन अग्नि पुण्डरीक मन्त्रादिकोंके साथ शिष्योंके

शिष्यैरुपता आजगम कश्यपाक्षिरसाम्यः ॥ ८ ॥

तान् समेतान् महाभागानुपलभ्य वसुचम ।

पूजयामास धर्मज्ञो दशकालविभागवित् ॥ ९ ॥

कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आमीनं जगदीश्वरम् ।

हृदित्व पूजयामास मातृपोषाचविग्रहम् ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्रानुपासीनान् प्रथमप्रेममगतान् ।

अभ्याषट्तालुगतास्रैरन्वीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यथ धर्मनन्दनाः ।

जीवितु नार्हथ क्लिष्ट विप्रधर्मोऽप्युताभयाः ॥ १२ ॥

संमिसेऽर्तिरधे पाण्डो पृथा बालप्रजा बधू ।

युष्मत्कृते बहून् क्लृप्तान् प्राप्ता तोकवती शुद्ध ॥ १३ ॥

मयं कलकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ।

सपातो यदग्रे लोको वापोरिव घनावति ॥ १४ ॥

यत्र धर्ममुतो राजा गदापाणिर्हृकोत्तरः ।

कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं बापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥ १५ ॥

न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन् पुमान् वेद विधित्सितम् ।

यद्विजिह्वस्तया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥ १६ ॥

तसादिदं दृषत्तत्रं प्यवस्य भरतपथ ।

तसानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥ १७ ॥

पपदं भगवान् साक्षात्पदां नारायण पुमान् ।

सहित कश्यप, अक्षिर-मुत्र बृहस्पति आदि मुनिगण भी
कहाँ पधारे ॥ ६-८ ॥ भीष्मपितामह धर्मज्ञ और देश-
कालके विभागज्ञ—कहाँ विषय समय क्या करना
चाहिये, इस बातको जानते थे । उन्होंने उन वज्रमारी
शूरवीरोंको सम्मिलित हुआ देखकर उनका यथायोग्य
सत्कार किया ॥ ९ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव
भी जानते थे । अब उन्होंने अपनी लीलासे मनुष्यका
वेध धारण करके कहाँ बैठे हुए तथा जगदीश्वरके रूपमें
हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णकी वाहर तथा भीतर
दोनों जगह पूजा की ॥ १० ॥

पाण्डव बड़े विनय और प्रसन्ने साथ भीष्मपितामहके
पास बैठ गये । उन्हें देखकर भीष्मपितामहकी आँखें प्रेमके
आँसुओंसे भर गयीं । उन्होंने उनसे कहा—॥ ११ ॥
धर्मपुत्रो ! हाय ! हाय ! यह बड़ा कष्ट और अल्पयुक्ती
बात है कि तुम लोगोंको ब्राह्मण, धर्म और भगवान्के आश्रित
रहनेपर भी इतने कष्टक साथ जीना पड़ा, जिसके
तुम कदापि योग्य नहीं थे ॥ १२ ॥ अनिरुधी पाण्डुकी
मृत्युके समय तुम्हारी अवस्था बहुत खराबी थी । उन दिनों
तुम लोगोंके लिये पुन्तीरानीको और साथ-साथ तुम्हें भी
बार-बार बहुत-से कष्ट झेलने पड़े ॥ १३ ॥ जिस प्रकार
वायुके बरसें खत हैं, वैसे ही लोकात्मके
सहित सारा संसार कलमगबलान्के अधीन है । मैं
समझता हूँ कि तुम लोगोंके जीवनमें य जो अग्रिय घटनाएँ
घटित हुई हैं, वे सब उन्होंनेकी वीला हैं ॥ १४ ॥ नहीं
तो जहाँ साक्षात् धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर हैं, गदाधारी
भीष्मसेन और धनुर्धारी अर्जुन रक्षाकर कर्म कर
रहे हों, गाण्डीव धनुष हो और स्वयं श्रीकृष्ण सुहृद्
हों—मध्य, वहाँ भी विरतिकी सम्मानना है ॥ १५ ॥
ये कलरूप श्रीकृष्ण क्या क्या करना चाहते हैं, इन
बातको कभी धोरे नहीं जानता । बड़-बड़ शानी भी इसे
जाननकी इच्छा करके झेदित हो जाते हैं ॥ १६ ॥
युधिष्ठिर ! संसारकी ये सब घटनाएँ इच्छरेष्टाक अधीन
हैं । उसीका अनुसरण करके तुम इस अनाथ प्रमाद
पाटन करो क्योंकि अब तुम्हीं इसका स्वामी और इसे
पाटन करनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥

ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं । य मयक आपि
करण और परम पुरुष नारायण हैं । अपनी मयासे

मोहमन्मायया ठोकं गूढधरति वृष्णिषु ॥१८॥

अस्यानुमात्र भगवान् वेद गुह्यतमं शिवः ।

देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान् कपिलो नृपं ॥१९॥

यं मन्यसे मातुलेय प्रिय मित्र मुद्विषमम् ।

अकरोः सधिवं दूतं सौहृदादयः सारथिम् ॥२०॥

सर्वविघ्नं समष्ट्यो द्वाद्भ्यस्तानहंकृते ।

तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवयस्य न क्वचित् ॥२१॥

तथाप्येकान्तभक्तैः पश्य भूपालुकम्पितम् ।

कन्मेऽर्हस्त्यजतः साक्षात्कृप्यो दर्शनमागतः ॥२२॥

भक्त्याऽऽवक्ष्य मनो यस्मिन् वाचा यन्नाम कीर्तयन् ।

त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥२३॥

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां

कलेवरं यत्तदिदं हिनोम्यहम् ।

प्रसन्नहृत्पारुष्यलोचनोऽस्मिन्

न्मुत्साम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्ध्वजः ॥२४॥

सूत उवाच

युधिष्ठिरस्तदाकर्म्यं श्रयानं शूरपञ्चरे ।

अष्टपञ्चद्विविधान्भर्मान्प्रीणां चानुमृष्वताम् ॥२५॥

पुरुषस्वभावविहितान् यथावर्णं यथाभमम् ।

वैराग्यरागोपाधिभ्यामाज्ञाताभयलक्षणान् ॥२६॥

दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान् विभामाशः ।

स्त्रीधर्मान् भगवद्भर्मान् समासव्यासयोगतः ॥२७॥

धर्मोपक्रममाध्यामं सहोपायान् यथा धृते ।

नानात्म्यानेतिहासेषु वर्णयामास सत्त्ववित् ॥२८॥

योगोक्तो मोहितं करते हुए ये यदुभययोर्मिं छिपकर शीज

कर रहे हैं ॥ १८ ॥ इनका प्रभाव अत्यन्त गूढ़ एवं

रहस्यमय है । युधिष्ठिर ! उसे भगवान् शाङ्कर, देवर्षि

नारद और स्वयं भगवान् कपिल ही जानते हैं ॥ १९ ॥

जिन्होंने तुम अपना समस्त भार, प्रिय मित्र और सबसे बड़ा

द्विद मानते हो तथा जिन्होंने तुम्हें प्रमत्तता अपना मन्त्री,

दूत और सारथिक बनानेमें संकोच नहीं किया है, वे

स्वयं परमात्मा हैं ॥ २० ॥ इन सर्वात्मा, सम्पूर्ण,

अद्वितीय, अद्विष्टारहित और निष्काम परमात्मने उन

ऊँचे-नीचे कारणोंके कारण कभी किसी प्रकारकी विफलता

नहीं होती ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर ! इस प्रकार सर्वत्र सम

होनेपर भी, देखो तो सही, वे अपने कल्याणप्रेमी भक्तोंके

कितनी कृपा करते हैं ! यही कारण है कि ऐसे सम्मेलने,

जब कि मैं अपने प्राणोक्ति त्याग करने जा रहा हूँ, इन

भगवान् श्रीकृष्णने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है ॥ २२ ॥

भगवत्परायण योगी पुरुष भक्तिभावसे इनमें अपना सब

स्वात्म और वाणीसे इनके नामका कीर्तन करते हुए

शरीरका त्याग करते हैं और कर्मभावोंसे तथा कर्मके

बन्धनसे छूट जाते हैं ॥ २३ ॥ वे ही देवदेव भगवान्

अपने प्रसन्न हास्य और रक्तकमण्डके समान अरुण नेत्रोंसे

उन्मत्तित मुखवाच चतुर्ध्वजरूपसे, त्रिशक और योगोक्त

केवल ध्यानमें दर्शन होता है, तत्काल यही स्थिति रहकर

प्रतीक्षा करें, जबतक मैं इस शरीरका त्याग न कर दूँ ॥ २४ ॥

सूतजी कहते हैं—युधिष्ठिरने उनकी यह बात सुन-

कर शर-शाण्यापर सोये हुए श्रीभक्तिमन्त्रसे बहुतसे शक्ति-

के सामने ही नाना प्रकारके धर्मोंके सम्बन्धमें अनेकों

रहस्य पूछे ॥ २५ ॥ तब तत्पश्चेत्ता श्रीव्यासजीने वर्ण

और व्यासके अनुसार पुरुषके स्वाभाविक धर्म और

वैराग्य तथा राजके कारण विभिन्नरूपसे धनकाये हुए निवृत्ति

और प्रवृत्तिरूप द्विविध धर्म, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म,

जीवधर्म और भगवद्धर्म—इन सबका आत्म-आत्मा संक्षेप

और विस्तारसे वर्णन किया । शौनकाजी ! इनके साथ

ही धर्म, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका

तथा इनकी प्राप्तिके साधनोंका अनेकों उपस्थान और

इतिहास सुनाते हुए विभागाश वर्णन किया ॥ २६—२८ ॥

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ।
 यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तृप्तराषण ॥२९॥
 तदोपसङ्गत्य गिरः सहस्रणीं
 विमुक्तसङ्गं मनः आदिपूरुषे ।
 कृष्णे लम्पतीतपटे चतुर्भुजे
 पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥३०॥
 विशुद्धया धारणया ईशान्भु-
 त्तदीश्वरैवाशु गतायुधम्यधः ।
 निश्चितसर्वेन्द्रियविभित्रम्-
 स्तुष्टाव जन्मं विमुञ्जन्नार्दनम् ॥३१॥
 भीमप्य उवाच
 इति मत्तिलकस्थिता विशृण्या
 भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
 स्रस्त्रस्यमुपगते कषिद्रिस्तुं
 प्रकृतिद्वयेषुपि यमद्वयप्रवाह ॥३२॥
 विशुद्धवनकर्मणं तमालवर्णं
 रविकरगौरव्राम्बरं दधाने ।
 वपुरलककुलाङ्गताननाम्बरं
 विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवधाय ॥३३॥
 युधि तुरगरजोविभूषविष्वक्
 कञ्जललितभ्रमवर्णलंकृतस्थे ।
 मम निश्चितसर्वविभिद्यमान-
 त्वचि विलसत्कण्ठेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥३४॥
 सपदि मत्तिलक्यो निशुम्य मध्ये
 निजपरयोर्बलया रथं निषेध्य ।

भीमपितामह इतः प्रकार धर्मका प्रथमन कर ही रहे थे कि यह उत्तरावधका समय था पहुँचा, जिससे मृत्युको अपने अधीन रखनेवाले भगवत्प्रसाधन योगीन्द्रोक्त बाह्य करते हैं ॥ २९ ॥ उस समय इन्होंने रथियोंके नेता भीमपितामहने बाणीका संभन करके मनको सब ओरसे हटाकर अपने सामने स्थित आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया । भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर चतुर्भुज विभू पर उस समय पीताम्बर पहारा रहा था । भीमजीकी आँखें उसीपर एकटक लग गयीं ॥ ३० ॥ उनको शङ्कोकी चोटसे जो पीका हो रही थी, वह तो भगवान्के दर्शनमात्रसे ही तुरंत दूर हो गयी तथा भगवान्की विशुद्ध धारणासे उनके ज्ञान कुछ अक्षुण्ण होय थे, वे समी नष्ट हो गये । अब शरीर छोड़नेके समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंके वृत्ति-विश्रासको रोक दिया और बड़ प्रेमसे भगवान्की स्तुति की ॥ ३१ ॥

भीमजीने कहा—अब मृत्युके समय मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करनेसे अत्यन्त शुद्ध एवं कथमनस्थित हो गयी है, यदुर्वासा-सिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते हुए भी कभी बिहार करनेकी—छीछ करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि परम्परा चलती है ॥ ३२ ॥ जिनका शरीर त्रिभुवनसुन्दर एवं इयाम तमाकके समान सौन्दर्य है, जिसपर सूर्यरश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहरता रहता है और कम्बु-सदृश मुखपर पुष्परागी अक्षोंके लटकती रहती हैं, उन अर्जुन-सख्य श्रीकृष्णमें मेरी निष्काङ्क्ष प्रीति हो ॥ ३३ ॥ मुझे युद्धके समझकी उनकी वह निष्काङ्क्ष छवि याद आती है । उनके मुखपर लहरते हुए पुष्परागे बाण घोड़ोंकी टाँगकी धूलसे मल्लैसे हो गये थे और पत्नीनेकी छाँटी-छोटी मूर्ते शोभायमान हो रही थीं । मैं अपने तीक्ष्ण बलोंसे उनकी लवचाको बीध रहा था । उन सुन्दर वक्त्रमण्डित भगवान् श्रीकृष्णके प्रति मेरा शरीर, अन्तःकरण और आत्मा समर्पित हो जायें ॥ ३४ ॥ अपने मित्र अर्जुनकी बात सुनकर, जो तुरंत ही पाण्डवसेना और कौरवसेनाके बीचमें अपना रथ रेंग लाय और यहाँ

स्मितवति परसैनिकयुररक्षा

इतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥३५॥

व्यश्रितपुतनामृत निरीक्ष्य

स्वजनवधादिमुखस्य दोषेषुदृष्ट्या ।

कुमतिमहरदात्मविद्यया य-

श्चरपरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिष्ठा

मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।

धृतरथचरणोऽम्ब्याम्लवृणु-

र्हरिरिव हन्तुमिम गतोचरीय ॥३७॥

क्षितविशिन्वहतो विश्वीमर्षक्ष

क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।

प्रमभमभिसत्तार मदधार्थ

म भवतु मे भगवान् गतिमुद्वन्द ॥३८॥

विजययधकुडुम्ब आचतोत्रे

धृतद्वयरश्मिनि तन्निष्पेक्षणीये ।

भगवति रतिरस्तु मे ध्रुवर्षो

यमिह निरीक्ष्य इता गता सरूपम् ॥३९॥

ललितगतिविलासवन्गुहास

प्रणयनिरीक्षणकरिपितोरुमानाः ।

कृतमनुकृतवत्य उन्मत्तान्धा

प्रकृतिमगन् क्लिप्तयस्यगोपवप्यः ॥४॥

स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टिसे ही शत्रुपक्षके सैनिकोंकी आयु छीन ली, उन पार्थसख ममान् श्रीकृष्णमें मेरी परम प्रीति हो ॥ ३५ ॥ अर्जुनने जब दूरसे कौरवोंकी सेनाके मुखिया हम्बलोंको देखे, तब पाप सम्झकर वह अपने स्वजनोंके कवसे क्रिप्त हो गया । उस समय जिन्होंने गीताके रूपमें आत्मविक्षेप उपदेश करके उसके सामयिक अज्ञानका नाश कर दिया, उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरी प्रीति करी रहे ॥ ३६ ॥ मैंने प्रतिष्ठा कर ली थी कि मैं श्रीकृष्णको शत्रु प्रवृत्त करकर छोड़ूँगा, उसे सत्य एवं सच्ची करनेके लिये उन्होंने अपनी शत्रु प्रवृत्त न करनेकी प्रतिज्ञा तोड़ दी । उस समय वे रथसे नीचे कूद पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारनेके लिये उसपर दूट पड़ता है, वैसे ही रथका पहिया लेकर मुझपर हलट पड़े । उस समय वे हतन बेगसे दौड़े कि उनके कंधेका दुपट्टा गिर गया और पृथ्वी कोपने लगी ॥ ३७ ॥ मुझ आततायिने तीले बाण मार-मारकर उनके शरीरका कवच तोड़ डाला था, जिनमें सारा शरीर छूड़खान हो रहा था, अर्जुनके ऐकनेम भी वे बलपूर्वक मुझ मारनेके लिये मेरी ओर दौड़े आ रहे थे । वे ही भगवान् श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्तकस्यव्रतासे परिपूर्ण थे, मेरी एकमत्र गति हों—आश्रय हों ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथकी रक्षामें सावधान जिन श्रीकृष्णके बायें हाथमें घोड़ोंकी रज भी और दाहिने हाथमें चाबुक, इन दोनोंकी शोभासे उस समय जिनकी अर्ध छवि बन गयी थी तथा महाभारत युद्ध में मरनेवाले भीरु जिनकी इस छविका दर्शन करते रहनेके कारण सारूप्य मोक्षको प्राप्त हो गये उन्होंने पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णमें मुझ परगास्तकन्त्री परम प्रीति हो ॥ ३९ ॥ जिनकी छत्रकीरी सुन्दर चाल हाव मानकुछ चेष्टाएँ, मधुर मुसकान और प्रेममयी चिन्तनसे अल्पसम्मानित गंधियों रासश्रीयमें उनके अस्तर्जन हो जानपर प्रेमोन्मात्तसे मन्त्राली होकर जिनकी छियाओंका अनुकरण करके लग्न हो गयी थी, उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णमें मेरी

मुनिगणनृपवर्यसकुलेऽन्त

स्तदसि युधिष्ठिरराजध्वज एषाम् ।

अर्हणमुपपद् ईक्षणीयो

मम दशिगोधर एष आविरत्मा ॥४१॥

समिममहमज शरीरभाजां

इदि इदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।

प्रतिद्वन्द्वमिव नैकधाकर्मिकं

समभिगतोऽस्मि विपृतमेदमोह ॥४२॥

सूत उवाच

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्धट्टिबुचिभिः ।

आत्मन्यत्मानमावश्य सोऽन्तश्चात्स उपारमत् ॥४३॥

सम्यग्मानमाप्राप भीष्म ब्रह्मणि निष्कले ।

सर्वे वमृषुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्सय ॥४४॥

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमार्त्तववादिता ।

शशसु साध्वो राज्ञां त्वात्पेतु पुण्यदृष्टय ॥४५॥

तस्य निर्हरणाद्रीनि सम्यरंत्तस्य भार्गव ।

युधिष्ठिर करयित्वा ग्रहर्तुं दुःखितोऽभवत् ॥४६॥

तदुवर्द्धनसो ह्यग कृष्ण तदुगुह्यनामभिः ।

ततस्ते कृष्णहृदया स्वाभमान् प्रययु पुन ॥४७॥

ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ।

पितरं सान्त्वयामास गान्धारी च तपस्विनीम् ॥४८॥

पित्रा चानुमतो राजा वसुधवानुमोदित ।

चक्रर राज्य धर्मेण पिदुर्पतामहं विमु ॥४९॥

परम प्रेम हो ॥ ४० ॥ जिस समय युधिष्ठिरका राजसूय-
यज्ञ हो रहा था, मुनियों और षड्वक्त्रे राजाओंसे मरी
हैं सम्मने सबसे पहले सबकी ओरसे इन्हीं सबके दशनीय
मगवान् श्रीकृष्णकी मेरी ओंखोंके सामने पूजा हुई थी,
वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्युके समय मेरे
सामने खड़े हैं ॥ ४१ ॥ जैसे एक ही सूर्य अनेक
ओंखोंसे अनेक रूपोंमें दीखते हैं, वैसे ही अजन्म
मगवान् श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रहित अनेक शरीरधारियोंके
हृदयमें अनेक रूपसे जान पड़ते हैं, वास्तवमें तो वे एक
और सबके हृदयमें विराजमान हैं ही । उन्हीं इन
मगवान् श्रीकृष्णको मैं भेज-अगसे रहित हाकर प्राप्त हो
गया हूँ ॥ ४२ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार मीष्मभिनाम्हने मन,
बाणी और दृष्टिकी वृत्तियोंसे आत्मस्वरूप मगवान् श्रीकृष्णमें
अपने आत्मा कीन कर दिया । उनके प्राण वहाँ स्थित
हो गये और वे शान्त हो गये ॥ ४३ ॥ उन्हें अनन्त
ब्रह्ममें स्थित जानकर सब लोग वैसे ही चुप हो गये,
जैसे दिनके बीच जानेपर पशुपक्षी कत्थन शान्त हो
जाता है ॥ ४४ ॥ उस समय देवता और मनुष्य नगारे बजाने
लगे । साधुसमाजके राजा उनकी प्रशंसा करने लगे
और आकाशसे पुण्यकी वर्षा होने लगी ॥ ४५ ॥
शौनकाजी । युधिष्ठिरने उनके सूत शरीरकी अत्येष्टि
किया करायी और कुछ समयके स्थिये वे शोकमग्न हो
गये ॥ ४६ ॥ उस समय मुनियोंने बड़े आनन्दसे मगवान्
श्रीकृष्णकी उनके रहस्यमय नाम ल-लेकर स्तुति की ।
इसके पश्चात् अपने हृदयोंके श्रीकृष्णमय वनाकर वे
अपने-अपने आश्रमोंके लौट गये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर
मगवान् श्रीकृष्णके साथ युधिष्ठिर हस्तिनापुर चले आये
और उन्होंने वहाँ अपने चाचा वृत्तराष्ट्र और तपस्विनी
गान्धारीको ढाढ़स बैठाया ॥ ४८ ॥ फिर वृत्तराष्ट्रकी
आज्ञा और मगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे समस्त राजा
युधिष्ठिर अपने वैशम्पयणराज्य साम्राज्यका वनपूरक
शासन करने लगे ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्य संहितायां प्रथमस्कन्धे

युधिष्ठिरराज्यध्वजो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१ प्रा वा —विद्वन्ने शिवमयस्य । २ प्रा वा —मनिरिचमिव । ३ प्रा वा —मनावाग्धट्टिबुचिभिः ।

४ प्रा वा —विवात्सये । ५ प्रा वा —दानव । ६ प्रा वा —राजन् ।

अथ दशमोऽध्याय

धीकृष्णका द्वारका-नामन

शौनक उवाच

हत्वा स्वरिष्यस्थं आततायिनो

युधिष्ठिरो धर्ममृतां वरिष्ठ ।

महाबुधैः प्रत्यवरुद्धभोजनः

कथं प्रवृत्त किमकारपीक्षतः ॥ १ ॥

सूत उवाच

वधं कुरुर्वैश्वदेवाग्निर्नैर्हृतं

संरोहयित्वा भवभाषनो हरिः ।

निवेद्ययित्वा निजराज्य ईश्वरो

युधिष्ठिर प्रीतमना बभूव ह ॥ २ ॥

निशम्य भीष्माक्तमवाच्युत्तोकं

प्रवृत्तविद्वानविपुतविभ्रम ।

शशास गामिन्द्र इवाजितान्धयः

परिभ्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥

काम धवर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुषा मही ।

मिपितु स्रग्जान् गावः पयमोषस्यवीर्षदा ॥ ४ ॥

नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुषः ।

फलन्त्योपधयः सदा काममन्वृतु तस्य वै ॥ ५ ॥

नाधयो व्याधयः कलदा देवभूतात्मदेतवः ।

अजातशत्रुपुत्रं जन्तूनां राक्षि कर्हिचित् ॥ ६ ॥

उपित्वाहान्तिनपुर मामान् कतिपयान् हरिः ।

गुहदा च निशोकाय म्यमुष प्रियकर्मण्या ॥ ७ ॥

आमन्थयाम्यनुम्रात परिष्वज्याभिराय तम् ।

आग्नाद् गन्धं कंभिन्परिष्वक्ताभिराप्ति ॥ ८ ॥

शौनकजीने पूछा—धार्मिकरितोमगि महापुत्र युधि-

ष्ठिरने अपनी पैतृक सम्पत्तिको हृदय जानेके इच्छुक
आततायियोंका नाश करके अपने माइयोंके साथ मिल
प्रकृष्टसे राज्य-शासन किया और कौन-कौन-से काम
किये, क्योंकि भोगोंमें तो उनकी प्रवृत्ति थी ही
नहीं ॥ १ ॥सूतजी कहते हैं—सम्पूर्ण युधिष्ठिर उग्रभीति करने-
वाले भगवान् श्रीहरि परस्परकी कलहाम्निसे दग्ध कुरुवंशको
पुनः संवृत्तिकर और युधिष्ठिरको उनके राज्य-सिंहासन
पर बैठाकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ भीष्मसिंहासन
भगवान् धीकृष्णके उपदेशोंके श्रवणसे उनके कन्त करणमें
निश्चिन्ताका उदय हुआ और भ्रान्ति मिट गयी । भगवान् के
आश्रयमें रहकर वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका इन्द्रके
समस्त शासन करने लगे । भीष्मसेन आदि उनके सर्व
पूर्णरूपसे उनकी आज्ञाओंका पालन करते थे ॥ ३ ॥
युधिष्ठिरके राज्यमें आवश्यकतानुसार पषेठ बर्ग
होती थी, पृथ्वीमें समस्त अभीष्ट वस्तुएँ पैदा होती थीं,
बड़े-बड़े धनोन्मादी बहुत-सी गौएँ प्रसन्न रहकर गो-
दालनजोको दूधसे सींचती रहती थीं ॥ ४ ॥ नदियाँ,
समुद्र, पर्वत, वनस्पति, लताएँ और ओषधियाँ प्रत्येक
श्रुतमें पषेठरूपसे अपनी-अपनी वस्तुएँ राजाको देती
थीं ॥ ५ ॥ अजातशत्रु महापुत्र युधिष्ठिरके राज्यमें किसी
प्राणीका कमी भी आधि-व्याधि अथवा दैविक, भौतिक
और आत्मिक क्लेश नहीं होते थे ॥ ६ ॥अपने बन्धुओंका शोक मिटानेके लिये और अपनी
बहिन सुमन्त्राकी प्रसन्नयके लिये भगवान् धीकृष्ण कर्ष
महीनोतक हस्तिनापुरमें ही रहे ॥ ७ ॥ तब जब
उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे द्वारका जानेकी अनुमति माँगी,
तब राजान उन्हीं अपने हृदयसे म्माकर स्वीकृति दे
ली । भगवान् उनका प्रणाम करके स्वयं सवार हुए ।
बुढ़ा लोगो (ममान उग्रबालो) ने उनका आङ्गिकन
किया और बुढ़ा (छात्री उग्रबालो) ने प्रणाम ॥ ८ ॥

१ प्रा वा —निर्वृत । २ प्रा वा —याम्य म्यनुम्रात वै । ३ प्रा वा —भूया इदेतव । ४ प्रा वा —

सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटसनया तथा ।
 गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुराँसमौ यमौ ॥ ९ ॥
 शक्रोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ।
 न सेहिरे विमुच्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वन ॥ १० ॥
 संतप्तज्ञान्यक्तदुस्सङ्गो हातु नोत्सहते युधः ।
 कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥
 तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथम् ।
 दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥ १२ ॥
 सर्वे तेऽनिमिषैरर्घ्यंस्तमनुदुश्चेतसाः ।
 वीक्षन्त स्नेहसम्बद्धा विषेलुस्तत्र तत्र ह ॥ १३ ॥
 न्यरुन्धन्नुद्रलङ्घ्यान्मौत्स्यस्याहेवकीमुते ।
 निर्यत्यैगाराभोऽभद्रमिति स्याद्वान्धवस्त्रियः ॥ १४ ॥
 मृदङ्गद्वह्नुमेर्यश्च वीणापणवगोमुखा ।
 पुष्पुर्गानकचम्पाया नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥ १५ ॥
 प्रासादशिलरारुढा कुरुनार्यो दिदृक्षुषा ।
 वधैषुः कुन्तुमैः कृप्यां प्रेमव्रीडासितेषुणा ॥ १६ ॥
 सितातपत्रं अग्राह मुक्तादामविभूषितम् ।
 रत्नदण्डं गुडाकण्डः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥
 उदयः सात्यकिर्मथ भ्यजने परमाद्यूते ।
 विकीर्यमाणः कुन्तुमै रजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥
 अभ्युन्वाद्यपि मत्यस्तत्र तत्र दिजेरिता ।

उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीमसेन, धौम्य और सत्यक्री आदि सब मूर्छित-से हो गये । वे शार्ङ्गपाणि श्रीहृष्णका विरह नहीं सह सके ॥ ९ ॥ १० ॥ मगधराज सत्युराजके सङ्गसे जिसका दुःसङ्ग छूट गया है, वह विद्याशालील पुरुर मगधान्के मधुर-मनोहर सुपदाके एक बार भी सुन लेनेपर फिर उसे छोड़नेकी कल्पना भी नहीं करता । उन्हीं मगधान्के दर्शन तथा स्पर्शसे, उनके साथ आलाप करनेसे तथा साथ-ही-साथ सोने, उठन-बैठने और भोजन करनेसे जिनका सम्पूर्ण हृदय उन्हें समर्पित हो चुका था, वे पाण्डव मत्स्य, उनका विरह कैसे सह सकते थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ उनका चित्त इन्तिन हो रहा था, वे सब निर्निमित्त नेत्रोंसे मगधान्को देखते हुए स्नेह-वन्धनसे बँधकर जहाँ-तहाँ दौड़ रहे थे ॥ १३ ॥ मगधान् श्रीकृष्णके घरसे बल्लते समय उनके बन्धुओंकी स्त्रियोंके नेत्र टकटाकासा उमड़ते हुए जौंसोंसे भर आये, परंतु इस मयसे कि कहीं यात्राके समय अराकुन न हो जाय, उन्होंने बड़ी कष्टिनाइसे उन्हें रोक लिया ॥ १४ ॥

मगधान्के प्रस्थानके समय मृदङ्ग, शङ्ख, मेरी, वीणा, ढोल, नरसिंगे, धुन्धुरी, नगारे, घण्टे और दुन्दुभियों आदि बाजे बजने लगे ॥ १५ ॥ मगधान्के दर्शनकी आत्मासे कुरुक्षेत्रकी स्त्रियों अटारियेपर चढ़ गयीं और प्रेम, लज्जा एवं मुसकानसे मुक्त कितनसे मगधान्को देखती हुई उनपर पुष्पोंकी बर्षा करने लगीं ॥ १६ ॥ उस समय मगधान्के प्रिय सखा धुँवरसे बालोंवाले कर्जुनने अपन प्रियतम श्रीहृष्णका बह स्नेह छत्र, त्रिसमे मोलियोंकी शालर झन्क रही थी और जिसका डंडा लम्बोका बना हुआ था, अपन हाथमें ले लिया ॥ १७ ॥ उदय और सात्यकि बड़ विचित्र चैंकर बुझाने लगे । मार्गमें मगधान् श्रीहृष्णपर आते आते पुष्पोंकी बर्षा हो रही थी । बड़ी ही मधुर शौंषी थी ॥ १८ ॥ जहाँ-तहाँ ब्राह्मणोंके न्येे हुए सत्य आशीर्वा सुनायी पड़ रहा था । वे समुग मगधान्के

नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१९॥

अन्योन्यमासीत्संजल्य उत्तमश्रेष्ठचेतसाम् ।

क्षैरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वभूषिमनोहर ॥२०॥

स वै किलाप पुरुषः पुरस्तनो

य एक आत्मीदविशेष आत्मनि ।

अग्रे गुणेश्वरो जगदात्मनीश्वरे

निमीलितआत्मभिन्नि सुसंशक्तियु ॥२१॥

य एव भूयो निजवीर्यचोदितां

स्वजीवमात्मां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।

अनामरूपात्मनि रूपनामनी

विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥

स वा अयं यत्पदमत्र स्तस्यो

चित्तेन्द्रिया निर्वृतिमातरिभ्यः ।

पश्यन्ति भक्त्युत्कृष्टात्मलात्मना

नन्वेव सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥

स वा अयं सस्मनुगीतसत्कथो

वेदेषु गुणेषु च गुणवादिभिः ।

य एक इन्द्रो जगदात्मलीलया

सृज्यवत्पति न तत्र सज्जते ॥२४॥

यदा ह्यधर्मेण तमोधिभ्यो नृपा

भीषन्ति तत्रैव हि संभवतः किल ।

धत्ते भर्गं सत्यमृतं दद्यां यज्ञो

भवाय रूपाणि दधधुगं युगे ॥२५॥

अहा अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल-

महो अलं पुण्यतमं महाबलम् ।

तो अनुरूप ही थे, क्योंकि उनमें सब कुछ है परंतु निर्गुणके अनुरूप नहीं थे, क्योंकि उनमें कोई प्रकृत गुण नहीं है ॥ १९ ॥ इतिनापुरकी कुक्षीन रमणियों, जिनका चित्त मगधान् श्रीकृष्णमें रम गम्भ था, आपसमें ऐसी बातें कर रही थीं जो सबके काम और मनको आकृष्ट कर रही थीं ॥ २० ॥

ये आपसमें कह रही थीं—‘सखियो ! ये वे श्री सनातन परम पुरुष हैं, जो प्रकृष्टके समय भी अपने अद्वितीय निर्विशेष स्वरूपमें स्थित रहते हैं । उस समय सृष्टिके मूल ये तीनों गुण भी नहीं रहते । जगत्मा ईश्वरमें जीव भी खीन हो जाते हैं और मृत्युत्सादि समस्त शक्तियाँ अपने कारण अव्यक्तमें सो जाती हैं ॥ २१ ॥ उन्होंने ही फिर अपने नाम-रूपरहित स्वरूपमें नाम-रूपके निर्माणकी इच्छा की, तथा अपनी कर्म-शक्ति प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंके पोषित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और स्पन्दहारके लिये वेगारि शास्त्रोंकी रचना की ॥ २२ ॥ इस जगत्में जिसके स्वरूपक साक्षात्कार चित्तेन्द्रिय योगी अपने प्राणोक्तों कह करके मक्तिके प्रफुल्लित निर्मल हृदयमें किया करते हैं, ये श्रीकृष्ण वही साक्षात् परब्रह्म हैं । वास्तवमें इन्हींकी मक्तिके अन्त करणकी पूर्ण बुद्धि हो सकती है योगादिके द्वारा नहीं ॥ २३ ॥ सच्ची ! वास्तवमें ये वही हैं, जिनकी सुन्दर लीजओकर गाफन केदमें और दूसरे गोपनीय शास्त्रोंमें व्यासादि रहस्यकारी अभियोगे किया है—जो एक अद्वितीय ईश्वर हैं और अपनी लीलासे जगत्की सृष्टि पालन तथा संहार करते हैं परंतु उनमें आसक्त नहीं होते ॥ २४ ॥ जब ताम्सी बुद्धिवाले राजा अधर्मसे अपना पेट पाकने लगाते हैं तब ये ही सत्पुरुषको स्वीकारकर ऐश्वर्य, सत्य, श्रुत दया और यश प्रकट करते और संसारके कल्याणके लिये युग-युगमें अनेकों अवतार धारण करते हैं ॥ २५ ॥ अहा ! यह यदुवंश परम प्रशंसनीय है, क्योंकि लक्ष्मणपति पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण करके इस वंशको सम्मानित किया है । वह पत्तित्र यदुवन (वज्रमण्डल) भी अव्यक्त धन्य है, जिसे

यदेव पुंसामृषभ त्रिष पति
 स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥
 अहो वत स्वयंशमस्तिरस्करी
 कुशम्वली पुष्पयशस्करी शुभ ।
 पश्यन्ति नित्य यदनुग्रहपित
 सितावलोकं स्वपतिं स यत्प्रजा ॥२७॥
 नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वर
 ममर्षितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।
 पिबन्ति याः सख्यधैरावृत्तं सुदु
 र्व्रजस्त्रिषः सम्मुहुर्यदत्ताया ॥२८॥
 या वीर्यशुल्केन हुताः स्वयंवरे
 प्रमथ्य चैवप्रभुगवान् हिं क्षुम्भिणः ।
 प्रद्युम्नसोम्बान्मुतात्पोऽपरा
 याभाहुता भौमवधे महस्रश्च ॥२९॥
 एता पर स्त्रीत्वमपान्तपेशल
 निरस्तशौचं वत साधु कुर्वते ।
 यामां गृहस्थुष्करलोचनः पति-
 र्न जातृपत्याहुतिभिर्हन्ति स्पृशन् ॥३०॥
 पर्वविधा गदन्तीनां स गिर पुरयोपिताम् ।
 निरीक्षणैनाभिनन्दन् मसितेन यया हरि ॥३१॥
 अजस्तम्रं पृतनां गोपीधाय मधुक्षिपः ।
 परम्य शङ्कित स्नेहान्यापुङ्गवतुरङ्गिणीम् ॥३२॥
 अथ दूरागताम् गौरि रौरवान् विरहातुरान् ।

इन्होंने अपने शैशव एवं किशोरवस्थामें घूम-निरकर
 सुशोभित किया है ॥२६॥ यह हर्षकी बात है कि शरकरान
 खर्गके यशस्वर निरस्कार करके पृथ्वीके पवित्र यशस्वर
 बड़ाया है । क्यों न हो, बहौकी प्रजा अपने स्वामी
 मगवान् श्रीकृष्णको, जो यह प्रेमसे मन्द-मन्द मुसकुराते
 हुए उन्हें कृपारहितसे देखते हैं, निरन्तर निहारती रहती
 है ॥२७॥ सखी । बिनका इन्होंने पाणिग्रहण किया है,
 उन क्षिपेनि अश्वपत्नी कन, स्नान, हवन आदिके द्वारा
 इन परमात्माकी आराधना की होगी, क्योंकि वे बार
 बार इनकी उस अकर-सुधाकर पान करती हैं, जिसके
 स्मरणमात्रसे ही ब्रजबाह्य आनन्दसे मूर्छित हो जाया
 करती थी ॥२८॥ ये स्वयंवरमें दिव्यपाल आदि
 मत्वाले राजाजोंका मान मर्दन करके भिनको अपने
 बाहुबलसे हर आये थे तथा बिनके पुत्र प्रद्युम्न,
 साम्ब, आम्ब आदि हैं, वे इक्ष्मणी आदि आर्यों
 पुरानियों और मौमासुरकी मास्कर लायी हुई जो इनकी
 हमारों अन्य पत्नियों हैं, वे वास्तवमें धन्य हैं । क्योंकि इन
 सम्भवे सततत्रया और पतिव्रतासे रहित स्त्रीनीकनको
 पतिव्र और उष्कृष्ट बना लिया है । इनकी महिमाका
 वर्णन कोई क्या करे । इनके स्वामी साक्षात् ब्रह्मस्वरूप
 मगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो नाना प्रकारकी प्रिय चेष्टाओं
 तथा पारिवार्यादि प्रिय वस्तुओंकी मंगसे इनके हृदयमें प्रेम
 एवं आनन्दकी अमिच्छा करते हुए कभी एक क्षणके लिये भी
 इन्हें छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाते ॥ २९ ३० ॥

हस्तिनापुरकी स्त्रियाँ इस प्रकार बातचीत कर ही रही
 थी कि मगवान् श्रीकृष्ण मन्द मुसकुरान और प्रमदूर्ण
 किनारसे उनका अभिनन्दन करते हुए वहाँसे निग हो
 गये ॥ ३१ ॥ अजातशत्रु युधिष्ठिरने मगवान् श्रीकृष्णकी
 रक्षाके लिये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना उनके
 साथ कर दी, उन्हें स्तब्धपथ यह दाह्य हो आयी थी
 कि कहीं रास्तेमें शत्रु इनपर आक्रमण न कर दें
 ॥ ३२ ॥ सुदृढ़ प्रेमका कारण युद्धशी पाण्डव
 मगवान्के साथ बहुत दूर तक चले गये । वे लोग उस
 समय भाभी निरहसे व्याकुल हो रहे थे । मगवान्

सनिवर्त्य दृढ स्निग्धान् प्रायात्खनगरीं प्रियै ॥३३॥
 कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयाधुनान् ।
 भद्रावर्तं कुरुक्षेत्रं भत्सलान् सामखतानप ॥३४॥
 मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ।
 अनर्तान् भार्गवोपागाच्छ्रान्तबाहो मनाविभु ॥३५॥
 तत्र तत्र ह तत्रत्यैरिः प्रत्युद्यतैरिणः ।
 साय भेजे दिशं पश्चाद्दिविष्ठो गां गतस्तदा ॥३६॥

श्रीकृष्णने उन्हें बहुत आग्रह करके किता किता और
 सायपकि, ठहल आदि प्रेमी मित्रोंके साथ इनकाभी यथा
 की ॥ ३३ ॥ सौनिकजी । ये कुरुजाङ्गल, पाञ्चाल,
 शूरसेन, यमुनाके तटवर्ती प्रवेश भद्रावर्त, कुरुक्षेत्र, भत्स,
 सारखत और मरुधन्व देशको पार करके सौवीर और अभीर
 देशके पश्चिम आनर्त देशमें आये । उस समय अधिक
 चलनेके कारण भगवान्क रथके घोड़े कुछ थक-से गये थे
 ॥ ३४ ३५ ॥ मामिं स्थान-स्थानपर लोग उपप्लविके
 द्वारा भगवान्का सम्मान करते, साथैकाल होनेर वे
 रथपरसे भूमिपर उतर आते और जलशायर जाकर
 संध्या-वन्दन करते । यह उनका नित्यकर्म थी ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते म्हापुराणे पारमर्हस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
 नैमिरीयोपाख्याने श्रीकृष्णद्वारकजन्मनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः

द्वारकामे श्रीकृष्णका राजोक्तिर आगत

सूत उवाच

आनर्तान् स उपप्लव्यं सृष्ट्वाञ्जनपदान् स्वकान् ।
 दम्भौ दैर्घ्यं तेषां विपद्ं क्षमयन्निव ॥ १ ॥

तं उषकाशे धवलोदरो दरो-

उप्युरुक्रमसाधरशोणशोणिमा ।

दाध्यापमानं करकडासम्पुटे

यथाञ्जलण्डे क्लृप्तं उत्स्यन् ॥ २ ॥

समुपधृत्य निनद अगम्यभयपहम् ।

प्रत्युद्ययुः प्रजाः मवां भर्तृदर्शनलालसा ॥ ३ ॥

सत्रापनीतयलया रथदीपमिवाहता ।

आमारामं पृणकामं निजजन्मन नित्यदा ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—श्रीकृष्णने अपने समूह आनर्त
 देशमें पहुँचकर बहोके लोगोंकी किङ्क-वेदना बहुत कुछ
 शान्त करते हुए अपना श्रेष्ठ पाञ्चनम्य नामक शृङ्ग बजाय
 ॥ १ ॥ भगवान्के होठोंकी झलतीसे छाल हुआ वह श्वेत
 वर्णका शङ्ख बजते समय उनके कर-कन्धमेंसे ऐस
 शोभायमान हुआ, जैसे खाल रंगके कन्धमेंसे बैलर
 कोई शब्दसं उल्लसते मधुर गान कर रहा हो ॥ २ ॥
 भगवान्के शङ्खपत्र बहूनी संसारके मयके भयभीत
 करनेवाली हैं । उसे सुनकर सारी प्रजा अपने स्वामी
 श्रीकृष्णके दशनकी क्षाप्रतासे नगरके बाहर निकल
 आयी ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण आत्मराम हैं, वे अपने
 आत्मभावसे ही सदा-सर्वदा पूर्णराम हैं, फिर
 भी जैसे छोटे बड़े आगरसे भगवान् सर्वको भी
 निपटान करते हैं, वैसे ही अन्य प्रभुओंकी
 भेंटसे प्रभान श्रीकृष्णका स्वागत किया ॥ ४ ॥

१ प्राचीन प्रतिभे इति ग ६६४ "एत उवाच तत्र नदी दे । २ मा पा — यमुना । ३ प्राचीन प्रतिभे
 वा ५५५ नदी दे ।

प्रीत्युत्कृष्टमुखाः प्रोत्तुर्हर्षाद्गदया गिरा ।
पितरं सर्वसुहृदं विवितारमिवार्मका ॥ ५ ॥

नताः स ते नाम सदा हृदि पङ्कजं
विरिञ्चवैरिभ्यः सुरेन्द्रवन्दितम् ।
परायणं धेममिहेच्छतां परं
न यत्र कलः प्रभवेत् परैः प्रभुः ॥ ६ ॥

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन
त्वमेव मातार्यं सुहृत्पतिः पिता ।
त्व सद्वर्गुर्न परम च दैवतं
यस्यानुभूत्या कृतिनो बभूविम ॥ ७ ॥

अहो सनाथा भवता स यद्वयं
वैविष्ट्यान्नामपि दूरदर्शनम् ।
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणान्न
पश्यम रूप तव सर्वसौभगम् ॥ ८ ॥

यर्षाम्बुजाक्षपससार भो भवान्
कुरुन् मधून् वाय सुहृदिष्यया ।
तत्रान्दकोटिप्रतिम क्षणो भवेद्
रविं विनाङ्गोरिव नस्तवाच्युत ॥ ९ ॥

इति चोदीरिता वाच प्रजाना भक्तवत्सलः ।
शृण्वानोऽनुग्रह दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत्युरीम् ॥ १० ॥

मधुभोजदशार्हर्षिकुङ्कुरान्धकृष्णिभिः ।
आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥

सर्वतु सर्वविभवपुण्यवृक्षलताभयैः ।
उपानोपवनारामैर्द्वैतपद्माकरभ्रियम् ॥ १२ ॥

सबके मुख-कमल प्रेमसे खिन्न उठे । वे हर्षाद्गद वाणीसे
सबके सुहृद् और संरक्षक भगवान् श्रीकृष्णकी ठीक वैसे
ही स्तुति करने लगे, जैसे बालक अपने पितासे अपनी तोन्नी
बोलीमें बातें करते हैं ॥ ५ ॥ 'स्वामिन् ! हम आपके
उन चरण-कमलोंको सदा-सर्वदा प्रणाम करते हैं, जिनकी
कन्दना माला, गङ्गा और इन्द्रतक करते हैं, जो इस संसारमें
परम कल्याण चाहनेवालोंके लिये सर्वोत्तम प्राप्य हैं, जिनकी
शरण ले लेनेपर परम समर्थ कल भी एक बालक
बोका नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ विश्वमात्मन् ! आप ही
हमारे माता, सुहृद्, स्वामी और पिता हैं, आप ही
हमारे सद्वर्ग और परम आराध्यदेव हैं । आपके चरणोंकी
सेवासे हम कृतार्थ हो रहे हैं । आप ही हमारा कल्याण
करें ॥ ७ ॥ अह ! हम आपको पाकर सनाथ हो
गये । क्योंकि आपके सर्वसौन्दर्यसुख अनुपम रूपका
हम दर्शन करते रहते हैं । कितना सुन्दर मुख है !
प्रेमपूर्ण सुसक्तनसे स्निग्ध चितवन ! यह दर्शन तो
देकराजोंके लिये भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ कमन्धपन
श्रीकृष्ण ! जब आप अपने कन्दु-बान्धवोंसे मिलनेके
लिये हस्तिनापुर अवकाश मधुर (ब्रजमण्डल) चले जाते
हैं, तब आपके बिना हमारा एक-एक क्षण कोटि-कोटि
क्योंकि समान लंबा हो जाता है । आपके बिना हमारी
दशा वैसी हो जाती है, जैसे सूर्यके बिना औखोंकी
॥ ९ ॥ मकवलसक भगवान् श्रीकृष्ण प्रजाके मुखसे
ऐसे कथन सुनते हुए और अपनी रूपमयी दृष्टिसे उनपर
अनुग्रहकी दृष्टि करते हुए हस्तकामे प्रविष्ट हुए ॥ १० ॥

जैसे नाग अपनी नगरी भोगनी (पानाग्रपुरी)
की रक्षा करते हैं, वैसे ही भगवान्की वह द्वारकपुरी
भी मधु, भोज, दशार्ह, अह, कुसुम, अन्धक और वृष्णि-
वंशी पाण्डवोंसे, त्रिमके पराक्रमकी तुष्टना और किन्तीसे भी
नहीं की जा सकती, सुरक्षित थी ॥ ११ ॥ वह पुरी
समस्त ऋतुओंके सम्पूर्ण वैभवसे सम्पन्न एवं पवित्र वृक्षों
एवं लताओंके कुञ्जोंसे युक्त थी । स्थान-स्थानपर पत्रोंसे
पूर्ण उपान, पुष्पपात्रिकर्ण एवं व्रीडासन थे । वीथ वीचमें
कमन्धयुक्त सरोवर नगरकी गोपा यदा रह थे ॥ १२ ॥

१ प्रा पा — सुहृदं संरक्षक । २ प्रा पा — परा प्रभा । ३ प्रा पा — मातामधुहृदिपति पति ।

४ प्रायेण प्रतिमे नयम स्वेच्छके वाह एक स्थाक अधिक दे वा इत प्रचार है — 'ययं वयं नाम विरचिते' रवि प्रमदराव-
विद्यापरायणम् । ५ प्रायेण ते सुन्दरहासरीभिरमप्यमना बद्धं मन्दिरम् प्रा ५ प्रा पा — पुण्यम् ।

प्रह्लांभिवादनास्तेष्वस्पर्शस्मितेषु ।

आम्हास्य चाम्हापाकेभ्यो वरं भाभिमर्तविंशु ॥२२॥

स्वयं च गुरुभिर्विप्रं सदरै र्यविरैरपि ।

आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिर्भावित्पुत्रम् ॥२३॥

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ।

हर्म्याभ्यारुरुहुर्विप्रं तदीक्षणमहोत्सवाः ॥२४॥

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि इतरकौक्यम् ।

नैव हृष्यन्ति हि ह्य भियोधामाङ्गमन्युतम् ॥२५॥

भियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दध्नाम् ।

बाहवो लोकपालानां सारङ्गणां पदाम्बुजम् ॥२६॥

सितातपत्रव्यबनैरुपस्कृतः

प्रह्लनवर्षैरभिवर्षितः पथि ।

पिशङ्गवासा वनमालया वभौ

वनो यथाकौहपचापवैष्णवे ॥२७॥

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रो परिवृक्तं स्वमातृभिः ।

ववन्द शिरसा सप्त दवकीप्रसूता मृग ॥२८॥

ता पुत्रमहमारोप्य स्नेहस्तुतपयोधरा ।

हर्षविह्वलितरामान् सिपिजुनेत्रजर्जरैः ॥२९॥

अथाविद्यत् स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ।

प्रसादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च पौडश ॥३०॥

किंतीको सिर हुत्ताकर प्रणाम किया, किंतीको वणीसे अभिवादन किया, किंतीको हृदयसे आग्य, किंतीसे हाथ मिठाया, किंतीकी ओर देखकर मुसकरा मर दिया और किंतीको केवल प्रमत्त दृष्टिसे देख लिया । जिसकी जो इच्छा थी, उसे यही करदान दिया । इस प्रकार चाण्डालपुत्र सबको संतुष्ट करके गुरुजन, सपत्नीक प्राणज और बूढ़ोंक तथा दूसरे व्योमोक्त भी आशीर्वाद ग्रहण करते एक कंदीजनोंसे विद्वदायली सुनते हुए सबके साथ भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया ॥ २२-२३ ॥

शौनकजी । जिस समय भगवान् राजमार्गसे जा रहे थे, उस समय द्वारकाकी कुल-कामिनीयें भगवान्के दर्शनको ही परमनन्द मानकर अपनी-अपनी अगरिमें-पर चढ़ गयीं ॥ २४ ॥ भगवान्का वक्षःस्थल मूर्तिमान् सौन्दर्यव्यक्तीक निवासस्थान है । उनका मुखरविन्द नेत्रोंके द्वारा पान करनेके लिये सौन्दर्य-सुधासे भरा हुआ पात्र है । उनकी मुजाएँ लोकपालोंको भी शक्ति देनेवाली हैं । उनके चरणकमल मक्त परमहंसोंके आश्रय हैं । उनके अङ्ग-अङ्ग शोभाके धाम हैं । भगवान्की हम छविको द्वारकावासी नित्य-निरन्तर निहारते रहते हैं, फिर भी उनकी ओरसे एक क्षणके लिये भी तृप्त नहीं होती ॥ २५-२६ ॥ द्वारकाके राज पयस्व भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर श्वेत वर्णका छत्र तना हुआ था, श्वेत चक्र डुलये जा रहे थे, चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी, वे पीताम्बर और वनमाला धारण किये हुए थे । इस समय वे ऐसे शोभायमान हुए, मानो श्याम मेघ एक ही साय सुय, चन्द्रमा, इन्द्र धनुष और बिजलीसे शोभायमान हो ॥ २७ ॥

भगवान् सबसे पहले अपने माता-पितृको महज्जमें गये । वही उन्होंने बड़े आनन्दसे दक्षकी आग्नि सत्नों माताओंको चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया और माताओंने उन्हें अपने हृदयसे स्थावर गोदमें बैठा लिया । स्नेहके कारण उनके सनोसे दूधकी घारा बहने लगी, उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो गया और वे आनन्दके औसुओंसे उनका अभिषेक करने लगे ॥ २८-२९ ॥ माताओंसे आशा संकट वे अपने समस्त भोग-मानसिष्यों से सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ मकनमें गये । उसमें सोय्य द्वार पत्नीयोंके अमम-अलया मल्ल थे ॥ ३० ॥

१ मा पा —वान्ववान्व अक्षिप्य । २ मा पा —पुत्रीम् । ३ मा पा —द्वारकाया । ४ मा पा —हृष्य । ५ मा पा —परिवृक्तं मातृभिः ।

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागत

विलोक्य संज्ज्ञातमनोमहोत्सवाः ।

उद्यस्पुरात् सहासाऽऽसनाशयात्

सार्कं व्रतैर्वीरितलोचनाननाः ॥३१॥

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना

दुरन्तभावा परिरेभिरे पतिम् ।

निरुद्धमभ्यासवदम्बु नेत्रया-

र्विलेजनीनां भृगुवर्यं बैकुण्ठात् ॥३२॥

यद्यप्यसौ पार्श्वगता रहोगत

स्तथापि तस्याहृष्टियुगं नवं नभम् ।

पदे पदे का विरमत सन्पदा

बलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिंचित् ॥३३॥

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मना-

मञ्जौहिणीभिः परिचुचतेजसाम् ।

विधाय वैरं श्वसनो यधानल

मिथा वधनापरता निरायुधः ॥३४॥

म एष नरलाक्षस्मिन्नवतीर्णः समायया ।

रम स्त्रीरत्नकृत्या भगवान् प्राकृतो यथा ॥३५॥

उद्दामभावपिशुनामल्लङ्घ्युद्दाम

ग्रीहावलाग्निहतामदनाऽपि यामाम् ।

अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीकृष्णको बहुत दिन बाहर खानेके बाद घर आया देखकर अनियोंके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ । उन्हें अपने निकट देखकर वे एकएक प्यान छोड़कर उठ खड़ी हुईं, उन्होंने केवल आसनको ही नहीं, बल्कि उन नियमोंको भी त्याग दिया, जिन्हें उन्होंने पत्निके प्रथमी होनेपर ग्रहण किया था । उस समय उनके मुख और नेत्रोंमें लज्जा छा गयी ॥ ३१ ॥ भगवान् के प्रति उनकी भाव बड़ा ही गम्भीर था । उन्होंने पहले मन-ही-मन, फिर नेत्रोंके द्वारा और तत्पश्चात् पुत्रोंके कहाने शरीरसे उनका आस्मिन् प्रकिया । शौनकाजी ! उस समय उनके नेत्रोंमें जो प्रेमके आँसू छलक आये थे, उन्हें सद्भाववश उन्होंने बहुत रोका । फिर भी त्रिशताके कारण वे छलक ॥ गये ॥ ३२ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकान्तमें सर्वदा ही उनके पास रहते थे, तथापि उनके चरण-कमल उन्हें पद-पदपर नये-नये जान पड़ते । मलय, समायसे ही बचल छपती जिन्हें एक क्षणके लिये भी कभी नहीं छोड़तीं, उनकी संनिधिसे किन्तु श्रीको दृष्टि हो सकती है ॥ ३३ ॥

जैसे वायु बौंसके सघर्षसे दावानल पैदा करके उन्हें ज्वाला देता है, वैसे ही पृथ्वीके भ्रमरमूत और शक्तिशाली राजाओंमें परस्पर घृणा बाँटकर बिना शत्रु ग्रहण किए ही भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें कई अश्वीहिणी सेनासहित एक दूसरेसे मरवा डाला और उसका बाँ आप भी उपग्राम हो गये ॥ ३४ ॥ साक्षात् परमेस्वर ही अपनी लीलासे इस मनुष्य-लोकेमें अन्तीर्ण हुए थे और सहस्रों रमणी-रत्नोंमें रहकर उन्होंने साधारण मनुष्यों तरह विलास की ॥ ३५ ॥ जिनकी निर्मल और मधुर हँसी उनके हृदयके उन्मुक्त भावोंको सुनिवृत्त करने लगी थी, जिनकी लज्जीली चितवनकी भाँसे बेसुच होकर

१ मा पा — मन्मथमनामभासकृच्छुरा ग्रीहित । २ मा पा — विलज्जितानां । ३ मा पा — उद्दामभावात् तपाप्यहृष्टियुगं । ४ मा पा — परिचुच । ५ मा पा — बधायापरतो ।

• किं स्त्रीया पतिं विदेष्टुं गता हो उमे इन् निपमोद्य पावन करना चाहिये ।

है। 'नरिभर्मण्यं सभाभास्तरुदर्शनम् । हास्यं चरुद्वे वार्धं तपोऽप्रीतिर्भर्तुम् ॥

जिनका पति परदेष्टु गता हो उन स्त्रीको रक्त-कूट, गृहहार लायजिह्वा उल्लसते भ्रमर भना है। मरुद वरना और पदों पर चला—इन चौक काव्योंको त्याग देना चाहिये ।

(अथ वररत्नपुत्रे)

मम्मस चापमजहात्यमदोत्तमास्ता

यम्येन्द्रियं विमथितु कुहर्कनं शेकु ॥३६॥

तमेयं मन्यते लोको हस्तङ्गमपि सङ्गिनम् ।

आत्मोपम्येन मनुजं व्यापृष्वान येतोऽबुध ॥३७॥

एतदीश्वनमीशस्य प्रकृतिम्योऽपि तद्वगुणै ।

न युज्यत मदाऽऽत्मस्यैर्यथा बुद्धिस्तदाधया ॥३८॥

तं मेतिरेऽक्ला मूढा खेण शानुवतं रह ।

अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥

विषयविजयी कामदेयने भी अपने धनुषका परिष्पाग कर दिया था—वे भस्मीय कामिनीयों अपने काम-विग्राहों-से जिनके मनमें तनिक भी खोम नहीं पैदा कर सकीं, उम असङ्ग भगवान् श्रीकृष्णको संसारके श्रेष्ठ अपने ही सभान काम करते देखकर आसक्त मनुष्य सम्झते हैं—यह उनकी मूर्खता है ॥ ३६ ३७ ॥ यही तो भगवान् की मारवा है कि वे प्रकृतिमें स्थित होकर भी उसका गुणोंसे कभी स्थित नहीं होते, जसे भगवान् की श्रवणागत बुद्धि अपनेमें रहनेवाले प्राज्ञ गुणोंसे स्थित नहीं होती ॥ ३८ ॥ वे मूढ़ किर्यों भी श्रीकृष्णको अपना पञ्चान्तसेवी, लीपरायण मऊ ही समझ करी थीं, क्योंकि वे अपने सामीप्य पृथक्को नहीं जानती थीं—ठीक वैसे ही जैसे अहंकारकी वृत्तियों ईश्वरको अपने वसते युक्त मानती हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने

श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशो नामेकदशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

परीक्षितकथं जगत्

शौनक उवाच

असत्त्वान्मोपसृज्यन् ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ।

उत्तराम्या हतो गर्भे शिनाजीवित पुन ॥ १ ॥

तस्य जन्म महापुद्गल कर्माणि च महात्मान ।

निधनं च यथवासीत्य प्रत्य गतयान् यथा ॥ २ ॥

वृष्टिदं श्रातुमिच्छामा गदितुं यदि मन्यसे ।

बुद्धिं न श्रद्धाताना यस्य ज्ञानमग्रा युक् ॥ ३ ॥

मूल उवाच

अपीपत्युद्गर्माच्च पित्र्यं रजयन् प्रजा ।

निःस्पृह मयकामस्य कृष्णपार्श्वजसवया ॥ ४ ॥

शौनकजीने कहा—असत्त्वामान जो अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माक्ष चपाया था, उससे उत्तराकर गर्भ नष्ट हो गया था; परंतु भगवान् उसे पुन जीवित कर दिया ॥ १ ॥ उस गर्भमें पैदा हुए महाशक्ती महात्मा परीक्षितके, जिन्हें गुकदधजीने ज्ञानापदेन दिया था, जन्म, कर्म, मृत्यु और उत्पन्न का जो गति उन्हें प्राप्त हुए, यह सब, यदि आप हीन समझें तो उन्हें हमारा बड़ी ब्रह्मावे माय सुनना चाहत है ॥ २ ॥

मूलजीने कहा—अमग्नय युष्टिर अपनी प्रजाको प्रमत्त रहने हुए निवार मनान उमग्न पान्न परान लगे । भगवान् श्रीकृष्ण काय-यत्न-गै-सेतनमे ने मनन भाग्यसे निःस्पृह हो गए थे ॥ ४ ॥

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहातुपागतं
 तिलाक्ष्य संजातमनामहोत्सवाः ।
 उत्स्युरारात् सहसाऽऽसनाश्रयात्
 साकं प्रवैव्रीहितलोचनानना ॥३१॥
 तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना
 दुरन्तभावा परिरंभिर पतिम् ।
 निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयो-
 र्विलंजनीनां मृगुर्वर्ष वैकुण्ठात् ॥३२॥
 यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगत
 तथैपि तस्याह्वयिगुणं नवं नवम् ।
 पदे पदे का विरमेत तत्पदा-
 षलापि यच्छीर्णं जहाति कर्हिचित् ॥३३॥
 एवं नृपत्यां क्षितिभारज्जमना-
 मयैर्द्विणीभिः परिहृषतेज्जमाम् ।
 विधाय वैर क्षसनो यथानल
 मिथा वधनोपरतो निरायुधः ॥३४॥
 स एष नरलाकऽसिभ्रतीर्णं स्वमामया ।
 रम स्त्रीरत्नकृत्या भगवान् प्राकृतो यथा ॥३५॥
 उद्दामभावपिशुनामलवन्गुहस
 ग्रीढावलाफनिहता मदनोऽपि यामाम् ।

अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीकृष्णको बहुत दिन बाहर खानेके बाद घर आया देखकर अनियोंके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ । उन्हें अपने निकट देखकर वे एकएक प्यान छोड़कर उठ खड़ी हुईं, उन्होंने केवल आसनको ही नहीं, बल्कि उन नियमोंका भी त्याग दिया, जिन्हें उन्होंने पतिके प्रवासी होनेपर ग्रहण किया था । उस समय उनके मुख और नेत्रोंमें लज्जा छत्र गयी ॥ ३१ ॥ भगवान् के प्रति उनका भाव बड़ा ही गम्भीर था । उन्होंने पहले मन-ही-मन, फिर नेत्रोंके द्वारा और तत्पश्चात् पुत्रोंके बहाने शरीरसे उनका आच्छिन्न किया । शून्यकत्री । उस समय उनके नेत्रोंमें जो प्रेमके आँसू छलक आये थे, उन्हें सदाचर उम्होंने बहुत रोका । फिर भी निवृत्ताके कारण वे डल्लू ही गये ॥ ३२ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकजन्तमें सर्वदा ही उनके पास रहते थे, तथापि उनके कारण-कमल उन्हें पद-पदपर नये-नये ज्ञान पड़ते । भक्त, सम्यक्से ही चक्षुष्य लक्ष्मी जिन्हें एक क्षणके लिये भी कभी नहीं छोड़ती, उनकी समितिसे किन्तु लीको वृत्ति हो सकती है ॥ ३३ ॥

जैसे नामु बौंसोंके सघर्षसे दातानल पैदा करके उन्हें जल्य देता है, वैसे ही पृथ्वीके मरमूत और शक्तिशाली गुनाओंमें परस्पर फट बटकर किना शून्य ग्रहण किये ही भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें कई अस्त्रीद्विणी सेनासहित एक दूसरेसे मरवा डाला और उसके बाद आप भी उपराम हो गये ॥ ३४ ॥ साक्षात् परमेस्वर ही अपनी भीलसे इस मनुष्य-श्रेष्ठके अन्तरींग हुए थे और सहस्रो रमणी-रत्नोंमें रहकर उन्होंने साधारण मनुष्यकी तरह लीला की ॥ ३५ ॥ जिनकी निर्मल और मधुर हँसी उनके हृदयके उन्मुक्त भावोंको सूचित करनेवाली थी, जिनकी लजीबी वितयनकी चोन्से बेसुच हाकर

१ मा पा — अक्षय्यनामयास्तकृच्छुका श्रीवित । २ मा पा — निरुद्धिना । ३ मा पा — योमलकाणां तपान्तरभियुगं । ४ मा पा — परिहृष । ५ मा पा — वधापोपस्ये ।

● किन्तु लीला पति विवेक गया हो, उसे इस नियमोंका पालन करना चाहिये ।

दीक्षां शरीरमस्वाहं समाग्रेष्ववर्जयाम् । हार्षं परमुद्वेगं न त्वेतेष्वेतिभर्तुष्वहम् ।

भिनना पति परदेष्ट गया है उस लीलो लेख-कृत, गृहकार, सामाजिक उत्सवोंमें भाग लेना हँसी-मजाक करना और वगैरे कर जाना—इन सब कामोंको त्याग देना चाहिये ।

(वाचस्पत्यवृत्ति)

तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यैर्कृपादिभिः ।
 ज्ञातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥१३॥
 हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्पुत्रविवरान् ।
 प्रदात्स्वैनं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थविदः ॥१४॥
 तमृशुर्ग्राहणास्तुष्टा राजान प्रभयान्वितम् ।
 एष हस्तिन् प्रजातन्तौ पुरुषां पौरवर्षम् ॥१५॥
 दैवेनाप्रतिपातेन ह्यक्ले संन्यास्येप्युपि ।
 रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१६॥
 तस्माभ्याम्ना विष्णुरात इति लोके बृहन्पूजाः ।
 भविष्यति न सदिहो महाभागवतो महान् ॥१७॥

सुषिष्ठिर उवाच

अप्येष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान् महात्मनः ।
 अनुवर्तिता स्त्रियश्च साधुवादेन सत्तमा ॥१८॥

ब्राह्मणा उवाच

पार्थ प्रजाविता साक्षादिस्वाङ्कुरिव मानवः ।
 ब्रह्मण्यः सत्यमवधं रामो दातारधिर्धया ॥१९॥
 एष दाता धरण्यश्च यथा सौशीनरः शिबि ।
 र्षश्चो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यन्त्रनाम् ॥२०॥
 धन्विनामग्रणीरेप तुल्यभार्जुनयोर्द्वयोः ।
 हुताश इव दुर्धर्यः समुद्र इव दुस्तरः ॥२१॥
 भृगेन्द्र इव विक्रान्तो निपेभ्यो हिमवानिव ।
 पितृदुर्बसुवेवसौ सद्विष्णु पितराविव ॥२२॥

पौत्रके जन्मकी बात सुनकर राजा सुषिष्ठिर मनमें बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने धौम्य, कृपाचार्य आदि ब्राह्मणोंसे मङ्गल्याचन और ज्ञातकर्म-संस्कार करवाये ॥ १३ ॥ महाराज सुषिष्ठिर दानके योग्य सम्पत्तियों जानते थे । उन्होंने प्रजातीर्थे* नामक कर्त्तव्य अर्थात् मास कष्टनेके पहले ही ब्राह्मणोंको सुवर्ण, गोरू, पृथ्वी, गेहूँ, उत्तम जानिके हाथी-बोहे और उत्तम कम्पक दान दिया ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोंने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त विनयी सुषिष्ठिरसे कहा—‘पुरुवंश-विरोधमे’ । कर्त्तव्यी दुर्निवार गतिसे यह पवित्र पुरुवंश मिटना ही चाहता था परन्तु तुम्हेंगेओंपर कृपा करनेके लिये भगवान् विष्णुने यह बाष्क देकर इसकी रक्षा कर दी ॥ १५ १६ ॥ इसीलिये इसका नाम विष्णुरात होगा । निस्तप्तेह यह बाष्क संसारमें बड़ा यशस्वी, भगवान्का परम भक्त और महापुरुष होगा ॥ १७ ॥

सुषिष्ठिरने कहा—महात्माओ ! यह बाष्क क्या अपने उज्ज्वल यशसे हमारे वंशके पवित्रकर्मिन् महात्मा वर्गियोंका अनुसरण करेगा ? ॥ १८ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—वर्षराज ! यह मनुष्य इस्वाकुके समान अपनी प्रजाका पालन करेगा तथा दशरथनन्दन मगधान् श्रीरामके समान ब्राह्मणभक्त और सत्यव्रति होगा ॥ १९ ॥ यह उशीनर-नरेश शिविके समान दाता और धरणागतकसूख होगा तथा याज्ञिकमें दुष्पन्तके पुत्र भरतके समान अपने वंशका यश फैलायेगा ॥ २० ॥ धनुर्वर्गेमें यह सहस्रबाहु अजुन और अपने दादा पार्थके समान अक्राम्य होगा । यह अग्निके समान दुर्धर्य और समुद्रके समान दुस्तर होगा ॥ २१ ॥ यह सिंहके समान पराक्रमी, शिमाकटकी तरह आश्रय देनेयोग्य, पृथ्वीके सहस्र निनिष्ठ और माना-पिताके समान सहन-

१ मा पा —विप्रैर्धौम्यैर्कृपादिभिः । २ मा पा —हर्षाच्च नृपति । ३ मा पा —प्राशस्त्यर्थं च ।

४ मा पा —पौरवर्षम् । ५ मा पा —यो । ६ मा पा —यजोवाच । ७ मा पा —यजर्षि ।

८ मा पा —यथोक्तिविधायक च दौष्यन्ति ।

● नाकच्छेदनसे पहले शूद्रक नहीं होता जैसे कहा है—‘नाकच्छेदोपि मृतम् । छिन्ने नष्टे तत्र’ पद्मान् स्मृतं तु निश्चितम् ॥ इसी समयकी ‘प्रजातीर्थे’ काव्य कहते हैं । इस समय को दान दिया जाता है यदि भक्ष्य होता है । रघुनि शरीर है—‘पुत्रे ज्ञातं गच्छीयते तर्तं मयि चाश्रयम् । अर्थात् ‘पुत्रोत्पत्ति और गच्छीयातके मन्त्र दिये हुए दान भक्ष्य होता है ।’

सम्पदं व्रतवो लोका महिषी आसरो मही ।

जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिविधं गतम् ॥ ५ ॥

किंते कामा मुरस्पाही मृकुन्दमनसो द्विजा ।

अधिजगद् रक्षः क्षुधितस्य यथेतरे ॥ ६ ॥

मातुर्गमगतो वीरः स तदा मृगुनन्धन ।

ददर्श पुरुषं कंचिद्व्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥ ७ ॥

अक्रुष्टमाश्रममलं स्फुरत्पुण्ड्रमौलिनम् ।

अपीच्यार्धन श्यामं तद्धिद्राससमम्युतम् ॥ ८ ॥

श्रीमदीर्घचतुर्बाहुं तप्तकान्तकुण्डलम् ।

क्षेत्रजार्घ्यं गदापाणिमात्मन सर्वतोदिशम् ।

परिभ्रमन्तमुल्कभां आमन्त गदां मृदु ॥ ९ ॥

अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ।

विधमन्त मंनिकर्मे पर्यैक्षत क इत्यमौ ॥ १० ॥

विषूष तदमेवात्मा भगवान्धर्मगुणं विदुः ।

मिपतो दशमासस्य तर्पणान्तर्दधे हरिः ॥ ११ ॥

ततः सर्वगुणाढके सानुकूलप्रहोदये ।

जज्ञे वज्रधरः पाण्डोर्मयः पाण्डुरिवौजया ॥ १२ ॥

शौनकादि श्रुतियो ! उनके पास अतुल सम्पत्ति थी, उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे तथा उनके फलस्वरूप श्रेष्ठ लोकोंका अधिकार प्राप्त किया था । उनकी रानियों और गार्ह अनुकूल थे, सारी पृथ्वी उनकी थी, वे जम्बूद्वीपके सामी थे और उनकी कीर्ति लगनक फेदी हुई थी ॥ ५ ॥ उनके पास भोग्य ऐसी सामग्री थी, जिसके लिये वेकताजोग भी लालचिन रहते हैं । परंतु जैसे भूले मनुष्यको भोजनके अतिरिक्त दूसरे पदार्थ नहीं सुझाते, वैसे ही उन्हें भगवान्‌के सिवा दूसरी कोई वस्तु सुख नहीं देती थी ॥ ६ ॥

शौनकजी ! उन्होंने गर्भमे स्थित वह वीर शिशु परीक्षित जब वृद्धत्वाभाके ब्रह्माक्षके तेजसे कटने लगा, तब उसने देखा कि उसकी औंखोंके सामने एक ओजसिर्मय पुरुष है ॥ ७ ॥ वह देखनेमें तो अंगूठे-भरका है, परन्तु उसका स्वरूप बहुत ही निम्न है । अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, निम्नकीके समान चम्कता हुआ पीताम्बर धारण किये हुए है, सिपर सोनेका मुकुट किलमिला रहा है । उस निर्विकार पुरुषके कभी ही सुन्दर लंबी-लंबी चार मुझाएँ हैं । कर्णोंमें तर्पण रूप स्वर्णके सुन्दर कुण्डल हैं, औंखोंमें अन्धिम्य है हाथमें छत्तेके समान जख्ती हुई गदा लेकर उसे बार बार घुमाता ना रहा है और स्वयं शिशुके चारों ओर घूम रहा है ॥ ८ ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहरेको मग्न देता है, वैसे ही वह उस गदाके द्वारा ब्रह्माक्षके तेजको शान्त करता ना रहा था । उस पुरुषको अपने समीप देखकर वह गमस्व शिशु सोचने लगा कि यह कौन है ॥ १० ॥ ११ प्रकार उस दस मासके गर्भस्व शिशुके सामने ही धर्मरक्षक अप्रमेय भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्माक्षके तेजको शान्त करके वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ११ ॥

तदनन्तर अनुकूल प्रहोके उदयसे युक्त समस्त सृष्टीको निःशस्त्र करनेवाले क्षुम सम्पत्ते पाण्डुके वंशधर परीक्षितका जन्म हुआ । जन्मके समय ही वह बाष्प इतना तेजस्वी दीप्त पड़ता था, मानो स्वयं पाण्डुने ही किरसे जन्म लिया हो ॥ १२ ॥

धनं प्रहीणमात्रदुष्टदीच्यां दिशि मूरिष ॥३३॥

ल सम्मृतमम्भारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिर ।

जिमेघैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञै समयजद्वरिम् ॥३४॥

गृहो भगवान् राक्ष्वा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् ।

त्वाम् कतिचिन्मामान् सुहृदां प्रियकाम्यया ॥३५॥

तो राक्ष्वाभ्यनुष्ठातः कृष्ण्या सह यन्धुभिः ।

यौ द्वारवतीं ब्रह्मन् सार्धनो यदुभिर्हृतैः ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हत्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नैमिषीयोपाख्याने

परीक्षितमाधुकर्णो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

विदुरजीके उपवेशसे घृतराष्ट्र और गान्धारीका यनमें जाता

सूत उवाच

विदुरस्तार्थयात्रायां मैत्रेयात्समनो गतिम् ।

हात्वागाद्वाप्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सित ॥ १ ॥

प्राप्तः कृतवान् प्रभान् क्षत्ता कौपारवाप्रतः ।

वात्कैभक्तिर्गोविन्द तन्मधोपरराम ह ॥ २ ॥

त यन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्र सहोनुज ।

घृतराष्ट्रो युपुत्सुश्च सन् शगद्वत् पृथा ॥ ३ ॥

गान्धारी त्रापनी घनन् सुभद्रा चोत्तरा कृपी ।

अन्याश्च आमयः पाण्डार्जुनयः समुत्ताः स्त्रिय ॥ ४ ॥

सूतजी कहत हैं—विदुरजी तीर्थयात्रामें मूर्खि मैत्रेय-

से आमाका ज्ञान प्राप्त करके हस्तिनापुर लौट आये ।

उन्हें जो कुछ जाननकी इच्छा थी, वह पूर्ण हो गयी

थी ॥ १ ॥ विदुरजीने मैत्रेय ऋषिसे जिनने प्रश्न किये थे,

उनका उत्तर सुननेके पहले ही श्रीकृष्णमें अनन्य भक्ति

हो जानेक कारण वे उत्तर सुननेसे उपरम हो

गये ॥ २ ॥ शौनकजी । अपने चाचा विदुरजीके आया

दशधर्मज्ञ युधिष्ठिर, उनका चाणें भाइ, धनपट्ट, युपुत्सु,

संवय, कृपाधाय, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा,

कृपी तथा पाण्डवपरिवारक अन्य सभी नर-नारी और

१ मा पा —मूर्खो दिशि । २ मा पा —त्रिभी राजा वशिः । ३ प्राचीन प्रसिद्धे 'यदुभिर्हृतैः' ॥ ११ ॥

के बाद 'यावत् कृतवान् प्रभान् क्षत्ता कौपारवाप्रतः' इत्यादि पाठ अधिक है । कुछ टीकाकारोंने १५ वें और १६ वें श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है । ४ प्राचीन प्रसिद्धे 'यान्' से लेकर 'कौपारवाप्रतः' यत्तकका पाठ नहीं है । ५ मा पा —घृतराष्ट्रः ।

● पूर्वकाव्ये महाशय मरुतेने ऐसा यह किया था, जिसमें सभी पात्र लुप्त हो गये । यह समाप्त हो जानेपर उन्होंने वे पात्र उत्तर दिशामें निकट रखे थे । उन्होंने ब्राह्मणों भी इतना बल दिया कि वे उनके पास न गये । वे भी उठे उत्तर दिशामें ही छाड़कर चले आये । परित्यक्त बनपर राजाका अधिकार होता है इत्युक्तिसे उन चरित्रों में महाशय मानते युधिष्ठिरका यह कथन ।

पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिखोपमः ।
 आश्रय सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥२३॥
 सर्वसत्त्वगुणमाहत्म्ये' एष कृष्णमनुप्रवः ।
 रन्तिदेव इवोदरो ययातिरिव धार्मिकः ॥२४॥
 धृत्वा बलिसम कृष्ण प्रह्लाद इव सर्वहृहः ।
 आहतैपोऽभ्येधानां इदानीं पर्युपासक ॥२५॥
 राजप्रीणां जनयिता श्रुता शोत्पथगामिनाम् ।
 निग्रहीता कलेरेप इवो धर्मस ककरात् ॥२६॥
 वल्लकवात्मना मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितम् ।
 प्रपत्स्यत उपभुत्स्य मुक्तसज्ज पदं हरः ॥२७॥
 जिज्ञासितस्तपयायात्म्यो मुनेर्भ्यासमुताहसौ ।
 हित्वेदं नृप गङ्गायां बाह्यस्त्यदाकुतोभयम् ॥२८॥
 इति राज उपादिष्य विप्रा आत्यककोविदा ।
 लम्बापचित्तयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥२९॥
 म ग्प लोके विस्म्यातः परीक्षिदिति बभ्रुह ।
 गर्भे षट्मनुष्यायन् परीक्षेत नरेष्विह ॥३०॥
 स राजपुत्रो बह्वे आहूत लुब्ध इवोऽप ।
 आपूर्यमाणः पितृभिः कष्टाभिरिव मोऽन्वहम् ॥३१॥
 मभ्यमाणाऽभ्यमेवेन श्रुतिप्रोहविहासया ।
 रत्नालम्बधना दम्पावन्यत्र कतदण्डयोः ॥३२॥
 तदभिप्रतमात्म्य आचरोऽन्युत्थादिता ।

शील होगा ॥ २२ ॥ इसमें पितामह शत्रुके समान समस्त
 रक्षेयी, भगवान् शंकरकी तरह यह कृपाक्ष होगा और समस्त
 प्राणियोंको आश्रय देनेमें यह स्वामीपति भगवान् विष्णुके
 समान होगा ॥ २३ ॥ यह समस्त मनुष्योंकी ग्रन्थि
 धारण करनेमें श्रीकृष्णका अनुयायी हान्ग, रन्तिदेवके
 समान उदार होगा और ययातिके समान धार्मिक
 होगा ॥ २४ ॥ वैद्यमें बल्कि समान और भगवान्
 श्रीकृष्णके प्रति इह निग्रहमें यह प्रह्लादके समान होगे ।
 यह बहुतसे अश्वमेध-यज्ञोंका करनेवाला और द्रव्योक्त
 सेवक होगा ॥ २५ ॥ इसके पुत्र राजर्षि होंगे । मर्त्यदण्ड
 उत्सृज्य करनेवालोंको यह दण्ड देगा । यह धृष्टीमत्
 और धर्मकी रक्षाके लिये बलिपुत्रका भी दण्ड
 करेगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मणकुमारके शापसे तत्कालके ही
 अपनी मृत्यु मुनकर यह सबकी आसक्ति छोड़ देगा और
 भगवान्के चरणोंकी शरण लेगा ॥ २७ ॥ ब्रह्मसन्तान
 मुक्तदेवकीसे यह आत्म्यक यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त
 करेगा और अन्तमें गङ्गातटपर जन्म शरीरको त्यागकर
 निश्चय ही अमरपद प्राप्त करेगा ॥ २८ ॥

औत्तिशशाकके विरोध ब्राह्मण राजा युधिष्ठिरके
 इस प्रकार बाल्यके जन्मजन्मकर फल बतलाकर और मैन-
 पूजा लेकर अपने-अपने घर चले गये ॥ २९ ॥ कभी यह
 बालक संसारमें परीक्षितके नमस्ते प्रसिद्ध हुआ, क्योंकि
 वह समस्त बाल्यक गर्भमें निज पुरुषका दर्शन पा चुका था,
 उसका स्मरण करता हुआ लोगोंमें उत्तीर्ण परीक्षा करता
 रहता था कि देखो इनमेंसे कौन-सा वह है ॥ ३० ॥ जैसे ब्रह्म-
 फलमें दिन-प्रतिदिन बह्म्य अपनी कलाओंसे पूर्ण होता
 हुआ बढ़ता है, वैसे ही वह राजकुमार भी अपने गुरुजनोंके
 लाज-पावनसे क्रमशः अनुत्तिन बढ़ता हुआ दीर्घ ही
 स्याना हो गया ॥ ३१ ॥

इसी समय क्षत्रजनोंके बहका प्रापचित्य करनेके लिये
 राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध-यज्ञके द्वारा भगवान्की आराधना
 करनेका निश्चार किया, परंतु प्रजासे बहुत निये हुए
 कर और दण्ड (जुर्माने) की रक्कमके अनिश्चित और
 धन न होनेके कारण वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये ॥ ३२ ॥
 उनका अग्रिप्राय समग्रकर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणसे

नोवदयत् सकल्यो दु स्तितान् द्रष्टुमथम् ॥१३॥

कंचित्कालमथात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ।

आतुर्ज्येष्ठस्य भ्येस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥१४॥

अविघ्नदर्शमा दण्डं यथावदधकारिषु ।

यावद्विहार शूद्रत्व क्षापाद्वर्षणत यमः ॥१५॥

युधिष्ठिरो लम्बराज्यो दद्या पौत्रं कुलभरम् ।

आशुभिलोकपालामैर्मुमुदे परया त्रिया ॥१६॥

ग्व गृहपु सक्तानां प्रमत्तानां तद्विहाय ।

तत्प्रक्राम्यविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥१७॥

वेदुरन्तभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ।

।जर्जिर्गम्यतां क्षीघ्र पश्येदं भयमागतम् ॥१८॥

तत्क्रिया न यत्सेह कृतभित्कर्हिषित्प्रभो ।

। एव भगवान्काल सर्वेषां न समागतः ॥१९॥

येन चैवाभिपन्नोऽय प्राणै प्रियतमैरपि ।

वन सद्यो विपुन्येत किमुतान्मैर्धनादिभि ॥२०॥

पितृभ्रातृमुहृत्पुत्रा हताम्ये विगत धयः ।

आत्मा च अरया अस्त परगहमुपासते ॥२१॥

अग्रिम एवं अमहा घटना पाण्डवोंको नहीं सुनायी, क्योंकि वह तो खर्य ही प्रफट होनेवाली थी ॥ १३ ॥

पाण्डव विदुरजीका देवताके सम्मन सेवा-सम्पन्न करते थे । वे कुछ दिनोंक अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रकी कन्याण-कामनासे सब लोगोंको प्रसन्न करते हुए सुखपूर्वक हस्तिनापुरमें ही रहे ॥ १४ ॥ विदुरजी तो साक्षात् धर्मगुरु थे, माण्डव्य श्रुतिके शापसे वे सौ वर्षके ऋषि शूद्र बन गये थे * । इतने दिनोंक यमराजके पदपर अर्पण थे और वही पाण्डवोंको उचित दण्ड देते थे ॥ १५ ॥ राज्य प्राप्त हो जानेपर अपने लोकपालों-सरीसे भाइयों-के साथ रहना युधिष्ठिर वंशवर परीक्षितको दक्षतर अपनी अतुल सम्पत्तिसे आनन्दित रहन लगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार पाण्डव गृहस्थके काम-धन्यमें रम गये और उन्हींके पीछ एक प्रकारसे यह बात भूल गये कि जन जानमें ही हमारा जीवन मृत्युकी ओर जा रहा है, अब देखते-देखते उनक सामने वह समय आ पहुँचा जिसे कोई टाल नहीं सकता ॥ १७ ॥

परन्तु विदुरजीने कलकरी गति जानकर अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रसे कहा—‘महाराज ! देखिये, अब बड़ा मर्मकर समय आ गया है, हृत्पत्र पक्षोंसे निष्पन्न चक्षिये ॥ १८ ॥ हम सब लोगोंके सिरपर वह मर्म मर्म काल मँडरने लगा है, जिसके टालनेका कहीं भी कोई उपाय नहीं है ॥ १९ ॥ काशके वशीभूत होकर जीवका अपने प्रियतम प्राणोंसे भी बात-करी-बानमें क्रियोगे हो जाता है, फिर धन, जन आदि दूरी वस्तुओं-की तो बात ही क्या है ॥ २० ॥ आपके पाचा, ताऊ, भाई, सगे-सम्बन्धी और पुत्र-समीपारे गये, आपकी उम्र भी दल चुकी, “दूर मुझापेक शिकार हो गया, आप पड़ये धरमें

१. आ पा — न्यवेदयत् । २. आ पा — लक्ष्यः । ३. आ पा कुलभरम् । ४. आ पा — प्रतिक्रियां न परयेद् कुतश्चित् । ५. आ पा — च ।

● एक समय किमी राजाक अनुचरोंने कुछ पारोंको माण्डव्य श्रुतिके आश्रमपर पकड़ा । उन्होंने समझा कि श्रुति भी पत्नीमें शामिल होंगे । अतः वे भी पकड़ लिये गये और राजाकाये नवक साथ उनको भी दृष्टीकर बड़ा दिया गया । राजाको यह पता लगने ही कि वे महात्मा हैं—श्रुतिके दृष्टीसे उत्तरणा दिया और हाथ जोड़कर उनसे अपना आश्रयचना किया । माण्डव्यजीने यमराजके पास जाकर पूछा—मुझे किस पापके दण्डस्वरूप यह दण्ड मिला ? यमराजने यथापि कि ‘भ्राते दण्डकनमें एक पिंडीको कुचकी नाकसे ठेक दिया या इनीतिसे देना कुछ । इसपर श्रुतिने कहा—‘मैंने भटानरा देनदिका होगा उस ठाटें अररायके किने मुझे मुझे बड़ा कटोरदण्ड दिया । इससे मुम तो वरन दृष्टयन्ति रहने ।’ माण्डव्यजी इत घाते ही यमराजने विदुरके रूपमें अवतार किया था ।

प्रत्युत्तमम् : प्रहर्षेण प्राणं तन्व इषागतम् ।

अभिसंगम्य विभित् परिष्कृताभिवादनैः ॥ ५ ॥

मुमुक्षु प्रेमभाष्यौघं विरहोत्फण्णकतराः ।

राजा तमईयांचक्र कृतासनपरिग्रहम् ॥ ६ ॥

तं मुक्तवन्तं विभान्तमासीनं सुखमासने ।

प्रभयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥ ७ ॥

मुञ्चिष्ठिर उवाच

अपि स्मरन् नो शुभ्रपद्मच्छायासमेधितान् ।

विपद्भवादिपान्थादेर्मोचिता मत्समावृक्षा ॥ ८ ॥

कया हृत्वा वर्तित वभरद्भिः धितिमण्डलम् ।

तीर्थानि क्षेत्रसुखानि सेवितानीह मृतम् ॥ ९ ॥

भवद्विधा भागवतस्तीर्थमृताः भव्य विमो ।

वीथीर्दुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तेस्मिन् गदायुता ॥ १० ॥

अपि न मुहदस्तात कान्धवा कृष्णदेवता ।

दृष्टा भुता वा यदत्र स्वपुमां सुखमासते ॥ ११ ॥

इत्युक्तो धर्मराजन सर्वं तत् समवर्णयत् ।

यथालुभृतं क्रमशः विना यदुल्लसयत् ॥ १२ ॥

नन्यप्रिय दुर्विपेह नृणां स्वयमुपमितम् ।

अपने पुत्रोंसहित दूसरी स्त्रियों—सबके-सब कबी प्रसन्न
से, मानो मृत शरीरमें प्राण आ गया हो—ऐसा कृत्य
करते हुए उनकी आवाजीके लिये सामने गये । यथाशक्ति
आच्छिन्न और प्रणामादिके द्वारा सब उनसे मिले व
विरहजनित उत्फण्णसे कतर होकर सबने प्रेम
औंस बढ़ाये । मुञ्चिष्ठिरने आसनपर बैठकर उक्त
यथोक्ति सत्कर किया ॥ १-६ ॥ जब व भोज
एवं विधाप करके सुखपूर्ण वास्तवपर बैठे
तब मुञ्चिष्ठिरने वितपसे मुक्तकर सबके सामने
उनसे कहा ॥ ७ ॥

मुञ्चिष्ठिरने कहा—वाचानी ! जैसे पक्षी अपने अ
को पंखोंकी छत्राके नीचे रखकर उन्हें सेते और बढ़ाते
वैसे ही आपने अल्पत वास्तवसे अपने कर-कर्मों
छत्रायासे हमलोकोको पाल्य-पोसा है । बार-बार आप
हमें और हमारी माताको विपदान और कष्टानुभूति
आदि विपत्तियोंसे बचाया है । क्या आप कभी ह
लोकोको भी याद करते रहे हैं ? ॥ ८ ॥ आपने पृथ्वी
विकरण करते समय विसृतिसे जीवन निर्माह किया
आपने पृथ्वीकणपर कित कित तीर्थों और सुख क्षेत्रों
सेवन किया ? ॥ ९ ॥ प्रभो ! आप-जैसे महाबान्के प्यारे म
स्वर्गही तीर्थस्वरूप होते हैं । आपने अपने हृदयमें कित
मान महाबान्के द्वारा तीर्थोको भी महातीर्थ बनाव
विकरण करते हैं ॥ १० ॥ वाचानी ! आप तीर्थम्
करते हुए द्वारका भी अवश्य ही गये होंगे । वहाँ ह
सुख एवं भार्गव-युग्मदेवता, जिनके एकमात्र आराध्य
श्रीकृष्ण हैं, अपनी नगरीमें सुखसे भी हैं न ? आपने म
याकरदेवता नहीं होगी तो सुना तो अवश्य ही होगा ॥ ११ ॥

मुञ्चिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर विदुरजीने तीर्थों व
यदुर्वचिर्मोक सम्बन्धमें जो कुछ देखा, सुना और अनु
किया था, सब क्रमसे कथन दिया, कथन यदुर्वचिर्मोक के निगार
वान नहीं कही ॥ १२ ॥ कथनान्वय विदुरजी पाण्डव
को दुखी नहीं देख सकते थे । इसलिये उन्होंने :

१ प्राचीन प्रसिद्धे इह पूर्वार्थक पाठ इह प्रकार है— तं स्मरन्तं तु विभान्तमासीनं सुखमासते ॥ ९ मा पा०—
स्नाना निगृह्यतम् । २ प्राचीन प्रसिद्धे मुञ्चिष्ठिर उवाच' नहीं है । ४ मा० पा०—प्रभो । ५ मा पा०—आत्मरवेन
६ मा पा०—अमृतो । ७ मा० पा०—दुर्विपयं ।

अजातशत्रुः कुंतमैत्रो हुताग्नि-

विप्रान् नत्वा तिलंगोभूमिरुभयैः ।

गृहं प्रविष्टो गुरुन्दनाय

नै चापश्यत्पितरौ मौक्लीं च ॥३०॥

तत्र सञ्जयमामीन पप्रच्छोद्विप्रमानसः ।

गात्रलाणे क नैस्तप्तो बृद्धो हीनश्च नेत्रयो ॥३१॥

अम्बा च हतपुत्राऽऽर्तापितृभ्यः क गत सुहृत् ।

अपि मय्यकृतप्रज्ञ इतश्चक्षुः स भार्यया ।

आशंसमानः शमलं गङ्गायां दु स्वितोऽपतत् ॥३२॥

पितर्युपरते पाप्मनौ सर्वाणि सुहृदः विशृणु ।

अरक्षतां व्यसनत पितृभ्यौ क गतावित ॥३३॥

सप्त उवाच

कृपया स्नेहवैकुण्ठ्यास्तद्धतो विरहकर्षितः ।

आत्मभ्रमचक्षुषो न प्रस्थाहातिपीडित ॥३४॥

विमृज्यस्मृणु पापिण्यां विदम्यत्प्रमानमात्मना ।

अजातशत्रुं प्रसूये प्रभो पाठावनुष्मरन् ॥३५॥

सर्वांश्च उवाच

नाहं वदं व्यसमिदं पित्रोर्वैः कुलनन्दन ।

गान्धार्या वा महाबाहो मुपितोऽस्मि महात्मभिः ॥३६॥

१ मा पा —कुंतमैत्रिक्रियो विप्रान् । १ मा पा —बधु । १ मा पा —परं न परवत् पितरौ मौक्लीं च ।

४ मा पा —पातोऽसौ । ५ मा पा —सुहृत् । ६ मा पा —विमृज्य पाणिनाभूषि विष्ट । ७ प्राचीन प्रतिभे

पुंस्त्व उवाच पाठ नहीं है । ८ प्राचीन प्रतिभे 'नाहं वेद' से लेकर बहमित्त बहिमीधियः ॥ सर्वोत्तम पांच श्लोक

इत प्रकर मिलते हैं—

मई शरदितं राशे विक्रोम कुलनन्दन । न वेद साध्या गान्धार्यां मुपितोऽस्मि महात्मभिः ॥

वदसिन्नन्तरं विप्रं नारदः प्रत्यक्षयत् । वीणा विद्वन्ती ध्वनयन् गान्धर्वं सधनुमुदः ॥

राशे मल्लोपनितायं शत्रुबाधाभिर्मन्त्रितम् । परयासनं व्यसीनं वैशम्पत्यं चामाज ॥

नाहं वेदं नहिं पित्रोर्मन्त्रं क गताविति । कर्णधार इवार्धं लीढतां चपटार्कं ॥

नारद उवाच—

मा कश्चन गुणो राशे वरीयतरका जगत् । शोकाः सपागं मयैव बहन्ति वीर्यमिन्द्रोः ॥

अजातशत्रु मुधिष्ठिनं प्रातःकालं सन्ध्याभन्दनं तथा

अग्निहोत्र करके आह्वयोंको नमस्कार किया और उन्हें

तिल, गौ, भूमि और सुवर्णका दान दिया । इसके

बाद जब वे गुरुबनोंकी चरणभन्दनाके स्थिये राजमहल-

में गये, तब उन्हें धृतराष्ट्र, विदुर तथा गान्धारीके दर्शन

नहीं हुए ॥ ३० ॥ मुधिष्ठिने उद्विग्नचित्त होकर

कहाँ कैसे हुए सञ्जयसे पूछा—सञ्जय ! मेरे वे बृद्ध

और नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र कहीं हैं ? ॥ ३१ ॥ पुत्र

शोकसे पीडित दुखिया माता गान्धारी और मेरे परम

हितैषी चाचा विदुरजी कहीं चले गये ? ताऊजी अपने पुत्रों

और चक्षु शत्रुवर्षोंके मारे जानेसे दुखी थे । मैं बड़ा

मन्दबुद्धि हूँ—कहीं मुझसे किसी अपराधकी आशङ्का

करके वे माता गान्धारिमहित गङ्गाजीमें तो नहीं कूट

पड़े ॥ ३२ ॥ जब हमारे पिता पाण्डुकी मृत्यु हो गयी

थी और हमयोग नन्ह-नन्हें बच्चे थे, तब इन्हीं लोगों

आचार्योंने बड़े-बड़े दु खोंसे हमें बचाया था । वे हम-

पर बड़ा ही प्रेम रखते थे । हाय ! वे यहाँसे कहीं

चले गये ? ॥ ३३ ॥

सप्तजी कहते हैं—सञ्जय अपने स्वामी धृतराष्ट्रको

न पाकर कृपा और स्नेहकी विकल्पासे अत्यन्त पीडित

और विरहानुर हो रहे थे । वे मुधिष्ठिका कुत्र उत्तर

न दे सके ॥ ३४ ॥ फिर धीरे-धीरे युद्धिके द्वारा उन्होंने

अपने चित्तको स्थिर किया, हाथोंसे औखेंके बौन

गँछे और अपने स्वामी धृतराष्ट्रके शरणोंका स्मरण करते

हुए मुधिष्ठिसे कहा ॥ ३५ ॥

सञ्जय बोले—कुरुकुलजन्म ! मुझ आपको दोनों

चाचा और गान्धारिके सदृक्कण कुछ भी पता नहीं है ।

महाबाहो ! मुझ तो उन महात्म्योंने टग लिया ॥ ३६ ॥

अहो महीयमी जन्तोर्जीविताश्चा यथा भवान् ।

भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालयत् ॥२२॥

अग्निर्निष्ठा दक्षम गरो दाराम् रूपिता ।

इत्थं क्षेत्रं धनं यथां तच्चैरसुभिः कियत् ॥२३॥

तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषो ।

परं त्यजिष्यता जीणो ज्वरया वाससी इव ॥२४॥

गतमर्थमिमं दह विरक्तो मुक्तमन्धन ।

अविमोक्षोतिर्जघ्नात् स वै धीर उदाहृत ॥२५॥

यं व्यकृत्स्नता वेह जातनिर्वेद आरमवान् ।

इति कृत्वा हरिं गङ्गात्प्रयजन्त नरोत्तमः ॥२६॥

अधानीर्ची दिशः यातु स्वैरघातयतिर्मवान् ।

हताऽवाकशायः कालं पुमां गुणविकर्षण ॥२७॥

एव राजा विदुरणानुजेन

प्रज्ञाचतुर्विधं आश्रमीदः ।

छित्त्वा स्वपुं स्नहपाशान्त्रिभ्यो

निष्क्राम आनर्मदं दिवाद्या ॥२८॥

पतिं प्रयान्तं मुधत्स्य पुत्री

पतिप्रता चानुप्रगाम माध्वी ।

हिमालयं न्यमन्त्रण्डप्रहप

मनस्विनामि मन्मथप्रहरः ॥२९॥

पड़े हुए हैं ॥ २१ ॥ ओह! इस प्राणीको जीवित रहने की
कितनी प्रबल इच्छा होती है । इसीके कारण तो आप भीम-
का दिया हुआ टुकड़ा खाकर कुत्तेका-सा जीवन किम्वद
हैं ॥ २२ ॥ जिनको आपने आगमें जलाने की चय
की, बिना देकर मार बालना चाहता, भी सभामें त्रिनकी
विवाहिता पत्नीको अपमानित किया, जिनकी भूमि
और धन छीन छिये, उन्हींके अगसे पत्ते हुए प्राणीको
रखनेमें क्या गौरव है ॥ २३ ॥ आपके अज्ञानकी
हद हो गयी कि अब मैं आप जीना चाहते हैं । परंतु
आपके चाहनेसे क्या होगा, पुराने कसकी तरह
मुझसे गला हुआ—आपका शरीर आपके न चाहने-
पर भी क्षीण हुआ जा रहा है ॥ २४ ॥ अब इस
शरीरसे आपका कोई खास सचनवाला नहीं
है इसमें फैसिये मत, इसकी ममताका बन्धन का-
टलिये । जो संसारके सम्बन्धियोंसे कथा रहकर
उनके अनजानमें अपने शरीरका त्याग करता है, वही धीर
कहा गया है ॥ २५ ॥ बाहे अपनी समझसे हो या दूसरेके
सम्मानसे—जो इस संसारको दुःस्वरूप समझकर इससे
विरक्त हो जाता है और अपने अन्तःकरणको वशमें
करके इन्धमें भगवान्को धारणकर मंत्र्यामके विषे
घरसे निकल पड़ता है, वही उत्तम मनुष्य है ॥ २६ ॥
इसका आगे जो समय आनेवाला है, वह प्रायः मनुष्योंके
गुणोंको घटानेवाला होगा, इसलिए आप अपने
कुटुम्बियोंसे छिपकर उचरगच्छमें चले जायें ॥ २७ ॥

जब छपटे भाई विदुरने अंध राजा वृत्ताष्ट्रको
इस प्रकार सम्झाया, तब उनकी प्रज्ञाक नेत्र खुल
गय, वे भाई-बहनोंके सुख स्नेह-यागोंको काटकर
अपन छोटे भाई विदुरके निष्कलने हुए मार्गसे निम्न
पड़ ॥ २८ ॥ जब परम पतिप्रता सुषमन्त्रिणी गान्धारीने
नेमा कि मेरे पतिदेव तो उस क्षिमात्मकी राजा का
रह हैं, जो मंत्र्यामियोंका बैगा ही सुख देता है जसा
शिर पुरुषोंको लक्ष्मिकी मीनानमें अपने गलेके द्वारा
निय हुए व्यापकित प्रहारसे हाथ है, तब वे भी
उनके पीछ-पीछ चल पड़ी ॥ २९ ॥

अजातशत्रु कृतमैत्रो हुताग्नि

विप्रान् नत्वा तिलंगोभूमिरुभम् ।

गृहं प्रविष्टो गुरुमन्दनाय

नै चापम्यत्पितरौ सौषली च ॥३०॥

तत्र सञ्जयमासीन पप्रच्छोद्विगमानम ।

गावस्वाणं क नस्तातो बृद्धो हीनश्च नेत्रयो ॥३१॥

अम्ना च हतपुत्राऽऽर्तापितृभ्यः क गत सुहृत् ।

अपि मय्यकृतप्रश्नं हतकन्धु स भार्यया ।

आशममानः शमल गङ्गायां दुःस्वितोऽपत्तत् ॥३२॥

पितर्युपरते पाण्डौ मर्वाभः सुहृद् शिग्रून् ।

अस्वतां व्यमनतः पितृभ्यो क गतावितः ॥३३॥

सूत उवाच

कृपया स्नेहवैकल्यात्सुतो विरहकर्णितः ।

आत्मेधरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडित ॥३४॥

विमृज्याश्रुणि पाणिभ्यां विष्टम्यात्मानमात्मना ।

अजातशत्रुं प्रन्यूचे प्रभोः पात्न्यनुस्मरन् ॥३५॥

सञ्जय उवाच

नाहं क्व व्यवसितं पित्रोर्वै कुलनन्तन ।

गान्धायां वा महायाहो मुपिताऽस्मि महात्मभि ॥३६॥

१ प्रा पा — कृतमैत्रोद्विगमानं विप्रान् । २ प्रा पा — कन्धु । ३ प्रा पा — परं न परवत् पित्रो नीरसी च ।

४ प्रा पा — पातोऽशौ । ५ प्रा पा — मुहृत् । ६ प्रा पा — विमृज्य पाणिनाभूमिं विष्ट । ७ प्राचीन प्रतिभ

‘तत्रैव उवाच पाठ नहीं है । ८ प्राचीन प्रतिभे व्याह वे’ ‘शे मकर’ ‘बहन्ति बहिर्भी’ ‘गुह्य’ ॥ यदौतक पाच स्वः

१५ प्रकार मिलत हैं—

अहं बहन्ति शब्दो विप्रैर्भ्यो कुलनन्तः । न परं तावत्पा पात्न्यनुस्मरन् ।

पत्रिभ्योऽपि मित्रं भार्यया प्रत्यहं यत् । वीणा जिह्वया ध्वजपत्रं अश्वत्थं सधनुस्ते ।

राज्यं मर्यादां विप्रार्थं प्रत्युपायं भिरद्विदुः । परमस्वतः कर्त्तव्यं वैदिकं व्यवसायः ।

नाहं क्व गतिं विप्रैर्भ्यो क गतावितः । कर्त्तव्यं ह्यवति मीरता कर्त्तव्यं ।

भाष्य उवाच—

ना कश्चन गुणो शक्नुवन् बहोपायो न ह । तेषां कृपायां कथमेव बहो न विदुः ।

अजातशत्रु मुविष्टिने प्रातःकाले सन्ध्यान्दनं तथा
अग्निहोत्र करके ब्राह्मणोंको नमस्कार किया और उन्हें
निरु, गौ, मूषि और सुवर्गका दान दिया । इसके
बाद जब वे गुरुजनोंकी चरणकन्दनाके निचे राजमहल-
में गये, तब उन्हें धूमराष्ट्र, विदुर तथा गान्धारीके दर्शन
नहीं हुए ॥ ३० ॥ मुविष्टिने उद्दिग्धचित्त होकर
वहाँ बैठे हुए सञ्जयसे पूछा—‘सञ्जय ! मेरे वे बृद्ध
और नेत्रहीन पिता धूमराष्ट्र कहाँ हैं ? ॥ ३१ ॥ पुत्र
शोकसे पीडित दुःखिया ममता गान्धारी और मेरे परम
हितैषी चाचा विदुरजी कहाँ चले गये ? ताऊजी अपने पुत्रों
और कन्धु शत्रुवर्गके मारे जानेसे दुःखी थे । मैं बड़ा
मन्दबुद्धि हूँ—कहाँ मुझसे किसी क्षमाधरकी आशा
करके वे माया गान्धासहित गङ्गाजीमें तो नहीं कू-
पड़े ॥ ३२ ॥ जब हमारे पिता पाण्डुकी मृत्यु हो गयी
थी और हमलोग नन्द-नन्द बच्चे थे, तब इहाँ दानों
चाचाजोंने बड़े-बड़े दुःखोंसे हमें बचाया था । वे हम-
पर बड़ा ही प्रेम रखते थे । हाय ! वे यहाँसे कहाँ
चले गये ? ॥ ३३ ॥

सूतजी कहते हैं— सञ्जय अपने स्वामी धूमराष्ट्रका
न पाकर क्या और स्नेहकी विवशतासे अत्यन्त पीडित
और विरहगुह्र हो रहे थे । वे मुविष्टिका कुछ उत्तर
न दे सके ॥ ३४ ॥ फिर धीरे-धीरे बुद्धिके द्वारा उन्होंने
अपने चित्तको स्थिर किया, हाथोंसे आँखोंके आँसू
पोंछ और अपने स्वामी धूमराष्ट्रक चरणोंका स्मरण करते
हुए मुविष्टिसे कहा ॥ ३५ ॥

सञ्जय बोले—बुद्धयुक्तमन्दन ! मुझे आवक जानों
चाचा और गान्धाधिके मङ्गलप्रकाश कुछ भी पता नहीं है ।
महायाहो ! मुझ तो उन महात्माओंने टका दिया ॥ ३६ ॥

अधाजगाम भगवान् नारदः सहस्रमुखः ।

प्रत्युत्थायाभिवाधा साजुजोऽम्बर्ययभिष ॥३७॥

सुधिष्ठिर उवाच

नाह वेद गतिं पित्रोर्मगवन् क गतावितः ।

अन्या वा हतपुत्राऽऽर्ता क गता च तपस्विनी ॥३८॥

कर्णधार इवापारे भगवान् पारदर्शकः ।

अधावभाप भगवान् नारदो मुनिसत्तमः ॥३९॥

मा कचन शुचो राजन् यदीश्वरवर्श अगत ।

लाक्यः मयाला यस्येम वहन्ति बलिमीशितु ।

म सयुनक्ति भूतानि म एव वियुनक्ति च ॥४०॥

यथा गावोनसि प्रोवास्तन्त्यां बद्धा स्वदामभि ।

वाक्तन्त्यां नामभिबद्धा वहन्ति बलिमीशितु ॥४१॥

यथा क्रीडोपस्कराणां सयोगविगमाविह ।

इच्छया क्रीडितुः स्वातां तथैवेच्छया नृणाम् ॥४२॥

यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ।

सर्वथान हि शान्त्यास्ते स्नेहान्यत्र मोहजात् ॥४३॥

तसाजगद्गन्धर्वं वृक्ष्यमज्ञानकृतमात्मनः ।

कर्म त्यनाथाः कुपशा कर्तरेस्त मां विना ॥४४॥

कालक्रमगुणाधीनो दहोऽय पाञ्चभौतिक ।

कथमन्यास्तु गोपाकेत्सर्पप्रतो यथा परम् ॥४५॥

अहन्तानि सहस्तनामपदानि चतुष्पदाम् ।

फल्गूनि तत्र महता जीवा जीवस्य जीवनम् ॥४६॥

तटिं भगवान् राजन्नक आत्माऽऽत्मनां गृहम् ।

सक्य इस प्रकार कह ही रहे थे कि तुम्हारे साप-
देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे । मक्षराज युधिष्ठिरे
माध्यमेतहित उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनका
सम्मान करते हुए बोले—॥ ३७ ॥

युधिष्ठिरने कहा—‘भाग्य ! मुझे अपने दोनों
चाचाओंका पता नहीं लगा रहा है, न जान वे दोनों और
पुत्र-शोकसे व्याकुल तपस्विनी माना गांधारा यहाँसे कहाँ
चले गये ॥ ३८ ॥ भाग्य ! अगर समुद्रमें कर्णधारके
सम्मान आप ही हमारे पारदर्शक हैं ।’ तब भावान्के
परमभक्त भागवन्तय देवर्षि नारदने कहा—॥ ३९ ॥

‘वर्मराज ! तुम किन्तीक न्ये शोक मन करो, क्योंकि
यह सारा जगत् ईश्वरके वशमें है । सारे लोक और
लोकपाल विष्णु होकर ईश्वरकी ही आज्ञाका पालन
कर रहे हैं । यही एक प्राणीके दूसरेसे मित्रता है
और वही उन्हें अलग करता है ॥ ४० ॥ जैसे बैल
बही रस्सीमें बँधे और छोटी रस्सीसे नचे रहकर अपने
खामीका भार बोते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी कर्ण
धर्माणि अनेक प्रकारके नामोंसे वेत्तरूप रस्सीमें बँधकर
ईश्वरकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं ॥ ४१ ॥

जैसे ससारमें खिलाड़ीकी इच्छासे ही खिलाँनोंका संग्राम
और वियोग होता है, वैसे ही भगवान्की इच्छासे ही
मनुष्योंका मित्रा-विद्वेषना होता है ॥ ४२ ॥ तुम लोगोंमें
जीवरूपसे नित्यमानो या देहरूपसे अनित्य अथवा नष्टरूप-
से अनित्य और केनरूपसे नित्य अपना शुद्धस्वरूपमें
नित्य-अनित्य कुछ भी न मानो—किन्ती भी अन्धत्वामें
मोहजन्य आसक्तिके अनिरिक्त वे शोक करने योग्य
नहीं हैं ॥ ४३ ॥ इसलिये धर्मराज ! वे दीन-दुखी चाचा-
चाची अस्तहाय अन्धत्वामें मेरे बिना कैसे रहेंगे, इस

अज्ञानजन्य मनकी विकलताको छोड़ दो ॥ ४४ ॥ यह
प्राकृतिक शरीर कर्म, कर्म और गुणोंके वशमें है ।
अगराके सुँहमें पड़ हुए पुरुषके सम्पन्न यह परधीन
शरीर दूँहमेंकी रखा ही नष्ट कर सकता है ॥ ४५ ॥

हाथपाँवोंके बिना हाथवाले, धार पैरवाले पशुओंके
बिना पैरवाले (गुणादि) और उनमें भी बड़ जीवोंके छोटे जीव
आहार हैं । इस प्रकार एक जीव दूसरे जीवके जीवनका
कारण हो रहा है ॥ ४६ ॥ इन समस्त स्तरोंमें जीवों-
के बाहर और भीतर वही एक स्वयम्प्रकाश भावान्,

अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य त माययोरुधा ॥४७॥

सोऽयमद्य महाराज भगवान् भूतभावन ।

कलरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम् ॥४८॥

निष्पादित देवकृत्यमवशेषं प्रतीयते ।

तावद् द्यूमवेषज्जं भवेत् यावन्निहेश्वरः ॥४९॥

धृतराष्ट्र सह आत्रा गान्धार्वा च स्वमार्गया ।

दक्षिणेन हिमवतश्चपीणामाभर्म गतः ॥५०॥

स्रोतोभिः सप्तभिर्यावं स्वर्धुनीमस्रधा व्यधौत् ।

सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥५१॥

क्षत्वातुसवनं तस्मिन्नुत्वा चाभीन्यथाविधि ।

अन्मद्य उपशान्तत्मा स आस्ते विगतैषण ॥५२॥

जितासनो जितभास प्रत्यहृतपडिन्ध्रिय ।

हरिभावनया च्चस्तरजःमन्वतमामल ॥५३॥

विज्ञानात्मनि समोज्य क्षेत्रज्ञं प्रविलाप्य तम् ।

ब्रह्मण्यस्तमानमाधार घटम्भ्रमित्राभ्रम् ॥५४॥

चत्समायगुणोदकौ निरुद्धकरणाश्रय ।

निर्वर्तितस्त्रिधाह्र आस्त म्याणुरिवाश्लः ।

तस्मान्तरायो मैत्राम् सन्यस्तास्त्रिदशकर्मणः ॥५५॥

स वा अद्यतनाद् राजन् परत पश्येऽहनि ।

फलेवरं हासति स्वं तच्च भसीभविष्यति ॥५६॥

दक्षमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी महोन्ने ।

जो सम्पूर्ण आत्माओंके आत्मा हैं, मायाके द्वारा उनकी प्रकाशसे प्रकट हो रहे हैं । तुम केवल उनकी देखो ॥ ४७ ॥ महाराज ! समस्त प्राणियोंको जीवन दान देनेवाले वे ही भगवान् इस समय इस पृथ्वीतलपर देवराष्ट्रियोंका नाश करनेके लिये कलरूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४८ ॥ अब वे दक्षणाओंका कर्प पूरा कर चुके हैं । पोद्मा-सा काम और शेर हैं, उसीके लिये वे रुके हुए हैं । जबतक वे प्रसु रहें हैं, तबतक तुम्हें भी उनकी प्रतीक्षा करते रहो ॥ ४९ ॥

धर्मराज ! हिमालयक दक्षिण भागमें, वहाँ सप्तर्षियोंकी प्रसन्नताके लिये गात्राजीन अलग-अलग सान धाराओंके रूपमें अपनेको सान भागोंमें विभक्त कर गिया है, जिसे 'सप्तस्रोत' कहते हैं, वहाँ ऋषियोंके आश्रमपर धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी और विदुरके साथ गये हैं ॥ ५० ५१ ॥ वहाँ वे त्रिकल ज्ञान और विविधक अग्निहोत्र करते हैं । अब उनके चित्तमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है, वे केवल जब पीकर शान्तचित्तसे निवास करते हैं ॥ ५२ ॥ आसन चीन्कर प्राणोंको कामे करके उन्होंने अपनी दृष्टि इन्द्रियोंको विषयोंसे लीज लिया है । भगवान्की धारणासे उनके तमागुण, रसोगुण और सत्त्वगुणक म्ल नष्ट हो चुके हैं ॥ ५३ ॥ उन्होंने अहङ्कारको बुद्धिके माव जोड़कर और उसे क्षेत्रज्ञ आत्मामें लीन करके उसे भी महाकाशमें घटाकाशके समान सर्वाविष्टान् ब्रह्ममें एक कर दिया है । उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों और मनको रोक्कर समस्त विषयोंको बाहरसे ही लीज दिया है और मायाके गुणोंसे हाननाले परिणामोंको सर्वथा मिट्टा गिया है । समस्त कर्मोंका संन्यास करके वे इस समय दृष्टी तल्ल स्थिर होकर धैर्य हुए हैं, अब तुम उनके मार्गमें निरुद्ध मन बनना * ॥ ५४ ५५ ॥ धर्मराज ! आजसे पाँचवें दिन वे अपने शरीरका परिष्कार कर देंगे और यह जन्मक मल हो जायगा ॥ ५६ ॥ गार्हपत्याग्नि अग्नियोंके द्वारा पण्डुनीक साथ अपन पालके मृतदेहको जलते देखकर बाहर खड़ी हुए

१ मा पा — सुमाय्या । २ मा पा — दक्षिणे हिमवतश्च । ३ मा पा — सप्तभिर्याव । ४ मा पा — उत्तरोऽहनि ।

* वेदार्थ नारदजी भिक्षाच्छर्मा हैं । वे धृतराष्ट्रके मन्त्रिण जीवनका वर्तमान ही भीति प्रत्यक्ष देखत हुए उन्हे रूपमें बचन कर रहे हैं । धृतराष्ट्र पिछली रातकी ही दक्षिणपुरसे गये हैं, अतः वह बचन भाविष्यका ही समझना चाहिये ।

बहि म्मिता पतिं साध्वी तममिमनु वेक्ष्यति ॥५७॥
 विदुस्तु तणाधर्यं निशाम्य कुरुनन्दन ।
 हपशोकयुतस्तस्माद् गन्ता तीर्थनिषेवक ॥५८॥
 इत्युक्त्वाथारुहत् स्वर्गं नारद सहस्रम्भुक् ।
 युधिष्ठिरो वक्षन्तस्य हृदि कृत्वाजहान्छ्रुत् ॥५९॥

साध्वी गान्धारी भी पतिका धनुष्मन् करती हुई लगी
 आगममें प्रवेश कर जायँगी ॥ ५७ ॥ धर्मराज । विदुरजी
 अपने मार्का आश्चर्यमय मोक्ष देखकर हर्षित और वियोग
 देखकर दुःखित होते हुए वहाँसे तीर्थ-सेवकके लिये चले
 जायँगे ॥५८॥ तैर्विं नारद यों कहकर तुम्हारे साथ
 स्वर्गको चले गये । धर्मराज युधिष्ठिरन उनके उपदेशोंसे
 हृदयमें धारण करके शोकको त्याग दिया ॥ ५९ ॥

इति भीमद्भगवते महापुराणे पारमर्हस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
 नैमिषीयोपाख्याने त्रयोशोऽध्याय ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्याय

भयशकुन देखकर महाराज युधिष्ठिरका राजा करना और अर्जुनका द्वारकाने लौटना

सूत उवाच

सम्प्रमृति दारकायां जिप्सो बन्धुदिरक्षया ।
 मातु'च पुण्यसोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १ ॥
 अप्यतीताः कतिचिन्मास्तास्तानायाततोऽर्जुन ।
 दग्धं धारम्पाणि निमित्तानि बुरूडेह ॥ २ ॥
 कालस्य च गतिं रात्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिण ।
 पापायमीं नृणां वाताक्राधलोभानृवात्मनाम् ॥ ३ ॥
 जिह्मप्राप्यं प्यकृतं प्रात्पमिध च मौहृदम् ।
 पितृमानुमुद्भुद्भानृम्पतीर्नां च कल्कनम् ॥ ४ ॥
 निमित्तान्पन्यरिणानि फालत्वनुगतं नृणाम् ।
 लाभापधमप्रहर्तिं दृष्ट्वावागानुर्जं नृप ॥ ५ ॥

सूतजी कहते हैं—सज्जनोसे मित्र और पुण्यलोक

सम्पन्न होई इच्छा अब क्या करना चाहते हैं—यह
 जाननके लिये अर्जुन हात्कर गये हुए थे ॥ १ ॥ कई
 महीने बीत जानेपर भी अर्जुन वहाँसे लौटकर नहीं आये ।
 धर्मराज युधिष्ठिरको बड़ भयंकर कष्टशकुन दीखने
 लगे ॥ २ ॥ उन्होंने देखा कालकी गति बड़ी विकट हो
 गयी है । त्रिम समय जो शत्रु हानी चाहिये, उस
 समय बह नहीं होती और उनकी निपार भी उल्टी हो
 होती है । लोग बड़ क्रोधी, लोभी और असत्यपराधग
 हो गये हैं । अपने जीवन-निर्वाहके लिये छेग पापपूर्ण
 व्यापार करने लगे हैं ॥ ३ ॥ सारा व्यवहार कष्टसे
 भरा हुआ हाया है क्योंकि नि मित्रतामें भी छद्म निहा
 रहता है निगा माना, सगे-सम्बन्धी, भाई और पति-पत्नीमें भी
 झगडा-टंगा रहन लगा है ॥ ४ ॥ कतिपयके आ मानसे
 लोगोत्र स्वभाव ही लाम, दग्ध आदि अशर्मसे अभिमूढ
 हो गया है और प्रहर्षमें भी अत्यन्त अशिमूढ
 अशानुन होन लगे हैं यह सब दग्धत युधिष्ठिरन
 आज छोट भाइ भीमसेनमें कहा ॥ ५ ॥

१ मा पा — इत्युक्त्वा आरुहत् । २ मा पा — प्राचीन ग्रंथमें इनके लिये कही थी इतना अर्थ है ।

३ मा पा — इन्द्रं मातृपुत्रं पुण्यं कानुदेवस्य चित्तम् । ४ मा पा — वायुदुष्टं नृपः । ५ मा पा — भृगुः ।

६ मा पा — धर्मः ।

युधिष्ठिर उवाच

सम्प्रपितो द्वारकायां जिष्णुर्वन्मुदिच्छया ।

शतं च पुण्यशक्यस्य कृप्यस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥

गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन उवानुज ।

नायाति कस्य वा हेतोर्नाह वेददमझमा ॥ ७ ॥

अपि देवर्षिणाऽऽदिष्टा स कलाऽयमुपस्थित ।

यत्ताऽऽत्मनोऽङ्गमात्रीदं भगवानुत्तिसृजति ॥ ८ ॥

यस्मात् सन्पदोराज्य दारा प्राणा कुलप्रजा ।

आत्मन् सपत्नरिजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥ ९ ॥

पद्मोत्पत्ताभरण्याघ निव्यान् भौमान् मन्दिकान् ।

दारुणाऽर्द्धमतोऽदूरान् नो युद्धिमोहनम् ॥ १० ॥

ऊरुध्रिवाहवो मम स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुन ।

वपयुधापि हृदये अतरास्यन्ति निधियम् ॥ ११ ॥

खिदं पाघन्तमौ नित्यमभि रौत्पनलानना ।

मामङ्ग मागमयाऽयमभिरभत्यभीरेवत् ॥ १२ ॥

गुप्ता कुर्वन्ति मां मय्य दक्षिणं पङ्क्तोऽपर ।

वाहांश्च पुनपव्याघ्र लघ्वय रुता मम ॥ १३ ॥

मृपुद्ग कपाताऽयमुत्कः कम्पयन् मनः ।

प्रत्युत्कृष्टा बह्वर्नगनिद्रा गुन्यमिच्छत ॥ १४ ॥

धृष्टा णि परिधय कम्पत मृ महातिभि ।

निपालय महास्तान् मार्कं च स्नयिन्नुभि ॥ १५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—भीमसेन । अर्जुनको हमने
 द्वारका इसलिये भेजा था कि यह वहाँ जाकर, पुण्यशोक
 भगवान् श्रीकृष्ण क्या कर रहे हैं—इसका पता
 लगा आये और सम्बन्धियोंसे मिल भी आये ॥ ६ ॥
 सबसे मान महीने बीन गये, किंतु तुम्हारे छोटे भाई अब
 तक नहीं लौट रहे हैं । मैं ठीक-ठीक यह नहीं समझ पाता
 हूँ कि उनका न आनेका क्या कारण है ॥ ७ ॥ कहीं
 देशीन नादके द्वारा बल्ल्या हुआ वह सम्प
 तो नहीं आ पहुँचा है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने
 स्त्री-विग्रहों का संकरण करना चाहते हैं ? ॥ ८ ॥ उन्हीं
 भगवान् की हवासे हमें यह सम्पत्ति, राज्य, स्त्री, प्राण, कुल,
 संतान, शत्रुओं पर विजय और स्वर्गाति लोकों का अधिकार प्राप्त
 हुआ है ॥ ९ ॥ भीमसेन । तुम तो मनुष्यों में न्यायके समान
 बनान् हो, देखो तो सही—आकाशमें उत्कृष्टपातानि,
 पृथ्वीमें भूकम्पाणि और शरीरोंमें रोगादि किन्तने भयंकर
 व्यग्रलुप्त हो रहे हैं । इनसे हम बातचीत सूचना मिश्री
 है कि शीत ही हमारी बुद्धिको मोहमें डालनेवाला कर
 उपात होनेवाला है ॥ १० ॥ प्यारे भीमसेन । मेरी
 बर्षी जौव, आँख और मुँहा बर-बार पड़ रही हैं ।
 हृदय जोरसे घड़क रहा है, अक्षय ही बहुत जल्दी
 कोई अनिष्ट होनेवाला है ॥ ११ ॥ देखो यह सिंघारिन
 उग्र होने हुए स्वकी और मुँह करके रो रही है ।
 अरे ! उसके मुँहसे तो आग भी निकल रही है । यह
 कुत्ता बिन्कुल निर्मममा होकर मरी और देखकर बिन्ग
 रहा है ॥ १२ ॥ भीमसेन । गीआणि अष्ट पद्म मुझे अरन बापें
 फरके जाते हैं और गये आनि घुरे पद्म मुझ अग्ने
 दाड़िने कर दते हैं । मेरे घोड़े आनि बाहन मुझे रोने
 हुए निष्पत्ती दते हैं ॥ १३ ॥ यह मृपुङ्ग दूत पेङ्गुनी,
 उग्र और उमका प्रतिश्री पड़ेआ रतनो अरन बर्ग
 कटार दानेमे मेरे मनका बँगाते हुए निधय मृना कर
 देना चाहत हैं ॥ १४ ॥ निशार्गे पुंयगी हा गयी हैं
 मृय और चन्द्रमाके शार्गे आर बार-बार मगड डंग
 हैं । यह पृथ्वी पड़ावके माय कर उन्नी है
 बन्त यह आर जोरसे गरजते हैं और बहो-बहो बिजरी

१ मा पा—अर्थात् १५ । २ मा पा—मै । ३ मा पा—महामयि । ४ मा पा—सम्पत्ति ।

५ मा पा—भीम । ६ मा पा—मुहाना रोडो जो हृदयमिच्छति । ७ मा पा—रोता । ८ मा पा—तुम्हारा ।

वायुर्वाति स्वरस्पर्शो रजमा विसृजस्तमः ।
 असृग् वर्पन्ति जलदा वीभत्समिष सर्वतः ॥१६॥
 सूर्यं हतप्रमं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ।
 सप्तकुलैर्मृतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥१७॥
 नद्यो नदाश्च क्षुभिषा सरांसि च मनांसि च ।
 न ज्वलन्त्यग्निराग्नेन कालोऽयं किं विधास्यति ॥१८॥
 न विवन्ति स्तन वत्सा न दुषन्ति च मातर ।
 रुदन्त्यभ्युक्ष्वा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥
 दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति क्षुल्लन्ति च ।
 इमे अनपदा ग्रामा पुरोधानास्कराभमा ।
 अष्टभिषो निरानन्दाः किमर्थं दर्शयन्ति नः ॥२०॥
 मन्य एतैर्महोत्पलैर्नूनं भगवत पदैः ।
 अनन्यपुरुषभीभिर्हीना मूर्धतसौभगा ॥२१॥
 इति चिन्तयत्तत्स दृष्टारिष्टेन धेतसा ।
 राक्ष प्रत्यागामइ म्रक्षन् मधुपुत्रो कपिञ्चज ॥२२॥
 त पदयानिपतितमयथापूषमातुरम् ।
 अधोवदनमभ्यिन्दून् सूजन्तं नयनान्जयो ॥२३॥
 विलोक्यादिप्रहृदयो विच्छायमनुजं नृप ।
 पृच्छति स सुहृदमध्यं सस्मरन्भारदेरितम् ॥२४॥
 युधिष्ठिर उवाच
 कश्चिदानतपुया न म्यजना सुखमासते ।
 मधुभोजदशाहैर्हिमात्वतान्धकशृष्णय ॥२५॥
 गुरो मातामहः कबिस्त्यस्त्यान्ते वाध भारिपः ।
 मातुल सालुज कश्चिन्मृगस्यानकदुन्दुभि ॥२६॥
 सप्त स्वमारन्तन्त्यो मातुलान्याः सहानमजा ।
 आमतो सस्तुप धेर्म दशक्रेप्रमुखा मयम् ॥२७॥

भी भिरती ही रहती है ॥ १५ ॥ शरीरको छेदनेवाली
 एवं घूर्खिपसि अक्षर कर फैलनेवाली औंधी चकने लगी
 है । बादल बका दरायना इत्य उपस्थित करके सब धर
 मूल बरसाते हैं ॥ १६ ॥ देखो ! सूर्यकी प्रभा मन्द पड़ गयी
 है । आकाशमें ग्रह परस्पर टकराया करते हैं । मृतोंकी पत्नी
 भीषमें पृथ्वी और अस्तित्वमें आग-सी लगी हुई है ॥ १७ ॥
 नदी, नद, तालाब और खेतोंको मन क्षुब्ध हो रहे हैं ।
 धीसे आग नहीं जलती । यह भयकर कष्ट न जाने
 क्या करेगा ॥ १८ ॥ बरफ़े दूध नहीं पीते, गौएँ दुहने
 नहीं देती । गोशाला में गौएँ और बछड़ा-बछड़ाकर रो रही
 हैं । बैक भी उदास हो रहे हैं ॥ १९ ॥ देवताओंकी
 मूर्तियाँ रो-सी रही हैं, उनमेंसे पत्नीना चूने लगी है
 और वे हिलती-डोलती भी हैं । माई ! ये देश, नैक,
 शहर, बगीचे, खाने और आश्रम श्रीहीन और आनन्द
 रहित हो गये हैं । पता नहीं ये हमारे किस दुःखकी
 सूचना दे रहे हैं ॥ २० ॥ इन बड़े-बड़े उत्पत्तियों
 देखकर मैं तो ऐसा सम्मत्ता हूँ कि निश्चय ही यह
 भाग्यहीन भूमि भगवान्‌के उन करणकर्मजैसे, जिनका
 सौन्दर्य तथा जिनके ध्वजा, वस्त्र, अङ्गुशदि विच्छेद
 विच्छ और किस्तीमें भी कहीं भी नहीं हैं, रहित हो गयी
 है ॥ २१ ॥ शौनकाजी । राजा युधिष्ठिर इन भयंकर उत्पत्तियों
 देखकर मन-ही-मन विम्लित हो रहे थे कि द्वारकासे
 लौटकर अर्जुन आये ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरने देखा, अर्जुन
 इतने आतुर हो रहे हैं जिनने पहले कभी नहीं देखे गये
 थे । मुँह लटकता हुआ है, कम्म-सरीखे नेत्रोंसे आँसू ब
 रहे हैं और शरीरमें बिन्कुल कान्ति नहीं है । उनके इस
 रूपमें अपने चरणोंमें पड़ा देखकर युधिष्ठिर ध्वरा गये ।
 देवर्षि नारदजी बाने याद करके उन्होंने सुहृदोंके सामने
 ही अर्जुनसे पूछा ॥ २३-२४ ॥

युधिष्ठिरने कहा—माई ! द्वारकापुरीमें हमारे
 सज्जनमन्त्रकी मधु, मोम, दशाह, अह, सात्त्विक,
 अन्धक और बुध्दिगन्धी यात्रा पुत्रादये तो हैं ! ॥ २५ ॥
 हमारे माननीय माना शरसेनजी प्रसन्न हैं ! अपने छोटे
 भाइसहित माया वसुदेवजी तो पुत्राङ्गूरक हैं ॥ २६ ॥
 उनकी पत्नियाँ हमारी मायी देवकी आदि सातों बहिनें
 अपन पुत्रों और बहुजोंके साथ आनन्दसे तो हैं ! ॥ २७ ॥

कथिद्राज्ञाऽऽहुको जीवत्पसत्पुत्रोऽस्य चानुज ।
 इदीकः समुतोऽमूरो जयन्तगदसारणा ॥२८॥
 आसते कुशलं कथिरो च शत्रुजिदादय ।
 कथिदास्ते सुत्तं रामो भगवान् सात्वता प्रभुः ॥२९॥
 प्रद्युम्नः सर्वभूषणीनां सुखमास्ते महारथ ।
 गम्भीररमोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥३०॥
 सुपेयभारुदेण्याश्च साय्यो जाम्बवतीसुत* ।
 अन्ये च कार्ष्णिप्रवरा सपुत्रा श्वभमादय ॥३१॥
 तथैवानुधरा शौरैः श्रुतदेवोद्भवदय* ।
 सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभा ॥३२॥
 अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णमुञ्जाभया ।
 अपि सरन्ति कुशलमसात्कं वदसौहृदाः ॥३३॥
 भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सल ।
 कथित्युरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुदृवृष्ट ॥३४॥
 मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ।
 आस्ते यदकुलाम्भोवावायोऽनन्तसत्त्व पुमान् ॥३५॥
 यद्रुद्रदण्डगुप्तयां स्वपुत्रां यदवोऽर्चिता* ।
 क्रीडन्ति परमानन्द महापौरुषिका इव ॥३६॥
 यत्पादहृद्भूषणमुष्मकर्मणा
 सत्पादयो द्रव्यस्वहृदयोपितः ।
 निर्व्रित्य संरपे त्रिदशांस्तदाशिषो
 हरन्ति वज्रायुधवल्गुभोषिता ॥३७॥
 यद्राहुदण्डाम्युदयानुजीविनो
 यदुप्रवीरा शकुतोभया मुहु ।
 अधिकमन्त्यद्भिभिराहृता बलात्
 सभां सुधमा सुरसचमोषिताम् ॥३८॥
 कथितेऽनामर्ष सात अष्टेजा विभामि मे ।
 अस्मभमानाऽयमस्त किं वा तात चिरोपितः ॥३९॥

जिनका पुत्र कंस वधा ही दुष्ट था, वे राना उभस्सेन
 अपने छोटे भाई देवकाके साथ जीवित तो हैं न ? इदीक,
 उनके पुत्र कृतवर्मा, अक्षूत, जयन्त, गद, सारण तथा
 शत्रुजित आदि यादव वीर सुखी हैं न ? यादवोंके
 प्रभु बलरामजी तो आनन्दसे हैं ? ॥ २८ २९ ॥
 कृष्णवंशके सर्वश्रेष्ठ मङ्गारथी प्रद्युम्न सुखसे तो हैं ? मुझमें
 वही पुर्नी दिखानेवाले भगवान् अनिरुद्ध आनन्दसे
 हैं न ? ॥ ३० ॥ सुपेय, भारुदेव्य, जाम्बवती-
 नन्दन साम्ब और अपन पुत्रोंके सहित श्वभम आदि
 भगवान् श्रीकृष्णके अन्य सब पुत्र भी प्रसन्न हैं न ? ॥ ३१ ॥
 भगवान् श्रीकृष्णके सेवक श्रुतदेव, उदय आदि और
 दूसरे सुनन्द-नन्द आदि प्रधान यदुवंशी, जो भगवान्
 श्रीकृष्ण और बलरामके बाहुबलसे सुखित हैं, सबके-
 सब सुखी हैं न ? हमसे अक्षय्य प्रेम करनेवाले वे लोग
 कभी हमारा कुशल-मङ्गल भी पूछते हैं ? ॥ ३२ ३३ ॥

भक्तवत्सल शासनमक भगवान् श्रीकृष्ण अपने
 सबजनोंके साथ दारकाकी सुधर्म-सभामें सुखपूर्वक
 निराजते हैं न ? ॥ ३४ ॥ वे आदिपुरुष बलरामजीक
 साथ संसारके परम मङ्गल, परम कल्याण और उत्तमके
 लिये यदुवंशरूप वीरसभामें निराजमान हैं । उन्हींके
 बाहुबलसे सुखित दारकापुरीमें यदुवंशीलोग सारे संसारके
 द्वारा सम्मानित होकर बड़े आनन्दसे विष्णुभगवान्के
 पार्श्वोंके समान विहार कर रहे हैं ॥ ३५ ३६ ॥
 सभ्यमामा आदि सोलह हजार शनियों प्रधानरूपसे उनके
 चरणकमलोंकी सेवामें हैं तब रहकर उनके द्वारा मुझमें
 इन्द्रादि देवताओंको भी हरकर इन्द्राणीके योग्योम्य तथा
 उन्हींकी अमीष्ट पारिजादादि वस्तुओंका उपभोग करती
 हैं ॥ ३७ ॥ यदुवंशी वीर श्रीकृष्णके बाहुदण्डके प्रभुत्वसे
 सुरक्षित रहकर निर्भय रहते हैं और बलवत्क जायी
 हुई बड़े-बड़े देवताओंके बैठन योग्य सुधर्मसभाको अपने
 चरणोंसे आक्रान्त करते हैं ॥ ३८ ॥

भाई अर्जुन ! यह भी बताओ कि तुम स्वयं तो कुशलसे
 हो न ? मुझे तुम श्रीभीम-से देख रहा हो नहीं बहुत
 दिनोंतक रहे, कहीं तुम्हारे सम्मानमें तो किसी प्रकार

कषिन्नाभिहतोऽभवेः शब्दादिभिरमङ्गलैः ।

न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आश्रया यत्प्रतिष्ठितम् ॥४०॥

कषिन्त्वाप्राप्त्यन्यथा गं इदं रोगिणं क्षियम् ।

श्रवणोपसृत सत्त्व नात्यासीः श्रवणप्रदः ॥४१॥

कषिन्त्वाप्राप्त्यन्यथा गं इदं रोगिणं क्षियम् ।

पराजितो वाय भवाभ्रोचमैर्नासमै पथि ॥४२॥

अपि स्थित्यर्थश्चक्षुषास्त्व सम्भोज्यान् इदं बालकान् ।

श्रुतिपित्तं कर्म किंचित्कृतवाच यदक्षमम् ॥४३॥

कषिद् प्रष्टुमनाथ इत्येनात्मकञ्चुना ।

शून्योऽस्मि रक्षितो नित्यमन्वसे वेऽन्यथा न रुक् ॥४४॥

की कमी नहीं हुई । किसीने तुम्हारा अपमान तो नहीं कर दिया । ॥ ४० ॥ कहाँ किसीने दुर्मन्त्रपूर्ण कर्मकाण्ड आदिके द्वारा तुम्हारा चित तो नहीं दुष्ट किया । अन्तः किसी आश्रयसे तुम्हारे पास आये हुए पावनकर्त्तों उनकी मोंगी हुई वस्तु अपना अपनी ओरसे कुछ दानकी प्रतिज्ञा करके भी तुम नहीं दे सके । ॥ ४० ॥ तुम सदा शरणागतोंकी रक्षा करते आये हो, कहाँ किसी भी ब्राह्मण, बालक, गौ, बूढ़े, रोगी, अक्षय्य अपना अन्य किसी प्राणीका, जो तुम्हारी शरणमें आया हो, तुम्हें त्याग तो नहीं कर दिया । ॥ ४१ ॥ कहाँ तुमने अपना स्त्रीसे सम्प्राप्त तो नहीं किया । अपना सम्पन्न करनेमें स्त्रीके साथ असात्वर्त्तुर्वाक सम्प्राप्त तो नहीं किया । कहाँ अपने अपने छोटे अपना बराबरीकाँसे हार तो नहीं गये । ॥ ४२ ॥ अपना मौज्ज बनानेमें बालक और बूढ़ोंको छोड़कर तुम्हें अकेले ही तो मौज्ज नहीं कर लिया । मेरा विश्वास है कि तुम्हें ऐसा कोई निन्दित काम तो नहीं किया होगा, जो तुम्हारे योग्य न हो ॥ ४३ ॥ हो-न-हो अपने परम प्रियतम अस्मिन्मय परम सुख स्नातान् श्रीकृष्णसे तुम रक्षित हो गये हो । इसीसे अपनेको शून्य मान रहे हो । इसके बिना दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता, जिससे तुम्हें अपनी मानसिक पीड़ा हो ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमर्हस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुविष्टिरिक्त्वा नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कृष्णविरहमपि पाण्डवोका परीक्षितको राज्य वेकर अर्जुन सिधारना

पूत उवाच

एव कृष्णमस कृष्णो भ्राता राज्ञाऽऽविफलितः ।

नानाशङ्कास्पद रूप कृष्णविदलेपकश्चित् ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—मगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा अर्जुन एक तो पहले ही श्रीकृष्णके मित्रसे हटा हो रहे थे, उसपर राजा सुविष्टिरन उनकी निपादभक्त मुद्रा देखकर उसके नियमों का प्रकाश आशङ्काएँ करते हुए प्रश्नोंकी धड़ी लगा दी ॥ १ ॥

१ प्र प्र०—इत्येतं । २ प्र प्र०—शरण्यो । ३ प्र प्र०—प्राचीन प्रतिभे वाक्यद्वयम् । इनके बाद वह स्वेकारे अभिप्रेत है—अपेक्षाविशिष्टमय कृष्णानुरक्त्यका । ४ प्र प्र०—इतं च यत् । ५ प्र प्र०—परिचितोपपन्नो सुविष्टिरिति दर्शनं यत् । ६ प्र प्र०—न शयाकाश गतिरयम् ।

शोकेन शुष्मद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभ ।

विभुं समेवानुष्यापचात्प्रोत्पतिभाषितुम् ॥ २ ॥

कृच्छ्रेण सस्तम्य शुषः पाणिनाऽऽसृज्य नेत्रयोः ।

परोक्षेण सदाभद्रप्रणयौत्कण्ठयकातरः ॥ ३ ॥

मस्य मैत्री सौहृद च सप्तध्याविषु संसारम् ।

नृपमग्रजमित्याह वाष्पगाहदया गिरा ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच

वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ।

येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ ५ ॥

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यपिदर्शन ।

उक्थेन रहितो ह्येव मृतकः प्रोच्यते यथा ॥ ६ ॥

यत्संभयाद् द्रपदगोहमुपागतानां

राज्ञां स्वर्पवरमुखे सरदुर्मदानाम् ।

तेजो हृतं लब्धुमयाभिहतमस्तस्य

मत्कीकृतेन बन्धुप्राप्तिरपि च कृप्या ॥ ७ ॥

यत्संनिधावहमु स्वाण्डवमग्रयेऽदा-

मिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ।

लम्बा सभा मयकृतममृतशिल्पमाया

दिग्भ्योऽहरन्नुपतया बलिमच्चरे ते ॥ ८ ॥

यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मत्सर्वार्थे

आर्योऽनुजस्तथ गजायुतमस्ववीर्यः ।

तेनाहता प्रमथनाथमस्त्राय भूपा

यन्मोचितास्तदनयन् बलिमच्चरे ते ॥ ९ ॥

शोकसे अर्जुनका मुख और हृदय-कमल सूख गया था, चेहरा फीका पड़ गया था । वे उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें ऐसे डूब रहे थे कि बड़े भारिके प्रभोंका कुछ भी उत्तर न दे सकें ॥ २ ॥ श्रीकृष्णकी आँखोंसे ओझल हो नानेके कारण वे बड़ी हुई प्रेममनित उत्कण्ठाके परवश हो रहे थे । रण हँकने, टहलने आदिके समय भगवान्ने उनके साथ जो मित्रता, अभिमुख्यता और प्रेमसे भरे हुए व्यवहार किये थे, उनकी याद-पर-याद आ रही थी, बड़े कष्टसे उन्होंने अपने शोकका वेग रोककर, हाथसे नेत्रोंके आँसु पोंछे और फिर रुँचे हुए गलेसे अपने बड़े भाई महाराज युधिष्ठिरसे कहा ॥ ३ ॥

अर्जुन बोले—महाराज । मेरे मेरे भाई अपना

अत्यन्त घनिष्ठ मित्रका रूप धारणकर श्रीकृष्णने मुझे टा लिया । मेरे जिस प्रकट पराक्रमसे बड़े-बड़े देवता भी आश्चर्यमें डूब जाते थे, उसे श्रीकृष्णने मुझसे छीन लिया ॥ ५ ॥ जैसे यह इतरी प्राणसे रहित होनेपर मृतक कहलता है, वैसे ही उनके क्षणमरके वियोगसे यह संसार अप्रिय दीखने लगता है ॥ ६ ॥ उनके आक्षयसे द्रौपदी-स्वर्पवरमें राजा दुष्यके घर आये हुए कामोन्मत्त राजाओंका तेज मैंने हरण कर लिया, बन्धुपर बाण चढ़ाकर मत्स्यवेध किया और इस प्रकार द्रौपदीको प्राप्त किया था ॥ ७ ॥ उनकी सन्निधिमात्रसे मैंने समस्त देवताओंके साथ इन्द्रको अपने बलसे जीतकर अग्निदेवका उनके तृप्तिके लिये साण्डव बनकर दान कर दिया और मय दानशक्ती निर्माण की हुई कलौषिक कलाकौशलसे युक्त मायामयी समा प्राप्त की और आपके यज्ञमें सब ओरसे आ-आकर राजाओंने अनेकों प्रकारकी भेंटें समर्पित कीं ॥ ८ ॥ दस हजार हाथियोंकी शक्ति और बलसे सम्पन्न आपके इन छोटे भाई भीमसेनने उन्हींकी शक्तिके राजाओंके सिरपर पीर रखनवाले अभिमानी जरासन्धका वध किया था तदनन्तर उन्हीं भगवान्ने उन बहुत-से राजाओंको मुक्त किया, जिनको जरासन्धने मन्थारक-यज्ञमें बलि चढ़ानेके लिये बन्दी बना रखा था । उन सब राजाओंने आपके यज्ञमें अनेकों

पत्न्यान्तथाधिमस्वक्लृप्तमहाभिषेक

स्वाधिष्ठचारुक्कर किंत्वः सभायाम् ।

सृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताभ्युत्थया

यन्मत्स्रियाऽकृत इतोऽभिमुक्तकेशा ॥१०॥

यो नो शुगोप वन एत्थ दुरन्तकुण्डराव

दुर्वसिसोऽरिक्लिप्तदयुताग्रदृग् ।

शाकभशियमुपयुज्य यत्सिलोकीं

वृत्ताममन्त मलिले विनिमग्नमङ्ग ॥११॥

यत्तेजसाथ भगवान् युधि शूलपाणि

र्विसापित मगिरिजोऽस्त्रमदाभिर्जमे ।

अन्येऽपि चाहममुनैव क्लेशवरेण

प्राप्तो महन्द्रभवने महदामनाधर्म ॥१२॥

प्रकारके उपहार दिये थे ॥९॥ म्हायनी दौपनी राजसूय-
यज्ञके म्हायन् अभिषेकसे पवित्र हुए अपने उन सुन्दर
केसोंको, निन्हें दुष्टोंने मरी सभामें झूनेकर साहस किया
था, बिलेकर तथा औंछोंमें औंछू भरकर बन् श्रीराम-
के चरणोंमें गिर पड़ी, तब उन्होंने उसके सामने उसके
उस घोर अपमानका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा करके उन
भूतोंकी क्रियोंकी ऐसी दशा कर दी कि वे विचित्र हो
गयीं और उन्हें अपने केश अपने हाथों छोड़ देने पड़े ॥१०॥
बनवासके समय हमारे वैरी दुर्योधनके कष्टमन्त्रसे दस
हजार शिष्योंको साथ बिलकर भोजन करनेवाले मन्त्रमें
दुर्वासने हमें दुस्तर सङ्कटमें डाल दिया था । उस
समय उन्होंने श्रीपत्नीके पात्रमें बची हुई शकत्ती एक
पत्तीका ही मांग ल्याकर हमारी रक्षा की । उनके
ऐसा करते ही नदीमें स्नान करती हुई मुनिमन्त्रवी-
रों ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी तो बात ही क्या,
सारी क्रियोंकी ही वृत्त हो गयी है ॥ ११ ॥ उनके
प्रतापसे मैं युद्धमें पार्ष्णीसहित मत्तार् शङ्करके
आक्षयमें बाध दिया तथा उन्होंने मुझको अपना
पाहुनका नामक जल दिया, साथ ही दूसरे लोकवासों-
ने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने अन्न मुझे दिये । और
तो क्या, उनकी कृपासे मैं इसी शरीरसे स्वर्गमें गया
और देवराज इन्द्रकी सभामें उनके बराबर आये आसन-
पर बैठनेका सम्मान मैंने प्राप्त किया ॥ १२ ॥

१ मा पा०—गात्र १२ मा पा०—उल्लसत दहये ।

● एक बार राजा दुर्योधनने महर्षि दुर्वासकी बड़ी सेवा की । उसके प्रसन्न होकर मुनिने दुर्योधनसे वर माँगेनेको
कहा । दुर्योधनने वर सोचकर कि क्षत्रिकों कागले पाण्डवोंको मर करनेका अच्छा अवसर है, मुनिसे कहा— ब्रह्मन् ।
हमारे कुलमें युधिष्ठिर प्रधान हैं आज अपने दस लक्ष शिष्योंसहित उनका आनिष्क स्वीकार करें । किन्तु अगर
उनके यहाँ उन समय जायें जब कि द्रौपदी भोजन कर चुकी हो मिलते उसे भूराका कष्ट न उठाना पड़े । द्रौपदीका पात्र
पूर्वकी ही हुई एक ऐसी बरछाई थी जिसमें छिद्र किया हुआ अन्न द्रौपदीके भोजन कर केनेम पूर्व रोप नहीं होता था किन्तु
उनके भोजन करनेके बाद वह लगभग हा बचा था । दुर्याग्राही दुर्योधनके कष्टग्रनुसार उनके भोजन कर
चुद्धेतर अम्पद्दमें अपनी शिष्यमण्डलीसहित पहुँच और चर्मपत्रमें बोधे— हम नगीर स्नान करने जाते हैं हम
हमारे निवे भोजन लेपा रचना । इतने द्रौपदीकी बड़ी चिन्ता हुई और उन्हने अति अलक्ष होकर आर्तवशु भगवान्
श्रीरामकी शरण ली । भगवान् तुरत ही अपना विषयमग्न होकर द्रौपदीकी शौरहीर आये और उनके बाध— हृष्ये !
आज बड़ी भूय लगी है कुछ गायेको दो । द्रौपदी भगवान्की इस अनुपम दयासे गदग हो गयी और बत्ती
प्रभो ! मेरा बड़ा व्याप है जो आज विषयमरने मुझसे भोजन मागा परंतु क्या करूँ ! अब तो कुटीमें कुछ भी
नहीं है । भगवान्ने कहा— अच्छा वह पात्र तो स्वामी उसमें कुछ दगा ही । द्रौपदी बरछाई न आयी उतमें
बड़ी घाबरा एक कन ल्या था । विचारमा हरिने उसीको भग लगाकर ब्रह्मकीही तुम कर दिया और भीमकेनेने कहा कि
दुर्निमग्नपीठ भोजनद निवे बुद्ध लाभ । किन्तु दुर्निमग्न तो वहने ही तुम होकर भाग गये थे । (मरामाग)

तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्म
 गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवा ।
 सेन्द्रा भितायदनुभाषितमाश्रमीह
 तेनाहमद्युपितः पुरुषेण भूम्ना ॥१३॥
 यद्वत्भवः कुरुयलाब्धिमनन्तपार
 मेको रथेन ततरेऽहमतर्पसत्त्वम् ।
 प्रत्याहृतं बह्वु धनं च मया परेषां
 तेजास्पदं मणिमयं च हृत शिरोम्य ॥१४॥
 यो भीष्मकर्मगुरुस्तस्यचमूष्यद्वज्र
 राजन्वद्वर्चममण्डलमम्बितासु ।
 अग्रेचरो मम विभो रथयूथपाना-
 मस्युर्मनांसि च दृष्टा सह ओजैर्आर्च्छन् ॥१५॥
 यदोप्यु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्म
 नष्टत्रिगर्तशलसैन्धववाहिकाद्यैः ।
 अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि
 नो पस्पृशन्नुह्रिटास्तमिवासुराणि ॥१६॥
 सांत्पे वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे
 यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भम्भा ।
 मां भ्रान्तवाहमरपो रथिनो भ्रुविष्ट
 न प्राहरन् यदनुभाष्यनिरम्बधिता ॥१७॥
 नमाण्युदारचरितं स्मितं गोभितानि
 ह पार्थ हऽर्जुन मग्ने कुरुन्तन्दनेति ।

उनके आग्रहसे जब मैं स्वर्गमें ही कुछ दिनोत्तर रह गया,
 तब इन्द्रके साथ समस्त दैवताओंने मेरी इन्हीं गाण्डीव
 धारण करनेवाली मुजार्जोका निषातकवच आदि दैत्यों-
 को मारनेके लिये आग्रह किया । महाराज । यह सब
 जिनके मझती कृपाकर फल था, उन्होंने पुरुषोत्तम
 मगवान् श्रीकृष्णने मुझे आज ठग लिया । ॥ १३ ॥

महाराज । कौरवोंकी सेना भीष्म-द्रोण आदि अनेक
 महामहर्षियोंसे पूर्ण अपार समुद्रके समान हुस्तर थी,
 परन्तु उनका आग्रह ग्रहण करके अनेके ही रथपर सवार
 हो मैं उसे पार कर गया । उन्होंनेकी सहायतासे,
 आपको याद होगा, मैंने शत्रुओंसे राजा विराट्का सारा
 गोधन तो वापिस ले ही लिया, साथ ही उनके सितें-
 परसे चमकते हुए मणिमय मुकुट तथा अनेके अम-
 ररत्न छीन लिये ॥ १४ ॥ भार्जनी ! कौरवोंकी
 सेना भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य तथा अन्य बड़े-बड़े राजाओं
 और क्षत्रिय वीरोंके रथोंसे शोभायमान थी । उसके सामने
 मेरे आगे-आगे चम्पक के अपनी दृष्टिसे ही उन महा-
 रथी यूपतियोकी आयु, मन, उत्साह और बलके
 छीन लिया करते थे ॥ १५ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्म,
 कर्ण, मूरधवा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और बाह्लीक
 आदि वीरोंने मुझपर अपने कमी न चूकनवाले कल
 बजाये थे, परन्तु जैसे क्षिरप्लवशिपु आदि दैत्योंके
 अस्त्र-बाण मगधक प्रह्लादका स्पर्श नहीं करते थे,
 वैसे ही उनके शस्त्रास्त्र मुझ छूतक नहीं सके । वह
 श्रीकृष्णके मुगदणोंकी छत्रछायामें खनक ही प्रभव
 था ॥ १६ ॥ श्रेष्ठ पुरुष मंसरसे मुक्त होनेके लिये
 जिनके चरणमर्मजोक्त सेवन करते हैं, अपने-आपका
 को वे डाकनेवाले उन मगवान्को मुझ दुधुदिने सारथिक
 बना बाध । अहा ! जिस समय मेरे घोड़े थक गये थे और
 मैं रथमें ठहरकर पृथ्वीपर पड़ा था, उस समय बड़े-बड़े
 महारथी गुरु भी मुझपर प्रहार न कर सक, क्योंकि
 श्रीकृष्णके प्रभावसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी ॥ १७ ॥
 महाराज । माधवके ठामुक और मधुर मुमग्गने मुझ,
 विनादमरे एवं हृदयस्पर्शी बचन और उनका मुम आग्रह,
 अर्जुन, मगध, कुरुन्दन आदि कवच पराजना,

संज्ञितानि नरदेव हृदिसृष्टानि
सर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥१८॥

अध्यात्मनात्मनविक्लधनभोजनादि
प्रेक्ष्याद्यस्य श्रुतवानिति विप्रलम्बः ।

सस्युः सखेव पितृवचनयस्य सर्वं
सेहे महन्महिसया कुमतरथं मे ॥१९॥

तोऽहं नृपन्द्र रहितं पुरुषोत्तमेन
सम्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यम् ।

अध्वन्युरुक्कमपरिग्रहमङ्ग रश्मिन्
गोपैरमङ्गिरशलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥२०॥

तद्वै धनुस्त इवः स रथो ह्यास्ते
तोऽहं रथी नृपतपो मत आनमन्ति ।

सर्वं क्षणेन तदभूदसदीक्षरिक्तं
भसन् हुतं कुहकराद्भूमिवोत्तमूप्याम् ॥२१॥

रत्नस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां न सुहृदुरे ।
निप्रश्नापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथ ॥२२॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ।
अज्ञानतामिवान्यान्य चतुःपञ्चावशेषिता ॥२३॥

प्रायणतद् भगवत ईश्वरस्य विरोधितम् ।
मिथा निमन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथ ॥२४॥

मर्लाकमां जलं यद्वन्महान्तोऽन्त्यणीयस ।
दुर्बलान्यभिना राजन्महान्ता बलिना मिथ ॥२५॥

एष बलिर्दुर्बलमहाम्भिरितरान् विष्टुः ।

मुझे याद आनेपर मेरे हृदयमें उफल-पुफल मचा देते हैं ॥१८॥ सोने, धैठने, टहछने और अपने सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी बातें करने तथा भोजन आदि करनेमें हम प्रायः एक साथ रहा करते थे । किसी-किसी दिन मैं न्ययसे उन्हें कह बैठता—‘मित्र ! तुम तो बड़े सत्य-वादी हो !’ उस समय भी वे मन्त्रापुरा अपनी भ्रातृ-भाक्ताके कारण, जैसे मित्र अपने मित्रका और पिता अपने पुत्रका अपराध सह लेता है उसी प्रकार, कुछ दुर्भिक्षिके अपराधोंको सह लिया करते थे ॥ १९ ॥ मन्त्राण ! जो मेरे सखा, प्रिय मित्र—नहीं-नहीं मेरे हृदय ही थे, उन्होंने पुरुषोत्तम भगवान्से मैं रहित हो गया हूँ । भगवान्की पत्नियोंको द्वारकासे अपने साथ लय रहा था, परन्तु मार्गमें कुछ गोपोंने मुझे एक अक्खकी मौति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा नहीं कर सका ॥२०॥ कभी मेरा गण्डीव धनुष है, वे ही बाण हैं, कभी रथ है, वही घोड़े हैं और वही मैं रथी वर्जुन हूँ, जिसके सामने बड़े-बड़े राजा लोग सिर झुकाना करते थे । श्रीकृष्णके बिना ये सब एक ही क्षणमें नहींके समान सतशय्य हो गये—ठीक उसी तरह, जैसे मसमें डाली हुई जाति, कपटमयी सेवा और ऊसरमें बोया हुआ धीन व्यर्थ जाता है ॥ २१ ॥

राजन् ! आपने द्वारकावासी अपने जिन सुहृदु सम्बन्धियोंकी बाल फूँदी है, वे ब्राह्मणोंके शापका मोहग्रस्त हो गये और वारुणी मदिराके पानसे मद्योन्मत्त होकर अपरिचितोंकी मौति आपसमें ही एक दूसरेसे मिट गये और घुँसोंसे मार-पीट करके सब-के-सब नष्ट हो गये । उनमेंसे केवल चार-पाँच ही बचे हैं ॥ २२-२३ ॥ भाग्यकर्म यह सर्वशक्तिमान् भगवान्की ही मर्मा है कि संसारके प्राणी परस्पर एक-दूसरेका पावन-गोपण भी करते हैं और एक-दूसरेको मार भी डालते हैं ॥२४॥ राजन् ! जिस प्रकार जलधरोंमें बड़े जन्तु छोटोंका, कमजान् दुर्बलेंका एष बल और बलवान् भी परस्पर एक-दूसरे को खा जाते हैं, उसी प्रकार अभिषय यन्त्री और बड़े यदु बलियोंके द्वारा भगवान्ने दूसरे राजाओंका संहार करवाया । सत्यभाव यदुबलियोंके द्वारा ही एकसे दूसरे

यद् यदुभिन्योन्यं भूभारान् संजहार ॥२६॥

देशकालार्थयुक्तानि हृत्पापोपशमानि च ।

हरन्ति सरसविषा गोविन्दाभिहितानि मे ॥२७॥

सूत उवाच

एवं चिन्तयतो त्रिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ।

सौहार्देनातिगण्डन शान्ताऽऽसीद्विमला मतिः ॥२८॥

वस्तुदेवाद्भययुष्यन्परिदृष्टिरहमा ।

भक्त्या निर्मथिताश्लेषकपापविषणोऽर्जुन ॥२९॥

गीत भगवता ज्ञानं यत् तत् संग्रामपूर्वनि ।

कालकर्मतमोरुद्धं पुनरभ्यागमद् विद्मः ॥३०॥

विशोको ब्रह्मसम्पत्त्या सखिभर्तृतसंशय ।

लीनप्रकृतिर्नैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसम्भवः ॥३१॥

निश्चम्य भगवन्माग संस्थां यदुद्धृतस्य च ।

स्वपथाय मतिं चक्र निमृतात्मा युधिष्ठिरः ॥३२॥

पृथाप्यनुधृत्य धनजयोदित

नाशं यदुनां भगवद्भर्तृ च ताम् ।

एकान्तभक्त्या भगवत्पथोज्ञान

निबद्धितात्मोपरगाम मसृते ॥३३॥

यथाहरद् सुवा भारं तां सनु विजहावज ।

कण्टकं कण्टकनेव द्रव चापीशितु समम् ॥३४॥

यथा मत्पादिनृपाणि धने जहात् यथा नृ ।

भूभारः धृतिता यन जहौ तद्य कण्डवरम् ॥३५॥

यदा मुरन्दो भगवानिमां महीं

जहौ मृतन्वा धरणीयमत्कथ ।

यदुष्पीका नाश कटाके पूर्णरूपसे पृथ्वीका मार उतार दिया ॥ २५-२६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मुझे जो शिक्षाएँ दी थीं, व देश, काल और प्रयोजनके अनुरूप तथा हृदयके तापको शान्त करनेवाली थीं, स्मरण आते ही वे हमारे चित्तका हरण कर लेनी हैं ॥ २७ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रगाढ़ प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलमेंका चिन्तन करते-करते अर्जुनकी चित्तवृत्ति अत्यन्त निर्मल और प्रशान्त हो गयी ॥ २८ ॥ उनकी प्रमत्तगी मक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलमेंके अहर्निश चिन्तनसे अत्यन्त बढ़ गयी । मक्तिके वेगने उनके हृदयको मषकत्र उसमेंसे सारे विकारोंको बाहर निकाल दिया ॥ २९ ॥ उन्हें युद्धके प्रारम्भमें भगवान् के द्वारा उपदेश किया हुआ गीता-ज्ञान पुन स्मरण हो आया, जिसकी काल-के व्यवधान और कर्मोंके विस्तारके कारण प्रमादवश कुछ दिनोंके लिये विस्मृति हो गयी थी ॥ ३० ॥ ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिसे मायाका आवरण भङ्ग होकर गुणातीत अवस्था प्राप्त हो गयी । द्वैतत्व संशय निवृत्त हो गया । सूक्ष्मस्तीर भङ्ग हुआ । वे शोक एवं जन्म-मृत्युके चक्रसे सर्वथा मुक्त हो गये ॥ ३१ ॥

भगवान् के स्वधाम-गमन और यदुवंशके संहारका अत्यन्त सुनकर निश्चलमति युधिष्ठिरन स्वगतिहणका निश्चय किया ॥ ३२ ॥ कुन्तीने भी अर्जुनके मुखसे यदुवंशीयोंके नाश और भगवान् के स्वधाम-गमनकी बात सुनकर अनन्य भक्तिये अपन हृदयको भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया और मदाके लिये इस जन्म-मृत्युरूप संसारसे अपना मुँह मोड़ दिया ॥ ३३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने लोक-दृष्टिमें त्रिम पादवशीरसे पृथ्वीका मार उतारा था, उसका बीमे ही परित्याग कर दिया, जैसे कोई कर्मसे कौट्य निकालकर त्रि दोनोंको पेंक दे । भगवान् की दृष्टिमें दानों ही समान थे ॥ ३४ ॥ जैसे व मृत्के समान मत्स्यादि रूप धारण करते हैं और त्रि उनका त्याग कर देते हैं, वैसे ही उन्होंने त्रिम पादवशीरसे पृथ्वीका मार कर दिया था, उसे त्याग भी दिया ॥ ३५ ॥ त्रिनकी मधुर स्वीकार्य अवग कृतव्याप्य हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णन जब अपन मनुष्यके-से शरीरमें इस पृथ्वीका

१ प्राचीन प्रतिमें 'यथाहरद्भवा मार' के स्थान पर 'जहौ तद्य कण्डवरम्' । तब ही कर्मक नहीं है । विवरणको भी इन दोनों श्लोकोंसे तथा इनके पुरस्कर्तों के कथन से नहीं माना है । भगवान् श्रीकृष्णके दिग्विजय स्वयम्भूत शरीरका त्याग नग्नता नहीं भवत्येव इन दो श्लोकोंको मर्चने नहीं माना है । प्राचीन प्रतिमें व हेतुने भी वही किन्तु रक्षा है ।

तदाहरेवाप्रतिपुद्गचेतसा-

मधर्महेतुः कलिरन्धर्वर्तत ॥३६॥

युधिष्ठिरस्तत्परिस्पर्षणं शुचैः

पुरे च राष्ट्रं च गृहे तथाऽऽत्मनि ।

विभाष्य सोमानृतत्रिषाहिसना-

धधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

स्वराट् पौत्रं विनैविनमात्मन सुसमं गुणैः ।

हायनीध्या पतिं भूमेरन्यविष्णुगजाह्वये ॥३८॥

मधुरायां तथा वधं शूरसेनपतिं उत ।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमधीनपिबदीम्बर ॥३९॥

विमुन्य तत्र तत् सर्वं दुष्कृत्वलयादिभ्यम् ।

निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाष्टेष्वन्य ॥४०॥

वार्धं जुहाव मनसि तत्प्राण इतर च तम् ।

मृत्पावपान सोत्सग तं पञ्चत्वे अजोहवीत् ॥४१॥

त्रित्वे बुत्वाथ पञ्चत्वं तद्वैकृत्येऽप्युहोन्मुनिः ।

सर्वमात्मन्भजुहवीवृत्रक्षप्यात्मानमभ्यये ॥४२॥

धीरवासा निराहारो बद्धवाक् मुक्तमूर्धजः ।

दर्शयन्मात्मनो रूपं बहोन्मत्तपिज्ञाचवत् ॥४३॥

अनपेक्षमात्पो निरगाद्यमुष्यन्वभिरो यथा ।

उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वा महात्मभिः ।

इदि प्रभा परं ध्यायन्मात्तर्तत यतो गतः ॥४४॥

सर्वे तमनु निर्जग्मूर्ध्वतरः कृतनिधयाः ।

परिष्ठाप्य कर दिया, उसी दिन विष्णुजीन भोगोंको
अधर्ममें फँसानेवाला कलियुग आ धमका ॥३६॥ महाराज
युधिष्ठिरसे कलियुगका फैलना छिपा न रहा । उन्होंने
देखा—देशमें, नगरमें, घरोंमें और प्राणियोंमें भोग, अस्व,
छत्र, हिरा आदि अधर्मोंकी बढ़ती हो गयी है । तब
उन्होंने महाप्रस्थानका निश्चय किया ॥ ३७ ॥ उन्होंने
अपने विनयी पौत्र परीक्षितको, जो गुणोंमें उन्हींके समान
थे, समुद्रसे विरिणी पृथ्वीके सम्राट्-पदपर हस्तिनापुरमें
अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥ उन्होंने मयुरमें शूरसेना-
धिपतिके रूपमें अभिरुद्रको पुत्र बनाकर अभिषिक्त
किया । इसके बाद समस्त युधिष्ठिरने प्राजापत्य का
करके आहवनीय आदि अग्निपर्वको अपनेमें धीन कर
दिया अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मसे मुक्त होकर उन्होंने
संन्यस्त भ्रमण किया ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिरने अपने सब
कन्यापूज्य आदि वहाँ छोड़ दिये, एवं ममता और बन्ध-
कारसे रहित होकर समस्त कवन कट डाले ॥ ४० ॥
उन्होंने यह भावनासे वाणीको मनमें, मनको प्राणमें,
प्राणको अपानमें और अपानको उत्तरी क्रियाके साथ
मृत्तुमें तथा मृत्तुको पञ्चभूतमय शरीरमें लीन कर
लिया ॥४१॥ इस प्रकार शरीरको मृत्तु रूप अनुभव करके
उन्होंने उसे त्रिगुणमें मिश्र दिया, त्रिगुणको मूढ प्रकृतिमें,
सर्वकारणरूपा प्रकृतिको आत्मामें और आत्माको अविनाशी
ब्रह्ममें किलीन कर दिया । उन्हें यह अनुभव होने लगा
कि यह सम्पूर्ण इन्द्रियपञ्च ब्रह्मस्वरूप है ॥४२॥ इसके
पश्चात् उन्होंने शरीरपर धीर-वक्र धारण कर लिया, अम-
जकक त्याग कर दिया, मौन छे लिया और केश लोपकर
मिक्षेर लिये । वे अपन रूपको ऐसा दिखाने लगे जैसे
कोई नङ, उन्मत्त या पिशाच हो ॥४३॥ फिर वे
बिना किसीकी बात देखे तथा बहरेकी तरह बिना किसी-
की बात सुने, घरसे निकल पड़े । इन्द्रियमें उस परमवक्र
ध्यान करते हुए, जिसको प्राप्त करके फिर लौटना नहीं
होता, उन्होंने उत्तर दिशाकी यात्रा की, जिस ओर पहले
कदमके महाप्रस्थान जा चुके ॥ ४४ ॥

गीमसेन, अर्जुन आदि युधिष्ठिरके छोटे भाइयोंने भी
देखा कि जब पृथ्वीमें सभी लोगोंको अधर्मके सम्राट्क

कल्लिनाधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा प्रजा सुवि ॥४५॥

तेसाधुकृतसर्वाधांश्चत्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः ।

मन्ता भारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥४६॥

तद्व्यानोद्विक्तया भक्त्या विशुद्धधिपणा परे ।

तस्मिन् नारायणपदे एकान्तमर्त्यो गतिम् ॥४७॥

अवापुर्दुर्वासां ते असद्विर्विपयात्मभि ।

विपूतकल्मषात्म्याने निरजेनात्मनैव हि ॥४८॥

विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमैतमवान् ।

कृष्णावेशेन तच्चित्तं पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥

द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ।

वामुदवे भगवति शोकान्तमस्तिराप तम् ॥५०॥

य भद्रयत्तद् भगवत्प्रियाणा

पाण्डो सुतानामिति सम्प्रयाणम् ।

मृणोत्पल स्वस्त्ययन पवित्रं

लम्बा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥५१॥

कश्चिद्युगने प्रमादित कर डाला है, इसलिये वे भी धीकृष्ण-
चरणोंकी प्राप्तिका दृढ निश्चय करके अपने बड़े माँके
पीछे-पीछे चल पड़े ॥ ४५ ॥ उन्होंने जीवनके सभी लाभ
मशीमौति प्राप्त कर लिये थे, इसलिये यह निश्चय करके
कि भगवान् धीकृष्णके चरण-कमल ही हमारे परम
पुरुषार्थ हैं, उन्होंने उन्हें हृदयमें धारण किया ॥ ४६ ॥
पाण्डवोंके हृदयमें भगवान् धीकृष्णके चरण-कमलोंके ध्यानसे
भक्ति-भाव उभर आया, उनकी बुद्धि सबका सुद होकर
भगवान् धीकृष्णके उस सर्वोत्कृष्ट स्वरूपमें अनन्य भावसे
स्थिर हो गयी, जिसमें निष्पाप पुरुष ही स्थिर हो पाते हैं ।
फलतः उन्होंने अपने विपुल अन्तःकरणसे स्वयं ही
बह गति प्राप्त की, जो विषयासक्त दुष्ट मनुष्योंको कभी
प्राप्त नहीं हो सकती ॥ ४७-४८ ॥ संक्षीप्य एव धीकृष्णके
प्रभावशैलीमें मुग्न भगवन्मय विदुरजीन भी अपने शरीरको
प्रमास-क्षेत्रमें त्याग दिया । उस समय उन्हें स्नेहक
लिये आये हुए पितरोंके साथ वे अपन लोक (यमलोक)
को चले गये ॥ ४९ ॥ द्रौपदीने देखा कि अब पाण्डवोंको
निरपेक्ष हो गये हैं, तब वे अनन्य प्रेम्से भगवान् धीकृष्णका
ही चिन्तन करके उन्हें प्राप्त हो गयीं ॥ ५० ॥

भगवान्के प्यारे भक्त पाण्डवोंके महाप्रयाणकी इस
परम पवित्र और महत्त्वमयी कथाको जो पुरुष श्रद्धासे सुनता
है, वह निश्चय ही भगवान्की भक्ति और मोक्ष प्राप्त
करता है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यां संहितायां प्रथमस्कन्ध

पाण्डवस्तपोगोष्ठ्यारोहणं नाम पञ्चशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ पौंड्रशोऽध्यायः

परीक्षितकी दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वीका सप्ताह

सूत उवाच

ततः परीक्षितुं द्विजवयसिधिया

महीं महाभागवत क्षणाय ह ।

यथा हि क्षत्र्यामभिजानन्नत्रिदा

समादिशन् विप्रं महद्गुणमस्तथा ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—नीलमन्त्री । पण्डितोंका महाप्रयाण-

का पश्चात् भगवान्के परम भक्त राजा परीक्षित धृष्ट
मन्त्रगोत्री दिग्भाक् अनुसारा पृथ्वीका दामन बतन
लगा । उनका जन्मक समय श्योनिषिपोंने उनका सम्बन्धमें
जा कुछ कहा था, वास्तवमें वे सभी मान्य गुण उनमें

स उचरत्स तनयासुपयम् इरावतीम् ।

जनमेजयादीभ्यतुरस्तस्मात्पुत्रादयत् सुतान् ॥ २ ॥

आजहाराद्यमेवास्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् ।

श्रारद्वर्तं गुरुं कृत्वा दत्वा मन्त्राधिगोचराः ॥ ३ ॥

निजग्राहीजसा वीर कलिं त्रिभुजये क्वचित् ।

नृपलिङ्गधरं शूद्रं धन्वन्त गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥

शौनक उवाच

कस्य ह्यतोर्निजग्राह कलिं त्रिभुजये नृप ।

नृदेवविहृष्टक् शूद्रकज्जसौगां च पदाहनत् ।

वत्कथ्मतां महाभाग यदि कृष्णकथाभयम् ॥ ५ ॥

अबवात्स्य पदाम्भोजमकन्दलिङ्गां सताम् ।

किमन्यैरसदालपैरासुषो यदसवृष्यम् ॥ ६ ॥

सुद्रासुपां नृपामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ।

इहोपहृतां भगवान् मृत्युः क्षामित्रकर्मणि ॥ ७ ॥

न कश्चिन्निप्रयते तावद् यावदास्त इहान्तकः ।

एतदर्थं हि भगवान्नाहूत परमर्षिभिः ।

जहा नृलोकं पीयेत हरिलीलाश्रुत वच ॥ ८ ॥

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वया मन्दसुपथ वै ।

निद्रया हियते नक्त दिवा च ध्यैर्यकर्मभिः ॥ ९ ॥

सूत उवाच

यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलज्वसत्

कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिनः ।

विद्यमान ये ॥ १ ॥ उन्होंने उचरकी पुत्री शम्भुसे
विवाह किया । उससे उन्होंने जनमेजय आदि बार पुत्र
उत्पन्न किये ॥ २ ॥ तथा कृपाचार्यको आचार्य बनकर
उन्होंने गङ्गाके तटपर तीन अश्वमेध-यज्ञ किये, जिनमें
ब्राह्मणोंको पुष्कल दक्षिणा दी गयी । उन यज्ञोंमें देवताओं-
ने प्रत्यक्षरूपमें प्रकट होकर अपना भाग ग्रहण किया
था ॥ ३ ॥ एक बार दिविनय करते समय उन्होंने
देखा कि शूद्रके रूपमें कश्मिगु राजाका वेप चरण
करके एक गाय और वैदके जाड़ेके ओकरोंसे मार रहा है ।
तब उन्होंने उसे बलपूर्वक पकड़कर दण्ड दिया ॥ ४ ॥

शौनकाजीने पूछा—आममपवान् सुतजी ! दिविनय-
के समय म्हाराज परीक्षितने कस्मिगुको दण्ड देकर ही क्यों
छोड़ दिया—मार क्यों नहीं बाँटा ? क्योंकि राजाका वेप
चरण करनेपर भी बाँटा वह अवम शूद्र ही, जिसने गामको
छातसे मारा था ? यदि यह प्रसङ्ग भगवान् श्रीकृष्णकी
छिछासे अपना उनके चरणकमलोंके मन्द-रसका पान
करनेवाला रस्तिक म्हातुमकोंसे सम्बन्ध रखता हो तो
अवश्य कहिये । दूसरी व्यक्ती बाँटोंसे क्या छम ।
उनमें तो आपु स्वर्ग नष्ट होगी है ॥ ५ ॥ प्यार सुननी ! जो
छग चाहते तो हैं मेष परन्तु अन्यस्य होनेके कारण मृत्यु
संभ्रत हा रह है, उनके कन्याणके स्निग्ध भगवान् सम्-
का आवाहन करके उन्हें यहाँ शान्तिकर्ममें नियुक्त कर
निया गया है ॥ ७ ॥ जबतक यमराज यहाँ इस कर्ममें
नियुक्त हैं तबतक किनीकी मृत्यु नहीं होगी । मृत्युसे प्रवृ-
त्त व्यक्तीके जीव भी भगवान्की सुवहान्य क्षीमा-कपाका
पान कर सकें, इनीस्निग्ध मूर्धन्येन म्हावान् व्यक्ती यहाँ
मुक्त्युक्त हैं ॥ ८ ॥ एक तो बाकी आपु और दूसरे कम
सम्भ्र । ऐसी अवस्थामें संसारके मन्दमाय विषयी पुरुषों-
की आपु स्वर्ग ही बीती आ रही है—नौदनें रात और
व्यर्थके कर्मोंमें दिन ॥ ९ ॥

सूतजीने कहा—जिस समय राजा परीक्षित कुरु-
जाङ्गल देशमें मरणात्के रूपमें निवास कर रहे थे, उस
समय उन्होंने सुना कि मेरी सेनाद्वारा सुरक्षित साम्राज्य-
में कश्मिगुका प्रवेश हो गया है । इस समाचारसे उन्हें

१ मन्त्रीन प्रसिद्धिमें व्यापृत से लेकर पञ्चमिगोचरा पक गयी है । २ या य —विष्णु । ३ या य —

भगवानुपहृता मर्षिभिः ।

निशम्य वार्ताभिनविप्रियां तत

शरत्मनं सयुगशौण्डिराण्ड ॥१०॥

म्वलंकृत श्यामतुरङ्गमोचित

रथं मृगेन्द्रचक्रमायित पुरात् ।

ब्रूतो रथम्पद्विपत्तिपुक्तया

म्वसेनया निचिजयाय निर्गत ॥११॥

भद्राश्वं कर्तुमार्त्तं च भारत चोत्तरान् कुरुत् ।

किम्पुरुषानीनि वर्षाणि विजित्य जगृह बलिम् ॥१२॥

तत्र तत्रोपमृज्ज्वान स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ।

प्रगीयमाण च यश कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥१३॥

आत्मानं च परिश्रुतमस्तथाज्ञोऽञ्जतव्रत ।

स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च कथये ॥१४॥

तेभ्य परममर्तुष्ट प्रीत्युज्जृम्भितलोचन ।

महाधनानि वासांसि ददां हारान् महामना ॥१५॥

मारभ्यपारपटसेवनमख्यैस्तय

धीरामिनानुगमनस्तत्रनप्रणामान् ।

मनिग्धेषु पाण्डुषु जग प्रणतिं च त्रिधा

भक्तिं कराति नृपनिष्प्रणारविन् ॥१६॥

तत्सर्वं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्त्रहम् ।

नानिदूर किन्तामप यदामीन् तन्निरोध म ॥१७॥

दुःख तो अवश्य हुआ, परन्तु यह सोचकर कि युद्ध करनेका अवसर हाथ लगा, वे उनमें दुःखी नहीं हुए । इसके बाद युद्धवीर परिश्रितने धनुष हाथमें ले लिया ॥ १० ॥ वे श्यामवर्णके घोड़ोंसे जुते हुए, सिंहाकी पञ्जावाले, सुसज्जित, रणर सवार होकर निचिजय करनेके लिये नगरसे बाहर निकल पड़े । उस समय रथ, हाथी, घोड़े और पदम सेना उनके साथ-साथ चले रही थी ॥ ११ ॥ उन्होंने मद्राश, केतुमाथ, भारत, उत्तरकुरु और किम्पुरुष आदि सभी वर्गोंको जीतकर वहाँके राजाओंसे भेंट की ॥ १२ ॥ उन्हें उन देशोंमें सर्वत्र अपने पूज्य महात्माओंका सुप्रा सुननेको मिला । ठम यशोगणसे परम्पदपर भगवान् धीकृष्णकी महिमा प्रकाश होनी थी ॥ १३ ॥ इसके साथ ही उन्हें यह भी सुननेको मिला था कि भगवान् धीकृष्णने अक्षय्यामाके दशायकी श्राव्यसे निम्न प्रकार उनकी रक्षा की थी, युद्धवंशी और पाण्डवोंमें परम्पर कितना प्रेम था तथा पाण्डवोंकी भगवान् धीकृष्णमें कितनी मर्ति थी ॥ १४ ॥ जो लोग उन्हें ये चरित्र सुनाते, उनपर महाम्ना राजा परिश्रित बहुत प्रमत्त होते, उनका नत्र प्रमत्ते फिर उठने । वे बड़ी उदारतासे उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और मणिगोंके हार उपहाररूपमें देते ॥ १५ ॥ वे सुनते कि भगवान् धीकृष्णने प्रेमपरका होकर पाण्डवोंके मारपिकर काम किया, उनके समासद् बन—यहाँकि कि उनका मनका अनुमार काम करके उनकी सेवा भी करे । उनका मन तो दे ही, दूत भी बने । वे रणका दक्ष धृष्टक करके वीरमनसे धैर्य जाने और शिरिरका पहरा दते, उनका पीछ-पीछ चले, स्तुति करते तथा प्रणाम करत इतना ही नहीं, अपन प्रमी पाण्डवोंके चरणोंमें उन्होंने मार गतकर हुना दिया । तब परिश्रितकी भक्ति भगवान् धीकृष्णक रणकमनमें और भी बढ़ जाती ॥ १६ ॥ इस प्रकार वे नि-नि पाण्डवोंके अक्षय्याक अनुमरण करते हुए निचिजय कर रहे थे । उन्होंने निम्न उनका निमित्तसे थाही हा दूरपर एक अक्षयजनक बनायी । वह भी आकर सुनता है ॥ १७ ॥

धर्म पदैकेन चरन् विच्छायाप्लवङ्गमायाम् ।

पृच्छति साधुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥१८॥

धर्म उवाच

कश्चिद्भूतः सनातनमयमात्मनस्ते

विच्छायासि म्लायतेऽप्यनुत्थेन ।

आलस्यमे भवतीमन्तराधि

दूरे कन्धु शोचसि कचनान्त्र ॥१९॥

पदैर्न्यूनं शोचसि मैकपाद

मौत्मानं वा वृषलैर्भाक्ष्यमाणम् ।

आहो सुरादीन् इत्यप्यभागां

प्रजा उतस्त्रिन्मधवत्स्वर्पति ॥२०॥

अरक्ष्यमाणा स्त्रिय उर्वि बालान्

शोचस्यथो पुरुषानैरिवार्तान् ।

वार्यं देवीं ब्रह्मकुले कुक्कर्म-

प्यब्रह्ममे रत्नकुले कुलाग्रयान् ॥२१॥

किं क्षत्रकन्धून् कलिनोपसृष्टान्

राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ।

इतन्तता वाञ्छनपानश्राम

ज्ञानव्यवधान्मुम्बजीवलाकम् ॥२२॥

यदाम्ब ते भूरिभरावतार

कृतवदारस्य हरर्षरिति ।

अन्तर्हितस्य सगतीं विसृष्टा

कम्पाणि निबोणविलम्बितानि ॥२३॥

इदं ममाचम्ब तवाधिभूर्ल

यमुभर यन विकर्षितामि ।

धर्म कैश्चरूप धारण करके एक पैरसे घूम रहा था । एक स्थानपर उसके गायके रूपमें पृथ्वी मिली । पुष्करि मृग्युसे दुःखिनी माताके समान उसके नेत्रोंसे आँसुओंके सरने कर रहे थे । उसका शरीर श्रीहीन हो गया था । धर्म पृथ्वीसे पूछने लगा ॥ १८ ॥

धर्मेन कथा—कल्याणि ! सुनाल्ले तो हो न ? तुम्हारा मुख कुछ-कुछ मलिन हो रहा है । तुम श्रीहीन हो रही हो । मादुम होता है तुम्हारे हृदयमें कुछ-न-कुछ दुःख अवश्य है । क्या तुम्हारा कोई सम्बन्धी दूर देशमें चला गया है, जिसके लिये तुम इतनी चिन्ता कर रही हो ? ॥ १९ ॥ वहाँ तुम मेरी तो चिन्ता नहीं कर रही हो कि अब इसके तीन पैर टूट गये, एक ही पैर रह गया है ? सम्भव है, तुम अपने लिये शोक कर रही हो कि अब शूद्र तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे । तुम्हें इन देवताओंके किंय भी लेना हो सकता है, जिन्हें अब यहाँमें बाहुति नहीं दी जाती, अपना उस प्रजाके लिये भी, जो बर्बाद होनेके कारण अकाल एवं दुर्गतिसे पीड़ित हो रही है ॥२०॥ देखि ! क्या तुम राक्षस-सरीषे मनुष्योंके द्वारा सतायी हुई अश्रित स्त्रियों एवं वातबालकोंके लिये शोक कर रही हो ? सम्भव है, किया अब कुक्कर्म ब्राह्मणोंके चंगुलमें पड़ गयी है और ब्राह्मण विप्रोंकी रज्जाओंकी सेव्य करने लगे हैं, और इसीका तुम्हें दुःख हो ॥ २१ ॥ आत्मेके नामधेयके रज्जा तो सोन्याँ आने कस्मियुगी हो गये हैं, उन्होंने बड़े-बड़े देशोंको भी उखाड़ डाला है । क्या तुम उन राजाओं का देशोंके लिये शोक कर रही हो ? आत्मेकी जन्मा खात्मा-पान, कष, स्नान और श्री-सहस्रम आत्मेमें शास्त्रीय नियमोंका पालन न करके स्वेच्छाचार कर रही है; क्या इसके लिये तुम दुःखी हो ? ॥२२॥ मा पृथ्वी ! अब ममत्वे आया हो-न-हो तुम्हें मगान् श्रीहृण्यकी याद आ रही होगी क्योंकि उन्होंने तुम्हारा भार उतारनेके लिये ही अज्जकार किया था और एसी छीकड़ों की थी, जो मोक्षका भी अव्ययन हैं । अब उनका बीजा संकरण कर लेनपर उनका परिणामसे तुम दुःखी हो रही हो ॥२३॥ देखि ! तुम ता यन-रानोंकी खान हो । तुम अपने क्लेशाग्र धारण, जिसमें तुम इतनी दुर्बल हो गयी हो, मुझे

१ प्राचीन प्रसिद्धे धर्म उवाच मर्ष २ प्रा प्य —पदभूत । ३ प्रा पा —सुनात्मानं इद ।

४ प्रा पा —वाक्ता उत अवा ।

कालेन वा ते बलिनां बलीयसा

मुरार्चित किं हृतमस्य सौभाग्यम् ॥२४॥

चरन्त्युवाच

मैवान् हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपूच्छसि ।

चतुर्भिर्वर्तसे येन पादलोकमुत्तावहः ॥२५॥

सत्यं द्वांच दया द्वांस्तिस्स्यात् सतोपार्जवम् ।

दया दमन्तप माम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥२६॥

ज्ञान विरक्तिरभयं द्वाय तेजो बल स्मृति ।

स्वातन्त्र्यं कांक्षलं क्रान्तिर्यैर्मर्णवमेव च ॥२७॥

प्रागल्भ्यं प्रभयं क्षील सह ओजो बल भगः ।

गान्धीयं स्वर्ग्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मनोऽनहंकृति ॥२८॥

एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणा ।

प्राप्या महत्त्वमिच्छन्निर्न वियन्ति स कश्चित् ॥

तेनाह गुणपात्रेण भीतिवासेन माम्प्रतम् ।

शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥३०॥

आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोचमम् ।

देवान् पितॄन्पूनीन् मातॄन्मर्वान् वर्णान्स्तथाऽऽधमान् ॥

ब्रह्माणां बहुतिथं यत्पाप्मनोऽहं

कामास्तपं समचरन् भगवत्प्रपन्ना ।

मा भी म्वयाममरविन्वनं विहाय

यत्पाप्मं सौभाग्यमलं भजतऽनुगता ॥३०॥

तस्याहमम्बुदुलिगाङ्गुक्षकृतकृतं

धीमन्त्यमभगवतं ममलकृताह्वी ।

यन्त्रजो । मान्दम होता है, वह-वह यन्त्रजोफो भी हरा देनेवाले कालने देवताओंके द्वारा यन्त्रीय तुम्हारे सौभाग्यका हीन स्थिती है ॥ २४ ॥

पृथ्वीने कहा—धम ! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वह सब सत्य जानते हो । जिन भगवान्के सहारे तुम सारे संसारको सुख पहुँचानेवाले अपने चारों चरणोंसे युक्त थे, जिनमें सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, निनिक्षा, उपरति, शास्त्रविचार, ज्ञान, वैराग्य, पश्य, वीर्य, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कांक्ष, कान्ति, धैर्य, क्रोधमन्त्रा, निर्माकता, विनय, क्षीण, साहस, उत्साह, बल, सौम्यग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आत्मिकता, कीर्ति, गौरव और निखल्लारता—ये उन्ताहीस अप्राप्त गुण तथा मन्त्रावांकी पुरुषोंके द्वारा वाञ्छनीय (शरणार्थीगुणसंख्या आदि) और भी बहुतसे महान् गुण उनकी सेवा करने के लिये नित्य-निरन्तर निशान करते हैं, एक क्षणके लिये भी उनसे अन्ध नहीं होते—उन्हीं सनस गुणोंक आश्रय, सौन्दर्ययाम भगवान् धीकृष्णने हम समय इस लोभने अपनी स्त्रीका संवर्ण कर ली और यह संसार पापमय कल्पिगुणकी कुदृष्टिकर शिकार हो गया । यही देखकर मुझ बड़ा शोक हो रहा है ॥२—३०॥ अपने लिये, देवताओंमें यद्यपि तुम्हारे लिये, देवता, निर, अग्नि, साधु और समस्त वर्गों तथा आश्रमोंके मनुष्योंके लिये मैं शोकमय हो रही हूँ ॥ २१ ॥ जिनका कृपाकृताक्ष प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मा आदि देवता भगवान् के शरणार्थी होकर बहुत निरन्तर तपस्या करते रहे, यही लक्ष्मीजी अपने निशानस्थान कृतार्थनका परिचय करके बड़े प्रभवे जिनके चरणद्वारागोपी मुझ छत्रप्रदाका संरक्षक करती हैं, उन्हीं भगवान् के सम, बल, शक्ति, श्रद्धा आदि विधेसे युक्त धीप्राणोंमें विभूति दानर कारण मुझ महान् धर्म प्राप्त हुआ था और मरी तीनों लोकोंमें बँकर धामा हूँ । परंतु मैं सौभाग्यका अब अन्त हो गया । भगवान् मुझ अमर्निमीर

१ प्रा वा — यद्यपि । २ प्रा वा — भगवन् हि तदेव यन्मो । ३ प्रा वा — धर्म त्याग । ४ प्रा वा — इति । ५ प्रा वा — अग्नि भो मायं मादरं धमा । ६ प्रा वा — इय । ७ प्रा वा — यन्त्रि । ८ प्रा वा — योऽव उच्यते भगव ।

श्रीनित्यरोच उपलभ्यततो विमूर्ति

लोकान् स मां व्यसृजदुत्सृज्यतीं तदन्ते ॥

यो वै ममातिभरमस्तुर्वशराज्ञा

मद्यौहिणीक्षतमपानुददात्मतन्त्रः ।

त्वां दुस्त्वमूनपदमात्मनि पौरुषेण

सम्पादयन् यदुपुरम्यमविम्वदङ्गम् ॥३४॥

क्य वा सह्य विरह पुरुषोत्तमस्य

प्रेमावलोकचिरमितवन्पुञ्जस्यै ।

स्वैर्यं समानमहरमधुमानिनीनां

रोमेत्सवोममयदध्विविटङ्गिताया ॥३५॥

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ।

परीक्षिन्नाम राजर्षिं प्राप्तं प्राचीं सरस्वतीम् ॥३६॥

छोब दिया । माहूम होता है मुझ अपने सीमापर
गर्व हो गया था, इसीलिये उन्होंने मुझे यह दण्ड दिया
है ॥ ३२ ३३ ॥

तुम अपने तीन चरणोंके कम हो जानेसे मन-ही-
मन कुड़ रहे थे, अब अपने पुरुषार्थसे तुम्हें अपने ही
अगर पुन सब अङ्गोंसे पूर्ण एवं स्वस्थ कर देनेके लिये
वे अत्यन्त रमणीय द्यामसुन्दर विग्रहसे यदुवंशमें प्रकट
हुए और मेरे बड़े भारी भारको जो अमुत्तरी राजावोंकी
सैनिकों अश्वौहिणियोंके रूपमें था, नष्ट कर बाल । क्योंकि
वे परम सतत थे ॥ ३४ ॥ जिन्होंने अपनी प्रेममी
विक्रम, मनोहर मुसकन और मीठी-मीठी बातोंसे
सत्यमामा आदि मधुमयी मानिनियोंके मानके साथ धीरजकी
मी छीन लिया था और जिनके चरण-कमलोंके स्पर्शसे
मैं निरन्तर आनन्दसे पुलकित रहती थी, उन
पुरुषोत्तम मगवान् वीरकृष्णका विरह मजा, कौन सह
सकती है ॥ ३५ ॥

धर्म और पृथ्वी इस प्रकार आपसमें घात चीन कर ही
छे थे कि उनी सम्य राजर्षि परीक्षित् पूर्ववाहिनी सरस्वती-
के तत्पर आ पहुँचे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संज्ञितायां प्रथमस्कन्धे पृथ्वीधर्म-

संज्ञाने नाम पौण्ड्रशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

महाराज परीक्षितप्राप्य कल्पियुगका दमन

सूत उवाच

तत्र गामिधुन राजा हन्यमानमनाभवत् ।

दण्डहस्तं च वृषल ददृश नृपलाञ्छनम् ॥ १ ॥

वृषं मृगालभवलं महन्तमिव विम्वतम् ।

वपमानं पञ्चकन मीदन्तं गृह्णन्तिम् ॥ २ ॥

गां च भमदृषां दीना मृगं गृह्णन्तिम् ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—शोनकजी । वहाँ पहुँचकर राजा
परीक्षितने मृग कि एक राजप्रेमधारी राजा हाथमें डंडा
दिष्ट हुए हैं और गाध-युक्त एक जाइको इस तरह
पीटा जा रहा है जैसे उनका कोई स्वामी ही न
है ॥ १ ॥ वही वपमान-नुक समान दयेन रंगका बैर
एक परम गदा कोष रहा था तथा गृह्णन्ती ताड़नासे
पीड़ित और मयधीन होकर मृत-त्याग पर रहा
था ॥ २ ॥ भमोपयागी दूध, घी आदि द्रव्य पचाना
। वृषभ-वर्गीय वृष भी वर-वार मृदव पतंगी टांगे

निवृत्तां साधुवदनां धीमां यवसमिच्छतीम् ॥ ३ ॥

प्रच्छ रयमारुहः कार्त्तस्तरपरिच्छदम् ।

मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकर्तृक ॥ ४ ॥

कस्त्वं मच्छरणे लोक बलादस्यबलान् क्ली ।

नरद्वयोऽपि वपेण नरबत्कर्मणाद्विज ॥ ५ ॥

यस्त्व कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीवधन्वना ।

शोच्योऽस्यशोच्यान् रश्मि ग्रहन् वधमर्हमि ॥ ६ ॥

त्वं वा मृणालधवल पार्दन्धून् पदा चरन् ।

पुष्परूपं किं कश्चिद् दवा न परिखेयम् ॥ ७ ॥

न जातु पारवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते ।

भूतलेऽनुपतन्त्यसिन् विना त प्राणिनां श्रुष ॥ ८ ॥

मा सारमेयानुशुचो व्यतु त वृषलाद् भयम् ।

मा रोदीरम्ब भद्रं त स्वलानां मयि द्वास्तरि ॥ ९ ॥

यस्य राष्ट्रे प्रजा नवाम्ब्रसन्त माघ्न्यसाधुभि ।

तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्मगो गति ॥ १० ॥

एष राजा पग धर्मो द्वातानामार्तिनिग्रह ।

अत एनं वधिष्यामि भूतदुहममममम् ॥ ११ ॥

कोऽपृधन् तव पादास्त्रीन् मारमय चतुष्पद ।

मा भूवत्स्वाध्या राष्ट्र राज्ञां कृष्णानुयतिनाम् ॥ १२ ॥

आप्याहि श्व भद्र व माधूनामकृतागमाम् ।

अन्तर्वर्ग्यकृत्तार पाथोर्ना कीर्तिदूषणम् ॥ १३ ॥

खाकर अत्यन्त दीन हो रही थी। एक तो वह स्वयं ही दुबली-पतली थी, दूसरे उसका बड़का भी उसके पास नहीं था। उसे मूख लगी हुई थी और उसकी आँखोंसे आँसू बहते जा रहे थे ॥ ३ ॥ खणजटित रणपर चढ़े हुए राजा परिश्रितने अपना धनुष चढ़ाकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे उसको ललकारा ॥ ४ ॥ अरे ! तू कौन है, जो यन्त्रान् होकर भी मेरे राज्यके इन दुर्बल प्राणियोंको बड़बूझकर मार रहा है ! तूने नन्ही मौति बेच तो राजाका-सा बना रक्खा है, परन्तु कर्मसे तू शूद्र जान पड़ता है ॥ ५ ॥ हमारे दादा अर्जुनके साथ मगवान् धीहृण्णके परमधाम पधार आने-पर इस प्रकार निर्जन स्थानमें निरपराधोंपर प्रहार करने वाला तू अपराधी है, अतः वधके योग्य है ॥ ६ ॥

उन्होंने धर्मसे पूना—कस्मिन्नालके समान आपका श्रेयस्का है। तीन पैर न होनेपर भी आप एक ही पैरसे चलते-निरते हैं। यह देखकर मुझे बड़ा क्रोध हो रहा है। वनस्थाय, आप क्या के-के रूपमें कोढ़ देखा दें ॥ ७ ॥ अभी यह भूमण्डल कुदृक्शी नरपणियोंके बाहुकृते सुरक्षित है। इसमें आपके मित्र और किमी भी प्राणीकी आँखोंसे शोकके आँसू बहते मैंने नहीं देखे ॥ ८ ॥ धनुषत्र । अब आप शोक न करें। इस गृहसे निर्मम हो जायें। गोमन्त्र । मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ। अब आप रायें नहीं। आपका कल्याण हो ॥ ९ ॥ मेरी ! जिस राजाके राज्यमें दुष्टों-कउपद्रवसे सारी प्रजा शस्त रहती है, उस मनवाले राजाकी कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परमोक्त मष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ राजाओंका परम धर्म यही है कि वे दुष्टियोंका दुःख दूर करें। यह मदादुष्ट और प्राणियोंका पीडितकरनायास है। अतः म अभी इसे मार बाँटेंगा ॥ ११ ॥ सुरभिन्दन ! अब तो चार पैरवाले जीव हैं। आपके तीन पैर विमल कष्ट डाले ! धीहृण्णके अनुयायी राजाओंके राज्यमें कभी चरई भी आनी तरह दुष्टी न हो ॥ १२ ॥ हरम ! आपका कल्याण हो। बनाएँ, आप-जैसे निरपराध माधुओंका अन्न-मन्न करके जिस दुष्टने पण्डितोंकी कीर्तिमें पड़ने का प्रयत्न

जनेऽनागस्वर्धं युञ्जन् सर्वतोऽस्त्रं च मङ्गयम् ।
 साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥१४॥
 अनागस्विह भूतेषु य आगस्कभिरङ्गुः ।
 आहर्तासि धृज साध्वादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥१५॥
 रामो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्यानुपालनम् ।
 शासतोऽन्यान् यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥१६॥
 धर्म उवाच
 एतद् व पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभय वचः ।
 येषां गुणगणै कृष्णो दौत्यस्तौ भगवान् कृत ॥१७॥
 न वयं क्लेशवीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ।
 पुरुष तं विजानीमो वाक्यमेदविमोहिताः ॥१८॥
 क्वचिद् विकल्पवचना आदुरात्मानमात्मनः ।
 दैवमन्ये पर कर्म साभावमपरे प्रभुम् ॥१९॥
 अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति क्वपि निमय ।
 अत्रानुरूप राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥२०॥
 तत् उवाच
 एव धर्मे प्रवदति म मन्नाद् द्विजमधम ।
 समाहितन मनसा विमन् पयचष्ट तम् ॥२१॥
 शशपाथ
 धर्मं प्रवीपि धमय धमाऽमि शृण्व्यपृष्टक् ।
 यदधर्मकृतं म्यात् शूराभ्यापि नृद्वयम् ॥२२॥

है ॥ ११ ॥ जो किसी निरपराध प्राणीको सताता है, उसे, चाहे वह कहीं भी रहे, मेरा मन व्यक्त होकर । दुष्टोंका दमन करनेसे साधुओंका कल्याण ही होता है ॥ १४ ॥ जो उदण्ड व्यक्ति निरपराध प्राणियोंको दुःख देता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो, मैं उसकी बागुदरसे विभूषित मुन्नाको काट दूँगा ॥ १५ ॥ बिना आपत्तिकालके मर्यादाकर उल्लङ्घन करनेवालोंको शास्त्रानुसार दण्ड देते हुए अपने धर्ममें स्थित लोगोंका पालन करना राजाओंका परम धर्म है ॥ १६ ॥
 धर्मने कहा—राजन्! आप महाराज पाण्डुके वंशज हैं । आपको इस प्रकार दुस्त्रियोंको आशासन देना आपके योग्य ही है, क्योंकि आपके पूर्वजोंके श्रेष्ठ गुणोंन भगवान् श्रीकृष्णको उनका सारथि और हूत आदि बना दिया था ॥ १७ ॥ नरेन्द्र ! शास्त्रोंके विभिन्न वचनोंसे मोहित होनेके कारण हम उस पुरुषको नहीं जानते, जिससे श्रेष्ठोंके कर्म उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ जो लोग किसी भी प्रकारके हितको स्वीकार नहीं करते, वे अपने-आपको ॥ अपने दुःखका कारण बतलाते हैं । कोई प्रारम्भको करण कलावे है, तो कोई कर्मको । कुछ लोग स्वभावको, तो कुछ मेरा ईश्वरको दुःखका कारण मानते हैं ॥ १९ ॥ विन्ही-विन्हीकर ऐसा भी निमय है कि दुःखका कारण न तो कर्मके द्वारा जाना जा सकता है और न वाणीके द्वारा बतलाया जा सकता है । राजर्षे ! अब इनमें कौन-सा सत ठीक है, यह आप अपनी बुद्धिसे ही विचार लीजिये ॥ २० ॥
 शूराजी कहते हैं—श्रुतिश्रेष्ठ शौनकाजी ! धमय यह प्रवचन सुनकर मन्नाद् परीक्षित बहुत प्रसन्न हुए, उनका स्नेह मित्र गया । उन्होंने दान्तचित्त होकर उनसे कहा ॥ २१ ॥
 परीक्षितने कहा—धर्मकर तत्त्व जाननेवाले रूपम-दम् । आप धर्मका उपदेश कर रहे हैं । अन्त्य ही आप रूपमक रूपमें स्वयं धर्म हैं । (आपन अपनेसे दूसरा मनवाक्य नाम हमनिये नहीं बनाया है कि) अन्त्य करनेवाक्य जा नरवन्ति प्राप्त होते हैं, वे ही पुण्य करनेवाक्य भी मित्रने हैं ॥ २२ ॥

१ प्रा पा —याम । २ प्रा वा —यामना । ३ प्रा वा —विमृश । ४ प्रा पा —द्विजमधमा ।
 ५ प्रा पा —प्रयचष्ट । ६ प्रायन धर्ममे मही है । ७ प्रा पा —कृत ।

अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ।
 चेत्तसो वचसमापि मृतानामिव निश्चय ॥२३॥
 तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः ।
 अधर्माश्चैश्वर्यो भद्राः सयसङ्गमदैस्तव ॥२४॥
 इदानीं धर्मं पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ।
 तं विद्वद्भक्त्यधर्मोऽयमनृतेनैवितः कलिः ॥२५॥
 इमं च मूर्धगवता न्यासितोत्तरा सती ।
 भीमनिस्तत्पदन्पामैः सर्वतः कृतकौतुका ॥२६॥
 शोचत्यभुकला साध्वी दुर्मगेषोक्तितापुना ।
 अन्नक्षप्पा नृपब्धाद्याः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥२७॥
 इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ।
 निशातमाददे स्वहं कलयेऽधर्महेतवे ॥२८॥
 तं विचांस्तुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ।
 सत्यदमूल धिरसा समगाह भयविह्वल ॥२९॥
 पतितं पादयोर्वीरः कृपया दीनवत्सलः ।
 क्षुरभ्यो नावधीच्छ्लोक्य आह येहं हसन्निव ॥३०॥

राजोवाच

न ते गुहाफेक्षयशोभराणां
 वदन्त्येतेषां भयमस्ति किञ्चित् ।
 न वर्तितव्यं भवता कथञ्चन
 येषु मदीय स्वमधर्मकण्डुः ॥३१॥
 त्वां वर्तमानं नरदेवदेह
 पनु प्रहृष्टोऽयमधर्मपूग ।
 लोभोऽनृत चौर्यमनार्यमंशो
 न्यग्रा च माया कल्हस्य दम्भः ॥३२॥

अथवा यही सिद्धान्त निश्चित है कि प्राणियोंके मन और
 वाणीसे परमेश्वरकी मायाके स्वरूपका निरूपण नहीं किया
 जा सकता ॥ २३ ॥ धर्मदेव ! सत्ययुगमें आपके चार
 चरण थे—तप, पवित्रता, दया और सत्य । इस समय
 अधर्मके अंश गर्व, आसक्ति और मदसे तीन चरण गढ़
 हो चुके हैं ॥ २४ ॥ अब आपका चौथा चरण केवल
 'सत्य' ही बच रहा है । उसीके दब्यूर आप जी रहे
 हैं । असत्यसे पुष्ट हुआ यह अधर्मरूप कलियुग उसे भी
 प्राप्त कर लेना चाहता है ॥ २५ ॥ ये गौ मत्ता
 साक्षात् पृथ्वी हैं । भगवान् ने इनका भरी बोझ उतार दिया
 था और ये उनके शशि-शशि सौन्दर्य बिखेरनेवाले चरण-
 चिह्नसे सर्वत्र उत्सवमयी हो गयी थीं ॥ २६ ॥ अब ये
 उनसे बिछुड़ गयी हैं । वे साध्वी अमामिनीके सम्मान
 नेत्रोंमें जब भरकर यह चिन्ता कर रही हैं कि अब
 एकाक्ष खौंफ बनाकर शास्त्रप्रभोही शूद्र मुझे भोगेंगे ॥ २७ ॥

महारथी परीक्षितने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको
 सान्त्वना दी । फिर उन्होंने अधर्मके क्षरणरूप कलियुग-
 को मारनेके लिये तीक्ष्ण तलवार उठायी ॥ २८ ॥
 कलियुग ताब गया कि ये तो अब मुझे मार ही डालना
 चाहते हैं, अतः क्षत्पन् उसने अपने एकाक्षि उतार डाले
 और मयविह्वल होकर उनके चरणोंमें अपना सिर रख
 दिया ॥ २९ ॥ परीक्षित बड़े प्यासी, दीनकसल और
 शरणार्थनरक्षक थे । उन्होंने जब कलियुगको अपने
 पैरोंपर पड़े देखा तो क्रुपा करके उसको मारा नहीं,
 अपि तु हँसते हुए-से उससे कहा ॥ ३० ॥

परीक्षित बोले—जब व हाथ जोड़कर शरण जा
 गया, तब अर्जुनके प्यासी करामे उत्पन्न हुए किसी भी
 वीरसे मुझे कोई भय नहीं है । परंतु व अधमका सहायक है,
 इसलिये तुझे मेरे राज्यमें किन्तुल नहीं रहना चाहिए ॥ ३१ ॥
 तेरे राजाओंके शरीरमें रहनेसे ही लोभ, ईर्ष्या,
 चोरी, दुष्टता, लज्जामयाग, दक्षिणा, कपट, कलह, दम्भ
 और दूसरे पापोंकी वढ़ती हो रही है ॥ ३२ ॥

न वर्तितव्यं तद्धर्मबन्धो
धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।
प्रज्ञावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञे
यज्ञेष्परं यज्ञवितानविज्ञा ॥३३॥
यस्मिन् हरिमगवानिज्यमान
इन्धोमूर्तिर्यजतां ह्यं तनोति ।
कामानमोघान् स्थिरवृत्तमाना-
मन्तर्बहिर्वायुरिवैव आत्मा ॥३४॥
सूत उवाच

परीक्षितैवमादिष्ट स कलिवर्जितवेषधुः ।
तमुपताप्तिमाहेर्षं दम्बपाप्मिमिषोद्यतम् ॥३५॥
कलित्वाच
यत्र कंचन वत्स्यामि सार्वभौम तवज्जया ।
लक्ष्म्ये तत्र तत्रापि त्वामात्पेयुश्रासनम् ॥३६॥
तन्मे धर्मभृतां भेष्टं म्यानं निर्देष्टुमर्हसि ।
यत्रैव नियतो वत्स आतिष्ठस्तज्जुष्टासनम् ॥३७॥
सूत उवाच

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्नानानि कलय ददौ ।
घृतं पानं स्त्रियं धूना यत्राधर्मभतुर्विध ॥३८॥
पुनश्च याचमानाय ज्ञातरूपमन्त्रप्रभुः ।
ततोऽनृत्तं मन्त्रं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥३९॥
अमूनि पञ्च म्यानानि क्षधर्मप्रभवः फलि ।
औत्तरयेण दत्तानि न्यत्रगन् तथिन्द्राकृत् ॥४०॥
अर्थतानि न सेवेत पुम्पु पुरुष कश्चिन् ।
विशेषता धर्मशीलो राजा लाकपतिपुरु ॥४१॥
ब्रह्मसंन्यासीन् पान्त्तं तप शौचं दयामिति ।

अतः अधर्मके साथी ! इस ब्रह्माकर्ममें एक क्षणके लिये भी न ठहरना, क्योंकि यह धर्म और सत्यका निवासस्थान है । इस क्षेत्रमें यज्ञविधिके जाननेवाले महात्म्य यज्ञके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान्की आराधना करते रहते हैं ॥ ३३ ॥ इस देशमें भगवान् श्रीहरि यज्ञोंके रूपमें निवास करते हैं, यज्ञोंके द्वारा उनकी पूजा होती है और वे यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करते हैं । वे सर्वार्थदायक भगवान् वायुकी भाँति समस्त चराचर जीवोंके भीतर और बाहर एकत्र ही स्थित रहते हुए उनकी कल्याणार्थकृति पूर्ण करते रहते हैं ॥ ३४ ॥

सूतजी कहते हैं—परीक्षितजी यह आज्ञा सुनकर कलियुग सिद्ध हो गया । यमराजके समान मारनेके लिये उषत, ज्ञापमें तन्त्रार लिये हुए परीक्षितसे वह बोझ ॥ ३५ ॥
कलिये कहा सार्वभौम ! आपकी आज्ञासे जहाँ-कहाँ भी मैं रहनेका विचार करता हूँ, वहाँ देखता हूँ कि आप वसुपुत्र बाण कहाँसे खड़े हैं ॥ ३६ ॥ धार्मिकशिरोमणे ! आप मुझे वह स्थान बतलाइये, जहाँ मैं आपकी आज्ञाका पावन करता हुआ स्थिर होकर रह सकूँ ॥ ३७ ॥

सूतजी कहते हैं—कलियुगकी प्रार्थना स्वीकार करके राजा परीक्षितने उसे चार स्नान दिये—घृत, मधुपान, क्षी-सह और क्षिप्ता । इन स्थानोंमें ब्रह्माः अस्त्य, मन्त्र, आसक्ति और निर्दयता—ये चार प्रकारके अधर्म निवास करते हैं ॥ ३८ ॥ उसने और भी स्नान दिये । तब सर्व परीक्षितने उसे खनके लिय एक और स्थान—‘सुवर्ग’ (धन)—दिया । इस प्रकार कलियुगके पाँच म्यान हो गये—धन, मन्त्र, काम, वैर और रजोगुण ॥ ३९ ॥ परीक्षितक दिया हुए इन्हीं पाँच स्वार्थोंमें अधर्मका मूल कारण कति उगरी आज्ञाओंका पालन करना हुआ निवास करने लगा ॥ ४० ॥ इसलिये आत्मकल्याणकाशी पुरुषको इन पाँचों स्वार्थोंका सेवन बड़ी नहीं करना चाहिये । धार्मिक राजा, प्रजापति के लोचन न्या और धर्मोपदेश पुरुषोंको तो बड़ी सावधानीसे इनका त्याग करना चाहिये ॥ ४१ ॥ राजा परीक्षितने इनके बाँट करके दिये कि तीनों कारण—

प्रतिमदध आभ्यास्यं महीं च समवर्षयत् ॥४२॥
 स एष एतर्क्ष्यास्त आसन्नं पार्थिवोचितम् ।
 पितामहेनोपन्यस्त राष्ट्रारण्यं विविक्षता ॥४३॥
 आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रभियोल्लसन् ।
 राजाह्वये महाभागधकवर्ती वृहन्ध्र्याः ॥४४॥
 इत्थम्पूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ।
 यस्य पालयतः क्षोणीं पूर्य सत्राय दीक्षिताः ॥४५॥

तपस्या, शौच और दया जोड़ दिये और आशामन देखर
 धृष्टीका सौर्वर्न किया ॥ ४२ ॥ वे ही महाराजा
 परीक्षित इस समय अपने राजसिंहासनपर, जिसे उनके
 पितामह महाराज युधिष्ठिरन वनमें बाते समय उन्हें दिया था,
 बिराजमान हैं ॥ ४३ ॥ वे परम यशस्वी सौभाग्यभावन
 चक्रवर्ती सम्राट् राजर्षि परीक्षित इस समय हस्तिनापुरमें
 कौरव-कुलकी राज्यश्रुतीसे शोभायमान हैं ॥ ४४ ॥
 अभिमन्युनन्दन राजा परीक्षित वात्सल्यमें ऐसे ही प्रभाव-
 शाली हैं, जिनके शासनकालमें आप लोग इस दीर्घ-
 कालीन यज्ञके लिये दीक्षित हुए हैं ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे

कनिनिप्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

राजा परीक्षितको शूरी श्रुतिका शप

सूत उवाच

यो वै द्रोण्यस्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृत ।
 अनुग्रहात् भगवत कृप्यासाहृतकर्मणः ॥ १ ॥
 ब्रह्मकोपोरिधत्वा यस्तु तक्षकात्प्राणविधुवात् ।
 न मम्ममोहोरुभयात् भगवत्पतिताशयः ॥ २ ॥
 उत्सृज्य सर्वत मङ्गं विद्याताजितसम्पतिः ।
 र्वयामकर्ज्ज्वां गिप्या गङ्गायां म्य कलेष्वग्म् ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—अहृतकर्म भावान् श्रीकृष्णकी
 कृपासे राजा परीक्षित अपनी माताकी केशुमें अक्षत्यामा-
 के ब्रह्माक्षसे जड़ जानेपर भी मरे नहीं ॥ १ ॥ जिस
 समय ब्राह्मणके शापसे उन्हें इसनेके लिये तक्षक
 आया, उस समय वे प्राणनाशके महान् मयसे भी
 भयभीत नहीं हुए; क्योंकि उन्होंने अपना चित्त भावान्
 श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित कर रक्खा था ॥ २ ॥
 उन्होंने सबकी आसक्ति छोड़ दी, गङ्गातटपर जाकर
 श्रीधुस्तकेवतीसे उपवना ग्रहण किया और इस प्रसंग
 भगवान्‌के व्यवहार जानकर अवन गरीरको त्याग

१ प्रा वा —अध्यायः । २ प्रा वा —एतन्ध्यास्त । ३ प्रा वा —गारिधिते पराजि इतना अधिक है ।

● ४३ में ४५ तकके श्लोकमें महाराज परीक्षितका बतमानेसे समान बचन किया गया है धर्ममनशयोक्त बतमानका
 (पा मू १।१।१३१) इस पार्श्वि वृक्ष अनुवार वर्तमानक निकटार्थी मृत और मरिष्यक श्रिये भी बतमानका प्रयोग किया जा
 गया है । बगदूक भी बतमानका ही महारजने अपनी टीकामें लिखा है कि यद्यपि परीक्षितकी मृत्यु हास्या भी स्थि भी
 अनरी क्षीर्णि और प्रभाव बतमानके समान ही विद्यमान था । उनके प्रणि अत्यन्त अहंता उत्पन्न करनेके लिये उनकी पूरी वशी मिला
 री गयी है । उन्हें मगतान्द्र्य सायुज्य प्राप्त हो गया था इत्यर्थ भी वृत्तदीपक व अपने सम्मुख ही दीप्त रहे हैं । न केवल
 असीम बन्धि तक्षक इन कालकी प्रतीति हो रही है । आत्मा के स्वयसे पुत्र । इन धुनिके अनुवार जननकरर रूपसे भी
 वरी राजसिंहासन पर बैठ हुए हैं । इन सब कारणोंसे वर्तमानक रूपमें उनका वर्तन भी कृपाय रसको पुर ही बरग है ।

नोचमश्लोकवार्तानां क्षुर्पतां सत्कथामृतम् ।

स्यात्सम्प्रमोऽन्तकालेऽपि सरसां तत्पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥

तावत्कलिर्न प्रभवेत् प्रविष्टोऽपीह सर्वसः ।

यावदीशो महानुर्व्यामभिमन्यव एकदाद् ॥ ५ ॥

यसिम्बहनि यथैव भगवानुत्ससर्ज गाम् ।

तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभव कलिः ॥ ६ ॥

नैनुद्वेष्टि कलिं सद्माद् सारङ्गं इव सारङ्गम् ।

हृष्टलब्धाद्यु सिद्धयन्ति नेतराणि कसानि यत् ॥ ७ ॥

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरसीरुणा ।

अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥ ८ ॥

उपवर्णितमेतद्वृषः पुष्पं पत्नीधितं मया ।

बभ्रुदेवकथोपेतमाख्यानं सदपृच्छत् ॥ ९ ॥

या याः कथा भगवतः कथनीयोरुत्कर्माणः ।

गुणकर्मभयाः पुष्पिः संसेव्यास्ता बुधपुभिः ॥ १० ॥

कथय उचुः

सुत जीव समाः सौम्य क्षाम्पतीर्विघटं यद्यः ।

यस्त्वं धंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥ ११ ॥

कर्मण्यसिन्ननाम्नासे धूमधूमात्मनां भवान् ।

आपाययति गोविन्दपादपद्मासव मधु ॥ १२ ॥

तुल्यम लघेनापि न स्वर्गं नापुनर्मवम् ।

भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३ ॥

दिया ॥ ३ ॥ जो खेग भगवान् श्रीकृष्णकी स्त्री-
कथा कहते रहते हैं, उस कथामृतका पान करते
रहते हैं और इन दोनों ही साधनोंके द्वारा उनके
चरणकमलोंका स्मरण करते रहते हैं, उन्हें भक्त-
कालमें भी मोह नहीं होगा ॥ ४ ॥ जबकि पृथ्वी
अभिन्नयुनन्दन महाराज परीक्षित सभाट् रहे, तबतक
चारों ओर व्याप्त हो जानेपर भी कश्चियुगका कुछ
भी प्रभाव नहीं था ॥ ५ ॥ जैसे तो जिस दिन
जिस क्षण श्रीकृष्णने पृथ्वीका परीक्षण किया, उसी
सम्प पृथ्वीमें अवर्त्मक मूलकारण कल्पियुग का गया
था ॥ ६ ॥ अमरके समान सारमाही सभाट् परीक्षित
कल्पियुगसे कोई द्वेष नहीं रखते थे; क्योंकि इसमें वह
एक बहुत बड़ा गुण है कि पुण्यकर्म तो संकल्पमात्रसे
ही फलीभूत हो जाते हैं, परन्तु पापकर्मका फल
शरीरसे करनेपर ही मिलता है, संकल्पमात्रसे नहीं ॥ ७ ॥
यह देखियेके समान बालकोंके प्रति शरीर और धी-
र पुरुषोंके लिये बड़ा मीठा है । यह प्रमादी मनुष्यों-
को अपने काममें करनेके लिये ही सरा साधन रहता
है ॥ ८ ॥ शौनकादि ऋषियो ! आपलोगोंको मैंने
महानकी कथासे युक्त उवा परीक्षितका पवित्र चरित्र
सुनाया । आपलोगोंने यही पूछा था ॥ ९ ॥ भगवान्
श्रीकृष्ण कीर्तन करने योग्य बहुत-सी ओखलें करते हैं ।
इसलिये उनके गुण और श्रीकृष्णोंसे सम्बन्ध रखनेवाली
भित्ती भी क्यारें हैं, कल्याणक्षत्री पुरुषोंको उन सबका
सेवन करना चाहिये ॥ १० ॥

ऋषियोंने कहा—सौम्यसमाज सुतजी ! आप युग-
युग जीयें; क्योंकि मृत्युके प्रवाहमें पड़े हुए हमलोगोंको
आप भगवान् श्रीकृष्णकी अप्रतमयी उम्मेदका कीर्तिक
ध्वज करते हैं ॥ ११ ॥ यह करते-करते उसके धूर्से
हमलोगोंका शरीर धूमिल हो गया है । फिर भी इस कर्मका
कोई विश्वास नहीं है । श्वर आप तो कर्मालमें ही भगवान्
श्रीकृष्णजगत्के चरण-कमलोंका मादक और मधुर मधु
पिनाकर हमें तृप्त कर रहे हैं ॥ १२ ॥ भगवत्प्रेमी
मर्त्योंके लक्षमात्रके सत्सङ्गसे स्वर्ग एवं मोक्षकी भी तुलना
नहीं की जा सकती फिर मनुष्योंके लक्ष्य सेगोंकी तो बात

को नाम सृज्येव रसवित् कथायां
 महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
 नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मु
 र्येगिभरा ये भवपापमुत्सृज्यः ॥१४॥
 तस्यो भवान् वै भगवत्प्रधानो
 महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
 हरेरुदारं चरितं विशुद्धं
 क्षुब्धतां नो वितनेह विद्वन् ॥१५॥
 स वै महाभागवतः परीक्षित्
 येनापवर्गोत्थमदप्रबुद्धिः ।
 ज्ञानेन वैयासकिञ्चिद्विद्वतेन
 मेवे स्वर्गेन्द्रश्चक्षपादमुल्लू ॥१६॥
 तत्र परं पुष्पमसंस्तुतार्थं
 मात्मानमन्तुष्टुतयोगनिष्ठम् ।
 आत्मानन्तुष्टुतचितोपपन्नं
 पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥१७॥
 सूत उवाच
 अहो वयं जन्मसृष्टौऽप्य इत्थं
 ब्रह्मादुत्पत्त्यापि विलोभजताः ।
 दौष्टव्यमाधि विवृणोति श्रीश्रं
 महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥
 कृतः पुनर्गुणतो नाम तस्य
 महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
 योऽनन्तद्वक्तिर्मगधाननन्तो
 महद्गुणत्वाद् यमनन्तमाहु ॥१९॥
 एतावतास्तं ननु श्रुचितेन
 गुणैरमाम्यान्तिशायनस्य ।
 हित्वेतरान् प्रार्थयतो विमृति
 र्यस्याहिरेणुं जुपतेऽनभीप्सोः ॥२०॥
 यथापि यत्पादनम्यायमुष्टं
 अगद् विरिञ्चोपहृताह्वागम्भ ।

ही क्या है ॥१३॥ एसा कौन सम-मर्मज्ञ होगा, जो महा
 पुरुषोंके एकमात्र जीवन-सर्वज्ञ धीकृष्णकी जीवन-कथाओंसे
 दास हो जाय । समस्त प्राकृत गुणोंसे अतीत भगवान्‌के
 अधिन्य अनन्त कल्याणमय गुणगणोंका पार तो ब्रह्मा,
 ब्रह्मर आदि बड़े-बड़े योगेश्वर भी नहीं पा सके ॥१४॥
 विद्वन् । आप भगवान्‌का ही अपने जीवनका धुन्धारा
 मानते हैं । इसलिये आप सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय
 भगवान्‌के उदार और विभु चरित्रोंका हम बड़ाछ
 श्रोताओंके लिये विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥
 भगवान्‌के परम प्रेमी महाभुक्ति परीक्षितने श्रीकृष्णदेवजीके
 उपदेश किये हुए जिस ज्ञानसे मोक्षरूप भगवान्‌के
 चरणकमलोंको प्राप्त किया, आप कृपा करके उसी ज्ञान
 और परीक्षितके परम पवित्र उपासमानका वर्णन कीजिये,
 क्योंकि उसमें कोई बात छिपाकर नहीं कही गयी होगी और
 भगवत्प्रेम्मी बहुत योगनिष्ठका निरूपण किया गया होगा ।
 उसमें पद-पदपर भगवान्‌ धीकृष्णकी छन्दोंको वर्णन
 हुआ होगा । भगवान्‌के प्यारे भक्तोंको वैसा प्रमत्त सुननेमें
 क्या रस मिळता है ॥ १६ १७ ॥

सूतजी कहते हैं—अहो ! किन्तु मैं जानिमें उत्पन्न
 होनेपर भी म्हात्माओंकी सेवा करनेके कारण आज
 हमारा जन्म सफल हो गया । क्योंकि महापुरुषोंके साथ
 बातचीत करनेमात्रसे ही नीच कुत्से उत्पन्न होनेकी
 भयान्त्रिका शीघ्र ही मिट जाती है ॥१८॥ फिर उन लोगोंकी
 तो बात ही क्या है, जो सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय
 भगवान्‌का नाम लेते हैं । भगवान्‌की शक्ति अनन्त है, वे
 स्वयं अनन्त हैं । वास्तवमें उनके गुणोंकी अनन्तताके
 कारण ही उन्हें अनन्त कहा गया है ॥ १९॥ भगवान्‌
 के गुणोंकी सम्पत्ता भी जब कोई नहीं कर सकता, तब
 उनमें बड़का तो कोई हो ही कैसे सकता है । उनके
 गुणोंकी यह विरोधा सम्मानके लिये इतना कह देना
 ही पर्याप्त है कि लक्ष्मीजी अपनकरे प्राप्त करनेकी इच्छा-
 से प्रायना करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको छोड़कर भगवान्‌
 के न चाहनेपर भी उनके चरणकमलोंकी रत्नकर ही
 स्तवन करती हैं ॥ २० ॥ इन्द्राजीन भगवान्‌क चरणोंका
 प्रक्षालन करनेके लिये जा 'न' समर्पित किया पा, कही
 उनके चरणनयनोंमें निकरकर गङ्गाजीक रूपमें प्रकाशित

१ प्रा पा—उपो । २ प्रा पा—विद्वन् । ३ प्रा पा—यत् । ४ प्रा पा—यत्प्रेम्मी ।

• उवाचशब्दकी मात्र और निम्न वर्णोंके विद्यमान उत्पन्न संगानका शिक्कामात्र ब्रह्म है । एवं ज्ञानही उत्पत्ति इत्ये
 प्रकार ब्रह्मकी मध्य और अन्तिम किन्तोंका हार होनेसे उसे शब्दोंमें विद्यमान जति प्रकाश पडा है ।

सेषं पुनात्यन्मृतमो मुहुन्दात्
को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥२१॥

यथानुरक्ता महतीषु भीरा
व्यपोष्य देहादिषु सङ्गभूदम् ।
व्रजन्ति तत् परमहंसमन्त्रं
यस्मिन्महिसोपश्रम स्वधर्मः ॥२२॥

अहं हि पृथोऽर्चमणो भवद्भि
रावक्ष्य आत्मावगमोऽत्र यावान् ।
नभ पतन्त्यात्मसमं पतत्रिण-
स्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चित ॥२३॥

एकदा धनुर्लक्ष्म्य विचरन् युगायां वने ।
युगाननुगतः भ्रान्तः क्षुभितस्त्वपितो मुष्मत् ॥२४॥
जलमयमवधायः प्रविक्षेष्ट तमाभ्रमम् ।

ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥२५॥
प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिपारसम् ।

स्नानव्रयात् परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥२६॥
विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ।

विश्रुप्यचातुर्यदकं तथामृतमयाकृत ॥२७॥
अलम्भतृणभूम्पादिरमम्प्राप्तार्थवन्तः ।

अवज्ञास्तमिवारमानं मन्यमानभुक्ताम् ॥२८॥
अभूतपूर्वं महता भुतृष्ट्यामर्दितात्मनः ।

प्राज्ञां प्रत्यभूदु ग्रहान् मत्सरा भन्युरेव च ॥२९॥
मं तु ब्रह्मपेरसि गतस्तुष्टुरां रुपा ।

हुआ । यह जल महादेवजीसहित सारे जगत्को पनित करता है । ऐसी अवस्थामें त्रिमुक्त्तमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त 'भगवान्' शब्दका दूसरा और क्या अर्थ हो सकता है ॥ २१ ॥ जिनके प्रेमको प्राप्त करके वीर पुरुष किना किनी दिवकके देह-बोह आदिकी दह आसक्ति-को छोड़ देते हैं और उस अन्तिम परमहंस-वाक्प्रको लीकर करते हैं, जिसमें किसीको कष्ट न पहुँचना और सब ओरसे उपशान्त हो जाना ही स्वधर्म होता है ॥ २२ ॥ सुखी समान प्रकाशमान महात्मनो ! आपश्चोर्गोनि मुझसे जो कुछ पूछा है, वह मैं अपनी सन्त-के अनुसार सुनाता हूँ । जैसे पक्षी अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं, वैसे ही त्रिहन्तु भोग भी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही श्रीकृष्णकी वीक्षक वर्णन करते हैं ॥ २३ ॥

एक दिन राजा परीक्षित बहुत केसर बनमें निकल सेवने गये हुए थे । हरिणोंके पीछ दौड़ते-दौड़ते वे चक गये और उन्हें बड़ जादवी मूख और प्यस लगी ॥ २४ ॥ जब वहाँ उन्हें कोई बलशय नहीं मिला, तब वे पासके ही एक श्रविके आश्रममें घुस गये । उन्होंने देख कि वहाँ जोसे बंद करक शान्तनवसे एक मुनि आत्मपर बैठे हुए हैं ॥ २५ ॥ इन्द्रिय, प्रण, मन और बुद्धिके निरुद्ध हो जानेसे वे संसारसे ऊपर उठ गये थे । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे रहित निर्बिकर ब्रह्मरूप तुरीय पदमें वे स्थित थे ॥ २६ ॥ उनका शरीर बिखरी हुई जगत्से और कृष्ण युगधर्मसे ढका हुआ था । राजा परीक्षितन ऐसी ही अवस्थामें उनके जल गौरव कथ्येकि प्यासमें उनका गन्ध सूखा जा रहा था ॥ २७ ॥ जब राजाको वहाँ बैठनेके लिये निवेदन आसन भी न मिला, बिस्तीने उन्हें भूमिपर भी बैठनेकी न कहा—अर्थ और आनरमयी पीड़ी बातें तो वहाँसे मिश्र—तब आपनेका अपमानित-सा मानकर वे क्रोधके पश हो गये ॥ २८ ॥ शीतलज्जी ! वे मूढ-प्याससे छ' पटा रहे थे इसलिये एकएक उन्हें ब्राह्मणके प्रति ईर्ष्या और क्रोध हो आया । उनके जीवनमें इस प्रकारका मू पक्ष ही अनसर था ॥ २९ ॥ वहाँसे छिड़ते समय उन्होंने कोषकर धनुषकी नोकसे एक मय सौं प उठाकर

विनिर्गन्धन्धनुष्क्रेया निधाय पुरमार्गामत् ॥३०॥

एष किं निमृताशेषकणो मीलितेषुण ।

मृया समाधिराहोत्सर्गि नु स्यात्प्रबन्धुभिः ॥३१॥

तस्य पुत्रोऽस्तितेजसी विहरन् बालकोऽर्मकै ।

राष्ट्राचं प्राप्तं ततं भूत्वा तत्रेदमप्रवीत् ॥३२॥

अहो अर्धमं पालानां पीमां बलिमुच्चासि ।

स्वामिन्यधं यद् दासानां द्रुतपानां द्युनामिव ॥३३॥

ब्राह्मणै ध्वजबन्धुर्वि द्वारपालो निरूपितः ।

स कर्पतद्वृद्धे द्राः स्व सभाजं भोक्तुमर्हति ॥३४॥

कृष्णे गते भगवति श्वास्त्युत्पथगामिनाम् ।

तद्विभसेर्तनघाई शसि पश्यत मं बलम् ॥३५॥

इत्युक्त्वा रोपताम्राणो बभस्थानुविबालक ।

कौशिक्याप उपसृज्य वाग्बजं विमसर्ज ह ॥३६॥

इति लङ्घितमपादं तद्यक मममेऽहनि ।

हृग्यति स कुलाङ्गारं चादिता म ततमुहम् ॥३७॥

ततोऽम्भस्याधर्मं बालो गले सर्पफलेवरम् ।

पितरं वीक्ष्य दु स्वार्तो मुक्तकम्ठो रुरोद ह ॥३८॥

स र्वा आङ्गिरसो ब्रह्मन् धृत्वा सुतविलापनम् ।

उन्मील्य धनवैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वासे भृतोरगम् ॥३९॥

नित्यं पुत्रं पश्यन् वत्स कसादि रोदिति ।

अधिके गलेमें डाल दिया और अपनी राजधानीमें चले
आये ॥ ३० ॥ उनके मनमें यह वान आयी कि
इन्होंने जो अपने नेत्र बंद कर रखे हैं, सो क्या वास्तवमें
इन्होंने अपनी सारी इन्द्रियवृत्तियोंका निरोध कर लिया है
अथवा इन राजाओंसे हमारा क्या प्रयोजन है, यों
सोचकर इन्होंने छूट-छूट सम्पत्तिका दोग रच रक्खा
है ॥ ३१ ॥

उन शमीक मुनिका पुत्र बड़ा तेजस्वी था । वह दूसरे
शत्रुकुमारोंके साथ पास ही खेल रहा था । जब उस बालकने
सुना कि राजने मेरे पिताके साथ दुर्भिक्षार किया है, तब वह
इस प्रकार कहने लगा—॥ ३२ ॥ ये नरपति कहकानेवाले
स्वेष उच्छिद्यमोत्री कौओंके समान संड-मुसंड होकर
कितना अन्धाय परते लगे हैं ! ब्राह्मणोंके दास होकर
भी ये दरवाजेपर पहर देनेवाले कुत्तेके समान अपने
स्वामीका ही तिरस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंने
कृत्रियोंको अपना द्वारपाल बनाया है । उन्हें द्वारपर खड़ा
रखा करनी चाहिये, परमें घुसकर स्वामीके बर्तनोंमें खाने-
का उसे अधिकार नहीं है ॥ ३४ ॥ अथवा ठ-मार्गामियोंके
शासक मन्त्रान् श्रीकृष्णके परमभाम पहर जानेपर इन
मर्षदा तोड़नेवालोंको आज मैं दण्ड देता हूँ । मेरा
तपोवर देखो ॥ ३५ ॥ अपने साथी बालकसे
इस प्रकार कहकर केशसे लाल-लाल औंछेंवाले
उस शत्रिकुमारने कौशिकी नदीके जलसे आचमन
करके अपने वागीकृपी वज्रका प्रयोग किया ॥ ३६ ॥
शुक्लाङ्गर परीक्षितने मेरे पिताका अपमान
करके मर्षदाका उत्सर्जन किया है इसलिये
मेरी प्रणालसे आजके सातवें दिन उसे तक्षक सर्प
बस लेगा ॥ ३७ ॥

इसके बाद वह बालक अपने आधनपर आया और
अपने पिताके गलेमें साँप देखकर उसे बड़ा दु ख हुआ
तथा वह दाह मारकर रोने लगा ॥ ३८ ॥ पित्रवरदैन्यकमी ।
शमीक मुनिने अपने पुत्रका रोना-धिलाना सुनकर धीरे-धीरे
अपनी ओंछें खोली और देखा कि उनके गलेमें एक मरा
साँप पड़ा है ॥ ३९ ॥ उसे पेंकत उठोंने अपने
पुत्रसे पूछा—वेदा ! तुम क्यों रो रहे हो ! कितने

केन वा तेऽपकृतमित्युक्तं स न्यवेदयत् ॥४०॥
 निश्चम्प अतमवदहं नरेन्द्र
 स ब्राह्मणो नास्मजमभ्यनन्दत् ।
 अहो बर्ताहो महदहं ते कृत
 मत्पीयसि श्रोह उर्यदमो वृत्तः ॥४१॥
 न वै नृभिर्नरद्वय परास्य
 सम्मातुर्महसविपकुषुदे
 यत्तजसा दुर्विपदण गुप्ता
 विन्दन्ति भद्राण्यकुताभयाः प्रजाः ॥४२॥
 अलक्ष्मणो नरवचनाम्नि
 रयाक्ष्मणावयमज्ञ लोकाः ।
 तदा हि चौरप्रभुरो विनङ्गय-
 त्यरक्ष्यमाणोऽविर्वैरुथवत् क्षणात् ॥४३॥
 तद्य न पापमुपत्यन्तवयं
 यैर्यनाथस्य वसार्जिलुम्पकात् ।
 परम्परं घ्नन्ति क्षपन्ति वृज्वत
 पान्त्रिष्याऽर्धान् पुरुषस्वयोजना ॥४४॥
 तदाऽऽर्यधर्मश्च विलीयत नृणां
 वणाभमाचारपुतस्त्रयीमयः ।
 तदाऽर्धकामाभिनिवशितान्मनां
 दृणां स्वपानामिव वणमवत ॥४५॥
 धर्मपाला नरपति य तु मन्नाद् दृढचक्रवाः ।
 माध्वान्महाभागवता राजपिण्डयमधयाद् ।
 सुपृष्ठमपुता श्रीना नराभ्यच्छापमहनि ॥४६॥
 अपापपु मभ्युपपु क्षान्नापकुषुदिना ।
 पाप कृत तद्भगवान् मन्नामा घन्तुमहनि ॥४७॥
 निगम्यता विप्रव्याघ्रमा शिवा हता अपि ।
 नाम्यतन प्रतिवृत्तिस्तद्वत् प्रभराऽपि हि ॥४८॥
 इति पुनस्तथापन मा नुत्तमा मगधुनि ।

गुह्यराज अपकर किया है ॥ उनके इस प्रकार करने
 बालकने सारा हाथ कड़ दिया ॥ ४० ॥ अर्थात् शक्ति
 ने राजाके शापकी बात सुनकर अपने पुत्रका बलिदान
 नहीं किया । उनकी दृष्टिमें परीक्षित शापके फल
 नहीं थे । उन्होंने कहा—‘बोह, मूर्ख बालक ! तू
 बड़ा पाप किया । खे है कि उनकी भोली-सी गळीमें
 लिये दाने उनको इतना बड़ा दण्ड दिया ॥ ४१ ॥
 तेरी बुद्धि अभी कच्ची है । तुझे भगवत्स्वरूप राजाके
 साधारण मनुष्योंके समान नहीं समझना चाहिये, क्योंकि
 राजाके दुस्सह तेजसे सुरक्षित और निर्मय रहकर
 प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है ॥ ४२ ॥ कि
 समय राजाका रूप धारण करके भगवान् पृथ्वीपर
 दिखायी देंगे, उस समय चोर बड़ जायेंगे और वरुद्धिन मेवों
 समान एक क्षणमें ही खोखल नाश हो जायगा ॥ ४३ ॥
 राजाके मर हो जानपर घन आगि कुठनेवाले चोर
 पाप करेंगे, उसके साथ हमरा कोई सम्पत्ति
 हानिपर भी बड़ हमरा भी लग्न होगा । क्योंकि राजा
 न रहनेपर छुरे बड़ जाते हैं और वे आपसमें मस्ती
 गाड़ी-गाली करते हैं, साथ ही पशु, की और क
 सम्पत्ति भी छुं खते हैं ॥ ४४ ॥ उस समय मनुष्यों
 कर्माभ्याचारयुक्त वैदिक आर्यधर्म छुट हो जाता है, ज
 मोम और कर्म-वासनाके विकास होकर लोग कुठों व
 बर्तोंके समान कर्ममदूर हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ सत्रा
 परीक्षित तो बड़ ही पतली और धर्मधुरन्धर हैं । उन्होंने
 बहुत-से अधमरा पत्र किये हैं और वे भगवत्कृत प
 पार भक्त हैं व ही राजाई भूषण्यामने म्याकुन हो
 हमारे आधमरा जाये थे, वे शापक माय बर्ता
 नहीं हैं ॥ ४६ ॥ इस नाममम शारपन हमारे निचा
 सेवर राजका अनराध किया है, सत्पात्र भगवान्
 करत हमे तमा करें ॥ ४७ ॥ भगवान्के भक्तों
 बन्ना उनकी शक्ति दान्य है; परन्तु ये दुरागे हैं
 किए हुए अगमन, भाष्यता गरी-गयन, आने
 और मा-गीन्य बर्त बन्ना नहीं खते ॥ ४८ ॥ म्यमु
 ॥ म्यमय पुत्र अगपार बड़ा पभादार हुआ । रा

स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैषार्थं सदचिन्तयत् ॥४९॥

प्रापशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ।

न व्यपन्ति न हृष्यन्ति यत आत्मागुणाभयाः ॥५०॥

परीक्षितने जो उनका अपमान किया था, उसपर तो उन्होंने पक्षम ही नहीं दिया ॥ ४९ ॥ महात्माओंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जगत्में जब दूसरे भोग उन्हें सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें डाल देते हैं, तब भी वे प्रायः हर्षित या व्यथित नहीं होते; क्योंकि आत्मका स्वरूप तो गुणों से सर्वथा परे है ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो संहितायां प्रथमस्कन्धे

किमशपोफल्गुमन् नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

परीक्षितश्च भगवान्प्रवृत्तौ धीरुक्श्रेयसीका आगमन

सूत उवाच

महीपतिस्त्वथ सत्कर्म गार्ह

विचिन्तयभात्मकृतं सुदुर्मनाः ।

अहो मया नीचमनार्पवत्कृत

निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥

द्युवं ततो मे कृतदवहेलनात्

दुरत्यय व्यसन नास्तिदीघात् ।

उदस्तु कर्म त्वपनिष्कृताय मे

यथा न कुर्या पुनरेवमद्वैता ॥ २ ॥

अर्धं च राज्यं बलमृद्धकोशं

प्रकापितब्रह्मकुलानला म ।

दहत्वभद्रस्य पुनन मऽभूत्

पापायमी धीर्द्विजदशगाम्य ॥ ३ ॥

स चिन्तयर्भित्थमथामृणात् यथा

मुने सुतोक्तो निर्वर्धसिस्तस्यकारण्यः ।

स साधु मने नधिरण सधुका

नतं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—राजधानीमें पहुँचनेपर राजा परीक्षितको अपने उस निन्दनीय कर्मके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ । वे अत्यन्त उदास हो गये और सोचने लगे—प्रभु! निरपराध एवं अपना तेज छिपाये हुए ब्राह्मणके साथ अनार्य पुरुषोंके समान बड़ा नीच व्यवहार किया । यह बड़ा खेदकी बात है ॥ १ ॥ अस्व ही उन महात्माके अपमानके फलस्वरूप शीघ्र-से-शीघ्र मुझपर कोई घोर विपत्ति आकेगी । मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ, क्योंकि उससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा और फिर कभी मैं ऐसा कर्म करनेका दुःसाहस नहीं करूँगा ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंकी काष्ठाभि आज ही मेरे राज्य, सेना और भरे-भूर खजानाको जलकर खाक कर दे—जिससे फिर कभी मुझ दुष्टकी ब्राह्मण, देवता और गौके प्रति ऐसी पाप-मुद्रि न हो ॥ ३ ॥ मैं इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उन्हें माझूम हुआ—शनिपुराणके श्लोकसे तब तक मुझ डमेगा । उन्हें यह धक्कनी हुई आगक समान तपस्विकर बसना बहुत भया माझूम हुआ । उन्होंने साक्षात् कि बहुत गिनोसे मैं संसारमें आसक्त हो रहा था, अब मुझ शीघ्र वैराग्य होनेका कारण प्राप्त हो गया ॥ ४ ॥ वे

१ या पा —पारमहंस्यो संहितायां पारिहितोपासना' इत्यादि अधिक है, विप्र शब्दके स्थानपर 'प्रस' शब्द है ।

२ या पा —अथ । ३ या पा —पुनरेवमद्वैता । ४ या पा —बलमृद्ध । ५ या पा —मन्त्रम् । ६ या

पा —विन्दयिष्यमया । ७ या पा —उत्तराहृत ।

राजोवाच

अहो वयं धन्यतमा नृपाणां

महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ।

राज्ञां कुलं ब्राह्मणपार्ष्णीचाद्

वृत्ताद् विसृष्टं वत गर्भकर्म ॥१३॥

तस्यैव मेऽप्यस्य परावरेणो

ध्यामक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ।

निर्वेदमूलो द्विजश्चापरूपो

यत्र प्रसक्तो भयमाहू धत्ते ॥१४॥

त मोपपात प्रतिपन्तु विप्रा

गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ।

द्विजोपसृष्टः कुङ्कुमलङ्घको वा

दक्षत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥१५॥

पुनश्च भूषाम्भगवत्पनन्ते

रतिः प्रसङ्गश्च तन्मभयेषु ।

महत्सु यां यामुपयामि सृष्टि

मैम्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्य ॥१६॥

इति स राजान्यवसाययुक्त

प्राचीनमूलेषु कुटुम्बेषु धीरः ।

उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते

समुद्रपत्न्या मयुतन्यस्तभार ॥१७॥

एव च तस्मिन्मरुदवददे

प्रापापविष्त्रिं वि देवमहाः ।

प्रशस्त्य भूमां व्यकिञ्च प्रयत्ने

ईनां सुहृदुन्दुभयश्च नेदु ॥१८॥

महर्षयो वं समुपागता ये

प्रशम्य साधित्यनुमादमानाः ।

राजा परीक्षितेन कथा—अहो ! समस्त राजाओंमें

हम धन्य हैं । धन्यतम हैं । क्योंकि अपने

श्रीकृष्णभावके कारण हम आप महापुरुषोंके कृपापात्र बन

गये हैं । राजवंशके भोग प्रायः निन्दित कर्म करने-

के कारण ब्राह्मणोंके धरण-धोवनसे दूर पड़ जाते हैं—यह

कितने खेदकी बात है ॥ १३ ॥ मैं भी राजा ही हूँ ।

निरन्तर वेद-गोहमें आसक्त रहनेके कारण मैं भी पाप-

रूप ही हो गया हूँ । इससे खपे भगवान् ही ब्राह्मण-

के श्रावणके रूपमें मुझपर कृपा करनेके लिये पवारे हैं ।

यह शाप वैश्य उत्पन्न करनेवाला है । क्योंकि इस

प्रकरणके शापसे संसारसक्त पुरुष भयभीत होकर विरक्त

हो जाया करते हैं ॥ १४ ॥ ब्राह्मणों ! अब मैंने अपने चित्तको

भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर दिया है । आप भोग

और मा गङ्गाजी क्षणभंगल जानकर मुझपर अनुग्रह करें, मुझे

ब्राह्मणकुम्भरके शापसे प्रेरित कोई दूसरा कष्टसे तक्षकत्त

रूप धारकर मुझे इस से अवशः स्वयं तक्षक आकर इस से,

इसकी मुझे तनिक भी पत्ता नहीं है । आपभोग कृपा

करके भगवान्की रसमयी श्रीकृष्णोंका गायन करें ॥ १५ ॥

मैं आप ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रणाम करनेके पुनः यही प्रार्थना

करता हूँ कि मुझे कर्मवशा बाहे जिस यौनिमें जन्म लेना पड़े,

भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें सेवा अनुरण हो, उनके

चरणार्थित महात्म्यजसे विशेष प्रीति हो और जगत्

के समस्त प्राणियोंके प्रति मेरी एकन्ती मैत्री रहे । ऐसा

आप आपसीवर्त दीजिये ॥ १६ ॥

महापरा परीक्षित् परम धीर ये । व ऐसा दृढ़

निश्चय करके गङ्गाजीके दक्षिण तटपर पूर्वाम कुञ्जोंके

आसनपर उत्तरमुख होकर बैठ गये । राज-चक्रनक्षत्र मर

तो उन्होंने पहले ही अपने पुत्र जनमेजयका सीप

टिया था ॥ १७ ॥ धृष्टीके एकद्वय सखाद् परीक्षित्

जब इस प्रकार आभरण अनशनकर निश्चय करक बैठ

गये, तब आकाशमें स्थित देवता लोग यह जानन्से उनकी

प्रशंसा करने हुए यहाँ धृष्टीपर पुण्डरीक बना करन लगे

तथा उनके नगारे बार-बार बजने लगे ॥ १८ ॥ सभी

उपस्थित महर्षियोंने परीक्षित्क निश्चयकी प्रार्थना की

और 'मामु-मामु' कहकर उनका अनुमोदन किया ।

ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा
 यदुत्तमसोऽक्रुणामि रूपम् ॥१९॥
 न वा इदं राजपितृव्यं चित्रं
 भवत्सु कृष्णं समनुग्रहेषु ।
 येऽप्यासनं राजकिरीटजुष्टं
 सद्यो जहुर्यगवत्पार्ष्वकमाः ॥२०॥
 सर्वे वयं तावदिहासहेऽप्यै
 कलेष्वरं यावदसौ विहाय ।
 लोकं परं विरजस्कं विशोकं
 यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥२१॥
 आश्रुत्य तदपिगर्णवचः परीक्षित्
 सर्म मधुच्युद्धं गुरु चाभ्यलीकम् ।
 आमोपतैनानभिनन्द्य युक्तान्
 श्रुभूयमाणभरितानि बिभ्र्योः ॥२२॥
 ममागताः सर्वत एव सर्वे
 वेत्ता यथा मूर्तिभरास्त्रिपुष्टे ।
 नेहायवामुत्र च कश्चनार्थं
 श्रुते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥२३॥
 ततश्च व पृच्छमिमं विपृच्छ
 विधम्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ।
 सर्वा मना त्रिपमार्गं च कृत्यं
 दुर्धं च तत्राभ्युताभिपुक्ता ॥२४॥
 तत्राभवद्भगवान् व्यामपुत्रा
 यत्कृष्टया गामममानाऽनपेक्षः ।
 अन्त्यप्लिङ्गा निजलाभतृष्टा
 धृतधः शार्ङ्गधृताधृतधः ॥२५॥

श्रुत्विद्येग तो समावसे ही ओगोपर अनुग्रह की बात
 करते रहते हैं; यही नहीं, उनकी सारी शक्ति स्वेकसर कृपा
 करनेके लिये ही होती है । उन ओगोंने भगवान् धीकृष्णके
 गुणोंसे प्रभावित परीक्षितके प्रति उनके अनुरूप बचन
 कहे ॥ १९ ॥ 'यद्यपि शिरोमणे । भगवान् धीकृष्णके
 सेवक और अनुयायी आप पाण्डुरवशिर्योके लिये यह कोई
 आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि आपनेओने
 भगवान्की समिति प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षासे उस राज-
 सिंहासनका एक क्षणमें ही परित्याग कर दिया, जिसकी
 सेवा बड़े-बड़े राजा अपने सुपुत्रोंसे करते थे ॥ २० ॥
 हम सब तत्काल यहाँ रहेंगे, जबतक ये भगवान्के
 परम मन्त्र परीक्षित अपने मन्त्र क्षीरको छोड़कर मधु-
 दोष एवं शोकसे रहित मत्स्यरूपमें नहीं चले जाते ॥ २१ ॥

श्रुत्विद्येकि ये बचन बड़े ही मधुर, गम्भीर,
 सत्य और समझसे युक्त थे । उन्हें सुनकर राजा
 परीक्षितने उन योगसुक्त मुनियोंका अभिनन्दन किया और
 भगवान्के मनोहर वस्त्र सुननेकी इच्छासे श्रुत्विद्योसे प्रार्थना
 की ॥ २२ ॥ 'महात्माओ ! आप सभी सब ओरसे
 यहाँ पधारे हैं । आप सफलकेलने खनेदले मूर्तिमान् केदोंके
 समाग हैं । आपओगोका दूसरोंपर अनुग्रह करनेके
 अनिरिक्त, जो आपका सहज स्वभाव ही है, इस लोक
 या परलोकमें और कोई स्वार्थ नहीं है ॥ २३ ॥ किन्तो !
 आपओगोपरपूर्ण विश्वास करके मैं अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें
 यह पूछने योग्य प्रश्न करता हूँ । आप सभी विद्वान् परस्पर
 विचार करके कसमसाये कि सबके लिये सब अवसरार्थ-
 में, और निरोध करके बोधे ही समझमें मनेवाले पुद्गल-
 के लिये कस्त-करण और क्षीरसे करनेयोग्य विपुल
 कर्म धीन-सा है ॥ २४ ॥

उसी समय पृथ्वीर स्वेच्छासे विचरण करते हुए
 विगीरि कोई अपेक्षा न रखनेवाले व्यामनन्तम भगवान्
 धीगुप्तेष्वरी म्हायान यहाँ प्रकट हो गये । वे वग आदरा
 आग्रहके साथ विद्वेषे रहित एवं आत्मानुभूतिमें संतुष्ट
 ॥ २५ ॥ वयो और शिरोनि उन्हें धर रक्षय या । उनरा

१ मा वा — गुणानुग्रह । २ मा वा — यदेरुपुत्रम् इत्यमनुजेषु । ३ मा वा — उप । ४ मा
 वा — गतिरित्यम वचः । ५ मा वा — अथा । ६ मा वा — युष्मा । ७ मा वा — निजिदे ।

• हम सब राजने ब्रह्मणेने दो प्रश्न किये हैं । पहला प्रश्न यह है कि जीओ कदा-कदा क्या करना चाहिये और
 दूसरा यह कि जो कोई ही व्यवस्थ में मनेवा है । उनका क्या कर्त्तव्य है । वे ही दो प्रश्न उन्होंने धीगुप्तेष्वरीने धी शिरो
 तथा व्यामः इती रामो प्रश्नेका उत्तर द्विती स्वरूपने लेकर आदरावर्धन धीगुप्तेष्वरीने दिया है ।

तं द्रष्टव्यं सुकुमारपाद
 करोरुवाहसकपोलमात्रम् ।
 चोर्वायताद्योभसतुल्यकर्ण
 सुभ्रान्तं कम्युसुजातकण्ठम् ॥२६॥
 निगूढसद्यु पृथुतन्त्रवधस
 मावर्तनाभि वल्लिवल्गुदरं च ।
 दिगम्बरं वक्ष्यविक्कीर्णकेशं
 प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥२७॥
 ध्यामं सदापीन्यवयोऽङ्गलम्बा
 स्त्रीणां मनोह्रं रुधिरमितेन ।
 प्रत्युत्थितास्ते ध्रुवयः स्वासनेभ्य
 लल्लुषण्णा अपि गूढवर्धसम् ॥२८॥
 स विष्णुरत्तोऽर्तिधय आगताय
 तस्मै सपयां क्षिरसाऽऽजहार ।
 ततो निवृत्ता बभूवा क्षियोऽर्मका
 महासने सोपविवेश पृथितः ॥२९॥
 स संवृतस्तत्र महान् महीयसां
 ब्रह्मर्षिराजर्विदेवर्षिसहै ।
 व्यरोचतालं भगवान् मयेन्दु
 प्रददर्शतारानिर्करं परीत ॥३०॥
 प्रशान्तमासीनमकण्ठमेधसं
 मुनिं नृपो भागवतोऽम्बुपेत्य ।
 प्रणम्य मूढावहित कृताञ्जलि
 नन्या गिरा घृततयान्वष्टु ॥३१॥

परीक्षितवाच

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् मत्संन्या धन्यश्च यः ।

१ मा पा — चार्वाकपादं बभूवुश्च यः सुभ्रान्तम् । २ मा पा — दीनवर्णः । ३ मा पा — मत्स्यः ।

४ मा पा — यथा मुनेः ।

वेर अवधूतका या ॥ २५ ॥ सोल्लह कर्वाक्री अवस्था
 थी । चरण, हाथ, जडा, गुजार, कचे, कपोल और
 अन्य सब अङ्ग अत्यन्त सुकुमार थे । नेत्र बड़े-बड़े और
 मनोहर थे । नासिका कुछ ऊँची थी । कान कण्ठ थे ।
 सुन्दर गौहें थीं, इनसे मुक्त बड़ा ही शोभायमान हो
 रहा था । गन्ध तो मानो सुन्दर शङ्ख ही था ॥ २६ ॥
 ईसली ढकी हुई, छाती चौड़ी और उभरी हुई, नाभि
 भँवरके समान गहरी तथा उदर बड़ा ही सुन्दर त्रिजडीसे
 युक्त था । लंबी-लंबी मुबारकें थीं, मुखर घुँघराले बाल
 बिखरे हुए थे । इस दिगम्बर वेपमें वे श्रेष्ठ देवताके
 समान तेजस्वी जान पड़ते थे ॥ २७ ॥ ध्याम
 रंग था । चित्तको तुरन्तेशांसी मरी जबानी थी । वे
 शरीरकी छान और मधुर मुक्तानसे त्रियोंको सदा ही
 मनोहर जान पड़ते थे । यद्यपि उन्होंने अपने
 तेजको छिपा रक्खा था, फिर भी उनके लक्षण जानने
 वाले मुनियोंने उन्हें पहचान लिया और वे सब-के-सब
 अपने-अपने आसन छोड़कर उनके सम्मानके लिये उठ
 खड़े हुए ॥ २८ ॥

राजा परीक्षितने अनियमितसे पधारे हुए धीशुकदेव-
 जीको सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी पूजा
 की । उनके स्वरूपको न जाननेवाले कच्चे और त्रिपों
 उनकी यह महिमा देखकर कौंसि लौट गये, सबके द्वारा
 सम्मानित होकर धीशुकदेवजी श्रेष्ठ आसनपर विराजमान
 हुए ॥ २९ ॥ गृह, नक्षत्र और तारोंसे घिरे हुए
 चन्द्रमाके समान ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षियोंके समूहसे
 आवृत धीशुकदेवजी अत्यन्त शोभास्पद हुए । बाह्य-
 में वे महात्माजेंकि भी आदरणीय थे ॥ ३० ॥ जब
 प्रक्षयुद्धि धीशुकदेवजी शान्तमायसे बैठ गये, तब
 भगवान्‌के परम मऊ परीक्षितने उनके समीप आकर
 और चरणोंपर मिर रखकर प्रणाम किया । फिर गड़
 हाकर हाथ जोड़कर जमस्कर किया । उसके पश्चात्
 बड़ी मधुर वागीम उनसे यह पूछा ॥ ३१ ॥

परीक्षितवाच — ब्रह्मन् रूप भगवन् ! आज हम
 बड़भारी हुए; क्योंकि आरवाही शत्रिय होकर भी हमें
 सुन-मण्डनकर अधिकारी समझ गया । आज हमारे

कृपयातिथिरूपेण भवद्विस्तीर्यका कृता ॥३२॥

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः श्रद्धयन्ति वै गृहाः ।

किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचामनादिभिः ॥३३॥

सान्निभ्यासे महायोगिन्यातकानि महान्त्यपि ।

मद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥३४॥

अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्ण पाण्डुसुतप्रिय ।

पैतृष्वस्यप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यास्यान्धवः ॥३५॥

अन्यथा वेदव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ।

निवरां त्रिप्रमाणानां संसिद्धस्य धनीयैसः ॥३६॥

अतः पृच्छामि भंसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ।

पुरुषस्येह यत्कार्यं त्रिप्रमाणस्य सर्वथा ॥३७॥

यत्प्रोक्तव्यमथो जप्यं यत्कृतव्यं नृभिः प्रभो ।

सततं भजनीयं वा श्रुतिं यद्वा विषयमम् ॥३८॥

नूनं भगवता प्रकृतं गृहेषु गृहमेधिनाम् ।

न शक्यत इवम्यतनमपि गोत्राहं कवित् ॥३९॥

सूत उवाच

अथमाभाषितं पृष्टं म राजा शृण्वया गिरा ।

प्रत्यभाषत धमञ्चा भगवान् धाम्नागणिः ॥४०॥

अतिथिरूपसे पधारकर आपने हमें तीर्थके मुख्य पवित्र

बना दिया ॥ ३२ ॥ आप-जैसे महात्माओंके सारथ्यमन्त्र-

से ही गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं, फिर

दर्शन, स्पर्श, पादप्रक्षालन और आसन-आदिक

सुखभर मित्रनेपर तो क्या ही क्या है ॥ ३३ ॥

महायोगिन् ! जैसे भगवान् विष्णुके सामने दैत्यरोग नहीं

उत्तरते, वैसे ही आपकी सभिभिसे बड़े-बड़े पाप भी दूर हो

नष्ट हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ अथवा ही पाण्डवोंके सुहृद् भगवान्

श्रीकृष्ण सुखपर व्यस्त प्रसन्न हैं, उन्होंने अपने ऊपर मद्य-यौ-

की प्रसक्तपणके स्थिते उन्होंने कुल्ले उतपन्न हुए मेरे साथ भी

अपनेपनक्त व्यवहार किया है ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी

कृपा न होती तो आप-सुरीसे एकत्र न बनवाती व्ययकृति

पस्य सिद्ध पुरुष स्वयं पधारकर इस मृत्युके समय

हम-जैसे प्राकृत मनुष्योंको क्यों दर्शन देते ॥ ३६ ॥

आप योगियोंके परम गुरु हैं, इसस्थिते मैं आपसे परम-

सिद्धिके स्वरूप और साधनके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहा

हूँ । जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न है, उसको क्या करना

चाहिये ? ॥ ३७ ॥ भगवान् ! साथ ही यह भी

बतलाइये कि मनुष्यमन्त्रको क्या करना चाहिये । वे

विस्तक ध्वज, विस्तक जप, विस्तक स्मरण और

विस्तक भजन करें तथा विस्तक त्याग करें ? ॥ ३८ ॥

भगवत्स्वरूप मुनिवर ! आपका दर्शन व्यस्त दुर्लभ है,

क्योंकि जितनी देर एक गाव दुड़ी जाती है, गृहस्थोंके

घरपर उतनी देर भी तो आप नहीं उतरते ॥ ३९ ॥

सूतजी कहते हैं—जब राजाने बड़ी ही मरुत बागीर्नि

इस प्रकार सम्भारण एवं प्रदत्त किये, तब समस्त

धर्मिक मर्मज्ञ व्यासनन्त भगवान् श्रीभुक्तवशी उनका

इति श्रीमद्भागवत महापुराण ध्रुवमिश्रामात्राशमाहत्यां पादमस्यां संक्षिप्तं

प्रथमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति प्रथम स्कन्ध समाप्तः ।

॥ इति १० अध्यायः ॥

श्रीराधाकृष्णम्भो नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

द्वितीयः स्कन्धः



यस्य दीप्तिर्लवनेन दधता दधता गता ।
वन्द्यं ते दधन्वन् मयिदधमयं हरिम् ॥



+



भगवान् विष्णु

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

द्वितीयः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ध्यान-विधि और भगवान्‌के विराटरूपका वर्णन

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

श्रीभूक्त उवाच

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो छाकद्विर्त नृप ।

आत्मवित्स्वम्मत पुंसां भोतव्याप्तिषु या पर ॥ १ ॥

भोतव्यादीनि गजेन्द्र नृणां मन्ति सहस्रशः ।

अपश्यतामात्मतत्त्वं गृह्यु गृहमेधिनाम् ॥ २ ॥

निद्रया हियत नर्तकं न्यवायन च वा वयः ।

निवा चार्थेहया गजन् कुटुम्बभरणन वा ॥ ३ ॥

दहापत्पत्राणां ध्वान्तमम न्येष्वपत्त्यपि ।

तपां प्रमत्ता निधन पश्यन्त्यपि न पश्यन्ति ॥ ४ ॥

तस्माच्छास्त्रं मरामा भगवानीश्वरा हरि ।

भानव्य कीर्तितव्यं च स्मृतव्यं च श्रुताभयम् ॥ ५ ॥

एतावान् मां गन्धयोगाभ्यां स्थपमपरिनिष्ठया ।

श्रीभूक्तवर्जिते कहा—परीक्षित । तुम्हारा नेकद्वि-
के लिये किया हुआ यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है । मनुष्योंके
छिये भिन्ननी भी बर्तें सुनन, स्मरण करने या कीर्तन करने
की हैं, उन मनुष्यों के श्रेष्ठ हैं । आत्मज्ञानी महापुरुष
ऐसे प्रथम कह आनर करते हैं ॥ १ ॥ रास्त्र ।
औ गृहस्थ घरके कम-धर्ममें उनमें हुए हैं, अपन
स्वरूपको नहीं जानते, उनके लिये हजारों बर्तें बहुत
सुनने एवं सोचन, करनेकी रहती हैं ॥ २ ॥ उनकी
साथी उच्च यों ही गीत जानी है । उनकी रत नी-
या श्री-प्रमत्तसे करती है और निन धनकी टाप-टाय
या कुटुम्बियोंके भरण-पारणमें सम्यग हो जाता है ॥ ३ ॥
भगवतमें निश्चिं अरुना अत्यन्त गनिष्ठ सम्पत्ती कहा
जाता है, वे शरीर, पुत्र, गी आदि कुछ नहीं है,
असत् हैं परंतु जीव उनके ब्रह्ममें एका परमात्मा ही
जाता है नि रत-निन उनका कृत्यकर प्राप्त होने लग-
कर भी वेचना नहीं ॥ ४ ॥ इत्यपि परिणित् । आ
अमय पत्रको प्राप्त करना चाहता है, उसे ता मराना,
मरानाकिमान् भगवान् श्रीहरिजी ही लीन-भौरा धरन,
कीर्तन और स्मरण करना कर्त्तव्य ॥ ५ ॥ मनुष्य
जमका पदो—इतना ही मन है कि पाद त्रय
हो—गन्ध, भक्तिमें अर्पण भजन उनकी निजम

१ मानव प्रिये ॐ नमः भगवते वासुदेवाय इत्येव भवति ॥ २ मा वा—१०८ ॥ ३ मा ५—
मेवमेव ॥ ४ मा वा—१०८ ॥ ५ मा वा—१०८ ॥

अन्मलाभ परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ॥ ६ ॥

प्रायेण मुनयो राजभिषा विधिपेधतः ।

नैर्गुण्यत्मा रमन्ते स गुणानुबन्धने हरेः ॥ ७ ॥

इदं भगवत नाम पुराण ब्रह्मसम्मितम् ।

अधीतवान् द्वापरान्ते पितुर्द्वैपायनादहम् ॥ ८ ॥

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ।

गृहीतचेता राजर्षे आगम्यान् यदधीतवान् ॥ ९ ॥

तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिका भवान् ।

यस्य भद्रवतामाद्यु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती ॥ १० ॥

एतन्निर्विघमानानामिच्छतामङ्गुलोभयम् ।

योगिनां नृपं निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥

किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोर्धैर्हर्षनैरिह ।

धरं मुहूर्तं विदितं घंटेन श्रेयसे यतः ॥ १२ ॥

गद्वाङ्ग नाम राजर्षिर्वास्वियतामिहायुष ।

मुहूर्तान्मध्वमुत्सृज्य गतवानभय हरिम् ॥ १३ ॥

तथाप्यतर्हि कीरम्य मस्राहं जीवितवधिः ।

उपकल्पय सत्तम ताराघन्ताम्यगयिषम् ॥ १४ ॥

अन्तर्बाल तु पुत्र्य आगत गतमाश्रमः ।

छिन्द्यागद्गन्धर्वाण्यमृदां दहऽनुय च तम् ॥ १५ ॥

बीकनफो ऐसा बना लिया जाय कि मृत्युके सम्म भगवान्की स्मृति अवश्य बनी रहे ॥ ६ ॥ परीक्षित । जो निर्गुण स्वरूपमें स्थित हैं एवं विधि-नियेधकी मर्यादाको छोड़ चुके हैं, वे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी प्रायः भगवान्के अनन्त कल्याणमय गुणगणोंके वर्णनमें रमे रहते हैं ॥ ७ ॥ द्वापरके अन्तमें इस भगवद्रूप अथवा वेदतुल्य श्रीमद्भगवत नामके महापुराणका अपने पिता श्रीकृष्णद्वैपायनसे मैंने अध्ययन किया था ॥ ८ ॥ राजर्षे ! मेरी निर्गुणस्वरूप परमात्मामें पूर्ण निष्ठ है । फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर क्लीकोंने बलाव मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया । यही कारण है कि मैंने इस पुराणका अध्ययन किया ॥ ९ ॥ तुम भगवान्के परम भक्त हो, इसलिये तुम्हें मैं इसे सुनाऊंगा । जो इसके प्रति श्रद्धा रखते हैं, उनकी कुछ वित्तवृत्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रभुके साथ बहुत शीघ्र लग जाती है ॥ १० ॥ जो लोग शोक या परलोककी चिन्ता भी वस्तुकी इच्छा रखते हैं, या इसके विपरीत संसारमें दुःखका अनुभव करके जो उससे विरक्त हो गये हैं और निर्मम मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंके लिये तथा योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि वे भगवान्के नामोंका प्रेमसे संकीर्तन करें ॥ ११ ॥ अपने कल्याण-साधनकी ओरसे असाधवान रहनेवाले पुरुषकी कर्तव्ये छन्वी आयु भी अनजानमें ही व्यर्थ बीत जाती है । उससे क्या फल ! साधनानिसे ज्ञानपूर्वक चिन्तायी हुई धरती, दो धरती भी श्रेष्ठ है ; क्योंकि उसके द्वारा अपने कल्याणकी चेष्टा तो की जा सकती है ॥ १२ ॥ राजर्षि कृत्वाङ्ग अपनी आयुकी सम्पत्तिको समय जानकर दो धरतीमें ही सब कुछ त्यागकर भगवान्के अवकाशको प्राप्त हो गये ॥ १३ ॥ परीक्षित ! अभी तो तुम्हारे जीवनकी अवधि सात दिनकी है । इस बीचमें ही तुम अपने परम कल्याणके लिये जा कुछ करना चाहिये, समय कर लो ॥ १४ ॥

शुश्रूषा समय जानकर मनुष्य धनदाय नहीं । उसे जानिये कि वह धन्यके शरीरसे शरीर और उससे सम्बन्ध रखनेवालोंका प्रति सम्पत्तिको क्या डाल ॥ १५ ॥

गृहात् प्रप्रजितो धीरः पुण्यतीर्थज्जलाप्लुत ।

गुप्तं विविक्त आमीनो विभित्कल्पितामने ॥१६॥

अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षर परम् ।

मनो यच्छजितश्रामो ब्रह्मबीजमविमरन् ॥१७॥

निपच्छद्विषयस्योऽस्मान्मनसा बुद्धिमारथि ।

मन कर्मभिराश्रित शुभार्थं धारयेद्विद्या ॥१८॥

तत्रैकाग्र्यं ध्यायेदब्युच्छिन्नेन चेतसा ।

मना निर्विषय युक्त्वा ततः किञ्चन न सरत् ।

पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥१९॥

रजस्तमाम्बामाश्रित्य विमूर्धं मन आत्मन ।

यच्छद्धारणया धीरा इन्ति या तत्कृत मलम् ॥२०॥

यस्यां मंधार्यमाणायां योगिना भक्तिरक्षण ।

आनु मम्पद्यत याग आधय भद्रमीश्वर ॥२१॥

राजयोग

यथा मंधार्यते ब्रह्मन् धारणा यत्र सम्मता ।

पादयो वा हरदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥२२॥

बीजक उपाय

त्रितासना जितश्रामा जितमद्वैत जितद्विषय ।

स्पृष्टे भगवतो रूप मनः संधारयेद्विद्या ॥२३॥

गिणमम्य दहाऽयं म्यविष्टयं म्यवीपमाम् ।

यपदं दम्यत विन्नं भूतं भयं भयं मन् ॥२४॥

दीपके साध करने निकटकर पवित्र तीर्थके जलमें स्नान करे और पवित्र तथा एकाग्र स्थानमें विविध रूप आसन लगाकर बैठ जाय ॥ १६ ॥ तत्पश्चात् परम पवित्र 'अ' उच्चारण तीन माश्राओंसे युक्त प्रणवका मन-ही-मन रूप करे । प्राणवायुको बशमें करके मनका दमन करे और एक क्षणके नियमे ही प्रणवको न भूटे ॥ १७ ॥

बुद्धिकी सहायतासे मनके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयों से हटा ले । और कर्मकी वासनाओंसे बचकर हुए मनको विचारके द्वारा एकत्र भगवान्‌के मङ्गलमय रूपमें ध्याये ॥ १८ ॥ स्थिरचित्तसे भगवान्‌के श्रीविग्रहमेंसे किसी एक अङ्गका ध्यान करे । इस प्रकार एक-एक अङ्गका ध्यान करते-करते विषय-वासनासे रहित मनका पूर्णरूपसे भगवान्‌में ऐसा लक्ष्मी कर दे कि फिर और किसी विषयका चिन्तन ही न हो । यही भगवान्‌

विष्णुका परमपद है, जिसे प्राप्त करने मन भगवद्व्यक्तमय आनन्दसे भर जाता है ॥ १९ ॥ यदि भगवान्‌का ध्यान करते समय मन रजोगुणसे विक्षिप्त या तमोगुणसे युक्त हो जाय तो बंधाये नहीं । धर्मके साथ योगधारणाके द्वारा उसे बशमें करना चाहिये, क्योंकि धारणा ठीक दोनों गुणोंके श्रेष्ठोंके मिश्र देनी है ॥ २० ॥

धारणा स्थिर हो जानेपर ध्यानमें जब चागी अपने परम मङ्गलमय आधय (भगवान्) को देखना है, तब उसे तुरंत ही भक्तियोगकी प्राप्ति हो जाती है ॥ २१ ॥

परीश्रित पूजा—ब्रह्मन् । धारणा जिस मागसे जिस वस्तुमें जिस प्रकार की जाती है और उसका क्या स्वरूप माना गया है जो 'गोप' की मनुष्यक मनका मंत्र मिश्र देती है ॥ २२ ॥

शुद्धदेवकीने पूजा—परीश्रित । आसन, आसन, आसन और इन्द्रियोंपर नियंत्रण प्राप्त करने की बुद्धिके द्वारा मनको भगवान्‌के रूप में ध्याना चाहिये ॥ २३ ॥ यह धारणमय सद्गुरु जिस जो बुद्धि की है या हाथ—मन्त्र-कर्म-गण विज्ञाने गीता पढ़ना है यही भगवान्‌का रूप-मन्त्र-गण

आण्डकोष्ठे क्षरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते ।
वैराज पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाभयः ॥२५॥
पातालमेतस्य हि पादमूर्त्तं
पठन्ति पार्थिवप्रपद रसावलम् ।
महातल विषमसृजोऽथ गुण्यौ
तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घ ॥२६॥
जानुनी सुतल विषमूर्ते
रुरुद्वयं वितल चातलं च ।
महीतलं तज्जर्पनं महीपते
नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥२७॥
उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य
ग्रीवा महर्षदनं वै जनोऽस्य ।
तपा रंराटीं विदुरादिपुंगवः
सत्पं तु श्रीर्पाणि सहस्रशीर्ष्ण ॥२८॥
इन्द्रादयो बाहव आङ्गुल्लाः
कण्ठो दिशः भोत्रममुष्य ध्वजः ।
नामस्यदक्षौ परमस्य नोसे
घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमभिरिधः ॥२९॥
घोरधिणी चक्षुरमृत्यवज्ज
पशुभाणि विष्णोरहनी तमे च ।
तद्वज्रविजृम्भ परमेष्ठिधिष्ण्य
मापोऽस्य तावत् रस एव जिह्वा ॥३०॥
छन्दांस्यनन्तस्य द्विरो गृणन्ति
दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ।
हस्तौ जनो मादकरी च माया
दुरन्तसर्गो यदपाङ्गभोक्षः ॥३१॥
ग्रीवोचरोष्ठाञ्चर एव लाभो
धर्मस्तनोऽधर्मपथोऽस्येष्टं पृष्ठम् ।
कन्तस्य मेढं वृषणौ च मित्रौ
हृदिः समुद्रा गिरयोऽस्मिन्तथाः ॥३२॥
नघोऽस्य नाभ्योऽथ तनुरुभाणि
महीरुहा विष्वक्तनोर्नृपेन्द्र ।
अनन्तवीर्यः अस्तिर्त मातरिथा
गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः ॥३३॥
ईशस्य केशान् विदुरमुषाहान्
पासस्तु संघ्नां कुरुवर्य भुञ्जः ।

और विराट् धारी है ॥२४॥ जल, अग्नि, वायु, आकाश,
जहङ्कार, महत्त्व और प्रकृति—इन सात आत्मार्थों
धारे हुए इस आण्डकोष्ठपर्यन्त नो विराट् पुरुष मान
हैं, ये ही धारणाके आद्य हैं, उनकी धारणा की जाती
है ॥२५॥ तब वह पुरुष उनका इस प्रकार वर्णन करते हैं—
पाताल विराट् पुरुषके तल्ये हैं, उनकी एखियाँ और पै
रसातल हैं, दोनों गुल्फ—एकीके ऊपरकी गोंठें म्हातल हैं,
उनके पैरके पिंड़े तज्जर्पण हैं, ॥२६॥ विषमूर्ति माननेके
दोनों घुटने सुतल हैं, जोंच कित्त और कण्ठ हैं, पै
भूतल है और परीक्षित । उनके नाभिरूप सरोवरकी
ही आकाश कहते हैं ॥ २७ ॥ आदिपुरुष परमात्माकी
छातीको खगलेक, गलेको म्हालेक, मुँहको जनलेक और
लच्छटको तपोलेक कहते हैं । उन सहस्र सिरधाले मान
का मस्तकसमूह ही सत्यलेक है ॥२८॥ इन्द्रादि देवता
उनकी मुबार हैं । दिशाएँ कल और शब्द ध्वजोनिय
हैं । दोनों अधिनीकुमार उनकी नासिकाके छिद्र हैं, गन्ध
घ्राणेन्द्रिय है और चक्षुकी हुई आभा उनका मुख है ॥२९॥
भागान् कियुके नेत्र अन्तरिक्ष हैं उनमें देखनेकी
शक्ति सूर्य है, दोनों पल्लवें रात और दिन हैं, उनका
भूविष्यस आकाशक है । तावु जङ्घ है और जिह्वा
रस ॥ ३० ॥ केंदोंको भागान्का अन्तर्ग कहते हैं और
यन्त्रों दाहें । सब प्रकारके स्नेह दाँत हैं और उनकी
जगन्मोहिनी मायाको ही उनकी मुसकान कहते हैं ।
यह अनन्त सुख उसी मायाका कटाक्ष-विक्षेप है ॥३१॥
कजा ऊपरका होठ और अंभ ग्रीचेका होठ है । वर्म
खान और अवर्म पीठ है । प्रवापनि उनके मूत्रेन्द्रिय हैं,
मित्राकरुण अण्डकोष्ठा हैं, समुद्र कोख है और बड़े-बड़े
पर्वत समकी हड्डियाँ हैं ॥ ३२ ॥ राजन् ! विषमूर्ति विराट्
पुरुषकी नाभियाँ भजियाँ हैं । हृद्य रोम हैं । पय प्रवह
वायु खास है । कज्ज समकी पात है और गुणोंका चक्र
बधते रहना ही समका कर्म है ॥ ३३ ॥ परीक्षित !
बादलोंको समके केश मानते हैं । सन्ध्या सम अमन्त-
का वस है । महाभावेनि अव्यक्त (मूलप्रकृति) को

१ प्रा पा —अण्डकोष्ठो । २ प्रा पा —समुद्र । ३ प्रा पा —तज्जर्पणे । ४ प्रा पा —लच्छट । ५ प्रा
पा —जला । ६ प्रा पा —अव च । ७ प्रा पा —स्नेहकला द्विजान्यः । ८ प्रा पा —दि । ९ प्रा पा —
नभस्तलः सरोवरः । १० प्रा पा —मित्रः ।

अध्वक्तमाहुर्दयं मनस्य
 स चन्द्रमा सर्वविकारकोशः ॥३४॥
 विद्वानशक्तिं महिमायनमस्ति
 सर्वस्मिनोऽन्तःकरणं गिरिश्रमम् ।
 अथाप्रवर्तुर्गुणगङ्गा नत्नानि
 मयै मृगाः पशवः भोषिदेशे ॥३५॥
 वयांसि तदुष्मास्तरणं विचित्रं
 मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।
 गन्धर्वविद्याधरचारणाधर
 स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥३६॥
 ब्रह्माननं क्षत्रमुद्यो महात्मा
 बिह्वरक्षितकृष्णवर्णः ।
 नानाभिभाभीज्यगणोपपन्नो
 द्रव्यात्मक कर्म वितानयोग ॥३७॥
 इषानसावीश्वरविग्रहस्य
 य संनिवेश कथितो मया ते ।
 संधार्यतेऽस्मिन् वपुषि स्वषिप्ते
 मनः स्वमुदया न यतोऽस्ति किञ्चित् ॥३८॥
 स सर्वधीश्चतुर्भुवतर्ष
 आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितक ।
 य मत्पमानन्दनिधिं भजेत्
 नान्यत्र सज्जेद् यत् आत्मपातः ॥३९॥

ही उनका हृदय घतव्यय है और सब विकारोंका खजाना
 उनका मन चन्द्रमा कहा गया है ॥ ३४ ॥ म्हात्माको
 सर्वात्मा भगवान्का विष्ट कहते हैं और रुद्र उनके अहङ्कार
 करते गये हैं । घोड़, खर, ऊँट और हाथी उनके नख हैं ।
 कर्मों रखनेवाले सारे मृग और पशु उनके कटिप्रदेशमें स्थित
 हैं ॥ ३५ ॥ तरङ्ग-तरङ्गके पक्षी उनके अद्भुत रचनाकोश हैं ।
 सायम्पुत्र मनु उनकी धुदि हैं और मनुकी संज्ञान
 मनुष्य उनके निवासस्थान हैं । गन्धर्व, विद्याधर, चारण और
 अप्सराएँ उनके पङ्कज आदि स्कोकी स्तुति हैं । दैत्य
 उनके वीर्य हैं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मुक्त, क्षत्रिय सुनार्य,
 वैश्य ब्राह्मण और शूद्र उन विष्ट-पुरुषके चरण हैं । विविध
 देवताओंके नामसे जो बड़े-बड़े द्रव्यमय यह किये जाते हैं, वे
 उनके कर्म हैं ॥ ३७ ॥ परीक्षित ! विष्ट भगवान्के
 स्थूलशरीरका यही स्वरूप है, सो मैंने तुम्हें सुना
 दिया । इसीमें मुमुक्षु पुरुष बुद्धिके द्वारा मनको स्थिर
 करते हैं, क्योंकि इससे भिन्न और कोई वस्तु नहीं है
 ॥ ३८ ॥ जैसे स्वप्न देखनेवाला स्वप्नावस्थामें
 अपने-आपको ही विविध पदार्थके रूपमें देखता है,
 वैसे ही मनुकी बुद्धि-वृत्तियोंके द्वारा सब कुछ अनुभव
 करनेवाला सर्वान्तर्धामी परमहमा भी एक ही
 है । उन मत्पस्वरूप आत्मनिधि भगवान्का ही मन्त्रन
 करता चाहिये, अन्य किन्ना भी वस्तुमें आसक्ति नहीं
 करनी चाहिये । क्योंकि यह आसक्ति जीवके अथ-पन्न
 का हेतु है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहन्सा संहितायां द्वितीयस्कन्ध

महापुरुषसंस्थानुशर्गने प्रथमाऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवाद्देवस्य और स्वस्वम कर्त्तव्यी धारणा तथा क्रमयुक्ति और सधोयुक्तिकर वचन

वीर्यक उवाच

एवं पुरा धारणयाऽऽत्मयोनि
 नैष्टी स्मृति प्रत्यवरुष्य तुष्टात् ।
 तथा मसज्जैदममोषदृष्टि
 र्धर्षाप्यपात् प्राग् कृपवसायबुद्धि ॥ १ ॥

औष्ठुषदेवकी कहते हैं—स्मृतिके धारणमें प्रसाजीने
 इसी धारणाके द्वारा प्रसन्न हुए भगवान्से वह स्मृतिविरपक
 स्मृति प्राप्त की थी, जो पहले प्रत्यवरुष्यमें विद्युत हो गयी थी।
 इससे उनकी दृष्टि अमोघ और बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी ।
 सब उन्होंने इस अगाधकी वैसे ही रखा जैसा कि यह
 प्रत्यवे पहले था ॥ १ ॥

श्रीमद्स हि ब्रह्मण एष पन्था

पन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थः ।

परिभ्रमस्तत्र न विन्दतेऽर्घान्

मायामये धामनया शयानः ॥ २ ॥

अतः कविर्नामसु साधदर्थः

सादप्रमत्तो व्यवसायपुद्भिः ।

सिद्धञ्ज्यपार्थे न यतेत तत्र

परिभ्रम तत्र समीक्षमाणः ॥ ३ ॥

सत्त्वां विसौ किं कश्चिपो प्रभासै

र्षदौ स्वसिद्धं शुपनईये किम् ।

सत्यञ्जलौ किं पुरुषान्नपाश्या

दिग्वत्कलादौ सति किं दुर्कृते ॥ ४ ॥

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां

नैवाक्षिपाः परमृत् सति तोऽप्यष्टुष्पन् ।

रुद्धा गुहा किमस्मितोऽवति नोपसन्नान्

कस्मात् भवन्ति क्वयो धनदुर्मदान्धान् ॥ ५ ॥

एषं स्वचिते स्थत एष सिद्ध

आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः ।

तं निर्दूतो नियतार्थो भजेत

संसारहेतुपरमम् यत्र ॥ ६ ॥

येदोकी कर्ण-बीबी ही इस प्रकारकी है कि कोसेरी
युद्धि स्वर्ग आदि निरर्थक नामोंके पेरमें फँस जाती है, जो
वहाँ सुखकी वासनासे स्वप्न-सा देखता हुआ भगवत्पद
है, किन्तु उन मायामय लोकमें वहाँ भी उसे सचे
सुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ इसलिये किन्तु
पुरुषको चाहिये कि यह विविध नामवाले पदोंकी
उत्तना ही व्यवहार करे, जितना प्रयोजन
हो । अपनी बुद्धिको उनके निस्सालाके निष्कर्ष
परिपूर्ण रखे और एक क्षणके लिये भी
असाधधान न हो । यदि सत्सत्त्वके पदार्थ प्राप्तकर
परिभ्रमके यों ही मिल जायें, तब उनके उपार्जन
परिग्रह व्यर्थ समझकर उनके लिये कोई प्रयत्न न
करे ॥ ३ ॥ जब जमीनपर सोनेसे कम चल सक
है, तब पौधोंके लिये प्रयत्न करनेसे क्या प्रयोजन
जब मुनार्थ अपनेको मगवान्की कुपासे स्वयं ही मिल
हुई हैं, तब तत्त्वियोंकी क्या आवश्यकता । जब वह किं
काम चल सकता है तब बहुत-से कर्तन क्यों क्यों
हलकी छल पहनकर या बलहीन रहकर भी यह
जीवन धारण किया जा सकता है तो कौनकी ल
आवश्यकता ॥ ४ ॥ पहननको क्या शक्तिमें लिये
नहीं हैं ! मूख लगनेपर दूसरोंके लिये ही शरीर धारण
करनेवाले ब्रह्म क्या फल-फलकी भिक्षा नहीं देते ! जो
चाहनेवालोंके लिये नदियाँ क्या बिल्कुल सूख गयी हैं !
रहनेके लिये क्या पहाड़ोंकी गुफाएँ बंद कर दी गयी
हैं ! अरे भाई ! सब न सही, क्या मगवान् भी अपने
धारणागोत्रोंकी रक्षा नहीं करते ! ऐसी स्थितिमें बुद्धिमान्
लोग भी धनके लक्षमें चूर धर्मही धनियोंकी वास्तविकी
क्यों करते हैं ॥ ५ ॥ इस प्रकार विरक्त हो जनने
अपने हृदयमें निज विद्यन्माम, सत्ताः सिद्ध, आत्मबल
परम प्रियतम, परम सत्य जो अनन्त भगवान् है, को
प्रेम और आत्मरूपसे वह निश्चय करके उन्हीपर भक्त
करे क्योंकि उनके भजनसे जन्म-मृत्युके चक्रमें
बालनेवाले अज्ञानका नाश हो जाता है ॥ ६ ॥

१ मा पा—शब्दस्य । २ मा पा लभ । ३ मा पा—

५ मा पा—प्रियायो । ६ मा पा—मुनिहो ।

१ मा पा—बाही न सिद्धे । ४ मा पा—कर्मका ।

शान्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था

यन्नाममिर्ष्यायति धीरपार्थे ।

परिभ्रमन्तत्र न विन्दतेऽर्थान्

मायामये धामनया शयान ॥ २ ॥

अत कविर्नामसु यावदर्धः

स्यादप्रमत्तो व्यवसायपुद्गि ।

मिदऽन्यथाधे न यतेत तत्र

परिभ्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥ ३ ॥

मत्पां क्षितौ किं कश्चिपोः प्रयासै

बाहौ स्वसिद्धं ध्रुपबर्हिणैः किम् ।

मत्पञ्जलौ किं पुरुषान्नपात्र्या

दिग्बन्कलादौ सति किं दुहृष्ट ॥ ४ ॥

वीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षा

नैवाहिपा परभृत मरितोऽप्यगुप्यन् ।

रुद्धा गुहा किममिताऽवति नोपसन्नान्

कस्माद् भवति कथया धनदुर्मदाधान् ॥ ५ ॥

एष स्वधिसे स्वत एष सिद्ध

आत्मा प्रियाऽर्थो भगवाननन्त ।

तं निर्गतो नियताथो भजेत

मंमारहत्परमथ

यत्र ॥ ६ ॥

येदोकी वर्णन-शैली ही इस प्रकारकी है कि छेमेनी
युधि स्वर्ग आदि निरर्थक मामोंके फलमें पँस जाती है, जो
वहाँ सुखकी वासनासे स्वप्न-सा देखता हुआ मगने लग
है; किंतु उन मायामय लोकमें वहाँ भी उसे सने
सुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ इसलिये भिन्न
पुरुषको चाहिये कि वह विविध नामवाले पदोंसे
उतना ही व्यवहार करे, जितना प्रयोजन
हो। अपनी बुद्धिको उनकी निस्तारणके निकट
परिपूर्ण रखे और एक क्षणके लिये
असावधान न हो। यदि संसारके पदार्थ प्रारब्धवश
परिभ्रमके पों ही मिल जायें, तब उनके उपार्जन
परिधम व्यर्थ समझकर उनके लिये कोई प्रयत्न
करे ॥ ३ ॥ जब जमीनपर सोनेसे काम चल
है, तब पल्लवक लिये प्रयत्न करनेसे क्या प्रयोजन
जब मुजार् अपनेको भगवान्की कृपासे स्वयं ही नि
हुई हैं, तब तत्त्वियोंकी क्या आवश्यकता। जब अक्षति
काम चल सकता है तब बहुतसे बर्तन क्यों क्यों
बुद्धकी छल पहनकर या बलहीन रहकर भी प
जीवन धारण किया जा सकता है तो क्योंकी क
आवश्यकता ॥ ४ ॥ पहननेको क्या शस्त्रोंमें बि
महीं हैं। भूख लगनेपर दूसरोंके लिये ही शरीर बत
करनेवाले बुद्ध क्या फल-फलकी भिक्षा नहीं देते। ज
बाहनवालोंके लिये नदियों क्या बिस्कुट सूख गयी हैं
रहनेके लिये क्या पहाड़ोंकी गुफाएँ बंद कर दी ग
हैं। अरे भाई! सब न सही, क्या मगधान् भी बनें
शरणागतोंकी रक्षा नहीं करते। ऐसी स्थितिमें बुद्धि
योग भी धनके नशेमें घूर घमेही धनियोंकी चाहें
क्यों करते हैं ॥ ५ ॥ इस प्रकार विरक्त हो जलेन
अपने हृदयमें नित्य गिरान्याम, सत सिद्ध, आत्मसहस्र
परम प्रियमम, परम सत्य जो अनन्त भगवान् की ओ
प्रेम और आनन्दसे दृढ़ निश्चय करके उन्हींका भजन
करे; क्योंकि उनके भजनसे जन्ममृत्युके चर
दानेवाले अश्रमका मार्ग हो जाता है ॥ ६ ॥

१ मा पा — अक्षरम् । २ मा पा अक्ष । ३ मा पा — यती च विदे । ४ मा पा — यत्रयम् ।

५ मा पा — विदुषो । ६ मा पा — युनिह ।

नाम्नां स्थितं हृद्यधिरूप्य तत्ता-

दुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ।

ततोऽनुसन्धाय धिया मनस्वी

स्वतालुमूलं क्षनकैर्नयेत् ॥२०॥

तस्मात् अघोरान्तरमुपयेत्

निरुद्धसमापतनोऽनपेक्ष ।

नित्वा मुहूर्तार्धमङ्कुष्ठदृष्टि-

निर्भिद्य मूर्धन् विमुञ्जेत्परं गतः ॥२१॥

यदि प्रयास्यन् नृप पारमेष्ठ्य

वैश्वानसानामृतं यच्च विहराम् ।

अग्राधिपत्यं गुणसन्निभाये

सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥२२॥

योगेश्वराणां गतिमादुरन्त-

र्वह्निखिलोक्या पवनान्तरात्मनाम् ।

नै कर्मभिस्तां गतिमान्पुनन्ति

विधातपोयोगसमाधिभावात् ॥२३॥

वैश्वानरं याति विहायसा गत

सुपुष्पया ब्रह्मपथेन क्षोचिषो ।

विपुसकस्त्रोऽथ हरेरुदस्तात्

प्रयाति चक्रं नृप क्षैशुमारम् ॥२४॥

तच्च विष्मनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णो

रणीयसा विरजेनात्मनैक ।

नमस्कृतं ब्रह्मविदमुपैति

कल्पाम्बुपो यच्च विपुधा रमन्ते ॥२५॥

अथो अनन्तस्य मुखानलेन

दन्दब्रह्मानं स निरीक्ष्य विश्वम् ।

आय ॥ १० ॥ मनस्वी योगीको चाहिये कि नामिका मणिपूरकमें स्थित वायुको हृद्यचक्र अनाहतमें, वहाँसे उदानवायुके द्वारा वक्षःस्थलके ऊपर विपुस चक्रमें, फिर उस वायुको धीरे धीरे तालुमूलमें (विपुस चक्रके अग्रभागमें) चढ़ा दे ॥ २० ॥ तदनन्तर दो आँख, दो कान, दो नासाद्विज और मुख—इन सातों छिद्रोंको रोककर उस तालुमूलमें स्थित वायुको मौहोंके बीच आङ्गाचक्रमें ले जाय । यदि किसी छेकमें जानेकी इच्छा न हो तो आधी घड़ीतक उस वायुको वहाँ रोककर स्थिर लक्ष्यके साथ उसे सहचारमें ले जाकर परमस्थानमें स्थित हो जाय । इसके बाद ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके शरीर-हृदिपादिको छोड़ दे ॥ २१ ॥

परिक्षिप्त । यदि योगीकी इच्छा हो कि मैं ब्रह्मलोकमें जाऊँ, आठों सिद्धियों प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धोंके साथ विहार करूँ अपना त्रिगुणमय ब्रह्माण्डके किन्हीं भी प्रदेशमें विचरण करूँ, तो उसे मन और हृदिप्रदेशोंके साथ ही केवल शरीरसे निकलना चाहिये ॥ २२ ॥ योगियोंका शरीर वायुकी भाँति सूक्ष्म होता है । उपासना, तपस्या, योग और ज्ञानका सेवन करनेवाले योगियोंको त्रिजगत्के बाहर और भीतर सर्वत्र स्वच्छन्दरूपसे विचरण करनेका अधिकार होता है । केवल कर्मोंके द्वारा इस प्रकार कैरोक्त-लोक विचरना नहीं हो सकता ॥ २३ ॥ परिक्षिप्त । योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुपुष्पाके द्वारा जब ब्रह्मलोकके स्थित प्रस्थान करता है, तब पहले वह आकाशमार्गसे अग्निस्थानमें जाता है, वहाँ उसके बच्चे-सुप्ते मूळ भी जल जाते हैं । इसके बाद वह वहाँसे ऊपर मगधान् श्रीहरिके शिखुमार नामक ज्योतिर्मय चक्रपर पहुँचता है ॥ २४ ॥ मगधान् विपुसक यक्ष शिखुमार चक्र विष्वक्ब्रह्माण्डके भ्रमणका केन्द्र है । उसका अतिक्रमण करके अत्यन्त सूक्ष्म एवं निर्मल शरीरसे वह अनेक ही महर्लोकमें जाता है । वह लोक ब्रह्मेन्द्राचार्योंके द्वारा भी वन्दित है और उसमें कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले देवता विहार करते रहते हैं ॥ २५ ॥ फिर जब प्रस्थ-का समय आता है, तब नीचेके छेदोंको देखके मुखसे निकली हुई आगके द्वारा मगध होते देख वह ब्रह्मलोकमें

पावन जायेत पराधरेऽस्मिन्
विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ।

तावत् स्वीयः पुरुषस्य रूपं
क्रियावसाने प्रयतः क्षरेत् ॥१४॥

स्विरं सुखं वासनमाभितो यति-
र्यदा जिहसुरिममङ्ग लोकेषु ।

कालं च दंष्ट्रे च मनो न मञ्जयेत्
प्राणान् निमज्जन्मनसा जित्वासु ॥१५॥

मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य
क्षेत्रज्ञं एतां निनयेत् तमात्मनि ।

आत्मानमात्मन्वबुरुष्य धीरो
लब्धोपशान्तिर्विरमेत् कृत्वात् ॥१६॥

न यत्र कालाऽनिमिषा परैः प्रभुः
इतो नु देवा अगतां य ईश्वरे ।

न यत्र सत्त्वं न रजस्तमस
न वै विकारो न महान् प्रधानम् ॥१७॥

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तव
यन्नेति नेतीत्यतदुत्तिसुखम् ।

विमुन्य दौरात्म्यमनन्यमौहदा
इदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥१८॥

इत्थं मुनिस्त्वत्समं व्यवस्थितो
विज्ञानध्वीर्यसुरन्विताश्रयः ।

स्वाप्णिनाऽऽपीड्य गुरुं ततोऽनिलं
स्यानेषु पदेष्वसमयोजितकलमः ॥१९॥

चाहिये ॥ १६ ॥ ये विश्वेश्वर भावान् इस नहीं, इस हैं । सगुण, निर्गुण—सब कुछ इन्हींका स्वरूप है । जबतक इनमें अन्य प्रेमस्य भक्तियोग न हो तब तक साधकको नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके बाद एकप्रकार भावान्के उपर्युक्त स्थूल रूपका ही चिन्तन करने चाहिये ॥ १४ ॥

परीक्षित ! जब योगी पुरुष इस अनुभूतिमें लगे रहना चाहे, तब देश और कालमें मनको बंधाये । सुखार्थक स्थिर आसनसे बैठकर प्राणोंको जीतकर मनसे इन्द्रियोंका संयम करे ॥ १५ ॥ तदनन्तर अपनी निर्मल बुद्धिसे मनको नियमित क मनके साथ बुद्धिको क्षेत्रज्ञमें और क्षेत्रज्ञको अन्तरात्मन कीन कर दे । फिर अन्तरात्मको परमात्मन कीन करके धीर पुरुष उस परम शक्ति अवस्थामें स्थित हो जाय । फिर उसके विषये कर्तव्य शेष नहीं रहता ॥ १६ ॥ इस अवस्थासंगुण भी नहीं है, स्थिर रसोगुण और तमोगुणकी बात ही क्या है । लज्जाहार, ग्लान्य और प्रकृतिको यहाँ अस्तित्व नहीं है । उस स्थितिमें जब देवताओं नियामक काल्पकी भी दाय नही रहती, तब देवता भी उनके अधीन रहनेवाले प्राणी तो यह ही कैसे रहें ॥ १७ ॥ योगी भोग प्यस नहीं, यह नहीं—एक प्रकार परमात्मासे स्थित पदार्थोंका त्याग करना चाहें और वही तब उसके सम्बन्धी पदार्थोंमें बल बुद्धिका त्याग करके हृदयके द्वारा पद-पदपर मान्य जिस परमसुख स्वरूपका आम्बुजान् करते हुए वह प्रेमसे परिपूर्ण रहते हैं, वही भाषण् विष्णुका पद पद है—इस विषयमें समस्त शास्त्रोंकी सम्मति है ॥ १८ ॥

ज्ञानदृष्टिके लगे जिसके किठकी वासना न हो गयी है, उस अज्ञानिष्ठ योगीको इस प्रकार का शरीरका त्याग करना चाहिये । पहले एबीस कर्म गुहाको दबाकर स्थिर हो जाय और तब कि

१ मा पा०—मनस्य बुद्ध्या । २ मा पा०—क्षेत्रज्ञेन निनयेत् य आत्मनि । ३ मा पा०—महा-

४ मा पा०—विष्णुः । ५ मा पा०—पदं पदं ।

नाम्नां स्थितं ह्यधिरोप्य तस्मा-

दुदानगत्सोरसि स नयेन्मुनिः ।

ततोऽनुसन्धाय धिया मनस्यी

स्वतत्त्वमूलं शनैर्नयेत् ॥२०॥

तस्माद् अवोरन्तरमुभयेत

निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ।

मित्वा मुहूर्तार्चमकुण्डलदि-

निर्भिद्य मूर्धन् विसृजेन्परं गतः ॥२१॥

यदि प्रयासन् नृप पतमेष्ठ्य

ब्रह्मयसानामृतं यद् विहारम् ।

अष्टाधिपत्यं गुणसन्निभमे

सदैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥२२॥

योगेश्वराणां गतिमाप्नुयन्त

बहिःखिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् ।

नै कर्मभित्तां गतिमाप्नुवन्ति

विद्यत्तपोयोगसमाधिभाजाम् ॥२३॥

वैश्वानरं याति विहायसा गतः

सुषुम्णाया ब्रह्मपथेन शोचिषो ।

विधूतकल्मोऽथ हरेरुदस्तात्

प्रयाति चक्रं नृप शंशुमारम् ॥२४॥

तद् विमनाभिं तत्सिवर्त्यं विष्णो-

रणीयमा विरजेनात्मनःकम् ।

नमस्कृत्य ब्रह्मविदासुपैति

कल्पायुषो रयं विबुधा रमन्ते ॥२५॥

अथो अनन्तस्य मुनानलेन

दन्द्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ।

आय ॥ १९ ॥ मनस्यी योगीको चाश्रिये किं नामिच्छकं
मणिपूरकमे स्थित वायुको हृदयचक्रं अनाहतमे, वहाँसे
उदानवायुके द्वारा कक्ष स्थलके ऊपर विद्युद चक्रमें, फिर
उस वायुको धीरे-धीरे तालुमूलमें (विद्युद चक्रके
अग्रभागमें) चढ़ाये ॥ २० ॥ तदनन्तर दो औंस, दो
कपन, दो नासाष्टिक और मुख—इन सातों छिद्रोंको
रोककर उस तालुमूलमें स्थित वायुको मोहोंके बीच
आकाशचक्रमें ले जाय । यदि किसी लोकमें जानेकी
इच्छा न हो तो आधी बड़ीकफ उस वायुको वहाँ रोककर
स्थिर करके साथ उसे सहस्रारमें ले जाकर परमात्मामें
स्थित हो जाय । इसके बाद ब्रह्मरघ्वर मेदन करके
शरीर-इन्द्रियादिको छोड़ दे ॥ २१ ॥

परीक्षित । यदि योगीकी इच्छा हो कि मैं ब्रह्मचक्रमें
जाऊँ, आठों सिद्धियों प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धीके
साथ विहार करने अपवा त्रिगुणमय ब्रह्माण्डके किसी भी
प्रदेशमें विचरण करने, तो उसे मन और इन्द्रियोंको
साथ ही लेकर शरीरसे निकलना चाहिये ॥ २२ ॥
योगियोंका शरीर वायुकी मीनि सूक्ष्म होता है । वपासना,
तपस्या, योग और ज्ञानका सेवन करनेवाले योगियोंको
त्रिलोकोंके बाहर और भीतर सर्वत्र स्वच्छन्दरूपसे
विचरण करनेका अधिकार होता है । केवल कर्मोंके द्वारा
इस प्रकार के लोक-लोक विचरना नहीं हो सकता ॥ २३ ॥
परीक्षित ! योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुसुम्णाक द्वारा जब
ब्रह्मचक्रके लिये प्रस्थान करता है, तब पहले वह
आकाशमार्गसे अग्निलोकमें जाता है, वहाँ उसके वचे-
मुखे मन्त्र भी जप जाते हैं । इसके बाद वह वहाँसे ऊपर
भगवान् श्रीहरिके शिखरपर नामक ज्योतिर्मय चक्रपर
पहुँचना है ॥ २४ ॥ भगवान् विष्णुका यह शिखर
चक्र विश्वब्रह्माण्डके अग्रभागका केन्द्र है । उसका अनिक्रमण
करके अत्यन्त सूक्ष्म एवं निमग्न शरीरसे वह अकला ही
महर्षिके जाता है । वह लोक ब्रह्मवेद्यार्थोंके द्वारा भी
बन्धित है और उसमें कल्पपर्यन्त जीवन रहनचाय
देकरा विहार करते रहते हैं ॥ २५ ॥ फिर जब प्रत्य-
क्ष मयम जाता है, तब मीथेके सारोंको शेरक मुन्हे
निकली हुई आगके द्वारा मस हाते टप वह ब्रह्मलोकमें

निर्याति सिद्धश्चरुदधिष्यं

यद् द्वैपरार्थं सद्यः पारमेष्ठ्यम् ॥२६॥

न यत्र शोको न अरा न मृत्यु

नर्पतिर्न चोद्वेगश्च ते कृतमिदम् ।

यच्चिद्यतोऽयं कृपयान्निदविदां

दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥२७॥

ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्मय

स्तेनात्मनोऽनलमूर्तिस्त्वरत्नम् ।

ज्योतिर्मयो वायुपेत्य काले

वाय्वात्मना त्वं चरदात्मलिङ्गम् ॥२८॥

ग्रहान् गन्धं रसनेन वै रस

रूपं तु दृष्ट्वा श्वसन् त्वचैव ।

भोव्रणं चोपेत्य नभोऽगुणत्वं

प्राणेन चाकृतिमुपैति योगी ॥२९॥

सं भूतसंस्मृतिर्निरासनिर्कर्म

मनोमयं देवमयं विकार्यम् ।

ससाद्य गत्या सह तेन याति

विद्वान्मत्तश्च गुणसनिरोधम् ॥३०॥

कर्म आता है, जिस कर्मके फलें बड़े-बड़े सिद्धेश विमानोंपर निवास करते हैं । उस कर्मके फलें वायु गन्धाकी आधुके समान ही दो परार्थकी है ॥ २६ ॥

यहाँ न शोक है न दुःख, न शुकापा है न मृत्यु । फिर यहाँ किसी प्रकारका उद्वेग या मय तो हो ही कैसे सकता है । यहाँ यदि दुःख है तो केवल एक वाक्पत्र ।

यह यही कि इस परम्पदको न जाननेवाले लोगोंके जन्म-मृत्युमय अत्यन्त घोर साहचर्योंको देखकर दयाकरा यहाँ कि लोगोंके मनमें बड़ी व्यापा होती है ॥ २७ ॥

सत्यलोके पूर्णचनेके पश्चात् वह योगी निर्मय होकर अपने सूक्ष्म शरीरको पृथ्वीसे मिला देता है और फिर उतावड़ी न करते हुए सदा आकर्णको मेटन करता है । पृथ्वीरूपसे जल्दको और जल्दरूपसे अविमम आकर्णों-

का प्राप्त होकर वह ज्योतिरूपसे वायुरूप आकर्णमें आ जाता है, और यहाँसे समुपपर गन्धाकी अन्तर्गता शेष करानेवाले आकाशरूप आकर्णको प्राप्त करता है ॥ २८ ॥

इस प्रकार स्थूल आकर्णोंको पार करते समय उच्छ्वी इन्द्रियों भी अपने सूक्ष्म अविद्यमानमें लीन होती जाती हैं । घ्राणेन्द्रिय गन्धत आत्मानं, रसना रसतन्मात्रानं, नेत्र

रूपतन्मात्रानं, त्वचा स्पर्शतन्मात्रानं, श्रोत्र शब्दतन्मात्रानं और कर्मेन्द्रिय अपनी-अपनी क्रियाशक्तियों मिळकर अपने-अपने सूक्ष्मस्वरूपको प्राप्त हो जाती हैं ॥ २९ ॥

इस प्रकार योगी पञ्चभूतोंके स्थूल-सूक्ष्म आकर्णोंको पार करके अहङ्कारमें प्रवेश करता है । यहाँ सूक्ष्म भूतोंके तामस अहङ्कारमें, इन्द्रियोंको राजस अहङ्कारमें तथा मन और इन्द्रियोंके अविद्यता देवताओंको सार्विक अहङ्कारमें लीन कर देता है । इसके बाद अहङ्कारके संहित स्वरूप गतिके द्वारा अहङ्कारमें प्रवेश करके अन्तमें समस्त

गुणोंके त्यक्त्याम प्रवृत्तिरूप आकर्णमें जा मिळ

१ प्रा पा — निर्याति । २ प्राचीन प्रसिद्धं यत् भूतधुके — केवलम् = उद्वेगान् तत्र देह शोककी बगल कुछ परिवर्तनके साथ हो करण और कदाचित् पूरे हो शोक मिळते हैं तथा—

‘तं भूतधुकेन्द्रियसंस्मृतिर्यत् सनातनोऽयं भगवान्मत्तश्च ।

अनामकं देवमयं विकार्यं संसाद्य गत्या सह तेन याति ॥ १ ॥

विद्वान्मत्तश्च गुणसंनिरोधं तेनात्मनोऽनलमूर्तिर्यत् सनातनम् ।

आत्मनोऽनलमूर्तिर्यत् सनातनं सनातनं यत् सनातनम् ॥ २ ॥

— इसके आगे मूकके ही अनुसार है ।

तेनात्मनाऽऽत्मानमुपैति श्रान्त

मानन्दमानन्दमयोऽवसाने ।

एतां गतिं भागवतीं गतो यः

स वै पुनर्नेह विपन्नतेऽङ्ग ॥३१॥

एते सृती ते नृप वेदगीते

स्वभाभिपृष्टे हं सनातने च ।

ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट

आतापितो भगवान् वासुदेवः ॥३२॥

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था निश्चयः संसृताविह ।

वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥३३॥

भगवान् ब्रह्म कास्त्वेन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ।

उदध्यवसत् कूटम्या रतिरात्मन् यतो भवेत् ॥३४॥

भगवान् सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ।

इक्ष्वर्षुर्द्वयादिभिर्द्रष्टा लङ्घनैरनुमापकः ॥३५॥

तस्मात् सर्वा मना राजन् हरि मर्षत्र सर्वदा ।

भोक्तव्यः कीर्तितव्यश्च सर्वव्यो भगवान् नृणाम् ॥३६॥

पिबन्ति ये भगवत् आत्मनः सतां

कथामृतं भवणपुटेषु सम्भृतम् ।

पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं

ब्रजन्ति तत्परणसाराह्वान्तिकम् ॥३७॥

है ॥ ३० ॥ परीक्षित ! महापुरुषके समय प्रकृतिरूप आवरणका भी लय हो जानेपर वह योगी स्वयं आनन्दस्वरूप होकर अपने उस निरावरण रूपसे आनन्दस्वरूप शान्त परमात्माको प्राप्त हो जाता है । जिसे इस भगवन्मयी गमिकी प्राप्ति हो जाती है, उससे फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता ॥ ३१ ॥ परीक्षित ! तुमने जो पूछा था, उसके उत्तरमें मैंने वेदोक्त त्रिविध सनातन मार्ग सबोभुक्ति और कामभुक्तिका तुमसे कर्ण किया । पहले ब्रह्मानीने भगवान् वासुदेवकी आराधना करके उनसे जब प्रथम किया था, तब उन्होंने उत्तरमें इन्हीं दोनों मार्गोंकी बात ब्रह्माजीसे कही थी ॥ ३२ ॥

संसार चक्रमें पड़े हुए मनुष्यके लिये, किस साधनके द्वारा उसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य प्रेम्समयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अनिश्चित और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है ॥ ३३ ॥ भगवान् ब्रह्मानीने एकप्र पित्तसे सारे वेदोंका तीन बार अनुशीलन करके अपनी बुद्धिसे कही निश्चय किया कि जिससे सर्वत्र भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम प्राप्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है ॥ ३४ ॥ समस्त चर-अचर प्राणियोंमें उनके आत्म्य रूपसे भगवान् श्रीकृष्ण ही कक्षित होते हैं, क्योंकि ये बुद्धि आदि इन्द्रियद्वारा उनका अनुमान करनेवाले लक्षण हैं, वे इन सबके साक्षी एकमात्र द्रष्टा हैं ॥ ३५ ॥ परीक्षित ! इसलिये मनुष्योंको चाहेिये कि सब समय और सभी स्थितियोंमें अपनी सम्पूर्ण शक्तिये भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रवण-स्पर्शन और स्मरण करें ॥ ३६ ॥ राजन् ! सन पुरुष आत्मस्वरूप भगवान्की कथाका मधुर अमृत बौटते ही रहते हैं, जो अपने कर्मके दानोंमें भर भरकर उसका पान करते हैं, उनके हृदयसे विषयोंका विमेषा प्रभाव जाता रहता है, वह शुद्ध हो जाता है और वे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संक्षिप्तायां द्वितीयस्कन्धे

पुरुषसंस्थावर्गर्जने नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

कामनामोक्षे अनुसार विभिन्न देवतामोक्षी उपासना तथा भगवद्भक्तिके प्राधान्यका निरूपण

श्रीमुक्त उवाच

एवमेतन्निगदितं पृष्टवान् यद् भवान् मम ।

नृणां यन्निप्रयमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ।

इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥

देवीं मातां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ।

वसुकामो वसन् छत्रान् वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥ ३ ॥

अन्नाद्यकामस्त्वदिति त्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ।

विश्वान्देवान् राज्यकामः साध्यान्ससाधक्ये विश्वाम् ४

आयुष्कामोऽग्निनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ।

प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रेतसी लोकमातरौ ॥ ५ ॥

रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सरतर्वादीम् ।

आभित्यक्तकाम सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥

यज्ञं यजेद् यज्ञस्कामः क्रोशकाम प्रचेतसम् ।

विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यैर्य उमां सतीम् ॥ ७ ॥

धर्मार्थं उत्तमशोकं तन्तुं सन्वन् पितॄन् यजेत् ।

रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥ ८ ॥

राज्यकामो मनून् देवान् निर्धर्तिं स्वमिषरम् यजेत् ।

कामकामो यजेत् सोममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम सदादर्धीः ।

हीमेण भक्तिरोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १० ॥

श्रीभुक्तयेधर्मीने कहा— परीक्षित । तुमने मुझसे जो

पूछा या कि मरते समय बुद्धिमान् मनुष्यको क्या करना चाहिये, उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया ॥ १ ॥ जो मरतेसक इच्छुक हो, वह बृहस्पतिकी, जिसे इन्द्रियोंकी विशेष शक्तिकी कामना हो वह इन्द्रकी और जिसे सन्तानकी लालसा हो, वह प्रजापतियोंकी उपासना करे ॥ २ ॥ जिसे पत्नी चाहिये वह मायादेवीकी, जिसे सेवक चाहिये वह अग्निकी, जिसे वन चाहिये वह वसुओंकी और जिस प्रभावशाली पुरुषको वीरताकी चाह हो, उसे रुद्रकी उपासना करनी चाहिये ॥ ३ ॥ जिसे बहुत वन प्राप्त करनेकी इच्छा हो, वह अदितिक, जिसे सर्गकी कामना हो, वह अदितिके पुत्र देवताओंको, जिसे राज्यकी अभिलाषा हो वह विश्वदेवोंको और जो प्रजाको अपने बहुत बनानेकी इच्छा रखना हो उसे साम्य देवताओंको आराधन करना चाहिये ॥ ४ ॥ आयुकी इच्छासे अग्निनीकुमारोंको, पुष्टिकी इच्छासे पृथ्वीको और प्रतिष्ठाकी चाह हो तो लोकमाता पृथ्वी और सौ (आकाश) का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥ सौन्दर्यकी चाहसे गन्धर्वोंकी, पत्नीकी प्राप्तिके लिये उर्वशी अप्सराकी और सत्काम स्त्री बननेके लिये क्वाकी आराधना करनी चाहिये ॥ ६ ॥ जिसे यशकी इच्छा हो वह यज्ञपुरुषकी, जिसे खजानेकी लालसा हो वह वरुणकी, विद्या प्राप्त करनेकी लालसा हो तो मातान् शङ्करकी और पति-पत्नीमें परस्पर प्रेम बनाये रखनेके लिये पार्वतीजीकी उपासना करनी चाहिये ॥ ७ ॥ धर्म उपार्जन करनेके लिये विश्वामावान्की, वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये गिरिशकी, बाधामोक्षे वधनेके लिये उमाकी और सत्त्वान् होनेके लिये मरुद्गणोंकी आराधना करनी चाहिये ॥ ८ ॥ राज्यके लिये मन्त्रमूर्तिके अभिपति देवोंको, अभिपति के लिये निर्धर्तिके, भोगोंके लिये राजमण्यकी और निष्कर्मप्र प्राप्त करनेके लिये परम पुरुष मातृपिताकी मन्त्रना चाहिये ॥ ९ ॥ और जो बुद्धिमान् पुरुष है—वह चाहे निष्कर्म हो, समस्त कामनाओंसे मुक्त हो अपना मोक्ष चाहिये हो—उसे तो हीन मत्स्योगेके द्वारा केवल पुरुषोत्तम महात्माकी ही आराधना करनी चाहिये ॥ १० ॥

१ मा पा—कामाव । २ मा पा—स्वस्थि । ३ मा पा—स्वार्थसुख । ४ मा पा—वर्मायुष्म । ५ मा पा—राज्यकामा पितृन् । ६ मा पा—मरु । ७ मा पा—शुभान् ।

एतावानेष यजतामिह नि श्रेयसोदयः ।

भगवत्पचलो भावो यद् भागवत्सङ्गत ॥११॥

ज्ञानं यदाप्रतिनिष्ठचगुणोर्मिचक्र

मात्मप्राप्तद उतं यत्र गुणेष्वमङ्गः ।

कैवल्यसम्मतपथस्त्वथ भक्तियोग

कमिर्होतोरिक्रियासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

शौनक उवाच

इत्पभिव्याहृत राजा निशम्य भरतर्षभः ।

किमन्यत्पृष्टवान् भूयो वैपासकिर्हृषिकविम् ॥१३॥

एतच्छ्रुत्पृष्टां विद्वन्मत्त नोर्हमि भाषितुम् ।

कथा हरिकन्योदकां सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥१४॥

स वै भागवतो गजा पाण्डवेयो महतरथ ।

वालकीडनकं धीढन् कृष्णकीडां य आदधे ॥१५॥

वैपासकिश्च भगवान् वामुडवपरायण ।

उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥१६॥

आयुर्हरति वै पुनामृद्यमस्तं च यमसौ ।

तत्सर्वं यरुणो नीत उत्तमसोऽकर्तारथा ॥१७॥

परवः किं न जीयन्ति भस्त्राः किं न शसन्त्युत ।

न त्वादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपश्वोऽपरे ॥१८॥

भविद्भराहोष्टरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।

न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रज ॥१९॥

विले बतोरुक्रमविक्रमान् ये

न भृश्वत कणपुत्र नरस्य ।

१ मा पा — उभयप । वह पाठप्रवर भीषरत्नामीने भी मन्ना है ।

जिनने भी उपासक हैं, उनका सबसे बड़ा श्रेष्ठ इसीमें है कि वे भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग करके भगवान्‌में अविच्छेद प्रेम प्राप्त कर लें ॥११॥ ऐसे पुरुषोंके सत्सङ्गमें जो भगवान् की स्वीकृति-कार्य होती है, उनसे उस दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिससे संसार-मग्नकी त्रिगुणमयी तरङ्गमाळाओंके अपेक्षे ज्ञान हो जाते हैं, हृदय शुद्ध होकर आनन्दका अनुभव होने लगता है, इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति नहीं रहती, कैवल्यमोक्षका सर्वसम्पन्न मार्ग भक्तियोग प्राप्त हो जाता है । भगवान्‌की ऐसी स्वमयी कृपाओंका चत्वरण स्वीकृत करनेर मन्ना कौन ऐसा है, जो उनमें प्रेम न करे ॥१२॥

शौनकजीमे कहा—सूतजी ! राजा परीक्षितने शुकदेवजीकी यह बात सुनकर उनसे और क्या पूछा ? वे तो सब कहनेके माय-ही-साय मधुर वर्णन करनेमें भी बड़े निपुण थे ॥ १३ ॥ सूतजी ! आप तो सब कुछ जानते हैं । हमसे उनका कह बानचीन बड़े प्रेमसे सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके अल्प सुनाइये । क्योंकि संतोंकी सभामें ऐसी ही बानें होती हैं, जिनका पर्यवसान भगवान्‌का स्वमयी स्वीकृति-कार्यमें ही होता है ॥ १४ ॥ पाण्डुनन्दन महारथी राजा परीक्षित बड़े भगवत्प्रेमसे थे । बाल्यवस्थामें खिलौनोंसे खेलते समय भी वे श्रीकृष्णलीलाका ही रस लेते थे ॥ १५ ॥ भगवन्‌मय श्रीकृष्णदेवजी भी जन्मसे ही भगवत्परायण हैं । उस संतोंके सत्सङ्गमें भगवान्‌का महत्त्वमय गुणोंकी शिष्य चर्चा अवश्य ही हुई होगी ॥ १६ ॥ जिनका समय भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंके गाल अथवा ध्रुवगमें स्थित हो रहा है, उनके अतिरिक्त सभी मनुष्योंकी आयु व्यय जा रही है । वे भगवान्‌ सूर्य प्रतिदिन अपने उदय और अस्तसे उनकी आयु छीनते जा रहे हैं ॥ १७ ॥ क्या दुष्ट नहीं जीते ! क्या लुहारकी चौकली सँस नहीं लेती ! गौबके अन्य पालतू पशु क्या मनुष्य-मनुष्य की तरह खाते पीते या मियुन नहीं करते ॥ १८ ॥ जिसके कानमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्वीकृति-कृपा कभी नहीं पड़ी, वह नर पशु, कुत्त, मृग-सूकर, ऊँट और गधेसे भी गणा-धीन है ॥ १९ ॥

सूतजी ! जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा कभी नहीं सुनता, उसने कान पिन्के समान है । जो जीम

जिह्वासती दार्दुरिकेन सत
 न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥२०॥
 भारः परं पङ्क्तिरीटशुष्ट
 मय्युत्तमार्त्तं न नमेन्मुह्यन्दम् ।
 द्राघौ करो नो कुतः सपर्या
 हरेर्लसत्कञ्चनकङ्कणौ वा ॥२१॥
 बर्हापिते ते नपने नराणां
 लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्ष्यतो ये ।
 पद्मौ नृणां तौ हुमज्जन्मभाजौ
 क्षेत्राणि नानुब्रज्यतो हरेर्या ॥२२॥
 जीवन्मृतो भगवताह्मिरेणुं
 न ब्रह्म मर्त्योऽभिलषेत यस्तु ।
 श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः
 मत्सम्भवो यस्तु न केद गन्धम् ॥२३॥
 तदस्मत्तरं हृदयं वतेद
 यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
 न विक्रियेताथ यदा निकारो
 नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥२४॥
 अवाभिषेक्ष्य मनोऽनुकूलं
 प्रभापसे भागवतप्रधानः ।
 यदाह नैयासकिरात्मविद्या
 विशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥२५॥

भगवान्की लीज्यओंका गायन नहीं करती, वह मंत्रकारी
 जीमके समान टर-टर करनेवाली है, उसका तो न
 रहना ही अच्छा है ॥ २० ॥ जो सिर कमी भगवान्
 श्रीहृण्णके चरणोंमें झुकता नहीं, वह रेशमी कससे
 सुसज्जित और मुकुटसे युक्त होनेपर भी बोझाग्रही
 है । जो हाथ भगवान्की सेवा-भूजा नहीं करते, वे सोने-
 के कंगनसे भूषित होनेपर भी मुँहके हाथ हैं ॥ २१ ॥
 जो ओंखें भगवान्की याद दिखानेवाली मूर्ति, तीर्थ,
 नदी आदिका दर्शन नहीं करतीं, वे मोरोंकी पंखों
 बने हुए ओंखोंके चिह्नके समान निरर्थक हैं । मनुष्यो
 वे पैर चढ़नेकी शक्ति रखनेपर भी न चढ़नेवाले पैरों-
 जैसे ही हैं, जो भगवान्की लीज्य-स्वच्छियोंकी यात्रा
 नहीं करते ॥ २२ ॥ जिस मनुष्यने भगवत्सेमी संतोंके
 चरणोंकी धूल कमी सिरपर नहीं चढ़ाई, वह नीता हुआ
 भी गुर्ग है । जिस मनुष्यने भगवान्के चरणोंपर कभी हुई
 गुल्मीकी सुगन्ध लेकर उसकी स्मरणना नहीं की, वह यास
 लेना हुआ भी यासरहित शव है ॥ २३ ॥ सुतमी ! वह
 हृदय नहीं, मोहा है, जो भगवान्के मङ्गलमय नामोंका
 श्रवण-कीर्तन करनेपर भी पिघलकर उन्हींकी ओर बह
 नहीं जाता । जिस समय हृदय पिघल जाता है, उस
 समय नेत्रोंमें आँसू छलकने लगते हैं और शरीरका
 रोम-रोम खिन्न उठता है ॥ २४ ॥ प्रिय सुतमी !
 आपकी वाणी हमारे हृदयको मधुरतासे भर देती
 है । इसलिये भगवान्के परम मन्त्र, वागमविद्या-विशारद
 श्रीहृकदेवनीने परीक्षितके सुन्दर प्रश्न करनेपर जो
 कुछ कहा, वह संवाद आप ज्ञान करके हमसेमेंमें
 सुनाइये ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भगवत् महापुराणे पारमर्षीयां संक्षिप्तार्थ

द्वितीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

राजाका सुशिक्षितयक प्रथम और गुणवैयकीका कथारम्भ

सूत उवाच

५ सकेरिति वक्षस्तत्त्वनिश्चयमात्मन ।

उपधर्म्य मतिं कृप्य औचरेय सती व्यधात् ॥ १ ॥

आत्मजायसुतागारपशुद्रविणव पुपु ।

राज्ये चाविकले नित्य विरुद्धां ममतां जहौ ॥ २ ॥

पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सचमा ।

॥ सुभा ॥ भद्रभानो महार्मना ॥ ३ ॥

विद्याय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ।

वापुदेवे भगवति आत्मभाव उर्ध्व गत ॥ ४ ॥

राजोवाच

॥ चीन वचां मद्रन् सर्वज्ञस्य तवानप ।

नो विशीर्यते मर्षं हरे कथयतः कथाम् ॥ ५ ॥

एव विवित्तामि भगवानात्ममाशया ।

येदं सूत्रं विषयं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥ ६ ॥

गोपायति विमृषया संपच्छते पुन ।

॥ सांगतिमुपाधित्य पुरुशक्ति पर पुमान् ।

आत्मनं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकराति च ॥ ७ ॥

नतं भगवता मद्रन् हरेरद्वुतकर्मण ।

दुर्विभाव्यमिराभानि कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं—शुकदेवजीके कचन भगवत्पल

का निश्चय करनेवाले थे। उत्तरानन्दन राजा परीक्षितने उन्हें सुनकर अपनी शुद्ध बुद्धि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्यभावसे समर्पित कर दी ॥ १ ॥ शरीर, पत्नी, पुत्र, माहल, पशु, धन, मर्त्य-वस्तु और निष्काम्यक राज्यमें निष्पत्तिके अभ्यासके कारण उनकी हृदय ममता हो गयी थी। एक क्षणमें ही उन्होंने उस ममताका त्याग कर दिया ॥ २ ॥ शौनकादि श्रुतिगो ! महामनस्वी परीक्षितने अपनी मृत्युका निश्चित समय जान लिया था। इसलिये उन्होंने धर्म, अर्थ और काम-से सम्बन्ध रखनेवाले जितने भी कर्म थे, उनका संन्यास कर दिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने सुदृढ़ आत्मभावको प्राप्त होकर बड़ी श्रद्धासे भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा सुननेके लिये उन्होंने श्रीशुकदेवजीसे यही प्रश्न किया, जिसे आपलोग मुझसे पूछ रहे हैं ॥ ३ ॥

परीक्षितने पूछा—भगवत्स्वरूप मुनिवर ! आप परम पवित्र और सर्वज्ञ हैं। आपने जो कुछ कहा है, वह सत्य एवं उचित है। आप ज्यों-ज्यों भगवान्की कथा कहते जा रहे हैं, त्यों-त्यों मेरे अज्ञानका पराग फटता जा रहा है ॥ ५ ॥ मैं आपसे फिर भी यह जानना चाहता हूँ कि भगवान् अपनी मायासे इस संसारकी सृष्टि कैसे करते हैं। इस संसारकी रचना तो इतनी रहस्यमयी है कि ब्रह्मादि समर्थ लोकपाल भी इसके समझनेमें मूढ़ कर बैठते हैं ॥ ६ ॥ भगवान् कैसे इस विश्वकी श्वा और फिर संसार करते हैं ? अनन्तराक्षि परमात्म्य किन्-किन् शक्तियोगका आश्रय लेकर अपने-आपको ही छिद्गीन बनाकर रोदते हैं ? वे बच्चोंके बनाये हुए परीदोंकी तरह मद्रन्डोंका कैसे बनाते हैं और फिर कित्त प्रकट भाव-की-भावनें मिश्र देते हैं ? ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीहरिजी कीर्णों बड़ी ही अद्भुत—अचिन्त्य हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी उनकी गीर्वाण रहस्य समझना अप्पत्त फटित प्रतीत होता है ॥ ८ ॥

यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्गुणपत् क्रमश्चोऽपि वा ।

विमर्ति भूरिश्चस्त्वेकः कुर्वन् कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥

विविक्तित्तिष्ठमेतन्मे प्रवीतु भगवान् यथा ।

शब्दे भ्रमणि निष्पातः परस्मिन् भवान्सु ॥ १० ॥

सूत उवाच

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुक्थने हरेः ।

हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रथक्रमे ॥ ११ ॥

भीष्म उवाच

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे

सदुद्भवम्याननिरोधलीलया ।

शुद्धीतश्चक्तिव्रितयाय देहिना-

मन्तर्मन्त्रात्तुपलक्ष्यवर्मणे ॥ १२ ॥

भूयो नमः सद्बुद्धिनिच्छिदेऽसत्ता-

मसम्भवायास्तिलसत्त्वमूर्तये ।

पुतां पुनः पारमार्थ्य आत्ममे

व्यवस्थितानामनुमृन्वदादृष्टे ॥ १३ ॥

नमो नमस्तेऽस्तुपभाय सात्वतां

विद्वक्त्राग्राम्य सुदुः कुयोगिनाम् ।

निरस्तसाम्पातिशयेन राक्षसा

खलामनि भ्रमणि रंस्ते नमः ॥ १४ ॥

भक्तकीर्तनं भक्तसरणं यदीक्षणं

यद्गन्दनं यद्भक्षणं यद्दर्शनम् ।

भगवान् तो बकेले हैं । वे बहुत-से कर्म करनेके लिये पुरुषरूपसे प्रकृतिके विभिन्न गुणोंको एक साथ ही धारण करते हैं क्योंकि अनेकों अकार प्रहण करनेके उन्हें क्रमता धारण करते हैं ॥ ९ ॥ मुनिवर ! आप केर और प्रसन्नता दोनोंके पूर्ण मर्म हैं, इसलिये मेरे इस सन्देशका निष्करण कीजिये ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—जब राजा परिश्रितने भगवान् के गुणोंका वर्णन करनेके लिये उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीकृष्णदेवजीने भगवान् श्रीकृष्णका बार-बार स्मरण करके अपना प्रथम प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥

श्रीगुरुदेवजीने कहा—उन पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी बीजा करनेके लिये उत्पन्न तथा तमोगुणरूप तीन शक्तियोंको स्वीकारकर ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करका रूप धारण करते हैं, जो सम्मुख चर-अचर प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्धानरूपसे विद्यमान हैं, जिनका स्वरूप और उसकी उपजम्बिका मार्ग बुद्धिके नियम नहीं हैं, जो स्वयं अनन्त हैं तथा जिनकी महिमा भी अनन्त है ॥ १२ ॥ हम पुनः बार-बार उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं, जो स्रष्टृशक्ति का दुःख मिटाकर उन्हें अपने प्रेम्ता दत्त करते हैं, दुष्टोंकी सांसारिक बन्धनी टोककर उन्हें मुक्ति देते हैं तथा जो लोभ परमांस आत्मसे स्थित हैं, उन्हें उनकी भी अमीह बलुकर दान करते हैं । क्योंकि चर-अचर सम्मुख प्राणी उनकी मूर्ति हैं, इसलिये किसीसे भी उनका पक्षपात नहीं है ॥ १३ ॥ जो बड़े ही मऊ-वस्त्र हैं और हठपूर्वक मतिहीन साधन करनेवाले लोभ निमग्न अवस्था में नहीं हैं, फिर उससे अधिक तो हो ही कैसे सकता है तथा ऐसे ऐश्वर्यसे मुक्त होकर जो निरन्तर भक्त-स्वरूप अपने धाममें विहार करते रहते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, कदम, भक्षण और पूजन जीवों-

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वतांजस्य सती स्मृतिं हवि ।
स्वेलक्षणा प्रादुरभूत् किलासतः
स मे श्रद्धीणामृषभः प्रसीदताम् ॥२२॥
मृतैर्महद्भिर्त्य शमाः पुरो विद्म
निर्माय शेते यदमृष पुरुषः ।
सृष्टे गुणान् पोष्य पोष्यारमकः
सोऽलङ्कृषीष्ट भगवान् वचांसि मे ॥२३॥

नमस्तस्मै भगवते वसुदेवाय वेधसे ।
पपुर्द्धानमयं सौम्या यन्मुस्ताम्बुकरासवम् ॥२४॥
एतदेवात्मम् राजन् नमदाय विपृच्छते ।
वेदगर्भोऽस्यधातुर्तथाहृद्दाहृदिरात्मनः ॥२५॥

जिन्होंने सृष्टिके समय ब्रह्माके हृदयमें पूर्वकल्पकी सृष्टि
आधारित करनेके लिये ज्ञानकी अधिष्ठात्री देखिकी प्रेरित
मित्रा और वे अपने अङ्गोंके सहित वेदके रूपमें उनके
मुखसे प्रकट हुईं, वे ब्रह्माके मुखकारण भगवान् मुखर
होना करें, मेरे हृदयमें प्रकट हों ॥ २२ ॥ भगवान् ही पञ्च-
महाभूतोंसे इन शरीरोंका निर्माण करके इनमें जीवरूपसे
शयन करते हैं और पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच
प्राण और एक मन—इन सोलह कलाओंसे युक्त होकर इनके
हृदय सोलह विक्रयोंका मण्डल करते हैं । वे सर्वभूतस्य
भगवान् मेरी वाणीके अपने गुणोंसे अलङ्कृत कर
दें ॥ २३ ॥ सत पुरुष जिनके मुखकमलसे मकर-
के समान कस्ती हुई ज्ञानमयी सुधाका पान करते रहते हैं
उन वासुदेवाकातर सर्वज्ञ भगवान् व्याप्तके अर्थमें
मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ २४ ॥

परीक्षित । वेदगर्भ सत्यम् ब्रह्माने नारदके प्रश्न
करनेपर यही बात कही थी, किन्तु स्वयं भगवान्
नारायणने उन्हें उपदेश मिला था (और यही मैं तुम्हें
कहा रहा हूँ) ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यं संहितायां द्वितीय-
स्कन्धे कर्णोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सृष्टि-वर्णन

नारद उवाच

दधदध नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज ।
तद् विजानीहि यज्जानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥
(यदपं यदधिष्ठान यत् सृष्टिमिदं प्रभो ।
यत्तत्त्वं यत्परं यद्यत् तत्त्वं यद् तत्त्वतः ॥ २ ॥
मयं यत्तद् भगान् वेदं भूतभज्यभारप्रसू ।

नारदजीने पूछा—मिताजी ! आप केवल मेरे ही
नहीं, सबके मित्र, समस्त देवताओंसे श्रेष्ठ एवं सृष्टिकर्ता हैं ।
आपको मेरा प्रणाम है । आप मुझे यह ज्ञान मीत्रिणे, जिससे
आत्मतत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है ॥ १ ॥ मिताजी !
इस संसारका क्या तत्त्वज्ञ है ? इसका आधार क्या है ?
इसका निर्माण किसने किया है ? इसका प्रकय किसमें होता
है ? यह किसके अधीन है ? और वास्तवमें यह है
क्या वस्तु ? आप इसका तत्त्व बतलाइये ॥ २ ॥ आप
तो यह सब कुछ जानते हैं क्योंकि जो कुछ हुआ है, हो
रहा है, या होगा उसका स्वामी आप ही हैं । यह मारा संसार

१ या पा०—विजानीहि । २ या पा०—विजानीहि । ३ या पा०—तत्त्वं यत्तद् हरिचरितः । ४ प्राचीन
प्रतिवे 'पुष्पकम्पातुपुष्पकम्' इत्यादि अर्थिक है ।

करामलकवद् विश्वं विद्वानावसितं सध ॥ ३ ॥

यद्विद्वान्नो यदाधरो यत्परस्त्वं यदात्मका ।

एका सृजसि भूतानि भूतरेवात्ममायया ॥ ४ ॥

आत्मन् भावयसे तानि न पराभावयन् स्वयम् ।

आत्मशक्तिमवष्टभ्य उर्गानाभिरिवाकृम ॥ ५ ॥

नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न सम विभो ।

नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत् किञ्चिदन्यत् ॥ ६ ॥

न भवानवरद् धीर यद् सप सुसमाहितः ।

तेन स्वेदयसे नत्त्व पराशङ्कां प्रयच्छसि ॥ ७ ॥

एतन्मे पृच्छतः सध सर्वज्ञ मफलेश्वर ।

त्रिबलीहि यथैवेदमहं बुद्धयेऽनुशासित ॥ ८ ॥

मत्तोवाच

सम्पक् कृत्तुरगिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ।

यहं चोत्ति मीम्य भगवद्दीर्घध्वनि ॥ ९ ॥

नानूतं तव तद्यापि यथा मां प्रववीषि मा ।

अविद्याय पर मर्ष एतावच्च यथा हि म ॥ १० ॥

यन म्यगचिन्ता विश्वं रात्रिर्त रात्रयाम्यहम् ।

यथाकाग्निपथा मामा यथोद्यमहतास्का ॥ ११ ॥

तम्यं नमा भगवत वामुन्वाय धीमहि ।

यन्मायया दृजयया मां ध्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥

हथेलीपर स्कन्धे हुए औंठोंके सम्मन आपकी ज्ञान दृष्टिके अन्तर्गत ही है ॥ ३ ॥ पिताजी ! आपको यह ज्ञान कहाँसे मिला ? आप किसके आधारेपर खड़े हुए हैं ? आपका स्वामी कौन है ? और आपका स्वयम् क्या है ? आप अबैले ही अपनी मायासे पञ्चभूतोंके द्वारा प्राणियोंकी सृष्टि कर लेते हैं, किन्तु अश्रुत है ॥ ४ ॥ जैसे मकड़ी अनायास ही अपने मुँहसे जाड़ा निकलकर उसमें लेखने लगती है, वैसे ही आप अपनी शक्तिके आश्रयसे जीवोंको अपनेमें ही उत्पन्न करते हैं और फिर भी आपमें कोई विकार नहीं होता ॥ ५ ॥ जगत् में नाम, रूप और गुणोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसमें मैं ऐसी कोई सत्, असत्, उत्तम, मध्यम, या अधम वस्तु नहीं देखता, जो आपके सिवा और किसीसे उत्पन्न हुई हो ॥ ६ ॥ इस प्रकार सबके ईश्वर होकर भी आपने एकत्र चित्तसे धीरे तपस्या की, इस बातसे मुझे मोहके साप-साप बहुत बड़ी शङ्का भी हो रही है कि आपसे क्या भी कोई है क्या ? ॥ ७ ॥ पिताजी ! आप सर्वज्ञ और सर्वेश्वर हैं । जो कुछ मैं पूछ रहा हूँ, वह सब आप कृपा करके मुझे इस प्रकार समझावें कि जिससे मैं आपके उपदेशोंके ठीक-ठीक समझ सकूँ ॥ ८ ॥

शब्दादीने कहा—बेटा नारद ! तुमने जीवोंके प्रति कल्याणके भावसे भरकर यह बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है ; क्योंकि इससे भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेकी प्रणाली मुझे प्राप्त हुई है ॥ ९ ॥ तुमने मेरे निरापने जो कुछ कहा है, तुम्हारा वह कथन भी असत्य नहीं है । क्योंकि जबकि तुमसे परेका तत्त्व—जो स्वयं भगवान् ही हैं—ज्ञान नहीं किया जाता, तबतक मेरा ऐसा ही प्रभाव प्रतीत होता है ॥ १० ॥ जैसे सूर्य जलिन, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे उन्हींके प्रकाशसे प्रकाशित होकर जगत्में प्रकाश फैलाते हैं वैसे ही मैं भी उन्हीं स्वयंप्रकाश भगवान्के विमल प्रकाशसे प्रकाशित होकर मनोमन प्रकाशित कर रहा हूँ ॥ ११ ॥ उन भगवान् वामुन्वा की मैं कृपा करना हूँ और प्यार भी, तिनको दुर्बल मायासे मग्नि होकर गोल गोल सुप्त जगद्गुरु

सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससुशुद्धदः ॥३३॥
 वर्षपूगसहस्रान्तं तदम्बुमुपकेययम् ।
 कालकर्मस्वभावात्सो जीवोऽजीवमजीवयत् ॥३४॥
 स एव पुरुषस्तस्मादम्बं निर्मिथ निर्गतः ।
 सहस्रोर्बह्मिवाह्वयः सहस्रान्तनशीर्षवान् ॥३५॥
 यस्त्वेहत्वयवैलोकितं कल्पयन्ति मनीषिणः ।
 कथादिभिरथः सप्त सप्तोर्ध्वं चयनादिभिः ॥३६॥
 पुरुषस्य ह्यस्यं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य वाहवः ।
 ऊर्ध्वोर्वैश्वो भगवतः पद्भ्यां धृजोऽम्बुजायत ॥३७॥
 मूलोक्तं कल्पितः पद्भ्यां धृजलोक्तोऽस्य नाभितः ।
 हृदा स्मलोकं उरसा महलोकं महात्मनः ॥३८॥
 प्रीयायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ।
 मूर्धभिः सत्तमलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥३९॥
 तत्कथ्यां चातलं ब्रह्ममूर्ध्यां वितलं विभोः ।
 जालुम्यां सुतलं हृदं जह्नुम्यां तु तलतलम् ॥४०॥
 महातलं तु गुल्फम्यां प्रपदाम्यां रसातलम् ।
 पातालं पादतलव इति लोकमयः पुमान् ॥४१॥
 मूलाक्षः कल्पितः पद्भ्यां धृजलोक्तोऽस्य नाभितः ।
 मूलोक्तं कल्पितो मूर्धा इति वा लोकाकल्पना ॥४२॥

करणभाव स्वीकार करके व्यधि-समष्टिरूप पिण्ड और
 ब्रह्माण्ड दोनोंकी रचना की ॥ ३३ ॥ वह ब्रह्माण्डरूप का
 एक सहस्र वर्षतक निर्जीवरूपसे चलने पड़ा रहा, फिर
 काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार करनेवाले माध्वने
 उसे जीवित कर दिया ॥ ३४ ॥ उस ध्वजेके फेर-
 कर उसमेंसे बड़ी निराद् पुरुष निकल, जिसकी ब्रह्मा,
 चरण, मुनार्थ, नेत्र, मुख और सिर सहस्रोकी संख्यामें
 हैं ॥ ३५ ॥ विद्वान् पुरुष (व्यासनाके जिने) उसीके
 अङ्गमें समस्त लोक और उनमें रहनेवाली वस्तुओंकी
 कल्पना करते हैं । उसकी कल्पसे नीचेके अङ्गमें सारो-
 पातालकी और उसके पेड़से ऊपरके अङ्गमें सारो कर्म-
 की कल्पना की जाती है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण इत निराद् पुरुष-
 का मुख हैं, उनार्थ क्षत्रिय हैं, जौधोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र
 उत्पन्न हुए हैं ॥ ३७ ॥ पैरोंसे लेकर कटिपर्यन्त सारो पाताल
 तथा भूकोकशी कल्पना की गयी है, नाभिमें भुवर्कोकशी,
 हृदयमें स्वर्गकोकशी और परमात्माके वक्षःस्थले में महर्लोक्त-
 की कल्पना की गयी है ॥ ३८ ॥ उसके गलेमें जन-
 लोक, दोनों स्तनोंमें तपोलोक और मस्तकमें ब्रह्मलोक
 निवासस्वामि सत्यलोक है ॥ ३९ ॥ उस निराद् पुरुषकी
 कल्पमें अतल, जौधोंमें वितल, धृजमें पवित्र हृत्कल्पमेक
 और जह्नुअंमें तमस्तकशी कल्पना की गयी है ॥ ४० ॥
 एकीके ऊपरकी गौधोंमें महातल, पैरों और एशियोंमें
 रसातल और तलुजोंमें पाताल सम्मत्ता आदिपे । इत
 प्रकार विराट् पुरुष सर्वलोककल्प है ॥ ४१ ॥ निराद्
 माध्वनके अङ्गमें इत प्रकार भी लोकोंकी कल्पना की
 जाती है कि उनके चरणोंमें पृथ्वी है, नाभिमें भुवर्कोक्त
 है और सिरमें स्वर्गलोक है ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यां महिनायां

द्वितीयस्कन्ध पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



अथ पष्ठोऽध्याय

विष्टाद् व्यरूपकी विमूर्तियोंका वर्णन

प्रयोगाश्च

वाचां वक्षोर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातव ।
 हृष्यकव्यामृताभ्यानां जिह्वा सर्धरसस्य च ॥ १ ॥
 मर्वाक्ष्णां च वायोश्च तन्मासे परमायने ।
 अभिनोरोपधीनां च प्राणो मोदप्रमोदयो ॥ २ ॥
 रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः क्षर्यस्य चाक्षिणी ।
 कर्णौ दिशां च तीर्थाणां भोत्रमाकाशशब्दयो ।
 तद्वात्र वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् ॥ ३ ॥
 स्वगस्य स्पर्शदायोश्च सर्वमेभस्य चैव हि ।
 रोमाभ्युद्भिजाजतीनां वैर्वा यज्ञस्तु सम्मृत ॥ ४ ॥
 केवलमधुनत्वान्त्यस्य त्रिलालोहप्रविष्टुताम् ।
 बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ ५ ॥
 विक्रमो भूर्भुवः स्वस्य क्षेमस्य शरणस्य च ।
 सर्वकामवरस्यापि हरैश्चरण आस्पदम् ॥ ६ ॥
 अपां कीर्यस्य मर्गस्य पर्वन्मस्य प्रजापत ।
 पुंसश्चिभ उपप्यस्तु प्रजात्यानन्दनिर्घते ॥ ७ ॥
 पायुषमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नातद ।
 हिंसाया निश्चिन्तेर्मृत्योर्निरयस्य गुदं स्मृत ॥ ८ ॥
 परामृतरधर्मस्य तममभापि पथिम ।
 नाह्यो नदनदीनां तु गोत्राणामप्यसहति ॥ ९ ॥
 अप्यकरससि पूनां भूतानां निधनस्य च ।

ग्रहणाजी कहते हैं—उन्हीं विष्ट पुरुषके मुखसे
 वाणी और उसके अविष्टावदेवता अग्नि उत्पन्न हुए हैं ।
 सप्तों छन्दः उनकी सप्त धातुओंसे निकले हैं ।
 पनुषों, पितरों और देवताओंके मोहन करनेयोग्य
 अमृतमय अन्न, सब प्रकारके रस, रसनन्ध्रिय और
 उसके अविष्टावदेवता कण विष्ट पुरुषकी जिह्वासे
 उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ उनके मासाष्टिओंसे प्राण, अपान,
 प्यान, उदान और सम्पान—ये पाँचों प्राण और वायु
 तथा प्राणेन्द्रियसे अक्षिनीकुम्हार, समस्त ओषधियाँ एवं
 साधारण तथा विशेष गन्ध उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥
 उनकी नेत्रेन्द्रिय रूप और तेनकी, तथा नेत्र-गोष्ठाक
 क्षर्य और सूर्यकी जन्मभूमि हैं । समस्त दिशाएँ और
 पवित्र करनेवाले तीर्थ कर्णोंसे तथा आकाश और शब्द
 श्रोत्रेन्द्रियसे निकले हैं । उनका शरीर ससारकी सभी
 वस्तुओंके सारभाग तथा सौन्दर्यका सञ्चालन है ॥ ३ ॥
 सारे यज्ञ, स्पर्श और वायु उनकी त्वचासे निकले
 हैं, उनके रोम सभी उद्भिज्ज पदार्थोंके जन्मस्थान
 हैं, अपना केवल उन्हींके, जिनसे यज्ञ सम्पन्न होते
 हैं ॥ ४ ॥ उनके केश, दाढ़ी-मूँछ और नखोंसे मेघ,
 बिजली, विषय एवं क्रोहा आदि वातुरे तथा मुखाओंसे
 प्रायः ससारकी रक्षा करनेवाले लोकमन्त्र प्रकट हुए
 हैं ॥ ५ ॥ उनका लब्धना-किरना मू कुब्र स्व —
 तीनों लोकोंका आश्रय है । उनके चरणकमल प्राप्तकी
 रक्षा करते हैं और मर्षाओंका भग्य देते हैं तथा समस्त
 कामनाओंकी पूर्ति उन्हींसे होती है ॥ ६ ॥ विष्ट
 पुरुषका जिह्व जन्म, कीर्य, सुदि मेघ और प्रजापतिकर
 आधार है, तथा उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित
 आनन्दका उद्गम है ॥ ७ ॥ नादनी ! विष्ट पुरुषकी
 पायु-इन्द्रिय यम, मित्र और मन्त्रदायक तथा गुणाक्षर हिंसा,
 निर्भ्रंति, मृषु और मरकत्त उपपत्तिस्थान है ॥ ८ ॥
 उनकी पीठसे पराक्रम, अधर्म और अज्ञान, मादियोंसे
 नद-भदी और हड्डियोंसे पर्वतोंका निर्माण हुआ है ॥ ९ ॥
 उनके उदरमें मूत्र प्रकृति, रस नामकी घात तथा समुद्र,
 समस्त प्राणी और उनकी मृषु सम्पत्ती हुए हैं । उनका

विलज्जमानया मस्य स्वातुमीक्षापयोऽमुष्या ।

विमोहिता विफल्पन्ते ममाहमिति दुर्षिषः ॥१३॥

द्रव्य कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।

वस्तुदेवात्परो ब्रह्मश्चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥१४॥

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः ।

नारायणपरा लोका नारायणपरा मत्वाः ॥१५॥

नारायणपरो योगो नारायणपर तपाः ।

नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥१६॥

तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थत्वात्स्थितात्मनः ।

सुन्यं सृजामि सृष्टोऽमीश्वर्यैवाभिषोदितः ॥१७॥

तस्य रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणत्वायः ।

म्यितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥१८॥

कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाभयाः ।

बभूवन्ति नित्यदा धुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥१९॥

स एष भगवोऽस्मिन्निभिरेभिरभेद्यजः ।

म्वलसितगतिर्भिन्नान् सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥

कालकर्म स्वभावश्च मायेन्द्रा मायया स्वया ।

आत्मन् यद्वच्छया प्रार्पं विषुभूपुण्यादये ॥२१॥

कालाद् गुणव्यतिकरः पणिगाम स्वभावतः ।

पर्मणो जन्म मद्गत पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥२२॥

मद्गतस्तु विदुराणाद्रज सन्तोषहृदितात् ।

तमःप्रधानम्यभवद् द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥२३॥

कहते हैं ॥ १२ ॥ यह माया तो उनकी औखिक सामने खरती ही नहीं, होकर वरसे ही भाग जाती है । परंतु संसारके ध्वानी जन उसीसे मोहित होकर यह मैं हूँ, यह मेरा है इस प्रकार कहते रहते हैं ॥ १३ ॥ भगवत्स्वरूप नाश । द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव—भावात्ममें भगवान्से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है ॥ १४ ॥ केवल नारायणके परमपण हैं । देवता भी नारायणके ही अङ्गमें कस्मिन् रूप हैं और समस्त यह भी नारायणकी प्रसन्नताके लिये ही हैं और उनसे जिन धर्मोंकी प्राप्ति होती है, वे भी नारायणमें ही कस्मिन् हैं ॥ १५ ॥ सब प्रकारके योग भी नारायणकी प्राप्तिके ही हेतु हैं । सारी तपस्याएँ नारायणकी ओर ही ले जानेवाली हैं, ज्ञानके द्वारा भी नारायण ही जाने जाते हैं । समस्त साध्य और साधकोंका पर्यवसान भगवान् नारायणमें ही है ॥ १६ ॥ वे द्रव्य होनेपर भी ईश्वर हैं, सामी हैं; निर्मिकर होनेपर भी सर्वस्वरूप हैं । उन्होंने ही मुझे बनाया है और उनकी इच्छासे ही प्रेरित होकर मैं उनके इच्छानुसार सृष्टि-रचना करता हूँ ॥ १७ ॥ भगवान् मायाके गुणोंसे रचित एवं अनन्त हैं । सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण—ये तीन गुण मायाके रूप उनमें सीकर मिले गये हैं ॥ १८ ॥ वे ही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान और क्रियाका व्याप्य लेकर मायातत्त्व कियमुक्त पुरुषको ही मायामें स्थित होनेपर कार्य, कारण और कर्तृपणके अभिमानसे बौध लेते हैं ॥ १९ ॥ नाश । इन्द्रियातीत भगवान् गुणोंके इन तीन आवरणोंसे अपने स्वरूपको गभीरमोहिता इक लेते हैं, इसलिये लोग उनको नहीं जान पाते । सारे संसारके और मेरे भी एकमात्र सामी वे ही हैं ॥ २० ॥

मायापनि भगवान्ने एकसे बहुत होनेकी इच्छा होनेपर अपनी मायासे अपने स्वरूपमें सब प्रात कर्म, कर्म और स्वभावको सीकर कर लिया ॥ २१ ॥ भगवान्की शक्तिसे ही कर्मने तीनों गुणोंमें छोम उत्पन्न कर लिया, स्वभावने उन्हें रूपान्तरित कर दिया और कर्मने महत्त्वको जन्म दिया ॥ २२ ॥ रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धि होनेपर महत्त्वका जो विकार हुआ, उससे ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तन-प्रधान

सोऽहङ्कार इति प्रोक्तो विद्वर्त्तन संममृत्विधा ।
 वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्विदा ।
 द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥२४॥
 तामसादपि मृतादर्विद्वर्णादभूकमः ।
 तस्य मात्रा गुण छन्दो लिङ्गं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥२५॥
 नमसोऽयं विद्वर्णादमृत स्पर्शगुणोऽनिलः ।
 परान्वयाच्छब्दवाच्यं प्राण ओजः सहो बलम् ॥२६॥
 वायोऽपि विद्वर्णात् कालकर्मस्वभावतः ।
 उदपद्यत तेजो वै रूपवत् स्पर्शश्चन्द्रवत् ॥२७॥
 तेजसस्तु विद्वर्णात्पासीदम्भो रसात्मकम् ।
 रूपवत् स्पर्शवत्ताम्भो धोषवत् परान्वयात् ॥२८॥
 विशेषस्तु विद्वर्णादम्भसो गन्धवानमृत ।
 परान्वयात् रसस्पर्शश्चन्द्ररूपगुणान्वितः ॥२९॥
 वैकारिकान्मनो ब्रह्मे देवा वैकारिका दश ।
 दिव्वातार्कप्रचेतोऽम्बिवाहीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥३०॥
 तैजसात् तु विद्वर्णादिन्द्रियाणि दशाभवन् ।
 ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणश्च तैजसौ ।
 योत्र त्वग्राणधरिजिह्वावाग्दोर्मोदाङ्गभिपायव ॥३१॥
 र्मेदेतेऽसङ्गता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणा ।
 यदापवननिर्माणे न लेङ्गर्भश्चचित्तमम् ॥३२॥
 वृदासहस्र चान्योन्यं भगवच्छक्तिसोदिता ।

विकार हुआ ॥ २३ ॥ यह अहङ्कार कहलाया और
 विकारको प्राप्त होकर तीन प्रकारका हो गया । उसके मेद
 हैं—वैकारिक, तैजस और तामस । नारदजी ! वे क्रमशः
 ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्तिप्रधान हैं ॥ २४ ॥ जब
 पञ्चमहामूर्त्योके करणरूप तामस अहङ्कारमें विकार हुआ,
 तब उससे आकाशकी उत्पत्ति हुई । आकाशकी सन्नात्रा और
 गुण शब्द है । इस शब्दके द्वारा ही द्रव्य और द्रव्यका बोध
 होता है ॥ २५ ॥ जब आकाशमें विकार हुआ, तब उससे
 वायुकी उत्पत्ति हुई, उसका गुण स्पर्श है । अपने
 कारणका गुण आ जानेसे यह शब्दवाला भी है । इन्द्रियोंमें
 स्पर्श, शरीरमें जीवनीशक्ति, ध्वन और बल इसीके
 रूप हैं ॥ २६ ॥ काल, कर्म और स्वभावसे वायुमें
 भी विकार हुआ । उससे तेजकी उत्पत्ति हुई । इसका
 प्रधान गुण रूप है । साथ ही इसके कारण आकाश
 और वायुके गुण शब्द एव स्पर्श भी इसमें हैं ॥ २७ ॥
 तेजके विकारसे चन्द्रकी उत्पत्ति हुई । इसका गुण है
 रस, करण-तत्त्वके गुण शब्द, स्पर्श और रूप भी
 इसमें हैं ॥ २८ ॥ चन्द्रके विकारसे पृथ्वीकी उत्पत्ति
 हुई, इसका गुण है गन्ध । कारणके गुण कर्ममें आते
 हैं—इस न्यायसे शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये
 चारों गुण भी इसमें विद्यमान हैं ॥ २९ ॥ वैकारिक अहङ्कार
 से मनकी और इन्द्रियोंके दस अधिष्ठित-देवताओंकी भी
 उत्पत्ति हुई । उनके नाम हैं—दिश, वायु, सूर्य, कृष्ण,
 अग्नि, अश्वि, इन्द्र, मित्र, मित्र और
 प्रजापति ॥ ३० ॥ तैजस अहङ्कारके विकारसे श्रोत्र,
 लघा, नेत्र, जिह्वा और प्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एव
 वाक्, हस्त, पाद, गुदा और जननेन्द्रिय—ये पाँच
 कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई । साथ ही ज्ञानशक्तिरूप बुद्धि
 और क्रियाशक्तिरूप प्राण भी तैजस अहङ्कारसे ही
 उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥

श्रेष्ठ ब्रह्मवैत । जिस समय ये पञ्चमृत, इन्द्रिय,
 मन और सत्त्व आदि तीनों गुण परस्पर संगठित नहीं
 थे, तब अपने रहनेके स्थाने भोगोंके साधनरूप शरीरकी
 रचना नहीं कर सके ॥ ३२ ॥ जब भगवान् ने इन्हें
 अपनी शक्तिसे प्रेरित किया, तब वे तत्त्व परस्पर एक
 दूसरेके साथ मिला गये और उन्होंने आपसमें कार्य-

उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥१०॥
 धर्मस्य मम हृत्स्य च कुमाराणां भवस्य च ।
 विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्मात्मा परायणम् ॥११॥
 अहं भवान् भवमेव स इमे मुनयोऽग्रजा ।
 सुरासुरनरा नागाः सखा मृगसरीसृपाः ॥१२॥
 गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतमगारगाः ।
 पद्मवः पितरः सिद्धा विद्याधाराश्चाहुमाः ॥१३॥
 अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ।
 ग्रहक्षेत्रवत्तारास्तत्तितः स्तनपिलवः ॥१४॥
 सर्वं पुरुष एवेदं मूर्तं भव्यं भवच्च यत् ।
 तेनेदमाहुतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥१५॥
 स्वधिष्ण्य प्रतपन् प्राणो वहिष प्रतपत्सतौ ।
 एवं विराजं प्रतपन्तपत्सन्तर्बहिः पुमान् ॥१६॥
 सोऽमृतस्यामयत्येक्षो मत्समन्तं यदस्यगात् ।
 महिमैव ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥१७॥
 पादेषु सर्वमृतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ।
 अमृतं क्षेमममयं त्रिमूर्तेऽधोपि मूर्धसु ॥१८॥
 पल्लव्यां वह्निसासकप्रज्ञानां य आभयाः ।
 अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमधोऽहवः ॥१९॥

हृदय ही ममकी जन्मभूमि है ॥ १० ॥ नास । हृदय, धर्म, सनकादि, शास्त्र, विज्ञान और अन्तःकरण-समके-सब उनके चित्तके आश्रित हैं ॥ ११ ॥ (कहते हैं—) मैं, धूम, धूमारे बड़े भारी सनकादि, शास्त्र, वेदता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, वृक्ष, रंगेनाले जन्तु, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, उल्क, मृत-मेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याकर, बाल, वृद्ध, और भी नाना प्रकारके जीव—जो आकाश, जल या स्वर्गमें रहते हैं—मह-नक्षत्र, केतु (पुच्छन छोटे), तारे, निजली और बादल—ये सब-के-सब चित्त पुरुष ही हैं । यह सम्पूर्ण विश्व—जो कुछ कभी नहीं है या होगा—सबको वह घेरे हुए है और उसके अंदर वह विश्व उसके केवल दस अंगुलके परिमाणमें ही स्थित है ॥ १२-१५ ॥ जैसे सूर्य अपने मण्डलके प्रकाशित करते हुए ही बाहर भी प्रकाश फैलते हैं, वैसे ही पुरुषपुरुष परमार्थमा भी सम्पूर्ण विराट् विश्वको प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर—सर्वत्र एकत्वं प्रकाशित हो रहा है ॥ १६ ॥ मुनिवर ! जो कुछ मनुष्य की कृपा और साहस्यसे बनता है, उससे वह परे है और अप्रुत एवं अमयपद (मोक्ष) का स्वामी है । यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकता ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण लोक मानन्दके एक पादमात्र (अंशमात्र) हैं तथा उनके अंशमात्र लोकमें समस्त प्राणी निवास करते हैं । मूलोक, सुकर्मोक और सर्वलोकके ऊपर मूलोक है । उसके भी ऊपर जन, तप और मत्स्यलोकमें क्रमशः अमृत, क्षेम एवं अमयपद निरूप निशाम है ॥ १८ ॥

जन, तप और सत्य—इन तीनों लोकोंमें ब्रह्मचारी, बानप्रस्थ एवं संन्यासी निवास करते हैं । दीर्घकालीन व्यासजीसे रहित गृहस्थ भूयोक्त, सुकर्मोक और सर्वलोकके भीतर ही निवास करते हैं ॥ १९ ॥

१ प्रा पा—य इमे । २ प्रा पा—प्रातपताण्यो । ३ प्रा पा—प्रापि । ४ प्रा पा—वहिस्तपस्य प्रज्ञानां य आभयाः । ५ प्रा पा—गृहप्रतपम् ।

● ब्रह्माण्डके तत्त्व आचरणका वर्णन करते हुए वैष्णव प्रक्रियामें ऐसा माना है कि—पृथ्वीसे दक्षिणा तक हैं । दक्षिणे दक्षिणा अग्नि अग्निसे दक्षिणा वायु वायुसे दक्षिणा अश्वत्थ, आकाशसे दक्षिणा अश्वत्थ, अश्वत्थसे दक्षिणा महत्तत्त्व और महत्तत्त्वसे दक्षिणा गृह प्रकृति है । यह प्रकृति यग्ययुक्तके केवल एक पादमें है । इस प्रकार भगवान्की मूर्ति प्रकट हो गयी है । यह दशाहुस गायक कहलाता है ।

सृती विषयक्रम विषयः साधनानुष्ठाने उभे ।

यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तुभयाभयः ॥२०॥

यस्मादप्यं विगद् अङ्गे मृतेन्द्रियगुणात्मकः ।

तद् द्रव्यमत्यगाद् विश्व गोभि र्घर्षश्चावर्तयन् ॥२१॥

यत्तस्य नाम्याशलिनाहमास महात्मन ।

नाविद यद्वसम्भारान् पुरुषावयवाहते ॥२२॥

तेषु यद्वस्य पशव सवनम्यतयः कुशा ।

इत् च ऽयपज्जर्न कालश्चोद्गुणान्वितः ॥२३॥

वस्तून्पोषध सनेहा रसलोहमृदो जलम् ।

अचो भर्जुपि मामानि चातुर्होत्रं च मत्तम् ॥२४॥

नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ।

दंशतानुक्रम कल्प सङ्कल्पस्तन्त्रमथ च ॥२५॥

गतया मतम अद्वा प्रायश्चित्तं मर्मर्षणम् ।

पुरुषावयवरत सम्भारा मम्यूता मया ॥२६॥

इति मम्यूतमम्भारः पुण्यावयवैरहम् ।

तमेव पुरुषं यद्व तेनैवायनमीधरम् ॥२७॥

ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतया नव ।

अयनन् व्यक्तमव्यक्त पुरुषं सुसमाहिता ॥२८॥

ततश्च मनव फाल इजिर अपयोऽपरे ।

पितरो विपुर्धा र्दया मनुष्या व्रतुभिर्विभृम् ॥२९॥

नारायण भगवति तन्दि विषमहाहितम् ।

गृहीतमायारगुण मर्गात्तवगुण व्यसः ॥३०॥

शास्त्रोंमें दो मार्ग बतलाने गये हैं—एक अविद्यारूप कर्म-मार्ग, जो सकल पुरुषोंके लिये है और दूसरा उपासनारूप विद्याका मार्ग, जो निष्काम उपासकोंके लिये है । मनुष्य दोनोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेकर भोग प्राप्त करना चाहले दक्षिण-मार्गसे अपना मोक्ष प्राप्त करना चाहले उत्तरमार्गसे यात्रा करता है, किन्तु पुरुषोत्तम मन्वान् दोनोंके आधारभूत हैं ॥ २० ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग हैं, वैसे ही जिन परमात्मासे इस अणुकी और पञ्चभूत, एकदश इन्द्रिय एवं गुणमय विराट्की उत्पत्ति हुई है—वे प्रभु भी इन सम्स्त वस्तुओंके अदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनके सर्वथा अनीत हैं ॥ २१ ॥

जिस समय इस विराट् पुरुषके नामि-कमलसे मेघ बन्य हुआ, उस समय इस पुरुषके अङ्गोंके अतिरिक्त सुप्ते और कोई भी यज्ञकी सामग्री नहीं मिली ॥ २२ ॥ तब मैंने उनके अङ्गोंमें ही यज्ञके पशु, यूप (स्वप्न), कुश, यह यज्ञभूमि और यज्ञके योग्य उत्तम कर्त्तव्यी कल्पना की ॥ २३ ॥ अग्नि-धर्म । यज्ञके लिये आवश्यक पात्र आदि वस्तुएँ, जौ, चावल आदि ओषधियाँ, घृत आदि स्नहपदार्थ, छ रस, लोहा, मिट्टी, जड़, अक्षु, यजु, माय, चातुर्होत्र, यज्ञोंके नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओंके नाम, पद्धतिमय, सङ्कल्प, स्त्र (अनुगमकी रीति), गति, मति, अज्ञा, प्रायश्चित्त और समर्पण—यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट् पुरुष के अङ्गोंसे ही इकट्ठी की ॥ २४-२६ ॥ इस प्रकार विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही सारी सामग्रीका समग्र करके मैंने उन्हीं सामग्रियोंसे उन यज्ञस्वरूप परमात्माका यज्ञके द्वारा यजन किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर मुझारे बड़े माइ इन नौ प्रजापतियोंने अपने चित्तका दूग ममूहित करके विराट् एवं अमूर्त्यादीरूपसे स्थित उस पुरुषकी आराधना की ॥ २८ ॥ इसके पचास सम्य-ममयर मनु अग्नि, विर, दक्ष्णा, दैत्य और मनुष्योंने यज्ञोंके द्वारा भगवान्की आराधना की ॥ २९ ॥ मारम् । यह सङ्पूर्ण विधि उन्हीं भगवान् नारायणमें स्थित है जो स्वयं तो प्राज्ञ गुणोंसे रहित हैं, परंतु सृष्टि प्रारम्भमें मायाके द्वारा बहुत-से गुण

१ प्रा या —विषयः । २ प्रा य —गुणाभय । ३ प्रा या —इवावयवम् । ४ प्रा या —पशव ।

५ प्रा य रतः । ६ प्रा या —चासमीधर ।

सृजामि तन्निष्कृतोऽहो हरति तद्वत् ।

विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिषुकिषुक् ॥३१॥

इति तज्जिह्वितं वात भयेदमनुपृच्छसि ।

नान्यद्भगवत किंचिद्भाष्यं सदसदात्मकम् ॥३२॥

न भारती मेऽङ्ग सृपोपलक्ष्यते

न वै कचिन्म मनसा सृया गति ।

न मे हृषीकणि पतन्त्यसम्पद्ये

यन्म हृदौत्कण्ठ्यवता वृत्तो हरि ॥३३॥

सोऽहं समाज्ञायमयत्तपोमम

प्रजापतीनामभिवन्दिता पतिः ।

आस्थाय योगं निपुणं समाहित-

स्वं नाभ्यगच्छं यत् आत्मसम्भवः ॥३४॥

नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीपुषां

भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् ।

योऽहं आत्ममात्माविभवः पर्यगाद्

यथा नभः स्वान्तमभापरे वृत्तः ॥३५॥

माह न यूयं यष्टां गतिं विदुः

न वामदेव किमुतापर सुराः ।

तन्मायया मोहितपुद्गयस्त्विदं

विनिर्मितं चैतमसमं विश्वम् ॥३६॥

यस्यावतारकर्माणि गायन्ति वासुदेवस्य ।

न य विदन्ति तत्रेव तस्मै भगवते नमः ॥३७॥

ग्रहण कर लेते हैं ॥ ३० ॥ उन्होंने प्रेरणासे मैं इस संसारकी रचना करता हूँ । उन्होंने अभीन होकर सब इसका संहार करते हैं और वे स्वयं ही त्रिषुके रूपसे इसका पालन करते हैं । क्योंकि उन्होंने सत्त्व, रज और तमकी तीन शक्तियों कीकर कर ली है ॥ ३१ ॥ वेदा । जो कुछ तुमने पूछा था, उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया, भाव या अभाव, कार्य या कारणके रूपमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो भगवान्से भिन्न हो ॥ ३२ ॥

प्यारे नारद । मैं प्रेमपूर्ण एवं उत्कण्ठित हृदयसे भगवान्के स्मरणमें मन रहता हूँ, इसीसे मेरी कभी कभी असत्य होनी नहीं दीखती, मेरा मन कभी असत्य सङ्कल्प नहीं करता और मेरी इन्द्रियों भी कभी मर्यादा छोड़कर निकल करके कुमार्गमें नहीं जाती ॥ ३३ ॥ मैं वेदमूर्ति हूँ, मेरा जीवन तपस्यामय है, बड़े-बड़े प्रजापति मेरी कृपण करते हैं और मैं उनका स्वामी हूँ । पहले मैंने कई निष्ठासे योगका सर्वाङ्ग अनुष्ठान किया था, परंतु मैं अपने मूलकारण परमात्माके स्वरूपको नहीं जान सका ॥ ३४ ॥ (क्योंकि वे तो एकमात्र मूर्ति ही प्राप्त होते हैं ।) मैं तो परम मूढकर्म एवं शरण आये हुए मर्छोको जन्म-मृत्युसे सुबानेबले परम कल्याणस्वरूप भगवान्के चरणोंको ही नमस्कार करता हूँ । उनकी मायाकी शक्ति अपार है, जैसे वाक्पति अपने अन्तको नहीं जानता, जैसे ही वे भी अन्त महिमाका विचार नहीं जानते । ऐसी स्थितिमें दूसरे तो उसका पार पा ही कैसे सकते हैं ? ॥ ३५ ॥ मैं, मेरे पुत्र तुम्हारे और शङ्करजी भी उनके स्वरूपको नहीं जानते, सब दूसरे देवता तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं । हम सब इस प्रकार मोहित हो रहे हैं कि उनकी मायाके द्वारा रचे हुए जगत्को भी दीक-दीक नहीं समझ सकते, अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही अटकल लगाते हैं ॥ ३६ ॥

हमसे केवल जिनके अन्तारकी अविच्छेदक गान ही करते रहते हैं, उनके स्वरूपको नहीं जानते—उन भगवान्के शीकरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥

त एष आद्य पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः ।

आत्माऽऽत्मन्यात्मनाऽऽत्मानं संपच्छसि च पाति च

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्भगवन्धितम् ।

सत्यं पूर्वमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥१९॥

अप्येविदन्ति ध्रुवयः प्रशान्तस्मेन्द्रियाशयाः ।

यदा तदेवामर्षकैस्तिरोभीयेत विन्दुसम् ॥४०॥

आधोऽप्यतारः पुरुषः परस्व

कालः स्वभाव सदसन्मनसः ।

द्रव्यं विकृतो गुण इन्द्रियाणि
विवादस्वादस्यास्तु चरिषु भूजः ॥४१॥

अहं भवो यद्वा इमे प्रजेशा

द्वयादयो ये भवदादयश्च ।

स्वर्लोकपालाः रत्नलोकपाला
नूलोकपालास्तल्लोकपाला ॥४२॥

गन्धर्वविद्याधरचारणेश

ये यधुरद्यौरगनागनाथाः ।

ये वा ऋषीणामृषभाः पितृणां

दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्रा ।

अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूत

कूष्माण्डयादोऽमृगपक्ष्यभीशा ॥४३॥

यत्किं च लोक भगवन्महम्ब-

दोज सहस्रश्च षड्वत् क्षमावत् ।

भीरीविभूत्यात्मवदद्गुतार्थ

तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥४४॥

प्राधान्यतो यानुप आमनन्ति

सीलाधरान् पुरुषस्य भूज ।

आपीयतां कर्माकाशयशोषा

ननुक्रमिष्ये त इमान् सुपेशान् ॥४५॥

वे अजन्मा एवं पुरुषोत्तम हैं । प्रत्येक कल्पमें वे स्वयं अपने आपमें अपने आपकी ही सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संभार कर लेते हैं ॥ ३८ ॥ वे मायाके लेशसे रहित, केवल ज्ञानस्वरूप हैं और अन्तरात्माके रूपमें एकरस स्थित हैं । वे तीनों कालमें सत्य एवं परिपूर्ण हैं, न उनका आदि है न अन्त । वे तीनों गुणोंसे रहित, सनातन एवं अद्वितीय हैं ॥ ३९ ॥ नारद ! महात्मायोग जिस समय अपने अन्तःकरण, इन्द्रिय और शरीरको शान्त कर लेते हैं, तब समय उनका साक्षात्कार करते हैं । परन्तु जब असत्पुरुषोंके द्वारा कुतर्कोंका जाल बिछाकर उनके दृक दिया जाता है, तब उनके दर्शन नहीं हो पाते ॥ ४० ॥

परमात्माका पक्ष्य अक्षर विण् पुरुष है, उसके सिवा काल, स्वभाव, कर्ष, कारण, मन, पञ्च-भूत, अक्षर, तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी, स्वाकार और जड़म नीच—सब-के-नव उन अनन्त भगवन्के ही रूप हैं ॥ ४१ ॥ मैं, शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि ये प्रजापति, तुम और मुम्हारे-जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्गलोकके रक्षक, पक्षियोंके राजा, मनुष्य-लोकके राजा, मीचके लोकके राजा, गन्धर्व, विषाकर और चरणोंके अधिनायक, यक्ष, राक्षस, सौंप और नागोंके स्वामी, मूर्ति, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर दानकाज, और मी प्रेत-पिशाच, भूत-कूष्माण्ड, जल-जन्तु, मृग और पक्षियोंके स्वामी, एवं संसारमें और मी जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रियवत्, मनोकव, शरीर कल या क्षमासे युक्त हैं, अपवा जो मी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूतिसे युक्त हैं, एवं जितनी मी वस्तुएँ अक्षुत वर्णवादी, रूपवान् या अरूप हैं—वे सब के-सब परमनस्वभाव आकाशरूप ही हैं ॥ ४२-४४ ॥ नारद ! इनके सिवा परम पुरुष परमात्मके परम पवित्र एवं प्रधान-महान् लीलाकरण भी शास्त्रोंमें वर्णित हैं । उनका मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ । उनके चरित्र सुननेमें बड़े मधुर एवं श्रवणेन्द्रियके दोरोंको दूर करनेवाले हैं । तुम सावधान होकर उनका रस लो ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यं संहितायां द्वितीयस्कन्धे चतुष्टय्याय ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान्के लीलावतारोंकी कथा

महावाच

यत्रोद्यत स्थितिलोद्धरणाय विभ्रतु

कौही तनुं सकल्यद्यमपीमन्तः ।

अन्तर्महार्थं उपमातमादिदैत्यं

त वंश्याद्विमिव वज्रधरो ददार ॥ १ ॥

वातां लघैरजनपद् सुयमान् सुयज्ञ

आकृतिस्तुरभ्रानथ दक्षिणात्पाम् ।

लोकत्रयस्य मूर्तीमहरवु यन्नाऽऽर्तिं

स्वायम्भुवेन मनुना हरिरित्यनूतः ॥ २ ॥

वज्रं च कर्दमगृहे प्रिज देवहूत्यां

स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ।

ऊच यथाऽऽत्ममन्त्रं गुणसङ्गपद्

मसिन् विधूय कपिलस्वगतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥

अत्ररपत्यमभिक्रान्त आह लुप्ये

दत्तां मयाहमिति यद् भगवान् स दद्य ।

यन्पादपद्मजपरागपविप्रददा

योगार्दिमापुरुर्भी पदुर्हृषाधाः ॥ ४ ॥

वसंतपो विविधलोकसिमुद्यया मे'

मानै मनान् स्वतपसः स चतु मनोऽभूत् ।

१ मा पा०—य ।

प्रज्ञाजी कहते हैं—अनन्त ममान्ने प्रत्येक जन्मे

इसी हुई प्रसीक्य उदार करनेके लिये समस्त
यन्मय कराव-शरीर प्रज्ञा किया था । अतिसूक्ष्म
हिरण्याक्ष जलके अंदर ही लबनेके लिये उनके मानने
आया । जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पर्बतोंके पंख का
बाजे थे, वैसे ही कराव मगधान् अपनी दाढ़ीसे उसके
दुक्क-दुक्क कर दिये ॥ १ ॥फिर उन्होंने प्रभुने कृपि नामक प्रजापतिकी पत्नी
आकृतिक गर्भसे सुयज्ञके रूपमें अन्तार प्रज्ञा किया ।
उस अन्तारमें उन्होंने दक्षिणा नामकी पत्नीसे सुयज्ञ
नामक देवताओंको उत्पन्न किया और तीनों क्षेत्रोंके
बड़े-बड़े सङ्घट्ट ह्रा लिये । इसीसे स्वायम्भुव मनुने उन्हें
हरिके नामसे पुकारा ॥ २ ॥नारद ! कर्म प्रजापतिक घर देवद्वानिके गर्भसे नौ
बहनोंके साथ मगवान्ने कपिके रूपमें अन्तार प्रज्ञा
किया । उन्होंने अपनी माताका उस अन्तर्ज्ञानका उपदेश
किया, जिससे वे इसी जन्ममें अपने हृदयके सम्पूर्ण मन्त्र—
तीनों गुणोंकी आसक्तिकार सारा कविच धोकर कपि
मगवान्के वास्तविक स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥ ३ ॥मूर्ध्नि अत्रि भगवान्को पुत्ररूपमें प्राप्त करना
चाहते थे । उनपर प्रसन्न होकर मगवान्ने उनसे एक
पिन कहा कि 'मैंने अपने आपको तुम्हें दे दिया ।'
इसीसे अन्तार क्षेत्रपर मगधमूक नाम 'दत्त'
(दत्तात्रेय) पड़ा । उसके अरण्यमन्त्रोंके परागसे अपने
शरीरको पवित्र करके राजा यदु और सङ्घाईन आदिने
पागली भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्धियाँ प्राप्त कीं ॥ ४ ॥नारद ! सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने विविध क्षेत्रोंके
रचनेकी इच्छासे तपस्या की । मेरे उस अछण्ड तपसे
प्रसन्न होकर उन्होंने 'तप' अर्थात् 'स्नान' नामसे पुत्र
होकर सनक, सनमदन, सनात्न और सनकुम्भरके रूप-
में अन्तार प्रज्ञा किया । इस अन्तारमें उन्होंने प्रत्येक

प्राक्तन्यसम्पुवविनष्टमिहात्मतत्त्व

मम्यग जगाद् भुनयो यदचक्षुतात्मन् ॥५॥

धर्मस्य दृश्यदुहितर्यजनिए मूर्त्या

नारायणो नर इति स्वतप प्रभाषः ।

दृष्ट्वाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोरं

दव्यस्त्वनङ्गपूतना घटितुं न श्रेष्ठः ॥६॥

कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोपदृष्ट्या

रोपं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसङ्गम् ।

सोऽयं यदन्तरमलप्रविशन् विमेति

कामः कर्षं नु पुनरस्य मनः श्रयेत् ॥७॥

विद्व सपत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राक्षो

बालाऽपि सङ्गुपगतस्तपसं वनानि ।

तस्मा अदाद् ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो

नित्या स्तुवन्ति धनया यदुपर्यधस्तात् ॥८॥

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यबध्न

विष्णुर्पांरूपभग्निरये पतन्तम् ।

प्रात्वार्षिता जगति पुनर्यं च लेभे

दुग्धा वयनि वसुधा सकलानि येन ॥९॥

नामेरमावृषभ आस सुदेविश्रु

पौर्व चचार ममङ्ग जडयागचयाम् ।

कारण पहले कल्पके मूले हुए आत्मज्ञानका श्रितियोंके प्रति यथावत् उपदेश किया, जिससे उन लोगोंने तत्काल परम तत्त्वका अपने हृदयमें साक्षात्कार कर लिया ॥ ५ ॥

धर्मकी पत्नी दक्षकन्या मूर्तिक गमसे वे नर-नारायण-के रूपमें प्रकट हुए । उनकी तपस्याका प्रभाव उनकी जैसा है । इन्द्रकी बेटी हुई कामकी सेना अस्तराएँ उनके सामने जाते ही अपना स्वभाव खो बैठी । वे अपने हाव-भावसे उन आत्मस्वरूप भगवान्की तपस्यामें विघ्न नहीं डाल सकी ॥ ६ ॥ नारद । शङ्कर आदि महातुम्य अपनी रायमें इष्टिसे कामदेवको बला देते हैं, परन्तु अपने आपको जजानेवाले असङ्ग क्रोधको वे नहीं बला पाते । वही क्रोध नर-नारायणके निर्मल हृदयमें प्रवेश करनेके पहले ही उनके मारे काँप जाता है । फिर मखा, उनके हृदयमें कामका प्रवेश तो हो ही कैसे सकता है ॥ ७ ॥

अपन पिता राजा उच्छानपादके पास बैठे हुए पाँच वर्षके बालक-धुक्को उनकी सौतेली माता मुकुचिने अपने वचन-बाणसे बेच दिया था । इतनी छोटी अवस्था होने-पर भी वे उस ग्लानिसे तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये । उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने धुक्को धुक्पत्न्या वरदान दिया । आब भी धुक्क ऊपर-नीचे प्रशिक्षणा करते हुए नित्य महर्षिगण उनकी स्तुति करते रहते ॥ ८ ॥

कुमार्गामी वनका पक्षय और पीठव बालगोंके हुक्कररूपी वस्त्रसे बलकर मम्म हो गया । वह नरकमें गिरन लगा । श्रितियोंकी प्रार्थनापर मगधनून उनके स्तीर मन्थनसे पुत्रके रूपमें अवतार धारण कर उसे नरकमें उतारा और इस प्रकार 'पुत्र' नामकी क्षतितार्प किया । उसी अवतारमें पूषीको गाप बनाकर उन्होंने उससे जगदके लिये समस्त औपधियोंका ग्राहण किया ॥ ९ ॥

राजा नाभिषि पत्नी सुदेवीके गमसे मगधनून श्वरमन्त्रके रूपमें जन्म लिया । इस अवतारमें समस्त आसक्तियोंसे रहित रहकर, अपनी इन्द्रियों और मनका

१ मा पा — भगवन्तया । २ मा पा — प्रमन्त्रम् ।

३ 'पुत्र' शब्दका अर्थ ही है 'पुत्र' नामक मरकत रत्न करनेगान ।

यत् पारमहंसमृषयः पदमामनन्ति

स्वयः प्रशान्तकरणः परिशुक्तसङ्गः ॥१०॥

तत्रे ममाम भगवान् हर्षशीरपाथो

साध्यात् म यद्वपुरुषस्तपनीयवर्ण ।

छन्नोमयो मगमयोऽखिलदेवतात्मा

वाचो बभूवुरुक्षतीः क्षमतोऽस्य नस्तः ॥११॥

मन्स्यो युगान्तममये मनुनोपलम्भः

धोमीमयो निखिलजीवनिकापकेत ।

विस्मितानुरुभये सलिलं मेखान्म

आदाय तत्र विजहार ह वेदभार्गवा ॥१२॥

धीरोदधावमगदानवयूथपाना

सुन्मग्रताममृतलम्भय आदिदेव ।

पृष्ठेन कच्छपवपुर्निदधार गात्रं

निद्रांशुणाऽद्रिपरिवर्तकपाणकण्ट ॥१३॥

प्रविष्टपोरुभपहा म नृमिहूरूप

कृत्वा अमदुभुदुर्दिदृष्टकरालपक्वम् ।

दत्पन्त्रमाशु गत्याभिपतन्तमारा-

दूरा निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम् ॥१४॥

अन्तःसरस्फुरत्पलन पदं शृङ्गीठा

प्राहणं यूपपतिरम्पुजहन् आत ।

आहदमादिपुरुषाभिल्लासनाथ

तीर्थधर भरणमद्भुतनामधय ॥१५॥

अकृष्ट शान्त करके एव अपने स्वरूपमें स्थित होकर सम्पदशक्तिके रूपमें उन्होंने जबोंकी मूर्ति योगकर्षण का आचरण किया । इस स्थितिको महर्षिभोग परमहंसपण्यवा अवधूतधर्या कहते हैं ॥ १० ॥

इसके बाद स्वयं उन्होंने यद्वपुरुषने भरे यन्म सगर्वे समान कान्तिवाले हयग्रीवके रूपमें अवतार ग्रहण किया । भगवान्का यह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवमय है । उन्होंनेकी नासिकसे आसके रूपमें वेदवाणी प्रकट हुई ॥ ११ ॥

चाक्षुर मन्वन्तरके अन्तमें मावी मनु सत्त्वने मत्स्यरूपमें भगवान्को प्राप्त किया था । उस समय पृथ्वीरूप नौकाके आश्रय होनेके कारण वे ॥ ११ ॥ समस्त जीवोंके आश्रय बने । प्रलयके उस मयंकर जलमें वे मुखसे गिरे हुए केनैको लेकर वे उसीमें विहार कर रहे ॥ १२ ॥

जब मुख्य-मुख्य देवता और दानव अवतकी प्राप्ति लिये क्षीरसागरको मय रहे थे, तब भगवान्ने कच्छप रूपमें अपनी पीठपर मन्दराचम धारण किया । उस समय पर्वतके घूमनेके कारण उसकी राहसे उनकी पीठ सुनस्यहट बोधी मित्र गयी, जिससे वे कुछ क्षणोंके सुखकी नींद सो मके ॥ १३ ॥

देवताओंका महान् मय मित्रनके लिये उन्होंने नृमिहूरूप ग्रहण किया । फलकनी हुई मूर्तियों के तीर्थी गङ्गोसे उनकी मुख्य बड़ा मयाका समस्त वा शिरग्यकशिपु उन्हें देखते ही हाथमें गदा लेकर उल्टा पड़ा । इसपर भगवान् वृसिहने दूरसे ही वं पकड़कर अपनी जोंबोंपर दान किया और उठा छत्राश्रमे रहनेपर भी अपने मन्त्रोंसे उसका पेट फट गया ॥ १४ ॥

बड़े भारी सरोवरमें महाकनी प्राहमे गजेन्द्रका पतक दिया । जब बहुत पथपर बंद पड़ा गया तब उसने अपनी रूढ़िमें कमजोर स्थिति में आचरनेसे पुनः पथ दिखाने का प्रयत्न किया । इस समय लोकोके मन्त्री अरगम्यजने बन्ध्याग करनेवाले ॥ १५ ॥

धृत्वा हरिस्तर्मरणार्थिनमप्रमेय

शक्रायुध पतगराजभुजाधिरूढ ।

चक्रेण नक्रवदनं विनिपात्र्य सप्ता

दस्ते प्रगृह्य भगवान् कृपयोज्ज्वल ॥१६॥

ज्यायान् गुणैरवरजोऽप्यदिते सुतानां

लोकान् विचक्रम इमान् यदथाधिपद्य ।

ह्मां वामनेन अगृहे त्रिपदच्छलेन

याच्यामृते पथि चरन् प्रहृभिर्नवात्म्य ॥१७॥

नाथो बलेरयमुक्कमपादशोच-

माप शिखापृतवतो विबुधाधिपत्यम् ।

यो वै प्रतिभुतमृते न चिकीर्षदन्य

दात्मानमङ्गद्विरंसा हरयेऽभिमेने ॥१८॥

तुम्य च नारद शृणु भगवान् विष्टम्

भावेन साधुपरितुष्ट उवाच योगम् ।

ज्ञान च भागवतमात्मसुखदीपं

मनुष्यासुदेवशरणा विदुरस्सर्व ॥१९॥

चक्रं च दिक्षुविहसं दशसु स्वतेजो

मन्वन्तरेषु मनुवंशधरो विभर्ति ।

दृष्टु राजसु दर्म व्यदधात् स्वकीर्तिं

सत्ये त्रिष्टु उग्रशीं प्रथयन्निर्ऋतिः ॥२०॥

उसकी पुकार सुनकर अनन्तशक्ति भगवान् चक्रपाणि गरुडकी पीठपर चक्रकर बहो आये और अपने चक्रसे उन्होंने ब्राह्मका मस्तक उखाड़ डाला । इस प्रकार कृपापरवश भगवान्ने अपने शरणागत गजेन्द्रकी सूँझ पकड़कर उस निपटिसे उसका उद्धार किया ॥ १६ ॥

भगवान् वामन अदितिके पुत्रमें सबसे छोटे थे, परंतु गुणोंकी दृष्टिसे वे सबसे बड़े थे । क्योंकि यह पुरुष भगवान्ने इस अवतारमें वल्लिके संकल्प छोड़ते ही सम्पूर्ण लोकोंको अपने चरणोंसे ॥ माप किया था । वामन बनकर उन्होंने तीन पग पृथ्वीके बहाने दत्तिसे सारी पृथ्वी ले तो ली, परंतु इससे यह बात सिद्ध कर दी कि सन्मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंको याज्ञमाके सिवा और किसी उपायसे समर्थ पुरुष भी अपने स्थानसे नहीं हटा सकते, ऐश्वर्यसे ध्युत नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ दैत्यगण बन्निने अपने स्त्रियर साथ वामनभगवान्का चरणपूत धारण किया था । ऐसी स्थितिमें उन्हें जो देवताओंके राजा इन्द्रकी पदवी मिली, इसमें कोई बलिकर पुरुषार्थ नहीं था । अपने गुरु शुक्याचार्यके मना करनेपर भी वे अपनी प्रतिज्ञाके विपरीत कुछ भी करनेको तैयार नहीं हुए । और तो क्या, भगवान्का तीसरा पग पूरा करनेके लिये उनके चरणोंमें स्त्रिर रखकर उन्होंने अपन आपको भी समर्पित कर दिया ॥ १८ ॥

नारद । तुम्हारे अत्यन्त प्रेमभावसे परम प्रसन्न होकर इसके रूपमें भगवान्ने तुम्हें योग, ज्ञान और आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाले भागवतधर्मका उपदेश किया । यह केवल भगवान्के शरणागत मत्तोंको ही सुगमतासे प्राप्त होना है ॥ १९ ॥ वे ही भगवान् स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंमें मनुके रूपमें अवतार लेकर मनुवंशकी रक्षा करते हुए दसों पिताओंमें अवन सुदानचक्रके समान तेजसे बेरोक-टोक—निष्पल्लव राज्य करते हैं । तीनों लोकोंके ऊपर सम्पूर्णभूत उनके चरित्रोंकी कम्पनी कीर्ति फैल जाती है और उसी रूपमें वे समस्त समयपर पृथ्वीके भारभूत दुष्ट राजाओंका दमन भी करते रहते हैं ॥ २० ॥

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्ति-

नाम्ना नृणां पुरुरक्षां रुज आशु हन्ति ।

मद्ये च भागममृतायुर्वर्षावरुन्ध

आयुश्च वेदमनुशास्त्वथवीर्यं लाफे ॥२१॥

धर्मं क्षयाय विधिनापभृतं महात्मा

ब्रह्मध्रुगुज्जितपथं नरकारिणिलिप्सु ।

उद्धन्त्यमावबनिकष्टकमुग्रवीर्यं

स्त्रिःसप्तकृत्स्न उरुधरपरम्परेण ॥२२॥

असत्प्रसादसुमुत्सवः कल्या कलेश्च

इक्ष्वाकुवश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ।

तिष्ठन् वन सदमितानुज आविवेक्ष

यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छद् ॥२३॥

यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवपो

मागं सपथरिपुरं हरवद् दिधक्षोः ।

दूरमुद्धन्मथितरोपसुषोणघट्टया

तातप्यमानमक्रतोरगनक्रचक्रः ॥२४॥

वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाह

दन्तर्विदम्बितकङ्कभुषणहृत्पद्मम् ।

मद्योऽनुभि सह विनेप्यति दारदरुं

विमृजितवर्धनुष उषरसाधर्मिन्य ॥२५॥

खनामधन्य भगवान् धन्वन्तरि अपने नामसे ही बड़े-बड़े रोमियोके रोग लक्ष्मण नष्ट कर देते हैं । उन्होंने अमृत पिलाकर देवताओंको अमर कर दिया और दैत्योंके इन्द्र हरण किये हुए उनके यज्ञभाग उन्हें मितसे दिया दिये । उन्होंने ही अवतार लेकर संसारमें आयुर्वेदका प्रकीर्ण किया ॥ २१ ॥

जब संसारमें ब्राह्मणप्रोद्भि आर्यमर्यादाका उल्लंघन करनेवाले नास्तिकीय क्षत्रिय अपने नाशके लिये ही दैवता बड़ जाते हैं और पृथ्वीके काँटे बन जाते हैं, तब भगवान् महापराक्रमी परमुरामके रूपमें अकनीर्ण होकर अपनी तीक्ष्ण धारवाले फरसेसे इकिस बार उनका संहार करते हैं ॥ २२ ॥

मायापति भगवान् हमपर अनुग्रह करनेके लिये अपनी कलशों—महत शत्रुघ्न और लक्ष्मणके साथ श्रीरामके रूपसे इक्ष्वाकुके वंशमें अकनीर्ण होते हैं । इस अकनारमें अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपनी पत्नी और माईके साथ वे वनमें निवास करते हैं । उसी समय उनसे विरोध करनेके राग उनके हाथों मला है ॥ २३ ॥ त्रिपुर विमानको जवानेके लिये उड़ान शङ्करके समान, जिस समय भगवान् राम शत्रुकी नागी लङ्काको मरम करनेके लिये समुद्रतटपर पहुँचते हैं, उस समय सीताके वियोगके कारण बड़ी डूई कोवासिसे 'उनकी आँखें इतनी मरल हो जाती हैं कि उनकी दृष्टिसे ही समुद्रके मगरमच्छ, साँप और ग्राह आदि जीव जन्मे छाते हैं और मरसे घर-घर कोपता हुआ समुद्र बग्यद उन्हें मार्ग दे देता है ॥ २४ ॥ जब रावणकी कछेरे आनीसे टकराकर इन्द्रके बाहन पेरारक्तके दौल घूर घूर होकर चारों ओर फैल गये थे मितसे दिशायें सफेद हो गयी थीं, तब दिग्बिजयी रावण घमंडसे झुठरा हैंसने लगा था, बड़ी रावण जब श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीतानीकीके पुण्यकर ले जाता है और लङ्काके मैदानमें उनसे लड़नेके लिये गर्वपूर्वक जाता है, तब भगवान् श्रीरामके धनुसकी टङ्कासे ही उगच्छ यह प्रमंड प्राणोंके

साथ लक्षण मिडीन हो जाता है ॥ २५ ॥

भूमे* सुरेतरवस्थविमर्दिताया
 ह्येवम्ययाय कलया सितकुण्डलकेन ।
 जात करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गं
 कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि॥२६॥

तोकन जीवहरण यदुल्लिखत्या
 स्रैमामिकस्य च पदाश्रकनोऽपहृत् ।
 यद् रिक्तान्तरगतने दिविस्पृशोर्वा
 उन्मूलनस्वितर्यार्जुनयोर्न भाव्यम्॥२७॥

यद् वै व्रजे व्रजपद्मं विपतोपपीधान्
 पालांस्त्वजीवपदनुग्रहदृष्टिदृष्टया ।
 तच्छ्रुदयेऽतिविषयीर्यविलोलजिह्व
 सुषाटयिष्यदुरग विहरन् हृदिन्याम्॥२८॥

तत् कर्म दिम्पमिव यमिष्टि निःश्रयानं
 दावाग्निना श्रुचिवने परिदहमाने ।
 उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं
 नेत्रे पिचाप्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यं॥२९॥

गृहीत यद् यदुपकन्धममुष्य माता
 शुन्ध सुतस्य न तु तत् तदमुष्य माति ।
 यज्जृम्भतोऽस्य वदने सुषनानि गोपी
 सत्रीक्ष्य शङ्कितमना* प्रतिषोभिताऽऽसीत्॥३०॥

नन्द च मोक्षयति भयाद् वरुणस्य पाशाद्
 गोपान् बिलेषु पिडितान् मयसनुना च ।

जिस समय हुं-के-हुं-के दैत्य पृथ्वीको रौंद बाँधेगे,
 उस समय उसका मार उतारनेके लिये मगवान् अपने
 सफेद और काले केशसे वस्त्रधर और धीहृष्यके रूपमें
 कथाश्रुतार ग्रहण करेंगे ।* वे अपनी महिमामको प्रकट
 करनेवाले इतने अहुत चरित्र करेंगे कि संसारक मनुष्य
 उनकी लीलाओंका रहस्य विन्दुल नही समझ
 सकेंगे ॥ २६ ॥ वचनमें ही पूतनाके प्राण हर लेना,
 तीन महीनेकी अवस्थामें पैर उछालकर बड़ा मारी छका
 उछट देना और घुन्नोके बन्ध बल्ले-बल्ले आकाशको
 छूनेवाले यमलार्जुन वृषोंके बीचमें जाकर उन्हें उखाड़
 डालना—ये सब ऐसे कर्म हैं, जिन्हें मगवान् के सिवा
 और कोई नहीं कर सकता ॥ २७ ॥ जब काश्यानागके
 निगसे दूधिन हुआ यमुना-बन्ध पीकर घड़ा और गोप-
 बाजक मर जायेंगे, तब वे अपनी सुचामयी कृपादृष्टिकी
 बरासे ही उन्हें जीवित कर देंगे और यमुना-जलको
 मुद्ध करनेके लिये वे उसमें विश्रुत करेंगे तथा विरकी
 शक्तिसे जीम लपलपाते हुए काश्यानागको वहाँसे निकाल
 देंगे ॥ २८ ॥ उसी दिन रातको जब सब लोग नहीं
 यमुना-तटपर सो जायेंगे और दावाग्निके आस-पासका
 मूँबका वन चारों ओरसे जकने लगेगा, तब कर्मरामजीके
 साथ वे प्राणसङ्कटमें पड़े हुए व्रजवासियोंको उनकी ओर
 बंद कराकर उस अग्निके बचा लेंगे । उनकी यह लीला
 भी अनौकिसि ही होगी । उनकी शक्ति काव्यमें अचिन्त्य
 है ॥ २९ ॥ उनकी माना उन्हें बौधनेके लिये जो-जो
 रस्ती लायेंगी, वही उनके उदरमें पूरी नहीं पड़गी, दो
 अंगुल छोटी ही रह जायगी । तथा जैमाइ केते समय
 श्रीहृष्यके मुखमें बौदहों मुक्त देखकर पहले ता यशो-
 मयीत हो जायेंगी, परन्तु फिर वे सफल जायेंगी ॥ ३० ॥
 व नन्दबाबाको अजगरके मयसे और वरुणक पाशसे
 छुड़ायेंगे । मय दानवका पुत्र भ्योमसुर जब गोपबाओंको
 पहावकी गुफाओंमें बंद कर देगा, तब वे उन्हें भी यहाँसे

१ प्रा पा — धाक ।

* येचोके अवतार कहनेका अतिप्राय यह है कि पृथ्वीका मार उतारनेके लिये तो मगवान् का एक बन्ध ही काफी है ।
 इतना अतिरिक्त भीरवराजकी और भीरुप्यके बगोबी रचना देनेके लिये भी उन्हें क्रमशः ठेके और काले केचोका अवतार
 चला गया है । वस्तुतः श्रीहृष्य तो पूजपुत्र स्वयं मगवान् हैं—हृष्यलु भगवान् स्वयम् ।

म न ल १ पृ३—

अह्यापृतं निधिं क्षयानमतिभमेण

लोकं विकृष्टमूर्धनेष्यति गाकुलम् ॥३१॥

गौर्धर्मस्ते प्रसिद्धे ब्रजविष्णुनाथ

देवेऽभिवर्षति पञ्चान् कृपया रिखुः ।

कर्तोऽच्छिलीन्द्रमिव सप्त दिनानि सप्त-

वर्षों महीध्रमनपैककरे सलीलम् ॥३२॥

क्रीडन् वने निधिं निष्ठाकररश्मिगौरौ

रासोन्मुखः कल्पदापतमूर्च्छितेन ।

उशीपितसररुजां ब्रजमृदध्नां

हर्तुर्हरिष्यति शिरो भनदानुगम् ॥३३॥

ये च प्रलम्बस्तरददुर्दुरैक्यगिष्ट

मल्लेभक्तसक्वनाः कुञ्जपौष्पकायाः ।

अन्ये च क्षास्त्वकपिबल्लवदन्तवक्त्र

सप्ताश्वम्बरविदूरधकमिमुस्या ॥३४॥

ये वा मृचे समितिशालिन आचचापा

काम्बोजमस्त्यकुर्त्तकैक्यसृजयायाः ।

मास्तन्त्वदर्शनमलं कलपार्थभीम-

भ्यामाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥३५॥

कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां

स्रोकायुषां खनिगमो वत्त दूरवारः ।

आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्सां

षट्पुमं विटपद्यो विभजिष्यति स्म ॥३६॥

देवद्विपां निगमवत्सनि निष्ठितानां

पुर्धिमयेन विहितानिगद्वयमूर्ध्नि ।

बचा लायेंगे । गोकुलके जोगोंको, जो दिनभर तो काम-
धर्मोंमें व्यकुल रहते हैं और रातको क्षयित वक्त्र
सो जाते हैं, साधनाहीन होनेपर भी, वे अपने परस्वामों
से जायेंगे ॥३१॥ निष्ठापनरद । जब श्रीकृष्णजी सप्ताहसे
गोपलांग इन्द्रका यज्ञ बंद कर देंगे, तब इन्द्र ब्रह्ममूर्ति
नाश करनेके लिये चारों ओरसे मूसलधारभर्य करे लगे।
उससे उनकी तथा उनके पशुओंकी रक्षा करनेके लिये
भगवान् कृपापरवश हो सात वर्षकी अवस्थामें ही सात दिन-
तक गोवर्द्धन पर्वतकी एक ही हाथसे छत्रकमुण्ड (कुतुरमुत्ते)
की तरह खेद-खेदमें ही धारण किये रहेंगे ॥ ३२ ॥
इन्द्रावनमें विहार करते हुए उस करनेकी इच्छासे वे रातके
समय, जब चन्द्रमाकी उज्ज्वल चौदनी चारों ओर छिंक
रही होगी, अपनी बाँसुरीपर मधुर सस्तेनकी कवी ठान
लेवेंगे । उससे प्रेमविन्ना होकर आयी हुई गौरियोंको जब
कुञ्जरका सेक शङ्खचूड़ हरण करेगा, तब वे उसका
सिर उतार लेंगे ॥ ३३ ॥ और भी बहुत-से प्रख्यात
बेनुकासुर, ककासुर, केशी, अरिष्टासुर आदि दैत्य
चाणूर आदि पबलवान, कुम्भलापीड हाथी, कंठ
काल्यक्त्र, भीमासुर, मिथ्याबाहुदेव, शस्त्र, त्रिदिग्ध वन
कलक, दन्तवक्त्र, राजा नमजित्क सात बैल, शम्बर
सुर, विदूरथ और इसी आदि तथा काम्बोज, मस्त्य
कुल कैक्य और सृष्टय आदि देशोंके राजाजोग एवं जो
योद्धा धनुष धारण करके युद्धके मैदानमें सामने आये
व सब बलवत्, भीमसेन और अर्जुन आदि नामोंकी आर्ष-
सय भगवान्के द्वारा मरे जाकर उनकी धानमें कं
जायेंगे ॥३४ ३५॥

समयके पेरसे लगेकी सम्पत्ति कम हो जाती है
आयु भी कम होने लगती है । उस समय जब भगवान्
देखते हैं कि जब ये लोग मेरे तत्त्वको बलवत्मेव
वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब
प्रत्येक वस्त्रमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट
होकर ये वैष्णवी वृष्टय विभिन्न शस्त्रास्त्रोंके रूपमें
विभजन कर देते हैं ॥ ३६ ॥

देवताओंके वायु दैत्यलोक भी वेदमार्गका सहाय
लेकर भयानकके बनाये हुए अदृश्य वेगजाले नगरोंमें

१ मा पा — उपवास्यति । १ मा पा —

कुञ्जपौष्पकायाः । १ मा पा — मुचि पार्थभिमम् ।

४ मा पा — रश्मिपति ।

लोकान् मतां मतिविमोहमस्तिप्रलोभं

वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥३७॥

यद्बलियेष्वपि सतां न हरे कथाः स्युः

पालण्डिनो द्विवजना वृषला नृदेवाः ।

स्वाहा स्वधा वपदिति स गिरो न यत्र

शास्ता भविष्यति कलेर्मगत्वान् युगान्ते ॥३८॥

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः

व्याने च धर्ममस्त्रमन्वमरावनीशाः ।

अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराणां

मायाविमृतयश्माः पुरुषशक्तिमात्र ॥३९॥

विष्णोर्लु वीर्यगणना कृतमोऽर्हतीह

य पार्थिवान्यपि क्वविर्विममे रजांसि ।

चस्कम्भ य स्वरं हसास्त्वलता त्रिपृष्ठं

यस्मात् त्रिमाम्यमदनादुरु कम्पयानम् ॥४०॥

नान्त विदाम्यहममी ध्रुवयोऽग्रजास्ते

मायावलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ।

गायन् गुणान् दशशतानन आग्निद्व

श्रेयोऽधुनापि भवत्यस्यति नास्य पापम् ॥४१॥

येषां स एव भगवान् देययेदनन्त

मर्वात्मनाऽऽधितपद्मो यदि निर्मलीकम् ।

त दुन्तरामस्तिरन्ति च दवमायां

नैषां ममादमिति धी श्रवणात्कम्पे ॥४२॥

रक्षक लोकोक्त सखानाश यत्ने लोभे, तब भगवान् लोकोक्ति बुद्धिमें मोह और अत्यन्त श्रम उत्पन्न करनेवाला वेप धारण करके धुत्तके रूपमें बहुत-से उपवर्गोंका उपदेश करेगा ॥ ३७ ॥ कश्चिद्युगके अन्तमें जब सत्पुरुषोंके घर भी मगधान्की कथा होनेमें बाधा पड़ने लगेगी, शासक, क्षत्रिय तथा वैश्य पाण्डुपुत्री और शूद्र राजा हो जायेंगे, यहाँतक कि कहीं भी 'स्वाहा', 'स्वधा' और 'अग्नि' की अग्नि-देवता-कित्तोंके यह-आदिकी बाततक नहीं सुनायी पड़ेगी, तब कश्चिद्युगका शासन करनेके लिये भगवान् कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥

जब संसारकी रचनाका समय होता है तब तपस्या, नौ प्रजापति, मरीचि आदि ऋषि और मेरे रूपमें, जब सुष्ठिक रक्षाका समय होता है, तब कर्म, त्रिभु, मनु, देवता और राजाओंके रूपमें, तथा जब सुष्ठिक प्रलयका समय होता है, तब अधर्म, रुद्र तथा श्रोवक नामके सप्त ण्य देव आदिके रूपमें सर्वशक्तिमान् भगवान्की माया-विभूतियों ही प्रकट होती हैं ॥ ३९ ॥ अपनी प्रतिमाक रूपसे पृथ्वीके एक-एक घुल्लि-कणको मिन चुकनपर भी जगत्में ऐसा कौन पुरुष है, जो भगवान्की शक्तियोंकी गणना कर सके । जब वे त्रिविक्रम-अक्षर लेकर त्रिवेणीको नाप रहे थे, उस समय उनके चरणोंके अम्य केसे प्रभुरूप अतिम आचरणसे लेकर मत्प्रेक्षक सारा ब्रह्माण्ड कौंपने लगा था । तब उन्होंने ही अपनी शक्तिसे उसे स्थिर किया था ॥ ४० ॥ समस्त सुष्ठिक रचना और संहार करनेवाली माया उनकी एक शक्ति है । ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियोंके आश्रय उनके स्वरूपको न मैं जानता हूँ और न वे दुष्टार बड़ मझ मनकाहि ही, फिर दूरचेष तो पहना ही क्या है । आदिदेव भगवान् नेत्र सहस्र मुझसे उनके गुणोंका गायन करते आ रहे हैं, परन्तु वे अब भी उनके अन्त की कल्पना नहीं कर सके ॥ ४१ ॥ जो निष्कर्ममयस अपना सवम्भ और आने आपन्न भी उनके चरणवक्त्रमें निहाल पर गे हैं, उनपर वे अनन्त भगवान् स्वर्ग ही अपनी ओरसे दया करते हैं और उनकी दयाके पात्र ही उनकी दुष्टार मायाका सम्पन्न जानने हैं और उसपर पार ना पाते हैं । बाल्यमें ऐसे पुरुष ही कुत और भिद्योंके बन्धन रूप अपने घर पुत्रादिके गिरते पड़ते हैं और वे ऐसे

वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां
 सूर्यं भवमभगवान्मय दैत्यवर्षः ।
 पत्नी मनो स च मनुष्य तदात्मजाय
 प्राचीनवर्हिर्धर्मसुरा उत ध्रुवम ॥४३॥
 इत्याहुरलम्बुमुकुन्दविदेहगाभि-
 रघ्वम्भीपसगरा गयनाहुयाद्या ।
 मान्धातुलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा
 देवव्रतो बलिर्मूर्धरथो दिलीपः ॥४४॥
 सौभर्युतहृदिशिधिवेवलपिप्यलम्ब
 सप्तम्बतोदवपराधरमूरिकेणा ।
 येऽन्वे विभीषणहनुमदुपन्द्रदेव-
 पार्थाष्टिपेजविदुरभुतदेववर्षाः ॥४५॥
 ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
 स्त्रीशूद्रहृणश्वरा अपि पापजीवा ।
 यद्यदुत्तमक्रमपरात्यगशीलशिक्षा-
 स्तिर्गजना अपि किमु भुतधारणा ये ॥४६॥
 दम्पत् प्रशान्तमभयप्रतिबोधमात्रं
 छुटं समं सदसत् परमात्मतत्त्वम् ।
 शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रियाधी
 माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥४७॥
 तद्वै पदं भगवत् परमस्य पुंसो
 ब्रह्मति यद् विदुरब्रह्मसुखं विशोकम् ।
 सध्वद् नियम्य यतयो यमकर्तृहेति
 ब्रह्मः स्वराडिव निपानखनिग्रमिन्द्र ॥४८॥
 न भयमामपि विह्वमगवान् यतोऽस्य
 भावम्यभावाविहितस्य सत प्रमिद्धिः ।

॥ ऐसा माय नहीं करते ॥ ४२ ॥ प्यारे नास् ! परम
 पुरुषकी उस योगमायाको मैं जानता हूँ तथा दम्भेन,
 मगवान् शङ्कर, दैत्यकुलमूयण प्रह्लाद, शतरूपा, मनु,
 मनुपुत्र प्रियव्रत आदि, प्राचीनवर्हि, शत्रु और सुव भी
 जानते हैं ॥ ४३ ॥ इनके सिवा इत्याहु, पुनरघ,
 मुकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गम, ययानि
 आदि तथा मान्धाता, कर्षक, शतधन्वा, धनु, रन्तिदेव,
 भीष्म, बलि, अमूर्धरय, दिलीप, सौमरि, उतङ्ग, शिशि,
 वेकल, पिप्यलम्ब, सारसत, उदव, पराशर, मूरिकेन,
 एवं विभीषण, हनुमान्, छुकदेव, अर्जुन, आश्विनेन, विदुर
 और सुतदेव आदि महात्मा भी जानते हैं ॥ ४४ ४५ ॥
 निन्हें मगवान्के प्रेमी मत्स्येक-सा स्वभाव जनान्की
 शिक्षा मिली है, वे भी, शूद्र, हृण, मील और
 पापके कारण पशु-पक्षी आदि योनियोंमें रहनेवाले भी
 मगवान्की मायाका रहस्य जान जाते हैं और इस
 ससार-सागरसे स्नाक छिपे पार हो जाते हैं, फिर जो
 छेग वैदिक सदाचारका पालन करते हैं, उनके सम्बन्ध
 में तो कहना ही क्या है ॥ ४६ ॥

परमात्माका वास्तविक स्वरूप एकरस, शान्त, अमय
 एवं केवल ज्ञानस्वरूप है । न उसमें मयाका मल है
 और न ता उसके द्वारा स्त्री हुई किमताएँ ही । यह
 सत् और असत् दोनोंसे परे है । किसी भी वैदिक या
 लौकिक शब्दकी व्यापक पहुँच नहीं है । अनेक प्रकार
 के साधनोंसे सम्पन्न होनेवाले करोड़ों फल भी बहोतक
 नहीं पहुँच सकता । और तो क्या, ज्ञान मया भी उसके
 सामने नहीं जा पाती, लज्जाकर भाग खी जाती है ॥४७॥
 परमपुरुष मगवान्का वही परमस्वरूप है । महात्माके
 उसीका शोकरहित अनन्त आनन्दस्वरूप ब्रह्मके रूपमें
 साक्षात्कार करते हैं । मयमशील पुरुष उसीमें अपने
 मनको समाहित करके स्थिर हो जाते हैं । जैसे इन्द्रस्य
 मेघरूपसे विद्यमान होनेके कारण जलके बिन्दु कुर्छाँ
 स्थानेकी पुत्राल नहीं रखते वैसे ही वे भेद दूर करने-
 वाले ज्ञान-साधकोंकी भी छोड़ देते हैं ॥ ४८ ॥ समस्त
 कर्मिके फल भी मगवान् ही देते हैं । क्योंकि मनुष्य
 अपने स्वभावके अनुसार जो धर्म धर्म करता है, वह

दह म्बधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे

घ्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽर्जः ॥४९॥

सोऽयं तेऽभिहितस्मात् भगवान् विश्वभावन ।

समासे न हरनान्यदन्यस्मात् सदसच्च यत् ॥५०॥

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ।

संग्रहाऽयं विमूर्तीनां त्वमेतद् विपुलीकृत ॥५१॥

यथा इदं भगवति नृणां भक्तिर्मविप्यति ।

सर्वात्मन्यखिलाधारे इति सङ्कल्प्य वैर्णय ॥५२॥

मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ।

भृष्वतः श्रद्धया निम्ब माययाऽऽत्मानं मुह्यति ॥५३॥

सब उन्होंनेकी प्रेणासे होता है । इस शरीरमें रहनेवाले पञ्चभूतोंके अल्प-अल्प हो जानेपर अब यह शरीर नष्ट हो जाता है, तब भी इसमें रहनेवाला अजन्मा पुरुष आकाशके समान नष्ट नहीं होता ॥ ४९ ॥

वेदा नारद । सङ्कल्पसे विश्वकी रचना करनेवाले पञ्चभूतसम्पन्न श्रीहरिको मैंने तुम्हारे सामने संक्षेपसे वर्णन किया । जो कुछ कार्य-कारण अपना मात्र-अमात्र है, वह सब भगवान्से भिन्न नहीं है । फिर भी भगवान् तो इससे पृथक् भी हैं ही ॥५०॥ भगवान् मुझे जो उपदेश किया था, वह यही 'भागवत' है । इसमें भगवान्की विमूर्ति-योंका संक्षिप्त वर्णन है । तुम इसका विस्तार करो ॥५१॥ जिस प्रकार सबका अध्यय और सर्वस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें ओगोंकी प्रेम्सी भक्ति हो, ऐसा निश्चय करके इसका वर्णन करो ॥५२॥ जो पुरुष भगवान्की अविनश्य शक्ति मायाका वर्णन या दूसरेके द्वारा किये हुए वर्णनका अनुमोदन करते हैं अपना श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण करते हैं, उनका चित्त मायासे कभी मोहित नहीं होता ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसा संक्षिप्तायां द्वितीयस्कन्धे

ब्रह्मनारदसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टाष्टमोऽध्यायः

राजा परीक्षितके विविध प्रश्न

राजोवाच

ब्रह्मणा चाश्रिता ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च ।

यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो दृढदर्शन ॥ १ ॥

एतद् वदन्तुमिच्छामि तच्च वदन्तिदां वर ।

हरद्रुतवीपस्य कथा तावन्मुमङ्गला ॥ २ ॥

कथयस्व महाभाग यथाहमबिलामनि ।

कृष्ण निवश्य निःसङ्गमनस्त्यक्तकलत्रम् ॥ ३ ॥

राजा परीक्षित कहता—भगवन् ! आप वेदवेदाङ्गों में श्रेष्ठ हैं । मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि जब ब्रह्माजीने त्रिगुण भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेके लिये नारदजीका आदेश लिया, तब उन्होंने कित्त-कित्तका कित्त रूपमें उपदेश किया । एक सा अविनश्य शक्तियोंके आश्रय भगवान् की कथाएँ ही ओगोंका परम महत्त्व करनेवाली हैं, दूसरे द्वायि नारदका सबका भगवद्भक्त बनानका स्वप्न है । अथवा ही आप उनकी बातें मुझ सुनाइये ॥१॥ महा मायमान भुक्त्वमी । आप मुझे ऐसा उत्तम वरदिय कि मैं अपने कामधिरहित मनका सर्वथा भगवान् श्रीहृणमें लगव करके अपना शरीर छोड़ सकूँ ॥ ३ ॥

मृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृण्यतश्च स्वषेष्टितम् ।
 कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विप्रते हवि ॥ ४ ॥
 प्रविष्टः कर्मरन्त्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ।
 पुनोति श्रमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५ ॥
 भौतत्मा पुरुषः कृष्णपद्मलं न मुञ्चति ।
 मुक्तवर्षपरिक्षेपः पान्थः स्वशरणं यथा ॥ ६ ॥
 चदधातुमतो ब्रह्मन् देहार्म्मोऽस्य धातुभिः ।
 यदृच्छया हतुना वा भवन्ती जानते यथा ॥ ७ ॥
 आमीदृ भदुदरात् पथं लोकर्मन्मानलक्षणम् ।
 यावानय वै पुरुष इयत्तावत्यैः पृथक् ।
 तत्त्वानसाविति प्रोक्तं मय्यावयववानिव ॥ ८ ॥
 अजः सृजति भूतानि भूतारभा यवनुग्रहात् ।
 दृष्ट्वा येन तदप नाभिपद्यसमुद्भव ॥ ९ ॥
 म चापि यत्र पुरुषा विश्वमित्युद्भवाम्यय ।
 मुक्त्वाऽऽत्ममार्पां मायेष्ठः धेते सर्वगुहाश्रयः ॥ १० ॥
 पुरुषावयवैर्लोकाः सपाठा पूर्वकल्पिताः ।
 लोकैर्युष्मावयवा मपालरिति शृणुम ॥ ११ ॥
 यावान् कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुधीयते ।
 भूतभग्न्यभग्न्यच्छन्द आयुर्मर्न च यत् सत् ॥ १२ ॥
 कालस्यानुगतिया तु लक्ष्यतेऽप्यी शृहत्यपि ।
 यावत् कर्मगतयो यादृशीर्द्रिजपत्तम ॥ १३ ॥

जो श्रेय उनकी छिन्नजोका श्रद्धाके साथ नित्य भक्त
 और कर्म करते हैं, उनके हृदयमें शेष ही सम्पत्ति
 भगवान् प्रकट हो जाते हैं ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण कानके छिन्नके
 द्वारा अपने मर्त्यके मासमय हृदयमस्पर जाकर बैठ
 जाते हैं और जैसे शरद् ऋतु जलका गैरअपन मित्र
 देती है, वैसे ही वे मर्त्यके मनोमत्ता नाश कर देते
 हैं ॥ ५ ॥ जिसका हृदय शुद्ध हो जाता है, वह श्री-
 कृष्णके चरणमूर्च्छके एक क्षणके छिये भी नहीं
 छोड़ता—जैसे मार्गके समस्त क्लेशोंसे छुटकर घर आया
 हुआ पथिक अपने घरको नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥

मन्त्र १ जीवका पञ्चभूतोंके साथ कोई सम्बन्ध
 नहीं है । फिर भी इसका शरीर पञ्चभूतोंसे ही बनता
 है । तो क्या समासे ही ऐसा होता है, अपना किसी
 कारणवश—आप इस बातका कर्म पूर्णरित्तसे जानते
 हैं ॥ ७ ॥ (आपन कतव्यता कि) मन्त्रान्त्री नामिते
 वह कर्म प्रकट हुआ, जिसमें व्योमकी रचना हुई ।
 पञ्च जीव अपने सीमित अवयवोंसे जैसे परिच्छिन्न हैं,
 वैसे ही आपने परमत्माको भी सीमित अवयवोंसे परिच्छिन्न-
 सा वर्णन किया (पञ्च क्या बात है ?) ॥ ८ ॥ जिसकी
 कृपासे स्रष्टृत्वमय ब्रह्माजी प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं,
 जिनके नाभिकमलसे पैदा होनेपर भी जिनकी कृपेसे
 ही ये उनके रूपका दर्शन कर सकें थे, वे संसारकी
 स्थिति, उत्पत्ति और प्रत्ययके हेतु, सर्वान्तर्यामी और मायके
 स्वामी परमपुरुष परमात्म्य अपनी मामका त्याग करके
 किन्तमें किस रूपसे क्षयन करते हैं ॥ ९ ॥
 पहले आपने कतव्यता था कि विष्ट पुरुषके अङ्गोंसे व्योम
 और लोकका व्योमकी रचना हुई और फिर वह भी बतलाय
 कि व्योम और व्योमका व्योमके रूपमें उसके अङ्गोंकी कल्पना
 हुई । इन दोनों बातोंका तात्पर्य क्या है ॥ ११ ॥

मन्त्रान्त्र्य और उनके अन्तर्गत अन्तर कर्म किन्त
 है ? भूत, भविष्यत् और वर्तमान कर्मका अनुमान किन्त
 प्रकार किया जाता है ? क्या स्थूल देहाभिधानी जीवोंकी आयु
 भी बँटी हुई है ॥ १२ ॥ बाह्यगर्भतः पञ्चकी सूक्ष्म गति
 शुनि आग्नि और स्थूयानि वा आग्नि किन्त प्रकारसे जानी
 जाती है ? विविध कलासे जीवोंकी किन्तनी और कैसी

यस्मिन् कर्मसमावापो यथा येनोपगृह्यते ।

गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥१४॥

भूपस्तालककुण्डल्योमग्रहनक्षत्रभूमृताम् ।

सरित्समुद्रद्वीपानां सम्भवभैतदोक्तताम् ॥१५॥

प्रमाणमण्डकोष्ठस्य शास्त्राभ्यन्तरमेदसः ।

महशां चालुचरितं वर्णाभ्रमविनिश्चय ॥१६॥

युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ।

अवतारानुचरितं यदाभ्यर्पेतम् हरः ॥१७॥

नृणां साधारणो धर्म मविशुषम् यावच्च ।

श्रेणीनां गजप्रीणां च धर्मः कुच्छ्रेणु जीवताम् ॥१८॥

तत्त्वानां परिसङ्गमार्तं लक्षणं हेतुलक्षणम् ।

पुरुषाराधनविधियांगसाध्यात्मिकस्य च ॥१९॥

योगेश्वरैश्वर्यगतिलिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् ।

वन्द्योपवेदधर्मांगामितिहासपुराणयो ॥२०॥

मम्बुव सवम्बुवानां निक्रम प्रतिसंक्रम ।

शृष्टार्थस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधि ॥२१॥

वम्बानुशापिनां सग पास्तप्यस्य च सम्भव ।

आमना धन्वमोर्षी च च्यवम्यानां स्वरूपत ॥२२॥

यथाऽऽत्मनन्त्रा भगवान् विक्रीडत्पात्ममायया ।

विमुञ्च्य वा यथा मायामुदास्ते माखिवद् विमुः ॥२३॥

मर्वमेतस्य भगवन् पृच्छते मञ्जुपुत्रश ।

वचताऽहम्मुदाहृत प्रपञ्चाय महाभुने ॥२४॥

गिनियों होती हैं ॥ १३ ॥ देव, मनुष्य आदि योनियों
सृष्ट, रज, तम—इन तीन गुणोंके फलस्वरूप ही प्राप्त
होती हैं । उनके बाह्यनेत्राले जीवोंमेंसे कौन-कौन किस
किस योनिको प्राप्त करनेके लिये किस-किस प्रकारसे कौन
कौन कर्म स्वीकार करते हैं ॥ १४ ॥ पृथ्वी, पाताल,, दिशा,
आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप और उनमें
रहनेवाले जीवोंकी उत्पत्ति कैसे होती है ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्ड
का परिमाण भीतर और बाहर—जैनों प्रकारसे बतलाये ।
माय ही मन्त्रपुत्रोंके चरित्र, कर्णाग्रमके भेद और उनके
धमका निरूपण करीजिये ॥ १६ ॥ युगोंके भेद, उनके परिमाण
और उनके अन्त्य-अन्त्य धर्म तथा मगदन्तुके विभिन्न अन्तारों
के परम आद्यचयम्य चरित्र भी बतलाये ॥ १७ ॥ मनुष्यों
के साधारण और विशेष धर्म कौन-कौन-से हैं ? विभिन्न
व्यवसायवाले लोगोंके, राजाओंके और विपत्तियों परे हुए
श्रेणोंके धर्म भी उपदेश करीजिये ॥ १८ ॥ तत्त्वोंकी संख्या
त्रिपत्ती है, उनके स्वरूप और लक्षण क्या हैं ? मायानुकी
अवस्थाकी और अणुप्रयोगकी विधि क्या है ॥ १९ ॥
योगेश्वरोंका क्या-क्या एश्वर्य प्राप्त होते हैं, तथा अन्तमें
उन्हें कौन-सी गति मिलती है ? योगियोंका स्मिद्धतीर
किस प्रकार मङ्ग होता है ? वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र,
इतिहास और पुराणोंका स्वरूप एवं तात्पर्य क्या
है ? ॥ २० ॥ समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और
प्रत्यक्ष कैसे होता है ? वाक्की, कुर्वाँ सुत्रवाना आदि
स्मात्, यज्ञ-यागादि वैदिक एवं कर्म्य कर्मोंकी तथा
अर्थ-धर्म-कर्मके साधनोंकी विधि क्या है ॥ २१ ॥
ग्रन्थके मुख्य जो जीव प्रकृतिमें जीन रहते हैं, उनकी
उत्पत्ति कत्ने होती है ? पास्तप्यकी उत्पत्ति कत्ने होती
है ? आत्माका कन्ध-मोक्षका स्वरूप क्या है ? और वह
अपने व्यवहारेमें किस प्रकार स्थित होता है ? ॥ २२ ॥
मगदन्तु जो परम अन्तर्ग्रह है । वे अन्ती मायामे किस
प्रकार ब्रह्मा करते हैं और उसे छोड़कर माक्षीके समान
उत्तमीन कैसे हो जाते हैं ? ॥ २३ ॥ मगदन्तु ! मैं वह
मन्त्र आपसे पूछ रहा हूँ । मैं आपकी शरणमें हूँ ।
महाभुने ! अब क्या यज्ञ का मन्त्र इनका स्मृतिर

अत्र प्रमाणं हि भवान् परमेष्ठी यथाऽऽत्मनः ।

परे चेदनुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥२५॥

न मेऽस्य परायन्ति ब्रह्मजनशनादमी ।

पिबतोऽन्युत्पीप्यमन्यत्र कुपिताब्दिजात् ॥२६॥

सूत उवाच

स उपामन्त्रितो राज्ञा कथामामिति मत्पते ।

ब्रह्मरातो मृश प्रीतो विष्णुरातेन संसृदि ॥२७॥

प्राहै भागवत नमः पुराणं ब्रह्मममितम् ।

ब्रह्मणे भगवत्प्रार्त्तं ब्रह्मकल्प उपागतं ॥२८॥

यद् यद् परीक्षित्यभः पाण्डूनामनुपृच्छति ।

आनुपूर्व्येण तत्पर्वमास्यात्तुमुपचक्रमे ॥२९॥

निरूपण करीबिये ॥ २४ ॥ इस विषयमें आप स्वयम्
ब्रह्माके सम्मन परम प्रमाण हैं । दूसरे लोग तो कभी
पूर्वपरम्परासे सुनी-सुनायी बातोंका ही अनुष्ठान करते
हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मन् ! आप मेरी भूख-प्यासकी चिन्ता
न करें । मेरे प्राण कुपित ब्राह्मणके शापके अतिरिक्त
और किसी कारणसे निकल नहीं सकते, क्योंकि मैं
आपके मुखारविन्दसे निष्कामनेवाली भक्तानुकी अमृतमयी
स्वीत्य-कथाका पान कर रहा हूँ ॥ २६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि श्रुतियो ! जब राजा
परीक्षितने सत्तोंकी सम्मने ब्राह्मणकी स्वीम-कथा सुनाने-
के लिये इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीशुकदेवजीको
बड़ी प्रसन्ना हुई ॥ २७ ॥ उन्होंने उन्हें बड़ी वेदव्या
श्रीमद्भागवत-महापुराण सुनाया, जो ब्राह्मणके आत्म-
में स्वयं ब्राह्मणने ब्रह्मजीको सुनाया था ॥ २८ ॥
पाण्डुवंशीरोपमि परीक्षितन उनसे जो-जो प्रश्न किये
थे, वे उन सबका उत्तर क्रमशः देने लगे ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्श्यां संहितायां

द्वितीयस्कन्धे प्रदत्तविधिर्निर्माष्टमाऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्माजीका भगवत्प्रार्थान और भगवान्के द्वारा उन्हें शुकदेवजीकी भागवतका उपदेश

श्रीशुक उवाच

आत्ममायामृते रादन परस्मानुभवात्मनः ।

न घटेतार्थमन्बध स्वप्नद्रुतिवाञ्छता ॥ १ ॥

यद्वरूप इवाभाति मायया यद्वरूपया ।

रममाणो गुणध्वम्या ममाहमिति मन्यते ॥ २ ॥

यदि शब्द महिमि स्वे परस्मिन् कालमाययाः ।

रमत शतमम्माहस्यकन्दास्त उदोभयम् ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! जैसे स्वप्नमें दृष्टे
जानेवाले पदार्थोंके साथ उसे देखनेवालेका कोई सम्बन्ध
नहीं होता, वैसे ही देहान्तिसे अतीत अनुभवस्वरूप आत्मका
स्वप्नाके जितना दृश्य पदार्थोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है
समता ॥ १ ॥ विविध रूपवाली मायाके कारण वह भिन्न
रूपमय प्रतीत होता है, और जब उसके गुणोंमें रस
जाता है तब यह भी है, यह मेरा है इस प्रकार मानने लगता
है ॥ २ ॥ किन्तु जब यह गुणोंसे शुद्ध करनेवाले कल
और मोह उत्पन्न करनेवाली माया—इन दोनोंसे परे करन
अनन्त स्वरूपमें मोहरहित होकर रमण करने लगता
है—आत्मराम हो जाता है तब यह भी, मेरा का भा
होकर पूर्ण उभासीन—गुणहीन हो जाता है ॥ ३ ॥

आत्मतत्त्वविशुद्धयर्थं यदाह भगवानृतम् ।

ब्रह्मण दशयन् रूपमव्यलीकप्रताप्त ॥ ४ ॥

म आदिद्वो जगतां परो गुरु
सखिण्यमाय्याय मिमृष्यैष्वत ।

तां नाभ्यगच्छद् द्यमग्र भस्मतां
प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवत् ॥ ५ ॥

म चिन्तयन् द्वयश्वमेकनाम्भ
स्युपाप्तुणोद् द्विगणित वचो विशु ।

स्पर्शेषु यत्पोबभूमेकविंश
निष्किञ्चनानां नृप यद् धन विदु ॥ ६ ॥

निशम्य तद्वक्तृनिष्ठया दिशो
विलोक्य सप्रान्यदपश्यमान ।

सखिण्यमाय्याय विमृश्य तद्वित
तपस्युपादिष्ट इवाप्ते मन ॥ ७ ॥

निव्य सहस्रात्ममोषदर्शनो
जितानिलात्मा विजितोभयन्त्रिय ।

अतप्यत आस्त्रिलोकातापनं
तपस्तपीषान्तपता ममाहित ॥ ८ ॥

तस्मै स्वलोक भगवान् मभाजित
सन्तुष्टयामास पर न यत्परम् ।

भ्यपतमकलशयिमाहसाध्यमं
स्वदण्वद्विनिर्बुधर्भिक्षुतम् ॥ ९ ॥

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तया
सत्त्वं च मिथ न च फालविक्रम ।

न यत्र माया किमुतापर हर
रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिता ॥ १० ॥

ब्रह्माजीकी निष्कय तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें अपने रूपका दर्शन कल्प्या और आत्मतत्त्वके ज्ञानके लिये उन्हें परम मन्य परमार्थ वस्तुका उपदेश किया (यही बात मैं तुम्हें सुनाता हूँ) ॥ ४ ॥

तीनों लोकोंके परम गुरु आदिदेव ब्रह्माजी अपने जन्मस्थान कमलपर बैठकर सृष्टि करनेकी इच्छासे विचार करने लगे । परन्तु जिस ज्ञान-दिशिसे सृष्टिका निर्माण हो सकता था और जो सृष्टि व्यापारके लिये बाष्पणीय है वह दृष्टि उन्हें प्राप्त नहीं हुई ॥ ५ ॥ एक दिन वे यही चिन्ता कर रहे थे कि प्रलयक ममुद्रमें उन्होंने व्यञ्जनोंके सोलहवें एवं इकीमवें अक्षर 'त' तथा 'प' को—'तप-तप' ('तप करो') इस प्रकार दो बार सुना । परीक्षित ! महामहर्षि लोग इस तपको ही त्यागियोंका धन मानते हैं ॥ ६ ॥ यह सुनकर ब्रह्माजीने वक्ताको देखनकी इच्छासे चारों ओर देख्य, परन्तु वहाँ दूसरा कोई दिव्यार्थ न था । वे अपने कमलपर बैठ गये और 'मुझ तप करनेकी प्रत्यक्ष आज्ञा मिली है' ऐसा निश्चय कर और उमीमें अपना हित समझकर उन्होंने अपने मनका तपस्यामें लगा दिया ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी तपस्वियोंमें सबसे बड़े तपस्वी हैं । उनका ज्ञान अमोघ है । उन्होंने उस समय एक सङ्घट्ट दिव्य वरपर्यन्त एकत्र चित्तसे अपने प्राण मन, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियोंके वशमें करके ऐसी तपस्या की, जिससे वे समस्त लोकोंके प्रवर्जित करनेमें समर्थ हो सके ॥ ८ ॥

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें अपना वह लोक दिखाया जो सबसे श्रेष्ठ है और जिससे परे कोई दूसरा लोक नहीं है । उस लोकमें किसी भी प्रकारके क्लेश मोह और भय नहीं हैं । जिन्हें किसी एक बार भी उसके दशमक सौम्य प्राप्त हुआ है वे देश-वार-वार उसकी स्तुति करते रहते हैं ॥ ९ ॥ वहाँ रजोगुण, तमोगुण और इनसे मिल्न हुआ माय्युग भी नहीं है । वहाँ न कल्पकी दाह गल्ती है और न माया ही कर्म रज मरती है निर मायाक बन्ध-वन्ध ता जा ही कसे सकते हैं । वहाँ भगवान् के व पाश निबन्ध परत है त्रिनक पूजन रचना और न्य गनों ही कृत है ॥ १० ॥

श्यामावदस्ता श्वतपत्रलोचना

पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशमः ।

सर्वे चतुर्विध उन्मिपन्मणि

प्रवेकनिष्काभरणा सुवर्चस ।

प्रवालवैडूर्यमृणालवर्चस

परिस्फुरन्कुण्डलमौलिमालिन ॥११॥

आञ्जिष्णुभिर्धः परितो विराजते

लसद्भिमानतल्लिभिर्महत्प्रभायाम् ।

विद्योतमानः प्रमदोत्तमाशुभिः

सविष्णुदन्तलिभिर्बन्धु नभ ॥१२॥

श्रीर्धन रूपिष्णुलगायपादयो

कराति मानं बहुधा विभूतिभिः ।

प्रेक्ष्य भिता या कुसुमाकरानुगै

विगीयमाना प्रियकर्म गायत्री ॥१३॥

ददर्श तत्राखिलसत्त्वतां पतिं

धियः पतिं यज्ञपतिं जगत्यतिम् ।

सुतन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः

स्वैर्पार्षदमुख्यैः परिसेवितं विश्वम् ॥१४॥

मृत्युप्रसादाभिमुखं दृग्मासव

प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ।

किरीटिन कुण्डलिन चतुर्भुजं

पीताम्बरं वक्षसि लक्षित भिया ॥१५॥

अप्यहणीयामनमाश्रित परं

दृष्टं चतुर्पादत्रयज्जगत्तिभिः ।

उनका उज्ज्वल आभासे युक्त श्याम शरीर शत-
कमलके समान कोमल नेत्र और पीले रंगके कपड़े
शोभायमान है । अङ्ग-अङ्गसे राशि-राशि सौन्दर्य
विस्तृत रहता है । वे कोमलताकी मूर्ति हैं ।
सभीके चार चार मुँह हैं । वे स्वयं तो कल्प
तेजस्वी हैं ही, मणिवर्जित सुवर्णके प्रमाण्य आभूषण
भी धारण किये रहते हैं । उनकी छवि मृगे, वैडूर्यमणि
और कमलके उज्ज्वल तन्तुके समान है । उनके
कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर मुकुट और कानोंमें माल्य
शोभायमान हैं ॥ ११ ॥ जिस प्रकार आकाश किञ्चि-
सहित बादलसे शोभायमान होता है, वैसे ही वह
लोक मनोहर कामिनीयोंकी कान्तिसे युक्त महत्प्रभायके
दिव्य तेजोमय विमानसे स्थान-स्थानपर सुशोभित होय
रहता है ॥ १२ ॥ उस वैकुण्ठलोकमें लक्ष्मीजी सुन्दर
रूप धारण करके अपनी विविध विभूतियोंके द्वारा
भगवान्‌के चरणकमलोंकी अनेकों प्रकारसे सेवा करती
रहती हैं । कभी-कभी जब वे हृत्स्वर बैठकर अपने
प्रियतम भगवान्‌की लीलाओंका गायन करने लगती हैं,
तब उनके सौन्दर्य और सुरमिसे उन्मत्त होकर भी
स्वयं उन लक्ष्मीजीका गुण-गायन करने लगते हैं ॥ १३ ॥

लक्ष्मीजीने दृष्ट कि उस दिव्य लोकमें समस्त मर्त्य-
के स्वर्ग, लक्ष्मीपति, यज्ञपति एवं विश्वपति भगवान्‌विष्णु-
मान हैं । सुनन्द, नन्द, प्रकृत और अर्हण आदि
मुख्य-मुख्य पार्षदगण उन प्रभुकी सेवा कर रहे
हैं ॥ १४ ॥ उनका मुख-कमल प्रसाद-मधुर मुसकान-
से युक्त है । ओंकारोंमें ललत-ललत दोरियाँ हैं । बड़ी
गोदक और मधुर चितवन है । ऐसा जान पड़ता है कि
अमी-अमी अपने प्रेमी मत्तको अपना सर्वज्ञ दे देंगे ।
सिरपर मुकुट कानोंमें कुण्डल और कंधेपर पीतमकर
अगमना रहे हैं । वक्षःस्थलपर एक सुनहरी रेखके रूप-
में श्रीलक्ष्मीजी विराजमान हैं और सुन्दर चार मुँह
हैं ॥ १५ ॥ वे एक सर्वोत्तम और बहुमुख्य आसनपर
विराजमान हैं । पुरुष प्रकृति, महत्त्व लङ्कार, मन,
दम इन्द्रिय दम्पति पाँच तन्मात्राएँ और पञ्चभूत—
ये पचीस शक्तियाँ मूर्तिमान् होकर उनके चारों ओर
बनी हैं । समग्र पञ्चव धम कीर्ति, धी ज्ञान और

युक्त भगै स्वैरितरत्र चाधुवै

स्व एव धामन् रममाणमीश्वरम् ॥१६॥

तदर्धनाह्लादपरिप्लुतान्तरो

हृष्यन्तु प्रमभराभुलोचन ।

ननाम पादाम्बुजमस्य विष्णुम्

यत् पादमईस्येन पयाधिमम्यते ॥१७॥

तं प्रीयमाणं ममपयितं तदा

प्रजाविसर्गं निजशासनार्हणम् ।

बभाप ईपस्मितश्रोत्रिणा गिरा

प्रिय प्रियं प्रीतमनाः करं स्पृशन् ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

त्वयाह तोषितः सम्पगू वेदगर्भं सिवुधया ।

किं मृतेन तपसा दुस्तोषं कूटयोगिनाम् ॥१९॥

वरं वरय भद्र ते वरदं माभिवाञ्छितम् ।

ब्रह्मन्त्रेयः परिभाम पुतो भर्षनावधिः ॥२०॥

मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् ।

यदुपधृत्य रहमि चकर्थ परमं तप ॥२१॥

प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते ।

तपो मे हृदयं साक्षादात्माहं तपसोऽनघ ॥२२॥

सृजामि तपस्तपदं ग्रामामि तपसा पुन ।

विभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुस्वरं तप ॥२३॥

भगवाच

भगवन् सर्वभूतानामप्यक्षोऽव्यमितो गुहाम् ।

वैराग्य—इन छ नित्यसिद्ध स्वल्पभूत शक्तियोंसे वे सर्वदा युक्त रहते हैं । उनके अतिरिक्त और कहाँ भी ये नित्यरूपसे निवास नहीं करतीं । वे सर्वेश्वर प्रभु अपने नित्य आनन्दमय स्वरूपमें ही नित्य निरन्तर निमग्न रहते हैं ॥ १६ ॥ उनका दर्शन करते ही ब्रह्माजीका हृदय आनन्दके उद्वेगसे लज्जालु बन गया । शरीर पुण्ड्रित हो उठा, नेत्रोंमें प्रमाण लक्ष्य आये । ब्रह्माजीने भगवान् के उन चरणकमलोंमें, जो परमहंसोंके निश्चिन्त मार्गसे प्राप्त हो सकते हैं, तिर झुककर प्रणाम किया ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीके प्यारे भगवान् अपने प्रिय ब्रह्माको प्रेम और दर्शनके आनन्दमें निमग्न शरणगत तथा प्रजा-सृष्टिके लिये आदेश देनेके योग्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने ब्रह्माजीसे हाथ मिलाया तथा मन्द मुस्कानसे बल्लूकन वाणीमें कहा— ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच—कहा—ब्रह्माजी ! तुम्हारे हृदयमें तो समस्त वेदोंका ज्ञान विद्यमान है । तुम्हने सृष्टिरचनाकी इच्छासे चिरकालतक तपस्या करने के मुझे मन्त्रीमौलि सन्तुष्ट कर दिया है । मनमें कसट रखकर योगसाधन करनेवाले मुझे कभी प्रसन्न नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारी जो अमित्रया हो, वही मे मुझसे मीठ थी । क्योंकि मैं तुम्हारी कस्तु देनेमें समर्थ हूँ । ब्रह्माजी ! जीवके समस्त कल्याणकारी साधनोंका विग्राम—पयवसान मेरे दर्शनमें ही है ॥ २० ॥ तुम्हने मुझे देखे बिना ही तम सुने जन्ममें मेरी वाणी सुनकर इतनी घोर तपस्या की है, इसीसे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे लोकका दर्शन हुआ है ॥ २१ ॥ तम उस सम्प सृष्टिरचनाका कर्म करनेमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे । इसीसे मैंने तुम्हें तपस्या करनेको आज्ञा दी थी । क्योंकि निष्पाप ! तपस्या मेरा हृदय है और मैं स्वयं तपस्याका कारण हूँ ॥ २२ ॥ मैं तपस्यासे ही इस संसारकी सृष्टि करता हूँ, तपस्यासे ही इसका धारण-पोषण करता हूँ और फिर तपस्यासे ही इसे अपनेमें लीन कर लेता हूँ । तपस्या मेरी एक दुर्लभ शक्ति है ॥ २३ ॥

ब्रह्माजीने कहा—भगवन् ! आप समस्त प्राणियोंके जन्त-करणमें साक्षीरूपसे निराजमान रहते हैं ।

वेद अप्रतिरुद्धन प्रमानेन विकीर्णितम् ॥२४॥

तथापि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् ।

परावरे यथा रूपे ज्ञानीषां ते त्वरूपिण ॥२५॥

यथाऽऽत्ममायायोगेन नानाशक्त्युपपन्नितम् ।

विलुम्पन् विसृजन् गृह्णन् विभ्रान्त्मानमात्मना ॥२६॥

क्रीडत्यमोघसङ्कल्प उर्मनाभिर्धोर्णुते ।

तथा तद्विषयां वहि मनीषां मैथि माध्व ॥२७॥

भगवन्निष्ठितमहं करवाणि हतन्द्रित ।

नेहमान प्रजासर्गं बध्यं यदनुग्रहात् ॥२८॥

यावत् सखा सख्युरिवेश ते कृत

प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनम् ।

अविह्वस्ते परिकर्मणि स्थिते

मा मे समुक्कदमदोऽज्जमानिन ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम् ।

मरहस्यं तदहं च गृहाण गतिं मया ॥३०॥

यावानहं यथाभावा यद्गुणकमक ।

तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥३१॥

अहमेवाममवाग्र नान्यद् यत् सदसत् परम् ।

पमानहं यदतश्च याऽवशिष्यत साऽम्भहम् ॥३२॥

पृथेऽथ यत् प्रतायत न प्रतीयत चान्मनि ।

आप अपने अप्रतिष्ठत ज्ञानसे यह जानते ही हैं कि मैं क्या करना चाहता हूँ ॥ २४ ॥ नाथ ! आप क्या करके मुझ पाषण्डकी यह माँग पूरी करिजिये कि मैं रूपरहित आपकं सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपोंको जान सकूँ ॥ २५ ॥ आप मायाके खास हैं, आपका सङ्कल्प कभी व्यर्थ नहीं होता । जैसे मकड़ी अपने मुँहसे जाल्त्र निकालकर उसमें कीड़ा करती है और फिर उसे अपनेमें लीन कर ड़ी है, वैसे ही आप अपनी मायाका आश्रय लेकर इस विविधशक्तिसम्पन्न जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेके लिये आपन आपको ही अनेक रूपोंमें बना देते हैं और कीड़ा करते हैं । इस प्रकार आप कैसे करते हैं—इस मर्मको मैं जान सकूँ ऐसा ज्ञान आप मुझे दीजिये ॥ २६ २७ ॥ आप मुझपर ऐसी कृपा करिजिये कि मैं सबकुछ यहकर साधवानीसे आपकी आज्ञाका पालन कर सकूँ और सुस्थिरी रचना करते समय भी कर्त्तापन आप्तिके अभिमानसे बँध न जाऊँ ॥ २८ ॥ प्रभो ! आपने एक मित्रक समान रूप पकड़कर मुझे अपना मित्र स्वीकार किया है । अतः जब मैं आपकी इस सेवा—सुधिरचनाने लगूँ और साधवानीसे पूरुसुधिके गुण-कर्त्तानुसार जीवैकन विभावन करने लगूँ, तब कहीं अपनेको जन्म-कर्मसे खतन्त्र मानकर अभिमान न कर बैठूँ ॥ २९ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—ऋतुमय, प्रेमाभक्ति और माधनोसे युक्त अत्यन्त गोपनीय अपने स्वरूपका ज्ञान मैं तुम्हें कहता हूँ तुम उसे ग्रहण करो ॥ ३० ॥ मेरा जितना विस्तार है मेरा जो लक्षण है, मेरे जितने और जैसे रूप गुण और लीधर हैं—मेरी कृपासे तुम उनका तब हीकी-हीकी वैसे ही अनुभव करो ॥ ३१ ॥ सुधिके पूरु केकड मैं-ही-मै था । मेरे अनिरीक न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान । जहाँ यह सुधि नहीं है वहाँ मैं-ही-मै हूँ और इस सुधिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ ॥ ३२ ॥ वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्बचनीय वस्तु मेरे अनिरीक सुप्र परमात्मानमें दो चन्द्रमाओंकी तरह भिष्य

तद्विधादात्मनो मायां यथाऽऽभामो यथा तम ॥३३॥

यथा महान्ति भूतानि भूतेष्वानवेष्यन्तु ।

प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तपु न तेज्जहम् ॥३४॥

एतावदब जिज्ञास्य सुखतिष्ठामुनाऽऽत्मन ।

अन्वप्यव्यतिरिक्तम्पां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥३५॥

एतन्मत ममातिष्ठ परमण ममाधिना ।

भवान् कलरविकल्पपु न विमुसति कर्हिचिन् ॥३६॥

श्रीशुक उवाच

मम्प्रतिर्ष्यैवमजना जनानां परमष्टिनम् ।

पश्यतमस तद् रूपमात्मना न्यक्षणादरि ॥३७॥

अन्तर्हितेन्द्रियाभाय इत्य विदिताञ्जलि ।

सर्वभूतमया विश्व मस्रज्जैद म पूर्ववत् ॥३८॥

प्रभापतिर्धर्मपतिरकृत् नियमान् यमान् ।

भद्रं प्रजानामन्विष्टव्रातिष्ठन् व्याधकाम्यया ॥३९॥

सं नाग प्रियतमो रिक्थादानामनुयत ।

शुभ्रमाग श्रीन् प्रभयेण दमन च ॥४०॥

मायां तिरिदिषन् विष्णोर्मयेण्य महामूनि ।

महाभाग इना राजन् पितर वर्पनापत् ॥४१॥

ही प्रीति हा रहा है, अपना विषयमान हानेकर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो भी प्रीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझना चाहिये ॥३३॥ जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतधिन शरीर वर शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमाहाभूत उन शरीरोंके स्वरूपमें निर्मित होनेके कारण प्रवेश करत भी हैं और पदार्थमें ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके प्रकाश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरका दृष्टिमें मैं उनमें आत्माके रूपमें प्रकाश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपन अतिरिक्त और फाई बस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ ॥ ३४ ॥ यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं—यम प्रकार नियतकी पदनि-मे, और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है—इस अन्वेषकी पदनिमें पड़ी सिद्ध होता है कि सत्तातीन एवं सत्त्व रूप स्थायान् ही सदा और सर्वत्र स्थित हैं, पड़ी आत्मविक तथ है । जा आत्मा अपना परमात्माका तथ जानना चाहते हैं, उन्हें कबत इनका हा जाननेकी आवश्यकता है ॥ ३५ ॥ प्रजापति ! तुम अविषय सम्पत्तिके द्वारा यो इस विद्वान्तमें पूर्ण निष्ठा कर ल । इसमें तुम्हें कल्प-कल्पमें विविध प्रकारकी सुखरचना करत रहनेकर भी कभी माह नहीं होगा ॥३६॥

आत्मकद्वयका कहते हैं—सकृद्विनामइ प्रजापतिः ।
इम प्रकार उपदेश कर अत्रन्मा भगवान्ने उनके दासते-ही-देखते अपन उम रूपका दिया दिया ॥३७॥
जब सर्वभूतस्वरूप प्रजापतिने लजा वि भावान्ने अपने इन्द्रिकाकर स्वरूपसे हमारे नयोंके समन्तसे देना दिया है तब उन्होंने अत्रिजि बौधायन उन्हें प्रणम किया और पदार्थकल्पमें जैसी सृष्टि की उसी रूपमें इस विश्वकी रचना की ॥ ३८ ॥ एक बार मैंने प्रजापति प्रजापतिन सगी जनकका कल्पना हा, जान इस स्वरूप कीर्तिन पिय विविधरूप सम-नियमोंका दग्ग दिया ॥ ३९ ॥
उम समय उनका पुत्रोंमें सबसे अत्रि प्रिय, परम भक्त देवी नन्दानी मायापति का-नन्द माया तथ जननी इष्टामे वर मान् स्निह और मे-मदम अनु-न दग्ग मनन म-का ।
उद्योत मान् माया प्रजापति बहन्

सुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रवितामहम् ।

देवर्षिं परिप्रच्छ भवान् यन्मानुषच्छति ॥४२॥

तस्मा इदं भागवत पुराणं दशलक्षणम् ।

प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीत पुत्राय भूतकृत् ॥४३॥

नारद प्राह मुनये सरस्वत्यास्त्ये नृप ।

ध्यायते ब्रह्म परमं ध्यात्वायामित्तजेजसे ॥४४॥

यदुताहं त्वया पृष्टो वैराजात् पुरुषादिदम् ।

यथाऽऽसीत्पदुपान्यास्य प्रभानन्यांश्च कृत्स्नञ्च ॥४५॥

श्री सन्तुष्ट कर श्रिया ॥ ४० ४१ ॥ परीक्षित् ! जब देवर्षि नारदने देखा कि मेरे लोकप्रितामह पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, तब उन्होंने उनसे यही प्रश्न किया, जो तुम मुझसे कर रहे हो ॥ ४२ ॥ उनके प्रश्नसे प्रज्ञानी और भी प्रसन्न हुए । फिर उन्होंने यह दस लक्षणवाला भागवतपुराण अपने पुत्र नारदको सुनाया, जिसका स्वयं भगवान्ने उन्हें उपदेश किया था ॥ ४३ ॥ परीक्षित् ! जिस समय मेरे परमतेजस्वी पिता सरस्वती के तटपर बैठकर परमात्माके ध्यानमें मग्न थे, उस समय देवर्षि नारदजीने वही भागवत उन्हें सुनाया ॥ ४४ ॥ तुमने मुझसे जो यह प्रश्न किया है कि निरुद्ध पुरुषसे इस जगत्की उत्पत्ति कैसे हुई, तथा दूसरे भी जो बहुत-से प्रश्न किये हैं, उन सबका उत्तर मैं उसी भागवतपुराणके रूपमें देता हूँ ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यां संहितायां द्वितीय-

स्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ० ॥

अथ दशमोऽध्यायः

भागवतके दस अध्याय

श्रीकृष्ण उवाच

अथ सगा विमर्गश्च म्यान पोषणमृतय ।

मन्वन्तरशानुकथा निरोधा मुक्तिराभय ॥ १ ॥

दशमस्य विशुद्धयथ नवानामिह लक्षणम् ।

वर्णयन्ति महत्मान भुतेनार्थेन चाज्ञया ॥ २ ॥

मृतमात्रन्त्रियथियां जन्म मग उतादत्त ।

प्रप्रणा गुणरूपम्याद् विमग पौन्य स्मृत ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस भागवत-पुराणमें सर्वा विसर्ग, स्थान, पोषण, उक्ति, मन्वन्तर, इसानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—इन दस विषयोंका ब्यवन है ॥ १ ॥ इनमें जो दसवें आश्रय-तत्त्व है, उमाका टीका-टीका निम्नय करनेके लिये कहाँ श्रुतिसे, कहाँ तान्त्रिकसे और कहाँ गेनेके अनुकूल अनुभवसे महामार्गोंने अन्य नौ विषयोंका यही सुगम शीघ्रसे ब्यवन किया है ॥ २ ॥ ईश्वरजी प्रेरणासे गुणों-में क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे जो आश्रयपरि पञ्च भूत गन्धार्पि स्पर्शस्पर्श इन्द्रियो, अहङ्कार और महत्तत्त्वसे उत्पत्ति होती है, उसका धर्म कहते हैं । उस निरुद्ध पुरुषसे उत्पन्न ब्रह्माक्षर द्वारा जो विभिन्न भागवत मृतिषोरा निर्माण होता है उसका नाम है

स्थितिवैकुण्ठविजय पोषण तदनुग्रह ।

मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतय कर्मवामना ॥ ४ ॥

अवतारानुचरित हरश्चास्यानुवर्तिनाम् ।

सत्तामीशकृपा प्रोक्तान्नास्मानोपवृंहिताः ॥ ५ ॥

निरोधोऽस्यानुष्ठयनमात्मन सह शक्तिभि ।

श्रुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति ॥ ६ ॥

आभासश्च निरोधश्च यतश्चायवसीयते ।

स आश्रय परं ब्रह्म परमात्मेति शृण्वत ॥ ७ ॥

योऽज्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाभिर्द्वित्रिक ।

यस्तत्रोभयविच्छेद पुरुषो आभिभौतिक ॥ ८ ॥

एकमकतराभावे यदा नोपलभामह ।

त्रितय तत्र यो वेद स आत्मा मन्त्रयाश्रय ॥ ९ ॥

पुरुषाण्ड विनिर्भिय यदासौ स विनिर्गत ।

आत्मनाऽपनमन्विष्ठमपाऽसाधीच्छृषि शुची १०

तत्त्ववात्मीत् त्वसृष्टासु महत्त्वपरिग्रम्भरात् ।

तन नारायणो नाम यत्प पुरुषाद्भवा ॥ ११ ॥

‘विसर्ग’ ॥ ३ ॥ प्रतिपद नाशकी और कदनेवाली सृष्टि को एक मर्यादामें स्थिर रहनेसे भावान् विष्णुकी जो आत्मा सिद्ध होती है, उसका नाम ‘स्थान’ है । अपने द्वारा सृष्टिज सृष्टिमें मर्त्यके ऊपर उनकी जो कृपा होती है, उसका नाम है ‘पोषण’ । मन्वन्तरके अधिपति जो मगधप्रति और प्रभापाठमरुत शुद्ध धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसे ‘मन्वन्तर’ कहते हैं । जीर्णोद्धार के वासनाएँ, जो कर्मके द्वारा उन्हें धन्वनमें डाल देती हैं, ‘ऊर्ति’ नामसे कही जाती हैं ॥ ४ ॥ मगधान्क विभिन्न अकारोंके और उनके प्रेमी मर्त्योंकी विविध वाङ्मनोसे युक्त गाथाएँ ‘शक्तया’ हैं ॥ ५ ॥ जब मगधान् योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब इस जीवका अपनी उपधियोंके साथ उनमें एकी हो जाना ‘निरोध’ है । अज्ञानकल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभावका परित्याग करके अपन वास्तविक स्वरूप परमात्मामें स्थित होना ही ‘मुक्ति’ है ॥ ६ ॥ परीक्षित । इस चतुष्टय चक्रकी उपस्थिति और प्रत्यक्ष जिस तत्त्वसे प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही ‘आश्रय’ है । शक्तोंमें उसीको परमात्मा कहा गया है ॥ ७ ॥ जो नेत्र आदि इन्द्रियोंका अधिमानी द्रष्टा जीव है, वही इन्द्रियोंके अधिपत्य-देवता सत्य आदि के रूपमें भी है और जो नेत्र गोचक आदिसे युक्त दृश्य देखे है, वही उन दोनोंको अलग-अलग करता है ॥ ८ ॥ इन तीनोंमें यदि एकका भी अभाव हो जाय तो दूसरे दोही उपरुद्ध नहीं हो सकती । जब जो इन तीनोंको जानता है, वह परमात्मा ही, सबका अधिपति ‘आश्रय’ तत्त्व है । उसका आश्रय वह सत्य ही है, दूसरा कोई नहीं ॥ ९ ॥

जब पूर्णतः विराट् पुरुष ब्रह्माण्डको पकड़कर निकल्य, तब वह अपने रहनेवाले स्थान में रहन लगा । और स्थानकी इच्छामें उस शुद्ध-सङ्कल्प पुरुषने अत्यन्त पवित्र जगत्की सृष्टि की ॥ १० ॥ विराट् पुरुषका ‘नर’ से उत्पन्न होनेके कारण ही अत्यन्त नाम ‘नार’ पड़ा । और उस करने उत्पन्न किये हुए नारमें वह पुरुष एक हजार वर्तमान रहा, इममें उत्पन्न नाम नारायण हुआ ॥ ११ ॥

द्रव्यं कम च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।
 यदनुग्रहत मन्ति न सन्ति यदुपेक्षया ॥१२॥
 एको नानात्वमन्विच्छन् योगसत्त्वात् समुत्थित ।
 वीर्यं हिरण्यमद्वयो मायया व्यसृजत् त्रिधा ॥१३॥
 अभिदैवमथाभ्यात्ममभिमृतमिति प्रभु ।
 यथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधाभिघटत तन्मृषु ॥१४॥
 अन्तःशरीर आकाशात् पुरुषस्य विचेष्टत ।
 ओजः सहा यत्नं जह्वे तत् प्राणो महानसु ॥१५॥
 अनुप्राणन्ति य प्राणा प्राणन्तं सर्वजन्तुषु ।
 अपानन्तमपानन्ति नरवधमिवानुगा ॥१६॥
 प्राणेन क्षिपता क्षुत् तदन्तरा जायते प्रेम्भो ।
 पिपासतो जङ्घतश्च प्राङ्मुखं निरभिघटत ॥१७॥
 मृत्तवन्तास्तु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रापि जायते ।
 ततो नानारमा जह्व जिह्वया बाह्वभिगम्यते ॥१८॥
 विवस्त्राभ्युगता भृङ्गा वह्निषां व्याहृत तपो ।
 जलं च तस्य मुचिर निराध ममजायत ॥१९॥
 नामिकं निरभिघटतां दृष्ट्वा न भ्रम्यति ।
 तत्र वायुर्गन्धवहा घ्राणा नमि जिघृक्षत ॥२०॥
 यत्प्राणमनि निगालकमा मानं च निश्चलत ।
 निर्भिन्नं क्षिपिता तस्य ज्यातिश्चतुर्गुणग्रह ॥२१॥
 योऽप्यमानस्य श्रुतिभिर्गमनमज्ञिघृक्षत ।

उन नारायणभगवान्की कृपासे ही द्रव्य, कम, कर्म,
 स्वभाव और जीव आदिकी सत्ता है । उनके उपेक्षा
 कर देनेपर और किसीका अस्तित्व नहीं रहता ॥१२॥
 उन अद्वितीय भगवान् नारायणने योगनिद्रासे जगत्पर अनेक
 होनेकी इच्छा की तब अपनी मायासे उन्होंने अस्ति
 ब्रह्माण्डके बीजस्वरूप अपने सुवर्गमय वीर्यको तीन भागमें
 विभक्त कर दिया—अविर्ब, अप्यस्तम और अविभूत ।
 परीक्षिषु । विष्णु पुरुषका एक ही वीर्य तीन भागमें
 कैसे विभक्त हुआ, सो सुनो ॥ १३ १४ ॥

विष्णु पुरुषके हिलने-डोलनेपर उनके शरीरमें खलनेसे
 आकाशमें इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबलकी उत्पत्ति
 हुई । उनसे इन सबका राजा प्राण उत्पन्न हुआ ॥१५॥
 जैसे सेकक अपने खापी राजाके पीछे-पीछे चले हैं,
 वैसे ही सबके शरीरमें प्राणके प्रबल होनेपर ही सारी
 इन्द्रियाँ प्रबल रहती हैं और जब वह सूख पड़ जाता
 है, तब सारी इन्द्रियाँ भी सूख हो जाती हैं ॥ १६ ॥
 जब प्राण जोरसे आन जाने लगा, तब विष्णु पुरुषको
 मूख-प्यासका अनुभव हुआ । प्याने-पीनेकी इच्छा करते
 ही सबसे पहले उनके शरीरमें मुख प्रकट हुआ ॥१७॥
 मुखसे तालु और तालुसे रसनेन्द्रिय प्रकट हुईं । इसके
 बाद अनेकों प्रकारके रस उत्पन्न हुए, जिन्हें रसना
 ग्रहण करती है ॥ १८ ॥ जब उनकी इच्छा श्रोतव्य
 हुई, तब शब्द-न्द्रिय उसके अधिष्ठातृ-देवता अग्नि
 और उनकी विषय वाचना—ये तीनों प्रकट हुए ।
 इसके बाद बहुत निर्जनक उस जन्ममें ही वे इके
 रहे ॥ १९ ॥ कामके फेसे नासिक-न्द्रिय प्रकट हो गये ।
 जब उन्हें सूँघनेकी इच्छा हुई तब उनकी नासिका-न्द्रिय
 आकर बन गयी और उसके गन्धका गन्धको कर्मानेच्छा
 वायुवश प्रकट हुए ॥ २० ॥ पहले उनके शरीरमें
 प्रपञ्चरा नहीं था फिर जब उन्हें अपनेका तथा दूसरी
 वस्तुओंको स्पर्शनेकी इच्छा हुई, तब नेत्रोंके द्विष्य,
 उभयका अधिष्ठाता सूर्य और नेत्रेन्द्रिय प्रकट हो गये ।
 इन्होंने स्पर्शका ग्रहण हान लिया ॥ २१ ॥ जब वेद
 ग्य अग्नि विष्णु पुरुषका स्तुतिवचन द्वारा जगाने लगे,
 तब उन्हें सुननेकी इच्छा हुई । उमी मय

कणां च निरभिद्येतां दिक्षु शोर्त्रं गुणग्रह ॥२२॥

वस्तुनो मृदुकाठिन्पलघुगुर्वोष्णशीतताम् ।

जिघृक्षतम्बवह् निर्भिषा तस्यां रोममहीरुहाः ।

तत्र चान्तर्बहिर्घातम्बचा लम्प्यगुणो वृत् ॥२३॥

इत्तो रुद्रहस्तुल्लस नानाकर्मचिकीर्यया ।

तयोस्तु बलमिन्द्रस आदानमुभयाम्भयम् ॥२४॥

गतिं विगीपत पादौ रुद्रहातऽभिकामिकाम् ।

कर्म, उनकी अधिष्ठाता-श्रेयसादिशाएँ और श्रोत्रेन्द्रिय प्रकट हुईं । इसीसे शम्भु सुनायी पड़ता है ॥ २२ ॥ जब उन्होंने वस्तुओंकी कोमलता, कठिन्ता, हल्कपन, भारिपन, उष्णता और शीतलता आदि नाना चीजों तथा उनके शरीरमें चर्म प्रकट हुआ । वृष्णीमेंसे जैसे वृक्ष निकल आते हैं, उसी प्रकार उस चर्ममें रोहँ पैदा हुए और उसके भीतर-बाहर रहनेवाला वायु भी प्रकट हो गया । ऐसा प्रहण करनेवाली लम्बा-इन्द्रिय भी नाथ-ही-नाथ शरीरमें चारों ओर फैल गयी और उससे उन्हें स्पर्शका अनुभव होन लग्य ॥ २३ ॥ जब उन्हें अनेकों प्रकारके कर्म करनेकी इच्छा हुई, तब उनके हाथ उग आये । उन हाथोंमें प्रहण करनेकी शक्ति हस्तेन्द्रिय तथा उनका अधिदेवता इन्द्र प्रकट हुए और दोनोंके आग्रहसे होमेवाला प्रहणरूप कर्म भी प्रकट हो गया ॥ २४ ॥ जब उन्हें अभीष्ट स्थानपर जानेकी इच्छा

रमें पैर उग आये । चरणोंके साथ ही प्रगताकारमें बहों स्वयं यज्ञपुरुष भावमान् और उन्होंने चलनाकर्म प्रकट । चरणेन्द्रियसे चक्कर खा-सामग्री ५ ॥ सन्तान, रति और स्वर्ग-भोग र विद्युत् पुरुषके शरीरमें लिङ्गकी । उपस्थेन्द्रिय और प्रजापति देवता । थप रहनेवाले काममुल्लस आविर्भाव । उन्हें मध्यपागकी इच्छा हुई, तब वा । तत्पश्चात् उसमें पातु-इन्द्रिय लभ हुए । इन्हीं दोनोंके द्वारा मन्त्र होती है ॥ २७ ॥ अपानमागद्वारा शरीरमें जानेकी इच्छा होनेपर नाभिद्वारा अपान और मूत्र देवता प्रकट हुए । ते ही प्राण और अपानका विजोह । २८ ॥ जब विद्युत् पुरुषको अन्न इच्छा हुई, तब कश्यप, अग्नि और । नाथ-ही कुम्भिक श्रेयसा ममूत्र, पियौ एवं तृप्ति और पुष्टि—य त विषय उत्पन्न हुए ॥ २० ॥



KAIVALYADHAMA
S M Y M SAMITI LONAVLA
DIST PUNE-410 403

निदिध्यासारात्ममाया हृदय निरभिष्यत ।

तवा मनस्ततश्चन्द्र सङ्कल्पः काम एव च ॥३०॥

त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिधातवः ।

भूम्यप्येजामया समग्राणो व्यागाम्मुवायुभिः ॥३१॥

गुणैर्मन्त्रकनीन्द्रियाणि भूतादिप्रमवा गुणा ।

मन सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥३२॥

एतद्भगवतो रूपं स्थूलं त व्याहृत मया ।

महादिभिर्वावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥३३॥

अतः परं सूक्ष्मवममव्यक्त निर्विच्छिन्नपणम् ।

अनादिमण्यनिधनं नित्य वाच्यनस परम् ॥३४॥

अमुनी भगवद्रूपे मया वे अनुवर्णिते ।

उमे अयि न गृह्णन्ति मावाप्तुष्टे विपश्चितः ॥३५॥

॥ वाच्यवाचकतया भगवान् अक्षररूपश्च ।

नामरूपक्रिया भव सकर्मकर्मकः पर ॥३६॥

प्रजापतीन्मनु देवान्प्रीन् पितृगणान् पृथक् ।

सिद्धचारणगर्भान् विद्याधासुरगुह्यकान् ॥३७॥

किंशराप्सरमोनागान् सर्पान् किम्पुरुषोरगान् ।

मातृ रक्ष पिशाचाश्च प्रतभूतमिनापकान् ॥३८॥

कृष्माण्डोन्मादवेतालान् यतुधानान् ग्रहानपि ।

स्वगान्मृगान् पशून् वृक्षान् गिरीन्तृण सरीसृपान् ॥३९॥

द्विविधाभतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभीकस ।

जब उन्होंने अपनी मायपर विचार करना चाहा, तब हृदय की

उत्पत्ति हुई । उससे ममरूप इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न देवता

चन्द्रमा तथा विषय कामना और सङ्कल्प प्रकट हुए

॥ ३० ॥ विराट् पुरुषके शरीरमें पृथ्वी, जल और

तेजसे सात धातुएँ प्रकट हुई—त्वचा, चर्म, मांस,

रुधिर, मे, मज्जा और अस्थि । इसी प्रकार आकाश,

जल और वायुसे प्राणेश्वरी उत्पत्ति हुई ॥ ३१ ॥

ओषाणि सब इन्द्रियों शब्दादि विषयोंको ग्रहण करने

वाली हैं । वे विषय अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं । मन

सब विकल्पोंका उत्पत्तिस्थान है और बुद्धि समस्त

पदार्थोंका बोध करानवाली है ॥ ३२ ॥ मैंने भावान्को

इस स्थूल रूपका वर्णन तुम्हें सुनाया है । यह बाहर

की ओरसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार,

महत्तत्त्व और प्रकृति—इन आठ आकणोंसे विराड्का

है ॥ ३३ ॥ इससे परे भावान्का अत्यन्त सूक्ष्म रूप

है । यह अव्यक्त, निर्विकल्प, अपि, मय्य और अन्तसे

रक्षित एव नित्य है । वाणी और मनकी बहनेक पूर्व

नहीं है ॥ ३४ ॥

मैंने तुम्हें भावान्को स्थूल और सूक्ष्म—व्यक्त और

अव्यक्त जिन दो रूपोंका वर्णन सुनाया है, ये दोनों

ही भावान्की मायके द्वारा रक्षित हैं । इसलिये विद्वान्

पुरुष इन दोनोंको ही स्वीकार नहीं करते ॥ ३५ ॥

वाच्यवर्मे भावान् निष्क्रिय हैं । अपनी शक्तिसे ही वे

सक्रिय बनते हैं । फिर तो वे व्याकृत या विराट् रूप

धारण करने वाच्य और वाचक—शब्द और उसके

वर्णिक रूपमें प्रकट होते हैं और अनेकों नाम, रूप

तथा क्रियाएँ स्वीकार करते हैं ॥ ३६ ॥ परीक्षित !

प्रजापति, मनु, देवता आदि, फिर, सिद्ध, चरम,

गन्धर्व, विषाधर, असुर, पक्ष, किम्बर, अप्सरार्य, नगा,

सर्प, किम्पुरुष, उरग, यतुकार्य, राक्षस, सिताच, प्रेत,

भूत, मिनाक, कृष्माण्ड, उन्माद, केनाड, यतुधाम

पक्ष, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्णत, सरीसृप इत्यादि

जितने भी संसारमें नाम-रूप हैं, सब भावान्को ही

हैं ॥ ३७-३९ ॥ संसारमें पर और अघर भरसे दो

प्रकारके तथा अगपुत्र, अण्डज, स्वेदज और ठठिज

मेदसे चार प्रकारके जितने भी जलधर, कण्ठधर तथा

कुशलं कुशला मिमा कर्मणां गतयस्त्रिधा ॥४०॥

मत्तं रजस्तम इति तिस्रः सुरजनारकाः ।

तत्राप्येकैकशो राजन् भिद्यन्ते गतयस्त्रिधा ।

यदैकैकशोऽन्याभ्यां स्वभावं उपहन्यते ॥४१॥

॥ एकेऽजगद्वाता भगवान् धर्मरूपधृक् ।

पुण्याति व्यापयन् विषं विर्यङ्गनसुरात्मभिः ॥४२॥

ततः कालामिन्द्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः ।

संनिबन्धति कालेन घनानीकमिवानिलः ॥४३॥

इत्थंभावेन कथितो भगवान् भगवत्तमः ।

नेत्थंभावेन हि परं ब्रह्मर्हन्ति ब्रह्म ॥४४॥

नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्मानुविधीयते ।

कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययारोपितं हि तत् ॥४५॥

अयं तु ब्रह्मण कल्प्य सविकल्प्य उदाहृतः ।

त्रिभिः साधारणो यत्र सर्गा प्राकृतवैकृता ॥४६॥

परिमाणं च कालस्य कल्पतद्यधनिग्रहम् ।

यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्य पादं कल्पमया शृणु ॥४७॥

श्रीनक उवाच

यदाह नो भवान् स्रुतं धृत्वा भागवतात्मनः ।

आकाशावासी प्राणी हैं, मन्त्र-के-सब शुभ-अशुभ और मिश्रित कर्मिक सन्तानरूप फल हैं ॥ ४० ॥ सत्त्व-

की प्रधानतासे देवता, रजोगुणकी प्रधानतासे मनुष्य और तमोगुणकी प्रधानतासे नारकीय योनियाँ मिश्रणी

हैं । इन गुणोंमें भी जब एक गुण दूसर दो गुणोंसे अभिम्यूत हो जाता है, तब प्रत्येक गतिके तीन-तीन भू और हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ वे भगवान् जगत्क-

भरण-पोषणक त्रिये धम्मस्य त्रियुरूप स्वीकार करक देवता, मनुष्य और पशु, पक्षी आदि रूपोंमें अवतार

लेते हैं तथा विषयका पायन-पोषण करते हैं ॥ ४२ ॥ प्रलयका समय आनेपर वे ही भगवान् अपने बनाये हुए

इस विषयको कल्पमिसररूप रुद्धका रूप प्रवृण्व करके अपनेमें बैसे ही बँध कर लेते हैं, जैसे वायु मेघ-

माजको ॥ ४३ ॥

परीश्रित् । महात्माओंने अधिभ्यैश्वर्य भगवान्का इसी प्रकार वर्णन किया है । परन्तु तत्त्वज्ञानी

पुरुषोंको केवल इस सृष्टि, पावन और प्रलय करनेवाले रूपमें ही उगका दर्शन नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे

तो इससे परे भी हैं ॥ ४४ ॥ सृष्टिकी रचना आदि कर्मोंका निरूपण करके पूर्ण परमात्मासे कर्म या कर्तापन

का सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है । वह तो मायासे आगे गिन होनेके कारण कर्तृत्वका नियम करनेके लिये ही

है ॥ ४५ ॥ यह मैंने शम्भारीके महाकल्पका अवन्तर कल्पोंके साथ कर्णन किया है । मन्त्र कल्पोंमें

सृष्टि-कल्प एक-मा ही है । अन्तर है ता केवल इतना ही कि महाकल्पके प्रारम्भमें प्रवृत्तिसे क्रमशः

व्यवस्थापिकी उत्पत्ति होती है और कल्पोंके प्रारम्भमें प्राकृत सृष्टि तो ज्यों-की-त्यों रहती ही है, चराचर प्राणियोंकी ब्रह्म सृष्टि नहीं रूपसे होती है ॥ ४६ ॥

परीश्रित् । कायका परिमाण, कल्प और उसका अन्तर्गत कल्पोंका वर्णन साधारण होकर सुनो ॥ ४७ ॥

श्रीनकजीन पूछा—सूत्रजी । आपने हमअंगीसे कहा था कि भगवान्के परम भक्त विदुरजीने ज्ञान

निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरमिषत ।

तथा मनस्ततश्चन्द्रः सङ्कल्पः काम एव च ॥३०॥

त्वयधममांसरुधिरमेतमज्जाम्बिधातवः ।

भूम्यन्तेजामया सप्त प्राणो व्यामाम्युवायुभि ॥३१॥

गुणात्मकनीन्द्रियाणि मृतादिप्रमथा गुणा ।

यन सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥३२॥

एतद्भगवतो रूपं स्थूलं सूक्ष्मं व्याहृतं मया ।

ममादिभिश्चावरणैरष्टभिर्वहिरावृतम् ॥३३॥

अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ।

अनादिमयनिधनं नित्यं बाह्यनस परम् ॥३४॥

अमुनी भगवद्दृष्टं मया त्वं अनुवर्णिते ।

उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टं विपश्चित् ॥३५॥

तवाच्यवाचकतया भगवान् प्रश्नरूपपृक् ।

नामरूपक्रिया भूत सक्रमाकर्षकं परं ॥३६॥

प्रज्ञापतोन्मनून् देवान्पुमान् पितृगणान् पृथक् ।

मिद्वचरणमन्धर्वान् विद्याधामुरगुह्यकान् ॥३७॥

किन्नराप्सरमा नागान् मर्पान् किम्पुरुषारमान् ।

मातृ रक्ष विपाद्याश्च श्रतभृतविनायकान् ॥३८॥

वृष्माण्डान्मादवेतालान् यातुधानान् प्रद्वानपि ।

गगान्मृगान् पक्षिमान् गिरान्पुंसरीमृषान् ॥३९॥

द्विविधाधर्तुर्भिषा यन्त्रे अलम्बनभोजनम् ।

जब उन्होंने अपनी मायापर विचार करना चाहा, तब हृदयकी उत्पत्ति हुई। उससे मारूप इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न देवता चन्द्रमा तथा विषय कामना और सङ्कल्प प्रकट हुए ॥ ३० ॥ विराट् पुरुषके शरीरमें पृथ्वी, जल और तेजसे सप्त धातुएँ प्रकट हुई—स्वभा, धर्म, मांस, रुधिर मे, मज्जा और अस्ति। इसी प्रकार आकाश, जल और वायुसे प्राणोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३१ ॥ ओत्राणि सब इन्द्रियों शरीरोंके विषयोंको ग्रहण करने वाली हैं। वे विषय अद्भुतसे उत्पन्न हुए हैं। मन सब विकारोंका उत्पत्तिस्थान है और बुद्धि सम्मत् पदार्थोंका बोध करनेवाली है ॥ ३२ ॥ मैंने मातृभूतके इस स्थूल रूपका वर्णन तुम्हें सुनाया है। यह बाहर की ओरसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अद्भुत, अलम्बन और प्रकृति—इन आठ आत्मणोंसे विराट् हुआ है ॥ ३३ ॥ इससे परे मगधनृक अव्यक्त सूक्ष्म रूप है। यह अव्यक्त, निर्विशेष, अप्रति, प्रमय और अनन्तसे रहित एव नित्य है। वाली और मनकी यहैतक पहुँच नहीं है ॥ ३४ ॥

मैंने तुम्हें मगधनृके स्थूल और सूक्ष्म—व्यक्त और अव्यक्त जिन दो रूपोंका वर्णन सुनाया है, ये दोनों ही मगधनृकी माय्यके द्वारा रक्षित हैं। इसलिये मित्रज पुरुष इन दोनोंको ही स्वीकार नहीं करते ॥ ३५ ॥ वास्तवमें मगधनृ निष्क्रिय हैं। अपनी शक्तियों से ही वे सक्रिय बनते हैं। फिर तो वे ब्रह्माका या विराट् रूप धारण करके वाच्य और वाचक—वाच्य और उसके अर्थके रूपमें प्रकट होते हैं और अनेकों नाम, रूप तथा क्रियाएँ स्वीकार करते हैं ॥ ३६ ॥ परीक्षित! प्रजापति, मनु, देवता, अस्ति, पितर, मिद्व, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, अमुर, यक्ष, किन्नर, अप्सरएँ, नाग, सर्प, किम्पुरुष, उरग, मातृकएँ, राक्षस, विद्याध, वैन, भूत, विनायक, वृष्माण्ड उष्माण्ड, वनस्प, यातुधान, प्रह, पक्षी, मृग, पशु वृक्ष पर्जन्य, सरीसृप इत्यादि जितने भी मगधनृके नाम-रूप हैं, सब मगधनृके ही हैं ॥ ३७-३९ ॥ संसारमें घर और अन्तर मेंसे ही प्रपञ्चके तथा जगज्ज, अद्भुत, स्वेच्छ और उद्भिन्न मेंसे चार प्रकारके जितने भी जगधर, बहचर तथा

श्रीराधाकृष्णम्भो नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

द्वितीयः स्कन्धः



यस्य भामा विभातीर्दं सर्वं सदसदामकम् ।
मर्वाभार सदानन्द स्वात्मानं सं हरिं भजे ॥

चचारसीर्थाणि सुवस्त्यक्त्वा बभूव सुदुस्त्यजान् ४८
 कुत्र कौपारवेत्तस्य मन्वादोऽभ्यारमसप्रित ।
 यद्वा म भगवान्त्समै पृष्टस्तत्त्वमुवाच ॥४९॥
 प्रदि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विप्रेष्टितम् ।
 बन्धुत्वाग्निमित्तं च तथैवागतवान् पुन ॥५०॥

सूत उवाच

राज्ञा परीक्षिता पृष्टा यदबोधन्महाह्वनिः ।
 तद्दोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रभानुसारत ॥५१॥

अति दुस्त्यज कुटुम्बियोंको भी छोड़कर पृथ्वीके विभिन्न
 तीर्थोंमें विचरण किया था ॥४८॥ उस यात्रामें मैत्रेय ऋषिके
 साथ अभ्यात्मके सम्बन्धमें उनका बान्चीत कहो हुई तथा
 मैत्रेयजीने उनके प्रश्न करनेपर किस्त तत्काल उपदेश
 किया ॥ ४९ ॥ सूतजी ! आपका सम्भव बड़ा सौम्य
 है । आप विदुरजीका यह चरित्र हमें सुनाइये । उन्होंने
 अपने भाई-बन्धुओंको क्यों छोड़ा और फिर उनके पास
 क्यों लौट आये ॥ ५० ॥

सूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो । राजा परीक्षित
 ने भी यही बात पूछी थी । उनके प्रश्नोंके उत्तरमें
 श्रीभृकदेवजी महाराजने जो कुछ कहा था, वही मैं
 आपसे कह रहा हूँ । सत्यवान होकर सुनिये ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः
 कथा संक्षिप्ताया पुन्यसंस्मृत्युत्कर्णनं नाम
 दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति द्वितीयः स्कन्धः समाप्तः ।

ॐ ॐ ॐ





प्रायः म माता माः श्रीमति भगवत् रिणु

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

द्वितीयः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

उत्सव और विधुवकी भेंट

श्रीभूक उवाच

एवमेतत्पुरा पृथो मैत्रेयो भगवान् किल ।

सूत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमुद्दिमत ॥ १ ॥

यद्वा अयं मन्त्रकुट्टा भगवानस्त्रिभारः ।

पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविष्टात्ममात्कृतम् ॥ २ ॥

राजोवाच

कुत्र धृष्टर्मगवता मैत्रेयेणास सङ्गम ।

कदा वा सह संवाद एतद्वर्षय न प्रभो ॥ ३ ॥

न क्षत्र्यार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मन ।

वसिन् वरीयसि प्रभु साधुवादोपबृंहितः ॥ ४ ॥

सूत उवाच

स एवमृषिवर्योऽयं पृथं राज्ञा परीक्षितः ।

प्रत्याह तं सुषड्वित्प्रीवारत्मा श्रूयतामिति ॥ ५ ॥

श्रीभूक उवाच

यदा तु राज्ञा स्वसुतानसाधून्

पुण्यासधर्मेण विनष्टदृष्टिः ।

आतुर्यविमुक्त्य सुतान् विषधून्

प्रवेश्य लाघाभवने ददाह ॥ ६ ॥

यदा सभायां कुरुदेवदेव्या

कशाभिर्मशं सुतकर्म गर्भम् ।

न वारयामास नृप स्तुपायाः

स्वासेर्हरन्त्या कुपकुमानि ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! जो बात तुमने

कही है, वही पूर्वकालमें अपने सुख-समृद्धिसे पूर्ण घरका छोड़कर वनमें गये हुए विदुरजीन भगवान् मैत्रेयजीसे कही थी ॥ १ ॥ जब सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके दूत बनकर गये थे, तब व दुर्योधनके मन्त्रियोंको छोड़कर, उसी विदुरजीके घरमें उसे अपना ही सम्झकर बिना बुलाये चले गये थे ॥ २ ॥

राजा परीक्षितने पूछा—प्रभो ! यह तो बतलाइये कि भगवान् मैत्रेयके साथ विदुरजीका सम्प्रागम कहाँ और किस समय हुआ था ? ॥ ३ ॥ पत्रिवाह्य विदुरने मन्त्रात्मा मैत्रेयजीसे कोई साधारण प्रश्न नहीं किया होगा, क्योंकि उसे तो मैत्रेयजी-जैसे साधुशिरोमणिने अभिनन्दनपूर्वक उत्तर देकर मन्त्रिमान्त्रित किया था ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—सर्वज्ञ शुकदेवजीन राजा परीक्षित के इस प्रश्न पर पूछनेपर कति प्रसन्न होकर कहा— सुनो ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित ! यह उन दिनोंकी बात है, जब कभी राजा धृतराष्ट्रने अन्यायपूर्ण अपन दुष्ट पुत्रोंका पावन-भोग करते हुए अपने छोट भाइ पाण्डुके अनाथ बालकोंको स्वाध्यामवनमें भेजकर आग लगा दी ॥ ६ ॥ जब उनकी पुत्रवधू और महाराज सुभिक्षिणी पत्न्यामी द्रौपदीके केश दुःशमनने भी मगधमें लौंके, उस समय द्रौपदीकी ओंखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली और उस प्रवाहसे उसके केश स्वप्नर लगा हुआ केसर भी बह चला किंतु धृतराष्ट्रने अपने पुत्रको उस कुन्तसे नहीं

धृते त्वधर्मेण क्षितस्त्य साधो
 सत्पावलम्भस्य वनागतस्य ।
 न याचतोऽदान्तमयेन दार्यं
 तमो जुपायो यद्विज्ञातश्चक्रोः ॥ ८ ॥
 यदा च पार्थप्रहितः सभायां
 जगद्गुरुर्पानि बगाद कृष्णः ।
 न तानि पुंसामधृतापनानि
 राजोरु मेने क्षतपुष्पलेखः ॥ ९ ॥
 यदोपहृतो भवनं प्रविष्टो
 मन्त्राय पृष्टं किञ्च पूर्वमेव ।
 अथाह तन्मन्त्रच्छां वरीवान्
 यन्मन्त्रिणो वैदुरिर्कं वदन्ति ॥ १० ॥
 अज्ञातश्चक्रोः प्रतिपच्छ दाव
 तितिक्षतो दुर्विपहं तवामः ।
 संहातुवो यत्र वृकादराहिः
 श्वसन् रुपा यत्त्वमलं विमेपि ॥ ११ ॥
 पार्थास्तु देवो भगवान्मुकुन्दो
 गृहीतवान् सखितिवेशदेव ।
 आस्ते स्वपुत्रा यदुदेवदेवो
 विनिर्मिताश्चेपनुदेवदेवः ॥ १२ ॥
 स एव दोषं पुष्टपद्मिनास्ते
 गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमस्या ।
 पुष्पासि कृष्णादिमुखो गतभी-
 स्त्यश्वाश्वश्रेयं कुलकौशलाय ॥ १३ ॥
 इत्युचिवांस्तत्र सुयोधनेन
 प्रवृद्धकापस्फुरिताधरण ।

रोका ॥ ७ ॥ दुर्योधनने सत्यपराध
 मोक्षे-माले युधिष्ठिरका राज्य क्षुभे कल्पयते ।
 क्षिया और उन्हें वनमें निकाल दिया । किंतु
 श्रौतेनैव प्रसिद्धानुसार जब उन्होंने अपना न्यायो
 पैतृक माग माँगा, तब भी मोक्षवशा उन्होंने उन अ
 धर्यु युधिष्ठिरको उनका हिस्सा नहीं दिया ॥ ८ ॥
 महाराज युधिष्ठिरके भेजेमेपर जब जगद्गुरु मा
 श्रीकृष्णने वीरवैकी समामें क्षितमर सुमधुर वचन
 जा भीष्मादि सज्जनोंको अमृत-से म्मो, पर कुल
 उनके कथनको कुछ भी आदर नहीं दिया । देते कै
 उनके तो सारे पुण्य नष्ट हो चुके थे ॥ ९ ॥
 जब सप्पहके लिये विदुरजीको बुलाया गया, तब प्रति
 शेष विदुरजीन राम्यमन्त्रमें जाकर बड़े भारी वृत्त
 छन्देपर उन्हें वह सम्मति दी, जिसे नीति-श
 जाननेवाले पुरुष 'विदुरजीति' कहते हैं ॥ १० ॥

उन्होंने कहा—'महाराज । आप अथ
 महात्मा युधिष्ठिरको उनका हिस्सा दे दीजिये । वे क
 न सहनेयोग्य अपराधको भी सह रहे हैं । भीमरूप
 नागसे तो आप भी बहुत डरते हैं देखिये, वह
 छोटे भार्योंके सहित बदला लेनेके लिये बड़े को
 कुपत्कारें मार रहा है ॥ ११ ॥ आपके पता न
 मगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको अपना किया है । वे पुरु
 के आराध्यदेव इस समय अपनी राजधानी द्वारका
 विराजमान हैं । उन्होंने पृथ्वीके सभी बड़े-बड़े राजा
 अपने अधीन कर लिया है, तथा ब्राह्मण और देव
 उनकी पक्षमें हैं ॥ १२ ॥ जिसे आप पुत्र मानकर
 रहे हैं तथा जिसकी हठ-मै-हठ मित्रसे जा रहे हैं
 दुर्योधनको कथमें तो मूर्तिमन् दोष ही आपके धर्म
 मैठा है । यह तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णसे दोष क
 नाश है । इसीके कारण आप भगवान् श्रीकृष्णसे नि
 होकर शीघ्र ही रहे हैं । अतएव यदि आप व
 कुलकी कुलाल चाहते हैं तो इस दुष्टको मुरत ही न
 दीजिये ॥ १३ ॥

विदुरजीका ऐसा सुन्दर वचन था कि सायुध
 उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते थे । किंतु उनकी

असत्कृत संतसृष्टणीयशील
 क्षपा सकर्माजुजसौबलेन ॥१४॥
 क एनमप्रोपमुहाव जिह्वां
 दास्या मुतं यन्नलिनैव पुष्टः ।
 वसिन् प्रतीप परकृत्य आस्ते
 निर्वास्तवामाशु पुरान्द्रुमान् ॥१५॥
 स इत्थमप्युत्पन्नकर्णबाणै
 भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ।
 स्वयं धनुर्दारि निधाय मायां
 गतव्यथोऽयादुरु मानयान् ॥१६॥
 म निर्गत कौरवपुण्यलब्धो
 गज्राह्याचीर्यपद पदानि ।
 अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोध्यां
 स्वधिक्षितो यानि सहस्रमूर्ति ॥१७॥
 पुरेष पुण्योपवनाद्रिह्रस्वे
 ष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरःसु ।
 अनन्तलिङ्गैः समलङ्कृतेषु
 चचार तीर्थायतनेष्वनय ॥१८॥
 गां पर्यटन्मेष्यविषिक्तवृत्ति
 मदाऽऽप्सुतोऽधःशयनोऽवधूतः ।
 अलक्षित म्भैरवधूतवेषो
 व्रतानि चेदे हरितोपणानि ॥१९॥
 इत्थं व्रजन् भारतमेव वर्षं
 कालं यावद्रतवान् प्रभामम् ।
 तावच्छायाम् स्थितिमेकचक्रा
 मकथपत्रामजितेन पार्थ ॥२०॥
 तत्राप्य शुभाव सुदृढिनष्टि
 वनं यथा वेषुजवह्निसंभयम् ।
 सम्पर्धया दग्धमथानुशोचन्
 मरम्यतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥
 तस्यां प्रितस्याश्रनसा मनोम
 पृथोरधानैरसितस्य बायो ।

बात सुनते ही कर्ण, द्रु शासन और शकुनिके सहित
 दुर्योधनके होठ अत्यन्त क्रोधसे फटकने लगे और उसने
 उनका निरस्कार करते हुए कहा—अरे ! हम बुद्धि
 दासीपुत्रको यहाँ किन्तने सुलभया है : यह जिनका
 दुर्कर्म खा-खाकर जीना है, उन्होंने प्रतिकूल होकर शत्रु
 का काम बनाना चाहता है । हमके प्राण तो मन लो, परन्तु
 हमे हमारे नगरसे तुरन्त बाहर निकलने ॥१४॥
 माईके सामने ही कर्णमें बाणके मग्न स्तनवाले इन
 अत्यन्त कठोर वचनोंसे मर्माहत होकर मी विदुरजीने
 कुछ बुरा न माना और मगधान्की मायाको प्रवक्ष समझ-
 कर अपना चतुर राजद्वारपर रख वे हस्तिनापुरसे चक
 दिये ॥१६॥ कौरवोंको विदुर-जैसे महत्त्वा बड़े पुण्य-
 से प्राप्त हुए थे । वे हस्तिनापुरसे चत्पत्त पुण्य करनेकी
 इच्छासे मृगण्डकमें तीर्थपाद मगधान्के क्षेत्रमें विचरने
 लगे, जहाँ श्रीहरि कक्षा, स्व, अनन्त आदि अनेकों
 मूर्तियोंके रूपमें विराजमान हैं ॥१७॥ जहाँ-जहाँ
 मगधान्की प्रतिमाजैसे सुशोभित तीर्थस्थान, नगर, पवित्र
 वन, पर्वत, निकुञ्ज और निम्न जलसे भरे हुए नदी
 सरोवर आदि थे, उन सभी स्थानोंमें वे अकेले ही
 विचरते रहे ॥१८॥ वे अवधूत-वेषमें लच्छन्दतापूर्णक
 पृथ्वीपर विचरते थे, जिससे आत्मीय-जन उन्हें पहचान
 न सके । वे शरीरका सजाते न थे, पवित्र और साधारण
 भोजन करते, सुदृष्टिसे जीवन निर्वाह करते, प्रत्येक
 तीर्थमें खान करते, जमीनपर साते और मगधान्का
 प्रमत्त करनेवाले क्रोधापलन करते रहते थे ॥१९॥

इस प्रकार भारतवर्षमें ही विचरते-विचरते ब्रजवन
 के प्रभासक्षेत्रमें पहुँचे, तत्काल मगधान्की श्रीहृष्यकी
 सहाय्यमाने महाराज युधिष्ठिर पृथ्वीका एकछत्र अलग
 राख करने लगे थे ॥२०॥ वहाँ उन्होंने अपने फौरन
 बन्धुजोंके विनाशका ममाचार सुना, या आपसकी कलह
 के कारण परस्पर छद्म-मिहयत्र उसी प्रकार नष्ट हो गये
 थे, जैसे अपनी ही राइसे उत्पन्न हुआ आगसे बँसोंका
 सात जंगल जलकर खाक हुआ जाता है । यह सुनकर य
 शोक करते हुए शुरुषाव मरम्यकी तीरर आये ॥२१॥
 वहाँ उन्होंने त्रिन, उगना, मनु पृथु, अग्नि, अमित्र,

तीर्थं मुदास्तस्य गवां गुहस्य
 यच्छाददवस्य म आसिपेवे ॥२२॥
 भन्यानि चेह शिजदेवदेवै
 कृतानि नानायतनानि विष्णो ।
 प्रत्यङ्गमुस्याङ्कितमन्दिराणि
 यदर्शनात्कृष्णमनुसरन्ति ॥२३॥
 ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमुद्धं
 मौवीरमत्स्यान् कुरुजाङ्गलां च ।
 कालेन तावद्यमुनामुपेत्य
 तत्रादिव भागवत ददर्श ॥२४॥
 स वामुदेवानुचरं प्रधानं
 दृष्ट्यते प्राक् तनय प्रतीतम् ।
 आलिङ्ग्य गाढ प्रणयेन भद्र
 स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥२५॥
 कश्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाम्न
 पाद्यानुष्ठप्येह किलावतीर्णौ ।
 आसात उर्ध्वाः कुशलं विधाय
 कृतश्र्णौ कुशलं शृणुगे ॥२६॥
 कश्चिद्वरुणां परमः सुहृभो
 भामः स आन्ते सुखमङ्ग शौरिः ।
 या वै स्वसृणां पितृवद्वसि
 वरान् वदान्यो वरतपजन ॥२७॥
 कश्चिद्वरुणाधिपतिर्यदूनां
 प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग शौरि ।
 य रुक्मिणी भगवतोऽभिलेखे
 आराध्य विप्रान् सरमाविसर्गे ॥२८॥
 कश्चित्सुख मात्यसङ्घिणांश
 दाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ।
 यमम्यपिञ्छतपत्रनेयो
 नृपामनाशं परिहृत्य दूरात् ॥२९॥
 कश्चिद्वरे मौम्य सुत मण्ड
 आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु मात्यः ।
 प्रद्युत यं जाम्बवती व्रतादवा
 देवं गुहं याऽम्यिकया वृताऽग्र ॥३०॥

वायु, सुनास, गौ, गुह और द्याददेवक नामोंसे प्रति
 म्प्राद तीर्थांक सेवन किया ॥२२॥ इनके मित्रा पृथ
 व्वाक्षण और दशनाओंके स्थापित किये हुए जो भगव
 त्पुत्रके और भी अनर्को मन्दिर थे, तिनके सिक्खों
 मगधान्के प्रधान आयुध चक्रके चिह्न थे और तिनका
 मात्रसे श्रीकृष्णका स्मरण हो आता था, उनका भी से
 किया ॥ २३ ॥ वहाँसे चक्रर वे धन चान्दपूर्ण सौष्ट
 मौवीर, मस्य और कुरुजाङ्गल आदि देशोंमें होते हुए जब कु
 र्निमें यमुना-तटपर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने परम्परा
 उदवनीका दर्शन किया ॥ २४ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्ण
 के प्रख्यात सेवक और अत्यन्त शान्तस्वभाव थे । वे प
 दृष्ट्यतिनीके शिष्य रह चुके थे । विदुरजी
 उन्हें देखकर प्रेमसे गाढ़ आच्छिन्न किया और उन
 अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण और उनके आदि
 अपने सबनोंका कुशल-समाचार पूछ ॥ २५ ॥

विदुरजी कहने लगे—उदवनी ! पुराणपुराण कल्प
 जी और श्रीकृष्णने अपन ही नामिकमसे उत्पन्न
 क्कावीकी प्रार्थनासे इस जगत्में अवतार लिया है
 न पृथ्वीका भार उतारकर सबको आनन्द देते
 अब श्रीवसुदेवजीके घर कुशलसे रह रहे हैं न ? ॥२६॥
 प्रियकर ! हम कुर्वशियोंके परम सुहृद् व
 पूज्य वसुदेवजी, जो पिताके समान उदारतापूर्व
 अपनी कुन्ती आदि बहिनोंको उनके स्वामियोंका संभ
 कराते हुए उनकी सभी मनचाही वस्तुएँ देते जाये
 आनन्दपूर्वक हैं न ? २७ ॥ प्यारे उदवनी ! यदव
 सेनापति शौरकर प्रद्युम्नजी ता प्रसन्न हैं न, जो पूर्वजन्म
 में कामदेव थे तथा जिन्हें देवी रुक्मिणीजीने ब्राम्हणों
 आराजना करके भगवान्से प्राप्त किया था ॥ २८ ॥
 साक्षत हृग्नि, भोज और दाराहयशी यान्त्रिके अभि
 पति महाराज उत्प्रेमन ता सुखसे हैं न, तिनहोंने रु
 पानकी आशाका सर्वथा परित्याग कर दिया था किं
 कम्यनपन भगवान् श्रीकृष्णने जिन्हें निरसे राख्यमिहात्म
 पर बैठाया ॥ २९ ॥ सौम्य ! अपने मित्रा श्रीकृष्ण
 समान ममता रक्षियोंमें अग्रगण्य श्रीकृष्णस्तनय सुप्र
 मकुशा ता हैं । ये पढ़ने पार्वतीजीके द्वारा गर्भमें बाध
 किये हुए स्वामिकान्तिक हैं । अनर्को व्रत करके जाम्बवती

श्वेत् स कश्चिद्युधान आस्ते
 य फारगुनाल्लम्बधनरुहस्यः ।
 सेमेऽल्लमाधोऽल्लजसेवयैव
 गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥३१॥
 कश्चिद् युध व्यस्त्यनभीय आस्ते
 भक्षकपुत्रो भगवत्प्रपन्न ।
 यः कृष्णपद्माङ्कितमार्गपांसु
 प्लयेष्ट प्रमथिभिक्षार्थे ॥३२॥
 कश्चिच्छिवं देवकभोऽपुत्र्या
 विष्णुप्रजाया इव दवमातु ।
 या वै स्वर्गमेण दधार तव
 त्रयी यया यज्ञवितानमर्थम् ॥३३॥
 अपिस्त्रिदाम्ते भगवान् मुख वो
 यः सात्वतां कामदुषोऽनिरुद्ध ।
 यमामनन्ति स हं शुद्धयोनिं
 मनोमयं सच्चतुरीयतन्त्रम् ॥३४॥
 अपिस्त्रिदाम्ये च निजात्मदेव
 मनन्यहस्या समनुग्रहा ये ।
 हृदीकसत्पातमजघाकृष्टणा
 गदादय स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥३५॥
 अपि स्फुटार्भ्यां विजयाच्युताम्नां
 धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ।
 दुर्योधनोऽस्तप्यत यत्सभायां
 साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुहस्या ॥३६॥
 किं वा कृतायेष्वमत्यमर्षी
 भीमाऽहिवशीयतम व्यसृजत ।
 यस्याह्निपात रणभूतं सेह
 मार्गं गदायाभरतो विचित्रम् ॥३७॥
 कश्चिद्यशोधा रथयूथपाना
 गाण्डीवधन्वोपरसारिरास्ते ।
 भलधितो यन्स्त्रकूटगूढा
 मायाकिरातो गिरिशस्तुतोप ॥३८॥

न इन्हें जन्म दिया था ॥ ३० ॥ जिन्होंने अर्जुनसे
 रहस्यमुक्त धनुर्विद्याकी शिक्षा पायी है, व सत्यपति तो
 कुशलपूर्वक हैं । वे भगवान् श्रीकृष्णकी सेवासे अनायास
 ही मगधजन्योंकी उस महान् भित्तिपर पहुँच गये हैं,
 जो वड़े वड़े योगियोंको भी दुर्लभ है ॥ ३१ ॥ भगवान्‌के
 शरणागत निर्मल भक्त बुद्धिमान् अमृतजी मी प्रसन्न हैं म,
 जो श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंसे अङ्कित शत्रुके मामकी रजमें
 प्रेमसे अधीर होकर खोपने लगे थे । ॥ ३२ ॥ मोक्षवशी
 देवकजी पुत्री देवकीजी अच्छी तरह हैं न, जो दवमाता
 अदिनिके समान ही सप्तात् विष्णुमन्त्रान्‌की मन्त्रा हैं ।
 जैसे वदकजी यज्ञविस्ताररूप अर्घ्यको अपन मन्त्रोंमें धारण
 किये रहती हैं, उसी प्रकार उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको
 अपन गर्भमें धारण किया था ॥ ३३ ॥ आप मत्तजन्यों
 की कामनाएँ पूर्ण करनेवाले भगवान् अनिरुद्धजी सुख-
 पूर्वक हैं न, जिन्हें शास्त्र वेदोंके आदिकारण और अन्त
 करणचतुष्टयक चाये अंश मनके अधिपाना वल्लभते
 हैं ॥ ३४ ॥ सौम्यस्वभाव उदवजी । अपन हृदयेपर
 भगवान् श्रीकृष्णका अनन्यभावसे अनुसुरण करनेवाले
 जो हृत्की, सत्यमामानन्दन चारुदेष्ण और गद आदि
 अन्य भगवान्‌के पुत्र हैं, वे सब भी कुशलपूर्वक
 हैं न ॥ ३५ ॥

महाराज युधिष्ठिर अपनी अर्जुन और श्रीकृष्णरूप दोनों
 मुजाबोंकी सहायतासे धर्मधर्मिकार न्यायपूर्वक फैलान
 करते हैं न । मय दानशक्ती बनानी हुई मभामें इनके
 राज्यसैन्य और शत्रुवेको देखकर दुर्योधनको बड़ा डर
 हुआ था ॥ ३६ ॥ अपराधियोंके प्रति अत्यन्त अस्त्रहिंसा
 भीमसेनने सर्पके समान दीप्तकालीन बाघका छोड़ दिया
 है क्या । जब वे गन्धर्वादिमें तरह-तरहके पैरों वल्लभ
 थे, तब उनके पैरोंकी धमकसे घली बोलने लगी
 थी ॥ ३७ ॥ तिनके आणोंक बालसे छिपकर विराट-
 जेयधारी, अतएव विनीकी पहचानमें न जानेवाले
 भगवान् गह्वर प्रसन्न हो गये थे वे रथी और यूप-
 पतिपोंक सुयश बहानेवाले गाण्डीवधारी अर्जुन तो प्रसन्न
 हैं न । अब तो उनके सभी शत्रु शान्त हो चुके होंगे ॥ ३८ ॥

१ मा पा — हि ।

• चित्त बहिरात् बुद्धि और मन—ये अन्तःकरणके चार अंश हैं । इनके अधिश्रुता क्रमशः बामुदेव सङ्कल्प
 मनुष्य और अनिबद्ध हैं ।

यमाद्युतस्त्रिचनया पृथायाः

पार्थिवतां परमभिरक्षिणीम् ।

रेमात उदाय मृचे स्वरिक्थ

परात्सुपर्णप्रिविष चञ्चिवक्त्रात् ॥३९॥

अहा पृथापि त्रियतेऽर्मकार्ये

राज्यिर्वर्यण विनापि तेन ।

यस्त्वेकवीराऽभिरथो विजिग्ये

धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥४०॥

सौम्यानुशोभे समध पतन्त

आत्र परेताय विदुद्बुद्धे यः ।

निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या

अह स्वपुत्रान् समनुव्रजेन ॥४१॥

साऽहं हरर्मर्त्यविदम्भनेन

दशो नृणां चालयतो विधातुः ।

नान्यापलक्ष्य पदवीं प्रसादा

चरामि पश्यन् गतविषयाऽत्र ॥४२॥

नूनं नृपाणां त्रिमन्त्रात्पथानां

महीं मुहुर्धालयतां चमूभिः ।

कथात्प्रपन्नार्तिजिह्वीर्षयः॥

ऽप्युपयताथ भगवान् कुम्णाम् ॥४३॥

अत्रम्य जमान्पथनाशनाय

कमाण्यक्तुप्रदणाय पुमाम् ।

नन्वन्यथा काऽहति देहयार्ग

परा गुणानामुन कर्णवन्त्रम् ॥४४॥

पल्लव जिम प्रफार नेत्रोक्ती रक्षा करते हैं, उसी

प्रफार कुन्तीके पुत्र सुविम्पिदि जिनकी समता

सँभाल रखते हैं और कुन्तीने ॥ जिनका कर्म-प्राप्त

किया है, वे माद्रीके यमज पुत्र नकुल-सहदेव

कुनससे तो हैं न ? उन्होंने युद्धमें शत्रुसे अपना

राज्य उसी प्रकार छीन लिया, जैसे दो गरुड इन्के

मुखसे अमृत निकाल लाये ॥ ३९ ॥ अहो ! केवारी

कुन्ती तो राजर्षिभेष्ट पाण्डुके वियोगमें मृतप्राय-सी होकर

भी इन बाष्पकार्यके किये ही प्राण धारण किये हुए हैं ।

रथियोंमें भेष्ट मगधराज पाण्डु ऐसे अत्युपम कीर थे कि उन्होंने

केवल एक धनुष लेकर ही अकेल चारों पिशाओंको जीत

लिया था ॥ ४० ॥ सीम्यस्वभाव उद्वहजी ! मुझे तो

अब पतनकी ओर जानेवाले उन घृतगङ्गके त्रिये कर्म-

कार श्रेय होता है, जिन्होंने पाण्डुओंके रूपमें अपने

परलोकवासि माई पाण्डुसे ही प्रेक्ष किया, तथा अपने

पुत्रोंकी हों-में-हों मिश्रकर अपने क्षितचिन्तक मुक्तके भी

नगरसे निकलवा दिया ॥ ४१ ॥ किन्तु माई ! मुझे

इसका कुछ भी खेद अथवा आश्चर्य नहीं है । जगदिधारा

भगवान् श्रीकृष्ण ही मनुष्योंकी-सी लीलाएँ करके लोगों-

की मनोवृत्तियोंको धमिल कर देत हैं । मैं तो उन्हींकी

कृपासे उनकी महिमाको देखना हुआ दूसरोंकी दृष्टिसे

दूर रहकर सानन्द किंचर रहा हूँ ॥ ४२ ॥ यद्यपि

कौरवोंने उनके बहुत-से अपराध किये, फिर भी भगवान्

ने उनकी इसीलिये उपेक्षा कर दी थी कि वे उनके साथ उन

दुष्ट राजाओंको भी मारकर अपने शरणाग्रियोंका दुःख

दूर करना चाहते थे, जा धन, रिचा और जानिके म-

से अंध हाकर कुमार्गगामी हो रहे थे और बार-बार

अपनी सेनाओंसे पृथ्वीका कँपा रह रहे थे ॥ ४३ ॥ उद्वहजी !

भगवान् श्रीकृष्ण जम और कर्मसे रहित हैं, फिर

भी दुष्टोंका माश करनेके किये और लोगोंको अपनी

आर आकर्षित करनेके लिये उनका शिष्य जन्म-कर्म

हुआ करते हैं । नहीं तो भगवान् की तो यज्ञ ही

तस्य प्रपञ्चाखिललोकपाना
मवस्थितानामनुशासने स्वे ।
अर्थाय जातस्य यदुपजस्य
बाता सखे कीर्तय तीर्थकीर्तैः ॥४५॥

पचना चाहेगा ॥४४॥ अतः मित्र ! जिन्होंने अनन्त
होकर भी अपनी शरणमें आये हुए समस्त लोकसाध
वीर आश्वाकरी भक्तोंका प्रिय करनेके लिये यदुपजमें
जन्म लिया है, उन पवित्रकीर्ति श्रीहरिकी भाते
सुनावो ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहंस्यं संक्षिप्तायां तृतीय-
स्कन्धे विदुरोद्यमसभादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

उद्यमजीह्वाय भगवान्की वाललील्यर्थांश्च वचन

भीतुकं उवाच

इति भागवतः पृष्टं क्षत्रा बातां प्रियाभयाम् ।
प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठपात्सारितेश्वर ॥ १ ॥
यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ।
तर्क्षच्छत्रचपन् यस्य सपया वाललीलया ॥ २ ॥
स कथं सेवया तस्य कालेन जैरस गतः ।
पृष्टा बाता प्रतिमूयान्मूर्तुः पादावनुसरन् ॥ ३ ॥
स मूर्ध्वममूचूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया मृक्षम् ।
तीव्रण भक्तियोगन निमग्न साधु निर्वृत ॥ ४ ॥
पुलकाङ्घ्रिसवाङ्गो मुखमीलवृद्धा गुध ।
पूर्णार्थो लक्षितस्तन स्नेहप्रसरसम्प्लुत ॥ ५ ॥
शनैर्कर्मगवाक्षाकाभनाकं पुनरागत ।

भीतुकनेयजी कहते हैं—जब विदुरजीने परम भक्त
उद्यमसे इस प्रकार उनके प्रियतम श्रीकृष्णसे सम्बन्ध
रखनेवाली बातें पूछीं, तब उन्हें अपने स्नामीका स्मरण
हो आया और वे हृदय भर आनेके कारण कुछ भी उत्तर
न दे सके ॥ १ ॥ अब ये पाँच बन्धे थे, तब बालक-
की तब स्वेच्छे हैं श्रीकृष्णकी मूर्ति बनाकर उसकी
सेवा-भूषणमें ऐसे तन्मय हो आते थे कि कलेबके लिये
माताके बुझनेपर भी उसे छोड़कर नहीं जाना चाहते
थे ॥ २ ॥ अब तो दीर्घकालसे उनकी सेवामें लक्ष-
छते थे बड़े हो चले थे, अब विदुरजीक पूछनेसे उन्हें
अपने प्यारे प्रभुके चरणकमलोंका स्मरण हो आया—
उनका बिच निरुद्धे व्याकुल हो गया । फिर वे कैसे
उत्तर दे सकते थे ॥ ३ ॥ उद्यमजी श्रीकृष्णका चरणा-
रविन्द-मकरन्द-सुधासे सरबार इक्षर दो बड़ीतय कुछ
भी नहीं खा सके । तीव्र भक्तियोगसे उसमें इक्षर वे
आनन्द-मग्न हो गए ॥ ४ ॥ उनके सारे शरीरमें
रोमाञ्च हो आया तथा मुँदे हुए नेत्रोंसे प्रभुके औसुओं-
की धारा बहान लगी । उद्यमजीका इस प्रकार प्रेम-प्रवाह
में डूबे हुए देखकर विदुरजीन उन्हें पृथग्व्य
माना ॥ ५ ॥ कुछ समय बाद जब उद्यमजी भगवान्के
प्रमथामसे उत्तरकर पुन पीरे-पीरे मंथारमें आये, तब
अपने नजोंका पोंडरक भागन्कीयभोजन स्मरण हो जानसे
विमिश्रित हा विदुरजीसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥

उत्सव उवाच

कृष्णधूमणिनिम्लोचे रीर्गेष्वजगरण ह ।

किं तु न कुञ्जल भूयां गतधीषु गृहेष्वहम् ॥ ७ ॥

दुर्मगो षत लोकोऽयं यदवा नितरामपि ।

ये सवमन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोद्वपम् ॥ ८ ॥

शक्तिष्ठा पुरुषौढा प्रकारामाश्च सात्वताः ।

सात्यवामृषमं सर्वे भूतत्वाममंसत ॥ ९ ॥

ववस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाभिताः ।

ग्राम्यत धीर्न तद्वाक्यं रात्मन्युत्तात्मनो हरौ ॥ १० ॥

प्रत्यर्थावतत्तवपमवितस्तद्धां नृणाम् ।

आदायान्तरधाद्यस्तु स्वविम्बं लोकलोचनम् ॥ ११ ॥

यमत्पंलीलापयिक्तं मययोग

मायावलं दर्शयता गृहीतम् ।

विस्मापन म्वस्य च सौमगर्दे

पर पर्दं मृषणमृषणाङ्गम् ॥ १२ ॥

यद्वर्मघृणावत रानधृषा

निरीक्ष्य एकस्वस्त्ययनं त्रिलोक ।

कस्तन्म्येन चाद्यहं गत विधातु

स्वास्त्युतौ कौञ्जलमित्यमन्यत ॥ १३ ॥

यम्यानुगागन्तुतद्वासरत

लीलावलाकप्रवितन्धमाना ।

उत्सवजी बोले—निदुरजी ! श्रीकृष्णरूप सूर्यके

छिप जानसे हमारे घरोंको कालरूप अजगने सा बाल
है, वे श्रीहरि हो गये हैं, अब मैं उनकी कृपा बुरात
सुनाऊँ ॥ ७ ॥ आह ! यह मनुष्यशोक बड़ा ही अभाग
है, इसमें भी यात्रा तो नितान्त मायहीन है, जिन्होंने
निरन्तर श्रीकृष्णक साथ रहते हुए भी उन्हें नहीं पहचाना—
जिस तरह अमृतमय चन्द्रमाके समुद्रमें रहते सम्म
मछलियों उन्हें नहीं पहचान सकी थी ॥ ८ ॥
यादृक्छोग मनके मायका ताबनवाले, बड़े समझार
और भगवान् के साथ एक ही स्थानमें रहकर ऋषि
करनेवाले ये, तो भी उन सबने समस्त विश्वके आत्म,
सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णको एक श्रेष्ठ यात्रा ही समझा ॥ ९ ॥
किंतु भगवान् की मायासे माहित इन यदवों और इनसे
अपेक्षा केर धननेवाले शिशुपल आदि के अहंत्वना और
निन्दासूचक वाक्योंसे मागल्लाग मन्त्रानुभवोंकी बुद्धि
भ्रममें नहीं पड़ती थी ॥ १० ॥ जिन्होंने कभी तप
नहीं किया, उन लोगोंको भी इतने दिनोपेक्ष दशन
देकर अब उनकी दर्शन-लालसाका तूत किये बिना ही
वे भगवान् श्रीकृष्ण अपने त्रिमुकुन्दमोहन श्रीविष्णुको
छिपाकर अन्तर्धान हो गये हैं और इस प्रकार उन्होंने
मानो उनके नेत्रोंको ही छीन लिया है ॥ ११ ॥
भगवान् ने अपनी योगमायाका प्रभाव जिसमेके निचे
मानवजी अर्थात् योग्य जाति के आदिश्रेष्ठ प्रकृतियाँ पा,
वह इतना सुन्दर था कि उसे देखकर सायं जगत् तो
माहित हो ही जाता था, व स्वयं भी विस्मित हो जाते
थे । सौमग्य और सुन्दरताकी परकाष्ठा थी उस रूपमें ।
उससे आभूत (अङ्गोंके गहन) भी विमूढित हो
जाते थे ॥ १२ ॥

धर्मराज सुधिरिके राजसूय यज्ञमें जब भगवान् के
उप नयनाभिराम रूपपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी थी, तब
त्रिगुणीन पक्षी माना था कि मयनसुधिरिके रचनामें
विधाताकी गिनती घटुरा है, सब इसी रूपमें पूरी हो
गयी ॥ १३ ॥ उनका प्रमदग हास्य-विनोद और
लीलाय चितवनमे मग्मानित हानपर ब्रजवासीओंकी
आँखें उन्हींकी ओर लगी जाती थी और उनका विश

प्रजस्रियो रमिरनुग्रह
 धियोऽप्यतस्तु किल कृत्यशेषाः ॥१४॥
 स्वशान्तरूपवितरे स्वरूपं
 रम्यर्चमानेष्वनुकम्पितात्मा ।
 परावरशो महदशयुक्तो
 हजोऽपि चातो भगवान् यथागि ॥१५॥
 मां सेदयत्येतदजस्रं तम
 विहम्बन यदमुदेवगेहे ।
 ब्रजे च वामोऽरिभयादिव स्वयं
 पुण्ड्रं म्यवात्सीघदनत्तवीर्यं ॥१६॥
 दुनोति चेत सरतो मर्मतत्
 यदाह पादावभियन्त पित्रोः ।
 ताताम्ब कंसादुरुक्षितानां
 प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥१७॥
 को वा अमुन्माद्भिसरोजरेणु
 विस्तृतमीशीत पुमान् विजिघ्रन् ।
 यो विस्फुरद्भ्रूविटपन भूमे
 भर्तं कृतान्तेन विरश्चकार ॥१८॥
 शृष्टा भवस्त्रिननु राज्ञश्चय
 र्वेषस्य कृष्णं द्विपताऽपि सिद्धि ।
 यां यागिन सरपृष्ठपन्ति सम्पद्
 योगन कस्तत्रिह महत् ॥१९॥
 तथैव चाये नरलोचनारा
 य आहव कृष्णमुन्मारविदम् ।
 नयै पिपन्ता नयनाभिराम
 पार्थावृषता पदमापुगस्य ॥२०॥
 मय त्वमाम्यातिगम्यश्वधीश
 स्वाराज्यलक्ष्म्यास्तसमन्ताम् ।
 वलि हरस्त्रिभिरलक्ष्मणैर्ल
 द्विरीकान्धितपात्पीठ ॥२१॥

भी एसा तल्लीन हो जाता था कि वे धरके काम-धर्मोंको
 अधूर ही छोड़कर जब पुत्रियोंकी तरह खड़ी रह
 जाती थी ॥ १४ ॥ चारतर जगत् और प्रकृतिके
 स्वामी भगवान्ने जब अपने शान्त रूप महारमाओंको
 अपने ही घोररूप वसुसे मताये जाते देखा, तब वे
 करुणाभासे द्रविण हो गये और अजन्मा होनपर भी अपने
 वंश वल्लभजीके साथ कष्टमें अधिक समान प्रकट
 हुए ॥ १५ ॥ अजन्मा हाकर भी वसुदेवजीक यहाँ
 जन्म लेनेकी लीला करना, सचको अमय देनेवाले होने
 पर भी मानो कामक मयसे जन्मे जाकर ठिप रहना और
 अनन्तपराक्रमी होनेपर भी कायकनके सामने मधुर
 पुरीको छोड़कर भाग जाना—भगवान्की ये लीलाएँ
 या आ-आकर मुझे बचैन कर डालती हैं ॥ १६ ॥
 उन्होंने जो देवकी-वसुदेवकी चरण पदना करके कहा
 था—‘पिताजी, माताजी ! कस्तकर बड़ा मय रहनेक
 कारण मुझसे आपकी कोई सेवा न घन सकी, आप
 मेरे इस अपराधपर ध्यान न देकर मुझपर प्रसन्न हों !’
 श्रीकृष्णकी ये बातें जब याद आती हैं, तब आज भी
 मेरा चित्त व्यस्त व्यथित हो जाता है ॥ १७ ॥
 जिन्होंने कायक्य अपने भुवुगिनिगमसे ही पृथ्वीक
 सारा भार उतार दिया था उन श्रीकृष्णक पाद-पद्म-संगक
 सेकल करनेवाय ऐसा कौन पुरुष है, जो उसे भूत
 सक ॥ १८ ॥ आपनेगोले राजसूय यज्ञमें प्रयत्न
 ही दया था कि श्रीकृष्णसे इस करनेवाल शिषुपालको
 बह सिद्धि मिल गयी, जिसकी बड़-बड़ यागी मनी-
 भौनि योग-साधना करके कृष्ण परसे रहते हैं उनका
 किहू भग्न, कौन मह सयना ह ॥ १९ ॥
 शिषुपालके ही समान महाभारत-युद्धमें त्रिन दूमे
 यादाओंने अपनी ओम्बोंसे भगवान् श्रीकृष्णके नयनाभिराम
 मुख-यन्त्रक मकरन्द पान करते हुए, अर्जुनक वागोंसे
 विधरत प्राणत्याग किया, व पवित्र हाथर सुश्रयन्मय
 भगवान्क परमशामने प्राप्त हो गये ॥ २० ॥ स्वयं भगवान्
 श्रीकृष्ण तीनों लोकोंके अधिपति हैं । उनका मनन भी कम
 नहीं है, उनमें बहुरत ता कौन हागा । वे अरुन श्वन मिद
 पथमें ही मयण पूरनन हैं । इत्यादि अमर्य शक-
 पायान नना प्रकररी भेरे गगनरत अरुन अरुन
 मुमुक्षु अग्रगण्ये उनर चरा गनेरी चारुग

तत्तस्य कैश्वर्यमलं मृताभो
 विग्लापयस्वङ्गं यदुग्रसेनम्
 तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिभिष्ये
 न्यबोधयस्व देव निधारयेति ॥२२॥
 अहो यक्ष्यं यं स्तनकालकूर्तं
 जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
 लेभे गतिं धाम्नुचितां ततोऽन्य
 कं वा दयालुं क्षरणं ब्रजेम ॥२३॥
 मन्वेऽसुरान् भागवतांस्त्र्यधीक्षे
 संरम्भमार्गाभिनविष्टचित्तान् ।
 वे संयुगेऽवस्यत तार्क्ष्यपुत्र
 मंसुसुनामायुधमापतन्वस् ॥२४॥
 वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रधन्वने ।
 चिकीर्षुर्मगवानस्याः क्षमजेनामिवाचितः ॥२५॥
 ततो नन्दब्रजमितः पित्रा कंसाद्रिषिम्यता ।
 एकदश समास्तत्र गूढार्चिः सकलोऽवसत् ॥२६॥
 परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारयन् म्बहर्द्विभुः ।
 यमुनापवने कृञ्चुद्विजसंकुलिताङ्घ्रिषे ॥२७॥
 कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां प्रबौकसाम् ।
 रुदभिव हसन्मुग्धवातसिंहावलोकनः ॥२८॥
 स एव गाधनं लक्ष्म्या निकर्तं सितगोवृषम् ।
 चारयन्नुगान् गोपान् रणद्वेषुरसीरमत् ॥२९॥
 प्रयुक्तान् भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ।
 लीलया म्यनुदत्तास्तान् बालः क्रीडनकानिवा ॥३०॥

प्रणाम किया करते हैं ॥ २१ ॥ विदुरजी । वे ही
 भगवान् श्रीकृष्ण राजमहिषासनपर बैठे हुए उभरनेके
 सामने खड़े होकर निवेदन करते थे, येव । हमारी
 प्रार्थना सुनिये । उनके इस सेवाभावकी याद करते
 ही हम-नैसे सेवकोंका चित्त अस्पष्ट व्यथित हो जाता
 है ॥ २२ ॥ पापिनी फूलनाने अपने स्तनमें हल्का-हल्का
 किए लगाकर श्रीकृष्णको मार बामनेकी नीमतसे उन्हें
 दूध पिबया था, उसको भी भगवान् ने परम गति
 दी, जो चायको मित्रनी चाहिये । उन भगवान् श्रीकृष्णके
 अनिरिक्त और कौन दयालु है, जिसकी शरण प्राण
 करें ॥ २३ ॥ मैं असुरोंको भी भगवान् का मत्त समझता
 हूँ, क्योंकि वैरभावमत्त क्रोधके कारण उनका चित्त
 सदा श्रीकृष्णमें लगा रहता था और उन्हें रणभूमिमें
 सुदर्शन चक्रवाली भगवान् को कवेपर बंधाकर बध्ने
 हुए गरुडजीके दर्शन हुआ करते थे ॥ २४ ॥

ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे पृथ्वीका मार उतरकर उसे
 सुखी करनेके लिये कसके करगारमें बसुदेव-देवकीके
 यहाँ भगवान् ने अन्तर लिया था ॥ २५ ॥ उस समय
 कसके बरसे पिता बसुदेवजीने उन्हें नन्दबाबाके ब्रजमें
 पहुँचा दिया था । वहाँ वे कृष्णमजीके साथ म्बहर्द्व
 कर्त्तक इस प्रकार छिपकर रहे कि उनका प्रभाव ब्रजके
 बाहर किसीपर प्रकट नहीं हुआ ॥ २६ ॥ यमुनाके
 उपवनमें, जिसके हरे-हरे वृक्षोंपर कलश्वर करते हुए
 पक्षियोंके झुंड-के-झुंड रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णने
 कलशोंको चरते हुए व्यास-धर्मोंकी मण्डलीके साथ
 बिहार किया था ॥ २७ ॥ य ब्रजवासियोंकी दृष्टि
 आकृष्ट करनेके लिये अनेकों बात-सुख उन्हें दित्ते
 थे । कभी येने-से छपते, कभी हँसते और कभी
 सिंह-शाक्यके ममाम मुख दृष्टिसे देखते ॥ २८ ॥
 फिर कुछ बड़े होनेपर वे मफेद फैल और रंग-किरंगी
 शोभाकी मूर्ति गौओंको चरते हुए अपने साथ
 गोपोंकी बौद्धी बजा-मज्जर रिहान लगे ॥ २९ ॥
 इसी समय जब कल्पने उन्हें मारनेके लिये बहुत-से
 मायावी और मनमाना रूप धारण करनेवाले राक्षस भेजे
 तब उनको स्नेह-ही-स्नेहमें भगवान् ने मार डाला—जैसे
 बाध्य स्थितियोंको तोड़-फोड़ आया है ॥ ३० ॥

विपश्चान् विपपानेन निगृह्य मृजगाधिपम् ।

उत्थाप्यापाययद्वाधस्तप्तोय प्रकृतिम्विषम् ॥३१॥

अयाज्यद्रोसवेन गोपराज द्विजोत्तमै ।

विचस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन् सदृशय विष्टु ॥३२॥

वर्षतीन्द्र यत्र कोपाद्ग्रमानेऽतिविह्वल ।

गात्रलीलातपत्रेण घ्रातो भद्रालुगृहता ॥३३॥

शरच्छशिकर्ष्यष्टं मानयन् रजनीमुखम् ।

गायन् कलपदं रमे स्त्रीणां मण्डलमण्डन ॥३४॥

कान्तिपनागका दमन करक विष मित्य हुआ जन् पीनेसे मरे हुए ग्वालवालों और गौओंको जीवितपर उहें कान्तिपनागका निर्दोष जन् पीनेकी सुविधा कर दी ॥३१॥ मगवान् श्रीकृष्णने वड़े हुए धनका सदृश्य करानेकी इच्छासे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा नन्दवाशासे गायन-मूत्राभ्यास गोयज्ञ करवाया ॥ ३२ ॥ मद्र । इससे अपना मानभङ्ग होनेके कारण जब इन्द्रन कोषित होकर मज्जका किनारा करनेके लिये मूत्राधार जाग बरसाना आरम्भ किया, तब मगवान् कदगावशा स्नेह-हीन-हृदयमें छत्तेक समान गात्रघर्षन पर्वतको उठा लिया और अत्यन्त ध्वराये हुए मज्जवासियोंकी तथा उनके पशुओंकी रक्षा की ॥ ३३ ॥ सन्ध्याक समय जब सारे वृन्दावनमें इन्द्रके चन्द्रमाकी चौदनी ठिठक जाती, तब श्रीकृष्ण उसका सम्मान करते हुए मधुर गान करते और गादियोंके मण्डलकी शोभा बढ़ाते हुए उनका साथ समविहार करत ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां महितायां तृतीय-

स्कन्ध विदुरोद्बोधसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ ० ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भगवान्के अन्य लीलावर्तिनोंका वणन

उद्धव उवाच

तत स आगत्य पुर म्वपित्रो-
धिकीर्षया शं बलदेवसमुतः ।

निपात्य तुङ्गाद्रिप्रयुधनाथ
हर्तप्यर्कपदं प्यसुमोजसोप्याम् ॥ १ ॥

मान्सीपन सकृत्प्राक्तमद्वाधीत्य सविस्मरम् ।
वर्त्म प्राणाद्वर पुत्र मृतं पञ्चजनोत्तरात् ॥ ० ॥

समाहुता भीष्मककन्यया ये
धिय मवर्णेन पुमृषयसाम् ।

गान्धर्वकन्या मिपतां स्वभाग

अह पद मूर्ध्नि दधत्सुपर्ण ॥ ३ ॥

उद्धवजी कहत हैं—इसके बाद श्रीकृष्ण अपने मना-पिता द्रवकी-बसुन्धको सुख पहुँचानेकी इच्छासे कन्दवर्षीके माय मधुर वधारे और उन्होंने शत्रुसमुत्पापक स्वामी कर्मका ऊँचे सिद्धासनसे नीच पङ्कज-तथा उसके प्राण उबर उसकी गलाका बड़ जारमे पृथ्वीपर धसींग ॥ १ ॥ मान्सीपनि मुनिने डार एक बार उवाचन किये हुए माङ्गोराङ्ग केका अत्यन्त करक दण्डिगाम्भर्य उनका मर हुए पुरखे पञ्चजन नामक राक्षसके घेरे (यमुपुरीमे) छाकर द दिया ॥ ० ॥ भीष्मकनन्दिनी रुक्मिणीके सौम्यमे अपना रुक्मिक पुत्रानमे जा शिशुराज और उसका सहायन कही अप हुए य, उनके मिरत पैर रखकर गान्धर्व सिंगिने द्वारा रिकद करन-क गिय आना निष्पमिनी रुक्मिणीका वधम दी हार कर लाय जम गदइ अद्वय-उगाका स आप य ॥ ३ ॥

कङ्कषतोऽविद्वन्सो दमिस्त्वा
 स्वयवरे नामप्रतिशुभाह ।
 तद्भ्रममानानपि गृह्यतोऽङ्गा
 अत्रऽश्नत शन्नमृतः स्वशस्त्रैः ॥ ४ ॥
 प्रिय प्रभृष्टांश्च इव प्रियाया
 विधित्सुरार्णवः सुतरं यदर्धे ।
 वज्र्याद्रवच सगणां रुपांश्च
 श्रीढामृगो नूनमप्य वधूनाम् ॥ ५ ॥
 सुत मूढे स्त वपुषा प्रसन्तं
 हृष्टा सुनाभोऽपथित धरिण्या ।
 आमन्त्रितस्तत्तनयाश्च क्षेपे
 दक्षा तदन्तःपुरमाचिषस्य ॥ ६ ॥
 तथाह्वास्ता नरदेवकन्याः
 कुञ्जन हृष्टा हरिमार्तकन्धुम् ।
 उत्थाय सद्यो जगद्भुः प्रहर्षं
 श्रीहासुरागप्रदितावलोकं ॥ ७ ॥
 आसां मुहूर्त एकसिद्धानागारेषु योषिताम् ।
 सविधं अगृह पाणीनलुरूपः स्वमायया ॥ ८ ॥
 तास्वपत्यान्यवनयदात्मदुःखानि सर्वतः ।
 एकैकसां दश दश प्रकृतेर्विपुमूषया ॥ ९ ॥
 कालमागधशान्वादीनीकै रुन्धत पुरम् ।
 अजीयनस्त्वयं दिव्यस्वर्पुसा तेज आदिशत् ॥ १० ॥
 शम्बरं द्विविद पाण मुरं चञ्चलमेव च ।
 अन्याश्च दन्तवन्नरादीनवधीत्कांश्च चारुयत् ॥ ११ ॥
 अथ से भ्रातृपूयाणां पश्यो पतितान्पुत्रान् ।
 चचाल म् पुरुषैश्च ययामापततां चले ॥ १२ ॥

स्वयवरमें सात बिना नभ हुए वैजेंको नापकर नागजिनी
 (सत्या) से विवाह किया । इस प्रकार मानमज्ञ हो
 जानेपर मूख राजाओंन शन्न ठठकर राजकुमारोंको
 छीनना चाह । तब भगवान् श्रीहृष्णने स्वयं बिना धाम्
 हुए अपने शस्त्रोंसे उन्हें मार डाल्य ॥ ४ ॥ भगवान् निम्न
 पुरुषोंकी-सी लीला करते हुए अपनी प्राणप्रिय सत्यभामा-
 को प्रसन्न करनेकी इच्छासे उनके लिये क्षेमि कल्प-
 वृक्ष उखाड़ लाय । उस समय इन्द्रने क्रोडते जन
 होकर अपने सैनिकोंसहित उनपर आक्रमण कर दिया,
 क्योंकि वह निश्चय ही अपनी क्षियोंका कीडामृग बना हुआ
 है ॥ ५ ॥ अपने विशाल बीजबौद्धसे अक्षयशस्त्रे भी डक देने-
 वाले अपने पुत्र श्रीमासुरको म्हाबालक हत्यसे मरा हुआ
 देखकर पृथ्वीने जब उनसे प्रार्थना की तब उन्होंने
 श्रीमासुरके पुत्र भगदत्तको उत्सन्न बचा हुआ राज्य देकर
 उसका अन्त पुरमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ वही श्रीमासुर
 द्वारा हरकर लयी हुई बहुत-सी राजकन्याएँ भी । वे
 दीनकन्धु श्रीहृष्णचक्रको देखते ही डबी हो गयीं और
 सबने महान् हर्ष, कजा एव प्रेमपूर्ण चित्तवनसे तत्काल
 ही मयकान्को पतिरूपमें वरण कर लिया ॥ ७ ॥

तब भगवान्ने अपनी निवृत्ति योनामासे उन
 ललनाओंके अनुरूप उठन ही रूप वरणकर उन सबको
 अलग-अलग मन्त्रोंमें एक ही मुहूर्तमें विविध पाणिमन्त्र
 किया ॥ ८ ॥ अपनी क्षीयका विस्तार करनेके लिये उन्होंने
 उनमेंसे प्रत्येकके गर्भसे सनी गुणोंमें अपने ही समान दस-
 दस पुत्र उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ जब कात्तपरत, जलस्य
 और शल्यपिने अपनी सेमाओंसे मयुर और हात्कि-
 पुरीको घेर या, तब भगवान्ने निबननोंको अपनी
 अछोक्ति दाकि देकर उन्हें स्वयं मरवाया या ॥ १० ॥
 शम्बर, द्विविद, बाणासुर, मुर, चञ्चल तथा दन्तशत्रु
 आदि अन्य योद्धाओंसे भी किनीको उन्होंने स्वयं मरा
 या और किनीको दूसरोंसे मरवाया ॥ ११ ॥ इसके
 बाद उन्होंने आपके भार्गवराष्ट्र और पाण्डुके पुत्रोंका पक्ष
 लेकर जाये हुए राजाओंका भी संहार किया, जिनके सेना-
 सहित गुरुशत्रुमें पहुँचनेपर पृथ्वी उगकाने लगी थी ॥ १२ ॥

१ मा पा — नामप्रतिशुभाह । २ मा पा — राजा । ३ मा पा — क्षेमि । ४ मा पा — पानीनलुरूप ।

५ मा पा — नूनमप्य । ६ मा पा — चारुयत् ।

म कर्णदुःशासनसौयलानां
 कुमत्रपाकेन हतभिषागुपम् ।
 सुपाधन सानुचरं शयान
 भयोरुल्लुप्यां न ननन्द पश्यन् ॥१३॥
 क्रियान् भुवाऽप्यक्षयितारुभारो
 यद्गोभीष्माशुनभीममूले ।
 अष्टादशाक्षौहिणिको मदक्ष-
 रास्ते बल दुर्विपह यत्नाम् ॥१४॥
 मिथो यदेषां भविता विवादो
 मर्षामदाताप्रविलोचनानाम् ।
 नैपां वधोपाय इयानतोऽन्यो
 मयुष्यतेऽन्तर्दधत स्वय स ॥१५॥
 एव संचिन्त्य भगवान् स्वरान्ये म्याप्य धर्मजम् ।
 नन्दयामास सुहृद साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥
 उचरायां धृतः पुरावशः साध्वभिमन्युना ।
 स वै द्रौप्यस्रसंछिन्न पुनर्मगवता धृतः ॥१७॥
 अयावपदममुतमममर्षसिभिर्विदुः ।
 माऽपि क्षामानुजै रधन् रमे कृष्णमनुव्रतः ॥१८॥
 भगवानपि विश्वात्मा लाकवेदपथानुग ।
 कामान्मिषवद्वावत्यामसक्त सांख्यमाम्यित ॥१९॥
 स्निग्धमिषावन्नाकन बाचा पीयूषकल्पया ।
 चरित्रणानवधन भानिकस्तन चात्मना ॥२०॥
 इमं लोकांश्च चर रमयन् सुवरां यदून ।
 रम द्युजदया दक्षधुण्यीधुण्यसौहृद ॥२१॥
 तस्यैव रममाणस्य मयन्मरगणान् बहून् ।
 गृहमथ पुत्राणां विराग ममजायत ॥२२॥

कण, दुःशासन और शकुनिकी खोरी मरगहमे जिसकी
 आयु और श्री दोनों नष्ट हो चुकी थी, तथा भीमसेनकी
 गदासे जिसकी चौध टूट चुकी थी, उम दुर्गोशनका
 अपने साथियोंके सहित पृथ्वीपर पड़ा रहकर भी उन्हें
 प्रसन्नता न हुई ॥ १३ ॥ व सोचन लगे—यदि द्रोण,
 भीष्म, अशुन और भीमसेनका द्रष्टा इस अपराह अक्षौहिणी
 सेनाका विपुल संहार हो भी गया, तो इससे पृथ्वीका
 कितना मार इल्का हुआ । अभी तो मेरे अशक्त प्रभु
 आदिके कलमे बड़े हुए पात्रोंका दृष्ट दल बना
 ही हुआ है ॥ १४ ॥ जब य मयु-यानमे मनबाल हो
 बाल-बाल आँखें करके आपसमें लड़ने लगेंगे, तब उम-
 से ही इनका नाश होगा । इसके निवा और कोई
 उपाय नहीं है अस्त्यमे मेरे मकल्प करनपर ये स्वयं
 ही अन्तर्धान हो जायेंगे ॥ १५ ॥

यों सांचकर भगवान्ने युधिष्ठिरका अपनी पत्नीका राजगद्दी-
 पर बैठाया और अपने सभी सगे-सम्बन्धियोंको सलुकारोंका
 मार्ग दिखाकर आनन्दित किया ॥ १६ ॥ उत्तरक
 उदरमें जो अभिमन्युन पूरवराका बीज स्थापित किया
 था, वह भी अश्वत्थामाके प्रलापसे नष्ट-सा हो चुका था,
 किन्तु भगवान्ने उसे बचा लिया ॥ १७ ॥ उन्होंने
 धर्मराज युधिष्ठिरसे तीन अश्वमेध-यज्ञ कराये और वे
 भी श्रीकृष्णके अनुगामी होकर अपन द्रोण भार्येकी
 महायतासे पृथ्वीकी रक्षा करते हुए बड़े आनन्दसे रहने
 लगे ॥ १८ ॥ विश्वात्मा भीमभगवान्ने भी शरकापुटीमें रहकर
 लोक और वैश्यी मर्यादाका पालन करते हुए सब
 प्रकारक भोग भोगे, किन्तु सांख्यपागकी स्थापना करन
 क लिये उनमें कभी आसक्त नहीं हुए ॥ १९ ॥ मयुर
 मुसकान, लक्ष्मणी चिन्मन, सुधामयी काशी, निमज्ज
 चरित्र तथा समस्त शांता और दुःस्वभावाक निराम्य अपने
 श्रीविग्रहसे त्याग-परत्नक और विरागता पात्रोंका
 आनन्दित किया तथा रात्रिमें अपनी प्रियाओंका साथ
 क्षणिक अनुगमयुक्त होकर समयायित निरत किया
 और इस प्रकार उन्हें भी सुख पिया ॥ २०-२१ ॥
 इस तरह बहून् परावश विराग परत-बन उठे मन्मथ
 आश्रम-मन्मथी भाग-मामयिषेय भगवत का गया ॥ २२ ॥

दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीन स्वयं पुमान् ।

को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रत ॥२३॥

पुण्यां क्वाचित्क्रीडद्विर्यदुभोजकुमारधै ।

कोपिता मुनयः श्रेष्ठमर्गवन्मत्तकाविदा ॥२४॥

ततः कतिपयैर्मर्तैर्दृष्टिभोजाश्चकादयः ।

ययुः प्रभामं संहृष्टा रश्मैर्देवविमाहिताः ॥२५॥

तत्र स्नात्वा पितृन्देवान्प्रीत्यैव तदम्भसा ।

तर्पयित्वाथ विप्रभ्यो गावो बहुगुण्या ददुः ॥२६॥

हिरण्यं रजतं शय्यां चासांस्त्रयस्त्रिंशत्फलान् ।

यानं रथानिमानं कन्या भरां हस्तिनीमपि ॥२७॥

अन्नं चौरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ।

गाविप्रार्थास्तवः शूरा ग्रणेदुर्मुषि मूचमि ॥२८॥

ये योग-सामग्रियों ईश्वरके अधीन हैं और जीव भी उन्होंने अधीन हैं । जब योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको ही उनसे बेराम हो गया तब भक्तियोगके द्वारा उनका अनुमान करने वाला भक्त तो उनपर विभाव ही कैसे करेगा ? ॥२३॥

एक बार द्वारकापुरीमें गेळते हुए मधुवंशी और भोजवंशी बालकोंने गेळ-गेळते कुट्ट मुनीश्वरोंको जिवा दिया । तब यादवकुत्सा नाश ही भावान्तरों बर्बाद है—यह समझकर उन श्रमियोंने बालकोंको शपथ द दिया ॥ २४ ॥ इसके कुछ ही महीने बाद मत्स्य-दृष्टि, भोज और कन्वकवशी यात्रा बढ़ इसके रथों पर चढ़कर प्रभासक्षेत्रको गये ॥ २५ ॥ वहाँ स्नान करके उन्होंने उम तीर्थके जलसे पितर, देवता और श्रमियोंका तर्पण किया तथा ब्राह्मणोंको भेंट गौर दौ ॥ २६ ॥ उन्होंने सोना, चाँदी, शय्या, कल, मृगधर्म, कम्बल, पाखरी रथ, हाथी, कन्याएँ और ऐसी भूमि जिससे जीविका सब सके तथा नाना प्रकारके सरस वृक्ष भी भगवदपण करके ब्राह्मणोंको दिये । इसके पचास वें और ब्राह्मणोंके लिये ही प्राण घटण करनेवाले उन वीरोंने पूज्यपर स्त्रि टेककर उन्हें प्रणाम किया ॥ २७-२८ ॥

इति श्रीमद्भागवते म्हापुराणे पारमर्हस्यं संहितायां तृतीयोऽध्याये
विदुरोद्ब्रजसंगादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थाऽध्यायः

उद्यवजीले विशा होकर विदुरजीका मित्रेय श्रमिके पास जाना

उद्यव उवाच

अथ ते तदनुवासा मुक्त्वा पीत्वा च धारुणीम् ।

तथा विभ्रंशितघ्नानां दुरुक्तैर्मम पस्पृशु ॥ १ ॥

तथा मैरसदापण विपमीकृतपथे ताम् ।

निष्ठावति रवावासीदणूनामिव मर्दनम् ॥ २ ॥

भगवान् स्यात्प्रमायाया गतिं तामबलाक्य स ।

सम्यक्तीमुपस्पृश्य इधमूलमुपापिद्यत ॥ ३ ॥

उद्यवजीले कहा—सिंह ब्राह्मणोंकी अन्न पाक पात्रोंने भोजन किया और बाह्यी मरिच पी । उससे उनका हान नष्ट हो गया और वे दुःखजनसे एक दूसरेके हृदयको जोड़ पहुँचाने लगे ॥ १ ॥ महिलाके नरोसे उनकी बुद्धि बिगड़ गयी और जैसे आपसकी लड़ाई बीसोंमें आग लग जाती है, उसी प्रकार सूर्यात् होते-होते उनमें मार-काट होने लगी ॥ २ ॥ भगवान् अपनी मायाकी उस विचित्र गनिका देखकर सरलमीके सम्यक्तीमुपस्पृश्य इधमूलमुपापिद्यत ॥ ३ ॥ जलसे भागवन करके एक वृष्टके नीचे बैठ गये ॥ ३ ॥

अहं चाक्ता भगवता प्रपन्नार्तिहरण ह ।
 बदरी त्वं प्रयाहीसि स्वकुल सजिहीर्षुणा ॥ ४ ॥
 अथापि तदभिप्रेत जानन्नहमरिन्दम् ।
 पृष्ठतोऽन्वगम भर्तुं पादविश्लेषणाद्यम् ॥ ५ ॥
 अद्राक्ष्यमेकमासीनं विचिन्वन् दपितं पतिम् ।
 श्रीनिकेत सरस्वत्या कृतकतमकतनम् ॥ ६ ॥
 इयामावगातं निरत्नं प्रशान्तारुणलोचनम् ।
 दौर्भिक्षतुर्भिर्यिदित पीतकौशाम्बरण च ॥ ७ ॥
 वाम ऊनावधित्य दक्षिणाह्मिस्तरोरुहम् ।
 अपाधितार्मकाश्चर्यमकृश त्यक्तपिप्पलम् ॥ ८ ॥
 तस्मिन्महाभागवतो हं पायनमुहस्तस ।
 लोकाननुचरन् सिद्ध आमसाद यदृच्छया ॥ ९ ॥
 तत्सानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्द
 प्रमोदभावानतकन्धरास्य ।
 आमुष्वता सामनुरागहास
 ममीषया विधमयन्नुवाच ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच

धनाहमर्तमनसाप्यित त
 ददामि यत्तद् दुरयापमन्यं ।
 मन्त्र पुरा विभ्रमुखा वक्षता
 मन्मदिकामन वगा न्वयेष्ट ॥ ११ ॥
 म एष गाथा चरमा भवता
 मामाप्तिस्मन् मदनुग्रहा येन ।
 यस्मां नृणां कान् रह उस्मृश्वत
 णिष्टयाददभ्यान् विष्णानुवृत्त्या ॥ १२ ॥
 पुरा मया प्राप्तमवाप नाभ्य
 पद्य निपणाय मयाग्निगे ।

इसमें पहले ही शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले
 भगवान् श्रीकृष्णने अपने कृष्णका संहार करनेकी इच्छा
 होनेपर मुक्तसे कह दिया था कि तुम चरित्कायम चले
 जाओ ॥ ४ ॥ विदुरजी ! इससे यद्यपि मैं उनका
 आशय समझ गया था, तो भी स्वामीके चरणोंका
 वियोग न सह सकनेके कारण मैं उनका पीछे-पीछे
 प्रभातक्षेपमें पहुँच गया ॥ ५ ॥ वहाँ मैंने देखा कि
 जो सबका आशय है कि तुम विनका कोई और आशय
 नहीं है, वे प्रियन्म प्रभु शोभायाम् इयामनुन्दर सरस्वती-
 के तत्पर अकेले ही बैठे हैं ॥ ६ ॥ दिव्यविभू-
 तसम्पन्न अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, शान्तिसे मी-
 खनारी बोलें हैं । उनकी चार मुबारक और रेशमी
 पीताम्बर देखकर मैंने उनको दूरसे ही पहचान
 लिया ॥ ७ ॥ वे एक पीपलके छोट-से वृक्षका सहारा
 लिये बायीं चौचर दायाँ चरणकमल रखते बैठे थे ।
 मोहन-मानका त्याग कर देनेपर भी वे आनन्दसे
 प्रसुप्ति हो रहे थे ॥ ८ ॥ इसी समय व्यासजीक
 प्रिय मित्र परम भगवान् सिद्ध मैत्रेयी लोकमें लच्छन्द
 विचरते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥ ९ ॥ मैत्रेय मुनि
 भगवान्के अनुयायी भक्त हैं । आनन्द और मक्तिभाक्से
 उनकी गर्दन झुक रही थी । उनके सामने ही श्रीहरि
 प्रेम एवं सुमकानपुक्त चिन्तनसे मुग्न आनन्दित करते
 हुए बसा ॥ १० ॥

श्रीभगवान् कहने लगे—मैं तुम्हारी आन्तरिक
 अभिलाषा जानता हूँ, इमपिय मैं तुम्हें यह साधन देता
 हूँ, जो इसलिये दिये अत्यन्त दुर्लभ है । उदर । तुम
 भूक-कम्पमें लक्ष्य थे । विष्णुकी रचना करनेवाले प्रजा-
 पतियों और ब्रह्मोंका यद्यपि तुम पानेकी इच्छासे ही तुमने
 मी आशयना की थी ॥ ११ ॥ माधुसूदना उवाच ।
 संसारमें तुम्हारा यह अन्तिम व्रत है, क्योंकि इममें
 तुमने मरा अनुग्रह प्राप्त कर लिया है । अब मैं मयज-
 न्का लादकर आने पायमें जाता पाइता हूँ । इस
 समय यहाँ पराजयमें तुमने अरुनी अनन्य मन्त्रिके
 कारण ही मरा शान पाया है, यह वह मीमांस-
 का है ॥ १२ ॥ पराजयमें पादसम्पन्न अरुममें
 मैंने जान नाभिसम्पन्न अरु हुए इन्द्राज अनी

ज्ञानं परं मन्मदिमावभास

सत्त्वस्या भागवत्तं वदन्ति ॥१३॥

इत्याद्युक्तः परमस्य पुतः

प्रतिष्ठणानुग्रहभावनोऽहम् ।

खेदोत्थरोमा स्तनलिताश्चरस्त

मुञ्चन्मुचः प्राञ्जलिरावभाषे ॥१४॥

को न्वीध ते पदसरोजभाषां

सुदुर्लभोऽर्घ्ये चतुर्वर्षीह ।

तथापि नाहं प्रवृणोमि मूर्धनं

भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुक ॥१५॥

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते

दुर्गाम्योऽधारिभयात्पलायनम् ।

कालात्मनो बत्प्रमदायुताभयः

स्वात्मन्त्रतेः सिधतिं धीर्विदामिह ॥१६॥

मन्त्रेषु मां वा उपहृष्य यत्न

मङ्गुष्ठितालपङ्कसदात्मबोध ।

पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्त-

स्तनो मनो मोहयतीव देव ॥१७॥

ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं

प्रोवाच कस्मै भगवान् समग्रम् ।

अपि धर्मं नोप्रहणाद्य भर्त

र्वदाञ्जसा यद् वृजिनं तरेम ॥१८॥

इत्यावेदितहार्दप मर्षं स भगवान् पर ।

आदिदेशतविन्दाद्य आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥

एवमारहितपादतीर्था-

दधीसत्त्वत्तात्मविबोधमार्गः ।

महिमाके प्रकट करनेवाले जिस श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश किया था और जिसे विवेकी श्रेय 'भागवत' कहते हैं, वही मैं तुम्हें देता हूँ ॥ १३ ॥

विदुरजी ! मुझपर तो प्रतिक्षण उन परम पुरुषकी कृपा बरसा करती थी । इस समय उनके इस प्रकार आदर्शपूर्णक कहनेसे स्नेहवश मुझे रोमाञ्च हो गया, मेरी कण्ठी गद्गद हो गयी और नत्रोंसे आँसुओंकी बरसाहने लगी । उस समय मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा— ॥ १४ ॥ 'स्वामिन् ! आपके चरण-कमलोंकी सेवा करनेवाले पुरुषोंको इस संसारमें धर्म, धर्म, कर्म, मोक्ष—इन चारोंमेंसे कोई भी फर्दाई दुर्लभ नहीं है, तथापि मुझे उनमेंसे किसीकी इच्छा नहीं है । मैं तो केवल आपके चरणकमलोंकी सेवाके लिये ही लक्ष्यस्थित रहता हूँ ॥ १५ ॥ प्रभो ! आप निःसृह होकर भी कर्म करते हैं, अग्रन्या होकर भी जन्म लेते हैं, कर्मरूप होकर भी शत्रुके बरसे भागते हैं और शत्रुकाके कियेमें जाकर छिप रहते हैं तथा सात्माराम होकर भी सौख्य इन्द्रजित्तियोंके साथ रमण करते हैं—इन निःवित्र चरित्रोंको देखकर विद्यार्थीकी बुद्धि भी चक्रमें पड़ जाती है ॥ १६ ॥ देव ! आपका स्वरूपज्ञान सर्वथा अद्वय और अक्षय्य है । फिर भी आप सदाह लेनेके लिये मुझे बुलाकर जो मोले मनुष्योंकी तरह बड़ी सावधानीसे मेरी सम्पत्ति पूछ कर रहे थे, प्रभो ! आपकी वह क्षीय मेरे मनको मोहित-सा कर देती है ॥ १७ ॥ स्वामिन् ! अपने स्वरूपका गूढ़ रहस्य प्रकट करनेवाला ओ श्रेष्ठ एवं समग्र ज्ञान आपने गदाधीको कतमय था, वह यदि मेरे सम्मुखने योग्य हो तो मुझे भी सुनाइये, जिससे मैं भी इस संसार-दुःखको सुगमतासे पार कर जाऊँ ॥ १८ ॥

जब मैंने इस प्रकार अपने हृदयका मन्त्र निवेदित किया, तब परमपुरुष कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने मुझे अपने सारूपकी परम स्थितिका उपदेश दिया ॥ १९ ॥ इस प्रकार पूज्यपाद गुरु श्रीकृष्णसे आत्मज्ञानकी उपलब्धि

प्रणम्य पादौ परियुज्य देव

मिद्वागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥२०॥

सोऽहं तदर्शनाद्वादत्रियोगार्तियुतः प्रभो ।

गमिन्ये दयितुं तस्य वर्याधममण्डलम् ॥२१॥

यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानूपि ।

सुदु तीव्रं तपो दीप्तं तेषांते लोकभावनौ ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

इत्युदवाहुपाकर्ण्य सुहृन्तं दुःसह वधम् ।

ज्ञानेनाश्रमपरव्रजं शोकमुत्पत्तिं बुध ॥२३॥

स त महाभागवत प्रव्रजन्त कौरवर्षभः ।

विभ्रम्मादन्धघचेन मुन्यं कृष्णपरिव्रजे ॥२४॥

विदुर उवाच

ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं

यदाह यागेश्वर ईश्वरस्ते ।

वक्तुं भवानोऽईति यदि विष्णो-

मृत्या समृत्यार्थकृतभरन्ति ॥२५॥

उवाच उवाच

ननु ते वरसंराज्यं श्रुत्वा कौपाङ्गोऽन्ति मे ।

साक्षाद्भगवताऽऽदिष्टो मर्त्यलोके विहासता ॥२६॥

श्रीशुक उवाच

इति सह विदुरेण विष्णुर्मे

गुणकथया सुधया प्राणितोरुतापः ।

क्षणमिव पुलिने समसमुत्स्रां

समुपिष्ट औपगविर्निशंसतोऽजात ॥२७॥

साधन सुनकर तथा उन प्रभुके चरणोंकी कन्दना और परिक्रमा करके मैं यहाँ आया हूँ । इस समय उनके विश्वसे मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा है ॥ २० ॥ विदुरजी ! पहले तो उनके दशन पाकर मुझे आनन्द हुआ था, किन्तु अब तो मेरे हृदयको उनकी विश्वव्याप्य अत्यन्त पीड़ित कर रही है । अब मैं उनके प्रिय क्षेत्र बदरिकाश्रमको जा रहा हूँ, जहाँ भगवान् श्रीनारायणदेव और नर—ये दोनों श्रुति लोगोपर अनुग्रह करनेके लिये दीर्घकालीन सौम्य हस्तोंके सुख पहुँचानेवाली एवं कठिन तपस्या कर रहे हैं ॥ २१ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार उदवकीके मुखसे अपने प्रिय वन्दुओंके विनाशका असह्य समाचार सुनकर परम ज्ञानी विदुरजीको जो शोक उत्पन्न हुआ, उसे उन्होंने ज्ञानश्रवण शान्त कर लिया ॥ २३ ॥ जब भगवान् श्रीहृण्णके परिकर्तमें प्रधान मशामागवत उदवजी बदरिकाश्रमकी ओर जाने लगे, तब कुन्तिदेव विदुरजीने अन्तर्मुख उनसे पूछा ॥ २४ ॥

विदुरजीने कहा—उदवजी ! योगेश्वर भगवान् श्रीहृण्णने अपने स्वरूपके गूढ़ रहस्यको प्रकाश करनेवाला जो परमज्ञान आपसे कहा था, वह आप हमें भी सुमाये, क्योंकि भगवान्के सेवक तो अपने सेवकोंका कर्प सिद्ध करनेके लिये ही विचर करते हैं ॥ २५ ॥

उदवजीने कहा—उस तत्त्वज्ञानके लिये आपको मुनिवक्त्र मैत्रेयीजीकी सेवा करनी चाहिये । इस मर्त्यलोकको छोड़ते समय मेरे सामने क्षय भगवान्ने ही आपको उपदेश करनेके लिये उन्हें आज्ञा दी थी ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार विदुरजीके साथ विष्णुर्मे भगवान् श्रीहृण्णके गुणोंकी कथा होनेसे उस कथावृत्तके द्वारा उदवजीका क्रियोगबन्धन मशान् ताप शान्त हो गया । यमुनाजीक तीरपर उनकी वह रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी । फिर प्रातःकाल होते ही वे वहाँसे चले गये ॥ २७ ॥

१ प्रचीन प्रतिमें विदुर उवाच' मही है । २ प्राचीन प्रतिक मूलमें 'ननु ते' से लेकर आकृति ध्वनीयः' तक तीन श्लोक तथा बीचके उवाच' आदि पूरा पाठ नहीं है । विष्णुर्मे है । शायद लिखत समय भूलसे रह गया है और पश्चात् लिप्यकी भूलसे सुधार गया है ।

राजोवाच

निधनमुपगतेषु इष्णिभोजे-
 प्वधिरथयूषपयूषपपु मुख्यम् ।
 स तु कथमवशिष्ट उदबो यद्वरि
 रपि तत्पञ्च आकृतिं प्रधीम ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

ब्रह्मघ्नापापदेष्टेन कालेनामोषवाञ्छितः ।
 स हृत्य स्वकुल नूनं त्यक्त्यन्वेष्टमचिन्तयत् ॥२९॥
 ब्रह्मावलोक्यादुपरते मयि ज्ञान मदान्तर्यम् ।
 अर्हत्पुद्गल एवाद्या सम्प्रत्यात्मवतां वरः ॥३०॥
 नोदबोऽप्यपि मन्व्यूना यद्वगुणैर्नादितः प्रभु ।
 अतो यदयुनं लोके ग्राह्यमिह तिष्ठतु ॥३१॥
 एवं त्रिलोक्यगुण्या सन्दिष्ट शब्दयोनिना ।
 बर्णभ्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥३२॥
 विदुरोऽप्युदवान्कृत्वा कृष्णस्य परमात्मन ।
 क्रीडयापापवेहस्य कर्माणि स्थापितानि च ॥३३॥
 दहन्मासं च तत्स्यैवं धीराणां धर्मवर्धनम् ।
 अन्मयां दुष्करतरं पशूनां विह्वल्यत्मनाम् ॥३४॥
 आत्मानं च कुरुधेष्ट कृष्णेन मनसेधितम् ।
 प्याबन् गत भागवते रुरोद प्रमविह्वल ॥३५॥
 कालिन्यां कतिभि मिद अहोभिर्मरुतर्षमः ।
 प्रापयत म्य सरित यत्र मित्रासुतो मुनि ॥३६॥

राजा परीक्षितने पूछ—महात्मा ! इष्णिकुल और
 भोजनशक्ती सभी रथी और यूपपनियों भी यूपपति
 नष्ट हो गये थे । यहाँ तक कि त्रिलोकीनाथ श्रीहरिको
 भी अपना यह रूप छोड़ना पड़ा था । फिर उन उसके
 मुखिया उदबमी ही कैसे बच रहे ? ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—जिनकी इच्छा कभी पूर्ण
 नहीं होती, उन श्रीहरिने श्रावणोंके शापरूप कर्णके
 बहाने अपने कुम्भकर संहार कर अपने श्रीकिष्णको
 त्यागते समय विचार किया ॥ २९ ॥ 'अब इस क्षेत्रके
 मेरे चले जानेपर सम्प्रीक्षितोमणि उदब ही मेरे ज्ञानके
 ग्रहण करनेके सच्चे अधिकारी हैं ॥ ३० ॥ उदब मुझसे
 अनुमात्र भी कम नहीं हैं, क्योंकि वे आत्मज्यी हैं, जिससे
 कभी विचलित नहीं हुए । अतः लोगोंको मेरे ज्ञानकी
 शिक्षा देते हुए वे यहाँ रहें ॥ ३१ ॥ वेदोंके मूल करण
 जगद्गुरु श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उदबमी
 स्वरिक्रममं जाकर समाधियोगद्वारा श्रीहरिकी आराधना
 करने लगे ॥ ३२ ॥ कुरुक्षेत्र परीक्षित ! परमपूजा श्रीकृष्णने
 कीर्त्तनासे ही अपना श्रीविग्रह प्रकट किया था, और स्वीकृतिसे ही
 उसे अन्तर्धान भी कर दिया । उनका वह अन्तर्धान
 होना भी धीर पुरुषोंका उरसाह कृष्णनेबाम तथा दूसरे
 पशुपत्य कीर पुरुषोंके किये अत्यन्त दुष्कर
 था । परम भागवत उदबमीके मुखसे उनके प्रशंसनीय
 कर्म और इस प्रकार अन्तर्धान होनेका समाचार पाकर
 तथा यह जानकर कि भगवान्ने परमधाम जाते समय
 मुझ भी स्मरण किया था, विदुरजी उदबमीके कहे जानेपर
 प्रमत्ते विह्वल होकर राने लगे ॥ ३३-३५ ॥
 इसके पश्चात् मिदशिरोमणि विदुरजी यमुनाप्रान्ते चर-
 कर कुछ पिनोमें गङ्गाजीब किनार जा पहुँचे, जहाँ
 श्रीमत्प्रेषजी रहते थे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते पञ्चापुराण पारमहन्त्यां महिमायां तृतीयस्कन्धे

विदुरोदसंगमं पशुर्योऽप्यय ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

विदुरजीका प्रसन्न और मैत्रेयजीका सृष्टिकर्मवर्णन

श्रीशुक उवाच

द्वारि पुनया श्रुपभः कुरुणां
मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।
सचोपसृत्पान्पुतभावशुद्धः
पप्रच्छ सौशील्यगुणाभिवृत्तः ॥ १ ॥

विदुर उवाच

सुखाय कर्माणि करोति लोको
न तै सुखं वान्यदुपारमं वा ।
विन्देत् भूयस्त एव दुःखं
यदत्र युक्तं भगवान् वदेष्टा ॥ २ ॥
वनस्य कृष्णादिमुखस्य दैवा-
दर्भर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं
मृतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥ ३ ॥
वत्साधुवर्षादिश्च वर्त्म धन
सराधितो भगवान् येन पुनाम् ।
इति स्थितो यच्छति भक्तिभूते
ज्ञानं मतस्वाध्यायपुराणम् ॥ ४ ॥

करोति कर्माणि कृतावतारो
यत्प्राप्तमत्तन्त्रा भगवांस्त्र्यधीशः ।
यथा ससर्वाग्र इदं निरीहः
सव्याप्य वृषिं जगतो विधत्ते ॥ ५ ॥
यथा पुनः स्व स्व इव निषण्य
शेते गुहायां स निश्चलश्चरि ।
यागधराधीश्वर एक एव
दनुप्रविष्टो बहुधा यथाऽऽसीत् ॥ ६ ॥
क्रीडन् विधत्ते द्विजगोसुराणां
धेयमाय कर्माण्यवतारमैदै ।
मनो न सृष्यत्यपि शृण्वतां नः
सुस्रोक्तमौल्यरितामृतानि ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परमहानी मैत्रेय मुनि

(इन्द्रिराक्षेत्र) में विराजमान थे । भगवत्प्रकृतिसे छुट्ट हुए
हृदयवाले विदुरजी उनके पास जा पहुँचे और उनके
साधुसमावेशसे आप्लावित होकर उन्होंने पूछा ॥ १ ॥

विदुरजीने कहा—भगवन् ! संसारमें सब लोग
सुखके लिये कर्म करते हैं, परन्तु उनमें न तो उन्हें
सुख ही मिलता है और न उनका दुःख ही दूर होता
है, बल्कि उससे भी उनके दुःखकी वृद्धि ही होती है ।
अतः इस विषयमें क्या करना उचित है, यह आप मुझे
कृपा करके बतलाइये ॥ २ ॥ जो लोग दुर्माग्यवश
मगवान् धीकृष्णसे विमुख, अवर्मपरायण और अल्प-
दुखी हैं, उनपर कृपा करनेके लिये ही आप-जैसे
माग्यशाही मगधरक्षक संसारमें बिचरा करते हैं ॥ ३ ॥
साधुशिरोमणे ! आप मुझे उस शान्तिप्रद साधनका
व्यपदेश दीजिये, जिसके अनुसार आराधना करनेसे
मगवान् अपने मर्कोंके मक्तिपूत हृदयमें आकर विराज
मान हो जाते हैं और अपने स्वरूपका अपरोक्ष अनुभव
करनेवाला सनातन ज्ञान प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥
त्रिवेणीके निपत्ता और परम स्वतन्त्र श्रीहरि अवतार
लेकर जो-जो बीजार्पण करते हैं, जिस प्रकार अवर्ता
होकर भी उन्होंने कल्पके आरम्भमें इस सृष्टिकी रचना
की, जिस प्रकार इसे स्थापितकर वे जगत्के जीवोंकी
जीविकाका विधान करते हैं, फिर जिस प्रकार इसे अपने
हृदयाकाशमें लीनकर वृत्ति-रूप हो योगमायाका आश्रय
लेकर शयन करते हैं और जिस प्रकार वे योगधरेश्वर प्रभु
एक होनेपर भी हम ब्रह्माण्डमें अनन्तर्यामीरूपसे अनुप्रविष्ट
होकर अनन्त रूपोंमें प्रकट होते हैं—यह सब रहस्य आप
हमें समझाइये ॥ ५ ॥ बादराग, गी और देवनाग्रेक कल्पान-
के लिये जो अनन्त अवतार धारण करके लीलासे ही
माना प्रकटके निष्पत्ति कर्म करते हैं, वे भी हमें सुनाइये ।
यशस्विणोंके मुमुक्षुमणि श्रीहरिक लीलावृत्तका पान करते-
करते हमारा मन तृप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

राजोवाच

निधनमुपगतेषु बुष्णिभोजे
 प्वधिरथयूपययूपयपु सुम्पः ।
 म तु कथमवशिष्ट उद्भवो यद्वरि
 रपि सत्पञ्च आकृतिं प्रधीयते ॥२८॥

भीष्म उवाच

ब्रह्मग्रापापदेष्टेन कालनामापवाञ्छितः ।
 सहस्रं स्रक्कुलं नूनं त्यक्त्य देहमचिन्तयत् ॥२९॥
 अम्बालोकादुपरते मयि ज्ञानं मदात्मयम् ।
 अहंरुद्रं पवादा सम्प्रत्यात्मवतां वर ॥३०॥
 नादवाप्वपि मन्व्यूना यद्गुणैर्नादितः प्रभु ।
 अता यद्वपुर्न लाकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥३१॥
 एयं त्रिभाङ्गुल्या सन्दिष्टं शन्योनिना ।
 वर्ण्यश्रममासाद्य हरिमीजं ममाभिना ॥३२॥
 विदुराभ्युदयान्भूत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ।
 क्रीडयापाचदहस्यं कमाणि श्लाघितानि च ॥३३॥
 दहन्याम च तत्सर्वं धीराणां धैर्यवधनम् ।
 अन्यथा दुष्करतरं पात्रां विहृतात्मनाम् ॥३४॥
 आत्मानं च हृत्कथं कृष्णं मनसेषितम् ।
 ध्यायन् गतं भागवतं स्नात्वा प्रमविहृतः ॥३५॥
 कानिन्दो कनिभि मिदं अदाभिर्मरुतर्षभ ।
 प्रापयन् न ममि पत्रं मिश्रामुतां मुनिः ॥३६॥

राजा परीक्षितने पूछा—भाक् ! बुष्णिभुज और मोनवशमे सभी रथी और यूपयनियों के भी यूपयन नष्ट हो गये थे । यह कि विजयोक्तीनाप भीहरि के भी अपना यह रूप छोड़ना पड़ा था । फिर उन सबके मुखिया उद्भवजी ही कैसे वचन रहें ? ॥ २८ ॥

श्रीकृष्णदेवर्जने कहते—जिनकी इच्छा कभी नहीं होती, उन भीहरिने ब्राह्मणों के शापरूप कर्त्तव्यमान अपने पुत्र्यस्य संहार कर अपने श्रीनिम्हक स्वागते समय विचार किया ॥ २९ ॥ 'अब इस लोक में मेरे चले जानेपर सखीदिशेमणि उद्भव ही मेरे हानरं ग्रहण करनेवाले सन्ने अत्रिकपी हैं ॥ ३० ॥ उद्भव मुझे अगुमात्र भी कम नहीं हैं, क्योंकि वे आत्मवसी हैं, किन्तु कभी विचलित नहीं हुए । अतः योगोंके मेरे हानरं शिक्षा देते हुए व यहाँ रहें ॥ ३१ ॥ वेदोंके मूल करने जगद्गुरु श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उद्भवजी वरिष्ठाश्रममें जाकर सम्प्रयोजनद्वारा श्रीहरिकी कलाकला करने लगे ॥ ३२ ॥ गुरुग्रेष्ठ परीक्षित । परमात्म श्रीकृष्णने सीखासे ही अपना श्रीनिम्ह प्रकट किया था, और सैन्यसे ही उसे अन्तगान भी कर दिया । उनका वह अन्तगान होना भी धीर पुरुषोंके उत्तम ब्रह्मज्ञान तथा दूसरे पशुतुल्य अधीर पुरुषोंके जिये अन्तगान दुष्कर था । परम भागवत उद्भवजीक सुम्पने उनके प्रामाणीय धर्म और इस प्रकार अन्तगान होनेका सम्प्रचार पास तथा यह जानकर कि भगवन्ने परमवाम आते सना मुक्त भी स्मरण किया था, विदुरजी उद्भवजीक वचन जानते प्रसन्न विहृत हास्य करने लगे ॥ ३३-३५ ॥ इस प्रकार पश्चात् मिदंशितोमणि विदुरजी कमुनागसे वचन कुछ श्रुतिमें गद्गात्रीक स्मरण जा पहुँच, यहाँ श्रीमन्मयी रहने थे ॥ ३६ ॥

॥ श्रीमद्भागवत पुराण पारमार्थ्यी मन्त्रिणी मृतीपम्भम् ॥

विदुराचार्यस्य श्रुतौऽप्ययं ॥ ४ ॥

स विश्वजन्मम्यतिसंयमार्ये
कृतावतार प्रगृहीतशक्तिः ।
चक्रर क्रमोष्मतिपूरुषाणि
यानीश्वरः कीर्तय तानि ममम् ॥१६॥
मीलुक उवाच

स एवं भगवान् पृष्ट खत्रा क्रौपारविर्मुनिः ।
पुंसां नि भयसार्धेन समाह बहु मानयन् ॥१७॥
नैनेव उवाच

साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान् साध्वनुगृह्यता ।
कीर्तिं वितन्वतां तांके आत्मनोऽभ्योद्यजतमन ॥१८॥

नैतद्वित्रं त्वयि क्षुब्धबद्धिरायणवीर्यजे ।
गृहीतोऽनन्यभावेन यक्षया हरिरीश्वरः ॥१९॥

माण्डव्यश्चापाङ्गभवान् प्रजासंयमनो यमः ।
प्रातुःक्षेत्रे द्युजिम्ब्यायां ज्ञातः सत्यवतीसुतात् ॥२०॥

भवान् भगवता नित्यं सम्भवः सानुगस्य च ।
यस्य ज्ञानोपदेशाय माऽऽदिष्टद्वङ्गभवान् व्रजन् ॥२१॥

अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिता ।
विश्वम्यित्युद्भवान्ताथा वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥२२॥
भगवानेक आसेदमग्र प्रात्माऽऽत्मनां विश्व ।

आत्मेच्छानुगतवात्मा नानामस्युपलक्षणः ॥२३॥
स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद् दृश्यमेकराट् ।

मनेऽमन्तमित्रात्मानं सुप्तश्चक्षिरसुप्तम् ॥२४॥

सुनाइये ॥ १५ ॥ उन सर्वेश्वरने संसारकी उत्पत्ति,
स्थिति और संहार करनेके लिये अपनी मायाशक्तिके
सीकार कर राम-कृष्णादि अवतारोंके द्वारा जो जनकों
अनैकिक लीजिए की हैं, वे सब मुझ सुनाइये ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब विदुरजीन जीवोंके
कल्याणके लिये इस प्रकार प्रयत्न किया, तब तो मुनिश्रेष्ठ
भगवान् संप्रपञ्चीन उनकी बहुत बकाई करते हुए पों
कहा ॥ १७ ॥

श्रीनैनेवजी बाड़े—साधुसमाव विदुरजी ! आपन
सब नीचोंपर कल्पन्त अनुग्रह करके यह बड़ी अच्छी
बात पूछी है । आपका चित्त तो सर्वदा श्रीभगवान्में
ही लगा रहता है, तथापि इससे संसारमें भी आपका
बहुत सुयश फैलगा ॥ १८ ॥ आप श्रीमायासजीक
औरस पुत्र हैं, इसलिये आपको लिये यह कहे बड़ी
बात नहीं है कि आप जनन्यमायसे संप्रेश्वर श्रीहरिके
हीं आधित हो गये हैं ॥ १९ ॥ आप प्रजाको दण्ड
देनेवाले भगवान् यम ही हैं । माण्डव्य शूरिक्रम शाप
हानेके कारण ही आपने श्रीमायासजीके वीर्यस उनक
भाई विश्विप्रवीर्यकी भोगपत्नी दासीक गर्भसे जन्म
लिया है ॥ २० ॥ आप सर्वदा ही भगवान् और
उनके मन्त्रोंके कल्पन्त प्रिय हैं, इसीलिये भगवान्
निजवाम पधारते समय मुझे आपका ज्ञानोपदेश करनेकी
आज्ञा दे गये हैं ॥ २१ ॥ इसलिये अब मैं जगत्की
उत्पत्ति, स्थिति और लपक लिये योगमायाके द्वारा
विस्तारित हुई भगवान्की विविध लीत्यजोंका क्रम
वर्णन करता हूँ ॥ २२ ॥

सुखिचकाक पूव समस्त आभाओंके अहमा एक
पूर्ण परमेश्वर ही थे—न प्रथ था न दृश्य ! सुखिकर-
ये जनक वृत्तियोंके भेदसे जो जनकता स्थितीय पकती
है, वह भी बड़ी थे; क्योंकि उनकी इच्छा अकेल रहने
की थी ॥ २३ ॥ वे ही दृश्य होकर दखने लगे, परन्तु
उन्हें दृश्य दिखायी नहीं पड़ा; क्योंकि उस समय वे ही
अप्रतितीय रूपसे प्रकाशित हो रहे थे । ऐसी अवस्थामें
वे अपनेका असत्क समान सपन्न लगे । वस्तुतः वे
असत्नहीं थे, क्योंकि उनकी वाक्यनीयों ही साथी थी ।

सा वा एतस्य संश्रुः शक्तिः सदसदात्मिका ।

माया नाम महाभाग भवेद् निर्मम विश्व ॥२५॥

कालश्चाप्य तु मायायां गुणमयामधोऽक्षयः ।

पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥२६॥

ततोऽभवन्महत्तत्त्वमप्यकालकालोदितम् ।

विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थ विश्वं व्यञ्जयन्मोदुः ॥२७॥

सोऽप्यश्रुगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ।

आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्तस्य सिसृक्षवा ॥२८॥

महत्तत्त्वादिद्विर्वाणादहं तत्त्वं व्यजायत ।

कार्यकारककर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ।

अहं तत्त्वादिद्विर्वाणात्मान्मना वैकारिकदभूत् ।

वैकारिकाश्च य देवा अर्थाभिप्यञ्जनं यत ॥३०॥

तैजसानिन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ।

तामसो भूतवृहमादिर्यत् सर्वं लिङ्गमात्मन ॥३१॥

कालमायांशयामेन भगवद्दीक्षितं नमः ।

नमसोऽनुसृतं स्पर्शं विदुर्वर्भिर्ममेऽनिलम् ॥३२॥

अनिलोऽपि विदुर्वर्णो नभसोरुषलान्वितः ।

ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकास्य लोचनम् ॥३३॥

अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विदुर्वर्षपरवीक्षितम् ।

आधत्ताम्भा रसमय कालमायांशयोगतः ॥३४॥

ज्यातिपाम्भाऽनुससृष्टं विदुर्वर्षावीक्षितम् ।

मही गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ॥३५॥

उनके ज्ञानका लोप नहीं हुआ था ॥२४॥ यह द्रव्य और द्रव्यका अनुसन्धान करनेवाली शक्ति ही—कार्यकारणरूप माया है । महामाया त्रिवरुणी ! इस मायामाकरूप अनिवार्य मायाके द्वारा ही भगवान् ने इस विश्वका निर्माण किया है ॥ २५ ॥ कालशक्तिसे जब यह त्रिगुणमयी माया लोभको प्राप्त हुई, तब उन इन्द्रियासील विमम परमात्मने अपने अंश पुरुषरूपसे उसमें विदाभासरूप बीच स्थापित किया ॥ २६ ॥ तब कर्मकी प्रेरणासे उस कर्मका मायासे महत्तत्त्व प्रकट हुआ । वह विमम अज्ञानका नाशक होनेके कारण विज्ञानरूप और अपनेमें सूक्ष्मरूपसे स्थित प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति करनेवाला था ॥ २७ ॥ फिर चिन्तामास, गुण और कर्मके अधीन उस महत्तत्त्वने भगवान् की दृष्टि पकनेपर इस विश्वकी रचनाके लिये अपना रूपान्तर किया ॥ २८ ॥ महत्तत्त्वके विभूत होनेपर अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई—जो कार्य (अविवक्षित), कारण (व्यप्यात्म) और कर्ता (अधिदैव) रूप होनेके कारण भूत, इन्द्रिय और मनका कारण है ॥ २९ ॥ वह अहङ्कार वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और तामस-भेदसे तीन प्रकारका है, अतः अहं तत्त्वने विकार होनेपर वैकारिक अहङ्कारसे मन, और जिनसे विषयोक्त ज्ञान होता है वे इन्द्रियोंके अधिष्ठाता वेकता हुए ॥ ३० ॥ तैजस अहङ्कारसे ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों हुई तथा तामस अहङ्कारसे सूक्ष्म भूतोंका कारण शून्यतन्मात्र हुआ, और उससे दृढान्तरूपसे आत्माका बोध करानेवाला अन्तर उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ भगवान् की दृष्टि जब अन्तर पर पड़ी, तब उससे फिर कर्म, माया और चिदात्मके योगसे स्पर्शतन्मात्र हुआ और उसके विभूत होनेपर उससे वायुकी उत्पत्ति हुई ॥ ३२ ॥ अन्तर अन्तर्मात्र वायुने आकाशको सञ्चित किया और रूपतन्मात्रकी रचना की और उससे संसाराका प्रकाशक तेज उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ फिर परमात्माकी दृष्टि पकनेपर वायुयुक्त तेजने कर्म, माया और चिन्ताके योगसे विभूत होकर रसतन्मात्रके कार्य जलको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर तेजसे युक्त जलने अज्ञान दृष्टिपात होनेपर कर्म, माया और चिन्ताके योगसे गन्धगुणमयी पृथ्वीको उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥

मृतानां नमआदीनां यद्यश्म्यावरावरम् ।

तेषां परानुसर्गाद्यथासंख्यं गुणान् विदुः ॥३६॥

एते देवाः कला विष्णो कालमायाञ्जलिङ्गिनः॥

नानास्वस्त्वक्रियानीद्या प्रोद्युः प्राञ्जलयो विष्णुम् ३७

देवा ऊचुः

नमाम ते देव पदारविन्द

प्रपञ्चतापोपश्रमातपत्रम् ।

यन्मूलकेता यत्तपोऽञ्जमोरु

संसारदुःखं बहिरुत्थिषन्ति ॥३८॥

धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवा-

त्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।

आर्त्मैकलभन्ते भगवंस्तवाह्नि

च्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥

मार्गान्ति यत्तु सुखपथनीदृ

ष्टेऽनुपगैर्हृदयो विविक्ते ।

यस्त्रायमर्षोदमरिद्वारायाः

पद पदं तीर्थपदं प्रपन्ना ॥४०॥

यच्छ्रद्धया धृतवत्त्वा च भक्त्या

संयुज्यमाने हृदयेऽवधाय ।

ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा

ब्रजैव तत्तेऽह्नि सरोजपीठम् ॥४१॥

विश्वस्य जन्मम्वितिसयमार्थे

कृतादितारस्य पदाम्भुजं ते ।

ब्रजैव सर्वे क्षरणं यदीश

स्मृतं प्रयच्छस्वभयं त्वर्पुसाय ॥४२॥

यत्सानुषधेऽसति देहगोहे

ममाहमित्पूढदुराग्रहाणाम् ।

पुंसां सुखं वसतोऽपि पुण्यां

भजम तप्ते भगवन् पदाब्जम् ॥४३॥

तान् वै ह्यसद्वृत्तिभिरभिधियै

पराहृतान्तर्मनस परेश ।

अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं

ये ते पदन्यामविलासलक्ष्म्या ॥४४॥

विदुरजी ! इन आकाशआदि मूर्तोंमेंसे जो-जो मृत पीछे-पीछे उत्पन्न हुए हैं, उनमें कमश अपने पूर्व-पूर्व मूर्तों के गुण भी अनुगत समझन चाहिये ॥ ३६ ॥ ये महात् तत्त्वादिके अभिमानी विकार, विशेष और चेतनाशक्तिविशेष देहाण धीमगवान्के ही अंश हैं । किन्तु पुण्यकृपण रहनेके कारण जब वे विभरचनारूप अपने कार्यमें सफल नहीं हुए, तब हाथ जोड़कर भगवान्के कहने श्रो ॥ ३७ ॥

देवताओंमें कहा—देव ! हम आपके चरणकमलोंकी बन्दना करते हैं । ये अपनी शरणमें आये हुए जीवोंका ताप दूर करनेके लिये छत्रक समान हैं तथा इनका आश्रय लेनेसे यत्निजन अनन्त संसार-दुःखको मुगमतासे ही दूर फेंक देते हैं ॥ ३८ ॥ बगवत्कर्तृ जगदीश्वर ! इस संसारमें तापत्रयसे व्याकुल रहनेके कारण जीवोंको जब भी शान्ति नहीं मिलती । इसलिये भगवन् ! हम आपके चरणोंकी ज्ञानमयी छायाका आश्रय लेते हैं ॥ ३९ ॥ मुनिजन एकान्त स्थानमें रहकर आपके सुख-कमलका आश्रय लेनावाले वेदमन्त्ररूप पश्वियोंके द्वारा जिनका अनुसन्धान करत रहते हैं तथा जो सम्पूर्ण पाप-नाशिली नदियोंमें श्रेष्ठ धीमगवान्की उद्भमस्थान हैं, आपके उन परम पवन पादपद्मोंका हम आश्रय लेते हैं ॥ ४० ॥ हम आपके चरणकमलोंकी उस चौकीका आश्रय ग्रहण करते हैं, जिसे सज्जन ब्रह्मा और श्रवणकीर्तिनादिरूप मन्त्रसे परिमार्जित अन्तःकरणमें धारण करके वैराग्यपुष्ट ज्ञानके द्वारा परम भीर हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ ईश ! आप संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये ही अवतार लेते हैं, अतः हम सब आपके उन चरणकमलोंकी शरण लेते हैं, जो अपना स्मरण करनेवाले भक्तजनोंका अमय कर देते हैं ॥ ४२ ॥ जिन पुरुषोंका येह, गेह तथा उनसे सम्बन्ध रहनेवाले अन्य कुछ पदार्थोंमें अहंता, ममताका एक दुराग्रह है, उनका शरीरमें (आपके अवतारपीठपरसे) रहनेपर भी जो अफसत दूर हैं—, उन्हीं आपके चरणारविन्दोंको हम मनसे हैं ॥ ४३ ॥ परम यशस्वी परेश्वर ! इन्द्रियोंके नियामिमुख रहनेके कारण जिनका मन सर्वत्र बाहर ही भटक करता है, वे पापस्त्रोग आपके विलासपूर्ण पाद किम्यासकी शोभाके विरोध भक्तजनोंका दर्शन नहीं कर पाते, इसीसे वे आपके चरणोंसे दूर रहते हैं ॥ ४४ ॥ देव !

पानेन ते देव कथासुधायाः
 प्रहृदमक्त्या विशदाशया ये ।
 वैराग्यसार प्रतिलम्ब्य धार्य
 यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥४५॥
 उवाचरे चात्मममाभियोग
 धलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
 त्वामव धीरा पुरुषं विशन्ति
 तेषां भ्रमः स्यात्तु सेवया ते ॥४६॥
 तच्चे वर्यं लोकसिद्धययाऽऽद्य
 त्वयानुसूयस्त्रिभिरारमभिः यः ।
 सर्वे नियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं
 न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्षये' ते ॥४७॥
 यावद्बलिं तेऽज इराम काले
 यथा वर्यं चाक्षमदाम यत्र ।
 यथोभयेषां त इमे हि लोका
 बलिं हरन्ताऽक्षमदन्त्यनुद्धा ॥४८॥
 त्वं न सुराणामसि सत्त्वयानां
 कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।
 त्वं देव शक्त्या गुणकर्मयानौ
 रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥४९॥
 ततो वर्यं सत्प्रमृत्वा सदर्थं
 धधूविमात्तम् करधाम किं ते ।
 त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या
 देव क्रियार्थं यदनुग्रहाणाम् ॥५॥

आपके कथामृतका पान करनेसे उमड़ी हुई मक्तिके कलत्र
 मिनका अन्त करण निर्वप हो गया है, वे लोग—
 वैराग्य ही जिसका सा है—ऐसा आरमभान प्राप्त करके
 अनायास ही आपके वैकुण्ठधामके चले आते हैं ॥४५॥
 दूसरे धीर पुरुष चित्तनिरोधरूप समाग्रिक कलसे आ-
 बधवर्ती मायाको जीतकर आपमें ॥ भीम तो हो जाते
 पर उन्हें भ्रम बहुत होता है; किन्तु आपकी से-
 वामें कुछ भी कष्ट नहीं है ॥ ४६ ॥

आदिदेव ! आपमें सुष्ठि-रचनाकी इच्छासे ।
 त्रिगुणमय रचा है । इसलिये विभिन्न समाकाले होन
 कारण हम आपमें मिल नहीं पाते और इसीसे आप
 श्रीरामके साधनरूप ब्रह्माण्डकी रचना करके उसे आप
 समर्पण करनेमें असमर्थ हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ अतः
 जन्मरहित भगवन् ! जिससे हम ब्रह्माण्ड रचक
 आपको सब प्रकारके मांग समयपर समर्पण कर सके
 और जहाँ स्थित होकर हम भी अपनी योग्यताके
 अनुसार अन्न ग्रहण कर सकें तथा ये सब जीव भी सब
 प्रकारकी किन्नाधावाओंसे दूर रहकर हम और आप दोनोंकी
 भोग समर्पण करते हुए अपना-अपना अन्न भक्षण कर
 सकें, ऐसा कोई उपाय कीजिये ॥ ४८ ॥ आप निर्विकार
 पुराणपुरुष ॥ अथ कर्मकर्ताके सहित हम देवताओंके
 आदि कारण हैं । वेव ! पहले आप अबन्नाहीने
 सत्त्वाग्निगुण और अन्नाग्नि कर्मोंकी कारणरूपा मायाशक्ति-
 में विनामासरूप वीर्य स्थापित किया था ॥ ४९ ॥
 परमात्मदेव ! यह सत्त्वादिरूप हम देवका जिस कर्मके
 लिये उत्पन्न हुए हैं, उसके सम्बन्धमें हम क्या करें ?
 देव ! हमपर आप ही अनुग्रह करनेवाले हैं । इसलिये
 ब्रह्माण्डरचनाके लिये आप हमें क्रियाशक्तिके सहित
 अपनी ज्ञानशक्ति भी प्रदान कीजिये ॥ ५० ॥

इति भीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्योऽर्चितायां

तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पष्ठोऽध्याय

विराट् शरीरकी उत्पत्ति

अपिल्लाच

इति तत्तां स्वशक्तीनां सतीनामसमेस्य ॥ १ ॥

प्रमुत्सेलोकशत्राणां निशाम्य गतिमीधर ॥ २ ॥

कालसंज्ञां तदा देधीं विप्रच्छक्तिमुत्क्रम ॥ ३ ॥

प्रयोविंशतितृषानां गणं युगपदाविशस ॥ ४ ॥

सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण स गणम् ॥ ५ ॥

मिन्न संयोजयामास सुप्त कर्म प्रबोधयन् ॥ ६ ॥

प्रबुद्धकर्मा दैवन प्रयोविंशतिको गण ॥ ७ ॥

प्रगितोऽर्जुनयत्स्वामिर्मात्राभिरधिपूर्यम् ॥ ८ ॥

परेण विद्वता स्वस्मिन्मात्रया विप्रसुगण ॥ ९ ॥

शुश्रोमान्योन्यमात्माय यस्मिंस्त्रेकशराचरा ॥ १० ॥

दिरण्मयः स पुरुष सङ्क्षपतिवत्सरान् ॥ ११ ॥

आण्डकोष्ठ उग्रामाप्सु सर्वसत्त्वोपवृद्धितः ॥ १२ ॥

स वै विश्वमुजां गर्भो देवकर्मन्मशक्तिमान् ॥ १३ ॥

विषमाजातमनाऽऽत्मानमेकधा दृष्ट्वा त्रिधा ॥ १४ ॥

एष दृष्टेपसृजानातामात्मं परमात्मन ॥ १५ ॥

आद्याऽव्यतारो यशमौ भूतप्राप्तो विभाष्यते ॥ १६ ॥

साध्यात्म साभिर्द्वयं साधिभूत इति त्रिधा ॥ १७ ॥

विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयन च ॥ १८ ॥

इत्येव श्रुतिने कहा—सर्वशक्तिमान् भगवान्ने जय देखा कि आपसमें संगठित न होनेके कारण ये मेरी मष्टत्त्व आदि शक्तियों विश्व-रचनाके कार्यमें असमर्थ हो रही हैं, तबने काल-शक्तिको स्वीकार करके एक साथ ही मष्टत्त्व, अहङ्कार, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा और मनसहित ग्यारह इन्द्रियों—इन सेईस तत्त्वोंके समुदायमें प्रविष्ट हो गये ॥ १० ॥ उनमें प्रविष्ट होकर उन्होंने जीवोंके सोये हुए अवष्टको जाग्रत किया और परस्पर विद्या हुए उस सत्त्वमगृहको अपनी क्रियाशक्तिके द्वारा आपसमें मिला दिया ॥ ११ ॥ इस प्रकार सब भगवान्ने अष्टको कार्योन्मुख किया, तब उस सेईस तत्त्वोंके समूहने भगवान्की प्ररगासे अपन अंशोंद्वारा अविपूर्य—विराट् को उत्पन्न किया ॥ १२ ॥ अर्थात् जब भगवान्ने अंशरूपसे अपने उस शरीरमें प्रवेश किया, तब वह विश्वरचना करनेवाला मष्टत्त्वादिको समुदाय एक—दूमेरेसे मिलाकर परिणामको प्राप्त हुआ । यह तत्त्वोंका परिणाम ही विष्णु पुरुष है, जिसमें चराचर जगत् विद्यमान है ॥ १३ ॥ जलके भीतर जो अण्डरूप आश्रयस्थान था, उसमें वह विरप्यमय विराट् पुरुष सम्पूर्ण जीवोंको साथ लेकर एक द्वार दिव्य कर्णिक रहा ॥ १४ ॥ वह विश्वरचना करनेवाले तत्त्वोंका गर्भ (काय) था तथा हान, क्रिया और आत्मशक्तिसे सम्पन्न था । इन शक्तियोंसे उसने स्वयं अपने कमरा एक (हृदयरूप), दस (प्राणरूप) और तीन (अप्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिमातिक) विभाग किये ॥ १५ ॥ यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव होनेके कारण समस्त जीवोंका आत्मा, जीवरूप होनेके कारण परमात्माका जश और प्रथम अस्मिप्यक होनेके कारण भगवान्पुत्र आप्ति-व्यवहार है । यह सम्पूर्ण भूत-समुदाय इसीमें प्रकाशित होता है ॥ १६ ॥ यह अप्यात्म, अधिभूत और अधिभूतत्वमें तीन प्रकारका, प्राणरूपसे दस प्रकारका और हृदयरूपसे एक प्रकार का है ॥ १७ ॥

१ प्रा पा—प्रमुत्सेलो । २ प्रा पा—निशाम्य । ३ प्रा पा—देधीं अनित्यताभिर्मात्रा ।

४ प्रा पा—प्रबुद्धकर्मा । ५ प्रा पा—साभिर्द्वयं साधिभूत इति ।

● दस इन्द्रियोंहित मन अवश्याम है इन्द्रियादिक विषय अधिभूत हैं इन्द्रियाधिभूता देव अधिभूत हैं तथा प्राण भगवान् उदान समान भगवान् नाय कर्म कृष्ण देवदत्त और जनक—ये दस प्राण हैं ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

विदुरजीके प्रश्न

श्रीशुक उवाच

एवं सुवाणं मंत्रयं द्वैपायनमुतो बुधः ।
प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥ १ ॥

विदुर उवाच

महान् कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याधिकारिणः ।

लीलाया चापि युज्येरभिर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥ २ ॥

क्रीडायामुद्यमोऽर्मस्य कामधिक्रीडिषान्वृतः ।

स्वतस्त्वत्स्य च कथं निवृत्तस्य सदन्त्यतः ॥ ३ ॥

अस्त्रास्त्रीद्वगवान् विश्व गुणमन्याऽऽत्मभाषया ।

तथा संस्पापयत्प्रेतद्वय प्रत्यपिघास्यति ॥ ४ ॥

देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः ॥

अबिलुप्तावधोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥ ५ ॥

भगवानेक एवैव सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ।

अमुष्य दुर्मगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥ ६ ॥

एतस्मिन्मे मनो विद्वन् स्त्रियतेऽज्ञानसङ्कटे ।

तच्चः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच

स इत्थं चोदितः घृत्वा तन्मन्त्रिणां मुनिः ।

प्रत्याह भगवन्निव स्रवन्निव गतसम ॥ ८ ॥

मैत्रेय उवाच

सेय भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ।

ईश्वरस्य विमुक्तस्य स्तर्पण्यमुत यन्धनम् ॥ ९ ॥

पैर्धेन विनामुष्य पुंस आत्मविपर्यय ।

प्रतीयत उपद्रुष्टु स्वशिरस्तेदनादिकः ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—मैत्रेयजीका यह भाषण

सुनकर बुद्धिमान् व्यासनन्दन विदुरजीने उन्हें अपनी वाणीसे प्रसन्न करते हुए कहा ॥ १ ॥

विदुरजीने पूछा—महान् ! महाशान् तो कुछ बोध

स्वरूप, निर्मिकार और निर्गुण हैं, उनके साथ भीढासे भी गुण और क्रियाका सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? ॥ २ ॥

शालक्यने तो कामना और दूस्तेके साथ खेदनेकी इच्छा रहती है, इसीसे वह खेदनेके लिये प्रयत्न करता है, किन्तु महाशान् तो स्वतः निवृत्त—पूर्णकाम और सर्वदा

असङ्ग हैं, वे क्रीडाके लिये भी क्यों सङ्कल्प करेंगे ? ॥ ३ ॥

महाशान्ने अपनी गुणमयी मायासे जगत्की रचना की है, उसीसे वे इसका पाटन करते हैं और फिर उसीसे

संसार भी करेंगे ॥ ४ ॥ जिनके ज्ञानका देश, काल अथवा अवस्थासे, अपने-आप या किसी दूसरे निमित्तसे भी कभी

अपे नहीं होता, उनका भाषाके साथ किस प्रकार संयोग हो सकता है ॥ ५ ॥ एकमात्र वे महाशान् ही

समस्त क्षेत्रमें उनके साक्षीरूपसे स्थित हैं, फिर इन्हें दुर्योग्य या किसी प्रकारके कर्मजनित क्लेशाकी प्राप्ति

कैसे हो सकती है ॥ ६ ॥ महान् ! इस अज्ञान-सङ्कटमें पककर मेरा मन बड़ा खिन्न हो रहा है, आप

मेरे मनके इस महाशान् मोहको हटा करके दूर कीजिये ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तत्त्वज्ञिनामु विदुरजीकी

यह प्रेरणा प्राप्तकर अहङ्कारहीन श्रीमैत्रेयजीने महाशान्क प्रसन्न करते हुए मुसकराते हुए कहा ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—जो धारणा सबका आत्मी

और सर्वथा मुक्तस्वरूप है, वही दीनता और बन्धनको प्राप्त हो—यह बात शुकविरुद्ध अच्युत है, किन्तु वस्तुतः

यही तो महाशान्की माया है ॥ ९ ॥ जिस प्रकार अज्ञान देखनेवाले पुरुषको अपना सिर कटना आदि व्यवहार न

होनेपर भी अज्ञानके कारण सत्यवत् भासते हैं, उसी प्रकार इस जीवको बन्धमादि न होते हुए भी अज्ञानवश

१ मा पा०—स्वेष्यम् । २ मा पा०—प्रत्यभि । इत्थं पाठान्तरका जीवरत्नामीने भी उल्लेख किया है ।

३ मा पा०—यदयमात्ममात्रम् ।

स्मरन् विषयसुखमीशो विद्वत्पितृमधोद्यज ।
 विराजन्मत्पत्स्वेन तेजसैषां विशुचये ॥१०॥
 अथ तस्याभितसस्य कवि श्वायतनानि ॥
 निर्भिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥११॥
 तस्याधिरास्य निर्भिन्न्लोकपालोऽविशुच्यदम् ।
 बाधा स्वांशेन वक्तव्यं ययासी प्रतिपद्यते ॥१२॥
 निर्भिन्न् ताडु वरुणो लोकपालोऽविशुद्धरेः ।
 जिह्मांशेन च रसं ययासी प्रतिपद्यते ॥१३॥
 निर्भिन्ने अम्बिनौ नासे विष्णोराविशुद्धा पदम् ।
 ग्रन्थनांशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवत् ॥१४॥
 निर्भिन्ने अधिष्ठी त्वष्टा लोकपालोऽविशुद्धिभोः ।
 चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१५॥
 निर्भिमान्यस्य चमाणि लोकपालोऽनिलोऽविशुद्ध ।
 प्राणनांशेन संस्पृश येनासी प्रतिपद्यते ॥१६॥
 कर्णावस्य विनिर्मिन्नो विष्ण्वस्व विविशुर्दिष्टः ।
 आत्रणांशेन स्रग्दस्य सिद्धि येन प्रपद्यते ॥१७॥
 त्वचमस्य विनिर्मिन्ना विविशुर्धिष्ण्यमोपधीः ।
 अंशेन रामभि कण्डूं यरमौ प्रतिपद्यते ॥१८॥
 मेढू तस्य विनिर्मिन्न् स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ।
 रेतमांशेन येनामावानन् प्रतिपद्यते ॥१९॥
 गुद पुंसा विनिर्मिन्न् मित्रा लाकेष्ट आविशत् ।
 पायुनांशेन येनामा विसर्ग प्रतिपद्यते ॥२०॥
 हस्तापस्य विनिर्मिन्ना विविशुर्धिष्ण्यमोपधीः ।
 वार्तयांशेन पुरुषा यया वृत्ति प्रपद्यते ॥२१॥
 पादावस्य विनिर्मिन्ना स्पर्शशो विष्णुराविशत् ।
 गत्या स्वांशेन पुण्या यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

फिर विषयकी रचना करनेवाले मन्त्रराशिदिने
 अधिपति श्रीभगवान्ने उनकी प्रार्थनाको स्मरण कर
 उनकी वृत्तियोंको जगानके लिये अपने चेतनरूप तेजो
 उस विराट् पुरुषको प्रकाशित किया, उसे जगया ॥१०॥
 उसके नामवत् होते ही शेषताओंके लिये कितने रूप
 प्रकट हुए—मह मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥११॥ फिर
 पुरुषके पहले मुख प्रकट हुआ, उसमें लोकपाल बसि
 अपने अंश वागिन्द्रियके समेत प्रविष्ट हो गया, जिससे वह
 जीव खोलता है ॥१२॥ फिर विराट् पुरुषके ताट् उसमें
 हुआ, उसमें लोकपाल वरुण अपने अंश रसेन्द्रियके सहित
 स्थित हुआ, जिससे जीव रस ग्रहण करता है ॥१३॥
 इसके पश्चात् उस विराट् पुरुषके नयुने प्रकट हुए
 उनमें दोनों अम्बिनीकुमार अपने अंश ध्वजन्द्रियके सहित
 प्रविष्ट हुए, जिससे जीव गन्ध ग्रहण करता है ॥१४॥ तीसरी
 प्रकार जब उस विराट् वरुणमें आँखें प्रकट हुईं, तब उनमें अपने
 अंश नेत्रेन्द्रियके सहित—लोकपति सूर्यमें प्रवेश किया, जिस
 नेत्रेन्द्रियसे पुरुषको विविध रूपोंका ज्ञान होता है ॥१५॥
 फिर उस विराट् विप्रहृये त्वचा उत्पन्न हुई, उसमें अपने अंश
 त्वगिन्द्रियके सहित वायु स्थित हुआ, जिस त्वगिन्द्रियसे
 जीव स्पर्शकर अनुभव करता है ॥१६॥ जब इसके
 कर्णाक्षि प्रकट हुए, तब उनमें अपने अंश ध्वजन्द्रियके
 सहित शिखाओंमें प्रवेश किया, जिस ध्वजन्द्रियसे जीव
 की शब्दका ज्ञान होता है ॥१७॥ फिर त्रिपु
 शरीरमें चर्म उत्पन्न हुआ उसमें अपने अंश ऐर्मेके सहित
 ओषधियाँ स्थित हुईं, जिन ऐर्मेमें जीव सुखदुःखी भागिकी
 अनुभव करता है ॥१८॥ जब उसके निष्ठ उत्पन्न हुआ ।
 अपने इस आश्रयमें प्रजापतिने अपने अंश कीर्मेके सहित
 प्रवेश किया जिससे जीव ज्ञानम्बुका अनुभव करता
 है ॥१९॥ फिर विराट् पुरुषके गुण प्रकट हुईं, उसमें
 लोकपाल मित्रने अपने अंश पायुन्द्रियके सहित प्रवेश
 किया, इससे जीव मलमयाग करता है ॥२०॥ इसके
 पश्चात् उसके हाथ प्रकट हुए उनमें अपनी इच्छा-स्वाग-
 म्या शक्तिके सहित दशरथ इन्द्रने प्रवेश किया, इस
 शक्तिके जीव अपनी जीविप्रा प्राप्त करता है ॥२१॥
 जब इसके पाद उत्पन्न हुए तब उनमें अपनी शक्ति
 गतिके सहित स्पर्शकर विष्णुने प्रवेश किया—इस गति-
 शक्तिद्वारा जीव अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचता है ॥२२॥

बुद्धि चास्य विनिर्भिन्ना वागीशो धिष्यमाविशत् ।
 बोधेनाश्रेण धोदध्यप्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥२३॥
 हृदय चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्यमाविशत् ।
 मनसाश्रेण येनासां विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥
 आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्यवम् ।
 कर्मणाश्रेण येनासां कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥
 सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान्धिष्यमुपाविशत् ।
 चित्तेनाश्रेण येनासां विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥
 क्षीणोऽस्य धौर्धरा पट्ट्यां ख नामेरुदपद्यत ।
 गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुराण्य ॥२७॥
 आत्मन्तिकन मन्वन दिव दवा प्रपदिरे ।
 धरो रजःस्यभावन पणया ये च ताननु ॥२८॥
 तार्तीयन स्वभावेन भगवत्साभिमाभिता ।
 उभयोरन्तरं व्याम ये रुद्रपापदां गणा ॥२९॥
 सुन्दताऽवर्तत प्रकृष्टं पुरुषस्य कुन्दइ ।
 यस्तू मुत्तराऽर्णानां मुग्ध्याऽमृद्भाक्षणो गुरु ॥३०॥
 बाहुभ्यां वतत धरं ध्रुवियस्तनुवत ।
 यो जातस्यायत वणान् पौरुष कण्ठकथतात् ॥३१॥
 विगाऽवतन्त तम्पार्वताऽकृष्टनिष्परीर्विभो ।
 वैश्यस्तदुद्धवा वाता नृणां य ममवतयत् ॥३२॥
 पट्ट्यां भगवता नृणं गुह्या धमसिद्धय ।
 तम्पां वात पुरा गुह्या यत्पूष्या तुष्यत इमि ॥३३॥

फिर इसके बुद्धि उत्पन्न हुई, अपने इस स्थानमें अपने
 अंश बुद्धिशक्तिके साथ वाक्पनि ब्रह्माने प्रवेश किया,
 इस बुद्धिशक्तिसे जीव ज्ञातव्य विषयोंको जान सकता
 है ॥ २३ ॥ फिर इसमें हृदय प्रकाश हुआ, उसमें अपने
 अंश मनके सहित चन्द्रमा स्थित हुआ । इस मन-शक्ति-
 के द्वारा जीव सङ्कलन-विकल्पादिरूप विकारोंको प्राप्त होता
 है ॥ २४ ॥ तत्पश्चात् चित् पुरुषमें अङ्गुष्ठार उत्पन्न
 हुआ, इस अपने आत्मपमें क्रियाशक्तिसहित अभिमान
 (रुद्र) ने प्रवेश किया । इससे जीव अपने कृतक्यको
 लीकार करता है ॥ २५ ॥ अब इसमें चित प्रपट हुआ ।
 उसमें चितशक्तिके सहित महत्त्व (ब्रह्मा) स्थित
 हुआ, इस चितशक्तिसे जीव विज्ञान (चेतना) को उत्पन्न
 करता है ॥ २६ ॥ इस विराट् पुरुषके सिरसे स्वर्गलोक,
 वैरोसे पृथ्वी और नाभिसे अन्तरिक्ष (आकाश) उत्पन्न
 हुआ । इनमें क्रमशः सत्त्व, रज और तम—इन तीन
 गुणोंके परिणामरूप देवता, मनुष्य और प्रजाति देखे
 जाते हैं ॥ २७ ॥ इनमें देवतानाग मत्त्वगुणकी अविकृता-
 क कारण खगणिकमें, मनुष्य और उनके उपयोगी गौ
 आदि जीव रजगुणकी प्रधानताक कारण पृथ्वीमें तथा
 तमोगुणी स्वभावनाल होनेसे रुद्रके पार्श्वगण (भूत, प्रत
 आदि) दानोंक बीचमें स्थित भगवान्क नामिस्थानीय
 अन्तरिक्षाकावे रहते हैं ॥ २८-२९ ॥

विदुरजी^१ वेद और शास्त्र ममान्क मुखसे प्रकाश
 हुए । मुखमें प्रकाश होनेक कारण ही शास्त्र सब वर्णों-
 में श्रुत और सबका गुरु है ॥ ३० ॥ उनकी मुद्राओंसे
 क्षत्रियवृत्ति और उसका अवयम्बन करनेवाला क्षत्रिय
 वर्ण उत्पन्न हुआ, जो विराट् भगवान्क अंश जानक
 कारण अन्न स्वरूप सब वर्णोंकी चार आत्तिक उत्पत्तियोंसे रक्षा
 करता है ॥ ३१ ॥ भगवान्की दानों औषधोंसे सब लघो-
 षण निषाद करनेवाली वैश्यवृत्ति उत्पन्न हुई और उन्हींसे
 वैश्य वर्णका भी प्रादुर्भाव हुआ । यह वर्ग अपनी हृत्ति-
 से सब जीवोंकी जीविका चलाता है ॥ ३२ ॥ फिर
 सब वर्णोंकी सिद्धिके लिये भगवान्क कारणोंमें सेवावृत्ति
 प्रपट हुई और उन्हींसे पल्लववत् उस हृत्तिके अधि-
 काशी शुद्धका भी प्रकाश हुआ, त्रिमूर्ति हृत्तिमें ही आदि

एते वर्णाः स्वधर्मेण यश्नन्ति स्वगुरुं हरिम् ।

भद्रयाऽऽत्मविशुद्धयर्थं यज्जाताः सह वृत्तिभिः ॥३४॥

एतत्स्वधर्मगवतो दैवकर्मस्मरूपिण ।

कः भ्रष्ट्यादुपाकर्तुं योगमायाभलोदयम् ॥३५॥

अथापि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् ।

कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्वाभिधासतीम् ॥३६॥

एकान्तलार्भं वचसो नु पुंसां

सुश्लोकमौर्लेर्गुणवादमाहुः ।

श्रुतेष्व विद्वन्निरुपाकुतायां

कथासुधायाद्वृत्तसम्प्रयोगम् ॥३७॥

अत्मनोऽवस्थितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना ।

संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविषयका ॥३८॥

अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी ।

यत्स्वयं चात्मवर्त्तमा न वेद किमुतापरे ॥३९॥

यतोऽप्राप्य न्यवतन्त वाचथ मनसा सह ।

अहं चान्य इम देवान्तस्मै भगवते नमः ॥४०॥

प्रसन्न हो जाते हैं* ॥ ३३ ॥ ये चारों वर्ण वर्ण अपनी वृत्तियोंके सहित जिनसे उत्पन्न हुए हैं, अपने गुरु श्रीहरिका अपने-अपने धर्मोंसे निरतभुक्तिके लिये अद्यावर्षक पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥ त्रिदुरजी ! यह किष्ट पुरुष काळ, कर्म और समावशक्तिके युक्त भगवन् श्रीयोगमायाके प्रभावको प्रकट करनेवाला है । इसके स्वरूप का पूरा-पूरा वर्णन करनेका कौन साहस कर सकता है ॥ ३५ ॥ तथापि प्यारे त्रिदुरजी ! अन्य व्यक्तिके वर्णान्त्रोंसे अपवित्र हुई अपनी वाणीको पवित्र करने के लिये, जैसी मेरी मुद्रि है और जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना है वैसा, श्रीहरिका सुयश वर्णन करता हूँ ॥ ३६ ॥ महापुरुषोंका मत है कि पुण्यश्लोकश्रोतमणि श्रीहरिके गुणोंका गान करना ही मनुष्योंकी वाणीका तथा विद्वान्त्रोंके मुखसे भगवत्कथामृतका पात्र करना ही उनके कर्तव्य सबसे बड़ा लाभ है ॥ ३७ ॥ कस ! हम ही नहीं, आनिकवि श्रीमहात्मीने एक हजार विषय वर्णितक अपनी योगपरिपक्व बुद्धिके विचार किया, तो भी क्या वे भगवन् श्रीकृष्ण महिमाका पार पा सके ? ॥ ३८ ॥ अतः भगवन् श्रीकृष्णकी मया बड़े-बड़े मायाविशेषोंको भी मोहित कर देनेवाली है । उसकी वक्षस्त्रमें बाँधनेवाली बाल बनता है । अतएव स्वयं भगवान् भी उसकी पाह नहीं लगा सकते, फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है ॥ ३९ ॥ जहाँ न पहुँचकर मनके सहित वाणी भी लौट आती है तथा जिनका पार पानेमें वह हृद्धारके अस्मिन्मानी रुझ तथा अन्य इन्द्रियाविध्रता देखा भी समर्थ नहीं हैं, उन श्रीमाधवन् की हम नमस्कार करते हैं ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यं संहितायाम् तृतीय-

स्कन्धे पद्योऽध्यायः ॥ ६ ॥

* तब वर्णोंकी शिक्षा मूल सेवा है सेवा किये बिना कोई भी धर्म सिद्ध नहीं होता । अतः तब वर्णोंकी मूलस्व सेवा ही प्रथम धर्म है वह सब तब वर्णोंमें महान् है । ब्राह्मणका धर्म मोक्षके लिये है क्षत्रियका धर्म भोगनेके लिये है वैश्यका धर्म धर्मके लिये है और शूद्रका धर्म धर्मोंके लिये है । इस प्रकार प्रथम तीनों वर्णोंके धर्म धर्म्य पुरुषार्थोंके लिये हैं किन्तु शूद्रका धर्म स्वपुरुषार्थके लिये है । अतः इतनी वृत्तियाँ ही भगवान् प्रथम हो जाते हैं ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

विदुरजीके प्रश्न

श्रीशुक उवाच

एवं भुवार्णं मंत्रयं द्रैयात्मनसुतो धुधः ।
प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभापत ॥ १ ॥

विदुर उवाच

ब्रह्मन् कथं भगवतस्मिन्मात्रस्याविकारिणः ।
लीलया चापि युज्यरभिसृजस्य गुणाः क्रियाः ॥ २ ॥
क्रीडायामुद्यमोऽर्मस्य कामधिकीक्षिपान्यत ।
स्वतस्तुतस्य च कथं निवृत्तस्य सदान्यतः ॥ ३ ॥
अस्त्राक्षीद्भगवान् विश्वं गुणमय्याऽऽत्ममायया ।
तथा संस्पापयत्येतद्भयः प्रत्यपिधासति ॥ ४ ॥
दैवत कालतो योऽसाववस्थात स्वतोऽन्यत ।
अविदुसावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥ ५ ॥
भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेण्ववस्थित ।
अमुष्य दुर्मगतत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कृत ॥ ६ ॥
एतस्मिन्ने मनो विद्वन् स्विद्यतेऽज्ञानसङ्कटे ।
तत्र पराजुद विमो कश्चमलं मानसं महत् ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच

स इत्थं चोदितः क्षत्वा तन्त्रजिह्वामुना मुनि ।
प्रत्याह भगवन्निव अप्यभिष गतस्तथ ॥ ८ ॥

मैत्रेय उवाच

सेष भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ।
ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्यण्यमुत बन्धनम् ॥ ९ ॥
येदयेन विनामुष्य पुंस आत्मविपर्ययः ।
प्रतीयत उपद्रुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—मैत्रेयजीका यह भाषण सुनकर बुद्धिमान् व्यासमन्दन विदुरजीने उन्हें अपनी भाणीसे प्रसन्न करते हुए कहा ॥ १ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन् ! भगवान् तो कुछ बोध स्वरूप, निर्भिकार और निर्गुण हैं, उनके साथ भीमासे भी गुण और क्रियाका सम्बन्ध कैसे हो सकता है ॥ २ ॥ शालकमें तो काममा और दूसरोंके साथ खेदनेकी इच्छा होती है, इसीसे वह खेदनेके लिये प्रयत्न करता है, किन्तु भगवान् तो स्वतः नित्यतुल्य—पूर्णकाम और सर्वदा असङ्ग हैं, वे क्रीडाके लिये भी क्यों सङ्कल्प करेंगे ॥ ३ ॥ भगवान्ने अपनी गुणमयी मायासे जगत्की रचना की है, उसीसे वे इसका पाठ्य करते हैं और फिर उसीसे संहार भी करेंगे ॥ ४ ॥ जिनके ज्ञानका देश, काल अपना अवस्थासे, अपने-आप या किसी दूसरे निमित्तसे भी कभी व्यय नहीं होता, उनका मायाके साथ किस प्रकार संयोग हो सकता है ॥ ५ ॥ एकमात्र ये भगवान् ही समस्त क्षेत्रमें उनके साक्षीरूपसे स्थित हैं, फिर इन्हें दुर्भाग्य या किसी प्रकारके कर्मजनित क्लेशकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ॥ ६ ॥ भाग्य ! इस ज्ञान-सङ्कटमें पक्कर मेरा मन बड़ा स्थिर हो रहा है, आप मेरे मनके इस महान् मोहको क्या करके दूर कीजिये ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तत्त्वज्ञिज्ञासु विदुरजीकी यह प्रेरणा प्राप्तकर ज्ञानाश्रित मैत्रेयजीने भगवान्का स्मरण करते हुए मुसकराते हुए कहा ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—जो ज्ञाता सबका स्वामी और सर्वथा मुक्तस्वरूप है, वही दीनता और बन्धनको प्राप्त हो—यह बात युक्तिविरुद्ध अवश्य है, किन्तु वस्तुतः यही तो भगवान्की माया है ॥ ९ ॥ जिस प्रकार सज्ज देखनेवाले पुरुषको अपना सिर कटमा आदि व्यापार न होनेपर भी ज्ञानान्धके कारण सत्यवद् भासते हैं, उसी प्रकार इस जीवको बन्धनादि न होते हुए भी अज्ञानवश

यथा जले चन्द्रमस कम्पादिस्तत्सोऽगुण ।

दृश्यतेऽस्यपि द्रष्टुर्मात्मनोऽनात्मनो गुण ॥११॥

स वै निर्विधर्मेण वासुदेवानुकम्पया ।

भगवन्मक्तियोगेन तिरोधत्त धनैरिह ॥१२॥

यदन्दिषापरामोऽथ द्रष्टात्मनि परं हरो ।

विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसृप्तस्येव कृत्स्नाश्च ॥१३॥

अक्षेपसकलशून्यम

विधत्त

गुणानुवाचभ्रवण

सुरारेः ।

कृतः

पुनस्तत्परम्पराविन्द

परागसेवारतिरात्मलब्धा

॥१४॥

विदुर उवाच

मंछिम सञ्जयो मर्षं तव श्रुतासिना विभो ।

उभयप्रापि भगवन्मनो मे सम्प्रधावसि ॥१५॥

माध्वसद्वद् व्याहृतं विद्वद्भात्ममायायन हरे ।

आभात्यपार्थ निर्मूलं विषमूल न येद्वचहिः ॥१६॥

यस्य मृतमा लाक यस्य युद्धेः पर गत ।

ठागुर्भो सुखमयसं ह्निम्य यन्तरितो जन ॥१७॥

अर्थाभाय विनिमित्त्य प्रतीतस्यापि नात्मन ।

तां चापि युष्मद्वर्णनसमयाहं पराणुद ॥१८॥

यस्म्यप्या भगवतः कृत्यस्य मधुद्विष ।

रतिरात्मा भवसाय पादयार्प्यमनाञ्च ॥१९॥

भास रहे हैं ॥ १० ॥ यदि यह कहा जाय कि मि
ईश्वरमें इनकी प्रतीति क्यों नहीं होती, तो इसका उत्तर
यह है कि जिस प्रकार जलमें होनेवाली कम्प वापि
क्रिया जलमें दीखनेवाले चन्द्रमाके प्रतिबिम्बमें न होने
भी मासती है, वाक्याशय चन्द्रमामें नहीं, उसी प्रकार
देहाभिमान की भी देहके सिध्दा धर्मोंकी प्रतीति
होती है, परमात्मामें नहीं ॥ ११ ॥ सिध्दा मगधसे धर्मों
आचरण करनेपर मगधतत्त्वासे प्राप्त हुए मक्तियोगके
द्वारा यह प्रतीति धीरे-धीरे निवृत्त हो जाती है ॥ १२ ॥
जिस समय समस्त इन्द्रियों विषयोंसे हटकर सभी
परमात्मा श्रीहरिमें निश्चलभावसे स्थित हो जाती है, उस
समय गाढ़ निद्रामें सोये हुए मनुष्यके समान भीमके
रुग्-रूपेवादि सारे क्लेश सवषा नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥
श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन एवं श्रवण क्लेशों से परागसे
शान्त कर देता है, फिर यदि हमारे हृदयमें उनके
चरणकमलकी रजके सेवनका प्रेम जग पड़े, तब तो
कहना ही क्या है ॥ १४ ॥

विदुरजीने कहा—मगध ! आपके मुखमुक्त
वचनोंकी सलवारसे मेरे सन्देह छिन्न-भिन्न हो गये हैं ।
जब मेरा चित्त मगधानुकी सत्तन्त्रता और जीवकी स-
त्तन्त्रता—दोनों ही विषयोंमें स्वयं प्रवेश कर रहा है ॥ १५ ॥
निद्रा ! आपने यह बात बहुत ठीक कही कि जीवमें
जो क्लेशानुकी प्रतीति हो रही है, उसका कारण
केवल मगधत्वकी माया ही है । यह क्लेश सिध्दा एवं
निर्मूल ही है, क्योंकि इस विषयका मूल कारण ही मयके
अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ १६ ॥ इस संसारमें दो ही
प्रकारके लोग सुखी हैं—या तो जो कल्पित सु-
(ज्ञानमगध) हैं, या जो मुक्ति आदिसे जनीत श्री-
मगधानुकी प्राप्त कर चुके हैं । बीचकी धर्मीये संशयानु
योग तो दुःख ही भोगते रहते हैं ॥ १७ ॥ मगध !
आपकी कृपासे मुझमें निश्चय हो गया कि ये अनम-
यार्थ वस्तु हैं नहीं, कल्प प्रतीति ही होते हैं । जब
मैं आपकी चरणोंकी सेवाके प्रभावसे उस प्रतीतिमें भी
हटा हूँगा ॥ १८ ॥ इन श्रीचरणोंकी सेवामें निश्चिन्त
मगधानु श्रीमधुगानक चरणकमलोंमें उपाय प्रेम और
आनन्दकी बुद्धि होती है, जो आनन्दमगध के चरणों

दुरापा अल्पतपस सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ।

यत्रोपगीयते नित्य देवदत्तो जनार्दन ॥२०॥

सृष्ट्याग्र महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् ।

तेभ्यो विराजमुद्बृहत्प तमनु प्राविशद्विभु ॥२१॥

यमादुराण पुरुष महत्साहस्यरूपाहुक्म् ।

यत्र विश्व इम लोका सविक्राम समामते ॥२२॥

यस्मिन् दशत्रिंश प्राण सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिभुत् ।

स्वयेरितो यतो वर्णास्तद्विभूतीर्षदस्य नः ॥२३॥

यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नष्टुभि सह गोत्रजै ।

प्रजा विचित्राकृतय आसन् याभिरिद ततम् ॥२४॥

प्रजापतीनां स पतिश्चकल्पे कान् प्रजापतीन् ।

सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनुन्मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥

एतेषामपि वंशान्श्च वंशानुचरितानि च ।

उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मन्नासते ॥२६॥

तेषां मर्त्यां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय ।

तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्रिणाम् ।

वद न सगमव्यूहं गार्मस्वेदद्विजाद्विदाम् ॥२७॥

गुणावतारविंशस्य सर्गमित्यप्यथाथयम् ।

सृजत आनिवामस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥२८॥

वर्णाधमविभागांश्च रूपशीलसभाषत ।

अपीनां जन्मकर्मदिधेदस्य च विकर्षणम् ॥२९॥

नाश कर देती है ॥ १९ ॥ महात्माके भगवत्प्राप्तिके साक्षात् मार्ग ही होते हैं, उनके यहाँ सर्वदा देवदेव श्रीहरिके गुणोंका गान होता रहता है, अल्पपुण्य पुरुष को उनकी सेवाका अवसर मिश्रता अल्पन कठिन है ॥ २० ॥

भगवन् । आपने कहा कि सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान्ने कमश महदादि तत्त्व और उनके विकारोंको तत्त्वक कर उनके अंशोंसे विराट्को उत्पन्न किया और इसके पश्चात् वे स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गये ॥ २१ ॥ उन विराट्के हजारों पैर, जोड़ें और नई हैं, उन्होंने वेद आदिपुरुष कहते हैं, उन्होंने य सब लोक वित्तुत्-रूपसे स्थित हैं ॥ २२ ॥ उन्होंने इन्द्रिय, विषय और इन्द्रियामिमांसी देवताओंके सहित दस प्रकारके प्राणोंका जो इन्द्रियबल, मनोबल और शारीरिक बलरूपमें तीन प्रकारके हैं—आपने वर्णन किया है और उन्होंने ब्रह्मणादि वर्ण भी उत्पन्न हुए हैं । अब आप सुन उनकी ब्रह्मादि विभूतियोंका वर्णन सुनाइये—जिनसे पुत्र पौत्र, नाती और कुटुम्बियोंके सहित तरह-तरहकी प्रजा उत्पन्न हुई और उससे यह सारा ब्रह्माण्ड भर गया ॥ २३ २४ ॥ वह विराट्ब्रह्मादि प्रजापतियोंका भी प्रभु है । उसने क्लिन्-क्लिन् प्रजापतियोंको उत्पन्न किया तथा सग, अनुसर्ग और मन्वन्तरोंके अधिपति मनुओंकी भी किन्तु क्रमसे रचना की ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी ! उन मनुओंके वंश और वंशधर गुणाओंके चरित्रोंका, पृथ्वीके ऊपर और नीचेके लोकों तथा भूवर्त्मके विस्तार और स्थितिका भी वर्णन करिजिये । तथा यह भी बताइये कि तिर्यक्, मनुष्य, देवता, सरीसृप (सर्पदि रेंगनेवाले जन्तु) और पक्षी तथा जलपुञ्ज, स्वेदज, अण्डज और उन्नज—ये चार प्रकारके प्राणी किन्तु प्रकार उत्पन्न हुए ॥ २६-२७ ॥ श्रीहरिने सृष्टि करते समय भगवत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये अपने गुणाकार ब्रह्मा, विष्णु और महादेवरूपसे जो कल्याणकारी रक्षक हैं, उनका भी वर्णन करिजिये ॥ २८ ॥ वेद, आचरण और समाजके अनुसार वर्गाग्रमका विभाग, अधिवेदि-अभ्य-कर्मणि, वेदोंका विभाग, यज्ञोंके विस्तार योगका मार्ग ज्ञानमार्ग और उसका माचन मान्यमाग तथा भगवान्के कहे हुए नारदाद्यरथ आदि तन्त्रशास्त्र,

यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ।

नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥३०॥

पास्तम्बपथवैपम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् ।

जीवस्य गतयो याम् यावत्तीर्गुणकर्मजाः ॥३१॥

धर्मार्थकाममाश्वाजां निमिषान्यविरोधतः ।

वार्ताया दम्बनीतेषु धृतस्य च विधिं पूषक् ॥३२॥

भ्रातृस्य च विधिं ब्रह्मन् पितृणां सर्गमेव च ।

ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥३३॥

दानस्य तपसो वापि चञ्चेष्टापूर्वयोः फलम् ।

प्रवासस्यस्य यो धर्मो यच्च पुंस उतापदि ॥३४॥

येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः ।

सम्प्रसीदति त्वा येपामेतदाख्याहि चानघ ॥३५॥

अनुव्रतानां शिष्यणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ।

अनाष्टमपि धृष्टगुरुवो दीनवत्सलाः ॥३६॥

तत्त्वानां भगवन्स्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रम ।

तत्रेमं क उपासीरन् क उ म्विदनुक्षेत् ॥३७॥

पुरुषस्य च संव्यानं स्वरूपं वा परस्य च ।

ज्ञानं च नगमं यद्यदगुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥३८॥

निमिषानि च तस्येह श्रोक्तान्यनघ हरिभिः ।

स्वतो ज्ञानं कृतं पुतां भक्तिवैराग्यमेव वा ॥३९॥

एतन्मे पृच्छतः प्रभान् हर कर्मविबित्तया ।

मूढि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टसमुपः ॥४०॥

ममैवेदाद्य यथाय तपा दानानि चानघ ।

जीवाभयप्रदानस्य म हृषीरन् कलामपि ॥४१॥

विभिन्न पास्तम्बमार्गोक्ति प्रचारसे होनेवाली विस्तृत, नीचवर्णकी पुरुषसे उच्चवर्णकी भीमें होनेवाली संव्रमोक्ति प्रकार तथा मित्र-मित्र गुण और कर्मोक्ति कारण जीवकी जैसी और जितनी गतियाँ होती हैं वे सब हमें सुनाइये ॥ २९ ३१ ॥

ब्रह्मन् ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिसे परस्पर अन्विषी साधनोंका वाणिज्य, दम्बनीनि और शास्त्रध्वजकी विधियोंका, भ्रातृकी विविध, पितृगणोंकी सुष्ठिका तथा कलत्रचक्रमें ब्रह्म, नक्षत्र और तारागणकी स्थितिका भी अलग-अलग कर्मन करीबिये ॥ ३२ ३३ ॥ दान, तप तथा इष्ट और पूर्ण कर्मोंका क्या फल है ? प्रवास और आपत्तिके समय मनुष्यका क्या धर्म होता है ? ॥ ३४ ॥ निष्ठाप मैत्रेयनी ! धर्मके मूल कारण श्री-जनार्दन भगवान् किस आचरणसे सन्तुष्ट होते हैं और किनपर अनुग्रह करते हैं, यह वर्णन करीबिये ॥ ३५ ॥ द्विजवर ! दीनवत्सल गुरुजन अपने अनुगत शिष्यों और पुत्रोंको बिना पूछे भी उनके हितकी बात कतछा निया करते हैं ॥ ३६ ॥ भगवन् ! उन महाददि तत्त्वोंका प्रलय कितने प्रकारका है ? तथा जब भगवान् योग निश्रम्ये शयन करते हैं, तब उनमेंसे कौन-कौन तत्व उनकी सेवा करते हैं और कौन उनमें स्वीन हो अते हैं ? ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्ण तत्त्व, परमेश्वरका स्वरूप, उप-निषत्-प्रतिपादित ज्ञान तथा गुरु और शिष्यका पारस्परिक प्रयाजन क्या है ? ॥ ३८ ॥ पवित्रात्मन् ! निजनीने उस ज्ञानकी प्राप्तिसे क्या-क्या उपाय कल्पये हैं ? क्योंकि मनुष्योंको ज्ञान, भक्ति अथवा वैराग्यकी प्राप्ति अपने-आप तो हो नहीं सकती ॥ ३९ ॥ ब्रह्मन् ! माया-मोहके कारण मेरी विचार-दृष्टि मूढ़ हो गयी है । मैं व्यग्र हूँ, आप मेरे परम सुहृद् हैं अतः श्रीहरिलीलाका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे मैंने जो प्रश्न किये हैं, उनका उत्तर मुझे दीजिये ॥ ४० ॥ पुण्यमय मैत्रेयजी ! भगवत्तत्त्वके उपदेशश्राव जीवको जन्म-मृत्युसे छुड़ाकर उसे अमय कर देनेमें जो पुण्य होता है, समस्त वेदोंके अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानानिसे होनेवाला पुण्य उस पुण्यक सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच

स इत्थमाष्टपुराणकल्पः
 कुरुप्रधानेन मुनिप्रधान ।
 प्रवृद्धर्षो भगवत्कथायां
 सञ्शोदितस्त प्रहसन्निवाह ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! जब कुरुप्रोष्ठ विदुरजीन मुनिवर मैत्रेयजीसे इस प्रकार पुराण कियक प्रथम किय, तब भगवत्कथके लिये प्रेरित किये जानेक कारण वे बड़े प्रसन्न हुए और मुसकराकर उनसे कहने लगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
 तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

ब्रह्माजीकी उत्पत्ति

द्वितीय उवाच

सत्सेवनीयो षत पूर्वशो
 यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।
 बभूविषेहाजितकीर्तिमालां
 पदे पदे नूतनयस्यमीक्ष्यम् ॥ १ ॥
 मोऽहं नृणां सुहृत्सुखाय दुःखं
 महद्गतानां विरमाय तस्य ।
 प्रवर्तये भागवतं पुराणं
 यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥ २ ॥
 आमीनमुन्या भगवन्तमाद्यं
 मङ्कर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ।
 विविरमवस्तत्त्वमत परम्
 कुमारमुखा मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥ ३ ॥
 म्यमेव धिष्ण्यं बहु मानवन्तं
 य वासुदेवाभिधमामनन्ति ।
 प्रत्यगृतास्वाम्युज्जयोऽशमीय
 दुन्मीलयन्तं विपुषोदयाय ॥ ४ ॥
 म्वपुन्युदार्द्रं म्वज्जगत्कार्प
 रुपस्पृगन्तभरणोपधानम् ।
 पप यदर्न्त्यदिगजकन्या
 मप्रम नानावलिभिर्पराधा ॥ ५ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! आप भगवत्कर्त्तों में प्रधान लोकपाल यमराज ही हैं, आपके पूर्ववर्षमें जन्म लेनेके कारण वह वर्ष साधुपुरुषोंके लिये भी सेव्य हो गया है । धन्य हैं ! आप निरन्तर पद-पदपर श्रीहरिकी कीर्तिमयी मालाकर नित्य नूतन बना रहे हैं ॥ १ ॥ अब मैं, क्षुद्र विषय-सुखकी कामनासे महान् दुःखको मान लेनेवाले पुरुषोंका दुःखनिवृत्तिके लिये, श्रीमद्भागवतपुराण प्रारम्भ करता हूँ—जिसे स्वयं श्रीमद्भूयभगवान् ने सनकाश्रि श्रियोंको सुनाया था ॥ २ ॥

अच्छे ज्ञानसम्पन्न आदिदेव भगवान् सङ्कर्षण पाताम्योक्तमें विराजमान थे । मनकुमार आदि श्रियोंने उनसे परम पुरुषात्तम ब्रह्मरा तत्त्व जाननेके लिय प्रश्न किया ॥ ३ ॥ उस समय शेषजी अज्ञ आधम्यरूप उन परमात्माकी मानसिक पूजा कर रहे थे, बिनकर वे वासुदेव नामसे निरूपण करते हैं । उनके कर्म-कला-मराम नेत्र बंध थे । प्रश्न करनेपर सनकुमारानि क्षामीजनोक्त आनन्दक लिय उन्होंने अथस्तुम नरोसे दया ॥ ४ ॥

मनकुमार आदि श्रियोंने मन्त्रिकीक जपसे भोग अन जगमपहसे उनके चरणोंकी श्रीकीर्त रूपमें स्तित कर्मरा हरण किया दिगम्बर नागराजकुमारियों अभिज्ञित करती प्राप्ति लिय प्रमूर्ख अनको उपहार-नामदियेने पूजा करती हैं ॥ ५ ॥

स पञ्चकोशः सहस्रोदतिष्ठत्
 कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ।
 खरोचिषा तत्सलिलं विशालं
 विद्योत्पन्नमर्कं श्वात्मयोनि ॥१४॥
 तल्लोकपर्वं स उ एव विष्णुः
 प्राणीविद्यत्सर्वगुणात्ममासम् ।
 तस्मिन् स्वयं वेदमणो विभाता
 स्वयम्भुव य स्रजदन्ति सोऽमृत ॥१५॥
 तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकाया
 मवसितो लोकमपश्यमानः ।
 परिक्रमन् ध्योति विवृत्तनेत्र
 भ्रूतारि छेमेऽनुदिष्टं मुत्तानि ॥१६॥
 तस्यापुमान्तमसनावधूर्णं
 जलामिषकात्सलिलाद्विरूढम् ।
 उपाभित कञ्जमु लोकतत्त्वं
 नात्मानमद्वाविददादिदेव ॥१७॥
 क एव योऽसावहमम्बपृष्ठ
 एतत्तुतो वाग्जमनन्यदधु ।
 अन्ति क्षधस्तादिह किञ्चनैत
 दधिष्ठित यत्र तता नु मान्यम् ॥१८॥
 स इत्थमुदीक्ष्य तदम्बनाल
 नौडीभिरन्तजलमाविवेश ।
 नावागातमम्बनानलान्न
 नाभिं विचिन्वन्तदधिन्ताज ॥१९॥
 तमन्वपार विदुरान्ममग
 विचिन्वताऽमृतमुमहाग्निगमि ।
 या दहमात्रां भयभीरयाण
 परिधिणान्पापुरजस्य हृति ॥२०॥
 तता निरुषाऽप्रतिलम्बकाम
 स्वधिष्यमासाद्य पुन स देव ।
 अनैवितसावनिवृषचित्ता
 न्यपीददाम्बुसमाधियाग ॥२१॥
 कालेन साऽज पुष्पायुषाभि
 प्रवृषयागन विरूढयाध ।

कर्मशक्तिको जाग्रत् करनेवाले कालके द्वारा विष्णुभावान्-
 धी नामिते प्रकट हुआ वह सूक्ष्मस्तत्र कमलकोशके
 रूपमें सहसा ऊपर उठ्य और उसने सूर्यके समान
 अपने तेजसे उस अपार जलराशिको देदीन्यमान कर
 दिया ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण गुणोंको प्रकाशित करनेवाले
 उस सर्वलोकमय कमलमें वे विष्णुभगवान् ही अन्तर्धामी-
 रूपसे प्रविष्ट हो गये । तब उसमेंसे बिना पड़ाये ही
 अथ सम्पूर्ण वेदोंको जाननेवाले साक्षात् वेदमूर्ति श्री-
 ब्रह्माजी प्रकट हुए, जिन्हें लोग स्वयम्भू कहते
 हैं ॥ १५ ॥ उस कमलकी कर्णिका (गरी) में बैठे
 हुए ब्रह्माजीको जब कोई लोक दिखायी नहीं दिया,
 तब वे ओंसे फाड़कर आकाशमें चारों ओर गर्दन घुमा
 कर देखने लगे, इससे उनके चारों दिशाओंमें चार मुख
 हो गये ॥ १६ ॥ उस समय प्रलयकालीन पवनके
 पपेकोंसे उछलती हुई जलकी लहरेंमाथकोंके कारण उस
 जलराशिसे ऊपर उठे हुए कमलपर विराजमान आदिदेव
 ब्रह्माजीको अपना तथा उस लोकतत्त्वमय कमलका
 कुछ भी रहस्य न जान पड़ा ॥ १७ ॥

वे सोचने लगे, 'इस कमलकी कर्णिकापर बैठ
 हुआ मैं कौन हूँ ! यह कमल भी बिना किसी अन्य
 आधारके जड़से बढ़सि उत्पन्न हो गया ? इसका नीचे
 अवश्य कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिये, जिसके आधारपर
 यह स्थित है ? ॥ १८ ॥

ऐसा सावकत्र ने उस कमलकी नाटके सूत्र छिद्रों-
 में होकर उस जड़में घुसे । किन्तु उस नाटके आधार
 को खोजने-खोजते भामिनेश्वर समीप पहुँच जानेपर
 भी वे उसे पा म मके ॥ १९ ॥ विदुरजी ! उम
 अपार अन्धकारमें अनन उत्पत्ति-म्यानको खोजने-खोजन
 ब्रह्माजीको बहुत कष्ट बीत गया । यह कष्ट ही भगवान्
 का चक्र है, जो प्राणिपोंका मयपीत (करता हुआ उनके
 आयुका क्षीय) करता रहता है ॥ २० ॥ अन्तमें रिक्तमनारथ
 हो वे बहोमें लगे आये और पुन अनन आधारभूत
 कमलपर घटकर धीरे-धीरे प्राणापुषा दीनकर भितका
 नि सहकर किया और मुनागिमें स्थित हो गये ॥ २१ ॥ इस
 प्रकर पुरुरकी पूर्ण आयुका बगल पराजय (अर्पण
 'विष्य सो वर्जक) जलकी तरह धर्ममयाग करनेत

सुश्री

६

२३४

स्वयं तदन्तर्द्वैतव्यमस-

मपश्यतापश्यत यम इव ॥२३॥

मुवातगौरास्तसेवभोग

पर्यङ्क एकं दुर्लभं ध्यानम् ।

कचत्तपत्रापुवमूर्धरत्न-

दुर्मिर्द्वैतान्तदुगान्ततणे

प्रेक्षा विपन्तं हरितोपलभेः

तन्म्याग्रनीवेककम्पमूर्ध्नाः ।

रत्नोद्धारैवित्तिमानस

वनज्जलो वेधुधुवाहमिपाक्षेः ॥२४॥

आवमलो विस्तरः स्वमान-

वेहेन लोकप्रवर्धये ॥

विचित्रदिश्वामरणांशुध्वनी

कुतभिवापामितैपदेहसु ॥२५॥

पुंसां स्वकामाय विचित्रमार्गै

रम्यर्चतां कामधुवाहमिपाक्षम् ।

प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दु

मयूखभिभाह्रुलिचालयन् ॥२६॥

मुखेन लोकार्तिहरसितेन

परिस्फुरत्कुण्डलमभितेन ।

शोभायितेनाभरविम्बभासा

प्रस्पृष्टपटं सुनसेन सुध्वा ॥२७॥

कदम्बकिञ्जल्कपिञ्जलाससा

स्वर्लकुटं मेखलया नितम्बे ।

दारेण चानन्तधनेन वस्त

भीषत्सपथं मूलवस्तमेन ॥२८॥

तत्त्वज्ञानेन ज्ञान प्राप्त हुआ, तब उन्होंने अपने
 कथि-कथि, जिसे वे पहले सोचनेपर ही नहीं
 पाये थे, अपने ही अन्तःकरणमें प्रकटित
 वेला ॥ २२ ॥ उन्होंने देखा कि उस प्रत्यक्ष
 ब्रह्ममें सेवकीकी कमकनाकसदृश गौर और बिसाल भी
 की शम्पापर पुष्पोत्तम भावान् बनेले ही लेते
 हैं । शेलजीके दस हजार फण लकके समान फैले
 हैं । उनके मस्तकपर किरीट शोभमय ॥ २३ ॥
 जो मणियों जड़ी हुई हैं, उनकी कान्तिसे चारों
 का अन्वयर दूर हो गया है ॥ २४ ॥ वे अपने
 शरीरकी आभासे मरकतमणिके पर्वतकी शोभनके बराबर
 कर रहे हैं । उनकी कमरका पीतपट पर्वतके प्रा
 देशमें अपने हुए सायक्याहके पीछे-पीछे चम्कते म
 की आभाको मलिन कर रहा है, सिरपर सुशो
 भपूर्णमुकुट सुवर्णमय शिखरोंका मान मर्दन कर रहा है
 उनकी वनमाला पर्वतके सम, जम्बपात, कोवि
 पुष्पोंकी शोभाको परस्त कर रही है तथा उन
 मुखदण्ड वेणुदण्डका और चरण हृद्योंका सिल्
 करते हैं ॥ २४ ॥ उनकी वह श्रीविष्णु अपने परिष्क
 से उन्हाई-धौहाईमें त्रिलोकिका संभ्रम किये हुए हैं ।
 अपनी योग्यसे विचित्र एवं दिव्य ब्रह्मामूर्णोंकी शोभ
 को सुशोभित करनेवाला होनेपर भी पीतम्बर धार
 अपनी केय-मूषासे सुसज्जित है ॥ २५ ॥ अपनी
 अभिवापाकी पूर्विके स्त्रिये मिन-मिन मगरी
 पूजा करनेवाले भक्तजनोंको कृपापूर्वक अपने भक्तवत्स
 कल्पतरु चरणकमलोंका दर्शन दे रहे हैं, जिनके मुख
 अंगुष्ठिदल मलयजकी अश्रिबन्धसे लज्जा-लज्जा स्पर्
 भगमते रहते हैं ॥ २६ ॥ सुन्दर नासिका अनुपम
 वर्षा योहि, कानोंमें सिक्कमिखाते हुए कुण्डलोंकी शोभ
 विम्बाफणके समान ललक-ललक अचरोंकी कान्ति
 एवं लोकार्तिहारी मुखकानसे युक्त मुखारविन्दके
 द्वारा वे अपने उपासकोंका सम्मान—अभिमान कर
 रहे हैं ॥ २७ ॥ वस्तु । उनके नितम्बदेशमें कदम्ब
 कुसुमकी केसरके समान पीतवज्र और सुवर्णमयी मेखल
 सुशोभित है तथा वक्ष स्थलमें अमूल्य हार और सुनहरी
 रेखावाले श्रीकस्तुरिहरी अर्ध शोभा हो रही है ॥ २८ ॥

परार्णकेयूरमणिप्रवेक्ष-

पर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशास्त्रम् ।

अध्वक्तमूलं सुधनाङ्गप्रियेन्द्र

महीन्द्रमोगैरभिधीतवस्तुम् ॥२९॥

चराचरोक्ते भगवन्महीप्र

महीन्द्रवधुं सलिलोपगूढम् ।

किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्ग-

माविर्मन्त्रकौस्तुभरत्नगर्मम् ॥३०॥

निधीतमाज्ञायमधुघृतभिषा

स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ।

सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः

परिक्रमत्प्राधानिकैर्बुरासदम् ॥३१॥

तर्षेव तन्माभिसरःसरोक्ष-

मात्मानमम्भः श्वसनं वियच्छ ।

ददर्श देवो जगतो विभाता

नात परं लोकविसर्गदृष्टि ॥३२॥

स कर्मबीजं रत्नसोपरक्तः

प्रज्ञा सिंसुष्टभियदेव हृष्टम् ।

अस्तौदिसर्गाभिमुखस्तमीक्य

मम्यक्तवर्मन्यभिषेक्षितात्मा ॥३३॥

ये अध्वक्तमूल चन्दनवृक्षके समान हैं । महामुह्य केयूर और उत्तम-उत्तम मणिगोसे सुशोभित उनके विशाल गुणदण्ड ही मानो उसकी सहस्रों शास्त्रों हैं और चन्दनके वृक्षोंमें जैसे बड़े-बड़े सोंप छिपते रहते हैं, उसी प्रकार उनके कर्णोक्ते श्रेष्ठीके कर्णोंमें छिपे रहता है ॥ २९ ॥ वे नागराज अमन्तके वस्तु भीनसायण ऐसे जान पड़ते हैं, मानो कोई जलसे घिरे हुए पर्वतजब ही हों । पर्वतपर जैसे अनेकों जीव रहते हैं, उसी प्रकार वे सम्पूर्ण चराचरके आश्रय हैं, शेषजीके कर्णोंपर जो सहस्रों मुकुट हैं वे ही मानो उस पर्वतके सुवर्णमण्डित शिखर हैं तथा वक्ष स्वर्णमें विराजमान कौस्तुभमणि उसके गर्भसे प्रकट हुआ रहता है ॥ ३० ॥ प्रभुके गलेमें वेदरूप मीनोंसे गुञ्जायमान अपनी कीर्ति-मयी कनमाळा विराज रही है, सूर्य, चन्द्र, वायु और अग्नि आदि देवताओंकी भी आपतक पहुँच नहीं है तथा त्रिगुणमें बेरोक-टोक विचरण करनेवाले सुदर्शन-बाष्पादि आलुष भी प्रभुके आसपास ही घूमते रहते हैं उनके छिये भी आप अत्यन्त दुर्बल हैं ॥ ३१ ॥

तब विचरचनाकी इच्छावाले लोकविभाता ब्रह्माभीने भगवान्‌के नामिसरोवरसे प्रकट हुआ वह कमल, जल, आकाश, वायु और अपना शरीर—केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, इनके सिवा और कुछ उन्हें दिखायी न दिया ॥ ३२ ॥ रजोगुणसे व्याप्त ब्रह्माजी प्रजाकी रचना करना चाहते थे । जब उन्होंने सृष्टिके कारणरूप केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, तब लोकरचनाके छिये उत्सुक होनेके कारण वे अविस्मयान्ति श्रीहरिमें चित्त लगाकर उन परमपूजनीय प्रभुकी स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां तृतीय-

स्कन्धेऽध्यायेऽध्याय ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्माजीद्वारा भगवान्की स्तुति

नमोवाच

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुधिरात्मनु देहभावां
 न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवयवम् ।
 नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तर्कं ह्यहं
 मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ १ ॥
 रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन
 स्रग्भक्तिवृत्तमसः सदनुग्रहाय ।
 आदौ गृहीतमवतारकृतैकबीज
 यन्नामिपद्यमनन्तदहमाविरासम् ॥ २ ॥
 नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप
 मानन्दमात्रमविकल्पमविद्वद्वर्षः ।
 पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमारमन्
 भूतेन्द्रियात्मकमदत्तं तपाभितोऽसि ॥ ३ ॥
 तदा इदं ध्रुवनमङ्गलमङ्गलाय
 ध्याने स नो दक्षितं त तपासकानाम् ।
 तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्य
 योऽनाद्यतो नरकभातिभरसत्प्रसङ्गैः ॥ ४ ॥
 ये तु त्वदीयधरणाम्भुजकोष्ठगर्भं
 विद्यन्ति कर्णविभरैः श्रुतिवाचनीतम् ।
 भक्त्या गृहीतधरणः परया च तेषां
 नार्पेपि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥
 तावद्वयं त्रिभिर्गोहेऽसुहृदिमित्रं
 गोक स्तुता परिभवाविपुलबलोभः ।
 तावन्मतेत्यसदवग्रह आर्तिमूल
 यावन्नेतद्विभक्तं प्रवृणीतलोकः ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो ! जान बहुत समयके बाद
 मैं आपके जान सका हूँ । वही । कैसे दुर्मय्यकी
 बात है कि देहधारी जीव आपके स्वरूपको नहीं जान
 पाते । मगन् । आपके सिवा और कोई वस्तु नहीं
 है । जो वस्तु प्रतीत होती है, वह भी स्वरूपतः सत्य
 नहीं है, क्योंकि मायाके गुणोंके क्षुब्ध होनेके कारण
 केवल आप ही अनेकों रूपोंमें प्रतीत हो रहे हैं ॥ १ ॥
 देव ! आपकी चित् शक्तिके प्रकाशित होनेके कारण
 अज्ञान आपसे सदा ही दूर रहता है । आपका वह
 रूप, जिसके नाम-कमलसे मैं प्रकट हुआ हूँ, ऐतनों
 कल्पार्थोंका मूल कारण है । इसे आपने संपूर्णरूप
 रूपा करनेके लिये ही पहले-पहल प्रकट किया है ॥ २ ॥
 परमात्मन् ! आपका जो आनन्दमात्र, मेरुद्वित, अल्प
 तेजोमय स्वरूप है, उसे मैं इससे भिन्न नहीं समझता ।
 इसलिये मैंने विश्वकी रचना करनेवाले होनेपर भी
 विश्वास्तित आपके इस अद्वितीय रूपकी ही शरण ली
 है । यही संपूर्ण मूल और इन्द्रियैक्य भी अभिन्न
 है ॥ ३ ॥ हे विश्वकल्याणमय ! मैं आपका उपसर्क
 हूँ, आपने मेरे हितके लिये ही मुझ ध्यानें कला
 यह रूप दिखाया है । जो पापहन्ता विश्वासक जीव
 हैं, वे ही इसका अनादर करते हैं । मैं तो आपको
 इसी रूपमें बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ मेरे
 सामीप्य । जो छेग वेदरूप बापसे कापी हुई आपके
 धरणरूप कमलकोशकी गम्भीर अनेक कर्णपुटोंसे प्रथम
 करते हैं, उन अपने मच्छत्रमोंके हृदय कमलसे धार
 कभी दूर नहीं होते; क्योंकि ये परमात्मिकरूप हीरसे
 आपके पादपद्मोंके नीचे होते हैं ॥ ५ ॥ जबतक
 पुरुष आपके अमयप्रद धरणपरिन्दोक्त का प्रपन्न नहीं
 होता तभीतक उसे धन, पर और कष्टजनक कारण
 प्राप्त होनेवाले मय, शोक, छाया, दीनता और
 अन्यन्त खाम आदि सताते हैं और तभीतक उसे मैं
 मेरेपनका दुराग्रह रहता है, जो दुःस्वप्न एकमात्र कारण

देवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गा
 स्पर्शानुमोपशमनाद्विमुक्तेन्द्रिया ये ।
 कुर्वन्ति काममुखलेखलबाध दीना
 लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि क्षमन् ॥७॥
 क्षुत्तृन्निष्ठातुभिरिमा मुदुर्यमानाः
 शीतोष्णबातवर्षैरितरेतराश्च ।
 कामाग्निनाम्पुत रुषा च मुदुरीरेण
 सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥
 यावत्पूर्यस्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थं
 मायाबलं भगवतो जन ईक्ष पश्येत् ।
 तावन्न संसृष्टिरसौ प्रतिसंक्रमेत
 व्यर्थापि दुःस्वनिवर्हहृतीक्रियार्था ॥९॥
 ब्रह्मपातुवार्तकरणा निशि नि क्षयाना
 नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।
 देवाहतावर्चना ऋषयोऽपि देव
 पुष्पत्रसङ्गविमुक्ता इह संसरन्ति ॥१०॥
 त्वं भावयोगपरिमादितहस्तस्रोत्र
 आन्ते क्षुतेदितयवो ननु नावर्तुस्तम् ।
 यद्यद्विधा तदरुणाम विभावयन्ति
 तच्चद्रुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥११॥
 नातिप्रसीदति तपोपचितोपचारे
 राराधित सुरगणैर्वि ब्रह्मभूमैः ।
 यत्सर्वभूतदययासदलम्ययैको
 नानानेनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥१२॥

६ ॥ ८ ॥ जो लोग सब प्रकारके अमङ्गलोंको नष्ट
 करनेवाले आपके अक्षय-क्षीर्तनादि प्रसङ्गोंसे इन्द्रियोंको
 हटाकर वैशम्पय विषय-मुक्के छिये दीन, और मन-ही-
 म्न बाधायित होकर मिरन्तर दुष्कर्मोंमें लगे रहते हैं, उन
 बेचारोंकी मुक्ति देनेके हर की है ॥ ७ ॥ अमुत् ।
 उरुक्रम । इस प्रनाको मूख-व्यास, बात, पित्त, कफ,
 सर्प, गर्मी, हवा और बरसि, परस्पर एक-दूसरेसे तथा
 कामाग्नि और दुःसह क्रोधसे बार-बार कष्ट उठते
 देखकर मेरा मन बड़ा खिन्न होता है ॥ ८ ॥ साम्नि ।
 जबतक मनुष्य इन्द्रिय और विषयरूपी मायाके प्रभावसे
 आपसे अपनेको भिन्न देखता है, तबतक उसके छिये
 इस संसारचक्रकी निवृत्ति नहीं होती । यद्यपि यह
 मिथ्या है, तथापि कर्मफल-भोग्य क्षेत्र होनेके कारण
 उसे नाग प्रकरके दू खोंमें बाँटा रहता है ॥ ९ ॥
 देव ! औरोंकी तो बात ही क्या—जो साक्षात्
 मुनि हैं, वे भी यदि आपके कृपाप्रसङ्गसे विमुक्त रहते हैं
 तो उन्हें संसारमें फँसना पड़ता है । वे दिनमें अनेक
 प्रकारके व्यापारोंके कारण विक्षिप्तचित्त रहते हैं, रात्रिमें
 निद्रामें अवैत पड़े रहते हैं, उस समय भी तरह-तरहके
 मनोरथोंके कारण क्षण-क्षणमें उनकी नींद टूटती रहती
 है तथा दीव्यश उनकी अर्पसिद्धिके सब उद्योग भी
 निष्फल होते रहते हैं ॥ १० ॥ माय । आपका मार्ग
 केवल गुण-अवगणने ही जाना जाता है । आप सिद्धय
 ही मनुष्योंके मत्तियोगके द्वारा परिब्रुत हुए हृदयकमलमें
 निवास करते हैं । पुष्पत्रको प्रभो ! आपके मङ्गलजन
 विस-विस भावनासे आपका चिन्तन करते हैं, उन
 साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके छिये आप बड़ी-बड़ी
 कृपा प्रारण कर रहे हैं ॥ ११ ॥ माङ्ग । आप
 एक हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्त वरणोंमें स्थित
 उनके परम हितकारी अन्तरात्मा हैं । इसलिये यदि
 देवतालोग भी हृदयमें तरह-तरहकी क्रमनाएँ रखकर
 मोक्षि-मोक्षिकी विपुल सामर्थ्योंसे आपका प्रेम भरते
 हैं, तो उससे आप उत्तम प्रसन्न नहीं होते व्रितने सब
 प्राणियोंपर दया करनेसे होते हैं । किन्तु यह सर्वभूत-
 दया असह पुरुषोंको अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १२ ॥ जो

पुंसामतो विनिघर्म्मभिरप्यराधै
 दर्शनेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।
 आराधनं भगवत्तत्त्व सत्किंयार्थो
 धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्विप्रयते न यत्र ॥ १३ ॥
 श्रमस्वरूपमहसैव निपीतमेदं
 मोहाय बोधविपण्याय नमः परस्मै ।
 विश्वोद्भवस्त्वितिलयेषु निमित्तलीला-
 रासाय ते नम इदं चक्रमेश्वराय ॥ १४ ॥
 यस्यावतारगुणकर्मविदम्बनानि
 नामानि येऽपुत्रिगमे विवक्षा गृहन्ति ।
 ते नैकजन्मव्रतमलं सहसैव हिंसा
 संयान्त्यपावृत्तमृतं तमर्जप्रपद्ये ॥ १५ ॥
 यो वा अहं च गिरिच्छम विभुः स्वयं च
 त्विहस्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ।
 भित्त्वा त्रिपाद्ब्रह्म एक उग्रप्ररोह
 त्तास्मै नमो भगवते ध्रुवनक्षत्रमास ॥ १६ ॥
 लोको विकर्म्मनिरत कुण्डले प्रमथः
 कर्मर्षयस्त्वदुदिसे भवदर्पणे स्वे ।
 यस्तामदस्य बलवानिह बीविताशां
 मद्यद्विछन्नरूपनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ १७ ॥
 यसाद्विमेम्पहमपि द्विपरार्धधिष्यथ
 मध्यासितः सकल लोकनमस्कृतं यत् ।

कर्म आपको अर्पण कर दिया जाता है, उसका कर्म
 नाश नहीं होता—बह ब्रह्म हो जाता है । अतः
 माना प्रकारके कर्म—यज्ञ, दान, कठिन तपस्या और
 व्रतादिके द्वारा आपकी प्रसन्नता प्राप्त करना ही मनुष्य-
 का सबसे बड़ा कर्मफल है, क्योंकि आपकी प्रसन्नता
 होनेपर ऐसा कौम फल है जो सुखम नहीं हो
 जाता ॥ १३ ॥ आप सर्वदा अपने स्वरूपके प्रकाश-
 से ही प्राणियोंके भेद-भ्रमरूप अन्वकरण का नाश
 करते रहते हैं तथा ज्ञानके अविघ्नान साक्षात्
 परमपुरुष हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । संसार
 की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके निमित्तसे जो मया-
 की श्रम होती है, वह आपको ही सेवक है, कत-
 आप परमेस्वरको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥
 जो जग प्राणप्राण करते समय आपके अन्तार, गुण
 और कर्मोंको सूचित करनेवाले देवकीमन्दन, जनार्दन,
 कंसनिन्दन आदि नामोंका विवक्ष्य होकर भी उच्छ्रय
 करते हैं, वे अनेकों जन्मोंके पापोंसे तत्काल छूटकर
 मम्यादि आवरणोंसे रहित ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं ।
 आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण लेता
 हूँ ॥ १५ ॥ मयावन् । इस विश्ववृक्षके रूपमें आप ही
 विराजमान हैं । आप ही अपनी मूलप्रकृतिके लीला
 करके जगत्सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये
 मेरे, अपने और मन्त्रादेवताओंके रूपमें तीन प्रबल
 शाखाओंमें विभक्त हुए हैं और फिर प्रजापति एवं
 मनु आदि शाखा-प्रशाखाओंके रूपमें फैलकर बहुत
 विस्तृत हो गये हैं । मैं आपको नमस्कार करता
 हूँ ॥ १६ ॥ मगावन् । आपने अपनी आराधनाको ही
 लोकोंके लिये कल्याणकारी स्वधर्म बताया है, किन्तु
 वे इस औरसे उगाडीन रहकर सर्वत्र विपरीत (निभिद)
 कर्मोंमें लगे रहते हैं । ऐसी प्रमादकी अवस्थामें पड़े
 हुए इन जीवोंकी जीवन-आशाको जो सदा साधन
 रहकर बड़ी शीघ्रतासे काटता रहता है, वह बलवान्
 काल भी आपको ही रूप है मैं उसे नमस्कार करता
 हूँ ॥ १७ ॥ यपि मैं सम्पद्येकत्र अधिष्ठता हूँ,
 जो दो परार्धपर्यन्त रहनेवाला और समस्त लोकोंका

तेपे तपो बहुसर्वोऽवस्तुमान

स्तस्मै नमो भगवतेऽधिमत्वाय सुम्यम् ॥१८॥

तिर्यगानुप्यविमुभादिपुत्रीययोनि

प्राप्तेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सवा यः ।

रेमे निरस्तरितरप्यवरुद्धदेह

स्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

योऽविद्ययाजुपहतोऽपि दशार्धहृष्या

निद्रासुवाह अठरीकृतलोक्षयात्रः ।

अन्तर्बलेऽहिकक्षिपुस्पर्शानुर्कलां

भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विहृषन् ॥२०॥

यन्मामिपद्यमवनादहमासमीहय

लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।

तस्मै नमस्त उदरस्वभवाय योग

निद्रावसानविक्रमलिनेक्षणाय ॥२१॥

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा

सत्त्वेन यन्मुहपते भगवान् भगेन ।

तेनैव मे ऋमनुसृष्टतापयाह

चक्षुष्यामि पूर्ववद्विह प्रणतप्रियोऽसौ ॥२२॥

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या

यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।

तस्मिन् स्वविक्रममिदं सुजतोऽपि चेतो

युद्धीत कर्मश्रमलं च यथा विज्जगाम् ॥२३॥

नाभिहृदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो

विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।

वन्दनीय है, तो भी आपके उस कालरूपसे बरता रहता हूँ । उससे बचने और आपको प्राप्त करनेके छिये ही मैंने बहुत समयतक तरस्या की है । आप ही अवियङ्गरूपसे मेरी इस तपस्याके साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥ आप पूणकर्म हैं, आपको किसी विषयसुखकी इच्छा नहीं है, तो भी आपने अपनी बनायी हुई धर्ममर्यादाकी रक्षाके छिये पशु-यक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीवयोनियोंमें अपनी ही इच्छासे शरीर धारण कर अनेकों क्षीकिएँ की हैं । ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान्को मेरा नमस्कार है ॥ १९ ॥ प्रभो ! आप अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—जो-जोसे किसीके भी अवीर्य नहीं हैं, तथापि इस समय जो सारे संसारको अपने उदर में धीनकर मगदूर तरङ्गाकारोंसे विधुम्ब प्रख्यकशीन जलमें अनन्तविमलकी कोमल शय्यापर शयन कर रहे हैं, वह पूर्वकल्पकी कर्मपरम्परासे ग्रसित हुए जीवोंको विग्राम देनेके छिये ही है ॥ २० ॥ आपके नामि-कमलरूप मदनसे मेरा जन्म हुआ है । यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें समाया हुआ है । आपकी कृपासे ही मैं त्रिलोकीकी रचनारूप उपकारमें प्रवृत्त हुआ हूँ । इस समय योगनिद्राका अन्त हो जानेके कारण आपके नत्र कम्ब विकसित हो रहे हैं, आपको मेरा नमस्कार है ॥ २१ ॥ आप सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र सुहृद् और ब्रह्मा हैं तथा शरणागतोंपर कृपा करनेवाले हैं । अतः अपने जिस ज्ञान और ऐश्वर्यसे आप विश्वको आनन्दित करते हैं, उसीसे मेरी बुद्धिको भी युक्त करें—जिससे मैं पूर्वकल्पके समान इस समय भी जगत्की रचना कर सकूँ ॥ २२ ॥ आप भक्त-बान्धवकल्पतरु हैं । अपनी शक्ति छत्रमीमीके सञ्चित अनेकों गुणावतार लेकर आप जो-जो बहुत कर्म करेंगे, मेरा यह जगत्की रचना करनेका उद्यम भी उन्हींसे एक है । अतः इसे रचते समय आप मेरे चित्तको प्रेरित करें—शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं सुद्विजनाशिवयक अभिमानरूप मछते दूर रह सकूँ ॥ २३ ॥ प्रभो ! इस प्रख्यकशीन जलमें शयन करते हुए आप अनन्तराति परमपुरुषके नामि-कमल-

रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे

मारीरिपीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥२४॥

सोऽसावदभ्रकल्पो भगवान् विवृष्ट

प्रेमभित्तेन नयनाम्बुरुहं विवृण्वन् ।

उत्थाम विश्वविधायाम च नो विषादं

माध्म्या गिरापनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥

मैत्रेय उवाच

स्वसम्भवं निंशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः ।

यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम स त्विदमवत् ॥२६॥

अयाभिप्रेतैर्मन्त्रीभ्यः प्रश्नयो मधुसूदनः ।

विपण्यचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥२७॥

लाकसम्भानविद्वान् आत्मनः परिलिपतः ।

तमाहागाधया वाचा कश्मल क्षमयन्निव ॥२८॥

श्रीमद्वाचुषाच

मा वैदर्गं गास्तन्त्रीं सर्गं उद्यममावह ।

तन्मयाऽऽपादितक्षत्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥२९॥

मूयस्त्व तप आविष्ट विद्यां चैव मदाभयाम् ।

ताम्यामन्तर्हृदि प्रवृत्तं लोकान्द्रस्यस्पपावृणु ॥३०॥

तव आत्मनि लोके च भक्तिपुरुषः समाहितः ।

द्रष्टामि मां तव प्रसन्नमपि ठाकांस्त्वमात्मनः ॥३१॥

यदा तु सर्वभूतेषु दारुणवर्गिनिभिर स्थितम् ।

प्रतिवर्षीत मां लोकोऽर्द्धाचर्षेण कश्मलम् ॥३२॥

यदा रहितमात्मानं भूतेन्त्रियगुणार्थैः ।

स्वरूपेण मयापेत पश्यन् स्वारायमृच्छति ॥३३॥

नानाकर्मवितानेन प्रज्ञा बद्धीः सिसृक्षतः ।

नात्मावसीदत्यस्मिन्ने बर्षीयामदनुग्रहः ॥३४॥

से मेरा प्रादुर्भाव हुआ है और मैं हूँ भी आपकी ही विज्ञानशक्ति, जब इस जगत्के विचित्र रूपका स्फिटर करते समय आपकी कृपासे मेरी वेदरूप बाणीका उद्घरण हुआ न हो ॥ २४ ॥ आप अपार कल्पवृक्ष पुराणपुरुष हैं । आप परमप्रेममयी मुक्तजनके समित अपने नेत्रकमल खोलिये और शेष-शाय्यासे ठहर विषयके उद्भवके लिये अपनी सुमधुर वाणीसे मेरा विगद दूर करिये ॥ २५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार तप, विद्या और समाधिके द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान श्री-भगवान्को देखकर तथा अपने मन और वाणीकी शक्तिके अनुसार उनकी स्तुति कर ब्रह्माजी के-से होकर मीन हो गये ॥ २६ ॥ श्रीमधुसूदन भगवान्ने देखा कि ब्रह्माजी इस प्रकृष्यज्ज्वालिसे बहुत डरते हुए हैं तथा व्येकरचनाके नियममें कोई निश्चित विचार होनेके कारण उनका चित बहुत खिन्न है । तब उनके अभिप्रायको जानकर वे अपनी गम्भीर वाणीसे उनका हृद शांत करते हुए कहने लगे ॥ २७-२८ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—वैदर्ग ! तुम विषयके बन्दी-भूत हो आत्मस्य न करो, स्मृतिरचनाके उद्यममें लपक हो जाओ । तुम मुझसे जो कुछ चाहते हो, उसे तो मैं पहले ही कर चुका हूँ ॥ २९ ॥ तुम एक बार फिर तप करो और मागस्त-ज्ञानका अनुष्ठान करो । उनके द्वारा तुम सब जेकोंको स्पष्टतया अपने अन्तःकरणमें देखोगे ॥ ३० ॥ फिर भक्तिपुरुष और सम-हितचित्त होकर तुम सम्पूर्ण लोक और अपने-मुझको भ्यात देखोगे तथा मुझमें सम्पूर्ण लोक और अपने आपको देखोगे ॥ ३१ ॥ जिस समय जीव कष्टमें व्यथित क्षणिके समान समस्त भूतोमें मुझे ही स्थित देखेगा है, उसी समय वह अपने अज्ञानरूप मल्लसे मुक्त हो जाय ॥ ३२ ॥ जब वह अपनेको मृत, इन्द्रिय, गुण और अन्तःकरणसे रहित तथा स्वरूपतः मुझसे अभिन्न देखेगा है, तब मोक्षप्राप्त कर लेता है ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी ! नाना प्रकारके कर्मसंस्कारोंके अनुसार अनेक प्रकारकी जीवस्थितिको रचनेकी इच्छा होनेपर भी तुम्हारा चित मोहित नहीं होता, यह मेरी अतिशय

१ मा पा —वान् २ मा पा —निग ३ मा पा —यत् ४ मा पा —प्रति ५ मा

पा —द्रष्टा ६ मा पा —गुणधरे ७ मा पा —वरीयन् ।

अपिमाद्य न बध्नाति पापीनांस्त्वां रजोगुणः ।

यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रज्ञा संसृजतोऽपि ते ॥३५॥

दातोऽहं भवता त्वद्य दुर्बिद्येयोऽपि दहिनाम् ।

यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं भूतन्द्रियगुणात्मभि ॥३६॥

तुम्हं यद्विधिक्षिप्त्वा पापमारमा मे' दर्शितोऽवहिः ।

नालेन सलिले मूल पुष्करस्य विचिन्बतः ॥३७॥

यच्च कर्थाङ्गं मत्स्तोत्रं मत्कथाम्युदयाङ्घ्रिसम् ।

यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रह ॥३८॥

प्रीतोऽहमस्तु भद्र ते लोकानां विजयेच्छया ।

यदस्तौपीर्गुणमयं निर्गुणं मानुवर्णयन् ॥३९॥

य एतेन पुमाभित्य स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भवेत् ।

तस्यास्तु सम्प्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥४०॥

पूर्वेन तपसा यद्वैदैनैर्योगसमाधिना ।

राद्व नि भ्रेयस पुंसां मत्प्रीतिस्त्वच्च विमर्तम् ॥४१॥

अहमात्माऽऽत्मनां भातः प्रष्टुं सन् प्रेयसामपि ।

भतो मयि रतिं कुर्यादहादिर्बलकृते प्रियः ॥४२॥

सर्ववेदमपेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।

प्रज्ञाः सूत्र यथापूर्वं याश्च मैय्यनुशेरते ॥४३॥

मेरेव उवाच

तस्मा एव जगत्सष्टे प्रधानपुरुषेश्वरः ।

अन्येदं स्वन रूपेण कञ्चनाभस्तिरोदधे ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसां संहितायां तृतीयस्कन्धे नवमाऽध्यायः ॥ ९ ॥

कृपाका ही फल है ॥ ३४ ॥ तुम सबसे पहले मन्त्र-
ब्रह्मा हो । प्रजा उत्पन्न करते समय भी तुम्हारा मन
मुझमें ही लगा रहता है, इसीसे पापमय रजोगुण तुम्हारे
बोध नहीं पाता ॥ ३५ ॥ तुम मुझे मूल, इन्द्रिय, गुण
और अन्तःकरणसे रहित समझते हो, इससे जान
पड़ता है कि यद्यपि वेदधारी जीवोंको मेरा ज्ञान होना
बहुत कठिन है, तथापि तुमने मुझे जान लिया
है ॥ ३६ ॥ 'मेरा आश्रय कोई है या नहीं' इस
सन्देहसे तुम कमलनालके द्वारा जलमें उसका मूल
खोज रहे थे, सो मैंने तुम्हें अपना यह स्वरूप अन्तः
करणमें ही दिखा दिया है ॥ ३७ ॥

प्यारे भक्तानी ! तुमने जो मेरी कृपाओंके वैभवसे
शुद्ध मेरी स्तुति की है और तपस्यामें जो तुम्हारी
निष्ठा है, वह भी मेरी ही कृपाका फल है ॥ ३८ ॥
शोक-रचनाकी इच्छासे तुमने सगुण प्रतीत होनेपर भी
जो निर्गुणरूपसे मेरा वर्णन करते हुए स्तुति की है,
उसमें मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३९ ॥
मैं समस्त कामनाओं और मनोरथोंको पूरा करनेमें
समर्थ हूँ । जो पुरुष नित्यप्रति इस स्तोत्रद्वारा स्तुति
करके मेरा भजन करेगा, उसपर मैं शीघ्र ही प्रसन्न
हो जाऊँगा ॥ ४० ॥ तत्त्ववेदाओंका मत है कि पूर्व,
तप, यज्ञ दान, योग और समाधि आदि साधनोंसे
प्राप्त होनेवाला जो परम कल्याणमय फल है, वह मेरी
प्रसन्नता ही है ॥ ४१ ॥ विज्ञाता ! मैं आत्माओंका
भी आत्मा और श्री-गुणादि प्रियोंका भी प्रिय हूँ ।
वेदज्ञ भी मेरे ही लिये प्रिय हैं । अतः मुझसे ही प्रिय
करना चाहिये ॥ ४२ ॥ भक्तानी ! त्रिबोलीकी तो
जो प्रज्ञा इस समय मुझमें खीन है, उसे तुम दूषकल्प
के समान मुझसे उत्पन्न हुए अपने सर्ववेदमय स्वरूपसे
स्पर्श ही रहो ॥ ४३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—प्रकृति और पुरुषका सामी
कमलनाभ भगवान् सृष्टिकर्ता भक्तानीको इस प्रकार
जगत्की अभिव्यक्ति करवाकर अपने उस नाशयनरूपसे
आश्रय हो गये ॥ ४४ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

वस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन

विदुर उवाच

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लांकपितामह ।

प्रजा ससर्ज कतिधा दैदिकीर्मानसीर्विभूः ॥ १ ॥

ये च मे भगवन् पृष्टास्त्वहमर्थो बहुविधम् ।

तान् ब्रह्मातुपूर्व्येण छिन्धि न सर्वसंशयान् ॥ २ ॥

सूत उवाच

एव संबोदितस्तेन क्षत्रा कौपारवो मुनिः ।

प्रीतः प्रत्याह तान् प्रभान् हृदिस्थानव भार्गव ॥ ३ ॥

मैत्रेय उवाच

विरिञ्चाऽपि तथा चक्र दिव्यं वर्षशतं तपः ।

आत्मन्यात्मानमावेक्ष्य यदाह भगवानजः ॥ ४ ॥

तद्विलाक्याञ्जसम्भूतो वायुना यदधिष्ठितः ।

पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥ ५ ॥

तपसा क्षधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ।

विद्वद्ब्रह्मज्ञानधला यपाद् वायुं सहाम्भसा ॥ ६ ॥

तद्विलाक्य विष्वक्स्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ।

अनेन लाकान् प्राग्लोतान् कल्पितास्मीत्यचिन्तयत् ७

पद्महाश तदाऽऽविश्य भगवन् क्रमबोदित ।

एकं ध्यभात्तीदुरुधा त्रिधा भास्य त्रिमस्रधा ॥ ८ ॥

एतावातीवलाकस्य सम्प्राप्तेः समाहृतः ।

धमस्य क्षनिमित्तस्य त्रिपाक परमष्टयसो ॥ ९ ॥

विदुर उवाच

यदात्थ बहुरूपस्य हररहस्यकर्मणः ।

कालार्णवं तृणं प्रदत्तं यथा घणय नः प्रभा ॥ १० ॥

विदुरजीने कहा—मुनिवर ! भगवान् नारायणके

अन्तर्धान हो जानेपर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माभी-
ने अपने देह और मनसे कितने प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न
की ? ॥ १ ॥ भगवान् ! इनके सिवा मैंने आपसे और
जो-जो बातें पूछी हैं, उन सबका भी क्रमशः वर्णन
कीजिये और मेरे सब सशर्कोंको हर कीजिये, क्योंकि
आप सभी बहुकर्मोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥सूतजी कहते हैं—शौनकाजी ! विदुरजीके इस
प्रकार पूछनेपर मुनिवर मैत्रेयजी बड़े प्रसन्न हुए और
अपने हृदयमें स्थित उन प्रश्नोंका इस प्रकार उत्तर देने
लगे ॥ ३ ॥श्रीमैत्रेयजीने कहा—कल्पमा भगवान् श्रीहरिने
जैसा कहा था, ब्रह्माजीन भी उसी प्रकार चित्तको अपने
आत्मा श्रीनारायणमें समाकर सी दिव्य वर्षातक तप
किया ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने देखा कि प्रलयकालीन प्रलय
वायुके शकोरोंसे, जिससे वे उत्पन्न हुए हैं तथा जिस-
पर वे बैठे हुए हैं वह कमल तथा जल काँप रहे
हैं ॥ ५ ॥ प्रलय तपस्या एक हृदयमें स्थित आत्मज्ञान-
से उनका विज्ञान-बल बढ़ गया । और उन्होंने जलके
साथ वायुको भी लिया ॥ ६ ॥ फिर जिसपर सब बैठे
हुए थे, उस आकाशम्यापी कमलको देखकर उन्होंने
विचार किया कि 'पूर्वकल्पमें तीन हुए लोकोंको मैं
हसीसे रचूँगा' ॥ ७ ॥ तब भगवान् के द्वारा सृष्टि
कार्यमें निपुण ब्रह्माजीने उस कमलकोशमें प्रवेश किया
और उस एकक ही मू, मुख, स — ये तीन भाग
किये यद्यपि वह कमल इतना बड़ा था कि उसके
धान्य भुवन या हमसे भी अधिक लोकोंके रूपमें
विभाग किये जा सकते थे ॥ ८ ॥ जीवोंके भोग-
म्यानक रूपमें इन्हीं तीन लोकोंका शास्त्रोंमें वर्णन हुआ
है 'तीनिकाश कर्म करनेवाले हैं, उन्हें मल, तन-
जन और सत्यआकल्प ब्रह्मआकृति प्राप्ति होती
है ॥ ९ ॥विदुरजीने कहा—भगवान् ! आपने अद्भुततमों वि-
रूप श्रीहरिकी जिस बड़ा नामक शक्तिकी बात कही थी,
प्रभो ! उनका इत्यादि विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १० ॥

नेत्रेण उवाच

गुणव्यतिकरकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठित ।

पुरुषस्तदुदायानमात्मानं लीलयासृजत् ॥११॥

विष्व वै ब्रह्मसन्मात्रं सस्मिन् विष्णुमायया ।

ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाभ्यस्तमूर्तिना ॥१२॥

यथेदानीं तथाग्रे च यथादप्येतदीदृशम् ।

सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकुण्ठस्तु यः ॥१३॥

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रम ।

आद्यस्तु महत्तः सर्गो गुणवैषम्यमात्मन ॥१४॥

द्वितीयस्तथाहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ।

मृतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥१५॥

चतुर्थं येन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ।

वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मय मन ॥१६॥

षष्ठस्तु तैमसः सर्गो यस्तव्यशुद्धिकृतः प्रभो ।

पश्चिमे प्राकृताः सर्गा वैकुण्ठानपि मे शृणु ॥१७॥

रत्नोभाजो भगवतो लीलेय हरिमेधस ।

सप्तमो मृक्ष्यसर्गस्तु पञ्चविधस्तत्पुं च यः ॥१८॥

भीमसेनजीने कहा—विषयोका रूपान्तर (बदलना) ही कालका आकार है । सत्य तो वह निर्विशेष, अनादि और अमृत है । उसीको निमित्त बनाकर भगवान् स्वेच्छ-स्वेच्छमें अपने आपको ही सृष्टिके रूपमें प्रकट कर देते हैं ॥११॥ पहले यह सारा विश्व भगवान् की मायासे छीन होकर ब्रह्मरूपसे स्थित था । उसीको अभ्यस्तमूर्ति कालक द्वारा भगवान् ने पुन पृथक् रूपसे प्रकट किया है ॥ १२ ॥ यह जगत् जसा अब है वैसा ही पहले था और भविष्यमें भी वैसा ही रहेगा । इसकी सृष्टि नौ प्रकारकी होती है, तथा प्राकृत वैकुण्ठ भेदसे एक दसवीं सृष्टि और भी है ॥ १३ ॥ और इसका प्रलय काल, द्रव्य तथा गुणोंके द्वारा तीन प्रकार से होता है । (अब पहले मैं दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ ।) पहली सृष्टि मूढत्वकी है । भगवान् की प्रेरणासे सत्तादि गुणोंमें विषमता होना ही इसका स्वभाव है ॥ १४ ॥ दूसरी सृष्टि अहङ्कारकी है, जिससे पृथ्वी आदि पञ्चभूत एवं ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है । तीसरी सृष्टि मृतसर्ग है, जिसमें पञ्चमहामूर्तियोंको उत्पन्न करनेवाला तन्मात्रसर्ग रहता है ॥ १५ ॥ चौथी सृष्टि इन्द्रियोंकी है, यह ज्ञान और क्रियाशक्तिके सम्पन्न होती है । पाँचवीं सृष्टि सात्त्विक अहङ्कारसे उत्पन्न हुए इन्द्रियाधिष्ठिता देवताओंकी है, मन भी इसी सृष्टिके अन्तर्गत है ॥ १६ ॥ छठी सृष्टि अविद्याकी है । इसमें तामिस्र, कन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह ये पाँच गोटें हैं । यह जीवोंकी बुद्धि का आवरण और विशेष करनेवाली है । ये छः प्राकृत सृष्टियाँ हैं, अब वैकुण्ठ सृष्टियोंका भी विवरण सुनो ॥ १७ ॥

जो भगवान् अपना चिन्तन करनेवालोंके समस्त दुःखोंको हर लेते हैं । यह सारी चीजें उन्हीं धीहरिकी हैं । ये ही ब्रह्माके रूपमें रजोगुणको स्वीकार करके जगत्की रचना करते हैं । छः प्रकारकी प्राकृत सृष्टियोंके बाद सातवीं प्रधान वैकुण्ठ सृष्टि इन छः प्रकारके आधार शृङ्खलाकी होती है ॥ १८ ॥

द्वसर्गमाष्टविधो विषुधा पितरोऽसुरा ।
 गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥२७॥
 भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याघ्राः किमरादयः ।
 दक्षैवे विदुरारूपाता सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥२८॥
 अतः परं प्रवक्ष्यामि वक्ष्यान्मन्वन्तराणि च ।
 पर्वं रवः प्लुतः स्रष्टा कस्यादिष्वात्मधूरिः ।
 सुखत्यमोघसङ्कल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥२९॥

देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सर, यक्ष-राक्षस, सिद्ध,
 चारण-विषाधर, भूत-प्रेत-पिशाच और किमर-किम्पुरुष
 अथमुष आदि भेदसे देवसृष्टि जाठ प्रकारकी है ।
 विदुरजी ! इस प्रकार जगत्कर्ता श्रीमद्भगवतीकी
 रची हुई यह दस प्रकारकी सृष्टि मैंने तुमसे कही
 ॥ २७-२८ ॥ अब आगे मैं वंश और मन्वन्तरादिक
 वर्णन करूँगा । इस प्रकार सृष्टि करनेवाले सत्यसङ्कल्प
 मन्वान् हरि ही भस्माके रूपसे प्रत्येक कल्पके आदिमें
 रजोगुणसे व्याप्त होकर स्वयं ही जगत्क रूपमें अपनी
 ही रचना करते हैं ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते म्हापुराणे पारमहत्स्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

मन्वन्तरादि काण्डविभागका वर्णन

मैत्रेय उवाच

धरमः सन्निधेपाणामनेकोऽस्युतः सदा ।

परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥ १ ॥

सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ।

कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तर ॥ २ ॥

एव कालोऽप्यनुमित सौहृद्व्ये सौख्ये च सत्तम ।

संस्थानसृक्त्वा भगवानव्यक्तो व्यक्तसृग्विभुः ॥ ३ ॥

स कालः परमाणुर्वै यो सङ्गः परमाणुताम् ।

सताऽविश्वपद्म्यस्तु स कालः परमो महान् ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! पृथ्वी आदि
 कार्यवर्गका जो सूक्ष्मतम अंश है—जिसका और विभाग
 नहीं हो सकता, तथा जो कार्यरूपको प्राप्त नहीं हुआ
 है और जिसका अन्य परमाणुओंके साथ संयोग भी
 नहीं हुआ है, उसे परमाणु कहते हैं । इन अनेक
 परमाणुओंके परस्पर मिलनेसे ही मनुष्योंको भ्रमवश
 उनके समुदायरूप एक अवयवीकी प्रतीति होती है ॥ १ ॥
 यह परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है, अपने सामान्य
 स्वरूपमें स्थित उस पृथ्वी आदि कत्योंकी एकता (समुदाय
 अथवा समग्ररूप) का नाम परम महान् है । इस समय
 उसमें न तो प्रकृमादि अवस्थामेदकी स्पर्धि होती है,
 न महीन-माहीन आदि कणमेदका मान होता है और
 न कल्पादि वस्तुमेदकी वस्तुत्वता होती है ॥ २ ॥
 साधुश्रेष्ठ ! इस प्रकार यह वस्तुके सूक्ष्मतम और महत्तम
 स्वरूपका विचार हुआ । इसके सादृश्यसे परमाणु आदि
 अवस्थाओंमें व्याप्त होकर व्यक्त पदार्थोंको भोगनेवाले सृष्टि
 आदिमें समर्थ, अव्यक्तस्वरूप भगवान् कण्टकी भी
 सूक्ष्मता और स्पृष्टताका अनुमान किया जा सकता
 है ॥ ३ ॥ जो काल प्रपञ्चकी परमाणु-जैसी सूक्ष्म
 अवस्थामें व्याप्त रहता है, वह कल्पत सूक्ष्म है, और
 जो सृष्टिसे लेकर प्रलयपर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओं-
 का भोग करता है, वह परम महान् है ॥ ४ ॥

अंशुर्दो परमाणु स्यात्प्रसरेणुस्यः स्मृतः ।

जालार्करम्यवगतः स्वमेवानुपर्वभगात् ॥ ५ ॥

प्रसरेणुत्रिकमुद्धते यः कालः सप्तुटिः स्मृतः ।

श्रवमाणस्तु वेध स्याच्चैस्त्रिभिस्तु लघः स्मृतः ॥ ६ ॥

निमपस्त्रिलो द्वेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ।

क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघु वा दश पञ्च च ॥ ७ ॥

लघूनि वै समाप्ताता दश पञ्च च नादिका ।

ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः पञ्चमः सप्त वा नृणां ॥ ८ ॥

द्वादशार्धपलान्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।

स्वर्णमापैः कृतश्छिद्र पावरप्रस्यबलप्लुतम् ॥ ९ ॥

यामाधन्वारधन्वारो मस्थानामडनी उभे ।

पद्यः पञ्चदशाहानि शुक्रः कृष्णश्च मानद ॥ १० ॥

तथा ममृषया मास पितृणां तदहर्निशम् ।

द्वा तोष्टुः षडपनं दक्षिण चाक्षर दिवि ॥ ११ ॥

अपने आहनी प्रादुर्ध्वमरा द्वादश स्मृतः ।

मवत्तरागत नृणां परमाणुर्निरूपितम् ॥ १२ ॥

प्रहर्षताराचक्रम्य परमाण्वादिना जगत ।

दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है और तीन अणुओंके मिलनेसे एक 'प्रसरेणु' होता है, जो शरीरसे-से होकर वायु की हुई सूर्यकी किरणोंके प्रकाशमें जाकर-में उड़ता देखा जाता है ॥ ५ ॥ ऐसे तीन प्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्यका जितना समय लगता है, उसे 'पुटि' कहते हैं । इससे सौगुना काल 'वेध' कहा जाता है और तीन वेधका एक 'क्षण' होता है ॥ ६ ॥ तीन क्षणको एक 'निमेष' और तीन निमेषको एक 'क्षण' कहते हैं । पाँच क्षणकी एक 'काष्ठा' होती है और पंद्रह काष्ठाका एक 'लघु' ॥ ७ ॥ पंद्रह लघुकी एक 'नादिका' (वृष्ण) कही जाती है, दो नादिकाका एक 'मुहूर्त' होता है और दिनके घटने-बढ़नेके अनुसार (दिन एवं रात्रिकी दोनों सन्धियोंके दो मुहूर्तोंको छोड़कर) छ या सात नादिकाका एक 'प्रहर' होत है । यह 'याम' कहा जाता है, जो मनुष्यके दिन पर रातका चौथा भाग होता है ॥ ८ ॥ छ पत्र तैलका एक ऐसा बरतन बनाया जाय जिसमें एक प्रस्र जल या सके और चार मासे सोनेकी चार बाँजुल डंभी सम्मिलित बनवाकर उसके द्वारा उस बरतनके पदोंमें छेद करके उसे अच्छे छोड़ दिया जाय । जितने समयमें एक प्रस्र जल उस बरतनमें भर जाय, वह बरतन ज्यों ही भर जाय, उतने समयको एक 'नादिका' कहते हैं ॥ ९ ॥ निद्रुवी । चार चार पहरेके मनुष्यके दिन और पक्ष होते हैं और पंद्रह दिन-रातका एक 'पक्ष' होता है, जो शुक्र और कृष्ण भेदसे दो प्रकारका माना गया है ॥ १० ॥ इन दोनों पक्षोंको मिलाकर एक 'वर्ष' होता है, जो पितरोंका एक दिन-रात है । दो मासका एक 'श्रुत' और ११ मासका एक 'अपन' होता है । अपन 'दक्षिणायम' और 'वत्सरायन' भेदसे दो प्रकारका है ॥ ११ ॥ ये दोनों अपन मिलाकर देवका अर्ध एक दिन-रात होते हैं तथा मनुष्यका कर्म ये 'वर्ष' या बारह मास कहे जाते हैं । ऐसे सौ वर्षकी मनुष्यकी पत्त जायु बनायी गयी है ॥ १२ ॥ चन्द्रमा आणि प्रहः अधिनी आणि नक्षत्र और समस्त ताराका एक एक अक्षिणा का रम्य मगनान् सूर्य परमाणुसे लेकर सौरमण्डल

संवत्सरावसानेन पर्येत्स्निमिषो विदुः ॥१३॥

संवत्सरः परिवत्सर इवावत्सर एष च ।

अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैर्धं प्रमाप्यते ॥१४॥

य सृज्यशक्तिमुखोच्छ्रयन् स्वव्यक्त्या

पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति सूतमेद ।

कालात्मया गुणमय क्रतुभिर्वितन्वं

त्तस्मै बलि हरत वत्सरपञ्चकाय ॥१५॥

विदुर उवाच

पितृदेवमनुष्याणामायु परमिद स्मृतम् ।

परेषां गतिमाचक्ष्व मे स्युः कल्पावृत्तिर्विदः ॥१६॥

भगवान् वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ।

विश्वं विचक्षते धीरा भोगराट्ठन चक्षुषा ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

कृत व्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।

दिग्भैर्द्वादशभिर्वर्षैः सप्तधान निरूपितम् ॥ १८॥

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।

संस्थातानि सहस्राणि द्विगुणानि क्षतानि च ॥१९॥

संस्थांशपोरन्तरेण यः कालः क्षतसंस्थयोः ।

तमेवाद्वयुगं तन्ना यत्र भर्षो विधीयते ॥२०॥

१ मा प०—मुत्तम् ।

● अर्धमर्तु सप्तयुगमे ४ दिव्य वर्ष युगके और ८ सन्ध्या एवं सन्ध्यांशके—इस प्रकार ४८ वर्ष होते हैं । इस प्रकार वेदामे १६ क्षतयुगमे १२ दिव्यवर्ष होते हैं । मनुष्योंका एक वर्ष ३६० वर्षोंका एक दिन होता है अतः देवताओंका एक वर्ष मनुष्योंका ३६ वर्षोंका बराबर हुआ । इस प्रकार मनुष्योंका एक वर्ष ३६० वर्षोंका बराबर होता है अतः देवताओंका एक वर्ष मनुष्योंका ३६ वर्षोंका बराबर होता है ।

कर्ममें द्वादश राशिरूप सम्पूर्ण भुवनकोशकी निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं ॥ १३ ॥ सूर्य, वृहस्पति, शक्र, चन्द्रमा और नक्षत्रसम्बन्धी महीनोंक भेदसे यह वर्ष ही संवत्सर, परिकसर, इवावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहा जाता है ॥ १४ ॥ विदुरजी ! इन पौष प्रकारके वर्षोंकी प्रवृत्ति करनेवाले भगवान् सूर्यकी तुल्य उपहारादि समर्पण करनेकी पूजा करो । ये सूर्यदेव पञ्च मूर्तीमेंसे तेज स्वरूप हैं और अपनी काष्ठशक्तिसे बीजादि पदार्थोंकी बहुत उत्पन्न करनेकी शक्तिके अनेक प्रकारसे कार्योन्मुख करते हैं । ये पुरुषोंकी मोहनवृत्तिके लिये उनकी आयुका क्षय करते हुए आकाशमें विचरते रहते हैं तथा ये ही सक्रम पुरुषोंके यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि मङ्गलमय फलोंका विस्तार करते हैं ॥ १५ ॥

विदुरजीने कहा—मुनिवर ! आपने देवता, पितर और मनुष्योंकी परमायुका वर्णन तो किया । अब जो उनकादि ज्ञानी मुनिजन्म त्रिलोकमेंसे बाहर कल्पसे भी अधिक काष्ठसक रहनेवाले हैं, उनकी भी आयुका वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ आप भगवान् कालकी गति भलीभाँति जानते हैं, क्योंकि ज्ञानीलोग अपनी योगसिद्ध दिव्य दृष्टिसे सारे संसारको देख लेते हैं ॥ १७ ॥

मैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! सत्ययुग, त्रेता, क्षतयुग और कलि—ये चार युग अपनी सन्ध्या और सन्ध्यांशके सहित देवताओंके बारह सहस्र वर्षतक रहते हैं, ऐसा बतलाया गया है ॥ १८ ॥ इन सत्यादि चारों युगोंमें क्रमशः चार, तीन, दो और एक सहस्र दिव्य वर्ष होते हैं और प्रत्येकमें नितन सहस्र वर्ष होते हैं उससे दुगुने सी वर्ष उनकी सन्ध्या और सन्ध्यांशमें होते हैं ॥ १९ ॥ युगकी आदिमें सन्ध्या होती है और अन्तमें सन्ध्यांश । इनकी वप-गणना सैकड़ोंकी संख्यामें बतलायी गयी है । इनक बीचका जो पत्र होता है, उसीको कल्पनेच्छाओंम युग कहा है । प्रत्येक युगमें एक-एक विशेष वर्षक विधान पाया

धर्मभक्तुष्पान्मनुजान् कृते समनुवर्तते ।
 स एवान्येष्वधर्मेण ज्येति पादेन वर्षता ॥२१॥
 त्रिलोक्या युगसादस्र हरिरामबाणो दिनम् ।
 तावत्येव निष्ठा ताव यन्निमीलति विश्वसृक् ॥२२॥
 निष्ठावसान आरब्धो लोककन्योऽनुवर्तते ।
 यावदिनं भगवतो मनु भुञ्जन्मनुर्दश ॥२३॥
 स्व स्व कालं मनुर्भुङ्क्षु साधिकां लोकसप्ततिम् ।
 मन्वन्तरं मनवस्तद्रक्ष्या ऋषयः सुराः ।
 भवन्ति चैवं युगपत्सुरेशाब्जानु ये च सान् ॥२४॥
 एष दैनन्दिनः समो ब्रह्मलोकस्वर्तनः ।
 तिर्यङ्मुपि देवानां सम्मनो यत्र कर्मभिः ॥२५॥
 मन्वन्तरेषु भगवान् विभ्रस्तस्य स्वमूर्तिभिः ।
 मन्वादिमिरिदं विश्वमवस्तुदितपौरुषः ॥२६॥
 समोमात्राष्टपादाय प्रतिसंख्यविक्रमः ।
 कालेनानुगताशेष आस्ते तूर्णी दिनात्मये ॥२७॥
 तमेवावधिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः ।
 निशायामनुवृथायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥२८॥
 त्रिलोक्यां दक्षमानायां शक्त्या सङ्घर्षजाभिना ।
 यान्त्पूजामहर्लोकान्जनं मृगादयोऽर्जिताः ॥२९॥
 तावत्त्रिमुवनं सद्यः कल्पान्तैर्भितसिन्धवः ।
 प्रावयन्त्सुकटाटापचण्डघातेरितोर्मयः ॥३०॥

जाता है ॥ २० ॥ सत्ययुगके मनुष्योंमें धर्म करने
 चारों धरणोंसे रहता है, फिर अन्य युगमें अवर्धनी
 बुद्धि होनेसे उसका एक-एक धरण क्षीण होता जाता
 है ॥ २१ ॥ प्यारे विदुरजी! त्रिलोक्यसे बाहर ब्रह्मलोक-
 से ब्रह्मलोकपर्यन्त यहाँकी एक सप्त सप्तयुगीन एक
 दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि होती है
 जिसमें अगस्त्य ब्रह्माजी शयन करते हैं ॥ २२ ॥
 उस रात्रिकब्त होनेपर इस लोकका कल्प आरम्भ
 होता है, उसका क्रम जबतक ब्रह्माजीका निम रह
 है तबतक चलता रहता है । उस एक कल्पमें चार
 मनु हो जाते हैं ॥ २३ ॥ प्रत्येक मनु इन्द्र
 चतुर्दशसे कुछ अधिक काल (७१-८५ चतुर्दश
 तक अपना अधिकार भोगता है । प्रत्येक मन्वन्त
 में भिन्न-भिन्न मनुष्यशी राजाजोग, सप्तर्षि, देवता
 इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्वादि साप-सा
 ही अपना अधिकार भोगते हैं ॥ २४ ॥ यह ब्रह्माजी
 की प्रतिदिनकी सृष्टि है, जिसमें तीनों लोकों
 रचना होती है । उसमें अपने-अपने कर्मानुसार पृथ-
 पक्षी, मनुष्य, पितर और देवताओंकी उत्पत्ति होती
 है ॥ २५ ॥ इन मन्वन्तरोंमें भगवान् सत्ययुगके
 आश्रय ले, अपनी मनु आदि मूर्तियोंके द्वारा पौरुष प्रक-
 करते हुए इस विश्वका पावन करते हैं ॥ २६ ॥
 कालक्रमसे जब ब्रह्माजीका दिन बीत जाता है, त-
 वे तमोगुणके सम्पर्कसे लीककर कर अपने सृष्टिरूप
 रूप पौरुषको स्वर्गित करते निश्चेष्टमनसे स्थित हो जाते
 हैं ॥ २७ ॥ उस समय सारा विश्व तन्मीमें डूब
 जाता है । सूर्य और चन्द्रमादिसे रहित वह प्रकृत्या
 धाती है, तब वे भू, भुव, स्व — तीनों लोक ऊँच
 ब्रह्माजीके शरीरमें छिप जाते हैं ॥ २८ ॥ उस अवसर
 पर तीनों लोक शेषजीके मुखसे निकली हुई बलिन
 रूप भगवान्की शक्तिसे जलने लगते हैं । इसमें
 उसके तापसे व्याकुल होकर मृग आदि सुमीषरण
 यहलोकसे जललोकको चले जाते हैं ॥ २९ ॥ इतने
 ही सालों समुद्र प्रलयकालके प्रचण्ड पवनसे उमड़कर ऊपर
 स्रज्जती हुई उठाऊँ तल्लोंसे विनोदित हो बुको देते हैं ॥ ३० ॥

अथ स तस्मिन् सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरि ।

योगनिद्रानिमीलाश्च स्तूयमानो जनालयै ॥३१॥

एवमिवैरहोरात्रं कालगन्धोपलक्षितै ।

अर्पयितमिषाम्नापि परमायुर्वयं क्षतम् ॥३२॥

यदर्धमायुवत्स्वस्य पारार्धमभिधीयते ।

पूष परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽयं प्रवर्तते ॥३३॥

पूषंस्वादौ परावस्व ब्राह्मो नाम महानभूत् ।

कल्पो यत्रामवहूष्ठा शुब्दव्रणति य बिद् ॥३४॥

तस्यैव चान्ते कल्पोऽपूय य वायमभिषद्यते ।

यद्वरेणाभिषरस आसील्लोकसाराकम् ॥३५॥

अयं तु कथित कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ।

वाराह इति विम्बशतो यत्रामीत्सूकरो हरि ॥३६॥

कालाऽयं द्विपराधोऽभ्यो निमेष उपचर्यते ।

अभ्याकृतस्त्वानन्तस्य अनादेज्जगदात्मन ॥३७॥

कालाऽयं परमाण्वादिद्विपराधोऽयं ईश्वर ।

नैषेशितुं प्रभूमन् ईश्वरो धाममानिनाम् ॥३८॥

विकारै महिषो युक्तैर्विश्रपादिभिराकृत ।

औष्ण्यकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृत ॥३९॥

दशोत्तराधिकैर्ध्रुव प्रविष्ट परमाणुवत् ।

लभ्यतेऽन्तर्गताद्यान्ये कोऽग्निश्चाक्षण्डराश्रय ॥४०॥

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ।

विष्णोर्धाम पर साक्षात्पुरुषस्य महाभजनः ॥४१॥

तत्र तस्य अङ्गके भीतर मग्नान् शेषशायी योगनिद्रासे

नेत्र मूँकर शयन करते हैं । उस समय

जनलोकनिवासी मुनिगण उनकी स्तुति किया करते हैं

॥ ३१ ॥ इस प्रकार कालकी गतिसे एक-एक

सहस्र चतुर्गुणके रूपमें प्रतीत होनेवाले त्रि-रातके

हर-फेरसे ब्रह्माजीकी सौ वर्षकी परमायु भी बीती

हुई-सी दिखसकी देती है ॥ ३२ ॥

ब्रह्माजीकी आयुके आधे भागको पराव कहते हैं ।

अवशक पहला परार्ध सौ बीत चुका है, दूसरा चल

रहा है ॥ ३३ ॥ पूष परार्धके आरम्भमें ब्राह्म नामक

महान् कल्प हुआ था । उसीमें ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई

थी । पण्डितजन इन्हें शास्त्रज्ञ कहते हैं ॥ ३४ ॥

उसी परार्धके अन्तमें जो कल्प हुआ था, उसे पाण्डकल्प

कहते हैं । इसमें मग्नान्के नाभिसरोवरसे सर्वलोककल्प

कल्प प्रकट हुआ था ॥ ३५ ॥ विदुरजी । इस समय जो

कल्प चल रहा है, वह दूसरे परावक आरम्भक बतलाया

जाता है । यह वाराहकल्प नामसे विख्यात है, इसमें

मग्नान्त् सूक्ष्मरूप धारण किया था ॥ ३६ ॥ यह

दो परार्धकाल काळ अभ्यक्त, अनन्त जनादि, विद्यात्मा

श्रीहरिका एक निमेष माया जाता है ॥ ३७ ॥ यह

परमाणुसे लेकर द्विपरार्धपर्यन्त कैसा हुआ पात्र सर्वसमय

हानेपर भी स्पर्शमा श्रीहरिपर किसी प्रकारकी प्रभुता

नहीं रखता । यह तो देहादिमें अभिमान रखनेवाले

जीवोंके ही शासन करनेमें समर्थ है ॥ ३८ ॥

प्रकृति, महत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र—इन

आठ प्रक्रियोंके सहित दस इन्द्रियों, मन और प्रथ

मूत—इन सोलह विकारोंमें मिश्रकर बना हुआ यह

प्रमाणवक्त्रो भीतरमें पचास करोड़ पाँचन विस्तारवाण

है तथा इसके बाहर चारों ओर उत्तरोत्तर दस-दस

गुण सात आवरण हैं । उन सबके सहित यह जिसमें

परमाणुके समान पक्षा हुआ दीक्षा है और जिसमें

ऐसी करोड़ों प्रमाणवक्त्राशियों हैं, वह इन प्रमाना

ममस्त कारणोंका कारण अक्षर ब्रह्मज्ञाना है और

यही पुराणपुरुष परमात्मा श्रीविष्णुमग्नान्का श्रेष्ठ

धाम (सत्त्व) है ॥ ३९-४१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो मंडितायां तृतीयस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

१ प्रा पा०—अग्नि । २ प्रा० पा०—स्वायम्भुव । ३ प्रा पा०—अण्ड ।

म ग प १ ३२—

अथ द्वादशोऽध्यायः

सृष्टिका विस्तारः

मेधेय उवाच

इति ते वर्णितः क्षुब्ध कालाख्यः परमात्मन ।
 महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्त्रास्त्रीभिर्बोध मे ॥ १ ॥
 समजोऽग्रजन्मतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् ।
 महामोहं च मोहं च तमभाजानवृत्तयः ॥ २ ॥
 दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नारमानं बहुमन्यत ।
 भगवद्दधानपूतेन मनमान्यां सर्वोऽसृजत् ॥ ३ ॥
 सनकं च मनन्दं च सनातनमयत्तममूः ।
 सनत्कुमारं च मुनीभिर्द्विजैर्बानृष्वरेतसः ॥ ४ ॥
 तान् बभाषस्वभूः पुत्रान् प्रजाः सुखं पुत्रका ।
 तन्मैष्ठन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥
 सोऽबध्मातः सुतैरेव प्रस्थाप्यस्तानुक्षामनैः ।
 क्रावं दुर्विपहं जातं नियन्तुमुपपन्नमे ॥ ६ ॥
 विषा निगृह्यमाणोऽपि अहोर्मध्यात्प्रप्रापत ।
 मदोऽजायत तन्मयुः कुमारो नीललोहितः ॥ ७ ॥
 स यं करोद देवानां पूर्वजो भगवान् भव ।
 नामानि कुरु मेधात न्यानानि च बगवतुगुरो ॥ ८ ॥
 इति तस्मै वच पाथा भगवान् परिपालयन् ।
 अम्यभाद् भद्रया वाचा मा रोदीस्तत्करोमि ते ॥ ९ ॥
 यदरात्रीः सुरश्रेष्ठ सोऽद्वेग इव धालकः ।
 ततस्तवाममिधासन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजा ॥ १० ॥
 हृदि त्रिधाप्यमुर्वाम पापुर्गर्जितं मही ।
 सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥ ११ ॥

श्रीमेधेयजीने कहा—विदुरजी । यहाँतक मैं
 आपकी भगवान्की काष्ठरूप महिमा सुनायी । जबकि
 प्रकार ब्रह्माजीने जगत्की रचना की, वह सुनिये ॥ १ ॥
 सबसे पहले उन्होंने ब्रह्मानकी पाँच वृत्तियाँ—तम
 (अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), अमि
 (द्वेष) और अज्ञतामिष (अभिनिवेश) रचीं ॥ २ ॥
 किन्तु इस अत्यन्त पापमयी सृष्टिकर देखकर उन्हें
 प्रसन्नता नहीं हुई तब उन्होंने अपन मनको समझा
 के ध्यानसे पवित्र कर उससे दूसरी सृष्टि रची ॥ ३ ॥
 इस बार ब्रह्माजीने सनक, सनन्दन, सनातन और
 सनत्कुमार—ये चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनि
 उत्पन्न किये ॥ ४ ॥ अपने इन पुत्रोंसे ब्रह्माजीने कहा,
 पुत्रो, तुमज्जोग सृष्टि उत्पन्न करो । किन्तु वे अन्तस ही
 मोक्षमार्ग (निवृत्तिमार्ग) का अनुसरण करनेवाले
 और भगवान्के ध्यानमें तत्पर थे, इसलिये उन्होंने ऐसा
 करना नहीं चाहा ॥ ५ ॥ जब ब्रह्माजीने देखा कि
 मेरी आज्ञा न मानकर ये मेरे पुत्र मेरा निरन्तर कर रहे
 हैं तब उन्हें अस्त्र क्रोध हुआ । उन्होंने उसे
 रोकनका प्रयत्न किया ॥ ६ ॥ किन्तु मुद्दिशरा उनके
 बहुत रोकनेपर भी वह क्रोध तत्काल प्रजापतिजी भौहोके
 बाँधमेंसे एक नील-श्वेत (नीले और लाल रंगके)
 बाणकक रूपमें प्रकट हो गया ॥ ७ ॥ वे देवताओं
 के पूर्वज भगवान् मय (रुद्र) रोनाक कहल गये—
 जगत्पिता ! विधाता ! मेरे नाम और रहनक स्थान
 बताइये ॥ ८ ॥

तब कम्प्योनि भगवान् ब्रह्मान उस बाणककी
 प्रापना पूर्ण करनेके लिये मधुर वागीमें कहा पांशा
 मत मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करता हूँ ॥ ९ ॥
 देखिए ! तुम जन्म लिये ही बाणकके सुगम फट-फट
 कर रोने लगे इसलिये प्रजा तुम्हें रुद्र नामसे
 पुकारेगी ॥ १० ॥ तुम्हारे रहनके लिय मैंने पहलेसे ही
 द्रव्य, इन्द्रिय प्राण आकाश वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी,
 सूर्य चन्द्रमा और तप—ये स्थान रच दिये हैं ॥ ११ ॥

मनुर्मनुर्महिर्नमो महाशिव ऋतपञ्च ।
 उग्ररता भव कालो वामदेवा धृतवत ॥१२॥
 श्रीर्षितुरुग्रनामा च नियुत्सर्विरिलाम्यिका ।
 इरानवीमुधा दीक्षा रुद्राण्या रुद्र ते स्त्रिय ॥१३॥
 गृहार्णतानि नामानि स्थानानि च स्योपण ।
 एभिः सूत्र प्रज्ञा ब्रह्मा प्रज्ञानामसि यत्पति ॥१४॥
 इत्यादिष्ट स गुरुमा भगवाभीललोहितः ।
 सत्त्वाकृतिल्लभावन मत्तर्जामसमा प्रज्ञा ॥१५॥
 रुद्राणां रुद्रसुधानां समन्तात् प्रवृत्तां वगत ।
 निशाम्यामस्त्वक्षो यूयान् प्रज्ञापतिरश्रुत ॥१६॥
 अल प्रजाभिः सृष्टाभिरीक्ष्योभिः सुरोचम ।
 मया सह दहतीभिर्दिग्भक्षुभिर्दन्वण ॥१७॥
 तप आविष्ट भद्र ते सर्वभूतमुत्तावहम् ।
 तपसैव यथापूज स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥१८॥
 तपसैव पर ज्योतिमगवन्तमधोऽन्यम् ।
 सबभूतगुहावासमञ्जसा विन्दत पुमान् ॥१९॥
 मैत्रेय उवाच

एवमात्मब्रह्माऽऽदिष्टः परिक्रम्य गिरां पविम् ।

वाहमिस्त्रिभुवामन्त्र्य विवेक्य तपसे वनम् ॥२०॥
 अधामिन्ध्यापत तर्गं दश पुत्राः प्रप्रसिरे ।
 भगवन्भक्तिपुत्रस्य लाकसन्तानहेतव ॥२१॥
 मरीचिरग्न्यङ्गिरसा पुलस्त्यः पुलह क्रतुः ।
 मृगुर्वसिष्ठा दक्षश्च दक्षमन्त्र्य नारदः ॥२२॥

तुम्हारे नाम मनु, मनु, महिनस, म्मान, शिव, ऋतपञ्च, उग्ररता, भव, काल, वामदेव और धृतवत होंगे ॥ १२ ॥ तथा श्री, वृत्ति उशाना, उमा, नियुत्, सर्पि, इक्षा, अम्बिका, इरावती, सुवा और रीक्षा— ये ग्यारह रुद्राणियों तुम्हारी पत्नियों होंगी ॥ १३ ॥ तुम उग्रयुक्त नाम, स्थान और स्थियोंका लोकर करो और इनके द्वारा बहुत-सी प्रज्ञा उत्पन्न करो, क्योंकि तुम प्रज्ञापति हो ॥ १४ ॥

लोकप्रिता ब्रह्माजीसे ऐसी आज्ञा पाकर भगवान् नीललोहित बन्ध, आकर और सभाग्रमें अपने-ही-जैसी प्रज्ञा उत्पन्न करने लगे ॥ १५ ॥ भगवान् रुद्रके द्वारा उत्पन्न हुए उन रुद्रोंको असंख्य यूप बनाकर सारे संसारको मक्षण करते देख ब्रह्माजीको बड़ी शङ्का हुई ॥ १६ ॥ तब उन्होंने रुद्रसे कहा, 'सुरग्रन्थ ! तुम्हारी प्रजा तो अपनी मयङ्कर इष्टिसे मुझे और सारी दिशाओंको मस्य किये जास्ती है, क्त ऐसी सृष्टि और न रही ॥ १७ ॥ तुम्हारा कल्पान हो, अब तुम समस्त प्राणियोंको सुख देनेके लिये तप करो । फिर उस तपके प्रभावसे ही तुम पूर्ववत् इस संसारकी रचना करना ॥ १८ ॥ पुरुष तपके द्वारा ही इन्द्रियाणीव, सन्तानप्राप्ति, ज्योति स्वरूप श्रीहरिको सुगमतासे प्राप्त कर सकना है' ॥ १९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—जब ब्रह्माजीने ऐसी आज्ञा ली तब रुद्रने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया और फिर उनके अनुमति लेकर तथा उनकी परिक्रम्य करके वे तपस्या करनेके लिये वनको चले गये ॥ २० ॥

इसके पश्चात् जब भगवान्की गतिके सम्बन्ध ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये सङ्कल्प किया, तब उनके दस पुत्र और उत्पन्न हुए । उनसे लोककी बहुत वृद्धि हुई । २१ । उनका नाम मरीचि, अग्नि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मृगु, वसिष्ठ दक्ष और दत्तवर्मा मारद थे ॥ २२ ॥

१ मा पा —मनुर्मनुर्महिर्नमो भवान् । २ मा पा —उग्ररता । ३ मा पा —वीहृत्तरुण्य च निष्कार्य ।

४ प्राचीन प्रतिभे ११ में आठवें उच्छवर्ग 'मगवन्भक्तिपुत्रस्य' से लेकर २४ में आठवें उच्छवर्ग 'मरिचिपुत्र' तक अक्ष नहीं है । इसके अतिरिक्त २५ में आठवाँ पक्षिपता शब्द और २६ में आठवाँ पुत्र शब्द नहीं है । अतः पक्का है अशुद्ध हो गये हैं या छिन्ननेमें छूट गये हैं ।

उत्सङ्गान्नारदा जघ्न दधोऽङ्गुष्ठास्त्रयम्भुव ।

प्राणादसिष्ठ सञ्जातो मृगुस्त्वचि करात्कतुः ॥२३॥

पुलहो नाभितो जघ्ने पुलस्त्य कर्णयोर्ध्वपि ।

अत्रिा मुम्बताऽह्माऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽमवत् ॥२४॥

धर्मः स्तनादधिगतो यत्र नारायण स्वयम् ।

अधम गृहता वसान्मृत्युर्लोकमयङ्कर ॥२५॥

इति कामाध्रुवः क्रोधो लामबाधरदच्छदात् ।

आस्याद्वाक्सिन्धवो मेदाभिर्ध्वतिः पायोरघामय २६

छायाया कर्दमा जघ्ने देवहूत्या पतिः प्रभु ।

मनसा दहतधेदं जघ्न विश्वकृतो जगत ॥२७॥

बाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः ।

अकामां चक्रमे क्षत्तः सकाम इति न ध्रुवम् ॥२८॥

तमधर्मे कृतमति विलोक्य पितरं मुताः ।

मरीचिबुल्लया मुनयो विभम्मात्प्रस्यबोधयन् ॥२९॥

नैतत्पूर्वं कृतं त्वय न करिष्यन्ति चापर ।

यत्त्वं दुहितरं गच्छेन्ननिगृह्याज्जत्रं प्रभु ॥३०॥

केजीयसामपि क्षेपक सुल्लोक्य जगद्गुरो ।

वद्वृत्तमनुतिष्ठन् वै लोक क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोषिषा ।

आत्मस्थं व्यञ्जयामास य धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

स इयं गुणत पुत्रान् पुरा हृष्टा प्रजापतीन् ।

प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्प्राज प्रीचिदस्तदा ।

नित्यो जगद्गुरोर्गं नीहार् यद्विदुस्तम ॥३३॥

इमं नारदजी प्रजापति प्रजाजीकी गोदसे, दक्ष अंगुटे,

वसिष्ठ प्राणसे, मृगु लघासे कतु हायसे, पुण्ड्र नाभिसे,

पुलस्त्यत्रिणि कानोसे, अत्रिा मुम्बसे, अत्रि नेत्रोसे और

मरीचि मनसे उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥ फिर उनके

पायें खानसे धर्म उत्पन्न हुआ, जिसकी पत्नी मूर्तिसे

स्वयं नारायण अवतीर्ण हुए तथा उनकी पीठसे अधर्म-

का जन्म हुआ और उससे संसारका भयभीत करने

वाला मृत्यु उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ इसी प्रकार प्रजाजी-

के हाथसे काम, मौंहसे क्रोध, नीचेके ओठसे क्रोध,

मुखसे बाणीकी अधिष्ठात्री दधी सरस्वती, छिन्नसे समुद्र,

गुदासे पापका निवासस्थान (राक्षसोंका अधिपति)

निर्ध्वति ॥ २६ ॥ छायासे देवहूतिक पति भवान्

कर्दमजी उत्पन्न हुए । इस तरह यह सात तरह

जगत्कर्ता प्रजाजीके शरीर और मनसे उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥

विदुरजी । भगवान् प्रजाजी कन्या सरस्वती बकी ही

सुकुम्परी और मनाहर थी, इमने सुना है—एक बार

उसे देखकर प्रजाजी कायमोहित हो गये थे, जबकि

बह स्वयं वासनाहीन था ॥ २८ ॥ उन्हें ऐसा अधर्ममय

सङ्कल्प करते देख, उनके पुत्र मरीचि आदि अधिवीरों

उन्हें विश्वस्यार्थक समझाया— ॥ २९ ॥ पितानी । आप

समर्थ हैं फिर भी अपने मनमें उत्पन्न हुए कामके

बेगका न राकबर पुत्रीगमन-जैसा दुस्तर पाप करनेका

सङ्कल्प कर रहे हैं । ऐसा तो आपसे पूर्ववर्ती किसी की

प्रज्ञाने नहीं दिया और न जाने की वजहसे ॥ ३० ॥

जगद्गुरो । आप जैसे तेजस्वी पुरुषोंकी भाँति ऐसा काम

शामा नहीं देता क्योंकि आपकी ओरके आचरणके

अनुसरण करनेसे ही तो संसारका कल्याण होता

है ॥ ३१ ॥ जिन भगवान्ने अपने स्वरूपमें स्थित

इस जगत्पते आपन ही तेजसे प्रकट किया है उन्हें

नमस्कार है । इस समय ये ही धर्मकी रक्षा कर सकते

हैं ॥ ३२ ॥ आपन पुत्र मरीचि आदि प्रजापतिगण

आपन सामने इस प्रकार कहते हैं प्रजापतिगणोंके पति

प्रजाजी वरं उचित हुए और उन्होंने उस शरीरका

उसी समय छोड़ दिया । सब उस घोर शरीरको

दिशाओंमें ले लिया । वही जुहरा हुआ, जिसे अन्धकार

भी कहते हैं ॥ ३३ ॥

कदाचिदुपपायत सप्तुर्वेदा आसंभतुर्मुखात् ।

कथं सप्त्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथा पुरा ॥३४॥

चातुर्होत्रं कमतन्त्रमुपवदनयै सह ।

धर्मस्य पादाभित्त्वारस्तथैवाधमवृत्तयः ॥३५॥

विदुर उवाच

स वै विश्वसृजामीशो वदामीन् मुखताऽसृजत् ।

यद् यद् यनासृजद् दृक्स्तन्मैर्ब्रूहि तपोधन ॥३६॥

मैत्रय उवाच

शृण्वन्तुःसामायवास्यान् वदान् पूर्वादिभिर्मुखैः ।

शस्त्रमिन्द्रां स्तुतिस्तोमप्रापश्चिच्च व्यधात्कमात् ३७

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्व वेदमात्मनः ।

स्वापत्य चासृजद् वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥३८॥

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वदमाश्रय ।

सवस्य एव वक्त्रेभ्यः ससृज सयदद्यन ॥३९॥

पादंश्चुक्रुधो पूर्ववक्त्रात्पुत्रीप्यग्निपुताग्रध ।

आज्ञायामाविराग्रां च वाजपयं सगांसवम् ॥४०॥

विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्यसि पदानि च ।

आधर्माश्च यथासम्भ्रमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥४१॥

सावित्रं प्राज्ञापत्य च प्राज्ञं चाथ बृहत्तथा ।

वातामश्चपृष्णीलीनग्निनेच्छ इति वै गृहे ॥४२॥

एक बार ब्रह्माजी यह सोच रहे थे कि 'मैं पहलेकी तरह सृज्यवस्थित रूपसे सब लोकोंकी रचना किस प्रकार करूँ ?' इसी समय उनका चार मुखोंसे चार वेद प्रकट हुए ॥ ३४ ॥ इनका सिक्का उपवेद, न्यायशास्त्र, होता, उद्गाता, अथ्यु और ब्रह्मा—इन चार श्रुतिजोंके कम, यज्ञोंका विस्तार, धर्मके चार चरण और धर्मों आश्रम तथा उनको वृत्तियाँ—ये सब भी ब्रह्माजीके मुखोंसे ॥ उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥

विदुरजीने पूछा—तपोधन ! विश्वरचयिताओंके स्वामी श्रीब्रह्माजीने जब अपने मुखोंसे इन वैदिकोंकी रचा, तो उन्होंने अपने किस मुखसे कौन वस्तु उत्पन्न की—यह आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ ३६ ॥ श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! ब्रह्माने अपने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरके मुखसे क्रमशः ऋक् यजु साम और अथर्ववेदोंकी रचा तथा इसी क्रमसे शस्त्र (होताका कर्म), इन्द्रा (अथ्युका कर्म), स्तुतिस्तोम (उद्गाताका कर्म) और प्रापश्चित (मन्त्राका कर्म)—इन चारोंकी रचना की ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र), धनुर्वेद (शस्त्रविद्या), गान्धर्ववेद (सङ्गीतशास्त्र) और स्वापत्यवेद (शिल्पविद्या)—इन चार उपवेदोंको भी क्रमशः उन पूर्वोक्त मुखोंसे ही उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ फिर सबदर्शा भगवान् ब्रह्माने अपने चारों मुखोंसे इतिहास-पुराणरूप पौंचर्षी वेद वनाया ॥ ३९ ॥ इसी क्रमसे योद्धशी और उक्थ्य, चयन और अग्निष्टोम, आतायाम और अस्तिरात्र तथा वाजपेय और गोसत्र—ये दो नौ याग भी उनके पूर्वादि मुखोंसे ही उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ विद्या, दान, तप और सत्य—ये धर्मक चार पाद और वृत्तियोंके सहित चार आश्रम भी इस क्रमसे प्रकट हुए ॥ ४१ ॥ सावित्र, प्राणापत्य, ब्राह्म और बृहत्—ये चार वृत्तियाँ ब्रह्माजीकी हैं तथा वाता मध्य, शाकीन और लिप्तेष्ट—ये चार वृत्तियाँ

* प्रा पा—विष्टया कर्त्ते । २ प्रा पा—योद्धशेन. पूर्व ।

उभयक-सत्तरह पञ्च-गवत्रीका अथर्वयन करनेके लिय बारह किना अनेकान्य तीन दिनका ब्रह्मचर्यनत ।

१ एक कथं ब्रह्मचर्यनत । २ वेदसृज्यवस्थी समाहितरु रत्नेषां ब्रह्मचर्यनत । ३ आयुर्वेद रत्नेषां ब्रह्मचर्यनत ।

४ इति इति धर्मविविध वृत्तियाँ । ५ यागाणि करुणा । ६ अथाश्रम वृत्ति । ७ सेत कट कानेपर पृष्णीपर पद्म हुए तथा अथर्वकी संजीवी सिरे हुए वाताम्य बीजकर निहाइ कर्त्ता ।

कस्य रूपममृद् द्रुधा यत्कायमभिचक्षते ।
 ताम्बां रूपविमागाम्यां मिथुनं समपद्यत ॥५२॥
 यस्तु तत्र पुमान् सोऽमृन्मनु स्वायम्भुव खराट् ।
 स्त्री याऽऽसी छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥५३॥
 तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ब्रह्माम्बभूविर ।
 स चापि छतरूपायां पञ्चापत्यान्यसीजनत् ॥५४॥
 प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्र कन्याश्च भारत ।
 आकृतिर्देवहूतिश्च प्रद्युतिरिति सचम ॥५५॥
 आकृतिं रुचये प्रादात्स्वर्दमाय तु मन्थमाम् ।
 दद्यामादात्प्रद्युतिं च यत आपूरित जगत् ॥५६॥

उसी समय ब्रह्मात् उनके शरीरके दो भाग हो गये ।
 'क' ब्रह्माजीका नाम है, उन्होंने विभक्त होनेके कारण
 शरीरको 'काय' कहते हैं । उन दोनों विभागोंसे एक
 स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ ॥ ४९-५२ ॥ उनमें
 जो पुरुष था, वह साधभौम सम्राट् स्वायम्भुव मनु हुए
 और जा स्त्री थी, वह उनकी महारानी शतरूपा
 ॥ ५३ ॥ तबसे मिथुनधर्म (स्त्री-पुरुष-सम्भोग)
 से प्रजाकी वृद्धि होने लगी । महाराज स्वायम्भुव मनु
 शतरूपासे पाँच सन्तानें उत्पन्न कीं ॥ ५४ ॥ साधु
 शिरोमणि विदुरजी । उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद—
 दो पुत्र थे तथा आकृति, देवहूति और प्रसूति—तीन कन्याएँ
 थीं ॥ ५५ ॥ मनुजीने आकृतिका विवाह रुचि प्रजापति
 से किया मन्थका कन्या देवहूति कदमजीको दी और
 प्रसूति दक्ष प्रजापतिको । इन तीनों कन्याओंकी सन्ततिसे
 सारा संसार भर गया ॥ ५६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां तृतीय
 स्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

धार्वाह भवतारकी कथा

धीशुक उवाच

निशम्य वाच वदता मुन पुण्यतमां नृप ।
 भूय पप्रच्छ कौरव्या वासुदेवकथां च ॥ १ ॥

विदुर उवाच

म वै स्वायम्भुव सम्राट् प्रिय पुत्रः स्वयम्भुवः ।
 प्रतिलम्प प्रियां पत्नीं किञ्चकार ततो मुने ॥ २ ॥
 अस्मि तस्य राजर्षेरादिराजस्य सचम ।
 ब्रूहि म भर्द्धानाय विष्वक्सनाग्रयां ब्रह्मै ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र पुतां सुचिरं धर्मस्य
 नन्द्यञ्जसा हरिमिरीद्विवाऽर्थः ।

धीशुकदेवजीने कहा—राजन् ! मुनिवर मैत्रेयजीके
 मुखसे यह परम पुण्यमयी कथा सुनकर धीविदुरजीने
 फिर पूछा क्योंकि भगवान्की खोजकथामें इनका
 अप्रत्यक्ष अनुवाग हो गया था ॥ १ ॥

विदुरजीने कहा—मुन । स्वयम्भु ब्रह्माजीके प्रिय
 पुत्र महाराज स्वायम्भुव मनुने अपनी प्रिय पत्नी शतरूपाका
 पाकर फिर क्या किया ? ॥ २ ॥ और साधुशिरोमणि है ।
 आप मुझ आदिराज राजर्षि स्वायम्भुव मनुका पतित्र अस्मि
 सुनाइये । वे धीविशुभगमान्क शरणागत थे, इसलिये
 उनका अस्मि सुननेमें मेरी बहुत श्रद्धा है ॥ ३ ॥ उनके
 हृदयमें श्रीभुवन्देव चरणारविन्द विराजमान हैं, उन
 भक्तबोधके गुणोंका श्रवण करना ही मनुष्योंके बहुत

यद्यदुगुणानुभवं मुकुन्द
पादारविन्द हृदयेषु ययाम् ॥ ४ ॥

श्रीगुरु उवाच

इति सुवाण विदुर विनीत
सहस्रशोषाभरणापधानम् ।
प्रहृष्टरामा भगवत्कथायां
प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥ ५ ॥

मेनेय उवाच

यदा स्वमार्गया साक जात स्वायम्भुवा भनु ।

प्राञ्जलि प्रणतभेद चेदगर्मममापत् ॥ ६ ॥

त्वमेक सर्वभूतानां जन्मकुटुम्बपिता ।

अथापि नः प्रदानां त शुभूपा कन वा मधत् ॥ ७ ॥

तद्विचेहि नमस्तुभ्य कर्मस्वीकारमशक्तिषु ।

यत्कृत्वेह यथा विज्जगद्भ्य न भवेद्भति ॥ ८ ॥

महोवाच

प्रीतस्तुभ्यमह तात स्वन्ति स्तादां वितीश्वर ।

यन्निर्व्यलीकन हृदा शशि मेत्पात्मनापितम् ॥ ९ ॥

पतायन्म्यामजर्वीर काया क्षपचिठिगुरी ।

शक्त्याप्रमत्तगुह्यत सादर गतमत्सरं ॥ १० ॥

म त्वमस्मान्पयानि महशान्यात्मनो गुण ।

उन्वाच ग्राम धर्मण गां यत्र पुरा यत्र ॥ ११ ॥

पर शुश्रूषणं मय म्याप्रजागृह्यया नृप ।

भगवांस्त प्रजामतुदपाकशानुतुष्यति ॥ १२ ॥

ययां न तुषा भगवान् यमलिङ्गा जनादन ।

मया धमापराधाप यदा मा नाहन् मयम् ॥ १३ ॥

मनुवाच

प्रादुशब्द भगवता यतोपायावयदन ।

दिनोत्तक किये हुए शास्त्राम्पासके श्रमका मुख्य फल है,
ऐसा विश्वासोका श्रेष्ठ मन है ॥ ४ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—राजन ! विदुरजी सुदृ-
शीर्षाम्भवान् श्रीहरिके शरणाश्रित भक्त थे । उन्होंने जब
विनयपूर्वक भगवान्‌की कथाके लिये प्रेरणा दी, तब
मुनिवर मेनेयका रोम-रोम खिल उठा । उन्होंने कहा—

श्रीमेनेयजी बोले—जब अपनी मार्गा शतशतक
साथ स्वायम्भुव मनुका जन्म हुआ, तब उन्होंने भी
नम्रतासे हाथ जोड़कर श्रीप्रज्जानीसे कहा— ॥ ६ ॥
'भगवन् ! एकमात्र आप ही समस्त जीवोंके जन्मदाता
और जीविका प्रदान करनेवाले पिता हैं तथापि हम
आपकी सन्तान ऐसा धीन-सा कर्म करें, जिससे आपकी
सेवा बन सके ? ॥ ७ ॥ पूज्यपाद ! हम आपकी
नमस्कार करते हैं । आप हमसे हो सकन योग किसी
ऐसे कर्मके लिये हमें आज्ञा दीजिये, जिससे हम छोड़ने
हमारी सर्वशक्ति ही और परस्वकर्म संप्रति प्राप्त हो
सके ॥ ८ ॥

श्रीप्रज्जानीने कहा—तात ! पृथ्वीपते ! तुम दामोदर
कल्पणा हो । मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि तुम
नियतः भगवत्से 'मुक्त आज्ञा दीजिये' वो कहकर मुम
आत्मसमर्पण किया है ॥ ९ ॥ वीर ! पुत्रोंके पालन
पिताकी इसी रूपसे पूजा फानी चाहिये । उन्हें शक्ति
है कि दूसरोंके प्रति ईप्सा न भाव न स्वस्व न हानिक
बने उनकी आज्ञाका आग्रहपूर्वक आज्ञाकारीसे पालन
करें ॥ १० ॥ तुम अपनी इस भावने अपने ही समस्त
गुणकी सन्तति उत्पन्न करने के धर्मवृक्ष गृहीत पालन
करा और यशोवन्ता श्रीहरिके आराधना करो ॥ ११ ॥
राजन ! प्रजापतिने मेरी भी सेवा होगी और तुम
प्रजापति पालन करते रहकर भगवान् श्रीहरि भी तुमसे
प्रसन्न होंगे । जिनका यहमनि जनान भगवान् प्रसन्न
मही हाने उनका मारा धन व्यर्थ हो जाय है ; पदों से
य न पद प्रसन्नमे अजन्म आमाका ही जन्म करने
है ॥ १२ १३ ॥

मनुजीने कहा—पापका नाम भगवान् पिताजी ।
मैं अपनी आज्ञाका पालन करके भगवान् से मिलूँ

म्यानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४॥

यत्नाक मर्वमन्त्राना मदी मग्ना महाम्भसि ।

अस्मा ठदूरणे यत्नो देव दन्वा विधीयताम् ॥१५॥

मंत्रय उवाच

परमेष्ठी त्वपा मध्ये तथा सत्तामवेक्ष्य गाम् ।

कथमेनां सङ्गन्तेष्य इति दृष्यी विद्या चिरम् ॥१६॥

सृजंतो म क्षितिकर्माणि श्लाघ्यमाना रसां गता ।

अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभि मर्गयोजितं ।

यस्माह इदपादास म इगो विदधातु म ॥१७॥

इत्यभिध्यायतो नामाविबरात्सहसानय ।

वराइतोका निरगादनुष्ठपरिमाणक ॥१८॥

तस्याभिपश्यत स्वयं क्षणेन फिल मारत ।

गजमात्र प्रववृधं तदद्वसुतमभू मइत् ॥१९॥

मरीचिप्रमुखविप्रं इमारमनुना सह ।

दृष्ट्वा तस्मात्क न्यं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥

किमत मीकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवव्यितम् ।

अथापतामर्षमि नासाया म विनि सुतम् ॥२१॥

दृष्ट्वाऽनुष्ठशिरामात्र क्षमाद्रुणक्षिलावम ।

अपि क्षिद्रगज्ञानय यत्रा म रुदयन्मन ॥२२॥

इति मामांमतस्तस्य मन्त्रणः मह यनुभि ।

मगवान यनपुरुषा जगज्जगन्तुमक्षिम् ॥२३॥

मन्त्राण इपपामास इरिस्तांश्च द्विजाक्षमान् ।

म्यगर्जिनन रुद्रः प्रतिमनयता विभुः ॥२४॥

इम अगस्त्ये मेरे और मेरी मात्री प्रजाके हनक डिये स्थान मतलाइये ॥१४॥ देव! सब जीवोंका निवासस्थान पृथ्वी इस समय प्रलयके जळमें डूबी हुई है । आप इस दृश्यक उद्धारका प्रयत्न कीजिये ॥ १५ ॥

भीमवेयर्जने कहा—पृथ्वीको इस प्रकार अपाह जळमें डूबी देखकर द्रष्टात्री बहुत दरतक मनमें यह साचते रह कि “भूसे कौन निकट है” ॥ १६ ॥ जिस समय में क्षीयरचनामें लगा हुआ या उस समय पृथ्वी जळमें डूब जानमे रसातलको चली गयी । हमअग सृष्टियोगमें निपुण हैं, अत इसक स्थि हमें क्या करना चाहिये? अब ता, जिनक सङ्कल्पमात्रसे मेरा जन्म हुआ है व सर्वशक्तिमान् श्रीहरि ही मेरा यह काम पूरा करें” ॥ १७ ॥

निष्पाप विदुरजी! द्रष्टात्री इम प्रकार विचार कर ही रह थे कि उनके नासाक्षिप्रसे अस्मात् अंगुलके बराबर आकारका एक बराह शिपु नियुक्त ॥ १८ ॥ भारत! यह आध्यक्षकी यात तो यही हुई कि आकाशमें लुका हुआ यह बराह शिपु द्रष्टात्रीके देखते-ही-गलते बड़ा हाँकर क्षणभरमे हाथीक बराबर हो गया ॥ १९ ॥ उस विशाल बराह-मूर्तिक देखकर मरीचि आग्नि मुनिजन, मनकादि और आयम्युव मनुक सहित श्रीद्रष्टात्री तरह-तरहक विचार करन लगे—॥ २० ॥ अहो! मूढक रूपमें आज यह कौन निष्प प्राणी यहाँ प्रकट हुआ है? कैसा आध्यक्ष है! यह अभी अभी मरी नाकमे निक्का पा ॥ २१ ॥ पहले ता यह अंगुलके पाकपक बराबर निष्पाय दता था, किन्तु एक भागमें ही बड़ी भारी गिनार समान हो गया । अर्थात् ही यक्षमूर्ति मगवान् हममार्गोंके मनका माहित कर रह हैं ॥ २२ ॥ द्रष्टात्री और उनका पुत्र इम प्रकार सोच हा रह थे कि मगरान् यदुगुण पशुनाकार हाँकर ग़रजन लगे ॥ २३ ॥ सर्वशक्तिमान् श्रीहरिने अपनी गर्जनामें निशाचोरों प्रणिपन्नित करक द्रष्टा और अन्त द्रष्टागैरोंको लपमें भर दिया ॥ २४ ॥

१ मन्त्रेन प्रीतिं श्रुत्वा मे इम अद्वैतक वचन —

मेरी मत्ता मेरा मन तुम्हीं कर्षि करिग्या । मन्त्र श्रुत्वास्तन मनोपतद्विधा ॥

‘मन्त्रेण नमो माया भूतायुष्मत्पतिभ्यः ॥

—५६१०४ अर्थक है ।

निश्चय्य ते वर्षरितं स्वखेद
 धविष्णु मायामयसूकरस्य ।
 जनस्तप सत्यनिवासिनस्ते
 त्रिमिः पवित्रैर्धनयोऽगुणन् स ॥२५॥
 तेषां सतां वेदविद्वानमूर्ति-
 र्ब्रह्मावधार्यत्समगुणानुवादम् ।
 विनय भूयो विप्रभोदयाय
 गजन्त्रलीलो खलमाषिवेष्ट ॥२६॥
 उत्तिष्ठस्त्वालः स्वचरः कठोरः
 सटा विघ्नन् स्वरतोमश्वत्थम् ।
 सुराह्वानं सितदंष्ट्र ईशा-
 न्योतिर्ब्रह्मासे भगवान्महीध्रः ॥२७॥
 प्राणेन पृथ्व्या पदवीं विभिन्नं
 क्रोडापदस्य स्वयमध्वराङ्गः ।
 कालदंष्ट्रोऽप्यकरस्तदगम्या
 सुदीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽबिषत्कम् ॥२८॥
 स वज्रकूटाङ्गनिपासवेग
 विशीर्णहृदि स्तनयन्नुदन्वान् ।
 उत्सृष्टदीर्घोर्मिर्मुञ्चैरिवार्त
 श्लुकोश्च यद्वधः पाहि मति ॥२९॥
 सुरं सुरप्रदरयस्तदाऽऽप
 उत्पारपारं त्रिपैरु रसायाम् ।
 ददर्श गां तत्र सुपुष्पुर्ग्र
 यां जीवधानीं स्वयमम्यभक्त ॥३०॥

स्वदृष्ट्यादुष्ट्य महीं निमग्ना
 स उत्थित संरुच रसाया ।
 तत्रापि दैत्य गदयाऽऽपतन्त्रं
 सुनाम्सन्दीपितवीक्ष्यमन्यु ॥३१॥

अग्रा स्तेद पूर करनेवाली मायामय ब्राह्मणान्त्री
 धुरधुराह्वतको सुनकर वे जनशोक, तपशोक और स्म-
 लोकाभिवासी मुनिगण तीनों वेदोंके परम पवित्र स्मृतियोंसे उनकी
 स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ भगवान्के स्वरूपका वेगमें
 विस्तारसे वर्णन किया गया है, कि उन मुनीश्वरोंने जो
 स्तुति की, उससे वेदरूप मानकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और
 एक बार फिर गरुडकर देवताओंके हितके लिये गज-
 राजकी-सी भीम्य करते हुए जलमें डुब गये ॥ २६ ॥
 पहिले वे सूकररूप भगवान् पूँछ ठठकर बड़े क्रोधसे
 आकाशमें उछले और अपनी गदनके बाँझोंको फटकार
 कर झूठोंके आवाजसे बादलोंको छितराने लगे । उनका
 शरीर बड़ा कठोर था, त्वचापर कड़े-कड़े बाल थे, दाँते सफेद
 थीं और नेत्रोंसे तेज निकल रहा था उस समय उनकी बड़ी
 शोभा हो रही थी ॥ २७ ॥ भगवान् स्वयं यज्ञपुरुष हैं, तथापि
 सूकररूप धारण करनेके कारण अपनी नाकसे सूँब-सूँबकर
 पृथ्वीका प्लाछा रहा थे । उनकी दाँते बड़ी कठोर थीं । इस
 प्रकार यद्यपि वे बड़े क्रूर जान पड़ते थे, तथापि अपनी स्तुति
 करनेवाले मरीचि आदि मुनियोंकी ओर बड़ी सीम्य इच्छिते
 निहारते हुए उन्होंने जलमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥ जिस समय
 उनका वज्रमय पंक्तिके समान कठोर कलेवर जलमें गिरा, तब
 उसके वेगसे मानो समुद्रका पैर फट गया और उसमें
 बादलोंकी गदगडाहटके समान बड़ा स्फीरण शब्द हुआ ।
 उस समय ऐसा जान पड़ता था माना अपनी उत्पत्ति
 तत्त्वस्वरूप मुन्नाओंका उत्पन्न वह बड़े आर्तकारसे 'हे
 यक्षेश्वर ! मेरी रक्षा करा' इस प्रकार पुकार रहा
 है ॥ २९ ॥ तब भगवान् यज्ञमूर्ति अपने बाणके समान पैरों
 सुतेसे जलको चीरते हुए उस जग्यार जङ्गलाधिके उस
 पार पहुँचे । वहाँ रसातलमें उन्होंने समस्त जीवोंकी
 आश्रयभूता पृथ्वीको देखा, जिसे कल्याणार्थमें शपन करमक
 लिये उद्यत श्रीहरिन् स्वयं अपने ही उदरमें छैन कर
 दिया था ॥ ३० ॥

फिर, वे जलमें डूबी हुई पृथ्वीको अपनी दाँतोंसे
 छकर रसातलसे ऊपर आये । उस समय उनकी बड़ी
 शोभा हो रही थी । जलसे बाहर आते समय उनका
 मार्गमें विष्णु सायनेक त्रिय महापराक्रमी क्षिरय्याधान
 जलके भीतर ही उनपर गन्नासे आक्रमण किया । इससे

जघान रुन्धानमसह्यधिकम्

स लीलयेम मृगराटिषाम्भसि ।

वद्रक्तपङ्कजितगण्डतुण्डो

यया गजेन्द्रो बगर्तो विमिन्दन् ॥३२॥

तमालनीलं सिवदन्तकोटया

हमाङ्गुलिपन्त गमलीलयाङ्ग ।

महापदमाङ्गलचोऽनुवाकै

विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीक्षम् ॥३३॥

कर्म जघनः

जित जित वेऽजित यङ्गमावन

प्रयी तनुं स्वां परिघुन्वते नम ।

यद्रोमर्गतेषु निलिच्युरध्वरा-

स्तस्मै नमः कारणवक्रराय ते ॥३४॥

रूप सर्ववस्तु दुष्कृतस्मनां

दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।

छन्दांसि यस्य स्वचि बहिरोम

स्वान्ध इति त्वङ्मिषु चातुर्दशम् ॥३५॥

सूक्तगुणं प्राप्तीस्त्वैव ईश नामयो-

रिडोदर चमसा कर्णोन्ने ।

प्राणिप्रमाप्ते प्रमते ग्राहास्तु ते

यद्यवर्णं ते मगधमग्निहात्रम् ॥३६॥

दीक्षानुजन्मोपसद शिराधरं

स्व प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्र ।

त्रिहा प्रवर्ग्यस्त्व धीर्यकं कथा

मम्यावमप्य शितयोऽर्मको हि ते ॥३७॥

उनका क्रोध पाकके समान तीक्ष्ण हो गया और उन्होंने उसे लीलासे ही इस प्रकार मार डाला, जैसे सिंह हाथी-को मार डालता है । उस समय उसके रक्तसे धूमनी तथा कनपटी सज जानेके कारण वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कोई गजराज काष्ठ मिथीके टीसमें ठकर मारकर भाया हो ॥ ३१ ३२ ॥ तात ! जैसे गजराज अपने दाँतोंपर कम्बल-पुण्य धारण कर ले उसी प्रकार अपने सफेद दाँतोंकी नोकपर प्रसीकी धारण कर चलते बाहर निकलें हुए, तमामके समान मीठवर्ण बरछमगवान् की देखकर ब्रह्मा, मरीचि आदिको निश्चय हो गया कि ये भगवान् ही हैं । तब वे हाथ जोड़कर वेदवाक्योंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

अपिपौने कथा—भगवान् अजित । आपकी जय हो, जय हो । यज्ञपते ! आप अपने वेदव्रीक्षरूप विष्णु-की फटकार रहे हैं, आपको नमस्कार है । आपको रोम-कूपोंमें सम्पूर्ण यज्ञ छिने हैं । आपन पृष्ठीका उद्धार करनेके लिये ही यह सूकररूप धारण किया है । आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ देव ! दुराचारियोंका आपको इस शरीरका दर्शन होना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह यज्ञरूप है । इसकी लक्ष्मणं गायत्री आदि छन्द, राम बलीमें कुत्रा, नेत्रोंमें धृत तथा चारों तरफोंमें होता, अप्यर्थ, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चारों श्रद्धिजनोंके कर्म हैं ॥ ३५ ॥ ईश ! आपकी धूमनी (मुखक अवमग) में लुक् हैं नासिकप्रतिमिमें शुभा है, उदरमें इडा (यक्षीय मक्षणपात्र) है बज्रोंमें चमस है, मुखमें प्राणिश्र (ब्रह्ममगपात्र) है और कण्ठप्रतिममें प्रह (सोमपात्र) है । मगध ! आपका जा चमना है, बही अग्निहोत्र है ॥ ३६ ॥ बार-बार अक्षतार सेना यज्ञस्वरूप आपकी दीक्षणीय इष्टि है, मरदन उपस (तीन इष्टियों) हैं, दोनों दाँके प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) और उदयनीय (यज्ञसमाप्तिकी इष्टि) हैं; त्रिहा प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपस, के पूष किया जानवाला महावीर नायक वन) है, शिर सम्य (होमरहित अग्नि) और आसप्य (जीवमग्नि) है तथा प्राण चिति (इन्द्रवर्षन)

मामस्तु रत सवान्यवस्थिति
 संस्थाविमेदास्तव दव धातव ।
 मयाणि सर्वाणि शरीरसन्धि
 म्त्व सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिषधन ॥३८॥
 नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता
 द्रव्याप सर्वकृतवे क्रियारमने ।
 वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभाषित
 ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नम ॥३९॥
 दंष्ट्राप्रकोट्या भगवस्त्वया धृता
 विराजत मूढर भूः समूढरा ।
 यथा वनाभि सरतो दत्ता धृता
 मवक्त्रजन्द्रस्य सपत्रपणिनी ॥४०॥
 प्रवीमयं रूपमिदं च सौकरं
 भूमण्डलेनाथ दत्ता धृतेन ते ।
 चकास्ति मृक्तेदधनेन मूषसा
 कृष्णचलेन्द्रस्य मधैय विभ्रम ॥४१॥
 मंम्यापर्यन्ता जगतां सप्तस्थुपां
 लोकाप पत्नीमसि मातरं पिता ।
 विधेम चास्मै नमसा सह त्वया
 यसां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥४२॥
 क भद्रधीतान्यवमस्तव प्रभो
 रसां गताया सुख उद्विष्यैणम् ।
 न विस्मयाऽर्ता त्वयि विश्वविस्मय
 या माययंद ससृजऽतिविस्मयम् ॥४३॥
 विबुधता वदमप निजं धनु
 र्बेनन्तप सत्यनिवासिनो वयम् ।
 मयाशिवोऽभूत्तद्विशाम्बुविन्दुमि
 रिन्दुवामाग भृगामीश पात्रिता ॥४४॥

हैं ॥ ३७ ॥ देव ! आपका वीर्य सोम है, वासु
 (वैष्णव) प्रातः सत्रनादि तीन सत्रन हैं, सातो वात
 अग्निष्टोम, अथग्निष्टोम, उक्थ, पोडशी, वाजपेय, अतिरात्र
 और आतोर्ध्वा नामकी सात संस्थाएँ हैं तथा शरीरकी
 सन्धियों (जोड़) सम्पूर्ण सत्र है । इस प्रकार आप
 सम्पूर्ण यज्ञ (सोमसहित यज्ञ) और वात (सोमसहित
 यज्ञ) रूप हैं । यथानुष्ठानरूप इष्टियों आपके अङ्गोंका
 मिश्रण रखनेवाली मांसपेशियों हैं ॥ ३८ ॥ समस्त
 मात्र देवता, द्रव्य, यज्ञ और कर्म आपके ॥ स्वरूप है
 आपको ममस्कार है । वैराग्य भक्ति और मनकी
 एकाग्रतासे जिस ज्ञानका अनुभव होता है, वह आपका
 स्वरूप ही है तथा आप ही सबके विद्यागुरु हैं आपके
 पुन-पुन प्रणाम है ॥ ३९ ॥ पृथ्वीको वारण करने-
 वाक मण्डल ! आपकी दाढ़ीकी नोकपर रक्खी हुई यह
 पर्वताग्नि-मण्डित पृथ्वी ऐसी सुशोभित हो रही है, जैसे
 वनमेंसे निकलकर बाहर आये हुए किसी गजराजके
 दाँतोंपर पत्रपुष्प कमलदिनी रक्खी है ॥ ४० ॥ आपके
 दाँतोंपर रक्खे हुए भूमण्डलके मण्डित आपको यह वेदमय
 ब्राह्मविषय ऐसा सुशोभित हो रहा है जैसे शिखरोंपर छमी
 हुई मधुमाळासे कुलपर्वतकी शोभा होती है ॥ ४१ ॥
 नाथ ! शरावर जीकोंके सुखपूर्वक रहनेके लिये आप अपनी
 पत्नी इन जगम्माता पृथ्वीको जलपर स्थापित करिजिये ।
 आप जगत्क पिता हैं और अरुणिमें अग्निस्थापनके
 समान आपने इसमें धारणशक्तिरूप अपना तेज स्थापित
 किया है । हम आपको और इस पृथ्वीमाताको प्रणाम
 करते हैं ॥ ४२ ॥ प्रभो ! रसात्मके हृषीकेश इस
 पृथ्वीको निकज्जनका साहस आपके सिद्ध और ब्रह्म
 कृत स्रजता था । विन्दु आप तो सम्पूर्ण आश्रयोंके
 आश्रय हैं, आपके लिये यह कोई आश्रयकी बात नहीं
 है । आपन ही तो अपनी मायासे इस अम्याधमय
 विश्वकी रचना की है ॥ ४३ ॥ जब आप अपने बे-
 मय विग्रहको दिखाते हैं तो हमारा ऊपर आगरी
 गरमक बान्नेसे डारनी हुई शीतल जलकी मूँटें मिली
 हैं । इतना ठंडसे भीगकर हम जनकाक ताराकाक और
 मत्स्यनोकमें रहनेवाले मुनिजन सबका पवित्र हा जाते

स वै षट् अष्टमवित्तवैपते
 यः कर्मणां पारमपारकर्मण ।
 ययोगमायागुणयोगमोहित
 विश्व समस्तं भगवन् विषेदि शम् ॥४५॥
 मेवम उवाच
 इत्थुपस्यायमानस्तेषुनिमिषेभवादिभि ।
 सङ्गिरे प्वसुराक्रान्त उपाधचावितावनिम् ॥४६॥
 स इत्थ भगवानुवीं विष्णुसेन प्रजापति ।
 रसाया लीलयोगीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥

य एवमेतां हरिमेवसो हरेः
 कथां सुमद्रां कथनीयमायिनः ।
 मृषीव भक्त्या भवयेत् वाश्वती
 वनार्दनाऽ'स्यागु इदि प्रसीदति ॥४८॥
 वसिन् प्रसन्ने मकलाशिषा प्रभौ
 किं दुर्लभ तामिरल लवाभमि ।
 अनन्यदृष्ट्या भवतां गुहाश्रय
 स्वय विभक्त स्वगतिं परः पराम् ॥४९॥
 को नाम लोक पुरुषाधसारवित्
 पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ।
 आपीय कर्णाञ्जलिर्मिर्मवापहा
 महा विरन्येत विना नरतरम् ॥५०॥

है ॥४४॥ जो पुरुष आपके कर्मोंका पार पाना चाहता है, अवश्य ही उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, क्योंकि आपके कर्मोंका काँइ पार ही नहीं है । आपकी ही योगमायाके सत्तापि पुणोंसे यह साग जगत् मोहित हो रहा है । भगवन् ! आप इसका कल्याण करिये ॥४५॥ श्रीमद्भेषजी कहते हैं—विदुरजी । उन ऋषिआदी मुनियोंके इस प्रकार त्तुनि करनेपर सबकी रक्षा करने वाले ब्राह्म भगवान् अपने सुरोंसे जलको लुप्तिकर उसपर पृथ्वीकी स्थापित कर दिया ॥४६॥ इस प्रकार रसातलसे लीलापूजक लयो हुई पृथ्वीका जलपर रखकर ब विष्णुसेन प्रजापति भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये ॥४७॥

विदुरजी ! भगवान्क लीलामय चरित्र अत्यन्त केननीय हैं और उनमें लगी हुई बुद्धि सय प्रकारक पाप-पापोंका दूर कर देती है । जो पुरुष उनकी इस मङ्गलमयी मन्त्रपुत्र कथाको मङ्गलमयसे सुनता या सुनाता है उसके प्रति भक्तकसुख भगवान् अन्तस्तलसे बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥४८॥ भगवान् तो सभी कामनाओंका पूर्ण करनेमें समर्थ हैं, उनके प्रसन्न हानपर संसारमें क्या दुःख है । किन्तु उन मृषा कामनाओंकी आवश्यकता ही क्या है ? जो लोग उनके अनन्यमायसे भजन करते हैं उहे तो ब अत्युत्तमी परमात्मा स्वयं अपना परम पन् ही देते हैं ॥४९॥ अरे ! संसारमें पन्तुओंको छोड़कर अपन पुरुषार्थका सार जाननेका ऐसा कौन पुरुष हागा जो आवागमनसे सुका देनवाली भाषान्की प्राचीन कथाओंसे किसी भी अमृतमयी कथाका अपन कर्णपुत्रोंसे एक बार पान करके फिर उनकी ओरसे मन हटा लेगा ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसा मखेतायां तृतीयस्कन्धे चरैह
 प्रादुर्भावनुवर्णने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

विश्वकाश गर्भधारण

निशम्य कौपारविणापवर्णितां
 हर कथा कारणसूत्रात्मन ।

श्रीपुरुषजी कहते हैं—राजन ! प्रजाजनन

मूर्तर धन शिद्विरी कथाका मन्त्र की सुनते सुनकर

१ मा या नलम्प इति । २ प्राचीन प्रतिमें 'वगदा' दुभाकानुवर्णने' इत्या अंश नहीं है ।

पुन स पप्रच्छ तमुपताडालि-

र्न चातिवृत्तो विदुरो धृतरात्र ॥ १ ॥

विदुर उवाच

तेनैव तु मुनिधेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ।

आदिदैत्यो हिरण्याक्षो ह्य इत्यनुगुह्यम् ॥ २ ॥

तस्य चोद्वरत खोणीं स्वदद्याग्रण लीलया ।

दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कणाद्वज्रोर्मन्मुधः ॥ ३ ॥

मेत्रेव उवाच

साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरे ।

यस्य पृच्छसि मत्त्वानां मृत्युपादाविशालनीम् ॥ ४ ॥

ययोत्तानपद पुत्रो मुनिना गीतयार्थकः ।

मृत्यो कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमात्स्रोह हरः पदम् ॥ ५ ॥

अथात्रापातिहासाज्जं धृतो मे वपितः पुरा ।

ब्रह्मणा दबदबेन दवानामनुपृच्छताम् ॥ ६ ॥

दितिर्दाशायमी क्षत्रमारीच कश्यपं पतिम् ।

अपत्यकामा चक्रम सञ्चयायां हृच्छयादिता ॥ ७ ॥

इष्टाग्निविद्ध पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ।

निम्लाचत्वर्क आसीनमन्यगारे समाहितम् ॥ ८ ॥

नितिरयोष

ण्यमान्वत्कृत विद्वन् काम आचररासन ।

दुनातिदीनां विप्रस्य रम्भामिव मतङ्गज ॥ ९ ॥

तद्भवान्दसमानायां मपसीनां समृद्धिभिः ।

प्रजावतानां भद्रं स मय्यापुच्छकामनुग्रहम् ॥ १० ॥

मर्त्यप्राप्तमानानां साकानाविशते यय ।

पतिमवद्रिभा यामां प्रजया ननु जायते ॥ ११ ॥

पुन पिता ना मगवान्दया दृष्टिपत्सलः ।

१ इत्येव प्रीतिं भित्तवाच दृष्टं भगवन्मे मां

भी मतिरूपधारी विदुरजीको पूर्ण वसि न इहं वन
उन्होंने हाथ जोड़कर फिर पूछा ॥ १ ॥

विदुरजीने कहा—मुनिवर ! हमने यह बात आपके
मुखसे अभी सुनी है कि आदिदैत्य हिरण्याक्षको मारकर
यज्ञमूर्तिनी की मांग था ॥ २ ॥ ब्रह्मन् ! जिस समय
भगवान् कीलसे ही अपनी दाढ़ीपर रखकर पृथ्वीको जल-
मेंसे निकाल रहे थे, उस समय उनसे दैत्यराज हिरण्याक्ष-
की मुठमेक किस कारण हुई ! ॥ ३ ॥

धीमित्रेयजीने कहा—विदुरजी ! मुन्हासा प्रसन्न बना
ही सुन्दर है, क्योंकि तुम श्रीहरिकी लक्ष्मणकण्ठके
नित्यमें ही पूज रहे हो, जो मनुष्योंके मृत्युपाशका छान
करनेवाली है ॥ ४ ॥ देखो, उद्यमपादक पुत्र तुम
बाष्पकपनमें भीमरुद्रजीकी सुनायी हुई हरिकण्ठके प्रसन्न-
से ही मृत्युक सिरपर पैर रखकर मन्त्रानुके परम्परपर
चारुङ्ग हो गया था ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें एक बार इसी तरह
मन्त्रानु वीर हिरण्याक्षके मुखके विषयमें देवताओंके प्रसन्न
करनेपर देवदेव धीमन्त्राजीने उन्हें यह इतिहास सुनाया था
वीर उसीके परम्परासे मैंने सुना है ॥ ६ ॥ विदुरजी ! एक
बार दक्षकी पुत्री नितिले पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे कन्याश्रम होकर
सायंकालके समय ही अपने पति मरीचिनन्दन कश्यपजीसे
प्रापना की ॥ ७ ॥ उस समय कश्यपजी शीरकी जाहुनियों-
द्वारा अग्निविद्ध भगवान् महर्षिकी आराधनाकर सूर्यस्तका
समय जाग अग्निशाखामें प्यानस्य होकर धीरे धीरे ॥ ८ ॥

दितिले कहा—विदुरन् ! मतवाला हाथी जैसे केन्द्र-
के इल्लको मस्तक दाऊता है, उसी प्रकार यह प्रसिद्ध
धनुर्धर कामदेव मुख खबरदार और जताकर आपके शिष्य
मुख बेचैन कर रहा है ॥ ९ ॥ अपनी पुत्रपत्नी से नारी
सुख-समृद्धिकी लक्ष्मण ही इच्छाकी आगसे जली जाती
है । जग आप मुनपर इया कीजिये, आपका सम्मान
हो ॥ १० ॥ त्रिनयन गमसे आप-जैसा पति पुत्र-पत्नी
उत्पन्न होता है वे ही शिष्यों जगन पतिजैने सम्मानित
गमती जाती हैं । उनका सुपन मंसायें मर्त्य पैर
जाता है ॥ ११ ॥ हमारे निम्न प्रजापति दक्षराज अपनी
पुत्रियोंपर बड़ा स्नेह था । एक बार उन्होंने हम सबको

शिष्यगीते दे । २ मा वा — ब्रह्मन् ।

कं वृणीत वरं वरसा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥१२॥
 स विदिस्वाऽऽत्मज्ञानां नो माय सन्तानमावनः ।
 त्रयोदशाददात्तासां यास्ते क्षीलमनुव्रताः ॥१३॥
 अय मे कुरु कस्याण काम कञ्जविलासन ।
 आर्तोपसर्पण भूमभमोष हिं महीयसि ॥१४॥
 इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुमाषिणीम् ।
 प्रत्याहानुनयन् वाचा प्रहृष्टानङ्गकम्भलम् ॥१५॥
 एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं मीरु यदिच्छसि ।
 तस्याः कामं न कः क्षुर्यात्सिद्धिस्त्रैविङ्गिकी यत ॥१६॥
 सर्वाभिमालुपाशाय स्वाभ्रमेण कलत्रवान् ।
 व्यसनार्थमस्येति जलयानैर्यथार्थवम् ॥१७॥
 यामाहुरात्मनो हर्षं श्रेयस्कामस्य मानिनि ।
 यस्यां स्वधुरमर्षस्य पुमांश्चरति विचरः ॥१८॥
 यामाभित्येन्द्रियारतीन्दुर्बुध्यानिहराम्रभैः ।
 वय जयेम हेलाभिर्दस्पृन्दुर्गपतिर्वथा ॥१९॥
 न वय प्रभवतां स्वामनुभूतं गृहेष्वरि ।
 अप्यायुषा वा कास्त्वेन मे चान्यगुणभूषणव ॥२०॥
 अधापि काममेत तं प्रभात्यं करवाण्यलम् ।
 यथा मीं नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥
 एषा धारतमा वेला धोराणां धोरदृष्टना ।

अकम-अकम बुझाकर पूछ कि शुभ किसे अपना पति
 बनामा चाहती हो ॥ १२ ॥ वे अपनी सन्तानकी सब
 प्रकारकी चिन्ता रखते थे । अतः हमारा माय जानकर
 उन्होंने उनमेंसे हम तेरह पुत्रियोंको, जो आपके गुण-
 समाके अनुरूप थीं, आपके साथ म्याह दिया ॥ १३ ॥
 अतः माङ्गल्यार्त ! कमलनयन ! आप मेरी इच्छा पूरा
 कीजिये, क्योंकि हे महत्तम ! आप-जैसे महापुरुषोंके पास
 दीनबनोंका खाना निष्कल नहीं होता ॥ १४ ॥

विदुरजी ! दिति कामदेवके बेगसे व्यसन्त बेचैन
 और बेबस हो रही थी । उसने इसी प्रकार बहुत सी बातें
 बजाते हुए दीन होकर कल्पवृक्षसे प्रार्थना की, सब उन्होंने
 उसे समुद्र बाणीसे समझाते हुए कहा ॥ १५ ॥ मीरु ! तुम्हारी
 इच्छाके अनुसार मैं अभी-अभी तुम्हारा प्रिय अक्षय करूँगा ।
 मन्त्रा, जिसके द्वारा अर्थ, धन और काम-तीनोंकी सिद्धि
 होती है, अपनी ऐसी पत्नीकी कामना कौन पूर्ण नहीं
 करेगा ॥ १६ ॥ जिस प्रकार जहाबपर चढ़कर मनुष्य
 महासागरको पार कर केता है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रमी
 दूसरे आश्रमोंको आश्रय देता हुआ अपने आश्रमद्वारा
 श्रय भी दुःखसमुद्रके पार हो जाता है ॥ १७ ॥
 मानिनि ! बीको तो त्रिविध पुरुषायकी कामनाबाल
 पुरुषका आधा अङ्ग कहा गया है । उसपर अपनी
 गृहस्त्रीका भार दाखकर पुरुष निश्चित होकर विचरता
 है ॥ १८ ॥ इन्द्रियरूप शत्रु अन्य आश्रमवाहोंके खिये
 व्यसन्त दुर्भय हैं, विन्तु जिस प्रकार किरिन्दा स्वामी
 सुगमतासे ही छत्रेशाले शत्रुओंको अपने अधीन कर लेता
 है, उसी प्रकार हम अपनी विवाहिता पत्नीका आश्रय
 लेकर इन इन्द्रियरूप शत्रुओंको सहजमें ही जीत लेते
 हैं ॥ १९ ॥ गृहेष्वरि ! तुम-जैसी मर्यादा उपकारोंका
 बदला तो हम अपना और कोई भी गुणप्राप्ती पुरुष
 अपनी सारी उम्रमें अथवा जन्मन्तरमें भी पूरा रूपसे नहीं
 युक्त सकते ॥ २० ॥ तो भी तुम्हारी इस सन्तान-प्राप्तिकी
 इच्छाको मैं यथाशक्ति अक्षय पूर्ण करूँगा । परन्तु अभी
 तुम एक मुद्दूच टडरो, जिससे भोग मरी निन्दा न
 करें ॥ २१ ॥ यह व्यसन्त और समय यक्षसादि धोर जीकोंका

पुनः स पप्रच्छ समुद्यताञ्जलि-
र्न चाविष्टो विदुरो भृतवत ॥ १ ॥

विदुर उवाच

तेनैव तु मुनिमेषु हरिणा यज्ञमूर्तिना ।
आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हव इत्यनुशुभम् ॥ २ ॥
तस्य चोदरत घोषी स्वर्दद्राग्रण लीलया ।
दैत्यराक्षसश्च ब्रह्मन् कसादेनोरभून्मुखः ॥ ३ ॥

तेनैव उवाच

साधु वीर स्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ।
यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाञ्चविघातनीम् ॥ ४ ॥
ययोचनपदः पुत्रो मुनिना गीतयार्मकः ।
मृत्योः कृत्यैव मूर्च्यङ्गिमास्तो हरेः पदम् ॥ ५ ॥
अधात्रापीतिहासाज्जं भुतो मे वणिक्तः पुरा ।
ब्रह्मणा दबद्वेन दवानामनुपृच्छताम् ॥ ६ ॥
दितिर्दाष्टायणी क्षत्रमारीचं कश्यपं पतिम् ।
अपत्यकामा चक्रमे सत्त्वायां हृच्छयार्दिता ॥ ७ ॥
इष्टान्निजिह्व पवसा पुरुष यद्वपां पतिम् ।
निम्बाचत्पर्क आसीनमन्त्रगारे समाहितम् ॥ ८ ॥

दितिरुवाच

एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आचक्षरासन ।
दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भाभिष मत्तज्जगत् ॥ ९ ॥
सद्भवान्दशमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ।
प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यापुङ्क्तमनुग्रहम् ॥ १० ॥
मर्त्यप्राप्तोरुमानानां लोकानाभिष्वते यज्ञः ।
पतिर्मवद्रिधा यावां प्रब्रूया ननु जायते ॥ ११ ॥
पुरा पिता नो मगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः ।

मी यकिमतपायी विदुरजीको पूर्ण वसि न हुई, वह
उन्होंने हाथ जोड़कर फिर पूछा ॥ १ ॥

विदुरजीने कहा—मुनिक ! हमने यह बात कहने
मुखसे अभी सुनी है कि आदिदैत्य हिरण्याक्षको मगवान्
यज्ञमूर्तिने ही मारा था ॥ २ ॥ ब्रह्मन् ! जिस समय
मगवान् जीबसे ही अपनी दाढ़ीपर रखकर पृथ्वीको बज-
मेंसे निकट रखे थे, उस समय उनसे दैत्यराज हिरण्याक्ष
की मुठमेव किस कारण हुई ? ॥ ३ ॥

श्रीमदेषजीने कहा—विदुरजी ! तुम्हारा प्रश्न वह
ही सुन्दर है, क्योंकि तुम श्रीहरिकी कवचरक्षणमें
निकयमें ही पूछ रहे हो, जो मनुष्योंके मृत्युपात्रक छेद
करनेवाली है ॥ ४ ॥ देखो, उत्तमपादका पुत्र ही
बाष्कपनमें भीनासद्वीकी सुनायी हुई हरिकृष्णके प्रभव-
से ही मृत्युके सिरपर पैर रखकर मगवान्के परमदर
आक्रम हो गया था ॥ ५ ॥ पूर्वकर्ममें एक बार इसी क्रम
मगवान् और हिरण्याक्षके युद्धके निषयमें देवताओंके प्रल-
भनेपर देवदेव श्रीब्रह्माजीने उन्हें यह इतिहास सुनाया था
और उसीके परम्परासे मैंने सुना है ॥ ६ ॥ विदुरजी ! एक
बार दक्षकी पुत्री दितिने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे कामगुरु होकर
सायकर्मके समय ही अपने पति मरीचिनन्दन कश्यपकीसे
प्रार्थना की ॥ ७ ॥ उस समय कश्यपकी स्त्रीकी आज्ञासे
हारा अग्निनिह मगवान् यज्ञपतिसे वाराचनाकर सूर्यसंघ
समय जान अग्निशाकमें प्यानस होकर बैठे थे ॥ ८ ॥

दितिने कहा—विद्वन् ! मत्तज्जगत् हाथी जैसे कर्म-
के बृक्षको मत्त बालता है, उसी प्रकार यह प्रसिद्ध
धनुर्धर कर्मदेव मुझ अवश्यपर मोर जताकर आपके शिष्ये
मुझ केवल कर रहा है ॥ ९ ॥ अपनी पुत्रवती सौतोरी
सुख-समृद्धिको देखकर मैं ईर्ष्याकी आगसे जली जाती
हूँ । अतः आप मुझपर कृपा कीजिये आपका कल्याण
हो ॥ १० ॥ जिसके गर्भसे आप-जैसा पति पुत्ररूपसे
उत्पन्न होता है वे ही शिष्यों अपने पतियोंसे सम्मानित
सम्पत्ती जाती हैं । उमका सुपरा संसारमें सर्वत्र फैल
जाता है ॥ ११ ॥ हमारे पिता मगवान् दक्षका अपनी
पुत्रियोंपर बड़ा स्नेह था । एक बार उन्होंने हारा सबको

क इषीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत न पुणक् ॥१२॥

स विदित्वाऽऽप्समज्ञानां नो माव सन्तानमानन ।

त्रयोदशददावासां यास्ते क्षीलमनुवता ॥१३॥

अथ मे कुरु कम्पाय कर्म कञ्जविठाचन ।

आर्त्तोपसर्पण भूमभमोषं हि महीयसि ॥१४॥

इति तां वीर मारीच कृपणां बहुमापिणीम् ।

प्रत्याहानुनयन् वाचा प्रहृष्टानङ्गकमलम् ॥१५॥

एष तेऽह विधास्यामि श्रिय मीरु यद्विच्छसि ।

तस्याः क्षमं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैबलिकी यत ॥१६॥

सर्वाभमातुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।

अ्यसनार्थमन्येति बलयानैर्घर्षाण्यम् ॥१७॥

यामादुरात्मना दध धन्यस्कामस्य मानिनि ।

यस्यां स्वपूरमभ्यस्य पुषांभरति विन्नरः ॥१८॥

यामाभित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराभमे ।

वय जयम हलामिर्हस्युर्गुणपतिर्यथा ॥१९॥

न वयं प्रमवर्त्ता त्वामनुक्तं गृहेधरि ।

अप्यायुषा वा कारस्त्वेन ये चान्यगुणगृहज ॥२०॥

अयापि क्षाममेत त भ्रातृत्वं करवाण्यलम् ।

यथा मीं नातिवाचन्ति मुहूर्त्तं प्रतिपालय ॥२१॥

एषा घातमा वता घाराणां घाददक्षता ।

अरुण-अरुण सुखाकर पूथ कि पुन किसे अपना पति बनाना चाहती हो ? ॥ १२ ॥ वे अपनी सन्तानकी सब प्रकरकी चिन्ता रखते थे । अतः हमारा माव जानकर उन्होंने उनमेंसे हम सेह पुत्रियोंको, जो आपके गुण-सम्पत्तिके अनुरूप थीं, आपके साथ न्याह दिया ॥ १३ ॥ अतः मङ्गलपूर्व । कम्पनयन । आप मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये, क्योंकि हे महारथ । आप-जैसे महापुरुषोंके पास दीनजनोका जाना निष्कल नहीं होता ॥ १४ ॥

विदुरजी । इसि कामदेवके वेगसे अत्यन्त बेचैन और बेचस हा रही थी । उसने इसी प्रकार बहुत सी कामें बनाते हुए दीन होकर कल्पवलीसे प्रार्थना की, तब उन्होंने उसे सुमधुर शान्तिसे सम्हाले हुए कहा ॥ १५ ॥ मीरु । गुम्हारी इच्छाके अनुसार मैं अपनी-जमी तुम्हारा धिय बन्धन करूँगा । मजा, जिसके द्वारा अर्थ, धन और काम-लौकोकी सिद्धि होती है, अपनी ऐसी पत्नीकी कम्पना कौन पूर्ण नहीं करेगा ॥ १६ ॥ जिस प्रकार जहाजपर चढ़कर मनुष्य महासागरको पार कर जाता है, उसी प्रकार गृहत्यागमी दूसरे आश्रमोंको आश्रय देता हुआ अपने आश्रमद्वारा लय मी हुआसमुद्रके पार हो जाता है ॥ १७ ॥ मानिनि । कीचो तो त्रिविध पुरुषार्थकी कम्पनावाला पुरुषका आधा अर्ध कहा गया है । उसपर अपनी गृहस्तीका भार डालकर पुरुष निश्चिन्त होकर विचरता है ॥ १८ ॥ इन्द्रियरूप शत्रु अन्य आश्रमवालोंके उदये अत्यन्त दुर्जय है किन्तु जिस प्रकार किसीका स्वामी सुगम्यतासे ही दृष्टनकाले शत्रुओंको अपने अधीन कर लेता है, उसी प्रकार हम अपनी विवाहिता पत्नीका आश्रय लेकर हम इन्द्रियरूप शत्रुओंको सहजमें ही जीत लेते हैं ॥ १९ ॥ गृहधरि । तुम-जैसी मारवाँ उपकरोका बदला तो हम अवश और कोई भी गुणवादी पुरुष अपनी मारी उसमें अवश जन्मात्ममें मी पूरा रूपसे नहीं युक्त सकते ॥ २० ॥ तो भी गुम्हारी इस सन्तान-प्रानिकी इच्छाको मैं यथाशक्ति अवश्य पूरा करूँगा । परन्तु अभी तुम जब मुझ पर टहर, जिससे माग मरी निश्चय न करे ॥ २१ ॥ यह अत्यन्त घोर ममप राक्षसिन्धु धार जीवोका

चरन्ति यस्या भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥२२॥

एतस्यां साञ्चि सन्ध्यायां मगवान् भूतमावन ।

परीतो भूतपर्वन्निर्घृषेणाटति भूतराट् ॥२३॥

इमं शान्तचक्रानिलधूलिधूम-

विक्रीणविघोतजटाकलाप ।

मस्माद्यगुण्टामलरुक्मद्वहो

देवस्त्रिमि पश्यति देवरस्ते ॥२४॥

न यस्य लोके स्वप्ननः परो वा

नात्याघ्ता नात कश्चिद्विगर्ह ।

वय व्रतैर्यश्चरणापविद्धा

माशासद्देऽजां वत सुक्तभागाम् ॥२५॥

यस्यानव्रथाचरित मनीषिणो

गृणन्त्यविघ्नापटलं विमिस्त्रवः ।

निरन्तसाम्याविघ्नयोऽपि यत्स्वयं ।

पिशाचचर्चामचरद्वृत्तिः सताम् ॥२६॥

इसन्ति यस्याचरित हि दुर्मगाः

स्वात्मनस्त्वाविदुष समीहितम् ।

यैर्वह्ममास्याभरणानुलेपनैः

शमोजन स्वारमतयोपकालितम् ॥२७॥

ब्रह्मादया यत्कृतसेतुपाला

यत्कटरणं विश्वमिदं च माया ।

आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्चा

अहो निम्नमरित विहम्बनम् ॥२८॥

मेत्रेय उवाच

मत्र सविदित मत्रा मन्मथा मथितन्द्रिया ।

अग्राह यासो भ्रष्टर्पेर्भुपलीक गतव्रथा ॥२९॥

म विदिस्वाध मायायाम्नि निषधं विकर्मणि ।

नत्वा दिष्टाय रहमि सयाधापविषेज ह ॥३०॥

है और देखनमें भी बड़ा मयानक है । इसमें भगवान्

भूतमाषके गण भूत-प्रतादि घूमा करते हैं ॥ २२ ॥

साञ्चि । इस सन्ध्याकालमें भूतमाषन भूतपनि भगवान्

शाङ्कर अपने गण भूत प्रतादिकों साथ क्रिये वैष्णव कर

कर विचरा करते हैं ॥ २३ ॥ जिसका जटाजूट श्मशान

भूमिसे उठे हुए बबबरकी धूँडिसे घूसरित होकर वेदीय-

मान हो रहा है तथा बिनके सुकण-कान्तिनय गैर

शरीरमें मस्मळी हुई है, वे तुम्हारे देवर अशुर मन्त्राजरी

अपने सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप तीन नेत्रोंसे सबको

देखते रहते हैं ॥ २४ ॥ ससारमें उनका कोई कत्ता

या पराया नहीं है । न कोई अधिक आत्मीय और न

निन्दनीय ही है । हम लोग तो अनेक प्रकारके कर्तव्य

पालन करते उनकी मायाको ही प्रवृत्त करना चाहते

हैं, बिसे उन्होंने भोगकर अत मार दी है ॥ २५ ॥

बिबेकी पुरुष अविषाके आभरणको हटानेकी इच्छासे

उनके निर्मल चरित्रका गान किया करते हैं, उनसे बचकर

तो क्या, उनके समान भी कोई नहीं है और उनका

केवल स्रष्टृत्वकी ही पहुँच है । यह सब होनेपर भी वे

स्वयं पिशाचोंका-सा आचरण करते हैं ॥ २६ ॥ यह नर

शरीर कुतूहल भोजन है, जो अविबेकी पुरुष कल्प

मानकर बह, आभूषण, माल्य और भन्दनादिसे ह्मीक

सजाते-सँवारते रहते हैं—वे अमारी ही अहमराम

भगवान् शाङ्करके आचरणको ईसते हैं ॥ २७ ॥ हमला

तो क्या, ब्रह्मादि लोकपाल भी उन्हींकी बाँधी हुई भ्रम-

मर्यादाकर पालन करते हैं वे ही इस विश्वके अधिपति

हैं तथा यह माया भी उन्हींकी आज्ञाकर अनुसरण करने

वाली है । ऐसे होकर भी वे प्रेतोंका-सा आचरण करने

हैं । जहा ! उन जगदपापक प्रभुकी यह अदृष्ट तीरा

कुछ समझमें नहीं आती ॥ २८ ॥

श्रीमैषयजी कहते हैं—पतिके इस प्रकार समझाने

पर भी कत्रमातुरा निनिन बेग्याके समान निरर्थक होकर

१ मा पा —तस्य । २ प्राचीन प्रतिमें मेत्रेय उवाच इत्यत्र अत्र नहीं है । ३ मा पा —निर्धन ।

४ मा पा —पिशाच स्वभावात् ।

प्रथोपस्थस्य सलिल प्राणानायम्य वाग्यतः ।

ध्यायञ्च ज्ञाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥

दितिस्तु व्रीहिता तेन कर्मावधेन मारव ।

उपसङ्गम्य विप्रपिमदोमुस्स्यम्यभापत ॥३२॥

दितिरुवाच

मा मे गर्गमिम ब्रह्मन् भूतानामृपमो वधीत् ।

रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकारवमहसम् ॥३३॥

नमो रुद्राय महते देवायोप्राय मीढुषे ।

क्षिपाम न्यस्तदब्धाय वृत्तदण्डाय मन्यव ॥३४॥

स न प्रसीदतां मामो मगवानुर्वजुर्ब्रह्मः ।

व्याघ्रसाम्बलुकम्प्यानां स्त्रीणां देव सतीपतिः ॥३५॥

नैवेद्य उवाच

न्वसगस्याक्षिप लोकयामाक्षासानां प्रवपतीम् ।

निवृत्तस ध्यानिपमा भार्यामाह प्रजापति ॥३६॥

कत्या उवाच

अप्रायत्यादात्मनस्त दोषा मोहूर्तिकावुत ।

मभिदेहातिचारण दवाना चातिहलनात् ॥३७॥

भविष्यतस्तवाभद्रावभद्र जाठराभर्मा ।

लाकान सपालांस्त्रीमण्डि मुहुराक्रन्दिष्यत ॥३८॥

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् ।

स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितषु महारमसु ॥३९॥

तदा विज्वेधर मुह्यो भगवो ह्योक्तमार्त्तन ।

हनिष्यस्वपतीर्षीषी यथाप्रीनु शतपर्वभृक् ॥४०॥

नितिरुवाच

वध भगवता साक्षास्तुनामादारयादुना ।

आशसे पुत्रयामिष मा क्रुदाद्वाज्रणाद्रिमा ॥४१॥

साप सपागम किया ॥ ३० ॥ फिर जलमें स्नानकर प्राण और वाणीका समय करके विगुह ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्मका ध्यान करते हुए उसीका अप करन छो ॥ ३१ ॥

विदुरजी ! दितिको भी उस निन्दित कर्मके कारण बड़ी लज्जा आयी और वह ब्रह्मर्षिके पास जा, सिर नीचा करके इस प्रकार कहने लगी ॥ ३२ ॥

दिति बोली—ब्रह्मन् ! भगवान् इस भूतोंके सामी हैं, मैंने उनका अपराध किया है, किन्तु वे भूतमेष्ट मेरे इस गर्मको नष्ट न करें ॥ ३३ ॥ मैं भक्त्याम्भवात्प्रपतक, उग्र एवं रुद्ररूप महादेवको नमस्कार करती हूँ । वे स्मृत्कर्षके लिये कल्याणकारी एवं दण्ड देनेके भावसे रहित हैं, किन्तु दुष्टोंके लिये क्रोधमूर्ति दण्डपाणि हैं ॥ ३४ ॥ हम क्षियोंपर तो व्याध भी दया करते हैं, फिर वे सतीपति तो मेरे बहनोई और परम कृपाळु हैं, वत व सुहृदपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! प्रजापति कल्पपत्र सापह्लादीन सन्ध्या-चन्द्रनादि कर्मसे निवृत्त होनेपर देखा कि दिति धर-धर कोपती हुई अपनी सन्तानकी औक्तिक और पारलौकिक उन्नतिके लिये प्रायना कर रही है । तब उन्होंने उससे कहा ॥ ३६ ॥

कल्पपत्रजीने कहा—गुम्हारा चित्त काष्ठासनासे मलिन था, वह समय भी ठीक नहीं था और गुम्हने मरी बात भी नहीं मानी तथा शत्रुओंको भी अन्धरेछ्ना रही ॥ ३७ ॥ अमङ्गलमयी बण्डी ! गुम्हारी फोकसे दा वड़े ही अमङ्गलमयी और अचम पुत्र उत्पन्न होंगे । वे बार बार सम्पूर्ण अंक और लोकपालोंको अपने कत्या चारोंसे रुझायेंगे ॥ ३८ ॥ जब उनका हाथसे बहुत-से निरपराध और दीन प्राणी मारे जायेंगे, क्षियोंपर अत्याचार होयेंगे और महारामोंको क्षुब्ध किया जाने लगेगा उस समय सम्पूर्ण लाबोत्री रक्षा करनेवाले श्रीमगशीकर बुधित होकर अकतार लगे और इन्द्र जैसे पर्वतोंका दमन करता है, उसी प्रकार उनका वध करेंगे ॥ ३९, ४० ॥

दितिने कहा—प्रभो ! यही मैं भी चाहती हूँ कि यदि मेरे पुत्रोंका वध हो तो वह साक्षात् भगवान् चक्रपाणिक हाथसे ही हो, बुधित मासगौक सापापि

१ माक्षीन मतिमे विविचक्षण इतना अर्थ नहीं है । २ मा पा —वध देह । ३ मा पा —मयिकः ।

४ मा पा —आत्मनः ।

न ममदण्डदग्धस्य न भूतममदस्य च ।

नारकाधानुगृह्णन्ति यां यां यानिमसौ गतः ॥४२॥

कस्य उवाच

कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ।

मगवत्पुरुमानाद्य मये मय्यपि चादरात् ॥४३॥

पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितुं सतां मम ।

गासन्ति यद्यश्च शुद्ध मगवद्यज्ञता समम् ॥४४॥

योगैर्हमेव दुर्वर्गं मावयिष्यन्ति साधवः ।

निर्वैरादिमिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥४५॥

यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ।

स खल्वमगवान् यत्नोऽप्यतेऽनन्यया दृष्टा ॥४६॥

स न महाभागवतो महात्मा

महानुभावो महतां महिष्ठ ।

प्रवृद्धमक्षया क्षुमाविशालये

निवेश्य कुम्भमिमं विहासति ॥४७॥

जलमयं क्षीलधरो गुणाकरः

हृष्ट परद्वयाभ्यर्षितो दुःस्वितपु ।

अमृतस्रजुजगतः शोकरहितः

नदाधिकं तापमिवाहुरासः ॥४८॥

अन्तर्बहिःश्यामलमङ्गनेत्र

स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ।

पौत्रस्तव भीललनाललाम

प्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥४९॥

न हो ॥ ४१ ॥ जो जीव प्राणियोंके शापसे दण्ड अपन प्राणियोंको भय देनेवाला होता है, वह किसी भी योगिनें माय—उसपर नारकी जीव भी क्या नहीं करते ॥४२॥

कह्यपजीन कहा—येवि ! तुमन अपन कियेपर शोक और पश्चात्ताप प्रकट किया है, तुम्हें शीघ्र ही उचित अनुचितका विचार भी हो गया तथा भगवान् विष्णु, शिव और भरे प्रति भी तुम्हारा बहुत आदर जान पड़ता है, इसलिये तुम्हारे एक पुत्रके चार पुत्रोंसे एक ऐसा हाथ, जिसका स्वरूप भी मान करेंगे और जिसके पति यशको मकबन भगवान् के गुणोंके साथ ग्रहेंगे ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार छोट सानेको बार-बार तपाकर कुछ मित्र जाता है, उसी प्रकार साधुजन उसके समस्त अनुकरण करनेके लिये निर्वैरा आदि उपवासोंसे अपन अन्त करणको शुद्ध करेंगे ॥४५॥ जिनकी कृपासे उनकी स्वरूपमृत यह जगत् आनन्दित जाता है, वे सम्प्रकाश भगवान् भी उनकी अन्त्य मक्तिसे स्तुति हो करेंगे ॥ ४६ ॥ दिति ! वह धावक वना ही भगवत्पुरुष उदारहृदय, प्रभावशाली और महान् पुत्रोंका भी पूज्य होगा । तथा प्रौढ़ मक्तिभासे विद्वद और भावान्वित हुए अन्त करणमें श्रीमगवान् के स्थापित करके दक्षभिमामका त्याग दण्ड ॥ ४७ ॥ वह विषयोंमें अनासक्त, शीलवान् गुणोंका मंदर तथा दूसरोंकी समृद्धिमें सुख और दुःखमें दुःख माननेवाला होगा । उसका कोई शत्रु न होगा, तथा अन्त्य जैसे श्रीमन् शत्रुके तापका हर होता है, वैसे ही वह समासके शोककर शान्त करनेवाला होगा ॥ ४८ ॥ वा इस ससारके बाहर-भीतर सब ओर विश्रामजन है अपन भक्तों के हृदयानुसार समय-समय पर मङ्गलविष्ट प्रकट करते हैं और लक्ष्मीरूप लाक्ष्म्यमूर्ति सम्नाकी भी शोभा बढ़ानेवाला है, तथा जिनका मुखमण्डल शिखमिष्टान्त हुए कुण्डलोंसे सुशोभित है—उन परम पवित्र कमण्डलुयन श्रीहृदिक तुम्हारे पात्रक प्रत्यक्ष दर्शन होगा ॥ ४९ ॥

मेत्रेय उवाच

भुत्वा भागवत पीप्रममोदत तितिर्मुशम् ।

पुत्रयोश्च वध कृष्णाङ्गिन्वाऽऽसीन्मामना ॥५०॥ अधिक उस्ताह दृष्टा ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहर्ष्यां संहितायां तृतीय
स्कन्धे दिनिकश्यपर्मन्वा चतुदशोऽध्याय ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्याय

जय-यिजयको सनकादिका द्वाप

मेत्रेय उवाच

प्राज्ञापत्य तु त्वञ्ज परतेजोद्भन दिति ।

दधार वपाणि क्षत झङ्गमाना मुगर्दनात् ॥ १ ॥

लोक तेन हेतालोक लाकपाला इतांजम ।

पवेत्यन विश्वसृजं प्वान्तव्यतिकर दिशाम् ॥ २ ॥

इति उवाच

तम गन्तिभा वध सविग्ना यद्वय भृगम् ।

न द्यन्यक्त मगवत कालनाम्पृष्टवर्त्मन ॥ ३ ॥

दक्षत्व जगदानलाकनाथपित्वामण ।

परपामपरपा न्व भूतानाममि भाववित ॥ ४ ॥

नमा विज्ञानवापाय माययन्मूपपुत्र ।

गृहीतमुणमनाय नमस्तस्यान्तधानय ॥ ५ ॥

य न्वानन्यन भावन मावयन्त्या प्रभावनम् ।

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! तिमिन जब
सुना कि मेरा पौत्र मगवान्का भक्त होण, तब उसे
बड़ा आनन्द हुआ तथा यह जानकर कि मेरे पुत्र
साक्षात् श्रीहरिके हाथमे मारे जायेंगे, उसे और भीश्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! तिमिको अपन
पुत्रोंसे देवताओंको कष्ट पहुँचानकी आशाहू पी, इसलिये
उसन दूसरोंके सेवका नाश करनेवाले उस कश्यपजीके
सेत्र (वीर्य) को सी बर्णोक्त अपन उदरमें ही
रक्ता ॥ १ ॥ उस गर्भस्थ सेत्रसे ही लोकमें मूर्खादि
का प्रकटश क्षीण होने लगा तथा इन्द्रादि लोकपाल भी
तेजाहीन हो गये । तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर
यह कि मुच निशानोंमें अन्यकारक कारण बड़ी
अप्ययन्या हो रही है ॥ २ ॥देवताओंमे कहा—मगवन् ! काल जास्की ज्ञान
शक्तिकु कुण्ठित नहीं कर सकत इसलिये आपसे कोई
बात छिपी नहीं है । आप इस अधकारक विषयमें भी
जानते ही होंग हम ता इसमे बड़ हो भयभीत हो
रह हैं ॥ ३ ॥ देवाधिपति ! आप जगत्के रक्षयिता
और समस्त लोकपालके मुखमणि हैं । आप छोट-बड़
सभी जीवोंका माय जानते हैं ॥ ४ ॥ अब ! आप
विज्ञानवत्सल्यम हैं आपन मायासे ही यह चतुर्मुख रूप
और रजोगुण स्वीकार किया है आपकी उपलब्ध
वाचनिक कारणका बड़ नहीं जान सकत । हम
आपका समस्तज्ञ करने हैं ॥ ५ ॥ आपने मन्मूर्त
मुचन स्थित हैं कश्यपका रूप माय प्ररय आकर
गरीर है किन्तु वाचनसे अब हमसे पर है । ज्ञा

म ता पीप्रममोदत तितिर्मुशम् । २ मा — इतांजम । ३ न्वानन्यन प्रभावनम् । ४ न्वानन्यन प्रभावनम् । ५ न्वानन्यन प्रभावनम् ।

आत्मनि प्रोतमृचन पर सदसदात्मकम् ॥ ६ ॥

तेषां मुपकपागानां जितधासेन्द्रियात्मनाम् ।

उत्पुष्प्यत्प्रसादानां न कुतश्चिस्परामयः ॥ ७ ॥

यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावस्तत्पेव यन्त्रिणाः ।

हरन्ति बलिमायचास्तस्मै मुख्य्याय ते नमः ॥ ८ ॥

स त्वं विद्यस्व श्वं भूमंस्तेमसा तुल्यकर्मणाम् ।

अद्भ्यदयया दृष्ट्या आपन्नानर्हसीक्षितम् ॥ ९ ॥

एष देव दितेगर्मः ओज काश्यपमर्षितम् ।

दिद्यस्तिमिरयन् सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥ १० ॥

मेनेय उवाच

स प्रहस्य महाबाहो भगवान् दाम्दगोषर ।

प्रत्याचष्टारममूर्द्धवान् प्रीणन् रुचिरमा गिरा ॥ ११ ॥

महाकाच

मानसा मे सुता पुम्पत्पूर्वजाः सनकादयः ।

चेरुर्विहायसा लोकांछाक्षेपु विगतस्पृहाः ॥ १२ ॥

त एकदा भगवता षंकुण्ठस्यामलात्मनः ।

यपुर्वं कुण्ठनिलय सर्वलाकनमस्कृतम् ॥ १३ ॥

वमन्ति यत्र पुरुषा सर्वे षंकुण्ठमूर्तयः ।

यऽनिमित्तनिमित्तन भर्मेणाराधयन् हरिम् ॥ १४ ॥

यत्र चाद्य पुमानास्त भगवान् द्रष्टुमाचरः ।

मत्र विष्टम्य विरजं स्वानां ना मृदयन् शृणु ॥ १५ ॥

यत्र नैःश्रयम नाम वन कामदृष्टुम ।

मवतुभीभिर्विभ्राजकैरन्यमिव मूर्तिमत ॥ १६ ॥

समस्त जीवोंके उत्पत्तिस्थान आपका अन्त्य मात्रसे प्यन करते हैं, उन सिद्ध योगियोंका किसी प्रकार भी इस नहीं हो सकता, क्योंकि वे आपके कृपाकण्डसे कृतकृत्य हो जाते हैं तथा प्राण, इन्द्रिय और मनको जीत लेनेके कारण उनका योग भी परिपक्व हो जात है ॥ ६-७ ॥ रस्तीसे बचे हुए क्षेत्रका मौलि आकाश वेदकाणीसे जकड़ी हुई सारी प्रजा आकाशकी आधीनतामें नियमपूर्वक कर्मानुष्ठान करके आपको बलि समर्पण करती है । आप सबके निष्ठा मुख्यप्राण हैं, हम आपके नमस्कार करते हैं ॥ ८ ॥ भूमन् । इस अन्वकारके कर्मणि-शतक विभाग अस्पष्ट हो जानेसे ओकोंके सारे कर्म लुप्त होते जा रहे हैं, जिससे वे दुखी हो रहे हैं, उनका कल्याण कीजिये और हम शरणगतोंकी बार कन्यी अपार दयादृष्टिसे निहारिये ॥ ९ ॥ देव । आप जिस प्रकार ईश्वरमें पड़कर बहती रहती हैं, उसी प्रकार कन्यपञ्जीके बीचसे स्थापित हुआ यह नितिक गम सारी विशाओंको अन्वकारमय करता हुआ कमरा बह रहा है ॥ १० ॥

भीमिषेयजी कहते हैं—महाबाह । देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् ब्रह्माजी हँसे और उन्हें कन्यी मयुर बाणसे आनन्दित करते हुए कहने लगे ॥ ११ ॥ भीमझाजीने कहा—देवनाभो । तुम्हारे पूर्वज, मेरे मानसपुत्र सनकादि ओकोंकी आसक्ति त्यागकर समस्त ओकोंमें आकाशरामासे विचरा करते थे ॥ १२ ॥ एक बार वे भगवान् त्रिणुके सुद्ध-सुराश्रम सब ओकोंके शिरोमागमें स्थित, षंकुण्ठप्राममें जा पहुँचे ॥ १३ ॥ वहाँ सभी लोग त्रिणुरूप होकर रहते हैं और वह प्रस भी उनकी होना है जो आप सब प्रकारकी कामनाएँ छोड़कर कष्ट भगवत्परायण-शरणकी प्राप्तिके लिये ही आने उभरा उनका आगमना करते हैं ॥ १४ ॥ वहाँ वेनाम्प्रतिपाद्य भवमूर्ति श्रीआत्मिनाशरण हम अपने भक्तोंका सुख देनेके लिये दुःखमरामय स्वरूप बाण पर हर समय चिरान्तरान रहत हैं ॥ १५ ॥ उस शोकमें मैं श्रवण नामका एक वन जा मूर्तिमय दशरूप-मा हा काम पहना है । यह सब प्रकारकी कामनाओंका पूर्ण परनशक वृक्षोंस सुशामिनी है जो सर्वदा समय लक्ष्मी श्रुतोंका शासामे मग्न रहत है ॥ १६ ॥

वैमानिकाः सललनाम्बरितानि यत्र

गायन्ति लाकृशमलक्षणानि मर्तु ।

अन्तर्जलेऽनुविफसन्मधुमाधनीनां

गन्धेन स्वण्डितधियाऽप्यनिर्लक्षिपन्तः ॥१७॥

पारावतान्यमृतसारसचक्रबाक

दास्युहर्षमशुकवित्तिरिर्वाहिणां यः ।

कोलाहलो विरमतेऽधिरमात्रमुन्मै

सृज्जाभिप हरिकथामिव गायमाने ॥१८॥

मन्दारकुन्दकुरपातपलचम्पकाणं

पुष्पागनागवकुलाम्बुजपारिजाताः ।

गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन सखा

यस्मिन्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ॥१९॥

यत्संकुलं हरिपदानसिमाश्चर्यते

धर्द्व्यमारकवद्वैमर्षयर्षिमानै ।

यथां वृहत्कटिवत् सितशोभिमुख्यः

कृष्णात्मनां न रज आदधुरुन्मयाद्य ॥२०॥

धौ रुपिणी क्रगयती चरणारविन्द

लीलाम्बुध्नं हरिमणनि मृददोषा ।

संरक्ष्यते स्फटिककुण्ड उपतटद्विज्ज

मम्माजतीव यदनुग्रहणऽन्यथान ॥२१॥

वानीषु विदुमनमममलामृताम्बु

प्रप्यान्विता निजयन तुलसीभिराश्रुम् ।

यहाँ विमानवासी गन्धर्वागण अपनी प्रियाओं के सहित अपने प्रसूकी पवित्र लीलाओं का गान करते रहते हैं, जो व्योमकी सम्पूर्ण पापराशिकां मरम कर देनेवाली हैं । उस समय सरोवरोंमें स्थिती हुई मकरदूर्ण वासुतिक माधवी कृष्णकी सुमधुर गन्ध उनके वितका अपनी ओर लीखना चाहती है, परन्तु वे उसकी ओर प्यान ही नहीं देते बर उस गन्धको उड़ाकर अन्नवास वायुको ही घुरा मखा कहते हैं ॥ १७ ॥ जिस समय भ्रमराज ऊँचे स्वरसे गुंवार करते हुए मानो हरिकथा का गान करते हैं उस समय थोड़ी दूरक छिये बबूतर, कोयल, सारस, चक्रे, पक्षी, ईस तोत, तीतर और मारोका काकाहल हो जाता है—मानो वे भी उस कीर्तनानन्दमें वेसुच हो जाते हैं ॥ १८ ॥ श्रीहरि तुलसीमें अपने श्रीविमलका सनाते हैं और तुलसीकी गन्धका ही अविक आदर करते हैं—यह देखकर बहोके मन्नार, कुन्द, कुरबक (सिङ्कहल), चण्ड (रात्रिमें चिड़नवाले कमल), चम्पक, वर्ण, पुसाग, नागकसर, बकुल (मौलसिरी), अम्बुष (दिनमें चिड़नवाले कमल) और पारिजात आदि पुष्प सुगन्धयुक्त होनेपर भी तुलसीका ही तप अधिक मानते हैं ॥ १९ ॥ वह लाक बंदूप, मरकत-मणि (पत्तन) और सुवर्णके विमानोंसे मरा हुआ है । ये सब किसी कमलकुसे नहीं बल्कि एकमात्र श्रीहरिके पादपद्मोंको बन्दना करनेसे ही प्राप्त होते हैं । उन विमानोंपर बड़े हुए वृष्णप्राण मगवृक्षों के चितोंमें बड़े बड़े नितम्बोंवाली सुमुखा सुन्दरियों भी अपनी मन् सुमकन एव मनाहर हाम-परिहाममे कणविकर नहीं उल्लस कर सजती ॥ २० ॥

परम सीम्यसाकिना छत्रोदी नीनकी रूपा प्राप्त करनेक क्रिय देशगग भी यत्नशील रहने दी, श्रीहरिक मन्ममें प्रसन्नताका पद यद्ये त्यागकर रहना है । जिस समय जपन चरण-कमलों के नृत्योपे सनकर परती हुई वे करना लीलाकमल पुपानी हैं उस समय उस यत्नरमकन की स्वचिन्मय गीतोंमें उनका प्रतिध्वि पड़नेसे एमा जान पत्ता है मानो वे उहें सुनार रही हों ॥ २१ ॥ प्यारे नवाभो । जिस समय दासियोंका साथ पिय ब अपन क्रीडाकनमें तुलसी-मन्नार मगवृक्ष का पूजन करती हैं तब बहोके निमज जलसे मर हुए मगवरोमें जिनम मृगके

अभ्यर्चती स्तलकमुत्तमसीदय वक्त्र
मुच्छेपित भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः ॥२२॥

यश्च ब्रजन्त्यपमिदो रचनानुवादा-
च्युष्यति येऽन्यविषयाः कुकषामतिग्रीः ।

यास्तु धृता इतभगैर्भिराचसारा
स्तास्तान् क्षिपन्त्यश्चरणेषु तमः सुहन्त ॥२३॥

येऽभ्यर्चितामपि च नो नृतिं प्रपन्ना
ज्ञान च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र ।

नाराधनं भगवतो विचरन्त्यमुष्य
सम्मोहिता विततया चैत मायया ॥२४॥

यश्च ब्रजन्त्यनिमिषामुपमानुवृत्त्या
दूरेयमा मुपरि नः स्पृहणीयशीलाः ।
भर्तुर्मियः सुप्रसक्तः कथनानुराग
वैद्वन्मयाप्यकल्या पुलकीकृतज्ञः ॥२५॥

तद्विषयुवधिकृतं हृदयैक्यं
दिम्य विचित्रविधुधाश्रयविमानशशि ।

आपु परां मुदमपूषपुपेत्य बाग
मायावलेन मुनयस्तदधा विकुण्ठम् ॥२६॥

तमिच्छतां य मुनय पदमजमानाः
कक्षा समानवयसावध सप्तमायाम् ।

दवायधसत गृहीतगदां पराघ्यं
पेगुरकुण्डलकिरीटविन्दूषणं ॥२७॥

मत्तद्विरफयनमालिकया निवीर्तो
विन्यस्तयागित उत्तुप्यबाहुमध्य ।

१ मा पा मरीश । मा पा — अर्चयिष्य । २ मा पा — ननु । ३ मा पा — अर्चयिष्य । ४ मा पा — अर्चयिष्य । ५ मा पा — अर्चयिष्य । ६ मा पा — अर्चयिष्य । ७ मा पा — अर्चयिष्य । ८ मा पा — अर्चयिष्य । ९ मा पा — अर्चयिष्य । १० मा पा — अर्चयिष्य । ११ मा पा — अर्चयिष्य । १२ मा पा — अर्चयिष्य । १३ मा पा — अर्चयिष्य । १४ मा पा — अर्चयिष्य । १५ मा पा — अर्चयिष्य । १६ मा पा — अर्चयिष्य । १७ मा पा — अर्चयिष्य । १८ मा पा — अर्चयिष्य । १९ मा पा — अर्चयिष्य । २० मा पा — अर्चयिष्य । २१ मा पा — अर्चयिष्य । २२ मा पा — अर्चयिष्य । २३ मा पा — अर्चयिष्य । २४ मा पा — अर्चयिष्य । २५ मा पा — अर्चयिष्य । २६ मा पा — अर्चयिष्य । २७ मा पा — अर्चयिष्य । २८ मा पा — अर्चयिष्य । २९ मा पा — अर्चयिष्य । ३० मा पा — अर्चयिष्य । ३१ मा पा — अर्चयिष्य । ३२ मा पा — अर्चयिष्य । ३३ मा पा — अर्चयिष्य । ३४ मा पा — अर्चयिष्य । ३५ मा पा — अर्चयिष्य । ३६ मा पा — अर्चयिष्य । ३७ मा पा — अर्चयिष्य । ३८ मा पा — अर्चयिष्य । ३९ मा पा — अर्चयिष्य । ४० मा पा — अर्चयिष्य । ४१ मा पा — अर्चयिष्य । ४२ मा पा — अर्चयिष्य । ४३ मा पा — अर्चयिष्य । ४४ मा पा — अर्चयिष्य । ४५ मा पा — अर्चयिष्य । ४६ मा पा — अर्चयिष्य । ४७ मा पा — अर्चयिष्य । ४८ मा पा — अर्चयिष्य । ४९ मा पा — अर्चयिष्य । ५० मा पा — अर्चयिष्य । ५१ मा पा — अर्चयिष्य । ५२ मा पा — अर्चयिष्य । ५३ मा पा — अर्चयिष्य । ५४ मा पा — अर्चयिष्य । ५५ मा पा — अर्चयिष्य । ५६ मा पा — अर्चयिष्य । ५७ मा पा — अर्चयिष्य । ५८ मा पा — अर्चयिष्य । ५९ मा पा — अर्चयिष्य । ६० मा पा — अर्चयिष्य । ६१ मा पा — अर्चयिष्य । ६२ मा पा — अर्चयिष्य । ६३ मा पा — अर्चयिष्य । ६४ मा पा — अर्चयिष्य । ६५ मा पा — अर्चयिष्य । ६६ मा पा — अर्चयिष्य । ६७ मा पा — अर्चयिष्य । ६८ मा पा — अर्चयिष्य । ६९ मा पा — अर्चयिष्य । ७० मा पा — अर्चयिष्य । ७१ मा पा — अर्चयिष्य । ७२ मा पा — अर्चयिष्य । ७३ मा पा — अर्चयिष्य । ७४ मा पा — अर्चयिष्य । ७५ मा पा — अर्चयिष्य । ७६ मा पा — अर्चयिष्य । ७७ मा पा — अर्चयिष्य । ७८ मा पा — अर्चयिष्य । ७९ मा पा — अर्चयिष्य । ८० मा पा — अर्चयिष्य । ८१ मा पा — अर्चयिष्य । ८२ मा पा — अर्चयिष्य । ८३ मा पा — अर्चयिष्य । ८४ मा पा — अर्चयिष्य । ८५ मा पा — अर्चयिष्य । ८६ मा पा — अर्चयिष्य । ८७ मा पा — अर्चयिष्य । ८८ मा पा — अर्चयिष्य । ८९ मा पा — अर्चयिष्य । ९० मा पा — अर्चयिष्य । ९१ मा पा — अर्चयिष्य । ९२ मा पा — अर्चयिष्य । ९३ मा पा — अर्चयिष्य । ९४ मा पा — अर्चयिष्य । ९५ मा पा — अर्चयिष्य । ९६ मा पा — अर्चयिष्य । ९७ मा पा — अर्चयिष्य । ९८ मा पा — अर्चयिष्य । ९९ मा पा — अर्चयिष्य । १०० मा पा — अर्चयिष्य ।

वाट बने हुए हैं, अपना सुन्दर अञ्जनायकी और उक्त नासिकसे सुशोभित मुम्बारविन्द देखकर 'यह भाग्य' का सुम्भन किया हुआ है' यों जानकर उसे बस सीमायशाली समझती हैं ॥ २२ ॥ जो छेग भाग्य की पापापाहारिणी छीलाकयाओंको छेबकर मुद्रिको नष्ट करनेवाली अर्ध-कामसम्बन्धिनी अन्य निन्दित कष्टर सुनने हैं, वे उस वैकुण्ठलोकमें नहीं जा सकते । हाय ! जब वे अमागे छेग इन सार्वभौम भक्तोंसे सुनते हैं, तब ये उनके पुष्पोंको नष्टकर उन्हें आम्प-हीन और नरक्षोंमें डाल देती हैं ॥ २३ ॥ अह ! इस मनुष्यपोषिकी बड़ी महिमा है, इस देवछेग की इसकी चाह करते हैं । इसीमें तत्त्वज्ञान और धर्म की भी प्राप्ति हो सकती है । इसे पाकर भी जो छेग भाग्यकी आराधना नहीं करते, वे वास्तवमें उनकी सर्वत्र फैली हुई मायासे ही मोहित हैं ॥ २४ ॥ देवाधिदेव श्रीहरिक्रम निरन्तर चिन्तन करते रहनेके कारण निमसे पमराज दूर रहते हैं, आपसमें प्रयुक्त सुप्राकी चर्चा चलनेपर अनुगन्धन्य विद्वत्प-बश बिनके नेत्रोंसे अविरत अनुधारा बहने लगती है तथा शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है और बिनकेसे शीत-स्वभावी हीमलोग भी हन्त्र करते हैं—वे परम-भाग्य की हमारे लोकोसे ऊपर उस वैकुण्ठधाममें जाते हैं ॥ २५ ॥ जिस समय समकालि मुनि वि-शुक श्रीहरिके निवासस्थान, सम्पूर्ण लोकोंके हृदयोंमें और श्रेष्ठ देवताओंके विचित्र विमर्शोंसे विभूति उस परम-दिम्य और अतुल्य वैकुण्ठधाममें अपने योगबलसे पहुँचे, तब उन्हें बड़ा ही आनन्द हुआ ॥ २६ ॥

भगवन्तकी आलसासे अन्य दर्शनीय सामग्री की उपेक्षा करते हुए वैकुण्ठधामकी छ स्वीकृति पार करके जब वे सातवीं पर पहुँचे तब वहाँ उन्हें हायमें गिरा दिये गे । समान आपुसमें देखनेत्र प्यकयी प्ये—जा बान्धव, कुण्डल और तेरी गान्धर्व अनन्त अमृत आभूषणोंमें अलङ्कृत थे ॥ २७ ॥ उनकी पार-प्राप्त्य गुताओंके बीचमें मनबाल मधुरगोम गुहायमान बनमाल सुशोभित गे तथा बौद्धी भक्ति फाकते हुए नासिकरग और

वक्त्रं भ्रमा कुटिलया स्फुटनिर्गमाम्भा

रक्तक्षणेन च मनाग्रमस दधानौ ॥२८॥

प्रायतयोर्निर्विविष्टमिपतोरपृष्टा

पूर्वा यथा पुरटवन्नकपाटिकायाः ।

सर्वत्र तेऽविपमया मूनयः स्यदृष्टा

ये सञ्चरन्त्यविहता विगताभिषङ्गा ॥२९॥

तान् वीक्ष्य वातरक्षानां चतुरः कुमारान्

बृहान्दशार्धवमसा विदितारमतत्त्वान् ।

वेद्यं चास्त्वलयतामवदर्शणांस्तौ

तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥३०॥

ताम्बां मिपत्स्वनिमिवेषु निषिध्यमाना

स्वहृत्तमा क्षपि हरं प्रतिहारपाम्भ्याम् ।

ऊचुः सुहृत्तमदिच्छित्तमङ्ग ईष

त्कामानुजेन सहसा त उपप्लुताश्च ॥३१॥

तमय ऊचुः

को वामिहस्य भगवत्परिचयं याच्ये-

न्तुर्मिमांसा निष्कर्षा विषयः स्वभावः ।

तस्मिन् प्रमान्तपुरुषे गतविग्रहं वां

क्षयाऽऽत्मवत्कृदकषया परिशुद्धनीय ॥३२॥

न हान्तरं भगवतीह समस्तकुक्ष्या

धारमानमात्मनि न भोनमसीव धीराः ।

पश्यन्ति यत्र युवयाः सुरलिङ्गिना किं

भ्युत्तरादिसंशुद्धरमेदि मयं यताऽस्य ॥३३॥

अरुण मयनोंक कारण उनका चेहरे पर कुछ क्षोभके-
से चिह्न दिखायी दे रहे थे ॥ २८ ॥ उनका इस
प्रकार नेत्र रहनपर भा वे मुनिगण उनसे बिना कुछ
पूछ-ताछ किये, जैसे सुवर्ग और वक्त्रमय किन्नरोंसे
मुक्त पहली ठ खीड़ी खोंचकर आये थे, उसी प्रकार
उनके द्वारमें भी घुस गये । उनकी दृष्टि तो सबत्र
समान थी और वे नि शाङ्ग होकर सर्वत्र बिना किसी
रोक-टोकक विचरते थे ॥ २९ ॥ वे चारों कुमार पूण
तत्त्वज्ञ थे तथा ब्रह्माक्षी सूक्ष्ममें आपुमें सबसे बड़ हानपर
भी देखनमें पाँच वक्त्रके बालकोंसे जान पड़त थे और
निम्ब्वर इतिसे (नंग-धरम) रहते थे । उन्हें इस
प्रकार नि सङ्कोचरूपसे भीतर जाते दख उन द्वारपालों-
न भगवान्के शील-स्वभाक्के विपरीत समक्यादिके तेजस्वी
हँसी उठाते हुए उन्हें बेंत बड़ाकर तोक दिया, यद्यपि वे ऐसे
दुष्पचारक योग्य नहीं थे ॥ ३० ॥ अब उन द्वार
पालोंमें वेकुल्लभासी दबनाभोंके सामन पूजाक सबभ्रष्ट
पात्र उन कुमारोंको इस प्रकार रोक, तब अपने प्रिय
तम प्रमुक्त दर्शनमें बिष्णु पढ़नक कारण उनका नत्र
सहसा कुछ-कुछ क्रोधसे लज्ज हो ठठ और वे इस
प्रकार कहन लगे ॥ ३१ ॥

मुनिपतेन कथा—अरं द्वारपाले ! जा क्षम भग-
वान्की महती सेवाक प्रमाणसे इस छोक्तो प्राप्त होकर
यहाँ निवास करत हैं, वे तो भगवान्क समान ही
समदर्शी होते हैं । तुम दोनों भी उन्हेंसे हा, किन्तु
तुम्हारा स्वभावमें यह विरमता क्यों है ? भगवान् तो
परम गान्तस्वभाव हैं, उनका किसीसे विरोध भी नहीं
है, फिर यहाँ ऐसा क्यों है जिसपर शाङ्का की जा
सके ? तुम स्वयं यमयी हो इसीसे अपने ही समान
दूसरोंपर शाङ्का करते हो ॥ ३२ ॥ भगवान्के उत्तरमें यह
सारा ब्रह्माण्ड स्थित है, इसलिये यहाँ रहनकार ब्रह्मीजन
सर्वग्या श्रीहरिसे अपना कोई भय नहीं देखत, बल्कि
महाकाशमें भयकाशकी मूर्ति उनमें अपना अन्तभाव देखते
हैं । तुम तो दब-रूपधारी हो फिर भी तुम्हें ऐसा क्या
दिखायी देता है जिससे तुमन भगवान्क साथ कुछ
भयभाक्के कारण होनकार भययरी करणना कर लो ॥ ३३ ॥

कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम

म्लेहाभलोककलया हृदि सस्पृशन्तम् ।

भ्राम्ये पृथाधुरसि क्षोभितया प्रिया स्वं

स्पृहामणिं सुमगयन्तमिनात्मधिष्णयम् ॥३९॥

पीतांशुके प्रयु नितम्बनि विस्फुरत्सा

काञ्च्यालिभिर्चिकृतया वनमालया च ।

बल्यप्रकोष्ठबलय विनतासुतांसे

विन्यस्तहस्तमितरण घुनानमम्भम् ॥४०॥

विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्हं

गण्डम्यलोकसमुल्ल मणिमत्किरीटम् ।

दोदण्डपण्डविवरं इरता परार्घ्यं

हारण कन्धरगतन च कौस्तुभन ॥४१॥

अग्रोपसृष्टमिति चान्तिस्तमिन्दिरामा

स्नानां धिया विरचित बहुसांष्टबाढ्यम् ।

मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्ग

नमुर्निर्गीक्ष्य नवितृप्तदण्डोद्वाहकैः ॥४२॥

तत्सारविन्दनयनस्य पदारविन्दं

किञ्चलकमिध्रगलमीमकरन्ददायुः ।

भन्तर्गतं स्वविवरणं चकार तपा

सङ्गतभमश्चरुपापमपि चित्ततन्वाः ॥४३॥

ते वा अप्रुप्य वदनासितपञ्चक्या

मुदीक्ष्य सुन्दरतराभरमुन्दहासम् ।

रम्भायिप पुनरपेक्ष्य तदीयमह्नि

द्रव्यं नत्सारणमणिभयण निदप्यु ॥४४॥

प्रभु समस्त सङ्गोक्त आश्रय हैं, उनकी सौम्य मुखमुद्राको देखकर जान पड़ता था मानो वे समीप अनवरत कृपासुधाकी वर्षा कर रहे हैं । अपनी स्नहमयी वितननसे वे मछोंका हृदय स्पृश कर रहे थे तथा उनके सुविशाल क्षाम कक्ष स्पष्टपर खण्डरेखाके रूपमें जो साक्षात् लक्ष्मी विराजमान थी, उनसे माना वे समस्त दिव्यलोकोंके प्रभामणि वैकुण्ठधामको सुशोभित कर रहे थे ॥३९॥
उनके पीताम्बरमण्डित विशाल नितम्बोंपर शिखमिखाली हुई करवनी और गलेमें भ्रमरोंसे मुखरित वनमाला विद्युत् रही थी तथा वे कलाश्रयोंमें सुन्दर कलन पहन अपना एक हाथ गङ्गाजीक कचपर रख दूसरेसे कमलका पुष्पधुमरहं थे ॥४०॥ उनके कानों पर बज्रों विजलीकी प्रभाको मीलनानाथ मकराकृत कुण्डलोंकी शोभा बढ़ा रहे थे, उभरी हुई सुचक्र नासिका थी, वक्ता ही सुन्दर मुख था, सिंगपर मणिमय मुकुट विराजमान था तथा चारों ओरोंके बीच महामूल्यवान् मनोहर हारकी और गर्भमें कौस्तुभमणिकी अपूर्व शोभा थी ॥४१॥
मगवान्का भीषिमह वक्ता ही सौन्दर्यशाली था । उसे देखकर मछोंके मनमें ऐसा वितर्क होता था कि इसके सामने लक्ष्मीजीका सौन्दर्याभिमान भी गलित हो गया है । ब्रह्माजी कहते हैं—देवनाओ ! इस प्रकार मेरे महादेवजीके और तुम्हारे छिये परम सुन्दर विग्रह धारण करनेवाले भीष्मिको देखकर सनकादि मुनीश्वरोंने उन्हें फिर हृषीकेश प्रणाम किया । उस समय उम्मीद बहुत दुविधा निहारे निहारे उनके नेत्र सूत नहीं हाते थे ॥४२॥

सनकादि मुनीश्वर निरन्तर ब्रह्मानन्दमें निमग्न रहा करते थे । किन्तु जिस समय मगवान् कमलनयनके चरणारविन्दमकरन्दसे मिथी हुई पुष्पसीमझरीके गन्धसे सुवासित वायुन नायिकागन्धोंक हाव उभक अन्त परणमें प्रवेश किया, उस समय वे अपने शरीरका सँगाठ न सक और उस दिव्य गन्धने उनके मनमें भी खलबली पैदा कर दी ॥४३॥ मगवान्का मुख पीछ कमलके समान था, अति सुन्दर अथ और सुन्दरकीके समान मनोहर हाससे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी । उसकी शोभा करक वे नृलक्ष्य हो गये । और फिर पञ्चराग समान हाव छाव नलों से सुशोभित उनका चरणकाम्य देखकर वे उन्मीक

पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गे

प्रीनास्पदं बहु मत् नयनाभिरामम् ।

पौंसं वपुर्दर्शयानमनन्वसिद्धे

रौतयसिके समगृणन् पुतमष्टभोगैः ॥४५॥

कुमारा उवाच

बोऽन्तर्हितो हृदि गताऽपि दुरात्मनां स्व'

साऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राट् ।

वर्षेण कर्मविबरेण गुदां गतो नः

पित्रानुवर्णितरहा भवदुःखेन ॥४६॥

तत्त्वां विदाम भगवन् परमात्मतत्त्वं

मत्त्वेन सम्प्रति रतिं रक्षयन्तमेवाम् ।

मत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगै

रुद्रन्धया हृदि बिदुस्तन्मा विरागा ॥४७॥

नात्यन्तिक विगम्य बन्धयसि ते प्रसाद'

किन्त्वन्धयद्विषय भय उभयैरने ।

यैऽङ्गत्वं दृढाग्रिभरणा भवतः कथायाः

कीर्तनप्रीत्ययममः कुप्रलाभमहा ॥४८॥

काम भव स्वहृत्तिर्नैर्नश्येषु न स्ना

व्यतोऽलिखद्यदि नु त पदया रमत ।

वाचश्च नस्तुलसिखद्यदि सऽङ्गविश्रामा

पूयंत ते गुणगर्भयति कर्णरघ ॥४९॥

प्रादुर्भकर्ध यदिद पुरुहूत रूपं

तनञ्च निर्बृत्तिमवापुरलं दृष्टा ॥

ध्याम करने लगे ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात् वे मुनिगण अन्य साधनोंसे सिद्ध न होनेवाली, स्वामात्रिक वह सिद्धियोंसे सम्पन्न श्रीहरिकी स्तुति करन लगे—जो योगमार्गद्वारा मोक्षपदकी खोज करनेवाले पुरुषोंके लिये उनके ध्यामका विषय अत्यन्त आनुरणीय और मन्मानन्दकी वृद्धि करनेवाला पुरुषरूप प्रकट करते हैं ॥ ४५ ॥

सनकादि मुनियोंने कहा—अनन्त ! पक्षी वा अन्यवर्गीयभूतसे दृढचित्त पुरुषोंके हृदयमें भी स्थित रहते हैं, तथापि उनकी दृष्टिसे जो झल ही रहते हैं । किन्तु आज हमारे नेत्रोंके सामने तो आप साक्षात् निराकार मान हैं । प्रभो ! जिस समय आपसे उत्पन्न हुए हमारे पिता ब्रह्माजीने आपको रहस्य कर्म किया था, उसी समय श्रवणरन्ध्रोंद्वारा हमारी धुद्धिमें तो आप का निराकार किन्तु प्रत्यक्ष दर्शनकर महान् सीमाग ता हमें आज ही प्राप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ भगवन् ! हम आपको साक्षात् परमात्मतत्त्व ही जानते हैं । इस समय आप अपने विबुद्ध सत्त्वमय विग्रहसे अपने इन भक्तोंको आत्मदिश कर रहे हैं । आपकी इस सगुण साकार भूति को राग और अहङ्कारसे युक्त मुनिजन आपकी हृत्पद दृष्टिसे प्राप्त हुए सुखद भक्तियोगक द्वारा अपने हृदयमें उपलब्ध करते हैं ॥ ४७ ॥ प्रभो ! आपको सुखा अत्यन्त फलितनीय और सामाजिक दुःखोंकी निवृत्ति करनेवाला है । आपको अर्थोंकी शरणमें रहनेवाला न पड़ाभाग आपकी कथाओंके रसिक हैं वे आपको आत्यन्तिक प्रसाद मोक्षपदकी भी कुछ अधिक नहीं मिलसे, फिर भिन्ने आपको जरा-सी टंकी मँह ही भयभीत कर देती है उन इन्द्रपद आदि अन्य भगवत्के नियमों तो कहना ही क्या है ॥ ४८ ॥ भगवन् ! यदि हमारा चित्त मीरिषी तरङ्ग आपको चरण-कमलोंमें ही रमण करता रहे, हमारी वाणी तुलसीदेव समान आपको चरण-मन्धनरस ही सुशोभित हो और हमारे कर्म आपकी सुगन्ध-सुभास परिपूर्ण रहें तो अपने पापोंके कारण भय ही हमारा ग्राम मरकाति यानियों हो जाय—इसकी हमें काङ्क्ष चिन्ता नहीं है ॥ ४९ ॥ विपुलकीर्ति प्रभा ! आपन हमारे सामने जा यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उसमें हमारे नेत्रोंके बहा ही सुख मिला है बिनासक जमितेप्रिय पुरुषोंके लिये इसका

तस्मा इह भगवते नम इष्टिधेम

याऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे ज्येष्ठित्रयया
सुनकादिनाम पञ्चशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

जय-विजयकथं विष्णुस्य पत्न्य

महाबाध

इति तद् गृणतां तेषां मुनीनां यागधर्मिणाम् ।
प्रतिनन्द्य जगादहं विष्णुर्निलया बिभुः ॥ १ ॥

धीमगवानुवाच

एतां तां पापदां मया जयो विजय एव च ।
कर्त्तव्यं कृत्य मां यदा बद्धकालात्मविक्रमम् ॥ २ ॥
यस्त्वत्पार्ष्णिता ण्डा भवन्मिमीमनुव्रतै ।
म एवाबुमताऽस्माभिर्मुनया दधहलनात् ॥ ३ ॥
तद् गमायाम्यद्य ब्रह्म देव परं हि मे ।
तद्दीत्यात्मकृत मन्य यत्पुम्भिरसत्कृता ॥ ४ ॥
यस्मानि च गृह्णाति लाका मृत्ये कृतागमि ।
माऽमाधुवात्सन्दीतिं हन्ति स्वधमिवामय ॥ ५ ॥

यस्माभूतामलयत्र भवणावगाह

मय पुनानि ब्रह्मण भवणाद्विकृष्ट ।

मात्र भयद्वय उपलब्धमुतीर्धकीति

गिरिन्त्यां स्वबाहू मपि च प्रतिपन्नवृत्तिम् ॥ ६ ॥

यसुत्रया चरणपद्मविश्रम्भ

मय युतावितमल प्रतिपन्नधीलम् ।

मा या — यस्मात् । मायि — यस्मिन् ।

मा य — यस्मात् । मा य — यस्मात् ।

दृष्टिगोचर हाना अत्यन्त कठिन है । आप साक्षात्
मगवान् हैं और हम प्रकट स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके
सागन प्रकट हुए हैं । हम आपको प्रणाम करते
हैं ॥ ० ॥

भीमराजीने कहा—दशगण । जब योगनिष्ठ मनकादि
मुनियोंन इस प्रकार स्तुति की तब पशुपतिनाम श्रीहरि
ने उनकी प्रशंसा करते हुए यह कहा ॥ १ ॥

धीमगवानम कहा—मुनिगण । ये जय-विजय
मेरे पार्थ हैं । इन्होंने मेरी कुछ भी परवा न करके
आपका बहुत बड़ा अपराध किया है ॥ २ ॥ आपजोग
भी मेरे अनुगत मक्त हैं, अतः इस प्रकार मेरी ही
अवस्था करनेक कारण आपन इन्हें जो दण्ड दिया है,
बहु मुझे भी अविमल है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मेरे परम
आराध्य हैं मेरे अनुचरोंके द्वारा आपजोगोंका जो
निरन्तर दुहाई, उसे मैं अपना ही किया हुआ मानता
हूँ । इसलिये मैं आपजोगोंसे प्रमत्तताकी शिक्षा नौगता
हूँ ॥ ४ ॥ सेवकोंके अपराध करनेपर समार उनक
क्षामीका ही नाम सता है । वह अपराध उसकी
कीर्तिका हम प्रकट दूतित कर दना है, जैसे लवकाके
वर्मयोग ॥ ५ ॥ मरी निर्धन सुपुत्र-सुधामे वंता छत्रने
से वाणस्पत्यमन मारा जगत् पुरन पवित्र हा जाता है,
इसीलिये मैं विष्णु कहलाना हूँ । किन्तु यह पवित्र
कीर्ति मुन्य आपका मेरे ही प्रस हूँ है । इसलिये जा
कर आपको विरक्त आनन्द करण यह मरी मुता हा
क्यों न हा तै उमे मुक्त पर गलना ॥ ६ ॥ आप
जोगोंकी सेवा करनेमे ही मरी परग-जगत् परी पवित्रता
प्राप्त हूँ है कि यह मार पारोक्ष्य लक्षण मर कर
नहीं है, और मुन्य एसा सुन्दर स्वभाव मिता है कि

न धीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः।

प्रेषालवार्ध इतरे नियमान् वहन्ति ॥७॥

नाह तथापि यजमानहविर्विताने

श्रमोत्पद्युतस्तुतमदन्तुवृष्ट्युत्सेन ।

यद्वाहणस्य सूखतश्चरतोऽनुधास

तुष्टस्य मध्यवहतिर्निजकर्मपाकैः ॥ ८ ॥

येषां विमर्ष्यहमन्वहविकृष्टयोग

मायाविमूर्तिरमलाद्भिरेवः किरीटैः ।

विप्रांस्तु को न विपहत यदर्हणाम्भः

मयः पुनाति महचन्द्रललामलाकान् ॥९॥

य मे तनुर्द्विज्वरान्नुहसीर्मदीषा

भूतान्यलम्बध्वरगानि च मेदबुद्ध्या ।

द्रूपन्त्यपश्चतश्चाहमिन्यवस्तान्

गृध्रा रुपा मम ह्रूपन्त्यभिदृष्टनेतुः ॥१०॥

यं प्रादगा मपि धिया क्षिपताऽर्चन्त

न्तुप्यवृष्टद स्मितमुभोलितप्रवक्त्राः ।

वाष्पानुरागकलपाऽऽन्मज्जवद्गुणन्तः

मन्त्राभ्यन्तगहमिश्रहृष्टाहृतम् ॥११॥

तम म्भतुग्वमायमन्त्रमार्णा

पुष्पमृष्यविज्रमगतिप्रतिपद्यमय ।

मृषा ममान्तिरमिता ननुग्रहा म

यत्कल्पनामगिराभूतयारिषामः ॥१२॥

यथाशय

मथ तस्मात्प्रीत्यर्थमृषिभ्यां मृगमर्ताम् ।

मरे उपासीन स्वनपर भी छत्रीकी मुसे एक छत्ते छिये भी नहीं छोड़ती—यद्यपि इन्हींके लेशमात्र हस्त-कात्राक्षके छिये अन्य ब्रह्मादि देवता नत्ना प्रकटके नियमों एवं प्रतीक पाळन करते हैं ॥ ७ ॥ जो वन सम्पूर्ण कर्मकाण्ड मुसे अर्पणकर सत्ता सन्तुष्ट रहते हैं वे निष्काम ब्राह्मण ग्राम-मासपर तृप्त होते हुए बीसे ल तरह-सरहके पक्वान्नोंका सब भोजन करते हैं, तब उनके मुखसे मैं जैसा तृप्त होता हूँ वैसा पहले अक्षिरूप मुख-से यजमानकी गी हुई आहुतियोंको ग्रहण करके मरी होता ॥ ८ ॥ योगमायाका अलम्ब और अस्मिन् ऐश्वर्य मेरे अजीन है तथा मेरी चरमोदकस्पर्शिणी गङ्गा भी अलम्बामको मस्तकपर धारण करनेवाले भगवान् शङ्करके सहित समस्त लीलोक पवित्र करती हैं । ऐसा पल पवित्र पत्र परमेष्ठर होकर भी मैं दिनकी पवित्र कर-रत्नको अपने मुकुटपर धारण करता हूँ, उम ब्रह्मण्योके कर्मको कौन नहीं सहन करेगा ॥ ९ ॥ ब्राह्मण, हुए देनवाडी गीर्ष और अनाथ प्राणी—ये मेरे ही शरीर हैं । पारोंके द्वारा विवेकद्वि नष्ट हो जानेके कारण जो ज्येष्ठ इन्हें मुझसे भिन्न समझते हैं, उन्हें मेरे द्वारा निरुद्ध पयरातके गृह-जैसे दूत—जो सर्पक समान कोभी हैं—अत्यन्त क्रोशित होकर अपनी बाँचोंसे मोचते हैं ॥ १० ॥ ब्राह्मण तिरस्कारपूर्वक कटुमारग भी वरे, तो भी जो उसमें मरी भाषना करके प्रमत्तचित्तसे तथा अप्रवृत्तसे मुमकामसे मुक्त मुनकामसे उसका आनन्द करते हैं तब जैसे लगे हुए पिताको पुत्र और आपराधियों में मनाया है उगी प्रगट आ प्रमदूय बचनोंसे प्रार्थना करते हुए उन्हें क्षान्न करते हैं, वे मुझे जान बशमें बर स्ते हैं ॥ ११ ॥ मेरे इन मेरुजोने मेरा अभिजाप न समझकर ही अन्त-मागोत्र अरमान किया है । इसलिये मेरे अनुरोधे आग बजत इनकी दृष्टा स्त्रिये कि इनका सब निशमनकान् शिर ही ममान हा जाय य बने भरापडे अनुकूल अग्य गतिहा भगवत्त वरिष ही को पाग गीत आपे ॥ १२ ॥

प्रयात्री पदत हैं— यथाभा ममगति दुः

मपिभ्य म मे दग हुए थ ता भी उनका वि

१ ८५२ अर्द्धो पत्र इत्येव पत्र ११ ॥ ८५३ ॥ १८५४ ॥ १८५५ ॥ १८५६ ॥ १८५७ ॥ १८५८ ॥ १८५९ ॥ १८६० ॥ १८६१ ॥ १८६२ ॥ १८६३ ॥ १८६४ ॥ १८६५ ॥ १८६६ ॥ १८६७ ॥ १८६८ ॥ १८६९ ॥ १८७० ॥ १८७१ ॥ १८७२ ॥ १८७३ ॥ १८७४ ॥ १८७५ ॥ १८७६ ॥ १८७७ ॥ १८७८ ॥ १८७९ ॥ १८८० ॥ १८८१ ॥ १८८२ ॥ १८८३ ॥ १८८४ ॥ १८८५ ॥ १८८६ ॥ १८८७ ॥ १८८८ ॥ १८८९ ॥ १८९० ॥ १८९१ ॥ १८९२ ॥ १८९३ ॥ १८९४ ॥ १८९५ ॥ १८९६ ॥ १८९७ ॥ १८९८ ॥ १८९९ ॥ १९०० ॥ १९०१ ॥ १९०२ ॥ १९०३ ॥ १९०४ ॥ १९०५ ॥ १९०६ ॥ १९०७ ॥ १९०८ ॥ १९०९ ॥ १९१० ॥ १९११ ॥ १९१२ ॥ १९१३ ॥ १९१४ ॥ १९१५ ॥ १९१६ ॥ १९१७ ॥ १९१८ ॥ १९१९ ॥ १९२० ॥ १९२१ ॥ १९२२ ॥ १९२३ ॥ १९२४ ॥ १९२५ ॥ १९२६ ॥ १९२७ ॥ १९२८ ॥ १९२९ ॥ १९३० ॥ १९३१ ॥ १९३२ ॥ १९३३ ॥ १९३४ ॥ १९३५ ॥ १९३६ ॥ १९३७ ॥ १९३८ ॥ १९३९ ॥ १९४० ॥ १९४१ ॥ १९४२ ॥ १९४३ ॥ १९४४ ॥ १९४५ ॥ १९४६ ॥ १९४७ ॥ १९४८ ॥ १९४९ ॥ १९५० ॥ १९५१ ॥ १९५२ ॥ १९५३ ॥ १९५४ ॥ १९५५ ॥ १९५६ ॥ १९५७ ॥ १९५८ ॥ १९५९ ॥ १९६० ॥ १९६१ ॥ १९६२ ॥ १९६३ ॥ १९६४ ॥ १९६५ ॥ १९६६ ॥ १९६७ ॥ १९६८ ॥ १९६९ ॥ १९७० ॥ १९७१ ॥ १९७२ ॥ १९७३ ॥ १९७४ ॥ १९७५ ॥ १९७६ ॥ १९७७ ॥ १९७८ ॥ १९७९ ॥ १९८० ॥ १९८१ ॥ १९८२ ॥ १९८३ ॥ १९८४ ॥ १९८५ ॥ १९८६ ॥ १९८७ ॥ १९८८ ॥ १९८९ ॥ १९९० ॥ १९९१ ॥ १९९२ ॥ १९९३ ॥ १९९४ ॥ १९९५ ॥ १९९६ ॥ १९९७ ॥ १९९८ ॥ १९९९ ॥ २००० ॥ २००१ ॥ २००२ ॥ २००३ ॥ २००४ ॥ २००५ ॥ २००६ ॥ २००७ ॥ २००८ ॥ २००९ ॥ २०१० ॥ २०११ ॥ २०१२ ॥ २०१३ ॥ २०१४ ॥ २०१५ ॥ २०१६ ॥ २०१७ ॥ २०१८ ॥ २०१९ ॥ २०२० ॥ २०२१ ॥ २०२२ ॥ २०२३ ॥ २०२४ ॥ २०२५ ॥ २०२६ ॥ २०२७ ॥ २०२८ ॥ २०२९ ॥ २०३० ॥ २०३१ ॥ २०३२ ॥ २०३३ ॥ २०३४ ॥ २०३५ ॥ २०३६ ॥ २०३७ ॥ २०३८ ॥ २०३९ ॥ २०४० ॥ २०४१ ॥ २०४२ ॥ २०४३ ॥ २०४४ ॥ २०४५ ॥ २०४६ ॥ २०४७ ॥ २०४८ ॥ २०४९ ॥ २०५० ॥ २०५१ ॥ २०५२ ॥ २०५३ ॥ २०५४ ॥ २०५५ ॥ २०५६ ॥ २०५७ ॥ २०५८ ॥ २०५९ ॥ २०६० ॥ २०६१ ॥ २०६२ ॥ २०६३ ॥ २०६४ ॥ २०६५ ॥ २०६६ ॥ २०६७ ॥ २०६८ ॥ २०६९ ॥ २०७० ॥ २०७१ ॥ २०७२ ॥ २०७३ ॥ २०७४ ॥ २०७५ ॥ २०७६ ॥ २०७७ ॥ २०७८ ॥ २०७९ ॥ २०८० ॥ २०८१ ॥ २०८२ ॥ २०८३ ॥ २०८४ ॥ २०८५ ॥ २०८६ ॥ २०८७ ॥ २०८८ ॥ २०८९ ॥ २०९० ॥ २०९१ ॥ २०९२ ॥ २०९३ ॥ २०९४ ॥ २०९५ ॥ २०९६ ॥ २०९७ ॥ २०९८ ॥ २०९९ ॥ २१०० ॥ २१०१ ॥ २१०२ ॥ २१०३ ॥ २१०४ ॥ २१०५ ॥ २१०६ ॥ २१०७ ॥ २१०८ ॥ २१०९ ॥ २११० ॥ २१११ ॥ २११२ ॥ २११३ ॥ २११४ ॥ २११५ ॥ २११६ ॥ २११७ ॥ २११८ ॥ २११९ ॥ २१२० ॥ २१२१ ॥ २१२२ ॥ २१२३ ॥ २१२४ ॥ २१२५ ॥ २१२६ ॥ २१२७ ॥ २१२८ ॥ २१२९ ॥ २१३० ॥ २१३१ ॥ २१३२ ॥ २१३३ ॥ २१३४ ॥ २१३५ ॥ २१३६ ॥ २१३७ ॥ २१३८ ॥ २१३९ ॥ २१४० ॥ २१४१ ॥ २१४२ ॥ २१४३ ॥ २१४४ ॥ २१४५ ॥ २१४६ ॥ २१४७ ॥ २१४८ ॥ २१४९ ॥ २१५० ॥ २१५१ ॥ २१५२ ॥ २१५३ ॥ २१५४ ॥ २१५५ ॥ २१५६ ॥ २१५७ ॥ २१५८ ॥ २१५९ ॥ २१६० ॥ २१६१ ॥ २१६२ ॥ २१६३ ॥ २१६४ ॥ २१६५ ॥ २१६६ ॥ २१६७ ॥ २१६८ ॥ २१६९ ॥ २१७० ॥ २१७१ ॥ २१७२ ॥ २१७३ ॥ २१७४ ॥ २१७५ ॥ २१७६ ॥ २१७७ ॥ २१७८ ॥ २१७९ ॥ २१८० ॥ २१८१ ॥ २१८२ ॥ २१८३ ॥ २१८४ ॥ २१८५ ॥ २१८६ ॥ २१८७ ॥ २१८८ ॥ २१८९ ॥ २१९० ॥ २१९१ ॥ २१९२ ॥ २१९३ ॥ २१९४ ॥ २१९५ ॥ २१९६ ॥ २१९७ ॥ २१९८ ॥ २१९९ ॥ २२०० ॥ २२०१ ॥ २२०२ ॥ २२०३ ॥ २२०४ ॥ २२०५ ॥ २२०६ ॥ २२०७ ॥ २२०८ ॥ २२०९ ॥ २२१० ॥ २२११ ॥ २२१२ ॥ २२१३ ॥ २२१४ ॥ २२१५ ॥ २२१६ ॥ २२१७ ॥ २२१८ ॥ २२१९ ॥ २२२० ॥ २२२१ ॥ २२२२ ॥ २२२३ ॥ २२२४ ॥ २२२५ ॥ २२२६ ॥ २२२७ ॥ २२२८ ॥ २२२९ ॥ २२३० ॥ २२३१ ॥ २२३२ ॥ २२३३ ॥ २२३४ ॥ २२३५ ॥ २२३६ ॥ २२३७ ॥ २२३८ ॥ २२३९ ॥ २२४० ॥ २२४१ ॥ २२४२ ॥ २२४३ ॥ २२४४ ॥ २२४५ ॥ २२४६ ॥ २२४७ ॥ २२४८ ॥ २२४९ ॥ २२५० ॥ २२५१ ॥ २२५२ ॥ २२५३ ॥ २२५४ ॥ २२५५ ॥ २२५६ ॥ २२५७ ॥ २२५८ ॥ २२५९ ॥ २२६० ॥ २२६१ ॥ २२६२ ॥ २२६३ ॥ २२६४ ॥ २२६५ ॥ २२६६ ॥ २२६७ ॥ २२६८ ॥ २२६९ ॥ २२७० ॥ २२७१ ॥ २२७२ ॥ २२७३ ॥ २२७४ ॥ २२७५ ॥ २२७६ ॥ २२७७ ॥ २२७८ ॥ २२७९ ॥ २२८० ॥ २२८१ ॥ २२८२ ॥ २२८३ ॥ २२८४ ॥ २२८५ ॥ २२८६ ॥ २२८७ ॥ २२८८ ॥ २२८९ ॥ २२९० ॥ २२९१ ॥ २२९२ ॥ २२९३ ॥ २२९४ ॥ २२९५ ॥ २२९६ ॥ २२९७ ॥ २२९८ ॥ २२९९ ॥ २३०० ॥ २३०१ ॥ २३०२ ॥ २३०३ ॥ २३०४ ॥ २३०५ ॥ २३०६ ॥ २३०७ ॥ २३०८ ॥ २३०९ ॥ २३१० ॥ २३११ ॥ २३१२ ॥ २३१३ ॥ २३१४ ॥ २३१५ ॥ २३१६ ॥ २३१७ ॥ २३१८ ॥ २३१९ ॥ २३२० ॥ २३२१ ॥ २३२२ ॥ २३२३ ॥ २३२४ ॥ २३२५ ॥ २३२६ ॥ २३२७ ॥ २३२८ ॥ २३२९ ॥ २३३० ॥ २३३१ ॥ २३३२ ॥ २३३३ ॥ २३३४ ॥ २३३५ ॥ २३३६ ॥ २३३७ ॥ २३३८ ॥ २३३९ ॥ २३४० ॥ २३४१ ॥ २३४२ ॥ २३४३ ॥ २३४४ ॥ २३४५ ॥ २३४६ ॥ २३४७ ॥ २३४८ ॥ २३४९ ॥ २३५० ॥ २३५१ ॥ २३५२ ॥ २३५३ ॥ २३५४ ॥ २३५५ ॥ २३५६ ॥ २३५७ ॥ २३५८ ॥ २३५९ ॥ २३६० ॥ २३६१ ॥ २३६२ ॥ २३६३ ॥ २३६४ ॥ २३६५ ॥ २३६६ ॥ २३६७ ॥ २३६८ ॥ २३६९ ॥ २३७० ॥ २३७१ ॥ २३७२ ॥ २३७३ ॥ २३७४ ॥ २३७५ ॥ २३७६ ॥ २३७७ ॥ २३७८ ॥ २३७९ ॥ २३८० ॥ २३८१ ॥ २३८२ ॥ २३८३ ॥ २३८४ ॥ २३८५ ॥ २३८६ ॥ २३८७ ॥ २३८८ ॥ २३८९ ॥ २३९० ॥ २३९१ ॥ २३९२ ॥ २३९३ ॥ २३९४ ॥ २३९५ ॥ २३९६ ॥ २३९७ ॥ २३९८ ॥ २३९९ ॥ २४०० ॥ २४०१ ॥ २४०२ ॥ २४०३ ॥ २४०४ ॥ २४०५ ॥ २४०६ ॥ २४०७ ॥ २४०८ ॥ २४०९ ॥ २४१० ॥ २४११ ॥ २४१२ ॥ २४१३ ॥ २४१४ ॥ २४१५ ॥ २४१६ ॥ २४१७ ॥ २४१८ ॥ २४१९ ॥ २४२० ॥ २४२१ ॥ २४२२ ॥ २४२३ ॥ २४२४ ॥ २४२५ ॥ २४२६ ॥ २४२७ ॥ २४२८ ॥ २४२९ ॥ २४३० ॥ २४३१ ॥ २४३२ ॥ २४३३ ॥ २४३४ ॥ २४३५ ॥ २४३६ ॥ २४३७ ॥ २४३८ ॥ २४३९ ॥ २४४० ॥ २४४१ ॥ २४४२ ॥ २४४३ ॥ २४४४ ॥ २४४५ ॥ २४४६ ॥ २४४७ ॥ २४४८ ॥ २४४९ ॥ २४५० ॥ २४५१ ॥ २४५२ ॥ २४५३ ॥ २४५४ ॥ २४५५ ॥ २४५६ ॥ २४५७ ॥ २४५८ ॥ २४५९ ॥ २४६० ॥ २४६१ ॥ २४६२ ॥ २४६३ ॥ २४६४ ॥ २४६५ ॥ २४६६ ॥ २४६७ ॥ २४६८ ॥ २४६९ ॥ २४७० ॥ २४७१ ॥ २४७२ ॥ २४७३ ॥ २४७४ ॥ २४७५ ॥ २४७६ ॥ २४७७ ॥ २४७८ ॥ २४७९ ॥ २४८० ॥ २४८१ ॥ २४८२ ॥ २४८३ ॥ २४८४ ॥ २४८५ ॥ २४८६ ॥ २४८७ ॥ २४८८ ॥ २४८९ ॥ २४९० ॥ २४९१ ॥ २४९२ ॥ २४९३ ॥ २४९४ ॥ २४९५ ॥ २४९६ ॥ २४९७ ॥ २४९८ ॥ २४९९ ॥ २५०० ॥ २५०१ ॥ २५०२ ॥ २५०३ ॥ २५०४ ॥ २५०५ ॥ २५०६ ॥ २५०७ ॥ २५०८ ॥ २५०९ ॥ २५१० ॥ २५११ ॥ २५१२ ॥ २५१३ ॥ २५१४ ॥ २५१५ ॥ २५१६ ॥ २५१७ ॥ २५१८ ॥ २५१९ ॥ २५२० ॥ २५२१ ॥ २५२२ ॥ २५२३ ॥ २५२४ ॥ २५२५ ॥ २५२६ ॥ २५२७ ॥ २५२८ ॥ २५२९ ॥ २५३० ॥ २५३१ ॥ २५३२ ॥ २५३३ ॥ २५३४ ॥ २५३५ ॥ २५३६ ॥ २५३७ ॥ २५३८ ॥ २५३९ ॥ २५४० ॥ २५४१ ॥ २५४२ ॥ २५४३ ॥ २५४४ ॥ २५४५ ॥ २५४६ ॥ २५४७ ॥ २५४८ ॥ २५४९ ॥ २५५० ॥ २५५१ ॥ २५५२ ॥ २५५३ ॥ २५५४ ॥ २५५५ ॥ २५५६ ॥ २५५७ ॥ २५५८ ॥ २५५९ ॥ २५६० ॥ २५६१ ॥ २५६२ ॥ २५६३ ॥ २५६४ ॥ २५६५ ॥ २५६६ ॥ २५६७ ॥ २५६८ ॥ २५६९ ॥ २५७० ॥ २५७१ ॥ २५७२ ॥ २५७३ ॥ २५७४ ॥ २५७५ ॥ २५७६ ॥ २५७७ ॥ २५७८ ॥ २५७९ ॥ २५८० ॥ २५८१ ॥ २५८२ ॥ २५८३ ॥ २५८४ ॥ २५८५ ॥ २५८६ ॥ २५८७ ॥ २५८८ ॥ २५८९ ॥ २५९० ॥ २५९१ ॥ २५९२ ॥ २५९३ ॥ २५९४ ॥ २५९५ ॥ २५९६ ॥ २५९७ ॥ २५९८ ॥ २५९९ ॥ २६०० ॥ २६०१ ॥ २६०२ ॥ २६०३ ॥ २६०४ ॥ २६०५ ॥ २६०६ ॥ २६०७ ॥ २६०८ ॥ २६०९ ॥ २६१० ॥ २६११ ॥ २६१२ ॥ २६१३ ॥ २६१४ ॥ २६१५ ॥ २६१६ ॥ २६१७ ॥ २६१८ ॥ २६१९ ॥ २६२० ॥ २६२१ ॥ २६२२ ॥ २६२३ ॥ २६२४ ॥ २६२५ ॥ २६२६ ॥ २६२७ ॥ २६२८ ॥ २६२९ ॥ २६३० ॥ २६३१ ॥ २६३२ ॥ २६३३ ॥ २६३४ ॥ २६३५ ॥ २६३६ ॥ २६३७ ॥ २६३८ ॥ २६३९ ॥ २६४० ॥ २६४१ ॥ २६४२ ॥ २६४३ ॥ २६४४ ॥ २६४५ ॥ २६४६ ॥ २६४७ ॥ २६४८ ॥ २६४९ ॥ २६५० ॥ २६५१ ॥ २६५२ ॥ २६५३ ॥ २६५४ ॥ २६५५ ॥ २६५६ ॥ २६५७ ॥ २६५८ ॥ २६५९ ॥ २६६० ॥ २६६१ ॥ २६६२ ॥ २६६३ ॥ २६६४ ॥ २६६५ ॥ २६६६ ॥ २६६७ ॥ २६६८ ॥ २६६९ ॥ २६७० ॥ २६७१ ॥ २६७२ ॥ २६७३ ॥ २६७४ ॥ २६७५ ॥ २६७६ ॥ २६७७ ॥ २६७८ ॥ २

नास्त्राय मनुष्यदद्यानां तृणमात्माप्युच्यते ॥१३॥

सती व्यादाय मृण्वन्तो लब्ध्वा गुर्वर्थगङ्गराम् ।

विगाह्यागाभगम्भीरां न विदुस्तथिकीर्षितम् ॥१४॥

ते योगमाययाऽऽरब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् ।

प्रोष्ठुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टा सुभित्तवचः ॥१५॥

कथम ऽबुध

न धर्मं भगवन् विप्रस्तत्र देव धिक्कीर्षितम् ।

कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यश्च्यवस प्रभाषसे ॥१६॥

ब्रह्मण्यस्य परं देवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो ।

विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥

त्वचः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिल्लभ ।

धर्मस्य परमो गुह्या निर्विकारा भवान्मत् ॥१८॥

वरन्ति ब्रह्मसा मृत्युं निवृत्ता यदनुब्रूवात् ।

योगिनः स भवान् किं सिद्दनुगृहेव यत्परे ॥१९॥

यं वै विभूतिरुपयात्भनुबेलमन्यै

रर्षार्थिभि र्वाशिरसा धृतपादरणु ।

धन्यापि साहृद्रितुलसीनवदाभभाभ्ना

लार्कं मधुघृतपतेरिष कामयाना ॥२०॥

यस्तां विविक्षन्ति तैरनुवर्तमानां

नात्स्याद्रिपत्परमभागवतप्रसङ्ग ।

अन्तःकरणको प्रकाशित करमशाली भगवान्की मन्त्रमयी सुमधुरवाणी सुनते सुनते तूंस नहीं हुआ ॥ १२ ॥ भगवान् की उक्ति बड़ी ही मनोहर और थोड़े अक्षरोंवाली थी, किन्तु यह इतनी अवपूर्ण, सारयुक्त, दुर्विद्वेय और गम्भीर थी कि बहुत ध्यान देकर सुनने और विचार करनेपर भी वे यह न जान सके कि भगवान् क्या ब्रह्मा चाहते हैं ॥ १४ ॥ भगवान्की इस अद्भुत उद्गारताकी देखकर वे बहुत आनन्दित हुए और उनका अङ्ग-अङ्ग पुरुषित हो गया । फिर योगमायाके प्रभावसे अपने परम एवमयका प्रभाव प्रकट करनेकापे प्रयत्नसे वे हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ १५ ॥

मुनिपौर्णि कथा—सप्रकाश भगवन् ! आप सर्वेश्वर होकर भी जो यह कह रहे हैं कि 'यह आपन सुनपर वक्ता अनुग्रह किया' सो इससे आपका क्या अमिप्राप्त है— यह हम नहीं जान सके हैं ॥ १६ ॥ प्रभो ! आप ब्राह्मणोंके परम श्रितकारी हैं, इससे धोक-शिक्षाक क्रिये आप मने ही ऐसा मानें कि ब्राह्मण मरे आराध्यदेव हैं । वस्तुतः तो ब्राह्मण तथा देवताओंके भी देवता प्रमाणिक भी जान ही आता और आराध्यदेव हैं ॥ १७ ॥ सनातन धर्म आपसे ही उत्पन्न हुआ है, आपके अकृतारों-द्वारा ही समय समयपर उसकी रक्षा होती है तथा निर्विकारस्वरूप आप ही धर्मके परम गुह्य रहस्य हैं— यह शास्त्रोंका मन है ॥ १८ ॥ आपकी कृपासे निवृत्ति-परणुण योगीजन सहजमें ही मृत्युरूप संसार सागरसे पार हो जाते हैं, फिर मया, दूसरा कर्षे अगर क्या कहा कर सम्भव है ॥ १९ ॥ भगवन् ! दूसरे धर्मार्थी जन धिनकी चरण-रजको सर्वथा अपने मस्तकपर धारण करते हैं, वे लक्ष्मीजी निरन्तर आपकी सेवामें लगी रहती हैं, सो ऐसा जान पड़ता है कि मायवान् भक्त-जन आपके चरणोंपर जो नूतन गुच्छसीका माजार्ने क्षण करते हैं उसपर गुंजार करत हुए भीरोंके समान वे भी आपके पादपद्म की ही अपना निवासस्थान बनाना चाहती हैं ॥ २० ॥ किन्तु अजन पतिव्रत चरित्रोंसे निरन्तर सेवामें लपट रहमवाली उन लक्ष्मीजीका भी आप विशेष आदर नहीं करते, आप तो अजन भक्तोंसे ही विशेष प्रेम रखते हैं । आप स्वयं ही सम्पूर्ण मनीष

म त्व द्विजानुपपद्युष्यरत्नः पुनीत

श्रीवत्सलम्भ किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥२१॥

धर्मस्य ते भगवदस्त्रियुग त्रिमि स्वैः

पद्मिषराचरमि द्विजवृषतार्थम् ।

नून भूत तदमिषाति रक्षस्तमश्च

मत्पवन ना वरदया वनुचा निरस्य ॥२२॥

न त्व द्विजात्तमकुल यद्विहारमगार्ध

गाता वृष स्वर्धनन मधुनत्नेन ।

तर्धेव नदृश्यति शिवस्तव हव पथा

लाकाऽग्रहीम्यध्वमस्य हि तत्प्रमाणम् ॥२३॥

नत्तऽनभीष्टमिव मत्पनिधेर्विहितोः

धर्मं जनाय निबन्धनक्तिमिरुप्युत्तारः ।

नतावता स्वधिपतपत त्रिभर्तु

स्तज भूतत्वयनतस्य म न विना ॥२४॥

य पानयादममधीग मवानविधन

शुचि सुवा तदनुममदि निर्म्यलीकम् ।

अस्मागु वा य उन्निता धिपता म दण्डा

यन्तागमी यमपयुष्टमति किञ्चिन्नगा ॥२५॥

॥ २५ ॥

पना गुरुरगति प्रविषय मय

माग्मगम्भनममाप्यनुवदयागा ।

भूय मशान्मयस्यन आगुयाय

प्राता मय निमित्तमदयन शिवा ॥ २६॥

गुणोंके आशय है, क्या जहाँ-तहाँ बिचरत हुए मरु-
क चरणोंमें लगनेसे पवित्र हुए मार्गकी धूलि और शै-
वस्य चिह्न आपकी पवित्र कर सकत हैं । यह
इनसे आपकी शोभा बढ़ सकती है ॥ २१ ॥

भगवन् । आप साक्षात् धर्मस्वरूप हैं । आप
संस्थापि तीनों युगोंमें प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान रहते हैं एक
ब्राह्मण और देवताओंके लिये तप, शौच और अन्य—
अपन इन तीन चरणोंसे इस धराचर जगत्की रक्षा
करते हैं । अब आप अपनी शुद्धसत्त्वमयी बरतानि
मूर्तिसे हमारे धर्मविरोधी रजोगुण-तमोगुणको दूर कर
तीजिये ॥ २२ ॥ देख । यह ब्राह्मणकुल आपके द्वारा
अवश्य रक्षणीय है । यदि साक्षात् धर्मरूप हारत भी
आप सुमधुर नागी और पूमानादिके द्वारा इस कतम
कुल्की रक्षा न करें तो आपका निश्चिन्त किया हुआ
कल्याणमाग ही नष्ट हो जाय, क्योंकि एक दो क्षेत्र
पुरुषोंके आचरणरूप ही प्रमाणरूपसे महान करत
हैं ॥ २३ ॥ प्रभा ! आप सृष्टिगुणकी मान हैं और
सभी जीवोंका कल्याण करनेके लिये उत्सुक हैं । इससे
आप अपनी शक्तिरूप राजा आदिके द्वारा धर्मके शत्रुओं-
का संहार करने हैं क्योंकि वेन्मागका उच्छेद आपकी
अभीष्ट नहीं है । आप त्रिअवीनाय और जगत्प्रतिपालक
होकर भी ब्राह्मणोंका प्रति इतन मत्त रहते हैं, इससे
आपके मेवकी यशस्विता नहीं होती; यह तो आपकी
लीनमात्र है ॥ २४ ॥ गर्वेंद्र ! इन ब्राह्मणोंको आप
जैसा उचित समझे बर्ता लें, अपना पुरस्काररूपसे
इसका कृति बढ़ा दें—हम निष्पक्ष भावसे सब प्रकार
आपसे सम्मान दें । अथवा हमने आपका इन विचारों
अनुशोचक आप दिया है, इससे यदि हमें कुछ उचित
करना है हमें यह भी करना पड़ेगा ॥ २५ ॥

श्रीभगवान्न वचन—पुनित । अन्तर्हृदये अ-
पार विद्या है । महाप्रिय । यही प्रमाण है
है । अब यदि यह प्रमाणानुसार प्रती होय और यदि
यही प्रमाण ही प्रमाणानुसार प्रमाणानुसार प्रमाणानुसार
प्रमाणानुसार प्रमाणानुसार प्रमाणानुसार प्रमाणानुसार ॥ २६ ॥

मन्त्रोपाय

अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् ।
 वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम् ॥२७॥
 भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ।
 प्रतिजग्मुः प्रमुदिता श्रुतान्तो वैष्णवीं भियम् ॥२८॥
 भगवाननुगाधाह याव मा मैष्टमस्तु क्षम् ।
 ब्रह्मतेज ममयोऽपि हन्तु नेच्छे मत्तु मे ॥२९॥
 एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया कृद्रया यदा ।
 पुरापचारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥३०॥
 मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ।
 प्रत्येष्यत निःकाश मे कालेनारूपीयसा पुनः ॥३१॥
 द्वाभ्यामादिश्य भगवान् विमानभोगिभूषणम् ।
 सर्वाविश्रयया लक्ष्म्या जुष्टं च भिष्यमविश्रुतम् ॥३२॥
 तौ तु गीर्वाणश्चपभौ दुस्तराद्वरिलाकृतः ।
 इतभिर्यौ ब्रह्मशापादभूता विगतस्वर्यौ ॥३३॥
 तदा विकुण्ठभियणाचपोर्निवसमानयोः ।
 द्वाहाक्षरा महानासीद्विमानाभ्येषु पुत्रका ॥३४॥
 तावैव सधुना प्राप्ता पार्षदप्रवरौ हर ।
 दितेर्जठरनिर्विष्ट काश्यप तेज उत्पन्नम् ॥३५॥
 तयोरसुरभोरघ तेजसा यमपार्हि व ।
 आक्षिप्तं तत्र एतर्हि मगवांस्तद्विधित्सति ॥३६॥
 विश्वस्य य स्थितिलयाङ्गमहतराया
 योगम्बररपि दुरन्धरयोगमाय ।
 क्षेमं विधास्यति स ना भगवांस्त्वधीश्व
 तत्रासदीपविमृशेन किमानिहार्थ ॥३७॥

भीमशङ्खाजी कहते हैं—तदनन्तर उन मुनीश्वरोंने
 नयमागिराज भगवान् विष्णु और उनके स्वयंप्रकाश
 वैकुण्ठ-आमके दर्शन करके प्रसुप्ति परिक्रमा की और उन्हें
 प्रणामकर तथा उनकी आज्ञा या भगवान् के पदार्थका
 वर्णन करते हुए प्रसुप्ति हो करोंसे छूट गये ॥२७-२८॥
 फिर भगवान् अपने अनुश्रोतोंसे कहा, 'जाओ, मन
 में किसी प्रकारका भय मत करो, तुम्हारा कल्याण
 होगा । मैं सब कुछ करनेमें समर्थ होकर भी ब्रह्मतेजसे
 भिगना नहीं चाहता, क्योंकि ऐसा ही मुझे अभिमत भी
 है ॥ २९ ॥ एक बार जब मैं योगनिद्रामें स्थिर हो
 गया था, तुमन द्वारमें प्रवेश करती हुई लक्ष्मीजीका
 रोक था । उस समय उन्होंने मुझ होकर पहले ही तुम्हें यह
 शाप दे दिया था ॥ ३० ॥ जब दैत्ययोगिनें मेरे प्रति क्रोधा-
 कावृत्ति रहनेसे तुम्हें जो एक प्रता होगी, उससे तुम
 इस विप्र-तिरस्कारजनित पापसे मुक्त हो जाओगे और
 फिर पौत्र ही समयमें मेरे पास छोट जाओगे ॥ ३१ ॥
 द्वारपालोंका इस प्रकार आज्ञा दे, भगवान् विमानोंकी
 श्रेणियोंसे सुसजित अपने सर्वाधिक श्रीसंग्रह भयमें
 प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वे दशश्रेष्ठ नय-विजय तोरुशाय
 क कारण उस अजह्मनीय भगवद्भामों ही श्रेष्ठ हो गये
 तथा उनका सारा गर्व गलित हो गया ॥ ३३ ॥ पुत्रा !
 फिर जब वे वैकुण्ठलोकमें गिरन लगे, तब वहाँ श्रेष्ठ
 विमानोंपर बैठ हुए वैकुण्ठवासियोंमें मङ्गल हवाका
 मच गया ॥ ३४ ॥ इस समय दितिक गर्भमें स्थित
 जो काश्यपजीका वर तेज है, उसमें भगवान् उन
 पार्षदप्रवरों ही प्रवेश किये हैं ॥ ३५ ॥ उन दोनों
 अशुरोंक तेजसे ही तुम मक्का तेज कीका पक गया है ।
 इस समय भगवान् ऐसा ही करना चाहते हैं ॥ ३६ ॥
 जो आदिपुरुष ससारकी उत्पत्ति स्थिति और लय
 कारण हैं, जिनकी यागभायाका बद्ध-बद्ध यागिजन भी बन्दी
 कठिनतासे पार कर पाते हैं—वे सत्पति तीनों गुणोंके
 नियन्ता श्रीहरि ही हमारा कल्याण करेंगे । अब इस
 विषयमें हमारे विशेष विचार करनेसे क्या लाभ ॥
 सकता है ॥ ३७ ॥

इति भीमशङ्खान्न महापुरुष पारमहंस्यो संज्ञितायां तृतीयस्कन्ध

पांडवोऽप्याय ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षका जन्म तथा हिरण्याक्षका विविधजन्म

मैत्रेय उवाच

निशम्यात्मसुखा गीत कार्गव्यं शङ्खयोज्ज्वलाः ।
तत सर्वे पश्चन्त विदिषाय दिवौकसः ॥ १ ॥
दिविस्तु भर्तुरादशादपत्यपरिष्ठाङ्गिनी ।

पूर्णे वर्षयते साञ्ची पुत्रौ प्रसुपुषे यमौ ॥ २ ॥

उत्पाता पदवस्तत्र निपतुञ्जयमानयाः ।

दिवि भुष्यन्तरिक्षं च लोकस्याकृमभावहा ॥ ३ ॥

सदाचला भुवश्चलुर्दिशु सवाः प्रबन्धतुः ।

मालकाभाशनप पतुः केतव्यार्तिहृतव ॥ ४ ॥

वर्षावायुः सुदु स्पर्शं कृत्कारानीरयः सुदु ।

उमूलयक्षगपतीन्वा यानीका रक्षाध्वज ॥ ५ ॥

उदसचिद्विदमनाश्चटया नष्टभागणे ।

भ्यान्निप्रविष्टतममानं च भ्याद्वदयते पदम् ॥ ६ ॥

चुकोऽपि विमना यार्थित्वमि क्षुभितान्तरः ।

मान्दानाभ मरिमन्तुतुष्टः शुष्कपद्मजा ॥ ७ ॥

सुदु परिभयाऽभूषण मगाहाः शशिधर्मया ।

निपता ग्धनिद्रादा विवरम्य प्रजगिर ॥ ८ ॥

अन्तर्गामय मुगता यमन्या बद्धिभूषणम् ।

मुगतालान्तरद्वार प्रणदूरप्रिय निवा ॥ ९ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी । मन्त्राधिके कहते

अन्धकारका कारण जानकर देवताओंकी शहा निरुद्ध हो गयी और फिर ये सब हगल्येकजने छेद भाये ॥ १ ॥

इस दिनको अपने प्रतिपक्षके कपनानुसार पुत्रोंको जोरसे उपह्वाङ्गीकी आशाहा बनी रहती थी । इसीसे जब दूरे सौ वर्ष बीत गये तब उस साञ्चीने दो पदम (पुत्र) पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ उनका जन्म होते

सुनय स्वर्ग, पृथ्वी और अन्धरिक्षमें जनकों उत्पन्न होने लगे—दिनसे लगे अत्यन्त मयभीत हो गये ॥ ३ ॥ जहाँ-तहाँ पृथ्वी और पवन काँपने लगे, सब निशाचरों

दाह होने लगा । जगह जगह उत्स्वरपात होने लगा, विजिगीषा मिलन लगी और आकाशमें अनिद्रामूषक भूष केतु (पुच्छल तारे) दिखायी देने लगे ॥ ४ ॥ बार-बार

सर्प-सर्प करती और बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ती हुई बड़ी विकट और असह्य वायु चलने लगी । उस समय औरी उसकी सेना और उड़ती हुई भूख चलाके समान आन पड़ती

थी ॥ ५ ॥ बिजली जार जोरसे चमककर सबों को चिन्मिमा रही थी । घट्यकों ऐसा सवन रूप चरण किच कि सूर्य, चन्द्र आदि प्रहर्षित हुए हो जानेसे आकाशमें

गहरा अघराह्य गया । उस समय बड़ी दुःखी दिव्ययोग देना था ॥ ६ ॥ समुद्र दुखी मनुष्यकी मूर्ति ब्रह्मदेव

करन लगा उसमें ऊँची ऊँची तरंगें उठन लगी और उसका भीतर रहनपाल नीबोंमें बड़ी हलचल मच गयी ।

नदि ॥ तथा अन्य जगदोमें भी बड़ी लक्ष्मणी मच गयी और उनका कमल गूल गये ॥ ७ ॥ सूर्य और चन्द्रमा बार बार भसे आन तथा उनका चमक और

अच्छमूषक मन्त्रक होन लग । बिना बान्धक ही गरजनका शब्द होने लगा तथा सुप्तभूमिसे स्पर्श ॥ घराह्वा-सा शब्द निरग्नन लगा ॥ ८ ॥ मूर्तिमें स्पर्श और उत्पन्न होक भयानक शब्दक साथ ही निपातसे

मुक्कम दहपनी हुई आग उत्पन्न बनी अमूल्य दण्ड

करन लगी ॥ ९ ॥ जहाँ-तहाँ पुन अग्नी गन्ध उत्पन्न

सङ्गीतवद्रोदनवदुभयमप्य शिरोभराम् ।
 व्यसृजन् विविधावाचो ब्रामर्सिहास्ततस्तत् ॥१०॥
 सराम कर्कशैः स्रजः सुरैर्मन्तो भरातलम् ।
 स्कारारभसा मत्ता पर्यधावन् वरूषस्रः ॥११॥
 रुदन्तो रासभ्रस्ता नीलाहुदपतन् खगा ।
 घोषेऽप्ये च पशवः कृकन्मूत्रमधुर्यत ॥१२॥
 गावोऽप्रसन्नमुद्राहान्तोयदाः पूषवर्षिणः ।
 व्यरुद देवलिङ्गानि क्रुमा पेतुर्विनातिलम् ॥१३॥
 ग्रहान् पुण्यतमानन्ये भगणांभापि दीपिता ।
 अतिचेरुर्बक्रगत्या युपुधुध परस्परम् ॥१४॥
 दृष्टान्याथ महात्पातानतश्चक्षुविदः प्रजा ।
 भ्रमपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसम्भुवम् ॥१५॥
 क्षत्रादिदैत्यौ सहसा व्यन्यमानारमपौरुषौ ।
 बह्वभातेऽश्मसारण कायेनाद्रिपती इव ॥१६॥
 दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभि
 निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाहंजौ ।
 गां कम्पयन्तौ चरणौ पदे पदे
 कृत्वा सुकाष्म्यार्कमतीत्य तस्यतुः ॥१७॥
 प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्
 य प्राक् स्वदहाद्यमथारजायत ।
 त वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा
 यं तं हिरण्याद्यमद्य साप्रत ॥१८॥

उठाकर कभी गाने और कभी रोनेके समान मौसि-मौति-
 के शब्द करने लगे ॥ १० ॥ विदुरजी ! हुंड-के हुंड गये
 अपने कठोर सुर्तसे पृथ्वी खोन्ते और रँकमेका शब्द करते
 मतवाले होकर इधर उधर दीबने लगे ॥ ११ ॥ पक्षी
 गर्भके शब्दसे बरकर रोते चिह्नते अपने घोंसलसे उड़ने
 लगे । अपनी छिरकोमें बँधे हुए और वनमें घरते हुए
 गध-मूत्र आदि पशु डरके मारे मूत्र-मूत्र त्यागने
 लगे ॥ १२ ॥ गौएँ ऐसी बर गयी कि दुहमेपर उनके
 पनोंसे मूल निकलने लगा, बादल पीबकी बर्तों फटने
 लगे, देवपतिपोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे और आँधी
 के बिना ही वृक्ष उखड़-उखड़कर गिरने लगे ॥ १३ ॥
 शनि, राहु आदि भूत प्रलय हाँकर चन्द्र, ब्रह्मस्पति
 आदि सौम्य भ्रमों तथा बहुत-से नक्षत्रोंको डौँबकर
 बक्रगतिसे चलने लगे तथा आपसमें युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥
 ऐसे ही और भी अनेकें भयङ्कर उत्पात देखकर
 सनकादिके सिवा और सब जीव भयभीत हो गये तथा
 उन उत्पातोंका मर्मज जाननेके कारण उन्होंने यही समझा
 कि अब संसारका प्रलय होनेवाला है ॥ १५ ॥

वे दोनों आदिदैत्य जन्मके अनन्तर इन्द्र ही अपने
 पीछादके समान कठोर शरीरोंसे बढकर महान् पर्वतोंके
 सहस्र हो गये तथा उनका पूर्व पराक्रम भी प्रकट हो
 गया ॥ १६ ॥ वे इतने ऊँचे थे कि उनके सुवर्गमय
 मुकुटोंका अग्रभाग स्वर्गको स्पर्श करता था और उनके
 विशाल शरीरोंसे सारी विशाएँ आच्छादित हो जाती थीं ।
 उनकी मुञ्जाओंमें सोनेके शान्धद कमरमा रहे थे ।
 पृथ्वीपर जो वे एक-एक कदम रखते थे, उससे भूकम्प
 होने लगता था और जब वे खड़े होते थे, तब उनकी
 जगमगानी हुई चमकड़ी करधनीसे सुशोभित कमर अपन
 प्रकाशसे सूर्यका भी मान करती थी ॥ १७ ॥ वे दोनों
 यमज थे । प्रजापति यक्षपत्नीन उनका नामकरण किया ।
 उनमेंसे जो उनके शीर्षसे पित्तिके गर्भमें पदम स्थापित
 हुआ था, उसका नाम हिरण्यकशिपु रक्ता और जो पित्ति-
 के उतरसे पहले निकला, वह हिरण्याक्षके नामसे
 विख्यात हुआ ॥ १८ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षका जन्म तथा हिरण्याक्षका विविधजन्म

मेरेय उवाच

निश्चम्यात्मशुभा गीर्तं क्षरणं क्षुद्रयाजिज्ञाताः ।

ततः सर्वे पर्यवन्तं त्रिदिशाम् दिशोऽक्षतः ॥ १ ॥

दिदिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिष्ठाहिनी ।

पूर्णे वर्षक्षते साप्त्वी पुत्रां प्रसुपुषे भर्मा ॥ २ ॥

उत्पाता बह्वन्तश्च निपतुर्जायमानयाः ।

दिवि भ्रूमन्तरिक्षे च लोकसारभयावहा ॥ ३ ॥

सहायला मुषश्चतुर्दिग्ध सरो प्रजन्वतुः ।

मात्स्कासाक्षनय पतुः केतवभार्तिहितव ॥ ४ ॥

वर्षावापु सुदुःस्पर्शं कृत्कारानीरममुहु ।

उमूलयमगपतीन्वास्यानीका रजोध्यज ॥ ५ ॥

उद्दसचद्विदम्भाश्चटया नष्टभागणे ।

भ्यान्निप्रविष्टतममा न सा भ्याद्वयसे पदम् ॥ ६ ॥

चुकोऽपि विमता वार्धिरुंमि क्षुभितान्तर ।

मान्यानाथ सग्नित्तुमुद्यं शुष्कपङ्कजा ॥ ७ ॥

मुहु परिधयाऽभूयन् मरास्ता शशिर्ष्यया ।

निपाता रथनिहाता चित्ररम्य प्रजन्तिर ॥ ८ ॥

मन्तप्रामपु मुग्धा वमन्त्या बद्धिमुन्मथम् ।

मृगानामकटूरा प्रजद्वरिषि निषाः ॥ ९ ॥

श्रीमन्नेपार्जुने कथा—विदुरजी ! मन्त्राजीक करने

अन्धकारका कारण जानकर देवताओंकी शाहा निरु
हो गयी और फिर वे सब स्वयंकारका छत्र छोड़े ॥ १ ॥इस प्रकार अपने पत्नित्वक कपनानुसार पुत्रोंके
ओरसे उच्छ्वासाक्षी भाषाहू बनी रहती थी । इसमेंबच पूरे सी बच बीन गये, तब उस साम्नीन हो क्या
(बुझने) पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ उनके जन्म सेसन्त्य स्वर्ग पृथ्वी और अन्तरिक्षमें अन्तर्गत उत्पन्न
होने लगे—जिनसे लोग व्यस्त मगभीन हो गये ॥ ३ ॥जहाँ-तहाँ पृथ्वी और पवन बँटने लगे, सब पितृभूमि
दाह होने लगा । जगह जगह उत्पन्नपत होने लगे,विजिगीषा भिरन लगी और आकाशमें अनिष्टमूक बन
केतु (पुच्छक तारे) दिखायी देने लगे ॥ ४ ॥ बार-बारसायँ-सायँ करती और बड़े-बड़े इंसानोंके उलाहती हुई बड़ी
विकट और असहाय वायु चलने लगी । उस समय जो भीउसकी सेना और ठहरी हुई दूध धनके समान जान पड़ती
थी ॥ ५ ॥ बिजली जार ओरसे चमककर मनी सिन्धुक्षिप्त रही थी । घटखाने ऐसा सचन रूप कारण कि
कि सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहोंके लुप्त हो जानेसे आकाशमेंगहरा अँधारा छा गया । उस समय बड़ी कुञ्जरी दिखायी
देना था ॥ ६ ॥ समुद्र हुली मनुष्यकी मूर्ति कोखकरन लगा, उसमें ऊँची ऊँची तरंगें उठन लगीं और
उनके भीतर रहमवाला नीलोमें बड़ी हलचल मच गयी ।गर्गियों तथा अन्य अज्ञातयोगों भी बड़ी छुटकनी मच
गयी और उनके कपड सूख गये ॥ ७ ॥ सूर्य औरचांद्रमा बार-बार मसे जान पड़े तथा उनका चारों ओर
अनङ्गसूचक भण्डन होने लगा । बिना चापके हीगरजनक शब्द होने लगा तथा मुक्तभूमिसे रथरी बर
भराहृत्त-सा शब्द निकलने लगा ॥ ८ ॥ नीलोमें नील
जोर उत्पन्नभूय भयानक शब्दक साथ ही सिपाहीमुक्तसे दहकती हुई आग उगलकर बड़ा अमंगल शब्द
करन लगी ॥ ९ ॥ जहाँ-तहाँ कुछ अपनी जगह उ

सङ्गीतवद्गोदनवदुष्मयम् शिरोभराम् ।
 व्यसृजन्निविधापाधो ग्रामसिंहास्ततस्तत् ॥१०॥
 स्वराभ कर्कशः क्षत्तः सुरमन्तो भरातलम् ।
 त्नाकारिरममा मत्ताः पर्यधावन् परुषशः ॥११॥
 रुदन्तो रासभ्रमन्ता नीडादुदपतन् स्वगाः ।
 घोषेऽर्ण्ये च पद्म शङ्खमूत्रमूर्ध्वत ॥१२॥
 गावोऽग्रसन्सुम्दाहास्तोयदाः पूषवर्णिनः ।
 व्यरुद देवलङ्गानि क्रुमाः पेतुर्विनानिलम् ॥१३॥
 ग्रहान् पुण्यसमानान्ये भगणांश्चापि दीपिताः ।
 अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुष परस्परम् ॥१४॥
 दृष्टान्यांश्च महात्पातानतश्चविदः प्रजा ।
 ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विधसम्भ्रमम् ॥१५॥
 तावादिदैत्यो सहसा व्यन्यमानात्मपौलौ ।
 बह्मभावेऽश्मसारण कायेनात्रिपती इव ॥१६॥
 दिविस्पृष्टौ ह्रमकिरीटकाटिमि
 निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाश्रुजौ ।
 गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पद
 कट्या सुकाञ्च्यार्कमसीत्य तम्यतुः ॥१७॥
 प्रजापतिर्नाम तयारकापीव
 य प्राक् म्वदहाद्यमयारजायत ।
 तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा
 य तं हिरण्यासमश्न साप्रत ॥१८॥

उठाकर कभी गान और कभी रोनेके समान भौंभि-भौंभि-
 के शब्द करने लगे ॥ १० ॥ विदुरभी । छुटके छुट गये
 अपने कठोर सुरोंसे पृथ्वी खाने और रेंकनकर शब्द करते
 मन्त्रालि होकर इधर उधर दौड़ने लगे ॥ ११ ॥ पक्षी
 गर्भोंके शब्दसे डरकर रोते बिन्हाते अपन घोंसलोंसे उड़न
 लगे । अपनी शिरकोंमें बैठे हुए और वनमें चरते हुए
 गाय-कैय आदि पशु डरके मारे म्म-म्म त्यागने
 लगे ॥ १२ ॥ गौएँ ऐसी डर गयीं कि दुहनेपर उनके
 बनोंसे नून निकलन लगा, बादल पीबकी बर्षा करने
 लगे, देवमूर्तियोंकी ओंछोंसे औंस बहन लगे और औंवी
 क बिना ही वृक्ष उलझ-उलझकर गिरने लगे ॥ १३ ॥
 शनि, राहु आदि भूरा प्रह प्रबल होकर चन्द्र, बृहस्पति
 आदि सौम्य ग्रहों तथा बहुत-से मन्त्रजोक्त औंवर
 वक्रगतिसे चढ़ने लगे तथा आपसमें युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥
 ऐसे ही और भी अनेकों मयङ्गर उत्पात देखकर
 सनकादिके सिवा और सब जीव भयभीन हो गये तथा
 उन उत्पातोंका ममन जाननेके कारण उन्होंने गद्दी समझा
 कि अब संसारका प्रलय होनेवाला है ॥ १५ ॥

ये दोनों आदिदैत्य जन्मके अनन्तर शीघ्र ही अपन
 पीरदिके समान कठोर शरीरोंसे बदकर महान् पर्वगोंके
 सहसा हो गये तथा उनका पूष पराक्रम भी प्रकट हो
 गया ॥ १६ ॥ वे इतने ऊँचे थे कि उनके सुवर्गमय
 मुकुटोंका अप्रमाण खर्गको स्पर्श करता था और उनके
 विशाल शरीरोंसे सारी दिशाएँ आच्छादित हो जाती थीं ।
 उनकी मुद्राओंमें सोनके बाजूबंद चमचमा रहे थे ।
 पृथ्वीपर जाँ वे एक-एक काम रखते थे, उससे भूकम्प
 होने लगा था और जब वे खड़े होते थे, तब उनकी
 जगमगानी हुई चमकीली कलशनीसे सुशोभित कमर अपन
 प्रकाशसे मृगशे भी भाल करती थी ॥ १७ ॥ ये दोनों
 यमत्रय । प्रजापति कश्यपजीन उनका नामकरण किया ।
 उनमेंसे जा उनके शीर्षमें त्रिविधे गर्भमें पहल स्थापित
 हुआ था, उसका नाम हिरण्यकशिपु रक्ता और जा त्रि-
 क उरमें पहले निकला, वह हिरण्याश्व नाम
 विख्यात हुआ ॥ १८ ॥

चक्र हिरण्यकशिपुर्दोर्म्यां ध्वजवरेण च ।

वसे सपालौलोकोस्त्रीनकुतामुत्पुरुदतः ॥२९॥

हिरण्याक्षोऽनुव्रतस्य प्रियः प्रातिकुदन्वहम् ।

गदापाणिर्दिव यातो युपुस्तुर्मगमन् रणम् ॥२०॥

त वीर्य्य दुःसहप्रव रणस्काश्चननपुरम् ।

वैजयन्त्या स्रवा क्षुद्रमसन्वस्तमहागदम् ॥२१॥

मनोवीर्यवरोस्तिक्तमस्तुभ्यमकुतोभयम् ।

भीता निलिम्बिरे वजास्तार्क्ष्यवस्ता इवाह्व ॥२२॥

स वै तिरोहितान् बद्ध महसा स्वेन दैत्यराट् ।

सेन्द्रान्दवगणान् क्षीकानपश्यन् ध्वनद्वृक्षसम् ॥२३॥

ततो निवृत्तः श्रीविष्णुर्गम्भीरं भीमनिखनम् ।

विजगाहे महासत्त्वां वार्ष्णिं मघ इव द्विप ॥२४॥

तस्मिन् प्रविष्ट बरुणस्य सैनिका

यादोनाभाः सन्निधयः ससाध्वसा ।

महन्वमाना अपि तस्य कर्षसा

प्रधर्षिता दूरतर प्रवृद्धम् ॥२५॥

स वर्षपूगातुदधौ महाबल-

धरन्महार्मिष्णुसनेरितान्सुहृः ।

मौर्ष्यामिज्जने गदया विमावरी

मासेदिवास्ताव पुरीं प्रथेतसः ॥२६॥

तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं

यादागमानामुषम प्रथेतसम् ।

ममन् प्रसर्धुं प्रणिपत्य नीचम्

वज्रगाद मे देवभिराज संयुगम् ॥२७॥

त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहन्पञ्चा

वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ।

हिरण्यकशिपु मर्यादानीके वरसे मृत्पुम्पसे मुक्त हो

जानेके कारण बड़ा उदत हो गया था । उसने अपनी

मुनाओंके मलसे लोचपाओंके सहित तीनों बोझोंके

अपने वशमें कर लिया ॥ १९ ॥ वह अपने छोटे हाथों

हिरण्याक्षको बहुत चाहता था और वह भी सदा अपने हाथों

मार्कण्डेय प्रिय कर्य करता रहता था । एक दिन वह हिरण्याक्ष

हाथमें गदा लिये युद्धका अवसर देहता हुआ स्वर्गलोकमें जा

पहुँचा ॥ २० ॥ उसका बेग बड़ा असह्य था । उसके

पैरोंमें सोनेके नूपुरोंकी झलकत हो रही थी, गलेमें विजय-

सूचक माळा धारण की हुई थी और कंधेपर विप्रदंत गदा

रक्खी हुई थी ॥ २१ ॥ उसके मनोबल, शारीरिक बल

तथा ब्रह्माज्ञाके वरसे उसे मतभ्रम कर रक्खा था,

इसलिये वह सर्वथा निरङ्कुश और निर्भय हो रहा था ।

उसे देखकर देवता लोग डरके मारे बैठे ही जाहॉन्ना

ठिग गये, जैसे गरुड़के डरसे सौंप छिप जाते हैं ॥ २२ ॥

जब दैत्यराज हिरण्याक्षन देखा कि मेरे तेजक सामने

बड़े-बड़े गर्वालि इन्द्रादि देवता भी छिप गये हैं, तब उन्हें

अपने सामने न देखकर वह बार-बार मगदूर गर्जना करने

लगा ॥ २३ ॥ फिर वह महाबली दैत्य वहाँसे कैटप्र

जलक्षीका करनेके लिये मलबाले हाथोंके समान गदरे

समुद्रमें घुस गया, जिसमें छहोंकी बड़ी मगदूर गर्जना

हो रही थी ॥ २४ ॥ ज्यों ही उसने समुद्रमें पैर रक्ख

कि डरके मारे वरुणके सैनिक जलचर जीव हड़कल्लव गये

और किसी प्रकारकी छेकछेक न करनेपर भी वे उसकी

भाकसे ही लबराकर बहुत दूर भाग गये ॥ २५ ॥

महाबली हिरण्याक्ष अनेक कर्त्तक समुद्रमें ही घुस

और सामने किसी प्रतिपक्षीको न पाकर बार-बार बाध

बेगसे ठटी हुई उसकी प्रचण्ड तरङ्गोंपर ही अपनी

लक्ष्मणी गदाका आनमता रहा । इस प्रकार घूमते

घूमते वह वरुणकी राजधानी विमावरीपुरीमें जा

पहुँचा ॥ २६ ॥ वहाँ पाताललोकके स्वामी, जलबरोके

अधिपति वरुणजीको देखकर उसने उनकी ईसी ठकाते

हुए नीच मनुष्यकी भाँति प्रणाम किया और कुछ

मुसकराते हुए धाकसे कहा—महाराज ! मुझे युद्धकी मिथा

दीजिये ॥ २७ ॥ प्रभो ! आप तो अकपाकक

राजा और बड़े कीर्तिपायी हैं । जा लोग अपनेकी

बाँका नीर ममलते थे, उनके कीर्यमदकी भी आप पूर्ण

विजित्य लोकेऽर्चिलदैत्यदानवान्
 यद्वाज्रध्वजेन पुरायज्ञस्त्रैभ्यो ॥२८॥
 स एषमुत्सिक्तमदेन विविधा
 रटं प्रलम्भो भगवानर्पा पति ।
 रोपं समुत्थ घामयन् स्वया धिया
 म्यवोचदङ्गोपश्रम गता वयम् ॥२९॥
 पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुत्रातनात्
 यः सयुगे स्त्वा रणमार्गकोविदम् ।
 आराधयिष्यत्यसुरर्पमेहि त
 मनस्विना य गुणते भवारुद्धा ॥३०॥
 तं वीरमारादभिपद्य विमयः
 क्षयिष्यसे वीरक्षये श्रमिर्हितः ।
 यस्त्वद्विभानामसतां प्रक्षान्तये
 रूपाणि भक्त सद्गुणैश्छया ॥३१॥

कर चुके हैं और पहले एक बार खारने संसारके समस्त
 दैत्य-दानवोंको जीतकर सबसूय यज्ञ भी किया था ॥ २८॥

उस मन्दोमच शत्रुके इस प्रकार बहुत उपहास
 करनेसे भगवान् बरुणको क्रोध तो बहुत आया, किंतु
 अपने बुद्धिबलसे वे उसे पी गये और बदलेमें उससे
 कहन लगे—‘आह ! हमें तो अब युद्धादिक कोई चार
 नहीं रह गया है ॥ २९ ॥ भगवान् पुराणपुरुषके सिवा
 हमें और कोई ऐसा दीक्षता भी नहीं, जा तुम-जैसे रण-
 कुशल वीरको युद्धमें सम्पृष्ट कर सके । दैत्यराज ! तुम
 उन्हींके पास जाओ, वे ही तुम्हारी कामना पूरी करेंगे ।
 तुम-जैसे वीर उन्हींका गुणगान किया करते हैं ॥ ३० ॥
 वे बड़े वीर हैं । उनके पास पहुँचते ही तुम्हारी सारी
 श्रेष्ठी पूरी हो जायगी और तुम कुत्तोंसे विरकर वीरशम्भा
 पर धावन करोगे । वे तुम-जैसे दुष्टोंको मारन और
 सपुत्रोंपर क्रुधा करनेके लिये अनेक प्रकारके रूप
 धारण किया करते हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पारमहन्त्या संहितायां तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्ष
 दिग्बिजय सप्तदशोऽध्याय ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्याय

हिरण्याक्षके नाय वराहभगवान्का युद्ध

मैत्रेय उवाच

तदवभाक्कर्म जलेऽश्रमापित
 महामनास्तद्विगमस्य दुर्मद ।
 हरेर्विदिस्वा गतिमङ्ग नारदात्
 रसातल निर्विचित्रे स्वरान्वितः ॥ १ ॥
 वदर्श सत्राभिमित भराभरं
 प्राभीयमानावनिमग्रदर्शना ।
 मुष्णन्तमहस्या स्वरुषोऽरुणभिया
 महास चाहा वनगोचरा मृगः ॥ २ ॥
 आइनमेभ्य महीं विमुञ्च नो
 रसौकसा विभुसुजेयमर्पिता ।

श्रीमैत्रेयजीने कहा—‘वास्त ! बरुणजीकी यह बात
 सुनकर वह मन्दोमच दैत्य बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने
 उनके इस कथनपर कि ‘तु उनका हाथसे मारा जायगा’
 कुछ भी ध्यान नहीं दिया और वह नारदजीसे श्रीहरिको
 पता लग्नकर रसातलमें पहुँच गया ॥ १ ॥ वहाँ उसने
 विश्वविन्दयी वराहभगवान्को अपनी दाढ़ीकी नोकपर
 पृष्ठीकी ऊपरकी ओर ले जाने हुए देखा । वे अपने लाल
 लाल चमकीले नेत्रोंसे उसके तेजको हरे सेते थे । उन्हें
 देखकर वह शिञ्जलिआकर हँस पड़ा और बोला,
 ‘अरे ! यह जंगली पशु यहाँ जलमें कहाँसे
 आया ॥ २ ॥ फिर वराहजीसे कहा, अरे नासमझ !
 हार जा, इस पृष्ठीकी छोड़ दे ! इसे विचविभाना

न स्वस्ति याम्बस्वनया ममेक्षतः

सुराभमासादितक्षराकृते ॥ ३ ॥

त्वं नः सपत्नैरमवाध किं मृतो

या मायया इन्त्यसुरान् परोक्षजित् ।

त्वां योगमायाप्रलम्बमपौरुषं

संस्वाप्त्य मूढ प्रमूजे सुहृच्छुचः ॥ ४ ॥

त्वयि संस्मिते गदया क्षीर्नक्षीर्षं

प्यवाञ्छुञ्च्युतया ये च तुम्यम् ।

बलि इरन्त्युपयो ये च दवाः

स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूढाः ॥ ५ ॥

स तुष्टमानोऽरिबुद्धकशोभरे

दंष्ट्राप्रगां गाढपलक्ष्य भीताम् ।

तोदं भूपतिरगादम्बुमध्याद्

प्राहाहत सकरशुर्बभेभः ॥ ६ ॥

सं निःसर्त्तं सखितादनुवृता

हिरण्यकेशो द्विरद यथा ह्रपः ।

करालदंष्ट्राऽञ्जनिनिस्वनाऽमबीवृ

गतद्विपां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥ ७ ॥

स गाधुदस्तात्मलिलस्य गोचरे

विपस्य तस्यामदधात्ससत्पद्म ।

अभिष्टुता विभुमुञ्जा प्रघने

रापूर्यमाणा विधुर्यं पश्यतोऽरे ॥ ८ ॥

परावृत्तं तपनीयोपकल्पं

महागदं काञ्चनचित्रदर्शम् ।

मर्मण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तेः

प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तु बभाषे ॥ ९ ॥

ब्रह्माजीने हम रसातलासिधोंके हवाले कर दिया है ।

रे सूकररूपधारी सुराधम ! मेरे देखते-देखते ए ह्मे

लेखर कुशाब्जलक्षक नहीं जा सकता ॥ ३ ॥ ए मायाते

लुक्-छिपकर ही ईश्वरोंको जीत लेता और मार डालता है

क्या इसीसे हमारे शत्रुओंने हमारा नाश करानेके लिये

तुझ पाव्य है ! मूढ़ ! तेरा मूढ़ तो योगमाया ही है

और कोई पुरुषार्थ तुझमें थोके ही है । जब तू

समाप्तकर मैं अपने बन्धुओंका शोक दूर करूँगा ॥ ४ ॥

जब मेरे हाथसे छूटी हुई गदाके प्रहारसे तिरफ

जानेके कारण ए मर जायगा, तब तेरी आराधना करने

वाले जो देवता और भूति हैं, वे सब भी जब करे हुए

बुद्धोंकी भाँति खय हो नष्ट हो जायेंगे ॥ ५ ॥

हिरण्याक्ष भगवान्को दुर्बचन-बाणोंसे छेदे जा रहा

था, परन्तु उन्होंने दाँतकी नोकपर स्थित पूष्पीको मयनीत

वेष्टकन यह चोट सह ही तथा बळसे उसी प्रकार

बाहर निकल आये, जब प्राहकी चोट जाकर हस्ति-

सहित गजराज ॥ ६ ॥ जब उसकी पुनोत्थित कोई उतर

न देकर वे जलसे बाहर जाने लगे, तब प्राह जैसे गजका

पीछा करता है उसी प्रकार पीछे के शत्रु और लक्ष्मी

दासोंवाले उस दैत्यने उनका पीछा किया तथा बलके

समान कबकमर यह कहने लगा, 'तुमने मागलमें लज्जा नहीं

आती ! सब है, असल पुरुषोंके लिये कौन-सा काम

न करम योग्य है ' ॥ ७ ॥

भगवान्ने पूष्पीको छे जाकर उसके ऊपर ध्वजहार

योग्य स्थानमें स्थित कर दिया और उसमें अपनी

आधारशक्तिका मञ्जार बिखा । उस समय हिरण्याक्षके

सामने ही ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की और देवत्वमें

रुद्ध बरसाये ॥ ८ ॥ तब धीहरिन बड़ी मारी गता लिये

अपने पीछे आ रहे हिरण्याक्षसे, जो सोमके आपूत्र और

अमृत बचप धारण किये था तथा ज्ञान कटुशक्तियोंसे

उन्हें निरन्तर मर्माहत कर रहा था, अत्यन्त क्रोधपूर्वक

श्रीमगवानुवाच

सत्यं वयं यो वनगोचरा सुगा
 पुष्पद्विषोन्मृगये आमर्षिहान् ।
 न मृत्युपाथैः प्रतिमुक्तस्य बीरा
 विक्रमधनं तव गृह्णन्त्यमद्र ॥१०॥
 धृते वयं न्यासहरा रसौकसी
 गतद्विषो गदया द्रावितास्ते ।
 विष्टामहेऽर्थापि कथञ्चिदानौ
 स्वैर्यं कं यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥११॥
 त्वं पद्मधानां किल यूयपाथिषो
 घटस्य नाऽस्त्रस्तय आश्रयः ।
 संस्वाप्य चास्मान् प्रमूढाभ्यु स्वकानां
 यः स्वां प्रतिष्ठां नातिपिपत्यसम्बः ॥१२॥

मैत्रेय उवाच

सौजघ्नितो मगवता प्रलम्बध कपा भूधम् ।
 आश्रितोऽन्त्यर्धं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिरादिव ॥१३॥
 सुवन्नमर्षितः श्वत्सामन्युमचलितेन्द्रियः ।
 आसाद्य सप्तसा दैत्यो गदयाम्बहनद्विगम् ॥१४॥
 मगवांस्तु गदावेगं विमुष्टं रिपुणोरति ।
 अवज्रपत्तिरभीनो यागारूढ इवान्तकम् ॥१५॥
 पुनर्गदां स्वामादाय आमयन्तमभीक्ष्ण्यश ।
 अभ्यभावद्वरि क्रुद्धः सरम्भादष्टदंष्ट्रदम् ॥१६॥
 एतस्य गदयारातिं दक्षिणस्यां भुवि मसु ।
 आश्रयन् सत्तुं तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥१७॥
 पयं गदाम्बां गुर्वीर्म्बां हर्षयो हरिरिव च ।
 त्रिगोपया सुसंरम्भावन्योन्यमभिजगत्तुः ॥१८॥

श्रीमगवानुने कहा—अरे ! सबमुझ ही हम जंगली
 जीव हैं, जो तुझ जैसे ग्राम-सिंहों (पुच्छों) को डूँढ़ते
 फिरते हैं । दुष्ट ! बीर पुरुष तुझ-जैसे मृत्यु पाशमें बंधे
 हुए हमारे जीवोंकी आत्मरक्षावापर ध्यान नहीं
 देते ॥ १० ॥ हम रसात्मकसिंहोंकी धगेहर चुराकर और
 लज्जा छेड़कर तेरी गदाके मयसे यहाँ माग आये हैं ।
 हममें ऐसी सामर्थ्य ही कहाँ है कि तेरे-जैसे अद्वितीय
 बीरके सामने युद्धमें ठहर सकें । फिर भी हम जैसे-
 जैसे तेरे सामने खड़े हैं, तुझ जैसे बखानोंसे पैर बाँध
 कर हम जा भी कहाँ सकते हैं ? ॥ ११ ॥ व पदछ
 बीरोंका सरदार है, इसलिये अब नि शाङ्ग होकर—उपेक्ष-
 कुन छेड़कर हमारा अनिष्ट करनेका प्रयत्न कर और हमें
 मारकर अपने माई-बचुओंके औस पोंछ । अब इसमें
 देर न कर । जो अपनी प्रतिष्ठाका पावन नहीं करता,
 वह अधर्म्य है—भले आदर्शियोंमें बैठनेवाला नहीं
 है ॥ १२ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी । जब मगवान्ने
 रोपसे उस दैत्यका इसप्रकार सूत्र उपहास और तिरस्कार
 किया, तब वह एकद्वक्तर खेजये जाते हुए सर्पके समान
 क्रोधसे तिमिरित ठहर ॥ १३ ॥ वह खीझकर लंबी-लंबी
 साँसें लेने लगा, उसकी इन्द्रियाँ श्वासेसे क्षुब्ध हो उठीं और
 उस दुष्प दैत्यने बड़े वेगसे छत्रकर मगवान्पर गदाका
 प्रहार किया ॥ १४ ॥ किन्तु मगवान् अपनी छातीपर
 चक्षुषी हुई शत्रुकी गणाके प्रहारका कुछ टपे होकर बचा
 लिया—ठीक वैसे ही, जैसे योगसिद्ध पुरुष मृत्युके
 आक्रमणसे अपनेको बचा लेता है ॥ १५ ॥ फिर जब
 वह क्रोधसे होठ चबाता अपनी गन्ना सेकर बार-बार
 भुमाने लग्य, तब भीहरि कुपित होकर बड़े वेगसे उसकी
 ओर झपटे ॥ १६ ॥ सौम्यलभाय विदुरजी । तब
 प्रभुने शत्रुकी दायाँ भीहर पर गदाकी धाँ करी, किन्तु
 गदायुद्धमें कुलाक्ष हिरण्याक्षम उससे बीचमें ही अपनी
 गदापर से लिया ॥ १७ ॥ इस प्रकार भीहरि और
 हिरण्याक्ष एक दूसरेकी जीतनकी इच्छासे अत्यन्त क्रुद्ध
 होकर आपसमें अपनी माथे गन्नाओंसे प्रहार करने

१ मा पा —विषं मृत । २ मा पा —विष । ३ मा पा —यद्वं यारि । ४ मा पा —वयं ।

५ प्रचीन प्रतिषे मैत्रेय उवाच कहते हैं । ६ मा पा —विष । ७ मा पा —क्या । ८ मा पा —च न ।

तथाः सृष्टोस्तिमगदाहताङ्गयो
 धृतास्तब्रमाणविबुद्धैर्मन्त्रो)
 विविधमार्गाभरतोऽग्निगीपया
 ध्यमादित्यामिमं धूमिणामुध ॥१९॥
 दैत्यस्य यक्षावयवस्य माया
 गृहीतवाराहवर्तनोर्महात्मनः ।
 क्रौरस्य मर्मा द्विपथोविमर्शन
 दिदृशुरागाद्विमिर्भूत खराट् ॥२०॥
 आसमशीम्भीरमपेक्षसाधनं
 कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ।
 विलस्य दैत्यं मगधानं सहस्रजी-
 र्जगात् नारायणमादिद्विकरम् ॥२१॥
 मन्त्रोपाय

ॐ ॥ १८ ॥ उस समय उन दोनों ही जेलों
 होष लग गयी, दोनोंके ही अङ्ग गदाओंकी चोटोंसे घाय
 हो गये थे, अपने अङ्गोंके घावोंसे बहनेवाले रक्तमें
 गन्धसे दोनोंका ही कोप बढ़ रहा था, और वे दोनों ही
 तरह-तरहके पैतरे मट्ट रह गये । इस प्रकार एक
 स्थिति आपसमें उदमवाले दो सौकोंके समान उन दोनों
 एक दूसरेको जीततकी ह्मन्त्रसे बड़ा भयङ्कर हुए
 हुआ ॥ १९ ॥ निदुराजी । जब इस प्रकार द्विपथा
 और मायासे बराहव्यप धारण करनेवाले महात्मा यक्ष
 पृथ्वीके स्थित होप औषधत युद्ध करते ॐ, तब उसे
 देखनेके लिये वहाँ क्षत्रियोंके सहित मन्त्राजी आए ॥ २० ॥
 वे हजारों क्षत्रियोंसे भिरे हुए थे । जब उन्होंने देखा
 कि वह दैत्य बड़ा धूरधूर है, उसमें भयङ्क काम न
 नहीं है, वह मुकाबला करनेमें भी समर्थ है और उसके
 पराक्रमको पूर्ण करना बड़ा कठिन काम है, तब मन्त्र
 आदिस्मृतकथन नारायणसे इस प्रकार कहने ॐ ॥ २१ ॥

मन्त्राजीने कहा— देव । मुझसे वा पावर यह

दृष्ट दैत्य बड़ा प्रबल हो गया है । इस समय यह
 आपके चरणोंकी शरणमें रहनेवाले दस्तावेजों, शस्त्रों,
 गोशों तथा अन्य निरपराध जीवोंको बहुत ही बलि
 पहुँचानेवाला, दुःखदायी और भयङ्कर हो रहा है ।
 इसकी ओढ़का और कार्य योद्धा नहीं है, इसलिये वह
 महाकष्टक बनना मुकाबला करनेवाले वीरकी लीजमें
 समस्त लोकमें घूम रहा है ॥ २० २१ ॥ यह दुःख
 बड़ा ही पापाकी, यक्षणी और निरङ्कुश है । बड़ा शिष्ट
 प्रकार मुझ हुए सौंपसे लेकता है, बड़े ही आप इससे
 निष्कार न करें ॥ २४ ॥ देव । अभ्युत । बलक
 यह पाठन गैय अपनी बलवृद्धिकी वेषाको पाकर प्रबल
 हो, उससे पहल्यहसे ही आप अपनी योग्यमन्त्रों
 लीकर करक इस पारीकी मार शक्ति ॥ २५ ॥
 प्रभो । स्थिते, लोकोका संहार करनेवाली सप्यकी
 भयङ्कर वेषा आना ही चाहती है । सर्वमन्त्र ! आप
 उससे पहले ही हम असुरको मारकर देखाओं
 विजय प्रदान कीजिये ॥ २६ ॥ इस समय अभिप्रिय
 मामक मन्त्रमय मुहूर्तक भी पाग आ गया है । अब
 आपन मुहूर्त इमन्त्रीयक कथ्यणक निये शीत ही हम
 दृष्टय दैत्यको विजय कीजिये ॥ २७ ॥ प्रभो । हमको

प्य ते देव दवानामह्निमूतमुपयुषाम् ।
 विप्राणां सौरमेयीर्षीं भूतानामप्यनागसाम् ॥२२॥
 आगस्त्यकृत्तुदृष्टदस्राद्वराऽसुर ।
 अन्वेयमप्रतिधा लाकान्मति कण्ठक ॥२३॥
 मर्न मायाविर्न दृष्ट निरङ्कुशमसत्तमम् ।
 आक्रोह बालवत्तव मथाऽऽग्नीविपमुत्थितम् ॥२४॥
 न पावदप्य वधेत् त्वां वलां प्राप्य दाठण ।
 त्वां दध मायामायाय तावज्जयमप्युत ॥२५॥
 गपा घोरतमा मप्या लाकण्ठम्यदृक्करी प्रमा ।
 उवमर्षति सवन्मन मुराणां जयमावह ॥२६॥
 अपुनैपाऽमिजिन्नाम यागा मोहृतिफा मगात् ।
 निवाय नम्य सुहृदामात् नित्त दुम्बरम् ॥२७॥

१ मा पा — तत्तुर्ध विष्णुगाह । २ मा पा — मुहूर्तः । ३ मा पा — अयागा । ४ मा पा — मर्न
 अनाग । ५ मा पा — मर्न मर्न मर्न । ६ मा पा — नैन । ७ मा पा — मर्न मर्न ।

दिष्ट्या स्वां विहितमृत्युमपमासादितः स्वपम् ।

विक्रम्यैनं मृचे हत्वा लोकानाधेहि क्षमणि ॥२८॥

मृत्यु आपके ही हाथ बढी है । हममेंसे के नह माय्य
हैं कि यह स्वयं ही अपन कान्छरूप आपक पाम का
पहुँचा है । अब आप युद्धमें बळपूर्वक इसे मारकर छोड़नेको
शान्ति प्रदान कीजिये ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां महिषायां

तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षवधश्चादशाध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

हिरण्याक्षवध

मैत्रेय उवाच

अबभार्य विरिञ्चस्य निर्भ्यलीकमृत वध ।

गहस्य प्रमगर्मेण तदपाङ्गन सोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

उत सपन्नं मुखतश्चर तमकुतोमयम् ।

व्रधानास्तप्य गदया हेनावसुरमध्वजः ॥ २ ॥

सा हवा तेन गदया विहता भगवत्करात् ।

विपूर्मितापसद्भजे तदद्भुतमिषामवत् ॥ ३ ॥

त तदा लम्बतीर्थोऽपि न वधाधे निरायुधम् ।

मानयन् स मृचे धर्मं विप्रक्सेन प्रकापयन् ॥ ४ ॥

गदायामपविद्वापा हाहाकारं विनिर्गत ।

मानयामास तद्धर्मं सुताम चाभ्यगच्छिभुः ॥ ५ ॥

तं स्पप्रचक्रं दितिपुत्राधमेन

स्वपार्पदमुन्म्येन विपन्धमानम् ।

धिप्रा वाषाऽतद्रिदां मेचराणां

तत्रास्मासन् मन्त्रि तेऽयं वहीति ॥ ६ ॥

म त निशाम्याचरथाद्भमप्रतो

स्पवम्पित वधपलाशलोचनम् ।

मैत्रेयजी कहत है—विदुरजी । शत्रुजीक ये
कण्ट-रहित असुतमय वधन धुनकर भगवान् उनके
भोलेपनपर सुसकारकर अपन प्रमपूर्ण कट्यशक द्वाए
उनकी प्राप्ता स्वीकार कर ली ॥ १ ॥ फिर उन्होंने अपन
कर अपने मामन निर्भय बिखरने हुए गायत्री कुडीपर
गन मारी । किन्तु हिरण्याक्षकी गनसे टकराकर वह
गदा भगवान्क हाथसे छूट गयी और चकर काटती हुई
जमीनपर गिरकर सुशोभित हुई । किन्तु यह बड़ी अद्भुत-सी
घटना हुई ॥ २ ॥ उस समय शत्रुपर बार करनेका
अच्छ अवसर पाकर भी हिरण्याक्षन उन्हें निरस दानकर
युद्धधर्मकर पाछन करते हुए उनपर आक्रमण नहीं
किया । उसन भगवान्का बोध बढ़ानक छिये ही ऐसा
किया था ॥ ३ ॥ गदा गिर जानपर और छोड़कर
हाहाकार बंद हा जानपर प्रभुन उसकी धममुद्रिकी
प्रशंसा की और अपन सुशानचक्रकर स्मरण किया ॥ ५ ॥

चक्र घुरत ही उपस्थित होकर भगवान्क हाथमें
धूमन लगा । किन्तु वे अपन प्रभुन पार्य देताधम
हिरण्याक्षके साथ विद्योगरूपसे ब्रह्मा करने लगे । उस
समय उनके प्रभावको न जाननेवाले देवताओंके य
विधिवर वधन सुपायी देने लगे—‘प्रभो ! जानकी जय
हा; इसे और न गेराइये, शीघ्र ही मार डालिये ॥ ६ ॥
अब हिरण्याक्षन देवा वि कम्प-ल-भोजन श्रीहरि
उसक सामन चक्र छिये खड़े हैं, तब उसकी मारी

१ भा पा—किन्तु हाथ मुझमें । २ भाजीन प्रभो विनिर्गता यह उतगर्भ मृन्मे मरी ३ ।

१ भा व—व निम्ने ।

विलोक्य चामर्यपरिप्लुतेन्द्रियो

रुपा खदन्तच्छदमादृशच्छसन् ॥ ७ ॥

करालदंष्ट्रभक्षुर्म्यो सञ्चक्षणां दहन्निव ।

अमिप्लुत्य खगदया ह्योऽसीत्याहमद्भिरम् ॥ ८ ॥

पदा सव्येन तां साधो मगवान् यज्ञघ्नकरः ।

लीलया मियत क्षत्रो प्राहरद्वातरहसम् ॥ ९ ॥

आह चापुत्रमायत्स्व घटस्व त्व जिगीपसि ।

हृत्पुष्कः स तदा भूयस्ताडयन् व्यनदत् सुशुभम् ॥ १० ॥

तां स आपवर्ती वीक्ष्य मगवान् समवस्थितः ।

अग्राह लीलया प्राप्तां गदस्मानिव पञ्चगीम् ॥ ११ ॥

स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महामुरः ।

नैच्छद्भ्रंदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभम् ॥ १२ ॥

अग्राह त्रिशूलं शूलं ज्वलन्ज्वलनसोलुपम् ।

यदाय घृतरूपाय विप्रामामिचरन् यथा ॥ १३ ॥

उदोजसा दैत्यमहामर्तापितं

चकामदन्तं त्व उदीर्णदीधिति ।

चक्रण चिच्छद् निशाठनेमिना

हरिर्यथा सार्षपतत्प्रमुञ्चतम् ॥ १४ ॥

हृषणं स्वगुलं यदुघारिणा हरे

प्रत्यक्षं विस्तीर्णमुने विभूतिमद् ।

हरिर्गो गोधसे शिखिमुख उठी और वह बड़ी लंबी लंबी लेता हुआ अपने दाँतोंसे होठ चबाने लगा ॥ ७ ॥ उस समय वह तीली दाढ़ीवाला दैत्य, अपने नयनोंसे प्रकाश समझी और घूरने लगा । मानो वह भगवान्को मार कर देगा । उसने उछलकर खड़े, अब तू नहीं बच सकता' इस प्रकार छछकारते हुए भीहरिपर गदसे प्रहार किया ॥ ८ ॥ सापुत्रमाय विदुरजी । कर्णजी भीराहमगवान्ने शत्रुके देखते-देखते छीजसे ही करने जायें पैरसे उसकी वह बापुके समान केतकी गदा पृथ्वीपर गिरा दी और उससे कहा, 'अरे दैत्य ! तू मुझ जीतमा चाहता है, इसलिये बहुत शक्त उठा ले और एक बार फिर बार कर ।' भावार्थके इस प्रकार कहनेपर उसने फिर गदा चक्रीय और बड़ी भीषण गर्भना करने लगा ॥ ९ ॥ गदको अपनी ओर आते देखकर भगवान्ने, 'जहाँ खड़े थे वहाँसे उसे बाते ही अनायास इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे गरुड सौपिनको पकड़ ले ॥ ११ ॥

अपन उचमको इस प्रकार व्यर्थ हुआ देख उस महा-दैत्यका घमंड ठंडा पड़ गया और उसका तेज गढ़ हो गया । जबकी बार भगवान्को घेनेपर उसने उस गदा को लेना न चाहा ॥ १२ ॥ किंतु जिस प्रकार कर्ण शत्रुणके ऊपर निष्कल अभिचार (मरणादि प्रयोग) करते—मूढ़ आदि चलाये, तैसे ही उसने धीयज्ञपुङ्गव प्रहार करनेके लिये एक प्रवृत्ति अभिचार समान उपजाना हुआ त्रिशूल लिया ॥ १३ ॥ महाबली दिग्याच्छन्न अत्यन्त बेगसे छोड़ा हुआ वह तेजस्वी त्रिशूल आकाशमें बड़ी तेजीसे चमकने लगा । तब भगवान्ने उसे अपनी तीली भारवाले चक्रसे इस प्रकार चक्र दाग, जैसे हथने गरुडजीके छोड़े हुए सेजली पंखको चक्र दाग पा ॥ १४ ॥ भगवान्के चक्रसे जाते त्रिशूल बहुत स टुकड़े हुए देखकर उसे बड़ा क्रोध हुआ । उसने पास आकर उसके विशाल बस स्वउपर, जिसने

१ प्रा. पा.—नेच्छद् भलीं मुण्मा हरि ।

• एक बार गरुडजी अपनी माता निशाठने वगैरी माता कदके दागीरनेसे मुक्त करनेके लिये देवप्रभोके पक्षी भगवा जीन ले थे । तब हथने उनके ऊपर अत्यन्त बल छोड़ा । इन्द्रका बल कभी व्यर्थ नहीं जाता, इसलिये उठकर मन्त्र रचनेके लिये गरुडजीने अत्यन्त बल पर श्रम दिया । उसे उन बलने फट गया ।

प्रहृदरोप स फठोरमुष्टिना
नदन् प्रहृष्ट्यान्तरधीयसासुर ॥१५॥

तेनेत्यमाहत क्षत्तर्मगवानादिद्वयम् ।

नाकम्पत मनाक् क्वापि सत्त्वा हृत्तश्च द्विप ॥१६॥

अधोरुधासुब्जन्मायां योगमायेधरे हरी ।

यो विलोक्य प्रजास्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंघमम् ॥१७॥

प्रवधुर्वापधम्पान्तम पांसवमैरयन् ।

दिग्म्यो निपतुर्प्रमाणः धेपणै प्रहिता इव ॥१८॥

धीर्नष्टमगणाभौषैः सविष्टस्तनवित्तुभिः ।

वर्षभिः पूयकेऽसृग्विष्मूत्राव्मीनि चासकृत् ॥१९॥

गिरवः प्रत्यहश्मन्त नानापुधुधोऽनघ ।

दिग्वाससो मातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तपूर्वभाः ॥२०॥

बहुभिर्धरधोभि परधरधरुद्धरैः ।

आततापिभिस्तुष्टा हिंसा बाधोऽर्तिवैद्यसाः ॥२१॥

प्रादुम्पतानां मावानामासुरीणां विनाशयत् ।

सुदर्शनास्त्रं मगवान् प्रादुक्कवयितं त्रिपात् ॥२२॥

तदा दितोः समभक्षसहसा हृदि वेपथु ।

सरन्त्या भर्तुर्गदेष्ट स्तनाष्ठासृक् प्रसूनुषे ॥२३॥

विनष्टसु स्वमायासु मूयधाग्रन्य केद्वयम् ।

रूपगूहमानोज्जुं दष्टोऽवस्थित बहि ॥२४॥

श्रीकृष्ण विह मुशोभिः है, कस्तकत वूसा माप
और फिर बड़े जोरसे गरजकर अन्तर्धान हो गया ॥१५॥

विदुरजी ! जैसे हाथीपर पुण्यमात्रकी शोका कोई
बसर नहीं होता, उसी प्रकार उसके इस प्रकार वूसा
मारनेसे मगवान् आदिपराह तनिक भी टस-से-मस नहीं
हुए ॥ १६ ॥ तब वह महामायाकी दैत्य मायापति
श्रीहरिपर अनेक प्रकारकी मायाओंका प्रयोग करने लगा,
जिन्हें देखकर सभी प्रजा बहुत डर गयी और समझने
लगी कि अब संसारका प्रलय होनेवाला है ॥ १७ ॥
वही प्रपण्ड औंधी चकने लगी, जिसके कारण धूलसे
सब ओर अन्धकार छा गया । सब ओरसे पत्थरोंकी
बर्षा होन लगी, जो ऐसे जान पड़ते थे मानो कित्ती
छेपणफत्र (गुस्से) से फेंके जा रहे हों ॥ १८ ॥
त्रिशूलकी चमचमाहट और कड़कते साथ बादलोंके
विर जानेसे आकाशमें सूर्य, चन्द्र आदि सब छिप गये
तथा उनसे निरन्तर पीव, केश, रुधिर, मिट्टा, मूत्र और
हड्डियोंकी बर्षा होन लगी ॥ १९ ॥ विदुरजी ! ऐसे-
ऐसे पड़ाव दिखायी देने लगे, जो तरह-तरहके अन्न
सब भरसा रहे थे । हाथमें त्रिशूल छिपे बाळ खोले
लंगी राखसियाँ दीकने लगी ॥ २० ॥ बहुत-से पैदल,
पुद्गलधार रथी और हाथियोंपर बने हुए सैनिकोंके साथ
आत्मगामी पक्ष-राक्षसोंका 'मारो-मारो, कटो-कटो' ऐसा
अपन्त क्रूर और हिंसामय क्रोडाह्वय सुनायी देने
लगा ॥ २१ ॥

इसप्रकार प्रकट हुए उस आसुरी माया-आक्रमण का
करनेके लिये यक्षगूर्ति मगवान् बराहन अपना प्रिय
सुदर्शनचक्र छोड़ा ॥ २२ ॥ उस समय अपने पतिकर
कपल स्मरण हो जानेसे दितिकर हृदय सहसा काँप
उठा और उसके स्तनोंसे रक्त बहने लगा ॥ २३ ॥
अपना माया-बाळ गूँथे जानेपर वह दैत्य फिर मगवान्के
पास आया । उसने उन्हें कंधोंसे दबाकर घूर घूर
करनेकी इच्छासे भुजाओंमें भर लिया, किन्तु देखा कि
वे तो बाहर ही खड़े हैं ॥ २४ ॥ अब वह मगवान्के

त मुष्टिभिर्विनिघ्नतं वज्रसारैरथोद्युधः ।

करणे कर्णमूलेऽहन् यथा स्वाष्ट्र मरुत्पतिः ॥२५॥

स आहतो विधर्मिता ह्यवश्रया
परिभ्रमद्रात्र उदस्तलोचन ।

विंशोर्णबाह्वद्विधिरुहोऽपसवू
यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्तथा ॥२६॥

धितौ क्षपान तमकुण्डवर्षसं
करालदंष्ट्रं परिदष्टदंष्ट्रम् ।

अन्नादयो वीक्ष्य क्षुब्धमुरागता
अहो इमां कौतुलमेतसंस्मितिम् ॥२७॥

य योगिनो योगसमाधिना रहा
प्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ।

तत्सैव तैत्यश्रयम पदाहतो
मुख्य प्रपश्यन्तनुमुत्ससर्ज ॥२८॥

एतौ तौ पार्यदावस्य क्षापायातावसद्रतिम् ।

पुन कतिपर्यं न्यान प्रपत्स्यतेह अन्मभि ॥२९॥

दवा उचुः

नमा नमस्तस्मिलयस्तन्तव

न्यितां गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।

दिष्टया हतोऽयं जगतामरुन्तुद

स्वत्पादभक्त्या वयमीदं निवृत्ता ॥३०॥

मैत्रय उवाच

पय हिरण्यासममघ्निकर्म
मा मादयिन्या हरिरादिमुद्धर ।

अगाम ताव न्यमम्विद्वताम्वर्ष
समीहितं पुष्करगिरादिभि ॥३१॥

वज्रके समान कठोर मुक्तेसे मारन लगा । तब इन्ने
जैसे वृत्रासुरपर प्रहार किया था, उसी प्रकार भगवान्ने
उसकी कनपटीपर एक तमचा मारा ॥ २५ ॥

विश्वविजयी भगवान् न यद्यपि बड़ी उपेक्षासे तमाचा
मारा था, तो भी उसकी चोन्से हिरण्याक्षका स्पर्श
धूमने लगा, उसके नेत्र बाहर निकल जाये, तथा हाथ-
पैर और बाक छिन्न-भिन्न हो गये और वह निश्चल
होकर वहींसे उसके हुए विशाल वृक्षके समान पृथ्वी
पर गिर पड़ा ॥ २६ ॥ हिरण्याक्षका सेन जब भी
यक्षिण नहीं हुआ था । उस कदाक दाहोवाले दैत्यके
दौतोंसे होठ चबाते पृथ्वीपर पड़ा देख बहो मुद
देखनेके लिये जाये हुए ब्रह्मादि देवता उसकी प्रशंसा
करन लगे कि 'अहो ! ऐसी कल्प्य वृक्ष किस्से
मिल सकती है ॥ २७ ॥ अपनी निष्ठा उपाधिसे
छूटनेके लिये भिनका यागिजन समाधिपोगके द्वारा
एकाग्रतासे ध्यान करते हैं, उनकी धारण-प्रवृत्तिसे उनका
मुख देखने-देखते इस दैत्यराजने अपना शरीर
त्याग्य ॥ २८ ॥ ये हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु
भगवान्के ही पार्षद हैं । इन्हें शापवश यह अयोग्यता प्राप्त
हई है । अब कुछ जन्मोंमें ये फिर अपने स्वतन्त्र
पहुँच जायेंगे ॥ २९ ॥

देवतालोग कहने लगे—प्रभो ! आपके बारंबार
नमस्कार हैं । आप सम्पूर्ण पञ्चोक्त विस्तार करनेवाले हैं तथा
संसारकी स्थितिसे लिये सुदृढसत्त्वमय महत्वविमल प्रकट
करते हैं । वह जानन्दकी बात है कि संसारको कष्ट
दनेवाला यह दुष्ट दैत्य मारा गया । अब आपके
धरणीकी मलिक प्रभावसे हमें भी सुख-शान्ति मिल
गयी ॥ ३० ॥

मैत्रेयजी कहल हैं—विदुरजी ! इस प्रकार महा-
पराक्रमी हिरण्याक्षका वध करके भगवान् आनन्द
अपन अमर्य आनन्दमय धामको पधार गये । उस
समय ब्रह्मादि देवता उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ३१ ॥

मया यथानुक्तमवादि ते हरे

कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ।

यथा हिरण्याक्ष सदारविक्रमो

महामृधे श्रीवदनवभिराकृत ॥३२॥

सुत उवाच

इति कौपारवाख्यातामाभुस्त्य भगवत्कथाम् ।

अथाऽऽनन्द पर लेखे महाभागवतो विस्र ॥३३॥

अन्वेषां पुण्यश्लोकानामुद्देशमपञ्चसां सताम् ।

उपभुत्स्य भवेन्मोद श्रीवत्साङ्गस्य किं पुनः ॥३४॥

यो गवेन्द्र ऋषयस्त न्यायन्तं वरणाम्भुजम् ।

क्रोशतीनां करेणूनां कृष्णतोऽमोघयश्च सुतम् ॥३५॥

तं सुखराजमृजुभिरनन्यधरणैर्नृभिः ।

कृतञ्चः को न सेवेत दुराराज्यमसाधुभिः ॥३६॥

यो वै हिरण्याक्षवच महामृतं

विक्रीडितं कारमक्षकरात्मनः ।

मृणोति गावत्समुदतेऽञ्जसा

विंशन्वते ब्रह्मवधादपि द्विजैः ॥३७॥

एतन्महापुण्यमलं पवित्रं

धन्यं यशस्य पद्मपुराणिषाम् ।

प्रापेन्द्रियाणां युधि क्षौर्यवर्धनं

नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग मृण्वताम् ॥३८॥

भगवान् अवतार लेकर जैसी छीजए करते हैं और जिस प्रकार उन्होंने भीषण सम्प्रममें छिछोरेकी मूर्ति महापराक्रमी हिरण्याक्षका बध कर बाटा, मित्र विदुरजी ! यह सब चरित जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना था तुम्हें सुना दिया ॥ ३२ ॥

सुतजी कहते हैं—शौनकाजी ! मैत्रेयजीके मुखसे भगवान्की यह कथा सुनकर परम भागवत विदुरजीको बड़ा आनन्द हुआ ॥ ३३ ॥ जब कल्प पवित्रकीर्ति और परम यशस्वी महापुरुषोंका चरित्र सुननसे ही बड़ा आनन्द होता है, तब श्रीकृत्स्नवारी भगवान्की कल्पित-कथामें छीजबोंकी तो बात ही क्या है ॥ ३४ ॥ जिस समय महादेव पकड़नेपर गजराज प्रभुके वरणोंका ध्यान करने लगे और उनकी इष्टिनियाँ दु खसे बिगडावने लगीं, उस समय विष्णुने उन्हें लक्ष्मण दु खसे छुड़ाया और जो सब ओरसे निराश होकर अपनी शरणमें आये हुए सरलहृदय मर्त्यसे सबजनें ही प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु दु ख पुरुषोंके लिये अत्यन्त दुराराज्य है—उनपर अच्छी प्रसन्न नहीं होते, उन प्रभुके उपकारोंको जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है, जो उनका सेवन न करेगा ? ॥ ३५ ३६ ॥ शौनकादि ऋषियो ! पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये बराहकृप वारण करनेवाले श्रीहरिकी इस हिरण्याक्ष-बध नामक परम अमृत छीजको जो पुरुष सुनता, गाता अथवा अनुमोदन करता है, वह ब्रह्महत्या-प्रेते घोर पापसे भी सदाजनें ही छूट जाता है ॥ ३७ ॥ यह चरित्र अत्यन्त पुण्यप्रद, परम पवित्र, धन और यशकी प्राप्ति कराने-वाला आयुष्मदक और कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा युद्धमें प्राण और इन्द्रियोंकी शक्ति बचानवाला है । जो लोग इसे सुनते हैं, उन्हें अन्तमें भीमभगवान् का आश्रय प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हत्यां संहितायां द्वातीयस्कन्धे हिरण्याक्ष

वधो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ विंशोऽध्यायः

प्रजापति की रथी हुई अनेक प्रकार की सृष्टि का वर्णन

सौमिक उवाच

शौमिकजी कहते हैं—सूतजी ! पृथ्वीरूप व्यापक

पाकर स्वायम्भुव मनुने आगे होनेवाली सन्तति का
उत्पन्न करने के लिये कित्त कित्त उपायों का अन्वेषण
किया ? ॥ १ ॥ विदुरजी बड़े ॥ मगवान् और
मगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य सुहृद् थे । इसीलिये उन्होंने
अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को, उनके पुत्र दुर्मेघन के सहित
मगवान् श्रीकृष्ण का अमातर करने के कारण अपराधी
समझकर त्याग दिया था ॥ २ ॥ वे महर्षि द्वैपायन के
पुत्र थे और महिमामें उनसे किसी प्रकार का नहीं
थे, तथा सब प्रकार मगवान् श्रीकृष्ण के अश्रित और
कृष्णमूर्त्तिक अनुगामी थे ॥ ३ ॥ तीर्थसेवनसे उनका
अन्त करण और भी शुद्ध हो गया था । उन्होंने
कुशातर्क्षेत्र (हरिद्वार) में बैठे हुए तत्त्वज्ञानिकोंमें
छेठ तीर्थेयजी के पास जाकर और क्या पूछा ? ॥ ४ ॥
सूतजी ! उन दोनोंमें कर्ताजप होनेपर श्रीहरिके
चरणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली बड़ी पवित्र कथाएँ हुईं
होंगी, जो उन्होंने चरणोंसे निकलें हुए गङ्गाबल्ल के समस्त
सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाली होंगी ॥ ५ ॥ सूतजी !
आपका मङ्गल हो, आप इन्हें मगवान् की वे पवित्र
कथाएँ सुनाइये । प्रभु के उदार चरित्र तो कीर्तन करने
योग्य होते हैं । भग, ऐसा कौन रसिक होगा, जो श्रीहरिके
श्रीश्रमृतका पान करते-करते लुप्त हो जाय ॥ ६ ॥

मैमिहारव्यवासी मुनियों के इस प्रपञ्च श्रुतेन
उपपन्न मूलवीन मगवान् विदित लयाकर उनसे पद्मा
‘सुनिय’ ॥ ७ ॥

मूलवीन कहा—मुनिगण ! अपनी मापासे बराबर

धारण करनेवाले श्रीहरिकी रसानुसे पृथ्वीय मित्रान्ते
और गन्धे ही तिरस्कारपूर्वक भिरण्णाकाश मार डालने
की सीमा सुनकर विदुरजी का बड़ा आनन्द हुआ और
उन्होंने मुनिवर मैमयजीसे कहा ॥ ८ ॥

महीं प्रतिष्ठामभ्यस्य सीते स्वायम्भुवो मनु ।

कान्यन्वविष्टुद् द्वापि मार्गायावरसन्मनाम् ॥ १ ॥

सुधा महाभागवत कृष्णस्वैकान्तिकः सुहृत् ।

यस्तत्त्वाज्ञाग्रज कृष्ण सापत्यमपवानिति ॥ २ ॥

द्वैपायनादनवरा महिष्ये तस्य देहजः ।

सर्वान्मना भितः कृष्णं तत्परांभाम्यनुव्रतः ॥ ३ ॥

किमन्वपृच्छ मैत्रेय निरजातीर्थसेत्रया ।

उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्वविद्यमम् ॥ ४ ॥

तपोः संवदतो स्रुत प्रवृत्ता क्षमताः कथाः ।

आपो गाङ्गा श्वापसीर्हरे पादाम्बुजाभयाः ॥ ५ ॥

ता नः कीर्तय भद्र ते कीर्तयोदारकर्मण ।

रसज्ञ का नु त्वप्येत हरिटीलामृत पिबन् ॥ ६ ॥

पद्मप्रधवा पृष्ट श्वपिभिर्नमिषावर्त ।

भगवत्पिताम्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥ ७ ॥

सूत उवाच

हरेधृतकाष्ठतनाः ममापया

निगम्य गारुडरण रमावलान् ।

सीतां दिग्व्याप्यमत्रप्रया हनं

मज्जातदर्शं मुनिमाह मारुत ॥ ८ ॥

१ म ॥ — २ म ॥ ३ म ॥ — ४ म ॥ ५ म ॥

विदुर उवाच

प्रबापतिपतिः सुष्टा प्रबासर्गे प्रप्रापतीन् ।
 किमारभत मे ब्रह्मन् प्रभूषण्यक्तमार्गवित् ॥ ९ ॥
 ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायम्भुवो मनुः ।
 ये वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभाषयन् ॥ १० ॥
 सश्रितीषा किमसृजन् स्रतन्त्रा उत कर्मसु ।
 आहोस्त्रिस्तंहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥ ११ ॥

मैत्रेय उवाच

इवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च ।
 जातघोमाद्भगवतो महानासीद् गुणत्रयात् ॥ १२ ॥
 रत्न प्रधानान्महद्वल्लिङ्गो दैवचोदितस्तु ।
 जातः ससर्ब भूतादिविद्यदत्तीनि पञ्चश ॥ १३ ॥
 तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् ।
 संहत्य दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥ १४ ॥
 सोऽञ्जयिष्ठान्धिसलिले आम्बकोष्ठो निरात्मकः ।
 साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववास्तीक्ष्णमीश्वर ॥ १५ ॥
 तस्य नामेरमृत्युधं सहस्राकौलदीधिति ।
 सर्वजीवनिक्रयौको यत्र स्वयमभूत्स्वराद् ॥ १६ ॥
 सोऽनुविष्टो भगवता यः श्रेष्ठे सलिलाद्यये ।
 लोकावसां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥ १७ ॥
 सस्रज्ज्वालाययाविद्यां पञ्चपर्वणमग्रतः ।
 वामिन्नमधतामिन्न तमो मोहो महातम ॥ १८ ॥

विदुरजीने कहा—ब्रह्मन् ! आप परोक्ष विनियोंको भी माननेवाले हैं, अतः यह बतलाइये कि प्रबापनियोंके पति श्रीब्रह्माजीने मरीचि आदि प्रबापनियोंको उत्पन्न करके फिर सृष्टिको ब्रह्मणके लिये क्या किया ॥ ९ ॥ मरीचि आदि मुनीश्वरोंने और स्वायम्भुव मनुने भी ब्रह्माजीकी आज्ञासे किन्न प्रकार प्रमाकी वृद्धि की ॥ १० ॥ क्या उन्होंने इस जगत्को पत्नियोंके सहयोगसे उत्पन्न किया या अपने अपने कार्यमें स्वतन्त्र रहकर, अथवा सबने एक साथ मिलकर इस जगत्की रचना की ॥ ११ ॥

मैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! जिसकी गतिको जानना अत्यन्त कठिन है—उस नीचोंके प्रारम्भ, प्रकृतिके नियन्ता पुरुष और काल—इन तीन हेतुओंसे तथा मग्नान्की सन्निधिसे त्रिगुणमय प्रकृतिमें क्षोभ होनेपर उससे महत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ दैवकी प्रणयसे रत्न प्रधान महत्त्वसे वैश्वरिक् (सात्त्विक), रागस और तामस—तीन प्रकारका अद्भुत उत्पन्न हुआ । उसने आकाशादि पाँच पाँच तत्वोंके अनक कर्मा प्रकट किये ॥ १३ ॥ वे सब अलग-अलग रहकर भूतोंके कार्यरूप ब्रह्माण्डकी रचना नहीं कर सकते थे, इसलिये उन्होंने भगवान्की शक्तिसे परस्पर संगठित होकर एक सुवर्णवर्ण अण्डकी रचना की ॥ १४ ॥ वह अण्ड चेतनाशून्य अवस्थामें एक हजार वर्षोंसे भी अधिक समयतक कटरणाश्रिके जलमें पड़ा रहा । फिर उसमें श्रीभगवान्ने प्रवेश किया ॥ १५ ॥ उसमें अधिष्ठित होनेपर उनकी नामसे सहस्र सूर्यके समान अत्यन्त तेदीप्यमान एक कमल प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण जीव-समुदायका आश्रय था । उसीसे स्वयं ब्रह्माजीका भी आविर्भाव हुआ ॥ १६ ॥

जब ब्रह्माण्डके गर्भरूप जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायणदेवने ब्रह्माजीके अन्तःकरणमें प्रवेश किया, तब वे पूर्वकल्पोंमें अपने ही द्वारा निश्चित की हुई नाम-रूपमयी व्यवस्थाके अनुसार लोकोंकी रचना करने लगे ॥ १७ ॥ तबसे पहले उन्होंने अपनी प्रणयसे तमिस्र अन्धकारमिश्र तम, मोह और महाभ्रम—यों पाँच प्रकारकी अविद्या उत्पन्न

१ मा य — सर्वमकल्पयन् । २ मा य — मूलनि निय । ३ मा य — मोह ।

• पञ्च तन्मात्र पञ्चभूताभूत पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँच कर्मेन्द्रिय और उनसे पाँच-पाँच देवता—इन्द्र व ब्रह्मा वरों संकट प्पन्नता आदि ।

अथ विंशोऽध्यायः

ब्रह्मजीकी रभी हुए अनेक प्रकारकी सृष्टिकर कर्मेन

शौनक उवाच

महीं प्रतिष्ठामभ्यस्य सीते स्वायम्भुवो मनुः ।

कान्पन्वतिष्ठद्वाशाणि मार्गायाश्चत्वनमनाम् ॥ १ ॥

यथा महाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् ।

यत्तस्याभ्राघ्नं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥ २ ॥

द्वैपायनादनवरो महिरवे तस्य देहवः ।

सर्वतमना भितः कृष्णं उत्पराधाप्यनुव्रतः ॥ ३ ॥

किमन्वपृच्छ मैत्रेय विरधास्तीर्थसेवया ।

उपगम्य कुञ्जावर्तं भस्त्रानं तत्त्ववित्तमम् ॥ ४ ॥

तयोः संबन्धोः ह्यतः प्रवृत्त्या ब्रामलाः कथाः ।

आपो गाङ्गा ह्वावभीर्हरे पादाम्बुजाभयाः ॥ ५ ॥

सा नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ।

रसञ्च को नु वप्सेत् हरिलीतामृतं पिबन् ॥ ६ ॥

एवमुप्रमथाः शृष्ट आविर्भूतमिषायनैः ।

भगवत्पर्वितात्पारमस्तानाह भूयतामिति ॥ ७ ॥

सूत उवाच

हरेश्चक्रावतना स्वप्रायया

निशम्य गारुडवरणं रसावलात् ।

लीलां हिरण्याक्षमवधया हतं

मञ्जातहर्षो मुनिमाह मारुत ॥ ८ ॥

शौनकाजी कहते हैं—सूतजी । पृथ्वीरूप व्यापार

पाकर स्वायम्भुव मनुज आगे होनेवासी सन्तति

रूपका करनेके लिये किन किन उपार्थोंका व्यवहार

किया ॥ १ ॥ विदुरजी बड़े ही भगवद्वक्त और

भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य सुहृद् थे । इसीलिये उन्होंने

अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रके, उनके पुत्र दुर्योधनके सहित

भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय करनेके कारण अपना

सम्बन्ध त्याग दिया था ॥ २ ॥ वे स्वर्ग हैं आपनके

पुत्र थे और महिमामें उनसे किसी प्रकार कम नहीं

थे, तथा सब प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके आश्रित और

कृष्णभक्तोंके अनुगामी थे ॥ ३ ॥ तीर्थसेवनसे उनका

अन्त करण और भी शुद्ध हो गया था । उन्होंने

कुञ्जावर्तक्षेत्र (हरिद्वार) में बैठे हुए तत्त्वज्ञानियों

अथ मैत्रेयजीके पास आकर और क्या पूछा ॥ ४ ॥

सूतजी । उन दोनोंमें वार्तालाप होनेपर श्रीहरिक

चरणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली बड़ी पवित्र कथाएँ हुई

होंगी, जो उन्होंने चरणोंसे निकले हुए गङ्गाब्रह्मके समान

सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली होंगी ॥ ५ ॥ सूतजी ।

आपका मङ्गल हो, आप हमें भागवतकी वे पवित्र

कथाएँ सुनाइये । प्रभुके उदार चरित्र को कीर्तन करने

योग्य होते हैं । मञ्ज, ऐरा कौन रसिक होगा, जो श्रीहरिके

कीजामृतका पान करते-करते मृत हो जाय ॥ ६ ॥

मैत्रियारण्यवासी मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर

उपमथा सूतजीने भगवान्में विष्ट अथवा उनसे कहा

‘मुनिये’ ॥ ७ ॥

सूतजीने कहा—मुनिगण । अपनी यायासे बराबर

धारण करनेवाले श्रीहरिके रसतन्त्रसे पृथ्वीको निकट

और खेछमें ही तिरस्कारपूर्वक हिरण्याक्षका मार डालने

की क्षीण सुनकर विदुरजीका बड़ा आश्चर्य हुआ और

उन्होंने मुनिवर मैत्रेयजीसे कहा ॥ ८ ॥

कण्ठपर्याप्तमोक्षां मदविह्वललोचनाम् ।

प्रसीकलापविलसदुकुलच्छन्नरोधसम् ॥२९॥

रन्योन्यश्लेषयोद्युक्कनिरन्तरपथोभराम् ।

दुनासां सुद्विधां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ॥३०॥

गूढन्तीं श्रोत्रयाऽऽस्मानं नीलालकबहुधिनीम् ।

उपलम्भासुरा भर्मा सर्वे सम्मुखः स्निग्धम् ॥३१॥

महो रूपमहो वैर्यमहो अस्मा नव वयः ।

मम्ये कामयमानानामकामेष विसर्पति ॥३२॥

वितर्कयन्तो बहुधा वां सभ्यां प्रमदाकृतम् ।

अभिसम्भाष्य विभ्रम्भात्पर्यपृच्छन् कुमेधसः ॥३३॥

कसि कस्यासि रम्मारु को वार्धस्तेऽत्र मामिनि ।

रूपद्रविणपण्येन दुर्मगावो विबाधसे ॥३४॥

वा वा क्वचिच्चमबले दिष्टया सन्दर्शनं तव ।

उत्सुनापीक्षमाणानां कन्दुककीडया मन ॥३५॥

नैकत्र ते जयति धालिनि पादपद्म

मन्त्या सुदु करसलेन पतत्पतङ्गम् ।

मम्य विपीदति बृहत्स्तनभारमीर्यं

घान्तेव दधिमैला सुक्षिप्तासमूह ॥३६॥

इति सायतनीं सभ्यामसुरा प्रमत्तायसीम् ।

प्रलोभयन्तीं अगृह्णन्तीं मूढभिः स्निग्धम् ॥३७॥

(श्रवणीकृत श्रोत्रा दुष्ठा यह शरीर एक सुन्दरी की—सम्पादेवी—के रूपमें परिणत हो गया ।)

उसके चरणकमलोंके पायजेव शङ्कृत हो रहे थे ।

उसकी ओंछें मतवाली हो रही थीं और कमर करघनी

की बबोसे सुशोभित सनीची साड़ीसे ढकी हुई

थी ॥ २९ ॥ उसके तमरे हुए स्तन इस प्रकार एक-

दूसरेसे सटे हुए थे कि उनके बीचमें कोई अन्तर ही

नहीं रह गया था । उसकी नासिका और दन्तावली

बकी ही सुबक थी तथा वह मधुर-मधुर मुसकुराती हुई

आँखोंकी ओर हाव-भावपूर्ण दृष्टिसे देख रही थी ॥ ३० ॥

वह नीची-नीची जम्कजकीसे सुशोभित सुकुमारी मानो

जम्बाके मारे अपने अञ्जलमें ही सिमिटी जाती थी ।

विदुरजी ! उस सुन्दरीको देखकर सब-के-सब असुर

मोहित हो गये ॥ ३१ ॥ 'क्यों ! इसका कैसा विचित्र

रूप, कैसा कवीकृत धैर्य और कैसी नयी अवस्था है ।

देखो, हम कामपीढ़ियोंके बीचमें यह कैसी बेरबाद-सी

विचर रही है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार उन कुसुदि दैत्योंने बीष्मपिणी सम्प्राप्ते

विषयमें तरह-तरहके तर्क-वितर्क करके फिर उसका बहुत

आदर करते हुए प्रेम्पूर्ण पूछा—॥ ३३ ॥ 'सुन्दर !

तुम क्यों हो और किसकी पुत्री हो ? मामिनि । यहाँ

तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? तुम अपने अनूप

रूपका यह बेमेल सौदा दिखाकर हम आमाँयोंको क्यों

तरसा रही हो ॥ ३४ ॥ अबने ! तुम कोई भी क्यों

न हो हमें तुम्हारा दर्शन हुआ—यह वह सौमन्मकी

बात है । तुम अपनी गैर उन्नत-उन्नत तो हम

दर्शकोंके मनको मये बाधती हो ॥ ३५ ॥ सुन्दर !

अब तुम सञ्जुकी हुई गैर अपनी हथेलीकी पक्की

मारती हो, तब तुम्हारा चरण-कमल एक जगह नहीं

ठहरता, तुम्हारा कटिप्रदेश स्थूल स्तनोंके मारसे

पक-सा जाता है और तुम्हारी निर्मल दृष्टिसे भी पक्का

का झकने लगती है । क्यो ! तुम्हारा केसापाश कैसा

सुन्दर है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार बीरूपसे प्रकट हुई उस

सायङ्कालीन सम्प्राप्ते उन्हें अत्यन्त कामसाधक कर दिया

और उन गूढ़ोंने उसे कोई रमणीय समझकर प्रवृत्त

विससर्जन्मनः कथं नाभिनन्दस्तमोमयम् ।

अगृह्यधरक्षांसि रात्रिं क्षुब्धसमुद्रवाम् ॥१९॥

क्षुब्धस्त्राण्यपमृष्टास्ते ते अशुभमिदुःखम् ।

मा रक्षतेनं बध्नन्ममित्युः क्षुत्तद्विधाः ॥२०॥

देवस्तानाह संविग्नो मा मां बध्नत रक्षत ।

अहो मे बध्नरक्षांसि प्रजा यूयं बधूषिष ॥२१॥

देवताः प्रभवा या या दीभ्यन् प्रमुखतोऽसुप्रव ।

ते अहर्षुर्देवपन्तो विमृष्टो तौ प्रभामहः ॥२२॥

देवोऽववाञ्जयन्त सृजति सातिलोमुपान ।

त एन लोमुपतया मैथुनायाभिषेदिरे ॥२३॥

ततो इसन् स भगवानसुरैर्निरपत्रये ।

अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीत परापतत् ॥२४॥

त उपमन्य वरदं प्रपञ्चाविहरं हरिम् ।

अनुब्रूय भक्तानामनुरूपस्मदर्शनम् ॥२५॥

पाहि मां परमान्मस्ते प्रपणेनासुखं प्रजाः ।

ता इमा यमितु पापा उपाक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

त्वमेकैः किन्तु लोकानां क्षिप्तानां कृशनाशनः ।

त्वमेक क्लेशदन्तेषामनाममपदां सव ॥२७॥

सोऽनभार्यास्वकार्पण्य विविक्षाभ्यास्मदर्शन ।

पिबुभ्यात्मतनुं घोरामित्युक्ता विमुमाच ह ॥२८॥

की ॥ १८ ॥ ब्रह्मानीको अपना वह तन्त्रमय श
अच्छ नहीं लगा, जब उन्होंने उसे त्याग दि
तब, जिससे भूख-प्यासकी उत्पत्ति होती है—
रात्रिरूप उस शरीरको उससे उत्पन्न हुए पशु
राक्षसोंने प्रहण कर लिया ॥ १९ ॥ उस समय भू
प्याससे अभिमूल होकर वे ब्रह्मानीको कानेको दोष
और कहने लगे—‘इसे ला जाओ, इसकी रक्षा
करो,’ क्योंकि वे भूख-प्याससे व्याकुल हो
ये ॥ २० ॥ ब्रह्मानीने बध्नाकर उनसे कहा,
‘यक्ष-राक्षसो ! तुम मेरी सन्तान हो; इसलिये !
महण मत करो, मेरी रक्षा करो । (उनमेंसे जिन
कहा ‘ला जाओ’, वे यक्ष हुए और भिक्षुने
‘पक्षा मत करो’, वे राक्षस कहलाये) ॥ २१ ॥

फिर ब्रह्मानीने सात्त्विकी प्रमासे देदीप्यमान हो
सुख-मुख्य देवताओंकी रचना की । उन्होंने ब्र
कहते हुए, ब्रह्मानीके त्यागनेपर, उनका वह दिन
प्रकाशमय शरीर प्रहण कर लिया ॥ २२ ॥ स
पश्चात् ब्रह्मानीने अपने बचनदेशसे कर्मासक्त ब्रह्म
को उत्पन्न किया । वे उत्पन्न कर्मबीज्युप ही
कारण उत्पन्न होते ही मैथुनके लिये ब्रह्मानीकी
गच्छ ॥ २३ ॥ यह देखकर पड़ने तो वे हँसे, कि
फिर उन निष्कल अमुरोंको अपने पीछे लगा देव भ
भीत और कोपित होकर बड़े जोरसे मगे ॥ २४ ॥
तब उन्होंने मर्त्योपर कृपा करनेके लिये उनकी प्रक
के अनुसार दर्शन देनेवाले, शरणागतकृतक ब्रह्म
धीहरिके पास जाकर कहा—॥ २५ ॥ परमजन्म
मेरी रक्षा कीजिये मैंने जानकी हो जाहसे प्र
उत्पन्न की थी, किन्तु यह तो पापमें प्रवृत्त होने
मुझको ही तंग करके चली है ॥ २६ ॥ तब
एकमात्र आप ही दुखी जीवोंका दुःख दूर करनेवाले
और जो आपकी धरण-धारणमें नहीं आते, उन्हें ड
देनेवाले भी एकमात्र आप ही हैं ॥ २७ ॥

प्रभु तो प्रपञ्चबन्ध स्वयंके हृदयकी आनन्दवासे
समझेने ब्रह्मानीकी आश्रुतया पृथक्कर कहा, ‘तुम ब
इस कर्मकलुषित शरीरको त्याग दो ।’ भगवान्क
कहते ही उन्होंने वह शरीर भी छोड़ दिया ॥ २८ ॥

येऽहीयन्तास्तु केशा अहयन्तेऽङ्ग जश्चिर ।

सपा प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुक्धरा ॥४८॥

स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ।

तदा मनु ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥४९॥

तेभ्यः सोऽत्यर्ष्वक्षस्वीय पुरं पुरुषमात्मवान् ।

तान् हृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रद्युम्नं प्रजापतिम् ॥५०॥

अहो एतज्जगत्सृष्टः सुकृतं नत ते कृतम् ।

प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन् साकम्भममदामहे ॥५१॥

तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना ।

अधीनृर्षिर्हीकञ्च ससर्जामिमताः प्रजाः ॥५२॥

तेभ्यश्चैकैकशः स्वैस् देहसांक्षयदादजः ।

यत्तत्समाधियोगोद्धितपोविद्याविरक्तिम् ॥५३॥

त्याग दिया ॥ ४७ ॥ उससे जो बाध नष्टकर गिरे,
वे अहि हुए तथा उसके हाथ-पैर सिकोड़कर चलनेसे
फूरस्वभाव सर्प और नाग हुए, जिनका शरीर फणरूप-
से कंधेके पास बहुत पीछा होता है ॥ ४८ ॥

एक बार ब्रह्माजीने अपनेको कृतकृत्य सा अनुभव
किया । उस समय अन्तमें उन्होंने अपने मनसे मनुजोंकी
सृष्टि की । ये सब प्रजाकी वृद्धि करनेवाले हैं ॥ ४९ ॥
मनस्वी ब्रह्माजीने उनके लिये अपना पुरुषाकार शरीर
त्याग दिया । मनुजोंको देखकर उनसे पहले उत्पन्न
हुए देवता-गर्वादि ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५० ॥
वे बोले, 'विद्यकर्ता ब्रह्माजी ! आपकी यह (मनुजोंकी)
सृष्टि बड़ी ही सुन्दर है । इसमें अग्निहोत्र आदि सभी
कर्म प्रतिष्ठित हैं । इसकी सहायतासे हम भी अपना
अन्न (हविर्भाग) ग्रहण कर सकेंगे' ॥ ५१ ॥

फिर आदिश्रुति ब्रह्माजीने इन्द्रियसंयमपूर्वक तप,
विद्या, योग और समाधिसे सम्पन्न हो अपनी प्रिय
सन्तान अग्निगणकी रचना की और उनमेंसे प्रत्येकको
अपन समाधि, योग, ऐश्वर्य, तप, विद्या और वैराग्यमय
शरीरका वंश दिया ॥ ५२ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्श्या संहितायां

तृतीयस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

कर्दमजीकी तपस्या और भगवान्‌का वरदान

विदुर उवाच

स्वायम्भुवस्य च मनोर्वचः परमसम्मतः ।

कथ्यतां भगवन् पत्र मैथुनेनैधिर ब्रजाः ॥ १ ॥

प्रियव्रतोत्तानपादो सुतो स्वायम्भुवस्य वै ।

यथाधर्मं श्रुतपुत्रः सप्तद्वीपवर्ती महीम् ॥ २ ॥

तस्य वै द्रुहिता ब्रह्मन्देवहृतीति विभ्रुता ।

परनी प्रधापतेरुक्ता कर्दमस्य स्वधानम् ॥ ३ ॥

विदुरजीने पूछा—भगवन् ! स्वायम्भुव मनुजका वंश

का आदरणीय नामा गया है । उसमें मैथुनधर्मके द्वारा
प्रजाकी वृद्धि हुई थी । अब आप मुझे उसीकी कथा
सुनाइये ॥ १ ॥ ब्रह्मन् ! आपने कहा था कि
स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपादन सातों
द्वीप पृथ्वीका धर्मपूर्वक पावन किया था तथा उनकी
पुत्री, जो देवहृति नामसे विख्यात थी, कर्दमप्रजापति
को स्थायी गयी थी ॥ २ ॥ देवहृति योगके लक्षण

१ मा प — श्रीमन्त शिरःकेसा । २ मा पा — ते च । ३ मा प — उत्तमरेह पुरं पुरुषमात्मन् । ४ मा
पा — स तमा । ५ मा पा — कथयतस्य ।

प्रहस्य भावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना ।

क्रान्त्या ससर्बं भगवान् गार्धर्वाप्सरसां गणान् ॥३८॥

त्रिससर्बं तनुतां वै ज्योत्स्नां क्रान्तिमतीं प्रियाम् ।

त एव चादद् प्रीत्या विश्वाससुषुरोगमाः ॥३९॥

सृष्ट्वा भूतविशाखांश्च भगवानात्मतन्त्रिणा ।

दिग्वाससो मुक्तकेशान् वीक्ष्य चामीलपत् दृष्ट्वा ॥४०॥

जगद्भुस्तद्विसृष्ट्वा तां जम्भणाख्यां तनुप्रेभोः ।

निद्रामिन्द्रियविह्वेदो यया मृतेषु दृश्यते ।

येनोच्छिष्टार्धयन्ति तदनुमादं प्रचक्षते ॥४१॥

ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानक्षयः ।

साध्यान् गणान् पितृगणान् परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥४२॥

त आत्मसर्गं स काय पितरं प्रतिपदिरे ।

साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कथयो यद्वितन्वते ॥४३॥

सिद्धान् विद्याधरांश्चैव तितोधानेन सोऽसृजत् ।

तेभ्योऽद्दाद्यमात्मानमन्तर्धानास्ममभूतम् ॥४४॥

सकिंनरान् किंभुरुपान् प्रस्थात्मेनासृजत्प्रभुः ।

मानयन्मात्मानाऽऽत्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥४५॥

ते तु तज्जगद् रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ।

मिथुनीभूय गापन्तस्तमवोपसि कर्मभिः ॥४६॥

दहेन वै भागवता क्षयानां यदुचिन्तया ।

सर्गेऽनुपचितं प्राधादुत्समस्र ह तद्वपुः ॥४७॥

तदनन्तरं ब्रह्माजीने गम्भीर भावसे हंसकर कर
कान्तिमयी मूर्तिसे, जो अपने सौन्दर्यकर मनो व्यप ।

आत्मादन करती थी, गन्धर्व और अप्सराओंको उत्प
किया ॥ ३८ ॥ उन्होंने ज्योत्स्ना (चन्द्रिका) रूप का
उत्सकान्तिमय प्रिय शरीरको त्याग दिया । उसीको विश्वास
आदि गन्धर्वोंमें प्रसन्नतापूर्वक प्रहण किया ॥ ३९ ॥

इसके पश्चात् भगवान् ब्रह्मने अपनी ललाटे से मू
पिशाच उत्पन्न किये । उन्हें दिग्म्बर (कबूती
और बाळ बिलेरे देख उन्होंने कौंचें मुँह की ॥ ४० ॥
ब्रह्माजीके त्यागे हुए उस जैमाईरूप शरीरको मू
पिशाचोंने प्रहण किया । इसीको निद्रा भी कहते हैं
त्रिससे जीवोंकी इन्द्रियोंमें विविधता जाती देखी जा
है । यदि कोई मनुष्य सूटे मुँह सो जाता है तो उस
मूल-पिशाचादि आक्रमण करते हैं, उसीको उच्छ
कहते हैं ॥ ४१ ॥

फिर भगवान् ब्रह्मान भावना की कि मैं तेजोवर्ष
और अपने अवक्षय रूपसे साध्यगण एवं विद्वत्सर्वों
उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥ पितृर्षेने अपनी उत्पत्ति
स्थान उस अवक्षय शरीरको प्रहण कर लिया । इसीको
उत्सर्गमें रखकर पण्डितजन आद्यादिके द्वारा फिर और
साध्यगणको क्षमश कर्म्य (पिण्ड) और इहम् वर्णन करते
हैं ॥ ४३ ॥

अपनी तिरोचानशक्तिसे ब्रह्माजीने सिद्ध और निष्क
घरोंकी सृष्टि की और उन्हें अपना वह अन्तर्धानात्मक
अमृत शरीर दिया ॥ ४४ ॥ एक बार ब्रह्माजीने
अपना प्रतिबिम्ब देखा । तब अपनेको बहुत दुःख
मानकर उस प्रतिबिम्बसे किन्नर और किंभुरुष उत्पन्न
किये ॥ ४५ ॥ उन्होंने ब्रह्माजीक त्याग देकर उनका
वह प्रतिबिम्ब-शरीर प्रहण किया । इसीप्रिये से सब
उपकायमें अपनी पत्तियोंके साथ स्थिरकर ब्रह्माजीके
गुण-कर्मोपनिषद् ग्रहण किया करते हैं ॥ ४६ ॥

एक बार ब्रह्माजी सृष्टिकी बुद्धि न होनेके कारण
बहुत चिन्तित होकर हाय-पीर आदि अवयवोंको देव
कर खट गये और फिर आपका उस भागमय शरीरको

यद्दर्शनं वनमिरीष्य सन्नि
 राक्षासते योगिनो रुद्रयोगा ॥१३॥
 ये मायया ते हवमेधसस्वत्
 पादारविन्द भवसिन्धुपोतम् ।
 उपामते कामलबाय तेषां
 रासीश कामाभिरपेऽपि ये स्यु ॥१४॥
 तथा स चाह परिकोक्तु काम
 समानशीलां गृहमेधधेनुम् ।
 उपेयिषा मूलमधेपमूल
 दुराधय कामदुषाहप्रियस्य ॥१५॥
 प्रबापवेस्ते ववसाधीश तन्त्या
 लोक किलापं कामहतोऽनुबद्ध ।
 अह च लोकातुगता वहामि
 बलिं च शुक्लानिमिषाय तुम्यम् ॥१६॥
 लाक्षांश्च लोकातुगतान् पशून्
 हित्वा भितास्ते चरणातपत्रम् ।
 परस्परं त्वद्वगुणवादसीधु
 पीयूषनिर्वापितदेहधर्माः ॥१७॥
 न तेऽवराधप्रमिरापुरेषां
 त्रयादधारं त्रिशतं पटिपर्व ।
 पण्ठम्पनस्तच्छदि यत्त्रिणाभि
 करान्म्राता अगदाण्डिष भावैव ॥१८॥
 एकं स्यं सज्जगत् मिसृष्टया
 द्वितीययाऽऽत्मप्रधियांगमायया ।

आपके दर्शनोंकी इच्छा करते हैं; आज आपको वही
 दर्शन पाकर हमें नेत्रोंका फल मिल गया ॥ १३ ॥
 आपके चरणकमल मयसागरसे पार जानेके लिये जहाम
 हैं । जिसकी बुद्धि आपकी मायासे मारी गयी है, वे
 ही उन तुच्छ क्षणिक विषय-सुखोंके लिये, जो नरकमें
 भी मिल सकते हैं, उन चरणोंका आश्रय लेते हैं, किंतु
 स्वामिन् ! आप तो उन्हें वे विषय-भोग भी दे देते
 हैं ॥ १४ ॥ प्रभो ! आप कल्पवृक्ष हैं । आपके चरण
 समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं । मेरा हृदय काम
 क्लेशित है । मैं भी अपन अनुरूप लम्बवधाली और
 गृहस्वधर्मके पावनमें सहायक शीलवती कन्यासे विवाह
 करनेके लिये आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया
 हूँ ॥ १५ ॥ सर्वेश्वर ! आप सम्पूर्ण लोकोंके अधिपति
 हैं । नागा प्रकारकी कामनाओंमें फँसा हुआ यह लोक
 आपकी वेद-बाणीरूप डोरीमें बँधा है । धम्मर्तों ! उत्तीक
 अनुगमन करता हुआ मैं भी कलरूप आपको आह्वा-
 पात्मरूप पूजोपहारादि समर्पण करता हूँ ॥ १६ ॥

प्रभो ! आपके भक्त विषयास्तक भागों और उन्हींके
 मागकर अनुसरण करनेवाले मुझ-जैसे कर्मबद्ध पशुओं
 को कुछ भी न भिन्नकर आपके चरणोंकी छत्रछायाकर
 ही आश्रय लेते हैं तथा परस्पर आपके गुणगानरूप
 मन्दक सुपाकर ही पान करके अपन क्षुधा-विषासादि
 वेदधर्मोंको शान्त करते रहते हैं ॥ १७ ॥ प्रभो !
 यह कलरूपक बड़ा प्रबल है । साक्षात् इस ही इसके
 घूमनकी घुरी है, अधिक माससहित तेरह महीन अरे
 हैं, तीन सौ साठ दिन जोड़ हैं, छ मनुएँ नमि
 (हस्त) हैं, अनन्त क्षण-यत्न आदि इसमें पत्राकर
 भाराएँ हैं तथा तीन आनुर्मास्य इसके आभारभूत नाभि
 हैं । यह अत्यन्त वेगवान् संघासरूप्य फाउचय चरा-
 चर जगत्की आयुका छद्म यन्त्र हुआ घूमन रहता
 है, किंतु आपको मर्कोंकी आयुका हस्त नहीं कर
 सकता ॥ १८ ॥ भगवन् ! जिस प्रकार मक्खी स्वयं ही
 जातेकी कीजानी, उसकी रक्षा करती और अन्तमें उसे निगुड
 जानी है—उसी प्रकार आप अरुण ही जगत्की
 रचना करनेके लिये करनेसे अभिन्न अजनी पाप्माया

सखां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणीः ।

ससर्ज कतिधा वीर्यं तमे शुभ्रपद्मे वद ॥ ४ ॥

रुचिर्यो भगवान् ब्रह्मन्दद्यो वा ब्रह्मणः सुतः ।

यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भाष्यो च मानवीम् ॥ ५ ॥

मैत्रेय उवाच

प्रजाः सृजति भगवान् कर्मसो ब्रह्मणोदितः ।

सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दृष्ट ॥ ६ ॥

ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्मसः ।

सम्प्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नपरदाहृषम् ॥ ७ ॥

तावत्प्रसन्नो भगवान् पुष्कराक्षः कृते युगे ।

दक्षवामास त क्षयः क्षाम्यं ब्रह्म ब्रह्मपुः ॥ ८ ॥

स तं विरजमकर्मं सितपद्मोत्पलसज्जम् ।

जिग्धनीलालकप्रातवक्त्राम्ब विरजोऽम्बरम् ॥ ९ ॥

किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् ।

श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्धसितेक्षणम् ॥ १० ॥

विन्ध्यस्तचरणाम्भोजमसदश्रे गरुमतः ।

दृष्ट्वा खेडम्वितं वक्षःभिर्यं कौस्तुभकन्धरम् ॥ ११ ॥

आतहर्षोऽपसमूर्णां सिता लब्धमनोरथः ।

भीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभाषात्मा कृपाञ्जलिः १२

नृपितयाच

जुष्टं वताद्याम्बिलसत्पराशे

सांतिष्पमप्योस्तव दर्शनाक्षः ।

यमादिसे सम्पन्न थी, उससे महायोगी कदमजीने किन्तु सन्तानें उत्पन्न थीं । वह सब प्रसन्न रूप सु सुगाइये, मुझे उसके सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥ ४ ॥

इसी प्रकार भगवान् रुचि और ब्रह्मजीके पुत्र रश्म-प्रजापतिने भी मनुजीकी कन्याओंका पाणिग्रहण करके उनसे किन्तु प्रकार क्या-क्या सन्तान उत्पन्न की, वह सब चरित भी मुझे सुगाइये ॥ ५ ॥

मैत्रेयजीने कहा—विदुरजी । जब ब्रह्मजीने भगवान् कर्मको आह्वा दी कि तुम संतानकी उत्पत्ति करो तो उन्होंने दस हजार वर्षोंतक सरस्वती नदीके तीरपर तपस्या की ॥ ६ ॥ वे एकप्रकार चित्तसे प्रेमपूर्ण प्रजनोपचारद्वारा शरणागतवरदामक श्रीहरिकी आराधना करने लगे ॥ ७ ॥ तब स्रष्टृगुणके आत्ममें कमलमय भगवान् श्रीहरिने उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्हें अपने शब्दरूपमय स्वरूपसे मूर्तिमान् होकर दर्शन दिये ॥ ८ ॥

भगवान्की वह मय्य मूर्ति सूर्यके समान तमोमयी थी । वे गळेंमें श्वेत कमल और कुन्दके फूलोंकी माला धारण किये हुए थे, मुखकमल नीली और चिकनी वक्त्रवलीसे सुशोभित था । वे निर्मल बल धारण किये हुए थे ॥ ९ ॥ सिरपर शिखमिठाटा हुआ सुवर्णमय मुकुट, कर्णोंमें जगमगते हुए कुम्भक और कर-कमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि आभूषण धारणमान थे । उनके एक हाथमें कीर्वाके छिये श्वेत कमल सुशोभित था । प्रयुक्ती मधुर मुसकानमरी कित्त्वम बिलको पुराये में थी ॥ १० ॥ उनके चरणकमल गङ्गद्वीके कर्णोंमें विराजमान थे तथा बद्ध स्वर्णमें धीरवसीजी और कर्णमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी । प्रयुक्ती ११ आकरा स्थित मनोहर मूर्तिक दृशन करके कर्मजीको बड़ा हर्ष हुआ, यामो उनकी सभी कामनारें पूर्ण हो गयी । उन्होंने सानन्द हृदयसे पृथ्वीपर सिर टेककर भगवान्को साक्षात् प्रणाम किया और फिर प्रेमप्रकाश चित्तसे हाथ जोड़कर सुमधुर वाणीमें वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११ १२ ॥

कर्मजीने कहा—स्तुति करनेयोग्य परमेश्वर । आप सम्पूर्ण स्रष्टृगुणके आधार हैं । योगिजन उत्तरो-त्तर शुभ योगियोंमें जन्म लेकर अन्तमें योगसह होकर

समाहित ते हृदयं मग्नमान् परिवत्सरात् ।

सा त्वां प्रसन्नपुनश्च काममाशु भविष्यति ॥२८॥

वा त आत्ममृतं वीर्यं नवम्वा प्रसविष्यति ।

वीर्यैस्त्वदीयेष्वप्य आधास्यन्त्यञ्जसाऽऽत्मनः ॥२९॥

त्व च मम्यगनुष्ठाय निदेशं य उद्यतम ।

मयि तीर्थोक्तवाग्नेयक्रियाधौ मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥

कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ।

मम्यात्मानं महजगद्द्रव्यस्य त्वमनि चापि माम् ॥३१॥

सहाह स्वांशकृत्या त्वद्वीर्येण महाभुजे ।

सह धेने दवहृत्पां प्रणेत्ये सखसहिताम् ॥३२॥

मे'त्रम उवाच

एवं तमनुभाष्याथ भगवान् प्रत्यगक्षप्र ।

जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिमितात् ॥३३॥

निरीक्षतस्तस्य यमाङ्गद्वेप

सिद्धभराविधुतसिद्धमार्गं ।

आकर्णयन् पञ्चरयन्त्रपथै

ख्यातित त्नाममुर्दीर्णसाम ॥३४॥

अथ सम्प्रम्यित गुह्यत र्दमो भगवानुविः ।

आस्ते स्म बिन्दुसरसि त कालं प्रतिपातयन् ॥३५॥

मनुः स्वानमाप्याथ ज्ञातकामपरिच्छदम् ।

आराप्य स्वा दृढतर ममाप पयःमहीम् ॥३६॥

तस्मिन् सुपन्वद्यनि भगवान् यन्ममादिशत् ।

उपायादाभ्रमपटं सुन द्रान्तव्रतस्य तत् ॥३७॥

करेगे ॥ २७ ॥ ब्रह्मन् ! गत जनको करोसे तुम्हारा
बिच नैसी मायकि छिये समाहित रहा है, अब शीघ्र
ही वह राजकन्या तुम्हारी वीसी ही पत्नी होकर यथेष्ट
सेवा करेगी ॥ २८ ॥ वह तुम्हारा वीर्य अपने गर्भमें
धारणकर उससे नौ कन्यारै उत्पन्न करेगी और फिर तुम्हारी
उन कन्याओंसे ओकरीतिके अनुसार मरीचि आदि क्षमिगण
पुत्र उत्पन्न करेगे ॥ २९ ॥ तुम भी मरी आहाक वज्रही
तरह पावन करनेसे सुदृढचित्त हो, फिर अपने सब
कर्मेका फल मुझ जर्णकर मुझको ही प्राप्त होओगे
॥ ३० ॥ जीवोंपर दया करते हुए तुम आत्मज्ञान प्राप्त
करोगे और फिर सबको अम्यदान दे अपन सहित
सम्पूर्ण जगत्को मुझमें और मुझका अपनमें स्थित
देखोगे ॥ ३१ ॥ महामुने ! मैं भी अपन अंश-कृत्या
रूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहृतिके गर्भमें
जन्मतीर्ण होकर साम्यशास्त्रकी रचना करेगा ॥ ३२ ॥

मित्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! कर्मभूमिसे

इस प्रकार सम्भारण करके, इन्द्रियोंके अन्तर्मुख होनेपर
प्रकट होनेवाले श्रीहरि सरस्वती नगरीसे बिरे हुए
बिन्दुसर-सीमेंसे (जहाँ कदमझनि तप कर रह थे)
जाने लौकिकी चल गये ॥ ३३ ॥ भगवान्के सिद्ध
मार्ग (वैकुण्ठमार्ग) की समी निदेशकर प्रशंसा करते
हैं । वे कर्मभूमिकी टखने-देखते जलन लाइका विचार
गये । उस समय गरुडजीके पक्षोंसे आ मानकी
आधारभूता श्रृंखला निकल रही थी, उन्हें वे
सुनते जाते थे ॥ ३४ ॥

विदुरजी ! श्रीहरिके जलने जानेपर भगवान् कर्म

उनका बनाये हुए समयकी प्रतीक्षा करत हुए बिन्दु
सरोवरपर ही टहरे रह ॥ ३५ ॥ बीरफ ! फिर मनुजी
भी महाशयनी गन्धर्वाक साथ सुवर्णवस्त्रिन रूपर सुवर
होकर तथा उभर आनी कन्याको भी बिन्दुसर शरीर
बिचलते हुए जा निन भगवान्क बनाया था, उस निन
शान्तिराज्यग महर्षि कर्मका उस आधमर पक्ष
॥ ३६ ३७ ॥ मरम्भरक उद्यमे मत्ता हुआ वह बिन्दु

१ मा पा —कर्मभूमि । २ मा पा —महामुने । ३ मन्वीन प्रमिमे मरेव उवाच इतना भगवती है ।

४ मा पा —कर्मभूमि । ५ मा पा —मुझमें स्थित ।

सुखसदः पाति पुनर्ग्रसिष्यसे

यथोर्मनाभिर्मगवन् स्वशक्तिभिः ॥१०॥

नैतद्वताधीश पद तथेप्सितं

यन्मायया नस्तनुषं मृतमक्षमम् ।

अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया

लसगुलस्या तनुषा विठञ्चित ॥२०॥

तं त्वानुभूत्यापरवक्रियार्थं

श्रमायया धर्तितलोकतन्त्रम् ।

नमाम्यमीक्ष्यं नमनीयपाद

सरोजमलपीयसि कामवर्षम् ॥२१॥

नृपतिराय

इत्यम्बलीक प्रशुवोऽञ्जनाम

स्तमाभभाषे वचसानुतेन ।

सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः

प्रेमस्मितोद्गीर्णविभ्रमवृद्ध ॥२२॥

श्रीभगवानुवाच

विदित्वा तव चैत्य मे पुरैव समयोजितम् ।

मदर्थमात्मनियमैस्त्वपैवाह समर्पितः ॥२३॥

न वै जातु मृपैव स्यात्प्रजाप्यस्य मदर्थणम् ।

मन्त्रिष्वेप्सवितरां मयि सगृभितारमनाम् ॥२४॥

प्रजापतिपुत्रः सन्नाम्नतुर्विस्मयावमङ्गलः ।

प्रसावर्तयोऽभिवसन् शान्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥

स चेह विप्र राजर्षिर्मदिप्या श्वतरूपया ।

आयास्यति दिदृक्षुस्त्यां परक्षा धर्मकोविद ॥२६॥

आम्भजामसितापाङ्गीष्य गीलगुणान्विताम् ।

मृगयन्ती पतिं दाम्यत्यनुरूपाय ते प्रभा ॥२७॥

को स्वीकारकर उससे अभिप्राय हुई अपनी सत्ता शक्तियोंद्वारा स्वयं ही इस अशक्त की रचना, पञ्चन व सत्कार करते हैं ॥ १९ ॥ प्रभो ! इस समय मैं हूँ अपनी तुच्छसीमाका मण्डित, मायासे परिचिन्म दिशापी वेनेवाली सगुणमूर्तिसे दर्शन दिया है । व हम मर्त्यको जो शय्यादि विषय सुख प्रदान करते । वे मायिक होनेके कारण यद्यपि आपको पसंद न , तथापि परिणाममें हमारा श्रम करनेके लिये वे प्राप्त हों—॥ २० ॥

नाथ ! आप स्वरूपसे निष्क्रिय होनेपर भी मन्त्र द्वारा सारे संसारका व्यवहार धरनेवाले हैं तथा कोई सी उपासना करनेवालेपर भी समस्त अभिलक्षित वस्तुओं की वर्षा करते रहते हैं । आपके चरणकमल कन्दरी हैं, मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं—मगवान्की यह प्रशंसा सुसक्रान्तभी चित्तवृत्तसे चञ्चल हो रही थी, वे गुरुजी के कक्षेपर निरानन्दन थे । जब कदमजीन इस प्रशंसा निष्कमलमत्तसे उनकी स्तुति की तब वे उनसे अनुभवी बाणीसे कहने लगे ॥ २२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—जिसके लिये तुमने क्षत्र संयमादिके द्वारा मेरी आराधना की है, तुम्हारे हृदयों उस भावका ज्ञानकर मैंने पहलेसे ही उसकी व्यक्तता कर दी है ॥ २३ ॥ प्रजापते ! मेरी अराजका ते कभी भी निष्कल नहीं होती तिर जिनका चित्त निरन्तर एकवृत्तरूपसे मुझमें ही लगा रहता है, उन वृत्त जैसे मगवान्कोके द्वारा की हुई उपासनाका तो और भी अधिक फल होता है ॥ २४ ॥ प्रसिद्ध यशस्वी सत्कार स्वायम्भुव गन्ध ब्रह्मावर्तमें रहकर सात सगुणवासी सती पृथ्वीका शासन करते हैं ॥ २५ ॥ विप्र ! वे स्वयं धर्मज्ञ महाराज महाराणी शतरूपाके साथ तुमसे मित्रोंके लिये परसों यहाँ आयेंगे ॥ २६ ॥ उनकी एक रूप-वीर्यन, शक्ति और गुणोंसे सम्पन्न पामका बना कन्या इस समय विवाहक योग्य है । प्रजापते ! तुम सर्वथा उसके योग्य हो, हमलिये वे तुम्हेंको यह कन्या वर्णन

समाहितं ते हृदयं यत्रमान् परिबत्सरान् ।
 सा त्वां ब्रह्मन्तृपवधू काममाशु भजिष्यति ॥२८॥
 वा स आत्ममृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ।
 वीर्येत्वदीये श्रपय आभासन्त्यस्तुसाऽऽत्मनः ॥२९॥
 त्व च सम्पगानुष्टाय निदेशं स उग्रचम ।
 मयि वीर्याकृतशेषक्रियार्थो मां प्रपस्वसे ॥३०॥
 कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ।
 मय्यात्मानं सह जगद् द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥३१॥
 सहाई स्वांशकलया त्वदीयेण महाधुने ।
 तव क्षेत्रे दण्डहृत्पां प्रणेप्ये तत्प्रसहिताम् ॥३२॥

मैत्रेय उवाच

एवं तमनुभाष्याथ भगवान् प्रत्यग्वच ।
 जगाम बिन्दुसरस सरस्वत्या परिभिताम् ॥३३॥
 निरीध्वतन्तस्य ययावशेष
 सिद्धभराभिष्टुतसिद्धभागः ।
 आकर्णयन् पत्ररयेन्द्रपक्षै
 रुधारित स्तोममुदीर्णसाध ॥३४॥

अथ मन्त्रस्मृतं शुक्ल कर्दभो भगवानृषिः ।
 आस्ते स्म बिन्दुसरसि स काल प्रतिपालयन् ॥३५॥
 मनुः स्वादनमायाय ग्राहकाम्भपरिच्छदम् ।
 आराप्य स्वां दुहितरं सभार्यं पर्यन्तमहीम् ॥३६॥
 तस्मिन् सुधन्वस्रहनि भगवान् यत्नमादिसत् ।
 उपायादाधमपद मुनेः शान्तव्रतस्य सत् ॥३७॥

करेंगे ॥ २७ ॥ ब्रह्मन् । गत करनेको करोसे तुम्हारा
 चित्त वीसी मायिकि जिये समाहित रहा है, अब शीघ्र
 ही वह रानकन्या तुम्हारी वीसी ॥ पत्नी होकर यथेष्ट
 सेवा करेगी ॥ २८ ॥ वह तुम्हारा वीर्य अपने गर्भमें
 धारणकर उससे नौ कन्याएँ उत्पन्न करेगी और फिर तुम्हारी
 उम कन्याओंसे शोकरीतिके अनुसार मरीचि आदि श्रमिण
 पुत्र उत्पन्न करेगी ॥ २९ ॥ तुम भी मरी आकाशक बन्धी
 तरह पाछम करनेसे शुद्धचित्त हो, फिर अपने सब
 कर्मोंका फल मुझे वर्णनकर मुझको ॥ प्राप्त होजोगे
 ॥ ३० ॥ जीवोंपर दया करते हुए तुम आत्मज्ञान प्राप्त
 करोगे और फिर सबको अमपन्न दे अपने सहित
 सम्पूर्ण जगत्को मुझमें और मुझको अपनेमें स्थित
 देखोगे ॥ ३१ ॥ महाधुने । मैं भी अपने अंश-कल
 रूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहृतिके गर्भमें
 अवतीर्ण होकर सांक्ष्यशास्त्रकी रचना करूँगा ॥ ३२ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! कर्दमभ्युपिसे
 इस प्रकार सम्भाषण करके, इन्द्रियोंके अन्तमुक्त होनेपर
 प्रकट होनवाले भीहरि सरस्वती मनीसे धिरे हुए
 बिन्दुसर-तीर्थसे (जहाँ कर्दमभ्युपि तप कर रहे थे)
 अरने ओकको बल गये ॥ ३३ ॥ भगवान्के सिद्ध
 मार्ग (वैकुण्ठमार्ग) की सभी सिद्धकर प्रशंसा करते
 हैं । वे कर्मजीके दखते-देखते अरन ओकको सिधार
 गये । उस समय गलबजीके पक्षोंसे जो सामकी
 आचारमृता श्रुताएँ निकल रही थीं, उन्हें वे
 धुनते जाते ॥ ३४ ॥

विदुरजी ! भीहरिक चले जानपर भगवान् कर्म
 उनक भगये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए बिन्दु
 सरोवरपर ॥ ठहरे रह ॥ ३५ ॥ वीरवर । शर मनुजी
 भी महावानी शान्तमयाक साथ सुबगजनि रपर मन्त्र
 होकर तथा उसपर अपनी कन्याका भी विद्वान्न पृथ्वीपर
 बिचरते हुए, जो तिन भगवान्क बगया या, उम तिन
 शान्तिपरायण महर्षि कर्मक उस आधमपर पहुँच
 ॥ ३६ ३७ ॥ सरस्वतीक वक्षसे भरा हुआ यह बिन्दु

१ मा पा —कर्मरहित । २ मा पा —मायामे । ३ प्रचीन प्रतिभे मैत्रेय उवाच इत्यादि भंग मरी है ।

४ मा पा —अलक्षित । ५ मा पा —मुषयेन्द्रपक्षै ।

यस्मिन् भगवतो नेत्रान्तरपन्नन्तुकिन्द्वः ।

कृपया सम्परीक्षस्य प्रपन्नेऽर्पितया भूषम् ॥३८॥

तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् ।

पुण्य शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥३९॥

पुण्यह्रमलतात्राणं कृज्यपुण्यसृगद्विजैः ।

सर्पतृकृष्णपुष्पाक्षं वनरात्रिभिषान्वितम् ॥४०॥

मत्तद्विजयभैरवम् मत्तद्विजयभैरवम् ।

मत्तद्विजयभैरवम् मत्तद्विजयभैरवम् ॥४१॥

कदम्बचम्पकाशोककरजबकुलासनैः ।

हृन्मन्दारकुटजैश्चूतपातैरलङ्कृतम् ॥४२॥

कार्पण्यैः प्लवैर्हंसैः हरैर्बलकुटैः ।

सारसैश्चक्रवाकैश्च चकारैर्वसु कृवितम् ॥४३॥

तथैव हरिणैः क्रोडैः श्याविह्वलयङ्गुलैः ।

गोपुच्छैर्हरिभिर्महैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥४४॥

प्रविश्य तदीर्घविरमादिराजः सहारमैवः ।

ददर्श मुनिमामीन तस्मिन् द्रुतद्रुतासनम् ॥४५॥

विद्यस्तमानं वपुषा तपस्सुप्रयुजा चिरम् ।

नाविस्वामं भगवत् क्षिम्भापाङ्गावलोकनात् ।

तद्रथाह्वामृतकलापीयूषभरणेन च ॥४६॥

प्रांशुं पद्मपलादार्यं जटिलं वीरवाससम् ।

उपसंसृज्य ममिन् यथार्हणमसंस्कृतम् ॥४७॥

सरोवर वह स्थान है, जहाँ अपने शरणागत मछ
कर्मके प्रति उत्पन्न हुई अत्यन्त कल्याणके बन्धु
रूप भगवान्के नेत्रोंसे औसुओंकी दृष्टि मिली थी । वह
तीर्थ बड़ा पवित्र है, इसका मछ कल्याणमय और
अमृतके समान मधुर है तथा महर्षिगण सदा इसका
सेवन करते हैं ॥ ३८ ३९ ॥ उस समय बिन्दु-सरान्तर
पवित्र वृक्ष-जलाशयोंसे घिरा हुआ था, जिनमें लज्ज-लज्ज
की बोली बोझनेवाले पवित्र वृक्ष और पक्षी रहते थे,
वह स्थान सभी श्रद्धालुओंके फल और कुल्लोंसे सम्पन्न
था और सुन्दर वनश्रेणी भी उसकी शोभा बढ़ाती
थी ॥ ४० ॥ वहाँ कुल्लों-कुल्लों मत्तवाले पक्षी पक्ष
रहे थे, मत्तवाले मीरे मँडरा रहे थे, उन्मत्त मयूर अपने
विच्छिन्न-केशवकर नटकी भाँति वृक्ष पर रहे व और
मत्तवाले कोकिल कुह-कुह करके मनो एक दूसरेकी
बुल्ल रहे थे ॥ ४१ ॥ वह आश्रम कदम्ब, चम्पक,
आशोक, करज, बकुल, असम, कुन्द, मन्दार, कुज
और गये-गये आम्के वृक्षोंसे अलङ्कृत था ॥ ४२ ॥
वहाँ जलकपास, वत्सल आदि जलपर तैरनेवाले पक्षी
हंस, कुनर, जलमुर्गी, सारस, चक्रवा और चक्रेर मधुर
स्वरसे कम्पन कर रहे थे ॥ ४३ ॥ हरिण, सूकर,
स्याही, नीलगाय, हाथी, लंगूर, सिंह, बाघ, नेल्के
और कस्तुरीमृग आदि पशुओंसे भी वह आश्रम विभू
हुआ था ॥ ४४ ॥

आचार्य महाराज मनुने उस उत्तम तीर्थमें कन्या
के सङ्गित पर्वकर देखा कि मुनिक कर्म अग्निहोत्रसे
निष्पन्न होकर बैठे हुए हैं ॥ ४५ ॥ बहुत दिनोंतक
उप तपस्या करनेके कारण वे शरीरसे बड़े तेजस्वी दीप्त
पड़ते थे तथा भगवान्के स्नेहपूर्ण चिन्तनक दर्शन और
उनके सम्भारण किए हुए कर्णामृतरूप मधुर बन्धनोंकी
सुननेसे इतने शिरोतक तपस्या करनेपर भी वे विशेष
दुर्बल नहीं आते पड़ते थे ॥ ४६ ॥ उनका शरीर
अम्बा था, यैत्र कमलद्वयके समान विज्ञान और मनोहर
थे, शिरपर जटार्य सुशोभित थी और कम्मसे वीर-वज्र
थे । वे निकटसे देखनेपर बिना साधनपर पक्षी हुई
महापुरुष मणिके समान मज्जित आते पड़ते थे ॥ ४७ ॥

अथोष्टजमुपायातं नृदेव प्रणतं पुरः ।

सपर्यया पर्यगृह्णास्यतिनन्यानुरूपया ॥४८॥

गृहीतार्हणमासीन संयत ग्रीणमन्धुनिः ।

अरन् भगवदादेशमित्याह स्पर्शया गिरा ॥४९॥

मूल बह्मक्रमणं देव सतां सरस्वताय ते ।

मधाय चासतां मस्त्व हरेः अकिर्हि पालिनी ॥५०॥

योऽर्केन्द्रग्रीन्द्वायूनां यमधर्मपचेतसाम् ।

रूपाणि खान आभस्ते तस्मै ह्युक्ताय ते नमः ॥५१॥

न यदा रथमास्थाय त्रैव मणिगणार्पितम् ।

विस्फूर्जन्मण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्ममान् ॥५२॥

स्वतैन्यचरणधुष्णं वेपथ्यन्मण्डल शुभः ।

विकर्षन् धूर्तवीं सेनां पर्यटस्वश्रुमानिष ॥५३॥

उदैव सेतव सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः ।

मैगवद्रचिता राजन् मिथरन् वत दस्युभिः ॥५४॥

अधर्मय समेष्वेत छोटपैर्म्ह्यैर्मुनिभिः ।

क्षपाने त्वयि लोकेश्य दस्युग्रस्तो विनङ्गयति ॥५५॥

अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं स्वमिहागतः ।

तद्वय निर्म्यलीफेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥५६॥

महाराज स्वयम्भुवमनुको अपनी कुटीमें आकर प्रणाम करते देख उन्होंने उन्हें आशीर्वादसे प्रसन्न किया और यथोचित आतिथ्यकी रीतिसे उनका स्वागत-सत्कार किया ॥ ४८ ॥

जब मनुजी उनकी पूजा प्रहण कर स्वस्थचितसे आसनपर बैठ गये, तब मुनिवर कर्तृमने मगवान्की आज्ञाका स्मरण कर उन्हें मधुर वाणीसे प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहा ॥ ४९ ॥ 'देव ! आप मगवान् विष्णुकी पावनशक्तिरूप हैं, इसलिये आपका घूमना कितना नि सन्देश सज्जनोकी रक्षा और दुष्टोके मंहारके लिये ही होता है ॥ ५० ॥ आप साक्षात् विष्णुस्वरूप हैं तथा मित्र-मित्र करके किन्हे सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म और ब्रह्म आदि रूप धारण करते हैं, आपको नमस्कार है ॥ ५१ ॥ आप मणियोंसे जब हुए जयदापक रथपर सवार हो, अपने प्रचण्ड घनमुखी टङ्कार करते हुए उस रथकी बरवटहटसे ही पापियोंको मयमीत कर देते हैं और अपनी सेनाके चरणोंसे रथि हुए मृगहृत्को बँपाते अपनी उस विचित्र सेनाको साथ लेकर पृथ्वीपर सूर्यके समान विचरते हैं । यदि आप ऐसा न करें तो चोर-डाकू मगवान्की बनायी हुई वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादाको तत्काल नष्ट कर दें तथा विषयलेश्च निरङ्कुश मानवोंद्वारा सत्र अवम कैल जाय । यदि आप संसारकी ओरसे निश्चित हो जायें तो यह लोक दुराचारियोंके पंजेमें पड़कर नष्ट हो जाय ॥ ५२-५५ ॥ तो श्री गोरक्ष ! मैं आपसे पूछता हूँ कि इस समय यहाँ आपका आगमन किस प्रयोजनसे हुआ है; मेरे लिये जो आज्ञा होगी, उसे मैं निष्कण्ड मगसे सहर्ष स्वीकार करूँगा ॥ ५६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यां संक्षिप्तार्थां तृतीयस्कन्ध

एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

वेदवृत्तिके साय कर्म प्रज्ञापयित्वा विवाह

मेनेय उवाच

एवमानिष्कृताक्षेपगुणकर्मोदयो मुनिम् ।
सग्रीव इव तं सम्राट्पारवमुवाच ह ॥ १ ॥
मनुवाच

ब्रह्मासुखसुखसुखो युष्मानात्मपरीप्सवा ।
छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटात् ॥ २ ॥
तत्रापायासुखसासान्द्रोऽसहस्रात्सहस्रपात् ।
हृदयं तस्य हि ब्रह्म सत्रमङ्गं प्रचक्षते ॥ ३ ॥
अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ।
रक्षति साम्प्रयो देवः स यः सदसदात्मकः ॥ ४ ॥
तव सन्दर्शनादेवच्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ।
यस्त्वं भगवान् भ्रीत्या बर्मेमाह रिरक्षिष्यो ॥ ५ ॥
दिष्टया मे भगवान् द्यौर्दुर्दृष्टो बोद्धवतात्मनाम् ।
दिष्टया पादरजः स्पृष्टं क्षीर्ण्य मे भवतः क्षिपम् ॥ ६ ॥
दिष्टया त्ववानुशिष्टोऽहं कृतवानुग्रहो महान् ।
अपाहृतैः कणरघैर्जुष्टा दिष्टयोऽक्षसीगिरः ॥ ७ ॥
स भवान्दुहित्वेनैवपरिहृष्टात्मनो मम ।
भोक्तुमर्हसि दीनस्य भावितं कृपया मुने ॥ ८ ॥
प्रियव्रतोऽपानपदो स्वसेयं दुहिता मम ।
अन्विच्छति पतिं युक्तं धयः क्षीलगुणादिभिः ॥ ९ ॥
यदा तु भवतः क्षीलभूतरूपबभोगुणान् ।
अमृणोन्नारदादेया त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥ १० ॥

भीमिनेयजी कहते हैं—विदुरजी । इस प्रकार ज
कर्मजीने मनुजीके सम्पूर्ण गुणों और कर्मोंकी श्रेष्ठतम
वर्णन किया, तो उन्होंने उन निश्चितपरायण मुनिं
कुछ सकुचाकर कहा ॥ १ ॥

मनुजीने कहा—मुने ! वेदमूर्ति भगवान् ब्रह्मने अपने
वेदमय विग्रहकी रक्षाके लिये तप, विद्या और योग
सम्पन्न तथा विरयोंमें अनासक्त आप ब्राह्मणोंको अपने
मुखसे प्रकट किया है और फिर उन सहस्र वर्णोंपर
विवाद पुरुषन आपओँकी रक्षाके लिये ही अपनी सहस्र
उपायोंसे हम क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है । इस प्रकार
ब्राह्मण उनके हृदय और क्षत्रिय शरीर कहा करते हैं ॥ २ ॥
अत एक ही शरीरसे सम्बन्ध होनेके कारण अपनी-अपनी
और एक दूसरेकी रक्षा करनेवाले उन ब्राह्मण और क्षत्रियों
की वास्तवमें श्रीहरि ही रक्षा करते हैं, जो समस्त कर्म
कारणरूप होकर भी वास्तवमें निर्बिकर हैं ॥ ३ ॥
आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे सारे सम्बन्ध दूर हो गये,
क्योंकि आपने मेरी प्रशंसाके मितसे स्वयं ही ब्रह्मात्मन्की
इच्छावाले राजाके वर्गोंका बड़े प्रेमसे निरूपण किया है ॥ ४ ॥
आपका दर्शन अत्रितेजस्वि पुरुषोंको बहुत दुर्लभ है, मेरा
बड़ा भाग्य है, जो मुझे आपका दर्शन हुआ और मैं आपके
चरणोंकी मल्लकम्पी रज अपने सिरपर चढ़ा सकूँ ॥ ५ ॥
मेरे मायोंदयसे ही आपने मुझे रामचर्मोंकी शिक्षा देकर
मुखपर गहान् अनुग्रह किया है और मैंने भी कुछ प्रसन्न-
का उदय होनेसे ही आपकी पवित्र बाणी कन खोलकर
सुनी है ॥ ६ ॥

मुने ! इस कृत्याके स्नेहबश मेरा चित बहुत किञ्च-
मस्त हो रहा है, अतः कुछ दीनकी यह प्रार्थना कर
रूपार्थक सुनें ॥ ८ ॥ यह मेरी कृत्या—जो प्रियव्रत और
उत्तमानपादकी बहिन है—अवस्था, शील और गुण आदिमें
अपने योग्य पतिको पानेकी इच्छा रखती है ॥ ९ ॥ जबसे
इतने नारदजीके मुखसे आपके शील, विद्या रूप, अष्ट
और गुणोंका वर्णन सुना है, तभीसे यह आपको अपना
पति बनानेका निश्चय कर चुकी है ॥ १० ॥ शिवर ! मैं

तत्प्रतीच्छ द्विजाग्रयेमां भद्रयोपहृतां मया ।
 सर्वान्मनानुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥११॥
 तद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ।
 अपि निर्धुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥१२॥
 य तद्यतमनादृत्य कीनाश्रमभियाचते ।
 क्षीयते तद्यज्ञः स्तीर्य मानभावद्वया हतः ॥१३॥
 अह त्वामृणव विद्वन् विवाहार्थं समुपगतम् ।
 अतस्त्वमुपकुर्वामिः प्रचीं प्रतिगृहाण मे ॥१४॥

अपि कृत्वा

बाहमुद्रोद्धृक्कामोऽहमप्रचा य त्वारमजा ।
 आवयोरनुरूपोऽसावायो वैवाहिको विधिः ॥१५॥
 काम स भूषाभरदेव तेऽस्याः
 पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रवीतः ।
 क एव ते तन्पां नाद्रियेत
 स्वयं व कान्त्या क्षिपतीमिव भ्रियम् ॥१६॥
 पां हर्म्यपृष्ठे कणदक्षिणोर्मां
 विष्ठीडती कन्दुकविह्वलाक्षीम् ।
 विश्वावसु र्षपतस्त्रादिमाना
 द्विलाभ्य सम्मोहविमूढचेता ॥१७॥
 पां प्रार्थयती ललनाललाम
 मसेवितभौघरगैरष्टाम् ।

बही श्रद्धासे आपको यह कन्या समर्पण करता हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिये । यह गृहस्थोचित कायोंके लिये सब प्रकार आपके योग्य है ॥११॥ जो भोग स्वतः प्राप्त हो जाय, तत्पत्नी अवहेलना करना विरक्त पुरुषको भी उचित नहीं है, फिर विन्यासक्षकी तो बात ही क्या है ॥१२॥ जो पुरुष स्वयं प्राप्त हुए भोगका निराश्रय कर फिर किसी कृपणके आगे हाथ पसारता है, उसका बहुत केज हुआ यश भी नष्ट हो जाता है और दूसरेके निरत्कारसे मानभङ्ग भी होता है ॥१३॥ विद्वन् ! मैंने सुना है, आप विवाह करनेके लिये उत्पन्न हैं । आपका ब्रह्मवय एक सीमातक है, आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी तो हैं नहीं । इसलिये अब आप इस कन्याको स्वीकार कीजिये, मैं इसे आपको अर्पण करता हूँ ॥१४॥

क्षीकर्तृम मुनिने कहा—ठीक है, मैं विवाह करना चाहता हूँ और आपकी कन्याका अभी किसीके साथ वाग्वान नहीं हुआ है, इसलिये हम दोनोंका सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणविधिसे विवाह होना उचित ॥ होगा ॥१५॥ राजन् ! वेदोक्त विवाह विधिमें प्रसिद्ध जो 'गृण्णामि ते' इत्यादि मन्त्रोंमें बताया हुआ कर्म (सत्तानोत्पादन रूप मनोरथ है, वह आपकी इस कन्याके साथ हमारा सम्बन्ध होनेसे सफल होगा । मन्त्र, जो अपनी अङ्ग कर्तव्यसे आभूषणदिकी शोभाको भी तीरस्कृत कर रही है आपकी इस कन्याका कौन आश्रय न करेगा ॥१६॥ एक बार यह अपने मङ्गलकी छतर गेंद खेद रही थी । गेंदके पीछे श्वर उधर दौड़नेके कारण इसके मंत्र चञ्चल हो रहे थे तथा पैरोंके पायजोब मधुर झनकर करते जाते थे । उस समय यह देखकर विश्वावसु गार्धर्व मोहबुद्धि अचेत होकर अपने विमानसे गिर पड़ा था ॥१७॥ यही इस समय यहाँ स्वयं आकर प्रार्थना कर रही है, ऐसी अवस्था में कौन समझाने पुरुष इसे स्वीकार न करेगा । यह तो साक्षात् आप महाराज क्षीत्रावभ्युपमनुकी दुमारी कन्या और उत्तानपादकी प्यारी बहिन है तथा यह रमणियोंमें

१ प्रा पा — विद्वन्ब्राह्मणे । २ प्रा पा — प्रपन्ना प्रतिगृह्य मे ।

० मनुस्मृतिमें आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख पाया जाता है— (१) ब्राह्म (२) वैश्व (३) श्रद्धा (४) प्राश्न पत्य (५) आसुर (६) गान्धर्व (७) राजन और (८) पैशाच । इनके अलग बही तीनों अभ्यासोंमें देवता का प्रिय । इनमें पाँच लक्षे अष्ट माना गया है । इतमें पिता याप्य बरको कन्याका दान करता है ।

वस्तां मनोरुषपदः स्वसारं
 को नानुमन्येत शुभोऽभियाताम् ॥१८॥
 अतो संविष्ये समयेन साध्वीं
 यावत्तेजो विमृषादात्मनो मे ।
 अतो धर्मान् पारमहंसमुत्थ्यान्
 शुक्लप्राक्तान् बहु मन्येऽविर्हिंस्रान् ॥१९॥
 चतोऽभयद्विभक्तिं विचित्रं
 संस्थास्यते यत्र च वापतिष्ठते ।
 प्रजापतीनां पतिरेव यज्ञं
 परं प्रमाणं भगवाननन्त ॥२०॥
 'मेत्रेय उवाच

तद्ग्रन्थं श्रियदेवाशभाषे
 आसीत् तूष्णीमरविन्दनाभम् ।
 भियोपगृह्णन् स्मिन्नोभितेन
 मुखेन वेता लुप्तमे ब्रह्म ॥२१॥
 सोऽनुज्ञात्वा व्यनसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ।
 तस्मै गुणगजाख्याय ददौ त्वयां प्रहर्षितः ॥२२॥
 श्वतरूपा महाराज्ञी पारिवर्ही महाभनान् ।
 दम्पत्योः पर्यदारप्रीत्या मूपावासः परिच्छदान् ॥२३॥
 प्रचां दुहितर सन्नाद् सच्छाय गतव्यथः ।
 उपगुप्त च बाहुभ्यामौत्कृष्टोन्मथिताश्रयः ॥२४॥
 अशबनुवस्तद्विरहं मुञ्चन् वाप्यकर्तां मुहुः ।
 अग्निश्चदम्ब वस्तेति नेत्रोर्दुर्दुहितुः शिला ॥२५॥
 आमन्त्र्य न मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः ।
 प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥
 उभयार्धपिकुर्याया मरस्वस्याः सुराघतो ।
 अघोणाघुपसाठानां पश्यन्नाश्रममम्पदः ॥२७॥

रामके समान है । जिन लोगोंने कभी श्रीकृष्णकी
 चरणोंकी उपासना नहीं की है, उन्हें तो इसका दर्शन
 भी नहीं हो सकता ॥ १८ ॥ अतः मैं आपकी स
 साध्वी कन्याको अवश्य स्वीकार करूँगा, किन्तु एक
 शर्तके साथ । जबतक इसके संतान न हो जायगी, तब
 मैं गृहस्थधर्मानुसार इसके साथ रहूँगा । उसके बाद मायान्
 के बताये हुए संन्यासप्रधान हिसारहित राम-राम्नि कर्मों
 की अधिक महत्त्व दूँगा ॥ १९ ॥ जिनसे इस विचित्र जगत्की
 उत्पत्ति हुई है, जिनमें यह छिन् हो जाता है और जिनके
 आश्रयसे यह स्थित है—मुझ तो वे प्रजापतियोंके भी
 पनि भगवान् श्रीअनन्त की सहाये अधिक मान्य हैं ॥ २० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—प्रचण्ड घनुर्भर क्रिुर ।
 कर्दमजी केवल इतना ही कह सकते, फिर वे हृदयमें मग्न
 कमलनाभका ध्यान करते हुए मौन हो गये । उस समय
 उनके मन्द हास्ययुक्त मुलकमलकी देखकर देवहूतिक
 चित्त लुभा गया ॥ २१ ॥ मनुजीने देखा कि इस सम्बन्धमें
 महाराजी शतरूपा और राजकुमारीकी स्पष्ट अनुमति है,
 अतः उन्होंने अनेक गुणोंसे सम्पन्न कर्दमजीकी उनकी
 समान गुणवती कन्याका प्रसन्नतापूर्वक दान कर
 लिया ॥ २२ ॥ महाराजी शतरूपामें भी बेटी और दाम्पत्य
 सब प्रेमपूर्वक बहुत-से बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और
 गृहस्थोचित पत्रादि दहेजमें दिये ॥ २३ ॥ इस प्रकार
 सुयोग्य बरको अपनी कन्या देकर महाराज मनु निश्चित
 हो गये । कछीबार उसका वियोग न सह सकनेके कारण
 उन्होंने उत्कण्ठावश विह्वलचित्त होकर उसे अपनी छातीसे
 बिपटा छिया और धेड़ी । धेड़ी । बहकर रोने लगे ।
 उनकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी छा गयी और उनसे
 उन्होंने देवहूतिके सिरक सारे बाज भिगे दिये ॥ २४-२५ ॥
 फिर वे मुनिवर कर्दमसे पूछकर, उनकी आज्ञा क
 रामीके सहित रथपर सवार हुए और अपने सेवकोंसहित
 अग्निकुलसंज्ञित सरस्वती नदीके दोनों तीरोंपर मुनियोंके
 आश्रमोंकी शोभा देखते हुए अपनी राजधानीमें बने
 आये ॥ २६-२७ ॥

१ मा पा — वरिष्ये । २ प्राचीन प्रतिमें श्रीदेव उवाच नहीं है । ३ मा पा — यन्मन्दव भावम् ।

४ द. पा — अतिरिक्त मण्डल १२ । ५ प्र. र. ३१ । ६ मा पा — भाविश्रयिषि व्यापेति नेय ।

तमायान्तमभिप्रेत्य प्रह्लावर्तात्प्रजाः पतिम् ।

गीतसस्तुविषादित्रैः प्रग्युदीयुः प्रहर्षिता ॥२८॥

वर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसम्पत्समन्विता ।

न्यपठन् यत्र रोमाणि यद्वस्याङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥

कुशः काशस्त एवासन् क्षमद्वरितवर्षसः ।

अपयो ये पराभाम्ब यद्वप्यन् यद्वमीजिरे ॥३०॥

कुशक्षयमयं वर्हिर्वास्तीर्य भगवान्मनुः ।

अपजघनपुरुषं लब्धा स्थानं यतो मुर्वम् ॥३१॥

वर्हिष्मती नाम विद्युर्वा निर्विष्य समावसत् ।

तत्त्वां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥३२॥

सभार्यः सप्रजः कामान् बुभुजेऽन्याविरोधतः ।

सङ्गीयमानवत्क्रीरिं सङ्गीभिः सुरगायकैः ।

प्रत्यूषेष्वनुबध्नन् हृदा शृण्वन् हरे कथाः ॥३३॥

निष्णातं यागमायासुर्हन्ति स्वायम्भुव मनुम् ।

यदाभ्रंशयितुं भोगा न श्रेष्ठमर्गवत्परम् ॥३४॥

अयातयामास्तस्यासन् भामाः स्वान्तरथापनाः ।

शृण्वतो व्यासतो विष्णोः कुर्वतां भुवतः कथाः ॥३५॥

स एव स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्तविम् ।

वस्तुदेवप्रसङ्गेन परिमूषगवित्रयः ॥३६॥

धारीरा मानसादिभ्या ब्रैयासे यं च मानुषाः ।

जय प्रह्लावतश्च प्रजापते यह समाचार मित्रा कि उसके स्वामी आ रहे हैं तब वह अत्यन्त आनन्दित होकर स्तुति, गीत एवं बाजे-गाजेके साथ अगवानी करने के लिये प्रह्लावतकी राजधानीसे बाहर आयी ॥ २८ ॥ सब प्रकारकी सम्पदाओंसे युक्त वर्हिष्मती नगरी मनुजीकी राजधानी थी, जहाँ पृथ्वीकी रसतलसे ले आनेके पश्चात् शरीर कँगासे सुगम श्रीब्राह्मणान्के रोम झड़ कर गिरे थे ॥ २९ ॥ वे रोम ही निरन्तर हरे-मरे रहनेवाले कुश और कास हुए, जिनके द्वारा मुनिपौत्र यद्धर्मे विघ्न डालनेवाले दैत्योंको तिरस्कार कर भगवान् यज्ञपुरुषकी यज्ञोद्धार आराधना की है ॥ ३० ॥ भूभारान् मनुने भी श्रीब्राह्मणान्के मूर्तिरूप निवासस्थान प्राप्त होनेपर इसी स्थानमें कुश और कासकी वर्हि (घटाई) विद्यकर श्रीब्राह्मणान्की पूजा की थी ॥ ३१ ॥

जिस वर्हिष्मतीपुरीमें मनुजी निवास करते थे, उसमें पहुँचकर उन्होंने अपन त्रिषापनाशक मन्त्रमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वहाँ अपनी भार्या और संतति के सहित वे धर्म, अर्थ और मोक्षके अनुकूल भोगोंकी भोगन लगे । प्रातःकाल होनेपर गर्भर्चन अपनी स्त्रियोंके सहित उनका गुणगान करते थे, किन्तु मनुजी उसमें बाधक न होकर प्रेमपूर्ण हृदयसे श्रीहरिकी क्यारें ॥ सुना करते थे ॥ ३३ ॥ वे इन्धनुसत मांगोंका निर्माण करनेमें कुशल थे, किन्तु मननशील और मन्त्रतपस्यक होनेके कारण भोग उन्हें किंचित् भी विषष्टित नहीं कर पाते थे ॥ ३४ ॥ भगवान् विष्णुकी कथाओंका श्रवण, ध्यान, रचना और निरूपण करते रहनेके कारण उनका मन्त्रन्तरकी स्मृति बननेवाले क्षण कभी व्यर्थ नहीं जाते थे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अपनी आसक्त्यादि स्त्रीयों अवस्थाओं व्यपना सीनों गुणोंको अभिमूढ करके उन्होंने भगवान् वासुदेवके कथाप्रसङ्गमें अपन मन्त्रन्तरके इच्छाचर पशुपुंगु पूरे कर दिये ॥ ३६ ॥ व्यासमन्दम विदुरजी ! जो पुरुष श्रीहरिके आधिग रहता है, उसे शारीरिक, मानसिक, दैविक, मानुषिक अथवा भौतिक दुःख किस प्रकार

भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंभयम् ॥३७॥

यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्माश्चानाविधान्कृमान् ।

नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥३८॥

एतच्च आदिराश्रय मनोभरितमद्भुतम् ।

वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्यादयं शृणु ॥३९॥

कष्ट पहुँचा सकते हैं ॥ ३७ ॥ मनुजी मिरन्तर सम्म प्राणियोंके हितमें छगे रहते थे । मुनियोंके पूछने उम्होंने मनुष्योंके तथा समस्त वर्ण और आश्रमोंके क्लेश प्रकारके मङ्गलमय धर्मोक्त भी वर्णन किया (जो मनु संहिताके रूपमें अब भी उपलब्ध है) ॥ ३८ ॥

जगत्के सर्वप्रथम सम्राट् महाराज मनु ब्रह्मर्षी कीर्तनके योग्य थे । यह मैंने उनके अद्भुत वरिष्ठक वर्णन किया, अब उनकी कथा देवहूतिके प्रथम सुनो ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कर्म और देवहूतिके विचार

मेनेय उवाच

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिक्षितकोषिदा ।

नित्य पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भव प्रभुम् ॥ १ ॥

विश्रम्भेनात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ।

शुभूपया सीहृदेन वाचा मधुरया च भोः ॥ २ ॥

विसृज्य कामं दम्भश्च द्वयं लोभमप्यं मदम् ।

अग्रमच्छाद्यता नित्य तेजीयांसमतोपयत् ॥ ३ ॥

स वै देवर्षिर्धर्यस्तां मानवीं समनुग्रताम् ।

दैर्घ्याद्वरीयसः पत्नुराज्ञासानां महाश्रियः ॥ ४ ॥

कालेन भूमसा क्षामां कर्क्षितां प्रसचर्यया ।

प्रमगद्गदया वाचा पीडितं कृपयामवीत् ॥ ५ ॥

कर्म उवाच

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः

शुभूपया परमया परया च भक्षरया ।

श्रीमन्नेयजीक कहा—विदुरजी ! मस्त-पित्तक के

जानपर पत्निके अग्निप्राप्त्यो समझ लेनमें कुशाळ सुखी देवहूति कर्ममयीकी प्रतिदिन प्रेमपूर्वक सेवा करने लगीं, ठीक उसी तरह, जैसे श्रीपार्वतीजी भगवान् शङ्करजी सेवा करती हैं ॥ १ ॥ उसने काम-वासना, दम्भ, ईप्स, छेद, पाप और मदका त्यागकर बड़ी सत्वशाली और कर्मके साथ सेवामें तत्पर रहकर विद्यास, पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम और मधुर मन्त्रगादि गुणोंसे अपने परम तेजकी प्रतिदेवको समुत्पन्न कर लिया ॥ २ ॥ देवहूति सज्जती थी कि मेरे पतिदेव दैवसे भी बड़कर हैं, इसलिये वह उनसे बड़ी-बड़ी आसप रखपर उनकी सेवामें लगी रहती थी । इस प्रकार बहुत निमोक्तक अपना अनुश्रुति करनेवाली उस मनु-पुत्रीको अनादिका पालन करनेसे दुर्बल हुई देख देवर्षि श्रेष्ठ कर्मको दयावश कुछ स्नेह हुआ और उन्होंने उससे प्रेमगद्गद वाणीमें कहा ॥ ४ ५ ॥

कर्मजी बोले—मनुजन्मिनि ! तुमने मेरा बड़ा आभार किया है । मैं तुम्हारी उत्तम सेवा और परम भक्तिसे बहुत संतुष्ट हूँ । सभी देवधारियोंके जन्म

यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो

नावेक्षित समुचित क्षपितुं मदर्थे ॥ ६ ॥

ये मे स्वभमनिरतस्य सप समाधि

विद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादा ।

तानेव ते मदनुसेवनयावरुद्धान्

दृष्टिं प्रपश्यन्तिराम्यमपानशोकान् ॥ ७ ॥

अन्ये पुनर्मग्नवतो ब्रुवन्तिद्विजृम्भ

विभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ।

सिद्धासि श्रद्धा विभवाभिर्धर्मदोहान्

दिश्यामरैर्दुर्गधिगान्धुपविक्रियामिः ॥ ८ ॥

एवं ह्युवाचमन्त्रालययोगमाया

विद्याविषयधनमपेक्ष्य गताधिरासीत् ।

सम्प्रथमप्रणयविह्वलया गिरपत्

वीढावलोकविलसद्गमिष्ठाननाऽऽह ॥ ९ ॥

दधत्तिलपाच

राद्यैः शैल द्विजपूषैस्तद्गोषयाग

मायाधिपे त्वयि विभो तदर्थमिभर्त ।

यस्तेऽग्न्यापि समयः सकृदङ्गसङ्गो

भूयाद्दरीयसि गुणः प्रसवः मतीनाम् ॥ १० ॥

सप्रतिकृत्यमुपशिष्ट यथोपदृष्ट

येनैव मे कर्तृतोऽसि रिरमयाऽऽस्ता ।

शरीर बहुत प्रिय एवं आदरकी मस्तु होता है, किन्तु तुमने मेरी सेवाके आगे उसके क्षीण होनेकी भी कोई परवा नहीं की ॥ ६ ॥ अतः अपने धर्मका पाठन करते रहनेसे मुझे तप, समाधि, उपासना और योगके द्वारा जो मय और शोकते रहित भगवत्प्रसाद-स्वरूप विभूतियों प्राप्त हुई हैं, उनपर मेरी सेवाके प्रभावसे अब तुम्हारा भी अधिकार हो गया है । मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ, उसके द्वारा तुम उन्हें देखो ॥ ७ ॥ अन्य जितने भी भोग हैं, वे तो भगवान् कीदृशिके भुक्त्वष्टि विष्णुसमाप्तिसे मष्ट हो जाते हैं, अतः वे इसके आगे कुछ भी नहीं हैं । तुम मेरी सेवासे भी कृतार्थ हो गये हो, अपने पातिव्रत धर्मका पाठन करनेसे तुम्हें ये दिव्य भोग प्राप्त हो गये हैं, तुम इन्हें भोग सकती हो । हम राजा हैं, हमें सब कुछ सुख है, इस प्रकार जो अमीमान आदि विकार हैं उनके रहते हुए मनुष्योंको इन दिव्य भोगोंकी प्राप्ति होनी कठिन है ॥ ८ ॥

कदम्बीके इस प्रकार कहनेसे अपने पतिदेवकी सम्पूर्ण यागमाया और विषाजोंमें कुशाक्ष जानकर उस अवकाशकी सारी चिन्ता जाती रही । उसका मुझ किंचित् संकोचमयी चितवन और मयुर मुसकानसे खिच ठठा और वह विनय एवं प्रेमसे गह्वर वाणीमें इस प्रकार कहल लगी ॥ ९ ॥

वेषहस्तिने कहा - द्विजपूष ! क्षामिन् ! मैं यह जानती हूँ कि कभी निष्कल न जानेवन्ती योगशक्ति और त्रिगुणात्मिका मायापर अधिकार रखनवाले आपकी ये सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं । किन्तु प्रभो ! आपने विषयके समय जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्माधान होतक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ सुखका उपभोग करूँगा उसकी अब पूर्ति होनी चाहिये । क्योंकि श्रेष्ठ पतिके द्वारा सन्तान प्राप्त होना पतिव्रत कीक विषे गृहान् लाभ है ॥ १० ॥ हम दोनोंक समागमक विषे शास्त्रक अनुसार जो कर्तव्य हो, उसका आप उपदेश दीजिये और उद्यमन, गन्ध, भोजन आदि उपयोगी सामग्रियों की कुछ दीजिये जिससे भिक्षुकी इच्छामें अल्पतः दीन, दुःख हुआ मेरा यह शरीर आपसे अङ्ग-मङ्गक योग हो

सिद्धयेत ते कृतमनोभवधर्षिताया

दीनस्तदीश्र भवन सद्यः विश्वम् ॥११॥

मेमेय उवाच

प्रियायाः प्रियमन्यच्छन् कर्दमो योगमास्थितः ।

विमानं कामगच्छस्तर्षेवाविरचीकरत् ॥१२॥

सर्वकामदुर्घं दिव्य सर्वरत्नसमन्वितम् ।

सर्वदुर्घपञ्चोदकं मणित्तमैरुपस्तुतम् ॥१३॥

दिव्योपकरणोपेत सर्वकालसुखावहम् ।

पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥१४॥

स्रग्मिर्विचित्रमाख्याभिर्मञ्जुश्लिष्टस्वच्छाभिः ।

दुकूलधौमकौशेयैर्नलावसैर्विराजितम् ॥१५॥

उपर्युपरि विन्मस्तनिलयेषु पृथक्पृथक् ।

धिसैः कशिपुभिः कान्तं पर्वद्वय्यजनासने ॥१६॥

तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाधिरूपोपक्षाभितम् ।

महामरकतस्त्रया जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥१७॥

द्राक्षुः विद्रुमदेहस्या भातं वज्रकपाटवत् ।

शित्वरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिभितम् ॥१८॥

चक्षुष्मत्पथरागादयैर्बज्रभिस्त्रिषु निर्मिते ।

जुष्टं विचित्रवैतानैर्महाहैर्महोरणैः ॥१९॥

इसपारावतव्रतैस्तत्र तत्र निर्कुञ्चितम् ।

कुत्रिमान् मन्यमानैः स्वानभिरुष्माभिरुष्मा च ॥२०॥

जाय, क्योंकि आपकी ही वज्रापी हुई क्षमवेदनासे है पीड़ित हो रही हैं। खामिन् । इस कार्यके लिये एक उपयुक्त भवन तैयार हो जाय, इसका मैं निश्चय करीविये ॥ ११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी । कर्दम मुनिने अपनी प्रियाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय योगमें स्थित होकर एक विमान रचा, जो इच्छानुसार सर्वत्र जा सकता था ॥ १२ ॥ यह विमान सब प्रकारके इच्छित मोग-सुख प्रदान करनेवाला, अत्यन्त सुन्दर, सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त, सब सम्पत्तियोंकी उत्तमोत्तम वृद्धिसे सम्पन्न तथा मणिमय खंभोंसे सुशोभित था ॥ १३ ॥ वह सभी शत्रुओंमें सुखदायक था और उसमें जहाँ-तहाँ सब प्रकारकी दिव्य सामग्रियाँ रखी हुई थीं तथा उसे विचित्र विचित्र रेशमी वस्त्रों और पताकाओंसे खूब सजाया गया था ॥ १४ ॥ मन्दार वृक्षमय मधुर गुहार कर रहे थे, ऐसे रग-निरंगे पुष्पोंकी मालाओंसे तथा अनेक प्रकारके सूखी और रेशमी वस्त्रोंसे वह अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ॥ १५ ॥ एकके ऊपर एक बनाये हुए कमरोंमें अस्त्र-बन्धन रखी हुई धाया, पर्ण, पंख और आसनके कारण वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था ॥ १६ ॥ जहाँ-तहाँ दीवारोंकी हुई शिल्परचनासे उत्तमी अथवा सोमा हो रही थी । उसमें फनेका फर्श था और बैठनके लिये मृगेष्टी बरिदी बनायी गयी थी ॥ १७ ॥ मृगेष्टी ही देहस्थि थी । उसके द्वारोंमें द्वारके किनारे थे तथा इन्द्रनील मलिके शिखरोंपर सोनेके कलश रखे हुए थे ॥ १८ ॥ उत्तमी द्वारकी दीवारोंमें बरिदा छाक जड़े हुए थे, जो ऐसे जान पड़ते थे मानो विमानकी ओंछे हों, तथा उसे रग-निरंगे चन्द्रावे और बहुमूल्य सुनहरी वस्त्रधारोंसे सजाया गया था ॥ १९ ॥ उस विमानमें जहाँ-तहाँ कुम्भित वस्त्र और कनूतर आदि पड़ी बनाये गये थे, जो किङ्कर सजीव-से ग्राह्य पड़ते थे; उन्हें अपना समान्तीय समझकर बहुत-से बंस और कनूतर उनके पास बैठ-बैठकर अपनी बोली बोलते थे ॥ २० ॥ उसमें सुविधानुसार

बिहारस्यानविभ्रामसवेशप्राङ्गणाक्षिरै ।
 यथोपज्ञोपं रचितैर्विज्ञापनमिवात्मन ॥२१॥
 ईर्ष्यगृह तत्पद्मपन्ती नातिप्रीतेन श्वेतसा ।
 सर्वभूताशयाभिष्टः शौचोचत्कर्म्मः श्वयम् ॥२२॥
 निमग्न्यास्मिन इदे भीरु विमानमिदमारुह ।
 इदं शुक्लकृतं तीर्थमाक्षिपं यार्षकं नृणाम् ॥२३॥
 सा तद्भर्तुः समादाय वच क्लृप्तयेक्षणा ।
 सरल विभ्रती वासो वणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥
 भर्जं च मलपङ्कजं संछन्नं श्वशस्तनम् ।
 आविवेश सरस्वत्या सर शिवजलाश्रयम् ॥२५॥
 सान्त् सरसि ब्रह्मस्या श्रुतानि दद्यान्नयका ।
 सर्वा किशोरवयसो ददशोऽपलगन्धय ॥२६॥
 तां दद्यात्सहस्रात्पापप्राप्तुं प्राञ्जलय स्त्रिय ।
 बर्षकर्षकरीस्तुभ्य द्याधि न करवाम किम् ॥२७॥
 स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ।
 दुक्ते निर्मले नृज ददुरस्यं च मानदोः ॥२८॥
 भूषणानि पराङ्गानि धरीषामि धुमति च ।
 भन्नं मय्युणापतं पानं चवामृतासवम् ॥२९॥
 अधाश्च स्वमा मान मृगिणं विरजाम्बरम् ।
 विजं कृत्वन्मय्यनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥३०॥

कीडास्थली, शयनगृह, बैठक, आँगन और चौक आदि बनाये गये थे—दिनके कारण वह विमान स्वयं कदमजीको भी विस्मित-सा कर रहा था ॥२१॥

ऐसे सुन्दर घरको भी जब देवहूतिन बहुत प्रसन्न चित्तसे नहीं देखा, तो सबके आन्तरिक भावको परख लेनेवाले कदमजीने स्वयं ही कहा ॥ २२ ॥ 'भीरु ! तू इस विन्दुसरोवरमें स्नान करके विमानपर चढ़ जाओ, यह विष्णुभगवान्कर रचा हुआ तीर्थ मनुष्योंको सभी कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाला है' ॥ २३ ॥

कदमजीवना देवहूतिने अपने पतिकी बात मानकर सरस्वतीके पवित्र जलसे मरे हुए उस सरावरमें प्रवेश किया । उस समय वह वही मैत्री-कुर्वशी साक्षी पहने हुए थी, उसके सिरके बाह्य चित्रक जानसे उनमें छटें पड़ गयी थीं, शरीरमें मैत्र जम गया था तथा स्नान कर्त्तव्यहीन हो गये थे ॥ २४ २५ ॥ सरोवरमें गोला लगातेपर उसने उसका भीतर एक मूढकर्म एक हजार कन्याएँ देखीं । वे सभी किन्नार अवस्थाकी थीं और उनके शरीरोंसे कमलकी-सी गन्ध आती थी ॥ २६ ॥ देवहूतिको देखते ही वे सब बिर्यो सहसा लकी हो गयीं और हाथ जोड़कर कहने लगीं, 'हम आपकी दामियों हैं, हमें आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें' ॥ २७ ॥

विदुरजी ! तब क्षामिनीको सम्मान दनवाली उन रमणीयोंन बहुतस्य मसालों तथा गन्ध आदिसे विभिन्न जम्बूक द्वारा मनस्विना देवहूतिको स्नान कराया तथा उसे दो नवीन और निमज्ज वस्त्र पहननेकर गिये ॥ २८ ॥ फिर उन्होंने ये बहुत मूल्यक वस्त्र सुन्दर और कान्तिमय् आभूषण, सर्वगुणसम्पन्न मानक और पीनके लिये अमृतक समान स्नानिष्ठ आशुष प्रस्तुत किये ॥ २९ ॥ जब देवहूतिन दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखा ता उसे पाश्र्वय हुआ कि वह नीति-मौलिक सुगन्धित कन्यो दारोंमें विभूति हैं स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए हैं, उमरज शरीर भी निमज्ज और कान्तिमान् हो गया है तथा उन मन्त्याजनों बड़ आनन्दपूर्ण उमरज पाश्र्वयि गृह्यार

१ मा पा — हर्षं यदं तस्य पश्यन्तिप्रीतेन । २ मा पा — प्रगल्भ कर्म्मः । ३ मा पा — पद्मपन्त ।

४ मा पा — भूते । ५ मा पा — मनस्विनाः ।

सिद्धैर्नुतो पुष्टुनिपातशिवस्वनासु

रेमे चिरं धनदमल्लनारूपी ॥३९॥

वैभ्रम्भके दुरसने नन्दने पुष्पभद्रके ।

मानसे चैत्ररघ्ये च स रेमे रामया रत ॥४०॥

आधिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ।

वैमानिकान्त्यश्वेन चरैस्तोकां यथानिलः ॥४१॥

किं दुरापादनं तेषां पुतामुरारामश्वेतसाम् ।

चैराभितृत्तीर्षपद्भरणो व्यसनात्यय ॥४२॥

प्रक्षयित्वा भ्रुवो गोळं पत्न्यै यावान् स्वसंख्यया ।

बद्धाभयं महायोगी स्वाभमाय न्यवर्तत ॥४३॥

विमज्ज नवधाऽऽत्मानं मानसीं दुरतोत्सुकाम् ।

रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगाद्बह्वर्षव् ॥४४॥

तस्मिन् विमानउत्कृष्टां शय्यां रतिकर्त्री भिता ।

न चापुष्यत तं कालं पत्यापीच्येन सङ्गता ॥४५॥

एष यागानुभावेन दम्पत्या रममाणयो ।

शतं व्यतीपुः शरदं कामलासयोरर्भनाक् ॥४६॥

तस्मादाधस रेतस्तां भावयन्नात्मनाऽऽरमवित् ।

नाथा विभाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विषु ॥४७॥

श्रीगङ्गाजीके खर्गलोकेसे गिरनेकी मङ्गलमय घनि निरन्तर
गूँजती रहती है । उस समय भी दिव्य निषाधरियोंका
समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित था और सिद्धगण बन्दना
किया करते थे ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार प्राणप्रिया देवहूतिके साथ उन्होंने
वैभ्रम्भक, दुरसन, नन्दन, पुष्पभद्र और चैत्ररघ आदि
अनेकों देवोषानों तथा मानस सरोवरमें अनुरागपूर्वक
विहार किया ॥ ४० ॥ उस अन्तिमान् और इच्छनुसार
चलनेवाले श्रेष्ठ विमानपर केशर वायुके समान सभी
लोकोमें विचरते हुए कर्मजी विमानविहारी देवताओंसे भी
आगे बढ़ गये ॥ ४१ ॥ विदुरजी ! जिन्होंने मगवान्के
मन्त्रमयहारी पवित्र पापघर्षक आश्रय लिया है, उन
भीर पुरुषोंके लिये कौन-सी वस्तु या शक्ति दुर्लभ
है ॥ ४२ ॥

इस प्रकार महायोगी कर्मजी यह सारा भूमण्डल,
और द्वीप-जल आदिकी विविध रचनाके कारण बड़ा
आश्चर्यमय प्रतीत होता है, अपनी प्रियाको दिखाकर
अपन आश्रमको छोड़ आये ॥ ४३ ॥ फिर उन्होंने अपने
को नौ रूपोंमें विभक्त कर रतिकुसुम लिय अत्यन्त उत्सुक
मनुकुमारी देवहूतिको आनन्दित करते हुए उसके साथ
बहुत कौनिक विहार किया, किन्तु उनका इतना छम्पा
समय एक मुहूर्तके समान बीत गया ॥ ४४ ॥ उस
विमानमें रतिकुसुमको बढ़ानेवाली बड़ी सुन्दर शय्याका
आश्रय ले आने परम रूपवान् प्रियमनस साथ रहती
हई देवहूतिको इतना काज कुटुमी न जान पड़ा ॥ ४५ ॥
इस प्रकार उस यामासक दम्पतिके अवन यागब्रह्मसे
सैकड़ों कौनिक विहार करते हुए भी यह काज बहुत
थाढ़ समयके समान निकल गया ॥ ४६ ॥ आत्मज्ञानी
कर्मजी सब प्रपञ्चके सङ्कल्पोंको जानते थे अतः
देवहूतिको सन्तानप्राप्तिके लिये उत्सुक न था तथा मगवान्
के आदेशका स्मरणकर उन्होंने अपने स्वरूपके
नौ विभाग किये तथा कन्याओंकी उत्पत्तिके लिये
एकप्रतिष्ठसे अर्वाङ्मुखमें अपनी पत्नीकी भावना कर ले
हुए उसके गर्भमें वीर्य स्थापित किया ॥ ४७ ॥

भयवन्त पर भ्रष्ट सत्त्वेनाशेन शत्रुहन् ।

तत्त्वसंस्थानविद्वत्स्यै चार्तनिश्चान्नः सराद् ॥१०॥

समाश्रयन विशुद्धन चेतसा सचिकीर्षितम् ।

ग्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दम चेदमम्यभात् ॥११॥

मद्योवाच

स्वया मेऽपचितिस्ताव कल्पिता निर्मलीकृतः ।

यमे सङ्गृहे वाक्म भवा मानद मानयन् ॥१२॥

एतत्त्वस्येव श्रुत्वा कार्या पितरि पुत्रकैः ।

वाढमित्यनुमन्येत गौरवेण शुरोर्वचः ॥१३॥

इमा दुहितरः सम्प तव वत्स सुमध्यमाः ।

सर्गमेव प्रभावै स्वैर्दृढयिष्यन्त्यनेकधा ॥१४॥

अतस्त्वमृषिमुल्लेख्यो यथाशीलं यथावधि ।

आत्मना परिदेह्य विस्वणीहि बभौ हवि ॥१५॥

वेदाहमार्थं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ।

भूतानां क्षेत्रं देहं विजगान कपिलं ब्रूने ॥१६॥

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणा मुद्गरबद्धाः ।

हिरण्यकेशः पञ्चाक्ष पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥१७॥

एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कंटभार्दनः ।

अविद्याश्रयप्रस्थि लिप्ता गां विचरिष्यति ॥१८॥

अयं सिद्धगगाधाराः माहृष्याचार्यैः सुसम्मतः ।

लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

मेनेव उवाच

तावाभास जगत्स्रष्टा कुमारैः सहनारदः ।

इसो इसेन मानेन त्रिधामपरमं ययौ ॥२०॥

शत्रुदमन विदुरजी ! तव सिद्ध ज्ञानसे सम्पन्न वक्त्र
महाजीको यह गालूम हो गया था कि साक्षात् एक
मगवान् त्रिषु सांख्यशास्त्रका उपदेश करनेके लिये
अपने विभुद्ध सत्त्वमय अवशसे वषटीर्ण हुए हैं ॥१०॥
अतः मगवान् जिस कार्यको करना चाहत था, तत्काल उन्हीं
विभुद्ध चित्तसे अनुमोदन एवं आश्रय किया और वही
सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे प्रसन्नता प्रकट करते हुए कर्दमजीसे
इस प्रकार कहा ॥ ११ ॥

श्रीमद्भगवतीने कहा—प्रिय कर्दम ! तुम इससे
मान देनेवाले हो । तुमने मेरा सम्मान करते हुए जो मेरे
आज्ञाका पाठन किया है, इससे तुम्हारे शरीर निष्कल
भावसे मेरी पूजा सम्पन्न हुई है ॥१२॥ पुत्रोंको अपने पिता
की सबसे बड़ी सेवा पढ़ी करनी चाहिये कि 'जो कल
पेक्षा कलकर आदरपूर्वक उनके आदेशको स्वीकार
करें ॥ १३ ॥' केवल (तुम सम्पन्न हो, सुमहारी ये सुदा
कन्याएँ अपने बर्तोंद्वारा इस दुष्टिको अनेक प्रकार
कलारंगी ॥ १४ ॥ अब तुम इन महीचि आदि मुनिकों
को इनके समस्त और इन्द्रिके अनुसार अपनी कन्या
समर्पण करो और संसारमें अपना सुखा फैलाओ ॥१५॥
मुने ! मैं जानता हूँ, जो सम्पूर्ण प्रसिद्धिमें विविध हैं—
उनके असील मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, वे आदिपुत्र
श्रीनारदगण हैं। अपनी योगमायासे कपिके रूपमें उनकी
हृदय ॥१६॥ [फिर देवकृतिके बोले—] राजकुमारी
सुमहारे बाळ, कलक—जैसे विशाल नेत्र और कमलवर्ण
वरणकमलके शिखरके रूपमें कैटभासुरको मरनेके
साक्षात् भीतरि ही ज्ञान-विज्ञानद्वारा करनेकी क्षमता
का भूकोच्छेदन करनेके लिये, तेरे गर्भमें प्रवेश किया है
ये अविद्याचलित मोहकी प्रसिद्धियोंकी कटकर पूर्ण
संछन्द विचरेंगे ॥१७-१८॥ ये सिद्धगणोंके साथ
संख्याचार्यके श्री माननीय होंगे । जोकेमें सेही कीर्ति
विस्तार करेंगे और 'कपिल' नामसे विख्यात होंगे ॥१९॥

श्रीमेनेवजी कहते हैं—विदुरजी ! जगत्पति
करनेवाले महाजी तम दोनोंकी इस प्रकार आश्रय
देकर नारद और सनकादिकोंके साथ ले, ईश्वर कलक
भीकणोंके लगे गये ॥ २० ॥ महाजीके लगे जा

गते श्रुतधृती धृति कर्ममस्तेन चोदितः ।
 यथादित स्वदुहितः प्रादाद्विस्सुजां सतः ॥२१॥
 मरीचये कलां प्रादादनृषामयाप्रये ।
 भद्रामङ्गिरसेऽप्यच्छत्पुलस्त्याय इविर्धुषम् ॥२२॥
 पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ।
 न्याति चै मृगवेऽप्यच्छद्रसिष्ठायाप्यरु भवीम् ॥२३॥
 अथर्वणऽद्रदाच्छान्तिं यथा यज्ञो वितन्यते ।
 विप्रर्षभान् कृतोद्गाहान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥
 सतन्त ऋषयः क्षयः कृतदारा निभन्त्य तम् ।
 प्राविष्टश्चान्दिमापकाः स्व स्वमाभममण्डलम् ॥२५॥
 स चावतीण विपुगमाश्चाय विपुर्धर्मम् ।
 विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥
 अहो पापकमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः ।
 कालेन भूयमा नून प्रसीदन्तीह देवताः ॥२७॥
 बहुभ्रमविपक्वचन सम्भ्रयोगसमाधिना ।
 द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥२८॥
 स एव भगवानघ हलन् नगणय्य न ।
 गृहेषु जातो ग्राम्याणां च स्वानां पक्षपोषण ॥२९॥
 स्वीय वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ।
 चिकीर्षुमगयाञ्छान भक्तानां मानवर्धनः ॥३०॥
 तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवस्तव ।
 यानि यानि च राचन्त स्वजनानामरूपिण ॥३१॥
 त्वां श्रुतिभिस्तत्त्वपुस्तकसाक्षाद्
 मदाभिधादार्ढ्यपादपीठम् ।
 पञ्चर्षवैराग्यपद्माऽनशब्द

कर्ममस्तेन उनके आशानुसार मरीचि आदि प्रजापतियोंके
 साथ अपनी कन्याओंको विभिन्नपूर्वक विवाह कर दिया ॥२१॥
 उन्होंने अपनी कला नामकी कन्या मरीचिको, अनसूया
 अधिको, अश्व अङ्गिराको और इविर्धु पुलस्त्यको समर्पण
 की ॥२२॥ पुलहको उनके अनुरूप गति नामकी
 कन्या दी, क्रतुके साथ परम साप्पी कियाकर विवाह किया,
 मृगमीको न्याति और बसिष्ठजीको भरुन्वती समर्पण की
 ॥२३॥ अथर्व ऋषिको शान्ति नामकी कन्या दी, जिससे यज्ञ-
 कर्मका विस्तार किया जाता है । कर्ममस्तेन उन विवाहित
 ऋषियोंका उनकी पत्नियोंके सहित मूख सत्कार
 किया ॥२४॥ विदुरजी । इस प्रकार विवाह हो जाने
 पर वे सब ऋषि कर्ममस्तीकी आज्ञा ले कति आनन्दपूर्वक
 अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ २५ ॥

कर्ममस्तीने देखा कि उनके यहाँ साक्षात् देवाधिदेव
 श्रीहरिने ही अवतार लिया है, तो वे एकजन्तमें उनके पास
 गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥
 'अहो ! अपने पापकर्मोंके कारण इस दुःखमय संसारमें
 जाना प्रकारसे पीड़ित होते हुए पुरुषोंपर दक्षान तो
 बहुत कुछ बीतनेपर प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ किन्तु
 जिनके स्वरूपको योगिजन्म अनर्को जन्मोंके साधनसे सिद्ध
 हुई सुरद समाधिके द्वारा एकजन्तमें देखनेका प्रयत्न करते
 हैं, अपने मछोंकी रक्षा करनेवाले वे ही श्रीहरि !
 विपणालुओंके द्वारा हानेवाली अपनी अवज्ञाकर कुछ भी
 विचार न कर आज हमारे घर अन्तीर्ण हुए हैं ॥२८॥ २९॥
 आप वास्तवमें अपने मछोंका मान बढ़ानेवाले हैं । आप
 अपने बच्चोंको सत्य करने और साम्यपागकर उपदेश
 करनेका जिये ही मेरे यहाँ अवतार लिया है ॥ ३० ॥
 मण्डन् ! आप प्राकृतिकरूपसे रहित हैं, आपका जो
 चतुर्मुख आदि अजीविज रूप हैं, वे हैं । आपका योग्य
 हैं तथा जो मनुष्य-मन्त्र का आपका मछोंका प्रिय लगने
 है, वे भी आपका रुचिकर प्रदीप्त होने हैं ॥३१॥ आपका
 पाद-पीठ तत्त्वज्ञानकी इच्छासे विद्वानोंद्वारा सर्वत्र चरनीय
 है तथा आप देवय, वैराग्य, योग, शम, वीर और क्षी—
 इन छहों पञ्चममें पूरे हैं । मैं आकाश गन्गमें हूँ ॥ ३० ॥

अतः सा सुपुत्र सया देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ।

सनास्ताभारुमर्वाङ्गया लोहितोत्पलगन्धयः ॥४८॥

पतिं सा प्रव्रजिष्यन्त उदाऽऽलक्ष्योऽश्वी सती ।

अयमाना विह्वलन हृदयन विदूयता ॥४९॥

लिखन्त्यभामुत्सी भूमिं पदा नखमणिधिया ।

उवाचललितां वाच निरुष्याभुकटां धनै ॥५०॥

देवहूतिरुवाच

सर्वं सङ्गवानामममुपोवाह प्रतिधुतम् ।

अथापि मे प्रपन्नाया अभय दातुमर्हसि ॥५१॥

ममन्दुहितुमिस्तुभ्यं विमृगया पतयः समाः ।

कश्चिन्त्या मे विशोकाय स्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥५२॥

एवावतार्लं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ।

इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परिस्थितपरारम्भनः ॥५३॥

इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रमत्तस्त्वयि मे कृत ।

अवानन्त्या पर भाव उथाप्यस्त्वभयाय मे ॥५४॥

सज्जो यः ससृगैर्हुरसस्तु विहितोऽधिया ।

स एव साधुषु कृतो नि सज्जत्याय कल्पते ॥५५॥

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।

न तीव्रपदसेवायै बीषन्नपि मृता हि सः ॥५६॥

साह भगवतो नूनं वञ्चिता मायया इदम् ।

यत्त्वा विमुक्तिर्दं प्राप्य न मुमुक्षेप बन्धनात् ॥५७॥

इमसे दशद्वयिके एक ही साथ नौ कन्याएँ पैदा ।
वे सभी सर्वाङ्गसुन्दरी थीं और उनके शरीरसे ।
कमलकी-सी सुगन्ध निकलती थी ॥ ४८ ॥

इसी समय शुद्ध खभाववाली सती देवहूतिने देख
पूर्व प्रणिष्ठाक अनुसार उसके पतिवैध संन्यासधर्म
करके वनको जाना चाहते हैं, तो उसने अपने बँधु
को राककर ऊपरसे मुसकराते हुए व्याकुल एवं
हृदयसे धीरे-धीरे अति मधुर वाणीमें कहा । उस
वह मिर मीचा किये हुए अपने नखमणिमयित व
कमलसे पुष्पीको कुदेर रही थी ॥ ४९-५० ॥

देवहूतिने कहा—ममकन् । आपने जो कुछ प्रे
की थी, वह सब तो पूर्णत निम्न दी; तो मैं मैं
शरणागत हूँ, अब आप मुझे अमरपद ।
दायिये ॥ ५१ ॥ ममकन् । इन कन्याओंके स्निग्ध
वर खोजने पहुँचेंगे और आपके वनको चले जानेके
मेरे जन्म-मरणरूप शोकको दूर करनेके लिये मैं
होना चाहिये ॥ ५२ ॥ प्रभो ! अबतक परम
विमुख रहकर मेरा जो समय इन्द्रियसुख भोगनेमें
है, वह तो निरर्थक ही गया ॥ ५३ ॥ आपके
प्रमत्तको न जाननेके कारण ही मैंने इन्द्रियोंके निम्न
आसक्त रहकर आपसे अनुराग किया । तथापि वह
मेरे संसार मयको दूर करनेवाला ही होना चाहिये ॥ ५४
अज्ञानवश असत्पुरुषोंके साथ किया हुआ जो
संसार-बन्धनका कारण होता है, वही सत्पुरुषोंके
किये जानेपर असह्यता प्रदान करता है ॥ ५५ ॥ संसार
मिस पुरुषके कर्मोंसे न तो धनका सम्पादन हो
है न वैराग्य उत्पन्न होता है और न मगवान्की सेवा
सम्पन्न होती है वह पुरुष जीते ही मुर्देके सम
है ॥ ५६ ॥ अवश्य ही मैं भगवान्की मायासे बड़
ठगी गयी जो आप-जैसे मुक्तिदाता पतिवैधको व्रत
मी मैंने संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा नहीं की ॥ ५७ ॥

इति धीमन्नागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे

कौपिल्योपाख्याने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीकपिलदेवजीका जन्म

मेनेय उवाच

निर्वेदवादिनीमेव मनोर्द्विद्वरं मुनि ।

दयालुः शालिनीमाह शुद्धाभिष्याहृत सरन् ॥ १ ॥

ऋषिरुवाच

मा त्विदो राजपुत्रीत्यमात्मानं प्रत्यनिन्दिते ।

भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमद्गन्तम्यप्रपत्स्यते ॥ २ ॥

वृत्तवत्तासि भद्रं ते दमेन नियमनं च ।

तपोद्रविणदानं च भद्रया चैश्वरं भव ॥ ३ ॥

सत्त्वबाऽऽराधितं शुद्धा पितृन्वामर्कं यश ।

छेत्ता ते हृदयग्रन्थिर्मादयोः प्रब्रभावनः ॥ ४ ॥

मेनेय उवाच

देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापते ।

सम्यक् भद्राय पुरुषं कृतम्यमभनदुरुम् ॥ ५ ॥

तत्सा बहुविधे काले भगवान्मधुश्रुतः ।

कार्दमं वीर्यमायसो जगत्प्रतिव दारुणि ॥ ६ ॥

अशार्दयस्तदा ध्यामिन् शान्तिप्राणि घनाघना ।

गायन्ति तं सा गंधर्वानृत्यन्त्यप्सरसा मुदा ॥ ७ ॥

पतुः सुमनसा दिव्या मेघवरं पर्वजिता ।

प्रसेदुष दिशः सवा प्रभामि च मनमि च ॥ ८ ॥

तत्स्पर्द्धमाभमपदं मरुत्वस्या पगिभित्तम् ।

म्यमम् माहृषिभिर्मग्न्यानिभिरभ्ययान् ॥ ९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—उत्तम गुणोंसे सुशोभित मनुकुमारी देवहूतिन जब पसी बरामयुक्त घातों कही, तब कृपालु यक्षम मुनिक्रम भगवान् दिव्यदेव कपनकर स्मरण हां आया । और उर्ध्वोत्तमसे कहा ॥ १ ॥

कार्यमजी पोले—दोपद्वित राजकुमारी । तुम अपन विषयमें इस प्रकार खे न करा तुम्हारे गर्भमें अविनाशी भगवान् दिव्य शीघ्र ही पगरेगे ॥ २ ॥ प्रिये ! तुमने अनेक प्रकारके कर्मोंकर पावन किया है, अब तुम्हारा यक्षपण होगा । अब तुम समय, मियम, तप और शान्ति काली हुए श्रद्धापूर्वक भगवान् कृता भजन करो ॥ ३ ॥ इस प्रकार आराधना करनेपर श्रीहरि तुम्हारे गर्भसे अन्तर्गर्भ होकर मरा यश ब्रह्मदेवों और ब्रह्मज्ञानकर उपदेश करके तुम्हारे हृदयकी अहंकर मयी प्रथिक्छ छेदन करेगे ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं— निदुरती ! प्रजापति यक्षम क आदेशमें गौरव-युद्धि होमसे देवहूतिन उसपर पूर्ण विश्वास किया और वह निर्विकार, जगद्गुरु भगवान् श्रीपुरुषात्तमकी आराधना करने लगी ॥ ॥ इस प्रकार बहुत समय बीत जानकर भगवान् मधुश्रुत कर्मजीके वीर्यकर आश्रय उ उमक गर्भसे इस प्रकार प्रकट हुए जैसे कर्ममेंसे अग्नि ॥ ६ ॥ उस समय आकाशमें मेघ जब बरमाने हुए गरज गरजकर बाजे बजाने लगे गंधर्वगण गान करने लगे और अप्सराएँ अनन्त हाकर माधन लगी ॥ ७ ॥ पाशागत मरुताओं प बरमाय हुए दिव्य पुत्रोंकर यश हास गत मरुतिगणोंमें आनन्द गगन गगनगणोंका मन निमग्न हा गया और मयी जीवोंक मन प्रमत्त हा गया ॥ ८ ॥ इसा समय मरुत्वाजी नर्तने लगे हुए कर्मजीक उम अशक्तोंमें मरीचि आदि मुनिपौत्र मर्दिन धर्मगणोंक अप ॥ ९ ॥

भगवन्त पर ब्रह्म सत्त्वेनाग्नेन शशुहन् ।

तत्त्वसंस्मानविश्वस्यै चातंविद्वानजः खराट् ॥१०॥

समाज्रयन् विशुद्धन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ।

ब्रह्मप्राप्तेरसुमिः कर्दमं चेदमम्यभात् ॥११॥

मन्त्रोवाच

त्वया मेऽपचितस्तात कस्मिन्ना निर्ब्यङ्गीकृतः ।

यन्मे सञ्जगृहे वाक्य भवा मानन्द मानयन् ॥१२॥

एतावत्स्येव शृणुया कार्या पितरि पुत्रकैः ।

बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्बन्ध ॥१३॥

इमा दुहितरः सम्य तव वत्स सुमन्यमाः ।

सर्गमेत प्रभावे स्तैर्पुंरहस्यन्त्यनेकधा ॥१४॥

अवस्त्वमृषिब्रह्मस्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि ।

आत्ममा परिदेह्य विस्तृणीहि यज्ञो मुवि ॥१५॥

वेदाहमार्थं पुरुषमवतीर्णं स्वमाश्रया ।

भूतानां शेषधि देहं विभ्राणं कपिलं मुने ॥१६॥

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणाद्बुद्धरञ्जिताः ।

हिरण्यकेशः पद्याश्च पद्मद्वारापदाम्बुजः ॥१७॥

एष मानवि ते गर्म प्रविष्टः कैटभादनः ।

अविद्यासंश्रयप्रान्धि छिच्छा गां विशरिष्यति ॥१८॥

अयं सिद्धगमाधीशः गच्छयाचार्यैः सुसम्मतः ।

लोके कपिल इत्यारंथां गन्ता तं कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

येत्रेय उवाच

तावाभ्यास जगत्स्रष्टा हमारैः सद्गन्धः ।

इतो हसेन यानेन त्रिधामपैरम ययौ ॥२०॥

शशुदमन विदुरजी ! खतःसिद्ध ज्ञानसे सम्पन्न ब्रह्म
महानीको यह मादम हो गया था कि साक्षात् परब्रह्म
मगवान् विष्णु सांख्यशास्त्रका उपदेश करनेके लिये
अपने विशुद्ध सत्त्वमय अंशसे अतीर्ण हुए हैं ॥१०॥
अतः भगवान् मिस कर्मको करना चाहते थे, उसका उन्होंने
विशुद्ध चित्तसे अनुमोदन एवं आदर किया और अपनी
सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे प्रसन्नता प्रकट करते हुए कर्ममयीसे
इस प्रकार कहा ॥ ११ ॥

श्रीमद्वागीश्वरीने कहा—प्रिय कर्दम ! तुम दूसरेको
मन देनेवाले हो । तुमने मेरा सम्मान करते हुए जो मेरी
आज्ञाका पालन किया है, इससे तुम्हारे द्वारा निष्कास्य
भावसे मेरी पूजा सम्पन्न हुई है ॥ १२ ॥ पुत्रोंको अपने पिता-
की सबसे बड़ी सेवा यही करनी चाहिये कि 'जो बड़ा'
पिता बड़ाकर आदरपूर्वक उनके आदेशको स्वीकार
करे ॥ १३ ॥ हेन ! तुम सम्य हो, तुम्हारी ये पुत्री
कल्पार्थ अपने बशोद्गत इस सुखिके अनेक प्रकारसे
बकावेंगे ॥ १४ ॥ अब तुम इन मरीचि आदि मुनिपुत्रों-
को इनके समाय और रुचिके अनुसार अपनी कल्पार्थ
समर्पण करो और संसारमें अपना सुपरा कौशलको ॥ १५ ॥
मुने ! मैं जानता हूँ, जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी निधि हैं—
उनके अमीह मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, वे आदिपुत्र
श्रीनारायण ही अपनी योगभाषासे कस्मिके रूपमें अतीर्ण
हुए हैं ॥ १६ ॥ [फिर वेकृतिसे बोले—] राजकुमारी !
तुम्हारे बाक्य कमलजैसे विशाक नेत्र और कमलकृत
चरणकमलोंवाले शिशुके रूपमें कैटभासुरको मारनेको
साक्षात् सीहरिनि ही, ज्ञान विज्ञानद्वारा कर्मकी वस्तुनाश-
क भूकोच्छेदन करनेके लिये, तेरे गर्भमें प्रवेश किया है ।
ये अविद्याजनित मोहकी प्रतियोगको बरकर धूनीमें
लक्ष्मण्ड विचरेंगे ॥ १७-१८ ॥ ये सिद्धगणोंकी क्षामी और
सांख्यशास्त्राधिक भी माननीय होंगे । अनेकमें सेही कीर्तिक
विस्तार करेंगे और 'कपिल' नामसे विख्यात होंगे ॥ १९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! जगत्परी सृष्टि
करनेवाले ब्रह्माजी उन दोनोंको इस प्रकार आश्रय
देकर नारद और सनकादिकों साथ ले, इतना बड़ाकर अ-
त्यधिक चले गये ॥ २० ॥ ब्रह्माजीके चले जानेपर

गते श्रंतवृत्ती धृषः कर्दमस्तेन चोदितः ।

यथोदितं स्वैदुहितः प्रादाद्विभक्त्युजां तस्य ॥२१॥

मरीचये कलां प्रादादनन्यथाभाषये ।

भद्रामक्रिसेऽप्यच्छत्पुलस्त्याय हविर्धुवम् ॥२२॥

पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ।

रुमातिं चैव मृगवेऽप्यच्छद्दसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥२३॥

अधर्वणेऽद्दाच्छान्तिं यथा यज्ञो वितन्यते ।

विप्रर्षभान् कुतोद्गाहान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥

ततस्त श्रपयः धृषः कुतदारा निमन्य तम् ।

प्रातिष्ठन्नादिमापन्नाः स्वं स्वमाभिममन्लभम् ॥२५॥

स चावतीर्णं त्रियुगमाश्चाय विबुधर्षभम् ।

विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्य सममापत् ॥२६॥

अहो पापन्ममानानां निरये स्वैरमङ्गलैः ।

कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥२७॥

बहुजन्मविपक्ववत् सम्यग्योगसमाधिना ।

ब्रह्मं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥२८॥

स एव भगवानद्य हलन्तं नगण्य नः ।

गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पशुपोषणः ॥२९॥

स्त्रीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्थोऽसि मे गृहे ।

चिकीर्षुमगवान्ज्ञान भक्तानां मानवर्धनः ॥३०॥

तान्यव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।

यानि यानि च राघन्त स्वप्नानामरूपिणः ॥३१॥

त्वा श्रुतिभिस्तत्त्वबुद्धस्तथाद्या

सद्भाविवादार्हणपादपीठम् ।

पञ्चर्षिरामयथाऽवभाष

वीर्यभिया पूर्णमह प्रपद्य ॥३२॥

कदमजीने उनके आशानुसार मरीचि आदि प्रजापतियोंके साथ अपनी कन्याओंको विभिन्नपूर्वक विवाह कर दिया ॥२१॥

उन्होंने अपनी कला नामकी कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, अक्षा अत्रिराको और हविर्धु पुलस्त्यको समर्पण की ॥ २२ ॥ पुलहको उनके अक्षुरूप गति नामकी कन्या दी, कद्रुके साथ परम साष्ठी क्रियाकर विवाह किया, मृगुवीको क्याति और बसिष्ठवीको अरुन्धती समर्पण की ॥ २३ ॥ अधर्षा श्रुतिके शान्ति नामकी कन्या दी, जिससे यह-कर्मका विस्तार किया जाता है । कर्दमजीने उन विवाहित श्रुतियोंका उनकी पत्नियोंके सहित स्नान सत्कार किया ॥ २४ ॥ विदुरजी ! इस प्रकार विवाह हो जाने-पर वे सब श्रुति कर्मवीरकी आशा के अति आनन्दपूर्वक अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ २५ ॥

कर्दमजीने देखा कि उनके यहाँ साक्षात् देवाधिदेव श्रीहरिसे ही अवतार लिया है, तो वे एकान्तमें उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करते इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥ 'अहो ! अपने पापकर्मोंके कारण इस दुःकर्म संसारमें नाना प्रकारसे पीड़ित होते हुए पुरुषोंपर देवान् तो बहुत कष्ट बीतनपर प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ किन्तु बिनक स्वरूपको योगिजन अनेकों जन्मोंके साधनसे सिद्ध हुई सुदृढ़ समाधिके द्वारा एकान्तमें देखनेका प्रयत्न करते हैं, अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले वे ही श्रीहरि हम नियतअनुपूर्वके द्वारा हानबादी अपनी अवज्ञाकर कुछ भी विचार न कर आज हमारे घर अन्तीर्ण हुए हैं ॥ २८ ॥ आप बाह्यमें अपने भक्तोंका मान बढ़ानेवाले हैं । आपने अपने भक्तोंको सत्य करने का साधनयोगकर उपदेश करनेके लिये ही मेरे यहाँ अवतार लिया है ॥ २९ ॥ भगन् ! आप प्राज्ञरूपसे रहित हैं, आपका जो अतुल्य आति आत्यैविक रूप है, वही आपका योग है तथा जो मनुष्य-सांसारिक आपका भक्तोंको दीप लगने है, वे भी आपके कृपिकर प्रणीत होते हैं ॥ ३१ ॥ आपका पादपीठ तत्त्वज्ञानकी इच्छासे विद्वानोंद्वारा सर्वत्र बन्दनीय है तथा आप देवर्ष, ऋषय, यदा, हाम, वीर और श्री— इन छहों उच्चपति पूज्य हैं । मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ ३२ ॥

पर प्रधान पुरुष महान्तं

काल कविं त्रिहृतं लोकपालम् ।

आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं

स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

आ साभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रधानां

स्वपावतीर्षर्म्म उतासकाम ।

परिव्रजत्पदवीमासिताऽहं

चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः ॥३४॥

भीमभगवानुवाच

मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ।

अद्यावन्नि मया तुम्ह यदवोचमृतं मुने ॥३५॥

एतमेव जन्म लोकेऽसि सुसुषूणां दुराश्रयात् ।

प्रसम्पानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शने ॥३६॥

एष आत्मपर्योऽभ्यक्तो नष्ट कालेन भूयसा ।

सं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया सुतम् ॥३७॥

गच्छ काम मयाऽऽपृष्टो मयि संयुक्तकमणा ।

जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥३८॥

मामात्मानं स्वयज्जातिः सर्वभूतगुहाश्रयम् ।

आत्मन्येवात्मना दीक्ष्य विशोकाऽभयमृच्छसि ॥३९॥

मात्र आच्यारिमाकीं विद्यां क्षमनीं सर्वकर्मणाम् ।

वितरिष्ये यया चासौ मयं चावितरिष्यति ॥४०॥

मेत्रय उवाच

एव ममुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ।

दधिणीकृत्य त्वं प्रीतो वनमेव अगाम ह ॥४१॥

भगवन् ! आप परमेश हैं, सारी शक्तियाँ आपके बर्ण हैं, प्रकृति, पुरुष, महत्त्व, काल, त्रिविध अहङ्कार, सम्प्रलोक एवं लोकपालोंके रूपमें आप ही प्रकट हैं, ज आप सर्वज्ञ परमात्मा ही इस सारे प्रपञ्चको चेतनशक्ति द्वारा अपनेमें लीन कर लेते हैं । अतः इन सबसे परे मैं आप ही हूँ । मैं आप भगवान् कपिककी शरण लेता हूँ ॥ ३३ ॥ प्रभो ! आपकी कृपासे मैं तीनों जन्मोंमें मुक्त हो गया हूँ और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं अब मैं संन्यास-मार्गको ग्रहणकर आपका चित्तन करूँ हुए शोकरहित होकर बिचरूँगा । आप समस्त प्रजाओंमें स्वामी हैं, अतएव इसके लिये मैं आपकी आज्ञा मानता हूँ ॥ ३४ ॥

भीमभगवान्ने कहा—मुने ! बौद्धिक और भौतिक सब कर्मोंमें संसारक लिये मेरा कथन ही प्रमाण है । इसलिये मैं जो तुमसे कहा था कि मैं तुम्हारे यहाँ जन्म हूँ, उसे सत्य करनेके लिये ही मैंने यह अवतार लिया है ॥ ३५ ॥ इस लोकमें मेरा यह जन्म जिज्ञाशरितसे मुक्त होनेकी इच्छावाले मुनियोंके लिये आकर्षणनमें उपयोगी प्रकृति ब्रह्म तत्त्वोंका विश्लेषण करनेके लिये ही हुआ है ॥ ३६ ॥ आत्मज्ञानका यह सूक्ष्म मार्ग बहुत समयसे छुप्त हो गया है । इसे फिरसे प्रवर्तित करनेके लिये ही मैंने यह शरीर ग्रहण किया है—ऐसा जानो ॥ ३७ ॥ मुने ! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इच्छानुसार जाओ और अपने सम्पूर्ण कर्म मुझे अर्पण करते हुए दुर्जय शत्रुको जीतकर मोक्षपद प्राप्त करनेके लिये मेरा मग्नन करो ॥ ३८ ॥ मैं अर्पणकला और सम्पूर्ण जीवोंके अन्तःकरणोंमें रहने-वाला परमात्मा ही हूँ । अतः अब तुम विमुक्त मुखिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें मेरा साक्षात्कार कर लो, तब सब प्रकारके शोकोंसे छुटकर निर्भय पद (मोक्ष) प्राप्त कर लोगे ॥ ३९ ॥ मात्रा देवहूतिका भी मैं सम्पूर्ण कर्मोंसे छुटकारावाला आत्मज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह संसाररूप भयसे पार हो जायगी ॥ ४० ॥

भीमभगवन्ने कहते हैं—भगवान् कपिकके इस प्रकार कहनेपर प्रजापति कामजी उनकी परिकल्पना कर प्रसन्नतापूर्वक वनका चर गये ॥ ४१ ॥

यत्त म आम्बितो मौनमात्मैकशरणो मुनि ।
नि सङ्गो व्यचरत्सोगीमनगिरनिकेतनः ॥४२॥
मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसत्तः परम् ।
शुणायभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥४३॥
निरदंकिंतिनिमस्य निर्दन्ध समरक्खरक् ।
प्रत्यक्प्रशान्तभीर्धोरः प्रशान्तोर्मिरिषोदधि ॥४४॥
वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ।
परेण भक्तिभावन लब्धभारमा मुक्तबन्धनः ॥४५॥
आत्मानं सर्वमूठेषु भगवन्तमवस्थितम् ।
अपश्यत्सर्वमूठानि भगवत्पि आत्मनि ॥४६॥
इच्छाद्वैपविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ।
भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गति ॥४७॥

वहाँ बहिसामय संन्यासधमका पाठन करते हुए वे एकमात्र श्रीमगवान्की कारण ॥ गये तथा अग्नि और वाय्वमकर त्याग करके नि सङ्गभावे पृथ्वीपर विचरन लगे ॥ ४२ ॥ जो कर्मकारणसे अतीत है, सत्त्वादि गुणोंका प्रकाशक एव निर्गुण है और अनन्य भक्तिसे ही प्रत्यक्ष होता है, उस परमार्थमें उन्होंने अपना मन लगा दिया ॥ ४३ ॥ वे अर्धकार, ममता और सुख-दुःखदि द्वन्द्वोंसे दृष्टकर समदर्शी (मेदरहितसे रहित) हो, सबमें अपने आत्म को ही देखने लगे । उनकी बुद्धि अन्तर्मुख एवं शान्त हो गयी । उस समय धीर कर्मवी शान्त लहरोंवाले समुद्रक समान ज्ञान पवन लगे ॥ ४४ ॥ परम भक्ति भावके द्वारा सर्वान्तर्वापी सर्वज्ञ श्रीवासुदेवमें विचर स्थिर ॥ ज्ञानसे वे सारे बन्धनोंसे मुक्त हो गये ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण मूर्तोंमें अपने आत्मा श्रीमगवान्को और सम्पूर्ण मूर्तोंको आत्मस्वरूप श्रीहरिमें स्थित देखने लगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार इच्छा और द्वेषसे रहित, सर्वत्र समबुद्धि और भावब्रक्तिसे सम्पन्न होकर श्रीकर्मवीने भगवान्को परमद प्राप्त कर लिया ॥ ४७ ॥

इति श्रीभगवत् गते म्हापुराणे पारमहंस्यां संक्षिप्तायां तृतीयस्कन्ध
कौण्डिन्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

देवहूतिर्यत्र प्रश्न तथा भगवान् कपिलस्यैव भक्तियोगकी महिमाका यत्न

ज्ञानक उवाच

कपिलस्तत्त्वसत्पाठा भगवानात्ममायया ।
जात स्वयमव साक्षादामप्रशमय नृणाम् ॥ १ ॥
नैरास्य कर्मण पुमां बरिम्णः सर्वयोगिनाम् ।
विभूतो भूतदेवस्य भूरि स्पृणन्ति मज्जस ॥ २ ॥
यपदिषत्त भगवान् स्वच्छन्दयाऽऽत्ममायया ।
तानि मे भर्द्धानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥ ३ ॥

शामकजीन पूछा—सुन की ! तपोंकी संख्या करने-
वाले भगवान् कपिल माभात् अग्रन्मा नारायण होकर भी लोकोको व्यापकताका उपदेश करनेका क्रिय अपनी मायसे उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ मैं भगवान्को बहुत से कश्चित् सुन हूँ तथापि इन व्यापिप्रकार पुरुषभ्रष्ट करिउत्ती-
की कीर्तिका सुनते-सुनते मरी इन्द्रियों तम नहीं होती ॥ २ ॥ सुकथा स्वप्नत्र श्रीहरि अपनी योगपायाद्वारा मत्तोकी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके जा मे लीजए करने हैं, वे सभी कीर्तन करने लग्य हैं, जन आप मुझ से सभी सुन'इये, मुझ ठहरे सुननेमें बरी लडा है ॥ ३ ॥

सूत उवाच

द्वैपायनसखस्त्वेष मैत्रेयो भगवांस्तथा ।
प्रीहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिष्यां प्रचादित ॥ ४ ॥

मैत्रेय उवाच

पितरि प्रम्यितेऽरुण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया ।
तस्मिन् विन्दुसरेऽधास्तीन्द्रगवान् कपिलः किल ॥ ५ ॥
तमासीनमकर्मणं तत्त्वप्रामोददर्शनम् ।
स्वसुतं देवहत्याह भ्रातुः सस्मरती वधः ॥ ६ ॥

देवहूतित्याच

निर्विण्णा नितरां भूममसदिन्द्रियतपणात् ।
येन सम्भाम्भमानेन प्रपन्नान्धसमः प्रभो ॥ ७ ॥
तस्य त्व तमसाऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ।
सम्बुर्जन्मनामन्ते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥ ८ ॥
य आधो भगवान् पुष्पामीश्वरो वै भवान् किल ।
लोकस्य तमसान्धस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥ ९ ॥
अथ मे देव सम्मोहमपाकृषु स्वमहसि ।
योऽहमग्रहोऽहंममेधीत्येतस्मिन् योऽसितस्त्वया ॥ १० ॥

तं त्वा गताह धरणं धरण्य

समृन्धससारतरो कृटारम् ।

जिह्वासयाहं प्रकृतेः पूरुषस्य

नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥ ११ ॥

मैत्रेय उवाच

इति स्वमातुर्निरवधमीप्सित
निश्चम्य पुंतामपवर्णवर्धनम् ।

धिपामिनन्ध्यात्मवतां सतां गति

वर्भाप ईपरिस्मृतशोभिताननः ॥ १२ ॥

सुनजी कहते हैं—मुन । आपकी ही भौति न
विदुरम भी यह आत्मज्ञानविरामक प्रदत्त विषय, ते
धीन्यासनीक सखा भगवान् मैत्रेयजी प्रसन्न होकर त
प्रकार कहने लगे ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! पिताके वनमें पडे
जानेपर भगवान् कपिलजी मायाकर प्रिय करनेकी इच्छासे
उस विन्दुसर तीर्थमें रहने लगे ॥ ५ ॥ एक दिन
तत्त्वसमूहके पारदर्शी भगवान् कपिल कर्मकअपसे मिल
हो आसनपर विराजमान थे । उस समय ब्रह्मर्षि
कचर्षिके स्मरण करके देवहूतिने उनसे कहा ॥ ६ ॥

देवहूति बोली—भूमन् । प्रभो ! इन दुष्ट इन्द्रियोंकी
विरय-आलसासे मैं बहुत ऊब गयी हूँ और इनकी इच्छा
पूरी करते रहनेसे मैं घोर अज्ञानान्धकारमें पड़ी हुई
हूँ ॥ ७ ॥ अब आपकी कृपासे मेरी जन्मस्मरण
समाप्त हो चुकी है, इसीसे इस दुष्ट अज्ञानान्धकारसे
पार लगानेके लिये सुन्दर नेत्ररूप आप प्राप्त हुए
हैं ॥ ८ ॥ आप सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् यदि
पुरुष हैं तथा अज्ञानान्धकारसे कबे पुरुषोंके लिये नेत्र-
रूप सूर्यकी भौति उदित हुए हैं ॥ ९ ॥ देव ! इन
देह-मोह आदिमें जो मैं-मेरेपनका दुराग्रह होता है, वह
भी आपका ही कराया हुआ है, वस्तु अब आप मेरे इस
महामोहको दूर करिये ॥ १० ॥ आप अपने मर्त्यके
संसाररूप बन्धके लिये कुटारके समान हैं, मैं प्रकृति
और पुरुषका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे आप शरणगत-
कसकसी शरणमें आयी हूँ । आप महाव्रतकर्म जालमें
वालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, मैं आपको प्रणाम करती
हूँ ॥ ११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार माया ने देहभित्तियों
अपनी जो अमिष्याय प्रकट की, वह परम पवित्र और
योगोक्त योक्तमार्गमें अनुसृत उत्पन्न करमवासी थी, उसे
सुनकर आत्मज्ञ सत्पुरुषोंकी गति श्रीकपिलजी उसकी
मम-हीनता प्रशंसा करने लगे और फिर मुद्द मुसकामसे
सुशोभित मुखारविन्दसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १२ ॥

भीमशानुवाच

योग आध्यात्मिक पुंसां मतो निःशयसाधये।
 अत्यन्तोपरतिर्यग्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥
 समिमं ते प्रवक्ष्यामि यमयोच पुरानवे।
 श्रुषीणां भोक्तृकामानां योगं सर्वाङ्गनैपुणम् ॥१४॥
 चेतः स्वस्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
 गुणेषु सक्त बन्धाय रवं वा पुंसि मुक्तये ॥१५॥
 अहंमाभिमानोत्थैः कामलाभादिभिर्मलैः।
 भीवं यदा मनः शुद्धमदुःस्वमसुखं समम् ॥१६॥
 तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम्।
 निरन्तरं स्वर्गज्योतिरिगिमानमखण्डितम् ॥१७॥
 ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना।
 परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च इतोऽसम् ॥१८॥
 न युज्यमानया भक्त्या भगवत्पत्नित्वात्मनि।
 सदृशोऽस्ति शिवः पद्मा यागिनां ब्रह्मसिद्धय ॥१९॥
 प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
 स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥२०॥
 तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
 अमातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणा ॥२१॥
 मय्यनन्यन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति य इदाम्।
 मत्कृतं त्यक्तकर्मोणस्त्यक्तस्वजनबान्धवा ॥२२॥
 मदाभया कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च।
 तपन्ति विविधास्ताया नैतां मद्गतचतसः ॥२३॥

भगवान् कपिलने कहा—माता ! यह मरा निश्चय है कि अध्यात्मयोग ही मनुष्योंके आत्यन्तिक बन्धनका मुख्य साधन है, अहाँ दुःख और सुखकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है ॥ १३ ॥ साध्वि ! सब अज्ञोत्तरे सम्पन्न उस योगका मैंने पहले नारदादि श्रुतिर्योगीक सामने, उनकी सुननेकी इच्छा होनेपर, वर्णन किया था । वही अब मैं आपको सुनाता हूँ ॥ १४ ॥

इस जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है । विरपोंमें आसक्त होनेपर यह बन्धनका हेतु होता है और परमात्मामें अनुरक्त होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है ॥ १५ ॥ जिस समय यह मन में और मेरेपनके कारण होनेवाले काम-चोम आदि विकारोंसे मुक्त एवं शुद्ध हो जाता है, उस समय यह सुख-दुःखसे छूटकर सम अवस्थामें आ जाता है ॥ १६ ॥ तब जीव अपने ज्ञान वैराग्य और भक्तियुक्त पुरुषसे आत्मार्थी प्रवृत्तिसे परे, एकमात्र (अद्वितीय), मेद रहित, स्वयंप्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन (सुख-दुःखशून्य) देवता है तथा प्रवृत्तिको शक्तिहीन अनुभव करता है ॥ १७-१८ ॥ योगियोंके किये भगवत्प्राप्तिके निमित्त सर्वात्मा श्रीहरिके प्रति की हुई भक्ति के समान और कोई मङ्गलमय मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ निकेकीजन सज्ञ या आसक्तिको ही आत्मार्थ अष्टेष बन्धन मानते हैं, किन्तु वही सज्ञ या आसक्ति जब सर्वा—महापुरुषोंके प्रति हो जाती है, तो मोक्षका सुखा द्वार बन जाती है ॥ २० ॥

जो लोग सहनशील, दयालु समस्त दृष्टारिषोंके अकारण हिय, किरायेके प्रति भी शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्त, सरलस्वभाव और सत्पुरुषोंके सम्मान करनेवाले होते हैं, जो मुझमें अनन्यभावसे सुदृढ प्रेम करते हैं, मेरे किये सत्पूज्य कर्म तथा अपने मनो-सम्बन्धियोंके भी त्याग देते हैं और मेरे परायण रहकर मेरी पत्ति कथाओंका श्रवण, कीर्तन करते हैं तथा मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं—उन अष्टोत्तर संसारक तरह-तरहके तप कर्मादि का नहीं पहुँचाते हैं ॥ २१-२३ ॥ साध्वि !

त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविषयिणिताः ।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्याः सङ्गदोषहरा हि ते ॥२४॥

सर्वा प्रसङ्गान्मम वीर्यसविदो
भवन्ति हृत्स्पर्शसायनाः कथाः ।

तत्प्रापणादाश्वपर्ववर्मनि
भद्रा रतिमकिरनुक्रमिष्यति ॥२५॥

भक्त्या पुमाञ्जलविराग ऐन्द्रियाद्
दृष्टान्मान्मद्रचनानुचिन्तया ।

चित्तस्य यत्प्रो ब्रह्मण योगयुक्तो
यतिरप्यते श्रुजुभिर्योगमार्गे ॥२६॥

असेवयाय प्रकृतेर्गुणानां
ज्ञानेन वैराग्यविजम्भितेन ।

योगेन मयर्पितया च भक्त्या
मां प्रत्यगात्मानमिहावकुचे ॥२७॥

देवहूतित्वाच्च

काचित्स्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गाधरा ।

यया पद ते निर्वाणमञ्जसान्वाभवा अहम् ॥२८॥

यो योगा भगवद्वाणो निर्वाणात्मस्त्वय्योदितः ।

कीदृशः कति चाज्ञानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥२९॥

तदेतन्मे विज्ञानीहि यथाहं मन्दधीरि ।

सुखं बुद्धयम् दुर्बोध्यं योपा भवदनुग्रहात् ॥३०॥

मैत्रय उवाच

विदित्स्वार्थं कपिलो मातुरित्थ

आतस्नेहो यत्र तन्वाभिजातः ।

तत्त्वाम्नाय यत्प्रवदन्ति सांख्य

प्रोवाच नै भक्तिवितानयोगम् ॥३१॥

ऐसे-ऐसे सर्वसङ्गपरित्यागी महापुरुष ही साधु हों
तुम्हें उन्हींके सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये, व
वे आसक्तिसे उत्पन्न सभी दोषोंको हर लें
हैं ॥ २४ ॥ सत्पुरुषोंके समग्रमते मेरे परम
यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कर्णोंको
छाननाली कयाँ होती है । उनका सेवन करनेसे
ही मोक्षमार्गमें भद्रा, प्रेम और भक्ति का प्रवेश नि
होगा ॥ २५ ॥ फिर मेरी सृष्टि आदि बीज
चिन्तन करनेसे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा भौतिक
पारमैकिक सुखोंमें धारण हो जानेपर मनुष्य सत्त्वान
पूर्वक योगके भक्तिप्रधान सरल उपायोंसे समा
होकर मनोनिग्रहक स्थिती प्राप्त करेगा ॥ २६ ॥
प्रकार प्रकृतिके गुणोंसे उत्पन्न हुए शब्दादि विषयों
त्याग करनेसे, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्र
की हुई सुदृढ़ भक्तिसे मनुष्य मुक्त अपने अन्तरात्मा
इस देहमें ही प्राप्त कर लेता है ॥ २७ ॥

देवहूतिले कहा—भगवन् ! आपकी समुचित मरि
का स्वरूप क्या है ? और मेरी-जैसी अवलम्बकों कि
कैसी भक्ति ठीक है, जिससे कि मैं सहजमें ही आप
निर्वाणपदको प्राप्त कर सकूँ ? ॥ २८ ॥ निर्वाणस्वरूप
प्रमो ! जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान होता है और जो स्वयं
को बचनेवाले भावक समान भगवान्की प्राप्ति कराने
वाला है, वह आपका कहा हुआ योग कैसा है और
उसके कितने वर्ण हैं ? ॥ २९ ॥ हरे ! यह सब आप
मुझे इस प्रकार समझाइये जिससे कि आपकी कृपासे
मैं मन्दमति कीजाति भी इस दुर्बोध विषयको सुगमसे
समझ सकूँ ॥ ३० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—किदुरनी ! जिसके शरीरसे
उन्हींके स्वयं अम किया था, उस अपनी मर्यादा देख
अभिप्राय जानकर कपिछात्रीके हृदयमें स्नेह उमड़ आया
और उन्हींमें प्रकृति आदि तत्त्वोंका निरूपण करनेवाले
शास्त्रों,जिसे सांख्य कहते हैं, उपदेश किया । साथ ही
भक्ति-वितरण एवं योगका भी वर्णन किया ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच

देवानां गुणलिङ्गानामनुभविष्कर्मणाम् ।
सर्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥३२॥
अनिमिषा भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयस्याशु या कोशं निर्गौर्यमनलो यथा ॥३३॥

नैकास्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्

मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।

येऽन्योन्यसो भागवता प्रसन्न

समाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥३४॥

पश्यति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्त

प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।

रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि

सार्कं वार्कं स्पृहयीषां वदन्ति ॥३५॥

वर्ददर्शनीयावयवैरुदार

विलासहासेश्रितवामदूर्कः ।

इवात्मनो इवप्राणांश्च भक्ति-

रनिष्ठतो मे गतिमर्षी प्रयुक्ते ॥३६॥

अथो विभूर्तिं मम मायाविनस्ता

मैश्वर्यमटाङ्गमनुग्रहप्रदम् ।

भिर्यं भगवतीं वास्पृहयन्ति भर्ता

परस्व मे तेऽश्नुषते तु साके ॥३७॥

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे

न ह्स्पर्शन्ति ना मेऽनिमिषा लुप्तिहेतिः ।

यपामहं प्रिय आत्मा सुतश्च

सगता गुरुः सुहृदा दैवमिष्टम् ॥३८॥

श्रीभगवान्मे कहा—माता । जिसका चित्त एकमात्र भगवान्में ही लया गया है, ऐसे मनुष्यकी वेद विहित कर्ममें लगी हुई तथा विपरीत ज्ञान करनेवाली (कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय—शेनों प्रकारकी) इन्द्रियोंकी जो सत्त्वमूर्ति श्रीहरिके प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है, वही भगवान्की अर्हत्तुकी भक्ति है । यह मुक्तिसे भी बढ़कर है, क्योंकि जठरामल जिस प्रकार स्वायं हुए अन्नका पचाता है, उसी प्रकार यह भी कर्ममत्कारों के मकारूप छिन्नशरीरको तत्काल मस कर देती है ॥ ३२ ३३ ॥ मेरी चरणसेवामें प्रीति रखनेवाले और मेरी ही प्रसन्नताके डिये समस्त कष्ट करनेवाले जिनका ही बढ़मागी भक्त, जो एक दूसरेसे मिश्रकर प्रेमपूर्वक मेरे ही पराकर्मकी चर्चा किया करते हैं, मेरे साथ एवमेव (सायुष्यमोक्ष) की भी इच्छा नहीं करते ॥ ३४ ॥ मा । वे साधुजन अरुण भयन एवं मनोहर मुखारविन्दसे युक्त मेरे परम सुन्दर और वरदायक दिव्य रूपोंकी शोफी करते हैं, और उनके साथ सप्रेम सम्भाषण भी करते हैं, जिसके डिये बड़े बड़े तपस्वी भी व्याधायित रहते हैं ॥ ३५ ॥ दशनीय अङ्ग-मत्परा, उदार हास-विहास, मनोहर चितवन और सुमधुर वाणीसे युक्त मेरे उन रूपोंकी माधुरीमें उनका मन और इन्द्रियाँ फँस जाती हैं । ऐसी मेरी भक्ति न चाहनपर भी उन्हें परमदकी प्राप्ति करा देती है ॥ ३६ ॥ अविद्याकी निवृत्ति हो जानपर यद्यपि वे मुझ मायापनिये सत्पादि लोकोंकी भोगसम्पत्ति, भक्तिकी प्रवृत्तिके पश्चात् स्वयं प्राप्त होनेवाली अष्ट सिद्धि अथवा वैकुण्ठलोकके स्थावरीय एवमकी भी इच्छा नहीं करते, तथापि मेरे धाममें पहुँचनपर उन्हें ये सब विभूतियाँ स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं ॥ ३७ ॥ जिनका एकमात्र मैं ही प्रिय आत्मा, पुत्र, मित्र गुरु, सुहृद् और इष्टव्य हूँ—वे मेरे ही आश्रयमें रहनेवाले भक्तजन पान्तिमय बहुव्यथायमें पहुँचकर किसी प्रकार भी इन स्थि भागोंसे रहित नहीं होते और न उन्हें मेरा काञ्चक ही प्रसन्न सकता है ॥ ३८ ॥

इमं लोकं तथैवाप्तुमात्मनस्तुभयायिनम् ।

आत्मानमनु यं वेद ये रायः पशवो गृहाः ॥३९॥

विमुञ्च सर्वानन्यांश्च मामेष विषयतोऽस्वम् ।

भक्षस्वनन्यया भक्षया तान्मृत्पोरसिंपारये ॥४०॥

नान्यत्र मङ्गलवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ।

आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥४१॥

मङ्गयाद्वाति वातोऽयं क्षर्यस्तपति मङ्गयात् ।

वर्षतीन्द्रो दहत्यभिर्मृत्पुष्करति मङ्गयात् ॥४२॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिन ।

क्षेमाय पादमूलं मे प्रविश्यन्त्यङ्गुलीयम् ॥४३॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निःशेषसौदयः ।

तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥४४॥

मातामी ! जो लोग इसलोक, परलोक और इन दोनों लोकोंमें साथ जानेवाले वासनामय मित्रदेशों तथा शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले जो धन, पशु एवं गृह आदि पदार्थ हैं, उन सबको और अन्योन्य संयोगों भी छोड़कर अनन्य भक्तिसे सब प्रकार भेंट ही मन करते हैं — उन्हें मैं मृत्पुरुष संसारसागरसे पार कर देता हूँ ॥ ३९ ४० ॥ मैं साक्षात् भगवान् हूँ, प्रकृति और पुरुष्का भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणियोंका वात्सल्य । मेरे सिवा और किसीका आश्रय लेनेसे मृत्पुरुष महामयसे छुटकारा नहीं मिल सकता ॥ ४१ ॥ मेरे भयसे यह वायु चकती है, मेरे भयसे सूर्य लपट है, मेरे भयसे इन्द्र वर्षा करता और अग्नि जलती है तथा मेरे ही भयसे मृत्यु अपने कर्मात्मे प्रवृत्त होता है ॥ ४२ ॥ योगिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोंके द्वारा शान्ति प्राप्त करनेके लिये मेरे निर्मय करणक्रमोंका आश्रय लेते हैं ॥ ४३ ॥ संसारमें मनुष्योंके लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें अङ्गक स्थिर हो जाय ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे कौण्डिल्योपाख्याने

पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

महावाक् मित्र-भिक्ष तत्त्वोक्ती उत्पत्तिक्रमवर्णन

श्रीभगवानुवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वज्ञानं लक्षणं पृथक् ।

यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥

ज्ञानं नि भयसार्थाय पुरुषस्यात्मवर्धनम् ।

यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिमेदनम् ॥ २ ॥

श्रीभगवान्ने कहता—मातामी ! अब मैं तुम्हें प्रकृति आदि सब तत्त्वोंके अलग-अलग लक्षण बतलाता हूँ इन्हें जानकर मनुष्य प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ आत्मवर्धनरूप ज्ञान ही पुरुषको मोक्षका कारण है और वही उसकी अहङ्काररूप इन्द्रियप्रतियोग सेवन करनेवाला है, ऐसा पण्डितजन कहते हैं । उस ज्ञानका मैं तुम्हारे आगे वर्णन करता

१ मा पा — रमिष्यते । २ मा पा — तत् । ३ मा पा — बुतोभवाः । ४ प्राचीन प्रति

‘असिद्धोदयवर्ते’ इत्यादि भय नहीं है ।

अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः पर ।

प्रत्यग्धामा मूर्त्य न्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥

स एष प्रकृतिं स्रष्टुमां देवीं गुणमयीं विद्मः ।

यद्वन्द्व्यवोपगतामभ्यपद्यत सीलया ॥ ४ ॥

गुणैर्विधिनाः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रज्ञाः ।

विलोक्य ब्रह्मदे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥

एवं पराभिमानेन कर्तृत्वं प्रकृते पुमान् ।

कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥ ६ ॥

तदस्य संसृतिर्विन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम् ।

भवत्यकर्तुरीशस्य साधिगो निर्द्वारभन ॥ ७ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे कारण प्रकृतिं विदुः ।

मोक्षत्वे सुखदुःस्नानां पुरुषं प्रकृतः परम् ॥ ८ ॥

दण्डविरुद्धाच्च

प्रकृते पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ।

ब्रूहि कारणयोरस्य सदस्य यदात्मकम् ॥ ९ ॥

भीमगङ्गानुवाच

यस्यैव गुणमभ्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।

प्रधानं प्रकृतिं प्रादुरविशेषं विशेषवत् ॥ १० ॥

पञ्चभिः पञ्चभिर्मित्रं चतुर्भिर्द्विगमिस्तथा ।

एतच्चतुर्विगुणिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥ ११ ॥

महामृतानि पञ्चैव मृगापाऽग्निमरुद्भयः ।

तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धानि मतानि ॥ १२ ॥

हैं ॥ २ ॥ यह सारा जगत् जिससे म्यास होकर प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है । वह अनादि, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, अन्त वरणमें स्फुरित होनवाला और स्वयंप्रकाश है ॥ ३ ॥ उस सम्भ्यापक पुरुषने अपन पास कीज निवासपूर्णक आयी हुई अभ्यक्त और त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको स्वेच्छासे स्वीकार कर लिया ॥ ४ ॥ स्वीकारपरायण प्रवृत्ति अपने सत्त्वादि गुणोंद्वारा उन्नीके अनुरूप प्रजाकी सृष्टि करने लगी, यह देख पुरुष ज्ञानको आच्छादित करनेवाली उसकी आवरणशक्तिके मोहित हो गया, अपने स्वरूपको भूल गया ॥ ५ ॥ इस प्रकार अपनेसे भिन्न प्रकृतिको ही अपना स्वरूप समझ लेनेसे पुरुष प्रवृत्ति के गुणोंद्वारा धिये जानेवाले कर्ममें अपनको ही कर्ता मानने लगता है ॥ ६ ॥ इस कर्तृत्वमिमानसे ही अकर्ता स्वाधीन, साक्षी और आनन्दस्वरूप पुरुषको जन्म-मृत्युरूप बन्धन एवं परतन्त्रताकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ कायरूप शरीर, कारणरूप इन्द्रिय तथा कर्तारूप इन्द्रियाधिष्ठान देव-ताओंमें पुरुष जो अपनपनका आरोप कर रक्ता है, उसमें पण्डितवन प्रकृतिको ही कारण मानते हैं तथा शास्त्रमें प्रवृत्तिसे परे होकर भी जो प्रवृत्तिये हाँ रखा है, उस पुरुषका सुख-दुःखोंके भोगनमें कारण मानते हैं ॥ ८ ॥

यद्यकृतिके कदा—पुरुषोत्तम । ॥ विश्वं स्थूल- सूक्ष्म काय त्रिके स्वरूप है तथा जो इसका कारण है उस प्रवृत्ति और पुरुषका लक्षण भी आप मुझसे कहिये ॥ ९ ॥

भीमगङ्गानुवाचे कदा—जो त्रिगुणात्मक अभ्यक्त, नित्य और पर्यवहारणरूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्माका आधर है, उस प्रधान नामक तत्त्वका ही प्रवृत्ति कहने में ॥ १० ॥ पौष महामृत, पौष तन्मात्रा, आर अन्न कारण और अन्न इन्द्रिय—इन चारोंही तत्त्वोंका समूहका विज्ञान प्राग प्रवृत्तिका काय मानने में ॥ ११ ॥ पृथ्वी जल, तेज वायु और आकाश—य पौष महामृत हैं तथा अन्न तथा अन्न और वायु—ये पौष तन्मात्र मान गये हैं ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्द्वयसननासिकाः ।

धाकरो वरुणो मद् पापुर्दक्षम उच्यते ॥१३॥

मनो बुद्धिरहङ्कारविषमिभ्यन्तरात्मकम् ।

चतुर्धा लक्ष्यते भेदो ज्ञेया लक्षणरूपया ॥१४॥

एतत्त्वानेव सङ्ख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह ।

सभिवेशो मया प्रोक्तो यः काठः पञ्चविंशकः ॥१५॥

प्रमत्त पौरुष ब्राह्मः कलमेके यतो भयम् ।

अहङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुष ॥१६॥

प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ।

चेष्टा यतः स भगवान् फाल इत्युपलक्षितः ॥१७॥

अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ।

समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥१८॥

दैवात्सुमितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ।

आधत्त वीर्यं साधत्त महत्तत्त्वं हिरण्यमयम् ॥१९॥

विश्वमात्ममगर्तं व्यञ्जन् कूटम्बो जगद्गुरुरः ।

स्वतेजसापिबत्तीक्ष्मात्मप्रस्थापनं समा ॥२०॥

यसत्सत्त्वगुणं स्वच्छं ज्ञानं भगवतः पदम् ।

यदाहुर्वासुदेवास्म्यं चित्तं तमहदात्मकम् ॥२१॥

श्रोत्र, त्वचा, चक्षुः, रसना, नासिका, वाक्, पणिः, पाद, उपस्थ और पायु—य दश इन्द्रियाँ हैं ॥ १३ ॥

मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार—इन चारके रूपमें एक ही अन्त ब्रह्मण अपनी सङ्ख्या, निश्चय, चित्त और अभिमानरूप्या यहाँ प्रकटकी वृत्तियोंसे ब्रह्मि होय है ॥ १४ ॥

इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने सगुण ब्रह्मके सन्निवेशस्थान इन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या बतलायी है । इनके सिवा जो कान है, वह पचीसवा तत्त्व है ॥ १५ ॥ कुछ लोग कालको पुरुषसे भिन्न तत्त्व में मानकर पुरुषका प्रमाण धर्यात् ईश्वरकी वेदात्मक गणिणी शक्ति बताते हैं । जिससे मायाके कर्तृरूप देहादिमें आत्मत्त्वका अभिमान करने के अहङ्कारसे ब्रह्म और अपनेको कर्ता माननेवाले जीवको निरन्तर बन्धन रहता है ॥ १६ ॥

मनुष्य । जिसकी प्रेरणासे गुणोंकी साम्यावस्थारूप निर्विशेष प्रकृतिमें तत्त्व उत्पन्न होती है, वास्तवमें वे पुरुषरूप भगवान् ही वास्तव कहें जाते हैं ॥ १७ ॥

इस प्रकार जो कलमे मायाके द्वारा सब प्राणियोंके भीतर जीवकर्मसे और बाहर कालरूपसे व्याप्त है, व भगवान् ही पचीसवा तत्त्व हैं ॥ १८ ॥

जब परमपुरुष परमात्माने जीवोंको अहङ्कारसे बन्धन की प्राप्ति हुई सम्पूर्ण जीवोंकी उत्पत्तिस्थानरूपा अपनी मायामें विच्छिन्नितरूप वीर्य स्थापित किया, तो उससे तेजीमय मूच्छन् उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥

क्यों किसेपहिले रहित तथा जगत्के अङ्गुररूप इस मूच्छन्ने अपनेमें स्थित विश्वको प्रकट करनेके छिये अपने सरूपको आत्मदिग्गज करनेवाले प्रलयकाशील अन्धकारको अपने ही तेजसे पी लिया ॥ २० ॥

जो सत्त्वगुणमय, लक्ष्म, शांति और मगवान्की सगुणविक्रम स्थानरूप चित्त है, वही महत्तत्त्व है और उसीको वासुदेव कहते हैं ॥ २१ ॥ इस प्रकार

१ प्रा पा —प्रधानं पुरुषं प्रा ।

• जिसे अन्मात्मामें चित्त कहते हैं उसीको अधिभूतमें मूच्छन् कहा जाता है । चित्तमें अभिप्रायता क्षेत्र और उपास्यदेव वासुदेव है । इसी प्रकार अहङ्कारमें अधिप्रायता ब्रह्म और उपास्यदेव अहङ्कार है बुद्धिमें अधिप्रायता प्रज्ञा और उपास्यदेव प्रद्युम्न है तथा मनमें अधिप्रायता व्यङ्ग्यमा और उपास्यदेव अविज्ञा है ।

स्वच्छत्वमविकारित्व शान्तत्वमिति चेत्तसः ।

वृत्तिर्भिलक्षणं प्रोक्त यथापां प्रकृतिः परा ॥२२॥

महत्त्वादिद्विर्वाणाद्भगवद्दीर्घसम्भवात् ।

क्रियाशक्तिरहङ्कारस्त्रिविधः समपद्यत ॥२३॥

वैकारिकस्तैजस्य तामसश्च यतो भवः ।

मनसमन्त्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥२४॥

सहस्रधिरसं साक्षात्तमनन्त प्रचर्षते ।

सङ्कर्षणात्म्यं पुरुषं सूतेन्द्रियमनोमयम् ॥२५॥

कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ।

शान्तयोरविवृत्तत्वमिति वा स्यादहङ्कृतेः ॥२६॥

वैकारिकादिद्विर्वाणान्मनस्तत्त्वमवायत ।

मत्सङ्कल्पविकल्पस्याभ्यां वर्तते कौमसम्भव ॥२७॥

यद्विदुषानिरुद्धागम्य हृषीकाणामभीश्वरम् ।

धारादेन्नीवरदयाम सरागम्य योगिमि ध्वनः ॥२८॥

तैजसात्तु विकुर्याणात् बुद्धितन्त्रममूंसति ।

द्रुम्पस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः ॥२९॥

संशयाऽथ विपर्ययो निश्चयः स्मृतिरिव च ।

म्याव इत्युच्यत पुदेर्लक्षणं वृत्तित्त्वं पृथक् ॥३०॥

तं प्रमानीन्द्रियाण्यव क्रियाज्ञानविभागशः ।

प्राणसहि क्रिया शक्तिर्बुद्धिर्ज्ञानशक्तिरा ॥३१॥

पृथ्वी आदि कस्य पदार्थाक सत्तासे पूर्व जस अपनी साम्याविक (फेम तरङ्गादिरहित) अवस्थामे अव्यक्त स्वच्छ, विकाररहस्य एवं शास्य होता है, उसी प्रकार अपनी साम्याविकी अवस्थाकी दृष्टिसे स्वच्छत्व, अवि कारित्व और शान्तत्व ही वृत्तियोंसहित चित्तका लक्षण कहा गया है ॥ २२ ॥ तदनन्तर भगवान्की दीर्घरूप चित्-शक्तिसे उत्पन्न हुए महत्त्वके विद्वत् होनेपर उससे क्रियाशक्तिप्रधान अहङ्कार उत्पन्न हुआ । यह वैकारिक, तैजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है । उसीसे कमश मन, इन्द्रियों और पञ्चमहामूर्तोंकी उत्पत्ति होती है ॥ २३ २४ ॥ इस मूल, इन्द्रिय और मनरूप अहङ्कारको ही पण्डितजन साक्षात् 'सङ्कर्षण' नामक सहस्र सिरवाले अनन्तदेव कहते हैं ॥ २५ ॥ इस अहङ्कारका देवतारूपसे कर्तृत्व, इन्द्रियरूपसे करणत्व और पञ्चमूर्तरूपसे कायत्व लक्षण है तथा सत्त्वादि गुणोंके सम्बन्धसे शास्यत्व, धोरत्व और मूलत्व भी इसीके लक्षण हैं ॥ २६ ॥ उपर्युक्त तीन प्रकारके अहङ्कारमेंसे वैकारिक अहङ्कारके विद्वत् होनेपर उससे मन हुआ, जिसका सङ्कल्प-विकल्पोंसे ज्ञानमूर्तोंकी उत्पत्ति होती है ॥ २७ ॥ यह मनस्त्व ही इन्द्रियोंके अधिगता 'अनिर्द्वन्द्व' क नामसे प्रसिद्ध है । यागिजन शरत्कालीन नीलकमण्डक समान दयाम वर्णवाले इस अनिर्द्वन्द्वकी शान्त गर्ज मनका बर्षाभूत फटक आराधना करते हैं ॥ २८ ॥ सावि । तिर तैजस अहङ्कारमें विकार होनेपर उससे बुद्धिपद उत्पन्न हुआ । वस्तुका स्फुरणरूप विज्ञान और इन्द्रियोंके व्यापारमें सहायक होना—पदार्थाक विधाय ज्ञान कराना—ये बुद्धिके कार्य हैं ॥ २९ ॥ वृत्तियोंके भेदसे संशय, विषय (विपर्यय ज्ञान), निश्चय, स्मृति और मित्रा भी बुद्धिक ही लक्षण हैं । यह बुद्धिपद ही 'प्रपुनः' है ॥ ३० ॥ इन्द्रियों भी तैजस अहङ्कारका ही कार्य हैं । कर्म और ज्ञानके विभागे मन कर्मन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दा भेद है । इनमें कम प्राणकी गति है और ज्ञान बुद्धिकी ॥ ३१ ॥

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं स्वर्गप्रसननासिकाः ।

वाक्श्रोत्रं चक्षुः पापुर्दक्षिण उच्यते ॥१३॥

मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम् ।

चतुर्धा लक्ष्यते मेदो हृत्पा लक्षणरूपया ॥१४॥

एतावानेव सङ्ख्यातो मन्त्राः सगुणस्य ह ।

सखिवेशो मया प्रोक्तो यः काल एव विंशत्यङ्गः ॥१५॥

प्रमांश्च पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो मयम् ।

महङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुष ॥१६॥

प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानसि ।

चेष्टा यव स भगवान् काल इत्युपलक्षितः ॥१७॥

अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ।

समचेत्येव सत्त्वानां भगवानात्ममयाया ॥१८॥

दैवाश्छुमितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ।

आभक्तं भीर्यं साधुतं महत्तत्त्वं हिरण्यमयम् ॥१९॥

विश्वमात्मगतं व्यञ्जनं कूटस्थो जगदङ्कुरः ।

स्वतेजसापिबन्धीवमात्मप्रस्थापनं तमः ॥२०॥

यत्तत्सत्त्वगुण स्वच्छं शान्तं मगधतः पदम् ।

यदाहुर्वसुदेवाग्र्यं पितृं तमहदात्मकम् ॥२१॥

श्रोत्र, त्वचा, चक्षुः, रसना, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और पायु—ये दस इन्द्रियाँ हैं ॥ १३ ॥

मन, बुद्धि, चित और अहङ्कार—इन चारके करने एक ही अन्त करण अपनी सङ्कल्प, निश्चय, चिन्ता और अभिमानरूपा चार प्रकारकी वृत्तियोंसे उद्भूत होते हैं ॥ १४ ॥ इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषने सगुण प्रसक्त सन्निवेशस्थान इन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या बतायी है । इनके सिवा जो कुछ है, वह पचीसों तत्त्व हैं ॥ १५ ॥ कुछ लोग कहते हैं पुरुषने मन्त्र तत्त्व न मानकर पुरुषका प्रमाण वर्णार्थ ईश्वरकी स्वर-कारिणी शक्ति बताते हैं । जिससे मायाके कार्यरूप देहादिमें वास्तविकता अभिमान करके अहङ्कारसे उद्भूत और करनेको कर्ता माननेवाले जीवको निरन्तर स्वप्ना रहता है ॥ १६ ॥ मनुष्य । जिनकी प्रेमा-से गुणोंकी साम्यावस्थारूप निर्विशेष प्रकृतिमें गति उत्पन्न होती है, वास्तवमें वे पुरुषरूप मानान ही 'काल' कहे जाते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार जो कभी मायाके द्वारा सब प्राणियोंके भीतर जीवरूपसे बँधे बाहर काव्यरूपसे ब्याप्त हैं, वे मायावान् ही पचीसों तत्त्व हैं ॥ १८ ॥

जब परमपुरुष परममाने जीवोंके अहङ्कार को प्राप्त हुई सम्पूर्ण जीवोंकी उत्पत्तिस्थानरूपा कर्मों मायामें विच्छिन्नरूप भीर्य स्थापित किया, तो उससे तेजोमय महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ व्यभिचारादिसे रहित तथा जगतके अङ्कुररूप इस महत्तत्त्वने करनेमें स्थित विषयको प्रकट करनेके लिये अपने अहङ्कारको आच्छादित करनेवाले प्रकृष्टकाशीन अन्धकारको अपने ही तेजसे दी लिया ॥ २० ॥

जो सत्त्वगुणमय सच्छ, शान्त और मानवकी सफ़लभिक्षा स्मरणरूप चित है, वही महत्तत्त्व है और उसीकी व्याप्तिदेव कहते हैं ॥ २१ ॥ जिस प्रकार

१ प्रा पा—प्रधानं पुरुषं मा ।

• जिन अङ्गारामें चित कहते हैं उसीसे अभिप्रायमें महत्तत्त्व कहा जाता है । चितमें अभिप्राय 'व्यापक' और उपस्थदेव 'पातृ' है । इसी प्रकार अहङ्कारमें अभिप्राय 'कर्ता' और उपस्थदेव 'अहङ्कार' है । बुद्धिमें अभिप्राय 'प्रमाण' और उपस्थदेव 'प्रमाण' है तथा मनमें अभिप्राय 'अभिमान' और उपस्थदेव 'अभिमान' है ।

स्वच्छत्वमविकारित्वं शान्तत्वमिति चेत्तस ।

वृत्तिर्मिलेषण मोक्तं यथापां प्रकृति परा ॥२२॥

महत्त्वादिबुद्ध्यान्मनसस्तत्त्वमभावात् ।

क्रियाशक्तिरहङ्कारस्त्रिविधः समपद्यत ॥२३॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ।

मनसश्चन्द्रियाणां च मूढानां महतामपि ॥२४॥

सहस्राक्षिरम साक्षाद्यमनन्तं प्रचर्षते ।

सङ्कर्षणात्म्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥२५॥

कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ।

शान्तधारविमूढत्वमिति वा स्वादृक्कृतेः ॥२६॥

वैकारिकमद्विबुद्ध्यान्मनस्तत्त्वमजायत ।

यत्सङ्कल्पविकल्पान्मां वर्तते कौमसम्भवः ॥२७॥

यदिदुस्मनिरुद्धात्म्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ।

क्षारवेन्दीवरदयाम सराज्य योगिभि र्जनैः ॥२८॥

तैजसात्तु त्रिकुर्वाणात् बुद्धितत्त्वमभूत्सति ।

द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रह ॥२९॥

संज्ञयाऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरथ च ।

स्वाप इत्थुभ्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तिर्युथक् ॥३०॥

तैजसानिन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागश्च ।

प्राणसहि क्रिया शक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिरिति ॥३१॥

पृथ्वी आदि अन्य पदार्थोंके सम्मिलित पूर्व जल अपनी सामानिक (पेन तरङ्गादिरहित) अवस्थामें क्षणन्त स्वच्छ, विकाररहित एवं शान्त होता है, उसी प्रकार अपनी सामानिकी अवस्थाकी दृष्टिसे स्वच्छत्व, अवि-
कारित्व और शान्तत्व ही वृत्तियोंसहित चित्तका लक्षण कहा गया है ॥ २२ ॥ तदनन्तर भगवान्की वीर्यरूप चित्-शक्तिसे उत्पन्न हुए महत्त्वके विज्ञान होनेपर उससे क्रियाशक्तिप्रधान अहङ्कार उत्पन्न हुआ । यह वैकारिक, तैजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है । उसीसे कमल मन, इन्द्रियों और पञ्चमहामूर्तियोंकी उत्पत्ति हुई है ॥ २३ २४ ॥ इस मूल, इन्द्रिय और मनरूप अहङ्कारको पञ्चितजन साक्षात् 'सङ्कर्षण' नामक सहस्र सिरवाले बनन्तद्वय कहते हैं ॥ २५ ॥ इस अहङ्कारका देवतारूपसे कर्तृत्व, इन्द्रियरूपसे करणत्व और पञ्चमूर्तरूपसे कायत्व लक्षण है तथा सत्त्वादि गुणोंके सम्बन्धसे शान्तत्व, धारत्व और मूढत्व भी इसीके लक्षण हैं ॥ २६ ॥ उपर्युक्त तीन प्रकारके अहङ्कारमेंसे वैकारिक अहङ्कारके विज्ञान होनेपर उससे मन हुआ, जिसके सङ्कल्प-विकल्पोंसे कलमावर्षोंकी उत्पत्ति होती है ॥ २७ ॥ यह मनस्वरूप ही इन्द्रियोंके अभिष्टाता 'अनिरुद्ध' के नामसे प्रसिद्ध है । यागिबन शरत्काशीन मीठकमछक समान इयाम वर्णवाल इन अनिरुद्धकीकी शनै-शनै मनको बशीभूत करके आराधना करते हैं ॥ २८ ॥ सांनि । फिर तैजस अहङ्कारमें विकार होनेपर उससे बुद्धिकर उत्पन्न हुआ । वस्तुका स्मरणरूप विज्ञान और इन्द्रियोंके व्यापारमें सहायक होता—पदार्थोंका विधाय ज्ञान कराना—ये बुद्धिके कार्य हैं ॥ २९ ॥ वृत्तियोंके भेदसे संज्ञा, विषय (विपरीत ज्ञान) निश्चय, स्मृति और निद्रा भी बुद्धिके ही लक्षण हैं । यह बुद्धितत्व ही प्रयुग्म है ॥ ३० ॥ इन्द्रियों की तैजस अहङ्कारकी कार्य हैं । कर्म और ज्ञानक विभागसे उनके कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दो भेद हैं । इनमें क्या प्राणकी शक्ति है और ज्ञान बुद्धिकी ॥ ३१ ॥

सामसाध विद्वानायाऽग्नयश्चोदितात् ।

शब्दमात्रमभूत्स्माभमः शोर्षं तु शब्दगम् ॥३२॥

अर्थाभयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लक्षणत्वमेव च ।

तन्मात्रस्य च नभसो लक्षणं कथयो विदुः ॥३३॥

भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च ।

प्राप्यन्दित्रयात्मभिष्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥३४॥

नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वत ।

स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वह् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥३५॥

मृदुत्वं कठिनत्वं च क्षैत्यमृष्यत्वमेव च ।

एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभसतः ॥३६॥

चालनं व्युहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यलक्षणयोः ।

सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥३७॥

वायाश्च स्पर्शतन्मात्रादप्य दैवरीतादभूत् ।

सम्वयित तत्त्वतश्चक्षु रूपोपलम्भनम् ॥३८॥

द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसम्भास्त्वमेव च ।

तेजस्त्व तेजस साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥३९॥

घातन पचन पानमर्दन हिममर्दनम् ।

तेजसा दहनपञ्चवतः शोषण क्षुषृष्टेव च ॥४०॥

रूपमात्राण्डिर्गुणासंज्ञसा नैव चादितात् ।

रममाणमभूत्समादग्मा जिह्वा रसग्रह ॥४१॥

भगवान्कीर्ति चेतनशक्तिकी प्रेरणासे तामस व्युत्पन्नं विकृत होनेपर उससे शब्दतन्मात्रका प्रादुर्भाव हुआ । शब्दतन्मात्रसे आकाश तथा शब्दका ज्ञान करनेवाले श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ अर्थात् प्रकाशक शक्ति, श्रोत्रमें सबेरे हुए कलाकर्म की ज्ञान कला देना और आकाशका सूक्ष्म रूप होना—विद्वानोंके मन्त्रमें भी शब्दको लक्षण है ॥ ३३ ॥ भूतोंको व्यवस्थित देख, सबके बाहर-भीतर वसमान रहना तथा प्राप्ति, स्थिति और मनका आवरण देना—यें आकाशको वृत्ति (कर्म) रूप लक्षण है ॥ ३४ ॥

फिर शब्दतन्मात्रको कर्ष्य आकाशमें कर्मक्षेत्रों विकार होनेपर स्पष्टतन्मात्र हुआ और उससे वायु तथा स्पर्शका ग्रहण करनेवाली त्वगिन्द्रिय (त्वचा) उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥ क्षेमकता, कठोरता, शीतता और तृष्णा तथा वायुका सूक्ष्म रूप होना—ये स्पर्श लक्षण हैं ॥ ३६ ॥ हलकी शाखा आदिको बिम्ब घणादिको इकट्ठा कर देना, सर्वत्र पहुँचना, गन्धविशेष द्रव्यको घणादि इन्द्रियोंके पास तथा शब्दको श्रोत्रेन्द्रिय के समीप ले जाना तथा समस्त इन्द्रियोंका कर्षणी देना—ये वायुकी वृत्तियोंके लक्षण हैं ॥ ३७ ॥

तदनन्तर दैवकी प्रेरणासे स्पर्शतन्मात्रविशिष्ट वायु विकृत होनेपर उससे रूपतन्मात्र हुआ तथा उससे तेज और रूपको उपलब्ध करानेवाली नेत्रेन्द्रियका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ३८ ॥ साध्वि । वस्तुके आकारका बोध कराना, गीण होना—द्रव्यके व्यङ्ग्यरूपसे प्रतीत होना, द्रव्यका जैसा आकार-प्रकार और परिमाण जानि ॥ उसी रूपमें उपलब्धित होना तथा तेजका स्वरूपमूल होना—ये सब रूपतन्मात्रकी वृत्तियाँ हैं ॥ ३९ ॥ घनमर्दन, पचाना, शीतका दूर करना, सुखाना, भूषण्यसे पैना करना और उनको निवृत्तिके विषे शोषन एवं उज्ज्वल कराना—ये तेजकी वृत्तियाँ हैं ॥ ४० ॥

निरद्वैतकी प्रेरणासे रूपतन्मात्रवत् तत्त्व विज्ञान होने पर उससे रसतन्मात्र हुआ और उससे जड़ तथा रसोंके ग्रहण करनेवाली त्वगिन्द्रिय (जिह्वा) उत्पन्न हुई ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच

योग आध्यात्मिक पुसां सतो नि भयसाय मे ।
 अत्यन्तोपरतिर्यग्र दुःस्वस्य च सुस्वस्य च ॥१३॥
 तस्मिन् ते प्रवक्ष्यामि यमवोच पुरानये ।
 श्रद्धयाणां आतुक्कामानां योग सर्वाङ्गनैपुणम् ॥१४॥
 चेतः स्वस्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मत्सु ।
 शुद्धेषु सक्त बन्धाय रतं वा पुति मुक्तये ॥१५॥
 अहंमाभिमानोत्थैः कामलाभादिभिर्मलैः ।
 भीत यदा मनः हृदमदुःस्वमसुखं समम् ॥१६॥
 तदा पुरुष आत्मानं कवलं प्रकृतेः परम् ।
 निरन्तर स्वयंभोतिरग्निमानमलम्बितम् ॥१७॥
 ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ।
 परिपश्यत्युदासीन प्रकृतिं च हतौघसम् ॥१८॥
 न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।
 सख्योऽस्ति शिवः पन्था यागिनां प्रहसिद्वय ॥१९॥
 प्रसङ्गमजर पाशमात्मन कवयो विदुः ।
 स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमवाहृतम् ॥२०॥
 वितिशिवः कारुणिकः सुहृद् सर्वदेहिनाम् ।
 अज्ञातशत्रवः क्षान्ता साधवः साधुमूषणाः ॥२१॥
 मत्पनन्यन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये हृदाम् ।
 मत्कृते तपक्कर्मणिस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥२२॥
 मदाधयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
 उपन्ति विविधान्तापा नैता मद्गतचेतसाः ॥२३॥

भगवान् कथिलने कहा—माता ! यह मेरा निश्चय है कि अध्यात्मयोग ही मनुष्यों के आत्यन्तिक कल्याणकर सुख्य साधन है, जहाँ दुःख और सुखकी सवथा निवृत्ति हो जाती है ॥ १३ ॥ साथी ! सब अङ्गोंसे सम्पन्न उस योगका मैंने पहले नारदादि श्रद्धियों के सामने, उनकी सुमनेकी इच्छा होनेपर, वर्णन किया था । वही अब मैं आपको सुमाता हूँ ॥ १४ ॥

इस जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है । श्रियोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका हेतु होता है और परमात्मामें अतुरक्त होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है ॥ १५ ॥ जिस समय यह मन मैं और मेरेपनके कारण होनेवाले काम-भ्रम आदि विकारोंसे मुक्त एवं शुद्ध हो जाता है, उस समय वह सुख-दुःखसे छूटकर सम अवस्थामें आ जाता है ॥ १६ ॥ तब जीव अपने ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे युक्त हृदयसे आत्मको प्रवृत्तिसे परे, एकमात्र (अद्वितीय), मेद रहित, स्वयंप्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन (सुख-दुःखव्यत्य) देखता है तथा प्रकृतिको शक्तिहीन अनुभव करता है ॥ १७-१८ ॥ योगियों के लिये मातृ-आस्थिके निमित्त सर्वांगी श्रीहरिके प्रति की हुई भक्ति के समान और कोई महत्त्वमय मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ विवेकजन सङ्ग या आसक्ति की ही आत्मका अष्टेय बन्धन मानते हैं, किन्तु वही सङ्ग या आसक्ति जब संगे—महापुरुषों के प्रति हो जाती है, तो मोक्षका सुखा द्वार बन जाती है ॥ २० ॥

जो लोग सख्यशील, दयालु, समस्त देशकारियों के अकारण शिव, विस्ती के प्रति भी शत्रुम्वन न रखनाते, शान्त, सरलस्वभाव और सत्पुरुषोंका सम्मन करनेवाले होते हैं, जो मुझमें अनन्यमयसे सुख प्रग करते हैं, मेरे लिये सम्पूर्ण कर्म तथा अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी त्याग देते हैं और मेरे परायण रहकर मी पवित्र कथाओंका श्रवण, कीर्तन करते हैं तथा मुझमें ॥ विल लगाये रहते हैं—उन मर्कोंका संसर्ग के तरह-तरहके ताप काह कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ॥ २१-२३ ॥ साथी !

१ मा पा —युगे प्रथम । २ मा पा —चेतना । ३ मा पा —नैपायण ।

प्र ॥ अ ॥ १४१—

त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिता ।
सङ्गस्तेष्वपि ते प्रार्थ्य सङ्गदोषहरा हि ते ॥२४॥

सता प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्जरसायनाः कथाः ।

ततोपणादाश्रयवर्गधर्मनि
मदा रतिर्मक्तिरनुक्रमिष्यति ॥२५॥

भक्त्या पुमाञ्जातविराग ऐन्द्रियाद्
दृष्टधृतामद्वचनानुचिन्तया ।

चित्तस्य यतो ग्रहण योगयुक्तो
यतिष्यते श्रुतुभिर्योगमार्गे ॥२६॥

असेवयामं प्रकृतेगुणानां
ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ।

योगेन संपरिपतया च भक्त्या
मां प्रत्यगात्मानमिहावकृन्वे ॥२७॥

देवहूतिरुवाच

काचिष्वर्ययुचिता भक्ति कीदृशी मम गोचरा ।

यया पद ते निर्वाणमञ्जसान्वाभवा अहम् ॥२८॥

यो यागा भगवद्भाणो निर्वाणार्थमस्तथादित ।

कीदृशः कति चाङ्गानि यतस्तत्त्वावधारणम् ॥२९॥

तदवम विजानीहि यथाह मदधीरिरे ।

सुख पुद्गलप दुर्बोधं याया भवदनुग्रहात् ॥३०॥

मैत्रय उवाच

विदित्वाथ कपिला मातुरिरथ

आतस्नहा यत्र तन्वाभिजात ।

तत्त्वाम्नाय यत्प्रवदन्ति मां ग्व्यं

प्राणाद्यै भक्तिवितानयागम् ॥३१॥

१ मा य — निर्निर्गता । २ मा पा — प्राकृत्ये ।

ऐसे-ऐसे सर्वसङ्गपरित्यागी मशायुक्त ही साधु होते हैं, उन्हें उन्होंने सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि वे आसक्तिसे उत्पन्न सभी दोषोंको हार देनेवाले हैं ॥ २४ ॥ सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमके यथार्थ ज्ञान करनेवाली तथा हृदय और मनको प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं । उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें अज्ञा, भ्रम और मत्तिका क्रमशः निवृत्त होगा ॥ २५ ॥ फिर मेरी सृष्टि आदि वीर्यवशेष चिन्तन करनेसे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा औचित्य एवं पारमैकिक सुखोंमें वैराग्य हो जानेपर मनुष्य साधनान्तर-पूर्वक योगके भक्तिप्रधान सख उपायोंसे समाहित होकर मनोनिग्रहके लिये यत्न करेगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार प्रकृतिके गुणोंसे उत्पन्न हुए शब्दादि विषयोंका त्याग करनेसे, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्रति की हुई सुदृढ़ भक्तिसे मनुष्य मुक्त अपने अन्तरमयको इस देहमें ही प्राप्त कर लेता है ॥ २७ ॥

देवहूतिने कहा—भगवन् ! आपकी समुचित भक्ति का स्वरूप क्या है ? और मेरी-नैनी अक्षयोंके लिये कैसी भक्ति ठीक है, जिससे कि मैं सहजमें ही आपके निर्वाणपदको प्राप्त कर सकूँ ? ॥ २८ ॥ निर्वाणस्वरूप प्रभो ! जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान होता है और जो कल्पको बेधनेवाले बाणके समान भगवान्की प्राप्ति करानेवाला है, वह आपका कहा हुआ योग कैसे है और उसके कितने अङ्ग हैं ? ॥ २९ ॥ हरे ! यह सब आप मुझ इस प्रकार समझाइये जिससे कि आपकी इच्छासे मैं मन्दमति कीजानि भी इस दुर्बोध विषयको सुगमसे समझ सकूँ ॥ ३० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहत हैं—विदुरजी ! जिसके शरीरसे

उन्होंने स्वयं जन्म लिया था, उस अपनी मातृगण ऐसा अभिप्राय ज्ञानपर कपिजीक इत्यमसे तद्वत् उमद आप और उन्होंने प्रहृति आपि सत्त्वोक्त निष्कपण करनेवाले शाश्वत,जिसे साध्य कहते हैं, उपदेश किया । माय ही भक्ति-विस्तार एवं योगप्रद भी वर्णन किया ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच

देवानां गुणलिङ्गनामानुश्रविकर्मणाम् ।
 सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वामाविकी तु या ॥३२॥
 अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
 अरयस्याशु या कोऽत्र निर्गोर्भमनलो यथा ॥३३॥
 नैकस्मृतां मे स्पृहयन्ति केचिन्
 मत्पादसेवाभिरता मदीहा ।
 येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य
 समावयन्ते मम पौरुषाणि ॥३४॥
 पश्यति ते मे रुधिराण्यम्ब सन्तः
 प्रसज्यन्त्रारुणलोचनानि ।
 रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि
 सार्कं वार्षं स्पृहणीयां वदन्ति ॥३५॥
 तैर्दर्शनीयावचवैरुदार
 विलासहासेष्वितवामन्नैर्कं ।
 ह्वारमनो हृतप्राण्या भक्ति-
 रनिच्छतो मे गतिमर्षी प्रयुष्टे ॥३६॥
 अथो विभूतिं मम मायाविनस्ता-
 मैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ।
 विर्यं मगवती वास्पृहयन्ति भद्रां
 परस्य मे तेऽशुवत् तु साके ॥३७॥
 न कर्हिचिन्मत्परा शान्तरूप
 न हृष्यन्ति नो मं ऽनिमिषा लेदि हेतिः ।
 यपामह प्रिय आत्मा सुतश्च
 सत्सा गुरुः सुहृन् दैवमिष्टम् ॥३८॥

श्रीभगवान्ने कहार—माता । जिसका चित्त
 एकमात्र भगवान्में ही लग गया है, ऐसे मनुष्यकी वेद
 विहित कर्मोंमें लगी हुई तथा विषयोंका ज्ञान करनेवाली
 (कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय—गोनों प्रणाली) इन्द्रियोंकी
 जो सत्त्वपूर्ण श्रीहरिक प्रति स्वामाविकी प्रवृत्ति है,
 वही भगवान्की अहैतुकी भक्ति है । यह मुक्तिसे भी
 बढ़कर है, क्योंकि जठरानल जिस प्रकार लपेटे हुए
 जलको पचाता है, उसी प्रकार यह भी कर्ममंस्कारों-
 के भस्मरूप छिन्नशरीरको तप्तकर मस कर देती
 है ॥ ३२ ३३ ॥ मेरी वरणसेवामें प्रीति रखनेवाले
 और मेरी ही प्रसन्नताके लिये समस्त व्रज करनवाले
 जितन ही ब्रह्माणि मछ, जो एक दूसरेसे मिश्रित
 प्रेमपूर्वक मेरे ही पराक्रमोंकी चर्चा किया करते हैं,
 मेरे साथ एकोग्र्य (सायुज्यमोक्ष) की भी इच्छा
 नहीं करते ॥ ३४ ॥ मा । वे साधुजन अरुण भयन
 एवं मनोहर मुखारविन्दसे युक्त मेरे परम सुन्दर और
 कदाप्यक दिव्य रूपोंकी शोका करते हैं, और उनके
 साथ सप्रेम सम्भाषण भी करते हैं, जिसके लिये बड़े
 बड़े तपस्वी भी शालापित रहते हैं ॥ ३५ ॥ दर्शनीय
 अङ्ग-मत्परा, उदार हास-विक्रस, मनोहर चितवन
 और सुमधुर वाणीसे युक्त मेरे उन रूपोंकी माधुरीमें
 उनका मन और इन्द्रियों फँस जाती हैं । ऐसी मेरी
 भक्ति न चाहनेपर भी उन्हें परमशुद्धी प्राप्ति करा
 देती है ॥ ३६ ॥ अविद्याकी निवृत्ति हो जानेपर यद्यपि
 वे मुझ मायापतिक सत्त्वादि लोकोंकी भोगसम्पत्ति,
 भक्तिकी प्रवृत्तिक पश्चात् स्वयं प्राप्त होनेवाली अष्ट
 सिद्धि वषा वैकुण्ठलोकके मगदीय ऐश्वर्यकी भी
 इच्छा नहीं करते, तथापि मेरे धाममें पहुँचनेपर उन्हें
 ये सब विभूतियों स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं ॥ ३७ ॥
 जिनका एकमात्र मैं ही प्रिय, आत्मा, पुत्र, मित्र, गुरु,
 सुहृद् और इष्टेय हूँ—वे मेरे ही आश्रयमें रहनेवाले
 मछजन शान्तिमय वैकुण्ठधाममें पहुँचकर किन्ता प्रकार
 भी इन दिव्य भोगोंमें रहित नहीं होते और न उन्हें
 मेरा काष्ठवत् ही मस सकता है ॥ ३८ ॥

त एते साधव मासि सर्वसङ्गविवर्जिताः ।
सङ्गस्तेष्वपि त प्रार्थ्य सङ्गदापहरा हि ते ॥२४॥

सर्वा प्रसङ्गतमम धीर्यसविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथा ।

सञ्जोषणादाभ्यपवर्गवर्त्मनि
अद्वा रत्तिमक्तिगनुकमिष्यति ॥२५॥

भक्त्या पुमाञ्जातविरागयेन्द्रियाद्
दृष्टधृतामद्रचनानुचिन्तया ।

विषयस यसा ग्रहण योगयुक्तो
वतिष्पते श्वडुभियोगमार्गैः ॥२६॥

असेवयाय प्रकृतेयुषानां
ज्ञानेन वैराग्यविक्षिप्तमतेन ।

यागेन मन्वर्षितया च भक्त्या
मां प्रत्यगात्मानमिहावकुन्ध ॥२७॥

दशहतिरुवाच

काचित्स्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ।

यया पद त निर्वाणमञ्जस्तान्वाभवा अहम् ॥२८॥

या यागा भगवद्वाणा निर्वाणात्मस्वरयादितः ।

कोट्यः फति चाज्ञानि यतस्तत्त्वावयाधनम् ॥२९॥

तद्वत्तम विप्रानीहि यथाह मदधीरि ।

सुख पुद्गलय दुर्बाध यापा भवदनुग्रहात् ॥३०॥

मंथय उवाच

विदित्वाथ कपिला मातुरित्थ

जातस्तदा यय तन्वाभिजात ।

तत्त्वमन्नाय परप्रदन्ति मां ग्ध्य

प्रायाय वै भक्तिवितानयागम् ॥३१॥

१ मा प — निमित्तताः । २ मा प — श्रावद ।

ऐसे-ऐसे सर्वसङ्गपरित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं।
तुम्हें उन्हींके सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये; क्योंकि
वे वास्तविकसे उत्तम सभी दोषोंको हर लेते
हैं ॥ २४ ॥ सङ्गुक्तोंके समागमसे मेरे परमार्थका
यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कर्णोंके प्रिय
लगनेवाली कथाएँ होती हैं । उनका मेहन करनेसे श्रवण
ही मोक्षमार्गमें अद्वा, प्रेम और भक्तिका क्रमशः किञ्च
होगा ॥ २५ ॥ फिर मेरी सुधि आदि धीमन्मार्ग
चिन्तन करनेसे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा धैर्य एवं
पारलौकिक सुखोंमें वैराग्य हो जानपर मनुष्य साधनका
पूर्वक योगके भक्तिप्रधान सरल तथार्थोंसे समझित
होकर मनोनिग्रहके किये यत्न करेगा ॥ २६ ॥ इस
प्रकार प्रकृतिके गुणोंसे उत्पन्न हुए शब्दादि विषयोंका
त्याग करनेसे, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्रति
की हुई सुरक्ष भक्तिके मनुष्य सुख अपने अन्तःकरणों
इस चेष्टमें ही प्राप्त कर लेता है ॥ २७ ॥

श्वडुभिने कहा—भगवन् ! आपकी समुचित भक्ति-
का स्वरूप क्या है ? और धैर्य-जैसी अवयवोंके बिना
कैसी भक्ति ठीक है, जिससे कि मैं सहजमें ही आपकी
निर्वाणपदको प्राप्त कर सकूँ ? ॥ २८ ॥ निर्वाणस्वरूप
प्रमथ ! जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान होता है और जो करने
को वेचनेवाले भाषके समान भगवान्को प्राप्त कराने-
वाला है, वह आपका कहा हुआ याग कैसा है और
उसके कितने अङ्ग हैं ? ॥ २९ ॥ हर ! यह सब बातें
सुख इस प्रकार समझाएँ जिससे कि आपकी कृपासे
मैं मन्दमति लीप्तानि भी इस दुर्बोध विरयको सुगमसे
समझ सकूँ ॥ ३० ॥

धीमन्नेवजी कहत हैं—विदुरजी ! जिसके शरीरसे
उन्हींने स्वयं जन्म लिया था, उस भागी माताग्र पता
अभिप्राय जानकर परिपक्वीक इन्धनमें रजः उमर अल्प
और उद्बोधन प्रदत्ति आदि तत्त्वोंपर निरूपण करनेका
शास्त्रकार, जिसे सुख्य कहते हैं, उपदेश किया । साथ ही
भक्ति-विचार एवं यागका भी वर्णन किया ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच

देवानां गुणलिङ्गानामानुधविकर्मणाम् ।
 सत्त्वैकमनसो हृदि स्वाभाविकी तु या ॥३२॥
 अनिमित्ता भागवती भक्ति सिद्धेर्गरीयसी ।
 जरयस्माशु या कोऽत्र निर्गोर्णमनसो यथा ॥३३॥
 नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्
 मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।
 येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य
 सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥३४॥
 पश्यति ते मे रुधिराण्यम्ब सन्तः
 प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
 रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि
 सार्क वाच स्पृहणीयां वदन्ति ॥३५॥
 तर्ददर्शनीयावयवैरदार
 विलासहासेष्वितवामस्रक्तं ।
 हृतात्मना हृतमाणांश्च भक्ति
 रनिच्छतो मे गतिमर्षीं प्रयुक्ते ॥३६॥
 अथो विभूति मम मायाविनम्रा
 मैश्वर्यमष्टाङ्गमनुग्रहचक्षुः ।
 भिषं भगवतीं वास्पृहयन्ति भद्रां
 परस्व मे तेऽनुव्रते ॥ सोऽपे ॥३७॥
 न कश्चिन्मत्परा शान्तरूप
 न हर्षयन्ति नो मे अनिमित्ता सेटि हतिः ।
 ययामह प्रिय आत्मा सुतश्च
 सम्ना गुरु मुदता दैवमिष्टम् ॥३८॥

श्रीभगवान्ने कहा—माता ! जिसका चित्त एकमात्र भगवान्में ॥ ३२ ॥ रखा गया है, ऐसे मनुष्यकी वेद विहित कर्मोंमें लगी हुई तथा विपर्यय ज्ञान करानेवाली (कर्म-प्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय—गोनों प्रत्यक्षकी) इन्द्रियोंकी जो सत्त्वपूर्ण दीहरीके प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है, वही भगवान्की आर्तकी भक्ति है । यह मुक्तिसे भी बढ़कर है, क्योंकि जठरान्तर जिस प्रकार खाने हुए अन्नको पचाता है, उसी प्रकार यह भी कर्मसंस्कारों के भस्मरूप जिह्वारीको तत्काल भस्म कर डली है ॥ ३२ ३३ ॥ मरी वरणमेकमें प्रीति रखनेवाले और मरी ही प्रसन्नताके लिये समस्त कष्ट करनवाले किन्तु ही बड़मायी मक्त, जो एक दूसरेसे मिलकर प्रेमपूर्वक मेरे ही पराक्रमोंकी चर्चा किया करते हैं, मेरे साथ एकोभाव (सायुज्यमोक्ष) की भी इच्छा नहीं करते ॥ ३४ ॥ मा ! वे साधुजन अरुण भयन एवं मनोहर मुग्धारविन्दसे युक्त मेरे परम सुन्दर और वरदायक दिव्य रूपोंकी शोषी करते हैं, और उनके साथ सप्रेम सम्भाषण भी करते हैं, जिसके लिये बड़े बड़े तपस्वी भी खानाफित रहते हैं ॥ ३५ ॥ दर्शनीय अङ्ग-प्रमाण, उदार हास-विस्मय, मनोहर चितवन और सुमधुर वाणीसे युक्त मेरे उन रूपोंकी माधुरीमें उनका मन और इन्द्रियाँ कैस जाती हैं । ऐसी मेरी मक्ति न चाहनेपर भी उन्हें परमन्की प्राप्ति पता देती है ॥ ३६ ॥ अविद्याकी निवृत्ति हो जानपर यद्यपि वे मुझ मायापनिष स्रष्टादि लोकोंकी भोगसम्पत्ति, मक्तिकी प्रवृत्तिक पश्चात् स्वयं प्राप्त होनवाली अष्ट सिद्धि अथवा वैकुण्ठलोकके भगवतीय पञ्चयकी भी इच्छा नहीं करते, तथापि मेरे धाममें पहुँचनपर उन्हें ये सब विभूतियों स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं ॥ ३७ ॥ त्रिनयन एकमात्र मैं ही प्रिय, आपा पुत्र, मित्र गुरु, सुहृद् और इष्टेष हूँ—वे मेरे ही आश्रयमें रहनवाज भक्तजन शान्तिमय वैकुण्ठधाममें पहुँचकर किसी प्रकार भी इन पिय भागोमें रहित नहीं होन कर म उन्हें मेरा कष्टचक्र ही घूम सकता है ॥ ८ ॥

इमं लोकं तथैवाप्तुमारयन्मुमुक्षुभयायिनम् ।

मात्मानमनु ये चेह मे रायः पद्मवो गृहाः ॥३९॥

विमुच्य सर्वानन्यांश्च मायेव विमुक्तोद्युक्तम् ।

भञ्जन्पनन्मया मक्तया तान्मृत्पारितोषारये ॥४०॥

नान्यत्र मङ्गलवतः प्रधानपुरुषेधरात् ।

आत्मनः सधर्मतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥४१॥

मङ्गलाद्वाति वातोऽर्षं चर्षस्तपति मङ्गलात् ।

वर्षतीन्द्रा इहस्यप्रिर्मुत्सुधरति मङ्गलात् ॥४२॥

ज्ञानवैराग्यपुक्तेन भक्तिबोधेन योगिन ।

क्षेमाद्यपादमूढं मे प्रविश्यन्त्यङ्गतोर्मयम् ॥४३॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निःश्रेयसोदयः ।

तीव्रेण भक्तियोगेन मनां मय्यर्पितं स्मिरम् ॥४४॥

माताजी ! जो लोग इहलोक, परलोक और दोनों लोकोंमें साथ जानेवाले वात्सानामय भिन्नेषु तथा शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले जो धन, पशु एवं वादि पदार्थ हैं, उन सबको और अन्याय समझी भी छोड़कर धनन्य भक्तिसे सब प्रकार मेरा ही भक्त करते हैं—उन्हें मैं मृत्पुरुष संसारसागरसे पार देना हूँ ॥ ३९ ४० ॥ मैं साक्षात् मगवान् हूँ, प्रह्व और पुरुषका भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणिमोक्षका भी हूँ, मेरे सिवा और किसीका आश्रय देनेसे मुक्त महामयसे छुटकारा नहीं मिल सकता ॥ ४१ ॥ मयसे यह वायु चकती है, मेरे मयसे सूर्य तपता है मेरे मयसे इन्द्र वर्षा करता और अग्नि जलती है त मेरे ही मयसे मृत्यु अपने कार्यमें प्रवृत्त हो है ॥ ४२ ॥ योगिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा शान्ति प्राप्त करनेके लिये मेरे निर्मम करणकर्मों का भय लेते हैं ॥ ४३ ॥ संसारमें मनुष्योंके नि सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि वसुधा वि तीज भक्तियोगके द्वारा मुझमें समाहित हो जाय ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संक्षिप्तायां तृतीयस्कन्धे कपिलेयोपाख्याने

षष्ठविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षष्ठविंशोऽध्यायः

महर्षिर्भिक्ष-भिक्ष तत्त्वोक्तीं वत्सलिकं धर्षणं

श्रीमद्भागवतम्

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ।

यदिदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥

ज्ञानं नि भयसायां पुरुषस्यात्मदर्शनम् ।

यदानुदर्शये तस्मै हृदयग्रथिभेदनम् ॥ २ ॥

श्रीमद्भागवतम् कहता—माताजी ! जब मैं तुम्हें प्रकृति आदि सब तत्त्वोंके अलग-अलग लक्षण बतलाया हूँ इन्हें जानकर मनुष्य प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ आसमदर्शनरूप ज्ञान ही पुरुषके मोक्षका कारण है और बड़ी उसकी वहङ्काररूप हृदयग्रन्थिके छेदन करमत्तया है, ऐसा पण्डितजन कहते हैं । उस ज्ञानका मैं तुम्हारे आगे वर्णन करता

१ प्रा य - समितारये । २ प्रा पा - नर । ३ प्रा पा - बुद्धोपमाः । ४ प्राकी प्रभिरे

प्राभिर्योग्यगन्धे इत्या अंश नहीं है ।

मनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृते परः ।

प्रत्यग्धामा स्वयं ज्योतिर्विष्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥

स एष प्रकृतिं स्रष्टां देवीं गुणमयीं विष्टः ।

यद्वच्छेषैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥

गुणैर्विभिन्नाः स्रष्टा सारूपाः प्रकृतिं प्रधाः ।

विलोक्य मुमुक्षे सद्यः स इह ज्ञानगृहया ॥ ५ ॥

एवं पराभिधानेन कर्तृत्वं प्रकृते पुमान् ।

कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥ ६ ॥

तदस्य संसृतिर्विन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम् ।

भवत्यकर्तृरीशस्य साधियो निर्मुक्तारमनः ॥ ७ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे कारण प्रकृतिं विदुः ।

भोक्तृत्वे सुन्दरुः खानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ८ ॥

दण्डवद्विस्तारः

प्रकृते पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ।

श्रुतिं कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥ ९ ॥

मीमांसानुवाच

यच्च त्रिगुणमन्यक्त नित्य सदसदात्मकम् ।

प्रधानं प्रकृतिं प्रादुरविशेष विशेषवत् ॥ १० ॥

पञ्चभिः पञ्चभिर्भक्ष चतुर्भिर्दण्डभिस्तथा ।

एतच्चतुर्विधं गणं प्राधानिकं विदुः ॥ ११ ॥

महामृतानि पञ्चैव भूरापाऽग्निमरुदश्च ।

तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धानि भूतानि मा ॥ १२ ॥

ह ॥ २ ॥ यह सारा जगद् जिससे व्याप्त होकर

प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है । यह

अनादि, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, अन्तःकरणमें स्थिति

होनेवाला और स्वयंप्रकाश है ॥ १ ॥ उस सर्वव्यापक

पुरुषने अपने पास लीला विद्यासर्वक आयी हुई

अव्यक्त और त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको स्वेच्छासे

खोलेकर कर दिया ॥ ४ ॥ लीलापरमण प्रकृति

अपने सत्त्वादि गुणोंद्वारा उन्हींके अनुरूप प्रजाती

सृष्टि करने लगी, यह देख पुरुष ज्ञानको आच्छादित

करनेवाली उसकी आवरणशक्तिसे मोहित हो गया,

अपने स्वरूपको भूल गया ॥ ५ ॥ इस प्रकार अपनेसे

भिन्न प्रकृतिको ही अपना स्वरूप समझ लेनेसे पुरुष प्रकृति

के गुणोंद्वारा किये जानेवाले कर्ममें अपनेका ही कर्ता

मानने लगता है ॥ ६ ॥ इस कर्तृत्वामिमानसे ही अकर्ता

स्वाधीन, साधी और आनन्दस्वरूप पुरुषको जन्म-मृत्युरूप

बन्धन एवं परतन्त्रताकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ कारणरूप

शरीर, कारणरूप इन्द्रिय तथा कर्तारूप इन्द्रियाधिष्ठित देव-

तात्ममें पुरुष जो अपनेपनका आरोप कर लेता है, उसमें

पण्डितजन प्रकृतिको ही कारण मानते हैं तथा वास्तवमें

प्रकृतिसे परे होकर भी जो प्रकृतिस्व हो रहा है, उस

पुरुषका सुख-दुःखोंके भोगनेमें कारण मानते हैं ॥ ८ ॥

व्यवहृतिमें कहा—पुरुषोत्तम ! इस विश्वक रक्षक-

सूक्ष्म कार्य जिनके स्वरूप हैं तथा जो इसका कारण हैं

उन प्रकृति और पुरुषका लक्षण भी आप मुझसे

कहिये ॥ ९ ॥

मीमांसवान्ने कहा—जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त,

नित्य और कार्य-कारणरूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर

भी सम्पूर्ण विभेद धर्मोंका आश्रय है, उस प्रधान नामक

तत्त्वको ही प्रकृति कहते हैं ॥ १० ॥ पौष महामृत,

पौष तन्मात्रा, चार अन्तःकरण और ऋत इन्द्रिय-जन

वासीस तत्त्वोंमें समूहका विद्वान् योग प्रकृतिको कार्य

मानते हैं ॥ ११ ॥ दूसरी जल तेज वायु और

आकाश—ये पौष महामृत हैं; अथ रस रूप, रस

और शब्द—ये पौष तन्मात्र मान गये हैं ॥ १२ ॥

स्वच्छत्वमविकारित्व शान्तत्वमिति चेत्तस ।

वृत्तिर्भिलषण प्राक्त यथाया प्रकृतिः परा ॥२२॥

महत्तत्त्वादिदुर्वाणाद्भगवदीर्यसम्भवात् ।

क्रियाशक्तिरहङ्कारस्त्रिविध समपद्यत ॥२३॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ।

मनसश्चन्द्रियाणां च मृतानां महतामपि ॥२४॥

सहस्रशिरसं साक्षाधमनन्त प्रचर्यते ।

सङ्कर्षणाम्य पुरुष मूतेन्द्रियमनोमयम् ॥२५॥

कर्तृत्व करणत्व च कार्यत्व चेति लक्षणम् ।

शान्तघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहङ्कृते ॥२६॥

वैकारिकादिदुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ।

यत्सङ्कल्पविकल्पान्मां वर्तते कौमसम्भव ॥२७॥

यद्विदुश्चनिरुद्धाम्य ह्युपाकाणामधीश्वरम् ।

धारदन्दीवरस्याम सराभ्य यागिभि र्धनं ॥२८॥

तैजसाच्च विदुषाणाच्च बुद्धितत्त्वमभूत्सति ।

द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः ॥२९॥

संशयोऽथ विपर्यया निश्चय स्मृतिरथ च ।

म्याप इत्युत्पत्त पुट्तेर्लघुणं वृत्तित पृथक् ॥३०॥

तैजसाभीन्द्रियाण्यथ क्रियाज्ञानविभागश्च ।

प्राणस्य हि क्रिया शक्तिपुट्तेर्विज्ञानशक्तिता ॥३१॥

पृथ्वी आदि अन्य पदार्थांके सप्तमसे पूष जल अपनी सामानिक (फेन तरङ्गादिरहित) अवस्थामें अव्यक्त स्रग्ध, विकारशून्य एवं शान्त होता है, उसी प्रकार अपनी सामानिकी अवस्थाकी दृष्टिसे स्वच्छत्व, अवि कारित्व और शान्तत्व ही वृत्तिर्भिलषित चित्तका लक्षण कहा गया है ॥ २२ ॥ तन्मन्तर भगवान्की नीर्यत्प चित्-शक्तिसे उत्पन्न हुए महत्तत्त्वके विद्वत् होनेपर उससे क्रियाशक्तिप्रधान अहङ्कार उत्पन्न हुआ । यह वैकारिक, तैजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है । उसीसे क्रमशः मन, इन्द्रियों और पञ्चमहामूर्तोंकी उत्पत्ति हुई है ॥ २१-२४ ॥ इस मूल, इन्द्रिय और मनरूप अहङ्कारको ही पण्डितजन साक्षात् 'सङ्कर्षण' नामक सङ्कल सिरसासे अनन्तदश कहते हैं ॥ २५ ॥ इस अहङ्कारका दशतारूपसे कर्तृत्व, इन्द्रियरूपसे करणत्व और पञ्चमूर्तरूपसे कामत्व लक्षण है तथा सत्त्वादि गुणोंके सम्बन्धसे शान्तत्व, घोरत्व और मूढत्व भी इसीके लक्षण हैं ॥ २६ ॥ उपयुक्त तीन प्रकारके अहङ्कारमेंसे वैकारिक अहङ्कारके विद्वत् होनेपर उससे मन हुआ, जिसके सङ्कल्प-विकल्पोंसे कामनाओंकी उत्पत्ति होती है ॥ २७ ॥ यह मनस्त्व ही इन्द्रियोंके अधिष्ठता 'अनिरुद्ध' के नामसे प्रसिद्ध है । यागिजन शरत्कालीन नीलकमलक समान द्याम वणकाले इन अनिरुद्धजीकी शान शर्न मनका धसीमूल कके आराधना करते हैं ॥ २८ ॥ सावि ! फिर तैजस अहङ्कारमें विकर ज्ञानपर उससे बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ । वस्तुका स्फुरणरूप विज्ञान और इन्द्रियोंके व्यापारमें सहायक होना—पदार्थांका विशेष ज्ञान करना—ये बुद्धिके कार्य हैं ॥ २९ ॥ वृत्तिर्भिलष मेनेसे संशय विषय (विपरीत ज्ञान), निश्चय, स्मृति और निद्रा भी बुद्धिके ही लक्षण हैं । यह बुद्धितत्व ही प्रधुम्न ॥ ३० ॥ इन्द्रियों भी तैजस अहङ्कारका ही कार्य हैं । यम और ज्ञानक विभागमें उनका कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दो भेद हैं । इनमें कम प्राणकी शक्ति है और ज्ञान बुद्धिकी ॥ ३१ ॥

तामसा विवर्तनाङ्गनदीर्घादितात् ।

शब्दमात्रममूचस्मोक्षमः श्रोत्रं तु शब्दगम् ॥३२॥

अर्धाधत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च ।

तन्मात्रत्वं च नमसो लक्षणं कथयो विदुः ॥३३॥

मूढानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च ।

प्राणन्द्रियात्मधिष्यत्वं नमसो वृत्तिलक्षणम् ॥३४॥

नमस शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विवर्तत ।

स्पर्शोऽमवर्ततो वायुस्त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥३५॥

मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यगुण्यत्वमेव च ।

एतस्पर्शस्य स्पष्टत्वं तन्मात्रत्वं नमस्ततः ॥३६॥

चालनं व्यूहनं प्राप्तिनैवृत्त्वं द्रव्यशब्दयोः ।

सर्वेन्द्रियाणामारम्भत्वं वायाः कर्माभिलक्षणम् ॥३७॥

वायाश्च स्पष्टतन्मात्राद्वयं दैवरीतादभूत् ।

समुत्थितं तत्तत्त्वजश्च रूपपलम्भनम् ॥३८॥

द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसम्मानमेव च ।

तेजस्व्यं तत्रस्य भावि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥३९॥

घातनं पचनं पानमर्दनं हिममर्दनम् ।

तेजसा वृत्तयश्च ततः नाप्यं शुचृद्वयं च ॥४०॥

रूपमात्रादिबुद्धानां तत्रसा दैव्यादितात् ।

रममात्रमभूत्तन्मादम्भा जिह्वा रसग्रहः ॥४१॥

मगवान्की चेत्तन्शक्तिकी प्ररणासे तमसः अहङ्कारे
विहृतं होनेपर उससे शब्दतन्मात्रक प्रादुर्भाव हुआ ।

शब्दतन्मात्रसे आकाश तथा शब्दक शान करनेकी
श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ अर्धक प्रकाशक शब्द

जोमें सब हुए वक्ताका भी शान करा देना की
आकाशका सूक्ष्म रूप होना—विश्वको के मतमें की

शब्दके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥ मूढोंका अज्ञान ज्ञेय,
सबके बाहर—भीतर कथमान रहना तथा प्राण, इन्द्रिय

और मनका आश्रय होना—ये आकाशक वृत्ति (कर्म)
रूप लक्षण हैं ॥ ३४ ॥

निर शब्दतन्मात्रके कथ्य आकाशमें कल्पमयिसे
विकार होनेपर स्पष्टतन्मात्र हुआ और उससे वायु एवं

स्पष्टक महण करानेवाकी तन्मिन्द्रिय (त्वचा) उत्पन्न
हुई ॥ ३५ ॥ कोमलता, कठोरता, सातत्य और

उष्णता तथा वायुका सूक्ष्म रूप होना—ये स्पर्शके
लक्षण हैं ॥ ३६ ॥ इसकी शब्द व्यक्तिके प्रियत्व

तृणादिके एकता कर देना, सर्वत्र पहुँचना गन्वादिपुत्र
द्रव्यको प्राणादि इन्द्रियोंके पास तथा शब्दको श्रोत्रेन्द्रिय

के समीप लं जाना तथा समस्त इन्द्रियोंके कार्यप्रति
देना—ये वायुकी वृत्तियोंके लक्षण हैं ॥ ३७ ॥

तन्मन्तर दीक्षकी प्ररणासे स्पष्टतन्मात्रविशिष्ट वायुके
विहृत होनेपर उससे रूपतन्मात्र हुआ तथा उससे तेज

और रूपका उपज्ज्व करानेवाकी नत्रेन्द्रियका प्रादुर्भाव
हुआ ॥ ३८ ॥ सारिण ! वस्तुका आकारका बोध कराना,
गौण होना—द्रव्यके व्यङ्ग्यरूपसे प्रतीत होना, दम्भ

जैसा आकार-प्रकार और परिमाण ज्ञाति हो उमी रूप-
में उपलब्धि होना तथा तेजका स्वस्वभूत होना—य

सब रूपतन्मात्रकी वृत्तियाँ हैं ॥ ३९ ॥ चनकता,
पकाना, शीतता गूर करना सुखाना, मूत्र-मूषा पेश

करना और उनकी निवृत्तिक किये भोजन एवं जठर
कराना—ये तेजकी वृत्तियाँ हैं ॥ ४० ॥

निर दीक्षकी प्ररणासे रूपतन्मात्रमय तेजक विहृत होने
पर उससे रमन्मात्र हुआ और उसमें जल तथा रसके
महण करानेवाकी रसन्द्रिय (जिह्वा) उत्पन्न हुई ॥ ४१ ॥

कपायो मधुरस्तिक्तः कटुश्चल इति नैकधा ।

भौतिकाना विकारेण रस एको विभिद्यते ॥४२॥

हृद्देनं पिण्डनं वृत्तिः प्राणनाप्यापनोन्दनम् ।

तापापनोदो भूयस्त्वन्ममसा हृत्तयस्त्विमाः ॥४३॥

रममात्राद्विद्वर्णादात्मसा देवचोदितान् ।

गन्धमात्रममृतमात्पृथ्वी घ्राणस्तु गन्धगः ॥४४॥

करन्मपृथिसौरम्यशान्तोप्राप्सोदिभिः पूषक् ।

द्रव्यावयववैषम्याद्बन्ध एको विभिद्यते ॥४५॥

भावनं ब्रह्मणः स्यान्ने भरणं सद्विशेषणम् ।

सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥४६॥

नभगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छास्त्रमुच्यते ।

वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥४७॥

तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्क्षुब्धकृतम् ।

अम्भागुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्भ्रसनं विदुः ।

भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य घ्राण उच्यते ॥४८॥

परस्य दृश्यते धर्मो व्यपरस्मिन् समन्वयात् ।

अतो विशेषा भाषानां भूमावैशेषिक्यते ॥४९॥

एतान्यमहस्य यदा महदादीनि सप्त वै ।

कालकर्मगुणापत्ता जगदादिरूपाविशन् ॥५०॥

रस अपन शुद्ध स्वरूपमें एक ही है, किन्तु भन्व्य भौतिक पदार्थोंके संयोगसे वह कसीआ, मीठा, तीखा कड़वा, खटा और ममकीन आदि कई प्रकारका हो जाता है ॥ ४२ ॥ गीळ करना, मिष्टी आदिको पिण्डाकार बना देना, तुल करना, जीवित रखना, प्यास बुझाना, पदार्थोंको घुट्ट कर देना, तापकी निवृत्ति करना और कृपादिमेंसे निकाल छिये आनेपर भी वहाँ बार-बार पुनः प्रकट हो जाना—ये अलकी वृत्तियाँ हैं ॥ ४३ ॥

इसके पश्चात् दैवप्रेरित रसस्वरूप जलके विहृत होनेपर उससे गन्धतन्मात्र हुआ और उससे पृथ्वी तथा गन्धको ग्रहण करनेवाली घ्राणेन्द्रिय प्रकट हुई ॥ ४४ ॥ गन्ध एक ही है, तथापि परस्पर मिले हुए द्रव्यमागोंकी न्यूनाधिक्यसे वह मिश्रितगन्ध, दुर्गन्ध, सुगन्ध, घुट्ट तीव्र और अल्प (खटा) आदि अनेक प्रकारका हो जाता है ॥ ४५ ॥ प्रतिपदिरूपसे ब्रह्मकी साकार स्पर्शनाका आधय होना, जल आदि कारण-तत्त्वोंसे मिलि किसी दूसरे आधयकी अपेक्षा बिले बिना ही स्विन रहना, जल आदि अन्य पदार्थोंको धारण करना, आकाशात्मिका अवच्छिन्न होना (वयकाश, मठाकाश आदि अर्थोंको सिद्ध करना) तथा परिणामविशेषसे सम्पूर्ण प्राणियोंके [जीव, पुरुष आदि] गुणोंको प्रकट करना—ये पृथ्वीके कार्यरूप उल्लेख हैं ॥ ४६ ॥

आकाशका विशेष गुण शान्ति विसृता विषय है, वह श्रोत्रेन्द्रिय है, वायुका विशेष गुण स्पर्श विसृता विषय है, वह त्वेन्द्रिय है, ॥ ४७ ॥ तेजका विशेष गुण रूप विसृता विषय है, वह नेत्रेन्द्रिय है जलका विशेष गुण रस विसृता विषय है वह रसनेन्द्रिय है और पृथ्वीका विशेष गुण गन्ध विसृता विषय है, उसे घ्राणेन्द्रिय कहते हैं ॥ ४८ ॥ वायु आदि कार्य-तत्त्वोंमें आकाशात्मिका कारण-तत्त्वोंके रहनेसे उनके गुण भी अनुगम देखे जाते हैं इसलिये समस्त महामूर्त्योके गुण शान्ति, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध अल्प पृथ्वीमें हैं पाये जाते हैं ॥ ४९ ॥ जब महातत्त्व, अद्भुत और पञ्चभूत—ये सात तत्त्व परस्पर मिलि म सक—पृथक्-पृथक् ही रह गये, तब अमूर्त अकारण धीनाराधन काउ, अदृष्ट और सत्त्वादि गुणोंके सदित उनमें प्रवेश किया ॥ ५० ॥

सतस्तेनानुविद्वेभ्यो युक्तम्याऽण्डमचेतनम् ।

उत्थित पुरुषा यस्माद्दतिष्ठदसौ विराट् ॥५१॥

एतदण्ड विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दक्षोत्तरैः ।

लोपादिभिः परिहृत प्रधानेनानुवैर्वि ।

यत्र लाक्षावतानोऽप्य रूपं भगवतो हरैः ॥५२॥

हिरण्यमादण्डकोशादुत्थाय सलिलेक्षयात् ।

तमाविश्य महादवो बहुधा निर्बिमल स्वम् ॥५३॥

निरभिघतास्य प्रथमं सत्त्वं बाणी सतोऽभवत् ।

वाण्या बहिर्यो नासे प्राणोतो घ्राण एतयो ॥५४॥

प्राण्याद्वायुरभिघतामंशिणी चक्षुरेतयोः ।

तस्मात्स्वयं न्यभिघतौ कर्णौ चात्र तयो दिक्ष ॥५५॥

निर्बिभेद विराजस्त्वग्रामशमभ्वाद्यस्ततः ।

तत ओषधयश्चासन् शिर्शं निर्बिभेदे तत ॥५६॥

रतस्तस्मादाप आमसिग्भिघतं च गुदम् ।

गुदादपानाऽपानाश्च मृत्युर्लोकमयश्चरः ॥५७॥

हन्ती च निरभिघतां बलं ताभ्यां सतः स्याट् ।

पादौ च निरभिघतां गतिमाभ्यां सता हरिः ॥५८॥

नाड्याऽप्य निरभिघन्त ताभ्यां लाहितमाभृतम् ।

फिर परमात्माके प्रवेशसे क्षुब्ध और आत्मसम मि
हुए उन तन्त्रोंसे एक ब्रह्म अण्ड उत्पन्न हुआ । उस
अण्डसे इस विराट् पुरुषकी अभिव्यक्ति हुई ॥ ५१ ॥
इस अण्डका नाम विशेष है, इसीके अन्तर्गत अक्षरों
सकृत्पमृत चौदहों गुणमोक्ष विचार है । यह तन्त्र
औरसे क्रमशः एक-दूसरेसे दसगुने ब्रह्म, अग्नि, वायु,
वाक्, अक्षर, अक्षर और महात्मा—इन छ आचार्योंसे
विराट् हुआ है । इन सबके बाहर सत्ताओं का रूप
प्रकृतिका है ॥ ५२ ॥ कारणस्य अक्षरमें लिखित छ
तेजोमय अण्डसे उठकर उस विराट् पुरुषने पुन उठने
प्रकाश किया और फिर उसमें कई प्रकाशके छि
किये ॥ ५३ ॥ सबसे पहले उसमें मुख प्रकाश हुआ, उसके
बाक्-इन्द्रिय और उसके अनन्तर बाक्का अभिप्राय
अग्नि उत्पन्न हुआ । फिर नाकके छिद्र (नयुने) प्रकट
हुए, उनसे प्राणसहित प्राणोन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥ ५४ ॥
प्राणके बाद उसका अभिप्राय वायु उत्पन्न हुआ ।
तत्पश्चात् नेत्रगोचक प्रकाश हुए, उनसे चक्षु-इन्द्रिय प्रकट
हुई और उसके अनन्तर उसका अभिप्राय सूर्य उत्पन्न
हुआ । फिर कर्णोंके छिद्र प्रकाश हुए, उनसे उनकी
इन्द्रिय श्रोत्र और उसके अभिमानी विदेवका प्रकाश
हुए ॥ ५५ ॥ इसके बाद उस विराट् पुरुषके त्वचा उत्पन्न
हुई । उससे रोम मूँछ-नाड़ी तथा सिरके काट प्रकाश
हुए । और उनके बाद त्वचाकी अभिमानी ओषधिका
(अन्न आदि) उत्पन्न हुई । इसके पश्चात् शिर्श प्रकट
हुआ ॥ ५६ ॥ उससे शीघ्र और शीघ्रके बाद निरुद्ध
अभिमानी आपोदेव (जल) उत्पन्न हुआ । फिर गुदा
प्रकाश हुई, उससे अशमवायु और अपानके बाद उसका
अभिमानी लोकोके मयभीत वरमेवाका मृत्युदेवता उत्पन्न
हुआ ॥ ५७ ॥ तत्पश्चात् हाथ प्रकाश हुए, उनसे वक्त्र
और वाक् या इन्द्रोन्द्रियका अभिमानी इन्द्र उत्पन्न हुआ ।
फिर चरण प्रकाश हुए, उनसे गति (गमनकी क्रिया)
और फिर पादोन्द्रियका अभिमानी विष्णुदेवता उत्पन्न
हुआ ॥ ५८ ॥ इसी प्रकार ब्रह्म विराट् पुरुषने मारिटे
प्रकाश हुई, ता उससे हरि उत्पन्न हुआ और उसने

१ मा वा —जेन हने । २ मा वा —निर्बिभेद । ३ मा वा —निरभिघत । ४ मा वा —निरभिघत । ५ मा वा —निरभिघत । ६ मा वा —निरभिघत । ७ मा वा —निरभिघत । ८ मा वा —निरभिघत ।

१ मा वा —जेन हने । २ मा वा —निर्बिभेद । ३ मा वा —निरभिघत । ४ मा वा —निरभिघत । ५ मा वा —निरभिघत । ६ मा वा —निरभिघत । ७ मा वा —निरभिघत । ८ मा वा —निरभिघत ।

रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठतदा विराट् ॥६९॥

चित्तेन हृदयं चैतयः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ।

विराट् तदैव पुरुषः सलिलाबुदसिष्ठत ॥७०॥

यथा प्रसुप्त पुरुष प्राणोद्भ्रियमनोधिष ।

प्रभवन्ति विना येन नोत्थापयितुमोक्षमा ॥७१॥

समस्मिन् प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ।

भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविक्ष्यात्मानं चिन्तयेत् ७२

रुद्रन आहङ्कारके सहित उसी हृदयमें प्रवेश किया, वे भी विराट् पुरुष न उठ ॥६९॥ किन्तु जब चित्तके अधिकृत क्षेत्रज्ञन चित्तके सहित हृदयमें प्रवेश किया, तो विराट् पुरुष उसी समय अन्धसे उठकर खड़ा हो गया ॥७०॥ जिस प्रकार लोकमें प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि चित्त अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञकी सहायताके बिना सोये हुए प्राणी अपने बख्से नहीं उठ सकते, उसी प्रकार चित्त पुरुषको भी वे क्षेत्रज्ञ परमात्माके बिना नहीं उठ सके ॥७१॥ अतः भक्ति, वैराग्य और चित्तकी एकप्रति से प्रकट हुए ज्ञानके द्वारा उस अन्तरात्मस्वरूप क्षेत्रज्ञ इस शरीरमें स्थित जानकर उसका चिन्तन करना चाहिये ॥ ७२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे कृपितले

तत्त्वसमाम्नाये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

प्रकृति पुरुषके भिन्नकसे मोक्ष-प्राप्तिकर वर्णन

श्रीभगवानुवाच

प्रकृतिस्त्वोऽपि पुरुषो नान्यते प्राकृतैर्गुणैः ।

अविकारदकर्तृत्वाभिर्गुणात्स्वात्मलक्षणत्वात् ॥ १ ॥

स एव यद्भिं प्रकृतैर्गुणेष्वभिपिपन्नस्यते ।

अहंक्रियाविमूढात्मा कर्तास्मीत्यभिमन्यत ॥ २ ॥

तेन संसारपदवीमबध्नोऽभ्येत्थनिर्हृतः ।

प्रामादिकं फमदार्पं सदसन्मिथयानिषु ॥ ३ ॥

अर्थं शविद्यमानेऽपि संसृतिं निवर्तत ।

श्रीभगवान् कहते हैं—मायावी । जिस तरह जड़ प्रतिबिम्बित सूर्यके साथ अन्धके शीतलता, चक्रवर्त आदि गुणोंका सम्बन्ध नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृति के कार्य शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा ब्रह्ममें उसके मुख-झुंझादि बमोंसे स्थित नहीं होता, क्योंकि वह स्वभावसे निर्बिकार, अकर्ता और निर्गुण है ॥१॥ किन्तु जब वही प्राकृत गुणोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तब आहङ्कारसे मोहित होकर मैं कर्ता हूँ—ऐसा मानन लगता है ॥ २ ॥ उस अभिमानके कारण वह इसके संसर्गसे किये हुए पुण्य-पापका कर्मोंके दोषसे अपनी स्वाधीनता और शान्ति खो बैठता है तथा उत्तम, मध्यम और नीच योनियोंमें उत्पन्न होकर संसारचक्रमें घूमना रहता है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार स्वप्नमें भय-शोकान्दिक कोई कारण न जानकर भी स्वप्नक पशुपति आम्हा हो जानकर कारण दृग उगाना पड़ता है उसी प्रकार भय-शोक, अहं-मम एवं

ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽर्थागमो यथा ॥ ४ ॥

अत एव धर्मेभ्यः प्रसक्तमसतां पथि ।

भक्तियोगेन तीव्रेण विरमस्या च नयेद्वशम् ॥ ५ ॥

यमादिभिर्योगपथैरभ्यसत् भद्रयान्तिनः ।

मपि भावेन सत्त्वेन मत्कथाभ्रमणेन च ॥ ६ ॥

सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसङ्गतः ।

ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥ ७ ॥

यदृच्छथोपलब्धेन स तुष्टो भित्तुर्बुद्धिः ।

विविक्तचरणः शान्तो मैत्र करुण आत्मवान् ॥ ८ ॥

सानुबन्धे च देहेस्मिन् कुर्वन् सदाग्रहम् ।

ज्ञानेन दृष्टवश्चन प्रकृते पुरुषस्य च ॥ ९ ॥

निवृत्तबुद्धयव्यानो दूरीभूतान्दुर्जनः ।

उपलभ्यात्मनाऽऽत्मानं चतुर्पैर्वाकमात्महक् ॥ १० ॥

मुक्तलिङ्ग सदाभासमसति प्रतिपद्यत ।

सता च ध्रुवमुच्चक्षु सर्वातुस्यूतमद्रयम् ॥ ११ ॥

यथा जलस्य आभासः स्थलस्थेनावद्भयते ।

ध्वाभासेन तर्था धूपो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥ १२ ॥

एव त्रिद्वन्द्वद्वारा भूतन्त्रियमनामयै ।

ध्वाभासैर्लसिताऽनेन सदाभासेन सत्यहक् ॥ १३ ॥

अभ्य-मरणादिरूप ससतकी कोई सत्ता न होनेपर भी
अविभावश विषयोंका चिन्तन करते रहनेसे जीवका
संसार चक्र कभी निवृत्त नहीं होता ॥ ४ ॥ इसलिये
मुद्दिगान् मनुष्यको उचित है कि अभ्य-मार्ग (विषय-
चिन्तन) में फँसे हुए चित्तको तीव्र भक्तिभोग और
वैराग्यके द्वारा धीरे-धीरे अपने बशमें लावे ॥ ५ ॥

यमादि योगसाधनोंके द्वारा ब्रह्मपूर्वक अभ्यास—चित्त
को बार-बार एकत्र करते हुए मुझमें सदा भाव रखन,
मेरी कथा श्रवण करने, समस्त प्राणियोंमें समभाव
रखने, किसीसे बैर न करके, आसक्तिके त्याग, ब्रह्मचर्य,
मीन-मन और बहिष्ठ (अर्थात् भगवान्को समर्पित
किये हुए) अचर्मसे जिसे ऐसी स्थिति प्राप्त हो गयी
है कि—प्राग्भवे अनुसार जो कुछ मित्र जाता है
उसीमें सन्तुष्ट रहता है, परिमित भोजन करता है, सदा
एकाग्रमें रहता है, शान्तस्वभाव है, सबका मित्र है,
दयालु और धैर्यवान् है प्रकृति और पुरुषके वास्तविक
रूपके अनुभवसे प्राप्त हुए तत्त्वज्ञानक कारण की
पुत्रादि सम्बन्धियोंके सहित इस देहमें मैं-मेरेपनका
मिथ्या अभिविवेक नहीं करता, बुद्धिकी जाग्रदादि
अवस्थाओंसे भी अलग हो गया है तथा परमात्माके सिवा
और कोई वस्तु नहीं देखना—यह आत्मदर्शा मुनि
केन्द्रोंसे सूक्ष्म देखनेको नीति अपने शुद्ध मन करणद्वारा
परमात्माका साक्षात्कार कर उस अद्वितीय ब्रह्मपदको
प्राप्त हो जाता है, जो चैत्रादि संपूर्ण उपाधियोंसे वृषक,
अहङ्कारादि मिथ्या वस्तुओंमें सत्यरूपसे भासनेवाला,
जगत्कारणभूता प्रकृतिको अविग्रह, महापति करुणामय
प्रकाशक और कार्य-कारणरूप संपूर्ण पदार्थमें व्याप्त
है ॥ ८-११ ॥

जिस प्रकार जलमें पड़ा हुआ मृपक प्रतिबिम्ब
जीवाकार पद हुए अपने आभासक सम्बन्धसे देखा
जाता है और जलमें दीपनबाल प्रतिबिम्बमें आकाश
स्थित सूर्यका जल जगता है उसी प्रकार ईश्वरक आत्मा
अस्ये तीन प्रकारका अहङ्कार वह, इन्द्रिय और मनमें

भूतस्य तन्निग्रमनोऽपुष्ट्यादिविह निग्रया ।

लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहक्रिय ॥१४॥

मन्यमानस्तदाऽऽस्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा ।

नष्टेऽहङ्कारणे द्रष्टा नष्टविद्य इवातुरः ॥१५॥

एष प्रत्यक्षमृष्यामावात्मानं प्रतिपद्यते ।

साहङ्कारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रह ॥१६॥

दशहतिरुपाय

पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्म विमुञ्चति कर्हिचित् ।

अन्योन्याभायत्वाच्च नित्यत्वाद्नयो प्रभा ॥१७॥

यथा गन्धस्य भूमेऽथ न भावो व्यतिरेकतः ।

अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥१८॥

अकर्तुं कर्मवर्धोऽयं पुरुषस्य यदाभयः ।

गुणेषु मत्सु प्रकृतेः कवच्यं तप्यतः कथम् ॥१९॥

क्वचित्तरावमर्शेन निवृत्त मयमुत्क्षणम् ।

अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रस्पद्यतिष्ठते ॥२०॥

भीमगोबानुवाच

अनिमित्तनिमित्तान् स्वधर्मेषामलारम्भना ।

तीव्रया मयि भक्त्या च ध्रुवमस्मृतया विरम् ॥२१॥

स्थित अपन प्रतिबिम्बोऽस्ति अस्थित होता है और फिर उस परमात्माके प्रतिबिम्बयुक्त उस अहङ्कारक द्वारा स्वप्नान्तररूप परमात्माका दर्शन होता है—जो सुषुप्तिमें समम निद्रासे शम्पादि भूतसूक्ष्म, इन्द्रिय और मन बुद्धि आदिके अम्पावृत्तमें लीन हो जानेपर नष्ट हो जाता है और सर्वथा अहङ्कारमय है ॥ १२-१४ ॥ (जाग्रत्-अवस्थामें वह आत्मा भूतसूक्ष्माणि इत्येकविंशद्वारूपमें स्पष्टतया अनुभवमें आता है, विन्दु) सुषुप्ति-के समय अपने उपाविभूत अहङ्कारक द्वारा होनेसे वह अवस्था अपनेको ही नष्ट हुआ मान लेता है और जिस प्रकार धनक नाश हो जानेपर मनुष्य अन्तर्धर्म भी नष्ट हुआ मानकर अत्यन्त व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार वह भी अत्यन्त विषय होकर नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥ माताजी ! इन सब बातोंका मनन करके विवेकी पुरुष अपने आत्माका अनुभव कर लेता है, जो अहङ्कारके सहित सम्पूर्ण तत्त्वोंका अभिधान और प्रकाशक है ॥ १६ ॥

वैषम्येति पृथक्—प्रभो ! पुरुष और प्रकृति दोनों ही मित्य और एक दूसरेके आश्रयसे रहनेवाले हैं, इसीसे प्रकृति तो पुरुषको कभी छोड़ ही नहीं सकती ॥ १७ ॥ ब्रह्मन् ! जिस प्रकार गन्ध और पृथ्वी तथा रस और जलकी पृथक्-पृथक् स्थिति नहीं हो सकती, उसी प्रकार पुरुष और प्रकृति भी एक-दूसरेसे जोड़कर नहीं रह सकते ॥ १८ ॥ जब जिनके आश्रयसे अकर्ता पुरुषों का कर्मबन्धन प्राप्त हुआ है, उन प्रकृतिके पुष्पोंके खते हुए उसे कैतन्यम् कैते प्राप्ता इति ॥ १९ ॥ यदि तत्त्वोंका विचार करनेसे कभी यह संसारबन्धनका तीव्र मय प्रिवृत्त हो भी जाय तो भी उसके निमित्तमूल प्राकृत गुणोंका लक्षण न जानसे वह मय स्तिर उपस्थित हो सकता है ॥ २० ॥

भीमगोबानुने कथा—माताजी ! जिस प्रकार अग्नि-उत्पत्तिस्थान अरुणि अपनेसे ही उत्पन्न अग्निसे ब्रह्म बन हो जाती है, उसी प्रकार निष्कलमभावसे विषे हुए स्वधर्मपावन-उत्पत्ति अन्तःकरण पुनः होनेसे बहुत समय

१ प्रा पा - निष्कलमभा ॥ २ प्रा पा - गन्धम् ॥ ३ प्रा पा - तप्यम् ॥ ४ प्रा पा - अनिमित्त ॥

५ प्राणीन प्रतिमं भीमगोबानुवाच इत्या अर्थ नहीं है ।

ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ।
 तपोयुक्तेन योगेन तीव्रणात्मसमाधिना ॥२२॥
 प्रकृतिः पुरुषस्येह दक्षमाना स्वहर्निशम् ।
 तिरोभवित्री शनैरङ्गनेषो निरिषारणिः ॥२३॥
 शुक्तमोगा परित्यक्ता दृष्टदाषा च नित्यश्र ।
 नेमरस्याशुभं धत्ते स्व महिम्नि स्थितस्य च ॥२४॥
 यथा ह्यप्रतिषुद्धस्य प्रम्थापो बह्वनर्थमृत् ।
 स एव प्रतिषुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥२५॥
 एवं विदितवत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ।
 युञ्जता नापकुरुत आत्मारागस्य कर्हिचित् ॥२६॥
 यदैवमभ्यात्मरत कालेन बहुसंभवा ।
 सत्यं जातवैराग्य आ ब्रह्मसुखनान्मुनि ॥२७॥
 मङ्गलः प्रतिषुद्धार्थो मत्प्रसादन भृगुसा ।
 निःश्रेयसं स्वसम्यानैवैव्याख्य महाभयम् ॥२८॥
 प्राप्नोताहाङ्गमा धार स्वच्छाच्छिन्नसदृश ।
 यद्गत्वा न निर्वर्तेत योगी लिङ्गाद्विनिर्गम ॥२९॥
 यदा न यागावचितासु चता
 मायासु मिदस्य विपञ्जितेऽङ्ग ।
 अनन्यद्वैतुष्यं न गतिः स्यात्
 आम्पन्तिकी यत्र न मृत्युहास ॥३०॥

तत्र भगवत्कृपा श्रवणद्वारा पुष्ट हुई मरी तीव्र भक्तिसे,
 तत्त्वसाक्षात्कार करनेवाले ज्ञानसे, प्रबल वैराग्यसे, तत्
 नियमादिके सहित किये हुए ध्यानाभ्याससे और विशुद्धी
 प्रगाढ़ एकप्रतासे पुरुषकी प्रकृति (अविद्या) टिन-नात
 क्षीण होती हुई धीरे धीरे छीन हो जाती है ॥२१-२३॥
 फिर नित्यप्रति दाप दीखनेसे भोग्यर त्पाणी हुई वह
 प्रकृति अपने स्वस्वपणे स्थित और स्वतन्त्र (बन्धनमुक्त)
 हुए उस पुरुषका कुछ भी नहीं बिगड़ सकती ॥२४॥
 जैसे साये हुए पुरुषकी स्वप्नमें विनने ही अनर्थका
 अनुभव करना पड़ता है, किन्तु जग पड़नपर उसे ठन
 स्वप्नके अनुभवसे किसी प्रकारका मोह नहीं होता ॥२५॥
 उसी प्रकार जिसे तत्त्वज्ञान हो गया है और जो निरन्तर
 मुझमें ही मन लगाये रहता है, उस आत्माराग मुनिकर
 प्रकृति कुछ भी नहीं बिगड़ सकती ॥ २६ ॥ जब
 मनुष्य अनेकों जन्मोंमें बहुत सम्यक् इस प्रकार
 आत्मचिन्तनमें ही निमग्न रहता है, तब उसे ब्रह्मलोक-
 पपस्त सभी प्रकारके भोगोंमें वैराग्य हो जाता है ॥२७॥
 भेरा वह धैर्यवान् मनुष्य ही मन्त्रोक्त कृपासे तत्त्वज्ञान
 प्राप्त करके आत्मानुभूति द्वारा सारे संशयोंसे मुक्त हो
 जाता है और फिर लिङ्गदेहका नाश होनपर एषमात्र
 भरे ही आधिपत्य अपने स्वस्वमूल-कवम्प-मङ्गलमय
 पङ्कते सहजमें ही प्राप्त कर लेता है जहाँ पहुँचनपर
 योगी फिर ग्राह्य नहीं आता ॥२८२०॥ मायात्री !
 यदि योगिकचित्त योगमाधनसे मड़ी हुई मायाययी
 अगिमाप्ति सिद्धिपोंमें, विनकी प्राप्तिकर पाङ्के दिता
 दूमरा क'च साधन नहीं है मही रसना, ता उसे मेरा
 वह अविनाशी परमप्राप्त होता है—जहाँ मृत्युकी कुछ
 भी दाक नहीं ग'त्ता ॥ ३० ॥

इति श्रीभगवत्पते महापुराण पारमहंस्यो संहितायां तृतीयस्कन्धे वैराग्योपनिषत्पद्यान

सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

अष्टाष्टयोगकी विधि

श्रीमद्भागवतानुवाच

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सवीक्षस्य नृपात्मजे ।

मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्यधम् ॥ १ ॥

स्वधर्माचरणं कृत्वा विधर्माच्च निवर्तनम् ।

दैवाष्टम्वेन सन्ताप आत्मविष्णुपरिणामम् ॥ २ ॥

ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च माध्वधर्मरतिस्तथा ।

मितमेध्यादने शुभद्विविधे मसेवनम् ॥ ३ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ।

ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥ ४ ॥

मौनं सदाऽऽसनञ्च स्वैर्यं प्राणब्रह्मः शनैः ।

प्रत्याहारश्चन्द्रियाणां विषयान्मनसा इति ॥ ५ ॥

स्वधिष्ण्यानामकदम्बे मनसा प्राणधारणम् ।

बैकुण्ठलीलाभिषयानसमाधानं तथाऽऽत्मनः ॥ ६ ॥

एतैरन्वैश्वर्यं पथिभिर्मना दुष्टमसत्यधम् ।

शुद्धया शुद्धीत शनैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः ॥ ७ ॥

गुची देशे प्रतिष्ठाप्य विमितासन आसनम् ।

तस्मिन् स्थितिसमासीनश्च शुक्लायः समम्भसेत् ॥ ८ ॥

प्राणस्य शोधयन्मागं पूरकम्भक्षरेषकः ।

प्रतिकृत्तेन वा चित्तं यथा म्यिरमच्छसम् ॥ ९ ॥

कपिलभगवान् कहते हैं—माताजी । अब मैं तुम्हें

सवीज (ज्येष्ठस्वरूपके आत्ममनसे युक्त) योगधर्म
 बताता हूँ, जिसके द्वारा चित्त शुद्ध एवं प्रसन्न होकर
 परमात्माके मार्गमें प्रवृत्त हो जाता है ॥ १ ॥ यमविवेक
 शास्त्रविहित स्वधर्मका पाठन करना तथा शास्त्रवि
 वाचरणका परिष्कार करना, प्रारम्भके अनुसार जो कुछ
 मित्र जाय उसीमें सन्तुष्ट रहना, आत्मज्ञानियोंके परमार्थ
 पूजा करना, ॥ २ ॥ विषयवासनाओंको ब्रह्मनेत्रसे कर्मे
 पूर रहना, संसारधर्मनसे छुड़ानेवाले धर्ममें प्रेम करना,
 पवित्र-धीरे परिमित भोजन करना, निरन्तर एकमत और
 निर्मय स्वाध्यायमें रहना, ॥ ३ ॥ मन, वाणी और शरीरसे
 किसी जीवको न सनाना, सत्य बोलना, चोरी न करना,
 आवश्यकतासे अधिक वस्तुओंका संग्रह न करना, कर्म
 का पाठन करना, तपस्या करना (धर्मशास्त्रके वि
 नये सहना), बाहर भीतरसे पवित्र रहना, शास्त्र
 अध्ययन करना, मन्थनार्थकी पूजा करना, ॥ ४ ॥ वाणीका
 संयम करना, अथवा आसनोंका अभ्यास करके स्थिर-
 पूर्वक बैठना, धीरे-धीरे प्राणायामके द्वारा वात
 जीतना, इन्द्रियोंको मनके द्वारा नियंत्रित करके हृदय
 हृदयमें ले जाना ॥ ५ ॥ मूलाधार आदि किसी एक
 केन्द्रमें मनको स्थिर प्राणोंका स्थिर करना, निरन्तर
 भगवान्की लीलाओंका चिन्तन और चित्तको समर्पित
 करना, ॥ ६ ॥ इनसे तथा प्रत-दानादि दूसरे साधनोंसे
 भी साधनानांके साथ प्राणोंको जीतकर बुद्धिके द्वारा ब्रह्म
 कुमार्गगामी शुद्ध चित्तको धीरे धीरे एकाग्र करे, परमार्थ
 के ध्यानमें लग्ये ॥ ७ ॥

पहले आसनको भीते फिर प्राणायामके अभ्यासके
 त्रये पवित्र देशमें कुश-यूगधर्मदिसे युक्त आसन बिछावे ।
 उसपर शरीरको सीधा और स्थिर रखते हुए सुसूक्ष्म
 बैठकर अभ्यास करे ॥ ८ ॥ आत्ममें पूरक, पुष्पक
 और रेचक क्रमसे अभ्यास इसके विपरीत रेचक, पुष्पक
 और पूरक क्रमसे प्राणके मार्गका शोधन करे—ब्रह्म
 चित्त स्थिर और निश्चल हो जाय ॥ ९ ॥

मनोऽधिरात्स्याद्विरब्जं जितश्चासस्य योगिन ।
 वाक्त्रिमिमां यथा लोहं ज्वातं त्यजति वै मलयम् ॥१०॥
 प्राणायामैर्देहोपाब्धिराणाभिश्च क्लिष्टिष्वान् ।
 प्रत्याहारणं ससर्गाभ्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥११॥
 यदा मनः स्वविरजं योगेन सुसमाहितम् ।
 काष्ठां भगवतो व्यायेस्त्वनासाप्रावलोचन ॥१२॥
 प्रसन्नवदनान्मोर्जं पद्मगर्भलम्बणम् ।
 नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१३॥
 लसत्पङ्कजकिञ्चलकपीतकौशेयवाससम् ।
 श्रीपद्मवक्षसं ब्राह्मकौस्तुभाङ्गकधरम् ॥१४॥
 मत्तद्विरेककलया परितः वनमालया ।
 पराभ्यहारवलयकिरीटाङ्गदन्तूपुरम् ॥१५॥
 काष्ठीगुणोक्तसूत्रोणिं हृदयान्मोक्षविष्टरम् ।
 दर्शनीयतमं शान्तं मनानयनवर्धनम् ॥१६॥
 अपीष्पददर्शनं श्वस्तसर्वलोकनमस्कृतम् ।
 सन्तं वयसि कैशोरं श्रुत्यानुग्रहाकारम् ॥१७॥
 कीर्तन्यतीर्थयदसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ।
 व्यायद्वयं समप्राज्ञं यावद्यं व्यसते मनः ॥१८॥
 स्थितं यत्रन्तमासीनं क्षयानं वा शुभाशयम् ।
 प्रक्षणीयेति व्यायच्छुद्धमावेन चेतसा ॥१९॥

जिस प्रकार वायु और अग्निसे तपाया हुआ सोना अपने मलको त्याग देता है, उसी प्रकार जो योगी प्राणवायुको जीत लेता है, उसका मन बहुत 'गीम' शुद्ध हो जाता है ॥ १० ॥ अग्रे योगीको उचित है कि प्राणायामसे वात-पित्तादिजन्म दोषोंको, धारणासे पापोंको, प्रत्याहारसे विषयोंके सम्बन्धको और ध्यानसे भगवद्भिमुख करनेवाले राग-द्वेषादि दुर्गुणोंको दूर करे ॥ ११ ॥ जब योगका अभ्यास करते-करते चित्त निर्मल और एकग्र हो जाय, तब नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमाकर इस प्रकार भगवान्की मूर्तिको ध्यान करे ॥ १२ ॥

भगवान्का मुखकमल आनन्दसे प्रसृष्ट है, नेत्र कमलकोशके समान रतनारे हैं, शरीर मीलकमलदलके समान श्याम है, हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हैं ॥ १३ ॥ कमलपत्र केन्द्रके समान पीछा रेशमी वस्त्र लहरा रहा है, वस्त्र स्वर्णमें शीकसूचि है और गर्भमें कौस्तुभमणि शिखमित्रा रही है ॥ १४ ॥ मनवाला चरणोत्तक छटकी हुई है, जिसके चारों ओर मोरेसुगन्धसे मत्तवाले होकर मयूर गुंजार कर रहे हैं, अङ्ग-प्रपङ्गमें गङ्गामूक्य हार, पङ्कज, किरीट, मुजबब और नूपुर आदि जाम्बूज निवर्जमान हैं ॥ १५ ॥ कमरमें करघमीकी छबियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही हैं, मझोंके हृत्पद्ममल ही उनके आसन हैं, उनके दर्शनीय श्यामसुन्दर स्वरूप अत्यन्त शान्त एवं मन और नयनोंके आनन्दित करनेवाला है ॥ १६ ॥ उनका अति सुन्दर किशोर अवस्था है, वे मझोंपर हृषा करनेके लिये आगुर हो रहे हैं। वही भगवान् कीर्ति है । भगवान् सदा सम्पूर्ण लोकसे वन्दित हैं ॥ १७ ॥ उनका पवित्र यश परम कीर्तनीय है और वे राजा पंडित आदि परम यशस्वियोंके भी यशको बढ़ानेवाले हैं । इस प्रकार श्रीनारायणदेवका सम्पूर्ण जन्मके संहित तब तक ध्यान करे, जबतक चित्त बहोसे हट नहीं ॥ १८ ॥ भगवान्की छीलएँ वही दर्शनीय हैं अतः अपनी रुचिके अनुसार खड़े हुए, पठते हुए, बैठे हुए, पीठे हुए अथवा अन्तर्यामीरूपमें स्थित हुए उनका अभ्ययका विमुक्त भावयुक्त चित्तसे चिन्तन कर ॥ १९ ॥ इस प्रकार योगी

तस्मिँल्लभ्यपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ।

विलक्ष्यैकत्र सयुज्यादङ्गे भगवतो मुनिः ॥२०॥

सञ्चिन्तयेद्भगवत्परमपारबिन्दं

वस्राङ्गुशब्दसरोरुहलाञ्छनात्मम् ।

उच्यतेरक्तविलसत्पद्मकपाल

ज्योत्स्नाभिराहतमहदृष्टदया-भकारम् ॥२१॥

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रबरोदकेन

तीर्थेन मूर्ध्न्यभिर्कृतेन क्षिप्तः क्षिप्तोऽमृतः ।

भ्यातुर्नमः समलक्षैलनिःसृष्टवत्

व्यापस्त्रि भगवत्परमपारबिन्दम् ॥२२॥

मोनुद्वय ललललोचनया जनन्या

लक्ष्म्यालिखत् सुरवन्दिताया विभातुः ॥

ऊर्वोर्निधाय करपङ्कजरोचिषा यत्

संलालितं हृदि विभोरभयस्य दुर्गात् ॥२३॥

ऊरु सुपर्णद्वययोरभिधोभमाना

बाजोर्निधौ व्रतसिक्काङ्गुमात्रभासौ ॥

भ्यालम्बिपीतवरभाससि वर्तमान

काङ्क्षाकलापपरिरम्भि नितम्बविन्दम् ॥२४॥

नाभिहृद सुवनकोष्ठगुहोरस्थं

यत्रात्मयानिधिपणाखिललोकपथम् ।

भ्यूढं हरिन्मजिर्ध्वस्तनयोरुत्पथ

भ्यायेद् द्वय विशदहारमयूखगौरम् ॥२५॥

पद्मोऽभिवासमृषभस्य महाविभूतेः

पुंसां मनानयननिर्दिष्टमाध्वानम् ।

जब यह खण्डी तरह देख ले कि भावद्विष्टमे ।

स्थिति हो गयी, तब वह उनके समस्त अङ्गों में व
चित्तको विशेष रूपसे एक-एक अङ्गमें लगावे ॥

भगवान्‌के चरणवमलोंका ध्यान करना चाहिं
पद्म, अङ्गुष्ठ, अङ्गुली और वमल्यः मङ्गलमय जिह्वेसे ।

तथा अपने उभरे हुए छात्र-छाल शोभाय सब
मण्डकनी चन्द्रिकासे ध्यान करनेवालोंके हृत्पथके बल

घोर व्यक्तकारको दूर कर देते हैं ॥२१॥ इन्हींकी से
नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीमद्भात्री प्रकट हुई थी, जिनके

बलको मस्तकपर धारण करनेके कारण सब भक्त
श्रीमद्भादेवकी और भी अधिक मङ्गलमय हो गये

अपना ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वतोंपर ऐसे
इन्द्रके बलके समान हैं । भगवान्‌के इन चरणकला

विरकाकलाप चिन्तन करे ॥ २२ ॥

भवमयहारी अवन्त्या श्रीहरिकी दोनों चिह्नों
पुण्योक्त ध्यान करे, जिनको विश्वविधाया अर्च्य

माता सुरवन्दिता कमलज्योत्स्ना छत्रीकी अपनी बाँधों
रखकर अपने कान्तिमान् करकितलमोंकी कानि

काक जहाती रहती हैं ॥ २३ ॥ भगवान्‌की बाँधों
ध्यान करे जो अक्षरीके पङ्कके समान नीलमय वं

बलकी निधि हैं तथा गङ्गाकी पीठपर होमयुक्त
हैं । भगवान्‌के नितम्बविन्दका ध्यान करे, जो एकी

कटके हुए पीताम्बरसे ढका हुआ है और उस पीतम्बर
के ऊपर पङ्कनी हैं सुकण्ठकी करवनीकी उदिकों

आच्छिन्न कर रहा है ॥ २४ ॥

सम्पूर्ण लोकोंके आश्रयस्थान भगवान्‌के उदरदेशमें
स्थित माभिसरोवरका ध्यान करे, इसीमेंसे अक्षरीय

आधारभूत सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ है । शि
प्रभुके श्रेष्ठ मरकतमणिसदृश दोनों स्तनोंका चिन्तन

करे, जो वक्ष आच्छर पङ्क हुए सुख हाँकेकी चिन्तने
गौरवर्ण जान पड़ते हैं ॥ २५ ॥ इसके पङ्क

पुण्योत्तम भगवान्‌के वक्ष आच्छर ध्यान करे, जो आच्छर
का निवासस्थान और लोगोंके मन एवं नेत्रोंके आनन्द

१ प्राचीन प्रक्षिप्तं 'कान्ति' से लेकर 'ऊर्ध्व' तक पूरा एक श्लोक मूलमें नहीं है, टिप्पणीमें लिखा गया है ।

२ प्रा प — मणिराज ।

कण्ठं च कौस्तुभमणोरभियूषणार्थं

हृयन्मनसखिललोकमस्कृतस्य ॥२६॥

बाहुभ्य मन्दरगिरे परिवर्तनेन

निर्गिकबाहुभलयानधिलोकपालान् ।

सञ्चिन्तयेद्दशतारमसङ्घतेन

शङ्खं च तस्करसरोरुहोच्चैः ॥२७॥

कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत्

दिग्भामरातिभट्टोणितकर्दमेन ।

मालां मधुव्रतकरूपगिरोपधुतां

चैत्यस्य तत्त्वममल मणिमस्य कण्ठे ॥२८॥

मृत्पातुलकमितथियेहं गृहीतमूर्ते

सञ्चिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम् ।

यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवस्मिन्नेन

विद्योतितामलकपोलबुदारनासम् ॥२९॥

यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं

मृत्पास्यया कुटिलकुन्तलहृन्वक्षुष्टम् ।

मीनद्रुपाभयमधिषिपदञ्जनेन

ध्यायेन्नमोमममसन्निद्रव उच्छसद्भु ॥३०॥

तस्मात्सलकमभिक कृपयातिषार

तापत्रयोपशमनाय निस्तुष्टमस्मणो ।

१- १ प्राचीन प्रणिमे १ व विहमे ऐच्छ १ के विहमके बीषया अंग मृष्टमे नष्टव दे
दिल्लीमें लिखा है ।

० भाषानामय अण्डे निर्वैद्यमृगामयम् । विद्यार्ति कौस्तुभमणि मन्त्रं अण्डान् हरिः ॥

अर्थात् इव अण्डकी निर्वैद्य निर्गुण निमल तथा स्वरूपभूत आध्याना कौस्तुभमणि ० नमो अण्डान् धारण करत है ।

देनेवासा है । फिर सम्पूर्ण ओंकारोंके बन्दनीय भगवान्‌के गलेका चिन्तन करे, जो मानो कौस्तुभमणिको भी सुशोभित करनेके लिये हैं। उसे धारण करता है ॥ २६॥

समस्त श्रेयसांशोंकी आध्रयभूता भगवान्‌की चारों सुखांशोंका ध्यान करे, जिसमें धारण किये हुए कण्डूणादि आभूषण समुद्रमन्यमके समय मन्दराक्षजकी रणइसे और भी उबले हो गये हैं । इसी प्रकार जिसके सेवकों सहन नहीं किया जा सकता, उस सहन चारोंवाले सुदर्शनचक्रका तथा उनके कर-कमलमें उबईसके समान विराजमान शङ्खका चिन्तन करे ॥ २७ ॥ फिर विपक्षी वीरोंके कथितसे सनी हुई प्रसूकी प्यारी कौमोदकी गदाका, वीरोंके शब्दसे गुह्यायमान कन्याका और उनके कण्ठमें सुशोभित सम्पूर्ण जीवोंके निमलतत्त्वरूप कौस्तुभमणिको ध्यान करे ॥ २८ ॥

मूर्त्तोंपर ध्या करानेके लिये ही यहाँ साधारण्य धारण करनेवाले श्रीहरिके मुखकमलका ध्यान करे, जो सुषुप्त नास्तिकसे सुशोभित है और निष्कमिन्त्रसे हुए मकर-कुल कुण्डलके हिङ्गनेसे अतिशय प्रकाशमान सङ्घट्ट कनोओं-के कारण बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है ॥ २९ ॥ काँड़ी-काँड़ी पुँखकाँड़ी अलकाँड़ीसे मण्डित भगवान्‌का मुखमण्डल अपनी छविके द्वारा अमरोंसे सेवित कमलकोशका भी तिरस्कार कर रहा है और उसके कमलसदृश विशाल एवं चञ्चल नेत्र उस कमल-कोशपर उलझते हुए मछलियोंके जोड़ेकी दोमाको माल कर रहे हैं । उन्नत भ्रूयांशोंसे सुशोभित भगवान्‌के ऐसे मनोहर सुस्मारविन्की मनमें धारणा करके आकष्य रहित हो उसीका ध्यान करे ॥ ३० ॥

हृन्वक्षुष्टमं चिरकायक धक्तिमावसे भगवान्‌के नेत्रोंकी चितवनका ध्यान करना चाहिये—जो हृपासे और प्रेममयी मुसकामसे क्षण-क्षण अधिक्रयिक बढ़ती

स्निग्धस्मितानुगुणित विपुलप्रसादं

ध्यायेद्विरं विततभावनया गुहायाम् ॥३१॥

हास हरेरवनवासिललाफलीप्र

श्लाकाभ्रसागरविश्रोपणमत्पुद्गारम् ।

सम्भाहनाय रचित निभमाययास

भ्रमण्डल मुनिकुठे मकरज्वलस्य ॥३२॥

ध्यानायनं प्रहमित बहुलाधरोष्ठ

भासारुणायिततनुम्रिजकुन्दपङ्क्ति ।

ध्यायेत्स्वदेहकुहरऽवसितस्य विष्णो

मक्त्याऽऽर्द्रयार्पितमनानपृथग्निदृष्टेत् ॥३३॥

एवं हरौ भगवति प्रतिलम्बभाषो

भक्त्या द्रवदृष्टदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।

औष्ण्यवाप्यकलमा सुदुरधमान

स्तथापि चित्तवद्विषं धनवैर्विमुक्तो ॥३४॥

मुक्ताभय यदि निर्दिष्यं विरक्त

निर्वापमृच्छति मनः सहसा नयाधिः ॥

अतमानमत्र पुरुषोऽप्यवधानमेक-

मन्त्रीयते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाह ॥३५॥

साऽप्येतया चरमया मनसा निवृत्त्या

चक्षि-महिम्न्यवसित मुलदुःखयासा

इतुत्तमप्यसति कर्तारि दुःन्यायत्

न्या-मनु विभक्त उपलब्धपरात्मकाष्टः ॥३६॥

१ या पा — न्या ।

रहती है, विपुल प्रसादकी कर्मा करती रहती है व
मज्जननोंके अत्यन्त घोर तीनों तापोंको दमन करने
लिये ही प्रकट हुई है ॥ ३१ ॥ श्रीहरि का
प्रणतजनोंके तीव्र-से-तीव्र शोकका अनुसाराको मुन
देता है और अत्यन्त उदार है । मुनियोंने शिवके लि
कामदेवको मोहित करनेके लिये ही अपनी बाप
श्रीहरिन अपने भ्रमण्डलको बनाया है—उनका धन
करना चाहिये ॥ ३२ ॥ अत्यन्त प्रेमाग्रन्त
अपने हृदयमें निराग्रमान श्रीहरिके स्निग्धस्मित
हँसनेका ध्यान करे, जो वस्तुतः ध्यानके ही फल
है तथा जिसमें ऊपर और नीचेके दोनों होठों
अत्यधिक अरुण कान्तिके कारण उनके कुन्दकली
समान झुब झोटे-झोटे दाँतोंपर अस्मिता-सी प्रकीर्ण हो
छपी है । इस प्रकार ध्यानमें लग्न होकर उनके सि
किसी अन्य पदार्थको देखनेकी इच्छा न करे ॥ ३३ ॥

इस प्रकारके ध्यानके अग्न्याससे साधकका शरीर
प्रेम हो जाता है, उसका हृदय मलित हो जाता
है शरीरमें आनन्दसिरेकके कारण रोमाञ्च होने लग
है, उत्कण्ठबलित प्रेमाभ्रओंकी चारों ओर बह जाकर
अपने शरीरको नहलवाता है और तब मछली फलने
कौटिके समान श्रीहरिको अपनी ओर आकर्षित करने
साधनरूप अपने चित्तको भी धीरे-धीरे प्रिय बहने
हटा लेता है ॥ ३४ ॥ जैसे सेर आदिके चुक बलने
दीपशिखा अपने कारणरूप तन्मय-तत्त्वमें डूब हो
जाती है, वैसे ही आद्यपि, किय और एतसे उलित
होकर मनशान्त—ब्रह्माकार हो जाता है । इस अवस्था
के प्राप्त होनेपर जीव गुणप्रवाहरूप वेदादि उपरि
क निवृत्त हो जानेके कारण ध्याता, ध्येय आदि विभक्
से रहित एक अखण्ड परमात्माको ही सर्वत्र अनुपल
देखता है ॥ ३५ ॥ योगिन्याससे प्राप्त हुई चित्त
इस अविचारहित अवस्था निवृत्तिमें अपनी सुख-दुःख
रहित ब्रह्मरूप महिमामें स्थित होकर परमात्मन्य
साक्षात्कार कर लेता है वह योगी जिस सुख-दुःख-को
मोक्तत्वकी पहलू अज्ञानरूप अनन्य हारणमें देखता है
उसे वह अविचारित ब्रह्मरूपमें ही देखता है ॥ ३६ ॥

देह चर्चं न शरम स्थितमुत्थितं वा

सिद्धो विपश्यति यतोऽप्यगमत्स्वरूपम् ।

दैवादुपेतमथ

दैववशादपेक्ष

मासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥३७॥

द्वेष्टेऽपि दैववशग म्लु कर्म बाधत्

स्वारम्भकं प्रतिस्मीयत एव सासुः ।

त सप्रयत्नमधिरूढसमाधियोगः

म्वान् पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥३८॥

यथा पुत्राच्च विद्याच्च पृथङ्मर्त्यं प्रतीयते ।

अप्यात्मत्वेनाभिमतोद्देशाद् पुरुषस्तथा ॥३९॥

ययोरमुकाद्विस्फुलिक्लादृमाद्रापि स्वसम्भवात् ।

अप्यात्मत्वनाभिमतयाथाधि पृथगुन्मुक्तात् ॥४०॥

भूतेन्द्रियान्तःकरणप्रधानाजीवसञ्चितात् ।

आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् प्रकाशकितः ॥४१॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चारमणि ।

ईधतानयभावनं भूतेष्विव तदामसाम् ॥४२॥

म्यपोनिषु यथा ज्योतिरङ्कं नाना प्रतीयते ।

१ मा पा — २ प्राचीन प्रतिभे देवराज नरो तिष्ठति ॥ १ ॥

जिस प्रकार मंदिरके मंदसे मस्तवाले पुरुषको अपनी कमरपर छपेटे हुए बलक रहने या गिरनेकी कुछ भी सुनि नहीं रहती, उसी प्रकार शरमावस्थाको प्राप्त हुए सिद्ध पुरुषको भी अपनी देहक बैठने-उठने अपना दैववश कहीं जाने या छौट आनक विषयमें कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, क्योंकि वह अपने परमानन्दमय स्वरूपमें स्थित है ॥ ३७ ॥ उसका शरीर तो पूजन के संस्कारोंके अधीन है, अतः जबतक उसका आरम्भक प्रारम्भ होय है तबतक वह इन्द्रियोंके सहित जीवित रहता है, किन्तु जिसे समाधिपर्यन्त योगकी स्थिति प्राप्त हो गयी है और जिसने परमात्मतत्त्वको भी मचीमौति जान लिया है, वह सिद्धपुरुष पुत्र-फलप्रादिके सहित इस शरीरको ज्ञानमें प्रतीत होनेवाले शरीरोंके समान फिर स्वीकार नहीं करता—फिर उसमें अहंता-ममता नहीं करता ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार अत्यन्त लज्जक कारण पुत्र और धनार्थि में भी साधारण जीवोंकी आत्मसुद्धि रहती है, किन्तु घोडा-सा विचार फरनसे ही वे उनसे स्पष्टतया अलग दिखायी देते हैं, उसी प्रकार जिन्हें यह अपना आत्मा मान बैठा है, उन देहात्मीसे भी उनका साक्षी पुरुष पृथक् ही है ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार जलती हुई लकड़ी-से, चिनगाहीसे, स्वयं अग्निसे ही प्रकट हुए धुएँसे तथा अग्निरूप मानी जानेवाली उस जलती हुई लकड़ीसे भी अग्नि वास्तवमें पृथक् ही है—उसी प्रकार मूल, इन्द्रिय और अन्तःकरणसे उनका साक्षी आत्मा अलग है, तथा जीव कहलानेवाले उस आत्मामें भी प्रकाश भिन्न है और प्रकृतिसे उसके सञ्चाटक पुरुषात्तम भिन्न है ॥ ४० ॥ जिस प्रकार देहदृष्टिमें जरायुज, अण्डज, स्वेदज और तन्निज—आगे प्रकारक प्राणी पञ्चभूतमात्र हैं, उसी प्रकार सगूण जीवोंमें आग्नेयज और आत्मामें संपूर्ण ज्योतिज अनन्यभावम अनुगत नैव ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार एक ही अग्नि अपने पृथक् पृथक् आधारीमें उनकी विभिन्नताके कारण भिन्न-भिन्न आकारक प्रियायी म्ना है, उसी प्रकार नैव-मनुष्यादि जगत्में रहनेवाले एक ही

वे लेकर आकाश आधिम तदा भगवन्म

योनीनां गुणवैभवाद्यथाऽऽत्मा प्रकृती स्थिताः ॥ ४३ ॥

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ।

दुर्विभास्यां पराभास्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥

आत्मा अपने व्याधियों के गुण भेद के कारण भिन्न-भिन्न प्रकारका मासता है ॥ ४३ ॥ अतः भगवान्का एक जीव के स्वरूप को छिपा देनेवाली कार्यकर्मण्यसे परिणामको प्राप्त हुई भगवान्की इस अचिन्त्य शक्तिसे मायाको भगवान्की कृपासे ही जीतकर अपने वास्तविक स्वरूप—ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होता है ॥ ४४ ॥

इति धीमन्नागवते ऋगपुराणे पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे

कैविलेये साधनानुष्ठान नामाष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

भक्तिका मर्म जीव ब्रह्मकी महिमा

देवहस्तिनाथ

लक्षणं महादादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ।

स्वरूपं लम्बतेऽमीषां येन तत्पारमार्थिकम् ॥ १ ॥

यथा सांख्येषु कथितं बन्मूलं तत्प्रचक्षते ।

भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरणैः प्रभो ॥ २ ॥

विरागो येन पुरुषो भगवन् सर्वतो भवेत् ।

आचक्ष्व जीवलोकांस्व विविधा मम संसृतीः ॥ ३ ॥

कालेत्येभ्यस्वरूपस्य परेषां च परस्य ते ।

स्वरूपं वत कुर्वन्ति बह्वेतोः कुञ्जलं जनाः ॥ ४ ॥

लोकस्य मिष्टमभिमतेरचक्षुष्य

धिरं प्रसृतस्य तमस्यनाथये ।

भान्तस्य कर्मस्वनुविद्यया धिया

त्वमाविरत्सीः किल योगभास्करः ॥ ५ ॥

मैत्रेय उवाच

इति मातुर्बचः स्मृणु प्रतिनन्य महाशुनिः ।

अथमापे कुरुभेष्ट प्रीतस्तां करुणार्दितः ॥ ६ ॥

वेद्यहस्तिने पूज्य—प्रभो ! प्रकृति, पुरुष और मूल तत्त्वों का जैसा कछुआ सांख्यशास्त्रमें कहा गया है तथा जिसके द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप जाना-जाना जाता है और भक्तियोगको ही जिसका प्रयोजन कहा गया है, वह आपने मुझे बताया । अब क्या करके भक्तियोगका मार्ग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये ॥ १-२ ॥ इसके सिवा जीवोंकी जन्म-मरणरूपा अनन्त प्रकृतियों की भी वर्णन कीजिये, जिनके सुननेसे जीवोंसे सब प्रकारकी वस्तुओंसे वैराग्य होता है ॥ ३ ॥ जिसके मयसे जोग छुट करके मयसे प्रवृत्त होते हैं और जो ब्रह्मादिका भी शासन करनेवाला है, उस सर्वसमर्थ कर्मका स्वरूप भी आप मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ बाल-वृद्धिके छुट हो आनेके कारण देहादि मिथ्या वस्तुओंमें जिन्हें आह्वयमान हुआ गया है तथा बुद्धिके कर्मलक्षणा होनेके कारण अत्यन्त व्यथित होकर जो धिरकर्मसे अपार कष्टकारमय संसारमें सोये पड़े हैं उन्हें जगने के लिये आप योगप्रकाशक स्वयं ही प्रकट हुए हैं ॥ ५ ॥

धीमैत्रेयजी कहते हैं—कुरुभेष्ट विदुरजी ! मत्पक्ष में मेनोहर बचन सुनकर महाशुनि कणिकरीने उनकी प्रशंसा की और जीवोंके प्रति दयासे प्रदीप्त हो बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भूमिनि मान्यते ।

स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ ७ ॥

अभिसंधाय यो हिसां दम्भ मात्सर्यमेव वा ।

संरम्भी भिषद्भ्याम् मयि ह्युयात्स सामस ॥ ८ ॥

विषयानभिसंधाय यस्त ऐश्वर्यमेव वा ।

अर्चाश्चर्चयेद्यो मां पृथग्भाव स राजसः ॥ ९ ॥

कर्मनिर्हारीदृश्य परस्मिन् वा तददर्शम् ।

यज्ञेष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥ १० ॥

मद्वगुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहोऽग्रे ।

मनोगतिरबिच्छिन्ना यथा गङ्गात्मसोऽम्बुधौ ॥ ११ ॥

उत्पन्न भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ब्रह्मादृतम् ।

अहेतुस्त्वन्मद्विज्ञाया भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥

सालोक्यसार्ष्टिसानीप्यसारूप्यैकत्वमन्युत ।

दीयमान न गृह्णन्ति बिना मत्सेवर्न भवा ॥ १३ ॥

स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृत ।

येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १४ ॥

निषेवितेनानिमित्तेन म्बधर्मेण महीयसा ।

क्रियायोगेन शस्तेन नासिद्धिसेण नित्यश्च ॥ १५ ॥

मद्विष्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनं ।

भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासङ्गमेव च ॥ १६ ॥

मद्वतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ।

मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥ १७ ॥

आत्मात्मिकानुधवणाद्यामसङ्कीर्तनाप्य मे ।

आजवेनार्पमङ्गल निरर्हक्रियया तथा ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच—मातामी । साधकोपे भवके

अनुसार भक्तियोगकर्त्ता अनेक प्रकारसे प्रकट होता है,

न्योकि स्वभाव और गुणोंके भेदसे मनुष्योंके भावमें भी

निभिन्नता आ जाती है ॥ ७ ॥ जो भेददर्शां क्रोधी पुरुष

हृदयमें हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्यका भाव रखकर मुझसे

प्रेम करता है, वह मेरा तामस भक्त है ॥ ८ ॥ जो पुरुष

विरय, यश और ऐश्वर्यकी कामनासे प्रतिपादितमें मेरा

भेदभावसे पूजन करता है, वह राजस भक्त है ॥ ९ ॥

जो व्यक्ति पापोंका क्षय करनेके लिये, परमात्माको अर्पण

करनेके लिये और पूजन करना कर्तव्य है—इस मुक्तिसे

मेरा भेदभावसे पूजन करता है, वह सात्त्विक भक्त है ॥ १० ॥

जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अक्षयवृत्तसे समुद्रकी ओर

बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणोंके अधगमात्रसे

मनकी गतिपर तैकचारावत् अवशिष्टानुरूपसे मुझ सर्वान्ति-

र्यामीके प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तममें निष्काम

और क्लम्य प्रेम होना—यह त्रिगुण भक्तियोगका लक्षण

कहा गया है ॥ ११ ॥ ऐसे निष्काम भक्त, दिये

जानेपर भी, मेरी सेवाको छोड़कर साधोर्क्य, सार्ष्टि,

सामीप्य, सारूप्य और सापुण्य मोक्षदक नहीं लेते—

॥ १२ ॥ भावत्-सेवाके लिये मुक्तिका तिरस्कार करने

वाला यह भक्तियोग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा

गया है । इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणोंको छोड़कर मेरे

भावको—मेरे प्रमत्त अथाकृत स्वरूपको प्राप्त हो जाता

है ॥ १३ ॥

विषयमभावसे अन्तर्पूर्वक अपन नित्यनैमित्तिक कृत्यों

का पावन कर, नित्यप्रति हिंसारहित उत्तम क्रियापात्रका

अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमाका दशन, स्पर्श, पूजा,

स्तुति और वन्दना करने, प्रायियोंमें मेरी भावना करने,

धैर्य और वैराग्यके अवलम्बन, महापुरुषोंका मान, दीनोंपर

दया और समान स्थितिवालोंके प्रति मित्रताका व्यवहार

करने, यम नियमोंका पावन, अत्यात्मशास्त्रोंका धरन और

मेरे नामोंका उच्च स्वरसे वीजन करनेसे तथा मनकी

सरलता सत्पुरुषोंके संग और अहङ्कारक त्यागसे मेरे

१ आ वा —च । २ आ पा—गुणारणे ।

१ भगवान्के नियमार्थमें निराह २ भगवान्के क्लम्य ऐश्वर्ययोग ३ भगवान्की नित्यनैमित्तिक ४ भगवान्

की भावना और ५ भगवान्के विषयमें कृपा करना उनमें एक हो जाना या विलक्षण प्रेम कर मना ।

योनीनां गुणवैपम्यात्तथाऽऽत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥ ४३ ॥

तस्मादिमांस्तौ प्रकृतिं देवीं सदसदात्मिकाम् ।

दुर्विभाव्यां पराभाष्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥

आत्मा अपने आश्रयोंके गुण भेदक कारण विभक्ति प्रकटकर भासता है ॥ ४३ ॥ अतः भगवान्का यह जीवके स्वरूपको छिपा देनेवाली कार्यकारणरूपसे परिणामको प्राप्त हुई भगवान्की इस अचिन्त्य शक्तिसे गायकने भगवान्की कृपासे ही नीमकर अपने कलात्मिक स्वरूप—ब्रह्मरूपमें स्थित होता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसा संहितायां तृतीयस्कन्धे

कैवल्ये साधनानुष्ठान नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

भक्तिका मर्म और कलकी महिमा

देवहृतित्वात्

लक्ष्मण महादादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ।

स्वरूप लम्बतेऽमीषां येन तत्पारमाधिकम् ॥ १ ॥

बधा सांख्येऽपि कथितं यन्मूढ तत्प्रचक्षते ।

भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरार्थः प्रभो ॥ २ ॥

विरागो येन पुरुषो भगवन् सर्वतो भवेत् ।

आचक्ष्य जीवलोकास्त्रिविधामम संसृतीः ॥ ३ ॥

काष्ठेत्येधरूपस्य परेषां च परस्य ते ।

स्वरूपं वत् कुर्वन्ति यद्वेताः कुशलं जनाः ॥ ४ ॥

लोकस्य मिथ्याभिमतैरवशुप

भिरं प्रसुप्तस्य तमस्पनाभवे ।

भ्रान्तस्य कर्मस्वनुविद्धया भिया

त्वमाविरासीः किल योगमास्करः ॥ ५ ॥

मैत्रेय उवाच

इति मातुर्बचः शृण्वन् प्रतिनन्द्य महाश्रुतिः ।

आत्मभाषे कुरुभेष्ट प्रीतस्तां करुणार्हितः ॥ ६ ॥

वेदवृत्तिने पूज्य—प्रभो ! प्रकृति, पुरुष और लक्ष्मण तत्त्वादिका कैसा लक्ष्मण सांख्यशास्त्रमें कहा गया है तथा जिसके द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप ब्रह्म-ब्रह्म नाना जाता है और भक्तियोगकी ही जिसका प्रयोग कहा गया है, वह आपने मुझे बताया । अब कृपा करके भक्तियोगका मार्ग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये ॥ १ ॥ इसके सिवा जीवोंकी जन्म-मरणरूपा अनेक प्रकारकी गतियोंका भी वर्णन कीजिये, जिनके सुननेसे जीवोंसे सब प्रकारकी वस्तुओंसे वैराग्य होय ॥ २ ॥ जिसके भयसे जाग शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और जो ब्रह्मादिका भी शासन करनेवाला है, उस सर्वसमर्थ कलका स्वरूप भी आप मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ इन-इसके छुट हो जानेके कारण वेदादि मिथ्या वस्तुओंमें जिन्हें आत्मामिमान हो गया है तथा बुद्धिके कर्मसिद्ध रहनेके कारण अत्यन्त व्यथित होकर जो विरक्तोंसे अपार अन्धकारमय संसारमें साये पड़े हैं, उन्हें आपने के लिये आप योगप्रकाशक रूप ही प्रकट हुए हैं ॥ ५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—कुक्षेत्रे निदुराजी ! मृत्युके ये मनोहर वचन सुनकर महाश्रुति करिबजीन उनकी प्रशंसा की और जीवोंके प्रति दयासे प्रसीध हो गयी प्रसन्नताके साथ उनसे इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥

धीमगवानुवाच

भक्तियागा बहुविधा मार्गर्भीमिनि भाष्यत ।
स्वभावागुणमार्गेण पुंसां भावो विधिष्यते ॥ ७ ॥
अभिसंधाय वो हिंसां दम्भ मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नहृत्मा च मयि कुर्वात्स तामस ॥ ८ ॥
विषयानभिसंधाय यश एदर्शमेव वा ।
अर्चाशरर्चयेद्यो मां पृथग्भावा स राजसः ॥ ९ ॥
कर्मनिर्हारीमुद्दिश्य परमिन् या तदर्शगम् ।
यजेद्यद्यप्यमिति वा पृथग्भावा स सात्विक ॥ १० ॥
मद्गुणभूतिमात्रेण मयि सर्वगुह्यं शय ।
मनोमात्रविच्छिन्ना यथा गङ्गाभ्रमसोऽम्बुधौ ॥ ११ ॥
लघुग भक्तियागस्य निर्गुणस्य सादाहृतम् ।
मदैतुष्यस्य बहिता या भक्ति पुरुषाद्यमे ॥ १२ ॥
सालाक्ष्यसाष्टिसामीप्यसारूप्यैक्यमप्युत ।
दीयमान न गृह्णन्ति बिना भक्त्यन्यना ॥ १३ ॥
मप्य भक्तियोगाग्य आन्वन्तिक उदाहृत ।
येनातिग्रह्य त्रिगुणं मद्भावायापयत ॥ १४ ॥
निषवितनानिमित्तं स्वधर्मेण महीयमा ।
क्रियाबागन दस्तन नातिहिंसेण नियम्य ॥ १५ ॥
मद्विष्यदग्रनस्पर्गप्राप्तुत्यभिवन्दनं ।
भूतेषु मद्भावनया मन्त्रेणामङ्गयन च ॥ १६ ॥
महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ।
मैत्र्या चैवानुभूतेषु यमन नियमन च ॥ १७ ॥
आत्मा मित्रानुयवणासाममर्शनास्व म ।
आजइनायमद्गुण निरहक्रियया तथा ॥ १८ ॥

धीमगवानुवाच कहा—मानाजी । साधकोक भाषके अनुसार भक्तियोगकर्त्तृ अनेक प्रकारसे प्रकाश होता है, क्योंकि स्वभाव और गुणोंके भन्से मनुष्योंके भावमें भी विभिन्नता आ जाती है ॥ ७ ॥ आ भेददर्शी कोही पुरुष हृदयमें हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्यका भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है, वह मेरा तामस मछ है ॥ ८ ॥ जो पुरुष विषय, यश और ऐश्वर्यकी कामनासे प्रतिमादिमें मेरा भेदभावसे पूजन करता है, वह राजस मछ है ॥ ९ ॥ जो व्यक्ति पापोंका क्षय करनेके लिये, परमात्मका अर्पण करनेके लिये और पूजन करना इच्छाम्य है—इस बुद्धिसे मेरा भेदभावसे पूजन करता है, वह सारिक्क मछ है ॥ १० ॥ जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अखण्डरूपसे समुद्रकी ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे मनकी गतिकर लक्ष्यकारणत् अविच्छिन्नरूपसे मुझ सबान्तर्धामीके प्रति ही जाना तथा मुझ पुरुषात्तममें निष्काम और अनय प्रेम होना—यह निगुण भक्तियोगका लक्षण कहा गया है ॥ ११ १२ ॥ ऐसे निष्काम मछ, जिये जानवर भी, मरी सेवाकर छोड़कर साठारव, साँप, सामीर्य, सारूप्य और मायुग्ये माझतय नहीं लेते— ॥ १३ ॥ मगबद-सेवाक लिये मुक्तिकर निरस्कर करने वाला यह भक्तियोग ही परम पुरुषाय अथवा साध्य कहा गया है । इसका द्वारा पुरुष तीनों गुणोंका छोकर मेरे भावका—मेरे प्रमत्त अत्राहुन स्वर्गाका प्राप्त हो जाना है ॥ १४ ॥
निष्कामभावसे धडापूषक अथवा निष्कामिचित्त वस्तुओं का पात्र बन, निष्प्रमति हिंसाहित उन्नम क्रियायोगका अनुष्ठान करने, मरी प्रतिपादय एतल, स्वयं, पूजा, स्तुति और कल्याण करने, प्राणिजोमें मेरी भावना करने, धैर्य और कैरव्यर करइम्वन, मदापुर्णोका मान, तीनोंर त्प्या और समन स्थितिजोका प्रति विप्रकनय ध्यवहार करने, यम नियमोका पात्रन, अण्यनशाकोका धरन और मेरा नाभोका तत्त्व धरने कीरन करनेमें मेरा मदकी सारवता मनुष्योका मंग अर उदाहरण लक्षण मेरा

१ ८ ७ — १ ८ ७ — दुर्गाव ।

१ मातृर नियमस्ये निरन भगवन्त एतल ऐश्वर्येण ३ भगवन्त की निरनियम ४ भगवन्त

५ भगवन्त भगवन्त भगवन्त भगवन्त भगवन्त भगवन्त भगवन्त भगवन्त भगवन्त भगवन्त

योनीनां गुणवैपम्यात्तथाऽऽत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥ ४३ ॥

तस्मादिमांसां प्रकृतिं देवीं सर्वसदात्मिकाम् ।

दुर्षिमावर्षा पराभास्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥

आत्मा अपने आधारीके गुण भेदके कारण मिश्र-मिश्र प्रकारका भासता है ॥ ४३ ॥ जत भगवान्का यह जीवके स्वरूपका छिपा देनेवाली कल्पकारणरूपसे परिणामको प्राप्त हुई भगवान्की इस अचिन्त्य शक्तिकसे मायाको भगवान्की कृपासे ही नीतकर अपने काल्पनिक स्वरूप—महाकल्पमें स्थित होता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो संज्ञितायां तृतीयस्कन्धे

कैवल्ये माचनानुष्ठानं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

भक्तिकार मर्म और कालकी महिमा

देवहृदित्वात्

लक्षण महादीनां प्रकृते पुरुषस्य च ।

स्वरूपं लभ्यतेऽमीषां येन तत्पारमाधिकम् ॥ १ ॥

यथा सांख्येषु कथितं बन्मूलं तत्प्रचक्षते ।

भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि बिस्तरशैः प्रभो ॥ २ ॥

विरागो येन पुरुषो भगवन् सर्वतो भवेत् ।

आवस्व जीवलोकस्य विविधामम संसृतिः ॥ ३ ॥

कालेर्येष्वरूपस्य पर्यायं च परस्य ते ।

स्वरूपं वत कूर्धन्ति बद्धेनो कुञ्चल अना ॥ ४ ॥

लाकस्य मिथ्याभिमतैरवशुप

धिरं प्रसृतस्य तमस्यनाभये ।

भान्तस्य कर्मस्वतुविदया धिया

त्वमाविरासीः किल यागभास्करः ॥ ५ ॥

मेनेव उवाच

इति मातृवश स्मरुण प्रविनन्य महामुनि ।

आशमाप कुरुभ्य प्रीतस्तां करुणार्दित ॥ ६ ॥

देवहृदिन पूज्य—प्रभो ! प्रकृति, पुरुष और महत् तत्पारिका जैसा लक्षण सांख्यशास्त्रमें कहा गया है तथा जिसके द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप ज्ञान-ज्ञान जाना जाता है और भक्तियोगको ही जिसका प्रवेदन कहा गया है वह आपने मुझे बताया । अब कृपा करके भक्तियोगका मार्ग मुझे बिस्तरपूर्वक बताइये ॥ १-२ ॥ इसके सिवा जीवोंकी जन्म-मरणरूपा जनक प्रकारकी गतिर्योका भी वर्णन कीजिये, जिनके सुननेसे जीवोंमें सब प्रकारकी वस्तुओंसे वैराग्य होता है ॥ ३ ॥ जिसके मयसे जेग क्षुभ कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और जो महादिक भी धासन करनेवाला है, उस सर्वसमर्थ कायका स्वरूप भी आप मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ ज्ञान दक्षिण लुप्त हो जानेके कारण दह्रादि मिथ्या वस्तुओंमें मिथ्ये आभाभिमान हा गया है तथा बुद्धिके कर्मसुख रहनेके कारण अत्यन्त धमिन होकर जो विरक्तजसे अवार अवधारमय संसारमें मोये पड़ है, उन्हें अग्न के जिये आप यागप्रकाशक सूर्य हैं प्रकट हुए हैं ॥ ५ ॥ श्रीमद्वैष्णवी कहत हैं—कुरुभ्य विदुरजी ! यहलके ये मनोहर बचन सुनकर महामुनि करिचरित्नी उनकी प्रार्थना की और जीवोंके प्रति दयासे प्रीतिमूल हा बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे इस प्रकार वार्ता ॥ ६ ॥

मदर्मणा गुणैरसं परिसुशुद्ध आशयः ।

पुरुषसाञ्जसाम्पेति धृतमात्रगुण हि माम् ॥१९॥

यथा वातरथा घ्राणमाहूक्त गन्ध आशयात् ।

एवं योगरत चेत आमानमविकारि यद् ॥२०॥

अहं सर्वेषु मृतेषु मृतात्मावस्थितः सदा ।

तमवज्ञाय मां मन्य दुरुतेऽच्चाविडम्बनम् ॥२१॥

या मां सर्वेषु मृतेषु सन्तमारमानमीश्वरम् ।

ह्रित्वाचा भजते मौढ्याङ्गस्मन्मेव जुहोति स ॥२२॥

क्षिपत परस्त्रये मां मानिनो भिन्नार्थिन ।

मृतेषु षड्वैरस्य न मन शान्तिमृच्छति ॥२३॥

अहमुच्चावर्चद्भ्यं क्रियमात्पञ्चमानघ ।

नैव तुभ्येऽचिताऽर्चायां मृतप्रामावमानिन ॥२४॥

अचोद्गर्वचपतावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत ।

यावन्न वद स्वहृदि मच्चमृतप्ववैस्थितम् ॥२५॥

आत्मनश्च परम्पावि यः कदात्यन्तरादिरम् ।

तस्य भिन्नदृशा मृत्युर्विन्ध भयप्रवृत्तणम् ॥२६॥

अथ मां सबभूतषु भूतामान कुतालयम् ।

अप्यैरानमानाभ्यां मभ्याभिनन चक्षुषा ॥२७॥

जीवा भृष्टा वज्रीवानां तस्य प्राणभूत शुभ ।

तस्य मधिका प्रवराम्भतश्चन्द्रियवृत्तय ॥२८॥

धर्मो का (मागतधर्मो का) अनुष्ठान करमात्रे मत्त
पुरुषका विच ज्यन्त द्युद होकर मेरे गुणोंके धनगमात्रसे
अनायाम ही मुझमें रग जाता है ॥ १५ १९ ॥

जिस प्रकार वायुके द्वारा ठहरकर जानकाय गन्ध
अपन आश्रय पुष्पसे घ्राणेन्द्रियतक पहुँच जाता है, उसी
प्रकार भक्तियोगमें तत्पर और राग-द्वेषादि विकारोंसे शुद्ध
विच परमात्माको प्राण कर लेता है ॥ २० ॥ मैं आत्म-
रूपसे सदा सभी जीवोंमें स्थित हूँ, इसलिये जो लोग
मुझ सर्वभूतस्थित परमात्माका अनन्तर करके केवल
प्रतिमामें ही मग पूजन करते हैं, उनकी यह पूजा साँग-
मात्र है ॥ २१ ॥ मैं सबका आत्म, परमेश्वर सभी मूर्तमें
स्थित हूँ, ऐसी दृष्टामें जो मोहवश मरी उपेक्षा करके
केवल प्रतिमाक पूजनमें ही लगा रहता है, वह तो मन्त्रो
मस्त्रमें ही हवन करता है ॥ २२ ॥ जो भेददर्शी और
अभिमानी पुरुष दूसर जीवोंके साथ वैर बौधता है और
इस प्रकार उनके शरीरोंमें विषमज्ञान मुझ आत्मसे ही
हृय करता है, उसके मनको कभी शान्ति नहीं मिल
सकती ॥ २३ ॥ माताजी । जो दूसरे जीवोंका अपमान
करता है, वह बहुत-सी घमिया-बदिया सामग्रियोंसे अनेक
प्रकारके विभिन्नविधानक साथ मेरी मूर्तिक पूजन भी करे
ता भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता ॥ २४ ॥
मनुष्य अपने धर्मका अनुष्ठान करता हुआ तब तक मुझ ईश्वर
की प्रतिमा आदिमें पूजा करता रहे, जब तक उसे अपने
हृदयमें एव सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित परमात्माका अनुभव
न हो जाय ॥ २५ ॥ जो व्यक्ति आत्मा और परमात्माके
बीचमें बोझा-सा भी अन्तर करता है, उस भेददर्शी
का मैं मृत्युकासे मग्न मग उपस्थित करता हूँ ॥ २६ ॥
अतः सम्पूर्ण प्राणियोंके मग्न घर बसाकर उन प्राणियोंके
ही रूपमें स्थित मुझ परमात्माका यथायोग्य दान, मन,
निग्रहको व्यवहार तथा समदर्शिके द्वारा पूजन करना
चाहिये ॥ २७ ॥

माताजी 'प्राणानि अवतनोदी अपक्षा इत्यादि जीव
क्षेत्र हैं उनमें यामुलेनवाले प्राणी क्षेत्र हैं उनमें भी मनबसे
प्राणी उत्पन्न और उनसे इन्द्रियकी वृत्तियोंमें युक्त प्राणी भवते हैं।

तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रमयेदिन ।

तेभ्यो गन्धविद् श्रेष्ठास्ततः शब्दविदा वरा ॥२९॥

रूपमेदविदस्तत्र सप्तमाभयतादत्त ।

तेषां बहुपदाः श्रेष्ठामनुप्यादेस्ततो द्विपात् ॥३०॥

तता वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तम ।

ब्राह्मणप्यपि वेदज्ञो धर्मज्ञाऽन्यधिकस्ततः ॥३१॥

धर्मज्ञास्तस्यमन्त्रज्ञास्ततः श्रवणं स्वकर्मकृत् ।

सुस्तसङ्गस्ततो भूतानदाग्धा धर्ममात्मनः ॥३२॥

तस्मात्सम्यक्पितृश्रेपक्रियाधर्मात्मा निरन्तरः ।

सम्यक्पितात्मनः पुत्रो मयि संन्यस्तकर्मणः ।

न पश्यामि परं भूतमकृतुः समदर्शनात् ॥३३॥

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्भु मानयन् ।

इक्षरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥३४॥

भक्तियोगश्च यागश्च मया मानभ्युदीरित ।

ययोरेकतरणैव पुरुषः पुरुषं ब्रजेत् ॥३५॥

एतद्भगवता रूपं ब्रह्मण परमात्मनः ।

परं प्रधानपुरुषं देवं कर्मविषेष्टितम् ॥३६॥

रूपमेदास्पदं दिव्यं काठ इत्यभिधीयत ।

भूतानां महदादीनां यतो भिन्नवृद्धां भयम् ॥३७॥

सेन्द्रिय प्राणियोमे भी केवल स्वशक्त अनुभव करनेवालोंकी अपेक्षा रमका प्रहण कर सकनवाले मत्स्यादि उच्छृष्ट हैं, तथा रसवेत्ताओंकी अपेक्षा गन्धका अनुभव करनेवाले (भमरादि) और वाक्मय प्रहण करनेवालोंसे भी शब्दका प्रहण करने वाले (सपादि) श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ उनसे भी रूपका अनुभव करनेवाले (काकादि) उत्तम हैं और उनकी अपेक्षा जिनके ऊपर नीचे दोनों ओर दौल हीते हैं, वे जीव श्रेष्ठ हैं । उनमें भी बिना पैरवालोंसे बहुतसे चरणवाले श्रेष्ठ हैं तथा बहुत चरणोंवालोंसे चार चरणवाले और चार चरणवालोंसे भी पाँच चरणवाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ मनुष्योंमें भी चार वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं । ब्राह्मणोंमें वेदको जाननेवाले उत्तम हैं और वेदज्ञोंमें भी वेदका तात्पर्य जाननेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ तात्पर्य जाननेवालोंसे संशय निवारण करनेवाले, उनसे भी अपने वर्णाश्रमोचित धर्मका पालन करनेवाले तथा उनसे भी आसक्तिका त्याग और अपने धर्मका निष्कामभावसे आचरण करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३२ ॥ उनकी अपेक्षा भी जो लोग अपने सम्पूर्ण कर्म, उनका फल तथा अपने शरीरको भी मुक्त ही अपना करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपामना करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं । इस प्रकार मुक्त ही चित्त और कर्म समर्पण करनेवाले अक्षरों और समन्तार्थ पुरुषसे बड़कर मुक्त काइ अन्य प्राणी नहीं पीछता ॥ ३३ ॥ अब यह मानकर कि जीवरूप अपने अंशसे साक्षात् यत्नान् ही सबसे अनुपम हैं, इन समस्त प्राणियोंको बड़े आदरक साथ मनसे प्रणाम कर ॥ ३४ ॥

मातावी । इस प्रकार मैंने तुम्हारे छिये भक्तियोग और अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया । इनमेंसे एकका भी साधन करनेमें जीव परमपुरुष भगवान्का प्राप्त कर सकता है ॥ ३५ ॥ भगवान् परमात्मा परब्रह्मका अतुल्य प्रमाण सम्पन्न तथा आगतिक पदार्थोंके नानाविध वैशिष्ट्यका हेतुमूल स्वरूपविशेष ही ब्रह्म नामसे विख्यात है । प्रकृति और पुरुष इसीके रूप हैं तथा इनसे यह दृश्य भी है । नाना प्रकारके कर्मोंका मूल ब्रह्म भी यही है । तथा इसीसे महत्तरादिक अभियानी भगवान् प्राणियों को मत्ता मय लण रहता है ॥ ३६ ३७ ॥

योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरक्षयलिलाभयः ।

स विष्ण्वारम्भोऽभियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥३८॥

न चास्य कश्चिदपि न द्रव्यो न च बाधवः ।

आविशत्यप्रमथोऽसौ प्रमथ अनमन्तकृत् ॥३९॥

यज्ञयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यज्ञयात् ।

यज्ञयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यज्ञयात् ॥४०॥

यद्नस्पतयो भीता लताभ्रौपधिभिः सह ।

स्वेस्वकृत्तेऽमिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥४१॥

स्रवन्ति सरितो भीता नोत्सर्षस्पृधर्षित ।

अग्निरिष्य सगिरिभिर्मूर्न यज्ञति यज्ञयात् ॥४२॥

नमो हृदाति श्रमतां पेश्य यन्नियमाददः ।

लोकं स्वददं तनुत महान सप्तभिगद्युतम् ॥४३॥

गुणामिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यज्ञयात् ।

धत्तन्तऽनुपूर्वं यथां यज्ञं पृथग्गणधरम् ॥४४॥

माऽनन्ताऽन्तकरः कालाऽनादिरादिदृढम्वयः ।

जन जनन जनय माययन्मृग्युनान्तकम् ॥४५॥

जो सबका आश्रय होनेके कारण समस्त प्राणियोंमें अनुप्रविष्ट होकर भूतोंद्वारा ही उनका स्वरूप करता है, वह जगत्का शासन करनेवाले ब्रह्मादिका भी प्रभु मगवान् कृष्ण ही यज्ञोक्ता फल देनेवाला विष्णु है ॥३८॥ इसका न तो कोई मित्र है न कोई शत्रु और न तो कोई सगा-सम्बन्धी ही है । यह सर्वदा सजग रहता है और अपने स्वरूपभूत श्रीमगवान्को मूलकर भोगरूप प्रभादमें पके हुए प्राणियोंपर आक्रमण करके उनका स्वरूप करता है ॥३९॥ इसीके भयसे वायु चक्का है, इसीके भयसे सूर्य तन्ता है, इसीके भयसे इन्द्र वर्षा करते हैं और इसीके भयसे छारे चमकते हैं ॥ ४० ॥ इसीमे भयभीत होकर आपधियोंके सहित लताएँ और सारी वनस्पतियाँ समय-समयपर फल-फल चारण करती हैं ॥ ४१ ॥ इसीके डरसे नदियाँ बहती हैं और समुद्र अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता । इसीके भयसे अग्नि प्रज्वलित होती है और पक्षियोंके सहित पृष्ठी जलमें नहीं डूबती ॥४२॥ इसीके शासनसे यह आकाश जीवित प्राणियोंको आस प्रभासके छिपे अवकाश देता है और मनुष्य अहंकाररूप गरिमा सात आचारणोंसे युक्त ब्रह्माण्डके रूपमें विस्तार करता है ॥४३॥ इन कालके ही भयसे सत्त्वादि गुणोंके नियामक विष्णु आपि देवगण, त्रिनेके अधीन यह साय चरचर जगत् है, जपन जगत्-रचना आदि कर्ममें युक्तमसे तत्पर रहते हैं ॥ ४४ ॥ अविनाशी काल स्वयं अनादि किन्तु दूसरोंका आत्मिकता (उत्पात्ता) है तथा स्वयं अनन्त होकर भी दूसरोंका अन्त करन क्षम है । यह पितासे पुत्रको उत्पत्ति करता हुआ सारे जगत्को रचना करता है, और अपनी संक्षारशक्ति वस्तुके द्वारा यमराजका भी मरणात्तर इसका अन्त कर देता है ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां महितायां तृतीयस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः

एकोनविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

वेद-नोहमें अस्मत् पुरुषोक्ती अधोगतिर वचन

कपिल उवाच

वस्यतस्व जना नून नाय वेदारुषिक्रमम् ।
 काल्यमानाऽपि बलिना वायारिव घनाबलि ॥ १ ॥
 य यमर्धमुपादत्त दु खेन सुखहृत्तये ।
 त स घुनाति भगवान् पुमाञ्छ । वति यस्कृत ॥ २ ॥
 यदधुवस्य दहस्य सानुबन्धस्य दुर्मति ।
 ध्रवाणि मन्यते माहाद् गृहष्वेश्वरं सति च ॥ ३ ॥
 जन्तुर्व भव एतस्मिन् यां यां योनिमनुब्रजेत् ।
 तस्मां तस्मां न लभते निर्गुणं न विरज्यते ॥ ४ ॥
 नरकस्याऽपि दद पै न पुमास्त्यक्तमिच्छति ।
 नारकस्य निवृत्ती सत्त्वां दयमायाविमाहित ॥ ५ ॥
 आत्मश्रामासुतागारपशुद्रविणय-धुषु ।
 निरुद्धमूल्हृदय आत्मानं बहु मयत ॥ ६ ॥
 सन्धमानमवाङ्ग ण्णामुद्धनाधिना ।
 कालप्रविरतं मूढा दुरितानि दुराग्रयः ॥ ७ ॥
 आश्रितामन्त्रिय स्त्रीणां प्रमतीनां च मायया ।
 रसार्चितयाऽऽलापं गित्वां कल्पभाषिणाम् ॥ ८ ॥
 गृह्य कृत्तमेषु दू स्वतन्त्रप्यतन्त्रिन ।
 एतद् स्वप्रताकारं सुखयामन्यत गृहा ॥ ९ ॥

श्रीकपिलमुषजी कहते हैं — मातानी । जिस प्रकार
 बापुके द्वारा उद्गाथा जानेवाला मेषसमूह उसके बलका
 नहीं जानता, उसी प्रकार यह जीव भी बलवान् काल
 की प्ररणासे भिन्न भिन्न अवस्थाओं तथा योनियोंमें भ्रमण
 करता रहता है, किन्तु उमक प्रयत्न पराक्रमको नहीं
 जानता ॥ १ ॥ जीव सुखको अभिजापस जिस-जिस
 वस्तुका यह कष्टसे प्राप्त करता है, उसी-उसीको भग
 वान् काल विनष्ट कर देता है—जिसके लिये उसे बड़ा
 शोक होता है ॥ २ ॥ इसप्रकार करण यही है कि यह
 मन्दमति जीव अपने इस नाशवान् शरीर तथा उसके
 सम्बन्धियोंके घर, स्नेह और धन आदिक मोहबश
 नित्य मान लता है ॥ ३ ॥ इस ससारमें यह जीव
 जिस जिस योनिमें जन्म लेता है, उसी-उसीमें आनन्द
 मान लता है और उससे विरक्त नहीं होता ॥ ४ ॥
 यह भगवान्की मायासे ऐसा मोहित हो रहा है कि
 कमजोर नारकी पानियोंमें जन्म लेनेपर भी बहोश बिष्टा
 आदि भागोंमें ही सुख माननेक कारण उसे भी छोड़ना
 नहीं चाहता ॥ ५ ॥ यह मूर्ख अपने शरीर, स्त्री, पुत्र,
 गृह पशु धन और वधु-आम्बनोंमें अत्यन्त आसक्त होकर
 उनसे सम्बन्धमें नाना प्रकारक मनोरथ करता हुआ
 अपनेका बड़ा भाग्यशाली समझता है ॥ ६ ॥ इनके
 पावन पापकी चिन्तामें इनके सम्पूर्ण अज्ञ जलते
 रहते हैं तथापि दूर्धमनाओंसे दूगित हृत्त हानक कारण
 यह मूढ़ निरन्तर शरीरके अन्तरे तरह-तरहक पाप करता रहता
 है ॥ ७ ॥ कुछा दिवोंके राग पशुत्वमें सम्भाष्यिक
 समय प्रदर्शित अन्तरे हृष्ट वस्तुत्व प्रमत्त तथा बाधकों
 की पीड़ी पीड़ी बातोंमें मन और इन्द्रियोंके पैस जानम
 गृहस्थ पुरुष परस दू ग प्रधान वस्तुत्व परममें त्रिम
 हो जाता है । उस समय बहुत साधना करनेवा वनि
 उसे किसी दू गय प्रविष्टा वचनमें मरणा विड
 जाती है ल उस हावद सुख सामान लता है ॥ ८ ॥

अर्थैरापादितैर्गुण्यैर्हिममेतत्तत्तथैवान् ।

पुष्पाति येषां पोषेण शेषस्युत्पत्त्यर्थः स्वयम् ॥१०॥

वार्तायां लुप्यमानायामारम्भायां पुनः पुनः ।

लाभाभिप्रायानि सत्त्वं परार्थेऽकुरुत स्पृशाम् ॥११॥

कुटुम्बभरणाकल्पा मन्दभाग्यो वृथाधम ।

भियाविहीन कृपायायश्चलसितिपूढधीः ॥१२॥

एष स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा ।

नाद्रिषते यया पूर्वं कीनाग्ना इष गावरम् ॥१३॥

वत्राप्यत्रातनिर्वेदो भ्रियमाणः स्वयम्भुतेः ।

अर्थापाचकस्या मग्नाभिमुखो गृहे ॥१४॥

आत्तेऽवमत्पापन्यस्त गृहपाल इवाहरन् ।

आमयाप्यप्रज्ञात्ताग्निरत्याहाराऽवचेष्टित ॥१५॥

पापुनात्कमताचार ककमरुदनादिकैः ।

कामश्चापकृतायाम कण्ठं घुरघुगमन ॥१६॥

क्षपान परित्राचट्टिः परिबीतः स्वयम्भुभिः ।

वाच्यमानाऽपि न प्रतकालपातवर्षं गतः ॥१७॥

एष कुटुम्बभरणं व्यापृतात्मात्रितेन्द्रियः ।

त्रिपत रुदतां स्थानामुन्वेदनमास्तथाः ॥१८॥

जहाँ-तहाँसे मयहूर हिंसावृत्तिके द्वारा कल सञ्चयकर यह ऐसे ओगोंका पोषण करता है, त्रिके पोषणसे नरकमें जाता है । स्वयं तो उनके आने पीनेमें बचे हुए अन्नको ही खाकर रहता है ॥ १० ॥ बार-बार प्रयत्न करनेपर भी जब इसकी कोई जीविका नहीं चखती तो यह ओमवश अधीर हो जानसे दूसरेक धनकी इच्छा करने लगता है ॥ ११ ॥ जब मन्द भाग्यके कारण इसका कोई प्रयत्न नहीं चकता और यह मन्त्रमुक्ति धनहीन होकर कुटुम्बक मरण-योपणमें बसपण हो जाता है, तब अत्यन्त गीन और चित्तवृत्त होकर लकी-लका सोंसे खेदने लगता है ॥ १२ ॥

इसे अपने पाछन-योपणमें बसमर्ष देखकर वे की-पुत्राणि इसका पहलक समान आनर नहीं करते, जैसे राजा किसान बूढ़ बंछकरी उपेक्षा कर देते हैं ॥ १३ ॥ फिर भी इसे धैर्य नहीं होता । त्रिहें उसने स्वयं पाछ था, वे ही अब उसका पाछन करते हैं, दुष्ट-वस्थाक करग इसका रूप बिगड़ जाता है, शरीर रोगी हो जाता है अग्नि मन्त्र पढ़ जाती है मात्रन और पुरुषाभ ननों हो कप हो जाने हैं । वह मरणोन्मुख होकर घरमें पड़ा रहता है और कुचकरी मौलिकी की पुत्राण्वि अपमानपूर्वक लिये हुए दुकड़ खाकर नीधन-निर्वाह करना है ॥ १४ १५ ॥ मृत्युकुल समय निकट आनेपर वायुक उत्कपणसे इसकी पुनर्विर्षा पढ़ जाती है, आम प्रज्ञामकरी मजिकरणें कफमें रुक जाती हैं, खौसन आर सौम लजमें आ इने बड़ा कप होता है तथा कल बड़ जानके कारण कर्ममें घुरघुगइत होने लगती है ॥ १६ ॥ यह अपने शोकवृत्त वन्धु-आ-अर्थों-से विरा हुआ पड़ा रहता है और मृत्युपाशके बशीमृत हो जानसे उनक मुकनपर भी नहीं बाण मरता ॥ १७ ॥

इस प्रकार जो मूढ़ पुरुष इन्द्रियोक्त म जीतकर निरंतर कुटुम्ब पापणमें ही लगा रहता है, वह रोते हुए स्वजनोक पीछ अत्यन्त बन्धन से अचेत हापर मृत्युकुल प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

यमदूतौ तदा प्राप्ता भीमौ सरभसेक्षणौ ।

स दृष्ट्वा प्रस्ताद्वयः शकुन्मूत्रं विपुञ्जति ॥१९॥

यातनादेव आहूत्य पाशैर्यवृत्त्वा गले बलात् ।

नयसौ दीघमम्बान दण्डय राक्षभटा यथा ॥२०॥

तयोर्निर्मिषाद्दयस्तर्जनैर्जस्तषेपथु ।

पथि श्चभिर्मह्यमाण आर्तोऽथ श्वमतुस्मरन् ॥२१॥

धुधृत्परीतोऽर्कान्वानलानिलं

मन्तप्यमान पथि तप्तबालुक ।

कृच्छ्रण पृष्ठ कश्या च ताडित

अलत्वशक्तोऽपि निराशमोदके ॥२२॥

तत्र तत्र पतञ्जान्ता मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ।

पथा पापीयसा नीतस्तरमा यममादनम् । २३॥

शामनानां सहस्रापि नवति नव चाध्वन ।

त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाम्पां बानीतः प्रामादि यातनाः ॥२४॥

आदीपनं स्वगात्राणां वपयित्वावधुकादिभिः ।

आत्ममांसादनं कापि स्वकृत्तपरताऽपि वा ॥२५॥

जीवतम्बान्त्राम्पुटारः श्चगृध्रैर्यमसादने ।

सर्पवृश्चिकदंष्ट्राद्यैर्दंष्ट्रिभ्यास्मवशसम् ॥२६॥

कृत्तन चावपयशा गवादिभ्या मिहापनम् ।

पातन गिरिशृङ्गभ्या राधन चाम्पुगतया ॥२७॥

वास्तामिस्राभतामिस्रा शीरबाद्याभ यातना ।

इस व्यवसायपर उसे लेनेके लिये अति मयङ्कर और रोप युक्त मन्त्रोंवाले जो दो यमदूत आते हैं, उन्हें देखकर वह मयके कारण मल-मूत्र कर देता है ॥ १९ ॥ वे यमदूत उसे यातना-देहमें डाल देते हैं और फिर जिस प्रकार त्रिपाही किसी अपराधीका ठे जाते हैं, उसी प्रकार उसके गलेमें रस्ती बाँधकर बलात्कारसे यमशेफकी लंघी यात्रामें उसे ले जाते हैं ॥ २० ॥ उनकी धुकियोंसे उसका हृत्प फटन और शरीर काँपन लगता है, गाममें उसे कुत्ते नोचने हैं । उस समय अपने पाशोंकी यात्रा करके वह म्याकुल हो उठता है ॥ २१ ॥ मूत्र प्यास उसे धेँचन कर देती है तथा घाम, दाहानल और छुआँसे वह तप जाता है । ऐसी अवस्थामें जल और त्रिधाम-म्बानसे रहित उस तप्त बालुकक्रमय मार्गमें जब उसे एक पग आगे बढ़नकी भी शक्ति नहीं रहती यमदूत उसकी पीठ-पर काँच बरसाते हैं तब बड़े कष्टसे उसे चलना ही पड़ता है ॥ २२ ॥ वह जहाँ-तहाँ एकतर गिर जाता है, मूर्छा आ जाती है, चेतना आनेपर फिर उठता है । इस प्रकार अति दुःखमय मार्गसे अत्यन्त क्रूर यमदूत उसे गात्रनासे यमगुरीको ले जाते हैं ॥ २३ ॥ यमशेक का मार्ग निन्यानवे हजार योजन है । इतन सभे मार्ग-का दो-ही तीन मुहूर्तमें तै करके वह नरकमें तरह तरहकी यातनाएँ भोगता है ॥ २४ ॥ वहाँ उसके शरीरको धक्कली छद्दियों आगिके धीधमें डाल कर जलाया जाता है कहीं खर्प और दूसरोंके द्वारा कट्ट-कट्टकर उसे अपना हो मांस क्षिप्रया जाता है ॥ २५ ॥ यमगुरीक कुत्तों अपना गिड़ोंद्वारा जीते जी उसकी ओतें ग्रीची आती हैं । सौं पच्छ और बौंस आदि वसनशाल तथा टंक मारनशाल जीबोंसे शरीरको पीड़ा पहुँचाया जाता है ॥ २६ ॥ शरीरको कट्टकर टुकड़ टुकड़ किया जाने हैं । उसे हाथियोंसे चिराया जाता है पत्तदिल्लोंसे गिराया जाता है अपना जल या गरुमें टाण्डर बना कर णिया जाता है ॥ २७ ॥ य सब यातनाएँ तथा इमा प्रकार ताम्रिष, अन्धतामिष पक्षी शीरव आदि नरकोंका आर भी उनको यन्त्रणाएँ, भी हा या पुन्य, उम जीवका

मुक्ते नरो बानारी वायिथः सङ्गन निर्मिताः ॥२८॥

अथैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ।

या यातना र्थं नारक्यस्ता इहाप्युपलब्धिताः ॥२९॥

एव कुटुम्बं विभ्राण उदरम्भर एव वा ।

निसृज्यहाभय प्रत्य मुक्ते तत्फलमीदृशम् ॥३०॥

एक प्रवधते भ्रान्तं हित्वैव स्वकलवरम् ।

इक्षलतरपायथो मृतद्रोहण यद् मृतम् ॥३१॥

देवनामादित तस्य शमलं निरये पुमान् ।

मुक्ते कुटुम्बपापस्य इवविव इवातुरः ॥३२॥

स्वलेन धधर्मेण कुटुम्भरणोत्सुकः ।

याति श्रीशोऽघतामिर्ध्वं चरमं तमसः पदम् ॥३३॥

अधस्तात्परलोकस्य यावतीयातनादैयः ।

क्रमश्च समनुक्रम्य पुनरत्रात्रजेषुलुभिः ॥३४॥

पारस्परिक संसर्गसे होनवाले पापक कारण मांगनी ही पड़ती हैं ॥ २८ ॥ माताजी ! कुछ लोगोंका कहना है कि स्वर्ग और नरक तो इसी लोकमें हैं, क्योंकि जो नारकी यातनाएँ हैं, वे यहाँ भी देखी जाती हैं ॥ २९ ॥

इस प्रकार अनेक कष्ट भोगकर अपने कुटुम्बका ही पाछन करनेवाला अथवा केवल अपना ही पेट भरनेवाला पुरुष उन कुटुम्ब और शरीर—दानोंके पक्षी अंकुर मरनेके बाद अपने किये हुए पापोंका ऐसा फल भोगता है ॥ ३० ॥ अपने इस शरीरको पक्षी छोड़कर प्राणियों—से शोह करके एकत्रित किये हुए पापरूप पायंथको साथ लेकर वह अकेला ही नरकमें जाता है ॥ ३१ ॥ मनुष्य अपने कुटुम्बका पेट पाकनेमें जो अन्याय करता है, उसका दीप्तिलिखित कुफल वह नरकमें जाकर भोगता है । उस समय वह ऐसा व्याकुल होता है, मानो उसका सर्वस्व छुट गया हो ॥ ३२ ॥ जो पुरुष निरी पापकी कमाईसे ही अपने परिवारका पाछन करनेमें व्यस्त रहता है, वह अन्धतामिष नरकमें जाता है— जो नरकमें चरम सीमाका कष्टप्रद स्थान है ॥ ३३ ॥ मनुष्य—ब्रह्म भिक्षुके पूर्व जितनी भी यातनाएँ हैं तथा शस्त्र-कृपादि योनियोंके बितन कष्ट हैं, उन सबको क्रमसे योगकर शुद्ध हो जानेपर वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे क्वाधिक्येयो
वाल्मीके कर्मवैपाकी नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

मनुष्यपालिका प्राप्तं ह्येव श्रीवक्त्री गतिर्यथा धर्मेण

श्रीमद्भागवत

धर्मेण । देवतग्रणं जन्तुर्देहापपमये ।

स्त्रिया प्ररिष्टः उदरं पुंसा रत कणाभय ॥१॥

श्रीमद्भागवत कहते हैं—माताजी ! जब श्रीकृष्ण मनुष्यशरीरमें जन्म लेता होता है तो वह मगवान्की प्रणामसे अपने पूर्वकर्मनुसार वहमासिक लिये पुरुषक बायस्कक द्वारा आपके उदरमें प्रवेश करता है ॥ १ ॥

१ प्राचीन धर्म अने ने । या नारी या म प - नारद । २ प्रा - र विद्या ।

म प - नारद । इहाप्युपलब्धिता तत्क - तत्क नदी दे ।

कलल त्वैकरात्रेण पञ्चरात्रेण शुक्लपुत्रम् ।

दद्याद्देन तु कर्कशः पद्मपुत्रः स ततः परम् ॥ २ ॥

मासेन तु त्रिंशो द्वाभ्यां बाह्वक्याधकृषिप्रदः ।

नखलो मास्यचर्मणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः । ३ ॥

षतुर्भिर्चातव सप्त पञ्चभिः क्षुपृद्वयः ।

पद्मिजरायुया वीत कुशो ब्राह्मपतिदक्षिणे ॥ ४ ॥

मातुर्जगामपानाद्यैरेधद्वातुरसम्भवे ।

शेते विष्णुचर्योर्गते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे ॥ ५ ॥

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गं सौकुमायात्प्रतिषण्णम् ।

मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्कृन्तव्रत्यै क्षुधितैर्मुहुः ॥ ६ ॥

कदुतीक्ष्णाप्यालवणरूक्षाम्लादिभिरन्वणं ।

मातृमुक्तैरुपसृष्टं सर्वाङ्गोत्थितवेदन ॥ ७ ॥

उन्वनं सङ्गतन्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिराङ्गत ।

आन्ते कृत्वा शिरः कुशो मृगपृष्ठशिराधरः ॥ ८ ॥

अक्षरप स्वाङ्गयेष्टायां शङ्कुन्त इव पञ्जरे ।

तत्र लब्धस्मृतिर्देवात्मकं जन्मसप्तोद्भवम् ।

भरन्दीपमनुज्झामं धर्मं किं नाम विन्दते ॥ ९ ॥

वहाँ वह एक रात्रिमें खीके रजमें मिलकर एकस्वप कलल बन जाता है, पाँच रात्रिमें मुद्गपुत्ररूप हो जाता है, दस दिनमें बेरके समान कुछ फठिन हो जाता है और उसके बाद मांसपेशी अपक्व अण्डज प्राणियोंमें अण्डके रूपमें परिणत हो जाता है ॥ २ ॥ एक महीनेमें उसके सिर निकल आता है, दो मासमें हाथ-पैर आदि अङ्गोंका विभाग हो जाता है और तीन मासमें मख, रोम, अस्थि चर्म, खी-पुरुषके सिद्ध तथा अन्य ठिङ्ग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३ ॥ चार मासमें उसमें मांसादि सातों धातुएँ पैदा हो जाती हैं, पाँचवें महीनेमें मूत्र-प्यास लगने लगती है और छठे मासमें शिल्पीमें छिपकर वह दाहिनी कोखमें घूमने लगता है ॥ ४ ॥ उस समय माताके खाये हुए अन्न-खल आदिसे उसकी सब धातुएँ पुष्ट होने लगती हैं और वह कृमि आदि जन्तुओंके उत्पत्तिस्थान उस जघन्य मूत्र-मूत्रके गड़ेमें पड़ा रहता है ॥ ५ ॥ वह सुकुमार मो होना ही है इसलिये जब वहाँके मूत्रे कीड़े उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग भोजन है, तब अत्यन्त क्लेशके कारण वह क्षण-क्षणमें अचेत हो जाता है ॥ ६ ॥ माताके म्वाये हुए पत्रके, नीख, गरम नमस्त्रिन, रूखे और खट्ट आदि उम्र पदार्थोंका स्पर्श होनेसे उसके सारे शरीरमें पीड़ा होन लगती है ॥ ७ ॥ वह जीव माताके गर्माशयमें शिल्पीसे छिपकर और औतोंस विरा रहता है । उसका सिर पेन्थी ओर तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़ा रहता हैं ॥ ८ ॥

वह पित्रर्षमें बंद पक्षीके समान पराधीन एवं अङ्गोंको हिलान डुलानमें भी असमर्थ रहता है । इसी समय अष्टकी प्रेरणासे उसे स्मरणशक्ति प्राप्त होती है । तब अपने सैकड़ों जर्मोंके कर्म याद आ जाते हैं और वह वेदैन हो जाता है तथा उसका दम धुनने लगता है । पत्नी अवस्थामें उसे क्या शान्ति मिल सकती है ? ॥ ९ ॥

भारम्यसप्तपामासत्तल्लक्षधाधोऽपि वषित ।

नैकप्रास्ते स्रतिवातैर्विष्टामूरिव सोदैर ॥१०॥

नाथमानश्चपिर्भावः सप्तश्रि कृतश्छलिः ।

स्तुवीव तविहलवयावावा येनोदरेऽर्पित ॥११॥

जैन्तुल्लाघ

तस्योपसक्तमवितु जगदिच्छयाच

नानातनोर्भुवि चलच्चणारविन्दम् ।

सोऽह ब्रजामि घरणं ह्यकुतोमयं मे

येनेदृशी गतिरिदं सतोऽनुरुपा ॥१२॥

यस्तवत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतामा

भूतन्निवाशयमयीमवलम्ब्य मायाम् ।

आस्त विशुद्धमविकारमखण्डबोध

मातृपमानहृदयेऽवमिध नमामि ॥१३॥

य पञ्चभूतरचित रहितः क्षरीरे

च्छन्मायसेन्द्रिमगुणैर्धविदात्मकाऽहम् ।

तेनाविद्वष्टमहिमानमृषिं तमनं

बद्ध पर प्रकृतिरूपमा पुमांसम् ॥१४॥

बन्माययोरुगुणकर्मनिषधनेऽस्मिन्

सांसारिक पथि चरस्तद्भिन्नमण ।

नष्टस्मृतिः पुनरय प्रवृणीय लोके

युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरण ॥१५॥

ज्ञानं यदेतदधात्कतम स देव

लौकालिक स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः ।

ज्ञानार्थी महीना आरम्भ होनेपर उसमें ज्ञानशक्तिक्रम भी उन्मेष हो जाता है परन्तु प्रभृतिवायुसे फलप्रयम रहनेके कारण वह उसा उ रमें उतरन हुए विद्यके कीर्तिका ममान एक स्थानपर नहीं रह सकता ॥१०॥

तत्र सप्तभागुभय स्थूलशरीरसे बँधा हुआ वह देहस्थ-दर्शी जीव अत्यन्त मयमीत होकर दीन वाणीसे कृपा याचना करता हुआ, हाथ जोड़कर उस प्रभुकी स्तुति करता है, त्रिमने उसे माताके गर्भमें बाँधा है ॥११॥

जीव कहता है—मैं बड़ा अवम हूँ, भगवान् ने मुझे जो इस प्रकारकी गति दिखायी है, वह मेरे योग्य ही है । वे अपनी शरणमें आये हुए इस नगर जगत्की रक्षाके लिये ही जनक प्रकारक रूप धारण करते हैं अतः मैं भी भूतजगत् विचरण करनेवाले उन्हींके निर्मय चरगारविन्तोऽसी शरण जाता हूँ ॥१२॥ जो इस माताके उत्तरमें वेह इन्द्रिय और अन्त करणरूपा मायाका आश्रय कर पुण्य-पाररूप कर्मेसे आच्छादित रहने के कारण बद्ध से जान पड़ते हैं, अतः स्तब्ध हृदयमें स्फुरित होनेवाले उन विशुद्ध (उपाधिरहित), अविकारी और अलग्ग जोऽसत् रूप परमात्माको मैं ममस्वरूप करता हूँ ॥१३॥ मैं वस्तुतः शरीरदिसे रहित (अचक्षुः) होनेपर भी दृष्टनेमें पाञ्चमीनिक शरीरसे मन्मद हूँ और इसीलिये इन्द्रिय, गुण, शक्त्यादि विषय और चिदात्मास (अहङ्कार) रूप जान पड़ता हूँ । अतः इस शरीरादि के आश्रयसे त्रिनवी मद्धिमा सुरेज्य नहीं हुई है, उन प्रवृत्ति और पुरुषके नियन्ता सर्वज्ञ (विद्याशक्तिसम्पन्न) परमपुरुषकी मैं कन्ना करता हूँ ॥१४॥ उन्हींकी मायासे अपने सकलकषां स्मृति नष्ट हो जाननेके कारण यह जीव अनेक प्रकारक सत्त्वादि गुण और कर्मके बन्धनसे युक्त इस संसारपार्थमे तरह-तरहके कष्ट सेलता हुआ मरकता रहता है अतः उन परमपुरुष परमप्रकाश रूपके बिना और किन्तु युक्तिये इसे अपने सकलकषा ज्ञान हो सकता है ॥१५॥ मुझे जो यह त्रैकालिक ज्ञान हुआ है यह भी उनके सिवा और किन्तुने दिया है क्योंकि स्थावर जंगम समस्त प्राणिजैर्मि एकतात्र वे ही तो अन्तर्वाणीरूप अंशसे विद्यमान हैं । अतः

तं जीवकर्मपदधीमनुवर्तमाना

स्तापत्रयोपश्रमनाय कथं भवेत् ॥१६॥

देहान्यदरविषय जठराग्निनासृग्

त्रिण्मूत्रकृपपतितो मृगतस्यदेहः ।

इच्छन्निरो विवसितु गणयन् स्वमासान्

निर्वोसते कृपणधीमगवन् कदा नु ॥१७॥

येनेष्ट्या गतिमसौ दशभासा ईश

संप्रादित पुरुश्येन भयारणेन ।

स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथ

कानाम तत्प्रति त्रिनाञ्जलिमस्य कुयात् ॥१८॥

पश्यत्यय धिपणया ननु मस्रवधि

शारीरक दमशरीर्यपर म्यदेहे ।

यन्सृष्टयाऽऽस तमहं पुरुष पुगण

पश्य बहिर्हृदि च चैत्यमिह प्रसीतम् ॥१९॥

मोऽहं समस्तमि मिश्रबहुदुःखशालं

गमोस निजिगमिष यद्विधं धनम् ।

पथापयावमुपमपति दयमाया

मिथ्यामतिपदनु ममृत्रिषकमतनु ॥२०॥

गमादह विगतगिर उदरिष्य

आत्मानमागु गमम मुदाऽऽमनय ।

भूया यथा स्वमनमतदनरार्थं

मा म भविष्यदुपमादितिल्लुसाद ॥२१॥

१ ८ ८ — ८८ — ८८ ।

जीवकर्मपदधीमनुवर्तमाना करनपाछे हम अपन त्रिविध तापोकी शान्तिके लिये उद्योग भजन करते हैं ॥ १६ ॥

मगवन् । यह देहधारी जीव दूसरी (माताक देहक उत्तरके भीतर मूत्र, मूत्र और रुचिरक पुष्टिमें गिरा हुआ है, उसकी जठराग्निमें इसका शरीर अप्यन्त मत्त हो रहा है । उससे निष्कर्मकी इच्छा करता हुआ यह अन्न नहींन गिन रहा है । भगवन् ! अब इस दीनको यहाँसे क्या निकाला जायगा ? ॥ १७ ॥ स्वामिन् ! आप यह दयालु हैं, अपनीसे उत्तर प्रभुन ही इस दस मासके जीवको ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान दिया है । दीनबन्धा ! हम अपन किये हुए उपकारसे ही आप प्रसन्न हों, क्योंकि आपकी दाय जो इनक मिया आपक उस उपकार का बन्धा तो क्यों दे भी क्या मरना है ॥ १८ ॥

प्रभो ! संसारक ये पशु-पक्षी आदि अन्य जीव ता करनी यह बुद्धि अनुसार अपन शरीरमें दानेशाल सुख-दुःख शान्ति ही अनुभव करते हैं, किन्तु मैं तो अपनी कृपासे क्षम-मात्र साधनमग्न शरीरसे युक्त हुआ हूँ, अतः अपनी ग कृति विवर्तनी बुद्धिसे आप पुराणपुराणक अपन शरीरक बाहर और भीतर अद्वैतार आश्रयभूत आत्माकी मोति प्रापक्ष अनुभव करना हूँ ॥ १९ ॥ भगवन् ! इस अप्यन्त दुःखसे भर दूष गर्भागममें पथि मैं यह कहने रह रहा हूँ, ता भी इसम बाहर निवर्तन संसारमय अज्ञानमें गिरनेकी मुझ विस्तृत इच्छा नहीं है; क्योंकि उसमें जानकार जीवक शरीरकी माया धर नहीं है, जिसका कारण उमरी-गिरि में अज्ञान ही जानी है और उमरी-गिरिमें उमरी-गिरि हम संसारकमें ही पन्था जाना है ॥ २० ॥ अतः मैं क्या-क्या करता हूँ इस दृष्टिमें शिष्यमार्गक आत्मिक शान्तिपर अन्तः बुद्धिमें महापद्म ही अन्तः रहने लगे हम समस्तम मत्त न मत्त हूँ, जिसम मुझ अन्तः प्रकाश नेत्र पुन मत्त मत्त दृष्टि न मत्त दृष्टि है ॥ २१ ॥

कथित उपाय

एष कृतमतिर्गर्भे दशमास्य सुषुवन्तृपिः ।

सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसृत्य प्रतिमारुतः ॥२२॥

तेनावसृष्ट सहसा कृत्वावाक् खिर आतुरः ।

विनिष्क्रामति कुच्छ्रेण निरुन्ध्यासोहतस्मृतिः ॥२३॥

पतितो हृष्यत्युन्मत्त्रे विष्टाभूरिष चेष्टते ।

रोरूपति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२४॥

परच्छन्दं नविदुषा पुष्यमाणो बनेन स ।

भनभिप्रतमापन्नः प्रस्थास्यातुमनीश्वरः ॥२५॥

आयिताऽशुचिपर्यङ्गे बन्तुः स्वेदज्वरपिष्टे ।

नेष्टः कण्डूयनेऽज्ञानामासुनोत्थानचेष्टने ॥२६॥

तुदन्तमामन्वच दंशा मद्यक्वा मस्कुणादयः ।

रुदन्त विगतज्ञानं कुमय कुमिकं यथा ॥२७॥

इत्येवं श्रुत्वा भुक्त्वा दुःस्वं पौगण्डमेव च ।

अलम्भाभीप्सितोऽज्ञानादिद्वयं यु शुचापितः ॥२८॥

सह दहेन मानेन वर्षमानेन मण्डुना ।

श्रीकपिलदेवजी कहत हैं—माता । वह दस महीने का जीव गर्भमें ही जब इस प्रकार विवेकसम्पन्न होकर भगवान्‌की स्तुति करता है, तब उस अधोमुख बाळकको प्रसवकालकी पाप तत्काल बाहर आनेके लिये उकेलती है ॥ २२ ॥ उसके सहसा टेकनेपर वह बाळक क्षणतः व्याकुल हो भीचे सिर करके बड़े कष्टसे बाहर निकलता है । उस समय उसके आसकी गति रुक जाती है और पूर्वस्थिति नष्ट हो जाती है ॥ २३ ॥ पृष्ठीपर माताके रुधिर और मूत्रमें पड़ा हुआ वह बाळक विश्वके कबीरेके सुमान सम्पद्यता है । उसका गर्भवासका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और वह विपरीत गति (देहान्निमान्-रूप अज्ञान दशा) का प्राप्त होकर बार-बार जोर-जोरसे रोता है ॥ २४ ॥

फिर जो लोग उसका अभिप्राय नहीं समझ सकते, उनके द्वारा उसका पाळन-पोषण होता है । ऐसी अवस्था में उसे जो प्रतिकूलता प्राप्त होती है, उसका निवृत्त करनेकी शक्ति भी उसमें नहीं होती ॥ २५ ॥ जब उस जीवको शिशु अवस्थामें मैत्री-कुक्षी काटपर सुका दिया जाता है, जिसमें छत्रमल आदि स्वेदज जीव चिपटे रहते हैं, तब उसमें शरीरको सुखाने, ठंडाने अपना करक बढकनेकी भी सामर्थ्य न होनेके कारण वह बड़ा कष्ट पाता है ॥ २६ ॥ उसकी स्वभावकी क्रोमल होती है उसे डौंस, मन्त्र और छत्रमल आदि उसी प्रकार काटते रहते हैं, जैसे बड़ कबीरेको छोट कबीरे । इस समय उसका गर्भवासका सारा ज्ञान जाता रहता है, सिवा रोगके वह कुछ नहीं कर सकता ॥ २७ ॥

इसी प्रकार बास्य (कड़ैपार) और पीगण्ड-अवस्था कींके दुःख भोगकर वह बाळक युवावस्थामें पहुँचता है । इस समय उसे यदि कोई इच्छित भोग नहीं प्राप्त होगा तो अज्ञानवशा उसका क्रोध उदीर हो उठता है और वह शाक्यकुल हो जाता है ॥ २८ ॥ बहके साथ-ही-साथ अभिमान और क्रोध बड़ आनन्दके कारण

करोति विग्रहकामी कामिष्वन्ताय आत्मन ॥२९॥

मृतै पञ्चभिरारब्धे देह देहप्रभोऽसकृत् ।

अहममेत्यसद्वाह करोति कुमतिर्मतिम् ॥३०॥

तदर्थं कुरुते कर्म यद्गदो याति संसृतिम् ।

याज्जुयाति ददस्क्लेशमविद्याकर्मबन्धन ॥३१॥

यद्यसद्भि पथि पुन शिश्नोदरकृतोद्यमै ।

आस्मिन् रमत बन्तुन्तमो निशति पूर्ववत् ॥३२॥

सत्यं शौच दया मौन बुद्धिः भीर्हार्थशः क्षमा ।

शमो दमो भगवचेति यस्सङ्गाधाति सङ्गयम् ॥३३॥

तेष्वशान्तेषु मृदेषु स्वण्डितात्मस्वसाधुषु ।

सङ्ग न कुर्याच्छान्तेषु यापिस्त्रीहामृगेषु च ॥३४॥

न तयास्य भवे मोहो बन्ध आन्यैः प्रसङ्गतः ।

यापिस्सङ्गाधया पुसा यथा तस्मिन्निस्तङ्गतः ॥३५॥

प्रजापति स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तदुपधर्षितः ।

राहिद्रुतां साऽन्वधावदस्वरूपी इतत्रप ॥३६॥

तत्सृष्टसृष्ट्युत्प्रेषु का न्वन्वण्डितधीः पुमान् ।

अपि नारायणमृतं योपि मय्येह मायया ॥३७॥

यत्तमं पश्य मायाया स्त्रामय्या अपिना दिग्गम् ।

या कराति र्पदाक्रान्तान् भ्रूविजम्भेण केवलम् ॥३८॥

यह कामपरवश जीव अपना ही नाश करनेके लिये दूसरे का भी पुरुषोंके साथ भैर ठामता है ॥२९॥ खोटी बुद्धिवाला वह अज्ञानी जीव पञ्चमृतोंसे रचे हुए इस देहमें मिथ्यामिनिवेशके कारण निरन्तर भ्रम-मरेपनका अभिमान करने लगता है ॥ ३० ॥ जो शरीर इसे ब्रह्मावस्था आदि अनेक प्रकारके कष्ट ही देता है तथा अनिष्टा और कर्मके सूत्रसे बँधा रहनेके कारण सदा इसके पीछे लग रहा है, उसीके लिये यह तरह-तरहके कर्म करता रहता है—जिनमें बँध जानेके कारण इसे बार-बार सगरा तकमें पड़ना होता है ॥ ३१ ॥ समागम-में चलते हुए यदि इसका किन्हीं जिह्वा और उपर्येन्द्रिय के योगमें खरो हुए बिपरी पुरुषोंसे समागम हो जाता है और यह उनमें आस्था करके उनकी अनुगमन करने लगता है, तो पहलेके समान ही फिर नारकी योनियोंमें पड़ता है ॥ ३२ ॥ जिनके सङ्गसे इसके सत्य, शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया, वाणीका समय, बुद्धि, धन-सम्पत्ति, उज्जा, यश, क्षमा, मन और इन्द्रियोंका समय तथा ऐश्वर्य आदि सभी मद्दुग नष्ट हो जाते हैं, उन अत्यन्त शोचनाय, क्रियोंके क्रीडामुग (क्लिन्नौ), अशान्त, मूढ़ और देहात्मदर्शी असत्पुरुषोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ३४ ॥ क्योंकि इस जीवको किसी औरका सङ्ग करनेसे ऐसा मोह और बन्धन नहीं होता, जैसा का और त्रियोंके सङ्गियोंका सङ्ग करनेसे होता है ॥ ३५ ॥ एक बार अपनी पुत्री सख्मीका देखकर ब्रह्मानी भी उसका रूप-स्वाकर्म्यस माहित हो गये थे और उसका मृगीरूप हाकर भाग्यपर उसका पीछा निर्जन्मापूर्वक मृगरूप हाकर लौटने लगे ॥ ३६ ॥ उन्हीं ब्रह्मानीन मरीचि आदि प्रजापतियोंका तथा मरीचि आदि नदयपादिकों और नदयपातिन दक्ष-मनुष्यादि प्राणियोंकी सृष्टि थी । अब इनमें एक अतिप्रकार नारायणका छद्म कर ऐसा काम पुरुष हो सगता है, जिसकी बुद्धि श्रीरामजी मायाय मोहित न हो ॥ ३७ ॥ कहा ! मेरी इस श्रीरामजी मायाका बन्ध तो ऐसा, जो जिन भ्रुकुटि विजयमायसे बद्ध-बद्ध निजिबन्धी कीरोंका

मङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु आतु
योगस्य पारं परमारुरुक्षु ।
मत्सेवया प्रतिलम्ब्यारमलाभो
वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥३९॥

योपयाति धनैर्माया योपिदेवविनिर्मिता ।
तामीषेतात्मनो मृत्युं वृषै कूपमिवावृतम् ॥४०॥
यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायायामुपभायतीम् ।

स्त्रीत्व स्त्रीसङ्गतः प्राप्तो विद्यापत्यगृहप्रदम् ॥४१॥

तामात्मनो विज्ञानीयात्पत्यपत्यगृहारमकम् ।

दैवापसादितं मृत्युं मृगयोगीषन् यथा ॥४२॥

देहेन जीवभूतेन लोकालोकमनुव्रजन् ।

अज्ञान एव क्रमोणि करोत्यविरतं पुमान् ॥४३॥

जीवा ह्यभ्यानुगा देहा भूतेन्द्रियमनामयः ।

तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भव ॥४४॥

द्रव्यावलम्बिभ्यान्स द्रव्येष्टायाग्यता यदा ।

तत्पञ्चत्वमहमानादुत्पत्तिद्रव्यदर्शनम् ॥४५॥

यथाष्णाद्रन्यावयवदर्शनायाग्यता यदा ।

१ पानीय प्रभेदे "मनामयः" । इह पूर्वापेक्ष भागे व्यवधारमस्तिरु देहा यस्य माध्याय कृत्यसे इतना पाठ
अभिहित है । २ प्राचीन प्रभेदे तत्पञ्चत्व "इत्यादि उत्तरार्धसे सङ्गठन वरानाश्रयता यदा इह पूर्वापेक्षका गठ
नती है ।

जो पुरुष योगके परमपदपर आरुढ़ होना चाहता
हो अथवा जिसे मेरी सेवाके प्रभावसे अन्तः-अन्तः
विवेक हो गया हो, यह ब्रह्मयोग सङ्ग कभी न चरे, क्योंकि
उन्हें ऐसे पुरुषके किये नरकका सुखा द्वार बताया गया
है ॥३९॥ मगवानुकी रची हुई यह जो स्त्रीरूपिणी माया
धीरे धीरे सेवा आदिके मिससे पास आती है, इसे तिनकोसे
ढके हुए कुएँके समान अपनी मृत्यु ही समझे ॥ ४० ॥

स्त्रीमें आसक्त रहनेके कारण तथा अन्तः समर्थमें स्त्रीका
ही ध्यान रहनेसे जीवको स्त्रीयोजि प्राप्त होती है । इस
प्रकार स्त्रीयोजि को प्राप्त हुआ जीव पुरुषरूपमें प्रतीति
होनेवाली मेरी मायाको ही धन, पुत्र और गृह आदि
देनेवाला अपना पति मानता रहता है, सो जिस प्रकार
व्याघेका गान कानोंको प्रिय लगनेपर भी बेचारे भ्रमे-भ्रमे
पशु-पक्षियोंको फँसाकर उनके नाशका ही कारण होता
है—उसी प्रकार उन पुत्र, पति और गृह आदिको निवारण-
की निश्चित की हुई अपनी मृत्यु ही जाने ॥४१॥ ४२॥
देखि ! जीवका उपाधिभूत छिन्नदेहके द्वारा पुरुष एक
लोकसे दूसरे लोकमें जाता है और अपने प्रारम्भकर्मोंके
मोहता हुआ निरन्तर अन्य देहोंकी प्राप्तिके लिये दूसरे
कर्म करता रहता है ॥ ४३ ॥ जीवका उपाधिरूप
छिन्नशरीर तो मोक्षपर्यन्त उसके साथ रहता है तथा
भूत, इन्द्रिय और मनका कर्मरूप स्थूलशरीर इसका
मोहविधान है । इस दोनोंका परस्पर संगठित होकर
कार्य न करना ही प्राणीकी 'मृत्यु' है और दोनोंका
साप-साप प्रकट होना 'जन्म' कहलता है ॥४४॥
पदार्थोंकी उपलब्धिके स्वाम्यत्प इस स्थूलशरीरमें जब
उनको ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रहती, यह उसका
मरण है; और यह स्थूलशरीर ही मैं हूँ—इस अभिमान
के साथ उसे देखता उसका जन्म है ॥ ४५ ॥ नेत्रोंमें
जब किसी वस्तुके कारण रज्जाधिके देखनेकी योग्यता
नहीं रहती, तभी उनमें रहनवासी चक्षु-इन्द्रिय भी स्वयं
देखनेमें असमर्थ हो जाती है । और जब नेत्र और
उनमें रहनवाली इन्द्रिय दोनों ही स्वयं देखनेमें असमर्थ

तदेव चक्षुषो ब्रह्मर्षिपुत्रायोग्यतानयोः ॥४६॥
 तस्मात् कार्यः सन्त्रासो न कार्यण्य न सम्भ्रमः।
 बुद्ध्या जीवगतिं धीरो मुक्तसङ्गश्चेदिह ॥४७॥
 सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया।
 मायाविरहिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥४८॥

हो नाते हैं, तभी इन दोनोंके साक्षी जीवमें भी वह योग्यता नहीं रहती ॥ ४६ ॥ अतः मुमुक्षु पुरुषको मरणादिसे भय, दोनता अपवा मोह नहीं होना चाहिये। उसे जीवके स्वरूपको जानकर धैर्यपूर्वक नि सङ्गभावसे विचरना चाहिये तथा इस मायामय संसारमें योग-वैराग्य युक्त सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धिसे शरीरको निक्षेप (धरोहर) की भाँति रखकर उसके प्रति बनासक्त रहते हुए विचरण करना चाहिये ॥ ४७-४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां तृतीय-
 स्कन्धे कौपिलियोपाख्याने जीवगतिर्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

धूममार्गं गौर मर्षिरादि मार्गसे जानेवालोंकी गतिरुका और
 भक्तियोगकी उत्कृष्टतया वर्णन

कर्मित उपाय

अथ यो गृहमेधीयान्धर्मानिवावसन् गृहे।
 काममर्थं च धर्मान् स्नान्दोग्धिभूयःपिपतिं वान् ॥१॥
 स चापि भगवद्मार्तकाममूढः पराङ्मुखः।
 यजते क्रतुभिर्देवान् पितॄन्ध भद्रयान्वितः ॥ २ ॥
 उच्छ्रद्धयाक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान्।
 गत्वा चान्द्रमसं लाकं सोमपा पुनरेष्यति ॥ ३ ॥
 यदा चाहीन्द्रस्य मायां ज्ञेतेऽनन्तासनो हरि।
 तदा लाकं लययान्ति स एते गृहमेभिनाम् ॥ ४ ॥
 ये स्वधर्मोन्मदुन्नन्ति धीरा कामार्थहेतवः।
 नि सङ्गा न्यल्पकमाणं प्रश्रान्ताः शुद्धचेतसः ॥ ५ ॥
 निश्चिधर्मनिरास निर्ममा निरहङ्कृताः।

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—मानाजी ! जो पुरुष घरमें रहकर सकामभावसे गृहस्थके धर्मोक्त पाठन करता है और उनके फलस्वरूप अर्थ एवं कामका उपभोग करने के लिए उनकी अनुष्ठान करता रहता है, वह तरह-तरहकी कामनाओंसे मोहित रहनेके कारण भगवद्धर्म से विमुख हो जाता है और यहाँद्वारा ब्रह्माश्रयक देवता तथा पितरोंकी ही आराधना करता रहता है ॥ १-२ ॥ उसकी बुद्धि उसी प्रयत्नकी श्रद्धासे युक्त रहती है, देवता और पितर ही उसके उपास्य रहते हैं; अतः वह चन्द्रलोकमें जाकर उनके साथ सोमपान करता है और फिर पुण्य क्षीण होनेपर इसी लोकमें लौट आता है ॥ ३ ॥ जिस समय प्रत्येककर्म क्षेत्रशापी भगवान् योग्यापर शयन करते हैं, उस समय सकाम गृहस्थाश्रमियोंको प्राप्त हानवाले ये सब लोक भी छीन हो जाते हैं ॥ ४ ॥

जो विवेकी पुरुष अपने धर्मोक्त अर्थ और भगवत्विदासके लिये उपयोग नहीं करता, बल्कि भगवान्की प्रसन्नताके लिये ही उनका पाठन करते हैं—ये बनासक्त, प्रशान्त, शुद्धचित्त, निश्चिधर्मनिरास, ममत्वादित

स्वधर्माभ्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥ ६ ॥
 र्षर्षद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम् ।
 परात्परेषु प्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥ ७ ॥
 द्विपरार्द्धविज्ञाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ।
 तावदभ्यासते लोकां परस्व परचिन्तकाः ॥ ८ ॥
 क्षमाभ्योऽनलानिलवियन्मनस्त्रिद्वयार्थं
 मृतादिभिः परिहृत प्रतिस्मिन्निर्दुःखः ।
 अन्याकृत विद्यति यद्भिः गुणत्रयात्मा
 काल परास्वमनुमूय परः स्वयम् ॥ ९ ॥
 एवं परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा
 य योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ।
 तेनैव साकममृतं पुरुष पुराण
 ब्रह्म प्रधानसुखयान्त्यैवताभिमानाः ॥ १० ॥
 अथ तं सर्वमृतानां हृत्पद्मेषु कृतालम्बम् ।
 भुतानुभाव शरणं ब्रह्म भावेन भामिनि ॥ ११ ॥
 आद्य स्त्रिचराणां यो वेदगर्भः सहस्रिभिः ।
 यागभ्यै कुमारद्यै सिद्धैर्योगप्रवतकैः ॥ १२ ॥
 मेददृष्ट्याभिमानेन नि सङ्गनापि कर्मणा ।
 कर्तृत्वात्सगुण ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥
 य संसृत्य पुनः कालं कालेनेभ्यर्मृतिना ।
 जात गुणन्यतिकर यथापूष ब्रह्मापते ॥ १४ ॥
 एभ्यर्ष पारमष्ठ्य च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ।
 निषम्य पुनरायान्ति गुणभ्यतिकर मति ॥ १५ ॥

और वह हृद्धारण्य पुरुष स्वधर्मपात्रनिरूप सत्त्वगुणके
 द्वारा सर्वथा शुद्धचित्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ वे अन्तर्मे
 सूर्यमार्ग (अर्चिमार्ग या देवयान) के द्वारा सर्वव्यापी
 पूर्णपुरुष श्रीहरिको ही प्राप्त होते हैं—जो कर्म-
 कारणरूप जगतके नियन्ता, संसारके उपादान-कारण
 और उसकी उत्पत्ति, पालन एवं स्थापन करनेवाले
 हैं ॥ ७ ॥ जो लोग परमात्मदृष्टिसे द्विरप्यगर्भकी उपासना
 करते हैं, वे ही परार्द्धमें होमवाले ब्रह्माजीके प्रत्यक्षपुत्र
 उनके सत्यलोकमें ही रहते हैं ॥ ८ ॥ जिस समय
 देवतादिसे भेष्ट ब्रह्माजी अपने द्विपरार्द्धकालके अधिकार
 को भोगकर पृथ्वी, अरु, अग्नि, वायु, आकाश, मन,
 इन्द्रिय, उनके विषय (शब्दादि) और वह हृद्धारण्यके
 सहित सम्पूर्ण विश्वका संहार करनेकी इच्छासे त्रिगुणान्तर
 प्रकृतिके साथ एकत्र होकर निर्विशेष परममामे लीन
 हो जाते हैं, उस समय प्राण और मनको जीते हुए वे
 निरुक्त योगिगण भी वेह त्यागकर उन महात्मा ब्रह्माजीमें
 ही प्रवेश करते हैं और फिर उन्हें ही साथ परमानन्द
 स्वरूप पुराणपुरुष परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं । इस्ते
 पहले वे महात्माओंमें लीन नहीं हुए, क्योंकि वक्तव्य
 उनमें वह हृद्धारण्य शेष था ॥ ९ ॥ १० ॥ इसलिये माताजी ।
 अब तुम भी अत्यन्त भक्तिमत्भावसे उन श्रीहरिको ही
 शरण-शरणमें जाओ, समस्त प्राणियोंका हृदय-कमल ही
 उनका मन्दिर है और तुमने भी मुझसे उनका प्रकट
 स्वन ही किया है ॥ ११ ॥ वेदगर्भ ब्रह्माजी भी—जो
 समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके आदिकारण हैं—स्रीचि
 आदि श्रुतियों, योगेश्वरों, सनकादिकों तथा योगप्रवर्तक
 सिद्धोंके सहित मित्रकाम कर्मके द्वारा आदिपुरुष पुरुष
 भेष्ट सगुण ब्रह्मको प्राप्त होकर भी, मेददृष्टि और
 कर्तृत्वाभिमानके कारण भगवद्विच्छासे, जब सर्वकाल
 उपस्थित होता है तब, कालरूप ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें
 क्षोभ होनेपर फिर पूर्ववत् प्रपन्न हो जाते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥
 इसी प्रकार पूर्णतः श्रुतिगण भी अपने-अपने कर्मानुसार
 ब्रह्मलोकके पदार्थको भोगकर भगवत्प्रियासे गुणोंमें क्षोभ
 होनेपर पुन इस लोकमें आ जाते हैं ॥ १५ ॥

१ मा पा — नाना कः । २ मा पा — त्रिगुणः । ३ मा पा — कृति गता । ४ मा पा — भविति ।

५ मा पा — त्रु ते-ति ।

ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु भ्रष्टयान्विताः ।

कूर्वन्यप्रतिपिद्धानि निस्त्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥१६॥

गमसाकुण्ठमनसः कामात्मानोऽखितेन्द्रिया ।

पितृन् यन्नन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरवाशया ॥१७॥

वैवर्गिकास्ते पुरुषा विमृत्वा हरिमेव सः ।

कषायो कथनीयोरुविक्रमस्य मधुक्षिपः ॥१८॥

नृलदैवेन विहता ये चाप्युत्कथासुधाम् ।

हिता मृण्वत्यसद्वाधाः पुरीषमिव बिहस्रजः ॥१९॥

दक्षिणेन पथार्यन्तः पितृलोकं व्रजन्ति ते ।

प्रजामनु प्रजायन्त इमश्चानान्तक्रियाकृत् ॥२०॥

ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमं सति ।

पतन्ति विवशा द्रवः सद्यो विग्रंशितोदयाः ॥२१॥

तस्मात्त्वं सर्वमाधेन भक्ष्य परमेष्ठिनम् ।

तद्गुणामयया मक्त्या भक्षनीयपदाम्बुजम् ॥२२॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।

वनवत्पाशु वैराग्यं ज्ञानं यदृष्यददर्शनम् ॥२३॥

यदास्य चित्तमर्पेण समेप्सिन्त्रियवृत्तिभिः ।

न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमिष्युत ॥२४॥

स तदैवात्मनाऽऽरमान नि यज्ञं समदर्शनम् ।

जिनका धित इस लोकमें वासक हैं और जा
कर्मोंमें अशक्त रहते हैं, वे वेदमें कहे हुए कर्म और
नित्य कर्मोंका साक्षात्प्राप्त अनुष्ठान करनेमें ही लगे रहते
हैं ॥ १६ ॥ उनकी बुद्धि राजोगुणकी अधिकताका कारण
कुण्ठित रहती है, हृदयमें कामनाओंका जाल फैला
रहता है और इन्द्रियों उनका बशमें नहीं आती, वस,
जान घरोमें ही वासक होकर वे नित्यप्रति पितरोंकी
पूजामें लगे रहते हैं ॥ १७ ॥ ये लोग कथ, धम और
कामके ही परायण होते हैं, इसलिये जिनका महान्
पराक्रम अत्यन्त कीर्तनीय है, उन भवमयहारी
धीमधुसूदन महाबाहूकी कथा-वार्ताओंसे तो ये विमुख
ही रहते हैं ॥ १८ ॥ हाय ! विद्या-भोजी कृत्-सूक्त
आदि जीवोंके विद्या-बाहनेके समान जो मनुष्य भग-
वत्कथामृतका छोड़कर निर्दिष्ट विषय-वार्ताओंका सुनते
हैं—वे तो अवश्य ही विधाताके मारे हुए हैं, उनका
ब्रह्मा ही मन्त्र मरण है ॥ १९ ॥ गर्माधानसे लेकर
अन्त्येष्टिका सब सत्कारोंका विधिपूर्वक करनेवाला ये
सकलकर्मा सुपसे दक्षिण ओरके पितृयान या धूममार्ग-
से त्रीशर कथमात्र लोकमें जाते हैं और फिर अपनी
ही सन्तति बशमें उत्पन्न होत हैं ॥ २० ॥ मातृजी !
पितृलोकका भोग भोग लेतेपर जब उनके पुण्य क्षीण हो
जाते हैं, तब देवतालोक उन्हें नहीं देखते प्लुत कर देते
हैं और फिर उन्हें विवश होकर तुरंत ही इस लोकमें
गिरना पड़ता है ॥ २१ ॥ इसलिये माताजी ! जिनके
चरण-कमल सदा भजनेयोग्य हैं, उन महाबाहू का तुम
उन्हेंकी गुणोंका आश्रय लेनाबाड़ी भक्तिक द्वारा सब
प्रकारसे (मन, वाणी और शरीरसे) भजन करो ॥ २२ ॥
महाबाहू वासुदेवके प्रति किया हुआ भक्तियाग
तुरंत ही संसारसे वैराग्य और ब्रह्माभ्युदयरूप
ज्ञानका प्राप्ति करा देता है ॥ २३ ॥ वस्तुतः सभी
विषय भगवद्रूप होनेका कारण समान हैं । जन जब
इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके द्वारा भी भगवद्रूपका चित्त उनमें
प्रिय-अप्रियरूप विषयमात्रका अनुभव नहीं करता—सर्वत्र
महाबाहू ही स्थान करता है—वही समय वह सब

स्वतेजसा

अस्तगुणप्रवाह

वन्दे विष्णु कपिलं वैदगर्मम् ॥ ८ ॥

मेत्रेय उवाच

इद्विदो भगवानेष कपिलास्य पर पुमान् ।

वाचाविक्लवयेत्याह मातर मातृवत्सलः ॥ ९ ॥

कपिल उवाच

मार्गेजानेन मातस्ते सुसेष्येनोदितेन मे ।

वास्यितेन परां काष्ठामचिरादचरांस्त्वसि ॥ १० ॥

भद्रत्सवैतन्मतं ममं क्षुप्त यद्ब्रह्मवादिभिः ।

येन मामभव यावा मृत्युमुच्छन्त्यस्यद्विद ॥ ११ ॥

मेत्रेय उवाच

इति प्रदर्श्य भगवान् सतीं तामात्मनो गतिम् ।

स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥ १२ ॥

सा चापि तनयोक्तेन यागादेक्षेन यागयुक् ।

तस्मिन्नाश्रम आसीद सरस्वत्याः समाहिता ॥ १३ ॥

अभीष्टावगाहकपिधान् जटिलान् कुटिलासकान् ।

आत्मानं चोत्प्रवपसा मिश्रती वीरिण कुशम् ॥ १४ ॥

प्रजापते कर्दमस्य तपायोगविबुध्मिवम् ।

स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्य वंमानिकैरपि ॥ १५ ॥

पयःफलनिभा शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।

आसनानि च हंमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ १६ ॥

स्वच्छस्फटिकहृत्क्षेपु महामारकतेषु च ।

रत्नप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुता ॥ १७ ॥

गृहाधानं कुसुमैर्त रम्य बह्वरहमैः ।

कन्ददिव्यमिधुनं गायन्मन्त्रमधुतम् ॥ १८ ॥

अपने तेजसे मायाके कार्य गुण-प्रवाहको शास्त्र कर देते हैं तथा आपके ही उदरमें सम्पूर्ण वेदतत्त्व निहित है । ऐसे साक्षात् विष्णुस्वरूप आपके मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ८ ॥

श्रीमेत्रेयजी कहते हैं—माताके इस प्रकार स्तुति करमपर मातृवत्सल परमपुरुष भगवान् कपिलदेवजीने उससे गम्भीर वाणीमें कहा ॥ ९ ॥

श्रीकपिलत्रेयजीने कहा—माताजी ! मैंने तुम्हें जो यह सुगम मार्ग बताया है, इसका अक्षरम्भन करनेसे तुम शीघ्र ही परमपद प्राप्त कर लोगी ॥ १० ॥ तुम मेरे इस मतमें विश्वास करो, ब्रह्मवादी लोगोंने इसका सेवन किया है, इसके द्वारा तुम मेरे जन्म-मरणरहित स्वरूपको प्राप्त कर लोगी । जो लोग मेरे इस मतको नहीं जानते, वे जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ते हैं ॥ ११ ॥

श्रीमेत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार अपने श्रेष्ठ आत्मज्ञानका उपदेशकर श्रीकपिलदेवजी अपनी ब्रह्म-वादिनी जननीकी अनुमति लेकर वहाँसे चले गये ॥ १२ ॥ तब देवहूतिजी भी सरस्वतीके मुकुटसदृश अपन आश्रममें अपने पुत्रके उपदेश किये हुए योगसाधनके द्वारा योगान्पास करती हुई समाधिमें स्थित हो गयीं ॥ १३ ॥ त्रिकाश स्नान करनेसे उनकी छुँवराकी अन्तर्में मूरी मूरी जयजयोंमें परिणत हो गयीं तथा चौर वहाँसे ढकड़ हुआ शरीर उभर तपस्याका कारण दुर्लभ हो गया ॥ १४ ॥ उन्होंने प्रजापति वर्त्मके तप और योगकष्टसे प्राप्त अनुपम गार्हस्थ्यसुखको, जिसका छिये देवता भी तरसत थे, त्याग दिया ॥ १५ ॥ जिसमें दुग्धफेनके समान स्वच्छ और सुकोमल शय्यासे युक्त शायी-नीलके पलंग, सुवर्णके पात्र, सोनेक सिंहासन और उसपर कोमल-कोमल गद्दे बिछे हुए थे तथा जिसकी स्वच्छ स्फटिकमणि और महामरकतमणिश्री मीतोंमें रत्नों की बनी हुई रक्णी-मूर्तियोंके सहित मणिमय दीपक जगमग रहे थे, जो छत्रोंसे ढरे हुए अनर्को दिव्य वृक्षोंसे सुशोभित था, जिसमें अनक प्रकारक पश्रियो-का करारण और मनवाले मीरोंका गुंजार होता रहता

हेयोपादेयरहितमारुहं पदमीक्षते ॥२५॥

ज्ञानमात्र परं ब्रह्म परमात्मेधरः पुमान् ।

इत्यादिभिः पृथग्भावैर्मगधानेक ईर्यते ॥२६॥

एवावानेन योगेन समग्रमेव योगिनः ।

शुच्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसङ्गस्तु कृत्स्नेन ॥२७॥

ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ।

अवभात्यर्थरूपेण ब्रह्मत्वा शब्दादिधर्मिणा ॥२८॥

अथा महानिर्हरूपस्त्रिभूत्यष्टविधः स्वराद् ।

एकादशविदस्तत्र नपुरम्हं जगद्यतः ॥२९॥

एतद्वै शब्दवा मक्त्या भोगाम्यासेन निस्वयः ।

समाहितारमा निःसङ्गे विरक्त्या परिपश्यति ॥३०॥

इच्छेत्कथितं शुर्वि ज्ञानं तद्वृत्तद्वर्धनम् ।

येनानुबुद्ध्यते तत्त्वं प्रकृते पुरुषस्य च ॥३१॥

ज्ञानयोगश्च भक्तियो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ।

द्रव्योरप्येक एवार्था भगवच्छब्दसंख्यः ॥३२॥

भवेन्निर्गुणैः पृथग्भारैरर्थो बहुगुणाभय ।

एकमे नानेवते तद्वद्भगवान् क्षात्रवर्त्मभिः ॥३३॥

क्रियया कृतुभिर्दानैस्तपःस्वाध्यायमर्चनैः ।

आत्मेन्द्रियवशेनापि संन्यासेन च कथं वा ॥३४॥

यानेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि ।

धर्मैर्भोग्यविद्वद्भ्यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥३५॥

रहित, सबमें समानरूपसे स्थित, त्याग और प्रवृत्त-योग्य, दोन और गुणोंसे रहित, अपनी मझियामें काय-कर्म आत्माका प्रवृत्तरूपसे साक्षात्कार करता है ॥ २४-२५ ॥ वही ब्रह्मरूप है, वही परब्रह्म है, वही परमात्मा है, वही ईश्वर है, वही पुरुष है, वही एक भगवान् एक जीव, शरीर, विषय, इन्द्रियों आदि अनेक रूपमें प्रतीत होता है ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण संसारमें आसक्तिकर बन हो जाना—यस, वही योगियोंके सब प्रकारके ध्यान-साधनका एकमात्र अमीष्ट फल है ॥ २७ ॥ ब्रह्म एक है, ज्ञानस्वरूप और निर्गुण है, ता भी वह बाह्य वृत्तियों-वाली इन्द्रियोंके द्वारा आन्तिवश शब्दादि धर्मोंसे विभिन्न पदार्थोंके रूपमें भास रहा है ॥ २८ ॥ जिस प्रकार एक ही परब्रह्म अक्षय, वैकारिक, राजस और तामस—तीन प्रकारका बहङ्कार पञ्चभूमत एव मय्य इन्द्रियरूप बन गया, और फिर वही स्वयंप्रकाश इनके संयोगसे जीव कहलाया, उसी प्रकार उस जीवका शक्तिरूप यह ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्म ही है, क्योंकि अमृत है ॥ इसकी उत्पत्ति हुई है ॥ २९ ॥ किन्तु इसे ब्रह्मरूप वही देख सकता है, जो ब्रह्मा भक्ति और वैराग्य तब निरन्तरके योगभ्यासके द्वारा एकप्रविष्ट और अस्त्र-शुद्धि हो गया है ॥ ३० ॥

पूजनीय माताजी । मैं तुम्हें यह ब्रह्मसाक्षात्कारका साधनरूप ज्ञान सुनाना, इसके द्वारा प्रकृति और पुरुषके पदार्थस्वरूपका बोध हो जाता है ॥ ३१ ॥ देख ! निर्गुणब्रह्म-विषयक ज्ञानयोग और मेरे प्रति किया हुआ भक्तियोग—इन दोनोंका फल एक ही है । उस ही भगवान् कहते हैं ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार रूप, रस एवं गन्ध आदि अनेक गुणोंका आभयभूत एक ही पदार्थ भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंद्वारा विभिन्नरूपसे अनुभूत होता है, वैसे ही शास्त्रोंके विभिन्न मार्गोंद्वारा एक ही भगवान् की अनेक प्रकारसे अनुभूति होती है ॥ ३३ ॥ माना प्रकार के कर्मकाण्ड, यज्ञ, दान, तप, वेदाभ्यास, वेदविचार (मीमांसा), धर्म और इन्द्रियोंके संयम कर्मोंके त्याग, विविध अङ्गोंवाले योग, भक्तियोग, निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप

आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण हृदयेन च ।

इत्येते भगवानेभि सगुणो निर्गुणः स्वरूपः ॥३६॥

प्राज्ञाचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ।

काष्ठस्य चाप्यक्तगतेर्योऽन्वधावति अन्तुषु ॥३७॥

बीजस्य ससृतीर्षद्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ।

याम्बुजं प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥३८॥

न तत्त्वलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ।

न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मपञ्चाय च ॥३९॥

न लोलुपायोपदिशेन् न गृहारूढचेतसे ।

नामक्ताय च न ज्ञातु न मय्युक्तद्विषामपि ॥४०॥

भद्रचानाय भक्ताय द्वितीयायानुसूये ।

भूतेषु कृतमंशाय शुभ्रपाभिरताय च ॥४१॥

षड्विंशतिविरागाय शान्तविषाय दीयताम् ।

निर्मत्सराय वृषये यसाह प्रयसां प्रियः ॥४२॥

य इदं शृणुषादम्भं भद्रया पुरुषं सकृत् ।

या वाभिधाय मणितः स ह्यसि पदवीं चै मे ॥४३॥

सकाम और निष्काम दोनों प्रकारके धर्म आत्म-
तत्त्वेके ज्ञान और इह धैर्य—इन सभी साधनोंसे
सगुण-निर्गुणरूप स्वयंप्रकाश भगवान्का ही प्राप्त किया
जाता है ॥ ३४-३६ ॥

माताजी ! सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण
भेदसे चार प्रकारके भक्तियोगका और जो प्राणियोंके
जन्मादि विकारोंका हत है तथा जिमकी गति जानी
नहीं जानी, उस काष्ठका स्वरूप में तुमसे कह दी चुका
हूँ ॥ ३७ ॥ वेति ! अविद्याजनित कर्मके कारण जीव
की अनकों गतियों होती हैं, उनमें जानकर यह अपने
स्वरूपको नहीं पहचान सकता ॥ ३८ ॥ मैंने तुम्हें
जो ज्ञानापदेश दिया है—उम दुष्ट, दुर्विनीत, धमनी,
दुराचारी और घमण्यको (दम्भी) पुरुषोंको नहीं सुनाना
चाहिये ॥ ३९ ॥ जो विरयको दुष्ट हो, गृहस्थ हो, म्हा
मठ न हो अपना मेरे भक्तोंमें दूष करनेवाला हा, उम
भी इसका उपदेश कभी न करे ॥ ४० ॥ जो अत्यन्त
अदास, मक्त, विनयी, दूसरोंके प्रति आप्यति न रखन-
वाला सब प्राणियोंसे मित्रता रखनवाला, गुरुभ्रामे
तत्पर, बाप विरयोंमें अनामक्त, गान्तवित मामरगुण्य
और पवित्रचित हा तथा मुझ परम प्रियतम माननेवाला
हो, उम इसका अवश्य उपदेश करे ॥ ४१ ॥ मा !
जो पुरुष मुझमें श्रित लगाकर इसका अदापूर्वक एव
बार भी श्रवण या कथन करेगा, वह मेरे परमभक्त
प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे

कण्डिलेये शत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

देवहूतिना नररत्नान एव माहापदवीं प्राप्ति

मय्य उपाय

एव निष्ठस्य कपिलस्य वक्ता जनश्री

माकामस्य दयिता किल दूरति ।

विमलभाटपण्डा तमभिप्रणम्य

सुग्राह तत्त्वविषयाद्वितमिदं भूमिम् ॥ १ ॥

१ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥

श्रीमत्प्रणम्य कृतं हि—श्रीगुरुजी ! श्रीरत्नमगता

क ये बचन सुनकर यन्मन्त्रिण विरचनी तथा दूरति

क महाराज १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥

शास्त्र शास्त्री अपात्रमभि प्रणम्य श्रीगुरुजी

प्रणम्य कृतं तनवीं भूमिं यमन ॥ १ ॥

१ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥

देवहूतिरुपाय

अथाप्यबोऽन्त सलिले क्षयानं
मृतेन्द्रियार्थात्ममय वपुस्ते ।
गुणप्रवाह सदशेषबीजं
दम्प्यौ मय यज्जठराब्जजातः ॥ २ ॥
स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते
गुणप्रवाहेण विभक्तधीर्यः ।
सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसन्धि-
रात्मेधरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ ३ ॥
म त्व मृतो मे अठरेण नाथ
कथ नु वसोदर एतदासीत् ।
विश्व युगात्ते वटपत्र एकः
क्षेत्रे स मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥ ४ ॥
स्व देहतन्त्र प्रशमाय पाप्मनां
निदेशमार्त्तां च विभो विमृतये ।
यथावतारास्तव सूकरादय
त्तथायमप्यारमपथोपलब्धये ॥ ५ ॥
यन्नामवेषभरणानुकीर्तनाव
यत्प्रह्वणार्द्यत्सरणादपि कथित ।
आदोऽपि सद्यः सधनाय कल्पते
कृतः पुनस्ते भगवन्तु दर्शनात् ॥ ६ ॥
अहो नत अपचोऽतो गरीयान्
यन्निज्जाग्र वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तप्तुप्तस्त जुहुवुः सस्तुरार्था
प्रदानानुर्नाम गृणन्ति ये त ॥ ७ ॥
त त्वामह भद्र परं पुर्णामं
प्रत्यक्स्नातस्मात्मनि संविभाभ्यम् ।

१ मा पा — ज्ञानुस

देवहूतिजीने कहा—कपिकजी ! भस्माजी आपके ही नामिकमण्डसे प्रकट हुए थे । उन्होंने प्रथमकालीन जन्ममें शयन करनेवाले आपके पञ्चभूत, इन्द्रिय, शक्त्यादि विषय और मनोगम्य विग्रहका, जो सरादि गुणोंके प्रवाहसे युक्त, सरस्वरूप और कार्य एव कारण दोनोंका बीज है, ध्यान ही किया था ॥ २ ॥ आप निष्क्रिय, सम्यक्सङ्कल्प, सम्पूर्ण जीवोंके प्रभु तथा सद्गतों वचिन्त्य शक्तियोंसे सम्पन्न हैं । अपनी शक्तिके गुणप्रवाहरूपसे ब्रह्मादि अनन्त मूर्तियोंमें विभक्त करके उनके द्वारा आप स्वयं ही विश्वकी रचना आदि करते हैं ॥ ३ ॥ नाथ ! यह कैसी विचित्र बात है कि जिनके उदरमें प्रथमकाल आनेपर यह सारा प्रपञ्च छीन हो जाता है और जो कल्पान्तमें मायामय बाह्यकाल रूप धारण कर अपने धरणका अङ्गूठा चुसते हुए अकेले ही बन्वृक्षके पत्ते पर शयन करते हैं, उन्हीं आपको मैंने गर्भमें धारण किया ॥ ४ ॥ विभो ! आप पापियोंका दमन और अपने आत्माका मर्जीका अम्युदय एवं कल्याण करनेके लिये स्वेच्छासे देह धारण किया करते हैं । कत किस प्रकार आपके बराह आदि अकार हुए हैं उसी प्रकार यह कपिलावतार भी मुमुक्षुओंके ज्ञानमार्ग दिखाने के लिये हुआ है ॥ ५ ॥ भगवन् ! आपके मार्गोंका ग्रहण या कीर्तन करनेसे तथा सूक्ष्म-भूतके कभी-कभी आपको वन्दन या स्मरण करनेसे ही कुतेश्वर मांस खानेवाला चाण्डाल भी सोमयजी ब्राह्मणक सम्मान पूननीय हो सकता है, फिर आपको दर्शन करनेमें मनुष्य हृतहृत् हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या है ॥ ६ ॥ अहो ! वह चाण्डाल भी इसीसे सर्वभेद है कि उसकी मिट्टाके अग्रभागमें आपका नाम निराज मान है । जो श्रेष्ठ पुरुष आपको नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तब दहन, तीर्थस्नान, स्नानाचारका पावन और वेणुध्यान—सब कुछ कर लिया ॥ ७ ॥ कपिलदेवजी ! आप साक्षात् परब्रह्म हैं आप ही परम-पुरुष हैं, इतियोंके प्रवाहको अतर्मुख करके अत वरणमें आपको ही चिन्तन किया जाना है । आप

स्वतेषसा

अन्तर्गुणप्रवाह

वन्दे विष्णु कपिल वेदगर्मम् ॥ ८ ॥

मेत्रेय उवाच

ईक्षितो भगवानेवं कपिलाख्य परः पुमान् ।

वाचाविकलवयेत्याह मातर मातृवत्सल ॥ ९ ॥

कपिल उवाच

मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ।

आसितेन परां काष्ठामचिरादबरोत्ससि ॥ १० ॥

भद्रत्वैतमव ममं क्षुप्तं बह्वक्षवादितिः ।

येन मामभव माया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥ ११ ॥

मेत्रेय उवाच

इति प्रदक्ष्य भगवान्सती तामात्मनो गतिम् ।

स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो भवौ ॥ १२ ॥

स। चापि तनयोक्तेन योगादेशेन भागयुक् ।

तस्मिन्नाश्रम आपोडं सरस्वत्याः समाहिता ॥ १३ ॥

अभीक्ष्ण्यवगाहकविशान् जटिलान् कुटिलाकान् ।

आत्मान चाप्रतपसा पित्रती चीरिण कुशम् ॥ १४ ॥

प्रजापत कर्दमस्य तपायोगविजृम्भितम् ।

स्वगाहस्थमनोपम्य प्राप्य बभानिर्कटवि ॥ १५ ॥

पयःफननिभा शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदा ।

भासनानि च हमानि सुस्पशोस्तराणि च ॥ १६ ॥

स्पृच्छस्तुतिकुडुप्यपु महामारकतेषु च ।

रत्नप्रदीपा मामान्ति ललनारत्नसयुताः ॥ १७ ॥

गृहाद्यानं कुमुदित रम्य बह्वरद्वर्गैः ।

श्चन्द्रिदङ्गमिधुनं गायन्मलयपुत्रम् ॥ १८ ॥

अपने सेजसे मायाके कथ्य गुण-प्रवाहकां शान्त कर देते हैं तथा आपके ही उदरमें सम्पूर्ण वेदतत्त्व निहित हैं। ऐसे साक्षात् विष्णुस्वरूप आपके में प्रणाम करती हूँ ॥ ८ ॥

श्रीमेत्रेयजी कहते हैं—माताके इस प्रकार स्तुति करनेपर मातृवत्सल परमपुरुष भगवान् कपिलदेवजीने उनसे गम्भीर वाणीमें कहा ॥ ९ ॥

श्रीकपिलदेवजीने कहा—माताजी ! मैंने तुम्हें जो यह सुगम मार्ग बताया है, इसका अक्षयम्भन करनेसे तुम शीघ्र ॥ परमपद प्राप्त कर लोगी ॥ १० ॥ तुम मेरे इस मतमें विश्वास करो, ब्रह्मवादी लोगोंने इसका सेवन किया है, इसके द्वारा तुम मेरे जन्म-मरणरहित स्वरूपका प्राप्त कर लोगी। जो छाग मेरे इस मतको नहीं आमतें, वे जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ते हैं ॥ ११ ॥

श्रीमेत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार अपन श्रेष्ठ आत्मज्ञानका उपदेशकर शीघ्रविश्वदेवजी अपनी ब्रह्म वादिनी जननीकी अनुमति लेकर वहाँसे चले गये ॥ १२ ॥ तब देवहूतिजी भी सरस्वतीके मुकुन्दसदृश अपन आश्रममें अपन पुत्रके उपदेश किये हुए योगसाधनक द्वारा योगम्यास करती हुई समाधिमें स्थित हो गयी ॥ १३ ॥ त्रिकाल स्नान करनेसे उनकी पुँवराकी अक्षय्य मूरी मूरी अष्टाशोमें परिणत हो गयी तथा चौर कक्षोंसे ढकड़ हुआ शरीर उम्र तपस्याक कारण हुईक हो गया ॥ १४ ॥ उन्होंने प्रजापति कल्मषक तप और योगबलसे प्राप्त अनुपम गार्हस्थसुखको, त्रिसक जिये नेकता भी तरसत थे, त्याग दिया ॥ १५ ॥ जिसमें दुग्धफलके समान स्वच्छ और सुकोमल शय्यासे मुक्त हाथी-नौतके पलंग, सुवर्णक पात्र, सानक सिंहासन और उनपर कोमल-कोमल गद्दे बिछे हुए थे तथा त्रिसकरी स्वच्छ स्फटिकमणि और महामारकतमणिकी भीतोंमें रत्नों की बनी हुई रमणी-मूर्तियोंके सज्जित मणिमय दीपक जगमग रह थे, जो छत्रोंसे ढके हुए अनपरोक्ष पिय वृक्षोंसे सुराभित था, जिसमें अनक प्रवज्जन पक्षियों-का करार और मनवाले भौंरोंका गुंनार होना रहता

यत्र प्रविष्टमात्मानं विषुधानुचरा जगुः ।

वाप्यामृतपलगन्धिन्यां कर्ममनोपलालितम् ॥१९॥

हिंसा तदीप्सिततममप्यास्त्रण्डलयोपिठाम् ।

किञ्चिदकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥२०॥

वनं प्रप्रक्षिते पत्यावपत्यधिरहातुरा ।

आततस्वाप्यभून्नष्टे वत्से गौरिष वरसला ॥२१॥

तमव ध्यायती देवमपत्य कपिल हरिम् ।

बभूवाचिरतो वत्स निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥२२॥

ध्यायती भगवद्गुणं यदाह ध्यानगोचरम् ।

सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिन्तया ॥२३॥

भक्तिप्रवाहबोगन वैराग्येण बलीयसा ।

युक्तानुष्ठानआतेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥२४॥

विष्णुद्वन्द्वतदाऽऽत्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ।

स्वानुभूत्या तिरोमूतमायागुणविश्लेषणम् ॥२५॥

ब्रह्मव्यवस्थितमतिर्मग्नवत्स्यात्मसंभवे ।

निवृत्तजीवापचित्वास्त्रीयकलेष्ठाऽऽमनिर्हृतिः ॥२६॥

नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा ।

न ससार तदाऽऽत्मानं स्वप्ने दृष्टमिबोत्थितः ॥२७॥

तदेहः परतःपोषाऽप्यकुलधाम्न्यसम्भवात् ।

बभौ मलैरवच्छिद्य सधूम इव पावकः ॥२८॥

या, जहाँकी कमलगन्धसे सुवासित बाबुजियोमें कर्म-
जीके साथ उनका बाह्य-प्यार पाकर श्रीशके छिने
प्रवेश करनेपर उसका (देवहृतिः) गन्धर्वगण गुह्य-
गम किया करते थे और भ्रिसे पानके छिये इन्द्रागियों
भी छाजवित रहती थी—उस गृहोपानकी भी ममता
उन्होंने त्याग दी । किन्तु पुत्रविश्लेषणसे व्याकुल होनेके
कारण अवश्य उनका मुख कुछ उन्माद हो गया ॥ १९ २० ॥

परिके बनगमनके अनन्तर पुत्रका भी विभाग हो
जानेसे वे आत्मज्ञानसम्पन्न होकर भी ऐसी व्याकुल हो
गयीं, जैसे बछड़ेके विधुड़ जानेसे उसे प्यार करनेवासी
गौ ॥ २१ ॥ कस विदुर ! अपने पुत्र कपिलदेवरूप
भगवान् हरिकृष्ण की चिन्तन करते-करते वे कुछ ही
दिनोंमें ऐसे ऐश्वर्यसम्पन्न बरसे भी उपरत हो
गयीं ॥ २२ ॥ फिर वे, कपिलदेवजीने भगवान् के जिस
ध्यान करनेयोग्य प्रसन्नवदनारविन्दयुक्त स्वरूपका
वर्णन किया था, उसके एक-एक अवयवका तथा उस
समग्ररूपका भी चिन्तन करती हुई ध्यानमें लक्ष्य हो
गयीं ॥ २३ ॥ भगवद्भक्तिके प्रवाह, प्रबल वैराग्य और
यथोचित कर्माजुष्टानसे उत्पन्न हुए ब्रह्मसाक्षात्कार करने
वाले ज्ञानद्वारा चित्त शुद्ध हो जानेपर वे उस सर्वव्यापक
आत्म्यके ध्यानमें मग्न हो गयीं, जो अपने स्वरूपके
प्रकाशसे माधानलित व्याकरणको दूर कर देता
है ॥ २४ २५ ॥ इस प्रकार जीवके अविद्यामृत
परच्छा श्रीमद्भगवान् में ही बुद्धिकी स्थिति हो जानेसे उनका
जीवभाव निवृत्त हो गया और वे समस्त क्लेशोंसे मुक्त
होकर परमानन्दमें निमग्न हो गयीं ॥ २६ ॥ अब
मिरन्तर समाधिसर रहनेके कारण उनकी विषयोंके
संस्पर्शकी आन्ति गिट गयी और उन्हें अपने शरीरकी
भी सुधि न रही—जैसे आगे हुए पुरुषको अपने
स्वप्नमें देखे हुए शरीरकी गहरी रहती ॥ २७ ॥ उनके शरीरका
पोषण भी दूसरोंके द्वारा ही होता था । किन्तु किसी
प्रकारका गान्धिमिक क्लेश न होनेके कारण वह दुर्लभ
नहीं हुआ । उसका लेव और भी निरुद्ध गया और वह
मेल्के कारण धूमयुक्त अग्निके समान सुशोभित होने

स्वाङ्गं तपायोगमयं युक्तकेन्द्रं गताम्बरम् ।

देवगुप्तं न युमुचे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥२९॥

एष सा कपिलोक्तेन मार्गेणाधिरतः परम् ।

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं भगवन्तमवाप ह ॥३०॥

तद्दीरासीत्युप्युतम क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा ससिद्धिस्तपेयुषी ॥३१॥

तस्मात्तथागविधुतमार्थं मर्त्यममृत्सरित् ।

स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥३२॥

कपिलोऽपि महापांगी भगवान् पितुरायमात् ।

मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥

सिद्धचारभगवन्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ।

स्तूपमानः समुद्रेण दण्डार्णनिकटतः ॥३४॥

आस्ते योगसमासाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः ।

ब्रमाणामपि लोकानामुपस्थान्त्यै समाहितः ॥३५॥

एतन्निगदितं तावत् यत्पृष्टोऽहं त्वमानस ।

कपिलस्य च सबादो देवहूत्याश्च यावत् ॥३६॥

य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते

कपिलहृन्नेतमात्मयोगगुह्यम् ।

भगवति कृतधीः सुपणकेता

धुपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥३७॥

क्या । उनके साथ विधुर गये थे और वस्त्र भी गिर गया था, तथापि निस्तर श्रीमग्नान्में ही विष्ट क्या रहनेके कारण उन्हें अपने तपायोगमय शरीरकी कुछ भी सुविधा नहीं थी, ककळ प्रारब्ध ही उसकी रक्षा करता था ॥ २८-२९ ॥

विदुरजी । इस प्रकार देवहूतिजीने कपिलदेवजीके बताये हुए मग्नद्वारा घोड़े की समयमें निष्पमुक्त परममम स्वरूप श्रीमग्नान्को प्राप्त कर लिया ॥ ३० ॥ बीरवर । जिस स्थानपर उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी, वह परम पवित्र क्षेत्र त्रिलोक्यमें 'सिद्धपद' नामसे विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ सायुज्यमात्र विदुरजी । योगसाधनके द्वारा उनके शरीरके सारे द्वैष्टिक मल दूर हो गये थे । वह एक नदीके रूपमें परिणत हो गया, जो सिद्धगणसे सेवित और सब प्रकार की सिद्धि देनेवाली है ॥ ३२ ॥

महापांगी मग्नान् कपिलजी भी माताकी व्याख्या ले पितृक आधमसे ईशानकक्षकी ओर चल गये ॥ ३३ ॥ वहाँ स्वयं समुद्रने उनका पूजन करके उन्हें स्थान दिया । वे तीनों ओकोंको शान्ति प्रदान करनेक लिये योग-मागका अवलम्बन कर समाधिमें स्थित हो गये हैं । सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मुनि और अप्सरागण उनकी स्तुति करते हैं तथा सांख्याचार्यगण भी उनका सब प्रकार स्तवन करते रहते हैं ॥ ३४ ३५ ॥

निष्पाप विदुरजी । हमारे पृष्ठनेसे मैंने तुन्हें यह मग्नान् कपिल और देवहूतिको परम पवित्र संज्ञा सुनाया ॥ ३६ ॥ यह कपिलदेवजीका मत जम्पात्मयोगका गुह्य रहस्य है । जो पुरुष इसका श्रवण या वर्णन करता है, वह मग्नान् गुरुद्वयकी पण्डितसे मुक्त होकर शीघ्र ही श्रीहरिके चरणारविन्दोंको प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥

इति श्रीमग्नगोप्ते महापुराणे नैपासिक्यामश्वत्थसाहस्यौ पारमहंस्यौ सञ्ज्ञितार्था तृतीयस्कन्धे
कपिलेयोगोक्त्याने प्रयत्निशोऽभ्यास ॥ ३९ ॥

इति तृतीय स्कन्धः समाप्तः ।

॥ हरिः ॐ नमः ॥



श्रीराधाकृष्णम्भी नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

चतुर्थः स्कन्धः



अधुवाप कृता यथा ध्रुवाप पक्विनि ।
ध्रुवस्य यत्रमात्न वामुत्थ नतामि तम् ॥

इष्म कविर्विदुः स्वह सुदेवो रोचनो द्विपट् ॥ ७ ॥

तुपिता नाम ते देवा भासन् स्थायम्भुधान्तरे ।

मरीचिमिभा श्रपयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥ ८ ॥

प्रियवतोचानपदौ मनुपुत्रौ महौजसौ ।

तत्पुत्रपौत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥ ९ ॥

देवहूतिमदापात कर्ममायात्मजां मनुः ।

स्तस्मिन्धि भुवप्राय भवता गदतां मम ॥ १० ॥

दद्याप ब्रह्मपुत्राय प्रद्यति भगवान्मनु ।

प्रायच्छतकृतः सर्वाङ्गिलोक्यां विततामहान् ॥ ११ ॥

याः कर्मसुताः प्रोक्ता तर्षं ब्रह्मर्षिपत्नय ।

तासां प्रद्यतिप्रसव प्रोच्यमान निशाध ये ॥ १२ ॥

पत्नी मरीचेस्तु कला सुपुत्रे कर्ममात्मजा ।

कौशपं पूर्णिमानं च भयोरापरितं जगत् ॥ १३ ॥

पूर्णिमाक्षत विरज विश्वं च परतप ।

देवहूत्यां हरेः पादसौषाद्यामृतसरिरिवः ॥ १४ ॥

अत्र पत्न्यनसूया श्रीजह्न सुयज्ञमः सुतान् ।

तच्च दुर्वासं सोममात्मेष्ठमसम्भवान् ॥ १५ ॥

विदुर उवाच

अप्रगृहे सुरभृष्टा म्यि-पुत्यन्यन्तदेतवः ।

किञ्चिद्विधीयतां आता एतदाख्यादि मे गुरो ॥ १६ ॥

मैत्रेय उवाच

प्रपन्ना नैदित सुष्टावन्निग्रहविदां वरः ।

सह पत्न्या ययाइयं कुलाद्रि तपसि म्यित ॥ १७ ॥

सुदेव और रोचन ॥ ७ ॥ ये ही स्वाम्भुज मन्वन्तरे 'तुपित' नामके देवता हुए । उस मन्वन्तरमें मरीचि वारि सप्तर्षि थे, भगवान् यज्ञ ही देवताओंके अधीश्वर इन्द्र थे और महान् प्रभावशाली प्रियव्रत एवं उत्तानपाद मनुपुत्र थे । वह मन्वन्तर उन्हीं दोनोंके बेटों, पेटों और दीक्षितोंके वंशसे छत्र गया ॥ ८-९ ॥

प्यारे विदुरजी ! मनुजीने अपनी दूसरी कन्या देवहूति कर्मजीको व्याही थी । उसके सम्बन्धकी प्राय सभी बातें तुम मुझसे सुन चुके हो ॥ १० ॥ भगवान् मनुने अपनी तीसरी कन्या प्रसूतिका विवाह ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रनापतिसे किया था, उसकी विशाख वंशपरम्परा तो सारी त्रिबोकीमें फैली हुई है ॥ ११ ॥

मैं कर्मजीकी नौ कन्याओंका, जो नौ ब्रह्मर्षियोंसे व्याही गयी थीं, पहले ही वर्णन कर चुका हूँ । अब उनकी वंशपरम्पराका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ १२ ॥ मरीचि श्रुतिकी पत्नी कर्मजीकी बेटी कलासे कन्यप और पूर्णिमा नामक दो पुत्र हुए, जिनके वंशसे यह साध जगत् मरा हुआ है ॥ १३ ॥ शत्रुतापन विदुरजी ! पूर्णिमाके विरज और विश्व नामके दो पुत्र तथा देवहूत्या नामकी एक कन्या हुई । यही दूसरे अगममें श्रीहरिके शरणोंके बोधनसे देवमदी गङ्गाके रूपमें प्रकट हुई ॥ १४ ॥ अत्रिकी पत्नी अनसूयासे दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमा नामके तीन परम यशस्वी पुत्र हुए । ये क्रमशः भगवान् विष्णु, ब्राह्मण और भक्ताके वंशसे उत्पन्न हुए थे ॥ १५ ॥

विदुरजीने पूछा—गुरुजी ! कृपया यह बतलाइये कि अजातकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाले इन सर्वभृष्ट देवोंने अत्रिमुनिक यहाँ क्या करनेकी इच्छासे अकतार किया था ? ॥ १६ ॥

भीमैत्रेयजीने कहा—अब ब्रह्माजीने ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महर्षि अत्रिको सृष्टि रक्षनके लिये काष्ठा दी, तब वे अपनी सहाधर्मिणीके सहित तप करमये लिये ब्रह्म नामक कुलपर्वतपर गये ॥ १७ ॥

समिन् प्रसन्नस्तनकपलाशोफकानने ।

धार्मि 'स्रवस्त्रिरुदधुप्टे निर्विन्प्यायाः समन्ततः ॥१८॥

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षध्वत् मुनिः ।

अतिष्ठन्नेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥१९॥

धरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ।

प्रजामात्मसमां मद्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥२०॥

तप्पमानं त्रिसुवन प्राणायामैधसाग्निना ।

निर्गतैर्न मुनेर्मूर्धः समीक्ष्य प्रभवकथः ॥२१॥

अप्सरामुनिगन्धर्वसिद्धविद्याभरोरगैः ।

वितायमानयश्चस्तदाश्रमपदं ययुः ॥२२॥

तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ।

अतिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विषुवर्षमान् ॥२३॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्यऽर्हणाञ्जलिः ।

वृषहंससुपर्णस्य स्त्रैःस्त्रैश्चैव चिह्नितान् ॥२४॥

कृपावलोकैर्न हसद्भवेनोपलम्भितान् ।

तद्गोविपा प्रतिहते निमील्य मुनिरधिष्णी ॥२५॥

षेष्ठस्तप्रवच युञ्जन्स्तावीरसंज्ञाञ्जलि ।

सुहृन्वा सुकथा वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥२६॥

अत्रिलयाच

विश्वोद्भवसितिलयेषु विभज्यमानै

मर्यागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ।

वहाँ पलाश और अशोकके वृक्षोंका एक विशालवन था । उसके समी वृक्ष ध्वजोंके गुच्छोंसे लड़े थे तथा उसमें सब ओर निर्विन्प्या नदीके जलसी कण्ठकल ध्वनि गूँजती रहती थी ॥१८॥ उस वनमें वे मुनिश्रेष्ठ प्राणायामके द्वारा चित्तको वशमें करके सौ वयस्क केवल वायु पीकर सरदी-गरमी आदि द्वन्द्वोंकी कुछ भी परवा न कर एक ही पैरसे खड़े रहे ॥ १९ ॥ उस समय वे मन-ही-मन यही प्रार्थना करते थे कि 'जो कोई सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं, मैं उनकी शरणमें ॥ वे मुझे अपने ॥ समान सन्तान प्रदान करें ॥ २० ॥

तब यह देखकर कि प्राणायामरूपी ईश्वरसे प्रभावित हुआ अत्रिमुनिक प्रबल उनके मस्तकसे निकलकर तीनों लोकोंको तपा रहा है—ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—तीनों जगत्पति उनके आश्रमपर आये । उस समय अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर और नाग—उनका सुपश गये थे ॥ २१ २२ ॥ उन तीनोंका एक ही साप प्रादुर्भाव होनेसे अत्रिमुनिक अन्त करण प्रवृत्तित हो गया । उन्होंने एक पैरसे जड़े-खड़े ही उन दश देवोंको देखा और फिर पृथ्वीपर दण्डके समान खोटकर प्रणाम करनेके अनन्तर कर्प्य पुष्पादि पूजनकी सामग्री हाथमें ले उनकी पूजा की । वे तीनों अपने-अपने वाहन—हंस, गरुड और बैज्यर बड़े हुए तथा अपने कपण्डल, शक, त्रिशूलादि विद्वांसोंसे सुशोभित थे ॥ २३ २४ ॥ उनकी औखोंसे कृपाकी वर्षा हो रही थी । उनके मुखपर मन्द हास्यकी रेखा थी—चित्रसे उनकी प्रसन्नता झलक रही थी । उनके तेजसे चैत्रिया वर मुनिवत्त अपनी औखों में देखी ॥ २५ ॥ वे चित्तको उन्होंनेकी ओर लगाकर हाथ जोड़ अतिमधुर और सुन्दर भावपूर्ण वचनोंमें लोकमें सबसे बड़े उन तीनों देवोंकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥

अत्रिमुनिने कहा—महाकन् ! प्रत्येक कर्मके कारणसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लप्पके लिये जो मायाके सत्त्वानि तीनों गुणोंका विभाग करके भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं—वे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव



श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

सन्तुर्धः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

स्यायम्भुव मनुजो कम्पामोके यदाका धनन

मैत्रेय उवाच

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—त्रिपुरजी ! स्यायम्भुव मनुके

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च अश्विरे ।

आकृतिर्देवहूतिश्च प्रहविरिति विभुताः ॥ १ ॥

आकृतिं रुषये प्रादादपि ब्राह्मणो नृप ।

पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपां नुमोदित ॥ २ ॥

प्रजापतिं स भगवान् रुचिस्तस्यामजीवनत् ।

मिथुनं प्रहवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥

यस्तपोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्लक्षस्वरूपवृक् ।

या स्त्री सा दक्षिणाः मूत्रैरक्षमूतानपायिनी ॥ ४ ॥

आनित्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विवतराचिपम् ।

स्यायम्भुवो मुदा युक्ता रुचिजप्राह दक्षिणाम् ॥ ५ ॥

तां कामयानां भगवानुवाद यशुषां पति ।

तुष्टायां तापमापन्नाऽञ्जनयुक्ताश्चात्मजान् ॥ ६ ॥

तापः प्रतापं संतापाभद्रं शान्तिरिहस्पति ।

महारानी शतरूपासे प्रियव्रत और उद्यानपाद—इन दो पुत्रोंके सिवा तीन कन्याएँ भी हुई थीं, वे आकृति, देवहूति और प्रमूति नामसे विख्यात थीं, ॥ १ ॥ आकृति, यद्यपि उसका माई ये ता भी, महारानी दक्षिणाकी अनुमतिसे उन्होंने रुचि प्रजापतिके साथ 'पुत्रिकाधर्म'के अनुसार विवाह किया ॥ २ ॥

प्रजापति रुचि भगवान्के अनन्य चिन्तनके कारण ब्रह्मतेजसे सम्पन्न थे । उन्होंने आधुनिक गर्भसे एक पुरुष और स्त्रीका जोड़ा उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ उनमें जो पुरुष था, वह साक्षात् पञ्चवक्त्रधारी भगवान् विष्णु थे, और जो स्त्री थी, वह भगवान्से कभी अलग न रहनेवाली लक्ष्मीकी प्रतीक अंशव्यवस्था 'दक्षिणा' थी ॥ ४ ॥ मनुकी अपनी पुत्री आकृतिके उस परमनेत्रकी पुत्रको कभी प्रमननासे अपने घर उस साथ और दक्षिणा के रुचि प्रजापतिन अपने पास रक्का ॥ ५ ॥ जब दक्षिणा विवाहके योग्य हुई, तो उसने यह भगवान्के ही पतिकार्यमें प्राप्त करनेकी इच्छा की, तब भगवान् यज्ञपुरुषन उसमें विवाह किया । इसमें दक्षिणाको यज्ञ समता हुआ । भगवान् प्रमन होकर उसमें वाद पुत्र उत्पन्न मिले ॥ ६ ॥ उसका नाम है—ताप प्रताप, संताप भद्र शान्ति इत्यादि नाम कति सिद्ध हुए

१ मा प — मुवाच ।

• पुत्रिकाधर्म के अनुसार मिले बनेका विवाहमें वह इन दोनोंके ही कन्या के साथ पुत्र उत्पन्न करने के लिए ॥ १ ॥

इष्म कविर्विभुः स्वहः सुदेवो रोचनो द्विपद् ॥ ७ ॥

तुपिता नाम ते देवा आसन् स्वायम्भुवान्तरे ।

मरीचिमित्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥ ८ ॥

प्रियव्रतोचानपद्मौ मनुपुत्री महौजसौ ।

तत्पुत्रपौत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥ ९ ॥

देवहूतिमदाचात कर्दमायात्मजा मनुः ।

तत्सन्नाधि भुतप्राय भवता गदतो मम ॥ १० ॥

दद्याय ब्रह्मपुत्राय प्रद्युतिं भगवान्मनुः ।

प्रायश्चित्तस्तुतः सर्गल्लोकस्यां विततो महान् ॥ ११ ॥

याः कर्दमसुता प्रोक्ता नवै ब्रह्मर्षिपत्नयः ।

तासां प्रद्युतिप्रसव प्रोच्यमान निबोध मे ॥ १२ ॥

पत्नी मरीचिस्तु कला सुपुत्रे कर्दमात्मजा ।

कैश्यप दूर्जिमान च यबोरापूरितं जगत् ॥ १३ ॥

पुर्णिमाद्युत विरज विशगं च परंतप ।

देवकृष्यां हरे पादसौचाद्याभूस्तरिणिः ॥ १४ ॥

अत्रः पत्न्यनक्षया ग्रीष्मस्य सुयक्षस सुतान् ।

दद्युर्दुर्वाससं सोममातमेश्वरसम्भवान् ॥ १५ ॥

विदुर उवाच

अत्रगृहे सुरश्रेष्ठाः स्मितपुत्पन्नमन्तरेतवः ।

किञ्चिद्विद्विर्पवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥ १६ ॥

मैत्रेय उवाच

भ्रमणा नादित सुष्टावत्रिग्रहादिदा वरः ।

सह पत्न्या ययावृष कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥ १७ ॥

सुदेव और रोचन ॥ ७ ॥ ये ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'तुपित' नामके देवता हुए । उस मन्वन्तरमें मरीचि ऋषि सप्तर्षि थे, भगवान् यज्ञ ही देवताओंके अधीश्वर इन थे और महान् प्रभावशाली प्रियव्रत एवं उत्तानपाद मनुपुत्र थे । वह मन्वन्तर उन्हीं दोमोंके बेटों, पोतों और दौहित्रोंके वंशसे छत्र गया ॥ ८-९ ॥

प्यारे विदुरजी ! मनुजीने अपनी दूसरी कन्या देवहूति कर्दमजीको व्याही थी । उसके सम्बन्धकी प्राय सभी बातें तुम मुझसे सुन चुके हो ॥ १० ॥ भगवान् मनुने अपनी तीसरी कन्या प्रसूतिकर विरज ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रणापतिसे किया था, उसकी विशाल वंशपरम्परा तो सारी त्रिलोकमें फैली हुई है ॥ ११ ॥

मैं कर्दमजीकी भी कन्याओंका, जो नौ ब्रह्मर्षियोंसे व्याही गयी थी, पहले ही वर्णन कर चुका हूँ । अब उनकी वंशपरम्पराका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ १२ ॥ मरीचि ऋषिकी पत्नी कर्दमजीकी बेटी कलासे कस्तूरप और पूर्णिमा नामक दो पुत्र हुए, जिनके वंशसे यह सारा जगत् भरा हुआ है ॥ १३ ॥ शकुतापन विदुरजी ! पूर्णिमाके मित्र और विशग नामके दो पुत्र तथा देवकुष्या नामकी एक कन्या हुई । यही दूसरे मन्वन्तरे ग्रीह्रिके शरणोंके धोवनसे देवनदी गङ्गाके रूपमें प्रकट हुई ॥ १४ ॥ अत्रिकी पत्नी अनसूयासे दद्यात्रेय, दुर्वास और चन्द्रमा नामके तीन परम पशुसी पुत्र हुए । ये क्रमशः भगवान् विष्णु, शङ्कर और ब्रह्माके वंशसे उत्पन्न हुए थे ॥ १५ ॥

विदुरजीने पूछा—गुरुजी ! कृपया यह बातअरे कि जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाले इन सर्वश्रेष्ठ देवोंमें अत्रिमुनिके यहाँ क्या करनेकी इच्छासे अक्षतार लिया था ? ॥ १६ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—अब ब्रह्माजीने ब्रह्माभिर्योमें श्रेष्ठ गृहर्षि अत्रिकी सृष्टि रचनेके लिये व्याधा दी, तब वे अपनी सहधर्मिणीके सहित तप करनेके लिये श्रद्धा नामक कुलपर्वतपर गये ॥ १७ ॥

तस्मिन् प्रसूनस्तपकपलाद्वाधोक्कफानने ।

नार्भिः स्रवन्निरुदधुप्ते निर्बिन्ध्याया समन्तत ॥१८॥

प्राणायामेन सयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ।

अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥१९॥

शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ।

प्रबामात्मसर्मां मद्यं प्रयच्छस्विति चिन्तयन् ॥२०॥

तप्यमान त्रिभुवनं प्राणायामैषसाधना ।

निर्गतेन मुनेर्मूर्धं समीक्ष्य प्रभवस्त्वयः ॥२१॥

अप्सरोऽमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याभरोरगैः ।

वितायमानयश्चस्तदाभ्रमपदं ययुः ॥२२॥

तत्प्रादुर्भाषसंयोगविद्योतिरुमना मुनिः ।

उचिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विभुर्धर्मान् ॥२३॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतन्योऽर्ह्याञ्जलि ।

द्वयैसमुपर्णमान् स्वैः स्वैर्विहै विहितान् ॥२४॥

कृपावलोकनं हसद्वदनेनोपलम्बितान् ।

उद्रोचिषा प्रतिहते निमीर्य मुनिरधिष्णी ॥२५॥

चेतस्तत्प्रवचं गुञ्जन्नन्तावीरसंहताञ्जलिः ।

सहस्रया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥२६॥

अत्रिलयाच

विश्राद्भवस्मितिलयेषु विभज्यमानै

मर्यागुणैरनुपुगं विगृहीतदेहाः ।

यहाँ पलाश और अशोकके वृक्षोंका एक विशालवन था । उसके सभी वृक्ष फूलोंके गुच्छोंसे लदे थे तथा उसमें सब ओर निर्बिन्ध्या नदीके जलकी कड़कल आनि गूँजती रहती थी ॥१८॥ उस वनमें वे मुनिश्रेष्ठ प्राणायामके द्वारा चित्तको वशमें करके सौ वर्षतक केवल वायु पीकर सरदी-गरमी आदि दुर्न्तोंकी कुछ भी परवा न कर एक ही पैरसे खड़े रहे ॥ १९ ॥ उस समय वे मन-ही-मन यही प्रार्थना करते थे कि जो कोई सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं मैं उनकी शरणमें हूँ, वे मुझे अपने ही समान सन्तान प्रदान करें ॥ २० ॥

तब यह देखकर कि प्राणायामरूपी ईश्वरसे प्रपन्नित हुआ अत्रिमुनिक तेज उनका मस्तकसे निकलकर तीनों लोकोंको तपा रहा है—ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—तीनों अग्नयपि उमक आश्रमपर आये । उस समय अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर और नाग—उनका सुयश गये थे ॥ २१ २२ ॥ उन तीनोंका एक ही साप प्रादुर्भाष होनेसे अत्रिमुनिक अन्त करण प्रकाशित हो उठ्य । उन्होंने एक पैरसे जड़े-खड़े ही उन दश देवोंको देखा और फिर पृथ्वीपर दण्डके समान छोटकर प्रणाम करनेके अनन्तर अन्य पुण्यादि पूजनकी सामग्री हाथमें ले उनकी पूजा की । वे तीनों अपने-अपने वाहन—हंस, गरुड और बैलपर चढ़े हुए तथा अपने कमण्डलु, चक्र, त्रिशूलादि विहोंसे सुशोभित थे ॥ २३ २४ ॥ उनकी आँखोंसे दृष्ट्याकी किराँ हो रही थी । उमक मुखपर मन्द हास्यकी रेखा थी—निससे उनकी प्रसन्नता झलक रही थी । उनके तेजसे बौधिया कर मुनिकरन आगयी आँखें बूँद खी ॥ २५ ॥ वे चित्तको उन्मूर्त्तोंकी ओर लगाकर हाथ जोड़ अतिमधुर और सुन्दर माधवपूर्ण वचनोंमें शोकमें सबसे बड़े उम तीनों देवोंकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥

अत्रिमुनिने कहा—भगवन् ! प्रत्येक जन्मके आरम्भमें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लपके क्रिये जो मायाके सत्तापि तीनों गुणोंका विभाग करनेके भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं—वे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव

ते ब्रह्मविष्णुगिरिष्ठाः प्रपतोऽस्म्यहं च

स्तेभ्यः के एव भवतां महोपहृतः ॥२७॥

एका मयह भगवान् विबुधप्रधानै

मितीकृतः प्रजननाय कथं नु युषम् ।

अथागतास्तनुमृतां मनसोऽपि द्वाव्

ब्रूव प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥२८॥

मेनेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ।

प्रत्याहुः श्रुत्वा वाचा प्रहस्य तस्यै प्रभो ॥२९॥

देवा उचुः

यथा कृतस्ते सङ्कल्पो भाव्य तेनैव नान्यथा ।

सत्सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन् यद्वै भ्यायैति ते वयम् ॥३०॥

अथासदक्षमृतास्ते आत्मज्ञा लोकविभृताः ।

भवितारोऽङ्ग भद्रं ते विसृप्यसन्ति च ते यशः ॥३१॥

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिगम्युः सुरेश्वरा ।

समाजितास्तयोः सम्यग्दम्पत्यार्मिषतात्ततः ॥३२॥

मोमांऽमृद्भक्षजोऽज्ञेन दत्त्वा विष्णोस्तु भोगवित् ।

दुर्वासाः शक्रस्याश्वो निषोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥

भद्रा त्वङ्गिरसः पत्नी चतुर्ज्ञाऽष्टतः कन्यकाः ।

सिनीवाली कुहू राका चतुर्भ्यः तुमतिस्तथा ॥३४॥

तत्पुत्रावपरावाम्नां रूपातां स्वारोचिषेऽन्तरे ।

उतभ्या भगवान् साध्याद्रक्षिष्ठश्च वृहस्पतिः ॥३५॥

पुनस्त्योऽज्जनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्मुषि ।

सोऽन्यज्रमनि ददाप्रिर्विश्रवाय महातपाः ॥३६॥

तस्य यशपतिर्देवः कुनरस्त्यद्विडासुतः ।

रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः ॥३७॥

आप ही हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ । कहिये—
मैंने जिनको बुझाया था, आपसे वे कौन महासुख
हैं ? ॥ २७ ॥ क्योंकि मैं तो सन्तानप्राप्तिकी इच्छासे
केवल एक सुरेश्वर भगवान् की वित्तम किया था ।
किर आप तीनोंने यहाँ पधारनेकी कृपा कैसे की ?
आपछोगोतक तो वेदधारियोंके मनकी भी गति नहीं है,
इसलिये मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है । आपसे कृपा
करके मुझे इसका रहस्य बतलाइये ॥ २८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—समर्प विदुरजी ! त्रिमुनि-
के वचन सुनकर वे तीनों दंग हैंसे आर उनसे सुसुर
वाणीमें कहन लग ॥ २९ ॥

देवताओंने कहा—ब्रह्मन् । तुम सत्यसङ्कल्प हो ।
जत तुमने जैसा सङ्कल्प किया था, वही होना चाहिये ।
उससे विपरीत कैसे हो सकता था ? तुम जिस
'जगदीश्वर' का ध्यान करते थे, वह हम स्त्रियों ही
हैं ॥ ३० ॥ प्रिय महर्षे ! तुम्हारा कन्यापन था, तुम्हारे
पहले हमारे ही अंशस्वरूप तीन जगद्विख्यात पुत्र उत्पन्न
होगे और तुम्हारे सुन्दर यशश्च विस्तार करेंगे ॥ ३१ ॥

इन्होंने इस प्रकार जमीन पर देकर तथा पति-पत्नी
दोनोंसे मन्त्रीयोंति पूजित इन्द्र उनके देखत-ही-देखते
वे तीनों सुरेश्वर अपन-अपन कोकोई चले गये ॥ ३२ ॥
ब्रह्मानीक अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे योगेश्वर
दत्तात्रेयजी और महादेवजीक अंशसे दुर्वासा ऋषि जति
क पुत्ररूपमें प्रकट हुए । जब अङ्गिरा ऋषिकी सन्तानोंक
वर्णन सुना ॥ ३३ ॥

अङ्गिराकी पत्नी भद्रा ने सिनीवाली, कुहू, राका और
अनुमति—इन चार कन्याओंको जन्म दिया ॥ ३४ ॥
इनके सिवा उनके साक्षात् भगवान् उत्तरायनी और
ब्रह्मलोक वृहस्पतिजी—य दो पुत्र भी हुए, जो क्षारणि
मन्त्र-तर्पणमें विख्यात हुए ॥ ३५ ॥ पुत्रस्यप्रीतिके उनकी
पत्नी हविर्भूने महर्षि अगस्त्य और महातपस्वी विभ्र-
य ॥ पुत्र हुए । इनमें अगस्त्यकी दूसरे जन्ममें अठारसि
हुए ॥ ३६ ॥ विधवा मुनिक हविष्ठाक गर्भसे यशराज
कुम्भकर्ण जन्म हुआ और उनकी दूसरी पत्नी केरिणीसे
रावण कुम्भकर्ण एवं विभीषण उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥

पुलहस्य गतिर्भाया व्रीनवृत्त सती सुतान् ।
 कर्मभेष्ट वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥३८॥
 क्रतोरपि क्रिया भार्या वाल्मिन्यानधूयत ।
 श्रुयीन्पटिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३९॥
 ऊर्जायां अक्षिर पुत्रा वसिष्ठस्य परन्तप ।
 चित्रकेतुप्रधानास्त सप्त ब्रह्मर्षयाऽमलाः ॥४०॥
 चित्रकतु सरोचिष विरजा मित्र एव च ।
 उन्वणा वसुमृधानो घुमान् अश्वत्थामोऽप्यर ॥४१॥
 चित्तिस्त्वधर्वण पत्नी लेमे पुत्र भूतव्रतम् ।
 दंष्ट्रश्चमश्वत्थिरसं सृगोवक्ष निषाध मे ॥४२॥
 मृगुः स्यात्पत्न्यां महाभाग परन्त्यां पुत्रानबीक्षन्त ।
 भातारं च विभातार भिष च मगवरपराम् ॥४३॥
 आपतिं नियतिं चैव सुते मेरुन्तयोरदात् ।
 ताम्यां तयोरभवतां मृकण्ड प्राण एव च ॥४४॥
 भार्कण्डेभो मृकण्डस्य प्राणाददशिरा मुनिः ।
 कश्चिभ भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥४५॥
 त एते मुनयः क्षत्तलाकान् सर्गारभावयन् ।
 एष कर्दमदोहित्रसतानः कश्चित्तपः ।
 मृष्वतः भरभानस्य सद्यः पापहरः परः ॥४६॥
 प्रसूतिं मानवीं दध उपयेमे द्वजात्मज ।
 तस्यां ससर्ष दुहितुः पोडशामललोचनाः ॥४७॥
 त्रयोदशदादाम्यस्य तथैकमग्नये विद्युः ।
 पितृभ्य एकां युक्तम्यो भवार्थैकां भवच्छिदे ॥४८॥
 भद्रा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोऽवतिः ।
 बुद्धिर्मेधा सिद्धिश्चा हीर्मूर्तिर्विर्मस्य पत्नयः ॥४९॥

महामते ! महर्षि पुलहकी श्री परम साध्वी गतिसे
 कर्मभेष्ट, वरीयान् और सहिष्णु—ये तीन पुत्र उत्पन्न
 हुए ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार ऋतुकी पत्नी क्रियाने ब्रह्मतेज-
 से देगीप्यमान वाल्मिन्यानि साठ हजार श्रुतिपोंको जन्म
 दिया ॥ ३९ ॥ शत्रुघ्नपुत्र विदुरजी । वसिष्ठजीकी पत्नी
 ऊर्जा (अश्वत्थी) से चित्रकेतु आदि सप्त विशुद्धचित्त
 ब्रह्मर्षियोंका जन्म हुआ ॥ ४० ॥ उनके नाम चित्रकेतु,
 सरोचि, विरजा, मित्र, उन्वण, वसुमृष्टान और घुमान्
 थे । इनमें सिवा उनकी दूसरी पत्नीसे शक्ति आदि और
 भी बड़ा पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ अथवा मुनिकी पत्नी विदिने
 दम्ब (दधीचि) नामक एक तपानिष्ठ पुत्र प्राप्त किया,
 जिसका दूसरा नाम अश्वत्थिर भी था । अन्य मृगुक
 बराकर वणन सुनो ॥ ४२ ॥

महाभाग मृगुजीन अपनी भार्या क्यातिसे धाता और
 विधाता नामक पुत्र तथा श्री नामवरी एक भगवत्परायणा
 कन्या उत्पन्न की ॥ ४३ ॥ मेरुवृद्धिन अपनी आपति
 और नियति नामकी कन्याएँ क्रमशः धाता और विधाता-
 को व्याहरीं, उनसे उनके मृकण्ड और प्राण नामक पुत्र
 हुए ॥ ४४ ॥ उनमेंसे मृकण्डके मार्कण्डेय और प्राणक
 मुनिवर वेदविराका जन्म हुआ । मृगुजीक एक कनि-
 नामक पुत्र भी थे । उनके भगवान् उशना (क्षत्र-
 धाय) हुए ॥ ४५ ॥ विदुरजी । इन सब मुनीवरोंने
 भी सतत उत्पन्न करके सुदिक्र विस्तार किया । इस
 प्रकार मैंने सुनने यह कर्दमजीके दीक्षितोंकी संतानका
 वर्णन सुनाया । ओ पुरुष इसे अदापूर्वक सुनता है,
 उसके पापोंका यह लक्षण नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजीक पुत्र दक्षप्रजापतिने मनुमन्दिनी प्रसूतिसे
 विषाद किया । उससे उन्होंने सुन्दर मेघोशाकी सीप्य
 कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥ ४७ ॥ भगवान् दक्षन उनमेंसे तेरह
 वर्णको, एक अग्निको, एक समस्त पितृगणको और एक
 संसारका संहार करमवाले तथा अन्ध-मृत्युसे दुःखमनेवाले
 भगवान् शाहरको दी ॥ ४८ ॥ भद्रा, मैत्री, दया,
 शान्ति, पुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उत्पत्ति, बुद्धि, मेधा,
 निश्चिन्ता, ही और मूर्ति—ये वर्णकी पत्नियाँ हैं ॥ ४९ ॥

स्वाहाभिमानिन्धाप्रेरात्मज्ञांस्त्रीनजीवनत् ।
 पाषकं पवमानं च शुचिं च द्रुवभोजनम् ॥६०॥
 तेभ्योऽग्नय सममबन् चस्वारिंशुष पञ्च च ।
 त एपकोनपञ्चाशत्साकं पितृपितामहै ॥६१॥
 वैतानिकं कर्मणि यन्मभिर्भक्षवादिभि ।
 आग्नेय इष्टयो यद्वा निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥६२॥
 अभिष्वात्ता बर्हिपदं सौम्या पितर आन्यया ।
 साग्नयोऽनन्तयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वभा ॥६३॥
 तेभ्यो दधार कन्ये द्रवपुनां भारिणी स्वभा ।
 उमे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविद्वानपारगे ॥६४॥
 भवत्स पत्नी तु सती भव द्रवमनुव्रता ।
 आत्मनः सद्यः पुत्र न लेभे गुणशीलत ॥६५॥
 पितर्यप्रविरूपे स्वे भवायानागसे रुपा ।
 अप्रौढं वात्मनाऽऽत्मानमज्ज्ञाद्योगसयुता ॥६६॥

अग्निदेवकी पत्नी स्वाहाणे अग्निके ही अग्निमात्री
 पाषक, पवमान और शुचि—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये ।
 ये तीनों ही द्रुव किये हुए पदार्थोंका भक्षण करनेवाले
 हैं ॥ ६० ॥ इन्हीं तीनोंसे पैतृत्वीस प्रकारके अग्नि
 और उत्पन्न हुए । ये ही अपने तीन पिता और एक
 पितामहको साथ लेकर उनकास अग्नि कहालये ॥६१॥
 वेदका ज्ञातृगर्भदिक यज्ञकर्ममें जिन उनकास अग्नियोंके
 नामोंसे आग्नेयी इष्टियों करते हैं, वे ये ही हैं ॥ ६२ ॥
 अभिष्वात्ता, बर्हिपद, सौम्य और आन्यप—ये
 पितर हैं, इनमें सामिक भी हैं और निरग्निक भी । इन
 सब पितरोंकी पत्नी दम्पकुमारी स्वभा हैं ॥ ६३ ॥ इन
 पितरोंसे स्वकाके चारिणी और द्रवपुना नामकी दो कन्याएँ
 हुई । वे दोनों ही ज्ञान विज्ञानमें पारङ्गत और ब्रह्मज्ञान
 का उपदेश करनेवाली हुई ॥ ६४ ॥ महादेवजीकी
 पत्नी सती थीं, वे सब प्रकारसे अपने पतिदेवकी सेवामें
 सम्पन्न रहनेवाली थीं । किन्तु उनके अपने गुण और
 शीलक अनुरूपकाई पुत्र नहीं हुआ ॥ ६५ ॥ क्योंकि
 सतीके पिता दक्षन बिना ही किसी अपराधक मगवन्
 शिवजीके प्रतिबुद्ध आचरण किया था, इसलिये सतीन
 युवावस्थामें ही क्रोधवश योगक द्वारा स्वयं ही अपने
 गरीरका त्याग कर दिया था ॥ ६६ ॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहंसां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
 विंदुरमेवैषसंवादे प्रथमाऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् निय और दक्ष प्रजापतिका अमोमालिम्ब्य

विदुर उवाच

भव क्षात्स्वतां भण्ट दसा दुहितवत्सल ।
 विद्रुपमकरात्ममादनास्त्यात्मज्ञां सतीम् ॥ १ ॥
 कर्त्तं चराचरगुहं निवर श्रान्तविग्रहम् ।
 आत्मारामं कथं द्रष्टुं जगतो दैवतं महत् ॥ २ ॥

विदुरजीन पूछा—ब्रह्मन् । प्रजापति दक्ष तो
 अपनी छत्रियोंसे बहुतही स्नेह रखते थे, फिर उन्होंने
 अपनी कन्या सतीका अनांतर करके सी-उत्तानोंमें सबसे श्रेष्ठ
 भीमशत्रुजीसे द्रव क्यों किया ? ॥ १ ॥ महाश्वजी
 भी चराचरके गुरु, वैराग्य शान्तमूर्ति आत्माराम और
 जगत्क परम आराध्य देव हैं । उनसे भग, पराई क्यों
 न करण ? ॥ २ ॥

१ शीतल स्त्रीके विदुरत्वप्रसंगसे वे स्वामें उत्पन्न (?) नाम बदल गये ।

एवदास्यादि मे प्रसन्नं नामातुः शश्वरस्य च ।

विद्वेषस्तु यतः प्राणास्तिस्रजे दुस्त्यजान्सती ॥ ३ ॥

मेतरेव उवाच

पुरा विषसृजां सत्रे समेता परमर्षयः ।

तथामरगणा सर्वे सानुगा धुनयोऽग्नयः ॥ ४ ॥

तत्र प्रविष्टमृषयो हृष्टार्कमिव गेहिषा ।

आजमानं विविमिरं कुर्वन्त तमहस्तदः ॥ ५ ॥

उदतिष्ठन् सदस्यास्ते स्त्रिभिष्वेभ्य सहाग्नयः ।

श्वते विरिञ्चं शर्वं च तद्भासाऽऽक्षितपेतसः ॥ ६ ॥

सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान् साधु संकृतः ।

भञ्जं लोकगुरुं नत्वा निपसाद् तदाज्ञया ॥ ७ ॥

प्राक्निपण्णं मूर्धं हृष्टा नासृष्यसदनाद्यतः ।

उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दक्षिण ॥ ८ ॥

धृयतां प्रक्षर्पयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ।

साधूनां भुवतो ह्यच नाज्ञानाञ्च भस्तराद् ॥ ९ ॥

अयं तु लोकपालानां यज्ञोभ्नो निरपत्रपः ।

समिन्नाचरितः पन्था येन सन्ध्येन दूषितः ॥ १० ॥

एष मे क्षिप्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत ।

पार्श्वि विप्राभिस्तुल्य सावित्र्या इव साधुवत् ॥ ११ ॥

गृहीत्वा सुगन्धाक्ष्याः पार्श्विं मर्कटलोचनः ।

प्रत्युत्थानाभिषादाहं बाष्पाप्यकृत नोषितम् ॥ १२ ॥

भागवन् । उन ससुर और दामादमें इतना विद्वेष कीसे हो गया, जिसके कारण सतीन अपने दुस्त्यज प्राणों तक की बलि दे दी ! यह आप मुझसे कहिये ॥ ३ ॥

श्रीमैत्रयजीने कहा—विदुरजी ! पहले एक बार प्रजापतियों के यहाँमें सब बड़े-बड़े ऋषि, देवता, मुनि और अग्नि आदि अपने अपने अनुपायियों के सहित एकत्र हुए थे ॥ ४ ॥ उसी समय प्रजापति दक्षने भी उस सभामें प्रवेश किया । वे अपने तेजसे सूर्य के समान प्रकाशमान थे और उस विशाल समामवनकर कन्धकार दूर किये देने थे । उन्हें वाया देख क्लाजी और महादेवजीके अतिरिक्त अग्निपर्यन्त सभी सभासद् उनके तेजसे प्रभावित होकर अपने-अपने आसनोंसे उठकर खड़े हो गये ॥ ५ ॥ इस प्रकार समस्त सम्मत्तोंसे भस्मीभूति सम्मान प्राप्त करके तेजस्वी दक्ष जगत्पिता ऋषीजीको प्रणामकर उनकी आज्ञासे अपने व्यवसन पर बैठ गये ॥ ७ ॥

परंतु महादेवजीको पहलेसे ही वैद्य देव तथा उनसे अमृतपानादिके रूपमें कुछ भी अक्षर न पाकर दक्ष उनकी यह व्यवहार सहन न कर सके । उन्होंने उनकी ओर गेही नजरसे इस प्रकार देखा मानो उन्हें वे क्रोधाग्निसे जल डालेंगे । फिर कहने लगे—॥ ८ ॥ 'देवता और अग्निपते के सहित समस्त ऋषिगण मेरी बात सुने । मैं नासम्भी या द्वेषवश नहीं कहता, बल्कि सिद्धाचारकी बात कहता हूँ ॥ ९ ॥ यह निर्द्वन्द्व महादेव समस्त लोकपालोंकी पवित्र कीर्तिके चूर्णमें मिटा रहा है । देखिये, इस घमण्डीने सत्पुरुषोंके आचरणको अशुद्ध एवं मटिपामेट कर दिया है ॥ ११ ॥ बदरकेसे नेत्रवाले इसने सत्पुरुषोंके समान मेरी सावित्री-सखीकी मृगनयनी पवित्र कन्याका अग्नि और ब्राह्मणोंके सामने पाणिग्रहण किया था, इसलिये यह एक प्रकार मेरे पुत्रक समान हो गया है । उचित तो यह था कि यह उठकर मेरा स्वागत करता, मुझे प्रणाम करता, परंतु इसने बाण्डीसे भी मेरा सत्कार नहीं किया ॥ ११ १२ ॥

लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिक्षुसेतवे ।

अनिच्छन्नप्यनं शालां शूद्रायेवोश्रुतीं गिरम् ॥१३॥

प्रतावासेषु भारषु प्रसर्भसगणैर्धृतः ।

अटत्पुंसवस्त्रमग्नं व्युत्सक्तशो हसन् रुदन ॥१४॥

चिताभस्मकृतस्नानं प्रतस्तद्धर्मिभूषण ।

त्रिवापदशो ह्यत्रिषा मत्ता मत्तजनप्रियः ।

पतिः प्रमथमृतानां तमाभात्रा मकात्मनाम् ॥१५॥

तस्मा उमादनाथाय नष्टांश्चाय दुर्हृद ।

दत्ता वत मया साध्वी चादिते परमणिना ॥१६॥

मेघ उवाच

विनिन्द्य म गिरिशप्रसीपमवम्वितम् ।

दद्यादधार्प उपस्पृश्य हुतं शप्नु प्रसक्तमे ॥१७॥

अथ तु दवयन्न इन्द्रापद्रान्निभिमव ।

सह भाग न लभतां दवर्देवगणाधमः ॥१८॥

निषिध्यमान म मदस्यमुर्यं

दद्यान्निगिराय विमुच्य गापम् ।

तस्माद्विनिष्क्रम्य विषुदमन्यु

अगाम कर्णस्य निर्व्रं निक्कतनम् ॥१९॥

रिद्राय गाप गिरिगानुगाग्रणी

नन्दीश्वरा रापकपापदूषित ।

दद्याय गापं विषमज दारण

ये पान्वमादम् दद्याप्यनाद्रिजा ॥२०॥

१ - २ - ३ - ४ - ५ - ६ - ७ - ८ - ९ - १० - ११ - १२ - १३ - १४ - १५ - १६ - १७ - १८ - १९ - २० - २१ - २२ - २३ - २४ - २५ - २६ - २७ - २८ - २९ - ३० - ३१ - ३२ - ३३ - ३४ - ३५ - ३६ - ३७ - ३८ - ३९ - ४० - ४१ - ४२ - ४३ - ४४ - ४५ - ४६ - ४७ - ४८ - ४९ - ५० - ५१ - ५२ - ५३ - ५४ - ५५ - ५६ - ५७ - ५८ - ५९ - ६० - ६१ - ६२ - ६३ - ६४ - ६५ - ६६ - ६७ - ६८ - ६९ - ७० - ७१ - ७२ - ७३ - ७४ - ७५ - ७६ - ७७ - ७८ - ७९ - ८० - ८१ - ८२ - ८३ - ८४ - ८५ - ८६ - ८७ - ८८ - ८९ - ९० - ९१ - ९२ - ९३ - ९४ - ९५ - ९६ - ९७ - ९८ - ९९ - १०० - १०१ - १०२ - १०३ - १०४ - १०५ - १०६ - १०७ - १०८ - १०९ - ११० - १११ - ११२ - ११३ - ११४ - ११५ - ११६ - ११७ - ११८ - ११९ - १२० - १२१ - १२२ - १२३ - १२४ - १२५ - १२६ - १२७ - १२८ - १२९ - १३० - १३१ - १३२ - १३३ - १३४ - १३५ - १३६ - १३७ - १३८ - १३९ - १४० - १४१ - १४२ - १४३ - १४४ - १४५ - १४६ - १४७ - १४८ - १४९ - १५० - १५१ - १५२ - १५३ - १५४ - १५५ - १५६ - १५७ - १५८ - १५९ - १६० - १६१ - १६२ - १६३ - १६४ - १६५ - १६६ - १६७ - १६८ - १६९ - १७० - १७१ - १७२ - १७३ - १७४ - १७५ - १७६ - १७७ - १७८ - १७९ - १८० - १८१ - १८२ - १८३ - १८४ - १८५ - १८६ - १८७ - १८८ - १८९ - १९० - १९१ - १९२ - १९३ - १९४ - १९५ - १९६ - १९७ - १९८ - १९९ - २०० - २०१ - २०२ - २०३ - २०४ - २०५ - २०६ - २०७ - २०८ - २०९ - २१० - २११ - २१२ - २१३ - २१४ - २१५ - २१६ - २१७ - २१८ - २१९ - २२० - २२१ - २२२ - २२३ - २२४ - २२५ - २२६ - २२७ - २२८ - २२९ - २३० - २३१ - २३२ - २३३ - २३४ - २३५ - २३६ - २३७ - २३८ - २३९ - २४० - २४१ - २४२ - २४३ - २४४ - २४५ - २४६ - २४७ - २४८ - २४९ - २५० - २५१ - २५२ - २५३ - २५४ - २५५ - २५६ - २५७ - २५८ - २५९ - २६० - २६१ - २६२ - २६३ - २६४ - २६५ - २६६ - २६७ - २६८ - २६९ - २७० - २७१ - २७२ - २७३ - २७४ - २७५ - २७६ - २७७ - २७८ - २७९ - २८० - २८१ - २८२ - २८३ - २८४ - २८५ - २८६ - २८७ - २८८ - २८९ - २९० - २९१ - २९२ - २९३ - २९४ - २९५ - २९६ - २९७ - २९८ - २९९ - ३०० - ३०१ - ३०२ - ३०३ - ३०४ - ३०५ - ३०६ - ३०७ - ३०८ - ३०९ - ३१० - ३११ - ३१२ - ३१३ - ३१४ - ३१५ - ३१६ - ३१७ - ३१८ - ३१९ - ३२० - ३२१ - ३२२ - ३२३ - ३२४ - ३२५ - ३२६ - ३२७ - ३२८ - ३२९ - ३३० - ३३१ - ३३२ - ३३३ - ३३४ - ३३५ - ३३६ - ३३७ - ३३८ - ३३९ - ३४० - ३४१ - ३४२ - ३४३ - ३४४ - ३४५ - ३४६ - ३४७ - ३४८ - ३४९ - ३५० - ३५१ - ३५२ - ३५३ - ३५४ - ३५५ - ३५६ - ३५७ - ३५८ - ३५९ - ३६० - ३६१ - ३६२ - ३६३ - ३६४ - ३६५ - ३६६ - ३६७ - ३६८ - ३६९ - ३७० - ३७१ - ३७२ - ३७३ - ३७४ - ३७५ - ३७६ - ३७७ - ३७८ - ३७९ - ३८० - ३८१ - ३८२ - ३८३ - ३८४ - ३८५ - ३८६ - ३८७ - ३८८ - ३८९ - ३९० - ३९१ - ३९२ - ३९३ - ३९४ - ३९५ - ३९६ - ३९७ - ३९८ - ३९९ - ४०० - ४०१ - ४०२ - ४०३ - ४०४ - ४०५ - ४०६ - ४०७ - ४०८ - ४०९ - ४१० - ४११ - ४१२ - ४१३ - ४१४ - ४१५ - ४१६ - ४१७ - ४१८ - ४१९ - ४२० - ४२१ - ४२२ - ४२३ - ४२४ - ४२५ - ४२६ - ४२७ - ४२८ - ४२९ - ४३० - ४३१ - ४३२ - ४३३ - ४३४ - ४३५ - ४३६ - ४३७ - ४३८ - ४३९ - ४४० - ४४१ - ४४२ - ४४३ - ४४४ - ४४५ - ४४६ - ४४७ - ४४८ - ४४९ - ४५० - ४५१ - ४५२ - ४५३ - ४५४ - ४५५ - ४५६ - ४५७ - ४५८ - ४५९ - ४६० - ४६१ - ४६२ - ४६३ - ४६४ - ४६५ - ४६६ - ४६७ - ४६८ - ४६९ - ४७० - ४७१ - ४७२ - ४७३ - ४७४ - ४७५ - ४७६ - ४७७ - ४७८ - ४७९ - ४८० - ४८१ - ४८२ - ४८३ - ४८४ - ४८५ - ४८६ - ४८७ - ४८८ - ४८९ - ४९० - ४९१ - ४९२ - ४९३ - ४९४ - ४९५ - ४९६ - ४९७ - ४९८ - ४९९ - ५०० - ५०१ - ५०२ - ५०३ - ५०४ - ५०५ - ५०६ - ५०७ - ५०८ - ५०९ - ५१० - ५११ - ५१२ - ५१३ - ५१४ - ५१५ - ५१६ - ५१७ - ५१८ - ५१९ - ५२० - ५२१ - ५२२ - ५२३ - ५२४ - ५२५ - ५२६ - ५२७ - ५२८ - ५२९ - ५३० - ५३१ - ५३२ - ५३३ - ५३४ - ५३५ - ५३६ - ५३७ - ५३८ - ५३९ - ५४० - ५४१ - ५४२ - ५४३ - ५४४ - ५४५ - ५४६ - ५४७ - ५४८ - ५४९ - ५५० - ५५१ - ५५२ - ५५३ - ५५४ - ५५५ - ५५६ - ५५७ - ५५८ - ५५९ - ५६० - ५६१ - ५६२ - ५६३ - ५६४ - ५६५ - ५६६ - ५६७ - ५६८ - ५६९ - ५७० - ५७१ - ५७२ - ५७३ - ५७४ - ५७५ - ५७६ - ५७७ - ५७८ - ५७९ - ५८० - ५८१ - ५८२ - ५८३ - ५८४ - ५८५ - ५८६ - ५८७ - ५८८ - ५८९ - ५९० - ५९१ - ५९२ - ५९३ - ५९४ - ५९५ - ५९६ - ५९७ - ५९८ - ५९९ - ६०० - ६०१ - ६०२ - ६०३ - ६०४ - ६०५ - ६०६ - ६०७ - ६०८ - ६०९ - ६१० - ६११ - ६१२ - ६१३ - ६१४ - ६१५ - ६१६ - ६१७ - ६१८ - ६१९ - ६२० - ६२१ - ६२२ - ६२३ - ६२४ - ६२५ - ६२६ - ६२७ - ६२८ - ६२९ - ६३० - ६३१ - ६३२ - ६३३ - ६३४ - ६३५ - ६३६ - ६३७ - ६३८ - ६३९ - ६४० - ६४१ - ६४२ - ६४३ - ६४४ - ६४५ - ६४६ - ६४७ - ६४८ - ६४९ - ६५० - ६५१ - ६५२ - ६५३ - ६५४ - ६५५ - ६५६ - ६५७ - ६५८ - ६५९ - ६६० - ६६१ - ६६२ - ६६३ - ६६४ - ६६५ - ६६६ - ६६७ - ६६८ - ६६९ - ६७० - ६७१ - ६७२ - ६७३ - ६७४ - ६७५ - ६७६ - ६७७ - ६७८ - ६७९ - ६८० - ६८१ - ६८२ - ६८३ - ६८४ - ६८५ - ६८६ - ६८७ - ६८८ - ६८९ - ६९० - ६९१ - ६९२ - ६९३ - ६९४ - ६९५ - ६९६ - ६९७ - ६९८ - ६९९ - ७०० - ७०१ - ७०२ - ७०३ - ७०४ - ७०५ - ७०६ - ७०७ - ७०८ - ७०९ - ७१० - ७११ - ७१२ - ७१३ - ७१४ - ७१५ - ७१६ - ७१७ - ७१८ - ७१९ - ७२० - ७२१ - ७२२ - ७२३ - ७२४ - ७२५ - ७२६ - ७२७ - ७२८ - ७२९ - ७३० - ७३१ - ७३२ - ७३३ - ७३४ - ७३५ - ७३६ - ७३७ - ७३८ - ७३९ - ७४० - ७४१ - ७४२ - ७४३ - ७४४ - ७४५ - ७४६ - ७४७ - ७४८ - ७४९ - ७५० - ७५१ - ७५२ - ७५३ - ७५४ - ७५५ - ७५६ - ७५७ - ७५८ - ७५९ - ७६० - ७६१ - ७६२ - ७६३ - ७६४ - ७६५ - ७६६ - ७६७ - ७६८ - ७६९ - ७७० - ७७१ - ७७२ - ७७३ - ७७४ - ७७५ - ७७६ - ७७७ - ७७८ - ७७९ - ७८० - ७८१ - ७८२ - ७८३ - ७८४ - ७८५ - ७८६ - ७८७ - ७८८ - ७८९ - ७९० - ७९१ - ७९२ - ७९३ - ७९४ - ७९५ - ७९६ - ७९७ - ७९८ - ७९९ - ८०० - ८०१ - ८०२ - ८०३ - ८०४ - ८०५ - ८०६ - ८०७ - ८०८ - ८०९ - ८१० - ८११ - ८१२ - ८१३ - ८१४ - ८१५ - ८१६ - ८१७ - ८१८ - ८१९ - ८२० - ८२१ - ८२२ - ८२३ - ८२४ - ८२५ - ८२६ - ८२७ - ८२८ - ८२९ - ८३० - ८३१ - ८३२ - ८३३ - ८३४ - ८३५ - ८३६ - ८३७ - ८३८ - ८३९ - ८४० - ८४१ - ८४२ - ८४३ - ८४४ - ८४५ - ८४६ - ८४७ - ८४८ - ८४९ - ८५० - ८५१ - ८५२ - ८५३ - ८५४ - ८५५ - ८५६ - ८५७ - ८५८ - ८५९ - ८६० - ८६१ - ८६२ - ८६३ - ८६४ - ८६५ - ८६६ - ८६७ - ८६८ - ८६९ - ८७० - ८७१ - ८७२ - ८७३ - ८७४ - ८७५ - ८७६ - ८७७ - ८७८ - ८७९ - ८८० - ८८१ - ८८२ - ८८३ - ८८४ - ८८५ - ८८६ - ८८७ - ८८८ - ८८९ - ८९० - ८९१ - ८९२ - ८९३ - ८९४ - ८९५ - ८९६ - ८९७ - ८९८ - ८९९ - ९०० - ९०१ - ९०२ - ९०३ - ९०४ - ९०५ - ९०६ - ९०७ - ९०८ - ९०९ - ९१० - ९११ - ९१२ - ९१३ - ९१४ - ९१५ - ९१६ - ९१७ - ९१८ - ९१९ - ९२० - ९२१ - ९२२ - ९२३ - ९२४ - ९२५ - ९२६ - ९२७ - ९२८ - ९२९ - ९३० - ९३१ - ९३२ - ९३३ - ९३४ - ९३५ - ९३६ - ९३७ - ९३८ - ९३९ - ९४० - ९४१ - ९४२ - ९४३ - ९४४ - ९४५ - ९४६ - ९४७ - ९४८ - ९४९ - ९५० - ९५१ - ९५२ - ९५३ - ९५४ - ९५५ - ९५६ - ९५७ - ९५८ - ९५९ - ९६० - ९६१ - ९६२ - ९६३ - ९६४ - ९६५ - ९६६ - ९६७ - ९६८ - ९६९ - ९७० - ९७१ - ९७२ - ९७३ - ९७४ - ९७५ - ९७६ - ९७७ - ९७८ - ९७९ - ९८० - ९८१ - ९८२ - ९८३ - ९८४ - ९८५ - ९८६ - ९८७ - ९८८ - ९८९ - ९९० - ९९१ - ९९२ - ९९३ - ९९४ - ९९५ - ९९६ - ९९७ - ९९८ - ९९९ - १०००

हाय । जिस प्रकार शूद्रको कोई बड़े पद न, उमी प्रकार मैंने इच्छा न होने हुए भी मायो मया इसको अपनी सुखपायी कथा न दी । इसन सुकमका लोप कर दिया, यह सग्न अपवित्र रहता है वक्ष घमण्डी है और धमकी मर्यादाकी तोड़ रहा है ॥ १३ ॥ यह प्रतीके निवासस्थान भयङ्कर स्मशानोमें भूत-प्रतीको साथ छिये तुमना रहता है । पूरे पाण्डकी तरह सिरक गाढबिखेरेनग-अर्द्ध मन्त्रता है, कमी हँसता है, कभी रोता है ॥ १४ ॥ यह माते शरीरपर चिताकी अपवित्र मस्य लपेट रहता है, गन्धमें भूतोंके पहननेयोग्य मर मुण्डोंको मात्रा और सारे शरीरमें हड्डियोंक गह्रम पहन रहता है । यह बस, नामभरका ही शिव है, वास्तवमें है पूरा अर्णव—अमद्भ्यग्य । जम यह स्वयं मन्त्राका है, वैसे ही इसे मतवाले ही व्यारे लगने हैं । भूत-मत्त-प्रमथ आदि निरे तमोगुणी म्प्रमायवान जीबोंक यह नेता है ॥ १५ ॥ अर । मैंने केवल ब्रह्माजीके बहकप्रम में आकर ऐसे भूतोंके मरणा, आचारहीन और दुष्ट स्वभाववालेको अपनी मोठी-माठी बेटी ब्याठ ली ॥ १६ ॥

धीमधेयजी कहत हैं—विदुरजी । स्थान इस प्रकार ब्रह्माजीक बहुत कुछ सुरा-मन्त्र पढ़ा तथापि उन्होंने इसका कोइ प्रतीकार नहीं किया वे पूर्ववत् निष्कलभावसे बैठे रह । इससे दक्षक प्रत्यक्ष पारा और भी उँचा बढ़ गया और व जठ हाथमें लक्ष्म उन्हे शाप मनका तैयार हो गये ॥ १७ ॥ स्थान पढ़ा, 'यह मदान्त्र ब्रह्माजीमें बड़ा ही अरम है । ब्रह्मसे इसे इन्द्र-उपद्रु जपि ब्रह्माजीक साथ पतक भाग न मिले ॥ १८ ॥ उपस्थित मुख्य-मुख्य मन्त्रमन्त्रोंन उँहें बहुत मना किया परन्तु उन्होंने किसीकी न सुना, मदान्त्रभीक शाप दे ही दिया । निरव अप्यन्त कावित हो उन मन्त्रामे निष्कार जन पर चर गये ॥ १९ ॥

अब धीमधेयजीक अनुपादितोंमें लक्षण्य म गहर का माटम हुआ कि स्थान गार किया है, भा व प्रथमे तमन्य उते और उन्होंने स्थान गया उन ब्रह्मणोय विद्वान् स्थान दूरागतीय अनुमन्त्र गिरा पा, बड़ा भयङ्कर शाप दिया ॥ २० ॥

य एतमत्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिबुद्धि ।

मुह्यन्मयः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वता विमुक्ता भवत् ॥२१॥

गृह्य कृत्तर्धमेषु मत्तो ग्राम्यमुखेच्छया ।

कर्मतत्र वितनुत वदवादविपक्षधी ॥२२॥

बुद्ध्या पराभिष्यापिन्या विस्मृतात्मगति पशु ।

श्रीकाम साऽस्त्वतितरां दस्यो बन्धुमुखाऽचिरात् २३

विद्याबुद्धिर्विद्यायां कर्ममग्यामनौ जड ।

संस्तरन्तिह ये चाग्रमनु शर्बावमानिनम् ॥२४॥

गिर धुताया पुष्पिण्या मधुगन्धेन भृगिणा ।

मध्ना चामथितामान सम्मुह्यन्तु हरद्विप ॥२५॥

मवभक्षः द्विजा इवै भूतविद्यातपाव्रताः ।

वितन्तिहियारागा गावका विचरन्तिह ॥२६॥

तस्यैव ददत शप धुत्वा द्विजइलाय वै ।

भृगु प्रपद्यन्वच्छाप मग्नदण्डं दुरययम् ॥२७॥

भवप्रतपग य य य य तान् ममनुग्रहा ।

पात्वज्जितम् भवन्तु मच्छात्रपरिपथिन ॥२८॥

नर्भ्रांथा मृथिया जटाभस्याग्निधारिण ।

विशन्तु त्रिवदाद्यायां यत्र दश मुगमवम् ॥२९॥

मग्न च माग्नार्धरा मघप परिनिन्दध ।

सुतु त्रिधाग्न पुतामन पाग्नहमाधिता ॥३०॥

ये बोले—“जो इस गण-धर्मा शरीरमें ही अभिमान करके किसीसे भी द्रोह न करनेवाले भगवान् शङ्करसे द्वेष करता है, वह भेद-मुद्दिवाजा मूर्ख दक्ष तपः ज्ञानसे विमुक्त ही रहे ॥ २१ ॥ यह चातुर्मास्य-यज्ञ करने वालेको अक्षय पुण्य प्राप्त होता है आदि अपवादरूप वेदान्तियोंसे मोहित एवं विवेकभ्रष्ट होकर विषयसुखकी इच्छासे कर्तव्यधर्मय गृहस्थाभिमर्मे वासुक्त रहकर कर्म-काण्डमें ही लगा रहता है । इसकी मुद्रि देहादिमें आत्म-भावका चिन्तन करनेवाली है, उसके द्वारा इसन आत्म-स्वरूपको मुखा दिया है यह साक्षात् पशुको ही समान है अतः अत्यन्त खी-रूप्य हो और शीघ्र ही इसका मुँह बकरेका हो जाय ॥ २२ २३ ॥ यह मूर्ख कर्ममयी व्यक्ति को ॥ विद्या समझता है इसलिये वह और जो लोग भगवान् शङ्करका अपमान करनेवाले इस दुष्टके पीछे-पीछे चलनेवाले हैं, वे सभी जन्म-मरणरूप संसारचक्रमें पड़े रहें ॥ २४ ॥ वेदवाणीरूप कृता फलश्रुतिरूप पुण्योक्ति सुशोभित है, उसके कर्मफलरूप मनोमोहक गन्धसे इनका बिच धुम्प हो रहे हैं । इससे ये शङ्काओंकी कमेकि जाळमें ही फँसे रहें ॥ २५ ॥ ये शास्त्रजग्रे मध्य मध्यक विचारको छोड़कर केवल पेट पाउनेके छिपे ही विद्या, तप और आग्निक आश्रय छे तथा जन, शरीर और इन्द्रियोंके सुखको ही सुख मानकर—उन्हींके गुत्रम बनकर दुनियामें भीष्ममौलसे मर्याद करें” ॥ २६ ॥

जन्मीधरक मुखसे इस प्रकार शास्त्रजुक्त छिपे शाप सुनकर उसके बन्धुमें मृगजीने यह हुस्वर शापरूप बलान्तर दिया ॥ २७ ॥ “जो लोग शिवमत्त हैं तथा जो उम मत्तोंके अनुयायी हैं, वे सद्-शास्त्रोंके निन्द्य आचरण करनेवाले और पाप्मणी हों ॥ २८ ॥ जो लोग शौचाचारविहीन, मन्त्रमुद्रि तथा जटा, राउ और हविर्घोष धारण करनेवाले हैं—ये ही शीघ्र-मग्नपादमें दीक्षित हों जिसमें सुत और आमव ही देवताओंके समान आचरणीय हैं ॥ २९ ॥ अर ! तुम लोग जो गमपाग्नक मीमांसक एवं कर्तव्यधर्मोंके रक्षक और शास्त्रोंकी निन्ना करने दा, हमसे मानव हाता है तुमने पाग्नहमा आश्रय ॥ रक्ता है ॥ ३० ॥

एष एव हि लोकानां शिवः पथाः सनातनः ।

य पूर्वे चानुसृतस्पुर्यष्टप्रमाणं जनार्दन ॥३१॥

तद्गम परमं शुद्धं सत्तां वरमं सनातनम् ।

विगम पात पापम् दैवं यो यत्र भूतराट् ॥३२॥

मैत्रेय उवाच

तत्सैनं वदत आप भृगोः स भगवान् भवः ।

निश्चक्राम तत किञ्चिद्विप्रनाम्न साधुना ॥३३॥

तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवस्तरान् ।

सविभाष महेश्वर सत्रेभ्यः श्रुतमो हरि ॥३४॥

आनुत्तपावसूय यत्र गङ्गा यमुनयान्विता ।

विरजन्तमना सर्वे स्व स्व धाम ययुस्ततः ॥३५॥

यह वेदभाग ॥ ओगोंके किये कल्याणकारी और सनातन माग हैं । पूर्वपुरुष इसीपर चढते जाये हैं और इसक मूल साक्षात् श्रीविष्णुमगवान् हैं ॥ ३१ ॥ तुमआंग सपुरुषोंके परम पवित्र और सनातन भागस्वरूप वेदकी निन्दा करते हो—इसत्रिये उस पाक्ष्ण्ड्यमार्गमें जाओ, जिसमें भूतोंके सरार तुम्हारे इच्छेन निषास करने हैं ॥ ३२ ॥

भीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! शृगुश्रविके

इस प्रकार शाय देनेपर गगनान् शङ्कर कुछ भिन्न-से हो बहोसे अपन अनुपायियोंसहित चढ दिये ॥ ३३ ॥ वहाँ प्रजापतिदेव जो यह कर रहे थे, उसमें पुरुषोत्तम श्रीहरि ॥ उपास्यदेव थे । और वह यह एक हजार वर्षमें समाप्त होनवाला था । उससे समाप्त कर उन प्रजापतियोंने श्रीगङ्गा-यमुनाके सङ्गमें यक्षान्त स्नान किया और फिर प्रसन्नमनसे वे अपन अपन स्वानोंका चढ गये ॥ ३४ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे दशश्लो

नाम त्रितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सतीका पिताके यहाँ यक्षोत्सवमें जानेके किये मागह करना

मैत्रेय उवाच

सदा विद्विषतोरव काला वै त्रिप्रमाणयो ।

जामातु श्वशुरस्त्रापि सुमहानतिचक्रम ॥ १ ॥

यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमहिता ।

प्रजापतीनां सर्वेषामाभिषत्ये सप्तोऽभयम् ॥ २ ॥

इष्टा स वासपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च ।

बृहस्पतिसव नाम सप्तारेमे क्रतुत्तमम् ॥ ३ ॥

तस्मिन् ब्रह्मर्षया सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ।

आसन् कृतम्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यम् अभर्तुका ॥ ४ ॥

भीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार उन ससुर और दामादक आपसमें बैर-विरोध रहने हुए बहुत अधिक समय निकल गया ॥ १ ॥ इसी समय ब्रह्मानीन दक्षको सप्त प्रजापतियोंका अधिपति बना दिया । इससे उसका गर्व और भी बढ़ गया ॥ २ ॥ उसने गगनान् शङ्कर आदि ब्रह्मनिष्ठोंको यक्षभाग न देकर उनका तिरस्कार करते हुए पहले ही शानपय-यक्ष किया और फिर बृहस्पतिसव नामका महायक्ष आरम्भ किया ॥ ३ ॥ उस यक्षोत्सवमें सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता आदि अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ पधार, उन सबने मिलकर वहाँ माहृषिक कार्य सम्पन्न किये और दक्षक द्वारा उन सबका स्वागत-सत्कार किया गया ॥ ४ ॥

तदुपभृत्य नभसि खेचराणां प्रबल्यताम् ।

सती दाक्षायणी दधी पितुर्यममहात्सवम् ॥ ५ ॥

ग्रन्थीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रिय ।

विमानयाना सप्रष्टा निष्ककण्ठी सुवामय ॥ ६ ॥

इष्टा म्वनिलयाम्बाशे लालाक्षीमृष्टकुण्डला ।

पतिं मृतपतिं दधमौत्सुक्यादम्यमापत ॥ ७ ॥

सैत्युवाच

प्रजापतेस्ते भृशुरस्य साम्प्रत
निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ।

वयं च तत्राभिसराम वाम तं
यद्यर्पितामी विधुषा व्रत्रति हि ॥ ८ ॥

तस्मिन् भगिन्भ्यो मम भर्तृभिः स्वकै
द्युवं गमिष्यन्ति सुहृदिदृश्वः ।

अहं च तस्मिन् भवताभिक्रमये
सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥ ९ ॥

तत्र स्वसुमं ननु भर्तृसम्मिता
मातृपुत्रः क्षिप्रधियं च मातरम् ।

द्रष्टुं चिरात्कण्ठमना महर्षिभि
रुन्नीबमानं च मुखाच्चरन्मम ॥ १० ॥

त्वत्पतदाभर्यमजात्रममायया

विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ।

तथाप्यहं योपिदसत्त्वविषा ते
दीना दिदृशे भव मे मवधितुम् ॥ ११ ॥

पश्य प्रयान्तीरभवान्ययापिता
ऽप्यलंकृताः कान्तसलाभरूपाश्च ।

यासां व्रजक्षिः शिशिकण्ठ मण्डित
नभो विमानैः फलईसपाण्डुभिः ॥ १२ ॥

उस समय आकाशमार्गसे जाते हुए देखा। आपस-
में उस यज्ञकी चर्चा करते जाते थे। उनमें मुझसे
दक्षकुमारी सतीन अपन पिताके घर होनेवाले यज्ञकी
बान सुन थी ॥ ५ ॥ उन्होंने देखा कि हमारे निश्च-
स्थान कौशसके पाससे होकर सब ओरसे चञ्चल गत्रों-
वासी गन्धर्व और यक्षोंकी बियाँ कमकील कुण्डल और
हार पहन भूष सज-धनकर अपन-अपन पतियोंके
साथ विमानोंपर बैठा उस यज्ञोत्सवमें जा रही हैं।
इससे उन्हें भी बड़ी उत्सुकता हुई और उन्होंने अपने
पति भगवान् मृतनाथसे कहा ॥ ६-७ ॥

सतीने कहा—वामदेव ! सुना है, इस समय
आपक मसुर दक्षप्रजापतिक यहाँ बड़ा भारी यज्ञोत्सव
हो रहा है। देखिये, ये सब देवता वहीं जा रहे हैं।
यदि आपकी इच्छा हो तो हम भी चलो ॥ ८ ॥ इस
समय अपन आत्मीयोंसे मिलनेके लिये मेरी बहिनें भी
अपन-अपन पतियोंके सहित वहाँ अवश्य जायेंगी। मैं
भी चाहती हूँ कि आपके साथ वहाँ जाकर माता-पिता
क लिये हुए गहने, कपड़ आदि उपहार स्वीकार
करूँ ॥ ९ ॥ वहाँ अपने पतियोंसे सम्मानित बहिनों,
मौखियों और स्नहार्द्रदया जननीका देखनेके लिये मेरा
मन बहुत निमोसे उत्सुक है। कल्याणमय ! इसके
सिवा वहाँ महर्षियोंका रचा हुआ व्रज यज्ञ भी देखनेको
मिलेगा ॥ १० ॥ अबन्मा प्रभो ! आप प्रगल्भी
उपपत्तिके हतु हैं। आपकी मायासे रचा हुआ यह परम
आश्चर्यमय त्रिगुणात्मक जगत् आपहीमें मास रहा है।
किन्तु मैं तो बीससाव होनेके कारण आपके लक्षसे
अनभिज्ञ और बहुत दीन हूँ। इसलिये इस समय अपनी
जगत्भूमि देखनेको बहुत उत्सुक हो रही हूँ ॥ ११ ॥
ज मरझित मीलकण्ठ ! देखिये—इनमें कितनी ही बियाँ
तो ऐसी हैं जिनका दृष्टसे कोई सम्बन्ध भी नहीं है।
फिर भी ये अपन अपने पतियोंके सहित भूष सज-धनकर
हुंड-की-हुंड वहाँ जा रही हैं। वहाँ जानेवाले
इन देवाङ्गनाओंके राजहंसके समान होने विमानोंसे
आकाशकण्ठय कंसा सुसामित हो रहा है ॥ १२ ॥

कथं सुताया पितृगेहकौतुकं
निश्चम्य देहः सुरवर्षं नेङ्गते ।
अनाहुता अप्पभियन्ति सौहृद
मर्तुर्गुरादेहकृतम् केतनम् ॥१३॥
तन्मे प्रसीददममर्त्यं वाञ्छित
कृतं भवान्कारुणिको घतार्हति ।
त्वयाऽऽर्त्तमेनोऽर्वेऽहमऽब्रवक्षुषा
निरूपिता मानुषदृष्टाणं याचित ॥१४॥

अपिरुवाच

एष गिरित्रः प्रिययाभिभाषितः
प्रत्यम्यधत्त प्रहसन् सुरात्रियः ।
सस्मारितो मर्मभिदं कुषागिपूज
यानाह को विमलसूत्रां समञ्जतः ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

त्वयादित श्वाभनमव शोभने
अनाहुता अप्पभियन्ति वपुषु ।
ते यद्यनुत्पादिसदोपपद्यता
बलीयसानात्ममदन मन्युना ॥१६॥

विधातवाचित्तबुवंशं कुलं
सर्वां गुणैः पट्भिरसप्तमर्तैः ।
स्मृतां हतायां मृतमानकुदृष्टा
मन्त्रान पश्यन्ति हि भाम भूयसाः ॥१७॥
नैतादृशानां स्वजनम्यप्यथवा
गृहान् प्रवीयादन्वमित्तात्मनाम् ।
येऽम्यागतान् वक्रभियाभिचक्षते
आरोपितभ्रमिरमर्पणाधिभि ॥१८॥
तथारिभिर्न स्पृधेते शिलीमुनैः
घटोर्दिताङ्गा हृदयन द्युता ।

सुरश्रेष्ठ ! ऐसी अवस्थामें अपने पिताके यहाँ उत्सवका
समाचार पाकर उत्सवकी चेष्टीकर शरीर उसमें सम्मिलित होन
क लिये क्यों न प्रयत्नयेगा । गति, गुरु और माता-पिता
आदि मुहूर्तोंके यहाँ ता बिना बुलाये भी जा सकते
हैं ॥ १३ ॥ अतः देव ! आप मुझपर प्रसन्न हों,
आपका मेरी यह इच्छा अवश्य पूर्ण करनी चाहिये,
आप वक्ष करुणामय हैं, तभी तो परम ज्ञानी होकर भी
आपने मुझ अपन आध अग्रमें स्थान दिया है । अब
मेरी इस याचनापर ध्यान दकर मुझ अनुमोदित
कीजिये ॥ १४ ॥

श्रीमध्वेयजी कहते हैं—प्रिया सतीजीक इस प्रकार
प्रार्थना करनेपर आज्ञा आम्नीयोंकर प्रिय करनेवाले भगवान्
शाङ्करजी दक्षप्रवापतिक उन मममेयी दुर्बचनरूप
बाणोंका स्मरण हो आया, जो उन्होंने समस्त प्रजा-
पतिवोंक सामन कहे थे, तब वे हँसकर बोले ॥ १५ ॥

भगवान् शाङ्करने कहा—सुन्दरि ! तुमन जो कहा
कि अपन वन्धुजनक यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते
हैं, सो तो ठीक ही है, किन्तु ऐसा तभी करना
चाहिये, जब उनकी दृष्टि अनिष्ट प्रवृत्ति देहाभिमानसे
उत्पन्न हुए मद और श्रावक कारण दूयन्त्रासे मुक्त न
हो गयी हो ॥ १६ ॥ विद्या, तप, धन, सुदृढ शरीर,
बुद्ध्यादिसा और उच्च कुल—ये छ मनुष्यवर्गके तो गुण हैं,
परन्तु नीच पुरुषोंमें ये ही अवगुण हो जाते हैं, क्योंकि
इनमें उनका अभिमान बढ़ जाता है और दृष्टि
दोषयुक्त हो जाती है और विवेक शक्ति नष्ट हो जाती
है । इसी कारण वे महापुरुषोंका प्रभाव नहीं देख
पाते ॥ १७ ॥ इसीमें आ जान यहाँ आये हुए पुरुषों-
का कुट्टित बुद्धिसे भी चक्राकर रोजमरी दृष्टिसे देखत
हैं, उन अथर्वसिद्धिचित्त लोगोंके यहाँ ज्ये हमारे बाधक
हैं ऐसा समझकर कभी नहीं जाना चाहिये ॥ १८ ॥
दृष्टि ! शत्रुवर्गके बाणोंसे बिध आनपर भी पत्नी व्यथा
नहीं होती, जैसा अपन कुट्टितबुद्धि शत्रुवर्गके कुट्टित
वचनोंसे जानी है । क्योंकि बाणोंसे शरीर छिन्न-भिन्न

स्नानां यथा वक्रधियां कुरुक्तिभि

विधानिश्च तप्यति मर्मताडितः ॥१९॥

भ्यर्क्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रभापतेः

प्रियाऽऽत्मज्ञानामसि सुभ्रु सम्मता ।

अथापि मान न पितुः प्रपत्ससे

मदाभयात्क परितप्यते यतः ॥२०॥

पापभ्यमानेन हृदाऽऽतुरेन्द्रिय

समुद्दिभिः पूर्यपुद्गिसाधिषाणाम् ।

अकल्प एयामभिरौद्धमञ्जसा

पदं परं द्रष्टि यथासुरा हरिम् ॥२१॥

प्रत्युद्गमप्रभयणाभिवादनं

विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ।

प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा

गुहाश्रयायैव न देहमानिने ॥२२॥

सत्त्वं विद्वद्धं वसुदेवशब्दितं

पदीयते तत्र पुमानपाङ्गतः ।

सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो

अधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥२३॥

तच्च निरीक्ष्यो न पितापि देहकृद्

दृष्टो मम द्विद् तदनुव्रताश्च ये ।

यो विश्वसुगममार्गं धरोरु मा

मनागस दुर्बलसाकरोचिरः ॥२४॥

यदि ब्रजिष्पत्यतिहाय मद्बन्धो

मद्ग भवत्या न ततो भविष्यति ।

सम्भावितस्य स्वजनान्तराभवो

यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥२५॥

हो जानेपर तो जैसे-तैसे निद्रा वा जाती है, किन्तु कुलाक्योंसे गर्मस्थान विद्य हो जानपर तो मनुष्य इत-
नी पीडासे दिन-रात बेचैन रहता है ॥ १९ ॥

सुन्दरि ! अक्षय ही मैं यह जानता हूँ कि तुम परमोक्तिको प्राप्त हुए दक्षप्रभापतिको अपनी कण्याओं में सबसे अधिक प्रिय हो । तथापि मेरी आशिता होने के कारण तुम्हें अपने पितासे मान नहीं भिजेगा, क्योंकि वे मुझसे बहुत जड़ते हैं ॥ २० ॥ जीवकी चित्तवृत्तिके साक्षी ब्रह्मकारण्य महापुरुषोंकी समृद्धिको देखकर जिसके हृदयमें सन्ताप और इन्द्रियोंमें व्याप होती है, वह पुरुष उनके पत्नी तो सुगमतासे प्राप्त कर नहीं सकता, बस, दैत्यगण जैसे ओहरिसे द्वेष मानते हैं, वैसे ही उनसे कुट्टा रहता है ॥ २१ ॥

सुमध्यमे ! तुम बड़ सकती हो कि अपने प्रभापतियोंकी समझमें उनका आदर क्यों नहीं किया । सो ये सम्मुख जाना, मन्त्रता दिखाना, प्रणाम करना आदि कियारें जो लोकव्यवहारमें परस्पर की जाती हैं, तत्त्वज्ञानियोंके द्वारा बहुत अच्छे ढंगसे की जाती हैं । वे अन्तर्धर्मिकरूपसे सबके अन्त करणोंमें स्थित परमपुरुष वासुदेवको ही प्रणामानि करते हैं, वेदामिमानी पुरुषको नहीं करते ॥ २२ ॥ विद्वद्ध अन्त करणका नाम ही वासुदेव है, क्योंकि उसीमें भगवान् वासुदेवका अपरोक्ष अनुभव होता है । उस शुद्ध चित्तमें स्थित इन्द्रियात्मक भगवान् वासुदेवकी ही मैं नमस्कार किया करता हूँ ॥ २३ ॥ इसीछिये प्रिये ! जिसन प्रभापतियोंके यन्त्रमें, मेरेद्वारा कोई अपराध न होनेपर भी मेरा कटुवाक्योंसे तिरस्कार किया या बड़ दक्ष यद्यपि तुम्हारे शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता है, तो भी मेरा शत्रु होनेके कारण तुम्हें उसे अपना उसके अनुयायियोंको दखनका विचार भी नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी, तो तुम्हारे छिये अच्छा न होगा क्योंकि जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिको अपने आसीन्यजनकों द्वारा अपमान होता है, तब वह तत्काल उनकी मृत्युका कारण हो जाता है ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते म्हापुराणे पारमहंस्यो संहितायां चतुर्थस्कन्धे
उपनिषत्संज्ञाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सतीक्ष्ण आग्निप्रवेष्टा

मेघेय उवाच

एतावदुक्त्वा विरराम शंकर

एतन्पुनराश्रमं भूयः चिन्तयन् ।

सुहृदिषु परिश्रिता भवा

भिक्षामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥१॥

सुहृदिष्वप्रतिघातदुर्मेनाः

स्नेहादुत्पद्यमानविह्वला ।

भव भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा

प्रभक्ष्यतावैसृज्यं आतपययुः ॥ २ ॥

ततो निनिःश्वास्य सती विहाय च

शक्तेन रोपेण च रूपता हृदा ।

पित्रोरगात्स्त्रेणविमूढधीर्गृहान्

प्रमृशाऽऽस्मनो याऽर्घमदात्सर्ता प्रिय ॥३॥

वामन्वगच्छन् द्रुतचिक्रमां सती

मेकां दिनेशानुचरा सहस्रश ।

संपार्पदयशा मणिमन्मदादय

पुरोद्वेपेन्द्रास्तरसा गतम्यथाः ॥ ४ ॥

तौ सारिकाकन्दुरुदर्पणाम्बुध

वतातपप्रभ्यजनमगादिभिः ।

गीतायनैर्दुन्दुभिस्तद्वेषुभि

पुर्वेन्द्रमाराप्य विश्रुता ययुः ॥ ५ ॥

भामसपापाक्षितयप्रवैशर्म

विमर्षितुष्टं विपुर्षेण सधनु ।

श्रीमद्भेयजी कहत हैं—विदुरजी । इतना कहकर भगवान् शाहर मौन हो गये । उन्होंने देखा कि दशके यहाँ जान देन अपवा जानसे रोकने—मौनों ही अबस्याजोंमें सतीके प्राणत्यागकी सम्भावना है । श्वर, सतीजी भी कभी बन्धुजनको देखन जानकी इच्छासे बाहर आती और कभी भगवान् शाहर रुष्ट न हो जायें इस शङ्कासे फिर लौट जाती । इस प्रकार कोई एक बात निश्चित न कर सञ्ज्ञेके कारण ब दुस्विधामें पड़ गयी—चञ्चल हो गयी ॥ १ ॥ बन्धुजनसे मिलनकी इच्छामें बाधा पड़नसे वे बड़ी अनमनी हो गयी । स्वजनको स्नेहवश उनका हृदय भर आया और वे औसमि औस मरकर अल्पत व्याकुल हो रोने लगी । उनका शरीर परपर कपेन छग और वे अग्रिम पुरुष भगवान् शाहरकी ओर इस प्रकार रोगरूपा दृष्टिसे देखने लगीं मानो उन्हें मर कर देगी ॥ २ ॥ शोक और क्लेशने उनके वितका विस्कुल बेचैन कर दिया तथा क्षीयमायके कारण उनकी मुद्रि मूढ़ हो गयी । निन्होंने प्रीतिवश उन्हें अपना आधा अङ्गुल द दिया था, उन सत्पुरुषोंके प्रिय भगवान् शाहरको भा छड़कर वे छडी-छडी सोंस लेती हुई अपन माता-पिताक घर चर दी ॥ ३ ॥ सतीकी बड़ी पुत्रीसे अकेली जाते देख श्रीमद्भेयजीके मणिमान् एवं म आदि हजारों सेवक मगशान्क काहन ह्वमराजको जागे कर तथा और भी जनको पार्प और पार्थोको साथ ले बड़ी तेजीसे निमगनायक उनके पीछे हा डिये ॥ ४ ॥ उन्होंने सतीको बैडर सहर कता निया तथा मैनापश्री, गेन अपग और कमल आदि स्नेहकी सामग्री, तेन छत्र-चकर और माडा आदि राजविह तथा दुन्दुभि, शङ्ख और औसुरी आदि गन्ध-जवानेक सामग्रीसे सुसज्ज हो ब उनका साथ चर गिये ॥ ५ ॥

तन्मन्तर सती अपन समस्त सेवकोंके साथ दशकी वजराजमें पहुँची । वहाँ वेस्त्रलि करन हुए ब्रह्मणे

सुहार्थय कञ्चनदर्मचर्मभि

निंसृष्टमाण्डं यजन समाधिश्च ॥ ६ ॥

तामागतां तत्र न कञ्चनाद्रियधू

विमानितां यन्नक्तसो भयाजन ।

श्रुते स्मर्त्तुं जननीं च मादराः

प्रमाधुकण्ठ परियम्बुर्मुदा ॥ ७ ॥

सौंदर्यसम्प्रभसमर्थवार्तया

मात्रा च मादृष्यसुभिश्च सादरम् ।

दत्तां सपसां वरमायन च सा

नादत्त पित्राप्रतिनिदिता सती ॥ ८ ॥

अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं

पित्रा च देवे कृतहलन विभौ ।

अनादृशं यन्नसदस्यभीक्ष्वरी

जुकोप लोका निव भक्षयती रुपा ॥ ९ ॥

जगई सामर्पविपक्षया गिरा

श्रिवद्विषं धूमपथभमस्रयम् ।

म्वेजसा मृतगणान् समुत्थितान्

निगृह्य देवी जगताऽर्मिमृण्वतः ॥ १० ॥

भीमव्यास

न यम्य लोकेऽस्त्यतिशयनः प्रिय

स्तवाप्रियो देहभृतां प्रियात्मन ।

तस्मिन् संमस्तारमनि मुक्तवैरक

श्रुते भवन्त कृतम प्रतीपयत् ॥ ११ ॥

दापान् परेषां हि गुणान् माधवा

गृह्णन्ति कचिन्न भवाऽद्या द्विज ।

गुणांश्च फरगून् बहुलीकरिष्यथा

महत्तमाम्तेष्वविदुश्चानधम् ॥ १२ ॥

मा पा — क्ष वि । १ मा पा — विमुक्त्यपत्ति ।

परस्पर हाँड़ छत्रा रही थी किं सबसे ऊँचे स्तरमें कौन बोले
सब आर प्रार्थि और देवता विराजमान थे तथा जहाँ-
तहाँ मिट्टी, काठ, लोहे, सोने का म और चमक पात्र
रक्खे हुए थे ॥ ६ ॥ वहाँ पहुँचनपर पिताके द्वारा सतीश्री
अवहेक्षना हुई, यह देख यक्षवर्णा दक्षके ममेसे सतीश्री
माता और बहनोंके सिवा किसी भी मनुष्यन उमर
कुछ भी आनन्द-सुख नहीं किया । अन्त में ही उनकी
माता और बहनों बहुत प्रसन्न हुई और प्रेमसे गद्गद
होकर उन्होंने सतीश्रीके आदरपूर्वक गले लगाया ॥ ७ ॥
किन्तु सतीश्रीने पितासे अपमानित होनेक कारण,
बहनोंके कुशल-प्रश्नमहित प्रेमपूर्ण वार्तालाप तथा माता
और मौसियोंके सम्मानपूर्वक न्ये हुए उपहार और
सुन्दर आसनादिक स्वीकार नहीं किया ॥ ८ ॥

सर्वशोकहारी देवी सतीका यक्षगणधर्म तो अनन्त
हुआ ही था । उन्होंने यह भी कहा कि उस वहाँ
मगधान् शहरके किये कोई माग नहीं दिया गया है
और पिता तथा उनकी बहों अपमान कर रहा है ।
इससे उन्हें बहुत क्रोध हुआ, ऐसा काम पड़ता था मानो
वे अपने शरीरसे सम्पूर्ण लोकोंके भस्म कर देंगी ॥ ९ ॥
दक्षको कर्ममार्गके अन्त्यासे बहुत भय हो गया था ।
उसे शिवश्रीसे द्वेष करते देख जब सतीके साथ जाये
हुए मृत उसे मारनको तैयार हुए, तो देवी सतीने उन्हें
अपन तेजसे रोक लिया और सब लोगोंके सुमाकर पिताकी
निन्दा करते हुए क्रोधसे कड़कवाती हुई वाणीमें
कहा ॥ १० ॥

देवी सतीने कहा—पिताजी ! भगवान् शहरसे
बहा तो सप्तर्षमें कोई भी नहीं है । वे तो सभी
देवधारियोंके प्रिय आत्मा हैं । उनका न कोई प्रिय है,
न अप्रिय अतएव उनका किसी भी प्राणीसे वैर नहीं है ।
वे तो मर्षक कारण एवं सर्वरूप हैं आपके सिवा और
ऐसा कौन है जो उनसे विरोध करेगा ! ॥ ११ ॥
द्विजवर ! आप-जैसे आग दूसरोंके गुणोंमें भी दोष ही देखते
हैं किन्तु कोई माधुपुरुष ऐसा नहीं करते । जो लोग-
नो देखनेकी बात तो अज्ञ रही—दूसरोंके दोष-मगुण
को भी बह रूपमें देखना चाहते हैं, वे सबसे श्रेष्ठ हैं ।
अतः कि आपने ऐसे महापुरुषोंपर भी निन्दोपपन्न ॥

नाभयमेतद्यदसत्सु सर्वदा
 महद्भिनिन्दा कुणपात्मवादिषु ।
 सेष्य महापुरुषपादपांसुभि
 निरस्ततेजःसु तद्वद् शोभनम् ॥१३॥
 यद् द्वयस्य नाम गिरेरित नृणां
 सकम्प्रसङ्गादधमास्तु इति तत् ।
 पवित्रकीर्तिं तमलङ्घयन्नासन
 भवानहो इष्टि शिवं शिवेतर ॥१४॥
 यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभि
 निपेतिरितं ब्रह्मरसामनाधिभिः ।
 लाकस्य यद्वर्षति चाग्निपोऽर्धेन
 तस्मै भवान् दुष्प्रति विषयन्धवे ॥१५॥
 किं वा शिवाख्यमश्विन न विदुस्त्वदन्ये
 प्रज्ञादयस्तमवकीर्य मत्ताः श्मशाने ।
 तं माल्यभक्तनृकपात्यवसत्पिशार्चं
 ये मूर्धभिर्दधति तच्छरणावसृष्टम् ॥१६॥
 कष्मा पिपाय निरपाद्यदकल्प इष्ट
 धर्मावितर्क्यसृणिभिर्नुभिरस्यमाने ।
 छिन्द्यात्प्रसक्त रुन्धतीमसती प्रसूचे
 जिह्वामधूनपि तता विमुजत्स धर्म ॥१७॥
 अतस्ततोत्पन्नमिह क्लृप्तं
 न भारयिष्ये द्वितिकण्ठगर्हिण ।

किया ॥ १२ ॥ जा दुष्ट मनुष्य इस शत्रु रूप जड़ शरीर को
 ही आत्मा मानते हैं वे यदि ईर्ष्यावश सर्वदा ही महा
 पुरुषों की निन्दा करें तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं
 है । क्योंकि महापुरुष तो उनकी इस चेष्टा पर कोई
 ध्यान नहीं देते, परन्तु उनके चरणों की धूलि उनके
 इस अपराध को न सहकर उनका तज नष्ट कर देती
 है । अतः महापुरुषों की निन्दा जैसा अभय कश्यप उन
 दुष्ट पुरुषों की ही शोभा देता है ॥ १३ ॥ त्रिनका शिव
 यह दो अक्षरों का नाम प्रसङ्गवश एक बार भी मुखसे
 निकल जान पर मनुष्य के समस्त पापों का तत्काल नष्ट
 कर देता है और त्रिनकी आवाज कोई भी उल्टा हन
 नहीं कर सकता, अहो ! उन्हीं पवित्र कीर्ति मङ्गलमय
 भगवान् का शरसे आप द्वेष करते हैं ! अवश्य ही आप
 अमङ्गल रूप हैं ॥ १४ ॥ अर ! महापुरुषों के मन-मधुकर
 ब्रह्मानन्दमय रस का पान करने की इच्छा से त्रिनक
 चरणकमलों का निरन्तर सेवन किया करते हैं और
 त्रिनके चरणारविन्द सकल पुण्यों को उनके असीम भोग
 भी देते हैं, उन विश्वबन्धु भगवान् शिवसे आप ईर
 करते हैं ! ॥ १५ ॥

वे कवच नाममात्र के शिव हैं, उनका वेग अतिवर्धमान
 अवज्ञा रूप है, इस बात का आपको विश्वास दूसरे
 कोई स्वता संभवतः नहीं जानते क्योंकि जो
 भगवान् शिव श्मशानभूमि में नरमुण्डों की माता,
 विषाक्षी मत्स्य और इन्द्रियों पहन, जटा बिगड़े, भून
 पिशाचों के साथ मग्नान्ते निवास करते हैं, उन्हीं के
 चरणों पर से गिरे हुए निर्दोष वस्त्र हस्ता आदि स्वता अपने
 सिर पर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ यदि निरङ्कुश लोग
 धर्ममार्ग की रक्षा करने वाले जिन पूजनीय स्वामी की निन्दा
 करें तो अपने नैवेद्य से दण्ड करने की शक्ति न होने पर कान बंद
 करके बहोसे बचा जाय और यदि यदि हा हा ता बज्जूर के
 पक्ष पर उस कवचा करने वाली अमङ्गल रूप दुष्ट
 शिष्टाचार काट दास । इस पाप को रोक्ने के लिये
 स्वयं जिन प्राय तब दे द यदि धर्म है ॥ १७ ॥
 आप भगवान् मीठकण्ठ की निन्दा करने वाले हैं, इस लिये
 आपसे उम्पक हुए इन शरीर का अब मैं नहीं रग मरती

अम्भस्य मोहादि विद्वद्धिमन्धसो

शुश्रूषितस्योद्धरण प्रचक्षते ॥१८॥

न मदबाहाननुवर्तते मति

स एव लोके रमता महाह्वने ।

यथा गरिष्ठे वमनुष्यस्यो पृथक्

स एव धर्मे न पर विपेत्स्वितः ॥१९॥

कर्म प्रवृत्त च निवृत्तमप्यर्थ

वद विविम्बोभयलिङ्गमाभितम् ।

विरोधि तथौगपदैककर्तारि

इयं तथा ब्रह्मणि कर्म न च्छेति ॥२०॥

मा वः पदव्यः पितरमादासिता

वायव्यमालाशुन धूमकरमभिः ।

सदनचत्वारसुमुहुरिषिता

अपकलिङ्गाः अकषूतसेविताः ॥२१॥

न त्वेन दहेन हरे कृतागसा

वेहोद्भवेनालमर्ल ह्यमना ।

ब्रीडा ममामृत्कुम्भनप्रसङ्गत

स्तज्जन्मधिगुं महातापघण्डत् ॥२२॥

गात्र त्वदीय भगवान् ह्यप्यजो

दाद्यायणीत्याह यदा सुदुर्मना ।

व्यपेतनर्मसितमाशु सदनार्ह

भ्युरसत्स्य ण्तस्कुणपत्स्यद्वज्जम् ॥२३॥

मैत्र्यै उपाय

इत्यप्यर दसमन्थ शत्रुहन्

सितावुत्पीपी निपत्ताद घान्तवाक् ।

यदि मूर्खसे कोई निन्दित वस्तु का भी माय, तो उसे बर्मान करके निकाल देनेसे ही मनुष्यकी बुद्धि बढाती जाती है ॥ १८ ॥ जो महाभुनि निरन्तर अपने स्वल्प-में ही रमण करते हैं, उनकी बुद्धि सदा वेदके विधि-निषेधमय बाक्योंका अनुसरण नहीं करती । जिस प्रकार देवता और मनुष्योंकी गतिमें भेद रहता है वही प्रकार जानी और अजानीकी स्थिति भी एक-सी नहीं होती । इस लिये मनुष्यको चाहिये कि वह अपने ही घमणमें स्थित रहते हुए भी दूसरोंके मार्गकी निन्दा न करे ॥ १९ ॥ प्रवृत्ति (यज्ञ-यागदि) और निवृत्ति (शम-न्यादि) रूप दोनों ही प्रकारके कर्म ठीक हैं । वेदमें उनके अज्ञा-अज्ञ रागी और विरागी दो प्रकारके अवि-कारी बताये गये हैं । परस्परक्रोधी होनेके कारण उक्त दोनों प्रकारके कर्मोंका एक साथ एक ही पुरुषके द्वारा आचरण नहीं किया जा सकता । भगवान् सङ्कर तो परब्रह्मपरम्परा हैं, उन्हें इन दोनोंमेंसे किसी भी प्रकारका कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २० ॥

पितामी । हमारा पदार्थ अल्पक है, अल्पमङ्गली महापुरुष हैं । उसका सेवन कर सकते हैं । आपके पास सब ऐश्वर्य नहीं है और यज्ञशास्त्रोंमें यज्ञसे घृत होकर प्राणपात्रण करनेवाले कण्ठलोक तककी प्रशंसा भी नहीं करते ॥ २१ ॥ आप भगवान् शङ्कर का अपराध करनेवाले हैं । अतः आपके शरीरसे उत्पन्न इस मिन्नीय देहको रखकर मुझे क्या करना है । आप-जैसे दुर्बलसे सम्बन्ध जानने के कारण मुझे कष्ट आती है । जो महापुरुषोंका अपराध करता है, उससे जानेवाले अम्भकी भी विचार है ॥ २२ ॥ जिस समय भगवान् शिव आपके साथ मेरा सम्बन्ध दिसझटते हुए मुझे हँसीमें 'दास्यायणी' (दक्षकुमारी) के नामसे पुकारेंगे, उस समय हँसीको शृङ्गकर मुझे वही दी वज्र और खेद हाथ । इसलिये उससे पहले ही मैं आपके व्यहसे उत्पन्न इस शत्रुव्यप शरीरको त्याग दूँगी ॥ २३ ॥

धर्मिण्येवमी कहते हैं—काम्यानि शत्रुओंको जलने वाले विद्वद्भी । उस यज्ञमन्त्रमें दहते इस प्रकार का दही सभी मौन होकर उत्तर शिवमें भूमित भई गयी ।

स्पृष्ट्वा बल पीतदुकूलसङ्घाता
 निमील्य इग्योगपथ समाविशत् ॥२४॥
 कृत्वा समानावनिलौ जितासना
 प्रोष्ठानमुत्थाप्य च नाभिचक्रत ।
 घनेर्हदि स्थाप्य धियोगमि मितं
 कण्ठाद् भुवानप्यमनिन्दितानयत् ॥२५॥
 एव खड्गेह महता महीयसा
 मुहुः समारोपितमङ्गमादरात् ।
 बिहासती दक्षरुपा मनस्विनी
 दधार गात्रेश्वरिणाग्निधारणाम् ॥२६॥
 तत स्वमर्तुधरान्भुजासव
 जगद्गुरोर्भिनितयती न चापरम् ।
 दर्शय दशो तद्वक्त्रमप सती
 सद्य प्रवृत्तशाल समाधिजाग्रिना ॥२७॥
 तत्पश्यतां स्व मुनि चान्नुत महद्
 हाहेति षाद् सुमहान्जायत ।
 हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी
 अहावधत् केन सती प्रकोपिता ॥२८॥
 महा अनारम्य महदस्य पश्यत
 प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ।
 जहावधत् यद्रिमताऽऽत्मजा सती
 मनस्विनी मानमभाक्ष्यमर्हति ॥२९॥
 साऽय दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मपुक् च
 लाक्षऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ।
 यदङ्गजां स्वां पुरुषद्रिह्यथा
 न प्रत्यपेभन्मुदयेऽपराधत ॥३०॥
 यद्वदथ जने सत्याऽप्युमुत्पागमद्भुतम् ।
 दद्य तत्पापंश हन्तमुदविष्टन्नुदापुधाः ॥३१॥

उन्होंने आचमन करके पीछा बन्ध आदि किया तथा
 बाँसे मूँकर शरीर श्रेष्ठनक शिपे वे यागमार्गमें स्थित
 हो गयीं ॥ २४ ॥ उन्होंने आसनको स्थिरकर प्राणायाम
 द्वारा प्राण और अपानको एककर करके नाभिचक्रमें
 स्थित किया, निरुत्तानबाणको नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर
 धीरे धीरे बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया । इसका
 पश्चात् अनिन्दिता सती उस हृदयस्थित बाणको कण्ठ-
 मार्गसे शुकुटिपोंके बीचमें ले गयीं ॥ २५ ॥ इस प्रकार,
 जिस शरीरको महापुरुषोंके भी पूजनीय भगवान् शङ्करन
 कई बार बड़े आदरसे अपनी गोदमें धृष्टया या, दक्षपर
 कुपित होकर उसे त्यागनका इच्छासे महामनस्विनी
 सतीने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें बाण और अग्निकी धारणा
 की ॥ २६ ॥ अपने पति जगद्गुरु भगवान् शङ्करके
 चरण कमल-मकरन्दका चिन्तन करने-करते सतीन और
 सब ध्यान मुखा दिये उन्हें उन चरणोंके अतिरिक्त
 कुछ भी निश्चायी न किया । इससे वे स्वयं निर्वि,
 अर्थात् मैं दक्षकन्या हूँ—ऐसे अभिमानसे भी मुक्त हो
 गयीं और उनका शरीर तुरंत ही योगभूमिसे जड़ उठा ॥२७॥

उस समय वहाँ आये हुए देवता आदिने जब
 समीकृत देखल्यारूप यह महान् आश्चर्यमय चरित्र देखा,
 तब वे सभी हाहाकार करने लगे और वह मयङ्कर
 कोलाहल आकाशमें एक पृथ्वीतलपर सभी जगह फैल
 गया । सब ओर यही सुनायी जाता था—हाय ! दक्षके
 दुष्प्रवृत्तारसे कुपित होकर देवादेव महादवकी प्रिया
 सतीने प्राण त्याग दिये । ॥ २८ ॥ देवी, सारे चराचर
 जीव इस दक्षप्रजापतिकी ही सन्तान हैं फिर भी इसका
 कैसी मारी दुष्टता की है ! इसकी पुत्री छुड़इत्यादि सती
 सदा ही मान पानेक योग्य थी किन्तु इसल उसका
 ऐसा निरुद्धर किया कि उसने प्राण त्याग दिये ॥२९॥
 वास्तवमें यह वधा ही अवशिष्ट थी और भासगोत्री है ।
 जब इसकी संसारमें बड़ी अपकीर्ति होगी । जब इसकी
 पुत्री सती इसीक अपराधने प्राणत्याग करनेको तैयार
 हुई, तब भी इस बाह्यलोकीन उसे ऐक्य तक नहीं ॥३०॥

जिस समय सब लोग ऐसा कह रहे थे, उसी समय
 शिवजीके पाप- सतीका यह अद्भुत प्राणत्याग देख,
 अक्ष-शक्त लेकर उसके मारनेके शिप उठ सब हुए

तपामावतर्ता घर्गं निद्राम्य भगवान् भृगुः ।

यप्रममन यजुषा दक्षिणामौ जुषाय इ ॥३२॥

अभ्यर्पणा इयमाने दवा उस्पेतुराजमा ।

अभवा नाम तपसा माम प्राप्ताः सदस्रशः ॥३३॥

तरुणासापथ सर्वे प्रमथा महगुणकाः ।

हन्त्यमाना दिग्। मेनुरुज्जिर्मदसेजसा ॥३४॥

॥ ३१ ॥ उनवे आक्रमणका वेग देखकर भगवान् मृग-
न यज्ञमें विप्र बालनेशर्षोक्ता नाश करनेके लिये 'अपहृ-
रक्ष' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करते हुए दक्षिणाक्षिमें
आहूति ली ॥ ३२ ॥ अश्वपु मृगनेश्योंही आहूति ली
कि यक्षकुलसे 'अश्वपु' नामके इक्ष्वांतेजहरी श्रेष्ठा
प्रकट हो गये। इन्होंने अपनी तपस्याक प्रभावसे पन्द्र
लक प्राप्त किया था ॥ ३३ ॥ तब इक्ष्वातेजसम्पन्न
श्रेष्ठाओंन जलती हुई लकड़ियोंसे आक्रमण किया, तब
सम्पन्न गुहक और प्रमथगण इतर-उपर भाग गये ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पारमर्श्या मंहितायां चतुष्टयस्कन्धे
मनीहोत्सुर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

वीरभद्रराज कृतव्याख्यानम् आर नृसिंहपद

मैत्र ५ उपाय

भवा भवाया निधन प्रजापत

रमन्कृताया अवगम्य नाग्दान् ।

म्व तापदगन्य न तदप्य।सुभि

विश्वविभक्त माधमपागमादय ॥ १ ॥

पुद्गल गुह्यसाधनम् म पूजति

अगं तद्विद्वद्विषयाग्रगण्यम् ।

उद्यय रुः महमास्थिता हसन

गङ्गाधरादा विमलत्रयां सुरि ॥ २ ॥

तथा-निकायमनुया मृगन्दिम

महामयाद्वयनम् त्रिगुणस्य

कालः । उत्तरदिशिपुनः ।

अथानुप्रासः विविधाप्युप ॥ ३ ॥

न हि स्वार्थानि गृणन्तमाद

एदाज्ञाऽ भगवान् भवनाथ ।

८५३ गणपतं सति सद्यः

1997, 1998, 1999, 2000, 2001, 2002, 2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015, 2016, 2017, 2018, 2019, 2020, 2021, 2022, 2023, 2024, 2025, 2026, 2027, 2028, 2029, 2030, 2031, 2032, 2033, 2034, 2035, 2036, 2037, 2038, 2039, 2040, 2041, 2042, 2043, 2044, 2045, 2046, 2047, 2048, 2049, 2050, 2051, 2052, 2053, 2054, 2055, 2056, 2057, 2058, 2059, 2060, 2061, 2062, 2063, 2064, 2065, 2066, 2067, 2068, 2069, 2070, 2071, 2072, 2073, 2074, 2075, 2076, 2077, 2078, 2079, 2080, 2081, 2082, 2083, 2084, 2085, 2086, 2087, 2088, 2089, 2090, 2091, 2092, 2093, 2094, 2095, 2096, 2097, 2098, 2099, 2100, 2101, 2102, 2103, 2104, 2105, 2106, 2107, 2108, 2109, 2110, 2111, 2112, 2113, 2114, 2115, 2116, 2117, 2118, 2119, 2120, 2121, 2122, 2123, 2124, 2125, 2126, 2127, 2128, 2129, 2130, 2131, 2132, 2133, 2134, 2135, 2136, 2137, 2138, 2139, 2140, 2141, 2142, 2143, 2144, 2145, 2146, 2147, 2148, 2149, 2150, 2151, 2152, 2153, 2154, 2155, 2156, 2157, 2158, 2159, 2160, 2161, 2162, 2163, 2164, 2165, 2166, 2167, 2168, 2169, 2170, 2171, 2172, 2173, 2174, 2175, 2176, 2177, 2178, 2179, 2180, 2181, 2182, 2183, 2184, 2185, 2186, 2187, 2188, 2189, 2190, 2191, 2192, 2193, 2194, 2195, 2196, 2197, 2198, 2199, 2200, 2201, 2202, 2203, 2204, 2205, 2206, 2207, 2208, 2209, 2210, 2211, 2212, 2213, 2214, 2215, 2216, 2217, 2218, 2219, 2220, 2221, 2222, 2223, 2224, 2225, 2226, 2227, 2228, 2229, 2230, 2231, 2232, 2233, 2234, 2235, 2236, 2237, 2238, 2239, 2240, 2241, 2242, 2243, 2244, 2245, 2246, 2247, 2248, 2249, 2250, 2251, 2252, 2253, 2254, 2255, 2256, 2257, 2258, 2259, 2260, 2261, 2262, 2263, 2264, 2265, 2266, 2267, 2268, 2269, 2270, 2271, 2272, 2273, 2274, 2275, 2276, 2277, 2278, 2279, 2280, 2281, 2282, 2283, 2284, 2285, 2286, 2287, 2288, 2289, 2290, 2291, 2292, 2293, 2294, 2295, 2296, 2297, 2298, 2299, 2300, 2301, 2302, 2303, 2304, 2305, 2306, 2307, 2308, 2309, 2310, 2311, 2312, 2313, 2314, 2315, 2316, 2317, 2318, 2319, 2320, 2321, 2322, 2323, 2324, 2325, 2326, 2327, 2328, 2329, 2330, 2331, 2332, 2333, 2334, 2335, 2336, 2337, 2338, 2339, 2340, 2341, 2342, 2343, 2344, 2345, 2346, 2347, 2348, 2349, 2350, 2351, 2352, 2353, 2354, 2355, 2356, 2357, 2358, 2359, 2360, 2361, 2362, 2363, 2364, 2365, 2366, 2367, 2368, 2369, 2370, 2371, 2372, 2373, 2374, 2375, 2376, 2377, 2378, 2379, 2380, 2381, 2382, 2383, 2384, 2385, 2386, 2387, 2388, 2389, 2390, 2391, 2392, 2393, 2394, 2395, 2396, 2397, 2398, 2399, 2400, 2401, 2402, 2403, 2404, 2405, 2406, 2407, 2408, 2409, 2410, 2411, 2412, 2413, 2414, 2415, 2416, 2417, 2418, 2419, 2420, 2421, 2422, 2423, 2424, 2425, 2426, 2427, 2428, 2429, 2430, 2431, 2432, 2433, 2434, 2435, 2436, 2437, 2438, 2439, 2440, 2441, 2442, 2443, 2444, 2445, 2446, 2447, 2448, 2449, 2450, 2451, 2452, 2453, 2454, 2455, 2456, 2457, 2458, 2459, 2460, 2461, 2462, 2463, 2464, 2465, 2466, 2467, 2468, 2469, 2470, 2471, 2472, 2473, 2474, 2475, 2476, 2477, 2478, 2479, 2480, 2481, 2482, 2483, 2484, 2485, 2486, 2487, 2488, 2489, 2490, 2491, 2492, 2493, 2494, 2495, 2496, 2497, 2498, 2499, 2500, 2501, 2502, 2503, 2504, 2505, 2506, 2507, 2508, 2509, 2510, 2511, 2512, 2513, 2514, 2515, 2516, 2517, 2518, 2519, 2520, 2521, 2522, 2523, 2524, 2525, 2526, 2527, 2528, 2529, 2530, 2531, 2532, 2533, 2534, 2535, 2536, 2537, 2538, 2539, 2540, 2541, 2542, 2543, 2544, 2545, 2546, 2547, 2548, 2549, 2550, 2551, 2552, 2553, 2554, 2555, 2556, 2557, 2558, 2559, 2560, 2561, 2562, 2563, 2564, 2565, 2566, 2567, 2568, 2569, 2570, 2571, 2572, 2573, 2574, 2575, 2576, 2577, 2578, 2579, 2580, 2581, 2582, 2583, 2584, 2585, 2586, 2587, 2588, 2589, 2590, 2591, 2592, 2593, 2594, 2595, 2596, 2597, 2598, 2599, 2600, 2601, 2602, 2603, 2604, 2605, 2606, 2607, 2608, 2609, 2610, 2611, 2612, 2613, 2614, 2615, 2616, 2617, 2618, 2619, 2620, 2621, 2622, 2623, 2624, 2625, 2626, 2627, 2628, 2629, 2630, 2631, 2632, 2633, 2634, 2635, 2636, 2637, 2638, 2639, 2640, 2641, 2642, 2643, 2644, 2645, 2646, 2647, 2648, 2649, 2650, 2651, 2652, 2653, 2654, 2655, 2656, 2657, 2658, 2659, 2660, 2661, 2662, 2663, 2664, 2665, 2666, 2667, 2668, 2669, 2670, 2671, 2672, 2673, 2674, 2675, 2676, 2677, 2678, 26

[illegible]

आश्रय एव कृपितन मधुना

स देवदेव परिचक्रमे विसृम् ।

मेने तदाऽऽत्मानममङ्गरहसा

महीयसां ताव सह सहिष्णुम् ॥ ५ ॥

अन्वीयमान स तु रुद्रपार्षदै

मृश नदङ्घ्रिर्न्यनदरसुमैरवम् ।

उपम्य शूल जगदन्तकान्तकं

स प्राद्रवद् भाषणभूषणाङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

अथस्त्विजो यज्ञमानः सदस्या

कङ्कुम्पुदीर्घ्यां प्रसमीक्ष्य रणम् ।

तमः क्रिमेतत्कृत एतद्रजोऽभू

दिति द्विधा द्विजपत्न्यश्च दम्पु ॥ ७ ॥

वातानवान्ति न हि मन्ति दस्यव

प्राचीनवर्हिर्वीवति शीघ्रदण्ड ।

गात्रा न कारयन्त इदं कुतो रजो

लाङ्काऽधुना किं प्रलयाय करणते ॥ ८ ॥

प्रवृत्तिमिश्रा स्त्रिय उद्विग्नचित्ता

ऊर्ध्वविपाका वृजिनस्पर्प तस्य ।

परपङ्कनीनां दुहितृणां प्रजेऽ

सुतां महीमवदध्याधनागाम् ॥ ९ ॥

यस्त्वन्तकाल षण्मसप्रठाकलापः

स्वगुलङ्गस्पर्षितदिग्गजन्त ।

वितरय नृपत्पुदितास्वदार्प्यन्वा

नुषादृहासन्तनयिभुभिभक्तिः ॥ १० ॥

१ मा ॥ मरिचदिव्य । २ मा पा — भूगिण । ३ मा पा — पुकृष्ट । ४ मा पा — गेय ।

५ मा पा — प्र ।

प्यारे विदुरजी । जब दशविदेव भगवान् शाङ्करने क्रोधमें भरकर ऐसी आवा दी, तब वीरमद उनकी परिक्रमा बरके चखनेको तैयार हो गये । उस समय उन्हें ऐसा माधुम होम लगा कि मेरे वेगका सामना करनाका संसारमें कोई नहीं है और मैं बड़-से-बड़ वीरका भी वेग सहन कर सकता हूँ ॥ ५ ॥ वे भयकर सिंहात् करते हुए एक अति कराछ त्रिशूल हाथमें छपर दक्षके यहमण्डप की ओर दौड़ । उनका त्रिशूल संसारसंहारक वस्तुका भी संहार करनेमें समर्थ था । भगवान् रुद्रक और भी बहुत-से सेवक गर्जना करते हुए उनका पीछ हो लिये । उस समय वीरमदक पैरोंके नूपुरादि आभूषण झनन झनन बजते जाते थे ॥ ६ ॥

इधर यज्ञशास्त्रमें बैसे हुए ऋत्विज, यज्ञमान, मन्त्र्य तथा अन्य शासन और शासगियों ने जब उत्तर दिशाकी ओर घूब उड़ती देखी, तब वे सोचन लग—‘अरे यह अँचरा सा कैसे होता आ रहा है ? यह घूब यहाँसे छा गयी ’ ॥ ७ ॥ इस समय न तो औंधी ही चख रही है और न कहीं छुन्नेही सुन जाते हैं क्योंकि अपराधियों को कटोरे दण्ड उनका रात्रा प्राचीनवर्हि अमी जाति है । अमी गौर्कि आनका समय भी नहीं हुआ है । फिर यह घूब कइसे आपी ? क्या इमी समय संसारका प्रलय तो नहीं होनेवाला है ? ॥ ८ ॥ तब लक्ष्मी प्रमूनि एव अन्य मियों व्याकुल होकर कहा— प्रतापति दक्षन अपनी सारी कन्याओंके सामने ध्वारा निरपराधा सनीका तिरस्कार किया था, माधुम होता है यह उसी पापका फल है ॥ ९ ॥ (अथवा हा न हा यह महारमूर्ति भगवान् रुद्रके अनान्तरका ही परिणाम है ।) प्रलयकाळ उपस्थित हानपर त्रिम समय वे अपने जगन्मूक विभरकर तथा दान्याभोसे सुमजिन अपनी मुत्राओंको वज्राओंक समान पैनापर ताण्डव नृत्य करते हैं, उस समय उनके त्रिशूलक फलोंसे तिम्रिज बिध जात है तथा उनके भवजानके ममान भयहूर अदृहासने निशाने निर्माण हो जाते हैं ॥ १० ॥

अमर्षयित्वा समसद्भावेजस
मन्युप्तुतं दुर्विषहं झुफुटया ।
करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागध
स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥११॥

यद्भवमुद्दिग्गन्धोऽप्यमाने
जनेन दक्षस्य मुहुर्महात्मनः ।

उत्पेतुरुत्पातवताः सहस्रशो

भयत्पहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥१२॥

तावत्स रुद्रानुचरैर्मत्सो महान्
नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ।

पिंङ्गैः पिशङ्गैर्यकरोद्वराननैः
पर्याद्रवन्निर्विदुरान्वरुध्यत ॥१३॥

केचिद्रमञ्जुः प्राम्बशं पत्नीशालां तषापरे ।

सद आग्नीध्रशालां च तद्विहार महानसम् ॥१४॥

रुंरुच्यैर्गुणपात्राणि तथैकेऽम्नीननाल्लयन् ।

कुण्डम्बमूत्रयन् कर्चिद्रिभिर्दुर्वेदिमेललाः ॥१५॥

अवाधन्त मुनीर्नन्य एके पत्नीरवर्जयन् ।

अपरे जगद्दुर्देवान् प्रत्यासन्नान् पलायितान् ॥१६॥

भृगुश्च मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिम् ।

चण्डीशः पूषण देव भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥१७॥

सर्व एवर्षिजो दृष्टा सदस्याः सदिवाकसः ।

तेरर्घ्यमानाः सुभृशं प्रायभिर्नैकधाद्रवन् ॥१८॥

उस समय उनका चेज अलगा होता है, वे अपनी मूर्ति टेढ़ी पतनेके कारण बड़ा दुर्दर्प जान पड़ते हैं और उनकी विकृताल दाहोंसे तारागण अस्त श्रुत हो जाते हैं । उन क्रोधमें मरे हुए भगवान् शङ्करको बार बार कुपित करनेवाला पुरुष साक्षात् विधाना ही क्यों न हो—क्या कभी उसका कल्याण हो सकता है ? ॥ ११ ॥

जो छाग म्हात्मा दक्षके यज्ञमें बैठे थे, वे भयके कारण एक-दूसरेकी ओर कातर दृष्टिसे निहारते हुए ऐसी ही तरह-तरहकी बातें कर रहे थे कि इतनमें ही आकाश और पृथ्वीमें सय और सहस्रों मयङ्कर उत्पन्न होने लगे ॥ १० ॥ विदुरनी । इसी समय त्रीशकर आये हुए रुद्रसेवकोंने उस म्हात्म् यज्ञमण्डपको सज औरसे घेर लिया । वे सब तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे । उनमें कोई बीने, कोई मूरे रंगके, कोई पिले और कोई म्मारक समान पेट और मुस्ताने थे ॥ ११ ॥ उनमेंसे किन्हींने प्रार्थना (यज्ञशाळाके पूर्व और पश्चिमके खमोंके बीचमें आकर रखते हुए डंडे) को तोड़ बाँटा, किन्हींने यज्ञशाळाके पश्चिमकी ओर स्थित पत्नी शाळाको नष्ट कर दिया, किन्हींने यज्ञशाळाके सामन्य समाम्बप और मण्डपके आगे उत्तरकी ओर स्थित आग्नीध्रशाळाको तोड़ दिया, किन्हींने यज्ञमानगृह और पाकशाळाको तहस-नहस कर बाँटा ॥ १२ ॥ किन्हींने यज्ञके पात्र फोड़ दिये, किन्हींने अग्निपोंको बुझा दिया, किन्हींने यज्ञकुण्डोंमें पेशाब कर दिया और किन्हींने बेनीकी सीमाके सूत्रोंको तोड़ बाँटा ॥ १५ ॥ कोई कोई मुनियोंको तंग करने लगे कोई शिष्योंका डराने-धमकाने लगे और किन्हींने अपने पास होकर म्हाते हुए देवताओंको पकड़ लिया ॥ १६ ॥ मणिमान्ने भृगु ऋषिको बाँध लिया वीरभद्रेने प्रजापति दक्षको कैद कर लिया तथा चण्डीशने पूषाको और नन्दीधरने भग देवताको पकड़ लिया ॥ १७ ॥

भगवान् शङ्करक पार्ष्णिकी यह मयङ्कर लीजा देखकर तथा उनका ककड़-पत्थरोंकी मारसे बहुत तंग आकर बहों भित्तम श्रुतिज्ञ, सत्य और वक्ताओंग थे, सब-के-सब जहाँ-तहाँ भाग गये ॥ १८ ॥

उद्धत सुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः ।

सुगोर्लुङ्गस्य सदसि योऽहसंस्पर्शमश्नु दृश्यन् ॥१९॥

भगस्य नेत्र भगवान् पातितस्य रुपांशुणि ।

उज्जहार सुदाम्योऽरुणायाः क्षपन्तमर्धसुषुप्तम् ॥२०॥

पूग्मन्नापातयन्तान् कालिङ्गस्य यथा बल ।

क्षप्यमाने गरिमणि योऽहसंस्पर्शमन्दतः ॥२१॥

आक्रम्योरसि दक्षस्य शिथभारण हेतिना ।

छिन्दन्नपि तदुद्धतं नाशकृतौ श्मश्रुकन्तदा ॥२२॥

शस्त्रैश्चात्रितैरेवमनिर्मिक्तत्वं हरः ।

विसर्गं परमापन्नो हृष्यौ पञ्चपतिविरम् ॥२३॥

हृष्ट्य संवृण्वन् योगं पशूनां स पतिमखे ।

यज्ञमानपक्षाः कस्य कामाचेनाहरश्छिरः ॥२४॥

साधुवादस्तदा तेषां कर्म तपस्य शंसताम् ।

मृतप्रेतपिशाचानामन्वेष्टां तद्विपर्ययः ॥२५॥

मुदावैतच्छिरस्सिन्दधिणाप्रावमर्षितः ।

तदेवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठुः शुष्मकालयम् ॥२६॥

धनुजी हाथमें सुना छिये हथन कर रहे थे । धीरमन्त्रने इनकी दाही-मूँ नोच लीं, क्योंकि इन्होंने प्रजापतियोंकी समामें मूँछें रेंठते हुए महादेवजीको उपहास किया था ॥ १९ ॥

उन्होंने क्षोभमें भरकर भगवत्ताको पृथ्वीपर पटक दिया और उनको ओंखें निकल छीं, क्योंकि जब दक्ष दश समामें श्रीमहादेवजीको घुरा-भला कहते हुए शाप दे रहे थे, उस समय इन्होंने दक्षको सैन देकर उकसाया था ॥ २० ॥ इसके पश्चात् जैसे अनिरुद्धके विनाहके समय बलरामजीन कञ्जिहाराके दौत उल्लास थे, उसी प्रकार उन्होंने पूजाके दौत तोड़ दिये, क्योंकि जब दक्षने महादेवजीको गाछियों दी थीं, उस समय ये दौत दिखाकर हँसे थे ॥ २१ ॥ फिर वे दक्षकी छातीपर बैठकर एक ठेक ठलहारसे उसका सिर काटन लगे, परन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे उस समय उसे बचसे छुटाना कर सके ॥ २२ ॥ जब किसी भी प्रकारके बल शक्तसे दक्षकी लवा नहीं कटी तब धीरमन्त्रको वडा आश्चर्य हुआ और वे बहुत देरतक विचार करते रहे ॥ २३ ॥ तब उन्होंने पञ्चमण्डपमें पञ्चपशुओंको जिस प्रकार मारा जाता था, उसे देखकर उसी प्रकार दक्षरूप उस यज्ञमान पञ्चक सिर बचसे छुटाना कर दिया ॥ २४ ॥ यह देखकर मृत, प्रेत और पिशाचादि तो उनके इस कर्मकी प्रशंसा करते हुए 'वाह-वाह' करने लगे और दक्षके दण्डाजमें बाह्यकर मच गया ॥ २५ ॥ धीरमन्त्रने अत्यन्त क्रुपित होकर दक्षके सिरको पञ्चपशु दक्षिणाम्निमें डाल दिया और उस पञ्चशालामें आग लगाकर यज्ञको विध्वंस करके वे कौशासपर्वतको ऊपर गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्श्यां संक्षिप्तार्थां चतुर्थस्कन्धे दृष्टयज्ञ

विध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पष्ठोऽध्यायः

प्रजापतिं ह्यथतामोक्षं कैलासं जायते श्रीमहादेवजीको ममाना

मेवम उवाच

अथ दशगणा सर्वे रुद्राणीकैः पराक्षिता ।

शूलपट्टिशनिस्त्रिशगदापरिचमुद्रैः ॥ १ ॥

१ मा पा — मसृजयत् । २ मा पा — प्राचीन मतिमें पूजाया

भगने से स्पर्शके बाद है । ३ मा पा — दक्षप्रधमन पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी । इस प्रकार जब

उमके सेवकोंमें समस्त देवताओंको इरा दिया और उनके

सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्ग मूल-प्रैतोंके त्रिशूल पट्टिश, खड्ग,

'हरश्चन्दत' यह स्त्रीक

मल्लिभभिन्नसर्वाङ्गाः सन्निवृत्तसम्या भयाकुलाः ।

स्वयम्भुव नमस्कृत्य क्रातस्त्वेनैतन्मयवेदयन् ॥ २ ॥

उपलम्भ्य पुरैर्वैतङ्गगवानञ्जसम्भषः ।

नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याप्यरमीयतुः ॥ ३ ॥

सदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कुतागसि ।

धर्मोय सत्र सा भूषाश्च प्रावेण धुमूपाताम् ॥ ४ ॥

अथापि यूयं कुतकिञ्चिन्निषा भव

य बहिषो भागभावं परादुः ।

प्रसादयन् परिशुद्धचेतसा

क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताक्षिपयन् ॥ ५ ॥

आशासाना जीवितमप्यरस्य

लोकः सपाठं कृपिते नयस्मिन् ।

तमाशु देवं प्रियया विहीनं

धृमापयन् हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥ ६ ॥

नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये

ये वेदभाजा ह्यनयश्च तत्त्वम् ।

विदुः प्रमाणं बलवीर्ययार्था

यस्मात्तन्त्रस्य क उपाय विधित्सेत् ॥ ७ ॥

स इत्यमादिष्य सुरानजस्तैः

समन्वितं पितृभिः सप्रजेशैः ।

ययौ स्वप्रिण्मभिलषं पुरदिषः

कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभो ॥ ८ ॥

ज मोपधितपोमन्त्रयागसिद्धनरैरतैः ।

सुष्टं किनरगर्भर्वरप्यराभिर्भूतं सदा ॥ ९ ॥

गता, परिध और मुद्रा आदि आयुधोंसे विभू-मिन्न हो गये तब ये ऋषिभूत और सदस्योंके सहित बहुत ही डरकर ब्रह्माजीके पास पहुँचे और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १२ ॥ भगवान् ब्रह्माजी और सर्वात्म्यामी श्रीनारायण पहलेसे ही इस भाषी उत्पातको जानते थे, इसीसे वे दक्षक यज्ञमें नहीं गये थे ॥ ३ ॥ अब देवताओंके मुखसे कौनकी सारी बात सुनकर उन्होंने कहा, 'देवताजी ! परम समर्थ तेजस्वी पुरुषसे कोई दाप भी बन जाय, तो भी उसके बदलेमें अपराध करनेवाले मनुष्योंका भय नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ फिर तुमजोगोंने तो यज्ञमें भगवान् शाङ्करका प्राप्य भाग न देकर उनका बड़ा मारी अपराध किया है । परन्तु शाङ्करजी बहुत शीघ्र प्रसन्न होनवाले हैं, इसलिये तुमजोग कुछ हृदयसे उनके पर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो—उनसे क्षमा माँगो ॥ ५ ॥ दक्षके दुश्चनरूपी बाणोंसे उनका हृदय तो पहलेसे ही क्षिप्त रहा था, उसपर उनकी प्रिया सतीश्रीका नियोग हो गया । इस लिये यदि तुमजोग चाहें तो पहलेसे अच्छी जाकर उनसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगो । नहीं तो, उनके क्रुपित होनपर लोकपालोंके सहित इन समस्त लोकोंका भी बचना असम्भव है ॥ ६ ॥ भगवान् ह्म परम सतन्त्र हैं, उनके तत्त्व और शक्ति-सामर्थ्यको न तो कोई ऋषि-मुनि, देवता और यज्ञस्वरूप देवराज इन्द्र ही जानते हैं और न स्वयं मैं ही जानता हूँ; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है । ऐसी अवस्थाने उन्हें शान्त करनेका उपाय कौन कर सकता है ॥ ७ ॥

देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी उनके, प्रभावप्रियोंको और सितसेको साथ ले अपने लोकसे पवतभूत कैलासको गये, जो प्याधान् शाङ्करका प्रिय भाग है ॥ ८ ॥ उस कैलासपर ओपधि, तप, मन्त्र तथा योग आदि उपायोंसे सिद्धिके प्राप्त हुए और जन्मसे ही सिद्ध देवता नित्य निवास करते हैं किन्तु, गर्भर्ष और अन्तरा आदि सत्ता नहीं बन रहते हैं ॥ ९ ॥

नानामणिमयैः शृङ्गेर्नानाधातुविधिव्रितैः ।

नानाद्रुमलतागुह्यमैर्नानामृगगणावृतैः ॥१०॥

नानामलप्रसन्नवर्णैर्नानाकन्दरसानुभिः ।

रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धसोपिताम् ॥११॥

मयूरकेकाभिरुतं मदन्धातिरिमृच्छितम् ।

प्लोवितैरककण्ठानां कृजितैश्च पतत्रिणाम् ॥१२॥

आह्वयन्तमिवोद्गस्तैर्द्रिजान् कामदुर्बुधैर्भुम्भैः ।

प्रवन्तमिव मातङ्गैर्गुणन्तमिव निर्झरैः ॥१३॥

मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ।

तमालैः शालग्रामैश्च कोविदारसनाञ्जुनैः ॥१४॥

पूतैः कदम्बैर्नर्पिण्डैश्च नागपुष्पागचम्पकैः ।

पाटलाशोकवृक्षैश्च कुन्दैः कुरनैरपि ॥१५॥

खगोर्णशतपत्रैश्च वररेशुकजातिभिः ।

कृष्णकर्मलिकामिश्रमाधवीभिश्च मण्डितम् ॥१६॥

पनमादुम्बरास्तत्पुष्पान्प्रोदद्दिह्नुभिः ।

मूर्जरापधिभिः पूर्णैः राक्षपूरैश्च जम्बुभिः ॥१७॥

स्नेह्रात्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकुन्दैः ।

ह्रमजातिभिरन्यैश्च राश्रितैश्चैणुकीचकैः ॥१८॥

कुमुदोत्पलवल्गुहारशतपत्रवनदिभिः ।

नलिनीषु कलं कृजस्वगङ्गन्दापशोभितम् ॥१९॥

उसके मणिमय शिखर हैं, जो माना प्रकरकी धातुओंसे रंग-
विरगे प्रतीत होते हैं । उसपर अनेक प्रकारके वृक्ष,
छता और गुन्पाटि छाये हुए हैं, जिनमें सुन्दर-के-सुन्दर
जंगली पशु निचरते रहते हैं ॥ १० ॥ वहाँ निर्मल
जलके अनक्तों भरने बहते हैं और बहुत-सी गहरी
कन्दरा और ऊँचे शिखरोंके कारण वह पर्वत अपने
प्रियतमोंके साथ बिहार करती हुई सिद्धपत्नियोंका क्रीडा-
स्थल बना हुआ है ॥ ११ ॥ वह सब ओर मोरोंके शोर,
मदाम्भुज नमरोंके गुंजार, कोयलोंकी कुहू कुहू ध्वनि तथा
अन्यान्य पक्षियोंके कल्यबसे गूँज रहा है ॥ १२ ॥ उसके
कल्पवृक्ष अपनी ऊँची ऊँची ढाड़ियोंको हिसा हिसाकर
मानो पक्षियोंको बुलाते रहते हैं । तथा हाथियोंके चलने
तिरनक कारण वह कैलास स्वयं चक्रेता हुआ-सा और
छरनोंकी काठकल-ध्वनिसे घातघात करता हुआ-सा जान
पड़ता है ॥ १३ ॥

मन्दार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़,
कचनार, असन और अर्जुनके वृक्षोंसे वह पर्वत बड़ा
ही सुहावना जान पड़ता है ॥ १४ ॥ आम, कदम्ब,
नीप, नाग, पुष्पाग, चम्पा, गुडाक, अशोक, मौलसिरी,
कुन्द, कुरकय, सुनहरे क्षणप्र कमल, इलायची और
माछतीकी मनोहर छत्रों तथा कुम्भक, मोगरा और
मायवीकी बल्ले भी उसकी शोभा बढ़ाती हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥
कटहल, गूलर, पीपल, पाकर, मय गूण्ड, भाजवृक्ष
औरपि जातिके पेड़ (कन्दे आदि, जो फल आनक बाद
काट लिये जाते हैं), सुपारी, राजगूग, जामुन, लडूर,
आमका, आम, पियाज, महुआ और तिलीका आदि
विभिन्न प्रकारके वृक्षों तथा पाले और अम बौसक
सुरमुदोंसे वह पर्वत बड़ा ही मनोहर मादय बना है
॥ १७-१८ ॥ उसका सरोवरमें कुमुद, नन्दाक करार
और रातप्र आदि अन्य जातिके कमल फलित रहते
हैं । उनकी शोभासे सुष दोषर करार करत हुए
हृदयके सुन्दर पक्षियोंके वह बड़ा ही मग मगता है ॥ १९ ॥

१ मा प — निन्दकरनपरिग्रह । २ मा प — मुखी । ३ मा प — वृक्षः कदम्बनिर्भय । ४ मा

प — तः वनेषु पत्रजम्बुभिः । ५ मा प — क्षरमर्षाणां । ६ मा प — जम्बुकीभिः कल ।

मृगैः शालामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ध्रुवधर्यकैः ।

गवयै शरमैर्घ्याघ्रै रुधिरमहिषादिभिः ॥२०॥

कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्ट शुकनाभिभिः ।

कदलीपण्डसरुद्धनलिनीपुलिनभिषम् ॥२१॥

पर्यस्तं नन्दया सत्याः ज्ञानपुण्यतरोदया ।

विलोक्य भूतेष्वगिरिं विबुधा विस्मय ययुः ॥२२॥

ददृशुस्तत्रै ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् ।

वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पञ्चजम् ॥२३॥

नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः ।

तीर्थपादपदाम्भोजरत्नसातीव पावने ॥२४॥

ययोः सुरक्षितः क्षरत्पुरुष स्वधिष्ण्यतः ।

क्रीडन्ति पुंसःसिञ्चन्त्यो विगाद्य रतिकक्षिताः ॥२५॥

ययोस्तत्त्वानविभ्रटनबहुभूमिपुञ्जरम् ।

वितृपोऽपि पिबन्त्यम्मःपाद्यमन्तो गन्धगन्धीः ॥२६॥

तारहेममहारत्नविमानशतसङ्कलाम् ।

छुष्टां पुण्डजनस्त्रीभिर्धया ख सतस्त्रिवृषणम् ॥२७॥

दित्वा यथेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् ।

ध्रुमैः कामधुवैर्हृद्यै चित्रमाख्यफलच्छदैः ॥२८॥

रक्तकण्ठलगानीकस्वरमन्त्रितपट्पद्मम् ।

वहाँ जहाँ-सहाँ हरिण, शानर, सूकर, सिंह, रीछ, साही, मीछगाय, शरम, बाघ, कृष्णमृग, भैले, कर्णान्त्र, एकपद, वज्रमुख, मोड़िये और कस्तूरी-मृग धूमते रहते हैं तथा वहाँके सरोवरोंके तट केछोंकी पक्षियोंसे घिरे होनेके कारण वही शोभा पाते हैं । उसके चारों ओर नन्दा नामकी नदी बहती है, जिसका पवित्र जल देवी सतीके स्नान करनेसे और भी पवित्र एवं सुगन्धित हो गया है । मगवान् मृतनामके निवास स्थान उस कौटिल्यसर्पवतकी ऐसी रमणीयता देखकर देव-लोकों बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २०-२२ ॥

वहाँ उन्होंने अच्छा नामकी एक सुरम्य पुरी और सौगन्धिक वन देखा, जिसमें सर्वत्र सुगन्ध फैलनवाले सौगन्धिक नामके कमल खिले हुए थे ॥२३॥ उस नगरके बाहरकी ओर नन्दा और अक्षयनन्दा नामकी दो नदियों के तीर्थपाद धीहरिकी चरणरत्नके संयोगसे उत्पन्न पवित्र हो गयी हैं ॥ २४ ॥ विदुरजी । उन नदियोंमें रसिविहाससे वही हुई देवप्रानाएँ वन-वने निवासस्थानसे आकर जलक्रीडा करती हैं और उसमें प्रवेशकर अपने क्षिपतमोपर अल तल्लीन होती हैं ॥ २५ ॥ वनके समय वनका सुरतकण्ड लगाया हुआ कुचकुचुन पुत्र जागेसे अल पीछा हो जाता है । उस कुचुनमिश्रित जलको हाथी प्यास न होनेपर भी गन्धके लोभसे लप पीते और अपनी हथिनियोंको पछाते हैं ॥२६॥

अजकपुरीपर चोरी, सोने और बहुमान्य मणियोंके सैकड़ों विमान उड़े हुए थे जिनमें कनेकें यक्षपत्तियों निवास करती थीं । इनके कारण वह विशाख नगरी विजयभी और बादलोंसे छाये हुए आकाशके समान जाल पड़ती थी ॥ २७ ॥ यक्षराज कुन्तेकी राजधानी उस अक्षयपुरीको पीछे छोड़कर देवगण सौगन्धिक वनमें जाये । वह वन रंग-बिरंगे फल, फूल और पतोंवाले वनको कम्पनवालोंसे सुशोभित था ॥२८॥ उसमें कोकिल आदि पक्षियोंका कलरव और मौरोंका गुंजार हो रहा था

१ प्रा पा — शाल । २ प्रा पा — कस्तूरपरी वनमैर्निर्जुष्ट मृगनाभिभिः । ३ प्रा पा — तस्य ते ।

४ प्रा पा — रतिकक्षिताः । ५ प्रा पा — ध्रुवैर्जुष्ट ।

कलईसङ्कलप्रेष्टस्वरदण्डजलाशयम् ॥२९॥

वनहृत्सरसंभृष्टहरिचन्दनवायुना ।

अधि पुण्यवनस्त्रीणां सुदुर्लभमर्थमनः ॥३०॥

वैदर्भकृतसोपाना घाप्य तत्पलमालिनीः ।

प्राप्ताः किम्पुरुषैरद्रा त आराधयद्भूर्वटम् ॥३१॥

सं योजनशतोरसेधः पादोनपिटपायतः ।

पर्यङ्कठाचलच्छाया निर्नीकस्तापवर्धितः ॥३२॥

तस्मिन्महायोगमये सुसुषुम्णने सुराः ।

दृष्ट्वाः क्षिप्रमासीन् तत्पक्वमर्पमिषान्तकम् ॥३३॥

संनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः सञ्चान्तविग्रहम् ।

उपास्मान सख्या च भद्रा शुभकरशसाः ॥३४॥

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमभीष्टम् ।

चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्यारलोकमङ्गलम् ॥३५॥

लिङ्गं च तापसाभीष्टं भसादण्डवटाजिनम् ।

अङ्गेन संध्याव्रतवा चन्द्रलेलां च विभ्रतम् ॥३६॥

उपविष्टं दर्भमय्यां वृक्षां शशा सनातनम् ।

नारदाय प्रबोधन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३७॥

कृत्योरी दक्षिणे सव्य पादपथं च जानुनि ।

बाहु प्रकोष्ठेऽश्वमालामासीन् सर्वमुद्रया ॥३८॥

तं ब्रह्मनिर्वाणसमाभिमाभितं

भ्युपाभितं गिरिर्षं योगकश्याम् ।

तथा राजर्षसौकिपरमप्रिय कमलकुसुमोसे सुरोमित अनेको
सरीवर थे ॥ २९ ॥ वह वन जंगली हाथियोंके शरीरकी
रगव अंगनेसे घिसे हुए हरिचन्दन वृक्षोंका स्पर्श करके
चलनेवाली सुगन्धित वायुके द्वारा यक्षपत्नियोंके मनको
विशेषरूपसे मये बाधता था ॥ ३० ॥ बावर्हियोंकी सीढ़ियों
वैदर्भगणिकी बनी हुई थी । उनमें बहुत-से कमल
खिले रहते थे । वहाँ अनेकों किम्पुरुष भी बहुमानके लिये
आये हुए थे । इस प्रकार उस वनकी शोभा निहारते जब
देवगण कुछ आगे बढ़े, तब उन्हें पास ही एक वटवृक्ष
दिखलगी दिया ॥ ३१ ॥

वह वृक्ष सौ योजन ऊँचा था तथा उसकी शाखाएँ
पचहत्तर योजनतक फैली हुई थी । उसके चारों ओर
सर्वदा अविच्छन्न छाया बनी रहती थी, इसलिये वामक
कष्ट कभी नहीं होता था, तथा उसमें कोई घोंसल भी
न था ॥ ३२ ॥ उस महायोगमय और सुसुषुम्णोंके
आश्रयभूत वृक्षके नीचे देवताओंने मगधान् बाहुरको
क्रान्तमान देखा । वे साक्षात् श्रेष्ठहीन कण्ठके समान
ज्ञान पकते थे ॥ ३३ ॥ मगतान् मूलनायक श्रीअङ्ग वडा ही
शान्त था । संनन्दनादि शान्त सिद्धगण और सख्य—यक्ष
राक्षसोंके सामीप्यमें उनकी सेवा कर रहे थे ॥ ३४ ॥ ब्रह्मपति
महादेवभी सारे संसारके सुहृद् हैं, स्नेहवश सबका कल्याण
करनेवाले हैं, वे लोकहितके लिये ही उपस्थिता, विचकी
एकप्रभता और समाधि आदि साधनोक्त आचरण करते
रहते हैं ॥ ३५ ॥ सन्ध्याकालीन मेघकी-सी कान्ति
वाले शरीरपर वे तपस्वियोंके असीष्ट चिह्न—मस्म, दण्ड,
जटा और युगचर्म एवं मस्तकपर चन्द्रकला चारण किये हुए
थे ॥ ३६ ॥ वे एक कुशासनपर बैठे थे और अनेकों साधु
श्रोताओंके बीचमें श्रीनारदकी पृष्ठनेसे सनातन ब्रह्मका
उपदेश कर रहे थे ॥ ३७ ॥ उनका बायाँ अंग दायाँ ओरपर
रक्ता था । वे बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रखते, कश्यामि
रुद्राक्षकी माला वाले तर्कमुद्रासे विरागमयन थे ॥ ३८ ॥
वे योगपट्ट (कजठकी बनी हुई टेकनी) का सहारा लिये
एकप्रभ विपत्तसे ब्रह्मानन्दका अनुभव कर रहे थे । ओकताओं-

१ प्रा पा —संमृष्ट । २ प्रा पा —मयमयः । ३ प्रा पा —उपयोजनसुतेषः । ४ प्रा पा —ऊनचरी ।

५ प्रा पा —योगसमाधिच्छाया ।

* तर्कनीको अँगुठसे ओढ़कर अन्य अँगुलियोंके आश्रयमें मिथ्याकर देखा देनेसे ओ कण्ड लिख होता है उसे तर्कमुद्रा
कहते हैं । इसका नाम ज्ञानमुद्रा भी है ।

सलोकपाला मुनयो मनुना

माय मनु प्राञ्जलयः प्रणेष्टुः ॥४९॥

स त्वलम्पागतमात्मयोनिं

सुरासुरेश्वरभिवन्दिषाच्छ्रिः ।

उत्थाय शक्रे शिरसाभिर्वन्दन

महत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥५०॥

तथापरे मिदगणा महर्षिभि

ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ।

नमस्कृत प्राह शशाङ्केश्वरं

कृतप्रणाम प्रहसन्निवात्मसूः ॥५१॥

महापात्र

ज्ञाने त्वामीश्वरिण्यस्य जगतो मोनिषीक्यो ।

शक्तेः शिवस्य च परं पञ्चदश निरन्तरम् ॥५२॥

स्वमेव भगवन्नेतच्छिवश्चक्योः सरूपयो ।

विश्वं सृजसि पात्यसि स क्रीडन् नूर्णपटो यथा ॥५३॥

स्वमेव धर्मार्थदुष्पाभिपश्ये

दक्षेण व्यूषण समञ्जिथाध्वरम् ।

स्यैव लोकेऽवसिताय सेतवो

या प्राप्सणाः धरधत्ते घृतप्रताः ॥५४॥

त्व कर्मणां मङ्गल मङ्गलानां

कर्तुः स लोकां तनुये स्य परं वा ।

अमङ्गलानां च तमिस्रमुत्थर्ष

विषयः स न तद्वद कस्यचित् ॥५५॥

न वै सतां स्वचरणार्पितारमनां

भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तैम ।

भूतानि चान्मन्येषूपदिदृशतां

प्रायेण राषाडभिभवद्यथा पशुम् ॥५६॥

पृथग्भिद्य कमदया दुराशया

परादयेनार्पितइदुमाऽनिरुम् ।

के सहित समस्त मुनियोंने मनशीकोंमें सर्वश्रेष्ठ मान्त्र
शास्त्रको हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ यथैव
समस्त देवता और दैत्योंके अधिपति भी श्रीमहादेवकी
धरणात्मकोकी कन्दना करते हैं, तथापि वे श्रीमहादेवकी
अपने स्थानपर व्यापा देख दुरंत लड़े हा गये और जैसे
शामनाकृतारमें परमपूज्य विष्णुभगवान् कश्यपकी कन्दना
करते हैं, उसी प्रकार सिर छुकाकर उन्हें प्रणाम
किया ॥ ५० ॥ इसी प्रकार शास्त्रकी चारों ओर जो
महर्षियोंसहित अन्यान्य सिद्धगण बैठे थे, उन्होंने
भी महादेवकी प्रणाम किया । सबके मनस्फुर कर
तुलनेपर महादेवने कन्त्रमौलि भगवान्से, आ कसक
प्रणामकी मुद्रामें ही लड़े थे, इससे हुए कहा ॥ ५१ ॥

श्रीमहादेवने कहा—देव ! मैं जानता हूँ, आप सम्पूर्ण
जगत्के स्वामी हैं, क्योंकि विश्वकी योनि शक्ति (प्रवृत्ति)
और उसके तीन शिव (पुरुष) से परे जो एकलस
पञ्चस है, वह आप ही हैं ॥ ५२ ॥ मान्त्र ! आप
मन्त्रीके समान ही अपने स्वरूपमूल शिव-शक्तिके रूपमें
क्रीडा करते हुए कीलसे ही संसारकी रचना, पालन और
संहार करते रहते हैं ॥ ५३ ॥ आपने ही धर्म और अधर्मकी
प्राप्ति करानेवाले वेदकी रक्षाके लिये दक्षको नियुक्त
कराकर यज्ञको प्रकट किया है । आपकी ही बौद्धि हुई
ये वर्णाश्रमकी मर्यादाएँ हैं, विनियम नियमनिष्ठ शास्त्र
यज्ञापूर्वक पाठन करते हैं ॥ ५४ ॥ मङ्गलमय मन्त्रों
आप शुभ कर्म करनेवालोंको स्वर्गात्मेक अथवा मोक्षार्थ
प्राप्त करते हैं तथा पापकर्म करनेवालोंको घोर मरकमें
बालते हैं । फिर भी किसी-किसी व्यक्तिके लिये इन
कर्मोंका पछ उन्हा कैसे हो जाता है ? ॥ ५५ ॥

जो महानुभाव आपके धरणादि अपनेका समर्पित
कर देते हैं, जो समस्त प्राणियोंमें आपकी ही शक्ति करते
हैं और समस्त जीवोंको अभ्येष्टिसे आपामें ही देखते हैं,
वे पशुजोके समान प्राय मोक्षके अधीन नहीं होते ॥ ५६ ॥
जो कीम मेदयुक्ति ज्ञानके कारण कर्ममें ही आसक्त हैं,
जिनकी भीयत अच्छी नहीं है, दूसरोंकी उन्नति देखकर
जिनका धित राग-द्वेष बुरा करता है और जो मर्ममें

परान् दुरुक्तैर्षितुदन्त्यरुन्तुदा
स्तान्मा वर्षीहैर्वर्षधान् भवद्विधः ॥४७॥

यस्मिन् यदा पुष्कन्तनाभमायया
दुरन्तया स्पृष्टधियाः पृथग्दृष्टः ।
कुर्वन्ति तत्र क्षलुकम्यया कृपां
न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥४८॥

भवांस्तु पुंसः परमस्य भावया
दुराठयास्पृष्टमतिः समस्तरक् ।
तथा हतात्मस्वलुकर्मचेतः
स्वलुप्रई कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥४९॥

कुर्वन्वरस्रोद्धरणं इतस्त भोः
त्वयासमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ।
न यत्र भाग तैव भागिनो ददुः
कृपज्जिना येन मत्सो निनीयते ॥५०॥

ब्रीहतायजमानोऽयं प्रपद्येतास्त्रिणी भगः ।
सुगो बभूवुर्गि रोहन्तु पूष्पा दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५१॥
देवानां भगमात्राणामृत्विक्षां चायुधाभ्रमभिः ।
भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽम्प्यनातुरम् ॥५२॥
एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिद्योऽम्बरस्य वै ।
यद्वस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यद्वहन् ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पारमहंसां संहितायां चतुर्थस्कन्धे रुद्रसन्तनं

नाम पद्योऽध्याय ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्याय

वक्ष्यकृषी पूर्ति

नेत्रेय उवाच

इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ।
मन्यधापि महाबाहो प्रहस्य धृपतामिति ॥ १ ॥

अज्ञानी अपने दुर्बलधर्मोंसे दूसरोंका विष दुखाया करते हैं, आप-जैसे महापुरुषोंके लिये उन्हें भी मारना उचित नहीं है, क्योंकि वे बेचारे तो विधात्यके ही मारे हुए हैं ॥७७॥ देवदेव ! मगवान् कमळनामकी प्रबल मायासे मोहित हो जानेके कारण यदि किसी पुरुषकी कमी किसी स्थानमें भेदबुद्धि होती है, तो भी साधुपुरुष अपने परदुःखकारण स्वभावके कारण उसपर कृपा ही करते हैं; दैववशा ओ कुछ हो जाता है, वे उसे रोकनेका प्रयत्न नहीं करते ॥७८॥

प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, परम पुरुष मगवान्की दुस्तर मायाने आपकी बुद्धिको स्पर्श भी नहीं किया है । अतः जिनका विष उसके बलीभूत होकर कर्ममार्गमें आसक्त हो रहा है, उनके द्वारा अपराध बन जाय, तो भी उनपर आपको कृपा ही करनी चाहिये ॥७९॥ मगवन् ! आप सबके मूल हैं । आप ही सम्पूर्ण यज्ञोंको पूर्ण करनेवाले हैं । यज्ञभाग पानेका भी आपको पूरा अधिकार है । फिर भी इस दक्षपक्षके बुद्धिहीन पात्रकर्तोंने आपको यज्ञभाग नहीं दिया । इसीसे यह आपके द्वारा विष्वस्त हुआ । अब आप इस बहुर्य यज्ञका पुनरुद्धार करनेकी कृपा करें ॥ ५० ॥ प्रभो ! ऐसा कीजिये, जिससे यजमान दक्ष फिर जी उठे, भगवत्पताको नेत्र मिल जायें, मृगजी-के दाही-मूँठ आ जायें और युवाक पहलेके ही समान दाँत निकल जायें ॥ ५१ ॥ रुद्रदेव ! अब शस्त्र और पत्थरोंकी बौद्धारसे जिन देवता और श्रुतिजनोंके अङ्ग प्रत्यङ्ग बाधक हो गये हैं, आपको कृपासे वे फिर ठीक हो जायें ॥ ५२ ॥ यह सम्पूर्ण हानेपर जो कुछ क्षेप रहे, वह सब आपको भाग होगा । पक्षविष्वसक ! आज यह यह आपके ही भागसे पूर्ण हो ॥ ५३ ॥

श्रीमहादेव उवाच

नार्चं प्रेक्षेष्ट बालानां वर्णये नानुचिन्तये ।

देवमायाभिभूतानां दम्भस्तैश्च श्रुतो मया ॥ २ ॥

प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्मो भवत्स्वजमुत्तं शिरः ।

मित्रस्य यदुपेक्षेत् भारं स्वं बहिषो भगः ॥ ३ ॥

पूषा तु यजमानस्य दक्षिर्ज्वर्यतु पिष्टशुक्लं ।

देवाः प्रकृतसर्वाङ्गं ये न उच्छेदयन् ददुः ॥ ४ ॥

बाहुभ्यामग्निनोः पूष्णा इत्ताम्बां कृतपाहवः ।

मवत्स्वध्वर्यवद्भ्यान्वे बल्लभमभुर्मुग्धमिवत् ॥ ५ ॥

मेत्रेय उवाच

तदा सर्वाणि भूतानि भुत्वा मीढुष्टमोदितम् ।

परितुष्टात्मभिस्ताव साधु साञ्चित्स्वपाशुबन् ॥ ६ ॥

तदा मीढ्वांसमामन्त्र्य श्रुतासीराः सार्षिभिः ।

भूयस्तद्देववर्जनं समीद्बद्धेभसो ययुः ॥ ७ ॥

विधाय कास्तन्मैनं च तद्यदाह भगवान् भवः ।

संवयुः कस्य कायेन सवनीयपद्योः शिरः ॥ ८ ॥

संधीयमाने शिरसि दक्षो कृप्राभिर्वीक्षितः ।

सद्यः सुप्तश्चोत्थौ दृष्ट्वा चाग्रतो मूढम् ॥ ९ ॥

तदा वृषभजद्वेषकलितारमा प्रजापतिः ।

शिवावलाकादमभच्छरद्भद्र इवामलः ॥ १० ॥

मवत्स्वपाय कृतधीनाशक्रोदनुसगतः ।

औत्कण्ठ्याप्राप्यकृतया सम्परेतां सुतां करन् ॥ ११ ॥

कृष्णारभन्तस्य च मनः प्रमथिह्वलितः सुधीः ।

असंसं निर्मलीकेन भावेनेष्टं प्रजापतिः ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा—प्रजापते ! मग्नान्की कपा-

से मोहित हुए दक्ष-जीसे मांसमर्होंके अपराधकी म तो मैं
 चर्चा करता हूँ और न याद ही । मैं तो केवल स्वयंभू
 करनेके लिये ही उन्हें बोधा-सा दण्ड दे दिया ॥ २ ॥
 दक्षप्रजापतिको सिर काट गया है, इसलिये उसके बकरे
 का सिर काट दिया जाय, मगत्रेव मित्रदेवताक मेत्रेसे
 अपना यज्ञभाग देखें ॥ ३ ॥ पूषा पिता हुआ अन्य
 जानेवाले हैं, वे उसे यजमानके दाँतोंसे मक्षण करें तथा
 अन्य सब देवताओंके अन्न-प्राप्य भी खास्य हो जायें;
 क्योंकि उन्होंने यज्ञसे बच हुए पदार्थोंको मेरा माग निकाल
 किया है ॥ ४ ॥ अश्वर्य आदि याज्ञिकोंसे अिनकी
 मुजाएँ टूट गयी हैं, वे अग्निनीकुमारकी मुजाओंसे और
 अिनके हाथ गड़ हो गये हैं, वे पूषाके हाथोंसे काम करें
 तथा भृगुजीके बकरेकी-सी दाढ़ी-गूँठ हो जाय ॥ ५ ॥

श्रीमेत्रेयजी कहते हैं—कस विदुर ! तब भगवान्
 शहरके बचन सुनकर सब लोग प्रसन्नचित्तसे 'कस्य !
 कस्य !' कहने लगे ॥ ६ ॥ फिर सभी देवता और
 ऋषियोंने महादेवजीसे दक्षकी यज्ञसाधामें पधारतकी
 प्रार्थना की और तब वे उन्हें तथा ब्रह्मानीको साथ
 लेकर वहाँ गये ॥ ७ ॥ वहाँ वैसा-वैसा भगवान्
 शहरने कहा था, उसी प्रकार सब कार्य करके उन्होंने
 दक्षकी चकसे पञ्चपशुका सिर जोड़ दिया ॥ ८ ॥ सिर
 जुड़ जानेपर स्वदेवकी दृष्टि पड़ते ही दक्ष तत्काल धीकर
 आगनेके समान भी ठठे और अपने सामने भगवान्
 शिवको देखा ॥ ९ ॥ दक्षका शहरमोहकी कल्पितसे
 कल्पित हृदय उनका दर्शन करनेसे शरत्कर्मिन सुषार
 के समान लज्ज हो गया ॥ १० ॥ उन्होंने महादेवजीकी
 स्तुति करनी चाही, किन्तु अपनी मरी हुई बेटी स्तुति
 स्मरण हो जानेसे स्नेह और उत्कण्ठके कारण उनके
 नेत्रोंमें आँसू भर आये । उनके मुखसे शब्द न निकल
 सका ॥ ११ ॥ प्रेमसे विह्वल, परम-मुदिमान् प्रजापतिने
 जैसे-जैसे अपने हृदयके भावोंको रोककर विष्णुस्वाभावसे
 भगवान् शिवकी स्तुति करनी आरम्भ की ॥ १२ ॥

१ प्राचीन प्रसिद्ध श्रीमहादेव उवाच' यह पाठ नहीं है । २ मा पा—प्रेष । ३ मा पा—दग्धस्तु विदुते ।

४ मा पा अक्षिति । ५ मा पा—वीर्ष्मिह । ६ मा पा—छती ।

दक्ष उवाच

भूपानुग्रहं ब्रह्म भवता कृतो मे
दण्डस्त्वया मयि मृतो यदपि प्रलम्बः॥
न ब्रह्मद्युषु च वां भगवन्भक्ष्या
तुभ्य हरेभ्य कृत एव धृतघतेषु ॥१३॥
विद्यातपाव्रतभरान् सुखतः सा विद्यान्
ब्रह्माऽऽत्मतत्त्वमवितु प्रथमं स्वयम्भवात् ।
तद्ब्राह्मणान् परम सर्वविपत्सु पाप्मि
पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ॥१४॥
योऽसौ मया विदिततत्त्वदृष्टा सभायां
क्षितो दुरुक्तिविशितैरगण्य तन्मासु ।
अर्वाक् पतन्तमर्हसमनिन्दयापाहू
दृष्टयाऽऽर्द्रबास भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् १५

नैत्रेव उवाच

क्षमाप्यैव स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ।
कर्म सन्तानयामास सोपाध्यायतिर्बगादिभिः ॥१६॥
वैष्णवं यज्ञतन्त्रस्यै त्रिरूपाळं द्विषाक्षमा ।
पुरोडाशं निरवपन् वीरसंसर्गशुद्धये ॥१७॥
अध्वर्युमाऽऽतहविषा यज्ञमानो विशागम्यते ।
धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्वरिः ॥१८॥
तदा स्वप्रभया सेपां द्योतयन्त्या दिक्षो दक्ष ।
सुष्मं स्तेज उपानीतन्ताम्र्येण स्तोत्रवाशिना ॥१९॥

दक्षने कहा—भगवन् ! मैंने आपका अपराध किया था, किन्तु आपने उसके बदलेमें मुझे दण्डके द्वारा शिक्षा देकर बड़ा ही अनुग्रह किया है । वही ! आप और श्रीहरि तो आचारहीन, नाममात्रके ब्राह्मणोंकी भी उपेक्षा नहीं करते—फिर हम-जैसे यह-यागादि करने वालोंको क्यों मूर्खेंगे ॥ १३ ॥ विभो ! आपने ब्रह्मा होकर सबसे पहले आत्मतत्त्वकी रक्षाके लिये अपने मुखसे विद्या, तप और अनादिके कारण करनेवाले ब्राह्मणोंको उदरान्न किया था । जैसे घरवादा छाटी लेकर गौओंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार आप उन ब्राह्मणोंकी सब विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं ॥ १४ ॥ मैं आपक तत्त्वको नहीं जानता था, इसीसे मैंने मरी समानें आपको अपने बागवानोंसे बेचा था । किन्तु आपने मेरे उस अपराधका कोई विचार नहीं किया । मैं तो आप-जैसे पूज्यतम महाभारतवाचक अपराध करनेके कारण मरकटदि मीच लोकमें गिरनेवाला था, परन्तु आपने अपनी ककुब्जमरी दृष्टिसे मुझे उधार लिया । अब भी आपको प्रसन्न करने योग्य मुझमें कोई गुण नहीं है, वरन्, आप अपने ॥ उदारतापूर्ण वर्तनसे मुझपर प्रसन्न हों ॥ १५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—आशुतोष बाहुरसे इस प्रकार अपना अपराध क्षमा कराकर दक्षने ब्रह्मानीके कहनेपर उपाध्याय, ऋत्विज आदिकी सहायतासे यह कार्य आरम्भ किया ॥१६॥ तब ब्राह्मणोंने यह सम्पन्न करनेके उद्देश्यसे रुद्रगण-सम्बन्धी मृत-विश्रुतियोंके संसर्ग-जनित दोषकी शान्तिके लिये तीन पात्रमें विष्णुमन्त्रान् के लिये तैयार किये हुए पुरोडाश नामक चरक्य हवन किया ॥ १७ ॥ विदुरनी ! उस इतिके आपमें लेकर छड़े हुए अध्वर्युके साथ यज्ञमान दक्षन ओं ॥ विशुद्ध चित्तसे श्रीहरिको ध्यान किया, त्यों ही सहसा मगवान् वही प्रकट हो गये ॥ १८ ॥ 'शुद्ध' एवं 'रक्त' नामक साम-स्तोत्र निम्नके पंख हैं, उन गुरुद्वीके द्वारा समीप लगे हुए मगवान्ने दसों पिशाचोंको प्रकाशित करती हुई अपनी अङ्गकान्तिसे सब देवताओंको तत्र हर लिया—उनके सामन सबकी कान्ति फीकी पड़ गयी ॥ १९ ॥

व्याघ्रो हिरण्यरश्मनोऽककिरीटजुष्टो
नीलाकृक्कमरमण्डितकुण्डलासः ।
कम्बुचक्रद्वारपापगदासिचर्म
व्यग्रैर्हिरण्यमयजैरिव कर्णिकारः ॥२०॥
वक्षस्य धिभित्तवर्धनमाव्युदार
हासावलोककलया रमयं च विद्यम् ।
पार्श्वभ्रमद्विषजनचामरराजहंसः
द्वेतातपत्रशङ्खिनोपरि रज्यमानः ॥२१॥
तदुपागतमालम्ब्य सर्वे सुरगजादयः ।
प्रणेषुः सहस्रोत्थाय ब्रह्मेद्रभ्यङ्गनायकाः ॥२२॥
तथेजसा इतरुचः समभिह्वः ससाव्यसाः ।
सूर्णा वृताञ्जलिपुटा सपतस्त्रधोषसम् ॥२३॥
अप्यर्वाङ्गस्यो यस्य मद्भि त्वात्ममुवाचयः ।
यथामति गृणन्ति स कृताजुग्रहविग्रहम् ॥२४॥
वक्षो शुहीताहजसादनोत्तमं
पद्मचरं विषसुखां परं गुरुम् ।
सुनन्दनन्दाद्यनुगौरितं भुवा
गुणन् प्रपेदे प्रसतः कृताञ्जलिः ॥२५॥
दक्ष उवाच ।
शुद्धं स्वधाम्नुपरतामिदमुद्ययवर्धं
विमानमेकममयं प्रतिपिष्य मायाय ।
तिष्ठन्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्या-
नास्ते भवानपरिशुद्ध इषारप्रतन्त्रः ॥२६॥

उनका श्याम वर्ण था, कमरमें सुवर्णकी करवनी तथा पीताम्बर सुशोभित थे । सिरपर सूर्यके समान देदीम्बर मुख था, मुखकमल मौँके समान नीली कटकनकी और कान्तिमय कुण्डलोंसे शोभायमान था, उनके सुवर्णम आभूषणोंसे विभूषित आठ मुबार्र पों, जो मछोंकी रक्षाके लिये सदा तथत रहती हैं । आठों मुबार्रोंमें से छत्र, पद्म, चक्र, बाण, धनुष, गदा, शङ्ख और डाल छिमे हुए थे तथा इन सब आयुधोंके कारण वे कृष्ण कनेरके बूछके समान जान पड़ते थे ॥ २० ॥ प्रभुके हृदयमें श्रीकृष्णका चिह्न था और सुन्दर मनमात्र सुशोभित थी । वे अपने उदार हास और कीमामय कट्यारसे सारे ससारका आनन्दमन कर रहे थे । पार्यंगल होने और राजहंसके समान सफेद पंखे और चँवर हुआ रहे थे । मन्वानके मन्त्रकमर चन्द्रमाके समान शुभ छत्र शोभ रहे था ॥ २१ ॥
मन्वान पवार हैं — यह देखकर इन्द्र, ब्रह्मा और महादेवजी आदि देवदेवोंसहित समस्त देवता, गन्धर्व और अग्नि आदिने सबसा खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया ॥ २२ ॥ उनके तेजसे सबकी कान्ति पीकी पड़ गयी, मिह्व लक्ष्मकाने लगी, वे सबके-सब सकपका गये और मन्त्रकमर अलखि बौक्कर मन्त्रकने सामने खड़े हो गये ॥ २३ ॥ पञ्चमि मन्वानकी महिमन्तक ब्रह्मा आदिकी मति भी मग्री पहुँच पायी, तो भी मकोपर कृपा करनेके लिये दिव्यरूपमें प्रकट हुए श्रीहरि की वे अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ सबसे पहले प्रजापति दक्ष एक उत्तम पात्रमें पूजार्थी सामग्री के मन्द-सुमन्दादि पार्यदोंसे धिरे हुए, प्रजापतियेके परम गुरु मन्वान् पद्मेसरके पास गये और अति आनन्दित हो विनीतभावसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते प्रभुके शरणापन्न हुए ॥ २५ ॥
पक्षमे कहा-मन्वान् ! अपने स्वरूपमें आप बुद्धि की बाध्यादि सम्पूर्ण अवस्थाओंसे रहित, शुद्ध, किमय, मेन्द्रहित, अतएव निर्मय हैं । आप मायावत् तित्तक करके सतन्त्ररूपसे विराजमान हैं । तथापि अब मायासे ही जीवमायकी सीकारकर सारी मायामें स्थित हैं । धरते हैं, तब अज्ञानीसे दीक्षने लगते हैं ॥ २६ ॥

अस्मिन् ऋषेः

तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात्

कर्मण्यर्षग्रहणियो भगवन्विदाम ।

धर्मोपलक्षणमिदं त्रिष्टुप्श्रवणम्

ज्ञात यदर्थमधिदैवमदोष्यवत्या ॥२७॥

सदस्या ऋषेः

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुम्लेशदुर्गेऽन्तकोश्र

व्यालान्विष्टे विषयमृगादृष्यात्तमगेहोरुमार ।

इन्द्रश्च स्वलमृगमये शोकदाघेऽज्ञसार्ध

पादोक्तस्ते शम्पद कदा याति कामोपसृष्ट ॥२८॥

रुद्र वराच

तव वरद वराह्वावाशिपेर्हासिलार्धे

अपि मुनिभिरसत्तैरानुरेणाईणीये ।

यदि रचितधियं माविषलाकोऽपविद्ध

अपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहणा ॥२९॥

मृगुराच

यन्मायया गहनयापहृतात्मवाधा

प्रज्ञादमस्तनुमृतस्तमसि स्वपन्त ।

नात्मन् भित्त तव त्रिदन्त्यधुनापि तत्त्व

सोऽप्यप्रमीदत्तु भवान् प्रणतात्मवधु ॥३०॥

मदावाच

नतत्त्वमर्थं भवतोऽमी पदार्थ

मन्त्रार्थः पुरुषो यावदाद्येत् ।

अस्मिन् ऋषेः कहा—उपाधिरहित प्रभो ! ममान् रुद्रके प्रधान अनुचर नन्दीश्वरक शापक कारण हमारी बुद्धि कवच कर्मकण्ठमें ही पँसी हुई है, अतएव हम आपके तत्त्वको नहीं जानते । जिसके त्रिय धृष्ट कर्मका यही दण्डना है ऐसी व्यवस्था की गयी है—उस भ्रमप्रवृत्तिके प्रयोमक, वेदत्रयीसे प्रतिपादित यज्ञको ही हम आपका स्वरूप समझते हैं ॥ २७ ॥

सहस्योने कहा—जीवोंको आश्रय देनेवाले प्रभो ! जो अनेक प्रकारके क्लेशोंके कारण अत्यन्त दुर्गम है, जिसमें कान्तरूप मयह्वर सप ताकमें बँध हुआ है, इन्द्ररूप अनेकों गढ़े हैं, दुर्गतरूप जंगली जीवोंका मय है तथा शोकरूप दावानल बचक रहा है—ऐसे, विधाम-स्वप्नसे रहित संसारमगमें जो अज्ञानी जीव कामनाओंसे पीड़ित होकर विषयरूप मृगशृङ्गावरुके छिये ॥ देह-लोहका मारी बोझा सिरपर छिये जा रहे हैं, वे भला आपके चरणकमलोंकी शरणमें कब आने लगे ॥ २८ ॥

रुद्र ने कहा—वरदायक प्रभो ! आपके उत्तम चरण इस संसारमें सक्षम पुरुषोंको सम्पूर्ण पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले हैं, और जिन्हें किसी भी वस्तुकी कामना नहीं है, वे निष्काम मुनिजन भी उनका आदरपूर्वक पूजन करते हैं । उनमें चित्त लग्न रहनेके कारण यदि अज्ञानी खेग मुझे आचारभ्रष्ट कहते हैं, तो कहें, आपके परम अनुग्रहसे मैं उनका कहने-सुननेका कोई विचार नहीं करता ॥ २९ ॥

मृगुराजी ने कहा—आपकी गहन मायासे आत्मज्ञान छुम हो जानेके कारण जो अज्ञान-निद्रामें साये हुए हैं, वे ब्रह्मादि दहधारी आत्मज्ञानमें उपयोगी आपके तत्त्वको अभी तक नहीं जान सके । उसे होनेपर ही आप अपने कारणगत भक्तों को आत्मा और मुहूर्त है, वन आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥ ३० ॥

ब्रह्माजी ने कहा—प्रभो ! पृथक्-पृथक् पदार्थोंको जाननवाली इन्द्रियोंके द्वारा पुरुष जो कुछ देखता है, वह आपका स्वरूप नहीं है क्योंकि आप ज्ञान, गणना

१ प्रा पा —व्यभिचाराद्वया । २ प्रा पा —ज्ञाष्टे । ३ प्रा पा —धियो ध्यायिषा । ४ प्रा पा —नातमाभित् ।

ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो

मायामयाद् व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥३१॥

इन्द्र उवाच

इदमप्यन्युत विश्वभाषन

वपुरानन्दकर मनोदशाम् ।

सुरविद्विद्वत्पणैरुदायुधै

भुजदण्डैरुपपन्नमदभिः ॥३२॥

पत्न्य उवाच

यद्योऽयं तव सज्जनाय कन सृष्टो

विश्वस्तः पशुपतिनाथ दक्षकोपात् ।

तं नस्त्व श्वश्रवणनामशान्तमर्थं

यज्ञात्ममलिनरुचा दृष्ट्वा पुनोहि ॥३३॥

कपय उवाच

अनन्तितं ते भगवन् विचेष्टित

यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे ।

विभूतये यत उपसेदुरीश्वरी

न मन्यते स्वयमनुवर्तती भवान् ॥३४॥

सिद्धा उवाच

अयं त्वत्कृष्णामृष्टपीयूषनद्यां

मनोविराज क्रुद्धदावाग्निदग्धः ।

वृषार्शोऽवगाढो न संसार दाघ

न निष्क्रामति श्रद्धासम्पन्नश्च ॥३५॥

भजमान्युवाच

स्वागत ते प्रसीदेष तुभ्यं नमः

भीनिवास भिमाकान्तया प्रादि न ।

त्वामृतेऽधीश नाहंमैस शोभते

श्रीपद्मीनः कवन्धो यथा पूरुष ॥३६॥

विषय और श्रोत्रादि इन्द्रियोंके अविद्यान हैं—य सब आपमें व्यप्यता हैं । अतएव आप इस मायामय प्रपञ्चसे सर्वथा अलग हैं ॥ ३१ ॥

इन्द्रने कहा—अन्युत ! आपका यह जगत्को प्रकाशित करनेवाला रूप देखो द्विषोंका सहार करनेवाला आठ सुमार्गोंसे सुशोभित है, जिनमें आप सदा ही नाना प्रकारके आयुध धारण किये रहते हैं । यह रूप हमारे मन और नेत्रोंको परम आनन्द देनेवाला है ॥ ३२ ॥

पाण्डिपौत्री पत्नीयोंम कहा—भगवन् ! ब्रह्माभीने आपके पूजनके लिये ही इस यज्ञकी रचना की थी, परन्तु दक्षपर कुपित होनेके कारण इसे भगवान् पशुपतिन जब गड कर दिया है । यज्ञमूर्ते ! इमंशान्मूर्तिके समान उत्सवहीन हुए हमारे उस यज्ञका आप नील कमण्ठी-सी काम्तिवाले अपने नेत्रोंसे निहारकर पवित्र करीजिये ॥ ३३ ॥

अपिपौत्रि कहा—भगवन् ! आपकी उक्ति नवी ही अनोखी है क्योंकि आप कर्म करते हुए भी उनसे निर्लेप रहते हैं । दूसरे भाग वैभवकी भूखसे जिन कम्पनीजीकी उपासना करते हैं वे स्वयं आपकी सेवामें लगी रहती हैं तो भी आप उनका मान नहीं करते, उनसे निःस्पृह रहते हैं ॥ ३४ ॥

सिद्धोंम कहा—प्रभो ! यह हमारा मनरूप हाथी माना प्रकारक क्लेशरूप दावानलसे दग्ध एवं अत्यन्त तृणित होकर आपकी कृपारूप निशुद्ध अमृतमयी सरितामें घुसकर गोता लगाये बैठा है । वहाँ ब्रह्मानन्दमें स्वीन-सा हो जानेका कारण उसे न तो संसाररूप दावानलका ही स्पर्श है और न वह उस नगीसे बाहर ही निकलता है ॥ ३५ ॥

भजमान्युवाचीने कहा—सर्वसमर्थ परमेश्वर ! आपका आगत है । मैं आपको नमस्कार करती हूँ । आप मुझपर प्रसन्न होइये । कम्पनीपते ! अपनी प्रिया कम्पनीजीके समित आप हमारी रक्षा करीजिये । पद्मेश्वर ! जिस प्रकार सिरके बिना मनुष्यका अङ्ग अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार अन्य जनोंसे पूर्ण होनेपर भी आपके बिना यज्ञकी शोभा नहीं होती ॥ ३६ ॥

ह्येकमाता उचुः

एतः किं नो दग्भिरसद्वैस्त्वं

प्रत्यग्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ।

माया बोधा भवदीया हि भूमन्

यस्त्व पटु पञ्चभिर्भासि भूतै ॥३७॥

योगधरा उचुः

प्रयास तेऽन्योऽस्त्यद्युतस्त्वयि प्रभो

विश्वतमनीधेन्न पृथग्य अत्तमन ।

अद्यापि भक्त्येश्वरतपोपभावता

मनन्यङ्ग्यानुगृहाण वत्सल ॥३८॥

बगदुःखवम्भितिलयेषु देवतो

बहुभिद्यमानगुणयोऽऽत्ममायया ।

रचितारामभेदमतये स्वसंन्याया

विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नम ॥३९॥

ब्रह्मावाच

नमस्ते धितमस्त्राय धर्माग्नीनां च स्रतये ।

निगुणाय च सत्काष्टां नाह वेदापरेऽपि च ॥४०॥

अक्षितवाच

यत्तद्वसाह सुसमिद्धतेजा

हृष्य वह म्यध्वर आज्यसिक्तम् ।

तं यक्षिण पञ्चविधं च पञ्चभि

मिच्छ यशुभिं प्रणतोऽसि यमम् ॥४१॥

देवा उचुः

पुनः कल्पापाय म्बुतमुदरीकृत्य विकृतं

स्वमेवाद्यस्तस्मिन् मलित उरगेन्द्राभिधुनये ।

लोकपाळोमे कहा—अनन्त परमात्मन् । आप समस्त अन्तःकरणोंके साक्षी हैं, यह सारा जगत् आप के ही द्वारा दृष्टा जाता है । तो क्या मायिक पदार्थोंको ग्रहण करनेवासी हमारी इन नेत्र आदि इन्द्रियोंसे कभी आप प्रत्यक्ष हो सके हैं ? वस्तुतः आप हैं तो पञ्चभूतोंसे पृथक् फिर भी पञ्चभौतिक शरीरोंके साथ जो आपका सम्बन्ध प्रतीत होता है, यह आपकी माया ही है ॥ ३७ ॥

योगेश्वरोंने कहा—प्रभो ! जो पुरुष सम्पूर्ण विश्व के आत्मा आपमें और अपनेमें कोई भेद नहीं देखता, उससे अधिक प्यास आपको कोई नहीं है । तथापि मत्तकसल ! जो लोग आपमें स्वामिभाव रखकर धनन्य मन्त्रिसे आपकी सेवा करते हैं, उनपर भी आप कृपा करविये ॥ ३८ ॥ जीवोंके अदृश्यता जिसके सत्त्वादि गुणोंमें बड़ी विभिन्नता आ जाती है, उस अपनी माय्य-के द्वारा अगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रत्ययके क्रिये ब्रह्मादि विभिन्न रूप धारण करके आप भेदबुद्धि पैदा कर देते हैं किन्तु अपनी स्वरूपस्मिन्त्रिसे आप उस भेदज्ञान और उसके कारण सत्त्वादि गुणोंसे सम्बन्ध दूर हैं । ऐसे आपको हमारा नमस्कार है ॥ ३९ ॥

ब्रह्मन्वाक्य धेवने कहा—आप ही धर्मादिदेवी उत्पत्ति के लिये शुद्ध सत्त्वको स्वीकार करते हैं, साथ ही आप निर्गुण भी हैं । अतएव आपको तत्त्व न ता में जानता हूँ और न ब्रह्मादि कोई और ही जानते हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४० ॥

अक्षितधने कहा—मयावन् । आपके ही तेजसे प्र-अभ्रित होकर मैं श्रेष्ठ यज्ञोंमें देवताओंके पास घृतमिश्रित हवि पहुँचाना हूँ । आप सप्ताष्ट पञ्चपुरुष एवं पञ्चकी रक्षा करनेवाले हैं । अग्निहोत्र, दक्षी, पीर्णमास, ऋतुमार्त्य और पञ्च-सोम—ये पाँच प्रकरके पड़ आपके ही स्वरूप हैं तथा 'आद्यावय', 'अस्तु औपत', 'यज', 'ये यजामहे' और 'बभूव'—इन पाँच प्रकरणके यजुर्मन्त्रोंसे आपको ही पूजन होता है । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ४१ ॥

देवताओंने कहा—देव । आप आदिपुरुष हैं । पूजकत्वरूप अस्त हानिपर करने वश्यकत्वं इमं प्रपञ्चको उत्तरमें सीनकर आपने ही प्रत्यक्षानीन जन्मके भीतर दोषनामाकी उत्तम दम्पत्यर दम्पत्य रिया पा । आप

ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाभयो

मायामयाद् व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥३१॥

इन्द्र उवाच

इदमप्यच्युत विश्वभाषन
वपुरानन्दकरं मनोदक्षाम् ।

सुरविद्विद्वत्पणैरुदायुधै-

र्ज्वदण्डैरुपबभूवमपि ॥३२॥

कृत्य उवाच

यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो

विच्वत्त पशुपतिनाथ दक्षकोपात् ।

तं नस्त्व श्वश्वयनामशान्तमेधं

यज्ञात्मबलिनरुचा दृष्ट्वा पुनीहि ॥३३॥

कृत्य उवाच

अनन्वितं ते भगवन् विचेष्टित

सदात्मना चरसि द्विकर्म नाज्यसे ।

विमृश्ये यत् उपसेदुरीश्वरीं

न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥३४॥

सिद्ध उवाच

अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां

मनोधारण क्लृप्तदावाभिदग्धः ।

वृषार्तोऽवगाढो न सत्सार दाव

न निष्कामति श्रद्धासम्पन्नवश ॥३५॥

यजमानुवाच

स्वागत ते प्रसीदेष्व तुभ्यं नमः

भीनिवास भिषाकान्तया त्राहि नः ।

त्वामृतेऽधीय नाङ्गर्मख शोभत

शीर्षहीन कथंथा यथा पूरुष ॥३६॥

विषय और श्रोत्रादि इन्द्रियोके विधिष्ठान हैं—ये सब आपमें लक्ष्य हैं । अतएव आप इस मायामय प्रपञ्चसे सर्वथा अलग हैं ॥ ३१ ॥

इन्द्रने कहा—अच्युत ! आपका यह जगत्को प्रकटित करनेवाला रूप देखो—द्वियोक्त संहार करनेवाली आठ मुखाओंसे सुशोभित है जिनमें आप सदा ही नाना प्रकारके आयुध धारण किये रहते हैं । यह रूप हमारे मन और नेत्रोंको परम आनन्द देनेवाला है ॥ ३२ ॥

पाण्डिचोकी पाण्डिचोम कहा—भागवन् ! ब्रह्मजीने आपके पूजनके लिये ही इस पशुकी रचना की थी परन्तु दक्षपर कुपित होनेके कारण इसे भगवान् पशुपतिने लव नष्ट कर दिया है । यज्ञनृत्त ! स्मृदानमूर्तिके समान उत्सवहीन हुए हमारे उस पशुको आप नील कपलकी—सी कान्तिवाले अपने नेत्रोंसे निहारकर पवित्र कीजिये ॥ ३३ ॥

शुनिर्योनि कहा—भागवन् ! आपकी स्तुति बड़ी ही अनोखी है क्योंकि आप कर्म करते हुए भी उनसे निर्लेप रहते हैं । दूसरे लोग वैभवकी मूलसे दिन बन्धीजीकी उपासना करते हैं, वे स्वयं आपकी सेवामें लगी रहती हैं तो भी आप उनका मान नहीं करते, उनसे निःस्पृह रहते हैं ॥ ३४ ॥

सिद्धोंने कहा—प्रभो ! यह हमारा मनरूप हाथी नाना प्रकारके क्लेशरूप पावान्कोसे दग्ध एवं क्षयित वृषित होकर आपकी कथारूप विशुद्ध मनुष्यकी स्तुतिमें पुसकर गोता लगाये बैठा है । वहाँ ब्रह्मानन्दमें भीन-सा हो आनेक कारण उसे न तो संसाररूप दावानलका ही स्मरण है और न वह उम नगीसे बाहर ही निकलता है ॥ ३५ ॥

यजमानवक्त्राजीने कहा—सर्वसमर्प करनेवाला आपका स्वागत है । मैं आपको भगवत्कार करती हूँ । आप मुझपर प्रसन्न होइये । लक्ष्मीपते ! अपनी प्रिया लक्ष्मीजीके सहित आप हमारी रक्षा कीजिये । यद्येवम् ! जिस प्रकार सिरके बिना मनुष्यका धड़ लक्ष्मी नहीं लगाता, उसी प्रकार अन्य जगत्से पूर्ण होनेपर भी आपके बिना यज्ञको शोभा नहीं होती ॥ ३६ ॥

लेखसाता ऊरुः

एत किं नो रश्मिरमद्भूतैस्त्व

प्रत्यगद्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ।

माया शोपा भवदीया हि भूमन्

यस्त्वं पृष्ट पञ्चभिर्भामि भूतै ॥३७॥

योगशरा ऊरु

प्रयाप्त तेऽन्योऽस्त्यमुवस्त्वपि प्रभो

विद्यात्मनीषेन्न पृथग्य आत्मनः ।

अथापि भक्त्येकतयोपधावता

मनन्यवृत्त्यानुगृह्णाण घत्सल ॥३८॥

जगदुद्भवमितिलयेषु दैवतो

बहुमिद्यमानगुणयाऽऽत्ममायया ।

रचितारममेदमतये स्वसम्यया

विनिवर्तितम्रमगुणात्मने नमः ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

नमस्तं धितसत्त्वाय धर्मातीनां च श्रुतयः ।

निगुणाय च यत्काष्ठां नाह वदापरजपि च ॥४०॥

अग्निरवाच

यथैवमाह सुममिद्वतत्रा

इष्य यह मध्वर आज्यमिच्छम् ।

सं यन्मिष पञ्चमिषं च पञ्चमि

सिष्यं यन्मिषं प्राजापि यन्म ॥४१॥

तत्रा ऊच

पुरा कल्पापाय मरुतमृगाकृत्य विकृत

स्वमेवायमस्मिन् मन्त्रि गगन्त्राभिप्रयनः ।

१ मा १०—६६६ ।

लोकपालोंने कहा—अनन्त परमात्मन् । आप ममस्त अन्त-कत्रणोके साक्षी हैं, यह सारा जगत् आप-के ही द्वारा देखा जाता है । तो क्या मायिक पदार्थोंको ग्रहण करनेवाली हमारी इस नेत्र आदि इन्द्रियोंसे कभी आप प्रत्यक्ष हो सके हैं ? वस्तुतः आप हैं तो पञ्चभूतोंसे पृथक्, फिर भी पञ्चभौतिक शरीरोंके साथ जो आपका सम्बन्ध प्रतीत होता है, यह आपकी माया ही है ॥ ३७ ॥

योगेश्वरोंने कहा—प्रभो ! जो पुरुष सम्पूर्ण विश्व के आत्मा आपमें और अपनेमें काइ भेद नहीं देखता, उससे अधिक प्यारा आपको कोई नहीं है । तथापि मरुत्कसुख । जो लोग आपमें क्षामिमत्त रक्षक अनन्य भक्तिसे आपकी सेवा करते हैं, उनपर भी आप कृपा काशिये ॥ ३८ ॥ जीवोंमें अदृष्टकरी जिसके सत्तापि गुणोंमें बड़ी विभिन्नता वा जाती है, उस अपनी माय-का द्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रत्यक्ष जिये ब्रह्मादि विभिन्न रूप धारण करके आप भक्तबुद्धि पैदा कर देते हैं किन्तु अपनी स्वरूपस्थितिसे आप उस भेदज्ञान और उसका कारण सत्तापि गुणोंसे मुक्त हो रहे हैं । ऐसे आपको हमारा नमस्कार है ॥ ३९ ॥

ब्रह्मस्वरूप पदम कहा—आपकी वमापि की उत्पत्ति के लिये शुद्ध सत्त्वका स्वीकार करना है, माय ही आप निगुण भी हैं । अतएव आपका तत्त्व न मा मैं ब्रह्मना है और न ब्रह्मापि काइ और हा जानन है; आपका नमस्कार है ॥ ४० ॥

अग्निरवाच कहा—भगवन् ! आपकी तत्रमे प्र जन्ति हाकर मैं श्रुत यद्यपि तत्राकोक पम मृगमिद्रिय इति कर्तुं जाता हूँ । आप माण्ड्य यन्मुक्त एवं यकी ग्ना यन्मत्त है । अग्निनाय, त्रय, योगाय, चानुर्गम्य ओर यन्म-मान—य त्वैव प्रदग्द यन्म त्वं हा स्वम्य है तथा 'आश्वाक्य', 'अन्तु श्रेयस्', 'यन्', 'य यदाय' और 'आन्तु'—इन त्वैव प्रदग्द यन्मत्तोंमें आश्वाक्य ही पुरन हाया है । मैं आन्तु प्रगम करना हूँ ॥ ४१ ॥

वक्तामोंने कहा—तत्रा ! आप आत्मीय हैं । स्वकल्पका अन्य हायन अन्त कथम्य इस प्रत्यक्ष तत्रमे रत्नकर अन्त ही प्रत्यक्षार्थन त्रय भाग्य ज्ञानप्राप्ति तत्रम श्रुत्यन्त श्रुत किया था । आपका

पुमान् शेष सिद्धेहृदि विमुक्तिरूप्यात्मपदविः

स एवाद्यात्मोर्म पविचरसि मृत्यान्वसिनः ॥४२॥

गन्धर्वा उचुः

अंक्षांश्चास्ते दध मरीच्यादय एते
प्रसन्नान्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगमा ।
क्रीडाभाण्डं विचमिन् यस्य विभूम्बन्
तस्मै नित्य नाथ नमस्ते करवाम ॥४३॥

विद्याधर उचुः

न्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरैऽस्मिन्
कृत्वा ममाहमिति दुर्भविष्ठस्पधैः स्वैः ।
क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं
युष्मत्कृत्वा मृतनिषेवक उद्व्युदभ्येत् ॥४४॥

ब्राह्मणा उचुः

त्वं क्रतुस्त्व हविस्त्व हुताश्च स्वयं
त्वं हि मन्त्र समिहर्मपात्राणि च ।
त्वं सदस्यत्विजो दम्पती देवता
अग्निहोत्रं स्वधा सोम आर्ज्यं पशु ॥४५॥
त्व पुरा गां रसाया महाप्रकरो
दंष्टया पथिनीं वारणन्ध्रो यथा ।
स्तूपमानो नर्दंछीलया योगिभि
र्भुज्जहर्षं त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥
प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां
दर्शनं ते परिश्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यपाने नृभिर्नास्ति यज्ञश्च तं
यज्ञविमाः स्वयं यान्ति तस्मै नमः ॥४७॥

आध्यात्मिक स्वरूपका जनलकादिवासी सिद्धगण में
अपने हृदयमें किन्तन करते हैं । धरो ! कही आप जन
हमारे नत्रोंके विषय होकर अपने भर्त्सकों रक्षा कर
रहे हैं ॥ ४२ ॥

गन्धर्वोंने कहा—देव ! मरीचि आदि शरि और
ये ब्रह्मा, इन्द्र तथा इमादि देवतागण आपके अंशके
भी अंश हैं । महात्मा ! यह सम्पूर्ण विश्व आपके स्नेह
की सामग्री है । नाथ ! ऐसे आपको हम स्रक्ता
प्रणाम करते हैं ॥ ४३ ॥

विद्याधरोंने कहा—प्रभो ! त्वम पुरुषार्थकी प्राप्ति-
के साधनरूप इस गानवर्द्धको पाकर भी जीव आपकी
मायासे मोहित होकर इसमें मैं-सरेपनकर अभिमान कर
लेता है । फिर वह दुःखि अपने आत्मीयोंसे विरक्त
होनेपर भी असह्य विषयोंकी ही लालसा करता रहता है ।
किन्तु ऐसी अवस्थामें भी जो आपके कथमुत्तक
सेवन करता है, वह इस अन्तःकरणके मोहको सम्या
त्याग देता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—भगवन् ! आप ही यज्ञ हैं, आप
ही हवि हैं, आप ही अग्नि हैं, स्वयं आप ही मन्त्र हैं,
आप ही समिधा, कुशा और यज्ञपात्र हैं तथा आप ही
सुदम्य, अश्विन यजमान एवं उसकी धर्मपत्नी, देव्य,
अग्निहोत्र, स्वधा, सोमरस घृत और पशु हैं ॥ ४५ ॥
बेदमूर्ते ! यह और उसका सहस्रप दोनो आप ही हैं ।
पूर्वकर्ममें आप ही अग्नि विशाख ब्राह्मण्य धारणकर
रसातलमें डूबी हुई पृथ्वीको लीलासे ही अपनी दाबोंपर
उठाकर इस प्रकार निकाल लाये थे, जैसे कोई गज-
राज कमलिनीको उठा लाये । उस समय आप भीरे
भीरे गरज रहे थे और योगिगण आपका यह धर्मैकिक
पुरुषार्थ देखकर आपकी स्तुति करते जाते थे ॥ ४६ ॥
यज्ञधर ! जब छेग आपके नामकर कीर्तन करते हैं,
तब यज्ञके सारे निम्न नष्ट हो जाते हैं । हमारा यह
यज्ञस्वरूप सत्कर्म नष्ट हो गया था, अब हम आपके
दर्शनोकी इच्छा कर रहे थे । अब आप हमपर प्रसन्न
होइये । आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥

मेत्रेय उवाच

इति दक्ष कथिर्यज्ञ भद्र रुद्रावमर्शितम् ।
कीर्त्यमाने हृषीकेशे सन्निन्ये यज्ञमावने ॥४८॥

भगवान् स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागमुक् ।

दक्ष वमाप आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥४९॥

श्रीभगवानुवाच

अहं ब्रह्मा च शबश जगतः कारण परम् ।

आत्मेभ्यः उपद्रष्टा स्वयदृगविशेषण ॥५०॥

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।

सृजनरञ्जन् हरन् विश्वं दधे सङ्घां क्रियोचिताम् ॥५१॥

तस्मिन् ब्रह्मस्य द्वितीये केवले परमात्मनि ।

मूर्धन्यद्रौ च मूयानि मेदेनाहोऽनुपश्यन्ति ॥५२॥

यथा पुमाश्च स्वाक्षु शिर पाण्यादिषु क्वचित् ।

पारक्यमुर्दि कुर्वते एव भूतेषु मत्पर ॥५३॥

त्रयाणामेकभूतानां योन पश्यति वै भिदाम् ।

सर्वभूतात्मना ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥५४॥

मेत्रेय उवाच

एषं भगवताऽऽदिष्टं ब्रह्मापतिपतिर्हरिम् ।

अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवाः शुभयतोऽयजत् ॥५५॥

रुद्रं च स्वेन भागेन द्रुपाधावत्समाहित ।

कर्मणोर्देवसानेन सामपानितरानपि ।

उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्त्रावयमूर्धं सत ॥५६॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भैया विदुर ! जब इस प्रकार सब लोग यज्ञरक्षक भगवान् हृषीकेशकी स्तुति करने लगे, तब परम चतुर दक्षने रुद्रापाद वीरभद्रके ज्येष्ठ किये हुए यज्ञको फिर आरम्भ कर दिया ॥ ४८ ॥ सर्वान्तसर्वांगी श्रीहरि यों तो सभीके भागोंके मोक्षा हैं; तथापि त्रिकाल-पुरोडाशरूप अपने भागसे और भी प्रसन्न होकर उन्होंने दक्षको सम्बोधन करके कहा ॥ ४९ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—जगत्का परम कारण मैं ही ब्रह्मा और महादेव हूँ, मैं सबका कारण, ईश्वर और साक्षी हूँ तथा स्वप्नप्रकाश और उपाधिरूप हूँ ॥ ५० ॥ विप्रवर ! अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको स्वीकार करके मैं ही जगत्की रचना, पालन और संहार करता रहता हूँ और मैंने ही उन कर्मोंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर—ये नाम धारण किये हैं ॥ ५१ ॥ ऐसा जो भेदरहित विभु पुरुषस्वरूप मैं हूँ, उसीमें ब्रह्मानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवोंको विभिन्न रूपसे देखता है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर और हाथ आदि अङ्गोंमें ये मुद्रसे भिन्न हैं ऐसी सुखि कमी नहीं करता, उसी प्रकार मेरा मऊ प्राणि-मात्रको मुझसे भिन्न नहीं देखता ॥ ५३ ॥ ब्रह्मन् ! हम—ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर—तीनों स्वरूप एक ही हैं और हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं, अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है ॥ ५४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान् के इस प्रकार ब्राह्मा वेनेपर ब्रह्मापतियोंके नायक दक्षने उनका त्रि कपाल-यज्ञके द्वारा पूजन करके फिर अङ्गभूत और प्रधान दोनों प्रकारके यज्ञोंसे अन्य सब दैवताओंका अर्चन किया ॥ ५५ ॥ फिर एकाग्रचित्त हो भगवान् शङ्करका यज्ञोपरूप उनके भागसे यजन किया तथा समाधिमें किये जानेवाले उदवसान नामक कर्मसे अन्य सोमपायी एवं दूसरे वेदवाचकोंका यजन कर यज्ञका उपसंहार किया और अङ्गमें अश्विनियोंके सहित अवयव-आन किया ॥ ५६ ॥

तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे ।
 धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययु ॥५७॥
 एव दाशायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ।
 ज्ज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुभम् ॥५८॥
 तमेव दपितं भूय आबुद्धं पतिमम्बिका ।
 अनन्यभावैकगतिं शक्तिं सुतव पूरुषम् ॥५९॥
 एतद्भगवत क्षम्योः कर्म दक्षाध्वरमुह ।
 भुवं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पते ॥६०॥
 इदं पवित्रं परमीश्वरेष्ठं
 यक्षस्वमायुष्यमधौषमर्पणम् ।
 यो नित्यदाऽऽकर्ष्य नरोऽनुकीर्तयेद्
 धुनोत्सर्पं क्षौरव भक्तिभावत ॥६१॥

फिर बिन्हे अपने पुरुषार्थसे ॥ साथ प्रकाशकी
 सिद्धियों प्राप्त थीं, उन दक्षप्रनापतिको भुम्हारी स्या
 धर्ममें बुद्धि रहे ऐसा आशीर्वाद देकर सब देवता
 सर्गलोकका चले गये ॥ ५७ ॥

विदुरजी ! सुना है कि दक्षमुना सतीजीने इस
 प्रकार अपना पूर्वशरीर त्यागकर फिर हिमालयकी पत्नी
 मेनाके गर्भसे जन्म लिया था ॥ ५८ ॥ जिस प्रकार
 प्रलयकालमें मीन हुई शक्ति सृष्टिके आरम्भमें फिर
 ईश्वरका ही आश्रय लेती है, उसी प्रकार अनन्यपरायण
 श्रीभक्तिकान्तीने उस वनमें भी अपने एकमात्र आश्रय
 और प्रियतम भगवान् शङ्करको ही बरण किया ॥ ५९ ॥
 विदुरजी ! दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले भगवान् दिव्य-
 का यह चरित्र मैंने बृहस्पतिजीके शिष्य परम भगवत्
 उद्धवजीके मुखसे सुना था ॥ ६० ॥ कुन्तनन्दन ! श्री-
 महादेवजीका यह पावन चरित्र पढ़ा और बाल्यको
 बढानेवाला तथा पाप पुद्गलको नष्ट करनेवाला है । जो
 पुरुष भक्तिभावसे इसका नित्यप्रति श्रवण और धीर्तन करता
 है, वह अपनी पापराशिका नाश कर देता है ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहन्त्या संहितायां चतुर्थस्कन्धे

दक्षयज्ञसैन्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

ध्रुवका वन-गमन

मैत्रेय उवाच

सनकाद्या नारदश्च श्वसुहृदोऽरुणिर्यतिः ।
 नैते गृहान् ब्रह्मसुता क्षार्षसन्पूर्वरेतसः ॥ १ ॥
 मृषाधर्मस्य भाषाऽऽसीदम्मां च क्षत्रुहन् ।
 अद्वयमिदं तच्च निश्चयिर्ब्रह्मेऽग्रज ॥ २ ॥
 तथा ममभवद्योभा निकृतिश्च महामते ।

धर्मिणोपजी कहते हैं—शत्रुसूदन विदुरजी ! सनक-
 णि, नारद श्वसु, हंस, अरुणि और यति—ब्रह्मजी-
 के इन नैष्ठिक ब्रह्मचारी पुत्रोंने गृहत्यागमें प्रवेश नहीं
 किया (जत उनके कोई सन्तान नहीं हुई) । धर्म
 भी ब्रह्मजीका ही पुत्र था, उसकी पत्नीका नाम था मृषा ।
 उसके दम्भ नामक पुत्र और मया नामकी कन्या हुए ।
 उन दोनोंको निश्चयित स गया, क्योंकि उसके कोई
 सन्तान न थी ॥ १-२ ॥ दम्भ और मायासे सोम और
 निश्चयि (शय्या) का जन्म हुआ उनसे श्रोत्र और

१ प्रा पा —एव भग । २ प्रा पा —नित्यमात्र । ३ प्रा पा —यक्षमुद्धवः कत ।

४ प्रा पा —क्षत्र । ५ प्रा पा —तत्र ।

ताम्यां क्रोधश्च हिंसा च यदुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥३॥

दुरुक्तौ कलिराधश्च भय मृत्युं च सत्तम ।

तयोश्च मिथुन जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥४॥

संग्रहेण मयाऽऽत्म्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ।

त्रिःश्रुत्वं तस्युमान् पुष्पं विधुनोत्पात्मनो मलम् ॥५॥

अथातः क्षीर्तये वंश पुष्पक्षीर्तैः कुरूद्वह ।

स्यायम्भुवस्यापि मनोहरैरंशजन्मन ॥६॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ क्षतरूपापते सुतौ ।

भासुतेष्वस्य कलया रघायां जगत्तः स्मितौ ॥७॥

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयो ।

सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा तत्सुतो ध्रुव ॥८॥

एकस्मिन् सुरुचे पुत्रमङ्गमारोप्य लातयन् ।

उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाभ्यनन्दत ॥९॥

तथा चिक्रीपमार्णं त मपस्त्वास्तनयं ध्रुवम् ।

सुरुचिः शृण्वता राघवः सेर्ष्यमाहातिगर्बिता ॥१०॥

न वत्स नृपतेर्धिष्य भवानारोढुमहति ।

न गृहीता मया यस्व इत्यावपि नृपात्मन ॥११॥

पालाऽमि पत नारमानमन्यस्त्रीगर्मममृतम् ।

नूनं षट् भवान् यस्म्य दुर्लभऽर्थे मनारथ ॥१२॥

तपमाऽऽराप्य पुन्य तर्म्यवानुग्रहण म ।

गर्मे त्व माधयन्मान यदीच्छामि नृपामनम् ॥१३॥

हिंसा तथा उनसे कलि (कलह) और उसकी बहिन दुरुक्ति (गाली) उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ साधुशरोमणे ! फिर दुरुक्तिसे कलिने भय और मृत्युको उत्पन्न किया तथा उन दोनोंके संयोगसे यातना और निरय (नरक) का जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ निष्पाप विदुरजी ! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे तुम्हें प्रत्यक्ष कारणरूप यह अधमका वंश सुनाया । यह अधर्मका त्याग कराकर पुण्य-सम्पादनमें हेतु बनता है, अतएव इसका वणन तीन बार सुनकर मनुष्य अपने मनकी ममिमता दूर कर देता है ॥ ५ ॥ कुरुनन्दन ! अब मैं श्रीहरिके अंश (ब्रह्माजी) के अंशसे उत्पन्न हुए पन्नित्रकीर्ति म्हाराज स्थायम्भुव मनुक पुत्रोंक वंशका वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥

महाराजी शतरूपा और उनके पति स्थायम्भुव मनु-से प्रियव्रत और उत्तानपाद-ये दो पुत्र हुए । भगवान् भासुदेवकी कलासे उत्पन्न होनेके कारण ये दोनों संसारकी रक्षामें तत्पर रहते थे ॥ ७ ॥ उत्तानपादके सुनीति और सुरुचि नामकी दो पत्नियाँ थीं । उनमें सुरुचि राजाका अधिक प्रिय थी, सुनीति, जिसका पुत्र ध्रुव था, उन्हें बेसी प्रिय नहीं थी ॥ ८ ॥

एक दिन राजा उत्तानपाद सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोष्ठमें बिठाकर प्यार कर रहे थे । उसी समय ध्रुवने भी गोष्ठमें बैठना चाहा, परन्तु राजाने उसका स्वागत नहीं किया ॥ ९ ॥ उस समय धमण्डसे भी हुई सुरुचिने अपनी सौतके पुत्र ध्रुवको महाराजकी गोष्ठमें जानेका यत्न करते देख उनके सावने ही उनसे बाह्यसे शब्दोंमें कहा ॥ १० ॥ बन्धे ! तू राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकारी नहीं है । तू भी राजाका ही बेटा है, इससे क्या हुआ, तुझको मैंने तो अपनी गोष्ठमें नहीं धारण किया ॥ ११ ॥ तू अभी नन्दन है, तुझे पता नहीं है कि तू न किसी दूसरी स्त्रीक गर्भसे जन्म लिया है, तभी तो पसे दुःखम किया ही इच्छा कर रहा है ॥ १२ ॥ यदि तुझे राजसिंहासनकी इच्छा है तो तपस्या करके प्रथम पुनः श्रीनारायणजी का आचमन कर और उनकी आज्ञासे मेरे गर्भमें जाकर जन्म ले ॥ १३ ॥

मंत्रेय उवाच

मातु सपत्न्या स दुरुक्तिविद्ध
 श्वसन् रुपा दम्पइतो यथाहि ।
 हित्वा मिपन्तं पितरं सभवाच
 अगाम मातु प्ररुदन् सकाशम् ॥१४॥
 तं निःश्वसन्तं स्फुरिताभराष्टं
 सुनीतिरुत्तम उद्भूत बालम् ।
 निश्चम्य तत्पौत्रस्वामितान्तं
 सा विन्वय यद्विदित सपत्न्या ॥१५॥
 सोत्सुज्य धैर्यं विललाप श्लोक-
 दाबामिना दाबलतेष बाला ।
 वाक्यं सपत्न्या सरती सरोज
 भिया दृष्टा वाप्यकलाशुवाह ॥१६॥
 दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पार
 मपश्यती बालकमाह बाला ।
 मामङ्गल तात परपु मस्या
 सुहृन् जनो यत्परदु खदस्तत् ॥१७॥
 सत्यं सुरुप्याभिहितं भवान्मे
 यद् दुर्मगाया उदरं गृहीतः ।
 तन्मेन इदं बालजते यां
 मार्गेति वा बोद्धुमिहस्पतिर्मां ॥१८॥
 आविष्ट तच्छात विमत्सरस्तत्र
 मुक्तं समाप्रापि यदभ्यलीकम् ।
 आराधयाधोऽक्षजपादपर्व
 यदीच्छसेऽभ्यासनपुष्पमो यथा ॥१९॥
 भस्माह्विपर्वं परिचर्य विश्व
 विभावनापाद्यगुणाभिपत्त ।
 अजोऽप्यतिष्ठस्त्वल पारमेष्ठ्यं
 पदं जितस्मधमनाभिषन्धम् ॥२०॥
 तथा मनुर्वो भगवान् पितृमहो
 यमकमस्या पुरुषिणैर्मनै ।

श्रीमंत्रेयजी कहते हैं—निदुरजी । जिस प्रकार
 बंकेकी घोट खाकर सौंभ फुसकर मारन लगता है,
 उसी प्रकार अपनी सीतेडी मौके फटकर बचनोंसे घायन
 होकर धुव क्रोधके मारे खी-लकी सौंस लेने लगा ।
 उसके पिता चुपचाप यह सब देखते रहे, मुँहसे एक
 शब्द भी नहीं बोले । तब पिताको छोड़कर धुव उठा
 हुआ अपनी माताके पास आया ॥ १४ ॥ उसके
 दोनों होठ फटकर रहे थे और वह सिसक सिसककर
 रो रहा था । सुनीतिने बेटको गोदमें उठा लिया और
 जब मूँहके दूसरे ओगोसे अपनी सौत सुरुचिकी कही
 हुई बातें सुनीं तब उसे भी बड़ा दुःख हुआ ॥ १५ ॥
 उसका धीरज टूट गया । वह दाबानरूपसे बली हुई
 वेणुके समान शोकसे सन्तप्त होकर मुरझा गयी तथा
 विलपन करने लगी । सौतकी बातें याद आनेसे उसके
 कन्ध-सरीखे नत्रमैं औंधू मर जाये ॥ १६ ॥ उस
 बेचारीका अपने दुःखपारवारका कहीं अन्त ही नहीं
 दिखायी देता था । उसने गहरी सौंस लेकर धुवसे
 कहा, बेदा ! तू दूसरोंके लिये किसी प्रकारके बमझ-
 की कर्मना मत कर । जो मनुष्य दूसरोंको दुःख देता
 है, उसे स्वयं ही उसका फल भोगना पड़ता है ॥ १७ ॥
 सुरुचिने जो कुछ कहा है, ठीक ही है, क्योंकि मन्ना
 राजको मुझे पत्नी तो क्या, भ्राताही स्वीकार करनेमें
 भी लज्जा आती है । तब मुझ मन्दभागिनीके गर्भसे ही
 जन्म किया है, और मेरे ही रूपसे तू पैदा है ॥ १८ ॥
 बेग ! सुरुचिने ऐसी सौंसेधी मौं हानेपर भी बात
 किन्तुल ठीक कही है; अतः यदि राजकुमार उचमके
 समान राजसिंहासनपर बैठना चाहता है तो इन्द्रपद
 छोड़कर उसीका पावन कर । तब, श्रीअर्जुन
 भगवान्के चरणकमलोंकी आराधनामें लग जा ॥ १९ ॥
 संसारका पावन करनेके लिये सत्त्वगुणको लीनकर
 करनेवाले उन शीतलिके चरणोंकी आराधना करनेसे ही
 तेरे परमादा श्रीभगवाजीको वह सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ
 है, जो मन और प्राणोंको जीतनवाले मुनियोंके द्वारा भी
 कर्त्तव्य है ॥ २० ॥ इसी प्रकार तरे दाग साधसुध
 मनुज भी बड़ी बड़ी दक्षिणाओंवाले पड़ोसियों द्वारा

इष्टमिपेदे दुरवापमन्यतो
 भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥२१॥
 तमेव वत्माश्रय मृत्यवत्सल
 मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्वतिम् ।
 अनन्यभावे निजधर्मभाषिते
 मनस्ववस्थाप्य भजस्य पूरुषम् ॥२२॥
 नान्य तत् पद्मपलाशलोचनाद्
 दुःखच्छिदं ते मृगयामि कचन ।
 या मृग्यते हस्तगृहीतपथया
 भियर्तरंरङ्ग विमृग्यमाणया ॥२३॥

येनैव उवाच

एवं संजल्पितं मातुराकर्म्मार्थागमं यचः ।
 सनियम्यात्मनाऽऽस्मानं निष्कक्राम पितुः पुरात् ॥२४॥
 नारदस्तदुपाकर्म्मं ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ।
 स्पृष्ट्वा मूर्धं यद्यन्नेन पाणिना ग्राहं विस्मित ॥२५॥
 अहो तज्ज क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् ।
 बालोऽप्यथ इदा ध्रुव यत्समातुरसद्वच ॥२६॥

नारद उवाच

नापुनाप्यवमान तं सम्मानं यापि पुत्रक ।
 लक्षयाम इमारस्य मुक्तस्य प्रीडनादिषु ॥२७॥
 विकल्पं विद्यमानऽपि न धर्मतापइतव ।
 पुंसो माहमून भिन्ना यन्लाफ निजक्रमभि ॥२८॥

अनन्य भावसे उन्हीं मगवान्की शराधना की थी, तभी उन्हें दूसरोंके लिये अति दुर्लभ लौकिक, अलौकिक तथा मोक्षसुखकी प्राप्ति हुई ॥ २१ ॥ 'वेद्य ! व भी उन मत्तवत्सल श्रीमगवानका ही आश्रय ल । जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटनेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुलोग निरन्तर उन्हींके चरणकमलोंके मार्गकी खोज किया करते हैं । व स्वधर्मपालनसे पक्कि हुए अपने चित्तमें श्रीपुरुषोत्तम मगवानको बैठा ले तथा अन्य सबका चिन्तन छोड़कर केवल उन्हींका मजन कर ॥ २२ ॥ वेद्य ! उन कमल-दल-लाचन श्रीहरिको छेदकर मुसे तो तेरे दुःखसे दूर करनेवाला और कोई दिखामी नहीं देता । देख, त्रिन्हें प्रसन्न करनेके लिये इष्टा आदि अन्य सब देवता हँडते रहते हैं, वे श्रीकृष्णजी भी दीपककी मीनि हाथमें कमल लिये निरन्तर उन्हीं श्रीहरिकी खोज किया करती हैं' ॥ २३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—माता सुनीतिन जो कचन कहते, वे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका मार्ग चिन्तानेवाले थे । अत उन्हीं सुनकर ध्रुवनं बुद्धिद्वारा करने चित्तका समाधान किया । इसके बाद वे पितृके नगरसे निकल पड़े ॥ २४ ॥ यह सब समाचार सुनकर और ध्रुव क्या करना चाहता है, इस बातका जानकर नारदजी बहो आये । उन्हींने ध्रुवके मस्तकपर अपना पापनाशक कल-कमल फेरते हुए मन-ही-मन विस्मित होकर कहा ॥ २५ ॥ 'अहो ! क्षत्रियोंका देहा बहुत तेज है, वे जोड़ना भी मान-भङ्ग नहीं सह सकते । देखो, अभी तो यह नरका-मा बच्चा है, तो भी इसके हृदयमें सीतेली माताके कटु वचन धर कर गये हैं ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् नारदजीने ध्रुवसे कहा—वेद्य ! अभी तो तुम्हारा है, खेद-वृद्धमें ही मस्तरहता है; हम नहीं ममज्ञते कि इस उद्यममें किसी बातसे तेरा सम्मान या अपमान हो सकता है ॥ २७ ॥ यदि तुम म्यापमन का विचार ही हो, तो क्या ! जन्ममें मनुष्यके जन्मतोषका कारण माहके सिरा और बुद्ध नहीं है । मंसारमें मनुष्य जन्म कर्मानुसार ही मान-अपमान या सुख-दुःख का अधिक प्राप्ति होता है ॥ २८ ॥ तब !

१ प्राचीन प्रक्षिप्तं मेनेव उवाच मही है । २ प्रा वा — संकल्पत ।

पा ४ लं १ ५२—

पन्तिपुष्यस्तत्तात तावन्मात्राण पुरुषः ।

देवोपमादित यावद्भीत्येधरगतिं युध ॥२९॥

अथ मात्रोपनिष्पन्न योगेनावरुहस्तसि ।

यत्प्रमादं न वै पुमां दुराराध्यो मतो मम ॥३०॥

मुनय पदवीं यस्य नि सङ्गनोरुज्जन्मभि ।

न विदुमुगायन्तोऽपि तीव्रयागममाधिना ॥३१॥

अतो निवर्ततामेव निर्वधस्तव निष्कल ।

यतिप्यति भवान् काले ध्ययां समुपस्थिते ॥३२॥

यस्य यद् नैव विहितं स तं न सुखदुःखयो ।

आत्मानं तोपयन्द्ही तमम पारमृच्छति ॥३३॥

गुणाधिकाद्भुदं लिप्सन्नुक्रोद्धं गुणाधमात् ।

मयीं ममानान्विच्छन् तापैर्गमिमृषते ॥३४॥

पुन उवाच

मायं गमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ।

नृशितं कृपया पुत्रां दुर्गोन्मदिर्घस्तु य ॥३५॥

अथापि मऽपिनीतस्य क्षान्त्र्यं धारमुपयुज ।

गुरुभ्यां दुष्टचाराणनं भिन्नं धयनं हृदि ॥३६॥

पञ्च प्रियवना कृष्टं विगापा माधु यर्मम ।

मृषमपि न भिन्नमन्नन्परप्यनधिष्टितम् ॥३७॥

नूनं भवान् भगवता याच्यते परमष्टिन ।

वितुन्नयनं पीनां क्षिप्रं जगतां पश्य ॥३८॥

भगवान्की गति बड़ी निश्चित है । इसलिये उसपर विचार करके बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि देशवश उसे जैसी भी परिस्थितिका सामना करना पड़े, उसीमें स्था रहें ॥ २० ॥ अब, मानाके उपदेशसे ए योग-साधन-द्वारा भिन भगवान्की कृपा प्राप्त करने चला है—मेरे विचारसे साधारण पुरुषोंके लिये उन्हें प्रसन्न करना बहुत ही कठिन है ॥ ३० ॥ योगीयोग जनेको जन्म-तक अनामक रहकर समाधियोगके द्वारा बड़ी-बड़ी बड़ोर साधनाएँ करते रहते हैं, परन्तु भगवान्के प्रसाद पना नहीं पाते ॥ ३१ ॥ इसलिये ए यह व्यपक्य हूँ छोड़ दे और घर बैठ जा बड़ा होनेपर जब परमार्थ-साधनका समय आवे, तब उसके लिये प्रयत्न कर लेना ॥ ३२ ॥ विधाताके विधानके अनुसार सुख-दुःख जो कुछ भी प्राप्त हो, उसीमें विचकरो सन्तुष्ट रहन चाहिये । यों करनेवाला पुरुष मोहमय संसारसे पा हो जाता है ॥ ३३ ॥ मनुष्यको चाहिये कि अपने अधिक गुणवान्को देखकर प्रसन्न हो; जो कम गुण वाला हो, उसपर दया करे और जो अपन समान गुणवाला हो, उससे मित्रवत् व्यवहारे । वं करनेसे उसे दुःख कभी नहीं दबा सकते ॥ ३४ ॥

पुन उवाच—भगवन् । सुख-दुःख से भिन्नकर विर-चक्य हो जाता है उन लोकोके लिये आपने हृदय करके शान्तिका यह बहुत अच्छा उपाय बताया । परन्तु मुन-जैसे अज्ञानियोंकी दृष्टि यही नक नहीं पहुँच पाती ॥ ३५ ॥ इसके विना, मुन वीर क्षत्रियवत् प्राप्त हुआ है; जन्म-मृत्युसे विरक्त प्राप्त अभय है । गुरुभिन अपने कटुवचनकारी भावोंसे मेरे हृदयको निष्ठीण कर डाला है इसलिये उसमें आपका यह उप-देश नहीं टहर पाता ॥ ३६ ॥ भगवन् । मैं उस पन्पर अधिकार करना चाहता हूँ, जो त्रिनाडीमें सबसे श्रेष्ठ है तथा त्रिमर मेरे बाप-माँ और दूसर कीर्मी आम्ह नही हो सक हैं । आप मुन उसीकी प्राप्ति कर डे अन्त-मा माग बनवाये ॥ ३७ ॥ आप भगवन् कान्हीर पुत्र हैं और संसारक सम्पादन लिय ही वीग बनात मूयकी मोनि त्रिनाडीमें विचार करते हैं ॥ ३८ ॥

मैत्रेय उवाच

इत्युदाहृतमाकर्ष्य भगवान्नारदस्तदा ।
प्रीत प्रत्याह त्वां सद्वाक्यमनुकम्पया ॥३९॥

नारद उवाच

जनन्याभिहितं पन्था सर्वं निःशेषतस्तत्ते ।
भगवान् वासुदेवस्तं भज्य तत्प्रवणात्मना ॥४०॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छत्यष्टय आत्मनः ।
एकमेव हरस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥४१॥
तथात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुष्पं मधुवनं यत्र सानिध्यं नित्यं ददा हरः ॥४२॥
स्नात्वा नुस्रवनं तस्मिन् क्षालिन्याः सलिले शिव ।
कृत्वा चित्तानि निवसन्नात्मनः कल्पितात्मनः ॥४३॥
प्राणायामेन त्रिवृता प्राणान्द्रियमनोमलम् ।
शून्यं र्मुदस्माभिष्पाद्येन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥४४॥
प्रसादाभिमुखं श्रद्धाप्रसन्नवदनेक्षणम् ।

मुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥

तद्वत् रमणीयाङ्गमरुणोच्छेदनाभरम् ।

प्रपताम्यवर्णं नृम्यं क्षरणं करुणार्णवम् ॥४६॥

भीवत्साङ्गं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ।

शङ्खचक्रगदापद्मैरभिष्यक्तपद्मार्धजम् ॥४७॥

किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरबलयान्वितम् ।

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—सुकवी बात सुनकर भगवान्
नारदजी को बड़े प्रमत्न हुए और उसपर कृपा करके इस
प्रकार सद्बुद्धि देन लगे ॥ ३९ ॥

श्रीनारदजीने कहा—यद्य ' तेरी माता मुनीतिने
मुझे जो कुछ बताया है, वही तरे त्रिय परम कल्याणकर
मार्ग है । भगवान् वासुदेव ही वह उपाय हैं इसलिय
तु विष्णु ल्याकर उन्हींका भजन कर ॥ ४० ॥ जिस
पुरुषको अपने त्रिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप
पुरुषार्थकी अभित्यगा हो उसके त्रिये उनकी प्रासिक
उपाय एकमात्र शीहरिक चरणोंका सेवन ही है ॥ ४१ ॥
वेद्य । तैरा कल्याण होगा, जब तू श्रीयमुनाजीके तन
वर्ता परम पवित्र मधुवनको जा । वहाँ श्रीहरिक्रि नित्य
निवास है ॥ ४२ ॥ वहाँ श्रीकान्तिदीके निर्मल बरमे
तीनों समय स्नान करके निपकर्मसे निवृत्त हो यथा-
विधि आसन विद्याकर स्थिरमात्रमे बैठना ॥ ४३ ॥
फिर रेचक, पूरक और कुम्भक—तीन प्रकारक प्राणा
यामसे धीरे-धीरे प्राण, मन और इन्द्रियके दोषोंको
हरकर धैर्ययुक्त मनसे परमगुरु श्रीभगवान्पर इस प्रकार
ध्यान करना ॥ ४४ ॥

भगवान्के नेत्र और मुख निरन्तर प्रसन्न रहते हैं,
उन्हीं देखनेसे ऐसा माध्यम होता है कि वे प्रसन्नता
पूषक मत्तको वर देनेके त्रिये उद्यत हैं । उनकी नासिका,
मौंहि और कपोल बड़े ही सुहावन हैं, व समी देख-
ताओंमें परम सुन्दर हैं ॥ ४५ ॥ उनकी तरुण अवस्था
है; समी अङ्ग बड़े सुन्दर हैं आल-आल होठ और
रतनारे नेत्र हैं । वे प्रणतवनोंको आश्रय देनेवाले,
अपार सुकाम्यक, शरणागतवस्तु और दयाका समुद्र
हैं ॥ ४६ ॥ उनका कक्ष स्वयमे श्रीवसुका बिहू है,
उनका शरीर सजल अक्षरक समान श्यामवर्ण है
वे परम पुरुष श्यामसुन्दर गळमें घममाला चरण किय
हुए हैं और उनकी चार मुनाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा
एव पद्म सुवोभित हैं ॥ ४७ ॥ उनके अङ्ग-प्रपङ्ग
किरीट, कुण्डल केयूर और कद्वणाणि आभूषणोंसे

कौस्तुभाभरणप्रीय पीतकौशेयनाससम् ॥४८॥

काशीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ।

दर्शनीयतमं छान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥४९॥

पद्भ्यां नखमणिभ्रेण्या विलसद्भ्यां समर्पणाम् ।

हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥५०॥

सममानमभिध्यायेत्सानुरागाबलोकनम् ।

निषतेनैकमूतेन मनसा वरदर्पणम् ॥५१॥

एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मन ।

निर्वृत्त्या परया तूर्णं सम्पन्नं न निवर्तत ॥५२॥

जप्यथ परमो गुह्य भूयतां मे नृपात्मज ।

य मत्परात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान् ॥५३॥

“ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।”

मन्त्रेणानेन द्रवस्य कृपावृत्त्यमयी बुधः ।

सपया विविधैर्द्रव्यैर्दण्डकालविभागवित् ॥५४॥

सलिल शुचिभिर्माल्यैर्वन्यमूलफलादिभि ।

शस्तादुरागुकभार्तेषुलस्या प्रियया प्रभुम् ॥५५॥

लम्प्या द्रव्यमयीमर्वा धित्यम्बादिषु वार्धयेत् ।

आमृतात्मा मुनि शान्ता यतवाक्मृत्तवन्यभुक् ॥५६॥

स्वेच्छापवारधर्तितं चिन्त्यनिजमायया ।

कणिप्यत्युत्तमं त्रिकलं नृप्यायद्भृदयद्भुम् ॥५७॥

विमूषित है, गला कौस्तुभमणिकी भी शोभा बढ़ा रहा है तथा शरीरमें रेशमी पीताम्बर है ॥ ४८ ॥ उनका कटिप्रदेशमें काञ्चनकी कतधनी और चरणोंमें सुवर्णमय नूपुर (पैजनी) सुशोभित हैं । भावान्का स्वरूप बड़ा ही दर्शनीय, शांत तथा मन और मनोको आनन्दित करनेवाला है ॥ ४९ ॥ जो लोग प्रभुका मनस-पूजन करते हैं, उनके कल-करणमें वे हृत्पद्ममयी कर्णिकापर अपने नख-मणिमण्डित मनोहर पात्राविकृतो स्थापित करके विराजते हैं ॥ ५० ॥ इस प्रकार धारणा करते-करते जब विश्व स्थिर और एकत्र हो जाय, तब उन वरदायक प्रभुका मन-ही-मन इस प्रकार ध्यान करे कि वे मेरी ओर अनुग्रहमयी दृष्टिसे निहारते हुए मन्द मन्द मुसकता रहे हैं ॥ ५१ ॥ भगवान्की मङ्गलमयी मूर्तिक इस प्रकार निरन्तर ध्यान करनेसे मन शीघ्र ही परमानन्दमें हृष्यकर तत्स्वीन हो जाता है और फिर वहाँ से लौटता नहीं ॥ ५२ ॥

राजकुमार ! इस ध्यानके माघ जिस परम गुह्य मन्त्रका जप करना चाहिये, वह भी यथावत् है—
सुन । इसका साठ रात जप करनेसे अनुपम आकाशमें विचरनेवाले सिद्धोका दर्शन कर सकत है ॥ ५३ ॥ वह मन्त्र है—“ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” । जिस दश और जिस काममें कौन वस्तु उपयोगी है—इसका विचार करके मुदिमान् पुरुषको इस मन्त्रके द्वारा तरह तरहकी सामर्थ्योंसे भगवान्की इच्छामयी पूजा करनी चाहिये ॥ ५४ ॥ प्रभुका पूजन विमुक्त जल, पुष्पमात्र, जंगली मूल और फलानि, पूजामें विहित दूर्वाणि अङ्गुर, बनमें ही प्राप्त होनेवाले वन्यफल वन्य और उनकी प्रेमसी तुष्टीसे करना चाहिये ॥ ५५ ॥ यदि शिखर आदि की मूर्ति मिल सक तो उसमें नहीं तो पृथ्वी या जल आदि में ही भगवान्की पूजा करे । सपना संपन्नचित्त, मन शीघ्र, शान्त और मोन रहे तथा जंगली पत्र-मृत्पात्रिका परिमित आहार कर ॥ ५६ ॥ इसका निश्चय पुण्यवर्धिनी श्रीहरि अपनी अनित्यनीय मायाय द्वारा अपनी ही हृदयसे आनन्द लेकर जो-जो मनोहर चिन्तन करनेवाले हैं उनका मन-ही-मन चिन्तन करता रहे ॥ ५७ ॥

परिचर्या भगवतो यावत्प पूर्वसेविताः ।

ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुज्यान्मन्त्रमृतये ॥५८॥

एव क्रायेन मनसा वचसा च मनोगतम् ।

परिषर्याणो भगवान् भक्तिमत्परिचर्याया ॥५९॥

पुंसाममायिनां सुम्यग्भजतां भाववर्धन ।

श्रेयो दिशस्यभिमत यद्दर्मादिषु दहिनाम् ॥६०॥

विरक्तमन्त्रिपरतौ भक्तियागेन सूयमा ।

तं निरन्तरभावेन भजेतस्मा विमुक्तये ॥६१॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपामक* ।

ययौ मधुवनं पुष्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥६२॥

तपोवन गते तस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनि ।

अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥६३॥

नारद उवाच

राज्ञन् किं भ्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ।

किं या न रिप्यते कामो धर्मो धार्थेन सयुत ॥६४॥

राजोवाच

सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रीणाकरुणात्मना ।

निर्यासितः पञ्चवर्षं सह मात्रा महान्कवि ॥६५॥

अप्यनार्थं वने ब्रह्मन्मीसादन्त्यमकं वृका ।

भान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमृन्मांशुजम् ॥६६॥

अहो मे वत हारताम्यं स्त्रीजितस्यापधारय ।

याऽह्म प्रम्याऽऽस्तुऽस्तु नाम्भ्यनन्दप्रमथाम ॥६७॥

प्रयुक्ती पूनाक लिये दिन-दिन उपचारोंका विधान किया गया है, उन्हें मन्त्रमूर्ति श्रीहरिको द्वादशाक्षर मन्त्र-के द्वारा ही अर्पण करे ॥ ५८ ॥

इस प्रकार जब हृदयस्थित हरिका मन, वाणी और शरीरसे भक्तिपूर्वक पूजन किया जाता है, तब वे निश्चल-भावसे मन्त्रमूर्ति मजन करनेवाले अपने मन्त्रोंके मात्र को बड़ा देते हैं और उन्हें उनकी इच्छाके अनुसार धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्षरूप कल्याण प्रदान करते हैं ॥ ५९ ६० ॥ यदि उपासकको इन्द्रियसम्बन्धी भोगोंसे वैराग्य हो गया हो, तो वह मोक्षप्राप्तिके लिये अल्पन्त भक्तिपूर्वक अविच्छिन्नभावसे भगवान्का भजन करे ॥ ६१ ॥

श्रीनारदजीसे इस प्रकार उपदेश पाकर राजकुमार धुवने परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया । तदनन्तर उन्होंने भगवान्के चरणविह्वलसे अर्पित परम पवित्र मधुवनकी यात्रा की ॥ ६२ ॥ धुवके तपोवनकी ओर चले जानेपर नारदजी महाराज उद्यानपात्रके महत्त्वमें पहुँचे । राजाने उनकी यथायोग्य उपचारोंसे पूजा की, तब उन्होंने आरामसे आसनपर बैठकर राजासे पूछा ॥ ६३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! तुम्हारा मुख सूखा हुआ है, तुम बड़ी दूरसे किम सोच-विचारमें पड़ हो ? तुम्हारे धर्म, अर्थ और काममेंसे किसीमें कोई कमी तो नहीं आ गयी ? ॥ ६४ ॥

राजाने कहा—ब्रह्मन् ! मैं वृका ही स्त्रीण और निर्दय हूँ । हाथ में अपने पाँच बन्धोंके बन्धेको उसकी माताका साथ धरते निकल गया । मुनिवर ! वह वृका ही बुद्धिमान् था ॥ ६५ ॥ उसका वध-सा मुख सूखते कुहल गया होगा, वह पककर बड़ा रास्तमें पड़ गया होगा । ब्रह्मन् ! उस अमहाय बन्धेको बन्धमें बड़ाँ भेदिये न खा जायें ॥ ६६ ॥ अहो ! मैं कदा स्त्रीका गुण्य हूँ । मरी कुटिलता तो देखिये— वह बालक प्रमथना मग मोरमें बड़ना चाहता था, मित्र सुभ दृष्टने उसका तनिक भी आनर नहीं किया ॥ ६७ ॥

नारद उवाच

मा मा शुच स्वतनयं दशगुप्तं विशाम्पते ।
तत्प्रभावमविज्ञाय प्राप्य यद्यशो जगत् ॥६८॥
सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालेऽपि प्रभु ।
एष्यत्यधिरता राजन् यशो विपुलयस्तव ॥६९॥

मैत्रेय उवाच

इति दशपिणां प्राक्तं विभुस्य जगतीपति ।
राजलक्ष्मामनादस्य पुत्रमेवान्वचिन्त्ययत् ॥७०॥
सत्रामिषिक्तं प्रयत्नाद्गुणाय विभावरीम् ।
समाहितः पर्यचरन्त्यादशेन पूरुषम् ॥७१॥
त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थकदराशन ।
आत्मवृत्तपनुसारणं मार्गं निन्द्यऽचयन्हारिम् ॥७२॥
द्वितीयं च तथा मासं पष्ठं पष्ठऽर्धमा दिने ।
वृणपणादिभिः शार्णं कृताशोऽभ्यचयद्विष्टम् ॥७३॥
तृतीयं चानयन्मार्गं नवमं नवमऽहनि ।
अन्भय उत्तमश्चाक्रमुपाधाव्रत्ममाधिना ॥७४॥
चतुर्थमपि च मासं द्वादशं द्वादशऽहनि ।
बायुभया जितशामा ध्यायन्ध्वमधारयत् ॥७५॥
पञ्चमं मास्यनुप्राप्तं जितशामा नृपान्मज्ज ।
ध्यायन् प्रज्ञं पञ्चन तर्क्यं ध्यायन्निवाचल ॥७६॥
सर्वता मन आहृष्य इति मृतन्त्रियाद्ययम् ।
ध्यायन्भगवता रूपं नात्रार्थीर्निश्चिनायम् ॥७७॥
आधारं महदादानां प्रधानपुरुषधाम् ।
प्रज्ञं धाम्यमागम्य त्रया लक्षणधरम्पि ॥७८॥

श्रीनारायणजीने कहा—राजन् ! तुम अपने भावककी
चिन्ता मत करो । उसके रक्षक भगवान् हैं । तुम्हें
उसका प्रभावक पता नहीं है, उसका क्या सारे जगत्में
पैदा रहा है ॥ ६८ ॥ वह वास्तविक यशो समर्थ है ।
जिस कामको बहुत बड़े श्रेष्ठता भी नहीं कर सके,
उसे पूरा करके वह शीघ्र ही तुम्हारे पास लौट आयेगा ।
उसके कारण तुम्हारा यश भी बहुत बढ़ेगा ॥ ६९ ॥

श्रीमत्रेयजी कहते हैं—देवर्षि नारदजीकी बात
सुनकर महाराज उत्तानपाद राजप्राज्ञकी ओरसे उत्तरीन
होकर निरन्तर पुत्रकी ही चिन्तामें रहने लगे ॥ ७० ॥
इस भुवमीने मधुक्नये पहुँचकर यमुनाजीमें स्नान
किया और उस रात पवित्रतार्किक उपवास करके श्रीनारद
जीके उपदेशानुसार एकाग्रचित्तसे परमपुरुष श्रीनारायणजी
उपासना आरम्भ कर ली ॥ ७१ ॥ उन्होंने तीन-तीन
रात्रिक अन्तसे शरीरनिर्वाहक लिये केवल कैप और
बेरके फल खाकर धीहरिकी उपासना करते हुए एक
मास स्थीत किया ॥ ७२ ॥ दूसरे महीनेमें उन्होंने
छ छ दिनके पीछे सुले घास और पत्ते खकर
भगवान्का भजन किया ॥ ७३ ॥ तीसरा महीना भी
नीतिनपर ब्रह्म जब पीकर समाधिभागके द्वारा धीहरि
की आराधना करते हुए बिताया ॥ ७४ ॥ चौथे
महीनेमें उन्होंने शामको जीनकर बारह-बारह दिनके
बात केवल बायु पीकर ध्यानयोगशाला भगवान्की वर-
चना की ॥ ७५ ॥ पाँचवाँ मास स्थानपर राजकुमार
धुव शामको जीनकर परमेश्वर की चिन्ता करते हुए
एक घंटेसे शेष समान निद्राका भावसे खड़ा हो गये
॥ ७६ ॥ उस समय उन्होंने शृङ्गानि किया और
इन्द्रियों नियामक अपने मनको सब ओरसे रोक
लिया तथा हृदयस्थित हरिके स्वरूपको चिन्ता करने
हुए चित्तकी किसी दूसरी ओर न जान दिया ॥ ७७ ॥
त्रिग समय उन्होंने मन्त्रानि मन्त्रों तार्किक धारण
तथा प्रवृत्ति आदि पुरुष भी अतीव परमेश्वर की धारण
का उभय समय (उनका स्वरूप न मान सरनेक
वर्णन) मीनो राज की उत ॥ ७८ ॥ जब

१ मा ॥ —मा सुवर्णमभ्युपन । २ मा ॥ —मा इत्यादिपुत्र । ३ मा ॥ —मा ध्यायन् प्रज्ञं मैत्रेय उवाच

नतीरे । ४ मा ॥ —निदिष्टीये ।

यदेकपादेन म पाधिचार्मक
 न्तस्यौ तदङ्गुलिनिपीडिता मही ।
 ननाम सप्रार्थमिमेन्द्रभिष्टिता
 तरीव सव्येतरत पदे पद ॥७९॥
 तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो
 द्वार निरुध्मासुमनस्यया धिया ।
 लोका निरुध्मासनिपीडिता मृशं
 मलोकपाग शरण ययुर्हरिम् ॥८०॥

का जघ्नुः

नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं
 चराचरस्वास्त्रिलसखधाम्न ।
 विधेहि तन्नो विजिनादिमोक्ष
 प्राप्ता वयं त्वां शरण शरण्यम् ॥८१॥
 श्रीभगवानुवाच

मामैष्ट पाल तपसो दुरत्यया
 न्निवर्तयिष्ये प्रतिपात स्थधाम ।
 यतो हि व प्राणनिरोध आमी
 दीक्षानपात्तिर्मणि सगतात्मा ॥८२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो संहितायां
 चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरितेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

ध्रुवका चर पाक्षर चर सौतमा

मैत्रय उवाच

स एवमु मन्त्रभया उरुक्रम
 कृतावनामा प्रययुरिषिष्टपम् ।
 महस्रवीपाणि ततो गरुडमता
 मधोर्ध्वन मृत्युदिदृक्षया गत ॥ १ ॥

१ प्राचीन प्रतिभे श्रीमद्भागवतपाठ नहीं है ।

तनजुमार ध्रुव एक पीरसे खड़ा हुए, तब उनके अँगूठेसे दबकर आधी पृथ्वी इस प्रकार झुक गयी जैसे किस्ती गजराजधे खड़ जानेपर नाथ पद-पदपर गायी घायी और डगमगाने लगती है ॥ ७९ ॥ ध्रुवजी अपने इन्द्रियद्वार तथा प्राणोंको रोककर अनन्ययुक्तिसे विश्वात्मा श्रीहरिका ध्यान करने लगे । इस प्रकार उनकी समष्टि प्राणसे अभिन्नता हो जानकर कारण सभी जीवोंका आस प्रशाम रुक गया । इससे ममस्त रोक और लोकगान्धे को बड़ी पीडा हुई और वे सब घबराकर श्रीहरिकी शरणमें गये ॥ ८० ॥

दृष्टतामोनं कथा—भगवन् । समस्त स्यावर-नङ्गम जीवोंके शरीरोंका प्राण एक साथ ही रुक गया है—
 यमा तो हमन पहले कमी अनुमन नहीं किया । आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले हैं, अपनी शरणमें आये हुए हमयोगोंको इस दु खसे छुकाइये ॥ ८१ ॥

श्रीभगवानने कहा—देवताओ ! तुम डरो मत । उत्तानपात्रके पुत्र ध्रुवने अपने चित्तको मुक्त विश्वात्मामें लीन कर लिया है, इस समय मेरे साथ उसकी अमेद धारणा सिद्ध हो गयी है इसीसे उसके प्राणनिरोधसे तुम सबका प्राण भी रुक गया है । अब तुम अपने-अपन लोकोंको जाना मैं उस बलवत्को इस दुष्कर तपसे निवृत्त कर दूंगा ॥ ८२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! भगवान्के इस प्रकार आशामन नेनेसे दक्काओंका मय जाता रहा और वे उन्हे प्रणाम करके भगवान्को चले गये । तन्मन्तर सिगन्धस्वच्छ भगवान् गरुडपर खड़ेकर अपने भक्तको देवमनके दिव्य मधुपनमें आये ॥ १ ॥ उम

॥ वै धिया योगविपाकतीव्रया
 हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तस्मिन्प्रभम् ।
 तिरोहितं सहसैवोपलभ्य
 बहि स्थित तदवस्थं ददर्श ॥ २ ॥
 तदर्धनेनागतसाध्वस श्रिता-
 वचन्दताम् विनमय्य हृण्वत् ।
 हर्म्यां प्रपश्यन् प्रपिबन्निबार्मक-
 शुम्बन्निवास्येन श्रुजैरिवाश्लिपन् ॥ ३ ॥
 स तं विचञ्चन्तमसद्विद हरि
 श्रुत्वास्स सर्वम् च हृद्यवस्थितः ।
 कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्पुना
 पस्पर्शं बालं कृपया कपोले ॥ ४ ॥
 स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं
 दैवीं परिष्ठातपरात्मनिर्णयः ।
 तं भक्तिभावोऽभ्यगृह्णात्सत्वरं
 परिमुक्तोरुभवत् भुवर्षितिः ॥ ५ ॥

भुव उवाच

योऽन्त प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसृतां
 संजीवयत्यसित्शक्तिभरं स्वधाम्ना ।
 अन्याम् हस्तचरणभ्रमणस्वगादीन्
 प्राप्नान्नमो भगवते पुरुषाय हृम्यम् ॥ ६ ॥
 एकस्त्वमयं भगवन्निदमात्मशक्त्या
 मायान्ययान्गुणया महताग्रशेषम् ।
 सृष्टानुविश्य पुरुषमादसद्वृणु
 नानेव दारुणं विभावमुवद्विभासि ॥ ७ ॥

समय भुवजी तीव्र योगाम्नाससे एकाग्र हुई मुद्रिके
 द्वारा मगवान्की बिजलीके समान देदीप्यमान त्रित
 मूर्तिकर अपने हृत्पद्मकोशमें ध्यान कर रहे थे, वह
 सहसा विधीन हो गयी । इससे घबराकर उन्होंने जब
 ही नेत्र खोले कि मगवान्के उसी रूपकी बाहर अपने
 सामने खड़ा देखा ॥ २ ॥ प्रमुखा दर्शन पाकर
 बात्स्यमुखको बड़ा कुम्हल हुआ, वे प्रेममें अधीर हो
 गये । उन्होंने पृथ्वीपर पृथ्वीके समान लोटकर उन्हें
 प्रणाम किया । फिर वे इस प्रकार प्रेममयी दृष्टिसे उनकी
 ओर देखने लगे मानो नेत्रोंसे उन्हें पी जायेंगे, मुससे
 चुम्ब लेंगे और चुम्बाओंमें बस लेंगे ॥ ३ ॥ वे हाथ
 जोड़े प्रमुके सामने खड़े थे और उनकी स्तुति करना
 चाहते थे, परन्तु किस प्रकार करें—यह नहीं जानते
 थे । सर्वान्तर्यामी हरि उनके मनकी बात जान गये,
 उन्होंने कृपाशून्य अपने केदम्य शङ्खको उनके गालसे
 छुवा दिया ॥ ४ ॥ भुवजी मरिच्यमें अनिक्ल पद
 प्राप्त करनेवाले थे । इस सम्पन्न शङ्खक स्पर्श होते
 ॥ उन्हें बदमयी दिव्यवाणी प्राप्त हो गयी और
 भीम तथा कृष्णके स्वरूपका भी निश्चय हो गया ।
 वे आत्यन्त भक्तिभावसे वैयर्थ्यक निश्चिन्तयात् कीर्ति-
 मान् श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥

भुवजीने कहा—प्रभो ! आप सर्वशक्तिप्रच्यन्त हैं,
 आप ही मेरे अन्तःकरणमें प्रवेशकर अपने तेजसे
 मेरी इस सोयी हुई वाणीको सजीव करते हैं तथा हाथ,
 पैर, कान और लम्बा आदि अल्पान्य इन्द्रियों एवं प्राणोंको
 भी चेतनता देते हैं । मैं आप अन्तर्यामी मगवान्को
 प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ मगवन् ! आप एक ही हैं,
 परन्तु अपनी अनन्त गुणमयी मायाशक्तिसे इस महाद्वि
 सम्पूर्ण प्रपञ्चको रचकर अन्तर्यामीरूपसे उसमें प्रवेश
 कर जाते हैं और फिर इसके इन्द्रियाणि असत् गुणोंमें
 उनके अविनाश रूपकाजके रूपमें स्थित होकर अनेक
 रूप भासते हैं—नीक भसे ही जैसे तरङ्ग-तरङ्गकी
 लक्ष्मियोंमें प्रकट हुए आग अपनी उपाधियोंके
 अनुसार भिन्न भिन्न रूपोंमें भासती है ॥ ७ ॥

स्वस्त्या भयुनयेदमघट विषं
 सुप्तप्रभुश्च इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
 तत्सापवर्ग्यशरणं तव पादमूल
 विसर्जयेत् कृतविदा कथमार्चयन्धो ॥ ८ ॥
 मृतं विमृष्टमवस्तव मायया ते
 यत्त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतो ।
 अर्चन्ति कल्पकृतं कृणोपोपभोग्य
 मिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरिच्छेऽपि नृणाम् ॥ ९ ॥
 या निर्द्वितित्तुमृतां तव पादपद्म-
 ध्यानमग्नयस्त्रयभरणेन वा स्यात् ।
 सा त्रयसि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्
 किं त्वन्तकासिलुलितास्पतां विमानात् ॥ १० ॥
 भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
 मूयदन्त महताममलाशयानाम् ।
 येनाञ्जलौघेषु मुहुर्मयसन् भवाम्बिं
 नेभ्यः भवद्गुणकथाभूतयानमव ॥ ११ ॥
 ये न सरन्त्यविततां प्रियमीश्वर सरयं
 ये चान्वद सुतसुहृद्वृद्धविषदाता ।
 ये त्वञ्जनाम भवदीयपदारविन्द
 सांगन्पलुग्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥ १२ ॥
 विषहन्गद्विजसरीसुपदवर्धत्य-
 मर्त्यादिभिः परिषिर्तसदसद्विशेषम् ।
 रूपं स्वविष्टमत्र त महदायनेकं
 नातः पर परम ध्वनि न यत्र बादः ॥ १३ ॥

नाथ । सुष्टिक आरम्भमें ब्रह्मादीने मी आपकी शरण लेकर
 आपके दिये हुए ज्ञानके प्रभाषसे ॥ इस बगदको सोकर
 ठठे हुए पुरुषके समान देखा था । दीनबन्धो । उन्हीं
 आपके चरणतलका मुक्त पुरुष भी आश्रय लेते हैं,
 कोई भी कृतज्ञ पुरुष उन्हें कैसे मूल सकता है ॥ ८ ॥
 प्रभो । इन शब्दतुल्य शरीरोंके द्वारा भोगा ज्ञानबला,
 इन्द्रिय और विषयोंके संसर्गसे उत्पन्न सुख तो मनुष्योंको
 मरकतमें भी मिल सकता है । जो लोग इस विषयसुखके
 लिये लाज्यस्थि रहते हैं और जो जन्म-मरणके चक्करसे
 छुड़ा देनेवाले कल्पतरुसरूप आपकी उपासना भगवत्
 प्राप्तिके सिवा किसी अन्य उद्देश्यसे करते हैं, उनकी
 बुद्धि अक्षय्य ही आपकी मायाके द्वारा ठगी गयी है ॥ ९ ॥
 नाथ । आपके चरणकमलोंका ध्यान करनेसे और आप
 के मर्कोंके पवित्र चरित्र सुननेसे प्राणियोंको जो आनन्द
 प्राप्त होता है, वह निजामन्दसरूप ज्ञानमें भी नहीं
 मिल सकता । फिर जिन्हें कालकी तलवार काट बाँटती
 है, उन सर्गादि विमानोंसे गिरनेवाले पुरुषोंको तो वह
 सुख मिल ही कैसे सकता है ॥ १० ॥

जनन्य परममन् । मुझे तो आप उन विद्वद्ब्रह्म
 महात्मा मर्कोंका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न
 भक्तिभाव है, उनके सङ्गमें मैं आपके गुणों और श्रीमन्मो-
 की कथा-सुधाको पी-पीकर उत्पन्न हो जाऊँगा और
 सहज ही इस अनेक प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण मयङ्कर
 संसारसागरके उस पार पहुँच जाऊँगा ॥ ११ ॥
 कमन्माम प्रभो । जिनका चित्त आपके चरणकमलोंकी
 सुगन्धमें लुप्तया हुआ है, उन महातुम्होंका जो लोग
 सङ्ग करते हैं—वे अपने इस अत्यन्त प्रिय शरीर और
 इसके सम्बन्धी पुत्र, मित्र, गृह और भी आन्ध्रों सुखि
 भी नहीं करते ॥ १२ ॥ जनन्या परमधर ! मैं तो
 पशु, पक्ष, पर्वत, पक्षी, सरीसृप (सर्पादि रेंगनेवाले
 जन्तु), देवता, दीव्य और मनुष्य आदिसे परित्यक्त तथा
 महदादि अनेकों करणोंसे सन्धानित आपके इस
 सदसदात्मक रूपम विषमरूपको ही जानता हूँ; इससे
 परे जो आपका परम स्वरूप है, जिसमें बाणीकी गति
 नहीं है, उसका मुझे पता नहीं है ॥ १३ ॥

स वै धिया योगविपाकतीव्रया
 हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तद्विद्वत्प्रभम् ।
 तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य
 घटिःस्मितं तदवस्पर्शं ददर्श ॥ २ ॥
 तदर्शनेनागतसाध्यसः श्रिता
 वचन्दत्ताङ्गं विनमय्य दण्डवत् ।
 हृत्पद्मां प्रपश्यन् प्रपिबन्निवार्मक-
 श्चुम्बन्निवाम्येन मुञ्जैरिषाक्षिलपन् ॥ ३ ॥
 स स त्रिविधन्तमवशिद हरि
 कृत्स्नास्य सर्वस्य च हृद्यवम्बितः ।
 कृताञ्जलिं प्रश्नमयेन कम्बुना
 पस्पर्शं घातं कृपया कृपाले ॥ ४ ॥
 स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं
 दैवीं परिहृतात्परतन्निर्णयः ।
 त भक्तिभावोऽस्यगुणान्सत्वरं
 परिश्रुतोरुद्यत्सं ध्रुवश्रितिः ॥ ५ ॥

ध्रुव उवाच

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रमुखां
 संजीवयत्यखिलशक्तिधरं स्वधाम्ना ।
 अन्यांश्च हस्तचरणधवणत्वगादीन्
 प्राणान्तमा भगवते पुरुषाय हस्तमप ॥ ६ ॥
 एकस्त्वमपि भगवन्निद्रमात्मयश्चकत्या
 मायाम्बयारुणया महदाद्यश्रेष्ठम् ।
 सृष्टानुविध्य पुरुषमन्यद्गुणपु
 नानेव दारुणं विभावसुषुप्तिभामि ॥ ७ ॥

समय ध्रुवजी तीव्र योगाभ्याससे एकप्र झुई मुखिके
 द्वारा भगवान्की विजलीक समान देदीप्यमान जिस
 मूर्तिका अपने हृत्पद्मकोशमें ध्यान कर रहे थे, वह
 सहसा विहीन हो गयी । इससे घबराकर उन्होंने उसे
 ही नेत्र खांके कि भगवान्को उसी रूपको बाहर अपने
 सामने खड़ा देखा ॥ २ ॥ प्रमुखा दर्शन पाकर
 बालकध्रुवकी बड़ा कुतूहल हुआ, वे प्रेममें व्यथित हो
 गये । उन्होंने पृथ्वीपर पद्मको समान नोटकर उन्हें
 प्रणम किया । फिर वे इस प्रकार प्रेममयी दृष्टिसे उनकी
 ओर देखने लगे मानो नेत्रोंसे उन्हें पी जायेंगे, मुँहसे
 चूम लेंगे और चुभाओंमें बस लेंगे ॥ ३ ॥ वे हाथ
 जोड़े प्रमुख सामन खड़े थे और उनकी स्तुति करना
 चाहते थे, परन्तु किस प्रकार करें—यह नहीं जानते
 थे । सर्वान्तर्धामी हरि उनके मनकी बात जान गये;
 उन्होंने कृपापूर्वक अपने वेदमय शङ्खको उनके गालसे
 छुवा दिया ॥ ४ ॥ ध्रुवजी भविष्यमें अविकल प
 प्राप्त करनेवाले थे । इस समय शङ्खकर स्पर्श होते
 ही उन्हें चेतमयी विव्यवाणी प्राप्त हो गयी और
 जीव तथा ब्रह्मके स्वरूपका भी निश्चय हो गया ।
 वे अत्यन्त भक्तिभावसे धैर्यपूर्वक विश्वविक्रमपत कीर्ति
 मान् श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥

ध्रुवजीने कहा—प्रभो ! आप सर्वशक्तिमन्मन् हैं,
 आप ही मेरे अन्तःकरणमें प्रवेशकर अपने तेजसे
 मेरी इस मोयी हुई बाणीको सजीव करते हैं तथा हाथ,
 पैर, कान और त्वचा आदि अन्याम्य इन्द्रियों एवं प्राणोंको
 भी चेतनता देते हैं । मैं आप अन्तर्धामी भगवान्को
 प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ भगवन् ! आप एक ही हैं,
 परन्तु अपनी अनन्त गुणमयी मायाशक्तिसे इस महापि
 सम्पूर्ण प्रपञ्चको रचकर अन्तर्धामीरूपसे उसमें प्रवेश
 कर जाते हैं और फिर इसका इन्द्रियाणि वस्त्र गुणोंमें
 उनके अनिष्टात् प्रेताओंके रूपमें स्थित होकर अनेक
 रूप मासते हैं—टीक बैठे ही जैसे तरङ्ग-तरङ्गकी
 स्थितियोंमें प्रगट हुई आग अपनी उपाधिकों
 अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें भासती है ॥ ७ ॥

त्वत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं
सुप्तप्रद्युष्ट इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
तत्सापवर्ग्यध्वरणं तव पादमूर्त्तं
विस्मर्यते कृतविदा कथमार्चयधो ॥ ८ ॥
नूनं विमृष्टमवपत्तव मायया ते
ये स्नां भवाप्यविमोक्षणमन्यहेतोः ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कृष्णपोषभोग्य
मिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरपेक्षपि नृणाम् ॥ ९ ॥
या निर्वातिस्तनुभृतां तव पादपथ
ध्यानाद्भवजनकभाभ्रवणेन वा स्यात् ।
साम्राजिणस्त्रिमहिमन्यपि नाथ भा भूत्
किं त्वन्तस्मात्सिद्धुलितवत्पदतां विमानात् ॥ १० ॥
भक्तिं मुहुः प्रवहता त्वयि मे प्रसक्तो
भूयादनन्तं महत्ताममलाश्रयानाम् ।
येनाञ्जसोत्पन्नमृरुम्यसनं भवाम्बिं
नेन्ये भवदुष्कृतामृतपानमयः ॥ ११ ॥
ते न भरन्त्यवितरा प्रियमीश मर्यं
ये चान्वदः सुतसुहृद्वृद्धविचाराः ।
ये त्वञ्जनाम भवदीयपदारविन्द
सौगं भ्यलुम्भहृदयेषु कृतप्रसज्जाः ॥ १२ ॥
तिपद्भनगाद्रिजसरीसुपदेवदैत्य
मर्त्यादिभिः परिचिर्षसद्विज्ञेपम् ।
रूपं स्थविष्ठमज त महदायनेकं
नातः परं परम वेधि न यत्र वाद ॥ १३ ॥

नाथ ! सुष्टिके आरम्भमें ब्रह्माजीने भी आपकी शरण लेकर
आपके दिये हुए ज्ञानके प्रभावसे ही इस जगत्को सोकर
ठठे हुए पुरुषके समान देखा था । दीनबन्धो ! उन्हीं
आपके चरणतन्त्रका मुक्त पुरुष भी आश्रय लेते हैं,
कोई भी कृताङ्ग पुरुष उन्हें कैसे मूल सकता है ॥ ८ ॥
प्रभो ! इन शब्दोंके शरीरोंके द्वारा भोगा मानेवाला,
इन्द्रिय और विषयोंके संसर्गसे उत्पन्न सुख तो मनुष्योंके
नरकमें भी मिल सकता है । जो भोग इस त्रियसुखके
छिये छालाफिरा रहते हैं और जो जन्म-मरणके बन्धनसे
छुड़ा देनेवाले कल्पतरुस्वरूप आपकी उपासना भगवद्
प्राप्तिके सिद्धा किन्ती अन्य उद्देश्यसे करते हैं, उनकी
बुद्धि अक्षय्य ॥ आपकी मायाके द्वारा ठगी गयी है ॥ ९ ॥
नाथ ! आपके चरणकमलोंका ध्यान करनेसे और आप
के मूर्त्तोंके पवित्र चरित्र सुननेसे प्राप्तिप्राप्तोंके जो आनन्द
प्राप्त होता है, वह मित्रानन्दस्वरूप ज्ञानमें भी नहीं
मिल सकता । तिर जिन्हें कालकी तन्त्रवार काने डालती
है, उन खर्गाप विमानोंसे गिरनेवाले पुरुषोंको तो वह
सुख मित्र ही कैसे सकता है ॥ १० ॥

अनन्त परमात्मन् ! मुझे तो आप उन विद्वद्ब्रह्म
महात्मा मूर्त्तोंका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न
भक्तिभाव है, उनके सङ्गमें मैं आपके गुणों और लीन-ज्ञों-
की कल्याण-सुधाको पी-पीकर सम्मत् हो जाऊँगा और
सहज ही इस अनेक प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण भयङ्कर
संसारसागरके उस पार पहुँच जाऊँगा ॥ ११ ॥
कमलनाम प्रभो ! जिनका विचि आपके चरणकमलोंकी
सुगन्धमें लुभाया हुआ है, उन महानुभावोंका जो भोग
सङ्ग करते हैं—वे अपने इस अक्षय्य प्रिय शरीर और
इसके सम्बन्धी पुत्र, मित्र, गृह और श्री कापिकी सुधि
भी नहीं करते ॥ १२ ॥ अजन्मा परमेश्वर ! मैं तो
पद्म, वृद्ध, पवन, पत्नी, सरीसृप (सर्पिण रेंगनेवाले
जन्तु), देवता, दैत्य और मनुष्य आपसे परिपूर्ण तथा
महदारी अनेकों कारणोंसे संपादित आपके इस
सदसत्तामक स्थूल विस्मरणको ही जानता हूँ । इससे
परे जो आनन्द परम स्वरूप है, जिसमें बाणीकी गति
नहीं है, उसका मुझे पता नहीं है ॥ १३ ॥

कल्पान्तं एतदखिलं जठरेण गृह्णन्
 श्रेते पुमान् स्वदगनन्तसखस्तदङ्गे ।
 यन्नामिसिन्धुर्दृष्टकाञ्चनलोकपथ
 गर्भे शुमान् भगवते प्रणतोऽसि तस्मै ॥१४॥
 त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा
 कूटस्थ आदिपुरुषो भगवत्स्वर्गधीश्वरः ।
 यद्विबुद्धत्वमितिमत्सम्बद्धितया व्यवस्था
 द्रष्टव्यतावधिमत्सो व्यतिरिक्त आस्ते ॥१५॥
 यस्मिन् विरुद्धगुणयोऽनिर्घटं पतन्ति
 विद्यादया विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।
 तद्वत्तु विश्वभदमेकमनन्तमाद्य-
 मानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥१६॥
 सत्याऽऽश्रितो हि भगवत्स्त्वपादपथ
 माक्षीस्त्वभानुमज्जतं पुष्पाब्जधूर्तः ।
 ज्ञानेवमर्षे भगवान् परिपाति दीनान्
 भावेन वत्सकमनुग्रहकारोऽजान ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

अधामिष्ट एव वै सत्सकल्पेन धीमता ।
 मृत्मानुरक्तो भगवान् प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

वेदाह ते व्यवसित इदि राजन्यबालक ।
 तत्प्रपञ्चामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥१९॥

भगवन् । कल्पका अन्त होनेपर योगनिद्रामें स्निग्ध हो
 परमपुरुष इस सम्पूर्ण विश्वको अपने उदरमें लीन करने
 योगजीके साथ उपासीकी गोत्रमें शयन करते हैं तथा भिन्नके
 नाभि-समुद्रसे प्रकट हुए सर्वलोकमय सुवर्णवर्ण कमलसे
 परम सेजोमय ब्रह्मासी उत्पन्न हुए, वे भगवान् आप ही
 हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥

प्रभो ! आप अपनी कल्पवृक्ष चिन्मयी दृष्टिसे बुद्धिकी
 सभी अवस्थाओंके साक्षी हैं तथा नित्यमुक्त, बुद्धसत्त्वमय,
 सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, पदैश्वर्य-
 सम्पन्न एव तीनों गुणोंके अधीश्वर हैं । आप जैसे
 सर्वथा भिन्न हैं तथा संसारकी स्थितिके लिये यन्त्राभिष्टाय
 विष्णुरूपसे विराजमान हैं ॥१५॥ आपसे ही विद्या-अविद्या
 आदि विरुद्ध गतियोंवाली अनेकों शक्तियों धारणात्मिक
 रूपसे निरन्तर प्रकट होती रहती हैं । आप जगत्के
 कारण, अक्षय्य, अनादि, अनन्त, आनन्दमय, निर्विकार
 ब्रह्मस्वरूप हैं । मैं आपकी वरण हूँ ॥ १६ ॥ भगवान् !
 आप परमानन्दमूर्ति हैं—बो ध्येग ऐसा समझकर
 निष्कलमभावसे आपका निरन्तर मजन करते हैं, उनके
 लिये श्रद्धादि योगोंकी अपेक्षा आपके चरणकमलोंकी प्राप्ति
 ही मजनका सच्चा फल है । स्वामिन् ! यद्यपि बात ऐसी
 ही है, तो भी गौ जैसे अपने दूरतके बच्चे हुए बछड़ेको
 दूध पिलाती और व्याघ्रद्विसे बचती रहती हैं, उसी
 प्रकार आप भी मर्त्योपर दया करनेके लिये निरन्तर
 विकल रहनेके कारण हम-जैसे सकल जीवोंकी भी
 कृपामना पूर्ण करके उनकी संसार-मयसे रक्षा करते
 रहते हैं ॥ १७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! जब शुभ सङ्कल्प
 वाले मतिमान् धुवजीने इस प्रकार स्तुति की तब
 भक्तकस्तु भगवान् उनकी प्रशंसा करते हुए कहने
 लगे ॥ १८ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—उत्तम श्रद्धा पाप्मन करनेवाले
 राजकुमार ! मैं तेरे हृदयका सङ्कल्प जानता हूँ । यद्यपि
 उस पक्व प्राप्त होना बहुत कठिन है, तो भी मैं तुझे
 यह देता हूँ । तेरा कल्याण हो ॥१९॥

नान्यैरधिष्ठितं मंदं यद्भ्राजिष्णु ध्रुवर्षिति ।
 यत्र प्रहर्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥२०॥
 मेढयां गोचक्रवत्स्यास्तु परस्तात्कल्पवासिनाम् ।
 धर्मोऽग्निः कस्यपः शुक्रो ह्यनयो ये वर्नांकसः ।
 चरन्ति दक्षिणीकृत्य अमन्तो यत्सतारकाः ॥२१॥
 प्रसिधे तु वन पित्रा दत्त्वा गां धर्ममभयः ।
 पद्विंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिताभ्याहतेन्द्रियः ॥२२॥
 त्वद्भ्रातृर्धुचमे नष्टे भृगयायां तु तन्मना ।
 अन्वेपन्ती वनं माता दातारिणि सा प्रवेक्ष्यति ॥२३॥
 इष्ट्वा मां यद्ब्रह्मदं यमः पुष्कलदक्षिणैः ।
 भुक्त्वा चेहाशिपः सत्या अन्तं मां संसारिष्यसि ॥२४॥
 ततो गन्तासि मत्स्नानं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
 उपरिष्टाद्यपि मत्स्त्वं ततो नावर्तसे गैवः ॥२५॥

मैत्रेय उवाच

इत्यर्चितः स भगवानसिद्धिभ्यात्मनः पदम् ।
 बालस पश्यता धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥२६॥
 सोऽपि मंकल्पञ्च विष्णोः पादसेवोपमानितम् ।
 प्राप्य संकलानिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥२७॥

विदुर उवाच

सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरे
 मर्यादविनष्टधरणावर्नान्वितम् ।

यद् । जिस तेजावय अविनाशी लोकको आनतक
 किसीने प्राप्त नहीं किया, जिसका चारों ओर प्रह, मधुप्र और
 तारागणरूप ज्योतिष्यक उसी प्रकार चकर काटता रहता
 है जिस प्रकार मेरीके चारों ओर दैवीके वैष्णु घूमते रहते
 हैं । अत्रान्तर कल्पपर्यन्त रहनेवाले अन्य लोकोंका नाश हो
 जानेपर भी जो स्थिर रहता है तथा तारागणक सहित
 धर्म, अग्नि, कस्यप और शुक्र आदि नभश्च एवं समर्पिण
 जिसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, वह ध्रुवनेक में तुझे
 वेत्ता हूँ ॥ २० २१ ॥ यहाँ भी जब तेरे पिता तुझे
 राजसिंहासन देकर जनको चले जायेंगे, तब तू छत्तीस
 हजार वर्षक वर्षपूर्वक पृथ्वीका पालन करेगा । तेरी
 इन्द्रियोंकी शक्ति ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी ॥ २२ ॥ आगे
 चक्रवर्त किसी समय तेरा भाई उत्तम शिकार खेलता
 हुआ मारा जायगा, तब उसकी माता मरुचि पुत्र-प्रेममें
 पागल होकर उसे वनमें खोजती हुई दावानलमें प्रवेश
 कर जायगी ॥ २३ ॥ यद्य मेरी प्रिय मूर्ति है, तू अनेकों
 बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञों द्वारा मेरा यजन करेगा
 तथा यहाँ उत्तम-उत्तम भोग भोगकर अन्तमें मेरा ही
 स्मरण करेगा ॥ २४ ॥ इससे तू अन्तमें सम्पूर्ण लोकोंके
 कन्दनीय और सतर्पियोंसे भी ऊपर मेरे निज धामको
 जायगा, जहाँ पहुँच जानेपर फिर संसारमें लौटकर नहीं
 जाना होता है ॥ २५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—बालक ध्रुवसे इस प्रकार
 पूजित हो और उसे अपना पद प्राप्तकर भगवान्
 श्रीगरुडध्वज उसके देखने-देखते अपने लोको चले
 गये ॥ २६ ॥ प्रभुकी चरणसेवासे सहस्रान्न वस्तु प्राप्त
 हो जानके कारण यपनि ध्रुवजीका महत्त्व तो निवृत्त
 हो गया, किन्तु उनका चित्त विशेष प्रसन्न नहीं हुआ ।
 फिर वे अपने नगरका लौट गये ॥ २७ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन् । मायावति धीहरिक
 परमपद तो अत्यन्त दुर्लभ है और मिलना भी उनके
 चरणकर्मोंकी उपासनासे ही है । ध्रुवजी भी सारसारका

१ प्रा पा —तत्र । २ प्रा पा —स्थिति । ३ प्रा पा —यति ।

• कटी हुई फलक धान-गेहूँ आदिको कुचकनेके शिथे धुमाये जानेवाले वैष्णु चित्त लक्ष्ममें रेंपेर रहते हैं उसका
 नाम मेरी है ।

कल्पान्त एतदस्मिन् अठरेण गृहम् ।

२२ -

भीमभ्रातृवत

य

१५०

तत्त्वान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता

कथं स्वभावात्तत्त्वान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥२८॥

इति उपपन्न

मातुः स्वभावात्तत्त्वान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥२९॥

नैकान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥२९॥

इति उपपन्न

समाधिना नैकान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥३०॥

विदुः सतन्त्राद्यन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥३१॥

मातुः स्वभावात्तत्त्वान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥३२॥

नैकान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥३३॥

अथो बत ममानात्मन्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ।

मन्त्रिच्छिदः पादमूलं गत्वाभावे यदन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥३४॥

मन्त्रिच्छिदः पादमूलं गत्वाभावे यदन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥३५॥

मा नारदवचस्तस्य नारायणममममम ॥३६॥

द्वंद्वी मायापुपाभित्य प्रसुप्त इव भिन्नहृत् ।

तस्य द्वितीयोऽप्यसति भ्रातृभ्रातृवत ॥३७॥

मयैतत्प्रार्थितं स्पर्धं चिन्तितेव गतायुषि ।

प्रमाद्य अगदात्मान वपसा दुःप्रसादनम् ।

मन्त्रिच्छिदमयापेऽहं भवं भाग्यविषयितः ॥३८॥

भ्रातृयपच्छता भौटपान्त्रानो मे भिक्षितावत ।

इत्यन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥३९॥

इति विदुः सतन्त्राद्यन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥४०॥

मातुः स्वभावात्तत्त्वान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥४१॥

नैकान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥४२॥

अथो बत ममानात्मन्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ।

मन्त्रिच्छिदः पादमूलं गत्वाभावे यदन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥४३॥

मन्त्रिच्छिदः पादमूलं गत्वाभावे यदन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥४४॥

मा नारदवचस्तस्य नारायणममममम ॥४५॥

द्वंद्वी मायापुपाभित्य प्रसुप्त इव भिन्नहृत् ।

तस्य द्वितीयोऽप्यसति भ्रातृभ्रातृवत ॥४६॥

मयैतत्प्रार्थितं स्पर्धं चिन्तितेव गतायुषि ।

प्रमाद्य अगदात्मान वपसा दुःप्रसादनम् ।

मन्त्रिच्छिदमयापेऽहं भवं भाग्यविषयितः ॥४७॥

भ्रातृयपच्छता भौटपान्त्रानो मे भिक्षितावत ।

इत्यन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥४८॥

इति विदुः सतन्त्राद्यन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥४९॥

मातुः स्वभावात्तत्त्वान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥५०॥

नैकान्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥५१॥

अथो बत ममानात्मन्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ।

मन्त्रिच्छिदः पादमूलं गत्वाभावे यदन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥५२॥

मन्त्रिच्छिदः पादमूलं गत्वाभावे यदन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥५३॥

मा नारदवचस्तस्य नारायणममममम ॥५४॥

द्वंद्वी मायापुपाभित्य प्रसुप्त इव भिन्नहृत् ।

तस्य द्वितीयोऽप्यसति भ्रातृभ्रातृवत ॥५५॥

मयैतत्प्रार्थितं स्पर्धं चिन्तितेव गतायुषि ।

प्रमाद्य अगदात्मान वपसा दुःप्रसादनम् ।

मन्त्रिच्छिदमयापेऽहं भवं भाग्यविषयितः ॥५६॥

भ्रातृयपच्छता भौटपान्त्रानो मे भिक्षितावत ।

इत्यन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥५७॥

इति विदुः सतन्त्राद्यन्तरिज्ञाधिनिर्गन्तव्यता ॥५८॥

नेत्रय उवाच

न षं मुकुन्दस्य एवमिन्दयो

रजोदुपस्तात भवाद्दृष्टा जनाः ।

वाञ्छन्ति तदास्मृतेऽर्धमात्मनो

यदृच्छामालम्बनस्तमृदयाः ॥३६॥

आकम्प्यस्मिन्मज्जमान्तसम्परित्य यथाऽऽगतम् ।

राजा न भद्रे भद्रमभद्रस्य कृतां मम ॥३७॥

भद्राय वाक्यं दधर्षेर्हर्षवेगान् धर्षितः ।

वर्ताहर्तृरतिश्रीतो हारं प्राशन्महाधनम् ॥३८॥

सदृश रथमारुह्य कार्तम्वरपरिष्कृतम् ।

प्रादयः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥३९॥

शुद्धदुन्दुभिनादेन प्रह्वयोपेण वेषुभिः ।

निष्क्राम पुरातूर्णमात्मजामीश्वणोत्सुक ॥४०॥

सुनीतिः सुरचिवात्स महिष्यौ रुक्मभूषिते ।

आप्य शिविकं सार्धं सप्तमेनाभिजग्मतु ॥४१॥

तं द्यूतवनाम्प्राप्त आयान्तं सरमा रथात् ।

वरश्च नृपन्तूर्णमासाद्य प्रमविह्वल ॥४२॥

परिमज्जत्तं दाम्प्यादीघात्कण्ठमना धमन् ।

निवसत्तनाह्मिर्नस्पर्शहताशेषाधधनम् ॥४३॥

प्रपात्रिभ्यमुदुम्भि शीतं नैयनवारिभिः ।

शरपामास तनयं जाताहाममनारथः ॥४४॥

धीमैधेयजी कहते हैं—तात । तुम्हारी तरह जो लोग श्रीमुकुन्दपादारविन्द-मकरन्दके ही मधुकर हैं—जो निरन्तर प्रभुकी धरण-रत्नकण्ठ ही सेवन करते हैं और जिनका मन अपने-आप आपी हुई सभी परिस्थितियोंमें सन्तुष्ट रहता है, वे भगवान्से उनकी सेवाके सिवा अपने लिये और कार्य भी पदार्थ नहीं माँगते ॥ ३६ ॥

इधर जब राजा उत्तानपादने सुना कि उनका पुत्र धुव घर छोट रहा है, तो उन्हें इस बातपर वैसे ही विश्वास नहीं हुआ जैसे कोई किसीके यक़्कोकसे लैटने-की बातपर विश्वास न करे । उन्होंने यह सोचा कि प्लुह अमागेका ऐसा माग्य कहाँ ॥ ३७ ॥ परन्तु फिर उन्हें देखीं नारदकी बात याद आ गयी । इससे उनका इस बातमें विश्वास हुआ और वे आनन्दके वेगसे अवीर हो उठे । उन्होंने अल्पत प्रसन्न होकर प्लुह समाचार लम्बेनालेको एक बड़ामूय हार दिया ॥ ३८ ॥ राजा उत्तानपादने पुत्रका मुख देखनेके लिये उत्सुक होकर बहुत-से ब्राह्मण, कुलके बड़े-बूढ़े, मन्त्री और बन्धुजनोंको साथ लिये तथा एक बहिया घोड़ोंवाले सुवर्णजडित रथपर सवार होकर वे झटपट नगरके बाहर आये । उनके आगे-आगे केदम्बिनी होती जाती थी तथा शङ्ख, दुन्दुभि एवं बंशी आदि अनेकों माङ्गल्यिक बाजे बजते जाते थे ॥ ३९ ४० ॥ उनकी दोनों रानियाँ सुनीति और सुरचि भी सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हा रात्रकुमार उत्तमके साथ पालकियोंपर बद्धकर चढ़ रही थीं ॥ ४१ ॥ धुवभी उत्पन्नके पास आ पहुँचे, उन्हें देखते ही महाराज उत्तानपाद तुरंत रथस उतर पड़े । पुत्रको देखने के लिये वे बहुत दिनोंसे उत्कण्ठित हो रहे थे । उन्होंने झण्ट आगे बढ़कर प्रेमातुर हो, छवी-छंडी सोंसे स्नेह डूरे, धुवकां मुजाओमें भर दिया । जब ये पहलेके धुव नहीं थे, प्रभुके परमपुत्रीन पापपणोंका तपस हानसे इनका समान पाप-बन्धन बन गय थे ॥ ४२ ४३ ॥ राजा उत्तानपादकी एक बहुत बड़ी कामना पूर्ण हो गयी । उन्होंने बार-बार पुत्रका सिर छूँका और आनन्द तथा प्रमक कारण निकलनवाले टटे-टटे * ओंमुओंस उठे नहना गिया ॥ ४४ ॥

१ मा पा — परिता । २ मा पा — द्युमिना । ३ मा पा — धान्ते ।

• आनन्द वा प्रेमके कारण जो ओंय आते हैं वे उठे हुआ करते हैं और सोचने औय गरम हन्ते हैं ।

अभिवन्द्य पितु पादावाहीभिर्भार्मिमन्त्रितः ।

ननाम मातरो शीर्ष्णा सत्कृत सखनाग्रणी ॥४५॥

सुरुचिस्त समुत्थाप्य पादावनतमर्मकम् ।

परिष्वज्याह जीवेति शप्यगद्गदया गिरा ॥४६॥

यस्य प्रमत्तो भगवान् गुणैर्मैत्र्यान्भिर्हरि ।

तस्म नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव मयम् ॥४७॥

उत्तमश्च ध्रुवश्चाभावन्योन्य प्रेमविह्वलौ ।

अङ्गमङ्गादुत्प्लुकावसौर्षं मुहुर्बुद्धतु ॥४८॥

मुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुवम् ।

उपगुप्त जहावाधि तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥४९॥

पयःस्तनाभ्यामुन्मत्तानेव्रजं सलिलं शिवैः ।

तदाभिविष्यमानाभ्यां वीर वीरमुचो मुहुः ॥५०॥

तां जगन्मुजना राक्षी दिष्टया ते पुत्र आतिहा ।

प्रतिलब्धधिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं ध्रुव ॥५१॥

यच्चितम्बया नूनं नृ प्रणतातिहा ।

१० वीर मृ १५ ॥५२॥

नृप ।

१५ ॥५३॥

तदनन्तर सज्जनोमें आग्राण्य ध्रुवजीने कियाके चरणों-
में प्रणाम किया और उससे आशीर्वाद पाकर, कुशल-
प्रश्नादिसे सम्मानित हो दोनों माताओंको प्रणाम
किया ॥ ४५ ॥ छांगी माता सुरुचिने अपने चरणोंपर
हुके हुए बावक ध्रुवको उठकर हृत्पसे लगा लिया
और अश्रुमय बाणीसे 'धिरस्त्रीवी खो' ऐसा आशीर्वाद
दिया ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार जल स्वयं ही नीचेकी ओर
बहने लगता है—उसी प्रकार मैत्री आदि गुणोंके कारण
जिसपर श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, उसके लगे
सभी जीव मुक्त होते हैं ॥ ४७ ॥ इधर उत्तम और
ध्रुव दोनों प्रेमसे विह्वल होकर मिले । एक दूसरेके
अङ्गोंका स्पर्श पाकर उन दोनोंके ही शरीरमें ऐमाज
हो आया तथा नेत्रोंसे बार-बार आँसुओंकी धारा बहने
लगी ॥ ४८ ॥ ध्रुवकी माता मुनीति अपने प्राणोंसे भी प्यारे
पुत्रको गले लगाकर सारा सन्ताप भूल गयी । उसके
सुकुमार अङ्गोंके स्पर्शसे उसे वशा ही आनन्द प्राप्त
हुआ ॥ ४९ ॥ वीरवर त्रिदुरजी । वीरमला मुनीतिके
खान उसके नेत्रोंसे धारते हुए मङ्गलमय आनन्दाधुनोसे
भीग गये और उनसे बार-बार दूध बहने लगा ॥ ५० ॥
उस समय पुराणीयोग उनका प्रशंसा करते हुए कहने
लगे, 'महासुनीती । आपका लाल बहुत निनोसे खेप
हुआ था; सोभाग्यवश अब वह छाँ आया, यह हम सबका
दुःख दूर करनेवाला है । बहुत निनोतक भूमण्डली
रक्षा करेगा ॥ ५१ ॥ आपने अवश्य ही शाखागतमन्त्र-
मञ्जन भीहरिकी उपासना की है । उनका निरस्त
स्थान करनेवाले भीर पुरुष परम दुर्बल मृशुको भी
जीत लेते हैं ॥ ५२ ॥

त्रिदुरजी । इस प्रकार जब सभी लोग ध्रुवके प्रति
अपना लालच प्रकट कर रहे थे, उसी समय उन्हें
आँसु टपकते मन्दित दृष्टिनील चणक मन्त्रान्
उत्तानमान बह दृष्टि माप राजधानीमें प्रवेश किया ।
उस समय सभी लोग उनका भाव्यकी बर्दा कर रहे
थे ॥ ५३ ॥ नगरमें जहाँ-जहाँ मगरके आकारके सुन्दर
प्रशान बनाय गये थे तथा पञ्चकूटों गुप्तोंके समान
पञ्चक होने और सुगन्धित पीये मन्त्रने गये थे ॥५४॥

३॥

वृत्तपुष्पवामः स्रज्जुकादामविलम्बिभिः ।
 उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥
 प्राकारैर्गोपुरागारैः क्षातकुम्भपरिच्छदैः ।
 सर्वतोऽलङ्कृतं श्रीमद्विमानक्षिस्त्रपुभिः ॥५६॥
 मृष्टचत्वररज्याह्वानं चन्दनवर्षितम् ।
 लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्व्युत्तम् ॥५७॥
 ध्रुवामपि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ।
 सिद्धार्थाश्चतुर्दशपुष्पफलानि च ॥५८॥
 उपग्रहः प्रयुज्जाना वत्सल्यादाशिपः सतीः ।
 मृष्वस्तद्वद्वयुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥५९॥
 महामन्त्रिवातमये स तस्मिन् भवनोत्तमे ।
 कालितो नितरां पित्रा न्यवसद्विषि देववत् ॥६०॥
 पयःकेलनिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
 आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥६१॥
 यत्र स्फटिककुण्डलपु महामारकतेषु च ।
 मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसयुता ॥६२॥
 उषानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ।
 कृमिद्रुमिपुनैर्गोपान्मत्तमधुवतैः ॥६३॥
 शाय्यो वैदूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुदरीः ।
 ईसरण्डवल्गुलैर्दृशमकाङ्क्षसारसैः ॥६४॥
 उषानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ।

शर-शरपर दीपकक मङ्गल जलके कण्ठा रखे हुए थे—जो
 आभके पत्तों, वस्त्रों, पुष्पमालाओं तथा मार्तण्ड लक्षियोंसे
 सुसज्जित थे ॥ ५५ ॥ जिन अनेकों परकोठों, फर्शकों
 और महलोंसे मगरी सुशोभित थी उन सबको सुवर्ण
 की सामग्रियोंसे सजाया गया था तथा उनके कंगूरे
 विमानोंके शिखरोंके समान चमक रहे थे ॥ ५६ ॥
 नगरके चौक, गलियों, अटारियों और सबकोठों का
 सुशारकर उनपर चन्दनका छिड़काव किया गया था,
 और जहाँ-तहाँ लीला, वाक्ल, पुष्प, फल, जौ एवं
 अन्य माङ्गलिक उपहार-सामग्रियाँ सजी रखी
 थीं ॥ ५७ ॥ ध्रुवजी राजमार्गसे आ रहे थे । उस
 समय जहाँ-तहाँ नगरकी शिखरोंकी सुन्दरियों उन्हें
 देखनेको एकत्र हो रही थीं । उन्होंने वत्सन्ममत्वसे
 अनेकों शुभाशीर्वाद देते हुए उनपर सफेद सरसों,
 अक्षत, दही, जल, दुर्वा, पुष्प और फलोंकी वर्षा की ।
 इस प्रकार उनके मनोहर गीत सुनते हुए ध्रुवजीने
 अपने पिताके महलमें प्रवेश किया ॥ ५८ ५९ ॥

वह श्रेष्ठ मन्त्र महामूल्य मणियोंकी लक्षियोंसे
 सुसज्जित था । उसमें अपने पिताजीके आभ्यारक
 मुख मोगते हुए वे उसी प्रकार आनन्दपूर्वक रहने
 लगे, जैसे स्वर्गमें देवतालोग रहते हैं ॥ ६० ॥ वहाँ
 दूधके फेनके समान सफा और कोमल शय्याएँ, हाथी-
 दौतके पङ्क, सुनहरी कपटार परदे, बहुमूल्य आसन
 और बहुत-सा सोनेका सामान था ॥ ६१ ॥ उसकी
 स्फटिक और महामरकतमणि (पन्ना) की दीवारोंमें
 रत्नोंकी बनी हुई लीमूर्तियोंपर रखे हुए मणिमय दीपक
 जगमगा रहे थे ॥ ६२ ॥ उस महलके चारों ओर
 अनेक नास्तिक दिम्प वृक्षोंसे सुशोभित उषान थे,
 जिनमें नर और मादा पक्षियोंका कल्लव तथा मतप्राजे
 गौरोंका गुंजार होता रहता था ॥ ६३ ॥ उन कभी-
 भी वैदूर्यमणि (पुखराज) की सीढ़ियोंसे सुशोभित
 शाय्यों थीं—जिनमें छाक, नीले और सफेद रंगके
 कपड़ लट्ठे रहते थे तथा हंस, ककरण्डव, ककशा एवं
 सारस आदि पक्षी भीका करते रहते थे ॥ ६४ ॥

राजर्षि उषानपादने अपने पुत्रके अति अद्भुत
 प्रभावकी बात देवर्षि नारदसे पहले ही सुन रखी थी;

धृत्वा दृष्टमृततम प्रपेदे विषयं परम् ॥६५॥

वीक्ष्योदयस्य रं च प्रकृतीनां च सम्भवम् ।

अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे ध्रुवः पतिम् ॥६६॥

आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विश्राम्यतिः ।

वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्मात्मनो गतिम् ॥६७॥

जब उसे प्रत्यक्ष बैसा ही देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ६५ ॥ फिर यह देखकर कि अब ध्रुव तबका अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं, अमात्यवर्ग उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं तथा प्रजापति भी उनपर अनुराग है, उन्होंने उन्हें निश्चिन्त भूमण्डलक राज्यपर अभिषिक्त कर दिया ॥ ६६ ॥ और आप वृद्धावस्था आपी बनकर आत्मस्वरूपका चिन्तन करते हुए संसारसे विरक्त होकर वनको चक्र दिये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे ध्रुव
राज्याभिषेककर्मणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

उत्तमका मारा जाना ध्रुवका पक्षोंके साथ युद्ध

मैत्रेय उवाच

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ।

उपयेमे अमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरो ॥ १ ॥

इत्थामपि भार्यायां बायोः पुण्यां महाकलः ।

पुत्रद्वयस्कलनामानं शोर्षिर्द्रवमजीजनत् ॥ २ ॥

उत्तमस्त्वकुतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ।

इतः पुष्पवनेनाद्रौ तन्मातास्य गतिं गता ॥ ३ ॥

ध्रुवो आतृण्वं धृत्वा कोपौर्मर्षशुचार्पितः ।

जैत्रं स्यन्दनमास्वाय गतः पुष्पजनालयम् ॥ ४ ॥

गत्वादीचीं दिक्षं रात्रा रुद्रानुधरसेविताम् ।

वदर्थं हिमवद्गुह्योऽप्यां पुरीं गुह्यकस्तुङ्गताम् ॥ ५ ॥

दध्मो वृद्धं वृद्धाङ्गः स दिशेषानुनादयन् ।

येनोद्दिपयच्छः क्षत्वरूपदेव्योऽत्रसन्मृगम् ॥ ६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी । ध्रुवने प्रजापति शिशुमारकी पुत्री अमिके साथ विवाह किया, उसके उनके कल्प और कस्तूर नामके दो पुत्र हुए ॥ १ ॥ महाबली ध्रुवकी दूसरी श्री वासुपुत्री इत्यादी । उसने उनके उत्कल नामके एक पुत्र और एक कल्पकल नामका जन्म हुआ ॥ २ ॥ उत्तमका कभी निकल नहीं हुआ था कि एक दिन शिकार लेकते समय उसे हिमालय पर्वतपर एक बछवान् यक्षने मार डाला । उसके साथ उसकी माता भी परलोक स्थितार गयी ॥ ३ ॥

ध्रुवने जब माँके मारे जानेका समाचार सुना तो वे क्रोध, शोक और खड़ेगसे भरकर एक विषयपर रफ़्त सवार हो यक्षोंके देशमें जा पहुँचे ॥ ४ ॥ उन्होंने उत्तर दिशामें आकर हिमालयकी घाटीमें यक्षोंसे मी हुई अन्धकारपुरी देखी, उसमें अनेकों मूल-मेल-विश्रादि रुद्रानुधर रहते थे ॥ ५ ॥ विदुरजी । वहाँ पहुँचकर महाबाहु ध्रुवने अपना शस्त्र बजाया तथा सम्पूर्ण आकाश और दिशाओंको गुँबा दिया । उस शब्दचालि से यक्षपत्नियों बहुत ही डर गयीं, उनकी बाँसें झट्टे कातर हो उठीं ॥ ६ ॥

सतो निष्क्रम्य बलिन उपस्थमहामया ।
 अहसन्तस्तन्निनादमभिपतुरुदायुधा ॥ ७ ॥
 स तानापततो धीर उग्रधन्वा महारथ ।
 एर्वैक युगपत्पर्याप्तान् बाणस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥
 ते वै ललाटलम्बस्तस्त्रिभिः सव एव हि ।
 मत्वा निरस्तमात्मानमोक्षसन् कर्म तस्य तत् ॥ ९ ॥
 तेऽपि चासुममृष्यन्त पादस्पर्गमिबोरगा ।
 शरैरविच्यन् युगपद् द्विगुणं प्रचिकीर्षव ॥ १० ॥
 तत परिधनिस्त्रिंशं प्राप्तान् लपरश्वघ्न ।
 शक्यपृथिविभुशुण्डीभिर्मिश्रबाजं शरैरपि ॥ ११ ॥
 अम्यवपनं प्रकुपिताः सरथ सहसारथिम् ।
 शृङ्खन्तस्तप्रताकर्तुमयुतानि त्रयोऽश्व ॥ १२ ॥
 औघानपाणि म तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ।
 न उपादृश्यतच्छन्न आमारण यथा गिरि ॥ १३ ॥
 हाहाकारमन्वासातिवद्धानां दिवि पश्यताम् ।
 हताश्व मानसं स्या मग्न पुष्पजनार्णव ॥ १४ ॥
 नदत्सु यातुधानेषु नयमागिष्वथो मृध ।
 उदतिष्ठद्रथस्तस्य नाहारादिव भान्तर ॥ १५ ॥
 धनुर्वि सृज्यपन्दिष्य द्विपता खेदमुद्रहन् ।
 अस्त्रार्पं प्यधमद्वानपनानाकमिवानिल ॥ १६ ॥
 तस्य त चापनिमुक्ता मिथ्या यमाणि ग्गुमाधु ।
 फायानातिविगुन्निग्मा गिगनशनया यथा ॥ १७ ॥

भीरवर विदुरजी । महावमवान् यन्भीरवो ये यह
 शङ्खनाद सहन म हुआ । इसन्विये वे तरङ्ग-तरङ्गके
 अस्त्र-शस्त्र लेकर नगरसे बाहर निकल आये और ध्रुवपर
 टूट पड़ ॥ ७ ॥ महारथी ध्रुव प्रचण्ड धनुवर थे ।
 उन्होंने एक ही साथ वनमेसे प्रत्येकको तीन-तीन बाण
 मारे ॥ ८ ॥ उन सुभीने जब अपने-अपने मस्तकमें
 तीन-तीन बाण लगे देख, तब उन्हें यह विश्वास हो
 गया कि हमारी हार अवश्य होगी । वे ध्रुवजीके इस
 अद्भुत पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥ फिर जैसे
 सूर्य किसीके पंखोंका आघात नहीं सहते, उसी प्रकार
 ध्रुवके इस पराक्रमको न सहकर उन्होंने भी उनका
 बाणोंके जवाबमें एक ही साथ उनसे दूने-छ छ बाण
 छोड़े ॥ १० ॥ यशोकी संख्या तेरह अयुत
 (१३००००) थी । उन्होंने ध्रुवजीका बन्ता लम्बक
 निय अत्यन्त कुपित होकर रथ और सारथीक सहित
 उनपर परिध, खड्ग, प्रास, त्रिशूल, फरसा, शक्ति,
 श्रृष्टि, मुशुण्डी तथा बिना विविध पंखदार बाणोंकी बर्षा
 की ॥ ११ १२ ॥ इस भीरव शस्त्रबासि ध्रुवजी
 विस्फुल्लित हो गये । तब भाग्योको उनका दीखना वेसे
 ही बद हो गया, जैसे भारी बरसे पर्यन्त ॥ १३ ॥
 उस समय जा सिद्धगण आकाशमें स्थित होकर यह
 दृश्य देख रहे थे, वे सब हाय-हाय करके कहन
 लगे—‘आज यशसेनाका ममुद्रमें दूधकर यह मानक-
 सूर्य अस्त हो गया’ ॥ १४ ॥ यशजोग अपनी विजयकी
 घोषणा करने हुए युद्धक्षेत्रमें सिंहकी तरह गरजन लगे ।
 इसी बीचमें ध्रुवजीका रथ एकएक वंसे ही प्रवृत्त हो
 गया, जैसे कुहरमेसे मूर्धम्यावान् निकल आते हैं ॥ १५ ॥
 ध्रुवजीने अतन निय धनुर्वी टट्टार करके शत्रुओंक
 निःशस्त्र कर दिया और फिर प्रचण्ड बाणोंकी बर्षाकरके उनका
 अन्त-शत्रुको इस प्रकार छिन्न भिन्न कर दिया, जैसे
 औंधी बालोंका निर-विचार कर दरी है ॥ १६ ॥ उनका
 धनुस्से छूट हुए तीन तीर यन्-यशमोक बरबोका
 भेदकर इन प्रकार उनके शरीरमें घुस गए, जैसे हृदके
 छोड़े हुए वज्र पथरोंमें प्रवेश कर गये ॥ १७ ॥

१ मा पा — अश्वेश महाभयाः । मा पा — न शत्रुं वम । ३ मा पा — अथ औघानपाणिः ।

नदत्सु । ४ मा पा — विगुणपुम्पुद द्वि ।

मा व ल १ १४—

भल्लै संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
 ऊरुभिर्मन्तात्मैर्गोभिर्वलयवल्गुभिः ॥१८॥
 हारकपुष्पकुटैरुष्णीपैश्च महाधनैः ।
 आस्ततास्ता रणध्रुवा रज्जुवीरमनोहरा ॥१९॥
 हतावशिष्टा इतरे रणजिराट्
 रक्षोगणाः क्षत्रियवर्गसायकैः ।
 प्राप्ते विवृकणावपवा विदुद्रुधु
 मृगेन्द्रविक्रीडितपूथपा इव ॥२०॥
 अपश्यमान स तदाऽऽततापिन
 महामृषे कचन मानवोचमः ।
 पुरीं दिदृक्षन्नेपि नाविशद् द्विपां
 न भायिनां वेद चिकीर्षित जन ॥२१॥
 इति ध्रुवधिरथः स्वमारधिं
 यत परेषां प्रतियोगशङ्कित ।
 शुभाश्व शब्द जलधेरिवेरितं
 नभस्वता दिक्षु रजाऽन्वदृश्यत ॥२२॥
 क्षणेनाच्छादित व्याम घनानीकन सर्वतः ।
 विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रामयस्तनयित्नुना ॥२३॥
 ववृषु रुधिरौपासुक्यमविष्मूत्रमदमः ।
 निपतुगगनादस्य कण्ठान्धमग्रतोऽनघ ॥२४॥
 तत खऽदृश्यत गिरिनिपतु सर्वतादिक्षम् ।
 गदापरिधनिस्त्रिंशमुमलाः साश्मवर्णिण ॥२५॥
 अहयाऽश्वनिनि इवामा वमन्तोऽग्निं रुपाग्निभिः ।
 अम्यधावन् गजा मघा सिंहव्याघ्राश्चयुधश ॥२६॥
 समुद्र ऊर्मिभिर्भौमः प्लावयन् तत्रा शुभम् ।
 आमामाद महाहाद कल्पान्त इव भाषण ॥२७॥
 ण्यविधान्यनेरानि त्रासतान्यमनस्त्रिनाम् ।
 ससृजुन्तिमगतप आसुषां भाययासुराः ॥२८॥

विदुरजी ! महाराज ध्रुवके बाणोंसे कटे हुए यक्षोंके सुन्दर
 कुण्डलमण्डित मस्तकोंसे, सुनहरी ताम्रवृक्षके समान
 जोंधोंसे, कण्ठविमूषित बाहुओंसे, हार, मुजकप, मुकुट
 और बहुमूल्य पगधियोंसे पटी हुए वह धीरोके मनको
 छुभानेवाली समरभूमि बड़ी शोभा पा रही थी ॥१८॥१९॥
 जो यक्ष किसी प्रकार जीवित बचे, वे क्षत्रियका
 ध्रुवजीके बाणोंसे प्रायः अङ्ग-अङ्ग छिन्न भिन्न हो जानेके
 कारण युद्धकी कामे मिहने परास्त हुए गजराजके समान
 मैदान छोड़कर भाग गये ॥ २० ॥ नरक्षेत्र ध्रुवजीने
 देखा कि उस विलुप्त रणभूमिमें अब एक भी शत्रु अव
 शेष नजिये उनका सामन नहीं है, तो उनकी इच्छा क्लृप्ता-
 पुरी देखनेकी हुई, किन्तु वे पुरीके भीतर नहीं गये थे
 मायावी क्या करना चाहते हैं इस बातका मनुष्यको पता
 नहीं लग सकता सारथिसे इस प्रकार कहकर वे उस
 विचित्र रथमें बैठे रहे तथा शत्रुके नवीन आक्रमणकी
 आशाका संसाधन हो गये । इतनेमें ही उन्हें समुद्रकी
 गर्भनाके समान औधीका भीषण शब्द सुनायी दिया
 तथा दिग्दर्शकोंमें उठनी हुई धूल भी दिखायी दी ॥२१॥२२॥
 एक क्षणमें ही सारा आकाश मेघमालासे ढेर गया ।
 सब ओर मयहूर गजगदाहटके साथ विजयी चमकने
 लगी ॥ २३ ॥ निष्पाप विदुरजी ! उन बातोंसे स्तब्ध,
 कस्तूर, पीप, विशा, मूल एवं चवीकी बर्षा होन लगी और
 ध्रुवजीके आगे आकाशसे बहुत-से धड़ गिरने लगे ॥ २४ ॥
 फिर आकाशमें एक पर्वत दिखायी दिया और समीपि शिखरों-
 में परशुरोकी बर्षाक साथ गदा, परिध, तलवार और
 मूसल गिरने लगे ॥ २५ ॥ उन्होंने देखा कि बहुत से
 सर्प वज्रकी तरह पुष्कर मास रोषपूर्ण नत्रोंसे आगकी
 चिनगारियों उगमते आ रहे हैं ध्रुवके मुख मतभले
 हापी, सिंह और बाघ भी दौड़े चले आ रहे हैं ॥२६॥
 प्रसन्नकायके समान मयहूर समुद्र अपनी सत्ताय तान्त्रोंसे
 पूषीसे सब ओरसे डूबाता हुआ बड़ी भीषण गर्भनाक
 साथ उनकी ओर बढ़ रहा है ॥ २७ ॥ कुरुक्षेत्र
 असुरोंने अपनी आसुरी मायासे ऐसे ही बहुत-से क्रौंशक
 निष्पन्नये विनस कायोंके मन बाँध सकते थे ॥ २८ ॥

ध्रुव प्रपुत्तामसुर्मतां मायामतिदुस्तराम् ।
निश्राम्य तस्य ध्रुवस्य धमार्शसन् ममागता ॥२९॥

ध्रुवस्य उच्यते

ओषानपात्रं भगवान्स्त्व शास्त्रधन्वा
तव श्रिणात्स्वनतातिहगे त्रिपक्षान् ।
यन्मामवेयमभिधाय निश्रम्य चाद्धा
लाकोऽञ्जमाश्रित्य दुस्तरमज्ञमृत्युम् ॥३०॥

ध्रुवजीवर असुरेण अपनी दुस्तर माया कन्यायी है, यह
सुनकर वहाँ कुछ मुनियोंने आकर उनका लिये मन्त्र-
कामना की ॥ २९ ॥

मुनियोंने कहा—तुजानपादनन्त ध्रुव ! शरणागत-
अयमध्वन शास्त्रपाणि भगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओंका
सींहर करे । मगवान्का तो नाम है । ऐसा है, जिसका
सुमने और स्मृतिन करनेमात्रसे मनुष्य दुस्तर मृत्युका
मुखसे अनायास हा बच जाता है ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहर्ष्ये संहितायां

चतुर्थस्कन्धो नामाऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

स्वायम्भुव मनुका ध्रुवजीका मुखे यद कर्त्तव्यं लिखे स्वमहात्मा

मेनेत्रेय उवाच

निश्रम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुव ।
मंदवेऽञ्जमुपस्पृश्य भस्मारावणनिमित्तम् ॥ १ ॥
सधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिमिताः ।
क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लृप्ता ज्ञानोन्मये यथा ॥ २ ॥

तत्सर्पास्त्रं धनुषि प्रयुज्जत
सुवर्णपुष्पा फलहंमवाममः ।

विनि सृता आविश्विगुर्द्विपद्मत्वं
यथा वन भीमरवा शिखण्डिन ॥ ३ ॥

तस्मिन्मधार्धे प्रधने गिलीमुर्वं
रितस्तव प्रपञ्चना उपद्रुता ।

तमम्भभावन कुपिता उदायुधाः
सुवर्णमुभदफणा इवाह्वय ॥ ४ ॥

म तान् पृथक्करभिक्षावता मृष
निकृषवाहुरगिराधगन्तान् ।

निनाय लोक परमर्षमण्डलं
व्रजन्ति निर्भिद्य यमृष्वरेतम ॥ ५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! अमियोंका वृत्ता
कथन सुनकर महायज्ञ ध्रुवने आचमन कर शीनारण्यक
जनाये हुए नारायणात्मको अपन बनुरपर चढ़ाया ॥ १ ॥
उस बाणके चढ़ाते ही यक्षोंद्वारा रची हुए नाना प्रकारकी
माया उसी क्षण नष्ट हो गयी, जिस प्रकार ज्ञानका उदय
होनपर अविद्यादि क्लेश नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥ अविबर
नारायणक द्वारा आविष्कृत उस अस्त्रके धनुषपर चढ़ाते
ही उससे राजह्वम से पक्ष और मानेक फलदायक बड़े
सीधे बाण निकल और जिस प्रकार मयूर ककरय करने
कनमें घुम जाते हैं, उसी प्रकार मयानक सौम्य-सौम्य
शस्त्र करते हुए वे गुरुकी सेनामें घुस गये ॥ ३ ॥ उन
सीधे धारवाक बाणोंन शत्रुओंको बेचैन कर दिया । तब
उम रणाङ्गणमें अनपके यक्षोंने अत्यन्त क्रुपित होकर
अपन अस्त्र गगन में गाल और जिम प्रकार गरुडके छड़ने
से बड़े-बड़े सर्प पत ठगकर ठमकी और दीकते हैं,
उसी प्रकार वे डकर उबरसे ध्रुवजीपर टूट पड़े ॥ ४ ॥
उन्हें मामन आत वेम ध्रुवजीन अपम बाणोंद्वारा उननी
मुन्नाएँ जोषि, कंध और उरर आदि अन्न प्रायश्चित्त
दिम-भिन्न कर उन्हें उम मन्त्रका सोन (मायका)
मे मेन दिया, तिममे उच्छेदता मुनिगण
मृषमण्डलका मन्त्र धरक काम है ॥ ५ ॥

१ प्राचीन प्रथिमे ध्रुवस्य उच्यते । २ प्राचीन प्रथिमे वही भस्मारावणमन्त्रा नदी है । ३ प्रा पा —
वृत्त उवाच । ४ प्रा पा —स्वभावावधार्य । ५ प्रा पा —सुताभ्यर्तिव ।

तान् इत्यमानानभिधीक्ष्य गुह्यका
ननागसन्धिप्ररथेन भूरिष्ठ ।
औचानपादिं कृपया पितामहो
मनुजैर्गद्गदोपगतः सहर्षिभि ॥ ६ ॥

मनुजगण

अल वत्सातिरोपेण तमोद्वारेण पाप्मना ।
येन पुष्पजनानेतानवधीस्त्वभनागस ॥ ७ ॥
नासत्कुलोषितं सात कर्मैतत्सद्भिर्गर्हितम् ।
वधा यदुपदेवानामारम्भस्तेऽकुर्वन्साम् ॥ ८ ॥
नन्वेकस्यापराधेन प्रमत्तान् बहवा इताः ।
आतुर्बधाभितप्तन त्वगाङ्ग आतुवत्सल ॥ ९ ॥
नाय मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ।
यदात्मानं परमगृह्य पशुकञ्चूतवैद्यसम् ॥ १० ॥
सर्वभूतात्मभावेन भूतावांसं हरिं भवान् ।
आराध्याप दुरारार्ष्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ११ ॥
म त्वं हररनुष्मावत्सल्युंसामपि सम्मतः ।
कथ त्वय्य कृतवाननुशिष्यं सर्वां प्रवम् ॥ १२ ॥
विविधया करुणया मैत्र्या चालिलजन्तुषु ।
ममत्वेन च सर्वैरत्मा भगवान् सम्प्रमीदति ॥ १३ ॥
सम्प्रसन्ने भगवति पुरुष प्राकृर्तुणैः ।
विमुक्ता जीवनिर्मुक्ता प्रस निषाणमृच्छति ॥ १४ ॥

भूतः पञ्चभिरारम्भैर्योपित्पुरुष एव हि ।
तयाव्यवार्थास्मभूतियोपित्पुरुषयारिह ॥ १५ ॥
एव प्रवर्तत सगः म्यिति मयम एव च ।
गुणम्पविकराद्राजन मायया परमात्मन ॥ १६ ॥

अब उनके पितामह स्थायमुत्र मनुने देखा कि विचित्र रूप
चढ़े हुए भुव अनेकों निरपराध यज्ञोंको मार रहे हैं, तो उन्हें
उनपर बहुत दया आयी। वे बहुत-से श्रमियोंको साथ लेकर
वहाँ आये और अपने पीछे धुक्को सम्माने लगे ॥ ६ ॥

मनुजीने कहा—बेटा! बस, बस! अधिक श्रम करना
ठीक नहीं। यह पापी नरकमग्न द्वार है। इसीके वशीभूत होकर
तुमने इन निरपराध यज्ञोंका वध किया है ॥ ७ ॥ तब ।
तुम जो निर्णय यज्ञोंके सम्हरण उत्तर रहे हो, यह हमारे
कुम्भके योग्य कम नहीं है, साधु पुरुष इसकी कभी निन्दा
करते हैं ॥ ८ ॥ बेटा । तुम्हारा अपने मर्याद पर बड़ा अनुत्तम
पा, यह तो ठीक है, परन्तु देखो, उसके वधसे सन्तप्त
होकर तुमने एक यज्ञके अपराध करनेपर प्रसन्नता
कितनोंकी इत्या कर डाली ॥ ९ ॥ इस सब शरीरकी ही
आत्मा मानकर इसके लिये पशुओंकी मौति प्राणियोंकी
हिंसा करना यह भगवत्सेवी साधुजनोंका मार्ग नहीं है। १० ।
प्रभुकी आराधना करना बड़ा कठिन है, परन्तु तुमने तो
जड़कपटने ही सम्पूर्ण भूतोंके आश्रयस्थान श्रीहरिकी
सर्वभूतात्मभावसे आराधना करके उनका परमपद प्राप्त कर
लिया है ॥ ११ ॥ तुम्हें तो प्रभु भी अपना प्रिय मन्त्र
समझते हैं तथा मन्त्रजन भी तुम्हारा आदर करते हैं ।
तुम साधुजनोंके पपप्रदर्शक हो, फिर भी तुमने ऐश्वर्य
निन्दनीय कम कैसे किया ? ॥ १२ ॥ सर्वज्ञा श्रीहरि तो
अपनेसे बड़े पुरुषोंके प्रति सहनशीलता, छोटे-छोटेके प्रति
दया, बराबरशरीरोंके साथ मित्रता और समस्त जीवोंके
साथ समताका कर्तव्य करनेसे ही प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥
और प्रभु प्रसन्न हो आनेपर पुरुष प्राकृत गुण एवं
उनके कर्परूप शिवादीरसे दृष्टकर परमनन्दस्वरूप
ब्रह्म प्राप्त कर लेता है ॥ १४ ॥

बेटा भुव ! देहादिके रूपमें परिणत हुए पञ्चभूतोंसे
ही श्री-गुरुपका आधिर्भाव होता है और फिर उनके
पारस्परिक समागमसे दूसरे श्री-गुरु उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥
भुव ! इस प्रकार भगवन्की मायासे सत्तादि गुणोंमें
म्यूनात्रिविध भाव होनेसे ही जैसे भूतोंद्वारा शरीरोंकी रचना
होनी है वैसे ही उनकी स्थिति और प्रत्यय भी होते हैं ॥ १६ ॥

निमित्तमात्र तत्रासीन्निगुण पुरुषपथ ।
म्यक्ताम्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमसि लोहयत् ॥१७॥

स त्वत्किदं भगवान् कालशक्त्या
गुणप्रवाहेण विभक्तनीर्य ।
भरोत्पकर्तव्यं निहन्त्यहन्ता

षेष्टा विमूझ खलु दुर्विभाव्या ॥१८॥

सोऽनन्तोऽन्तकर कालोऽनादिरादिकृदम्ययः ।

जन जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥१९॥

न वै स्वपक्षोऽस्य विषम एष या
परस्य मृत्युर्विद्वत् क्षम प्रजा ।

त धावमानमनुधावत्यनीश्वरा

यथा रजोऽस्यनित भूतसङ्गा ॥२०॥

आयुषोऽपचयं बन्तोन्मर्षवापचयं विदुः ।

उभाम्यां गहित म्यमो दुःम्यस्य विदधात्यमौ ॥२१॥

कश्चित्कर्म बद्रन्त्येनं श्वाभावमपर नृप ।

एक कालं पर देव पुंम काममृतापर ॥२२॥

अम्यक्तस्याप्रमयस्य नानाशक्त्युत्थस्य च ।

न वै यिकीर्षितं तात का धनाथ मयम्भयम् ॥२३॥

न चैत पुत्रक धातुहन्तारा धनदानुगा ।

विमगादानयाम्नात पुंसा नैव हि कारणम् ॥२४॥

म एव विप्रं मृजति म धवावति हन्ति च ।

पुरुषश्रेष्ठ ! निर्गुण परमात्मा तो इनमें केवल निमित्त-
मात्र है, उसके आश्रयसे यह कार्य-कारणरामक
जगत् उसी प्रकार भ्रमता रहता है, जैसे चुम्बकके
आश्रयसे लोहा ॥ १७ ॥ काल-शक्तिके द्वारा कम्मा
सत्त्वादि गुणोंमें क्षोभ होनेसे लीनमय भगवान्की शक्ति
भी सृष्टि आदिक रूपमें विभक्त हो जाती है, अतः
भगवान् अकर्ता होकर भी जगत्की रचना करते हैं
और संहार करनेवाले न होकर भी इसका संहार करते
हैं । सचमुच उन अनन्त प्रभुकी सीला सर्वथा अचिन्त-
नीय है ॥ १८ ॥ धृष ! वे कामस्वरूप अम्यय परमात्मा
ही स्वयं अन्तरहित होकर भी जगत्का अन्त करनेवाले
हैं तथा अनादि होकर भी सबके आदिकर्ता हैं । वे ही
एक जीवसे दूसरे जीवको उत्पन्न कर संसारकी सृष्टि
करते हैं तथा मृत्युके द्वारा मारनेवालेका भी मरवाकर
उमर संहार करते हैं ॥ १९ ॥ वे कालभगवान् सव्यूर्ण
सृष्टिमें समानरूपसे अनुप्रविष्ट हैं । उनका न तो कोई
विशेषज्ञ है और न शत्रुपक्ष । जैसे श्रापके चलनपर
घूँस उसका साथ-साथ ठकती है, उसी प्रकार समस्त
जीव अपने-अपने कर्षोंके अधीन होकर कालकी गतिवश
अनुमरण करते हैं—अपने-अपने कर्मानुसार
सुख-दुःख आदि फल भोगते हैं ॥ २० ॥ सर्वसमर्थ श्रीहरि
कमबन्धनमें बंध हुए जीवकी आपुकी बुद्धि और क्षयकर
विचलन करते हैं, परन्तु वे स्वयं इन तानोंसे रहित और
जाने स्वरूपमें स्थित हैं ॥ २१ ॥ राजन् ! इन परमात्माको ही
मीमांसकवर्ग का कम, चार्वाक स्वभाव, वैशेषिकप्रत्यक्षराम्यही
काय, उपनिषद् नैव और कर्माणां कर्म कहते
हैं ॥ २२ ॥ वे किसी भी इन्द्रिय या प्रमाणक विषय
नहीं हैं । महत्ता में अनेक शक्तियों भी उन्होंने प्रकट
हुए हैं । वे क्या करना चाहते हैं इस बातका भी
संसारमें कोई नहीं जानता फिर जिन मृत्यु करण उन
प्रभुका ता जान ही जान मरना है ॥ २३ ॥

कहा ! य बुधवश अनुसार तुम्हारे मायाय मायावा
नहीं है क्योंकि मनुष्य का जन्म-मरण का चक्रवर्ति चरण
ता इकर है ॥ २४ ॥ एकमात्र बड़ी ममरका रचना
पाप्मा और म करना है, किन्तु अहङ्कार-रूप धानक

अथापि अनर्हकाराद्भान्यते गुणकर्मभि ॥२५॥
 यः भूतानि भूतत्मा भूतेशो भूतभावनः ।
 स्वश्चक्षया मायया युक्तः सृजत्यपि च पाति च ॥२६॥
 तमेव मृत्युममृतं सात दैवं
 सर्वार्त्तमनोपहि जगत्परायणम् ।
 यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति
 गावो यथा वै नमि दामयन्त्रिता ॥२७॥
 यः पञ्चवर्षो जननीं स्वं विहाय
 मातुः सपत्न्या वचसा भिक्षमर्था ।
 वर्त गतस्तपसा प्रस्यगच्छ-
 माराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्या ॥२८॥
 तमेनमङ्गात्मनि शुक्लविग्रहे
 व्यपाभितं निर्गुणमेकमखरम् ।
 आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मरग्-
 यमिभिर्दम्भेदमसत् प्रतीयते ॥२९॥
 त्वं प्रस्यगात्मनि तदा भगवत्पनन्त
 आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशकौ ।
 मक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्या
 ग्रन्थिं विमेत्ससि ममाहमिति प्ररुद्धम् ॥३०॥
 संयच्छ रापं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ।
 धृतेन मयसा राजभगवदं यथाऽऽमयम् ॥३१॥
 येनापसृणत्पुरुषाल्लोकं उद्विजतं शशम् ।
 न पुष्टस्तद्वर्षं गच्छद्विच्छन्नभयमात्मनः ॥३२॥
 हेलनं गिरिशम्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ।
 यज्ञमिवान् पुष्पजनान् ब्राह्मणानित्यमर्पित ॥३३॥

कारण इसके गुण और कर्मोंसे वह सत्ता निर्देय रहता है ॥ २५ ॥ वे सम्पूर्ण प्राणिमोके अन्तरात्मा, निष्कल और रक्षा करनेवाले प्रभु ही अपनी मायाशक्तिसे कुछ होकर समस्त जीवोंका सुवन, पालन और संहार करते हैं ॥ २६ ॥ जिस प्रकार नाकमें नकेल पड़े हुए हैं अपने माथिक्कन्न बोझा दोस्त रहते हैं, उसी प्रकार जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्मादि भी नामरूप बोरीसे बंधे हुए उन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं । वे अमर्त्योंके नियम्यरूप और भक्तोंके लिये अव्ययरूप हैं तथा संसारके एकमात्र आश्रय हैं । तात ! तुम सब प्रकार उन्हीं परमात्माकी शरण लो ॥ २७ ॥ तुम पाँच वर्षकी ही अवस्थामें अपनी सौतेली माताके वागबाणोंसे मर्माहत होकर माफ़ी गोद छोड़कर वनकी धन्ये गये थे । वहाँ तपस्याद्वारा जिन इषीकेश भगवान्की आराधना करके तुमने त्रिलोक्यसे ऊपर सुषपद प्राप्त किया है और जो तुम्हारे वरमात्रहीन सरल हृदयमें वस्तुस्थिति विशेषरूपसे स्थिरमान हुए थे, उन निर्गुण अद्वितीय अविनाशी और निष्पमुक्त परमात्माके अष्टात्मदृष्टिसे अपने अन्तःकरणमें हँको । उनमें यह भेदमात्रमय प्रपन्न न होनेपर भी प्रकीर्त हो रहा ॥ २८ २९ ॥ ऐसा करनेसे सबशक्तिसम्पन्न परमानन्दस्वरूप सर्वान्तर्धामी भगवान् अनन्तमें तुम्हारी सुखद मक्ति होगी और उसका प्रभाक्से तुम मैं मेरेपनके रूपमें दृढ़ हुई अविद्याकी गोटकी कष्ट टालोगे ॥ ३ ॥

राजन् ! जिस प्रकार ओपधिसे रोग शान्त किया जाता है—उसी प्रकार मैंने तुम्हें जो कुछ उपदेश दिया है, उसपर विचार करके अपने क्लेशको शान्त करा । क्लेश क्षम्यमाणमात्रका बन्ध ही विरोधी है । मगधन् तुम्हारा मङ्गल करे ॥ ३१ ॥ क्लेशके बशीरूत हुए पुरुषसे सभी लोगोंको बन्ध मय होता है, इसलिये जो बुद्धिमान् पुरुष ऐसा चाहता है कि मुझसे किसी भी प्राणीको मय न हो और मुझ ही किसीसे मय न हो उसे क्लेशक बशमें कभी न होना चाहिये ॥ ३२ ॥ तुमने जो यह समझकर कि 'ये मेरे भाई' मारनेवाले हैं, इतने पशुओंका संहार किया है, इससे तुम्हारे द्वारा भगवान् शङ्करके सत्ता कुबेरजीका बन्ध अपराध हुआ है ॥ ३३ ॥

तं प्रमादय वत्साशु मनत्या प्रभयोक्तिभि ।
नैवावन्महतां तेषः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥३४॥
एव स्वायम्भुव पात्रमनुशास्य मनुर्धुषम् ।
तेनाभिवन्धितः साकृमृषिभिः स्वपुंरं यथा ॥३५॥

इसलिये बैरा । अबतक नि महापुरुषोंका तेन हमारे
कुलको आप्रान्त नहीं कर लेमा, इसके पहले ही विनम्र
भाषण और विनयके द्वारा शीघ्र उन्हें प्रसन्न कर ले ॥ ३४ ॥
इस प्रकार स्वायम्भुव मनुने अपने पात्र धुषको शिक्षा
दी । तब धुषजीने उन्हें प्रणाम किया । इसके पश्चात्
वे महर्षियोंके सहित अपने स्वयंकुल चल गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्या संहितायां
चतुर्थस्कन्ध एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

धुषजोको कुपेयका परवान और विष्णुलोककी प्राप्ति

मित्रेय उवाच

धुषं निवृत्तं प्रतिपुद्ध्य वधसा
दपेतमन्यु भगवान् धनेश्वर ।
तन्नागतधारणमक्षकिन्नरं
मस्त्यमानाऽम्यवत्कृताञ्जलिम् ॥ १ ॥

धन उवाच

भो भा क्षत्रियस्यापि परितुण्डमि तज्जन ।
यस्त्व पितामहाश्चाङ्गैर् दृस्त्यजमत्यज ॥ २ ॥
न भगवान्वधीयान्न यथा आतरं तव ।
काल एव हि मृतानां प्रक्षुरप्यभारयाः ॥ ३ ॥
अहं त्वमियपाशं धारजानात्पुरुषस्य दि ।
स्वाप्नीवाभायतदधानाद्यथा वन्धविषयसा ॥ ४ ॥
तद्वत्तु धुव भर्तु त भगवन्तमधामुजम् ।
मर्त्यमृतानभवाधन मयभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥
भजन् भजनायाहिमभवाय भवच्छिन्म ।
युतं विगर्हितं कस्या गुणमध्याऽऽममायया ॥ ६ ॥
पृणीति कामं नृप यमनागम
मत्तन्ममापानपञ्चगिहित

भीमप्रपत्नी कहन हैं-विदुरजी ! धुषका क्रोध
शान्त हो गया है और व यज्ञोंक वसे निवृत्त हो गये
हैं यह जानकर मत्तान् धुवेर वहाँ आये । उस समय
मन्त्र, धारण और किन्तलप उनकी स्तुति कर रहे थे ।
उन्हें देखते ही धुषजी क्षाप्त जाइकर पड़ हा गये ।
तब धुवेरने कहा ॥ १ ॥

भीमप्रपत्नी बोले-मुदहय क्षत्रियकुमार ! तुमने
अपने दादाक उपदेशसे ऐसा दुस्वयज कर त्याग दिया,
इससे मैं तुमपर बहुत प्रमत्त हूँ ॥ २ ॥ यास्तत्रमे न
तुमने यज्ञोंको मारा है और न यज्ञोंक तुम्हारे मार्गको ।
ममस्त जीर्णोपरी उत्पत्ति और विनाशका कारण तब
एकमात्र काज ही है ॥ ३ ॥ यह मन्त्र आपि मिया
बुद्धि हो जीयका अज्ञानवश स्वयंक समान शरीरालिका
ही जामा माननेमे गम्यत हाना है । इसीसे मनुष्यको
बधन एवं दुःखालि निपटण अवन्माभोंकी प्राप्ति होती
है ॥ ४ ॥ धुव ' अब तुम आशा भगवान् मुझका
महत्त्व करो । तुम संसारनामे मुक्त होकर त्रिपु
जीर्णमे समष्टि राजकर मर्त्यभूतामा भगवान् धीहरिक
मजन करा । वे संसारनामका छान करनकर
हैं तथा संसारकी उत्पत्ति आपि त्रिपु
मित्रा मयागकिते मुक्त होकर भी यन्त्रमे उल्लसे
रहित हैं । उनकर परमपम ह । मयक रिम मजन
करन योग्य हैं ॥ ५ ॥ त्रिपत ' धन धना ८, तुम
मर्त्य मयान् कर्मनामक कर्मनामक मर्त्य

वर वरौहोऽभ्युज्जनाभपादयो

रनन्तर त्या वयमङ्ग शुभम् ॥ ७ ॥

मैत्रय उवाच

स राजराजन वराय शोदितो

ध्रुवा महाभागवतो महामतिः ।

हरौ स वरऽचलितो स्मृति यया

तरत्यपत्नेन दुरत्ययं तम ॥ ८ ॥

तस्य प्रातेन मनमा सां दर्व्वेदविदस्ततः ।

पद्मताऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रतिपद्यत ॥ ९ ॥

अथापजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणं ।

द्रव्यक्रियादवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥

सत्वात्मन्यभ्युतऽसर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन् ।

ददशारमनि मृतेषु तमेवावस्थित विशुम् ॥ ११ ॥

तमेव शालमप्यन्नं प्रक्षप्य दीनवत्सलम् ।

गासारं धर्मसेतूनां मनिर पितरं प्रजा ॥ १२ ॥

पत्रिश्रद्धपसाहस क्षयात क्षितिमण्डलम् ।

भाग पुष्पमय कुर्वन्नामागरशुभश्रयम् ॥ १३ ॥

एव बहुमय फलं महात्माविषलन्त्रिय ।

शिवर्गापयिन नीत्या पुत्रापादान्प्राप्तवान् ॥ १४ ॥

मन्यमान इह विर्ष मायागवितप्रान्मनि ।

अविचारितमप्यनगधवनगरापमम् ॥ १५ ॥

आत्मव्यपयमुद्दाश्लमूदध्वज

मन्त्र पुरं परिगिरिहारमुपय गम्या ।

भूमण्डलं अन्धिमवन्मयाऽन्ध

पान्नादमृदमिति म प्रयो विगान्ताम् ॥ १६ ॥

खनेवाले हो, इसलिये तुम अवश्य ही वर पानेको
हो । ध्रुव । तुम्हें जिस वरकी इच्छा हो, मुझे
नि सङ्कोच एवं निःशङ्क होकर माँगा ले ॥ ७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी । यक्षराज कुम्भ
में जब इस प्रकार वर माँगनेके लिये आप्रव्र किया, तब
महाभागजन महामति ध्रुवजीन उनसे यही माँगा कि
मुझे श्रीहरिकृष्ण अखण्ड स्मृति बनी रहे, जिससे मनुष्य
सबसे ही दुस्तर संसारसागरको पार कर जाता है ॥ ८ ॥
इतिहासके पुत्र कुम्भेराजीन बड़े प्रसन्न मनसे उन्हें मा-
न्यस्मृति प्रदान की । फिर उनके देखते-ही-देखते वे
अन्तर्धान हो गये । इसके पश्चात् ध्रुवजी भी अपनी
राजधानीको लौट आये ॥ ९ ॥ वहाँ रहते हुए उन्होंने
बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले प्योंसे मागान् यज्ञपुरुषों
आराधना की, मागान् ही द्रव्य, क्रिया और देव-
सम्पत्ती समस्त कर्म और उसके फल हैं तथा वे ही
कर्मफलके दाता भी हैं ॥ १० ॥ सर्वोपाश्रित्य
सर्वाणां श्रीअभ्युतमें प्रबल वेगपुच्छ भक्तिभाव रखते हुए
ध्रुवजी अपनेमें और समस्त प्राणियोंमें सन्मन्यपक
श्रीहरिकृष्ण ही विराजमान देखन लगे ॥ ११ ॥ ध्रुवजी
बड़े ही शिष्टसम्पन्न, जाद्वानमल, दीनकृत्तन और
धर्ममर्यादोंके रक्षक थे; उनकी प्रजा उन्हें छायाएँ
पिताके समान मन्मनी थी ॥ १२ ॥ इन प्रकार तरह
तरहके ऐश्वर्यमोगसे पुण्यका और माँगोंके त्यागार्थक
यज्ञानि धर्मोंके अनुष्ठानसे पापका क्षय करते हुए उन्होंने
उत्तीव्र हजार वर्षोंक पुष्पिका शसत्र किया ॥ १३ ॥
वितेन्त्रिय महारामा धुम्के इसी तरह वर्ष-अथ और
यमय सप्यान्मने बहुमत्त वर विनाकर अनन पुत्र
उत्पत्तिको राजसिंहासन सौंप दिया ॥ १४ ॥ इस
मन्त्र द्रव्य-प्राप्त्यन अविचारितमप्यन और मन्त्र
नगरके समान मायासे करनेमें ही कल्पित मानस और
य ममप्रकार नि शरीर, रीति, पुत्र मित्र, सेना, मत्त-
रूप राजाना, जनान मन्त्र, सुख विदारभूमि और
समुद्राकृत भूमन्त्रका श्राव—य सभी वस्तु न
१६ हुए हैं य वन्त्रिज्ञाधनरा पन्त्र मय ॥ १५ १६ ॥

तस्यां विशुद्धकरणं शिववार्तिगात्रा

बहुधाऽऽसनं नितमरुन्मनमाऽऽहृताक्षः ।

स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूपं पश्य

ध्यायस्तदव्यवहितो ध्यामुब्रह्ममाधौ ॥१७॥

भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्मज्ज

मानन्दचाप्यकलया मुदुर्यमान ।

विक्षिप्यमानहृदयं पुलकान्विताङ्गो

नाम्नानमसारदमाविति श्रुतलिङ्ग ॥१८॥

स ददर्श विमानाढ्यं नममोऽवतरत् ध्रुव ।

विभ्राजयद्गच्छ दिशो राक्षापतिभिर्बोदितम् ॥१९॥

तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ

इषामौ किशोरवरुणाभ्युजेष्वणौ ।

म्यिताववष्टम्य गदां सुवामनां

किरीटहाराङ्गचारुकुण्डलौ ॥२०॥

विश्राय साधुतमगायककिङ्करा

वन्मुत्थितः सान्त्वयतिस्मृतक्रम ।

ननाम नामानि गृणन्मधुद्विप

पार्षत्प्रधानाविति मंदासाञ्जलि ॥२१॥

तं कृष्णपादाभिनिविष्टेषुतम

बद्धाञ्जलिं प्रथयन्प्रक्रान्धरम् ।

मुनन्दनन्दापुपमुत्थं भस्मित

प्रसूचतु पुष्करनाभममर्ता ॥२२॥

मुनन्दनन्दापुपमु

भो भा गजन्तुगुपन्तुवार्तानाऽवहितः शृणु ।

१ मा पा — वाग्विना । २ मा पा — मुपुष्क । ३ मा पठितं प्रथमे नही है । ४ मा पा — बावो ।

भा स ग १ ५५—

यहाँ उन्होंने पवित्र जलमें स्नानकर इन्द्रियोंको विशुद्ध (शान्त) किया । फिर स्थिर आसनसे वैष्णव प्राणायामद्वारा वायुको बधमें किया । तदनन्तर मनके द्वारा इन्द्रियोंको बाह्य वस्तुओंसे हटाकर मनको भगवान् के स्थूल विराटरूपमें स्थिर कर दिया । उसी विराटरूपका चिन्तन करते-करते वे अन्तमें भ्याता और व्येक भ्रष्टसे शुन्य निर्विकल्प समाधिमें लीन हो गये और उस अवस्थामें विराटरूपका मां परियाग कर दिया ॥ १७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके प्रति निरन्तर भक्तिभावका प्रवाह चल्ते रहनेसे उनका मनमें बार बार आनन्दानुभूतियों का झूझी आ जाती थी । इससे उनका हृदय दबीभूत हो गया और शरीरमें शंका हो आया । फिर देहाभिग्राम गठित हो जानेसे उन्हें धीं धुब हूँ इसकी स्मृति भी न रही ॥ १८ ॥

इसी समय ध्रुवमीन आकाशसे एफ बड़ा ही सुन्दर विमान उतरते देखा । वह अपने प्रकाशसे दसों निशाओंको आलोकित कर रहा था, मानो पूर्णिमाका चन्द्र ही उदय हुआ हो ॥ १९ ॥ उसमें दो भ्रष्ट पाप गदाओंका सहारा लिये छड़ थे । उनके चार मुवापें थीं, सुन्दर इषाम गरीर था, किशोर अवस्था थी और अरुण कमरके समान नेत्र थे । वे सुन्दर वस्त्र, किरीट, हार, मुजबब और अनि मनोहर कुण्डल धारण किये हुए थे ॥ २० ॥ उन्हें पुष्पानेक श्रीहरिके सेवक जान ध्रुवजी हृदयकाष्ठमें पुजा आश्रित प्रेम मूर्तकर महसा लड़ हो गये और वे भगवान् के पादोंमें प्रणाम हैं—जसा समझकर उन्होंने धीमधुमन्तक मांमोका कीर्तन करते हुए उन्हें हाथ बाँधकर प्रणाम किया ॥ २१ ॥ ध्रुवजीका मन भगवान् के चरणकमलों में लब्धीन हो गया और वे हाथ बाँधकर बड़ी मधुरतासे स्थिर नीचा किय गड़ रह गये । तब श्रीहरिक प्रिय पार्षन् मुनन् और नन्दन उनका पास जाकर मुमकराने हुए कहा ॥ २२ ॥

सुखम् और लम्बं कदम् मया—रात्रन् ' अन्तर

कथयत हा अन् माव 'ान हाशर दम'ी भात मुनिने ।

यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्दध्ययतीत्यतः ॥२३॥

तस्मात्खिलजगद्वाप्तुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ।

पार्षदाविह सम्प्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥२४॥

सुदुर्लभं विष्णुपदं त्रितं स्वया

मत्सुरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ।

आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो

ग्रहर्क्षताराः परिरन्ति दक्षिणम् ॥२५॥

अनाखिलं ते पितृभिरन्वैरप्यङ्गं कर्हिचित् ।

आतिष्ठ अगतां बन्धुं तद्विष्णो परमं पदम् ॥२६॥

एतद्विमानप्रभरमुत्तमश्लोकमौलिना ।

उपस्थापितमायुष्मन्मन्त्रधरोद्धं स्वमर्हसि ॥२७॥

मैत्रेय उवाच

निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुत्सृज्यो-

र्मेषुच्युतं वाचमुत्कृष्टमप्रियः ।

कृताभियेकः कर्तुं नित्यमङ्गली

सुनीनं प्रणम्याक्षिपमन्त्रवाद्यतः ॥२८॥

परीत्याम्भर्ष्यं क्षिप्वायं पार्षदावभिधन्य च ।

इषेप तदधिष्ठतुं विभ्रद्रूपं हिरण्यमम् ॥२९॥

तैदोधानपदं पुत्रो ददृशान्तकमागतम् ।

मृन्मोर्म्भि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥३०॥

तदा बुन्नुमवा नंदुर्ध्वदङ्गणवाद्यः ।

गन्धर्वसूत्रा प्रजगुः पतुं कुसुमहृदयः ॥३१॥

स च खलोकमारोह्यन् सुनीतिं जननीं भुवः ।

अन्वसारदशं हित्वा दीनां यौग्ये दिविष्टपम् ॥३२॥

आपने पाँच वर्षकी अवस्थामें ही तपस्या करके सर्वेश्वर

भगवान्को प्रसन्न कर लिया था ॥ २३ ॥ इस उन्हीं

निखिलजगद्व्याप्तुरावां देवस्य शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णुके सेक्त

हैं और आपको भगवान्के धाममें ले जानेके लिये यहाँ

आये हैं ॥ २४ ॥ आपमें अपनी भक्तिसे प्रभावसे विष्णु-

लोकका कविकार प्राप्त किया है, जो औरोंके लिये

बड़ा दुर्लभ है । परमेश्वरी सत्त्व में भी श्रद्धालु नहीं

पहुँच सकें, वे नीचेसे केवल उसे देखते रहते हैं ।

सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह, नक्षत्र एवं तारामण भी

उसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं । यस्तिये, आप

उसी विष्णुधाममें निवास कीजिये ॥ २५ ॥ प्रियकर !

आजतक आपके पूर्वज तथा और कोई भी उस पदपर

कभी नहीं पहुँच सकें । भगवान् विष्णुका यह परम

धाम सारे ससारका बन्दीय है, आप वहाँ बसकर

विराजमान हों ॥ २६ ॥ आपुष्पन् ! यह श्रेष्ठ विमान

पुष्पश्लोकशिखामणि श्रीहरिने आपके लिये ही भेजा

है, आप इसपर बहने योग्य हैं ॥ २७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्के प्रमुख पार्षणोंके

ये अमृतमय वस्त्र धुनकर परम भागवत भुवनीने स्नान

किया, फिर सध्या-मन्दनादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो

माङ्गलिक अङ्कुरादि धारण किये । बदरिकाश्रममें

रहनेवाले मुनियोंको प्रणाम करके उनका आश्रम

लिया ॥ २८ ॥ इसके बाद उस श्रेष्ठ विमानकी पूजा

और प्रदक्षिणा की और पार्षणोंको प्रणाम कर सुक्लके

समान कान्तिमान् शिष्य रूप धारण करके उसपर

बसनेको तैयार हुए ॥ २९ ॥ इतनेमें ही धुननीने देखा

कि काल मूर्तिमान् होकर उनके सामने खड़ा है । तब

वे मृग्युके सिरपर पैर रखकर उस अद्भुत विमानपर

चढ़ गये ॥ ३० ॥ तब समय आकाशमें दुग्धुभि,

युद्ध और दोन आदि बाजे बजने लगे, श्रेष्ठ गन्धर्व

गान करने लगे और झूलकी बर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥

विमानपर बैठकर भुवनी उठीं हैं भगवान्के धाममें जानेके

लिये तैयार हुए, लगे हैं उन्हें अपनी माता सुनीतिपर स्मरण

हो जाय । वे सोचने लगे क्या मैं देवारी मानाको छोड़कर

जके लक्ष्मी दुर्लभ वैकुण्ठधाममें जाऊँगा ? ॥ ३२ ॥

१ मा पा — यः । २ मा वा — आरुरोहाद्यतः । ३ मा पा — बह्युत्तमम् । ४ मा पा — ह्यौहृत्तमम् ।

५ मा पा — मयिने परोक्षम् । ६ मा पा — यदम् । ७ मा पा — तत्क दृष्ट श्लोक मही है । ८ मा पा — वाच्यम् ।

इति व्यवसित तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ।
 दर्शयामासतुर्दशैः पुरो यानेन गच्छतीम् ॥३३॥
 तत्र तत्र प्रदंमद्भिः पथि वमानिकं सुरैः ।
 अवकीर्यमाणो ददशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥३४॥
 त्रिलोकीं द्रवपानेन मोऽतिव्रज्य सुनीनपि ।
 परस्तादयद् द्रुवगतिर्विष्णो पद्मधाम्यगात् ॥३५॥
 यद्वा भ्राजमानं स्वर्गं सर्वतो
 लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते ।
 यथावज्जन्तुपु येऽननुग्रहा
 व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिद्रम् ॥३६॥
 द्रान्ताः समदृष्टाः शुद्धा सर्वभूतानुरञ्जनाः ।
 यान्त्यङ्गसाभ्युत्पदमभ्युत्पत्तिप्रियवाधवाः ॥३७॥
 इत्युद्यानपदं पुत्रा द्रुव कृष्णपरायणः ।
 अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिशिखामल ॥३८॥
 गम्भीरवगोऽनिमिष न्यासिषां चक्रीरहितम् ।
 यस्मिन् भ्रमति कौरव्य मेढ्रासिखि गर्वा गण ॥३९॥
 महिमानं विलास्यास्य नारदो भगवानृषि ।
 आतोर्ध्वं वितुदञ्च शक्रान् सत्रेऽगामत्प्रचेतसाम् ॥४०॥

नारद उवाच

नूनं सुनीतिं पतिद्वयताया
 मय प्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ।
 दृष्ट्वाभ्युत्पापानपि वदसांनि
 नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपा ॥४१॥
 यः पञ्चषष्ठौ गुरुरावाक्यार्थं
 भिन्नेन याता हृदयेन द्रुयता ।
 यः मदादृशकोऽजित प्रभुं
 जिगाय तद्भक्तसुगुणं पराजितम् ॥४२॥

नन्द और सुनन्दने ध्रुवके हृदयकी भात जानकर
 उन्हें शिक्षणाया कि देखी सुनीति जाने-आने
 दूसरे विनायपर जा रही हैं ॥ ३३ ॥ उन्होंने कम्प्रा
 सूर्य आदि सभी ग्रह देखे । मार्गमें जहाँ-तहाँ विमानोंपर
 बैठे हुए देवता उनकी प्रशंसा करते हुए फलोंकी वर्षा
 करते जाते थे ॥ ३४ ॥ उस दिव्य विमानपर बैठकर ध्रुवजी
 त्रिलोकीको पारकर सप्तर्षिगण्डरूपे भी ऊपर मगधान्
 विष्णुके नित्यधाममें पहुँचे । इस प्रकार उन्होंने अविचल
 गति प्राप्त की ॥ ३५ ॥ यह दिव्य धाम अपने ही
 प्रकाशसे प्रकाशित है, इसीसे प्रकाशसे तीनों लोक
 प्रकाशित हैं । इसमें जीर्णोपर निर्दयता करनेवाले पुरुष
 नहीं आ सकते । यहाँ तो ठण्डीकी पहुँच होनी है, जो
 दिन-रात प्राणियोंके कल्याणके लिये शुभ कर्म ही करते
 रहते हैं ॥ ३६ ॥ जो शास्त्र, समदर्शी, शुद्ध अतः सब
 प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले हैं तथा मगधकोको ही
 अपना एकमात्र सखा सुहृद् मानते हैं—एसे लोग
 सुगमतासे ही इस मगधदामको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३७ ॥

इस प्रकार उत्तानपादके पुत्र मगधपरायण धीधुवजी
 तीनों लोकोंके ऊपर उसकी निमत चूडामणिक समान
 निरात्रमाम हुए ॥ ३८ ॥ कुरुनन्दन । जिस प्रकार दापे
 चन्दाक समस्त लोकोके चारों ओर भँव घूमते हैं, उसी
 प्रकार यह गम्भीर वेगवान् स्थितिधर उस अविनाशी
 लोकके आश्रय ही निरंतर घूमता रहता है ॥ ३९ ॥
 उसकी महिमा दृष्टकर देखी नारदने प्रवेनाओंकी
 वृक्षशानामे बीणा बनाकर य तीन लोक गाये थे ॥ ४० ॥

नारदजीने कहा था—इसमें सुन्दर नहीं, पति
 परायण सुनीतिके पुत्र ध्रुव नृपत्यादात अद्भुत शक्ति
 मंचित करके जा गति पायी है, उसे मागधधर्मादि
 जानोचना करके वेचना की मुक्तिग भी नहीं पा सकते,
 कि राजाओंकी तो बात ही क्या है ॥ ४१ ॥ अहा !
 वे पाँच बारही अवस्थामें ही मौतेगी मानाक बाबागोष्टि
 मर्माहत हाकर दृष्टीहृदयमें बनमें चर गय और मेरे उपरान्त
 क अनुसार आपरग करके ही उन अल्प प्रसुप्त जीत गिया,
 जा कच आन मत्तक गुणोंसे ही पाने हात है ॥ ४२ ॥

यः क्षत्रवन्धुर्भूवि तस्याभिरूढ

मन्बारुरुधेदपि वर्षपूगैः ।

पदपञ्चवर्षो यदहोभिरन्यैः

प्रसाध वैकुण्ठमवाप सत्पदम् ॥४३॥

मैत्रय उवाच

एतत्सेऽभिहितं सद्यः सत्युद्योऽहमिह त्वया ।

ध्रुवस्योद्दामवधसंवरितं सम्मर्तं सताम् ॥४४॥

धन्यं यक्षसमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्वयनं महत् ।

स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रधुस्त्वमघमर्षणम् ॥४५॥

ध्रुवैर्वचःश्रुत्वाभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ।

भवद्भक्तिर्मगवति ययौ स्यात्स्फुल्लसङ्ख्यः ॥४६॥

महत्स्वमिच्छतीं तीर्थं भोक्तुः क्षीलद्भयो गुणाः ।

यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥४७॥

प्रसवः क्षीरवैभ्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ।

सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥४८॥

पौर्णमास्यां सिनीवास्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथवा ।

दिनस्येव व्यतीपाते सङ्क्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥४९॥

भावयेच्छ्रद्धाधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ।

नेच्छेत्सत्रात्मनाऽऽर्चनं सन्तुष्ट इति सिध्यति ॥५०॥

ज्ञानमद्भ्यस्तत्त्वाय यो दर्शयत्सत्येऽमृतम् ।

कृपालोदीननाथस्य द्वास्तस्यानुगृह्यते ॥५१॥

ध्रुवजीने तो पाँच-छ वर्षकी अकस्मात् कुल
दिनोकी तपस्यासे ही भगवान्को प्रसन्न करके
उनका परमपद प्राप्त कर लिया, किन्तु उनके अक्षिप्त
किये हुए इस पदको भूमण्डलमें कोई दूसरा क्षत्रिय
क्या कबोतक तपस्या करके भी पा सकता है ? ॥४३॥

भीमभैरवजी कहते हैं—विदुरजी ! तुमने मुझसे
उदारकीर्ति सुननीके चरित्रके विषयमें पूछा था, सो मैंने
तुम्हें वह सूझ-का-भूरा सुना दिया । साधुजन इस
चरित्रकी बड़ी प्रशंसा करते हैं ॥ ४४ ॥ यह जन,
यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, परम पवित्र और
अत्यन्त मङ्गलमय है । इससे स्वर्ग और अमृतप्रीति पद
भी प्राप्त हो सकता है । यह देवकीकी प्राप्ति करनेवाला,
कहा ही प्रशंसनीय और समस्त पापोंका नाश करनेवाला
है ॥ ४५ ॥ भगवान्को ध्रुवके इस पवित्र चरित्रको जो
अज्ञापूर्वक बार-बार सुनते हैं, उन्हें भगवान्की भक्ति
प्राप्त होती है, जिससे उनके सभी दुःखोंका नाश हो
जाता है ॥ ४६ ॥ इसे श्रवण करनेवालेको शीघ्र
गुणोक्ति प्राप्ति होती है; जो महत्त्व चाहते हैं, उन्हें
महत्त्वकी प्राप्ति करनेवाला स्थान मिलता है, जो तेज चाहते
हैं, उन्हें तेज प्राप्त होता है और मनस्वियोंका मान बढ़ता
है ॥ ४७ ॥ पवित्रकीर्ति सुननीके इस महान् चरित्रका
प्रातः और सायंकाल ब्राह्मणदि द्विजानियोंके समानमें
एकाग्र चित्तसे कीर्तन करना चाहिये ॥४८॥ भगवान्के
परम पवित्र चरणोंकी शरणमें रहनेवाला जो पुरुष इसे
विष्णुसमावेश पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, अक्षय
नक्षत्र, तिथिस्थय, व्यतीपात, संश्रान्ति अपव्य उषारके
दिन अथवा पुरुषोंको सुमता है, वह स्वयं अपने
आत्मामें ही संपुष्ट रहने लगता है और सिद्ध हो
जाता है ॥ ४९ ५० ॥ यह साक्षात् महाविष्णु
अमृतमय ज्ञान है, जो छाग भगवन्मार्गके मार्गसे अनभिष्ट
हैं—उन्हें जो कोई इसे प्रदान करता है, उस दीनकस्य
कृपासे पुरुषपर देवता अनुग्रह करते हैं ॥ ५१ ॥

इद मया तेऽभिहितं कुरुद्वह
ध्रुवस्य विख्यातविश्वकर्मणः ।
हित्वार्यकं क्रीडनकानि मातु
गृहं च विष्णु शरणं यो जगाम ॥५२॥

ध्रुवजीके कर्म सर्वत्र प्रसिद्ध और परम पवित्र हैं, वे अपनी वात्स्यावस्था में ही माताके घर और स्त्रियैनोंका मोह छोड़कर श्रीविष्णुमगवान्की शरणमें चले गये थे । कुरुनन्दन ! उनका यह पवित्र चरित्र मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो संहितायां चतुर्थस्कन्धे
ध्रुवचरितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ध्रुवचरिताका चर्येण राजा महाका चरित्र

सूत उवाच

निश्चम्य कौपारबिषोपवर्णितं
ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाभिरोहणम् ।
प्रकटभावो भगवत्पद्मोद्भजे
प्रष्टुं पुनर्न विदुर प्रचक्रमे ॥ १ ॥

विदुर उवाच

के ते प्रचेतसो नाम कम्पापत्यानि सुव्रत ।
कसान्वबाये प्रख्याता कुत्र वा सत्रमासत ॥ २ ॥
मन्ये महाभागवत नारद देवदर्शनम् ।
येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥ ३ ॥
स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्मगवान् यक्षपूज्य ।
इत्यमाना र्भक्तिमता नारदनेरितः किल ॥ ४ ॥
यान्ता दर्वणिणा सत्र वर्णिता भगवत्कथा ।
मया श्रुतपुत्रे मया कात्स्न्येनाचष्टुर्भसि ॥ ५ ॥

मन्त्रेय उवाच

ध्रुवस्य पोत्कलः पुत्र पितरि प्रप्तिते वनम् ।
सार्वभौमधियं नैष्ठिकदधिराश्रामनं पितु ॥ ६ ॥
म अन्मनापद्मान्वात्मा नि मङ्ग समदर्शन ।
ददर्श लोक विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥ ७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—श्रीनक्षत्री ! श्रीमन्त्रेय मुनिके मुझसे ध्रुवजीके विष्णुपदपर आरोहण इत्येक वृत्तान्त सुनकर विदुरजीके हृदयमें मगवान् विष्णुकी भक्तिका सदेक हो आया और उन्होंने फिर मन्त्रेयजीसे प्रश्न करना आरम्भ किया ॥ १ ॥

विदुरजीने पूछा—महाकृपापण मुन ! ये प्रचेता कौन थे ! किनके पुत्र थे ! किसके वंशमें प्रसिद्ध थे और उन्होंने कहाँ यह किया था ॥ २ ॥ मगवान्के दर्शनसे कृतार्थ नारदजी परम भाग्यवान् हैं—यसा में श्रमता हैं । उन्होंने पाञ्चरात्रका निर्माण करके श्रीहस्तिनि पूजापद्धतिकर क्रियायोगका उपदेश किया है ॥ ३ ॥ जिस समय प्रचेतमाण स्वधर्मका आचरण करते हुए मगवान् यक्षेश्वरकी आराधना कर रहे थे, उसी समय महाप्रभु नारदजीने ध्रुवका गुणगान किया था ॥ ४ ॥ मगवान् ! उस स्थानपर उन्होंने मगवान्की निमज्जन की श्रद्धापूर्वक वर्णन किया था, वे सब पूर्णरूपसे मुक्त सुनाइये; मुझे उनके सुननकी बड़ी इच्छा है ॥ ५ ॥

श्रीमन्त्रेयजीने कहा—विदुरजी ! महाराज ध्रुवके वन जैसे ज्ञानपर उनके पुत्र उत्कलन जयन रिताक सार्वभौम वैभव और राज्यसिंहासनका असीसर कर लिया ॥ ६ ॥ वह जगत्से ही शासनबिध, आत्मकृत्य और समदर्शी था तथा सम्पूर्ण पदार्थोंका जाननी आत्ममे और अपनी आत्मसे सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें स्थित देवता का ॥ ७ ॥

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ।

प्रबोधधरसंकात्म्यमानन्दमनुसन्ततम् ॥ ८ ॥

अभ्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाश्रयः ।

स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनाऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥

जडान्धबभिरान्मधमूकाकृतिरतन्मतिः ।

लक्षितः पथि बालानां प्रशान्ताशिरिबानलः ॥ १० ॥

मत्वा तं जडमुन्मत्त कुलहृदाः समन्त्रिणः ।

वत्सरं भूपतिं चक्षुर्वशीयांसं अमः सुतम् ॥ ११ ॥

स्वर्वाधिर्वत्सरस्थेष्टा भार्यासुत पञ्चात्मजान् ।

पुण्याणं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसु जयम् ॥ १२ ॥

पुण्यार्थस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ।

प्रातर्मध्यन्दिन सायमिति ब्राह्मणप्रभासुता ॥ १३ ॥

प्रदोषो निश्चिषो व्युष्ट इति दोषासुताश्रयाः ।

व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥

त चक्षुः सुतमाकूत्पां पत्न्यां मनुमषाष ह ।

मनोरञ्जत महिषी विरजामहवला सुवान् ॥ १५ ॥

पुष्टं कुत्स त्रितं शुम्भं सत्यवन्तमुष्टं व्रतम् ।

अग्निधोममतीरात्र प्रशुम्भं शिशिसुश्रूषकम् ॥ १६ ॥

उल्लुक्कोऽज्जनपत्युश्रान्पुष्करिण्यां पङ्कजान् ।

अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥ १७ ॥

सुनीधाङ्गस्य या पत्नी सुपुत्रं वेनहृन्मण्यम् ।

यदौःश्रीस्थात्पराजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥ १८ ॥

यमङ्गं श्रेष्ठः कृपिता बाम्बजा मुनयः किल ।

गतासोमस्य भूयस्ते ममन्तुर्वर्धिणं करम् ॥ १९ ॥

भराजक वदालोकदस्तुभिः पीडिताः प्रजाः ।

आतो नारायणाग्नेन पृथुराद्यः द्वितीयार ॥ २० ॥

उसके अन्त करणका वासनारूप मय बलम
योगाग्निसे मस्य हो गया था । इसलिये वह अपनी
व्यात्माको विद्युद् बोधरसके साथ अभिन्न, मानन्दमय
और सर्वत्र व्याप्त देखता था । सब प्रकारके भेदसे रहित
प्रशान्त ब्रह्मको ही वह अपना स्वरूप समझता था तथा
अपनी आत्मासे भिन्न कुछ भी नहीं देखता था ॥ ८ ॥
वह अज्ञानियोंको रास्ते आदि साधारण स्थानोंमें बिना
लपटकी व्यागके समान मूर्ख, अंधा, बहिरा, पागल अथवा
गूंगा-सा प्रतीत होता था—बाल्यमें ऐसा था नहीं ॥ ९ ॥
इसलिये कुत्सके बड़े-बड़े तथा मन्त्रियोंने उसे मूर्ख और
पागल समझकर उसके छोटे भाई धर्मपुत्र वत्सरको
राजा बनाया ॥ ११ ॥

वत्सरकी प्रेयसी भार्या स्वर्वाधिके गर्भसे पुण्यार्ष,
तिग्मकेतु, इष, ऊर्जा, वसु और जय नामके छ पुत्र
हुए ॥ १२ ॥ पुण्यार्षके प्रभा और दोषा नामकी दो
कियाँ थीं, उनमेंसे प्रभाके प्रातः, मध्यन्दिन और साय—
ये तीन पुत्र हुए ॥ १३ ॥ दोषाके प्रदोष, निशीथ और
व्युष्ट—ये तीन पुत्र हुए । व्युष्टने अपनी भार्यापुष्करिणी-
से सर्वतेजा नामका पुत्र उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ उसकी
पत्नी आकूतिसे चक्षु नामक पुत्र हुआ । चाक्षुर मन्वन्तरमें
वही मनु हुआ । चक्षु मनुकी की नवव्रमसे पुत्र,
कुत्स, त्रित, शुम्भ, सत्यवान्, अतः, अतः, अतिशेष्म, अतिरात्र,
प्रशुम्भ, शिवि और उल्लुक्—ये बारह सारगुणी ब्राह्मक
उत्पन्न हुए ॥ १५ १६ ॥ इसमें उल्लुक्ने अपनी पत्नी
पुष्करिणीसे अङ्ग सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिर और
गय—ये छ उत्तम पुत्र उत्पन्न किये ॥ १७ ॥ अङ्गकी
पत्नी सुनीषाने क्रूरकर्मा, वेनका, जम्भ, दिया, जिसकी
कुप्यासे उद्विग्न होकर राजर्षि अङ्ग मगर छोड़कर चरम
गये थे ॥ १८ ॥ प्यारे बिदुरनी । मुनियोंके नामक ब्रह्मके
समान अवोष होते हैं, उन्होंने कुपित होकर वेनको
शाप दिया और जब वह मर गया तब कोई राजा न
रहनेके कारण लोकमें सुटकेके द्वारा प्रजाको बहुत कष्ट
होने लगा । यह देखकर उन्होंने वेनकी दाहिनी सुजाक
मर्यन किया, जिससे भगवान् विष्णुके अंशावतर
आदिनाम् म्भायज शृणु प्रकट हुए ॥ १९ २० ॥

विदुर उवाच

तस्य शीलनिवेः माधोर्ध्वप्यस्य महात्मनः ।

राक्षः कथममुदृष्टा प्रजा यद्विमता ययौ ॥२१॥

किं वाहो वेन उदित्य ब्रह्मवृक्षममुपुञ्ज ।

दम्भवतधरे राक्षि मुनयो धर्मकोविदा ॥२२॥

नाक्षप्येय प्रजापाल प्रजाभिरवधानपि ।

यदमौ लोकपालानां विभक्त्योऽजः स्वतः प्रसा ॥२३॥

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् सुनीधात्सुप्रवेष्टितम् ।

भद्रधानाय भक्त्या त्व परावरविचमः ॥२४॥

मन्त्रेय उवाच

अङ्गोऽथमेव राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ।

नाजगमुद्वेष्टतास्तस्मिन्नाहता ब्रह्मवादिभिः ॥२५॥

तर्धुर्बुर्विमितस्तत्र यजमानमथस्विजः ।

हवींषि ह्यमानानि न तं गृह्णन्ति वषता ॥२६॥

राजन् हवींष्यदुष्टानि ध्रुव्याऽऽसादितानि ते ।

छन्दांस्यथातयामानि योजितानि धृतप्रतैः ॥२७॥

न विदामेह दधानां हूलनं वयमप्यपि ।

यत्र गृह्णन्ति भागान् म्यान् ये दधाः धर्मसाधिनः ॥२८॥

मन्त्रेय उवाच

अङ्गो द्विजवचः धृत्वा यजमान मुदुमना ।

तत्प्रपुं व्यसृजद्दानं सम्प्राप्तदुनुग्रया ॥२९॥

नागच्छन्त्याहुता दधाना न गृह्णन्ति ग्रहानिह ।

यदमस्पतया भूत किमवर्षा मया कृतम् ॥३०॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन् ! महाराज अङ्ग तो बड़े शीलसम्पन्न, साधुसमाध, ब्राह्मण-भक्त और महारमा थे । उनके वेन जैसा दुष्ट पुत्र कैसे हुआ, जिसके कारण दुष्टी होकर उन्हें मगर छोड़ना पड़ा ॥ २१ ॥ राजगृहवासी वेनका भी ऐसा क्या अपराध था, जो धर्मब्रह्म मुनीकरणोंने उसके प्रति शापरूप ब्रह्मदण्डका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ प्रजाका कर्तव्य है कि वह प्रजापालक राजासे कोई पाप न जाय तो भी उसका निरस्कार न करे, क्योंकि वह अपने प्रभावसे आठ लोकपालोंके तेजको धारण करता है ॥ २३ ॥ ब्रह्मन् ! आप भूत-मविष्यकरी बातें जाननवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये आप मुझे सुनीधाके पुत्र वेनकी सब कहनेमें सुनाइये । मैं आपका ब्रह्मालु भक्त हूँ ॥ २४ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! एक बार राजर्षि अङ्गन अथमेव-महापद्मका अनुष्ठान किया । इसमें वेदवादी ब्राह्मणोंका आवाहन करनेपर भी वेदवादाग अपना भाग लेने नहीं आये ॥ २५ ॥ तब ऋषिजीने विस्मिन् होकर यजमान अङ्गने कहा—यानन् ! हम आहुतियोंके रूपमें आपका जो घृत आदि पदार्थ हवन कर रहे हैं, उसे देवतालाग स्वीकार नहीं करते ॥ २६ ॥ हम जामते हैं आपकी होम-सामग्री दुष्टि नहीं है, आपने उसे बड़ी थकाये सुन्या है तथा वेदमन्त्र भी किसी प्रकार बन्धीन नहीं हैं; क्योंकि उनका प्रयोग करनेवाले ऋषिजगत् याज्ञकोविन् सभी नियमोंका पूर्णतया पालन करते हैं ॥ २७ ॥ हमें देखी कोई बात नहीं गीकनी कि इस पक्षमें देवताओंका किंचित् भी निरस्कार हुआ है—फिर भी धर्माध्यक्ष देवताभाग क्यों अपना भाग नहीं ले रहे हैं ? ॥ २८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—ऋषिजीकी वाद सुनकर यजमान अङ्ग बहुत उत्साह हुए । तब उन्होंने याज्ञकोकी अनुमतिसे मौन तोड़कर सदस्योंमें पूछा ॥ २९ ॥ धर्मियों ! देवताभाग आवाहन करनेपर भी यज्ञमें नहीं आ रहे हैं और न सामपात्र ही ग्रहण करते हैं आप बतलाइये मुझमें ऐसा क्या अपराध हुआ है ? ॥ ३० ॥

सदसस्पतम ऋतुः

नरदेवेह भवतो नार्यं तावन्मनाक् स्मितम् ।
 अस्त्येकं प्राक्तनेभ्यं यदिदेहक् त्वमप्रजः ॥३१॥
 तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ।
 इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्र दास्यति यज्ञसृक् ॥३२॥
 तथा स्वमागधेयानि ग्रहीष्यन्ति विभौकमः ।
 यद्यनपुरुषः साक्षदपत्याय हरिर्धृतः ॥३३॥
 तांस्तान् कामान् हरिर्दद्याद्यन् यान् कामयते जनः ।
 आराधितो यथैवैष तथा पुतां फलोदयः ॥३४॥
 इति ध्यवसिता विप्रान्त्स्य रक्षः प्रजावये ।
 पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ॥३५॥
 तस्मात्पुरुष उच्यते हेममाख्यमलाम्बरः ।
 हिरण्यमेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥३६॥
 ॥ विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाञ्जलिर्नौदनम् ।
 अवघ्रापमुदा युक्तः प्रदान्यत्त्या उदारधीः ॥३७॥
 सो तत्पुंमवन राक्षो प्राश्य वै पत्सुरादध ।
 गम काल उपावृत्त इमारं मुपुवेऽप्रजा ॥३८॥
 स बाल एव पुरुषा मातामहमनुयतः ।
 अभमागोर्ध्वं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥३९॥
 स क्षरामनमुद्यम्य मृगयुधनगात्र ।

इत्ययगाधुभृगान् दीनान् पैनाऽमाविरयौञ्जन ॥४०॥

सवस्योमे कथा—राजन् । इस जन्ममें तो बाले
 तमिक भी अपराध नहीं हुआ, हाँ, पूर्वजन्मका एक
 अपराध अवश्य है, जिसके कारण आप ऐसे सर्वगु-
 नसम्पन्न होनेपर भी पुत्रहीन हैं ॥ ३१ ॥ आपका
 कल्याण हो । इसलिये पहले आप सुपुत्र प्राप्त करनेका
 कोई उपाय कीजिये । यदि आप पुत्रकी कामनासे यह
 करेंगे, तो भगवान् यज्ञेश्वर आपका अवश्य पुत्र प्रदान
 करेंगे ॥ ३२ ॥ जब सन्तानके लिये साक्षात् यज्ञपुत्र
 श्रीहरिका जाबाहन किया आया, तब देवताओं
 कायं ही अपना-अपना यज्ञ-भाग ग्रहण करेंगे ॥ ३३ ॥
 मन्त्र जिस जिस वस्तुकी इच्छा करता है, श्रीहरि उसे
 वही-वही पदार्थ देते हैं । उनकी जिस प्रकार आपना
 की जाती है, उसी प्रकार उपासकको फल भी मिलता
 है ॥ ३४ ॥

इस प्रकार राजा अङ्गको पुत्रप्राप्ति कथनेका निश्चय
 कर अग्निर्नौने पशुपते यज्ञरूपसे खनेवाले श्रीविष्णुमगध-
 के पूजनके लिये पुरोडाश नामक षड् सप्तपण किया
 ॥ ३५ ॥ अग्निमें आहुति दान्ते ही अग्निमुखासे
 सोनेके हार और सुव्र वस्त्रोंसे विनूयित एक पुरा
 प्रकट हुए, वे एक क्षणपानमें सिद्ध खीर लिये हुए
 थे ॥ ३६ ॥ तस्मात्पुदि राजा अपने यज्ञको
 अनुमनिस अपनी आज्ञामें वह खीर ही ही और
 उसे कायं सूक्ष्म प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नीको दे
 दिया ॥ ३७ ॥ पुत्रहीना रानीने यह पुत्रप्रदक्षिणी
 खीर खाकर अपम पतिके सहवाससे गर्भ धारण
 किया । उससे यथासमय उसके एक पुत्र हुआ
 ॥ ३८ ॥ वह बालक मात्स्यावस्थासे ही अपने
 वंशमें उत्पन्न हुए अपने माना सुसुक्त अनुयायी था
 (सुगीषा मृत्युकी ही पुत्री थी), इसलिये वह भी
 अधार्मिक हो हुआ ॥ ३९ ॥

वह दुर धामक धनुष-बाण बड़ाकर बनमें जाय
 और व्यापेक समान बैचारे भासे-भासे हरिर्नौकी
 हत्या करता । उस नेकसे ही पुरवासीयोग 'वेन
 आया । वेन आया । षड्वत्स पुत्र उटल ॥ ४० ॥

प्राक्रीडे क्रीडसो बालान् वयस्यानसिदारुण ।
 प्रसन्न निरनुक्रोश पशुमारममारयत् ॥४१॥
 तं विषम्य स्रुतं पुत्रं आसनेर्विविधैर्नृप ।
 यदा न शसितुं करयो मृशमासोत्सुर्दुर्नृपा ॥४२॥
 प्रायेणाम्भर्षितो दक्षो धेऽप्रजा गृहमेधिन ।
 कदपत्यमृतं दुःस्वं ये न विन्दन्ति दुर्मरम् ॥४३॥
 यत पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ।
 यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरन्तक ॥४४॥
 कस्त प्रजापदेश वै मोहधनमात्मन ।
 पण्डितो बहुमन्येत यदर्था कलशदा गृहा ॥४५॥
 कदपत्य धर्मं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ।
 निर्विघ्नेत गृहान्मत्स्यो यत्कलेश्चनिबहा गृहा ॥४६॥
 एवं न निर्विण्णमना नृपो गृहा
 भिक्षीष उत्थाय महोदयान्मात् ।
 अलम्भनिद्रोऽनुपलसिता नृभि
 हित्वा गतो वेनसुख प्रसुप्ताम् ॥४७॥
 विधाय निर्विघ्नं गतं पतिं प्रजा
 पुरोहितामात्यसुहृद्गुणादय ।
 विचिन्त्युरुज्यामिति शोकप्रवरा
 यथा निर्गूतं पुरुषं इत्यागिन ॥४८॥

वह ऐसा मूर्ख और निर्दयी था कि मैदानमें सेजते हुए जानी बराबरीके बालकोंको पशुओंकी भाँति बयलकरसे मार डालता ॥ ४१ ॥ केनकी ऐसी दुष्ट प्रकृति देखकर महा राज अङ्गने उसे तरह-तरहसे सुभारनेकी चेष्टा की; परन्तु वे उसे सुभार्णपर जनिमें समर्थ न हुए । इससे उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ ॥ ४२ ॥ (वे मन-ही-मन कहने लगे—) 'जिन गृहस्थोंके पुत्र नहीं हैं, उन्होंने अवश्य ही स्वजन्ममें श्रीहरिकी आराधना की होगी, इसीसे उन्हें कुमृतकी कतघोरसे होनेवाले असह्य क्लेश नहीं सहने पड़ते ॥ ४३ ॥ जिसकी कत्तीसे माता-पिताका सारा सुयश मिट्टीमें मिला जाय, उन्हें अधर्मकर भागी होना पड़े, सबसे विरोध हो जाय, कभी न धृष्टनेवाली चिन्ता मोल लेनी पड़े और घर भी दुःखदायी हो जाय—ऐसी माममात्रकी सन्तानके लिये कैसा समझदार पुरुष लड़कावेगा ?' वह तो आशपाके लिये एक प्रकारका मोहमय बन्धन ही है ॥ ४४ ४५ ॥ मैं तो सद्गति की अपेक्षा कुमृतकी ही अच्छा समझता हूँ, क्योंकि सद्गति छोड़नेमें बड़ा क्लेश होता है । कुमृत घरको नरक बना देता है, इसलिये उससे सहज ही हठकरा हो जाना है ॥ ४६ ॥

इस प्रकार सोचते-साचते महा राज अङ्गने रातमें नींद नहीं आयी । उनका चित्त गृहस्थीसे विरक्त हो गया । वे आधी रातके समय बिडीनमें उठे । इस समय वेनकी माता नींदमें बेसुच पड़ी थी । राजाने सबका सह छोड़ दिया और उसी समय किडीकी भी मादम न हूँ, इस प्रकार चुपचाप उस महान् ऐश्वर्यसे भरे राजमहलसे निकटकर कनको बाँट लिये ॥ ४७ ॥ महा राज विरक्त होकर घरसे निकट गये हैं, यह जानकर सभी प्रजाजन, पुरोहित, मंत्री और सुहृद्गण आदि बन्धुस्त शोककुल होकर धृषीयर उनकी ओर करने लगे । दीन नेमे ही जसु योग्य पयाप रह्य न जाननेवाल पुरा जवन हृदयमें छिपे हुए मगधनको बाहर लोखते हैं ॥ ४८ ॥

अलक्षयन्त पदवीं प्रजापते

होतोद्यमा प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ।

श्रुयीन् समवानमिवन्ध साधवो

न्यवेदयन् पौरव भर्तृविप्रवम् ॥४९॥ सुनाया ॥ ४९ ॥

जब उन्हें अपने सामीप्य बड़ी पता न लगा, तब निराश होकर नगरमें लौट आये और वहाँ जा मुनिव एकत्रित हुए थे, उन्हें अपना प्रणाम करके वहाँ आँखोंमें आँसु भरकर महाराजके न मिलनेका वृत्त सुनाया ॥ ४९ ॥

इति भीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजा जेनकी कथा

मैत्रेय उवाच

सृज्यद्वयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिन ।

गोप्तृयसत्ति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्बताम् ॥ १ ॥

वीर मातरमाहूय सुनीषां ब्रह्मवादिन ।

प्रकृत्यममृत वेनमम्यपिबन् पतिं शुभ ॥ २ ॥

श्रुत्वा नृपामनगर्त वेनमत्युग्रशासनम् ।

निडिब्युर्दस्यव सद्यः सर्पत्रस्ता इवात्मव ॥ ३ ॥

म आरूढनृपम्यान उभयोऽष्टविभूतिभिः ।

अबमने महाभागान्स्तम्भः सम्भावितः स्वतः ॥ ४ ॥

एव मदान्ध उत्सिकां निरकुश इव द्विप ।

पर्यटन् रथमास्याय कम्पयन्निव रोदसी ॥ ५ ॥

न गृह्यधन दातन्मन हातव्यद्विजा कश्चित् ।

इति न्यवारपदमै मेरीषापेण सर्वज्ञः ॥ ६ ॥

वनस्यावक्ष्य मुनया दुर्घस्य विवेष्टितम् ।

विमुष्य लोकपसन रूपयोधुः स सत्रिजः ॥ ७ ॥

भीमैवपक्षी कहते हैं—वीरवर विदुरजी ! स लोकोंकी कुशाव बाहनेवाले भृगु आदि मुनियोंने दे कि आपके चले जानेसे अब पृथ्वीकी रक्षा करनेका कोई नहीं रह गया है सब भोग पशुओंके समान उच्छ्वस्य होते जा रहे हैं ॥ १ ॥ तब उन्होंने मा सुनीषास्त्री सम्पत्तिसे, मन्त्रियोंके सहमत न होनेपर वेनको भूमण्डलके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया ॥ २ ॥ वेन बड़ा क्रोधर दासक था । जब वीर डाकुओंने छ कि वही राजसिंहासनपर बैठा है, तब सपसे बरे इ वृक्षोंके समान वे सब सुरत ॥ नहीं-तहाँ छिप ग ॥ ३ ॥ राज्यसन पानेपर वेन आठों लोकपक्षों ऐश्वर्यकथाके कारण उन्मत्त हो गया और अभिषेक अपनेको ही सबसे बड़ा मानकर महापुरुषोंका अपमान करने लगा ॥ ४ ॥ वह ऐश्वर्यमन्त्रसे भवा हो रफ घटकर निरकुश गजराजके समान पृथ्वी और आकाशत कँगाता हुआ सर्वत्र विचरने लगा ॥ ५ ॥ 'कहेरें' दिवानिकर्णका पुरुष कभी किसी प्रकारका यह दा और हवन न कर' अपने राज्यमें यह विजोय विद्वक् ससने सारे धर्म-धर्म बन् बरबा न्ये ॥ ६ ॥

दुष्ट वनका ऐसा आयाचार देख सारे ऋषि-मुनि एकत्र हुए और संसारपर सेवक आया समझकर कम्प

अहा उभयतः प्राप्त लोहस्य व्यसन महत् ।
 शरुषुभयता गीप्ते इव तस्करपालयो ॥ ८ ॥
 अराजकभयादप्यं कृता गनातर्हण ।
 तताऽप्यामीदृश्य त्वय कथस्यात्स्वन्ति ददिनाम् ॥ ९ ॥
 अहरिय पय पोष पोषकस्याप्यनर्थमृत् ।
 घन प्रकृत्यं त्वल मुनीधार्मसम्भष ॥ १० ॥
 निरूपित प्रजापाल सज्जिषामतिषै प्रजा ।
 तथापि सान्त्वये मायुनाम्नास्तत्पातकं स्पृशेत् ॥ ११ ॥
 तद्विद्वद्भिर्मनुषूतो वेनोऽम्माभिः कृतो नृप ।
 मान्विक्ता यन्ति नो वाच न ग्रहीष्यन्त्यधर्मकृत् ॥ १२ ॥
 लाफधिकारमन्दैर्ग्यं दहिष्याम स्वतेजसा ।
 एवमप्यवसायनं धुनया गृहमन्यव ।
 उपग्रन्यामुब्रुव वनसान्त्वयित्वा च मामभि ॥ १३ ॥
 मुनेष उचु
 नृपवर्ष निराधृतघत्त विघ्रापयाम भा ।
 आयु धीबन्धकीर्तनां तव ताव विवर्धनम् ॥ १४ ॥
 धर्म आधरित पुमां वाघान्न कायमुद्धिभि ।
 लाघान विगाहान् विठरत्यथानन्त्यममङ्गिनाम् ॥ १५ ॥
 म त मा विनश्रीर प्रजाना धमन्सुण ।
 यस्मिन् विनष्ट नृपतिर्यथावगाहति ॥ १६ ॥
 गजममाप्यमाम्यममादिभ्यः प्रजा नृप ।

यदा आपसमें कड़न लगे ॥ ७ ॥ 'बहो' जैसे गनों
 ओर जलनी हुई लफड़ीक बीचमें रहनेवाले बीगी आदि
 जीव महान् सङ्कटमें पड़ जाते हैं, वैसे ही इस समय
 सारी प्रजा एक ओर राजाके और दूसरी ओर चार
 दाकुओंके अत्याचारसे महान् सङ्कटमें पड़ रही है
 ॥ ८ ॥ हमने अराजकताक मयसे ही अपोग्य होनेपर
 भी बेनकरी राजा बनाया था, किन्तु अब उससे भी
 प्रजाको मय हा गया । ऐसी अवस्थामें प्रजाको किम
 प्रकार सुख शान्ति मिल सकती है ? ॥ ९ ॥ सुनीषाकी
 कोखसे उत्पन्न हुआ यह वन स्वभावमें ही दुष्ट है ।
 परन्तु सौंपको दूध पिलानेके समान इसको पालना
 पालनशौंके लिये अनवकाश कारण हो गया ॥ १० ॥
 हमने इसे प्रजाकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त किया
 था, यह आज उसीको मत् करनेपर तुला हुआ है ।
 इतना सब होनेपर भी हमें इसे समझना अवश्य चाहिये,
 ऐसा करनेसे इसके लिये हुए पाप हमें स्या नहीं
 करमें ॥ ११ ॥ हमने जान-बूझकर दुराचारी वनको
 राजा बनाया था, किन्तु यदि समझानपर भा यह
 हमारी बात नहीं मानेगा, तो लोकके विद्वारसे दग्ध
 हुए इस दुष्टको हम अपन तेजसे मल कर देंगे ।
 ऐसा विचार करके मुनिबाग बेनक पास गये और अपने
 कोषको छिपाकर उसे प्रिय वचनोंसे समझाते हुए उस
 प्रकार कहन लगे ॥ १२ १३ ॥

मुनिबोले कहा—राजन ! हम आपसे जा बात
 कहते हैं, नसपर प्यान दीजिये । इससे आपकी आयु,
 श्री बल और कीर्तिकी वृद्धि होगी ॥ १४ ॥ तान !
 यदि मनुष्य मन, बाणी, शरीर और बुद्धिमें र्मक
 आचरण करे, तो उसे स्वर्गनि शोकरहित लाकोय
 प्राप्ति होती है । यदि उसका निष्कर्ममात्र हा नक
 था बही धम उसे अनन्त मोक्षपर्यपर पहुँचा लाता
 है ॥ १५ ॥ इत्यय वीरवर ! प्रजाका कल्याण
 यह धम आपके कारण नष्ट नहीं होना चाहिये ।
 धर्मके नष्ट होनेसे राजा भी एवमसे धुन हो गता है
 ॥ १६ ॥ जो राजा दुष्ट मन्त्री और चार आदिसे
 करनी प्रजारी रक्षा करन हुए म्यायानुवृत्त कर लाता

रघुन् यथा बलिं गृह्णमिह प्रेत्य च भोदते ॥१७॥

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान् यक्षपुरुष ।

इत्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाभिर्मान्वितै ॥१८॥

तस्य राज्ञो महाभार्गो भगवान् सूतभाषणः ।

परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥१९॥

तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्य जगतामीश्वरेश्वरे ।

लोका सपाला द्योतस्मै हरन्ति बलिमादृता ॥२०॥

तं सर्वलोकाभरणसंग्रहं

त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ।

यज्रैर्विधिवैजयो भवाम ते

राजन् स्वदेशानुरोद्धुर्महसि ॥२१॥

यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभि

र्विवापमानेन दुराः कला हरेः ।

मिष्टा सुतुष्टा प्रदिशन्ति वाञ्छितं

तदलन नार्हमि वीर चेष्टितुम् ॥२२॥

येन उवाच

बालिशा बत सूर्यं वा अधर्मे धर्ममानिन ।

ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जार पतिमुपासते ॥२३॥

अवजानन्त्यमी भूदा नृपरूपिणमीश्वरम् ।

नानुविन्दन्ति त भद्रमिह लाक परत्र च ॥२४॥

फा यज्ञपुरुषा नाम यत्र वा भक्तिरीदृशी ।

भद्रमनेहविदूषणां यथा जार कुपायिताम् ॥२५॥

रिपुर्विगिन्ना गिरिष्ठ इन्द्रो वायुर्पमा रविः ।

पर्वणा धनदं माम धिनिरधिरपाम्पति ॥२६॥

है वह इस लोकमें और परलोकमें दोनों अगह सुख पाता है ॥ १७ ॥ जिसके राज्य अपना नगरमें कर्माभ्य-धर्मोक्त पाळन करनेवाले पुरुष स्वधर्मपातनके दण्ड भगवान् यक्षपुरुषकी आराधना करते हैं, महाभार ! अपनी आज्ञाका पालन करनेवाले उस राजासे भगवान् प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि ये ही सारे विष्णुकी वात्सल्य तथा सम्पूर्ण भूतोंके रक्षक हैं ॥ १८ १९ ॥ भगवान् महादि जगदीश्वरोंके भी ईश्वर हैं, उनके प्रसन्न होनेपर कोई भी बस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती । तभी तो इन्द्रादि लोकपालोंके सहित समस्त लोक उन्हें सबेरे आकरसे पूजोपहार समर्पण करते हैं ॥ २० ॥ राजन् ! भगवान् श्रीहरि समस्त लोक, लोकपाल और यज्ञोंके निम्न हैं; वे वेदत्रयीरूप द्रव्यरूप और तप स्वरूप हैं । इसलिये आपके जो देशवासी आपकी उत्तमिके लिये अनेक प्रकारके यज्ञोंसे भगवान्का यजन करते हैं, आपको उनके अनुकूल ही रहना चाहिये ॥ २१ ॥ जब आपके राज्यमें ब्राह्मणभोग यज्ञोंका अनुष्ठान करेंगे, तब उनकी पूजासे प्रसन्न होकर भगवान्के वंशस्वरूप देवता आपको मनचाहा फल देंगे । बत वीरवा ! आपको यज्ञादि धर्मानुष्ठान बंद करके देवताओंका निरस्कार नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

यमने कहा—तुमलोग बड़े मूर्ख हो ! से—है, तुमने अकर्ममें ही बर्मेनुद्धि कर रखी है । तभी तो तुम जीविका देनवाले मुझ साक्षात्पतिको छोड़कर किसी दूसरे नारणतिकी उपासना करते हो ॥ २३ ॥ जो लोग मूर्खतावश राजाका परमेश्वरका अनादर करते हैं, उन्हें न तो इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही ॥ २४ ॥ वरे ! जिसमें तुमवर्गोंकी इतनी भक्ति है, वह यज्ञपुरुष है कौन ? यह तो देवी ही यात हर जैन मुन्या लिये अवन निराहित पतिसे प्रेम न करवे किसी परपुरुषमें आसक्त हो जायें ॥ २५ ॥ रिपु, राजा महादेव, इन्द्र, वायु यम, सूर्य, मेघ, कुबेर अश्वत्थामा, दृष्टी अग्नि और बड़ग तथा उनके

एते चान्य च विमुधाः प्रभवो वरक्षापयोः ।
देहे भवन्ति नृपते सर्वदेवमयो नृपः ॥२७॥

तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजन्व गतमत्सरा ।

वलिं च मघ इरत मतोऽन्यः कोऽग्रसूक् पुमान् ॥२८॥

मेत्रेय उवाच

इत्थ विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथ गतः ।

अनुनीयमानस्तद्याच्चां न चक्रे अष्टमङ्गल ॥२९॥

इति तेऽमत्कुतास्तेन द्विजा पण्डितमानिना ।

भगवां भव्य याच्चायां तस्मै विदुरञ्जुषु ॥३०॥

इन्यतां इन्यतामेव पाप प्रकृतिदारुण ।

जीवझगदसावाशु दुरुते भस्मसाव् शुषम् ॥३१॥

नायमर्हत्पसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ।

योऽधियमपतिं विष्णु विनिन्दत्यनपत्रप ॥३२॥

को वैन परिचेषीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ।

प्रात इष्टमैश्वर्य यदनुग्रहभाजन ॥३३॥

इत्थ व्यवसिता हन्तुमृषयो रुदमन्यव ।

निब्रमुर्ध्वद्वृत्तवेन इतमच्युतनिन्दया ॥३४॥

श्रपिभि स्वाभमपटं गत पुत्रकलेश्वरम् ।

गुनाथा पात्यामाम विद्यायोगन श्मश्रुती ॥३५॥

पक्का मुनयस्त तु मरम्यन्मलितान्पुता ।

दृत्वाप्राप्त मन्त्रधाधनुग्पविषा भरिषट ॥३६॥

वीक्ष्यात्पितृन्मदापातानाशुलोकभयद्वरान् ।

अतिरिक्त जो दूसरे वर और शाप देनेमें समर्थ देवता हैं, वे सब-के-सब रानाके शरीरमें रहते हैं, इसलिये राना सर्वदेवमय है और देवता उसके अंशमात्र हैं ॥ २६ २७ ॥ इसलिये ब्राह्मणों । हम मत्सरता छोड़कर अपने सभी कर्मोंद्वारा एक मेरा ही पूजन करो और मुझीको बलि समर्पण करो । मन्त्र, मेरे सिवा और कौन अप्रपञ्चाका अधिकारी हो सकता है ? ॥ २८ ॥

श्रीमेत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार विपरीत मुद्दि होनेके कारण वह अत्यन्त पापी और कुमार्गगामी हो गया था । उसका पुण्य क्षीण हो चुका था, इसलिये मुनियोंके बहुत विनयपूर्वक प्रार्थना करनेपर भी उसने उनकी बातपर ध्यान न दिया ॥ २९ ॥ कल्पणरूप विदुर जी । अपनेको बड़ा बुद्धिमान् समझनेवाले बेनने जब उन मुनियोंका इस प्रकार अपमान किया, तब अपनी योग्यता व्यर्थ हुई देख वे उसपर अत्यन्त क्रुपित हो गये ॥ ३० ॥ 'मार बाले ! इस क्षमावश ही दुष्ट पापीको मार बाला ! यह यदि जीत रह गया तो कुछ ही दिनोंमें संसारको अवश्य मत्स्य कर दानेगा ॥ ३१ ॥ यह दुष्टपापी किसी प्रकार राज सिंहासनक योग्य नहीं है, क्योंकि यह निर्लज्ज साक्षात् यक्षपति श्रीविष्णुमग्नानुकी निन्दा करता है ॥ ३२ ॥ अहा ! बिनकी कृपासे इसे ऐसा पक्षय मिया, उन श्रीहरिकी निन्दा अमागे बेमकी छोड़कर और कौन कर सकता है ? ॥ ३३ ॥

इस प्रकार अपने ठिपे हुए क्रोधको प्रकट कर उन्होंने उसे मारनेका निश्चय कर लिया । वह तो मग्नानुकी निन्दा करनेके कारण पहले ही मर चुका था, इसलिये केवल दृष्टारोंसे ही उन्होंने उसका क्रम समाप्त कर दिया ॥ ३४ ॥ जब मुनिगण अपने-अपने आशयोंको चले गये, तब इधर बेनकी शोकप्रवृत्ता माला सुनीषा मन्त्रादिक बन्धने तथा अन्य सुकियोंसे अपने पुत्रक गवकी रक्षा करने लगी ॥ ३५ ॥

एत दिन ब मुनिगण मारम्यनीक पवित्र जन्मे बान पर अग्निदाससे निहृष दो मर्गने तीतर देर हुए इतिहास कर रह थ ॥ ३६ ॥ उन निनों पात्रोंमें आनन्द ईश्वरनाथ बहुत-से उच्छ्रित दात दण्डन ब

अप्यभद्रमनाभाया दस्युभ्यो न भवदुष्टः ॥३७॥
 एवं मृशन्त श्रपयो धावतां सवतोदिशम् ।
 पांसु ममृत्थितां घृष्टोराणामभिक्षुम्पताम् ॥३८॥
 तदुपद्रवमाश्राप लोकस्य वसु सुम्पताम् ।
 भर्तृपुंरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥३९॥
 चोरप्राप जन्तपद हीनसत्त्वमरावकम् ।
 लोकांन्नाश्वारयञ्छुक्ता अपि तदोपदक्षिन् ॥४०॥
 ब्राह्मणः समदक्षान्तो दीनानां ममुपेक्षकः ।
 स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिक्षभाण्डात्पया यथा ॥४१॥
 नाङ्गस्य वशा राजपरेष सम्पातुमर्हति ।
 अमोघवीर्यां हि नृपा बंशेऽस्मिन् केयवाभयाः ॥४२॥
 विनिश्चित्यैवमृपयो विपकस्य महीपते ।
 मम पुरुरं तरमा तत्रासीद्बाहुको नर ॥४३॥
 क्कककुष्णाऽतिहर्म्वाङ्गो हस्वबाहुर्महाहनुः ।
 हम्बवाभिन्ननामाग्रा रक्ताक्षस्ताम्रमूर्ध्वज ॥४४॥
 त तु तेऽवनत दीन किं करोमीति वादिनम् ।
 निपीडत्यभुर्वस्तात म निपादस्ततोऽभवत् ॥४५॥
 तस्य धम्मास्तु नैपादा गिरिश्चाननगोचरा ।
 येनाहङ्गापमानो वनकल्मषपुरुषणम् ॥४६॥

आपसमें कहने लगे, 'आबकल पृथ्वीका कोर रख
 नहीं है, इसलिये चोर बाहुओंके कारण उसका कुछ
 अमङ्गल तो नहीं होनेवाला है।' ॥ ३७ ॥ अतिले
 ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उन्होंने सब पिश्रुओं
 पाया करनेवाले चोरों और बाहुओंके कारण
 उठी हुई नहीं मारी घूल देखी ॥ ३८ ॥ देखते ही वे
 समझ गये कि राजा वैनके मर जानेके कारण देखने
 अशक्तता फैल गयी है, राज्य शक्तिहीन हो गया
 है और चोर-बाहु बह गये हैं, यह सारा उपद्रव कोपों-
 का घन छूनेवाले तथा एक दूसरेके शून्यके प्यासे
 छुरोंका ही है । अपने तेजसे अपना तनोकसे कोपोंके
 एसी कुप्रवृत्तिसे रोकनेमें समर्थ होनेपर भी ऐसा करनेमें
 हिमादि दोष देखकर उन्होंने इसका कोई निवारण
 नहीं किया ॥ ३९ ४० ॥ फिर सोचा कि ब्रह्मण यदि
 सम्पदशी और शान्तस्वभाव भी हो तो भी दीनोंकी
 उपेक्षा करनेसे उसका तप उसी प्रकार नष्ट हो जाता
 है जैसे छूटे हुए घड़ेमेंसे जल बह जाता है ॥ ४१ ॥
 फिर रामर्षि अङ्गका वश भी नष्ट नहीं होना चाहिये,
 क्योंकि इसमें अनेक अमोघ-शक्ति और भगवत्प्राप्त
 राजा हो चुके हैं ॥ ४२ ॥ ऐसा निश्चय कर उन्होंने
 मृत राजाकी बाँधकी बंधे जोरसे मया ता उसमेंसे एक
 बीना पुरर उतार डुका ॥ ४३ ॥ वह बीपके समान
 कृष्ण या उसके समी अङ्ग और आसकर मुजारे
 बहुत छोटी थी, जबड़ बहुत बड़े, टोंगे छोटी, नाक
 घाटी, नेत्र लम्ब और केश तौके-से रंगके थे ॥ ४४ ॥
 उसने बड़ी दीनता और मन्त्रमायसे पूछा कि मैं क्या
 करूँ ? तो अग्निपोंने कहा— निपीड (पीट जा) ।
 इसीसे वह निपाट कर लाया ॥ ४५ ॥ उसन जन्म
 लेते ही राजा वैनके मयङ्कर पापोंको अपने ऊपर लि-
 पिया, इसीलिये उसके वंशधर नैपाद भी हिंसा का
 पाप आदि पापकर्मोंमें रत रहते हैं अतः वे गौव
 और मगरमें न पिककर वन और पर्वतोंमें ही निवास
 करते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
 प्रभुवरिने निपातोपनिनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

महाराज पृथुक्क आधिर्भाव्य और पायपाभिवेक

मन्त्रेय उवाच

अथ तस्य पुनर्निर्गमपुत्रस्य महीपते ।
 बाहुभ्यां मध्यमानाभ्यां मिथुन समपद्यत ॥ १ ॥
 तद् दृष्ट्वा मिथुन जातमृषयो ब्रह्मवादिन ।
 ऊचुः परममन्तुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥ २ ॥

कृपय ऊचुः

एव विष्णोर्मगवत कला भुवनपालिनी ।
 इयच्चलस्मा मम्मृतिः पुरुषस्वानपायिनी ॥ ३ ॥
 अत्र तु प्रथमा गर्वा पुमात् प्रथयिता यश ।
 पृथुनाम महाराजो भविष्यति पृथुभवा ॥ ४ ॥
 इय च सुन्ती दधी गुणभूषणभूषणा ।
 अचिनाम पराराहा पृथुमेवावरुन्धती ॥ ५ ॥
 एव साध्वद्वरराजा जाता लोकरीरक्षया ।
 इय च तन्परा हि भीरनुज्ज्वलनपायिनी ॥ ६ ॥

मन्त्रेय उवाच

प्रगमन्त स त विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगु ।
 मुमुचु सुमनाभागा सिद्धा नृपयन्ति स्व स्त्रिय ॥ ७ ॥
 श्रुत्वा त्वमृत्काया नेदुदुन्दुभयो दिवि ।
 तत्र मय उपाजग्मुर्देषविपितणां गणा ॥ ८ ॥
 प्रया जगद्गुह्यं सहास्रं य सुगमैः ।
 वन्यस्य दक्षिण इस्त दृष्ट्वा निहं गदामृत ॥ ९ ॥
 पापपागविन्दं च त व मन हर कल्पाम् ।
 यस्याप्रतिहत चक्रमंजु म परमष्टिनः ॥ १० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी । इसका वा

श्रावणोंने पुत्रहीन राजा वैनवी मुनाओंका मन्दन किया,
 तब उनसे एक भी-पुरुषका जाका प्रकट हुआ ॥ १ ॥
 ब्रह्मवादी अग्नि उस जोड़का उत्पन्न हुआ देख और
 उसे मगवान्का अंश जान बहुत प्रसन्न हुए और
 बोले ॥ २ ॥

श्रुतिपौत्रोंने कहा—यह पुरुष भगवान् विष्णुकी

विष्णुपत्नी की कलासे प्रकट हुआ है और यह भी उन
 परम पुरुषकी अनपायिनी (कभी कल्पा न हानेवाली)
 शक्ति लक्ष्मीनीका अवतार है ॥ ३ ॥ इनमेंसे जो पुरुष
 है, वह अपने सुपुत्रका प्रथम—विस्तार करनेके कारण
 परम पदाधी 'पृथु' नामक सम्राट् होगा । राजाओंमें यही
 सबसे पहला होगा ॥ ४ ॥ यह सुन्दर दोनोंवासी एवं गुण
 और आभूषणोंकी भी निम्नलिखित करनेवासी सुन्दरी इन
 पृथुका ही अपना पति बनायेगी । इसका नाम अचि
 होगा ॥ ५ ॥ पृथुका रूपमें साक्षात् श्रीहरिक अंगन
 ही मसारकी रक्षाके लिये अवतार लिया है और अचि
 रूपमें निरन्तर भगवान्की सेवामें रहनेवाली उनकी
 निष्ठा महारानी श्रीलक्ष्मीकी ही प्रकट हुई है ॥ ६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी । उस समय

श्रावणयोगपृथुकी स्तुति करने लगे, अष्ट गन्धर्वोंने गुणगान
 किया सिद्धोंने पुण्योंकी बर्षा की, अस्त्ररत्न नाचने लगे
 ॥ ७ ॥ आकाशमें बाह्य दृष्टी, युद्ध और दुःख
 आदि बाज बजने लगे । समस्त देवता, अग्नि और पितर
 अपने अपने लोकोंसे यहाँ आये ॥ ८ ॥ जगद्गुह्यानी
 दक्षता और दक्षरत्नके माप पपाये । उन्होंने वैनवुमार
 पृथुका गहन हृदयमें भगवान् विष्णुकी हस्तरेखाएँ और
 चरणोंमें कमलका चिह्न देखकर उन्हें श्रीहरिक ही अंग
 ममता क्योंकि त्रिमय हृदयमें दूसरी रत्नाओंव बिना
 क्या हुआ चन्द्रका चिह्न होता है, वह भगवान्का ही
 अंग होता है ॥ ९—१० ॥

तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्महाबादिभि ।

अभिषेचनिकान्यस्मै आबद्ध सवतो जनाः ॥११॥

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः स्वगा मृगा ।

घोः घिति सर्वमृषानि समान्बहुक्यायनम् ॥१२॥

सोऽभिषिक्ता महाराजः सुभासा साज्वलकृतः ।

पत्न्याचिपलकृतया विरेजेऽधिरापरः ॥१३॥

तस्मै बहार धनदो दैर्म बीर वरासनम् ।

चक्ष्माः सलिलस्त्रावमावपत्रं क्षत्रिममम् ॥१४॥

वायुश्च बालव्यजने धर्मः कीर्तिर्मयी स्रजम् ।

इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमन यम ॥१५॥

अज्ञा असमर्थं वैम भारती द्वारमुचमम् ।

हरि सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यम्पाहतां भिमम् ॥१६॥

दक्षचन्द्रमर्मि रुद्रः क्षतचन्द्रं तन्नामिका ।

सामोऽमृतमपानव्रांस्त्वष्टा रूपाधर्यं रथम् ॥१७॥

अमिराजगवं चार्पं ह्यर्थो रश्मिमयानिपून् ।

भूः पादुके योगमैर्घ्या घो पुष्पावन्निमन्वहम् ॥१८॥

नार्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ।

श्रपयश्चाश्रियः सत्या समुद्रं यक्षमात्मजम् ॥१९॥

सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ।

सूतोऽथ मागधो बन्दी तं स्तोतुमुपतस्त्रिरे ॥२०॥

न्तावर्कस्तानभिग्रस्य पृथुर्धन्य प्रतापवान् ।

मेघनिर्हृदिषा बाधा ग्रहसन्निधमज्वीत् ॥२१॥

वेदवादी ब्राह्मणोनि महाराज पृथुके अमिस्तत्र
आयोजन किया । सब लोग उसकी सामग्री पुष्टामें
लग गये ॥ ११ ॥ उस समय नदी, समुद्र, पर्वत, पक्ष,
गो, पक्षी, मृग, सर्प, पृथ्वी तथा अन्य सब प्राणियों
भी उन्हें तरङ्ग-तरङ्गके उपहार भेंट किये ॥ १२ ॥
सुन्दर कब और आभूषणोंसे अलङ्कृत महाराज पृथुके
विधिवत् उज्याभिषेक हुआ । उस समय अनेकों ब्रह्मणों-
से सबी हुई महारानी अर्चिके साथ वे दूसरे अग्निदेवक
सदृश ज्ञान पकटे थे ॥ १३ ॥

वीर विदुरजी । उन्हें कुक्कुरने बका ॥ सुन्दर खेने
का सिद्धास्त दिया तथा कङ्कण चन्द्रमार्के समान खेत
और प्रकाशमय छत्र दिया, जिससे निरन्तर अक्षी
उड़ियाँ छाती छाती थी ॥ १४ ॥ बाहुने दो चक्र,
धर्मने कीर्तिमयी माका, इन्द्रने ज्योतिर सुषुप्त, यमने
दमन करमबाण दण्ड, अज्ञाने वेदमय फलक, सरस्वतीने
सुन्दर द्वार, सिन्धु म्पातान्ने सुदर्शनचक्र, निष्प्रिय
व्यन्धीजीने अविषक सम्पत्ति, रुद्रने दस बन्धक
विहोसे युक्त कोन्मासी तलवार, अभिषेकजीने सौ
चन्द्रमर विहोवासी टाक, चन्द्रमने अमृतमय वज्र,
त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने सुन्दर रथ, अग्निने बकर और
गौके सींगोंका बना हुआ सुदृढ़ चतुर्प, सुमेने तेजोमय
बाण, पृथ्वीने अणुस्पर्शमात्रसे अमीह खानपर पहुँचा
देनेवाली योगमयी पादुकारें, वाकाशके अभिषेकी
वी श्वेताने लिया मृत्यु पुष्पोंकी माका, बालकमिहारी
सिन्धु-जलधरिने नावने-गाने, बवाने और अन्तर्धान
हो जानेकी शक्तियाँ, अश्रियोंने अमोघ आशीर्वाद, समुद्र
न जपनेसे उत्पन्न हुआ यक्ष तथा सामों समुद्र, पर्वत
और नदियोंने उनके रणके लिये बेरोक-टोक मार्ग उपहार
में दिये । इसके पश्चात् सूत, मयाव और कपीवन
उनकी स्तुति करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ १५-२० ॥
तब उन स्तुति करनेवालोंका अभिप्राय समतकर बेनपुत्र
परमप्रतापी महाराज पृथुने हँसते हुए मेनके सम्मन
गम्भीर वाणीमें कहा ॥ २१ ॥

१ प्रा वा — अभियेन । २ प्रा वा — जने । ३ प्रा वा — विष । ४ प्रा वा — धर्म ।

५ प्रा० पा० — माया ।

पृथुर्याय

भो स्रत हे' मागध सौम्य वन्दे

छोकेऽधुनास्पष्टगुणस्य मे स्यात् ।

किमाद्यो मे स्तव एष योज्यतां

मा मय्यमूषन् वितथा गिरो व' ॥२२॥

तस्मात्परोक्षेऽसद्वृत्तपञ्चतान्यलं-

क्षरिष्यथ स्तोत्रमपीन्यवाचः ।

मत्पुत्रमसौक्यगुणानुवादे

जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सम्मा ॥२३॥

महद्वगुणानात्मनि कर्तुमीश

क स्तावकै स्तावयतेऽसतोऽपि ।

त'ऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो

जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥२४॥

प्रमवोद्भात्मन स्तोत्र जुगुप्सन्त्यपि विभ्रुता ।

हीमन्त परमादारा पौरुष वा विगर्हितम् ॥२५॥

यय स्वविदिता लोके क्षताद्यापि वरीमभि ।

कर्मभि कथमात्मानं गापयिष्याम वातवत् ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संनितायां चतुर्थस्कन्धे

पृथुचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ पौण्ड्रशोऽध्यायः

वन्धीजनद्वाराय महाराज पृथुकी स्तुति

नेत्रेय उवाच

इति श्रुत्वा नृपतिं गायका मुनिचोदिता ।

तुष्टुस्तुष्टमनसस्तद्गायमृतसेवया

॥ १ ॥

पृथुने कहा—सौम्य सूत, मागध और बन्दीजन !

अभी तो लोकमें मेरा कोई भी गुण प्रकट नहीं हुआ ।

फिर तুম किन गुणोंको लेकर मेरी स्तुति करोगे ? मर

वियमें तुम्हारी बाणी व्यर्थ नहीं होनी चाहिये ।

इसलिये मुझसे भिन्न किसी औरकी स्तुति करो ॥२२॥

मृदुमारियो ! काल्पसरमें जब मेरे अप्रकट गुण प्रकट

हो जायें, तब मरपेट अपनी मधुर बाणीसे मेरी स्तुति

कर लेना । देखो, शिष्ट पुरुष पत्रिकीर्ति श्रीहरिके

गुणानुवादके रहते हुए तुच्छ मनुष्योंकी स्तुति नहीं

किया करते ॥ २३ ॥ महान् गुणोंके कारण करनेमें

समर्थ होनेपर भी ऐसा कौन बुद्धिमत् पुरुष है, जो

उनके न रहनेपर भी केवल सम्भावनामात्रसे स्तुति करने-

बन्नेवाला अपनी स्तुति करयेगा ? यदि यह विचान्यास

करता तो इसमें अमुक-अमुक गुण हो नाते—इस

प्रकारकी स्तुतिसे तो मनुष्यकी वक्षना की जाती है ।

बह मन्दमति यह नहीं समझता कि इस प्रकार तो लोग

उसका उपहास ही कर रहे हैं ॥ २४ ॥ जिस प्रकार

लज्जाशील उदार पुरुष अपने किसी निन्दित पराक्रमकी

वर्चा होनी शुभी समझते हैं, उसी प्रकार लोकाविख्यात

समर्थ पुरुष अपनी स्तुतिको भी निन्दित मानते हैं

॥ २५ ॥ सूतगण ! अभी हम अपने श्रेष्ठ कर्मोंके

द्वारा लोकमें अप्रसिद्ध ही हैं, हमने अवतक कोई भी

ऐसा कर्म नहीं किया है, जिसकी प्रशंसा की जा

सके । तब तुमलोगोंसे क्योंकि समान अपनी कीर्तिक

किस प्रकार गान करयें ? ॥ २६ ॥

तस्याभिषेक आरम्भो ब्राह्मणैर्ब्रह्मादिभिः ।

आभिषेचनिकान्यस्मै आजहु सर्वसौजना ॥११॥

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गन्धः स्वगा मृगा ।

घौ क्षिति सर्वभूतानि समाजहुरुपत्यन्म् ॥१२॥

सोऽभिरिक्तो महाराजः सुबासाः साप्पलकृत ।

पत्न्यार्चिपालकृतया विरेजेऽभिरिवापरः ॥१३॥

तस्मै जहार धन्दो हैमं वीर वरासनम् ।

वरुणः सलिलस्रवमातपत्रं क्षप्रिभम् ॥१४॥

चायुष वाल्म्यजने धर्म कीर्तिमयीं स्रजम् ।

इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनयम् ॥१५॥

ब्रह्मा ब्रह्मर्षे र्भर्म भारती हारहृत्तमम् ।

हरि सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यम्भारतां भियम् ॥१६॥

दक्षचन्द्रमसि रुद्रः सप्तचन्द्रं तथाम्बिकम् ।

सोमोऽमृतमयानन्दांस्त्वष्टा रूपाग्रवं रथम् ॥१७॥

अमिराजगव चापं क्षयौ रश्मिमयानिपून् ।

भूः पादुके योगमेय्यौ घौ पुष्पावलिमन्वहम् ॥१८॥

नाथ्य सुगीर्तं वादिप्रमन्तर्धानं च खेचराः ।

अपयभाक्षिपः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥१९॥

सिन्धवः पर्वता नद्यो रथबीधीर्महात्मन ।

सूतोऽय मागधो बन्दी च स्तोतुमुपतम्यिरे ॥२०॥

स्तावक्रांस्तानभिप्रत्य पृथुर्वन्य प्रतापवान् ।

मेपनिर्हादया बाचा प्रहसन्निदमव्रीत् ॥२१॥

वेदवादी ब्राह्मणोनि महाराज पृथुके अभिष्कृत

आयोजन किया । सब लोग उसकी सामग्री छुटनेमें

लग गये ॥ ११ ॥ उस समय नदी, समुद्र, पक्ष, सर्प,

गी, पक्षी, मृग, सर्ग, पृथ्वी तथा अन्य सब प्राणियों

भी उन्हें तरह-तरहके उपहार भेंट किये ॥ १२ ॥

सुन्दर वन और आभूषणोंसे अलङ्कृत महाराज प्रमुख

विधिवत् राज्याभिषेक हुआ । उस समय अनेकों ब्रह्मर्षी-

से सभी हुई महारानी अर्चिके साथ वे दूसरे अभिषेक

संस्था जाम पड़ते थे ॥ १३ ॥

वीर विहारी ! उन्हें कुमेरेने बचा ही सुन्दर छेने-

का सिंहासन दिया तथा वरुणने चन्द्रम्यके समान स्वेत

और प्रकाशमय छत्र दिया, जिससे निरन्तर जलभी

पुष्पियों ढरती रहती थी ॥ १४ ॥ चायुने दो बँकर,

धर्मने कीर्तिमयी माना, इन्द्रने मनोहर मुकुट, धमने

दमन करनेवाला दण्ड, ब्रह्मने वेदमय कवच, सरस्वतीने

सुन्दर हार, विष्णु मत्मान्ने सुदर्शनचक्र, विष्णुमय

अम्बीषीने अविचल सम्पत्ति, रुद्रने दस चन्द्राकर

चिह्नोंसे युक्त कोष्ठाक्षी सज्जार, अम्बिकाक्षीने सौ

चन्द्राकर चिह्नोंवाली डाल, चन्द्रमन्ने अमृतमय बर,

लक्ष्य (विषकर्ता) ने सुन्दर रथ, अम्बिन बकरे और

गीके सीमेंका बना हुआ सुदृढ़ चतुप, सूर्यने लेखोम

बाण, पृथ्वीने शरणस्थशामत्रसे अमीड स्थानपर पैँहा

देनेवाली योगमयी पादुकारें, बाकाशके अम्बिणी

और देवताने नित्य नृत्य पुष्पोंकी माला, बाकाशानिहारी

सिद्ध-गन्धर्वादिने नाचने-गाने, बजाने और अन्वर्तन

हो जानेकी शक्तियों, अग्निपोंने अमोघ आशीर्वाद, समुद्र

न अपनेसे उत्पन्न हुआ शङ्ख तथा शार्तो समुद्र, पक्ष

और नदियोंने उनके रथक लिये बेटोंक-टोक मार्ग उपहार

में दिये । इसके पश्चात् सूत, मागध और बन्दीजन

उनकी स्तुति करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ १५-२० ॥

तब उन स्तुति करनेवालोंका अभिप्राय समझकर बेनुप

परमप्रतापी महाराज पृथुने हँसते हुए मेघके समान

गम्भीर वाणीमें कहा ॥ २१ ॥

पुण्यस्वाध

भो सत हे' मागध सौम्य धर्निं
छोकेऽधुनास्पदगुणस्य मे स्यात् ।
किमाश्रयो मे स्त्व एष योज्यतां
मा मय्यमृवन् वितथा गिरो व ॥२२॥

तस्मात्परोक्षेऽसदुपधृतान्यलं-
करिष्यथ स्तोत्रमपीष्यवाच ।

मस्युचमसोकगुणानुवादे
जुगुप्सित न स्त्वयन्ति सम्या ॥२३॥

महद्गुणानात्मनि कर्तुमीक्ष
क स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि ।

त'ऽस्याभविष्यमिति विग्रलम्भो

जनतद्वासं कुमर्तिर्न वद ॥२४॥

प्रभबोधात्मन स्तोत्र जुगुप्सन्त्यपि विद्युता ।

हीमन्त परमादाराः पौरुष वा विगर्हितम् ॥२५॥

वयं त्वविदिता लोके घृताद्यापि वरीममि ।

कर्मभिः कथमात्मनं गापयिष्याम धालवत् ॥२६॥

पुण्यमे कहा—सौम्य सूत, मागध और बन्दीवन !
अभी तो लोकमें मेरा कोई भी गुण प्रकट नहीं हुआ ।
फिर तुम किन गुणोंको लेकर मेरी स्तुति करोगे ? मर
विषयमें तुम्हारी वाणी व्यर्थ नहीं होनी चाहिये ।
इसलिये मुझसे भिन किस्ती औरकरी स्तुति करो ॥२२॥
मृदुभाषियो ! कल्पान्तरमें जब मेरे अप्रकट गुण प्रकट
हो जायें, तब मरयेष्ट अपनी मधुर वाणीसे मेरी स्तुति
कर लेना । देखो, शिष्ट पुरुष पत्रिपकीर्ति श्रीशक्ति-
गुणानुवादके रखते हुए तुच्छ मनुष्योंकी स्तुति नहीं
किया करते ॥ २३ ॥ महान् गुणोंको धारण करनेमें
समर्थ होनेपर भी ऐसा कौन बुद्धिमान् पुरुष है, जो
उनके न रहनेपर भी केवल सम्भावनामात्रसे स्तुति करन-
वालेद्वारा अपनी स्तुति करायेगा ? यदि यह विषाम्यास
करता तो इसमें अमुक-अमुक गुण हो जाते—इस
प्रकारकी स्तुतिसे तो मनुष्यकी बखाना की जाती है ।
यह मन्दमति यह नहीं समझता कि इस प्रकार तो व्यंग
उसका उपहास ही कर रहे हैं ॥ २४ ॥ जिस प्रकार
लज्जारीक उदार पुरुष अपने किसी निन्दित पराक्रमकी
वर्षा होनी युधि समझते हैं, उसी प्रकार लोकविषयगत
समर्थ पुरुष अपनी स्तुतिको भी निन्दित मानते हैं
॥ २५ ॥ सुदृगण ! अभी हम अपने श्रेष्ठ कर्मोंके
द्वारा लोकमें अप्रसिद्ध हैं हैं, हमने अबतक कोई भी
ऐसा कार्य नहीं किया है, जिसकी प्रशंसा की जा
सके । तब तुमलोगोंसे बशोंके समान अपनी कीर्तिको
किस प्रकार गान करणें ? ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे

पृथुचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

बन्दीजनम्राप्य महाराज पुण्यकी स्तुति

मैत्रेय उवाच

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाराज पुण्य अब इस

इति भुवर्णं नृपतिं गायका मुनिषोदिताः ।

तुष्टुवस्तुष्टमनस्तद्भागमृतसेवया

॥ १ ॥

प्रकार कहा, तब उनके कथनामृतक आकादन करत सूत
आदि गायकलोग बड़े प्रसन्न हुए । फिर वे मुनिबोधि
प्रेरणासे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ १ ॥

१ मा ग०—ओ । २ मा पा०—हुणभिता ह्यर्थ । ३ मा पा—गुणा भविष्य ।

मा ॥ १ ५७—

नालं वयं ते महिमानुवर्णने
 यो देववर्षोऽवततार मायया ।
 वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते
 वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्विचः ॥ २ ॥
 अवाप्युदारभवस्य पृथोहरेः
 कलावतारस्य कथामृताद्याः ।
 ययोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः
 साध्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥ ३ ॥
 एष धर्ममृतां भेद्यो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ।
 गोप्ता च धर्मसेतूनां ज्ञात्वा तत्परिपन्थिनाम् ॥ ४ ॥
 एष वै लोकपालानां विभर्त्सेकस्तनौ सन्धुः ।
 काले काले यथाभागं लोकमोक्षमयोर्हितम् ॥ ५ ॥
 वसु काल उपादत्ते काले चार्यं विमुञ्चति ।
 सम सर्वेषु भूतेषु प्रतपन् सूर्यबद्धिश्च ॥ ६ ॥
 त्रितिसृत्पक्रमं वैभ्य उपर्याक्रमतामपि ।
 भूतानां करुणं शब्ददार्तानां क्षितिश्चिमान् ॥ ७ ॥
 दधेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरि ।
 कृच्छ्रप्राणां प्रजा ह्यप रक्षिष्यत्यज्ञसेन्द्रवत् ॥ ८ ॥
 आप्यामयत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ।
 सानुरागावलाकेन विशदक्षितचारुणा ॥ ९ ॥
 अय्यक्तवर्त्मप निगूढकार्यो
 गम्भीरवेधा उपगुप्तचित्तः ।
 अनन्तमाहात्म्यगुणं कथामा
 पृथुः प्रयेता इव संवतारमा ॥ १० ॥

'आप साक्षाद् देवप्रवर श्रीनारायण ही हैं, जो
 अपनी मायासे अवतीर्ण हुए हैं, हम आपकी महिमाका
 वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। आपने जन्म तो राव
 केनके भूतक शरीरसे लिया है, किन्तु आपके पौरुषोक्त
 वर्णन करनेमें साक्षाद् ब्रह्मादिकी बुद्धि भी बक़रा जन्ही
 है ॥ २ ॥ तथापि आपके कथामृतके आस्वादनमें
 आदर-बुद्धि रखकर मुनियोंके उपदेशके अनुसार उन्हींकी
 प्रेरणासे हम आपके परम प्रशसनीय कर्मोका कुछ
 विस्तार करना चाहते हैं, आप साक्षाद् श्रीहरिके
 कलावतार हैं और आपकी क्षिति बड़ी उदार है ॥ ३ ॥
 'ये धर्मवास्त्विये' श्रेष्ठ महापुत्र पृथु लोकको धर्ममें
 प्रवृत्त करके धर्ममर्यादाकी रक्षा करेंगे तथा उसके
 विरोधियोंको दण्ड देंगे ॥ ४ ॥ ये अकेले ही सम-
 सम्यपर प्रजाके पालन, पोषण और अनुरक्षण आदि
 कार्यके अनुसार अपने शरीरमें निम्न-निम्न लोकपालोंकी
 मूर्तियोंके चारण करेंगे, तथा यह आदिके प्रचारद्वारा
 अर्गलोक और पृथिवी व्यवस्थाद्वारा मूलोक—दोनोंका
 ही हित साधन करेंगे ॥ ५ ॥ ये सूर्यके समान
 अलौकिक महिमान्वित प्रतापधन और समदर्शी होंगे।
 जिस प्रकार सूर्यदेवता आठ महीने तपते रहकर जल
 खींचते हैं और वर्षा ऋतुमें उसे उडैक देते हैं, उसी
 प्रकार ये हर आदिके द्वारा कभी धन-सम्पन्न करेंगे और
 कभी उसका प्रजाके हितके लिये व्यय कर डालेंगे
 ॥ ६ ॥ ये बड़ दयालु होंगे। यदि कभी कोई दीन
 पुरुष इनके मस्तकपर पैर भी रख देगा, तो भी ये पृथ्वीके
 समान उसके इस अनुचित व्यवहारको सदा सहन
 करेंगे ॥ ७ ॥ कभी वर्षा न होगी और प्रजाके प्राण
 सङ्कटमें पड़ जायेंगे तो ये राजवेपथयी श्रीहरि इन्द्रकी
 भाँति जल बरसाकर अनायास होंगे। उसकी रक्षा कर
 लेंगे ॥ ८ ॥ ये अपने अवृत्तमय मुखचन्द्रकी मनोहर
 मुग्धजन और प्रेममयी चित्तजनसे सम्पूर्ण मोक्षको
 आनन्दमग्न कर देंगे ॥ ९ ॥ इनकी गतिको कोई समझ
 न सकेगा, इनके कार्य भी गुप्त होंगे तथा उन्हें सम्पन्न
 करनेका ढग भी बहुत गम्भीर होगा। इनका मन सदा
 सुरक्षित रहेगा। ये अनन्त माहात्म्य और गुणोंका एकमात्र
 आश्रय होंगे। इस प्रकार मन्त्रही पृथु माभात बड़गके
 ही समान होंगे ॥ १० ॥

दुरासदो दुर्विपह आसन्नोऽपि विदूरवत् ।
 नंभामिमधितुं क्षम्यो वेनारण्युत्थितोऽनल ॥११॥
 अन्तर्बहिः स्यूतानां पश्यन् कर्माणि चारणै ।
 उदासीन इवाप्यद्यो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥१२॥
 नादम्बधं दण्डयत्येव सुतमात्मद्विषामपि ।
 दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्य धर्मपथे स्थित ॥१३॥
 अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ।
 वर्तते भगवान्को योवचपति गोगणं ॥१४॥
 नञ्जयिष्यति यन्लोकमयमात्मविचेष्टितं ।
 अथासुमाह राजान मनोरञ्जनकं प्रजा ॥१५॥
 ददम्यतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो बृद्धसेवकः ।
 श्रम्य सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सल ॥१६॥
 मातृभक्तिं परस्त्रीषु पत्यामर्ष इयात्मन ।
 प्रवासु पितृवत्स्निग्धं किङ्करो ब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥
 देहिनामात्मवत्प्रष्टु सुहृन् नन्दिषधन ।
 मुक्तसङ्गप्रसङ्गाऽयं दण्डपाणिः सावुषु ॥१८॥

अयं तु साधारणगुणारण्यधीक्ष
 कृष्टस्य अन्तमा फलयावतीर्णः ।
 यस्मिन्निविष्टावचितं निरर्थकं
 पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीकम् ॥१९॥

१ या पा — पुत्र । २ प्राचीन प्रसिद्धिं यस्मिन्निविष्टा
 यन्मे नरां दे शिष्टाभिमे शिला दे ।

'महापुत्र' पृथु वैनरूप बरभिके मन्त्रसे प्रकट हुए
 धर्मिके समान हैं । शत्रुओंके लिये ये अत्यन्त दुर्धर्ष
 और दुःसह होंगे । ये उनके समीप रहनेपर भी,
 सेनादिसे सुरक्षित रहनेके कारण, बहुत दूर रहनेवाले-
 से होंगे । शत्रु कभी इन्हें हरा न सकेंगे ॥ ११ ॥
 जिस प्रकार प्राणियोंके भीतर रहनेवाला प्राणरूप
 सूत्ररमा शरीरके भीतर-बाहरके समस्त व्यापारोंको देखते
 रहनेपर भी उदासीन रहता है, उसी प्रकार ये गुप्तचरोंके
 द्वारा प्राणियोंके गुप्त और प्रकट सर्वा प्रकरणके व्यापार
 देखते हुए भी अपनी मित्रता और स्तुति आदिके प्रति
 उदासीन रहेंगे ॥ १२ ॥ ये धर्ममार्गमें स्थित रहकर
 अपने शत्रुके पुत्रको भी, दण्डनीय न होनेपर, कोई
 दण्ड न देंगे और दण्डनीय होनेपर तो अपने पुत्रको
 भी दण्ड देंगे ॥ १३ ॥ मगधान् सूर्य मानसीचर पक्ष-
 त्तक जितन प्रदेशको अपनी किरणोंसे प्रकाशित करते
 हैं, उस सम्पूर्ण क्षेत्रमें इसका निष्कण्टक राज्य रहेगा
 ॥ १४ ॥ ये अपने कर्णोंसे सब लोकोंको सुख पहुँचा-
 रेंगे—उनका रक्षण करेंगे, इससे उन मनोरञ्जनात्मक
 व्यापारोंके कारण प्रजा इन्हें 'राजा' कहगी ॥ १५ ॥
 ये बड़े छद्मसङ्कल्प, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मणमक्त, वृद्धोंकी
 सेवा करनेवाले, धरणागतकस्तुब, सब प्राणियोंको मान
 देनेवाले और गीनोंपर दया करनेवाले होंगे ॥ १६ ॥
 ये परस्त्रीमें माताके समान मर्त्ति रखेंगे, पत्नीका अपने
 भाव अङ्गके समान मानेंगे, प्रजापर पिताके समान प्रेम
 रखेंगे और ब्रह्मप्राणियोंके सेवक होंगे ॥ १७ ॥ दूसरे
 प्राणी इन्हें उतना ही चाहेंगे जितना अपने इस्तिस्का ।
 ये सुहृत्तक आनन्दको बकायेंगे । ये सर्वदा काम्ययन्त्र
 पुरुषोंसे विशेष प्रेम करेंगे और दुष्टोंका दण्डपाणि
 यमराजके समान सदा दण्ड देनेके लिये उद्यत रहेंगे ॥ १८ ॥

'सीनों गुणोंके अधिष्ठाता और निर्बिकार साक्षात्
 धीनारायणने ही इनके रूपमें अपने अंशसे अकार
 लिया है, जिसमें पण्डितयोग अधिष्ठाता प्रतीत
 होनावाले इस मानात्मको मिथ्या ही समझते हैं ॥ १० ॥

अयं सुभो मण्डलमादयाद्रे
 गोपिकवीरो नरदेवनाथः ।
 जाम्बाय जैत्रं रथमाचषाय
 पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्क ॥२०॥
 अस्मै नृपाला किल तत्र तत्र
 वलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ।
 मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं
 चक्रायुधं तद्यज्ञ उदरन्त्यः ॥२१॥
 अयं महीं गां हुदुहोऽधिराज
 प्रजापतिर्द्विचक्रः प्रजानासु ।
 मा लीलयाद्रीन् स्वदरात्सक्रेष्ठा
 भिन्दन् समां गामकरोषयेन्द्र ॥२२॥
 विस्फूर्जयन्नाजगर्भं धनु स्वयं
 भद्राचरत्सन्नामविष्णुमाश्रौ ।
 तदा तिलिन्धुर्द्विद्वि विप्रसन्तो
 लाङ्गालुघ्रयस्य यथा मृगेन्द्र ॥२३॥
 षणोऽधमेधाम् धृतमाजहार
 तरसती प्रादुरभावि यत्र ।
 अहार्पायस ह्य पुरन्दर
 धृतक्रतुधरमे वर्तमाने ॥२४॥
 एष स्वसन्नापवने समत्य
 सनत्कुमारं भगवन्तमक्रभू ।
 आराध्य भक्त्या लभतामल तज्
 ज्ञानं यतो ब्रह्म पर विदन्ति ॥२५॥
 तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विधृतविक्रम ।
 श्रोष्यत्सामाभितागाधा पृथु पृथुपराक्रमः ॥२६॥
 दिशो विजित्स्याप्रतिरुद्धशङ्कः
 भूतेजसोत्पाटितलोकशस्य ।
 सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमान
 महानुभावो भनिसा पतिर्धुव ॥२७॥

ये अद्वितीय वीर और एकछत्र सम्राट् होकर अपने ही उदयाचलपर्यन्त समस्त भूमण्डलकी रक्षा करेंगे तथा अपने जयशील रथपर चढ़कर धनुष बाणमें लिये सूर्यके समान सर्वत्र प्रदक्षिणा करेंगे ॥ २० ॥ उस समय जहाँ-तहाँ सभी लोकपाल और पृथ्वीपाल इन्हें भेंटें समर्पण करेंगे, उनकी स्त्रियाँ इनका गुणगान करेंगी और इन आश्रितानको साक्षात् श्रीहरि ही समझेंगी ॥ २१ ॥ ये प्रजापक्षी राजाधिराज होकर प्रजाके जीवननिर्वाहके लिये गोरूप-धारिणी पृथ्वीका दोहन करेंगे और इनके सम्बन्ध अपने धनुषके कोमोसे बात-बडी-बातमें पर्यंतोंको तोड़-फोड़कर पृथ्वीको समस्त कर देंगे ॥ २२ ॥ राजभूमिमें कोई भी इनका वेग नहीं सह सकेगा । जिस समय ये जंगलमें पहुँच उठकर विचरते हुए सिंहाके समान अपने 'आजग' धनुषका टकर करते हुए भूमण्डलमें विचरेंगे, उस समय सभी दुष्टजन हार-उपर छिप जायेंगे ॥ २३ ॥ ये सरस्वतीके उग्रमस्थानपर सौ अश्वमेध-यज्ञ करेंगे । तब अन्तिम यज्ञानुष्ठानके समय इन्द्र इनके बोहोके हरकर ले जायेंगे ॥ २४ ॥ अपने माहलके कानिषमें इनकी एक बार मगवान् सनत्कुमारसे भेंट होगी । उनके तनकी भक्तिपूर्वक सेवा करके ये उस निर्मल ज्ञानको प्राप्त करेंगे, जिससे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ इस प्रकार जब इनके परक्रम जनताके सामने आ जायेंगे तब ये परम पराक्रमी महाराज जहाँ-तहाँ अपने चरित्रकी ही चर्चा सुनेंगे ॥ २६ ॥ इनकी आज्ञाका विरोध कोई भी न कर सकेगा तथा ये सभी निशाओंको जीतकर और अपने तेजसे प्रजाके कष्टारूप बौंटके निकालकर सम्पूर्ण भूमण्डलके शासक होंगे । उस समय देवता और असुर भी इनके विपुल प्रभावपर वर्णन करेंगे ॥ २७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

चतुषस्कन्धे पांडवोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

महाराज पृथुका पृथ्वीपर कुपित होना और पृथ्वीके द्वारा उनकी स्तुति करना

मैत्रेय उवाच

एवमभगवान् वै न्य स्थापितो गुणकर्मभिः ।

उन्दयामास तान् कर्मैः प्रविप्लवाभिनन्द्य च ॥ १ ॥

माश्रमप्रभुत्वान् वर्णान् सृत्पामात्यपुरोभसः ।

पौराज्ञानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः सम्पूजयत् ॥ २ ॥

विदुर उवाच

कस्माद्धार गौरूपं धरित्री बहुरूपिणी ।

यां दुदोहं पृथुस्तत्र को वस्तो दोहनं च किय ॥ ३ ॥

प्रकृत्वा विपमा देवी कृता तेन समा कथम् ।

तस्य मेघ्य ह्य देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥ ४ ॥

सन्तुक्माराद्भगवतो ब्रह्मन् ब्रह्मविदुषमात् ।

लम्बाश्चान्नमविज्ञानं राजर्षिं कं गतिं गत ॥ ५ ॥

यथान्यदपि कृष्णस्य भवान् भगवतः प्रभोः ।

श्रव सुभक्तस्य पुष्पं पूर्वदेहकथाभयम् ॥ ६ ॥

भक्तस्य मेऽनुरक्ताश्च तस्य चाशेषकस्य च ।

वक्तुमर्हसि योऽदुष्टादैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७ ॥

सूत उवाच

चोदिता विदुरर्णवं वासुदेवकथां प्रति ।

प्रब्रूय सं प्रीतमना मैत्रेय प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥

मैत्रेय उवाच

मदाभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रै

गमन्त्रितो जनतायाश्च पाल ।

प्रजा निरन्ने क्षितिष्ठु एत्य

सुखामदेहाः पतिमग्न्यवोचन् ॥ ९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार जब कन्दीजनने

महाराज पृथुके गुण और कर्मोंका बखान करके उनकी प्रशंसा की, तब उन्होंने भी उनकी बहाई करके तथा उन्हें मनचाही वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया ॥ १ ॥

उन्होंने ब्राह्मणादि चारों वर्गों, सेवकों, मन्त्रियों, पुरोहितों, पुरवासियों, देशवासियों, मित्र-मित्र व्यवसयियों तथा अन्योन्य आश्रानुवर्तियोंका भी स्तुति किया ॥ २ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन् ! पृथ्वी तो अनेक रूप धारण कर सकती है, उसने गौमय रूप ही क्यों धारण किया ? और जब महाराज पृथुने उसे दुहा, तब ब्रह्मा क्यों बना ? और दुहनेका पात्र क्या हुआ ? ॥ ३ ॥ पृथ्वीदेवी तो पहले स्वामासे ही ऊँची-नीची थी । उसे उन्होंने समतल किस प्रकार किया और इन्द्र उनके यज्ञ सम्बन्धी बोहेको क्यों हर ले गये ? ॥ ४ ॥ ब्रह्मज्ञानियोंमें येष्ट माषान् सनत्कुमारजीसे ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करके वे राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुए ? ॥ ५ ॥ पृथुरूपसे सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने ही अन्तार प्रहण किया था, वत पुष्प-कतिं श्रीहरिके वस पृथु-अन्तारसे सम्बन्ध रखनेवाले जो और भी पत्रिच चरित्र हों, वे सभी आप मुझसे कहिये । मैं आपका और श्रीकृष्णचन्द्रका बड़ा अनुरक्त भक्त हूँ ॥ ६-७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—जब विदुरजीने माषान् वासुदेवकी कथा कहनेके लिये इस प्रकार प्रेरणा की तब श्रीमैत्रेयजी प्रसन्नचित्तसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! ब्राह्मणोंने महाराज पृथुका सम्प्राप्तिसे कहके उन्हें प्रनाक रक्षक उद्घोषित किया । इन ऋषियों पृथ्वी अकस्मीन हो गयी थी, इसलिये भूखण् कारण प्रजाजनोके शरीर सूखकर कड़ै हो गये थे । उन्होंने आपसे ज्ञामी पृथुके पास आकर कहा ॥ ९ ॥

पयं राज्ञाञ्जठरेणाभितप्ता
 यथाग्निना कोटरस्थेन वृक्षा ।
 त्वामप्य यत्ना क्षरणं क्षरण्यं
 यः साभितो वृक्षिकरः पतिर्नः ॥१०॥
 तन्नो भवानीह तु रातवेऽन्न
 क्षुधादितानां नरद्वयदेव ।
 यावन्न नक्ष्त्रामह उन्मिस्रोर्जा
 वार्तापतिस्त्वं किञ्च लोकपालः ॥११॥

मैत्रेय उवाच

पृथुः प्रजानां कल्पं निशम्य परिदेवितम् ।
 दीर्घं दृष्ट्वौ कुरुभट्ट निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥१२॥
 इति व्यवसितो बुद्ध्वा प्रपृहीतधरासन ।
 सन्दधे विस्त्रितं भूमे कृद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥१३॥
 प्रवेपमाना धरणी निष्काम्योदायुषं च तम् ।
 गौः सत्पपाद्रवप्रीता मृगीव मृगयुधुता ॥१४॥
 तामन्वधावचर्द्दन्त्यः कुपितोऽप्यरुणोद्यमः ।
 श्वर धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पठापते ॥१५॥
 मा दिशो विदिशा देवी रोदसी चान्तरं तथा ।
 धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूषतायुधम् ॥१६॥
 लोके नाविन्दत श्राणं वैन्मान्मृत्योरिव प्रजा ।
 त्रस्ता तदा निवपुते हृदयेन विह्वयता ॥१७॥
 उवाच च महाभार्ग धर्मज्ञापन्नवत्सल ।
 ब्राह्मि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थिता भवान् ॥१८॥

धावन् । जिस प्रकार कोटरमें सुतपसी इत आगसे पेड़
 जल जाता है, उसी प्रकार हम पेड़की भोग आगसे
 जले जा रहे हैं । आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले
 हैं और हमारे अन्नदाता प्रभु बनाये गये हैं, इसलिये
 हम आपकी शरणमें आये हैं ॥ १० ॥ आप समस्त
 व्यक्तियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, आप ही हमारी जीविका-
 के भी स्वामी हैं । अतः राजाजेश्वर ! आप हम क्षु-
 दीर्घताको शीघ्र ही अन्न देनेका प्रबन्ध करिये, ऐसा
 न हो कि अन्न मिथ्येसे पहले ही हमारा अन्त हो
 जाय ॥ ११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—बुद्धवर । प्रजापति कल्प-
 कन्दन सुनकर महाराज पृथु बहुत देतक विचार करते
 रहे । अन्तमें उन्हें अन्नाभ्यासका कारण मालूम हो
 गया ॥ १२ ॥ पृथुजीने स्वयं ही अन्न एक औषधालिके
 अपने भीतर छिपा लिया है । अपनी सुस्तिसे इस बातका
 निश्चय करके उन्होंने अपना धनुष उठाया और
 त्रिपुरविनाशक महाबल शस्त्रक समान अत्यन्त श्रेष्ठ
 होकर पृथुजीको अन्वय बनाकर बाण चढ़ाया ॥ १३ ॥
 उन्हें शङ्क उठाने देख पृथुजी काँप उठी और जिस
 प्रकार व्याघ्रके पीछा करनेपर हरिणी भगती है, उसी प्रकार
 वह डरकर गौका रूप धारण करके भगने लगी ॥ १४ ॥

यह देखकर महाराज पृथुजी जोखें कोधसे अन्न
 हो गयीं । वे, जहाँ-जहाँ पृथुजी गयीं, वहाँ-वहाँ धनुषपर
 बाण चढ़ाने उसके पीछे लगे रहे ॥ १५ ॥ दिशः,
 विदिशा, सर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें जहाँ-जहाँ भी
 वह दौड़कर जाती, वहाँ उसे महाराज पृथु इकित्तर
 उठाये अपने पीछे दिखायी दते ॥ १६ ॥ जिस प्रकार
 मनुष्यको मृत्युसे कोई नहीं बचा सकता, उसी प्रकार
 उसे मृत्युके भी भेनपुत्र पृथुसे बचानेवाला कोई भी न
 मिला । तब वह अत्यन्त मयभीत होकर दुःस्ति चिपसे
 पीछेकी ओर लौटी ॥ १७ ॥ और महाभारत पृथुजीसे कहने
 लगी—‘कर्मके तत्त्वको जाननेवाले शरणागतस्तत्त्व
 राजन् ! आप तो सभी प्राणियोंकी रक्षा करनेमें
 लगे हैं, आप मेरी भी रक्षा करिये ॥ १८ ॥

त्वं जिघांससे कस्मादीनामकुतकिस्त्रिषाम् ।
 ब्रह्मनिष्पत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥१९॥
 ग्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतमाः स्वपि सन्तवः ।
 किञ्चित् त्वदिधा राजन् कल्या दीनवत्सलाः ॥२०॥
 मां विषाद्याजरां नाथ यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ।
 आत्मानं च प्रज्जात्मेमा कथं मम्मसि धामसि ॥२१॥
 पृथुत्वाय
 वसुधे त्वां बधिष्यामि मन्त्रासनपरत्कुसीम् ।
 मार्गं बहिषि या वृक्षे न तनोति च नो वसु ॥२२॥
 यवसं क्षम्पनुदिनं नैव दोग्धौर्धसं पयः ।
 तस्यामेवं हि दुष्टायां दम्भो नात्र न क्षम्यते ॥२३॥
 त्वं स्वस्वोपधिबीजानि प्राक्स्सुष्टानि स्वयम्भुवा ।
 न मुञ्चस्वात्मरुद्रानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥२४॥
 अमृषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ।
 क्षमयिष्यामि मद्गतैर्मिन्नायास्तव मेदसा ॥२५॥
 पुमान् यापिदुत स्त्रीष्व अतमसम्भावनोऽधम ।
 भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥२६॥
 त्वां तन्त्र्वां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः क्षरे ।
 आत्मयोगबलनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजा ॥२७॥
 पृथ मन्पुमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव विभ्रतम् ।
 प्रमता प्राञ्जलिं प्राह मही सञ्जातवपयुः ॥२८॥

भरोवाच

नमः परस्मै पुरुषाय मायया
 विन्यस्तानातनवे गुणात्मने ।

मैं अत्यन्त दीन और निरपराध हूँ, आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं ? इसके सिवा आप तो धर्मज्ञ माने जाते हैं, फिर मुझ स्त्रीका वध आप कैसे कर सकेंगे ? ॥ १९ ॥ किसी कोई अपराध करें, तो साधारण जीव भी उनपर हाथ नहीं उठाते, फिर आप-जैसे कल्याणमय और दीनकस्तल तो ऐसा कर ही कैसे सकते हैं ? ॥ २० ॥ मैं तो एक सुदृढ़ नौकाके समान हूँ, सारा जगत् मेरे ही आधार-पर स्थित है । मुझे तोबकर आप अपनेको और अपनी प्रजाको जल्के ऊपर कैसे रखेंगे ? ॥ २१ ॥

महाराज पृथुमे कहा—पृथ्वी । व मेरी आत्माका उत्सृजन करनेवाली है । व यज्ञमें देवतारूपसे भाग तो लेती है, किन्तु उसके बदलेमें हमें धन नहीं देती, इसलिये आज मैं तुझे मार बाख्शा ॥ २२ ॥ व जो प्रतिदिन हरी-हरी घास खा जाती है और अपने पनका दूध नहीं देती—ऐसी दुष्टता करनेपर तुझ दण्ड देना अनुचित नहीं कहा जा सकता ॥ २३ ॥ व नासमर्थ है, वने पृक्कालमें ब्रह्माजीक उत्पन्न किये हुए जनान्तिके बीजोंको अपनेमें छिन्न कर लिया है और अब मेरी भी परवा न करके उन्हें अपने गर्भसे निकालती नहीं ॥ २४ ॥ अब मैं अपन बाणोंसे तुझे छिन्न-भिन्न कर तेरे भेदेसे इन क्षुधातुर और दीन प्रजाबनोंका कल्याण-कन्दन शान्त करूँगा ॥ २५ ॥ जो दुष्ट अपना ही पोषण करनेवाला तथा अन्य प्राणियोंके प्रति निर्दय हो—यह पुरुष, स्त्री अपना नपुंसक कोई भी हो—उसका मारना राजाओंके लिये न मारनेके ही समान है ॥ २६ ॥ व बड़ी गर्वाली और मदो मया है, इस समय मायासे ही यह ग्रीका रूप बनाये हुए है । मैं बाणोंसे तेरे दुकने दुकने करके अपनेयोगवशसे प्रजाको धारण करूँगा ॥ २७ ॥
 इस समय महाराज पृथु कात्की मूर्ति कोषमयी मूर्ति धारण किये हुए थे । उनका ये शब्द सुनकर धरती कोषम स्त्री और उसने अत्यन्त विनीतभावसे हाथ जोड़कर कहा ॥ २८ ॥

पृथ्वीने कहा—आप साक्षात् परमपुरुष हैं तथा अपनी मायासे अनेक प्रकारके शरीर धारणकर गुणमय ज्ञान पड़ते हैं ; नास्तिकमें आत्मानुभवके द्वारा आप अधिमूत,

नमः स्वरूपानुमयेन निर्धुत
द्रव्यक्रियाकारकविग्रमोर्मये ॥२९॥

येनाहमात्मापतनं विनिर्मिता
भावा यतोऽयं गुणसर्गसकृद्ग्रहः ।

स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वरा-
रूपस्वितोऽन्यं क्षरणं कमाभये ॥३०॥

य एतदादावसृजकारचरं
स्वभाषयाऽऽत्माभयपानितर्क्यया ।

तत्रैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः
कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥३१॥

नूनं वतेश्वस्य समीहितं जनै-
स्तन्मायया दुर्जययाऽहतात्मभिः ।

न लक्ष्यत यस्त्वकरोदकारयत्
योऽनेक एकः परतश्च ईश्वर ॥३२॥

स्वर्गादि योऽस्त्वनुरुणादि क्षक्तिभि-
र्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।

तस्मै समुपहृतिर्नृद्वक्षक्ये
नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥३३॥

स वै भवानात्मविनिर्मितं जगत्
भूतेन्द्रियान्तःकरणत्मकं विभो ।

सत्त्वापिष्यन्नश्च मां रमातला-
दभ्युज्जहाराम्भस आदिश्वकरः ॥३४॥

अपाप्सुपक्षे मयि नाभ्यवस्थिताः
प्रजा भवानघ रिरधिपुः किल ।

मा वीरमूर्तिः सममूढराधरो
भो मां पयस्युग्रशरो जिघांसति ॥३५॥

नूनं जनैरीदितभीष्मराणां
महादिपैत्तवृणसर्गमायया ।

व्याप्य और अनिद्वैतसम्बन्धी क्षमिष्ण और उससे उत्पन्न हुए राग-द्वेषादिके सर्वथा रहित हैं । मैं आपकी बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ २० ॥ आप सर्वत्र जगत्के विधाता हैं, आपने ही यह त्रिगुणरूपक सृष्टि रची है और मुझे समस्त जीवोंका आश्रय बनाया है । आप सर्वथा स्वतन्त्र हैं । प्रभो ! जब आप ही ब्रह्म-शक्त केन्द्र मुझे मारनेको तैयार हो गये, तब मैं और किसकी शरणमें जाऊँ ? ॥ ३० ॥ कल्पके आत्मने आपने अपने आश्रित रहनेवासी अनिर्वचनीय मायासे ही इस चराचर जगत्की रचना की थी और उस मायाके ही द्वारा आप इसका पालन करनेके लिये तैयार हुए हैं । आप वर्णपरायण हैं, फिर भी मुझ गेरूपचारिणीसे किस्त प्रकार मारना चाहते हैं ? ॥ ३१ ॥ आप एक होकर भी मायावश अनेक रूप जान पड़ते हैं तथा आपने सत्य ब्रह्मात्मे रक्कर उनसे निष्कली रचना करायी है । आप साक्षात् सर्वेश्वर हैं, आपकी छिन्नाओंको अनितेन्द्रिय भोग कैसे जान सकते हैं ? उनकी बुद्धि तो आपकी दुर्नय मायासे निश्चित हो रही है ॥ ३२ ॥ आप ही पञ्चभूत, इन्द्रिय, उनके अधिष्ठान् देवता, बुद्धि और अहङ्काररूप अपनी शक्तियोंके द्वारा क्रमशः जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं । भिन्न-भिन्न कार्यके लिये समय-समयपर आपकी शक्तियोंका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है । आप साक्षात् परमपुरुष और जगत्विधाता हैं, आपको मेरा नमस्कार है ॥ ३३ ॥ बन्धना प्रभो ! आप ही अपने रचे हुए भूत, इन्द्रिय और अन्त करणरूप जगत्की स्थितिके लिये आदिकाररूप होकर मुझे रसात्मके अन्धके बाहर आये थे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार एक बार तो मेरा उद्धार करके आपने 'धराचर' नाम पाया था, आज वही आप वीरमूर्तिसे अबके ऊपर नीकत्रके समान स्थित मेरे ही आश्रय रहनेवासी प्रजापति रक्षा करनेके क्षमिष्णपसे पैने-पैने बाण ब्याकर हूँ मैं देनेके अवसरमें मुझे मारना चाहते हैं ॥ ३५ ॥ इस त्रिगुणरूपक सृष्टिकी रचना करनेवाली आपकी मायासे मेरे-जैसे साधारण जीवोंके विषय मोहमत्त हो रहे हैं । मुझ-पैसे लोग तो आपके मर्त्यकी लीलाओंका भी

न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभि

स्तेभ्यो नमो धीरयशस्करेभ्य ॥३६॥

आशय नहीं समझ सकते, फिर आपकी किसी क्रियाका उद्देश्य मैं समझें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है । अतः जो इन्द्रियमयमादिके द्वारा वीरोचित यशका विस्तार करते हैं, ऐसे आपके मर्त्योक्त भी नमस्कर है ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां चतुर्थस्कन्धे पृथुविजये
धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

पृथ्वी-बोहान

मैत्रेय उवाच

इत्थं पृथुमभिष्टूय कृपा प्रस्फुरिताधरम् ।

पुनराहवनिर्भीता संतम्यात्मानमात्मना ॥ १ ॥

संनिष्छाभिभो मैत्र्युं निबोध आबिष च मे ।

सर्वतः सारमादत्तं यथा मधुकरो बुध ॥ २ ॥

अभिच्छोकऽथवाग्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।

इष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुतां भेयः प्रमिद्वये ॥ ३ ॥

तानातिष्ठति यः सम्मशुपायान् पूर्वदर्शितान् ।

अर्वरं भद्रयोपेत उपेयान् विन्दतेऽञ्जसा ॥ ४ ॥

ताननादृत्य चाऽविद्वानर्थान्नारभते स्वयम् ।

तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥ ५ ॥

पुरा सृष्टा बोधधो ब्राह्मणा या विश्राम्यते ।

सुन्यमाना मया इष्टा असंश्लिष्टव्रतैः ॥ ६ ॥

अपालितानादृता च भवन्ति लोकपालकैः ।

धोरीमूतेऽथ लोकऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोपधीः ॥ ७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी । इस समय महाराज पृथुके होठ कोचसे काँप रहे थे । उनको इस प्रकार स्तुति कर पृथ्वीने अपन हृदयको विचारपूर्वक समाहित किया और बरते-बरते उनसे कहा ॥ १ ॥ 'प्रभो ! आप अपना क्राध शान्त कीजिये और मैं जो प्रार्थना करती हूँ, उसे ध्यान देकर सुनिये । बुद्धिमान् पुरुष अमरके समान सभी बगइसे सार ग्रहण कर लेने हैं ॥ २ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने इस लोक और परलोक-में मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये कृषि, अग्निहोत्र आदि बहुत-से उपाय निकाले और काममें लिये हैं ॥ ३ ॥ उन प्राचीन श्रुतियोंके बताये हुए उपायों का इस समय भी जो पुरुष ब्रह्मापूर्वक भलीभाँति आचरण करता है, वह सुगमतासे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥ परन्तु जो अज्ञानी पुरुष उनका अनादर करके अपन मन कल्पित उपायोंका आश्रय लेता है, उसके समी उपाय और प्रयत्न बार-बार निष्फल होते रहते हैं ॥ ५ ॥ राजन् ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने विन धान्य आदिको उत्पन्न किया था, मैंने देखा कि यम-नियमादि ब्रह्मोंका पालन न करनेवाले दुष्टाचारी लोग ही उन्हें खाने जा रहे हैं ॥ ६ ॥ लोकपाल ! आप राजाओगोंने मेरा पावन और आदर करना छोड़ दिया इसलिये सब लोग ब्रह्मोंके समान हो गये हैं । इसीसे यज्ञके लिये ओषधियोंको मैंने अपनमें छिपा लिया ॥ ७ ॥

१ प्रा पा —विचक्रम । २ प्रा पा —पृथुचरिते वरानिग्रहः कृतः । ३ प्रा पा —भेयः । ४ प्रा पा —अवशः । ५ प्रा पा —आरब्धा ।

नृत्तं वा वीरुध क्षीणा मयि कालेन भूयसा ।
 तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हसि ॥ ८ ॥
 वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं बत्सला तव ।
 भोक्ष्ये धीरमयान् फलमाननुरूपं च दोहनम् ॥ ९ ॥
 दाग्ध्वार च महाबाहो भूतानां भूतभाषण ।
 अन्नमीप्सितमूर्जस्वङ्गगवान् बाष्पछते यदि ॥ १० ॥
 समां च कुरु मां राक्षन्देवदुष्टं यथा पयः ।
 अपर्तविवि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥ ११ ॥
 इति प्रियं हितं वक्तव्यं ब्रुव आदाय भूपतिः ।
 र्वत्सं कृत्वा मर्तुं पाप्माददुहत्सकलौपधी ॥ १२ ॥
 तथा परे च सवन्न सारमाददत्त मुधाः ।
 तैवाऽन्वे च यथाकाम दुदुह्य पृथुभाविताम् ॥ १३ ॥
 अपयो दुदुह्युर्वेधीमिन्द्रियेष्वथ मत्तम ।
 वत्सं वृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं क्षुधि ॥ १४ ॥
 कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममवदुहन् ।
 हिरण्मयेन पात्रेण धीयमोजो बलं पयः ॥ १५ ॥
 दत्तेया दान्वा वत्सं ब्रह्मादमसुरपंभम् ।
 विधामादुहन् धीरमयःपात्रं सुरासवम् ॥ १६ ॥
 गन्धर्वाप्सरसाऽपुष्टन् पात्रे पणमये पयः ।
 वत्सं विष्णवर्जं कृत्वा गौतम्यं मधु सौमगम् ॥ १७ ॥
 वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कथ्य धीरमपुष्टत ।
 आमपात्रे महाभागाः भद्रया भद्रद्वयता ॥ १८ ॥

जब अधिक समय हो जानेसे व्यक्त्य ही मे
 धान्य मेरे उदरमें जीर्ण हो गये हैं, आप उन्हें
 पूर्वाचार्यके बतलाने हुए उपायसे निकाल लीजिये ॥ ८ ॥
 भोक्ष्याल्य वीर ! यदि आपको समस्त प्राणियोंके अमीष्ट
 एवं बलकी वृद्धि करनेवाले अन्नकी आवश्यकता है तो
 आप मेरे योग्य बैठवा, दोहमपात्र और दुहनेवालेकी
 व्यवस्था कीजिये, मैं उम बैठके स्नेहसे निम्नकर
 दूधके रूपमें आपको समी अमीष्ट वस्तुएँ दे दूँगी ॥ ९ ॥
 राजन् । एक बात और है, आपको मुझे सकल करना
 होगा, जिससे कि बर्बाद हुए वीर जानकर भी मेरे ऊपर
 ईर्ष्या बरसाया हुआ बल सर्वत्र बना रहे—मेरे
 मीरकी आश्रता सुनने न पावे । यह आपके लिये
 बहुत महत्त्वपूर्ण होगा ॥ ११ ॥

पृथ्वीके कहे हुए ये प्रिय और हितकारी बचन
 स्वीकार कर, महाराज पृथुने स्वायम्भुव मनुकी बच्चा
 बना अपने हाथमें ही समस्त धर्मोंको दुह लिया ॥ १२ ॥
 पृथुके समान अन्य विद्वान् भी सब बगलसे सार प्रण
 कर छेते हैं अन् उन्होंने भी पृथुजीके द्वारा बरामें
 की हुई वस्तु-बगलसे अपनी-अपनी अमीष्ट वस्तुएँ दुह
 लीं ॥ १३ ॥ ऋषियोंने वृहस्पतिजीको बलका बनकर
 इन्द्रिय (वाणी, मन और श्रोत्र) रूप पात्रमें पृथ्वीदेवी-
 से बेदरूप पवित्र दूध दुहा ॥ १४ ॥ देवताओंने इन्द्रको
 बलकेके रूपमें कल्पना कर सुवर्णमय पात्रमें अमृत,
 धीय (मनोवक्त्र), ओज (इन्द्रियबल) और शारीरिक
 बलरूप दूध दुहा ॥ १५ ॥ दैत्य और दानवोंने असुर
 श्रेष्ठ प्रतादजीको वरम बनाकर बलकेके पात्रमें मर्दिय
 और आसन्न (तापी आदि) रूप दूध दुहा ॥ १६ ॥
 गन्धर्व और अप्सराओंने विष्णुबलको बलका बनाकर
 कल्पकरूप पात्रमें सुखसाधुर्व और सौन्दर्यरूप दूध
 दुहा ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंके अधिष्ठाता महामाग विद्वान्ने
 अथवा मामके पित्रीश्वरको वत्स बनाया तथा मिथीके
 कल्पे पात्रमें अश्वपुष्क कल्प (पितरोंको अर्पित
 किया जानेवाला अन्न) रूप दूध दुहा ॥ १८ ॥

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धा सङ्कल्पनामयीम् ।

सिद्धिं नभसि विधां च ये च विधाधरादयः ॥१९॥

अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानास्तुतात्मनाम् ।

मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुर्ध्वारणामयीम् ॥ २०॥

यश्चरक्षांसि भूतानि पिशाचा पिशिताननाः ।

भूतैश्च वत्सा दुदुर्ध्व कपाले क्षतजासवम् ॥२१॥

तथाहयो दन्दशूकः सर्पा नागाश्च तथैकम् ।

विधाय वत्सं दुदुर्ध्विलपात्रे विषं पयः ॥२२॥

पञ्चनो यवसं धीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ।

अरम्भपात्रं चातुश्चन्द्रगेन्द्रेण च दंष्ट्रिण ॥२३॥

क्रव्यादा प्राप्तिन क्रव्यं दुदुर्ध्वं स्वे कलेवरे ।

सुपर्णवत्सा बिहगाभरं चाचरमेव च ॥२४॥

मृदवत्सा वनस्पतयं पृथग्रसमयं पयः ।

गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातुं स्वसालुषु ॥२५॥

सर्वे स्वप्नस्पवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक्पयः ।

सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुर्ध्वं पृथुभाषिताम् ॥२६॥

एवं पृथ्वादयं पृथ्वीमभादा स्वभावात्मनः ।

दोहवत्सादिमेदनं क्षीरमेदं कुरुग्रह ॥२७॥

ततो महीपतिं प्रीतः सर्वकामदुघां पृथु ।

दुहितृस्वे चक्ररेमां प्रमृष्टा दुहितृवत्सलः ॥२८॥

मितं कपिलदेवजीको वट्टा बनाकर आकाशरूप पात्रमें सिद्धोंने अणिमादि अष्टसिद्धि तथा विधाधरोंन आकाश-गमन आदि विधाओंको दुहा ॥ १९ ॥ किम्पुरुषादि अन्य मायाविधियोंने मयदानकको बट्टा बनाया तथा अन्तर्धान होना, विभिन्न रूप धारण कर लेना आदि सङ्कल्पमयी मायाओंको दुग्वरूपसे दुहा ॥ २० ॥

इसी प्रकार यक्ष-राक्षस तथा भूत पिशाचादि मांस-हारियोंने मूतनाय रुक्मके वट्टा बनाकर कपालरूप पात्रमें रुद्रिणसरूप दूध दुहा ॥ २१ ॥ किना फन वाले सोंप, फनवाल सोंप, नाग और विष्णु आदि विधेने जन्तुओंने तक्षकको वट्टा बनाकर मुखरूप पात्रमें विस्मरूप दूध दुहा ॥ २२ ॥ पञ्चुओंने म्हाबान् रुक्मके बाहून वैष्णो कस्त बनाकर वनरूप पात्रमें तुण रूप दूध दुहा । बभी-बभी दासोंवाल मांसमक्षी जीवोंने मिहिरूप वट्टाके द्वारा अपने शरीररूप पात्रमें कक्षा मांसरूप दूध दुहा, तथा गरुडजीको वत्स बनाकर पक्षियोंने क्षीर-पतङ्गाणि चर और कल्पदि अचर पदार्थों को दुग्वरूपसे दुहा ॥ २३ २४ ॥ वृक्षोंन वनको वत्स बनाकर अनेक प्रकारका रसत्प दूध दुहा और पर्क्यों ने बिमाभ्यरूप वट्टाके द्वारा अपने विस्मरूप पात्रमें अनेक प्रकारकी वातुओंको दुहा ॥ २५ ॥ पृथ्वी तो समी अमीठ वस्तुओंको देनेवाली ई और इस समय वह पृथुजीके अमीन थी । अतः उनसे समील अपनी-अपनी नास्तिके मुखियाको वट्टा बनाकर अन्त्या-अन्त्या पात्रमें मिश्र-मिश्र प्रकारके प्यायोंको दूध रूपमें दुहा लिया ॥ २६ ॥

कुरुग्रेष्ठ विदुरमी ! इस प्रकार पृथु आदि सभी अभ्य-भोजियोंन मिश्र-मिश्र दोहन-पात्र और कस्तोंके द्वारा अपने-अपने विभिन्न अन्नरूप दूध पृथ्वीसे दुहा ॥ २७ ॥ इससे महारान पृथु ऐसे प्रसन्न हुए कि सर्वकामदुहा पृथ्वीके प्रति उनका पुत्रीके समान स्नेह हो गया और उमे उन्होंने अपनी कन्याक रूपमें स्वीकार कर

पूर्णयन् स्वधनुष्पद्म्या गिरिकूटानि राजराट् ।
 भूमण्डलमिदं वैन्य प्रायश्चक्रे मम विष्णु ॥२९॥
 अधासिन् भगवान् धैन्य प्रजानां वृषिदः पिता ।
 निवासान् कल्पयाश्चक्रे तत्र तत्र यथाईत ॥३०॥
 ग्रामान् पुर पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ।
 घोषान् ध्वजान् सन्निविरानाकरान् खेटस्वर्वटान् ॥३१॥
 प्राक्पृथोरिह नैवैष पुरग्रामादिकल्पना ।
 यथासुखं वसन्ति स तत्र तत्राकुतोभयाः ॥३२॥

भिया ॥ २८ ॥ फिर राजाधिपति पृथुने अपन धनु-
 की नोकसे पर्वतोंको फोड़कर इस सारे भूमण्डलको
 प्राय समतल कर दिया ॥ २९ ॥ वे पिताके समान
 अपनी प्रजाके पालन पोषणकी व्यवस्थामें लगे हुए थे ।
 उन्होंने इस समतल भूमिमें प्रजाधर्माके लिये जहाँ-जहाँ
 यथायोग्य निवासस्थानोंका विभाग किया ॥ ३० ॥
 अनेकों गाँव, कस्बा, नगर, दुर्ग, अश्वीरोंकी बस्ती,
 पशुओंके रहनेके स्थान, छवनियाँ, छानें, विस्तारोंके
 गाँव और पहाड़ोंकी तलहटीकी गाँव बसाये ॥ ३१ ॥
 महापुत्र पृथुसे पहले इस पृथ्वीतलपर पुर-ग्रामादिक
 विभाग नहीं था, सब लोग अपन-अपने सुभीतेके अनुसार
 जहाँ-जहाँ बस जाते थे ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुरुष पारमर्हस्या संहितायां
 चतुर्थस्कन्धे पृथुविर्जयेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

महापुत्र पृथुके सौ अश्वमेध यज्ञ

नेत्रेय उवाच

अधादीक्षित राजा तु हयमेघशतेन स ।
 सप्तर्षे मना क्षेत्र यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥
 तन्मित्रस्य भगवान् कर्माविशेषमात्मनः ।
 शतक्रतुनं ममृषे पृथायज्ञमहात्सवम् ॥ २ ॥
 यत्र यज्ञपतिः माघाद्रगवान् हरिरीश्वरः ।
 अन्वभूयत मयस्मा सर्वलोकगुरु प्रभुः ॥ ३ ॥
 अन्विता प्रसन्नवाग्मां लक्ष्मणं सहानुगं ।
 उपगीयमाना गन्धर्वमुनिभिश्चाप्सरोगणं ॥ ४ ॥
 द्वा विधाधरा दैत्या दानवा गुह्यकदयः ।
 सुनन्दनन्दप्रभुश्च पार्षदप्रवरा हरः ॥ ५ ॥
 कपिला नारद दत्ता यागजा मनकादयः ।
 तमन्त्रायुमागवता य च तत्सेवनायुक्ता ॥ ६ ॥

श्रीमेघेयजी कहते हैं—विदुरजी ! महापुत्र पृथुके
 अश्वमेध क्षेत्रमें, जहाँ सरस्वती नदी पूर्वमुखी होकर
 बहती है, राजा पृथुन सौ अश्वमेध-यज्ञोंकी दीक्षा
 की ॥ १ ॥ यह देखकर भगवान् इन्द्रको विचार हुआ
 कि इस प्रकार तो पृथुके कर्म मरे कर्मोंकी अपेक्षा भी
 बड़ जायेंगे ! इसलिये वे उनके यज्ञप्रदोषकको सहन
 न कर सक ॥ २ ॥ महापुत्र पृथुक यज्ञमें सबके
 कन्तरात्मा सर्वश्रेष्ठस्व जगन्नीश्वर भगवान् हरिने
 यज्ञेश्वररूपसे साक्षात् दर्शन लिया था ॥ ३ ॥ उनके
 साथ ब्रह्मा, इन्द्र तथा अपने-अपने अनुचरोंके सहित
 लोकपालगण भी पधारें थे । उस समय गन्धर्व, मुनि
 और अप्सराएँ प्रभुकी कीर्ति ग्य रहे थे ॥ ४ ॥ सिद्ध,
 विधाधर, दैत्य जनक यक्ष, सुनन्द-मन्दादि भगवान्के
 प्रभुत्व पार्षद और जो सबका भगवान्की सेवाके लिये
 उत्सुक रहते हैं—वे कपिल, नारद दत्ताप्रेय एवं
 सनकादि योगेश्वर भी उनके साथ जाये थे ॥ ५-६ ॥

१ मा पा — पूर्णयन् धनु । २ मा पा — वास कल्प । ३ मा पा — नैवेद्याः पुरग्रामादिकल्पना ।
 ४ मा पा — चरिते । ५ मा पा — राजर्षि । ६ मा पा — योगेश्वर ।

यत्र धर्मदुष्टा भूमि सर्वकामदुष्टा सती ।

दोर्ध्वि साभीप्सितानर्धान् यजमानस्य भारत ॥ ७ ॥

ऊटुः सर्वरसाग्रय क्षीरदम्भगोरसान् ।

तरवो भूरिवर्ष्माण प्राप्स्यन्त मधुच्युतः ॥ ८ ॥

मिन्धवो रत्ननिकरान् गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ।

उपायनमुपाजङ्घुः सर्वे लोकाः सपाठका ॥ ९ ॥

इति चाधोऽन्नेशम् पूथास्तु परमादयम् ।

अह्वयन् भगवानिन्द्र प्रतिघातमचीकृत ॥ १० ॥

धरमणाश्रमेधेन यजमाने यजुष्यतिम् ।

र्वेन्य यमपशु स्पर्धनपावाह तिराहित ॥ ११ ॥

तमत्रिमैगवान् क्षत्वरमाण विहायमा ।

आमुक्तमिव पागवण्डं योऽधर्मे धर्मविभ्रम ॥ १२ ॥

अत्रिणा चोद्विता हन्तुं पृथुपुत्रो महारथः ।

अन्यधात्रत मकुक्षन्तिष्ठ तिष्ठति चाग्रवीत् ॥ १३ ॥

तं ताश्चाकृति वीक्ष्य मने धम गुरोरिणम् ।

वन्ति भस्मनाच्छन्नं तम् बाणं न मुञ्चति ॥ १४ ॥

षभाप्रिद्विषं तं मृया हन्तव्यऽग्रिरचादयत् ।

उदि ययनं सात महन्ट रिपुधाधमम् ॥ १५ ॥

भारत ! उस यज्ञमें यज्ञसामग्रियोंको देनेवाली मूर्तिने कामधेनुरूप होकर यजमानकी सारी कामनाओंको पूर्ण किया था ॥ ७ ॥ नदियों दाख और ईस आदि सब प्रकारके रसोंको बहा माली थी तथा जिनसे मधु चूता रहता था—ऐसे बड़े-बड़े वृक्ष दूध, दही, अन्न और घृत आदि तरह-तरहकी सामग्रियों समर्पण करते थे ॥ ८ ॥ समुद्र बहुत-सी रक्तसिधियों, पर्वत मत्स्य, मोक्ष, शोष्य और लेह्य—चार प्रकारके अन्न तथा लोक-पालोंके सहित सम्पूर्ण लोक तरह-तरहके उपहार उन्हें समर्पण करते थे ॥ ९ ॥

महाराज पृथु तो एकमात्र भीड़रिक्त ही अपना प्रभु मानते थे । उनकी कृपासे उस यज्ञालयागमें उनका बड़ा उत्कण्ठ हुआ । किन्तु यह बात देवराज इन्द्रको सहन न हुई और उन्होंने उसमें विघ्न डालनेकी भी चेष्टा की ॥ १० ॥ जिस समय महाराज पृथु अन्तिम यज्ञद्वारा भगवान् यज्ञपतिकी आराधना कर रहे थे, इन्द्रने ईर्ष्याविश गुप्तरूपसे उनके यज्ञका धोका डर दिया ॥ ११ ॥ इन्द्रने अपनी रक्षाके लिये कवचरूपसे पाक्षपद्वेष धारण कर दिया था, जो अवधर्मे धमका भ्रम उत्पन्न करने वाला है—जिसका आश्रय लेकर पापी पुरुष भी धर्मात्मा-सा जान पड़ता है ॥ १२ ॥ इस क्षेत्रमें वे धोकाके लिये बड़ी क्षीप्ततासे आकाशमार्गसे जा रहे थे कि उनपर भगवान् अत्रिकी दृष्टि पड़ गयी । उनके कहनेसे महाराज पृथुका महारथी पुत्र इन्द्रवज्र मारनेके लिये उनका पीछ छोड़ा और बड़े क्रोधसे बोला, 'अरे लड़का रह ! लड़ा रह' ॥ १३ ॥ इन्द्र सिरपर जयन्त और शरीर में मम धारण किये हुए थे । उनका ऐसा वेद नेत्रपर पृथुभूमारण उन्हें मूर्तिमान् धम समझ, इसलिये उनपर बाण मही छाड़ा ॥ १४ ॥ जब वह इन्द्रपर बार किये बिना दी गी जाया, तब मूर्ति अग्नि पुन उसे इन्द्रको मारनेके लिये आज्ञा दी—'कम्, इम दयनायम इन्द्रे तुम्हारे यज्ञमें विघ्न डाल दे तुम इसे मार डालो' ॥ १५ ॥

एवं वैन्यसुत प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ।
 अन्वद्रवदमिच्छुः शौचं गृध्रादिषु ॥१६॥
 साऽर्ध्वं रूपं च तद्वित्वा तस्मा अन्तर्हितः खराट् ।
 वीर स्वपशुमादाय पितृयज्ञमुपेभिवान् ॥१७॥
 तस्य चामृतं कर्म विषस्य परमर्षयः ।
 नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताम्ब इति प्रभो ॥१८॥
 उपसृज्य तमन्तीव्रं जहाराजं पुनर्हरि ।
 चपालयूपतश्चभो हिरण्यगन्धन विभुः ॥१९॥
 अत्रि सन्दर्शयामास स्वरमाणं विहायसा ।
 कपालखट्वाङ्गवरं वीरो नैनमयाधत ॥२०॥
 अत्रिणा चोदितस्तस्मै मन्दचे विशिखं रुपा ।
 साऽर्ध्वं रूपं च तद्वित्वा तस्मा अन्तर्हितः खराट् ॥२१॥
 वीरभासमुपादाय पितृयज्ञमभाद्रजत् ।
 तदवधं हरं रूपं जगृह्णानदुबलाः ॥२२॥
 यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया ।
 तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गखण्डमिहाच्यत ॥२३॥
 एवमिन्द्र हरत्यत्र वैन्ययज्ञप्रियांसया ।
 तद्वृद्धीतविसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिनृणाम् ॥२४॥
 धम इत्युपधर्मेषु नम्ररक्तपगलिषु ।
 प्रायेण मज्जत भ्रान्त्या पगलेषु च वाग्मिषु ॥२५॥
 तदभिवाय भगवान् पृथु पृथुपराक्रम ।
 इन्द्राय श्रुतिता बाणमादत्तावसफार्भुय ॥२६॥

अत्रि मुनिके इस प्रकार उस्ताहित करनेपर पृथुको
 कोचमें मर गया । इन्द्र वही तेजीसे आकाशमें जा सके
 थे । उनको पीछे यह इस प्रकार दौड़ा, जैसे खजने के
 जटायु ॥ १६ ॥ स्वर्गपति इन्द्र उसे पीछे आते देख, उसने
 और घोड़ेको छत्रकर वहाँ अन्तर्धान हो गये और यह है
 अपना यज्ञपशु लेकर पिताकी यज्ञशालामें छौट आया ॥ १७ ॥
 शक्तिसाक्षी विदुरजी ! उसके इस अमृत पराक्रमका वल्लभ
 मूर्ध्निर्घोषे उसका नाम विजिताम्ब रक्खा ॥ १८ ॥

यज्ञपशुको चाल और यूपमें ॥ बाँध दिया गया था
 शक्तिसाक्षी इन्द्रने घोर अन्धकार फैला दिया और उसमें
 स्थित वे फिर उस घोड़ेको उसकी सोनेकी बन्दीरसमें
 ले गये ॥ १९ ॥ अत्रि मुनिने फिर उन्हें आकाशमें
 तेजीसे जाते निष्ठा दिया, किन्तु उनके पास कपाल और
 खट्वाङ्ग देखकर पृथुपुत्रने उनके मर्ममें कोई नावा
 बाली ॥ २० ॥ तब अत्रिने राजकुमारको फिर उक्तसम
 और उसने गुस्सेमें सरकर इन्द्रको स्वयं बलाकर अपने
 बाण चढ़ाया । यह देखते ही देवराज उस बेध को
 घोड़ेको छत्रकर वहाँ अन्तर्धान हो गये ॥ २१ ॥ किं
 विजिताम्ब अपना घोड़ा लेकर पिताकी यज्ञशालामें चले
 आया । तबसे इन्द्रके उस निन्दित वेदको मनुष्य
 पुरुषोंने ग्रहण कर लिया ॥ २२ ॥ इन्द्रन अन्धहरणकी
 इच्छासे जात्रा रूप धारण किये थे, वे पापके खण्ड
 होनेके कारण पाखण्ड कहलाया । यहाँ खण्ड खण्ड
 विच्छन्न मानक है ॥ २३ ॥ इस प्रकार पृथुको यज्ञ
 विधिस करनेके लिये यज्ञपशुको पुरात समय इन्द्रन ब्रिह्मे
 का बार ग्रहण कर स्थाया था, उन 'नम्र' 'रक्त' तथा
 काष्ठीक आदि पाखण्डपूर्ण आचारोंमें मनुष्योंकी बुद्धि
 प्रायः माहित हो जाती है; क्योंकि ये नान्दिकमन
 दमनेमें सुन्दर हैं और बड़ी-बड़ी युक्तियोंसे अपने पक्षमें
 समर्थन करते हैं । वास्तवमें ये उपधर्म मात्र हैं । मग
 अधमवश धर्ममानव इन्में आसक्त हो जाते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥
 इन्द्रकी इस पुकारका पता लगानेपर परम पराक्रमी
 महाशत्रु पृथुका बड़ा साथ हुआ । उन्होंने जाना
 धनु उतार उतार बाण चढ़ाया ॥ २६ ॥

१ मा वा — अत्रोदितः शक्यम् ।

● यज्ञपशुमें यज्ञपशु बाँधनेके लिये जो गन्ध दाया दे उग यूर कहते हैं और यूरके आध रक्षा रूप
 वस्त्रधार कहते पराज कहते हैं ।

तमृत्विजः शक्रवधार्मिसन्धित
विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यभगवत्परं हसम् ।
निवातयामासुरहो महाभते
न युज्यतेऽग्रान्यवधः प्रधोन्ति तत् ॥ २७ ॥
वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशनं
ह्वयामह त्वच्छ्रयसा इतस्विपम् ।
अपातयामोपहर्षरैनन्तर
प्रसन्न राजन जुह्वाम तेऽहितम् ॥ २८ ॥

इत्यामन्थ्य क्रतुपतिं विदुराम्पर्विजो रुपा ।
सम्भस्ताञ्जुह्वतोऽन्तेत्यस्वयम्भूः प्रत्यपेक्षत ॥ २९ ॥
न वक्ष्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवच्छतु ।
यं जिघांसथ यक्षेन वस्येष्टास्तनवः सुरा ॥ ३० ॥
तदिदं पश्यत महद्दर्शय्यतिक्रान्तिं द्विजा ।
इन्द्रशानुष्ठितं राक्ष कर्मतद्विजिघांसता ॥ ३१ ॥
पृथुकीर्तिं पृथार्मुपात्तर्षकोनेशतक्रतु ।
अरु ते क्रतुभिः स्विजैर्यद्वान्मोक्षधर्ममिच्छ ॥ ३२ ॥
नैवात्मने^१ महेन्द्राय रापमाहर्तुमर्हसि ।

उभापि हि भद्रं ते उत्तमस्याकविप्रहौ ॥ ३३ ॥

मास्मिन्महाराज कृपाः स चिन्तां

निशामयासद्वय आहतात्मा ।

यद्यद्यापतो देवदत्त तु कर्तुं

मनाऽतिरुद्धं विश्रुते समाऽन्धम् ॥ ३४ ॥

उस समय क्रोधावेशके कारण उनकी ओर देखा नहीं जाता था । जब ऋषिजीने देखा कि असह्य पराक्रमी महाराज पृथु इन्द्रका वध करनेको तैयार हैं, तब उन्हें रोकते हुए कहा, 'भानु' ! आप तो बड़े बुद्धिमान हैं, यज्ञदीक्षा से छेनेपर शास्त्रविहित यज्ञपशुको छोड़कर और किसीका वध करना उचित नहीं है ॥ २७ ॥ इस यज्ञकार्यमें विघ्न डालनेवाला आपका शत्रु इन्द्र तो आपके सुयशसे ही ईर्ष्यावश निस्तेज हो रहा है । हम अमोघ आवाहन-मन्त्रोंद्वारा उसे यहीं मृत्यु सेते हैं और ब्रह्मास्त्रसे अग्निमें हवन किये देते हैं' ॥ २८ ॥

विदुरजी ! यजमानसे इस प्रकार सलाह करके उसके याजकोने श्रेष्ठपूर्वक इन्द्रका आवाहन किया । वे खुबाहारा आहुति डालना चाहते थे कि मन्त्राग्नीने बहौं जाकर उन्हें रोक दिया ॥ २९ ॥ वे बोले, 'भानुकी ! तुम्हें इन्द्रका वध नहीं करना चाहिये, यह यज्ञसम्बन्ध इन्द्र तो भगवान्की ही मूर्ति है । तुम यज्ञद्वारा जिन देवताओंकी आराधना कर रहे हो, वे इन्द्रके ही तो अङ्ग हैं और उसे तुम यज्ञद्वारा मारना चाहते हो ॥ ३० ॥ पृथुके इस यज्ञानुष्ठानमें विघ्न डालनेके लिये इन्द्रने जो पाण्डव फैलाया है, वह धर्मका उच्छेदन करनेवाला है । इस बातपर तुम ध्यान दो, अब उससे अविक्रि विरोध मत करो, नहीं तो वह और भी पाण्डव मार्गोंका प्रचार करेगा ॥ ३१ ॥ अच्छा, परमकृपाशी महाराज पृथुके निन्यामवे ही यज्ञ रहने दो ।' फिर राजर्षि पृथुसे कहा, 'भानु' ! आप तो माध्वधर्मके जाननेवाले हैं, अतः अब आपको इन यज्ञानुष्ठानोंकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३२ ॥ आपको गलत हो । आप और इन्द्र—दोनों ही पवित्रकीर्ति भगवान् की धारिक दारी हैं, इसलिये अपने ही स्वरूपमूल इन्द्रके प्रति आपको क्रोध नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥ आपका यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त नहीं हुआ—इसके लिये आप चिन्ता न करें । हमारी बात आप आदर्शपूर्वक स्वीकार कीजिये । देखिये, जो मनुष्य बिधाताके बिगाड़ हुए कर्मको कनानेका विचार करता है, उसका मन व्यर्थत कोषमें भरकर भयङ्कर माहमें फँस जाता है ॥ ३४ ॥

एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ।
 अन्वद्रवदभिक्षुदो रौषणं गृध्रराष्ट्रि ॥१६॥
 सोऽर्ध्वरूपं च तद्वित्वा तस्मादन्तर्हितः स्वराट् ।
 वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेक्षितान् ॥१७॥
 तदस्य चाहृतं फर्म विचक्ष्य परमर्षयः ।
 नामधेयं ददुस्तस्मै विक्षिताय इति प्रभा ॥१८॥
 उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराय पुनर्हरि ।
 चपालयूपतश्चक्रो हिरण्यरश्मनं विश्व ॥१९॥
 अत्रिः सन्दर्शयामास स्वरमाणं विहायसा ।
 कपालसदृशकृशं वीरं नैनमवाधत ॥२०॥
 अत्रिणा बोदितस्तस्मै मन्दधे विशिखं रुपा ।
 सोऽर्ध्वरूपं च तद्वित्वा तस्मादन्तर्हितः स्वराट् ॥२१॥
 वीरसामुपादाय पितुर्यज्ञमथाक्रजत् ।
 तदवयं हर रूपं जगद्गुह्यं न दुर्बलाः ॥२२॥
 यानि रूपाणि जगुहे इन्द्रो ह्यनिहीर्यया ।
 तानि पापस्य त्वज्जानि लिङ्गं त्वज्जमिहोन्मते ॥२३॥
 एवमिन्द्रे इत्यश्वं वैन्यवह्निषिधांसया ।
 तद्वृहीतविसृष्टेषु पाप्मण्डेषु मतिनृणाम् ॥२४॥
 धर्म इत्युपधर्मेषु नधरक्तपटादिषु ।
 प्रायेण सञ्जतं भ्रान्त्या पेक्षलेषु च वाग्मिषु ॥२५॥
 तदभिज्ञाय भगवान् पृथुः पृथुपराक्रम ।
 इन्द्राय कृपितो बाणमादद्यात्तत्कार्मुकः ॥२६॥

अत्रि मुनिके इस प्रयत्नर उदाहृत करनेपर पृथु
 क्रोधमे भर गया । इन्द्र वही तेजीसे आक्रमे जा
 ये । उनके पीछे वह इस प्रकार दौड़ा, जैसे एवमक
 जटायु ॥ १६ ॥ स्वर्गपति इन्द्र उसे पीछे आते देख, उस
 और धाड़ेको छाँवकर वहीं अन्तर्धान हो गये और वह
 अपना यज्ञपशु लेकर पिताकी यज्ञशालामें छिप आया ॥ १७ ॥
 शक्तिशाली विदुरजी । उसके इस अज्ञात पराक्रमको देख
 महर्षियोंन उसका नाम विक्षिताय रक्खा ॥ १८ ॥
 यज्ञपशुको चपाल और यूपमें बाँध दिया गया ।
 शक्तिशाली इन्द्रन घोर अन्धकार कैय लिया और उ
 छिपकर वे फिर उस धाँका उसकी क्षानकी नीरस
 ले गये ॥ १९ ॥ अत्रि मुनिने फिर उन्हें आकर
 तेजीसे जाते निखा लिया, किन्तु उनके पास कपाल ।
 कृश दृष्टकर पृथुपुत्रने उनके मर्ममें कोई कषा
 डाली ॥ २० ॥ तब अत्रिने शबकुमारको फिर उसका
 और उसने गुस्सेमें भरकर इन्द्रको लक्ष्य बनाकर क
 बाण चढ़ाया । यह देखते ही देकर उस के
 धाड़ेका छेवकर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २१ ॥
 विक्षिताय अपना बोझ लेकर पिताकी यज्ञशालामें
 आया । तबसे इन्द्रके उस निन्दित केको मन्दसु
 पुरुषोंन प्रहण कर लिया ॥ २२ ॥ इन्द्रन जबहरम
 श्चक्रसे जा जो रूप धारण किये थे, वे पापके ल
 होनेके कारण पाण्डव कहलाये । यही स्थिति ॥
 विष्णुका वाचक है ॥ २३ ॥ इस प्रकार पृथुके सब
 विषय करनेके उद्यम यज्ञपशुको सुगते सम्म इन्द्रने नि
 कई बार प्रहण कर के त्यागा था, उन पशु पराक्रम
 कापान्क आदि पाण्डवोंन आचारोंमें मनुष्योंकी सु
 प्राय मोहित हो जाती है क्योंकि ये नास्तिक
 देखनेमें सुन्दर हैं और बड़ी-बड़ी मुक्तियोंसे अपने को
 समर्थ करते हैं । वास्तवमें ये उपवर्ग मात्र हैं । म
 भगवत् धर्ममानकर इनमें आसक्त हो जाते हैं ॥ २४ ॥
 इन्द्रकी इस कुचालकर पता लगानेपर परम पराक्रम
 महाएव पृथुका बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने ल
 धनुष तय्यकर उसपर बाण चढ़ाया ॥ २५ ॥

१ मा पा — यज्ञराष्ट्रि राक्षसम् ।

● यज्ञमण्डपमें यज्ञपशुको बाँधनेके किये जो संज्ञा होता है उसे यूप कहते हैं और यूपके आगे रखे ई
 ब्रह्माकार यज्ञको चपाक कहते हैं ।

तमृत्विजः शक्रवधामिसन्धितं
 विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यहमम् ।
 निवर्तयामासुरद्वो महामते
 न युज्यतेऽग्रान्धवध प्रचोन्तिताम् ॥२७॥
 वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशन
 ह्यपामह स्वप्नप्रसा इतत्विपम् ।
 अघातयामासुर्वैरैरनन्तर
 प्रमथ राजन् जुह्वाम तेऽहितम् ॥२८॥

इत्यामन्धः क्रतुपतिं विदुराम्भर्त्विजो रुपा ।
 सगन्ताञ्छुक्ताऽभ्येत्यस्वमम् प्रत्यपधत् ॥२९॥
 न वक्ष्यो भवतामिन्द्रो यद्यदो भगवत्तनु ।
 य जिघांसध यज्ञं वत्सेष्टास्तनव सुरा ॥३०॥
 तदिदं पश्यत महद्दर्शमसिक्तं द्विजा ।
 इन्द्रपालुष्टितं राक्ष कर्मतद्विजिघांसता ॥३१॥
 पृथुक्करो पृथोभूपाचक्षेकोनेशतक्रतुः ।
 अलं तं क्रतुभिः स्विष्ट्यद्वयान्मोक्षधर्मवित् ॥३२॥
 नवात्मने महन्द्राय गणमाहृतमहमि ।

उमावपि हि भद्रं तं उत्तमस्याकृतिग्रहं ॥३३॥
 मामिन्महागज कृपा म चिन्तां
 निशामयाम्यद्वय आहतामा ।
 यद्वयापता नैवदत्तं नु क्तु
 मनाऽनिरुप्तं विगतं समाऽन्धम् ॥३४॥

उस समय धीधवेशके कारण उनकी ओर देखा नहीं जाता था । जब ऋत्विजोंने देखा कि असह्य पराक्रमी महाराज पृथु इन्द्रका वध करनेको तैयार हैं, तब उन्हें रोकते हुए कहा, 'पावन ! आप तो बड़े बुद्धिमान हैं, यह द्वीक्षा ले लेनेपर शास्त्रविरहित यह पशुको छोड़कर और किसीका वध करना उचित नहीं है ॥ २७ ॥ इस यज्ञकार्यमें विघ्न डालनेवाला आपका शत्रु इन्द्र तो आपका सुपरासे ही ईर्ष्यावश निस्तेज हो रहा है । हम अपोव आशाहन-मन्त्रोंद्वारा उसे यहीं धुन्य लते हैं और वतात्कारसे जमिमें हवन किये दते हैं' ॥ २८ ॥

विदुरजी ! यजमानने इस प्रकार सच्चाह करके उसके यज्ञकर्त्तों कोचर्चक इन्द्रका आवाहन किया । वे सुनाद्वारा आहुति डालना ही चाहते थे कि दक्षानीने बहों आकर उन्हें रोक दिया ॥ २९ ॥ वे बोले, 'पावनको ! तुम्हें इन्द्रका वध नहीं करना चाहिये, यह पक्षसङ्क इन्द्र तो मगधान्की ही मूर्ति है । तुम यहद्वारा जिन देवताओंको आराधना कर रहे हो, व इन्द्रक ही ता अङ्ग हैं और उसे तुम यहद्वारा मारना चाहते हो ॥ ३० ॥ पृथुके हम यज्ञानुष्ठानमें विघ्न डालनेके लिये इन्द्रने जा पाङ्कण्ड फैलाया है, यह धर्मका ठण्डेदन करनेवाला है । इस बातपर तुम ध्यान दो, अब उससे अविरु विरोध मत करो, नहीं तो वह और भी पाङ्कण्ड मार्गाका प्रचार करेगा ॥ ३१ ॥ अच्छा परमपतापी महाराज पृथुके निन्दानव ही यह रहने दो ।' फिर राजर्षि पृथुसे कहा 'पावन ! आप तो मोक्षधर्मके ज्ञाननवाले हैं, अब अब आपको इन यज्ञानुष्ठानोंकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३२ ॥ आपको मङ्गल हो । आप और इन्द्र—दोनों ही पवित्रकृति मगधान् कीदृशिक शरीर हैं इसलिये वरन ही स्वरूपमूल इन्द्रके प्रति आपको कांक्ष नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥ आपका यह पण निश्चिन समाप्त नहीं हुआ—सक लिये आप विन्ता मत करें । हमारी बात आप आनन्दक स्वीकार कीजिये । दण्डिये, जो मनुष्य विधानाक बिगाड़ हुए कानका बनानेका विचार करना है, उसका मन अफत मोक्षमें मगध मयदुर मार्गमें फँस जाता है ॥ ३४ ॥

ऋतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ।
धर्मन्यतिक्रो मत्र पास्वण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥
एभिरिन्द्रोपसंसृष्टै पास्वण्डैर्दारिभिर्जनम् ।
हिर्यमाणं विचक्ष्वैनं यन्ते भृशमुगन्धदम् ॥३६॥

भवान् परित्रातुमिहानतीर्णो
धर्म जनानां सममानुरूपम् ।

धेनापचारद्वयलुप्तमद्य
तदेतौ विष्णुफलासि वैन्य ॥३७॥

स त्वं विमृश्यास्य भव प्रजापते
सङ्कल्पन विमृष्टबां पिपीपृदि ।

ऐन्द्री च मायासुधर्ममातर
प्रचण्डपास्वण्डपथं प्रभो जहि ॥३८॥

मैत्रेय उवाच

इत्थ स लोकरुणा समादिष्टो निधाम्यसिः ।

तथा च कृत्वा वत्सल्य भवोनापि च सन्दधे ॥३९॥

कृतावमृधस्नानाय पृथगे मूरिकर्मणे ।

वरन्ददुस्ते वरदा ये तद्वर्हिपि तपिताः ॥४०॥

विप्राः सत्पात्रिपस्तुष्टाः भद्रया लब्धदक्षिणाः ॥

आश्रिपा युयुजु क्षत्रादिराजाय सत्कृताः ॥४१॥

स्वयाऽऽहूता महाबाहा सर्व एव ममागतः ।

पूजिता दानमानाम्यां पिठद्वर्पिमानवाः ॥४२॥

वस, इस यज्ञको बंद करिये । इसीके कारण इन्द्रके
पनाये हुए पास्वण्डोंसे धर्मका नाश हो रहा है, क्योंकि
देवताओंमें बड़ा दुराग्रह होता है ॥ ३५ ॥ जग देखिये
तो, जो इन्द्र योइको पुनकर आपके यज्ञमें लिप्त बन
रहा था, उसीके रखे हुए इन मनोहर पास्वण्डोंकी वा
सारी जनता खिचनी यनी जा रही है ॥ ३६ ॥ आप
साक्षात् विष्णुके अंश हैं । वेनके दुष्टाचारे धर्म छुट हो
रहा था, उस समवेचित धर्मकी रक्षाके लिये ही आपने
उसके शरीरसे अवतार लिया है ॥ ३७ ॥ अतः प्रजापत्य
पृथुमी ! आपने इस अकारणक उद्वेग विचारकर कम
सूरा आदि विश्वरचयिता मुनीश्वरोंका सङ्कल्प पूर्ण करिये ।
यह प्रचण्ड पास्वण्ड-पथकूप इन्द्रकी माया अधर्मकी जन्नी
है । आप इसे नष्ट कर डालिये ॥ ३८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—लोकरुण महाबल
के इस प्रकार सम्मानपर प्रबल पराक्रमी महाराज पृथुने
यज्ञका आग्रह छोड़ दिया और इन्द्रके साथ प्रीति-
पूर्ण सम्बन्ध भी कर ली ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात् जब
वे पश्चात् स्नान करके निवृत्त हुए, तब उनके यज्ञोंसे दत्त
हुए देवताओंने उन्हें अमीद कर दिये ॥ ४० ॥ आपिण्ड
पृथुने अत्यन्त यद्वाहृवक शास्त्रोंको दक्षिणार्ध दी तब
शास्त्रोंने उनके सत्कारसे समुद्र होकर उन्हें अग्रिम
आशीर्वाद दिये ॥ ४१ ॥ वे कहन लगे, 'महाबाहो !
आपके पुत्रममे जो पितर, देवता, ऋनि और मनुष्य
आये थे उन सभीका आपने दान-दानसे सब सत्कार
किया ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां महितायां वसुपुर्वस्कन्धे पृथुं

विश्वे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ विंशोऽध्यायः

महापुत्र पृथुकी पञ्चशाल्मसे श्रीविष्णुभगवान्का पादुभाष

मैत्रेय उवाच

भगवानपि धृक्पुण्ड मार्क मपयता विभुः ।

यग्रयप्रपनिन्तुष्टा यग्रधृक् तमभापत ॥ १ ॥

१ मा पा —विषयान् । १ प्राचीन प्रतिमें शेष उवाच इतना अर्थ नहीं है । १ मा पा —
इतान् अन् । ४ मा पा —युष्मत्त आश्रमे । ५ मा पा —अस्मिन्नाय । ६ मा पा —नि मिता ।

श्रीभगवानुवाच

एष तेऽकार्पाद्भक्त इयमेवशतस्य ह ।
 क्षमापयत आत्मानममुष्य धन्तुमर्हसि ॥ २ ॥
 सुधिय साधवो लोके नरद्वज नरोत्तमा ।
 नाभिद्रुहन्ति मृतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥ ३ ॥
 पुरुषा यदि द्रुहन्ति त्वाद्या देवमापया ।
 भ्रम एव पर ज्ञातो टीक्ष्णाय दृढसेवया ॥ ४ ॥
 ज्ञात कार्पमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभि ।
 आरब्ध इति नैवास्मिन् प्रतिषुद्धोऽनुपजते ॥ ५ ॥
 अमसक्तः शरीरऽस्मिन्नमुनोत्पाप्मि गृहे ।
 अपत्यं त्रिविणे वापि क कुर्वन्ममतां शुभ ॥ ६ ॥
 एकं दृढं स्वर्गज्योतिर्निगुणोऽमी गुणाश्च य ।
 सर्वगोऽनादृत साक्षी निगत्माऽऽत्माऽऽत्मन पर ७
 य एव सन्तमात्मानमामस्थ वद पूरुष ।
 नान्यतः प्रकृतिव्यापि तद्गुणैः सममि स्थित ॥ ८ ॥
 य स्वधर्मेण मां नित्य निराशीः भद्रयान्वित ।
 भजत धनकैस्तस्य मनो राजन् प्रसीदति ॥ ९ ॥
 परित्यक्तगुणं मम्यगर्जना विगुणादय ।
 शान्तिं मे ममवस्थानं धृष्टं क्वच्यस्यमनुत ॥ १० ॥
 उन्नामानमिवाप्यर्थं द्रुह्यन्नात्राक्रियाभनाम् ।
 हृत्स्यमिममात्मानं या वृत्त्याति शोभनम् ॥ ११ ॥

भिन्नस्य विद्वत्स्य गुणप्रवाहा

अप्यक्रियाद्वारकथेननात्मन ।

१ नाशने प्रथमं श्रीभगवानुवाच इतना अर्थ नहीं है । २ मां पा — परमार्थमवधारणम् । ३ मां पा — कार्यं ।

श्रीभगवानुवाच—एवम् ! (इन्द्रने) तुम्हारे
 सौ अश्वमेव पूरे करनेके सङ्कल्पमें विघ्न डाला है । अब
 ये तुमसे क्षमा चाहते हैं, तुम इन्हें क्षमा कर दो ॥ २ ॥
 नरदेव ! जो श्रेष्ठ मानव साधु और सद्बुद्धिसम्पन्न होते हैं,
 वे दूसरे जीवोंसे द्रोह नहीं करते, क्योंकि यह शरीर भी
 आत्मा नहीं है ॥ ३ ॥ यदि तुम-मसे लग्न भी मेरी मायासे
 मोहित हो जायें, तो सम्माना चाहिये कि बहुत दिनोंतक
 की इह दुःखीजनोंकी सेवासे कष्ट धर्म ही हाथ गया ॥ ४ ॥
 ज्ञानवान् पुरुष इस शरीरको अधिष्ठा, वासना और
 धर्मोंका ही पुण्य समझकर इसमें आसक्त नहीं होता ॥ ५ ॥
 इस प्रकार जो इस शरीरमें ही आसक्त नहीं है, वह
 विवेकी पुरुष इससे उत्पन्न हुए घर, पुत्र और धन
 आदिमें भी किस प्रकार मग्न रह सकता है ॥ ६ ॥
 यह आत्मा एक, दृढ, स्वयंप्रकाश, निगुण, गुणोंका
 आधेयत्वान्, सर्वव्यापक, आवरणशून्य, सबका साक्षी
 एवं अन्य आत्मासे रहित है; अतएव शरीरसे भिन्न है ॥ ७ ॥
 जो पुरुष इस दहक्षित आत्माको इस प्रकार शरीरमें मग्न
 जानता है, वह प्रवृत्तिसे सम्बन्ध रखते हुए भी उसका
 गुणोंमें स्थित नहीं होता, क्योंकि उसकी स्थिति मुझ
 परमात्मामें रहती है ॥ ८ ॥ राजन् ! जो पुरुष किसी
 प्रकारकी कामना न रखकर अपने वशाग्रमक धर्मद्वारा
 नित्यप्रति भद्रादूर्ध्वक मेरी आराधना करता है, उसका
 चित्त धीरे धीरे दृढ हो जाता है ॥ ९ ॥ चित्त दृढ
 ज्ञानपर उसका चित्तप्राप्ति सम्बन्ध नहीं रहता तथा उसे
 तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है । फिर तो वह मेरी
 समवाक्य स्थितिके प्राप्त हो जाता है । यही परम शान्ति
 रूप अवस्था कैवल्या है ॥ १० ॥ जो पुरुष यह जानता है
 कि शरीर, श्वास, क्रिया और मनकर मात्मी हाने-र भी
 कृत्स्न आत्मा उनसे निर्दिष्ट ही रहता है, वह कल्याण-
 मय मोक्षार्थ प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

राजन् ! गुणप्रवाहक्य आवागमन तो भूत इन्द्रिय,
 इन्द्रियाभिमानी दृष्टना और विद्याधाम-इन सबको
 समष्टिक्य परिच्छिन्न विद्वन्मीश्वर ही हुआ करता है
 इसका मयमापी अन्तर्गमे कइ मयव्य मदी है ।

दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सख्यो
 न विक्रियन्ते मयि पद्ममौहदाः ॥१२॥
 समः समानोत्तममध्यमाधमः
 सुखे च दुःखे च त्रितोत्रिषाधयः ।
 मयोपकृताखिललोकसंपुतो
 विधत्स्व श्रीराखिललोकक्षणम् ॥१३॥
 श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो
 यस्ताम्यगमे सुकृतात् पटुमंशम् ।
 हर्तान्मया हृत्पुष्प प्रजाना
 मरक्षिता करहोरोऽधमसि ॥१४॥
 एवं विद्यापालुमतस्तुष्ट
 धमप्रधानोऽन्यतमाऽवितास्या ।
 हस्वेन कालेन गृहोपयातान्
 द्रष्टासि सिद्धान्तुरक्तलोकाः ॥१५॥
 वरं च भद्रं कञ्चन मानवेन्द्र
 कृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ।
 नाहं मत्सैन्यं सुलभस्तपोभि
 योगेन वा यस्तमचित्तवर्ती ॥१६॥
 मैत्रेय उवाच
 न इत्थं लाकगुरुणा विष्वक्सेनेन विधजित् ।
 अनुशासित आदेशं शिरसा जगूह हरेः ॥१७॥
 स्पृशन्त पादयोः प्रमृणा व्रीडितं स्वेन कर्मणा ।
 सतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससज्जे ॥१८॥
 भगवानथ विश्वात्मा पृथुनापहृत्तार्हण ।
 मसुखिदानया भक्त्या गृहीतधरणाम्बुजः ॥१९॥
 प्रमृणाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहबिलम्बित ।

मुखमें हृद अनुयाग रखनेवाले सुदिमान् पुरुष सम्पत्ति
 और विपत्ति प्राप्त होनेपर कभी हर्ष-साकांक्षि विकारोंके
 कभीभूत नहीं होते ॥ १२ ॥ इसलिये कीरव ! तुम
 उत्तम, मध्यम और अधम पुरुषोंमें समान-मध्य रखकर
 सुख-दुःखको भी एक-सा समझो तथा मन और इन्द्रियों-
 को जीतकर मेरे ही द्वारा पुत्राये हुए मन्त्री आदि समस्त
 राजकीय पुरुषोंकी सहायतासे सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा
 करो ॥ १३ ॥ राजाका कल्याण प्रजापालनमें ही है ।
 इससे उसे परलोकमें प्रजाक पुण्यका फल भोग मिलेगा
 है । इसके निरीति जो राजा प्रजाकी रक्षा तो नहीं
 करता; किन्तु उससे कर बसूत्र करता जाता है, उसका
 सारा पुण्य तो प्रजा छीन लेती है और बन्धनों उसे
 प्रजाके पापका भागी होना पड़ता है ॥ १४ ॥ ऐसा
 विचारकर यदि तुम श्रेष्ठ शासकोंकी सम्पत्ति और पूर्व-
 परम्परासे प्राप्त हुए धर्मको ही मुख्यतः अपना को और
 कहीं भी वासना न होकर इस पृथ्वीका न्यायपूर्ण
 शासन करते रहो तो सब भोग तुमसे प्रम करेंगे और
 कुछ ही दिनोंमें तुम्हें घर बैठे ही सनकादि सिद्धोंके
 दर्शन होगा ॥ १५ ॥ राजन् ! तुम्हारे गुणोंके
 क्षमा करने मुझको वरमें कर लिया है । वर तुम्हें जो
 इच्छा हो, मुझसे कर माँग लो । वन क्षमा आदि गुणोंसे
 रक्षित यज्ञ, तप अथवा योगके द्वारा मुझको पाना संभव
 नहीं है मैं तो उन्हींके वरमें खाता हूँ जिनके विलसे
 समता रहती है ॥ १६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! सर्वश्रेष्ठपुरुष
 श्रीहरिके इस प्रकार कहनेपर भगवद्भक्त्यी महात्म्य
 पृथुने उनके आज्ञा शिरोधार्य की ॥ १७ ॥ देवराज
 इन्द्र अपने कर्मसे लक्षित होकर उनके चरणोंपर गिरा
 ही चाहते थे कि राजाने उन्हें प्रेमपूर्वक हृदयसे स्पर्शा
 लिया और मनोमालिन्य निकाल दिया ॥ १८ ॥ फिर
 महाराज पृथुने विश्वात्मा भक्तकल्याण भगवान्का पूजन
 किया और क्षण-क्षणमें उससे हुए भक्तिभावमें निमग्न
 होकर प्रभुके चरणकमल एकत्र लिये ॥ १९ ॥ श्रीहरि
 नहींसे जाना चाहते थे किन्तु पृथुके प्रति जो
 उनका वास्तव्यभाव था, उसने उन्हें रोक लिया ।

पश्यन् पद्मपलाशयो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥२०॥

स आदिराजो रक्षिताञ्जलिर्हिरं
विलाकिर्तो नाशकभूलोषण ।

न किञ्चनोवाच स वाप्यविह्वलो
हृदोपगुह्यामुपधादधमित ॥२१॥

अधवसृन्माधुकला विलाकयन्
नतमृहम्गोचरमाह पुरुषम् ।

पदा स्यूयन्त द्विविमं उन्नते
बिन्पल्लवन्ताम्रपुरङ्गविद्रिप ॥२२॥

पुरुषवाच

वरान् विमो त्वद्वरदेवराणु बुध
कथं वृणीते गुणविक्रिमात्मनाम् ।

ये नारकाणामपि सन्ति दहिना

तानीश कंवन्त्यपते वृण न च ॥२३॥

न क्रमये नाथ तदप्यह कश्चिन्

न यत्र युष्मद्यगणाम्पुनासव ।

महेशमान्तर्यदयान्मुत्सन्पुता

विधत्स्य कर्णार्थुसमय मे वरः ॥२४॥

स उत्तमशलाक महन्मुच्युता

भवत्पदान्मोक्षमुधाकणानित् ।

स्मृतिं पुनर्विस्मृतवस्त्वत्सनां

कुर्यागिनां नो विस्तरस्यलं वरः ॥२५॥

यतः शिव मुधव आर्यमङ्गये

यच्छलया आपगृणाति त सकृत् ।

कथं गुणया विगमद्भिना पशु

भार्यप्रवय गुणर्मग्राह्यलया । २६॥

१ मा पा — कथा । २ मा पा — स्मृतं विज । ३ मा पा — कथाम् । ४ मा पा — वयः ।

५ मा पा — मुत्सन्पुता । ६ मा पा — कर्णार्थ । ७ मा पा — विस्तरते ।

। वे अपन कमलदलके समान नशेसे उनकी आर देखते ही
रह गये, वहाँसे जान सक ॥ २० ॥ आदिराज महाराज

पृथु भी नशेमें मल भर आनेके कारण न ता भगवान्
का दर्शन ही कर सके और न ता कण्ठ गद्गद हो

जानेसे कुछ बोध ही सक । ठहरे रूपसे आशङ्कन
कर पकड़ रहे और हाथ जोड़ ज्यों-क-स्यों खड़े

रह गये ॥ २१ ॥ प्रभु अपन चरणकमलोंसे पृथ्वीको स्पर्श
किये खड़े थे, उनका कतप्रमाण गरुडकी छे डँके कंधपर

रक्ता हुआ था । महाराज पृथु नेत्रोंक औसु पोटकर
अनृत दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए इस प्रकार

कहने लगे ॥ २० ॥

महाराज पृथु खोल—माधवपति प्रभो ! आप वर
देनेवाले प्रह्लादि दत्तात्रेयोंका भी वर देनेमें समर्थ हैं ।

कहाँ भी बुद्धिमान पुरुष आपसे दहाभिलाषियोंके सम्माने
योग्य विरयोंका कैंसे माँग सकता है ? वे तो नारकी

जीनोंका भी मित्र ही हैं । अतः मैं इन कुछ विरयों
को आपसे नहीं माँगता ॥ २३ ॥ मुझ ताँ उस मोक्ष

पदकी भी इच्छा नहीं है जिसमें महापुरुषोंक हृदयसे
उनके मुमुक्षुशरा निकला हुआ आपक चरणकमलोंका

मकरल नहीं है—वहाँ आपकी कर्तिशका सुननेका
मुख नहीं मिलता । इसलिये भी तो यही प्रापना है

कि आप मुझ तम हजार काल दे नीजिये जिनसे मैं
आपक लीलागुणोंका सुनता ही रहूँ ॥ २४ ॥ पुण्यकर्ति

प्रभो ! आपक चरणकमलमकरलरूपी अमृत-कणों-
का लेकर महापुरुषोंक मुखमें जो बापु निकलती है,

उसीमें इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्वज्ञ भूत हुए
हम कुयोगियोंको पुनः तत्त्वज्ञान वश नहीं है । अतएव

हमें दूसरे कौसी काह आनन्दयकता नहीं है ॥ २५ ॥
उत्तम कर्तिशका प्रभो ! ममज्ञमें आपके महत्त्वमय

सुपदाको देखकर एक बार भी मुन सनेस कोह पशु
बुद्धि पुन्य मात्र ही तम हा आप, गुणघादी उस कते

छाह सकता है । सब प्रकारक पुरुषार्थकी सिद्धि
लिये आप लक्ष्मीजी भी आपक सुपदाका सुनना चाहती

अर्थाभजे त्वास्त्रिषूपरुपोत्तम

गुणालयं पथकरव लालस ।

अप्यावयोरेकपतिसृषो कलि-

नं स्यात्कृतस्वधरणैकतानयोः ॥२७॥

जगज्जनन्यां जगदीश वंशस

स्याद्व यत्कर्मणि न समीहितम् ।

करोपि फल्ग्वप्युरु दीनवत्तल

स्य एव धिष्येऽभिरत्तस्य किं तथा ॥२८॥

भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो

च्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ।

भवत्पदातुसरणादते सतां

निमिषमन्यद्भगवन् विबुधे ॥२९॥

मन्ये गिर ते जगतां विमाहिनीं

वर वृणीष्वेति भजन्तमास्थ यत् ।

वाचानु तन्त्या यदि तं जनोऽमित

कथं पुनः कर्म करोति मोहित ॥३०॥

त्वन्मापयाद्वा जन इश तच्छ्रितो

यदन्पदाश्रितश्चैतात्मनोऽयुध ।

यथा चरद्दालहितं पिता स्वय

तथा स्वमेपाईमि न समीहितम् ॥३१॥

मेघयै उवाच

इत्यादिराजन तुभ म विषयक

तमाइ राजन मयि भक्तिरस्तु ते ।

॥ २६ ॥ अब रुक्मीनीके समान मैं भी क्षण्य लक्ष्मकतासे आप सर्वगुणधाम पुरुषोत्तमकी सेवा ही करना चाहता हूँ । किन्तु ऐसा न हा कि एक ही पत्निकी सेवा प्राप्त करनेकी होइ होनेके कारण आपके धरणीमें ही मनको एकत्र करनेवाले हम दोनोंमें कल्प छिड़ जाय ॥ २७ ॥ अगदीश्वर ! जगजननी रुक्मीनीके हृदयमें मेरे प्रति विशेषभाव होनेकी संभावना ता है ही क्योंकि जिस आपके सेवाकार्यमें उनका अनुराग है, उसीके लिये मैं भी लज्जित हूँ । किन्तु आप दीनोत्तर दया करते हैं, उनके कुछ कर्मोंको भी बहुत करके मानते हैं । इसलिये मुझे आशा है कि हमारे झगड़में भी आप मेरा ही पक्ष लेंगे । आप तो अपने स्वरूपमें ही रमण करते हैं, आपको मला, रुक्मीनीसे भी क्या लेना है ॥ २८ ॥ इसीसे निष्काम मन्त्रणा भ्रम हो जानेके बाद भी आपका भजन करते हैं । आपमें मायाके कर्म अहङ्कारादिक सबका अभाव है । भगवन् ! मुझे तो, आपके धरणकर्मलोक निरन्तर चिन्तन करनेके लिये सत्पुरुषोंको कोई और प्रयोजन ही नहीं जान पड़ता ॥ २९ ॥ मैं भी बिना किसी इच्छाके आपका भजन करता हूँ, आपन जो मुझसे कहा कि 'पर मोग' तो आपकी इस बाणीको तो मैं समझको मोहमें डालनेवाली ही मानता हूँ । यही क्या आपकी वेदरूपा बाणीने की तो जगदको बौध रक्खा है । यदि उस वेदबाणीरूप रस्तीसे लोग बंधे न होते तो वे माइयश सकल कर्म क्यों करते ॥ ३० ॥ प्रभो ! आपकी मायासे ही मनुष्य अपने बालनिक स्वरूप आपसे विमुख होकर अज्ञानवश अन्य की-पुत्राधिक इच्छा करता है । फिर भी जिस प्रकार पिता पुत्रकी प्रार्थनाकी अपेक्षा न रखकर अपने-आप ही पुत्रका कल्याण करता है, उसी प्रकार आप भी हमारी इच्छाकी अपेक्षा न करके हमारे हितके लिये कर्म ही प्रयत्न करें ॥ ३१ ॥

भीमेधेयसी कहत है—आचार्य पृथुके इस प्रकार स्तुति करनेपर सर्वमाभी श्रीहरिने उनसे कहा, भगवन् ! तुम्हारी मुझमें भक्ति है । यह सीमावर्ती बात है कि

१ मा पा —यथा । २ मा पा —योनिः । ३ माचन यतिमें श्रीकृष्ण उवाच यतोऽभ्यर्चयते ।

उपनिषद् इत्यादि सर्वशान्ति शोभनम् उवाच अथ नही है ।

दिष्टयेष्टी धीर्मयि ते कृता मया

मायां मदीयां वरति स दुस्त्यमा ॥३२॥

अथ कुरु मयाऽऽदिष्टमप्रमत्त प्रजापते ।

स्वावंशकरी लोकः सर्वशान्नाति शोभनम् ॥३३॥

मेरेय उवाच

इति वैन्यस्य राजर्षे प्रतिनन्द्यार्षप्रवचः ।

पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रऽप्युतो मयिम् ॥३४॥

देवर्षिपितृगर्ध्वसिद्धचारणपद्मगा ।

किञ्चराप्सरसा मर्त्या खगा भूतान्धमेकशः ॥३५॥

यद्वेक्षरभिषा राज्ञा वान्विताङ्गलिमन्त्रितः ।

सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठालुगतास्ततः ॥३६॥

भगवानपि राजर्षे सापाच्यायस्य चाप्युत ।

हरश्चि मनोऽमुष्य भवाम प्रत्यर्पयत ॥३७॥

अष्टयम नमस्कृत्य नृपः सन्दिशितात्मने ।

अभ्यक्तप च दवानां दवाय भूपुर ययौ ॥३८॥

महाराज विस इस प्रकार मुझमें क्या हुआ है । ऐसा होनेपर ता पुरुष सहजमें ही मेरी उस मायाको पार कर केया है, जिसको छोड़ना या जिसके बंधनसे छूटना असम्भव कठिन है । अब तुम सावधानीसे मेरी आज्ञाका पालन करते रहो । प्रजापालक नरेश ! जो पुरुष मेरी आज्ञाका पालन करता है, उसका सर्वत्र मङ्गल होता है ॥ ३२ ३३ ॥

श्रीमेरेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार भगवान्ने राजर्षि पृथुके सारगर्भित वचनोंका आदर किया । फिर पृथुने उनकी पूजा की और प्रभु उनपर सब प्रकार कृपाकर वहाँसे अपनेको तैयार हुए ॥ ३४ ॥ महाराज पृथुने वहाँ जो देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग, वित्तर, अप्सरा, मनुष्य और पक्षी आदि अनेक प्रकारके प्राणी एवं भगवान्के पार्षद आये थे, उन सभीका भगवद्पुद्गले मन्त्रिपूर्वक वाणी और धनके द्वारा हाथ जोड़कर पूजन किया । इसके बाद वे सब अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३५ ३६ ॥ भगवान् अप्युत भी राजा पृथु एवं उनके पुत्रेष्टितोंका चित्त चुराते हुए अपने धामको सिधारे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर अपना स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हुए अभ्यक्तस्वरूप देवाधिदेव भगवान्को नमस्कार करके राजा पृथु भी अपनी राजधानीमें चले आये ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहंस्य संहितायां

चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

महाराज पृथुका अपनी प्रजाको उपदेश

मेरेय उवाच

मौक्तिकं कुमुदमग्निर्दुर्लभः स्वर्गताम्रगः ।

महामुग्धभिर्भूयैर्मण्डित तत्र तत्र वै ॥ १ ॥ अल्पत सुगन्धित भूयोमे सुगन्धित पा ॥ १ ॥

१ प्रा पा —सुगन्धितमिन्द्रगः । २ प्रा पा —साम्बन्धीकान्मेकशः । ३ प्रा पा —मयगापुनः ।

४ प्रा पा —बामुदेवाय देवानां । ५ प्रा पा —पृथुनयेति विदुराजीकृतगः ।

चन्दनागुरुतोयाद्रर्ष्याचत्वरमार्गवत् ।

पुष्पाश्वत्फलैस्तोक्मर्मलैश्चैर्विभिरश्विचम् ॥ २ ॥

सहन्दैः कदलीन्तम्यैः पूगपोतैः परिष्कृतम् ।

तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥ ३ ॥

प्रज्ञास्तं दीपवलिभिः सम्मृताशेषमङ्गलैः ।

श्रीभूपूर्वदृक्कन्यासं मृदुङ्कुण्डलमण्डिताः ॥ ४ ॥

शङ्खदुन्दुभिर्घोषेण ब्रह्मपापेण चत्विजाम् ।

विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्त्रयः ॥ ५ ॥

पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महापद्माः ।

पौराजानपदांस्तान् प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥ ६ ॥

स एवमाद्रीन्यनवद्यचेष्टितः

कर्माणि भूमांसि महान्महत्तम ।

कुर्वन् शशासावनिमण्डलं यशः

स्फीतं निभायारुह्य परं पदम् ॥ ७ ॥

सूते उवाच

तदादिराजस्य यज्ञो विजृम्भित

गुणरक्षेर्गुणवत्समाश्रितम् ।

स्रष्टा महाभागवत सदस्पते

कौपारविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥ ८ ॥

विदुर उवाच

सोऽभिपिक्तं पृथुर्विर्मलं ध्यायेत्सुरार्हण ।

विभ्रत्सवैष्णवं सज्जो बाह्योर्ध्वार्थां दुदाह गाम् ॥ ९ ॥

फेन्यस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिप्रा

यद्विक्रमाच्छिष्टमशेषमृषा ।

उसकी गलियों, चौक और सबके चन्दन और अगलके जल-
से सींच दी गयी थी तथा उसे पुष्प, अक्षत, फल, यशस्वर,
श्रील और दीपक आदि माङ्गलिक द्रव्योंसे सजाया गया ॥ २ ॥ वह ठौर-ठौरपर रखे हुए फल-फलके गुच्छोंसे गुच्छ
केलेके खंभों और सुपायीके पीधोंसे बड़ा ही मनोहर
बान पड़ता था तथा सब ओर नाम आदि दृष्टि
नशील पत्तोंकी बदनवारोंसे विभूषित था ॥ ३ ॥ जब
महाराजने नगरमें प्रवेश किया, तब दीपक, उज्जर
और अनेक प्रकारकी माङ्गलिक सामग्री किये हुए
प्रजाजनोंने तथा मनोहर कुण्डलोंसे सुशोभित सुन्दरी
कन्याओंने उनकी अगवाणी की, ॥ ४ ॥ शङ्ख और
दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे, श्रुतिजगण वेदमन्त्र
करने लगे, बन्दीजनोंने स्तुतिगान आरम्भ कर दिया ।
यह सब देख और सुनकर भी उन्हें किसी प्रकारका
अहङ्कार नहीं हुआ । इस प्रकार बीरवर पृथुने राजमण्ड-
लमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ मार्गमें नहीं-तहाँ पुरस्सी और
देसवासियोंने उनका अग्निन्दन किया । परम प्रसी
महाराजने भी उन्हें प्रसन्नतापूर्वक कभीष्ट कर देकर
सन्तुष्ट किया ॥ ६ ॥ महाराज पृथु महापुरुष और समीक
पूजनीय थे । उन्होंने इसी प्रकारके अनेकों उन्नत कर्म
करते हुए पृथ्वीका शासन किया और अन्तमें अपने
विपुल यशका विस्तार कर भगवान्का परमपद प्राप्त
किया ॥ ७ ॥

सूतजी कहते हैं—मुनिवर शौनकाजी । इस प्रकार
भगवान् मैत्रेयके मुखसे आनिरुज पृथुक अनेक प्रकारके
गुणोंसे सम्पन्न और गुणवानोंद्वारा प्रशंसित विस्तृत
सुपश सुनकर परम भागवत विदुरजीने उनका अग्निन्दन
करते हुए कहा ॥ ८ ॥

विदुरजी बोले—कहन् । प्राज्ञोंने पृथुक
अभियुक्त किया । समस्त देवताओंने उन्हें उपहार दिये ।
उन्होंने अपनी मुद्राओंमें वैष्णव त्रेजको धारण किया
और उससे पृथ्वीका दोहन किया ॥ ९ ॥ उनका उस परम-
के उच्छिष्टरूप विनयमोर्गोंसे ही आज भी सम्पूर्ण राजा
तथा लोकगार्थोंके सहित समस्त लोक इष्टानुसार जीवन

लोकाः सपाला उपजीवन्ति काम

मद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥१०॥

मेघेय उवाच

गङ्गायमुत्तपान्धोरन्तराक्षेत्रमावसन् ।

आरन्धानेव शुभ्रजे भोगान् पुष्पनिहामया ॥११॥

मर्वश्राम्बलितादक्ष सप्तद्वीपैकदण्डभृक् ।

अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रत ॥१२॥

एकदाऽऽसीन्महासत्त्वदीक्षा तत्र दिवौकसाम् ।

समाजा ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥१३॥

तस्मिन्नहस्तु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्हत ।

उत्थित सदसो मध्ये ताराणामुद्वरादिव ॥१४॥

प्रांष्ठ पीनायतसृजो गौरः फञ्जारुणेषुण ।

मुनासःसुमुख मौम्य पीनांस मुद्रिजस्मितः ॥१५॥

चूडवक्षा वृहस्प्रेणिर्बलिवन्मुदलोदर ।

आवर्तनाभिराजम्बी काञ्चनोरुदग्रपात ॥१६॥

सूम्भवक्रासितस्निग्धमूर्धजः कम्पुकन्धर ।

महाधने दुक्लायम परिधापोपवीय च ॥१७॥

म्पञ्जिताश्लेषगाग्रधीर्नियम न्यस्तभूषण ।

कृष्णाजिनधर श्रीमान्कृत्वापाणि कृतावित ॥१८॥

त्रिगिरस्निग्धनाराय मर्मद्युत समन्तत ।

निर्वाह करते हैं । भला, ऐसा कौन सम्प्रसार होगा जो उनकी पवित्र धर्मि सुनना न चाहेगा । अतः अभी आप मुझे उनके कुछ और भी पवित्र चरित्र सुनाइये ॥१०॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—साधुयेष्ट विदुरजी ! महाराज पृथु गङ्गा और यमुनाके सम्पन्नती दृष्टिसे निवास कर अपने पुण्यकर्मोंके क्षणिकी इच्छासे प्रारम्भवश प्राप्त हुए योग्येको ही भोगते थे ॥ ११ ॥ ब्राह्मणवश और मगवान् के सम्बन्धी विष्णुमूर्त्तियोंको छोड़कर उनका सर्वां द्वीपोंके सभी पुरुषोंपर अखण्ड एवं अबाध शासन था ॥ १२ ॥ एक बार उन्होंने एक महासत्रकी तीक्षा ली, उस समय वहाँ देवताओं, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंका बहुत बड़ा समाज एकत्र हुआ ॥ १३ ॥ उस समाजमें महाराज पृथुने उन पूजनीय अनिर्घिष्योक्त ययायौम्य मत्कार क्रिया और फिर उस समाजमें, नक्षत्रमण्डलमें चन्द्रमाके समान खड़ा हो गये ॥ १४ ॥ उनका शरीर ऊँचा, मुड़ाएँ मरी और निशाच, रंग गारा, नत्र कमलक समान सुन्दर और अरुणवर्ण, नासिका सुवर्ण, मुख मनोहर, स्वरूप सीम्य, बड़े ऊँचे और मुक्तकानसे युक्त दन्तपङ्क्ति सुन्दर थी ॥ १५ ॥ उनकी छाती चौड़ी, कमरका निष्ठाना माग स्थूल और ठहर पीठके पंथेक समान सुटीन तथा बाल पड़े हुए होनेसे और भी सुन्दर जान पड़ता था । नाभि मेंबरके समान गम्भीर थी, शरीर तेजस्वा था, जहाँएँ सुवर्णके समान दर्शनीयमान थी तथा पंथेके पंथे ठमरे हुए थे ॥ १६ ॥ उनके बाल बालिक, मुँघटले, कड़े और चिकन थे गन्धन शङ्खके समान उतार बन्धन-बाली तथा रेखाओंसे युक्त थी और वे उत्तम बहुमूल्य धाती पहने और बैसी ही चार ओढ़ थे ॥ १७ ॥ दीक्षाके नियमानुसार उन्होंने समस्त आभूषण उतार लिये थे इसीसे उनके शरीरके अङ्ग-प्रायश्चित्तकी शान्ता अपने स्वामयिक रूपमें स्पष्ट शङ्क रही थी । वे शरीर पर कृष्णभूषण चम और हारोंमें पुञ्जा धारण लिये हुए थे । इससे उनके शरीरकी वाग्नि और भी बढ़ गयी थी । वे अपने मारे निष्पहृष्य यथाविधि सम्पन्न कर चुके थे ॥ १८ ॥ राजा पृथुन माना मरी मनाज हमने

ऊषिवानिदृश्वर्षीः सदः संहर्षयन्निव ॥१९॥

चारु चित्रपदं स्वरूपं सृष्ट गूढमविलम्बम् ।

मर्वेपाद्यपकारार्थं तदा अनुषदभिर ॥२०॥

राजोवाच

सन्म्याः शृणुत भद्रं वः साधवा य इहागताः ।

सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥२१॥

अहं दम्बधरो राजा प्रजानामिह योजितः ।

रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु न्यापिता पृथक् ॥२२॥

तस्य मे तदनुष्ठानार्थानाहुर्भक्षवादिनः ।

लाका स्युः कामसन्दोहा यस्यतुष्यति दिष्टवक् ॥२३॥

य उद्वरत्कर राजा प्रजा धर्मेभ्यश्चिद्यन् ।

प्रजानां क्षमलं सुहृद् मेमं च स्वं जहाति सः ॥२४॥

तद् प्रजा भर्तृपिम्बार्थं स्वार्थमेवानुसवः ।

कुस्ताधाद्यनधियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कुतः ॥२५॥

यूय तन्नुमांश्च पित्रदयपेयाऽमताः ।

कर्तुं शास्त्रनुज्ञातुस्तुत्यं यत्प्रत्य तत्फलम् ॥२६॥

अन्ति यगुपतिनाम कपाजिदहसचमाः ।

इहामुत्र च लभ्यन्त ज्यान्त्राग्रतः कचिद्गुह्यं ॥२७॥

मनारुषानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपते ।

प्रियव्रतस्य राजपेरङ्गस्याम्बस्त्वितु पितु ॥२८॥

इष्टानामथान्येषामग्रस्य च भवस्य च ।

प्रहस्तस्य वलस्यापि कृन्त्यमग्नि गदाभृता ॥२९॥

समाधोर करते हुए अपने शीतल एवं स्नेहपूर्ण नेत्रों
चारों ओर देखा और फिर अपना मागण प्रारम्भ किया ॥१९॥
उनका मागण अत्यन्त सुन्दर, विचित्र पदोंसे युक्त, स्वरूप,
मधुर, गम्भीर एवं मिश्रांक था । मामो उस समय वे
सबका उपकार करनेके लिये अपने अनुभवका ही
अनुवाद कर रहे हैं ॥ २० ॥

राजा पृथुसे कहा—सज्जनो ! आपका कल्याण हो ।
आप महानुभाव, जो यहाँ पधारे हैं, मेरी प्रार्थना सुनें—
जिज्ञासु पुरुषोंको चाहिये कि सत-समाजमें अपने
निष्पक्षका निवेदन करें ॥ २१ ॥ इस लोकमें सुष्टे
प्रजानोंका शासन, उनकी रक्षा, उनकी आजीविकाका
प्रबन्ध तथा उन्हें अलग-अलग अपनी मर्यादामें रखनेके
नियं राजा बनाया गया है ॥ २२ ॥ क्या इनका
यथावत् पाळन करनेसे मुझे उन्हीं मनोरञ्जनों करनेवाले
लोकोंकी प्राप्ति होनी चाहिये, जो वैश्याकी मुक्तिमें
महानुभाव संपूर्ण कर्मोंके साक्षी श्रीहरिके प्रसन्न होनेपर
मिलते हैं ॥ २३ ॥ जो राजा प्रजाको धर्ममार्गकी शिक्षा
न देकर केवल उससे कर वसूल करनेमें लगा रहता
है, वह केवल प्रजाके पापका ही मगी होता है और
अपने ऐश्वर्यसे ह्रास को बैठता है ॥ २४ ॥ क्या प्रिय
प्रजाजन ! अपने इस राजाका फलकोमें हित करनेके
लिये आपलोग परस्पर शोषणको छोड़कर हृदयसे आपसी
याद रखने हुए अपने-अपने कर्तव्यका पाळन करते रहिये,
क्योंकि आपका स्वार्थ भी इसीमें है और इस प्रकार
सुखपर भी आपका क्या अनुग्रह होगा ॥ २५ ॥
विशुद्धचित्त देवता, पितर और मूर्तिगण ! क्या
भी मेरी इस प्रार्थनाका अनुमोदन करिये; क्योंकि
कोई भी कर्म हो, करनेके अनन्तर उसके फल
उपदेष्टा और समर्पकको उसका समान फल मिलता
है ॥ २६ ॥ माननीय सज्जनो ! किन्हीं श्रेष्ठ महानुभावोंके
गन्तमें तो कर्मोंका फल देनेवाला भगवान् यज्ञपति ही हैं
क्योंकि इष्टलोक और परलोक दोनों ही जगह कर्मोंका
शरीर बढ़ सेत्रोभय दत्ते जाते हैं ॥ २७ ॥ मनु उषान-
पात्र, महीपति ध्रुव राजर्षि प्रियव्रत, हमारे दादा अत्र-
तथा ममा शिर प्रहस्त, बन्धु और मेरी कौटुम्बिकजन्य

१ माननेन प्रीतिमे नर्तेतामुरगाद्यय तन् अनुषदभिर इतना भय मही है । २ मा पा — पात्र । ३ मा
पा — यज्ञपात्र । ४ मा पा — भगवन्महापति । ५ मा पा — मगन्तु ब्रह्म । ६ मा पा — यज्ञपात्र । ७ मा
पा — इत्येवम् ।

दौहित्रादीन्नुते मृत्यो ओम्भान् धर्मविमोहितान् ।

वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥३०॥

मत्पदसेवाभिरुचिस्तपस्विना

मत्प्रेषजन्मोपचितं मलं धियः ।

सद्यः क्षिणोत्पन्वहमेधती सती

यथा पदाङ्गुलिनिःसृता सरित् ॥३१॥

विनिर्घुताशेषमनोमलः पुमा-

नमङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ।

यदङ्गुलिमे कृतकतनः पुन

न संसृतिं ह्येषवहां प्रपद्यते ॥३२॥

तमेव यूप भजतात्मबुद्धिभि

र्मानोवचःकायगुणै र्व्यकर्मभिः ।

अमायिनः फलमदुषाद्भ्रिपङ्कज

यथाधिकारावसितार्थमिदम् ॥३३॥

असाविहानेकगुणोऽगुणोऽप्यत्र

पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ।

सम्पद्यतुऽर्थाशयलिङ्गनामभि

र्विशुद्धविज्ञानयन स्वरूपतः ॥३४॥

प्रधानकालाद्यवधर्मसंग्रहे

क्षरीर एव प्रतिपद्य चेतनाम् ।

क्रियाफलत्वेन विमुर्विमाच्यते

यथानलो दारुणु तद्वगुणात्मक ॥३५॥

अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रहं

हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ।

स्वधर्मयोगन यजन्ति मामक्य

निरन्तरं क्षीणितले दृढप्रताः ॥३६॥

मा जातु तेज प्रभवंमहर्द्धिभि

न्तिदिष्टया तपसा विद्यया च ।

महानुभावोंके मनमें तो धर्म-धर्म-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग तथा स्वर्ग और अपवर्गके स्वाधीन नियामक, धर्मफलदाता रूपसे मगधान् गदाधरकी आशङ्कता है ही । इस विषयमें तो केवल शृङ्गुके दौहित्र वेन आदि कुछ शोचनीय और धर्मविमूढ़ लोगोंका ही मतभेद है । अतः उक्तका कोई विशेष महत्त्व नहीं हो सकता ॥ २८-३० ॥

जिनके चरणकमलोंकी सेवाके लिये निरन्तर बड़ने वाली अभिलाषा उनकी चरणमलसे निकली हुई गङ्गाजीके समान, संसारतापसे संतप्त जीवोंके समस्त जमोंक संश्लिप्त मनोमलको तत्काल नष्ट कर देती है, जिनके चरणतलका आशय जैनबाग पुरुष सब प्रकारके मानसिक-दोषोंको धो डालता तथा वैराग्य और तत्त्वसाक्षात्काररूप रूप पाकर फिर इस दुःखमय संसारचक्रमें नहीं पड़ता और जिनके चरणकमल सब प्रकारकी कर्ममलओंको पूर्ण करनेवाले हैं—उस प्रसुप्ते आपछोग अपनी-अपनी आजीविकाके उपयोगी कर्माग्रमोचित अभ्यापनादि कर्मों तथा ध्यान-स्तुति-पूजादि मानसिक वाचिक एवं शारीरिक क्रियाओंके द्वारा भर्ते । इन्हींमें किसी प्रकारका कापट न रहने तथा यह निश्चय रहने कि हमने अपने-अपने अधिकारानुसार इसका फल अवश्य प्राप्त होगा ॥ ३१-३३ ॥

भगवान् स्वरूपतः विशुद्ध विज्ञानयन और समस्त विशेषणोंसे रहित है किन्तु इस कर्ममार्गमें भी चावल आदि विविध द्रव्य, शुक्लादि गुण, अवघात (कृत्ना) आदि क्रिया एवं मन्त्रोंके द्वारा और अर्थ, आशय (संकेत), लिङ्ग (पदार्थ-शक्ति) तथा ज्योतिषोम आदि नामोंसे सम्पन्न होन वाले, अनेक विशेषणयुक्त यन्त्रक रूपमें प्रकटित होते हैं ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार एक ही अग्नि भिन्न-भिन्न वस्त्रोंमें उनकी आकारान्तिके अनुरूप मामनी है, उसी प्रकार ये सर्व व्यपक प्रभु परमानन्दस्वरूप होते हुए भी प्रकृति, काल, नाममा और अर्थसे उत्पन्न हुए शरीरमें विषयाकार बनी हुई बुद्धिमें स्थित होकर उन यज्ञ-यागादि क्रियाओंके फल रूपसे अनेक प्रकारके ज्ञान पड़ते हैं ॥ ३५ ॥ अहा ! इस पृथ्वीरूपपर भरे जो प्रजाजन यन्त्राकाओंके अधीश्वर सर्वगुरु श्रीहरिकृष्ण एकजिष्ठमात्रसे अपने-अपने धर्मोंके द्वारा निरन्तर पूजन करते हैं, वे सुप्तपर बनी दूपा करते हैं ॥ ३६ ॥ सहनशीलता, तपस्या और ज्ञान इन विशिष्ट

१ माथीन प्रक्षिप्तं २ ब्रह्मोक्त्या उत्तरार्धं अद्य पक्षे तथा पूर्वार्धं अद्य पक्षे लिखा है । ३ द्य पा — मुखा मरेधम् ।

देदीप्यमानेऽजितदेवतानां

कुले स्वयं राजकुलोद्दिजानाम् ॥३७॥

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो

नित्यं हरिर्यशस्वाभिवन्दनात् ।

अनाप लङ्घ्यमीमनपायिनीं यशो

अगत्यवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥३८॥

यस्तेवपाशेषगुहाशयः स्वराद्

विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ।

तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतं

मर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेप्यताम् ॥३९॥

पुमाल्लभेतानतिवेलभात्मनः

प्रसीदतोऽत्यन्तशर्मं स्वतः स्वयम् ।

यन्निन्यसम्बन्धनिषेधया तत

परं किमत्रास्ति मुत्वं हविर्बुर्जाम् ॥४०॥

अज्ञात्यनन्तः स्वदुः सत्त्वकोविदै

भद्रादुत्तं यन्मुक्तं इज्यनामभिः ।

न वै तथा चेतनया वहिष्कृते

हुताशने पारमहंसपर्यगुः ॥४१॥

यद्वा नित्यं विरजं सनातनं

अद्वातपोमङ्गलमौनमयमैः ।

ममाधिना विप्रति हार्यदृष्टये

यन्नेदमादर्शं श्वावभासते ॥४२॥

तेषामहं पादसराजरेणुं

मार्यां यद्देमाधिकिरीटमायुः ।

यं नित्यदा भिन्नत आशु पाप

नश्यत्यहं सर्वगुणा भजन्ति ॥४३॥

गुणायनं वीलधनं कृतञ्च

पुद्गाधर्मं संवृणते नु सम्पद ।

विभूतियोंके कारण वेष्णव और ब्राह्मणोंके वंश सम्बन्ध

ही सम्बन्ध होते हैं । उनपर राजकुलका तेज का,

अर्थ आदि समुद्रियोंके कारण अपना प्रभाव न

हाले ॥ ३७ ॥ ब्रह्मादि समस्त महापुरुषोंमें ब्रह्मण्य,

ब्राह्मणमन्त्र, पुराणपुरुष हीहरिने भी निरन्तर इन्हींके

चरणोंकी बन्ना करके अविचल कर्म और संसारको

पवित्र करनेवाली कीर्ति प्राप्त की है ॥ ३८ ॥ आप्तयोग

मगवान्को लोकसुप्रहृष्ट रूप धर्मका पालन करनेवाले हैं

तथा सर्वान्तर्यामी सर्वप्रकटा ब्राह्मणप्रिय श्रीहरि विप्रके-

की सेवा करनेसे ही परम समुष्ट होते हैं, अतः आप

समीको सब प्रकारसे विनयपूर्वक ब्राह्मणकुलकी सेवा

करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ इनकी नित्य सेवा करनेसे

शीघ्र ही विप्र छुट्ट हो जानेके कारण मनुष्य स्वयं ही

(ज्ञान और अन्त्यास आदिके बिना ही) परम शान्ति-

रूप मोक्ष प्राप्त कर लेता है । अतः लोकमें इन ब्राह्मणों-

से बढ़कर दूसरा कौन है जो इविष्यमोक्षी देवताओंका

मुख हो सके ? ॥ ४० ॥ उपनिषदोंके ज्ञानपरक बचन

एकमात्र जिनमें ही गतार्थ होते हैं, वे भगवान् अनन्त

इन्द्रादि यक्षीय देवताओंके नामसे तत्त्वज्ञानियोंद्वारा ब्रह्मणों-

के मुखमें अद्वापूर्वक हवन क्रिये हुए पार्थकी जैसे

पावसे प्रह्वण करते हैं, वैसे चेतनाशून्य अमिनमें हमें

हृष्ट प्रह्वणको नहीं प्रह्वण करते ॥ ४१ ॥ सम्प्रागण । जिस

प्रकार स्रष्टृ दर्पणमें प्रतिबिम्बका मान होता है—उसी

प्रकार जिससे इस सम्पूर्ण प्रपञ्चका ठीक-ठीक ज्ञान होता

है, उस नित्य, शुद्ध और सनातन ब्रह्म (वेद)को जो परमार्थ-

तत्त्वकी उपलब्धिक क्रिये अद्वा, तप, मंगलमय आचरण,

आध्यायबिराधी धार्तागपक त्याग तथा संयम और

समाधिक अन्त्यासद्वारा धारण करते हैं उन ब्राह्मणोंके

चरणकमलोंकी धूलिको मैं आयुपर्यन्त अपने मुकुटपर

धारण करूँ क्योंकि उसे सर्वदा स्तिरपर चढ़ाते रहनेसे

मनुष्यके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण

गुण उसकी सेवा करने लगते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ उस

गुणवान्, शीघ्रसम्पन्न, पूज्य और गुरुजनोंकी सेवा

करनेवाले पुरुषके पास सारी सम्पदाएँ अपने-आप आ

प्रसीदतां ब्रह्मकुल गवां च

जनार्दनः साधुचरम् ममम् ॥४४॥

नेत्रेभ्य उवाच

इति श्रुत्वा नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ।

तुष्टुर्बुद्धिमानसः साधुवागेन साधवः ॥४५॥

पुत्रेण ब्रजते लोकानिति सत्यवती भृतिः ।

ब्रह्मदम्बहृतः पापो यद्देनोऽप्यतरत्तमः ॥४६॥

हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया समः ।

विविभुरत्यगात्सूनो ब्रह्मादस्यानुभावतः ॥४७॥

वीरवर्यं पितं पृथ्व्याः ममाः सञ्जीव शम्भवी ।

यस्येह रूप्यच्युते भक्तिं सर्वलोकैकभर्तारि ॥४८॥

अहो वयं ह्यथ पवित्रकीर्ते

त्वर्येव नाथेन मुकुन्दनाथाः ।

य उचमश्लोक्तमस्य विष्णो

र्षाभ्यद्वयस्य कथां व्यनक्ति ॥४९॥

नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीभ्यानुशासनम् ।

प्रजानुरागो महतां प्रकृतिं करुणात्मनाम् ॥५०॥

अथ नस्तममः पारस्त्वयोपासादिव प्रभो ।

आम्भतां नपट्टीनां कर्मभिर्देवसंज्ञितं ॥५१॥

नमो विद्मद्वसत्वाय पुरुषाय महीवसे ।

यो ब्रह्म धृष्टमाविश्य बिभर्सीदं स्वतः प्रसा ॥५२॥

जानी हैं । अतः मेरी तो यही अभिलाषा है कि ब्राह्मण-कुल, गोवश और मर्कोंके सहित श्रीमगवान् मुझपर सदा प्रसन्न रहें ॥ ४४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाराज पृथुका यह माषण सुनकर देवता, पितर और ब्राह्मण आदि सभी साधुजन बड़े प्रसन्न हुए और 'साधु ! साधु !' यों कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ उन्होंने कहा, 'पुत्रके द्वारा पिता पुण्यलोकको प्राप्त कर लेता है' यह श्रुति यथार्थ है, पापी वेन ब्राह्मणोंके शापसे मारा गया था, फिर भी इनके पुण्यबलसे उसका नरक-से निस्कार हो गया ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार हिरण्यकशिपु भी मगवान्की निन्दा करनेके कारण नरकमें मिलने-वाला ही था कि अपने पुत्र ब्रह्मादक प्रभावसे उन्हें पार कर गया ॥ ४७ ॥ वीरवर पृथुजी ! आप तो पृथ्वीके पिता ही हैं और सब लोकोंके एकमात्र स्वामी श्रीहरिमें भी आपकी ऐसी अविचल भक्ति है, इसलिये आप अनन्त बर्षोंतक जीवित रहें ॥ ४८ ॥ आपका सुपुत्र बड़ा पवित्र है, आप उदारकीर्ति भगव्यदेव श्रीहरिकी कृपाओंका प्रचार करते हैं । इन्द्रा बड़ा सौभाग्य है, आज आपका अपने स्वामीके रूपमें पाकर हम अपनेको भगवान्की ही राज्यमें समझते हैं ॥ ४९ ॥ स्वामिन् ! अपने आभितोको इस प्रकारका श्रेष्ठ उपदेश देना आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि अपनी प्रजाके ऊपर प्रेम रखना तो करुणामय महा-पुरुषोंका स्वभाव ही होता है ॥ ५० ॥ हमलोगे प्राक्वश विवेकहीन होकर संसारारण्यमें भटक रहे थे, सो प्रभो ! आज आपने हमें इस बहाना-वचनके पार पहुँचा दिया ॥ ५१ ॥ आप श्रुत सत्त्वमय परमपुरुष हैं, जो ब्राह्मणभानिमें प्रसिद्ध होकर धर्मियोंकी और शूत्रियनातिमें प्रसिद्ध होकर ब्राह्मणोंकी तथा दोनों जातियोंमें प्रतिष्ठित होकर सारे जगत्की रक्षा करते हैं । इन्द्रा आपके नमस्कार हैं ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंसां संहितायां चतुर्थस्कन्ध
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

महाराज पृथुको सनकाविक्रम उपदेशः

मेघेय उवाच

वनेषु प्रपृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ।

तत्रोपजग्मुर्नयमभत्वारः सूर्यवर्षसः ॥ १ ॥

तांस्तु मिदम्भरान् राजा व्योम्नोऽवतरसोऽर्चिषा ।

लाङ्घनपापान् कृत्वत्पासातुगाऽष्टलक्षितान् ॥ २ ॥

तदर्शनोद्भूतान् प्राणान् प्रत्यादित्त्वरिवास्थितः ।

सप्तदस्यातुगो धैन्य इन्द्रियेशो गुणानिव ॥ ३ ॥

गौरवाद्यन्त्रितः सम्भ्यः प्रभयानतर्कधर ।

विधित्पूजयाश्चक्रं गृहीताभ्यर्चनासनान् ॥ ४ ॥

तत्पादसौचसलिलैर्मार्जितालकबन्धन ।

तत्र क्षीलवतां वृचमाचरन्मानवमिव ॥ ५ ॥

हाटकासनआसीनान् स्वधिष्णोष्विषा पाषाणान् ।

भद्रासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥ ६ ॥

पृथुलाच

अहो आचरितं किं मे भक्तं भक्तलायनाः ।

यस्य वो दर्शनं आसीदुर्दर्शानां च योगिभिः ॥ ७ ॥

किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च ।

यस्य विप्राः प्रसीदन्ति क्षिप्रा विष्णुभसातुगः ॥ ८ ॥

नैव लक्ष्यते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान् ।

यथा सर्वदृष्टं मन आरमानं येऽस्य हेतवः ॥ ९ ॥

भीमिमेघजी कहते हैं—जिस समय प्रजावन पत्न-

पराकमी पृथ्वीपाल पृथुका इस प्रकार प्रायना कर रहे थे, उसी समय वहाँ सूर्यके समान तेजस्वी भार मुनी-
 खर आए ॥ १ ॥ राजा और उनके अनुचरों ने देख
 तथा पहचान लिया कि वे सिद्धेश्वर अपनी दिव्य कान्ति-
 से सम्पूर्ण लोकोंको पापनिर्मुक्त करते हुए आकाशसे
 उतरकर आ रहे हैं ॥ २ ॥ राजाके प्राण सनकादिभो-
 का दर्शन करते ही, जैसे त्रिपथी जीव विषयोंकी ओर
 दौड़ता है, उनकी ओर चल पड़े—मनो उन्हें रक्तनेत्रों
 मिये ॥ वे अपने सदस्यों और अनुयायियोंके साथ
 एकाएक उठकर खड़े हो गये ॥ ३ ॥ अब वे मुनिगण
 अर्घ्य स्वीकारकर आसनपर विराज गये, तब शिष्यभूमि
 पृथुने उनके गौरवसे प्रमादित हो विनम्रता गदगद
 हुआयें हुए उनकी विधिबद्ध पूजा की ॥ ४ ॥ फिर
 उनके चरणोत्कृष्टों अपने सिरके बाळोंपर उबका ।
 इस प्रकार शिष्टब्रह्मोक्ति आचारका आदर तथा पालन
 करके उन्होंने यही शिक्षा दी कि सभी सत्पुरुषोंको
 ऐसा व्यवहार करना चाहिये ॥ ५ ॥ सनकादि मुनीकर
 भगवान् शास्त्रक भी अभय हैं । सोनेके सिंहासनपर
 वे ऐसे सुशोभित हुए, जैसे अपने-अपने स्थानोंपर बलि
 दबता । महाराज पृथुने बड़ी श्रद्धा और संयमके साथ
 प्रेमपूर्वक उनसे कहा ॥ ६ ॥

पृथुजीने कहा—महत्कर्मि मुनीश्वरो ! आपके
 दर्शन तो योगियोंको भी दुर्लभ हैं । मुझसे ऐसा रूप
 पुण्य बना है जिससे श्वेत आपका दर्शन प्राप्त
 हुआ ॥ ७ ॥ जिसपर श्रावण ध्ययना अनुचरोंके सहित
 श्रीशहर या विष्णुभगवान् प्रसन्न हों, उसके मिये
 इहलोक और परलोकमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ है ॥ ८ ॥
 इस धन्य-भगवत्के कारण महात्मादि यक्षपि सर्वगत हैं,
 तो भी वे सर्वमात्री आत्मप्राप्त नहीं हो सकते; इसी
 प्रकार यक्षपि आप समस्त लोकमें विचरते रहते हैं,
 तो भी अनधिकारीलोक आपके देख नहीं पाते ॥ ९ ॥

अर्चना अपि ते धन्या साधवो गृहमेधिनः ।

यद्गृहा दार्ढ्यर्याम्बुतणभूमीश्वरत्नराः ॥१०॥

भ्यालालयमुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसम्पदः ।

यद्गृहास्तौर्यपादीयपादतीर्थविवर्जिता ॥११॥

स्वागतं वो द्विजधेष्टा यद्गतानि सुप्रथम ।

चरन्ति भद्रया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥१२॥

कश्चिन् कुञ्जलं नाथा इन्द्रियार्थव्यवेदिनाम् ।

व्यसनावाप एतस्मिन् पतिवानां स्वकर्मभिः ॥१३॥

भवत्सु कुञ्जलग्न आत्मारामेषु नेष्यते ।

कुञ्जलकुञ्जला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥१४॥

उद्दह कृतविश्रम्भ सुहृदो वल्लपत्विनाम् ।

संपृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः कनाक्षमा भवत् ॥१५॥

व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावतः ।

स्थानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥१६॥

मैत्रेय उवाच

पृथोन्तेत्युक्तमाकर्ष्य सारं सुष्ठु मितं यथु ।

अयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥१७॥

संस्तु कुमार उवाच

साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना ।

भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥१८॥

जिनके घरोंमें आप-जैसे पूज्य पुरुष उनके जन्म, तृण, पृथ्वी, गृहस्वामी अथवा सेवकादि किसी धन्य पदार्थको स्वीकार कर लेते हैं, वे गृहस्थ धनहीन होनेपर भी धन्य हैं ॥ १० ॥ जिन घरोंमें कभी भगवत्कर्मोंके परमपवित्र चरणोदकक छीन नहीं पड़, वे सब प्रकारकी अशुद्धि-सिद्धियोंसे भरे होनेपर भी ऐसे श्रेष्ठोंके समान हैं कि जिनपर सौंप रहते हैं ॥ ११ ॥ मुनीश्वरो । आपका स्वागत है । आपकी तो बाल्य-बाल्यसे ही सुमुखोंके मार्गका अनुसरण करते हुए एकत्र चित्तसे ब्रह्मचर्यादि भ्रान् ब्रह्मोंका बड़ी ब्रह्म-पूर्वक आचरण कर रहे हैं ॥ १२ ॥ स्वामियो ! हम-भोग अपन कर्मके वशीभूत होकर निपत्तियोंके क्षेत्ररूप इस समारमें पड़ हुए ककम् इन्द्रियमन्त्रकी भोगोंकी ही परम पुरुषार्थ मान रहे हैं, सो क्या हमारे निस्तारक भी कोई उपाय है ? ॥ १३ ॥ आपनेगोसे कुशल-प्रश्न करना उचित नहीं है, क्योंकि आप निरन्तर आत्मामें ही रमण करते हैं । आपमें यह कुशल है और यह अकुशल है—इस प्रकारकी वृत्तियों कमी होती हैं । नहीं ॥ १४ ॥ आप संसारनलसे सन्तप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं इमन्त्रिये आपमें विश्वास करके मैं यह प्रश्नना चाहता हूँ कि इस संसारमें मनुष्यका किस्त प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है ? ॥ १५ ॥ यह निश्चय है कि जो आत्मवान् (धीर) पुरुषोंमें 'अहमा' रूपसे प्रकाशित होते हैं और उपासकोंके हृदयमें अपने स्व रूपको प्रकट करनेवाले हैं, वे अजन्मा भगवान् नारायण ही अपने मर्कोंपर कृपा करनेके लिये आप-जैसे सिद्ध पुरुषोंके रूपमें इस पृथ्वीपर विधरा करते हैं ॥ १६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—एना प्रयुक्त ये मुक्तिमुक्त गम्भीर, परिमित और मधुर बधन सुनकर श्रीमन्मनुस्मार जी बड़ प्रसन्न हुए और कुछ मुसकराते हुए कहने लगे ॥ १७ ॥

श्रीसत्वरकुमारजीने कहा—महाराज । आपन सब कुछ जानते हुए भी समस्त प्राणियोंके कल्याणकी इष्टि से बड़ी अच्छी बात पूछी है । सब द, साधुपुरुषोंकी मुक्ति पड़ी है । हुआ करती है ॥ १८ ॥

सङ्गमं खलु साधूनामुभयेषां च सम्मतः ।

यत्सम्भाषणसम्प्रभः सर्वेषां विवशनोति क्षम् ॥१९॥

अस्त्येव राजन् भवतो मधुश्रियः

पादारविन्दस्य गुणानुवादने ।

रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी

कामं कषाय मलमन्तरात्मन ॥२०॥

शास्त्रध्वियानेव मुनिभितो नृणां

धेमस्व सद्यस्विमृशेषु हृदः ।

असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि

हृदा रतिर्भ्रष्टाणि निर्गुणं च वा ॥२१॥

सा भद्रया भगवद्भर्मचर्यया

जिज्ञासयाऽऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया ।

यागेष्टरापासनया च नित्य

पुष्पधनःकथया पुष्पया च ॥२२॥

अर्थेन्द्रियारामतगाष्टयनृप्यया

तत्तन्मत्तानामपरिग्रहेण च ।

विविक्तरूप्या परिताप आत्मन्

विना हरगुणपीयूषपानात् ॥२३॥

अर्हिसया पारमर्हस्यचर्यया

स्मृत्या मुकुन्दाचरितामसीधुना ।

यमरकामनिर्धर्ममाप्यनिन्दया

निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥२४॥

हरमुहुन्तरपरकर्णपर

गुणाभिधानेन यिजृम्भमाणया ।

भक्त्या धमद्गः सदसत्पनारामनि

स्याभिगुण प्रदक्षिणा चाञ्जसा रति ॥२५॥

यत्न रतिर्भ्रष्टाणि नैष्ठिकी पुमा-

नाचार्यवान् ध्यानविरागरहमा ।

सपुरुषोक्त समागम आता और बक्ता दोनोंको ही बन्धित होता है, क्योंकि उनके प्रत्येक सहीक कल्याण होते हैं ॥ १९ ॥ राजन् ! श्रीमत्सुन्दन भगवान् के यत्न-कर्मोंके गुणानुवादमें धनस्य ही आपकी अधिक प्रीति है । हर किसीका इसका प्राप्त होना बहुत कष्ट है और प्राप्त हो जानेपर यह हृदयके भीतर रहनेका उस वासनारूप मन्त्रको सर्वथा नष्ट कर देती है, जो और किसी उपायसे जल्दी नहीं छूटता ॥ २० ॥ शास्त्र जीर्णोंके कल्याणके लिये भव्यमूर्ति विचार करनेवाले हैं, उनमें आत्मसे भिन्न देहात्मिके प्रति वैराग्य तथा अपने आत्मस्वरूप निर्गुण प्रसंगमें हृदय अनुराग होना—यही कल्याणका साधन निश्चित स्थित गया है ॥ २१ ॥ शास्त्रोंका यह भी कहना है कि पुण्य और शास्त्रोंके बचनोंमें विश्वास रखनेसे भगवत्प्रसंगमें आचरण करनेसे, तत्त्वनिष्ठातासे, ज्ञानयोगकी निष्ठसे, योगेश्वर श्रीहरिकी उपासनासे, नित्यप्रति पुष्पधर्मों श्रीमद्भगवान्की पावन कथाओंको सुननेसे, जो लोभ भय और इन्द्रियोंके भोगोंमें ही रत हैं उनकी गोष्टीमें प्रेम न रखनेसे, उन्हें प्रिय कानेवाले पापोंका वास्तविक पूर्ण संभ्रम न करनेसे, भगवद्गुणानुष्ठान पालन करनेसे सिवा अन्य समय आत्मामें ही सन्तुष्ट रहते हुए एकल-सेवनमें प्रेम रखनेसे, किसी भी जीवको कष्ट न देनेसे, निश्चितनिष्ठसे, आत्महितकर अनुसन्धान करते रहनेसे श्रीहरिक पवित्र चरित्ररूप श्रेष्ठ कर्मका आसक्ति करनेसे, निश्चयमात्रसे यम नियमोंका पालन करके, कभी किसीकी निन्दा न करनेसे, योगक्षेमके लिये प्रयत्न न करनेसे, शीघ्रयोगादि दृष्टान्तोंको सहन करनेसे, मच्छजनोके कर्तव्यों से दूर देनेवाले श्रीहरिकी गुणोंका बार-बार कणन करनेसे और बढ़ते हुए महिमासे मनुष्यका कार्य-कारणरूप संपूर्ण जड़ प्रपञ्चसे वैराग्य हो जाता है । और आत्मस्वरूप निर्गुण परब्रह्ममें समायास ही उनकी प्रीति हो जाती है ॥ २२-२५ ॥ परब्रह्ममें सुख प्रीति हो जानेपर पुरुष सद्गुरुकी शरण लेता है; फिर ज्ञान और वैराग्यके प्रबल वेगके कारण आत्मनाश्रय हुए अपने अविचारि पाप प्रकाश

दहस्पवीर्यं हृदयं जीवकोशं

पञ्चात्मकयानिमिश्रोस्थितोऽग्निः ॥२६॥

दग्धाशयो मुक्तममन्तवृणो

नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे ।

परात्मनोर्यद् व्यवधानं पुरस्तात्

स्थाने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥२७॥

आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि ।

सत्याग्य उपाधी वै पुमान् पश्यति नान्यदा ॥२८॥

निमित्ते सति सर्वत्र जलात्तपि पूरुषः ।

आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥२९॥

इन्द्रियविषयाकुर्त्तव्यं च्यायतां मनः ।

चतुर्नां हरतं युद्धः सत्त्वग्न्यामिष इदात् ॥३०॥

अक्षय्यतु स्मृतिभिल्लान्नश्रद्धा स्मृतिष्वपि ।

तद्वेष कवयः प्राङ्मुखमापहृषमात्मनः ॥३१॥

नातः परस्तात् प्राक् पुंसं स्वार्थम्यतिक्रम्य ।

यदध्यन्यस्य प्रयस्यमात्मनः स्वयनिक्रमान् ॥३२॥

अत्रिन्द्रियाधामिध्यानं मवाधावद्वयो नृणाम् ।

के क्लेशोंसे मुक्त वह हृद्धारणक अपने चिह्नशरीरको वह उसी प्रकार मस मर देता है, जैसे अग्नि लकड़ीसे प्रकाश होकर तिर उसीको जला डालती है ॥ २६ ॥ इस प्रकार चिह्नदेहका नाश हो जानेपर वह उसका कर्तृत्वात् सभी गुणोंसे मुक्त हो जाता है । तिर तो जैसे खानाबस्त्रमें तण्डुल-सखके पन्थ टक्केपर भी उससे जग पड़नेपर उनमेंसे कोई चीज चिन्तायी नहीं देती, उसी प्रकार वह पुरुष क्षीरक बाहर दिखायी देनेवाले घट पत्रादि और भीतर अनुभव होनेवाले सुख-दुःख आदि भी नहीं देखता । इस स्थितिमें प्राप्त होनेसे पहले ये पदार्थ ही जीवात्मा और परमात्माके बीचमें रहकर उनका भ्रम कर रहे थे ॥ २७ ॥

अबतक अन्त करणरूप उपाधि रहती है, तभीतक पुरुषका जीवात्मा, इन्द्रियोंके विषय और इन दोनोंका सम्बन्ध बनानेवाले अहङ्कारका अनुभव होता है, इसके बाद नहीं ॥ २८ ॥ बाप जगत्में भी दखा जाना है कि जल, दपण आदि निमित्तोंके रहनेपर ही अपन विन्न और प्रतिविम्बका भ्रम दिखायी देता है, अन्य समय नहीं ॥ २९ ॥ जो व्योम विषयचित्तनमें लगे रहते हैं, उनकी इन्द्रियों विषयोंमें कैम जाती है तथा मनको भी उन्हींकी ओर खींच ले जाती है । तिर तो जैसे अवाशयके तीरपर उगे हुए वृद्धाणि अपनी जड़ोंमें उसका ब्रज खींचते रहते हैं, उसी प्रकार वह इन्द्रिया सकल मन मुक्तिकी विचारशक्तियों ममता हर रणा है ॥ ३० ॥ विचारशक्तिके मर हा जानपर पूर्वापरकी स्मृति जानी रहती है और स्मृतिना नाश हा जानपर ज्ञान नहीं रहता । इस ज्ञानप नागको ही पण्डितजन अपन-आप अपना नाश करना करते हैं ॥ ३१ ॥ त्रिमक उदश्यसे अन्य मय पन्थार्थमें प्रियताका भाव होता है—उस कामाका अनन्यशा ही नाग होनेसे जो स्वार्थहानि होती है, उससे बढ़कर लोभमें जो बड़ी और बड़ा हानि नहीं ॥ ३२ ॥

धम और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन परना मनुष्यक मभी पुरुषार्थका नाग परनवाश है क्योंकि

अशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविद्यति मुख्यताम् ॥३३॥
 न कृपात्कर्हिचित्सङ्गं समस्तीर्णं तृतीरिषु ।
 धर्मार्थकाममाद्याणां यदस्यन्तविषयकम् ॥३४॥
 तत्रापि मायु एवार्थ आस्यन्ति फलयेष्पते ।
 त्रैवर्ण्योऽप्यो यतो नित्य कृतान्तभयसंयुतः ॥३५॥
 परेऽखरे च ये भावा गुणव्यतिकरस्तु ।
 न तेषां विद्यत ध्वेनमीशविश्वसित्वाधिपाम् ॥३६॥
 तत्त्वं नरन्द्र जगतामथ सत्सुपां च
 दहन्दिषामुधिपपारमभिराशुतानाम् ।
 यः क्षेत्रविषयतया हृदि विश्रमावि
 प्रत्यक्चक्रास्ति भगवांस्तमवहि सोऽसि ॥३७॥
 यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विमोहि
 माया विवेकविपुति स्त्रिबाह्विपुद्भिः ।
 तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविपुदतत्त्वं
 प्रत्युदकमेकलिलप्रकृतिं प्रपद्य ॥३८॥
 यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या
 कमाश्रय प्रथितमुद्गमयन्ति सन्तः ।
 तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध
 आतागणास्तमरणं भज यासुदयम् ॥३९॥
 कृष्ण महानिदं भवार्णवमप्लवशां
 पदवर्गनक्रमसुखन तृतीर्यन्ति ।
 तत्र हरभगवता मञ्जनीयमहर्षि
 कृत्वाऽप्यमनसुत्तर दुस्तरार्णम् ॥४०॥

इनकी चिन्तासे यह ज्ञान और विज्ञानसे भय होके
 बुद्धादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है ॥३३॥ इसमें
 जिससे अज्ञानाकारसे पार होनेकी इच्छा हो, ठा
 पुरुषको जिनमें आसक्ति कमी नहीं करनी चाहिये
 क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें बा
 बाधक है ॥ ३४ ॥ इन चार पुरुषाणों में भी सबसे ब्रे
 मोक्ष ही माया जाता है, क्योंकि अन्य तीन पुरुषों
 सर्वदा कलकल मय लगा रहता है ॥ ३५ ॥ प्रकृति
 गुणक्षोभ होनेके बाद जितने भी उत्तम और बल
 भाव—पदाप प्रकट हुए हैं, उनमें कुशलसे रह सं
 ऐसा कोई भी नहीं है । कलमगवान् उन सभी
 कुशलको कुच्छते रहते हैं ॥ ३६ ॥

अन रावन् । जो श्रीमद्भागवत देह, इन्द्रिय, प्राण
 बुद्धि और अहङ्कारसे आवृत सभी स्थावर-जन्म प्राणियों
 हयोंमें जीवके मियामय अन्तर्धामी आत्मारूपसे सर्व
 साक्षात् प्रकटित हो रहे हैं—उन्हें तुम यह मैं
 हूँ ऐसा जानो ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार मायाका रूप
 हो जानेपर उसमें सर्पबुद्धि नहीं रहती, उसी प्रकार
 विवेक होनेपर जिसका कहीं पता नहीं जाता, ऐसे
 यह मायामय प्रपञ्च जिसमें कर्म-कारणरूपसे प्रतीत
 रहा है और जो स्वयं कर्मफल-कल्पित प्रकृतिसे परे है
 उस नित्यमुक्त, निर्मल और ज्ञानस्वरूप परमस्वामी ।
 प्रात हो रहा है ॥ ३८ ॥ संत-महत्तमा जिनके कारणकर्मसे
 अहलिदस्की छिटकती हुई छानका स्मरण करके अहङ्कार
 रूप इन्द्रियप्रणिक्रम जो कर्मोंसे गठित है, इस प्रकार
 छिन्न भिन्न कर बालते हैं कि समस्त इन्द्रियोंका प्रत्याहार
 करके अपने अन्तःकरणको निर्दिष्ट करनवाले संन्यास
 भी बैठा नहीं कर पाते । तुम उन सर्वार्थम भाषा
 बासुदेवका भजन करो ॥ ३९ ॥ जो लोग मन और
 इन्द्रियरूप मगरोसे भरे हुए इस समारसागरका व्याधि
 दुष्कर साधनोंसे पार करना चाहते हैं, उनका उस
 पार पहुँचना कठिन है । क्योंकि उन्हें कर्मभाररूप
 भीहरिका आश्रय नहीं है । अतः तुम तो भगवान्के
 आराधनीय कारणकर्मोंको नीका बनाकर अतन्मस ही
 हम दुस्तर समुद्रका पार कर लो ॥ ४० ॥

१ मा पा — परावर । २ मा पा — करारतः । ३ मा पा — तत्त्वं । ४ मा पा — मन्त्रितः ।

५ मा पा — वभाति । ६ मा पा — मन्त्रन । ७ मा पा — न ल्य ।

मेत्रेय उवाच

त एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारं आत्ममेधसा ।

दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रज्ञस्योवाच तनूयम् ॥४१॥

राजोवाच

कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणाऽऽर्जुनकम्पिना ।

तमापदयितुं ब्रह्मन् भगवन् युयमागताः ॥४२॥

निष्पादितश्च कात्स्न्येन भगवन्निर्घृणास्तुभि ।

साधूच्छिष्टं हि मे' सर्वमात्मना सह किं ददे ॥४३॥

प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाम्भ सपरिच्छदाः ।

राज्यमलं मही क्रोश इति सर्वं निवेदितम् ॥४४॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।

सर्वलोकप्रधिपत्यं च वेदशास्त्रविद्वत्सि ॥४५॥

स्वमेव ब्राह्मणो सुहृदस्वं वस्ते स्वं ददाति च ।

तस्यैवानुग्रहेणान्नं सुहृते क्षत्रियादयः ॥४६॥

वैरीदृशी भगवतो गतिरारम्भाद्

एकान्ततो निगमिभिः प्रतिपादितान् ।

तुष्यन्त्वदब्रकरणा स्वकृतेन नित्य

को नाम तत्प्रतिकरोति विनादपात्रम् ॥४७॥

मेत्रेय उवाच

त आत्मयोगपथ्य आदिराजेन पूजिताः ।

शीलं तदीयधामन्त खेऽभूवन्मिपतां नृणाम् ॥४८॥

धैर्यस्तु पुण्यं महतां संमित्याप्यात्मनिष्ठया ।

आत्मज्ञमभिवात्मानं मन आत्मन्यवमित्यतः ॥४९॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! ब्रह्माजीके पुत्र
आत्मज्ञानी सनत्कुमारजीसे इस प्रकार आत्मतत्त्वका
उपदेश पाकर महाराज पृथुने उनकी बहुत प्रशंसा करते
हुए कहा ॥ ४१ ॥

राजा पृथुने कहा—भगवन् ! दीनदयालु श्रीहरिने
मुझपर पहले कृपा की थी, उसीको पूर्ण करनेके लिये
आपयोग पचारे हैं ॥ ४२ ॥ आपयोग बड़ा ही दयालु
है । जिस कार्यके लिये आपभोग पचारे थे, उसे आप
लोगोंने अच्छी तरह सम्पन्न कर दिया । अब, इसके
बदलेमें मैं आपभोगोंको क्या दूँ ? मेरे पास तो शरीर
और इसके साथ जो कुछ है, वह सब महापुरुषोंका
ही प्रसाद है ॥ ४३ ॥ ब्रह्मन् ! प्राण, वी, पुत्र सब
प्रकारकी सामग्रियोंसे भरा हुआ भवन, राज्य, सेना,
पृथ्वी और क्रोश—यह सब कुछ आपहीलोगोंका है,
अतः आपके ही धीचरणोंमें अर्पित है ॥ ४४ ॥ वास्तवमें
तो सेनापतित्व, राज्य, दण्डनिवास और सम्पूर्ण लोकोंके
शासनका अधिकार वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मणोंको
ही है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही
पहनता है और अपनी ही वस्तु दान देता है ।
दूसरे—क्षत्रिय आदि तो उसीकी कृपासे अन्न स्थानको
पाते हैं ॥ ४६ ॥ आपभोग वेदके पारंगामी हैं, आपने
अप्यात्मतत्त्वका विचार करके हमें निश्चितरूपसे समझा
दिया है कि भगवान्‌के प्रति हम प्रकरकी अनेक-भक्ति
ही उनकी उपलब्धिका प्रधान साधन है । आपयोग
परम कृपालु हैं, अतः अपन इस दीनोद्धाररूप कर्मसे
ही सर्वदा संतुष्ट रहें । आपके इस उपकारका बदल
कोई क्या दे सकता है ? उसके लिये प्रयत्न करना भी
अपनी हँसी करामा ही है ॥ ४७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! फिर आपिण्डव
पृथुने आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादिकों को पूजा की और वे
उनके शीलकी प्रशंसा करते हुए सब लोगोंको साधने
ही आकरशामागते कहे गये ॥ ४८ ॥ महामार्जुनमें अग्रगण्य
महाराज पृथु उनसे आत्मयोगका पाकर चित्तकी एकप्रमासे
आत्मामें ही स्थित रहनेका कारण अजनक। कृतकृत्य-मा

१ मा वा—तर्क से क्षाम्यता । २ मा पा—मही बल । ३ प्राचीन प्रतिमें मेत्रेय उवाच—इतना भय नहीं है ।

कर्माणि च यथाकालं यथादृष्टं यथाफलम् ।
 यथाचितं यथानिश्चयकरोद्भूतसात्कृतम् ॥५०॥
 फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विसङ्गं समाहितं ।
 कर्मण्यर्थं च मन्वाना आत्मानं प्रकृते परम् ॥५१॥
 गृह्यु वतमानोऽपि स सामान्यभियान्वितः ।
 नासज्जवेन्द्रियार्थेषु निरहंमस्तिरर्कवत् ॥५२॥
 एवमभ्यासमागमं कर्मण्यनुसमाचरन् ।
 पुत्रानुत्पादयामास पञ्चार्धिभ्यामसम्मतान् ॥५३॥
 विजितान्त्रं धूमकेतुं हर्षं ब्रविणं बृहस्पतिम् ।
 सर्वेषां लोकपालानां धारैकं पृथुर्गुणान् ॥५४॥
 गापीधाय जगत्सृष्टे कालस्वे स्वेऽन्युत्तात्मकः ।
 मनावाङ्मृत्तिभिः सौम्यगुणं संरञ्जयन् प्रजा ॥५५॥
 राजत्यधामाधयं सामराजं इषापरं ।
 एषवदिसृजन् गृह्णन् प्रतपंश्च सुखो बभूव ॥५६॥
 दूर्योधनस्रजस्रवाग्निर्महन् इव दूर्यधः ।
 तिलिस्त्रया भगित्रीव घोरिवाभीष्टदा नृणाम् ॥५७॥
 वपति स्म यथाकामं पञ्चनय इव तपयन् ।
 ममृत् इव दुर्धनं मध्वनाचन्द्रादिव ॥५८॥
 धमगठिव शिष्यायामाधये हिमवानिव ।
 इषर इव कोणत्या गुमाथो बभूवा यथा ॥५९॥

अनुभव करते लगे ॥ ४९ ॥ वे ब्रह्मार्पण-मुद्रिसे स्नान, स्नान, शक्ति, म्याय और धनके अनुसार सभी काम करते थे ॥ ५० ॥ इस प्रकार एकत्र-विचरते समस्त कर्मों का परमात्मामें अर्पण करके आत्मामें कर्मों का साक्षी एवं प्रकृतिसे अतीत देखनेके कारण वे सर्वथा निर्मल रहे ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार सूर्यदेव सर्वत्र प्रकाश करनेपर भी कस्तुरीके गुणदोषसे निर्लेप रहते हैं, उसी प्रकार सार्वभौम सामान्य-लक्ष्मीसे सम्पन्न और गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी अहङ्कार-रहित होनेके कारण वे इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त नहीं हुए ॥ ५२ ॥

इस प्रकार आत्मनिष्ठामें स्थित होकर सभी कर्मों-कर्मों का यथोचित धृतिसे अनुष्ठान करते हुए उन्होंने अपनी भार्या अर्चिके गर्भसे अपन अनुरूप पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५३ ॥ उनके नाम विजिताय, धूमकेतु, हयशु, दविण और बृहत् थे । महाराज पृथु मातुल्यके अंश थे । वे समप-समपपर, जब-जब आवश्यक होता था, जगत्के प्राणियोंकी रक्षाके लिये आवेते ही समस्त लोकपालोंके गुण धारण कर लिया करते थे । अपने उदार मन, प्रिय और हितकर वचन, मनोहर मूर्ति और सौम्य गुणोंके द्वारा प्रजाका रंजन करते रहनेसे दूसरे बन्धुमाके समान उनका प्रभाव यह नाम सार्पक हुआ । तब जिस प्रकार गरमीमें घुसीका जल खींचकर बर्गकाममें उसे पुन घुसीपर बरसा देता है तथा अग्नी विरगणोंसे सबको ताप पहुँचाता है, उसी प्रकार वे कर्मरूपसे प्रजाका धन लेकर उसे दुष्कर्ममणिके समान मुकहस्तसे प्रजाक हितमें त्याग देते थे तथा सबका अपना प्रभाव जमाय रखते थे ॥ ५४-५६ ॥ वे तेजमें अग्निक समान दूर्यध, इन्द्रके समान अजय, घृहीक समान क्षमाशील और स्वर्गके समान मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाले थे ॥ ५७ ॥ समप-समपपर प्रज-जनोक्त तत्त्व करनेपर तब वे मध्व समान उनके अर्ध-अर्धका रूपसे आपसे लगने रहते थे । वे ममृदके समान गम्भीर और परीक्षारूप गुणोंके समान वेदान्त भी थे ॥ ५८ ॥

महाराज पृथु दुर्लभ तम वरनमें वसराक समान आध्वर्युग वरुणोंके संग्रहमें हिमराजके समान वराही मृष्टिमें कुबरेके समान और धनकी शिखरमें

मातरिश्वेय सर्वात्मा बलेन संहसौजसा ।
 अविपद्यतया देवो भगवान् मृतराडिव ॥६०॥
 कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराडिव ।
 वात्सल्ये मनुष्यन्तर्णां प्रभुत्वे भगवान् ॥६१॥
 बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवचने स्वयं हरि ।
 भक्त्या गोगुरुविशेषु विप्रकृतेनानुनर्तिषु ।
 हिषा प्रक्षयशीलाम्बामात्मतुल्य परोधमे ॥६२॥
 कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिर्लोक्ये तत्र तत्र ह ।
 प्रविष्टः कर्मरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥६३॥

वरुणके समान थे ॥ ५९ ॥ शारीरिक बल, इन्द्रियोंकी पटुता तथा पराक्रममें सबत्र गतिशील वायुके समान और तेजस्वी असहायमें भगवान् शङ्करके समान थे ॥ ६० ॥ सौन्दर्यमें कामदेवके समान, उत्साहमें सिंहके समान, वात्सल्यमें मनुके समान और मनुष्योंके आधिपत्यमें सर्व समर्थ ब्रह्माजीके समान थे ॥ ६१ ॥ ब्रह्मविचारमें बृहस्पति, इन्द्रियमयमें साक्षात् श्रीहरि तथा गौ, ब्रह्मण, गुरुजन एवं भगवद्गुरुकी शक्ति, उज्जा, विनय, शील एवं परोपकार आदि गुणोंमें अपने ही समान (अनुपम) थे ॥ ६२ ॥ जंग त्रिकोटीमें सर्वत्र उच्च स्तरसे उनकी कीर्तिका गान करते थे, इससे वे जियौतकके कानोंमें बैठे ही प्रवेश पाये हुए थे जैसे सत्पुरुषोंके हृदयमें श्रीराम ॥ ६३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसा संज्ञितयां चतुर्थस्कन्धे
 द्रुपद्विरिते द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

राजा द्रुपदकी तपस्या और परब्रह्मणमन

मैत्रेय उवाच

ब्रह्माऽऽत्मानं प्रवयसमेकदा वैश्य आत्मवान् ।
 आत्मना वर्धिताश्लेषस्नानुसर्गः प्रजापति ॥ १ ॥
 जगतस्तत्सुपभापि वृषिदो धर्ममृत्सताम् ।
 निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह ब्रह्मिषान् ॥ २ ॥
 आत्मजेष्व्वात्मजां न्यस्य विरहामुदतीमिव ।
 प्रभ्रासु विमनःस्वेकः सदारोऽगाचपोषनम् ॥ ३ ॥
 तत्राप्यदाम्यनियमो वैश्वानससुसम्मतः ।
 आरम्भ उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥ ४ ॥
 कन्दमूलफलाहार शुष्कमण्णान्नः क्वचित् ।

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार महाभक्तकी प्रजापति द्रुपदे स्वयमेव अनादि तथा पुर-ग्रामादि सर्गकी व्यवस्था करके स्थावर-जङ्गम सभीकी आजीविकाका सुभीता कर दिया तथा साधुजनोचित धर्मोक्त भी सब पालन किया । 'मैत्री अवस्था कुछ डक गयी है और जिसके लिये मैंने इस लोकमें जन्म लिया था, उस प्रकारका रूप ईश्वराका प्राप्त नहीं हो सका है, अब अब मुझे अन्तिम पुरुषाय—मोक्षके लिये प्रयत्न करना चाहिये' यह सोचकर उन्होंने अपने विरहमें रोती हुई अपनी पुत्रीरूपा पृथ्वीका भार पुत्रोंको सौंप दिया और सारी प्रजाको विभक्त कर डोबकर वे अपनी पत्नीसहित अकेले ही तपोवनको चला दिये ॥ १-३ ॥ वहाँ भी वे वानप्रस्थ आश्रमके नियमानुसार उसी प्रकार कठोर तपस्यामें लग गये जैसे पहले गृहस्थाश्रममें अकण्ठ अनपूरक पृथ्वीके विभज्य करनेमें लगे थे ॥ ४ ॥ कुछ दिन तो उन्होंने कन्द-मूल-फल खाकर बिनाये, कुछ काज सूते पचे

अम्भश्चः कतिचित्पद्मस्य वायुमक्षस्ततः परम् ॥ ५ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासार्योऽश्विनिः ।

आकण्ठमग्नः शिशिरे उदके स्पण्डिलेऽश्व ॥ ६ ॥

वितिष्ठुर्धृतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेता शितानिलः ।

आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उचमम् ॥ ७ ॥

तेन क्रमानुसिद्धन ध्वस्तकर्मासलक्षयः ।

प्राणायामैः संनिरुद्धपङ्कवर्गश्छिन्नबन्धनः ॥ ८ ॥

सनत्कुमारो भगवान् यदाहाप्यात्मिकं परम् ।

योगं तनैव पुरुषमभजत्पुरुषभः ॥ ९ ॥

भगवद्भूमिं साधोः भद्रया यततः सदा ।

भक्तिर्मगवति ब्रह्मभ्यनन्यविषयामवत् ॥ १० ॥

तस्मानया भगवतः परिकर्मसुद्ध

सत्त्वात्मनस्तदनु संसरणानुपूर्व्या ।

ज्ञानं विरक्तिमदभूनिष्ठितेन येन

चिच्छेद् सध्वमपद निजजीवकोशम् ॥ ११ ॥

छिन्नौन्यधीरधिगतारमगतिर्निरीह

स्तत्तत्पञ्चेऽच्छिन्नदिर्दं वयुनेन येन ।

तत्तत्तम योगगतिभिर्पतिरप्रमथो

यत्तद्गदाप्रसक्त्यासु रति न कुप्यत् ॥ १२ ॥

साकर रहे, फिर कुछ पञ्चाशतक जलपर ही रहे और इसके बाद केवल वायुसे ही निर्बाह करने लगे ॥ ५ ॥

वीरवर पृथु मुनिवृत्तिसे रहते थे । गर्मियोंमें उन्होंने पञ्चाभिनयोंका सेवन किया, वर्षाऋतुमें सुले मैदानमें रहकर अपने शरीरपर जलकी भारी सहाई और आरंभ गलेतक जलमें खड़े रहे । वे प्रतिदिन मिट्टीकी बेदीपर ही राख्य करते थे ॥ ६ ॥ उन्होंने शिशोणादि सब प्रकारके द्रव्योंको सहा तथा क्षणी और मनका संयम करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए प्राणोंको अपने अधीन किया । इस प्रकार श्रीकृष्णकी धाराधना करनेके लिये उन्होंने उल्लाप किया ॥ ७ ॥ इस क्रमसे उनकी तपस्या बहुत पुष्ट हो गयी और उसके प्रभावसे कर्ममल नष्ट हो जानेके कारण उनकी चित्त सर्वथा शुद्ध हो गया । प्राणायामके द्वारा मन और इन्द्रियोंके निरुद्ध हो जानेसे उनकी बहिष्कारजनित बन्धन भी कट गया ॥ ८ ॥ तब, भगवत् सनत्कुमारने उन्हें जिस परमोत्कृष्ट अध्यात्मयोगकी शिक्षा दी थी, उसीके अनुसार राजा पृथु पुरुषोत्तम श्रीहस्तिनापुराधवा करने लगे ॥ ९ ॥ इस तरह भगवत्परायण होकर ब्रह्मापूर्वक सदाचारका पालन करते हुए निरन्तर साधन करनेसे परब्रह्म परमात्मामें उनकी अनन्यमति हो गयी ॥ १० ॥

इस प्रकार भगवद्गुणसमासे जन्तु-करण शुद्ध-सात्विक हो जानेपर निरन्तर भगवच्चिन्तनके प्रभावसे प्राप्त हुई इस जनन्य मतिसे उन्हें वैराग्यसहित ज्ञानकी प्राप्ति हुई और फिर उस तीव्र ज्ञानके द्वारा उन्होंने जीवके उपाधिभूत अवधारको नष्ट कर दिया, जो सब प्रकारके सारव-निर्पर्ययका आशय ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् देहात्मवृत्ति की निवृत्ति और परमात्मस्वरूप श्रीकृष्णकी अनुभूति होनेपर अन्य सब प्रकारकी विधि वादितसे भी उपासीन हो जानेके कारण उन्होंने उस तत्त्वज्ञानके लिये भी प्रयत्न करना छोड़ दिया, जिसकी सहायतासे पहले अपने जीवकोशका नाश किया था क्योंकि जबतक साधकको योगमार्गके द्वारा श्रीकृष्णकामृतमें अनुराग नहीं होता, तबतक केवल योगसाधनासे उक्त माहजनित प्रमाद दूर नहीं होता—भ्रम नहीं मिटता ॥ १२ ॥

एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मानमात्मनि ।

ममामृतो ददं काले तस्याज स्व फलेवरम् ॥१३॥

सम्पीड्य पापु पाणिर्म्यां बायुमुत्सारयन्मूर्ध्नि ।

नाभ्यां फोष्ठेष्ववसाप्य हृदुराकण्ठशीर्षणि ॥१४॥

उत्सर्पयन्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणाधेभ्य निःस्पृहः ।

बापुं बाधौ क्षितौ कार्यं तेजस्तेजस्ययुग्मम् ॥१५॥

स्नान्याकाशे द्रव सोमे यथाभ्यान् विभागश्च ।

क्षितिमम्भसि तच्चेनसदो वासौ नभसमुम् ॥१६॥

इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ।

भूतादिनामूनुत्कृष्य महत्पातमनि मन्दधे ॥१७॥

त सर्वगुणविन्यामं वीचे माधामये न्यधात् ।

तं चानुशयमात्मममसावनुशयी पुमान् ।

ज्ञानवैराग्यवीर्येण व्यन्पम्योऽब्जैश्चात्रम् ॥१८॥

अर्चिनम महाराक्षी तत्पत्न्यनुगता वनम् ।

मुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्म्यां स्पृशन् सुख ॥१९॥

अतोव भर्तुर्मतर्भर्निगुषा

गुक्षुषया रौपदेहयाप्रया ।

नाचिन्दताति परिकर्षितापि सा

प्रयम्करम्यर्जनमाननिष्ठति ॥२०॥

निरजब अन्तर्गत उपस्थित हुआ तो वीरवर पृथुन अपने
चित्तको दृढतापूर्वक परमात्मानमें स्थिर कर ब्रह्मात्मके स्थित
हो अपना शरीर त्याग दिया ॥ १३ ॥ उन्होंने एकीसे
गुदाकं द्वारको रोककर प्राणवायुको धीरे धीरे मूलाधारसे
ऊपरकी ओर उठते हुए उसे क्रमशः नाभि, हृदय,
कण्ठ स्थल, कण्ठ और मस्तकमें स्थित किया ॥ १४ ॥ फिर उसे
और ऊपरकी ओर ले जाते हुए क्रमशः शिराधर्ममें स्थिर
किया । अब उन्हें किसी प्रकारके सांसारिक भागोंकी कालसा
नहीं रही । फिर यथास्थान विभाग करके प्राणवायुको
समष्टि वायुमें, पार्थिव शरीरको पृथ्वीमें और शरीरके तेज-
कां समष्टि तेजमें लीन कर दिया ॥ १५ ॥ हृदयाकाशप्रदि
देहावच्छिन्न आकाशको महाकाशमें और शरीरगत
रुधिरादि जलीय अंशको समष्टि जलमें लीन किया । इसी
प्रकार फिर पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें
और वायुको आकाशमें लीन किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर
मनको [सविस्मय ज्ञानमें बिनके अधीन वह रहता है,
उन] इन्द्रियोंमें, इन्द्रियोंको उनके कारणरूप तन्मात्राओंमें
और सूक्ष्मभूतों (तन्मात्राओं) के कारण अहङ्कारके द्वारा
आकाश, इन्द्रिय और तन्मात्राओंको इसी अहङ्कारमें
लीन कर, अहङ्कारको महत्तत्त्वमें लीन किया ॥ १७ ॥
फिर सम्पूर्ण गुणोंकी अभिव्यक्ति करनेवाले उन महत्तत्त्व
को मायोपाधिक नीचमें स्थित किया । तदनन्तर उस
मायरूप वीरको उपाधिको भी उन्होंने ज्ञान और वैराग्यके
प्रभावसे अपने शुद्ध ब्रह्मत्वमयमें स्थित होकर त्याग
दिया ॥ १८ ॥

महाराज पृथुकी पत्नी महारानी अर्चि भी उनके साथ
वनको गयी थी । व बड़ी सुकुमारी थी, पतिसे प्रेमिक
रस करन योग्य भी नहीं थी ॥ १० ॥ फिर भी उन्होंने
अपने ग्यामीके जग आर नियमाधिष्ठित पावन करते हुए
उनको मूख सेवा की और मुनिवृत्तिक अनुसार ब्रह्म
मूल आपत्तिसे निराद किया । इससे यद्यपि वे बहुत दुःख
हो गयी थीं, तो भी प्रियमकर बरह्मन्तमे सम्मानित
होकर उन्हींमें आनन्द माननेक कारण उन्हें किसी प्रकार

दई विपश्चात्तिलचेतनादिकं
 पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः ।
 जालस्य किञ्चिच्च विलस्य सा सती
 चितामधारोपपदत्रिसानुनि ॥२१॥
 विधाय कृत्य इदिनीजलोप्लुता
 दध्वादकं भर्तुर्दारकर्मण ।
 नत्वा दिविस्त्रास्त्रिदशास्त्रिः परीत्य
 विवेश बहिं भ्यापती भर्तृपादौ ॥२२॥
 विलाक्यानुगतां साञ्चीं पृथुं वीरवर पतिम् ।
 तुष्टुर्बुरदा देवैर्देवपत्न्य सहस्रशः ॥२३॥
 कूर्चत्पः कस्तुमासारं तस्मिन्मन्दरसानुनि ।
 नदस्त्वमरतर्पेण गुणन्ति स परस्परम् ॥२४॥
 देव्य उजुः
 अहो इयं वधूर्धन्या या चैव भूदृजां पतिम् ।
 सर्वात्मना पतिं मेजे यद्येवं श्रीवधूरिष ॥२५॥
 सैषा नूनं ब्रह्मत्पूज्यमनु बैन्यं पतिं सती ।
 पश्यतास्मान्मनीत्याभिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥२६॥
 तेषां दुराप किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम् ।
 सुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥२७॥
 न वञ्चितो ब्रह्ममद्युक् कृष्णेण महता सुवि ।
 लब्ध्वापयम्यं मानुष्य विपयेषु विपजते ॥२८॥
 मैत्रेय उवाच
 स्तुतयतीश्वरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधुः ।
 यं वा आत्मविदां धुर्यो बैन्यं प्रापाञ्चुताश्चैव ॥२९॥
 इत्थंभूतानुभावोऽसौ पृथुः स भगवत्तमः ।
 कीर्तित तस्य चरितर्मुद्रामचरितस्य से ॥३०॥
 य इदं सुमहत्पुण्यं भक्षयत्प्रहित पठेत् ।

कष्ट नहीं होता था ॥ २० ॥ जब पृथ्वीके सामी जाके
 अपने प्रियतम महाराज पृथुजी देखको जीवनके सेवका
 आदि सभी धर्मोंसे रहित देख उस सतीने कुछ देर
 विस्माप किया । फिर पर्यंतके ऊपर चिता बनाकर उसे
 उस चितापर रख दिया ॥ २१ ॥ इसके बाद उस समयके
 सारे कृत्य कर नदीके जलमें स्नान किया । अपने परम
 पराक्रमी पतिको जमावृत्ति दे आकाशस्थित देवताओंकी
 कन्दना की तथा तीन बार चिताकी परिक्रमा कर पतिदेवके
 चरणोंका ध्यान करती हुई अग्निमें प्रवेश कर गयी ॥ २२ ॥
 परमसाध्वी आर्षिको इस प्रकार अपने पति वीरवर पृथुजी
 अनुगमन करते देख सहस्रों ब्रह्माग्नि देखियोंने अपने-
 अपने पतियोंके साथ उनकी स्तुति की ॥ २३ ॥ वहाँ
 देवताओंके बाजे बजने लगे । उस समय उस मन्द-
 कलके शिखरपर वे देवान्नाएँ पुष्पोंकी वर्षा करती हुई
 आपसमें इस प्रकार कहने लगीं ॥ २४ ॥

देखियोंने कहा—अहो ! यह की कन्य है ! इतने
 अपने पति रावणदेव परपुत्री मन-बाणी-शरीरसे ठीक
 उसी प्रकार सेवा की है, जैसे श्रीलक्ष्मीजी को
 भगवान् विष्णुजी करती हैं ॥ २५ ॥ अतएव अपने
 अविनय कर्मके प्रभावसे यह सती हमें भी अधिक अपने
 पतिके साथ उत्कर्ष लोकोको जा रही है ॥ २६ ॥ इस
 लोकमें कुछ ही दिनोंका जीवन होनेपर भी जो लोग
 भगवान्के परमपदकी प्राप्ति करनेवाला आत्मज्ञान प्राप्त
 कर लेते हैं, उनके लिये संसारमें कौन फलार्थ दुर्लभ
 है ॥ २७ ॥ अतः जो पुरुष वही कठिनवास ले लोकोमें
 मोक्षका साधनस्वरूप मनुष्य-शरीर पाकर भी नियमों
 कासक रहता है, वह निश्चय ही आत्मप्राप्ति है । हाय !
 हाय ! कह उठा गया ! ॥ २८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहने हैं—विदुरजी ! जिस समय
 देवान्नाएँ इस प्रकार स्तुति कर रही थीं, भगवान्के जिस
 परमधामको आत्मज्ञानियोंसे छेप भगवत्प्राण महत्प्रभ
 गये, महाराजी आर्षि भी उसी पतिलोकको गये ॥ २९ ॥
 परमभागवत पृथुजी ऐसे ही प्रभावशाली थे । उनके चरित
 बहुत ही हैं, मैंने तुम्हारे सामने उनका वर्णन किया ॥ ३० ॥
 जो पुरुष इस परम पवित्र चरित्रको धर्माद्वैत (निष्काम-

१ मा पा — ब्रह्मपुत्र । २ मा पा — कुरुवोरक । ३ मा पा — वादम् । ४ मा पा — मो बा ।

५ मा पा — दाभय । ६ मा पा — साऽम्भबृत्तमः । ७ प्राचीन प्रकिमे मुरागचरित — इतना अंश लङ्घित है ।

भाषयेन्मृशुयाद्वापि स पृथो पदवीमियात् ॥३१॥

महाभागो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ।

वैश्यः पठन् बिद्पति स्वाच्छूद्र संचमतामियात् ॥३२॥

त्रिकुत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यधवाऽऽहता ।

अप्रज्ञः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तम ॥३३॥

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ।

इदं स्वस्त्यभनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् ॥३४॥

धन्य मयस्समस्तुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्पत्सिद्धिमभीप्सुभिः ।

अद्वयैतदनुभान्य चतुर्णां कारण परम् ॥३५॥

विजयाभिमुखो राजा ध्रुवैतदभिधातिमान् ।

बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथगे यथा ॥३६॥

सुक्तान्यसङ्गो भगवत्पमलां भक्तिमुद्रहन् ।

वैश्यस्य चरित पुण्य शृशुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥३७॥

वैश्वित्रवीर्याभिहित महामाहात्म्यसूचकम् ।

अस्मिन् कृतवतिर्मत्यः पाथवीं गतिमान्पुयात् ॥३८॥

अनुत्तिमिदमादरण शृण्वन्

पृथुचरितं प्रथमन् विमुक्तसङ्ग ।

भगवति भवमिपुपोतपाद

स च निपुणां लभते रक्तिं मनुष्य ॥३९॥

भावसे) एकप्रवृत्तसे पदता, सुनता अथवा सुनाता है—यह भी महाराज पृथुके पद—भगवान् के परमधामको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ इसका सक्रमभावसे पाठ करनेसे माहाण ब्रह्मत्वेन प्राप्त करता है, क्षत्रिय पृथ्वीपति हो जाता है, वैश्य व्यापारियेसे प्रधान हो जाता है और शूद्रमें साधुता आजाती है ॥ ३२ ॥ श्री हो अथवा पुरुष—जो कोई इसे आदरपूर्वक तीन बार सुनता है, वह संतानहीन हो तो पुत्रवान्, धनहीन हो तो महाधनी, कीर्तिहीन हो तो पशस्वी और मूर्ख हो तो पण्डित हो जाता है । यह चरित मनुष्यमात्रका कल्याण करनेवाला और जन्मलोकको दूर करनेवाला है ॥ ३३ ३४ ॥ यह धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाला और कलियुगके दोषोंका नाश करनेवाला है । यह वर्माद्रि चतुर्भुजाकी प्राप्तिमें भी बड़ा सहायक है, इसलिये जो लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको मळीमौलि सिद्ध करना चाहते हों, उन्हें इसका श्रद्धापूर्वक श्रवण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ जो राजा जिनपके लिये प्रस्थान करते समय इसे सुनकर जाता है, उसके आगे आ-आकर राजा लोग उसी प्रकार मेंटें रखते हैं जैसे पृथुके सामन रखते थे ॥ ३६ ॥ मनुष्यको चाहिये कि अन्य सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर भगवान् में विशुद्ध निष्काम भक्ति-भाव रखते हुए महाराज पृथुके इस निम्न चरितका सुने, सुनावे और पढ़े ॥ ३७ ॥ विदुरजी ! मैंने भगवान् के माहात्म्यको प्रकट करनेवाला यह पवित्र चरित्र तुम्हें सुना दिया । इसमें प्रेम करनेवाला पुरुष महाराज पृथुकी-सी गति पाता है ॥ ३८ ॥ जो पुरुष इस पृथु चरितका प्रतिनिधि आदरपूर्वक निष्कामभावसे श्रवण और ध्यान करता है उसका, जिनके शरण संसारसागरको पार करनेके लिये नौकाके समान है उस, भीहरिमें सुरङ्ग

इति श्रीमद्भागवत महापुराण परमहंस्यो मंडितायां

चतुर्थस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

पृथुकी वंशपरम्परा और प्रजेतामोंको भगवान् रुद्रका उपदेश
मैत्रेय उवाच

विजितम्भोऽधिराज्ञाऽऽसीत्पृथुपुत्रः पृथुमवाः ।
यदीयाम्योऽद्दत्त्वाष्टाभ्रातृभ्योऽभ्रातृवत्सलः ॥ १ ॥
हर्षघापादिघृत्त्राचीं घृत्त्रकञ्चाय दक्षिणाम् ।
भृतीचीं वृकसञ्चाय तूपां द्रविणसे विभुः ॥ २ ॥
अन्तर्धानगतिं शक्राङ्गन्ध्यान्तर्धानसंश्रितः ।
अपत्पत्रयमाधत्त क्षिप्रजिह्वां सुसम्मतम् ॥ ३ ॥
पावकं पवमानम् शृषितित्पत्रयः पुरा ।
वसिष्ठघापादुत्पन्ना पुनर्योगगतिं गताः ॥ ४ ॥
अन्तर्धानो नमस्तत्पां हविर्धानमविन्दत् ।
य इन्द्रममहर्तारं विद्वानपि न जग्निवान् ॥ ५ ॥
राज्ञां वृधिं करावानन्दश्चक्षुष्कादिदारुणाम् ।
मन्यमाना दीवसत्रय्याजेन विससन्नं ह ॥ ६ ॥
तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मभङ्कम् ।
वर्जस्तच्छाकतामाप कुशलेन समाधिना ॥ ७ ॥
हविर्धानाद्दविर्धानी विदुराश्रितं पदं सुतान् ।
वर्हिपदं गर्यं शुक्लं कृष्णं सत्यं प्रितव्रतम् ॥ ८ ॥
वर्हिपदं सुमहाभागां हविर्धानि प्रजापति ।
क्रियाकाण्डपु निष्पातो योगेषु च कुरुद्वह ॥ ९ ॥
यस्येदं दम्पजनमनु यथां वितन्वतः ।
प्राचीनाग्रं कुर्दगसीदास्तुत यमुधातलम् ॥ १० ॥

भीमैवेयजी कहते हैं—विदुरजी ! महाराज पृथुके बाद उनके पुत्र परम यशस्वी विजिताश्रयमा हुए । उनका अपने छोटे भाइयोंपर बड़ा स्नेह था, इसलिये उन्होंने चारोंको एक-एक दिशाका अधिकार सौंप दिया ॥ १ ॥ राजा विजिताश्रये हर्षसक्तो पूर्व, घूमकेसक्तो दक्षिण, वृकसो पश्चिम और द्रविणको उत्तर दिशाका राज्य दिया ॥ २ ॥ उन्होंने इन्द्रसे अन्तर्धान होनेकी शक्ति प्राप्त की थी, इसलिये उन्हें 'अन्तर्धान' भी कहते थे । उनकी पत्नीका नाम शिष्यिणी था । उससे उनके तीन सुपुत्र हुए ॥ ३ ॥ उनके नाम पावक, पवमान और शृषि थे । पूर्वजन्में वसिष्ठजीका शाप होनेसे उपर्युक्त नामके अग्निमें ही उनके रूपमें जन्म लिया था । जागे चक्कर घेगमगति से फिर अग्निरूप हो गये ॥ ४ ॥

अन्तर्धानके नमस्तत्पां नामकी पत्नीसे एक और पुत्रका हविर्धान प्राप्त हुआ । महाराज अन्तर्धान बड़े उदार पुरुष थे । जिस समय इन्द्र उनके पिताके अश्वमेध यज्ञका घोड़ा हरकर ले गये थे, उन्होंने पता लग जानेपर भी उनका बच नहीं किया था ॥ ५ ॥ राजा अन्तर्धानने कर सेना, दण्ड देना, पुरमाना वसू करमा आदि कर्तव्योंको बहुत कठोर एवं दूसरोंके लिये कष्टदायक समझकर एक दीर्घकालीन यज्ञमें दीक्षित होनेके बहाने अपना राज-काज छोड़ दिया ॥ ६ ॥ यज्ञकर्ममें लगे रहनेपर भी उन अश्वमेधी राजाने भक्तमयमज्जन पूर्णतम परमात्माकी आराधना करके सुदृढ़ समाधिके द्वारा भगवान्को दिव्य लोकमें प्राप्त किया ॥ ७ ॥

विदुरजी ! हविर्धानकी पत्नी हविर्धानीने वर्हिपद, गर्य, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और प्रितव्रत नामके छ पुत्र पैदा किये ॥ ८ ॥ कुरुघोष्ठ विदुरजी ! हममें हविर्धानके पुत्र महाभाग वर्हिपद यज्ञादि कर्मकाण्ड और योगान्यासमें कुशल थे । उन्होंने प्रजापतिको पद प्राप्त किया ॥ ९ ॥ उन्होंने एक स्थानक बाद दूसरे स्थानमें स्थातार इतने पक्के कि यहाँ सारी भूमि पृथ्वी और अप्रमाण करके फैलाये हुए कुशसे ढँक गयी थी । (इसीसे जागे चक्कर से प्राचीनवर्हि नामसे विद्वान्त हुए) ॥ १० ॥

सामुद्री देवदेवोक्तामुपयेम शतश्रुतिम् ।

या वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गी किञ्चिरीं सुप्रबलकृताम् ।

परिक्रमन्तीमुद्राह चक्रमेऽपि शुक्रीमिव ॥११॥

विमुधासुरग-धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ।

त्रिजिता सूर्यया दिक्षु क्लृपयन्त्येव नूपुरैः ॥१२॥

प्राचीनवर्हिप पुत्रा शतश्रुत्यां दक्षाभवन् ।

तुल्यनामप्रता सर्वे धर्मज्ञाता प्रचेतस ॥१३॥

पित्राऽऽदिष्टा प्रजामर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ।

दशवर्षसहस्राणि तपसाऽऽर्चन्तपस्पतिम् ॥१४॥

यदुक्तं पथि दृष्टं गिरिशेन प्रसीदता ।

सद्व्याप्यन्तो जपन्तश्च पूजयन्तश्च संवता ॥१५॥

विदुर उवाच

प्रचेतसां गिरित्रेण यथाऽऽसीत्पथि सङ्गम ।

यदुक्ताह हर प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन् वगार्थवत् ॥१६॥

मङ्गम खलु विप्रैर्दिवनेह शरीरिणाम् ।

दुर्लभो मुनयो दध्युरमङ्गायमभीप्सितम् ॥१७॥

आत्मारामाऽपि यस्त्वस्य लोकत्रयस्य राधसे ।

गत्स्या युक्ता विचरति पारया भगवान् भव ॥१८॥

यत्रेव उवाच

प्रपेतम पितृशर्पं गिरिमाऽऽदाय माधव ।

दिनं प्रतापी प्रययुष्मपस्यादत्तचेतस ॥१९॥ प्रचेतागगनिताकी आश्रिताभयवरतत्प्राप्तेन चित्तम्या

१ प्रा वा — ब्रह्मदेहाः । २ प्रा वा — प्राचीन प्रान्ते दशवर्षसहस्राणि । ३ भ ३३ न ३३ १५-१६

न्यायिनः ६२। अ० २४ मे तटी ३ ।

अ ३ ३ १ १२—

राजा प्राचीनवर्हिने ब्रह्माजीक कहनेसे समुद्रकी कन्या शतश्रुतिसे विवाह किया था । सर्वाङ्गसुन्दरी किञ्चिरी शतश्रुति सुन्दर बलाभूषणोंसे सज धनकर विवाह-अण्डपमें अब मौख देनेके लिये पूमने लगी, तब खय अग्निदेव भी माहित होकर उसे बेसे ही चाहने लगे जैसे शुक्रीको चाहा था ॥११॥

नवविवाहिता शतश्रुतिन अपने नूपुरोंकी सनभारसे ही दिशा-विदिशाओंके देवता, अक्षुर, गन्धर्व, मुनि, मित्र, मनुष्य और नाग—सभीको बशमें कर लिया था ॥१२॥

शतश्रुतिके गर्भसे प्राचीनवर्हिने प्रचेता नामके दस पुत्र हुए । वे सब बड़े ही धनमय तथा एक-से नाम और आचरणवाले थे ॥१३॥ जब पिताने उन्हें समस्त उपस करनेका आदेश दिया, तब उन सबने तपस्या करनेके लिये समुद्रमें प्रवेश किया । वहाँ दस हजार वर्षतक तपस्या करते हुए उन्होंने तपका फल देनवाले श्रीहरिकी आराधना की ॥१४॥

घरसे तपस्या करनेके लिये जाते समय मार्गमें श्रीमहादेवजीने उन्हें दर्शन देकर कृपापूर्वक जिस तपका उपदेश दिया था, उसीका वे एकप्रतापूर्वक पालन, जप और पूजन करते रहे ॥१५॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन् । मार्गमें प्रचेताओंका श्रीमहादेवजीके साथ किम प्रकार समागम हुआ और उनपर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करन उन्हें क्या उपदेश किया, वह मारयुक्त बात आप क्या करते सुझसे कहिये ॥१६॥

ब्रह्मर्षे । शिवजीके साथ समागम हुआ तो देहाधारियोंके लिये बहुत फटिन है । औरोंकी तो बात ही क्या है—मुनिजन भी सब प्रकारकी आत्मिकी छोड़कर उन्हें पानेके लिये उनका निरन्तर पालन ही किया करते हैं, किन्तु सहजमें पाते नहीं ॥१७॥

यदि भगवान् साहज आमायम हैं, उन्हें आपन लिये क कुछ करना है, न जाना, हा भी इस स्वकर्मकी रक्षा के लिये वे अपनी भारण्या शक्ति (शिरा) के साथ सर्वत्र विचरने रहते हैं ॥१८॥

अधिवेद्यजीम कदा—विदुरजी । साधुसम्पन्न

समुद्रमुप विस्तीर्णमपश्यन् सुमहत्सरः ।

महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाश्रयम् ॥२०॥

नीलरक्तोत्पलाम्भोजकङ्कारेन्दीवराकरम् ।

इसमारसचक्राङ्गकारणवनिफूजितम् ॥२१॥

ममभ्रमरसौख्यहृदरोमलताहृषिपम् ।

पद्मकोशरजा दिक्षु विक्षिपत्यवनोत्सवम् ॥२२॥

तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमागमनोहरम् ।

विसिन्धु राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाधनु ॥२३॥

तत्रैव सरसन्तभाभिष्कामन्तं सहानुगम् ।

उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगे ॥२४॥

तस्यैमनिकायामं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् ।

प्रसादसमुत्सवं वीक्ष्य प्रप्रेमुर्जातकौतुका ॥२५॥

स तान् प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धमवत्सलः ।

धर्मज्ञान् शालसम्भान् प्रीत प्रीतानुवाच ह ॥२६॥

भीमद्र उवाच

यूप धेर्दिपदः पुत्रा विदितं वधिकीर्षितम् ।

अनुग्रहाय भद्रं व पर्व म दर्शनं कृतम् ॥२७॥

य पर रंहम माघात्त्रिगुणाजीवसंश्रितात् ।

भगवन्तं वामुदर्वं प्रपन्न स प्रियो हि मे ॥२८॥

स्वधर्मनिष्ठः श्रुतव्रतमभिः पुमान्

विरिञ्चितामसि तवः पर हि माम् ।

पश्मिकी और बल दिये ॥२९॥ चल्ते-चलते उन्होंने समुद्र-

के सगान विशाल एक सरोवर देखा । वह महापुरुषों

विषयके समान बड़ा ही स्वच्छ था तथा उसमें रहनेवाले

मत्स्यादि मनुजीव भी प्रसन्न जान पड़ते थे ॥ २० ॥

उसमें नीलकमल, लाल कमल, रतमें, दिनमें और सायंकालमें

खिलनेवाले कमल तथा इन्दीवर आदि अन्य कई

प्रकारके कमल सुशोभित थे । उसके तटों पर हंस,

सारस, चक्रवा और कारण्डव आदि जलपक्षी जाकर

रहे थे ॥ २१ ॥ उसके चारों ओर लच्छ-लच्छके पुष्प

और लताएँ थीं, उनपर मत्तवाले मोरे गुँब रहे थे ।

उनकी मधुर ध्वनिसे हर्षित होकर मानो उन्हें रोमांच

हो रहा था । कम्पनकोशके पद्मपुष्प वायुके झकोरों-

से चारों ओर उड़ रहे थे माना वहाँ कोई ठकन हो

रहा है ॥ २२ ॥ वहाँ मृदङ्ग, पणव आदि बाजोंके साथ

अनकों दिव्य राग-ध्वनियोंके क्रमसे गायनकी मधुर

ध्वनि सुनकर उन राजकुमारोंको बड़ा आश्चर्य

हुआ ॥ २३ ॥ इतनेमें ही उन्होंने देख कि देवाधिदेव

भगवान् शङ्कर अपने अनुचरोंके सहित उस सरोवरमें

बाहर आ रहे हैं । उनका शरीर तभी हुई सुवर्णरसिके

समान कान्तिमान् है, कण्ठ नीलवर्ण है तथा तीन

विशाल नेत्र हैं । वे अपने मत्स्योंपर अनुग्रह करनेके

लिये उबधत हैं । अनेकों गन्धर्व उनका सुवरा गा रहे

हैं । उनका सहसा दर्शन पाकर प्रचेतामर्षिको बड़ा

कुप्यहल हुआ और उन्होंने शङ्करजीके चरणोंमें प्रणाम

किया ॥ २४ २५ ॥ तब सारणागतमयहारी धर्मस्तल

भगवान् शङ्करने अपने दर्शनसे प्रसन्न हुए उन धर्मज्ञ

और शीलसम्पन्न राजकुमारोंसे प्रसन्न होकर कहा ॥ २६ ॥

भीमहादयजी बोले—तुमसो ग राजा प्राचीनकाल

क पुत्र हो, तुम्हारा कल्याण हो । तुम जो कुछ करना

चाहते हो, वह भी मुझ माध्यम है । इस समय तुम-

खोगौर हुआ करनेके लिये ही मैंने तुम्हें इस प्रकार

दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ जो व्यक्ति अप्यक्त प्रहृति तथा

जीवसंश्रक पुरुष—इन दोनोंके नियामक भगवान्

वासुदेवकी साक्षात् दृष्टि लेता है, वह मुझ परम प्रिय

है ॥ २८ ॥ अपने कर्णाग्रधर्मका मन्त्रीमोनि पालन

करनेवाला पुरुष सा जन्मके बाद जन्मके पन्चमे प्राप्त होता

है । और इससे भी अधिक पुण्यदानेपर वह मुझप्राप्त होता

१ मा ११ - अथान । २ मा पा - नतं मीनम् । ३ मा पा - ॥ ४ मा मिन मन्ति मेव
ते वेदर भीष्म उवाच दृक् शर्मन् संय युष्मे नरीः ।

नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्त्रवे ॥३७॥

नम ऊर्ज इय त्रय्या पतय यश्चरेतसे ।

दृष्टिगय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥३८॥

सर्वसम्पत्तमदहाय विशेषाय स्वीयसे ।

नमस्त्रैलोक्यपालाय सहजोज्ज्वलाय च ॥३९॥

अर्धलिङ्गाय नमसे नमोऽन्तर्यहिरात्मने ।

नम पुण्याय लोकत्रय अमुष्म भूरिबर्धसे ॥४०॥

प्रभृत्ताय निहृत्ताय पितृदवाय कर्मणे ।

नमाऽधर्मविपाक्राय मृत्यवे दुःखदाय च ॥४१॥

नमस्त आश्विपामीश मनस कारणात्मने ।

नमा भमाय दृढते कृष्णायाकृष्णमेधते ।

पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥४२॥

शक्तित्रयममसाय मीढुपऽहकुतान्मने ।

चैतन्याकृतिरूपाय नमो बाष्पोविभूतये ॥४३॥

दर्शनं ना दिष्टभूणां दद्वि भागवतार्चितम् ।

रूप प्रियतम भवान् सर्वेन्द्रियगुणान्जनम् ॥४४॥

आप ही सुवर्णरूप वीर्यसे युक्त और चातुर्होत्र कर्मके साधन तथा विस्तार करनेवाले अग्निदेव हैं। आपको नमस्कार है ॥३७॥ आप पितर और देवताओंके पौत्रकृत्सेव हैं तथा तीनों वेदोंके अधिष्ठाता हैं; हम आपको नमस्कार करते हैं, आप ही समस्त प्राणियोंको तृप्त करनेवाले सत्वरस (जल) रूप हैं, आपको नमस्कार है ॥३८॥ आप समस्त प्राणियोंके देह, पृथ्वी और विद्युत्स्वरूप हैं तथा त्रिलोक्यकी रक्षा करनेवाले मानसिक, ऐन्द्रियिक और शारीरिक शक्तिकारक वायु (प्राण) हैं, आपको नमस्कार है ॥३९॥ आप ही अपने गुण शब्दके द्वारा—समस्त पदार्थोंका ज्ञान करनेवाले तथा अद्वैत-भीतरका ज्ञेय करनेवाले आकाश हैं तथा आप ही महान् पुण्योंसे प्राप्त होनेवाले परम सेवामय रूप-रैकुण्ठदि लोक हैं, आपको पुन-पुन नमस्कार है ॥४०॥ आप पितृस्नेहकी प्राप्ति करनेवाले प्रभृत्-कर्मरूप और देवलोकाकी प्राप्ति के साधन निहृत्तिकर्मरूप हैं तथा आप ही अधर्मके फलरूप दुःखदायक मृत्यु हैं आपको नमस्कार है ॥४१॥ नाथ ! आप ही पुराणपुरुष तथा सांख्य और योगके अधीश्वर आश्विन व्याघ्र हैं, आप सब प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति करने, साक्षात् मन्त्रमूर्ति और महान् धर्मरूप हैं, आपकी ज्ञानशक्ति किसी भी प्रकार कुण्ठित होनेवाली नहीं है आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥४२॥ आप ही बर्ता, करण और कर्म—तीनों शक्तियोंके एकमात्र आश्रय हैं, आप ही अद्वैतज्ञानके अधिष्ठाता हैं हैं आप ही ज्ञान और कृत्यान्तरूप हैं तथा आपसे ही पद्म, पद्मस्ती, मध्ममा और वैष्णवी—चार प्रकारकी बाणीकी अभिव्यक्ति होती है; आपको नमस्कार है ॥४३॥

प्रमो । हमें आपका दर्शनभी अधिष्ठाता है, जो आपके भक्तजन प्रियकर पूजन करते हैं और जो आपके निजजननोंका अत्यन्त प्रिय है, अपने उस अनूप रूपकी आप हमें प्रीति कराइये। आपको वह रूप जल गुणोंसे समस्त इन्द्रियोंका तृप्त करनेवाला है ॥४४॥

स्निग्धप्रावृद्धपनस्यामं सर्वसौन्दर्यसंप्रदम् ।

चार्वायतचतुर्धा सुप्रतरुचिगननम् ॥४५॥

पद्मकोशपलाशाश्च सुन्दरञ्च सुनासिकम् ।

सुद्विजं मुकुपोलास्यं ममकर्णविमूषणम् ॥४६॥

प्रीतिप्रदमितापाङ्गमलकैरुपशोभितम् ।

लसत्पङ्कजकिञ्चलकुङ्कुल मृदकुण्डलम् ॥४७॥

स्फुरत्किरीटवलप्रहारनूपुरमेखलम् ।

शङ्खचक्रगदापद्ममालामप्युत्तमर्दिमम् ॥४८॥

विहस्क्कन्धत्विषो विभ्रत्सौभागप्रीवक्रौस्तुभम् ।

म्रियानपापिन्या क्षित्तनिकपाश्मोरसोच्छ्रितम् ॥४९॥

पूररेषकसंविग्नबलिवल्गुदलोदरम् ।

प्रतिस्कामयद्विश्वं नाम्माऽऽवर्तगभीरया ॥५०॥

श्यामधोष्मधिरौचिप्युदुक्लस्वर्णमेखलम् ।

समचार्यहृप्रिजह्नोरुनिम्नजालुसुदर्शनम् ॥५१॥

पदा धरत्यग्रपटाश्वराधिपा

ननमुभिर्नोऽन्तरथं विधुन्वता ।

प्रदर्शय म्रियमपास्तमाध्वस

पदं गुग मार्गगुरुत्वमायुषाम् ॥५२॥

एतदूपमनुप्ययमास्तमशुद्धिमभीप्सताम् ।

वह कर्पाकलीन मेघके समान स्निग्ध श्याम और
सम्पूर्ण सौन्दर्योक्त सार-सर्वस्व है । सुन्दर चार विशाल
मुझाँ, महामनोहर मुखारविन्द, कमण्डलके समान
नेत्र, सुन्दर मोहें, सुबद्ध नासिका, मनमोहनीय नन्तर्कि,
अमोक्ष-कसोलयुक्त मनाहर मुकण्डल और शोभाशाली
समान कर्णपुण्ड ॥ ४५ ४६ ॥ प्रीतिपूर्ण उमुक्त
हास्य, निरली चितवन, कली-कामी मुषरानी अङ्गों,
कलकुसुमकी केसरके समान फहरता हुआ पीतम्बर,
क्षिप्रमिलते हुए कुण्डल, चमचमाते हुए मुकुट, फहरण,
हार, नूपुर और मेख्य आदि विविध आभूषण तथा
शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला आदि कौस्तुभमणिके
कारण उसकी अपूर्व शोभा है ॥ ४७-४८ ॥ उसकी
विहके समान स्थूल बन्धे हैं—निनपर हार, केनूर
एवं कुण्डलान्तिकी कान्ति क्षिप्रमिअरी रहती है—तथा
कौस्तुभमणिकी कान्तिसे सुशोभित मनोहर प्रीया है ।
उसका श्यामपङ्कज खल धीकसुचिह्नक रूपमें म्रमीजी
का क्षिप्र निवास होनेके कारण कलीयुक्ती शोभाको
भी ध्यान करता है ॥ ४९ ॥ वसुधैव कुटुम्बकम् सुशोभित,
पीतलके पत्रके समान सुदौल उदर आसके आने-जानसे
क्षिप्रता हुआ बका ॥ मनोहर जान पड़ता है । उसमें आ
भरके समान चक्रदार नाभि है, वह इतनी गहरी है
कि उससे उत्पन्न हुआ यह विश्व माना फिर उसीमें
कीन होना चाहता है ॥ ५० ॥ श्यामवर्ण कम्भागमें
पीताम्बर और सुवर्णकी मेखना शोभायमान है । समान
और सुन्दर चरण, पिङ्गनी, जौध और पुष्पोंक कारण
आपका दिव्य विभूति बका ही सुबद्ध जान पड़ता
है ॥ ५१ ॥ आपका चरणकर्म की गामा शरद् अङ्गुके
कमण्डलकी कान्तिक भी निरत्कार करती है । उनके
मल्लोसे आ प्रकटश निकलना है, वह जीवित् इत्या-
भ्यकारको लक्ष्य नष्ट कर देता है । हमें आप श्याम करक
भक्तोंके प्रहारी एवं आश्रयस्वरूप उम्मी म्पकज्ञान
कराये । जगद्गुरु ! हम अज्ञानाशुन प्राणिमोक्ष अपनी
प्राप्तिकामागत्यनेवाल आप ही हमारा गुरु ॥ ५२ ॥

प्रमो ! चित्तशुद्धिका अभिगता रम्यशान् पुण्यको
आपका इस म्पयत्र निरत्कार ध्यान करना चाहिये,

यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वयंमनुतिष्ठताम् ॥५३॥

भवान् भक्तिमतालम्बा दुर्लभ सर्वदेहिनाम् ।

भारान्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्वति ॥५४॥

त दुरात्मान्यमाराध्य सतामपि दुरापया ।

एकान्तभक्त्या को बाधेत्प्रादुर्भूत विना बहिः ॥५५॥

यत्र निर्विघ्नमरणं कृतस्त्वो नाभिमन्यते ।

विश्व विघ्नसम्पन् वीर्यशौर्यविस्फुल्लितप्रया ॥५६॥

क्षणावर्षेणापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्मवम् ।

भगवत्सन्निधौ स भक्त्या मर्त्यानां किमुताधिपः ॥५७॥

अधानवाङ्मनस्तव कीर्तिवीर्ययो-

रन्तबहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ।

भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां

स्वात्सङ्गमोऽनुग्रह एव नस्तव ॥५८॥

न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं

तमाणुशयां च विद्वद्भवाविधूत ।

यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा

मुनिर्विघ्ने ननु तत्र ते गतिम् ॥५९॥

यत्रैव जन्मते विश्वविश्वसिद्धभावि यत् ।

तत् स्वं वक्ष्ये परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥६०॥

यो माययद् पुरुषरूपयासृजद्

निभर्ति भूय क्षुपयत्यविक्रिय ।

इसकी भक्ति ही स्वधर्मका पालन करनेवाले पुरुषको बनानेवाली है ॥ ५३ ॥

इन्द्र भी आपको ही पाना चाहता है तथा विष्णु

आत्मज्ञानियोंकी गति भी आप ही हैं । इस प्रकार आप

सभी देवधारिकोंके लिये अत्यन्त दुःख हैं, केवल भक्ति-

मान् पुरुष ही आपको पा सकते हैं ॥ ५४ ॥

सत्पुरुषोंके लिये भी दुर्लभ अनन्य भक्तिसे भाग्यवान्

प्रमत्त करके, जिनकी प्रमत्तता किसी अन्य साधनासे

दुःसाध्य है, ऐसा कौन होगा जो उनके चरणरत्नके

अनिरिक्त और कुछ चाहेगा ॥ ५५ ॥ जो कल कल

अन्य उसाह और पराक्रमसे फटकर ही ईश्वरके

इशारेसे सारे संसारका संहार कर डालता है, वह भी

आपके चरणोंकी शरणमें गये हुए प्राणीपर अपना

अधिकार नहीं मानता ॥ ५६ ॥ ऐसे भगवान्के प्रेमी

मर्जोंका यदि आधे क्षणके लिये भी सम्मग्न हो जाय

तो उसके सामने मैं स्वर्ग और मोक्षको कुछ नहीं

समझता, फिर स्वर्गलोकके सुष्ठु मोक्षोंकी तो बात ही

क्या है ॥ ५७ ॥ प्रभो ! आपके चरण सम्पूर्ण पाप-

राशिको हर देनेवाले हैं । हम तो केवल यही चाहते हैं

कि जिन लोगोंने आपकी कीर्ति और तीर्थ (गङ्गाभी) में

अन्तरिक और बाह्य स्नान करके मानसिक और

शारीरिक दोनों प्रकारके पापोंको जो डाला है तथा जो

जीवोंके प्रति दया रागद्वेषरहित चित्त तथा सत्यता

आदि गुणोंसे युक्त हैं, उन आपके भक्तजनोंका सङ्ग

हमें सदा प्राप्त होना रहे । यही हमपर आपकी कृपा

होगी ॥ ५८ ॥ जिस साधकका चित्त भक्तियोगसे

अनुगृहीत एवं विद्वद्भवाकृत न तो बाध विन्मये

स्थित है और न अज्ञानगुहारूप प्रकृतिमें ही मग्न

होता है, वह अनायास ही आपके स्वरूपका दर्शन पा

जाता है ॥ ५९ ॥ जिसमें यह सारा जगत् दिखती

वेता है और जो स्वयं सम्पूर्ण जगत्में मास रहा है,

यह आकाशके समान विस्तृत और परम प्रकाशमय

महात्म्य आप ही हैं ॥ ६० ॥

भगवन् ! आपकी माया अनन्त प्रकारके रूप धारण

करती है । इसीके द्वारा आप इस प्रकार जगत्की

रचना, पालन और संहार करत हैं जैसे यह केश

समस्त हो । किन्तु हमसे आपमें किसी प्रकारका भिन्न

यद्वेदमुद्रिः मदिवत्सु स्या

तमात्मतन्त्र भगवन् प्रतीमहि ॥६१॥

क्रियाफलार्पणमेव योगिनः

भद्रान्विता माधु यजन्ति सिद्धये ।

भूवेन्त्रियान्त करणापलक्षित

वेद च तन्त्रे च त एव वेदविदा ॥६२॥

त्वमेक आप पुरुष सुसञ्चित

स्तथा रज सत्त्वतमो विमिश्रिते ।

महानहं त्वं मरुदग्निवाधरा

सुर्गया भूतगणा इत् यत् ॥६३॥

सृष्ट स्वशक्त्येवमनुप्रविष्ट

अतुर्विधं पुरमात्माश्चकन ।

अथा विदुन्तं पुरुषं मन्तमन्त

र्षेः इषाकर्मणु मात्स्यं यं ॥६४॥

म एव लोकानतिव्यष्टयगा

विमर्षमि त्व ग्वत्तु कालंयान ।

भूतानि भूर्तनुमयतश्वा

यनापलावापुर्वाणिपक्ष ॥६५॥

प्रमत्तमुच्चगितिकृत्यचिन्तया

प्रष्टुलाम विषयषु लालमम् ।

स्वमप्रमरा मात्माभिषयम

भुन्लन्निहानाऽदिविवाभुमन्तः ॥६६॥

१ मा पा — २२३३ । २ मा पा — २२३३ । ३ मा पा — २२३३ ।

नहीं आता । मायाके कारण दूसर लोगोंमें ही भद्रमुद्रि उत्पन्न होती है, आप परमात्मापर यह अपना प्रमाथ डाकनेमें असमर्थ होती है । आपको ता हम परम स्वतन्त्र ही समझते हैं ॥ ६१ ॥ आपका स्वल्प पञ्चभूत, इन्द्रिय और अन्त करणक प्रकररूपसे उपलब्धित होता है । जो कर्मयोगी पुरुष सिद्धि प्राप्त करनेके लिये तरह तरहके कर्माद्वारा आपके इस मगुण साक्षर स्वरूपका यद्वापूर्य्य मनीमौलि पूजन करते हैं, वे ही वे और शास्त्रोंके मन्त्रे मर्मज्ञ हैं ॥ ६२ ॥ प्रभो ! आप ही अद्वितीय आदिपुरुष हैं । सृष्टिके पूर्व आपकी मायाशक्ति सोयी रहती है । फिर उसीके द्वारा सत्त्व, रज और तमरूप गुणोंका भग्न होता है और इसके बाद उन्हीं गुणोंसे महत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, देवता, अग्नि और समस्त प्राणियोंसे युक्त इस जगत्की उत्पत्ति होती है ॥ ६३ ॥ फिर आप अपनी ही मायाशक्तिसे रचे हुए इन जगत्पुनः, अण्डज, स्वेदज और तमिज्जमेरसे चार प्रकारके शरीरोंमें अंशरूपसे प्रवेश कर जाते हैं और जिस प्रकार मधुमक्खियों अपने ही उत्पन्न लिये हुए मधुका आस्वादन करती हैं, उसी प्रकार यह आपका अंश उन शरीरोंमें रहकर इन्द्रियोंके द्वारा इन सुष्ठु विषयोंकी भोगता है । आपका उस अंशका ही पुरुष या जीव कहते हैं ॥ ६४ ॥

प्रभो ! आपका तत्त्वज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं अनुमानसे होता है । प्रायश्चित्तक उपस्थित होनेपर कायस्वरूप आप ही अपने प्रवर्ण एवं अमय वेगसे पृथ्वी आदि भूतोंका अथ भूतोंसे विचरित कराकर समस्त लोकोका महार कर लेते हैं—जैसे वायु अपने असहनीय एवं प्रबल झोंकनेसे पक्षोंके द्वारा ही पेड़ोंका निरा-बिना पतक गड़ कर गिरती है ॥ ६५ ॥ भगवन् ! यह मोहग्रस्त जीव प्रमात्मा का हम समय इसी चिंतनमें रहता है कि 'अमुक काय करना है' । हमका लाभ बढ़ गया है और हम विषयोंकी ही वात्स्या बनी रहनी है । किन्तु आप सदा ही गमन रहते हैं, भूतों के जीव उपरगता हुआ सब जेने पृथ्वी काय कर जाता है, उनी प्रसार अथ

कस्त्वत्पदान्त्र विजहाति पण्डितो

यस्तेऽवमानव्ययमानकेतमः ।

विशङ्क्यासदुशुकरचरति सा यधु

विनोपपदि मनवमनुर्दध ॥६७॥

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन् परमात्मन् विपश्चिताम् ।

विश्वं रुद्रभयन्वस्तमकुतभिद्भया गतिः ॥६८॥

इदं जपत भर्तृ वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ।

स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्परिपाशयाः ॥६९॥

तमेवात्मानमात्मस्य सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।

पूजयन् च गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्भरिम् ॥७०॥

योगादेशमुपासाय चारयन्तो मुनिव्रता ।

ममाहितधियः सर्वे एतदभ्यसताध्याः ॥७१॥

इदमाह पुरासाकं भगवान् विश्वसृज्यति ।

भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुर्मांसिसृक्षताम् ॥७२॥

ते वय नादिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेधराः ।

अनेन च्यवन्तमम सिसृक्षुर्मोविषिधा प्रजाः ॥७३॥

अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहित पुमान् ।

अचिरान्त्रेय आप्नोति वसुदेवपरायण ॥७४॥

भयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयस परम् ।

सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्म्ममनार्णवम् ॥७५॥

य इमं भद्रया युक्ता महीतं भगवस्तत्त्वम् ।

अधीयाना दुरागर्घ्यं हरिमाराधयत्पत्तौ ॥७६॥

विन्त पुर्याऽमुष्मापयद्यदिष्टयर्मत्वरन ।

महीतगीतात्सुप्रोताच्छ्रयमामक्याह्वानम् ॥७७॥

आपकी अवहेलना करनेके कारण अपनी आयुको व्यर्थ माननेवाला ऐसा कौन मित्र होगा, जो आपके चरणकमलोंको बिसारेगा । इनकी पूजा तो कलकी आशङ्कासे ही हमारे रिता प्रजाजी और स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओंने भी किना कोई विचार किये केवल श्रद्धासे ही की थी ॥ ६७ ॥ ब्रह्मन् । इस प्रकार सारा जगत् स्वरूप कालके ममेसे व्याकुल है । अतः परमात्मन् । इस तत्त्वको जाननेके हमलोगोंके तो इस समय आप ही सर्वथा सम्मान्य आश्रय हैं ॥ ६८ ॥

रानकुमारो । तुमलोग विशुद्ध भगवत्से स्वधर्मका आचरण करते हुए भगवान्में चित्त लगाकर मेरे कहे हुए इस स्तोत्रका जप करते रहो। भगवान् तुम्हारा मज्जल करेंगे ॥ ६९ ॥ तुमलोग अपने अन्तःकरणमें स्थित उन सर्वभूतान्तर्यामी परमात्मा श्रीहरिको बार-बार स्तवन और धिस्तन करते हुए पूजन करो ॥ ७० ॥ मैंने तुम्हें यह योगादेश नामका स्तोत्र सुनाया है । तुमलोग इसे मनसे धारणकर मुनिव्रतका आचरण करते हुए इसका एकप्रतासे आदरपूर्वक धन्यास करो ॥ ७१ ॥ यह स्तोत्र पूर्वकालमें जगद्विस्तारके इच्छुक प्रजापतिगणोंके प्रति भगवान् प्रजाजीने प्रया उत्पन्न करनेकी इच्छासे हम ऋगु आदि अपने पुत्रोंको सुनाया था ॥ ७२ ॥ जब हम प्रजापतिगणोंको प्रजाका विस्तार करनेकी आज्ञा हुई, तब इसीके द्वारा हमने अपना अज्ञान निवृत्त करके अनेक प्रकारकी प्रजा उत्पन्न की थी ॥ ७३ ॥ अब भी ओ भगवत्परायण पुरुष इसका एकप्रत चित्तसे नित्य-प्रति जप करेगा, उसका इष्ट ही कल्याण हो जायगा ॥ ७४ ॥ इस लोकमें सब प्रकारके कल्याणसाधनोंमें मोक्षदायक ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है । ज्ञान-नौकापर चढ़ा हुआ पुरुष अनायास ही इस दुस्तर संसारसागरको पार कर लेता है ॥ ७५ ॥ यद्यपि भगवान्की आराधना बहुत कठिन है—किन्तु मेरे कहे हुए इस स्तोत्रका जो श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, वह सुगमतासे ही उनकी प्रसन्ना प्राप्त कर लेगा ॥ ७६ ॥ भगवान् ही सम्पूर्ण कल्याणसाधनोंके पथ-प्राप्त्यारे—प्राप्त्य है । अतः मेरे गाये हुए इस स्तोत्रके गानसे उन्हें प्रसन्न परक वह

इदं कल्प उत्थाय प्राञ्जलि भद्रयान्वित ।
 मृणुयाच्छ्रावयेन्मत्स्यो मुच्यते कर्मबन्धनै ॥७८॥
 गीतं मयेदं नरदेवनन्दना
 परस्व पुंस परमात्मनः स्तवम् ।
 जपन्त एकग्रधियन्तपो महत्
 चरन्ध्रमन्ते तत् आप्स्यथेप्सितम् ॥७९॥

स्मरचित होकर उनसे जो कुछ चाहेगा, प्राप्त कर लेगा ॥ ७७ ॥ जो पुरुष ठग काममें उठकर इसे श्रद्धापूर्वक श्राव्य होकर सुनता या सुनाता है, वह सब प्रकारके कर्मबन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७८ ॥ राजकुमारो ! मैंने तुम्हें जो यह परमपुरुष परमात्मका स्तोत्र सुनाया है, इसे एकग्रचित्तसे जपते हुए तुम महान् तपस्या करो । तपस्या पूर्ण होनेपर इसीसे तुम्हें अभीष्ट फल प्राप्त हो जायगा ॥ ७९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहत्स्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे स्वगीतं

नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

पुराणोपाख्यानका प्रारम्भ

मयेय उवाच

इति सन्दिश्य भगवान् बार्हिषदैरभिपूजितः ।
 पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हर ॥ १ ॥
 स्वर्गीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ।
 जपन्तस्ते तपस्ते पुर्नर्पणामयुतं जले ॥ २ ॥
 प्राचीनबर्हिषं क्षुर कर्मस्वाप्तकर्मौनसम् ।
 नारदोऽभ्यात्मतत्त्वज्ञं कृपातुः प्रत्यवाधयत् ॥ ३ ॥
 भयस्त्व कृतमप्राजत् कर्मणाऽऽत्मन ईदृशे ।
 दुःस्वप्नानि सुखावाप्तिं भयस्तन्नेह वेप्यते ॥ ४ ॥

राजोवाच

न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धमीः ।

श्रुद्दि मे विमलं ध्यानं यत्तु मुच्यं कर्मभिः ॥ ५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार भगवान् शङ्करने प्रचेताओंको उपदेश दिया । फिर प्रचेताओंने शङ्करजीकी बड़े भक्तिभावसे पूजा की । इसके पश्चात् वे उन राजकुमारोंके सामने ही कन्तर्धान हो गये ॥ १ ॥ सब-के-सब प्रचेता जलमें लङ्क रहकर भगवान् रुद्रके बताये स्तोत्रका जप करते हुए दस हजार वर्षतक तपस्या करते रहे ॥ २ ॥ इन दिनों राजा प्राचीनबर्हिक का विषय कर्मकाण्डमें बहुत रम गया था । उन्हें अभ्यात्मविषय-विशारद परम कृपाालु नारदजी ने उपदेश दिया ॥ ३ ॥ उन्होंने कहा कि राजन् ! इन कर्मोंके द्वारा तुम अपना कौम-सा कल्याण धरना चाहते हो ? दुःखके व्यापनितक मास और परमनन्द की प्राप्ति का नाम कल्याण है, वह तो कर्मोंसे नहीं मिलता ॥ ४ ॥

राजाने कहा—महाभाग नारदजी ! मरी बुद्धि कर्मों फँसी हुई है इसलिये मुझे परम कल्याणका कोई पता नहीं है । आप मुझे विष्णु के ज्ञानका उपदेश दीजिये, जिससे मैं इस कर्मबन्धनसे छूट जाऊँ ॥ ५ ॥

१ मा पा—मयेतपर । २ मा पा—यत्किञ्चन । ३ मा पा—येतवम् । ४ मा पा—इप्सतं ।

गृह्य कूटभर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः ।

न पर विन्दते मृदो भ्राम्यन् संसारवर्मसु ॥ ६ ॥

नारद उवाच

भो भो प्रजापते राजन् पशून् पश्य स्वयाभ्यन् ।

संघापिताङ्गीवसङ्गाभिर्घृष्यन् सहस्रजः ॥ ७ ॥

एते त्वां सम्प्रतीक्षन्त अरन्तो वैद्यसं तव ।

सम्परवमय कूटैश्चिन्दन्त्युत्थितमन्यथ ॥ ८ ॥

अथ ते कथयिष्येऽमुमितिहास पुरातनम् ।

पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदता मम ॥ ९ ॥

आसीत्युरञ्जनो नाम राज्ञा राजन् बृहन्नृपा ।

तस्याभिज्ञातनामाऽऽसीत्सत्याभिज्ञातवेष्टितः ॥ १० ॥

सोऽन्वेपमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभु ।

नानुरूपं यदाविन्ददभूत्स विमना इव ॥ ११ ॥

न साधु मेने वाः सर्वा भूतल यावतीः पुर ।

कामान् क्रमयमानोऽसी तस्य तस्मोपपद्यते ॥ १२ ॥

म एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ साधुषु ।

ददर्श नवभिर्द्वीपि पुरं लघितलधणाम् ॥ १३ ॥

प्राक्परापवनाश्रालपरिवरस्तोरणैः ।

म्यणरीप्यायसं शृङ्गं सङ्कुलां धर्मता गृहं ॥ १४ ॥

नीतस्फटिकवैदर्प्यमुक्ताभरकठारुणं ।

कन्तुहर्म्यम्यलीं दीप्तां धिया भोगवतीमिव ॥ १५ ॥

मभापस्वररथ्याभिराक्रीडायतनापर्णं ।

चत्पञ्चपताकाभिपुक्तां विभुमवेदिभिः ॥ १६ ॥

जो पुरुष काट्पर्ममय गृहस्थाश्रममें ॥ ॥ रहता हुआ पुत्र, स्त्री और धनको ही परम पुरुषार्थ मानता है, वह ब्रह्मन वश संसारारण्यमें ही मग्नता रहनेके कारण उस परल करपाणको प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

श्रीनारदजीने कहा—देखा, देखो, राजन्! तुमने वह में निर्दयतापूर्वक विन इशारों पशुओंकी बलि दी है—उन्हें आकाशमें देखो ॥ ७ ॥ ये सब तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुए पीढाओंको खट करके हुए ब्रह्म लेनेके लिये तुम्हारी शक्ति देख रहे हैं । जब तुम मरकर परलोकमें जाओगे, तब वे व्यक्त कोषमें भरकर तुम्हें अपने लोहेके से सींगोंसे छेदने ॥ ८ ॥ अच्छा, इस विषयमें मैं तुम्हें एक प्राचीन उपाख्यान सुनाता हूँ । वह राजा पुरञ्जनका चरित्र है, उसे तुम मुझसे सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥

राजन्! पूर्वकालमें पुरञ्जन नामका एक बड़ा वधशी राजा था । उसका अविज्ञात नामक एक मित्र था । कोई भी उसकी चंचलियोंको समझ नहीं सकता था ॥ १० ॥ राजा पुरञ्जन अपने रहनचरण स्थानकी खोजमें सारी पृथ्वीमें घूमा, फिर भी जब उसे कोई अनुरूप स्थान न मिला, तब वह कुछ उदास-सा हो गया ॥ ११ ॥ उसे तब-तबके भोगोंकी स्वादसा थी, उन्हें भोगनके लिये उसन संसारमें मितने नगर देखे, उनमेंसे कोई भी उसे धिक् न बैचा ॥ १२ ॥

एक दिन उसने क्षिमात्मके दक्षिण तटवर्ती शिखरों पर कर्मभूमि भारतखण्डमें एक नौ द्वारोंका नगर देखा । वह सब प्रकारके सुसज्जनोंसे सुसज्ज था ॥ १३ ॥ सब ओरसे परफेरे बगीचों, अग्ररियों, स्नानार्थ, शरीरों और राजद्वारोंमें सुशोभित था और सोने, चाँदी तथा ओहेके शिखरोंवाले निशाच भवनोंसे खूबालभ मरा था ॥ १४ ॥ उसके मन्त्रोंकी परी नीलम, स्फटिक, वैद्यम, मोती, पन्ने और लालोंकी बनी हुई थी । आनी ब्रह्मके कल्प बर नागोंकी राजधानी यागकीपुरीके समान आम पड़ता था ॥ १५ ॥ उसमें जहाँ-तहाँ जनपदों समा-भवन, वीर्य, सङ्को, धीरामवन, यात्रार विभ्राम-स्थान, पामा पनाभर्ष और मृगेके चतुरे सुशोभन थे ॥ १६ ॥

पुपास्तु घासोपवने दिव्यद्रुमलताकुले ।

नदद्दिहज्जालिकुलकोलाहलजगज्जये ॥१७॥

हिमनिर्झरविप्रुष्मत्सुमाक्षरवायुना ।

चलत्प्रवालवितपनलिनीतन्सम्पदि ॥१८॥

नानारण्यमृगव्रातैरनाथाधै सुनिव्रतैः ।

आहूतं मन्यते पान्थो यत्र काकिलकूजितैः ॥१९॥

यदृच्छयाऽऽगतां तत्र ददर्श प्रमदोचमाम् ।

मृत्पदं शमितामन्तीमेकैकशतनायकं ॥२०॥

पञ्चद्वीर्षादिना गुप्तां प्रतीहारण सर्वतः ।

अन्वेयमाणा नृपभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥२१॥

सुनामां सुदर्तां बालां मुकुषोलो वराननाम् ।

समन्विन्पल्लवार्णाम्नां विभ्रतां कुण्डलभ्रियम् ॥२२॥

पिण्डङ्गतीर्षां सुभोषां श्यामां कनकमेखलाम् ।

पद्मपा कण्ठम्रपा चरन्तीं नूपुरदंष्ट्रामित्र ॥२३॥

मनौ व्यधितकंशोरां मण्डूनां निगन्तरां ।

यस्यान्तेन निगूहन्तीं व्रीहया गनगामिनीम् ॥२४॥

तामाह ललित योगी मयीठमिन्नाभनाम् ।

मिग्धनापाङ्गपूदन मृष्ट प्रमोदमनूजवा ॥२५॥

कात्वं यज्ञयन्त्राग्नि कस्याग्निह कृत सति ।

उस नगरके बाहर दिव्य वृक्ष और लताओंसे पूर्ण एक सुन्दर बाग था; उसके बीचमें एक सरोवर सुशोभित था । उसके आस-पास अनेकों पक्षी मौन-मौलिकी बोली बोल रहे थे तथा और गुजार कर रहे थे ॥ १७ ॥ सरोवरके तटपर जो वृक्ष थे, उनकी शाखियाँ और पत्ते शीमल झरनोंके जलकणोंसे मिश्री हुई वासन्ती वायुक झकोरोंसे झिझ रहे थे और इस प्रकार वे तटवर्ती भूमिकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १८ ॥ वहाँके कन्य पशु भी मुनि जनोचित अहिंसादि श्रौतोंका पालन करनेवाले थे, इसलिये उनसे किसीको कोई कष्ट नहीं पहुँचता था । वहाँ बार बार जो कोकिलकी कुट्ट-ध्वनि होती थी, उससे मगमि चरनेवाले बटोहियोंको ऐसा भ्रम होता था मानो वह बगीचा विधाम करनेके लिये उन्हें बुला रहा है ॥ १९ ॥

यत्रा पुरज्जनने उस अशुभ वनमें मूत्ते-मूत्ते एक सुन्दरीको जाते देखा, जो अकस्मात् उधर चली आयी थी । उसके साथ दस सेवक थे, जिनमेंसे प्रत्येक सो-सौ नायिकाओंका पति था ॥ २० ॥ एक पौंच फनचाला सौंप उसका द्वारपाल था, वही उसकी सब ओरसे रक्षा करता था । वह सुन्दरी मोक्षी-माम्नी किरायेरी थी और विवाहके लिये श्रेष्ठ पुरुषकी खोजमें थी ॥ २१ ॥ उसकी नासिका, दन्तपङ्क्ति, कपोल और मुख बहुत सुन्दर थे । उसका समान कानोंमें कुण्डल झिजमिरा रहे थे ॥ २२ ॥ उसका रंग सौंजन्य था । बन्दिप्रदेश सुन्दर था । वह पीठ गङ्गाकी साड़ी और सोनेकी कतघनी पहने हुए थी तथा चरते समय चरणोंसे नूपुरोंकी झनकार करती जाती थी । अधिक क्या कह सक्ताव कोई दर्बानी जान पड़ती थी ॥ २३ ॥ वह गज गामिनी बाया कितोरावस्याकी मूबना देनेवाला करन गोल्-गोलसमान और परस्पर मट्ट हुए स्तनोंका वज्रवत् बार-बार चरनेसे गंभीर जाती थी ॥ २४ ॥

उसकी प्रमत्त मक्कनी भौंह और प्रमत्त निरंगी धिनजनके बाणसे घायन होकर वीर पुरज्जनने राजापुरा मुसप्रमने और भी सुन्दर स्थानेवाणी उस दर्बानी मपुर बागीमें कहा ॥ २५ ॥ 'कमल-कल्याण ! मुद्र कन्या भ्रातृम कौन है, जिसने कन्या का नाम 'मापी' है ।

१ मापन दर्बाने मूद्र कन्या भ्रम नहीं है । २ मा पा — विहङ्गमयि । ३ मा पा — मृगशायि ।

४ मा पा — रत्नादेनुज । ५ मा पा — मुकरणवपन ।

इमामुप पुरी भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥२६॥

क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभक्ताः ।

पताशोललना मुमुक्षोऽयंतेऽहिःपुर सर ॥२७॥

त्वं हीर्मवान्यस्य च चाप्रमा पतिं

निषिन्वती किं मुनिवद्ब्रह्मो बने ।

त्वदङ्घ्रिकामाप्तसर्वमस्तकामं

क पथकङ्गः पतितः कराप्रात् ॥२८॥

नासां वरोर्वन्यतमा ब्रुविस्पृक्

पुरीभिर्मा वीरवरण साकम् ।

अर्हस्यलङ्कार्तुमद्वकर्मणा

लोक परं श्रीरिव यज्जपुंसा ॥२९॥

यदेव मापाङ्गवित्स्वण्डितेन्द्रिय

सत्रीढभाषसितविभ्रमवृञ्जवा ।

त्वयापसृष्टा भगवात्मनोभव

प्रपाधतेऽधानुगुहाण शोभने ॥३०॥

त्वानन सुप्र सुठारलोचनं

व्यालम्बिनीलातकचन्द्रसर्व्वतम् ।

उन्नीय म दर्जय वरगुवाचक

पट्टीढया नाभिमुख शुचिस्मित ॥३१॥

नार उवाच

इत्थं पुञ्जनं नागे याचमानमभीरयत ।

अभ्यनन्त त वाग इमन्ता वीर माहिता ॥३२॥

न विनाम वयं मम्यन्तुतारं पुरुषपथ ।

आपनम्य परम्यापि गात्र नाम च यत्कृतम् ॥३३॥

१ प्रा ता — उत न पुंसा य । प्रा पा — पताभ । २ प्रा पा — भाषाग २ । ३ प्रा पा — या उमा वी । प्राप्तेन प्रतिमे अभ्यनन्त य अत्र अभ्यनन्त । ४ प्रा पा — नम्यापि । ५ प्रा पा — आपनम्य । ६ प्रा पा — गात्र नाम । ७ प्रा पा — आपनम्य । ८ प्रा पा — आपनम्य । ९ प्रा पा — आपनम्य । १० प्रा पा — आपनम्य । ११ प्रा पा — आपनम्य । १२ प्रा पा — आपनम्य । १३ प्रा पा — आपनम्य । १४ प्रा पा — आपनम्य । १५ प्रा पा — आपनम्य । १६ प्रा पा — आपनम्य । १७ प्रा पा — आपनम्य । १८ प्रा पा — आपनम्य । १९ प्रा पा — आपनम्य । २० प्रा पा — आपनम्य । २१ प्रा पा — आपनम्य । २२ प्रा पा — आपनम्य । २३ प्रा पा — आपनम्य । २४ प्रा पा — आपनम्य । २५ प्रा पा — आपनम्य । २६ प्रा पा — आपनम्य । २७ प्रा पा — आपनम्य । २८ प्रा पा — आपनम्य । २९ प्रा पा — आपनम्य । ३० प्रा पा — आपनम्य । ३१ प्रा पा — आपनम्य । ३२ प्रा पा — आपनम्य । ३३ प्रा पा — आपनम्य । ३४ प्रा पा — आपनम्य । ३५ प्रा पा — आपनम्य । ३६ प्रा पा — आपनम्य । ३७ प्रा पा — आपनम्य । ३८ प्रा पा — आपनम्य । ३९ प्रा पा — आपनम्य । ४० प्रा पा — आपनम्य । ४१ प्रा पा — आपनम्य । ४२ प्रा पा — आपनम्य । ४३ प्रा पा — आपनम्य । ४४ प्रा पा — आपनम्य । ४५ प्रा पा — आपनम्य । ४६ प्रा पा — आपनम्य । ४७ प्रा पा — आपनम्य । ४८ प्रा पा — आपनम्य । ४९ प्रा पा — आपनम्य । ५० प्रा पा — आपनम्य । ५१ प्रा पा — आपनम्य । ५२ प्रा पा — आपनम्य । ५३ प्रा पा — आपनम्य । ५४ प्रा पा — आपनम्य । ५५ प्रा पा — आपनम्य । ५६ प्रा पा — आपनम्य । ५७ प्रा पा — आपनम्य । ५८ प्रा पा — आपनम्य । ५९ प्रा पा — आपनम्य । ६० प्रा पा — आपनम्य । ६१ प्रा पा — आपनम्य । ६२ प्रा पा — आपनम्य । ६३ प्रा पा — आपनम्य । ६४ प्रा पा — आपनम्य । ६५ प्रा पा — आपनम्य । ६६ प्रा पा — आपनम्य । ६७ प्रा पा — आपनम्य । ६८ प्रा पा — आपनम्य । ६९ प्रा पा — आपनम्य । ७० प्रा पा — आपनम्य । ७१ प्रा पा — आपनम्य । ७२ प्रा पा — आपनम्य । ७३ प्रा पा — आपनम्य । ७४ प्रा पा — आपनम्य । ७५ प्रा पा — आपनम्य । ७६ प्रा पा — आपनम्य । ७७ प्रा पा — आपनम्य । ७८ प्रा पा — आपनम्य । ७९ प्रा पा — आपनम्य । ८० प्रा पा — आपनम्य । ८१ प्रा पा — आपनम्य । ८२ प्रा पा — आपनम्य । ८३ प्रा पा — आपनम्य । ८४ प्रा पा — आपनम्य । ८५ प्रा पा — आपनम्य । ८६ प्रा पा — आपनम्य । ८७ प्रा पा — आपनम्य । ८८ प्रा पा — आपनम्य । ८९ प्रा पा — आपनम्य । ९० प्रा पा — आपनम्य । ९१ प्रा पा — आपनम्य । ९२ प्रा पा — आपनम्य । ९३ प्रा पा — आपनम्य । ९४ प्रा पा — आपनम्य । ९५ प्रा पा — आपनम्य । ९६ प्रा पा — आपनम्य । ९७ प्रा पा — आपनम्य । ९८ प्रा पा — आपनम्य । ९९ प्रा पा — आपनम्य । १०० प्रा पा — आपनम्य ।

समय आकाशसे रही हो, भीरु । इस पुरीके समीप तुम क्या करना चाहती हो ॥२६॥ सुभ्रु । तुम्हारे साथ इस ग्यारहवें मन्वान शूरवीरसे सहायित्व ये दस सेवक कौन हैं और ये सहेलियों तथा तुम्हारे आगे आगे बहनेवाला यह सर्व कौन हैं ॥ २७ ॥ सुन्दरि । तुम साक्षात् लज्जाप्री हो जयवा उमा, उमा और ब्रह्मणीमेंसे कोई हो ? यहाँ कनमें मुनियोंकी तरह एकप्रस्तास करके क्या अपने प्रतिदेवको खोज रही हो ? तुम्हारे प्राणनाथ तो (तुम उनका चरणोंकी कामना करती हो, इतनसे ही पूर्णकाम हो जाते) । अच्छ, यदि तुम साक्षात् कम्पादेवी हो, तो तुम्हारे हाथका कीड़ाकमल कहीं गिर गया ॥ २८ ॥ सुभ्रु । तुम इनमेंसे तो कोई हो नहीं, क्योंकि तुम्हारे कर्म पञ्चीकृत स्पर्श कर रहे हैं । अच्छ, यदि तुम कोई मानवी ही हो, तो सक्तीनी जिस प्रकार भगवान् विष्णुके साथ वैकुण्ठकी शाखा बहती हैं, उसी प्रकार तुम मेरे साथ इस श्रेष्ठ पुरीको अलङ्कृत करो । देखो, मैं बड़ा ही वीर और पराक्रमी हूँ ॥ २९ ॥ परन्तु आज तुम्हारे कटाक्षोंने मेरे मनको बँकाव कर दिया है । तुम्हारी लम्बीनी और रति भावसे मेरी मुस्तकानके साथ मौखिकोंके स्नेह पाकर वह शक्तिशाली कामदेव मुझे पीड़ित कर रहा है । इसलिये सुन्दरि ! अब तुम्हें सुझाव दिया करनी चाहिये ॥ ३० ॥ सुचिन्मये । सुन्दर मौखिक और सुप्रसन्न नेत्रोंसे सुशोभित तुम्हारा मुखारविन्द इन लंबी-लंबी काली अमकमलियोंसे घिरा हुआ है तुम्हारे मुखसे निकल हुए वाक्य बड़ ही मीठे और मन हरनवाले हैं, परन्तु वह मुख तो भावके गारे मेरी धार होना ही नहीं । बरा उँचा करक अपने उस सुन्दर मुखबद्धा मुख स्पर्शन तो कताओ ॥ ३१ ॥

धीमा उवाच—भीरु ! अब रामा पुरञ्जन

अवीर-से होकर इस प्रकृत पाचना करे, तब उस बातने

भी हँसते हुए उमका अनुमान किया । वह भी राधाका

देवकत मोहित हो चुकी थी ॥ ३२ ॥ वह करने लगी

नरक ॥ हमें अपने उग्रपथ परमबासेका टीक-टीक पता

नहीं है और न हम जान या किसी दूसरे नाम का

इहाद्य सन्तमात्मानं विदाम न सत परम् ।
 येनेय निर्मिता वीर पुरी क्षरणमात्मन ॥३४॥
 एते सखाय सख्यो म नरा नार्यश्च मानद ।
 सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन् पुरीम् ॥३५॥
 दिष्टयः ऽऽगतोऽमि भद्र त ग्राम्यान् कामानभीप्सते ।
 उद्धदिष्यामि तांस्तेऽहं स्वच पुभिर्गन्दिम ॥३६॥
 इमां स्वमभिविष्टस्व पुरीं नवमूर्त्ती विभो ।
 मयोपनीतान् गृहानः कामभोगान् श्रुत समाः ॥३७॥
 कं नु त्वदन्यं रमये क्षरतिष्ठमकोविदम् ।
 अमम्परायाभिमुखमश्नस्तनविदं पशुम् ॥३८॥
 धर्मा अप्रार्थकामा च प्रजानन्दोऽमृत यत् ।
 लोका विशोका विरजा यान् न कवलितान् विदुः ॥३९॥
 पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ।
 धेर्म्यवदति शरणं भवऽस्मिन् यद् गृहाभ्रमः ॥४०॥
 का नाम वीर विख्यातं वदाय प्रियदर्शनम् ।
 न वृणीत प्रिय प्राप्त मादृशी त्यादृग पतिम् ॥४१॥
 कस्या मनस्तं सुखि भागिभोगया
 त्रिषा न गजजुजुषार्महाभुज ।
 याऽनाधरगाधिमल घृणाद्वत
 मिताउलाफन परत्यपाहितुम् ॥४२॥
 नाग उपाय
 इति ना दम्पता तत्र गमुष समय मिथ ।
 तां प्ररिण्य पूर्ण गजमुद्गान् धर्त समा ॥४३॥

गोवको हीं जानती हैं ॥ ३३ ॥ वीरवर ! आज हम सब इस पुरीमें हैं—इसके सिवा मैं और कुछ नहीं जानती, मुझे इसका भी पता नहीं है कि हमारे खनेके छिये यह पुरी किसने बनायी है ॥ ३४ ॥ प्रियकर ! ये पुरुष मेरे मध्या और छियां मेरी सहेलियां हैं तथा जिस समय मैं सो जाती हूँ, यह सर्प जागता हुआ इस पुरीकी रक्षा करता रहता है ॥ ३५ ॥ शत्रुदमन ! आप यहाँ पधारे, यह मेरे लिये सौम्याप्यकी बात है । आपका मङ्गल हो । आपको विन्य-भ्रगोंकी इच्छा है, उसकी पूर्तिके लिये मैं अपने सामर्थ्यमहित सभी प्रकारके भोग प्रस्तुत करती रहूँगी ॥ ३६ ॥ प्रभो ! इस मौ दारोबाली पुरीमें मेरे प्रस्तुत किये हुए इच्छित भोगोंको भोगते हुए आप मेककों क्योंकि निवास कीजिये ॥ ३७ ॥ मन्त्र, आपको छोड़कर मैं और किसके साथ रमण करूँगी ? दूसरे लोग तो मरति-सुखको जानते हैं, न विदित भोगोंको ही भोगते हैं, न परलोकका ही विचार करते हैं और न कल क्या होगा—इसका ही पञ्चन रहते हैं, अनएव पशुगुल्य हैं ॥ ३८ ॥ अहो ! हम लोकमें गृहस्थाश्रममें ही धर्म, अर्प, काम, सन्तान-सुख, मोक्ष, सुयश और स्वर्गादि दिव्य लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है । मन्वारव्यापी यतिजन तो इन सबकी कल्पना भी नहीं कर सकते ॥ ३९ ॥ महापुरुषोंका कथन है कि इस लोकमें पितर, दय, अद्वि, मनुष्य तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके और अपने भी कल्याणका आश्रय एकमात्र गृहस्थाश्रम ही है ॥ ४० ॥ वीरशिरोमणे ! लोकमें मही-जैसी कौन ही होगी, जो स्वयं प्राप्त हुए आप जैसे सुप्रसिद्ध, उत्तरविषय और सुन्दर पतिव्रत वरण न करेगी ॥ ४१ ॥ महाबाहो ! इस पत्नीपर आरक्षी सौंप जैसी गोगाधर सुकोमल गुमाश्रोंमें स्थान पानके लिये तिम कामिनीवत् विल न लप्तायेना ? आप ता अपनी मधुर मुमस्त्रनमयी कलगायन दृष्टिमें हृदय-रमणी अनायाशों-क माममिश्र सन्तापको शान्त करमक लिये ही पुरीमें विचार रह है ॥ ४२ ॥

आमारदजी कहत है—राजन् ! उन री पुरुषोंन हम प्रकार एव दूसरेकी जानका गर्मान पर तिर मौ ज्ञानर उम पुर्गमें रहकर जानन भाग ॥ ४३ ॥

उपगीयमानो ललितः सत्रः सत्रः च गायकैः ।

श्रीढन् परिश्रुतः श्रीमिर्दिनीमाविशञ्जुषौ ॥४४॥

सप्तोपरि कृता द्वार पुरस्तस्यास्तु द्वे भव ।

पृथग्निपयगत्यथ तस्यां यः कथनेभ्यः ॥४५॥

पश्च द्वास्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ।

पश्चिमे द्वे अमृषां ते नामानि नृप वर्धये ॥४६॥

स्वधाताऽऽविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ।

विभ्राजितं जनपदं याति ताम्यां ध्रुवस्तत्त्वः ॥४७॥

नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ।

अवधूतसस्त्याम्यां विषयं याति सौरभम् ॥४८॥

मुख्या नाम पुरस्ताद् द्वास्तयाऽऽपणबहूदनौ ।

विषयौ याति पुरराट्सहविषणान्वितः ॥४९॥

पिठहूर्त्तं पुष्यां द्वाद्विषणेन पुरञ्जनः ।

राष्ट्र दक्षिणपञ्चाल याति ध्रुवधरान्वितः ॥५०॥

दयहूनां पुष्यां द्वा उत्तरं पुरञ्जनः ।

राष्ट्रमुत्तरपञ्चाल याति ध्रुवधरान्वितः ॥५१॥

आसुरी नाम पश्चाद् द्वास्तया याति पुरञ्जनः ।

ग्रामक नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥५२॥

निष्प्रतिर्नाम पश्चाद् द्वास्तया याति पुरञ्जनः ।

बशम नाम विषयं लुम्बकेन समन्वितः ॥५३॥

अधायमीशं पौगणं निवासपेशम्कृतापुत्रौ ।

पञ्चप्रतामपिपतिस्ताम्यां याति कराति च ॥५४॥

ग यर्यत पुरगता विपूचीनममन्वितः ।

माहं प्रमाहं ह्य

नदी

जायात्म्

नदी

३

॥५५॥

ग

गायकलोग सुमधुरस्वरं जहौ-सहौ राजा पुरञ्जनकी कीर्ति

गाया करते थे । जब श्रीपद्मावती जाती, तब वह धनेको

लिखेके साथ सरोवरमें घुसकर जलक्रीड़ा करता ॥ ४४ ॥

उस नगरमें जो नौ द्वार थे, उनमेंसे सात नगरीके ऊपर

और दो नीचे थे । उस नगरका जो कोई राजा होता,

उसके पृथक्-पृथक् दशमें जानके लिये ये द्वार बनाने

गये थे ॥ ४५ ॥ राजन् । इनमेंसे पाँच पूर्व, एक दक्षिण,

एक उत्तर और दो पश्चिमकी ओर थे । उनके नामोंसे

वर्णन करता हूँ ॥ ४६ ॥ पूर्वकी ओर सप्तोत्तर और

आविर्मुखी नामके दो द्वार एक ही जगह बनाये गये थे ।

उनमें होकर राजा पुरञ्जन अपने मित्र ध्रुवनाके साथ

विभ्राजित नामक देशको जाता था ॥ ४७ ॥ इसी

प्रकार उस ओर मलिनी और नालिनी नामके दो द्वार

और भी एक ही जगह बनाये गये थे । उनसे होकर वह

अवधूतके साथ सौरभ नामक देशको जाता था ॥ ४८ ॥

पूर्वदिशाकी ओर मुख्या नामका जो पाँचवाँ द्वार था,

उसमें होकर वह रसज्ञ और विषणके साथ क्रमशः

बहूदन और आपण नामक देशोंको जाता था ॥ ४९ ॥

पुरीके दक्षिणकी ओर जो पिठहूर्त्त नामका द्वार था, उसमें

होकर राजा पुरञ्जन ध्रुवधरके साथ दक्षिणपञ्चाल देशको

जाता था ॥ ५० ॥ उत्तरकी ओर जो दयहू नामका द्वार

था, उससे ध्रुवधरके ही साथ वह उत्तरपञ्चाल देशको

जाता था ॥ ५१ ॥ पश्चिम दिशामें आसुरी नामका द्वार

था, उसमें होकर वह दुर्मदेक के साथ ग्रामक देशको

जाता था ॥ ५२ ॥ तथा निर्भ्रमि नामका जो द्वार था

पश्चिम द्वार था उससे लुम्बकके साथ वह बशम नामके

देशको जाता था ॥ ५३ ॥ इस नगरके निक्षिप्ये

निर्वाह और पशुवृत्त-य दो नागरिक थे । राजा

पुरञ्जन औसवाले नागरिकोंके अधिपति होनेपर भी इन्हीं

की सहायतासे जहाँ-तहाँ जाता और सब प्रजाके पार्ष

कृता था ॥ ५४ ॥

जब कभी अजन प्रजन सेवक शिषीनक के साथ

वन्त पुरमें जाता, तब उमें श्री और पुत्रोंक करत

हानेवाल माह प्रमथना एवं दर्द आति रिज्येंत

१ अग्नाधमीश ने आरम्भकर बर्तन च देत । (१५५५५)

ग नदी है ।

एवं कर्मसु संसक्त क्रमात्मा षष्ठितोऽबुध ।
 महिषी ययदीहत तरुदेवान्ववर्षत ॥५६॥
 कचित्पियन्त्यां पिवति मदितां मदविह्वलः ।
 अभन्त्यां कचिदभाति अद्यत्यां सह अक्षिति ॥५७॥
 कचिद्वापति शास्त्र्यां रुदत्या रुदति कचिद् ।
 कचिद्वसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनु जल्पति ॥५८॥
 कचिद्वावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनु तिष्ठति ।
 अनु शेते क्षमानावामन्वास्ते कचिदासरीम् ॥५९॥
 कचिच्छृणोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यामनु पश्यति ।
 कचिजिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति कचिद् ॥
 कचिच्च शोषती चापामनुशोचति दीनवत् ।
 अनु हृष्यति हृष्यन्त्यां मुदिसामनु मादत ॥६१॥
 विप्रलब्धा महिष्यव मर्वप्रकृतिवञ्चितः ।
 नेच्छन्ननुकृत्यश्च क्लृप्तात्क्रीडाशृणा यथा ॥६२॥

अनुमय होता ॥ ५५ ॥ उसका चित्त तरु-नरहके
 कर्मोंमें फँसा हुआ था और काम-परवश होनक कारण
 वह मूढ़ रमणीके हाथ ठग गया था । उसकी रानी
 जो-जो काम करती थी, वही वह भी करने लगता
 था ॥ ५६ ॥ वह जब मद्यपान करती, तब वह भी
 मदिता पीता और मदसे ठमठ हो जाता था, जब
 वह भोजन करती, तब आप भी भोजन करने लगता
 और जब कुछ चबाती, तब आप भी वही वस्तु खाने
 लगता था ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार कभी उसके गानपर
 गाने लगता, रोनेपर रोने लगता, हँसनेपर हँसने लगता
 और बोझनेपर बोझने लगता ॥ ५८ ॥ वह दौड़ती तो
 आप भी दौड़ने लगता, खड़ी होने तो आप भी खड़ा
 हो जाता, सोती तो आप भी उसीके साथ सा जाता
 और बैठती तो आप भी बैठ जाता ॥ ५९ ॥ कभी
 वह सुनने लगती तो आप भी सुनने लगता, देखनी तो
 देखने लगता, सूँघनी तो सूँघने लगता और किसी
 चीजको छूती तो आप भी छूने लगता ॥ ६० ॥ कभी उसकी
 प्रिया शोककुल होती तो आप भी अत्यन्त दीनके
 समान व्याकुल हो जाता, जब वह प्रसन्न होती, आप
 भी प्रसन्न हो जाता । और उसके आनन्दित होनेपर आप
 भी आनन्दित हो जाता ॥ ६१ ॥ (इस प्रकार) राधा
 पुरजान अपनी सुन्दरी रानीके हाथ ठग गया । साथ
 प्रकृतिका—परिकर ही उसके बोझा देने लगा । वह मूढ़
 विषय होकर इच्छा न होनेपर भी स्नेहक छिपे घरपर
 पाले हुए कन्दरक समान अनुकरण करता रहता ॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण परमहंस्य संहितायां चतुर्थस्कन्धे पुरजानो

पाश्याय पद्यविशोऽध्याय ॥ २५ ॥

अथ पङ्क्तिशोऽध्याय

राजा पुरजानकय शिकार खेलने बगमें जाता और

रागीक्य कुपित होता

नारद उवाच

धीमादयसी कहत हैं—राजन् । एक दिन राजा

स एकदा महेश्वासो रथं पञ्चाशमाशुगम् ।

पुरजान अपना विशाल चतुर, सनेका बबक और

शीघ्र दिशकमेकार्थं त्रिवेणु पञ्चवन्धुरम् ॥ १ ॥

अश्वय तरफत भारणकर अपने ग्यारहों सेनानिक

अत्मानमर्हयाश्चक्रे धूपालेपस्तगादिभिः ।

साञ्चलकृतसर्वाङ्गो महिष्मामादधे मनः ॥१२॥

वृत्तो हृष्टः सुहृत्तम कन्दर्पाकृतमानसम् ।

न व्यचष्ट बरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥१३॥

अन्त पुरस्त्रिपाऽपृच्छद्विभना इव वदिपत् ।

अपि वः कुञ्जल रामा सेचरोणां यथा पुरा ॥१४॥

न तयैर्तर्हि राचन्ते गृहपु गृहसम्पदः ।

यदि न स्यात् गृहं माता पत्नी वा पतिदक्षता ।

व्यङ्ग रथ इव प्राङ्गः को नामासीत् दीनवत् ॥१५॥

न वर्तते सा ललना मज्जन्त व्यसनार्णवे ।

भा मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पद्म पदे ॥१६॥

रामा उवाच

नरनाथ न जानीमस्त्वस्त्रिपा यद्व्यवस्यति ।

भूत्वे निरवस्तार ध्यानां पश्य क्षत्रुहन् ॥१७॥

नारद उवाच

पुरश्चन स्वमहिषीं निरीक्ष्यामधुर्वां ह्रुवि ।

वत्सङ्गोन्मथितश्चानो वैरुध्यं परमं ययौ ॥१८॥

सान्त्वयन् फलक्षणा वाचा हृदयेन विद्मता ।

प्रेयसाः स्नेहसरम्भलिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ॥१९॥

अनुनिन्देऽथ क्षनकैरीगेऽनुनयकोविद ।

पथ्यर्थं पादपुगलमाह चोत्सङ्गलालिप्ताम् ॥२०॥ कहने लगी ॥ २० ॥

१ प्राचीन प्रसिद्धि नारद उवाच इतना मद्य नहीं है ।

विधाम करके थकावट हर की ॥ ११ ॥ फिर गन्ध, चन्दन और माला आदिसे सुसज्जित हो सब अङ्गोंमें सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहने । तब उसे अपनी प्रिया की याद आयी ॥ १२ ॥ वह भोजनादिसे वृत्त, हृत्पत्र में आनन्दित, मदसे उन्मत्त और कामसे व्यथित होकर अपनी सुन्दरी भार्याको हँसते उगा, किन्तु उसे वह कहाँ भी ढिंढायी न दी ॥ १३ ॥

प्राचीनबाई ! तब उसने वित्तमें कुछ उगास होकर अन्त पुरकी स्त्रियोंसे पूछा, 'सुन्दरियों ! अपनी कामिनी के सहित तुम सब पहलेकी ही तरह कुजालसे हो न ?' ॥ १४ ॥ क्या कारण है आज इस घरकी सन्ध्यापि पहले-जैसी सुहावनी नहीं जान पड़ती ? घरमें माता अथवा पतिपरायणा भार्या न हो, तो वह घर बिना पक्षियोंके रथक समान हो जाता है; फिर उसमें कौन सुखिमान् दीन पुरुषोंके समान रहना पसन्द करेगा ॥ १५ ॥ अतः बताओ वह सुन्दरी कहाँ है, जो दुःख-समुद्रमें डूबनेपर मेरी त्रिवेक-मुद्रिकों पद-पद पर आभ्यस्त करके मुझे उस सङ्कटमें उबार लेती है ?' ॥ १६ ॥

स्त्रियोंके कहना—नरनाथ ! माझम नहीं आन आन की प्रियान क्या ठानी है । शत्रुदमन ! देखिये, वे बिना मित्रोंके पृथीपर ही पड़ी हुई हैं ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—उचन ! उस लीके सङ्ग से रगता पुरश्चनका विवेक मद्य हो चुका था, इसलिये अपनी रानीको पृथीपर अत्य-व्यथित अवस्थामें पड़ी देखकर वह अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥ १८ ॥ उसने दुःखित हृदयसे उसे मधुर वचनोंद्वारा बहुत कुछ समझाया, किन्तु उसे अपनी प्रेयसीके अन्तर अपने प्रति प्रणय-कोपका कोई चिह्न नहीं दिखायी दिया ॥ १९ ॥ वह मगाममें भी बहुत कुजाल था, इसलिये अब पुरश्चन ने उसे धीरे-धीरे मगाला आरम्भ किया । उसने पहले उसके चरण छूए और फिर गोदमें बिठाकर बड़ प्यारसे

सुरजन उवाच

नूनं त्वकृतपुण्यास्ते मृत्या येन्वीक्षराः क्षुभे ।

कृतागस्त्रात्मसत्कृत्वा शिक्षादण्डं न मुञ्चते ॥२१॥

परमोऽनुग्रहो दण्डा मृत्येषु प्रमृणार्पितः ।

घालो न वेद सत्तन्त्रि बन्धुकृत्यममर्षणः ॥२२॥

सा त्वं हस्तमुदति सुभ्रवतुरागभार

ग्रीवाविलम्बविलसद्भसितावलोक्षम् ।

नीलालकालभिरुपस्कृतमुभयं नः

स्नानां प्रदर्शय मनसिनि वत्सुबाक्यम् ॥२३॥

सन्निदध दममई सख भीरपत्नि

मोऽन्यत्र मूसरकुलात्कृतकिन्निपत्तम् ।

पश्ये न वीरभयम् मुदित त्रिलोक्या

मन्यत्र वै सुररिपोरितत्र दत्तात् ॥२४॥

वक्त्रं न वे वितिलकं मलिनं विहर्षं

संरम्भमीममविसृष्टमपवरागम् ।

पश्ये तनत्रापि क्षुचोपहतौ सुजसौ

विम्बाधरं विगतकुङ्कुमपङ्कजरागम् ॥२५॥

वम प्रसीद सुहृदः कृतकिन्निपत्तम्

स्वरगतस्य मृगयां व्यसनात्तरसा ।

का देवरं वरागव कुसुमावधेग

विस्त्रस्तप्राप्तिमुद्यती न भजेत कृत्ये ॥२६॥

पुरजन बोला—सुन्दर । ये सेवक तो निष्कर्म
बड़े अयोग्य हैं, जिनके अपराध करनेपर सामीने
अपना समझकर शिक्षाके लिये उचित दण्ड न
देते ॥ २१ ॥ सेवकको दिया हुआ सामीक दण्ड से
उसपर बड़ा अनुग्रह ही होता है । जो मूर्ख हैं, उन्होंने
क्रोधके कारण अपने हितकारी सामीके लिये हुए उस
उपकारका पता नहीं चला ॥ २२ ॥ सुन्दर दण्ड
बनी और मनोहर मौहोंसे शोभा पानेवाली मनसिनि ।
जब यह क्रोध दूर करो और एक बार मुझ वत्स
समझकर प्रणय-भार तथा लज्जासे मुका हुआ एवं सदा
मुसकानमयी चितवनसे घृणाक्षित अपना मनोहर मुख
दिखाओ । क्या ! भ्रमरपंक्तिसे समान नीली कक्क-
बन्दी, उन्नत नासिका और सुमधुर बागीके कल
तुम्हारा वह मुखारविन्द कैसा मनोमोहक जान पड़ा
है ॥ २३ ॥ वीरपत्नि । यदि किसी दूसरेने तुम्हारा
कोई अपराध किया हो तो उसे बताओ, यदि वह
अपराधी शासनकुम्भक नहीं है, तो मैं उसे अपने दण्ड
देगा हूँ । मुझे तां व्याधानके भलोंको छोड़कर त्रिजोषी-
में अपना उससे बाहर ऐसा कोई नहीं दिखायी देता
जो तुम्हारा अपराध करके निर्भय और जानन्दपूर्ण
रह सके ॥ २४ ॥ प्रिये । मैंने आज तक तुम्हारा मुँह
कभी निष्कलीन, उदास, मुरझाया हुआ, शत्रुके काल
डरकला, कान्तिहीन और लज्जालु नहीं देखा; और
न कभी तुम्हारे सुन्दर स्तनोंको ही शोकप्रयुक्तोंसे घेर
तथा विम्बाफलसदृश अपरोक्तो किम्ब केसरकी भाँतीसे
रक्षित देखा है ॥ २५ ॥ मैं व्यसनका तुम्हें किना
पूछे शिकार लेखने चला गया, इसलिये अपना कपड़ा
हूँ । फिर भी अपना समझकर तुम मुझपर प्रेम न हो
जाओ; कामदेवके विरम बाणोंसे जभीर होकर जो
सर्वदा अपने अधीन रहता है, उस अपने प्रिय पतिसे
उत्थित कर्षणके लिये मग्न होकर कानिनी स्त्रीकर नहीं
करती ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमार्थ्यां संक्षिप्तायां चतुर्थस्कन्धे

पुरजनोवाक्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

पुरञ्जनपुरीपर अण्डवेगकी चर्चार्थ तथा कालकल्याणकी चर्च

नारद उवाच

यं पुरञ्जनं सम्यग्भवशमानीय विभ्रमैः ।

रञ्जनी महाराज रमे रमयती पतिम् ॥ १ ॥

राजामहिषीराजन्मुञ्चातां रुचिराननाम् ।

जत्वस्त्वयनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥ २ ॥

संयोगदः परिरम्भकन्धरो

रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ।

न कालरंही पुषुषे दुरत्यय

दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥ ३ ॥

क्षयान उभयमदो महामना

महार्हतत्वे महिषीमुजोपधिः ।

तामेव वीरो मनुते परं यत्

स्तमोऽभिभूतो न निब परं च यत् ॥ ४ ॥

तयैव रमाम्यस्य कामकमलचेतसः ।

क्षगार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्त नवं वयः ॥ ५ ॥

तस्यामजैनपत्नुष्वान् पुरञ्जनां पुरञ्जन ।

शतान्येकादश विराढायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥ ६ ॥

दुहितृद्वेष्टोचरशतं पितृमातृपक्षस्फुरीः ।

शीलौदार्यगुणापेताः पौरञ्जन्य प्रजापते ॥ ७ ॥

स पञ्चालपतिः पुत्रान् पितृवंशविषयान् ।

दारैः संयोजयामास दुहितुः सङ्गैर्वरैः ॥ ८ ॥

पुत्राणां चाभवन् पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् ।

यैर्वै पौरञ्जनो वंश पञ्चालेषु समधितः ॥ ९ ॥

तेषु सत्रिकथहारेषु गृहकाशानुजीविषु ।

भीनारखुशी कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार वह दुन्दरी अनेकों नखोंसे पुरञ्जनको पूरी तरह अपने वशमें कर उसे आनन्दित करती हुई विहार करने लगी ॥ १ ॥ उसने अच्छी तरह स्नान कर अनेक प्रकारके माङ्गलिक श्रृङ्गार लिये तथा मोचनादिसे तृप्त होकर वह राजाके पास आयी । राजाने उस स्मोहर मुञ्चाती राजमहिषीका सादर अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ पुरञ्जनीने राजाका आत्किन्न किया और राजाने उसे गले लगाया । फिर एकान्तमें मनके अनुकूल रहत्यकी बातें करते हुए वह ऐसा मोहित हो गया कि उस कामिनीमें ही चित्त लगा रहनेके कारण उसे दिन-रातके भेदसे निरन्तर बीतते हुए कालकी दुस्तर गतिक्रम भी कुछ पता न लगा ॥ ३ ॥ मदसे छका हुआ मनकी पुरञ्जन अपनी प्रियाकी मुनापर सिर रखने महामन्य शय्यापर पड़ा रहता । उसे तो वह रण्णी ही जीवनका परम फल आम पकरी थी । अज्ञानसे आकृत हो जानेके कारण उसे आत्मा अपना परमात्माका कोई ज्ञान न रहा ॥ ४ ॥

राजन् । इस प्रकार कामाक्षर चित्तसे उसके साथ विहार करते-करते राजा पुरञ्जनकी बहानी जाचे क्षणके समान बीत गयी ॥ ५ ॥ प्रजापते ! उस पुरञ्जनीसे राजा पुरञ्जनके ग्यारह सौ पुत्र और एक सौ दस कन्याएँ हुईं, जो सभी माता-पिताका सुपरा बहानवाली और सुशीलता-वहातरता आदि गुणोंसे सम्पन्न थीं । ये पौरञ्जनी नामसे विख्यात हुईं । इनमें ही उस सम्राट्की लक्ष्मी आयुका आधा भाग निकल गया ॥ ६-७ ॥ फिर पाञ्चालराज पुरञ्जने पितृवंशकी हृदि कामेश्वरसे पुत्रोंका बहुजोंके साथ और कन्याओंका उनके योग्य क्रोंके साथ विवाह कर लिया ॥ ८ ॥ पुत्रोंमेंसे प्रत्येकके सौ-सौ पुत्र हुए । उनसे हृदिके प्राप्त होकर पुरञ्जनवत् वंश सारे पाञ्चाल देशमें फैल गया ॥ ९ ॥ इन पुत्र, पौत्र, गृह, कोश, सेवक और मन्त्री आदिने एक ममता हो

यो तुष्टा गजर्षये तु वृतात्पूष वरम् ॥२०॥
 कदाचित्माना मा नमलाक्ष्मही गतम् ।
 वमे वृद्धत मां तु जानती काममोहिता ॥२१॥
 मयि मरम्य विपुलमच्छापं सुदु महम् ।
 म्यातुमर्हमि नैकत्र मयाञ्जविद्युन्मो मुने ॥२२॥
 तता विहृतमङ्गल्या कन्यका यवनेश्वरम् ।
 मयापदिष्टमामाद्य वध नाज्ञा भय पतिम् ॥२३॥
 श्वपर्म यवनानां स्वा वृणे वारेप्सित पतिम् ।
 सङ्कल्पस्त्वयि मृतानां कृतं किञ्च न रिप्यति ॥२४॥
 डाविमावतुशोचन्ति बालावमदवग्रहा ।
 यल्लोकशालोपनत न राति न तच्छ्रुति ॥२५॥
 अथो भजस्व मां भद्र भजन्ती मे दयां कुरु ।
 पतावान् पौरुषा धर्मो यदाताननुकम्पत ॥२६॥
 कालकन्योन्निवचा निद्रम्य यवनेश्वर ।
 विर्षीर्पुर्वेषुगुप्तं म सञ्चित ताममापत ॥२७॥
 मया निम्पितस्तुभ्यं पतिरात्मममाभिना ।
 नाभिनन्दति लाकाज्यत्वाभमद्रामसम्मताम् ॥२८॥
 स्वमभ्यक्तगतिर्धृष्टश्च लोक कर्मविनिर्मितम् ।
 याहि मे पृथनायुक्ता प्रजानार्थं प्रणम्यसि ॥२९॥

ये । एक बार राजर्षि पूरुन पिताको अपना यौवन
 देनेके लिये अपनी ही इच्छासे उसे बर लिया था, इससे
 प्रमथ होकर उसने उन्हें सम्प्रामाणिक कर दिया
 था ॥ २० ॥ एक दिन मैं ब्रह्मदेवसे पृथ्वीपर आया,
 तो वह धूमनी-धूमनी मुझ भी म्रिय गयी । तब मुझ
 नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भी क्षमातुर होके कारण
 उससे बरना चाहा ॥ २१ ॥ मैंने उसकी प्रार्थना
 स्वीकार नहीं की । इसपर उसने अत्यन्त क्रुपित होकर मुझ
 पर दुःसह शपथ लिया कि 'तुमने मेरी प्रार्थना स्वीकार
 नहीं की, अतः तुम एक म्यातपर अधिक दूर न दूर
 मकोगे ॥ २२ ॥

तब मेरी ओरसे निराद्य होकर उस कन्याने भी
 सम्प्रतिसे यवनराज मयके पास जाकर उसका पतिरूपसे
 बरण किया ॥ २३ ॥ और कहा, 'धीरकर ! आप
 यन्त्रोंमें श्रेष्ठ हैं मैं आपसे प्रेम करती हूँ और पति
 बनाना चाहती हूँ । आपका प्रति किया हुआ जीवोक्त
 सङ्कल्प कभी विफल नहीं होता ॥ २४ ॥ मैं मनुष्य
 लोक अथवा नागकी दृष्टिसे देनेयोग्य वस्तुका दान
 नहीं करना और जो शास्त्रदृष्टिसे अविकारी होकर भी
 ऐसा दान नहीं लेता, वे लोगों की दुष्टप्रही और मूर्ख
 हैं, अतएव शाचनीय हैं ॥ २५ ॥ भद्र ! इस समय
 मैं आपकी सेवाम उपस्थित हूँ हूँ, आप मुझे स्वीकार
 करके अनुगृहीत कीजिये । पुरुषका मन्त्रसे बड़ा धर्म
 यीनोंपर क्या करता ही है ॥ २६ ॥

कालकन्याकी बात सुनकर यवनराजने विचिन्ताका
 एक गुप्त कथन करनेकी इच्छासे मुसकराते हुए उससे
 कहा ॥ २७ ॥ मैंने योगरहितसे देखकर तेरे लिये एक
 पति निश्चय किया है । तू सबका अनिष्ट करनेवाली
 है इसलिये किसीको भी अच्छी नहीं लगती और इसीसे
 लोग तुझ स्वीकार नहीं करते । अतः इस कर्मजनित
 लाकाक्त तू अश्रित होकर बनाकरसे भाग ।
 तू भी सेना छोड़ जा इसकी सहायतासे तू
 मारी प्रजाका नाश करनेमें समय होमी, बड़ा
 भी तेरा मामला म कर सकना ॥ २८ २९ ॥

प्रज्जारोऽयं मम भ्राता त्वं च मम भगिनी भव ।

चराम्पुभाम्पां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥ ३० ॥

यह प्रज्जार नामका मेरा भाई है और तू मेरी भगिनी बन जा । तुम दोनोंके साथ मैं अव्यक्त गतिसे मन्त्र सेना लेकर सारे लोकमें विचरूँगा ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
पुराणनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अथाष्टविंशोऽध्यायः

पुराणनको क्रीडोत्पत्तिं प्राप्तिं और अविनाशके क्षणवशासे उत्सका मुक्त होना

नारद उवाच

सैनिकं भयनाम्ना ये वदन्ति नृपद्वारिणः ।

प्रज्जारकालकन्याम्पां विचरन्वनीमिमाम् ॥ १ ॥

त एकदा तु रभसा पुञ्जनपुरीं नृप ।

रुद्रधुर्भीमभोगाद्यां जरत्पन्नगपाद्विमाम् ॥ २ ॥

कालकन्यापि पुञ्जसे पुरञ्जनपुरं बलम् ।

ययाभिभूतं पुरुषः सद्यो नि मारतामिमाम् ॥ ३ ॥

तयोपध्वज्यमानां वै यवना सर्वतोद्दिशम् ।

द्वाभिं प्रविश्य तुमृशं प्रार्थयन् सकलां पुरीम् ॥ ४ ॥

तस्यां प्रपीठ्यमानायामभिमाना पुरञ्जनः ।

अंशारावृषिभांस्तपान् कुटुम्बी ममताकुटः ॥ ५ ॥

कन्यापरगृहा नष्टधीः कृपणो विषयात्मकः ।

नष्टप्रज्ञा हर्तृशया गन्धर्वयनर्बलात् ॥ ६ ॥

विशार्णां मृगुरीं वीर्यं प्रतिहृलाननाह्वानम् ।

पुत्रान् पौत्रान् गामात्याजाणां च गतवीह्वलम् ॥ ७ ॥

आमानं ययया प्रसूतं पञ्चाननविदूषितान् ।

दुर्गन्धिनामापन्ना नष्टम तत्प्रविशियाम् ॥ ८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! तू मय नगर

यवनराजके आह्वाकारी सैनिक प्रज्जार और कालकन्याके साथ इस पृथ्वीतलपर सर्वत्र विचरने लगे ॥ १ ॥ एक बार उन्होंने बड़े वेगसे बड़े सौंपसे सुरक्षित और संतारकी सब प्रकारकी सुख-सामग्रीसे सम्पन्न पुरञ्जन पुरीको घेर लिया ॥ २ ॥ तब, जिसके चतुर्मुखों के एक पुरुष शीघ्र ही नि सार हो जाता है, वह कामरूप बलवत्कारसे उस पुरीकी प्रजाको भोगने लगी ॥ ३ ॥ उस समय वे यवन भी कालकन्याके द्वारा भोगी जाती हुई उस पुरीमें चारों ओरसे मिश्र-भिन्न दारोंसे घुसकर उसकी विध्वंस करने लगे ॥ ४ ॥ पुरीके इस प्रकार पीड़ित होने जानेपर उसका स्वामित्वका अविमान रखनेवाले तथा मन्त्राप्रसूत, बहुकुटुम्बी राजा पुरञ्जनको भी नाना प्रकारके क्लेश सताने लगे ॥ ५ ॥

कालकन्याक आन्विजन करनेसे उसकी सारी धी नष्ट हो गयी तथा अत्यन्त विनयात्मक होनेके कारण वह बहुत हीन हो गया, उसकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी । गन्धर्व और यवनोंने बलवत्कारसे उसका सारा ऐश्वर्य छुट्ट दिया ॥ ६ ॥ उसने देखा कि सारा नगर नष्ट हो गया है; पुत्र, पौत्र मृग्य और अमात्यवर्ग प्रतिकूल होकर अनाथ करने लगे हैं; स्त्री रजःहाव्य हो गयी है, मरी देहको काट कट्याने बनाये कर रक्ता है और पाश्चात्यदेश शत्रुओंके हाथमें पड़कर नष्ट हो गया है । यह सब दृश्य पर पुरञ्जन अतार विताये दूब गया और उसे उस स्थितिसे दुर्गन्धजल पानेवाला ही ठपाय म पड़ गयी ॥ ७-८ ॥

कामानभिलषद्दीनो यावयामांश्च कन्यया ।
 विगतात्मगतस्तेह पुत्रदारांश्च लालयन् ॥ ९ ॥
 गार्धर्वयथनाक्रान्तां कालकन्योपनदिताम् ।
 हातुं प्रथक्रमे राजा तां पुरीमनिक्रमत् ॥ १० ॥
 भयनाम्नोऽग्रजा भ्राता प्रन्वारः प्रत्युपस्थितः ।
 ददाह तां पुरीकृत्स्नां भ्रतु प्रियचिकीर्षया ॥ ११ ॥
 तस्यां सन्दर्शमानायां सपौरः सपरिच्छदः ।
 कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उपास्यत सान्वयः ॥ १२ ॥
 यवनोपरुद्रायतनो प्रत्ताषां कालकन्यया ।
 पुष्यां प्रन्वारससृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३ ॥
 न श्लेके सोऽवितुं तत्र पुरुकुञ्जोरुषेपयुः ।
 गन्तुमैच्छततो वृद्धकोटरादिषु सानलात् ॥ १४ ॥
 शिथिलावयवो यर्हि गार्धर्वैर्हृतपौरुषः ।
 यवनैरिभी राजनुपलब्धो रूतेह ह ॥ १५ ॥
 दुहितुः पुत्रपौत्रांश्च आमिजामातृपार्षदान् ।
 स्वत्वावशिष्टं यत्किञ्चिद् गृहकोशपरिच्छदम् ॥ १६ ॥
 अहं ममति म्यीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही ।
 दप्पौ प्रमदया दीना विप्रयोग उपम्विते ॥ १७ ॥

कालकन्याने जिहें नि सार कर लिया था, उन्होंने
 मोहोंकी आन्तसासे यह दीन था । अपनी पारशैकित्सी
 गति और वन्धुजनोंके स्नेहसे बञ्चित रहकर उसका
 विषय केवल स्त्री और पुत्रके लालन पालनमें ही लगा
 हुआ था ॥ ९ ॥ ऐसी अवस्थामें उनसे विष्णुहनेकी इच्छा
 न होनेपर भी उसे उस पुरीको छाड़नेके लिये बाध्य
 होना पड़ा; क्योंकि उसे गन्धर्व और यवनोंने घेर रक्खा
 था तथा कालकन्याने कुल दिया था ॥ १० ॥ हमनेमें ही
 यवनराज भयके बड़े भाई प्रन्वारने अपने भाईका प्रिय
 करनेके लिये उस सारी पुरीमें आग लगा दी ॥ ११ ॥

अब यह नगरी जलने लगी तब पुरासी, सेवकवृन्द,
 सन्तानवर्ग और कुटुम्बकी सब मिनीके सहित कुटुम्ब
 बसल पुरजनको बचा हुआ ॥ १२ ॥ नगरको
 कालकन्याके हाथमें पड़ा देख उसकी रक्षा करनेवाले
 सर्पको भी बड़ी पीड़ा हुई, क्योंकि उसके निवासस्थानपर
 भी यवनोंने अधिकार कर लिया था और प्रन्वार
 उसपर भी आक्रमण कर रहा था ॥ १३ ॥ अब उस
 नगरकी रक्षा करनेमें यह सर्वथा असमर्थ हो गया, तब
 जिस प्रकार जलते हुए वृक्षके कोरमें रहनेवाले सर्प
 उससे निकल जाना चाहता है उसी प्रकार उसने भी
 महान् कष्टसे कोरते हुए वहाँसे भागनेकी इच्छा
 की ॥ १४ ॥ उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग डीले पड़ गये थे तथा
 गन्धर्वोंने उसकी सारी शक्ति नष्ट कर दी थी, अतः
 जब यवन शत्रुओंने उसे जाते देखकर रोक दिया, तब
 वह दुखी होकर रोने लगा ॥ १५ ॥

गृहासक पुरजन देख गेहान्तिमें मन्त्रेयनका माह
 रखनेसे अत्यन्त दुःखिहीन हो गया था । श्रीके प्रमदाशमें
 कैसकर यह बहुत दीन हो गया था । अब जब हमसे
 विष्णुहनेका समय उपस्थित हुआ, तब वह अपने पुत्री,
 पुत्र, पौत्र, पुत्रवधू दाम्पत्य, मीरत और धर, लज्जाना
 तथा अय्याम्य त्रिन पण्योर्वि उमकी ममतापर रोप
 थी (उनका भोग तो कभीका छूट गया था) उन सबके
 लिये इस प्रकार किन्ता करने लगा ॥ १६ १७ ॥

अनन्तपात्र तममि मघा नष्टस्मृति मया ।
 प्राश्नागनुम्यामिं प्रयत्नामङ्गदूषित ॥२७॥
 तामव मनसा गृह्णन् यभूव प्रमत्तात्तमा ।
 अन्तरं विमस्य राजमिहस्य यश्मनि ॥२८॥
 उपयेम योर्यर्पणां यंदर्भी मलयध्वज ।
 युधिनिर्जित्य राजन्यान् पाण्डु परपुरञ्जय ॥२९॥
 तस्यां म जनयाश्चर आत्मजामपितृसुताम् ।
 यवीयम सप्त सुतान् सप्त द्रविडभूषुत ॥३०॥
 एककन्याभयत्तपां राजनर्षुमर्षुदम् ।
 भाष्यत यद्वर्गधर्मही मन्वन्तरं परम् ॥३१॥
 अगम्य प्राग्दुहितरमुपयेम धृतप्रताम् ।
 यस्यां ददभ्युता जातश्चमवाहात्मजा मुनि ॥३२॥
 विभज्य तनयस्य क्ष्मां राजर्षिमलयध्वज ।
 आरिधविपु कृष्णं म जगाम कुलाचलम् ॥३३॥
 हिम्या गृहान् गुतान् भागान् वंदर्भी मन्त्रिगुणा ।
 अन्यधारात पाण्डुयग्न्यान्मन्व गजनीकरम् ॥३४॥
 तत्र चन्द्रयमा नाम ताम्रवर्णी यगात्का ।
 तपुषमन्त्रिर्नित्यमुभयप्राप्तना भूजन् ॥३५॥
 यन्त्राभिभूतकृष्ण पुण्यपान्निजात्क ।
 यत्तमान् जनगायकपुत्र तत्र आश्रित ॥३६॥
 गात्राभ्यान्तपपाणि भुविपात प्रियाप्रिय ।

यह वर्णिक विवेकहीन अवस्थामें आगर अधकारमें पड़ा
 निस्तर पड़ भोगी रहा । सोचि आमर्षिसे उमकी यह
 दुर्गति हुई थी ॥ २७ ॥ अन्त समयमें भी पुरश्चनको
 उमीका चिन्तन बना हुआ था । इसलिये दूसरे जन्ममें
 यह तृपश्रेष्ठ विदर्भराजके यहाँ सुन्दरी कन्या हाकर उत्पन्न
 हुआ ॥ २८ ॥ जब यह विदर्भनन्दिनी विवाहव्याप्त
 हुई, तब विदर्भराजने घोषित कर दिया कि इसे सर्वश्रेष्ठ
 पराक्रमी पौर ही स्थाई मकेगा । तब शत्रुओंके नाभोंको
 जीतनेवाले पाण्डुवनरेश महाराज मलयध्वजने समर
 भूमिमें ममस्त राजाओंको जीतकर उसके साथ विवाह
 किया ॥ २९ ॥ उससे महाराज मलयध्वजने एक
 इयामयव्रता कन्या और उससे छान् मान पुत्र उत्पन्न
 किये, जो आग चक्रकर द्रविडदशके सान राजा हुए
 ॥ ३० ॥ राजन् ' सिर उनमेंसे प्रत्येक पुत्रके बहुत-
 बहुत पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके वंशधर इस पृथ्वीका
 मन्वन्तरके अन्तक तथा उसके बाद भी मांगेंगे ॥ ३१ ॥
 राजा मलयध्वजकी पहली पुत्री यवी व्रतशीला थी ।
 उसके साथ अगस्त्य ऋषिकर विवाह हुआ । उसमें
 उनके दृक्पुत्र नामका पुत्र हुआ और दृक्पुत्रक
 इयमाह हुआ ॥ ३२ ॥

अन्तमें राजर्षि मलयध्वज पृथ्वीका पुत्रोंमें बौं कर
 भगवान् ग्रीष्मकी आराधना करनेकी इच्छामें मलय
 पर्वतपर चले गये ॥ ३३ ॥ उस समय—चन्द्रिका
 त्रिम प्रकार चन्द्रायका अनुसरण करना है—उनी
 प्रकार मत्तलपना दर्भान् अरने घर, पुत्र और ममस्त
 मांगोरा विवाहछिद पाण्डुवनरेशका अनुगमन किया
 ॥ ३४ ॥ वही चन्द्रयमा, ताम्रवर्णी और यगात्का
 नामकी तीन नर्तकी थी । उनका पतिर जन्म स्नान
 करके व प्रतिष्ठित अन्न गरि और अन्य कारणोंसे निमग्न
 पतन था ॥ ३५ ॥ पत्नी राजा उद्दोने कन्, कीर
 मूत्र, कन् पुत्र, कन् पुत्र और जन्मे ही निकट
 करत हुए बड़ा कष्टों तर किया । इसमें गिराफ
 उनका गरि बहुत सुख था ॥ ३६ ॥ महाराज
 मलयध्वजने मगर ममर्षि हाकर तीन उज्ज, यत्

१ यवीयम—यही अन्न । हाकर २८ व अधिका उत्पन्न मांग रही है । २ गा—ग—गर्भस्थ ।
 ३ यन्त्राभिभूतकृष्ण—यही मा ३५—वर्णक । ४ यत्तमान्—यही मा ३५—वर्णक ।

सुनदु खे इति द्वन्द्वान्पञ्चस्तमदर्शनः ॥३७॥
 तपसा विधया पक्कयाया नियमैर्ममैः ।
 पुपुज ब्रह्मप्यात्मानं विप्रिताश्चानिलाश्च ॥३८॥
 आस्ते म्याणुरिवैकत्र दिव्य वर्षश्चत स्त्रिः ।
 बासुदधे भगवति नान्यद्वाद्वाद्वा रतिम् ॥३९॥
 स व्यापकतयाऽऽत्मानं व्यतिरिक्ततयाऽऽत्मनि ।
 विद्वान् स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराय ह ॥४०॥
 साक्षाद्भगवताक्तं गुरुया हरिणा नृप ।
 विश्वद्विजानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥४१॥
 परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथाऽऽत्मनि ।
 वीर्यमाणा विहायेषामसादुपगम इ ॥४२॥
 पतिं परमधर्मं वैदर्भी मलयध्वजम् ।
 प्रम्या पर्यवरदित्वा भागान् सा पठिदेवता ॥४३॥
 चारवासा व्रतधामा वेणीभूतशिरोरुहा ।
 बभ्रावुप पतिं शान्ता दित्वा शान्तमिवानलम् ॥४४॥
 अत्रानती प्रियतमं यदापरतमज्ञाना ।
 मुष्पिरामनमामाद्य यथापूर्वमुपाचरत् ॥४५॥
 यदा नापतमवाद्भावुष्माण पत्युरर्चता ।
 आमीन्मविग्नहृया युधम्रण मृगी यथा ॥४६॥
 आत्मानं साधती दीनमवधु विश्रवाधुभिः ।

वायु, मूत्र-प्यास, प्रिय-अप्रिय और मुख-मुखादि सब
 द्वन्द्वोंको जीन लिये ॥ ३७ ॥ तप और उपासनासे
 वासनाओंको निर्मूल कर तथा पक्क-नियमान्तिके द्वारा
 इन्द्रिय, प्राण और मनको बशमें करके वे कल्पसे
 ब्रह्मभावना करने लगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार मी हीम
 बर्षेन्तिक स्थाणुके समान विश्वलमावस एक ही स्थानमें
 बैठ रह । भगवान् बासुदधमें सुदृढ़ प्रेम हो जानेके
 कारण इनने सम्पतक उन्हें शरीरदिका भी जान न
 हुआ ॥ ३९ ॥ राजन् । गुरुस्वरूप साक्षात् श्रीहरिके
 उपदेश किये हुए तथा अपने अन्त करणमें सब अन्त
 स्फुरित होनेवाले विद्वान् विज्ञानदीपकसे उन्होंने देख
 कि अन्त करणकी वृत्तिक प्रकाशक आत्मा स्वनाम्ना
 की भाँति वृद्धादि समस्त उपाधियोंमें व्याप्त तथा उनसे
 घृष्ट भी है । ऐसा क्लृप्त करके व तब
 औरसे उदासीन हो गये ॥ ४० ४१ ॥ फिर अपनी
 आत्माको परमधर्म और परमज्ञान का नाममें अभिहित
 देखा और अन्तमें इस अन्त चिन्तनको भी त्याग कर
 सर्वथा शान्त हो गये ॥ ४२ ॥

राजन् । इस समय प्रतिपद्यना कैदमी सब प्रकारके
 भोगोंको त्याग कर अपने परमधर्म पति मलयध्वजकी
 सेवा बड़ प्रेमसे करती थी ॥ ४३ ॥ वह श्रीभक्त
 चरण बिते रहती, कन-उपवासादिके कारण उसका
 शरीर अत्यन्त कृपा हो गया था और सिरके कन
 आपसमें उलझ जानेके कारण उनमें भट्टे पड़ गयी थी ।
 उस समय अपने पतिदेवके पास वह अज्ञानमय
 प्रसन्न भूतचित्त अन्तिके समीप अन्तिमरी शान्त सिद्धाके
 समान सुसोमित हो रही थी ॥ ४४ ॥ उसके पति
 परलोकवासी हो चुक थे परन्तु पूर्वज्ञ स्त्रि आत्मसे
 मिश्रमान थे । इस रहस्यका न जाननेके कारण वह
 उनके पास जाकर उनकी पूजार्थ सेवा करन लगी
 ॥ ४५ ॥ चरणसेवा करते समय जब उसे अपने पतिके
 चरणोंमें गरमी विभूय नही पादप ही, तब तो वह
 सुदृढ़ विद्वद्गीर्ण स्वीक समान बितने अकृत
 व्याकुल हो गयी ॥ ४६ ॥ उस वीरक जनमें अनेक
 अश्ली और दीन-अवस्थामें दमकर बड़ मही शाश्वत

मन्नावामिष्य विपिने सुख्य प्ररुरो सा ॥४७॥
 उतिष्ठोतिष्ठ गजपे इमामुन्धिमोबलाम् ।
 दस्युम्य ध्रुवधुम्यो विम्यती पातुमर्हसि ॥४८॥
 पथ विलपन्ती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् ।
 पतिवा पात्थामर्तु रूत्यभृष्यवतयत् ॥४९॥
 चित्तिं दाल्मयी चित्त्वा तस्यां परयु कलेवरम् ।
 आदीप्य चानुमरण विलपन्ती मना दधे ॥५०॥
 तत्र पूर्वतर कश्चित्मत्सा आक्षेप आत्मवान् ।
 सान्त्वयन् वल्गुना माम्ना वामाह रुदती प्रभो ॥५१॥

आक्षेप उक्ता

का त्वं कस्मामि च वाप शयाना यम्य गोचमि ।
 जानामि किं मग्वाप मां येनाग्र विचचर्ध ॥५२॥
 अपि मग्मि चामानमग्निप्राप्तमग्म सग्न ।
 हित्वा मां पदमन्विच्छन् भीमभोगरता गत ॥५३॥
 इमावह च त्वं चार्थ मग्नाया मानमायनी ।
 प्रभूतामन्तरा वीक महम्पगित्मगम् ॥५४॥
 म त्व विहाय मां पथागता ग्राम्यमतिर्महीम् ।
 विपग्न पन्मत्राधी स्याचिचिमितं शिवा ॥५५॥
 पश्चागम नरद्वारमकपात्र शिवापुत्रम् ।
 पदम् पश्चरिपत्न पश्चरहति ग्राधरम् ॥५६॥
 पश्चरिपथाधारागमा द्वा प्रानान्नप्रभा ।
 नद्यावपानि वग्नानि वृन्विष्टियमग्र ॥५७॥

इह और औसुओंकी धारामे स्तनोंका झिंगाती हुई यह
 जार जोरसे रोने लगी ॥ ४७ ॥ वह बाती, पात्रों ।
 उठिय, उठिये ममुदमे विधि इह यह वमुचरा दुपों
 और अधार्मिक राजाओंसे भयभीत हो रही है, आप
 इसकी रक्षा कीजिये ॥ ४८ ॥ पतिसे साथ यन्में
 गयी हुई वह अबला इस प्रकार विग्न करती पति
 चरणोंमें गिर गयी और रो-राकर औम् यद्दान लगी
 ॥ ४९ ॥ सकृदियेकी चिता बनाकर उसन उसपर
 पतिप्र शय रक्ता और अग्नि लगाकर विग्न करके
 करते स्वयं सभी होनेका निश्चय किया ॥ ५० ॥
 राजन् ! इसी समय उसका कण्ड पुराना मित्र एक
 आत्मजानी आक्षेप कहौ आया । उसन उम राती इह
 अबलाका मधुर बाणीमें समझाते हुए पड़ा ॥ ५१ ॥

आक्षेपण कहत—तू कौन है ? किमकी पुरी है ?
 और जिसके शिपे तू गोच कर रही है, वह यह साया
 हुआ पुरुष कौन है ? क्या तू मुझ नहीं जानती ? मैं
 बड़ी सरा मित्र हूँ, जिसका साथ तू पहले निभरा करती
 थी ॥ ५२ ॥ सगर ' क्या तुम्हें अरुनी यात्रा आती
 है, जिसी समय मैं तुम्हारा अविद्यान नामका मग्म
 था ? तुम पृथ्वीक मोग भागनक शिप निभाममानकी
 राजमे मुझ छोड़कर चले गये थे ॥ ५३ ॥ अथ ' अह
 मैं और तुम एक दूसरेक मित्र एक मानसनिधामी हम
 थे । हम गानों सहयोग करनिक विना जिसी निभम
 ग्यानक ही रह थे ॥ ५४ ॥ किन्तु मित्र ' तुम
 निभममोकी इच्छामे मुझ छोड़कर यही पृथ्वीर चले
 आये ' यही तूम-तूमन तुमन एक ' । तू त्वा हुआ
 ग्याम गया ॥ ५५ ॥ उममें तौच बर्गार भा प्रकाश
 एक नारायण, तीन पारका, एक पदपुत्र अरु गोच बना
 थे । वह लीक उगानकायामे बना हुआ था और उमर ।
 गाम्निनी एक थी दी ॥ ५६ ॥ महागम ' इति
 पथ विप उमर कण्ड थे भा इतिपथि ॥ ५७ ॥
 मत्र उर अर अग्र—मत्र उर अर अग्र—मत्र उर अर अग्र

विपणस्तु क्रियाशक्तिर्धृतप्रकृतिरच्यया ।

श्रुत्यधीनं पुमान्स्वयं प्रविष्टा नाशुच्यते ॥५८॥

तस्मिन्मयं गमया सृष्टा रममाणाऽभुवस्मृति ।

तत्सङ्गतीर्यहीं प्राप्तो दर्शा पापीयसीं प्रभो ॥५९॥

न त्वं विदमर्दुहिता नाप चीरं सुदृषव ।

न पतिम्बं पुरञ्जन्या रुद्रा नवसुखे यथा ॥६०॥

माया दया मया सृष्टा यत्पुमांस्त्रिष मसीम् ।

मन्यस नाभय यदं हसौ पद्मवायामसिम् ॥६१॥

इदं भवाद्य चान्यस्त्वं त्वमेवाऽविचरन् भा ।

न नौ पश्यन्ति क्वपि स्थितं जातु मनागपि ॥६२॥

यथा पुरुष आत्मानमकमाप्नोषुषुषा ।

दिधाभूतमवैश्वतं तथैवान्तर्मात्रया ॥६३॥

एव न मानसा ईमा इह न प्रतिपाधित ।

मय्यनन्त्याभिचारण नष्टमाप पुन स्मृतिम् ॥६४॥

वर्हिष्यन्तनन्त्याप्यनम पागम्येन प्रार्थितम् ।

यपमयप्रिया त्वा भगवान् विप्रभाजन ॥६५॥

ज्ञानेन्द्रियो—छ बैचकुल बे, क्रियाशक्तिरूप फलेंद्रिय
ही याजार थीं, पौंच भूत ही उसके कमी श्रेय न
इतनावे उपान्तम-अरण बे और बुद्धिशक्ति ही उसकी
सामिनी थी । यह ऐसा नगर था जिसमें प्रवेश करने
पर पुरुष ज्ञानशून्य हो जाता है—अपन स्वप्न
भूत जाता है ॥ ५७-५८ ॥ भाई ! उस नगरमें उसकी
सामिनीक फंदमें पड़कर उसका साथ निद्रा फले-
करते तुम भी अपन स्वरूपका भूल गये और उसीके
सहमे तुम्हारी यह दृष्टि हुई है ॥ ५९ ॥

दत्तो, तुम न तो विनर्मताजकी पुत्री ही हो और न
यह भीर मय्यप्यव तुम्हारा पति ही । जिसन तुम्हें नौ
शायेंक नगरमें बं किमा था, उस पुरञ्जनीक पति भी तुम
नहीं हो ॥ ६० ॥ तुम पहले जन्ममें अपनेको पुरुष समझते
थे और अब सती की मानते हो—यह सब सही ही
फैलायी हुई माया है । वास्तवमें तुम न पुरुष हो न स्त्री ।
हम दोनों तो ईस हैं, हमारा जो वास्तविक स्वरूप है,
उसका अनुभव करो ॥ ६१ ॥ मित्र ! जा मैं (ईश्वर)
हूँ, क्ही तुम (जीव) हो । तुम मुझसे भिन्न नहीं हो
और तुम विचारमूलक देखो मैं भी बड़ी हूँ जो तुम हो ।
धार्मी पुरुष हम दोनोंमें कमी पाइता सा भी अंतर नहीं
देखत ॥ ६२ ॥ बीमे एक पुरुष अपने शरीरकी परत
को शीशेमें आर किसी व्यक्ति के नेत्रमें भिन्न-भिन्न रूपसे
दम्पत है कम ही—एक ही आत्मा विद्या और अविद्यारी
तथाभिन्न भग्स अपनेका श्वर और जीवक रूपमें न
प्रवरसे दम्प रहा है ॥ ६३ ॥

इस प्रकार जब ईम (ईश्वर) न उसे सावजन
रिया, तब वह मानमात्रका ईस (जीव) जन्म
मय्यनमें स्थित हो गया और उसे अपन मित्रक निद्रासे
पूरा हुआ अवधान फिर प्राप्त हो गया ॥ ६४ ॥
प्रार्थितवर्हिष ! मैंने तुम्हें परमात्मसे दत्त आत्मजनक
विश्वान कराया है क्योंकि जगत्तत्ता जगती-प्रभो
परमात्मजन ही अधिक प्रिय है ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराण पञ्चम स्कन्धोऽष्टमोऽध्यायः

पुरातनात्मनःप्राप्तिरारब्धाय ॥ ८ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

नाम ११

पुरज्जनोपायपानका तात्पर्य

प्राचीनयहिसास

राजा प्राचीनयहिसास कहा—मगध के राजा

मगध के राजा उमाभिर्न मगधगवगम्यत ।

यद्यपि नदिजानन्ति न यद्य कर्ममोहिता ॥ १ ॥

मैं आपक बचनोंका अभिप्राय पूरा-पूरा नहीं आ रहा है । विशेषी पुरुष ही इनका तात्पर्य समझ सकते हैं, हम कर्ममोहित जीव नहीं ॥ १ ॥

नाम उपाय

पुरुष पुरुज्जन विद्यापद ध्यानकन्यात्मनः पुरुषः

यत्किञ्चित्तुप्याय यदुपायमपायकम् ॥ २ ॥

श्रीनारदज्ञान कहा— राजन् ! पुरुज्जन (महाकाव्य निर्माता) जीव हैं—जा आपन लिये प्यार, तान, चार अथवा बहुत विशेषांग या बिना पुरुष की प्रशंसा पुरे नवार पर लेता है ॥ २ ॥ उन जीवका सुखा जो अविज्ञान नामसे कहा गया है, वह ईश्वर ईश्वरोंदि किसी भा प्रकारके नाम, गुण अथवा कर्मसे जीवोंका उपाय पता नहीं चलता ॥ ३ ॥ जीवन जब-जब दुःखरूप मर्षा प्राकृत विरपोंका भागनेकी इच्छा की तब हमने दूसरे गरीबोंकी अपेक्षा ना द्वार से होय और ना विशेषांग मान्यता ही पसन्द किया ॥ ४ ॥ बुद्धि अथवा अधिपत्य ही तुम पुरुज्जनी नामकी भी जाना ईश्वर कागद दह और इन्द्रिय आत्मे में मगधनका भाव लयल डाला है और पुरुष ईश्वर आधय रहत गगनमें इन्द्रियोंका विरपोंका भागता है ॥ ५ ॥ हम इन्द्रियों ही उमक मित्र हैं, जिनसे कि सब प्रकृति का ज्ञान और कर्म होत है । इन्द्रियोंकी बुनियाद ही उमकी मर्षियों और प्राण ज्ञान प्यार उपाय-मगधनरूप पौष इन्द्रियोंका प्राणवायु ही नरकका रक्षा करनेका पौष फलका मग है ॥ ६ ॥

याऽविज्ञानादतस्तस्य पुरुषस्य मगधः ।

यस्य विद्यापन पुम्भिनामभिवा प्रियागुणं ॥ ३ ॥

यदाविष्टमनुपुष्प क्काम्यन प्रकृतगुणान् ।

नरद्वारं द्विहस्तादग्रि तथा मनुत भाषिणि ॥ ४ ॥

बुद्धि तु प्रमत्त विद्याममाहमिति यत्कृतम् ।

यामाश्रयत हऽस्मिन् पुमान् बुद्धिऽस्य भिगुगान् ॥ ५ ॥

मगध इन्द्रियगणा ज्ञान कर्म च यत्कृतम् ।

मगधस्तदुपाय प्राण पञ्चभूतिपथाग ॥ ६ ॥

पृथक् मना विद्यादभयन्द्रियनायकम् ।

पञ्चासा पञ्च विषया मगध नरमं पुष्प ॥ ७ ॥

अणि ११ नामिदं कर्ता शुभ निभगुदाविनि ।

५ ६ दाग पटियाणि यम्भन्ति प्रमत्त ॥ ८ ॥

उम नरक का प्रकृति का भावना ना । नर कृतक मगध ना नरकाका ना मामा ना और । कर्त ना है । इनका भाव मुझ, कि ७ ८ गुण-ना मगध और निरकर मुझ ना ना है इन्द्रियों कागद दह और इन्द्रियों कागद दह सिद्धिसे रहत है ॥ ८ ॥

अधिणी नासिक आस्यमिति पञ्चपुरः कृताः ।

दक्षिणा दक्षिण कर्म उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥ ९ ॥

पश्चिमे इत्यधोदारी गुदं चित्रमभिहोष्यति ।

सद्योवाऽऽविर्द्युती चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ।

रूप विभ्राजितं ताम्बां विचष्टे चक्षुषेभ्यः ॥ १० ॥

नलिनी नाळिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते ।

प्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसखिद्वयः ॥ ११ ॥

आपणो न्यवहारोऽत्र विप्रमन्थो बहूदनम् ।

पितृहृदक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥ १२ ॥

प्रवृत्त च निवृत्त च शास्त्र पञ्चासंस्कृतम् ।

पितृपानं देवपानं भोत्राच्छ्रुतधराब्रजेत् ॥ १३ ॥

आमुरी मेढमपागार्म्यवाया ग्रामिणां रति ।

उपम्यो दुर्मदं प्राक्तो निर्भर्तिगुदं उच्यते ॥ १४ ॥

वैश्वं नरकं पायुर्लुब्धकाऽभौ तु म मृणु ।

हन्तादां पुमान्मास्यां युक्ता याति कराति च ॥ १५ ॥

अन्तं पुरं च हृदयं विपृथिर्न उच्यते ।

तत्र मादं प्रमादं वा इव प्रामाति सन्तुर्गुणं ॥ १६ ॥

इसमें दो नेत्रगोळक, दो नासाग्रिद और एक मुख—
पौच पूर्वके द्वार हैं, दाहिने कानका दक्षिणका और बा
कानका उत्तरका द्वार समझना चाहिये ॥ ९ ॥ पुन
और लिङ्ग—ये तीनोंके दो छिद्र पश्चिमके द्वार हैं ।
अधोदा और आविमुखी नामके भा दो द्वार एक तल
पर बतलाये थे, वे नेत्रगोळक हैं तथा ऊपर विच्यवि
नामका देश है, जिसका इन द्वारोंसे जीव चक्षु-निर्गम्य
सहायतासे अनुभव करता है । (चक्षु-निर्गम्यो ही
पङ्कज पुमान् नामका सखा कहा गया है) ॥ १० ॥
दोनों नासाग्रिद ही नलिनी और नाळिनी नामके द्वार
हैं और नासिकका विषय गन्ध ही सौरभ कहा है तब
घण्टेप्रिय अवधूत नामका मित्र है । मुख मुख नामका
द्वार है । उसमें रहनेवाला नासिन्द्रिय किन्ना है और
रसनेप्रिय रसमिद (रसक) नामका मित्र है ॥ ११ ॥
बाणीका व्यापार आपण ही और तरङ्ग-तरङ्गक कन
बहूदन है तथा दाहिना कर्ण पितृहृद द्वार बाको कर्ण
देवहू कहा गया है ॥ १२ ॥ कर्णकण्डरूप प्राप्ति-
मार्गाका शास्त्र और उपासनाकाण्डरूप निवृत्तिर्मात्र
शास्त्र ही कमला दक्षिण और उत्तर पाञ्चल्येश है ।
इन्हें ध्वजप्रियरूप ध्वजधरकी सहायतासे सुनकर जीव
कमला पितृपान और देवपान मार्गमें जाता है ॥ १३ ॥
लिङ्ग ही आमुरी नामका पश्चिमी द्वार है, क्षीप्रप्र
ग्रामक नामका देश है और निङ्गमें रहनेवाला उपरध्वज
ह्रस्व नामका मित्र है । गुण निर्भर्ति नामका
पश्चिमी द्वार है ॥ १४ ॥ नरक वैश्व नामका देश
है और गुणमें स्थित पायु इन्द्रिय सुम्भक नामका मित्र
है । इनके सिवा ये पुरुष अथ बतलाये गये थे, उनका
वक्ष्य भी सुना । वे हाथ और पैर हैं इन्हींकी
सहायतासे जीव कमला सच करम करता और जहाँ
तहाँ जाता है ॥ १५ ॥ हृदय अन्त पुर है, उसमें
रहनेवाला मन ही निवृत्ति (विपृथीन) नामका प्रिय
सेरक है । जीव उस मनका सखापि गुणोंके बरत
ही प्रमत्तना ह्रस्वरूप विनोद अथवा मादकी प्राप्ति हो

१ मा वा — मिहार्द्र । २ मा ता — विष्णो । ३ प्राचीन प्रतिभे यद्वत्तं च इत्यारि तदर्थे उच्यते
आरम्भपर भी । इन्हींके व्यापारतत्त्वका अर्थ यहाँ नहीं उद्दिष्ट है, बल्कि आगे किया है ।

यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ।

तथा तथोपद्रष्टाऽऽत्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥१७॥

देहो रथस्त्विन्द्रियाभ्यः संवत्सररथोऽगतिः ।

द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वज पञ्चासुबन्धुरः ॥१८॥

मनोरश्मिर्बुद्धिस्ततो हृषीको ब्रह्मकूबरः ।

पञ्चन्द्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूढकः ॥१९॥

आकृतिर्विक्रमो बाह्यो भृगतृष्णा प्रभावति ।

एकदशेन्द्रियचमू पञ्चदशानाविनोदकृत् ॥२०॥

संवत्सरबन्धवेग कालो येनापलङ्घितः ।

तत्साहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रय स्मृताः ॥

हरन्त्यायुः परिक्रान्त्या पट्युत्तरद्वयत्रयम् ॥२१॥

कालकन्या जरा साष्टाष्टोक्त्या नाभिनन्दति ।

खसारं जगृहे मृत्यु क्षयाय यवनेधरः ॥२२॥

आभयो व्याधयस्तस्य सैनिका यथनाभराः ।

भूवापसर्गाश्चरय प्रन्वारा द्विविधो ज्वरः ॥२३॥

एवं बहुविधैर्दुर्दैवभूतात्मसम्भवं ।

हे ॥ १७ ॥ बुद्धि (राजमहिषी पुरस्कनी) जिस जिस प्रकार स्वप्नायस्यामें विकारको प्राप्त होती है और नामस्व अथस्यामें इन्द्रियादिको विवृत्त करती है, उसके गुणोंसे त्रिस होकर आत्मा (जीव) भी उसी-उसी रूपमें उसकी वृत्तियोंका अनुकरण करनेको बाध्य होता है— यद्यपि वस्तुतः वह उनका निर्विकार साक्षीमात्र ही है ॥ १७ ॥

शरीर ही रथ है । उसमें ज्ञानेन्द्रियमय पाँच घोड़े जुते हुए हैं । देखनेमें संवत्सररूप कालके समान ही उसका अप्रतिहत वेग है, वास्तवमें वह गतिहीन है । पुण्य और पाप—ये दो प्रकारके कर्म ही उसके पहिये हैं, तीन गुण ध्वजा हैं, पाँच प्राण कोरियों हैं ॥ १८ ॥ मन बागदोर है, बुद्धि सारथि है, हृदय बैठनेका स्थान है, सुख-दुःखादि ब्रह्म हुए हैं, इन्द्रियोंके पाँच विषय उसमें रक्खे हुए आयुध हैं और त्वचा आदि सात धातुएँ उसके आवरण हैं ॥ १९ ॥ पाँच कर्मेन्द्रियों उसकी पाँच प्रकारकी गति हैं । इस रथपर चढ़कर रथीरूप यह जीव भृगतृष्णाके समान मिथ्या विषयोंकी ओर दौड़ता है । ग्याह इन्द्रियों उसकी सेना हैं तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा उन-उन इन्द्रियोंके विषयोंको अभ्यासपूर्वक ग्रहण करना ही उसका शिकार लेटना है ॥ २० ॥

जिसके द्वारा काष्णका ज्ञान होता है, वह संवत्सर ही चण्डकेग नामक गन्धर्वराज है । उसके अधीन जो तीस सी साठ गन्धर्व बनाये गये थे, वे दिन हैं और तीन सी साठ गन्धर्वियाँ रात्रि हैं । ये बारी-बारीसे चक्ररुभाते हुए मनुष्यकी आयुको हरते रहते हैं ॥ २१ ॥ बृद्धावस्था ही साक्षात् कर्मकन्या है, उसे कोई भी पुरुष पसंद नहीं करता । तब मृत्युरूप यवनराजन लोकका संहार करनेके लिये उसे बहिन मानकर स्वीकार कर लिया ॥ २२ ॥ आभि (मानसिक क्लेश) और व्याधि (रोगादि शारीरिक कष्ट) ही उस यवनराजके पैदल बल्लनवाले सैनिक हैं तथा प्राणियोंको पीदा पहुँचाकर शीघ्र ही मृत्युके मुकाम ले जानाका शक्ति और तृष्णा दो प्रकारका ज्वर ही प्रन्वार मानकर उसका भार है ॥ २३ ॥

इस प्रकार यह दहाभिमानी जीव अज्ञानसे आच्छादित होकर अनेक प्रकारके व्याधिभौतिक, व्याप्यामिक और व्याधि-

क्लिश्यमानः श्वसं वर्षं देहं देही तमावृतः ॥२४॥
 प्राणन्द्रियमनोधमोनात्मन्यप्यस्य निगुण ।
 शेते कामलवान्ध्याप्यन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥२५॥
 यदाऽऽत्मानमविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुम् ।
 पुर्यस्तु विपज्जत गुणेषु प्रकृतेः स्वच्छम् ॥२६॥
 गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः ।
 श्रुन्तु कृष्णं लोहितं वा यथाकर्मभिजायते ॥२७॥
 श्रुत्वात्प्रकाशभूमिष्ठोऽहोऽनाप्नोति कश्चित् ।
 दुःखोदकान् क्रियायासान्तमः शोकोत्कटान् कश्चित् ॥
 क्वचित्पुमान् कश्चिच्च स्त्री कश्चिन्नामयमन्धरीः ॥
 द्यौ मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भव ॥२९॥
 क्षुत्परीता यथा दीनः सारमयो गुहं गृहम् ।
 चरन् बिन्दति यद्विष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥३०॥
 तथा कामाश्रया जीव उच्चावचपथा जमन् ।
 उपर्यधा वा भन्ये वा रीति विष्टं प्रियाप्रियम् ॥३१॥
 दुःखेभ्येकतरथापि दैयभूतारम्भेतेषु ।
 जीवस्य न स्पृशन् दृष्टं स्यान्नेषत्प्रतिक्रिया ॥३२॥
 यथा हि पुरुषा भारं शिम्मा गुरुमुद्रहन् ।
 ॥ म्कन्धनम आधते तथा सवा प्रतिनिवा ॥३३॥

१. शिविक कष्ट भोगता हुआ मां कर्तक मनुष्य-शरीर पर
 रहता है ॥ २४ ॥ वस्तुतः तो वह निर्गुण है, किन्तु
 प्राण, इन्द्रिय और मनके धर्मोंका अपनेमें अवलंब
 कर मैं-मोरेपनके अविमानसे वैधर क्षुद्र कि जेव
 चिन्तन करता हुआ तरह-तरहके कर्म करता रहता है
 ॥ २५ ॥ यह यथापि स्वर्गप्रकाश है, तथापि अज्ञान
 सबक परमगुरु आत्मस्वरूप धीमङ्गान्तेके स्वरूपका नही
 जानता, तबतक प्रकृतिके गुणोंमें ही बैठा रहता है
 ॥ २६ ॥ उन गुणोंका अविमाननी होनेसे वह भिन्न
 होकर सात्त्विक, राजस और तामस कर्म करता है
 तथा उन कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म
 लेता है ॥ २७ ॥ वह कभी तो सात्त्विक कर्मोंके
 द्वारा प्रकाशबहुल स्वर्गादि लोक प्राप्त करता है, कभी
 राजसी कर्मोंके द्वारा दुःखमय रमोगुणी लोकमें जाता
 है—जहाँ उसे तरह-तरहके क्लेशोंका क्लेश उठना पड़ता
 है—और कभी तमोगुणी कर्मोंके द्वारा शोकबहुल तमोमयी
 योनियोंमें जन्म लेता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार अपने
 कर्म और गुणोंके अनुसार वेद्योनि, मनुष्ययोनि, पक्षी
 पशु-पक्षीयोनिमें जन्म लेकर वह जन्मान्ध जीव कभी
 पुरुष, कभी स्त्री और कभी नपुंसक होता है ॥ २९ ॥
 जिस प्रकार बेचार मूखसे व्याकुल कुत्ता घर-घर
 भ्रमता हुआ अपने प्रारम्भानुसार कहीं बंदा जाता है
 और कहीं भात खाता है, उसी प्रकार यह जीव भिन्न-भिन्न
 नाना प्रकारकी वासमाओंको लेकर ऊँचे-नीचे गति
 ऊपर-नीचे अवस्था मण्यके लोकोंमें भ्रमता हुआ अपने
 कर्मानुसार सुख-दुःख भोगता रहता है ॥ ३० ॥ १ ॥
 आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक—इन
 तीन प्रकारक दुःखोंमेंसे किसी भी एकसे जीवकर सर्वथा
 छुटकारा नहीं हो सकता । यदि कभी ऐसा जान
 पड़ता है तो वह केवल तात्कालिक निवृत्ति ही है
 ॥ ३१ ॥ वह ऐसी ही है जैसे कोई सिरपर गद्दी
 बाँधा होकर ले नामचाखा पुरुष उसे कंधपर रखे ।
 इसी तरह सभी प्रतिक्रिया (दुःख-निवृत्ति) जाननी
 चाहिये—यदि किसी उपायसे मनुष्य एक प्रकारके
 दुःखसे छुट्टी पाता है, तो दूसरा दुःख आकर उसका

नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् ।

द्रव्यं अविद्योपसृतं मय्यने स्वप्न इवानव ॥३४॥

अथे अविद्यमानेऽपि ससृत्विर्न निवर्तते ।

मनसा लिङ्गलक्षण मय्यने विचरतो यथा ॥३५॥

अथात्मनाऽर्थमृतस्य यतोऽनर्थपरम्यग ।
संसृतिस्तद्व्यवच्छिन्नो भक्त्या परमया गुरो ॥३६॥

वासुदेव भगवति भक्तियोगः समाहित ।

सप्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥३७॥

सोऽचिरादेव राजर्षे स्वादच्युतकथाभय ।

मृष्यत भद्रभानस्य नित्यं स्वादधीयतः ॥३८॥

यथा भागवता राजन् साधवो विश्वदाशया ।

भगवद्गुणानुसन्धनमवगम्यप्रपेतमः ॥३९॥

सन्निहन्महत्सुखरिता मधुभिषागिर

पीयूषश्रेणमरितः पणितः स्रवन्ति ।

साये विषन्त्यरितया नृप गात्रधर्म

स्नातमृगान्पानान्दधयशाकमादा ॥४०॥

पुनरप्युक्ता नियं जावलाकं स्वभावज्ञ ।

न क्षमति हरन्तं कथामृतनिधौ रतिम् ॥४१॥

प्रजापतिपति मायाद्रुगमान गिरिशा मनु ।

त्यादय प्रजापत्या नैष्टिक मनकादय ॥४२॥

मरीचिरप्यद्विगमौ पुनरप्य पुनरु प्रतु ।

मृगुरामिष्ट इत्यन मदन्ता मन्त्रवादिन ॥४३॥

सिरपर सवार हो जाता है ॥ ३३ ॥ शुद्धद्वय नरेन्द्र !
जिस प्रकार स्वप्नमें होनवाणा स्वप्नान्तर तम स्वप्नसे
सर्वथा छूटनेका उपाय नहीं है, उसी प्रकार कर्मकर्म-
भोगसे सबका छूटनेका उपाय कदा कर्म नहीं हो
सकता, क्योंकि कर्म और कर्मकर्म-भोग दोनों ही
अविद्यायुक्त होते हैं ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार स्वप्नस्थानमें
अने मनोमय चिह्नसरीसे विचरनेवाले प्राणीका स्वप्नके
पदार्थ में होनपर भी भासते हैं, उसी प्रकार ये
दृश्यपदार्थ वस्तुतः न हानेपर भी, जवना ज्ञान निश्च
नहीं टूटती, वने ही रहते हैं और जीवकी जन्म-मरण-
रूप संसारसे मुक्ति नहीं मिलना (अतः इसकी अत्यन्तिक
निवृत्तिका उपाय एकमात्र आत्मज्ञान ही है) ॥ ३५ ॥

राजन् ! जिस अविद्याक कारण परमपदमय
आत्माका यह जन्म-मरणरूप अनपरम्परा प्राप्त हुई है,
तमकी निवृत्ति गुरुस्वरूप धीरिमें सुदृढ़ मति हानेपर
हो सकती है ॥ ३६ ॥ भगवान् वासुदेवमें एकप्रमा
पूवक सम्पूर्ण प्रकारसे किया हुआ मक्तिमात्र ज्ञान और
वैराग्यका आविर्भाव परम्परा है ॥ ३७ ॥ राजर्षे !
यह मक्तिमात्र भगवान्की कपाओंक आश्रित रहता है ।
इसलिये जो अद्वैतार्थक उन्हीं प्रतिनिधि सुनना या पढ़ना
है, तम बहुत शीघ्र इससे प्राप्ति हो जाती है ॥ ३८ ॥
राजन् ! जहाँ भगवद्गुणोंका वटने और सुननेमें तत्पर
विशुद्धचित्त मज्जन रहत है तम साधु-ममात्रमें सब
आर महापुरुषोंके मुग्धमें निवृत्त हुए धीमधुगूढमन्त्रान्
क वरिष्ठरूप शुद्ध अमृतकी अनसरी मत्तियों बहती
रहती हैं । जो एसा अमृतचित्तमें धरगमें तत्पर अने
कर्णपुन्योक्त्या तम अमृतका एकद्वार पान करत हैं,
उन्हीं मृगान्मात्र, मय शत्रु और मन्द अति कुत्र भी
कथा नहीं पहुँचा सकत ॥ ३९ ॥ हाय !
स्वभावतः प्राप्त ज्ञानराज इन भूत-निगमानि जिनोमें
मया विद्य हुआ जायममुनाय आन्तिक वदन्त विप्रुमें
प्रम नहीं करता ॥ ४० ॥ मायात् प्रजापति-
इत्यादी, भगवान् इत्यादि मन्त्रवादिन मनु एतानि
प्रजापति-मनवादि-निक इत्यादी मरीचि अति,
अद्विग पुनरप्य, पुनरु मनु मनु कतिपय अति मी-प

अद्यापि वाचस्पतयन्तपोविद्यासमाधिभिः ।

पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम् ॥४४॥

शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरविस्तरे ।

मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्तं मज्जन्तो न विदुः परम् ॥४५॥

यदा यमतुगृह्णाति भगवानात्मभाषित ।

त अहाति मतिं लाक वेदे च परिनिष्ठितम् ॥४६॥

तस्मात्कर्मसु बहिष्मन्महानादर्धकाशिषु ।

मार्गदृष्टिं कृथाः धात्र्यमर्द्धिष्वस्युषस्तुषु ॥४७॥

स्वं लोकं न विदुस्त वं यत्र द्रवो जनार्दन ।

आहुर्युप्रभियो वेदं मकर्मकमतद्विदः ॥४८॥

आत्मीर्यदर्म प्रागग्रं क्षास्त्वेन विरतिमण्डलम् ।

नान्धा बृहदधामानी कमे नापि यत्परम् ।

तन्कर्म इतिताव यस्मा विद्या तन्मनिर्षया ॥४९॥

हरिर्देवभूतामात्मा स्वयं प्रकृतिगमः ।

तपात्रमूलं गणं यत क्षमा मृणामिह ॥५०॥

तव प्रियतमधामा यता न भयमण्यपि ।

इति येन व विद्वान्वा विद्वान्ममुन्महति ॥५१॥

मार्ग उवाच

प्रश्न एवं हि मद्रिदा भवत पुण्यपथ ।

• मा वा - र्द्धि ज्ञेयं । २ पापीन मन्ये नारद उवाच नही दे ।

जिने ब्रह्मवादी मुनिगण हैं, समस्त ब्राह्मणों के अतिरिक्त
होनेपर भी तब, उपासना और समाधिके द्वारा ब्रह्म
ब्रह्मकत हार गये, फिर भी उस सर्वसाक्षी परमेश्वर
आज तक न देख सके ॥ ४२-४३ ॥ वे भी ब्रह्म
ब्रह्मकत हैं, उसका पार पाना हैंसी-सेम नहीं है ।
अनेकों महानुभाव उसकी खाली बना करके अपने
बताये हुए ब्रह्महस्तादि गुणोंसे युक्त इत्यादि देवताओं
के रूपमें, मिश्र-मिश्र कर्मोंके द्वारा, यद्यपि उस परमेश्वर
का ही यजन करते हैं तथापि उसका स्वरूप
वे भी नहीं जानते ॥ ४५ ॥ इदमे बार-बार कितन
किये जानेपर मगवान् जिस सम्म जिस जीनर हूँ
करते हैं, उसी समय वह लौकिक व्यवहार एवं वैदिक
कर्म-भागकी बहमूल आस्थासे छुड़ी पा जाना है ॥ ४६ ॥

बहिष्मन् । तुम इन कर्मोंमें परमार्थबुद्धि मत करो ।
ये सुननेमें ही प्रिय जान पड़ते हैं, परमार्थका तो त्याग
नहीं करते । ये जो परमार्थवत् दीक्ष पड़ते हैं, इन्हीं
कर्म अज्ञान ही कारण है ॥ ४७ ॥ जो मन्त्रिमति कर्म-
वादी लोग वेदोंको कर्मपरक बनाते हैं, वे वास्तवमें उसका
मर्म नहीं जानते । इसका कारण यही है कि वे अपने
स्वरूपधृत लोक (आत्मतत्त्व) को नहीं जानते, यही
साक्षात् श्रीजनार्दन मगवान् विवक्षित हैं ॥ ४८ ॥
पूवकी ओर अग्रमगवाले कुशाओंसे सम्पूर्ण मूल्हवकी
आश्रयित करके अनेकों पशुओंका बंध करनेसे तुम बड़े
कर्ममिथानी और उद्धत हो गये हो किन्तु बालकसे तुम्हें
कर्म या उपासना—किसीके भी रहस्यका पता नहीं है ।
शास्त्रमें कर्म तो बही है, जिससे ब्रह्मविज्ञे प्रवृत्त मिश्र
जा सके और विद्या भी बही है, जिससे मगवान्में विद्य
मगे ॥ ४९ ॥ श्रीहरि मयूर्य देवधारिणिके अस्मा, निषावक
और मगत्र कारण है अब उनके घरगणकी मनुष्य-
व एकमात्र आश्रय है और उहीसे संसारमें सबका बन्धन
हो सकता है ॥ ५० ॥ जिससे किसीको अगुमार भी पण
नहीं होना बही उमरा प्रियतम आमाई एना जा उदा
जानता है बही हानी है और जा हानी है बही पुन एवं
माध्या श्रीहरि है ॥ ५१ ॥

श्रीनारदजी कहत हैं—पुण्यपथ 'वर्णाश्रम' का

कर्म गया है उमसे तुम्हारे प्रवृत्त उता दा गत ।

अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥५२॥

सुदृढं सुमनसां शरणे मिथित्वा

रक्तपङ्क्तिगणसामसु लुम्भकणाम् ।

अग्रे वृकानसुतपुत्रोऽविगणय्य यान्त

पृष्ठमृगं सुगाय लुम्भकवाणिमित्रम् ॥५३॥

[अस्वार्थः]

सुमनसधर्मसां स्त्रीणां शरण आश्रमे
पुष्पमधुगन्धवत्सुदृढतमं काम्यकर्मविषाकवं काम-
सुखलवं सैङ्गयौपस्थ्यादि विचिन्वन्तं मिथुनीभूय
तदभिनिवधितमनसं पङ्क्तिगणसामगीतवदति-
मनोहरवनितादिबनालापेष्वतिसरामसिप्रलोभितकर्ण-
मग्रे वृकपृथ्वदात्मन आपुर्हरतोऽहोरात्रान्तात् काल-
लवविशेषानविगणय्य गृहपु विहरन्तं पृष्ठत एव
परोक्षमनुग्रहचोलुम्भक कृतान्तोऽन्तःक्षरेण यमिह
पराविभ्यति तमिममात्मानमहो राजन् भिक्षुहृदयं
द्रष्टुमर्हसीति ॥ ५४ ॥

स त्वं विचक्ष्य मृगयेष्टितमारमनोऽन्त

भित्तं नियच्छ हृदि कर्मघुनीं च चित्तं ।

वज्रहन्ताभ्रममसत्तमपृथगार्थं

प्रीणीहि ईसद्वरणं विरम क्रमेण ॥५५॥

अब मैं एक मजीमौनि निश्चित किया हुआ गुप्त साधन बताता
हूँ, ध्यान देकर सुनो ॥ ५२ ॥ 'पुष्पवाणिक्यमे' अपनी
हरिनीके साथ बिहार करता हुआ एक हरिण मस्त वृम
रहा है, वह दूध आदि छान छोट अङ्गुरोंकर चर रहा है ।
उसके कान मौरिके मधुर गुंजारमे लग रह हैं । उसके
सामन ही दूसरे जीवोंको मारकर अपना पत्र पालनेवाले
भक्षिये ताक लगाये खड़े हैं और पीछेसे क्षिपत्री म्याचने
बाँधनेके चिये उमपर बाण छेक दिया है । परंतु हरिण
इतना बेसुच है कि उसे इसका कुछ भी पता नहीं है ।
एक बार इस हरिणकी दशापर विचार करो ॥ ५३ ॥

राजन् ! इस रूपकका आशय सुनो । यह मृतप्राय
हरिण तुम्हीं हो, तुम अपनी दशापर विचार करो । पुष्पोंकी
तख ये क्षियों केकल दखनेमें सुन्दर हैं,
इन क्षियोंके रहमकर घर ही पुष्पवाणिक्य है । इसमें
रहकर तुम पुष्पोंके मधु आर गन्धके समान सुदृढ सक्रम
कर्मके फलकूप, बीम और जलनक्षत्रिके प्रिय ध्यानेवाले
मोहन तथा क्षीसङ्ग आदि तुच्छ भोगोंका हँड रह हा ।
क्षियोंसे घिरे रहते हा और अपने मनको तुम्ने ठन्हींमें
कँसा रक्खा है । क्षी-पुत्रोंका मधुर भाग्य ही मौरिक
मधुर गुंजार है, तुम्हारे कान ठसीमें अत्यन्त आसक्त हो
रहे हैं । सामन ही भक्षियोंके मुँहके समान कालके वंश
दिन और रात तुम्हारी आयुको हर रहे हैं, परंतु तुम
उनकी कुछ भी परवा न कर गृहस्थी सुखोंमें मस्त हो
रह हो । तुम्हारे पीछे गुप्त-पुष्ट लग्न हुआ क्षिपत्री करत
अपने छिपे हुए बाणसे तुम्हारे हृदयका दूरसे ही बाँध
बाधना चाहता है ॥ ५४ ॥ इस प्रकार अपनको मृग-
सी स्थितिमें देखकर तुम अपने चित्तको हृदयके भीतर
निरुद्ध करो और नयीकी मौलि प्रपञ्चित होनेवाली
अवगनेन्द्रियकी बाधा हृदिको चित्तमें स्थापित करो
(अन्तर्मुखी करो) । जहाँ कभी पुरुषोंकी चर्चा होती
रहती है उस गृहस्थाश्रमको छोड़कर परमईशोंके आश्रय
श्रीहरिके प्रसन्न करो और क्रमशः सभी विषयोंसे विरत
हो जाओ ॥ ५५ ॥

राजोवाच

श्रुतस्मन्वीक्षितं ब्रह्मन् भगवान् यदभाषत ।

नेतृज्ञानन्तुपाश्याम्याः किं न भूयुर्विदुर्बहि ॥५६॥

संशयोऽत्र तु मे विप्र साछिभस्तत्कृतो महान् ।

श्रवमात्रपि हि सुश्रुन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥५७॥

कर्मभ्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् ।

अमुनान्वन देहेन शुणानि स यदभ्युते ॥५८॥

इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ।

कर्म यत्क्रियते प्रोक्त परोक्ष न प्रकाशते ॥५९॥

नारद उवाच

यनैवारभते कर्म तनैषामुत्र तत्पुमान् ।

मुञ्चे द्रव्यवधानेन लिङ्गान मनसा मयम् ॥६०॥

धनानमिममुत्पुञ्च यत्सन्तं पुरुषा यथा ।

कमात्सन्त्याहित मुहूर्त्तं तादृशेनधरेण वा ॥६१॥

समैते मनसा यद्यन्तावदमिति शृण्वन् ।

शुशीयात्तत्पुमान् राक्ष कर्म येन पुनर्मवः ॥६२॥

यथानुमीयते चित्तमभयैरिन्द्रियहिते ।

एवं प्राग्देह्य कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥६३॥

नानुमूर्ध क चानेन देहेनादृष्टमभ्युतम् ।

पदाचिदुपलभ्येत यमूर्ध यादृगात्मनि ॥६४॥

राजा प्राचीनपद्मिने कहा—भावन ! आपने इस कर्मके मुझ जो उपदेश दिया, उसे मैंने सुना और उसका विशेषरूपसे विचार भी किया । मुझ कर्मका उपदेश दानवाले इन आचार्योंको निश्चय ही इसका ज्ञान नहीं है, यदि ये इस विषयको जानते तो मुझे इसका उपदेश क्यों न करते ॥ ५६ ॥ विप्रवर ! मेरे उपाध्यायोंने कर्म-तत्त्वके विषयमें मेरे हृदयमें जो महान् संशय उत्पन्न किया था, उसे आपने पूरी तरहसे दूर किया । इस विषयमें इन्द्रियोंकी गति महान् के कारण मन्त्रद्वारा शक्ति-को भी मोह हो जाता है ॥ ५७ ॥ वेदविदोंके कर्म जगह-जगह सुना जाता है कि 'पुरुष इस लोकमें किसी द्वारा कर्म करता है, उस स्थूलशरीरको यही शरीर परलोकमें कर्मसे ही बने हुए दूसरी देहसे उत्पन्न फल भोगता है । किन्तु यह बात कैसे हो सकती है ? (क्योंकि उन कर्मोंका कर्ता स्थूल शरीर तो यही नष्ट हो जाता है ।) इसके सिवा जो जो कर्म यहाँ किये जाते हैं, वे तो दूसरे ही क्षणमें अदृश्य हो जाते हैं । वे परलोकमें फल देनेके लिये किस प्रकार पुन प्रकट हो सकते हैं ? ॥ ५८-५९ ॥

धीनारक्षसीने कहा—राजन ! (स्थूल शरीर तो शिक्कशरीरके अधीन है, जब कर्मोंका उत्पत्तास्थि होतीपर है) जिस मन प्रधान शिक्कशरीरकी सहायतासे मनुष्य कर्म करता है, वह तो मरनेके बाद भी उसका साथ रहता ही है, जब वह परलोकमें उत्पन्नरूपसे सर्व समीक द्वारा उत्पन्न फल भोगता है ॥ ६० ॥ सजाकरमें मनुष्य इस भीषित शरीरका अधिमान तो छोड़ देता है, किन्तु इसीके सम्पन्न अपना इससे निम्न प्रकारके पञ्च-स्थी आदि शरीरसे वह मनमें संस्काररूपसे स्थित कर्मोंका फल भोगता रहता है ॥ ६१ ॥ इस मनके द्वारा जीव जिन भी-पुत्रादिको ये मेरे हैं और देहादिको 'यह मैं हूँ' ऐसा कहकर मानता है उनके किये हुए पाप-पुण्यद्विरूप कर्मोंको भी यह अपने ऊपर ले लेता है और उनका फल उसे व्यर्थ ही फिर जन्म लेना पड़ता है ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दानोंकी वेदाओंसे उनके प्रेरक चित्तका अनुमान किया जाता है उसी प्रकार चित्तकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी वृत्तियोंसे पूर्वजन्मके कर्मोंका भी अनुमान होता है (अतः कर्म जड़रूपसे फल देनेके लिये कालान्तर्गमें मौजूद रहते हैं) ॥ ६३ ॥ कभी-कभी देह्य यथार्थ है कि जिस वस्तुका इस शरीरसे कभी अनुभव नहीं किया—जिसे मैं कभी देह्य न सुना ही—उसका स्वप्नमें, यद्यपि होती है, वैसा ही अनुभव हो जाता है ॥ ६४ ॥

तेनास्य सादृशं राज्ञिच्छिन्नो देहसम्भवम् ।

भद्रत्साननुभूतोऽर्थो न मनः स्रष्टुमर्हति ॥६५॥

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि संसृति ।

भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यत ॥६६॥

अहमध्वत चात्र कश्चिन्मनसि दृश्यते ।

यथा तथानुमन्तव्यं दशकालक्रियाभयम् ॥६७॥

सर्वे क्रमातुरोद्येन मननीन्द्रियगोचराः ।

आयान्ति यंगशो यान्ति सर्वे समनसो जना ॥६८॥

सर्वैकनिष्ठ मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ।

तमध्वन्द्रमवावेदसुपरज्यावभासते ॥६९॥

नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे ध्यवधीयते ।

यावद् बुद्धिमताऽध्वर्त्यगुणान्यूहा क्षनादिमान् ॥७०॥

सुप्तिमूर्च्छोपतापद् प्राणायनविधातत ।

नेह तदहमिति स्मृतं मृग्युग्रज्वाग्योरपि ॥७१॥

गमे पान्यऽप्यपोक्त्वा द्वाद्वादशविधं तदा ।

राजन् ! तुम निश्चय मानो कि ज़िहवेहके अमिमानी जीवको उसका अनुभव पूर्वबन्धमें हो चुका है, क्योंकि जो वस्तु पहले अनुभव की हुई नहीं होती, उसकी मनमें वासना भी नहीं हो सकती ॥ ६५ ॥

राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो । मन ही मनुष्यके पूर्व रूपोंको तथा भावी शरीरादिको भी बता देता है; और जिनका भावी जन्म हानशास्त्र नहीं होता, उन सख-वेत्ताओंकी विशेषसुकृति का पता भी उनके मनसे ही लगा जाता है ॥ ६६ ॥ कभी-कभी स्वप्नमें देश, काल अथवा क्रियासम्बन्धी ऐसी बातें भी देखी जाती हैं, जो पहले कभी देखी या सुनी नहीं गयीं (जैसे पर्यटकी चागीपर समुद्र, दिनमें तारे अथवा अपना सिर कट्टा दिखायी देना, इत्यादि) । इनके गीबनेमें निद्रादोषको ही कारण मानना चाहिये ॥ ६७ ॥ मनके सामने इन्द्रियोंसे अनुभव होने योग्य पदार्थ हैं । भोगरूपमें बार-बार आते हैं और भोग समाप्त होनेपर चले जाते हैं; ऐसा कई पदार्थ नहीं आता, जिसका इन्द्रियोंसे अनुभव ही न हो सके । इसका कारण यही है कि सब जीव मनसहित हैं ॥ ६८ ॥ साधारणतया तो सब पदार्थोंका क्रमशः ही भाल हाता है, किन्तु यदि किसी समय भगवन्निस्तनमें लग्न हुआ मन विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो जाय, तो तबमें भगवन्का संसर्ग होनेसे एक साथ समस्त विषय भी मान हो सकता है—जैसे एह दृष्टिको विषय न होनेपर भी प्रकाशरूपका चन्द्रमाके ससर्गसे दीप्ति लगता है ॥ ६९ ॥ राजन् ! जबतक गुणोंका परिणाम एवं बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शब्दादि विरपोका सङ्घात यह अनादि त्रिदेह बना हुआ है, तबतक जीवके अन्तर स्थूलदहक प्रति भेदेण इम मावका अभाव नहीं हो सकता ॥ ७० ॥ सुप्ति, मूर्च्छा, व्यस्त दृष्ट तथा मृत्यु और तीव्र ज्वरान्तिके समय भी इन्द्रियोंकी व्युत्पत्त्याका कारण मैं और भोरेपन की तरह प्रतिनिर्दिष्ट नहीं, किन्तु उस समय भी उनका अमिन्न तो बना ही रहता है ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार अमावस्यादि रात्रिमें चन्द्रमा रहत हुए भी शिवायी नहीं दता, उसी प्रकार युवा

लिङ्गं न दृश्यते युनः कृद्वां चन्द्रमसो यथा ॥७२॥

अये अविद्यमानेऽपि सत्सृष्टिने निषर्षते ।

ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥७३॥

एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिहृत् पोटश्चविस्तृतम् ।

एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥

अनेन पुरुषो ब्रह्मजुपादये विद्युश्चति ।

हर्षं शोकं भयं दुःखं मुक्त्वा चानेन विन्दति ॥७५॥

यथा तृक्षजप्लेकं नापयत्यपवाति च ।

न त्यजेन्निद्रमायोऽपि प्राग्देहाभिमर्ति जन ॥७६॥

यावदन्म न विन्दत व्यवधानेन कर्मणाम् ।

मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम् ॥७७॥

यदाहं हरितान् ध्यायन् कर्माभ्याचिनुतेऽसकृत् ।

सति कर्मण्यविद्यायां कन्धः कर्मण्यनात्मन ॥७८॥

अतस्तदपवादार्थं भज सर्वनात्मना हरिम् ।

पश्यस्तदात्मकं विश्वं स्मित्युत्पश्यप्यया यतः ॥७९॥

मेघेय उवाच

भागवतमुख्यो भगवाभारदो हंसयोर्मसिम् ।

प्रदर्श्य ब्रह्ममामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥८०॥

प्राचीनवर्हि रामपिः प्रजामर्गाभिरधुन ।

वस्त्रामे स्पष्टप्रणीत होनेवाला यह एकदश इन्द्रियनिष्ठ वि-
शरीर गर्भावस्था और वास्तव्यकालमें रहते हुए भी इन्द्रियों का
पूर्ण विकास न होनेके कारण प्रतीत नहीं होता ॥७२॥ मित
प्रकार स्वप्नमें किसी वस्तु का अस्तित्व न होनेपर भी जो
बिना स्वप्ननित अनर्थकी निवृत्ति नहीं होती—उसी प्रकार
सांसारिक वस्तुएँ यद्यपि अस्त हैं, तो भी अविद्याका
बीज उनका चिन्तन करता रहता है, इसलिये उसका
जन्म-मरणरूप संसारसे छुटकर नहीं हो पाता ॥७३॥

इस प्रकार पञ्चतन्मात्राओंसे बना हुआ तथा सत्त्व
तत्त्वोंके रूपमें विकसित यह त्रिगुणमय सङ्गत ही
लिङ्गशरीर है । यही चेतनाशक्तिसे युक्त होकर जीव
कहा जाता है ॥ ७४ ॥ इसीके द्वारा पुरुष मित-मित
देहोंको ग्रहण करता और त्यागता है तथा इसीसे उसे
हर्ष, शोक, भय, दुःख और सुख आदिकार अनुभव
होता है ॥ ७५ ॥ जिस प्रकार जोक अकतक हूतरे
एकको नहीं एकद लेती, तत्कतक पल्लेको नहीं
छोड़ती—उसी प्रकार जीव मरणकाल उपस्थित होनेपर
भी अकतक देहात्मक कर्मोंकी समाप्ति होनेपर हुए
शरीर प्राप्त नहीं कर लेता, तबतक पल्ले के स्त्रीके
अभिग्रहणको नहीं छोड़ता । उक्तम् । यह मन प्रधान
लिङ्गशरीर ही जीवके जन्मसृष्टिका कारण है ॥७६-७७॥
जीव जब इन्द्रियबलित भोगोंका चिन्तन करते हुए
बार-बार उन्हींके लिये कर्म करता है, तब उन कर्मोंके
होते रहनेसे अविद्याका यह देहादिके कर्मोंमें बँध
जाता है ॥ ७८ ॥ अतएव उस कर्मबन्धनसे छुटकर
पानेके लिये सम्पूर्ण विश्वको आकाशरूप देखते हुए सब
प्रकार भीहरिका भजन करो । उन्हींसे इस विश्वकी उत्पत्ति
और स्थिति होती है तथा उन्हींमें ध्य होता है ॥७९॥

श्रीमेघेश्वरी कहते हैं—निर्दुरी ! मऊमेघ धी-
नारदजीने रामा प्राचीनवर्हिंको जीव और ईश्वरके
स्वरूपका निर्दर्शन कराया । फिर वे उनसे विश्व लेकर
सिद्धलोककत्रे चले गये ॥ ८० ॥ तब रामर्षि प्राचीन-
वर्हि भी प्रजापादनका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर

आदिश्व पुत्रानगमचपसे कपिलाभमम् ॥८१॥

तत्रैकाग्रमना धीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् ।

निमुक्तमङ्गोऽनुभजन् भक्त्या तन्सात्म्यतामगात् ॥८२॥

एतदप्यममपरोक्ष्य गीर्तं दर्शयिष्यामि ।

यः भक्त्येव मृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥

एतन्मुह्यन्त्यक्षसा युवनं पुनानं

देवपितृव्यमुत्तमि सुतमात्मशौचम् ।

यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पापममृष्यं

नास्मिन् भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥८४॥

अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाभिगतमद्भुतम् ।

एवंस्त्रियाऽऽश्रमं पुनश्चिन्तोऽयुक्त्वा च सत्यम् ॥८५॥

तस्या करनेके लिये कपिलाधमको चले गये ॥ ८१ ॥

वहाँ उन वीरवरने समस्त विषयोंकी आसक्ति छोड़
एकाम्र मनसे भक्तिपूर्णक श्रीहरिके चरणमण्डलोंका चिन्तन
करते हुए सात्त्विकपद प्राप्त किया ॥ ८२ ॥

निष्पाप विदुरजी ! देवर्षि नारदक परोक्षरूपसे
कहे हुए इस आत्मज्ञानको जो पुरुष सुनगा या सुनायेगा,
वह शीघ्र ही लिङ्गवेष्टके बन्धनसे छूट जायगा ॥ ८३ ॥

देवर्षि नारदके मुखसे निकला हुआ यह आत्मज्ञान
भगवान् मुकुन्दके प्यासे सम्बद्ध होनेके कारण
त्रिलोकीको पवित्र करनेवाला, अन्तःकरणका शोधक तथा
परमात्मपदको प्रकाशित करनेवाला है । जो पुरुष इसकी

कथा सुनगा, वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जायगा और फिर
उसे इस संसार चक्रमें नहीं भटकना पड़ेगा ॥ ८४ ॥ विदुर

जी ! गृहस्थाश्रमी पुरुषानके रूपकसे परोक्षरूपमें कहा हुआ
यह अद्भुत आत्मज्ञान मैंने गुरुजीकी कृपासे प्राप्त किया
था । इसका तात्पर्य समझ लेनेसे मुक्तिपुष्प जीवका

देहाभिमान निवृत्त हो जाता है तथा उसका परत्येक-
में जीव पित्त प्रकार कर्मका फल भोगता है । यह
संशय भी मिट जाता है ॥ ८५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो संदितायां चतुर्थस्कन्धे विदुरभिर्ययसंवादे प्राचीनबर्हिर्नारद-
संवादाध्यायेऽष्टोऽध्यायः ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

प्रचेतामोंको श्रीविष्णु भगवायका वरदान

विदुर उवाच

विदुरजीन पूछा—इहान् ! आपन राजा प्राचीन

ये स्वयाभिहिता ममन् मुता प्राचीनबर्हिषः ।

ते रुद्रगातन हरि सिद्धिमाप्नु प्रताप्य काम् ॥ १ ॥

किं पार्थिवस्य परमं वाध

कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिन ।

आमाद्य दय गिरिर्षं यद्वन्द्या

मापु पर नूनमथ प्रयेतम् ॥ २ ॥

बर्हिषे जिन पुत्रोंका वणन किया था, उन्होंने रुद्रग-
त द्वारा श्रीहरिकी स्तुति करने कथा सिद्धि प्राप्त की ॥ १ ॥

पार्थिव ! मोक्षप्राप्ति के आनाशपणक अन्यस्त दिय
भगवान् शङ्करका अवस्थात् सात्त्विक्य प्राप्त करके प्रचेतामोंने
मुक्ति तो प्राप्त की ही होगी, इससे पहले हम आपको
अपना परमात्ममें भी उद्गोंन कथा पाया—वह बन्धनमयी

रामा करे ॥ २ ॥

मैत्रेय उवाच

प्रचेतसोऽन्तरुद्धौ पितुरादेशकारिणः ।

जपयन्नेन सपसा पुरश्चनमसोपयन् ॥ ३ ॥

दक्षवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः ।

तेषामाविरभूत्कञ्च क्षान्तेन क्षमयन् रुचा ॥ ४ ॥

सुपर्णस्कन्धमारुद्धो मेरुपुङ्गविवाम्बुदः ।

पीतवासा मणिग्रीवः कूर्चन् वितिमिरा दिक्षुः ॥ ५ ॥

कञ्चिष्मिन्ना कनकवर्णविभूषणेन

भ्रात्रस्फपोलवदनो विलसत्किरीटः ।

मष्टाधुचैरुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रै

रासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥ ६ ॥

पीताम्बुताट्टशुभ्रमण्डलमम्बलक्ष्म्या

स्पर्धचिह्न्या परिवृतो वनमालयाऽऽद्यः ।

बहिष्मतं पुष्प आह सुतान् प्रपन्नान्

पर्जन्यनन्दकृतया सघृणत्वलोकः ॥ ७ ॥

श्रीभगवानुवाच

वरं हृणीष्व भद्रं यो यूयं मे नृपनन्दनाः ।

सौहार्देनापृथगर्थमास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥ ८ ॥

योऽनुसरति सन्ध्यायां युष्माननुदिनं नरः ।

तस्य ब्राह्मन्वात्मसामर्थ्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥ ९ ॥

ये तु मां रुद्रगीतेन ग्राम प्राव समाहिता ।

स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥ १० ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! त्रिपदे के वाक्पति

प्रचेताओंने समुद्रके अंदर कछे रहकर स्वर्गीयके बन्-
कपी यक्ष और तपस्याके द्वारा समस्त शरीरके ऊपरक
भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न कर लिया ॥ ३ ॥ तत्पश्चात्
करते-करते दस हजार वर्ष बीत जानेपर पुण्यपुत्र
श्रीनारायण अपनी ममोहर कान्तिद्वारा उनके तपस्व-
जमित स्नेहस्रोते शान्त करते हुए सौम्य विप्रासे उनके
सामने प्रकट हुए ॥ ४ ॥ गरुडजीके कक्षपर बैठे हुए
श्रीभगवान् ऐसे बाल पकते थे, मानो सुन्दरके स्निग्धपर
कर्मेष्ट्याम फटा छपी हो । उनके श्रीवक्त्रमें मनोहर
पीताम्बर और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थे ।
अपनी दिव्य प्रभासे वे सब दिशाओंका वन्दनकर रह
कर रहे थे ॥ ५ ॥ वनपक्षिते सुवर्णमय आभूषणोंसे युक्त
उनके कमनीय कपोल और मनोहर सुसम्पन्नकी कर्कश
शोभा हो रही थी । उनके मस्तकपर श्वेतमिश्रता हुआ
मुकुट शोभायमान था । प्रभुकी जाठ मुखाब्जमें जाठ
आयुध थे, देवता, मुनि और पार्षदगण सबमें उपस्थित
थे तथा गरुडजी किन्नरोंकी भाँति सामग्य पक्षोंकी
अतिसे कीर्तिगाम कर रहे थे ॥ ६ ॥ उनकी कठ
कंठी-कंठी स्थूल मुखाब्जोंके बीचमें लक्ष्मीजीसे स्पर्ध
करनेवाली कमलाबा विराजमान थी । आदिपुरुष श्री-
नारायणने इस प्रकार पधारकर अपने शरणगत प्रचेताब्ज-
की ओर दयावशसे निहारते हुए मेघके समान
गम्भीर वाणीमें कहा ॥ ७ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—राजपुत्र ! तुम्हारा कल्याण
हो । तुम सबमें परस्पर बड़ा प्रेम है और स्नेहवश तुम
एक ही धर्मका पाठन कर रहे हो । तुम्हारे रस कार्य
सौहार्दसे मैं बड़ा प्रसन्न हूँ । मुझसे बर माँगे ॥ ८ ॥
जो पुरुष सार्यफलके समय प्रतिदिन तुम्हारा स्तन
करेगा, उसका अपने माहर्षीमें अपने ही समान प्रेम
होगा तथा समस्त जीवोंके प्रति मित्रताका भव्य हा-
नसयोग ॥ ९ ॥ जो लोग सार्यकण्ड और प्रातःकण्ड
एकाग्र चित्तसे रुद्रगीतद्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उनके मैं
वर्षीय कर और सुख बुद्धि प्रदान करूँगा ॥ १० ॥

१ मां पा — ब्राह्मिण्युना । २ मां पा — कर्कशी । ३ प्राचीन प्रतिमें श्रीभगवानुवाच इत्यादि शब्द
नहीं हैं । ४ मां पा — सुवर्णमय ।

यस्य पितृगणेशमग्रहीष्ट मुदान्विता ।

अथो ष उल्लसी कीर्तिर्लोकाननु भविष्यति ॥११॥

भविता विभुत पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः ।

य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥१२॥

कण्डोः प्रम्लोचया लम्बा कन्या कमललोचना ।

तां चापविदां बगुर्धूम्रह्वा नृपकन्दनाः ॥१३॥

सुतश्चामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् ।

देहिनीं गेदमानाया निंदधे स दयान्वितः ॥१४॥

प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता ।

तत्र कन्यां परारोहां तामुद्वह्य माधिरम् ॥१५॥

अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां च सुमन्यवा ।

अपृथग्धर्मशीलेषु मृत्युत्पत्त्यर्पिताश्रया ॥१६॥

दिम्बवर्षसहस्राणां सहस्रमहर्तृजिसः ।

भौमान् भोक्ष्यथ भोगान् वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥१७॥

अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पङ्कगुणाश्रया ।

उपयास्यथ मदाम निर्विघ्न निरयादतः ॥१८॥

गृह्ण्वामिदं च तां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ।

मद्रातां पातयामानां नै बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥

नम्यन्वदृष्टय मन्त्रो मर्षतदुपश्रवादिभिः ।

न मुसन्ति न शोषन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥२०॥

तुमलोर्षेण बड़ी प्रसस्तासे अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की है, इसमें तुम्हारी कमनीय कीर्ति समस्त लोकोंमें फैल जायगी ॥ ११ ॥ तुम्हारे एक यहा ही विख्यात पुत्र होगा । वह गुणोंमें किसी भी प्रकार ब्रह्मानीसे कम नहीं होगा तथा अपनी सन्तानसे तीनों लोकोंको पूर्ण कर दगा ॥ १२ ॥

रानकुमारो । बगुर्धूम्रह्वा श्रमिक क्रोनाशक लिये इन्द्रकी भती हुई प्रम्लोच कन्यासे एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुई थी । उसे धृष्टकृत वह स्वर्गलोकको चली गयी । तब वृहस्पति उस कन्याको धर्म पालन-मोसा ॥ १३ ॥

जब वह मृत्युसे व्याकुल होकर राने लगी तब औपवियों-के राजा चन्द्रमाने त्यागवश उसके मुँहमें अपनी अमृतवर्षिणी तर्जनी अंगुली द दी ॥ १४ ॥ तुम्हारे पिता आमकल मेरी सेवा (भक्ति) में लगे हुए हैं, उन्होंने तुम्हें सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है ।

अतः तुम शीघ्र ही उस देवोपम सुन्दरी कन्यासे विवाह कर लो ॥ १५ ॥ तुम सब एक ही धर्ममें लगे रहो ।

और तुम्हारा स्वभाव भी एक-सा है, इसलिये तुम्हारे ही सम्पन्न धर्म और स्वभाववाली वह सुन्दरी कन्या तुम समीचीन पत्नी होगी तथा तुम समीचे उसका समान अनुग्रह होगे ॥ १६ ॥ तुमलोग मेरी कृपासे दस लाख दिव्य वयोवृद्ध पूर्ण ब्रह्मन् रहकर अनेकों प्रकारके पारिव और दिव्य भोग भोगोगे ॥ १७ ॥ अन्तमें मेरी अनिच्छा भक्तिके इत्येक समस्त ब्रह्मनाशक मन्त्र दग्ध हो जानेपर तुम इस लोक तथा परलोकक नरकतुल्य भोगोंसे उपरत होकर मेरे परमधामको आओगे ॥ १८ ॥

जिन लोगोंके कर्म मरणदर्पणमुद्रिसे होते हैं और निमग्न सारा समय मेरी कथाचर्चाओंमें ही बीतता है, व गृहस्थाश्रममें रहें तो भी घर उनका बन्धनका कारण नहीं होते ॥ १९ ॥ वे निर्यद्वि मेरी शीर्षों सुमते रहते हैं, इसलिये ब्रह्मवाणी ब्रह्माओं द्वारा मैं ज्ञान स्वरूप परब्रह्म उनका इत्येमें निरप नया-नया-सा भक्तता रहता हूँ और मुझ प्राप्त कर संनेपर जीवोंको न भेद

हो सफला है, न शोक और न हर्ष ही ॥ २० ॥

१ प्रा पा — ब शास्त्री । २ प्रा पा — करवे । ३ प्रा पा — परेभ्यावर्त । ४ प्रा पा —

५ प्रा पा ।

मयेय उवाच

एष भ्रुवाण पुरुषार्थभाजन
वनार्त्तन प्राञ्जलय प्रघंससः ।

तदर्धनधन्वन्तमारजामला
गिरागुणन गद्गदया सुहृत्तमम् ॥२१॥

प्रघंसस उवाच

नमा नम क्लृप्तविनाशनाथ
निस्पितान्तरगुणाङ्घ्र्याय ।

मनार्वाचावगुणोत्तमाय
सर्वोद्यमार्गगताब्धने नम ॥२२॥

शुद्धाय गान्ताय नम म्वनिष्ठया
मनसपाथ मिलमबुद्धयाय ।

नमो नगत्स्यानलमोक्षयु
गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥२३॥

नमा विगुदमत्ताय हरय इग्मिधसे ।
यामुत्पाय कृष्णाय प्रमथ मर्वसात्वताम् ॥२४॥

नम कमलनाभाय नम कमलमालिने ।
नम कमलपात्राय नमस्त कमलघ्ण ॥२५॥

नम कमलरिञ्जलपिण्डात्मलक्ष्मणाय ।
मवभूतनिवामाय नमाऽयुद्धम्हि माघिण ॥२६॥

नम भगवता वनस्पतयुग्मययम् ।

आरिष्टन निष्टानां किमयनुकम्पितम् ॥२७॥

गतास्त्वं हि विमुभिभाष्य दानयु वन्मल ।

यनुमयन काल मयुद्धगभट्टन्यन ॥२८॥

भामिप्रमाणवती कहते हैं—मगवान्क दर्शनसे
प्रवेताओंका रजोगुण-तमोगुण मय नष्ट हो चुका था ।
जब उनसे सकल पुरुषार्थोंके आश्रय और सबक फल
सुझाई श्रीहरिने इस प्रकार कहा, तब वे हाथ जोड़कर
गद्गद वाणीसे कहकर लगे ॥ २१ ॥

प्रघटाभोंने कहा—प्रभो ! आप मणोंके समान हो
करनेवाले हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं । वे आकाश
उत्तर गुण और मामोक्षा निरूपण करते हैं । आपका
वेग मन और वाणीके वेगसे भी बढ़कर है तथा आपका
स्वरूप समी इन्द्रियोंकी गतिसे परे है । हम आकाश
सार-सार नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ आप अपने स्वरूपमें
स्थित रहनेके कारण नित्य-शुद्ध और शान्त हैं, मल-
निमित्तक कारण हमें आपमें यह मिथाईत भल
रहा है । वास्तवमें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और हनने
किये आप मायायुग्मोंकी स्वीकार करने की शक्ति
विष्णु और महादेवस्वरूप धारण करते हैं । हम आपको
नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ आप विद्वद् सत्त्वस्वरूप
हैं, आपको ज्ञान संसारबन्धनको दूर कर देता है ।
आप ही सत्य मायकोंके प्रभु ब्रह्मदेवतान्न भगवान्
श्रीकृष्ण हैं, आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥ काशी
ही मांभिते ब्रह्माण्डस्वरूप कमल प्रकट हुआ था, जाते
कण्ठमें कमलकुसुमोंकी माळा सुशोभित है तथा आपका
धारण कमलज समान कोमल है, कमलधनन ! आपको
नमस्कार है ॥ २५ ॥ आप कमलकुसुमकी बेमरु
समान स्वच्छ वीणास्वर धारण किये हुए हैं, ममल
भूतोंके आश्रयस्थान हैं तथा सबक सत्प्री हैं, हम
आपको नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥

मगवान् । आपको यह समझ सगुल कमलोंकी
निष्ठति परमेश्वर हैं, हम अनिया अस्मिता रूप
द्वारा कमलोंसे पीड़ितोंके मांभने आपन इसे प्रकट शिष्ट
है । इसमें बन्धन हमारा और क्या हुआ था ॥ २७ ॥
अमहान्दारी प्रभा । नीनोर तथा बरनकल मगल पुको-
का इतनी ही हुआ करनी पाठिये कि मगल मगल

उन तीनजनोंका यह हलका है हम प्रकट मगल का

येनोपशान्तिर्भूतानां शुक्लकानामपीहताम् ।

अतर्हि तोऽन्तर्हृदये कस्माश्चो वेद नाशिषः ॥२९॥

अमावेव धरोऽशाकमीप्सितो जगत पते ।

अमश्चो भगवान् येपामपवर्गगुरुर्गतिः ॥३०॥

धरं हृणीमहेर्धापि नाथ त्वत्परत्वं परात् ।

न ह्यतस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ॥३१॥

पारिजातेऽस्त्रसा लब्धे सारज्ञोऽन्यथा सेवते ।

त्वदङ्गमिमूलमासाद्य साध्वार्त्तिकं किं हृणीमहि ॥३२॥

यावत्ते मायया स्पृष्टा अमाम इह कर्मभिः ।

तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गं स्याश्चो भवे भवे ॥३३॥

तुलयां लब्धनापि न स्वर्गं नापुनर्ममम् ।

मेगवत्सङ्गिमङ्गल्य मर्त्यानां किमुताद्विषः ॥३४॥

यत्रेव्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णाया प्रगमो यतः ।

निर्विरं यत्र भूतेषु नाद्रगा यत्र कश्चन ॥३५॥

यत्र नारायण माक्षाङ्गवान्म्यासिनां गतिः ।

सस्तृपते सत्कथामु मुक्तसङ्गं पुन पुन ॥३६॥

तेषां विचरतां पत्रम्पां तीर्थानां पावनच्छया ।

भीतम् किं न गप्तेन सायकानां समागम ॥३७॥

यद्य तु माक्षाङ्गवन् भयस्य

प्रियस्तु मस्युः क्षणसङ्गमनः ।

किया करें ॥ २८ ॥ इसीसे उनके आश्विनोक्त चित्त शान्त हो जाता है । आप तो क्षुद्र-से-क्षुद्र प्राणियोंके भी अन्त करणोंमें अन्तर्यामीरूपसे निगलमान रहते हैं । फिर आपके उपासक हमलोग जान्-जो कामनाएँ करते

हमारी उन कामनाओंको आप क्यों न जान लेंगे ॥ २९ ॥ जगदीश्वर ! आप मोक्षक मार्ग दिखाने वाले और सब पुरुषार्थस्वरूप हैं । आप हमपर प्रमत्त हैं, इससे बचकर हमें और क्या चाहिये । वस, हमारा अभीष्ट कर तो आपकी प्रमत्तता ही है ॥ ३० ॥ तथापि, नाथ ! हम एक बार आपसे अवश्य माँगते हैं । प्रभो ! आप प्रकृति आदिसे परे हैं और आपकी विभूतियोंका भी कोई अन्त नहीं है, हमलिये आप 'अनन्त' कहे जाते हैं ॥ ३१ ॥ यदि भ्रमरको अनायास ही कल्पवृक्ष मिल जाय, तो क्या वह किसी दूसरे वृक्षपर सेवन करेगा ? तब आपकी चरणशरणमें आकर अब हम क्या-क्या माँगें ॥ ३२ ॥ हम आपसे कबन यही माँगते हैं कि जबनक आपकी मायासे मोहित होकर हम अपने कर्मानुसार संसारमें भ्रमने रहें, तबतक जन्म-जन्ममें हमें आपके प्रसी भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता रहे ॥ ३३ ॥ हम तो मगधक्षत्रोंके क्षणमरके सङ्गके सामने स्वर्ग और मोक्षको भी कुछ नहीं समझते, फिर मानकी योग्यकी तो बात ही क्या है ॥ ३४ ॥ मगधक्षत्रोंके समाजमें सन्त-सन्त मगधान्की मयुर-मयुर फटाएँ होती रहती हैं, जिसके श्वकर्मग्रामे भोगमृत्तुणा शान्त हो जाती है । वहाँ प्राणियोंमें किसी प्रव्रजक पर विरोध या उद्वेग नहीं रहता ॥ ३५ ॥ अच्छे-अच्छे कथा-प्रसङ्गोंद्वारा निष्कामभायम सन्ध्यामियोंने एकमात्र आश्रय साक्षात् श्रीनारायणदेवका बार बार गुणग्रथन होता रहता है ॥ ३६ ॥ आपके ये सत्कथन स्तीर्णित पात्र परनेके ठरेपसे पृथ्वीपर विन्त ही बिचरने रहत हैं । भग्न उनका समग्रम संसारमें भयभीत हुए पुरुषोंसे केसे रुचिकर न होगा ॥ ३७ ॥

भगवन् ! भयक प्रिय मय भगवन् गहरक क्षणमरके मगधमसे ही आज हमें आपका मगध

१ मा या — शक्ति । २ मा या — अस्मिन्ने यदि । ३ मा या — शीत । ४ मा या — धानार्थ ।

५ मा या — भयतश्चिद्विषय ।

सुदुश्चिक्त्स्वस्य भवस्य मृत्यो
 भिषक्कर्म त्वाद्य गतिं गता सः ॥३८॥
 यमः स्वधीवंतं गुरुषः प्रसादिता
 विप्राश्च ब्रह्माश्च सदानुवृत्त्या ।
 आर्या नता सुहृदो आतरश्च
 सखाणि मृतान्यनस्ययमैव ॥३९॥
 यमः सुतप्यं तप एतदीश
 निरन्धसां कालमदभ्रमप्यु ।
 सर्वं तदेतत्पुरुषस्य मृत्तो
 शृणीमहे ते परितोषयाय ॥४०॥
 मनुः स्वयम्भूर्मर्गवान् भवश्च
 येऽन्ये तपोध्यानविशुद्धसत्त्वाः ।
 अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः
 स्तुवन्त्यथोत्थाऽऽत्मसमं शृणीम ॥४१॥
 नम समाप्य ब्रह्माय पुरुषाय पराय च ।
 वासुदेवाय मन्त्राय तुभ्य भगवते नमः ॥४२॥

मैत्रय उवाच

इति प्रचेताभिरभिष्टुतो हरिः
 प्रीतस्तथेत्साह शरण्यवत्तमल ।
 अनिच्छतां यानमवतत्तच्चक्षुषां
 ययौ स्वधामानपवर्गशीर्यः ॥४३॥

अथ निर्याय सलिलात्प्रथेतस उदन्वत ।
 पीड्याकृप्यन्ध्रमैष्टुभां गां गां रोवृधुमिषोच्छ्रितै ४४
 तवाऽभिमारुतौ राजन्नमृष्टमृत्सतो रुपा ।
 महीं निर्धोरुषं कृतं सवर्षकं श्वात्पय ॥४५॥
 भस्ममात्रिक्यमाणांस्तान्मुमान् भीक्ष्य पितामह ।
 आगतं क्षमयामास पुशान् धर्हिष्मता नम ॥४६॥
 तत्रात्रशिष्टा य ब्रह्मा भीता दुहितरं तदा ।
 उज्जदन्त प्रचताम्य उपदिष्टा स्वयम्भुवा ॥४७॥
 त च प्रत्यग आन्त्रामारिषामुपयेमिर ।

दर्शन प्राप्त हुआ है । आप भग्न-भरणरूप दुःख
 रोगके अष्टमम वैष हैं, अतः जब हमन् आपका ही
 आश्रय लिया है ॥ ३८ ॥ प्रभो ! हमने सम्यक्
 विचिन्ते जो कुछ कर्ण्ययन किया है, निरन्तर सेवा-श्रुत्य
 करने गुरु, ब्राह्मण और वृद्धजनोंको प्रसन्न किया है
 तथा योगबुद्धि त्यागकर श्रेष्ठ पुरुष, सुहृद्गण, कन्धुकां
 एवं समस्त प्राणियोंकी कन्दना की है और जन्मान्तिके
 त्यागकर दीर्घकालकृत जन्ममें खड़े रहकर तपस्या की है,
 वह सब आप सर्वव्यापक पुरुषोत्तमके सन्तोषका कारण
 हो—यही वर माँगते हैं ॥ ३९ १० ॥ सामिन् ।
 आपकी महिमाका पार न पाकर भी सायम्भुव मनु-
 स्वयं ब्रह्माजी, मन्वान् शङ्खर तथा तप और ज्ञानसे
 सुदुश्चित हुए अन्य पुरुष निरन्तर आपकी स्तुति करते
 रहते हैं । अतः हम भी अपनी बुद्धिके अनुसार आपका
 यशोगान करते हैं ॥ ४१ ॥ आप सर्वत्र स्मत्त,
 सुदृक्स्वरूप और परमपुरुष हैं । आप सत्त्वमूर्ति मन्वान्
 वासुदेवको ॥ नमस्कर करते हैं ॥ ४२ ॥

अभिषेपशी कहते हैं—विदुरभी ! प्रचेताओंके
 इस प्रकार स्तुति करनेपर शरणागतकृत श्रीमन्मान्ने
 प्रसन्नहोकर कहा—‘तथास्तु’ ! अप्रतिहत्प्रमास श्रीहरि
 की मधुर मूर्तिके दर्शनोंसे अभी प्रचेताओंके नेत्र दृप्त
 नहीं हुए थे, इसलिये वे उन्हें जाने देना नहीं चाहते
 थे तथापि वे अपने परमधामको चले गये ॥ ४३ ॥
 इसके पश्चात् प्रचेताओंने समुद्रक जलसे बाहर निकल-
 कर देखा कि सारी पृथ्वीको ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंने ढक
 लिया है जो मानो सर्पका मार्ग रोकनेके लिये ही
 इतन बड़ गये थे । यह देखकर वे वृक्षोंपर बड़ क्रुद्ध
 हुए ॥ ४४ ॥ तब उन्होंने पृथ्वीको वृक्ष, कृता आपत्ति
 रहित कर देनेके लिये अपने मुकुटे प्रचण्ड बाण और
 जलिके छोड़ा, जैसा कालान्तरक प्रलयकालमें छोड़ते
 हैं ॥ ४५ ॥ अब ब्रह्माजीने देखा कि वे सारे वृक्षोंने
 भस्म कर रहे हैं तब वे बहो आये और प्राचीनवर्षिके
 पुत्रोंको उन्होंने युक्तपूर्वक समझाकर शान्त
 किया ॥ ४६ ॥ फिर जो कुछ वृक्ष नहीं बच थे, उन्होंने
 नरकर ब्रह्माजीने कहनेसे वह कन्या लाकर प्रचेताओंने
 ली ॥ ४७ ॥ प्रचेताओंने भी ब्रह्माजीके आश्रय में

यसां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥४८॥

चाक्षुषे त्वन्तर प्राप्ते प्राप्तसर्गे कालविद्युते ।

यः ससर्ज प्रजा इष्टा स दसो दैनचोदितः ॥४९॥

यो ज्ञापमान सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ।

स्वपोषदत्त दास्याच्च कर्मणां दक्षमष्टुवन् ॥५०॥

तं प्रजामर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च ।

युयोज युयुजेऽन्यौ च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥५१॥

मारिया नामकी कन्यासे विशाह कर लिया । इसीके गर्भसे ब्रह्मजीके पुत्र दक्षन, श्रीमहादेवजीकी अन्धाके कारण अपना पूर्वशरीर त्याग कर, जन्म लिया ॥ ४८ ॥ इन्हीं दक्षने चाक्षुर मन्वन्तर आनेपर, जब क्रमक्रमसे पूषसग नष्ट हो गया, मगवान्की प्रेरणासे इच्छालुगार मयीन प्रजा उत्पन्न की ॥ ४९ ॥ इन्होंने जन्म लेते ही अपनी कान्तिसे समस्त तेजस्वियोंका तेज भीन लिया । ये काम करनेमें बड़े दक्ष (कुशल) थे, इसीसे इनका नाम दक्ष हुआ ॥ ५० ॥ इन्हें ब्रह्मजीने प्रजापतियोंके नायकके पदपर अभिषिक्त कर सृष्टिकी रक्षाके लिये नियुक्त किया और इन्होंने मरीचि आदि दूसरे प्रजापतियोंको अपने-अपने कर्ममें नियुक्त किया ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहन्स्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे

त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

प्रचेताओंको भीमारक्षणीका उपदेश और उनका परमपद स्थापन
नैवेद्य उपाय

तव उत्पन्ननिष्ठाना आश्वभोक्षमावितम् ।

सरन्त आत्मन्ने भाषां विसृज्य प्राप्रजन् शृणुत् ॥ १ ॥

दीक्षिता ब्रह्ममन्त्रं सर्वभूतारमभेक्ष्मा ।

प्रतीच्यां दिशि वेलाया सिद्धाऽमृष्टं आजलि ॥२॥

ताभिर्जिसप्राणमनोवचोऽष्टा

जितामनान् धान्तमानविग्रहान् ।

परऽमले ब्रह्मणि योषितात्मन

सुरासुरदयो ददधे स नारदः ॥ ३ ॥

श्रीमैवेद्यजी कहते हैं—विदुरजी ! दस वर्ष की भीत जानेपर जब प्रचेताओंको निवेदन हुआ, तब उन्हें भगवान्के शक्तियोंकी याद आयी और वे अपनी भाषा मारिगाको पुत्रके पास छोड़कर दूरत घरसे निकल पड़े ॥ १ ॥ वे पश्चिम दिशामें समुद्रके तटपर—जहाँ आजलि मुनिने सिद्धि प्राप्त की थी—जा पहुँचे और तिससे भ्रमस्त मूर्तोंमें एक ही आमतत्त्व विराजमान हैं। ऐसा ज्ञान होता है, उस आत्मविचाररूप ब्रह्मस्वर का सङ्कल्प करने के लिये ॥ २ ॥ उन्होंने प्राण मय बाणा और दक्षिण बशमें किया तथा शरीरको निश्चेष्ट स्थिर और सीमा रखत हुए कासनको भीमकर धिक्करके विशुद्ध परब्रह्ममें लीन कर लिया । ऐसी स्थितिमें उन्हें देवता और असुर दोनोंके ही सम्पत्तीय भीमारक्षणीने

तमागतं त उस्थाय प्रणिपत्याभिर्नन्य च ।

पूजयित्वा यथादेशं सुस्वासीनमथाब्रुवन् ॥ ४ ॥

प्रवेतस ऊचुः

स्वागतं त सुगोष्ठ्यै दिष्ट्या नो दर्शनं गत ।

तव षड्क्रमणं ब्रह्मभयाय यथा रवेः ॥ ५ ॥

मदादिपू भगवता शिवेनाधीश्वरान् च ।

तद् गृहपु प्रमत्तानां प्रापशः क्षपितं प्रभो ॥ ६ ॥

तस्य प्रघातयाध्यात्मैज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् ।

यनाङ्गमा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥ ७ ॥

मैत्रेय उवाच

इति प्रवृत्तर्मां पृष्ट्वा भगवान्भारदा मुनि ।

भगवत्पुत्रमण्योक्तं आविष्टात्माप्रवीन्नुपान् ॥ ८ ॥

नारद उवाच

तज्जन्म तानि क्रमाणि तदापुस्तन्मनो वचः ।

गुणां यनेह विश्राम्मा सप्यथ हरिरीश्वर ॥ ९ ॥

किं जन्मभित्वाभिर्वहं द्वाक्जन्माविश्रयाक्षिकैः ।

कर्मभियां प्रयीषान्त्तं पुमांसि पिबुधापुषा ॥ १० ॥

श्रुतं तपमा वा किं वशाभिभित्तपुत्तिभिः ।

पृष्ट्वा वा किं निपुणषा वृत्तन्त्रियगधगा ॥ ११ ॥

किं वा यागन गार्ग्यन् न्यामग्याध्याययोरपि ।

किं वा श्रयाभिरयथ न ययागमप्रज्ञा हरि ॥ १२ ॥

श्रयमामपि सर्वेषामाम्मा तवधिरथेत ।

सर्वेषामपि भूतानां हरिगम्याऽऽत्मनः प्रिय ॥ १३ ॥

देखा ॥ ३ ॥ नारदजीको आपा देख प्रवेतगण को
हो गये और प्रणाम करके आदर-सत्कारपूर्वक देख-
कालानुसार उनकी निधिगत पूजा की । अब नारदजी
सुलक्ष्मीक बैठ गये, तब वे कहने लगे ॥ ४ ॥

प्रवेताओंने कहा—देवर्षे ! आपका स्वागत है,
आज बड़े मायमे हमें आपका दर्शन हुआ । अन्तः
सूयक समान आपका धूमना-किरना भी इन्द्रादेवसे
ममस्त जीवोंको अभ्युपदान देनेके सम्य ही
होना है ॥ ५ ॥ प्रभो ! भगवान् शङ्कर और श्रीनिष्कामान्
हमें जो उपदेश दिया था, उस गृहस्त्रीमें वास्तव्य
रहनेके कारण हमसंग प्रायः मृत्यु गये हैं ॥ ६ ॥
अब आप हमारे हृदयोंमें उस परमार्थतत्त्व साक्षात्कार
करानेवाले अध्यात्मज्ञानको फिर प्रकाशित कर दीजिये,
जिससे हम सुगमतासे ही इस दुस्तर संसार-सागरसे
पार हो जायें ॥ ७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवन्मय श्रीनारदजीका विष्ट
सर्वदा ममान् श्रीकृष्णमें ही लब्ध रहता है । वे
प्रवेताओंके इस प्रकार बूझनेपर उनसे कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रीनारदजीन कहते हैं—राजाजी ! इस लोके
मनुष्यका वही जन्म, वही कर्म, वही आयु, वही मन
और वही बाणी सकल है जिसके द्वारा सर्वत्र
सर्वेश्वर श्रीशिवसे संपर्क किया जाता है ॥ ९ ॥ जिनके
द्वारा अपने स्वस्वपर साक्षात्कार करनेवाले श्रीशिवसे प्राप्त
न किया जाय, उन माता-पिताकी पवित्रतासे, पड़ोस-पड़-
संस्कारसे जब वस्त्रादिसे प्राप्त होनवाले उन तीन प्रकार
के श्रेष्ठ जन्मोंसे वेगैक जन्ममें प्रवेताओंके जन्म
दोष आयु, शास्त्रज्ञानसे तपसे, बलीयारी बतुगति,
अनेक प्रकारकी बानें या रत्नमयी शक्तिसे, तीव्र
बुद्धिसे कर्मसे इन्द्रियोंकी पटुतासे, धारसे सत्य
(आत्मानात्मविशेष) से सत्यसे और तपस्यासे
तथा प्रणयसाध्यादि अन्य कल्याण-मात्रोंसे भी पुण्य
क्या लाभ है ॥ १०-१२ ॥ बालकमें ममत्त्व बाल्यमें
अभिजातता ही है और आत्मज्ञान प्राप्त करनेमें
भी ही ही मनुष्य प्राणिजोकी प्रियता है ॥ १३ ॥

मा वा विष्टा ॥ २ ॥ मां प्रिये ॥ इति नारद उवाच — इति नारद उवाच ॥ १ ॥ मां प्रिये ॥
मां प्रिये ॥ २ ॥ मां प्रिये ॥ ३ ॥ मां प्रिये ॥ ४ ॥ मां प्रिये ॥ ५ ॥ मां प्रिये ॥ ६ ॥ मां प्रिये ॥ ७ ॥ मां प्रिये ॥ ८ ॥ मां प्रिये ॥ ९ ॥ मां प्रिये ॥ १० ॥ मां प्रिये ॥ ११ ॥ मां प्रिये ॥ १२ ॥ मां प्रिये ॥ १३ ॥

यथा तरोर्मूलनिपथनेन
 तृप्सन्ति तस्त्वन्यसुजोपशाखा ।
 प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
 तथैव सर्वाणिमन्युतेन्या ॥१४॥
 यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः
 पुनश्च तस्मिन् प्रविशन्ति काले ।
 भूतानि भूमौ निरजङ्गमानि
 तथा हरावेव गुणप्रवाह ॥१५॥
 एतत्सर्वं तस्मदात्मन परं
 सकृद्विभाव सवितुर्भूया प्रभा ।
 यथासौ जाग्रति सुप्तश्चक्षुषो
 द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमास्थय ॥१६॥
 यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा
 भवन्ति भूपा न भवन्त्यनुक्रमात् ।
 एवं परे ब्रह्मणि शक्तवस्त्वम्
 रजस्तमःसत्त्वमिति प्रवाहः ॥१७॥

जिस प्रकार वृक्षाक्षी जब सींचनसे उसके
 तना, शाखा, उपशाखा आदि समीका पोषण हो जाता
 है और जैसे मोहनद्वारा प्राणोंकी तृप्त करनेसे समस्त
 इन्द्रियों पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार श्रीमग्नान्की प्रभा
 ही सर्वकी प्रभा है ॥१४॥ जिस प्रकार बर्फाच्छादने जल
 सूर्यके तापसे उत्पन्न होता है और धीमे-धीमे उसीकी
 किरणोंमें पुनः प्रवेश कर जाता है तथा जैसे समस्त
 चराचर मृत पृथ्वीसे उत्पन्न होते हैं और फिर उसीमें
 मिल जाते हैं, उसी प्रकार चेतनाचेतनात्मक यह समस्त
 प्रपञ्च श्रीहरिसे ही उत्पन्न होता है और उन्हींमें लीन
 हो जाता है ॥१५॥ वस्तुतः यह विद्यारत्ना श्रीमग्नान्
 का वह शास्त्रप्रसिद्ध सर्वोपाधिरहित स्वरूप ही है ।
 जैसे सूर्यकी प्रभा उससे भिन्न नहीं होती, उसी प्रकार
 कभी-कभी गन्धर्व-नगरके समान स्फुरित होनेवाला यह
 जगत् भगवान्‌से भिन्न नहीं है, तथा जैसे जाम्बू
 अवस्थामें इन्द्रियों क्रियाशील रहती हैं किन्तु सुषुप्तिमें
 उनके शक्तियों कील हो जाती हैं, उसी प्रकार यह
 जगत् सर्गकालमें भगवान्‌से प्रकट हो जाता है और
 कल्पान्त होनेपर उन्हींमें लीन हो जाता है । स्वल्पतः
 तो भगवान्‌में द्रव्य, क्रिया और ज्ञानरूपी त्रिविध
 अङ्गहारके कार्याकी तथा उनके निमित्तसे होनेवाले
 भेदभ्रमकी सत्ता है ही नहीं ॥ १६ ॥ उपनिष्ठा ।
 जैसे बादल, अन्धकार और प्रकाश—ये क्रमशः आकाशसे
 प्रकट होते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं, किन्तु
 आकाश इनसे छिन्न नहीं होता, उसी प्रकार ये सत्त्व,
 रज और तमोमयी शक्तियों कभी परब्रह्मसे उत्पन्न होती
 हैं और कभी उन्हींमें लीन हो जाती हैं । इसी प्रकार
 इनका प्रवाह चरता रहता है किन्तु इससे आकाशक
 समान असङ्ग परमात्मामें कोई विकार नहीं होता ॥१७॥

१ प्राचीन प्रतिमें एतत्सर्वं से आरम्भकर महापय तकका अंश (१५ वीं श्लोक) नहीं है ।

१ भा पा —युष्म ।

तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां

कलत्र प्रधानं पुरुषं परेश्वरम् ।

स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाह

मार्तमकभावन भजष्वमद्या ॥१८॥

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टया येन कन वा ।

मर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्ट्यन्त्याशु जनार्दनः ॥१९॥

अपहृतसकलैषणामलात्म

न्यविरतमधितभावनोपहृतः ।

निजजनत्वक्षगत्वमात्मनोऽय

न सरति छिद्रबद्धरः सर्वा हि ॥२०॥

न भजति कुमनीपिशां स इव्यां

हरिरधनात्तमधनप्रिया रसज्ञः ।

ध्रुवधनशूलकर्मणां मदर्थे

विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥२१॥

धियमनुचरती तर्धिनश्च

दिपदपतीन् विपुर्धाश्च यत्स्वपूर्वः ।

न भजति निजमृत्यवर्गीतत्र

कथमसृमुद्रिजत्पुमान् कृतज्ञः ॥२२॥

मत्रेय उवाच

इति प्रचेतसां गमनान्याथ भगवद्वक्ता ।

अतः तुम ब्रह्मादि समस्त लोकपालके श्री
अधीश्वर श्रीहरिको अपनेसे क्षमिन् मानते हुए मन्त्रों,
क्योंकि वे ही समस्त देवधारियोंके एकमात्र आत्मा हैं ।
वे ही जगत्के निमित्तकारण काल, उपशान्तकाम
प्रधान और नियन्ता पुरुषोत्तम हैं तथा अपनी कर्म-
शक्तिसंवेदी इस गुणोंके प्रवाहरूप प्रपन्नका स्वरूप कर
देते हैं ॥ १८ ॥

वे भक्तसमस्त भगवान् समस्त जीवोंपर दया करनेसे,
जो कुछ मित्र जाय उसीमें सन्तुष्ट रहनेसे तथा समस्त
इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्त करके शान्त करनेसे ही ही
प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १९ ॥ पुत्रैवणा आत्मा सब प्रकारकी
वासनाओंके निकल जानेसे बिनका अन्त करण छुट हो
गया है, उन संतोंके हृदयमें उनके निस्तर बहते हुए
चिन्तनसे सिंचकर अकिनाशी श्रीहरि वा जाते हैं और
अपनी भक्ताधीनताको चरितार्थ करत हुए हृदयाक्षरकी
मूर्ति वहाँसे हटत नहीं ॥ २० ॥ भगवान् तो अपनेसे
(भगवान्को) ही सर्वस्व माननेवाले निर्वर्ण पुरुषोंपर ही
प्रेम करते हैं, क्योंकि वे परम रसज्ञ हैं—उन अकिञ्चनो-
की अनन्याश्रया शरीरुकी भक्तिमें कितना माधुर्य होता है,
इसे प्रभु अच्छी तरह जानत हैं । जो लोग अपने शास्त्रज्ञ,
घन, कुल और कर्मोंके मदसे उन्मत्त होकर, ऐसे
निष्किञ्चन साधुजनोंका निरन्तर करते हैं, उन धुम्रि-
की पूजा तो प्रभु स्वीकार ही नहीं करते ॥ २१ ॥ आशु-
स्वल्पमात्रसे ही परिणत हैं उन्हें निरन्तर अपनी सेवमें
रहनेवासी भक्तमीत्री तथा उनकी इच्छा करनेवाले नरपति
और दानाओंकी भी चर्च परका नहीं है । इतना ही वे
अपने भक्तोंको तो अपनी ही रहते हैं । भगवन् । ऐसे
कल्याणसागर श्रीहरिको कोई भी इतना पुरुष योही दरक
रिये भी कसे छोड़ सकता है । ॥ २२ ॥

श्रीमन्मन्त्रोवाच—श्रीदुर्गा । भगवान् नारायण
प्रवचनोक्त इमं उपायक मायामात्र आत्मा श्रीमन्मन्त्री

भावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायम्भुवो मुनि ॥२३॥

तेऽपि तं मुखनिर्वातं यशो लोकमलापहम् ।

हरेर्निश्चम्य तत्पादं ध्यायन्तस्तद्गतिं ययुः ॥२४॥

एतच्चेऽभिहितं श्रुत्वर्यमां स्व परिपूषवान् ।

प्रवेतसां नारदस्य संवाद हरिकीर्तनम् ॥२५॥

भीष्म उवाच

य एष उत्तानपादो भानवस्यानुवर्णित ।

वृक्षः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपैस्त्वम ॥२६॥

यो नारदादात्मविद्यासभिगम्य पुनर्महीम् ।

शुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वर्यं समगात्पदम् ॥२७॥

इमां तु कौपारविणोपवर्णितां

क्षया निश्चम्याजितवदसत्कषाम् ।

ब्रह्मभावोऽधुक्लाङ्गुलो मुने

दर्भार मूर्त्तां चरणं हृदा हरेः ॥२८॥

विदुर उवाच

सोऽयमद्य महायोगिन् भवता कठुणारमना ।

दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिञ्चनगो हरिः ॥२९॥

भीष्म उवाच

स्यानम्य समामन्त्र्य विदुरो गन्तसाह्वयम् ।

नानां दिग्बुधः प्रथमौ ज्ञातीनां निर्वृताश्रय ॥३०॥

भगवत्स्मृन्धी नर्तते मुनायी । इसके पश्चात् वे ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २३ ॥ प्रचेतागण भी उनके मुखसे सम्पूर्ण जगत्के पापरूपी मलको दूर करनेवाले भगवत्पुत्रि मुन कर भगवान्के चरणकमलोंका ही चिन्तन करने लगे और अन्तमें भगवद्भक्तोंको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ इस प्रकार आपने जो मुखसे श्रीनारदजी और प्रचेताशोक भगवत्कषा-सम्बन्धी संग्रहादके विषयमें पूछा था, वह मैंने आपको सुना दिया ॥ २५ ॥

श्रीशुक्रदेवजी कहते हैं राजन् ! पहिलेक स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपादके वरत्त वर्णन हुआ, अब प्रिय व्रतके वंशका विवरण भी सुनो ॥ २६ ॥ राजा प्रियव्रतने श्रीनारदजीसे अष्टमङ्गलका उपदेश पाकर भी राज्यभोग किया था तथा अन्तमें इस सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने पुत्रोंमें बाँटकर वे भगवान्के परमपापको प्राप्त हुए थे ॥ २७ ॥

राजन् ! इधर श्रीमैत्रेयीजीके मुखसे यह भगवद्गुण-वादयुक्त पवित्र कथा सुनकर विदुरजी प्रेममग्न हो गये, भक्तिभावका उद्रेक होनेसे उनके नेत्रोंसे पवित्र आँसुओंकी बाध बहने लगी तथा उन्होंने हृदयमें भगवत्कर्णोंका स्मरण करते हुए अपना मस्तक मुनिकर मैत्रेयीजीके चरणोंपर रख लिया ॥ २८ ॥

विदुरजी कहते लगे—महामेदिन् ! आप बड़े ही कठुणामय हैं । आज आपने मुझे ब्रह्मान्वक्यकरके उस पार पहुँचा दिया है, जहाँ अकिञ्चनोंके सर्वज्ञ श्रीहरि स्थितते हैं ॥ २९ ॥

श्रीशुक्रदेवजी कहते हैं—मैत्रेयीजीको उपर्युक्त वृत्तवता सुनक बचन कहकर तथा प्रणाम कर विदुरजीने उससे आज्ञा ली और फिर शान्तचित होकर अपने बन्धुजनोंसे मित्रनके स्थिये वे इस्तिमापुर चले गये ॥ ३० ॥

१ प्राचीन प्रतिमें भीष्मक उवाच इतना अर्थ नहीं है । २ मा या —उप सम्मत् । ३ मा या —महाधु । प्राचीन प्रतिमें भीष्मक उवाच नहीं है ।

एतद्यः शृणुयाद्वाचन् रक्षां हर्यर्पितात्मनाम् ।

रामन् । जो पुरुष भगवान् के करणागत परमभाग्यन राज्य
का यह पवित्र चरित्र सुमेगा, उसे दीर्घ बापु, धन, सु-
ख, सन्तान और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी ॥ ३१ ॥

आयुधनं यश्च स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यां संहितायामष्टोदशसाहस्रपां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
प्रचेतसाक्षरान् नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इति चतुर्थः स्कन्धः समाप्तः ।

हरिः ॐ तत्सत्



श्रीराधाकृष्णाय नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

पञ्चमः स्कन्धः



यत्रामी लोकविस्तारास्तारा इव विहायसि ।
भासन्ते तमई वन्दे बालगोपालमालयम् ॥

भद्रकालीक द्वारा जड़भरतकी रक्षा



भद्रकालीन राम साग पापियोंके सिंग उड़ा दिये ।

[४४ ५८१]

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

पञ्चमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रियव्रत-वचिष

राजोवाच

प्रियव्रतो भगवत आत्मारामः कथं मुने ।
गृहेऽस्मत् पमूल कर्मबन्धः पराम्भः ॥ १ ॥
न नूनं मुक्तसंज्ञानां तापशानां द्विजर्षभ ।
गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुसां भवितुमर्हति ॥ २ ॥
महतां खलु विप्रैर् उत्तमश्लोकपादयोः ।
छायानिर्हृतविचानां न ह्रुदुम्बे स्पृहामसि ॥ ३ ॥
संशयाऽयं महान् ब्रह्मन्दारागारमुवादपि ।
सक्तस्य यस्तिद्धिरभूत्कृण्वे च मतिरन्युता ॥ ४ ॥

श्रीभुक्त उवाच

षोडशोक्तं भगवत् उत्तमश्लोकस्य श्रीमन्महाराज
विन्दमकरन्दरस आशशितचैतसो भागवतपरमार्हस
दयितकथां किञ्चिदन्तरायविहतां स्वां शिष्यतां
पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥ ५ ॥ यर्हि बाल
ह राजन् स राक्षपुत्रः प्रियव्रत परम
भागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाज्ञसाधगतपरमार्थ
सतत्त्वां ब्रह्मसन्नेह दीक्षिष्यमाणोऽयनितलपरिपाल

राजा परीक्षितने पूछा—मुने ! महाराज प्रियव्रत
तो बड़े भगवद्भक्त और आत्माराम थे । उनकी गृहस्था
धर्ममें कैसे रुचि हुई, जिसमें फँसनेके कारण मनुष्यको
बन्धने स्वरूपकी विसृष्टि होती है और वह कमबन्धनमें
बैच जाता है ॥ १ ॥ विप्रवर ! निश्चय ही ऐसे नि सङ्ग
महापुरुषोंका इस प्रकार गृहस्थाधर्ममें अभिनिवेश होना
उचित नहीं है ॥ २ ॥ इसमें किन्ती प्रकारका सन्देह
नहीं कि दिनका विषय पुण्यकीर्ति श्रीहरिके चरणोंकी
शीतल छस्याकर आश्रय लेकर शान्त हो गया है, उन
महापुरुषोंकी कुटुम्बादिमें कभी आसक्ति नहीं हो
सकती ॥ ३ ॥ ब्रह्मन् ! मुझे इस बातका बड़ा सन्देह
है कि महाराज प्रियव्रतने भी, घर और पुत्रादिमें आसक्त
रहकर भी किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर ली और क्योंकि
उनकी भगवान् श्रीकृष्णमें अविषय मक्ति हुई ॥ ४ ॥

श्रीभुक्तदेवजीने कहा—राजन् ! तुम्हारा कथन
बहुत ठीक है । जिनका विषय पत्रिप्रकीर्ति श्रीहरिके
परम मधुर चरणकमल-मकरन्दके रसमें संशयो हो गया
है, वे किन्ती किन्त-बाधाके कारण इच्छादृष्ट वा जानेपर
भी भगवद्भक्त परमार्हसोंके प्रिय श्रीवासुदेवभगवान्के
कथाश्रवणस्वी परम कल्याणमय मार्गको प्राय छोड़ते
नहीं ॥ ५ ॥ राजन् ! राजकुमार प्रियव्रत बड़े भगवद्भक्त
थे, श्रीनारदजीके चरणोंकी सेवा करनेसे उन्हें सहजमें ही
परमार्थतत्त्वका बोध हो गया था । वे ब्रह्मसत्त्वकी
दीक्षा—निरन्तर ब्रह्माभ्यासमें जीवन बितानेका नियम
लेनेवाले ही थे कि उसी समय उनके पिता व्यासमुनि

नायाम्नातप्रवर्गगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपा-
 मन्त्रितो भगवति वासुदेव ष्वात्मवधानसमाधि-
 योगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाम्य
 नन्दयद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आरमनो
 ज्यसादसताऽपि परामर्शमन्वीक्षमाणः ॥ ६ ॥
 अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य
 परिहृद्धानुज्यानम्पवसितसकलजगदभिप्राय आत्म-
 योनिराखिलैर्निगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवना
 दवततारः ॥ ७ ॥ स तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमा-
 नाब्जिभिरनुपधममपरिहृदैर्भिपूज्यमानः पथि पथि
 च बह्व्यस्तः सिद्धगन्धर्वसाध्यध्वारण्यमुनिगणैरुपगीय
 मानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥ ८ ॥
 तत्र ह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं
 हिरण्यगर्ममुपलभमानः सहस्रोत्पायाहर्षेण सह
 पितापुत्राभ्यामवहितआलिरुपतस्थे ॥ ९ ॥
 भगवानपि मास्त तदुपनीतार्हणः सूक्तवाषेत्ना-
 सितराष्ट्रदिसगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादि-
 पुरुषस्तं सदयहानाबेलोक इति होषार्थं ॥ १० ॥

मनुने उन्हें पृथ्वीपालनके लिये शास्त्रमें बताये हुए सभी
 श्रेष्ठ गुणोंसे पूजातया सम्पन्न देख सम्यशासनके लिये
 आज्ञा दी । किन्तु प्रियव्रत अछुण्ड समाभियोगके हुए
 अपनी सारी इन्द्रियों और क्रियाओंको मगवान् वासुदेवके
 चरणोंमें ही समर्पण कर चुक गये । अतः पिताकी आज्ञा
 किसी प्रकार उल्लङ्घन करनेयोग्य न होनेपर भी, वह
 सोचकर कि सम्पाधिकार पाकर मेरा आरम्भरूप
 श्री-पुत्रादि असत्प्रपञ्चसे व्यापारित हो जायगा—एक
 और कुटुम्बकी चिन्तामें फँसकर मैं परमार्थनस्त्वको प्राप्त
 मूल जाऊँगा, उन्होंने उसे स्वीकार न किया ॥ ६ ॥

आदिदेव स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीको निरन्तर इस
 गुणमय प्रपञ्चकी वृद्धिको ही विचार रहा है । वे सारे
 संसारके जीवोंको अभिप्राय जानते रहते हैं । जब उन्होंने
 प्रियव्रतकी ऐसी प्रवृत्ति देखी, तब वे मूर्तिमान् चारों वे
 और मरीचि आदि पार्षदोंको साथ लिये अपने लोकमें
 उतरे ॥ ७ ॥ आकाशमें जहाँ तहाँ विमानोंपर चढ़े हुए
 इन्द्रादि प्रधान-प्रधान देवताओंने उनका पूजन किया
 तथा मार्गमें टोखियों बीचकर आये हुए सिद्ध, गन्धर्व,
 साध्य, चारण और मुनिजनने स्वागत किया । इस प्रकार
 जगह-जगह आदर-सम्मान पाते वे साक्षात् नक्षत्ररूप
 चन्द्रमाके समान गन्धमादनकी बाटीको प्रकाशित करते
 हुए प्रियव्रतके पास पहुँचे ॥ ८ ॥ प्रियव्रतका वात्सल्य-
 का उपदेश देनेके लिये वहाँ नारदजी भी आये हुए थे ।
 ब्रह्माजीके वहाँ पहुँचनेपर उनके वरहम ईश्वरके देकर
 देवर्षि नारद जान गये कि हमारे पिता मगवान् ब्रह्माजी
 पचारे हैं अतः वे स्वयम्भुव मनु और प्रियव्रतक सहित
 तरंग खड़े हो गये और सबने उनके हाथ जोकर
 प्रणाम किया ॥ ९ ॥ परीक्षित ! नारदजीने उनकी
 अनेक प्रकारसे पूजा की और सुमधुर वचनोंमें उनके
 गुण और अवतारकी उल्लेखताकर बणन किया । तब
 आदिपुरुष मगवान् ब्रह्माजीने प्रियव्रतकी ओर मन्द मुसकन-
 युक्त दयावृष्टिसे देखते हुए इस प्रकार कहा ॥ १० ॥

१. या पा — प्रवर्गगुणैकान्त । २. या पा — न वात्मन्यवधानपि तदप्रत्याम्नात । ३. प्राचीन प्रतिमें (अथ हं)

यह पाठ नहीं है । ४. या पा — सर्वथा दृष्ट्या । ५. या पा — रसिलनिकलपरिवेष्टितः । ६. या पा — तत्र
 गगनतले । ७. या पा — ममपरिहृदैर्भिम्यु । ८. प्राचीन प्रतिमें नारदमुनि से आरम्भकर पुरुषस्तं कदम्ब
 तक्षक मंथ आदि है । ९. प्राचीन प्रतिमें (अथ हं) — इतना अर्थ आश्रित है । १०. या पा — होषार्थ
 भगवान् वाचम् ।

भीमगजानुवाच

निबोध सातेदमूर्तं ब्रवीमि
 माद्यितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ।
 वयं भवन्ते एत एव महर्षि
 र्वहाम सर्वे विवक्षा यस्य दिष्टम् ॥११॥
 न तस्य कश्चिदपसा विद्यया वा
 न योगवीर्येण मनीषया वा ।
 नैवार्थधर्मे परतः स्वतो वा
 कृतं विहन्तुं तनुसृष्टिमूषात् ॥१२॥
 भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं
 शोकाय मोहाय सदा भवाय ।
 सुखाय दुःखाय च देहयोग
 मन्व्यक्तदिष्टं जनताञ्च भवे ॥१३॥
 यद्वापि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः
 सुदुर्न्तर्वत्स वयं सुयोजिता ।
 सर्वे बहामो बलिमीश्वराय
 प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥
 ईशाभिसृष्टं सर्ववन्महेश्वर
 दुःखं सुखं वा गुणकर्मवशात् ।
 आत्माय तत्तद्वदयुक्तं नाय
 भक्षुष्मदान्धा इव नीयमानाः ॥१५॥
 मुक्तोऽपि तावद्विमृश्यात्सदेह
 मारब्धमभक्षमिमानगून्व ।
 यथानुमूर्तं प्रतिपातनिग्रः
 किं त्वन्यदेहाय गुणान्नं ब्रूहे ॥१६॥
 भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्
 यत स आस्ते सहपदसपरतः ।

श्रीवृद्धाजीने कहा—वेता । मैं तुमसे सत्य सिद्धान्त-
 की बात कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो । तुम्हें अग्रमेव
 श्रीहरिके प्रति किसी प्रकारकी दोषघटि नहीं रखनी
 चाहिये । तुम्हीं क्या—हम, महादेवजी, तुम्हारे पिता
 स्वायम्भुव मनु और तुम्हारे गुरु ये महर्षि नारद भी
 विवक्ष होकर तन्हीकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥११॥
 उनके विधानको कोई भी देहधारी न तो तप, विद्या,
 योगकल या मुक्तिबलसे, न अर्थ या धर्मकी शक्तिसे और
 न स्वयं या किसी दूसरेकी सहायतासे ही टाल सकता
 है ॥१२॥ प्रियकर । उसी अन्वय ईश्वरके दिये हुए
 शरीरको सब जीव जन्म, मरण, शोक, मोह, भय और
 दुःख-दुःसुख मोग करने तथा कम करनेके लिये सदा
 चारण करते हैं ॥१३॥ वस्तु । जिस प्रकार रस्तीसे
 तथा हुआ पशु मनुष्योंका शोष होता है, उसी प्रकार
 परमात्माकी वेदवाणीरूप बन्धी रस्तीमें सत्त्वादि गुण,
 सात्त्विक आदि कर्म और उनके श्रावण आदि वाक्योंकी
 प्रवृत्त बन्धीसे नकड़े हुए हम सब लोग तन्हीके इच्छा
 अनुसार कर्ममें लगे रहते हैं और उसके द्वारा उनकी
 प्रशंसा करते रहते हैं ॥१४॥ हमारे गुण और कर्मोंके
 अनुसार प्रभुने हमें जिस योनिमें बाल दिया है उसीको
 स्वीकार करके, वे जैसी व्यवस्था करते हैं उसीके अनुसार
 हम सुख या दुःख भोगते रहते हैं । हमें उनकी इच्छाका
 उसी प्रकार अनुसरण करना पड़ता है, जैसे किसी
 श्वेत्को बौलवाले पुरुषका ॥१५॥

सुख पुरुष भी प्रारब्धका भोग करता हुआ मगधनकी
 इच्छाके अनुसार अपने शरीरको चारण करता है ।
 ठीक वैसे ही जैसे मनुष्यकी निद्रा टूट जानेपर भी
 क्षणमें अनुमग्न किये हुए पदार्थोंका स्मरण होता है ।
 इस अवस्थामें भी उसको अभिमान नहीं होता और
 नियम-वासनाके जिन संस्कारोंके कारण दूसरा जन्म
 होता है, उन्हें वह स्वीकार नहीं करता ॥१६॥
 जो पुरुष इन्द्रियोंके बन्धीमूल है, वह जन-जनमें विचरण
 करता रहे तो भी उसे जन्म-मरणका भय बना रहता

१ प्रा पा —मर्हस्यमेयम् । २ प्रा पा —भवन्ते य इम । ३ प्रा पा —महर्षा ।
 ४ प्राचीन प्रतिभे दिष्टम् यह नहीं है । ५ प्रा पा —तन्मयो । ६ प्राचीन प्रतिभे 'भवाते' शब्द
 लभित दे ।

वितेन्द्रियस्तास्मरतेर्षुभस्य

गृहाभ्रम किं नु करोत्यवधम् ॥१७॥

यः पट् सपत्नान् विजिगीषमाणो

गृहेषु निर्विष्य यदेव पूर्षम् ।

अंत्येति दुर्गाभित ऊर्जितारिन्

क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥१८॥

त्वं त्वञ्जनाभाङ्घ्रिसरोक्षकोक्ष

दुर्गाभितो निर्वितपट्सपत्नः ।

अङ्घ्रिबेह भोगान् पुरुषातिविष्टान्

विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥१९॥

भीर्तुं उवाच

इति समभिहितो महाभागवतो भगवत्स्निग्धवन

गुरोरनुश्वासनमात्मनो लघुतयावनतशिरोभरो

पादमिति सबहुमानमुवाह ॥ २० ॥ भगवानपि

मनुना यथावदुपकल्पितापक्षितिः प्रियव्रतनारद

योरविषममभिसमीक्षमाणोरात्मसम्भवस्थानमवाङ्-

मनसं क्षयमभ्यवहृतं प्रवर्तयन्नगम् ॥ २१ ॥

मनुरपि परेणैव प्रतिसन्निभमनोरथः सुरपिंशर-

नुमतेनात्मब्रमस्त्रिलभरामण्डलस्वितिगुह्य आस्थाप्य

स्वयमतिप्रियमविषमविषमलाक्षर्याष्टाया उपरराम २२

इति ह वाच स जगतीपतिरीश्वरं चैवाधिनिवेशित

कर्माभिकारोऽलिलजगद् धर्म्मसनपरानुभावस्य भग

वत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतप्यानानुभाषन

है, क्योंकि बिना जीते हुए मन और इन्द्रियरूपी उसके छ शत्रु कभी उसका पीछा नहीं छोड़ते । जो बुद्धिमान पुरुष इन्द्रियोंको जीतकर अपनी आत्मामें ही रमण करता है, उसका गृहस्थाश्रम भी क्या बिगड़ सकता है ॥ १७ ॥ जिसे इन छ शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा हो, वह पहले घरमें रहकर ही उनका व्यग्र निरोध करते हुए उन्हें बशमें करनेका प्रयत्न करे । कितनेमें सुरक्षित रहकर स्वदेवाळा राजा अपने प्रबल शत्रुओंको भी जीत लेता है । फिर जब इन शत्रुओंका बल क्षयित होम हो जाय तब विद्वान् पुरुष इच्छानुसार विचार सकता है ॥ १८ ॥ तुम यद्यपि श्रीकृष्णनाम भगवान्के करजकम्पकी कम्पित कितनेके आश्रित रहकर इन छहों शत्रुओंको जीत चुके हो, तो भी पहले उन पुराणपुरुषके दिने हुए भोगोंको भोगो; इसके बाद नि सङ्ग होकर अपने अन्तःस्वरूपमें स्थित हो जाना ॥ १९ ॥

श्रीशुकनेत्रजी कहते हैं—जब त्रिलोकेशके पुरुष श्रीकृष्णजीने इस प्रकार कहा, तो परममायात् प्रियकृष्णने छोटे होनेके कारण नरतासे सिर झुका लिया और धो आहा! ऐसा कहकर बड़े आदरपूर्वक उनका आदेश शिरोधार्य किया ॥ २० ॥ तब व्यामसुव मनुने प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्माजीकी निश्चित पूजा की । इसके पश्चात् वे मन और वाणीके अव्यय, अपने आश्रय तथा सर्वव्याप्यहाराणीत परब्रह्माका चिन्तन करते हुए अपने अनेकत्वो चले गये । इस समय प्रियव्रत और नारदजी सरलभावसे उनकी ओर देख रहे थे ॥ २१ ॥

मनुजीने इस प्रकार ब्रह्माजीकी कृपासे अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेपर देखीं नारदजी आज्ञासे प्रियव्रतको सम्पूर्ण मूषणकम्प रक्षाका भार सौंप दिया और स्वयं विषयरूपी जितैले जम्मेसे मरे हुए गृहस्थाश्रमरूपी दुस्तर जलाशयकी भोगेच्छासे निवृत्त हो गये ॥ २२ ॥ अब पृथ्वीपति महाराज प्रियव्रत भगवान्की इच्छासे रात्र्यशसनके कार्यमें नियुक्त हुए । जो सम्पूर्ण जगत्को कथ्यमसे सुभावेमें कल्पित समर्थ है, उन आदिपुरुष श्रीभगवान्के कारणगुण्यज

१ प्रा पा — यद्येति दुर्गा । २ प्राचीन प्रतिमें भीष्मक उवाच इत्यादि अर्थ नहीं है । १ प्रा प०—

सम्पन्नदितमगम् । ४ प्रा पा — अनाद्यबाहुपरराम । ५ प्रा पा — विनिवेशित ।

परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां
महीतलमनुशशास ॥ २३ ॥ अथ च दुहितरं
प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं
नाम तस्याह ॥ वाय आत्मजानात्म-
समानशीलगुणकर्मरूपवीर्येदारान्दश भाषयाम्भभूव
कन्यां च यधीयसीमूर्धस्वतीं नाम ॥ २४ ॥
आग्नीध्रेष्मजिह्वयज्ञयाहुमहावीरश्चिरप्यरेतोऽष्टतपुष्ट-
सवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवानि
नामान् ॥ २५ ॥ एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय
भासन्तु चरेतस्त आत्मविद्यायामर्मभाषादारम्य
कृतपरिचया पारमहंसमेवाभ्रममजन् ॥ २६ ॥
तस्मिन्नु ह वा उपशमशीला परमर्षयः सकल-
जीवनिक्रमावासस भगवतो वासुदेवस्य मीतानां
शरणमृतस्य भोमचरणारविन्दाविरतसरणाविगलित
परममक्तियोगानुभावेन परिभाषितान्त्वर्द्धया-
भिगते भर्गवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगारम-
न्येबौत्समस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥ २७ ॥
अन्यस्यामपि जायावा त्रय पुत्रा आसन्तु सप्त-
त्नानसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥ २८ ॥

एषमुपश्रमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपति
र्जगतीमर्षुदान्येकादश परिवस्तराणामभ्याहृतातिल-
पुरुषकारसारसमृतदर्शकपुगलापीडितमौर्वीगुण
स्तनितविरमितधर्मप्रतिपद्या बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेध

निरन्तर ध्यान करते रहनेसे यद्यपि उनके रागादि सभी
मउ नष्ट हो चुके थे और उनका हृदय भी अत्यन्त सुद-
या, तथापि बर्होका मान रखनेके विषये वे पृथ्वीका शासन
करने लगे ॥ २३ ॥ तदनन्तर उन्होंने प्रजापति विश्वकर्माकी
पुत्री बर्हिष्मतीसे विवाह किया । उससे उनके दस पुत्र हुए ।
वे सब उनकी समान शीलवान्, गुणी, कर्मनिष्ठ,
रूपवान् और पराक्रमी थे । उनसे छोटी ऊर्जस्वती
नामकी एक कन्या भी हुई ॥ २४ ॥ पुत्रोंके नाम
आग्नीध्र, इष्मिजिह्व, यज्ञयाहु, महावीर, चिरप्यरेता,
अष्टतपुष्ट, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि थे ।
ये सब नाम अग्निके भी हैं ॥ २५ ॥ इनमें कवि, महावीर
और सवन—ये तीन वैदिक ब्रह्मचारी हुए । इन्होंने
बान्याकृष्णासे आत्मविद्याका अभ्यास करते हुए अन्तमें
संन्यास-आश्रम ही स्वीकार किया ॥ २६ ॥ इन निवृत्ति
परायण मर्षियोंने संन्यासाधर्ममें ही रहते हुए समस्त
जीवोंके अविद्यान और मन्वन्वचनसे दूरे हुए छोगोंको
आश्रय देनेवाले भगवान् वासुदेवके परम सुन्दर चरणा-
रविन्दोंका निरन्तर चिन्तन किया । उससे प्राप्त हुए
अकण्ड एवं श्रेष्ठ मक्तियोगसे उनका अन्तःकरण सर्वथा
शुद्ध हो गया और उसमें श्रीमद्वाङ्मय का आविर्भाव हुआ ।
तब देहादि उपाधिकी निवृत्ति हो जानेसे उनकी आत्माकी
सम्पूर्ण जीवोंके आत्मभूत प्रत्यगात्मामें एकमात्रसे स्थिति
हो गयी ॥ २७ ॥ महाराज प्रियव्रतकी दूसरी भायसि
वत्सम, तामस और रैवत—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो
अपने नामवाले मन्वन्तरोंके अधिपति हुए ॥ २८ ॥

इस प्रकार कवि आदि तीन पुत्रोंके निवृत्तिपरायण
हो जानेपर राजा प्रियव्रतने ग्यारह अनुद कर्त्तक
पृथ्वीका शासन किया । जिस समय वे अपनी अकण्ड
पुरुषायमयी और वीर्यशालिनी मुनाओंसे घनुरकी दोरी
खींचकर टट्टार करते थे, उस समय दूरके मारे
सभी भर्मादोही म माने कहाँ छिप जाते थे ।
प्राणप्रिया बर्हिष्मतीके दिन दिन बढ़नेवाले

१ मा पा —अथ दुहितरं । २ प्राचीन प्रतिभे आत्मजानात्म—इतना अंश नहीं है । ३ मा पा —
तस्मिन्निह । ४ प्राचीन प्रतिभे भगवति यह पाठ नहीं है । ५ मा पा —आत्मताहाम्भविषे । ६ मा पा —
मन्वन्तराधिपतयः समक्तियोगानुभावेन ।

मानप्रमोदप्रसरणयौपि ष्यवीडाप्रमुपितहासावलोक-

रुचिरस्वैरमादिभिः पराभूयमाननिवेकै इवानव

मुष्ममान इव महामना मुमुजे ॥ २९ ॥

यौवदशभासयति सुरगिरिमनुपरिधामन् भगवाना-
दिस्था वसुधावलमर्धेनैव प्रवपत्यर्वेमावच्छादयति
तदा हि भगवदुपामनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभि-
नन्दन् समजवेन रवेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिन-
करिण्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यकामद् द्वितीय
इव पतङ्ग ॥ ३० ॥ य वा उ इ तत्रथ
चरणनेमिकृतपरित्वातास्त सैष सिन्धव आसन् यत
एव कृता सप्त भुवो द्वीपाः ॥ ३१ ॥ जम्बू
प्रघशारमलिकुशकौशकाकपुष्करसङ्घास्तेषां परि-
माणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुचर उचरा यथासंख्यं
द्विगुणमानेन बहि समन्तत उपकल्पा ॥ ३२ ॥

धारादेहुरसादसुरादधृतोदधीरोददधिमण्डादशुषा-
दा सप्त जलधयः सप्त द्वीपपरितो इवाम्यन्तर
द्वीपममाना ण्डकैक्येन यथातुल्यं सप्तमपि
बहिर्द्वीपेषु पृथक्परिते उपकल्पितास्तेषु जम्बूनादिषु
बहिष्मतीपनिगनुयतानाममजानाग्नीध्रमजिह्वयत्न
बाहूदिरण्यरतापृतपुष्पभातिधिर्वीतिहात्रमयान् यथा-

आमोद-प्रमोद और अम्युत्थामादि वीडाओं के कलन एवं
उसके बीजानोचित हाव भाव, लज्जासे सङ्कुचित स्वर
हास्ययुक्त चितवन और मनको मानेवासे तिनोद लदिते
महापना प्रियवत विवेकहीन व्यक्ति की मोठि आत्मनिष्ठ-
से होकर सब श्रेयोंको योगेन लगे । किन्तु वास्तवमें वे
उनमें आसक्त नहीं थे ॥ २९ ॥

एक बार इन्होंने जब यह देखा कि भगवान् सप्त
समुद्रकी परिक्रमा करते हुए त्र्यंकाश्लोकस्य पृथ्वीके
जितने भागको आत्मोक्ति करते हैं, उसमेंसे काय ही
प्रकाशमें रहना है और आधेमें अन्वकर छाया रहत
है, तो उन्होंने इसे पसंद नहीं किया । तब उन्होंने
यह स्वल्प लेकर कि 'यै एतको भी दिन बना ईश्वर'
सूर्यके समान ही वेगवान् एक ज्योतिर्मय रूपमें बहकर
द्वितीय सूर्यकी ही मूर्ति उनके पीछे-पीछे पृथ्वीकी सप्त
परिक्रमाएँ कर डाली । भगवान् की उपामनासे इनका
ज्योतिकप्रभाव बहुत बढ़ गया ॥ ३० ॥ उस समय इनके
रूपके पहिचोले जो लीकें बनाई, वे ही सात समुद्र हुए
उनसे पृथ्वीमें मात द्वीप हो गये ॥ ३१ ॥ उनके नाम
क्रमशः जम्बू, द्रव्य, शास्मलि, कुजा, कीड, वक्र और
पुष्कर द्वीप हैं । इनमेंसे पहले-पहलकी अपेक्षा करी
आनेके द्वीपका परिमाण दुना है और ये समुद्रका बाड़ी
भागमें पृथ्वीके चारों ओर फैले हुए हैं ॥ ३२ ॥ सप्त
समुद्र क्रमशः खार जल, ईशके रस, मरिचा, धी, इष-
मट्टे और मीठे जलसे भरे हुए हैं । ये सातों द्वीयोंकी
खाइयोंक समान हैं और परिधायमें जाने भीतरवत्ते
द्वीपके बराबर हैं । इनमेंसे एक-एक क्रमशः अन्न-
अम्ब सातों द्वीयोंको बाह्रसे घेरकर स्थित है ।
बहिष्मतीपनि महाराज दिव्यजने ज्ञान अनुगत पुत्र
आग्नीध्र, इन्द्रादि यज्ञबाहु हिरण्यरता, गूलगूल केत-

१ प्रा वा — प्रमादमादयनरथ । २ प्रा वा — यौग्यवीडापर्याप्त । ३ प्रा वा — विवेको नाशपुण्यम् ।
४ प्रा वा — परेवाभागवति । ५ प्रा वा — गत गत मिथ । ६ प्रा वा — द्विगुणेन बहिः लघ्वतः । ७ प्रा
वा — द्वीगुणा मन्त्रे द्वीप । ८ प्रा वा — एकेकस्ये । ९ प्रा वा — तुल्य परिधय जलधयिष्य । १० प्रा
वा — त्रु बहिः परागि । ११ प्रा वा — बाह । १२ प्रा वा — यथाकल्प्यक्रमैकस्मिन्नेकमनसि ।

● इनका नाम इस प्रकार लयताना चाहिये—पहले जम्बूद्वीप है । उनके चारों ओर धार लज्ज है । वह व्यपरीने
पिता हुआ है । उनका भरो और इनके लक्ष्य लक्ष्य है । उनका नामाश्रीन धी है । उनके चारों ओर मरिचा लक्ष्य है ।
निर हुआ है । वह पीर लक्ष्य म पिता हुआ है । उनके बाहर कौशरो है । उनका चारों ओर लक्ष्य मुद्र है । निर लक्ष्य
धीर है । उसे मरेका लक्ष्य धीर है । उनका चारों ओर पुष्करद्वीप है । वह लीकें लक्ष्य लक्ष्य पिता हुआ है ।

संख्येनैकैकभिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥ ३३ ॥

दुहितरं चोर्ध्वस्तर्षी नामोन्नतसे प्रायच्छद्यसा-

मासीव देवपानी नाम काञ्चसुता ॥ ३४ ॥

नैवविध पुरुषकर उरुक्रमसा

पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितपद्गुणानाम् ।

चित्र विदूरविगत संकृदाददीत

यन्मामवेयमधुना स अहाति बन्धम् ॥ ३५ ॥

स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देशं

चरयानुक्षयनानुपतितगुणविसर्गमर्मणेनानिर्वात

मिवात्मनं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥ ३६ ॥

अहो असाञ्चनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियै-

रविद्यत्तचितविपमविषयान्धकूपे तदलमलममुष्या

वनिवाया विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयाञ्चकर

॥ ३७ ॥ परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यर्पमर्धेनानु

प्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादाय विमन्य सुक्तभागां

च महिषीं मृतकमिव सहमहाविभूतिमपहाय

स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि शुद्धीतहरिविहारानुभावो

भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥ ३८ ॥

तस्य ह वा एतं ज्ञात्वा —

प्रियव्रतकृत कर्म का नु कुर्पोदिनेश्वरम् ।

यो नेमिनिर्नरकराष्टायां पन्नमस्रवारिधीन् ॥ ३९ ॥ पवित्रो मे बनी हुई स्त्रीकेसे ही सात समुद्र बना

तिथि और वीतिहोत्रमेंसे क्रमशः एक-एकको उक्त जन्म

आदि द्वीपोंमें एक-एकका राजा बनाया ॥ ३३ ॥

उन्होंने अपनी कन्या ऊर्ध्वस्तरीका विशाह शुक्रप्रचार्यकी

से किया, उसीसे शुक्रकन्या देवपानीका जन्म हुआ ॥ ३४ ॥

रात्रन् । जिन्होंने भगवत्परणारविन्दोंकी रजक प्रभावसे

शरीरक भूख-प्यास, शोक-गोह और जरा मृत्यु—इन

छ गुणोंको अपना मनके सहित छ इन्द्रियोंको जीत

लिया है, उन भगवद्भक्तोंका ऐसा पुरुषार्थ होना कोई

आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि कर्णबहिष्कृत व्याधाल

आदि नीच योनिका पुरुष भी भगवान्‌के नामका

केवल एक बार उच्चारण करनेसे तत्काल संसारबन्धनसे

मुक्त हो जाता है ॥ ३५ ॥

इस प्रकार अतुलनीय बल-पराक्रमसे मुक्त महाराज

प्रियव्रत एक बार, अपनको देवर्षि मारदके चरणोंकी

चरणमें जाकर भी पुन देवका प्राप्त हुए प्रपञ्चमें फँस

जानेसे अवाप्त-सा देख, मन-ही-मन विरक्त होकर इस

प्रकार कहने लगे ॥ ३६ ॥ 'ओह, क्या बुरा हुआ !

मेरी जियबोझुप इन्द्रियोंने मुझे इस अन्यायजनित विषम

विषयका अन्धकूपमें गिरा दिया । बस ! बस ! बहुत हो

लिया । हाय ! मैं तो खीका कीड़ासुग ही बन गया !

तसनं मुझे बँगरकी भौंति नचाया ! मुझे धिक्कार है !

धिक्कार है !' इस प्रकार उन्होंने अपनको बहुत कुछ

पुष्ट मन्ना कहा ॥ ३७ ॥ परमात्म्य श्रीशिवकी कृपासे

उनकी विवेकवृत्ति जागृत हो गयी । उन्होंने यह सारी पृथ्वी

यथायोग्य अपने अनुगत पुत्रोंको बौन दी और जिसके

साथ उन्होंने तरह-तरहके भोग भोगे थे, उस अपनी

राजधानीको साक्षात्पश्यीके सहित मृतदेहके समान

छोड़ दिया तथा हृदयमें बैद्यम्य धारणकर भगवान्‌की

स्तीलाओंका चिन्तन करते हुए उसका प्रभावसे श्रीनारदजी-

के वतजग्ये हुए मागका पुन अनुमरण करने लगे ॥ ३८ ॥

महाराज प्रियव्रतक विषयमें निम्नलिखित श्लोकक

प्रमिथ है—

प्राज्ञा प्रियव्रतन जो कर्म जिये उन्हें सर्वशक्तिमन्

ईश्वरक सिद्ध और कौन कर सकता है ! उन्होंने रात्रिके

अन्धकारका मिटानेका प्रयत्न करते हुए अपने रदनके

१ मा पा — मुकुटादरीन । २ मा पा — महद्वाहितयम । ३ मा पा — प्रत्यक्षमनोऽनुपरिनिष्ठस्यपुत्रे ।

४ वा पा — विमन्य भोगं च ।

तस्याः सुललितगमनपदविन्यास
गतिविलासायाभातुपदं स्वनखणायमानरुचिर
चरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधि-
योगेनामीलितनयननलिनमृकुलयुगलमीपद्विक्रैचर्य
व्यचष्ट ॥५॥ तामेवैविदूरे मधुफरीमिव सुमनस
उपप्रिभ्रन्तीं दिविजमनुजमेनोनयनाद्दृष्टदुर्घैर्गति
विहारमीदृशविनयावलोक्युत्तराधरावयवैर्मनसि नृणां
कृत्स्मायुधस्य विदधतीं विवरं निजसुखविगलित-
द्रुतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिक्रोप-
तेधेन द्रुतपदविन्यासेन वस्युस्पन्दनस्तनकलझकचर
भारारुणां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य
भगवतो मकरध्वजस्य वक्षसुपनीवो जडवदिति
होवाच ॥ ६ ॥

कास्व चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले

मायासि कापि भगवत्परदेवतायाः ।

विन्ये विभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे

किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमृचान् ॥ ७ ॥

बाष्पाविमौ भगवत श्रुतपत्रपत्रौ

श्रान्तावपुङ्गरुचिरावतितिग्मदन्तौ ।

कस्मै पुपुहसि वने विचरन् विधः

धेमाय नो जडभिर्पातव विक्रमोऽस्तु ॥ ८ ॥

पूर्वचित्तिकी विलासपूर्ण सुस्पष्ट गतिविधि और पद
विन्यासकी शैलीसे पद १६ पर उसके चरणनूपुरोंकी समक
हो उठती थी । उसकी मनोहर ध्वनि सुमकर यन्त्रुमार
जासीघने समाधियोगद्वारा मूढ़ हुए अपने कमल-कलीके
समाम सुन्दर नेत्रोंको कुछ-कुछ खोलकर देखा तो पास ॥
उन्हें वह अस्तर दिखायी दी । वह भमरीके समान
एक-एक फूलके पास जाकर उसे सूँघती थी तथा देवता
और मनुष्योंके मन और मनोको आह्लादित करनेवाली
अपनी विलासपूर्ण गति, क्रीडा-वापस्य, लब्धा एव विनय-
युक्त चितवन, सुमधुर बाणी तथा मनोहर अङ्गावयवोंसे
पुरुषोंके हृदयमें कर्मदेवके प्रवेशके लिये द्वार-सा बना
देती थी । जब वह हँस-हँसकर बोलने लगती, तब ऐसा
प्रतीत होता मानो उसके मुँहसे अमृतमय मदक मधु
झर रहा है । उसके निःश्वसके गन्धसे मदन्ध होकर
भीरे उसके मुख-कमलको घेर लेते, तब वह उनसे बचने-
के लिये जङ्घी-नत्दी पैर उठाकर चली तो उसके कुछ
कल्पा बेणी और करधमी हिलनेसे बड़े ही सुहावने लगते ।
यह सब देखनेसे मगवान् कर्मदेवकी आनीप्रके हृदयमें
प्रवेश करनेका अवसर मिल गया और वे उनके अधीन
होकर उसे प्रसन्न करनेके लिये पगलकी भाँति इस
प्रकार बहने लगे—॥ ५ ६ ॥

‘मुनिवर्य ! तुम कौन हो, इस पर्यन्तपर तुम क्या करना
चाहते हो ? तुम परमपुरुष श्रीनारायणकी कोई माया तो
नहीं हो ? [भीड़ोंकी ओर संकेत करके—] ससे ! तुमने
ये बिना कोरीके दो धनुष क्यों धारण कर रखे हैं ?
क्या इनसे तुम्हारा कोई अपना प्रयोजन है, अपना इस
सत्सारारण्यमें मुक्त-जैसे मतशत्रुके मृगोंका शिकार करना
चाहते हो ! ॥ ७ ॥ [कटाक्षोंको लक्ष्य करके—] तुम्हारे
ये दो बाण तो बड़े सुन्दर और पैने हैं । अथो ! हमके
कमलदलके पंख हैं, देगनेमें बड़े शान्त हैं और हैं भी
पंखहीन* । यहाँ बनमें विचरते हुए तुम इन्हें किसपर
छोड़ना चाहते ? यशो तुम्हारा बर्ष सामना करमाना
नहीं दिखायी देता । तुम्हारा पद पराक्रम हम जैसे
जडमुदियोंके लिये कल्याणकारी हो ॥ ८ ॥ [भीड़ोंकी

१ प्राचीन प्रथिमें ‘पुपुह’ यह पाठ नहीं है । २ मा पा —भीषद्विरस्य । ३ मा पा —तामेव दूरे ।
४ प्राचीन प्रथिमें ‘सुमनस’ यह पाठ लक्षित है । ५ प्राचीन प्रथिमें ‘अमो’ यह पाठ नहीं है । ६ मा पा —
निभमूलमापयामोदयत् । ७ मा पा —द्रुतवद्व्यासेन । ८ मा पा —मुनिवर्य शैले । * बाधक : विटका किरण ।

शिष्या इमं भगवतः परितः पठन्ति

गायन्ति साम सरहस्यमब्रह्ममीश्वरम् ।

युष्मच्छिस्ताविललिताः सुमनाऽभिपूरीः

सर्वे भवन्त्यपिगणा इव वेदशास्त्रा ॥ ९ ॥

बाचं परं चरणपद्मरसितिरीणां

ब्रह्मरूपमृत्तरां शृण्वाम तुभ्यम् ।

कम्भा कदम्बरुचिरद्विविद्विभ्यम्

यस्यामलापरिधिः कचवस्कलं ते ॥ १० ॥

किं सम्पुतं रुचिरयोर्विज शृङ्गपास्ते

मय्ये कृष्णो वहसि यत्र दृष्टिः प्रीता मे ।

पङ्कोऽरुण सुरभिरात्मविषाण ईरगु

येनाभ्रमं सुभग मं सुरमीकरोपि ॥ ११ ॥

लोकं प्रवर्षय सुहृदम तावकं मे

यत्रत्य इत्थमुरसात्मवाक्पूषो ।

ब्रह्मदिभस्य मनउभयनौ विभर्ति

बह्व्रुतं मरसरससुषादि वक्त्रे ॥ १२ ॥

कम वाऽऽस्तमश्चिरदनाद्विरक्त वाति

विष्णो कलास्यनिमिषो मय्यगै च कर्णौ ।

उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशानि

रससमृद्धनिफर सर इ सुगन्ध त ॥ १३ ॥

और देखकर—] भगवन् ! तुम्हारे चारों ओर बने शिष्याण अर्घ्ययन कर रहे हैं, वे तो निरन्तर राससुख सामगान करते हुए मानो भगवान्की स्तुति कर रहे हैं और श्रविणग जैसे वेदकी शास्त्रार्थोंका अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार ये सब तुम्हारी चोटीसे बड़े हुए पुण्यसेवन कर रहे हैं ॥ ९ ॥ [नृपतेके शम्भकी ओर स्नेह करके—] ब्रह्मन् ! तुम्हारे चरणरूप पियकोंमें जो पैर बने हैं, उनका शब्द तो सुमानी देता है, परन्तु सा देखनेमें नहीं आता । [कलनीसहित पीपी साक्षीमें ब्रह्मकी कांतिकी उपेक्षा कर—] तुम्हारे नितम्बोंपर यह कर कुसुमोंकी-सी आभा कहाँसे आ गयी । इनके ऊपर । अंगारोंका मण्डल-सा भी लिखयी वस्तु है । किन्तु तुम्हारे कलकल-वक्त्र कहाँ है ? ॥ १० ॥ [कुसुममण्डित कुण्डलों और लम्ब्य करके—] द्विजवर ! तुम्हारे इन गोलों हुए सींगोंमें क्या भाग हुआ है ? अवश्य ही इनमें बड़े कष्ट रह भरे हैं, इसीसे तो तुम्हारा मण्यभाग इतना झूटा होने में तुम इनका बोझ ढो रहे हो । यहाँ नरकर तब भी दृष्टि भी मानो अटक गयी है । और सुभग ! इन सींगों पर तुमने यह लकड़-लाकड़ स्नेह-सा क्या लगा रक्ता है । उनकी गन्धसे तो मेरा सारा आधम मर्हक उठा है ॥ ११ ॥ मित्रवर ! मुझ तो तुम अपना दर्श निभा दो, जहाँ निवासी अपने वक्त्र स्वकपर ऐसे बद्धमुत अवयव भस्म करते हैं, जिन्होंने हमारे-जैसे प्राणियोंके चित्तोंमें सुख कर दिया है तथा मुझमें विचित्र हाव-भाव, सरस भाव और अवयव-जैसी अनूरी कस्तुरि रक्ते हैं ॥ १२ ॥

‘द्विजवर ! तुम्हारा स्नेहन क्या है, जिसके करनेसे तुम्हारे मुखसे हवन-सामग्रीकी-सी सुगन्ध फैल रही है । माष्टम होता है तुम कोई विष्णुमग्नान्की क्या हो । इसीप्रिय तुम्हारे कानोंमें कभी पसक न मानेनास करने काकाक गो कुण्डल हैं । तुम्हारा मुख एक सुन्दर सरोवर के समान है । उसमें तुम्हारे चक्षुष नेत्र मयसे बनेंसी हुई दो मण्डियोंके समान दत्तपति हंसोंके समान और सुषराणी अवयवकी मीनोंके समान शान्दयमान है ॥ १३ ॥

याऽसौ त्वया कर्मगोत्रहृत् पतङ्गो

त्रिषु भ्रमन् भ्रमत् एज्यपतेऽश्विणी मे ।

सुक्तं न त स्मरामि वक्रजटावस्थ

करोऽनितो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥

स्य तपाधन तपधरतां तपोन्म

द्यतनु कल तपसा भवतापलम्भम् ।

चतु तपोऽर्हमि मया सह मित्र मयं

किं वा प्रमीति स वै भवभावनो मे ॥१५॥

न त्वा स्वजामि दयितं द्विजवत्सलं

यस्मिन्मना द्यपि ना न विवातिलप्रम् ।

मां चारुमृदुर्हमि नतुमनुग्रह त

नितं यत् प्रतिमन्तु गिवा मच्चिव्य ॥१६॥

भीमो उवाच

इति ललनानुनयाविविधारदो ग्राम्यवदग्ध्यया

परिमापया तां त्रिषुभवत् त्रिषुभमविरधितभाजया-

मान ॥१७॥ मा प तनन्मस्य वारुभपतपुदिगील-

रूपवयं धियौतापण पराधिममनामन्तन महापुतापुत

परिवत्सगपतप्रण कान् जम्भुदापपतिना भीमम्बवा

भागान् पुमुत् ॥१८॥ तस्यामुदका आ मज्जनम गजव

आम्नीधा नाभिदिग्गुण्यहरिषेणैषान्तरम्यकहरि-

मपद्विभक्त्यक्तुमान्मप्राधत्त पुयानवनपत्न ॥१९॥

तुम जव जाने करकर्मणसे ययत्री मारकर इस गेदका
उठावन हा, तब य त्रिषा-विशिष्टाओं जाती हुई मरे
नेत्रोंको तां चञ्चल कर ही देनी है, साथ-साथ मरे मनमें
भी लज्जामी पंग कर डनी है । तुम्हारा बौका ब्रह्मजट
सुल गया है, तुम इसे सुभाज्य नहीं कर, यह धूर्त
बापु कया दुष्ट है आ बार-बार तुम्हारा मोदी-बन्धको
ठका रता है ॥ १४ ॥ तपाधन ! तपस्वियोंके तपको भट
करनबाण यह अनूप रूप तुमने किस तरह प्रभावसे
पया है ? मित्र ! आओ, कुछ दिन मरे साथ रहकर
तपस्या करो । भयका, कहीं निषचिन्ताकी इच्छासे द्वाबीने
हा ना मुझसे क्या नहीं की है ॥ १५ ॥ मचमुच, तुम
द्वाराकी ही प्यारी दन हा अब, मैं तुम्हें नहीं छोड़
सकता । तुममें ता मर मन और नयन ऐसे टन्त्र गय
है कि अन्यत्र जाना ही नहीं चाहत । सुगर सीगोंवादी ।
तुम्हारा जहाँ मन हा मुझ भी वही ल चला, मैं ता
तुम्हारा अनुसर हूँ और तुम्हारी ये मङ्गलमी सन्धियों
भी इमार ही साथ रहें ॥ १६ ॥

भीमकृष्णकी कदन है—गजन्तु आग्राध टकनाओं

क समान सुदिमान् अर विपोंका प्रसन्न करनेमें बड़े
बुद्धिमान् । उन्होंने इसा प्रकरकी निषातुपमयी सीटी-
सीटी बानोंमें तम जन्मगाका प्रसन्न कर दिया ॥ १७ ॥
बार-मनाक्रमे अग्रज्य जन्मीतरी सुदि नीक, रूप
जम्बा लगी अर उगारकमें अर्चयित हाकर वह उन
जम्बुतागानिक माप दज हजम कौनार पूर्वी और
गक मम मागती रही ॥ १८ ॥ तनन्मस्य गजव
आर्द्राधन उगाक गममे नाभि त्रिपुकर, हरिषर इराहन,
म्यक त्रिन्मस्य पुत्र मद्राध अर कतुमात्र नामक मा
पुत्र टगन्त त्रिष ॥ १९ ॥

१ मा पा न १२ मा य —मक्रेड लम्पट । ३ मा य —जानने । ४ मा क —द्विषा ।
५ माकेन द्रिमे भीम उवाच वह पा रही है । ६ मा य —कर्मवत् । ७ माकेन द्रिमे ८ बार बार
निरिह है । ८ माकेन द्रिमे पु —कर्मवत् । ९ माकेन द्रिमे १० बार बार
—युक्ति । ११ माकेन द्रिमे कन् पद दज निरिह है । १२ मा य —गजव । १३ माकेन द्रिमे
१४ माकेन द्रिमे १५ माकेन द्रिमे १६ माकेन द्रिमे १७ माकेन द्रिमे १८ माकेन द्रिमे १९ माकेन द्रिमे

सा हस्ताय सुतामवानुवर्त्तन् गृह एवाप-
 हय पूर्वचित्तिर्मय एवात्र देवद्विपतस्ये ॥२०॥
 आमीघ्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव सहनन-
 बलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथा-
 भार्गवम्बुद्रीपवर्षाणि धुस्रजुः ॥ २१ ॥ आधीधो
 राजावृत्तः कथमानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्य-
 मानस्तस्याः सलोक्यां क्षुतिमिरवारुन्ध यत्र पितरो
 मर्दयन्ते ॥२२॥ सम्परेते पितरि नव आतरो मेरु-
 दुहितुर्मेरुदेवीं प्रतिकृपाप्रदं दृष्ट्वा उवाच रम्यां
 नारीं भद्रां देववीतिमिति सङ्गा नैषोदवहन् ॥२३॥

इस प्रकार नौ वर्षोंमें प्रतिवर्ष एकके क्रमसे श्रीः
 उत्पन्न कर पूर्वचित्ति उन्हीं राजमन्त्रों ही ओकरा
 कथाजीवी सेवामें उपस्थित हो गयी ॥ २० ॥ ये कथा
 के पुत्र माताके अनुग्रहसे स्वभाक्से ही सुबोले और स
 शरीरवाले थे । आमीघ्रने जम्बूद्वीपके निम्न करके ल
 के समान नामवाले नौ वर्ष (मूलम्ब) बनाये और
 एक-एक पुत्रको सौंप दिया । तब वे सब कल्पेज
 वर्षका राज्य भोगने लगे ॥ २१ ॥ महाराज आमीघ्र
 दिन मागोको भोगते रहनेपर भी उनसे कृत ही ले
 उस अप्सराको ही परम पुरुषार्थ समझते थे । इसी
 उन्होंने वैदिक कल्पके द्वारा उसी क्लेशको प्राप्त कि
 जहाँ पितृगण अपने सुकृतोंके अनुसार तदनु-
 मोर्धमें मरत रहते हैं ॥ २२ ॥ पितृके परब्रह्मके निक
 पर नाथि आदि नौ मायोंने मेरुकी मेरुदेवी, प्रति
 उम्बद्वी, कथा, रम्या, क्षमा, नारी, भद्रा और देव
 नाम्नी नौ कन्याओंसे विवाह किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमार्थ्या संहितायां
 पञ्चमस्कन्धे आमीघ्रवर्णननाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

राजा नाभिश्च चरित्र

मिथुर्क उवाच

नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदम्या भगवन्तं यज्ञ-
 पुरुषमेव हि सास्माज्जय ॥ १ ॥ तस्यैव बाध भद्रया
 विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येपु प्रचरत्सु ब्रह्मदेव
 कालमन्त्रस्विन्दुधिणाविधानयागोपपत्त्या दुरधिगमो-
 ऽपि भगवान् भागवतवस्तस्य यथा सुभतीक आत्मान-
 मपराजित निजजनाभिप्रेतार्थविधितस्या गृहीतवृद्धयो

श्रीधुक्देवजी कहते हैं—यन्त्र । आमीघ्रने
 नाभिके कोई तन्त्रान न थी, इसलिये उन्होंने न
 भार्या मेरुदेवीके सहित पुत्रकी कामनासे एकप्रकार
 भगवान् यज्ञपुरुषका यजन किया ॥ १ ॥ यद्यपि ह
 क्लेशवाले श्रीमद्भागवन् इन्द्र, येश, काल, मन्त्र, धृति
 दक्षिणा और विधि—इस यज्ञके साधनोंसे सहजमें
 मिलते, तथापि वे अच्छेपर ता कृपा करते ही हैं ।
 लिये जब महाराज नाभिने महापूर्वक निम्नप्रकारसे उ
 आपचना की, तब उनका दिष्ट अपने मन्त्रका क
 कार्य करनेके लिये उत्सुक हो गया । यद्यपि उनका क
 सर्वथा अतन्त्र है, तथापि उन्होंने प्रार्थनार्थका कथा

१ प्रा पा —यथाधिमार्ग । २ प्रा० पा —मधियममान । ३ प्रा पा —मेरुदम्ये । ४ प्रा पा —
 नारी । ५ प्राचीन प्रसिद्धि मिली वह पाठ नहीं है । ६ प्रा पा०—उवाच भववह । ७ प्रा पा —प्रथमे ल
 द्वितीयोऽध्यायः । ८ प्राचीन प्रसिद्धि श्रीधुक् उवाच यह पाठ नहीं है । ९ प्राचीन प्रसिद्धि मय यह पाठ लक्षित
 १ प्रा पा —उवाच बाधेति । २१ प्रा पा —कथाधिमार्ग ।

हृदयकम मनोनयनानन्दनायवाभिराममाविष्कार

॥ २ ॥ अथ ह तमाविष्कृतमुद्रयुगलद्वय हिरण्यमय

पुरुषविशेषं कपिधनौरेयाम्बरधरसि विलसच्छ्री

वस्त्रललामं दरवरनरुहचनमालाच्छर्पभूतमणिगटा

दिभिरुपलक्षित स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकण्ठ-

करिमृजहारकेतूरत्नपुराणकूपणनिर्मूपितमुत्सिक्-

मदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सखदु

मानमर्हणेनावनतक्षीर्षाण उपतस्थुः ॥ ३ ॥

श्लोक ३५:

अर्हसि मुहुरर्धमाईणमभाकमनुपधानां नमो नम

इत्येतावत्सदुपशिक्षित कोऽर्हसि पुमान् प्रकृतिगुण

व्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषो

रर्वाक्तनामिनामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥ ४ ॥

मकनञ्जननिकायवृजिननिरसनश्रितमप्रधरगुणगर्ण

कइशकयनादत् ॥ ५ ॥ परिजनानुरागविरचित

शेबलसशब्दमालिनमिवकिमलयतेनमिकाद्वाहूरै

रपि सम्भूतया सपर्यया किञ्च परम परितुष्यमि ॥ ६ ॥

१ प्राचीन प्रतिमे श्रुतिवचनः यह पाठ नहीं है । २ प्राचीन प्रतिमे गर्वशब्द यह पाठ नहीं है ।

३ मा पा — नववस्त्रावधितल्लिख । ४ प्राचीन प्रतिमे शिव यह पाठ नहीं है । ५ मा पा — दुःखी । ६ मा

पा — समभूतया ।

होते समय उसे मन बार मनोको जानन्द देनेवाले

व्यययोसे युक्त अति सुन्दर इत्याकारक मूर्तिमें प्रवृत्त

किया ॥ २ ॥ उनके वीर्यक्रमसे रेशमी पीताम्बर पा, वस्त्र

स्वर्णपर सुमनोहर श्रीवस्त्रविह सुशोभित पा, मुनाओंमें

शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा गलेमें वनमाला और कौस्तुभ-

मणिकी शोभा थी । सम्पूर्ण शरीर अङ्ग-प्रत्यङ्गकी कान्तिको

ब्रह्मनेत्रोंसे किरणबाल्मण्डित मणिमय मुकुट, कुण्डल,

कङ्कण, कण्ठनी, हार, बाणूद और नूपुर आदि

आभूषणोंसे विभूषित था । ऐसे परम तेजस्वी वस्तुसुन्दरमूर्ति

पुरुषविशेषको प्रकट हुआ देख श्रुतिजन, सदस्य और

पञ्चमान आदि सभी लोग ऐसे आह्लादित हुए जैसे

निर्वन पुरुष अपार धनराशि पाकर कृता नहीं समाता ।

किन्तु सभीने सिर झुकाकर अत्यन्त आदरपूर्वक प्रभुकी

अर्घ्यद्वारा पूजा की और श्रुतिजनोंने उनकी स्तुति की ॥ ३ ॥

श्रुतिजनोंने कहा—पूज्यतम ! हम आपके अनुमन

मक्त हैं, आप हमारे पुन-पुन पूजनीय हैं । किन्तु हम

आपकी पूजा करना क्या करें ? हम तो बार बार आप

का नमस्कार करते हैं—इतना ही हमें मन्त्रापुराणोंने

सिखाया है । आप प्रकृति और पुरुषसे भी परे हैं ।

पितृ ब्राह्मण गुणोंके सर्वभूत इस प्रपञ्चमें सुखि पैदा जाने

से आपके गुण-ज्ञानमें सर्वथा असमर्थ ऐसा कौन पुरुष

है जो ब्राह्मण नाम, रूप एवं आकृतिके द्वारा आपके

स्वरूपका निरूपण कर सके ? आप साक्षात् परमेश्वर

हैं ॥ ४ ॥ आपके परम महत्त्वमय गुण सम्पूर्ण जनताके

दुःखोंका दमन करनेवाले हैं । यदि कोई उन्हें बणन

करनेका साहस भी करेगा, तो केवल उनके एक दण्डकी ही

वर्जित कर सकेगा ॥ ५ ॥ किन्तु प्रभो ! यदि आपके

मक्त प्रेम-रात्रिद काणीसे स्तुति करते हुए सामान्य जग

विद्युद्वा पस्वप, श्वेतभी और दूबके अङ्कुर आदि सामग्रीसे

ही आपकी पूजा करते हैं, तो भी आप सब प्रकार

सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

अधानामपि न सर्वस इत्यपारुमारभरया म
 सूचितमर्थमिहापलभामह ॥७॥ आत्मन एवानुभव-
 मेअमाम्पतिरक्षण बाभूयमानाक्षेपपुरुषार्थस्वरूपस
 किन्तु नाभाशिप आशासानानामेतदभिमराभनमात्र
 भवितुमर्हति ॥८॥ तद्यथा बालिज्ञानां स्वयंपारमन
 भय परमविदुषा परमपरमपुरुष प्रवर्णकरुणया
 स्वमहिमानं चापवगात्पुष्पकल्पयिष्यन् स्वयं नाप
 नित एवेतत्तद्विहापलक्षित ॥ ९ ॥ अधायमेव
 वगे ब्रह्मचम यदि बहिपि गजपेर्वरदर्यभा भवाभिज्ञ
 पुरुषपुष्पविषय आसीत् ॥ १० ॥
 अमङ्गलिनितमानानलविधूतानेपमलानां भवत
 स्वभावानामा मारामाणां सुनीनामनवरत
 परिगुणितगुणगण परममङ्गलायनगुणगणकथनो
 ऽपि ॥ ११ ॥ अथ कथञ्चित्सबलनमुपेतनजम्भण-
 दुग्धव्यानादिषु विवर्गानां न मारणाय न्वर
 मरणप्रायामपि मरुत्कामलनिग्मनानि तत्र गुण
 कृतनामध्यानि बधनगात्रगणि भवन्तु ॥ १२ ॥
 किञ्चाप राजपरिपत्यकाम प्रजां भवा

हमें तो अनुप्राणके सिवा इस द्रव्य-वस्तु
 अनेकों व्यक्तियोंके यहसे भी वाक्त्र क
 प्रयोजन नहीं दिखानेकी उता, ॥ ७ ॥ क्योंकि
 आपसे स्तत ही क्षण-क्षणमें जो सम्पूर्ण पुरुषार्थका पूर
 स्वरूप परमामन्द स्वभावत ही निरन्तर प्रादुर्भूत हो
 रहता है, आप माझात् उसका स्वरूप ही है । इस
 प्रकार यद्यपि आपका इन वस्तुओंके का प्रयोजन नहीं
 है, तप पि अनन्तर प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धि बल-
 वाले हयनागोंक भिये तो मनोरमसिद्धि पर्यंत
 साधन यही होना चाहिये ॥ ८ ॥ आप वस्तु
 परम पुरुषोंकी अपेक्षा भी परम श्रेष्ठ हैं । हम तो यह
 भी नहीं जानते कि हमारा परम पत्न्याग किसे है,
 और न हमसे आपकी यथोचित पूजा ही बनी है,
 तथापि प्रिय प्रकार तरङ्ग पुरुष विना दुःखाये भी केक
 करुणावश आह्वानी पुरुषोंके पास चले जाते हैं, उही
 प्रकार आप भी हमें मोक्षमार्गक अपना परम-पूरे
 हमारी अनीह वस्तुएं प्रदान करनेके भिये अन्य साधन
 यत्न-उत्तरेके समान यहाँ प्रकट हुए हैं ॥ ९ ॥ प्रकट
 हमें सबसे बड़ा वर तो आपन यही द निष्क कि
 प्रसादि समस्त वस्तुओंमें श्रेष्ठ हाकर भी आप रावर्त
 नाभिही इस यहशालामें साक्षात् हमारे नेत्रोंके लल
 प्रकट हो गये । अब हम और वर क्या माँगें ॥ १० ॥

प्रमा । आपके गुणगणोंका गान परम बल
 है । किन्हींने वेदागपते प्रमञ्जित हुई इलान्तिके इ
 अपने अन्त करणके गग-वेगादि सम्पूर्ण वरोंके क
 बाल्य है, अतएव भिनका क्षमाव आनन्द ही मन्त्र
 शान्त है, वे आत्माराम मुनिगण भी निरन्तर आप
 गुणोंका गान ही किया करत हैं ॥ ११ ॥ अब हा
 आपसे यही वर माँगने हैं कि गिरम, दाहर छाने
 छीकने अथवा जेमाई छाने और सङ्कटाधिक समय पर
 और और मरणान्तिही अथवाओंमें आपका स्तन न
 हा मकमपर भी किसी प्रकार आपके सन्दर्भकिय
 विनाशय 'मरुत्कसक' 'नीनक' 'अग्नि' गुणदोषक
 नामोंका हम उच्चारण कर सकें ॥ १२ ॥

इसके सिवा, बह्मव्याप्य न होनेपर भी पर प्रपन्न
 और है । आप माझात् परमेश्वर के अंग-अवर्ग अदि

दृष्टीमाशामान ईश्वरमाश्रिता स्वर्गापवर्गयोगि
भवन्तमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनमिषाधनः

फलीकरणम् ॥१३॥ को वा इह तऽपराजिताऽपरा-

नितया माययानवसितपदव्यानाद्भुतमतिर्विषय

विपरयानाद्भुतप्रकृतिरनुपासितमहेश्वरः ॥ १४ ॥

यद्देहवाच तव पुनरद्वयकर्तारिह समाहृतस्तत्रार्थधियां

मन्त्रानां नस्तद्यदहल्लनं देवदेवार्हमि माम्यन मर्वात

प्रतिवाहुमविदुषाम् ॥ १५ ॥

भीष्म उवाच

इति निगदनामिष्टयमाना भगवाननिमिर्पर्यभावर्य
धराभिधादितामिवन्तिचरण मन्त्रमिदमाह ॥१६॥

भीष्मगानुवाच

अहा वताहमृषया भवद्विरयितधर्मीर्मिर्विर्ममुनभ
मभियाशिता यन्मृष्यामत्रा मया मद्यथा भूयान्ति
ममाहमवाभिरूप यद्वल्पादधापि अद्यवादा न
मृषा भवितुमर्हति ममय हि भुवं यद् द्वित्रवपुण्ड्रम्
॥१७॥ तत आग्नीध्रापेऽगकल्याणतर्पिण्याभ्याम
तुल्यमनुपलभमान ॥१८॥

भीष्म उवाच

इति निशामयन्त्या मन्त्राभ्या पतिमभिधायान्त
दध भगवान् ॥१९॥ पठिषि तस्मिन्निव त्रिपुण्ड्रस्य

पंती काई वस्तु नहीं है, जिसे आप न देखें ।
तथापि जमे कोई कंगाल किसी घन छुटानेवाले परम
उत्तर पुरुषके पास पहुँचकर भी उससे भूसा ही मोगे,
उसी प्रकार हमारे यन्मान ये शत्रुर्षि नाभि सन्तानकर
ही परम पुरुषार्थ मानकर आपका ही समान पुत्र पानेक
जिये आपकी आराधना कर रह हैं ॥ १३ ॥ यह काई
आश्चर्यकी बात नहीं है । आपकी मायाका पार काई
नहीं पा सकता और न यह किसीके वशमें ही आ
सकती है । जिन स्वर्गोंने महापुरुषोंके चरणोंका आश्रय
नहीं लिया, उनमें ऐसा कौन है जो उसके वशमें नहीं
होता, उसकी बुद्धिपर उसका पराग नहीं पड़ जाता और
विरयरूप विपन्न वेग उसके स्वभावका दूषित नहीं कर
देता ॥ १४ ॥ देवदेव ! आप भक्तोंक बड़ बड़ कृपम
कर देते हैं । हम मन्दमनियोंने कामनावाग इस तुच्छ
कार्यक लिये आपका आवाहन किया, यह आपका
अनादर ही है । किन्तु अप समझाई हैं, अब हम
अज्ञानियोंकी इस गृष्टताको आप क्षमा करें ॥ १५ ॥

भीष्मकृष्णजी कहने हैं—राजन् ! कर्णारिपति
नामिसे पूज्य ऋषिजनोंने प्रमुख चरणोंकी पद्मा वक्क
जब पूर्वोक्त श्लोकसे स्तुति की, तब दक्षप्रभु श्रीहरि
वक्रवाक् इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—ऋषिया । यह असमंजसकी
बात है । आप मय मयवाणी महामा है, आपन
मुझसे यह बड़ा दुर्लभ कर भोगा है कि शत्रुर्षि नाभिक
मेरे प्रधान पुत्र है । सुनिया । नर समान तो मैं ही
हूँ क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ । ता भी शत्रुर्षोया वचन
निय्या नहीं जाना चाहिये द्वित्रपुण्ड्र मरा ही ता मुप
ह ॥ १७ ॥ इसलिये मैं स्वयं ही अपना अंगक्यास
आशीर्जनन नाभिक यहाँ अवतार लेता, क्योंकि करने
ममान मुम कोइ और शिष्टी नहीं दता ॥ १८ ॥

भीष्मकृष्णजी कहते हैं—महाराज ! केनचित्
मुनय इह उमक पतिने इस प्रकार कहकर भगवन्
अन्तर्यामि हा म्य ॥ १९ ॥ त्रिपुण्ड्र परीक्षित उम

१ मा वा — इह तत्पराजिताऽपरा- २ मा वा — विरययितधर्मीर्मिर्विर्ममुनभ ।
३ मा वा — काई वस्तु । ४ मा वा — माययानवसितपदव्यानाद्भुतमतिर्विषय ।
५ मा वा — पतिमभिधायान्त ६ मा वा — पठिषि तस्मिन्निव त्रिपुण्ड्रस्य ।
७ मा वा — अहा वताहमृषया भवद्विरयितधर्मीर्मिर्विर्ममुनभ ।
८ मा वा — भूयान्ति । ९ मा वा — तत आग्नीध्रापेऽगकल्याणतर्पिण्याभ्याम ।
१० मा वा — तुल्यमनुपलभमान ।

भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नामैः प्रियधिकीर्यया
तदबरोधायने मरुदेव्या भर्मान्दर्शयितुकामो वातं
रक्षनानां भमणानामृषीणामूर्ध्वमन्त्रिणां शृङ्गया
तनुवामवतार ॥२०॥

यज्ञमें महर्षियोंद्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जन्म
श्रीभगवान् महाराज नामिका प्रिय करनेके लिये उनके
रनिवासमें महारानी मेरुदेवीके गर्भसे द्विगुण सुखसे
और ऊँचरिता मुनियोंका धर्म प्रकट करनेके लिये
शुद्धमत्स्यमय विग्रहसे प्रकट हुए ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो संहितायां पञ्चमस्कन्धे नामिधरिते
शृणुभावनारो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

शृणुभदेवजीका राज्यशासन

श्रीशुक उवाच

अथ ह तमुत्पत्यैवामिष्यन्त्यमानभगवच्छृणुषं
सोम्योपश्रम्भैराम्यैर्भर्षमहाविभूतिभिरनुदिनमध-
मानानुभावं प्रकृतयः प्रजा प्राज्ञाणां दशताभावात्
तलसमवनासातिवरां जगृधुः ॥१॥ तस्य ह वा इत्थं
वर्ष्मणा वरीयसा बृहस्पत्योकेन शौजसा बलेन म्रिया
यज्ञसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता शृणुभ इतीदं नाम
चकार ॥ २ ॥

तस्य हीदृः स्पर्धमाना भगवान् वर्षे
न वर्षे तदवधार्य भगवानृपभद्रेषो योगेश्वर
ग्रहस्पातमपागमायया स्ववर्षमजनां नामाभ्यवर्षत
॥ ३ ॥ नामिस्तु यथामितपितं सुप्रजस्वमवकृष्या
तिप्रमादभगविहता गद्गदाधरया गिरा स्वैरं शूरीत
नरलाकर्मधर्म भगवन्तं पुण्यपुरुषं मायाविलसित
मतिर्वत्स तातवि सानुरागमुपलालयन् परां निर्हृति
मुपगत ॥ ४ ॥

चिदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! नामिन करने

जग जन्मसे ही भगवान् शिष्टके वज्र-वज्रुश करि
बिहोसे युक्त थे । सप्तता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य
आदि महाविभूतियोंके कारण उनका प्रभाव दिनोंदिन
बढ़ता जाता था । यह देखकर मन्त्री आदि प्रहृष्टि
प्रजा, शासक और देवताओंकी यह उक्त वसिष्ठ
होने लगी कि ये ही पृथ्वीका शासन करें ॥ १ ॥
उनके सुन्दर और सुदृढ़ शरीर, विपुल वीर्य, तेज,
बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणोंके
कारण महाराज नामिने जनका नाम 'शृणुभ' (३)
रक्ता ॥ २ ॥

एक बार भगवान् इन्द्रने ईर्ष्यावश उनके राज्यमें
वर्षा नहीं की । तब योगेश्वर भगवान् अपमन इन्द्रकी
मूर्खतापर हँसते हुए अपनी योगमायाके प्रभवसे उनके
वर्ष जननामकण्डमें लूब जल बरसाया ॥ ३ ॥ महातप
नामि अपनी इच्छाक अनुसार दोष पुत्र पाकर अत्यन्त
आमन्दमन हो गये और अपनी ही इच्छासे म्लुप्यतीर
धारण करनेवाले पुराणपुरुष धीइरिन्द्र सप्रेम स्मरण करते
हुए, उन्होंने कीलाकिञ्चिदससे मुग्ध होकर वक्त । तात । देख
गद्गदावणीसे कहते हुए बड़ा सुख मानने लगे ॥ ४ ॥

जब उन्होंने देखा कि मन्त्रिमण्डल, नागरिक और
राष्ट्रकी जमता शृणुभदेवसे बहुत प्रेम करती है तो

नाभिरात्मजं समपसेतुरक्षायामभियन्त्र्य ब्राह्मणे
 धूपनिधाय सह मेरुद्व्या विशालायां प्रसभ-
 निपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं
 भगवन्तं वासुदेवमुपासीतः कौलेन तन्महिमानं
 मवाप ॥ ५ ॥

यस्यैह पाण्डवस्य स्तोकाबुदाहरन्ति—

को नु तत्कर्म रात्र्यर्पेर्नामेरन्वाचरेत्पुमान् ।
 अपत्यतामगायस्य हरिं हृद्धेन कर्मणा ॥ ६ ॥
 ब्रह्मण्योऽन्यः कृता नामेर्विभ्रा मङ्गलपूजिताः ।
 यस्य बहिर्नि यज्ञेऽथ दर्शयामासुराजसा ॥ ७ ॥

अथैह भगवान्पुनर्मदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनु-
 मन्थमानं प्रदर्शितगुरुकुलवासो लम्बवर्गुरुभि-
 रनुज्ञातो गृहमेधिनां भर्माननुशिष्यमाणो जयन्त्या
 मिन्द्रदत्तायाम्भयलक्ष्णं कर्म समाम्नायाम्नीतमभि-
 युञ्जन्मात्यजानामारमसमानानां शतं जनयामास
 ॥ ८ ॥ येषां खलु महायामी भरता ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण-
 आसीद्यनेदं वप भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥ ९ ॥
 तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलय केतुर्मह-
 सेन इन्द्रस्यविदर्म कीकट इति नय नवसि
 प्रधानाः ॥ १० ॥

कविर्हरिन्तरिध प्रपुद्ग पिप्पलायनः ।

आविर्होत्रोऽथ हुमिर्तथमस करमाजन ॥ ११ ॥

उन्होंने उन्हें धर्ममार्गदात्री रक्षाके लिये तन्त्र्यामित्रिक
 करके ब्राह्मणोंकी दक्ष-रेखमें छोड़ दिया । आप अपनी
 पत्नी मेरुदेवीके सहित बदरिकाश्रमको चले गये । वहाँ
 बहिर्वाहसे, जिससे किसीको उद्गम न हो ऐसी
 कौशलपूर्ण, तपस्या और समाधियोगके द्वारा भगवान्
 वासुदेवके नर-नारायणरूपकी आराधना करते हुए समय
 आनेपर उन्हींके स्वरूपमें लीन हो गये ॥ ५ ॥

पाण्डुलन्दन ! राजा नामिके नियममें यह कोकोक्ति
 प्रसिद्ध है—

रात्रिं नामिके उदार कर्मोका आचरण दूतप-
 कौन पुरुष कर सकता है—जिनके शुद्ध कर्मोंसे सन्तुष्ट
 होकर साक्षात् श्रीहरि उनके पुत्र हो गये थे ॥ ६ ॥
 महापुत्र नामिके समान ब्राह्मणभक्त भी कौन हो
 सकता है—जिनकी दक्षिणादिसे सन्तुष्ट हुए ब्राह्मणोंमें
 अपने मन्त्रबलसे उन्हें यज्ञशालामें साक्षात् श्रीविष्णुभगवान्
 के दर्शन करा दिये ॥ ७ ॥

भगवान् क्षयमदेवने अपने देश अञ्जनामस्तप्यकी
 कर्मभूमि मानकर लोकसंग्रहके लिये कुछ काल गुरुकुल-
 में वास किया । गुरुदेवकी यथोचित दक्षिणा देकर
 गृहस्थमें प्रवेश करनेके लिये उनकी आज्ञा ली । फिर
 लोगोंको गृहस्थधर्मकी शिक्षा देनेके लिये देवराज इन्द्रकी
 दी हुई उनकी कन्या जयन्तीसे विवाह किया तथा श्रीत-
 स्मार्त दोनों प्रन्तरके शास्त्रोपदिष्ट कर्मोंका आचरण
 करते हुए उसका गर्भसे अपने ही समान गुणवाले सौ
 पुत्र उत्पन्न किये ॥ ८ ॥ उनमें महाज्योती मरतजी
 सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे । उन्हींके
 नामसे लोग इस अञ्जनामस्तप्यको 'मात्यजवर्ग' कहने
 लगे ॥ ९ ॥ उनसे छोटे कुशावर्त, इक्षवर्त, ब्रह्मावर्त, मलय,
 केतु, मयसेन, इन्द्रस्युक, विदर्म और कीकट—ये भी
 राजकुमार शेष मन्त्र माहर्षीसे बड़े एवं श्रेष्ठ थे ॥ १० ॥
 उनसे होत्र कवि, हरि, कन्तरिध, प्रपुद्ग, पिप्पलायन,
 आविर्होत्र, हुमिल चमस और करमाजन—य भी

भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नामे प्रियविकीर्यया
तदवरोधायने मेरुदेव्या भर्मान्दर्शयितुकामो वारं
रत्नानां भ्रमणानामृषीणामृषभमन्थिनां शुक्लया
वनुषस्वततर ॥ २० ॥

यज्ञमें महर्षियोंद्वारा इस प्रकार प्रसन्न होने लगे
श्रीमद्भागवान् महाराज नामिका प्रिय करनेके लिये उन्हें
रनिवासमें महारानी मेरुदेवीके गर्भसे निगम्य उन्हें
और ऊर्ध्वरेता मुनिमोक्ष धर्म प्रकट करनेके लिये
ब्रह्मसत्त्वमय विग्रहसे प्रकट हुए ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यो संहितायां पञ्चमस्कन्धे नामिचरिते
अष्टमोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अष्टमभदेवजीका राज्यशासन

श्रीगुरु उवाच

अथ ह तमुत्पत्यैवामिभ्यज्यमानभगवानुत्पन्नं
सौम्योपशमवैराग्यैस्वयमेवाविभूतिभिरनुदिनमेध-
मानानुभाव प्रकृतयः प्रजा आर्क्षणादेवताभाषनि
तलसमवनापातितरां बभूवुः ॥ १ ॥ तस्य ह वा इत्थं
वर्ष्मणा वरीयसा पूहच्छ्लोकेन चैज्जमा बलेन भिया
यज्ञसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता अष्टम इतीदं नाम
चक्षर ॥ २ ॥

तस्य हीट्टः स्पर्धमानो भगवान् वर्षे
न वर्षे तदवधार्य भगवानुपभदेवो योगेश्वरः
प्रहस्यारमयोगमायया स्ववर्षमज्जनाम नामाम्बवर्षत्
॥ ३ ॥ नामिस्तु यथाभिलषितं सुप्रजस्त्वमवरुष्या-
तिप्रमादभरविह्वला गदगदाधरया गिरा स्वैरं गृहीत
नरलोकमर्धमं भगवन्तं पुराणपुरुषं मायाविलसित
मतिर्बन्धुं सातेति सानुरागमुपलालयन् परां निर्हति
मुपगतः ॥ ४ ॥

विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—एजन् ! नामिनन्दके

अंग जन्मसे ही भगवान् विष्णुके कर्ण-अङ्गुस ली
विह्वले हुए थे । समता, शान्ति, वैराग्य और एक
आदि महाविभूतियोंके कारण उनका प्रभाव दिनोंदिन
बढ़ता जाता था । यह देखकर मन्त्री आदि प्रभुओंकी
प्रजा, शासन और देखाओंकी यह उलझ बमिन्न
होने लगी कि ये ही पृथ्वीका शासन करें ॥ १ ॥
उनके सुन्दर और सुदीर्घ शरीर, विपुल वीर्य, तेज,
बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणोंके
कारण महाराज नामिने उनका नाम 'अष्टम' (अठ)
रक्खा ॥ २ ॥

एक बार भगवान् इन्द्रने ईर्ष्यावश उनके एजन्ने
बर्षा नहीं की । तब योगेश्वर भगवान् अष्टमसे ईर्ष्या
मूर्खतापर हसते हुए अपनी योगमायाके प्रभावसे अपने
वर्ष अज्जनाममण्डपमें स्वयं जल करवाया ॥ ३ ॥ महामुख
नामि अपनी ईर्ष्याके अनुमत्त भेद पुत्र पञ्चर जल्पित
जानन्दमन्त्र हो गये और अपनी ही ईर्ष्यासे मनुष्यशरीर
धारण करनेवाले पुराणपुरुष श्रीहरिके सप्रम मान्न करते
हुए, उन्हेंके सीताविकाससे मुग्ध होकर 'असु' । तब । नेत्र
गदगदाणीसे कहते हुए कहा सुख मानने लगे ॥ ४ ॥

जब उन्होंने देखा कि मन्त्रिमण्डल, नागरिक और
राष्ट्रकी जनता अष्टमदेवसे बहुत प्रेम करती है, तो

१ मा पा — वातायनानां । २ प्राचीन प्रसिद्धे श्रीगुरु उवाच नर पाठ नहीं है । ३ मा पा —
लोम्यापशम । ४ मा पा — आकाशदेवता । ५ मा पा — नरय ही । ६ मा पा — प्रेममायया वर्धमानार्थ ।
७ मा पा — नरलोकप्रार्थ ।

अभिरात्मन् ममयसुतुरयायाममिषिन्धुः प्राश्नः ।
 निभाय सई मरुदम्भा विशाखाया प्रसूत-
 रेषुणेन तपसा समाभियागन नरनागयणाम्भ्य
 गवन्तं शमुदयमुपाशान कालन तन्महिमान
 मवाप ॥ ५ ॥

तन्महिमानं तस्मै धनं दत्तं तस्मै शक्तिं तस्मै शक्तिं
 कृतं ब्रह्मणे तस्मै शक्तिं दत्तं । तस्मै शक्तिं
 पत्नी मरुदेष्टुः सतिन बभूवुः कृतं दत्तं । तस्मै
 कृतं दत्तं, तस्मै शक्तिं दत्तं तस्मै शक्तिं
 कृतं दत्तं, तस्मै शक्तिं दत्तं तस्मै शक्तिं
 कृतं दत्तं, तस्मै शक्तिं दत्तं तस्मै शक्तिं
 कृतं दत्तं, तस्मै शक्तिं दत्तं तस्मै शक्तिं

पश्ये ह पाण्डवः साक्षात्पुण्ड्रगन्धि—

पुण्ड्रगन्धिः 'गन्धि' इति शब्दः यद्वा शब्दः

लोहादिद्रव्यमन्तरण ॥ १८ ॥ स कृत्वा त्रिंशत्मानो
 भगवानृषभा ग्रन्थापसर्गगतोऽग्रद्विप्रवरमभार्या प्रजानां
 निशामयन्तीनामात्मजानवहित्तात्मनः प्रभय
 प्रणयमस्मयन्त्रितानप्युपनिषयन्निति हावाच ॥ १९ ॥

किमीकी वस्तुकी ओर इष्टिमान भी नहीं करता
 था ॥ १८ ॥ एक बार भगवान् स्वयमदेव घूमते-घूमते
 दक्षार्चनस्थले पहुँचे । वहाँ बड़-बड़ दक्षार्चियोंकी सभामें
 उन्होंने प्रजाक साधन ही अपने समर्पितचित्त तथा
 विनय और प्रेमक मारसे सुसुपन पुत्रोंको शिक्षा देनेके
 लिये इस प्रकार कहा ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्ध

चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्याय

श्वपभक्षीका भयन पुरोको उपदेश दत्ता आन स्वय भक्षपूतश्रुति ग्रहण करमा

काम उवाच

श्रीश्वपभक्षपञ्चमीम वदत—पुरो । इम मर्त्यलोके

नाय दहो दहभाजां नृलाक
 कृणु कामानर्हन् बिडसुजां य ।
 तपो न्यिय पुत्रका येन मर्त्य
 गुदयधम्माद् भक्षमौग्य स्वर्नन्तम् ॥ १ ॥
 मरुतेषां दारमाशुर्मिमुत्
 लमादां यापितां मङ्गिमङ्गम् ।
 मशान्तस्त ममरिषा प्रशान्ता
 विमन्यय गुह्य माधवा य ॥ २ ॥
 य सा मयीत कृतमोहनाथा
 जनपु इहभार्याविकृपु ।
 गृहपु जापामत्रगतिममु
 न प्रीतिपुता यावत्थाश्च लाक ॥ ३ ॥
 नून प्रमत्त कुल निरुम
 यन्निप्रप्रीतय आशुणावि ।
 न मायु मय यत् आमनाड्य
 ममन्तपि कन्तद आम दह ॥ ४ ॥

पराभक्षमापन्नाधवाणा

पायन्त्रिजामन् आमयययम् ।

यह मनुष्य-शरीर दुःखमय विषयभाग प्राप्त करनेक लिय
 ही नहीं है । य भाग ता विद्यावासी सूत्र धूकनापिकेभी
 मित्र ही हैं । इस शरीरसे लिय तप ही करना चाहिये,
 जिससे अन्त कर्तव्य सुद ह; क्योंकि इसीसे अन्त दक्ष-
 न्दकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ नाथोंने महापुराणोंकी
 मेवाका मुक्ति और स्त्रीकी कामियोय मङ्गल नरकका
 द्वार बताया है । महापुरा ने ही है जो ममानचित्त,
 परमात्म, प्रायश्चित्त, मकवे दितवित्त और मन्त्राचार
 गमन हो ॥ २ ॥ अदका सुप्त परमात्मक प्रमत्त ही जो
 एकमात्र पुत्रार्थ मनते हो, केवल विस्मयी ही स्वर्ग
 करनेवाला लोकोमिता स्त्री, पुत्र और पुन आनि माममियोसे
 सम्पन्न भवेम तिनकी अदवि है और जो ऐरिज
 वापमि यत् शरीरनिर्दक लिये ही प्रवृत्त होते हो ॥ ३ ॥
 मनुष्य अथवा प्रमाणा पुत्रार्थ करने लगता है, उसकी
 वत् प्रवृत्ति इन्धियोय तम करने लिये ही होती है । मैं
 इसे अच्छा नहीं समझता क्योंकि इसीव करने वाला
 को दह अमृत और दुःखगवश शरीर प्राप्त होता है ॥ ४ ॥
 तबका शरीर आत्मार्थी शिवा नहीं होती, म-
 त्र का दहमका दहानि दह तबका मन्त्र शिवा दहना

१ द ८ — दहमका । २ द ८ — दहमका । ३ द ८ — दहमका ।

४ द ८ — दहमका । ५ द ८ — दहमका । ६ द ८ — दहमका । ७ द ८ — दहमका ।

८ द ८ — दहमका ।

यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै
कर्मस्मर्कं येन शरीरबन्ध ॥ ५ ॥

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ।
प्रीतिर्न यावन्मयि यासुदये
न मुन्यते दहयोगेन तावत् ॥ ६ ॥

यदा न पश्यत्यथ गुणान्
स्वार्थे प्रसक्त महसा विपश्चित् ।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र साषा
नामाद्य मधुन्यमगारमह ॥ ७ ॥

पुंसं स्त्रिया मिथुनीभावमेत
तयामिथा हृदयग्रथिमाहुः ।
अता गृहध्वजमुत्तामविर्चं
जनस्य माहोऽयमहं ममति ॥ ८ ॥

यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य
कमानुबद्धा ह आरुयेत ।
तदा जन सम्परिवर्ततेऽस्माद्
मुक्तं पराधान्यतिहाय हेतुम् ॥ ९ ॥

इमं गुणैर्मयि भक्त्यानुपूरया
विदूषणया हृदयतिनिधया च ।
मयत्र जन्ताभ्यमनाश्रयया
त्रिप्राप्तया तपसदानिदूषया ॥ १० ॥

मन्त्रमभिर्मन्त्रयया च निर्यं
मदबमहाद् गुणकीतनाम् ।
निवरमाम्पारगमनं पुत्रा
प्रिदागया त्रेहगादायमपुद ॥ ११ ॥

है । जबतक यह लौकिक-वैदिक कर्ममें पड़ा रहने, तबतक मनमें कर्मकी यासनाएँ भी बनी ही रहती हैं। इन्हींसे गृह-बन्धनकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ इस प्रकार अविद्याके द्वारा आत्मस्वरूपक ढक जानेसे कर्मासक्तोंके वशीभूत हुआ चित्त मनुष्यका चित्त कर्ममें ही प्रवृत्त करता है । जब जबतक उसको मुक्त बन्धुने प्रीति नहीं होती, तबतक वह देहबन्धनसे छूट नहीं सकता ॥ ६ ॥ स्वार्थमें पागल जीव जबतक विवेकप्रिय आशय लेकर इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको मिथ्या मही देखे, तबतक आत्मस्वरूपकी स्मृति को बैठनके कारण से अज्ञानवशा विषयप्रधान गृह आदिमें आसक्त रहता है और तरह-तरहके क्लेश उठता रहता है ॥ ७ ॥

स्त्री और पुरुष—इन दोनोंका जो परस्पर सम्बन्ध माष है, इसीको पण्डितजन उनके हृदयकी दूसरी स्तुति एवं दुर्भेद्य मन्थि कहते हैं । देहाभिमानवशी एतन्मय सूक्ष्म मन्थि सांठनमें अन्ध-अन्ध पड़लसे ही है । जैसे कारण जीवको देहेन्द्रियाणिके अनिरिक्त, पर, त्रि, ५२, लक्षण और धम आदिमें भी 'मैं' और 'मेरे' फल पड़े हो जाता है ॥ ८ ॥ जिस समय कर्मवासनाको बँध पड़ी हुई इसकी यह हृदय-मन्थि छिनी है। जनी है उसी समय यह आत्मस्वभावसे निवृत्त हो जाता है और संसारके हतभूत जन्मकारको त्यागकर सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो परमपद प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥ पुत्रा ! संसारसागरसे पार होनेमें कुशाग्र तथा पय, इत्येवं मत्स्यगुणमिश्रित पुरुषको चाहिये कि सबक ज्ञान और शुद्धस्वभाव मुक्त मयबन्धने भक्तिमय रूपमें उसे पराधन रहनेसे, गृहणाके त्यागसे, सुगन्धुन की इन्द्रियोंके सहनसे शरीरका मभी कोनियोंमें दृढ़ गही रहना दे इम विचारने तत्त्वविद्धारने, तत्तो मयत्र कर्मक त्यागसे मेरे ही जिये धम बननेसे, मेरी हृदयों का निष्पत्ति धरण करनेसे मेरे भक्तों का मय और मेरी गुणों की निम्ने वेगमयने, मयनसे शक्तिनो और तनी तथा पर आदिमें मैं-मेरे-तने-करके तनेनेही रहनेसे,

अध्यात्मयोगन विविक्तसेवया
 प्राणन्द्रियात्माभिजयेन सध्वयक ।
 मच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शम्भु
 बसुध्रमाहन यमेन वाचां ॥१२॥
 सर्वत्र मद्भाविचिषयेन
 ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ।
 योगेन पूर्युपमसख्ययुक्तो
 लिङ्गं व्यपोहकुञ्जलोऽहमात्म्यम् ॥१३॥
 कर्माश्रय ईदृशप्रस्थिषन्ध
 मविद्यायाऽऽसादितमप्रमत्तः ।
 अनेन योगेन यथोपदेष्टं
 भम्पन्मयोक्षोपरमेष्ठ योगात् ॥१४॥
 पुत्रांश्च शिष्यांश्च तपो गुह्यं
 मल्लोक्तकामो मदनुग्रहार्थं ।
 इत्थं विमन्युर्नुशिष्यादतज्ज्ञात्र
 न योजयेत्कर्मसु कर्मभूषण ।
 कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत्
 निपातयच्छट्ठं हि गते ॥१५॥
 लोकं व्ययं श्रेयसि नष्टं दृष्टि
 योऽधानं समीहत् निष्कामकाम ।
 अन्यान्यवरं सुखलक्ष्णं
 गन्तुं न च न वद मूढ ॥१६॥
 कस्तं स्वयं तदभिज्ञा विपश्चित्
 अविद्यायामन्तरं वतमानम् ।
 दृष्ट्वा पुनस्तं मधुषां कुपुर्दि
 प्रयाजयदुत्पथं यथाधम ॥१७॥
 गुह्यं न स्यान्नजना न म स्यात्
 पितृना न स्यान्ननी न मा स्यात् ।

अध्यात्मशास्त्रके अनुशीलनसे, एकान्त सेवनसे, प्राण, इन्द्रिय और मनके संयमसे, शास्त्र और सत्पुरुषोंके बचनमें यथाय बुद्धि रखनेसे, पूर्ण ब्रह्मचर्यसे, कर्तव्यत्वमें निरन्तर साधन रहनेसे, वाणीके संयमसे, सबत्र मेरी ही सत्ता देखनेसे, अनुभवज्ञानसहित तत्त्वविचारसे और योगसाधनसे जहङ्काररूप अपने लिङ्गशरीरको धीन कर दे ॥ १०-१३ ॥ मनुष्यको चाहिये कि वह साधन रहकर अधिपातेप्राप्त इस इन्द्रियमन्त्रिरूप बन्धनको शास्त्रोक्त-रीतिसे इस साधनोंके द्वारा मणीमौलि काट डाले, क्योंकि यही कर्मसंस्कारोंके रहनका स्थान है । तदनन्तर साधन का भी परित्याग कर दे ॥ १४ ॥

जिसको मेरे लोककी इच्छा हो अथवा जो मेरे अनुग्रहकी प्राप्ति की ही परम पुरुषार्थ मानता हो—वह राजा हो तो अपनी बशोक्त प्रजाको, गुरु अपने शिष्योंको और पिता अपने पुत्रोंको ऐसी ही शिक्षा दे । अज्ञानके कारण यदि वे उस शिक्षाके अनुसार न चलकर बलफरो की परम पुरुषार्थ मानते रहें, तो भी उनपर कोप न करके उन्हें समझा-बुझाकर कर्ममें प्रवृत्त न होने दें । उन्हें विद्या-सहिष्णुता का मन्त्रमौलि लगाना तो ऐसा ही है, जैसे किसी बंधे मनुष्यको जान-बूझकर गद्देमें डकेल देना । इससे क्या, किन्तु पुरुषार्थकी सिद्धि हो सकती है ॥ १५ ॥ अपना सब कल्याण किन्तु बातमें है, इसके लोग नहीं जानते, इसीसे वे तरह-तरहकी भोग-कामनाओंमें फँसकर कुछ सगिक सुखके लिये आपसमें बैर दान लेते हैं और निरन्तर विषयमार्गोंके लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं । वे मूर्ख इस बातपर कुछ भी विचार नहीं करते कि इस बैर विरोधक कारण नरक का पति अनन्त और दुःखी प्राप्ति होगी ॥ १६ ॥ गद्देमें गिरनेके लिये ठग ठगसे आते हुए मनुष्यको जैसे औमवात्स्य पुरुष ठहर नहीं जान देता, वैसे ही अज्ञानी मनुष्यको अधिधाममें फँसकर दुःखोंकी आर आते भेगकर धीन देना दयालु और जानी पुरुष दागा जा जान-बूझकर भी ठगे ठमी गद्देपर जान दे या जामक लिये प्रेरण कर ॥ १७ ॥ जो अपने द्विप सम्बन्धीय भगवत्पुत्रिज टाट्ठा दत्त दूधुर्षी कीमीमे मदी सुदाना बट गुह्य गुह्य नहीं है ध्यान ध्यान मदी है

१ प्राचीन प्रतिमें हिंदू इत्यादि भगवत्पुत्रिज है । २ या या — विद्याविराजितेन । ३ प्राचीन प्रतिमें दृष्ट्वा इत्यादि भगवत्पुत्रिज है । ४ या या — विपश्चित्तया । ५ या या — मनुष्य पर भगवत्पुत्रिज है । ६ प्राचीन प्रतिमें ब्रह्मचर्यसे मे दृष्ट्वा हि हिंदू पर्यन्त भगवत्पुत्रिज है । ७ प्राचीन प्रतिमें गद्देमें गद्दे पर भगवत्पुत्रिज है । ८ प्राचीन प्रतिमें गद्देमें गद्दे पर भगवत्पुत्रिज है ।

देवै न तत्स्यान्न पतिष्व म स्या
 न्ना मान्ययेद्य सप्रपेतमृत्युम् ॥१८॥
 इदं शरीर मम दुर्विभाष्य
 सर्वं हि मे इदमं यत्र धर्म ।
 पृष्ठे कृता मे यदधर्म आराध्
 अतो हि माम्पुनर्म प्राप्सुरार्याः ॥१९॥
 तस्मान्नयन्तो हृदयेन जाताः
 सर्वे महीयांसमस्तु सनामसु ।
 अष्टिष्टुष्टुष्टु भरतं मज्जम्
 दृष्टुष्टु तद्भरणं प्रजानाम् ॥२०॥
 मृतेषु वीर्यस्य उदुचमा ये
 सरीसृपास्तेषु सर्वोर्ध्वनिष्ठाः ।
 ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि
 गार्ध्वसिद्धा विजुषानुगा ये ॥२१॥
 देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना
 दक्षदयो ब्रह्मसुतोस्तु तेषाम् ।
 भवः परः सोऽथ विरिञ्चवीर्यः
 मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥२२॥
 न ब्राह्मणैस्तुलये मृतमन्यत्
 पश्यामि विप्राः किमत परं त्वं ।
 यस्मिन्नुभि प्रभुत भद्रयाह
 मन्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे ॥२३॥
 रूढा तन्मृत्यो म पुगणी
 येनह मर्षं परमं पवित्रम् ।
 जमा दम मय्यमनुग्रह्य
 तपन्तिनिष्ठानुभयथ यत्र ॥२४॥

पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इहदेव जैसे
 नहीं है और पति पति नहीं है ॥ १८ ॥

मेरे इस अकार-वरीरका रहस्य साधारण कर्मों
 लिये बुझिगम्य नहीं है । कुछ सत्य ही मेरा हृदय है
 और उसीमें धर्मकी स्थिति है, मैंने अधर्मको जानेसे बच
 कर पीछेकी ओर छेकल दिया है, इसीसे उत्पन्न तुम
 'श्रद्धा' कहते हैं ॥ १९ ॥ तुम सब मेरे उस ऊँच
 सत्यमय हृदयसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये मत्सर छोड़
 अपने छोटे भाई भरतकी सेवा करो । उसकी सेवा कर
 मेरी ही सेवा करना है और यही तुम्हारा प्रवासन
 भी है ॥ २० ॥ अन्य सब मृत्योंकी अपेक्षा इस कल्प
 श्रेष्ठ है, उससे चञ्चलवाले जीव श्रेष्ठ हैं और उनमें से
 कीटादिकी अपेक्षा हामयुक्त पशु आदि श्रेष्ठ हैं । पशुकी
 मनुष्य, मनुष्योंसे प्रमथण, प्रमथोंसे मत्सर,
 गन्धर्वोंसे सिद्ध और सिद्धोंसे देवताओंकी कृत्य
 किम्बदादि श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ उनसे अमर, अमरोंसे देव
 और देवताओंसे भी इन्द्र श्रेष्ठ है । इन्द्रसे भी ब्रह्म
 पुत्र दक्षादि प्रजापति श्रेष्ठ हैं । ब्रह्माजीके पुत्रों में
 सबसे श्रेष्ठ हैं । वे ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये
 ब्रह्माजी उनसे श्रेष्ठ हैं । वे भी मुझसे उत्पन्न हैं और मैं
 उपासना करते हैं, इसलिये मैं उनसे भी श्रेष्ठ हूँ । पशु
 शास्त्रण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि मैं उन्हें पूज्य मन्त्र
 हूँ ॥ २२ ॥

[सभामें उपस्थित शास्त्रणोंको लक्ष्य करके] विप्रम !
 दूसरे किसी भी प्राणीको मैं शास्त्रणोंकी समान भी नहीं
 सम्मता, फिर उनसे अधिक तो मैं मान ही कैसे सकता हूँ ।
 लोग अद्यावूर्वक शास्त्रणोंकी मुखमें जो बलापि आहुति श्राव्य
 हैं; उसे मैं जैसी प्रसन्नतासे प्रहण करता हूँ वैसे बलि
 होत्रमें होमकी हुई सामग्रीको स्वीकार नहीं करता ॥ २१ ॥
 जिन्होंने इस लोकमें बध्ययनादिक द्वारा मेरी सेवा
 अनि सुन्दर और पुरातन मूर्तियोंको धारण कर रक्ख
 तथा जो परम पवित्र सत्त्वगुण हाम, दम, मय्य, दम
 तथा निनिष्ठा और ज्ञानाणि आठ गुणोंसे सम्पन्न हैं—
 शास्त्रणोंसे बढ़कर और कौन हा मयता है ॥ २४ ॥

गायत्री मंत्रमें देव इतना प्रीति रहता है । २ प्रा पा तत्त्वं । ३ प्रा पा — निरञ्जित ।
 ४ प्रा पा — यमनामचारि । ५ प्रा पा — गुना हि तेषाम् । ६ प्रा पा — परमं । ७ प्रा पा — भूत ।

मसोऽप्यनन्तात्परतः परमात्
 स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित् ।
 मेपां किञ्च स्वादितरेण तेषां
 मक्षिणानां मयि भक्तिमाश्राम् ॥२५॥
 सर्वाणि महिष्यतया भवन्ति
 भराणि भूतानि सुता भूवाणि ।
 सम्भावितव्यानि पदं पदे वो
 विविकृतमिह स्तब्धं हार्दयं मे ॥२६॥
 मनोवचोऽक्षरमेहितस्य
 साक्षात्कृतं मे परिपूर्णं हि ।
 विना पुमान् येन महाविमोहात्
 कृतान्तपाशात् विमोक्तमीमेतु ॥२७॥

भीष्म उवाच

एवमनुष्ठात्सात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकांस्तु
 शासनार्थं महानुभाव परमसुहृद्भगवानृपभापदेव
 उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञान-
 वैराग्यलक्षण परमहंसधर्मसुपशिक्षमाणः स्वतनय-
 क्षतन्वेष्टं परमागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं
 धर्मिपालनामाभिपिच्य स्वयं भवनं पारिवारितं
 शरीरमात्रपरिग्रहं तन्मत्तं इव गगनपरिधानं प्रकीर्ण-
 कक्षं आत्मन्यारापिताहवनीयां ब्रह्मावर्तत्प्र-
 ववाज ॥२८॥ जडान्धमूकत्रिभिरपिशाचोन्मादकज्वद-
 भूतवशाऽभिभाष्यमाणोऽपि अनानां शूरीतर्मानव्रत-
 स्तुष्पीं वमूष ॥२९॥ तत्र तत्र पुरग्रामाफरसेटवाट-
 सर्वटशिविरमजघापसाधंगिरिबनाभ्रमादिष्वनुपध-

में महादिसे भी श्रेष्ठ और अनन्त हूँ तथा स्वर्ग-मोक्ष आदि देनेकी भी सामर्थ्य रखता हूँ, किन्तु मेरे अकिञ्चन मत्त ऐसे निरुद्ध होते हैं कि वे मुझसे भी कमी कुछ नहीं चाहते; फिर राज्यादि अन्य वस्तुओंकी तो वे इच्छा ही कैसे कर सकते हैं ? ॥ २५ ॥

पुत्रो ! तुम सम्पूर्ण बराबर भूतोंको मेरा शरीर समझकर कुछ बुझिसे 'द-यदपर' उनकी सेवा करो, यही मेरी सच्ची पूजा है ॥ २६ ॥ मन, वचन, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियोंकी चेष्टाओंका साक्षात् फल मेरा इस प्रकार का पूजन ही है । इसके विना मनुष्य अपनेको महामोह मय काल्पनासे छुड़ा नहीं सकता ॥ २७ ॥

भीष्मकनेपथी कहते हैं—रानन् । अश्वमेधव्रतकी पुत्र यद्यपि स्वयं ही सब प्रकार सुविधित थे, तो भी जोगोंको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे महाप्रमादशरीर परम सुहृद् भगवान् अश्वमेध वन्हें इस प्रकार उपदेश दिया । अश्वमेधव्रतकी सी पुत्रोंमें भरत सबसे बड़ थे । वे भगवान् के परम मत्त और भक्तज्ञानोंके परायण थे । अश्वमेधव्रतकी पृथ्वीका पालन करनेके लिये उन्हें राजगरीपर बैठा दिया और स्वयं उपशमशील निरुत्तिपरायण महामुनियोंके मक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप परमहंसोचित धर्मोंकी शिक्षा देनेके लिये विलुप्त विरक्त हो गये । केवल शरीरमात्रका परिग्रह रक्खा और सब कुछ भरपर रहते हुए छोड़ दिया । जब वे वनोंका भी त्याग करके सर्वथा निर्गम्य हो गये । उस समय उनके बाल बिखरे हुए थे । तन्मत्तका-सा वेच था । इस स्थितिमें वे आहवनीय (अग्निहोत्रकी) अग्निधर्मोंकी अपनेमें ही श्रम करके संन्यासी हो गये और ब्रह्माकर्तृ देशसे बाहर निकल गये ॥ २८ ॥ वे सर्वथा मीमं हो गये थे क्योंकि बात करना चाहता तो बोल्ते नहीं थे । जड़, अंधे, बूढ़े, गूँसे पिशाच और पागलपैकी-सी चेष्टा करते हुए वे व्यक्तृत बने जहाँ-तहाँ विचरन सन्ते ॥ २९ ॥ कमी मगलों और गौर्धों चले जाते तो यन्त्री कामों, किस्तानों की बस्तियों बगीचों, पहाड़ी गौर्धों, सेनाकी छावनियों, गोशालाओं, जहाँ-तहाँ बस्तियों और यात्रियोंके निकले

ममनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिष
 र्धनगजस्तर्जनताडनाद्यमेहनष्टीर्षनप्रावशकुद्रजः प्रक्षेप-
 प्रतिपातदुरुक्तैस्तद्विगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्
 देहोपलक्षणे सदपदेष्ट उभयानुभवस्वरूपेण
 स्वमहिमावस्थानेनात्समारोपिताईममाभिमानत्वाद
 वित्वच्छित्तमनाः पृथिवीमेकधरः परिवन्नाम ॥३०॥
 अतिसुकुमारकरचरणोरः स्वलविपुलबाह्वसर्गोलवदना
 घवयवविन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो
 नवनलिनदलायमानश्चिद्विरतैरारुणायतनयनरुधिर
 सदृशसुभगकपालकर्णकण्ठनासो विगूढमितवदन-
 महोल्मवन पुरवनिधानां मनसि कुसुमझरासनमुप
 दधान परागबलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकज-
 भूरिभाराऽवधूतमलिननिजशरीरण ग्रहगृहीत इवा
 दृश्यते ॥ ३१ ॥

यदि वा म भगवान् लोकमिदं
पागस्यादा प्रतीपमिवाचक्षणस्तत्प्रतिक्रियौकर्म
वीभस्मिमिति व्रतमात्रगरमाप्तिं शयान एवा
भामि पिबति स्वात्स्परमेहति इदति म् शेष्टमान

स्नानोंमें रहते । कभी पहाड़ों, जगहों और जगहों आदिमें बिचरते । वे किसी भी रास्तेसे निकलते थे जिस प्रकार कममें बिचरनेवाले हाथियों मनुष्य सनाती हैं, उसी प्रकार मूर्ख और दुष्ट लोग उनके पीछे हो जाते और उन्हें तंग करते । कोई भयभीत रहे, कोई मारते, कोई पेशाब कर देते, कोई धूक देते, कोई देखा मारते, कोई विष्टा और घूल फेंकते, कोई बघोरे छोड़ते और कोई खोटी-खरी सुमाकर ठमका करिश्मा करते । किन्तु वे इन सब बातोंपर अत्र भी ध्यान नहीं देते । इसका कारण यह था कि भयसे मनुष्य कहे जानेवाले इस मिथ्या शरीरमें उनकी अहंता-ममता उत्पन्न नहीं थी । वे कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चके सच्ची होकर अपने परमात्मस्वरूपमें ही स्थित थे, इसलिये जलमय विस्तारितसे अकेले ही पृथ्वीपर बिचरते रहते थे ॥ १० ॥ यद्यपि उनके हाथ, पैर, छत्रां, खड़ी-खड़ी नौकें, कर्ण, गले और मुख आदि अङ्गोंकी बनावट कभी ही सुकुमार थी, उनका स्वभावसे ही सुन्दर मुख सामानिक मधुर मुसकानसे और भी मनोहर जान पड़ता था, तब भी नवीन कलकदलके समान बड़े ही सुहाने, विष्टा एवं कुछ आभीर लिये हुए थे, उनकी पुत्रियों इतनी एवं सदापहासिणी थीं । उन नेत्रोंके कारण वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे । कसोल, कम और मांसिक छोटे-बड़े व होकर समान एवं सुन्दर थे, तथा उनके अत्युन्नत हाथयुक्त मनाहर मुखारविन्दकी शाश्वती देखकर पुरनारियोंके चित्तमें कामदेवका सञ्चार हो जाता था । तथापि उनके मुखक आगे जो मूर रंगकी खड़ी-खड़ी सुँभरायी छटे ञ्जकी रहती थीं, उनके मधुर मर और अन्धधूर्तोंके समान धूम्रभूसरित दहक कारण वे प्रहस्य मनुष्यके समान जान पड़ते थे ॥ ११ ॥

जब भगवान् ज्ञानमंथने देखा कि यह जनता योग-साधनमें निष्पक्ष है और इससे बंधनेवाला उपाय भीमसाधित रहना है तब उन्होंने जगत्प्रति भाग्य कर ली । वे स्वयं-ही-स्वयं स्थान-हीन बंधने और

१ प्रा पा — मरुगम् । २ प्रा पा — बाह्यसमुद्रम् । ३ प्रा पा — प्रितारवायव्यम् ।
४ प्रा पा — मरुत्तम् । ५ प्रा पा — प्रितारवायव्यम् । ६ प्रा पा — प्रितारवायव्यम् ।

उत्थरित आदिग्धोद्देश ॥ ३२ ॥ तस्य ह य
पुरीपसुरमिसौगन्धवायुस्तं देखं दक्षयोजनसमन्तात्
सुरभिं चकार ॥ ३३ ॥ एवं गोमृगकाकचर्याया
व्रजंस्तिष्ठन्मासीनं क्षयानः काकमृगगोचरित
पिबति स्वादित्यवमेवसि स ॥ ३४ ॥ इति नाना-
योगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्धृपभोऽधिरत
परममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते
भगवति वासुदेव आत्मनोऽन्धवधानानन्तरोदर
भावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णं योगैश्वर्याणि वैहायस-
मनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशवृष्ट्रदृष्टादीनि यदृच्छ-
योगगतानि नास्त्रसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥ ३५ ॥

मन्त्र-मूत्र त्याग करने लगे । वे अपने त्यागे हुए मन्त्रों
कोट-कोटकर शरीरको उससे सान लेते ॥ ३२ ॥ (किन्तु)
उनके मन्त्रों दुर्गन्ध नहीं थी, बरषी सुगन्ध थी । और
वायु उस सुगन्धको लेकर उनके चारों ओर दस
योजनतक सारे देशको सुगन्धित कर देती थी ॥ ३३ ॥
इसी प्रकार गी, मृग और काकादिकी वृत्तियोंको खींचकर
कर वे उन्हींके समान कभी चलेते हुए, कभी सब
सब, कभी बैठे हुए और कभी छेदे-छेदे ही खाने-पीने
और मन्त्र-मूत्रका त्याग करने लगते थे ॥ ३४ ॥ परिशिष्ट !
परमहंसोंको त्यागके आदर्शस्त्री शिक्षा देनेके लिये इस
प्रकार मोक्षपति भगवान् श्रृंगमण्डेवने कई तरहकी
योगचर्याओंका आचरण किया । वे निरन्तर सर्वश्रेष्ठ
महान् आनन्दका अनुभव करते रहते थे । उनकी दृष्टिमें
निरुपाधिकरूपसं सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा अपने
आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेवसे किसी प्रकारका भेद
नहीं था । इसलिये उनके समी पुण्याप पूरा हो चुक
थे । उनके पास आकाशगमन, मनोजवित्व (मनकी
गतिके समान ही शरीरका भी इच्छा करते ही सर्वत्र
पहुँच जाना), अन्तर्धान, परकायप्रवेश (दूसरेके
शरीरमें प्रवेश करना), दूरकी बातें सुन लेना और
दूरके दृश्य देख लेना आदि सब प्रकारकी सिद्धियाँ
अपने आप ही सेवा करनेको आयीं, परन्तु उन्होंने
उनका मनसे आन्तर या ग्रहण नहीं किया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसां संहितायां पञ्चमस्कन्धे श्रृंगम

वसानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पष्ठोऽध्यायः

श्रृंगमभवेशजीका देहत्याग

राजोपाय

न नूनं भर्गव आत्मारामाणां यागसमीरित

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् ! योगरूप वासुदे
प्रस्थित हुई ज्ञानाग्निसे जिनके रागादि कर्मबीज दग्ध
हो गये हैं—उन आत्माराम मुनियोंको दैववरा यदि
स्वयं ही अग्निमाणि सिद्धियाँ प्राप्त हो जायें, तो वे

१ मा पा —वायुकाग्निदेवान् दशयोजनाम् समन्तात्सुरभीश्चकार । २ मा पा —काकमृगगोचरितं पिबत्यवमेवसि स ।

३ मा पा —परकायप्रवेशवृष्ट्र । ४ मा पा —भगवन्नात्मराम ।

ज्ञानावर्मक्षितकर्मवीजानामैश्वर्याणि पुनः कलेऽशदानि
भवितुमर्हन्ति यच्छ्रद्धोपपत्तानि ॥ १ ॥

अपिस्वाय

सत्यमुक्तं किन्तिह वा एके न मनसोऽर्द्धा

विभ्रममनबन्धानस्यं शठकिरात इव सङ्गच्छन्ते
॥ २ ॥ तथा चोक्तम्—

न कुर्यात्किञ्चित्सस्य मनसि धनवस्थिते ।

अद्विभ्रमाधिरात्रीर्णं तस्कन्द तप ऐश्वर्यम् ॥ ३ ॥

निर्त्यं ददाति कामसन्धिर्द्वं तमनु येऽनयः ।

योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्वायेव पुंशली ॥ ४ ॥

कामो मनुर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ।

कर्मकन्धश्च यन्मूलः सौकर्यास्को नुं तपुः शुभः ॥ ५ ॥

अयैवमस्तिललोकपालललामोऽपि विलक्षणैर्बर्हि

बद्वधूतवेवभापाधरितैरविलक्षितभगवत्प्रभातो

योगिनां साम्यरायविभिमनुशिष्यमन् शकलेबर्हि

जिह्वासुरारमन्धात्मानमर्षम्पवहितमनर्नन्तरभावेना-

न्वीक्षमाथ उपरतानुचिरुपरराम ॥ ६ ॥ तस्य ह वा

एषं मुक्तलिङ्गस्य भगवत् श्रवणस्य योगमाया-

पासनया दृष्ट इमां जगतीमभिमानाभासेन

उनके रागद्वेषादि कुराँका कारण से किसी प्रकार हो नहीं सकती । फिर भगवान् श्रवणसे उन्हें स्वीकार नहीं किया । ॥ १ ॥

भीष्मकद्वेषाद्विने कदा—शुद्धाद कदा टीका है, विन्दु संसारमें जैसे चावक व्याध अपने पत्ने इ. युगका विश्वास नहीं करते, उसी प्रकार बुद्धिमान लोग इस चञ्चल विश्वास भरोसा नहीं करते ॥ २ ॥ ऐसा ही कहा भी है—‘इस चञ्चल चित्तसे कभी मैत्री नहीं करनी चाहिये । इसमें विश्वास करनेसे ॥ मोक्षिनीरूपमें फँसकर महादेवजीका विरक्तस्वभाव सञ्चित तप क्षीय हो गया वा ॥ ३ ॥ जैसे धर्मिचारिणी जी जादुई छे लक्षकश देकर उनके द्वारा अपनेमें विश्वास करनेवाले पत्निका बच करा देती है—उसी प्रकार जो योगी मगपर विश्वास करते हैं, उनका मन काम और उसके साथी श्लोधादि शत्रुओंको आक्रमण करनेका क्रम देकर उन्हें नष्ट-घात कर देता है ॥ ४ ॥ काम, क्रोध, मद, शोक, मोह और भय आदि शत्रुओंका तथा कर्म-कण्डनका मूल तो यह मन ही है, इसपर कोई भी बुद्धिमान् कैसे विश्वास कर सकता है ! ॥ ५ ॥

इसीसे भगवान् श्रवणसे कल्पि इत्यादि सभी लोकपालोंकी भी भूषणस्वरूप से, तो भी वे सब पुरुषोंकी मौजि अवधूतोंके-से विविध रूप मात्रा और आचरणसे अपन ईश्वरीय प्रभावको छिपाये जाते थे । अन्तमें उन्होंने योगियोंको देहत्यागकी विधि सिखानेके लिये अपना शरीर छोड़ना चाहा । वे अपने अन्तःकरणमें अमेदरूपसे स्थित परमरमासको अभिधरूपसे देखते हुए वासनाओंकी अनुवृत्तिसे द्रष्टृकर विद्वेष्टके अभिमानसे भी मुक्त होकर उत्तराम हो गये ॥ ६ ॥ इस प्रकार विद्वेष्टके अभिमानसे मुक्त भगवान् श्रवणदेवजीका शरीर योगमायाकी वासनासे केवल अभिमानाभासके आश्रय ही इस पृथ्वीतकपर निवृत्त

१ मा पा — ज्ञानावर्जित । २ प्राचीन प्रतिमि ‘एके नह पाठ कश्चित है । ३ प्राचीन प्रतिमि ‘ऽर्द्धा नह पाठ नहीं है । ४ मा पा — मनकलामस्य यागिनः शठ । ५ मा पा — शृङ्गकन्दित । ६ मा पा — कऽन तपुःशुभः । ७ प्राचीन प्रतिमि ‘अपि’ नह पाठ नहीं है । ८ मा पा — बद्वधूतवेवभापा । ९ मा पा — भावेनामुच्यते । १ मा पा — योगमायापासेन ।

मंक्रममाण कोट्टवेङ्कटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान्
यदच्छयोपगतं कुटकाचलोपवन आसकृताश्म-
क्यलतन्माद् इष मुक्तमूर्धजोऽमवीत एष विचचार
॥ ७ ॥ अथ समीरवेगविघृतवैणुविकर्षणजातो-
ग्रदावानलस्तद्धनमालेलिहान सह तेन ददाह ॥ ८ ॥

यस्य क्लितानुचरितमुपाकर्ष्य कोट्टवेङ्कटकर्णानां
राजार्हन्नामोपशिक्ष्य कलाधर्म उत्कृष्टमात्रे
भवितव्येन विमोहित स्वधर्मपथमङ्कतोभयमपहाय
कूपयपालम्बमसमञ्जस निजमनीषया मन्दः सम्प्र-
वर्तयिष्यते ॥ ९ ॥ येन ह वाच कलौ मनुजापसदा
देवमायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्रविहीना
देवहेलनान्यपत्रतानि निजनिजेष्वप्या युद्धानां
अस्तानानाधमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि क्लिप्ता
धर्मबहुलेनोपहतभियो ब्रह्मब्राह्मण्यशुर्लुपलोक
विहृक्का प्रायेण भविष्यन्ति ॥ १० ॥ ते च
कर्त्तव्यकनया निजलोकस्यत्यन्धपरम्परयाऽऽवृत्तौ
स्तमसा चैव स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ॥ ११ ॥

अयमवतारारजसोपप्लुतकैवस्योपशिक्ष्यार्थ १२
वत्सानुगुणान् श्लोकान् गावन्ति—

अहो सुख मत्समग्रद्वष्ट्या
द्वीपेषु श्रेष्ठेष्वधिपुण्यमेतत् ।
गापन्ति यत्रत्यजना मुरारे
कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥ १३ ॥
महो नु र्वा यशमाषाढा
प्रययतो यत्र पुमान् पुराण ।

रहा । यह दैववश कोट्ट, वेङ्क और दक्षिण आदि कुटक
कर्णाटकके देशोंमें गया और मुँहमें पत्थरका टुकड़ा
बाले तथा बाल बिसरे उन्मत्तके समान दिगम्बररूपसे
कुटकाचलके वनमें घूमने लगा ॥ ७ ॥ इसी समय
संज्ञावातसे सक्करो हुए बाँतोंके घर्षणसे प्रबल दाशनि
घक्क ठड़ी और उसने सारे वनको अपनी लाठ-झाल
छाटोंमें लेकर शृंगमदेवजीके सङ्घित मत्स्य कर दिया ॥ ८ ॥

राजन् ! जिस समय कलियुगमें अवर्मकी बुद्धि
होगी, उस समय कोट्ट, वेङ्क और कुटक देशका मन्दमति
यन्त्रा बहकें लगेगेंसे शृंगमदेवजीके आश्रमतीत
आचारणका वृत्तान्त सुनकर तथा स्वयं उसे प्रहृणकर
छोड़के पूर्वसंस्थित पापफलरूप होनहारके वशीभूत हो
मग्नस्थित स्वधर्म-पथका परित्याग करके अपनी बुद्धिसे
अनुचित और पाण्ड्यपूर्ण कुमार्गका प्रचार करेगा ॥ ९ ॥
उससे कलियुगमें देवमायासे मोहित अनेकों अवधम
मनुष्य अपने शालविहित शौच और आचारको छोड़
देवों ॥ अवधमबहुल कलियुगके प्रभावसे बुद्धिहीन हो
जानेके कारण बे स्थान न करना, आचमन न करना, अशुद्ध
खाना, केस नुचवाना आदि ईश्वरका तिरस्कार करनेवाले
पाण्ड्यधर्मियोंके मनमाने ढंगसे स्त्रीकार करेंगे और प्राय
वेद, शास्त्र एवं मन्त्रान् यज्ञपुस्तककी निन्दा करने
लगे ॥ १० ॥ वे अपनी इस नवीन अवैदिक स्वेच्छावृत्त
प्रवृत्तिमें अवधपरम्परसे विश्वास करके मतवाले रहनेके
कारण स्वयं ही मोर नरकमें गिरेंगे ॥ ११ ॥

मगान्का यह अवतार रामोद्युगसे भर हुए छात्रोंके
मोक्षमार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था ॥ १२ ॥
इसके गुणोंका वर्णन करते हुए साग इन वाक्योंका
कहा करते हैं— अहो ! सात समुद्रोंवाली पृथ्वीक
समस्त द्वीप और ज्योंमें यह भारतवर्ष बड़ी ही पुण्यभूमि
है, क्योंकि यहाँके लोग श्रीहरीके मन्त्रमय अवतार
परिशोक्य गान करते हैं ॥ १३ ॥ अहो ! महाराज
प्रियजनका वन कहा ही उगगद एव सुपशरूग है,

१ मा पा — कोट्टवेङ्क । २ प्राचीन प्रतिमें 'म' यह अक्षर लिखित है । ३ मा पा — दक्षिणपथ ।
४ प्राचीन प्रतिमें कुटकाचलोपवन यह पाठ लिखित है । ५ मा पा — येनेह वाच । ६ मा पा — यशमाऽपुनर्यवदुक्ता ।
७ मा पा — तथैव ब्रह्मकनया । ८ मा पा — तथैवावतारवत्सम । प्राचीन प्रतिमें स्वयमेव यह पाठ मही है ।
९ प्राचीन प्रतिमें 'मि' यह पाठ लिखित है । १० मा पा — शिखरार्थ । ११ प्राचीन प्रतिमें एतन् यह अक्षर लिखित है ।

लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक
माख्याममो भगवते श्रवणाय तस्मै ॥१९॥

प्राप्तिसे सब प्रकारकी तृष्णाओंसे मुक्त थे, उन भगवान्
श्रवणमन्त्रको नमस्कार है ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंसां संहितायां पञ्चमस्कन्ध
श्रवणमन्त्रानुचरिते पद्योऽध्याय ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्याय

भरत-चरित्र

श्रीशुक उवाच

भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवतावन्तिल
परिपालनाय सञ्चिन्तितस्तनुश्लासनपर पञ्चजनीं
विश्वरूपदुहितरमुपयमे ॥ १ ॥ तस्याद्यु इ या
आत्मज्ञान् फात्स्न्यनानुत्पानात्मान पञ्चजनपामस
भूताग्निर्वि भूतवृक्षमाणि ॥ २ ॥ सुमतिं राष्ट्रमृष
सुदर्शनमावरण धूमकेतुमिति । अजनैर्म नामैतद्वप
भारतमिति यत् आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥३॥

श्रीशुकस्वामी कहते हैं—राजन्! महाराज भरत बहुत
ही भगवद्भक्त थे । भगवान् श्रवणमन्त्रके अपने संकल्पानुयसे
उन्होंने पृथ्वीकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त कर लिया । उन्होंने
उनकी आज्ञाने स्थित रहकर विश्वरूपकी कन्या पञ्चजनी
से विवाह किया ॥ १ ॥ त्रिम प्रकार तामस ब्रह्मकारसे
शम्भु, पौंच मृत्युमन्त्र उत्पन्न होते हैं—वसी प्रकार
पञ्चजनीके गर्भसे उनके सुमति राष्ट्रधृत्, सुदर्शन,
आवरण और धूमकेतु नामके पौंच पुत्र हुए—जो सर्वथा
उन्हींके समान थे । इस बर्णका, त्रिमका नाम पहले
अजनामवर्ण था, राजा भरतके समयसे ही 'भारतवर्ष'
कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

मं बहुविन्महीपति पिठपितामैहयदुरुवरसलतया ।
स्य स्व कर्मणि वर्तमाना प्रजा स्वधर्ममनुयतमानाः
पर्यपालयन् ॥ ४ ॥ ईज च भगवन्त यज्ञवन्तुष
क्रतुभिरुपावर्त श्रद्धयाऽऽहुताग्निहोत्रदर्गपूर्णमास
धातुमास्यपनुमामानां प्रवृत्तिविकृतिभिरनुमचर्च
शातुर्द्वौषविधिना ॥ ५ ॥ मन्त्रप्रवरस्तु नानाधायापु
गिरनिताङ्गक्रियेष्वपूष यत्किंफलाफल धर्माख्यं
पर मन्त्राणि यज्ञपुरुषे मर्वन्चतालिङ्गानां मन्त्राणा

महाराज भरत बहुत थे । वे अपने-अपने कर्ममें
लगी हुई प्रजाका अपने वाप-दाएँके समान स्वधर्ममें
स्थित रहते हुए आपन्त शास्त्रस्यमात्रसे पालन करने
में ॥ ४ ॥ उन्होंने हाता, अप्यर्तु उद्याना और
झाड़-वन चार अधिबोधारा करायें जानेवाले प्रवृत्ति
और विहित दोनो प्रकारके अग्निहोत्र, दश पूगमास,
चातुर्मास्य पशु और मांस आदि दान बड़े प्रभुओं
(यज्ञों) से यथासमय यदावृत्त यह और अनुष्ठान
धीमात्रानुष्ठान करने किया ॥ ५ ॥ इस प्रकार अन्न
और क्रियाओंके मन्त्र भिन्न-भिन्न यज्ञोंके अनुष्ठान
समय जब अन्नपुग आहुति देने के लिये दत्त दान

१ प्राचीन प्रतिके श्रीशुक उवाच पर पाठ नहीं है । २ मा पा —सुरजनं आकर्षणं । ३ प्राचीन प्रतिके
पर पाठ नहीं है । ४ मा पा —मह बहुविधहीरति । ५ प्राचीन प्रतिके पर पर पाठ नहीं
है । ६ मा पा —यज्ञानु यज्ञमिच्छा । ७ मा पा —नानाधायापु ।

१ प्रवृत्ति गौर विहित भेदसे भिन्न । प्रादि क्रतु का प्रचारके दान है । मन्त्रप्र अन्तर्गत पुनः क्रतुभेदः—इति
वर्णो है जो कि प्रवर्तन पर पाठ नहीं है किन्तु न-विनी अन्नको कर्म रहती है उन्हें 'विहित' कहते हैं ।

मर्धनिषामकृतया साक्षात्कर्तारि परदेवतायां भगवति
 वासुदेव एव भावयमान आत्मनैःपुण्यमृदितकपायो
 इति पृथ्व्युर्भिर्गृहमाणसु स यजमानो यज्ञभाजो
 ऋषीन्तान् पुरुषान्मवेव्यभ्यासत् ॥६॥ एवं कर्म-
 विशुद्धया विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरं अक्षयि
 भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणं श्रीवत्स
 श्रीस्तुभवनमालारिद्वर्गदादिभिरुपलक्षिते निज
 पुरुषहृद्विचितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोधमान
 उच्चैःश्रेष्ठं भक्तिरमुदिनमधमानरमाजामत ॥ ७ ॥
 एव वर्षापुत्रमहस्रपर्मन्वावसितकर्मनिर्वाणवसरो
 ऽधिगृज्यमानं म्वतनवेम्बो रिक्थ पितृपैतामह
 यथादार्यं विभज्य मयमकलमम्पत्रिकेतात्मनिकत्वात्
 पुलहार्थं प्रवधाज ॥८॥ यत्र ह वाव भगवान् हरि
 रद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिभाप्यत
 इच्छाम्पण ॥ ९ ॥ यत्राधमपदान्पुभयतोनाभि
 भित्पगक्रधक्रनगे नाम मरित्प्रवरा संपत्त परिणी
 वगति ॥ १० ॥

ल्ले, तो यजमान भरत उस यज्ञकर्मसे होनेवाले पुत्र-
 रूप कलकरो यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवके कांन स
 देते थे । वस्तुतः वे परब्रह्म ही इन्द्राणि समस्त देवदे-
 वके प्रकाशक, मन्त्रोंके वास्तविक प्रतिपाद तथा उन
 देवताओंके भी नियामक होनेसे मुख्य कर्ता एवं प्रम-
 नेय हैं । इस प्रकार अपनी भाव्यपणबुद्धिरूप कुम्भ-
 से हृदयके राग-द्वेषाणि मत्तोका मार्जन करते हुए वे
 सूर्यादि सभी यज्ञमोक्षा देवताओंको भावयान्के लक्ष्मी
 कर्षणोंके रूपमें चिन्तन करते थे ॥ ६ ॥ इस तरह
 कर्मकी शुद्धिसे उनका जन्त-करण शुद्ध हो गया । तब
 उन्हें जन्तर्वासीरूपसे विराजमान, हृदयकर्ममें ही
 अभिषेक होनेवाले, ब्रह्मरूप एवं महापुरुषके
 लक्षणोंसे उपलक्षित भगवान् वासुदेवमें—ओ श्रीकृष्ण,
 कौस्तुभ, वनमामा, चक्र, शङ्ख और गदा आदिने
 सुलेशित तथा मारुति निजजनके हृदयोंमें चित्रके
 समान निक्षलभावसे स्थित रहत हैं—निज-निज केन्द्रीय
 बदनशानी उत्कृष्ट भक्ति प्राप्त हुई ॥ ७ ॥

इस प्रकार एक कठोर कर्म निकट आनेपर उन्होंने
 राग्ययोगपर प्रारम्भ करीण हुआ जानकर अपनी मूर्ध्नि
 हुई वशापरणयगत सम्पत्तिको यथायोग्य पुत्रोंमें बाँट
 दिया । फिर अपने मर्षसम्पत्तिसम्पन्न राजमहलसे निकल-
 कर वे पुलहाधम (हरिहरक्षेत्र) में गये आये ॥ ८ ॥
 इस पुम्हाधममें रहमवाले भक्तोंपर भगवान्का वर
 ही वात्सल्य है । वे आज भी उनसे उनके हृदयमें
 मिश्रित रहते हैं ॥ ९ ॥ वहाँ धर्मरानी (गण्डरी)
 नामकी प्रसिद्ध सरिता ब्रह्मावतार शावमात्र-दीप्तिप्रसे-
 वितके ऊपर-नीचे दोनों ओर नाभिके समान विस्तृत
 होते हैं, सध ओरसे अग्निर्वीरके आश्रमोंको परित्र करने
 रहती है ॥ १० ॥

तस्मिन् वाव किन् स पण्डितः पुलहा
 धमापवन विविधगुणमस्मिन्त्यतुल्यसिफाम्पुभि
 कन्मूलकनापदाय गमीदमाना भगवत

१ मा वा — यज्ञम् । २ मा वा — कर्मविशुद्धिः । ३ मा वा — साक्षात्कारः । ४ मा वा — प्रतिष्ठा । ५ मा वा — विराजमान । ६ मा वा — यत्राधमपदान्पुभयतोनाभि । ७ मा वा — पुलहाधमपदान्पुभयतोनाभि । ८ मा वा — यत्राधमपदान्पुभयतोनाभि । ९ मा वा — यत्राधमपदान्पुभयतोनाभि । १० मा वा — यत्राधमपदान्पुभयतोनाभि ।

आराधनं विविक्त उपरसविषयामिलाप उपभृशो
पञ्चमः परां निर्द्वैतिमवाप ॥ ११ ॥ तथेत्यमविरत
पुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुगमभरमुत्
हृदयशैथिल्यं प्रवर्धवेगेनात्मन्मुद्रिष्यमानरोमपुलक-
कुलक औत्कण्ड्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन
एवं निज्रमणारुणचरणारविन्दानुध्यानपरिचित-
भक्तियोगेन परिष्ठुतपरमाह्लात्गम्भीरहृदयहृदाव
गाढविषणत्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न
समाप्त ॥ १२ ॥ इत्थं धृतभगवद्भुत एणेयाजिनवाससा-
नुसवनाभिपेक्षार्द्रकपिष्ठकुटिलजटाकणापेन च
निरोचमान द्रव्येवाभगवन्त हिरण्यमयपुरुषमुद्रिहानि
सर्वमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतद्गुह्योवाच— ॥ १३ ॥

परोरब्ध सन्निवृत्तवेदा
देवस्य भर्गो मनसेद जजान ।
सुरतसाद पुनराविष्टम षष्ट
इमं गृध्राणं नृपतिर्गिरामिम ॥ १४ ॥

आराधना करने लगे । इससे उनका अन्त करण सम्पन्न
क्रियामिल्याबाधसे निवृत्त होकर शान्त हो गया और
उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ इस प्रकार
जब वे नियमपूर्वक भगवान्की परिचर्या करने लगे,
तब उससे प्रमत्ता वेग बढ़ता गया—जिससे उनका हृदय
क्षीयूत होकर शान्त हो गया, आनन्दके प्रबल वेगसे
शरीरमें रोमाञ्च होने लगा तथा उत्कण्ठके कारण नेत्रोंमें
प्रमत्ते औंस उमड़ आये, जिससे उनकी दृष्टि रुक
गयी । अन्तमें जब अपने प्रियतमके अहण चरण-
रविन्दोंके प्यानसे मत्तियोगका आविर्भाव हुआ, तब
परमानन्दसे सराबोर हृदयरूप गम्भीर सरोवरमें बुद्धिक
हूब जानेसे उन्हें उस नियमपूर्वक की जानेवाली
भगवत्पूजाका भी स्मरण न रहा ॥ १२ ॥ इस प्रकार वे
भगवत्सेवाके नियममें तत्पर रहते थे, शरीरपर कृष्ण-
मृगचर्म धारण करते थे तथा त्रिकाङ्गस्तनके कारण
भीगते रहनेसे उनके केश मूरी-मूरी घुँघराली लट्टोंमें
परिणत हो गये थे, जिनसे वे बड़ ही सुहावने लगते
थे । वे उचित हुए स्यमण्डलमें स्यसम्बन्धिनी श्वाधो-
द्धार ग्यामियम परमपुरुष भगवान् नारायणकी आराधना
करते और इस प्रकार बहते ॥ १३ ॥ भगवान्
स्यक्व कर्मफलप्राप्तक वेब प्रवृत्तिसे परे हैं । उसीन
सङ्कल्पशरा इस जगत्की उत्पत्ति की है । फिर बड़ी
अन्तर्द्वीकयसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी विद्वत्शक्ति-
द्वारा विषयमैलुप जीवोंकी रक्षा करता है । हम उसी
बुद्धिप्रवक्तव्य वेबकी शरण लने हैं ॥ १४ ॥

इति भीमश्लाघते महापुरुष पारमहंस्यां संक्षितायां पञ्चमस्कन्ध
भगवति भगवत्परिचर्यायां सम्माध्याप्य ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

भरतजीका मृगके मोहमें कैलक मृग-योधिमें जन्म लेता
भीमूख उवाच

भीमूखवेद्यकी कहत है—एक बार भरतजी गणपतिमें

एकदा तु महानयां कृताभिपक्षर्जनयमिफत्सद्वयका काम कर निष्पत्तिनिरिक तथा नीचानि अन्य आनयक

१ प्राचीन प्रतिमें एवं यह पाठ नहीं है । २ प्राचीन प्रतिमें ऐणेयाजिनवाससा मे आरम्भकर निजनेतु शशान्
बन्त भंग घट गया है । ३ प्रा वा —मृगैकगताः पुनरा । ४ प्राचीन प्रतिमें एवं यह पाठ अस्ति ५ ।

प्रक्षाल्यरमभिरुणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्तं उपविशेत् ॥ १ ॥ तत्र तत्र राजन् हरिणी पिपामया जलाशया
म्याश्रमकैवोपजगाम ॥ २ ॥ तथा पेपीयमान उदके
तावदवाविर्गण नदतो मृगपतेरुषादो लोकभयह्वर
उदपतत् ॥ ३ ॥ तद्युपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृति
विष्कृत्वा चकितनिराश्रणा सुतरामपि हरिमयाभिनि
वश्यन्प्रहृदया पारिष्ठवदष्टिरगततथा भयात्
महर्षवोषकाम ॥ ४ ॥

तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्बलन्त्या उरुमयाच
गलिता यानिनिर्गतो गर्भं स्नातसि नि
पपात ॥ ५ ॥ तत्रैवमवात्मर्षणभयस्वेदातुरा म्ब
गणन वियुज्यमाना क्सात्रिदया कृष्णसारमती
निपपाताथ च ममार ॥ ६ ॥

तं त्यणकुणकं कृपणं स्नातमान्द्यमान
मभिधीक्ष्यापविद्धं यधुरिबानुबन्धया राजर्षिं
मन्त आदाय मृगमातरमित्याधमपदमनयत्
॥ ७ ॥ तस्य इ वा ण्णकुणक उर्ध्वरतमिन् कृत
निजाभिमानम्याहरहन्त्यापणपाउनन्तासनप्रीणनानु
ध्याननामनियमा मदयमा पुण्यपरिचयादय
ण्णराज कनिपयनाइगणन वियुज्यमाना क्रिन्
मय एवाद्यमन् ॥ ८ ॥ अहा यताय हरिणकुणक

सूर्योत्ते निवृत्त हा प्रणयका अप करते हुए तेन
मुहूर्ततक नगीकी धाराके पास बैठे रहे ॥ १ ॥ एवम् ।
इसी समय एक हरिणी प्याससे व्याकुल हो बन पीने
लिये अकेली ही उस नदीके तीरपर आयी ॥ २ ॥
अभी वह जल पी रही थी कि पास ही गये
हुए सिंहकी ओकर्मयकर दहाड़ सुनायी पड़ी ॥ ३ ॥
हरिणजाति ता खमावसे ही डरपोक होती है । वह
पहले ही चौकन्नी होकर इधर-उधर देखती जाती थी ।
अब ओं ही उसके कानमें वह भीषण शब्द पड़ा कि
सिंहक डरके मारे उसका कलेजा चढ़कने लगा और
नन्त्र कतर हो गये । प्यास अभी बुझी न थी, किन्तु
अब तो प्राणोंपर आ बनी थी इसलिये उसने मत्परा
एकएकरी नदी पार करनेके लिये छमोंग मारी ॥ ४ ॥

उसके पेटमें गर्भ था, अतः वहलते समय
अत्यन्त भयके कारण उसका गर्भ अपन स्थानसे हटकर
योनिद्वारसे निकलकर नगीके प्रवाहमें गिर गया ॥ ५ ॥
वह कृष्णमृगमयी अकस्मात् गर्भके गिर जाने, उड़ी
छन्नौग मारन तथा सिंहसे डरी होनेके कारण बहुत
पीड़ित हा गयी थी । अब अपने मुँहसे भी उसका
बिग्राह हो गया, इसलिये वह किसी गुप्तमें जा पड़ी
और वहाँ मर गयी ॥ ६ ॥

राजर्षि भरतने देखा कि बेचारा हरिणीस बच्चा
आन बन्धुओंसे विछुड़कर नगीके प्रवाहमें यह रहा
है । इससे उन्हें उत्तरा बड़ी दया आयी और वे
आत्मीयक समान उस मातृहान बच्चे को अपने जावन
पर से लाय ॥ ७ ॥ उस मृगछनेके प्रति मन्त्रीरी
ममता उत्तरात्तर बढ़ती ही गयी । वे नित्य उसके पालन
पीनेका प्रबन्ध करन, व्याघ्रान्तिसे बचान, साथ बहाने
और पुत्रकपटन आदि की चिन्तामें ही इब रहने लगे ।
कुछ ही दिनोंमें उनका यम, नियम और भक्षणपूजा आदि
आनन्द कृप पक-पक करके छूटन लगे और अन्तमें
गभी छूट गया ॥ ८ ॥ उन्हें क्या पियर रहने

कृपण ईश्वरपथचरणपरिभ्रमणरण स्वर्गणसुहृद्
 वन्धुभ्यः परिषजित शरणं च भोपमादितो मायेव
 मातापितरौ भ्रातृभ्रातृन् यौधिर्यन्त्रैषोपर्याय नान्यं
 कञ्चन वेद मैत्र्यतिविसर्म्भं भास एव भया मत्परायणस्य
 पोषणपालनप्रीणनलालनमनस्युनानुष्ठेय शरण्योपस्था-
 दोपविद्रुपा ॥ ९ ॥ नूनं शार्पाः साधव उपश्रम
 शीला कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानु
 पेक्षन्ते ॥ १० ॥

इति कृतानुपक्क आसनक्षमनान्नस्थाना
 क्षनादिषु सह सुगन्धुना स्नेहानुबद्धद्वय
 आमीत ॥ ११ ॥ कुञ्जकुसुमसमित्पलाशफल्मूलो
 दकान्याहरिष्यमाणा इर्कमालावृक्षादिभ्यो भयमाश्रस्य
 मानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति
 ॥ १२ ॥ पथिषु च युग्ममावेन सत्र तत्र विपक्त
 मतिप्रणयमरहृदय कार्यभ्यात्स्क्रन्वेनाऽऽहति एव
 सुत्सङ्ग उरसि चाधायोपलालयन्मुद परमामवापा ॥ १३ ॥
 क्रियायां निवर्त्यमानाशामन्तरालाऽप्युत्थापोत्थाप
 यदैवमभिबध्नीत तर्हि वाव न वपपति प्रकृतिस्त्रेन
 मनसा तस्मा आधिप आश्वास्ते म्वन्ति स्ताडत्स ते
 सर्वत इति ॥ १४ ॥

अन्यथा मृशुद्विधमना नटप्रविण

इव कृपण सकृन्ममतिर्षेण हरिणकुणक-

१ प्राचीन प्रतिमें एव यह पाठ नहीं है । २ मा पा—सुहृद्भुवि । ३ मा पा—शरण
 मयोपश्रितो । ४ प्राचीन प्रतिमें प्याव यह अर्थ लक्षित है । ५ प्राचीन प्रतिमें 'मय्य' यह अर्थ लक्षित है ।
 ६ मा पा—मय्यविमय एव । ७ मा पा—नामकुसुमकुशाद्यनादिषु सह मृशुवर्तिना । ८ मा पा—इच्छा ।
 ९ मा पा—समाविशत् । १० मा पा—शुद्धमात्र । ११ मा पा—सुख्य ।

क्या—'अहो ! कैसे लेदकी बात है ! इस बेचारे दीन
 मृगहीनेको कलत्रकक वेगने अपने सुहृ, सुहृ और
 वन्धुगोसे दूर करके मेरी शरणमें पहुँचा दिया है । यह
 मुझे ही अपना माता पिता, भाई-भ्रातृ और मृषके साथी
 सही समझना है । इसे मेरे सिवा और किसीका पता
 नहीं है और सुझमें इसका विश्वास भी बहुत है । मैं
 भी शरणागतकी उपेक्षा करनेमें जो दोष है, उन्हें
 जानता हूँ । इसलिये मुझ खब अपने इस आश्रितका
 सब प्रकारकी दोषबुद्धि छानकर अच्छी तरह पालन-पोषण
 और प्यार-दुखार करना चाहिये ॥ ९ ॥ निश्चय हा शान्त-
 समाध और दीनोकी रक्षा करनेवाले पण्यकारी सज्जन
 ऐसे शरणागतकी रक्षाके लिये अपने बड़े-से-बड़े कार्य-
 की भी परवा नहीं करते ॥ १० ॥

इस प्रकार उम हरिक वन्धेमें आसक्ति बढ़
 जानेसे बैठते, सोते, गहलते, टहरते और भोजन करते
 समय भी उनकी विच उमक स्नेहपाशमें बँधा रहता
 था ॥ ११ ॥ जब उन्हें कुश, पुष्प, समिधा, पत्र और
 फल-मृगादि खान होते तो भेड़ियों और कुत्तोंके भयसे
 उसे वे साथ लेकर ही वनमें जाते ॥ १२ ॥ कर्ममें
 जहाँ-तहाँ काम्य भास आदिक उपकरण सुगन्धवसे
 वह हरिणशापक अन्य जाता ता वे अत्यन्त प्रसन्न
 होकर दयावश उसे अपने कपिपर चढ़ा लेते । इसी
 प्रकार कभी गोदमें लेकर और कभी छातीसे लगाकर
 उसके दुखार करनेमें भी उन्हें बड़ा सुख मिलता ॥ १३ ॥
 नित्य-नैमित्तिक कार्योंको करते समय भी राजराजेश्वर
 मरत बीच बीचमें ठठ-ठठकर उस मृगशापकको देखते
 और जब उसपर उनकी छवि पड़ती, तभी उनके चित्त
 को शान्ति मिलती । उस समय उनके लिये मङ्गलकामना
 करते हुए वे कहने लगते—वेदा ! तेरा सर्वत्र
 कल्याण हो ॥ १४ ॥

कभी यदि वह शिवायी न देता तो जिसका वन
 छुट गया हो, उस दीन मनुष्यके समान उनकी विच
 अत्यन्त उद्विग्न हो जाता और फिर वे उस हरिनीके

विरहविह्वलहृदयसन्तापस्तमेवानुशोचन् किल कश्मल
महदभिरम्भित इति श्लोकाः ॥ १५ ॥ अपि यत स
वै कृपण एणवालका मृतहरिणीसुतोऽहो ममानर्थस्य
शठकिरातमतेरकुतसुकुतस्य कुतविसम्म आत्म-
प्रत्ययेन तदविगणयन् मुञ्चन इवागमिष्यति ॥ १६ ॥
अपि क्षमेणासिन्नाभमोपवनं क्षुप्याणि चरन्तं देवगुप्तं
द्रक्ष्यामि ॥ १७ ॥ अपि यं न शुक सालाङ्गकाऽन्य
तमो वा नैकचरं एकचरो वा भक्षयति ॥ १८ ॥
निम्लोर्षति ह भगवान् सकलजगत्स्थेमोदयस्त्वया
त्माद्यापि मम न मृगवधून्मास आगच्छति ॥ १९ ॥
अपिस्त्रिदशकुतसुकुतमागत्य मां मुस्तयिष्यति हरिण
राजकुमारो विविभरुचिरदर्शनीयनिमसुगदारक-
विनादरसन्तापं स्वानामपनुदन् ॥ २० ॥ इवेलिकायां
मां मृषासमाधिनाऽऽमीलितद्वयं प्रमत्तरम्भेन
चकितचकित आगत्य पुष्पपरुषमिषाणाग्रण
कुन्ति ॥ २१ ॥ आसादितहविषि बहिषि दूषित
मयापालन्धाभीतभीत सपुष्परतगर्भश्चक्रिमार
वदबहितकरणकृन्ताप आस्ते ॥ २२ ॥

किं वा अर आचरित तपस्तपस्विन्या
नया यदिपमवनि मयिनयकृष्णसार
तनयतनुतरमुभगिगवतमाग्ररसुरपदपद्भिर्भद्रविण

बन्धे विरहसे व्याकुल एवं सन्तप्त हो कृष्ण
अत्यन्त उत्कण्ठित एवं मोहाविष्ट हो जाते तथा श्रे-
मन् होकर इस प्रकार कहने लगते ॥ १५ ॥ 'अहो !
क्या कहा जाय ? क्या वह मातृहीन दीन मुगलक
दुष्ट बहेशियेकी-सी बुद्धिवाले मुझ पुण्यहीन अनाथ
विश्वास करके और मुझे अपना मानकर मेरे किये हुए
अपराधोंको सपुष्पोंके समान भूलकर फिर छो-
ड़ायेगा ? ॥ १६ ॥ क्या मैं उसे फिर इस कष्टके
उपक्रममें मगवान्की कृपासे सुरक्षित रखकर निर्दि-
ष्ट ही ही दूध चरते देखूँगा ? ॥ १७ ॥ ऐसा न हो कि
कहीं मेहिया, कुत्ता, गोल बौचकर विचरनेवाले सुकृ-
पि अथवा बकेले धूमनेवाले व्याघ्रादि ही उसे खा जायें ॥ १८ ॥
अरे ! सम्पूर्ण जगत्की कुशलके किये प्रकट होनेवा-
ले वेदव्याख्यान भगवान् सूर्य अस्त होना चाहते हैं, तब
अमीतक वह मृगीकी घरोहर छूटकर नहीं
जायी । ॥ १९ ॥ क्या वह हरिणराजकुमार मुझ
पुण्यहीनके पास आकर अपनी मौत्ति-मौत्तिकी युगलाक्षी-
वित मनोहर एवं दर्शनीय स्त्रीकाओंसे अपना स्वजनके
शोक दूर करते हुए मुझे आनन्दित करेगा ? ॥ २० ॥
अहो ! जब कभी मैं प्रणयकोपसे स्नेहमें झूठ-मूठ सप-
नके बहाने आँखें मूँदकर बैठा जाता, तब वह चकित-
चकितने मेरे पास आकर नलविन्दुके सम्मन कोमल
और नन्हें-नन्हें सींगोंकी नोकसे कित्ति प्रकार मेरे आँखों
सुझाने लगता था ॥ २१ ॥ मैं कभी बुझोकर हस्त-
सामग्री रख देता और वह उन्हीं दौनोंसे स्वीचकर अस्ति-
कर नेता ता मेरे हठने इपटनेपर वह अत्यन्त मधुम-
हंकर तभी समय सारी उलझ-झूट छोड़ देता और
अक्रिमारके समान अपनी समस्त इन्द्रियोंको घेरकर
पुष्पचाप बैठा जाता था ॥ २२ ॥

[फिर पृथ्वीपर उम मृगदण्डके सुरके वि-
देगकर कहने लगते—] 'अहो ! हम तपस्विनी धार्मिक
एसा कौन-मा तप किया है जो उस अनिर्दिष्ट कृष्ण-
मात्रि-गोष्ठि धार्मिक सुन्दर, सुप्रकाशी और सुप्रम-
द

१ मा पा — घटकितरम-रहृतमुहृतम् । २ मा पा — स्वयं इति । ३ मा पा — तपस्विनी ।

४ मा पा — अरि न शुकः सालाङ्गकाः वा । ५ मा पा — नैकचरो वा भक्षयति । ६ मा पा — निम्लोर्षति ।

७ मा पा — आह्वय । ८ मा पा — मृगपुरतयाग ।

विधुरातुरस्य कृपणस्य मर्मं द्रविणं
 पदवीं सूचयन्त्यारमान च सर्वतः कृतकौतुकं
 द्विजानां स्वर्गापवर्गक्रमानां देवयजनं करोति ॥ २३ ॥
 अपिस्त्रिदसौ भगवानुपपत्तिरेन मृगपतिभयान्मुत
 मातरं मृगवालकं स्वाभयपरिभ्रष्टमनुकम्पया
 कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥ २४ ॥ किं वाऽऽत्मज-
 विस्लेपन्वरदधदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्सल-
 नलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरध्वान्ता-
 नुरागगुणितनिजवदनसलिलाभृतमयगमस्तिभिः
 स्वधयतीति च ॥ २५ ॥

एवमवन्मानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारका-
 भासेन स्वारम्भकर्मणा योगारम्भणतो
 विप्रंशित म योगतापसो भगवदाराधन
 लक्षणाद्य कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक
 आसङ्गः साक्षाभि धेयमप्रतिपद्यतया प्राक्परि
 त्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य सम्यवमन्तरायविहस
 यागारम्भणस्य राजर्षेर्मरुतस्य सायन्मृगार्मकपापण
 पालनप्रीणनलालनानुपङ्गणाविगणयत आत्मान-
 महिरिवामुनिनं दुरतिक्रमः काल करान्तरभस
 आपद्यत ॥ २६ ॥ तदानीमपि पार्थिवर्तिनमात्मज

सुरोवाले चरणोंके चिह्नोंसे मुझे, जो मैं अपना मृगधन छुट
 जानेसे अत्यन्त व्याकुल और दीन हो रहा हूँ, उस
 दम्पती प्रासिक्य मार्ग दिखा रही हैं और स्वयं अपने
 शरीरको भी सर्वत्र ठम पदचिह्नोंसे विभूषित कर
 स्वर्ग और अपवर्गके इष्टुक द्विजोंके ठिये यह स्थल *
 बना रही हैं ॥ २३ ॥ (चन्द्रमामे मृगका-सा श्याम
 चिह्न देख उसे अपना ही मृग मानकर कहने लगते—)
 'अहो ! जिसकी माता सिंहके मयसे मर गयी थी, आज
 वही मृगशिशु अपने आघमसे विचुक्क गया है । अतः
 उसे अनाप देखकर क्या ये दीनवत्सल भगवान् नक्षत्रनाय
 दयावश उसकी रक्षा कर रहे हैं ? ॥ २४ ॥ [फिर
 उसकी शीतल किरणोंसे आह्लादित होकर कहने लगते—]
 'अपना अपने पुत्रोंके वियोगरूप दावानलकी विरम
 ज्वालासे हृदयकमल दग्ध हो जानेके कारण मैंने एक
 मृगबालकका सहारा लिया था । अब उसका चले जानेसे
 फिर मेरा हृदय जलने लगा है; इसलिये ये अपनी
 शीतल, शान्त, स्नेहपूर्ण और वदनसल्लिखरूपा अमृतमयी
 किरणोंसे मुझे शान्त कर रहे हैं' ॥ २५ ॥

राजन् ! इस प्रकार जिनका पूरा होना सर्वथा
 असम्भव था, उन विविध मनोरथोंसे भरतका चित्त
 व्याकुल रहने लगा । अपन मृगशायकके रूपमें प्रतीत
 होनेवाले प्रारम्भकर्मके कारण तपस्वी भरतजी भगवन्
 राधनरूप कर्म एवं योगानुपानसे प्युत हो गये । नहीं तो,
 त्रिन्हों मोक्षमार्गमें साक्षात् विष्णुरूप समझकर अपन
 ही इन्द्रसे उत्पन्न दुस्यत्र पुत्राधिको भी त्याग दिया
 था, उन्होंनेकी अन्यब्रह्मण्य इतिशिशुमें ऐसी आसक्ति
 कैसे हो सकती थी । इस प्रकार राजर्षि भरत किन्तोंके
 वशीभूत होकर योगसाधनसे भ्रष्ट हो गये और उस
 मृगउनेक पापन-योग और साधन्यारमें ही लग रहकर
 आत्मव्यक्तको भूल गये । इसी समय जिसका गटना
 जप्यत कठिन है, वह प्रबल बेगशाली बरान बरान,
 बूढ़के बियमें जैसे सर्प घुस आवे उसी प्रकार उनका
 मितर बढ़ आया ॥ २६ ॥ उस समय भी वह इन्द्रि

१ ना पा —मे । * प्राचीन प्रसिद्धि 'च' कह पाठ मही है ।

• शब्दमें उल्लेख आता है कि जिन भूमिमें कृष्णमृग विचरते हैं वह अत्यन्त पवित्र और वन्द्यमानक योग्य होती है ।

मिवानुष्ठापन्तमभिवीक्षमाणो मृगएषानिवेक्षित
मना विसृज्य लोकमिम सह मृगेण फलेवर
मृतमनु न मृतजमानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप
॥ २७ ॥ तत्रापि ह वा आत्मना मृगस्वकार्ण
भगवदाराधनसमीहानुभावनानुस्मृत्य म्रशमनु
तप्पमान आह ॥ २८ ॥ अहो कष्ट अष्टोऽहमात्म
वतमानुपधाद्यष्टिमुक्तसमस्तसङ्गस्य विविक्तपुष्प्यारण्य
शरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति
वासुदेवे तदनुधवणमननसकीर्तनाराधनानुसरणा
भियोगनानून्यसफलरूपमेव फलंन समावेक्षित
समाहित कात्स्न्येन मनस्तप्तु पुनर्ममाधुषस्पाता-
न्मृगमुदमनु परिसुम्नास ॥ २९ ॥

इत्वेव निगूढनिर्वेदा विसृज्य मृगी
मातरं पुनर्मगवत्क्षत्रद्वपशमशीलं निगणदयितुं
शलग्राम पुलस्त्यपुलहाभमं कालञ्जरात्प्रत्या
व्रगाम ॥ ३० ॥ तस्मिन्नापि फलं प्रतीक्षमाणः
सङ्गाव मृगमुद्रिग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्ण
वृणशीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमिषावसानमेव
गमयन्मृगशरीर तीर्थोदकश्लिषमुत्ससर्ज ॥ ३१ ॥

शायक उनके पास बैठ पुत्रक समान रोधतु
रहा था । वे उसे इस स्थितिमें देख रह व बार एक
चित्त उसीमें ल्या रहा था । इस प्रकारकी वासुदे-
वी मृगव माव उनका शरीर भी छू गया । तन्त्र
उन्हें अन्तकालकी भावनाके अनुसार अन्य साध-
पुरोयोंके समान मृगशरीर ही मिया । किन्तु उनकी
साधना पूरी थी, इससे उनकी पूर्वजन्मकी स्मृति
नहीं हुई ॥ २७ ॥ उस चोनिमें भी पूर्वजन्मकी भाव-
राधनाके प्रभावसे अपने मृगस्व होनेका कारण जान-
वे आप्त पञ्चाचाप करते हुए कहने लगे, ॥ २८ ॥
'अहो ! यह खेदकी बात है, मैं सम्ममने महात्म-
के मार्गसे पतिव हो गया । मैं तो वैश्वदेव का
प्रकारकी आसक्ति छोड़कर एकान्त और पवित्र स्थ-
आश्रय लिया था । वहाँ रहकर जिस विचारों से
सर्वभूतात्मा श्रीवासुदेवमें निरन्तर उनकी गुणों
अवग, मनन और सुहृतिन करके तथा प्रत्येक पक्ष-
उन्हींकी आराधना और स्मरणान्ति सफल करे,
स्थिरभावसे पूर्णतया लगा दिया था, कुछ व्यतीत
वही मन अकस्मात् एक मन्त्र-से इति-निन्द-
पीछे अपने व्यवसे ध्युत हो गया ।' ॥ २९ ॥

इस प्रकार मृग बने हुए रात्रि मस्तके दरपने से
वैराग्य-भावमा आग्रह हुई, उसे छिपाये रखकर उन्होंने
अपनी माता मृगीको त्याग दिया और अपनी अन्तर्मुखी
कात्स्न्य पवतसे वे स्ति शान्तत्वमाव मुनियोंके द्वि-
उसी शास्त्रप्रामाण्यमें, ओ भगवान्का क्षेत्र है, पुन-
और पुनः अधिक आश्चर्य करते आये ॥ ३० ॥
वहाँ रहकर भी वे कात्स्न्य ही प्रतिक्षा करने लगे ।
आसक्तिये उन्हें बड़ा मय लगने लगा था । वर, जे-
रहकर वे सुले पड़े, पास और शक्तिशाली नि-
कते मृगयोनिकी प्राप्ति करनेवाले प्रारब्धके शयकी व-
देखते रहे । अन्तमें उन्होंने अपने शरीरका बाधा मा-
गण्यकीके अर्थमें बुझाये रखकर उस मृगशरीरको
छोड़ दिया ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संज्ञितार्थ पञ्चमस्कन्धे मरुतचरितेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

१ प्रा पा — फलेवर न नु मृतजन्मा । २ प्राचीन प्रसिद्धि में रि यह पाठ लिखित है । ३ प्राचीन
प्रसिद्धि में भा यह अर्थ लिखित है । ४ प्रा पा — सङ्गकासेन । ५ प्रा पा — निरुद्धनिर्वेदो । ६ प्रा पा —
मुनिगणार्थित इवित । ७ प्रा पा — पशुमे रक्ष्ये आदिमरुतचरितेऽष्ट ।

अथ नवमोऽध्यायः

भरतजीका ब्राह्मणकुलमें जन्म

श्रीभुक्त उवाच

अथ कम्पचिद्वृद्धिजवरस्याक्षिरः प्रवरस्य शुभदम

तप स्वाध्यायाभ्यासनत्यागतोपसितिविद्याप्रभयविद्या

नम्रयस्ममृष्टानानन्दपुक्तस्पात्मसदृशशुचशीलाचार

रूपौदार्यगुणा नव सोदया अङ्गजा वमूर्धमिधुन

च यवीयसां भार्यायाम् ॥ १ ॥ यस्तु तत्र पुमांस्त

परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमुगदरीरं

चरमगरीरेण विप्रव गतमाहु ॥ २ ॥ तत्रापि

स्वजनसङ्गाच्च मृगमुद्विजमानो भगवत कर्मबन्ध

विश्वसतध्वणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगल

मनसा विदधदात्मन प्रतिधातमाह्वयमानो भगव

दनुप्रहणानुस्मृतम्यप्यजमाबलिरात्मानमुन्मच

जहन्धधिरिस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥ ३ ॥

तस्यापि ह वा आत्मजस्यैविप्र पुत्रस्नेहानुपक्षमना

आममावर्तनान्त्वस्करान् यथापदेशं विधान उप

नीतम्य च पुन गोषान्वमनादीन् कर्मनियमानन

भिप्रवानपि ममप्रियदनुविष्टेन हि भाष्य पितुः

पुत्रेति ॥ ४ ॥ स चापि तद् ह पितृमनिधाववा

मर्षीहीनमिय म कगति छन्दाम्यध्यापयिष्यन् सह

श्रीभुक्तदेवजी कहते हैं—राजन् । आश्रितम गोत्रमें

शम, दम, तप, स्वाध्याय, वेत्ताप्यसन, त्याग (अतिथि

आतिथी अन्न देना), सन्तोष, निनिष्ठा, विनय, विद्या

(कर्मविद्या), अनसूया (दूसरोंके गुणोंमें दोष न

बुझना), आत्मज्ञान (आत्माके कर्तृत्व और माहृतृत्वका

ज्ञान) एवं आनन्द (धर्मपावनजनित सुख) सभी

गुणोंसे सम्पन्न एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे । उनकी बड़ी बीसे

उन्हींके समान विद्या, धीक, आचार, रूप और उदारता

आदि गुणोंवाले नौ पुत्र हुए तथा छद्मी पत्नीसे एक

ही साथ एक पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ ॥ १ ॥

इन दोनोंमें आ पुरुष था वह परम भागवत राजर्षिदिशोमणि

मस्त ही थे । वे युगशरीरका परित्याग करके अन्तिम

जन्ममें ब्राह्मण हुए थे—ऐसा महापुरुषोंका कथन है ॥ २ ॥

इस जन्ममें भी भगवान्की कृपासे अपनी पूर्व-जन्मपरम्परा

का स्मरण रहनेका कारण, वे इस आशङ्कासे कि कहीं

निर कहीं चित्त उपस्थित न हो जाय, अपने स्वर्गनोंके

सङ्गसे भी बहुत बरते थे । हर समय—निनका ध्वण,

स्मरण और गुणकीर्तन सब प्रकारका कर्मकथनको काट

देता है, श्रीभगवान्के उन युगल चरणकमलोंको ही

हृदयमें धारण किये रहते तथा दूसरोंकी दृष्टिमें अपनेको

पागल, मूर्ख, अचे और बहरेके समान दिखाते ॥ ३ ॥

पिताका ता उनमें भी बसा ही लड था । इमन्विय

ब्राह्मणवैवतान अपने पागल पुत्रके भी शास्त्रानुसार

समावर्तनपण्य विद्यासे पूर्वके सभी मस्कर बनकर

विचारसे उनके उपनयनमें स्वरूप दिया । यद्यपि वे

चाहते नहीं थे तो भी पिताका व्रतम्य है कि पुत्रको

शिक्षा दे । इम गार्गविधिक अनुसार उन्होंने उन्हें गोष

आधमन आदि आध्ययक कर्मोंकी शिक्षा दी ॥ ४ ॥

विरतु मन्त्री ता निपाके सामने ही उनके उपदेश

विद्वद् आचरण करने लगते थे । पिता चाहते थे कि

वर्गश्रम्ये इमे वन्यपवन आरभ्य करा हूँ । किन्तु

१ माहीन प्रिये अष्टमुद्विजमानो पर बाट घूट गया है । २ मा था —मत्तवदधिराजमनेष ।

३ मा था —आत्मजस्यैविप्रः ।

म १ १ १ ७३—

श्यादितिभि सप्रणयधिरक्षिपदी मावित्री त्रैप्य
 वामन्तिको मास्तानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राह्या-
 माम ॥ ५ ॥

एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेक्षित
चित्तं शौचाभ्यसनव्रतनियमगुर्वनलशुभ्रपणाधौप
कुर्वाणकुरुमाभ्यनमिषुक्तान्यपि ममनुशिष्टेन
भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुधास्य स्वयं ताव
दनधिगतमनोरथ कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव
प्रमत्त उपसंहृत ॥ ६ ॥ अथ यत्रीयमी द्विजसती
स्वगर्भजात मिषुनं मपत्न्या उपन्यस्य स्वय
मनुमन्वया पतिलोकमगात् ॥ ७ ॥

पितर्युपरत आतर एनमतत्प्रभाषविदस्त्वय्या
विद्यायामन पर्यवमितमवया न परविद्यायां स्रष्टमति
रिति आतुरनुशामननिर्वन्धान्यवृत्तस्तन्त ॥ ८ ॥ स
च प्राकृष्टद्विपदपशुभिर्लम्पतज्जडवधिरत्यभिभाष्य
माणा यत्ता तन्नुन्वाणि प्रभाषत कर्माणि च म
कगमाणः परच्छया कगति विप्रितो वननता वा
याप्यया पदच्छया वापमान्तिमन्त्रं बहु सुप्
वदन्त पाभ्यरहरति पर नन्त्रियप्रीतिनिमित्तम् ।
नि यनिहृषानिमित्तमिदरिशुदानुभवानन्दस्यम
ताभाषिणम युगदुःखपादनिमित्तपारवम्भारित
ददाभिमान ॥ ० ॥ श्रीताप्यागतपणै ३५

वसन्त और ग्रीष्म ऋतुके—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और
आषाढ़—चार महीनेतक पढ़ाते रहन्तर भी वे इस
ग्याहनि और शिरोमन्त्रप्रणवके सहित प्रियं माधवी मे
जप्यी तरह यात्रा न कर सकें ॥ ५ ॥

ऐसा होनेपर भी अपने इस पुत्रमें उनका बन्धन
समाप्त अनुराग था । इसलिये उसकी प्रवृत्ति में होने
भी वे 'पुत्रको अच्छी तरह शिक्षा देनी चाहिये' ।
अनुचित आग्रहसे उसे शोध, व्याख्यान, कृत, निर-
तया गुरु और अहिंसाकी सेवा आदि ब्रह्मचर्यात्मक
आवश्यक नियमोंकी शिक्षा देते ही रह । किन्तु का
पुत्रको सुशिक्षित देखनेका उनका मनोरथ पूरा न
पाया था और स्वयं भी महाब्रह्मजनरूप अपने मुख्य कर्तव्य
असावधान रहकर केवल घरक चर्चमें ही मगल बे गि-
सता समाग रहनेवाले कस्तूरमगवान्ने आत्मनस धर्म
उनका अन्त कर दिया ॥ ६ ॥ तब उनकी छोटी बहन
अपने गर्भसे उत्पन्न हुए दोनों बालक अपनी सैन्य
मौपकर स्वयं सती होकर पतिव्रतकी बली गयी ॥ ७ ॥

भरतजीके माई कर्मकाण्डका सबसे धातु समझें
ये । वे ब्रह्मज्ञानरूप परविधाते स्वयं बनमिष्ट थे ।
इसलिये उन्हें भरतजीका प्रभाव भी बहुत नहीं था
वे उन्हें निरा मूर्ख समझते थे । अतः स्थिरके पालने
सिधारनेपर उन्होंने उन्हें पद्मन-छिन्नानेका आह्वान प्रो-
थिया ॥ ८ ॥ भरतजीका मानापमानका कोई विचार
न था । जब साधारण मर-मनु उन्हें पागल, मूर्ख वरदा
बहारा बहकर पुकारते तब वे भी ठसीके अनुसर
साधन करने लगते । कोई भी उनसे कुछ भी बन
कराना चाहते, ता वे उनकी इच्छाके अनुसर क-
रते । धाराक रूपसे मजदूरीके रूपसे सैनिक
व्यथा बिना मोंगे जो भी पादा-बहुत जग्रा य हुए
अब उन्हें पिन जाना, ठसीका जीमरा जग मी स-
म लगन हुए था मरते । अन्य किसी कारणसे डाक
म हानताय मन मिष्ट मरन ज्ञानानन्दरूप का
ज्ञान उन्हें प्राप्त हो गया था । इसलिये किसी
मानापमान कापि इन्होंने जानेना समझते थे
उन्हें । भिमवन्दन शक्ति मसी होनी दी ॥ ९ ॥ वे मनी

इवानांशुताङ्ग पीनः मंहननाङ्ग व्यष्टिलमघपुना

नुन्मर्न्नामजनरजमा महामणिरिवानभिव्यक्तप्रक्ष

वर्चसः कृपणाशुतकटिरुपनीतेनोरुमपिणा द्विजाति

गिति अम्रवधुगिति ममृषांतच्छजनाधमता विचचार

॥ १० ॥ यदा तु परत आहारं कर्मवतनतैर्इमान

स्वभ्रातभिरपि क्लारकर्मणि निरुपितस्तदपि करोति

किन्तु न मम विपमे पुनमधिकमिति वद

कणपिण्याकफलीकरणकुलमापम्यानीपुरीपादीन्यप्य

मृतपदम्यवहरति ॥ ११ ॥

अथ कदाचित्कथिवु इपलपतिमद्रकार्त्तय

पुरुषपुमांलभतापत्यकाम ॥ १२ ॥ तस्य

इ देवमुत्तस्य पत्राः पत्रां तदनुचरा परिधावन्ता

निगि निर्नीयममय तममाऽऽवृतापामनधिगतपद्म

आकम्पिकन विधिना कदारान वारामनन मृग

वराहादिभ्य मंसुमाणमद्भिः प्रवसुममपश्यन् ॥ १३ ॥

अथ न पुनमनपद्यलसगमवमृश्य भर्त्तुमनिपुतिं

गामी, कर्पा और और्य के समय सौंदर्य के समान
नंगे पड़े रहते थे । उनके सभी अङ्ग दृढ-पुष्ट एवं गठे
हूए थे । वे धृक्कीपर ही पड़े रहते थे, कभी तेज-उत्कर्ष
आग्नि नहीं लगाते थे और न कभी स्नान ही करते थे,
इससे उनके शरीरपर मेष जम गयी थी । उनका
ब्रह्मतेज भूमिसे त्कके हुए मूल्यवान् मणिके समान छिप
गया था । वे अपनी कमरमें एक मैत्रा कुर्चला बंधवा
मण्डप रहते थे । उनका यक्षोपवीत भी बहुत ही मैत्रा
हो गया था । इसलिये अज्ञानी जनता यह कोइ द्विज
है, कोइ अचम शासण है ऐसा कहकर उनका
निराकार धर दिया करती थी, किंतु वे इसका कोइ
विचार न करके स्वच्छन्द विचरते थे ॥ १० ॥ दूसरों-
की मजदूरी करने पर पायते दख जब उन्हें उनके
मण्डपोंमें स्नानकी क्यारियों ठीक करनमें लगा दिया तब
वे उस कार्यको भी करन लगे । परन्तु उन्हें इस
जातका कुछ भी प्यान न था कि उन क्यारियोंकी भूमि
समस्त है या ऊँची-नीची, अपना बह छोटी है या
बड़ी । उनमें माइ उन्हें चावकी कनी, खनी, भूमी,
पुन हुए उबड़ अपना बरतनोंमें लगी हुए जले कन्दकी
खुरबन-जो कुछ भी दे लें, उसीका व अमृतके
समान स्वा लेने थे ॥ ११ ॥

किसी समय बाहुओं सरदारान, जिसका सामन्त
गृह जातिके थे, पुश्तकी कामनासे मक्षक्षतीयो मनुष्यकी
बटि देनका संकल्प किया ॥ १० ॥ उसमें जो पुरुर
पुत्र बलि त्नेक दिय पकड़ मैगाया था, वह त्तरश
उमक दमसे निरन्तर माग गया । उसे हूँदनेक दिय
उमक मेरव चारों आर गौड़, किन्तु अँघेरी गलमें
आपी शतक समय करी उसका पता न गग । इसी
समय ईश्वरगोसे अकस्मात् उनकी दृष्टि इन आहिरमगात्रीय
शासनकुमारपर पड़ी, जो आगमनसे धर हुए मृग-यगदाग्नि
शोभन गयोरी रागानी पर रह छ ॥ १२ ॥ उन्होंने
दगा कि यह पुत्र ता बह अष्ट पशुगोशाय है
इससे हमारे लक्ष्मीका काय काय मिद हो जायग ।

१ मा रा — इवानांशुताङ्ग । २ मा रा — अनुपुतिं कट्टाङ्ग । ३ मा रा — वन ईश्वर ।
४ मा रा — प्रवसुममपश्यन् । ५ मा रा — मरुकावर पद्मकायता । ६ मा रा — प्रविष्टे गि वर
अप कपहृद ।

मन्थमाना बहुधा रश्मनया चण्डिकागृहमुपनिन्द्युर्ध्व
विक्रमितवदना ॥ १४ ॥

अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिपिण्या
इतेन वाससाऽऽच्छाद्य मूषणालेपस्तक्विलकादिभि-
रुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदोषमारयलोबकिसलया-
ङ्गुरफलोपहारोपेतया वैश्वसंस्थया महता गीतस्तुति
मृदङ्गपणवधाकेण च पुरुषपङ्क्तं भद्रकात्याः पुरत
उपवेष्टयामासु ॥ १५ ॥ अथ भूपलरात्रपमि

पुरुषपद्मारभ्यागमयेन दवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाण
स्तदभिमन्त्रितमसिमतिक्रालनिष्ठितमुपाददे ॥ १६ ॥

इति तेषां भूपलानां रजस्तमः प्रकृतीनां घनमदरज
उत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पयेन

स्वैरं विहरतां हिमाविहाराणां कमातिदारुणं यद्भङ्ग
भूतस्य साक्षाद्भार्गिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृद-

घनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मदेवसा

तिदुर्विपहेण दन्दस्मानेन वधुषा महसा चर्चान

मं व दवी भद्रकाली ॥ १७ ॥ मृञ्जैममर्पणेपावध

रममविलमिहभुङ्क्तिविटपकुटिलदट्टारुण्यधुनापाति-

भयानकवन्ता इन्तुकार्मघ्नं महाहृदामर्मेति

मरम्भेण विमुञ्चन्ती तव उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां

यह सोचकर उनका मुझ ध्यानन्दसे स्निग्ध उग्र वीर
वे उन्हें रसियोंसे बाँधकर चण्डिकाके मन्दिरमें
आये ॥ १४ ॥

तदनन्तर उन चोरोने अपनी पदतिके अनु-
विधिपूर्वक उनका वमिष्क एक ध्यान करके ब-
नस पहनाये तथा नाना प्रकारके आभूषण, कन्द-
माख और तिलक आदिसे भिभूत कर अच्छी त-
मोजन कराया । फिर, धूप, दीप, मास, लीन, प-
ञ्चकुर और फल आदि उपहार-सामग्रीके साथ
बलिदानकी विधिसे गान, स्तुति और मृदङ्ग एवं डे-
आदिका महान् शब्द करते उस पुरुष-पङ्क्तो मङ्कल
के सामने नीचा सिर कराके बैठा लिया ॥ १५ ॥
इसके पश्चात् दत्तुरावके पुत्रोद्धत बने हुए छुटते व-
नर-गङ्गुके रुधिरसे देवीको तृप्त करनेके निवे देवीमन्त्र
अभिमन्त्रित एक लक्ष्मण ब्रह्म ठाया ॥ १६ ॥

चोर स्वभावसे तो रजोगुणी-तमोगुणी थे ही, वन
के मरसे उनका चित्त और भी उन्मत्त हो गया था
हिंसामें भी उसकी सामान्यिक रुचि थी । इस सम्-
तो वे म्गवान्के अंशस्वरूप ब्राह्मणपुरुषका तिरस्का-
रके स्वच्छन्दतासे कुमार्गकी ओर चले गये । आपत्ति
कालमें भी जिस हिंसाका अनुमोदन किया गया है
उसमें भी ब्राह्मण-वधका सर्वथा निषेध है, ता भी ।
साक्षात् स्वभावको प्राप्त हुए वैरहीन तथा समस्त
प्राणियोंके सुख-एक बर्णिकुमारकी बलि देना चाहते
थे । यह भयङ्कर कुकर्मा देखकर देवी मङ्कलकी
शरीरमें अति दुःसह ब्रह्मतेवसे दाह होने लगा और वे
एकाएक मूर्तिको कोषकर प्रकट हो गयीं ॥ १७ ॥
अत्यन्त असह्यनशीलता और क्रोधके कारण उनकी मूर्ति
थकी हुई थी तथा कलाह दानों और चढ़ी हुई मल
औंछोंके कारण उनका चेहरा बड़ा भयानक जान पड़ता
था । उनका उस विकराल चेहरे देखकर ऐसा अन-
पड़ता था मानो वे इस संसारका संहार कर जायेंगी ।
उन्होंने क्रोधसे तड़ककर बड़ा भीषण आवाज निकाली
और उल्लङ्घनकर उस अभिमन्त्रित छद्मसे ही उन सारे

१ मा पा — भावा । २ मा पा — तं पुत्र । ३ मा पा — मासमन । ४ मा पा —
तद्वत्ताप्य वा । ५ मा पा — नृशंभामप्येपावधसुपभुङ्क्ति । ६ मा पा — हृदयमिदं । ७ मा
— महाहृदयसंभवे । ८ मा पा — वृषभानो ।

ते नैवासिना विश्वेण शीघ्र्यां गतास्तत्त्वन्तमसुगासव
मत्पुण्यां मह गणन निपीयाविपानमदविह्वलोन्मेषैस्तरां
स्वपार्पदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरःकन्दुक-
लीलया ॥ १८ ॥ ध्रुमेन खलु महदभिचाराति
क्रमः कात्स्न्येनात्मेनै फलति ॥ १९ ॥ न वा
एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसम्भ्रम स्वशिरच्छेदन
आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यौत्समावसुहृद्दयग्रन्थीनां
सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवता-
निमिषारिवरायुषेनाप्रमथेन तैस्तैर्भावे परिरक्ष्य-
माणानां तत्पादमूलमकुतर्भिक्षयसुपसृतानां भागवत
परमईसानाम् ॥ २० ॥

पापियोंके सिर उखा दिये और अपने गणोंके सहित
उनके गलेसे बहसा हुआ गरम-गरम रुधिररूप आसव
पीकर अति उन्मत्त हो ऊँचे खरसे गाती और नाचती
हुई उन सिरोंकी ही गेंद बनाकर खेलने लगी ॥ १८ ॥
सब है, महापुरुषोंके प्रति किया हुआ अत्याचाररूप
अपराध इसी प्रकार ज्यों-का-त्यों अपने ही ऊपर पड़ता
है ॥ १९ ॥ परोक्षित् । जिनकी चेष्टाभिमानरूप
सुहृद् हृदयमन्त्रि छूट गयी है, जो समस्त प्राणियोंके
सुहृद् एवं आत्मा तथा वैद्विनी हैं, साक्षात् भगवान् ही
भद्रकाजी आदि भिन्न-भिन्न रूप धारण करके अपने
कमी न चूकनेवाले कात्मन्त्रकरूप छेष्ट शक्तिसे जिनकी
रक्षा करते हैं और जिन्होंने भगवान्‌के निमेष चरण
कमलोंका आश्रय ले रक्खा है—उन भगवत्पक्ष
परमईसोंके लिये करना सिर कटनेका अवसर आनेपर
भी किसी प्रकार व्ययकुल न होना—यह कह बड़
आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भागवते श्रीव्यासपुराणे पारमहत्स्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धः

अदभुतचरिते नमोऽस्तु ॥ ० ॥

अथ दशमोऽध्यायः

अदभुत और पद्मा रङ्गगणकी मूर्त

श्रीगुरु उवाच

अथ मित्थुसंवारपते रङ्गगणस्य प्रजय इक्षु
मत्पान्ते तत्कुलपतिना शिषिकायाहपुरुषान्वेषण-
समये देवेनोपसादित स द्विजवरतपलब्धपयपीया
युवा संहननाहो गात्रवस्तुरं बाहुमलमिति पूर्ष

श्रीशुकदेवजी कहत हैं—उभय । एक बार सिन्धु
सौवीर दशका स्वामी राजा रङ्गगण पाप्मन्कीपर लड़कर
जा रहा था । जब वह इक्षुम्भी नदीके किनारे पहुँचा
तब उमकी पालकी ठठानेवाले कहारोंके अग्रगण्यको
एक कहारकी आवश्यकता पड़ी । कहारकी खोज करते
समय देवका ससे ये आश्रयदेवता मिल गये । इन्हें
देखकर उसन सोचा 'यह मनुष्य हृद-गुह प्रणाम और
गलीले अज्ञोत्तमा है । इसलिये यह तो भय या गमेके

१ प्रा वा —ननर्त विजहार च । २ प्रा वा —एव खलु । ३ प्रा वा —नामनि पश्यति । ४ प्रा
वा —एवं विष्णुरस । ५ प्रा वा —देहाव्यासमात्र । ६ प्रा वा —तैस्तैर्भावेभिरव्यमात्रान् । ७ प्रा वा —
मकुतश्चनभयमुप । ८ प्रा वा —सिन्धुपते । ९ प्रा वा —शिषिकायाहक । १० प्रा वा —पुरुषान्वेषणसमये ।
११ प्रा वा —राजान् संहननाहो ।

विदिगृहीतैः सह गृहीत प्रसभमतर्दई उवाह

शिषिकां स महानुभाव ॥ १ ॥

यदा हि दिज्वरस्येपुमात्रावलोकानुगतैर्न
समाहिता पुरुषगवित्त्वा विषयगतां स्वशिषिकां
रहूगण उपधार्य पुर्यान्धिवहत आह हे वोढार
साध्वतिक्रमत किमिति निषममुप्राते यानमिति
॥ २ ॥

अथ त ईश्वरवच सोपात्मभक्षपाकर्मोपाय
तुरीयाच्छ्रुतिमनसस्तं विहाययाम्भूष ॥ ३ ॥
न धय नरदेवप्रमत्ता भवभियमानुपधाः साधवेव
बहाम । अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुत व्रजति
नानेन सह वोढुंसु ह वयं पारयाम इति ॥ ४ ॥

सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां
मार्मर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य
निश्चम्य कृपणवत्ता राज्ञा रहूगण उपासित
इदोऽपि निमर्गेण बलात्कृत इष्टदुन्धित
मन्युरविस्पष्टप्रसूतेनसं आतपेदसमिध रजसाऽऽवृत्त
मतिराह ॥ ५ ॥ अहो कष्टं भ्रातर्म्यक्तसुर परिभ्रान्ता

समान अच्छी तरह बोझ ढो सकता है ।' यह देखकर
उसने बेगारमें पकड़े हुए अन्य कहाँके साथ ही
भी बगलकारसे पकड़कर पाकड़ीमें जोड़ दिया । अ
मरतनी यद्यपि किसी प्रकार इस कष्टके योग्य नहीं थे
तो भी वे बिना कुछ बोले चुपचाप पाकड़ीमें उतरा
चले ॥ १ ॥

वे दिग्भर, कोई जीव पैरैतले दब न जाम—
करसे आगेकी एक बाण पृथ्वी देखकर कष्टों से
इसलिये दूसरे कहाँके साथ उनकी चालका नेत्रों से
खता पा, अतः जब पाकड़ी देखी-सीधी होने लगे
तब यह देखकर राजा रहूगणने पाकड़ी उठनेके लिये
कहा—'अरे कहाँ ! अच्छी तरह कष्टों, फलके लिये
इस प्रकार ऊँची-नीची करके क्यों चलते हो ॥ २ ॥

तब अपने स्वामीका यह आक्षेपसुक्त बचन सुनकर
कहाँके कर लगा कि कहाँ राजा उन्हें दण्ड न दें
इसलिये उन्होंने राजासे इस प्रकार निवेदन किया ॥ ३ ॥
'महाराज ! यह हमारा प्रमाद नहीं है, आपकी निष्प
मर्यादाके अनुसार ठीक-ठीक ही पाकड़ी से चले जा रहे हैं
यह एक नया कष्टार जमी-जमी पाकड़ीमें लगाया गया
है, तो भी यह जल्दी-जल्दी नहीं चलता । इसके
इसके साथ पाकड़ी नहीं ले जा सकते' ॥ ४ ॥

कहाँके ये दीन बचन सुनकर राजा रहूगण
सीधा, 'संसर्गसे उत्पन्न होनाभ्रका जोष एक व्यक्तिने होना
भी उससे सम्भव रखनेवाले सभी पुरुषोंमें आ सकता है
इसलिये यदि इसका प्रतीकार न किया गया तो धीरे
धीरे ये सभी कष्टार अपनी चाल बिगाड़ लेंगे । ऐस
सोचकर राजा रहूगणको कुछ क्रोध हो गया । अतः
उसने महापुरुषोंका सेवन किया था, तथापि क्षत्रियसम
जरा बगलकारसे उसकी बुद्धि रजोगुणसे म्मास हो गई
और वह उन दिग्भेदसे, श्रमका जलतेज मस्तिसे लगे
हुए अधिक समान प्रकट नहीं पा इस प्रकार म्मास
भरे बचन कहने लगा—॥ ५ ॥ अरे भैया ! ब
दु खकी बात है, अवश्य ही तुम बहुत थक गये हो

दीर्घमशानमेक एव ऊर्ध्वान् सुचिरं नातिपीवा न

संननाज्ञो जरसा चोपेतुतो भवान् ससे नो एषापर

एते सङ्गृह्णन् इति बहु विप्रलम्भोऽप्यविद्यया रचित

द्रव्यगुणकर्माशेषस्वरमकलेषरेऽवस्तुनि संन्यान

विशेषेऽहं भवेत्यनप्यारोपितमिध्याप्रत्ययो ब्रह्म

धृतस्त्वृणीं द्विविधं पूर्ववदुवाह ॥ ६ ॥

अथ पुनः स्वद्विविधिकायां विषमगतायां

प्रकृतिव उवाच रहगण किमिदमर त्वं जीवन्मृता

मां कदर्शकृत्य भर्तृदासनमतिशरसि प्रमत्तस्य

च ते करोमि चिकित्सां दण्डपागिरिष जनसाया

यथा प्रकृतिं म्यां भजिष्यस इति ॥ ७ ॥

अयं बहुवदनेपि भाषमाण नरदेवाभिमानं

रजसा तमसार्तुविद्वान् मदन तिरस्कृता

श्रेष्ठभगवत्प्रियनिकृत् पण्डितमानिन म भगवान्

प्राज्ञायां प्रप्रभूत सर्वभूतयुद्धदात्मा योगेश्वरश्चयायां

नातिम्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतसमय

इदमाह ॥ ८ ॥

भाषण उवाच

स्वपादितं स्पष्टमविप्रलम्भं

भतु म मे स्यादपि पीर भार ।

१ प्राचीन ग्रन्थे 'नयेक एव' इत्यादि अर्थ 'नयेक' है । २ प्रा ३०—'अथ पुनः भवान् सुचिरं नातिपीवा न' । ३ प्रा

३—'यस्यैवाय' । ४ प्रा ३—'विद्वान् तम इव' । ५ प्रा ३—'ममिध्याप्रत्ययो' । ६ प्रा ३—'तमसार्तुविद्वान्' ।

ज्ञात होता है, तुम्हारे इन साधियोंने तुम्हें तनिक भी सहारा नहीं लगाया । इतनी दूरसे तुम अकेले ही यही देरसे पाठ्यकी डोते चले आ रहे हो । तुम्हारा शरीर भी तो विशेष मोटा-साना और हडा-कडा नहीं है, और भिन्न । बुझायेने अल्पा तुम्हें दया रक्ता है।' इस प्रकार बहुत ताना मारनेपर भी वे पालेकी ही मौलि खुपचाय पाठ्यकी उठाये चलते रहे । उन्होंने इसका कुछ भी धुरा न माना, क्योंकि सनकी दृष्टिमें तो पञ्चभूत, इन्द्रिय और अन्त करणका सङ्घात यह अपना अन्तिम शरीर अविघाका ही कार्य था । यह विविध अङ्गोंसे युक्त दिव्यमी देनेपर भी बस्तुतः था ही नहीं, इसलिये उसमें उनका मैं-मेरे पनका मिथ्या अभ्यास सर्वथा निवृत्त हो गया था और वे ब्रह्मरूप हो गये थे ॥ ६ ॥

(किंतु) पाठ्यकी अब भी सीधी चालसे नहीं चल रही है—यह देखकर रामा रहगण क्रोधसे आग-बबूला हो गया और कहने लगा, 'अरे ! यह क्या ! क्या तू नीता ही भर गया है ? तू मेरा निरादर करके (मेरी) आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है ! माझम हाँसा है, तू सर्वथा प्रमादी है । अरे ! जैसे दण्डपाणि यमराज जन-समुदायको उसका अपराधोंके लिये दण्ड देते हैं, वसी प्रकर मैं भी अभी तेरा इलाज किये देता हूँ । तब तेरे दोश टिकने आ जायेंगे' ॥ ७ ॥

रहगणको धना होनेका अभिमान था, इसलिये वह इसी प्रकार बहुत-सी अनाप-जनाप बातें बोल गया । वह अनेकों बड़ा पण्डित समझता था, अब अब-तमयुक्त अभिमानके बशीभूत होकर उसने भगवान्‌के जनस्य प्रीतिशाय भक्तपर भक्तजीका निरस्कार कर डाला । योग-अर्थकी विविध कहानी-बतमीका ता छसे कुछ पता ही न था । उसकी ऐसी यकी मुद्दि दम्भकर वे सम्पूर्ण प्राणियोंके सुखद एव अरुणा, हसमून प्राप्तिगन्तव्य मुमकसाये और बिना किसी प्रयत्नका अभिमान किए इन प्रयत्न कहने लगे ॥ ८ ॥

अहमरताम कहा—तामन् ! तुमने जा कुछ कहा वह क्याप है । उममें कोई उपादयानही है । यदि मार पायकी काई बस्तु है ता मनेचायव लिये है, यदि काई

गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमत्वा

पीवेति राशौ न निर्दा प्रवादः ॥ ९ ॥

व्यत्यक्त्यर्प्य व्याधय आधयश्च

शुचृद् भय कलिरिच्छा जरा च ।

निद्रा रतिर्मन्युरहं मद शुचो

देहन जातस्य हि मे न सन्ति ॥ १० ॥

जीवन्मृतत्वं निपमेन राजन्

आद्यन्तव्यादिकृतस्य दृष्टम् ।

स्वध्याम्यमात्रो ह्युष ईक्ष्य यत्र

तर्षुच्यतऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥ ११ ॥

विशेषपुद्गलिवरं मनाक् च

पश्याम यत्र व्यवहारतोऽन्यत् ।

क ईदृशस्तत्र किमीदृशस्य

तथापि राजन् करवाम किं ते ॥ १२ ॥

उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंभ्यां

गतस्य मे कीर चिकित्सितेन ।

अर्थ^१ कियान् भवता शिषितेन

मत्तप्रमत्तस्य च पिष्टपेय ॥ १३ ॥

श्रीगुरु उवाच

गतावदनुवादपरिभाषया प्रस्पृदीर्यमुनिवर उप

गमशील उपगतानात्मनिमित्त उपभागन कर्मारब्धं

व्यपनयन राजवानमपि सथावाह ॥ १४ ॥ म आपि

पाण्डवेय मिथुमौवीरपतिमत्तजिज्ञासायां सम्पद

धदयाधिरनाधिगम्यदृष्टदयग्रन्थिमाचन द्विजवध

१ पश्यन् प्रीतिं भावयन् इत्यादि पाठ दूर गया है । २ मा या — ब्रह्मपत्न्यमन्त्राणां । ३ मा या — निमित्तपुत्रभोगेन ।

मार्ग है तो वह चलनेवालेके लिये है । मोट
उसीका है, यह सब शरीरके लिये कहा जाता है,
लिये नहीं । इतनी बात ऐसी बात नहीं करते ।

रघूक्ता, कृता, व्याधि, व्याधि, मूल, प्यास, मय,
इष्ट, मुक्ता, निद्रा, प्रेम, क्रोध, अग्निमान और हां
ये सब धर्म देहाभिमानको लेकर उत्पन्न होनेवाले
रहते हैं; मुझमें इनका लेश भी नहीं है ॥ १० ॥

तुमने जो जीने-मरनेकी बात कही—तो कि
विहारी पणार्प्य हैं, उन सभीमें नियमितरूपसे वे
बातें देखी जाती हैं, क्योंकि वे सभी व्याधि-जन्य
हैं । यकाली मरेश ! कहाँ स्वामी-सेवकभाव स्थि
वही आज्ञापालनादिक नियम भी मग्न हो उठ
॥ ११ ॥ 'तुम राजा हो और मैं प्रजा हूँ' इतना प्रका
मेद बुद्धिके लिये मुझे व्यवहारके सिवा और कहीं का
भी अक्काश नहीं दिखायी देता । परमाध्यात्मसे
जाय तो किसे स्वामी कहे और किसे सेवक ? प्रि
राजन् । तुम्हें यदि स्वामित्वका अभिमान है तो क्यों
तुम्हारी क्या सेवा करूँ ॥ १२ ॥ बीरवर ! मैं तो
उन्मत्त और जडके समान अपनी ही स्थितिमें रह रहा हूँ
मेरा इलाज करके तुम्हें क्या हाथ मरोझा ? फी
शास्त्रवर्मे जड और प्रमाणी ही हूँ, तो भी मुझे कि
देना जिसे हृदयको पीसनेका समान व्यवहार होगा ॥ १३ ॥

श्रीगुरु उवाच
श्रीगुरु उवाच भी-परीक्षित ! मुनिक जा

भरत यथाय तत्तत्र उपदेश करते हुए इतना उत्तर देकर
सीन हो गये । उनका देशभक्तबुद्धिका हेतुपूत अर्थ
निष्ठ हो जाता था, इसलिये वे परम शांत हो गये थे ।
अब इतना कहकर भोगदाय प्रारम्भश्रुत करनेके निवे
के तिर पड़लेक ही समान उस पालकीकी कठोर
लेकर चले गये ॥ १४ ॥ सिन्धु-ज्योतिषमोक्ष
भी अपनी उत्तम धृष्टाके कारण तत्पश्चात्तत्तत्
अपिप्राप्त था । जब उसने उन द्विजवधक को
प्राप्त प्रपोंसे समर्पित और हृदयकी प्रदिया उत्पन्न करने

आधृत्य बहुयोगग्रन्थसम्पत् त्वरयात्तु शिरसा
पद्ममूलमुपसृत धमापयन् विगतनृपद्वयस्य
उवाच ॥ १५ ॥

कस्तं निगूढभरमि द्विजानां
निर्गमि स्रष्टु कस्योऽवधूत ।

कस्यासि हृत्प्रत्य इहापि कस्यात्
धेमाय नश्येदमि नोत् शुक्ल ॥ १६ ॥

नाहं विशद्वे सुरराजवज्रा
न अस्मद्गुलाय यमस्य दण्डात् ।

नाम्यर्कसोमानिलविचपास्त्र-
च्छद्वे मुष्टं ब्रह्मकुलावमानात् ॥ १७ ॥

तत् ब्रह्मसङ्गो जडवन्निगूढ
विज्ञानवीर्यां विचरस्वपार ।

वर्त्तासि योगप्रपित्तानि माधो
न न क्षमन्ते मनसापि मेतुम् ॥ १८ ॥

अहं च योगधरमात्मतत्त्व
विदां मुनीनां परमं गुरुं वै ।

प्रपुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्
माध्वद्वरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥ १९ ॥

मै वै भवोऽष्टाङ्गनिरीक्षणार्थं
मत्पत्तलिङ्गा विचरस्वपिप्पिन् ।

यागधराणां गतिमधयुद्धिः
कथं विचरिषीत गृहानुवध ॥ २० ॥

एतं धमं कर्मण आत्मना वै
भतुगन्तुमयतधानुमय ।

यथायनादानयनाद्यभावात्
ममूत इति व्यपहारमाण ॥ २१ ॥

वाले ये वाक्य सुने, तत्र वह तत्काल पाण्कीसे उतर
पडा । उसकर रामम् सर्वथा दूर हो गया और वह
उनके चरणोंमें मिर रखकर अपना अपराध क्षमा करता
हुए इस प्रकार कहने लगा ॥ १५ ॥ 'देव ! आपने
त्रिजोका चिह्न यज्ञोपवीत धारण कर रक्खा है, अतः आप
इस प्रकार प्रच्छन्नभावे विचरनेवाले आप कौन हैं ?
क्या आप दत्तात्रेय आदि अवधूतोंमेंसे कोई हैं ? आप
किसके पुत्र हैं, आपका कौनो जन्म हुआ है और यहाँ
कैसे आपका पणार्पण हुआ है ? यदि आप हमारा कल्याण
करने पवारे हैं, तो क्या आप साक्षात् सत्त्वमूर्ति भगवान्
कफिली ही तां नहीं हैं ? ॥ १६ ॥ मुझ इन्द्रक वज्रकर
कोई डर नहीं है, न मैं महादेवजीके त्रिशूलसे डरता हूँ
और न यमराजके दण्डसे । मुझ अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु
और कुबेरके अस्त्र शस्त्रोंका भी कोई भय नहीं है परन्तु
मैं ब्राह्मणकुलके अपमानसे बहुत ही डरता हूँ ॥ १७ ॥
अब आपका वनवासिये, इस प्रकार अपने विज्ञान और
शक्तिको छिपाकर गुप्तकी भाँति विचरनेवाले आप कौन
हैं ? शिष्योंसे तो आप मन्थनानासक्त जान पड़ते हैं ।
मुझ आपकी कोई पाह नहीं मिला रही है । साधा ।
आपका योगयुक्त वाक्पोंकी बुद्धिद्वारा आलोचना करनेपर
भी मग मदेह दूर नहीं होता ॥ १८ ॥ मैं आत्मज्ञानी
मुनियोंके परम गुरु और साक्षात् श्रीहरिकी ज्ञानाक्तिके
अवनार योगधर भगवान् कपिलसे यह पूछनेके त्रिज
रहा था कि इस लक्ष्मण एकमात्र कारण सेने योग्य कौन
हैं ॥ १९ ॥ क्या आप व वरिणमुनि ही हैं, जाल्पोंकी
वशा सेनेके त्रिजे इस प्रकार अपना रूप छिपाकर
विचर रहे हैं ? भग, अपने आशुकर रहनेवाला विश्वहीन
पुरुष योगेश्वरोंकी गति कैसे जान सकता है ॥ २० ॥

‘मैंने मुझा विज्ञानमें अपनेका धम दान दत्त द,
इन्द्रिय मेरा अनुमान है कि बाबा दाने और मागने
बचनेसे अपना भी अवश्य ही जान दाना । मुझ मा
व्यवहार-मार्ग भी तप ही जान पड़ना है क्योंकि निर्या
बढ़ने डर जाना आदि वज्र मदी दान ॥ २१ ॥

१ मा पा — जो- २ आशीन प्रपि विचरन्तः - - दे अस्मद्गुलाय यमस्य दण्डात् २१ १११२३
मिह १२ । १ आशीन प्रपि न दे वह पत्र गुरु मग है । ४ मा पा — धर्मोर्ध्ववत् ।

म्याख्यग्नितपात्पयसाऽभिवाप

स्तत्तापतस्तण्डुलगर्मरन्धि ।

देहन्दिमाम्बाद्यपमभिकर्पात्

तत्संस्तुतिः पुरुषस्यानुगेभात् ॥२२॥

आस्ताभिगाता उपति प्रजानां

य किङ्करो वं न पिनष्टि पिष्टम् ।

स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य

यदीहमानो विजहास्यबौधम् ॥२३॥

तम भवाभरदधाभिमान

मदन तुच्छीकृतमत्तमस्य ।

कृपीष्ट मंत्रीदधमातृबधो

यथा तर सदबभ्यानर्महः ॥२४॥

न विक्रिया विश्वमुद्गत्मान्वय

साम्यन कीताभिमतभवापि ।

महद्विमानान् मृकृतादि माहृ

नहृत्पदराद्रपि गूलपाणिः ॥२५॥ मष्ट हा जायगा ॥ २५ ॥

इति भीमशङ्गारणे महापुण्य पारमहंस्या मंहितायां पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अधोऽष्टाध्याय

राजा रघुगणका भरतजीका उपपत्त

महापुण्य

अस्यविद् कविदयाद्यान

बदम्भया नानिविदां वगि ।

१ म १ — २५ १ २ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

(वेदादिके धर्मोंका आत्मापर कोई प्रमाण ही नहीं होत, एसी मान भी नहीं है) चूम्हपर रन्धी हुई धर्मों अब अभिसे तपने लगती है, तब उसका अब भी खोले लगता है और फिर उस बलसे चावन्का भीतर भाग भी पक जाता है । इसी प्रकार अपनी उपाधिके धर्मोंका अनुवर्तन करनेके कारण वेद, इन्द्रिय, प्राण और मनकी समिधिसे आरमाको भी उसके धर्म धमादिबल बलन होता ही है ॥ २२ ॥ आपने जो दण्डादिकी स्पर्श बतायी, सो राजा तो प्रजाका शासन और पावन करनेके लिये नियुक्त किया हुआ उसका दास ही है । उसका उम्मतदिको दण्ड देना पिसे आपको फीसनेके समान स्पर्श नहीं हो सकता, क्योंकि अपने धर्मों आचरण करनेका भावबन्धी सेवा ही है । उसे करनेका व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण पापराशिको नष्ट कर देता है ॥ २३ ॥

धीनबन्धा ! राजाके अधिमानसे उम्मत होकर मैंने आप-ध्वसे परम साधुकी कृपा की है । अब बा पसी कृपादृष्टि कीजिये, भितसे इस साधु ब्रह्मन्त अपराधसे मैं मुक्त हो जाऊँ ॥ २४ ॥ आप देशभियन शून्य और विषययु दीहरिक अनन्य मक्त हैं; इसलिये मर्मे सपान दृष्टि होनसे इस मामाभमानक काल आपमें कोई विचार नहीं हो सकता तपानि एक महापुरुषका अस्मान करनेके कारण मेरे-वैसा पुनः साक्षात् शिष्टागि महादेवजीके समान प्रभावपुत्री हानपर भी, अपने अपराधसे अन्धप बाढ़ ही करने

न स्रग्धा हि व्यवहारमनं
 तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥ १ ॥
 तथैव राजन्तुरुगार्हमभ
 वितानविषोरुविजम्भितपु ।
 न वेदवाडपु हि तत्त्ववाद
 प्रायेण श्रुदो नु चक्रास्ति साधु ॥ २ ॥
 न तस्य तत्त्वप्रवहणाय साक्षाद्
 वरीयसीरपि वाचः समासन् ।
 ध्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसांम्य
 न यस्य ह्यानुमितं स्वयं स्यात् ॥ ३ ॥
 यावन्मनो रजसा पूरुपस्य
 सखन वा तमसा भानुरुद्धम् ।
 चतोभिराहृतिभिरातनोति
 निरङ्कुल कुशलं चेतारं वा ॥ ४ ॥
 स कामनात्मा विषयोपरक्ता
 गुणप्रवाहा विरुतः पीडशात्मा ।
 विभ्रतृथङ्गनामभि रूपमद
 मन्तव्येष्टि च पुरस्तनोति ॥ ५ ॥
 दुरातं सुखं व्यतिरिक्त च तीव्रं
 फालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ।
 आलिङ्ग्य मायारचितान्तरात्मा
 स्वद्विज संसृष्टिचक्रकृत् ॥ ६ ॥
 तावानय व्यवहारैः सदावि
 क्षेपज्ञमाभ्या मवति स्पूलसम्भः ।
 तसान्मनो लिङ्गमयो वदन्ति
 गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥ ७ ॥
 गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्ता
 क्षमाय नैर्गुण्यमथो मन स्यात् ।
 यथा प्रदीपा घृतवर्तिमधनन्
 सिन्ध्याः सधूमा भजति हन्यदा ध्वम् ।
 पद तथा गुणकमालुर्षट्
 हृत्तीर्मनः भयतऽन्यत्र तत्त्वम् ॥ ८ ॥

गणना नहीं हो सकती । तत्त्वज्ञानी पुरुष इस अविचार
 सिद्ध स्थायी-सेवक आदि व्यवहारको तत्त्वविचारके समय
 सत्यरूपसे स्वीकार नहीं करते ॥ १ ॥ औक्तिक व्यवहारक
 समान ही वैयक्तिक व्यवहार भी सत्य नहीं है क्योंकि वैयक्तिक
 भी अत्रिक्तर गृहस्थ जनांचिन यज्ञविधिक विस्तारमें ही व्यस्त
 हैं, राग द्वेषादि योगोंसे रहित विद्युत् तत्त्वज्ञानकी पूरी-पूरी
 अभिव्यक्ति प्रायः उनमें भी नहीं हुई है ॥ २ ॥ जिसे
 गृहस्थोचित यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त ज्ञानवान् स्वर्गादि सुख
 स्वप्नक समान हृय नहीं जान पड़ता, उसे तत्त्वज्ञान
 कृतममें साक्षात् उपनिषद्-वाक्य भी समर्थ नहीं
 है ॥ ३ ॥ जबतक मनुष्यका मन तत्त्व, रज अपवा
 तमोगुणक वशीभूत रहता है, तबतक वह बिना किसी
 अङ्गुष्ठाक उसकी ज्ञानन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंसे क्षुमाशुभ कर्म
 कल्पना रहता है ॥ ४ ॥ यह मन वासनमय, विषयासक्त,
 गुणोंसे प्रभित, विकारी और भूत एवं इन्द्रियरूप सोल्ह
 कणात्रोंमें मुख्य है । यही भिन्न भिन्न मार्गोंसे दृष्टता
 और मनुष्यात्मीक धारण करके शरीररूप उपाविषोंके
 मे-से जीवकी उत्पत्ता और अवमनाका कारण होता
 है ॥ ५ ॥ यह मायायय मन संसारचक्रमें घुलनेवाला
 है, यही अप्रमी देखके अभिमानी जीवसे मित्रकर उसे
 पात्रक्रमसे प्राप्त हुए सुख-दुःख और इनसे व्यतिरिक्त
 माहृत्प अवश्यम्भावी पञ्चोक्ति अभिव्यक्ति करता है ॥ ६ ॥
 जबतक यह मन रहता है, तभीतक आग्रह और
 स्वप्नावस्थाका व्यवहार प्रकटित होकर जीवका हृय
 बनता है । इसलिये पण्डितजन मनका ही त्रिगुणमय
 अधम संसारक और गुणातीत परमेश्वर मोक्षपन्का कारण
 कर्ताते हैं ॥ ७ ॥ विषयासक्त मन जीवको संसार-सङ्गमें बाँध
 देता है, विषयीन ज्ञानपर नहीं उसे शान्तिमय मोक्षपद
 प्राप्त करा देता है । जिस प्रकार घीसे मीठी हुई बत्तीको
 खानबाल पीपकसे ता घूर्णवाची शिक्षा निकलती रहती
 है और जब घी समाप्त हो जाता है तब वह अपने
 कारण अक्षिन्त्वमें लीन हो जाता है—वही प्रकार
 विषय और कर्मोंमें आसक्त हुआ मन तत्त्व-तत्त्वपरि
 वृत्तियोंका आग्रह लिये रहता है और इनसे मुक्त ज्ञानपर
 वह अपन तत्त्वमें लीन हो जाता है ॥ ८ ॥

१ प्रा वा — व्यवहारमर्शेन । २ प्रा वा — वरीयसीरपि । ३ प्रा वा — व्यवहारः यः मराधिकाः ।

४ प्रा वा — गुणगुणत्वम् । ५ प्रा वा — भजति हन्यदा । ६ प्रा वा — कमाशुषट् मूर्तिर्मनः ।

एकादशाम'मनसो' हि वृधय

आकृतयः पञ्च धियाऽभिभूतः ।

मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां

वदन्ति हैकादश शीरं भूमीः ॥ ९ ॥

गन्धाकृतिस्यर्षरसधर्षासि

विसर्गारत्यर्त्यभिजन्यप्रित्याः ।

एकादशं स्वीकरणं ममेति

श्रुत्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥ १० ॥

द्रव्यस्वभावाद्यवकर्मकाले

रेकादशमी मनसो निहाराः ।

सहस्रशः श्रवणः कोटिश्रवण

ध्वजहतो न मिथो न स्वतः स्मृः ॥ ११ ॥

क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभृती

जीवस्व माधरचितस्व नित्याः ।

आविर्हिताः कापि तिरोहिताश्च

छुदा विचष्ट आविद्भुदकर्तुः ॥ १२ ॥

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुष पुराणः

साक्षात्स्वर्गन्योतिरस परेश्वरः ।

नारायण भगवान् वासुदेवः

म्बमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥ १३ ॥

यथानिलः स्वावरजङ्गमाना

मत्स्यस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ।

एव परो भगवान् वासुदेवः

क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥ १४ ॥

शीरवर । पौंच कर्मेन्द्रिय, पौंच ज्ञानेन्द्रिय और एक
जहङ्कार—ये ग्यारह मनकी वृत्तियाँ हैं तब तब
प्रत्येक कर्म, पौंच तन्मात्र और एक शरीर—ये मूल
छनके आधारभूत विषय कहे जाते हैं ॥ ९ ॥ मय
रूप, स्पर्श, रस और शब्द—ये पौंच ज्ञानेन्द्रियों
विषय हैं, मत्स्यभाग, सम्भोग, गमन, मायन और ज्ञेय
देना आदि व्यापार—ये पौंच कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं
तथा शरीरको व्याह मेरा है इस प्रकार स्वीकार करने
जहङ्कारका विषय है । कुछ तांग जहङ्कारके मूल
कारणों वृत्ति और उसके आश्रय शरीरको कहते
विषय मानते हैं ॥ १० ॥ ये मनकी ग्यारह वृत्तियाँ
द्रव्य (विषय), स्वभाव, आशय (संस्कार), कर्म
और कालके द्वारा सैचकों, इच्छाओं और करोड़ों भेदों
परिणत हो जाती हैं । किन्तु इनकी सत्ता केवल
आत्माकी सत्तासे ही है, स्वतः या परस्पर निष्कल नहीं
है ॥ ११ ॥ ऐसा होनेपर भी मनसे क्षेत्रज्ञको
सम्बन्ध नहीं है । यह तो जीवकी ही मानसिक
उत्पत्ति है । यह प्रायः संसारबन्धनमें जगनेवाले बलिष्ठ
कर्मों की प्रवृत्ति रहता है । इसकी उपर्युक्त वृत्तियाँ
प्रवाहरूपसे नित्य ही रहती हैं, ज्ञात और ज्ञानके
समय वे प्रकट हो जाती हैं और सुषुप्तिमें छिप जाती
हैं । इन दोनों ही अवस्थाओंमें क्षेत्रज्ञ, वा निष्ठुर
निष्प्राण है, मनकी इन वृत्तियोंको साक्षीरूपसे देखता
रहता है ॥ १२ ॥

यह क्षेत्रज्ञ परमात्मा सर्वव्यापक, अवाक्य और
कलरण, परिपूर्ण, अपरोक्ष, सप्रकला, कल्प, प्रकला,
प्रकाशिक भी निष्प्राण और अपने अपने अपने अपने
मायाके द्वारा सबके अन्तःकरणोंमें रहकर जीवोंको प्रेरित
करनेवाला समस्त भूतोंका आधिकारिक भगवान् वासुदेव
है ॥ १३ ॥ जिस प्रकार वायु सम्पूर्ण स्थान-आकाश
प्राणियोंमें प्राणरूपसे प्रविष्ट होकर उन्हें प्रेरित करती
है, उसी प्रकार यह परमेश्वर आत्मा वासुदेव सर्वव्यापक
आत्मस्वरूपसे इस सम्पूर्ण प्रपञ्चमें व्याप्त होता है ॥ १४ ॥

न यावदेतां धनुमृन्नेन्द्र
विधुम मायां धनुनोदयेन ।
विमुक्तसङ्गो जितपदसपत्नो
वेदात्मतत्त्व भ्रमतीह तावत् ॥१५॥
न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं
संसारतापाशपनं जनस्य ।
यच्छोकमाहामपरागलोभ
वैरानुकम्भं ममसां विभजे ॥१६॥
आवृष्यमनं सददभ्रवीर्य-
मुपेक्षयाप्यधितमप्रमत्तः ।
गुरोर्हरभरणोपासनाङ्गो
अहि व्यलीकं स्वयमारममोपम् ॥१७॥

राजन् ! जबतक मनुष्य ज्ञानोदयके द्वारा इस मायाका
तिरस्कार कर, स्वकीय आसक्ति छोड़कर तथा धर्म-
कोषादि छ शत्रुओंको जीतकर आत्मतत्त्वको नहीं जान
लेता और जबतक वह आत्माके उपाधिस्वरूप मनको संसार
तुलना क्षेत्र नहीं समझता, तबतक वह इस लोकमें यों ही
मग्नता रहता है। क्योंकि यह चित्त उसके शोक, मोह,
रोग, राग, क्रोध और वैर आदिके संस्कार तथा ममताकी
बद्धि करता रहता है ॥ १५ ॥ यह मन ही तुम्हारा
बड़ा बलवान् शत्रु है। तुम्हारे उपेक्षा करनेसे इसकी
शक्ति और भी बढ़ गयी है। यह जबपि स्वयं तो सबका
मित्रा है, तथापि इसने तुम्हारे आत्मस्वरूपको आच्छादित
कर रक्खा है। इसलिये तुम सावधान होकर श्रीगुरु
और हरिके चरणोंकी उपासनाके बलसे इसे मार
बालो ॥ १७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरङ्गाय

संवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

रङ्गायनप्र प्रश्न और भरतजीका समाधान

रङ्गायन उवाच

नमो नमः कारणविग्रहाय
स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ।
नमोऽवधूत द्विजब घुलिङ्ग-
निगूढनिस्थानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥
ज्वरामयार्थस्य यथागद सत्
निदापदम्भस्य यथा हिमाम्भ ।
कुदहमानाहिविदहृष्टे
प्रभन् मयस्तेऽमृतमौषधं मे ॥ २ ॥

राजा रङ्गायनने कहा—महान् ! मैं आपको
नमस्कार करता हूँ। आपने जगत्प्रकार बदल करनेके लिये ही
यह देह धारण की है। येनेद्वर ! अपने परममन्दमय
स्वरूपका अनुभव करके आप इस स्थूलमांससे उदासीन
हो गये हैं तथा एकत्र ब्राह्मणके चरणसे अपने नित्यज्ञानमय
स्वरूपको जनसाधारणकी दृष्टिसे ओझल किये हुए हैं।
मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ प्रभन् !
जिस प्रकार ज्वरसे पीड़ित रोगीके लिये मीठी जोगनि
और धूपसे लगे हुए पुष्पके लिये शीतल जल अमृततुल्य
होता है, उसी प्रकार मेरे लिये, जिसकी विवेकबुद्धिको
ब्रह्ममिमानरूप मिलेले सर्पने इस दिया है, आपके वचन

उत्सृज्यस्व इह सशयायं
 ५-सागे रक्षारघुना सुबोधम् ।
 ११-रक्षारघुना तथोक्त
 १२-रक्षारघुना कौशलेयवत्सा मे ॥ ३ ॥
 १३-रक्षारघुना रक्षारघुना दृश्यमान
 १४-रक्षारघुना रावणायहारमूलम् ।
 १५-रक्षारघुना तत्त्वविमर्शनाय
 १६-रक्षारघुना भगवते मनो म ॥ ४ ॥

भाषण उपाय

धर्मज्ञतो गाम बलन् पृथिव्यां
 भाषणिवः पार्थिवः कस्य हतोः ।
 तत्त्वार्थि भाषणिवः गुल्फज्ज्वल-
 नातुभाषणिवः विराधरासा ॥ ५ ॥
 श्रीरक्षारघुना विविक्ता च यस्यां
 भीमविराट्प्रत्ययश्च आस्त ।
 भाषणिवः भगवत् रुनिजाभिमाना
 गामादिमि निपुण्विति दुर्मन्त्रध ॥ ६ ॥
 भाषणिवः गामास्त्वमधिकप्रदीनान्
 विष्टया निगृह्णन्निरनुग्रहाऽसि ।
 भाषणिवः गामास्त्वमि विष्टयमाना
 ७ भाषणिवः पृथुसभासु पृष्टः ॥ ७ ॥
 गदा विंशायव परानरम्भ
 विदाम निष्ठा प्रभव च नियम् ।
 गानामताऽन्यद् व्ययहागमूर्त्तं
 निरूप्यतां गतं प्रिययानुमयम् ॥ ८ ॥
 तत्त्वं निरूप्यतां विनिगृह्णन्निरनुग्रहा
 मगन्निधानात्परमाणवा य ।

अमृतमय वीर्यविके समान हैं ॥ २ ॥ देव । मैं अपने
 अपने सशयोकी निष्ठा तो पीछे करऊँगा । परन्तु
 इस समय आपने जो अध्यात्मयोगमय उपदेश दिया है,
 उसीको सरल करके समझाइये, उसे समझनेसे मुझे
 कभी उत्कण्ठा है ॥ ३ ॥ योगेश्वर । आपने जो कह
 कहा कि मार उठानेकी क्रिया तथा उससे जो बन्ता
 फल होता है, वे दोनों ही प्रत्यक्ष होनेपर भी केवल
 व्यवहारमूलक ही हैं, वास्तवमें सत्य नहीं हैं—
 तत्त्वविचारके सामने कुछ भी नहीं टकराते—और
 विचयमें मेरा मन चकर खा रहा है, आपके इस कल-
 का मर्म मेरी समझमें नहीं आ रहा है ॥ ४ ॥

जबमरवने कहा—पृथ्वीपते । यह देव पृथ्वीसे
 निकर है, पायणान्तिसे इसका क्या भेद है ? जब वह
 किसी कारणसे पृथ्वीपर चलने लगता है, तब उसे
 भारवाही आदि नाम पड़ जाते हैं । इसके दो कन
 हैं, उनके ऊपर क्रमशः टखने, पिङ्गी, घुने, जौध
 कमर, बन्ध स्वतः, गर्दन और कंध आदि बन्ध हैं ॥ ५ ॥
 कंधोंके ऊपर लकड़ीकी पाकड़ी रक्की हुई है, उनमें
 भी सीरीरत्न नामका एक पार्थिव विकार ही है, जिसमें
 आत्मबुद्धिरूप अभिमान करनेसे तुम भी सिद्ध देवरा
 राजा हैं । इस प्रबल मदसे अंधे हो रहे हो ॥ ६ ॥
 किन्तु इसीसे तुम्हारी कार्य भेष्टता सिद्ध नहीं होती
 वास्तवमें तो तुम बड़े क्रूर और पृष्ठ ही हो । तुम्हें
 इन बेचारे दीन-दुखिया ब्रह्मरोंको कारणमें पकड़कर
 पापपट्टीमें बाँध रक्का है और फिर महापुरुषोंकी सत्पत्नी
 बह-बहकर मर्ने बनाते हो कि मैं धर्मोत्तम रूप
 करनेवाला हूँ । यह तुम्हें क्षमा नहीं देना ॥ ७ ॥
 इस उल्लेख है कि संपूर्ण बराबर मूल गर्त पृथ्वी
 ही उत्पन्न होते हैं और पृथ्वीमें ही लीन होते हैं ; उन
 उनके क्रियाभङ्गके कारण जो अन्त्या-अन्त्या नाम पड़
 गया है—यथाया ता उनके मिय पराशरवा को
 क्या मूल है ? ॥ ८ ॥

इस प्रकार 'पृथ्वी' शब्दका व्यवहार भी मित्र ही
 है, सामान्यिक नहीं है । क्योंकि यह अनन्यतापूर्ण
 मूल परमाणुओंमें लीन हो जाती है । अरु जिसे

१ भाषणिवः—वधन वध । २ भाषणिवः—विनिगृह्णन्निरनुग्रहा । ३ भाषणिवः—तत्त्वविमर्शनाय । ४ भाषणिवः—पृथु ।

५ भाषणिवः—वधन वध । ६ भाषणिवः—विनिगृह्णन्निरनुग्रहा । ७ भाषणिवः—वधन वध । ८ भाषणिवः—वधन वध ।

अविधया मनसा कल्पितास्ते
येषां समूहन कृतो विशेषः ॥ ९ ॥

यवं कर्त्तुं स्थूलमणुर्वृहस्प
असन्न सञ्जीवमजीवमन्वत् ।

द्रव्यसमाधाद्यध्यात्मकर्म
नाम्नाजभावेदि कृतं द्वितीयम् ॥ १० ॥

प्रानं विशुद्धं परमार्थमक्ष
मन्तर त्वचर्हिर्भक्ष सस्यम् ।

प्रत्यक् प्रशान्त भगवच्छब्दसङ्गं
यद्वास्तुदेवं क्वयौ वदन्ति ॥ ११ ॥

रह्मभैतत्तपसा न याति
न चेन्मया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।

नच्छ्रद्धया नैव जलान्निर्मुक्तै-
र्विना महात्पादनाऽभिपेक्षम् ॥ १२ ॥

यत्रोचमश्लाकगुणानुवादः
प्रस्तुयते प्राम्बकथाविषात ।

निपेन्ममणोऽनुदिनं मुमुक्षो
मर्ति सती यच्छति वासुदेवं ॥ १३ ॥

अहं पुरा भरतो नाम राजा
विमुक्तश्चैवमुत्तमसङ्गबन्धः ।

आराधन भगवत् ईदृमानो
मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्व्यार्थः ॥ १४ ॥

सा मां स्मृतिर्मृगदेहोऽपि धीर
कृष्णार्चनप्रभवा नो लहाति ।

अथा अहं अनसङ्गादभङ्गो
विद्यद्भमानोऽविहृतमगमि ॥ १५ ॥

तस्मान्नगोऽसङ्गसुसङ्गभाव
द्यानामिदं विदुःकणमाहः ।

मिथ्यसे पृथीरूप कथकी सिद्धि होती है, वे परमाणु
अविधायक मनसे ही कल्पना किये हुए हैं । वास्तवमें
उनकी भी सत्ता नहीं है ॥ ९ ॥ इसी प्रकार और भी जो
कुछ पक्का-मोटा, छाया बहा, कार्य कारण तथा चेतन
और अचेतन आदि गुणोंसे युक्त वस्तु-प्रपञ्च हैं—उसे
भी द्रव्य, साधारण, आकाश, काल और कर्म आदि
नामोंवाली भगवान्की मायाशक्त ही कार्य समझा ॥ १० ॥
विशुद्ध परमार्थरूप अतीत्य तथा भीतर-बाहरके भेदसे
रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है । वह सर्वान्तर्वर्ती
और सर्वत्र निर्विकार है । उसीका नाम 'भगवान्' है
और उसीको पण्डितजन 'वासुदेव' कहते हैं ॥ ११ ॥
रह्मण । महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिसे अपनका नष्टमये
बिना केवल तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, जन्मादिके दाम,
अतिथिसेवा, दीनसेवा आदि गृहस्थोचित धर्माजुष्टान,
वेणुप्ययन अथवा जूठ, अग्नि या सूर्यकी उपासना आदि
किसी भी साधनसे यह परमात्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो
सकता ॥ १२ ॥ इसका कारण यह है कि महापुरुषोंके
समाबन्धमें सत्ता पवित्रकर्त्तृ श्रीहरिक गुणोंकी चर्चा होती
रहती है । जिससे विपश्यता तो पास ही नहीं फटकने
पानी । और जब भगवत्कृपाका निष्कमि सेवन किया
जाता है तब वह मोक्षाकङ्क्षी पुरुषकी छुट्ट दुःखिके
भगवान् वासुदेवमें लगा देती है ॥ १३ ॥

पूर्वजन्ममें मैं भरत नामका राजा था, एक्षिक और
पारलौकिक दोनों प्रकारके विषयोंसे निरक्त होकर
भगवान्की आराधनामें ही लगा रहता था, तो भी एक
मृगमें आसक्ति हो जानेसे मुझे परमापसे भ्रष्ट होकर
आखिरी जन्ममें मृग बनना पड़ा ॥ १४ ॥ किन्तु भगवान्
श्रीकृष्णकी आराधनाक प्रभावसे उस मृगयोनिमें भी
मेरी पूर्वजन्मकी स्मृति छूम नहीं हुई । इसीसे जब मैं
जन्मसंघर्षसे बरकर सबरा अमङ्गलबन्धसे गुप्तस्थित हो
विचरता रहता हूँ ॥ १५ ॥ सारांग यह है कि निरक्त
महापुरुषोंके सम्बन्धसे प्राप्त ज्ञानरूप लङ्काक द्वारा
मनुष्यकर्म इस लोके ही अपने मोहबन्धनको कर्म

१ प्रा या — कदाचित् समूहेन । २ प्रा या — राहुगणेशसपत्नी । ३ प्राचीन ग्रन्थिमे पाऽनुदिनं मुमुक्षो
मर्ति - १३ अक्षरम कर विद्यद्भमानो पर्यन्त पाठ अविधित हो गया है ।

हरिं तदीहाकथनभृताम्भा

बालना चाहिये। फिर श्रीहरिकृष्ण श्रीमार्गोंके कथन के
श्रवणसे भगवत्स्मृति बनी रहनेके कारण यह सुगन्ध
ही ससारमार्गोंके पार करके भगवान्‌को प्राप्त
सकता है ॥ १६ ॥

लब्धस्मृतिर्पात्यतिपारमम्बनः ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मण-

रहूगणसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भवाटवीका वर्षाणं गौर रहूगणका सशयनाश

ब्राह्मण उवाच

दुरत्ययेऽध्वन्यज्जथा निवेक्षितो

रजस्तमःसन्धविभक्तकर्मदृक् ।

स एष सार्धोऽर्धपरः परिभ्रमन्

भवाटवीं याति न क्षमं विन्दति ॥ १ ॥

यस्यामिमे पन्तरदेव दस्यव

सार्धं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ।

गामायवो यत्र हरन्ति सार्धिकं

प्रमत्तमादिश्य यथारणं वृकाः ॥ २ ॥

प्रभूतवीरुचृणगुल्मगङ्गरे

कठोरदर्शमशकैरुपहृतः ।

कचिषु गन्धर्वपुर प्रपश्यति

कचिस्त्वपिषाणुरपोरमुकग्रहम् ॥ ३ ॥

निवासतामश्रविणात्मसुद्धि

स्तवस्तथा भावति भा अग्न्याम् ।

हरिम् यान्यात्थितपांगुधूमा

दिश न जानाति रजम्बलाशः ॥ ४ ॥

अब भरतने कहा—राबन्। यह भीष्मसूत्र सुनकर
धर्ममें आसक्त देश-देशान्तरमें घूम-फिरकर क्या
करनेवाले व्यापारियोंके दम्भके समान है। इसे क्या
दुस्तर प्रवृत्तिमार्गमें लग्य दिया है। इसलिये इसकी पं
सारिका, राजस, तामस भेदसे माना प्रकटक करने
ही जाती है। उन कर्मोंमें भयङ्कता-मटकता यह संक
ल्प अंगुष्ममें पहुँच आता है। वहाँ इसे तनिक
शान्ति नहीं मिलती ॥ १ ॥ म्भाराज। उस अंगुष्ममें
बाकू हैं। इस बलिक-समानक नामक बड़ा दुष्ट है
उसके नेतृत्वमें अब यह बड़ी पहुँचता है, तब वे दु
बलाकारसे इसका सब नाश-मत्ता छूट लेते हैं।
मेढिये जिस प्रकार मेढोंके हुंडमें घुसकर उन्हें लू
के आते हैं, उसी प्रकार इसके साथ रहनेवाले गौर
ही इसे असावधान देखकर इसके धनको हनन-
खींचने लगते हैं ॥ २ ॥ यह अंगुष्म बहुत-सी लप
पास और आश-शंकाक कारण बहुत दुःख होता
है। उसमें तीव्र बौंस और मच्छर इसे घेन नहीं ले
दते। वहाँ इसे कभी तो गन्धर्वनाम दीमने लगता।
और कभी-कभी यमचमत्ता हुआ जति यज्ञत बलि
केपात्र और्वोंके सामन जा जाता है ॥ ३ ॥ यह बलि
समुदाय हम समयमें निवासमान, जब और पदार्थों
आसक्त होकर इधर उधर भ्रमयता रहता है। क
बर्बरसे उठी हुई धूँके द्वारा जब सारी रि
धूमाच्छादित-ही हो जाती है और इसकी अँगीने
धूँ भर जाती है, तो इसे निशानोंका ज्ञान भी नहीं

अहम्भित्तिलीखनकर्णशूल-

उलूकनागिर्मर्षधितान्तरात्मा ।

अपुण्यवृथान् यपते सुभार्दितो

मरीचितोयान्यभिधाषति कचित् ॥ ५ ॥

कषिप्रितोषाः सरितोऽभिषाति

परस्परं चालपते निरन्धः ।

आसाद्य दाव कषिग्निवहो

निर्विघाते क च यथैर्हतासुः ॥ ६ ॥

शूरैर्हतासुः क्व च निर्विण्णचेताः

शोचन् विमुहन्तुपपाति कम्मलम् ।

क्वचिच्च गन्धर्वपुर प्रविष्टः

प्रमोदते निर्द्वेषन्नुहर्तम् ॥ ७ ॥

चलन् क्वचित्कण्टकप्रकाराङ्गि-

नर्गारुलुविमना इवान्ते ।

पदे पदेऽम्पन्तरवह्निनादित

कौटुम्बिकः दृष्यति वैजनाय ॥ ८ ॥

क्वचिभिगीर्णोऽजगरादिना अनो

नार्वति किञ्चिद्विपिनोऽपविद्धः ।

दटः स शेते क्व च दन्दशूर्क-

रन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिसे ॥ ९ ॥

कहिं स चिरसुदूरसान् विधिवन्

स्तन्मद्विकारिर्मर्षधितो विमानः ।

तथातिरुच्छा स्मरितलम्बमाना

पलादिलुम्पन्त्यथ स ततोऽन्वे ॥ १० ॥

क्वचिच्च धीतातपघातवर्ष

प्रतिक्रियां कृतमनीश आस्ते ।

क्वचिभिमथो विपणन् यच्च किञ्चिच्च

विद्रेपधुञ्छत्युत विपन्नान्मान् ॥ ११ ॥

रहता ॥ ४ ॥ कभी इसे दिखायी न देनेवाले शीगुरोंका कर्णकन्दु शब्द सुनायी देता है कभी उल्लुखोंकी बोधीसे इसका चित्त व्यथित हो जाता है, कभी इसे मूख सतान लगाती है तो यह निम्नीय वृक्षोंका ही सहारा गट्टोल्ले लगाता है और कभी प्याससे व्याकुल होकर भृगतृष्णाकी ओर दीव्र लगाता है ॥ ५ ॥ कभी जलहीन नटियोंकी ओर जाता है, कभी अन्न न मिन्नपर आपसमें एक-दूसरेसे मोहमप्राप्तिकी इच्छा करता है, कभी दावानलमें घुसकर अग्निसे भुलस जाता है और कभी यशस्वीग इसके प्राण खींचने लगते हैं तो यह स्निग्ध होने लगता है ॥ ६ ॥ कभी अपनेसे अधिक बलवान् छेग इसका घन छीन लेते हैं, तो यह दुखी होकर शोक और मोहसे अचेत हो जाता है और कभी गन्धर्वमगरमें पहुँचकर बघीमरके लिये सब दुःख मूलकर सुखी मनाने लगता है ॥ ७ ॥ कभी पर्वतोंपर चढ़ना चाहता है तो कंटि और ककण्डोशपर चढ़नी हो जानेसे उतास हो जाता है । कुटुम्ब बहुत बड़ जाता है और उद्वेगवर्तिका साधन नहीं होता तो मूलकी उपासासे सन्तप्त होकर अपने ही बन्धु-बान्धवोंपर खींचने लगता है ॥ ८ ॥ कभी अजगर सपका ग्रस बनकर वनमें फँके हुए मुर्के समान पड़ा रहता है । उस समय इसे कोई सुख-सुख नहीं रहती । कभी दूसरे विपिनमें अगु इसे कष्टने लगते हैं तो उसके तिरके प्रयागसे अन्धा होकर किसी अच्छे कुलमें गिर पड़ता है और घोर दुःखय अन्धकारमें बेहोश पड़ा रहता है ॥ ९ ॥ कभी मधु खोजन लगता है तो मन्त्रिष्यो इसका नाकमें दम कर देती है और इसका सारा अभिमान नष्ट हो जाता है । यदि किसी प्रकार अनर्को कटिनाशकोंका सामना करके बड़ मित्र मी गया तो बलात्कारसे दूसरे भाग उसे छीन लेते हैं ॥ १० ॥ कभी पीत, धाम, बौधी और ब्राह्मण अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जाता है । कभी आसमें घोड़ा-बहुत व्यापार करता है, ता धनके मोहमें दूसरोंको धोखा देकर उनसे पैर टान लेता है ॥ ११ ॥

१ प्राचीन प्रसिद्धि बहुत शब्द छूट गया है । २ प्रा

प्रा प्रा — निरन्तरम् । ३ प्रा प्रा — जगानादयश्च

विमान । ४ प्रा प्रा — तथातिरुच्छा प्रसिद्धि ।

क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन्

श्रय्यासनम्पानविहारहीन ।

याचन परादप्रतिलब्धकाम

पारकपट्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥

अन्योन्यविचम्पतिपङ्कजद्व

वैरानुधन्यो विवहनिमथय ।

अचन्यमुष्मिन्तुरुक्तपूविच

बाधोपसर्गैर्विहरन् विपथ ॥१३॥

तांस्तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र

विहाय जात परिगृह्य सार्ध ।

आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र

वीराध्वन पागमुपैति योगम् ॥१४॥

मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा

ममेति सर्वे भुवि बद्धवराः ।

मृधे शरीरम् तु तद्भजन्ति

यन्त्यस्तम्भदा गतवराऽभिषाति ॥१५॥

प्रमजति क्वापि लताभुजाभय

स्तदाभयाप्यक्तपदद्विजस्पृह ।

क्वचित्स्फुटानिद्विरिचकतस्मिन्

सम्प विधत्त सकृदङ्गुर्ध्व ॥१६॥

तवञ्चिता इमङ्गु ममाविश

श्रग्वधपन् गीत्तमुपनि यानगन् ।

तज्जातिगमेन मुनिर्धुनेन्द्रिय

परम्पराद्राधनारिभ्युत्पाशय ॥१७॥

कभी कभी उस ससारवनमें इसका धन मष्ट हो जय है तो इसके पास शम्पा, धासन, रहनेके बिने कम और सैर-सपाणेके लिये सज्जरी बाणि मी नहीं रहे। तब दूसरोंसे याचना करता है, मोंगनेपर भी सुनें जब उसे अभिलषित वस्तु नहीं मिलती, तब स्वयं वस्तुओंपर अनुचित दंडि रखनेके कारण इसे बग तिरस्कार सहना पड़ता है ॥ १२ ॥

इस प्रकार व्यावहारिक सम्बन्धके कारण एक दूसरेसे द्वेषभाव बढ़ जानेपर भी वह बलिष्ठ आत्मसे विवाहानि सम्बन्ध स्थापित करता है और तब इस मार्गमें तरह-तरहके कष्ट और धनक्षय बाणि सहने को भोगते-भोगते घृतकण्ठ हो जाता है ॥ १३ ॥ साक्षियोंमेंसे जो-जो भरते जाते हैं, उन्हें जहाँ-कहाँ छोड़कर नहीं उतरान् दुजोंको साथ लिये वह बलिष्ठ का समूह बराबर जागे ही बढ़ता रहता है। वीरता उनमेंसे कोई भी प्राणी न तो आज्ञाक बापस लेता है और न किसीने इस सङ्कटपूर्ण मार्गको पार करके परमानन्दमय योगकी ही शरण ली है ॥ १४ ॥ विजिते बड़-बड़ स्विकालोंको जीत लिया है, वे धीर वीर पुत्र भी पृथ्वीमें 'यह मेरी है' ऐसा अभिमान करके बापमें कर ठानकर ममाभयमिममें जड़ जाते हैं। तो भी उन्हें मगधान् विज्युका वह अविनाशी पन् नहीं मिथ्य के वैरहीन परमहंसोंको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

इस मशान्धीमें मक्कनेशम्मा यह बलिष्ठारोंका दन कभी किसी लताकी दाक्षिण्यका आश्रय लेता है और उसपर रहनशाने मधुरमाथी पक्षियोंक मोहमें कैद उठता है। कभी मिहोंके समूहमें मय मानकर बगुला बन और मिहोंसे प्रीति करता है ॥ १६ ॥ जब उनसे खेप उठता है तब हंसोंकी पक्षिमें प्रवेश काना पड़ता है किन्तु उसे उनका आचार नहीं सुझाता, समरने यानोंमें मित्रक उनका जानियमावक अनुसार गन्ध-सुगमे रन रहकर शिवभागोंमें इन्धियोंका रूप बना रहता है और एक दूसरेका मुग दास-सेने जरानी आनुकी अग्रिका भूत जाता है ॥ १७ ॥

दुष्टेषु रंसन् सुतदारवत्सलो
 ध्यायदीनो विवशः स्वबधने ।
 कचित्प्रमादादिरिकन्दर पतन्
 वल्ली गृहीत्वा गजभीत आम्बित ॥१८॥

अतः कथञ्चित्स विमुक्त आपन्नः
 पुनश्च सार्धं प्रविशत्यरिन्दम ।
 अभ्यन्मृष्टमिषजया निवेशिता
 अमञ्जनाऽप्यापि न वद कश्चन ॥१९॥

रहूगण स्वमपि धाचनोऽस्य
 संन्यस्तदृग्ध कृतभूतमंत्र ।

असञ्जितात्मा हरिसेवया द्वितं
 ज्ञानासिमादाय तरतिपारम् ॥२०॥
 राजोवाच

अहा नृजमान्बिलजन्मशोभनं
 किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ।
 न यद्वृषीकशयधः कृतात्मनां
 महात्मनां वः प्रभुरः समागमः ॥२१॥

न शङ्कतं त्वच्चरणाब्जरेणुभि
 र्हाहासा भक्तिरधाब्जजमला ।
 मौहूर्तिकपयस्य समागमाच्च मे
 दुस्तर्कमूलाऽपहाऽविषक ॥२२॥

नमो महवृम्बाऽस्तु नमः शिशुम्यो
 नमा युवम्यो नम आ वदुम्य ।
 ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गा
 धरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु गङ्गाम् ॥२३॥

श्रीगुरु उवाच

इत्येवमुत्तरामासः स पै ब्रह्मर्षिसुत सिन्धु
 पतय आत्मसत्त्वर्ष विगणपत पैगनुभाषः परम

वहाँ वृक्षोंमें क्रीड़ा करता हुआ पुत्र और श्रीक स्नहपाशमें
 बँध जाता है । इसमें मैथुनकी वासना इतनी बढ़ जाती है
 कि तरह-तरहके दुर्मयवाहरोसे दीन होनेपर भी यह क्रिया
 होकर अपने बधनको ताड़नेका साहस नहीं कर सकता ।
 कभी असावधानीसे पर्वतकी गुफामें गिरने लगता है
 तो उसमें रहनवाले हाथीसे दूरकर किसी लुत्ताक सहारे
 बन्धा रहता है ॥ १८ ॥ शत्रुमन ! यदि किसी प्रकार
 इस उस आपत्तिसे छुटकारा मिल जाता है, तो यह
 फिर अपने गेलमें मिल जाता है । जो मनुष्य मायाकी
 प्रणालीसे एक बार इस मार्गमें पहुँच जाता है, उसे
 मन्त्रको-मन्त्रको अन्ततक अपने परम पुरुषार्थका पता
 नहीं लगता ॥ १९ ॥ रहूगण ! तुम भी इसी मार्गमें मन्त्र
 रखे हो, इसलिये अब प्रयास दण्ड देनेका कार्य
 होकर समस्त प्राणियोंके सुख हो जाय और विषयोंमें
 अनासक्त होकर भगवत्-सेवासे तीक्ष्ण किया हुआ
 ज्ञानरूप स्वर्ग लेकर इस मार्गको पार कर लो ॥ २० ॥

राजा रहूगणन कह्य—अहा ! समस्त धनियोंमें
 यह मनुष्य-जन्म ही श्रेष्ठ है । अन्यान्य लोकोंमें प्राप्त
 होनेवाले देवादि उत्कृष्ट जन्मोंसे भी क्या श्राम है, जहाँ
 भगवान् हरीकेशके पवित्र यशसे झुद अन्त करणवाले
 आ-जैसे महात्माओंका अधिकाधिक समागम नहीं
 मिलता ॥ २१ ॥ आपका चरणकमलोंकी रजक सेवन
 करनेसे जिनके मारे पाप-ताप नष्ट हो गये हैं, उन
 महानुभावोंको भगवान्की विशुद्ध मक्ति प्राप्त होना कोई
 विचित्र बात नहीं है । मेरा तो आपको दो वृषिक
 सत्त्वसे ही साथ कुतकमलक अज्ञान नष्ट हो गया है,
 ॥ २२ ॥ ब्रह्मज्ञानियोंमें ना बधोद्दहों, उन्हें नमस्कार
 है, जो शिशु हों, उन्हें नमस्कार है; जो युवा हों, उन्हें
 नमस्कार है और जो ब्रह्मरत बालक हों, उन्हें भी
 नमस्कार है । जो ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण जनवृत्तवशसे पृथ्वी-
 पर विचरते हैं उनसे हम जैसे ऐश्वर्यमय राजाओंका
 कल्याण हो ॥ २३ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहत हैं—उत्तरामन्त्र । इस

प्रकार उन परम प्रभावशाली ब्रह्मर्षिपुत्रन अपना अभ्यस
 करनेवाले सिन्धुनरेवा रहूगणका भी आप्त करणवश

कारुणिकतयापदिश्य रहगणेन सकलममिवन्दित
चरण आपूर्णार्णव इव निमृत्कण्ठोर्म्याश्रयो धरणि-
मिमां विचचार ॥ २४ ॥ सौवीरपतिरपि सुखन
समवगतपरमात्मसत्त्वं आत्मन्यविधाभ्यारोपितां च
देहात्ममतिं विससज्ज । एव हि नृप भगवदाभिता
भित्तानुभावः ॥ २५ ॥

राजोवाच

यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत स्वया
भिहित परास्तेन वचसा जीबलोकमर्षाभ्या स
स्वार्थमनीपया कल्पितविषया नास्त्रसाम्युत्पन्नलोक
समधिगमः । अथ तदेवैतदुरवगमं समवेतानुक्रम्येन
निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥

आत्मतत्त्वका उपदेश दिया । तब राजा रहगणे ने इनका
से उनके चरणोंकी बन्दमा की । फिर व परिपूर्ण सुखसे
समान शाश्वतचित्त और उपरतेन्द्रिय होकर पूर्ण
विचरने लगे ॥ २४ ॥ उनके ससज्जसे परमात्मका
ज्ञान पाकर सौवीरपति रहगणे ने भी अन्त करणमें कल्प-
का आरोपित देहात्मबुद्धिको त्याग दिया । राजा
जो लोग भगवदाश्रित अनन्य मत्तोंकी शरण ले रहे हैं,
उनका ऐसा ही प्रभाव होता है—उनके पास वचन
ठहर नहीं सकती ॥ २५ ॥

राजा परीक्षितने कहा—महाभागवत मुनिने
आप परम विद्वान् हैं । आपने रूपकान्तिके द्वारा कल्प-
रूपसे जीवोंके जिस संसाररूप मार्गका वर्णन किया है,
उस विषयकी कल्पना विवेकी पुरुषोंकी बुद्धिने की है,
यह अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंकी समझमें सुगम्यसे हो
आ सकता । अब मेरी प्रार्थना है कि इस बुद्धि
विषयको रूपकका स्पष्टीकरण करनेवाले शम्भुसे ले-
कर समझाइये ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संज्ञितयां पञ्चमस्कन्धे

प्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्याय

भवावलीका स्पष्टीकरण

स होवाच

य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेष
विकल्पितकुशलकुशलसमबहारविनिर्मितविषयवद्देहा-
वलिभिर्वियोगसंयागाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वार
भूतेन पङ्क्तिप्रपञ्चगोचरस्मिन्पुर्वाभ्यवदसुगमेऽप्यन्या
पठित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्विश्ववर्तिन्या मायया

भीष्टुकदेवकी कहते हैं—राजन् ! देहात्मकी
जीवोंके द्वारा सत्त्वादि गुणोंके भेदसे छद्म, अनुम और
मिथ—तीन प्रकारके कर्म होते रहते हैं । उन कर्मोंके
द्वारा ही निर्मित नामा प्रकारके शरीरोंके साथ होनेवाला
जो संयोग-वियोगादिरूप कलादि संसार जीवोंके प्राप्त
होता है उसके अनुभवके द्वार हैं—मन और पौन-
स्त्रानेन्द्रियों । उनसे विवश होकर यह जीवसमूह कर्म
भूतकर भगवद् वनमें भ्रमरसे हुए घनके कोठी बनितहो-
या

१ मा पा —चरण पूर्णार्णव इव । २ मा पा —मिमां चचार । ३ मा पा —महाभिताभितानुभावः ।

४ मा पा —जीबलोकमर्षाभ्या ।

जीवलोकोऽय मथा षणिकसार्योऽर्धपर स्वदेह

निष्पादितकर्मानुभवः क्षमज्ञानवदशिवतमाया संसारा-

टव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तथापोप

खेमनी हरिगुरुचरणतन्त्रिन्दमपुकरानुपदवीमवरुन्धे

यस्याह्म इ वा एते पट्टिन्द्रियनामानः कर्मणा वस्यथ

एव ते ॥१॥ तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किञ्चिदर्धना-

पयिकं बहुकृच्छ्राभिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो

योऽसौ धर्मस्तु तदात्माय उदाहरन्ति । तद्वन्धे

धनं दर्शनस्पर्शनभक्षणाम्बादनाभग्राणसङ्कल्प

ष्यवसायगृहग्राम्यापभोगेन कुनाभस्याजितारमनो

यथा सेर्यस्य त्रिभुम्पन्ति ॥ २ ॥ अथ च

यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा

इक्युगाला एवानिष्ठतोऽपि कर्द्वस्य कुटुम्बिन

उरणकवस्तरूपमाणं निपतोऽपि हरन्ति ॥ ३ ॥

के समान परमसमय भगवान् विष्णुक आश्रित रहनेवाली
मायाको प्रेरणासे बीहड़ बनके समान दुर्गम मार्गमें पड़
कर संसार-बनमें जा पहुँचता है । यह बन क्षमज्ञानके
समय व्यत्यस्त अद्युम है । इसमें भ्रमकते हुए उसे
अपने शरीरसे किये हुए कर्मोंका फल मांगना पड़ता
है । यहाँ अनेकों विघ्नोंके कारण उसे अपने व्यापारमें
सफलता भी नहीं मिलती, तो भी यह उसके धर्मको
शान्त करनेवाले श्रीहरि एवं गुरुदेवके चरणारविन्द
मकरन्द-मधुक रसिक मत्त-भ्रमणोंके मार्गका अनुसरण
नहीं करता । इस संसार-बनमें मनसहित छ इन्द्रियों
॥ अपने कर्मोंकी दृष्टिसे बाकुओंके समान हैं ॥ १ ॥
पुरुष बहुत-सा कष्ट उठाकर जो धन कमाता है, उसका
उपयोग धर्ममें हाँसा चाहिये, वही धन यदि साक्षात् भगवान्
परमपुरुषकी आराधनाके रूपमें होता है, तो उसे
परलोकमें नि श्रेयसका हेतु बतलाया गया है । किन्तु
जिस मनुष्यका मुद्रिरूप सारथि विवेकहीन होता है
और मन स्वयंमें नहीं होता, उसके उस धर्मोपयोगी
धनको ये मनसहित छ इन्द्रियाँ देखना, स्पर्श करना,
सुनना, स्वाद लेना, सूँघना, सङ्कल्प विकल्प करना
और निषेध करना—इन वृत्तियोंके द्वारा गृहस्थोचित
विषययोगोंमें फँसाकर उसी प्रकार छट लेती हैं, जिस
प्रकार वैश्यान् मुखियाका अनुगमन करनेवाले एवं
असाधवान बनिजारोंके दलका धन चोर-बाकू छट ले
जाते हैं ॥ २ ॥ ये ही नहीं, उस संसार-बनमें
रहनेवाले उसका कुटुम्बी भी—जो नामसे तो श्री-मुत्रादि
कहे जाते हैं, किन्तु कर्म जिनके साक्षात् मेढिये और
गीदकोंके समान होते हैं—उस वर्णलोलुप कुटुम्बीके
धनको उसकी इच्छा न रहनपर भी उसका देखते-देखते
इस प्रकार छीन ले जाते हैं, जैसे मेढिये गहरियोंसे
सुरक्षित मेढोंको उठा ले जाते हैं ॥ ३ ॥

१ प्रा पा—पौषधमना । २ प्रा पा—यत्किञ्चिदार्धमपि । ३ प्रा पा—यत् परम
पुरुष । ४ प्रा पा—दर्शनम्बादनाभग्राणसङ्कल्पसंभवत्वात् । ५ प्रा पा—यथा यत्किञ्चिदपि । ६ प्रा
पा—निमित्ततो ।

यथा क्षनुषत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धवीजं
क्षत्रं पुनरुपावपनकाले गुल्मवृण्वीरुङ्गिर्गङ्गरमिष
भवत्सेवमेव गृह्णाधमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्न हि कर्मा
प्युत्तीदन्ति यदयं कामफलं एष आवसथः ॥४॥

तत्रगंतो दंष्ट्रमक्षयमापसदर्मलुजैः क्षलभगुणस्त
तस्करमूपकादिभिरुपरुपमानवहि प्राणः कश्चित्
परिवर्तमानोऽस्मिन्नन्वविद्याकामकर्मभिरुपरक्त
मनसानुपपन्नार्थं नरलोक गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति
मिथ्यादृष्टिरनुपपद्यति ॥ ५ ॥ तत्र च कचिदातपो-
दकनिभान् विषयानुपभाषति पानभोजनव्यवायादि
व्यसनलालुषः ॥ ६ ॥ कश्चिन्नाश्वेपदोपनिषदनं
पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमति सुवर्णमुपा-
दित्मत्यभिक्रामकातर इवारमुकपिष्ठाचम् ॥७॥ अथ

कदाचिन्निवासपत्नीबद्धविशाघनेकारमोपजीवनाभि
निवेश्य पतस्यां संसारादभ्यामितस्ततः परिधाषति
॥८॥ कश्चिच्च वात्सौपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपित
स्तत्फलरजसा रजनीभूत इवासाधुमर्षादा
रमस्वलाघोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न
विजानाति ॥ ९ ॥ कश्चित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः

जिस प्रकार यदि किसी खेतके बीजोंको जमिनाय न
न गिया गया हो, तो प्रतिवर्ष जोतनेपर भी खेत
समय खानपर वह फिर बार-बार, धरा और दम का
गहन हो जाता है—उसी प्रकार यह गृहस्थाधम भी।
भूमि है, इसमें भी कर्मोंका सर्वथा उच्छेद कभी नहीं है
क्योंकि यह घर कामनाओंकी गिरी है ॥ ४ ॥

उस गृहस्थाधममें आसक्त हुए व्यक्तिके मन
बाहरी प्राणोंको दौंस और मस्त्रोंके समान नीच पुन
तथा टिड्डी, फली, चोर और चूहे आदिसे धमि पहुँ
रहती है। कभी इस मार्गमें मटकते-मटकते वह कभी
कामना और कर्मोंसे कलुषित हुए अपने चित्तसे इष्टि
के कारण इस मत्स्यलोकमें, जो गन्धर्वनगरके स
जसक्त है, सत्य समझने लगता है ॥५॥ फिर खन
और की-मसह्लादि व्यसनोमें फँसकर धृगृष्णाके स
मिथ्या किस्मोंकी ओर दौड़ने लगता है ॥ ६ ॥
भुक्तिके रजोगुणसे प्रभावित होनेपर सारे जनबौद्धि
अग्निके मत्सरूप सोनेको ही सुसुका साधन सम
उसे पानेके लिये काकायित हो इस प्रकार दौड़-
करने लगता है, जैसे कर्मों नाबेसे छिद्रुता हुआ
अग्निके लिये व्याकुल होकर उ-मुक पिशाचकी (वा
बेतालकी) और उसे जाग समझकर दौड़े ॥ ७ ॥
इस शरीरको जीवित रखनेवाले घर, कर्म-कर्म
धन आदिमें अभिनिवेश करके इस संसारारण्यमें
उपर दौड़-धूप करता रहता है ॥ ८ ॥ कभी कभी
समान जौलेंमें धूम धोक देनेवासी की गोत्रमें बैठ
है ता तत्काल रागान्ध-मा होकर सन्तुष्टोंकी मर्षा
भी विचार नहीं करता। उस समय नेत्रोंमें रजोगु
धूम भर जानेसे भुद्धि ऐसी मन्त्रि हो जाती है
अपने कर्मोंका साक्षी दिव्यजनोंके देवताओंको भी :
दता है ॥ ९ ॥ कभी अपने-आप ही एकत्र

स्वयं पराभिभ्यानेन विम्रंशितस्सुवित्तयैव मनीषि
सोमप्रायांस्तानेषाभिभावति ॥१०॥ कश्चिदुत्क-

सिद्धीस्वनवदत्तिपरुरंभसाटोप प्रत्यक्ष परोक्ष वा
रिपुराजकुलनिर्मस्मिन्तेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥११॥

स यदा दुग्धपूर्वमुकृतस्तदा कारस्करकाकृतुष्ठा-
द्युष्पद्मलताविपोदपानत्रदुग्धयाम्रश्रन्यद्रविणान्
जीवन्मृतान् स्वयं जीवन्निद्रमाण उपधावति ॥१२॥

एकदासत्प्रसङ्गाभिक्कृतमतिर्भुदकक्षात स्म्वलन
वदुभयतोऽपि दु खदं पास्वण्डमभियाति ॥१३॥ यदा

तु परबाधयाध आत्मने नोपनमति तदा हि
पितृपुत्रवर्हिष्मतः पितृपुत्रान् वा स स्वह भक्षयति

॥१४॥ कश्चिदामाद्य गृहं दाववतिप्रयार्थविपुत्र
मसुखोदकं शोकाग्निना दहमानो मृगं निर्वेदमुप
गच्छति ॥१५॥ कश्चित्कालविपमितराजकुलरक्षसा-

पक्षप्रियतमभनासु प्रेमृतक इव विगतजीव
लक्षण आस्ते ॥१६॥ कदाचिन्मनोरथोपगमपितृपिता-
महायमत्सदिति स्यन्निद्रविलक्षणमनुभवति ॥१७॥

कश्चिद् गृहाभमकर्मसादनानिभरगिरिमारुरुक्षमाणो

विशयोका मिथ्यात्व जान लेनेपर भी अनादिकावसे वेहमें
आत्मसुद्धि रहनस विवेक-बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण
उन मरुमरीचिकतुल्य विषयोंकी ओर ही फिर दौड़ने
लगाता है ॥ १० ॥ कभी प्रत्यक्ष शब्द करनेवाले उत्कृ-
ष्ट समान शत्रुओंकी ओर परोक्षरूपसे बोलनेवाले झीगुरोंक
समान राजाभी अग्नि कठोर एवं दिलको दहल देनेवाली
बरातनी बोट-रफ्तसे इसके कान और मनको बड़ी व्यथा
होती है ॥ ११ ॥

पूर्वपुण्य क्षीण हो जानेपर यह जीवित ही मूर्खके
समान हो जाता है, और जो कारस्कर एवं काकतुण्ड
आदि जहरीले फलोंवाले पापवृक्षों, इसी प्रकारकी दूषित
रुक्ताओं और निर्दल बुजुर्गोंके समान हैं तथा जिनका धन
इस लोक और परलोक दोनोंके ही काममें नहीं जाता
और जो जीते हुए भी मूर्खके समान हैं—उन कृष्ण
पुरुषोंका आश्रय लेना है ॥ १२ ॥ कभी असत् पुरुषोंके
सङ्गसे बुद्धि विषय कामके कारण सूखी नदीमें गिरकर
दुष्प्री होनेका समान इस लोक और परलोकमें दुःख
देनेवाले पावण्डमें कैद जाता है ॥ १३ ॥ जब दूसरोंको
सतानेसे उसे अन्न भी नहीं मिलता, तब वह अपने
सगे पिता-पुत्रोंको अपवा पिता या पुत्र आदिक एक
निकर भी भिनके पास देखता है, उनको फाड़ खानेके
लिय तैयार हो जाता है ॥ १४ ॥ कभी दावानलके
समान प्रिय विषयोंसे शून्य एवं परिणाममें दुःखमय घरमें
पहुँचना है, ता वही शत्रुओंके वियोगान्तिसे उसके शोक-
की आग मझक उठती है उससे स्मृत होकर वह
बहुत ही खिन्न होने लगता है ॥ १५ ॥ कभी कालके
समान मज्जर राजकुलरूप शत्रुस इसके परम प्रिय धन
रूप प्राणोंका हर लेता है तो यह भरे हुएका समान
निर्जीव हो जाता है ॥ १६ ॥ कभी मनारयक प्यापकि
समान अत्यन्त असत् पिता-पितामह आदि ममत्वोंको
सम्य ममत्कर उनके मङ्गलासुमे स्वजके समान क्षणिक
सुखका अनुभव करता है ॥ १७ ॥ गृहस्थाश्रमक नियम
विम कर्मविवेक महान् विस्तार दिया गया है उसका
अनुगम किसी पवनकी कभी चर्चाके समान ही है ।

लोकम्भसनर्पितमनाः कण्टकशर्कराध्वेन प्रविशन्ति
सीदति ॥१८॥ कचिष दुःसहेन कायाम्यन्तर
बहिना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय कृष्यति ॥१९॥
स एव पुनर्निद्राजगरगृहीताञ्च तमसि मग्नः
शून्यारण्य इव श्रेते नान्यत्किञ्चन वेद एव
इवापविद्धः ॥ २० ॥

कंदविश्रुतममन्त्रद्वो दुर्बलदन्धशैरलम्ब-
निद्राक्षयो व्यथितहृदयेनानुधीयमाणविज्ञानो

अन्धकूपेऽन्धवत्पतति ॥ २१ ॥ कहीं कौ

चित्काममधुलभान् विचिन्वन् यदा परद्वारपर

द्रव्याप्यबन्धनो राक्ष्वा स्वामिमिवा निहतः

पतत्यपारे निरय ॥२२॥ अथ च तस्मादुभयभाषि

हिकामासिन्मात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥२३॥

मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्वदत्त उपाच्छिनत्ति

तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनब्रूमि ॥२४॥

कचिष क्षीतबाताघनेकाधिदैविकभौतिकात्मनीयानां

दशानां प्रतिनिवारणेऽक्षरूपो दुरन्तचिन्तया विषण्ण

आन्ते ॥२५॥ कचिन्मियो ध्यावहरेन् यत्किञ्चिद्वन-

मन्येभ्यो वा काकिणिक्कामाश्रमप्यपहरन् यत्किञ्चिद्वन-

खेगोको उस ओर प्रवृत्त देखकर उसकी देखरेखी न
यह भी उसे पूरा करनेका प्रयत्न करता है। तब तब-
तबकी कठिनाइयोंसे क्लेशित होकर कंठ और कंधों-
से भारी भूमिमें पहुँचे हुए व्यक्ति के समान दुखी हो
जाता है ॥ १८ ॥ कभी पेटकी अस्थायी जगहसे नरक
होकर अपने कुटुम्बपर ही बिगड़ने लगता है ॥ १९ ॥
फिर जब निद्रारूप अन्धकारके चंगुलोंमें फँस जाता है,
तब अज्ञानरूप और अन्धकारमें डूबकर सुते मनमें उसे
हूए सुनने के समान शीघ्र पका रहता है। उस मन
इसे किसी बातकी सुधि नहीं रहती ॥ २० ॥

कभी वृजनरूप कण्टकेवाले जीव इतना कष्ट-
सिरस्कर करते हैं कि इसके गर्भरूप दाँत, जिसे वह
दूसरोंको काटता था, टूट जाते हैं। तब इसे बलात्कार
करण मीढ़ भी नहीं जाती तथा मर्मवेदनाके कारण
क्षण-क्षणमें विवेकशक्ति क्षीण होते रहनेसे मनमें
अंधेकी भाँति यह नरकरूप अंधेर कुरंगों का भित्त
है ॥ २१ ॥ कभी विषयसुखरूप मधुकर्जोंको हँकते-हँकते
जब यह छुटकीयाकर परकी या परबनको उड़ा
चाहता है तब उनके स्वामी या राजा का हाथसे मर
जाकर ऐसे नरकमें जा गिरता है जिसका ओर-ओर नहीं
है ॥ २२ ॥ इसीसे ऐसा कहते हैं कि प्रवृत्तिमग्न स्वयं
किये हुए भौतिक और वैदिक दोनों ही प्रकारके कर्म
जीवको संसारकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं ॥ २३ ॥
यदि किसी प्रकार राजा आदिके कंधनसे छूट भी गया,
तो अभ्याससे अपहरण किये हुए उन की और जनको
देवदत्त नामका कोई दूसरा व्यक्ति छीन लेता है और
उससे विष्णुमित्र नामका कोई तीसरा व्यक्ति छन लेता
है। इस प्रकार वे भोग एक पुरुषसे दूसरे पुरुषके पास
जाते रहने हैं, एक स्वप्नपर नहीं टहरते ॥ २४ ॥
कभी-कभी शीत और वायु आदि अनेकों आध्यात्मिक,
आधिवैदिक और व्याप्यश्रमिक दुःखकी स्थितिमें के निवारण
करनेमें समर्थ न होनेसे वह अन्तर्निष्ठ अनेकों कारण
उदात्त हो जाता है ॥ २५ ॥ कभी परस्पर सेन-सेनका
व्यवहार करते समय किसी दूसरेका बोझ-सा—दमनीय

विद्वेषमेति चित्तश्चात्मा ॥ २६ ॥

अध्वन्यमुष्मिभिम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेष

भयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्याभ-

नमुत्पिपासाधिष्याभिजन्मवराभ्रणादयः ॥ २७ ॥

पि देवमायया स्त्रिया युजलतोपगूढः प्रस्कम्बिविवेक-

घ्नानो यद्विहारगृहारम्भाङ्गलङ्घयस्तदाभ्रभावसक्त

तदुद्दिक्कलप्रभापितावलोकविषेष्टितापहृतद्वय

त्मानमजितात्मापारेऽन्धे तमसि प्रहियोति ॥ २८ ॥

कदाचिदीश्वरस्य भगवता विष्णोश्चक्रास्पर

ात्वादिर्द्विपराधीपवर्गकालोपलक्षणास्परिवर्तितेन

त्यसार्हसा हरत आम्रमृगणन्तम्वादीनां भूताना-

निमिषतो मिपतां विप्रस्तद्धृन्त्यस्तमेवेश्वरं कालचक्र-

नेजायुर्धं साक्षाद्भगवन्तं यश्च पुरुषमनादृत्य पाशण्ड

देवता कञ्चुगुध्रबर्कवटप्राया अर्पसमयपरिहृता

साङ्केत्येनामिधत्ते ॥ २९ ॥ यदा पाशण्डिभिरात्म-

भर्तितस्त्वेरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समावमस्तेषां धील-

मुपनयनादिर्भौवसार्वभर्मानुष्ठानेन भगवतो यश्च

पुरुषसाराधनमेव तदराचयन् गृह्णन् भजते

निगमाचारऽशुद्धिता यस्य मियुनीभाव कुटुम्ब

भरणं यथा धानरजातः ॥ ३० ॥

भर अपवा इससे भी कम धन चुरा लेता है तो इस
वेईमानीके कारण उससे बेर ठन जाता है ॥ २६ ॥

यजन् । इस मार्गमें पूर्णोक्त विभोके अनिरिक्त सुख-
दुःख, राग-द्वेष, मय, अहिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक,
मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, क्षुधा-पिपासा,
आधिष्याधि, जन्म, मर और मृत्यु आदि और भी अनेक
विघ्न हैं ॥ २७ ॥ (इस विघ्नबहुल मार्गमें इस प्रकार
मनकता हुआ यह नीच) किसी समय देवमायारूपिणी
स्त्रीके बाहुपायमें पड़कर विवेकहीन हो जाता है ।
तब उसीके शिष्ये विहारमग्न आदि वनधानकी चिन्तनमें
प्रसक्त रहता है तथा उसीके आश्रित रहनेवाले पुत्र, पुत्री
और अपमान्य स्त्रियोंके मीठे-मीठे बोल, चितवन और
घेरावमें आसक्त होकर, उन्हींमें चित्त फँस जानेसे वह
हिन्र्योक्त दास अपार अप्पकरमय नरकमें गिरता
है ॥ २८ ॥

कालचक्र साक्षात् भगवान् विष्णुका जायुध है ।
वह परमाणुसे लेकर त्रिपरार्धपर्यन्त क्षण-घटी आदि
अवयवोंसे युक्त है । वह निरन्तर साधन रहकर
वृष्ता रहता है, जन्मी-जन्मी बदलनेवाली बान्धव, यौवन
आदि अवस्थाएँ ही उसका वेग हैं । उसके द्वारा वह
ब्रह्मसे लेकर कुट्टानिष्ठुत तृणपर्यन्त सभी भूतोंका
निरन्तर संहार करता रहता है । कोई भी उसकी गतिमें
बाधा नहीं डाल सकता । उससे मय मानकर भी जिनका
यह कालचक्र निब जायुध है, उन साक्षात् भगवान्
यश्च पुरुषकी आराधना छोड़कर यह मन्दमनि मनुष्य
पाशण्डियोंके चक्रमें पड़कर उनके कर्क, गिद, बगुल
और कटेक समान भार्यशास्त्र-अहिष्टत देवताओंका
आश्रय लेता है जिनका केवल वे-बाध अप्राप्तिक
आश्रमों ही उन्हेय किया है ॥ २९ ॥ ये पाशण्डी तो
स्वयं ही धोखेमें हैं, जब यह भी उनकी धारिमें आकर
दुखी होता है, तब भासगोत्री शरण लेता है । किन्तु
उपनयन-संस्कारके अनन्तर धौत-स्मार्तकर्मोंसे भगवान्
यश्च पुरुषकी आराधना करना आदि जा उनका शाश्वत
आश्रय है, वह इसे अच्छा नहीं लगता इसलिये वेनेक
आश्रयके अनुकूल अपनेमें छुदित होनेका कारण यह कर्म
गुण गुरुत्वेमें प्रवेश करता है जिसका स्वभाव धानरोंके
समान केवल कुटुम्बोपयोग और श्रासेवन करना ही है ॥ ३० ॥

तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरमतिक्रमण
 शुद्धिरन्योन्यमुत्सनिरीक्षणदिना ग्राम्यकर्मणैव
 विस्तृतकालावधिः ॥ ३१ ॥ कचिव
 द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्वन् यथा वानरः सुतदार
 वत्सलो व्यवपक्ष्णः ॥ ३२ ॥

एवमप्यन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयाचमसि
 गिरिकन्दरप्राये ॥ ३३ ॥ कचिच्छीतवासा
 घनेकदैहिकभौतिकस्त्रीयानां दुःखानां प्रसि-
 निवारणेऽक्षया दुरन्तविषमविषया आस्ते
 ॥ ३४ ॥ कचिन्मियो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्वनस्पयाति
 विचक्षाठघन ॥ ३५ ॥ कचिच्छीणधनः श्रम्यासना
 क्षनाद्युपमोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरबोपगता
 दानेऽवसितमवितस्तस्ततोऽवमानादीनि अनादमि
 लमते ॥ ३६ ॥ एवं विचम्पतिपङ्गविष्वक्वैरानुबन्धोऽ
 पि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥ ३७ ॥
 एतस्मिन् संसाराच्च नि नानाफलोपसर्गबाधित
 आपन्नविषयो यत्र यन्तु ह धावेतरस्तत्र विसृज्य
 जातं जातमुपादाय शोचन्मुञ्चन् विम्यद्विषदन् क्रन्दन्
 संहृष्यन् गायन्तव्यमान साधुवर्जिता नैवावर्ततेऽद्यापि

यहाँ बिना रोक-टोक सञ्चर करके
 इसकी बुद्धि व्यस्त दीन हो जाती है और एक
 दूसरेका मुख देखना आदि विषय-भोगोंमें लटक
 इसे अपने मृत्युकासङ्कट भी स्मरण नहीं होता ॥ ३१ ॥
 ज्योंके समान निनका ज्येष्ठिक मुख ही एक है—ज
 योंमें ही मुख मामकर बागोंकी भाँति बी-पुत्रादि
 आसक्त होकर यह अपना साथ सम्य मैत्रुनादि विर-
 भोगोंमें ही बिता देता है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें पककर सुख-दुःख भोग
 हुआ यह जीव रोगरूपी गिरि-गुहामें फँसकर ठहरे
 रहनेवाले मृशुरूप हाथीसे डरता रहता है ॥ ३३ ॥ कभी-
 कभी शीत, वायु आदि अनक प्रकारके आभौतिक
 आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखोंकी निवृत्ति करनेमें
 जब असफल हो जाता है, तब उस समय अक्षर विम-
 की विमतासे यह स्मिन् हो उठता है ॥ ३४ ॥ कब
 आपसमें क्रय-विक्रय आदि व्यापार करनेपर बहुत कष्ट
 करनेसे इसे बोझ-सा घन हाथ लग जाता है ॥ ३५ ॥
 कभी घन मष्ट हो जानेसे जब इसके पास सोने, लोहे
 और खाने आदिकी भी कोई सामग्री नहीं रहती, तब
 अपने अमीश भोग न मिलनेसे यह उन्हें छोड़ कर
 धुरे ठपायेंसे पानेकर निश्चय करता है । इससे इसे अ-
 तर्हों दूसरोंके हाथसे बहुत अपमानित होना पक
 है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार घनकी अस्थितिसे फल
 वैरभाव बढ़ जानेपर भी यह अपनी पूर्ववासनाओंसे
 भिन्ना होकर आपसमें विषहृदि सम्भव करता और
 छेड़ता रहता है ॥ ३७ ॥ इस संसारमार्गमें करनेका
 यह जीव अनेक प्रकारके क्लेश और निम्न-बाधजोंसे
 बाधित होनेपर भी मार्गमें जिसपर जहाँ आपत्ति बाध
 है अवकाश को छोड़ कर जाता है, उसे जहाँ-जहाँ
 छोड़ देता है तथा भये जन्मे ज्योंको साथ लाता है,
 कभी किसीके लिये शोक करता है, किसीका दुःख
 देखकर मुग्धित हो जाता है, किसीके विषये होनेकी
 आशाह्रासे मयभीत हो उठता है, किसीसे हानि होने
 का, कोई आपत्ति आनी है तो रोने-बिस्मयने लगता है,
 कहीं कोई मनके अनुकूल बात हो गयी तो प्रसन्न
 मारे फूला नहीं समाता, कभी गूने लगता है और कभी
 उन्हींके लिये हँसनेमें भी नहीं हिचकता । साधुज

यत आरम्भ एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुप-
दिशन्ति ॥ ३८ ॥ यदिदं योगानुष्ठासनं न वा
एतदवबुध्यते यन्न्यस्तदम्बा मुनय उपशमशीला
उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥ ३९ ॥ यदपि
दिशिभञ्जयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किं तु परं
मृषे क्षयीरन्नस्वामेव ममेयमिति कृतवैरातुषन्धायां
विसृज्य न्वयमुपसंहृताः ॥ ४० ॥ कर्मबल्लीमवलम्ब्य
तत आपदः कथञ्चिभरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं
संसाराच्च निवर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरि
गतोऽपि ॥ ४१ ॥

तस्येदमुपगमन्ति—

आर्षमस्येह राजर्षेर्मनसापि महात्मन ।
नानुवर्तमार्हति नृपो मधिकेव गरुमतः ॥ ४२ ॥
यो दुस्त्यजान्दारमुतान् सुहृदान् हृदि स्थूय ।
जहौ युर्वेव मलबदुत्तमलोकलालसः ॥ ४३ ॥

यो दुस्त्यजान् धितिसुतस्त्रजनार्थद्वारान्
प्राप्या भिप सुरवरैः मदयावलोकाम् ।

नैच्छन्पुनस्तदुचिर्त महतां मधुदिद्

सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ ४४ ॥

इसके पास कभी नहीं आते, यह साधुसङ्गसे सदा बधित
रहता है । इस प्रकार यह निरन्तर आगे ही बढ़ रहा
है । जहाँसे इसकी यात्रा आरम्भ हुई है और जिसे इस
मार्गकी अन्तिम अवधि कहते हैं, उस परमार्थके पास
यह अभी तक नहीं लौटा है ॥ ३८ ॥ परमात्मा तक तो
योगशास्त्रकी भी गति नहीं है, जिन्होंने सब प्रकारके
दण्ड (शासन) का त्याग कर दिया है, वे निवृत्ति
प्रापण सप्ताहमा मुनिजन ही उसे प्राप्त कर पाते
हैं ॥ ३९ ॥ जो दिग्गमोंको जीतनेवाले और बड़े-बड़े
यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले राजर्षि हैं उनकी भी वहाँ-
तक गति नहीं है । वे सङ्ग्राममूर्तिमें शत्रुओंका सामना
करके केवल प्राणपरित्याग ॥ करते हैं तथा जिसमें
‘यह मेरी है’ ऐसा अविमान करके बैर ठाना था—उस
पृथ्वीमें ही अपना शरीर छोड़कर स्वयं परलोकको चले
जाते हैं । इस संसारसे वे भी पार नहीं होते ॥ ४० ॥
अपने पुण्यकर्मरूप छात्राका आश्रय लेकर यदि किसी
प्रकार यह जीव इन आपत्तियोंसे अपना नरकसे छुटकारा
पा भी जाता है, तो फिर इसी प्रकार संसारमार्गमें
मटकता हुआ इस जनसमुदायमें मिल जाता है । यही
दश स्पर्धादि लक्ष्यलोकमें जानेवालोंकी भी है ॥ ४१ ॥

राजन् ! राजर्षि मरतके विषयमें पण्डितजन ऐसा
कहते हैं—जैसे गड़बड़ीकी होश कोई मस्की नहीं
कर सकती, उसी प्रकार राजर्षि महात्मा मरतके मार्गका
कोई अन्य रास्ता मनसे भी अनुसरण नहीं कर
सकता ॥ ४२ ॥ उन्होंने पुण्यकीर्ति धीहरिमें अनुरक्त
होकर अति मनोरम श्री, पुत्र, मित्र और राज्यादिको
युवात्मामें ही विद्याके समान त्याग दिया था, दूसरोंके
निये तो इन्हें त्यागना बहुत ही कठिन है ॥ ४३ ॥
उन्होंने अति दुस्त्यज पृथ्वी, पुत्र, स्वजन, सम्पत्ति और
जीवी तथा जिसके निये बड़े-बड़े देवता भी त्यागपित
रहते हैं । किन्तु जो स्वयं उनकी दयादृष्टिके निये उनपर
दृष्टिपात करती रहती थी—उस स्त्रीकी भी, लेशमात्र
हृष्टा नहीं की । यह सब उनके निये उचित
ही था, क्योंकि जिन महानुभावोंका चित्त भगवान्
मधुमूनकी सेवामें अनुरक्त ॥ गया है, उनकी
दृष्टिमें मोक्षपद भी अत्यन्त दुष्ट है ॥ ४४ ॥

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय
योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीधराय ।
नारायणाय हरये नम इत्युदारं
हास्यन्मृगतत्वमपि यः समुदात्तहार ॥ ४५ ॥

य इदं भागवतसभाभिवापदासुशुभकर्मणो
राजर्षेर्मरतस्यानुचरितं स्वस्त्वयनमाधुष्य धन्यं
मशस्यं स्वर्ग्यमवर्म्यं बानुमृषोत्पारव्यास्यस्यभिनन्दति
च सर्वा एषाधिप आत्मन आश्वास्ते न काञ्चन
परत इति ॥ ४६ ॥

उन्होंने मृगशीर छोड़नेकी इच्छा होनेपर उन्होंने
कहा था कि धर्मकी रक्षा करनेवाले, धर्मपुत्रों
निपुण, योगगम्य, सांख्यके प्रतिपाद, प्रकृतिके कर्षक,
यज्ञमूर्ति सर्वान्तर्यामी श्रीहरिको नमस्कार है ॥ ४५ ॥

राजन् ! राजर्षि भरतके पवित्र गुण और कर्मों
महज्जन भी प्रशंसा करते हैं । उनका यह चरित्र वर
कल्याणकारी, आयु और धनकी वृद्धि करनेवाला, धर्ममें
सुपुत्र बढानेवाला और अन्तमें स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति
करानेवाला है । जो पुरुष इसे सुनता या सुनता है
और इसका अभिनन्दन करता है, उसकी सारी कर्मप्रति
त्तय ही पूर्ण हो जाती है, दूसरोंसे उसे कुछ भी नहीं
मँगाना पड़ता ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविकरणं

नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

भरतके वंशाक्ष वर्णन

श्रीशुक उवाच

भरतस्तत्त्वजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु इ वाय
केचित्पात्राणि च भूपभृदधीमनुवर्तमानं चानार्या
अवेदसमाम्नातां दत्तां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ
कल्पयिष्यन्ति ॥ १ ॥ तस्माद् ब्रह्मसेनायां देवता-
स्त्रिन्नाम पुत्राऽभवत् ॥ २ ॥ अथासुरा यो तदनया
देवपुत्रमतो धेनुमत्स्यां सुत परमप्री तस्य
सुवर्षाणां प्रतीह उपजात ॥ ३ ॥ य आत्मविद्या

श्रीशुकदेवकी कहते हैं—राजन् ! भरतकीका पुत्र
सुमति था, यह पहले कहा जा चुका है । उसने भूप-
देवकीके मार्गाक्ष अनुसरण किया । इसीविषये कविगुणों
बहुतसे पाक्षध्वी अनार्य पुरुष अपनी दृष्ट बुद्धिसे
बेविकर कल्पना करते उसे देवता मारगे ॥ १ ॥
उसकी पत्नी ब्रह्मसेनासे देवताविष्णु नामक पुत्र हुआ ॥ २ ॥
देवताविष्णुके असुरीके गर्भसे देवपुत्र, देवपुत्रके धेनुमतीसे
परमप्री और उसके सुवर्षाणके गर्भसे प्रतीह नामक पुत्र
हुआ ॥ ३ ॥ इसने अन्य पुरुषोंको आत्मविद्या उपदेश

१ प्र या—स्वर्षाणां २ प्र या—प्राप्त्यति होवाभिनन्दति । ३ प्र या—प्रतीहार ।

मास्याय स्वयं सद्योदो महापुरुषमनुससार ॥४॥

प्रतीहन्तुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादियज्ञाय आसभिन्वा-

कोविदाः सन्व प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजमूमाना

वज्रनिपाताम् ॥५॥ भूमं अधिष्ठन्त्याममृहीयस्ततः

प्रस्तावो देवकुन्त्यायां प्रस्तावाभिपुत्सायां इदमज

आसीद्विसृष्टिमो रत्यां च पृथुपेणस्तपाभक्त

आकृत्या जज्ञ नक्तात् हुविपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर

उदत्तभवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगत्

रिरक्षियया गृहीतसस्वस्व कलाऽऽत्यवत्त्वादिलक्षणेन

महापुरुषतां प्राप्ताः ॥६॥ स च स्वधर्मेण प्रजापालन

पौयणश्रीजनोपलनानुष्ठासनलक्षणेनेज्यादिना च

भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनः

वितपरमार्थलक्षणं ब्रह्मविद्यायां लक्षणं प्रादित

भगवत्प्रक्रियोगेन चामीक्ष्णश्च परिभाषितातिष्ठद्

मतिक्रपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्म-

स्मानुभवाऽपि निरभिमान एवावनिमज्जुपत् ॥७॥

तस्मैनां गावां पाण्डवेष पुराविद उपगायन्ति ॥८॥

गयं नृप क प्रतियाति कर्मभि

र्यन्वाभिमानी बहुविदमर्गोत्ता ।

समागतभी सदसस्पतिः सर्वा

सत्सेवकोऽन्या भगवत्कलाधृत ॥९॥

यमम्पविधन् परया मुदा सतीः

१ मा पा—शुद्धी । २ मा पा—मतीहारात् । ३ मा पा—मत्तावादिस्तथा इदमजय मती ।

४ मा पा—स च धर्मेण प्रजा । ५ मा पा—इवाव ।

कर स्वयं शुद्धचित्त होकर परमपुरुष श्रीनारायणका

साक्षात् अनुभव किया था ॥ ४ ॥ प्रतीहकी भार्या

सुवचलाके गर्भसे प्रसिद्धार्त, प्रस्तोता और उद्गाता

नामके तीन पुत्र हुए । ये यज्ञादि कर्ममें बहुत निपुण

थे । इनमें प्रतीहर्तकी भार्या स्तुति पी । उसके

गर्भसे अब और भूमा नामक दो पुत्र हुए ॥ ५ ॥ भूमाके

अधिष्ठन्त्यासे उद्गीत, उसके देवकुन्त्यासे प्रस्ताव और

प्रस्तावके नियुक्ताके गर्भसे विश्व नामका पुत्र हुआ ।

विश्वके रतिके उदरसे पृथुपेण, पृथुपेणके आकृतिसे नक्त

और नक्तके दुतिके गर्भसे उदारकीर्ति राजर्षिप्रवर गयका

जन्म हुआ । ये नगत्की रक्षाके लिये सत्पुण्यको स्वीकार

करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश माने जाते

थे । समयादि अनकों गुणोंके कारण इनकी महापुरुषोंमें

गणना की जाती है ॥ ६ ॥ महाराज अपने प्रजाका

पालन, पोषण, रक्षण, शब्द-वच और शासनादि करके

तथा तरह-तरहके यज्ञोंका अनुष्ठान करके निष्क्रममाणसे

केवल भगवत्प्रक्रियेके लिये अपने धर्मोंका आचरण किया ।

इससे उनके सभी कर्म सर्वश्रेष्ठ परमपुरुष परमात्म

धीहृदिके अर्पित होकर परमार्थरूप बन गये थे । इससे

तथा ब्रह्मवेत्ता महापुरुषोंके चरणोंकी सेवासे उन्हें भक्ति-

योगकी प्राप्ति हुई । तब निरन्तर भगवन्निस्तन करके

उन्होंने अपना चित्त शुद्ध किया और चेष्टादि अनात्म-

वस्तुओंसे अहंभाव हटाकर वे अपने आत्माको ब्रह्मरूप

अनुभव करने लगे । यह सब होनेपर भी वे निरन्तर

होकर पृथ्वीका पालन करते रहे ॥ ७ ॥

परीक्षित । प्राचीन इतिहासको जाननेवाले महात्माओं-

ने राजर्षि गयके नियमों यह गया कही है ॥ ८ ॥

अहो ! अपने कर्मोंसे महाराज गयकी बराबरी और

कोम राजा कर सकता है । वे साक्षात् भगवान्की

कृपा ही थे । उन्हें छोड़कर और कोम इस प्रकार

यज्ञोंका विधिपूर्व अनुष्ठान करनेवाला, मनस्वी, बहुब्र-

ह्मर्षी रक्षा करनेवाला, ब्रह्मर्षीका प्रियपुत्र, साधुसमाज-

का शिरोमणि और सपुत्रोंका सच्चा सेवक हो सकता

है ॥ ९ ॥ सत्यसङ्कल्पाधी परम साध्वी श्रद्धा, मैत्री

सत्याशिपो दक्षकन्याः सरिद्धिः ।

यस्य प्रजानां दुग्धं धराऽऽश्रिपो

निरोक्षिपो गुणवत्सस्तुतोभा ॥१०॥

छन्दांसकामस्य च यस्य कामान्

दुग्धुराम्बुदुरधो वसिष्ठं नृपाः ।

प्रत्यक्षिषा युधि धर्मेण विप्रा

यदाशिपो पृथुमंथं परस्य ॥११॥

यस्याध्वरे भगवानम्बरस्तथा

मधोनि माघस्युरुसोमपीये ।

भद्राविष्णुमाचलभक्तिभोग

समीपितेज्जाफलमाचहार ॥१२॥

मत्प्रीणनैर्हर्षिणि देवसिर्मन्त्र

मनुष्यवीरुपूजमाभिरिञ्चात् ।

प्रीयेत सद्यः स ह विश्ववीधः

प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्भयस्य ॥१३॥

गयाद्भयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति

त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राज्यजनिट

॥ १४ ॥ तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्विन्दुमस्यां

विन्दुमानुदपद्यत वस्मात्सरथायां मधुर्नामाभयन्मधोः

सुमेनसि वीरव्रतस्ततो भोजायां मन्धुप्रमन्यु उज्जाते

मन्याः सत्यायां भौवनस्ततो दूषणायां स्वष्टाजनिट

त्वष्टुर्विराचनायां विरचो विरचस्य सप्तजिह्वधर

पुत्रशतं कन्या च विपुण्यां किल जातम् ॥१५॥

१ मा पा — मयेच्छा । २ मा पा — भर्षेत् । ३ मा पा — समपितेज्या । ४ मा पा — कलायां

वर्हिनि । ५ मा पा — मुमनया । ६ मा पा — विपुण्यां ।

वीर दया आदि दक्षकन्याओंने गङ्गा आदि मरी

सहित वर्षी प्रसभतासे उनका धर्मिक नियम

उमकी इच्छा न होनेपर भी अनुचरने, गी निस ।

मछन्नेके स्नेहसे पिन्हाकर दूध देती है, उसी ।

उनके गुणोंपर शीघ्रकर प्रयास घन-यनादि सब

पदार्थ दिये थे ॥ १० ॥ उन्हें कोई क्षमा न

थी वेदोक्त कामेनि हमको सब प्रकारके मेम

राजाओंने युद्धस्थलमें उनके बाणोंसे उत्तम

नाना प्रकारकी मेटें दीं तथा ब्रह्मर्षिने दक्षिणादि

सन्तुष्ट होकर उन्हें परस्त्रीकर्म मिथनेवाले बनने का

छटा अंश दिया ॥ ११ ॥ उनके धर्म बहुत ही

सोमपात्र करनेसे इन्हें उत्तम हो गये थे, तब ऊ

क्षय्यत ब्रह्मा तथा विष्णु और नित्यक मन्त्रि

समर्पित किये हुए यज्ञफलसे भगवान् पशुपतिसे

प्रकट होकर प्राण किया था ॥ १२ ॥ निन्दके उस

ब्रह्माजीसे लेकर देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, इ

दृष्टार्थन्त सभी जीव तत्काळ दूत हो जाते हैं—

विद्यात्मा श्रीहरि नित्यदूत होकर भी उन्हीं गये

दूत हो गये थे । इसलिये उनकी कबरी कोई एक

व्यक्ति कैसे कर सकता है ? ॥ १३ ॥

महासत्र गमके गम्भीरके गर्भसे चित्ररथ, दुर्वा

और अवरोध नामक तीन पुत्र हुए । उनमें चित्ररथ

पत्नी उष्मासे सभाटका जन्म हुआ ॥ १४ ॥ उसके

उत्पत्त्यसे मरीचि और मरीचिके विन्दुमतीसे विन्दु

नामक पुत्र हुआ । उसके सरबासे मधु, मधुके सुमन्ते

वीरव्रत और वीरव्रतके भोजासे मन्धु और मन्धु

रूपसे पुत्र हुए । उनमेंसे मधुके सप्यके गर्भसे मैत्र

वीरव्रत और मरिचके विपुषी नामकी भगवति उत्प

तत्राय क्लोकः—

प्रेयव्रत वंशमिमं विरजभरमोद्भवः ।

अक्रोदत्यलं क्रीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

विरजके विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—‘निस प्रकार भगवान् विष्णु देवताओंकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार इस प्रियव्रत-वंशको इसमें सबसे पीछे उत्पन्न हुए राजा विरजने अपने सुयशसे विमूषित किया था ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संक्षिप्तार्थां पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रत

वंशनुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ पोटशोऽध्याय

मुक्तामकोद्याका वर्णन

राजोवाच

उक्तस्त्वया भूमण्डलापामविशेषो यावदादित्य
स्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह
वृष्यते ॥ १ ॥ तत्रापि प्रियव्रतवधचरणपरिस्तातै
सप्तभिः सप्त सिन्धव उपकल्लता यत एतैस्त्राः
।। तद्दीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचित
।। तदेवास्मिन्महं मानसो लक्षणतश्च सर्वं वि
वेद्मिहामि ॥ २ ॥ भगवतो गुणमये स्थूलरूप आ-
श्रित्व मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे
वक्ष्यमि भगवति वासुदेवाख्ये धर्ममाश्रितुं तद्व
त्तव गुरोर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥

कपिलवाच

न वै महाराज भगवतो मायगुणविभूतेः
क्षणां मनसा वक्षसा बाधिगन्तुमलं विषुधायुषापि
धुरण्यस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूप
मानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥ यो वार्य
द्वीप ऊबलयकमलकोशाम्बन्तरकोशो नियुतयोजन-
विशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥

राजा परीक्षितने कहा—‘मुनिवर ! जहाँतक सूर्यका प्रकाश है और जहाँतक तारागणके सहित चन्द्रदेव दीप्त पड़ते हैं, जहाँतक आपने भूमण्डलका विस्तार बतलाया है ॥ १ ॥ उसमें भी आपने बतलाया कि महाराज प्रियव्रतके रथके पहियोंकी सप्त ढीलोंसे सात समुद्र बन गये थे, जिनके कारण इस भूमण्डलमें सात द्वीपोंका विभाग हुआ । अतः भगवन् ! अब मैं इन सबका परिणाम और लक्षणोंके सहित पूरा विवरण जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥ क्योंकि जो मन भगवान्के इस गुणमय स्थूल विग्रहमें लग सकता है, उसीका उनके वासुदेवसंज्ञक स्वरूपप्रकाश निर्गुण शरीररूप सूक्ष्मतम स्वरूपमें भी अगना सम्भव है । अतः गुरुवर ! इस विषयका विशदरूपसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—‘महाराज ! भूतानुकी मत्पाके गुणोका इतना विस्तार है कि यदि कोई पुरुष देवताओंके समान आसु पा ले, तो भी मन या बाणीसे इसका अन्त नहीं पा सकता । इसलिये हम नाम, रूप, परिणाम और लक्षणोंके द्वारा मुख्य-मुख्य बातोंको लेकर ही इस भूमण्डलकी विवेकताओंका वर्णन करेंगे ॥ ४ ॥ यह जन्तुद्वीप—निसमें हम रहते हैं—भूमण्डलरूप पत्रके कोशस्थानीय जो सात द्वीप हैं, उनमें सबसे भीतरका कोश है । इसका विस्तार एक लाख योजन है और यह कामण्यके समान गोलाकार है ॥ ५ ॥

यस्मिन् नवपावनसहस्रायामान्यष्टभि
मयादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥ एषां
मध्ये इलावृत नामाभ्यन्तरवर्षे यस्य नाम्यामवसितः
सर्वतः सौवर्ण्य इलगिरिराजो मेरुर्द्धीपायामसमुद्राह
कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य भूर्धनि द्वाविंशत्
सहस्रयोजनवितता मूले पादसहस्रं सावसान्त
भूम्यां प्रविष्टः ॥ ७ ॥ उत्तरोत्तरेणेलाभूत नीलः
भवतः भृङ्गानिति त्रयाश्म्यकदिरम्यकुन्दां वपाणां
मयादागिरयः प्रागायता उभयतः द्युतोदत्वधयो
दिमेहस्यपृथक् एकैकं पूर्वमात्पूर्वसादुत्तर उत्तरे
दशांशान्धिमंशनं दर्प्यं त्व इहन्ति ॥ ८ ॥

एव दक्षिणतलावृत निपथा इमस्या हिमालय
इति प्रागायता यथा नीलादयाऽयुतयोजनोत्सेधादिर
वपस्त्रिपुण्यभागतानां यथामन्यम् ॥९॥ वर्षवत्त-
श्चतस्रश्च पूर्वैष च मान्यवद्भूमिमादनावातील
निपथायता दिमोर्ध्वं वप्रथतु पतुमान्भद्राक्षया
मीमानं सिद्धाव ॥ १० ॥ मन्दरा मरुमन्दर
गुणाम् इमं इयपुनपावनविमगायता
मगधुर्दिगमरदम्भमिग्य उपकम्पा ॥ ११ ॥
पुण्येनैव गमयन्त्यस्त्रयप्रभाधम्याः पादप
प्रसा परवत्तर इतिगमद्वयपावनोप्रादामारु

इसमें नी-नी इमार योजन विस्तारवाले नी की
इनकी सीमाओंका विभाग करनेवाले ऋतु पर्वत
हूए हैं ॥ ६ ॥ इसके बीचों-बीच इलावृत नामका
वर्ष है, जिसके मध्यमें कुलपर्वतोंका राजा मेरुपर्व
वह मानी भूमण्डलरूप कमलकी कर्णिका ही है
उपरसे नीचेतक सात-अठ-सात सुवर्गमय है जो
मगध योजन ऊँचा है । उसका विस्तार दिग्भ्रम
इमार और तट्टीमें सोलह इमार योजन है तथा
इमार योजन ही वह भूमिके भीतर पुष्प इम
वर्षात भूमिके बाहर उसकी ऊँचाई चैतनी
योजन है ॥ ७ ॥ इलावृतवर्षके उत्तरमें कम्पा
ज्वेल और भृङ्गान् नामके तीन पर्वत हैं—जो ।
दिरम्प और कुकु नामके बर्षाकी सीमा बाँधने हैं
पूर्वसे पश्चिमतक खारे पानीके समुद्रतक फैले हुए
उनमेंसे प्रत्येककी चौड़ाई दो इमार यावन है
लम्बाईमें पहिलेकी अपेक्षा निम्नका कम्पा दम्पाउते
अधिक कम है, चौड़ाई और ऊँचाई ता स
समान है ॥ ८ ॥

इसी प्रकार इलावृतके दक्षिणकी ओर एकके
एक निपथ, इमकूट और हिमालय नामके तीन पर्वत
नीचादि पर्वतोंके समान ये भी पूर्व-पश्चिमकी ओर
हूए हैं और दस-अठ इमार योजन ऊँचे हैं । इनमें का
दिरवर्ष, किम्पुका और आतर्षणी सीमाओंका वि
होता है ॥ ९ ॥ इसपुनने पूर्व और पश्चिमकी ओर
उत्तरमें नी-पर्वत और दक्षिणमें निपथ पर्वत
हूए गन्धमात्म और मान्यवान नामके दो पर्वत ।
इनकी चौड़ाई दस-अठ इमार यावन है और वे दस
पच पञ्चमात्र नामके दो बर्षाकी सीमा निश्चित
हैं ॥ १० ॥ इसके निचा मन्दर देवद्वारा हूए
और गुणाम्—य चार नामके इमार यावन उभे ।
उनकी ही चौ, पर्वत मन्दराओ के पर्वत पृथि
गनाम बन हूए हैं ॥ ११ ॥ इन पर्वतों के उत्तर
मगधोर्ध्व मगध मगध मगध मगध मगध मगध
वह चार पर्वत हैं । इनमें का दस-अठ इमार

विटपविस्तृतयः श्रुतयोजनपरिणाहा ॥ १२ ॥
 हृदाभत्वार पयोमध्विभुरसमृष्टजला
 यद्रुपस्पृग्निन उपदेवगगा योर्मध्वर्षाणि म्वा
 भाषिकानि भरतर्पभ धारयन्ति ॥ १३ ॥ वेरो
 द्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दन
 चैत्ररथ वैभ्राजकं सवसोमद्रमिति ॥ १४ ॥ ये'ष्वमर
 परिहृष्टा सह सुरललनाललामपूयपतय उपदेवगर्ग
 रूपगीबमानमहिमान किल विहरन्ति ॥ १५ ॥

मन्दरोत्पन्न एकादशश्रुतयाजनात्तुङ्गदेवचूतशिर
 सो गिरिशिखरस्पूलानि फत्रा यमृतकल्पानि पतन्ति
 ॥ १६ ॥ तर्षा विमोर्षमाषानामतिमधुरसुरभिमुगधि
 बहुलारुणरैमोदेनारुणोद्गा नाम नदी मन्दरगिरि
 शिखराभिपतन्ता पूर्वजलावृतमुपप्लावयति ॥ १७ ॥
 यद्रुपजोषणाद्भवान्या अलुचराणां पुष्पजनवधूनाम
 वयवस्पर्शमुगधवातो दक्षमाजन समन्तादनुश्राम
 यति ॥ १८ ॥ एव जम्बूकजानामन्युषानिपातविशीर्णा
 नामनन्मिप्रायाणामिमकायनिमानां रसेन जम्बू नाम
 नदी मरुमन्दरशिखरादयुतयोजनद्वानितले नि
 पतन्ती दक्षिणमात्मन यावदिलावृतमुपस्पर्न्दयति
 ॥ १९ ॥ तावदुभयारवि राधमाषा मुषिका सद्रसेना
 नुविष्यमाना यार्श्कमयोगयिपाकन सर्दामर
 लोकाभरण जाम्बूनर्द नाम सुवर्ण भवति ॥ २० ॥

ऊँचा है और इतना ही इनकी शाखाओंका विस्तार है ।
 इनकी गोलाई सौ-सौ योजन है ॥ १२ ॥ भरतग्रथ ।
 इन पर्वतोंपर चार सरोवर भी हैं—जो क्रमशः दूध,
 मधु ईश्वरके रस और भीठे जम्बूसे भरे हुए हैं । इनपर
 सेवन करनेवाले यक्ष-किन्नरादि उपदेवोंको खमावसे ही
 योगसिद्धियाँ प्राप्त हैं ॥ १३ ॥ इनपर क्रमशः नन्दम,
 चत्ररथ, वैभावक और सर्पतोम्र नामके चार दिव्य
 उपवन भी हैं ॥ १४ ॥ इनमें प्रधान-प्रधान देवगण
 अनेकों सुरसुन्दरियोंके नाचक बनकर साय-साय विहार
 करते हैं । उस समय गन्धर्वादि उपदेवगण इनकी
 महिमाका बखान किया करते हैं ॥ १५ ॥

मन्दराचलकी गोदमं जो ग्यारह सौ योजन ऊँचा
 देवताओंका आश्रय है, उससे गिरिशिखरके समान
 बड़े-बड़े और अमृतके समान स्वादिष्ट फल गिरते
 हैं ॥ १६ ॥ वे जब फटते हैं, तब उनसे बड़ा सुगन्धित
 और मीठा रस-काष्ठ रस बहना लगता है । वही अरुणोद्गा
 नामकी नदीमें परिणत हो जाता है । यह नदी मन्दराचल-
 के शिखरसे गिरकर अपने जलसे इलावृतवर्षके पूर्वी
 भागको सींचती है ॥ १७ ॥ श्रीपार्वतीजीकी अनुचरी
 यक्षपत्नियाँ इस जलका संवन करती हैं । इससे उनके
 अङ्गोंसे ऐसी सुगन्ध निकलती है कि उन्हें तर्षा करक
 बहनेवाली वायु उनके चारों ओर दस-दस योजनतक
 सारे देशको सुगन्धसे भर देती है ॥ १८ ॥ इसी
 प्रकार जाम्बूनके वृक्षसे हाथीके समान बड़े-बड़े प्रायः
 बिना गुठरीके फल गिरते हैं । बहुत ऊँचेसे गिरनेके
 कारण वे फट जाते हैं । उनके रससे जम्बू नामकी
 नदी प्रकट होती है, जो मेरुमन्दर पर्वतके दस हजार
 योजन ऊँचे शिखरसे गिरकर इलावृतके दक्षिणी पू भाग
 को सींचता है ॥ १९ ॥ उस नदीके दोनों किनारोंकी
 मिट्टी उस रससे मीठकर जब वायु और सूर्यके संयोगसे
 सुख जाती है, तब वही देवद्योकको विमूषित करनेवाला
 जाम्बून नामका सोना बन जाती है ॥ २० ॥

१ प्रा पा — हृदाभत्वारिहृत् । २ प्रा पा — देवगिरिशिखरो । ३ प्रा पा — रणेन नभाषका नाम ।
 ४ प्रा पा — यद्रुपस्पृग्नि । प्रा पा — येनानुविष्यमाना य वाप्य । ५ प्रा पा — यदा चामरका
 भरणे ।

मदु इ वाव विमुधादयः सह युवतिभिर्हृष्टकटक-

फण्डिश्वाद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिकटो मास्तस्य कोटरे

म्या विनिःसृता पञ्चासामपरिणाहाः पञ्च मधुधारा

सुपाश्वक्षिस्त्राः पतन्त्याऽपरेणात्मानमिलावृतमनु

मोदयन्ति ॥२२॥ यो मधुपशुञ्जानानां ह्रस्वनिर्घासितो

पायु समन्ताच्छतयोजनमनुवा मयति ॥२३॥

एव कुमुदनिरुद्धो य छतवत्स्रो नाम

घटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृत

गुंडाकाद्यम्बरस्रम्यासनाभरणादयः सर्व

एव कामदुषा नदा कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरणेला-

वृतमुपयोजयन्ति ॥२४॥ आनुपशुपालानां न कदा-

पिदपि प्रजानां बलीपलितकलमस्वेददौर्गन्धजरा

मयमृर्युधीतोष्णवैवर्भ्योपसर्गादयस्तापविशेषा

भयन्ति यावज्जाय सुखं निरविद्यममेव ॥ २५ ॥

कुरङ्गद्वारकुमुदमर्ककृत्रिकूटशिशिरपतङ्ग-

रुचकनिपधन्विनीवासकपिलसङ्गवदूर्यजाकधिईस

र्षभनागस्रलङ्कारनटाया विशतिभिर्गम्या मरा

कर्णिकाया इव कञ्जरभृता मूलदक्ष परित

उपकन्ता ॥ २६ ॥ जठरदेषज्जगो मरु

पूर्वेणाष्टाश्रयाजनमहम्मधुदगापतो दिग्महम्

शृधुतुर्भा भवत । एवमपरण पवनपारियात्रो

इसे देखा और गन्धर्वगि अपनी तरुणी शिपोंके सहित
मुकुट, कङ्कण और करधनी आदि वामूषणोंके रूप
धारण करते हैं ॥ २१ ॥

सुपार्श्व पर्वतपर जो विशाल कदम्बवृक्ष है, उसके
पाँच कोटरोंसे मधुकी पाँच धाराएँ निकलती हैं, उन
मोटाई पाँच पुरसे जितनी है । ये सुपार्श्वके शिखर
गिरकर इत्यवतर्णके पश्चिमी मागको अपनी क्षुब्ध
सुपाशित करती हैं ॥ २२ ॥ जो लोग इनका स्तुप
करते हैं, उनके मुखसे निकलनी हुई वायु अपने प
ओर सौ-सौ योजनतक इसकी महक फैला देती है ॥ २३ ॥

इसी प्रकार कुमुद पर्वतपर जो हस्तकेश नाम
वृक्ष है, उसकी जड़ोंसे नीचेकी ओर बहनेवाले कं
नद निकलते हैं, वे सब इच्छानुसार माग देनेवाले
उनसे दूध, दही, मधु, घृत, गुड़, जल, जल, शर्करा
आसन और वामूषण आदि सभी पदार्थ मिल जाते
हैं । ये सब कुमुदके शिखरसे गिरकर इच्छानुसार व
भागको सींचते हैं ॥ २४ ॥ इनके दिये हुए पात्रों
उपयोग करनेसे बहोती प्रजाकी लक्ष्मणों धुरिनी
जाना, बाध पक जाना, यकज होना, शरीरमें पर
आना तथा दुर्गन्ध निकलना, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, द
ग्रहीकी पीड़ा, शरीरका कर्त्तव्यहीन हो जाना तथा
कष्टना आदि कष्ट सभी नहीं सहाते और
जीवनपर्यन्त पूरा पूरा सुख प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

यज्जग ! कमलकी कर्णिकाके चारों ओर जैसे
होता है—उसी प्रकार मेरुके मूलदेशमें उसके
चार कुरङ्ग द्वार, कुमुद, कर्कट, त्रिकूट, शिशिर व
रुचक, निरख, शिनीवास कपिक, इष्ट वैद्य, ज
हम, श्रवण, माग, कञ्जकर और मारु आदि बीस
आर हैं ॥ २६ ॥ इनके सिवा मेरुके पूर्वकी ओर
और पश्चिम नामके दो पर्वत हैं, जो जठरद-ज
हजार योजन लंबे तथा दो-आ हजार योजन
और ऊँचे हैं । इसी प्रकार पश्चिमी ओर पल

१ मा पा — गङ्गापुत्रादिभिः । २ मा पा — निकलनेवाले पात्र कोट । ३ मा पा — म
रुचक । ४ मा पा — यज्जग । ५ मा पा — युजनिपधन्विभिः । ६ मा पा — नितीन । ७ मा पा
गुणधाम्मरागा । ८ मा पा — युज । ९ मा पा — नीरदायमा । १० मा पा — नितीन । ११ मा पा — नितीन । १२ मा पा — नितीन । १३ मा पा — नितीन । १४ मा पा — नितीन । १५ मा पा — नितीन । १६ मा पा — नितीन । १७ मा पा — नितीन । १८ मा पा — नितीन । १९ मा पा — नितीन । २० मा पा — नितीन । २१ मा पा — नितीन । २२ मा पा — नितीन । २३ मा पा — नितीन । २४ मा पा — नितीन । २५ मा पा — नितीन । २६ मा पा — नितीन । २७ मा पा — नितीन । २८ मा पा — नितीन । २९ मा पा — नितीन । ३० मा पा — नितीन । ३१ मा पा — नितीन । ३२ मा पा — नितीन । ३३ मा पा — नितीन । ३४ मा पा — नितीन । ३५ मा पा — नितीन । ३६ मा पा — नितीन । ३७ मा पा — नितीन । ३८ मा पा — नितीन । ३९ मा पा — नितीन । ४० मा पा — नितीन । ४१ मा पा — नितीन । ४२ मा पा — नितीन । ४३ मा पा — नितीन । ४४ मा पा — नितीन । ४५ मा पा — नितीन । ४६ मा पा — नितीन । ४७ मा पा — नितीन । ४८ मा पा — नितीन । ४९ मा पा — नितीन । ५० मा पा — नितीन । ५१ मा पा — नितीन । ५२ मा पा — नितीन । ५३ मा पा — नितीन । ५४ मा पा — नितीन । ५५ मा पा — नितीन । ५६ मा पा — नितीन । ५७ मा पा — नितीन । ५८ मा पा — नितीन । ५९ मा पा — नितीन । ६० मा पा — नितीन । ६१ मा पा — नितीन । ६२ मा पा — नितीन । ६३ मा पा — नितीन । ६४ मा पा — नितीन । ६५ मा पा — नितीन । ६६ मा पा — नितीन । ६७ मा पा — नितीन । ६८ मा पा — नितीन । ६९ मा पा — नितीन । ७० मा पा — नितीन । ७१ मा पा — नितीन । ७२ मा पा — नितीन । ७३ मा पा — नितीन । ७४ मा पा — नितीन । ७५ मा पा — नितीन । ७६ मा पा — नितीन । ७७ मा पा — नितीन । ७८ मा पा — नितीन । ७९ मा पा — नितीन । ८० मा पा — नितीन । ८१ मा पा — नितीन । ८२ मा पा — नितीन । ८३ मा पा — नितीन । ८४ मा पा — नितीन । ८५ मा पा — नितीन । ८६ मा पा — नितीन । ८७ मा पा — नितीन । ८८ मा पा — नितीन । ८९ मा पा — नितीन । ९० मा पा — नितीन । ९१ मा पा — नितीन । ९२ मा पा — नितीन । ९३ मा पा — नितीन । ९४ मा पा — नितीन । ९५ मा पा — नितीन । ९६ मा पा — नितीन । ९७ मा पा — नितीन । ९८ मा पा — नितीन । ९९ मा पा — नितीन । १०० मा पा — नितीन ।

दक्षिणेन कैलासकरबीरौ प्रागायतावेवमुत्तर
 श्चिन्ममकरावष्टभिरेतः परिस्तृतोऽग्निरिष परित
 श्चकान्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥ मेरोर्मूर्धनि भगवत
 आत्मयोनेर्मध्यत उपकल्पतां पुरीमधुतयाजनसाहस्रीं
 समचतुरस्रां श्वातकैर्मभीं षदन्ति ॥२८॥ तामनु
 परितो लोकपालानामधनां यथादिशं यथारूप
 नुरीयमानेन पुरोऽष्टाष्टपत्न्याः ॥२९॥

पारियात्र, दक्षिणकी ओर कैलास और करवीर तथा
 उत्तरकी ओर विश्वरूप और मकर नामके पर्वत हैं । इन
 आठ पहाड़ोंसे चारों ओर घिर हुआ सुवर्णगिरि मेरु अग्निक
 समान जगमगता रहता है ॥ २७ ॥ कहते हैं, मेरुक
 शिखरपर बीचोंबीच भगवान् ब्रह्माजीकी सुवर्णमयी पुरी
 है—जो आकारमें समचौरस तथा कठोब घोमन विस्तारवाली
 है ॥ २८ ॥ उसके नीचे पूर्वदिशा आठ दिशा और
 उपदिशाओंमें उनके अविपत्ति इन्द्रादि आठ लोकपालोंकी
 आठ पुरियाँ हैं । वे अपने अपने स्वामीके अनुरूप
 उड़ी-उन्हीं दिशाओंमें हैं तथा परिमाणमें ब्रह्माजीकी
 पुरीसे चौपाई हैं ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां पञ्चमस्कन्धे
 मुक्ताकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

गङ्गाजीका विवरण और भगवान् शङ्करकृत सत्कर्षणदेवकी स्तुति

श्रीगुरु उवाच

तत्र भगवतः साक्षापह्निलिङ्गस्य विष्णोर्बिक्रमतो
 वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाङ्गकटाहविधरेणान्तः
 प्रविष्टा या बाह्यजलधारा तथारण्यपङ्कजावनेजना-
 रुणकिङ्करूपपरञ्जिताखिलजगद्वधमलापहोपस्पृशना-
 मला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीय
 मानादिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणैर्न दिवो
 मूर्धन्यवततार यच्चद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥ यत्र ह
 वाय वीरव्रत औत्तानपादि परमभागवतोऽसत्कल
 देवताधरणारविन्दोदकमिति यामनुसन्धनमुत्कृष्य
 मागभगवत्प्रतियोगेन हर्षं क्रियमानान्तर्हृदय
 औत्कण्ड्यविषयमीलितलोचनपुगलकुहमलविगलित-

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—एजन् ! जब एजा बलि-
 की यज्ञशालामें साक्षात् पद्ममूर्ति भगवान् विष्णुन त्रिलोकी
 को नापनेके लिये अपना पैर फैलाया, तब उनके चारों
 पैरोंके अङ्गुठोंके नखोंसे ब्रह्माण्डकटारहका ऊपरका भाग
 काट गया । उस छिद्रमें होकर जो ब्रह्माण्डसे बाहरके
 जलकी धारा आयी, वह उस धरणकमलको घेरेसे उसमें
 लगी हुई केसरके मिल्नेसे खाल हो गयी । उस निर्मल
 वाराका स्पर्श होते ही संसारके सारे पाप नष्ट हो जाते
 हैं, किन्तु वह सर्वथा निर्मल ही रहती है । पहले किसी
 और भागसे न पुष्करकट उसे 'मगलपदी' ही कहते
 थे । वह धारा हजारों युग भीननेपर स्वर्गके शिरोभागमें
 स्थित ध्रुवलोकेमें उतरी, जिसे 'विष्णुपद' भी कहते
 हैं ॥ १ ॥ भीरवत परीक्षित् ! उस ध्रुवलोकेमें उत्तान
 पादके पुत्र परम भागवत ध्रुवजी रहते हैं । वे नित्यप्रति
 कहते हुए मक्ति-भावसे यह 'हमारे कुलदेवताका चरणो
 दक है' ऐसा मानकर लाभ भी उस जन्ममें बढ़ आइसे
 स्तिरपर बहाते हैं । उस समय प्रेमान्देशक कारण उनका

मलवाप्यकलयाभिव्यज्यमान्रोमपुलककुलकोऽधुना
पि परमादरेण खिरसा विभर्ति ॥ २ ॥

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां
ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेसावही
मगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपगतभक्ति
योगलामेनैवोपेक्षितान्यार्शतमगतयो मुक्ति
मिवागतां मुमुक्षुष इव सप्तहुमानमद्यापि जटा-
जटैरुद्धहन्ति ॥ ३ ॥ ततोऽनेकसहस्रकान्निविमाना
नीकसङ्कुलदशयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमाधार्य ब्रह्म
सदने निपतति ॥ ४ ॥

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभि-
श्चतुर्दिशमभिस्यन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभि-
निविशति सीतालफनन्दा चक्षुर्मन्त्रति ॥ ५ ॥
सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिश्चिन्मरम्यो
ऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धमु पतिस्थान्तरेण
भद्राश्चवप प्राच्यां दिशि धारममुद्रमभिप्रविशति
॥ ६ ॥ एव मारुपयच्छिखरान्निष्पतन्ती ततो-
ऽनुपगतवगा केतुमालमभि चक्षु प्रतीच्यां दिशि
सरित्पतिं प्रविशति ॥ ७ ॥ भद्रा चोत्तरवा मेरुधिरसो
निपतिता गिरिश्चिखराद्विरिश्चिखरमतिहाय शृङ्गवतः
शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरुनभित उदीच्यां
दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥ ८ ॥ तथैवालफनन्दा
दक्षिणन मग्नमदनाद्बहूनि गिरिकूटापतिक्रम्य
हेमकूर्द्धमहूटान्यतिरभसतरङ्गसा सुठयन्ती मा-
स्तमभि वर्ष दक्षिणस्यां दिशि जैरुधिमभिप्रविशति
येस्यां क्षान्तार्थं प्रागच्छत पुंस पद पदऽधमभराज-

हृदय अस्थित गद्गद हो जाता है, उत्कण्ठित भक्त
मुँहें हुए दोनों नयन-कमलमें निर्मल आँसुओंकी कण
बहने लगती है और शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है ॥ २ ॥

इसके पचाह् आत्मनिष्ठ सतिर्गुण उनका प्रभाव
ज्ञाननके कारण यही तपस्याकी ध्यात्यन्तिक सिद्धि है
ऐसा मानकर उसे आश भी इस प्रकार बादरके
अपन जटाजटपर जैसे ही धारण करत हैं वैसे मुमु-
क्षु जन प्राप्त हुए मुक्तिको । यों ये वने ही निकट है,
सर्वात्मा मगवान् वासुदेवकी निश्चल भक्तिको ही अपना
परम धन मानकर इन्होंने अन्य सभी कामनाओंको त्याग
दिया है, यहाँतक कि आत्मज्ञानको भी ये उत्कृष्ट सम्प-
त्ति कोई चीज नहीं समझत ॥ ३ ॥ वहाँसे गङ्गाजी कोसे
विमानोंसे घिरे हुए आकाशमें होकर उतरती हैं और
चन्द्रमण्डलको आव्याकित करती मेरुक शिखरपर प्रपु-
र्ण गिरती हैं ॥ ४ ॥

वहाँ ये सीता, अश्वत्थामा, बभ्रु और
मद्रा नामसे चार धाराओंमें विभक्त हो जाती हैं
तथा अस्या-अस्या चारों दिशाओंमें बहती हुई कर्त्त-
नद-नदियोंके अधीन समुद्रमें गिर जाती हैं ॥ ५ ॥
इनमें सीता ब्रह्मपुत्रीसे गिरकर केसराक्षोंके सङ्घ
शिखरमें होकर नीचेकी ओर बहती गन्धमादनके शिखरमें
गिरती है और भद्रावर्षको प्लावित कर पूर्वकी ओर
बहने समुद्रमें मिल जाती है ॥ ६ ॥ इसी प्रकार चक्षु
मारुपयान्के शिखरपर पहुँचकर वहाँसे बालकटोक की
मालवर्षमें बहती पश्चिमकी ओर धारसमुद्रमें जा मिलती
है ॥ ७ ॥ मद्रा मेरुपर्वतके शिखरसे उत्तरकी ओर गिरती है तब
एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती अन्तमें शृङ्गवान्के शिखरसे
गिरकर उत्तरकुट्ट देशमें होकर उत्तरकी ओर बहती
हुई समुद्रमें मिल जाती है ॥ ८ ॥ अश्वत्थामा ब्रह्मपुत्रीसे
दक्षिणकी ओर गिरकर अमर्क गिरि-शिखरोंको दोकरी
हेमकूर्द्ध पर्वतपर पहुँचती है, वहाँसे अत्यन्त तीव्र वेगसे
दिमान्यके शिखरोंको चीरती हुई भारतवर्षमें जाती है
और फिर दक्षिणकी ओर समुद्रमें जा मिलती है । इसमें
त्याग करनेके लिये जानेवाले पुरुषोंको पद-पदपर ब्रह्म

१ मा पा — स्त्री चन्द्रमण्डल । २ मा पा — निविशति । ३ मा पा — मूर्धनि । ४ मा पा —
निपतन्मनुपगतवगा । ५ मा पा — उदीच्यां प्रविशति । ६ मा पा — दक्षिणे न प्र मद्र । ७ प्राचीन प्रतिमे
अत्र पद पाठ लक्ष्यते । ८ मा पा — भारतवर्ष दक्षिणस्यां । ९ मा पा — ब्रह्मसदनात्प्रविशति ।
१ प्राचीन प्रतिमे अस्या क्षान्तार्थं सी आरम्भकर चन्द्र म मुक्तिमिति पश्यत ब्रह्म मदी है ।

स्यदीनां फल न दुर्लभमिति ॥९॥ अन्ये च नदा
नयध वर्षे वर्षे सन्ति बहुषो मेघादिगिरिदुहितर
शतश ॥ १० ॥

तथापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्या-
न्यए वषाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि
भीमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥ ११ ॥ एषु
रूपानामयुतपुरुषावर्षाणां देवकल्पानां नागायुत
गणानां वज्रमहाननबलवयोमोदप्रमुत्तमहासौरव
मेधुनव्यवायापवर्गवर्षवृत्तैकर्मफलप्राणां तत्र तु
प्रेतायुगमम कालो घटते ॥ १२ ॥ यत्र ह देवपतम
स्वै स्वर्गगनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वतृकुसुम
स्तवकफलकिमलयभिषाऽऽनम्यमानवितपलता-

विनपिभिरुपगुम्भमानरुधिरकाननाभ्रमायतनवर्षगिरि
द्रोणीपु तथा चामलजलाशयेषु विकचनिविधनवचन-
रुहामादमुदितराजसजलकुक्कुटकारणवसारसचक्र
वाक्त्राभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकृजितेषु जल
काण्डादिभिविचित्रविनां सुललितसुरसुन्दरीणां

कर्मकलितविलासहामलीलायलाकाकुटमनोदृष्टय

स्वैरं विहरन्ति ॥ १३ ॥

नवम्यपि वर्षेषु भगवान्नारायणो
महापुरुष पुरुषाणां वदनुग्रहायात्मतत्त्व
च्युहनात्मनाद्यापि मनीषीयत ॥ १४ ॥ इलाशतु
भगवान् भव एक एव पुमान् दान्यस्तथापरा

१. या या — वने बहुषो । २. या या — वनिराभ्रमायतन । ३. या या — मोदप्रमुत्तमहासौरव । ४. या या — शतश । ५. या या — व्युदितराजसजलकुक्कुटकारणवसारसचक्र ।

मेघ और राजस्य आदि यक्षोंका फल भी दुर्लभ नहीं
है ॥ ९ ॥ प्रत्येक वर्षमें मेघ आदि पक्षोंसे निकली हुई
और भी सैकड़ों नद-नदियों हैं ॥ १० ॥

इन सब वर्षोंमें भारतवर्ष ही कर्मभूमि है । शेष
आठ वर्ष तो स्वर्गवासी पुरुषोंके स्वर्गमागसे बचे हुए
पुण्योंको भोगनेके स्थान हैं । इसलिये इन्हें मूल्यके
स्वर्ग भी कहते हैं ॥ ११ ॥ यहाँके देवतुल्य मनुष्योंकी
मानवी गणनाके अनुसार दस हजार वर्षकी आयु होती
है । उनमें दस हजार हाथियोंका कल होता है तथा उनका
वज्रसंश सुदृढ़ शरीरमें जो शक्ति, यौवन और उत्कृष्ट
होत हैं—उनके कारण वे बहुत समयतक मैथुन आदि
विरय भोगते रहते हैं । अन्तमें जब भोग समाप्त होनेपर
उनकी आयुका केवल एक वर्ष रह जाता है, तब उनकी
स्त्रियों गर्भ धारण करती हैं । इस प्रकार वहाँ सर्वदा
प्रेतायुगके समान समय कन्ध रहता है ॥ १२ ॥ वहाँ

ऐसे आश्रम, मवन और वप, पर्वतोंकी घाटियों हैं जिनके
सुन्दर वन-उपवन सभी शत्रुओंके शूलोंके गुच्छे, फल
और नूतन पल्लवोंकी शोभाके मारसे झुकी हुई
हाथियों और स्त्रियाँवाले वृक्षोंसे सुशोभित हैं, यहाँ
निमग्न जख्मे मरे हुए ऐसे जलाशय भी हैं जिनमें तरह
तरहक नूतन वनस्पति खिल रहते हैं और उन कलमोंकी
सुगंधसे प्रमुदित होकर रामहस, जलसुग, कारणव, सारम
और जङ्गल आदि पक्षी तरह तरहकी बोली बोझते तथा
विभिन्न आत्मिक स्तबाज और मधुर-मधुर गुंजार करते रहते
हैं । इन आश्रमों, मवनों, घाटियों तथा जलाशयोंमें यहाँके
देवचरण परम सुस्त्री देवज्जनाओंके साथ उनका कर्म-
स्थान मूषक हास-किंग्स और लीला-वनाश्रमोंसे मन और
नेत्रोंके आकृष्ट हो जानेके कारण जङ्गली शक्ति नाना
प्रकारक खेल करते हुए खण्ड्यन्द विहार करते हैं तथा
उनका प्रान्त-प्रधान अनुचरण अनेक प्रकारकी साम-
र्थियों उनका आनन्द-सुख करते रहते हैं ॥ १३ ॥

इन सबों वनोंमें परमपुरुष भगवान् नारायण बहोके
पुरुषोत्तर अनुग्रह करनेके लिये इस समय भी अपनी
विभिन्न मूर्तियोंमें विराजमान रहते हैं ॥ १४ ॥ इलाह

वर्षमें एकमात्र भगवान् दाहुर ही पुरा हैं । श्रीगङ्गोत्री ।

निर्विद्वसि भवान्याः स्थापनमित्तो यत्प्रवेक्ष्यतः
 श्रीभाषस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥ १५ ॥ भवानीनायैः
 श्रीगणार्जुनसहस्रै रवरुण्यमानो भगवत्पुत्रमूर्तेर्महा-
 पुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः
 सङ्कषणसङ्ग्रामात्मसमाधिकरूपेण संनिधाप्यैतदभि-
 गृणन् भव उपपन्नति ॥ १६ ॥

श्रीभागवानुवाच

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुण
 सङ्ख्यानायानन्ताभाव्यक्ताय नम इति ॥ १७ ॥

भजे भजन्धारणपादपङ्कजं
 भगस्य कृत्स्नस्य परं पराश्रयम् ।
 भक्तेष्वलं भावितभूतभावन
 भवापहं न्वा भवभावमीश्वरम् ॥ १८ ॥

न यस्तु माभागुणचिरवृत्तिभिः
 निरीक्षतो ह्यपि दृष्टिरन्यते ।
 ईशे यथा नोऽजितमन्युरहसां
 कस्तं न मन्येत जिगीषुगत्मनः ॥ १९ ॥
 असदृष्टो यः प्रतिभाति मायया
 धीवेन मष्णसवताम्रलोचनः ।
 न नागवज्रोऽर्हण ईश्वरे दिवा
 यत्पादयोः स्पर्शनभर्षितेन्द्रियाः ॥ २० ॥
 यमादुरस्य स्थितिजन्मसयमं
 त्रिभिर्विहीन यमनन्दमृषयः ।

के शापको जाननेवाला कोई दूसरा पुत्र भी
 प्रवेश नहीं करता, क्योंकि नहीं जो जाता है, जो की-
 रूप हो जाता है । इस प्रसङ्गका हम आगे (हम
 स्वल्पमें) वर्णन करेंगे ॥ १५ ॥ वहाँ पार्श्वी एवं
 उमकी अरबों-अरबों दासियोंसे सेवित भावान् और
 परम पुरुष परमात्माकी वासुदेव, प्रभुन, अनिष्टरूप
 सङ्कर्षणसङ्कक चतुष्पृष्ट-मूर्तियोंमेंसे अपनी कालरूप
 सङ्कर्षण नामकी तम प्रधान चौथी मूर्तिका ध्यानस्ति-
 मनोमय विग्रहक रूपमें चिन्तन करते हैं और इस मन्त्रका
 उच्चारण करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

भगवान् वाङ्मय कहते हैं—ॐ नमो भगवते सर्वगुण
 अभिव्यक्तिवासी है, उन अनन्त और अक्षय्यमूर्ति बोध-
 स्वरूप परमपुरुष श्रीमद्भागवत्को नमस्कार है ॥ परमेश्वर
 प्रभो ! आपके चरणकमल भक्तोंको आश्रय देनेवाले हैं
 तथा आप स्वयं सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके परम आश्रय हैं । भक्तों-
 क सामने आप अपना भूतभावन स्वरूप पूर्णतया प्रकट
 कर देते हैं तथा उन्हें संसारबन्धनसे भी मुक्त कर देते
 हैं, किन्तु भक्तोंको उस बन्धनमें बन्धते रहते हैं ।
 आप ही सर्वेश्वर हैं मैं आपका भजन करता हूँ ॥ १७-१८ ॥
 प्रभो ! इसमें जो कुछके आवेगको नहीं जीत सका है वह
 हमारी दृष्टि तत्काल पापसे छिन्न हो जाती है । परन्तु
 आप तो संसारका नियम करनेके लिये निरन्तर सर्व-
 रूपसे उसके सारे व्यापारोंको देखते रहते हैं । तभी
 हमारी तरफ आपकी दृष्टिपर उन मयिक विषयों का
 चित्तकी वृत्तियोंका नाममात्रको भी प्रत्यक्ष नहीं पड़ता ।
 ऐसी स्थितिमें आपन मनको बन्धने करनेकी इच्छा
 कौन पुरुष आपका अक्षर न करेगा ॥ १९ ॥ आ-
 निम पुरुषोंको मधु-आसनादि पानके कारण व्यसनकर
 और मत्स्यादि जाम पड़ते हैं, वे मायाके बन्दीमूत्र होकर
 ही ऐसा मिथ्या दर्शन करते हैं तथा आपका चरण-स्पर्श-
 से ही चित्त चञ्चल हो जानके कारण मायाशक्तियों का
 आपकी पूजा करनेमें असमर्थ हो जाती हैं ॥ २० ॥
 वेदमन्त्र आपको अगवधो उत्पत्ति, स्थिति और अन्त्य
 कारण बताते हैं । परन्तु आप क्षय हम तीनों विन्दते हैं

१ प्रा पा — यथाह्वयाम । २ प्रा पा — तद्विषयैरुपदम्यते ।

● भगवन्वाङ्मय वाङ्मय कहते हैं कि परमेश्वर कादि तामसी कावोंका हेतु श्रेष्ठसे इसे तामसी मूर्ति करते हैं ।

न वेद मिदार्थमिव कथित्स्मिर्त्तं
भूमिष्ठलं मूर्धसहस्रधामसु ॥२१॥
यस्याय आमीव गुणविग्रहो महान्
विज्ञानभिष्यो भगवानत्र किल ।
यत्सम्भोऽहं प्रियता स्वतेजसा
वैकारिकं ताममर्मेन्द्रियं सुते ॥२२॥
एतं वयं यस्य वन्दे महात्मन
मिताः प्रकुन्ताश्च स्रजयन्त्रिताः ।
महानहं वैकुण्ठतामसेन्द्रियाः
सृजय सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥२३॥
यस्मिन्मितां कर्मणि कर्मपर्वणीं
मायां जनाऽयं गुणमर्ममोहितः ।
न वेद निम्नारणयोगमञ्जसा
तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥२४॥

रहित हैं, इसलिये आपको 'अनन्त' कहते हैं । आपके
सहस्र मस्तकोंपर यह भूमण्डल सरसोंके दानके समान
रक्ता हुआ है, आपको तो यह भी नहीं मालूम होता
कि वह कहाँ स्थित है ॥ २१ ॥ तिनसे उत्पन्न हुआ
मैं अहङ्काररूप अपने त्रिगुणमय तेजसे देवता, इन्द्रिय
और भूतोंकी रचना करता हूँ—वे विज्ञानके आद्य
भगवान् महात्मा भी आपके ही महत्त्वसंज्ञक प्रथम गुण
मय स्वरूप हैं ॥ २२ ॥ महारम्भ ! महत्त्व, अहङ्कार
इन्द्रियामिनी देवता, इन्द्रियों और पञ्चभूत आदि हम
सभी ज़मीनें बँचे हुए पत्नीक समान आपकी क्रियाशक्ति-
के बलीभूत रहकर आपकी ही कृपासे इस जगत्की
रचना करते हैं ॥ २३ ॥ सत्त्वदि गुणोंकी सृष्टिसे
मोहित हुआ यह जीव आपकी ही रची हुई तथा कर्म
बन्धनमें बौधनवासी मायाके तो कदाचित् ज्ञान भी लेता
है, किन्तु उससे मुक्त होकर उपाय उसे सुगमतासे
नहीं मालूम होता । इस जगत्की उत्पत्ति और प्रलय
भी आपके ही रूप हैं । ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार
करता हूँ ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहंसा सहितायां पञ्चमस्कन्धे

सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

भिन्न-भिन्न वर्णोंका वर्णन

भूमिज उवाच

तथा च भद्रधवा नाम धर्ममुतमाकुलपतयः ।
पुरा भद्राश्रयं माथाद्रगयतो वासुदेवस्य प्रियां
तनुं धर्ममयी ह्यशीषाभिधानां परमण ममाभिना
सनिधाप्येदमभिगुणन्त उपधावन्ति ॥ १ ॥

भगवान् उवाच

ॐ नमो भगवते धर्मापात्मविशोभनाय नमः
इति ॥ २ ॥

अहा विचित्रं भगवद्रिचरितं

मन्न जनाऽयं हि मिषस्य पश्यति ।

धीशुक्तेवयी कहते हैं—राजन ! भद्राश्रयमैं
जन्मपुत्र भद्रधवा और उनके मुष्ट-मुन्य सेवक भगवान्
वासुदेवकी ह्यशीषमंत्रक जन्ममयी प्रिय मूर्तिको अत्यन्त
समाधिनिष्ठाक द्वारा हृदयमें स्थापित कर इस मन्त्रक
जप करत हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भद्रधवा और उनके सेवक कहत हैं—'चित्तको
विशुद्ध करनेवाले ओङ्काररूप भगवान् धर्मको नमस्कार
हैं ॥ २ ॥ अहा ! भगवान्की पीना यही निश्चित है,
जिसे पारण यह जीव सुश्रूंग लोकोंका मंदार कनकाय
कामयः पश्यत भी नहीं देखता और दुष्ट निरयोंका

भ्यामसद्यर्हि विकर्म सेवितुं

निर्हृत्य पुत्र पितरं जिजीविषसि ॥ ३ ॥

वदन्ति विश्व कल्पयः सा नमरं

पश्यन्ति चाभ्यात्मविदो विपश्चितः ।

तथापि मुह्यन्ति तवाज मोयया

सुविस्मितं कृत्यमग्नं नताऽसितम् ॥ ४ ॥

विश्वोद्भवस्याननिरोधकर्म ते

अकर्तुरस्तीकृतमभ्यापातः ।

युक्तं न चित्रं त्वमि कल्पकारणं

सर्वस्मिन् व्यतिरिक्तं च वैस्तुतः ॥ ५ ॥

वेदान् युगान्ते समसा विरस्कृतान्

रसावलाघो नृतरङ्गविग्रह ।

प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचत

तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥ ६ ॥

हरिर्षये चापि भगवान्हरिरूपणास्ते । तद्वप

प्रह्मनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये । तद्वर्षितं रूपं महा

पुरुषगुणभाजनो महाभागवता दैत्यदानबहुलतीर्थी-

करणक्षीलाचरितः प्रह्लादोऽर्घ्यवधानन्यभक्ति

योगेन सह वर्यपुरुषैरुपास्ते इव शोदाहरति ॥ ७ ॥

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे

आविराविर्मम वजनस्य वज्रवर्षं कमाशैयान् रन्ध्रय

रन्ध्रय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा । अभयमभयमात्मनि

भूमिष्ठा ॐ धीम् ॥ ८ ॥

सेवन करनेके लिये पापमय विचारोंकी उद्बेद-मुक्तये का
इशा अपने ही हाथों अपने पुत्र और पितापिता काश्र
जलाकर भी खप जीते रहनकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥
विद्वान् लोग जगत्पत्र नष्ट करताते हैं और सुस्पष्ट
आत्मज्ञानी ऐसा ॥ देखते भी हैं, तो भी अन्धकार
प्रभो ! आपकी मायासे लोग मोहित हो जाते हैं ।
आप कनादि हैं तथा आपका कृत्य बड़े विस्मयजनक
है, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ परन्तु
आप अकर्ता और मायाके आवरणसे रहित हैं वे
भी जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—य आपने
ही कर्म माने गये हैं । सो ठीक ही है, इसमें खों
आश्चर्यकी बात नहीं है । क्योंकि सर्वामरूपसे आप
ही सम्पूर्ण कार्योके कारण हैं और अपने शुद्धस्वरूपसे
इस कार्य-कारणभावसे स्वच्छ अतीत हैं ॥ ५ ॥ आपका
विग्रह मनुष्य और घोड़ेका संयुक्त रूप है । प्रत्यक्ष
जब तम प्रचलन दैत्यगण वेदोंको चुप ले गये थे, तब
महानीके प्रार्थना करनेपर आपन उन्हें रसातलसे उबार
दिया । ऐसे अमोघ तीव्र करनेवाले स्वयसदृश्य आपको
मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥

हरिर्वर्षण्डमे भगवान् वृष्टिहरूपसे रहते हैं ।
उन्होंने यह रूप जिस कारणसे चारम किया था, उक्त
भाग (सप्तम स्कन्धमें) वर्णन किया था। आपका
के उस प्रिय रूपकी महाभागवत प्रह्लादजी उस क्वि
अन्य पुरुषोंके सहित निष्काम एवं अनन्य भक्तिमन्त्रसे
उपासना करते हैं । ये प्रह्लादजी महापुरुषोचित गुणोंसे
सम्पन्न हैं तथा इन्होंने अपने शरीर और आत्मनसे
दैत्य और दानवोंके कुत्सके पवित्र कर दिया है । ये
इस मन्त्र तथा स्तोत्रका जप-पाठ करते हैं ॥ ७ ॥
— ओम् नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे ।
आप क्वि आदि लोगोंके भी उक्त हैं, आपको नमस्कार
है । ओ वजनस्य ! हे वज्रवर्ष ! आप हमारे समीप
प्रकट होइये, प्रकट होइये, हमारी कर्म-कृतमाओंके
बाधा-बाधिये, नष्ट करिये । हमारे अज्ञानरूप कर्मजालसे
नष्ट कीजिये नष्ट कीजिये । ॐ स्वाहा । हमारे कृत करणों
अभयदान सेते हुए प्रकाशित होइये । ॐ धीम् ॥ ८ ॥

१ मा पा — विवृति । २ मा पा — अभ्यासऽऽद्य विवृति । ३ मा पा — भवति ।
४ मा पा — अभ्यासऽऽद्य विवृति । ५ मा पा — आपान् तमो ग्रस ॐ । ६ मा पा — भूमिष्ठा धीम् ।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य स्वल प्रसीदतां
 ध्यापन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
 मनस्य भद्र भजसादधोक्षत्रं
 आवेक्ष्यता नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥
 मागारदारात्मजविचक्षन्पुत्र
 सङ्गा यदि स्याद्भगवत्प्रियपु न ।
 य प्राणवृक्षा परितुष्ट अत्मवान्
 मिद्वद्यत्पद्रास्य तथन्द्रियप्रियः ॥ १० ॥
 यत्सङ्गलब्ध निजवीर्यवैभव
 तीर्थं मुहु संस्पृष्टवां हि मानसम् ।
 हरत्यजाऽन्त श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं
 को वै न सेवेत मुहुन्दविक्रमम् ॥ ११ ॥
 यस्यास्ति भक्तिर्मगवत्पक्विज्ज्ञाना
 सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुरा ।
 हरावभक्तस्य कृतो महत्पुण्या
 मनोरथेनासति धावतो वहि ॥ १२ ॥
 हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा-
 मारमा स्त्रपाणामिव तोयमीप्सितम् ।
 हित्वा महास्तं यदि मज्जत गृह
 तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥ १३ ॥
 तस्माद्भारारागविपादमन्यु
 मानस्पृहाभयदंन्याधिभूलम् ।
 हित्वा गृह संसृतिचक्रवालं
 नृसिंहपार्श्वं भजताकुतामयमिति ॥ १४ ॥

कतुमालोऽपि भगवान् कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्या

प्रियचिक्रीपया प्रजापतर्दुहितृणां पुत्राणां तद्वप

ध्याय ! विश्वका करुणा हो, दुष्टोंकी मुक्ति कुछ हो,
 सब प्राणियोंमें परस्पर सद्भावना हो, सभी एक दूसरेका हित
 चिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्गमें प्रवृत्त हो और हम सबकी
 बुद्धि निष्कामभावसे भगवान् श्रीहरिमें प्रवेश करे ॥ ९ ॥
 प्रभो ! घर, बी, पुत्र, धन और भाई वधुओंमें हमारी
 आसक्ति न हो, यदि हो तां केवल भगवान् के प्रीति
 मर्कोमें ही । जो समी पुरुष केवल शरीरनिर्वाहके योग्य
 अन्धादिसे समुदा रहता है, उसे जितना शीघ्र सिद्धि
 प्राप्त होती है वही इन्द्रियलुब्ध पुरुषको नहीं होती ॥ १० ॥
 उन भगवद्भक्तोंके सङ्गसे भगवान् के तीर्थगुह्य पवित्र
 चरित्र सुननेको मिलते हैं, जो उनकी अवसाधारण शक्ति
 एवं प्रभावके सूक्ष्म होते हैं । उनका बार-बार सेवन
 करनेवालोंके कानोंके रास्तेसे भगवान् हृदयमें प्रवेश कर
 जाते हैं और उनका समी प्रकारके दैहिक और मानसिक
 मर्कोको नष्ट कर देते हैं । फिर भला, उन भगवद्भक्तोंका
 सङ्ग कौम न करना चाहेंगा ॥ ११ ॥ जिस पुरुषकी
 भगवान् में निष्काम भक्ति है, उसके हृदयमें समस्त
 देवता धर्म-ज्ञानादि सम्पूर्ण सद्गुणोंके सहित सत्ता निवास
 करते हैं । किन्तु जो भगवान् का भक्त नहीं है उसमें
 भगवत्पुरुषोंके वे गुण आ ही कहाँसे सकते हैं । वह
 तो तद्व-तद्वहे सङ्गम्य करके निरन्तर लुप्त वाहरी
 विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है ॥ १२ ॥ जैसे
 मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय—उनका जीवनका आधार
 होता है, उसी प्रकार साक्षात् श्रीहरि ही समस्त देव
 वारियोंके प्रियतम आत्मा हैं । उन्हें त्यागकर यदि कोई
 महात्माभिमानी पुरुष धर्म आसक्त रहता है तो उस दशामें
 बी-पुरुषोंका बह्व्यन केवल आयुको लेकर ही माना
 जाता है गुणकी दृष्टिसे नहीं ॥ १३ ॥ अतः असुरगण !
 तुम वृष्णा राग, विषाद, क्रोध, अहिम्मा, ईर्ष्या, मय,
 दीनता और मानसिक सत्तापक मूल तथा जन्म-मरण
 रूप संसारचक्रका बहान करनेवाला गृह आदिकी
 त्यागकर भगवान् सुसिद्धि निर्मय चरणकमलमें आश्रय
 लो ॥ १४ ॥

केतुमालाहृदयमें लक्ष्मीजीका तथा संसार नामक
 प्रजापतिके पुत्र और पुत्रियोंका प्रिय करनेका प्रिय
 भगवान् कायदेवकृपसे निवास करते हैं । उन रात्रिकी
 अभिमानी देवताकृप कल्पों और त्रिभुवामिमानों

पतानां पुरुषायुषाहोरात्रपरिस्स्थानानां यासां गर्भा
महापुरुषमहास्रतेजसोद्भजिवनसां विष्वक्स्था व्यवस्य
मवत्सरान्ते विनिपसन्ति ॥१५॥ अथाव मुललित
गतिविलासविलसितरुचिरहासलेधावलोकसीसया
किञ्चिदुत्थमितसुन्दरभ्रमण्डलसुभगवदनारविन्द
धिया रमां रमयभिन्निद्राणि रमयते ॥१६॥
तद्भगवतो मायामय रूपं परमसमाधिप्रागेन रमा
देवी मवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितुमिरुपेताहःसु
च तद्भर्तुमिरुपास्ते इव चोदाहरति ॥१७॥ ॐ हां
ही ह् ॐ नमा भगवत हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषै
र्विदधित्वात्मने आकृषीनां चिषीनां चतसां
विशेषाणां चाधिपतये गोष्ठकलायच्छन्दामया-
शाममयाशमृतमयाय मवमयाय सहसे ओजसे
बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र
मूयात् ॥ १८ ॥

स्त्रिया प्रवैत्स्वा इषिकेश्वरं स्वता
क्षाराभ्यलोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।
सासां न मे वै परिपान्त्यपस्प
प्रियं भनार्पुषि यतोऽस्वतन्वा ॥१९॥
म हं पति स्यादङ्गुलीमयः स्वय
ममन्तत पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवतरथा मिया भयं
नैवात्मताभदधि मन्यते परम् ॥२०॥

द्वयसाक्ष्य पुत्रोंकी संख्या मनुष्यकी सौ बरको व्यक्ते
दिन और रातके बराबर अर्थात् छठीस-अठीस इक
वर्ष हैं, और ये ही उस बरके अधिपति हैं । ये स्वयं
परमपुरुष श्रीनारायणके श्रेष्ठ ब्रह्म सुवर्णरत्नके ठेके
बर जाती हैं, इसलिये प्रत्येक बरके अन्तमें उनके क
मल होकर गिर जाते हैं ॥१५॥ भगवान् अपने सुखमि
गति विष्णुसत्ते सुशामित मधुर-मधुर मन्-मुसकम
मनोहर मीलापूर्ण चार चितवनसे कुछ उलक ।
सुन्दर भूषणबन्धी छबीली छटाके हार बदनामिन्द
राशि-राशि मीन्दय उँड़कर सौन्दर्यभी करके
अत्यन्त आनन्दित करते और स्वयं भी आनन्दित हो
रहते हैं ॥१६॥ श्रीकृष्णजी परम समाधिप्रागेन
मगवान्के उस मायामय स्वरूपकी रात्रिके समय प्रजापति
संकराकी कन्यावोंसहित और दिनमें उनके पतिवों
सहित वाराधना और वे इस मन्त्रका जप करती हुई मन्त्र
की स्तुति करती हैं ॥१७॥ 'ओ इन्द्रियोंके नियन्त्र
सम्पूर्ण श्रेष्ठ वस्तुओंके आकर हैं, क्षियाशक्ति, क्षमशक्ति
और सहस्र-अथर्वसाय आदि विचक्रे बनें तथा उनके
विषयोंके अधीन हैं, ग्यारह इन्द्रिय और पाँच विषय—
इन सोलह कलाओंसे युक्त हैं, वे जो कर्मोंसे ब्रह्म होते
हैं तत्पक्ष अक्षय्य, अमृतमय और सर्वमय हैं—उन मामलिक
ऐन्द्रियक एक शारीरिक बलवत्स्वरूप परम सुन्दर मन्त्र
कामदेवकी 'ॐ हां ही ह्' इन बीजमन्त्रोंके सहित
सब ओरसे नमस्कार है' ॥ १८ ॥

'भगवान् ! आप इन्द्रियोंके अधीन हैं । जियों का
सहके कठोर प्रतीति आपकी ही वाराधना करके स्वयं
भौतिक प्रतियोगी रूप में नियन्त्र करती हैं । किन्तु वे उसके
प्रिय पुत्र, धन और आयुकी रक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि
वे स्वयं ही परतन्त्र हैं ॥१९॥ सच्चा पति (रक्षा करने
वाला या ईश्वर) यही है, जो स्वयं सर्वथा निमग्न हो और
दूसरे भयभीत लोगोंकी सब प्रकारस रक्षा कर सके ।
ऐसे पति एकमात्र आप ही हैं यदि एकसे अधिक ईश्वर
मान लीजें, तो उन्हें एक-दूसरेसे भय होनेकी सम्भावना
है । अतएव आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और किसी

या तस्य ते पादमरोरुहार्ण

निकामयेस्माखिलकामलम्पटा ।

तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो

यद्गन्धयाष्ठा भगवन् प्रसप्यते ॥२१॥

मत्प्राप्तयेऽब्धेशसुरासुरादय

स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेभ्यः ।

श्रुतं भवत्यादपरायणान्न मां

विन्दन्त्यहं स्वदृष्टया यतोऽक्षित ॥२२॥

तत्त्वं ममाप्यप्युत क्षीर्णि वन्दित

कराम्बुजं यस्वदभायि सात्वताम् ।

विमर्षि मां लक्ष्म वरुण्य मायया

क ईश्वरस्येहितमूहितं विश्रुति ॥२३॥

रम्पके च भगवतः प्रियतमं मात्स्वमवताररूपं

तद्वपुरुषस्य मनां प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि

महता भक्तियोगनागधयतीदं शोभाहरति ॥२४॥

ॐ नमो भगवते सुम्पतमाय नम सत्त्वाय प्राणा-

यौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥२५॥

अन्तर्बहिर्बाहिललोकपालकं

रश्मिरूपो विचरस्युरुत्तम ।

म ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनय

न्नाम्ना यथा दारुमयी नर स्त्रियम् ॥२६॥

य लाकपाला किल मत्स्मरन्वग

हिंसा यस्तन्ताऽपि पृथक् समेत्य च ।

आमको नहीं मानते ॥ २० ॥ भगवन् ! जो जी आपके चरणकमलोंका पूजन ही चाहती है, और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करती—उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, किन्तु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे आप केवल वही वस्तु देते हैं और जब योग समाप्त होनपर वह नष्ट हो जाती है ता उसके लिये उसे समस्त होना पड़ता है ॥ २१ ॥ अनित ! मुझे पानेके लिये इन्द्रिय-सुखके अभिलाषी ब्रह्मा और इन्द्र आदि समस्त सुरासुराण घोर तपस्या करते रहते हैं, किन्तु आपके चरणकमलोंका आश्रय लेनेवाले भक्तक सिवा मुझे कोई पा नहीं सकता, क्योंकि मेरा मन तो आपमें ही लगा रहता है ॥ २२ ॥ अभ्युत ! आप अपने जिस कन्दनीय कलकमलको मर्कोंके मस्तकपर रखते हैं, उसे मेरे सिरपर भी रखिये । वरेण्य ! आप मुझे कबल श्रीजगन्मरुपसे अपने वक्ष स्वयंसे ही धारण करते हैं, सो आप सर्वसमर्थ हैं, आप अपनी मायासे जो लीलाएँ करते हैं, उनका रहस्य ब्रह्मन जान सकता है ॥ २३ ॥

रम्पकवर्गमें भगवान्ने वहाँके अधिपति मनुको पूर्व कर्ममें अपना परम प्रिय मत्स्यरूप दिखया था । मनुजी इस समय भी भगवान्के उसी रूपकी वड़ मक्तिमावसे उपासना करते हैं और इस मन्त्रका जप करते हुए स्तुति करते हैं—“सत्त्वप्रधानमुन्य प्राण सुवामा तथा मनोबल, इन्द्रियबल और शरीरबल ओङ्कारपदकं अर्थ सर्वश्रेष्ठ भगवान् महामत्स्यको बार-बार नमस्कार है” ॥ २४ २५ ॥

प्रमो ! नर जिस प्रकार कल्पुतखियोंको मचाता है,

उसी प्रकार आप श्रद्धाणादि नामोंकी शोरीसे सम्पूर्ण विश्वको अपने अधीन करके नचा रह हैं । अन्त आप ही सबका प्रेरक हैं । आपको ब्रह्मादि प्रकृत्यान्मगण भी नहीं देख सकते तथापि आप समस्त प्राणियोंके भीतर प्राणरूपसे, और बाहर वायुरूपसे निरन्तर सञ्चार करते रहते हैं । वेद ही आपका महान् दायम् ॥ २६ ॥ एक बार इन्द्राणि इन्द्रियाभिमानी देवताओंका प्राणस्वरूप आपसे डाह हुआ । तब आपके अन्तरात् जानेपर वे अन्त-

पातुं न शेकुर्द्विपदधतुष्यद्
 मरीचुपं व्याणु यदत्र दृश्यत ॥२७॥
 मवान् युगान्ताण्य ऊर्मिमालिनि
 क्षणीमिमामापथिवीरुधां निधिम् ।
 मया महोर प्रमतऽज ओजसा
 तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥२८॥
 द्विरण्मयेऽपि मगवान्निबमति कूर्मवतु विम्राण
 तस्य तप्रियत मां तनुमर्मा सह वर्षपुरुषैः पितृ
 गगाधिपविरुपभावति मप्रमिमचानुजपति ॥२९॥
 नमा भगवत अक्षपागय सर्वसम्पद्गुणविशेषणाया
 नुपलक्षितव्यानाय नमो वर्ष्मण नमो भूम्ने नमा
 नमाऽव्यानाय नमस्ते ॥३०॥
 यदुपमतन्निजमाययापित
 मयम्यम् बहुपुरुषपितम् ।
 मय्या न यस्यान्वयथापलम्भनात्
 तस्मै नमस्तऽप्यप्युत्तमपिण ॥३१॥
 जगपुत्रं स्यदजमण्डआग्निद
 यगन्त इवपिपितृभूतमग्निमम् ।
 या न धितिः प्रन्ममिमम्
 हापयधम्यभिषय एक ॥३२॥
 गमिन्मग्ययविश्रपनाम्
 मयागता करिभि कल्पितयम् ।
 मय्या यया तज्जटप्रावनायत
 तस्मै नमः माग्यनिदनाय म इति ॥३३॥

अत्रा अपवा आपसमें मिश्र कर मी मनुष्य-पशु-पक्ष-पक्ष-
 आदि जिनने शरीर लिखायी देते हैं—उनमेंसे किसी
 बहुत कम करनपर मी रक्षा नहीं कर सके ॥ २७ ॥
 अत्र मा प्रमो । आपन मेरे सहित समस्त बौद्ध और
 मताओंकी आश्रयरूपा इस पृथ्वीको तकर बही-बही
 उताल तराहोसे कुछ प्रसम्पन्नकीन समुद्रमें बह उज्जरे
 विहार किया था । आप समारके समस्त प्राणसुख
 नियन्ता हैं मेरा आपका नमस्कार है ॥ २८ ॥
 द्विरण्मययमि मगवान् बृहत्पुरुष धरण करके रह
 हैं । बहोके निवासियोंके सहित विवृतन कल्प मगवान्
 उस धियनम मूर्तिकी उपासना करते हैं और इस मगवान्
 निरन्तर जपते हुए स्तुति करते हैं ॥ २९ ॥—आकाश
 सत्त्वगुणसे युक्त हैं, जतमें विचरते रहनेके कारण जिनके
 व्यापक कोई निधय नहीं हैं तथा जो कल्पकी मर्याद
 बाहर हैं उन ओम्काररूप सर्वव्यापक सर्वाकार मन्त्र
 कण्ठपत्र बार-बार नमस्कार है ॥ ३० ॥
 मगवान् । अतः सर्वोंमें प्रतीत होनशान्ता यह रण
 प्रसन्न पथि मिथ्या है निधय हाता है इसिय हमरी
 वस्तुत कोइ मक्या नहीं है, तथापि यह मयसे प्रसन्न
 होनेका आपका ही रूप है । ऐसा अनिर्वचनीय रूप
 आपको मेरा नमस्कार है ॥ ३१ ॥ एकमात्र आप ही उल्-
 लूत, स्वेत्त, अण्डम, उद्विन्न, जह्म, व्यास देवद
 अग्नि, विमृग, वृत्त, इदिव सूर्य, वायव्य, पूर्ण
 पवन, नदी समुद्र हीन, यह और ताता आदि निमित्त
 मागेसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३२ ॥ आप अगम्य नाव, रूप
 और चारुविशेष युक्त हैं, करिभि विज्ञानोने ओम्कार
 तीर्थम तत्त्वोंकी मंग्या निधिय की है—यह त्रिम तथा
 इतिहा उक्त होनेपर निहल हो जानी है, व भीम न
 आपका ही रूप है उस मयमिमिदनाय नमस्कार है
 मया नमस्कार है ॥ ३३ ॥

उगगु व इगु भगवान् यगपुत्रं नृपराट
 य आप्त तं तु नृप देवा म् मर इमभि
 उगगु व इगु भगवान् यगपुत्रं नृपराट
 य आप्त तं तु नृप देवा म् मर इमभि

स्सलितभक्तियोगेनोपधावति इमांश्च परमायुषनिपद्
मावर्तयति ॥ ३४ ॥ ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्व
लिङ्गाय यज्ञकृतवे महाध्वरायवाय महापुरुषाय
नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्त ॥ ३५ ॥

यस्य स्वरूप कवयो विप्रभितो

गुणेषु दारुणिव जातवेदसम् ।

प्रप्ति मप्ता मनसा दिव्यवो

गूढ क्रियार्थैर्मम इति तत्तमे ॥ ३६ ॥

अक्रियाहेत्वयनशर्कृभि

मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षिततमे ।

प्रन्वीक्ष्यान्ततिशयात्तमपुद्गलि

निगममायाकृतये नमा नम ॥ ३७ ॥

करोति विद्यन्वितिसयमौदय

यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितगुणं ।

माया मयाया भ्रमते तन्मयं

ब्राह्मो नमस्त गुणकर्ममाधिग ॥ ३८ ॥

प्रमथ्य दैत्य प्रतिवारण मूढ

यो मां रसाया जगद्वान्निष्कर ।

कृत्वाप्रदं निगदादुदन्वत

मोहविषैव प्रणतामि विद्युमिति ॥ ३९ ॥

और हम परमोत्कृष्ट मन्त्रका जप करती हुई स्तुति करती
हैं ॥ ३४ ॥—जिनका तत्त्व मन्त्रोंसे जाना जाना है, जो यज्ञ
और क्रतुरूप हैं तथा बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं—उन
ओङ्कारस्वरूप शुद्धकर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान्
बराहको बार-बार नमस्कार हैं ॥ ३५ ॥

अस्त्रिजगण त्रिषु प्रकार अणिग्रूप कष्टस्वप्नोंमें
छिपी हुई अणिको मन्यनद्वारा प्रकट करते हैं, उसी
प्रकार कर्ममिषि एवं कर्मफलकी कामनासे छिपे हुए
जिनके रूपकी देखनकी इच्छासे परमप्रदीप पण्डितजन
अपन विवेकयुक्त मनरूप मन्यनकाग्रसे शरीर एवं
इन्द्रियादिको घिले डारते हैं । इस प्रकार मद्यन करनेपर
अपने स्वरूपको प्रकट करनेवाले आपको नमस्कार
हैं ॥ ३६ ॥ विचार तथा सम-नियमिणि योगाङ्गोंके साधन
से जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी है—वे महापुरुष
ब्रह्म (विषय), क्रिया (इन्द्रियोंके व्यापार), हेतु (इन्द्रिया
धिगता दशता), अपन (शरीर), ईश, काल और कृता
(ब्रह्मकार) आदि मायाके कार्योंको देखकर जिनके
वास्तविक स्वरूपका निश्चय करते हैं, ऐसे मायिक
आहूतियोंसे रहित आपको बार-बार नमस्कार हैं ॥ ३७ ॥
विषय प्रकार आह्ला जड़ होनेपर भी तुम्हकी सन्निधि-
मात्रसे चलने फिरने लगता है, उसी प्रकार जिन सर्व
साक्षीकी इच्छामात्रसे—जो अपने लिये नहीं, बल्कि समस्त
प्राणियोंके किय होती है—प्रकृति अपने गुणोंके द्वारा
जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करती रहती है,
ऐसे सम्पूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी आपको नमस्कार
हैं ॥ ३८ ॥ आप जगत्के कारणभूत आदि स्वतः हैं ।
त्रिस्त प्रकार पक्ष हृषी दूसरे हृषीको पठाइ देता
है, उसी प्रकार गजराजके समान क्रीडा करते हुए आप
युद्धमें अपने प्रतिद्वन्द्वी हिरण्याक्ष तैय्यका हृत्ति परक
गुम अपनी दाढ़ीकी नोकपर रखकर रसातलमें प्रत्य-
पयोगिक बाहर निकले थे । मैं आप सत्त्वक्रिमान्
प्रसन्न बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः

मायायां होऽध्याय ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्याय

किमुपुरुष और भारतवर्षका वर्णन

श्रीशुक उवाच

किमुपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रज
सीताभिराम राम उच्चरणसनिर्कर्षाभिरतः परमभाग
वतो हनुमान् सह किमुपुरुषैरविरतभक्तिरूपास्ते ॥ १ ॥
आर्ष्टिपणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं
भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं वेद गावति
॥ २ ॥ ॐ नमो भगवते उचमस्तोकाय नम
आर्यलक्ष्मणशीलव्रताय नम उपसिद्धितात्मन उपासित-
लोकाय नम साधुर्वादनिकरूपाय नमो ब्रह्मण्य-
देवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥ ३ ॥

यचद्विशुद्धानुभवमात्रमेक

स्वतेजसा च्वस्तगुणम्भस्वम् ।

प्रत्यक् प्रक्षान्तं सुक्षिपोलम्भन

क्षानामरूपं निरहं प्रपद्य ॥ ४ ॥

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिष्यं

रक्षावधारिणं न कवलं विभोः ।

कुतोऽन्यथा स्याद्रमत स्व आरमनः

सीताकृतानि व्यसनानीप्सरस्य ॥ ५ ॥

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तम

सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेव ।

न स्त्रीकृत कश्मलमधुवीत

न लक्ष्मणं चापि विशातुमर्हति ॥ ६ ॥

१ मा पा — वाचस्पियजम् ।

● वही राजा होती है कि भगवान् तो सभीके आत्मा हैं फिर यहीं उन्हें आत्मभाव (भीर) पुरुषोंके ॥ आत्मा कते बताया गया । इसका कारण वही है कि सबसे व्यक्ता होते हुए भी उन्हें केवल आत्मवानी पुरुष हो अपने व्यक्ताकते अनुभव करते हैं—मन्य पुरुष नहीं । अतः वही-वही आत्मसाक्षात्कारकी बात आयी है वही आत्मवेत्ताके लिये वही शब्दका प्रयोग किया है । वेते 'कश्चिद्भीरः प्रत्यगात्मानमीकृत इति न शब्दमधीत्यजम् इत्यादि । इसीलिए वही भी भगवान्को आत्मवाम या भीर पुरुषका आत्मा बताया है ।

† एक बार भगवान् श्रीराम एकान्तमें एक देवदूतसे बात कर रहे थे । उक्त समय लक्ष्मणकी परंपर ने और भगवान्की आज्ञा थी कि यदि इस समय कोई भीतर आयेगा तो वह मेरे हाथसे मारा जायगा । इतनेमें ही दुर्वाला मुने पते आये और उन्होंने लक्ष्मणकीको अपने आनेकी सूचना देनेके लिये भीतर जानेको विवश किया । इतने अपने प्रतिभाके अनुहार भगवान् बड़े अलगझटमें पड़ गये । तब बलिदुर्वाले कदा कि लक्ष्मणकीके प्राण न सकर उन्हें त्याग देना चाहिये क्योंकि अपने प्रियजनका त्याग मृत्युवन्दके समान ही है । इसीसे भगवान्ने उन्हें त्याग दिया ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—रात्रन् ! किमुपुरुषसे

श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भाई, आदिपुरुष, सीताग्रजभिराम भगवान् श्रीरामक चरणोंकी समिधिके रक्तिक परम भाग श्रीहनुमान्जी अन्य किन्हींके सहित विविध मन्त्रिकोंके उगकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥ वही अन्य गन्धर्वोंके सहित आर्ष्टिपण उनके स्वामी भगवान् रामकी परम कल्याण गुणगन्धवा गाते रहते हैं । श्रीहनुमान्जी उसे सुनते हैं और स्वयं भी इस मन्त्रका अप करते हुए इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥—'हम उच्चरणस्वरूप, पवित्रसिद्धि मन्त्र श्रीरामको नमस्कार करते हैं, आपमें संपूर्णके व्यवनशील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयतचित्त श्रीकृष्णधनतरपर, साधुताकी परीक्षाके लिये कष्टोंमें समान और अत्यन्त शास्त्रामक हैं । ऐसे शास्त्रमहाराज रामको हमारा पुन-पुन प्रणाम है' ॥ ३ ॥

'भगवन् ! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अतिथि, बलेश्वरके प्रकाशसे गुणोंके कर्णरूप ज्ञानादि संपूर्ण अस्वाधोका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम स्वयं शुद्ध बुद्धिसे प्रज्ञा किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित और अद्वैतारण्य हैं मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ ४ ॥ प्रभे ! आपका मनुष्यवतार केवल राष्ट्रोंके बचके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है । अपन अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदम्भ जगदीश्वरकी सीतावीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था ॥ ५ ॥ आप भीर पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भागवान् वासुदेव हैं, त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी अस्तित्व नहीं है । आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं ॥ ६ ॥

न जन्म नून महतो न सौमग

न वाक् न बुद्धिनाकृतिस्तोषहेतुः ।

तैर्यद्विसुप्तानपि नो वनौकस

भकार मस्य षत् लक्ष्मणाग्रज ॥ ७ ॥

सुराऽसुरो वाप्यथ वानरो नर

सर्वात्मना यः सुकृतबहुचमम् ।

भजेत् रामं मनुजाकृतिं हरिं

यत्तत्तराननयत्कोसलान्दिशमिति ॥ ८ ॥

भारतेऽपि वर्षे भगवाभ्रनारायणास्म्यंआकम्पा-
न्तुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोप

लम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽम्पक-

गतिश्चरति ॥ ९ ॥ त भगवाभ्ररदो वर्णाभ्रमवतीभि

भारतीभि प्रजाभिर्मगावत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां

भगवदनुभाषोपवर्धनं साधर्णेकपदेभ्यमाणाः परम-

भक्तिमाधेनापसरति इदं चाभिरूपाति ॥ १० ॥ ॐ

नमो भगवते उपशमशीलायापरतानास्म्याय नमो-

ऽकिञ्चनविचाय श्रुतिश्रुतमाम नरनारायणाय परमे-

हसपरमगुरवे आत्मारामाभिपतये नमो नम

इति ॥ ११ ॥ गायति वेदम्—

कतास्य सगादिपु या न वध्यत

न हन्यत वदगतोऽपि दैहिकः ।

श्रुतुन हन्यस्य गुणैर्बिन्द्यत

तस्मै नमाऽयत्कविबिक्तसाधिण ॥ १२ ॥

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं

हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगदाद् यत् ।

आपके ये व्यापार केवल लोकशिक्षाके लिये ही हैं ।
लक्ष्मणाग्रज । उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वानचातुरी,
बुद्धि और श्रेष्ठ योगि—इनमेंसे कोइ भी गुण
आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह
भात दिखानेके लिये ही आपने इन सब गुणोंसे
रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है ॥ ७ ॥
देवता, असुर, वानर अपना मनुष्य—कोई भी हो,
उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही मदन करना
चाहिये, क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं
और जोइ कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं ! आप
ऐसे आश्रितकसुख हैं कि जब स्वयं दिव्यवामका सिचारे
ये, तब समस्त उत्तरकोसलवासियोंकी भी अपने साथ
ही ले गये थे ॥ ८ ॥

भारतवर्षमें भी भगवान् दयावश नर-नारायणरूप
धारण करके संयमश्रीक पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये
अन्यकल्पसे कल्पके अततक तप करते रहते हैं ।
उनकी यह तपस्या ऐसी है कि जिससे धर्म, ज्ञान, वैराग्य,
ऐश्वर्य, शान्ति और उपरतिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होकर
अन्तमें आत्मस्वरूपकी उपलब्धि हो सकती है ॥ ९ ॥
वहीं भगवान् नारदनी स्वयं श्रीभगवान्के ही कहे हुए
सांख्य और योगशास्त्रके सहित भगवद्भिक्षाको प्रकट
करनवाले पाञ्चप्रदर्शनका साधर्णि मुनिको उपदेश
करनेके लिये भारतवर्षकी वर्णाश्रमधर्मावस्थामें प्रजाके
सहित अत्यन्त भक्तिभावसे भगवान् श्रीनर-नारायणकी
उपासना करते और इस मन्त्रका जप तथा स्तोत्रको
गाकर उनकी स्तुति करते हैं ॥ १० ॥—‘ओङ्कारस्वरूप,
अहङ्कारसे रहित, निर्धनोक बन शाश्वतसमस्त श्रुतिप्रवर
भगवान् नर-नारायणका नमस्कार है । वे परमहंसोक
परम गुरु और आत्माचार्यके अधीश्वर हैं, उन्हें बार-बार
नमस्कार है ॥ ११ ॥ यह गाते हैं—‘आ विष्णुकी उत्पत्ति
आदिमें उनका कर्त्ता होकर भी कर्त्तृत्वक अभिमानसे नहीं
बैठते, शरीरमें रहते हुए भी उसके धर्म मूल-व्यास आदिक
वशीभूत नहीं होते तथा द्रष्टा होनेपर भी जिनकी दृष्टि
इन्द्रके गुण-दीनोंसे दूझि नहीं होती—उम असङ्ग एवं
विशुद्ध साक्षिस्वरूप भगवान् नर-नारायणको नमस्कार
है ॥ १२ ॥ योगेश्वर ! हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजीने
योगसाधनकी सबसे बड़ी कुशलता यही बतलाई है कि

भदन्तकाल त्वयि निर्गुणे मनो

भक्त्या दधीतोऽजितदुष्कलेष्वरः ॥१३॥

ययैहिकामुष्मिककामलम्यटः

सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।

गङ्गाय निद्वान् कुकलेवरास्यमाधु

यस्तस्य यत्नं धम एव वेमलम् ॥१४॥

तत्र प्रभा त्वं कुकलेवरापितां

त्वन्माययाहममतामभोधज ।

मिधाम येनाद्यु वयं सुदुर्भितां

विषेहि योगस्वयि नः स्वमावमिति ॥१५॥

भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो

मलयो मङ्गलप्रसो मैनाकस्त्रिकूट शृपमः कूटक

कोरुलकः सखो देवगिरिश्चप्यमूकः भीमलो वङ्गटो

महेन्द्रा वारिधारो विन्ध्य शुक्तिमानृषगिरि

पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः कङ्कभो-

नीलो गोकौमुद इन्द्रकील कमगिरिरिति चान्ये

च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा

नद्यश्च मन्त्र्यसङ्ख्याताः ॥१६॥ ण्ठासामपो भारत्यः

प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति

॥१७॥ चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कुतमाला

वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुङ्ग-

भद्रा कृष्णा वेम्बो भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या

पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मज्वती

सिर्धुर्धः शोणश्च नदी महानदी वेदस्पृतिर्धृषि-

कृन्वा त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना मरुत्यती

रपद्रती गोमती सरयू रोचस्वती सप्तवती सुषोमा

शतदूधन्त्रमागा मरुदूधवा वितस्ता असिन्धी विषवेति

महानद्यः ॥१८॥ अस्मिन् वर्षे पुरुषैरुप-

मनुष्य अन्तर्वास्ये देशमिमानको शोकर मतिरू-

आपके प्राकृत गुणरहित स्वरूपमे अपना न

स्यावे ॥१३॥ लौकिक और पारलौकिक मर्गे

लाखी गङ्गा पुरुष जैसे पुत्र, श्री और कमकी पितृ

करके मोतसे बरते हैं—उसा प्रकार मणि निम्नसे भी

इस निन्दनीय शरीरके छूटनेका भय ही बना रहा, तो

उसका ध्यानप्राप्तिके लिये क्या हुआ साध प्रयास केन

धम ही है ॥१४॥ अन् अवधोक्षज ! आप हमें कल्प

स्वामात्रिक प्रमत्तप मत्कियोग प्रणान कीजिये जिसके

कि प्रभो ! इस निन्दनीय शरीरमें आपकी मायाके कल्प

बदलूँ इह दुर्मेव अहंता-ममताको हम दूरत कर

वाले ॥१५॥

एवम् । इस भारतवर्षमें भी बहुतसे पर्वत और

नदियाँ हैं—जैसे मलय मङ्गलप्रस, मैनाक, त्रिकूट

शृपम, कूटक, कोरुलक, सख, देवगिरि, चप्यमूक

भीमल, वङ्गट, महेन्द्र वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिम

पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवत

कङ्कभ, नील, गोकौमुद, इन्द्रकील और कमगिरि वारि

इसी प्रकार और भी सैकड़ों-हजारों पर्वत हैं । उपां

तटप्रान्तोंसे निकलनेवाले नद और नदियों भी अनेक

हैं ॥१६॥ ये नदियाँ अपने नामोंसे ही जानके

पवित्र कर देती हैं और भारतीय प्रजा इन्हींके स्नान

स्नानाणि करती हैं ॥१७॥ उनमेंसे मुख्य-मुख्य नदि

ये हैं—चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी अवनोदा, कुतमाल

वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुङ्ग

भद्रा कृष्णा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी

तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मज्वती, सिन्धु, क

और शोण नामके नद, महामदी, वेन्स्पृति, धृषिदूय

त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरयू

रपद्रती, गोमती, सरयू, रोचस्वती, सप्तवती, सुषोम

शतदूधन्त्रमागा, मरुदूधवा, वितस्ता, असिन्धी व

१ मा पा — अक्ष । २ प्राच्येन प्रतिभे वैद्वतो नह पात्र नहीं है । ३ मा पा — केशमुक्त
४ मा पा — चन्द्रवसा । ५ मा पा — वेता । ६ मा पा — मरुदूधवा अथवा शायम् । ७ मा पा
— रोचस्वती । ८ मा पा — सुषोमा ।

जन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारन्ध्रेन कर्मणा
दिष्यमानुपनामकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण
सर्वा ज्ञेय सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्ग-
भापि भवति ॥ १९ ॥ योऽसौ भगवति सर्वभूता-
न्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवे
ऽनन्त्यनिमित्तमक्तियोगलक्षणा नानागतिनिमित्ता
विद्याग्रन्थिरन्धनक्षरेण यत् हि महापुरुषपुरुष-
प्रसङ्गः ॥ २० ॥

एतदेव हि देवा गावन्ति—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं

प्रसन्न एषा म्विदुत स्वयं हरि ।

यैर्वन्म लभ्य नृपु भारताजिर

शुक्लन्दसेवौपयिक स्पृहा हि न ॥२१॥

किं दुष्कर्तृर्न क्रतुभिस्तपोमते

दानादिभिर्वा पुनयेन फल्गुना ।

न यत्र नारायणपादपङ्कज-

स्मृति प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥२२॥

कस्यापुषां म्यानजयत्पुनर्मवात्

घणापुषां भारतभूजया वरम् ।

धृणेन मर्त्येन कृत मनम्विनः

मन्यम्य ममान्त्यभय पर्द हर ॥२३॥

न यत्र वैकुण्ठकथामुधापगा

न माधवो भागवताम्विदाधया ।

अपने किये हुए साधिका, राजस और तामस कर्मों के
अनुसार क्रमशः नाना प्रकारकी दिव्य, मानुष और
नारकी योनियों प्राप्त होती हैं, क्योंकि कर्मोंनुसार सब
जीवोंको सभी योनियों प्राप्त हो सकती हैं । इसी कर्मों
अपने-अपने कर्मों के लिये निश्चित किये हुए धर्मों के
विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेसे मोक्षतत्त्व की प्राप्ति हो सकती
है ॥ १९ ॥ परीक्षित ! सम्पूर्ण भूतों के आत्मा, रागादि
दोषों से रहित, अनिर्वचनीय, निराकार परमात्मा भगवान्
वासुदेवमें अनन्य एक अद्वैतक भक्तिभाव ही यह
मोक्षपद है । यह भक्तिभाव तभी प्राप्त होता है, जब
अनक प्रकारकी गतिपोंको प्रकट करनेवाली अविचारपूर्ण
हृदयकी प्रणय कृत जानेपर भगवान् के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग
मिलता है ॥ २० ॥

देवता भी भारतवर्षमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी इस
प्रकार महिमा गाते हैं—“अहो ! जिस जीवोंने भारतवर्ष
में भगवान् की सेवाके योग्य मनुष्य-जन्म प्राप्त किया है
उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है ? अथवा इनपर स्वयं
श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं ? इस परम सौभाग्यके
लिये तो निरन्तर हम भी तरसते रहते हैं ॥ २१ ॥
हमें बड़े कठोर पक्ष, तप, क्ल और दानादि करके जो
यह तुच्छ स्वर्गका अविकार प्राप्त हुआ है—इससे क्या
लभ है ? यहाँ तो इन्द्रियोंके भोगोंकी अधिकताके
कारण स्मृतिशक्ति छिन जाती है, अतः कभी छीनराज्य
के कारणकमलोंकी स्मृति होती ही नहीं ॥ २२ ॥
यह भग तो क्या—जहाँके निवासियोंकी एक-एक
कल्पकी आयु होती है किन्तु जहाँसे फिर संसारचक्रमें
लीटमा पड़ता है, उन ब्रह्मगेकान्तिकी अपेक्षा भी मरत
भूमिमें धाँकी आयुशाले दोषर जम घेना अच्छा है,
क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही जगत् इस
मत्स्य-गिरीसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म धीमाबल्लभ्य अरण्य
करके उनका लभय पद प्राप्त कर सकता है ॥ २३ ॥

जहाँ भगवत्पादोंकी अमृतमयी सरिता नदी बहती,
जहाँ उसका उद्गमस्थान भगवद्गुरु साधुजन निवास

यदन्तकालं त्वयि निर्गुणे मनो

भक्त्या दधीतोऽस्मिदनुकलेषर ॥१३॥

यदैहिकाशुभिककामलम्पटः

सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।

गङ्गाव विद्वान् कुक्कलेवरास्पयाद्

यत्तस्य यत्तः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

तप्त प्रभा त्व कुक्कलेवरापिता

स्वन्मापयाहममतामधोक्षज ।

मिन्ध्याम येनाहु वष सुदुर्मिहां

विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति ॥१५॥

भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो

मलबो मङ्गलप्रसो मैनाकखिडूट श्रपभः कूटकः

कोल्लेक सद्यो देवगिरिर्ध्वप्यमूकः भीमल्लो बङ्गटो

महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्य झुकिमानुषगिरिः

पारियात्रो द्रोणभित्रकूटो गोवधनो रैवतकः ककुभो

नीलो गोकुलस्व इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये

च शतसहस्रं श्रैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा

नद्यश्च सन्त्यसङ्ख्याता ॥१६॥ एतासामपि भारत्य

प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपसृजन्ति

॥१७॥ चैन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कुतमाला

बैहायसी कावेरी वेणी पद्मिनी शंकरावता तुङ्गा

भद्रा कुप्पा वेम्बो भीमरथी गोदावरी निर्बिन्ध्या

पयोप्पी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती

सिर्धुर्धः शोणव नवौ महानदी वेदस्सतिर्ध्वपि

कुन्धा त्रिसामा कौन्तिनी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती

ह्यवती गामती सरयू रावैस्वती सप्तवती सुपोमा

शतद्वन्द्वभगा मरुद्वह्वा विवस्ता असिन्नी विधेति

महानद्यः ॥१८॥ अस्मिन् वर्षे पुरुषैर्लब्ध-

मनुष्य अन्नकालमें दहाभिमानको छाड़कर मल्लिक
आपके प्राकृत गुणरहित स्वल्पमें अपना मन
सगाव ॥ १३ ॥ ऐहिक और पारलौकिक मर्मे
लालची मूढ़ पुरुष जैसे पुत्र, स्त्री और भनकी किन्तु
पारके भीतसे डरते हैं—उसी प्रकार यदि पित्राको भी
इस मिन्दनीय शरीरके छूटनेका भय ही बना था, त
उत्पन्न ज्ञानप्राप्तिके लिये किया हुआ सारा प्रयत्न
श्रम ही है ॥ १४ ॥ अतः अन्धश्रम ! अतः हमें अपने
सामाजिक प्रेमरूप भक्तियोग प्रदान कीजिए, जिस
कि प्रभो ! इस मिन्दनीय शरीरमें आपकी मायाक कला
बदलूँ इहं दुर्मेघ अहता-ममताको हम दूरत का
टाके ॥ १५ ॥

यमन् । इस भारतवर्षमें भी बहुत-से पर्वत हैं
नदियाँ हैं—जैसे मलय, मङ्गलप्रस, मैनाक, विन्ध्य
श्रपभ, कूटक, कोल्लेक, सद्य, देवगिरि, ध्वप्य
भीमल्ल, बङ्गट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, झुकिम
श्रध्वगिरि, पारियात्र, द्रोण, त्रिपट्ट, गोवर्धन, रैवत
ककुभ, नील, गोकुलमुख, इन्द्रकील और कामगिरि आदि
इसी प्रकार और भी सैकड़ों-हजारों पर्वत हैं । स
तटप्राप्तीसे निकलनेवाले नद और नदियों की कल्प
है ॥ १६ ॥ ये नदियाँ अपने नतीसे ही जीव
परिचर कर देती हैं और भारतीय प्रजा इन्हीं के
स्नानाणि करती हैं ॥ १७ ॥ उनमेंसे मुख्य-मुख्य न
ये हैं—चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी अवटोदा, कुत्त
बैहायसी, कावेरी, वेणी, पद्मिनी, शंकरावता, तुङ्गा
भद्रा, कुप्पा, वेम्बो, भीमरथी, गोदावरी, निर्बिन्ध्या,
पयोप्पी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती,
सिर्धुर्ध्व और शोण नामके नद, महानदी, वेदस्सुति, श्रध्वपि
त्रिसामा, कौन्तिनी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती
ह्यवती, गामती, सरयू, रावैस्वती, सप्तवती, सुपोमा
शतद्वन्द्वभगा, मरुद्वह्वा, विवस्ता, असिन्नी
विधेति ॥ १८ ॥ इस वर्षमें जन्म लेनेवाले पुरुषों

१ प्रा पा —कोल । २ प्राप्तेम प्रतिमं बङ्गटो मह पाठ नहीं है । ३ प्रा पा —कोकाट

४ प्रा पा —चन्द्रवसा । ५ प्रा पा —वेन्ता । ६ प्रा पा —मरुद्वहती अन्धा शोणव । ७ प्रा

—चोक्की । ८ प्रा पा —शुपोमा ।

जन्मभि शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा
 दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण
 सर्वा ज्ञेव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्ग
 आपि भवति ॥ १९ ॥ योऽसौ भगवति सर्वभूता-
 रम्भन्यात्म्येऽनिरुक्तेऽनिरुपने परमात्मनि चासुदेवे
 जनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्ष्णो नानारातिनिमित्त-
 विद्याप्रन्धिरन्धनद्वारण यदा हि महापुरुषपुरुष
 प्रसङ्गः ॥ २० ॥

एतदेव हि देवा गायन्ति—

अहो अमीषां किमस्मरि शोभनं

प्रसन्न एषां विदुषु स्वयं हरि ।

यैर्वन्म लम्बं नृपु भारताञ्जिर

मुह्यन्सेवैपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २१ ॥

किं दुष्कर्तुं क्रतुभिस्तपोव्रतं

दानान्निवा पुत्रधनेन फल्गुना ।

न यत्र नारायणपादपङ्कज

स्मृति प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥ २२ ॥

सन्वायुषां न्यानवसा पुनर्मषात्

क्षणायुषां भारतमूत्रया धरम् ।

धनन मर्त्येन कृत मनस्यिन

मन्यम्प मयान्त्यभय पर्द हर ॥ २३ ॥

न यत्र वैकुण्ठकथायुधापागा

न मापगा भागवतामदाधया ।

१ मा ग — ८३३ रे ।

मा ग न १ ७९—

अपने किये हुए सार्वभिक, राजस और तामस कर्मकि
 अनुसार कर्मशाना प्रकटकर्ता दिव्य, मानुष और
 नारकी यानियों प्राप्त होती हैं, क्योंकि कर्मानुसार सब
 जीवोंको सभी योनियों प्राप्त हो सकती हैं । इसी धर्म
 अपने अपने वर्णके लिये नियत किये हुए धर्माकर
 विधिवत् अनुष्ठान करनेसे मोक्षतत्त्वकी प्राप्ति हो सकती
 है ॥ १९ ॥ परीक्षित । सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, रागादि
 दोषोंसे रहित, अनिर्वचनीय, निराधार परमात्मा मयाद्यन्
 वासुदेवमें जनय एव अद्वैतक भक्तिमात्र ही यह
 माक्षपद है । यह भक्तिमात्र तभी प्राप्त होना है, जब
 जनक प्रकरकी गतियोंको प्रकट करनेवाली अवधारूप
 रूपकी प्रप्ति कर जानेपर भगवान्‌के प्रीति भक्तोंका सह
 मिलता है ॥ २० ॥

देवता भी भारतधर्ममें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी इस
 प्रफर महिमा गाते हैं—‘अहा ! जिन जीवोंन भारतधर्म
 में भगवान्‌की सेवाके योग्य मनुष्य-जन प्राप्त किया है
 उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है ? अथवा इनपर स्वयं
 श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं ? इस परम सौम्यके
 लिये तो निरन्तर हम भी तरसते रहते हैं ॥ २१ ॥
 हमें वह क्योंकर पता, तप, व्रत और दानादि करके जो
 यह तुष्टि लक्ष्य अविकार प्राप्त हुआ है—इससे क्या
 लाभ है ? यहाँ तो इन्द्रियोंके भोगोंकी अविवर्त्यके
 कारण स्मृतिशक्ति छिन जाती है, अतः कभी श्रीनारायण
 के चरणकमलोंकी स्मृति होती ही नहीं ॥ २२ ॥
 यह स्वयं तो क्या—अहोके निपासियोंकी एक-एक
 कल्पकी आयु होती है किन्तु जहाँसे निरन्तर संसारचक्रमें
 लागना पड़ता है, उन प्रसंगेकाजिकी अपेक्षा भी भारत
 भूमिमें पायी आयुवाले होकर जन्म लेना अच्छा है
 क्योंकि यहाँ भीर पुरुष एक क्षणमें ही जन्म इस
 पावगीतसे किये हुए मनुष्य कर्म भीमवन्त्वात् अलग
 करके उनका समय पर प्राप्त कर सकता है ॥ २३ ॥

‘अहाँ भगवत्‌की अप्रमदी स्मृति नहीं बढ़ती,
 जहाँ उमक उन्मत्तान् भगवद्भक्त साधुजन निगम

न यत्र यज्ञेष्टमस्ता महोत्सवाः

सुरेष्टलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च अन्तसो

ज्ञानक्रियाद्रन्यकलापसम्भूताम् ।

न वै' यतेरन्नपुनर्मयाय ते

भूयो धनौघ इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

यैः भद्रसा बहिषि भागघ्नो हवि

निरुत्तमिष्ट विधिमन्त्रवस्तुतः ।

एकः पृथङ्नाममिरादुतो मुदा

गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिर्षां ब्रह्मः ॥२६॥

सत्यं विद्वत्पर्यितमर्षितो नृणां

नैवार्पदो यत्पुनर्यिता यतः ।

स्वयं विधत्ते भजतामनिष्टता

मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥२७॥

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावलोपितं

स्विष्टस्य वृत्तस्य कृतस्य शोभनम् ।

तेनाजनामे स्मृतिमलन्म नः स्वाधु

वर्षे हरिर्यज्ञज्ज्ञतां धीं तनोति ॥२८॥

मौमुक उवाच

जम्बूद्वीपस्य च राजानुपद्वीपान्तौ द्वेक उप

दिशन्ति सगरात्मजैरभ्यान्वेपण इमां महीं परितो
निम्बनद्रिरुपकल्पितान् ॥२९॥ तद्यथा स्वर्णप्रम्य
मन्दरगुह्य आवर्तनो रमणको रमन्दगुह्यिण पाञ्चजन्यः

नहीं करते और जहाँ नृत्य-गीतादिके साथ बड़े समारोह-
से भगवान् यज्ञपुरुषकी पूजा-अर्चा नहीं की जाती—
यह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उत्कृष्ट सेवन नहीं
करना चाहिये ॥ २४ ॥ जिन जीवोंने इस मत्त्वकी
ज्ञान (विवेकशुद्धि), तदनुकूल कर्म तथा उस कर्मके
उपयोगी श्रम्यादि सामग्रीसे सम्पन्न मनुष्य-जन हय
हैं, वे यदि आवागमनके चक्रसे निकलनेका प्रयत्न
महीं करते, तो व्याचक्षी कौंसीसे छूटकर भी मन्त्रद्विके
शोभसे उसी वृक्षपर बिहार करनेवाले कन्वासी पक्षि-
के समान सित बन्धनमें पक जाते हैं ॥ २५ ॥

‘अहो ! इन मारतवासियोंका कैसा सौमत्तम है !

अब ये यज्ञमें मिस-मिस देवताओंके उद्देश्यसे कन्वा-
अथवा भाग रखकर विधि, मन्त्र और श्रम्यादिके सेवने
श्रवणपूर्वक उन्हें हवि प्रदान करते हैं, तब इस प्रकार
श्रव्यादि भिन्न-भिन्न मन्त्रोंसे पुनः जानेपर उन्हें
कर्मनाओंके पूर्ण करनेवाले स्वयं पूजकम कीदृश ही
प्रसन्न होकर उस हविको ब्रह्मण करते हैं ॥ २६ ॥
यह ठीक है कि भगवान् सकलम पुरुषोंके योग्यता
उन्हें अमीष्ट पदार्थ देते हैं, किन्तु यह व्यापक
वास्तविकदान नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओंको पा लेनेपर
भी मनुष्यके मनमें पुन कर्मनाएँ होती ही जाती हैं ।
इसके विपरीत जो उनका निष्कलमभावसे मजन करते
हैं, उन्हें तो न साक्षात् अपने चरणकमल ही दे देते
हैं—ओ कल्प समस्त इच्छाओंको समस्त कर देनेकल
हैं ॥ २७ ॥ अतः अन्तक सर्गमूल भोग लेनेके बाद
हमारे पूजकन यज्ञ, प्रवचन और ध्यान कर्मोंसे यदि कुछ
भी पुण्य कमा हो, तो उसके प्रभावसे हमें इस
मारतकर्म भगवान्की स्मृतिसे कुछ मनुष्य-जन मिले
क्योंकि कीदृश अपना मजल करनेवालेका सब प्रकटसे
कल्याण करते हैं ॥ २८ ॥

श्रीगुरुदेवकी कहते हैं—रायन् ! राजा सगरके
पुत्रोंने अपने यज्ञके बोहेको ईकते हुए इस पृथ्वी
वातों वारसे छेदा था । उससे जम्बूद्वीपके उत्कर्ष
ही आठ उपद्वीप और बन गये, ऐसा कुछ शोभनेका
कथन है ॥ २९ ॥ वे स्वर्णप्रम्य, मन्दरगुह्य,
आवर्तन रमणक, मन्दरगुह्य, पाञ्चजन्य,

सिंहलो लङ्केति ॥३०॥ एष तव भारतोद्यम जम्बू
द्रोपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥३१॥

सिंहस्य और लङ्का हैं ॥ ३० ॥ मतभेद ! इस प्रकार
जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना था, ठीक वैसा ही तुम्हें
यह जम्बूद्वीपके बर्णोक्त विभाग सुना दिया ॥ ३१ ॥

इति धीमन्नागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे जम्बूद्वीपवर्णनं

नामैकान्विशोऽध्याय ॥ १९ ॥

अथ विशोऽध्याय

मम्य उः द्वीपों तथा लोकलोकपर्वतका वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं पुष्पादीनां प्रमाप्पलक्षणसंस्थानतो
वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपोऽयं
यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो
यथा मेरुर्जम्बूवास्येन लवणोदधिरपि ततो
द्विगुणविशालेन पुष्पाग्नयेन परिवेष्टितो यथा
परित्वा वायोपवनेन । पुष्पो जम्बूप्रमाणो द्वीपा
व्याकरो हिरण्यम उत्थितो यत्रामिरुपास्ते सप्त
जिह्वस्तस्याधिपति प्रियव्रतान्मज्ज इष्मजिह्वः स्वं
द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामस्य आत्मजेभ्य
आकलय्य स्वयमात्मयोगेनापरराम ॥ २ ॥ शिर्षं
यवमं सुभद्रं शान्तं क्षमममृतमभयमिति यथापि
तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैर्वाभि ज्ञाता ॥३॥ मणिकूटो
वज्रकूटोऽन्द्रसेना ज्योतिष्मान् सुपर्णो हिरण्यग्रीवा मेघ
माल इति सेतुंश्रैलाः । अरुणा नृग्याऽऽङ्गिरसी सावित्री
सुप्रभाता अतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः ।
याम्नीं जलोपस्पृशन्नविष्णुत्तरजस्तमसा हंस्पतङ्गाञ्चा-
यनमत्पाङ्गमंघ्राभस्वारा वणाः महाम्नायुषो विष्णुधो

धीशुकरेश्वरी कहते हैं—राजन् ! अब परिमाण,
लक्षण और स्थितिके अनुसार पञ्चादि अन्य द्वीपोंके
वर्षविभागका वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥ जिस
प्रकारमेरु पर्वत जम्बूद्वीपसे घिरा हुआ है, उसी प्रकार
जम्बूद्वीप भी अपने ही समान परिमाण और विस्तार
वाले क्षारे जलके समुद्रसे परिवेष्टित है । फिर चाहे
जिस प्रकार बाहरके उपवनसे घिरी जाती है, उसी
प्रकार क्षारसमुद्र भी अपनेसे होने विस्तारवाले पञ्चद्वीप-
से घिरा हुआ है । जम्बूद्वीपमें जितना वन जामुनका
पेड़ है, उतने ही विस्तारवाला यहाँ सुवर्णमय पञ्च
(पाकर) का वृक्ष है । उसीके कारण इसका नाम
पञ्चद्वीप हुआ है । यहाँ सात जिह्वाओंवाले अग्निदेव
विराजते हैं । इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाव्रत
इष्मजिह्व थे । उन्होंने इसको सात वर्षोंमें विभक्त
किया और उन्हें उन वर्षोंके समान ॥ नामवाले अपने
पुत्रोंको सौंप दिया तथा स्वयं अप्पात्मयोगका आश्रय
लेकर उपरत हो गये ॥ २ ॥ इन वर्षोंके नाम शिख, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय हैं ।
इनमें भी सात पर्वत और सात नदियाँ ही प्रसिद्ध हैं
॥ ३ ॥ वहाँ मणिकूट, वज्रकूट, अन्द्रसेन ज्योतिष्मान्,
सुपर्ण, हिरण्यग्रीव और मेघनाम—य सात मर्षादापर्वत
हैं तथा अरुणा, नृग्या, अङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता,
अतम्भरा और सत्यम्भरा—ये सात महानदियाँ हैं ।
वहाँ इस, पद्म ऊर्ष्यापन और सत्याङ्ग नामके वार
वर्ण हैं । उक्त नदियोंके जलमें स्नान करनेसे इनके
स्वोद्योग-नमोद्योग क्षीय होते रहते हैं । इनकी आयु

१ मा पा —शुषिकराज । २ मा पा —नाम् । ३ मा पा —क्यातिष्ठते । ४ मा पा —

य वनन्वभिज्ञाताः । ५ मा पा —यः यतश्चन्द्रमिन्द्र । ६ मा पा —उत्तरीत्याः । ७ मा पा —

मृगस्याऽऽङ्ग ८ मा पा —आर्वा ।

न यत्र यज्ञेश्वरत्वा महोत्सवा

सुरेशलोकोऽपि न वै स सेम्पताम् ॥२४॥

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो

ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्पृताम् ।

न वै यतेरक्षपुनर्महाय ते

भूयो बनौक इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

यैः भद्रया वरिषि भागवो हवि

निरुसमिष्ट विधिमन्त्रश्चतुतः ।

एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा

गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषो ब्रह्मः ॥२६॥

सत्य दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां

नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।

स्वय विधय भजतामनिच्छता

मिच्छापिधान निजपात्पङ्कजम् ॥२७॥

यद्यत्र न स्वर्गसुखावशपितं

मिष्टम् यत्तस्य कृतस्य शोभनम् ।

तेनाजनामे स्मृतिमञ्जमनःसाह

वर्षे हरिर्पङ्कजतां न तनाति ॥२८॥

श्रीगुरु उवाच

जम्पूद्वीपस्य च राजानुपश्रीपानर्था ईक उप

दिगन्ति गगनामजगन्धान्धेपण इमां मही परितो

निवृत्तद्विरुपम्विषातान् ॥२९॥ तद्यथा स्वर्णप्रम्य

यन्मृत् आरतना रमण्यो मन्दगङ्गिण पाशजन्म

नहीं करते और जहाँ नृत्य-गीतादिके साथ बड़े सम्पन्न

से भगवान् यज्ञपुरुषकी पूजा-वर्चा नहीं करी जाती—

यह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं

करना चाहिये ॥ २४ ॥ जिन जीवोंने इस मात्स्यसे

ज्ञान (विवेकसुद्धि), तदनुकूल कर्म तथा उस कर्मसे

उपयोगी द्रव्यादि सामग्रीसे सम्पन्न मनुष्य-जन्म पाया

है, वे यदि आकाशमनके चक्रसे निवृत्तताका प्रयत्न

नहीं करते, तो व्याधकी कौसीसे छूटकर भी पद्मादिके

श्रेयसे उसी वृक्षपर विहार करनेवाले बनवासी पक्षियों-

के समान फिर बन्धनमें पड़ जाते हैं ॥ २५ ॥

‘अहो ! इन भारतवासियोंका कैसा सौम्य है !’

जब ये यज्ञमें भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे कल्प-

अव्य भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्यादिके सेवसे

अद्यापूर्वक उन्हें हवि प्रदान करते हैं, तब इस प्रथम

हन्त्रादि भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकार जानेपर स्मृति

कामनाओंके पूर्ण करनेवाले स्वयं पूजकम भीहरी ही

प्रसन्न होकर उस हविके प्रहण करते हैं ॥ २६ ॥

यह ठीक है कि भगवान् सक्रम पुरुषोंके भोगपर

उन्हें अभीष्ट पदार्थ देते हैं, किन्तु यह भावना

वास्तविकताम नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओंको वास्तविक

भी मनुष्यके मनमें पुन कर्ममाएँ होती ही रहती हैं ।

इसके विपरीत जो उनका निष्कर्मभावसे भजन करते

हैं, उन्हें तो वे साक्षात् अपने चरित्रमय ही देख

हैं— जो कल्प समस्त इष्टांशोंका समस्त कर देनेवाले

हैं ॥ २७ ॥ अब अवनक स्वर्णसुख भोग सेनेक का

हमारे पूज्य यज्ञ, प्रयत्न और शुभ कर्मोंसे वां कुज

भी पुण्य बचा है, तो उसके प्रयत्नसे होने इन

भारतजन्ममें भगवान्की स्मृतिसे कुछ मनुष्य-जन्म भिन्न

क्योंकि श्रीहरि क्याना भजन करनेवालेम सब प्रयत्नसे

पर्याप्त करते हैं ॥ २८ ॥

श्रीगुरु उवाच कहते हैं—राजन् ! राजा सनके

पुत्रोंने जाने यज्ञके षोडशसे इन्होंने इष्ट रात पूज्य

पारो धारसे शोभा पा । उससे जम्पूद्वीपके कर्मज

ही आठ उपशो और बन गये, ऐसा कुज भावना

बदल है ॥ २९ ॥ व भगवान् पात्रद्वारा

आर्पण, रमण्य मन्दगङ्गिण, पाशजन्म

स्वर्गोभिः पितृदेवैर्म्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ।

प्रजानां सर्वासां राजाधः सोमो न आस्त्विति ॥ १२ ॥

एष स्रोताद्गृह्णित्वद्रिगुणं समानेनाहो घृतोदेन
यथापूर्वं कुशदीपा यस्मिन् कुशस्तम्भो देवकुशस्तम्भ-
दीपाभ्यामकरो ज्वलन इवापरं स्वप्नोचिपादिशो
विराजयति ॥ १३ ॥ तद्वदीपपतिं त्रैयव्रतो राजन्
हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तम्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं
विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत् वसुधसुदानश्चरुचि-
नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामस्य ॥ १४ ॥
तेषां वर्षेषु मीमागिरमो नद्यभ्राभिर्घाताः सप्त सप्तैव
चक्रमृतः मृग कर्पिलमित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा
द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा घृतविन्दा
देवगमा घृतच्युता मन्त्रमालेति ॥ १५ ॥ यासां
पयोभिः कुशदीपाँक्ष्म कुशलकोविदामियुक्तकुलक-
सज्जा भगवन्तं जातवन्मरुपिण कर्मकौशलेन
यजन्ते ॥ १६ ॥

परस्य व्रतणो साक्षाज्जातवेदोऽमि इष्यवाद् ।

दशानां पुर्याह्वानां यजनं पुरुष यजति ॥ १७ ॥

जो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षमें अपनी किरणोंसे विभाग करके
देखा, पितर और सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्न देते हैं, वे
अन्धदेव हमारे राजा (रखन करनेवाले) हों ॥ १२ ॥

इसी प्रकार मदिराके समुद्रसे आगे उससे दूने
परिमाणवाला कुशद्वीप है । पूर्वोक्त द्वीपोंके समान यह
भी अपने ही समान विस्तारवाले घृतके समुद्रसे घिरा
हुआ है । इसमें भगवान्का राजा हुआ एक कुशोंका
झाड़ है, उसीसे इस द्वीपका नाम निश्चित हुआ है ।
यह दूसरे अग्निदेवके समान अपनी कोमल शिखाओंकी
कान्तिसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करता रहता है ।
॥ १३ ॥ राजन् ! इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र
महाराज हिरण्यरेता थे । उन्होंने इसका सात विभाग
करके उनमेंसे एक-एक अपने सात पुत्र ऋतु, वसुदान,
दरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यन्न, विविक्त और वामदेवको
दे दिया और स्वयं तप करने चले गये ॥ १४ ॥
उनकी सीमाओंको निश्चय करनेवाले सात पर्वत हैं
और सात ही नदियाँ हैं । पर्वतोंके नाम चक्र, चतुःशृङ्ग,
यक्षिक, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण हैं ।
नदियोंके नाम हैं—रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा,
घृतविन्दा, देवगमा, घृतच्युता और मन्त्रमाला ॥ १५ ॥
इनके जलमें स्नान करने के कुशद्वीपवासी कुशन्ध, कोक्कि,
अभियुक्त और कुशक वणके पुरुष अन्निरूप भगवान्
हरिकृष्ण यज्ञादि कर्मकौशलके द्वारा पूजन करते हैं
॥ १६ ॥ (तथा इस प्रकार स्तुति करते हैं—) 'अने!
आप परब्रह्मण्य साक्षात् इति पढ़ीचानेवाले हैं; अतः
भगवान्के अङ्गभूत दशनाओंके यजनद्वारा आप उस
परमपुरुषका ही यजन करें' ॥ १७ ॥

थो घृतोत्ताद्गृह्णि क्रीडाद्वापा द्विगुणं स्वमानेन

राजन् ! फिर घृतसमुद्रसे आगे उससे द्विगुण
परिमाणवाला कुशद्वीप है । तिस प्रकार पुशनी

१ प्राचीन प्रतिये स्वर्गोभिः पितृदेवैर्म्यो 'अग्ने सितर' 'अग्ने' न आस्त्विति 'धरोत्तम' पूरा एक पंक्ति ही नहीं है ।

२ प्रा पा — राजपत्नी च्यवन । ३ प्रा पा — विराजति । ४ प्रा पा — पुरीषा नाम । ५ प्रा पा —
स्वयं द्रुत । ६ प्रा पा — विषमिगुप्त । ७ प्रा पा — माला कन्दैव चक्र । ८ प्रा पा — मित्र
विश्वरूप । ९ प्रा पा — मधुकुल्या । १० प्राचीन प्रतिये 'परस्य व्रतण' 'यह शरीर नहीं है' । ११ प्राचीन प्रतिये
'आप परब्रह्मण्य' 'यह पाठ नहीं है' ।

पमसन्दर्शनप्रजनना स्वर्गदार्श्रव्याविधया भगवन्तं
अभीमर्षं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥ ४ ॥

भक्तस्य विष्णो रूपं यत्सत्यसर्वस्य महिषम् ।
अस्य तस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥ ५ ॥

पुष्पादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमात्रः सहो
बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धि
रविशेषेण वर्तते ॥ ६ ॥

प्लवः स्वसमानेनेधुरसोदेनाहता यथा
तथा द्वीपोऽपि शास्त्रलो द्विगुणविशालः
समन्तेन सुरोदेनाहताः परिहृते ॥ ७ ॥
यत्र ह वै शास्त्रलो पुष्पामामा यस्यां वायुः फल
निलयमाहुर्मगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्रिराजस्य सा
द्वीपहृतये उपलक्ष्यते ॥ ८ ॥ तद्द्वीपाधिपतिः
प्रियव्रतात्मनो यज्ञपादुः स्वसुतेभ्यः सप्तम्यस्त-
त्रामानि सप्तवपाधि व्यभजत्सुराचनं सौमनस्यं
रमणकं दधवर्षं पारिभद्रपाप्यापनविज्ञातमिति ॥ ९ ॥
तेषु वर्षाद्वयो नद्यश्च सप्तैवाभिजाताः खरस
शतशृङ्गा नामदेवः कुन्दो हुंक्षन्द्ः पुष्पवपः सहस्र
धृतिरिति । अनुमतिं सिनीवाली सरस्वती कुहरवनी
नन्दा राकेति ॥ १० ॥ सदर्पपुरुषाः भूतधरधोर्यधर
चमुन्यैरेपन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममान्मानं
वेदेन यजन्ते ॥ ११ ॥

एक हजार वर्षकी होती है । इनके शरीरमें देवत्व-
की भाँति बलवत्, पसीना आदि नहीं होता के
सन्प्रभोत्पत्ति भी उन्होंने समझ ली है । ये अर्थ-
के द्वारा तीनों वेदोंमें वर्णन किये हुए सगके द्वारा
आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥
वे कहते हैं कि 'जो सत्य (अनुष्ठानयोग धर्म) को
अद्व (प्रतीति होनेवाले धर्म), वेद और पुण्य
फलक अभिजाता हैं—उन पुण्यपुरुष विष्णुस्वरूप भगवन्
सूर्यकी इस धरममें आते हैं' ॥ ५ ॥ इस आदि सौ
द्वीपोंमें सभी मनुष्योंको प्रथमसे ही वायु, इन्द्रिय,
मनोबल, इन्द्रियबल, शारीरिक बल, बुद्धि और प्रथम
समायकपसे सिद्ध रहते हैं ॥ ६ ॥

प्लवद्वीप अपने ही समान विस्तारवाले सूर्यसे
समुद्रसे घिरा हुआ है । उसके आगे उसके दूर
परिमाणवाला शास्त्रलो द्वीप है, जो उतने ही विस्तारवाले
मदियके सागरसे घिरा है ॥ ७ ॥ प्लवद्वीपके पश्चिमके
पेचके बराबर उसमें शास्त्रलो (सेमर) का द्वीप है ।
कहते हैं, यही द्वीप अपने वेदमय पक्षोंसे भगवन्
स्तुति करनेवाले पक्षियोंके आवाजान् गूँगाया निवासस्थान
है तथा यही इस द्वीपके नामकरणका भी हेतु है ॥ ८ ॥
इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महायज्ञ प्लवद्वीप
उन्होंने इसके सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देवर्षि,
पारिभद्र आत्यापन और अविज्ञात नामसे सप्त विष्णु
क्रिय और इन्होंने इन्हीं नामवाले अपने पुत्रोंको सौंप
दिया ॥ ९ ॥ इनमें से सप्त वर्षावर्ष और सप्त ही
नदियाँ प्रसिद्ध हैं । पर्वतोंके नाम खरस, शतशृङ्गा,
वायव्य, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष और सदर्पद्वीप हैं
तथा नदियाँ अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहरवनी,
नन्दा और राका हैं ॥ १० ॥ इन क्रमोंमें सप्तमके
भूतधर, धोर्यधर वसुन्धर और इपन्धर नामके चार वर्ष
वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् चन्दमकी वेदमयसे
उपासना करते हैं ॥ ११ ॥ (और कहते हैं—)

स्वर्गोभिः पितृदेवैर्मन्यो विमजन् कृष्णशृङ्गयो ।
प्रजानां मर्षासा राजाधः सोमो न आस्तिविति ॥ १२ ॥

एव सुरोदाहृतिस्त्वद्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन
यथापूर्वं कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तम्यो देवकृतस्तद्व
द्वीपाग्न्याकरो ज्वलन इवापर स्वशम्परोचिषा दिशो
विगजयति ॥ १३ ॥ तद्वद्वीपपतिः प्रियव्रतो राजन्
हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपसप्तम्यं स्वपुत्रम्यो यथाभाग
विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसुधसुदानन्दरुचि-
र्नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामम्यः ॥ १४ ॥
तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिघ्नता सप्त सप्तैव
शक्रभृत शृङ्ग कर्पिलधित्रकृन्ने दधानीक ऊर्ध्वरोमा
द्रविण इति रमकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा मृतविन्दा
देवगमा घृतच्युता मन्यमालेति ॥ १५ ॥ यासां
पयोभिः कुशद्वीपाकम् कुशलक्रोविदाभिपुक्तकुलक
सम्मा भगवन्त जातवधमरूपिण कर्मकौशलेन
यजन्त ॥ १६ ॥
परस्य व्रजर्षे साक्षाज्जातवेदाऽग्नि इव्यवाद् ।
दधानां पुरुषाङ्गनां यन्न पुरुषं यजेति ॥ १७ ॥

नो कृष्णपक्ष और शृङ्गपक्षमें अपनी किरणोंसे विभाग करते
देवता, पितर और सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्न देते हैं, वे
चन्द्रदेव हमारे राजा (रक्षन करनेवाले) हैं ॥ १२ ॥

इसी प्रकार मदिराके समुद्रसे आगे उससे दूने
परिमाणवाला कुशद्वीप है । पूर्वोक्त द्वीपोंके समान यह
भी अपने ही समान विस्तारवाले घृतके समुद्रसे घिरा
हुआ है । इसमें भगवान्का रक्षा हुआ एक कुशोक्त
बाक है, उसीसे इस द्वीपका नाम निश्चित हुआ है ।
यह दूसरे अग्निदेवके समान अपनी क्रोमत्त शिखाओंकी
कान्तिसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करता रहता है ।
॥ १३ ॥ राजन् ! इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र
महायान हिरण्यरेता थे । उन्होंने इसके सात विभाग
करके उनमेंसे एक-एक अपने सात पुत्र वसु, वसुदान,
द्वरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेवको
दे दिया और स्वयं तप करने लगे ॥ १४ ॥
उनकी सीमाओंको निक्षेप करनेवाले सात पर्वत हैं
और सात ही नदियाँ हैं । पर्वतोंके नाम शक्र, चतु शृङ्ग,
कर्पिल, धित्रकृन्ने, देवामीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण हैं ।
नदियोंके नाम हैं—रमकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा,
मृतविन्दा, देवगमा, घृतच्युता और मन्यमाका ॥ १५ ॥
इनके जलमें स्नान करने के कुशद्वीपवासी कुशान्न, फेविन्,
अभिपुक्त और कुलक वर्णके पुरुष अग्निरूप भगवान्
हरिकृष्ण यज्ञादि कर्म-कौशलके द्वारा पूजन करते हैं
॥ १६ ॥ (तथा इस प्रकार स्तुति करते हैं—) 'अग्ने !
आप परमशक्ति माक्षाएँ इति पहुँचानेवाले हैं; अतः
आपका अन्नभृत दधानाओंके यजनद्वारा आप उन
परमपुरुषका ही यजन करते' ॥ १७ ॥

यथा घृतान्दाहृतिः साक्षाद्वीपा विगुण स्वमानेन

राजन् ! त्रिंशत्पुत्रसमुद्रसे आगे उसमें विगुण
परिमाणवाला कुशद्वीप है । त्रिंशत् प्रकार कुशद्वीप

१ प्राचीन प्रतिभे स्वर्गोभिः पितृदेवैर्मन्यो 'ये सत्वरः क्षमा न आस्तिविति' यद्येवम् तदा एक पङ्क्ति ही महीरे ।
२ मा पा — अश्वपत्ने वसुध । ३ मा पा — विराजति । ४ मा पा — पयोमा माय । ५ मा पा —
मन्यं नु तन । ६ मा पा — विराभिगुण । ७ मा पा — शक्रः कर्पिलः शक्र । ८ मा पा — निता
विन्द । ९ मा पा — मधुकुल्या । १० प्राचीन प्रतिभे परस्य व्रजर्षे 'यह पङ्क्ति नहीं है । ११ प्राचीन प्रतिभे
क्षमा पुत्रादहं' यह पङ्क्ति महीरे ।

धीरोदेन परित उपकृतसो हृतो यथा ह्युद्वीयो हृतोदेन
 यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतरात्रो द्वीपनामनिर्वर्तक
 आस्ते ॥१८॥ योजसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्ब-
 क्रौञ्चोऽपि धीरोदेनासिध्यमानो भगवता वरुणेनाभि
 गुप्तो विमयो बभूव ॥ १९ ॥ तस्मिन्नपि त्रैयम्बतो
 घृतपृष्ठो नामाभिपतिः 'स्वे द्वीपे वर्षाभि सप्त
 विमन्य तेषु पुत्रनामस्तु सप्त रिक्पादान् वर्षपाभिवेश्य
 स्वैर्बभूव भगवान् परमकल्याणयशस आत्मभूतस्त
 हरेभरवारविन्दमुपजगाम ॥२०॥ औमो मधुकुहो
 मेघपृष्ठः सुधामा त्रात्रिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति
 घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरिः सप्त सप्तैव नद्यभामि-
 क्त्वाः शुक्ला वर्षमानो भोजन उपवर्हिणो नैन्दो
 नन्दन सर्वतोमद्र इति जगता अद्यतौघा आर्यका
 तोर्धवती हंसिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥२१॥
 यास्तामन्मः पवित्रममलमुपमुञ्जानाः पुर्यश्चपभ
 द्रविणद्वक्कसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमर्ष देवमर्षा
 पूर्वोनाञ्जलिना यदन्ते ॥ २२ ॥
 आर्षः पुरुषबोधा स्व पुनन्तोर्भूयः सुभः ।
 धानः पुनोतामीश्वरीः स्पृशतामात्मना शुभ इति ॥२३॥
 एवं पुरस्तात्धीरोदोत्परित उपवर्धितः शाकद्वीपो
 द्वात्रिंशत्सुभोजनायाम समानेन च दधिगन्धोदेन
 परीतो यस्मिन् शाफो नाम मदीरुह स्वधर्म्य

घृतसमुद्रसे विरा हुआ है, उसी प्रकार यह जल ही
 समान विस्तारवाले दुधके समुद्रसे विरा हुआ है। श्री
 कौञ्च नामका एक बहुत बड़ा पर्वत है, उसीके ऊपर
 इसका नाम क्रौञ्चद्वीप हुआ है ॥ १८ ॥ पूर्वजन्मे
 श्रीकृष्णमूर्तिकेयत्रीके राजप्रहारसे इसका कटनेसे
 और मत्त-मिहुआदि क्षत-विक्षत हो गया थे किन्तु
 धीरोदसमुद्रसे सींचा जाकर और कृपादेवसे सुखि
 होकर यह स्थिर निर्मय हो गया ॥ १९ ॥ सप्त द्वीपों
 अभिपति प्रियव्रतपुत्र म्हाराज घृतपृष्ठ थे। वे बड़े बड़े
 थे। उन्होंने इसको सात वर्षोंमें विनष्ट कर उन्हें
 उन्होंने समान नामवाले अपने सात उत्तराधिकारी
 पुत्रोंको नियुक्त किया और सब सम्पूर्ण जलके
 अन्तराळा, परम मङ्गलमय कीर्तिशाली म्हात्मा श्री
 पावन पदार्थविन्दोकी शरण ली ॥ २० ॥ म्हात्मा
 घृतपृष्ठके नाम, मधुकुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, शक्ति
 कोक्षितार्ण और वनस्पति—य सात पुत्र थे। उनके
 वर्षोंमें भी सात वर्षपर्वत और सात ही नदियाँ बह
 जाती हैं। पर्वतोंके नाम शुक्ल, वर्षमान, जेम्ब,
 उपवर्हिण, नन्द, नन्दन और सर्वतोमद्र हैं तथा नदियों
 के नाम हैं—अमया, अमृतौघा, आपका, दीर्घवती,
 हृदिकल्पवती, पवित्रवती और शुक्ला ॥ २१ ॥ इनके
 पवित्र और निर्मल अलका सेवन करनेवाले श्रीके पुत्र
 श्रवण, इषिण और वेष्क नामका चार बच्चे निकले
 अलसे भी हुई अलानिके द्वारा आपोदेवता (नलके
 देवता) की उपासना करते हैं ॥ २२ ॥ (और कहते
 हैं—) वे अलका देवता। शुभे पापप्रणासे सामर्थ्य प्राप्त
 है। शुभ भू, पुन और धा—तीनों लोकोंको पवित्र
 करते हो। क्योंकि सत्कृपासे ही पापोंका यन्त्रा करनेकल
 हो। हम अपने शरीरसे तुम्हारा स्पर्श करते हैं, तुम
 हमारे अङ्गोंको पवित्र करो ॥ २३ ॥

इसी प्रकार धीरोदसमुद्रसे आगे उसके आगे और
 बचीस अल योजना विस्तारवाला शाकद्वीप है, जो
 अपने ही समान परिमाणवाले मट्ठके समुद्रसे सिंच हुआ
 है। इसमें शाक नामका एक बहुत बड़ा वृक्ष है,

१ मा पा — द्येवद्वीपे । २ मा पा — स्वर्गभगवत परम । ३ मा पा — आच्छ । ४ मा पा — शिव
 तत्त्वैव नय । ५ मा पा — नन्दना तर्ष । ६ मा पा — हृदिकल्पवती । ७ मा पा — पर्वत । ८ मा पा — प्रसिद्ध
 आप पुराणीयां 'बह' शब्दक नहीं है । ९ मा पा — धीरोदसमुद्र । १० मा पा — नालन् दि धा ।

देशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति
 ॥२४॥ तस्यापि त्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्नामेधातिथिः
 सोऽपि विभज्य मत्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु
 स्वात्मजान् पुत्रेज्वमनोजवर्षयान् पूज्यानीकचित्ररेफ-
 बहुरूपविभधारसद्वाभिधाप्याधिपतीन् स्वर्ष भगव
 त्यनन्त आवेक्षितमतिस्तपोवनं प्रविषेक्ष ॥ २५ ॥
 एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैर्बे ईशान
 उरुपुङ्गवो बलमद्र शतकं सरः सहस्रस्रोतो देवपालो
 महानस इति अनघाऽऽयुर्दा उभयस्थट्टिरपराजिता
 पञ्चपदी सहस्रैस्तुतिर्निजवृत्तिरिति ॥ २६ ॥ उदर्षपुरुषा
 ऋतव्रतमस्वव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्त
 वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसं परम-
 समाधिना यजन्ते ॥ २७ ॥
 अन्त प्रविश्य मृतानि यो विमर्त्यात्मकेतुभिः
 अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥ २८ ॥
 एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्तता
 द्विगुणायामः समन्तत उपकरिषतः समानेन
 स्वादैक्येन समुद्रेण बहिरावृता यस्मिन् हृदैत्युष्कर
 न्वलनशिरामलकनकपत्राधुतायुतं भगवतः कमला-
 सनस्याप्यासनं परिकरिषतम् ॥ २९ ॥ तद्वद्वीपमप्ये
 मानमोक्षरामैक एवार्वाचीनपरीषीनवर्षयोर्मर्यादा
 चलोऽयुतयोजनोन्मृष्टायामायो यत्र तु चतसृषु दिक्षु

वही इस क्षेत्रके नामका कारण है । उसकी अत्यन्त
 मनोहर सुगन्धसे सारा द्वीप मङ्गलता रहता है ॥ २४ ॥
 मेधातिथि नामक उसके अधिपति भी राना प्रियव्रतके
 ही पुत्र हैं । उन्होंने भी अपने द्वीपको सात वर्षोंमें
 विभक्त किया और उनमें उन्हींके समान नामवाले
 अपने पुत्र पुरोव्रत, मनोजव, पञ्चमान, धृञ्जानीक,
 चित्ररेफ, बहुरूप और विभधारको अधिपतिरूपसे
 नियुक्त कर स्वर्ष म्पावान् अनन्तमें दत्तचित्त हो
 तपोवनको चले गये ॥ २५ ॥ इन वर्षोंमें भी सात
 मर्यादापर्वत और सात नदियाँ ही हैं । पर्वतोंके नाम
 ईशान, उरुपुङ्गव, बलमद्र, शतकंसर, सहस्रस्रोत,
 देवपाल और महानस हैं तथा नदियों क्नघा, आयुर्दा,
 उभयस्थुट्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रस्तुति और
 निजवृत्ति हैं ॥ २६ ॥ उस वर्षके ऋतव्रत, सत्यव्रत,
 दानव्रत और अनुव्रत नामक पुरुष प्राणायामद्वारा अपने
 रजोगुण-तमोगुणको क्षीण कर महान् समाधिके द्वारा
 वायुरूप भीहरिन्धि आराधना करते हैं ॥ २७ ॥ (और
 हम प्रकट कर उनकी स्तुति करते हैं—) जो प्राणादि
 वृत्तिरूप अपनी चक्राओंके सहित प्राणियोंके मीतर
 प्रवेश करके उनका पावन करते हैं तथा सम्पूर्ण
 दृश्य अगत जिनके अधीन है, वे साक्षात् अन्तर्यामी
 बापु भगवान् हमारी रक्षा करें ॥ २८ ॥

इसी तरह मट्टेके समुद्रसे आगे उसके चारों ओर
 उससे दूगुने विस्तारवाच्य पुष्करद्वीप है । वह चारों
 ओरसे अपने ही समान विस्तारवाले मीठे जलके
 समुद्रसे घिरा है । वहाँ अग्निवीर शिखरके समान
 देदीप्मान अश्वों स्वर्णमय पक्षियोंवाला एक बहुत
 बड़ा पुष्कर (कमल) है, जो ब्रह्मासीक आसन
 माना जाता है ॥ २९ ॥ उस द्वीपके बीचोंबीच उसके
 पूर्वीय और पश्चिमीय विभागोंकी मर्यादा निश्चित करने-
 वाला मानसोत्तर मामका एक ही पर्वत है । यह दस
 हजार योजन ऊँचा और उतना ही चौड़ा है । इसके
 ऊपर चारों दिशाओंमें इन्द्रादि लोकभागोंकी चार

१ प्रा वा — वैपमान । २ प्रा वा — उस ईशान । ३ प्रा वा — सहस्रैर्निज । ४ प्राचीन प्रतिम
 भरत प्रविषेक्ष — यह रक्षाक गरी है । ५ प्रा वा — दत्तपुरेण । ६ प्रा वा — पुष्कर स्वप्न ।
 ७ प्रा वा — मोक्षरामैक । ८ प्रा वा — प्राचीनवर्षयो ।

चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरि
ष्टास्त्रपरयस्य मरुं परिभ्रमन्त सवत्सरात्मकं चक्रं
देवानामहाराध्याम्नां परिभ्रमन्ति ॥३०॥ तद्वृद्धीपक्षा-
प्यधिपतिः प्रैयप्रता धीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ
रमर्षकश्चावकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वय
पूर्ववत्तद्गवत्कर्मशील एवास्ते ॥३१॥ तद्वर्षपुरुषा
भगवन्त ब्रह्मरूपिणं सफर्मकेषु कर्मणाऽऽराधयन्तीदं
चोदाहरन्ति ॥ ३२ ॥

यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥३३॥

अथैकवाच

वतः परस्ताड्योऽलोकनामाचलो लोकालोकयो-
रन्तराले परिव उपक्षिप्तः ॥३४॥ यावन्मानसोत्तर
मेवोरन्तरं वावती भूमिः काश्चान्यन्याऽऽद्वयलोपमा
यस्यां प्रक्षितः पदार्थो न कश्चित्पुनः प्रत्युपलभ्यते
वसात्सर्वसत्त्वपरिहृताऽऽसीत् ॥३५॥ लोकालोकवति
समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिना-
वसाप्यते ॥३६॥ स लोकत्रयान्ते परिव ईश्वरेण
विदितो यसात्सपादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योति
र्गोमानां गमस्तयाऽवाचीनां स्त्रीं लोकानावितन्वाना
न कदाचित्पराचीना भषितुमुत्सहन्ते वावद्
श्रद्धापायः ॥३७॥

एतावन्लोकविन्यासो मानलक्षणसंन्याभि

पुरियों हैं । इसपर मेरुपर्वतके चारों ओर धूम्रवर्ण
सूर्यके रूपका संवत्सररूप पश्चिमा देवताओंके दिन
और रात वर्षात् उत्तरायण और दक्षिणायनके चक्रों
सर्वदा घूमा करता है ॥ ३० ॥ उस वृद्धीपक्ष
प्रियम्नपुत्र धीतिहोत्र भी अपने पुत्र रमर्षक के
चातकिस्रो दोनों वर्षोंका अधिपति बनाकर स्वयं वर्ष
बढ़े भाष्यके समान भगवत्सेवामें ही तत्पर रहने का
पा ॥ ३१ ॥ चक्रोंके निवासी ब्रह्मरूप भगवत्
हृदयकी ब्रह्मसाक्षीव्यादिकी प्राप्ति बनातेवाले कर्मों
आराधनाकरते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—॥३२॥ ये
साक्षात् कर्मफलरूप हैं और एक परमेश्वरमें ही जिनकी ही
स्थिति है तथा जिनकी सब जग पूजा करते हैं,
ब्रह्मज्ञानके साधनरूप उन अद्वितीय और शान्तस्वर
ब्रह्ममूर्ति भगवान्को मेरा नमस्कार है ॥ ३३ ॥

भीशुकरदेवजी कहते हैं—रावन् ! इसके ऊपर
लोकजनेक नामका पर्वत है । यह पृथ्वीके सब ओर
सूर्य आदिके द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशोंके
बीचमें ठनकर विभाग करनेके लिये स्थित है ॥ ३४ ॥
मेरुसे लेकर मानसोत्तर पर्वततक जितना ऊपर है,
उतनी ही भूमि छद्मोदक समुद्रके उस ओर है ।
उसके ऊपर सुवर्णमयी भूमि है, जो दर्पणके समान
स्वच्छ है । इसमें गिरी हुई कोई वस्तु फिर नहीं
मिलती, इसलिये चन्द्रों वेक्ताओंके अतिरिक्त और कोई
प्राणी नहीं रहता ॥ ३५ ॥ लोकत्रयके पर्वत सर्व
आदिसे प्रकाशित और अप्रकाशित भूभागोंके बीचमें
है, इससे इसका वह नाम पड़ा है ॥ ३६ ॥ इसे
परमात्माने त्रिलोक्यके बाहर उसके चारों ओर छिमाके
रूपमें स्थापित किया है । यह इतना ऊँचा और ठोस
है कि इसके एक ओरसे सीनें चोकेंको प्रकाशित
करनेवाली सूर्यसे लेकर ध्रुवपर्यन्त समस्त ज्योतिर्मय-
की निगम दूसरी ओर नहीं जा सक्ती ॥ ३७ ॥

विज्ञानोने प्रमाण, लक्षण और स्थितिके अनुसार
समूर्ण लोकोंका इतना ही विस्तार बताया है । यह
समस्त भूगोल पचास करोड़ योजन है । इसमें

मृगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥३८॥
 सपुपरिष्ठास्यतमुष्माश्वात्मात्मपोनिनाखिलअगदुरुणा
 निवेक्षिता ये द्विरदपत्य श्रुपमः पुष्करचूडो
 वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिदेव ॥३९॥
 तेषां स्वैविमृतीनां लोकपालानां च विविधवीर्येष
 ऋशपाय भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपति-
 रन्तयोऽम्मात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्या-
 यष्टमहासिद्धघुपलभ्यर्ण विष्वक्सेनादिभि स्वपार्षद
 प्रवरै परिवारिता निजवरापुधोपशोर्मितैर्निजसुज-
 दण्डैः सन्धारयमाणान्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात्सकल
 लोकस्वस्त्य आस्ते ॥४०॥ आकल्पमेवै चेष गत
 यय भगवानात्मयोगमायया विरचितविविध
 लोकपात्रागोपीधायेत्यर्थ ॥ ४१ ॥ योऽन्तर्विस्तार
 एतेन ब्रह्मलोकपरिमाणं च व्याख्यात यद्बहिल्लोका
 लोकाचलात् । ततः परस्तादागेश्वरगतिं विशुद्धासुधा-
 हरन्ति ॥ ४२ ॥
 अण्डमध्यगतः सूर्यो धावामूम्यार्थदन्तरम् ।
 मूयोऽण्डगालयार्थेकात्र स्य पञ्चविंशति ॥४३॥
 मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यदमृततो मार्तण्ड इति
 व्यपदश ।
 हिरण्यगर्भ इति यद्विरण्णाण्डसमुद्भवः ॥४४॥
 सूर्येण हि विभज्यन्तेदिशः स्रं घौर्मही भिदा ।
 स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशु ॥४५॥

चौपार्श्व भाग (अर्थात् साबे वरह क्तोव योजन
 विस्तारवाला) यह लोकालोकपवत है ॥ ३८ ॥
 इसके ऊपर चारों दिशाओंमें समस्त ससारके गुरु
 स्वयम्भू श्रीब्रह्माजीने सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये
 श्रुपम, पुष्करचूड, वामन और अपराजित नामके चार
 गमराज नियुक्त किये हैं ॥ ३९ ॥ इन ण्गजोंकी और
 अपने अश्वरूप इन्द्रादि लोकपालोंकी विविध
 शक्तियोंकी बुद्धि तथा समस्त लोकोंके धन्यप्राप्तक
 लिये परम ऐश्वर्यके अवधिपति सर्वान्तर्धानी परम पुरुष
 श्रीहरि अपने विष्वक्सेन आदि पार्षदोंके सहित इस
 पर्वतपर सब ऊपर विराजते हैं । वे अपने विशुद्ध
 सत्त्व (श्रीविभू) को जो धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य
 आदि आठ महासिद्धियोंसे सम्पन्न हैं, धारण किय
 हुए हैं । उनके करकमलमें शङ्ख चक्रादि बाधुध
 सुशोभित हैं ॥ ४० ॥ इस प्रकार अपनी योगमाया
 से रचे हुए विविध लोकोंकी व्यवस्थाकी सुरक्षित
 रखनेक लिये वे इसी श्रीलामय रूपसे कल्पके अन्ततक
 वहाँ सब और रहते हैं ॥ ४१ ॥ लोकालोकक
 अन्तर्कर्त्ता भूमागन्त वितना विस्तार है, उसीसे उसके
 दूसरी ओरक अनेक प्रदेशके परिमाणकी भी व्याख्या
 समझ लेनी चाहिये । उनके आगे तो कल्ल योगेश्वरों
 की ही ठीक-ठीक गति हो सकती है ॥ ४२ ॥

राजन् । खग और पृथ्वीके बीचमें जो ब्रह्माण्डका कन्द
 है, वही सूर्यकी स्थिति है । सूर्य और ब्रह्माण्डगोच्यक
 बीचमें सब ओरमें पचीस क्तोव योजनका अन्तर है
 ॥ ४३ ॥ सूर्य इस मृत अर्थात् मरे हुए (अचेतन)
 अण्डमें बराजरूपसे विराजते हैं इसीसे इनका नाम
 मार्तण्ड हुआ है । ये हिरण्यमय (अत्युत्तमय) ब्रह्माण्डसे
 प्रकट हुए हैं इसलिये इन्हें हिरण्यमार्ग भी कहते हैं ॥ ४४ ॥
 सूर्यके द्वारा ही पृथ्वी आकाश पुनोक् (अतश्चिह्नोक),
 मूर्त्योक, स्वर्ग और माक्षिके प्रवेश नरक और रसातल
 तथा अन्य समस्त भागोंका विभाग होता है ॥ ४५ ॥

१ प्रा पा — मृगमक्षय । २ प्रा पा — भिन्निषेधिता । ३ प्रा पा — स्वाविपठाना मदेन्द्रादीनां
 लोकपालानां विविध । ४ प्रा पा — भित्तिर्गुणदण्डैः । ५ प्रा पा — येष एवमात्मनाम । ६ प्रा पा — विविध-
 लोकपाला ।

मानसोचरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं
 सैलयन्त्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोचरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥

तस्मिन्मये कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन सम्मित
 सैलयन्त्राद्यवद् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥ १४ ॥

रथनीडस्तु पट्विंशच्छ्रयोऽजनापतस्तत्तुरीयभाग
 विशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाच्छन्दोनामानः
 सप्तालम्भयोजिता वहन्ति देवमान्तिन्यम् ॥ १५ ॥

पुरस्तात्सवितुररुण पश्चाच्च नियुक्तः सौरये कर्मणि
 किलास्त ॥ १६ ॥ तथा बालसिन्या अपयोऽङ्गुष्ठ-
 पर्वमात्रा पटिसहस्राणि पुरतः ध्रुवं सूक्तवोक्तय
 नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥ १७ ॥ तथान्ये च अपयो
 गन्धवाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा
 इत्येकैकशो गणा सप्तचतुर्दश मासि मामि भगवन्त
 सूर्यमात्मोर्न नानानामानं पृथङ्नानानामानं पृथक्
 कर्मभिर्द्रव्यं उपामते ॥ १८ ॥ लघोचर मार्धनव
 क्षोनियोर्जनपरिमण्डलं भूवल्लयस्य क्षणेन सैगन्यस्य
 चर द्विमहस्यप्रानानि स भृङ्ग ॥ १९ ॥

की धुरीका एक सिरा मेरुपर्वतकी चोटीपर है ठी
 दूसरा मानसोत्तर पर्वतपर । इसमें स्या इत्य
 पहिया कोरूके पहियेके समान घूमता इत्य म
 सोत्तर पर्वतके ऊपर लपका रखाता है ॥ १३ ॥
 धुरीमें—मिसका मूल भाग छुका हुआ है, ऐसी ए
 धुरी थीर है । यह ब्रह्मामि इससे चौड़ा है । उस
 ऊपरी भाग सैलयन्त्रके धुरेके समान ध्रुवकेसे ह
 हुआ है ॥ १४ ॥

इस रथमें बैठनेका स्थान छठीस बल जो
 संवा और नौ लक्ष योजन चौड़ा है । इसका द
 भी छठीस लाख योजन ही लम्बा है । उसमें क
 नामके सारथिने गायत्री वादि छन्दोंकेसे नाम
 सात घोड़े जोत रखे हैं, वे ही इस रथपर बैठे ।
 मगवान् सूर्यको ले चलते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य
 आगे उन्नीस की ओर मुँह करके बैठे हुए चल उ
 सारथिका कार्य करते हैं ॥ १६ ॥ मगवान् सूर्य
 आगे अँगूठेके पोरूपके बराबर आकारवाले दमस्तिक
 सात हजार अथि स्वस्तिवाचनके लिये नियुक्त हैं ।
 उनका स्तुति करते रहते हैं ॥ १७ ॥ इनके अतिरि
 अथि, गन्धर्व, अप्सरा, नागा, यक्ष, रक्षस व
 देवता भी—जो कुछ मित्रकर चौक है, कि
 जोइसे रहनेके कारण सात गण कहे जाते हैं—इस
 माममें भिन्न-भिन्न मामोंवाले होकर अपने भिन्न-भि
 कर्मोंसे प्रत्येक माममें भिन्न भिन्न नाम धारण करनेके
 आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यकी दो-दो मित्रकर उपास
 करते हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार मगवान् सूर्य भूस्व
 के नौ करोड़, इक्ष्वाकुन लाख योजन लंबे प्रदे
 प्रत्येक क्षणमें दो हजार दो योजनकी दूरी पर
 लेते हैं ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यं गङ्गितायां पञ्चमस्कन्धे ज्योतिर्धर्मसूययमण्यन
 नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

१ प्रा पा — सूक्तवाक्यय । २ प्रा पा — सा मासि मयच । ३ प्रा पा —
 मा । पृथगात्मन पृथ । ४ प्रा पा — क्षणमण्डलं । ५ प्रा० पा — सगन्यस्य । ६ प्रा पा —
 भूवल्लयस्य ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

मित्र मित्र प्रहोकी स्थिति और गतिकर वर्णन

राजोवाच

यदेतद्भगवत आदिन्धस्य मेरुं ध्रुवं च
प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राक्षसीनामभिमुखं प्रचलितं
चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णिताममुष्य वयं कथमनु
मिमीमदीति ॥ १ ॥

स हावच

यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां वद-
भयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरे
ष्वप्सुपलम्बमानत्वादेवं नक्षत्रराक्षसिदृष्टादितेन
कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह
परिधावमानानां वदाभयाणां दूर्यादीनां ग्रहाणां
गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राक्षान्तरे चोपलम्बमान-
त्वात् ॥ २ ॥ स एष भगवानाप्तिपुरुष एव साक्षा-
त्कारायणो लोकानां स्वस्वय आत्मानं त्रयीमय कर्म
विगुह्निनिमित्तं कविमिरपि च वेदं विम्विज्ञास्य
मानां द्वादशधा विमज्य पटसु वसन्तादिष्वनुपु
यथोपजोषमृतगुणान् विदधाति ॥ ३ ॥ समवमिह
पुरुषास्त्रय्या विषयो वर्णोऽप्रभाचारानुपथा उवाचैव
कर्ममिराम्नातैर्योगवितानैश्च यदस्या यजन्तोऽञ्जसा
भयं समधिगच्छन्ति ॥ ४ ॥ अथ स एष आत्मा
लोकानां दावापुत्रिव्यान्तरण नभाषल्यस्य काल
चक्रगता द्वादश मासान् शुक्लं रात्रिसंज्ञान् सबत्सरा-
भयशामाम पर्वद्वयं दिवा नक्तं चेति सप्ताहसप्तय

राजा परीक्षितमे पृथक्—भगवन् । आपने जो

कहा कि यद्यपि भगवान् सूर्य राशियोंकी ओर जाते
समय मेरु और ध्रुवको दायाँ और रखकर चलते माध्यम
होते हैं, किन्तु वस्तुतः उनकी गति दक्षिणावर्त नहीं
होनी—इस स्थितिको हम किस प्रकार समझें ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन् । जैसे कुन्धारके
घूमते हुए चाकपर बैठकर उसके साथ घूमती हुई
चींठी आदिकी अपनी गति उसमें मिश्र ही है क्योंकि
वह मिश्र-मिश्र समयमें उस चक्रके मिश्र-मिश्र स्थानों-
में देखी जाती है—उसी प्रकार नक्षत्र और राशियोंमें
उत्पन्न कालचक्रेमें पक्षर ध्रुव और मेरुको दायाँ
रखकर घूमनेवाले सूर्य आदि ग्रहोंकी गति वास्तवमें
उससे भिन्न ही है; क्योंकि वे कालमेदसे भिन्न-भिन्न
राशि और नक्षत्रमें देस पड़ते हैं ॥ २ ॥ वेद और
विद्वान् लोग भी बिनकी गतिको जाननेके लिये उल्लूक
रहते हैं, वे साक्षात् आप्तिपुरुष भगवान् नारायण ही
लोकोंके कल्याण और कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने
केमय विग्रह कालको बारह मासोंमें विभक्त कर
वसन्तादि छ ऋतुओंमें उनके यथाव्यय गुणोंका
विधान करते हैं ॥ ३ ॥ इस लोकमें वर्णाश्रमधर्मका
अनुसरण करनेवाले पुरुष वेदप्रयोगद्वारा प्रतिपादित
छोटे-बड़े कर्मोंसे इत्यादि देवताओंके रूपमें और योगके
साधनोंसे अन्तर्यामीरूपमें उनकी सदापूर्वक आराधना
करके सुगमतासे ही परम पद प्राप्त कर सकते हैं ॥ ४ ॥
भगवान् सूर्य संपूर्ण लोकोंके आत्मा हैं । वे
पृथ्वी और पुनोक्तक मध्यमें स्थित आकाशमण्डलके
भीतर कालचक्रमें स्थित होकर बारह मासोंको भ्रमते
हैं, जा सत्रसरके अवयव हैं और भेद आदि राशियों
के नामसे प्रसिद्ध हैं । इनमेंसे प्रत्येक मास पन्द्रहमानसे
शुक्ल और कृष्ण दो पञ्चमय, विद्वमानसे एक रात्र और

उभयन्ता युधो व्याख्यातस्तत् उपरिष्टाद्
द्विलक्षयाजनतो ध्रुव सोमसुत उपलम्बमानः
प्रायेण शुभकृष्णार्काद् व्यतिरिच्येत तदाविषाता-
ध्रप्रायानाद्व्यादिभयमाशंसते ॥ १३ ॥ अतः
ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलम्ब्य
मानस्त्रिभिस्त्रिभिः पञ्चैरर्कैश्चो राशौ द्वादशानु-
सृष्टे यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहो-
ऽपश्य ॥ १४ ॥ तत् उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनान्तरगतो
भगवान् घृहस्थतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सर परिवत्सर
चरति यदि न वक्र स्यात्प्रायेणोनुकूलः प्राक्पण
कुलस्य ॥ १५ ॥

तत् उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयारप्रतीयमान
धनैश्च र्कैरुस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् चिलम्ब-
मानः सर्वानेवानुपयेति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण
दि सर्वेषामशान्तिफल ॥ १६ ॥ तत् उत्तरकादप्य
एकादशलक्षयोजनान्तरं उपलम्ब्यन्त य एवं लोकानां
शमनुभावपन्ता भगवता विष्णोर्वात्परम पदं
प्रार्थ्यैव प्रक्रमन्ति ॥ १७ ॥

शुक्रकी गतिके साथ-साथ सुषकी भी व्याख्या हो
गयी—युक्तक अनुसार ही शुधकी गति भी समझ
लेनी चाहिये । यह चन्द्रमाका पुत्र शुक्रसे दो लाख
योजन ऊपर है । यह प्राय मङ्गलकरी ही है, किन्तु
जब सूर्यकी गतिकर उछलन करके चलता है, तब बहुत
अधिक आँधी, बारूक और सूखेके मयकी सूचना देता
है ॥ १३ ॥ इससे दो लाख योजन ऊपर मङ्गल
है । यह, यदि वक्रगतिसे न चले तो, एक-एक राशि-
को तीन-तीन पञ्चमे मोगना हुआ बारहों राशियोंको
पार करता है । यह अशुभ ग्रह है और प्राय
अमङ्गलका सुषक है ॥ १४ ॥ इसके ऊपर दो लाख
योजनकी दूरीपर भगवान् घृहस्थतिजी हैं । ये यदि
वक्रगतिसे न चले, तो एक-एक राशियोंको एक-एक
पन्ने मोगते हैं । ये प्राय प्राक्पणकुलके नित्ये अनु-
कूल रहते हैं ॥ १५ ॥

घृहस्थानिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्च दिखायी
देते हैं । ये तीस-तीस महीनेतक एक-एक राशिमें
रहने हैं । अतः इन्हें सब राशियोंको पार करनेमें
तीन वर लग जाते हैं । ये प्राय समीके नित्ये अशान्ति-
कारक हैं ॥ १६ ॥ इनके ऊपर म्यारह लाख
योजनकी दूरीपर वदपयानि सप्तर्षि दिखायी देते हैं ।
ये सब राशियोंकी मङ्गलकामना करते हुए भगवान्
विष्णुक परम पदं धुक्कामकी प्रदक्षिणा किया करते
हैं ॥ १७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो मंडितपां पञ्चमस्कन्धे ज्योतिषक-
वर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

शिशुपारथप्रश्नश्च यन्म

धीर्गुण उपाय

धीर्गुणकृष्णजी कदम है—सद्वत् । सप्तविंशो

अथ सप्तात्परतगयात्पुल्लयाजना तरता
यथादिप्या परम पदमभिवदन्ति तत्र ह महा
भागवता ध्रुव आगमनादिपरिनिष्ठेण प्रजापतिना

सद्वत्पण योजन ऊपर धुक्काम है । इस मतान्
शिशुपारथप्रश्न कदम है । यो उच्छन्नगन्ध पुत्र
परम मङ्गलक धुक्की मोगजन है । अग्नि, इन्द्र

१ मा पा — प्रथमः । २ मा पा — द्वादशोऽध्यायः । ३ मा पा — अथ त्रयोविंशोऽध्यायः । ४ मा
पा — अथ १५ मा पा — अथ त्रयोविंशोऽध्यायः । ५ मा पा — अथ त्रयोविंशोऽध्यायः । ६ मा पा — अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

कल्पेन धर्मेण च समकालयुग्मिः सवहुमान
दक्षिणतः क्रियमाणा इदानीमपि कल्पजीविनामा
स्त्रीभ्य उपास्ते सत्येहातुभाव उपवर्णित ॥१॥ स
वि सर्वेषां न्यातिर्गणानां ग्रहणत्रादीनामनिमित्तेणा
अमरं हसा भगवता कोठेन आम्भमाणानां
स्वागुरिवावष्टम् ईश्वरं विहितः क्षयद्वभासते।२।

यथा मेहीस्तम्भ आक्रमणपशुः संयोजितैस्त्रिभि
स्त्रिभिः सवनैर्यथास्यान मण्डलानि चरन्त्येवं भगवा
ग्रहादय एवासिम्बन्तर्बह्विर्गण कालचक्र आ-
याजिता मृगमवत्वलम्भ्य वायुनादीयमाणा आ-
कृत्यान्त परिचङ्क्रमन्ति नमसि यथा मेवा
द्वेनाहो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं
न्यातिर्गणा प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीता कर्म
निर्मितगतयो ह्यवि न पवन्ति ॥ ३ ॥

केचनैतन्न्योतिरनीकं क्षिप्रमारमन्थानेन भगवतो
वासुदेवस्य भोगधारणायाममुवर्षयन्ति ॥ ४ ॥ यस्य
पुच्छं त्रेधा त्रिभुजैः कुण्डलीभूतदेहस्य क्षुब्ध उप
कल्पितस्तस्य लाङ्गूल प्रजापतिरमिरिन्द्रो धर्म इति
पुच्छमूले धाता विधाता च कथां सप्तर्षय । तस्य
दक्षिणार्धकुण्डलीभूतशरीरस्य आन्युदधयनानि

प्रजापति कल्पय और धर्म—य सब एक साथ कल्प
आदरपूर्वक इनकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं। अब ये
कल्पपर्यन्त रहनेवाले लोक इन्हीं के आचार स्थित हैं।
इनका इस लोकका प्रभाव हम पहले (चौथे स्कन्धमें)
वर्णन कर चुके हैं ॥ १ ॥ सत्ता आते रहनेके
अन्यकृति भगवान् कामके द्वारा जो ग्रहणकर
ज्योतिर्गण निरन्तर घुमाये जाते हैं भगवान्ने सुखे-
का ही उन सबके आचारस्तम्भ रूपसे निपुष्ट स्थित
हैं। बात यह एक ही स्थानमें रहकर उस
प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

जिस प्रकार दोय चबानेके समय क्लान्त
खूँनेवाले पशु छोटी, बड़ी और मध्यम रस्तेमें
बैचकर कमरा निकट, दूर और मध्यमें रहकर
खंभेके चारों ओर मण्डल बौंकर घूमते रहते हैं,
उसी प्रकार सारे मन्त्र और प्रमाण बाहर-भीतके
कर्मसे इस कालचक्रमें निपुष्ट होकर घुमनेके
ही आशय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पके कल-
तक घूमते रहते हैं, जिस प्रकार मेघ और वर्षा
आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके कर्तव्य
रहकर आकाशमें उड़ते रहते हैं, उसी प्रकार वे
अपने कर्मोंके अनुसार चक्कर कांते रहते हैं, दूसरे
नहीं गिरते ॥ १ ॥

कोई-कई पुरुष भगवान्की योगसाधनेके आचरण
स्थित इस ज्योतिष्मकका शिखुमार (घुँस) के रूपमें
वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ यह शिखुमार कुम्भी करे
हूए है और इसका मुख नीचेकी ओर है। इसमें
पूँछके सिरेपर ध्रुव स्थित हैं। पूँछके मध्यभागमें प्रज-
पति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं। पूँछकी उड़ने वाला
और विधाता हैं। इसके कटिप्रदेशमें सप्तर्षि हैं।
यह शिखुमार दाहिनी ओरको सिपुबद्ध कुम्भी
गरे हुए हैं। ऐसी स्थितिमें अग्निविद्से लेकर पुनर्मु-
पर्यन्त जो उच्छरायणके चौदह नक्षत्र हैं, वे इसके
दाहिने भागमें हैं और पुन्यसे लेकर उच्छरायणार्ध
जो दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र हैं, वे बायें भागमें हैं।

दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणापनानि
 तु सन्धे । यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्धिवेद्यस्य
 पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंस्था भवन्ति । पृष्ठे
 त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः ॥ ५ ॥ पुनर्वसु
 पुष्पी दक्षिणवामयोः^१ भोग्योराद्रीदलेषे च दक्षिण
 वामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिद्रुचरापादे दक्षिण-
 वामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं भवणपूर्वापादे दक्षिण
 वामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः
 कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणापनानि वाम-
 पार्श्ववङ्कितेषु युज्यीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगप-
 नानि दक्षिणपार्श्ववङ्कितेषु प्रातिलोभ्येन प्रयुज्यीत
 शतभिषाज्येष्टे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥ ६ ॥
 उत्तराह्नावगस्तिरभराह्नौ यमो मुखेषु आङ्गारकः
 शनैश्चर उपत्ये पृहस्पतिः ककुदि वधस्पादित्यो हृदये
 नारायणो मनसि चन्द्रो नाम्पाशुशनास्तनयोरधिनी
 शुभः प्राणापानयो राहुर्गले केतव सर्वाङ्गेषु
 रोमेषु सर्वे तारागणाः ॥ ७ ॥

एतद् ईव भगवता विष्णोः सर्वदेवतामयं
 रूपमहरहः सञ्चयायां प्रयता वाग्यतो निरीक्षमाण
 उपतिष्ठत नमो ज्वातिलोकाय कालायनाया
 निमिषां पतय महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ ८ ॥
 प्रार्थितारामयमाधिदेविक

पापावह मन्त्रकृतां त्रिकालम् ।

शोकमें भी जब शिशुमार कुण्डलाकार होता है, तब उसके
 दोनों ओरके अङ्गोंकी संख्या समान रहती है, उसी
 प्रकार यहाँ नक्षत्र-संख्यामें भी समानता है । इसकी
 पीठमें अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा
 नामके तीन नक्षत्रोंका समूह) है और उदरमें आकाश
 गङ्गा है ॥ ५ ॥ राजन् ! इसके दाहिने और बायें
 कटितटोंमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं, पीछेके दाहिने
 और बायें धरणोंमें आर्द्रा और स्वास्त्या नक्षत्र हैं तथा
 दाहिने और बायें नयनोंमें क्रमशः अभिजित और
 उत्तराषाढा हैं । इसी प्रकार दाहिने और बायें त्रणोंमें
 भवण और पूर्वाषाढा एवं दाहिने और बायें कानोंमें
 धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं । मवा आदि दक्षिणापनके
 आठ नक्षत्र बायीं पसलियोंमें और निपरीत क्रमसे
 मृगशिरा आदि उत्तरापनके आठ नक्षत्र दाहिनी
 पसलियोंमें हैं । शतभिषा और ज्येष्ठा—ये दो नक्षत्र
 क्रमशः दाहिने और बायें कंधोंकी जगह हैं ॥ ६ ॥
 इसकी ऊपरकी धूपनीमें आस्त्य, नीचेकी टोहीमें
 नक्षत्ररूप यम, मुखमें मङ्गल, छिन्नप्रवेशमें शनि, ककुदमें
 बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा,
 नाभिमें शुक, स्तनोंमें अचिनीकुमार, प्राण और अपानमें
 शुभ, गलेमें राहु, समस्त अङ्गोंमें केतु और रोमोंमें
 सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं ॥ ७ ॥

राजन् ! यह भगवान् विष्णुका सर्वत्रैवमय स्वरूप
 है । इसका निरूपण सावधानके समय पत्रि और
 गीन होकर दर्शन करते हुए चिन्तन करना चाहिये
 तथा इस मन्त्रका जप करते हुए भगवान्की स्तुति
 करनी चाहिये—‘समूह गतिर्गणेशे आश्रयः कलकल-
 स्तस्य सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्माका हम
 नमस्कारपूर्वक प्यान करते हैं’ ॥ ८ ॥ अइ, नक्षत्र और
 ताराओंके रूपमें भगवान्का आध्यात्मिकरूप प्रकाशित
 हो रहा है; पर तीनो समय उरगुप्त मन्त्रका जप
 करनेवाले पुरुषोंका पाप नष्ट कर देता है । जो पुरुष

१ मा वा — उत्तराश्विने च । २ प्राचीन प्रतिमें ‘दक्षिणवाम’ पर एतद् मही है ।
 ३ मा वा — उत्तराश्विने च । ४ मा वा — मृगशीर्षादीन्यु । ५ मा वा — अभिजित्पुष्ये प्रति
 स्कन्धेन उपतिष्ठत । ६ मा वा — उत्तराह्नावगस्तिरभराह्नौ यमो मुखेषु । ७ मा वा — नक्षत्रगुणना
 शनः । ८ मा वा — न्यसे नमो हन् ।

नमस्ततः सरतो वा त्रिकाल

नम्येयं सत्कालप्रमाणम् पापम् ॥ ९ ॥

प्रातः, मध्याह्न और साय—इनो काल उनके प्रातः
आधिदैविक स्वरूपका नियमप्रति चिन्तन और करना
करता है, उसके उस समय किये हुए पाप दूर हो
जाते हैं ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसा संहितायां पञ्चमस्कन्धे शिशुमारस्तोत्रार्कणं
नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

राहु मायिकी स्थिति मृत्युस्थिति नीचेके छेकोंका वर्णन
श्रीगुरु उवाच

अथ तत्सविद्योर्जनायुते स्वर्मानुर्नष्टप्रवर्तनी
स्वेकं मोऽसामरत्नं ग्रहस्य चातमसं भयवद्भु-
कम्पना स्वयमसुरापसदः सैहिकेभ्यो हतवर्हस्तस्य
तात जन्म कर्माणि चोपरिष्ठाद्दृश्यामः ॥ १ ॥

वददस्तरत्नेर्मण्डलं प्रवपवस्तद्विस्तरता योजन-
युतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं
राहोर्ध्वं पर्वणि त्रयस्यैवधानकवेराजुषधः सूर्यो-
चन्द्रमसाश्चमिधावसि ॥ २ ॥ तभिश्चम्यामयत्रावि

भगवता रक्षभाय प्रयुक्तं सुदृष्टन नाम भागवतं
दधितमर्कं तत्तेजसा सुर्विषहं ब्रह्मः परिवर्तमान
मम्यमस्त्रिंशो सुहृद्विद्विमानधक्तिहृदय आरा
देव निवर्तते तद्वरागमिति वदति लोकाः ॥ ३ ॥

ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविषाधराणां सदनानि
वाचनमात्रं यव ॥ ४ ॥ ततोऽधस्ताद्वायव्यः

विद्याप्रवभूतगणानां विहाराभिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परिच्छिद्य । कुछ छेकोंका
कल्प है कि सूर्यसे दस हजार योजन नीचे छे
मध्यर्धके समान घूमता है । इसने मत्तानुकी रूपसे
ही देख और महसूस प्राप्त किया है, स्वयं यह सिद्धि-
पुत्र असुरावयव होनेके कारण किसी प्रकार इस फल
योग्य नहीं है । इसके अन्य और कर्मोंका हम कभी
वर्णन करेंगे ॥ १ ॥ सूर्यका जो यह कल्पित उत्तर
हवा मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन
वर्गमया जाता है । इसी प्रकार चन्द्रमण्डलका विस्तार
बारह हजार योजन है और राहुका द्वादश हजार योजन ।
अमृतपानके समय राहु देवताके केमों सूर्य और
चन्द्रमाके बीचमें जाकर बैठ गया था, उस समय सूर्य
और चन्द्रमाने इसका मेह खोज लिया था, उस वक़्त
याद करके यह अमावास्या और पूर्णिमाके दिन उत्तर
वर्गमण करता है ॥ २ ॥ यह देखकर मत्तानुने
सूर्य और चन्द्रमाकी गथाके छिये उन दोनोंके बीच
जपने प्रिय आयुष सुन्दराने वाक्यसे निमुक्त कर दिया
है । यह निरन्तर घूमता रहता है, इसलिये राहु उसके
मध्य में तेजसे उदित और चकिताचित होकर सुदृष्टन
उनके सामने निककर फिर सहसा छोट जाता है ।
उसके उत्तमी देर उनके सामने ठहरनेकी ही ओर
‘प्रहण’ कहते हैं ॥ ३ ॥

राहुसे दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और
विषाधर आदिके स्थान हैं ॥ ४ ॥ उनके नीचे
जहाँतक वायुकी गति है और बादल दिशाप्रदी देते हैं,
अन्तरिक्ष क्षेत्र है । यह यक्ष, यक्षस, विद्याधर, प्रेत

प्रवाति याव मेघा उपलभ्यन्ते ॥ ५ ॥ ततोऽधस्ता
च्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावदुत्सभामश्येन
सुपर्णादयः पतस्त्रिप्रवरा उत्पतन्तीति ॥ ६ ॥
उपवर्णितं भूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्
सप्तमूचिरा एकैकशो योजनान्युतान्तरेणायामं
विस्तारेणोपहृता अवलं वितल सुतल
तलातल महातल रसातलं पातालमिति ॥ ७ ॥
एतेषु हि विंशत्यङ्गेषु स्वर्गादप्यधिक
कामभोगैश्चर्यानन्दभूतिविभूतिभिः सुसमृद्धभवनो-
द्यानाम्नीकविहारेषु दैत्यदानवकायैषा नित्य
प्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यवधुसुहृदनुचरा गृह
पथ इक्ष्वादादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा
निवसन्ति ॥ ८ ॥ येषु महाराज मयेन
मायाविना विनिर्मिता पुरो नानामणिप्रवर
प्रवेरुविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरमभाषैत्य
चत्वारोपतनादिभिनागासुरमिथुनपागावतनुकसारिका
क्षीणकृत्रिमभूमिभिर्विचित्ररश्मिरगृहोत्तमैः समलंकृता
यन्ममसि ॥ ९ ॥ उद्यानानि पातितरां मनश्चिद्रया-
नन्दिभि इमुमकन्दमकरमुभगकिमलयावनतकूर्चै

और मूर्तोंका विहारस्थल है ॥ ५ ॥ उसमे नीचे सी
योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है । जहाँतक हंस, गिद्ध,
बान और गरुड आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते
हैं, वहतक इसकी सीमा है ॥ ६ ॥ पृथ्वीके विस्तार
और स्थिति आदिका वर्णन तो हो चुका है ।
इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल,
महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विहार
(भूगमस्थित स्थल या छोक) हैं । ये एकके नीचे
एक दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित हैं और
इनमेंसे प्रत्येककी लंबाई चौड़ाई भी दस-दस हजार
योजन ही है ॥ ७ ॥ ये भूमिक बिल भी एक
प्रकारके स्वर्ग ही हैं । इनमें स्वर्गसे भी अधिक
विषयभाग, ऐश्वर्य, आनन्द, समृद्धि-सुख और चम
सम्पत्ति है । यहाँक वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और
क्षीरास्त्रालमें दैत्य, दानव और नाग तरह-तरहकी
मायायुक्ती क्रीडाएँ करते हुए निवास करते हैं । वे सब
गार्हस्थ्यधर्मका पाठन करनेवाले हैं । उनके स्त्री, पुत्र,
बन्धु, बान्धव और सेवकलोग उनसे बड़ा प्रेम रखते हैं,
और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं । उनके भोगोंमें बाधा
बाधनकी इच्छाओं में भी सामर्थ्य नहीं है ॥ ८ ॥
महाराज । इन विज्योंमें मायावी मयदानवकी बनायी
हुई जनकों पुरियों शोभासे जगमगा रही है, जो
अनेक जानिकी सुन्दर-सुन्दर श्रेष्ठ मणियोंसे रचे हुए
विचित्र विचित्र भवन, परकाट, नगरद्वार, सामान्यन,
मन्दिर, बड़ा बड़ा आँगन और गृहोंसे सुसज्जित हैं,
तथा जिनकी कृत्रिम भूमियों (फर्श) पर नाग और
असुरोंके आइ एवं कच्छर, तता और मेना आदि
पक्षी उड़ाने करने रहते हैं, ऐसे पातलाधिपतियोंके
मध्य भवन उन पुरियोंकी शोभा बढ़ाने हैं ॥ ९ ॥
वहाँक स्त्रीय भी अपनी शोभासे नैवजोक्क उद्यानोंकी
शोभाका मान करते हैं । उनमें जनकों इष्ट हैं,
जिनकी सुन्दर दाँतियों फल-फूलोंके गुच्छों और कमल
फूलोंके भस्मे सुखी रहती हैं तथा जिन्हें तरह-तरह

विटपविटपिना लतामालिङ्गितानां श्रीमि समिधुन
 विविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां सपकुलो
 छद्मनमुभितनीरेनीरज्जुमुदङ्कुलपङ्कजमनीलीत्पल
 सारितद्वयपद्मादिषनेषु कृतनिषेत्तनानामेकविहारा-
 कृतमधुरविबिधम्वनादिभिरिति त्रयात्सर्वैरमरलोक
 भियमसिञ्चितानि ॥१०॥ यत्र इ वाच न भयमहो
 रायादिभि कालविमानैरुपलक्ष्यते ॥११॥ यत्र हि
 महादिप्रवरदिरामणयः सर्वे तमः प्रकाशन्ते ॥१२॥
 न वा एतेषु वमतां दिव्यौषधिरस्यस्रायनाभरण
 ग्रानादिभिरापया म्याभयो वलीपनितजरादयश्च
 देहपैशम्पदौगम्यन्वद्वन्द्वमलानिरिति वयाऽवम्याय
 भवन्ति ॥१३॥ न हि तेषां कस्याणानां प्रभवति
 कृतमन मृत्पुर्तिना भगवत्प्रणयकावदशान् ॥१४॥
 यस्मिन् प्रसिद्धेऽगुणपूर्णां प्राय पुंसवनानि भयादव
 तारन्ति तानि च ॥ १५ ॥

न की छाओने जपन अङ्गपाससे बाँध रख्य है ।
 या निर्मल जलसे मरे हुए वनको जलसाय है तब
 विविध विहंगमोंके जोड़ विजास पतते रहते हैं । तब
 और जलाशयोंकी धुममासे वे उद्यान बड़ी शोभा पाते हैं ।
 उन जलाशयोंमें रहनेवाली मछलियों जल शिथिल करने
 हुई उद्यतगी है, तब उनका जल हिल उठता है ।
 साव ही जलक ऊपर उगे हुए कमल, कुमुद, पुष्प,
 कलार, मीनकमल, छाटकमल और शानम कल
 आदिके समुदाय भी हिलने लगते हैं । इन कमलों
 वनोंमें रहनेवाले पक्षी अतिराम क्रीडा-क्रीडक बनते हुए
 मौलि-मौलिकी बड़ी मीठी बाली बोलते रहते हैं, जिसे
 सुनकर मन और हृदयोंकी बड़ा ही आहारा हो
 है । उस समय समस्त हृदयोंमें उत्सुकता छा जाती
 है ॥ १० ॥ वहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं उग
 रसन्निवेश मिश्रण आदि कल्पनामात्रका भी कोई भाव
 नहीं देगा जाय ॥ ११ ॥ वहीक संपूर्ण जगत्प्राप्ति
 पद-पद मार्गोंके मल्लखोंकी मणियों ही दूर कर
 है ॥ १२ ॥ इन खोजोंके निवासी जन भोगी, ल
 रसायन, अन्न, पान और स्नानाभिरुचिसेवन करते हैं ।
 छाभी पशुप मित्र होते हैं, इन दिग्गज कमलोंके
 सेवनसे उन्हें मानसिक या शरीरिक तप नहीं होने ।
 तथा हुरिबौ पद जाना, बल पद जाना, दुःख
 जाना गृहबन्धनहीन हो जाना, शरीरसे दुःख
 जाना पपीना घृता, पकवान् अण्डादि-मिष्टान्न
 तथा अमृत तथा गरीबी अन्धकार अन्धकार
 को भिन्न नहीं होते । ॥ १३ ॥ तब दुःख
 तपन और शक्तिमान् रहते हैं ॥ १४ ॥ तब दुःख
 दुःखोंकी मलानुत्पत्ति नष्ट हो जाती है तब
 और निमी तपनसे मुक्त नहीं हो पाते ॥ १५ ॥
 तब तपन न करने हो पाते तब तपन न करने
 तब तपन न करने हो पाते तब तपन न करने

ब्रह्मजने मयपुरा-मुग। बला निरगति
देन ह वा १२ ग्रहा ब्रह्मजिज्ञासा वा

ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦੇ ਸ੍ਰੀ ਭਗਤ ਸ੍ਰੀ
ਸ੍ਰੀ ੧੩੫੨ (੧੩੫੨) ਈਸਵੀ ੧੧ (੧੩੫੨)

१. तत्त्वज्ञानम् । २. तत्त्वज्ञानम् ।
 ३. तत्त्वज्ञानम् । ४. तत्त्वज्ञानम् । ५. तत्त्वज्ञानम् ।
 ६. तत्त्वज्ञानम् । ७. तत्त्वज्ञानम् । ८. तत्त्वज्ञानम् ।

भनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च अम्भ
माणस्य सुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिष्यः
कामिन्यः पुंश्चर्य इति या वै विलायनं प्रविष्ट
पुरुषं रसेन हाटकस्थेन साधयित्वा स्वविलासा
बलोकनानुरागसितसंलापोपगूहनादिभिः स्वरं
किञ्च रमयन्ति यस्मिन्नुपपुक्ते पुरुष ईश्वरोऽह
सिद्दोऽहमित्यपुत्रमहागजबलभास्मानमभिमन्यमानः
कथ्यते मदाध इव ॥ १६ ॥

ततोऽधस्ताद्विलसे हरो भगवान् हाटकेभ्यः स्व
पीर्यदभूतगणावृतः प्रभापतिसर्गोपभूतगणाय
भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः
प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम मययो
वीर्येण यत्र चित्रभानुमातरिचना समिष्यमान
भोजसा पिबति तन्निष्ठपूत हाटकाख्य सुवर्ण
भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषा सह पुरुषीभिर्धारयन्ति
॥ १७ ॥

ततोऽधस्तात्सुवले उदारभवा पुण्यस्रोका
विराधनामजो बलिर्मगवता महन्द्रस्य प्रिय
चिह्नीर्माणनादिवेर्लभकायो भूत्वा वदुवामनरूपण
पराधित्तोक्तत्रया भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेष्टित
इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया धियाभिनुष्ट
न्यभेनागधयन्मेव भगवन्तमाराधनीयमपगत
साधन आस्तेऽपुनापि ॥ १८ ॥ नाप्यवतसाध्याम्कारो
मृमिदानस्य यत्तद्गवत्यष्टेष्वजीवनिःकायानां जीव

उनमेंसे कोई-कोई आज भी मायावी पुरुषोंमें पायी
जाती है । उसने एक बार जैमाई की थी, उस समय
उसके मुखसे स्वैरिणी (केऊ अपने वर्णके पुरुषोंसे
रमण करनेवाली), कामिनी (काम्य वर्णोंके पुरुषोंसे
भी समागम करनेवाली) और पुंश्चली (अत्यन्त चञ्चल
समाववाली)—तीन प्रकारकी स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं ।
ये उस लोकमें रहनेवाले पुरुषोंको हाटक नामका रस
पिठाकर सम्भोग करनेमें समर्थ बना लेती हैं । और
फिर उनका साथ अपनी हाव-भावमयी चितवन, प्रेममयी
सुसज्जन, प्रेमावाप और आतिथ्यनादिके द्वारा प्येष्ट
रमण करती हैं । उस हाटक-रसको पीकर मनुष्य
मदान्ध-सा हो जाता है और अपनेको दस हजार
हाथियोंके समान बलवान् समझकर 'मैं ईश्वर हूँ', 'मैं
सिद्ध हूँ' इस प्रकार बड़-बड़कर बातें करने
लगता है ॥ १६ ॥

उसके नीचे बिलस लोकमें भगवान् हाटकेभ्य
नामक महादेवजी अपने पापद भूतगणोंके संहित रहते
हैं । वे प्रभापतिजी सृष्टिजी वृद्धिके लिये मशान्तिके
साथ विहार करते रहते हैं । उन दोनोंके तेजसे वहाँ
हाटकी नामकी एक श्रेष्ठ नदी निपटती है । उनके
जलको बाधसे प्रज्वलित अग्नि बड़ उत्साहसे पीता है ।
वह जो हाटक नामका सोना धूकता है, उससे बने
हुए आभूषणोंका दीपराजोंके अन्तर्गत् पुँमें खी-पुहार
सभी धारण करते हैं ॥ १७ ॥

निम्नके नीचे सुन लोक है । उसमें महापशाली
पवित्रपरीर्णि विरोचनपुत्र बसि रहते हैं । भगवान्
इन्द्रका प्रिय कर्मके लिये अतिरिक्त गर्भसे बटु-शायन
रूपमें असीम होकर उनका तीनों लोक हीन लिये ध ।
फिर भगवान् की कृपासे ही उनका इस लोकमें प्रवेश
हुआ । यहाँ उन्हें जैमी वगैरह सन्तति मिली हुई है,
येही इन्द्रादिक पास भी नहीं है । जब वे वहाँ दृश्य
तम प्रभुजी अपने धम-धरा-धरा आगधना करने हुए
यहाँ आज भी निभयकर-रहने रहने हैं ॥ १८ ॥ राजन् ।
मार्ग जीरे निपटता एवं आत्मरूप धामना

महोद्यतो महासाहसिनो भगवतः सकल
लोकानुभावस्य ईदरेव तेजसा प्रतिहृतबलाबलेषा
विलेष्टया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रवृत्त्या
वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्विष्मयति ॥ ३० ॥

ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो बाहुकि-
प्रमुत्साः शङ्खकलिकमहाशङ्खद्वयेतभनञ्जयभूतराष्ट्र-
शङ्खचूडकम्बलाभतरदेवदत्ताद्यो महामोगिनो
महामयी निवसन्ति येषाम् इ वै पञ्चसप्तदशशत
सहस्रशीर्षाणां फणाम् विरचिता महामणयो
रोचिष्णावः पातालविषरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा
विधमन्ति ॥ ३१ ॥

किन्तु जिनका प्रभाव सम्पूर्ण लोकमें फैल रहा है
उन श्रीहरिके तेजसे बलभिमान चूर्ण हो जानेके कारण
ये सर्पोंके समान झुक-झिपकर रहते हैं तथा इन्हींके
सरमाके कड़े हुए मन्त्रवर्णरूपके वाक्पके कारण उन्हें
इन्द्रसे डरते रहते हैं ॥ ३० ॥

रसातलके नीचे पाताल है। वहाँ शङ्ख, कुम्भ,
महाशङ्ख, श्वेत, घनश्याम, घृतराष्ट्र, शङ्खचूड, कम्ब,
कम्बल और देवदत्त आदि बड़े श्रेणी और बड़े-
फनोंवाले नाग रहते हैं। इनमें बाहुकि प्रधान है।
उनमेंसे किसीके पीछे, किसीके साथ, किसीके
किसीके सी और किसीके हजार सिर हैं। इन
फनोंकी दमकती हुई मणियों अपने प्रकाशसे फलज्वाला
का साथ कम्बकण मण्डल कर देती हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यो संज्ञितायां पञ्चमस्कन्धे रौद्राद्विस्थितिबिहस्कर्मादा-
निरूपणं नाम अष्टविंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीसङ्कर्षणदेवका विवरण और स्तुति

श्रीभुक्त उवाच

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योन्नतसहस्रान्तर आस्ते
या वै कला भगवतस्तामसी समाख्यातानन्त
इति सात्वतीया द्रैष्टव्ययोः सङ्कर्षणमहमित्य
भिमानलघुर्णं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥
यस्येह क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः
सहस्रद्विरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं
सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥ २ ॥ यस्य ह वा
इदं कालेनापसञ्जिहीर्षताऽमर्षविरचितरुचिर

श्रीभुक्तदेवजी कहते हैं—राजन्। पातालके

नीचे तीस हजार योजनकी दूरीपर अनन्त नामसे विष्णु
मग्नान्की तामसी नित्य कला है। यह अक्षरकर
होनेसे प्रथा और द्रव्यको लीचकर एक कर देती।
इसलिये पाञ्चरात्र आगमके अनुयायी मनुजान १
‘सङ्कर्षण’ कहते हैं ॥ १ ॥ इन महात्मा अनन्तके २
हजार मलक हैं। उनमेंसे एकपर रक्खा हुआ यह स
भूगण्डल सरसोंके दानेके समान पिलायी देता है ॥ २ ॥
प्रलयकाल उपस्थित होमपर जब इन्हें इस विषय
उपसंहार करनेकी इच्छा होती है, तब इनकी श्रेष्ठ

१ मा. पा.—इदं वि. २ मा. पा.—इत्यादिभेदा विहङ्गाया इव वसन्ति ये वै तुरमये । ३ मा. पा.—
कलः । ४ मा. पा.—विधिवत्परवर्त्तनं नाम । ५ मा. पा.—अष्टदशैवयोगो लघिर्धर्मजः । ६ मा. पा.—तस्मै ।

० एक कला अर्थात् है कि अब यदि मामक देशमें दृष्टीको रक्षणमें किया गया तब इन्द्रने उसे दृष्टिनेके वि-
षय नामकी एक दृष्टीय भेदा था। नरमासे देखनेके लिय करनी चाही परन्तु लभाने लभिय न करके इन्द्रकी दृ-
ष्टि बरते हुए कहा था—इन्द्रा इन्द्रेण पश्य धारयाम् (६ पण्डितगण । तुम इन्द्रके हाथसे मरकर दृष्टीपर लो जम्मे ।
इसी प्रकार आपन उन्हें तथा इन्द्रका डर लग्य रहण है ।

अमद्भुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादश
 व्यूहस्यस्रस्त्रिंशन्म शूलमुत्तमभयन्नुदतिष्ठत् ॥३॥
 यस्याहिकमलपुगलारुणविश्ववनस्वमणिपण्डमैण्डले-
 प्यद्विपतय सह सारवतर्पमैरेकान्तमभक्तियोगेनाव-
 नैमन्त स्ववदनानि परिस्फूर्तकुण्डलप्रभामण्डितगण्ड-
 म्यवा यतिमनोहराणि प्रमुदितमनस खलु विलोक-
 यन्ति ॥४॥ यस्यैव हि नागरामकुमार्य आक्षिप आ-
 क्षासानाश्वाङ्गुलमविलसितविश्वद्विपुलधवलशुभग-
 रुचिरसुव्रजतन्त्रमेवगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानुसेपे
 नौबलिम्यमानान्तदभिमर्शनीन्मथितहृदयमकरपञ्चजा-
 वल्लरुचिरललितसितास्तदनुगगमदमुदितमद-
 विष्पूर्णितारुणकदशावलोकनयनवदनारविन्द सग्रीढ
 किल विलोकयन्ति ॥५॥ स एव भगवाननन्तो
 जनन्तगुणाणव आदिदेव उपसंहृतामर्परोपवेगो
 लोकानां स्वल्प आन्ते ॥ ६ ॥

भूमती हुई मनोहर भुक्तियोंके मध्यभागसे साङ्कर्षण नामक
 रुद्र प्रकट होते हैं । उनकी व्यूहसंख्या ग्यारह है । वे
 सभी तीन मंत्रोच्चारण होते हैं और हाथमें तीन नौकोंवाले
 शूल लिये रहते हैं ॥ ३ ॥ भगवान् साङ्कर्षणके चरण
 कमलोद्योग गोल-गोल क्षुब्ध और अरुणभण नख मणियोंकी
 पङ्क्तिके समान टेदीप्यमान हैं । जब अन्य प्रधान-प्रधान
 भक्तोंके सहित अनेकों मागगज अनन्य भक्तिभावसे उन्हें
 प्रणाम करते हैं तब उन्हें उन नखमणियोंमें अपने
 कुण्डलकान्तिमण्डित कमनीय कपोलोंवाले मनोहर मुखार-
 विन्दोंकी मनमोहिनी झोंकी होती है और उनका मन
 आनन्दसे भर जाता है ॥ ४ ॥ अनेकों नागप्रानोंकी
 कन्याएँ विविध कामनाओंसे उनका अङ्गमण्डलपर चोरीके
 स्वर्णके समान सुशोभित उनकी वक्ष्यविक्षित लंकी-
 लंकी श्वेतवर्ण सुन्दर मुखाओंपर अरगजा, चण्डम और
 कुङ्कुमपङ्कज लेप करती हैं । उस समय अङ्गस्पर्शसे
 मत्प्रभ हुए उनके हृदयमें क्रमका सञ्चार हो जाता है । तब
 वे उनके मदविह्वल सकल अरुण नयनकन्त्रोंसे सुशोभित
 तथा प्रेममग्नसे मुदित मुखारविन्दकी ओर मधुर मनोहर
 मुलकनके साथ सलज्ज भावसे निहारने लगती हैं ॥ ५ ॥
 वे अनन्त गुणोंके सागर आग्निवैभवावान् अनन्त अपने
 अमय (असहनशीलता) और रोकके वेगप्र रोके हुए
 वहाँ समस्त लोकोके कल्याणके लिये विराजमान हैं ॥ ६ ॥

देवता, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, विषाचर और
 मुनिगण भगवान् अनन्तका ध्यान किया करते हैं । उनके
 नेत्र निरन्तर प्रमदसे मुदित, चञ्चल और विह्वल रहते
 हैं । वे सुललित वक्षनामृतसे अपने पाप और वेदयूषों
 को मनुष्य करते रहते हैं । उनके अङ्गपर नीलाम्बर
 और कानोंमें वेवल एक कुण्डल जगमगता रहता है तथा
 उनका ध्रुमग और सुन्दर हाथ हलकी मृदपर रक्ता
 रहता है । वे उत्तारग्रीवमय मगवान् महापण गन्धमें
 वैजयन्ती माळा धारण किये रहते हैं जो साक्षात् इन्द्रक
 हाथी प्रायवन् गन्धमें पड़ी हुई सुकर्णकी शृङ्गाओंके समान
 जान पड़ती है । जिसकी वरन्ति कभी फीकी नहीं

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविषा-
 धरमुनिगणैर्गन्वरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः
 सुललितसुम्बरिकामृतेनाध्यायमान स्वपार्पदविषुध
 यूथपतीनपग्लानरागनचतुलसिकामादमध्यासवेन
 माधन्मपुकरव्रातमधुरमीलधिय धैजयन्तीं सां
 वनमालां नीलधासा एककुण्डलो हल
 ककुदि कृतमुभगसुन्दरसुनो भगवा माहो

१ मा पा — रुद्रयो । २ मा पा — अङ्गस्रस्त्रिंशत् । ३ मा पा — नमन्ति स्म । ४ मा
 पा — परि पूर्यमानाः श्रीमद्विह । ५ मा पा — न विक्षिप्यमाना । ६ मा पा — न भगवानन । ७ मा
 पा — सुगन्धिकापमृतेना । ८ मा पा — यूथपतीनां परि । ९ मा पा — वनमुलसि ।

भूसात्मयूते परमात्मनि धामुदेवे तीर्थतमे पाव
 उपपन्ने परया भद्रया परमादरसमाहितमनसा
 सम्प्रतिपादितस्य साध्यादपवर्गद्वारस्य यद्विलनिलयै-
 र्ययम् ॥१९॥ यस्य ह वाच क्षुतपवनप्रस्तसनादिषु
 विवशः सङ्गमामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा
 विधुनोति यस्य ह वै प्रतिवाधनं सुसुखं बोध्यैवो-
 पलमन्ते ॥२०॥ तन्मत्कानामात्मवता सर्वेषामात्म-
 न्यात्मद वास्तव्यैव ॥२१॥ न वै भगवान्मनुष्यपु-
 नुषग्राह यद्वत् पुनरात्मानुस्यूतिमोषं मायामय
 भोगैर्यमिवानुवृतेति ॥२२॥ यत्तद्भगवतानभिगता
 न्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्वधरीरावलेपितलो-
 मया वरुणपाशैश्च सम्प्रतिष्ठको गिरिद्वयो चापविद्ध
 इति होवाच ॥ २३ ॥ नूनं वराय
 भगवानर्थेषु न निष्ठातो योऽसाधिम्यो यस्य
 मन्त्रिणा मन्त्राभ्य इव एकान्ततो बृहस्पतिस्तमि
 हायै श्रयश्चपेन्द्रयात्मानमयाचचारमनधादिषो नो
 एव तदात्ममतिगम्भीरवयस फलस्य मन्यन्तर
 परिहृष कियल्लाक्यबभिवम् ॥२४॥ यस्यानुदास्य
 मेवाम्मतिपामहः किञ्च न ॥ स्यपिउयं यदुता
 कुतोभयं पदं दीयमान भगवतः परमिति भगवतो

मग्नान् बाधुदेव-मैते पूज्यतम, पवित्रतम एकमेव
 पर उन्हें परम भद्रा और आदरके साथ स्मि मिलने
 दिये हुए भूमिदानका यही कोई मुख्यफल नहीं है कि
 बलिको सुख लोकका ऐश्वर्य प्राप्त हो गया । वह ऐश्वर्य
 तो अनिरप है । किन्तु वह भूमिदान तो सदाय केवल
 ही द्वार है ॥ १९ ॥ भगवान्को तो छीनने, हिलने
 और किम करनेके समय विवश होकर एक क्षण का
 लेनेसे भी मनुष्य सदा कर्म-बन्धनको बन्ध देख है
 जब कि समुच्छोण इस कर्मबन्धनको बोलकर बन्ध
 बन्धन को उपायोका आश्रय देनेपर वह बन्धन हट
 काट पाते हैं ॥ २० ॥ अतएव अपने अपनी मल को
 जानियोंको स्वत्वरूप प्रदान करनेवाले और उनके
 प्रार्थियोंके आत्मा धीमन्नागवतको आत्ममयस मिले ॥
 भूमिदानका यह फल नहीं है एकत्र ॥ २१ ॥
 भगवान्ने यदि बलिको उसके सर्वस्वदानके दाने
 अपनी विस्तृति करानाका यह नयामय मोह और
 ऐश्वर्य ॥ दिया तो उन्होंने उसपर वह कार्य करने
 नहीं किया ॥ २२ ॥ जिस समय कोई और उसका
 देखकर भगवान्ने याचनके छलसे उसके विनाश
 राज्य छीन लिया और उसके पास केवल वस्त्र ही
 मात्र ही छेद रहने दिया, तब वरुणके पासमें भीतर
 पर्वतकी गुफामें बाल दिये जानेपर उसने कहा ॥ २३ ॥
 'लेद है, यह पेशवर्षाकी इन्द्र विद्वान् होकर भी ब्रह्म
 तन्ना आर्ष सिद्ध करनेमें कुशल नहीं है । इसने सभी
 केमके लिये अनन्यभावसे बृहस्पतिजीको अपना कर्म
 बनाया, फिर भी उनकी अवहेलना करते इतना धीमन्
 भगवान्ने उनका दास्य न मोंगकर उनके हाथ मुझे
 आपन किये ये भोग ही मोंगे । ये तीन लोक तो मेरा
 एक मन्त्ररतक ॥ रहते हैं, जो अनन्त कदम एक
 अवयवमात्र है । भगवान्के ईश्वर्यके आगे मन्त्र, र
 गुण्ड भोगैका क्या मूल्य है ॥ २४ ॥ इससे किञ्च
 प्रह्लादजीन—भगवान्के हाथों जाने स्ति शिरःपट्टि-
 के मारे जानेपर—प्रभुकी सेवाका ही कर पोंग था ।
 भगवान् देना भी चाहते थे, तो भी उनसे दूर करनेका

परते खलु स्वपितरि ॥२५॥ तस्य महानुभावस्या-
नुपधमश्रुमितकृपायः को वासद्विधः परिहीणभग-
वदनुग्रहोऽपन्निगमिष्यतीति ॥२६॥ तस्यानुचरित-
श्रुं परिष्ठादित्तरिप्यते यस्य भगवान् स्वयमखिलशगव-
गुरुनारायणो द्वारिगदापागिरवतिष्ठते निजजनासु-
कम्पितहृदयो येनाकुप्येन पदा दशकधरो योजना
युतायुत दिम्बिजय उच्चाटितः ॥ २७ ॥

ततोऽधस्तात्तावले भयो नाम दानवेन्द्र-
स्त्रिपुराधिपतिर्मगवतः। पुंरारिणा त्रिलोकींशं
चिक्रीर्षुणा निर्दग्धस्त्रपुरत्रयस्तत्प्रसादाच्छुन्धपदो
मायाविनामाचार्यो महाबवेन परिरक्षितो विगत-
सुदर्शनभयो महीयते ॥ २८ ॥

ततोऽधस्तान्महावले कात्रवेयाणां
सर्पाणां नैकद्विरसां क्रोधवशां नाम
गणः कुहकगृध्रकालिपुण्णगणदिप्रधाना
महाभोगवन्त पवत्रिराज्ञाधिपतेः पुरुष-
बाहादनवरतमुद्रिवेमाना म्वक्त्रं प्रापस्यसुहस्रदुम्ब-
सक्तेन वचित्प्रमचा विहरन्ति ॥ २९ ॥

ततोऽधस्ताद्रसावले दंतया दानवा
पण्या नाम निषातकृच्च काशया क्षिरण्य
पुरवामिन इति विषुधप्रत्यनीका उत्पण्या

समक्षकर उन्होंने अपने पिताका निष्कण्टक राज्य लेना
खीकार मही किया ॥ २५ ॥ वे बड़े महानुभाव थे ।
मुझपर तो न भगवान्की कृपा ही है और न मरी वासनाएँ
ही शान्त हुई हैं, फिर मेरे-जैसा कौन पुरुष उनके पास
पहुँचनेका साहस कर सकता है ? ॥ २६ ॥ राजन् ।
इस बळिकार चरित हम आगे (अष्टम स्कन्धमें)
विस्तारसे कहेंगे । अपने भर्षोंके प्रति भगवान्का हृदय
दयासे मग्न रहता है । इसीसे अश्लिष्ट जगत्के परम
पूजनीय गुरु भगवान् नारायण हाथमें गदा छिपे सुलभ
कोभमें गया बळिके द्वारपर सदा उपस्थित रहते हैं ।
एक बार जब दिम्बिजय करता हुआ घमंडी राजग बहो
पहुँचा, अब उसे भगवान् अपने पैरके अँगूठेकी ठोकड़से
ही काखों योजन दूर फेंक दिया था ॥ २७ ॥

सुलभकोऊसे नीचे तजतज है । वहाँ त्रिपुराधिपति
दानवराज मग्न रहता है । पहले तीनों लोकोंको शान्ति
प्रदान करनेके छिये भगवान् बाह्यरन उसके तीनों पुर
मग्न कर दिये थे । फिर ठाँहीकी कृपासे उसे यह
स्नान मिला । वह मायाविद्योका परम गुरु है और
महादेवभीक द्वारा सुरक्षित है, इसलिये उसे सुदर्शन
चक्रसे भी कोई भय नहीं है । वहको निवासी उसका
बहुत आदर करते हैं ॥ २८ ॥

उसका नीचे महाकर्म्ये कछूसे उत्पन्न हुए अनक
सिरोकाले सर्पोका क्रोधवशा नामक एक सङ्घाय रहता
है । उनमें कुहक, तम्रक, काशिय और क्षुरग आदि
प्रधान हैं । उनके बड़-बड़ फल हैं । वे सग भगवान्के
बाह्यन पक्षिराज मनुजवीसे डरत रहते हैं, या भी कभी
कभी अपन खी, पुत्र, मित्र और कुटुम्बके सङ्गसे प्रमत्त
होकर विहार करने लगते हैं ॥ २९ ॥

उसका नीचे रसाज्यमें पणि नामक दंत्य और दानव
रहते हैं । ये निषातकृच्च, काशय और क्षिरण्यपुरवासी
भी कहलाते हैं । इनका दवाकोंसे विशेष है । ये
जन्मसे ही बड़ बड़वान् और महान् साहसी होते हैं ।

महोद्यतो महासाहसिनो भगवतः सकल
लोकानुभावस्य हेरेरेव तेषसा प्रतिद्वैतबलावलेपा
विलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदत्ता
वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्विम्यसि ॥ ३० ॥

ततोऽभस्तास्याताले नागलोकपतयो वासुकि-
प्रमुखाः शङ्खचलिकमहाशङ्खध्वेतभनञ्जयपृतराष्ट्र
शङ्खचूडकम्बलाभतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो
महामयीं निवसन्ति येषाम् इ वै पञ्चसप्तदशशत
सहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो
रोचिष्णावः पातालविहरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा
विधमन्ति ॥ ३१ ॥

किन्तु भिनका प्रभाव सम्पूर्ण लोकोंने देखा इव
उन श्रीहरिके तेमसे बलामिमान घूर्ण हो जानेके फल
ये सगोंके समान झुक-छिपकर रहते हैं तथा इनकी ही
सरमाके कहे हुए मन्त्रकर्णरूप* भाग्यके कारण जग
इन्द्रसे बरते रहते हैं ॥ ३० ॥

रसातलके नीचे पाताल है। यहाँ शङ्ख, पुष्पक
महाशङ्ख, श्वेत, वनजय, पृतराष्ट्र, शङ्खचूड, कम्बल
अभतर और देवदत्त आदि बड़े क्रोधी और बड़-
फर्नोवाले नाग रहते हैं। इनमें वासुकि प्रधान है।
उनमेंसे किसीके पोंच, किसीके साठ, किसीके एक
किसीके सौ और किसीके हजार सिर हैं। उनके
फर्नोंकी दमकनी हुई ममियों अपने प्रकाशसे फलज्यो-
त साय अन्धकार मष्ट कर देती हैं ॥ ३१ ॥

इति भीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हत्यां संक्षिप्तया पञ्चमस्कन्धे राह्यादिस्त्विति विवर्त्मनिर्पादा-
निरूपणं नाम अष्टविंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

भीमद्वर्पणवेवका विवरण और स्तुति

भीमद्वर्पण उवाच

तस्य मूलदक्षे त्रिघणोन्नतसहस्रान्तर आस्ते
या वै कला भगवत्सामसी समाख्यातानन्त
इति सात्वतीया व्रष्टद्वययाः सङ्कर्षणमहमिष्य
भिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमिष्यापचते ॥ १ ॥
यंस्वेदं धितिमण्डलं भगवत्ताऽनन्तमूर्तेः
सहस्रधिरस एकमिन्नेव शीर्षणि धियमानं
सिद्धार्थ इव लक्ष्मणे ॥ २ ॥ यस्या इ वा
इदं कालेनोपसङ्गिर्हीर्षतोऽमर्षविरचितरुधिर

भीमद्वर्पणवेवजी कहते हैं—रात्रन् । पातालमेंसे
नीचे तीस हजार योद्धाकी दूरीपर अनन्त नामसे विष्णु
मगधानकी तामसी मित्य कला है। यह ध्वजकरसम
होनेसे प्रजा और इन्द्रकी खींचकर एक कर देती है।
इसलिये पाञ्चरात्र जागमके अनुयायी मन्त्रजन रहे
‘सङ्कर्षण’ कहते हैं ॥ १ ॥ इन मगधान् वनजके एक
हजार मल्लक हैं। उनमेंसे एकपर रक्त्य हुआ वह स्रष्ट
मृग्यक सरसोंके दामके समान निचायी देता है ॥ २ ॥
प्रलयकाल उपस्थित होनेपर जब हमें इस निबद्ध
उपसंहार करनेकी इच्छा होती है, तब इनकी क्रोधवत्

१ या पा०—हरेरिव । २ या पा०—इत्यादिवेवा विवर्तना इव वसन्ति यं वै सरमये । ३ या पा०—मयी
सन्ति । ४ या पा०—विधिपञ्चवर्णवर्णनाम । ५ या पा०—व्रष्टद्वयैर्नयोः समिकर्षेण । ६ या पा०—तस्वेदं ।
• एक कथा कहती है कि जब भीम नामक दैत्योंने पूष्णीको रसातलमें छिप छिपा तब इन्द्रने उसे हँवनेके लिये
छरमा नामकी एक वृत्तीको भेजा था। छरमासे दैत्योंने वधि करनी जारी परन्तु छरमाने वधि न करके इन्द्रकी छुट्टी
करते हुए कहा था—इत्यादि इन्द्रने पण्य धमकाम् (है पणित्य) तुम इन्द्रके हाथसे मरकर पूष्णीपर हो आओ ।
इसी धपके कारण उन्हें तथा इन्द्रका डर कम रह्य है ।

ममद्भ्रवोरन्तरेण सोऽङ्गपणो नाम रुद्र एकादश
 म्पृष्टस्त्वयस्त्रिभिश्च शूलमुत्तमभयन्नुदतिष्ठत् ॥३॥
 यस्याद्विक्रमन्पुगलारुणविशदन्गवमणिपण्डमेण्डले-
 प्वहिपतय सह मात्स्वतर्पमरेकान्तभक्तियोगेनाथ
 नेमन्त स्रवदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्ड
 म्यका यतिमनोहराणि प्रमुदितमनस सलु विलोक-
 यति ॥४॥ यत्सर्वं हि नागराजकुमार्य आशिष आ
 क्षासन्नाश्वाङ्गचलमयिलमितविशदविपुलधवलशुभग-
 रुधिरस्रुजरज्रतस्तम्भेभ्यगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानुलेपे
 नावलम्बमानास्तमिमन्नानामधितद्वदयमकरध्वजा-
 धश्चक्रविरललितस्मितस्तदनुगागमदमुन्निभमद
 विघूर्णिताश्मशकुरुणाजलकनयनपदनारविन्द मयीड
 क्तिन् विलासयति ॥५॥ मं एव भगवाननन्तो
 जनन्तगुणाणव आदित्य उपसद्गतामपरोपवेगो
 लाकानां म्यमय आन्त ॥ ६ ॥

प्यायमान सुरासुरगमिद्वगधवविद्या
 धर्मनिर्गणनपरतमदमुदितविकृतविदललाघनः

मुल्लिखितमुत्तरिष्ठासूतनाप्यायमान स्वपार्श्वद्विपुध
 गृधरातनपग्निनगमनवतुलमिक्रमात्मप्रासवन
 मादमधस्त्रातमगुमीतधिर्य वैजयन्ती म्यां
 धनमानां नालक्षमा एककुण्डला इल
 क्कुरि कृतगुभगमुत्तरगुजा भगवासाहृष्टा

धूमती हुई मनोहर भुवुग्योक्त मण्यभागसे सद्गुण नामक
 रुद्र प्रकट होने हैं । उनकी मृदुसंख्या ग्यारह है । वे
 सभी तीन नश्रोशाल होते हैं और हाथमें तीन नोयश्रोशाले
 शूल लिये रहते हैं ॥ ३ ॥ भगवान् सङ्कर्षणके चरण
 कमलोंक गाय-गाय स्यञ्च और अरुणभण नख मणियोंकी
 पट्टिकेके समान देखीप्यमान हैं । जब अन्य प्रधान-प्रधान
 भक्तोंके सहित अनर्को मागगाज अन्य भक्तिभापसे उन्हें
 प्रणाम करते हैं तब उन्हें उन नखमणियोंमें अपन
 कुण्डलकान्तिमणिमय कमनीय कयानोंवाले मनोहर मुगार
 बिन्दोंकी मनमोहनी शोषी होती है और उनकी मन
 आनन्दसे भर जाता है ॥ ४ ॥ अनर्को नागराजोंकी
 पत्न्याँ विविध कम्पनाओंसे उनके अङ्गकण्डलपर शौरीक
 खम्भोंके समान घुसामित उनकी वक्ष्यविलसित उड़ी
 उड़ी श्वेतवर्ण सुन्दर गुभाओंपर अरगात्रा, चम्पन और
 कुङ्कुमपङ्कज लेप करती हैं । उस समय अङ्गरपरीसे
 मथन हुए उनके हाथमें वामकय सञ्चार हो जाता है । तब
 वे उनके मन्त्रिद्वय मुखरुण अरुण नयनकमरोमें सुशोभित
 तथा प्रमदसे मुन्ति मुखारविन्दोंकी ओर ससुर समक्ष
 मुसकनय साथ सुख भावसे निहारन लगती हैं ॥ ५ ॥
 वे अनस्त गुणोंके माग आश्रित मग्यान् अनन्त अपन
 अमर (अगहनर्गल्ल्या) और रायक मग्य शेष हुए
 बहोमस्त लोकोंके कल्याणके लिये विराजमान हैं ॥६॥

तथा, असुर नाग, शिद, गधक, विषाकर और
 मुनिगण भगवान् अनन्तकय प्यान किया करते हैं । उनके
 नेत्र निरन्तर प्रमदसे मुन्ति, चञ्चल और विद्वत् रहते
 हैं । वे सुश्रुतिवचनामृतसे अपन पाय और दक्ष्युषों
 का मन्त्रण करते रहते हैं । तब अङ्गर नीलाम्बर
 और कानोंमें वक्ष्य एक कुण्डल जगमगता रहता है तथा
 उनके सुभग और सुन्दर नाग टापी मृगार रम्य
 रहता है । वे उन्नीचीकदय मग्यान् गद्गदग स्समे
 वैजयन्ती माथ धारण लिये रहते हैं ना माग्यत इत्य
 हा । पगवत्त स्समे पारी हुई मुखकी श्रद्धाक समान
 जान पड़ता है । शिखरी पालित कमा नीकी नदी

१ - २ - ३ - ४ - ५ - ६ - ७ - ८ - ९ - १० - ११ - १२ - १३ - १४ - १५ - १६ - १७ - १८ - १९ - २० - २१ - २२ - २३ - २४ - २५ - २६ - २७ - २८ - २९ - ३० - ३१ - ३२ - ३३ - ३४ - ३५ - ३६ - ३७ - ३८ - ३९ - ४० - ४१ - ४२ - ४३ - ४४ - ४५ - ४६ - ४७ - ४८ - ४९ - ५० - ५१ - ५२ - ५३ - ५४ - ५५ - ५६ - ५७ - ५८ - ५९ - ६० - ६१ - ६२ - ६३ - ६४ - ६५ - ६६ - ६७ - ६८ - ६९ - ७० - ७१ - ७२ - ७३ - ७४ - ७५ - ७६ - ७७ - ७८ - ७९ - ८० - ८१ - ८२ - ८३ - ८४ - ८५ - ८६ - ८७ - ८८ - ८९ - ९० - ९१ - ९२ - ९३ - ९४ - ९५ - ९६ - ९७ - ९८ - ९९ - १००

वारयेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षावदारलीला विभर्ति
॥ ७ ॥

य एष एवमनुधृतो ध्यायमानो सुसंक्षुणा
मनादिकालकर्मवासनाप्रथितमविद्यामय हृदयग्रन्थि
सत्त्वरश्मस्तमामयमन्तर्हृदय गत आशु निर्भिन्नचित्ति
वक्षानुमौषान् भगवान् स्वाध्यायवो नारदः सह
तुम्बुरुणा समायां ब्रह्मणः सकलोकपामास ॥ ८ ॥

उत्पत्तिस्मिन्तिलयहृतवोऽस्य कल्पा

सत्त्वाद्या प्रकृतिगुणावदीक्षयाऽऽसन् ।

यद्वपुं ह्रुवमकृत यदकमात्मन्

नानाधान्कमसु ह वेद तस्य वर्त्म ॥ ९ ॥

मूर्ति नः पुरुकृपया बभार सत्त्व

सद्युद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।

यत्कलीलां मृगपतिराददेऽनवधया

मादातु स्वजनमनांस्पृशदारवीथः ॥ १० ॥

यन्नाम मृतमनुकीर्तयेदकथा

दावो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।

हन्त्यहः सपदि नृणामश्लेषमन्यं

कं श्लेषान्नगवत् आभवेन्मुमुक्षु ॥ ११ ॥

मृषापर्यितमनुब्रुवत्सहस्रमूर्ध्नी

भृगाल सगिरिसरिस्समुद्रसम्पद्म् ।

आनन्त्यादनिमित्तविक्रमस्य भूम्नः

का वीर्योपविगमयेत्सहस्रसिद्धः ॥ १२ ॥

एषप्रभावो भगवाननन्तो

दुरन्तवीर्यारुणानुमावः ।

मृते रसाया मित आरमन्त्रो

यो लीलया इमां मितये विभर्ति ॥ १३ ॥

पक्षी, ऐसी नवीन तुलसीकी गंध और मधुर मकरंद
उमग हुए और निरन्तर मधुर गुंवार करके उसकी
शोभा बढ़ाते रहते हैं ॥ ७ ॥

परीक्षित । इस प्रकार भाषान् अनन्त महत्त्वजन्य
और ध्यान करनेसे मुमुक्षुओंके हृदयमें आविर्भूत हुए
उमकी अनादिकालीन कर्मवासनाओंसे प्रथित मल (तम)
और तमागुणारमक अधिप्राप्त की हृदयमन्यिका तत्त्व
कल्प ब्रह्मणो हैं । नन्तक गुणोंका एक बार स्वधीन
भगवान् नारदने तुम्बुरु गन्धर्वके साथ ब्रह्मणो
समाये इस प्रकार गहन किया था ॥ ८ ॥

जिनकी दृष्टि पढ़नेसे ही जगत्की उत्पत्ति, स्थिति
और प्रलयके हेतुमूल सत्त्वादि प्राकृत गुण अपने अपने
कार्यमें समर्प होते हैं जिनका स्वरूप ध्रुव (कल)
और अश्रुत (अनादि) है तथा जो उनके हेतु हैं
ही इस नानात्मक प्रपञ्चको अपनेमें धारण किये हुए
हैं—उन भाषान् सङ्घर्षणके तत्त्वको कोई कैसे जान
सकता है ॥ ९ ॥ जिनमें यह कार्य-कारणरूप हुए
प्रपञ्च भास रहा है तथा अपने निबन्धनोंके विषय
आकर्षित करनेके लिये की हुई जिनकी वीर्यपूर्ण
खीकाफो परम पराक्रमी सिंहने बादशह मानकर आक्रमण
है उस उदारवीर्य सङ्घर्षण भगवान्ने हमपर कभी कभी
करके यह विशुद्ध सत्यमय स्वरूप धारण किया है ॥ १० ॥

जिनके सुने-सुनाये नामका कोई पीकित अप्रत्यक्ष पक्ष
पुरुष अकस्मात् अप्रया हैसीमें भी उधारण कर लेता
है तो वह पुरुष हमारे मनुष्योंके भी सारे पापोंको तत्त्व
नष्ट कर देता है—ऐसे श्लेषभगवान्को छोड़कर दूसरे
पुरुष और किस्सका आश्रय ले सकता है ॥ ११ ॥
यह पक्ष, मही और समुद्रादिसे पूर्ण सम्पूर्ण भूतल
उन सङ्घर्षणीय भगवान्के एक मत्त्वपर एक (अकल)
समान रक्षणा हुआ है । वे नन्त हैं, इसलिये उनके
पराक्रमका कोई परिमाण नहीं है । किसीके हक
जीमें हो, तो भी उन सर्वव्यापक भगवान्के शक्तियोंकी
गगना करनेका माहस वह कैसे कर सकता है ॥ १२ ॥
वास्तवमें उनके वीर्य, अतिशय गुण और प्रभाव असीम
हैं । ऐसे प्रभावशाली भगवान् अमन्त रसलक्षके हृदयमें
अपनी ही महिमामें स्थित आत्मन् हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी
स्थितिके लिये खीकाफे ही धृष्टीको धारण किये हुए हैं ॥ १३ ॥

१ मा पा — मनुभयोऽभिषयाय । २ मा पा — कर्मो वा । ३ मा पा — माधुकर मय ।

४ मा पा — भृगोऽहम् । ५ मा पा — पान्यमिगम् । ६ मा पा — नीलो गुणानुभवः ।

पता ब्रह्मेह नृभिरुपगच्छन् गतयो यथाकर्म
 विनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्तिताः कामान्कामयमानैः
 ॥१४॥ एवावसीर्हि राजन् पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य
 विपाकगतय उच्चावचा विसृष्ट्या यथाप्रज्ञ
 व्याचक्षुस्ते किमन्यत्कथयाम इति ॥ १५ ॥

राजन् ! भोगोंकी कामनावाले पुरुषोंकी अपन कर्मों
 के अनुसार प्राप्त ज्ञानवाणी भगवान्की रची हुई ये ही
 गतियाँ हैं । इन्हें जिस प्रकार मैंने गुरुमुखसे सुना था,
 उसी प्रकार सुनने सुना दिया ॥ १४ ॥ मनुष्यको
 प्रवृत्तिरूप धर्मके परिणामसे प्राप्त होनेवाली जो परस्पर
 विलक्षण ऊँची-नीची गतियाँ हैं, वे इतनी ही हैं, इन्हें
 तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सुना दिया । अब बताओ,
 और क्या सुनाऊँ ? ॥ १५ ॥

इति श्रीमहागणपते म्हापुराणे पारमर्हस्यो संहितायां पञ्चमस्कन्धे भूमिकविष्णुप-
 कर्ण नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ पद्विंशोऽध्यायः

नरकोंकी विभिन्न गतियोंका वर्णन

राजीवाच

महर्ष एतद्वैचित्र्य लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥

श्रीपिल्लाच

त्रिगुणत्वात्कर्तुं श्रद्धया कर्मगतयः पृथिविधा
 सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥ २ ॥ अथ
 दानीं प्रतिपिद्वलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कैतुः श्रद्धया
 वैसादृश्यात्कर्मफल विसृष्टं भवति या श्रद्धया
 विषया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणा सुतयः
 सहस्रशः प्रवृत्तास्तामां प्राप्नुयैवमानुवक्ष्यिष्यामः ॥ ३ ॥

राजीवाच

नरका नाम भगवन् किं दृग्निशेषा अथवा
 बहिर्विहाय आहोस्त्रिन्तराल इति ॥ ४ ॥

श्रीपिल्लाच

अन्तर्गल एष त्रिजगत्यास्तु त्रिंशु दक्षिणस्या
 मधस्तादुत्तरेपरिगच्छ जलापसामग्निष्वात्पातयः
 पिद्मगापा दिक्षि भ्रानां शोषाणां परमज समधिना

राजा परीक्षितने पूछ—महर्षे ! भोगोंकी जो
 ये ऊँची-नीची गतियाँ प्राप्त होती हैं, उनमें इतनी
 विभिन्नता क्यों है ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन् ! कर्म करनेवाले
 पुरुष सार्विक, रामस और काम—रीन प्रकारके
 होते हैं तथा उनकी श्रद्धाकर्मों में भी भेद रहता है । इस
 प्रकार खभाव और श्रद्धाके भेदसे उनके कर्मोंकी गतियाँ
 भी भिन्न-भिन्न होती हैं और अनुाधिकार्यमें ये सभी
 गतियाँ सभी कर्ताओंको प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥ इसी
 प्रकार निरिद्ध कर्मरूप पाप करनेवालोंको भी उनकी
 श्रद्धाकी असमानताके कारण, समान फल नहीं मिलता ।
 जब क्तादि अविद्याके बारीमूल होकर फलमतापूर्वक
 किये हुए उन निरिद्ध कर्मोंके परिणाममें जो हजारों
 तरहकी नारकी गतियाँ होती हैं, उनका विस्तारसे वर्णन
 करेंगे ॥ ३ ॥

राजा परीक्षितने पूछ—महान् ! आप जिनका
 वर्णन करमा चाहते हैं, वे नरक इसी पृथ्वीके कोई
 देशविशेष हैं अथवा त्रिलोकसे बाहर या इसीके भीतर
 किसी जगह हैं ? ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन् ! वे त्रिजगत्के
 भीतर ही हैं तथा दक्षिणकी ओर पृथ्वीसे नीचे जलक
 ऊपर स्थित हैं । इसी विश्वामे अग्निष्वात् ज्ञानि पितृगण रहते
 हैं, वे अव्यक्त एकप्रयापूर्वक अपन भगवत्प्रेमके निय

१ प्राचीन प्रसिद्धे अग्निष्वात्क ब्रह्मपाठ नहीं है । २ मा पा —कर्मभद्राया । ३ मा पा —कर्मभद्राया ।

४ मा पा —विद्याधमना ।

संस्था एवाश्रय आश्रयानां निवसन्ति ॥५॥ यत्र
ह वायु भगवान् पितृराजो वैभवतः स्वयंपर्यं प्रापितेषु
स्वपुरुषैर्बन्तुषु सम्पन्नतः यथाक्रमं वर्षं दापयेत्
नुल्लङ्घितभगवच्छासनं सगणोदमं धारयति ॥६॥
तत्र हैके नरकानेकविधिति गणयन्ति । अथ तांस्ते
राक्षसात्मकपलक्षणतां अनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्ध-
तामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालघ्नमसि-
पत्रवर्नं सूकरमुखमन्धकूपं कुम्भीभोजनः सन्दधस्तस-
धर्मिर्वज्रकण्टकशालमली वैतरणी पृथोदः प्राणराधो
विश्वसनं ठालाभयः सारमेयादनमशीचिरयः
पानमिति । किञ्च क्षारकर्दमो रथोगणभोजनः
धूलप्रोतो दन्दशूलोऽवतनिरोधनः पर्यावर्तनं सूची
मुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनामूयः ॥७॥

तत्र यस्तु परविष्टापत्यफलप्राप्यपहगति स हि
कालपाशबद्धो यमपुरुषपरतिभयानकंस्तामिस्रं नरके
बलाभिपात्यत । अनघनालुदपानदम्बताडनसं-
वर्जनादिभिर्मातनाभिर्मातमानो अन्तर्गुप्तं कम्भल
मासादित एकर्द्वयं मूच्छासुपयाति तामिस्रप्रायः ॥८॥
एवमवाधतामिस्रं यस्तु वैश्वयित्वा पुरुषं दारादी-
नुपयुक्ते यत्र क्षरीरी निपात्यमानो यातनास्तो
वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पति
वृक्ष्यमानमूलत्तसादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥९॥

यन्निह वा एतदहमिति ममेवमिति मृतद्राहेण
फलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्पाति स तदिह
बिहाय स्वयमेव तददृष्टमेन रौरवे निपद्यति ॥१०॥
ये त्विह यथैवाधुना विद्विषिता जन्तवः परत्र
यमयातनामुपगतं त एव रुखो भूत्वा तथा तमेव

मात्रक्यक्रमा किया करते हैं ॥ ५ ॥ उस नरकमें
सूर्यके पुत्र पितृराज भगवान् यम अपने सेवकोंके साथ
रहते हैं तथा भगवान्की आज्ञाका उत्तर न देने
हुए, अपने हुतोंकाय यहाँ लिये हुए पृत प्रजियों
उनके दुष्कर्मोंके अनुसार पापका पत्र दण्ड देते
हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित ! कोई-कोई लोग नरकोंकी संख्या
इकतीस बताते हैं । अब हम नाम, रूप और व्यक्तियों
अनुसार उनका क्रमशः वर्णन करते हैं । उनके नाम
हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक
कालघ्न अस्तिपत्रक, सूकरमुख, अन्धकूप, इमिभोजन
सन्दर्श, तप्तसूर्य, वज्रकण्टकशालमली, वैतरणी, पृथोद
प्राणरोध, विश्वसन, छात्रमश, सारमेयपान, क्षार
और अय पान । इनके सिवा क्षारकर्दम, रथोगणमेव
शूलप्रोत, दन्दशूल, अवतनिरोधन, पर्यावर्तन व
सूचीमुख—ये सप्त और मित्राकर कुछ बहुरास नर-
क-नरककी यातनाओंको योगानेके स्थान हैं ॥ ७ ॥

जो पुरुष दूसरोंके धन, सन्तान अथवा स्त्रियों
हरण करता है, उसे अत्यन्त ममानक यमदूत कष्टात
बोधकर बलवत्कारसे तामिस्र नरकमें मिला देते हैं ।
अधकारमय नरकमें उसे अन्ध-जड़न देना, बड़े कष्ट
और मय दिखाना आदि अनेक प्रकारके उपद्रव
पीडित किया जाता है । इससे अत्यन्त दुखी हो
वह एकएक मूर्च्छित हो जाता है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार
जो पुरुष किसी दूसरेको धोखा देकर उसकी ही धरि
मोगता है, वह अन्धतामिस्र नरकमें पड़ता है ।
यातनाओंमें पड़कर वह जबसे कटे हुए इंसानके सम-
ानेमाके मारे सारी सुख-पुष्टि छोड़ता है और
कुछ भी नहीं सूख पड़ता । इसीसे इस नरक
अन्धतामिस्र कहते हैं ॥ ९ ॥

जो पुरुष इस लोकमें प्याह शरीर की मूर्ति और
की-बनादि मेरे हैं ऐसी मुखिसे दूसरे प्राणियोंसे
करके निरन्तर अपने कुटुम्बके ही पावन-मोहनमें
रहता है, वह अपना शरीर छोड़नेपर अपने पा-
कारण अप्रिय की रीत्य नरकमें गिरता है ॥ १० ॥
लोकमें उसने जिन जीवोंको जिस प्रकार कष्ट पहुँचा
होगा है, परलोकमें यमयातनाका समय आनेपर वे
पुरुष होकर उसे उसी प्रकार कष्ट पहुँचाते हैं । इसी

विहिंसन्ति तस्माद्गौरवमित्याह रुहरिति मर्षादति
 क्रूरसम्बन्धसापदेश ॥ ११ ॥ एवमेव मद्गौरवो यत्र
 निपतित पुरुष क्रैव्यादा नाम रुधस्त क्रव्येण
 घातयन्ति यः कषलं दहम्भर ॥ १२ ॥

यस्त्विह वा उग्र पशून् पश्विणो वा
 प्राणत उपरन्धयति सप्तपक्ष्ण पुरुषादरपि पि
 गहिंममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाक सप्तले
 उपरन्धयन्ति ॥ १३ ॥ यस्त्विह पितृविप्रमस
 धृक् स कालक्षत्रसङ्गक नरक अप्रतयोजनपरि
 मण्डले तान्नमये तप्तले उपर्यधस्तादग्न्यर्काम्या
 मतिवर्षमानेऽभिनिवेशित क्षुरिपपासाभ्यां च दक्ष
 मानान्तर्वहि शरीर आग्ने श्रेत चेष्टतेऽवतिष्ठति
 परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावदप
 सहस्राणि ॥ १४ ॥

यस्त्विह वै निजवदपधादनापद्यगतः
 पावण्डं आपगतस्तमपिपत्रवन प्रधन्य कन्या
 प्रहरन्ति सत्र हासावितस्तता धावमान उभयतो
 भारंश्चालवनासिपर्यङ्गिष्ठमानसपाज्ञा हा इता
 उमोति परमया धदनया मूर्च्छित पद पद
 निपतति पधमहा पाखण्डानुगत फल सुहृत् ॥ १५ ॥

इस नरकका नाम गौरव है । 'रु' सर्वसे भी अधिक
 क्रूर स्वभावशाले एक जीवका नाम है ॥ ११ ॥ ऐसा
 ही मद्गौरव नरक है । इसमें वह व्यक्ति जाता है,
 जो और किसीकी परवा न कर केवल अपने ही शरीर
 का पाठन-गोण करता है । वहाँ कच्चा मांस खानेवाले
 रुह इसे मांसके छांससे काटते हैं ॥ १२ ॥

जो क्रूर मनुष्य इस लोकमें अपना पट पाखनेक
 छिय जीवित पशु या पक्षियोंका रोंचता है, उस हृदय-
 हीन, राक्षसोंसे भी गय बीने पुरुषको यमदूत कुम्भीपाक
 नरकमें ले जाकर खोलत हुए लकमें रोंचते हैं ॥ १३ ॥
 जो मनुष्य इस लोकमें माता-पिता, ब्राह्मण और वेदसे
 विशेष करता है, उसे यमदूत कालक्षत्र नरकमें ल जाते
 हैं । इसका घेरा दस हजार योजन है । इसकी भूमि
 तौलैकी है । इसमें जा तथा हुआ मैदान है, वह ऊपरसे
 सूर्य और नाचेसे अग्निक दाहसे जलता रहता है । वहाँ
 पहुँचाया हुआ पापी जीव मूख-म्याससे म्याकुल हो
 जाता है और उसका शरीर बाहर भीतरसे जलन लगता
 है । उसकी बेचनी यहाँतक बढ़ती है कि वह कभी
 धिक्ता है, कभी लेटता है, कभी छुपटान लगता है,
 कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ने लगता
 है । इस प्रकार उस नर-पशुक शरीरमें बितन रोम
 होते हैं, उतन ही हजार अपनक उसकी पड़ दुर्गति
 होती रहती है ॥ १४ ॥

जो पुरुष किसी प्रकारकी आपत्ति न आनेपर भी
 अपने वैदिक मागका छोड़कर अथ पावण्डपूर्ण धर्मोका
 आश्रय लेता है, उसे यमदूत असिपत्रवन नरकमें ल
 जाकर काड़ोसे पीतते हैं । जब वारसे बचनक छिये
 वह इधर-उधर दौड़ने लगता है, तब उसका सारे अङ्ग
 ताडनके तण्णारक समान होने पचोसे, दिनमें दानों
 और धारें हाती हैं, हृत्-हृत् हान लगने हैं । तब वह
 अत्यन्त बे-भासे 'हाय, मैं मरा' इस प्रकार चिह्नाता
 हुआ पद-पद मूर्च्छित होकर गिरने लगता है । अतः भय-
 का छोड़कर पावण्ड-धर्ममें बचनेसे उसे इस प्रकार अन
 ॥ १५ ॥

यस्मिन् वै राजा राजपुरुषो वा अदण्डये दण्ड
प्रणयति प्राप्नोति वा शरीरदण्डं स पापीयाभरकेऽमुत्र
यस्मात्सुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिप्यमाणान्वयो
यथैषेष्टसुखं आर्तस्वरं स्वनयन् कचिन्मूर्च्छितः

कश्मलमुपगतो मयैवेहाष्टदोषा उपरुद्राः ॥१६॥

यस्मिन् न भूदानाभीश्वरापकल्पितवृत्तीनाम्
विविक्तपरव्ययानां स्वपुरुषागकल्पितवृत्तिर्विविक्त-

परव्ययो व्यधामाश्रयति स परब्रान्धरूपेऽदमिन्द्रादेण

निपतति तत्र हामौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपै

र्मण्डयूकामकुणमक्षिकादिभिर्मे के चाभिद्रुधास्तैः

मर्वताऽभिद्रुहमाणान्तमसि विहृतनिद्रानिर्धृतिरसम्भा-

वस्यानः परिक्रामति यथा कुडरीर जीव ॥१७॥

यस्मिन् वै अंसविभक्त्याप्नोति यत्किञ्चनोपनत

मनिर्मितपञ्च यज्ञोपायमर्मन्तुत स परत्र कृमिभोजने

नरकापमे निपतति तत्र क्षैतसहस्रयोजने कृमिकुण्डं

कृमिभूतं स्वप कृमिभिरेष भक्ष्यमाण कृमिभोजना

पावन्प्रणावदुतादाऽनिर्वेदमा मानं यातयते ॥१८॥

इस लोकमें जो पुरुष राजा या राजकुमार होकर
किसी निरपराध मनुष्यको दण्ड देता है अपराध करने
को शरीरदण्ड देता है, वह महापापी भ्रष्ट मनुष्य
नरकमें गिरता है। वहाँ जब महाकृमि यमदूत उसके
अङ्गोंको कुचलते हैं, तब वह कोरूममें घेर जाते हैं।
गर्भके समान पीड़ित होकर, जिस प्रकार हम कर्मों
उसके द्वारा सताये हुए निरपराध प्राणी रोते-बिचलते
हैं, उसी प्रकार कभी आर्त स्वरसे स्वनयन और
कभी मूर्च्छित हो जाता है ॥ १६ ॥

जो पुरुष इस लोकमें सम्पन्न आदि जीवोंकी श्रुति
करता है, वह उनसे श्रोह करनेके कारण कष्ट
नरकमें गिरता है, क्योंकि स्वयं भगवान्ने ही रक्तमणि
उनकी श्रुति बना दी है और उन्हें उसके कष्ट
दूसरोंको कष्ट पहुँचाना ज्ञान भी नहीं है, किन्तु मनुष्य
की श्रुति भगवान्ने विधि नियमपूर्वक बनायी है और
उसे दूसरोंके कष्टका ज्ञान भी है। वहाँ वे पशु मृग
पक्षी, सर्प आदि रंगनवाले जन्तु, मच्छर, जैँ कृमि
और मकली आदि जीव—जिनसे उसने श्रोह किया
था—उसे सब ओरसे कष्टते हैं। इससे उसकी निद्रा
और शान्ति भङ्ग हो जाती है और स्थान न भिन्नकर
भी वह बेचैनीके कारण उस घोर अन्धकारनरक
प्रकार मरकटा रहता है जैसे गेगमल शरीरमें जीव
छत्पट्टया करता है ॥ १७ ॥

जो मनुष्य इस लोकमें बिना पञ्चमहायज्ञ किये
तथा जो कुछ भिक्षे, उसे बिना किसी दूसरेके भिक्षे स्वी
ही खा जाता है, उसे कीपके समान कहा गया है।
वह परलोकमें कृमिभोजन नामक निहृद नरकमें गिरता
है। वहाँ एक व्याघ्र योजन चौड़ा—तीस फीट लम्बा
कुण्ड है। उसीमें उसे भी कीड़ा बनकर रहना पड़ता
है और जबतक अपने पापोंका प्रायश्चित्त न करनेकरके
उस पापीके—बिना भिक्षे और बिना दान किये स्थानक—
दोषका कष्टी तरह बोधन नहीं हो जाता, तबतक
वह उसीमें पक्षा-पक्षा कष्ट भोगता रहता है। वहाँ
कीड़ा उसे नोचते हैं और वह कीरोंका खन है ॥ १८ ॥

यस्त्विह वस्तेयेन बलाद्वा हिरण्यमृत्नादीनि ब्राह्मणस्य
 वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यम
 पुरुषा अपत्यैरप्रिपिण्डं सन्दर्शस्त्वचि निरुपन्ति
 ॥ १९ ॥ यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्य वा
 पुरुषं यापिर्देभिगच्छति तत्रमुत्र कलया सौहृयन्त
 स्तिग्मया ह्यम्या लाहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रिय च
 पुरुषरूपया ह्यम्या ॥ २० ॥ यस्त्विह वै सवाभिगम
 स्तममुत्र निरये वर्तमान वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य
 निष्कृन्ति ॥ २१ ॥

ये स्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अ
 पान्मृश धर्मसमुन् भिदन्ति त प्रम्परत्य वतरण्यां
 निपतन्ति भिक्षमपादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां
 नद्यां यादागगरितस्तता भक्ष्यमाणा आत्मना न
 विपुज्यमाना भ्रातृभिरुद्धमानाः स्वाधेन कर्मपाक
 मनुस्मरता विष्मृत्पूषशणितकेशनग्वाम्बिमदा
 मांभवमावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥ २२ ॥ य स्विह
 वै ह्यनापतया नष्टर्षावाचारनिपमास्त्यक्तलज्जा
 पशुचर्यां चरन्ति त चापि प्रत्य पूषविष्मृत्पूषलक्ष्म
 मलापूर्णाण्य निपतन्ति तदपातिवामन्मितममन्ति
 ॥ २३ ॥ ये स्विह वै श्वगदभपतया ब्राह्मणादयो
 मृगवाविहारा अर्तार्थे च मृगाग्रिभ्रन्ति तानपि
 सम्परतांछस्यमृतान् यमपुण्या इषुभिर्विध्यन्ति ॥ २४ ॥

राजन् । इस लोकमें जा म्याक्त चोरी या बरजारीसे ब्राह्मणक
 अथवा आपत्तिक समय न जानपर भी किसी दूसरे पुरुषक
 सुवर्ग और रक्षातिका हरण करता है उसे मरनपर
 यमदूत सन्देश नामक नरकमें ले जाकर तपाये हुए
 लोहके गोलोंसे दागन हैं और सड़मीसे उमकी खाऊ
 नाचने हैं ॥ १९ ॥ इस लोकमें यदि कोई पुरुष अगम्या
 स्त्रीक साथ सम्भोग करता है अपवा कोई स्त्री अगम्य
 पुरुषसे व्यभिचार करती हैं तो यमदूत उसे तममूर्ति
 नामक नरकमें छ जाकर कोड़ेसे पीटत हैं तथा पुष्टक
 तपाय हुए लाहेकी स्त्री मूर्तिसे और स्त्रीको तपाया हुई
 पुरुष प्रतिमासे आच्छिन्न करताते हैं ॥ २० ॥ जा पुरुष
 इस लोकमें पशु आदि समीक साथ व्यभिचार करता
 है उसे मृत्युक बाद यमदूत वज्रकण्टकशाल्मली नरकमें
 गिराते हैं और वज्रक समान कटोर कौंटोकासे सेमके
 छुछपर चढ़ाकर फिर मीचकी आर खींचते हैं ॥ २१ ॥

जो राजा या राजपुरुष इस लोकमें शत्रु कुक्षमें जन्म
 पाकर भी उर्मकी मर्पातक उच्छ्र करने हैं, वे उस मर्पादानि
 क्रमणक वमण मरनपर धर्मणी नदामें पतक जाते हैं ।
 यह मने नरकमें का अधिक समान है उममें मूक मूव
 पीब रक्त, कृष्ण नय इदी चर्चा, नास और मजा
 आदि ग्री चीजें भरी हुई हैं । वहाँ गिरनपर उन्हें इवर
 उधरसे जड़क कीव नोचते हैं । किन्तु इससे उनका
 शरीर नहीं छूटता, पापक कारण प्राय उसे बहुत ब्रिये
 रहत हैं और वे उम दुर्गतिका अपनी करतीका फल
 समझकर मन-ही-मन सन्तप्त होते रहते हैं ॥ २२ ॥ जो
 धग शीघ और आचारक नियमोंका परित्याग कर तथा
 मजाका निशङ्कति कर हम लोकमें गृदाशोक साथ
 सुमन्त्र गौत्रक पशुओंके समान आचरण करते हैं, व
 भी मरनक बाद पीब, विश्व मूव रूप और मरसे मरे
 हुए पूषा नामक मनुष्यमें गिरकर उन कल्पित भूगित
 कशुओंका हा खाते हैं ॥ २३ ॥ इस लोकमें
 जा ब्राह्मणति ठक बगक भाग पुसे या गय
 पावने और गिरार आदिमें लगे रहते हैं तथा
 गायक गिराव पशुओंका बर करत हैं, मरनक पश्चात्
 व प्राग्राध मरजमें टाके जाते हैं और वहाँ यमदूत उन्हें
 लक्ष्य बनाकर बागेमें बोधते हैं ॥ २४ ॥

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति
 तानमुष्मिष्ठोके वैशसे नरके पतितभिरयपतयो
 यातयित्वा विशुमन्ति ॥ २५ ॥ यस्त्विह वै सुवर्णा
 भार्या द्विजोरेण पापयति काममोहितस्त पाप
 कृतममुत्र रेतःकुन्पायां यातयित्वा रेतः सम्पापयन्ति
 ॥ २६ ॥ ये त्विह वै दस्यवाऽग्निदा गरदा ग्रामान्
 सायान् वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा
 तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदग्नाः श्वानः
 सप्तशतानि विंशतिश्च सत्तभस स्वादन्ति ॥ २७ ॥
 यस्त्विह वा अनृत पदति साक्ष्ये द्रव्य
 विनिमये दाने वा कथञ्चित्स वै प्रत्य नरक
 ऽशीविमवध शिरा निरवकाशे योश्चनश्रतोऽप्रायाद्
 गिरिमुद्राः सम्पान्यते यत्र जलमिव
 स्रजमश्मपुष्टमवभासते तद्वीचिमत्तिलयो विधीर्य
 माणश्चरीरो न म्रियमाणः पुनरावोपितो निपतति
 ॥ २८ ॥

यस्त्विह वै विप्रा राजन्या वैश्वो वा
 सोमपीयस्तत्कलत्र वा सुगं व्रतस्याऽपि वा पिबति
 प्रमादतस्तयोऽनिरय नीतानामुरसि पदाऽऽक्रम्यास्ये
 वह्निना द्रवमाण काष्ण्यायसं निपिञ्चन्ति ॥ २९ ॥
 अथ च यस्त्विह वा आमसम्भाषणेन व्यममभमा
 जन्मतपाविद्याचारवर्णाधमवता वरीयसा न बहु
 मन्यत स मृतक ण्य मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽधाक्
 शिरा निपातितो दुरन्ता यातना झञ्जुते ॥ ३० ॥

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेघेन यजन्ते भाष शिष्यो

नृपशून्यवादन्ति तांश्च तपत्र इव निहता यमयदन

१ मा प०—अथयवर्णान् । २ मा प०—पतयन् । ३ मा प०—यस्त्विह वा अनृत पदति साक्ष्ये द्रव्य
 विनिमये वा कथञ्चित् । ४ मा प०—वीचयेऽपि । ५ मा प०—पतत्रागिर । ६ मा प०—
 पुनरावोपितो निपतति । ७ मा प०—यस्त्विहवायसंभाषणेन । ८ मा प०—अधिका नृपशून्य । ९ मा प०—र ।

• अथैवं एवं वैश्वोक्तं ण्यं शास्त्रमेव धर्मयानवा निबध्ने ।

जो पाखण्डीलोग पाखण्डीपूर्ण यज्ञोंमें पशुभोजन करे
 हैं, उन्हें परलोकमें वैशस (विशसन) नरकमें बाधकर वहाँ
 अधिकारी बहुत दीवार देकर बन्द रहे ॥ २५ ॥ जो विप
 क्रमातुर होकर अपनी सुवर्णा भार्याकी स्वीकृति करत है,
 उस पापीको मरनेके बाद यमदूत वीर्यकी स्त्री (अन्त-
 मक्ष नामक नरक) में बाधकर वीर्य पिताते हैं ॥ २६ ॥
 जो कोई चार अथवा राजा या राजपुरुष इस लोकमें
 किसीके घरमें स्वागत् देते हैं, किसीको विप दे रह
 हैं अथवा गौशो या व्यापारियोंकी श्रेष्ठियोंको छुलेते हैं,
 उन्हें मरनेके पश्चात् सारमेयान्न नामक नरकमें बाध-
 की दापैनाये मात सी बीस यमदूत कुत्ते बतकर वहाँ
 वेगसे बहने लगते हैं ॥ २७ ॥ इस लोकमें जो पुत्र
 किसीकी गताही देनमें अथवा रत्नमें अपना दानक सन
 किसी भी तरह दूत बाधना है वह मरनेपर जाक-
 श्य अग्निमान् नरकमें पड़ता है । वहाँ उसे ही वेग
 उँसे पहाड़ पर शिखरसे नीचेका गिर करके गिराया जा
 है । उस नरककी पत्थरकी मृमि जलके समान जल
 पड़ती है । इसीलिये इसका नाम अशीविमन् है वहाँ
 गिराये जानम उसक शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जाते
 भी प्राण नहीं निकलते, इसलिये इसे बार-बार ऊपर ले
 जाकर पटक जाता है ॥ २८ ॥

जो ब्राह्मण या क्षत्रिय अथवा अन्य जन्ममें स्त्रि-
 भी प्रमत्तता भक्षण करता है तथा जो क्षत्रिय वा
 वैश्य सोमयान करता है, उन्हें यमदूत अपमान नामक
 नरकमें ले जाते हैं और उनकी छातीपर रखकर उनके
 मुँहमें जागते गधया हुआ घोड़ा बाँधते हैं ॥ २९ ॥ जो
 पुरुष इस लोकमें गिर्य श्रेष्ठिक होकर भी करलये बड़ा
 मानके कारण जन्म, लग विद्या, जाभार, धर्म या ब्राह्मण
 में करनेसे वर्ज्य विज्ञेय संकस नहीं करता, वह
 जीता हुआ भी धरेक ही समान है । उसे मरनेपर क्षम
 कर्म नामक नरकमें नीचेका गिर करके गिराया जा
 है और वहाँ उसे अनन्त पीड़ाओं भोगनी पड़ती है ॥ ३० ॥

जो पुरुष इस लोकमें जन्मभान्ति द्वारा धर्म, पशु
 शास्त्र आदिप्रिय यजन करते हैं और जो किसी पशुओंके
 समान पुरुषोंको स्थापित है उन्हें वे पशुओंकी तरह
 मारे हुए पशु यमभान्ति शाश्वत दार तदनुबध्ने

यातयन्तो रस्योगणा सौनिका इव स्थितिनाव
 दोषासृक् पिबन्ति नृत्पन्ति च गापन्ति च
 हृष्यमाणा यथेह पुरुषादा ॥ ३१ ॥ ये त्विह वा
 अनागसोऽरभ्ये ग्रामे वा वैश्वम्मकैरुपसृतानुपवि
 श्वम्मप्य विजिविपून् शूलशूद्रादिपुत्रोत्तान् क्रीडनक
 तथा यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयासनासु
 शूलादिषु प्रोवात्मानः क्षुत्तृह्यां चाभिहताः कङ्क
 षटादिभिश्चेतस्तवस्तिमस्तुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं
 सरन्ति ॥ ३२ ॥

ये त्विह वै मृतान्पुद्गेजयन्ति नरा उरक्षण
 खमावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरक
 दन्दशूकास्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः
 पञ्चमुन्ना सप्तमुन्ना उपैसृत्य ग्रसन्ति यथा बिले-
 क्षपान् ॥ ३३ ॥ ये त्विह वा अन्धावटकुशूल
 गुहादिषु मृतानि निरुन्धन्ति तथासुत्र तेष्वेवोपवेश्य
 सगरेण बह्विना धूमेन निरुन्धन्ति ॥ ३४ ॥
 यस्त्विह वा प्रतिपीनम्यागतान् वा गृहपतिरसकृदुप
 गतमनुर्दिधुगुरिव पापन चक्षुषा निरीक्षते तस्य
 चापि निरये पापहृष्टेरक्षिणी वज्रैस्तुण्डा गृध्राः
 कङ्ककाकषटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥ ३५ ॥

यस्त्विह वा आडपाभिमतिरहङ्कृतिस्तिर्यक्प्रेषण
 सर्ववासमिविशङ्की अर्धप्ययनाशचिन्तया परिशुष्य
 माणहृदयवदनो निर्द्वैतिमनवगतो ग्रह इधार्थमभि
 रसति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसर्वक्षणमल-

यातनाएँ देते हैं और रक्षणमोक्षण नामक नरकमें
 कसाएँयोके समान कुम्हाड़ीसे कट-काटकर टुकड़ा छोड़
 पोते हैं । तथा जिस प्रकार वे मांसभोजी पुरुष इस
 लोकमें उमका मांस भक्षण करके आनन्दित होते थे
 वही प्रकार वे भी उनका रक्षण करते और आनन्दित
 होकर नाचते-गाते हैं ॥ ३१ ॥ इस लोकमें जो लोग
 वन या गौवक निरपराध जीवोंको—जो सभी अपने
 प्राणोंको रखना चाहते हैं—तरह-तरहके उपायोंसे
 कुसजाकर अवन पास घुला लेते हैं और फिर उन्हें
 कौड़ेसे बचकर या रस्तीसे बाँधकर खिड़काव करते हुए
 तरह-तरहकी पीड़ाएँ देते हैं, उन्हें भी मरनेके पश्चात्
 यमयातनाओंक सम्य शूलप्रोत नामक नरकमें शूळोंसे
 बेसा जाता है । उस समय जब उन्हें मूख-प्यास सताता
 है और कङ्क, बटेर आदि तीक्ष्ण चोंचोंवाले नरकके
 भयानक पक्षी नोचने लगते हैं, तब अपने किये हुए सारे
 पाप याद आ जाते हैं ॥ ३२ ॥

रात्रन् ! इस लोकमें जो सर्पोंके समान उपल्लमाव
 पुरुष दूसरे जीवोंको पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरनपर दन्द
 शूक नामक नरकमें गिरते हैं । वहाँ पाँच-पाँच, सात-
 सात मुँहवाले सप उनके समीप आकर उन्हें चूँहोंकी
 तरह निगल जाते हैं ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति यहाँ दूसरे
 प्राणियोंको अँधेरी खतियों, कोठों या गुफाओंमें बाँध दते
 हैं, उन्हें परलोकमें यमदूत वैसे ही स्वानोंमें बाँधकर
 विषैडी अगक घूमने चोगते हैं । इसीप्रिय इस नरकको
 अवजनिरोधन कहते हैं ॥ ३४ ॥ जो गृहस्थ अपने घर
 आये अतिपि ब्रह्म्यागमोंकी ओर बार-बार क्रोधमें भरकर
 पेसी कुण्डि दृष्टिसे देखता है माना उन्हें नरक कर देगा,
 वह जब नरकमें जाता है, तब उस पापदृष्टिक नरकोंको
 भिद्र, कङ्क, काक और बटेर आदि बज्रकी-सी कटोर
 चोंचोंवाले पक्षी बजाधरसे निकाळ लेते हैं । इस नरकको
 पर्माक्षन कहते हैं ॥ ३५ ॥

इस लोकमें जो व्यक्ति अपनेको बड़ा धनवान् समझ
 कर अभिमानवश सबको टक्की नजरसे दखता है और
 सभीपर स्नेह रखता है धनक व्यय और माशकी चिन्ता-
 से जिसके हृदय और मुँह सूखे रहते हैं, वह तनिक भी
 पैस न खानकर जो यशके समान धनकी रक्षामें ही लगा
 रहता है तथा पैसा पैसा करने, बकान और बचानमें जो

१ प्रा पा — दाम्यासृक् । २ प्रा पा — उपविष्य । ३ प्रा पा — कष्टतुण्डा । ४ प्रा पा — गतव दृष्ट
 प्यमनाशचिन्तया । ५ प्रा पा — मतिरहङ्कृति । ६ प्रा पा — उरक्षयमलप्रह ।

ग्रहः सृष्टीश्रुते नरके निपतति यत्र ह तिस्रग्रह
पापपुरुष धर्मराजपुरुषा चापका इव सर्वतोऽङ्गेषु
सूत्रैः परिवषन्ति ॥ ३६ ॥

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः
महस्रश्चस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधमवर्तिनो
ये कश्चिदिहोदितान् अनुदिताभावनिपते
पर्यायेण विघ्नन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु
पुनर्मवे त उभयक्षेत्राभ्यां निविघ्नन्ति ॥ ३७ ॥

निवृत्तिलक्षणमार्गं आदावेव व्याख्यातः ॥
एतावानेवाम्ब कोशो यथतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित
उपनीयते यच्चङ्गवतो नारायणस्य साक्षात् महापुरुष
स्य स्पष्टरूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमावृतः
पठति शृणोति श्रावयति स उपगम्य भगवतः
परमात्मनोऽप्राप्तमपि भद्रामकिविष्टदुष्टि
र्बेद ॥ ३८ ॥

भुत्वा स्यूतं तथा धूमं रूपं भगवतो यति ।
स्यूले निव्रितमात्मानं धनैः धूमं भिया नयेदिति ॥ ३९ ॥
भूद्रीपवपसरिद्वित्रिभ सङ्ग्रह
पातालदिक्कुरकभागणलोकसंख्या ।

गीता मया त्वं नृपाहृतमीश्वरस्य
स्यूतवपुः सकल ग्रीभनिष्ठापभासा ॥ ४० ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैपासिक्यामष्टाशतसाहस्र्यां पारमर्हस्यां सहितायां पञ्चमस्कन्धे

नरकानुवर्गनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ इति पञ्चमः स्कन्धः समाप्तः ॥

॥ इति ॐ तत्सत् ॥

तद्वत्-तद्वत्के पाप करता रहता है, वह नराधम मानस
सूचीमुख मरकमे गिरता है । वहाँ उस धर्मविनाश
पापात्माके सारे अङ्गोंको यमराजके इत दण्डियोंके समान
सूत्र-भागसे सीते हैं ॥ ३६ ॥

राजन् । यमलोकमें इसी प्रकारके सैकड़ों-हजारों नरक
हैं । उनमें जिनका यहाँ उल्लेख हुआ है और जिनके
विषयमें कुछ नहीं कहा गया, उन सभीमें सब अधर्मपुरुष
जीव अपने कर्मोंके अनुसार बारी-बारीसे जाते हैं । इसी
प्रकार धर्महीना पुरुष स्वर्गादिमें जाते हैं । इस प्रकार मरक
और स्वर्गके योगसे जब इनके अधिकारात् पाप और पुण्य क्षीण
हो जाते हैं तब बाकी बचे हुए पुण्यपापरूप कर्मोंको लेकर
ये फिर इसी लोकमें जन्म लेनेके लिये जाते हैं ॥ ३७ ॥

इन धर्म और अधर्म दोनोंसे निवृत्तन जो
निवृत्तिमार्ग है, उसका तो पहले (द्वितीय स्कन्धमें)
ही वर्णन हो चुका है । पुराणोंमें जिसका चौदह मुक्तके
रूपमें वर्णन किया गया है, वह ब्रह्माण्डकोश इत्यादि ही है ।
यह साक्षात् परम पुरुष श्रीनारायणका अपनी भाषाके
गुणोंसे युक्त व्यक्त स्वरूप स्वरूप है इसका वर्णन
मैंने तुम्हें सुना दिया । परमत्मा भगवान्का उपनिषद्में
वर्णित निर्गुण स्वरूप यद्यपि मूल बुद्धिहीन पुरुषके बाहर
है तो भी जो पुरुष इस स्वरूप रूपका वर्णन आदर्शके
पढ़ता, सुनता या सुनाता है, उसकी बुद्धि ब्रह्मा और
भक्तिके कारण शुद्ध हो जाती है और वह उस सत्त्व
रूपका भी अनुभव कर सकता है ॥ ३८ ॥

यस्यको चाहिये कि भगवान्के स्वरूप और सत्त्व
दोनों प्रकारके रूपोंका ध्यान करके पहले स्वरूप रूपमें
विचित्रो स्वरूपके फिर धीरे-धीरे ब्रह्मसे इटाकर उसे सत्त्वमें
लगा दे ॥ ३९ ॥ परीक्षित । मैंने तुम्हें पूर्ण, उसके
अन्तर्गत द्वीप, वर्ष, नदी, पर्वत, आकाश समुद्र, पान्थ
दिशा, नरक अपासिर्गण और लोकोंकी स्थिति का वर्णन
किया । यही भगवान्का अति अद्भुत स्वरूप रूप है जो
सम्पन्न जीवसमुदायका आश्रय है ॥ ४० ॥

श्रीराधाकृष्णभ्यां नमः

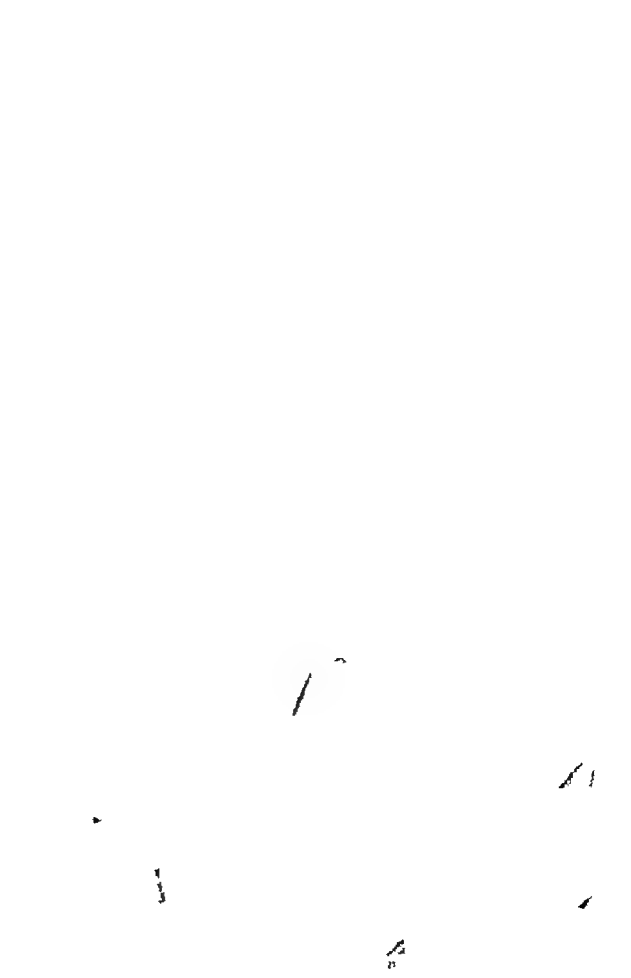
श्रीमद्भागवतमहापुराणम् -

पष्ठः स्कन्धः



यन् गाविन्दकस्य नाम नारायण मया ।

अपुदघापि यदुवाच मुक्तं पापोऽप्यजामिल ॥





पामूल भवामिकके वरुम पारीको कीं ब रहे थे विष्णुभूतोति कहे बलपूर्वक रोक्त विषा ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

पष्ठः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

अज्ञामिहोपाख्यामका प्रारम्भ

राजोवाच

उज्ज्वलीयस्ते कदा—मगधन् ! आप पहले

(द्वितीय स्कन्धमें) निवृत्तिमार्गका वर्णन कर चुके

हैं तथा यह बतला चुके हैं कि उसके द्वारा अर्धिरादि

मार्गसे जीव क्रमशः ब्रह्मलोकमें पहुँचता है और फिर

ब्रह्मके साथ मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ सुनिश्चर !

इसके सिवा आपने उस प्रवृत्तिमार्गका भी (तृतीय

स्कन्धमें) भीखीमूर्ति वर्णन किया है, जिससे त्रिगुणमय

अर्ग आदि लोकोंकी प्राप्ति होती है और प्रकृतिका

सम्बन्ध न छूटनेके कारण जीवोंको बार-बार जन्म-

मृत्युके चक्करमें आना पड़ता है ॥ २ ॥ आपन यह

भी बतलाया कि अवर्त्म फलसे अनेक नरकोंकी प्राप्ति

होती है और (चौथे स्कन्धमें) उनका विस्तारसे

वर्णन भी किया । (चौथे स्कन्धमें) आपने उस

प्रथम मन्वन्तरका वर्णन किया, जिसके अन्तिम

ज्ञायमान मनु थे ॥ ३ ॥ साथ ही (चौथे और

पाँचवें स्कन्धमें) प्रियव्रत और उत्तानपादके वंशों तथा

अरिशोक एव द्वीप, वप, समुद्र, पर्वत, नदी, उद्यान

और विभिन्न द्वीपोंके वृक्षोंका भी निरूपण किया ॥ ४ ॥

भूमण्डलकी स्थिति, उसके द्वीप-नदीदि विभाग, उनके

लक्षण तथा परिमाण, मन्त्रशौकी स्थिति, जनसंख्या

आदि सूचित्र (सात पाठाख) और मगधान्ने इन

सबकी जिस प्रकार सृष्टि की—उसका वर्णन भी

सुनाया ॥ ५ ॥ महाभाग ! अब मैं यह उपाय जानना

चाहता हूँ जिसके अनुष्ठानसे मनुष्योंका जनकजनक

भयहृत् यातनाओंसे शून्य नरकोंमें न जाना पड़े । आप

इसका उपाय उपायसूत्र कीजिये ॥ ६ ॥

निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ।

क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥ १ ॥

प्रवृत्तिलक्षणैवैव त्रैगुण्यविषयो ह्यने ।

योऽसत्त्वलीनप्रकृतेर्गुणसगः पुनः पुनः ॥ २ ॥

अधर्मलक्षणा नाना नरकाभ्यानुवर्णिता ।

मन्वन्तरस्य व्याख्यात आद्य स्वायम्भुवो यतः ॥ ३ ॥

प्रियव्रतोत्तानपदार्थशस्तनिरातानि च ।

द्वीपवपसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥ ४ ॥

धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ।

न्यातिपां विवरणां च यथेदमसुब्रह्मिणः ॥ ५ ॥

अपुनेह महाभाग यथैव नरकाभर ।

नानोपप्राप्तनान्नेपात मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच

न चेदिदृषापचिति मथाहसः

कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ।

ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकातुपैति

ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥ ७ ॥

तस्मात्पुरैवाधिह पापनिष्कृतौ

यतेत मृत्पूरविषयसाऽऽत्मना ।

दोषस्य दृष्ट्यं गुरुलाघवं यथा

मिपक्विक्रित्सेत रुक्षा निदानवित् ॥ ८ ॥

राजोवाच

दृष्टभुताभ्यां सत्याप आनमप्यात्मनोऽहितम् ।

करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥ ९ ॥

कथिभिवर्ततेऽभद्रात्स्वविचरति तत्पुनः ।

प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरद्वीपवत् ॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच

कमणा कर्मनिहारा न ह्यात्मन्तिक इप्पते ।

अविद्वदधिकारिस्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ ११ ॥

नाश्नतः पभ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि ।

एव नियमकृद्वाञ्छन् धनं धेमाय कल्पते ॥ १२ ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण दमेन च दमेन च ।

स्याग्न सत्यशान्ताभ्यां यमेन नियमेन च ॥ १३ ॥

देहवाग्बुद्धिर्धारा धर्मता भद्रयान्विता ।

श्रीशुकदेवजीने कहा—मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे पाप करता है । यदि वह उन पापोंका इसी जन्ममें प्रायश्चित्त न कर ले, तो मरनेके बाद उसे अवश्य ही उन मयङ्कर यातनापूर्ण नरकोंमें जाना पड़ता है, निमका कर्णज मैंने सुन्ये (पौचयें स्वप्नके कर्ममें) सुनाया है ॥ ७ ॥ इसलिये बड़ी सावधानी और सजगत्पणके साथ रोग एवं मृत्युके पड़ने की क्षीप्तसे शीघ्र पापोंकी गुरुता और कष्टतापर विचार करके उनका प्रायश्चित्त कर डालना चाहिये, जैसे मर्मज्ञ चिकित्सक रोगोंका कारण और उनकी गुरुता अनुसार जलकर छटपट उनकी चिकित्सा कर डालता है ॥ ८ ॥

राजा परीक्षितसे पूछ—सम्राजन्! मनुष्य रत्नदण्ड, समानदण्ड आदि लौकिक और शास्त्रोक्त नरकसम आदि पारलौकिक कष्टोंसे, यह जानकर भी कि पाप उसका शत्रु है, पापवासनाओंसे विवश होकर बार बार वैसे ही कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाता है । ऐसी अवस्थामें उसके पापोंका प्रायश्चित्त कैसे सम्भव है ! ॥ ९ ॥ मनुष्य कभी तो प्रायश्चित्त आदिके द्वारा पापोंसे छुटकारा पा लेता है, कभी फिर उन्हें ही करने लगता है । ऐसी स्थितिमें मैं समझता हूँ कि जैसे स्नान करनेके बाद घूँट डाल लेनेके कारण हाथीका स्नान व्यर्थ हो जाता है, वैसे ही मनुष्यका प्रायश्चित्त करना भी व्यर्थ ही है ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—बहुत कर्मके द्वारा ही कर्मका निर्बाध नाश नहीं होता; क्योंकि कर्मका अधिकारी अज्ञानी है । अज्ञान रहते पापवासनाएँ सर्वथा नहीं मिट सकतीं । इसलिये सच्चा प्रायश्चित्त तो तत्त्वज्ञान ही है ॥ ११ ॥ जो पुरुष केवल सुपत्यका ही सेवन करता है, उसे रोग अपने बशमें नहीं कर सकते । वैसे ही परीक्षित ! जो पुरुष नियमोंका पालन करता है वह धीरे धीरे पाप वासनाओं से मुक्त हो परमप्राणप्रद तत्त्वज्ञान प्राप्त करमें समर्थ होता है ॥ १२ ॥ जैसे बौद्धोंके धुरमुट्टमें छड़ी आग बौद्धोंकी जला टाकती है—वैसे ही धर्म और अद्वैतज्ञान धीरे धीरे तपस्या, ब्रह्मचर्य, इन्द्रियमन, मनकी स्थिरता, ज्ञान, सत्य बाहर भीतरकी परिणता

क्षिपन्त्येष महदपि षेणुगुम्भमिवानलः ॥१४॥

केचित्केवलया भक्त्या चासुखेयपरायणा ।

अर्घं धुनन्ति कात्स्न्येन नीहारमिव मास्करः ॥१५॥

न तथा क्षयवान् राजन् पूषेत तप आदिभि ।

यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥१६॥

सध्रीधीनो ह्यल्लोके पन्थाः क्षेमाऽङ्कुरोभय ।

सुशीला साधवो यत्र नारायणपरायणा ॥१७॥

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखस्य ।

न निष्पुनन्ति राजे द्व सुराकुम्भमिवापगाः ॥१८॥

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो

निषेक्षितं तद्वशुनरागि वैरिह ।

न ते यमपाशमुत्तम उद्धटान्

सन्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥१९॥

अथ चादाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

दूतानां विष्णुधर्मयो संयादस्तं निषोष मे ॥२०॥

कान्त्यङ्गज द्विजः कविदासीपतिरवामिलः ।

नाम्ना नष्टमदाचारोदासाः संसगदूषित ॥२१॥

वन्द्यसंकेतवर्मायैर्नहितां वृत्तिर्मास्वित ।

विभ्रतदुग्धमशुचिर्मातयामास देहिनः ॥२२॥

एवं निषमत्तस्तस्य लालयानस्य तत्सुखान् ।

कालाऽस्यगा महान् राजभ्रष्टाशीत्यायुष ममा ॥२३॥

तस्य प्रययमः पुत्रा दश तर्पां नु योऽवमः ।

तथा यम एवं नियम—इन नौ साधनोंसे मन, वाणी और शरीरद्वारा किये गये बड़े-से-बड़े पापोंको भी मष्ट कर देते हैं ॥ ११ १४ ॥ भगवान्की शरणमें रहनेवाले भक्त-जन, जो बिले ही होते हैं, केवल भक्तिक द्वारा अपने सारे पापोंका उसी प्रकार मल कर देते हैं, जैसे सूर्य कुदरेको ॥ १५ ॥ परीक्षित ! पापी पुरुषकी जैसी शुद्धि भगवान्को आत्मसम्पन्न करनेसे और उनके भक्तोंका सेवन करनेसे होती है, वैसी तपत्या आदिके द्वारा नहीं होती ॥ १६ ॥ जगत्में यह भक्तिका पथ ही सर्वश्रेष्ठ, मयारहित और कल्याणस्वरूप है, क्योंकि इस मार्गपर भगवत्परायण, सुशील साधुजन चलते हैं ॥ १७ ॥ परीक्षित ! जैसे शरावसे मरे धकेको नदियों पवित्र नहीं कर सकतीं, वैसे ही बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बार-बार किये जानेपर भी भगवद्विमुख मनुष्यको पवित्र करनेमें असमर्थ हैं ॥ १८ ॥ जिन्होंने अपने भगवद्गुणानुगुण मन-मधुकरको भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्द-मकरन्दका एक बार पान करा लिया, उन्होंने सारे प्रायश्चित्त कर लिये । वे स्वप्नमें भी यमराज और उनके पाशधारी दूतोंको नहीं देखते । फिर नरककी तो बात ही क्या है ॥ १९ ॥

परीक्षित ! इस किन्तमें महाभारतमें एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं । उसमें भगवान् विष्णु और यमराजके दूतोंका संवाद है । तुम मुझसे उसे सुनो ॥ २० ॥ कान्त्यङ्गज नगर (कनौज) में एक दासीपति ब्राह्मण रहता था । उसका नाम था अजामिल । दासीके ससगसे दूतित जानक कारण उसका सदाचार नष्ट हो चुका था ॥ २१ ॥ वह पतिन कभी बटोहियोंको बाँधकर उन्हें खर खाता, कभी लोगोंको मारके छपटे हरा देता, किसीका धन भोखा भरीसे ले लेता तो किसीका चुप लेता । इस प्रकार अत्यन्त निन्दनीय वृत्तिका आश्रय लेकर वह अपने कुटुम्बका पेट भरता था और दूसरे प्राणियोंका बहुत ही सताता था ॥ २२ ॥ परीक्षित ! इसी प्रकार वह बड़ा बुरा रहकर दासीके बंधोका धावन-यावन करता रहा । इस प्रकार उसकी आयुका बहुत बड़ा भाग—छट्ठासी वर्ष—बीत गया ॥ २३ ॥ कुछ अजामिलिक दस पुत्र थे । उनमें सबसे

बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो मृशम् ॥२४॥
 स बह्वहदयस्तस्मिन्मर्मे कलभापिणि ।
 निरीक्षमाशस्तस्त्रीलां सुसुखे खरठो मृशम् ॥२५॥
 सुखानः प्रपिबन् स्वादन् बालकस्नेहयन्त्रियः ।
 भोजयन् पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥२६॥
 स एव वर्तमानोऽङ्घ्रा मृत्युकाल उपस्थिते ।
 मर्ति चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥२७॥
 स पाञ्चहस्तांस्त्रीन्बद्धा पुरुषान् मृशदारुणान् ।
 बक्रतुष्टान्पुष्परोम्ण आरमानं नेतुमागतान् ॥२८॥
 दूरे क्रीडनकासकं पुत्र नारायणाह्वयम् ।
 ध्यावितन खरण्योच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥२९॥
 निशम्य भ्रियमाणस्य ह्रुवतो हरिकीर्तनम् ।
 भर्तुर्नाम महाराज पार्यदाः सङ्घसाऽऽपत्तन् ॥३०॥
 विकर्षतोऽन्तर्हृदयादासीपतिमजामिलम् ।
 यमप्रप्यान् विष्णुदत्ता वारयामासुराब्जसा ॥३१॥
 ऊचुर्निपथितान्तामन्ते वैषस्तपुराः सराः ।
 क यूयं प्रतिपेक्षारा भर्मा राजस्य ज्ञासनम् ॥३२॥
 कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधः ।
 किं देवा उपदत्ता वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥
 सर्वे पद्मपलाशाः शोषकौशेयवासस ।
 किराटिन इण्डलिना लसत्पुष्करमालिनः ॥३४॥
 सर्वे च नूतनयम्र सर्वे चारुपल्लवर्जिताः ।

छोटेश नाम था 'नारायण' । मा-बाप उससे बहुत
 प्यार करते थे ॥ २४ ॥ वह अजामिलने कल्पत
 मोहके कारण अपना सम्पूर्ण हृदय अपने बच्चे नारायणको
 सौंप दिया था । वह अपने बच्चेकी तोतली बोली
 सुन-सुनकर तथा बालमुलम खेल देख-देखकर खूब
 नहीं समाता था ॥ २५ ॥ अजामिल बापको स्नेह
 बन्धनमें बँध गया था । जब वह खड़ा तब उसे भी
 खिलाता, जब पानी पीता तो उसे भी पिलाता । इस
 प्रकार वह अतिशय मूढ़ हो गया था, उसे इस बातका
 पना ही न चला कि मृत्यु मेरे सिरपर आ पहुँची
 है ॥ २६ ॥

वह मूर्ख इसी प्रकार अपना जीवन मिला रहा था
 कि मृत्युकाल समय आ पहुँचा । अब वह अपने पुत्र
 बाळक नारायणके सम्बन्धमें ही सोचने विचारने लग्य
 ॥ २७ ॥ इतमें ही अजामिलने देखा कि उसे ले
 जानेके किये अल्पत मयावन तीन यमदूत आये हैं ।
 उनके हाथमें पौसी है, मुँह टेढ़े-टेढ़े हैं और शरीरके
 रोपें खड़े हुए हैं ॥ २८ ॥ उस समय बाळक नारायण
 बहसि कुछ दूरीपर खेल रहा था । यमदूतोंको देखकर
 अजामिल अल्पत भ्याकुल हो गया । और उसने बहुत
 ठेँच सरसे पुकारा—'नारायण !' ॥ २९ ॥ अजामिलके
 पार्यदाोंने देखा कि यह मरते समय हमारे स्वामी भगवान्
 नारायणका नाम ले रहा है, उनके नामका कीर्तन कर
 रहा है; अतः वे बड़े वेगसे दौटकर वहाँ आ पहुँचे
 ॥ ३० ॥ उस समय यमराजके दूत दासीपति अजामिल-
 क शरीरमेंसे उसका सूत्रशरीरको खींच रहे थे ।
 विष्णुदत्तोंने उन्हें बळपूर्वक रोका दिया ॥ ३१ ॥ उनके
 रोकनेपर यमराजके दूतोंने उनसे कहा—'ओ, भर्मा
 की आज्ञाका निषेध करनेवाले तुमलोग हो कौन ?
 ॥ ३२ ॥ तुम जिसके दूत हो, कहाँसे आये हो और
 इस ले जानेसे हमें क्यों रोक रह हो ? क्या तुमलोग
 कोई देवता, उपदेवता अथवा सिद्धदेव हो ?' ॥ ३३ ॥
 हम देखते हैं कि तुम सप खोगोंके नेत्र कमण्डलक
 समान कमजोरतासे मरे हैं, तुम पीने-पीले रेशमी वस्त्र
 पहने हो, तुम्हारे सिरपर मुकुट, कानोंमें पुण्ड्र और
 गलोंमें कमण्डलु द्वार खड़ा रहे हैं ॥ ३४ ॥ सबकी
 मयी अवस्था है सुन्दर-सुन्दर चार-चार पुत्रों है,

तुतिपत्तामिगदाशुचक्राम्युज्जभिः ॥३५॥

देशो विविमिरालोका कुर्वन्त स्येन रोचिषा ।

कर्म धर्मपालस्य किङ्कराभो निषेध ॥३६॥

श्रीगुरु उवाच

न्युक्ते यमदूतैस्तेषां सुदेवोक्तकारिणः ।

तान् प्रत्युच्च प्रहस्येद मेघनिर्हृदि या गिरा ॥३७॥

विष्णुवृत्ता उचुः

पूय वै धर्मराजस्य यदि निर्दोषकारिणः ।

मृत धर्मस्य नस्तत्र यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥३८॥

कथन्निदं धिपते दण्ड किं वास्य स्थानमीप्सितम् ।

दण्डपा क्रिकारिण सर्वे आहोस्मिन्कतिचिन्नुणासु ३९

यमदूता उचुः

वेदप्रणिहिता भर्मां सधर्मस्तद्विपर्ययः ।

वेदो नारायण साक्षात्त्वयम्भूरिति श्रुधुम ॥४०॥

यनस्य धाम्नीमी भावा रज सन्वतमोमपाः ।

गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्त यथातथम् ॥४१॥

सूर्योऽग्निं च मरुद्वाक् सोमः स च्छादनीदित्य ।

कं ह्य काला धर्म इति ह्यने देवस्य माश्रिण ॥४२॥

पुनरधर्मो विज्ञात स्थान दण्डस्य युज्यते ।

मर्षं कमानुगाधेन दण्डमहन्ति कारिण ॥४३॥

मध्मरति हि भ्राजि विपरीतानि चानपा ।

कारिणां गुणमज्ञाऽस्मि दृष्टवान् न परमैहृत् ॥४४॥

समीक्ष करकाम्योर्मि धनुः, तरकस, तज्जवार, गदा, गङ्गा, चक्र, कमल आदि सुशोभित हैं ॥ ३५ ॥

गुणयोगोंकी आज्ञाकान्तिसे दिशाओंका व्यवहार और प्राकृत प्रकाश भी दूर हो रहा है । हम धर्मराजके सेवक हैं । हमें गुणयोग क्यों रोक रहे हो ? ॥ ३६ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब यमदूतोंने इस प्रकार कहा, तब भगवान् नारायणक आज्ञाकारी पापदोने हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे उनके प्रति यों कहा ॥ ३७ ॥

भगवान्के पार्षदोंने कहा—यमदूतो ! यदि गुणयोग सचमुच धर्मराजके आज्ञाकारी हो तो हमें धर्मका लक्षण और धर्मका तत्त्व सुनाओ ॥ ३८ ॥ दण्ड किस प्रकार दिया जाता है ? दण्डका पात्र कौन है ? मनुष्योंमें समी पापाचारी दण्डनीय हैं क्या उनमेंसे कुछ ही ? ॥ ३९ ॥

यमदूतोंने कहा—वेगोंम बिन कर्मोंका विधान किया है, वे धर्म हैं और भिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं । वेद स्वयं भगवान्के स्वरूप हैं । वे उनके सामाजिक शास-प्रकाश एवं स्वयंप्रकाश ज्ञान हैं— ऐसा हमने सुना है ॥ ४० ॥ जगत्के रजोमय, सत्यमय और तथामय—समी परमार्थ, समी प्राणी अपने परम आशय भगवान्में ही स्थित रहते हैं । वेद ही उनके गुण, नाम, धर्म और रूप आदिके अनुसार उनका यथोचित विभाजन करते हैं ॥ ४१ ॥ जीव शरीर क्या बनाइसियोंसे मिलने कम करता है, उनके माश्री रहते हैं—सूर्य, अग्नि, वायु, पानु, इन्द्रियो, चक्षु मा स्र्पा, शन, ग्नि, निद्रा, जड, पृथ्वी, काक और म ॥ ४२ ॥ इनक द्वारा अमकका पना चक जना है और तब दण्डक पात्रका निर्णय होता है । पाप कम करनेवाले समी मनुष्य करने-करम कर्मोंके अनुसार दण्डनीय होते हैं ॥ ४३ ॥ निष्पप पुणो । जो प्राणी कर्म करते हैं उनका गुणोसे सम्बन्ध रहता ही है । इन्द्रियो से मर्षने पुण पाप और पुण पुण हान ही है । और दण्डक पात्र को भी पुण कम गिये बिना रह ही मही

स एव तत्फलं मुहूर्त्ते तथा सावदमुग्र वै ॥४५॥

यथेह देवप्रवरास्त्रैर्बिभ्यमुपलभ्यते ।

भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथान्यत्रानुमीयते ॥४६॥

वर्तमानोऽन्यथोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ।

एव जमान्यधोरेकद्वर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४७॥

मनसैव पुर देव पूर्वरूप विपश्यति ।

अनुमीमांसतेऽबुध मनसा भगवानस्य ॥४८॥

यथाह्यस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि ।

न वेद पूर्वमपर नष्टवन्मस्मृतिस्त्वथा ॥४९॥

पञ्चभिः पुरुते स्वार्थान् पञ्च वेदाय पञ्चभिः ।

एकस्तु पोद्भयेन श्रीन् स्वय सप्तदशाऽऽनुते ॥५०॥

तदेतत् पोद्भयकञ्च लिङ्गं शक्तिप्रयं महत् ।

धत्तऽनु समृत्तिं पुमि हर्षशाकभयार्तिदाम् ॥५१॥

दक्षमाऽजिनपट्बर्गो नन्दन् कमाणि कार्यते ।

का और मितना अधर्म या धर्म करता है, वह उसके उसका उतना और वैसा ही फल भोगता है ॥ ४५ ॥
 देवशिरोमणिभ्यो ! सत्य, राज और तम—इन तीनों गुणोंके भेदके कारण इस लोकमें भी तीन प्रकार प्राणी दीख पड़ते हैं—पुण्यपरा, पापपरा और पुण्यपाप दोनोंसे युक्त अथवा सुखी, दुखी और सुख-दुःख दोनोंसे युक्त, वेसे ही परलोकमें भी उनकी त्रिविध अनुमान किया जाता है ॥ ४६ ॥ कर्मजन सम्यग्भूत और भविष्यका अनुमान करा देता है । जैसे । वर्तमान जन्मके पाप पुण्य भी भूत और भविष्यकालके पाप पुण्यका अनुमान करा देते हैं ॥ ४७ ॥
 हमारे स्वामी अत्रमा भगवान् सर्वज्ञ यन्मात्र सकल कृतकर्मोंमें ही विराजमान हैं । इसलिये वे कर्मोंमें से ही सबके पूर्वस्वरूपको देख लेते हैं । वे ही उनके मात्मी स्वरूपका भी विचार कर लेते हैं ॥ ४८ ॥ जैसे मोया हुआ अन्नानी पुराने कालके समय प्रतीत हो रहे कल्पित शरीरको ही जल वास्तविक शरीर समझता है, सोये हुए अथवा जलने वाले शरीरको भूख खाता है, वेसे ही जीव अपने अपने पूर्ववर्गोंकी याद भूल जाता है और वर्तमान शरीरके सिवा पहले और पिछले शरीरोंके सम्बन्ध कुछ भी नहीं जानता ॥ ४९ ॥ सिद्धपुरुषों । जीव इस शरीरमें पाँच कर्मेन्द्रियोंसे ज्ञान-दान करना आदि काम करता है, पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे रूप, रस आदि पाँच वियोंका अनुभव करता है और सत्त्विक मनके साथ सत्रहवों वह स्वयं मिश्रकर अकेले ही ज्ञान, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय—इन तीनोंके विन्योको भोगता है ॥ ५० ॥ जीवका यह साध्य कथा और सत्त्वादि तीन गुणोंवाला लिङ्गशरीर अनादि है । यही जीवको बार-बार हृष, शोक, मय और पीडा देनवाले जन्म-मृत्युके चक्करमें डालता है ॥ ५१ ॥ जो जीव अज्ञानवशकाय, क्रोध, लोभ मोह, मत्सर—इन छ राशुओंपर विजय प्राप्त नहीं कर सता, उसे इन्द्र म रहने हुए भी विभिन्न वासनाओंके अनुसार अनेकों जन्म

कांक्षकार इवात्मानं कर्मणाऽऽच्छाद्य शुद्धयति ॥५२॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

कार्यते ब्रह्मशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥५३॥

लज्जान्निमित्तमभ्यक्तं व्यक्ताभ्यक्तं भवत्युत् ।

यथाबोनि यथावीजं स्वभावेन बलीयसा ॥५४॥

एष प्रकृतिसङ्गः पुरुषस्य विपर्ययः ।

आसीत् स एष नचिरादोद्यतः सङ्गाद्विलीयते ॥५५॥

अपि हि क्षुत्सम्पन्नः क्षीलक्षुत्तुगुणालयः ।

क्षुत्तुव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥५६॥

गुर्वग्न्यतिथिबुद्धानां क्षुधूर्ध्वनिर्हृत् ।

सर्वभूतसुहृत्सौमित्रितवागमनस्यकः ॥५७॥

एकदासौ वनं यात पिबसन्देहकृत् द्विजः ।

आदाय तत आहृत्य फलपुष्पसमित्कुक्षान् ॥५८॥

ददर्श कामिनः कश्चिन्मृदुः स ह भूमिपया ।

पीत्वा च मधु मरेयं मदापूर्णमनेत्रया ॥५९॥

मत्तया विरुधध्नीभ्या व्यपतं नितपत्रपम् ।

क्रोडन्तमनु गाथन्त इत्यन्तमनयान्विके ॥६०॥

एषा तां कामलिप्तेन बाहुना परिगम्भिताम् ।

करने पड़ते हैं । बेसी स्थितिमें यह रेशमके कीड़ेके समान अपनेको कमक जाछमें ढकड़ लेता है और इस प्रकार अपने हाथों मोहका शिकार बन जाता है ॥ ५२ ॥ कोई शरीरधारी जीव बिना कर्म किये कभी एक क्षण भी नहीं रह सकता । प्रत्येक प्राणीके सामायिक गुण कल्पपूर्वक विवश करके उससे कम कराते हैं ॥ ५३ ॥ जीव अपने पूज्यार्थोंके पाप-पुण्यमय संस्कारोंके अनुसार स्थूल और सूक्ष्म शरीर प्राप्त करता है । उसकी सामायिक एवं प्रकृत बासनाएँ कभी उसे माताके-जैसा (स्त्रीरूप) बना देती हैं, ता कभी पिताके-जैसा (पुरुषरूप) ॥ ५४ ॥ प्रकृतिका संसर्ग होनेसे ही पुरुष अपनेको अपने वास्तविक स्वरूपके विपरीत लिङ्गशरीर मान बैठता है । यह विषय भगवान्के मज्जनसे शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥ ५५ ॥

देवताओ ! आप जानते ही हैं कि यह अनामिक बड़ा शास्त्र था । शास्त्र, सदाचार और सङ्गुणोंका तो यह खजाना ही था । ब्रह्मचारी, विनयी, चित्तेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ, मन्त्रवेत्ता और पवित्र भी था ॥ ५६ ॥ इसन गुरु, अग्नि, अतिथि और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा की थी । अहङ्कार तो इसमें था ही नहीं । यह समस्त प्राणियोंका हित चाहता, उपकार करता, आवश्यकताका अनुसार ही बोधता और किसीका गुणों में दोष नहीं ढूँढ़ता था ॥ ५७ ॥ एक दिन यह श्रावण अपने पिताके आदेशानुसार वनमें गया और वहाँसे फल-फूल, समिधा तथा कुश लेकर घरके छिये लौटा ॥ ५८ ॥ झेपटे समय इसन दखा कि एक भद्र शूद्र, जो बहुत कमी और निर्द्वज है, शराब पीकर किसी बेइयाक साप विहार कर रहा है । बेइया भी शराब पीकर मतगामी हो रही है । नशक कारण उसकी जींसे नाथ रही है, वह कद्वन्त अवस्थामें हो रही है । वह शूद्र उस बेइयाक साप कभी गाता, कभी हँसता और कभी तरह-तरहकी चेष्टाएँ करके उसे प्रसन्न करता है ॥ ५९ ६० ॥ निष्पाप पुरुष ! शूद्रकी मुजाओंमें अङ्गणगदि कमादीपक बस्तुएँ छिपी हुई थीं और वह उनसे उस कुत्थक आङ्गन कर

वगाम इच्छयवश सहस्रं विमाहित ॥६१॥

ममभयश्चात्मनाऽऽम्मानि यावत्सत्त्व यथाभूतम् ।

न ऽगाक् ममाभातु मना मदनवपितम् ॥६२॥

तन्निमित्तमप्यव्याधप्रदप्रप्तो विद्येतन ।

तामव मनसा प्यायन् स्वधर्माद्विरगम इ ॥६३॥

ताम्रं तापयामास पित्रणार्थेन यावत् ।

प्राप्यर्षनारम् कामं प्रसीदत यथा तथा ॥६४॥

विप्रां स्वभाषामप्रौढां दुल् महति लम्बिताम् ।

विभगजासिगपाप म्यगिपापाहविद्वर्षी ॥६५॥

यत्प्रज्ञाप्रदानि-य-यायता-यायता-धनम् ।

सभागान्ता तदम्पिया इदम्प मन्दधीरयम् ॥६६॥

यद्वा नागमुद्रह्म म्येषामयगदित ।

अथ सत निरा वानमपायुगुमिमन्त ॥६७॥

तत्र षण् दण्डपात्र गद्यान्त कृतदिन्विषम् ।

नक्षामाचरनिषेण यत्र दृष्टन तुदृश्यनि ॥६८॥ अथ ॥ ५८ ॥

॥१॥ अथात्र सहाय्यं च प्राप्तं । अत्रैव यथावत्प्रतिपत्तिः ।

— 774 —

● 2 ●

உ - ருத் . - உ - லித் .

अथ द्वितीयोऽध्यायः

विष्णुवृत्तोंद्वारा भागवतधर्म-निरूपण और अज्ञामिद्वारा परमधामगमन

शीशुक उवाच

एवं ते भगवद्भूता यमदूताभिमापितम् ।
उपधार्याथ तान् राजन् प्रेत्याहुर्नयकोविदा ॥ १ ॥

विष्णुवृत्ता उवाच

अहो कष्ट धमदृष्टामधर्मः स्पृष्टवै सभाम् ।

यथादण्ड्यप्रायेषु दण्डो यैर्घ्रियते ब्रूया ॥ २ ॥

प्रजानां पितरो ये च शास्त्रार साधवः समाः ।

यदि स्थातुषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥ ३ ॥

यद्यदाचरति ध्यानिस्तरैस्तच्छदीहते ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४ ॥

यस्याङ्गशिराधाय लोकः स्वपिति निर्द्वैतः ।

स्वयं धममधमं वा न हि वेद यथा पशुः ॥ ५ ॥

स कथं यपितात्मानं कुतमैत्रमचेतनम् ।

विधम्भणीयो मृतानां सृष्टीनां प्राग्धुमइति ॥ ६ ॥

अथ हि कुतनिर्वेश जन्मकोट्यहसामपि ।

यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्वचयनं हर ॥ ७ ॥

एतेनैव ज्ञाथोनोऽस्य कुतं सादधनिष्कृतम् ।

यदा नारायणायेति जगद चतुरधरम् ॥ ८ ॥

स्तेनः सुरापा मिश्रधुग्ं ब्रह्महा गुरुतन्पग ।

स्त्रीरात्रपितृगाहन्ता ये च पातकिनोऽपर ॥ ९ ॥

भीशुकवचजी कहते हैं—परीक्षित । भगवान् के नीति-

निपुण एवं धर्मका धर्म जाननेवाले पार्षदोंने यमदूतोंका यह अभिमापण सुनकर उनसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

भगवान् के पापदोषोंके कष्ट—यमदूतों । यह बड़े आश्चर्य और खेदकी बात है कि धर्मदोषोंकी समामे अधर्म प्रवेश कर रहा है । क्योंकि वहाँ निरपराध और अदण्डनीय व्यक्तियोंको व्यर्थ ही दण्ड दिया जाता है ॥ २ ॥ जो प्रजाके रक्षक हैं, शासक हैं, समदर्शी और परोपकारी हैं—यदि वे ही प्रजाके प्रति नियमता का व्यवहार करने लगे तो फिर प्रजा किसकी शरण लेगी ? ॥ ३ ॥ सत्पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण लोग भी वैसा ही करते हैं । वे अपने आचरणके द्वारा जिस कमको धर्मसुकृष्ट प्रमाणित कर देते हैं, उसे उसीका अनुकरण करने लगते हैं ॥ ४ ॥ साधारण लोग पशुओंके समान धर्म और अधर्मका स्वरूप न जानकर किसी सत्पुरुषपर विश्वास कर लेते हैं, उसकी गोदमें सिर रखकर निर्भय और निश्चिन्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ यही दयालु सत्पुरुष, जो प्राणियोंका अत्यन्त विश्वासपात्र है और जिसे मित्रभावसे अपना हितैषी समझकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया है, उन जहान्नी जीवोंके साथ कैसे विश्वासपात्र कर सकता है ॥ ६ ॥

यमदूतों । इसने कौटिल्य-कौटिल्य जन्मोंकी पाप-राशिकर शून्य-प्रायश्चित्त कर लिया है । क्योंकि हमने निवश होकर ही सही, भगवान् के परम कल्याणमय (मोक्षप्रद) नामका उच्चारण तो किया है ॥ ७ ॥ जिस समय इसने 'नारायण' इन चार अक्षरोंका उच्चारण किया, उसी समय कष्ट उसनसे ही इस पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया ॥ ८ ॥ चोर, शराबी मिश्रधात्री, ब्रह्मघाती गुरुपीडक, ऐसे लोगोंका संसर्ग; स्त्री, राजा, पिता और गुरुका मारण तथा चाहे जैसा और चाहे जितना बड़ा पापी हो, सभीके

वैषामप्यधस्तामिदमेव सुनिष्कृतम् ।

मग्न्याहरणं विष्णार्यतस्तद्विषया मति ॥१०॥

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मादिभि

स्तथा विशुद्धपत्यमग्नान् व्रतादिभिः ।

यथा हरेनामपदैरुदाहृतै

स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥११॥

नैकान्तिकं तद्वि कृतेऽपि निष्कृते

मनः पुनर्भावति चेदसंस्पृष्टे ।

वत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हर

गुणानुवादः स्वस्तु सत्त्वभावनः ॥१२॥

अथैन सापनयत कृताद्येषाचनिष्कृतम् ।

पदसौ भगवन्नाम त्रियमाणः समग्रहीत् ॥१३॥

लिये यही—इतना ही सबसे बड़ा प्राप्तिचिह्न है कि मग्नान्के नामोंका उच्चारण * किया जाय, क्योंकि भगवन्नामोंके उच्चारणसे मनुष्यकी बुद्धि भगवान्के गुण, वीर्य और स्वरूपमें रम जाती है और सत्य भगवान्की उसके प्रति धारणीयबुद्धि हो जाती है ॥ १० ॥ कहे-कहे ब्रह्मरूपी श्रुतियोंने पापोंके बहुत-से प्राप्तिचिह्न—कृष्ण, चान्द्रायण आदि कृत मतलाये हैं, परन्तु उन प्राप्तिचिह्नोंसे पापीकी वैसी जबसे बुद्धि नहीं होती, वैसी भगवान्के नामोंका, उनसे गुम्फित पदोंका उच्चारण करनेसे होती है । क्योंकि वे नाम पवित्रकीर्ति भगवान्के गुणोंका ज्ञान करानेवाले हैं ॥ ११ ॥ यदि प्राप्तिचिह्न करनेके बाद भी मन फिरसे कुम्भार्मि—पापकी ओर दौड़े, तो वह चरम सीमाका—भूष-भूरा प्राप्तिचिह्न नहीं है । इसलिये जो लोग ऐस प्राप्तिचिह्न करना चाहें कि जिससे पापकर्मों और बन्धन-ओकी जड़ ही उखाड़ जाय, उन्हें भगवान्के गुणोंका ही ग्यान करना चाहिये । क्योंकि उससे चित्त सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥ १२ ॥

इसलिये यमदूतों । तुमलोग अजामिन्कने मत ले जाओ । इसन सारे पापोंका प्राप्तिचिह्न कर लिया है, क्योंकि इसने मते समय भगवान्के नामका उच्चारण किया है ॥ १३ ॥

१ प्रा प —कृतेल्लेखितेः । २ प्रा प —कल्पे ।

• इत प्रसङ्गमें भाम-व्याहरण का अर्थ नामाच्चारणगाथा ही है । भगवान् भीकृष्ण कहते हैं—

यद् गन्धिदेहि शुक्लं कृष्ण मां वृषाग्निम् । शृण्वेत्तु प्रहृष्ट मे हृदयान्तापर्यधि ॥

मेरे दूर होनेके कारण होपहीने का-करते गंधेविन्द, गंधेविन्द इस प्रकार करण कण्ठन करके मुझे शुभय । वह शृण मेरे ऊपर पड़ गया है और मेरे हृदयसे उसका भार क्षणभरके लिये भी नहीं हटता ।

† जामरदे: कन्नेन्न क्व अभिप्राय है कि भगवान्का केवल नाम भाम-राम कृष्ण-कृष्ण हरि-हरि न्यग्रथन नामाचन अन्त इरणवी बुद्धिके लिये—वायेंकी निरुक्तिके लिये पयात है । जमः नमामि इत्यादि त्रिया ओइनेकी भी कोई आकाशपणा नहीं है । नामके साथ बहुवचनका प्रयोग—भगवान्का नाम बहुत-से हैं किसीका भी लक्ष्मीर्तन कर के इस अभिप्रायमें है । एक व्यक्त रूप नामोका उच्चारण करो, इस अभिप्रायमें नहीं । क्योंकि भगवान्का, नाम अमर है—तब नामोका उच्चारण सम्भव ही नहीं है । तात्पर्य यह है कि भगवान्के एक नामका उच्चारण करनेवालेसे तब पर्यंकी निरुति हा गयी है । पूर्ण विश्वास न होने तथा नामाच्चारण पश्चात् भी ध्यान करनेके कारण ही उत्पन्न भ्रमम नही हटता ।

‡ उच्चारणी निरुक्तिके लिये भगवन्नामका एक भंश ही पयात है जैसे गामाका प्या । इसने तो तत्पूज नामका उच्चारण कर दिया । माने लमरका अर्थ टोक मरनेका घण ही नहीं है बरकि मरनेके क्षण जेम कृष्ण आगमण आदि करनके लिये विधि नहीं है । लक्ष्मी दम नामाच्चारणी भी नहीं है । इतलिय त्रियमाण सम्भवा यह अभिप्राय है कि भव अग्ने इसने कोई पत्र हमेंकी लक्ष्मीका गरी है ।

साङ्ख्य पारिहास्य वा स्त्रोम हेलनमेव वा ।

चैकुण्ठनामप्रदणमशेषाद्यहं विदुः ॥१४॥

पतितः स्वलितो भग्न सन्दष्टस्तथाहृत ।

हरिरित्यवशेनाह पुमाश्चाहति यातनाम् ॥१५॥

गुरुणां च लघूनां च गुरुणि च लघूनि च ।

प्रापञ्चितानि पापानां ज्ञात्वाकानि महर्षिभिः ॥१६॥

तैस्तान्यथानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः ।

नाधर्मज्ञ तद्वृत्त्य तदपीशाहप्रतिषेधया ॥१७॥

अज्ञानान्धवा ज्ञानादुत्तमसोकनाम यत् ।

मङ्गोर्हितमयं पुत्रा दहदधो यथानल ॥१८॥

यथागर्द चार्यतममुपपुत्रं यदृच्छया ।

अज्ञानतोऽप्यात्मगुण कथामयाऽप्युदाहृत ॥१९॥ नकि यथाहं अपश्ना नही वदन्ति) ॥ १० ॥

* बगुनी स्वाभाविक छान्ति इन बातों की प्रतीक्षा नहीं करती कि वह कुछार भला लगता है कि नहीं अने क्षणों में भगुन ।

हरिहरि वनामि दुष्टचित्तोऽपि शून्य । अनिच्छादपि नैरुद्धा दहन्ति पि पावक ॥

दुष्टचित्त मनुष्यके द्वारा मरणा द्विप जनेपर भी मरणा भीतर प्रवेश हो गये है । अनजानमें जो अनिच्छाएं दह्य करीयर भी अनिच्छा होती है ।

भगवन्के मानवा उपासन केवल पाप ही मिश्रण करता है इनका और बर्षे एक नहीं है यह करना प्रमत्त है । कति क्षणमें बता दे -

ननुपपत्तिं देन हरिहराग्रहम् । यत् परिहरानि मरणं समन प्रीति ॥

जिनमें हरे देता है तो अलग एक कर भी उपासन कर दे । जिनमें देता है तो कर दे । हरिहर वन पि पाप कर ही । इन पवनन का मित्र हन दे कि भगवन्के उपासन म. लक्षण है । मरण लक्ष्मी लक्ष्मी पर पम भय और कष्टों की लक्षण है जो कहे में अनेक क्षण जिनमें है जिनमें विषयों उपा भी नम हो वन लक्षण है -

* बड़े-बड़े महात्मा पुरुष यह बात जानते हैं कि संसारमें (किसी दूसरे अभिप्रायमें), परिहासमें, तान व्यञ्जनमें अपना किमीकी व्यद्वेष्टना करनेमें भी यदि कोई भगवान्क नामोंका उच्चारण करता है तो उससे मारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १४ ॥ जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्ग मङ्ग होते समय और सोंपके डँसते, आगमें जलत तथा चान्छाते समय भी विषयानासे 'हरि-हरि' कहकर भगवान्के नामका उच्चारण कर लेता है, वह समपातनाका पात्र नहीं रह जाता ॥ १५ ॥ महर्षियोंन जान-बूझकर बड़ पापोंके लिये बड़ और छोट पापोंके लिये छोट प्राय-दिवस वनगये हैं ॥ १६ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि उन तपस्या, ज्ञान ज्ञादि प्रायश्चित्तोंके द्वारा वे पाप नष्ट हो जाते हैं । परन्तु उन पापोंमें मन्त्रि दुष्का उत्पन्न हन्त्य छुट नहीं जाता । भगवान्क चरणोंकी सेवासे वह भी मुक्त हो जाता है ॥ १७ ॥ यमदूत ! जैसे जान या अनजानमें ईश्वरसे अभिमता स्पर्श हो जाय तो वह मर्य हो ही जाता है वैसे ही जान-बूझकर या अनजानमें भगवान्क नामोंका सद्गतिन करनेसे मनुष्यके मारे पाप मर्य हो जात हैं ॥ १८ ॥ जैसे कोई परम नाकिसाक्षी अप्रमत्त उमका गुण न जानकर अनजानमें पी ले तो भी बड़ अवश्य ही पीनवानेको अमर बना देता है, वैसे ही अनजानमें उच्चारण करनेपर भी भगवान्का नाम-अपना फल लेकर ही रहता है (वस्तु

श्रीशुक उवाच

४

त एष सुविनिर्णीय धर्म भागवत नृप ।

त याम्बपाश्राभिर्मुष्प विप्र मृत्योरमृष्टुषन् ॥२०॥

इति प्रस्युदिता याम्बा हता यात्वा यमान्तिके ।

यमराज्ञे यथा सर्वमात्रचक्षुररिन्दम ॥२१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन । इस प्रकार मरान्-

के पार्षदोंने यागवतधर्मका पूरा-पूरा निर्णय सुना दिया और अजामिष्यो यमदूतोंके पाससे छुड़ाकर मृत्युक मुक्तमे बचा किया ॥ २० ॥ प्रिय परीक्षित ! पार्षदोंकी

यह बात सुनकर यमदूत यमराजके पास गये और उन्हें यह सारा वृत्तान्त श्रोता-श्रोता सुना दिया ॥ २१ ॥

न गङ्गा न गङ्गा सेतुर्न कश्ची न च पुष्करम् । विद्यामे बतते मत्स्य इतिरिष्यस्यस्यम् ॥

श्वेदेन्द्रोऽयं यदुर्वेदं सामवेदो ह्ययवेदाः । अचीतास्तन केनोक्तं इतिरिष्यस्यस्यम् ॥

अमतेषादिभिर्ब्रह्मैरनेरयेषैः सवक्षिष्यैः । ब्रह्मिन् तेन येनोक्तं इतिरिष्यस्यस्यम् ॥

प्रागप्रवाचपायेषु संस्मरन्वाचिमेवम् । दुःश्रुतकथेऽपरिज्ञात इतिरिष्यस्यस्यम् ॥

‘विराधी विद्याके नोक्तपर वरि’ ये दो अक्षर बतते हैं उठे गङ्गा गङ्गा, सेतुकन्व कश्ची और पुष्करकी कोई आवश्यकता नहीं, अर्थात् उनकी भाषा ज्ञान व्यतिरिक्त कुछ समझनापड़े ॥ मिक कहा है । किन्तु वरि इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर दिया उठने शुरुवेद, यदुर्वेद, सामवेद और अयवेदकेवर अय्यवन कर दिया । किन्तु वरि’ ये दो अक्षर उच्चारण किये उठने दक्षिणके स्मरित अथर्ववेद आदि ब्रह्मोंके द्वारा यवन कर दिया । वरि’ ये दो अक्षर मृत्युके पश्चात् परलोकके मार्गमें प्रमाण करनेवाके प्राणोंके शिष्य पायेच (यद्यपि किन्ने भेदककी समझी) हैं संस्मरन्व रोगके शिष्य सिद्ध औपच है और बीजनके दुःख और कष्टोंके शिष्य परिज्ञात हैं ।’

इन बचनोंसे यह सिद्ध होता है कि यागवतधर्म अर्थात् धर्म काय—इन तीन कर्तव्य भी लायक है । यह बात वरि’ ‘नादायन आदि कुछ विशेष नामोंके सम्बन्धमें ही नहीं है प्रत्युत सभी नामोंके सम्बन्धमें है क्योंकि ज्ञान-ज्ञानपर वह बात सामान्यरूपसे कही गयी है कि अनन्तके नाम, विष्णुके नाम इरिके नाम इत्यादि । भगवान्के सभी मन्त्रोंमें एक ही शक्ति है ।

नाम स्मृतिर्न आदिमें वच-आश्रयका भी नियम नहीं है—

वाङ्मयाः श्रुतिषा वैष्णवाः श्रियाः श्रुतान्त्यवाङ्मयाः ।

यद्यपि तथाप्युक्तं विष्णोर्नामानुकीर्तनम् । तर्थापयिनिर्मुक्तास्तेऽपि शान्तिं क्तावन्तम् ॥

‘नादायन श्रुतिषा वैष्णवाः श्रियाः श्रुतान्त्यवाङ्मयाः’ अन्वय आदि श्रुति-श्रुति विष्णु भगवान्के नामका अनुकीर्तन करते करते हैं वे भी समस्त पदोंसे मुक्त होकर स्नातन परमात्मको प्राप्त होते हैं ।

नाम-स्मृतिर्न देव-आश्रय आदिके नियम भी नहीं है—

यथा—

न देववासनिवसः शौचाद्यनविनिर्णयः । परं तन्मनावेव धाम शयेति मुष्यते ॥

× × × ×

न देवनिषमो राजस्य कालनिषमवाचा । विरते नात्र संवेदो विष्णोर्नामानुकीर्तने ॥

वाङ्मयि यत्रे दाने वा आने वास्तेऽपि लभ्ये । विष्णुसंकीर्तने कस्ये नारत्यत्र दृषिहीनते ॥

गण्डविष्णुसंकीर्तनादि विष्णुसंकीर्तनायाः । इत्यत्र कृष्णेति संकीर्त्यं मुष्यते यावत्तुष्ट्या ॥

× × × ×

अथविषयमिन्द्रो वा सारावत्या गच्छन्ति वा । यं स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं तद्वाङ्मयन्तरं शुचिः ॥

‘देव-वाङ्मया’ नियम नहीं है शौच अशौच आदिका निर्णय करनेकी भी आवश्यकता नहीं है । देवका धाम-धाम यह संकीर्त करनेवापस बीच कुछ हो जाना है । × × × भगवान्के नामका संकीर्तन करनेमें न देवका नियम है और न तो कालका । इसमें कोई लभ्येद नहीं । राजन् । यत्र दान तीर्थदान अथवा विनिर्णय

दिव पाशादिनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ।

बभूवे विरसा विष्णोः किङ्कराच्च दर्शनोन्मत्तः ॥२२॥

अत्रामित्रयमदूतों के फटेसे छूटकर निर्मय और स्वस्थ हो गया । उसने भगवान्‌के पार्षदोंके दर्शनमनित आनन्दमें मग्न होकर उन्हें सिर झुककर प्रणाम किया ॥२॥

१ प्रा पा — नोत्सुका ।

बबूवे छिपे हुए कायरी ओछा है परन्तु भगवन्‌नामके इन सन्निर्जनमें बाह्य-मुद्रिणी कोई आवश्यकता नहीं है । चलन स्थिर, खड़े खड़े—खड़े खड़े पीते और बबू करते हुए भी 'कृष्ण, कृष्ण' ऐसा संकीर्तन करते मनुष्य पापके केंचुलप घूर करता है । ××× अगवित्र हो या पवित्र—सभी अवस्थाओंमें (चाहे किसी भी अवस्थामें) जो कमलनयन म्भागवत्‌ सारण करता है वह बाहर भीतर पवित्र हो जाता है ।

कृष्णति मङ्गलं नाम यस्य बाधि प्रवर्तते । मसीमरुति मघस्तु महापानकघटप ॥
सर्वेषामपि यज्ञानां सखायि च भवानि च । तीर्थक्षानानि सखायि वर्षस्वनद्यानि च ॥
वदपठनहस्यणि प्रादक्षिण्य भुवः धत्वम् । कृष्णनामब्रह्मण्यस्य कथं नार्हति गोटशीम् ॥

विष्णुजी बिहार 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण' वह मङ्गलमय नाम नृत्य करता रहता है उठनी काटि-काटि म्हायातक पवि सहास मस्त न जाती है । खड़े बैठ, खल्लों मग्न सर्वतीर्थ-स्नान, तपः, अनेकों उपवास हथरों बेह-पात्र, घृष्णीकी ठेठों प्रदक्षिण कृष्णनाम-जपके आकर्षण हिलेके बरवर भी नहीं हो सकती ।

भगवन्‌नामके कीर्तनमें ही पर कथ हो न बाल नहीं । उनके भजन और सारथमें भी बही पन है । 'यम स्कन्धक अस्मै कहेंगे किन्तु नामका सारण और उपायन अमङ्गल्य है ।' शिवाजीवा और पद्मपुराणमें कहा है—

आभवे वा भवे शोके हने वा मम नाम ब । स्यान्न वा सखिचल्य न बानि परमां गतिम् ॥
प्रणये नामनाये च यन्नाम स्मरतां नृणाम् । सद्यो नरपति पावोषो नमस्तस्मै विशदम्ने ॥

म्भागवत्‌ कहते हैं कि आभवे मग्न शोक हन (जोर लगने) आदि भजनपर जो मेरा नाम बोल उठता है या किसी व्याजने स्मरण करता है वह परमगतिमें प्राप्त होता है । मृत्यु या जीवन—चाहे जब कभी भगवान्‌का नाम स्मरण करनेवाले मनुष्योंकी बाध-शक्ति तत्काल नष्ट हो जाती है । उन विशदाम्य प्रभुको नमस्कार है ।

इति गताधमने कहा गया है—

भक्त्या नाम्यनि तपस्यास्तेनोक्तानि हरेर्हिक । नारका नरकस्थिता तप एव महादुःखे ॥

मगानुनि बाधपदेव । मन्त्राद्यन्य मूलने नारकमें रहनेवाले प्राणियों औरोंके नामका भजन किया और वे तत्काल नरकमें मुक्त हो गये ।

यम वाग्विष्णु परमं अने अनुशानके छिपे विन पवित्र देव बाह्य पात्र बाटि कामभी प्रदा मग्न दक्षिण आशिरी अरोह रक्ता है इस बलिपुत्रमें उमका मग्न हन्य अस्मन् कठिन है । मग्नप्राय सन्निर्जन द्वारा उमका मग्न अनाशान ही प्राप्त किया जा सकता है । भगवान्‌ घट्टर पार्षदीक प्रति करने हैं—

ईशाद मयकृता माम्ना किष्वादिं बाधक । कथं कथं वगम्यव हरेनाम्ना गतिर्नाम ॥

अपूर्ण बगलूम व्याप्ती होनेपर भी मैं विष्णुभगवान्‌के नामका ही कर करता हूँ । मैं मुझे वाद-मग्न करता हूँ भगवान्‌का छोटकर जीवाक छिपे अब कर्मभार आदि कोई भी गति नहीं है । श्रीमद्भागवतमें हो दह दान आगे अनेकान्‌ है कि मग्नपुत्रमें कथने बेगामें पत्रों और हाथमें अनां पूजने का वन मिलता है बलिपुत्रमें पर कतः भगवन्‌नाम मित्रा है । और भी है कि बलिपुत्र बाधक निधि है परन्तु हममें एक महान्‌ गुण पर है कि श्रीकृष्ण सन्निर्जननामने ही जीव बगलूमक छोटकर परमात्माका प्राप्त कर जाता है ।

इस प्रकार एक बाले नामदेवराष्ट्री भी अमग्न मग्न शास्त्रोंमें बही गयी है । यहाँ मूल प्रसङ्गमें ही—एकदा विष्णु गया है 'मन्त्र-पुस्तक' का अन्वेषण किया जा चुका है । बार-बार 'अ' नाम-बाधका विचित्र है 'अ' अंग और पर न उलट 'अ' बने इनके विने है । ऐसे भी बचन मिले हैं कि भगवान्‌ने नामका उपायन करनेमें मूल यत्न और भक्ति के लो ही पर मग्न हो जाने हैं वग—

कर्तव्यं च बहू पन्थे यः भूत पर मरिचि । नान्य निर्दरमप्य मन्त्रिणमन्त्रिणम् ॥

तं विबुधमभिप्रत्य महापुरुषकिङ्कराः ।

सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥२३॥

अंशमिलाऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णया ।

धर्म भागवत दृष्टं प्रैविद्यं च गुणाभयम् ॥२४॥

भक्तिमात्रं भगवत्पाशु माहात्म्यभक्षणाम्भरेः ।

अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽष्टममस्तन ॥२५॥

अहा मे परमं कष्टमभूद्विजितात्मनः ।

येन निष्ठावित प्रज्ञा हृष्यया जायतात्मना ॥२६॥

विद्यां विगदितं सन्निर्मुक्तं कृतकजलम् ।

हिता बाळां सर्वीयांऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥२७॥

निष्पाप परीक्षित । भगवान्के पार्षदोंने देखा कि वज्र-
मिल कुछ कहना चाहता है, तब वे सहसा उसके सामने
ही वहाँ अन्तर्धान हो गये ॥ २३ ॥ इस अवसरपर
वज्रमिलने भगवान्के पार्षदोंसे विबुध भगवन्धर्म और
यमदूतोंके मुखसे वेदोक्त समुग (प्रवृत्तिविषयक) धर्मत
वर्णन किया था ॥ २४ ॥ सर्वपापपहाती मन्मन्की
महिमा सुननेसे अनामिकक हृदयमें शीघ्र ही भक्तिर
उदय हो गया । अब उसे अपने पापोंको याद करके
बड़ा पश्चात्ताप होने लगा ॥ २५ ॥ (अनामिक मन हा
मन सोचने लगा—) 'अरे, मैं कैसा इन्द्रियोक्त दास
हूँ । मैंने एक दासीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करके अपना
ग्राह्यत्व ग्रहण कर लिया । यह बड़े दुःखी बात है ॥ २६ ॥
विचार है । मुझे बार-बार विचार है । मैं संतोंके हाथ
निन्दित हूँ पापग्राही हूँ । मैंने अपने कुस्ममें कलहक
टीका लगा लिया । इत्य-इत्य, मैंने अपनी सती एवं
अवोध पत्नीका परित्याग कर लिया और शरण
पीनेवाली कुस्मिका संसर्ग किया ॥ २७ ॥

१ मा पा — अनामिक अनामिक ।

कि भी मन्मन्की अक्षय्य पापोंके नाशपर अधिक दृष्टि नहीं रखनी चाहिये उसे तो भक्ति-मन्मन्की दृष्टिके
सिन्धे भगवान्के चरणोंमें अधिकधिक प्रेम बढ़ा कर इस दृष्टिके अन्तिम निष्पत्तिपर भगवान्के मधुर-मधुर नाम करने
बाना चाहिये । किन्ती अधिक निष्कामता होने लगी-ही-उत्तरी नामकी पूर्णता प्रकट होती देखके अनुमन्में अन्ती
आयी ।

अनेक तार्किकोंके मनमें यह कल्पना रहती है कि नामकी महिमा वास्तविक नहीं है अर्थवाद-मन्मन् है । उनके
मनमें यह चारबा ठा हो जाती है कि वाचकी एक बूँद भी पतित बनानेके सिन्धे पर्याप्त है, परन्तु यह विचार नहीं होता कि
भगवान्का एक नाम भी परम कल्याणकारी है । शास्त्रोंमें भगवान्का-महिम्नाके अर्थवाद समझना पाप बताया है ।

पुराणेधर्मनाम्नं ये कश्चित् नयन्मगः । तैरर्कितानि पुण्यानि तद्देव मनन्ति हि ॥

× × × × ×

मन्मन्कीर्तनफलं विविधं विद्यम् न अर्हति मनुते बहुधर्मवादम् ।

यं मानुषकमिह शुद्धकर्म क्षिपामि संस्मरन्परिविधितानि निरौदितानि ॥

× × × × ×

अर्थवाद होनेवाले सम्भवतः यो नर । त पापिशां समुप्यथां मरके पतति शुद्धम् ॥

यं नयन्म पुराणोंमें अर्थवादकी कल्पना करते हैं उनके हाथ उपायित पुण्य वेते ही हो जाते हैं ।

× × × × ×

ये मनुष्य मेरे नाम-कीर्तनके विविध कर्म मुनिकर डगर भड़ा नहीं करता और उसे अर्थवाद मानकर है उतने
संस्मरके विविध पाप दानोंसे पीड़ित होकर बहता है और उसे मैं अनेक पुण्योंमें डाल देता हूँ । ××××× यो
मनुष्य भगवान् नाममें अर्थवादकी लम्पना करता है वह मनुष्योंमें अत्यन्त पापी है और उसे नरकमें स्थिर परता है ।

इहावनाथो विठरौ नान्यवधू तपस्विनी ।

अहं मयाधुना तपस्कावकृतश्चैनं नीचवत् ॥२८॥

सोऽहं व्यक्त पतिप्सामि नरकं मृच्छदारुणे ।

धर्मघ्नाः कामिना यंत्रं विन्दन्ति यमपावना ॥२९॥

किमिदं स्वमग्राहास्वित् साक्षाद् दृष्टमिहामृतम् ।

कयाता अद्य ते ये मां व्यकर्षन् पादपाणयः ॥३०॥

अद्य ते कयाताः सिद्धावत्सारभासदर्शना ।

व्यमोक्षयकीयमानं बहुध्व्या पाशैरधो युवः ॥३१॥

अद्यापि मे दुर्मगस्य विबुधाक्षमदर्शने ।

मवितव्यं मङ्गलं येनारमा मे प्रसीदति ॥३२॥

अन्धधा त्रियमापस्य नाशुचेष्टपलीपत ।

वैकुण्ठनामं ग्रहणं जिह्वा वक्त्रमुनिर्हासि ॥३३॥

कयाहं कितवः पापा अश्रद्धा निरपत्रप ।

कया नारायणेत्येतन्नगवक्त्रा मङ्गलम् ॥३४॥

सोऽहं तथा यतिप्सामि यतश्चिच्छिप्रानिल ।

यथा न मय आत्मानमचे तमसि मज्जये ॥३५॥

विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकर्मकर्मजम् ।

सर्वभूतसुहृच्छान्तोमैत्रं करुणं आत्मवान् ॥३६॥

माधव प्रसन्नात्मानं यापिन्मय्याऽऽत्मानमायया ।

विक्रीडिता येयैवाहं क्रीडासृग इवाधमः ॥३७॥

ममाहमितिदेहादौ हिस्वामिध्यार्थधीर्मतिम् ।

मैं कितना नीच हूँ । मेरे मा बाप बुढ़े और तासी थे । वे सवधा असहाय थे, उनकी सेवा शुभ्रना करनेवाला और कोई नहीं था । मैंने उनका भी परिष्कार कर दिया । जोहूँ मैं कितना कृतज्ञ हूँ ॥ २८ ॥ मैं अब अन्धव ॥ अत्यन्त मयाधन नरकमें मिलेगा, जिसमें गिरकर धमघानी पापात्मा कामी पुरुष अनकों प्रकाशकी यमयानना भोगते हैं ॥ २९ ॥

मैंने अभी जा बहुत दृश्य देखा, क्या यह स्वप्न है ! अपना जापत् अश्रद्धा ही प्रत्यक्ष अनुभव है ! अभी-अभी जो हाथोंमें पटा स्कर मुझ लीच रहे थे, वे कहाँ चले गये ॥ ३० ॥ अभी-अभी वे मुझ अन फर्में फँसाकर पृथ्वीक नीचे ले जा रहे थे, परन्तु चार अत्यन्त सुन्दर सिंहाँन आकर मुझ छुड़ा दिया । वे अब कहाँ चले गये ॥ ३१ ॥ यद्यपि मैं इस जन्मका महापापी हूँ, फिर भी मैंने पूर्वजन्मोंमें अश्रद्धा ही भुमकम किये होंगे, तभी तो मुझ इन छेष्ट देवताओंके दर्शन हुए । उनकी स्मृतिसे मेरा हृदय अब भी आनन्दसे भर रहा है ॥ ३२ ॥ मैं कुलुयागामी और अत्यन्त अपवित्र हूँ । यदि पूर्वजन्ममें मैं पुण्य न किये होते, तो मरनेके समय मेरी बीम मगधनके यन्मोहक नामका उच्चारण कैसे कर पाती ॥ ३३ ॥ कहाँ तो मैं म्हाकयरी, पापी, निष्कर्म और अज्ञानवत् नष्ट करनेवाला तथा कहाँ मगधनका वह परम मङ्गलमय नारायण नाम ! (सत्य-मुच्य मैं तो कृतार्थ हो गया) ॥ ३४ ॥ अब मैं अन मग, इन्द्रिय और प्राणोंको बशमें करके दसा प्रयत्न करूँ कि फिर अपनेको घोर अन्धकारमय नरकमें न डालूँ ॥ ३५ ॥ आह्वानवशा मैंने अनको शरीर समझकर उसके डिये बड़ी बड़ी कर्मकारणों की और उनकी पूर्तिक डिये अनकों कर्म किये । ठीकी फल है यह अन्धन । अब मैं इसे कर्मकर समझ प्राणियोंका हित करूँ, वासनाओंको शान्त कर दूँगा, सबसे मित्रताका व्यवहार करूँ, दुश्मनोंपर दया करूँगा और पूरे समयके साथ रहूँगा ॥ ३६ ॥ मगधन की मायांन भीक्षु रूप धारण करके मुझ अपमवत् पौंस डिया और क्रीडाधृष्टकी भौति मुझ बहुत नाच मचाया । अब मैं अन-आपका उस मायासे मुक्त करूँगा ॥ ३७ ॥ मैंने सत्य बहुत परम्पराको पहचान डिया है अतः अब मैं शरीर आपिमैं मैं तथा मेरे का भाव छाड़कर

धास्ये मनो भगवति शुद्ध तत्स्वीर्तनादिभि ॥३८॥

श्रीशुक उवाच

इति ज्ञातमुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ।

गङ्गाद्वारद्वयेषाम् मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥३९॥

तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाभित ।

प्रत्याह्वयेन्द्रियप्राप्ता युयोज मन आत्मनि ॥४०॥

ततो गुणम्प्राप्तात्मानं विदुष्यात्मसमाभिना ।

युयुजे भगवद्वाग्निं ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥४१॥

यद्गुणपारतन्त्र्यमिह ब्रह्मास्तीत्युक्तवान् पुरः ।

उपलभ्योपलब्धान् प्राग्बन्धे क्षिरसाक्षिणः ॥४२॥

इत्वा कलेवर तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ।

सद्यः स्वरूपं जगदे भववत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥

सार्कं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः ।

ईमं विमानमारुह्य ययौ यत्र भियः पतिः ॥४४॥

एवं स विष्ठावितसर्वधर्मा

दास्या पतिः पतितो गर्भकर्मणा ।

निपात्यमानो निरये इतमवः

सद्या विमुक्ता भगवन्नाम गृहन् ॥४५॥

नात पर कर्मनिबन्धकृतनं

मुमुक्षता तीर्थपदानुकीतान् ।

न यत्पुन कर्मगु मज्जते मना

रजस्तमाम्भां कलिलं तदाऽन्यथा ॥४६॥

य एवं परमं गुणमितिहासमपाहम् ।

गणुयाद्विदुषा युक्ता यथ भक्त्यानुकीर्तयत् ॥४७॥

भगवन्नामके कीर्तन आदिसे अपने मनको शुद्ध करने पर और उसे भगवान्में लग्नकरेगा ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! तब भगवान्के पार्श्व गङ्गाद्वारोंका केवल थोड़ी ही देरके लिये उत्सव हुआ था । इतनेसे ही अनामिकके वित्तमें संसारके प्रति तीव्र वैराग्य हो गया । वे सबके सम्बन्ध और मोक्षको छोड़कर हरद्वार चले गये ॥ ३९ ॥ उस देवस्थानमें जाकर वे भगवान्के मन्दिरमें आसमसे बैठ गये और उन्होंने योग-मार्गका आश्रय लेकर अपनी सारी इन्द्रियोंको नियंत्रित कर मनमें धीन कर लिया और मनको बुद्धिमें मिला दिया ॥ ४० ॥ इसके बाद आत्मवित्तनके द्वारा उन्होंने बुद्धिको विषयोंसे दृष्ट कर लिया तथा भगवान्के धाम अनुभवस्वरूप परब्रह्ममें जोड़ दिया ॥ ४१ ॥ इस प्रकार जब अनामिककी बुद्धि त्रिगुणमयी प्रकृतिसे ऊपर उठकर भगवान्के स्वरूपमें स्थित हो गयी, तब उन्होंने देखा कि उनके सामने वे ही चारों पार्श्व, जिन्हें उन्होंने पहले देखा था, खड़े हैं । अनामिकने स्थिर होकर उन्हें समस्कार किया ॥ ४२ ॥ उनका दर्शन पानेके बाद उन्होंने उस तीर्थस्थानमें गङ्गाके तट पर अपना शरीर त्याग दिया और तत्काल भगवान्के पार्श्वोंका स्वरूप प्राप्त कर लिया ॥ ४३ ॥ अनामिक भगवान्के पार्श्वोंके साथ सर्वगुण विमान पर आरुढ़ होकर आकाशमार्गसे भगवान्के छद्मस्थानके निवासस्थान वैकुण्ठ ही चले गये ॥ ४४ ॥

परीक्षित ! अनामिक दासकी सहवास करके साधु वर्म-कर्म छोड़ कर दिया था । वे अपने निन्दित कर्मके कारण पतित हो गये थे । नियमोंसे द्रुत हो जानके कारण उन्हें भरकमें गिराया जा रहा था । परन्तु भगवान् के एक नामका उच्चारण करनेमात्रसे वे उससे तत्काल मुक्त हो गये ॥ ४५ ॥ जा लोग इस संसारबन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये अपने चरणोंके स्पर्शसे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेनाम भगवान्के नामसे बहुत और योग साधन नहीं हैं क्योंकि नामका आश्रय सेनसे अनुपपन्न मन फिर कर्मके पथमें नहीं पड़ता । भगवन्नामक अनिच्छित और किसी प्रायश्चित्त का आश्रय सेनपर मम रोगोगुण और तमोगुणसे प्रसन्न हो रहता है तथा पापोंका पूरा-पूरा नाश भी नहीं होता ॥ ४६ ॥

परीक्षित ! यह इतिहास अत्यन्त गद्यमीप और सरल पापोंका नाश करनेवाला है । जो पुरुष धर्मा और भक्ति

१ प्राचीन प्रतिमें श्रीशुक उवाच कह पाठ नहीं है । २ मां वा — दाम्पत्येति । ३ मां वा — ईमं ।

न धै स नरकं याति नेष्टितो यमकिङ्करं ।

यद्यप्यमङ्गलो मर्यां विष्णुलोकं महीयते ॥४८॥

त्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।

अजामिलोऽप्यगाढाम किंपुन भद्रया गृणन् ॥४९॥

साय इसका श्रवण-कीर्तन करता है, वह नरकमें कभी नहीं जाता । यमराजके दूत तो आँख उठाकर उसकी ओर देखनाक नहीं सकते । उस पुरुषका जीवन चाहे पापमय ही क्यों न रहा हो, वैकुण्ठलोकमें उसकी पूजा होती है ॥ ४७-४८ ॥ परीक्षित । ऐसो—अजामिल—जैसे पापीने मृत्युके समय पुत्रके बहाने भगवान्‌क नामका उच्चारण किया । उसे भी वैकुण्ठकी प्राप्ति हाँ गयी । फिर जो लोग ब्रह्माके साथ भगवान्‌का उच्चारण करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसा संहितायां पष्ठस्कन्धेऽजामिभो-
पाप्मान द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

यम और यमदूतोंका संवाद

राजोवाच

निदम्प दृष्टं स्वभटापयमिति

प्रत्याह किं तान् प्रति धर्मराजः ।

एवं इत्याहो विदित्वा मुरार

नन्देशिकैर्यस्य बद्धे जनोऽयम् ॥ १ ॥

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः

द्वयधनपे भुतर्ष्व आसीत् ।

एतन्मुने पृथति लाकसद्वय

न हि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम् ॥ २ ॥

श्रीभुक् उवाच

भगवत्पुरुषं राजन् याम्या प्रतिहतायमाः ।

पतिं विहाययामासुर्मम संयमनीपतिम् ॥ ३ ॥

यमदूता उवाच

कहि सन्तीह गास्थारा जीबलाकम्प्यं प्रभा ।

प्रविष्टं ब्रूत कम्पनाभिन्यन्तिहसवः ॥ ४ ॥

राजा परीक्षितने पूछ—मरान् । देवपिदव धर्मराजके वशमें सारे बीब हैं और भगवान्‌के पार्ष्णेन उन्हींकी आज्ञा मङ्ग कर दी तथा उनके दूतोंको अपमानित कर दिया । जब उनके दूतोंमें यमपुरीमें जाकर उनसे अजामिलका वृत्तान्त कह सुनाया, तब सब कुछ सुनकर उन्होंने अपने दूतोंसे क्या कहा ? ॥ १ ॥ अतिशय । मैंने पहले यह बात कभी नहीं सुनी कि किसी किसी भी कारणसे धर्मराजके शासनका उल्लङ्घन किया हाँ । मरान् । इस विषयमें लोग बहुत सन्देह करेंगे और उसका निवारण आपका अतिरिक्त दूसरा कार्य नहीं कर सकता, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ २ ॥

श्रीभुक्‌राजजीसे कहा—परीक्षित ! जब भगवान्‌क पार्ष्णेन यमदूतोंका प्रसन्न विद्वत् कर दिया, तब उन लोगोंने संयमनीपुरीक स्वामी एवं अपने दामक यमराजके पास जाकर निवेदन किया ॥ ३ ॥

यमदूतोंने कहा—प्रभा । संसारका जीब तीन प्रकारका कम करते हैं—याव, पुण्य अथवा योगसे मिथित । इन तीनोंका उन कर्मका फल देनेका काम संसारमें किता है ॥ ४ ॥

१ मा प — निष्ठा । २ मा प — दण्डपुत्रादिभ्यम् । ३ मा प — राज्ञे द्वितीयोऽध्यायः ।

४ मा प — यमनि । ५ मा प — कर्तव्यनिश्चयः ।

यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ।

कस्य स्यातां न वा कस्य सृत्युष्माभ्युत्तमेव वा ॥ ५ ॥

किन्तु शास्त्रबहुत्व स्याद्बहुनामिह कर्मिणाम् ।

शास्त्रत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ ६ ॥

अथस्त्वमेका भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ।

शास्त्रा दण्डधरा नृणां ह्युभाशुभविषेचन ॥ ७ ॥

तस्य ते विद्वतो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ।

चतुर्भिरद्वैतैः सिद्धैराद्या ते विप्रलम्बिता ॥ ८ ॥

नीयमान उवादेष्टादसाभिर्मर्तनामृद्धान् ।

अमोचयन् पातकिर्न छित्त्वा पाशान् प्रसज्य ते ॥ ९ ॥

तांस्ते वदितुमिच्छामो यदि ना मन्यसे क्षमम् ।

नारायणोऽप्यभिहिते मा भैरित्यामयुर्वृत्तम् ॥ १० ॥

भीमक उवाच

इति देवः स आष्टुष्टः प्रजासममनो यम ।

प्रीतः स्वदूतान् प्रत्याह सरन् पादाम्बुजं हरः ॥ ११ ॥

यम उवाच

परा मदया जगतस्तस्थुषध

आतं प्रीत पटवद्यत्र विश्वम् ।

वदशतोऽस्य म्पितिअमनाथा

नम्यातवद् यस्य बध्ने च लाक ॥ १२ ॥

या नामभिवाधि अनाभिजायां

बध्नाति सन्त्यामिव दामभिर्गाः ।

यदि संसारमें दण्ड देनेवाले बहुत-से शासक हों, तो कितने सुख मिले और कितने दुःख—इसकी व्यवस्था एक-सी न हो सकेगी ॥ ५ ॥

समसारमें कर्म करनेवालोंके अनेक होनेके कारण यदि उनके शासक भी अनेक हों, तो उन शासकोंका शासकपना नाममात्रका ही होगा जैसे एक सम्राटके अन्धीन बहुत-से नाममात्रक सामन्त होते हैं ॥ ६ ॥

इसलिये हम तो ऐसा समझते हैं कि अकाले आप ही समस्त प्राणियों और उनके स्वामियोंके भी अधीश्वर हैं । आप ही मनुष्योंके पाप और पुण्यके निर्णायक, दण्डदत्ता और शासक हैं ॥ ७ ॥

प्रभो ! अकालक संसारमें कहीं भी आपके द्वारा नियत किये हुए दण्डकी व्यवस्था नहीं हुई थी, किन्तु इस समय चार अद्वैत सिद्धोंने आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया है ॥ ८ ॥

प्रभो ! आपकी आज्ञासे हममेंसे एक पापीको याचनागृहणी और ले जा रहे थे, परन्तु उन्होंने कञ्चूर्णक आपसे फटि काटकर उसे छुड़ा दिया ॥ ९ ॥

हम आपसे उनका रहस्य जानना चाहते हैं । यदि आप हमें सुनकर अधिकारी समझें तो कहें । प्रभो ! बड़े ही वाचस्पती बान् हुई कि इधर तां अजामिछके मुँहसे 'मारायण !' यह शब्द निकला और उधर वे पड़ो मत्त, करो मत्त ! कहते हुए क्षण्यत वहाँ आ पहुँचे ॥ १० ॥

श्रीगुरुदेवको कहते हैं—अप्य दूतानि इत प्रकार प्रश्न किया तब देवशिरोमणि प्रजाक शासक भगवान् यमराजने प्रसन्न होकर श्रीहरिके चरणकमलोंका स्पर्श करने हुए उनसे कहा ॥ ११ ॥

यमराजने कहा—दूता ! मेरे अतिरिक्त एक और ही चराचर जगत्के स्वामी हैं । उन्होंने यह सम्पूर्ण जगत् स्वयं वशके समाम भोतप्रीत है । उन्होंने बंधा, बन्धा, विष्णु और शङ्कर इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करते हैं । उन्होंने हम सारे जगत्को मये डूब बैठा समान अपन अधीन कर रक्ता है ॥ १२ ॥

मर प्यारे दूता ! जैसे किमाम अपन धीरोको पहले छोटी छोटी रस्मियोंमें बाँधकर फिर उन रस्मियोंको एक बड़ी जाड़ी रस्सीमें बाँध रक्ता है, वैसे ही जगतीश्वर

यस्यै वल्लि त इमे नामकर्म
निबन्धनद्वयक्रिता वहन्ति ॥१३॥

अह महन्त्रो निश्च्युतिः प्रचेताः

सोमोऽग्निरीश पवनोऽर्को विरिञ्चः ।

आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या

मरुद्गणा रुद्रगणा ससिद्धा ॥१४॥

अन्ये च ये विश्वसृजोऽभरक्षा

भृगुशदयाऽस्पृष्टरजस्तमरक्षा ।

यस्येहित न विदु स्पृष्टमायाः

सच्चप्रधाना अपि किं ततोऽये ॥१५॥

य वै न गोभिर्मनसासुभिर्वा

हृत् गिरा वासुमृतो विषक्षते ।

आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां

चमुर्यथैवाकृतयस्तत परम् ॥१६॥

तत्पारमवन्नस्य हररधीक्षितु

परस्य मायाधिपतेर्महामनः ।

प्रायेण दृता इह वै मनोहरा

धरन्ति तद्गुणस्वभावाः ॥१७॥

मृतानि विष्णाः सुरपुत्रिणानि ।

दुर्दर्शलिङ्गानि मद्वाङ्मनानि ।

रक्षन्ति तद्वक्तिमतः परम्या

मक्षय मत्मानथ सर्वतश्च ॥१८॥

धम तु साप्ताङ्गवत्प्रणीत

न व विदुर्धर्मया नापि देवाः ।

न मिदमुमया असुरा मनुष्या

इत्यथ विषाधरन्तारणादय ॥१९॥

मयम्भुनाद शम्भु कुमारः कपिलामनुः ।

मग्नान्ते भी मादणादि वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि आधम-
रूप छोटी-छोटी भामकी रस्सियोंमें बाँधकर फिर सब
भामोंको वेदवाणीरूप बड़ी रस्सीमें बाँध रक्खा है । इस
प्रकार सारे जीव भाम एवं कर्मरूप बन्धनमें बँध हुए
मयगीत होकर उन्हें ही अपना सर्वस्व भेंट कर रहे
हैं ॥ १३ ॥ दूता । मैं, इन्द्र, निश्च्युति, वरुण, चन्द्रमा,
अग्नि, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, वायव्य आदित्य, विश्वे,
देवता, आठों वसु, साध्य, उनचास मरुद्, सिद्ध,
ग्यारहों रुद्र, रजोगुण एवं तमोगुणसे रहित ऋग आदि
प्रजापति और बड़-बड़े देवता—सब के-सब सत्त्व
प्रधान होनेपर भी उनकी मायाक अधीन हैं तथा मग्नान्
कब क्या किस रूपमें करना चाहते हैं—इस बातको
नहीं जानते । तब दूसरोंकी ता बात ही क्या है । १४ १५।
दूता । जिस प्रकार घट, पत्र आदि रूपवान् पदार्थ
अपने प्रकाशक नश्वरों नहीं देख सकते—वैसे ही
अन्त करणमें अपने साक्षीरूपसे स्थित परमात्माको कोई
भी प्राणी इन्द्रिय, मन, प्राण, इन्द्रिय या वाणी आदि
किसी भी साधनक द्वारा नहीं जान सकता ॥ १६ ॥
वे प्रभु सबके स्वामी और स्वयं परम स्वप्नत्र हैं । उन्हीं
मायापति पुरुषात्मक दूत उन्हींके समान परम मनोहर
रूप, गुण और स्वभावसे सम्पन्न होकर इस लोकमें
प्राय विचरण किया करते हैं ॥ १७ ॥ विष्णुमग्नान्के
सुरक्षित एवं परम अश्वैषिक पापनोक दर्शन बड़ा
दुर्लभ है । वे मग्नान्के भक्तजनोंको उनके शत्रुओंसे,
मुक्षसे और अग्नि आदि सब विपत्तियोंसे मरणा सुरक्षित
रखते हैं ॥ १८ ॥

स्वयं मग्नान् ही धर्मकी मध्याङ्क निर्माण किया
है । उसे न मोक्षी जानने हैं और न देवता या
मिदगग ही । उन्हीं स्थितिमें मनुष्य, विषाधर, चरण
और असुर आदि ता जान ही कैसे सकते हैं ॥ १९ ॥
मग्नान्के द्वारा निर्मित भागवतधम परम शुद्ध और
अपन्न योग्य है । उसे जानना बहुत ही कठिन
है । जो उसे जान सके हैं वह भगवत्स्वप्नत्र प्राप्त
ता जाना है । दूता । योगवन्धनर रहस्य हम बारह

प्रह्लादा जनको मीप्सो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥२०॥

हादधैते विजानीमो धर्म मागवत भटाः ।

गुह्यं विदुषं दुर्धर्षं यं ज्ञात्वा मृतमश्नुत ॥२१॥

एतत्पानेष लाकेऽपि न पुसां धर्मः परः स्मृतः ॥

भक्तियोगा भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥२२॥

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरं पश्यत पुत्रकाः ।

अजामिलोऽपि तेनैव सृष्टुपाशवसृज्यत ॥२३॥

एतावदात्मनश्च निर्हरणाय पुसां

सङ्कीर्तन भगवता शुभकर्मनाम्नाम् ।

निकृष्य पुत्रमभवान् यदजामिलोऽपि

नारायणो विप्रियमाण इषाम् मुक्तिम् ॥२४॥

प्रायेण वेद तदिदं न महात्मनोऽयं

देव्या विमोहितमतिर्विषय मायया लभ्यते ।

अन्धो अडोक्तमतिर्यमुपुष्पितायां

वैतानिक महति कर्मणि युक्तमानः ॥२५॥

एवं विमृश्य सुधियो भगवन्मनन्ते

सर्वात्मना विदधते त्वत्तु भावयोगम् ।

ते म न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यपीषां

स्वात् पातकं न दपि हन्त्युक्तमायमादः ॥२६॥

ते देवसिद्धिर्गङ्गीतपवित्रगाथा

ये साध ॥ भगवन्प्रपन्ना ॥

गान् ॥ १८१॥ भगुप्तान्

नैपाय

॥ दण्डे ॥

व्यक्ति ही जानते हैं—प्रह्लादी, देव

शङ्कर, सनातन, कपिलदेव, स्कन्द

मनक, भीष्मपितामह बलि, शुभ

(धर्मराज) ॥ २० २१ ॥ इस बात

वत, यही सबसे बड़ा कर्म—

वे नाम-कीर्तन आदि उपायोंसे म

भक्तिमात्र प्राप्त कर लें ॥ २२ ॥ प्रिय

नामोच्चारणकी महिमा तो देखा, अब

भी एक बार नामोच्चारण करनेवाले से पूछ

पा गया ॥ २३ ॥ भक्तान्के गुण, श्री

मन्त्रीमन्त्रि कीर्तन मनुष्योंके पापोंका संहार

है, यह कोई उत्तर कह न सका किन्तु

अपने पुत्रका नाम 'नारायण' उच्चारण

नामोच्चारणसे ही उसके सारे पाप छे

गये, मुक्तिकी प्राप्ति भी होगयी ॥ २४ ॥

बुद्धि कभी भगवान्की मायासे मोहित

है कनेकि मीठे-मीठे फलके बर्णन करने

की विलोपि वेदवाणीमें है। मोहित हो जा

यागान् बड़े-बड़े कर्त्तों की संज्ञा

सुगमसिद्धिगम भगवन्नामकी महिमाको

यह किन्तु लेदकी बात है ॥ २५ ॥

प्रिय भूतो । बुद्धिमान् पुरुष ऐसा वि

चिन्तनमें ही सम्पूर्ण अन्तःकरणसे

स्थापित करते हैं । वे मेरे दण्डके पान

नात तो यह है कि वे पाप करते ही न

कताचित् संयोगवशा कोई पाप कर भी

भगवान्के गुणग्रन्त लक्ष्मण नष्ट कर दे

ओ सम्पदशी साधु भगवान्को ही

दोनों सम्पत्तक उनपर निर्भर हैं,

सिद्ध उनके पवित्र चरित्रोंका प्रेमसे

॥ भूतो । भगवान्की गता उ

॥ है । उनके

पदकता । उ

न सहायका

शानानयश्चमसतो विमुक्तान् मुकुन्द

पादारविन्दमकरन्दरसाद्वसम् ।

निष्क्रान्तैः परमहसकुलै रसज्ञै

जुष्टावृ गृहे निरयवर्त्मनि यद्वत्पणान् ॥२८॥

बिह्वान वक्ति भगवद्विगुणनामधेय

येतन् न सरति तत्परणारविन्दम् ।

कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि

शानानयश्चमसतोऽकुवविष्णुकृत्यान् ॥२९॥

तद् धम्मतां स भगवान् पुरुषः पुराणो

नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।

शानानमो नविदुषां रचिताञ्जलीनां

ध्वान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥३०॥

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमहसाम् ।

महातामपि कौरव्य विद्वयैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥३१॥

शुश्रूषतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्धनुः ।

यथा सुधातया भक्त्या शुद्धयन्मात्मा व्रतादिभिः ॥३२॥

कृष्णाहिमपचमधुलिप्नन् पुनर्विसृष्ट

मायागुणेषु रमते इमिनावहेषु ।

बड़े-बड़े परमहंस दिव्य रसके लोभसे सम्पूर्ण बगल और शरीर आदिसे भी अपनी अर्हता-मफता हटाकर, अकिञ्चन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्दके पादारविन्दका मकरन्द रस पान करते रहते हैं । जो दुष्ट उस दिव्य रससे विमुक्त हैं और नरकके दरवाजे घर गृहस्वीक्री तुष्णाका बोझा बाँधकर उसे छो रहे हैं, उनकी मेरे पास बार बार लाया करो ॥ २८ ॥ जिनकी नीम भगवान् के गुणों और नामोंका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् धीहृष्णके चरणोंमें नहीं छुक्ता, उन भक्तसेवाविमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो ॥ २९ ॥ आज मेरे दूतों भगवान् के पार्षदोंका अपराध करके स्वयं भगवान् की तिरस्कार किया है । यह मेरा ही अपराध है । पुराणपुरुष भगवान् नारायण हम्मगोत्रका यह अपराध क्षमा करें । हम जानती होनेर भी हैं उनका निवर्जन, और उनकी आज्ञा पानेके लिये अन्नदि बाँधकर सदा उम्भक रहते हैं । अतः परम महिमावित्त भगवान् के लिये यही योग्य है कि वे क्षमा कर दें । मैं उन सर्वान्तर्यामी एकरस अनन्त प्रसुको ममस्वर करता हूँ ॥ ३० ॥

[श्रीगुरुदेवकी कहते हैं—] परीक्षित । इसलिये हम ऐसा समझ लो कि बड़े-से-बड़े पापोंका सबोत्तम, अन्तिम और पाप-वासनाओंको भी निर्मूल कर बाधने काज प्रायश्चित्त यही है कि केवल भगवान् के गुणों, जीवाओं और नामोंका कीर्तन किया जाय । इसीसे संसारका कल्याण हो सकता है ॥ ३१ ॥ जो लोग बार बार भगवान् के उच्चारण और कृपापूर्ण चरित्रोंका श्रवण कीर्तन करते हैं, उनके हृदयमें प्रेममयी भक्ति का सदाय हो जाता है । उस भक्तिसे वैसी अलमलुद्धि होती है, वैसी वृष्टि आनन्दायण आदि क्रमोंसे नहीं होती ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य भगवान् श्रीहृष्णचन्द्रके चरणारविन्द-मकरन्द रसका लोभी भगर है, वह क्षम्यसे ही मायाके व्यापात-रम्य, दुःख और पक्षसे ही छोड़ हुए नियमोंमें निर

अन्वस्तु कर्महत आत्मरसः प्रमादु

मीहेतु कर्म यत एव रसः पुनः सात् ॥ ३३ ॥

इत्य स्वभर्तृगदित भगवन्महिम्न

संस्तुत्य विस्मिताभिषो धमकिङ्करास्ते ।

नैवाभ्युताभयजन प्रति शङ्कमाना

द्रष्टु च विस्मयति ततः प्रभृति सराङ्गन् ॥ ३४ ॥

इतिहासमिमं शुद्ध भगवान् कुम्भसम्भवः ।

कथयामास मलय आसीनो हरिमर्षयन् ॥ ३५ ॥

नहीं रमता । किन्तु जो लोग उस दिव्य रससे भिन्न हैं, कामनाओंने जिनकी विवेकसुखिपर पानी फेर दिया है, वे अपने पापोंका मार्जन करनेके लिये पुनः प्रायश्चित्त रूप कर्म ही करते हैं । इससे जाता यह है कि उनके कर्मोंकी वासना भिन्नी नहीं और वे फिर वैसे ही दोष कर बैठते हैं ॥ ३३ ॥

परीक्षित ! जब यमदूतोंने अपने स्वामी धर्मराजके मुखसे इस प्रकार भगवान्की महिमा सुनी और उसका स्मरण किया, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । तभीसे वे धर्मराजकी बातपर विश्वास करके अपने माझकी आशाङ्कसे भगवान्के आश्रित मलोंके पास नहीं जाते । और तो क्या, वे उनकी और ओंख उठाकर देखनेमें भी करते हैं ॥ ३४ ॥ श्रेष्ठ परीक्षित ! यह इतिहास फल ग्येयनीय—अत्यन्त रहस्यमय है । मन्त्रवक्तापर विष्णुमान भगवान् आस्त्यजीने श्रीहरिकी पूजा करते समय मुझे यह सुनाया था ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे यमपुरुषवत्सादे

तृत्विषोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

एसके द्वारा भगवान्की स्तुति और भगवान्का प्रबुधभाव

राजोपाध

देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ।

सामासिकस्त्वया प्राक्ता यस्तु स्थायम्भुवेऽन्तर ॥ १ ॥

तत्स्यैव व्यासमिच्छामि श्रावते भगवन् मया ।

अनुसर्गं मया शक्त्या मसर्गं भगवान् परः ॥ २ ॥

सूत उवाच

इति सम्प्रभमाकर्ण्य राक्षसेन्द्ररायणिः ।

प्रतिनन्द्य महायागी जगाद् मुनिमत्तमाः ॥ ३ ॥

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् ! आपने संक्षेपसे (ग्रीसरे स्वरूपमें) इस बातका वर्णन किया कि स्वयम्भुव मन्वन्तरमें देवा, असुर, मनुष्य, सर्प और पक्षी आदिकी सृष्टि कैसे हुई ॥ १ ॥ अब मैं उसीका विस्तार जानना चाहता हूँ । प्रकृति और कारणोंके भी परम कारण भगवान् अपनी शक्तिसे जिस प्रकार उसके बादकी सृष्टि करते हैं, उसे जाननकी भी मेरी इच्छा है ॥ २ ॥

सूतजी कहते हैं—जीनकरदि क्षत्रियो ! परम योगी व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने राजर्षि परीक्षितका यह प्रश्न प्रथम सुनकर उनका अभिमन्दन किया और इस प्रकार कहा ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

मदा प्रचेतस पुत्रा दक्ष प्राचीनवर्हिषः ।

अथ समुद्रादुन्मग्ना दृष्ट्युर्गा हुर्मर्षिताम् ॥ ४ ॥

हुर्मैत्र्यः कृष्णमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ।

सुखतो वायुमर्त्ति च ससृजुस्तदिधक्षया ॥ ५ ॥

ताम्बां निर्दक्षमानास्तानुपलम्ब कुरुद्वह ।

रत्नोवाच महान् सोमो मन्यु प्रक्षमयक्षि ॥ ६ ॥

मा हुमन्मो महाभागा क्षीनेभ्यो द्रोणुर्मर्ध ।

विचर्चविषो यूवं प्रजानां पतयः स्मृता ॥ ७ ॥

अहो प्रजापतिपतिर्मगवान् हरिरभ्ययः ।

वनस्पतीनोपधीम ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥ ८ ॥

अथ चरत्पामवरा अपद पादचारिणाम् ।

अहस्ता हस्तपुक्कानां द्विपदां च चतुष्पद ॥ ९ ॥

यूय च पित्रान्वादिष्टा देवदेवेन चानवाः ।

प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान् निर्दग्धुर्मर्ध ॥ १० ॥

आतिष्ठत सर्तां मार्गं काप यच्छत दीपितम् ।

पित्रा पितामहेनापि सुष्टवः प्रपितामह ॥ ११ ॥

वोर्क्षेनां पितरौ बभूवुः पन्मक्षियाः पति ।

पतिः प्रजानां भिक्षुणां गृध्रानां बुध सुहृत् ॥ १२ ॥

अन्धदेहेषु भृतानामात्माऽस्ते हरिरीश्वर ।

श्रीकृष्णदेवजीने कहा—राजा प्राचीनवर्हिषके दस लक्षके—जिनका नाम प्रचेता था—जब समुद्रसे बाहर निकले, तब उन्होंने देखा कि हमारे पिताके निवृत्ति परायण हो जानेसे सारी पृथ्वी पेड़ोंसे घिर गयी है ॥ ४ ॥ उन्हें वृक्षोंपर बसा क्रोध आया । उनके तपोबलने तो मानो क्रोधवर्षी आगमें आहुति ही बाछ दी । वस, उन्होंने वृक्षोंको जला डालनेके लिये अपने मुखसे वायु और अग्निकी सृष्टि की ॥ ५ ॥ परीक्षित । जब प्रचेता ओंकी छोटी हुई अग्नि और वायु उन वृक्षोंको जलाने लगीं, तब वृक्षोंके राजाधिराज चन्द्रमाने उनका क्रोध धान्त करते हुए इस प्रकार कहा ॥ ६ ॥ 'महामाग्यवान् प्रचेताओ । ये वृक्ष बड़े दीन हैं । आपलोग इनसे द्रोह मत कीजिये, क्योंकि आप तो प्रजाकी अभिरुद्धि करना चाहते हैं और सभी जानते हैं कि आप प्रजापति हैं ॥ ७ ॥ महात्मा प्रचेताओ ! प्रजा पतियोंके अभिपति अविनाशी भगवान् श्रीहरिन सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओषधियोंको प्रजाके हितार्थ उनके खान-पानके लिये बनाया है ॥ ८ ॥ संसारमें पौखोंसे उबनेवाले चार प्राणियोंके भोजन फल-पुष्पादि वनचर पदार्थ हैं । पैरसे चलनेवालोंके वास-तृणादि बिना पैर वाले पदार्थ भोजन हैं । हाथ-पैरोंके वृक्ष-व्यादि बिना हाथवाले, और दो पैरवाले मनुष्यादिके लिये घान, गेहूँ आदि एक भोजन हैं । चार पैरवाले बैठ, ऊँट आदि खेती प्रशस्तिके द्वारा एककी उत्पत्तिमें सहायक हैं ॥ ९ ॥ निम्नाप प्रचेताओ ! आपके पिता और देवाभिदेव भगवान्ने आपलोगोंको यह आदेश दिया है कि प्रजा की सृष्टि करो । ऐसी स्थितिमें आप वृक्षोंको जला डालें, यह कैसे उचित हो सकता है ॥ १० ॥ आप लोग अपना क्रोध धान्त करें और अपने पिता-पितामह, प्रपितामह आदिक द्वारा सेवित सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करें ॥ ११ ॥ जैसे मा-बाप बाळकजैकी, पक्षों केजैकी पति पत्नीजै, गृहस्थ मिश्रजैकी और जामी ज्ञानियोंकी रक्षा करते हैं और उनका हित चाहते हैं—वैसे ही प्रजाकी रक्षा और हितकर उचरदायी राजा होता है ॥ १२ ॥ प्रचेताओ ! समस्त प्राणियोंके

१ मा पा —श्रुतिवचन । २ मा पा —बुद्धेयः । ३ मा पा —स्वार्थि । ४ मा पा —

अक्षमा विदो । ५ मा पा —भृतानां शासक्ये ।

सर्वं सदिष्पयमीधृष्वमेव वस्तापितो वसौ ॥१३॥

यः समुत्पतित देह आकाशान्मन्युमुत्पन्नम् ।

आत्मजिज्ञासया यच्छेत् स गुणानतिवर्तते ॥१४॥

बल दग्धर्तुमर्दाने स्तिलानां शिवमस्तु वः ।

वार्ध्या क्षया वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

इत्यामन्स्य वरारोक्षां कन्यामाप्तरसीं नृप ।

सामो राजा ययौ दंष्ट्रा ते भर्मेणोपयेमिन् ॥१६॥

तेन्यन्तसां समभवद् दक्षः प्राचेतसः किल ।

यस्य प्रभाविर्गण लाका आपूरिताक्षयः ॥१७॥

यथा सप्तत्र भूतानि दक्षो दुहिषुवत्सलः ।

रतसा मनसा यत्र तममावहितः नृपु ॥१८॥

मनसैवातृक्स्त्व प्रजापतिरिमाः प्रजाः ।

द्वारादुरमनुष्यादीन्मम सलज्जलोक्तः ॥१९॥

समष्टितमालाक्ष्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ।

विष्मपादानुपमज्य साऽप्यवदुर्ध्वं तप ॥२०॥

तत्राघमपर्णं नाम तीर्थं पापहरं परम् ।

तपस्पृश्यानुसवनं तपसातापमद्धरिम् ॥२१॥

अस्तीषीदंसगुह्यं भगवन्तमभोद्यन् ।

हृदयमेव सवशकिमान् भगवान् आत्मक रूपमेव विराजमान हैं । इसलिये आपजोगे समीची भगवान्का निश्चयमान समझे । यदि आप ऐसा करेंगे तो भगवान्को प्रसन्न कर लेंगे ॥ १३ ॥ जो पुरुष हृदयक उबकते हुए मयहूर कोनको आत्मविचारके द्वारा धरीमें ही शांत कर लेता है, बाहर नहीं निकलने देता, वह कष्टकसे तीनों गुणोंपर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ १४ ॥ प्रचेताजो ! इन दीन-हीन वृद्धोंको और न बचाइये, जो कुछ बच रहे हैं, उनको रक्षा कीजिये । इससे आपका भी कल्याण होगा । इस श्रेष्ठ कन्याका पतन इन वृद्धोंने ही किया है, इसे आपजोगे पत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये ॥ १५ ॥

परीक्षित । वनस्पतियोंके राजा चन्द्रमने प्रचेत-ओंको इस प्रकार समझा-भुवनेर उन्हीं प्रसन्नोवा कन्या-की सुन्दरी कन्या दे दी और वे वहाँसे चले गये । प्रचेतजोंने भगवानुसार उसका पाणिग्रहण किया ॥ १६ ॥ उन्हीं प्रचेताजोंके द्वारा उस कन्याके गर्भसे प्राचेतस दक्षको उत्पत्ति हुई । फिर दक्षकी प्रजा-सृष्टिसं तीनों जोक भर गये ॥ १७ ॥ इनका अपनी पुत्रियोंपर बड़ा प्रेम था । इन्होंने जिस प्रकार अपने सङ्कल्प और शीघ्रसे विविध प्राणियोंकी सृष्टि की वह मैं सुनाता हूँ । गुप्त साक्ष्यान होकर सुनो ॥ १८ ॥

परीक्षित । पहले प्रजापति दक्षने जब, एक और आकाशमें रहनेवासे देखा, बहुत एव मनुष्य आदि प्रजाकी सृष्टि अपने सङ्कल्पसे ही की ॥ १९ ॥ जब उन्होंने देखा कि वह सृष्टि बढ़ नहीं रही है, तब उन्होंने विन्यायजके निकटवर्ती पर्वतोंपर जाकर बची घोर तपस्या की ॥ २० ॥ वहाँ एक अत्यन्त बड़ शिर्ष है उसका नाम है—अघमर्षण । वह सारे प्राणोंके धो बहाता है । प्रजापति दक्ष उस तीर्थमें त्रिकञ्ज आन करते और तपस्याक द्वारा भगवान्की आशुभ्वा करते ॥ २१ ॥ प्रजापति दक्षने इन्द्रियानीत भगवान्की 'ईसगुहा' नामक स्त्रीसे लुनि की थी । सतीसे

तुभ्य तदमिधास्मामि कस्यातुप्पद्यतो हरि ॥२२॥

प्रभापतिरुवाच

नमः परायणितथानुभूतये

गुणत्रयाभासनिमित्तवधवे ।

अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभि

निर्वृत्तमानाय दधे स्वयम्भुव ॥२३॥

न मस्य सख्य पुरुषाऽर्चयि सख्यु

सत्त्वाधमन्सर्वसत्त पुरऽग्निन् ।

गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्ट

त्सर्स महेशाय नमस्करामि ॥२४॥

देहाऽस्रबोऽश्वा मनवो भूतमात्रा

नात्मानमन्य च विदु परयत् ।

सर्वं पुमान् वेद गुणाश्च तज्ज्ञो

न वेद सर्वज्ञमनन्तमीहे ॥२५॥

यदोपरामा मनमा नामरूप

रूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमापात् ।

य इयते फलया स्वैरसंमया

हमाय तर्सं शुचिमघन नमः ॥२६॥

मनीषिणोऽन्तर्हृदि सनिवशिष्ठं

स्वप्रक्तिभिर्नवभिषि त्रिष्टुटि ।

मगधान् उनपर प्रसन्न हुए थे । मैं तुम्हें वह स्तुति सुनाता हूँ ॥ २२ ॥

वक्ष्य प्रजापतिने इस प्रकार स्तुति की—मगधन् । आपकी अनुमति, आपकी चित् शक्ति अमोघ है । आप जीव और प्रकृतिसे परे, उनका नियन्ता और उन्हें सत्ता-स्फूर्ति देनेवाले हैं । त्रिन जीवोंन त्रिगुणमयी सृष्टिको ही वास्तविक सत्य समझ रक्खा है, वे आपके स्वरूपका साक्षात्कार नहीं कर सके हैं, क्योंकि आपतक किसी भी प्रमाणकी पहुँच नहीं है—आपकी काय अवधि, कोई सामा नहीं है । आप स्वयम्भूत और परात्पर हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ यों तो जीव और ईश्वर एक दूसरेके सखा हैं तथा इसी शरीरमें इकट्ठे ही निवास करते हैं, परन्तु जीव सर्वशक्तिमान् आपके सख्यभावको नहीं जानता—जीक वैसे ही जैसे रूप, रस, गन्ध आदि विषय अपन प्रकाशित करनेवाली नेत्र, घ्राण आदि इन्द्रियवृत्तियोंको नहीं जानते, क्योंकि आप जीव और जगत्क दया हैं, दृश्य नहीं । महेश्वर ! मैं आपको धीवरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्त करणकी वृत्तियों, पञ्चमहाभूत और उनकी सम्प्राप्त्यै—ये सब बड़ होनक कारण अपने को और अपनेसे अतिरिक्तक भी नहीं जानते । परन्तु जीव इन सबको और इनक कारण मत्स्य, रत्न और तम—इन तीन गुणोंका भी जानता है । परन्तु वह भी दृश्य अथवा ज्ञेयरूपसे आपको नहीं जान सकता । क्योंकि आप ही सबक ज्ञाता और अनन्त हैं । इम-छिये प्रभा । मैं तो केवल आपकी स्तुति करता हूँ ॥ २५ ॥ जब समानिकालमें प्रमाण, विवेक और विषययत्न विविध ज्ञान और स्मरण-शक्तिकर छेप हो जानेसे इस माम-रूपामक जगत्क निरूपण करने काका मन ठपक हो जाता है, उस समय किना मनक भी केवल सन्निवृत्तानन्दमयी अपनी स्वात्पस्यनिष्ठ हाट आप प्रकाशित हास रहत है । प्रभा । आप शुद्ध हैं और शुद्ध इन्द्रिय-मन्त्र ही आपका निवासस्थान है । आपको मय नमस्कार है ॥ २६ ॥ जैसे याहिक लोग काष्ठमें छिपे हुए अग्निबो सादिपनी मामक पत्रह

बहि यथा दारुणि पाञ्चदश्य

मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥२७॥

स वै ममाशेषविशेषमाया-

निपथनिर्वाणमुत्सातुमृति ।

स सर्वनामा स च विश्वरूप

प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्ति ॥२८॥

यद्यनिरुक्त वचसा निरूपित

भियाश्चमिका मनसा जात यत्स ।

मा मूढ स्वरूप गुणरूप हि तपत्

स वै गुणापायविसर्गतक्षणः ॥२९॥

बलिद यतो येन च यत्स यत्सै

यद् यो यथा कुरुते कार्यते च ।

परावरेणो परम प्राक् प्रसिद्धं

तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्वदकम् ॥३०॥

यच्छक्त्या वदसां वादिनां वै

विवादसबादयथा भवन्ति ।

कुर्वन्ति चेपां सुदुर्गामाः

तस्मै नमस्तन्मन्त्रगुणाय मूम्ने ॥३१॥

मन्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठक

मन्त्रोंके द्वारा प्रकट करते हैं, वैसे ही ब्रह्मी पुरुष अपनी सचाईस शक्तियोंके भीतर गूढभाससे छिपे हुए आपको अपनी कुछ बुद्धिके द्वारा छद्ममें ही ईद निकालते हैं ॥ २७ ॥ अगत्में जिसकी भिन्नतर रेख पड़ती है, वे सब मायाकी ही हैं । मायाका निपथ कर देनेपर केवल परम सुखके साक्षात्कारस्वरूप आप ही अवशेष रहते हैं । परन्तु जब विचार करने लगते हैं, तब आपके स्वरूपमें मायाकी उपलब्धि—निवचन नहीं हो सकता । अर्थात् माया भी आप ही हैं । अन. सारं रूप और सारे रूप आपके ही हैं । प्रमो । आप सुखपर प्रसन्न होयें । मुक्त आत्मप्रसादसे दूग कर दीजिये ॥ २८ ॥ प्रमो । जो कुछ वाणीसे कहा जाता है वक्ता जो कुछ मन, बुद्धि और इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जाता है, यह आपका स्वरूप नहीं है, क्योंकि वह तब गुणरूप है और आप गुणोंकी उत्पत्ति और प्रथमक अविज्ञान हैं । आपमें केवल उनकी प्रतीतिमत्र है ॥ २९ ॥ मगन्तु । आपमें ही यह सारा ब्रह्म स्थित है; आपसे ही निकला है और आपने—और किसीके सहारे नहीं—अपने-आपसे ही इसका निर्माण किया है । यह आपका ही है और आपके छिपे ही है । इसके रूपमें बननेवाले भी आप हैं और बनानेवाले भी आप ही हैं । बनने-बनानेकी निधि भी आप ही हैं । आप ही सबसे काम लेनेवाले भी हैं । सब कार्य और कारणका भेद नहीं था, तब भी आप कथ्यसिद्ध स्वरूपसे स्थित थे । इसीसे आप सबका कारण भी हैं । सच्ची बात तो यह है कि आप जीव-वस्तुके भेद और ज्ञातभेदसे सबथा रहित एक, अद्वितीय हैं । आप सब ब्रह्म हैं । आप सुखपर प्रसन्न हो ॥ ३० ॥ प्रमो । आपकी ही शक्तियों वादी-प्रतिवात्तियोंके विवाद और संवाद (ऐकमत्य) का नियम होती है और उन्हें बार-बार मांझमें रख लिया करती हैं । आप अमल व्यापक ब्रह्मगुण-गुणगणोंसे युक्त एवं सर्व अनन्त हैं । मैं आपको भक्त्यार मरता हूँ ॥ ३१ ॥ मगन्तु । उपासकभोग कहते हैं कि हमारे प्रभु इन्द्र-यागभिसे युक्त साकार-निष्ठ हैं और सौम्यगामी ब्रह्म हैं कि

रक्तस्योर्ध्वविच्छिन्नधर्मयोः ।

अवेष्टितं किञ्चन योगसांख्ययोः

समं परं अनुकूलं दृष्टवत् ॥३२॥

योगसुप्रसार्धं भक्त्या पादमूलं

मनामरूपो भगवाननन्तः ।

नामानि रूपाणि च बन्मकर्मभिः

मैत्रेयं मया परमः प्रसीदतु ॥३३॥

यः प्राकृतैर्ज्ञानपर्यैर्जनानां

यथाशयं देहगतो विभाति ।

यथानिलः पार्थिवमाभितो गुणं

स ईश्वरो मे कुरुत्वान्मनोरथम् ॥३४॥

श्रीगुरु उवाच

इति स्तुवं संस्तुवतः स तस्मिन्महामर्षये ।

औविरास्मीत्कुरुभ्य भगवान् भक्तवत्सलः ॥३५॥

कृतपादः सुपर्णासे प्रलम्बाष्टमहाश्रुजः ।

चक्रपङ्क्त्यासिन्धुपुधु पाशगदाधरः ॥३६॥

पीठवासा धनदपाम प्रसन्नवदनेश्वर ।

वनमालानिधीताङ्गा लसत्प्रीवरसक्रीस्तुभः ॥३७॥

मगलान् हस्त-यादादि विग्रहसे रहित—निराकर हैं । यद्यपि इस प्रकार वे एक ही वस्तुके दो परस्परविरोधी धर्मोंका गणन करते हैं, परन्तु फिर भी उसमें विरोध नहीं है, क्योंकि दोनों एक ही परम वस्तुमें स्थित हैं । बिना आभारके हाथ-पैर आदिका होना सम्भव नहीं और निषेधकी भी कोई-न-कोई अवधि होनी ॥ वाञ्छिये । आप नहीं आभार और निषेधकी अवधि हैं । इसच्छिन्दे आप साकार, निराकार दोनोंसे ॥ अविद्वद् सम परब्रह्म हैं ॥ ३२ ॥ प्रभो ! आप अनन्त हैं । आपका न तो कोई प्राकृत नाम है और न कोई प्राकृत रूप, फिर भी जो आपके चरणकमलोंका भजन करते हैं उनपर अनुग्रह करनेके लिये आप अनेक रूपोंमें प्रवृत्त होकर अनेकों छीछाएँ करते हैं तथा ठन-ठन रूपों एवं छीछाओं-के अनुसार अनेकों नाम धारण कर लेते हैं । परमप्रभु । आप मुझपर क्या प्रसाद करिये ॥ ३३ ॥ लोगोंकी उपासनाएँ प्रायः साधारण कोटिकी होती हैं । अग आप सबके हृदयमें रहकर उनकी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न योचनाओंके रूपमें प्रतीत होते रहते हैं—ठीक वैसे ही जैसे हवा गन्धका आश्रय लेकर सुगन्धित प्रतीत होती है परन्तु वास्तवमें सुगन्धित नहीं होती । ऐसे सबकी भावनाओंका अनुसरण करनेवाले प्रभु मेरी अम्बिकाया पूर्ण करें ॥ ३४ ॥

यज्जी कहते हैं—परीक्षित् । विन्यासके अधर्मण तीर्थमें जब प्रजापति दक्षने इस प्रकार स्तुति की, तब भक्तवत्सल भगवान् उनके सामने प्रवृत्त हुए ॥ ३५ ॥ उस समय भगवान् गङ्गके कर्षोपर चरण रखे हुए थे । विशाल एवं इष्ट-मुष्ट आठ मुझाएँ थीं; उनमें चक्र, शङ्ख, तन्त्रवार, गज, बाण, चतुर्ग, पाश और गदा धारण किये हुए थे ॥ ३६ ॥ बर्गवर्णीन मेघके समान श्यामल शरीरपर पीताम्बर पहना रहा था । सुसज्जित प्रफुल्लित था । नत्रोसे प्रसादकी कर्पा हो रही थी । पुण्योत्तक वनमाता उत्पन्न रही थी । वन स्वल्पर सुनहरी रेणु — शीतलचिह्न और गलेमें क्रीस्तुमणि जगमगा रही था ॥ ३७ ॥

महाकिरीटकटक स्फुर मकरकुण्डल ।
 काष्ण्यकुलीयवलयन् पुराङ्गदभूषित ॥३८॥
 प्रैलाक्ष्यमोहनं रूप विभ्रत् त्रिभुषणेश्वरः ।
 हृतो नारदनन्दाद्यै पार्षदै सुगन्धपै ॥३९॥
 स्तूपमानोऽनुगायन् सिद्धगन्धर्वचारवैः ।
 रूप तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्णागतसाध्वस ॥४०॥
 ननाम दम्बवद् भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ।
 न किञ्चानादीरयितुमशक्त् तीव्रया मुदा ।
 आपूरितमनोद्गारैर्हृदिन्य इव निर्झरैः ॥४१॥
 त तथावनतं भक्तं प्रजाकाम प्रजापतिम् ।
 विचक्षः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच

प्राचेतम महाभाग संसिद्धन्तपसा भवान् ।
 यच्छ्रद्धया मत्वरया मयि भावं पर गतः ॥४३॥
 प्रातोऽह ते प्रजानाथ यच्छसोबुद्धिण तपः ।
 ममैव कामा भूतानां यद् भूयासुर्विभूतयः ॥४४॥
 प्रसा भवा भवन्तश्च मनवो विपुषेश्वराः ।
 विभूतया मम क्षता भूतानां भूतिहेतव ॥४५॥
 तपामे हृदयं व्रजन्तनुविद्या क्रियाऽऽकृतिः ।
 अङ्गानि कृतवो जाता भर्म आत्मासवः सुरा ॥४६॥
 अहमपासमेषां नान्यत् किञ्चान्तरं बहिः ।
 सप्तानमात्रमन्वक्तं प्रसुप्तमिव विश्रुत ॥४७॥
 मय्यनन्तगुणऽनन्ते गुणता गुणविग्रहः ।

बहुमुख्य किरीट, कानन, मकराकृति कुण्डल, करचमी, वैष्णवी,
 कले, नूपुर और बाण्यं अपन-अपने स्थानपर सुशोभित
 थे ॥ ३८ ॥ त्रिभुवनपति भगवान् ने त्रैलोक्यविमोहन रूप
 धारण कर रमसा था । मारद, नन्द सुनन्द आदि पार्षद
 उनके चारों ओर खड़े थे । इन्द्र आदि देवैश्वरगण स्तुति कर
 रहे थे तथा सिद्ध, गन्धर्व और चारण भगवान् के गुणोक्त
 गान कर रहे थे । यह अत्यन्त आश्चर्यमय और अमौलिक
 रूप देखकर दक्षप्रजापति कुछ सहम गये ॥ ३९, ४० ॥
 प्रजापति दक्षन आनन्दसे मरकर भगवान् के कमलों में
 साष्टाङ्ग प्रणाम किया । जैसे झरनों के जलसे नदियाँ भर
 जाती हैं, वैसे ही परमानन्दक उद्रेकसे उनकी एक-एक
 इन्द्रिय भर गयी और आनन्दपरवश हो जानेके कारण
 वे कुछ भी बोल न सके ॥ ४१ ॥ परीक्षित । प्रजापति
 दक्ष अत्यन्त नम्रतासे मुककर भगवान् के सामने खड़े
 हो गये । भगवान् सबके हृदयकी बात जानते ही हैं,
 उन्होंने दक्ष प्रजापतिकी भक्ति और प्रभावदिकी कमला
 देखकर उनसे यों कहा ॥ ४२ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—परम भाग्यवान् दक्ष ! जब

तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी क्योंकि तुम्हारे अन्तः
 करणसे तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति परम प्रेमभावका उदय
 हो गया है ॥ ४३ ॥ प्रजापते ! तुम्हने इस विषयी
 इदिके किये तपस्या की है, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न
 हूँ क्योंकि यह मेरी ही इच्छा है कि जगत् के समस्त
 प्राणी अमिहृद और सच्चिन्म हो ॥ ४४ ॥ प्रसा, शाङ्कर,
 तुम्हारे-जैसे प्रजापति, स्वाम्यन्त्र आदि मनु तथा इन्द्रादि
 देवैश्वर—ये सब मेरी विभूतियाँ हैं और सभी प्राणियोंकी
 अमिहृदि करनेवाले हैं ॥ ४५ ॥ प्रसन् । तपस्या मेरा
 हृदय है, विद्या शरीर है, कर्तव्य आश्रित है, यज्ञ अन्न
 हैं, धर्म मग है और देवता प्राण हैं ॥ ४६ ॥ जब यह
 सृष्टि नहीं थी, तब केवल मैं ही था और वह भी
 निष्क्रियरूपमें । बाहर-भीतर यही भी और कुछ न था ।
 न तो कोई द्रव्य था और न हृदय । मैं केवल ज्ञानस्वरूप
 और अमयक था । ऐसा समस्त तो, मानो सब और
 सृष्टि-ही-सृष्टि का रही हो ॥ ४७ ॥ प्रिय दक्ष । मैं
 अनन्त गुणोंका आधार एवं स्वयं अनन्त हूँ । जब गुणमयी

यदाऽऽसीत् तत एवाधः स्वयम्भूः समभूदज ॥४८॥

स वै यदा महादेवो मम वीर्योपवृद्धित ।

मेने स्त्रिलमिवास्मानमुद्यत सर्गकर्मणि ॥४९॥

अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ।

नव विश्वसृजो गुह्यमान् येनादावसृजद्विंशुः ॥५०॥

एषा पञ्चजनस्याङ्ग दुहित्वा वै प्रजापतेः ।

असिक्त्री नाम पत्नीरवे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥५१॥

मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिम पुनः ।

मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिष्ठो भावयिष्यसि ॥५२॥

स्वैतोऽभस्तात् प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मावया ।

मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे वलिम् ॥५३॥

भीमक उवाच

इत्युक्त्वा मिपतस्तस्य भगवान् विश्वभावन ।

स्वमोपलब्धार्थं हव तयैवान्तर्दधे हरिः ॥५४॥

मायाके श्रोमसे यह ब्रह्माण्ड-शरीर प्रकट हुआ, तब—
इसमें अयोनिज आदिपुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥

जम मैंने उनमें शक्ति और चेतनाका सञ्चार किया, तब
देवशिरोमणि ब्रह्मा सृष्टि करनेके लिये उत्पन्न हुए । परन्तु
उन्होंने अपनेको सृष्टिकार्यमें कसमर्ध-सा पाया ॥ ४९ ॥

उस समय मैंने उन्हें आज्ञा दी कि तप करो । तब
उन्होंने घोर तपस्या की और उस तपस्याके प्रभासे
पहले-पहल तुम नौ प्रजापतियोंकी सृष्टि की ॥ ५० ॥

प्रिय दक्ष ! देखो, यह पञ्चजन प्रजापतिकी कन्या
असिक्त्री है । इसे तुम अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण
करो ॥ ५१ ॥ अब तुम गृहस्थोचित क्रीडावासकूप
धर्मको स्वीकार करो । यह असिक्त्री भी उसी धर्मको
स्वीकार करेगी । तब तुम इसके द्वारा बहुल-सी प्रजा
उत्पन्न कर सकोगे ॥ ५२ ॥ प्रजापते ! अबतक तो
मानसी सृष्टि होती थी, परन्तु अब तुम्हारे बाद सारी
प्रजा मेरी मायासे क्री-पुरुषके संयोगसे ही उत्पन्न होगी
तथा मेरी सेवामें तत्पर रहेगी ॥ ५३ ॥

भीशुकदेवजी कहते हैं—विश्वके जीवनदाता भगवान्
श्रीहरि यह कहकर दक्षके सामने ॥ इस प्रकार
अन्तर्धान हो गये, जैसे स्वप्नमें देखी हुई वस्तु सज
दृष्टे ही सुप्त हो जाती हैं ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमर्श्यां संज्ञितयां पष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भीमावृजिके उपदेशाले वसपुत्रोंकी विरक्ति तथा नारदजीको दक्षका शपथ

भीमक उवाच

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपवृद्धित ।

हर्षससृजानपुत पुत्रानजनयद् विश्वः ॥ १ ॥

भीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान्‌के
शक्तिसञ्चारसे दक्ष प्रजापति परम समय ॥
गये थे । उन्होंने पञ्चजनकी पुत्री असिक्त्रीसे हयका
नामके तम हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥

१ मा पा —प्रभुः । २ मा पा —प्रलयः । ३ मा पा —स्वप्ने हि वंश्याः तर्का । ४ प्राचीन प्रतिमें
भीमक उवाच इत्या अंश नहीं है । ५ प्राचीन प्रतिमें भगवत्संवादः इत्या अधिक पाठ है । ६ मा पा —बाद
उपनिषदाद्य ।

अपृथग्भर्महीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप ।

पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्विष्णुम् ॥ २ ॥

तत्र नारायणसरस्तीय सिंघुसमुद्रयोः ।

सङ्गमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ ३ ॥

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धृतमलाश्रयाः ।

भर्मे पारमहंस्ये च प्राप्स्यन्ममतायाऽप्युत ॥ ४ ॥

तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेष्टेन यन्त्रिताः ।

प्रजाविद्भ्यो यत्तान् देवर्षिस्तान् ददर्श ह ॥ ५ ॥

तवाव चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ।

अदृष्टान्तं भूवां यूयं बालिष्ठा भव पालका ॥ ६ ॥

तथैकपुरुषं राष्ट्रं चितं चाष्टनिर्गमम् ।

बहुत्वां स्त्रिय चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥ ७ ॥

नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाशृतं गृहम् ।

कचिद्दंसं चित्रकथं क्षौरपञ्च स्वयं प्रमिम् ॥ ८ ॥

कथं क्षपितुरादेशमभिद्रासो विपश्चितः ।

अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्वं करिष्यथ ॥ ९ ॥

श्रीशुक उवाच

तस्मिन्मयाथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ।

वैच ह्यहं तु देवर्षेः स्वयं विममृद्भुवि ॥ १० ॥

मूः क्षेत्र जीवसंघं यदनादि निजबन्धनम् ।

राजन् । दक्षके ये समीपुत्र एक वावरण और एक सम्पन्न थे । जब उनके पिता दक्षने उन्हें सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी, तब वे तपस्या करने के निचारे पश्चिम दिशा की ओर गये ॥ २ ॥ पश्चिम दिशामें सिन्धुनदी के समुद्र के संगमपर नारायण-सर नामका एक महान् तीर्थ है । वहाँ-वहाँ मुनि और सिद्ध पुरुष वहाँ निवास करते हैं ॥ ३ ॥ नारायण-सरमें स्नान करते ही हर्षर्षिके अन्त करण सुख हो गये, उनकी बुद्धि भागवतधर्ममें लग गयी । फिर भी अपने पिता दक्षकी आज्ञासे वे होने के कारण वे उग्र तपस्या ही करते रहे । जब देवर्षि नारदने देखा कि भागवतधर्ममें रुचि होनेपर भी वे प्रवाहदिके जिये ही उत्तर हैं, तब उन्होंने उनके पास आकर कहा— अरे हर्यको ! तुम प्रजापति हो तो क्या हुआ । वास्तवमें तो तुम लोग मूर्ख ही हो । कलकाल तो, जब तुम लोगोंने पृथ्वीका अन्त ही नहीं देखा तब सृष्टि कैसे करोगे ? वहाँ खेदकी बात है ॥ ४—६ ॥ देखो—एक ऐसा देश है, जिसमें एक ही पुरुष है । एक ऐसा निष्ठ है, जिससे बाहर निकलनेका रास्ता ही नहीं है । एक ऐसी स्त्री है, जो बहुकुरिणी है । एक ऐसा पुरुष है, जो व्यभिचारिणीका पति है । एक ऐसी नदी है, जो आगे-पीछे दोनों ओर बहती है । एक ऐसा विचित्र घर है, जो पक्षीस पदापेसि बना है । एक ऐसा हस्त है जिसकी कहानी बनी विचित्र है । एक ऐसा धक है, जो छुरे एवं बत्रसे बना हुआ है और अपने-आप घूमता रहता है । मूर्ख हर्यको ! जबतक तुम लोग अपने सर्वज्ञ पिताके उचित आदेशको समझ नहीं आगे और इन उपर्युक्त वस्तुओंको देख नहीं आगे, तबतक उनके आज्ञानुसार सृष्टि कैसे कर सकोगे ? ॥ ७—९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । हर्यश्व जन्मसे ही बड़ा बुद्धिमान् थे । वे देवर्षि नारदकी यह पड़बी, ये गूढ़ वचन सुनकर अपनी बुद्धिसे स्वयं ही निचारे करने लगे— ॥ १० ॥ (देवर्षि नारदका कहना तो सच है) यह विज्ञासी ही, जिसे साधारणतः जीव कहते हैं, पृथ्वी है और यही आत्माका अनादि बन्धन है । इसका

दृष्ट्वा तस्य निर्वर्ण किमसत्कर्मभिर्मवेत् ॥११॥

एवमेवस्तुर्यो भगवान् स्वाश्रयः पर ।

तमदृष्ट्वाभव पुंस किमसत्कर्मभिर्मवेत् ॥१२॥

पुमान् नैवेति यद् गत्वा विंशत्यर्गं गतो यथा ।

प्रत्यग्भामाविद् इह किमसत्कर्मभिर्मवेत् ॥१३॥

नानारूपाऽऽत्मनोबुद्धिःस्वैरिणीष गुणान्विता ।

तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्मवेत् ॥१४॥

तत्सङ्गंश्चित्तस्थं ससरन्तं कुमार्यवत् ।

तद्गतोरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्मवेत् ॥१५॥

सृष्ट्यन्वयकरीं मायां वैलाङ्गलान्तवैगिताम् ।

मत्तस्य वामविहस्य किमसत्कर्मभिर्मवेत् ॥१६॥

पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषाऽद्भुतदर्पणम् ।

अप्यात्ममपुष्येह किमसत्कर्मभिर्मवेत् ॥१७॥

ऐश्वर्यं श्राव्यमुत्सृज्य बन्धमोयानुदर्शनम् ।

अन्त (विनाश) देखे बिना मोक्षके अनुपयोगी कर्मोंमें लगे रहनेसे क्या लाभ है ? ॥ ११ ॥ सचमुच ईश्वर एक ही है । यह नाश्रय आदि तीनों अवस्थाओं और उनके अभिमानियोंसे भिन्न, उनका साक्षी तुरीय है । यह सबका आश्रय है परन्तु उसका आश्रय कोई नहीं है । बही भगवान् हैं । उस प्रवृत्ति आदिसे अतीत, निस्पृह परमात्माको देखे बिना भगवान्‌के प्रति अक्षमर्पित कर्मोंसे जीवको क्या लाभ है ? ॥ १२ ॥ जैसे मनुष्य विकल्परूप पातालमें प्रवेश करके वहाँसे नहीं छेड़ पाता—वैसे ही जीव जिसको प्राप्त होकर फिर संसारमें नहीं छोड़ता, जो स्वयं अन्तर्गम्योति स्वरूप है, उस परमात्माको जान बिना विनाशवान् स्वर्ग आदि फल देने वाले कर्मोंको करनेसे क्या लाभ है ? ॥ १३ ॥ यह अपनी बुद्धि ही बहुरूपिणी और सत्य, रज आदि गुणोंको धारण करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्रीक समान है । इस जीवनमें इसका अन्त जाने बिना—विवेक प्राप्त किये बिना अवशान्तिको अधिकविक बहानेवाले कर्म करनेका प्रयोगन ही क्या है ? ॥ १४ ॥ यह बुद्धि ही कुत्ता स्त्रीके समान है । इसके सङ्गसे जीवरूप पुरुषका ऐश्वर्य—इसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो गयी है । इसीके पीछे-पीछे वह कुत्ता स्त्रीके पतिकी मौति न जान कहीं-कहीं भटक रहा है । इसकी विभिन्न गतियों, चारोंको जान बिना ही विवेक-रहित कर्मोंसे क्या सिद्धि मिलेगी ? ॥ १५ ॥ माया ही दोनों ओर बहनेवाली नदी है । यह सृष्टि भी करती है और प्रलय भी । जो लोग इससे निकलनेके लिये तपस्या, विद्या आदि तपका सहारा लेते हैं, उन्हें रोकनेके लिये क्रोध, अहंकर आदि रूपात्ममें वह ओर भी वेगसे बहने लगती है । जो पुरुष उसका वेगसे निवृत्त एवं अनभिज्ञ है, वह मायिक कर्मोंसे क्या लाभ उठावेगा ? ॥ १६ ॥ ये पचीस तत्त्व ही एक अद्भुत घर हैं । पुरुष उनका आश्रयमय आश्रय है । वही समस्त काय-करणामय जगत्का अभिधाता है । यह बात न जानकर सच्चा स्वातन्त्र्यप्राप्त किये बिना धूर्ती स्वतन्त्रतासे किये जान वाले कर्म व्यर्थ ही हैं ॥ १७ ॥ भगवान्‌का स्वल्प बलान्धाना श्राव्य इसके समान नीर-भीर विवेको है । वह बन्ध-मोक्ष, चमन और जहन्नम अरुण-अग्रम बरक

विनिर्दिष्टमङ्गलम् किमसत्कर्मभिर्येषु ॥१८॥

कालचक्र भविष्यीत्यर्थं सर्वं निष्कर्ममन्त्रजगत् ।

स्वतन्त्रमनुष्यस्येह किमसत्कर्मभिर्येषु ॥१९॥

छास्त्रस्य पितृराक्षेपं यो न वेद निर्वर्तकम् ।

कथं तदनुकूपाय शुभविभक्त्युपक्रमेत् ॥२०॥

इति व्यवसिता राजन् इर्मया एकचेतसः ।

प्रययुस्तं परिक्रम्य पन्थानमनिवर्तनम् ॥२१॥

स्वरमङ्गलि निर्मातृहृषीकेशपदाम्बुजे ।

अल्पं विचभावेभ्य लाकाननुर्धर मुनिः ॥२२॥

नाथ निश्चम्य पुत्रार्थां नारदाच्छीलशालिनाम् ।

अवतप्यतः कः शोचन् सुप्रजस्तु शुचां पदम् ॥२३॥

संभूयः पाञ्चव्यायामजेन परिसान्त्वितः ।

पुत्रानजनयन् दशः क्षत्रलाभान् सहस्रम् ॥२४॥

तेऽपि पित्रा समादिष्टा प्रजासर्गे घृतप्रताः ।

नारायणमरा जगमूर्धन सिद्धा स्वपूर्वमा ॥२५॥

यदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाश्रयाः ।

अपन्तो मम परम तेऽप्युत्तमं महत् तप ॥२६॥

दिखा देता है । ऐसे अभ्यासशास्त्ररूप इतका आसन
छोड़कर, उसे जाने बिना बहिर्मुख बनानेवाले कर्मोंसे
अप ही क्या है ? ॥ १८ ॥ यह कहत ही एक पद
है । यह निरन्तर घूमता रहता है । इसकी धार सारे
और पक्षके समान तीखी है और यह सारे जगत्को
अपनी ओर खींच रहा है । इसका रोकनेवाला कोई नहीं,
यह परम स्वतन्त्र है । यह बात न जानकर कर्मोंके फलको
नित्य समझकर जो भोग सकामभावसे उनका अनुष्ठान
करते हैं, उन्हें उन अनित्य कर्मोंसे क्या लाभ होगा ? ॥ १९ ॥
शास्त्र ही पिता है, क्योंकि वृत्ता जम शास्त्रके द्वारा ही
होता है और उसका आवेष्टा कर्मोंमें छाना नहीं, सबसे
निवृत्त होना है । इसे जो नहीं जानता, वह गुणमय
शब्द आदि विषयोंपर विचार कर लेता है । वह वह
कर्मोंसे निवृत्त होनेकी आशाका पावन मन्त्र, कैसे कर
सकता है ? ॥ २० ॥ परीक्षित ! इर्मरने एक मन्त्रसे
यही निश्चय किया और नारदजीकी परीक्षा करके वे
उस मोक्षपथके पथिक बन गये, जिसपर कञ्चन निर
छेदना नहीं पड़ता ॥ २१ ॥ इसके बाद देवर्षि नरद
स्वरमङ्गले—सगीतछन्दोंमें अभिषेक हुए, भगवान् श्रीकृष्ण-
चन्द्रके चरणकमलोंमें अपना चित्तको अलम्बनरूपसे स्था
पितके लोक-लोकान्तरेमें विचरने लगे ॥ २२ ॥

परीक्षित ! अब दक्षप्रजापतिके मन्त्रम हुआ कि
मेरे गीष्मान् पुत्र मारुतके उपदेशसे कर्तव्यभूत हो गये
हैं, तब वे शोकसे व्याकुल हो गये । उन्हें बड़ा पछा-
याप हुआ । सबमुख अच्छी सम्मानका होना भी शोकका
ही कारण है ॥ २३ ॥ प्रजापति नरदक्षप्रजापतिके बड़ी
सम्पत्ति थी । तब उन्होंने पञ्चजन-नन्दिनी अस्तित्रिके
गर्भसे एक हजार पुत्र और उत्पन्न किये । उनका नाम यह
शबलाश्व ॥ २४ ॥ वे भी अपने पिता दक्षप्रजापतिकी
आज्ञा पाकर प्रजासृष्टिक उद्देश्यसे तप करनेके लिये उठी
नारायणसरीसरपर गये, जहाँ आश्रय उनके बड़े भार्गवोंने
सिद्धि प्राप्त की थी ॥ २५ ॥ शबलाश्वों ने वहाँ जाकर
उस सरोवरमें स्नान किया । स्नानमात्रसे ही उनके अन्त
करणक सारे मूत्र धुल गये । जब वे परमेश्वररूप
प्रणयक नयनसे हुए मन्त्र तन्त्रमात्रसे स्नान गये ॥ २६ ॥

मन्मथा कतिचिन्मासान् कतिचिन् वायुभोजनाः ।
 आराधयन् मन्त्रमिममभ्यस्यन् इहस्पतिम् ॥२७॥
 ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महारमणे ।
 विश्वदसस्त्वधिष्ण्याय महाहसाय धीमहि ॥२८॥
 इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो ह्यनिः ।
 उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥२९॥
 दाधायणाः संभृणुत गदतो निगम मम ।
 अन्विच्छतानुपदधीं आतृणां आश्वत्सलाः ॥३०॥
 आतृणां प्रायण आता योऽनुविष्ठति धर्मवित् ।
 स पुष्पबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मादते ॥३१॥
 एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोषदर्शनः ।
 तेऽपि चान्वगमन् मार्गं आतृणामेव मारिष ॥३२॥
 सघ्नीचीनं प्रतीचीनं परस्त्रानुपथं गताः ।
 नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥३३॥
 एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः ।
 पूर्ववन्नारदकृत् पुत्रनाशमुपाशृणोत् ॥३४॥
 शुक्रो नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्छितः ।
 देवर्षिमुपलभ्याह राषाद्रिस्फुरिताभरः ॥३५॥

दश उवाच

अहो असाधो साधूनां मायुलिङ्गननस्त्वया ।
 असाध्यकार्यमर्काणां भिक्षामार्गः प्रदर्शितः ॥३६॥

कुल महीनोत्तक केवल नल और कुल महीनोत्तक केवल
 हवा पीकर ही उन्होंने भ्रम नमस्कारपूर्वक ओङ्कारस्वरूप
 भगवान् नारायणका ध्यान करते हैं, जो विशुद्ध चित्तमें
 निवास करते हैं, सबके अन्तर्धामी हैं तथा सर्वन्यापक
 एवं परम हसस्वरूप हैं ।—इस मन्त्रका अभ्यास करते
 हुए मन्त्राविपति भगवान्की आराधना की ॥ २७-२८॥
 परीक्षित । इस प्रकार दक्षके पुत्र शबलाश्व प्रजापतिके
 शिष्ये तपस्यामें सज्जन थे । उनके पास भी देवर्षि नारद
 आये और उन्होंने पहलेके समान ही कूट बचन कहे ॥ २९॥
 उन्होंने कहा—‘दक्षप्रजापतिके पुत्रो ! मैं तुमसेगोके
 जो उपदेश देता हूँ, उसे सुनो । तुमलोग तो अपने
 मार्गोंसे बड़ा प्रेम करते हो । इसलिये, उनके मार्गका
 अनुसन्धान करो ॥ ३० ॥ जो धर्मका मार्ग अपने बड़े
 मार्गोंके श्रेष्ठ मार्गका अनुसरण करता है, वही सच्चा
 मार्ग है । वह पुण्यवान् पुरुष परलोकमें मरुद्गणोंके साथ
 आनन्द भोगता है ॥ ३१ ॥ परीक्षित । शबलाश्वोंको
 इस प्रकार उपदेश देकर देवर्षि नारद वहाँसे चले गये
 और उन लोगों भी अपने मार्गोंके मार्गका ही अनु-
 गमन किया, क्योंकि नारदकीका दर्शन कभी धर्म्य नहीं
 जाता ॥ ३२ ॥ वे उस पथके पथिक बने, जो अन्तर्मुखी
 वृत्तिसे प्राप्त होनेयोग्य, अत्यन्त सुन्दर और भगवत्प्राप्तिके
 अनुकूल है । वे बीती हुई रात्रियोंके समान न तो उस
 मार्गसे अवलोक लीटें और न आगे लीटेंगे ही ॥ ३३॥

दक्षप्रजापतिन देखा कि आजकल बहुतसे वंशकुल
 हो रहे हैं । उनके चित्तमें पुत्रोंके अनिष्टकी आशाका हा
 आयी । इतनेमें ही उन्हें मायूम हुआ कि पहलेकी
 भौति अबकी बार भी नारदजीम मेरे पुत्रोंका चीपन कर
 दिया ॥ ३४ ॥ उन्हें अपने पुत्रोंकी कृतम्यप्युत्तिसे बड़ा
 शाक हुआ और वे नारदजीपर बड़ घबराये हुए । उनका
 मित्रनर कोशके मारे दक्षप्रजापतिके हाट फटपन छो
 और वे आशेशमें मरकर नारदजीसे बोले ॥ ३५ ॥

दक्षप्रजापतिन कहा—ओ दुष्ट ! तुमन श्रुत
 साधुओंका जाना पदन रकता है ! हमारे भ्रमेमाल
 बाणकोको भिक्षुकोका मार्ग दियाकर तुमन हमारा बना

अर्णश्चिभिर्मुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ।

मिदातः धेयसः पाप लोकोरुभयोः कृतः ॥३७॥

एष त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिमिद्वरेः ।

पापदमये चरसि यशोहा निरपन्नपः ॥३८॥

ननु भागवता नित्य भूतानुग्रहकावराः ।

अत त्वां सौहृदघ्नं चै वैरह्वरमवैरिणां ॥३९॥

नर्त्तं पुंसां विनाशः स्नात् स्वया केवलितना मृषा

मन्यसे यष्टुपधर्मं स्नेहपाशनिहन्तनस ॥४०॥

ननुभूय न क्षान्ताति पुमान् विपश्यतीक्ष्णताम् ।

निर्विघ्नेत स्वर्ष तस्मात् तथा मिश्रधी परैः ॥४१॥

यमस्त्य कर्मसन्धानां साधूनां गृहमेधिनाम् ।

कृतवानसि दुर्मयं विप्रियं तव मर्यितम् ॥४२॥

तन्नुकुन्तन यमस्त्वमभद्रमश्वरः पुनः ।

तस्मान्लोकेषु त मूढ न भवेद्भ्रमवः पदम् ॥४३॥

श्रीशुक उवाच

प्रतिजग्राह तपु धातं नारद साधुसम्मतः ।

एतावान्साधुवादा हि विविधेत्तद्वरः स्वयम् ॥४४॥

अपकार किया है ॥३९॥ अभी उन्होंने ब्रह्मचर्यसे श्रुति-श्रवण-यज्ञसे वेद-श्रवण और पुत्रोत्पत्तिसे मितु-श्रवण नहीं उठवाया । उन्हें अभी कर्मफलकी नष्टताके सम्बन्धमें भी कुछ विचार नहीं था । परन्तु पापात्मन् । तुमने उनके दोनों ओरोंका मुख चौपट कर दिया ॥३७॥ सचमुच तुम्हारे हृदयमें दयाका भाव भी नहीं है । तुम इस प्रकार वर्षोंकी मुक्ति बिगाड़ते फिरते हो । तुमने मगवान्-के पार्यन्तमें रहकर उनकी कीर्तिमें कलङ्क ही लगाया । सचमुच तुम बड़े निरलस हो ॥ ३८ ॥ मैं जानता हूँ कि मगवान्के पार्यद सदा-सर्वदा दुष्टी प्रश्रितियोंपर दया करनेके लियेव्यग्र रहते हैं । परन्तु तुम प्रेमभावका विनाश करनेवाले हो । तुम उन लोगोंसे भी वैर करते हो जो किसीसे वैर नहीं करते ॥ ३९ ॥ यदि तुम ऐसा समझते हो कि वैराग्यसे ही स्नेहपाश—विषयसंयमका कलक कट सकता है, तो तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है; क्योंकि तुम्हारे-जैसे हठमूढ वैराग्यका लोभ मरनेवालोंसे किसीको वैराग्य नहीं हो सकता ॥ ४० ॥ नारद । मनुष्य विषयोंका अनुभव किये किता उनकी कटुता नहीं जान सकता । इसलिये उनकी बुद्धिस्मयताका अनुभव ज्ञानपर रूप जैसा वैराग्य होता है, वैसा दूसरोंके बहकानेसे नहीं होता ॥ ४१ ॥ हमलोग स्वर्गलक्ष्य हैं, अपनी धर्ममर्यादाका पालन करते हैं । एक बार पड़खे भी तुमने हमारा अक्षय्य अपकार किया था । तब हमने उसे सह लिया ॥ ४२ ॥ तुम तो हमारी वंशपरम्पराका उच्छेद करनेपर ही उतारू हो रहे हो । तुमने फिर हमारे साथ बड़ी दुष्टताका व्यवहार किया । इसलिये मूढ़ । जाओ, लोक-लोकांतमें मटकते रहो । कहीं भी तुम्हारे लिये ठहरनेको छेद नहीं होगी ॥ ४३ ॥

श्रीशुकनेवर्जी कहल है—परीक्षित । संतधरोमणि देवर्षि नारदने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्षका शाप लीकार कर लिया । संसारमें बस, साधुता इसीका नाम है कि ब्रह्मा लोभकी शक्ति रहनेपर भी दूसरेका किया हुआ अपकार सह लिया जाए ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुण्ये पारमर्त्यो संक्षिप्तार्णो यष्टकम्भे नारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्राणस्रोतस्वती भार्या सह आयुः पुरोज्वः ।

ध्रुवस्य भार्या धरमिगद्वय विविधाः पुरः ॥१२॥

अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्पदयः स्मृताः ।

अग्नेर्भार्या वसोर्भार्या पुत्रा द्विविधादयः ॥१३॥

स्कन्दस्य कृषिकपुत्री ये विशाखादयस्ततः ।

दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो हर कला ॥१४॥

वसोराक्षिर्दक्षीपुत्री विश्वकर्मा कृतीपतिः ।

वतो मनुष्याक्षुपोऽभूद् विश्वेसाध्या मनोः सुताः ॥१५॥

विभावसोरक्षतोषा न्युष्टं रोषिपमातपम् ।

पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥१६॥

संरूपाश्च भूतस्य भार्या रुद्राश्च कोटिभ्यः ।

रैवताऽथो भवो भीमा वाम उग्रो वृषाकपिः ॥१७॥

अर्जकपादशिर्ष्यो बहुरूपो महानिति ।

रुद्रस्य पार्षदाभ्यान् ये घोरा भूतविनायकाः ॥१८॥

प्रजापतेरक्षितः स्वधा पत्नी पितृनुभ ।

अथर्वाक्षितस्य वेदं पुत्रत्वे चाकरोत् सती ॥१९॥

कृशाभ्याश्चिपि भार्याणां धूमकेतुमजीश्वरत् ।

धिषणायां वेदसिग देवस्य वपुर्न मनुष्य ॥२०॥

गार्हस्पत्यं निनवा रुद्रः पतङ्गी यामिनीति च ।

पतङ्गपञ्चन पतङ्गान् यामिनी शतभानध ॥२१॥

मुपगोमय गुरुदं सासाद् यज्ञद्वयान्नम् ।

क्षयक्षतममूर्त्तं च कृत्वा गाननकश्च ॥२२॥

प्राणकी पत्नी ऊर्ध्वस्त्रीके गर्भसे सह वायु और पुरेज नामके तीन पुत्र हुए । ध्रुवकी पत्नी धरणीने कने नगरोंके अधिपानी देवता उत्पन्न किये ॥१२॥ अर्ककी पत्नी वासनाके गर्भसे तर्प (वृष्णा) आदि पुत्र हुए । अग्नि नामक बहुरूकी पत्नी भाराके गर्भसे द्विविधक आदि बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुए ॥१३॥ कृषिकपुत्रस्काय वसुसे ही उत्पन्न हुए । उनसे विशाख आदिपञ्चन पुत्र हुए । दोषकी पत्नी शर्वरीके गर्भसे शिशुमारका वाम हुआ । वह मण्डान्तर कल्पकार है ॥१४॥ वसुकी पत्नी आक्षिरीसे विश्वकर्माके अधिपति विश्वकर्मा हुए । विश्वकर्माके उनकी भार्या कृतीके गर्भसे वसु मनु हुए और उनके पुत्र विश्वेदेव एव साध्या हुए ॥१५॥ विभावसुकी पत्नी वषासे तीन पुत्र हुए—न्युष्ट, रोषि और आतप । उनमेंसे आतपके पञ्चय (दिवस) नामक पुत्र हुआ, उसीके कारण सब जी अपने-अपने कर्मादि को रहते हैं ॥१६॥

वृषकी पत्नी दक्षमन्दिनी सुरूपासे कोटि-कोटि रुद्रगण उत्पन्न किये । इनमें रैवत, वज्र, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अर्जकपाद, अक्षिर्धूम्य, बहुरूप और महान्—ये स्यारह मुख्य हैं । भूतकी दूसरी पत्नी भूतासे मयङ्कर भूत और विनायकादिक जन्म हुआ । ये सब स्यारहोंके प्रधान रुद्र नामके पार्षद हुए ॥१७-१८॥ अक्षित प्रजापतिकी प्रथम पत्नी स्वधामें पितृगणको उत्पन्न किया और दूसरी पत्नी सतीने अथर्वाक्षित नामक वेदकी ही पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया ॥१९॥ क्षयक्षकी पत्नी धूमकेतुके गर्भसे जन्म हुआ और धिषणासे चार पुत्र हुए—वेदसिग, देवस्य, वपुर्न और मनु ॥२०॥ तार्क्ष्यनामधारी बहुरूपकी चार शिर्यों थीं—विनवा, रुद्र, पतङ्गी और यामिनी । पतङ्गीसे पञ्चिको और यामिनीसे शतभी (पनिर्ग) का जन्म हुआ ॥२१॥ निनवाके पुत्र गुरुद हुए, ये ही मण्डान्तर निष्पुके वाहन हैं । निनवाके ही दूसरे पुत्र अन्नक हैं । मण्डान्तर सूर्यके सारथि हैं । पतङ्गसे वनयों नाम उत्पन्न हुए ॥२२॥

१ प्रा प —२३ पु । २ प्रा प —मुष्ण । ३ प्रा प —वा देवि । ४ प्रा प —११ ।

५ प्रा प —विनायक-दिवस ।

कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तुभारत ।

दक्षशापात् सोऽनपत्यन्तासु यस्मिन्प्रहर्दिताः ॥२३॥

पुन प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षये दिताः ।

मृग्य नामानि लोकानां मातृणां शङ्कराणि च ॥२४॥

अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ।

अदिविदिर्विदंस्तु काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥२५॥

क्षुनिःक्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा विमिः ।

विमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमा सुता ॥२६॥

सुरमेर्महिषा गात्रो ये चान्ये द्विशफा नृप ।

ताम्रायाः श्येनैर्गृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥२७॥

दन्द्वाकादय सपारामन्क्रोधवशात्मजा ।

इलाया मूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसा ॥२८॥

अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतरा ।

सुता दनोरेकपटिस्तेषां प्राधानिकोऽमृग्य ॥२९॥

द्विर्धो शम्भराऽरिष्टो हयग्रीवो विभावस्तु ।

अपोमृग्यः शङ्खुविरा स्वर्मानु कपिलाऽरुण ॥३०॥

पुलामा वृषपत्नी च प्रकचक्रोऽनुतापनः ।

धूम्रकेशा विरूपाक्षो विप्रर्षिचिम्ब दुर्जयः ॥३१॥

स्वर्माना सुप्रभां कन्यामुवाहनमुचि किन् ।

वृषपर्वणस्तु धर्मिष्ठां ययातिनाहुपो बली ॥३२॥

वैशानरमुता याध चतुर्ध्याऽद्वयनाः ।

यदानवी हयगिरा पुलामा कालका तथा ॥३३॥

यदानवी हिरण्याक्ष प्रतुर्ध्यायिणी नृप ।

परीक्षित । कृत्तिका आदि सप्तार्धस नक्षत्राभिमानीनी

देवियों चन्द्रमाकी पत्नियों हैं । रोहिणीसे विशेष प्रेम

कर्मके कारण चन्द्रमाकी दक्षने शाप दे दिया, जिससे

उन्हें क्षयरोग हो गया था । उन्हें कोई सन्तान नहीं

हुई ॥ २३ ॥ उन्होंने दक्षको फिरसे प्रसन्न करके कृष्ण-

पक्षकी क्षीण कलाओंके शुद्धपक्षमें पूर्ण होनका वर तो

प्राप्त कर लिया, (परन्तु नक्षत्राभिमानीनी देवियोंसे उन्हें

कोई सन्तान न हुई) अब शुभ कश्यपपत्नियोंके मङ्गलमय

नाम सुनो । वे लोकमाताएँ हैं । उन्हींसे यह सारी

सृष्टि उत्पन्न हुई है । उनके नाम हैं—अदिति, द्विति,

दत्तु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा,

ताम्रा, सुरभि, सरमा और निमि । इनमें निमिके पुत्र

हैं—जलचर जन्तु और सरमाके बाघ आदि हिसक

जीव ॥ २४-२६ ॥ सुरभिके पुत्र हैं—मैस, गय तथा

दूसरे दो सुरवाल पशु । ताम्राकी सन्तान हैं—बाज,

विभ आदि शिकारी पक्षी । मुनिसे जप्सराएँ उत्पन्न

हुई ॥ २७ ॥ क्रोधवशाके पुत्र हुए—सौप, विष्णु

आदि विप्रेत जन्तु । इन्से वृक्ष, लता आदि पृथ्वीमें

उत्पन्न होनवाली वनस्पतियों और सुरमासे यातुधान

(राक्षस) ॥ २८ ॥ अरिष्टासे गन्धर्व और काष्ठासे

बोह आदि एक सुरवाल पशु उत्पन्न हुए । दत्तुके

एकसठ पुत्र हुए । उनमें प्रधान प्रधानके नाम सुनो ॥ २९ ॥

द्विर्धो, शम्भर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावस्तु, अपोमृग्य,

शङ्खुविरा, स्वर्मानु कपिल, अरुण, पुञ्जोमा, वृषपर्वा,

पश्यक, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रर्षि

और दुर्जय ॥ ३० ३१ ॥ स्वर्मानुकी कन्या सुप्रभामे

नमुचिन और वृषपर्वाकी पुत्री धर्मिष्ठासे महाबली

महुगमय्य ययातिन विवाह किया ॥ ३२ ॥ दत्तुके

पुत्र वैशानरकी और सुन्दर कन्याएँ थीं । इनके नाम

थे—उपगन्धी हयगिरा, पुलामा और मयङ्कज ॥ ३३ ॥ इनमेंसे

उपगन्धीके साथ हिरण्याक्षका और हयगिराके साथ

मनुसा विवाह हुआ । मयङ्कजकी आशामे प्रजापति

मन्वान काकाज की देवताकी स्त्री से सन्तानें उत्पन्न

उपयेमेऽयं भगवान् कथ्यो ब्रह्मचोदित ।

पौलोमा कालकेन्माध दानवा युद्धशालिनः ॥३५॥

सैयोःपटिसहस्राणि यज्ञघ्नास्ते पितुः पिता ।

जघान स्वर्गतो राजन्नेक इन्द्रप्रियङ्करः ॥३६॥

विप्रचिचि सिंदिहायां धौतं चैकमजीवनत् ।

राहुन्येष्ट कंतुशत ग्रहत्व य उपागत ॥३७॥

अधातः भूषतां वधो मोऽदितेरनुपूर्वध ।

यत्र नारायणा देव स्वांशेनावतरत् विभुः ॥३८॥

विवस्वानर्यमा पूषा स्वष्टाथ सविता भगः ।

धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुकर्मः ॥३९॥

विवस्वतः धाद्रदेव संज्ञाश्चत वै मनुम् ।

मिथुनं च महाभागा यमं देव यमीं तथा ।

सैव भूत्वाथ वदवा नासत्मां सुपुत्रे सुवि ॥४०॥

छाया शनैश्चरं लेभ सावर्णि च मनुं तत ।

कन्यां च तपती या वै यम मवरण पतिम् ॥४१॥

अर्यम्णा मातृका पत्नी तपामपणय मुता ।

यत्र वै मानुषी जातिर्मक्षणा चापकन्यिता ॥४२॥

पूषानपयः पिष्टाद् भद्रदन्ताऽभनत् पुग ।

पाऽर्मा दद्याव ईषितं ब्रह्म निष्टनट्टिव ॥४३॥

त्वष्टुर्दयानुजा भाषी रचना नाम कन्यका ।

मनिषाम्मपार्श्व निश्चरूपय वीर्यवान् ॥४४॥

और कालकेय माम्के साठ हजार रणवीर दानव हुए ।
इन्हीका दूसरा नाम मित्रातकमध था । ये यज्ञकर्म
विघ्न डालते थे, इसलिये परीक्षित । तुम्हारे दादा
अनुने उनकेले ही उन्हें इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये
मार डाला । यह उन मित्रोंकी बात है, जब कर्जुन
स्वर्गमें गये हुए थे ॥ ३४-३९ ॥ विप्रचिचि की पत्नी
सिंहिकाके गर्भसे एक सौ एक पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें
सबसे बड़ा था राहु, जिसकी गगना में ही गयी ।
शेष सौ पुत्रोंका नाम केतु था ॥ ३७ ॥

परीक्षित ! जब क्रमशः अन्तिकी वंशपरम्परा
सुनी । इस वंशमें सर्वव्यापक देवाविदेव नाट्ययज्ञ करने
अंशसे बामनरूपमें अवतर किया था ॥ ३८ ॥ अन्तिके
पुत्र थे—विस्वान, अर्यमा, पूष, त्वष्टा, सविता, मा,
धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और त्रिविक्रम (शम्भु)
यही बारह आत्मा कहलाये ॥ ३९ ॥ विस्वानकी
पत्नी महाभाग्यवती सञ्जाके गर्भसे धाद्रदेव (वैवस्वत)
मनु एवं यम यमीका जोड़ा पैदा हुआ । संज्ञाने ही
बांझीका रूप धारण करके भगवान् सूर्यने हाथ मूँछेकर
दोनों अधिनीकुमारोंको जन्म दिया ॥ ४० ॥ विस्वानकी
दूसरी पत्नी थी छाया । उसका शनैश्चर और सावर्णि
मनु नामक दो पुत्र तथा तपती नामकी एक कन्या
उत्पन्न हुई । तपतीन संवरणको पतिरूपमें बरन
किया ॥ ४१ ॥ अपमाकी पत्नी मातृका थी । उसके
गर्भसे चरणी नामक पुत्र हुए । वे कृतवन्ध-व्रतसम्पन्न
ज्ञानसे युक्त थे । इसलिये ब्रह्माजीने उनकी आश्रित
मनुष्यमायिकी (शास्त्रगान् विगोर्षी) कन्या की ॥ ४२ ॥
पूषाक काट सम्मान न हुई । प्राचीन कालमें जब निवरी
दशरथ अग्रिम हुए थे, सब पूरा दान दियाकर देव
लोक गये । इसलिये भीष्मपुत्र इनके दान लोभ
लिये था । सबसे दूरा गिरा हुआ जन्म ही गये
हैं ॥ ४३ ॥ त्वष्टीकी छात्री कनिष्ठा कुमारी रचना
रत्नकी पत्नी थी । रचनाके गर्भसे दो पुत्र हुए—

मनिषा अर पराजनी विधवा ॥ ४४ ॥

१ मा त — यामिनी । २ मा त — मी । ३ मा त — यामिनी । ४ मा त — यामिनी ।

५ मा त — यामिनी । ६ मा त — यामिनी । ७ मा त — यामिनी । ८ मा त — यामिनी ।

वाचस्पति मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ।

नाथचालासनादिन्द्रः पद्मश्चपि सभागतम् ॥ ८ ॥

सर्वो निर्गम्य सहसा कविरात्रिरसः प्रभुः ।

आययौ खगृह तूष्णीं विद्वान् भीमदधिक्रियाम् ॥ ९ ॥

तर्ज्येव प्रतिबुद्धप्रेन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः ।

गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥ १० ॥

अहो वत ममासाधु कृतं वै दम्भपुद्गिना ।

यन्मयैश्वर्यमचेन गुरुः सदसि कात्कृत ॥ ११ ॥

को गृध्रेत् पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ।

ययाहमासुर भाव नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥

ये पारमेष्ठ्य धिपणमधिविष्टन् न कञ्चन ।

प्रत्युत्तिष्ठदिति धूर्ध्वमं ते न परं विदुः ॥ १३ ॥

तेषां कुपधदप्यणां पवतां तमसि शधः ।

ये भद्रधूर्ध्वश्चस्ते वै मज्जन्त्यधमप्रवा इव ॥ १४ ॥

अथाहममराचायमगाधधिपण द्विजम् ।

प्रसादयिष्य निगठः शीर्ष्णां तनारण स्पृशन् ॥ १५ ॥

एव चिन्त्यतन्मस्य मपाना भगवान् गृहात् ।

मृहस्पतिर्निगठाऽऽरुणं गतिमध्यात्ममायया ॥ १६ ॥

गुणानाधिगत संज्ञां परीधन भगवान्म्वरात् ।

प्यायन् धिया गुरयुक्त श्रमनानभवात्मन ॥ १७ ॥

तन्मृष्यरागुग मध आधिग्योऽननमं मनम् ।

१ मा पा — यथान् । २ मा पा — दया पुनः ।

आये हैं, परन्तु वे न तो खड़े हुए और न कसन आदि देकर गुरुका सम्प्रसार ही किया । यहाँ तक कि वे अपने आसमसे छिड़े-कुत्सेक नहीं ॥ ७-८ ॥ त्रिकल-दर्शा समर्थ मृहस्पतिजीने देखा कि यह ऐश्वर्यमदका दोष है । वस, वे झणपट क्योंसे निकलकर चुपचाप अपने घर चले आये ॥ ९ ॥

परीक्षित ! उसी समय देवराज इन्द्रको चेत हुआ । वे समझ गये कि मैंने अपने गुरुदेवकी अज्ञहेलना की है । वे भी समामें खायं भी अपनी निन्दा करने लगे ॥ १० ॥ 'हाय हाय ! बड़े खेदकी बात है कि मरी समामें मूर्खतावश मैंने ऐश्वर्यक नशमें धूर होकर अपन गुरुदेवका निरस्कार कर दिया । सधमुच मेरा यह कर्म अत्यन्त मिथुनीय है ॥ ११ ॥ मज्ज, कौन बिनेकी पुरुष इस स्वर्गकी राजछत्रमीको पानपी इच्छा करेगा ? देखो तो सही, काम इसीने मुझ देवराजकी भी असुरोंक-से रजोगुणी भावसे भर दिया ॥ १२ ॥ जा लोग यह कहते हैं कि सार्वभौम राजसिंहासनपर बैठा हुआ सम्राट् किसीके आनेपर राजसिंहासनसे न उठे, वे धर्मका बाह्यविक स्वरूप नहीं जानते ॥ १३ ॥ ऐसा उपदेश फरनपाल कुमार्गकी ओर ल जातल्ले हैं । वे स्वयं बार नश्यमें गिरते हैं । उनकी बातपर जो लोग विश्वास करते हैं, वे पापकी मात्राकी तरह हो जाते हैं ॥ १४ ॥ भरे गुरुदेव मृहस्पतिजी इनक अन्याह समुद्र हैं । मैंने वही शठता की । अब मैं उनक घरजोमें अपना माया टककर उठे मनाऊँगा ॥ १५ ॥

परीक्षित ! देवराज इन्द्र इस प्रकार साध ही रहे थ कि मग्नान् मृहस्पतिजी अपन घरसे निकलकर पागयक्रमे अन्तगान हो गये ॥ १६ ॥ देवराज इन्द्रने अन्त गुह्येवत्त बहुत हँसा-हँसाया; परन्तु उनका वही पता न पता । तब वे गुरुक भिना जानकर गुरुजित म समझकर स्वर्गजोके साथ अपनी मुद्रिक अनुसार स्वर्गका श्वारा उपाय सोचन लाये, परन्तु वे कुछ भी साध न सक । उनका रिक्त अशांत ही बना रहा ॥ १७ ॥ परीक्षित ! तैलोजो भी स्वगुरु मृहस्पति पर स्वराज इन्द्र की अनबनका पता लग गया । तब

देवान् प्रत्युपमं च हृद्मदा आसतामिनः ॥१८॥

ते विमुष्टे प्रमिस्तीक्ष्णैर्निभिभाक्जोरुबाहवः ।

प्रक्ष्माण धरण जग्मुः सहेन्द्रा नतकन्धराः ॥१९॥

तांस्तथाम्यर्दितान् धीक्ष्य भगवानात्मभूरखः ।

कृपया परया देव उवाच परितान्त्वयन् ॥२०॥

भक्तोवाच

अहो यत् सुरभेष्टा क्षमत्रं वः कृतं महत् ।

प्रक्षिप्तं प्राक्ष्ण दान्तमैश्वर्याभ्राम्यनन्दतः ॥२१॥

तस्मायमनमस्मासीत् परेभ्यो वः परामभः ।

प्रक्षीणेभ्यः स्वैरिभ्यः समुद्भूतानां च यत् सुराः ॥२२॥

मयवन् द्विपतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् ।

सम्प्रत्युपचितान् भूयः काव्यभाराभ्य भक्तितः ।

आदवीरन् निलयन ममापि शृगुदेवता ॥२३॥

त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यमेघ

मन्त्रा मृगणामनुशिषितार्थाः ।

न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां

भवन्त्यमद्राणि नरश्वराणाम् ॥२४॥

तद् विभरूपं भवतांस्तु विप्र

तपस्विन स्वाष्टमथारमवन्तम् ।

सभाजितोऽथान् स विभासते वा

यदि क्षमिष्यन्ममतास कर्म ॥२५॥

उम मद्रो मत्त और आसतापी असुरोंने अपने गुरु
शुक्राचार्यके आवेशानुसार देवताओंपर विजय पानेके
छिये धावा बोल दिया ॥ १८ ॥ उन्होंने देवताओंपर
इतने सीछे-सीछे बाणोंकी वर्षा की कि उनके मस्तक,
जंघा, बाहु आदि अङ्ग कट-कटकर गिरने लगे । तब
इन्के साथ सभी देवता सिर झुकाकर ब्रह्माजीकी
शरणमें गये ॥ १९ ॥ स्वयम्भू एवं समर्थ ब्रह्माजीने देखा
कि देवताओंकी तो सचमुच बड़ी दुर्दशा हो रही है ।
अतः उनका हृदय अत्यन्त करुणासे भर गया । वे
देवताओंकी घोरतः बँधाते हुए कहने लगे ॥ २० ॥

ब्रह्माजीने कहा—देवताओ ! यह बड़े खेदकी बात
है । सचमुच तुमभोगोंने बहुत दुरा काम किया । हरे,
हरे ! तुमभोगोंने ऐश्वर्यके मदसे अंधे होकर ब्रह्माजीने,
वेदज्ञ एवं संसारी ब्राह्मणका सम्कार नहीं किया ॥ २१ ॥
देवताओ ! तुम्हारी उसी अनीतिक्रम यह फल है कि
आज समुद्रिच्छाजी होनेपर भी तुम्हें अपने निर्बल
शत्रुओंके सामने नीचा देखना पड़ा ॥ २२ ॥ देवराज !
देखो, तुम्हारे शत्रु भी पहले अपने गुरुदेव शुक्राचार्यका
तिरस्कार करनेके कारण अत्यन्त निर्बल हो गये थे,
परन्तु अब मक्तिभावसे उनकी आराधना करके वे फिर
वज्र-जनसे सम्पन्न हो गये हैं । देवताओ ! मुझे तो ऐसा
माहस पड़ रहा है कि शुक्राचार्यको अपना आराध्यदेव
माननेवाले ये दीक्षुजीक कुछ दिनोंमें मेरा ब्रह्मजीक भी
छीन लेंगे ॥ २३ ॥ शृगुर्वशिर्षिने इन्हें अपरिहासकी
पूरी-पूरी शिक्षा दे रखी है । ये जो कुछ करना
चाहते हैं, उसका भेद तुमभोगोंको नहीं मिल पाता ।
उनकी सलाह बहुत गुप्त होती है । ऐसी स्थितिमें वे
स्वर्गको तो समझते ही क्या हैं, वे चाहे जिस लोकको
जीत सकते हैं । सच है, जो भेष्ट मनुष्य ब्राह्मण,
गेविन्द और गौओंको अपना सर्वस्व मानते हैं और
जिनपर उनकी इया रहती है, उनका कभी अमङ्गल
नहीं होता ॥ २४ ॥ इसछिये अब तुमभोगे शीघ्र ही
तप्यके पुत्र विभरूपके पास जाओ और उन्हींकी सेवा
करो । वे सच्चे ब्राह्मण, तपस्वी और सयमी हैं । यदि
तुमभोगे उनका असुरोंके प्रति प्रमदके क्षमा पर सकोगे
और उनका सम्मान करोगे, तो वे तुम्हारा काम बना
देग ॥ २५ ॥

भीमश्रृंग उवाच

त एवमुदिता राजन् ब्रह्मणा विगतन्वरा ।

अपि त्वाष्ट्रमुपपन्नं परिप्यज्जेदमधुषन् ॥२६॥

देवा ऊचुः

धम तेऽतिथयः प्राप्ता आधमं भद्रमस्तु ते ।

काम सम्पाद्यतां ताव पितॄणां समयोचित ॥२७॥

पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सदासु ।

अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किमुत धर्मचारिणाम् ॥२८॥

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।

प्रातामरुपतेर्मूर्तिर्मता साक्षात् शिवेस्तनुः ॥२९॥

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्याप्रातिथिः स्वयम् ।

अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वमूतानि चात्मनः ॥३०॥

तस्मात् पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभयम् ।

तपसापनयस्तात सन्दर्शं कर्तुमर्हसि ॥३१॥

शृणीमहे त्वापाप्साम प्रक्षिप्तं प्राक्षयं गुरुम् ।

यथाञ्जसा विजेष्मामः सपञ्चास्तव तेजसा ॥३२॥

न गर्हयन्ति क्षम्यन्तु यविष्ठाहृष्यभिषादनम् ।

छन्दोम्याऽयत्र न द्रक्षन् धयोऽयं पुण्यस्य कारणम् ॥३३॥

अपि उवाच

अभ्यधितः गुरुगर्णं पौराहित्ये महातपा ।

स विशम्भन्मनाह प्रसभः शम्भया गिरा ॥३४॥

निरुप्य उवाच

विराहितं धर्मश्रीर्लक्ष्मणार्च उपपन्नम् ।

भीमश्रृंगयत्री कहते हैं—परीक्षित ! जब देवताओं ने देवताओं से इस प्रकार कहा, तब उनके चित्त हुए हो गयी । वे स्वप्न के पुत्र विचरूप अदिके पास गये और उन्हें स्वप्न से लगाकर यों कहने लगे ॥ २६ ॥

देवताओं में कहा—वेद विचरूप ! तुम्हारा कथन ही । हम तुम्हारे आश्रय पर अतिथिके रूप में आये हैं । हम एक प्रकार से तुम्हारे पितर हैं । इसलिये तुम हम ओंकारों की समयोचित अग्निभया पूर्ण करा ॥ २७ ॥ जिन्हें सम्मान हो गयी हो, उन सन्तुष्टों की भी समझे बड़ा धर्म यही है कि वे अपने पिता तथा कथ्य गुरु-जनों की सेवा करें । पितर जो ब्रह्मचारी हैं उनके लिये तो ब्रह्मन् ही क्या है ॥ २८ ॥ कस ! आचार्य वेदों की पिता ब्रह्माजी की, भाई इन्द्र की और माता साक्षात् पृथ्वी की मूर्ति होती है ॥ २९ ॥ (इसी प्रकार) बहिन दया की, अतिथि धर्म की, अभ्यागत अग्नि की और जगत् के सभी प्राणी अपने आत्म्य की ही मूर्ति—आत्म्यरूप होते हैं ॥ ३० ॥ पुत्र ! हम तुम्हारे पितर हैं । इस समय शत्रुओं में हमें जीत लिया है । हम बड़े दुखी हो रहे हैं । तुम अपने तपोबल से हमसे यह दुःख, दारिद्र्य, परानय दूर दो । पुत्र ! तुम्हें हमने ओंकारों की आश्रयता पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥ तुम प्रसन्न हो जाओ, अतः अगम से ही हमारे गुरु हो । हम तुम्हें आचार्यक रूप में बरण करके तुम्हारी शक्ति अन्यास की शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेंगे ॥ ३२ ॥ पुत्र ! आश्रयकता पवनर अगम से छोड़ो और वेदों की निन्दनीय नहीं है । वेदज्ञान की छात्रक केवल अवस्था यज्ञपनक कारण भी नहीं है ॥ ३३ ॥

भीमश्रृंगयत्री कहते हैं—परीक्षित ! जब देवताओं ने इस प्रकार विचरूप से पुरोहितों वरुण की प्रार्थना की, तब परम तपस्वी विचरूप ने प्रसन्न होकर उनके अवगत शिव और मधुर शब्दों में कहा ॥ ३४ ॥

विचरूप कहता—पुरोहिताय वरुण इन्द्रवक्रो कीर्ति वरुणाय है । इसलिये धर्मशील मदात्म्यजने

कथं नु भद्रिधा नोथा लाकेरभियाधितम् ।

प्रत्यापमासतितुष्टिष्य स पञ्चमार्थ उच्यते ॥३५॥

अकिञ्चनानां हि धनं शिलाञ्छनं

तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रिय ।

कथं विगस नु कराम्पभीक्षराः

पांगधस इप्पति येन दुर्मति ॥३६॥

तथापि न प्रतिभूयां गुरुभिः प्रार्थितं क्रियम् ।

भवता प्रार्थितं सर्वं प्रार्णरर्थश्च साधये ॥३७॥

श्रीगुरु उवाच

तेभ्य एवं प्रतिभूय विश्वरूपा महातपा ।

पौराहित्यं पूतप्रकं परमेण ममाधिना ॥३८॥

सुरदिपां धिय गुणमाग्नस्तथापि विषया ।

आच्छिद्यानामहन्त्यायैष्यन्त्याविषया विभुः ॥३९॥

यथा गुण महत्ताया विन्देऽगुणमभूविभु ।

तां प्राह न महद्वाप विषयस्य उदारवीः ॥४०॥

उसकी निन्दा की है । किन्तु आप मेरे स्वामी हैं और लाकेबर होकर भी मुझसे उसके लिये प्रार्थना कर रहे हैं । ऐसी स्थिति में मेरे जैसा व्यक्ति मझा, आपलोगोंको थोड़ा जयाव कैसे दे सकता है । मैं तो आपलोगोंका सेवक हूँ । आपकी आज्ञाओंका पालन करना ही मेरा स्वार्थ है ॥ ३५ ॥ देशगण ! हम अकिञ्चन हैं । खेती का ज्ञानपर अथवा ज्ञानकी दृष्टि उठ जानपर उसमेंसे गिरे हुए कुछ दान जुन लाते हैं और उसीसे जपन देवज्ञाप तथा गुरुकाय सज्जन कर लते हैं । खोकावा ! हम प्रकार जब मरी जीविका चउ ही रही है, तब मैं पुण्डितकी निम्नीय श्रुति क्यों करूँ ? उससे तो पण्डित ही लोग प्रमत्त होते हैं, जिनकी बुद्धि विगस गयी है ॥ ३६ ॥ गो कर्म आपलोग मुझसे कराना चाहते हैं, वह निम्नीय है—किर भी मैं आपके कर्मसे मुँह नहीं मोड़ सकता, क्योंकि आपलोगोंकी मौँग ही मिलनी है । इसलिये आपलोगोंका मनारय मैं तन मन-जनसे पूरा करूँगा ॥ ३७ ॥

श्रीगुरु उवाच कहते हैं—परीक्षित । विश्वरूप बड़े तपस्वी थे । वेनाओंसे पत्नी प्रतिष्ठा करके उनका वरण करनेपर वे यही जगत् काय उनकी पुण्डित करने लगे ॥ ३८ ॥ यद्यपि गुणवापन ज्ञान भीतिबलसे अगुणोंकी सृजति सुरक्षित कर ली थी, किर भी समय विश्वरूपन वैष्णवी विद्याक प्रभावसे उनसे वह सृजति हीनकर दवराज इन्द्रका लिय ली ॥ ३९ ॥ राजन् ! जिस विद्यासे सुरक्षित दाक इन्तन अगुणोंकी सेनापर विजय प्राप्त की थी, उसका उदारबुद्धि विश्वरूपन ही उन्हे उदार विद्या था ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे भागवतस्य सप्तमोऽध्यायः

पण्डितस्य मन्त्रः ॥ ७ ॥

—०—०—०—

१. ७. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

अथाष्टमोऽध्यायः

नारायणकवचकथनपदेशः

राजीवाय

राजा परीक्षितेने पूछ—मगन् । देवराज इन्ने

जिससे सुरक्षित होकर शत्रुबलोंकी चतुरङ्गिणी सेनाको
खेठ-खेठमें—अनायास ही नीतकर त्रिज्येकीनी एव-
ज्यकीका उपमोग किया, आप उस नारायणकवचसे
मुझे सुनाइये और यह भी बतलाइये कि उन्होंने उससे
सुरक्षित होकर रणभूमिमें जिस प्रकार बाहुमन्त्रकी
शत्रुबलोंपर विजय प्राप्त की ॥ १ २ ॥

अर्जुन उवाच

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित । जब देवराजोंने
विश्वरूपको पुरोहित बना लिया, तब देवराज इन्नेके
प्रथम करनेपर विश्वरूपने उन्हें नारायणकवचकथनपदेश
किया । तुम एकाग्रचित्तसे उसका श्रवण करो ॥ १ ॥

विश्वरूप उवाच

विश्वरूपने कहा—देवराज इन्द्र । ममका अक्षर
उपस्थित होनेपर नारायणकवच धारण करके अपने
शरीरकी रक्षा कर लेनी चाहिये । उसकी विधि यह है
कि पहले हाथ-पैर चोकर आचमन करे, फिर हाथों
कुशाकी पवित्री धारण करके उत्तर मुँह बैठ जाय ।
इसके बाद कवचधारणपर्यन्त और कुछ न बोलनेका
निश्चय करके पवित्रतासे 'ॐ नमो नारायणाय' और
'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इत मन्त्रोंके द्वारा इत्यादि
ब्रह्मन्पास तथा अङ्गुष्ठादि-वस्त्रन्पास करे । पहले 'ॐ
नमो नारायणाय' इस अक्षर मन्त्रके 'ॐ' बाद बाठ
अक्षरोंका क्रमशः पैरो, घुटनों, जाँघों, पैर, हृदय,
कक्ष स्थल, मुख और सिरमें न्यास करे । अथवा पूर्वोक्त
मन्त्रके मन्त्रसे लेकर 'ॐ'कारपर्यन्त बाठ अक्षरोंका
सिरसे आरम्भ करके सन्धी बाठ अक्षरोंमें विपरीत क्रमसे
न्यास करे ॥ १-६ ॥ तदन्तर 'ॐ नमो भगवते
वासुदेवाय'—इस आद्याक्षर मन्त्रके 'ॐ' बाद बाठ
अक्षरोंका दायीं तर्जनीसे बायीं तर्जनीतक दोनों हाथकी
बाठ अङ्गुष्ठियों और दोनों अँगुठोंकी दो-दो गँठोंमें न्यास
करे ॥ ७ ॥ फिर 'ॐ विष्णवे नमः' इस मन्त्रक पहले
अक्षर 'ॐ' का हृदयमें 'वि' का प्रसरणमें,

यथा गुप्तः सहस्राक्षः सनाहान् रिपुसैनिकान् ।

क्रीडामिव विनिर्जित्य त्रिलोक्या पुण्ड्रजे भियम् ॥ १ ॥

भगवन्स्तन्मन्त्राख्यादि वर्म नारायणात्मकम् ।

यथाऽऽततापिनः शत्रून् येन गुप्तोऽज्ययन्मुचे ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच

इतः पुरोहितस्त्नाहो महन्ब्राह्मणपुण्ड्रजे ।

नारायणाख्यं वर्माहं तदिदंैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥

विश्वरूप उवाच

धौताङ्घ्रिपाभिराचम्य सपवित्रं तदङ्गुष्ठैः ।

कृतस्त्राङ्गकन्यासा मन्त्रान्यां वाग्वतः शृणि ॥ ४ ॥

नारायणमयं वर्म सप्तछेदं भयं वागते ।

पादयोर्जानुनोरुवोरुदरे हृदयभोरसि ॥ ५ ॥

मुखे शिखासुपूर्यादोक्षारादीनि विन्यसेत् ।

ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमयापि वा ॥ ६ ॥

कन्यासं ततः कुर्याच्च द्वादशाक्षरविधया ।

प्रणवादियकारान्तमनुस्वदुष्टपर्वसु ॥ ७ ॥

न्यसेद्दृष्टदयं आक्षारं विक्षारमनु मूर्धनि ।

पकार तु भ्रुवोर्मध्ये णकार शिखया दिशेत् ॥ ८ ॥

वेकारं नेत्रयोर्युज्ययाश्चकार सर्वसन्धिषु ।

मकारमस्तुष्टिद्वय मन्त्रमूर्तिर्मवेष्टु शुभ ॥ ९ ॥

सविसर्गं पठन्त सत् सर्वं हि विनिर्दिशेत् ।

ॐ त्रिष्णवे नम इति ॥ १० ॥

आत्मानपरमव्यायेद्ध्येयपशुक्तिमिर्युतम् ।

विषातेक्षत्तपोमूर्तिमिम मन्त्रमुदाहरेत् ॥११॥

ॐ हरिर्विदध्यामम सर्वरक्षां

न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगे ब्रह्मणे ।

दरारिचमासिगढपुष्पाप

पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहु ॥१२॥

बलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिं

यदागणभ्यो वरुणस्य पाशात् ।

व्यलेषु मायायदुषामनोऽज्यान्

त्रिविक्रमः खेडवतु त्रिसन्धः ॥१३॥

दुर्गेष्वाभ्यामिमुत्नादिषु प्रसुः

पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।

विमुञ्चतो यम्य महादृढास

दिग्ग विनेदुर्न्यपत्तय गर्भा ॥१४॥

रघत्वंसां मौष्यनि यद्वक्त्र

म्वदप्रयाश्नातधरा वराह ।

रामाऽट्टिहृष्वथ विप्रत्रासे

सुतस्मयः।ऽप्याशु भगताप्रजाऽप्यान्॥१५॥

मासुप्रथमादग्विनात् प्रमादा

धारायणः पातु नरथ दामान् ।

दशम्ययागादथ यागनाथ

पापाद्गुणः कपिलः समरभान् ॥१६॥

मनःकुमाराऽवतु कामदया

दयशापा मां पथि दषहन्नात् ।

‘अ’ का मौलिक बोधमें, ‘ण’ का चोटीमें ‘वे’ का दोनों
 मंत्रमें और ‘अ’ का शरीरको सब मौलिकमें न्यास करे।
 तदमन्तर ‘ॐ’ म अन्धाय फूट करके द्विगुण करे।
 इस प्रकार न्यास करनेसे इस विधिको ज्ञानन्यास पुरुष
 मन्त्रस्वरूप हो जाता है ॥ ८-१० ॥ इनका वाच समम
 एवम्, धम यदा, ऋषी, ज्ञान और दैर्घ्यसे परिपूर्ण
 इष्टदेव भगवान्मूला ध्याम करे और अपनेको भी तद्रूप
 हो चिन्तन करे। तत्पश्चात् त्रिपा, तेज और तप स्वर्ग्य
 इस कवचका पाठ करे—॥ ११ ॥

‘मगवान् धोहरि गल्लवकीकी पीठपर अपन धरण
यत्नक रखे हुए हैं । अगिमादि जाटों सिद्धिपौं ठमकी
सेवा कर रही हैं । आठ हाथोंमें शस्त्र, धक्र, ताल,
सडधार, गदा, बाण, धनुष और पाश (पना) धारण
किये हुए हैं । वे ही उच्चारस्वरूप प्रसु सब प्रकारसे,
सब ओरसे मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ मात्यमूर्ति मगवान्
जलक भीतर जलजन्तुओंसे और बरुणक पागसे मेरी रक्षा
करे । मायासे ब्रह्मचारीका रूप धारण करनेवाले बामनमगवान्
स्वतःपर और विश्वरूप भीतिविह्वलमगवान् आकाशमें मेरी
रक्षा करें ॥ १३ ॥ त्रिनक घोर आह्लाससे सब निशापें
गूँब उठी थी और गमवती दीव्यपतिपोक गम गिर गये
थे, वे शैत्य-मूषपनिपोक शत्रु मगवान् नृसिंह किम्ब,
जंगल, रणभूमि आदि विकट स्थानोंमें मेरी रक्षा
करें ॥ १४ ॥ अरनी दाहोंपर पृथ्वीक धारण करनेवाले
यक्षमूर्ति काहमगवान् मागने, पारुरामकी पक्षत्रोक
गिम्बोंपर और लक्ष्मगीक सहित मरतक बह भाग मगवान्
रामचन्द्र प्रवासक समय मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥ मगवान्
नातापग मारग-माहन जाति मयदूर अमिताभ और
मह प्रसरण प्रमाणसे मेरी रक्षा करें । अग्निप्र ना
गर्भमे, योगधर मगवान् पलायन योगर विनेमे और
त्रिगुणविपति मगवान् करिण बमब-भनेमे मेरी रक्षा
करें ॥ १६ ॥ पारमर्षि सन-गुप्तक काम-रुगे, हृदय-
मगवान् मागने बगल समय रत्नमूर्तिपोक मगवान्

द्वर्विर्षः पुरुषार्चनान्तरात्
कूर्पो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥१७॥

धन्वन्तरिर्मगवान् पात्वपध्यात्
इन्द्राद् भयारण्यो निक्षितात्मा ।

यमश्च लोकादवर्षाञ्जनान्तात्
धलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्र ॥१८॥

द्वैपायना भगवानप्रबोधात्
पुदस्तु पास्वदगणात् प्रमादात् ।

कल्किः कलः कालमलात् प्रैषात्
धर्माननायोरुक्तावतारः ॥१९॥

मो कशवां गदया प्रातरन्याद्
गोविन्द आसङ्गमाचक्षुः ।

नारायण प्राक् उदाचक्षुकि
र्मध्यन्दिने विष्णुरीन्द्रपाणिः ॥२०॥

देवाऽपराङ् मधुहोमधन्वा
माय त्रिधामावतु माधवो माय ।

दापे हृषीकेश उतार्धरात्र
निक्षीथ ष्काऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥

आदि न करनेके अपराधसे, देवर्षि नारद सेनापतिसे
और मगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकसे मेरी रक्षा
करें ॥ १७ ॥ भगवान् धन्वन्तरि कुण्डलसे, त्रिवेदि
मगवान् श्वपकदेव सुसुन्द स आदि भयानक इन्द्रसे, यह
मगवान् लोकापया"से, वलरामजी मनुष्यरक्षा करनेसे और
श्रीशेषजी क्रोधवशा नामक सपेकि गणसे मेरी रक्षा करें ॥ १८ ॥
मगवान् श्रीदुष्णरैपायन व्यासजी ब्रह्मानसे तथा पुदसे
पास्वदियोंसे और प्रमा"से मेरी रक्षा करें । कर्मरक्षाके
लिये मगवान् कल्किर घातण करनेवासे भगवान् कल्कि
पापबहुल कल्किलालके दोषोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १९ ॥
प्रात कल भगवान् केशव अपनी गदा लेकर, कुछ दिन
चद आमेपर भगवान् गोविन्द अपनी बाँसुरी लेकर,
रापहरके पहले मगवान् नारायण अपनी तीरग शक्ति
लेकर और रापहरक भगवान् विष्णु ककराज सुत्रांन
लेकर मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ तीसरे पहले मगवान्
मधुसूदन अपना प्रचण्ड धनुस् लेकर मेरी रक्षा करें ।
सायंकालमें ब्रह्मा आदि त्रिमूर्तिपारी माधव, सूर्यस्तके बाद
हृषीकेश, अर्धरात्रिके पूर्व तथा अर्धरात्रिके समय
जकेले मगवान् पद्मनाभ मेरी रक्षा करें ॥ २१ ॥

१ मा पा — तात्पर्यमात्र । २ मा पा — बुद्धि । ३ मा पा — मगवान् । ४ मा पा — उदाचक्षुः ।

० बागीर प्रसारके सेनापति माने गये हैं — १-नवाहीपर बहुर भववा रेरेमें लड़ाई पहनकर भीमनाथके
मन्दिरमें बना । २-रथपदा कम्पायमी आदि उल्लेख न करना या उनके वर्णन न करना । ३-श्रीदेविके वर्णन
कर प्रमाण न करना । ४-अशुचि अवस्थामें वर्णन करना । ५-एक हाथमें प्रमाण करना । ६-परिक्रमा करते समय
भगवान् जानने आकर कुछ न बहुर फिर परिक्रमा करना अवका केबल सामने ॥ परिक्रमा करते रहना । ७-भीमनाथ
के भी सामने सामने वे प्रसारकर देना । ८-भीमनाथके भीमिदरके सामने बाँते बुद्धिमें लेना करने उनमें हाथों
में देकर देना । ९-भीमनाथके भीमिदरके सामने लेना । १०-भीमनाथके भीमिदरके सामने मगवान् करना
११-भीमनाथके भीमिदरके सामने हाथ लेना । १२-भीमनाथके भीमिदरके सामने लेते लेना । १३-भीमनाथके
१४-भीमनाथके भीमिदरके सामने लेना । १५-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । १६-भीमनाथके भीमिदरके
सामने लेना । १७-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । १८-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । १९-भीमनाथके
सामने लेना । २०-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । २१-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । २२-भीमनाथके
सामने लेना । २३-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । २४-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । २५-भीमनाथके
सामने लेना । २६-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । २७-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । २८-भीमनाथके
सामने लेना । २९-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ३०-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ३१-भीमनाथके
सामने लेना । ३२-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ३३-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ३४-भीमनाथके
सामने लेना । ३५-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ३६-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ३७-भीमनाथके
सामने लेना । ३८-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ३९-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ४०-भीमनाथके
सामने लेना । ४१-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ४२-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ४३-भीमनाथके
सामने लेना । ४४-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ४५-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ४६-भीमनाथके
सामने लेना । ४७-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ४८-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ४९-भीमनाथके
सामने लेना । ५०-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ५१-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ५२-भीमनाथके
सामने लेना । ५३-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ५४-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ५५-भीमनाथके
सामने लेना । ५६-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ५७-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ५८-भीमनाथके
सामने लेना । ५९-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ६०-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ६१-भीमनाथके
सामने लेना । ६२-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ६३-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ६४-भीमनाथके
सामने लेना । ६५-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ६६-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ६७-भीमनाथके
सामने लेना । ६८-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ६९-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ७०-भीमनाथके
सामने लेना । ७१-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ७२-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ७३-भीमनाथके
सामने लेना । ७४-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ७५-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ७६-भीमनाथके
सामने लेना । ७७-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ७८-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ७९-भीमनाथके
सामने लेना । ८०-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ८१-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ८२-भीमनाथके
सामने लेना । ८३-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ८४-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ८५-भीमनाथके
सामने लेना । ८६-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ८७-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ८८-भीमनाथके
सामने लेना । ८९-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ९०-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ९१-भीमनाथके
सामने लेना । ९२-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ९३-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ९४-भीमनाथके
सामने लेना । ९५-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ९६-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ९७-भीमनाथके
सामने लेना । ९८-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । ९९-भीमनाथके भीमिदरके सामने लिखना । १००-भीमनाथके
सामने लेना ।

भीवत्सधामापररात्र ईश
प्रसूय इक्षोऽसिधरो जनार्दन ।
दामोदरोऽध्यादनुसंभ्य प्रभाते
विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥
चक्र युगान्तानलतिग्मनेमि
अमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम् ।
दन्दग्धि दन्दगम्परिसैन्यमाशु
कश्च यथा वातमन्वो हुताशः ॥२३॥
गदेऽश्वनिस्पर्शनविस्फुलिङ्ग
निष्पिण्डि निष्पिण्डयजितप्रियासि ।
कूष्माण्डवैनायकपक्षरक्षो
भूतग्रहाञ्चूर्णय चूर्णधारीन् ॥२४॥
त्वं यातुधानप्रमथप्रतमाष्ट
पिशाचविप्रग्रहघोरहृदीन् ।
दरन्द्र विद्राघय कृष्णधुरितो
भीमस्त्रनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥
स्व तिग्मधारसिवरारिसैन्य
भीमप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
चक्षुषि चर्मञ्छतचन्द्र छादय
द्विपामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥२६॥
यस्यां भयं ग्रहभ्याममृतं केतुभ्योनृम्य एव च ।
सरीसृपेभ्यामट्टिभ्यो मूतेभ्योऽहाम्प एव वा ॥२७॥
सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपाद्यक्षीर्तनात् ।
प्रयान्तु संक्षयमद्या ये न भयः प्रतीपका ॥२८॥
गरुडा भगवान् स्तावन्तोमल्लन्दामय प्रभुः ।
रक्षस्त्वयपकृन्धूम्यो विप्रवक्त्रेनः श्वनामभि ॥२९॥

रात्रिके पिठने प्रहरमें श्रीवत्सलाञ्छन श्रीहरि, उपाकात्मने
खड्गधारी भगवान् जनार्दन, सूर्योदयसे पूर्व श्रीगामोदर और
सम्पूर्ण सभ्याजोमें कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मरी रक्षा
करें ॥ २२ ॥

‘सुदर्शन । आपका आकर चक्र (रपक पक्षिने) की
तरह है । आपक कितारेका गण प्रलपकाकीन सन्निके समान
अत्यन्त तीव्र है । आप भगवान्की प्ररणासे सब ओर
गूँठे खते हैं । जैसे आग वायुकी सहायतासे सूख
घास-फूसको जला डालती है, वैसे ही आप हमारी शत्रु-
सेनाको शीघ्र-मे-शीघ्र जला दीजिये, जला दीजिये ॥ २३ ॥
कौमोदकी गता । आपसे छूटनेवाकी धिनगारियेका स्पर्श
वक्त्रके समान असह्य है । आप भगवान् अवितकी प्रिया
हैं और मैं उनका सेवक हूँ । इसलिये आप कूष्माण्ड,
विनायक, पक्ष, राक्षस, मृत और प्रेतादि प्रहोको कभीकुछ
छाड़िये, कुछ छाड़िये तथा मेरे शत्रुओंका चूर चूर कर
दीजिये ॥ २४ ॥ ‘गङ्गधरो । आप भगवान् श्रीकृष्णके
कँकनसे भयह्वर दाम्ब कत्रक मेरे शत्रुओंका गिला दहला
दीजिये एवं यातुधान, प्रमथ, प्रत, मातृका, पिशाच
तथा ब्रह्मराक्षस आदि मयावन प्राणियोंका यहाँसे भ्रष्ट
मगा दीजिये ॥ २५ ॥ भगवान्की प्यारी तन्वार । आप
की धार बहुत तीक्ष्ण है । आप भगवान्की प्ररणासे मेरे
शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दीजिये । भगवान्की प्यारा
ढाक । आपमें सबको चन्द्राक्षर मण्डल है । आप पाप
हटि पापहमा शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये और उन्हें
सगाक किये अंधा बना दीजिये ॥ २६ ॥

सूय आदि ग्रह, घूमने (पुच्छत तारे) आदि
कृत्, दुष्ट मनुष्य, सर्पाणि रेंगनाके जन्म दाडोवाल
हिंसक पशु, भूत-ग्रन् आदि तथा पापी प्राणियोंसे हमें
जो जो भय हो और जो-जो हमारे मङ्गल्य विरोधी हों—
वे सभी भगवान्की नाम रूप तथा आयुधोंपर ध्यान
करनेसे तत्काल नष्ट हो जायें ॥ २७ ॥ २८ ॥ घृहहृद रपत्तर
आदि सामर्थ्येय साधनों जिनकी स्तुति की जाती है, वे
वेदमूर्ति भगवान् गरुड और विष्णुनेनदी जलन नामाभ्यास
के प्रभावसे हमें सब प्रकारकी विरक्तियोंमें बचायें ॥ २९ ॥

सर्वापदम्भो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ।

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥

यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ।

मन्वेनानेन नः सर्वे यान्तु नाष्टसुपद्रवाः ॥३१॥

यथैकात्म्यानुभाषानां विकल्परहितं स्वयम् ।

भूषणायुधलिङ्गतस्या भवे क्षुद्धीः स्वमायया ॥३२॥

तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।

पातु सर्वै स्वरूपैर्न सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

विदिषु दिक्षुर्वचः समन्ता

दन्तर्बहिर्मगवान् नारसिंह ।

प्रहापयैस्तोकमयं स्वनेन

स्वतेजसा प्रस्तममस्ततेजा ॥३४॥

मघवन्निदमाख्यात वर्म नारायणात्मकम् ।

विजेष्मस्वजसा येन दक्षिणोऽसुरयूथपान् ॥३५॥

एतद् धारयमाणस्तु यं य पश्यति चक्षुषा ।

पदा वा सस्पृशेत् स्रग्ध साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥

न कुतश्चिद् मय तस्य विद्यां धारयतां भवत् ।

राजदस्युग्रहादिभ्योभ्याम्रादिभ्यश्च कर्हिंचित् ॥३७॥

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः ।

यागधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुभन्वनि ॥३८॥

तस्यापरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।

ययोचित्ररथ स्त्रीभिर्वृता यत्र द्विजघ्नः ॥३९॥

गगनान्पतत् मघ सविमानोऽवाकश्चिरात् ।

मया तत्सिन्धवघनादस्मीन्यादाय विप्रितः ।

श्रीहरिके नाम, रूप, बाहन, वायुध और श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचाये ॥ ३० ॥

जितना भी कार्य कथमा कारणरूप जगत् है, वह वास्तवमें भगवान् ही हैं—इस सत्यके प्रमाणसे हमारे सारे उपद्रव नष्ट हो जाय ॥ ३१ ॥ जो लोग ब्रह्म और आत्म की एकताका अनुभव कर चुके हैं, उनकी दृष्टिमें भगवान् का स्वरूप समस्त विकल्पों—झेँसे रहित है, फिर भी वे अपनी माया-शक्तिके द्वारा भूषण, वायुध और रूप नामक शक्तियोंको धारण करते हैं । यह बात निश्चितरूपसे सत्य है । इस कारण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा-सर्वत्र सब स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ जो अपने मनद्वारा वह्महासे सब लोगोंके मनको भगा देते हैं और अपने तेजसे सबका तेज प्रसृजते हैं, वे भगवान् तृप्तिद दिशा-निर्दिष्टाने, नीचे ऊपर, बाहर-भीतर—सब ओर हमारी रक्षा करें ॥ ३३ ॥

देवराज इन्द्र ! मैंने तुम्हें यह मारापणकथन सुना दिया । इस कथनसे तुम अपनेको सुरक्षित कर लो । वस, फिर तुम अपनायास ही सब दैत्य-भूषणपतियोंको जीत लो ॥ ३५ ॥ इस नारापणकथनका धारण करनेवाला पुरुष जिसको भी अपने मनमें देख लेता कथमा पैरसे छू देता है, वह तत्काल समस्त मर्त्योंसे मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जो इस विष्णुकी विद्याको धारण कर लेता है, उसे यज्ञ, ब्राह्म, प्रत-विशाखादि और बाघ आदि द्विजक जीवोंसे कभी किसी प्रकारका मय नहीं होता ॥ ३७ ॥ देवराज ! प्राचीन कालकी बात है, एक वीरशिकारी ब्रम्हज्जन इस विद्याको धारण करनेके योगधारणसे अपना शरीर महामुक्तिमें त्याग दिया ॥ ३८ ॥ जहाँ उस ब्राह्मणका शरीर पड़ा था, उसका ऊपरसे एक दिन गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी शक्तियोंके साथ विमानपर बैठकर निकल ॥ ३९ ॥ वहाँ जाते ही वे नीचेकी ओर सिर किये विमानसहित आकाशसे पृथ्वी पर गिर पड़े । इस घटनासे उनका आश्चर्य सीमा नहीं । अब उन्हें बालकिष्क्यमुनियोंने बतलाया कि यह मारापण कथन धारण करनेका प्रमाण है, तब उन्होंने उस ब्राह्मण देवताकी इच्छाओं से जाकर पूर्ववादिनी सरस्वती मन्त्रों

प्राप्त्यप्राचीसरस्वत्यां आस्वाधामस्वमन्वगात् ॥४०॥

श्रीगुरु उवाच

य इदं शृणुयात् काले यो धारयति वाद्यतः ।

त नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥४१॥

एतां विद्यामधिगता विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।

त्रैलोक्यलक्ष्मीं शुद्धजे विनिजित्य मुचेऽसुरान् ॥४२॥

प्रशस्ति कर दिया और फिर स्नान करके वे अपने
अपकरो गये ॥ ४० ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जो पुरुष इस
नारायणकथनको समयपर सुनता है और जो आदर
पूषक इसे धारण करता है उसके सामन सभी प्राणी
आदरसे झुक जाते हैं और वह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त
हो जाता है ॥ ४१ ॥ परीक्षित ! शतक्रतु इन्द्रने आध्याय
विश्वरूपकीसे यह वैष्णवी विद्या प्राप्त करके रणभूमिमें
असुरोंको जीत लिया और वे त्रैलोक्यलक्ष्मीका उपभोग करने
लगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहन्स्यो संहितायां पष्ठस्कन्धे नारायणवर्म

कथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

विश्वरूपका वधं शृत्वासुरग्राह्यं देयतामोक्षं हार और भगवान्की प्रण्यास
देयतामोक्षं इषीषि श्रुतिके पास जाना

श्रीगुरु उवाच

तस्मान्न विश्वरूपस्य शिरांसि श्रीणि भारत ।

सामपीथं सुरापीथमस्मादमिति शुभम् ॥ १ ॥

म व बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्यते ।

अवदद् यस्य पितरा दद्याः सप्रभयं नृप ॥ २ ॥

स पथं हि दत्तं भार्गवं पराश्रमसुरान् प्रति ।

यजमानाऽवदद् भार्गवं मातस्नेहवशानुग ॥ ३ ॥

तद् दधत्तलनं तस्य धर्मायाक सुरेश्वरः ।

आलस्य तरमा भीतमन्तरीपाण्यष्टिउन्नुत्पा ॥४॥

मामपीथं तु यन् तस्य शिरां आमान् कपिउत्तनः ।

कन्तिशु सुगपीथमस्मादं यन् म तिमिति ॥ ५ ॥

प्रभदप्यामञ्जलिना जज्ञाह यदपाश्वर ।

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! हमने सुना है
कि विश्वरूपके तीन सिर थे । वे एक मुँहसे सामरस
तथा दूसरेसे सुरा पीते थे और तीसरेसे जन खाते
थे ॥ १ ॥ उनका रिता लय आदि बारह आदित्य दत्तता
थे, इसलिये वे पक्षक समय प्रत्यभक्त्यमें ऊँचे स्तरसे
शोककर बड़ विनयक साथ देवताओंको आहूति देते
थे ॥ २ ॥ साथ ही वे शिर-उत्पन्न असुरोंकी भी आहूति
दिया करते थे । उनकी माता असुर-कुम्भी थी, इसलिये
वे मृत्युस्नेहक बशीमूत होकर यह करते समय उस प्रकार
असुरोंकी मांग पूर्णवाया करते थे ॥ ३ ॥ शत्रुनाश इन्द्रन
दत्ता कि हम प्रकार व दत्तताओंका अपराध और भयकी
आशमें कपट कर रहे हैं । हमने इन्द्र हर गये और
क्रोधमें भरकर उन्होंने बड़ी पुत्रीमें उनका तीनों सिर
काट डिये ॥ ४ ॥ विश्वरूपका सामरस पीनशाग सिर
परीक्षा, सुगाना कर्मशाग गीत्या और जन गानशाग
तीसरे हो गया ॥ ५ ॥ इन्द्र काहल ना विश्वरूपका कपसे
लक्ष्मी हुई दृष्ट्याका दूर कर मकल थे परन्तु उन्होंने ऐसा
करना उचित न समझा, वह दास काइकर उभर गीत्या कर

सवत्सरान्ते तदर्थं भूतानां स विश्वद्वये ।

भूम्यम्बुद्रुमयोपिद्वम्यमृतुर्धा व्यमन्नदरिः ॥ ६ ॥

भूमिस्तुरीय वप्राह स्वातपूरवरेण वै ।

ईरिण ब्रह्महत्याया रूप भूमौ प्रदृश्यते ॥ ७ ॥

तुयं छेदविरादेण वरेण जगद्भुर्माः ।

तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥ ८ ॥

अमृतकामवरेणाहस्तुरीयं जगद्भुः स्त्रियः ।

रत्नारूपेण तास्वहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥ ९ ॥

द्रुम्यभूयांवरणापस्तुरीयं जगद्भुर्मलम् ।

तासु धृदुधुदफेनाभ्यां दृष्ट तैद्वरति धिपन ॥ १० ॥

देवपुत्रस्तवस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय श्रयवे ।

इन्द्रशत्रा विवर्धस्व माधिर जहि विदिपम् ॥ ११ ॥

प्रधान्याहायंवरनादुत्थिता धारदर्शन ।

कृतान्त इव लाकानां युगान्तममय यथा ॥ १२ ॥

निष्पन्निवर्धमानं तमिपुमायं दिन दिन ।

दम्भनैतप्रतापान् मत्स्याग्रानीकवर्धयाम् ॥ १३ ॥

तमनाग्रनिगान्मधुं मत्स्यादाकीर्णनाशनम् ॥ १४ ॥

श्रिया तथा एक बधतक उससे छूटनेका कोई उपाय नहीं किया । तदनन्तर सब लोगोंके सामने अपनी कुछ प्रश्र करकेके छिये उन्होंने अपनी ब्रह्महत्याको बार हिस्सेमें बाँटकर पृथ्वी, जल, वायु और सियोंको दे दिया ॥ ६ ॥ परीक्षित । पृथ्वीने बहलैमें यह वरदान लेकर कि जहाँ जहाँ गया होग्य, वह समयपर अपने-आप भर आसमन, फिर भी ब्रह्महत्याका चतुर्पाश स्वीकार कर लिया । वही ब्रह्महत्या पृथ्वीमें कहाँ-कहाँ ऊसरके रूपमें दिखायी पड़ती है ॥ ७ ॥ दूसरा चतुर्पाश जहाँने किया । उन्हें यह बर मिला कि उनका कोई हिस्सा कट जानेपर फिर जन जाकर । उनमें जब भी गोंके रूपमें ब्रह्महत्या दिखायी पड़ती है ॥ ८ ॥ छियोंने यह बर पाकर कि वे स्वदा पुरुष सहास कर सकें, ब्रह्महत्याका तीसरा चतुर्पाश स्वीकार किया । उनकी ब्रह्महत्या प्रत्येक महीनेमें रक्तके रूपमें दिखायी पड़ती है ॥ ९ ॥ अकने यह बर पाकर कि स्वर्ध करते रहनपर भी निर्भर आदिके रूपमें तुम्हारी बड़ती ही होती रहगी, ब्रह्महत्याका चौथा चतुर्पाश स्वीकार किया । फेन, पुद्गुद आदिके रूपमें वही ब्रह्महत्या दिखायी पड़ती है । अतएव मनुष्य उसे हटाकर जल ग्रहण किया करते हैं ॥ १० ॥

विश्वरूपकी मृत्युके बाद उनका पिता स्वर्ग में शत्रो । तुम्हारी अमिच्छा हो और शीघ्र-से-शीघ्र तुम करने शत्रुको मार डालो—इस मन्त्रसे इन्द्रका शत्रु उत्पन्न करनेके उद्ये हवन करते छग ॥ ११ ॥ यह समस्त होमपर अन्वाहाय-यजन नामक अग्नि (दक्षिणाग्नि) से एक बड़ा भयावना देव प्रकट हुआ । वह ऐसा जन पड़ता था, माना लाकरकेका नाश करनेक शिव प्रलय करमीन निकाल कर ही प्रकट हुआ हो ॥ १२ ॥ परीक्षित । वह प्रतिष्ठि अपने शरीरक सब छोर बगल बराबर बढ़ आया करता था । वह जैसे हुए पहाड़के समान काया और बढ़ कीच-कीच था । उगल शरीर मेमे मत्स्याकासीन बाल्मोव समान शीति निकली रहती थी ॥ १३ ॥ उगल गिरने का और गरी-भूत तपे हुए तीवरेक समान पाउ रहता तथा मर जाकर

देदीप्यमाने त्रिशिखे झूल आरोप्य रोदसी ।

नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयत्त पदा महीम् ॥१५॥

दरीगम्भीरवक्त्रेण पिपता च नभस्तलम् ।

लिङ्गता विद्वयर्थाणि प्रमत्ता भुवनत्रयम् ॥१६॥

महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः ।

विभ्रस्ता दुद्रुबुल्लोका धीस्य सर्वे दिशो दृष्ट ॥१७॥

वेनाहता इमे लोकस्त्वमसा त्वाद्भूमतिना ।

स वै भुव इति प्रोक्तः पापः परमदारुण ॥१८॥

सं निबभ्रुरभिहृत्य सगणा विभुर्धर्षभा ।

स्वै स्वैर्दिभ्यास्त्रयस्त्रयैः सोऽग्रसत्त्वानि कुत्स्नयः १०

तवस्ते विस्मिताः सर्वे विपण्या प्रस्तवेभ्यः ।

प्रत्यञ्चमादिपुरुषमुपवत्स्युः समादिता ॥२०॥

देवा उचुः

वाय्वम्भराग्न्यश्वितयस्त्रिलोका

ब्रह्मादया ये धयमुद्रिखन्त ।

हराम यस्मै षलिमन्तकोऽसी

विभेति यस्मादरणं ततो नः ॥ २१ ॥

गतिस्मिता स परिपूर्णकामं

स्वर्नैव लामेन सम प्रदान्तम् ।

विनापमर्पत्यपर हि बालिष्ठ

मलानुलेनाविठितर्ति सिधुम् ॥२२॥

वस्त्राभ्युज्ज्वल जगती स्यनाथ

मनुर्वथाऽऽवप्य तवार दुर्गम् ।

सूर्यके समान प्रचण्ड थे ॥ १४ ॥ चमकते हुए तीन नोकोवाले त्रिशूलको लेकर जब वह माचने, चिछाने और झूलने लगता था, उस समय पृथ्वी काँप उठनी थी और ऐसा जान पड़ता था कि उस त्रिशूलपर उसने अन्तरिक्षको उठा रक्खा है ॥ १५ ॥ वह बार-बार जैभाई करता था । इससे जब उसका कन्दराके समान गम्भीर मुँह खुल जाता, तब जान पड़ता कि वह सारे आकाश को भी जायगा, जमीनसे सारे नक्षत्रोंको चाट जायगा और अपनी विशाल एवं विकराल दाढ़ीवाले मुँहसे तीनों लोकोंको निगल जायगा । उसके मयावने रूपको देखकर सब लोग डर गये और इधर-उधर भागने लगे ॥ १६-१७ ॥

परीक्षित ! त्वष्टाके तमोगुणी पुत्रने सारे लोकोंको घेर लिया था । इसीसे उस पापी और अल्पान्त क्रूर पुरुषका नाम वृत्रासुर पड़ा ॥ १८ ॥ बड़े-बड़े देवता अपने-अपने अनुयायियोंके सहित एक साथ ही उसपर दूट पड़े तथा अपने-अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे । परन्तु वृत्रासुर उनके मारे अस्त्र-शस्त्रोंका निगल गया ॥ १९ ॥ अब तो देवताओंके आश्चर्यकी सीमा न रही । उनका प्रभाव जाता रहा । वे सब-कुछ दीन-हीन और उदास हो गये तथा एकप्र विचलते अपने हृदयमें विराजमान आदिपुरुष धीनारायणकी शरणमें गये ॥ २० ॥

वेचतामोने भगवान्से प्रार्थना की—वायु, आकाश, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों मूल, इनने बने हुए तीनों लोक, उनका अधिपति ब्रह्मादि तथा हम सब दैवता जिस कष्टसे डरकर उसे पूजा-मान्यकी भी भेंट दिया करते हैं वही कष्ट भगवान्में भयभीत रहता है । इसलिये अब भगवान् ही हमारे रक्षक हैं ॥ २१ ॥ प्रमा । आपके लिये कोई नहीं बात म हानिके कारण कुछ भी दण्डकर आप विस्मित नहीं होते । आप अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे ही सर्वथा पूर्णपाम, सम एवं शान्त हैं । जो आपको यादकर किसी दूसरेकी शरण लता है, वह मूर्ख है । वह मनो बुद्धेकी पूँछ पकड़कर समुद्र पार करता चाहता है ॥ २२ ॥ वेचस्वन् मनु रिच्छे कस्यके अन्तर्गते त्रिमके विगाड मीगमें पृथ्वीरूप

स एव नस्त्याग्रभयाद् दुरन्तात्

प्रायाऽऽभितान् वारिचरोऽपि नूनम् ॥ २३ ॥

पुरा स्वयम्भूरपि संयमाम्भ

स्पृदीर्घातामिरवैः कराल ।

पक्षोऽरविन्द्यात् पतितस्ततार

तस्माद् भयाद् येन मनोऽस्तु पार ॥ २४ ॥

य एष ईशो निजमायया न

ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ।

वर्षं न यस्यापि पुर समीह्यतः

पश्याम लिङ्गपृथगोक्तमानिनः ॥ २५ ॥

यो नः सपत्नैर्मृष्टमर्चमानान्

देवपितृर्विबुधन्पु नित्य एव ।

कृतावतारस्तनुभि स्वमायया

कृत्वाऽऽत्मसात पाति युगे युगे च ॥ २६ ॥

तमेव देवं वयमात्मदेवत

पर प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ।

ब्रह्मसर्वं शरणं शरणं

स्वानां स नो भासति श्र महात्मा ॥ २७ ॥

भीर्तुं उवाच

इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ।

प्रतीक्ष्या दिव्यमूढाविः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥

आत्मतुल्यं पादशमिर्विना भीवत्सकौस्तुभौ ।

पर्युपासितमुभितरदम्बुरुहेक्षणम् ॥ २९ ॥

नीलाकरो भोजकर जनायाम् ही प्रणयकाशीन सङ्गते
बध गये, वे ही मात्स्यमगवान् इम शरणागतोंको हुनामुते
द्वारा उपस्थित किये हुए दुस्तर मयस व्यस्य बधाये ॥ २३ ॥
प्राचीन कालमें प्रचण्ड पवनय थपेकोसे उठी हुईं उल्लस
तरङ्गोंकी गजमाके कारण प्रह्लादी मगवान् के नाभिकमये
अल्पस भयानक प्रलयकाशीन जलमें गिर पड़ गे । पत्नी
वे असहाय थे, तथापि प्रिनकी हृयासे य उस जितलसे
बध सके वे ही मगवान् हमें इस सङ्गसे पर
करें ॥ २४ ॥ उन्हीं प्रमुने अतिथीम होनेपर भी अपनी
मायासे हमारी रचना की और उन्हींके अनुग्रहसे हमका
सुधिक्रयक सञ्चालन करते हैं । यद्यपि वे हमसे छाने
ही सब प्रकारकी चेष्टाएँ कर-करा रहे हैं, तथापि हम
स्वतन्त्र ईश्वर हैं—अपने इस अविमानके कारण हमसे
उनके सकलको देख नहीं पाते ॥ २५ ॥ वे प्रमु जब
देखने हैं कि देवता अपन शत्रुओंसे बहुत पीड़ित हो
रहे हैं, तब वे वास्तवमें निर्मिकर रहनेपर भी अपनी
मायाका आशय लेकर देवता, श्रुति, पञ्च-पक्षी और
मनुष्यादि योनियोंमें अवतार लेते हैं तथा युग-युगमें हमें
अपना सुप्रसन्न हमारी रक्षा करते हैं ॥ २६ ॥ वे ही
सबक आत्मा और परमात्मा देव हैं । वे ही प्रकृति
और पुरुषरूपसे विश्वके कारण हैं । वे विश्वसे प्रक
भी हैं और विश्वरूप भी हैं । हम सब उन्हीं शरणागत-
वासक मगवान् बीहरिकी शरण प्रणम करते हैं । उन्हीं
शिरोगणि प्रमु अवश्य ही अपने निजजन हम देवताओंका
कल्याण करेंगे ॥ २७ ॥

भीर्तुं उवाच—महाराज ! जब देवताओं
ने इस प्रकार मगवान् की स्तुति की, तब स्वयं शङ्ख
चक्र-गदा-पञ्चपात्री मगवान् उनके सामने पश्चिमकी ओर
(अन्तर्देशमें) प्रकट हुए ॥ २८ ॥ मगवान् के नेत्र
शरत्काशीन कमलके समान खिले हुए थे । उनके साथ
सोह्य पार्श्व उनके सेवामें श्रेष्ठ हुए थे । वे देखनेमें
सब प्रकारसे मगवान् के समान ही थे । केवल उनके
बध स्वप्नपर शोकसकल बिह्व और गलेमें कीस्तुममणि

दृष्ट तमवनौ सर्व ईक्षणाहादविह्वला ।

दण्डवत् पतिता राजभ्रूनेरुत्थाय तुष्टुष्टुः ॥३०॥

देवा ऊचुः

नमस्ते यद्वधीर्याय वयसे उत ते नम ।

नमस्ते हस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥३१॥

यत् ते गतीनां विसृणामीशितु परम पदम् ।

नार्वाचीनो विसर्गस्य चातर्वेदितुमर्हति ॥३२॥

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन् नारायण वासुदेवादि

पुरुष महापुरुष महाबुधाय परममङ्गल परमकल्याण

परमकारुणिक केवल जगदाधार लोककृपाय सर्वेश्वर

लक्ष्मीनाथ परमहसपरिग्राहक परमेणात्मयोग

समाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहस्यधर्मणोऽ

घान्तितमः कपाटद्वारे चिच्छिन्नावृत आत्मलोकैः स्वयं

सुखलब्धनिबन्धुनातुमन्वा भवान् ॥३३॥

दुरवस्था इव तवाम विहारयोगा यदक्षरणाऽधरीर

इदमनवेष्टिताम्रस्मयण आत्मर्तवाविक्रियमाणेन

सगुणमगुणः सूत्रसि पासि हरमि ॥ ३४ ॥

अथ तत्र भवान् किं दशदशदिह गुणविसर्गपतितः

पारतन्त्र्येण स्वकृतदुःखलादुःख फलमुपाददन्त्या-

नहीं थी ॥ २९ ॥ परीक्षित 'भगवान्' का दर्शन पाकर सभी देवता आनन्दसे विह्वल हो गये । उन ज्यों-ज्यों धरतीपर छोटकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और फिर धीरे धीरे उठकर वे भगवान् की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

देवताओं ने कहा—भगवन् ! यज्ञमें स्वर्गदि देनेकी शक्ति तथा उनके फलकी सीमा निश्चित करनेवाले काल भी आप ही हैं । यज्ञमें ब्रह्म ब्रह्मण्य देखनेको आप ब्रह्मसे ठीक-मिथ कर बाँधते हैं । इसलिये आपके नामोंकी कोई सीमा नहीं है । हम आपके बार-बार ममस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥ बिधात ! सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंके अनुसार जो उत्तम, मध्यम और निम्न गणियाँ प्राप्त होती हैं, उनके नियामक आप ही हैं । आपके परमपदका वास्तविक स्वरूप इस कार्यरूप जगत्का कोई आधुनिक प्राणी नहीं जान सकता ॥ ३२ ॥

भगवन् ! नारायण ! वासुदेव ! आप आदिपुरुष (जगत्के परम कारण) और महापुरुष (पुरुषोत्तम) हैं । आपकी महिमा असीम है । आप परम मङ्गलमय, परम कल्याणकरूप और परम दयालु हैं । आप ही सारे जगत्का आधार एवं अद्वितीय हैं, कलत्र आप ही सारे जगत्का कामी हैं । आप सर्वेश्वर हैं तथा सौन्दर्य और मृदुलताकी अविश्रांती लक्ष्मीके परम पति हैं । प्रभो ! परमहंस परिश्रवक विरक्त महात्मा जब आत्मसम्यक् परम समाधिसे मञ्जीमूर्ति आपका चिन्तन करते हैं, तब उनके शुद्ध हृदयमें परमहंसोंके धर्म वास्तविक भगवद्मन्त्रनका उदय होता है । इससे उनके हृदयसे ब्रह्मज्ञानरूप त्रिषुख सुख जात है और उनके आत्ममोक्षमें आप आत्मानन्दके रूपमें बिना किसी आवरणक प्रकट हो जाते हैं और वे आपका अनुभव करके निहत्त हो जाते हैं । हम आपके बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ भगवन् ! आपकी स्तुतिकर रहस्य जानना बड़ा ही कठिन है । क्योंकि आप बिना किसी आशय और प्राकृत दृष्टिक, हमज्योंके सहयोगकी अपेक्षा न करके, निगुण और निर्विकार ज्ञानपर भी व्यर्थ ही इस सगुण जगत्की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं ॥ ३४ ॥ भगवन् ! हमजों यह जान भी टीक-टीक नहीं मगर जान कि सृष्टिकर्ममें आप स्वयं ही किसी व्यक्तिक समान गुणोंके कार्यरूप हम जगत्में प्रकट हो जाते हैं और

होस्विदत्माराम उपसमन्वीलः समस्तसदर्शन उदास्त

इति इ पत्र न विदामः ॥ ३५ ॥ न हि विरोध

उभय भगवत्स्पर्शपरिगणितगुणगणे ईश्वरेऽनघगात्र

माहात्म्येऽर्धाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणभास

कृतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरमाभयदुरवग्रहादिनां वि

वादानवसर उपरससमस्तमायामये कवल एवात्म-

मायामन्तर्भाष्य को न्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूप

द्रयाभावात् ॥ ३६ ॥ समविषममतीनां मत

मनुमरसि यथा रज्जुबन्धः सर्पादिभिषान् ॥ ३७ ॥

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः

सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मन्मातृ सर्व

गुणाभासापलक्षित एक एव पर्यवशेषित ॥ ३८ ॥

अथ इ वाच तव महिमाभूतससमुद्रविप्रभा सैकदश

कमेकि अधीन होकर अपने किये कष्टे-भुरे कर्मों
फल भोगते हैं, अथवा आप आत्मभाराम, शान्तस्वभाव
सबसे उदासीन—साक्षीमात्र रहते हैं तथा सबको सम
दखते हैं ॥ ३५ ॥ हम तो यह समझते हैं कि या
आपमें ये दोनों बातें रहें तो भी कष्ट विरोध नहीं है
क्योंकि आप स्वयं भगवान् हैं । आपके गुण अनन्ति
हैं, महिमा अग्राह्य है और आप सर्वशक्तिमान् हैं
आधुनिक लोग अनेकों प्रकारके विकल्प, विलोक, विचार
छूटे प्रमाण और कुतर्कपूर्ण वाक्योंका व्यवहार कर
अपने हृदयको दूषित कर लेते हैं और यही कारण
कि वे दुराग्रही हो जाते हैं । आपमें उनके वाद-विवाद
छिये अनुसर ही नहीं है । आपका वास्तविक स्वरूप
समस्त मायामय पदार्थोंसे परे, केवल है । जब तक
उसीमें अपनी मायाको छिपा लेते हैं, तब ऐसी कौन-सी
बात है ना आपमें नहीं है। सकती ? इसलिये वह
साधारण पुरुषोंके समान कर्ता-भोक्ता भी हो सकते ।
और महापुरुषोंके समान उदासीन भी । इसका कला
यह है कि न तो आपमें कर्तृत्व प्रोक्त है और न
उपासीमता ही । आप तो दोनोंसे विवर्धन, अनिर्वचनी
हैं ॥ ३६ ॥ जैसे एक ही रस्सीका टुकड़ा अनेक
पुरुषोंका सप, माया, वारा आदिके रूपमें प्रतीत हो
है, वस्तु ज्ञानस्वरूपके रस्सीके रूपमें,—जैसे ही वह
भी धान्तमुद्रिवालेको कर्ता, भोक्ता आदि अनेक रूपों
दीकते हैं और ज्ञानीको सुद सच्चिदानन्दके रूपमें
अप्य समीची बुद्धिका अनुसरण करते हैं ॥ ३७ ॥
विचारपूर्वक देखनेसे माक्षम होता है कि आप ही समस्त
वस्तुओंमें वस्तुत्वके रूपसे विराजमान हैं । सबके स्वाम
हैं और सम्पूर्ण जगत्के कारण ब्रह्मा प्रकृति आदि
भी कारण हैं । आप सबके अन्तर्यामी अन्तरात्मा हैं
इसलिये जगत्में जितने भी गुण-गुण प्रतीत हो रहे हैं
उन सबकी प्रतीतियों आपने अभिष्टानस्वरूप आपका ही
सङ्केत करती हैं और श्रुतियोंमें समस्त पदार्थोंका नियम
करके अन्तमें नियंत्रकी अवधिके रूपमें कलक आपका
ही शेष रक्ता है ॥ ३८ ॥ मधुसूदन । आपकी अप्रम
मयी महिमा रसका अमृत समुद्र है । उसके मने-ने
सीकरका भी, अधिक नहीं—एक बार भी स्थापना

छीदया ममनमि निप्यन्दमानानवरतमुखेन वि
 स्मारितदृष्टव्यविषयसुखेष्टाभासा रमभागवता
 एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि
 नितरां निरन्तरं निर्द्वन्द्वमनसः कथमुह वा पठे मधु
 मधन पुनः स्वार्थकुललाक्षात्मप्रियसुहृदः साधव
 स्त्वध्वरणाभ्युज्जानुसेवां विस्तृष्यन्ति न यत्र पुनरर्थ
 संसारपर्यावर्तः ॥३९॥ त्रिभुवनारमभवन त्रिविक्रम
 त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तत्रैव विभूतयो
 दिविषदनुवादयथापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति
 स्वात्ममामया सुरनरभृगमिधितजलचराकृतिभिर्बधा
 परार्थे दण्डे दण्डधर दधर्ध पथमेनेमपि भगवज्जहि
 स्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥४०॥ अस्माकं साधकानां
 तत्र नैतानां तत्र तस्माद तत्र धरणनलिनयुगल-
 वधानानुपददृश्यनिगहानां मलिकविधरणनास्मसात्
 कृतानामनुकम्पानुरागविविधचरित्रिश्चिरस्मिताय

लेनसे हृदयमें निप्य निरन्तर परमानन्दकी धारा बहने
 लगती है । उसका कारण अथवा जगत्में विषय-भोगोंके
 जितन भी लेशमात्र, प्रतीतिमात्र सुखका अनुभव हुआ
 है या परलोक आदिके विषय सुना गया है, वह सब
 कष्ट-सर्व विनाशने मुखा दिया है, समस्त प्राणिमोंके परम
 प्रियमन, हितधी, सुहृद् और सर्वार्थ आप ऐश्वर्य-निधि
 परमेश्वरमें जा अपने मनको मित्य-निरन्तर लगाये रखते
 और आपके चिन्तनका ॥ सुख छूटते रहते हैं, वे
 आपके अनन्य प्रेमी परम मत्त पुरुष ही अपने स्वार्थ
 और प्रमार्थमें निपुण हैं । मधुसूदन ! आपके व प्यारे
 और सुहृद् भक्तजन मया, आपके चरणकमलोंका सेवन
 कैसे त्याग सकते हैं, जिससे अम-मृत्युका संसारके
 चक्रसे सत्के छिये मुक्तारा मिल जाता है ॥ ३९ ॥
 प्रभा ! आप त्रिलोकीका आत्मा और आश्रय हैं ।
 आपन अपने तीन पणोंसे सारे जगत्को आप छिया या
 और आप ही तीनों लोकोंके सञ्चायक हैं । आपकी
 महिमा त्रिलोकीका मन हरण करनेवाली है । इसमें सन्देह
 नहीं कि दैत्य, दानव आदि असुर भी आपकी ही
 विमुखी हैं । तथापि यह उनकी वस्तुतः समय नहीं
 है—यह तोचकर आप अपनी योगमायासे देवता,
 मनुष्य, पशु, सुसिंह आदि मिथित और मत्स्य आदि
 जलचरोंके रूपमें अवतार ग्रहण करते और
 उनके अपराधके अनुसार उन्हें दण्ड देते हैं ।
 दण्डकारी प्रभो ! यदि जैचे तो आप उन्हें असुरों-
 क समान इस दुःसागरका भी नाश कर डालिये ॥ ४० ॥
 मगधन् ! आप हमारे पिता, पितामह—
 सब कुछ हैं । हम आपको निबजन हैं और निरन्तर
 आपके सामने सिर झुकाये रहते हैं । आपके चरण-
 कमलोंका ध्यान करने-परत हमारा हृदय उन्हींके
 प्रमदधनसे बँध गया है । आपन हमारे सामन अपना
 विषयगुणोंसे युक्त साक्षर विभूत प्रकट करके हमें
 लयनाया है । इसलिये प्रभा ! हम आपसे यह प्रार्थना
 करते हैं कि आप अपनी दयावर्मी, विशाल, सुन्दर और
 शीतल मुमग्धमयुक्त चित्तमें तथा आपन मुग्धचित्तसे

लोकन विगलितमधुरसुखरसामृतकलया चान्तस्ताप-
 मनचार्हसि क्षमयितुम् ॥४१॥ अथ भगवत्स्वा
 साभिरसिलजगदुत्पत्तिमितिलयनिमिषायमान
 दिव्यमायाविनादस्ससकलजीवनिकायानामन्तर्द्वयेषु
 घटिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च
 यथादेशकालदेहात्मनानविशेषं तदुपादानोपलम्भक-
 तयानुभवतः सर्वप्रत्ययमाक्षिण आकाशधरीरस्य
 साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थ
 विज्ञेयो विज्ञापनीयः स्याद् विस्तुलिङ्गादिभिरिव
 हिरण्यरेतसः ॥४२॥ अत एव स्वयं तदुपकल्पया-
 स्माकं भगवतः परमगुणस्तव चरणक्षतपलाशच्छायां
 विविधवृजिनसंसारपरिभ्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं
 यत्कामेनापसादिताः ॥४३॥

अथा ईश ब्रह्म त्वाष्ट्रं प्रसन्त भुवनत्रयम् ।
 प्रस्तानि येन नः कृष्ण तेनां सखायुधानि च ॥४४॥

हमाय दहनिलयाय निरीक्षकाय

कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपग्रमाय ।

मत्प्रव्रहाय भवपापनिव्राधमाप्ता

वन्त परीष्टगवये हरये नमस्ते ॥४५॥

१ मा पा — मुरल्यग्रमा ।

उपकते हुए मनोहर वाणीरूप समुत्तु सुधान्त्रिभुजे
 हमारे हृदयका ताप शान्त करीजिये, हमारे अन्तरही
 जलन बुझाये ॥ ४१ ॥ प्रभो ! जिस प्रकार अक्षिणी
 ही अंशमूत विनगारियों का अग्निपत्रे प्रकाशित
 करनेमें असमर्थ हैं, वैसे ही हम भी आपके कृपा
 कीर्ति भी स्वार्थ-परमार्थ निवेदन करनेमें असमर्थ हैं ।
 आपसे भय, कङ्कना ही क्या है ! क्योंकि आप
 सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाली
 दिव्य मायाके साथ विनोद करते रहते हैं तथा सम्स्त
 जीवोंके अन्तःकरणमें ब्रह्म और अन्तर्यामीके रूपसे
 विराजमान रहते हैं । केवल इतना ही नहीं, उनके
 बाहर भी प्रकृतिके रूपसे आप ही विराजमान हैं ।
 जगत्में जितने भी देश, काळ, शरीर और वस्त्व
 आदि हैं, उनके उपादान और प्रकाशकके रूपमें आप
 ही उनका अनुभव करते रहते हैं । आप सभी वृत्ति-
 योंके साक्षी हैं । आप आकाशके समान सर्वगत हैं
 निर्विकार हैं । आप स्वयं परब्रह्म परममय हैं ॥ ४२ ॥
 अतएव हम अपना अभिप्राय आपसे निवेदन करें—
 इसकी अपेक्षा न रखकर जिस अभिप्रायसे हमने
 यहाँ आये हैं, उसे पूरा कीजिये । आप अभिन्य ऐश्वर्य-
 सम्पन्न और जगत्के परमगुरु हैं । हम आपके चरण-
 कमलमें ही छत्रछायामें आये हैं, जो निविध पापोंके फलस्वरूप
 अय-मृत्युरूप संसारमें मत्कलेकी पक्कड़की मियन-
 बाजी है ॥ ४३ ॥ सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण ! हमारा
 हमारे प्रमाण और अक्ष-बल्लोंको तो निगल ही लिया
 है । अब वह तीनों लोकोंको भी प्रसन्न रहा है । आप
 उसे मार डालिये ॥ ४४ ॥ प्रभो ! आप शुद्धस्वरूप,
 हृदयस्थित शुद्ध ज्योतिर्मय आकाश, सबका साक्षी,
 अनादि अनन्त और उग्रवज्र कीर्तिसम्पन्न हैं । संत
 लोग आपको ही संपन्न करने हैं । संसारक पक्षिक
 सब भूमते-भूमते आपकी शरणमें आ पहुँचते हैं, तब
 अन्तमें आप उन्हें परमानन्दस्वरूप अधीष्ट पात्र देते
 हैं और इस प्रकार उनका जन्म-जन्मापत्तरब बटारी हैं
 मने हैं । प्रभो ! हम आकाश ममस्वर बन्ने हैं ॥ ४५ ॥

श्रीगुरु उवाच

अथैवमीदितो गमन् मादरं त्रिदशैर्हरिः ।

स्वप्नपुष्पानमाकर्ष्य ग्राह तानमिनन्दितः ॥४६॥

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽहं चः सुरभेष्टा मनुपुष्पानविधया ।

आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिर्बैभवा मयि ॥४७॥

किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विदुर्धर्माः ।

मन्येकान्तमतिर्नान्य मत्तोवाञ्छति तत्त्ववित् ॥४८॥

न वेद कृपण धेय आत्मनो गुणवस्तुहृक् ।

तस्य तानिच्छतो यच्छेत्तु यदि सोऽपि तथाविधः ॥४९॥

स्वयं नि भेयसं विद्वान् न वक्तव्यद्वय कर्म हि ।

न राति रागिणोऽप्यप्य वाञ्छन्तो हि भिषक्तमः ॥५०॥

मघवन् याव भद्रं वो दध्यश्चमृपिसत्तमम् ।

विद्याव्रतवपःसारं गात्र याचत मा चिरम् ॥५१॥

स वा अभिगता दध्यहृत्पिण्यां घननिष्कलम् ।

श्रीगुरुनेषजी कहते हैं—परीक्षित् । जब देवनाभों-
न बड़ आदरक साथ इस प्रकार भगवान्‌क स्तवन
किया, तब वे अपनी स्तुति सुनकर बहुत प्रसन्न हुए
तथा उनसे कहने लगे ॥ ४६ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—श्रेष्ठ देवनाभो ! तुमयोगोंने
स्तुतिपुक्त ज्ञानसे मेरी उपासना की है, इससे मैं तुम-
लोगोंपर प्रसन्न हूँ । इस स्तुतिके द्वारा जीवोंको अपने
वास्तविक स्वरूपकी स्मृति और मरी भक्ति प्राप्त होती
है ॥ ४७ ॥ देवशिरोंमणियो ! मेरे प्रसन्न हो जानेपर
कोई भी वस्तु दुर्घम नहीं रह जाती । तथापि मेरे
अनन्योमी तत्त्ववेत्ता मनुष्यसे मेरे अतिरिक्त और
कुछ भी नहीं चाहते ॥ ४८ ॥ जो पुरुष जगत्‌क
विषयोंको सुख समझता है, वह नासम्य अपने वास्तविक
कल्याणको नहीं जानता । यही कारण है कि
वह विषय चाहता है; परन्तु यदि कोई जानकर उसे
उसकी इच्छित वस्तु द दता है, तो वह भी बसा ही
नासम्य है ॥ ४९ ॥ जो पुरुष मुक्तिक स्वरूप जानता
है, वह लज्जानीको भी कर्मोंमें कसनका उपदेश नहीं देता—
जैसे लोगिके चाहते रहनेपर भी सूत्र उस पुनः
नहीं देता ॥ ५० ॥ देवराज इन्द्र ! तुमजायेंक यस्याण
हो । अब दर मत करो । अग्निशिरोमणि दर्शयिक
पास जाओ और उनसे उनका शरीर—जा उपासना,
व्रत तथा तपस्या करण अस्पष्ट रह जाया है—मौन
हो ॥ ५१ ॥ दधीचि अग्निके शुद्ध ब्रह्मका ज्ञान है ।
अग्निमीकुमारोंको बाइके शिरसे उपदेश करनेक कारण
उनका एक नाम 'अग्निशिर' भी है । उनकी उपदेश

१ प्रा वा—हृत्पि मि । २ प्रा वा—निष्कलम् ।

● पर कथा इस प्रकार है—दधीचि अग्निके प्रभु (यदध्यविशेष) और ब्रह्मविद्याका उत्तम ज्ञान दे—यह
जानकर एक बार उनके पास अग्निमीकुमार आये और उनसे ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेके लिय प्रार्थना की । इसी व मुनिने
कहा—इस समय मैं एक कार्यमें लगा हुआ हूँ । इसलिये फिर किसी समय आना ।' इसपर अग्निमीकुमार चले गये । उनके
बावें ही इन्होंने आकर कहा—मुने । अग्निमीकुमार वैद्य हैं । उन्हें तुम ब्रह्मविद्याका उपदेश द्यत करना । यदि तुम मेरी बात न
मानकर उन्हें उपदेश करोगे तो मैं तुम्हारा शिर काट दूँगा । जब ऐसा कहकर इन्हें चले गये तब अग्निमीकुमारोंने
आकर शिर बंधी प्रार्थना की । मुनिने इन्द्रका सब वृत्तान्त सुना । इसपर अग्निमीकुमारोंने कहा—यदि परम ही आदर
पर शिर काटकर पदका शिर कर दूँगे । उन्में आन हूँ उपदेश करे और जब इन्हें आदरका पदका शिर काट दूँगे
तब हम शिर अलसी शिर कर दूँगे । मुनिन मिया अन्तराह भयने उनका कथन स्वीकार कर लिया । इन प्रकार
अग्निमीकुमारोंने उपदेश की जानेक कारण ब्रह्मविद्याका नाम 'अग्निशिर' पड़ा ।

क उत्सहेत तं दातुं मिश्रमाणाय विष्णवे ॥ ४ ॥

देवा ऊचुः

किं नु तव दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूतानुकम्पिनाम् ।

भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेष्टकर्मणाम् ॥ ५ ॥

ननु स्वार्थपरो लोको न वद परसंकटम् ।

यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥ ६ ॥

ऋषित्वाच

धर्मं वः भ्रातृकामेन पूर्य मे प्रत्युदाहृताः ।

एष वः प्रियसारमानस्यन्तं संन्यन्त्याम्यहम् ॥ ७ ॥

योऽब्रुवेवात्मनानाथान धर्मं न यश्चः पुमान् ।

इहेतं भूतदयमा ह्येष्टस्य न्यावरैरपि ॥ ८ ॥

एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ।

यो भूतशक्रदर्पान्धामात्मा क्षाचति हृष्यति ॥ ९ ॥

अहो दैन्यमहा कष्ट पारकथैः क्षणममुरैः ।

यभोपहृष्योदस्वार्थैर्मर्त्यैः स्वहातिविग्रहैः ॥ १० ॥

भीमेक उवाच

एव कृतम्यवमितो दम्यहृष्टाधर्षणस्तनुम् ।

तम एव धमीष्ट वस्तु है । ऐसी स्थितिमें स्वयं विष्णु भगवान् भी यदि जीवसे उसका शरीर माँगे तो कौन उसे देनेका साहस करेगा ? ॥ ४ ॥

देवतामंसि कदा—ब्रह्मन् । आप जैसे उदार और प्राणिप्रेम पर दया करनेवाले महापुरुष, जिनके कर्मानुसार बड़े-बड़े यशस्वी महानुभाव भी प्रशंसा करते हैं, प्राणिप्रेमी भगवान् के लिये कौन-सी वस्तु निःशर्कर नहीं कर सकते ॥ ५ ॥ भगवन् ! इस्में सन्देह नहीं कि भोगनेवाले लोग स्वार्थी होते हैं । उनमें देनेवालोंकी कठिनार्थका विचार करनेकी बुद्धि नहीं होती । यदि उनमें इतनी समझ होती तो वे माँगते ही क्यों ? इसी प्रकार दाता भी माँगनेवालोंकी विपत्ति नहीं जानता । अन्यथा उसके मुँहसे कल्पि नाहीं म निकलती । (इसलिये आप हमारी विपत्ति समझकर हमारा याचना पूर्ण करिजिये ।) ॥ ६ ॥

दधीष्णि व्यपिने कदा—दक्षतामो । मैंने आपलोगों-के मुँहसे धर्मकी बात सुनकर लिये ही आपकी माँगके प्रति उपेक्षा निस्रलायी थी । यह त्वंजिये, मैं अपने प्यारे शरीरको आपलोगोंके लिये जमी छोड़ देता हूँ । क्योंकि एक दिन यह स्वयं भी मृत होकरनेवाला है ॥ ७ ॥ देवशिरोगणियो ! जो मनुष्य इस विनाशी शरीरसे दुखी प्राणिप्रेम पर दया करके मुक्त्यत धर्म और गौणत यशका सम्पादन नहीं करता वह बड़ पेड़ पीनेसे भी गया-बीता है ॥ ८ ॥ बड़े बड़े महत्प्रजाजैने इस विनाशी धर्मकी उपासना की है । उसका स्वरूप बस इतना ही है कि मनुष्य किसी भी प्राणीक दुःखमें दुःखका अनुभव करे और सुखमें सुखका ॥ ९ ॥ जगत्क धन, जल और शरीर आदि पदार्थ क्षणममुर हैं । ये धन किसी काम नहीं आते, अन्तमें दूसरोंके ही काम आयेंगे । ओह ! यह कैसी हृषणता है, कितन दुःखकी बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा हमसोका उपकार नहीं कर लेता ॥ १० ॥

भीष्मकनेत्रयो कहत हैं—परीक्षित । आपकी ही महर्षि त्वंजिन ऐसा मिश्रय करके अपनेको परब्रह्म

परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सख्यमञ्जरी ॥११॥

यथाधामुपमनोमुद्विस्तम्बम् व्यस्तमन्धनः ।

आस्थितः परमं योगं न देह भुशुषे गतम् ॥१२॥

अवेन्द्रो बज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।

मुनेः शुकमिभुस्सिक्तो भगवत्पञ्चसान्वितः ॥१३॥

इतो देवगणैः सर्वैर्गजैन्द्रोपर्यभोभवत् ।

स्तुपमाना मुनिगजैस्त्रैलोक्यं हवयन्निव ॥१४॥

हृत्तमन्यद्ब्रह्मच्छेत्तुमसुरानीकयुधैः ।

पर्यस्तमात्रसा रामश्चक्रुः कृत्स्न इवान्तकम् ॥१५॥

ततः सुराध्यामसुरे रजः परमदारुणः ।

त्रतावृषे नर्मदायाममवत् प्रथमे युगे ॥१६॥

सत्रैर्बभूविरादित्यैरभिम्बां पितृवह्निभिः ।

मरुद्भिश्चैवभिः साध्वैर्विष्वदेवैर्मरुत्पतिभिः ॥१७॥

इष्टं वज्रधरं छर्कं रोचमानं क्षया जिघा ।

नामृष्यन्नसुरा राजन् सुखे इन्द्रपुरःसराः ॥१८॥

नमुचिः शम्बरः शनैर्वादिमूर्धा श्वपमोऽम्बरः ।

इयग्रीवः शङ्खुशिरा विप्रशिष्टिपरिमोक्षतः ॥१९॥

पुल्लोमा इपपथा च प्रहेतिहेतिरुत्कलः ।

देतेया दानवा यथा रक्षांसि च सहस्रशः ॥२०॥

सुमादिमालिप्रमुखाः कार्तेश्वरपरिच्छदाः ।

प्रतिविष्येन्द्रसेनाग्रं भूत्पोरपि दुरासदम् ॥२१॥

अम्यर्दयन्नसम्बान्धाः सिहनाइन दुर्मदाः ।

गदाभिः परिपैर्बाणैः प्रोसमुद्गरतोमरैः ॥२२॥

परमात्मा श्रीमद्भागवतमें छीन करके अपना स्वरूप स्वीकार दिया ॥ ११ ॥ उनके इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि संयत थे, इष्टि सत्त्वमयी थी, उनके सारे कर्म कष्ट भुक्त थे । अतः जब वे भगवान्से व्यस्त हुए होकर स्थित हो गये, तब उन्हें इस बातका पता ही न लगा कि मेरा शरीर छूट गया ॥ १२ ॥

भगवान्की शक्ति पाकर इन्द्रका बल-पौरुष उसकी सीमापर पहुँच गया । अब विश्वकर्माजीने दक्षिण अधि-पति इन्द्रियोंसे वज्र बनाकर उन्हें दिया और वे उसे हाथ में लेकर पराक्त हाथीपर सवार हुए । उनके साथ-साथ सभी देवतालोग तैयार हो गये । बड़े-बड़े अग्नि-मुनि देवराज इन्द्र की स्तुति करने लगे । अब उन्होंने त्रिलोकी-को हर्षित करते हुए ब्रह्मासुरका वध करनेके लिये उत्तर-पूरी शक्ति कागकर बाबा बोध दिया—देख देते हैं, जैसे भगवान् सब कोषित होकर स्वयं कागकर ही आक्रमण कर रहे हैं । परीक्षित ! ब्रह्मासुर भी दैत्य-सेनापति-योंकी बहुत बड़ी सेनाक साथ भाँवपर उड़ उठा था ॥ ११—१५ ॥ जा वैभवतः मन्वन्तर इत समय यह रहा है, इसकी पहली पट्टयुगीन्द्र प्रेतायुग बनी करम्मा ही हुआ था । उसी समय नर्मदातन्पर देवनागोंका दैत्यके साथ यह मयहूर संग्राम हुआ ॥ १६ ॥ उस समय देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लेकर उड़, बसु, आदित्य, दोनो अश्विमीकुमार, पितृगण, अग्नि, मरुद्गण, अश्वगण, साम्यगण और विष्वदेव आदिक साथ अपनी कान्तिसे शोभायमान हो रहे थे । ब्रह्मासुर आदि दैत्य उनके अपने सामने आया देख और भी चिढ़ गये ॥ १७-१८ ॥ तब नमुचि, शम्बर, बभर्वा, श्विधर्म, श्वपम, कम्प, इयग्रीव, शङ्खुशिरा, विप्रशिष्टि, अयोमुख, पुल्लोमा, इपपथा, प्रहेति, हेति, उत्कल सुमाधी, माधी आदि हजारों दैत्य-राज्य एवं यक्ष-याक्षस वर्णके साज-सामानसे सुसज्जित होकर देव-राज इन्द्रकी सेनाके आगे बढ़नेसे रोकने लगे । परीक्षित ! उस समय देवताओं की सेना काय पुरुषके लिये भी अत्रेय थी ॥ १९—२१ ॥ वे धर्मकी बलुर सिन्हाद करते हुए बड़ी सावधानीसे दैत्यसेनापर प्रहार करने लगे । उन लोगोंने गदा, परिध, बाण, प्रस, मुद्गर, लेख,

शूलैः परस्परं स्वर्गं शतघ्नीभिर्मुष्टिभिः ।
 सर्वतोऽवाकिरन् शस्त्रंस्त्रैश्च विबुधैर्धमान् ॥२३॥
 न तेऽदृश्यन्त मल्लभा शरज्जालैः समन्ततः ।
 पुद्गातुपुद्गपविवर्त्योतीपीव नमोघनैः ॥२४॥
 न ते शस्त्रास्त्रयणौघा बासेदुः सुरसैनिकान् ।
 छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्नैर्घुहस्तैः सहस्रधा ॥२५॥
 अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृङ्गद्वयोपलैः ।
 अम्पवर्पन् सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥२६॥

शूल, परसे, तलवार, शतघ्नी (तोप), मुष्टि आदि
 अस्त्र-शस्त्रोंकी बीज्यरसे देवताओंको सघ ओरसे ढक दिया
 ॥ २३ ॥ एक-पर एक इतन बाग चारों ओरसे आ रहे थे
 कि उनसे ढक जानेके कारण देवता गिन्सजाया भी नहीं पकते
 थे—जैसे बादलोंसे ढक जानपर आकाशके तारे नहीं
 दिखायी देते ॥ २४ ॥ परीक्षित । वह शस्त्रों और अस्त्रोंकी
 बर्षा देवसैनिकोंको घृत्तक न सकी । उन्होंने अपने हस्त-
 छावधसे आकाशमें ही उनके हथार-हथार टुकड़े कर
 दिये ॥ २५ ॥ जब असुरोंके अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये,
 तब वे देवताओंकी सेनापर पर्वतोंके शिखर, वृक्ष और
 फलपर बरसान लगे । परन्तु देवताओंने उन्हें पहलिकी ही
 मौलि काट गिराया ॥ २६ ॥

परीक्षित । जब ब्रह्मासुरके अनुयायी असुरोंमें देखा
 कि उनके असंख्य अस्त्र शस्त्र भी देवसेनापर कुछ न
 बिगाड़ सके—यहाँतक कि वृक्षों, चट्टानों और पहाड़ोंके
 बड़े-बड़े शिखरोंसे भी उनके शरीरपर खरोबतक नहीं
 आयी, सबके-सब समुज्जाल हैं—सब तो वे बहुत बर गये ।
 देखलोग देवताओंको पराक्षित करनक छिये जो-जो प्रयत्न
 करते, वे सब के-सब निष्फल हो जाते—ठीक वैसे ही,
 जैसे मगधन् श्रीहृष्णके द्वारा सुरक्षित भकोंपर क्षुद्र
 मनुष्योंके बल्लेपर और अमङ्गलमय दुर्वचनोंका कोई प्रभाव
 नहीं पड़ता ॥ २७-२८ ॥ मगधदिमुख असुर अपना
 प्रयत्न व्यर्थ देखकर उसाहाराहित हो गये । उनका बीरता
 का घमडा जाता रहा । जब वे अपने सरदार ब्रह्मासुरको
 बुद्धमूर्ध्नि ही छोड़कर भाग खड़ा हुए क्योंकि देवताओंन
 उनका सारा बल-वीर्य छीन लिया था ॥ २९ ॥ जब
 भीर भीर ब्रह्मासुरन देखा कि मेरे अनुयायी असुर भाग
 रहे हैं और अत्यन्त मयमीन होकर मेरी सेना भी तहस
 नहस और तिनर तिनर हो रही है, तब वह हँसकर
 कहने लग्य ॥ ३० ॥ भीरसिरामणि ब्रह्मासुरन समया-
 सुसार भीरोचित वाणीसे विप्रचिधि, नमुषि, पुत्रेया, मय
 अनर्वा, शम्भर आदि दीर्घोक्ते सम्भाषित करक कहा—
 असुरो ! भाग्ये मत मेरी एक बात सुन लो ॥ ३१ ॥
 इसमें सन्देह नहीं कि जो पैदा हुआ है, उसे एक-न-एक
 दिन अवश्य मरना पड़गा । हम जगतमें विधाताम मनु

तानशतान् स्वस्तिमतो निशाम्य
 शस्त्रास्त्रपूरैश्च वृत्रनाथाः ।
 दुर्मैर्धमिर्विधिविधात्रिमूत्रै-
 रविद्यतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥२७॥
 सर्वे प्रयात्ता अभवन् विमोघाः
 कृता कृता देवगणेषु दैत्यैः ।
 कृष्णानुकूलेषु यथा महर्षु
 सुदैः प्रयुक्ता कश्चलीरुषवाच ॥२८॥
 ते स्वप्रयातं वितथ निरीक्ष्य
 हरावभक्ता इतयुद्धदपा ।
 पलायनावाप्तिप्रुखे विसृज्य
 पतिं मनस्ते दधुराचमारा ॥२९॥
 वृत्रोऽसुरास्ताननुगान् मनस्वी
 प्रधावत प्रक्ष्य बभूव पतत् ।
 पलायित प्रक्ष्य बलं च भग्नं
 भयेन तीव्रण विद्वस्य धीरः ॥३०॥
 कालोपपन्ना रुचिरा मनस्विना
 मुवाच धावन् पुरुषप्रवीर ।
 दे विमचिध नमुषे पुलोमन्
 मयानर्बन्धम्भर मे मृणुष्यम् ॥३१॥
 जातस्य मृत्युर्धुव एव सर्वत
 प्रतिक्रिया यस्य न चेदकल्प्ता ।

परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं समयञ्जहौ ॥११॥

यथाश्वासुमनोभुविस्त्वखरम् चक्षुर्बन्धनः ।

आम्यितः परमं योगं न वेद भुवुषे गतम् ॥१२॥

अभ्येन्द्रो वज्रमुच्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।

मुने श्रुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तत्त्वसात्वितः ॥१३॥

वृत्तो देवगर्भो सर्वैर्गजिन्द्रोपर्वशोभत ।

स्तुयमानो मुनिगर्भैर्लोक्यं हर्षयन्निव ॥१४॥

वृत्रमन्मद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथवैः ।

पयस्तमाजसाराजन् क्रुद्धो रुद्र इवान्तकम् ॥१५॥

ततः सुराणामसुरै रणः परमदारुणः ।

व्रतामुखे नर्मदायामभवत् प्रथमे युगे ॥१६॥

रुद्रैर्वंसुभिरादिस्पैरभिम्पा पितृवह्निभिः ।

मरुद्भिश्चक्षुभिः साध्वैर्विष्णुदेवैर्मरुत्पतिम् ॥१७॥

दृष्ट्वा वज्रधरं शुकं रोषमानं स्वया भिया ।

नामुच्यन्नसुरा राजन् सुचे वृत्रपुर सराः ॥१८॥

नमुचि शम्भरोज्जर्वादिमूर्धा श्यपभाजम्बरः ।

हयग्राय शङ्कुगिरा विप्रचित्तिरयाधुल ॥१९॥

पुलोमा वृषपदा च प्रहतिर्हेतुस्तर्कतः ।

दत्तेषा दानवा यसा रक्षोमि च सहस्रशः ॥२०॥

मुमानिमानिप्रमुखाः सातम्बरपरिच्छदाः ।

प्रतिपिप्पेन्द्रसेनाग्रं मृत्पारपि दुरामदम् ॥२१॥

अम्पर्दयन्नर्मघान्ता निहनादेन दुर्मदाः ।

गदाभि परिघर्षार्णं प्रांमभ्ररतामरं ॥२२॥

परमात्मा श्रीभगवान्में खीन करके अपना स्वरूप छिपे
त्याग दिया ॥ ११ ॥ उनके इन्द्रिय, प्राण, मन और
बुद्धि संयत थे, इन्द्रि सत्त्वमयी थी, उनके सारे कर्म
कट चुक थे । अतः जब वे भगवान्से व्यक्त हुए
होकर स्थित हो गये, तब उन्हें इस बातका पता ही
न था कि मेरा शरीर छूट गया ॥ १२ ॥

भगवान्की शक्ति पाकर इन्द्रका वज्र-पौरुष उसी
सीमापर पहुँच गया । अब विश्वकर्माजीने दक्षिणि शक्ति
की इष्टियोंसे कर्म बनाकर उन्हें दिया और वे उसे हस्त
में लेकर देराकत हाथीपर सवार हुए । उनके साथ-साथ
सभी वज्रतालंग तैयार हो गये । बड़े-बड़े अग्नि-मुनि
देवराज इन्द्र की स्तुति करने लगे । अब उन्होंने त्रिविक्र-
की वर्तित करते हुए वृत्रासुरका वध करनेके लिये उत्तर
पूरी शक्ति व्यक्त कर बाधा बोल दिया—यिक होते हैं,
जैसे मगधान् रुद्र कोभित होकर क्षय करके ही काटकर
कर रहे हों । परीक्षित । वृत्रासुर की तैयार-सेनासि-
नोकी बहुत बड़ी सेनाके साथ मार्चपर गया हुआ
था ॥ ११—१५ ॥ जो वैवस्वत मन्वन्तर हम समय तक
रहा है, इसकी पहली चतुर्दशिका त्रेतायुग की बारम्बार
ही हुआ था । उसी समय मन्वन्तरपर देवताओंका शत्रुके
साथ यह भयङ्कर संग्राम हुआ ॥ १६ ॥ उस समय
देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लेकर रुद्र, बभ्रु, आदित्य,
दोनों अधिनीकुमार, विष्णुगण, अग्नि, मरुद्गण, अश्वगण,
साध्यगण और विष्णुदेव आदिक साथ अपनी कल्पिते
शोभायमान हो रहे थे । वृत्रासुर आदि शैव उनके
अपन सामने आया देख और भी चिढ़ गये ॥ १७-१८ ॥
तब नमुचि, शम्बर, जनर्वा, दिमूर्धा, अश्वर, अम्बर,
हयग्राय, शङ्कुगिरा, विप्रचित्ति, ज्योमुख, पुष्पेय, वृत्रार्ण,
प्रहेति, हनि, सत्त्वल सुमासी, मासी आदि हजारों शैव-गण
एवं यश-शश्वत् सर्गक सात्र सामानसे सुसज्जित होकर देव
राज इन्द्र की सेनाकी आगे बढ़नेसे राकते लगे । परीक्षित ।
उस समय देवताओं की सेना स्वयं धातुके डिय भी लगे
थी ॥ १०—२१ ॥ अब वही अतुर सिद्धिना करने हुए
वही सावधानीसे देखनेपर प्रहार करने लगे । उन
मगधों गन्ना, परिष, बाण, प्रस सुरत लोग,

शूलं परमघै स्वह्नैः श्रुतञ्जीभिर्दुष्टादिभि ।
 सवतोऽवाकिरन् शस्त्रैश्चैव विपुधर्षमान् ॥२३॥
 न तेऽदृश्यन्त सद्यसा शरजालैः समन्ततः ।
 पृथ्वातुपृथ्वपतिरैर्न्योतीपीव नमोधनै ॥२४॥
 न ते द्रव्यास्त्रयोंवा द्वासेद् सुरसैनिकान् ।
 छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥२५॥
 अथ धीणास्त्रशस्त्रौवा गिरिमुत्तुभोपलैः ।
 अन्धवर्षन् सुरवल विच्छिद्युस्तोष पूर्ववत् ॥२६॥
 तानश्वतान् स्वस्तिमतो निशाम्य
 शस्त्रास्त्रपौरव वृत्रनाथाः ।
 हुर्मैर्पद्भिर्विधात्रिभृजै-
 रविद्युतास्तप्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥२७॥
 सर्वे प्रयासा अभवन् विमोघा
 कृता कृता देवगणेषु दैत्यैः ।
 कृष्णातुकुलेषु यथा महस्तु
 क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुक्मणीरूपावः ॥२८॥
 ते स्वप्रयास वितथं निरीक्ष्य
 हरावभक्ता हतयुद्धदर्पा ।
 पलायनायाभिमुखे विसृज्य
 पतिं मनस्ते वपुराचगारा ॥२९॥
 वृत्रोऽसुरास्ताननुगान् मनस्वी
 प्रधावत प्रक्ष्य वमाप एतत् ।
 पलायित प्रक्ष्य बलं च भग्नं
 भवेन वीक्षण विहस्य वीरः ॥३०॥
 कालोपपर्मा रुचिरां मनस्विना
 मुवाच पाच पुरुषप्रवीरः ।
 हे विप्रचित्ते नमूषे पुलोमन्
 मयानर्वाञ्छम्बर मे मृणुष्वम् ॥३१॥
 मातस्य मृत्युर्धुष्य एष सधतः
 प्रतिक्रियायस्य न चेद्वल्लभा ।

शूल, पत्रसे, तड्याग, शतघ्नी (तोप), मुमुक्षु आदि
 अस्त्र-शस्त्रोंकी बौझारसे देवताओंको सब ओरसे ढक दिया
 ॥२३॥ २३ ॥ एक-पर एक इतने बाग चारों ओरसे आ गये थे
 कि उनसे ढक जानेके कारण देवता त्रिस्तया भी नहीं पकते
 थे—सीसे बादलोंसे ढक जानपर आकाशके तारे नहीं
 दिखायी दते ॥२४॥ परीक्षित । वह शस्त्रों और अस्त्रोंकी
 बर्षा देवसैनिकोंको छूतक न सकी । उन्होंने अपने हस्त
 लावणसे आकाशमें ॥ उनके हजार-हजार टुकड़ कर
 दिये ॥ २५ ॥ जब असुरोंके अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये,
 तब वे देवताओंकी सेनापर पर्वतों के शिखर, वृक्ष और
 पत्थर बरसाने लगे । परन्तु दैवताओंने उन्हें पहलेकी ही
 भाँति काट गिराया ॥ २६ ॥

परीक्षित । जब वृत्रासुरके अनुयायी असुरोंने देखा
 कि उनके अंशरूप अस्त्र शस्त्र भी देव-सेनापर कुछ न
 लगाइ सके—यहाँतक कि वृक्षों, चट्टानों और पहाड़ोंक
 बड़े-बड़े शिखरोंसे भी उनके शरीरपर स्कोबतक नहीं
 आयी, सब-कु-सब सफुआल हैं—तब तो वे बहुत डर गये ।
 हृत्पक्षो देवताओंको पराजित करनेक लिये जो-जो प्रयत्न
 करते, वे सब के-सब निष्फल हो जाते—टीक बेसे ही,
 जैसे मगधान् धीरुष्णक द्वारा सुरक्षित मर्कटोंपर क्षुद्र
 मनुष्योंके कठोर और अमङ्गलमय दुर्वचनोंका कोई प्रभाव
 नहीं पड़ता ॥ २७-२८ ॥ मगधिसुख असुर अपना
 प्रयत्न व्यर्थ देखकर उत्साहहीन हो गये । उनका वीरता
 का भग्न जाता रहा । अब वे अपने सरदार वृत्रासुरको
 मुखमूर्तिमें ही छोड़कर भाग खड़े हुए, क्योंकि दैवताओंने
 उनका सारा बल-वीर्य धीन लिया था ॥ २९ ॥ जब
 वीर वीर वृत्रासुरने देखा कि मेरे अनुयायी असुर भाग
 रहे हैं और अप्रयत्न मध्यम होकर मेरी सेना भी तडस-
 नहस और वितर वितर हो रही है, तब वह हँसकर
 कहने लगा ॥ ३० ॥ वीरशितोमणि वृत्रासुरने समया-
 नुसार वीरोचित वाणीसे निप्रचिति, नमूषि पुत्रोमा, मय,
 अनर्वा, शम्बर आदि दैवियोंको सम्भाषित करने कहा—
 असुरों ! मागे मत, मेरी एक बात सुन लो ॥ ३१ ॥
 इसमें संदेह नहीं कि जो पदा हुआ है, उसे एक-न-एक
 दिन अवश्य मरना पड़ेगा । इस अंगत्वे विधातम मृत्यु

दिष्टपानृणाऽद्याहमसत्तम स्वया

मच्छूलनिर्भिन्नपवृद्धाचिरात् ॥१४॥

यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजाते

गुरारपापस्य च दीक्षितस्य ।

विभक्त्य स्वज्ञान शिरासावृण्वत्

पक्षोरिवाकृष्ण स्वर्गकाम ॥१५॥

हीभीदयाकीर्तिभिरुन्मिश्रत स्था

स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्भम् ।

कृष्णैश्च मच्छूलविभिन्नदेह

मस्पृष्टवर्णि समदन्ति गृध्रा ॥१६॥

अन्येऽनु ये त्वेह नृक्षसमहा

ये क्षुधताक्ताः प्रहरन्ति भक्षम् ।

तैर्मृतनाथान् सगणान् निश्चात

त्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥१७॥

अथो हरे मे कूलिञ्चेन वीर

हर्ता प्रमथ्यैव क्षिरो यदीह ।

तत्रानृणो मृतवर्णि विधाय

मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

सुरेश कस्याम् दिनोपि वज्रं

पुरः स्मिते वैरिणि मय्यमोषम् ।

मा सद्यपिष्ठा न गदेव वज्रं

स्साभिफुल्लं कृपणार्थेव याप्या ॥१९॥

नन्वेव वज्रस्तत्र क्षक तेजसा

हरर्दधीचेत्तपसा च तेजितः ।

तेनैव क्षत्रं वहि विष्णुपत्रिणो

यथा हरिर्विजयः श्रीगुणास्ततः ॥२०॥

भाषण, अपने गुरु एवं मेरे भाईकी हत्या की है—मेरे सामने खड़ा है । जरे दुष्ट । अब शीघ्रसे शीघ्र मैं तेरे पत्थरके समान कठोर हृदयको अपने शूलसे निर्भीक करके भाईसे उच्छृण्व होऊँगा । अहा ! यह मेरे लिये कैने आनन्दकी बात होगी ॥ १४ ॥ इन्द्र ! तुज मेरे आश्रयेण और निष्पाप बड़े भाईके, जो ब्राह्मण होनेके साथ ही यज्ञमें दीक्षित और तुम्हारा गुरु था, निश्चाय दिव्य-कर तलवारसे तीनों सिर उतार दिये—छीक बैठे ही जैसे स्वर्गकामी निन्द्य मनुष्य यज्ञमें पशुका सिर काट बाँधता है ॥ १५ ॥ दया, कृपा, लक्ष्मी और कीर्ति तुझ छोड़ चुकी हैं । तुने ऐसे-ऐसे बीच कर्म किये हैं, जिनकी निन्दा मनुष्योंकी तो बात ही क्या—राक्षसका करते हैं । आग मेरे त्रिशूलसे तेरा शरीर टुक-टुक हो जायगा । वज्र कण्डसे तेरी मृत्पु होगी । तेरे-जैसे पापीको आग भी नहीं जलायेगी, तुझे तो गीव नौच-नौचकर खायेगे ॥ १६ ॥ ये अज्ञानी देवता तेरे-जैसे बीच और क्रूरके अनुयायी बनकर मुखपर शस्त्रोंसे प्रहार कर रहे हैं । मैं अपने तीखे त्रिशूलसे उनके गणना कर काट दूँगा और उनके द्वारा गणोंके सहित मौरादि भूतनाथोंको बलि चढ़ाऊँगा ॥ १७ ॥ वीर इन्द्र ! यह भी सम्भव है कि तू मेरी सेनाको छिन्न-भिन्न करके अपने वज्रसे मेरा सिर काट ले । तब तो मैं अपने शरीरकी बलि पशु पक्षियोंको समर्पित करके, कर्मबन्धनसे मुक्त हो मैं पुरुषोंकी शरण-रक्षक आश्रय माँग करूँगा—जिस लोकमें महापुरुष जाते हैं वहाँ पहुँच जाऊँगा ॥ १८ ॥ वेबरान ! मैं तेरे सामने खड़ा हूँ, तेरा शत्रु हूँ । अब तू मुखपर अपना अमोघ वज्र क्यों नहीं छोड़ता ? तू यह सन्देह न कर कि जैसे तेरी गदा निष्फल हो गयी, कृपण पुरुषोंकी की हुई याचनाके सामान यह वज्र भी बैठे ही निष्फल हो जायगा ॥ १९ ॥ इन्द्र ! तेरा यह वज्र श्रीहरि के तेज और दधीधि अग्निकी तरलतासे शक्तिमान् हो रहा है । विष्णुभगवान् तुझे मारनेके लिये तुझे बाधा भी दी है । इसलिये अब तू उसी वज्रसे मुझे मार डाल । क्योंकि जिस पक्षमें भगवान् श्रीहरि हैं उधर ही विजय, लक्ष्मी और सारे गुण निश्चय करते हैं ॥ २० ॥

अह समाधाय मनो यथाऽऽह
 सङ्कर्षणस्तत्परिणामिदे ।
 त्वद्भक्तदोषलितप्राप्त्यपाशो
 गतिं मुनेर्याम्यपवित्रलोकः ॥२१॥
 पुंसां क्रिन्नैकान्तधियां स्वकानां
 याः सम्पदो दिशि भूमी रसायाम् ।
 न राति यद् द्वेप उदग आभि
 र्मदः कलिर्व्यसन संप्रसातः ॥२२॥
 त्रैवर्गिकप्रामविषादमसत्
 पतिविषये पुरुषस्य ह्यहम् ।
 त्वोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो
 वो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः ॥२३॥
 अहं हरे तव पादैकमूल-
 दासानुदासो यमितासि भूयः ।
 मनः सरेतासुपतेर्गुणांश्चे
 शुभीत वाक् कर्म करोतु क्वायः ॥२४॥
 न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
 न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
 न योगसिद्धीरपुनर्ममं वा
 समञ्जस त्वा विरहस्य काङ्क्ष ॥२५॥
 अस्मात्पक्षा इव भातरं स्वगाः
 क्षुण्णं यथा बलसतराः क्षुभार्ताः ।
 प्रियं प्रियेव व्युपिष्ठं विषण्णा
 मनोऽरविन्दाद्य दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥
 ममोत्तमश्लोकभनेषु सख्य
 संसारवद्धं भ्रमतः स्वकर्मभिः ।

देखाम ! भगवान् सङ्कर्षणके व्याख्यानसार मैं बरन मनको
 उनके चरणकमलोंमें छीन कर दूँगा । तेरे वक्त्रका वेग
 मुझे नहीं, मेरे विषयभोगरूप फंदेको काट डालेगा और
 मैं शरीर त्याग कर मुनिजनोचित गति प्राप्त करूँगा ॥२१॥
 जो पुरुष मगधानसे अनन्य प्रेम करते हैं—उनके निज मन
 हैं—उन्हें वे स्वर्ग, पृथ्वी अथवा रसातलकी सम्पत्तियाँ नहीं
 देते । क्योंकि उनसे परमानन्दकी उपलब्धि तो होती ही
 नहीं, उल्टे द्वेप, उदग, अभिमान, मामसिक पीडा, कलह,
 दुःख और परिभय ही हाथ लगते हैं ॥ २२ ॥ इन्द्र ।
 हमारे स्वामी अपने मछके अर्थ, धर्म एवं कामसुखकी
 प्रयासको व्यर्थ कर दिया करते हैं और सब भूडों तो इसीसे
 भगवान्की कृपाका अनुमान होता है । क्योंकि उनका
 ऐसा कृपा-प्रसाद अकिञ्चन मछोंके लिये ही अनुभवगम्य
 है, वृत्तोंके लिये तो अल्पत दुर्लभ ही है ॥ २३ ॥

(भगवान्को प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए कृष्णानुरागे
 प्रार्थना की—) भ्रमो ! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि
 अनन्यभावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा
 करनेका अवसर मुझ बगले कममें भी प्राप्त हो । प्राणच्छ्वम !
 मेरा मन आपके मङ्गलमय गुणोंका स्मरण करता रहे,
 मेरी बानी सदाहीन गान करे और शरीर आपकी सेवामें
 ही संलग्न रहे ॥ २४ ॥ सार्वसीधाम्यनिवे । मैं आपके
 छात्रकर स्वर्ग, कलहलोक, भूमण्डलका साम्राज्य, रसातल-
 का एकठर राज्य, यागकी सिद्धियाँ—यहाँतक कि मोक्ष
 भी नहीं चाहता ॥ २५ ॥ जैसे पक्षियोंके पंखहीन
 बच्चे अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं । जैसे भूले
 बच्चे अपनी माँका दूध पीनेके लिये बाटार रहते हैं
 और जैसे बियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके
 लिये उत्कण्ठित रहती है—वैसे ही कमकमल । मेरा
 मन आपके दशनके लिये छटपटा रहा है ॥ २६ ॥
 भ्रमो ! मैं मुक्ति नहीं चाहता । मेरे कर्मोंके फलस्वरूप
 मुझ बार-बार जन्म-मृत्युका चक्रमें मग्नता पड़े, इसकी
 परवा नहीं । परन्तु मैं यहाँ-यहाँ जाऊँ, जिस-जिस
 योनियें जम्ऊँ, यहाँ-यहाँ भगवान्के प्यारे मछजनोसे मेरी
 प्रेम-मैत्री बनी रहे । स्वामिन् ! मैं केवल यही चाहता

तत्र साक्षिणमाम्मान वा घट न न घट्यते ॥१५॥

पश्य मां निर्जितं शक्रं वृष्णापुत्रसुत मृगे ।

घटमान यथागति मत्र प्राणजिहीषया ॥१६॥

प्राणग्लहोऽयं समर इत्यथा बाहनामनः ।

अत्र न ह्यापतेऽमुष्य तृणाऽमुष्य पराजयः ॥१७॥

श्रीभुक्त उवाच

इन्द्रा वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् ।

गृहीतवज्रः ग्रहधन्महा गतविस्मयः ॥१८॥

इन्द्र उवाच

अहो दानव सिद्धाऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ।

भक्तः सर्वात्मनाऽऽत्मानं मुहुरजगदीधरम् ॥१९॥

मघानतार्पन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ।

यद् विहायासुर भार्गवं महापुरुषतां गतः ॥२०॥

स्वस्त्वित् महदात्म्यं यद् रजःप्रकृतेस्तव ।

वासुदेव भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥२१॥

यस्य भक्तिर्मगवति इतौ निःशेषसेखरे ।

विक्रीडतोऽसृगान्मोहो किं ह्युग्रैः स्वातक्रोदकैः ॥२२॥

श्रीभुक्त उवाच

इति भुवाणावन्धोर्न्यं धर्ममिच्छासया तुष ।

युयुधाते महावीर्याविन्त्रधृश्रौ युधाम्पती ॥२३॥

आविष्णु परिषद्वृत्रः काष्ण्यायिसमरिन्द्वय ।

उनका माक्षीमात्र जानता है, वह उनके
हिस नहीं होता ॥ १५ ॥ देवराज इन्द्र ।

देखो, तुमने मेरा हाथ और शस्त्र काटकर
मुझे परास्त कर दिया है, फिर भी मैं तुम्हारे
लेनके लिये यथाशक्ति प्रयत्न कर ही रहा हूँ ॥ १६ ॥

यह मुझ क्या है, एक नृपका सेव । अपने
बाजी लगती है, बाणोंके पासे बाने जाते हैं
ही चौसर हैं । इसमें पहलेसे यह बात थी
होती कि कौन जीतेगा और कौन हारेगा ॥ १७ ॥

श्रीभुक्तदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इन्द्रने
सत्य एवं निष्कपट बचन सुनकर इन्द्रने उत्तम
किया और अपना वज्र उठा लिया । इन्द्रने
किसी प्रकारका आश्चर्य किये मुसकराते हुए
कहे— ॥ १८ ॥

देवराज इन्द्रने कहा—अहो दानवराज ! तू
तुम सिद्ध पुरुष हो । तभी तो तुम्हारा वैद्य, भक्त
और मगधराज इतना विरक्त है । तुमने समस्त
सृष्टि आत्मस्वरूप जगदीश्वरकी अनन्य मन्त्रसे
है ॥ १९ ॥ अवश्य ही तुम जोगोंके सेवित करने
मगधानकी मायाका पार कर गये हो । तभी तो
असुराक्षित भाव छोड़कर महापुरुष हो गये हो ।
अवश्य ही यह सब आश्चर्यकी बात है कि तुम रज
प्रकृतिके हो, तो भी विबुद्ध सत्त्वस्वरूप भगवान्
में तुम्हारी बुद्धि दृढतासे स्थिती हुई है ॥ २१ ॥ जो
वत्स्यात्मके ज्ञानी भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें
भक्तिभाव रखता है उसे जगत्के मोहोंकी क्या
है । जो अशुक्त समुद्रमें विहार कर रहा है, उसे
गहोंके जलसे प्रयोजन ही क्या हो सकता है ॥ २२ ॥

श्रीभुक्तदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इस
योद्धाओंमें अष्ट महापुरुषकी देवराज इन्द्र और
धर्मका तत्त्व जाननेकी अभिलाषासे एक दूसरेके
मातृपीत करते हुए आपसमें युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥
रानन् । अब शत्रुसूदन वृत्रासुरने बाणों हाथसे मोहरा

इन्द्राय प्राहिणोद् घोरं वामहस्तेन मारिष ॥२४॥
 म तु वृत्रस्य परिष कर च करभापमम् ।
 चिच्छेद् युगपद् देवो वज्रेण क्षतपर्वणा ॥२५॥
 दार्म्याघृष्टकृष्णमूलाभ्यां बभौ रत्नस्रवोऽसुरः ।
 छिन्नपद्मो यथा गोत्रः स्नाद् अष्टो वज्रिणा हतः ॥२६॥
 कृत्वा धर्मां हनुं भूमौ देव्यो दिव्युचरां हनुम् ।
 नभोगम्भीरवक्षत्रेण लेलिहोल्बणमिद्धया ॥२७॥
 दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निवृत्तगन्तव्यम् ।
 अतिमात्रमहाकाय आक्षिपत्तरसा गिरीन् ॥२८॥
 गिरिराट् पादचारीव पदुभ्यां निर्जरयन् महीम् ।
 जग्राम स समासाद्य वज्रिण सहवाहनम् ॥२९॥
 महाप्राणा महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ।
 वृत्रप्रस्तं संमालक्ष्य सप्रज्ञापतयः सुराः ।
 हा कष्टमिति निर्बिम्बाहनुद्रुशु समहर्षयः ॥३०॥
 निगीर्णाऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ।
 महापुरुषममदो योगमायाबलेन च ॥३१॥
 भिच्वा वज्रं तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिवृ विभुः ।
 उच्यते शिरः क्षत्रोर्गिरिशुभ्रमिषोऽसौ ॥३२॥
 वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः
 कृन्तन् समन्तात् परिवर्तमानः ।
 न्यपातयत् तावदहर्गणन
 या ज्यातिपामयने नार्त्रहृत्ये ॥३३॥
 वदा च खे दुन्दुमया विनेद्
 गन्धर्वसिद्धा समहर्षिमहा ।

इन्द्रा एक बहुत मयावना परिघ उठाकर आकाशमें
 धुमाया और उससे इन्द्रपर प्रहार किया ॥ २४ ॥ किन्तु
 देवराज इन्द्रन वृत्रासुरका वह परिघ तथा हाथीकी
 सूँठके समान लची मुझा अपने सो गोंगवाने वज्रसे
 एक साथ ही काट गिराया ॥ २५ ॥ जबसे दोनों
 मुजाओंके कट जानेपर वृत्रासुरक बायें और दायें दोनों
 कंधोंसे खूनकी धारा बहने लगी । उस समय वह ऐसा
 खान पका, मानो इन्द्रके वज्रकी चीन्से पल कट जानपर
 कोई पर्वत ही आकाशसे गिरा हो ॥ २६ ॥ अब पैरोंसे
 चल्ने-फिरनवाले पर्वतराजके समान अत्यन्त दीघकक्ष्य
 वृत्रासुरने अपनी ठोड़ीका घरतीसे और ऊपरक हाठको
 खर्गसे छगाया तथा आकाशक समान गहरे मुँह, सौंपके
 समान मयावनी औभ एव मृष्युके समान क्ताल दाढ़ीसे
 मानो त्रिजोफ़ीको निगलता, अपन पैरोंकी चाटसे पृथ्वीकी
 रौन्सा और प्रबल वेगसे पर्वतोंका उच्छटता-फूटता वह इन्द्र
 के पास आया और उ हँ उनक वादन एरावत हाथीक
 सहित इस प्रकार खीळ गया, जैसे कई परम परक्रमी
 और अत्यन्त बलवान् अजगर हाथीको निगल जाय ।
 प्रजापतियों और महर्षियोंके साथ देवताओंन जब देखा
 कि वृत्रासुर इन्द्रकी निगल गया, तब तो वे अत्यन्त
 दुखी हो गये, तथा श्वाप-श्वाय । बका अनर्थ हो गया ।
 यों कहकर बिलप करन लग ॥ २७—३० ॥ बल
 देयका संहार करनवाले देवराज इन्द्रन महापुरुष जिया
 (नारायणकक्ष) से अमकं सुरक्षित कर रक्खा था
 और उनक पास योगमायाक वज्र था ही । इसलिये
 वृत्रासुरक निगल लेनपर—उसक पेटमें पहुँचकर भी
 वे मरे नहीं ॥ ३१ ॥ उन्होंने अपन वज्रसे उसकी
 क्काल फाड़ बाँधी और उसके पन्से निकलकर बड़ वेगसे
 उमका पर्वत शिखरके समान ऊँचा शिर घाट दाडा ॥ ३२ ॥
 सूर्यादि ग्रहोंकी उत्पत्तयग-दक्षिणावन्त्यग गतिमें जितना
 समय लगता है, उतन दिनोंमें अर्थात् एक वर्षमें वृत्र
 कक्षक वाग उपस्थित होनेपर घूमत हुए उन हीन वेगवाली
 वज्रन उसकी गर्दनक सब आरसे काटकर मृगिर
 गिरा दिया ॥ ३३ ॥ उस समय आकाशमें दुन्दुभिर्गो
 बजन लगी । महर्षियोंके साथ गन्धर्व, सिद्ध आदि

वाप्रमल्लिङ्गस्तमभिष्टुधाना

मन्त्रैर्मुदा हस्तैर्मरम्यवर्षन् ॥३४॥

यत्रस्य दहाभिष्क्रान्तमात्मन्भोतिरिन्दम ।

पश्यतां सर्वलोकानामलोक समपद्यत ॥३५॥

हृत्प्रधाती इन्द्रका पराक्रम सूचित करनेके लिये
उनकी स्तुति करके बड़े आनन्दक साथ उनपर पुष्पों
बषा करने लगे ॥ ३४ ॥ शत्रुदमन परीक्षित । उस
समय हृत्प्रधातुरके शरीरसे उसकी आत्मज्योति बाहर निकली
और इन्द्र आदि सब लोगोंके देखते-देखते सर्वलोककी
भगवान्के स्वरूपमें लीन हो गयी ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्श्या संहितायां षष्ठस्कन्धे वृत्रवशो
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

हृत्प्रपदं महाहत्याका आत्ममय

भीर्भुक्त उवाच

वृत्रे हते प्रयो लोकं विना क्षणेन मूरिद ।

सपाला क्षमयन् सद्यो विज्वरा निवृत्तेन्द्रियाः ॥ १ ॥

देवर्षिर्पितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ।

प्रतिब्रह्मः स्वधिष्मन्निमोक्षेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥

राजोवाच

इन्द्रस्यानिवृत्तेर्हेतुं भोक्तुमिच्छामि भो वृत्रे ।

येनासन् सुखिनो देवा हरेर्युःस्व हृष्टोऽभवत् ॥ ३ ॥

भीर्भुक्त उवाच

वृत्रपिक्रममविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।

तद्ब्रह्मार्थमभिन्द्रं नैष्ठिकं भीतो वृहदधात् ॥ ४ ॥

इन्द्र उवाच

सामूजलद्रुमेरौ विश्वरूपबभौजवः

विमलमनुपृष्टमिर्पृष्टहत्यां क

१ - ता - स्वयम्

२ - उ - उतप - इन्द्र - इन्द्र -

भीर्भुक्देवजी कहते हैं—महादानी परीक्षित । हृत्प्र-
धातुरकी हृत्पुसे इन्द्रके अतिरिक्त तीनों लोक और लोकपाल
तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये । उनका मय, उनकी क्षिति
जाती रही ॥ १ ॥ युद्ध समाप्त होनेपर देवता अग्नि,
पितर, भूत, दैत्य और देवताओंके अनुचर मन्त्रों आदि
इन्द्रसे बिना छूटे ही अपने अपने लोकमें लौट गये ।
इसके पश्चात् देवता, शत्रु और इन्द्र आदि भी चले
गये ॥ २ ॥

वृत्रपरीक्षितने पूछा—भगवन् । मैं देवराज
इन्द्रकी अप्रमत्तताका कारण सुनना चाहता हूँ । जब
हृत्प्रधातुरके बचसे सभी देवता हृष्टी हुए, तब इन्द्रके
हुँस होनेका क्या कारण था ? ॥ ३ ॥

भीर्भुक्देवजीने कहा—परीक्षित । जब हृत्प्रधातुरके
पराक्रमसे सभी देवता और अग्नि-महर्षि अत्यन्त मग्न
हो गये, तब उन लोगोंने उसके बचके लिये इन्द्रसे
प्रापना भी परन्तु वे ब्रह्महत्याके भयसे उसे मारना
नहीं चाहते थे ॥ ४ ॥

देवराज इन्द्रने उससे कहा—देवताओं और
अग्निों । मुझे विश्वरूप
उसे तो ली, पृथ्वी, वायु
आदि । अथ यदि मैं
॥ सु - करार दै - से ॥

दे । इ - प्रा - प

भोग ।

॥ ५ ॥

श्रीगुरु उवाच

अपयस्तदुपाकरणं महेन्द्रमिदमब्रुवन् ।

यात्रयिष्यामभद्रं ते हयमेघेन मा स माम् ॥ ६ ॥

हयमेघेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ।

दृष्ट्वा नारायणं दशं मोक्षयसेऽपि अगद्वधात् ॥ ७ ॥

गङ्गायाः पितृहा गोमो मातृहाऽऽचार्यहापवान् ।

आदः पुल्कसको वापि शुद्धयेरन् यस्य कीर्तनात् ॥ ८ ॥

तमभमेघेन महामखेन

भद्रान्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ।

हत्वापि समग्रं चराचरं त्व

न तिप्ससे किं सलनिग्रहेण ॥ ९ ॥

श्रीगुरु उवाच

एव संबोदितो विप्रैर्मरुत्तानइनत्रिभुम् ।

ममहत्या इते वसिष्ठाससाद वृषाकपिम् ॥ १० ॥

येनेन्द्र सामहत् तार्यं निर्दृष्टिर्नाहमाविशत् ।

हीमन्तवाच्यतां प्राप्तस्तुल्यन्त्यपि नो गुणा ॥ ११ ॥

तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् ।

जरया वेपमानाङ्गीं यक्षप्रस्तामसूक्ष्मपादाम् ॥ १२ ॥

विहीर्य पलितान् के शान्तिष्ठ तिष्ठति भाषिणीम् ।

मीनगण्यसुगन्धेन कुर्वती मार्गदूषणम् ॥ १३ ॥

नभो गतो दिशः सक्तो सहस्रायाश्चिदात्मसे ।

प्रागुदीचीं दिशः स्तब्धं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥ १४ ॥

१ अ वा —अपेन्द्रः ।

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—देवराज इन्द्रजी बात सुन कर श्रुतिपौने उनसे कहा—‘देवराज । तुम्हारा कल्याण हो, तुम तनिक भी मय मन करो । क्योंकि हम अश्वमेध यज्ञ कराकर तुम्हें सारे पापोंसे मुक्त कर देंगे ॥ ६ ॥ अश्वमेध यज्ञके द्वारा सबके अन्तर्पापी सर्व शक्तिमान् परमात्मा नारायणदेवजी अतापना करके तुम सम्पूर्ण जगत्का बंध करनके पापसे भी मुक्त हो सोगे, फिर ब्रह्मासुरके बन्धकी तो बात ही क्या है ॥ ७ ॥ देवराज । मगवान्के नाम-कीर्तनमात्रसे ही ब्राह्मण, पिता, गौ, माता, आचार्य आदिकी हत्या करनेवाले महापापी, कुत्सेका मोस खानेवाले चाण्डाल और कसाई भी मुक्त हो आते हैं ॥ ८ ॥ हमजोग ‘अश्वमेध’ नामक महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे । उसका द्वारा भद्रापूर्वक मगवान्की आराधना करके तुम ब्रह्मापर्यन्त समस्त चराचर जगत्की हत्याके भी पापसे भिन्न नहीं होगे । फिर इस दुष्टको दण्ड देनेके पापसे छूटनेकी तो बात ही क्या है ॥ ९ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित । इस प्रकार ब्राह्मणोंसे प्रेरणा प्राप्त करके देवराज इन्द्रम ब्रह्मासुरका बंध किया था । जब उसके बारे जानेपर मरुत्तया इन्द्रके पास आयी ॥ १० ॥ उसके कारण इन्द्रको बड़ा क्रोध, बड़ी जखम सहनी पड़ी । उन्हें एक क्षणके लिये भी चैन नहीं पड़ता था । सच है, जब किसी सङ्कोची सज्जनपर कुछ उग जाता है, तब उसके धैर्य जाति गुण भी उसे सुखी नहीं कर पाते ॥ ११ ॥ देवराज इन्द्र देखा कि ममहत्या साक्षात् चाण्डालीके समान उनके पीछ-पीछे दौड़ी आ रही है । मुझापेके कारण उसके सारे बन्ध क्यों रहे हैं और क्षययोग उसे सता रहा है । उसके सारे बन्ध मूलमे उदय हो रहे हैं ॥ १२ ॥ वह अपने सपने-सपने काठोंके बिल्लेरे टहर जा । टहर जा ॥ इस प्रकार चिन्ताभी आ रही है । उसके आत्मक प्राप मच्छीकी-सी दूर्गन्ध आ रही है, जिसके कारण मार्ग भी दूषित होना जा रहा है ॥ १३ ॥ राजन् ! देवराज इन्द्र उसके मनमे चिदात्मों और आकाशमे आगने दिने । अन्तमे बड़ी भी शरण न मिलनक कारण उन्होंने पूर्ण और उत्तरके कोनेमें स्थित मानसराजमें शीघ्रमे प्रवेश किया ॥ १४ ॥

इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत्संग्राम उन्मथो ॥ ६ ॥

अत्र नः संशयो म्बाभ्रातुं कौतुहलं प्रभो ।

यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमवोपयत् ॥ ७ ॥

सूत उवाच

परीक्षिताऽयं सम्प्रज्ञं भगवान् चावरायभिः ।

निष्ठम्य भद्रभानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽग्रवीत् ॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच

भृशुष्वावहितो राजभिविहासमिमं यथा ।

धुर्ध्वं द्वैपायनमुत्तापारदावैषलादपि ॥ ९ ॥

आसीद्भ्रात्रा सार्वभौमः शरसेनपु वै रूप ।

चित्रकेतुरिति स्मृतो यस्मासीत् कामधुञ्जयी ॥ १० ॥

तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ।

सान्त्वानिकम्पानि नृपोमलेमेवासु सन्वतिम् ॥ ११ ॥

रूपीदार्यवयोजन्मभिर्दौर्धर्यभियादिभिः ।

सम्पन्नस्य गुणैः सर्वैर्भिन्ता वच्चापठेरम् ॥ १२ ॥

न तस्य सम्पदः सर्वा महिम्ना वामलोचनाः ।

सार्वभौमस्य भूधयेवमभवत् प्रीतिहेतवः ॥ १३ ॥

तस्यैकदा तु भवनमग्निरा भगवान्नुपिः ।

साकानमुचरन्तवानुपागच्छद्यच्छया ॥ १४ ॥

तं प्लपित्वा विधिरप्रत्युत्थानार्हणादिभिः ।

कृतातिथ्ययुर्वामीदस्मृत्वामीने समाहितः ॥ १५ ॥

मयद्भर युद्धके अथसरपर मगान् धीकृष्णे कले

दृष्टिर्पौको इत प्रकार दृढतासे अग्र सक—इच्छा न

करण है ॥ ६ ॥ प्रभो । इस निमित्त होकर

अधिक सन्देश है और सुमनेका बड़ा कौतुहल है ।

वहो, वृत्रासुरका बड़-पौरुष कितना म्बात्र च नि करने

रणभूमिमें देखराज इन्द्रको भी सन्तुष्ट कर दिया ॥ ७ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि श्रुतिमें । अथ

शुकदेवजीने परम ब्रह्मण्य राजर्षि परीक्षितका सब स

प्रश्न सुनकर उनका अग्निनन्दन करते हुए सब का

कही ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित । तुम सत्य

होकर यह इतिहास सुनो । मैंने इसे अपने मित्र

व्यासजी, देवर्षि नारद और महर्षि देवक मुँहसे वे

विधिपूर्वक सुना है ॥ ९ ॥ प्राचीन कालकी बात है

शरसेन देशमें बकर्षी सभाद् म्भाराज विज्जितु राज

करते थे । उनके राज्यमें धृष्णी स्वयं ही प्रजापति इन्द्र

का अनुसार अन्न-रस दे दिया करती थी ॥ १० ॥

उनके एक करोड़ रानियों थीं और वे सब सत्य

उत्पन्न करनेमें समर्थ थीं थे । परन्तु उन्हें ऊँचे ऊँचे

किस्तीके भी गर्से कोई सम्मान न हुई ॥ ११ ॥ वे

म्भाराज चित्रकेतुको किसी बातकी कभी न थी ।

सुन्दरता, उदारता, युवावस्था, पुत्रीमता, निष्क

पेक्ष्य और सम्पत्ति आदि सभी गुणोंसे वे सम्पन्न थे ।

किर भी उनकी पत्नियों बीच थी, इसलिये उन्हें बरी

विष्ठा रहती थी ॥ १२ ॥ वे सभी धृष्णीके एकछत्र

सभाद् थे, बङ्गल-सी सुन्दरी रानियों थीं तथा सभी

धृष्णी उनके वशमें थी । सब प्रकारकी सन्तानों

उनकी सेवामें उपस्थित थीं, परन्तु वे सब मनुष्य इन्हें

सुखी न कर सकें ॥ १३ ॥ एक दिन रात और

बराबर वेनेमें समर्थ अग्निरा अग्नि सन्ध्युत्पत्तसे

निमित्त छोड़ोंमें बिचरते राजा चित्रकेतु महर्षिमें पहुँच

गये ॥ १४ ॥ राजाने प्रत्युत्थान की। अथ आरिते

उनकी निधिपूर्वक पूजा की । आनिष्ठ मानस हो जानक

बात जब अग्निरा अग्नि सुम्पपूर्वक आसनपर विराज

गये, तब राजा चित्रकेतु भी शाश्वतमात्रे उनका पात

महर्षिस्तमुपासीनं प्रभयावनत धितौ ।

प्रतिपूज्य महाराज समामाप्तेदमब्रवीत् ॥१६॥

अज्ञिरा उवाच

अपि तेऽनामयं न्वस्ति प्रकृतीनां तथाऽऽत्मन ।

यथा प्रकृतिभिर्गुप्तं पुमान् राजापि सप्तभिः ॥१७॥

आत्मानं प्रकृतिष्वद्वा निधाय श्रेय आप्नुयात् ।

राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताभय ॥१८॥

अपि दाराः प्रजामात्माभृत्या भेष्योऽथ मन्त्रिणः ।

पौरां ज्ञानपदा भूषा प्रात्मजा वशवर्तिनः ॥१९॥

यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यारसर्वे तद्वशगा इमे ।

लोकैः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्त्रिताः ॥२०॥

आत्मनः प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ।

लघ्वेऽलब्धकामं स्वां चिन्तया द्रवतं मृगम् ॥२१॥

एव विकल्पिता रंजन् विदुषा मुनिनापि सः ।

प्रभयावनताऽभ्यास प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥२२॥

चित्रकेतुलाच

भगवन् किं न विदितं तपोदानसमाधिभिः ।

योगिनां प्यस्तपायानां बहिरन्तः क्षरीरिषु ॥२३॥

ही बैठ गये ॥ १५ ॥ महाराज ! महर्षि अज्ञिराने देखा कि यह राना बहुत विनयी है और मेरे पास पृथ्वीपर बैठकर मेरी मक्ति कर रहा है । तब उन्होंने चित्रकेतुको सम्बोधित करके उसे जादर देते हुए यह बात कही ॥ १६ ॥

अज्ञिरा अधुनि कथा—रानन् । तुम अपनी प्रकृतियों—शुक्र, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और मित्रके साथ सफुल्ल हो हो न ! जैसे जीव महत्त्वादि सात आवरणोंसे घिरा रहता है, वैसे ही राना भी इन सात प्रकृतियोंसे घिरा रहता है । उनके कुशाग्रसे ही रानाकी कुशल है ॥ १७ ॥ नरेन्द्र ! जिस प्रकार राना अपनी उपर्युक्त प्रकृतियोंके अनुकूल रहनेपर ही सम्यक् सुख भोग सकता है, वैसे ही प्रकृतिगणों भी अपनी रक्षाकर मार राजापर छोड़कर सुख और समृद्धि लाभ कर सकती हैं ॥ १८ ॥ राजन् ! तुम्हारी रानियों, प्रजा, मन्त्री (सहायक), सेवक, व्यापारी, अमृत्य (दीवान), नागरिक, देशवासी, मण्डलेन्द्र राना और पुत्र तुम्हारे वशमें तो हैं न ? ॥ १९ ॥ सभी बात तो यह है कि जिसका मन अपने वशमें है, उसके ये सभी वशमें होते हैं । इतना ही नहीं, सभी लोक और आकाश भी सभी साधवानीसे उसे भेंट देकर उसकी प्रसन्नता चाहते हैं ॥ २० ॥ परन्तु मैं देख रहा हूँ कि तुम स्वयं समुद्र नहीं हो । तुम्हारी कोई कामना अनर्गल है । तुम्हारे मुँहपर किसी आन्तरिक चिन्ताके चिह्न सकल रहे हैं । तुम्हारे इस असन्तोषका कारण कोई और है या स्वयं तुम्हीं हो ? ॥ २१ ॥

परीक्षित । महर्षि अज्ञिरा यह जानते थे कि राजा-के मनमें किन्तु बातचीत चिन्ता है । फिर भी उन्होंने उनसे चिन्ताके सम्बन्धमें अनर्गल प्रश्न पूछे । चित्रकेतु को सत्पत्नीकी कामना थी । अतः महर्षिके पूछनपर उन्होंने विनयसे शुककर निवेदन किया ॥ २२ ॥

सत्पत्नी चित्रकेतुने कथा—भगवन् ! त्रिन योगियों-क तरस्या, काम, भारणा, प्यान और ममाधिके द्वारा सारे पाप नष्ट हो चुके हैं—उमके अग्रे प्राणियोंके बाहर या भीतरकी पत्नी कीमती सी बात है, तिसे बे न

स आवसत्पुष्करनालतन्तु

नलम्भभोगो यदिहामिद्वत् ।

वर्षाणि माहस्रमलक्षितोऽन्तः

स धितयन् प्रसन्नभाद्विभोक्षम् ॥१५॥

तावत्त्रिणाक नहुषः शशाम

विधातपायोगबलानुभावः ।

स सम्पदैश्वर्यमदाधबुद्धि

नीतस्तिरथा गतिमिद्वपत्त्या ॥१६॥

तसो गता ब्रह्मगिरापह्व

श्रुतम्भरभ्याननिवारितायः ।

पापस्तु दिग्देवसया हतौवा

स्तनाम्भमूदवितं विष्णुपत्त्या ॥१७॥

त च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेघेन भारत ।

यथावशीक्षयाऽऽकुः पुरुषाराधनेन ह ॥१८॥

अचन्यमाने पुरुष सर्वदेवमयात्मनि ।

अश्वमेघे महन्द्रण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

स वै त्वाष्ट्रवधो भूमानपि पौपचयो नृप ।

नीतस्तेनैव शून्याप नीहार इव भानुना ॥२०॥

स जात्रिमेघेन यथोदिसेन

वितायमानेन मरीचिमिधैः ।

इष्टाधियज्ञं पुरुषं पुराण

मिन्द्रा महानास विधूतपापः ॥२१॥

इदं महारम्भानमशेषपाप्मनां

प्रधातुर्न सीर्षपदानुकीर्तनम् ।

देवराज इन्द्र मानसरोवरके कमलनालके तन्तुओंमें एक हजार वर्षोंतक छिपकर निवास करते रहे और सोचते रहे कि ब्रह्महत्यासे मेरा छुटकारा कैसे होगा। इतने दिनोंतक उन्हें भोजनके छिमे किसी प्रकारकी सामग्री न मिल सकी। क्योंकि ये अग्निदेवताके मुँहसे भोजन करते हैं और अग्निदेवता जबके भीतर कमल-तन्तुओंमें नहीं जा सकते थे ॥ १५ ॥ जबतक देवराज इन्द्र कमलतन्तुओंमें रहे, तबतक अपनी विषा, तपस्वा और योगबलके प्रभावसे राजा नहुष ब्रह्मर्षि शासन करते रहे। परंतु जब उन्होंने सत्यपति और ऐश्वर्यके मदसे अंधे होकर इन्द्रपत्नी शचीके साथ वनाचार करना चाहा, तब शचीने उनसे श्रुतियोंका अपराध करवाकर उन्हें शाप दिया— निजसे वे सौंप हो गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर जब सत्यके परम पोषक मन्त्रतन्त्र पालन करनेसे इन्द्रके पाप नष्टप्राप्त हो गये, तब ब्रह्मर्षिके बुलवानेपर वे पुनः स्वर्गलोकमें गये। कमलचक्रधारिणी विष्णुपत्नी लक्ष्मीभी इन्द्रकी रक्षा कर रही थी और पूर्वोक्त दिशाके अविपत्ति रहने पापको पहले ही निस्तेज कर दिया था, जिससे वह इन्द्रपर आक्रमण नहीं कर सका ॥ १७ ॥

परीक्षित ! इन्द्रके स्वर्गमें जा जानेपर ब्रह्मर्षिकेने उन्हें आकर भगवान्की आराधनाके छिमे इन्द्रको अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा दी, उनसे अश्वमेध यज्ञ कराया ॥ १८ ॥ जब वैश्रवादी श्रुतियोंने उनसे अश्वमेध यज्ञ कराया तब देवराज इन्द्र उस यज्ञके द्वारा सर्वदेवतारूप पुरुषात्मान भगवान्की आराधना की, तब भगवान्की आराधनाके प्रभावसे वृषासुरके बचकी वह बहुत बड़ी पापशक्ति हट प्रकाश भक्त हो गयी, जैसे सूर्योदयसे कुहरक नाश हो जाता है ॥ १९ २० ॥ जब मरीचि आदि सुनीलकीने उनसे विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ कराया, तब उसके द्वारा सनातन पुरुष यज्ञपति भगवान्की आराधना करके इन्द्र सब पापोंसे छुट गये और पूर्ववत् फिर पूजनीय हो गये ॥ २१ ॥

परीक्षित ! इस श्रेष्ठ आख्यायनमें इन्द्रकी विषय, उनकी पापोंसे मुक्ति और भगवान्के प्यारे भक्त वृषासुरका

भक्त्युद्भूयं भक्तजनानुवर्णनं

महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वत ॥२२॥

पठेयुराख्यानमिदं सदा शुभाः

मृष्वन्त्यथो पर्वणिं पर्वणीन्द्रियम् ।

धन्यं यद्यस्य निखिलायमोचनं

रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम् ॥२३॥

वर्णन हुआ है । इसमें तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले भगवान्‌के अनुग्रह आदि गुणोंका सङ्कीर्तन है । यह सारे पापोंको धो बहाता है और भक्तिको बढ़ाता है ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे इस इन्द्रसम्बन्धी आख्यायनको सप्त-सर्वश पढ़ें और सुनें । विशेषतः पढ़ेंगे अक्षरपर तो भवस्य ही इसका सेवन करें । यह धन और यशको बढ़ाता है, सारे पापोंसे छुड़ाता है, शत्रुपर विजय प्राप्त करता है तथा आयु और मङ्गलकी अभिवृद्धि करता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पठस्कन्धे
इन्द्रविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

वृत्रासुरका पूर्वचरित्र

परीक्षिदुवाच

रत्नलमःस्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ।

नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः ॥ १ ॥

देवानां ह्यद्वयत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ।

भक्तिर्बुद्धन्दश्चरणं न प्रायेणोपजायते ॥ २ ॥

रक्षाभिः समसम्प्राप्ताः पार्थिवैरिह बन्तवः ।

तेषां ये केचनइन्त श्रयो वै मनुष्यादयः ॥ ३ ॥

प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव शिखोत्तम ।

मुमुक्षूणां सवसेषु कश्चिमुच्येत सिध्यति ॥ ४ ॥

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।

सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोऽप्यपि महाद्वजे ॥ ५ ॥

वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलाकोपशयनः ।

राजा परीक्षितले कहा—भगवन् ! वृत्रासुरका समाव तो बड़ा रजोगुणी-तमोगुणी पा । वह देवताओंको कष्ट पहुँचाकर पाप भी करता ही पा । ऐसी स्थितिमें भगवान् नारायणके चरणोंमें उसकी सुदृढ़ भक्ति कैसे हुई ? ॥ १ ॥ हम देखते हैं कि प्रायः कुछ सत्त्वमय देवता और पवित्रद्वय आदि भी भगवान्‌की परम प्रेम-मयी अलग्ग भक्तिसे वञ्चित ही रह जाते हैं । सबमुच भगवान्‌की भक्ति बड़ी दुर्लभ है ॥ २ ॥ भगवन् ! इस जगत्‌के प्राणी पृथ्वीके घृत्तिकणोंके समान ही अस्वरूप हैं । उनमेंसे कुछ मनुष्य आदि श्रेष्ठ जीव ही अपने कर्मपाणकी चेष्टा करते हैं ॥ ३ ॥ ब्रह्मन् ! उनमें भी संसारसे मुक्ति चाहनेवाले तो बिरले ही होते हैं और मोक्ष चाहनेवाले ह्यन्तर्में मुक्ति या सिद्धि-काम तो कोई-सा ही कर पाता है ॥ ४ ॥ महामुने ! करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त पुरुषोंमें भी जैसे शान्तचित्त महापुरुषका मित्रता तो बहुत ही कठिन है, जो एकमात्र भगवान्‌के ही परायण हो ॥ ५ ॥ ऐसी अवस्थामें वह वृत्रासुर, जो सब जगत्‌को सताता था और बड़ा पापी पा, उस

स आवसत्पुष्करनालतन्तु

नलब्धभोगो यविहामिदृत् ।

वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्त

स चित्तमन्महावधाय विमोक्षम् ॥१५॥

तावत्त्रिणाकं नहुष क्षयास

विधातपोयोगबलानुभावः ।

स सम्पदैर्बर्धमदाधबुद्धि

नीतस्तिरथा गतिमिद्वपत्न्या ॥१६॥

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहृत

श्रुतन्मरभ्याननिवारिताधः ।

पापस्तु दिग्देवतया हतोऽन्ना

स्तं नाम्यमृदवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

त च ब्रह्मर्षयोऽन्त्येत्थ हयमेधेन मारुत ।

यथावहीक्षयाञ्छुः पुरुषाराधनेन ह ॥१८॥

अध्वेन्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ।

अध्वमेधे महेन्द्रेण वितत ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पौषधयो नृप ।

नीतस्तनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥२०॥

स वाग्निमेधेन यधोदितेन

वितायमानेन मरीचिमिधैः ।

इष्टाधिपज्ञं पुरुष पुराण

मिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥२१॥

इह महारूपानमशेषपाप्मानां

प्रधालन दीर्घपदानुकीर्तनम् ।

देवराज इन्द्र गामसरोवरके कमलमाखके तन्तुओंमें एक हजार वर्षोंतक छिपकर निवास करते रहे और सोचते रहे कि ब्रह्महत्यासे मेरा छुटकारा कैसे होगा । इतने दिनोंतक उन्हें भोजनके लिये किसी प्रकारकी सामग्री न मिल सकी । क्योंकि वे अग्निदेवताके मुहसे भोजन करते हैं और अग्निदेवता मरके भीतर कल-तन्तुओंमें नहीं जा सकते थे ॥ १५ ॥ तबतक देवराज इन्द्र कमलतन्तुओंमें रहे, तबतक अपनी विद्या, तपस्या और योगबलके प्रभावसे राजा नहुष बर्गका शासन करते रहे । परंतु जब उन्होंने सम्पत्ति और ऐश्वर्यके मदसे अंधे होकर इन्द्रपत्नी शचीके साथ अन्याय करना चाहा, तब शचीने उनसे श्रुतियोंका अपराध कृतकर उन्हें शाप लिखा दिया— जिससे वे सोंप हो गये ॥ १६ ॥ तदमन्तर जब सत्यके परम पोषक भगवान्का ध्यान करनेसे इन्द्रके पाप नष्टप्राप्त हो गये, तब ब्रह्मर्षिके मुखावनेपर वे पुनः बर्गलोकमें गये । कमलमन्त्रिणोंकी विष्णुपत्नी लक्ष्मीकी इन्द्रकी रक्षा कर रही थीं और पूर्वोक्त दिशाके अधिपति इन्द्रने पापको पहचाने की निस्तेज्य कर दिया था, जिससे वह इन्द्रपर आक्रमण नहीं कर सका ॥ १७ ॥

परीक्षित । इन्द्रके सर्गमें आ जानेपर ब्रह्मर्षियोंके कर्त्तव्य आकर भगवान्की आराधनाके लिये इन्द्रको अध्वमेध यज्ञकी दीक्षा दी, उनसे अध्वमेध यज्ञ कराया ॥ १८ ॥ जब वेदवादी श्रुतियोंने उनसे अध्वमेध यज्ञ कराया तब देवराज इन्द्रन उस यज्ञके द्वारा सर्वदेवस्वरूप पुरुषोत्तम भगवान्की आराधना की, तब भगवान्की आराधनाके प्रभावसे बृहस्पतिके बचकी वह बहुत बड़ी पापराशि इस प्रकार भस्म हो गयी, जैसे सूर्योदयसे कुछरेका नाश हो जाता है ॥ १९ २० ॥ जब मरीचि आग्नि मुनीन्द्रकीने उनसे विधिपूर्वक अध्वमेध यज्ञ कराया, तब उसके द्वारा समाप्त पुरुष यज्ञपति भगवान्की आराधना करके इन्द्र सब पापोंसे छूट गये और पूर्ववत् फिर पूजनीय हो गये ॥ २१ ॥

परीक्षित । इस श्रेष्ठ आख्यायमें इन्द्रकी विषय, उनकी पापोंसे मुक्ति और भगवान्के प्यारे भक्त बृहस्पतिके

भक्त्युत्थं भक्तजनानुवर्णनं

महेन्द्रमोक्षं विजय मरुत्वतः ॥२२॥

पठेपुरास्यानमिदं सदा बुधाः

मृष्यन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ।

अन्य यज्ञस्यं निरिविलार्थमोचनं

रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम् ॥२३॥

वणन हुआ है । इसमें तीर्थोंका भी तीर्थ बनानाके मगवान्के अनुग्रह आदि गुणोंका सङ्गीतन है । यह सारे पापोंको धो बहाता है और भक्तिको बढ़ाता है ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे इस इन्द्रसम्बन्धी आस्यानको सदा-सर्वदा पढ़ें और सुनें । विशेषतः पर्वणिके अवसरपर तो अवश्य ही इसका सेवन करें । यह धन और यज्ञको बढ़ाता है, सारे पापोंसे छुड़ाता है, शत्रुपर विजय प्राप्त करता है तथा आयु और मङ्गलकी अभिवृद्धि करता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमार्थ्यां संहितायां पट्टस्कन्धे
इन्द्रविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्याय

बृजाम्बिका पूर्वचरित्र

परीक्षितुवाच

रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन् बृजस्य पाप्मनः ।

नारायणं भगवति कथमासीत् दृढा भक्तिः ॥ १ ॥

देवानां शुद्धमन्त्रानामृषीणां चामलात्मनाम् ।

भक्तिर्मुहुर्बुद्धचरणे न प्रायेणोपजायत ॥ २ ॥

रवाभिः समसख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ।

तेषां ये कश्चनहन्त भयो वै मनुजादयः ॥ ३ ॥

प्रायां सुसुखस्तेषां कश्चनैव द्विबोधम ।

सुसुखां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥ ४ ॥

युक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।

सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महाद्भुते ॥ ५ ॥

इन्द्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपशायनः ।

यथा परीक्षितुने कथा—मगन् । बृजाम्बिका स्वभाव तो बड़ा रजोगुणी-ममोगुणी था । वह वेदग्रन्थोंको कुछ पढ़ाकर पाप भी करता ही था । ऐसी स्थितिमें मगवान् नारायणके चरणोंमें उसकी कुछ कृपा केसे हुई ॥ १ ॥ हम देखते हैं कि प्रायः छद्म सत्यमय देवता और पवित्रहृदय श्रुति भी मगवान्की परम प्रेम-मयी कमन्य भक्तिसे वञ्चित ही रह जाते हैं । सचमुच मगवान्की भक्ति बड़ी दुर्लभ है ॥ २ ॥ मगन् । इस जगत्के प्राणी पृथ्वीके वृष्टिकर्मोंका समान ही वसक्य हैं । उनमेंसे कुछ मनुष्य आदि अष्ट जीव ही अपने कल्याणकी चेष्टा करते हैं ॥ ३ ॥ मगन् । उनमें भी संसारसे मुक्ति चाहनेवाले से कितने ही होते हैं और मोक्ष चाहनेवाले हजारोंमें मुक्ति या सिद्धि-लभ तो कोई-सा ही कर पाता है ॥ ४ ॥ महाद्भुते । करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त जगत्में भी जैसे शान्तचित्त महापुरुषका भिन्नता के रहित ही कठिन है, जो एकमात्र मगवान्के ही परायण है ॥ ५ ॥ ऐसी अवस्थामें शत्रुघ्न, जो सब लोगोंको सनाता था और राम जैसे, उस

इत्य दृढमति कृष्ण आसीत्संग्राम वसवणे ॥ ६ ॥

अत्र नेः संशया भूमाच्छ्रोतु कौतुकं प्रभो ।

यः यौरुवेण समरे सहस्राक्षमतापयत् ॥ ७ ॥

सूत उवाच

परीक्षिताऽयं सम्प्रहर्षं भगवान् बादरायणिः ।

निवृत्त्य अहधानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽज्रवीत् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

मृगुष्वावहिता राजभिविहासमिमं यथा ।

मृतं द्वैपायनमुन्वाभाग्दाहेवलाहपि ॥ ९ ॥

आसीद्वाचा सावनीमः ध्रुवसेनेषु वै मृत्यु ।

विभ्रकेतुरिति स्थावा पसासीत् कामधुब्धयि ॥ १० ॥

तस्य भार्यसहस्राणां सहस्राणि दद्यामवन् ।

सान्त्वानिकभापि शृपो न लेभे तासु स ततिम् ॥ ११ ॥

रूपीदार्यवमानं मविद्यैश्वर्यभियादिभिः ।

मम्यभस्य गुणैः सर्वैर्धिन्या वप्यापतेरभूत् ॥ १२ ॥

न तस्य सम्पदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ।

सार्वभौमस्य भूवर्षेयमवन् प्रीतिद्वैतवः ॥ १३ ॥

तत्प्रेक्षदा तु भवनमक्षिरा भगवानृषिः ।

लाकाननुचरन्नेतानुपागच्छच्छब्दभा ॥ १४ ॥

तं पूजयित्वा विधिब्रह्मपुत्रानार्हणादिभिः ।

कृतातिथ्यमुपौमीदत्सुखामीर्न समाहितः ॥ १५ ॥

मगधर पुत्रके अक्षरपर भगवान् श्रीकृष्णने कण

वृत्तिपौकरी इम प्रकार दृष्टतामे कथा सुक्य—इसका क

कारण है ॥ ६ ॥ प्रभो ! इस विषयमें इतने बहुत

अधिक सुन्दर है और सुननेका बड़ा कौतुक भी है

बहो, प्रजापुत्रका कर्म-पौरुष कितना महान् था कि उस

रणभूमिमें देवराज इन्द्रको भी सन्तुष्ट कर दिया ॥ ७ ॥

सूतजी कहते हैं—श्रीमद्वैदिक श्रुतियों । भगवान्

शुक्रदेवजीने परम ब्रह्माक्ष रात्रिमें परीक्षितका यह प्रे

प्रदत्त सुनकर उनका अभिमान्दन करते हुए यह बात

कही ॥ ८ ॥

श्रीशुक्रदेवजीने कहा—परीक्षित ! तुम साधुजन

होकर यह इतिहास सुनो । मैंने इसे अपने मित्र

व्यासजी, देवर्षि मारद और महर्षि देवक्य मुँहसे भी

विधिपूर्वक सुना है ॥ ९ ॥ प्राचीन काळकी बात है,

ध्रुवसेन देशमें चक्रवर्ती सम्राट् महाराज विभ्रकेतु राज

करते थे । उनके राज्यमें पृथ्वी कार्य ही प्रवासी इन्द्र-

क बलुधर जन्म-रस दे दिया करती थी ॥ १० ॥

उनके एक क्राह रात्रियों की और ये सब सम्पन्न

उत्पन्न करनेमें समर्थ भी थे । परन्तु उन्हें उनमेंसे

किसीके भी गर्भसे कोई सन्तान न हुई ॥ ११ ॥

महाराज विभ्रकेतुको किसी बातकी कमी न थी ।

सुन्दरता, उदारता, युवावस्था, कुलीनता, विद्व,

ऐश्वर्य और सम्पत्ति आदि सभी गुणोंसे वे सम्पन्न थे ।

फिर भी उनकी पत्नियों बौद्ध थीं, इसलिये उन्हें बड़ी

किन्ता रहती थी ॥ १२ ॥ वे सारी पृथ्वीके पञ्च

सम्राट् थे, ब्रह्म-ही सुम्हरी रात्रियों थीं तथा सारी

पृथ्वी उनके वशमें थी । सब प्रकारकी सम्पत्तियों

उनकी सेवामें उपस्थित थीं, परन्तु वे सब बलपूर्वक उन्हें

सुखी न कर सकीं ॥ १३ ॥ एक दिन शत्रु और

अरिपक्ष दोनों समर्थ अक्षिरा अग्नि सन्तानरूपसे

निर्गन्तु लोकमें निघटते राजा विभ्रकेतुका महत्तम पुत्र

गये ॥ १४ ॥ राजाभ प्रसुत्वाभ और अन्य कारणोंसे

उनकी विधिपूर्वक पूजा की । आन्ध्रिय सागर हा जानेके

बाद जब अक्षिरा अग्नि सुसुपूर्वक आत्मपर विराज

गये, तब राजा विभ्रकेतु भी शास्त्रभाषसे उनके फल

महर्षिस्तमुपासीनं प्रभयावनतं धितौ ।

प्रतिदृश्य महाराज समामाप्तेदमब्रवीत् ॥१६॥

अङ्गिरा उवाच

अपि तेऽनामवं स्वन्ति प्रकृतीनां तथाऽऽत्मनः ।

यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् रंजापि सप्तभिः ॥१७॥

आत्मानं प्रकृतिष्वद्वा निधाय भेष आप्नुयात् ।

राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवादिताभ्यः ॥१८॥

अपि दाराः प्रजामात्याभृत्याः भेष्योऽथ मन्त्रिणः ।

पौरां जानपदा भूपा आत्मजा वृक्षवर्तिनः ॥१९॥

ब्रह्मास्मानुषवृक्षश्चेत्सात्सर्वे तद्वक्षसा इमे ।

लोक्याः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतव्रिताः ॥२०॥

आत्मनः प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ।

लक्षयेऽलक्षकाम त्वां चिन्तया क्षणलं मुत्सम् ॥२१॥

एव विकल्पितो रंजन् विदुषा मुनिनापि सः ।

प्रभयावनताऽभ्याह प्रमाकामस्ततो मुनिम् ॥२२॥

चित्रकेतुलपाय

भगवन् किं न विदित तपोष्ठानसमाधिभिः ।

योगिनां चरन्तापानां पहरन्तः शरीरिषु ॥२३॥

ही बैठ गये ॥ १५ ॥ महाराज ! महर्षि अङ्गिरा ने देखा कि यह रामा बहुत विनयी है और मेरे पास पृथ्वीपर बैठकर मेरी मक्ति कर रहा है । तब उन्होंने चित्रकेतुको सम्बोधित करके उसे आदर देते हुए यह बात कही ॥ १६ ॥

अङ्गिरा श्रुतिने कहा—रामन् ! तुम अपनी प्रकृतियों—गुरु, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, क्षेत्र, सेना और मित्रके साथ संकुशल तो हो न ? जैसे जीव महत्त्वादि सात आवरणोंसे घिरा रहता है, वैसे ही राजा भी इन सात प्रकृतियोंसे घिरा रहता है । उनके कुशलसे ही राजाकी कुशल है ॥ १७ ॥ नरेन्द्र ! जिस प्रकार राजा अपनी उपर्युक्त प्रकृतियोंके अनुकूल रहनेपर ही राज्यसुख भोग सकता है, वैसे ही प्रकृतियों भी अपनी रक्षाकर मार रानापर छोड़कर सुख और समृद्धि काम कर सकती हैं ॥ १८ ॥ राजन् ! तुम्हारी रानियाँ, प्रजा, मन्त्री (सलाहकार), सेवक, व्यापारी, अमात्य (दीवान), नागरिक, देशवासी, मण्डलेकर राजा और पुत्र तुम्हारे वशमें तो हैं न ? ॥ १९ ॥ सभी बात तो यह है कि जिसका मन अपने वशमें है, उसके ये सभी वशमें होते हैं । इतना ही नहीं, सभी लोक और लोकपाल भी बड़ी सावधानीसे उसे भेंट देकर उसकी प्रसन्नता चाहते हैं ॥ २० ॥ परन्तु मैं देख रहा हूँ कि तुम कार्य सन्तुष्ट नहीं हो । तुम्हारी कोई कामना अपूर्ण है । तुम्हारे मुँहपर किसी आन्तरिक विन्ताके चिह्न लटक रहे हैं । तुम्हारे इस असन्तोषका कारण कोई और है या अन्य तुम्हारी हो ? ॥ २१ ॥

परीक्षित ! महर्षि अङ्गिरा यह जानते थे कि राजा के मनमें किस बातकी विन्ता है । फिर भी उन्होंने उनसे चिन्ताके सम्बन्धमें अनेकों प्रश्न पूछे । चित्रकेतु को सन्तानकी कामना थी । वह महर्षिके पृष्ठमेपर उन्होंने विनयसे झुककर निवेदन किया ॥ २२ ॥

सम्राट् चित्रकेतुने कहा—भगवन् ! त्रिम योनियोंके तपस्या, ज्ञान, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा सारे पाप नाश हो चुके हैं—उनके अग्नि प्राणियोंके बाहर या भीतरकी ऐसी कौन सी बात है, जिसे वे न

तथापि पूष्कतो म्यां मय्यस्मिन्नि चिन्तितम् ।

भवतो विदुषा अपि चादितस्त्वदनुष्ठाया ॥२४॥

लोकपालैरपि प्राध्याः साम्राज्यैश्वर्यसम्पदः ।

न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुपृट्काममिवापरे ॥२५॥

ततः पाहि महामाग पूरैः सह गत तमः ।

यथा तरेम दुस्तरं प्रजया तद्विषेहि नः ॥२६॥

भीमक उवाच

इत्यर्पितः स भगवान् कृपालुर्महाणः सुतः ।

अपयित्वा चरुं स्वाग्र त्वद्यारमयज्व विष्टुः ॥२७॥

ज्येष्ठा भ्राता च या राज्ञो महिषीणां च भारत ।

नाम्ना कृतघृतिवन्त्यै यक्षोष्णिष्टमणाद् द्विज ॥२८॥

अथाह नृपतिं राजन् भवितुं कस्तवात्मज ।

हर्षशोकप्रदस्तुम्यमिति प्रजसुतो ययौ ॥२९॥

सापि तत्प्राशनादेव चित्रकंतोरधारयत् ।

गर्भे कृतघृतिर्देवी कृषिकान्नेरिवात्मजम् ॥३०॥

तस्यां भनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोद्भूतः ।

वक्ष्ये शूरसेनेष्टतेजसा धनधैर्नृप ॥३१॥

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समग्रायत ।

जनयन् शूरसेनानां शृङ्खलां परमां सुदम् ॥३२॥

इष्टो राज्ञा कुमारस्य स्नातः शुधिरसकृतः ।

जानते ह्ये ॥ २९॥ ऐसा होनेपर भी जब आप सब कुछ जान-बूझकर मुझसे मेरे मनकी चिन्ता पूछ रहे हैं, तब मैं आपकी आज्ञा और प्रेरणासे अपनी धिन्व आपके चरणोंमें विवेदन करता हूँ ॥ २४ ॥ मुझ पृथ्वीका साम्राज्य, ऐश्वर्य और सम्पत्तियाँ, इनके बिजये लोकपाल भी आकाशित रहते हैं, प्राप्त हैं । परन्तु सन्ताप न होनेके कारण मुझे इन सुखभागोंसे उसी प्रकार तनिक भी शान्ति नहीं मिल रही है, जैसे भूले-प्यासे प्राणी को जल नलके सिवा दूसरे भोगोंसे ॥ २५॥ महात्मनः महर्षे । मैं तो दुखी हूँ हूँ, पिच्छान न मिलने की आशाकासे मेरे पितर भी दुखी हो रहे हैं । जब आप हमें सन्तान-दान करके परलोकमें प्राप्त होनेका धोर नरकसे उबारिये और ऐसी व्यवस्था कीजिये कि मैं लोक-परश्रीकके सबहु खोंसे छुटकारा पाऊँ ॥ २६॥

भीमकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब राजा चित्रकेतुने इस प्रकार प्रार्थना की, तब सर्वसमर्थ एवं परम कृपालु महापुरुष भगवान् अक्षिराने लज्जा देखकर योग्य चक्र निर्माण करके उससे उनका वस्त्र किया ॥ २७ ॥ परीक्षित ! राजा चित्रकेतुकी रानियोंने सबसे बड़ी और सद्गुणकी महारानी इन्द्रपुत्री को । अर्थात् अक्षिराने उन्हींको यज्ञक अवशेष प्रस्तुत किया ॥ २८ ॥ और राजा चित्रकेतुसे कहा—राजन् ! तुम्हारी पत्नीके गर्भसे एक पुत्र होगा, जो तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही देगा । यों कहकर अक्षिर अगि चले गये ॥ २९ ॥ उस यज्ञावशेष प्रस्तुत करनेसे ही महारानी इन्द्रपुत्री महाराज चित्रकेतुके द्वारा गर्भ धारण किया, जैसे कृषिकान्नेर अथवा गर्भे अग्निभुम्भ को धारण किया था ॥ ३० ॥ राजन् ! शूरसेन देशके राजा चित्रकेतुके सेवसे कृतघृतिका गर्भे शुद्धाशुके अन्धमाक समान दिनोंमें जनना करने लगा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर समय आनेपर महारानी इन्द्रपुत्रीक गर्भसे एक सुन्दर पुत्रका जन्म हुआ । उसके जन्मका समाचार पाकर शूरसेन देशकी प्रजा बहुत ही आनन्दित हुई ॥ ३२ ॥ सम्राट् चित्रकेतुके आनन्दका ही कहना ही क्या था । वे स्नान करके पवित्र हुए ।

वाचयित्वाऽऽक्षिपो विप्रैः कारयामास ज्ञातकम् ॥३३॥

तेभ्यो हिरण्यं रत्नं वासांस्त्राभरणानि च ।

प्राप्तान् हयान् गन्धान् प्रादात् धेनूनामर्बुदानि पट् ॥३४॥

वर्षं काममन्त्रेणां पर्यन्त्य इव देहिनाम् ।

धन्यं यत्प्रत्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥३५॥

कृष्णलम्बेऽथ रात्रिर्प्रेतनयेऽनुदिनं पितुः ।

पथा निःस्त्रस्य कृच्छ्राप्ते धने स्त्रहोऽन्ववर्षव ॥३६॥

मातृस्त्वतिवरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ।

कृतपुत्रैः सपत्नीनां प्रज्ञाकामचरोऽभवत् ॥३७॥

चित्रकेतोरतिप्रीतिर्वया दारे प्रजावति ।

न तथान्येषु सञ्ज्ञां बालं लालयतोऽन्ववत् ॥३८॥

ताः पर्यवप्यभास्मान् गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ।

आनपत्येन दुःखेन रौद्रोऽनादरेण च ॥३९॥

भिगप्रभां स्त्रियं पापां पत्युश्चाशुहसम्मताम् ।

सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीभिर्विरस्कृताम् ॥४०॥

दासीनां को नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया ।

अभीक्ष्णं सम्प्रमानानां दासा दासीव दुर्मताः ॥४१॥

एव सन्दर्शमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा ।

राशोऽसम्मतवृत्तीनां विद्रवा बलवानभूत् ॥४२॥

किर उन्होंने मन्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो, भासणोंसे सज्जिवाचम कराकर और आशीर्वाद लेकर पुत्रकर्म जातकर्म-संस्कार कत्ताया ॥ ३३ ॥ उन्होंने उन प्रासणों को सोना, चाँदी, वस्त्र, आभूषण, गेँव, घोड़े, हाथी और च अर्बुद गौरों दान की ॥ ३४ ॥ उदारशिरोमणि राजा चित्रकेतुन पुत्रके धन, यश और आपुकी हृदिके छिये दूसरे लोगोंको भी मुँहभोगी पसुएँ दी— ठीक उसी प्रकार जैसे मेघ सभी बीजोंकर मनोरथ पूर्ण करता है ॥ ३५ ॥ परीक्षित ! जैसे यदि किसी कमलको बड़ी कठिनाईसे कुछ धन निक जाता है तो उसमें उसकी आसक्ति हा जाती है, वैसे ही बहुत कठिनाईसे प्राप्त हुए उस पुत्रमें राजर्षि चित्रकेतुका स्नहबन्धन दिनोदिन बढ़ होने लगा ॥ ३६ ॥ माता कृष्णवृत्तिको भी अपने पुत्र पर मोहके कारण बहुत ही स्नह था । परन्तु उनकी सौत रानियोंके मनमें पुत्रकी कामनासे और भी जलन होने लगी ॥ ३७ ॥ प्रतिदिन बाळकका डाङ्गन्यार करते रहनेके कारण सप्ताट चित्रकेतुका त्रिस्ता प्रेम बन्धेकी या कृतघृतिमें था, उतना दूसरी रानियोंमें न रहा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार एक तो वे रानियाँ सन्तान न होनेके कारण ही दुखी थीं, दूसरे राजा चित्रकेतुन उनकी खेपेक्षा कर दी । अतः वे डाहसे अपनेको बिक्रमने और मन ही-मन जलन लगी ॥ ३९ ॥ वे आपसमें कहन लगी—‘अरी बहिनो ! पुत्रहीन की बहुत ही अपमानिनी होती है । पुत्रवाली सौत तो दासीके समान उसका निरस्कार करती हैं । और तो और, स्वयं पतिदेव ही उसे पत्नी बतके नहीं मानते । सच मुच पुत्रहीन की बिक्रारक योग्य है ॥ ४० ॥ मन्त्र, दासियोंका क्या दुःख है ! वे तो अपने स्वामीकी सेवा करके निरन्तर सम्मान पानी रहती हैं । परन्तु इन अभागिनी तो इस समय उनसे भी गयी-भीती हो रही हैं और दासियोंकी दासीके समान बार-बार निरस्कार पा रही हैं ॥ ४१ ॥ परीक्षित ! इस प्रकार वे रानियाँ अपनी सौतकी गो-भरी देखकर जखमी रहती थीं और राजा भी उनकी ओरसे उन्गसीन हा गये थे । फलतः उनकी मनमें कृतघृणिके प्रति बहुत अधिक द्वेष हा गया ॥ ४२ ॥

विशेषनष्टमथः स्त्रियो दारुणचेतसः ।

गर ददुः कुमारस्य दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥

कृतघुतिरजानन्ती मपत्नीनामर्षं महत् ।

सुप्त एवेति सञ्चिन्त्य निरीक्ष्य व्यभारद् गृहे ॥४४॥

अपानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ।

पुत्रमानस मे भद्रे इति धात्रीमथोदयत् ॥४५॥

सा अपानमुपमन्य दृष्ट्वा शोचैरलोचनम् ।

प्राग्निप्रसारमभिस्त्यक्त इवासीत्यपवदुनि ॥४६॥

तस्मास्तदाऽऽकम्प्य शृङ्गातुरं स्वरं
ज्वन्त्याः कराम्बाभिर उष्णैरपि ।

प्रविश्य राक्षी स्वरयाऽऽत्मजान्तिकं
ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥४७॥

पपात भूमौ परिहृदया श्रुत्वा
मुमोह विभ्रष्टधिरारुहाम्बरा ॥४८॥

ततो नृपान्तःपुरवर्तिनां जना
नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ।

आगत्य तुल्यव्यसनाः सुतुःसिता
स्ताश्च व्यलीकं करुदुः कृतागसः ॥४९॥

श्रुत्वा मृत पुत्रमलक्षितान्तर्कं
विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्वबलं पथि ।

स्नेहाजुषा चैषितया श्रुत्वा मृष्टं
विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विवैर्दिवः ॥५०॥

पपात बालस्य स पादमूलं
मुतस्य विस्मस्तधिरारुहाम्बराः ।

होके कारण रात्रियोंकी मुद्रि मारी गयी ।
उनके चित्तमें क्रूरता छा गयी । उन्हें अपने
पति विश्वकेतुका पुत्र-स्नेह सहन न हुआ । इसलिये
उन्होंने चिढ़कर मन्हे-से राजकुमारको निरा
दिया ॥ ४३ ॥ महारानी कृतघुतिको सीतेकी स
धोर पापमयी कर्तव्यका कुछ भी पता न था । उन्होंने
दूरसे देखकर समझ लिया कि बच्चा सो रहा
है । इसलिये वे महलमें हजर उबर बोझी
रहीं ॥ ४४ ॥ बुद्धिमती रानीने यह देखकर कि बच्चा
बहुत देरसे सो रहा है, धापसे कहा—कन्याली ! मेरा
छाऊको ले आ ॥ ४५ ॥ धायने सोते हुए बालकके
पास जाकर देखा कि उसके नेत्रोंकी पुतलियाँ उल्ट
गयी हैं । प्राण, इन्द्रिय और जीवात्माने भी उसके
शरीरसे निदा ले ली है । यह देखते ही 'हाय रे !'
मारी गयी ।' इस प्रकार कहकर वह भरतीपर नि
पकी ॥ ४६ ॥

धाय अपन दोनों हाथोंसे छाती पीट-पीटकर बड़े
जर्तस्वरमें जोर जोरसे रोने लगी । उसका रोना सुनकर
महारानी कृतघुति जल्दी-जल्दी अपन पुत्रक सम्पन्न होने
पहुँची और उन्होंने देखा कि मेरा छेदा-सा बच्चा अकल्पित
मर गया है ॥ ४७ ॥ तब वे अत्यन्त शोकके कारण
मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी । उनके सिरक झुक
बिखर गये और शरीरपरके बाल अस्त-म्यस्ता हो गये ॥ ४८ ॥
तदनन्तर महारानीका रुदन सुनकर रतिशतके सभी ही-
पुरुष वहाँ दीड़ जाये और सहानुभूतिपथ अत्यन्त
दुखी होकर रोने लगे । वे हाथारी रात्रियों भी वहाँ जमकर
झूठ-मूठ रोनाका दौंग करम करी ॥ ४९ ॥ जब राजा
विश्वकेतुको पता लगा कि मेरे पुत्रकी अवसरण ही मृत
हो गयी है तब अत्यन्त स्नेहक कारण शोकके जायेसे
उनकी आँखोंके सामने धँसरा छा गया । वे धीरे-धीरे
अपने मन्त्रियों और जाहणोंके साथ मार्गमें प्रियत-यवत
मृत बालकके पास पहुँचे और मूर्छित होकर उसके पैरोंके
पास गिर पड़े । उनके केश और बाल हजर-उबर बिखर

दीध सवत् बाप्यकलोपरोधतो
निरुद्धकण्ठो न स्रष्टाक भापितुम् ॥५१॥

पति निरीक्ष्योरुशुचार्पितं तदा
मृतं च पात सुतमेकसन्ततिम् ।

अनस्य राक्षी प्रकृतेष्व हतुर्ध
सती दधाना विललाप चित्रधा ॥५२॥

स्तनद्वय कुक्षुमगन्धमण्डित
निपिञ्चती साञ्जनबाप्यबिन्दुभिः ।

विकीर्य केशान् विगलस्रजः सुर्ध
ह्रस्वोच चित्र कुरीब सुस्तरम् ॥५३॥

अहो विधातस्त्वमतीव बालिष्ठो
चस्त्वात्मसुष्टयप्रतिरूपमीहसे ।

परेऽनुजीविष्यपरस्व या मृति
विपर्ययश्चेन्ममसि ध्रुवः परः ॥५४॥

न हि क्रमश्चेदिह मृत्युबन्धनोः
क्षरीरिणामस्तु तदाऽऽत्मकर्मभि ।

यः स्नेहपाष्ठो निजसर्गद्वन्द्वे
स्वर्गं कुतस्ते धर्मिणं विदुषसि ॥५५॥

स्व ताव नाईसि च मां कुपणामनाभां
त्यक्तु विचक्षण पितरं तव श्लोकतप्तम् ।

अश्वस्तरेम भवताप्रमदुस्तरं यद्
ज्वान्त न याद्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥

उचिष्ठ ताव त इमे क्षिप्रवो वमसा
स्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ।

गये । वे छबी-छबी सौंस लेमे छगे । औंस बोकी अधिकता से उनका गला रुँच गया और वे कुछ भी बोल न सके ॥५०॥ ५१॥ पतिप्राणा रागी कृतघृति अपने पति बिचित्रके मुँह को अत्यन्त शोकफुल्ल और इकट्ठीते नन्हे-से बच्चेको मरा हुआ देख मौति-मौतिसे पिछाप करने लगी । उनका यह दुःख देखकर मन्त्री आदि सभी उपस्थित मनुष्य शोकमस्त हो गये ॥ ५२ ॥ महारानीके नेत्रोंसे इतने औंस बह रहे थे कि वे उनकी औँलोंका ध्वजम लेकर केसर और चन्दनसे चर्चित बड़ा स्वच्छको मिश्रण करने । उनके बाळ बिखर रहे थे तथा उनमें गुँथ हुए फूल फिर रहे थे । इस प्रकार वे पुत्रके छिये कुरी पक्षीके सम्मम उच्छ्वसमें विविध प्रकारसे विक्षय कर रही थीं ॥ ५३ ॥

वे कहने लगीं—'अरे विधाता ! सचमुच तू बड़ा मूर्ख है, जो अपनी सृष्टिके प्रतिकूल चेष्टा करता है । बड़े आश्चर्यकी बात है कि बड़े-बड़े तो जीते हैं और बालक मर जायें । यदि शास्त्रमें तेरे जमाकमें ऐसे हैं विपरीतता है, तब तो तू जीवोंका अमर शत्रु है ॥ ५४ ॥ यदि संसारमें प्राणियोंकी जीवन-मरणका कोई क्रम न रहे, तो वे अपने प्रारब्धके अनुसार जन्मते-मरते रहेंगे । फिर ऐसी आवश्यकता ही क्या है । दूने सम्बन्धियोंमें स्नेह-बन्धन तो इसीछिये बाध रहस्य है म कि वे ऐसी सृष्टिके बचावें ? परन्तु तू इस प्रकार बच्चोंको मारकर अपने किये-करायेपर अपने हाथों पानी फेर रहा है ॥ ५५ ॥ फिर वे अपने मृत पुत्रकी ओर देखकर कहने लगीं— 'बेटा ! मैं तुम्हारे बिना अनाथ और दीन हो रही हूँ । मुझे छोड़कर इस प्रकार जमे आमा तुम्हारे छिये उचित नहीं है । तमिह औँस सोखकर देखो तो सही, तुम्हारे पितानी तुम्हारे वियोगमें कितने शोक-सन्तप्त हो रहे हैं । बेटा ! जिस ओर मरकतो नि सन्तान पुरुष बड़ी कठिनाईसे पार कर पाते हैं, उसे हम तुम्हारे सहाये अनायास ही पार कर लेते । अरे बेटा ! हम इस यम-राजके साथ दूर मत जाओ । यह तो बड़ा ही निर्दयी है ॥ ५६ ॥ मेरे प्यारे मरुता ! जो रानकुमार ! उठो, बेटा ! देखो, तुम्हारे साथी बाळक तुम्हें छोड़नेके

सुतभिरं व्रजनया च भवान् परीतो

सुहृन् स्तनपिष लुचाहरनः स्वकानाम् ॥

नाह तन्म ददधे इयमज्ञता ते

मुग्धसिर्त मुदितबीक्षणमाननाम्बजम् ।

किं वा मतोऽस्य पुनरन्वयमन्मलोकं

नीरोऽवृण्वन न मृणामि कला गिरस्ते ॥५८॥

श्रीशुक उवाच

विलपन्त्या मृतं पुत्रमिव चित्रविलापनैः ।

चित्रकेतुर्दृष्ट तप्तो मुक्तकण्ठो करोद ह ॥५९॥

तपोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्यास्तदनुवृताः ।

रुद्रदुः स नरा नार्यः सर्वमासीदचतनम् ॥६०॥

एव कश्चमलमापन्नं नष्टसंभ्रमनायकम् ।

ज्ञात्वाङ्गिना नाम मुनिरावगाम सनारहः ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां वप्रस्कन्धे

चित्रकेतुकिम्बपो नाम चतुर्दशाध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

चित्रकेतुको अङ्गिरा और नारदसीका उपदेश

श्रीशुक उवाच

ऊचतुर्धृतकोपान्ते पैतिसं मृतकोपमम् ।

शोकाभिभूतं राजान बोधयन्ती सदुक्तिभिः ॥ १ ॥

काऽप्यं स्वात तव राजेन्द्र भवान् यमलुलोचवि ।

स्व धास्य कृतयः सूर्यो पुरेदानीमत परम् ॥ २ ॥

छिये मुक्त रहे हैं । तुम्हें सोते-सोते बहुत देर हो गयी, अब मूस खगी होगी । उठो, कुछ खाओ । और कुछ नहीं तो मेरा कुछ ही पी लो और अपने सजन-सम्बन्धी हमलेगोका शोक दूर करो ॥ ५७ ॥ प्यारे बन्धु ! जब मैं तुम्हारे मुखारविन्दपर यह मोखी-भाखी मुसकराऊँ और आनन्दमयी वितपन नहीं देख पाऊँ । मैं यही आशागिनी हूँ । हाय-हाय ! अब भी मुझे तुम्हारी सुमधुर तोलखी बीछी नहीं सुनायी दे रही है । क्या सचमुच निद्रा सम्राज तुम्हें उस परबोकमें संलग्न, सहसि फिर कोई खी-खर नहीं आता ॥ ५८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जब सम्राट् चित्रकेतुने देखा कि मेरी शमी अपने मृत पुत्रके छिये इस प्रकार झोमि-झोमिसे विलाप कर रही है, तब वे शोकसे अत्यन्त सम्मत्त हो फूट फूटकर रोने लगे ॥ ५९ ॥ राजा-पत्नीके इस प्रकार विलाप करनेपर उनके लग्नगमनी स्त्री-पुरुष भी दुःखित होकर रोने लगे । इस प्रकार सारा नगर ही शोकसे ज्वलेत-सा हो गया ॥ ६० ॥ राजा । मैं भी अङ्गिरा और देवर्षि नारदने देखा कि राजा चित्रकेतु पुत्रशोकक कारण चेतनाहीन हो रहे हैं, यहाँतक कि उन्हें सम्माननेवाला कोई नहीं है । तब वे दोनों यहाँ आये ॥ ६१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! राजा चित्रकेतु

शोकमत्त होकर मुझे समाज अपने मृत पुत्रके पास ही पकड़ गए थे । अब महर्षि अङ्गिरा और देवर्षि नारद उन्हें सुन्दर-सुन्दर उक्तिसे सम्मानने लगे ॥ १ ॥ उन्होंने कहा—राजेन्द्र ! जिसके छिये तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म और पहलेके जन्मोंमें तुम्हारा कीमत या उसका तुम पौत्र थे । और जन्म जन्मोंमें भी उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा ॥ २ ॥

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोद्वेगेन बाधुकाः ।

संपुन्यन्ते विपुन्यन्ते तथा कालेन देहिनाः ॥ ३ ॥

यथा धानाश्च वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ।

एव भूतेषु मृतानि चोदितानीष्टमायया ॥ ४ ॥

यय च त्व य ये चेमे तुल्यकालाधराधराः ।

अममृत्योर्यथा पश्चात् प्राप्स्यन्ममधुनापि मोः ॥ ५ ॥

मृतैर्मृतानि भूतेशः सृज्यन्वति इन्त्यजः ।

आत्मसृष्टरस्रतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥ ६ ॥

देहेन देहिनो राजन् देहादेहोऽभिभावते ।

बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥ ७ ॥

देहदेहिनिभागोऽयमविवेककृत पुरा ।

जातिभ्यक्तिविभागोऽयमविवेककृतः ॥ ८ ॥

श्रीमुक्त उवाच

एवमाभासितो राजा चित्रकेर्तुर्विजोक्तिभिः ।

प्रसूज्य पाणिना बभ्रमाभिभूतानममायत ॥ ९ ॥

जैसे जलके वेगसे बाधके कण एक दूसरेसे छुटते और बिछुटते रहते हैं, वैसे ही समयक प्रवाहमें प्राणियोंका भी मिश्रण और बिछोह होता रहता है ॥ ३ ॥ राजन्! जैसे कुछ बीजोंसे दूसरे बीज उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही मगधानकी मायासे प्रेरित होकर प्राणियोंसे अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥ राजन्! हम, तुम और हमभोगोंके साथ इस जगत्में जितना भी चरचर प्राणी कमाना है—वे सब अपने जन्मके पहले महीं थे और मृत्युके पश्चात् नहीं रहेंगे । इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है । क्योंकि सत्य वस्तु तो सब समय एक-सी रहती है ॥ ५ ॥ मगधान की सम्पदा प्राणियोंके अधिपति हैं । उनमें जन्म-मृत्यु आदि विकार बिल्कुल नहीं हैं । उन्हें न किसीकी इच्छा है और न अपेक्षा । वे अपने-आप परस्पर प्राणियोंकी सृष्टि कर लेते हैं और उनके द्वारा अन्य प्राणियोंकी रचना, पाकन तथा संहार करते हैं—ठीक वैसे ही जैसे कच्चे वर-धरौं, खेड़-खिड़ौने बना-बनाकर विण्डवते रहते हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित! जैसे एक बीजसे दूसरा बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही पिताकी देहद्वारा माताकी देहसे पुत्रकी देह उत्पन्न होती है । पिता-माता और पुत्र जीवक रूपमें देही हैं और बाह्य दृष्टिसे केवल धरी । उनमें देही जीव वन आदि कर्मोंमें भूषीके समान नित्य हैं ॥ ७ ॥ राजन्! जैसे एक ही व्यक्तिारूप वस्तुमें बटल आदि जाति और वन आदि व्यक्तियोंका विभाग केवल कल्पनामात्र है, उसी प्रकार यह देही और देहका विभाग भी कल्पना पत्रं कविषा कल्पित है ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब मूर्ध्नि अज्जिरा और वेर्णि भारदने इस प्रकार राधा चित्रकटुको सम-झाया-मुझझाया, तब उन्होंने कुछ भीरव धारण करके धोकसे मुरझाये हुए मुक्तको हाथसे पोंछ और उनसे कहा—॥ ९ ॥

१ मा पा —इति च । २ मा पा —मूर्ध्निचरिभिः ।

● अनित्य होनेके कारण धरीर अस्थाय हैं और धरीर अस्थाय होनेके कारण उनके भिन्न-भिन्न अभिमानी भी अस्थाय ही हैं । विभक्त्यभाविता सब तो एकमात्र परमात्म ही है । अतः शोक करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है ।

राजीवान

राजा शिवकन्त बोले—आप दोनों परम ज्ञानवान्

कौशुवां ज्ञानसम्पन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ।
 भवभूतेन वेपेण गूढानिह समागमौ ॥१०॥
 चरन्ति ब्रह्मनौ काम ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ।
 माह्व्यां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिन ॥११॥
 कुमारो नारद आसुरक्षिरा देवनोऽसितः ।
 अपान्तरतमो व्यासो मार्कण्डेयाऽथ गौतमः ॥१२॥
 वसिष्ठा भगवान् रामः कपिलो बादरायणिः ।
 दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च श्रावर्कस्यस्तथाऽऽरुणि ॥१३॥
 रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सप्तशङ्खलिः ।
 अर्षिर्बेदक्षिरा बोध्यो मुनि यज्ञक्षिरास्तथा ॥१४॥
 हिरण्यनाभः कौसल्य भुतदेव अतच्छाजः ।
 एतं परं च सिद्धेशाभरन्ति ज्ञानहवयः ॥१५॥
 तस्माद्युवां प्राम्बपञ्चोर्मम मूढधियः प्रभू ।
 अचे तमसि मग्नस्व ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥१६॥

अक्षिरा उवाच

अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यक्षिरा नृप ।
 यप ब्रह्मसुतः साधन्नारदो भगवानुपिः ॥१७॥
 इत्थं त्वां पुत्रशक्तेन मयं तमसि दुस्तर ।
 अतर्दईमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥१८॥
 अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ।
 ब्रह्मण्या भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥१९॥
 तदैव ते पर ज्ञान ददामि गृहमागतः ।
 ज्ञात्वान्याभिनिवेश ते पुत्रमेव ददावहम् ॥२०॥
 अधुना पुत्रिणां तापो भवतयाजुभूयत ।

और महान्से भी महान् ज्ञान पढ़ते हैं तब करनेसे
 अवभृतावेपमें छिपाकर यहाँ आये हैं । कृपा करके बतल-
 ष्ये, आपसोंगे हैं कौन ? ॥ १० ॥ मैं जानता हूँ कि
 बहुतसे भगवान्के प्यारे ब्रह्मवेद्या मेरे-जैसे विस्मयक
 प्राणियोंको उपदेश करनेके लिये उन्मत्तक-सा वष बन-
 कर पृथ्वीपर खञ्जन्द विचरण करते हैं ॥ ११ ॥ सनत्
 कुमार, नारद, शत्रु, अक्षिरा, देवक, अस्मित, कपल-
 तम व्यास, मार्कण्डेय, गौतम, वसिष्ठ, भगवान् परशुराम,
 कपिकदेव, कुकदेव, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, श्रावर्क,
 आरुणि, रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पञ्चलि,
 वेदक्षिरा, बोध्यमुनि, यज्ञक्षिरा, हिरण्यनाम, कौसल्य,
 भुतदेव और अतच्छाज—ये सब तथा दूसरे सिद्धेश
 अर्षि-मुनि ज्ञानराम करनेके लिये पृथ्वीपर निकलते
 रहते हैं ॥ १२-१५ ॥ स्वामियो ! मैं विषयमग्निमें फँस
 हुआ, मूढबुद्धि प्राप्त पशु हूँ और ज्ञानके मोर कब
 कारमें हूँ रहा हूँ । आपसोंगे मुझे ज्ञानकी ग्यारिसे
 प्रफ़लक केन्द्रमें आये ॥ १६ ॥

महर्षि अक्षिराने कहा—राजन ! जिस समय तुम

पुत्रके लिये बहुत खाजासित थे, तब मैंने ही तुम्हें पुत्र दिय
 या । मैं अक्षिरा हूँ । ये जो तुम्हारे सामने खड़े हैं,
 स्वयं ब्रह्माजीके पुत्र सर्वसमय देवर्षि नारद ॥ १७ ॥ जब
 हमकोग्येन देखा कि तुम पुत्रशोक्तके कारण बहुत ही बने
 ज्ञानान्धकारमें डूब रहे हो, तब सोचा कि तुम भगवान्
 के भक्त हो, शोक करनेयोग्य नहीं हो । अतः
 तुमपर अनुग्रह करनेके लिये ही हम दोनों यहाँ आये
 हैं । राजन् ! सभी बात तो यह है कि जो भगवान्
 और ब्राह्मणोंका भक्त है, उसे किसी अवस्थामें शोक
 नहीं करना चाहिये ॥ १८ १९ ॥ जिस समय पहले-
 पहल मैं तुम्हारे घर आया था, उसी समय मैं तुम्हें
 परम ज्ञानकर उपदेश देता; परन्तु मैंने देखा कि अभी
 तो तुम्हारे हृदयमें पुत्रकी ठाक जाग्रता है, इसलिये
 उस समय तुम्हें ज्ञान न देकर मैंने पुत्र ही दिया ॥ २० ॥
 अब तुम स्वयं अनुग्रह कर रहे हो कि पुत्रशोको

एव दारा गृहा रोपो विविधैश्वर्यसम्पदः ॥२१॥

श्रद्धादयश्च विपसाधला रान्यविभूतयः ।

महीरान्यं वल कोशो भृत्यामात्मा सुहृजनाः ॥२२॥

सर्वेऽपि शूरसेनेमे आक्रमोहभयार्तिदाः ।

गर्ध्वनगरप्रख्या स्वप्नमायामनारथाः ॥२३॥

दृश्यमाना विनार्येन न दृश्यन्ते मनोभवाः ।

कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्मणि मनसोऽभवन् ॥२४॥

अयं हि देहिनो देशो ब्रह्मज्ञानक्रियात्मकः ।

देहिनो विविधक्लेशसन्तापकुदाहृतः ॥२५॥

वक्ता स्वस्येन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ।

द्वैते भुवार्थविभ्रम् त्वन्वोपलभमाविष्ठः ॥२६॥

नारद उवाच

एतां मन्त्रापनिपदं प्रतीच्छ प्रयत्ना मम ।

यां भारयन् सप्तरात्राद् ब्रह्मा सङ्घर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

यस्यादमूलमपसृत्य नरेन्द्र पूर्वं

शर्षाष्ठ्यो भ्रममिमं द्वितयं विमुच्य ।

सप्तसदीयमसुलानभिर्कं महित्व

प्रापुर्मवानपि परं नचिरादुपैति ॥२८॥

किन्तु ना दुःखं होता है । यही बात स्त्री, घर, धन, विविध प्रकारके ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ, शब्द-रूप-रस आदि विषय, राज्यभवन, पृथ्वी, राज्य, सेना, सजाना, सेवक, अमात्य, सगे-सम्बन्धी, इष्ट-मित्र सबके लिये है, क्योंकि ये सब के-मव अनित्य हैं ॥२१॥ २२॥ शूरसेन ! अतएव ये सभी शोक, मोह, मय और दुःखके कारण हैं, मनके खेल-खिलौने हैं, सर्वथा कल्पित और मिथ्या हैं, क्योंकि ये न होनेपर भी दिखायी पड़ रहे हैं । यही कारण है कि ये एक क्षण दीखनेपर भी दूसरे क्षण छुट जाते हैं । ये गर्ध्वनगर, स्वप्न, सादृ और मनोरपकी वस्तुओं-के समान सर्वथा असत्य हैं । जो लोग कर्म-जासनाओंसे प्रेरित होकर नियोग्य विस्तार करते रहते हैं, उन्हींका मन अनेक प्रकारके कर्मोंकी सुष्टि करता है ॥२३॥ २४॥ जीवात्माकी यह देह—जो पञ्चभूत, ज्ञानन्धिय और कर्मेन्द्रियोंका संघात है—जीवको विविध प्रकारके क्लेश और सन्ताप देनेवाली बन्नी जाती है ॥२५॥ इसलिये तुम अपने मनको विषयोंमें भटकनेसे रोककर शान्त करो, स्वल्प करो और फिर उस मनके द्वारा अपने वास्तविक स्वरूपका विचार करो तथा इस द्वैत-भ्रममें नित्यत्वकी मुक्ति छोड़कर परम शान्तिस्वरूप परमात्मामें स्थित हो जाओ ॥ २६ ॥

वेदोंमें नारदने कहा—राजन् ! तुम एकप्रविष्टसे मुक्तसे यह मन्त्रोपनिषद् ग्रहण करो । इसे धारण करनेसे सात रातमें ही तुम्हें भगवान् सङ्घर्षणका दर्शन होगा । २७ । नरेन्द्र ! प्राचीन कालमें भगवान् शाङ्कर आदिने श्रीमद्वर्ण देवके लिये धारणक्रमोंका आश्रय किया था । इससे उन्होंने द्वैतभ्रमका परित्याग कर दिया और उनकी उस महिमाको प्राप्त हुए, जिससे बढ़कर तो कोई है ही नहीं, समान भी नहीं है । तुम भी बहुत शीघ्र ही भगवान्‌के तृती परमपदको प्राप्त कर लोगे ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते श्रीपुत्राणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चस्कन्धे चित्रकेऽ

संस्कृतं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

शिवकेतुका वैराग्य तथा सङ्कर्षणवैयके दर्शन

श्रीशुक उवाच

अथ देवश्रुयी रामेन सम्परेतं नृपात्मजम् ।
दर्शयित्वेति होवाच श्वातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥

नारद उवाच

जीवात्मव पश्य भर्तृ ते मातरं पितरं च ते ।
सुहृदो वा भवास्तप्ताः श्रुत्वा त्वत्कृतया शृणुम् ॥ २ ॥
कलेवरं स्वमाविश्य श्रेयसायुः सुहृद्भूतः ।
सृष्ट्वैव भागान् पितृप्रदानधितिषु नृपासनम् ॥ ३ ॥

जीव उवाच

कसिञ्जन्मन्यमी मम पितरो मातरोऽभवन् ।
कर्मभिर्भ्रान्धमाणस्य देवतिर्यङ्नुयोनियु ॥ ४ ॥
वपुष्मास्परिमध्यस्थमिश्रोदासीनविद्विषः ।
सद्य एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥
यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि तदस्ततः ।
पर्यटन्ति नरन्ध्रेषु जीवो यानिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥
निस्पृसाधंस सम्बन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृपु ।
यावद्यस्य हि सम्बन्धो भवत्यस्यैव हि ॥ ७ ॥
एव योनिगतो जीवः स नित्यो निरहङ्कृतः ।
यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वस्य हि तस्य रतं ॥ ८ ॥
एव नित्योऽप्ययं सृष्ट्म एव सर्वायमः स्वेहङ्क

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । तन्मते
देवर्षि नारदने मृत राजकुमारके जीवात्माको शोकशून्य
सजनोंके सामने प्रत्यक्ष सुझकर कहा ॥ १ ॥

देवर्षि नारदने कहा—जीवात्मन् ! तुम्हारा कल्याण
है । देखो, तुम्हारे माता-पिता, सुहृद्-सम्बन्धी तुम्हारे
वियोगसे व्यथित शोकशून्य हो रहे हैं ॥ २ ॥ इसलिये
तुम अपने शरीरमें जा जाओ और क्षेत्र वासु अपने सगे-
सम्बन्धियोंके साथ ही रहकर व्यतीत करो । अपने
पिताके दिये हुए योगोंको भोगो और राजसिंहप्रभुपर
हैठो ॥ ३ ॥

जीवात्माके कहा—देवर्षिजी ! मैं अपने कर्मके
अनुसार देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियोंमें न
जाके कितने जन्मोंसे मटक रहा हूँ । उनमेंसे कौन
किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए ? ॥ ४ ॥ विविध
जन्मोंमें सभी एक-दूसरेके भाई-जन्तु, माता-गोती, शत्रु-
मित्र, मध्यस्थ, उदासीन और द्वेषी होते रहते हैं ॥ ५ ॥
वैसे सुवर्ण आदि रूप-विकल्पकी वस्तुएँ एक व्यक्तीसे
दूसरेके पास जाती-जाती रहती हैं, वैसे ही जीव भी
विभिन्न-विभिन्न योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है ॥ ६ ॥ इस
प्रकार विचार करनेसे पता लगता है कि मनुष्योंकी
अपेक्षा अधिक दिन ठहरनेवाले सुवर्ण आदि पदार्थोंका
सम्बन्ध भी मनुष्योंके साथ स्थायी नहीं, क्षणिक ही
होता है, और जबतक जिसका जिस वस्तुसे सम्बन्ध
रहता है तभीतक उसकी उस वस्तुसे मध्य भी रहती
है ॥ ७ ॥ जीव नित्य और अहङ्कारहित है । वह
गर्भमें व्याकर जबतक जिस शरीरमें रहता है, तभीतक
उस शरीरको अपना समझता है ॥ ८ ॥ यह जीव
नित्य, अविनाशी, शुद्ध (जन्मादिरहित), सदा
आश्रय और आपकप्रदा है । इसमें स्वरूप जन्म-मृत्यु
आदि कुछ भी नहीं है । फिर भी यह ईश्वररूप होनेके

आत्ममायागुणैर्विश्रमास्मान् सुजतिप्रभु ॥ ९ ॥

न ह्यसातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्व पराऽपि वा ।

एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदोगयो ॥ १० ॥

नादत्त आत्मा हि गुणनदोषन क्रियाफलम् ।

उदासीनवर्दासीनः परावररुगीश्वरः ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

इत्युदीर्य गतो जीवा भ्रातृयस्तस्य ये उदा ।

विविक्ता मुमुक्षुः शार्कं लिप्त्वाऽऽत्मस्नेहमृच्छन् ॥ १२ ॥

निर्हृत्य भ्रातृयो धीर्तेर्देहकृत्वोचिता क्रियाः ।

तस्य जुर्दुस्त्यज स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ॥ १३ ॥

बालान्नपो व्रीक्षितास्तत्र बालहत्याहतप्रभा ।

बालहत्याग्रतः चेरुर्ग्राक्षणेर्धमिरुपितम् ।

यमुनायां महाराज सरन्त्यो द्विसभापितम् ॥ १४ ॥

सत्स्थं प्रतिमुद्रात्मा चित्रकतुर्द्विजाकिभिः ।

गृहाधकृपाक्षिप्तान्तः सरः पङ्कादिव त्रिषः ॥ १५ ॥

कालिन्यां विधिषत् स्नात्वा कुतपुष्यजलक्रिय ।

मीनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्रावबन्दत ॥ १६ ॥

यथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयथात्मने ।

भगवान्भारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ॥ १७ ॥

ॐ नमस्तुभ्य भगवते वामुदेवाय धीमहि ।

कारण अपनी गायके गुणोंसे ही अपन आपको विश्वके रूपमें प्रकट कर देता है ॥ ९ ॥ इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न अप्रिय, न अपना और न पराया । क्योंकि गुण-दोष (हित-अहित) करनेवाले भिन्न-शत्रु आत्मीय भिन्न-भिक्षु बुद्धि-वृत्तियोंका यह अन्वेषण ही साक्षी है; वास्तवमें यह अद्वितीय है ॥ १० ॥ यह आत्मा काय धारणका साक्षी और सत्तन्त्र है । इसलिये यह शरीर आदिके गुण-दोष अथवा फलफलके ग्रहण नहीं करता, सदा उदासीनभावसे स्थित रहता है ॥ ११ ॥

धीशु अन्वेषणी कहते हैं—वह जीवात्मा इस प्रकार कहकर चला गया । उसके सगे-सम्बन्धी उसकी बात सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए । उनका स्नेह-बन्धन कट गया और उसके मरनेका शोक भी जाता रहा ॥ १२ ॥ इसके बाद जातिवाञ्छने बन्धककी मृत देहको ले जाकर तत्कालोचित सत्कार और और्ध्वदैहिक क्रियाएँ पूर्ण कीं और उस दुस्त्यज स्नेहको छोड़ दिया, जिसका कारण शोक, मोह, भय और दुःखकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ परीक्षित ! जिन रानियोंने बन्धेको विप दिया था, वे बालहत्याका कारण धीरेधीरे हो गयी थीं और छात्रके मारे जीवित नहीं उठ सक्ती थीं । उन्होंने अज्ञित श्रमिकोंके उपदेशको याद करके (मासर्वाणि ह्य) यमुनाजीके तटपर ब्राह्मणोंके आदेशानुसार बाणहत्याका प्रायश्चित्त किया ॥ १४ ॥ परीक्षित ! इस प्रकार अज्ञिा और नारदजीके उपदेशसे विवेकबुद्धि प्राप्त हो जानके कारण राजा चित्रकतु वर-गृहस्थीके अंधेरे कुपेसे उसी प्रकार बाहर निकल पड़ा, जैसे कार्य हाथी माछावक बीचकसे निकल जाये ॥ १५ ॥ उन्होंने यमुनानामे विविधवक श्रान करके तर्पण आदि धार्मिक क्रियाएँ कीं । तत्पश्चात् संपनेन्द्रिय और मौन होकर उन्होंने दक्षिण नारद और महर्षि अज्ञिाक चरणोंकी कन्दमा की ॥ १६ ॥ भगवान् भारतन देखा कि चित्रकतु भित्तिन्द्रिय, मगधकृष्ण और शरणागत हैं । जन उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर उन्हें इस विद्याका उपदेश किया ॥ १७ ॥

(दक्षिण नारदने यों उपदेश किया—) 'उत्तरात्मन्य भगवन् । आप वामुदेव, प्रमुष्ण, अनिरुद्ध और सद्दर्शन-

प्रद्यम्नामानिरुद्धाय नमः सकृर्पणाय च ॥१८॥

नमा विद्वानमात्राय परमानन्दमूर्तये ।

आत्मारामाय ध्यान्वाय निश्चयद्वैतदृष्टये ॥१९॥

आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशब्दतृप्तये नमः ।

हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥२०॥

वचस्पुपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह ।

अनामरूपमिमात्रं सोऽध्यासः सदसत्परः ॥२१॥

वसिभिद यतश्चेदं विष्टुत्यप्येति आयेते ।

सुगमबेष्विव मृजातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

यस स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ।

अन्तर्बहिः वितर्तं व्योमवचनतोऽस्म्यहम् ॥२३॥

देहेन्द्रियप्राप्तमनोधिरोऽमी

यदंशविदाः प्रचरन्ति कर्मसु ।

नैवान्यदा लोहमिवाप्रवर्तं

स्थानेषु यद् द्रष्टुपदेशमेति ॥२४॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय

कल्पमें क्रमशः चित्त, बुद्धि, मन और बह्विधारेके
अधिष्ठाता हैं । मैं आपके इस चतुर्भूतरूपका बस-भार
नमस्कारपूर्वक ध्यान करता हूँ ॥ १८ ॥ आप किन्दु
विद्वानस्वरूप हैं । आपकी मूर्ति परमानन्दमयी है ।
आप अपने स्वरूपभूत आनन्दमें ही मग्न और भग्न
शायत हैं । द्वैतदृष्टि आपको छूतक नहीं सकती । मैं
आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १९ ॥ अपने स्वरूपभूत
आनन्दकी अनुभूतिसे ही आपने मायाजनित राग-द्वेष
आदि दोषोंका निरस्कार कर रक्खा है । मैं आपको
नमस्कार करता हूँ । आप सबकी समस्त इन्द्रियोंके
प्रेरक, परम महान् और त्रिपदस्वरूप हैं । मैं आपको
नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥ मनसहित बाणी आपका
न पहुँचकर धीबसे ही लौट आती है । उसके उपरत
हो जानेपर जो अद्वितीय, नाम-रूपरहित, चेतनमय और
कार्य-कारणसे परेकी वस्तु रह जाती है—यह हमारी
रक्षा करे ॥ २१ ॥ यह कार्य-कारणरूप जगत् जिनसे
सत्पन्न होता है, जिनमें स्थित है और जिनमें छीन होया
है तथा जो भिन्नीकी वस्तुओंमें व्याप्त घटिकाके समस्त
सबमें जोतप्रोत हैं—उन परब्रह्मस्वरूप आपके मैं
नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥ यद्यपि आप आकाशके समान
बाहर भीतर एकरस व्याप्त हैं, तथापि आपको मन, बुद्धि
और ज्ञानेन्द्रियों अपनी ज्ञानशक्तिके नहीं जान सकती
और प्राण तथा कर्मेन्द्रियों अपनी क्रियारूप शक्तिके लक्ष्य भी
नहीं कर सकती । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥
शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि आगल तथा लज्ज
अवस्थाओंमें आपके चैतन्याशसे युक्त होकर ही अपना
अपना काम करते हैं तथा सुखसि और मूर्खकी अवस्थाओं-
में आपके चैतन्याशसे युक्त न होनेके कारण अपना-
अपना काम करनेमें असमर्थ हो आते हैं—ठीक जैसे
ही जैसे ओहा जमिने तल होनेपर जल सकता है,
जन्यया नहीं । जिसे श्रद्धा कहाँ है, वह भी आपको
ही एक नाम है; आपका आदि अवस्थाओंमें आप उसे
लोकार कर लेते हैं । बाह्यजमें आपसे पृथक् उनका
कोई अस्तित्व नहीं है ॥ २४ ॥ अन्तरस्वरूप महाप्रभावशाली
महाविभूतिपति मगनाम् महापुरुषका नमस्कार है । अष्ट

महाविभूतिपतय सकलसात्वतपरिशुद्धनिर्करकर
कमलकुण्डमलोपलालितचरणारविन्दयुगल परम
परमेष्ठिभ्रमस्ते ॥ २५ ॥

श्रीगुरु उवाच

मक्तापैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारद ।
यथावह्निस्ता साकं धाम स्वापन्नुव प्रभो ॥ २६ ॥
चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदमापिताम् ।
भारयामास सप्ताहमम्भश्च सुसमाहित ॥ २७ ॥
ततश्च सप्तरात्रान्तं त्रिषया धार्यमाणया ।
विद्याधराधिपत्य ॥ लेमेऽप्रतिहत नृपः ॥ २८ ॥
ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनागतिः ।
जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥ २९ ॥

सृणालगौरं क्षितिवाससं स्फुरत्

किरीटकेयूरकटिप्रकङ्कणम् ।

प्रसन्नवक्त्रालणलोलोचनं इतं

ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥ ३० ॥

तद्वन्दनं च तत्समस्तकिल्बिष

स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्यवाप्तेनिः ।

प्रबुद्धमक्त्या प्रणयाभुलोलोचनः

प्रहृष्टरामानमदादिरूपम् ॥ ३१ ॥

त उन्नमस्तृकपटाभ्यविष्टर

प्रमाभुलेशुरुभयैयमुद्गुः ।

प्रमापुरुषाग्निलवर्णनिर्गमो

नैशाशकस्य प्रमयीहितं चिरम् ॥ ३२ ॥

ततः समाधाय मना मनीषया

पभाप एतद्विलम्बवागसी ।

मर्कौक्य समुदाय अपने करकमलोंकी कलियोंसे आपके
युगल चरणकमलोंकी सेवामें संज्मन रहता है । प्रभो !
आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं । मैं आपका बार-बार नमस्कार
करता हूँ ॥ २५ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! देवर्षि नारद
अपने शरणागत मक्त चित्रकेतुको इस विद्याका उपदेश
करके महर्षि अत्रिआके साथ ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २६ ॥
राजा चित्रकेतुन देवर्षि नारदके द्वारा उपदिष्ट विद्याका
उमके आश्वानुसार सात दिनतक केयड जख पीकर
बकी एकामनाके साथ अनुष्ठान किया ॥ २७ ॥ तद-
न्तर उस विद्याके अनुष्ठानसे सात रातक पश्चात्
राजा चित्रकेतुको विद्याधरोंका अखण्ड आधिपत्य प्राप्त
हुआ ॥ २८ ॥ इसके बाद कुछ ही दिनोंमें इस विद्या
के प्रभावसे उनका मन और भी शुद्ध हो गया । अब
वे देवाधिदेव भगवान् शेषजीके चरणोंके समीप पहुँच
गये ॥ २९ ॥ उन्होंने देखा कि भगवान् शेषजी सिद्धे
इश्वरोंके मण्डलमें विराट्मगल हैं । उनका शरीर कमल-
मालके समान गौरवर्ण है । उसपर नीले रंगका वस्त्र
फहरा रहा है । सिरपर किरीट, बाँहोंमें बाणकुन्द,
कमरमें करघनी और कलाईमें वज्र आदि आभूषण
चमक रहे हैं । नेत्र रतनारे हैं और मुखपर प्रसन्नता
छा रही है ॥ ३० ॥ भगवान् शेषका दर्शन करते ही
राजर्षि चित्रकेतुके सारे पाप नष्ट हो गये । उनका
अन्त करण खण्ड और निर्मल हो गया । इन्धमें मक्ति-
मयकी बाढ़ आ गयी । मनमें प्रेमक औसू छटक
आये । शरीरका एक-एक रोम खिल उठ्य । उन्होंने
ऐसी ही भित्तिमें आदिपुरुष भगवान् शेषके महत्त्वपर
किया ॥ ३१ ॥ उनके मनमें प्रेमके औसू टप-टप
गिरते जा रहे थे । इससे भगवान् शेषके चरण रत्न
की बौबरी भीग गयी । प्रेमाश्रुवक्त्र करण उनका मुँहसे
एक कक्षर भी न निकल सक्य । वे बहुत देरतक नेत्र-
भगवान्की कुछ भी स्तुति न कर सक ॥ ३२ ॥ दोही
देर बाद उन्हें बौद्धकी कुछ-कुछ शक्ति प्राप्त हुई ।
उन्होंने विवेकमुद्रितसे मनको समाहित किया और

नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्जन

अगद्वगुरुं सास्यतशास्त्रविग्रहम् ॥३३॥

विग्रहगुरुत्वात्

अजित जित सममतिभि

साधुभिमथान् जितात्मभिर्मक्ता ।

विजितास्तऽपि च भजता

मत्तामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुण ॥३४॥

तव विभय स्वतु भगवन्

जगद्दयमितिलयादीनि ।

विमलसूत्रस्तोऽर्शाद्या

स्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथग्भिमत्वा ॥३५॥

परमाशुपरममहत्वा

स्वभाषन्तान्तरवर्ती प्रयविभुरः ।

आदायन्तेऽपि च सत्त्वानां

महं ध्रुवं तदेवान्तराऽपि ॥३६॥

चित्वादिभिरेव क्लिष्टाहतः

सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोष्ठः ।

यत्र पतत्यणुकक्षयः

सहाण्डकोटिकोनिभिस्तदनन्तः ॥३७॥

विपयत्पुनो नरपशवो

य उपासते विभूतीर्न परं स्वाम् ।

तेषामाशिष ईश

तदनु विनश्यन्ति यथा रावकुलसु ॥३८॥

कामधियस्त्वपि रचिता

न परम रोहन्ति यथा करम्मभीमानि ।

सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी बाह्यवृत्तिको राका । फिर उन बगद्वगुरु, जिनका सम्पत्का पात्ररात्र आदि भक्तिशास्त्रोंमें वर्णन किया गया है, हम प्रयत्न स्तुति की ॥ ३३ ॥

विग्रहकेतुन कष्ट—अजित । जितेन्द्रिय एवं सम-

दर्शी साधुओंमें आपको जीत लिया है । आपन भी अपने सान्दर्भ्य माधुर्य, यत्न, आदि गुणोंसे उनको आपन वशमें कर लिया है । कहा, आप धन्य हैं । क्योंकि जो निष्कामभावसे आपको भजन करते हैं, उन्हें आप यत्नगोपयता होकर अपने-आपको भी दे डालते हैं ॥ ३४ ॥ भगवन् ! जगत्की तरफ, स्थिति और प्रलय आपके लीज-विनाश हैं । निच निर्माता ब्रह्मा आदि आपके अंशके भी अंश हैं । फिर भी वे पृथक्-पृथक् अपनेको जगत्कार्य मानकर झूठ-झूठ एक-दूसरेसे स्पर्धा करते हैं ॥ ३५ ॥ नन्है-से-नन्है परमाणुसे लेकर बड़े-से-बड़े महत्त्वपर्यन्त सर्व्व वस्तुओंके आदि, अन्त और मध्यमें आप ही विद्यमान हैं तथा अम आप आग्नि, अन्त और मध्यसे रहित हैं । क्योंकि किसी भी पदार्थके आदि और अन्तमें जो वस्तु रहती है, वही मध्यमें भी रहती है ॥ ३६ ॥ यह ब्रह्माण्डकोश, जो पृथ्वी आदि एक-से-एक दृष्टाने सात आबरणोंसे घिरा हुआ है, अपने ही समान दूसरे करोड़ों ब्रह्माण्डोंके सहित आपमें एक परमाणुके स्थान घूमता रहता है और फिर भी उसे आपकी सीमाका पता नहीं है । इसलिये आप अनन्त हैं ॥ ३७ ॥ जो नरपशु केवल विषयभोग ही चाहते हैं, वे आपका भजन न करके आपके विभूतिसंस्कार इत्यादि देवताओंकी उपासना करते हैं । प्रभो ! जैसे राक्षसोंका नाश होनेके पश्चात् उसका अनुयायियोंकी भीविका भी जाती रहती है, वैसे ही कुछ उपास्यदेवोंका हास होनेपर उनके दिये हुए भोग भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ परमाणु । आप ब्रह्मस्वरूप और निर्गुण हैं । इसलिये आपके प्रति की हुई सकल भगवता भी अन्याय करने के समान जल-मृग्यरूप फल देनेवाली नहीं होती, जैसे मुझे हुए बीजोंसे जड़ नही उगते । क्योंकि

ज्ञानात्मन्यगुणमये

गुणगणतोऽस्य ब्रह्मब्रह्मालानि ॥३९॥

जितमजित तदा भवता

यदाऽऽह मागवत धर्ममनवद्यम् ।

निष्क्रिञ्चना ये मुनय

आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥४०॥

विपममतिर्न यत्र नृणां

त्वमहमिति मम तपेति च यदन्यत्र ।

विपमधिया रचितो य

स हविशुद्ध ध्विप्युरधर्मवहुल ॥४१॥

कः धेमो निजपरमोः

क्रियानर्थ स्वरतुहा धर्मेण ।

स्त्रोहायव कोपः

परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥४२॥

न व्यभिचरति तपेष्टा

यया ह्यभिहितो भागवतो धर्म ।

व्यिचरसत्त्वकदम्ब

पृथग्निधयो यमुपासते त्वार्या ॥४३॥

न हि भगवन्नष्टवित्तिद

स्वर्द्धनान्नृणामखिलपापक्षय ।

यस्मात्सकृच्छ्रणात्

पुनरसकाऽपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥

अथ भगवन् धयमधुना

त्वदवलाकुरिमृष्टाश्रयमलाः ।

मुरश्चपिणा यदुदित

शैवकेन कथमन्यथा भवति ॥४५॥

विदितमनन्त समस्त

तर अगदात्मना जर्नगिहापरितम् ।

जीवको जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं, वे सत्त्वादि गुणोंसे ही होते हैं, निगुणसे नहीं ॥ ३९ ॥

हे अजित ! जिस समय आपने विशुद्ध भागवतधर्मका उपदेश किया था; उसी समय आपन सबको जीत लिया । क्योंकि अपने पास कुछ भी संग्रह-परिमल न रखनेवाले, किसी भी वस्तुमें अहत्ता-ममता न करनेवाले आत्माराम सनकादि परमर्षी भी परम साम्य और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये उसी भागवतधर्मका आश्रय लेते हैं ॥ ४० ॥ वह भागवतधर्म इतना शुद्ध है कि उसमें सक्राम धर्मके समान मनुष्योंकी वह विपमगुद्धि नहीं होती कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह वृ है और यह तेरा है ।' इसके विपरीत जिस धर्मके मूलमें ही विरमना का बीज बो दिया जाता है, वह तो अशुद्ध, नाशवान् और अकमवहुज होता है ॥ ४१ ॥ सक्राम धर्म अपना और दूसरेका मो अहित करनेवाला है । उससे अपना या पराया—किसीका कोई भी प्रयोजन और हित सिद्ध नहीं होता । प्रत्युत सक्राम धर्मसे जब अनुग्रह करनेवालेका चित्त दुखता है, तब आप रुठ होते हैं और जब दूसरेका चित्त दुखता है, तब वह धर्म नहीं रहता—अधर्म हो जाता है ॥ ४२ ॥

मगन् ! आपने जिस दृष्टिसे भागवतधर्मका निरूपण किया है, वह कभी परमार्थसे विचलित नहीं जाती । इसलिये जो सन पुरुष चर-अचर समस्त प्राणियोंमें समष्टि रखने हैं, वे ही उसका सेवन करते हैं ॥ ४३ ॥

भागवन् ! आपके दर्शनमात्रसे ही मनुष्योंके सारे पाप क्षीण हो जाते हैं, यह कोई असम्भव बात नहीं है, क्योंकि आपका नाम एक बार सुननेसे ही नीच चाण्डाल भी संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥

मगन् ! इस समय आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे अन्तःकरणका मारा मर चुका गया है, सो दीर ही है । क्योंकि आपके अनन्यप्रयी भक्त त्वर्षि नारदजीने जो कुछ कहा है, यह मिथ्या कहे हा सकता है ॥ ४५ ॥

हे अनन्त ! आप संपूर्ण जगत्क अन्ता हैं । अनन्त संसारमें प्राणी जो कुछ करते हैं, वह सब आप जानने

एसावानेव मनुजैर्वेगनैर्पुंषुशुद्धिभि ।
 स्वार्थः सर्वात्मना श्रेया मत्परोऽत्मैकदर्शनम् ॥६३॥
 स्वमेतच्छ्रद्धया राजभ्रममघो वचो मम ।
 ज्ञानविज्ञानसम्पन्ना भारयन्नास्तु सिध्यसि ॥६४॥
 श्रीशुक उवाच
 आश्वास्य भगवानित्यं विश्वकेतु जगद्गुरुः ।
 पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दक्षे हरिः ॥६५॥

जो लोग योगमार्गका तत्त्व समझनेमें निपुण हैं, उनमें मश्रीमानि समझ लेना चाहिये कि जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ और परमाय केवल इतना ही है कि वह और आत्माकी एकताका अनुभव कर ले ॥ ६३ ॥ राजन् । यदि तुम मेरे इस उपदेशको साधन होकर धर्माभावसे धारण करोगे तो ज्ञान एव सिद्धसे सम्पन्न होकर शीघ्र ही सिद्ध हो जाओगे ॥ ६४ ॥ श्रीशुकनेवजी कहते हैं—राजन् । जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि विश्वकेतुको इस प्रकार समझा-बुझाकर उनका सामने ही वहाँसे अन्तर्धान हो गये ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां यमुस्त्वन्वे विश्वकेतो
 परमार्थदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

विश्वकेतुको पार्वतीजीका शाप

श्रीशुक उवाच

यतश्चान्तर्हिताऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिक्षे नम ।
 विद्याभरविश्वकेतुश्चारा गगनेचरः ॥ १ ॥
 स रुद्धं वपलश्चाभामम्माहृतचलेन्द्रिय ।
 स्तूयमाना महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥
 कृष्णचलेन्द्रोणीपु नानासङ्ख्यपसिद्धिषु ।
 रेभे विद्याभरस्त्रीभिर्गोपयन् हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥
 एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भासता ।
 गिरिश्व दक्षे गच्छन् परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥
 अस्मिन्वाहीकृतां दर्वी बाहुना मुनिससदि ।

श्रीशुकनेवजी कहते हैं—परीक्षित । विश्वभर विश्वकेतु, जिस दिशामें भगवान् सङ्घर्षण अन्तर्धान हुए थे, उसे नमस्कार करके आकाशमार्गसे स्वच्छन्द विचरने लगे ॥ १ ॥ महायोगी विश्वकेतु करोड़ों करोड़ों वर्षों तक प्रकाशके सङ्ख्यकोंको पूरा करनेवाली सुमेरु पर्वतकी धाटियोंमें स्थिर करते रहे । उनके शरीरका रङ्ग और शक्तियोंकी शक्ति अक्षुण्ण रही । बड़े बड़े मुनि, सिद्ध, चारण उनकी स्तुति करते रहते । उनकी प्रेरणासे विद्या-धरोंकी स्त्रियाँ उनके पास सर्वशक्तिमान् भगवान्के गुण और लीलाओंका गान करती रहती ॥ २ ॥ एक दिन विश्वकेतु भगवान्के दिये हुए तेजोमय विमानपर सवार होकर कहीं जा रहे थे । इसी समय उन्होंने देखा कि भगवान् शाङ्कर बड़े-बड़े मुनियोंकी समामें सिद्ध चारणोंके बीच बैठे हुए हैं और साथ ही भगवती पार्वतीको अपनी गोदमें बैठकर एक हाथसे उन्हें आभिज्ञान किये हुए हैं । यह देखकर विश्वकेतु विमानपर चढ़े हुए हैं । उनके पास

उवाच देव्या शृण्वत्या ब्रह्मसोर्ज्वत्सदन्तिके ॥ ५ ॥

विप्रकृतुरुवाच

एष लोकगुरु साक्षाद्वर्म वक्ता शरीरिणाम् ।

आप्ते मुन्य सभायां वै मिपुनीम्य भार्यया ॥ ६ ॥

वटाभरस्तीव्रतपा ब्रह्मवात्सिभापति ।

अङ्गीकृत्य स्त्रिय चास्ते गतहीः प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥

प्राप्य प्राकृताभ्यामि स्त्रिय रदसि विप्रसि ।

अय महाव्रतधरो विमर्षि सदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥

श्रीगुरु उवाच

भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहसागाभधीर्नय ।

तूष्णीं बभूव सदसि संम्माद्य तदनुव्रताः ॥ ९ ॥

इत्यतदीर्यविदुषि मुषाणे बह्व्योभनम् ।

रुपाऽऽह देवी वृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥ १० ॥

वीर्यलुवाच

अयं किमधुना लोक शास्ता दण्डधर प्रभु ।

अस्मद्विभावा वृष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥ ११ ॥

न वेद धर्म किं पद्मयोनि

नै ब्रह्मपुत्रा मृगुनारदाद्याः ।

न वै कुमोरः कपिलो मनुष्य

येनो निपेधन्म्यतिवर्तिन इरम् ॥ १२ ॥

प्यामनुज्येयपदाञ्चपुर्म

स्वाङ्गुरु मङ्गलमङ्गल स्वयम् ।

यः शत्रव्यु परिभूय घरीन्

प्रशान्ति घृष्टमद्वय हि दण्ड्य ॥ १३ ॥

नायमहति बह्वृष्टपादमूढोपसर्पणम् ।

जले गये और भगवती पावतीका सुना-सुनाकर जोरसे
हँसन और कहन लगे ॥ ७ ॥

विप्रकेतुने कहा—अहो ! ये सारे जगत्क धर्मशिक्षक
और गुरुदेव हैं ये समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं । इनकी
यह दशा है कि मरी सभामें अपनी पत्नीका शरीरसे
चिपकाकर बैठे हुए हैं ॥ ६ ॥ जगन्नाथी, बहुत बड़
तपस्वी एवं ब्रह्मवादीयोंक सभापति हाकर भी साधारण
पुरुषक समान निष्ठज्जनासे गोदमें ली उकर बैठे हैं ॥ ७ ॥
प्राय साधारण पुरुष भी एकत्रन्तमें ही स्त्रियोंक साथ
ठठे-बैठत हैं, परन्तु ये इतन बड़ प्रतवारी हाकर भी
उसे मरी सभाम जिये बैठे हैं ॥ ८ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् शङ्कर
की बुद्धि अगाध है । विप्रकेतुका यह कटाक्ष सुनकर
वे हँसन लगे, कुछ भी बोले नहीं । उस सभामें बैठे
हुए उनक अनुयायी सदस्य भी चुप रहे । विप्रकेतुको
भगवान् शङ्करका प्रभाव नहीं माझम था । इसीसे वे
उनके छिये बहुत कुछ घुरा-मका कर रह गये । उन्हें इस
बानका धर्मक हो गया था कि मैं जितेन्द्रिय हूँ । पार्वती
जीन तनकी यह घृष्टता देखकर कोपसे कहा—॥ ९ ॥

पार्वतीजी बोली—अहो ! हम जैसे दुष्ट और निर्दोषों
का दण्डके बजपर शासन एवं तिरस्कार करनेवाला प्रभु
इस संसारमें यही है क्या ? ॥ ११ ॥ जान पड़ता है
कि ब्रह्माजी, मृगु, नारद आदि उनक पुत्र, सनकादि
परमार्थ कपिष्ठदेव और मनु आदि बड़-बड़ महापुरुष
धर्मका रहस्य नहीं जानते । तभी तो वे धर्ममर्षादा
का उच्छेदन करनेवाला भगवान् शिवको इस कथमसे
नहीं रोक्ते ॥ १२ ॥ ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुष
जिनके धरणकमर्षोंका ध्याम करते रहत हैं, उन्हीं महाकर्मका
मङ्गल वनानवाले साक्षात् जगद्गुरु भगवानका और उनक
अनुयायी महारामाश्रोंका इस कथम क्षत्रियन तिरस्कार किया
है और शासन करनेकी चेष्टा की है । इसलिये यह शीट
सबका दण्डका पात्र है ॥ १३ ॥ इसे अपने बड़प्यनका
धर्मक है । यह मूर्ख भगवान् श्रीहरिके उन धरणकमर्षों

विद्याप्यं परमगुरोः

किमदिव सवितुरिव स्वधोतैः ॥४६॥

नमस्तुभ्य भगवते

सकलवर्गस्त्रिदशोदयेष्टाय ।

दुरवसितात्मगतये

श्रुयोगिनां भिदा परमहसाय ॥४७॥

य वै शसन्तमनु निस्सुखः शसन्ति

य येकिदानमनु निक्षय उचकन्ति ।

भूमण्डल सर्पपायति यस्य मूर्ध्नि

तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥४८॥

भीतुक उवाच

संस्तुतो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत ।

विद्याधरपतिं प्रीतिवित्रकेतुं कुरुद्वह ॥४९॥

भीमश्रावण उवाच

बभारदाक्षिरोम्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ।

ससिद्धोऽसि तथा राजन् विद्यया दर्शनाच्च मे ॥५०॥

अह वै सर्वभूतानि भूतारमा भूतभाषनः ।

सुन्दरश्च परं ब्रह्म ममोमे श्लाघती तन् ॥५१॥

लोके विसृतात्मानं लोकं चारमणिं सन्ततम् ।

उभय चमया बभूव मयि चैवोभयं कृतम् ॥५२॥

यथा संपुतः पुरुषो विश्वं पश्यति चारमणिं ।

आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्रग्म उत्थित ॥५३॥

एषं आगरणादीनि जीवस्थानानि चारमनः ।

मायामात्राणि विज्ञाय तद्ग्राह्यं परं शरत् ॥५४॥

ही रहते हैं । इसलिये ऐसे गुणों सूर्यको प्रशस्ति नहीं कर सकता, वैसे ही परमगुरु आपसे मैं क निवेदन करता हूँ ॥ ४६ ॥ भगवन् ! आपकी ही कृपा तामें सारे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हैं । कुयोगीजन मेरा हृदय के कारण आपका नाम लिखकर नहीं जान पाते । आपका स्वरूप कदापि व्यक्त नहीं हो पाता है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥ आपको चेष्टासे शक्ति प्राप्त करने में ब्रह्मा आदि लोकपालगण चेष्टा करनेमें समर्थ होते हैं । आपको हृदयसे जीवित होकर ही ज्ञानेन्द्रियों को अपने-आपके विषयोंका ग्रहण करनेमें समर्थ होती हैं । यह भूमण्डल आपके सिरपर सरसोंके दानेके समान जान पड़ता है । मैं आप सहस्रशीर्षा भगवान्को बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ ४८ ॥

भीशुकोवेश्वरी कहते हैं—परीक्षित ! जब भीमश्रावणोंके अधिपति वित्रकेतुन अनन्तमग्नतन्त्री का प्रकाश स्तुति करी, तब उन्होंने प्रसन्न होकर उसके कहा ॥ ४९ ॥

भीमश्रावणको कहा—वित्रकेतो ! देखिये मरु और मूर्खों का शिराने तुम्हें मेरे सम्बन्धमें जिस निष्पक्ष उपदेश दिया है उससे और मेरे दर्शनसे तुम कहीं भीति सिद्ध हो चुक हो ॥ ५० ॥ मैं ही समस्त प्राणियोंके रूपमें हूँ, मैं ही उनका अन्तर्भाव हूँ और मैं ही पालनकर्ता भी हूँ । शम्भुब्रह्म (केद) और परब्रह्म दोनों ही मेरे सनातन रूप हैं ॥ ५१ ॥ अन्तर्भाव करणात्मक जगत्में व्याप्त हूँ और कार्य-कारणरूपक जगत् आत्मामें स्थित हूँ तथा इन दोनोंमें मैं अधिष्ठान रूपसे व्याप्त हूँ और मुखमें ये दोनों कल्पित हैं ॥ ५२ ॥ जैसे काजमें सोया हुआ पुरुष लज्जान्तर होनेका समर्थ जगत्की व्यपनेमें ही देखता है और लज्जान्तर हट जानेपर स्वप्नमें ही भागता है तथा व्यसक्तों सेतारके एक कोनेमें स्थित देखता है, परन्तु वास्तवमें वह ही स्वप्न ही है, वैसे ही जीवकी जाग्रत का स्थिति परमेश्वरकी ही माया है—यों जानकर सबके साथी मायातीन परमात्माकी स्मरण करना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वार्थं वेदात्मनस्तदा ।

सुप्तश्च निगुणश्च तस्मात्प्रमानमवेहि माम् ॥५५॥

उभयं सारतः पुनः प्रस्थापप्रवितोभयोः ।

अन्वेति व्यतिरिष्येत् तन्ज्ञानं ब्रह्म तत् परम् ॥५६॥

भवेत्तद्विस्मृतं पुंसो मद्भार्ष भिक्षमात्मनः ।

तवः संसार एतस्मै देहादेहो मृतेर्यति ॥५७॥

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवात् ।

आत्मानं यो न बुद्धयेत् न कश्चिच्छममाप्नुयात् ॥५८॥

स्मृत्वेहायां परिकलेषु ततः फलविपर्ययम् ।

अमयं चाप्यनीहायां सङ्कल्पाद्विरमेत्कविः ॥५९॥

सुत्वाप दुःखमोक्षाय कुर्वति दम्पती क्रियाः ।

ततोऽनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥

एव विपर्ययं बुद्ध्या नृणां विश्वाभिमानिनाम् ।

आरमन्थं गर्ति घृह्णां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥६१॥

पृथुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन सेवसा ।

ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥६२॥

सोपाहुषा पुरुष मिसकी सहायतासे अपनी निद्रा और उसके अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करता है, वह भ्रम में ही है, उसे हम अपनी आत्मा समझो ॥५५॥ पुरुष निद्रा और जागृति—इन दोनों अवस्थाओंका अनुभव करनेवाला है । वह उन अवस्थाओंमें अनुगत होनेपर भी वास्तवमें उनसे पृथक् है । वह सब अवस्थाओंमें रहनेवाला अक्षय्य एकत्र ही रहता है, कहीं परब्रह्म है ॥५६॥ जब जीव मेरे स्वरूपको मूल जाता है, तब वह अपनेको अलग ग्यन बैठता है इसीसे उसे ससारके चक्रमें पड़ना पड़ता है और जन्म-पर जन्म तथा मृत्यु-पर-मृत्यु प्राप्त होती है ॥ ५७ ॥ यह मनुष्योनि ज्ञान और विज्ञान का मूल स्रोत है । जो इसे पाकर भी अपने आत्म-स्वरूप परमात्माको नहीं जान लेता, उसे कहीं किसी भी योगिमें शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ५८ ॥ रात्रन् ! सांसारिक सुखके लिये जो चेष्टाएँ करी जाती हैं, उनमें भ्रम है, क्लेश हैं, और जिस परम सुखके उद्देश्यसे वे करी जाती हैं, उसके ठीक विपरीत परम दुःख देती हैं, किंतु कर्मसे निवृत्त हो जानेमें किसी प्रकारका भय नहीं है—यह सोचकर मुक्तिमान् पुरुषको चाहिये कि किसी प्रकारके कर्म अपना उनके फलका सङ्कल्प न करे ॥ ५९ ॥ जगत्क सही की-पुरुष इसलिये कर्म करते हैं कि उन्हें सुख मिले और तमका दुःखोंसे निवृत्त हूँ, परन्तु उन कर्मोंसे न तो उनका दुःख दूर होता है और न उन्हें सुखकी ही प्राप्ति होती है ॥ ६० ॥ जो मनुष्य अपनेको बहुत बड़ा बुद्धिमान् मानकर कर्मों के पचकोंमें पड़ चुका है, उनके विरहित फल मिळता है—यह बात समझ लेनी चाहिये साथ ही यह भी नाम लेना चाहिये कि आत्माका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, आपत्त, लज्जा, सुप्रति—इन तीनों अवस्थाओं तथा इनके अभिमानियोंसे विजक्षण है ॥ ६१ ॥ यह जान-कर इस लोकोमें देखे और परलोकके सुन हुए विषय-योग्यसे विवेकमुद्रिने द्वारा अपना निवृत्त हूँ का ले और ज्ञान तथा विज्ञानमें ही समुत्पन्न रहकर मेरा भक्त हो जाय ॥ ६२ ॥

१ मा पा — ज्ञानं सङ्कल्पः । २ मा पा — चित्तोय । ३ मा पा — मोक्षम् । ४ मा पा — चित्तम् ।

५ मा पा — चित्तं प्राप्तिः । ६ मा पा — विज्ञानस्थानसङ्करो ।

एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणशुद्धिभिः ।

स्यार्थः सर्वात्मना ह्येया यत्परैर्यत्कदर्थनम् ॥ ६३ ॥

स्वमेतच्छ्रद्धया राजस्रप्रमथो षष्ठो मम ।

ज्ञाननिश्चानसम्प्रभो भारयन्नाशु सिध्यसि ॥ ६४ ॥

श्रीशुक उवाच

आश्वास्य भगवानित्यं चित्रकेतुः शगवपुरुः ।

पश्यतस्तत्स विशारमा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥ ६५ ॥

जो लोग योगमार्गका तत्त्व समझनेमें निपुण हैं, उनके भन्तीमोति समझ लेना चाहिये कि नीचका सबसे बड़ा स्वार्थ और परमाय केवल इतना ही है कि वह स्व और आत्माकी एकताका अनुभव कर ले ॥ ६३ ॥

राजन् । यदि तूम मेरे इस उपदेशको सावधान होकर ध्यानभावसे धारण करोगे तो ज्ञान एवं विज्ञानसे सम्पन्न होकर शीघ्र ही सिद्ध हो जाओगे ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् । नगदगुरु विद्याराम भगवान् श्रीहरि चित्रकेतुको इस प्रकार समझा-बुझाकर उनके सामने ही बहोते कन्तवर्न हो गये ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यो संहितायां षष्ठस्कन्धे चित्रकेतो

परमात्मदर्शन नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

चित्रकेतुको पार्वतीजीका श्राप

श्रीशुक उवाच

यतश्चान्तर्हिताऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिसे नमः ।

विद्याभरवित्रकेतुश्चारा गगनेश्वरः ॥ १ ॥

स लब्धं वर्षलक्ष्णामभ्याहतचलेन्द्रिय ।

स्वप्नमानो महायोगीशुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥

कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नानासङ्करपसिद्धिषु ।

रेमे विद्याभरस्त्रीभिर्गापयन् हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥

एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भाग्यता ।

गिरिषु दृष्टे गच्छन् परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥

आलिङ्गपाङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिससदि ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । विद्याभरवित्रकेतु, जिस दिशामें भगवान् सङ्कर्षण कन्तवर्न हुए थे, उसे नमस्कार करते आकाशमार्गसे सञ्चरते चले ॥ १ ॥ महायोगी चित्रकेतु कराओं बघौंठक सब प्रकारके सङ्कर्षणोंको पूर्ण करनेवाली सुमेरु पर्वतकी भाटियोंमें श्रार बरते रहे । उनके शरीरका कल और इन्द्रियोंकी शक्ति अक्षुण्ण रही । बड़े बड़े मुनि, सिद्ध, चारण उनकी स्तुति करते रहते । उनकी प्रेरणासे विद्या-धरोंकी स्त्रियों उनके पास सर्वशक्तिमान् भगवान्के गुण और लीलाओंका गाव करती रहती ॥ २ ॥ एक दिन चित्रकेतु भगवान्के दिये हुए तेनोमय विमानपर सवार होकर कहीं जा रहे थे । इसी समय उन्होंने देखा कि भगवान् शङ्कर बड़े-बड़े मुनियोंकी समामें सिद्ध चारणोंके बीच बैठे हुए हैं और साथ ही गङ्गती पार्वतीजी अपनी गोठमें बैठकर एक हाथसे उन्हें आभिन्न किने हुए हैं यह देखकर चित्रकेतु विमानपर चढ़े हुए ही उनके पास

१ मा पा —नैपुण्य । २ मा पा —रात्मिक । ३ मा पा —चित्रकेतुपाश्वर्याने परमपुरुषादेश केव ।

४ मा पा —स्वर्ग ।

उवाच देव्याः भण्यत्वा ब्रह्मासौख्यं सदान्तिके ॥ ५ ॥

विप्रकृतुर्गण

एष लाकगुरु साक्षादम भक्ता श्रीरिणिनाम् ।

आमृतमुष्य सभाया वै मिथुनाम्य भार्यया ॥ ६ ॥

जटाभरस्त्रीव्रतया प्रशस्त्वानिमभापतिः ।

अङ्गीकृत्य स्त्रिय चाम्ने गतद्वीः प्राकृता यथा ॥ ७ ॥

प्राप्य प्राकृताभ्यापि स्त्रिय रहसि विप्रति ।

अयं महाव्रतधरा विपतिं मदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥

श्रीमुक्त उवाच

भगवानपि तच्छ्रुत्वा ब्रह्मसागाभधीर्नृप ।

तूर्णां बभूव सद्मि संम्यास तदनुव्रता ॥ ९ ॥

इत्यतद्वीयविदुषि सुवाण बहुशोभनम् ।

रुपाऽऽह ब्रवीष्टुष्टाय निर्वृतात्माभिमानिने ॥ १० ॥

पौत्रसुवाच

अयं किमधुना लाक शान्ता दण्डधर प्रभु ।

अमृद्विधातां दुरतां निर्लिखतां च विप्रकृत ॥ ११ ॥

न बह धम किठ पषयानि

न ब्रह्मपुत्रा मृगुनारदाद्याः ।

न वै कुमोः कपिलो मनुष्य

यत्ना निपधन्यनिर्वर्तिन हरम् ॥ १२ ॥

एषामनुष्येयपदान्धयुग्मं

जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं मयम् ।

यः सप्रबधु पर्मिष्य श्रीन

प्रदानि भूयन्त्यदि दण्ड्य ॥ १३ ॥

नायमहवि वैकुण्ठपादमूलापसपणम् ।

बल गये और भगवती पावतीका सुना-सुनाकर जासे
हैंसन और कहन कर्म ॥ १२ ॥

विप्रकृतुने कहा—ब्रह्मा ! ये सारे जगत्तये धर्मशिक्षक
और गुरु हैं ये समस्त प्राणियोंमें धर्म हैं । इनकी
यह सेवा है कि मरी सभामें अपनी पत्नीका शरीरमें
विप्रकृतकर देने हुए हैं ॥ ६ ॥ जटाधारी, बहुत बड़
तपस्वी एक ब्रह्मसादियोंका सम्मानपति हाकर भी साधारण
पुरुषका समान निजजगामें गानमें श्री करके बैठ हैं ॥ ७ ॥
प्राय साधारण पुरुष भी एकजन्ममें ही स्त्रियोंके साथ
ठठने-बैठने हैं, परन्तु ये इनमें बड़ प्रवचारी हाकर भी
उसे मग सम्मान डिये बैठ हैं ॥ ८ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परिमित ! भगवान् शङ्कर
की बुद्धि अगाध है । विप्रकृतुका यह कटाक्ष सुनकर
वै हैंसन लगा, कुछ भी बाधे नहीं । उस समयमें वै
हुए उनका अनुयायी सम्म भी चुन रह । विप्रकृतुका
भगवान् गङ्गाका प्रभाव नहीं मान्य था । इसीसे वे
उनका डिये बहुत कुछ मुक्त-मन्त्रा बक रह थे । उन्हें इस
वाक्यका धर्मद ह गया था कि मैं जिनेन्द्रिय हूँ । पार्वती
भीम उनकी यह भूषणा देखकर क्रोधसे कहा—॥ १० ॥

पावतीजी बोली—अह ! हम जैसे हुए और मिठजो
वै लण्डके बख्तर शासन एक निरम्कार करनवाञ्छ प्रसु
इस संसारमें यही है क्या ? ॥ ११ ॥ जान पड़ता है
कि ब्रह्माजी, मृगु, नारद आदि उनका पुत्र, समकाली
परमवि कप्रिष्ठव और मनु आदि बड़ बड़ महापुरुष
धर्मका रहस्य नहीं जानते । तभी ता वे धनन्याय-
का उच्छेदन करनवाल भगवान् विप्रकृतु इस कर्ममें
नहीं रक्तने ॥ १२ ॥ ब्रह्मा आदि सम्मन् महापुरुष
भिनक परणकर्मोंका ध्यान करने रहते हैं, उन्हीं मन्त्रोंका
मन्त्र बनानेवाला साक्षात् जगद्गुरु भगवान् का और उनका
अनुयायी महान्मात्रोंका इस अपम शत्रियन निरम्कार किया
है और शासन करनकी कथा की है । इसलिये यह ही
सुनया लण्डका पात्र है ॥ १३ ॥ इसे कवन बड़धनका
धर्मद है । यह मूख भगवान् श्रीहरिक उन कारणकर्मों

१ या पा —आर्यमुष्य कृतभावा । २ या पा —नृपधन्यमनुव्रताः । ३ यादीन प्रतिमें पाठ कुवाण
पर पाठ नहीं है । ४ या पा —हृष्य । ५ या पा —कुमार बुनिष्पृषया । ६ या सा —बन् ।

सम्भावितमविः स्तम्भः साधुभिः पर्युपासितम् ॥१४॥

अथ पापीयसी यानिमासुरीं याहि दुर्मते ।

यथैह मूया महतां न कंठो पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

श्रीशुक उवाच

एव क्षसन्निभकेतुर्विमानादवकृत् सः ।

प्रसादमामास सती मूय्ना नम्रग भारत ॥१६॥

चित्रकेतुत्वाच्च

प्रतिगृह्णामि तं क्षापमत्समनाऽञ्जलिनाम्बिके ।

देवैर्मर्त्याय यत्प्राक्त पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥१७॥

संसारचक्र एतस्मिन्नुत्तराज्ञानमाहितः ।

आत्मन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥

नैवात्मा न परमापि कर्ता स्वात् सुखदुःखायाः ।

कर्तारं मयतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥१९॥

गुणप्रवाह एतस्मिन् कः क्षाप को ननु ब्रह्मः ।

कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥२०॥

पृक्तः सृजति भूतानि भगवानात्ममामया ।

एषां बन्धं च मोक्षं च सुखदुःखं च निष्कल ॥२१॥

न तस्य कश्चिद्विद्यः प्रतीपो

न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ।

समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य

सुखे न रागः क्रुध एष रोषः ॥२२॥

तथापि तन्मल्लकिबिसर्ग एषां

सुखाय दुःखाय विवादिषाय ।

वधाय माधाय च मृत्युञ्ज मनोः

शरीरिणां ससुतयेऽवकल्पते ॥२३॥

अथ प्रसादये न त्वां क्षापमोक्षाय भामिनि ।

मे रहने योग्य नहीं है, बिनकी तपासना बड़े-बड़े सज्जन

किया करते हैं ॥ १४ ॥ [चित्रकेतुको सम्बोधनकर]

अतः दुर्मते । तुम पापमय असुरयोनिमें जाओ । ऐसे

होनेसे बेठा । तुम फिर कभी किसी महापुरुषका वस्त्र

मही कर सकोगे ॥ १५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परिशिष्ट । जब पार्वती

जीने इस प्रकार चित्रकेतुको शाप दिया, तब वे विमानसे

उतर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥ १६ ॥

चित्रकेतुने कहा—माता पार्वतीजी । मैं कभी प्रसन्न होते

अपन दोनों हाथ जोड़कर आपका शाप स्वीकार करता हूँ ।

क्योंकि देवतास्त्रेण मनुष्योंके लिये जो कुछ कह देते हैं,

वह उनके प्रत्यनुसार निम्नवाले फलकी पूर्णमूल्य-

मात्र होती है ॥ १७ ॥ देखि । यह जीव ध्वजाने

मोहित हो रहा है और इसी कारण इस संसार चक्रमें

मग्नता रहता है तथा सदा सर्वदा सर्वत्र सुख और दुःख

मोगता रहता है ॥ १८ ॥ माताजी ! सुख और दुःखको

देनेवाला मैं तो अपना आत्मा हूँ और न कोई दूसरा ।

जो ब्रह्मानी हैं, वे ही अपनेको अपना दूसरेका सुख-

दुःखका कर्ता माना करते हैं ॥ १९ ॥ यह जगत् सत्य,

रत्न आदि गुणोंका स्वामात्मिक प्रवाह है । इसमें क्या शाप,

क्या अनुग्रह, क्या स्वर्ग, क्या नरक और क्या सुख, क्या

दुःख ॥ २० ॥ एकमात्र परिपूर्णतम सत्त्वान् ही बिना

किसीकी सहायताके अपनी आत्मस्वरूपिणी ममत्के हाथ

समस्त प्राणियोंकी तथा उनके बन्धन, मोक्ष और सुख-

दुःखकी रचना करते हैं ॥ २१ ॥ माताजी ! नानन्द,

श्रीहरि सबमें सम और माया आदि मल्लसे रचित हैं ।

उनका कोई प्रिय-अप्रिय, जाति-बन्धु, अपना-अपना नहीं

है । जब उनका सुखमें राग ही नहीं है, तब उनमें

रागमय्य क्रोध तो हा ही कैसे सकता है ॥ २२ ॥ तथापि

उनकी मायाशक्तिके काल पाप और पुण्य ही प्राणियोंके

सुख-दुःख, हित-अहित, बन्ध-मोक्ष, मृत्यु-जन्म और

आवागमनके कारण बनते हैं ॥ २३ ॥ परिप्राणा वेदि ! मैं

शापसे मुक्त होकर लिये आपको प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ ।

यन्मन्यसे असाधूक्त मम सत्सम्पत्तां सति ॥२४॥

श्रीगुरु उवाच

इति प्रसाद्य गिरिञ्चो विप्रकेशुररिन्दम ।

अगाम श्वविमानेन पश्यतो अयतोस्तथा ॥२५॥

ततस्तु भगवान् रुद्रा रुद्राणीमिदमब्रवीत् ।

देवर्षिर्दत्तसिद्धानां पार्यदानां च मृण्मसाम् ॥२६॥

भीरुद्र उवाच

इष्टवत्ससि सुश्रोणि हरेरद्वयकर्मण ।

माहात्म्य मृत्युमृत्वनानि स्पृहाणां महात्मनाम् ॥२७॥

नारायणपरा सर्वे न कुठश्चन विम्पति ।

श्वगापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥२८॥

उद्दिनां दशसंयागाद् व्रन्दानीधरलीलया ।

सुखं दुःखं मृतिञ्चम ज्ञापाऽनुग्रह एष च ॥२९॥

अविषककुतः पुंसा र्थार्थमेव इवारमनि ।

गुणदापचिक्त्वम मिदेष सज्जिवत्कुतः ॥३०॥

वासुदेवे भगवति भक्तिमुग्रहतां नृणाम् ।

ज्ञानपरायणीयाणां नेह कश्चिद् व्यपाश्रयः ॥३१॥

नाह विरिञ्चो न कुमारनारदौ

न ब्रह्मपुत्रा मुनय सुरदा ।

विशम यस्त्येहितमंशकांशका

न तत्स्वरूपं पृथगीक्षमानिन ॥३२॥

न वासानि मियः कश्चिन्मात्रिणः स परोऽपि वा ।

आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रिया हरि ॥३३॥

मैं तो यह चाहता हूँ कि आपको भरी जो बात अनुचित प्रतीत हुई हो, उसका खिये क्षमा करें ॥ २४ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—पर्यस्थित । विद्यावर विप्रकेशु भगवान् शाङ्कर और पाञ्चमीजीको इस प्रश्न पर प्रश्न करके उनके सामने ही विमानपर सवार होकर बहाँसे चले गये । इससे उन लोगोंको क्या विस्मय हुआ ॥२५॥
तब भगवान् शाङ्करन, देवना, श्रमि, तैरय, सिद्ध और पार्यदोंके सामने ही भगवती पार्वतीजीसे यह वान कहो ॥२६॥

भगवान् शाङ्करने कहा—सुन्दरि । विष्णुकीलाविहारी भगवान्के नि स्पृह और खदारह्म्य दासाभुदासोंकी महिमा तुममें अपनी आँखों देख ली ॥ २७ ॥ जो लोग भगवान्के शरणगत होते हैं, वे किसीसे भी नहीं डरते । क्योंकि उन्हें खग, माध और नरकमें भी एक ही वस्तु — केवल भगवान्के ही सपान मानसे दर्शन होते हैं ॥२८॥
जीकोंको भगवत्की लीलासे ही देखकर संयोग होनके कारण सुख-दुःख, जन्म-मरण और शाप-त्रनुग्रह आदि इन्द्र प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ जैसे स्वप्नमें मेघ-जलसे सुख-दुःख आदि की प्रतीति होती है और जाम्बु अश्वत्था में अमरका माजमें ही सर्पपुच्छि हा जाती है—वैसे ही मनुष्य अज्ञानवश आत्मामें देवता, मनुष्य आदिक मे गुण-दोष आदिकी कल्पना कर लेता है ॥३०॥
बिनक पास झाल और धरापका वज्र है और जो भगवान् वासुदेवके चरणोंमें भक्तिभाव रखते हैं, उनके लिये इस जगत्में एसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसे वे द्वेष या उपास्य समझकर राग द्वेष करें ॥ ३१ ॥ मैं, ब्रह्माजी, सुनकाश, मारु ब्रह्माजीक पुत्र पृथु आदि मुनि और बह-बह देवता—कोई भी भगवान्की लीलाका रहस्य नहीं जान पाते । एसी अवस्थामें जो उनके नष्ट से माह अंश हैं और अपमका उनसे अत्रग ईश्वर मान बैठे हैं, वे उनका शक्तपको जान ही कैसे सकते हैं ॥ ३२ ॥
भगवान्का म कष्ट मिय है और न अमिय । उनका म कष्ट अपना है और न पराया । वे सभी प्राणिमोंके आत्मा हैं, इसलिये सभी प्राणिमोंके प्रियमम हैं ॥ ३३ ॥

तस्य चाय महाभागविश्रक्तेः प्रियोऽनुग ।

सर्वत्र समष्टिं श्रुत्वा हं चैवाच्युतप्रियः ॥३४॥

तस्मात्तु विषयः कार्यं पुरुषेषु महात्मसु ।

महापुरुषभक्तपु शान्तेषु समदर्शिनः ॥३५॥

श्रीगुरु उवाच

इति धृत्वा भगवतः शिषस्यो मामिभाषितम् ।

बभूव शान्तधी राजन इवो निगूढविषया ॥३६॥

इति भागवतो देव्या प्रतिशुच्युतमल्लतमः ।

मूर्च्छां लज्जगृहं श्रापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥३७॥

जम्बे त्वदुर्दधिगागरी दानवीं योनिमाधिरः ।

पुत्र इत्यभिविख्याता ज्ञानविज्ञानसंयुत ॥३८॥

एतत् सर्वमाख्यात यन्मां त्व परिपूच्छसि ।

पुत्रस्यासुरजातेषु कारणं भगवन्मत ॥३९॥

इतिहाममिमं पुण्यं चित्रकलामहात्मन ।

महात्म्यं विष्णुभक्तानां धृत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥४०॥

म एतत्प्रत्यक्षत्वाय भद्रया वाग्यतः पठेत् ।

इतिहासं हरिं स्तुत्वा स याति परमां गतिम् ॥४१॥

प्रिये । यह परम भाग्यवान् चित्रकलु सन्हीका शिष्य कन्-
धर, शान्त एव समदर्शी है और मैं भी भगवान् श्रीहरि-
की प्रिय हूँ ॥ ३४ ॥ इसलिये तुम्हें भगवान् के प्यारे
मक, शान्त, समदर्शी, महात्मा पुरुषों के सम्बन्धमें किसी
प्रकारका आक्षेप नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित । भगवान् साहजिक
का यह भाषण सुनकर मत्स्यी पार्श्वतीकी विचित्रता
शान्त हो गयी और उनका किस्म जानता रहा ॥ ३६ ॥
भगवान् के परमप्रेमी मक चित्रकलु भी भगवती पार्श्वतीका
बन्धनें शाप दे सकते थे, परन्तु उन्होंने उन्हें शाप न
देकर उनका शाप सिर लटका लिया । यही साधु पुरुष
का लक्षण है ॥ ३७ ॥ यही विषाधर चित्रकलु तानक-
योनिका आक्षेप लेकर त्वष्टाके दक्षिणामुनिसे पैदा हुए ।
यहाँ इनका नाम वृत्रासुर हुआ और वहाँ भी वे मत्स्य
समुद्रके ज्ञान एव मक्तिसे परिपूर्ण हो रहे ॥ ३८ ॥
तुमने मुझसे पूछा था कि वृत्रासुरका दैत्यजातिमें जन्म क्यों
हुआ और उसे भगवान् की ऐसी मक्ति कैसे प्राप्त हुई
उसका पूरा-पूरा विवरण मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ३९ ॥
महात्मा चित्रकलुका यह पवित्र इतिहास केवल उनका
ही नहीं, समस्त विष्णुभक्तोंका महात्म्य है उसे जो सुनता
है, वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥
जो पुरुष प्रातः काल खटकर गौमं रहकर अष्टाक्षर
भगवान् के स्मरण करते हुए इस इतिहासका पाठ करता
है, उसे परमावस्था प्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भागवतने महापुराणे पारमहंस्यो संज्ञितायां पद्यस्थान्धे चित्रकलुसत्या

नाम सप्तशोऽध्याय ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

अदिति भीरु द्विजकी सत्यामोक्षी तथा मरुत्तणकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीगुरु उवाच

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित । सविन्द्रकी

पत्नी पृथिवी गभसे आठ सन्तानें

हुई—सावित्री, व्यावृत्ति, त्रयी, अग्निहोत्र पशु,

साय, वातुमास्य और पञ्चमहापद ॥ १ ॥

इतिमुपमा मवितु माविशी व्यावृत्ति त्रयीम् ।

अग्निहोत्र पशु साम वातुमास्य महाभगवान् ॥ १ ॥

१ मा वा —महाभग । २ मा वा —पशुपत्यने कहरा ।

सिद्धिर्मगस्य भार्यक्ष महिमानं विभु प्रसूम् ।
 आश्रिप च वरारोहां कयां प्रासन्न सुमताम् ॥ २ ॥
 धातुः बुद्ध सिनीवाली राक्षा चानुमतिस्तथा ।
 माय दर्शनमथ प्रातः पूर्णमाममनुकमात् ॥ ३ ॥
 अग्नीन् पुरीष्पानाधत्त क्रियाया समनन्तर ।
 चर्चपी वरुणस्यासीद्यसां जातो भृगु पुन ॥ ४ ॥
 पारमीक्षिभ महायोगी वरमीक्षादभवत्किंल ।
 अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ध्वपी ॥ ५ ॥
 रत सिपिचतुः कुम्भे उयध्या सन्निधा हुतम् ।
 रवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पल व्यधात् ॥ ६ ॥
 पौलाम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन् पुत्रानिति नः धृतम् ।
 जयन्तमृषम तात तृतीय भीतुष प्रसू ॥ ७ ॥
 उरुक्रमस्य ठवस्य मायावामनरूपिणः ।
 फौर्त्ता पत्न्यां गृह्णन्लोकान्तस्यासन् सीमयाद्य ॥ ८ ॥
 तत्कर्मगुणबायाणि काश्यपस्य महात्मन ।
 पश्मादस्यामहऽदित्यां यथा वावततार ह ॥ ९ ॥
 मथ कश्यपपदामादान् दत्तेषान् फीर्ययामि ते ।
 यत्र भागवत भीमान् प्रह्लादो धलिरेव च ॥ १० ॥
 दितेन्द्राधेव दायादां दैत्यदानवनन्दितां ।

मगकी पत्नी सिद्धिन् महिमा, विभु और प्रसू—ये तीन पुत्र
 और आश्रिप नामकी एक कन्या उत्पन्न की । यह कन्या वकी
 सुन्दरी और सदाचारिणी थी ॥ २ ॥ धाताकी चार पत्नियाँ
 थीं—बुद्ध, सिनीवाली, राक्षा और अनुमति । उनसे
 क्रमशः साय, दर्श, प्रात और पूर्णमास—ये चार पुत्र
 हुए ॥ ३ ॥ धाताके छोटे भार्यका नाम था—विधाता,
 उनकी पत्नी क्रिया थी । उससे पुरीष नामक पौत्र
 अगस्त्यकी उत्पत्ति हुई । वरुणनीकी पत्नीका नाम
 चर्चणी था । उससे भृगुबीन पुत्र जन्म ग्रहण
 किया । इसके पहले वे वरुणनीके पुत्र थे ॥ ४ ॥ महायोगी
 वाल्मीकिनी भी वरुणके पुत्र थे । अग्नीकिसे पैदा होनेक
 कारण ही उनका नाम वाल्मीकि पड़ गया था । उर्वशी
 को देखकर मित्र और वरुण दोनोंका भीर्य स्तब्ध
 हो गया था । उन्हे उन लोगोंने धर्मे रख दिया ।
 उसीसे मुनिवर अगस्त्य और वसिष्ठनीका जन्म हुआ ।
 मित्रकी पत्नी थी रेवती । उसके तीन पुत्र हुए—उत्सर्ग,
 अरिष्ट और पिप्पल ॥ ५ ॥ मित्र परीक्षित । देवराज
 इन्द्रकी पत्नी थी पुलोमन्दिनी क्षत्री । उनसे, जयन्त सुमा
 है, उन्होंने तीन पुत्र उत्पन्न किये—जयन्त अग्रम और
 मीतवान् ॥ ७ ॥ स्वयं मगवान् विष्णु ही (बलिपर अनुग्रह
 करने और इन्द्रका राज्य छीननेके लिये) मायासे वामन
 (वपुन्द्र) क रूपमें अवतीर्ण हुए थे । उन्होंने तीन पद्म
 पृथ्वी भौगवत तीनों लोक नाप लिये थे । उनकी फौजीका
 नाम था फौर्त्ता । उससे गृह्णन्लोक नामका पुत्र हुआ ।
 उसके सीमया नामी कर्त्त सन्तानें हुई ॥ ८ ॥ कश्यपनन्दन
 मगवान् वामनन माता अदितिक गर्भसे कयो जन्म
 लिया और इस अवतारमें उन्होंने कौन-से गुण, लीजार्द
 और पराक्रम प्रकट किये—इसका वर्णन मैं आगे
 (आठवें स्कन्धमें) करूँगा ॥ १० ॥

विष परीक्षित । अथ मैं कश्यपजीकी दूसरी पत्नी
 दितिसे उत्पन्न होनेवाली उस सन्तान-परम्पराका वर्णन
 सुनाता हूँ, जिसमें मगवान् प्यारे मधु श्रीप्रसादजी
 और बलिक जन्म हुआ ॥ १० ॥ इति के दैत्य
 और दानवोंके बन्धनीय दा ही पुत्र हुए—

हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याश्रम कीर्तितौ ॥ ११ ॥

हिरण्यकशिपोर्भाषा कथाधुर्नाम दानवी ।

अम्भस्य तनया दद्या सुपुत्रे चतुरः सुतान् ॥ १२ ॥

संहाद प्रागनुहाद हाद प्रहादमेव च ।

तस्त्वसा सिद्धिका नाम राहु विप्रचितोऽग्रहीत ॥ १३ ॥

शिरोऽहरणस्य हरिश्चक्रण पिबताऽमृतम् ।

संहादस्य कृतिर्मर्षाघृत पञ्चजनं ततः ॥ १४ ॥

हादस्य धमनिर्मर्षाघृत वातापिमित्वलम् ।

याऽगस्त्याय त्वविधयेपेवे वातापिमित्वलः ॥ १५ ॥

अनुहादस्य ईर्ष्यायां बाष्कली महिपस्तथा ।

विरोचनस्तु प्राहादिर्देव्यास्तस्याभवद्गलिः ॥ १६ ॥

बाणन्येष्ट पुत्रघृतमश्वनायां ततोऽमयत् ।

तस्यानुभावः सुशलाक्यः पद्मादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥

बाण आगच्छ गिरिश्रुलमे तद्गुणमुख्यताम् ।

यत्पाद्वै भगवानास्त बध्नापि पुरपालकः ॥ १८ ॥

मरुतश्च दिते पुत्राश्चत्वारिंशश्चाधिका ।

त आमन्त्रप्रजाः सर्वे नीला इन्द्रण सात्मताम् ॥ १९ ॥

राजोपाय

अथ त आमुर् भावमपोर्मात्पणिक गुरा ।

इन्द्रण प्रापिता सात्सर्ग्यं किं तस्मात्पु कृतं दितैः ॥ २० ॥

इम श्रधधत मन्त्रन्तपया द्वि मया मह ।

परिमानाय भगवन्मया म्याम्पातुमर्हसि ॥ २१ ॥

हिरण्यकशिपु और हिरण्याश्र । इनकी संक्षिप्त कथा मैं तुम्हें (तीसरे स्कन्धमें) सुना चुका हूँ ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुकी पत्नी दानवी कथायु थी । उसके शिष्ट अम्भन उसका विवाह हिरण्यकशिपुसे कर लिया था । कथायुकी चार पुत्र हुए—सहाद, अनुहाद, हाद और प्रहाद । इनकी सिद्धिका नामकी एक बहिन भी थी । उसका विवाह विप्रचिति नामक दामवसे हुआ । उससे राहु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥ १२ १३ ॥ यह वही राहु है, जिसका सिर अमृतपानके समय मोहिनीरूपवासी भगवान् ने चक्रेसे काट लिया था । संहादकी पत्नी थी इति । उससे पञ्चजन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ हादकी पत्नी थी धमनि । उसके दो पुत्र हुए—बाष्कलि और इत्यल । इस इत्यलने भी महर्षि अगस्त्यक जातिष्यके समय वातापिकी पकड़कर उन्हें खिचा दिया था ॥ १५ ॥ अनुहादकी पत्नी सुर्मा थी, उसके दो पुत्र हुए—बाष्कल और महिपासुर । प्रहादका पुत्र या विरोचन । उसकी पत्नी देवीके गर्भसे ईक्ष्वाकु बलिका जन्म हुआ ॥ १६ ॥ बलिकी पत्नीका नाम अशना था । उससे बाण आदि सौ पुत्र हुए । तैस्त्रात्र बलिकी महिमा गान करनेयोग्य है । हमें मैं आगे (आठवें स्कन्धमें) सुनाऊँगा ॥ १७ ॥ बलिक पुत्र बाणासुर भगवान् शंकरकी आराधना करके उनका गणेशका मुखिया बन गया । बाण भी म्हाद्यन् शंकर उसका मगरकी रक्षा करमक लिये उसके पास ही रहते हैं ॥ १८ ॥ दितिके हिरण्यकशिपु और हिरण्याश्रक अनिरुद्ध उन्धाम पुत्र और ये । उन्हें मन्त्रण करते हैं । वे सब मि सत्तान रहे । देवरात्र इन्द्रने उन्हें अपने ही समान दबता बना दिया ॥ १९ ॥

राजापरीसितने पूछा—भगवन् ! महर्षि

एसा कौन सा सक्कम किया था, जिसका करम वे अपने जन्मजान असुरोचित धावका छोड़ सक और

देवरात्र इन्द्रके द्वारा दबना समा दिय गये ॥ २० ॥

मन्त्र 'मरे साथ यहाँ' जो मभी अपिमन्त्रकी यह बात जाननक लिये अग्रगत उत्पन्न हो रही है । अत आ

ज्या करक विस्तारने यह रहस्य बननाये ॥ २१ ॥

सूत उवाच

तद्विष्णुरासस्य स मादरायणि
र्वचो निष्कम्पाहतमल्पमर्थवत ।
सभाजयन् सनिमृतेन चेतसा
जगाद सप्रायेण सर्वदर्शनः ॥ २२ ॥

भीष्म उवाच

हतपुत्रा दिति शक्रपार्ष्णिप्राहण विष्णुना ।
मन्युना श्लोकनीप्तेन न्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥ २३ ॥
कदा नु भ्रातृहन्तारमिद्रियाराममुख्यणम् ।
अस्त्रिभूद्वय पापं वातयित्वा शये सुखम् ॥ २४ ॥
कुमिविद्भूषसंज्ञाऽऽसीद्यस्येष्टाभिहितस्य च ।
भूवृष्टकृत्कृते स्वाय किं वेद निरयो यतः ॥ २५ ॥
आश्वासनस्य तस्येह ध्रुवधूम्रध्वजैः ।
मदशोपक इन्द्रस्य भूपाद्यन सुतो हि मे ॥ २६ ॥
इति भावेन सा भर्तुराचचागसकृतिप्रयम् ।
शुभूपयानुरागम् प्रभयण दमेन च ॥ २७ ॥

भक्त्या परमया राजन् मनाऽर्च्यैर्लघुभाषितैः ।

मनाऽब्राह्म भाषञ्च सुसितापाङ्गवीक्षणैः ॥ २८ ॥

एवं स्त्रिया जडोभूतो विद्वानपि विदग्धया ।

वाटमित्याह विवशा न रुचिर्न हि यापिति ॥ २९ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी । राना परीक्षितका प्रथम बोले शब्दोंमें बड़ा सारगर्भित था । उन्होंने बड़े आदरसे पूछा भी था । इसलिये सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराजने बड़े ही प्रसन्न चित्तसे उनका अभिमानन्दन करके यों कहा ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित ! भगवान् विष्णुने इन्द्रका पक्ष लेकर दितिके दोनों पुत्र क्षिरण्यकशिपु और क्षिरण्याशक का मार डाला । अतः दिति शोककी आगमें लदीक्ष क्रोधसे जलकर इस प्रकार सोचने लगी ॥ २३ ॥ 'सचमुच इन्द्र बड़ा विषयी, क्रूर और निर्दयी है । राम ! राम ! उसने अपने माइयोंको ही मरवा डाला । वह दिन कब होगा, जब मैं भी उस पापीको मरवाकर आरामसे सोऊँगी ॥ २४ ॥ ओग राजाओंके, देवताओंके शरीरको 'प्रभु' कहकर पुकारते हैं, परन्तु एक दिन वह कीड़ा, बिगा या राक्षस डेर हो जाता है, इस्को लिये जो दूसरे प्राणियोंको सताता है, उसे अपने सच्चे स्वार्थ या परमार्थका पता नहीं है । क्योंकि इससे ता नरकमें जाना पड़ेगा ॥ २५ ॥ मैं समझती हूँ इन्द्र अपने शरीरको नित्य मानकर म्मत्वाला हो रहा है । उसे अपने विनाशका पता ही नहीं है । अब मैं वह उपाय करूँगी, जिससे मुझे ऐसा पुत्र प्राप्त हो, जो इन्द्रका घमड़ धूर धूर कर दे ॥ २६ ॥ दिति अपने मनमें ऐसा विचार करके सेवा श्रुत्या, विनय-प्रम और जितेन्द्रियता आदिके द्वारा निरन्तर अपने पतिदेव कश्यपजीको प्रसन्न रखने लगी ॥ २७ ॥ वह अपने पतिदेवके हृदयका एक-एक भाव जानती रहती थी और परम प्रमत्ता, मनोहर एवं मधुर भाषण मया मुसकानमरी तिरछी चितवनसे उनका मन अपनी ओर आकर्षित करती रहती थी ॥ २८ ॥ कश्यपजी महाराज बड़े विद्वान् और विचारवान् होनपर भी अतुर न्तिकी सेवासे मोहित हो गये और उन्होंने विवश होकर यह भीतर कर लिया कि मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा । क्योंकि सम्भवमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ २९ ॥

महा भयमः सुमहानघ मे समुपस्थितः ॥३८॥

महो अघेन्द्रियारामो योपिन्मय्येह मायया ।

गृहीतचेताः कृपणः पतिभ्ये नरके भुवम् ॥३९॥

क्रोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः ।

विहं मां वतापुत्रं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥४०॥

शरत्पद्मोत्सव वक्त्रं वक्त्रं भवणाभुतम् ।

हृदय क्षुरधारामं स्त्रीणां को वेद ज्ञेयिवम् ॥४१॥

न हि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाधिपात्मनाम् ।

पतिं पुत्रं आवरं वा ध्वन्त्यर्थे वावयन्ति च ॥४२॥

प्रतिभुवं दैवामीति वचस्तत्र मृषा भवेत् ।

वचं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥४३॥

इति संक्षिप्तं भगवान्मारीचः कुम्भनन्दन ।

उवाच किञ्चित् कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥

कल्पय उवाच

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबाधव ।

संवत्सरं व्रतमिदं यद्यज्ञो धारयिष्यसि ॥४५॥

दितिरुवाच

धारयिष्ये यत्तं व्रतं ब्रह्मि कायाणि यानि मे ।

हाय ! हाय ! आज मेरे जीवनमें बहुत बड़ अचमक
अचसर आ पहुँचा ॥ ३८ ॥ देखो तो सही, अब मैं
इन्द्रियोंके नियमोंमें सुख भानन छाया हूँ । स्त्रीकपिणी
माया ने मेरे चित्तको अपने बशमें कर लिया है ।

हाय ! हाय ! आज मैं कितनी दीम होन अवस्थामें
हूँ । अचमक ही अब मुझ मरकमें गिरना पड़गा ॥ ३९ ॥

इस स्त्रीका कोई दोष नहीं है; क्योंकि इसने अपने
जन्मजात कामाक्षिका ही अनुसरण किया है । दोष
मेरा है—जा मैं अपनी इन्द्रियोंको अपने बशमें न
रख सका, अपने सच्चे कार्य और परमात्मको न समझ
सका । मुझ मूखको बार-बार बिकर है ॥ ४० ॥

सच है, कियोंके चरित्रको कौन जानता है । इनका
मुँह तो ऐसा होता है जैसे शरदश्रुतका खिछा हुआ
कमल । बातें सुननेमें ऐसी मीठी होती हैं मानो अमृत
घोकर रक्खा हो । परन्तु हृदय, वह तो इतना तीखा
होता है मानो धूरेकी पैनी धार हो ॥ ४१ ॥ इसमें

सन्देह नहीं कि कियों अपनी लज्जाओंकी कठपुतली
होती हैं । सच पूछा तो वे किसीसे प्यार नहीं करती ।

स्वापरा ने अपने पति, पुत्र और माँवकको मर
बावली हैं या मरवा बावली हैं ॥ ४२ ॥ अब तो मैं
कह चुका हूँ कि ओ तुम मोंगली, दूँगा । मेरी बात
सुने नहीं होनी चाहिये । परन्तु इन्द्र भी बच करने
योग्य नहीं है । अचमक, अब इस नियमों में यह
मुक्ति करता हूँ ॥ ४३ ॥ प्रिय परीक्षित ! सर्वसमर्थ
कल्पयजीने इस प्रकार मन ही-मन अपनी भर्त्सना
करके दानों बात बलानका उपाय सोचा और फिर
तनिक रुक होकर दितिसे कहा ॥ ४४ ॥

कल्पयजी बोले—ब्रह्माणी ! यदि तुम मेरे वतअये
हुए अतक एक वतक विधिपूर्वक पाठ्य करोगी तो
तुम्हें इन्द्रको मारनवाला पुत्र प्राप्त होग्य । परन्तु यदि
किसी प्रकार नियमोंमें दृष्टि हो गयी तो वह देवताओंका
मित्र बन जायगा ॥ ४५ ॥

दितिने कहा—ब्रह्मन् ! मैं उस वतक पाठ्य
करूँगी । आप बलनाइये कि मुझे क्या-क्या करना

यानि च न निपिद्वानि न श्रुतं ध्वन्ति यानि तु ॥४६॥

कथय उवाच

न ईसांशूतवातानि न श्वेन्नानुत श्वेत ।

न श्विन्त्यान्नसरोमाणि न स्पृशेयदमङ्गलम् ॥४७॥

नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न सम्भाषेत दुर्जनै ।

न वसीवाधौतवासः स्रजं च विधृतां कश्चित् ॥४८॥

नोच्छिष्टं चण्डिक्रमं च सामिपं वृषलाहृतम् ।

सुखीतोदकयया दष्टं पिबेद्वज्रलिना त्वयः ॥४९॥

नोच्छिष्टास्पृष्टसङ्किला सन्मायां मुक्तमूर्धजा ।

अनर्षितासयतवाक् न्नासवीठा वहिश्चरेत् ॥५०॥

नाधौतपादाप्रयता नोर्द्रपाभो सद्विभूताः ।

श्वरीत नौपरारुन्तान्यैर्न भ्रान्तं च स च्यवोः ॥५१॥

धौतवासाः शुचिर्निस्त्य सर्वमङ्गलसंयुता ।

पूज्येत्प्रातराश्रास्त्रागोविप्राम् अभिषमच्युतम् ॥५२॥

स्त्रियो वीरवसीधार्चेत्स्रगं चण्डिमण्डनैः ।

पतिं चाभ्योपतिष्ठेत् स्यादेतन्नोष्ठगर्भं च तम् ॥५३॥

सांस्तरं पुंसवर्नं यतमेतद्विप्लुतम् ।

भारविष्पतिं चेतुस्य शकहा भविता सुतः ॥५४॥

षाढमित्यभिप्रेत्याय दिती राजन् महामनाः ।

चादिये, कौन कौन-से काम छोड़ देने चाहिये और कौन से काम ऐसे हैं, जिनसे ब्रत भङ्ग नहीं होता ॥ ४६ ॥

कथयपत्नीमे वत्सरं विप्रः—प्रिये । इस व्रतमें किसी भी प्राणीको मग, बाणी या क्रियाके द्वारा सताये नहीं, किसीका शाप या गप्पी न दे, झूठ न बोले, शरीरके नख और धाँपें न काटे और किसी भी वस्तुमें बस्तुका स्पर्श न करे ॥ ४७ ॥ जल्ममें पुंसवर्न ज्ञान न करे, शोध न करे, दुर्जनसे बातचीत न करे, किना पुका वस्त्र न पहने और किसीकी पहनी हुई मावा न पहने ॥ ४८ ॥ गूँथ न लाये, भद्रकाकीच प्रसाद या मांसपुष्प अन्नका योजन न करे । शूद्रका छाया हुआ और रजसवर्णका देखा हुआ अन्न भी न खाये और वस्त्रजिसे जलपान न करे ॥ ४९ ॥ गूँथे मुँह, बिना आचमन किये, सम्पर्कमें समय, बाक खोले हुए, बिना शृङ्गारके, बाणीका संस्पर्श किये बिना और बिना चरर बाँधे घरसे बाहर न निकले ॥ ५० ॥ मित्रा पैर धोये, अपवित्र वस्त्रत्यागे, गीले पाँवोंसे, उत्तर या पश्चिम स्तिर करके, दूसरेके छत्र, नम्रावस्थामें तथा सुबह-शाम सोना नहीं चाहिये ॥ ५१ ॥ इस प्रकार हम निबिद्ध कर्तव्योंका त्याग करके सर्वदा पवित्र रहे, पुका वस्त्र धारण करे और सभी सौभाग्यके विद्वांसोंसे सुसजित रहे । प्रातःकाल कलेवा करनेके पहले ही गाय, श्राद्धण, कस्तीवी और भगवान् नारायणकी पूजा करे ॥ ५२ ॥ इसके बाद पुष्पमाला, चन्दनादि सुगन्ध द्रव्य, नैवेद्य और वाभूपग्रादिसे सुहृदिनी कियेकी पूजा करे तथा पतिकी पूजा करके दसवीं सेगमें सम्मन रहे और पूजा भावना करती रहे कि पतिका वेद मेरी कोख में स्थित है ॥ ५३ ॥ प्रिये । इस व्रतका नाम पुंसवर्न है । यदि एक वर्षतक इससे बिना किसी वृत्तिके पाकम कर सकोगी तो तुम्हारी कोखसे इन्द्रप्राप्ति पुत्र उत्पन्न होगी ॥ ५४ ॥

परीक्षित । इति बर्षी मनस्विनी और दृढ निश्चय-वाली थी । उसने 'बहुत दीक' कहकर उसकी जाड़ा खींचकर कर ली । जब इति कही कोखमें भगवान्

काश्यप गममाधत्त व्रतं चांजो दधार सा ॥५५॥

मातृपुत्रसुरभिप्रायमिन्द्र आश्वाय मानद ।

शुभूपणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कवि ॥५६॥

नित्यं वनात्सुमनसः कलमूलसमितकुष्ठान् ।

पत्राङ्गुसुदोऽपम काले काल उपाहरत् ॥५७॥

एव तस्या व्रतस्याया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ।

प्रेप्सुः पर्यचरन्निक्षो भृगुदेव सृगाकृति ॥५८॥

नाभ्यगच्छद्रुतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ।

चिन्तां तीव्रां गत शक्रः केन मे स्थाच्छिबं सिद्धि ॥५९॥

एकदा सा तु सत्प्रायाश्चिच्छिद्रा व्रतकथिता ।

अस्पृष्टवार्थधीताकिम्बुः सुष्माप विधिभोहिता ॥६०॥

लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्रापहतचेतसः ।

दिशेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमामया ॥६१॥

चकर्त सप्तधा गर्मं वज्रेण कनकप्रभम् ।

रुदन्तं सप्तधैकैक मा रोदीरिति तान् पुनः ॥६२॥

ते समूचुः पाठ्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप ।

ना विषांससि किमिन्द्र आधरो मरुतस्तथ ॥६३॥

मा मैष्ट भ्रातरो मघ पूषमित्प्राह कौशिक ।

अनन्यभाषान् पार्षदानात्मना मरुतां गणान् ॥६४॥

कश्यपका शीघ्र और जीवनमें ठमका बतसाया हुआ व्रत
बतण करके अनायास ही नियमोंका पाबन करने
लगी ॥ ५५ ॥ श्रिय परीक्षित् ! देवराज इन्द्र अपनी
गौरी दिनिका अभिप्राय नाम बड़ी बुद्धिमान्नीसे अपना
वेप बंदखकर दितिके आश्रमपर आये और उसकी
सेवा करने लगे ॥ ५६ ॥ वे दितिके छिये प्रतिदिन
समय-समयपर वनसे कृत्-फळ, कन्द मूल, समिधा, कुशा,
पत्ते, दूध, मिष्टी और अल आकर उसकी सेवामें समर्पित
करते ॥ ५७ ॥ राजन् ! जिस प्रकार बहेछिया हरिन
को मारनेके छिये हरिनकी-सी सूरत बनाकर उसके पास
जाता है, वैसे ही देवराज इन्द्र भी कश्यप के आश्रम पर
व्रतपरायणा दितिके व्रत-पाबनकी श्रुति पकड़नेके छिये
उसकी सेवा करने लगे ॥ ५८ ॥ सर्वदा ऐनी दृष्टि
रखनेपर भी उन्हें उसके व्रतमें किसी प्रकारकी श्रुति न
मिली और वे पूर्ववत् उसकी सेवा-टहकमें लगे रहे ।
जब तो इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई । वे सोचने लगे—
मैं ऐसा कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मेरा कल्याण
हो ! ॥ ५९ ॥

दिति व्रतके नियमोंका पाबन करते-करते बहुत
बुर्ख हो गयी थी । विवातान भी उसे मोहमें
डाक दिया । इसछिये एक दिन सन्ध्याके समय जूठे
मुँह बिना आचमन किये और बिना पैर धोये ही वह
सो गयी ॥ ६० ॥ योगेश्वर इन्द्र ने देखा कि यह लम्बा
अवसर हाथ लगा । वे योगबलसे छत्पत् सोयी हुई दितिके
गर्भमें प्रवेश कर गये ॥ ६१ ॥ उन्होंने वहाँ जाकर
सोनके समान चमकते हुए गर्मके वस्त्रके द्वारा सात
दुकने कर दिये । जब वह गर्म रोने लगा, तब उन्होंने
‘मत रो, मत रो यह कहकर सातों दुकनोंमेंसे एक-
एकके और भी सात-सात दुकन कर दिये ॥ ६२ ॥
राजन् ! जब इन्द्र तबक दुकन-दुकन करने लगे, तब
उन सबोंन हाथ जोड़कर इन्द्रसे कहा—‘देवराज ! तुम
हमें क्यों मार रहे हो ! हम तो तुम्हारे माँ मरुद्ग
हैं ॥ ६३ ॥ तब इन्द्रने अनन्य भाषी अनन्यभाषी पाद
मरुद्गसे कहा— अन्धी जान इ तुमसाग मेरे माँ

न ममार दितेर्म श्रीनिवासानुक्रमया ।

बहुधा कुलिशकुण्ठो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥६५॥

सकृदिद्वाऽऽदिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ।

संवत्सर किञ्चिद्न दित्या यद्वरिरर्षितः ॥६६॥

सञ्जुरिन्द्रेण पञ्चाशदेवास्ते मरुतोऽभवन् ।

व्यपोम मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृता ॥६७॥

दितिक्रियाम दृष्ट्वा कुमाराननलप्रभान् ।

इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुप्पदनिन्दिता ॥६८॥

अयेन्द्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् ।

अपत्यमिच्छन्त्यधरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥६९॥

एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन् कथम् ।

यदि ते भिदित पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥७०॥

इन्द्र उवाच

अम्य तेऽह न्यवसितसुपधार्यागताऽन्तिकम् ।

सन्धान्तराऽन्धिदं गममर्थमुद्भिर्न धर्मवित् ॥७१॥

कृता मे सप्तधा गर्भ आसन् सप्त कुमारकाः ।

तऽपि चर्द्धकृता दृक्काः सप्तधा नापि मन्त्रिरे ॥७२॥

तत्सन्तत्यमाभयं वीर्याप्यत्रमितं मया ।

महापुरुषत्वायाः मिद्धि काप्यनुपज्जिणी ॥७३॥

माराधनं भगवत इहमाना निराश्रिय ।

हो । अब मत बरो ॥ ६४ ॥ परीक्षित । मैं

अश्वत्थामाके प्रह्लादसे तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं

हूना, जैसे ही मगवान् श्रीहरिकी कृपासे दितिकर वह

गर्भ यज्ञके द्वारा दुकड़-दुकड़ होनेपर भी मरा नहीं ॥ ६५ ॥

इसमें तनिक भी आश्चर्यकी बात नहीं है । क्योंकि जो

मनुष्य एक बार भी आदिपुरुष मगवान् नाशपनकी

आराधना कर लेता है, वह उनकी समानता प्राप्त कर

लेता है, फिर दितिने तो कुछ ही दिन कम एक वर्षक

मगवान्की आराधना की थी ॥ ६६ ॥ अब वे उन्चास

मरुगण इन्द्रके साथ मिलकर पचास हो गये । इन्द्रने

मी सीतेजी माताके पुत्रोंके साथ सप्तमात्र न रखकर उन्हें

सोमपायी देवता बना लिया ॥ ६७ ॥ अब दितिकी

बाँछ लुब्धे, तब उसने देखा कि उसके अग्निके समान

तेजस्वी उन्चास बाळक इन्द्रके साथ हैं । इससे सुन्दर

समाववाली दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ६८ ॥ उसने

इन्द्रको सम्बोधन करके कहा—भेटा । मैं इस इच्छासे

इस अत्यन्त कठिन व्रतका पाठन कर रही थी कि तुम

आदितिके पुत्रोंको मयभीत करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो ॥ ६९ ॥

मैंने केवल एक ही पुत्रके लिये सङ्कल्प किया था ।

फिर ये उन्चास पुत्र कैसे हो गये । भेटा इन्द्र !

यदि तुम्हें इसका रहस्य माष्टम हो, तो सब-सब तुझे

बतला दो । छूट न बोलना ॥ ७० ॥

इन्द्रने कहा—ममता । मुझे इस बातका पता चला

गया था कि तुम किस उद्देश्यसे व्रत कर रही हो । इसी-

लिये अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके उद्देश्यसे मैं स्वर्ग छोड़कर

तुम्हारे पास आया । मेरे मनमें तनिक भी धर्म-आत्मा

नहीं थी । इसीसे तुम्हारे व्रतमें मुक्ति होते ही मैंने उस

गर्भके दुकड़-दुकड़ कर दिये ॥ ७१ ॥ पहले मैंने

उसके सात दुकड़ किये थे । तब वे सातों दुकड़े साथ

बाँट बन गये । इसके बाद मैंने फिर एक-एकके

सात-सात दुकड़ कर दिये । तब भी वे न मरे, बल्कि

उन्चास हो गये ॥ ७२ ॥ यह परम आश्चर्यकी बात

देखकर मैंने एसा निश्चय किया कि परमपुरुष मगवान्की

उपासनासे यह कोई आश्चर्य मिटि है ॥ ७३ ॥

आ लोग निश्चयम भावसे मगवान्की आराधना करने हैं

और दूसरी वस्तुओंकी ता बाध ही क्या, मोक्षकी भी

ये तु नेष्टन्त्यपि पर ते स्वार्थकुशलाः स्मृता ॥७४॥

आराध्यात्मप्रदं देयं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ।

को हृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्वाश्वरकेऽपि यत् ॥७५॥

तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीपति ।

क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं विष्टया गर्भो मृतोत्थितः ॥७६॥

श्रीशुक उवाच

इन्द्रस्तयाम्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ।

मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥७७॥

एवं ते सर्वमास्त्वार्थं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।

मङ्गलं मरुतां जन्म किं मूयः कथयामि त ॥७८॥

इच्छा नहीं करते, ये ही अपने स्वार्थ और परमार्थमें निपुण हैं ॥ ७४ ॥ भगवान् जगदीश्वर सबके आराध्यदेव और अपने आत्मा ही हैं । ये प्रसन्न होकर अपने आपतत्त्वका दान कर देते हैं । मया, ऐसा कौन मुझिमान है, जो उनकी आराधना करके विषयभोगोंका बदाम मीने । माता श्री । ये विषयभोग तो नरकमें भी मिल सकते हैं ॥ ७५ ॥ मेरी स्नेहमयी खजनी । तुम सब प्रकार मेरी पूज्या हो । मैंने मूर्खताका बड़ी बुद्धताका काम किया है । तुम मेरे अपराधको क्षमा कर दो । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा गर्भ अण्ड-खण्ड हो जानसे एक प्रकार मर जानेपर भी फिरसे जीवित हो गया ॥ ७६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! त्रिदि देवराज इन्द्रके शुद्धभावसे सन्तुष्ट हो गयी । उससे आज्ञा लेकर देवराज इन्द्रने मरुद्गणोंके साथ उससे नमस्कार किया और स्वर्गमें चले गये ॥ ७७ ॥ रामन् ! यह मरुद्गणका जन्म बड़ा ही मङ्गलमय है । इसके विषयमें तुमने मुझसे ज्ञा प्रश्न किया था, उसका उत्तर समप्रकारसे मैंने तुम्हें दे दिया । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ! ॥ ७८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! त्रिदि देवराज इन्द्रके शुद्धभावसे सन्तुष्ट हो गयी । उससे आज्ञा लेकर देवराज इन्द्रने मरुद्गणोंके साथ उससे नमस्कार किया और स्वर्गमें चले गये ॥ ७७ ॥ रामन् ! यह मरुद्गणका जन्म बड़ा ही मङ्गलमय है । इसके विषयमें तुमने मुझसे ज्ञा प्रश्न किया था, उसका उत्तर समप्रकारसे मैंने तुम्हें दे दिया । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ! ॥ ७८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पष्ठस्कन्धे मरुदुत्पत्तिः

कथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

पुंसवन-व्रतकी विधि

श्रीशुक उवाच

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यदुदीरितम् ।

संस वदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच

शुद्धे मार्गशिर पक्षे योपि कर्तुं रनुज्ञया ।

आरमेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥

निश्चम्य मरुतां जन्म प्राप्नोति ननुमन्त्र्य च ।

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन् ! आपने अभी-अभी पुंसवन-व्रतका वर्णन किया है और कहा है कि उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं । सा अब मैं उसकी विधि जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित ! यह पुंसवन व्रत समस्त कामनाओंके पूर्ण करमाया है । श्रीको चाहिये कि वह अपने पतिदेवकी आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदासे इसका जन्म करे ॥ २ ॥ पहले मरुद्गण-क जन्मकी क्या सुनकर दाक्षिण्यसे कहा से । फिर

स्रत्वा शुक्रवती शुद्धे वसीतालङ्कृतसम्भरे ।

पूजयेत्प्रातराध्यात्ममगवन्तं भिया सह ॥ ३ ॥

अथ ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ।

महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥

यथा त्वं कृपया भूत्वा तेजसा महिनोवसा ।

शुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान् प्रभुः ॥ ५ ॥

विष्णुपति महाभागे महापुरुषलक्षण ।

प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय

महाविभूतिपतये सह महाविभूतिमिर्बक्षिषुष

हराजीति । अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णाराधाहनाध्वं-

पाद्योपस्पर्शनस्नानपासपत्रीतविभूषणगन्धपुष्पपू-

दीपोपहारापुष्पांशु समाहित उपहरेत् ॥ ७ ॥

हविःशेषं तु सुडुपादनले दादध्माहुतीः ।

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये
स्वाहेति ॥ ८ ॥

भिर्यं विष्णुं च परदाशशिषां प्रमथायुमी ।

भक्त्या सम्यक्प्रयत्न्य मदीच्छेत्सर्वसम्पदः ॥ ९ ॥

प्रणमेद्वचस्पृमी भक्तिप्रद्वेण चतसा ।

प्रतिदिन सबेरे दौन आदिसे दौत साक करके स्नान करे, दो श्वेत वस्त्र धारण करे और आभूषण भी पहन ले । प्रातःकाल कुछ भी स्नानसे पहले ॥ १ ॥ मगवन् कम्पनी-भारायणकी पूजा करे ॥ २ ॥ (इस प्रकार प्रार्थन करे—) 'प्रभो ! आप पूर्णकाम हैं । अतएव आपको किसीसे भी कुछ छेना देना नहीं है । आप समस्त विभूतियोंके स्वामी और सकलसिद्धिरूप हैं । मैं आपका बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ ४ ॥ मेरे आरम्भदेव ! आप कृपा, विभूति, तेज, महिमा और धर्म आदि समस्त गुणोंसे नित्ययुक्त हैं । इन्हीं गुणों—ऐक्योपि नित्ययुक्त रहनेके कारण आपको भगवान् कहते हैं । आप सर्वसक्तिमान् हैं ॥ ५ ॥ माता कम्पनीजी ! आप भगवान्की वरदाक्षिणी और आभापात्ररूपिणी हैं । भगवान्के सारे गुण आपमें निवास करते हैं । महाभक्तकी अगम्यता ! आप सुखपर प्रसन्न हों । मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ६ ॥

परीक्षित ! इस प्रकार स्तुति करके एकप्र विचिष्टेभ्योभक्तो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बक्षिषुषहरणि । 'ओङ्कारब्रह्म, महानुभवं, समस्त महाविभूतियोंके स्वामी भगवान् प्रकृतोत्तमकी और तन्मयी महाविभूतियोंको मैं नमस्कार करती हूँ और उन्हें पूजोपहारकी सामग्री समर्पण करती हूँ—इस मन्त्रके द्वारा प्रतिदिन स्थिर चित्तसे विष्णुभगवान्को आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, पञ्चोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि निवेदन करके पूजन करे ॥ ७ ॥ जो नैवेद्य बच रहे, उससे ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये आहा ।' पढ़ान् ऐश्वर्योक्त विधिपति भगवान् प्रकृतोत्तमको नमस्कार है । मैं कहती हूँ कि ऐसे इस इच्छित्युक्त इष्टन कर रही हूँ ।— यह मन्त्र बोधकर अगममें बाह्य आहुतियों दे ॥ ८ ॥

परीक्षित ! जो सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको प्राप्त करना चाहता हो, उसे चाहिये कि प्रतिदिन भक्तिभावसे भगवान् कम्पनीभारायणकी पूजा करे । क्योंकि वे ही दोनो समस्त अभिध्यायार्थके पूर्ण करनेवाले एवं श्रेष्ठ परदात्री हैं ॥ ९ ॥ इसको आत्मा भक्तिभावसे परकर बड़ी मधुरतासे भगवान्को साक्षात् दण्डवत् करे ।

दक्षवार अपेन्मन्यं तत् स्तोत्रमुदीरयेत् ॥१०॥

युवां तु विभक्तं विभू जगत् कारणं परम् ।

इयं हि प्रकृतिः दक्षमायाशक्तिर्दूरस्थया ॥११॥

तस्या जभीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः पर ।

त्वं सर्वयज्ञ इन्धेय क्रियेयं फलमुग्मवान् ॥१२॥

गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणसुग्मवान् ।

त्व हि सर्वशरीररत्ना श्रीः धारीरेन्द्रियाश्रया ।

नामरूपे भगवती प्रस्थयस्त्वमपाभयः ॥१३॥

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ।

तथा म उत्तमसोक सन्तु सत्या महाक्षिपः ॥१४॥

इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिधामं धिया सह ।

तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् ॥१५॥

ततः स्तुतीव स्तात्रेण भक्तिप्रज्ञां चेतसा ।

यज्ञोच्छिष्टमश्रयाय पुनरभ्यर्चयेद्वरिम् ॥१६॥

पठि च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ।

प्रियैस्त्वंस्वरूपनमेत् प्रमदीठः स्वयं पतिः ।

विभूयात् सर्वकामाणि पत्न्या उषावधानि च ॥१७॥

कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयारपि ।

पत्न्यां कृपादनहायां पतिरतत् समाहित ॥१८॥

विष्णुर्मतमिदं विभ्रमं विहन्त्या कथञ्चन ।

दस बार पूर्वोक्त मन्त्रका जप करे और फिर इस स्तोत्रका पाठ करे—॥ १० ॥

ये छत्ती-नारायण ! आप दोनों सर्वव्यापक और सम्पूर्ण ब्रह्मचर जगत्के अन्तिम कारण हैं—आपका और कोई कारण नहीं है । भगवान् । माता छत्तीजी आपकी मायाशक्ति हैं । ये ही जगत् अम्यक्त प्रकृति भी हैं । इनका पार पाता आपस कठिन है ॥११॥ प्रभो ! आप ही इन महामायाके जभीश्वर हैं और आप ही जगत् परमपुरुष हैं । आप समस्त यह हैं और ये हैं यज्ञ-क्रिया । आप फलके भोक्षा हैं और ये हैं उसको उत्पन्न करने-वाली क्रिया ॥ १२ ॥ माता छत्तीजी तीनों गुणोंकी अभिव्यक्ति हैं और आप उन्हें व्यक्त करनेवाले और उनके भोक्षा हैं । आप समस्त प्राणियोंके ब्रह्मा हैं और छत्तीजी शरीर, इन्द्रिय और अन्त करण हैं । माता छत्तीजी नाम एव रूप हैं और आप नाम-रूप दोनोंके प्रकाशक तथा आधार हैं ॥ १३ ॥ प्रभो ! आपकी कीर्ति पवित्र है । आप दोनों ही त्रिभोक्तीके वरदानी परमेश्वर हैं । जल मेरी बड़ी-बड़ी आशा-अभिलाषाएँ आपकी कृपासे पूर्ण हों ॥ १४ ॥

परीक्षित् । इस प्रकार परम वरदानी भगवान् छत्ती-नारायणकी स्तुति करके बहोते मीचेप हटा दे और आचमन कराके पूजा करे ॥ १५ ॥ तदनन्तर भक्ति-भावमयित हृदयसे भगवान्की स्तुति करे और महाभक्त-को हूँबकर फिर भगवान्की पूजा करे ॥ १६ ॥ भगवान् की पूजाके बाद अपने पतिको साक्षात् भगवान् समझकर परम प्रभुसे उनकी प्रिय वस्तुएँ सेकामें उपस्थित करे । पतिको भी यह कतब्य है कि वह आन्तरिक प्रभुसे अपनी पत्नीके प्रिय पदार्थ आन्तरिक भुसे दे और उसका छोटे-बड़े सब प्रकारके कर्म करता रहे ॥ १७ ॥ परीक्षित् ! पति-पत्नीमेंसे एक भी कोई कर्म करता है, ता उसका फल दोनोंका होता है । इसप्रिये यदि पत्नी (रजोभग आदिक समय) यह कर्म करनेके अवसर हा जाय ता बड़ी एकप्रता और साधवानीसे पतिको ही इसका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १८ ॥ यह भगवान् विष्णुका वचन है । इसका नियम स्मर बीघमें फर्मा नहीं छड़ना चाहिये । जो

विप्रान् क्षियोधीरवतीः स्रग्गन्धर्वलिमन्धनैः ।

अर्घेदहरहर्मकस्या देवं नियममास्थितः ॥१९॥

उद्रास्य देव स्वे भान्नि तन्निवेदितमग्रतः ।

अयादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामद्वये तथा ॥२०॥

एतेन पूजाविधिना मासान् द्वादश दायनम् ।

नीत्वाधोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽग्नि ॥२१॥

शोभतेऽप उपसृज्य कृष्णमम्यर्घ्यं पूर्ववत् ।

पयःपूतेन सुदुवाचरुणा सह सर्पिषा ।

पाकपद्मविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥२२॥

आक्षिपः क्षिरसाऽऽद्यमग्निजैः प्रीतैः समीरिताः ।

प्रगम्य क्षिरसा भक्त्या मुञ्जीत तदनुष्ठया ॥२३॥

आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ।

दद्यात्तर्प्य चरोः श्रेष्ठं सुप्रबलस्त्वं सुसौभगम् ॥२४॥

एतच्चरित्वा विभिन्नव्रतं विमो

रमीप्सितार्थं लभते पुमानिह ।

स्त्री स्वेतद्रास्याय लभेत सौभगं

भियं प्रसां बीजपतिं यशो गृहम् ॥२५॥

कन्या च विदेत समप्रलक्षण

वर स्ववीरा इतकिलिषा गतिम् ।

मृतप्रभा बीजमुता धनेश्वरी

सुदुर्मगा सुभगा रूपमायम् ॥२६॥

मी यह नियम ग्रहण करे, वह प्रतिदिन मासा, चन्दन, नैवेद्य और आम्रपुष्प आदिसे मन्त्रपूर्वक श्रावण और सुहागिनी श्रियोक्ता पूजन करे तथा मासान् किञ्चिद्भी पूजा करे ॥ १९ ॥ इसके बाद मासान्को उनके धाममें पहरा दे, विसर्जन कर दे । तदनन्तर आम्रपुष्प और समस्त अभिजातार्थकी पूर्तिके क्रिये पहलेसे ही उन्हें निवेदित किया हुआ प्रसाद ग्रहण करे ॥ २० ॥ साध्वी की इस विधिसे बारह महीनोंतक—पूरे स्रग्गन्धर्व और ब्रतका आचरण करके मार्गशीर्षकी अम्याकस्याको उच्छ्रम-सम्बन्धी उपवास और पूजन आदि करे ॥ २१ ॥ उस दिन प्रातः काक ही आम करके पूर्ववत् विष्णु मात्मन्का पूजन करे और उसका पति पाकपद्मकी विधिसे दूध-मिश्रित क्षीरकी अग्निमें बारह आहुति दे ॥ २२ ॥ इसके बाद जब श्रावण प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दे, तो बड़े आदरसे स्तिर कुम्भकर उन्हें क्षीकार करे । मन्त्र-मात्रसे मासा टेककर उनके चरणोंमें प्रणाम करे और उनकी आज्ञा लेकर भोजन करे ॥ २३ ॥ पहले आचार्य-को भोजन कराये, फिर मौन होकर मार्ग-बन्धुओंके साथ खप भोजन करे । इसके बाद हवनसे बची हुई घृतमिश्रित क्षीर अपनी पत्नीको दे । वह प्रसाद कीको सत्पुत्र और सौभाग्य दान करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

परीक्षित ! मासान्का इस पुंसवन-व्रतका जो मनुष्य विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है, उसे यहाँ उसकी मन्त्राधीन वस्तु मिल जाती है । श्री इस व्रतका पाठन करके सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, धन और गृह प्राप्त करती है तथा उसका पति धिरायु हो जाता है ॥ २५ ॥ इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाली कन्या समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त पति प्राप्त करती है और विधवा इस व्रतसे निष्पन्न होकर वैकुण्ठमें जाती है । जिसके बच्चे मर जाते हों, वह भी इसका प्रभावसे धिरायु पुत्र प्राप्त करती है । भगवती किन्तु जमागिनी स्त्रीको सौभाग्य प्राप्त होता है और कुम्भपाको यह रूप मिल जाता है ।

विन्देष्ट विरूपा विरुजा विद्युष्यते

य मामयाधीन्त्रियकल्पदेहम् ।

एतत्पठयन्मुदये च कर्म-

ण्यनन्तदृष्टिः पितृदेवतानाम् ॥२७॥

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्

होमावसाने द्रुतमुक् धीर्हरिष ।

राबन् महन्मरुतां जन्म पुण्यं

दिवेर्घृतं चाभिहितं महत्ते ॥२८॥

रोगो मृत्युप्रवृत्तके प्रभावसे रोगमुक्त होकर बलिष्ठ शरीर और
श्रेष्ठ इन्द्रियशक्ति प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य मात्राधिक
आद्यकर्मोंमें इसका पाठ करता है, उसके पितर और
देवता अनन्त तृप्ति लाभ करते हैं ॥ २६ २७ ॥ वे सन्तुष्ट
होकर स्वर्गके समाप्त होनेपर प्रतीकी समस्त इच्छाएँ
पूर्ण कर देते हैं । ये सब तो सन्तुष्ट होते ही हैं, समस्त
यज्ञोंके एकमात्र मोक्ष भगवान् स्वामीनारायण भी सन्तुष्ट
हो जाते हैं और प्रतीकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर
देते हैं । परीक्षित ! मैंने तुम्हें मरुद्गणकी आदरणीय
और पुण्यप्रद जन्म-कथा सुनायी और साथ ही दितिके
श्रेष्ठ पुंसव्रत-व्रतका व्रणम भी सुना दिया ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्रपां

पारमर्हस्यां संहितायां पष्ठस्कन्धे पुंसव्रतव्रतकथनं

नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इति पष्ठः स्कन्धः समाप्तः ।

हरिः ॐ नमस्तत्



विप्रान् क्षिप्रो वीरवतीः स्रग्गन्धर्वालिमण्डनैः ।

अर्घ्येदहरहमस्तथा देवं नियममाश्रितः ॥१९॥

उद्गास्य देवं स्ये धाम्नि सन्निवेदितमग्रतः ।

अघाशात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामदृष्टे तथा ॥२०॥

एतेन पूजाविधिना मासान् द्वादश दायनम् ।

नीत्वाभोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥२१॥

श्रोमूत्रेऽप उपसृज्य कृष्णमम्बुधर्यं पूर्ववत् ।

पयःशृतेन जुहुयाच्चक्ष्णा सह सर्विषा ।

पाकपञ्चविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥२२॥

आग्निपः शिरसाऽऽदाय द्वित्रैः प्रीतैः समीरिताः ।

प्रगन्ध शिरसा भक्त्या मुञ्जीत तदनुजया ॥२३॥

आधार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह वपुभिः ।

दद्यात्तस्यै चरोः श्रेष्ठं सुप्रजस्त्वं सुसौभगम् ॥२४॥

एतच्चरित्वा विधिवद्गत विभो

रभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ।

स्त्री स्वेतदाम्याय लभेत सौभगं

भिय प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥२५॥

कन्या च विदेत समग्रलक्षणं

वर स्ववीरा इतद्विनिषा गतिम् ।

मृतप्रजा जीवमुता धनधरी

सुदुर्मगा सुभगा रूपमायम् ॥२६॥

मी यह नियम ग्रहण करे, वह प्रतिदिन भक्षा, चन्दन, नैवेद्य और आभूषण आदिसे मन्त्रिपूर्वक ब्रह्मण और ब्रह्मणि लियोंका पूजन करे तथा मगवान् नियुक्ती भी पूजा करे ॥ १९ ॥ इसके बाद मगवान्को उसके धाममें पधरा दे, विसर्जन कर दे । तदनन्तर ब्रह्मण और समस्त अमिषाचार्योंकी पूजिते लिये पहलेसे ॥ उन्हें निवेदित किया हुआ प्रसाद ग्रहण करे ॥ २० ॥ साध्वी की इस विधिसे बारह महीनोंतक—पूरे सांस्मर इस व्रतका आचरण करके मार्गशीर्षकी अम्बुक्षणाको उद्यान-सम्बन्धी उपवास और पूजन आदि करे ॥ २१ ॥ उस दिन प्रातः काष्ठ ही आन करके पूर्ववत् विष्णु भक्त्या पूजन करे और उसका पति पाकपञ्चकी विधिसे धृत-मिश्रित वीरकी अग्निमें बारह आहुति दे ॥ २२ ॥ इसके बाद जब ब्राह्मण प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दे, तो वने आदरसे सिर झुकाकर उन्हें वीर्यकर करे । मन्त्र-मात्रसे माथा टेककर उनके चरणमें प्रणाम करे और उनकी आज्ञा लेकर भोजन करे ॥ २३ ॥ पहले आचार्य-को भोजन कराये, फिर मौन होकर भार्य-बन्धुओंके साथ साथ भोजन करे । इसके बाद इनसे बची हुई धृतमिश्रित वीर अपनी पत्नीको दे । वह प्रसाद वीरको सपुत्र और सौभाग्य दान करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

परीक्षित । मगवान्क इस पुंसवन-व्रतका जो मनुष्य विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है, उसे यहाँ उसकी मनचाही वस्तु मिल जाती है । जो इस व्रतका पाठन करके सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, यश और गृह प्राप्त करती है तथा उसका पति विराग्य हो जाता है ॥ २५ ॥ इस व्रतका अनुष्ठान करनवाली कन्या समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त पति प्राप्त करती है और विधवा इस व्रतसे निष्पाप होकर वैकुण्ठमें जाती है । जिसके बच्चे मर जाते हों, वह भी इसका प्रभावसे विराग्य पुन प्राप्त करती है । धनवती किन्तु अभागिनी स्त्रीको सौभाग्य प्राप्त होता है और पुत्रप्राप्तो यद्यपि रूप मिल जाता है ।

विन्देद् विरूपा विरुजा विद्युष्मते

य आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ।

एतत्पठन्मुदये च कर्म

प्पनन्तवृत्तिः पितृवेषणानाम् ॥२७॥

तृष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्

होमावसाने हुतसृक् श्रीर्हरेरिष ।

रात्रन् महन्मरुतां जन्म पुण्य

दितेर्वर्तं चाभिहितं महत्ते ॥२८॥

रोगी इस ऋतके प्रभावसे रोगमुक्त होकर मलिष्ठ शरीर और
श्रेष्ठ इन्द्रियशक्ति प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य मातृष्टिक
आद्यकर्मोंमें इसका पाठ करता है, उसके पितर और
देवता अनन्त वृत्ति लाभ करते हैं ॥ २६-२७ ॥ वे सन्तुष्ट
होकर हवनके समाप्त होनेपर ऋतीकी समस्त इच्छाएँ
पूर्ण कर देते हैं । ये सब तो सन्तुष्ट होते ही हैं । समस्त
यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता भगवान् स्वामीनारायण भी सन्तुष्ट
हो जाते हैं और ऋतीकी समस्त अभिञ्जणें पूर्ण कर
देते हैं । परीक्षित् । मैंने तुम्हें मरुद्रण्यकी वादरणीय
और पुण्यप्रद जन्म-कथा सुनायी और साथ ही दितिके
श्रेष्ठ पुसवन-ऋतक कर्ण भी सुना दिया ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैष्णवसिन्ध्यामष्टादशसाहस्रपां

पारमर्हस्यां संहितायां पष्ठस्कन्धे पुसवनऋतकपर्व

नामैकत्रोविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इति पष्ठः स्कन्धः समाप्तः ।

हरिः ॐ नमः





श्रीराधाकृष्णार्पणम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

सप्तमः स्कन्धः



नरसिंहवपुर्भीमं

सम्भसम्भवयदुतम् ।

भक्तत्राणाय

विभ्राणं

धामुदबभूवामाह ॥

न तेषां युगयद्राजन् शस उच्छास एव वा ॥ ७ ॥

अयच्छले तु सखस देवपीन् रजसोऽसुरान् ।

तप्तो मन्त्रस्थासि तत्कालानुगुणोऽमवत् ॥ ८ ॥

अयोविरादिरिषामाति सङ्गराजम विविष्यते ।

विदन्त्यात्मानमात्मस्य मयित्वा क्वयोऽन्तरा ॥ ९ ॥

बदा सिद्धिः पुरे आत्मनः परो

रजः सूत्रस्येव पृथक् स्वमापवा ।

सत्त्वं विवित्रासु तिरिंसुरीश्वर

अविष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥ १० ॥

कलं चरन्तं सुजतीञ्च आश्रयं

प्रधानपुम्भ्यां नरदेव सत्यकुट् ।

य यय राज्ञपि कल ईक्षित्वा

सत्त्वं सुरानीकमिषैभमस्यतः ।

वत्प्रत्यनीकानसुरान् सुरप्रियो

रजस्तमस्कान् प्रमियोन्पुरुषवा ॥ ११ ॥

अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरपिशा ।

प्रीत्या महाकृतौ राजन् पृच्छतेऽजावशत्रवे ॥ १२ ॥

रघू मदाहुतं राज्ञा राजघ्ने महाकृतौ ।

वासुदेवे भागपति सायुज्यं चेदिर्भूयुषः ॥ १३ ॥

तत्रासीन सुराश्चपि राजा पाण्डुसुतः प्रती ।

के नहीं । परीक्षित ! इन तीनों गुणोंकी भी एक ही घटती-बढ़ती नहीं होती ॥ ७ ॥ मन्त्र सत्त्वके अनुसार गुणोंको स्वीकार करते हैं । सत्त्वकी वृद्धिके समय देवता और त्रिविक्रान्, रजसकी वृद्धिके समय दैत्योंकी और तमोगुणकी वृद्धिके समय यक्ष एवं राक्षसोंको अपनाते और तमक अनुसार करते हैं ॥ ८ ॥ जैसे व्यापक अग्नि कष्ट आदि भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर भी सबसे ऊँचा नहीं जान पड़ती, परन्तु सब करनेपर वह प्रकट हो जाती है—वैसे ही सत्त्व सभी क्षीरोमें रहते हैं, ऊँचा नहीं जान पड़ते । पर विचारशील पुरुष हृदयमन्थन करके—उनके अतीत सभी वस्तुओंका बाध करके अन्ततः अपने अन्तर्गत अन्तर्वाणीकपक्षे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं ॥ ९ ॥ ऊपरमेश्वर अपने किये क्षीरोका निर्माण करना करते हैं, तब अपनी मध्यसे राजागुणकी कला सुधि करते हैं । जब वे विविध योनियोंमें रमण करना चाहते हैं, तब सत्त्वगुणकी सुधि करते हैं और जब वे सन्नत रूप चाहते हैं, तब तमोगुणको क्या देते हैं ॥ १० ॥ परीक्षित ! भगवान् सत्यसङ्ग हैं । वे ही अज्ञानी उत्पत्तिके निमित्त मूल प्रकृति और पुरुषके सङ्गकारी एवं आश्रय-सङ्गही सुधि करने हैं । इसलिये वे कलके अधीन नहीं, कल ही उनके अधीन है । राजन् ! ये कलकृत ईश्वर जब सत्त्वगुणकी वृद्धि करते हैं, तब सत्त्व देवताओंका सब बसाते हैं और तभी वे परमपदास्ती देवता परमात्मा देवताओंकी रजोगुण एवं तमोगुणों के लिये सङ्गार करते हैं । वस्तुतः वे सत्य ही हैं ॥ ११ ॥

राजन् ! इसी नियमसे देवर्षि भारद्वाजे बड़े प्रेम्से एक इतिहास कहा था । यह उस समयकी बात है, जब राम-सूय यज्ञमें दुम्हारे दादा बुधित्रिये उनसे इस सम्बन्धमें एक प्रश्न किया था ॥ १२ ॥ उस स्थान् राजसूय यज्ञमें राजा बुधित्रिये अपनी ओरोंके सामने बड़ी आश्चर्यजनक बातों देवी कि वेदिराम सिन्धुपाल सबके देवसे देखते भगवान् श्रीहृणये समा गया ॥ १३ ॥ वही देवर्षि भारद्वाजी हैं ॥ १४ ॥ इस घटनासे आश्चर्य-चकित होकर राजा बुधित्रिये बड़े-बड़े मुनियोंसे भी

पप्रच्छ विस्मितमना मृनीनां शृण्वतामिदम् ॥१४॥

पुषिष्ठिर उवाच

अहो अत्यद्भुतं द्रष्टव्यदुर्लभैकान्तिनामपि ।

मासुदेवे परे तच्चे प्राप्तिर्भयस्य विद्विष ॥१५॥

एतद्भेदितुमिच्छामः सर्व एष वयं मृने ।

भगवन्मिन्द्या वेनो द्विजैस्तमसि पातित ॥१६॥

दमघोपसुतः पाप आरम्भ कलभापणात् ।

सम्प्रत्यमयीं गोविन्दे दन्तवक्त्रश्च दुर्मतिः ॥१७॥

शपसोरसकृद्विष्णु यद्वा परमन्ययम् ।

अत्रान जातो भिद्वायां नात्र विविशतुस्तमः ॥१८॥

कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राहधामनि ।

पश्यतां सर्वलोकानां त्वमीयतुरज्जसा ॥१९॥

एतद् भ्राम्यति मे पुद्भिर्दीपाक्षिरिव वायुना ।

भ्रूयतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥२०॥

कौमुद उवाच

राम्भन्तश्च आकर्ष्य नारदा भगवानृषिः ।

सुष्टः प्राह तमाभाप्य शृण्वत्यान्तत्मादा कथाः ॥२१॥

नारद उवाच

निन्दनमवमन्कारन्यकाराद्य कल्पेभरम् ।

प्रधानपरया रात्रमविवेकेन कल्पितम् ॥२२॥

दिसा तदभिमानेन दण्डवारुण्ययोयथा ।

वैपम्पमिह भूतानां ममाहमिति पाधिष ॥२३॥

यन्निर्दाग्भिमानाज्यं तदधा प्राणिनां वधः ।

इहं समामे, तस्य यद्भगवन्प्रमे ही देवर्षि नारदसे यह प्रश्न किया ॥ १४ ॥

पुषिष्ठिरने पूछा—अहो! यह तो बड़ी विचित्र बात है। परम तत्त्व भगवान् शीघ्रज्यमें सम्यग् जाना तो बड़े बड़े जनन्य मर्कोंके लिये भी दुर्लभ है; फिर भगवान्से द्वेष करनेवाले शिशुपायको यह गति कैसे मिली? ॥ १५ ॥

नारदजी! इसका रहस्य हम सभी जानना चाहते हैं। पूर्वकाष्ठमें भगवान्को मित्रता करनेके कारण श्रुतिमें ही रात्रा वेनको मरकत्में डाल दिया था ॥ १६ ॥ यह दमघोषका लक्ष्य पापात्मा शिशुपाय और दुर्मुदि दन्तवक्त्र—दोनों ही जबसे तुल्यकर बोधन छोड़े तबसे अवतत् भगवान्से द्वेष ही करते रहे हैं ॥ १७ ॥ अत्रिनाशी परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णको ये पानी पी-पीकर गन्धी देते रहे हैं। परन्तु इसके फलस्वरूप न तो इनकी जीर्णमें कोई ही इच्छा और न इन्हें घोर लज्जकारण्य मरकत् ही प्राप्ति हुई ॥ १८ ॥ प्रसूत त्रिन भगवान् की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, वगैरहमें ये दोनों सबके देखते-देखते अनायास ही लीन हो गये—इसका क्या कारण है? ॥ १९ ॥ इन्हींके लोकेसे छलछद्माली हुई दीपककी लौके समान मेरी बुद्धि इस विषयमें बहुत आग-पीडा कर रही है। आप सर्वज्ञ हैं, अतः इस अद्भुत घटनाका रहस्य समझाइये ॥ २० ॥

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—सर्वसमर्प देवर्षि नारद राजाके ये प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पुषिष्ठिको सम्बोधित करके मरी समामे सबके सुनते हुए यह कथा कही ॥ २१ ॥

नारदजीने कहा—पुषिष्ठि! निन्दा, स्तुति, स्फुरा और तिरस्कार इस शरीरक ही तो हानि है। और इस शरीरकी कल्पना प्रहृति और पुरुषका टीक-टीक विवेक न हानिके कारण ही हुआ है ॥ २२ ॥ अब इस शरीर को ही अपना आपका मान लिया जाता है, तब यह मैं हूँ और यह मरता है, ऐसा भाव बन जाता है। यही सारे भेन्भावज्ञ मूल है। इसीके कारण ताड़ना और दुर्वचनोंसे पीडा होती है ॥ २३ ॥ जिस शरीरमें अभिमान हो जाता है कि 'मैं हूँ', उस शरीरके वधमें प्राणिजोड करना बंध जान पड़ता है। किन्तु



श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

सप्तमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

नारद-मुनिष्ठिर-संवाद् और जय-विजयकी कथा

राजोवाच

समः प्रियः सुहृदमन् भूतानां भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यान्वभीक्ष्ण्यमो यथा ॥ १ ॥
न ह्यस्यार्थः सुरमणैः साक्षाभिः भयसात्मनः ।
नैवासुरेभ्यो विद्वेभ्यो नोद्वेगमागुणस्य हि ॥ २ ॥
इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति ।
संशयः सुमहाज्ञातस्तत्त्ववांश्चेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्ट महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ।
यद् भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥
गीयते परमं पुण्यमपिभिर्नारदादिभिः ।
नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरः कथाम् ॥ ५ ॥
निर्गुणोऽपि ह्यश्रोम्यस्को भगवान् प्रकृतेः परः ।
स्वमायागुणमाविश्य बाष्पभाषकतां यतः ॥ ६ ॥
सर्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।

राजा परीक्षितने पृच्छ- भगवन् ! भगवान् तो स्वभावसे ही भेदभावसे रहित हैं—सम हैं, समस्त प्राणियोंके प्रिय और सुहृद् हैं, फिर उन्होंने, जैसे कोई साधारण मनुष्य भेदभावसे अपने मित्रका पक्ष ले और शत्रुओंका बर्निष्ट करे, उसी प्रकार इन्द्रके लिये दैत्योंका कथ क्यों किया ॥ १ ॥ वे स्वयं परिपूर्ण कल्याणस्वरूप हैं, इसीलिये उन्हें वेदताओंसे कुछ सेना-सेना नहीं है । तथा निर्गुण होनेके कारण दैत्योंसे कुछ वैर-विरोध और उद्वेग भी नहीं है ॥ २ ॥ भगवत्प्रेमके सौभाग्यसे सम्पन्न महारथन् । इसारे बिचमें भगवान्के समस्त आदि गुणोंके सम्बन्धमें बड़ा भारी संदेह हो रहा है । आप कृपा करके उसे मिटाइये ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णदेवजीने कहा—महाराज ! भगवान्के अद्भुत चरित्रके सम्बन्धमें तुमने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया । क्योंकि ऐसे प्रसङ्ग प्रह्लाद आदि भक्तोंकी महिमासे परिपूर्ण होते हैं जिसके श्रवणसे भगवान्की भक्ति बढ़ती है ॥ ४ ॥ इस परम पुण्यमय प्रसङ्गको नारदादि महामागण बड़ प्रेमसे गते रहते हैं । जब मैं अपने पिता श्रीकृष्ण श्रौणम्य मुनिको समस्कार करके भगवान्की छीटा कथाका वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ बास्तवमें भगवान् निर्गुण अमर्त्या अमर्यक्त और प्रकृतिसे परे हैं । ऐसा होनापर भी अपनी मायाके गुणोंकी स्वीकार करके वे बाष्प-भाषकभावसे अर्थात् माने और मारमनासे दोनोंके परस्परविरोधी रूपोंको प्रकट करने हैं ॥ ६ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये प्रकृतिके गुण हैं, परमात्म

न तेषां युगपद्रावन् हास उल्लास एव यो ॥ ७ ॥

अपक्वसे तु सत्त्वस्य देवपीन् रत्नसोऽसुरान् ।

तमसो यधरघांसि सत्कालानुगुणोऽभवत् ॥ ८ ॥

न्योतिरादिरिवाभाति सङ्घाताश्च विविच्यत ।

विदन्त्यात्मानमात्मस्यं मयिस्था कवयोऽन्तरा ॥ ९ ॥

यदा सिसृक्षुः पुरं आसनः परो

रत्नं सुज्येष्ठं पृथक् स्वमापया ।

सत्त्वं विविचासु रिरसुरीश्वर

शशिभमाणस्तम इत्यत्यसौ ॥ १० ॥

कालं चरन्तं सुज्येष्ठं आभयं

प्रधानपुम्प्यां नरदेव सत्त्वकृत् ।

य एव राज्ञापि काल इक्षिता

सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यतः ।

तस्मिन्पानीकानसुरान् सुरप्रियो

रत्नस्तमस्कान् प्रमिश्रोत्युरुग्रबाः ॥ ११ ॥

अत्रैवादाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा ।

प्रीत्या महाक्रतौ रामन् पृच्छतेऽञ्जासन्नप्रवे ॥ १२ ॥

रघु महाहृतं राजा राजप्रये महाक्रतौ ।

नामुदेवे भगवति साधुर्न्यं नेदिर्भूद्वज्रः ॥ १३ ॥

तत्रासीनं सुरधर्षिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ ।

के नहीं । परीक्षित । इन तीनों गुणोंकी भी एक साथ ही घटती-बढ़ती नहीं होती ॥ ७ ॥ मगवान् सम्प-

सम्पत्के अनुसार गुणोंको स्वीकार करते हैं । सत्त्वगुणकी वृद्धिके समय देवता और अशुभियोंका, रजोगुणकी वृद्धिके समय दैत्योंका और तमोगुणकी वृद्धिके समय वे यक्ष एवं राक्षसोंकी अपनाते और उनका लम्बुदप करते हैं ॥ ८ ॥ जैसे व्यापक अग्नि वायु आदि भिन्न-भिन्न आकारमें

रहनेपर भी उनसे अलग नहीं जान पड़ती, परन्तु पक्क करानेपर वह प्रकट हो जाती है—वैसे ही परमेश्वर सभी क्षीरोंमें रहते हैं, अलग नहीं जान पड़ते । पल्लु विचारशील पुरुष हृदयमग्न करके—उनके अतिप्रिय सभी वस्तुओंका बाध करके अन्ततः अपने हृदयमें ही अन्तर्धर्मीरूपसे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं ॥ ९ ॥ अब परमेश्वर अपने लिये क्षीरोंका निर्माण करना चाहते हैं, तब अपनी मायासे रजोगुणकी अलग सृष्टि करते हैं । जब वे विविच योनियोंमें रमण करना चाहते हैं, तब सत्त्वगुणकी सृष्टि करते हैं और जब वे शयन करना चाहते हैं, तब तमोगुणको व्याप्य लेते हैं ॥ १० ॥ परीक्षित !

मगवान् सम्पसहस्य हैं । वे हो जगत्की उत्पत्तिके निमित्त मूल प्रकृति और पुरुषके सहकारी एवं आत्म-पञ्चकी सृष्टि करते हैं । इसलिये वे कलके अधीन नहीं, कल ही उनके अधीन है । राजन् ! ये कलकरूप ईश्वर जब सत्त्वगुणकी वृद्धि करते हैं, तब सत्त्वमेव देवताओंका बल बढ़ाते हैं और तभी वे परमेश्वरकी देवप्रिय परमात्मा दबानिचोभी रजोगुणी एवं तमोगुणी दैत्योंका संहार करते हैं । वस्तुतः वे सग ही हैं ॥ ११ ॥

राजन् ! इसी विषयमें देवर्षि नारदने बड़े प्रसंगे एक इतिहास कहा था । यह उस समयकी बात है, जब राज-स्य यज्ञमें गुम्हारे दास्य मुषिष्ठिरने उनसे इस सम्बन्धमें एक प्रश्न किया था ॥ १२ ॥ उस महान् उपद्रव यज्ञमें राजा मुषिष्ठिरने अपनी जीर्णोंके सामने बची आश्चर्यजनक घटना देखी कि चेदिराज शिशुपास सबके देखते देखते मगवान् श्रीकृष्णमें समा गया ॥ १३ ॥

वहीं देवर्षि नारद भी बैठे हुए थे । इस घटनासे आश्चर्य-चकित होकर राजा मुषिष्ठिरने बड़े-बड़े मुन्निनोंसे भी

पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥१४॥

मुषिष्ठिर उवाच

अहो अत्यन्तुत श्रेतदुर्लभैकान्तिनामपि ।

वासुदेवे पर सर्वे प्राप्तिभैरस्य विद्विषः ॥१५॥

एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने ।

भगवन्मिन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥१६॥

दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभापणात् ।

सम्प्रत्यमर्षी गोविन्द दन्तवक्त्रश्च दुर्मतिः ॥१७॥

क्षपतोरसकृदिष्णु यद्भक्ष परमप्ययम् ।

श्वित्रान् खातो विह्वार्या नाच विविधतुल्यतः ॥१८॥

कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राहधामनि ।

पश्यतां सर्वलोकानां लयमीभतुरञ्जसा ॥१९॥

एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपाविरिव वायुना ।

श्रुतेतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥२०॥

श्रीकृष्ण उवाच

राष्ट्रस्तद्वच्च आकर्ष्य नारदो भगवानुपिः ।

तुष्टः प्राह तमाभाप्य शृण्वत्पास्तत्सदः कथाः ॥२१॥

नारद उवाच

मिन्दनस्तत्रमत्कारन्यकाराध कलेवरम् ।

प्रधानपरया राजस्रविषेकेन कल्पितम् ॥२२॥

द्विषा तदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा ।

वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥२३॥

यस्मिन् द्वाऽभिमानोऽयं तदधा प्राणिनां वधः ।

हर्षं सभामे, उस यहमण्डपमें ही देवर्षि नारदसे यह प्रश्न किया ॥ १४ ॥

मुषिष्ठिरसे पूछा—अहो ! यह तो बड़ी विचित्र बात है । परम तपस्व भगवान् श्रीकृष्णमें समा जाना तो बड़े बड़े कमन्य मन्त्रोंके लिये भी दुर्लभ है ; फिर भगवान्से देव करनेवाले शिशुपावको यह गति कैसे मिली ? ॥ १५ ॥ नारदजी ! इसका रहस्य हम सभी जानना चाहते हैं । पूर्वकाळमें भगवान्की निन्दा करनेके कारण श्रुतियोंमें राजा वेनको मरफमें डाल दिया था ॥ १६ ॥ यह दमघोषका लड़का पापात्मा शिशुपाव और दुर्बुद्धि दन्तवक्त्र—दोनों ही जबसे तुल्यवक्त्र बोझ लगे थे तबसे जबतक भगवान्से द्वेष ही फलते रहे हैं ॥ १७ ॥ अविनाशी परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णको ये पानी पी-पीकर गळी देते रहे हैं । परन्तु इसके फलस्वरूप न तो इनकी जीममें कोइ ही हुआ और न इन्हें घोर अन्धकारमय मरकम्पी ही प्राप्ति हुई ॥ १८ ॥ प्रासुत त्रिभुवना की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, उन्होंने ये दोनों सबके देखते-देखते बनायास ही छीन लीं गये—इसका क्या कारण है ? ॥ १९ ॥ इसके अकेले छड़कवाती हुई दीपककी लौके समान मेरी बुद्धि इस विषयमें बहुत आग-झींझा कर रही है । आप सर्वज्ञ हैं, अतः इस अद्भुत घटनाका रहस्य समझाइये ॥ २० ॥

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—सबसमर्प देवर्षि नारद राजाके ये प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने मुषिष्ठिरको सम्बोधित करके भी सभामें सबके सुनते हुए यह कथा कही ॥ २१ ॥

नारदजीने कहा—मुषिष्ठिर ! निन्दा, स्तुति, सुख और शिरस्त्रय इस शरीरके ही तो होते हैं । और इस शरीरकी कल्पना प्रहृष्टि और पुरुषका टीक-टीक विवेक न होनेके कारण ही हुई है ॥ २२ ॥ जब इस शरीर का ही अपना भारमा मान लिया जाता है, तब 'यह मैं हूँ' और 'यह मेरा है' ऐसा भाव बन जाता है । यही सारे भेदभावका मूल है । इसीके कारण ताड़ना और दुष्प्रचनोसे पीड़ा होती है ॥ २३ ॥ जिस शरीरमें अभिमान हो जाता है कि 'यह मैं हूँ', उस शरीरके कष्टसे प्राणियोंसे अजाना कष्ट जान पड़ता है । किन्तु

तथा न बल केशवशब्दमिमानोऽस्त्रिहात्मनः ।

परस्य दमकस्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥२४॥

तस्माद्भैरानुषधेन निर्वरेण भयेन वा ।

स्नेहात्मकाभेन वा युज्यन्त्यात् कथञ्चिन्नेष्यते पृथक् ॥२५॥

यथा भैरानुषधेन मर्त्यस्तन्मयतामिमात् ।

न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥२६॥

कीटः पेषस्तृता रुद्रः कुम्भायां तमलुसारन् ।

सरम्भमयपागेन विन्दते तरसरूपताम् ॥२७॥

एव कुप्प भगवति मायामनुष ईश्वरे ।

वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया ॥२८॥

कामात् द्वेषाद्भावात्स्नेहाद्यथा भक्तस्तेष्वरे मनः ।

आवेश्य तदर्घ्यं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥२९॥

गोप्यः कामाद्भावात्कसो द्वेषार्चघादयो नृपाः ।

सम्बन्धाद् धृष्णयः स्नेहाद्यभक्त्यावयविभो ॥३०॥

कृतमाऽपि न येनः स्वात्पञ्चानो पुरुष प्रति ।

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णो निवेद्ययेत् ॥३१॥

मातृपुत्रसेयो बन्धुया दन्तवक्त्रश्च पाण्डव ।

पापदमवरो विष्णोर्विप्रदापात्यदाच्युतो ॥३२॥

भगवान्में तो जीवोंके समान ऐसा अभिमान है नहीं, क्योंकि वे सर्वात्मा हैं, जड़ित्रीय हैं । वे जो दूसरोंको दण्ड देते हैं—वह भी उनके कल्याणके लिये ही, कदापि कदापि नहीं । तब भगवान्के सम्बन्धमें हिंसाकी कल्पना तो की ही कैसे जा सकती है ।

॥ २४ ॥ इसलिये चाहे सुदृढ़ वैरमात्रसे या कैरीन भक्तिभावसे, मयसे, स्नेहसे अथवा काम्पासे—कैसे भी हो, भगवान्में अपना मन पूर्णरूपसे लगा देना चाहिये । भगवान्की दृष्टिसे इन भावोंमें कोई भेद नहीं है ॥ २५ ॥ युधिष्ठिर ! मेरा तो ऐसा दृढ़ निश्चय है कि मनुष्य वैरमात्रसे भगवान्में भिन्ना तन्मय हो जाता है । उतना भक्तियोगसे नहीं होता ॥ २६ ॥ यही किन्हींके अन्तर भीतर अपने दिलमें बंद कर देता है और वह मय तथा उद्वेगसे यथार्थ विस्तृत करते-करते उसमें जैसा ही हो जाता है ॥ २७ ॥ यही बात माया श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भी है । जीवोंके द्वारा मनुष्य कष्टम पकते हुए ये सबशक्तिमान् भगवान् ही तो हैं । इनसे वैर करनेवाके भी इनका विस्तृत करते-करते पापवश होकर इन्हींको प्राप्त हो गये ॥ २८ ॥ एक नहीं, अनकों मनुष्य कामसे, द्वेषसे, मयसे और स्नेहसे अपने मनको भगवान्में लगाकर एव अपने सारे पाप छोड़ उसी प्रकार भगवान्को प्राप्त हुए हैं, जैसे मत्त मछिसे ॥ २९ ॥ महाराज ! ग्रेषियोंने भगवान्से निष्ठाके लिये काम अर्थात् प्रेमसे, कष्टने मयसे, शिष्टपण्डित-वक्त्र आदि रागाभेनि द्वेषसे, यदुर्बलाश्रिते परिवारके सम्बन्धसे, तुमकोगोत्र स्नेहसे और इन्द्रकोगोत्र भक्तिसे अपने मनको भगवान्में लगाया है ॥ ३० ॥ भक्तिके अतिरिक्त जो पौंच प्रकारके भगवान्का विस्तृत करनेवाले हैं तममेंसे रागा भेनकी तो किसीमें भी गणना नहीं होती (क्योंकि उसने किसी भी प्रकारसे भगवान्में मन नहीं लगाया था) । सारांश यह कि चाहे जैसे हो, अपना मन भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय कर देना चाहिये ॥ ३१ ॥

महाराज ! फिर तुम्हारे मोहसे भाई शिशुपाव और दन्तवक्त्र दोनों हैं । विष्णुभगवान्के मुख्य पार्श्व थे । माझोंके हाथसे इन दोनोंको अपने फसे च्युत होना पड़ा था ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ।

अथ देय इवामाति हररक्षतिनां भव ॥३३॥

देहेन्द्रियासुदीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ।

देहप्रसङ्गश्चरद्देहेतदारुणतुमहसि ॥३४॥

नारद उवाच

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं ब्रह्मृच्छया ।

सनदनादयो ब्रह्मध्वजान्तो मृगव्रजम् ॥३५॥

पञ्चनद्यापनाभाभाः पूर्वेपामपि पृथग्वा ।

दिग्वाससः शिशून्मत्स्या द्वा म्यौतान् प्रत्ययेभवाम् ।

अश्वत्थं कृषिता एष युवां वासं न चार्हयः ।

रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मृगुद्विषः ।

पाणिष्ठामासुरीं योनिं बालिषौ यातमाश्रयः ॥३७॥

एव शर्ताम्यभवनात्पतन्तीं तै कृपालुभिः ।

प्राक्ता पुनत्र मभिवाग्निभिलोक्य कल्पताराम् ॥३८॥

नशाते तौ दितेः पुत्रा दत्तदानववन्दिता ।

हिरण्यकशिपुर्नष्टो हिरण्याष्टाऽनुव्रततः ॥३९॥

हृदा हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ।

हिरण्याष्टा धरादार बिभ्रता सौकर ययु ॥४०॥

हिरण्यकशिपु पुत्र प्रह्लादं केशवप्रियम् ।

जिवांमुक्ताम्रानां यातना मृत्युहृतये ॥४१॥

सप्तभूतान्ममूर्तं स प्रगातं सप्तदर्शनम् ।

यत्र युधिष्ठिरमे पूछा—नारदजी ! भगवान्‌के पापदोषों भी प्रभावित करनेवाला यह शाप किसने दिया था तथा यह बैसा था ? भगवान्‌के अनन्य प्रेमी फिर कर्म मृगपुत्र संवारमें जायें, यह बात ही कुछ अविश्वसनीय-सी पाछम पड़ती है ॥ ३३ ॥ वैकुण्ठके रहन वाले लोग प्राकृत शरीर, इन्द्रिय और प्राणोंसे रहित होते हैं । उनका प्राकृत शरीरसे सम्बन्ध किस प्रकार हुआ, यह बात आप अवश्य सुनायें ॥ ३४ ॥

नारदजीने कहा—एक दिन ब्रह्मके मानसपुत्र सनकादिरूपि तीनों लोकमें खच्छन्द विचरण करते हुए वैकुण्ठमें जा पहुँचे ॥ ३५ ॥ यों तो वे सक्ते प्राचान हैं, परन्तु जान पड़ते हैं ऐसे मनों पौंच-छ वरसके बच्चे हों । वध भी नहीं पहनते । उन्हें सावरण बालक समझकर द्वारपाओंने उनको भीतर जानेसे रोक दिया ॥ ३६ ॥ इसपर वे क्रोधित-से हो गये और उन्होंने द्वारपाओंको यह शाप दिया कि भूथों ! भगवान्‌ विष्णुके धरण तो रम्योगुण और तमागुणसे रहित हैं । तुम दामों इतक समीप निवास करनेयोग्य नहीं हो । इसलिये शीघ्र ही तुम यहाँसे पाप-मयी असुरयानिमें जाओ ॥ ३७ ॥ उनका इस प्रकार शाप देते ही जब वे वैकुण्ठसे नीचे निम्ने लगे, तब उन वृषाक्ष महात्माओंमें कहा—‘अच्छा, तीन जनोंमें इस शापको भगवत्‌क तुमलोग फिर इसी वैकुण्ठमें जा जाना’ ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर ! वे ही दोनों निम्निक पुत्र हुए । उनमें बड़का नाम हिरण्यकशिपु था और उसने छोटका हिरण्याक्ष । दैत्य वरदानकों समान्‌में यही दोनों सर्व श्रेष्ठ थे ॥ ३९ ॥ विष्णुभगवान्‌मृसिदका रूप धारण करके हिरण्यकशिपुको और पृथ्वीका उद्धार करनेक समय बराहवतार प्रदण करके हिरण्याक्षको मारा ॥ ४० ॥ हिरण्यकशिपुन अरुण पुत्र प्रह्लादको भगवत्‌प्रीति होमके कारण मार डालना चाहा और इसके लिये उन्हें बहुत-सा यतनार्ह दी ॥ ४१ ॥ परन्तु प्रह्लाद सर्पना भगवत्‌पूज परम प्रिय था, चुके थ समझती हा चुके थे । उनके हृदयमें भगवत्‌प्राप्ति थी । भगवान्‌क प्रभाव

भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्रोदन्तुमुद्यमैः ॥४२॥

ततस्तौ राक्षसौ ज्ञातौ केशिन्यां विभ्रवःसुतौ ।

रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥४३॥

तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुच्यते ।

रामवीर्यं श्रोप्यसि त्वं मार्कण्डेयमुत्सात्प्रभो ॥४४॥

तावेष क्षत्रियो ज्ञातौ मातृपुत्रसत्प्रभौ तव ।

अधुना क्षापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रद्वारासौ ॥४५॥

वैरानुबन्धवीरेण ध्यानेनारुपुतसत्प्रभताम् ।

नीतौ पुनर्हरैः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥४६॥

युधिष्ठिर उवाच

विद्वेषो दमिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ।

ब्रूहि मे भगवन्नेन प्रह्लादस्याप्युतात्मता ॥४७॥

से वे सुरक्षित थे । इसलिये तरह-तरहसे चेष्टा करनेपर भी हिरण्यकशिपु उनको मार बाधनेमें समर्थ न हुआ ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर ! वे ही दोनों विभ्रवा मुनिके दामा केसिनौ (कैकसी) के गर्भसे राक्षसोंके रूपमें पैदा हुए । उनका नाम था रावण और कुम्भकर्ण । उनके ऊपार्योंसे सब लोकोंमें आग-सी लग गयी थी ॥ ४३ ॥ उस समय भी भगवान् ने उन्हें शापसे छुड़ानेके लिये रामरूपसे उनका वध किया । युधिष्ठिर ! मार्कण्डेय मुनिके मुँहसे तुम भगवान् की रामका चरित्र सुनोगे ॥ ४४ ॥ वे ही दोनों जय-विजय इस जन्ममें तुम्हारी मौटिके लड़के शिशुपाय और दम्भवध्नके रूपमें क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए थे । भगवान् की कृष्णके चक्रका स्पर्श प्राप्त हो जानसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये और वे सनकादि के शापसे मुक्त हो गये ॥ ४५ ॥ वैरभावके कारण निरन्तर ही वे भगवान् की कृष्णका चिन्तन किया करते थे । उसी तीव्र तन्मयताके फलस्वरूप वे भगवान् को प्राप्त हो गये और पुनः उनके पापद होकर उन्होंने समीप चले गये ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिरजीने पूछा—भगवान् ! हिरण्यकशिपुने अपने स्नेहभावजन पुत्र प्रह्लादसे इतना द्वेष क्यों किया ? फिर प्रह्लाद तो महत्तमा थे । साथ ही यह भी बतलाइये कि किस साधनसे प्रह्लाद भगवन्मय हो गये ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संज्ञितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरितो

पञ्चमे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

हिरण्याक्षका वध होनेपर हिरण्यकशिपुका अपनी माता और कुटुम्बियोंको समझाना

मारद उवाच

प्रातर्येवं विनिहत हरिणा क्रोडमूर्तिना ।

हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यतुषा शुचा ॥ १ ॥

मारदजीने कहा—युधिष्ठिर ! जब भगवान् ने बराह-

वतार धारण करके हिरण्याक्षको मार डाला, तब माँके

इस प्रकार मारे जानपर हिरण्यकशिपु रोपसे अ-

धुन गया और शोकसे सन्तप्त हो उठ्य ॥ १ ॥

आह चेदं रुपा धूर्णं सन्दृष्टवन्नच्छदः ।
 कोपोऽन्नलवृम्पां वसुम्पां निरीक्षन् धूम्रमम्बरम् ॥ २ ॥
 करालदंष्ट्रोऽप्रदृष्टया दुष्येदपमुकुटीमुख ।
 शूलमुपगम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥
 भो भो दानवदैतेषां द्विभूर्धर्म्यस्य शम्बर ।
 क्षतधाहो हयग्रीव नमुचे पाक इत्थल ॥ ४ ॥
 त्रिप्रविष्टे मम वच पुलोमन् शकुनादयः ।
 मृगुत्तानतरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम् ॥ ५ ॥
 सपत्नैर्षावित सुद्विर्जाता मे दयितः सुहृत् ।
 पार्ष्णीग्राहेण हरिणाः समेताप्युदंभयनै ॥ ६ ॥
 तस्य त्यक्तस्वभावस्य धुगेर्भाषावनौकस ।
 भद्रं त भद्रमानस्य बालस्येवाप्सिरात्मनः ॥ ७ ॥
 मच्छुडभिन्नग्रीवस्य मुरिणा रुधिरं वै ।
 रुधिरप्रिय तपयिष्ये ज्ञातरं मे गवम्पथ ॥ ८ ॥
 तस्मिन् कृष्टऽहिते नष्टे कृतमूले वनस्पतौ ।
 विटपा इव शुष्यन्ति क्षिणुमाणा दिवौकसः ॥ ९ ॥
 नावपात भुवं पूय विप्रसन्नसमेधिताम् ।
 मृदयन् तपायगन्धाभ्यामवगतदानिन ॥ १० ॥
 विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञा धर्ममेव पुमान् ।
 देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च पराधनम् ॥ ११ ॥

वह क्रोधसे काँपता हुआ अपने दाँतोंसे बार बार होठ
 चवान लगा । क्रोधसे दहकती हुई आँखोंकी आगके
 धूर्णसे धूमिष्ठ हुए आकाशकी ओर देखता हुआ वह
 कहने लगा ॥ २ ॥ उस समय विकरल दाढ़ी, आग
 उगज्जनेवाली उम दृष्टि और चढ़ी हुई भौंहोंके कारण
 उसका मुँह देखा न जाता था । मरी समामें त्रिशूल
 ठठाकर उसने द्विभूर्धा, त्र्यम्ब, शम्बर, शतबाहु, हयग्रीव,
 नमुषि, पाक, इक्ष्वाकु, त्रिप्रविष्टि, पुलोमा और शकुन
 आदिको सम्बोधन करके कहा—‘दैत्यो और दामनो !
 तुम सब लोग मेरी बात सुनो और उसके बाद
 जैसे मैं कहता हूँ, वैसे करो ॥ ३-५ ॥ तुम्हें
 यह ज्ञात है कि मेरे शत्रु शत्रुजने मेरे परम प्यारे और
 द्वितीय भाईको विष्णुसे मरवा डाला है । यद्यपि वह
 देवता और दैत्य दोनोंके प्रति समान है, तथापि दीव
 धूप और अनुनय-विनय करके देवताओंने उसे अपने
 पक्षमें कर लिया है ॥ ६ ॥ यह विष्णु पहले तो बड़ा
 गुद और निष्पक्ष था । परन्तु अब मायासे बराह आदि
 रूप धारण करने लगा है और अपने स्वभावसे व्युत्प
 हो गया है । बच्चेकी तरह जो उसकी सेवा करे,
 उसीकी ओर हा जाता है । उसका विस स्तिर नहीं
 है ॥ ७ ॥ जब मैं अपने इस शूखसे उसका गला
 काट डालूँगा और उसके खूनकी धार से अपने रुधिर
 प्रेमी भाईका तपण करूँगा । तब बड़ी मरे हृदयकी
 पीड़ा शांत होगी ॥ ८ ॥ उस मायावी शत्रुके मष्ट
 हानपर, पक्षकी अद म जानेपर शत्रियोंकी तरह सब
 देवता अपने आप सूख जायेंगे । क्योंकि उनका जीवन
 तो विष्णु हा है ॥ ९ ॥ राजाउपे तुमडोग इसी समय
 पृथ्वीपर जाओ । आजकल बहों शायम और क्षत्रियोंकी
 बहुत बढ़ती हो गयी है । बहों जा छग तपस्या, यह
 साध्याप, व्रत और गानाणि शुभ फल कर रहे हो, उन
 सबका मर डाला ॥ १० ॥ विष्णुकी अद है
 द्विजातियोंका धर्म-धर्म, क्योंकि वह और धर्म ही
 उमर् मरूप है । यज्ञा, ऋषि, विनर समस्त प्राणी
 और धर्मका बड़ी परम आधार है ॥ ११ ॥

१ मा पा—निरीक्षन् धूम्र मा पा—वसु १ मा पा—वसवर्षि १ मा पा—

यत्र यत्र द्विना गावो वेदा वर्णाधमाः क्रियाः ।
 सं सं अनपद यास सन्दीपयत ब्रह्म ॥१२॥
 इति ते भर्तुर्निर्देशमादाय शिरसाऽऽवृताः ।

तथा प्रजानां कदन विदधुः कदनप्रियाः ॥१३॥

पुरग्रामग्रजोपानक्षेत्रारामाभमाकरान् ।

खेटमर्षटपोवांस ददधुः पचनानि च ॥१४॥

केचित्त्रनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राङ्मरगोपुरान् ।

आजीग्यांभिच्छिदुर्दुर्ध्वान् केचित्परशुपाणयः ।

प्रादहृश्चरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोन्मूलकैः ॥१५॥

एव विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः ।

एव देवाः परित्यज्य स्रवि चेरुलक्षिताः ॥१६॥

हिरण्यकशिपुर्भातुः सम्परेतस्य दुःखितः ।

कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसात्त्वयत् ॥१७॥

शङ्कुर्निघ्नन् च घृष्टं भूतसन्तापनं वृकम् ।

कालनामं महानामं हरिश्मधुमधोरकचम् ॥१८॥

तन्मातरं रुपाभानुं दिक्षि च जननीं गिरा ।

सह्याया देशकालश्च इदमाह जनेधर ॥ १९॥

हि प्यत्रशिशुपुरुषाच

अम्बाम्ब हे वधू पुत्रावीर्यमार्ह्यं शोचितम् ।

रिपोरभिमुखे स्नात्वाः शूराणां वधश्चित्तः ॥२०॥

भूतानामिह सवास प्रपायामिव सुग्रहे ।

दैवेन ह्य नो वानामुभो वानां स्वकर्मभिः ॥२१॥

जहाँ-वहाँ शासन, गाय, वेद, वर्णाधम और धर्म-कर्म हों, उन
 उन देशोंमें सुप्रयोग गाओ, उन्हें मचाओ, उभाओ बाओ ॥१२॥

दैत्य तो कामावसे ही ओगोंको सताकर सुखी होते
 हैं । दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी आज्ञा उन्होंने बड़े
 आदरसे सिर झुककर स्वीकार की और उसीके अनुसर
 अनन्तकाल मास करने लगे ॥ १३ ॥ उन्होंने नगर, ग्राम,
 गौओंके रहनेके स्थान, बगीचे, खेत, टहलनेके स्थान,
 श्रमियोंके आश्रम, रत्न आदिकी खानें, किसानोंकी
 बस्तियाँ, सराईके गँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और व्यापार
 के केन्द्र बड़े-बड़े नगर जला डाले ॥ १४ ॥ कुछ
 दैत्योंने खोदनेके शस्त्रोंसे बड़े बड़े पुर, परकटे और
 नगरके फटकोंको तोड़-टोड़ बाड़ा तथा दूसरोंने
 कुम्हारियोंसे फले फूले, हरे-मरे पेड़ काट डाले । कुछ
 दैत्योंने गज्जरी हुई लकड़ियोंसे ओगोंके घर जला
 दिये ॥ १५ ॥ इस प्रकार दैत्योंने निरिह प्रजापति
 बड़ा लक्ष्मण किया । उस समय देवराजके सर्व
 ओषधकर छिये रूपसे पृथ्वीमें निचल करके थे ॥ १६ ॥

शुचिष्ठिर ! मारिष्ठी धृष्टसे हिरण्यकशिपुको बड़ा
 दुःख हुआ था । जब उसने उसकी जन्मेति कियाते
 छुड़ी पा ली, तब शङ्कु, शम्बर, घृष्ट, भूतसन्ताप,
 वृक, कालनाम, महानाम, हरिश्मधु और लकच—
 जपन इन भतीयोंको सन्तवना दी ॥ १७-१८ ॥
 उनकी माता रुपाभानुसे और अपनी माता पितृकी
 देवा-काकके अनुसार मधुर बार्हते समझाते हुए
 कहा ॥ १९ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—मेरी प्यारी माँ बहू और
 पुत्रो ! तुम्हें भीर हिरण्णाक्षके छिये किसी प्रस्तरक शोक
 नहीं करना चाहिये । जोर पुरुष तो ऐसा चाहते ही हैं कि
 कड़ाईके मीनममें अपने शत्रुके सामने उसके दाँत सज्ज करके
 प्राण त्याग करें जोरोंके छिप ऐसी ही धृष्टु स्त्रवनीय होती
 है ॥ २० ॥ देखि ! जैसे व्याडार बहुत-से लोग झकटे
 होते जाते हैं परन्तु उनका मिटना-जुटना पोपी देरके
 छिये ही होता है—वैसे ही ज्ञान कर्मोंके फलसे दीवरा
 जीव भी निवृत्ते और निष्ठु होते हैं ॥ २१ ॥

नृत्य भातमान्यय शुद्ध सवय सर्वविस्परः ।

चेऽप्राप्तात्मनो रिङ्ग मापया विसृज गुणान् ॥२२॥

थाम्भसा प्रचलता सरवोऽपि चला इव ।

वधुपा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भू ॥२३॥

एव गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यधिकलः पुमान् ।

याति तत्साम्यतां भद्रे झलिङ्गा लिङ्गरानिव ॥२४॥

एव अत्मविरयाग्रो झलिङ्ग लिङ्गमावना ।

एव त्रिप्राप्यैर्भोगो वियोगः कर्मसत्सृति ॥२५॥

सम्भवस्य त्रिनाशस्य शोकस्य विविध स्मृत ।

अविचेदस्य चिन्ता च विवक्षास्मृतिरव च ॥२६॥

अप्राप्त्युदाहरन्तीमतिविहासं पुगवन्मू ।

यमस्य प्रेतवपूनां संशयं च निशोधय ॥२७॥

उद्योतरेष्वभूद्राजा सुपुत्र इति विधुत ।

सप्तर्त्ननिहवो युद्धं शतपञ्चमुगसव ॥२८॥

विशीर्णस्तद्वच विप्रदाभरणसंश्रमू ।

घातनिमित्तदृश्यं दृष्टानममुगावित्तम् ॥२९॥

प्रह्लादकेतुं चत्वार्यं रभसा दददन्तदम् ।

रत्र कुम्भमुन्मात्राजं लिप्तापुषस्तुवं मृये ॥३०॥

उद्योतरेन्द्र विभिना तथा कृत

पतिमरिष्य प्रममीम्यदु विना ।

वास्तवमें आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, सर्वगत, सर्वज्ञ और देह-इन्द्रिय आदिसे वृषक् है । वह अपनी अविद्यासे ही देह आदिकी सृष्टि करके भोगोंके साधन सूक्ष्मशरीरको स्वीकार करता है ॥ २२ ॥ जैसे दिखते हुए पानीके साथ उसमें प्रतिबिम्बित होने-वाले वस्तु भी दृष्टते-से जान पड़ते हैं और पुण्यी जाती हुई आँखके साथ सारी पृथ्वी भी घूमती सी दिखायी देती है, कल्पाणी । वैसे ही विषयोंके कारण मन झुकने लगता है और वास्तवमें निर्विकार होनेपर भी उसीके समान आत्मा भी भटकता हुआ-सा जान पड़ता है । उसका शरीर और सूक्ष्म शरीरसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है, फिर भी वह सम्बन्धी-सा जान पड़ता है ॥ २३ २४ ॥ सब प्रकारसे शरीरहित आत्माको शरीर समझ लेना—यही तो लब्धम् है । इसीसे प्रिय अपराध अप्रिय वस्तुओंका मिथ्या और विवृण्ण होता है । इसीसे कर्मोंके साथ सम्बन्ध ही जानके कारण संसारमें भटकना पड़ता है ॥ २५ ॥ जन्म, मृत्यु जनकों प्रकाशके शोक, अविषेक, विता और विवेकही विष्णुनि—सबका कारण यह अज्ञान ही है ॥ २६ ॥ इस विषयमें महारामयोग एक प्राचीन इतिहास कदा करते हैं । वह इतिहास यों हुए मनुष्य के सम्बन्धियोंके साथ धरायाकी व्यथीत है । तुम्हें ज्ञानसे उसे सुनो ॥ २७ ॥

उद्योतरे देशमें एक बड़ा यशस्वी राजा था । उसका नाम था सुपुत्र । उद्योतरे राजाओंमें उससे मार डाला । उस समय उसका भाई बचु उसे घेरकर बैठ गये ॥ २८ ॥ उसका अङ्कित कच छिप्त भिन्न हुआ था । गहने और आभूषणें तहस-नहस हो गयी थीं । बागोंकी सारसे कलेशा फट गया था । शरीर गूतसे लथपथ था । पाउ बिबर गये हैं । आँखें भँस गयी थीं । कायक मारे दौनोंसे उसका दोह न्ये हुए प । कनकके समान मुख धूसरे दग गया था, सुदमे उसके शरीर और बाँहें बट गयी थीं ॥ २९ ३० ॥

रामिकेरी देवता यान पतिरेव उद्योतरे मरेगकी यह दगा देवन्दर बना दगा हुआ ।

इवाः स नायेति करैरुो मुञ्च

प्लन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापसन् ॥३१॥

रुद्रस्य तत्पदयिताहृषिपङ्कज

सिञ्चन्त्य अक्षैः कुचकुङ्कुमारुणैः ।

विस्रस्तकेन्द्राभरणाः छुंथं नृणां

सुखन्त्य आनन्दनया विलपिरे ॥३२॥

अहो विभात्राकुरुणेन नः प्रभो

भवान् प्रणीतो दृगगोचरां दक्षाम् ।

उशीनराणामसि हृत्तिष्ठः पुरा

कृतोऽधुना येन छुचां विवर्धनः ॥३३॥

स्यया कृतमेन वयं महीपते

कथं विना स्वाम मुह्यतेन ते ।

तत्रानुयान तव वीर पादयोः

क्षुभूपतीनां दिशं यत्र यास्यसि ॥३४॥

एषं विलपतीनां वै पैरिगृह्य सृष्टं पतिम् ।

अनिच्छन्तीनां निर्हारमर्कोऽस्तं सन्ववर्धत ॥३५॥

तत्र ह प्रेतवधूनामाधृत्य परिदेवितम् ।

आहतात् बालको मूरशयमः स्ववसुपागतः ॥३६॥

यम उवाच

अहो अमीषां वयसाभिकानां

विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ।

यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं

स्वयं सधमा अपि क्षोचन्त्यपार्थम् ॥३७॥

अहो वयं भयवता यदत्र

स्पृष्टा पितृभ्यां न विचिन्तयामः ।

ये 'हामास्य । हम अमाग्निं तो बेसीत मारी गयी ।' योंकरकर
बार बार जोरसे छाती पीटती हुई अपने स्वामीके चरणोंके
पास गिर पड़ी ॥ ३१ ॥ वे जोर-जोरसे इतना रोने
लगीं कि उनके कुच-कुङ्कुमसे मिळकर बहते हुए अक-
खण्ड बौझोंमें प्रियतमके पादपद्म पसार गिये । उनके
केश और गहने इधर-उधर बिखर गये । वे वस्त्र-
कन्दनके साथ बिछाप कर रही थीं, जिसे सुनकर
मनुष्योंके हृदयमें शोकका संचार हो जाता था ॥ ३२ ॥
'हाय ! विधाता बड़ा क्रूर है । स्वामिन् ! उसने आप
आपको हमारी ओंखोंसे ओझस कर दिया । पहले तो
आप समस्त देवतासिंयोंके जीवनदाता थे । अब
उसीने आपको ऐसा बना दिया कि आप हमरा शोक
बड़ा रहे हैं ॥ ३३ ॥ पतिदेव ! आप हमसे बड़ा प्रेम करते
थे, हमारी पोड़ी-सी सेवाको भी बर्बाद करके मारते थे ।
हाय ! अब आपके बिना हम कैसे रह सकेगें । हम आपके
चरणोंकी चेरी हैं । नीरवर ! आप जहाँ जा रहे हैं,
वहाँ चक्रेकी हमें भी आवा दीजिये ॥ ३४ ॥
वे अपने पतिकी जगह एकबकर इसी प्रकार किया
करती रहीं । उस मुर्देको बहोंसे दाढ़के छिमे छे जाने
देनेकी डकती इच्छा नहीं होती थी । इतगमें ही सूर्यस्त
हो गया ॥ ३५ ॥ उस समय उशीनराजाके सम्बन्धियों-
में जो बिछाप किया था, उसे सुनकर वहाँ अन्य
यमराज आत्मके केवले आये और उन्होंने उन लोगोंसे
कहा— ॥ ३६ ॥

यमराज बोले—बड़े आश्चर्यकी बात है । ये
लोग तो मुझसे स्याम हैं । बराबर कोमल मरता-
जीमा देखते हैं, फिर भी इतने मूढ़ हो रहे हैं । बरे !
यह मनुष्य जहाँसे आया था, वहाँ चला गया । हम
कोनोंको भी एक-एक दिन नहीं जाना है । फिर
सूर्यस्त ये लोग इतना शोक क्यों करते हैं ॥ ३७ ॥
हम तो हमसे कमलगुने जन्मे हैं, परम क्षय हैं,
क्योंकि हमारे मा-बापने हमें छोड़ दिया है । हमारे
शरीरमें पर्याप्त अन्न भी नहीं है फिर भी हमें क्यों

अभस्वमाणा अवला वृकादिभिः

स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥३८॥

य इच्छयेद्यः सूत्रतीक्ष्णपयो

य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ।

तस्मात्तला क्रीडनमाशुरीक्षितु

अराचरं निर्ग्रहसङ्ग्रहे प्रभु ॥३९॥

पथि प्युतं विष्टति दिष्टरक्षितं

गृहे स्थितं तद्विहतं चिनम्यति ।

चीवत्यनाधोऽपि तदीक्षितो बने

गृहेऽपि गुप्तोऽस्य इतो न बीरति ॥४०॥

भूतानि तैस्तैर्निजबोनिकर्मभि

र्भवन्ति काले न भवन्ति सर्वशः ।

न तत्र हत्मा प्रकुवापि स्थित

स्तस्मा गुणैरन्वयतो निरूप्यते ॥४१॥

इदं शरीरं पुरुषस्य मोहक

यथा पृथग्भातिक्कमीयते गृहम् ।

यथोदकं पार्थिवतं प्रतीर्जनः

कालेन जातं विकृता चिनम्यति ॥४२॥

यथानला दारुणु भिद्य इयत

यथानिला दहगतः पृथक् स्थितः ।

यथा नभः मयमत न सलते

तथा पुमान् सर्वगुणाय पर ॥४३॥

मुपशान् मन्वष्ये शेते मृगं यमनुवाचथ ।

विन्ता नहीं है । मेड़िये आदि हिंसक जन्तु हमारा बाक भी बँका नहीं कर पाते । जिसने गर्भमें रक्षा की थी, वही इस जीवनमें भी हमारी रक्षा करता रहता है ॥ ३८ ॥ देखिये ! जो अविनाशोद्धार अपनी मौजसे इस अगस्त्यको बनाता है, रक्षता है और बिगाड़ देता है—उस प्रभुका यह एक छिल्लोनामत्र है । वह इस चराचर जगत्को दण्ड या पुरस्कार देनेमें समर्थ है ॥ ३९ ॥ माय्य अनुकूल हो तो रास्तेमें गिरी हुई वस्तु भी खो—खी—खी पड़ी रहती है । परन्तु माय्यक प्रति-कूल होनपर घरक भीतर तिकोरीमें रखी हुई वस्तु भी खो जाती है । जोब बिना किसी सहारेक दीबकी दयादृष्टिसे जंगलमें भी बहुत दिनोंतक जीवित रहता है, परन्तु देशक विपरीत होनपर घरमें सुरक्षित रहनपर भी मर जाता है ॥ ४० ॥

रामियो ! सभी प्राणियोंकी मृत्यु अपन पूर्वजर्मोंकी कर्मशसमाक अनुसार समयपर होती है और उसीके अनुसार उनकी जन्म भी होता है । परन्तु आत्म शरीरसे अत्यन्त भिन्न है, इसलिये वह उसमें रहनपर भी उसके जन्म-मृत्यु आदि चर्मोंसे अछूटा ही रहता है ॥ ४१ ॥ जैसे मनुष्य अपन मन्त्रनको अपनसे अलग और मिट्टीका समझता है, वैसे ही यह शरीर भी अलग और मिट्टीका है । मोहवश वह इसे अपना समझ बैठता है । जैसे पुष्पपुष्पे आदि पार्थिके विकार, वड़े आदि मिट्टीके विकार और गहन आदि स्वर्णक विकार समयपर बनते हैं, मरपागतिरहित हाथ हैं तथा गड़ हो जाते हैं, वैसे ही इन्हीं तीनोंके विकारसे बना हुआ यह शरीर भी समयपर बन-बिगड़ जाता है ॥ ४२ ॥ जैसे काठमें रहनवासी व्यापक अग्नि रगत ही उससे अलग है जैसे दहमें रहनपर भी बापुका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे आषाढा सब अगद एक-सा रहनेपर भी किसीक दोष-गुणसे अति नहीं होता—वैसे ही समस्त देहदिशोंमें रहनेवाला और उसपर अक्षय अज्ञान की उनसे अलग और भिन्न है ॥ ४३ ॥

मूर्ख ! जिसक डिये तुम सब शाक कर रह जा, वह सुख नामय शरीर तो तुम्हारे सामने पड़ा है ।

य भोता बोऽनुपक्तेह स न वस्येत कर्हिषित् ॥४४॥

न भोता नानुपकार्यं सुखबोऽप्यत्र महाननुः ।

यस्तिबहेन्द्रियवानात्मा स चान्य प्राणदेहयोः ॥४५॥

भूतेन्द्रियमनालिङ्गान् देहानुष्णावचान् विभुः ।

भक्षत्पुस्तु वति धन्यस्तथापि स्वेन तेजसा ॥४६॥

यावच्छिद्धान्वितो धारमा तावत् कर्म निबन्धनम् ।

ततो विपर्ययः वलेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥४७॥

वितथाभिनिवेशोऽयं यव गुणेष्वर्थद्वयधः ।

यथा मनोरथः स्वप्नः सत्यमैन्द्रियकं मृषा ॥४८॥

अथ नित्यमनित्यं वा नेह द्वावन्ति वद्विदः ।

नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥४९॥

सुम्भक्त्र विविने कथित्वसिणां निर्भिषोऽन्तकः ।

वितरप आलं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥५०॥

कुलिङ्गमिधुन तत्र विचरत्समदृश्यत ।

तयो कुलिङ्गी सहसा सुम्भक्त्र प्रलोभिता ॥५१॥

तुमभेग इसीको देखते थे । इसमें जो सुननेवाला
बोझनेवाला था, वह तो कभी किसीका नहीं रिख
पड़ता था । फिर काम भी नहीं दिखायी देता
तो शोक क्यों ? ॥ ४४ ॥ (तुम्हारी यह मर्यादा ।
प्राण जो बोझने या सुननेवाला था, सो निकट न
पूर्वतापूर्ण है, क्योंकि द्रुपदिक समय प्राण तो रख
है पर न वह बोझता है न सुनता है ।) सही
सब इन्द्रियोंकी चेष्टाका हेतुमूल जो महाप्राण है, ।
प्रमाण होनेपर भी बोझने या सुननेवाला नहीं है, क्यों
वह जब है । देह और इन्द्रियोंके द्वारा सब पदार्थों
द्वारा जो ज्ञान है, वह शरीर और प्राण दोनोंसे पुन
है ॥ ४५ ॥ यद्यपि वह परिच्छिन्न नहीं है, व्यापक है—
फिर भी पञ्चभूत, इन्द्रिय और मनसे कुछ भीवेत
(देह, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) शरीरोंके प्रभ
करता और अपने विवेकबलसे कुछ भी हो जाता है
पदार्थमें वह इन सबसे अलग है ॥ ४६ ॥ जब
वह पौष प्राण, पौष कर्मेन्द्रिय, पौष ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि
और मन—इन सबसे बन हुए विज्ञानी
कुछ रहता है, तभीतक कर्मोंसे बँधा रहता है और
बन्धनके कारण ही मायासे होनेवाले मोह और स्नेह
कारण उसके पीछे पड़े रहते हैं ॥ ४७ ॥ प्रकृति
गुणों और समसे कभी हुई वस्तुओंको सत्य समझ
करता कहना अदृष्टक दुरुपग्रह है । मनोरथके सम
की कल्पित और स्वप्नके समयकी दीप्त पञ्चभूत
वस्तुओंके समान इन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ प्रमाण मि
जाता है, सब मिथ्या है ॥ ४८ ॥ इसलिये शरीर और
आत्माका तत्त्व जाननेवाले पुरुष न तो अनित्य शरीर
लिये शोक करते हैं और न नित्य आत्माके लिये ही । पर
ज्ञानकी दृढ़ता न होनेके कारण जो लोग शोक कर
रहते हैं, उनका अज्ञान बदलना बहुत कठि
है ॥ ४९ ॥

किसी जगत्में एक बड़ेछिया रहता था । वह
बड़ेछिया क्या था, दिवातान मामो उसे पक्षियोंके बगलमें
ही रख रहता था । जहाँ पक्षी भी नष्ट जात पड़
देता और छल्लाकर बिड़बड़ पँसा होता ॥ ५० ॥
एक दिन उसमें कुलिङ्ग पक्षी एक जाइका कर
गुप्त देख । उनमेंसे उस बदलितेन माग पक्षीको

सामञ्जसं शिवस्तन्त्यां महिषी कालयन्त्रिता ।

कलिकृत्तां तथाऽऽपन्नां निरीक्ष्य मृगदुःखित ।

स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥५२॥

अहो भकरुणो देव स्त्रियाऽऽकरुणया विभु ।

कृपणमातृशपत्त्या दीनया किं करिष्यसि ॥५३॥

कामं नयतु मां देवः किमर्चयेनात्मनो हि मे ।

दीनेन सीयता दुःखमेनेन विधुरायुषा ॥५४॥

कथं त्वज्जातपक्षांस्तान् मातृहीनान् विभर्म्यहम् ।

मन्दभाग्याः प्रवीक्षन्ते नीढं मे मातरं प्रजाः ॥५५॥

एव कलिकृत् विलपन्तमारात्

प्रियात्रियोगातुरमधुकण्ठम् ।

स एव तं शाकुनिकं शरेण

विभ्याध कालप्रदिता विलीन ॥५६॥

एव यूयमपश्यन्त्य आत्मापायममुदय ।

नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥५७॥

हिरण्यवशिष्टपुत्राश्च

पाल एव प्रवदति सर्वे विमित्तचेतसः ।

घातया मनिरं सर्वमनित्यमयथास्थितम् ॥५८॥

यम एतदुपागम्याय सर्ववान्तरधीयत ।

घातयाऽपि गुपयन्त्य चक्षुषस्याम्परायिकम् ॥५९॥

तत्र शचन मा पूर्णं परं आत्मानमवयव ।

शीघ्रं ही फँसा लिया ॥ ५१ ॥ काष्ठवश वह
आँखों के फँदों में फँस गयी । मर पशुओं की अपनी माँटा की
विपत्ति देखकर बड़ा दुःख हुआ । वह बेचारा उसे
छुड़ा तो सकता न था, स्नेह से उस बेचारी के छिपे बिजाप
करने लगा ॥ ५२ ॥ उसने कहा—‘वो तो त्रिजाता
सब कुछ कर सकता है । परन्तु है वह बड़ा निर्दयी ।
यह भी सहचरी एक तो की है, दूसरे मुझ अमागेक
छिपे शोक करती हुई बड़ी दीनता से छटपट रही है ।
इसे लेकर वह करेगा क्या ॥ ५३ ॥ उसकी मौज
हो तो मुझे से जाय । इसके बिना मैं अपना यह
अपूर विधुर जीवन, जो दीनता और दुःख से भरा
हुआ है, लेकर क्या करूँगा ॥ ५४ ॥ अभी मेरे
अमागे बच्चों के पर भी नहीं नम हैं । लीके मर जान
पर उन मातृहीन बच्चों के मैं कैसे पाऊँगा ! ओह !
बौसलेमें वे अपनी माँ की बात देख रहे होंगे’ ॥ ५५ ॥
इस तरह वह पशु बहुत-सा बिजाप करन लगा ।
अभी सहचरी के बियोग से वह आतुर हो रहा था ।
औसलों के मारे उसका गला रँध गया था । तबतक
काष्ठकी प्रणाली पास ही छिपे हुए ठसी वह छिपेन ऐसा
बाग मारा कि वह भी वहीं पर छिप गया ॥ ५६ ॥ मृत्यु
पनिया । तुम्हारी भी यही दशा जाना पड़ी है । तुम्हें
अपनी मृत्यु तो दीखनी नहीं, और इसक छिपे शमीट
रही है ! यदि तुम लोग सी बरततक इसी तरह
शाकशा खाती पीती रहो, तो भी अब तुम इसे
नहीं पा सकोगे ॥ ५७ ॥

हिरण्यवशिष्टपुत्रे कदा—उस छोट-से बालक की
पेसी शानपूर्वक बातें सुनकर सब-कुछ-सुख दंग रह गये ।
उशीनरनरेशक मन्त्र-यु और श्रियोन यह बात समझ
ली कि सन्यास संसार और इसके सुख दुःख अनित्य
पक्ष विध्या है ॥ ५८ ॥ यमराज यह उपागम्याय
सुनाकर पड़ी अन्धधन हो गये । मर्त्य-पुत्रों ने भी
सुनकर जोर-से हँसने लगे ॥ ५९ ॥ इसीपे तुम
लोग भी अपने पिय पा बिजाप दूफो के छिपे शक मन

क आत्मा कः परो वात्र स्त्रीयः पारक्य एव वा ।

स्वपराभिनिवेशेन विनाशानेन दहिनाम् ॥ ६० ॥

नारद उवाच

इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सख्णुषा ।

पुत्रशोकं क्षमात्पक्त्वा तच्च विचमभारयत् ॥ ६१ ॥

कतो । इस संसारमें कौन धारमा है और कौन जनों में
मित्र ? क्या अपना है और क्या पराया ? प्राणिकों
अज्ञानके कारण ही यह अपने परायेका दुराग्रह
रहा है, इस भेद बुद्धिका और कोई कारण नहीं है ॥ ६० ॥

नारदजीने कहा—पुत्रिष्ठिर । अपनी पुत्रपूजे
साथ दितिने हिरण्यकशिपुकी यह बात सुनकर उर्ध्व
क्षय पुत्रशोकका त्याग कर दिया और अपना मित्र
परमत्त्वसकल परमात्मामें अग्र दिया ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
दितिशोकप्रपन्नयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

हिरण्यकशिपुकी तपस्या और वरप्राप्ति

नारद उवाच

हिरण्यकशिपुं राजभजेयमञ्जराभरम् ।

आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमकरार्जं व्यधित्सत ॥ १ ॥

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ।

ऊर्ध्वशार्ङ्गनभोरष्टिः पादाङ्गुष्ठाभितावनिः ॥ २ ॥

अटादीभित्तिभी रजः संवर्तार्क इवांशुभिः ।

तस्मिन्तपस्तप्यमाने देवाः स्यान्तानि मेत्रिरे ॥ ३ ॥

तस्य मूत्रः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः ।

तिर्यगूर्ध्वमधालाकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥

धुसुसुर्नधुदन्वन्तः सद्भीपाद्रिषपाल मूः ।

निपटु सप्रहास्तारा जन्वन्तुश्च दिक्षो दक्ष ॥ ५ ॥

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा प्रभालार्कययुः सुराः ।

नारदजीने कहा—पुत्रिष्ठिर । जब हिरण्यकशिपुने

यह विचार किया कि मैं अजेय, अजर, अमर और
संसारका एकलव्य सभाट् बन जाऊँ, जिससे कोई मेरे सामने
खड़ाक न हो सके ॥ १ ॥ इसके लिये वह मन्दर-
जङ्गली एक बाटीमें जाकर अत्यन्त दारुण तपस्या
करने लगा । वहाँ हाथ ऊपर उठाकर आकाशकी ओर
देखता हुआ वह पैरोंके अँगूठोंके मध्य पृष्ठीपर खड़ा
हो गया ॥ २ ॥ उसकी जटाएँ ऐसी चमक रही थीं,
जैसे प्रलयकालके सूर्यकी किरणें । अब वह इस प्रकार
तपस्यामें संलग्न हो गया, तब देवता जोग अपने-अपने
स्थानों और पदोंपर पुनः प्रतिष्ठित हो गये ॥ ३ ॥
बहुत दिनोंतक तपस्या करनेके बाद उसकी तपस्याकी
भाग धूपोंके साथ सिरस निकलने लगी । वह
चारों ओर फैल गयी और ऊपर-नीचे तथा
अग्र-पश्चिमके ओकोंका जलने लगी ॥ ४ ॥
उसकी जपटसे नदी और समुद्र बहने लगे । द्वीप
और पर्वतोंके सहित पृष्ठी जगमगाय लगी । प्रह और
तारे टूट-टूटकर गिरने लगे तथा दसों शिशावर्णि मानो
भाग लग गयी ॥ ५ ॥

हिरण्यकशिपुकी उस तपोमयी आगकी जपटोंसे
सर्गके देवता भी जलने लगे । वे प्रवहकर सर्गसे

धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥ ६ ॥

दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न क्षमन्तुमः ।

तस्य चोपशम भूमन् बिभेदि यदि मन्यसे ।

लोका न यावन्मह्यन्ति बलिहारास्तैर्वाभिभूः ॥ ७ ॥

तस्याथं किल सङ्कल्पभरतो दुर्धर तपः ।

भूयतां किं न विदितस्तैर्वाधापि निषेदित ॥ ८ ॥

सृष्टाः शराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ।

अध्यास्ते सर्वधिष्येभ्यः परमेष्ठी निज्रासनम् ॥ ९ ॥

तद्वै वर्षमानेन तपोयोगममाधिना ।

कालात्मनोऽनित्यत्वात्साधयिष्ये तथात्मन ॥ १० ॥

अन्यथेदं विभास्येऽहमपथा पूर्वमोजसा ।

किमन्यैः कालनिर्घृतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥ ११ ॥

इति शुश्रुम निर्बन्धं तप परममास्थित ।

विधत्स्वानन्तर पुक्तं त्रय त्रिष्टुबनेश्वर ॥ १२ ॥

तवासन द्विजगर्भा पारमष्ठ्यं जगत्पते ।

भवाय धेयसे भूत्यं धेमाय विजयाय च ॥ १३ ॥

इति विज्ञापिता दैवैर्मगवानात्मभूर्नृप ।

परीता भृगु दक्षाद्यर्षयो दैत्येश्वराभ्रमम् ॥ १४ ॥

न ददन् प्रतिच्छर्त्तं यत्प्रकीर्तुमकीर्त्तकं ।

ब्रह्मलोकमें गये और ब्रह्माजीसे प्राथना करने लगे— 'हे देवनाथजी भी आराध्यदेव जगत्पति ब्रह्माजी ! हमलोग हिरण्यकशिपुके तपकी आकासे जल रहे हैं । अब हम खर्गमें नहीं रह सकते । हे अनन्त ! हे सर्वधिष्य ! यदि आप उचित समझें तो अपनी सेवा करनेवाली जगत्पति नारा होनेक, पहले ही यह आला शास्त्र पर दीजिये ॥ ६७ ॥ भगवन् ! आप सब कुछ जानते ही हैं, फिर भी हम अपनी ओरसे आपसे यह निवेदन कर रहे हैं कि वह किस अभिप्रायसे यह धार तपस्या कर रहा है । सुनिये, उभय विचार है कि जैसे ब्रह्माजी अपनी तपस्या और योगके प्रभावसे इस शराचर जगत्पति सृष्टि करके सब लोकोंसे ऊपर सत्यलोकमें निगमते हैं, वैसे ही मैं भी अपनी उभय तपस्या और योगक प्रभावसे वही पद और स्थान प्राप्त कर लूँगा । क्योंकि समय अभी है और आत्मा निरप है । एक जन्ममें नहीं, अनेक जन्म, एक युगमें न सही अनेक युगोंमें ॥ ८१० ॥ अपनी तपस्याकी शक्तिसे मैं पाप-पुण्यादिके नियमोंको पकड़कर इस सुसारमें ऐसा लच्छ-पेहर कर दूँगा, जैसा पहले कभी नहीं था । वैष्णवादि पन्थोंमें तो रक्षा ही क्या है । क्योंकि कलक जन्ममें उन्हें भी काटके गान्धर्व चल जाना पड़ता है ॥ ११ ॥

इसमें सुना है कि ऐसा हठ करके ही वह धार तपस्यामें शुद्ध हुआ है । आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं । अब आप जो उचित समझें वही करें ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी ! आपका यह सन्देश परमेश्वर ब्रह्मण एव गीर्णोक्ति बुद्धि, कल्याण, विभूति कुशल और विजयक लिये है । (यदि यह हिरण्यकशिपुके दासमें क्या गया, तो भगवन्मोपर मङ्गलको पढ़ाह दूँ पढ़ा ॥ १३ ॥

शुश्रुति । जब देवताओंने भगवान् ब्रह्माजीसे इस प्रकार निवेदन किया, तब वे भृगु और अन्य आदि ब्रह्मपतिविके दास हिरण्यकशिपुके आग्रहमरूप ॥ १४ ॥ वहाँ जानकर पहले तो वे उसे लज्ज ही न सक, क्योंकि दैत्यकी मिठी साम और बौद्धोंमें उमर

१ या वा — न्यायिभिः । २ या वा — न्यायिभिः । ३ या वा — भगवन् ।

• पदपरिभाषा (वैदिकानि नियम) अभिप्राय है परम्पु हिरण्यकशिपु अपनी धातु की बुद्धि करण उभय करक जन्ममें वह इतिहास ही मानता था । तभी बुद्धिमें सब करने शिरी ही बीना करती है ।

पिपीलिकाभिराचोर्णमेदस्त्वन्नांसघोणितम् ॥१५॥

तपन्त तपसा लाकान् यथाप्रापिहित रयिम् ।

विलम्प्य विस्मितः प्राह प्रहसन् ईसवाहनः ॥१६॥

मयोपाय

उचिष्टाचिष्ट मद्र ते त्वं सिद्धोऽसि काश्मप ।

वरदोऽहमनुप्राप्ता त्रियतामीप्सिता वर ॥१७॥

मद्राक्षमहमेव चे हत्तारं महदह्वयम् ।

दशभक्षितदहस्य प्राणा क्षत्विषु जेरते ॥१८॥

नैतत्पूर्वपयमह्वने करिष्यन्ति चापरे ।

निरम्भुर्भारयत्प्राणान् कार्बं दिव्यसमाः शतम् ॥१९॥

व्यवभाषेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ।

सपोनिष्ठेन भवता त्रिंशोऽहं दिविनन्दन ॥२०॥

ततस्त आश्रिप सवा ददाम्सुरपुङ्गव ।

मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफल मम ॥२१॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वाऽऽदिमवाक्यां पश्चिताह पिपीलिकं ।

कमण्डलुब्रजनमुद्विष्येनामापगधत्ता ॥२२॥

सुतस्त्रीपकवन्मीकात् सङ्गाप्राबलान्वित ।

सवाश्रयमभ्यपन्ना पश्चर्महनना युवा ।

उचिष्टान्तहमाभा विभानगुरिदैधमः ॥२३॥

स निर्निष्वाग्भर दप ईमवाहमारयितम् ।

ननाय गिरगा भूमौ तदगात् ॥२४॥

१ भा वा — अविश्वम्

शरीर टक गया था । पीपिलीक ने कहा, लवण, मांस और खून खाट गयी थी ॥ १५ ॥ शरद्वर्षे ठके हुए सूर्यक समान वह अपनी तपस्याके तेजसे जेबोंको तपा रहा था । उसको देखकर ब्रह्मजी भी विस्मित हो गये । उन्होंने ईससे कहा ॥ १६ ॥

ब्रह्माजीने कहा—क्या ! हिरण्यकशिपु ! उठो, उठो ! तुम्हारा कल्याण हो । बन्धननन्दन ! अब तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी । मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ । तुम्हारी जा इच्छा हो, देखतेके मौन हो ॥ १७ ॥ मैंने तुम्हारे हृदयका बहुत बल देखा । ज़रे, बोलो तुम्हारी वेद का शायी है । फिर भी तुम्हारे प्राण इतनेके सहारे टिके हुए हैं ॥ १८ ॥ ऐसी कठिन तपस्या न तो पहले किसी भूतिये की थी और न आगे ही करी करेगा । मात्र ऐसा कौन है जो देवताओंक सौ बर्न तक बिना पानीक जीता रहे ॥ १९ ॥ क्या हिरण्यकशिपु ! तुम्हारा यह काम बड़े बड़े भीरुकर भी कठिनतासे कर सकते हैं । तुम्हने इस तपानिष्ठाले मुझ अपने वशमें कर लिया है ॥ २० ॥ ऐयधिरोगिनि ! ईससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें जो कुछ चाँछ, दिये देता हूँ । तुम हो मनवाक और मैं हूँ जपर । अतः तुम्हें मर पड़ दर्शन निष्फल नहीं हो सक्ता ॥ २१ ॥

नारदजी कहते हैं—सुनिश्चित । इतना पढ़कर ब्रह्माजीने उसका बीमियेसे स्वयंसे हुए शरीर पर अपने कमण्डलुका दिव्य पर्व जलोच प्रमाणाकी जल छिड़क दिया ॥ २२ ॥ जैसे छक्कीके ठेकेसे आग जल उठे, वैसे ही वह जल छिड़कत ही बौल और दीमकोंकी मिट्टीके बीचसे उठ खड़ा हुआ । उस समय उसका शरीर सब अवयवोंसे पूरा एवं कलबान् हो गया था, इन्द्रियोंमें शक्ति आ गयी थी और मन सचेत हो गया था । सारा जल बरक समान बटार पर्व तपाये हुए सानेही तरह जमझीप हा गये ॥ २३ ॥ उसने देखा कि जाकरसमे ईश्वर बड़े हुए ब्रह्माजी गढ़ हैं । उन्हें बड़ा आनन्द हुआ । अन्ता सिर शरीर उठकी मपरार दिया ॥ २४ ॥

उत्थाम प्राञ्जलिः प्रहृष्ट ईक्षमाणा दृष्ट्वा विश्रुम् ।

हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गह्वरयागुणात् ॥२५॥

हिरण्यकशिपुस्तथा

कल्पान्ते कालसृष्टेन यो ऽधेनतमसाऽऽवृतम् ।

अमिष्यनग्ध्रगदिदं स्वयञ्चपोतिः स्मरोषिषा ॥२६॥

वैात्मना विवृता वेद सृजत्यवति लुम्पति ।

रत्नः सत्त्वतमोभाम्ने पराय महते नम ॥२७॥

नम आघाय वीज्राय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ।

प्राप्तेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्न्यक्तिसीयुषे ॥२८॥

त्वमीक्षिषे जगत्सत्त्वस्युपम

प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ।

चित्तस्य चित्तर्मनइन्द्रियाणां

परिर्महान् मृतगुणाशयेभ्यः ॥२९॥

त्वं सप्ततन्तुं वितनोपि तन्वा

प्रप्या चातुर्होत्रकषिपया च ।

त्वमेव आत्माऽऽत्मवतामनादि

रनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥३०॥

त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानां

मायुर्लवाघावयवैः क्षिणोपि ।

कूटस्य आत्मा परमेष्ठ्यञ्चो महां

स्त्वं वीरलोकस्य च वीर आत्मा ॥३१॥

त्वत्तः परं नापरमत्पनेज

देवश्च किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति ।

फिर अश्वत्थि बौधक मन्त्रभावसे खडा हुआ और बड़े प्रभसे
जानेनिनिमित्त मनोसे उन्हें देखना हुआ गङ्गाद वाणीसे
स्तुति करने लगा । उस समय उसके नेत्रोंमें आनन्दके
जैसे उमड़ रहे थे और सारा शरीर पुञ्जित हो
रहा था ॥ २५ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—कल्पके अन्तमें यह सारी
सृष्टि कालके द्वारा प्रेरित तमोगुणसे, घने अन्धकारसे
ढक गयी थी । उस समय स्वयंप्रकाशस्वरूप आपने
अपने तेजसे पुन इसे प्रकाश किया ॥ २६ ॥ आप
ही अपने त्रिगुणमय रूपसे इसकी रचना, रक्षा और
संभार करते हैं । आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमो
गुणके आश्रय हैं । आप ही सबसे परे और महान्
हैं । आपकी मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥ आप ही
जगत्के सृजकण हैं । ज्ञान और विज्ञान आपकी
मूर्ति हैं । प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि विकारोंके
द्वारा आपने अपनेको प्रकट किया है ॥ २८ ॥ आप
मुख्यप्राण सूत्ररश्मिके रूपसे चारचर जगत्को अपने
नियन्त्रणमें रखते हैं । आप ही प्रजाके रक्षक भी हैं ।
मगधन् ! चित्त, चेतना, मन और इन्द्रियोंके स्वामी
आप ही हैं । पञ्चभूत, शब्दादि विषय और उनके
संस्कारोंके रचयिता भी महत्तरणके रूपमें आप ही
हैं ॥ २९ ॥ जो वेद होता, अथर्व, ऋषा और
उद्गाता—इन ऋषिब्रह्मोंसे होनेवाले यज्ञक प्रतिपादन
करते हैं, वे आपके ही शरीर हैं । उन्हींके द्वारा अग्निहोम
आदि सात यज्ञोंका आप विस्तार करते हैं । आप ही
सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा हैं । क्योंकि आप जगदीश,
अनन्त, अपार, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं ॥ ३० ॥
आप ही कृष्ण हैं । आप प्रतिक्षण सावधान रहकर
अपने क्षण, क्षण आदि विभक्तियोंके द्वारा श्रेणोंकी आयुक्षीण
करते रहते हैं । फिर भी आप निर्बिकार हैं । क्योंकि
आप ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर, अजन्मा महान् और सम्पूर्ण
जीवोंके जीवनदाता अन्तरात्मा हैं ॥ ३१ ॥ प्रभो !
काय कारण, चक्र और अचक्र ऐसी कई भी वस्तु
नहीं हैं, जो आपके अलग हो । समस्त विद्या और

विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा

हिरण्यगर्भोऽसि ब्रह्मस्त्रिपुण्ड्रः ॥३२॥

भ्यक्तं विमो स्पृलमिदं शरीरं

येनेन्द्रियप्राणमनोयुगांस्त्वम् ।

युक्ते स्थितो भामनि पारमेष्ठ्ये

अभ्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥३३॥

अनन्ताभ्यक्तरूपेण येनेदमखिलं त्वम् ।

चिद्विच्छिन्नकिमुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥३४॥

यदि दास्यस्वमिमत्तान् वरान्मे वरदोचम ।

भूतेभ्यस्त्वद्विस्पृष्टेभ्यो मृत्युर्मा मृतमम प्रभो ॥३५॥

नान्तर्बहिर्दिषा नक्तमन्यसादपि चायुषैः ।

न ममो नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥३६॥

भ्यस्तुभिर्बासुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः ।

अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐक्यपत्यं च देहिनाम् ॥३७॥

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथाऽऽत्मनः ।

तमोवागवभावाणां यन्न रिप्यति कर्हिचित् ॥३८॥

कहाँ आपके शरीर हैं । आप त्रिगुणमयी मायासे बन्धित
सय गद हैं । यह कर्णमय ब्रह्माण्ड आपके गर्भमें स्थित
है । आप इसे अपनेमेंसे ही प्रकट करते हैं ॥ ३२ ॥
प्रभो ! यह भ्यक्त ब्रह्माण्ड आपका स्पृलशरीर है । इससे
आप इन्द्रिय, प्राण और मनके विषयोंका उपभोग करते
हैं । किन्तु उस समय भी आप अपने परम परमेश्वर
स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं । वस्तुतः आप पुराणपुरुष,
स्पृल-सूक्ष्मसे परे गच्छस्वरूप ही हैं ॥ ३३ ॥ आप
अपने अनन्त और अभ्यक्त स्वरूपसे सारे ब्रह्ममें
व्याप्त हैं । येनन और अचेतन दोनों ही आपकी शक्तियों
हैं । भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३४ ॥

प्रभा ! आप समस्त वरदाताओंमें श्रेष्ठ हैं । यदि
आप मुझे अभीष्ट वर देना चाहते हैं, तो ऐसा कर
दीजिये कि आपके बगाने हुए किसी भी प्राणीसे—
चाहे वह मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या कृपाणी,
देवता हो या दैत्य अथवा नागप्रदि—किसीसे भी मेरी
मृत्यु न हो । भीतर-बाहर दिनमें, रात्रिमें, आपके
बगाने प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे,
अन्न-शकसे, पृथ्वी या आकाशमें—कहाँ भी मेरी मृत्यु न
हो । युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके । मैं समस्त
प्राणियोंका एकत्र सञ्चट होऊँ ॥ ३५-३७ ॥ इत्यादि
समस्त लोकपालोंमें जैसी आपकी महिमा है वैसी ही
मेरी भी हो । तपस्वियों और योगियोंको जो अक्षय
पदप्राप्त है, वही मुझे भी दीजिये ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंसां संहितयां सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपो

यौवनं नाम तृतायोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

हिरण्यकशिपुके अभ्याचार और ब्रह्मादिके गुणोंका वर्णन

मार्ग उवाच

एव पृत उक्तवृत्तिरिहिरण्यकशिपोरथ ।

प्रादात्तत्तमा प्रीतो परास्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥ वर दे दिये ॥ १ ॥

मार्गजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! जब हिरण्यकशिपुने

ब्रह्माजीसे इस प्रकारका अभ्यक्त दुर्लभ वर माँगे, तब

उन्होंने सबसे ही तत्प्राप्त प्रसन्न होकर कारण उसे दे

महोपाय

वातेमे दुर्लभाः पुंसां यान् धृणीये वरान् मम ।
तथापि वितराम्य ऋषयान् यदपि दुर्लभान् ॥ २ ॥

ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विश्व ।
पूजितोऽमुरवयेण स्तूपमानः प्रजेभ्यः ॥ ३ ॥

एवं लब्धवरो दैत्यो विभ्रदेममय षण्णु ।
भगवत्पकरोद् द्वेप आतुर्वधमनुसरन् ॥ ४ ॥

स विक्षिप्य दिशः सर्वां लोकांश्च धीन् महासुरः ।
देवासुरमनुष्येन्द्रान् गन्धर्वगरुडारगान् ॥ ५ ॥

विद्वच्चरणविद्याघ्रातृपीन् पिद्वपतीन् मनुज ।
यक्षरक्षःपिशाचेश्चान् प्रेतभूतपतीनय ॥ ६ ॥

सर्वसम्पत्पतीञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित् ।
जहार लाकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ ७ ॥

देवोद्यानभिया जुष्टमध्यान्ते स विविष्टम् ।
महेन्द्रभवनं साध्वाभिर्मितं विश्वकर्मणा ।

त्रैलोक्यलक्ष्म्यापठनमभ्युवासाखिलद्धिमत् ॥ ८ ॥
यत्र विदुमसोपाना महामारकता सुव ।

यत्र स्नादिककुट्यानि र्यद्व्यस्तम्भपङ्क्तयः ॥ ९ ॥
यत्र चित्रविठानानि पथरागौसनानि च ।

पथःफननिभा क्षया मुक्तादामपरिच्छदा ॥ १० ॥
सूत्रङ्गिन्पुरंदेव्यः क्षुब्धयन्त्य इवस्ततः ।

रत्नम्यलीपु पश्यन्ति सुदती सुन्दर सुमय ॥ ११ ॥
वसि-मह-द्रभवने महाबल ।

महामना निजितलोक एकगद् ।

प्रसाजीने कहा—येय । तुम जो वर मुझमें माँग रहे हो, वे जीनोंके किये बहुत ही दुर्लभ हैं, परन्तु दुर्लभ होनेपर भी मैं तुम्हें वे सब वर दिय देता हूँ ॥ २ ॥

[गारुडजी कहते हैं]—ब्रह्माजीके वरदान कभी झूठे नहीं होते । वे समर्थ एव म्मादरूप ही हैं । वरदान मिल जानके बाद हिरण्यकशिपुन उनकी पूजा की । तत्पश्चात् प्रजापतिगणोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे अपने लोकको चले गये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीसे वर प्राप्त करनेपर हिरण्यकशिपुका शरीर सुवर्णके समान कान्ति मान् एव दृश्यमान हो गया । वह अपने भारिकी दृष्ट्युक्त स्मरण करके भगवान्से द्वेष करने लगा ॥ ४ ॥ उस महादैत्यने समस्त दिशाओं, धीनों लोकों तथा देवता, असुर, नरपति, गन्धर्व, गरुड, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याचर, क्षत्रि, पितरोंके अविपत्ति मनु यक्ष, राक्षस, विशाचराज, प्रेत, भूतरति एव समस्त प्राणियोंके राजाओंको जीतकर अपने वशमें कर लिया । यहाँतक कि उस विश्व-विशयी दैत्यन लोकपालोंकी शक्ति और स्थान भी छीन लिये ॥ ५-७ ॥ अब वह मन्दलवन आदि दिव्य उपानोंके सौन्दर्यसे युक्त धर्मों ही रहने लगा था । स्वयं विश्वकर्माका बनाया हुआ इन्द्रका भवन ही उसका निवासस्थान था । उस भवनमें तीनों लोकोंका सौन्दर्य मूर्तिमान् होकर निवास करता था । वह सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे सम्पन्न था ॥ ८ ॥ उस महत्त्वमें मूर्तेकी सादृश्यों, पन्नकी गत्ते, रक्तिकमणिकी दीवारें, भैरवमणिक लंभे और माणिककी कुर्सियाँ थीं । रत्न-विरागे चंद्रांश तथा दूधके फलके समान शण्पाएँ, धनपर माणिकोंकी आभरेँ लगी हुई थीं, शानावमान हाँ रही थी ॥ ९-१० ॥ सर्वाङ्ग सुन्दरी अत्यन्त ही नर-नृपोंसे रत्न सुवर्ण धनि करती हुई रत्नमय भूमिपर इधर उधर टहल करती थी और कहीं-कहीं उसमें अपना सुन्दर सुवर्ण देवता लगाती थी ॥ ११ ॥ उस महद्दक महत्त्वमें महाबली और महामनसी हिरण्यकशिपु सब लोगोंको जीतकर, सबका एवम्प्रसन्न बनाकर बड़ी शान्तिप्रदामे विश्रुत करने

१ मा ता — शयन गन्तव्यपरि । २ मा ता — वहीन् प्रभु । ३ मा ता — गन्धर्व । ४ मा

ता — महासुर महाभय नि ।

रेमेऽभिवन्द्याद्भियुग सुरादिभिः

प्रतापितैरुत्तमैश्चन्द्रासनः ॥१२॥

तमज्ञ मर्षं मधुनोरुगभिना

विहृत्तताम्राक्षमक्षेपभिष्मपाः ।

उपासतोपायनपाणिभिर्बिना

त्रिभिस्तपोयोगपलौजसां पद्म ॥१३॥

जगुर्मेन्द्रासनमोजसा स्त्रित

विभावस्तुत्तुर्लसदादयः ।

गन्धर्वसिद्धा श्रपयाऽस्तुषासु

विद्याभरा मन्तरसम्पाप्म ॥१४॥

स एव वर्णाभमिभि मृतुमिर्मूर्तिदक्षिणैः ।

इत्यमानो हविर्भागानग्रहीत् स्वैन तेजसा ॥१५॥

अकृष्टपम्पा तस्मासीत् सद्गीपवती मही ।

तथा कामदुषा घौस्तु नानाधर्म्यपदं नमः ॥१६॥

रत्नाकराय रत्नौघास्तस्पत्न्यबोहुरुर्मिभिः ।

धारसीधुष्टवधौद्रदधिखीरामृतादकाः ॥१७॥

घौता द्रोणोमिराधीर्दं सर्वसुगुणान्मुमा ।

दभार लोकापादानामेफ एव पृथग्गुणान् ॥१८॥

स इत्थं निश्चितवद्बुधकराद विपयान्प्रियान् ।

यथापचार्यं सुज्ञानो नात्पद्मद्वित्रितेन्द्रियः ॥१९॥

कहा । उसका शासन इतना कठोर ॥ कि उससे मर्षीत होकर वेव दानव उसके चरणोंकी वन्दना करते रहते थे ॥ १२ ॥ युधिष्ठिर । यह उक्त गन्धवाही मन्दरा पीकर मतनाछा रहा करता था । उसकी ओलें लख-लख और चढ़ी हुई रहतीं । उस समय तपस्या, योग, शारीरिक और मानसिक कष्टका वह मंडार था । इसा, त्रिभु और महादेवके स्थित और सभी देवता अपने हाथोंमें मंत्र ले-लेकर उसकी सेवामें लगे रहते ॥ १३ ॥ जब वह अपने पुराणार्थसे श्रासनपर बैठ गया, तब युधिष्ठिर । विभावसु, तुम्बुक तथा हम सभी लोग उसके सामने गान करते थे । तथा गन्धर्व, सिद्ध, ऋषिगण, विभाव और अप्सराएँ बार-बार उसकी स्तुति करती थीं ॥ १४ ॥

युधिष्ठिर । वह इतना तेजस्वी था कि वर्णाश्रम-धर्मका पावन करनेवाले पुरुष जो बड़ी-बड़ी इक्ष्वा-नाके पक्ष करते, उनके यज्ञोंकी आहुति वह हर्ष छीन लेता ॥ १५ ॥ पृथक्के सातों क्षीरोंमें उसका लक्षण राख्य था । सभी जगह बिना ही जोते-जोते भरतोसे जल पैदा होता था । वह जो कुछ चाहता, अन्तरिक्षसे उसे मिल जाता । तथा आकाश उसे मौलि-मौलिकी आश्चर्यजनक वस्तुएँ दिखा-दिखाकर उसका मनार्जन करता था ॥ १६ ॥ इसी प्रकार कारे पानी, सुरा, धूप, इक्षुरा, दधि, दुग्ध और मीठे पानीके समुद्र भी अपनी पत्नी मदिर्योके साथ तरङ्गोंके द्वारा उसके पास खराशि पहुँचाया करते ॥ १७ ॥ फलतः अपनी आँखोंके रूपमें उसके द्विये लेजनेका स्वान गुणसे और बुद्ध सब शत्रुओंमें द्रवते-फलते । वह जकेला ही सब लक्षणाओंके विभिन्न गुणोंको धारण करता ॥ १८ ॥ इस प्रकार दिग्विजयी और एकछत्र सम्राट् होकर वह जगत्को प्रिय जगन्नाथ नियंत्रण सञ्चाल्य स्वयोग करने लगा । परन्तु इतने नियंत्रणों की उसकी दृष्टि न हो सकी । क्योंकि अन्ततः वह इन्द्रियोंका दास ही तो था ॥ १९ ॥

एवमैश्वर्यमस्तस्य ऋतस्योच्छास्त्रवर्तिनः ।

फालो महान् व्यतीपात्य ब्रह्मशापमुपेयुष ॥२०॥

तस्योग्रदण्डसविप्राः सर्वे लोकः सपालकाः ।

अन्यप्रालम्भशरणाः क्षरणं ययुरध्युतम् ॥२१॥

तस्मै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः ।

यद्रत्ना न निर्वर्तन्ते श्रान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥२२॥

इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ।

उपतस्थूर्ध्वीकेशं विनिद्रा बाधुभोवनाः ॥२३॥

तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिखना ।

सन्नादयन्ती ककुभ साधूनामभयङ्करी ॥२४॥

मा मैष्ट विषुभमृष्टाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ।

मदर्शनं हि मृतानां सर्वभयोपपत्तये ॥२५॥

ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च ।

तस्य श्रान्तिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत ॥२६॥

यदा देवेषु वेदेषु गाषु विप्रेषु साधुषु ।

धर्मे मयि च विद्रप स वा आश्रु विनश्यति ॥२७॥

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ।

प्रहादाय यदा ह्रस्वेदनिष्पद्यि वरोजितम् ॥२८॥

नारद उवाच

इत्पुक्ता लोक्रगुरुणा त प्रणम्य दियौकस ।

न्यवर्तन्त गतोद्गमा मेनिर आसुरं इतम् ॥२९॥

युधिष्ठिर । इस रूपमें भी वह भगवान्‌का नहीं पार्यद है, जिसे सनकादिकोंने शाप दिया था । वह ऐश्वर्य के मदसे मतथाड़ा हो रहा था तथा घमटमें घूर होकर शास्त्रोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहा था । देखते-ही देखते उसके जीवनका बहुत-सा समय बीत गया ॥ २० ॥ उसके कठोर शासनसे सब ओक और काकपाळ धक्का गये । जब उन्हें और कहाँ किसीका आश्रय न मिला, तब उन्होंने भगवान्‌की शरण ली ॥ २१ ॥ (उन्होंने मन-ही-मन कहा—) 'जहाँ सर्वात्मा जगदीश्वर श्रीहरि निवास करते हैं और जिसे प्राप्त करके शान्त एवं निर्मल संन्यासी महात्मा फिर लौटते नहीं, भगवान्‌क उस परम धामका हम ममत्कर करते हैं' ॥ २२ ॥ इस भावसे अपनी इन्द्रियोंका संयम और मनको समाहित करके उन लोगोंने जाना पीना और सोना छोड़ दिया तथा निमल हृदयसे भगवान्‌की आराधना की ॥ २३ ॥ एक दिन उन्हें मेघके समान गम्भीर आकाशवाणी सुनायी पड़ी । उसकी ध्वनिसे दिशाएँ गूँब उठीं । साधुओंको अमय देनवाली वह वाणी यों थी— ॥ २४ ॥ 'मैष्ट देवताओं । बुरो मत । तुम सब काँग्रेस करूँगा हो । मरे दर्शन से प्राणियोंको परम कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है ॥ २५ ॥ इस नीच दैत्यकी दुष्टताका मुझे पहलेसे ही पता है । मैं इसको म्रिय दूँगा । अभी कुछ दिनों-तक समयकी प्रतीक्षा करता ॥ २६ ॥ कोई भी प्राणी जब देवता, वेद, गाय, ब्राह्मण, साधु धर्म और मुक्त-से हृदय करन लगाता है तब शीघ्र ही उसका विनाश हो जाता है ॥ २७ ॥ अब यह अपन वैरहीन, शान्त और महात्मा पुत्र प्रह्लादसे द्रोह करेगा—उसका अनिष्ट करना चाहेंगा, तब बरक कारण शक्तिसम्पन्न होमपर भी इसे मैं अवश्य मार दायँगा' ॥ २८ ॥

नारदजी कहत हैं—सबक हृदयमें शानका सञ्चार करनेवाले भगवान्‌ जब देवताओंको यह आदेश दिया तब वे उन्हें प्रणाम करके खीन आये । उनका सारा उद्वेग मिट गया और उन्हें ऐसा मादृम होन लगा कि क्षिण्यकशिशु मर गया ॥ २९ ॥

तस्य दैत्यपतेः पुत्राभस्त्वार परमास्तुताः ।

प्रह्लादोऽमृन्महास्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥३०॥

प्रह्लादः श्रीलसम्भः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।

आमवत्सर्बभूतानामेक प्रियमुहृत्तमः ॥३१॥

दासवत्सर्वनतार्याङ्गि पितृवहीनवत्सलः ।

आतृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुभ्यामरमाधनः ।

विद्यार्थरूपबन्मात्मो मानससम्भविबद्धितः ॥३२॥

नादिन्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः

भुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ।

दान्तेन्द्रियप्राणधरीभीः सदा

प्रशान्तकामो रहितामुरोऽमुरः ॥३३॥

यसिन्महद्गुणा राबन् गृह्यते कविभिर्बुधैः ।

न तेऽधुनापिधीयन्त यथा भयवरीधरे ॥३४॥

य साधुगाधामदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ।

प्रतिमानं प्रह्वन्ति किमुतान्ये भवाद्दशाः ॥३५॥

गुणैरलमसख्येयैर्माहात्म्यं तस्य श्रव्यते ।

वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥३६॥

पुविष्टिर । दैत्यराज विरप्यकृष्टिपुके बड़े ही निरपम
चार पुत्र थे । उनमें प्रह्लाद यों तो सबसे छोटे थे,
परन्तु गुणोंमें सबसे बड़े थे । वे बड़े सत्येश्वरी थे ॥ ३० ॥
प्रह्लादभक्त, सौम्यस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ एवं जितेन्द्रिय
थे तथा समस्त प्राणियोंके साथ अपने ही समान
समवाक्य वर्तान करते और सबके एकमात्र प्रिय और
सच्चे हितैषी थे ॥ ३१ ॥ बड़े लोगके कर्त्तव्य
सेवककी तरह हुकूमत करते थे । गरीबोंपर पितृके
समान स्नेह रखते थे । बराबरीवादीसे भारिके समान
प्रेम करते और गुरुजनोंमें आश्रय रखते थे । विद्या,
धर्म, सौन्दर्य और कुञ्चनतपसे सम्पन्न होनेपर भी
यमक और हेतुकी उन्हें छानक नहीं गयी थी ॥ ३२ ॥
बड़े बड़े दुःखोंमें भी वे तनिक भी डबड़ते न थे ।
लोक-परमेश्वरके किम्वोंको उन्होंने देखा-सुना तो बहुत
था, परन्तु वे उन्हें नि सार और असत्य समझते थे ।
इसलिये उनके मनमें किसी भी वस्तुकी आकांक्षा न
थी । इन्द्रिय, प्राण, शरीर और मन उसके वशमें थे ।
उनके चित्तमें कभी किसी प्रकारकी कल्पना नहीं
उठती थी । जन्मसे आचुर होनेपर भी उनके वास्तवी
सम्पत्तिकर लेश भी नहीं था ॥ ३३ ॥ जैसे आनन्द
के गुण अमर हैं, वैसे ही प्रह्लादके लेश गुणोंकी भी
कोई सीमा नहीं है । महात्मनोना उपासे उनका
वर्णन करते और उन्हें अपनाते जाये हैं । तबपि वे
आत्म भी ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं ॥ ३४ ॥ पुविष्टिर ।
यों तो देवता उनके शत्रु हैं, परन्तु फिर भी भक्तोंका
परिश्रम उनके लिये जब तक छोड़ेंगी समा होती है,
तब वे दूसरे भक्तोंको प्रह्लादके समान करके उनका
सम्मान करते हैं । फिर आप-जैसे अज्ञातशत्रु मर्याद
उनका आदर करेंगे, इसमें तो सन्देह ही क्या
है ॥ ३५ ॥ उनकी महिमाका वर्णन करनेके लिये
अगणित गुणोंके बहने-सुननेकी आवश्यकता नहीं ।
केवल एक ही गुण—अगबान् भीहृण्यके चरणोंमें
क्षामाविक, जन्ममृत प्रेम उनकी महिमाको प्रकट
करनेके लिये पर्याप्त है ॥ ३६ ॥

न्यस्तकीडनको बालो अद्वयचमनस्तथा ।

कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद अगदीदृशम् ॥३७॥

आसीनः पर्यटनमनु श्रयानः प्रविशन् भुषन् ।

नानुसन्धय एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥३८॥

कचिद्बुद्धिं बैकुण्ठचिन्ताश्रयचैतनः ।

कचिद्बुद्धिं सचिन्ताहाद उद्गायति कचित् ॥३९॥

नदति कचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्स्यति कचित् ।

कचिसद्भावनायुक्तस्तमयोऽनुचकार ह ॥४०॥

कचिदुत्पलकस्तृष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्बुधः ।

अस्पन्दप्रमथानन्दसलिलामीलितेक्षणः ॥४१॥

॥ उचमस्तोकपदारविन्दयो-

नियेययाकिञ्चनसङ्गलब्धया ।

तन्वन् परां निर्बुद्धिमात्मनो मुहु

र्तुःसङ्गदीनायमनःश्रमं व्यधात् ॥४२॥

तस्मिन्महाभागवते महाभागे महारमनि ।

हिरण्यकशिपू राजभक्तरोदधमात्मजे ॥४३॥

युधिष्ठिर उवाच

देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुप्रत ।

युधिष्ठिर ! प्रहाद वचनमें ही खेद-बुद छोड़कर भगवान्‌के ध्यानमें अबबत् लग्य हो जाय करते । भगवान् श्रीकृष्णके अनुप्रदक्षप करने उनके हृदयको इस प्रकार खींच लिया था कि उन्हें जगत्की कुछ झुघ-झुघ ही न रहती ॥ ३७ ॥ उन्हें ऐसा जान पड़ता कि भगवान् मुझे अपनी गोदमें लेकर आच्छिन्न कर रहे हैं । इसलिये उन्हें सोते-मैठते, खाते-पीते, अच्छे-फिरते और बात चीत करते समय भी इन बातोंका ध्यान बिस्मृत न रहता ॥ ३८ ॥ कभी-कभी भगवान् मुझे छोड़कर चले गये, इस भावनामें उनका हृदय इतना दुःख जाता कि वे जोर-जोरसे रोने लगते । कभी मन-ही-मन उन्हें अपने सामने पाकर आनन्दव्रक्तसे व्यक्त होकर पड़े जाते । कभी उनके ध्यानके मधुर आनन्दका अनुभव करके जोरसे गाने लगते ॥ ३९ ॥ वे कभी उत्सुक हो बैसुरा चिल्ला पड़ते । कभी-कभी कोकलज्वाला त्याग करके प्रेम्में छफकर नाचने लगे जाते थे । कभी-कभी सनकी बीटाके चिन्तनमें इसमें लम्बीन हो जाते कि उन्हें अपनी याद ही न रहती, उन्नीका अनुकरण करने लगते ॥ ४० ॥ कभी मीटर ही-मीटर भगवान्‌का कोमल संस्पर्श अनुभव करके आनन्दमें मग्न हो जाते और चुपचाप शांत होकर बैठ रहते । उस समय उनका रोम-रोम पुलकित हो उठता । अबसुले नेत्र अविचल प्रेम और आनन्दके औमुओसे भरे रहते ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके शरणकमलोंकी यह भक्ति अकिञ्चन भक्ताप्रमी महारामाओंक सङ्गसे ही प्राप्त होती है । इसके द्वारा वे स्वयं तो परमानन्दमें मग्न रहते ही वे जिन बेचारोंका मन कुसङ्गके कारण अत्यन्त दीन-हीन हो रहा था, उन्हें भी बार-बार शान्ति प्रदान करते थे ॥ ४२ ॥ युधिष्ठिर ! प्रहाद भगवान्‌क परम प्रेमी भक्त, परम मायकन् और ऊँची कोटिके महात्मा थे । हिरण्यकशिपु ऐसे साधु पुत्रको भी अपनी बतथाकर उनका अभिष्ट करनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—नारदजी ! आपका मन अस्पन्द है । अब हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि

यदात्मजाय शुद्धाय पितादात् साधवे क्षयम् ॥४४॥

पुत्रान् विप्रतिकूलान् स्वान् पितरः पुत्रवत्सलाः ।

उपालभन्ते शिष्यार्थं नैवाधमर्परो यथा ॥४५॥

क्षिप्तानुवक्षान् सार्धं स्तादृशान् गुरुदेवतान् ।

एतत् कौतुहलं ब्रह्मसम्पत्तयं विधम प्रभो ।

पितुः पुत्राय यद् द्वेपो मरण्याय प्रयासितः ॥४६॥

हिरण्यकशिपुने पिता होकर भी ऐसे शुद्धहृदय महात्मा पुत्रसे प्रोह क्यों किया ॥ ४४ ॥ पिता ठां ब्रह्मसे ही अपने पुत्रोंसे प्रेम करते हैं । यदि पुत्र कोई ठग्य करम करता है, तां वे उसे शिक्षा देनेके लिये ही रोंगते हैं, शत्रुकी तरह नैर विरोध तो नहीं करते ॥ ४५ ॥ फिर प्रह्लादजी जैसे अनुकूल, शुद्ध हृदय एवं गुरुजनोर्मि भगवद्भाव करमवाले पुत्रोंसे भक्त, कोई द्वेष कर ही कैसे सकता है । नारदजी ! आप सब कुछ जानते हैं । हमें यह जानकर बड़ा कोपग्रस्त हो रहा है कि पिताने हृदयके कारण पुत्रको मार डखना बड़ा । आप कृपा करके मेरा यह कुपग्रह शांत कीजिये ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे

प्रह्लादचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

हिरण्यकशिपुके द्वारा प्रह्लादजीके वधका प्रसङ्ग

नारद उवाच

पौरोहित्याय भगवान् हृतः काम्यः किलासुरैः ।

शम्भामर्कां सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥ १ ॥

तौ रामा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् ।

पाठयामासतु पाठ्यान्त्यांवाशुरवालकान् ॥ २ ॥

यत्तत्र गुरुणा प्राक्तं शुभ्रवेज्जु पपाठ च ।

न माधु मनमा मेने स्वररामब्रह्मभयम् ॥ ३ ॥

एकदासुरगट् पुत्रमङ्गमाराप्य पाण्डय ।

पञ्चलं वध्पतां वरम मन्यते माधु यद्वयान् ॥ ४ ॥

नारदजी कहते हैं—सुधित्तिर । दैत्योंने भगवान् श्रीशुकभार्यनीको अपना पुराहित बनाया था । उनके दो पुत्र थे—सम्भ और अमर्क । वे दोनों राजमहलके पास ही रहकर हिरण्यकशिपुके द्वारा भेजे हुए मीति-निपुण वाक्क प्रह्लादको और दूसरे पद्मानयोम्य दैत्य-बालकोंको राजनीति अर्पनीति आदि पढ़ाया करते थे ॥ १ ॥ २ ॥ प्रह्लाद गुरुजीका पढ़ाया हुआ पाठ सुन लेते थे और उसे ज्यों-ज्यों-स्यों उन्हें सुना भी दिया करते थे । किन्तु वे उसे मनसे अच्छा नहीं समझते थे । क्योंकि उस पाठका मूल आधार था अपने और परायेका घटा जाण्ड ॥ ३ ॥ सुधित्तिर । एकदिन हिरण्यकशिपुन अपने पुत्र प्रह्लादको बंध प्रेमसे गोत्रसे सेवक पूजा—देगा । अताओ तां सही, तुम्हें कान-नी बात अच्छी लगनी है ॥ ४ ॥

१ प्रा पा —वे । २ प्राचीन ग्रंथमें प्रह्लादचरिते इतना अर्थ नहीं है । ३ प्रा पा —तो गु राह मिल ।

प्रहाद उवाच

तत्साधु मन्येऽसुरवर्ष्यं देहिनां
सदासमुद्रिप्रथियामसवप्रहात् ।
हिवाऽऽत्मपातं गृहमधकूपं
वनं गतो यद्वरिमाश्रयेत् ॥ ५ ॥

मारद उवाच

श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्य परपक्षसमाहिताः ।
ब्रह्मस्य पुद्गिरालानां मिषते परबुद्धिभिः ॥ ६ ॥
सम्पन्निधायतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः ।
विष्णुपथे प्रतिच्छन्नेन मिषेतास्य धीर्यथा ॥ ७ ॥
गृहमानीतमाह्वय प्रहाद दैत्ययाजका ।
प्रशस्य शरणाया वाचा समपृच्छन्त सामभिः ॥ ८ ॥
वत्स प्रहाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ।
बालानति कुतस्तुभ्यमेव बुद्धिविपर्ययः ॥ ९ ॥
बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् ।
भण्यतां श्रोतुकामानां गुरुणा कुलनन्दन ॥ १० ॥

प्रहाद उवाच

स्व परभक्त्यमद्वाह पुंसां यन्मापया कृतः ।
विमाद्वितथियां दृष्टस्त्वस्मै भगवन्त नमः ॥ ११ ॥
म यानुश्रुतं पुंसां पशुबुद्धिर्बिभ्रत ।
अथ एष तथान्याऽहमिति भेदगतमता ॥ १२ ॥
म एष आत्मा स्वपरस्यबुद्धिभिः

दृश्यमानुक्रमणा निरूप्यते ।

१२ पा — वरः शरणागतेषु ।

प्रहादने कहा—पिताजी 'ससार' प्राणी 'मैं' और 'मेरे' कहते आप्रहमे पक्षर सत्ता ही व्यपन्न उद्दिष्ट रहते हैं । ऐसे प्राणियोंके लिये मैं यही ठीक समझता हूँ कि वे अपने जब पतनके मूल कारण, वाससे टके हुए अंधेरे कूपके समान इस घरको छोड़कर वनमें चले जायें और भगवान् श्रीहरिकी शरण प्रार्थन करें ॥ ५ ॥

मारदजी कहते हैं—प्रहादजीके मुँहसे शत्रुशक्तकी प्रशंसासे मरी बात सुनकर हिरण्यकशिपु उत्पन्न हो स पड़ा । उसने कहा—'दूसरोंके बड़कानसे बच्चोंकी बुद्धि यों ही बिगड़ जाया करती है' ॥ ६ ॥ जान पड़ता है गुरुजीके घरपर विष्णुके पक्षपाती कुछ ब्राह्मण वेप बदलकर रहते हैं । बाळकजी मजीमौलि देख-रेख की आज्ञा, जिससे जब इसकी बुद्धि बड़कने न पाये ॥ ७ ॥

जब दैत्योंने प्रहादको गुरुजीके घर पहुँचा दिया, तब पुरोहितोंने उनको बहुत पुचकारकर और पुस्तककर बड़ी मधुर बानीसे पूछा ॥ ८ ॥ वेद प्रहाद ! तुम्हारा कल्याण है । टीक-टीक बतलाना । देखो, झूठ न बोलना । यह तुम्हारी बुद्धि उठती कैसे हो गयी । और किसी बाळककी बुद्धि तो ऐसी नहीं हुई ॥ ९ ॥ कुलमन्दन प्रहाद ! बन्धुओं लो, वेद ! हम तुम्हारे गुरुजन यह जानना चाहते हैं कि तुम्हारी बुद्धि स्वयं ऐसी हो गयी या किसीने सचमुच तुमको बड़का दिया है ? ॥ १० ॥

प्रहादजीने कहा—जिन मनुष्योंकी बुद्धि मोहसे प्रलब्ध हो रही है उन्हींको भगवान्की भाषासे यह झूठा दृष्टावट होता देखा गया है कि यह अपना है और यह 'आया' । उन मनुष्यानि भगवान्का मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥ मैं भगवान् ही जब एता परत हूँ, तब मनुष्योंको तात्पर्यबुद्धि मग्न होती है । इस पशु बुद्धिज ब्रह्म ही सा पद मैं हूँ और यह गुप्तसे भिन्न है इस प्रकारका सृष्टा म भव रहा होगा है ॥ १२ ॥ श्री परमात्मा यह कल्याण है । अज्ञानी जो जान और भावने में करव उगाकर भ्रम किया जाने दे । उनका मैं जानना चाहता हूँ कि वे किस उमर में रहते

मुच्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो

ब्रह्मादयो ह्यपि भिनत्ति मे मतिम् ॥१३॥

यथा आम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ ।

तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यद्वच्छया ॥१४॥

नारद उवाच

एतावद्वाङ्मनाभोक्त्वा विरराम महामतिः ।

तं निर्मस्त्राद्यं कुपितः सदीनो राजसेवक ॥१५॥

आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयश्चस्करः ।

कुलाक्षारस दुर्बुद्धेभ्यस्तुर्योऽस्योदितो दमः ॥१६॥

दैत्येष्वन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः ।

धैर्यमूढोन्मूलपरञ्चोर्विभ्योर्नालायितोऽर्मकः ॥१७॥

इति तं विविधोपायैर्भीषयस्तर्जनादिभिः ।

प्रहर्षं ग्राहयामास त्रिबर्गस्तोषपादनम् ॥१८॥

तत एनं गुरुर्हत्वा ज्ञातश्चेयचतुष्टयम् ।

दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलङ्कृतम् ॥१९॥

पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्याक्षिपासुर ।

परिभ्रज्य चिरं दाम्प्यं परमामाप निर्बृतिम् ॥२०॥

आरोप्याङ्गमवघ्राप मूर्धन्यभुक्ताम्बुभिः ।

आसिञ्चन् विकसदक्षत्रमिदमाह युधिष्ठिर ॥२१॥

जामला बहुत कठिन है और गद्गा आदि बड़-बड़े केन्द्र भी उसके नियमों से प्रेरित हो जाते हैं । यही परमेश्वर आपलोगोंके शब्दोंमें मेरी बुद्धि 'मिथ्या' रहा है ॥१३॥ गुरुजी ! जैसे पुष्पके पास लहसुन खस होता है, वैसे ही चक्रपाणि भगवान्की सम्पन्न इन्द्रशक्तिसे मेरा चित्त भी संसारसे व्यक्त होकर उनकी ओर बरस निकल जाता है ॥ १४ ॥

नारदजी कहते हैं—परमेश्वरी प्रज्ञा अपने गुरुजी-से इतना कष्टकर चुप हो गये । पुरोहित केवारे राजाके सेवक एवं पराधीन थे । वे डर गये । उन्होंने क्रोधसे प्रज्ञादको शिक्षक दिया और कहा— ॥ १५ ॥ 'अरे, कोई मेरा बेटा तो छावो । यह हमारी कर्तव्यमें कष्ट क्यों रहा है । इस दुष्टदि कुलाक्षारको ठीक करनेके लिये चौपाया सपाय दण्ड ही उपयुक्त होगा ॥१६॥ दैत्य-वशाके अन्दनवनमें यह कण्टिकाक्षर समूह बहोसे पैदा हुआ ! जो विष्णु इस वनकी जड़ कटनेमें कुलाक्षरका क्षम करते हैं, यह गायन बालक उनकी बेट बन रहा है, सहायक हो रहा है ॥१७॥ इस प्रकार गुरुजीने तरह-तरहसे डाँट-डपकर प्रज्ञादको धमकया और गर्व, धर्म एवं कामसम्बन्धी शिक्षा दी ॥ १८ ॥ कुछ समयके बाद जब गुरुजीने देखा कि प्रज्ञादने साम, दाम, मेध और दण्डके सम्बन्धकी सारी बातें जान ली हैं तब, वे उन्हें उनकी मक्के पास ले गये । याताने बड़े काट प्यारसे उन्हें गद्गा-मुछकर अपनी तरह गहने-कमकोंसे सजा दिया । इसके बाद वे उन्हें हिरण्यकशिपुके पास ले गये ॥ १९ ॥ प्रज्ञाद अपने पिताके घरगोमें छोट गये । हिरण्यकशिपुने उन्हें आशीर्वाद दिया और दोनों हाथोंसे सटकर बहुत देरतक गलेसे लपटें भर रक्खा । उस समय दैत्यराजका ड ड आनन्दसे भर रहा था ॥ २० ॥ युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपुने प्रसन्नमुख प्रज्ञादको अपनी गोदमें बैठाकर उनकी सिर सूँबा । उनके नेत्रोंसे प्रेमके औसू गिर-गिरकर प्रज्ञादके सरीरको गिरीमे लगे । उसने अपने पुत्रसे पूछा ॥ २१ ॥

१ प्राचीन प्रतिमें नारद उवाच यह पाठ नहीं है । २ प्रा पा०— तं निर्मस्त्राद्यं कु १९ प्रा पा —कम् ।

४ प्रा पा —प्रपत पादयोर्मांस

हिरण्यकशिपुत्वाच्च

प्रहादान्म्यतां तात स्वधीर्तं किञ्चिदुत्तमम् ।
कालेनैतावताऽऽयुष्मन् सद थिखवृ गुरोर्भवान् ॥२२॥

प्रहाद उवाच

अवर्णं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सकृन्मात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नबलधृणा ।

क्रियते भगवत्पदा तमन्येऽधीतमुत्तमम् ॥२४॥

निघ्नमैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा ।

गुरुपुत्रमुवाचेदं कृपा प्रस्फुरिताधरः ॥२५॥

ब्रह्मबधो किमेतच्चे विपद्यं भयतासता ।

असार ग्राहिता बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥२६॥

सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मंत्राष्टयवपिणः ।

तेषामुदेत्यर्धं काले रोग पातकिनामिव ॥२७॥

गुरुपुत्र उवाच

न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं
सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो ।

नैसर्गिकीर्यं मतिरस्य रामन्

नियच्छ मन्यु कददाः सा मान ॥२८॥

नारद उवाच

गुरुलैव प्रतिप्रोक्तो मूय आहासुरः सुतम् ।

न चेदगुरुमुन्मीयं ते कुतोऽमद्रासती मति ॥२९॥

प्रहाद उवाच

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा

मिथाऽभिव्यक्त गृह्यतानाम् ।

हिरण्यकशिपुने कहा—धिरस्त्रीय बेटा प्रहाद ।
इतने दिनोंमें सुमन गुरुजीसे जो शिक्षा प्राप्त की है,
उसमेंसे कोई कच्ची-सी बात हमें सुनाओ ॥ २२ ॥

प्रहादजीने कहा—पिताजी ! विष्णुभगवान्की भक्ति-
के भौ भेद हैं—मगवान्के गुण-कीर्तन-माम आदिक
अवर्ण, उन्हीका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिक
स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास्य,
सक्य और आमनिवेदन । यदि मगवान्के प्रति समर्पण-
के भावसे यह नौ प्रकारकी भक्ति की जाय, तो मैं
उसीको उत्तम अर्पण समझता हूँ ॥ २३-२४ ॥
प्रहादकी यह बात सुनते ही श्रीधरके मारे हिरण्यकशिपु
के ओठ फटकने लगे । उसने गुरुपुत्रसे कहा—॥२५॥
रे भीष मासण ! यह तेरी कैसी करदत है, दुर्बुद्धि ! ऐसे
मेरी कुछ भी परवा न करके इस बन्नेका कैसी निस्तार
शिक्षा दे दी ! अवश्य ही तू हमारे शत्रुओंका आश्रित
है ॥ २६ ॥ संसारमें ऐसे दुर्बुद्धीकी कमी नहीं है, जो
मित्रका बाना धारणकर छिये-छिये सत्पुत्र काय करते हैं ।
परन्तु उनकी कलई छिपी बैसे ॥ छुट जाती है, जैसे
छिपकर पाप करनेवालोंका पाप समयपर रोगके रूपमें
प्रकट होकर उनकी पोख खोल देता है ॥ २७ ॥

गुरुपुत्रने कहा—इन्द्रशत्रो ! आपका पुत्र जो कुछ कहा
रहा है, वह मेरे या और किसीके बहकानसे नहीं कहा रहा
है । रामन् ! यह ता इसकी अगममात सामाजिक बुद्धि है ।
आप श्रीधरान्त कीजिये । व्यर्थमें हमें दोष न लग्नहये ॥२८॥

नारदजी कहते हैं—गुणिष्ठिर ! जब गुरुजीने ऐसा
उत्तर दिया तब हिरण्यकशिपुन फिर प्रहादसे पूछा—
‘क्यों रे । यदि तुझ एसी अद्वित करनेवाली छात्री बुद्धि
गुरुमुखसे नहीं मिली तो क्या, कहाँसे प्राप्त हुई !’ ॥२९॥

प्रहादजीने कहा—पिताजी ! संसारक आग तो निसे
हुएको पीस रह हैं, जबाये हुएको बना रहे हैं । उनकी
इन्दियों बरामे न होनेके कारण वे भोगे हुए विरायोंकी ही
फिर फिर योग्यनेक छिये संसाररूप और मरकटों और जा
रहे हैं । ऐसे गृहासक्त पुरुषोंकी बुद्धि अवन-आवन,

अदान्तगाभिर्विद्यतां तमिर्ल

पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥३०॥

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णु

दुरासदा ये धदिरर्थमानिनः ।

अथा यथान्वैरुपनीयमाना

वाचीमृतस्याधुरदासि यदाः ॥३१॥

नैषा मतिस्तावदुरुकमाह्वि

सृष्टस्तनर्यापगमो यदर्थः ।

महीसतां पादरजोऽभिषेकं

निष्किञ्चनानां न हृषीत यावत् ॥३२॥

इत्युक्त्वापरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू कृपा ।

अन्धीकृतास्मा स्तोत्सङ्गान्निरसत महीतले ॥३३॥

आहामपंरुपाविष्टः कंपावीमृतलोचनः ।

बभ्रतामाम्बय बभ्या निःसारयत नैर्घृताः ॥३४॥

अयं मे आदृष्टा सोऽयं हित्वा स्वान् सुहृदाऽभयः ।

पितृभ्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्थति ॥३५॥

विष्णोर्वासाध्वसौ किं नु करिष्यस्यसमञ्जसः ।

सौहृद दुस्पर्जं पित्रारहायः पञ्चहायन ॥३६॥

पराऽप्यपत्यं हितकृष्यधौष्यं

स्वदेहमाऽप्यामयन्तुताऽहितः ।

छिन्धापदं यदुतात्मनाऽहितं

शेषं सुखं जायति यद्विवर्जनात् ॥३७॥

किसीके सिद्धामसे अथवा अपने ही-दैसे लोगोके स्वप्ने
मगवान् शोकपूर्णमें नहीं लगती ॥ ३० ॥ जो इन्द्रियोसे
दीखनवाले बाह्य विषयोको परम इष्ट समझकर मूर्खदमक
अन्धोंके पीछे अन्धोंकी तरह गड्ढेमें गिरनेके झिमे पड़े जा
रहे हैं और वेदवाणीरूप रस्तीके—काम्यकर्मके दीर्घ
अन्धनमें बंधे हुए हैं, उनको यह बात माझम नहीं कि हमारे
स्वार्थ और परमार्थ मगवान् विष्णु ही हैं—उन्हींकी प्राप्तिसे
हमें सब पुरुषार्थोंकी प्राप्ति हो सकती है ॥ ३१ ॥ किसी
बुद्धि मगवान्के चरणकमलोंका स्पर्श कर लेती है, उनके
अन्ध-मृत्युरूप अनर्थका सर्वथा नाश हो जाता है। पल्लु
जो अंग अकिञ्चन अमयलसी म्हात्मा जोकि चरणोंकी धूलमें
स्नान नहीं कर लेने, उनकी बुद्धि कम्पकर्मोंका इष्ट
सेवन करनेपर भी मगवचरणोंका स्पर्श नहीं कर
सकती ॥ ३२ ॥

प्रह्लाद भी इतना कहकर चुप हो गये। हिरण्यकशिपु-
ने ओंठके मारे अम्बा होकर उन्हें अपनी गोदसे
गठकर भूमिपर पटक दिया ॥ ३३ ॥ प्रह्लादकी बातको
यह सच न सच । रापके मारे उसके नेत्र बह
हो गये । यह कहने लग्य—दीखो ! इसे मारी
बाहर ले जाओ और तुरंत मार डालो । यह मर ही
बाकन योग्य है ॥ ३४ ॥ देखो तो सखी—बिसल
इसके आचक्षो मार बाज्र, अपने सुहृद्-स्वजनोको
ओंठकर यह नीच दासके समान ठपी विष्णुके चरणों-
की पूजा करता है ! हो-न-हो, इसके रूपमें मेरे
माँको मारनेका विष्णु ही आ गया है ॥ ३५ ॥
अब यह विश्वासक योग्य नहीं है । पाँच बरसकी
अम्बामें ही बिसल अपन गाता पिताके दुस्स्वप्न
मासकमसहको भुका दिया—यह इतना मल विष्णु-
का ही कमा हित करेगा ॥ ३६ ॥ कोई वृत्त
भी यदि औपधक समान अर्थ्य करे तो वह एक
प्रकारसे पुत्र ही है । पर यन्ति अपना पुत्र भी अहित
करने लगे तो रोगके समान यह शत्रु है । अपने
शरीरके ही किसी अङ्गसे सार शरीरकी हानि होती
हो तो उसको काट डालना चाहिये । क्योंकि उसे
काट देमसे शरीर सुस्थे जी सकता है ॥ ३७ ॥

मर्वैरुपायैर्हन्तव्यः सम्मोपश्रयनासने ।

सहस्रिधर यशुर्मुनेर्दुष्टमिवैत्रियम् ॥३८॥

नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणय ।

विग्मदप्रकरालास्यान्नाम्रश्मभुक्षिरोरुहा ॥३९॥

नदन्तो मरवाभान्श्लिन्धि भिन्धीति वादिनः ।

आसीन आहनञ् शूलैः प्रह्लाद सर्वमर्मसु ॥४०॥

परे ब्रह्मप्यनिर्देश्ये भगवत्पत्रिलाल्मनि ।

युक्तारमन्यफला आसन्नपुण्यस्मैव सत्क्रियाः ॥४१॥

पासेऽपहते तस्मिन् दैत्येन्द्र परिक्रष्टित ।

कार सद्बोधोपायान्निर्वचनैः युधिष्ठिर ॥४२॥

देगाजर्दन्दुर्कस्य अभिचारविपातनैः ।

नायामि सनिरोधैश्च गरदानरिभाजनैः ॥४३॥

हिमयाग्निमसलिल पर्वताक्रमणैरपि ।

न शशाक यदा इन्तुमपापमसुर सुतम् ।

चिन्तां दीपतमां प्राप्तान्तकृत्य नाम्यपघत ॥४४॥

एष म बहूमाधुक्तो वधापायाश्च निमित्ताः ।

यह सम्ब्रजनका बाना पहनकर मेरा कोर शत्रु ही आया है । जैसे योगीकी भोगभोगुप इन्द्रियों उसका अनिष्ट करती हैं, वैसे ही यह मेरा अहित करनेवाला है । इसलिये खाने, सोने, बैठने आदिके समय किसी भी उपायसे इसे मार डाला ॥ ३८ ॥

जब हिरण्यकशिपुने दैत्योंको इस प्रकार आह्वा दी तब सीसी दाढ़, निकराल कान, लाल-लाल दाढ़ी-मूँछ एवं केशोंवाले दैत्य हाथोंमें विशूल ले-लेकर मारो, काटो—इस प्रकार बड़े जोरसे चिल्लाने लगे । प्रह्लाद चुपचाप बैठे हुए थे और दैत्य उनके सभी मर्मस्थानोंमें शूलसे बाध कर रहे थे ॥ ३० ४० ॥ उस समय प्रह्लादकीच चित्त उन परमात्मामें लगा हुआ था, जो मन-वाणीके अगोचर, सर्वज्ञ, समस्त शक्तियोंके आचार एवं परब्रह्म हैं । इसलिये उनके सारे प्रहार टिक वैसे ही निष्फल हो गये, जैसे भाग्यहीनोंके बड़-बड़ उद्योग-ध्वजे मल्य होते हैं ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिर ! जब शूलोंकी मारसे प्रह्लादके शरीरपर कोई जखम नहीं हुआ, तब हिरण्यकशिपुको बड़ी राहू हुई । अब वह प्रह्लादको मार डालनेके लिये बड़ बड़स भौंन-भौंनिके उपाय करने लगा ॥ ४२ ॥ उसने उन्हें बड़-बड़े मन्त्रवाले हाथियोंसे कुचलबाया विषधर सर्पोंसे उँसबाया, पुराहितोंसे कुर्या गजसौ उदक कटायी, पहाड़की चोटीसु मीचे डलवा दिया, शम्भरासुरसे अनेकों प्रकारकी मायाका प्रयोग करवाया, लोथरी कोरियोंमें बद कर दिया, विष पिछाया और खाना बँक कर दिया ॥ ४३ ॥ बर्तनी जगह दहकती हुई आग और समुद्रमें बारी-बारीसु डकबाया, औंधीमें छोड़ दिया तथा पर्वतोंके मीचे दहका दिया परन्तु इनमेंसे किसी भी उपायसे वह अपने पुत्र निष्पाप प्रह्लादका बाध भी बाँध न कर सका । अपनी विवशता देखकर हिरण्यकशिपुका बड़ी चिन्ता हुई । उसे प्रह्लादको मारनेके लिये और कोई उपाय नहीं मूलपका ॥ ४४ ॥ वह सोचनेलगा—‘इसे मैंने बहुत कुछ घुस-मला कहा, मार डालनेक बहुतसे उपाय किये । परन्तु यह मर नही और

तैस्तैश्चैरसदमैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥४५॥

वर्तमानोऽविद्वे न बालोऽप्यजस्रधीरयम् ।

न विस्मरति मेऽनार्यं शूनःशेष इव प्रभुः ॥४६॥

अप्रमेयानुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमर ।

नूनमसविरोधेन मृत्युर्म भविता न वा ॥४७॥

इति च चिन्तया किञ्चिन्म्लानभियमभोद्धृतम् ।

खण्डानर्काबोधनसौ विविक्त इति होचतुः ॥४८॥

जितं स्वयंकेन अगत्ययं भ्रुवो

विबृम्भणस्तत्समस्तभिष्यपम् ।

न वस चिन्त्यं सव नाथ चंक्रमहे

न वै विद्वानां गुणदोषयो पदम् ॥४९॥

इमं तु पादैर्वरुणस्य बद्धवा

निषेहि भीता न पलायते यथा ।

बुद्धिश्च पुंसो वयसाऽऽर्यसेवया

बावद् गुरुर्भर्गव आगमिष्यति ॥५०॥

तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञापदमश्वीत् ।

धैर्या अक्षोपदेष्टव्या राज्ञा ये शूदमेभिनाम् ॥५१॥

धर्ममयं च काम च निवरां आनुपूर्वशः ।

दुर्न्यवहारोमे विना किंसीकी सहायतासे अपने प्रमथने ही बचना गया ॥ ४५ ॥ यह बालक होनपर भी समझदार है और मेरे पास ही नि शङ्क मात्रसे खड़ा है । हाँ-न-हो इसमें कुछ सामर्थ्य बचप्य है । जैसे शून शेष * अपने पिताकी कृत्यतोसे उसका बिरोधी हो गया था, वैसे ही यह भी मेरे किये अपकारोंको न भूझेगा ॥ ४६ ॥ न तो यह किंसीसे बदल है और न इसकी मृत्यु ही होती है । इसकी शक्तिको बाध नहीं है । अक्षय्य ही इसके बिरोधसे मेरी कृत्य होगी । सम्भव है, न भी हो ॥ ४७ ॥

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते उसका चेहरा कुछ उत्तर गया । शुक्लाचार्यके पुत्र शण्ड और कमलने जब देख कि शिरण्यकशिपु तो मुँह लटकाकर बैठा हुआ है, तब उन्होंने एकजन्तमे जाकर उससे यह बात कही—॥ ४८ ॥ 'खामी । आपने कहेसे ही सीनों ओकोपर बिजय प्राप्त कर ली । आपके मूर्ख टेढ़ी करनेपर ही सारे लोकपाल कोप उठते हैं । हमारे देखनेमें तो आपके लिये किताकी कोई बात नहीं है । भय, बर्षोंके शिक्षाबर्षमें भी भगई-मुर्ख सोचनेकी कोई बात है ॥ ४९ ॥ जबतक हमारे पिता शुक्लाचार्यजी नहीं आ जाते, तबतक यह बरत नहीं माग न जाय । इसलिये इसे बहानेके पक्षोंमें बाँध रहिये । प्राय ऐसा होता है कि ब्रह्मजाकी बुद्धिके साथ-साथ और गुरुजनोकी सेवामें बुद्धि सुधर जाया करती है ॥ ५० ॥

शिरण्यकशिपुन 'अच्छा ठीक है' कहकर गुरु-पुत्रोंकी सम्झ गमन ली और कहा कि ऐसे उन धर्मोक्त उपदेश करना चाहिये, जिसका पालन गुरुस्य नरपति किया करते हैं ॥ ५१ ॥ बुद्धिश्च ! इसके बाद पुरोहित उन्हें समेत पाठशालामें गये और क्रमश धर्म, कर्ष और काम—इन तीन पुरुषार्थोंकी

१ मा पा —विद्वे । २ मा पा —धर्मो । ३ मा पा —धो । ४ मा पा —यो ।

* शूनशेष अर्थागर्तवा मेलका पुत्र था । उसे पिताने बचपके बड़ों बड़ि होनेके लिये हरिधर्मके पुत्र रोहितायके साथ बेष दिया था । तब उसके मामा विश्वामित्रजीने उसकी रक्षा की और वह अपने पितासे बिछड़ होकर शून्य विषयी विश्वामित्रजीसे ही शास्त्रमें हो गया । वह कथा आगे आकर स्कन्ध के साठवें अध्यायमें आयेगी ।

प्रह्लादोचत् राजन् प्रभितामनसाय च ॥५२॥

यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ।

न साधु मेने तच्छिष्यां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम् ॥५३॥

यदाऽऽचार्य परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु ।

वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहृतः कृतवृणैः ॥५४॥

अथ ताम् शृण्वया वाचा प्रस्थाहूय महाबुधः ।

उवाच विद्वांस्तभिष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥५५॥

ते तु सद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदा ।

बाला नद्विषयिणो द्वन्द्वारामेरितेहितैः ॥५६॥

पर्युपासत राजेन्द्र तन्यस्तद्वदयेक्षणा ।

तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुर ॥५७॥

शिक्षा देने लगे । प्रह्लाद यहाँ अत्यन्त नम्र सेक्ककी मौति रहते थे ॥ ५२ ॥ परन्तु गुरुओंकी वह शिक्षा प्रह्लादको अच्छी न लगी । क्योंकि गुरुजी उन्हें केवल कर्म, धर्म और कामकी ही शिक्षा देते थे । यह शिक्षा केवल उन लोगोंके लिये है, जो राग-द्वेष आदि द्वन्द्व और निरय-भोगोंमें रस ले रहे हों ॥ ५३ ॥ एक दिन गुरुजी गृहस्थीक क्रमसे कहीं बाहर चले गये थे । छुड़ी भिन्न जानेके कारण सम्भवतः बालकोंमें प्रह्लादजीको खेचनेके लिये पुकारा ॥ ५४ ॥ प्रह्लादजी परम जानी थे, उनका प्रेम देखकर उन्होंने उन बालकोंको ही बन्धी मधुर वाणीसे पुकारकर अपन पास बुला लिया । उससे उनके धर्म-मरणकी गति भी छिपी नहीं थी । उनपर लूया करके हँसते हुए-से उन्हें उपदेश करने लगे ॥ ५५ ॥ युचिष्ठिर ! वे सब अभी बालक हैं । ये, इसलिये राग-द्वेषपरायण निरय भोगी पुरुषोंके उपदेशोंसे और चेष्टाओंमें उनकी बुद्धि अभी दूषित नहीं हुई थी । इसीसे, और प्रह्लादजीके प्रति आदर-सुद्धि होनेसे उन सबमें अपनी खिल-झूदकी सामर्थ्योंको छेड़ दिया तथा प्रह्लादजीके पास जाकर उनके चारों ओर बैठ गये और उनके उपदेशमें मन लगाकर बड़े प्रेमसे एकटक उनकी ओर देखने लगे । भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त प्रह्लादका हृदय उनके प्रति करुणा और मैत्रीके भावसे भर गया तथा वे उनसे कहने लगे ॥ ५६ ५७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे

प्रह्लादानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पष्ठोऽध्यायः

प्रह्लादजीका असुर-बालकोंको उपदेश

प्रह्लाद उवाच

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।

प्रह्लादजीने कहा—मित्रो ! इस संसारमें अनुपपन्न-जन्म बड़ा दुस्तर है । इसका हार अभिनाशी परमात्माकी प्राप्ति ही संकली है । परन्तु पता नहीं

१ मा पा — विषयो । २ मा पा — शिव । ३ मा पा — दूषिते । ४ माधीन प्रतिमें प्रह्लादक वाक्यमें 'कोय्म' आचरेत्प्राज्ञो इव कोय्मके परस्ते पाँच श्लोक और अधिक हैं । वे पाँच श्लोक भागवतके विष्णुत

दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्याप्नुवमर्षदम् ॥ १ ॥

यथा हि पुरुषम्येह विष्णो पादोपसर्पणम् ।

यदेव सर्वभूतानां प्रिय आत्मेध्वर सुहृत् ॥ २ ॥

सुखमैन्द्रियक दैत्या दहयोगेन देहिनाम् ।

सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःस्वमयस्नतः ॥ ३ ॥

तत्प्रयामो न कर्तव्यो यत् आयुर्व्ययं परम् ।

न तथा बिन्दत क्षेम मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४ ॥

तदा यदेत कुञ्चलः क्षेमाय भयमाश्रितः ।

शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥ ५ ॥

पुंसा वषद्यत क्षापुस्तदद्य चात्रितात्मनः ।

निष्फलं यत्सौ रात्र्यां श्येतऽर्घं प्रापितस्त्वम् ॥ ६ ॥

मुग्धस्य शाल्ये कीमारे क्रीडतो याति विद्वतिः ।

कत इसका अन्त हो जाय, इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको मुझपे या जपानीके भरोसे न रखकर भयपनमें ही भगवान्की प्राप्ति करानेवाले साधनोंका अनुष्ठान कर लेना चाहिये ॥ १ ॥ इस मनुष्य जन्ममें श्रीमद्भगवान्क चरणोंकी शरण लेना ही जीवनकी एकमात्र सफलता है । क्योंकि भगवान् समस्त प्राणियोंके स्वामी, सुख, प्रियतम और आत्मा हैं ॥ २ ॥ भाइयो ! इन्द्रियोंसे जो सुख भोगा जाता है, वह तो—जीव चाह जिस ध्येनिमें रहे—प्रारम्भक अनुसार सर्वत्र बैठे ही मिलता रहता है, जैसे बिना किसी प्रकारका प्रयत्न किये, निवारण करनेपर भी दुःख मिलता है ॥ ३ ॥ इसलिये सांसारिक सुखके उद्देश्यसे प्रयत्न करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । क्योंकि स्वयं भिखनेवाली वस्तुके लिये परिश्रम करना आयु और शक्तिको व्यर्थ गँवाना है । जो इनमें तरुण आते हैं, उन्हें भगवान्के परम कल्याण-स्वरूप चरणकमलोंकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ४ ॥ हमारे सिरपर अनेकों प्रकारके मय स्वार रहते हैं इसलिये यह शरीर—जो भगवत्प्राप्तिके लिये पर्याप्त है—अबलक रोग-शोकादिप्रसू होकर मृत्युके मुखमें नहीं धाज जाता, तभीतक बुद्धिमान् पुरुषको अपने कल्याण-के लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये ॥ ५ ॥ मनुष्यकी पूरी आयु सी बर्बक है । बिम्बोंने अपनी इन्द्रियेंसे बशमें नहीं कर लिया है उनकी आयुका बाधा बिस्त्रा तो यों ही बीज जाता है । क्योंकि वे एतमें और तमोगुण—अज्ञानसे प्रसू होकर सोते रहते हैं ॥ ६ ॥ बचपनमें उन्हें अपने हित-व्रक्षितका ज्ञान नहीं रहता, कुछ बड़े होनेपर कुमार-अवस्थामें वे स्वयं-कृदमें लग आते हैं । इस प्रकार बीज बर्बक

टीकाकार भीषिकवचनश्रीने भी माने हैं और उन्होंने उनपर टीका भी लिखी है । प्राचीन प्रतिका भेल कही-कही मरुपर और ललित होनेके कारण ये पौध आक शुद्ध रूपमें नहीं मिल जाय अतः उनको निबबन्धनकी टीकाके अनुसार छुट करके यदा उद्भूत किया जा रहा है—

एतन्मम मे गृणत यत्तु न सवन निबन्ध । बबन्धान् परवन मुतान् श्रीशङ्खा ना प्रतयव ॥
न पुन निबन्ध कदा अरमनोऽर्थे प्रियेविना । पुनरपि न प्रणुं बन्धनोऽर्थक्यत्वात् ॥
बहुभया न बहुदयान् मुक्तवशागनिद्रया । न बहुधन्यमं तस्य बन्धनं धन्यवचनः ॥
का शतुः क कल्पिका हि मित्रं नैव अरमनः । मरुत्तपि नके कि स्वादेहं तन्मिन्दारम् ॥
वा न दित्वायममममममं न्बन्धे वगा । पुन श्रीश्रीशङ्खेनु स मुक्तव्याऽनिरुक्तम् ॥

जरया प्रसदहस्य यात्यकल्पस्य विवसतिः ॥ ७ ॥

दुरापूरेण कामेन मोहन च बलीयसा ।

श्रेयं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥ ८ ॥

को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ।

स्नेहपाशैर्दुर्धर्षद्विमुत्सह्य विमोचितुम् ॥ ९ ॥

को न्वर्धवृष्णां विसृजेत् प्राणम्योऽपि य ईप्सितः ।

यं क्रीणात्यमुभिः प्रेष्टैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥ १० ॥

कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः

सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान् ।

सहस्यं च स्नेहसितः शिशूनां

कलाधराणामनुरक्तचिचः ॥ ११ ॥

पुत्रान्संरन्ता दुर्हितदुर्दय्या

ध्रातुन् स्वमर्वा पितरौ च दीनौ ।

गृहात् मनोमोह्यपरिच्छदांश्च

वृत्तींश्च दुन्या पशुमृत्यवगान् ॥ १२ ॥

त्यजेत् कथं शस्त्रदिवेहमान

कर्माणि लोभाद्विद्वत्सकाम ।

औपरिध्यर्धद्वयं बहु मन्यमानः

कथं विरन्येत दुरन्तमाह ॥ १३ ॥

कुटुम्बपापाय विपन् नित्रायु

न पुन्यतेऽर्थं विद्वत् प्रमत्त ।

तो पता ही नहीं चलता । जब युद्धापा शरीरको प्रम
लेता है, तब जन्तुके भीस वशमें कुछ करने-धरनेकी
शक्ति ही नहीं रह जाती ॥ ७ ॥ रह गयी भीषकी
कुछ थोड़ी-सी आयु । उसमें कमी न पूरी होनेवाली
बड़ी-बड़ी काममार्य हैं, बलात् पकड़ रखनेवाला मोह
है और घर-द्वारकी वह आसक्ति है, जिससे नीत्र
इतना उत्पन्न जाता है कि उसे कुछ कर्तव्य-अफलभ्यक्त
ज्ञान ही नहीं रहता । इस प्रकार बची-बूची आयु
भी हाथसे निकल जाती है ॥ ८ ॥

दैत्यबालको । जिसकी इन्द्रियों बशमें नहीं है, ऐसा
कौन-सा पुरुष होगा, जो घर-गृहस्त्रीमें आसक्त और
माया-ममताकी मग्नबूत फौसीमें फँस हुए अपने-आपको
उससे छुड़ानेका साहस कर सके ॥ ९ ॥ जिसे चोर,
सेवक एवं व्यापारी अपने अत्यन्त प्यारे प्राणीकी भी
बाजी लगाकर संग्रह करते हैं और इसलिये उन्हें जो
प्राणोंसे भी अधिक वाञ्छनीय है—उस धनकी वृष्णा
को मक्का, कौन त्याग सकता है ॥ १० ॥ जो अपनी
प्रियता पत्नीके एकान्त सहवास, उसकी प्रमत्त बातों
और मीठी-मीठी सलाहपर अपनेको निष्ठाकर कर चुका है,
माह-बन्धु और मित्रोंके स्नेह-प्राशनें बँच चुका है और
मन्दे-मन्दे शिशुओंकी तोत्तवी बालीपर सुभा चुका है—
मत्वा, वह उन्हें कैसे छोड़ सकता है ॥ ११ ॥ जो
अपनी समुदाय गयी हुई प्रिय पुत्रियों, पुत्रों, माह-बन्धुनों
और दीन अवस्थाको प्राप्त पिता-माता, बहुत-सी सुन्दर
सुन्दर बहुमूल्य सामग्रियोंसे सजे हुए घरों, कुत्तर-प्ररागत
जीविकार्थ माधनों तथा पशुओं और मेवकोंके निरन्तर
स्मरणमें रम गया है, वह मत्वा, उन्हें कैसे छोड़ सकता
है ॥ १२ ॥ जो जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रियके सुखोंका
ही सत्त्व मान बैठा है, जिसकी भोगशामनार्थ कमी नृत्त
महीं होती, जो लभ्यता कर्म-पर-कर्म करता हुआ देश-
के कीड़की तरह अपनेका और भी कुछ बन्धनमें
जकड़ता जा रहा है और जिसके मोहकी कोई सीमा
महीं है—वह उनसे जिस प्रकार बिरल हो सकता
है और कैसे उनका त्याग कर सकता है ॥ १३ ॥

यह भरा कुटुम्ब है, इस भावसे उसमें वह इतना रम
जाया है कि उमीके पात्रन-योगक गिये अपनी अमूल्य
आयुका गँगा देना है और उसे यह भी नहीं जान पड़ता

दैत्यपुत्रा उवाच :

प्रहादत्वं वयं चापि नर्तेऽन्यनिधदे गुरुम् ।

एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि द्वीभरौ ॥ २९ ॥

बालस्यान्तःपुरस्यस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः ।

छिन्धि नः संशय मौम्यस्यान्धेद्विभ्रमकारणम् ॥ ३० ॥

महाराजकी के सहपाठियों में पूछ्य — महाराजी ! हम

दोनों गुरु-पुत्रोंको छोड़कर और किसी गुरुके तो न तुम
मानते हो और न हम । ये ही हम सब वान्मनोंके सरल
हैं ॥ २९ ॥ तुम एक तो अभी छोटी बालाके दो
और दूसरे, जन्मसे ही महलमें अपनी माँके पास रहे
हो । तुम्हारा महारानी नारदजीसे मिथ्या कुछ बसतवस
मान पड़ता है । प्रियकर ! यदि इस क्रिममें विफल
दिखानेवाली कोई बात हो तो तुम उसे कहकर हमसे

छाड़ा मित्र दो ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे

प्रहादानुर्चरिते पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

महाराजकी द्वारा माताके गर्भमें प्राप्त हुए नारदजीके अपव्यवस्था वर्णन

नारद उवाच

एवं दैत्यसुते पृष्ठो महाभागवताऽसुर ।

उवाच क्षयमानस्तान्सरन् मदनुभाषितम् ॥ १ ॥

प्रहाद उवाच

पितरि प्रस्मितऽस्माकं तपसे मन्दराचलम् ।

युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवाप्रति ॥ २ ॥

पिपीलिर्बहिरिव न्निष्टया लोकापतापनः ।

पापन पापाऽभघ्नीतिवाग्निना वासबादयः ॥ ३ ॥

तेषामतिबलोद्यमं निवृत्त्यासुरयुद्धपाः ।

वन्धमाना सुरभीता दुक्षु मर्वतादिक्षु ॥ ४ ॥

फलप्रपुत्रमिश्रास्तान्गृहान्यशुपरिच्छदान् ।

नाबधमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ ५ ॥

न्यनुम्पन् राक्षगिविरममरा औषकाङ्गिण ।

इन्द्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम प्राग्रहीत् ॥ ६ ॥

नारदजी कहते हैं—पुष्टिष्टिर ! जब दैत्यबालकोंने

इस प्रकार प्रज्ञा किया, तब मगवान्के परम प्रेमी भग
प्रहादजीको मेरी बातका स्मरण हो आया । कुछ
मुसकृताते हुए उन्होंने उनसे कहा ॥ १ ॥

प्रहादजीने कहा—जब हमारे पिताजी तपस्व
करनेके लिये मन्दराचलपर चले गये, तब इन्द्रादि
देवताओंन दासबोसे युद्ध करनेका बहुत बड़ा उत्तेज
रिया ॥ २ ॥ वे इस प्रकार करने लगे कि जैसे घीपिणों
सौंको ज्वाला बली हैं, वैसेही भोगोंको सतानेवाले पापी
दिरण्यकशिपुको उसका पाप ही खा गया ॥ ३ ॥ जब
दैत्यसेनापतियोंका देवताओंकी भरी तैयारीका पता चला,
तब उनका साहस जाग उठा । वे उनका सामना नहीं
कर सक । मार खाकर, ली, पुत्र मित्र, गुरुजन, महल,
पुत्र और साम-सामानकी कुछ भी चिन्ता न करके वे
जान प्राण बचानके लिये बड़ी बन्नीमें सब के-सब शरण
उभर भाग गये ॥ ४ ॥ अपनी भीन चाहनवासे देवताओंने
राजमहलमें छुट-छुटोत मचा दी । यहोतक कि इन्द्रने
राजराणी भी माता ययाधुकी भी बन्नी बना दिया ॥ ५ ॥

नीयमानां भयोद्भिनां रुदतीं कुरीमिव ।

यश्छयाऽऽगतस्तत्र देवर्षिर्दृष्टो पथि ॥ ७ ॥

प्राह मैनां सुरपते नेतुमहंस्वनागसम् ।

मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥ ८ ॥

इन्द्र उवाच

आस्तेऽस्या बठरं वीर्यमविपदां सुरद्विप ।

आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्धपदवीं गतः ॥ ९ ॥

नारद उवाच

अथ निष्क्रिन्विपः साक्षान्महाभागवतो महान् ।

त्वया न प्राप्तवते संन्यामनन्तानुचरो षठी ॥ १० ॥

इत्युक्तानां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः ।

अनन्तप्रियमक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥

सतो नो मातरमृषिः समानीय निजाधमम् ।

आश्वात्सेहोप्यतां वत्से यावत्से भर्तुरागम ॥ १२ ॥

तथेत्पश्चात्सीद् देवर्षेरन्ति साप्पकुतोभया ।

यावद् दैत्यपतिर्चोराद् तपसो न न्यवतत ॥ १३ ॥

श्रुतिं पर्यधत् तत्र भक्त्या परमया सती ।

अन्तर्वल्ती न्यगमस्य क्षेमायन्काप्रसूतये ॥ १४ ॥

अपिः कारुणिकस्तस्याः प्रादोभयमीश्वरः ।

धमस्य तर्षं ज्ञानं च मामप्युद्दिष्य निर्मलम् ॥ १५ ॥

मेरी मा मयसे घबराकर कुरी पक्षीकी मौति रो रही थी और इन्द्र ससे बछाट् छिये जा रह थे । दैत्यराज देवर्षि मारद उबर आ निकले और उन्होंने मागमें मेरी माको देख लिया ॥ ७ ॥ उन्होंने कहा—

‘देवराज ! यह मिरपराध है । इसे ले नाना ठचित नहीं । महाभाग ! इस सनी-साध्वी परनागीका तिरस्कार मत करो । इसे छोड़ दो, तुरंत छोड़ दो !’ ॥ ८ ॥

इन्द्रने कहा—इसके पेटमें देवप्रोही हिरण्यकशिपुका अल्पत प्रभावशाखी बीज है । प्रसवपयन्त यह मेरे पास रहे, बाळक हो जानेपर उसे मारकर मैं इसे छाड़ दूँगा ॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—‘इसके गर्भमें भगवान्का साक्षात् परमप्रेमी भक्त और सेवक, अल्पत बन्धी और निष्ठाप गृहारा है । तुममें उसको मारनेकी शक्ति नहीं है’ ॥ १० ॥

देवर्षि नारदकी यह बात सुनकर उसका सम्मान करते हुए इन्द्रने मेरी माताको छोड़ दिया । और फिर इसके गर्भमें भगवद्भक्त है, इत भावसे उन्होंने मेरी माताकी प्रदक्षिणा की तथा अपने ओझमें चले गये ॥ ११ ॥

इसके बाद देवर्षि नारदजी मेरी माताको अपने आश्रमपर लिया गये और उसे समझा-मुझाकर कहा कि—‘कैनी ! जबतक तुम्हारा पति तपस्या करके जैटे, तबतक तुम यहीं रहो’ ॥ १२ ॥ जा आइया’ कहकर वह निमगणासे देवर्षि नारदके आश्रमपर गयी रहन लगी और तबतक रही, जबतक मेरे पिता और तपस्यासे जैटकर नहीं आये ॥ १३ ॥ मेरी गर्भवती माया मुझ गमस्य शिशुकी मल्लकामनासे और इच्छित समयपर (अर्थात् मेरे पिताके जैटनेके बाद) सन्तान उत्पन्न करनेकी कामनासे बड़े प्रेम तथा भक्तिक साथ नारद जीकी सेवा-शुश्रूषा करती रही ॥ १४ ॥

देवर्षि नारदजी बड़ दयालु और सर्वसमर्थ हैं । उन्होंने मेरी मौको भगवन्तर्षमका रहस्य और विशुद्ध ज्ञान दोनोंका उपदेष्टा दिया । उपदेष्टा करते समय उनकी दृष्टि मुझपर भी थी ॥ १५ ॥

१ मा पा — वृत्त । २ मा पा — परिग्रह । ३ मा पा — दृष्टि के लाकुटी । ४ मा पा — रादम ।

सर्वत्र वाप्ययदुःखिसात्मा
निर्विघटे न स्वकुटुम्बरामः ॥१४॥
विशेषु नित्यामिनिविष्टयेता
विद्वांस वापं परविघटहर्तुः ।
श्रेयस्यैवाध्याप्यवितेन्द्रियस्त-
द्विद्वान्तकामो हरते कुटुम्बो ॥१५॥
विद्वानपीतृष्वं दनुजाः कुटुम्बं
पुष्पान्खलोकान्न न कल्पते वै ।
यः स्त्रीपारक्यविभिन्नभावं
स्तमः प्रपद्यत यथा विमूढः ॥१६॥
यतो न कश्चित् क्व च कुत्रापि वा
हीनः स्वमात्मानमर्त्तं समर्थः ।
विमोषित्व कामध्यां विहार
क्रीडामृगो बभ्रिगवो विसर्गः ॥१७॥
ततो विद्व्रात् परिहृत्य दैत्या
दैत्येषु सङ्गं विपयात्मकेषु ।
उपत नागायन्यादिदैव
सं मुक्तसङ्गेरिवितोऽपवगः ॥१८॥

न क्षब्धुर्तं ग्रीवयतो बह्वाभासोऽसुरात्मजाः ।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥१९॥
परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्त्राभरादिषु ।
भौतिकेषु विहारेषु भूतैश्च महत्सु च ॥२०॥
गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तयोः ।
एक एव परो ब्राह्मा भगवानीश्वरोऽख्ययः ॥२१॥

किं मेरे जीवनका वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो रहा है। मला, इस प्रमादकी भी कोई सीमा है। यदि इन कमजोर कुछ कुछ दिखे तो भी एक बात है; परन्तु यहाँ तो बर्त-जहाँ बह जाता है, वहाँ-वहाँ दैहिक, दैहिक और मूर्खता ताप उसके हृदयको जलाने लगी रहते हैं। फिर भी ब्रह्म-का उदय नहीं होता। किन्तु निर्विघट है। कुटुम्बकी यमताके फेरमें पड़कर वह इतना बसाक्यान हो जाता है, उसका मन धनके चिन्तनमें सदा इतना लक्ष्मीय रहता है कि वह दूसरेका धन पुरानेके लैविक-पारमार्थिक दोषोंका जानता हुआ भी कामनाओंको बर्तमें न कर सकनेके कारण इन्द्रियोंके भोगकी लालसासे बेचरी कर ही बैठता है ॥ १४ १५ ॥ याहो! जो इस प्रकार अपने कुटुम्बियोंके पेट पालनेमें ही लगा रहता है—कभी भगवद्भजन नहीं करता—वह विद्वान् हो, तो भी उसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि अपने पदपेक्ष केद-भाव रहनेके कारण उसे भी ब्रह्मनिर्णयके समान ॥ तम प्रधान गति प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ जो ब्रह्मनिर्णयके सन्तोखनका सामान—उनका हीरास्ता बन गया है और जिसने अपने पेटमें संतानकी बेसी नकल की है, वह बेचार गरीब—चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो—किस्ती भी प्रकारसे अपना उद्धार नहीं कर सकता ॥१७॥ इसलिये, भाइयो! तुमलोग विषयसंग दैव्योंका सङ्ग दूरसे ही छोड़ दो और आदिदेव भगवान् नाशयणकी शरण लक्षण करो। क्योंकि जिन्होंने संसार की आसक्ति छोड़ दी है, उन महात्माओंके वै ही परम प्रियतम और परम गति हैं ॥ १८ ॥

मित्रो! भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये कोई बहुत परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता। क्योंकि वे समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ताके रूपमें लयसिद्ध नष्ट हैं ॥ १९ ॥ कदासे लेकर दिनकेतक छन्दे-कदे समस्त प्राणियोंमें, पद्मभूतोंसे बनी हुई नष्ट-भूतोंमें, पद्मभूतोंमें, सृष्टि सम्पत्ताओंमें, मष्टलक्षोंमें, तीनों गुणोंमें और गुणोंकी साम्यावस्था प्रकृतिमें एक ही ब्रह्मिणी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौन्दर्य, भाव्य और ऐश्वर्योक्ति जान हैं ॥ २० २१ ॥

नीयमानां भयोद्भिन्नां स्मृतीं क्षुरीमिव ।

यद्वृक्षयाऽऽगतस्तत्र देवर्षिर्दृष्टो पथि ॥ ७ ॥

प्राह यैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ।

शुभ्र शुभ्र महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥ ८ ॥

इदं उवाच

आस्तेऽस्या अठरे वीर्यमविपन्नं सुरदिप ।

आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्धपदवीं गतः ॥ ९ ॥

नारद उवाच

अयं निष्क्रिस्त्रिपः साक्षाद्महाभागवतो महान् ।

॥ न प्राप्स्यते संसामनन्तानुचरो वली ॥ १० ॥

कृत्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वच ।

न्वप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥

१ नो मातरमुपिः समानीय निजाश्रमम् ।

श्वास्त्येहोप्यतां बत्से यावत्ते भर्तुरागम ॥ १२ ॥

प्रेत्यवात्सीद् देवर्षेरेन्ति साप्यकुतोभया ।

।वद् दैत्यपतिर्वोरात् तपसो न न्यवर्षत ॥ १३ ॥

।पिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती ।

न्वर्बली स्वगर्मस्य धेमायेच्छाप्रसूतये ॥ १४ ॥

वपिः कारुणिकस्तस्याः प्रार्त्तादुभयमीश्वरः ।

मिस्य तर्षं शानं च मामप्युद्दिष्य निर्मलम् ॥ १५ ॥

मेरी मा मयसे भवराकर बुरी पक्षीकी मौलि रो रही थी और इन्द्र उसे बछाव लिये जा रहे थे । दैववश देवर्षि नारद उधर आ निकले और उन्होंने मागमें मेरी माको देख लिया ॥ ७ ॥ उन्होंने कहा—
‘देवराज ! यह निरपराध है । इसे ले जाना उचित नहीं । महाभाग ! इस सती-साक्षी परनारीका तिरस्कार मत करो । इसे छोड़ दो, तुरंत छोड़ दो !’ ॥ ८ ॥

इन्द्रने कहा—‘इसके पेटमें देवदोही हिरण्यकशिपुका कल्पित प्रभावशाली बीज है । प्रसवपयन्त यह मेरे पास रहे, बालक हो जानेपर उसे मारकर मैं इसे छोड़ दूँगा ॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—‘इसके गर्भमें भगवान्का साक्षात् परमप्रीमी मूक और सेवक, अत्यन्त बनी और निष्ठाप भहारण है । तुममें उसको मारनेकी शक्ति नहीं है’ ॥ १० ॥
देवर्षि नारदकी यह बात सुनकर उत्कृष्ट सम्मान करते हुए इन्द्रने मेरी माताको छोड़ दिया । और फिर इसके गर्भमें भगवद्भक्त है, इत वावसे उन्होंने मेरी माताकी प्रदक्षिणा की तथा अपने जोड़में चले गये ॥ ११ ॥

इसके बाद देवर्षि नारदजी मेरी माताको अपने आश्रमपर लिया गये और उसे समझा-बुझाकर कहा कि—‘बेटी ! जबतक तुम्हारा पति तपस्या करके जीटे, तबतक तुम यहीं रहो ॥ १२ ॥ ‘जो आइया’ कहकर वह निर्मलतासे देवर्षि नारदके आश्रमपर ही रहने लगी और तबतक रही, जबतक मेरे पिता केर तपस्यासे जीटकर नहीं आये ॥ १३ ॥ मेरी गमबती माता मुझ गमल शिषुकी मङ्गलकामनासे और इच्छित समस्पर (अर्थात् मेरे पिताके जीटनेके बाद) सन्ताप तत्पन्न करनेकी कामनासे बड़े प्रेम तथा भक्तिक साथ नारद जीकी सेवा-शुश्रूषा करती रही ॥ १४ ॥

देवर्षि नारदजी बड़े दयालु और सर्वसमर्थ हैं । उन्होंने मेरी मौको भगवन्धर्मकर रहस्य और विष्णु ज्ञान दोनोंका उपदेश दिया । उपदेश करते समय उनकी दृष्टि मुझपर भी थी ॥ १५ ॥

१ मा पा—होम । २ मा पा—परिक्रम्य । ३ मा पा—उत्तिके शकुतो । ४ मा पा—

प्रसम ।

अ ७ अ १ १०२—

दैत्यपुत्रा ऊचुः ।

प्रहादस्व नयं खापि नर्तेऽन्यविग्रहे गुरुम् ।

एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीभरौ ॥ १९ ॥

बालस्यान्तःपुरमस्य महत्सङ्गो दुरन्धरा ।

छिन्विनः संशयसौम्यस्तावद्विभ्रमकारणम् ॥ ३० ॥

महादजीके सहपाठियोंने पूछा—महादजी ! हम दोनों गुरु-पुत्रोंको छोड़कर और किसी गुरुको देखना चाहते हैं और न हम । ये ही हम सब वांछित हैं ॥ २० ॥ तुम एक तो हमी छोटी बालक हैं और दूसरे, जन्मसे ही महत्त्वमें अपनी माँके पास हैं । तुम्हारा महात्मा नारदजीसे मिलना कुछ कष्टमय मान पड़ता है । प्रियवर ! यदि इस विमले निज दिव्यनेत्रोंमें कोई बात हो तो तुम उसे कहकर हम

शङ्का मिटि दो ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
प्रहादानुर्चरति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

महादजी द्वारा माताके गर्भमें प्राप्त हुए नारदजीके उपदेशका धर्मन
नारद उवाच

एष दैत्यसुतैः पृथो महाभागवताऽसुरः ।

उवाच सप्तमानस्तान्स्मरन् मदमुभाषितम् ॥ १ ॥

प्रहाद उवाच

पितरि प्रसितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम् ।

युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विशुभा दानवान्प्रसि ॥ २ ॥

पिपीठिकैरहिरिब दिष्टया ओक्षेपसाधनः ।

पापेन पापोऽभधीतिबाधिनो वासवादयः ॥ ३ ॥

तेषामतिबलाघागं निशम्यासुरयूदधाः ।

वप्यमानाः सुरभीता दुष्टेषु सर्वतादिभ्यम् ॥ ४ ॥

कलत्रपुत्रमित्रास्तान्पृहन्पशुपरिच्छदान् ।

नाभेष्टमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवाः ॥ ५ ॥

ज्येष्ठम्पन् राजशिविरममरा जैयकक्षिणः ।

इन्द्रस्तु राजमहिषी मातरं मम चाग्रहीत् ॥ ६ ॥

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! जब दैत्योंने इस प्रकार प्रसन्न किया, तब मगवान्के परम प्रेक्षक प्रहादजीकी मेरी बातका स्मरण हो गया । प्रहादजीने मुझको कहते हुए उम्होंने उनसे कहा ॥ १ ॥

महादजीने कहा—जब हमारे पिताजी उत्तरेके लिये मन्दराचलपर चले गये, तब हमी देवताओंने दानवोंसे युद्ध करनेका बहुत बड़ा उद्योग किया ॥ २ ॥ वे इस प्रकार कहने लगे कि वेते पर्वतोंकी सौंपको बाट जाती हैं, वेसही लोगोंको स्तम्भनेकी शिरणक्षतिपुक्तो उसका पाप ही खा गया ॥ ३ ॥ दैत्योंने पापियोंको देवताओंकी धारी तैयारीका पत्र भेजा तब हमका सम्बन्ध जाता रहा । वे हमका समना कर सके । मार खाकर, स्त्री, पुत्र मित्र, पुत्रन, पशु और मान-सामानकी कुछ भी किता व क्षणोंमें प्राण बचानेके लिये बड़ी अन्धमे सबके-सबके सघर भाग गये ॥ ४ ॥ अपनी वीरतासे वेते राजमहलमें छत्र-संघट्ट मचा दी । पक्षीक क्षिण राजरानी मेरी माता कन्याधृक्की भी बन्दी बना लिया ॥ ५ ॥

मुद्राङ्गीकरण स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ।

ता येनेवानुभूयन्ते सोऽप्यस्यः पुरुषः पर ॥२५॥

एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तेषु बुद्धिमेतैः क्रियोद्भवैः ।

स्वरूपमात्मनो बुभुक्षेव गन्धैर्वामिषान्वयात् ॥२६॥

एतद्बुद्ध्या हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः ।

अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुनः स्वप्न इवेत्यते ॥२७॥

तस्मान्नवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ।

बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥२८॥

तत्रोपायसहस्राणामप्य मगवतोदितः ।

यदीश्वरे भगवति यथा यैरज्ञसा रतिः ॥२९॥

गुरुश्रुत्वा भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ।

सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥३०॥

भद्रया तत्कथायां च कीर्तनेर्गुणकर्मणाम् ।

वत्पादाम्बुरुहप्यानात् तच्छिन्नेष्टार्हाणादिभिः ॥३१॥

हरिं सर्वेषु मूर्तेषु भगवानास्त ईश्वरः ।

इति मृतानि मनसा कर्मैस्तैः साधु मानयेत् ॥३२॥

एवं निर्द्विषपद्वर्गैः क्रियत भक्तिरीश्वरे ।

वासुदेवे भगवति यथा संलभते रतिम् ॥३३॥

आप्तः, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीनों बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं । इन वृत्तियोंका जिसके द्वारा अनुभव होता है—वही सबसे अतीव, सबका साक्षी परमात्मा है ॥२५॥ जैसे गन्धसे उसके आधय वायुका ज्ञान होता है, वैसे ही बुद्धिकी इन कमग्रन्थ एवं बदरुनेशायी तीनों अवस्थाओंका द्वारा इनमें साक्षी-रूपसे अनुगत आत्माको जाने ॥ २६ ॥ गुणों और कर्मोंके कारण होनेवाला जन्म-मृत्युका यह चक्र आत्मा को शरीर और प्रवृत्तिसे धृष्ट न करनेके कारण ही है । यह अज्ञानमूलक एवं क्रिया है । फिर भी स्वप्नके समान जीवको इसकी प्रतीति हो रही है ॥ २७ ॥

इसलिये तुमयोगीको सबसे पहले इन गुणोंके अनुसार होनेवाले कर्मोंका बीज ही नष्ट कर देना चाहिये । इससे बुद्धि-वृत्तियोंका प्रवाह निवृत्त हो जाता है । इसीको बुरे शब्दोंमें योग या परमात्मासे मिट्टन कहते हैं ॥२८॥ यों तो इन त्रिगुणात्मक कर्मोंकी जब उखाड़ फेंकनेके लिये कथना बुद्धि-वृत्तियोंका प्रवाह बन्द कर देनेके लिये सहजों साधन हैं; परन्तु जिस उपायसे और जैसे सर्व शक्तिमान् भगवान्में सामाजिक निष्कलम प्रेम हो जाय, वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है । यह बात सर्व भगवान्में कही है ॥२९॥ गुरुकी प्रेमपूर्वक सेवा, अपनेको ओ कुछ मिले वह सब प्रेमसे भगवान्को समर्पित कर देना, भगवतोपेयी महारमाओंका स्तुति, भगवान्की आराधना, उनके कथा-वातोंमें ब्रह्मा, उनके गुण और लीलाओंका कीर्तन, उनके चरणकमलोंका ध्यान और उनके मन्दिर मूर्ति आदिका दर्शन-श्रवण आदि साधनोंसे भगवान्में सामाजिक प्रेम हो जाता है ॥ ३० ३१ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियोंमें विराजमान हैं—ऐसी भावनासे यथाशक्ति सभी प्राणियोंकी इष्टा पूर्ण करे और हृदयसे उनके सम्मान करे ॥ ३२ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मसर—इन छ शत्रुजनोंपर विजय प्राप्त करके आ जाग इस प्रकार भगवान्की साधन-भक्तिकर अनुष्ठान करते हैं, उन्हें उस भक्तिक द्वारा भगवान् श्रीहृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेमकी प्राप्ति हो जानी है ॥३३॥

तनु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वा मातुस्तिरोदधे ।

श्रुतिगानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः ॥१६॥

भवतामपि भूयान्मे यदि ब्रह्मते बचः ।

वैशारदी धाः भद्रातः स्त्रोशालानां च मे यथा ॥१७॥

जन्माद्याः पठिये भाषा दृष्टादृश्य नात्मनः ।

फलानामिव ब्रह्मस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥१८॥

आत्मानिस्त्वोऽन्यस्य शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ।

अधिक्रियः स्वहृन् हेतुर्न्यापकोऽसङ्गयनाहृत ॥१९॥

एतैर्द्रदिश्वभिर्विज्ञानात्मनो लक्षणैः परैः ।

अहं ममेत्यसङ्गात् देहादौ मोहस्य त्यजेत् ॥२०॥

स्वर्गं यथा ग्रावसु हेमकरः

क्षेत्रेषु योगैन्तदभिज्ञ आप्नुयात् ।

क्षेत्रेषु दहेषु तथाऽऽत्मयोगै

रण्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत् ॥२१॥

अथै प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्वगुणाः ।

विकाराः पाठशाचार्यै पुमानेकः समन्वयात् ॥२२॥

दृष्टस्तु सर्वसंघाता जगत् तस्मिन्निष्ठि शिष्या ।

अथव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत् स्पजन् ॥२३॥

अन्वयमप्यतिरक्षणं विवेकेनोद्यताऽऽत्मना ।

समन्वानसमानार्थविमृशद्विरमत्त्वं ॥२४॥

बहुत समय भीत मानेके कारण और भी जानेके कारण
भी मेरी माताको तो जब उस ज्ञानकी स्मृति नहीं
रही, परंतु देवर्षिकी विशेष कृपा होनेके कारण
मुझे उसकी विस्मृति नहीं हुई ॥ १६ ॥ यदि हममें
मेरी इस बातपर अज्ञा करा तो तुम्हें भी वह ज्ञान हो
सकता है । क्योंकि श्रद्धासे जो और भावकोंकी मुक्ति
भी मेरे ही समान शुद्ध हो सकती है ॥ १७ ॥ जैसे
ईश्वरमूर्ति कालकी प्रेरणासे ब्रह्मोंके फल लगते, उठते, बहते,
पकते, क्षीण होते और नष्ट हो जाते हैं—जैसे ही जन्म,
अखिरकी अनुमति, बुद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश
—ये छ भाव-विकार शरीरमें ही देखे जाते हैं, आत्म-
से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ १८ ॥ आत्मा निष्क,
अविनाशी, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, सर्व
प्रकृष्टा, सबका कारण, व्यापक, असङ्ग तथा अनाश-
रहित है ॥ १९ ॥ ये बारह आत्माके उत्कृष्ट वस्तु हैं ।
इनके द्वारा आत्मतत्त्वको जाननेवाले पुरुषको बाह्ये
कि शरीर आदिमें ब्रह्मानेके कारण जो 'मैं' और 'मेरे'
का कुछ भाव हो रहा है, उसे छोड़ दे ॥ २० ॥ किंतु
प्रकार सुवर्णकी खानोंमें पत्थरमें मिले हुए सुवर्णको उसके
विकृतवनेकी विधि जाननेवाला स्वर्णकर्तृ इन विधियोंसे
उसे प्राप्त कर लेता है, जैसे ही अन्वयतत्त्वको जानने
वाला पुरुष आत्मप्राप्तिके उपायोंद्वारा अपने स्वरूप
क्षेत्रमें ही ब्रह्मपदका साक्षात्कार कर लेता है ॥ २१ ॥

आचार्योंने पूरे प्रकृति महत्त्व, ब्रह्मद्वार और अन्व-
यतत्वाचार्य—इन आठ तत्त्वोंको प्रकृति ब्रह्मण्य है ।
उनका तीन गुण हैं—सत्य, रज और तम तथा उनके
विकार हैं सोलह—दस इन्द्रियों, एक मन और पञ्च
महाभूत । इन सबमें एक पुरुषतत्त्व अनुगत है ॥ २२ ॥
इन सबका समुदाय ही देह है । यह दो प्रकृतियाँ हैं
—स्वावर और अज्ञम । इसीमें अन्तःकरण, इन्द्रिय
आदि अनात्मवस्तुओंका 'यह' आत्मा नहीं है—एक
प्रकार बाध करते हुए आत्माको ईदना बाधिये ॥ २३ ॥
आत्मा सबमें अनुगत है परन्तु है वह सबसे पृथक् ।
इस प्रकार शुद्ध बुद्धिसे धीरे धीरे ससारकी लालच,
स्मृति और उसके प्रभुपर विचार करना
बाधिये । उदात्तकी नहीं करनी बाधिये ॥ २४ ॥

पुद्गलागारणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ।

ता येनैवानुभूयन्त सोऽप्यश्चः पुरुषः पर ॥२५॥

एभिस्त्रिवर्णः पर्यस्तेषु बुद्धिमेदेः क्रियोद्भवैः ।

स्वरूपमात्मना बुभुयेद्बुधो वैश्वानुमिधान्वयात् ॥२६॥

एतद्बुद्ध्या हि संसारो गुणकर्मनिबन्धन ।

अज्ञानमूलोऽपायोंऽपि पुंसः स्वप्न इवेत्यते ॥२७॥

तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ।

बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥२८॥

तत्रोपायसहस्राणामप्य भगवतोदित ।

यदीश्वरे भगवति यथा वैरञ्जसा रतिः ॥२९॥

गुरुश्रुत्पया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ।

सङ्गेन साधुमत्तानामीश्वरात्तापनेन च ॥३०॥

भद्रया तत्कथायां च कीर्तनं गुणकर्मणाम् ।

तत्पादान्पुरुषस्यानाद्वल्लिङ्गैश्चाईणादिभिः ॥३१॥

हरिं सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त इश्वर ।

इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥३२॥

एवं निमित्तपद्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वर ।

वासुदेवे भगवति यथा सलभते रतिम् ॥३३॥

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीनों बुद्धि की वृत्तियाँ हैं । इन वृत्तियोंका जिसके द्वारा अनुभव होता है—वही सबसे अतीत, सबका साक्षी परमात्मा है ॥२५॥ जैसे गन्धसे उसके आश्रय वायुका ज्ञान होता है, वैसे ही बुद्धि की इन कमजन्य एवं बदन्वेषाशी तीनों अवस्थाओंका द्वारा इनमें साक्षी-रूपसे अनुगत आत्माको जाने ॥ २६ ॥ गुणों और कर्मोंके कारण होनेवाला जन्म-मृत्युका यह चक्र आत्मा को शरीर और प्रवृत्तिसे घृषक् न करनेके कारण ॥ है । यह अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है । फिर भी स्वप्नके समान जीवका इसकी प्रतीति हो रही है ॥ २७ ॥

इसलिये तुम लोगोंको सबसे पहले इन गुणोंके अनुसार होनेवाले कर्मोंका बीज ही नष्ट कर देना चाहिये । इससे बुद्धि-वृत्तियोंका प्रवाह निवृत्त ॥ जाता है । इसीको दूसरे शब्दोंमें योग या परमात्मसे मिश्रण कहते हैं ॥२८॥ यों तो इन त्रिगुणात्मक कर्मोंकी बड़ उखाड़ फेंकनेके लिये अथवा बुद्धि-वृत्तियोंका प्रवाह बंद कर देनेके लिये सबलों साधन हैं, परन्तु जिस उपायसे और जैसे सर्वशक्तिमान् भगवान्में सामागिक निष्कम प्रेम हो जाय, वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है । यह बात स्वयं भगवान् कहती है ॥ २९ ॥ गुरुकी प्रेमपूर्वक सेवा, अपनेका जो कुछ मिले वह सब प्रेमसे भगवान्को समर्पित कर देना, भगवत्प्रेमी महारमाओंका सम्पर्क, भगवान्की आराधना, उनके कथा-वाचनमें श्रद्धा, उनके गुण और लीलाओंका कीर्तन, उनके चरणकमलोंका स्पर्श और उनके मन्दिर मूर्ति आदिका दशन-श्रवण आदि साधनोंसे भगवान्में सामागिक प्रेम हो जाता है ॥ ३० ३१ ॥ सबशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियोंमें शिराजमान हैं—एसी भावनासे यथाशक्ति सभी प्राणियोंकी इच्छा पूर्ण करे और हृदयसे उनका सम्मान करे ॥ ३२ ॥ कर्म, क्रोध, मोह, मोह, मद और मासर—इन छ शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके जो लोग इस प्रकार भगवान्की साधन-भक्तिको अनुष्ठान करते हैं, उन्हें उस भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेमरी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३३ ॥

निश्चय्य कर्माणि गुणानतुल्यान्

वीर्याणि सीलावनुभिः कृतानि ।

यदातिहर्षोत्पुलकाभ्युदयः

प्रास्कण्ड्य चद्रापति गैति चृत्यति ॥३४॥

यदा ग्रहग्रस्त इव कपिद्वस्त

त्याक्रन्दते ध्यायति बन्दते जनम् ।

सुदुःखसन्वक्ति हरे जगत्पते

नारायणेत्यारममविर्गतप्रपः ॥३५॥

तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धन

लब्धत्वाभावानुकुताश्रयाकृतिः ।

निर्दग्धवीजानुप्राप्तो महीयसा

भक्तिप्रयागेण समेत्यधोक्षमम् ॥३६॥

अधोक्षबालम्भमिहांशुमात्मनः

क्षरीरिणः ससुतिचक्रघातनम् ।

तद् ब्रह्म निर्वाणमुलं विदुर्बुधा

स्ततो भजन्त इदम हरीश्वरम् ॥३७॥

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरे

रुपासने स्वे हवि छिद्रवत् सतः ।

स्वस्वार्मन सस्फुरन्नेषदेहिनां

सामान्यतः किं विपयोपपादनैः ॥३८॥

रायः फलत्रं पश्यः सुतादयो

गृहा मही छन्दरकोष्ठभूतयः ।

सर्वैर्धर्मकमाः क्षणमभ्युपयुपः

क्षुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रिय चलाः ॥३९॥

एवं हि लाक्षाः ऋतुभिः कृता अमी

धर्पिण्याः सातिशयान निर्मलाः ।

अब भगवान्‌के लीलाशरीरोसे किय हूए बहुत पराक्रम, उनके अनुपम गुण और चरित्रोंको प्रकाश करके अत्यन्त आनन्दके उद्रेकसे मनुष्यका रोम रोम स्थिर उठता है, बौद्धोंके मारे कण्ठ गद्गद हो जाता है और यह सद्बोध छोड़कर जोर जोरसे गाने-छिछाने और नाचने लगता है। निस समय यह ब्रह्मसत्ता पागलपड़ी उग्रह कमी होसता है, कमी करण कन्दन करने लगता है, कमी ध्यान करता है तो कमी भावनासे लोगोकी बन्दना करने लगता है, जब यह भावनामें ही तन्मय हो जाता है, बार-बार छड़ी सोंस खींचता है और सेकोब छोड़कर 'हरे ! जगत्पते ॥ नारायण ॥' कह कर पुकारने लगता है—तब भक्तियोगके प्रधान प्रमाणसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और मगधराजकी ही भगवना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार—मगधनग हो जाता है। उस समय उसके नम-मृत्युके बीजोंको खजाना ही बर जाता है और यह पुरुष श्रीमद्भागवतोंके प्राप्त कर लेता है ॥ ३४-३६ ॥ इस ब्रह्म संसारके दह-दहने बैठकर अश्रुमय हो जानेवाले जीवके लिये भगवान्‌की यह प्राप्ति संसारके चक्राको फिटा देनेवाली है। इसी वस्तुको कोई विद्वान् ब्रह्म और कोई निर्वाण-मुक्तके रूपमें पहचानते हैं। इसलिये मित्रो ! इन लोग अपने-अपने हृदयमें हृदयेकर भगवान्‌का भजन करो ॥ ३७ ॥ अक्षरकुमारो ! अपने हृदयमें ही अक्षर-के समान मित्र विराजमान भगवान्‌का भजन करनेमें कौन-सा विशेष परिश्रम है। वे समानरूपसे सम्पन्न प्राणियोंके अत्यन्त प्रेमी मित्र हैं, और तो क्या, अपने आत्मा ही हैं। उनको छोड़कर मोगसामग्री इकट्ठी करनेके लिये मटकना—राम ! राम ! कितनी मूर्खता है ॥ ३८ ॥ अरे यार्ह ! धन, ली, पशु, पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी, हामी, खजाना और भौतिक-भौतिकी विभूतियों—और तो क्या, संसारका समस्त भन तथा मोग-सामग्रियों इस क्षणमभ्युप मनुष्यको क्या कुछ दे सकती हैं। वे कार्य ही क्षणमभ्युप हैं ॥ ३९ ॥ जैसे इस लोककी सम्पत्ति प्रत्यक्ष ही नाशवान् है, वैसे ही पड़ोसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गनि लोक भी नाशवान् और आपेक्षिक—

तस्माद्वदधुतद्वर्णं

परं

भक्त्यैक्येण भजतात्मलब्धये ॥४०॥

यदध्यध्वेह कर्माणि विद्वन्मान्यसकुम्भरः ।

करोत्यतो विपर्यासममोर्धं विन्दते फलम् ॥४१॥

सुखाय दुःखमोक्षाय सहस्रव्य इह कर्मिणः ।

सदाऽऽप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥४२॥

कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूर्यः ।

स वै देहस्तु पारम्भो भङ्गुरो यास्युपैति च ॥४३॥

किमु न्यवहितापत्यदारागारभनादयः ।

रान्यं क्रोशगज्जामात्यमृत्पाप्मा ममतास्पदाः ॥४४॥

किमेतैरात्मनस्तुष्टैः सह देहेन नश्वरैः ।

अनर्थैर्यसंकारैर्निस्त्यानन्दमहोत्थैः ॥४५॥

निरूप्यतामिह मयार्थं कियान्दहभुतोऽसुराः ।

निपेकादिष्ववम्यासु हिंश्यमानस्य कर्मभिः ॥४६॥

कमोप्यारभते दरी दहनात्मानुवर्तिना ।

कर्मभिस्तनुते दहसुभयं स्वविषेकतः ॥४७॥

तस्मादर्थं कामास धमाश्च यदपाधया ।

एक दूसरेसे छोटे-बड़े, भीचे-ऊँचे ॥ इसलिये वे भी मिर्दोंप नहीं हैं । मिर्दोंप हैं केवल परमात्मा । न किसीने सनमें दोष देखा है और न सुनाई । अतः परमात्माकी प्राप्तिके लिये अनन्य मन्त्रिसे उन्हीं परमेश्वरका भजन करना चाहिये ॥ ४० ॥

इसके सिवा अपनेको बड़ा विद्वान् माननेवाला पुरुष इस लोकमें जिस उद्वेगसे बार-बार बहुत-से कर्म करता है, उस उद्वेगकी प्राप्ति तो दूर रही—उल्टा उसे उसके विपरीत ही फल मिलता है और निस्तुन्देह मिथ्या है ॥ ४१ ॥ कर्ममें प्रवृत्त होनेके दो ही उद्वेग होते हैं—सुख पाना और दुःखसे छूटना । परन्तु जो पहले कामना न होनेके कारण सुखमें निमग्न रहता था, उसे ही अब कामनाके कारण यहाँ सदा-सर्वदा दुःख ही भोगना पड़ता है ॥ ४२ ॥ मनुष्य इस लोकमें सकल कर्मोंके द्वारा जिस शरीरके लिये भोग प्राप्त करना चाहता है, वह शरीर ही परमा—स्यार-कुर्तोंका मोहन और नाशवान् है । कभी वह मित्त जन्ता है तो कभी विह्वल जाता है ॥ ४३ ॥ जब शरीरकी ही यह दशा है—तब इससे अलग रहनवाले पुत्र, भ्राता, धन, सम्पत्ति, राज्य, सज्जाने, हाथी-घोड़े, मन्त्री, नौकर, चाकर, गुरु-जन और दूसरे अपने कष्टलनेवालोंकी तो बात ही क्या है ॥ ४४ ॥ ये तुच्छ विषय शरीरके साथ ही नष्ट होते हैं । ये जान तो पड़ते हैं पुरुषार्थके समान, परन्तु हैं वास्तवमें अनर्पकरूप ही । आत्मा स्वयं ही अनन्त आनन्दका महान् समुद्र है । उसके लिये इन वस्तुओंकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ४५ ॥ माहो ! तलिक विचार तो करो—जो जीव गर्भाशयसे लेकर मृगुपयन्त सभी अवस्थाओंमें अपने कर्मोंके अधीन हाकर कष्ट-ही-कष्टेश भागता है, उसका इस संसारमें स्वाय ही क्या है ॥ ४६ ॥ यह जीव सूक्ष्मशरीरको ही धरना आत्मा मानकर उसके द्वारा अनेकों प्रकारके कर्म करता है और कर्मके कारण ही फिर शरीर ग्रहण करता है । इस प्रकार कर्मसे शरीर और शरीरसे कर्मकी परस्परात्मक पड़ती है । और ऐसा होता है अविषेकके कारण ॥ ४७ ॥ इसलिये निष्कलम भावसे निष्कल आत्मस्वरूप भगवान् श्रीहरिक भजन

भजतानीहयाऽऽश्मानमनीहं हरिमीधरम् ॥४८॥

सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेधरः प्रियः ।

भूतैर्मदङ्गिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंक्षितः ॥४९॥

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यश्चो गार्ध्व एव च ।

भजन् मुकुन्दधरणं स्वस्तिमान् स्यात् यथा वयम् ॥५०॥

नालं दिवस्त्वं देवस्त्वभूतित्वं वसुरात्मजाः ।

प्रीयतांस्स मुकुन्दस्य न हर्षं न बहुलता ॥५१॥

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।

प्रीयतेऽन्यथा भक्त्या हरिरन्यद् विद्वम्बनम् ॥५२॥

तथा इतो भगवति भक्तिं कुरुत दान्वाः ।

आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीधरे ॥५३॥

दैतेया यथरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजोक्तसः ।

खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यन्युत्तमां गताः ॥५४॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्नुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।

एकान्तभक्तिर्गोविन्दे भूत् सर्वत्र तदीक्षणम् ॥५५॥

करना चाहिये । अर्च, धर्म और कर्म—सब उपायों के आश्रित हैं, बिना उनकी इच्छा के नहीं मिल सकते ॥४८॥

भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियों के ईश्वर, अन्त्या और परम प्रियमम हैं । वे अपने ही बनाये हुए पञ्चमूत और सूक्ष्मभूत आदिके द्वारा निर्मित शरीरों में श्रीके नाम से कहे जाते हैं ॥ ४९ ॥ देवता, दैत्य, मनुष्य, एक ब्रह्म गन्धर्व—कोई भी कर्षों न हो—सो भगवान् के कर्म-कर्मोक्त सेवन करता है, वह हमारे ही समान बन्धनमय भाजन होता है ॥ ५० ॥

दैत्यबालको । भगवान् को प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्म, देवता या श्रुति होना, सदाचार और निर्विष हस्तित सम्पन्न होना तथा दान, तप, यज्ञ, शरीरिक और मन्त्र-स्तिक शौच और बड़े बड़े व्रतोंका अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है । भगवान् केवल निष्कर्म प्रेम-भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं । और सब तो विद्वन्मत्तामत्र हैं ॥ ५१ ५२ ॥ इसलिये दान-तप-यज्ञों । समस्त प्राणियोंको अपने समान ही समझकर सबत्र विराजमान, सर्वार्था, सर्वशक्तिमान् भगवान् की भक्ति करो ॥ ५३ ॥ भगवान् की भक्तिके प्रभावसे दैत्य, यज्ञ, यज्ञस, स्त्रियों, शूद्र, गोपाह्व जहिर, पक्षी, मृग और बहुत-से पापी जीव भी भगवान् के प्राप्त हो गये हैं ॥ ५४ ॥ इस संसारमें या मनुष्य-शरीरमें श्रीका सबसे बड़ा स्थाप कर्त्ता एकनात्र परमार्थ इत्यादी ही है कि वह भगवान् श्रीकृष्णकी कन्यम भक्ति प्राप्त करे । उस भक्तिको स्वरूप है सर्वदा, सर्वत्र सब वस्तुओं में भगवान् का दर्शन ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसां संज्ञितायां सप्तमस्कन्धे प्रोद्गादानुवर्तिते

दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

शुद्धिद्वयभगवान् कथं प्राप्नुयान् विरक्त्यकथिपुत्रा कथं एवं ब्रह्मादि

देवताओंका भगवान् की स्तुति

भारद उवाच

अथ दैत्यसुताः सर्वे भूत्वा सद्गुणगणितम् ।

भारदजी कहते हैं—प्रह्लादजीका प्रवचन सुनकर

दैत्यनाम्नने उसी समयसे निर्दोष होनेके कारण,

वगृह्णन्तिरवघटत्वान्नेव गुर्वनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

अथाचार्यमुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम् ॥

आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयत् यथा ॥ २ ॥

धृत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयम् ।

कोपावेशचलद्वात्र पुत्र इन्तुं मनो दधे ॥ ३ ॥

क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रहादयत्दर्शणम् ।

आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥ ४ ॥

प्रभयावनतं दान्तं वदन्नाल्लिमवस्थितम् ।

सर्पः पदाहत इव असन्नप्रकृतिदारुणः ॥ ५ ॥

हे दुर्विनीत मन्दात्मन्कुलमेदकराधम ।

स्तब्धं मन्थासनोद्धूत नेम्पे स्वाद्य यमघ्नयम् ॥ ६ ॥

कुन्दस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोका सहस्रराः ।

तस्य मेऽभीतवन्मूढ स्थासन् किम्बलोऽत्यगाः ॥ ७ ॥

प्रहाद उवाच

न केवलं मे भवतश्च राजन्

स वै बलं बलिनां चापरेयाम् ।

परेऽवरऽमी सिरजङ्गमा ये

प्रहादयो येन वर्धं प्रणीता ॥ ८ ॥

स ईश्वर काल उरुक्रमोऽमा-

वाजःसह सत्त्वबलेन्द्रियात्मा ।

स एव विश्वं परम म्यशक्तिभि

सुबन्धवत्पत्ति गुणप्रयत्न ॥ ९ ॥

उनकी बात पकड़ ली । गुरुजीकी दूधित शिक्षाकी ओर उन्होंने ध्यान ही न दिया ॥ १ ॥ जब गुरुजीने देख्य कि उन सभी विचारियोंकी बुद्धि एकमात्र भगवान्में स्थिर हो रही है, तब वे बहुत धराराये और सुरत शिरण्यकशिपुके पास आकर निवेदन किया ॥ २ ॥ अपने पुत्र प्रहादकी इस असह्य और अग्रिय अनैतिकता सुनकर क्रोधके मारे उसका शरीर पर-पर कौनन लगा । अन्तमें उसने यही निश्चय किया कि प्रहादको जब अपने ही हाथसे मार बालना चाहिये ॥ ३ ॥

मग और इन्द्रियोंको बशमें रखनेवाले प्रहादकी बड़ी नसबतासे द्वारा क्रोधकर चुपचाप शिरण्यकशिपुके सामने खड़े थे और तिरस्कारके सर्वथा व्ययोग्य थे । परन्तु शिरण्यकशिपु क्षमावसे ही धूर था । वह पैरकी चाट काये हुए सौंपकी तरह फुफ्फुकरन लगा । उसने उनकी ओर पापमयी टेढ़ी नजरसे देखा और कठोर वाणीसे बोलते हुए कहा ॥ ४ ५ ॥ भूख ! दू बड़ा खरप हो गया है । खय तो नीच है ही, जब हमारे कुल्हेके और बालकोत्तरो भी फड़ना चाहता है । एले बड़ी ठिठोईसे मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है । आज ही तुझ यम्मानके घर मेमकर इसका फल चखाता हूँ ॥ ६ ॥ मैं तनिक-सा क्रोध करता हूँ, तो तीनों लोक और उनके लोकपाल धौप उठते हैं । फिर मूख ! एले किसके बन्-बूतेपर निहारी तरह मेरी आज्ञाके विरुद्ध काम किया है ? ॥ ७ ॥

प्रहादजीने कहा—दैत्यराज ! ब्रह्मास लेकर तिमकेतक सब छोटे-बड़, घर-अघर जीवोंको भगवान्में ही अपने बशमें कर रक्खा है । न केवल मेरे और आपके, बल्कि उससारे समस्त बन्धानोंक बल भी केवल यही है ॥ ८ ॥ ये ही महापराक्रमी सर्प शक्तिमान् प्रभु काल हैं तथा समस्त प्राणियोंके इन्द्रियबल, मनोबल, बौद्धिक, धैर्य एवं इन्द्रिय भी यही हैं । यही परमेश्वर अपनी शक्तियोंके द्वारा इस विश्वकी रचना, रक्षा और संधार करते हैं । वे ही तीनों गुणोंके स्वामी हैं ॥ ९ ॥

वत्सासुरं भावमिमं त्वमात्मनः

समं मनो धत्स्व न सन्ति विविधः ।

अद्वैतजितादात्म्यं तत्पथस्वित्वात्

तद्धि धनन्तस्य महत् समर्पणम् ॥१०॥

दस्युपुरा पन्नं विजित्य सुम्पतो

मन्यन्त एके स्वजिता विश्वो दश ।

जितात्मनो ह्यस्य समस्य देहिनां

साधो स्वमोहप्रमथाः कुतः परे ॥११॥

हिरण्यकशिपुत्वात्

अप्यर्कं त्वं मर्तुकामाऽसि योऽविमर्शं विकल्पसे।

सुमूर्ध्ना हि मन्दात्मन् ननु स्युर्विभुवा गिरः ॥१२॥

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्त्यो जगदीश्वरः ।

कासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥१३॥

सोऽहं विकल्भमानस्य शिरः कायाद्वरामि ते ।

गोपायत हरिस्त्वाद्यं यस्ते दारणमीप्सितम् ॥१४॥

एवं दुरुक्तमुदुर्दयन्त्वा

सुत महाभागयत महासुरः ।

स्वर्गं प्रगृह्णात्पत्तिता वरामनात्

स्तम्भं संताड्यतिशयः स्वमुष्टिना ॥१५॥

तर्दय तस्मिन् निनदाऽतिभीषणा

बभूव येनाण्डक्याहमस्फुटत् ।

य वै स्वधिष्ण्यापगतं त्वज्जादय

धृत्वा स्वधामाप्यमङ्गं मनिर ॥१६॥

आप अपना यह आसुरभाव छोड़ दीजिये । अपने मन्त्रों
सबके प्रति समान बनाइये । इस संसारमें अपने कष्टमें न
रहनेवाले कुमार्गगामी ममके अतिरिक्त और कोई शत्रु
नहीं है । मनमें सबके प्रति समताका भाव बना ही
भगवान्की सबसे बड़ी पूजा है ॥ १० ॥ जो अपने
अपना सर्वत्र छूटनेवाले इन छः इन्द्रियरूपी बन्धनों-
पर तो पहले विजय नहीं प्राप्त करते और ऐसा मानने
लगते हैं कि हमने दसों दिशाएँ जीत लीं, वे पूर्ण
हैं । हाँ, जिस ज्ञानी एवं जितेन्द्रिय महात्माने समस्त
प्राणियोंके प्रति समताका भाव प्राप्त कर लिया, उसके
ज्वालनसे पैदा होनेवाले काम-क्रोधदि शत्रु भी मर-जि
जाते हैं; फिर बाहरके शत्रु तो रहें ही कैसे ॥ ११ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—२ मन्दबुद्धि ! ते
बहकनेकी भी अब हद हो गयी । यह बात स्पष्ट
है कि जब तू मरना चाहता है । क्योंकि जो
मरना चाहते हैं, वे ही ऐसी बेतियररूपी बातें बक
करते हैं ॥ १२ ॥ अभाग्य ! तुने मेरे शिरा को और
किसीको जगत्का स्वामी कल्पना है, तो देखो तो
तेरा वह जगदीश्वर कहाँ है ! अच्छा, क्या कहा वह
सर्वत्र है ? तो इस खंभेमें क्यों नहीं दीखता ? ॥ १३ ॥
अच्छा तुसे इस खंभेमें भी दिखायी देता है ! वरे,
तू क्यों इतनी अँग हँक रहा है ? मैं अभी-अभी तेरा
शिर धक्के जन्मा किये देता हूँ । देखता हूँ तेरा वह
सर्वत्र हरि, जिसपर तुसे इतना भरोसा है, तेरी कैसे
रक्षा करता है ? ॥ १४ ॥ इस प्रकार वह अत्यन्त
अपमान महादीप्य भगवान्के परम प्रेमी प्रह्लादको बार-
बार शिङ्कितों देता और सताता रहा । जब उसके
मारे वह अपनेको राक म समझ, तब हाथमें लहंग
मेकर सिंहासनसे ऊढ़ पड़ा और बड़े जोरसे उस
खंभेको एक धुँसा मारा ॥ १५ ॥ उसी समय उस
खंभेमें एक बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ । ऐसा जान
पड़ा माना यह ब्रह्माण्ड ही फट गया है । वह प्यनि
जब आँखोंके मोकमें पहुँची, तब उसे सुनकर
ब्रह्माण्डके ऐसा जान पड़ा मानो उनक मोकें

सं विष्मन् पुत्रघवेप्सुरोजसा

निश्चम्य निर्हादमपूर्वमद्भुतम् ।

अन्तःसभायां न ददर्श तत्पद

विसृष्टसुर्येन सुगारिपूषपाः ॥१७॥

सत्यं विधातुं निजमृत्पमापितं

व्याप्तिं च मृतेष्वखिलेषु चात्मन ।

अद्वयतात्पर्यवृत्तरूपमुद्बभूव

स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥१८॥

स सत्त्वमेन परिताऽपि पश्यन्

स्तम्भस्य मध्यादनु निर्जिहानम् ।

नायं मृगो नापि नरो विचित्र

महो किमेतन्मृगेन्द्ररूपम् ॥१९॥

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो

तृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ।

प्रवृत्तचामीकरचण्डलोचन

स्फुरत्सटाकेस्तरज्ज्भिषाननम् ॥२०॥

करालदर्द्रं करबालचञ्चल

सुरान्तजिह्वं भ्रुकुङ्गीधुस्त्रास्त्रजम् ।

स्तम्भार्धकर्णं गिरिकन्दरामुत

व्याघ्रासनासं हनुमेदभीषणम् ॥२१॥

द्विविस्मृष्टत्कायमदीर्घपीशर

प्रीवोरुवधःस्थलमल्पमप्यमम् ।

चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुदं

विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥२२॥

प्रलय हो रहा हो ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपु प्रह्लादको मार डालनेके लिये बड़ जोरसे झपटा था, परन्तु दैत्यसेनापतियोंको भी मयसे बँपा देनेवाले उस अद्भुत और अपूर्व घोर शब्दको सुनकर वह घबराया हुआ सा देखने लगा कि यह शब्द करनेवाला कौन है ? परन्तु उसे समाके भीतर कुछ भी दिखायी न पड़ा ॥ १७ ॥

इसी समय अपने सेनाक प्रह्लाद और ब्रह्माक्षी बाथी मत्प करने और समस्त पदार्थमें अपनी व्यापकता दिखानेके लिये समाक भीतर उसी खम्भेमें बसा ही विचित्र रूप धारण करके मगवान् प्रकट हुए । वह रूप न तो पूरा पूरा सिंहरूप ही था और न मनुष्यका ही ॥ १८ ॥ जिस समय हिरण्यकशिपु शब्द करने लगेकी इधर-उधर खोज कर रहा था, उसी समय खम्भेके भीतरसे निकलते हुए उस अद्भुत प्राणीको उसने देखा । वह सोचने लगा—अहो, यह न तो मनुष्य है और न पशु, फिर यह तृसिंहके रूपमें कौन-सा अकौक्षिक जीव है ! ॥ १९ ॥ जिस समय हिरण्यकशिपु इस उधेक-मुनमें लगा हुआ था, उसी समय उसके विस्फुल्ल सामने ही तृसिंहमगवान् खड़ा हो गये । उनका वह रूप अत्यधिक भयावना था । तपाये हुए सोनेके समान पीली-पीली मयानक आँखें थीं । जैसाई लेनसे गरदनके बाल इधर उधर लहरा रहे थे ॥ २० ॥ दाढ़ें बड़ी विकटल थीं । तलवारकी तरह लम्बपाती हुई, छुरेकी धारके समान तीखी नीम थी । देखी भौंहोंसे उनका मुख और भी दाढ़ण हो रहा था । कान मिथल एवं ऊपरकी ओर ठठे हुए थे । घुँघी हुई नासिका और खुला हुआ मुँह पहाड़की गुहाके समान अद्भुत जान पड़ता था । फट्ट हुए जबड़ोंसे उसकी मयङ्गरता बहुत बढ़ गयी थी ॥ २१ ॥ विशाल शरीर सर्गकत्र स्पर्श कर रहा था । गर्दन कुछ नाटी और मांटी थी । छाती चौड़ी और कमर बहुत पतली थी । चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद रोश सारे शरीरपर चमक रहे थे, चारों ओर तैककों भुजाएँ फैली हुई थी, जिनके बड़-बड़ मल आयुधकत्र काम देते थे ॥ २२ ॥

दुरासदं सर्वनिजेतराद्युध-

प्रवेक्ष्यविद्रावितदैत्यदानवम् ।

प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना

बधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥

एव भुवस्त्वभ्यपतवु गदायुधो

नदन् नृसिंह प्रति दैत्यकुञ्जरः ।

अलङ्घितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमा

यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरमूढा ॥२४॥

न तव विचित्रं स्वतु सत्त्वधामनि

श्वतेजसा यो नु पुरापिबत् तमः ।

ततोऽभिपद्याम्यहनन्महासुरो

रुषा नृसिंह गदयोरुवेगया ॥२५॥

तं विक्रमन्तं सगद् गदाधरो

महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाग्रहीत् ।

म तस्य हस्तात्कलिस्तदासुरो

विक्रीडता यद्वदधिर्गुल्मस्त ॥२६॥

असान्नमन्यन्त इवाकनोऽमरा

घनच्छदा भाग्य मर्षधिष्ययाः ।

म मन्यमानो निजवीर्यप्रद्विप्तं

यद्वस्तमुक्तो नृहरि महासुरः ।

पुनस्तमामञ्जत मङ्गलार्चणी

प्रगृह्य वेगन श्रितभ्रमा मृषे ॥२७॥

तं श्येनवग श्रुतचन्द्रवर्त्मभि

धरन्तमच्छिद्रमुपर्यधा हरिः ।

उनके पास पटकनेतककर साहस किसीको न होला ।
बाण आदि अपने निज व्याघ्र तथा बजर आदि अन्य शस्त्रों के द्वारा उन्होंने सारे दैत्य-दानवोंको मग्न दिया ।
हिरण्यकशिपु सोचने लगा—हो-न-हो महामायासे विष्णुने ही मुझे मार डालनेके लिये यह ठगरा है, परन्तु इसकी हन चाहोंसे हो ही क्या सकता है ॥२३॥

इस प्रकार कहता और सिंहमाद करता हुआ दैत्यराज हिरण्यकशिपु हाथमें गदा लेकर दृष्टि भगवान्पर टूट पड़ा । परन्तु जैसे पतंगा अपने गिरकर लक्ष्य हो जाता है, वैसे ही वह दैत्य भगवान् के तेजके भीतर जाकर क्षपता हो गया ॥२४॥ समस्त शक्ति और तेजके आश्रय भगवान्के सम्मुखने ऐसी घटना कोई आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भमें उन्होंने अपने तेजसे प्रलयके निमित्त नृ तमोगुणरूपी घोर बन्धकशरको भी पी लिया था । तदनन्तर वह दैत्य वह क्षाघसे लपका और अपनी गदाको बड़े जोरसे घुमाकर उसने दृष्टिहन्मन्पर प्रहार किया ॥ २५ ॥ प्रहार करते समय ही—जैसे गड़गड़ सौंपको पकड़ लेते हैं, वैसे ही भगवान्ने गदासहित उस दैत्यको पकड़ लिया । वे जब उसके साथ खिन्नाङ्क करन लगे, तब वह दैत्य उनके हाथसे वैसे ही निकल गया, जैसे क्रीड़ा करते हुए गड़गड़े चंगुलसे सौंप छूट जाय ॥ २६ ॥ युधिष्ठिर ! उस समय सब-के-सब श्लोकपात्र बालोंने छिमकर इस युद्धको देख रहे थे । उनका स्वर्ग तो हिरण्यकशिपुने पहले ही छीन लिया था । अब उन्होंने देखा कि वह भगवान्के हाथसे छूट गया, तब वे और भी डर गये । हिरण्यकशिपुन भी यही समझा कि दृष्टिहने मेरे बन्ध-वीर्यसे बरकर ही मुझ अपने हाथसे छोड़ दिया है । इस विचारसे उसकी पक्कन जाती रही और वह युद्धके लिये दाह-लज्जकार लेकर फिर उसकी ओर दौड़ पड़ा ॥ २७ ॥ उस समय वह बाबकी तरह बड़े वेगसे ऊपर-नीचे उछल-कूटकर इस प्रकार दाह-लज्जारेके पीतरे बहाने लगा कि जिससे उसपर आक्रमण करनेवा

कृत्वाद्वासं संरमुत्स्वनोत्थपं

निमीलितार्थं जगृहे महाजवः ॥२८॥

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरि

व्यालो यथाऽऽसुं कुलिशाश्चतत्त्वचम् ।

द्वोर्ध्व आपात्प ददार लीलया

नलैर्यथाहिं गरुडो महाविपम् ॥२९॥

संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकरालकोचनो

व्याधाननान्तं विनिहन्सजिह्वा ।

असुम्लवाक्कारुण्यकेसराननो

यथान्त्रमाली द्विपहस्थया हरिः ॥३०॥

नत्वा कुरोत्पाटिवृत्सरोरुं

विसृज्य सत्यानुचरानुदायुधान् ।

अहन् समन्ताभ्रतशस्त्रपाष्णिभि

र्वैर्दण्डयूथोऽनुपथान् सहस्रशः ॥३१॥

सटावधूता जलदाः परापठन्

ग्रहाभ्र तदुदष्टिषिमुष्टरोधिपः ।

अम्भोधय आसहता विधुसुसु

निहादमीता दिगिभारिषुक्रुशुः ॥३२॥

घोस्तस्सटोत्थिसविमानसकुला

प्रोत्सर्पत ह्मा च पदातिपीडिता ।

श्रेला समुपेतुरमुष्य रहसा

तचेमसा स्वं ककुभो न रेभिरै ॥३३॥

अवसर हीन मिले । तब भगवान्ने बड़े ऊँचे खरसे प्रचण्ड और मयङ्कर अङ्गहास किया, जिससे हिरण्यकशिपुकी आँखें बंद होगयीं । फिर बड़े वेगसे झपटकर भगवान्ने उसे धैसे ही पकड़ लिया, जैसे साँप चूहेको पकड़ लेता है । जिस हिरण्यकशिपुके चमड़ेपर कन्नकी थोटसे भी खरोंच नहीं आयी थी, वही अब उसके पंजेसे निकलनेक क्रिये जोरसे छटपटा रहा था । भगवान्ने समाके दरवाजेपर ले जाकर उसे अपनी जॉर्जोपर गिरा दिया और खेल-खेलमें अपने नखोंसे उसे उसी प्रकार फाड़ काँटा, जैसे गरुड़ महाविषधर साँपको खीर बाँधते हैं ॥ २८-२९ ॥ उस समय उनकी क्रोधसे मरी किराल आँखोंकी ओर देखा नहीं जाता था । वे अपनी कफलाती हुई जीभसे फैले हुए मुँहके दोनों कोने चान रहे थे । सूत्रके छोटोंसे उनकी मुँह और गरदनके बाल काँटा हो रहे थे । हाथीको मारकर गलेमें आँतोंकी मात्रा पहन हुए घृग्राजके समान उनकी शोभा हो रही थी ॥ ३० ॥ उन्होंने अपने तीले नखोंसे हिरण्यकशिपुका कलेजा फाड़कर उसे जमीनपर पटक दिया । उस समय हजारों दैत्य-दानव हाथोंमें शस्त्र लेकर भगवान्पर प्रहार करनेके क्रिये जाये । पर भगवान्ने अपनी गुन्गावपी सेनासे, बातोंसे और मक्क-रूपी शब्दोंसे चारों ओर खदेड़-खदेड़कर उन्हें मार बाँटा ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिर ! उस समय भगवान् मुसिंहके गरदनके बालोंकी फटकारसे बादल तितर बितर होने लगे । उनके नेत्रोंकी आत्मासे सूर्य आदि प्रशोक तेज फीका पड़ गया । उनके आसके चक्केसे समुद्र क्षुब्ध हो गये । उनके सिंहनादसे भयभीत होकर दिग्गज विग्राहक लगे ॥ ३२ ॥ उनके गरदनके बालोंसे टफटाफर लेकत-जों-के विमान अल-अल्ला हो गये । कर्ग डगमगा गया उनके पैरोंकी धमकसे भूकम्प आ गया, बेगसे पर्वत उड़ने लगे और उनके तेजकी चकाचौंधसे आकाश तथा दिग्गजोंका दीखना बंद हो गया ॥ ३३ ॥

सं येन संसृजे पञ्चवद्वतस्त

मायानृसिंहं प्रणताः सा नित्यम् ॥४६॥

नागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि श्रीरत्नानि हृतानि न ।

तद्वद्वःपादनेनस्तां दद्यान्मन्द नमोऽस्तु ते ॥४७॥

मन्त्र ऊचुः

मनवा वयं तव निदेशकारिणो
दिविजेन इव परिसूतसेतवः ।

भवता स्वतः स उपसंहृतः प्रभो
करवाम ते किमुत्तुषाधि किङ्करान् ॥४८॥

प्रजापतय ऊचुः

प्रजेशा वयं ते परेशाभिमुष्टा
न येन प्रजा वै सूक्तमो निषिद्धाः ।

स एष त्वया भिक्वच्छा नु श्रेते
अगमज्जलं सत्त्वमूर्तेऽवतार ॥४९॥

गर्वा ऊचुः

वयं विभा ते नटनाखगायका
येनात्मसाद् धीर्यबलौघसा कृताः ।

सा एष नीतो भवता दद्यामिमां
किमुत्पथम् कुशलाय कल्पते ॥५०॥

शारणा ऊचुः

हर तवाङ्घ्रिपङ्कज भवापवर्गमाश्रिता ।

यदप माधुहन्धयस्त्वयागुरः ममापितः ॥५१॥

वशा ऊचुः

वयमनुषरमुष्या फर्मभिस्ते मनात्र
स्तं इह दिविगुनेन प्रापिता षाहकन्वम् ।

इसने व्यथ कर दिया था । आपने मुझमें
तरह इसको नष्ट कर दिया । अपनी सीलासे तुम्हें
हुए आपको हम निरन्तर प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥

मागोंने कहा—इस पापीने हमारी मर्गसे
हमारी श्रेष्ठ वीर सुन्दर शिष्योंका भी श्रेष्ठ शिष्य
बान उसकी छाती फाड़कर आपने हमारी
बड़ा आनन्द दिया है । प्रभो ! हम आपको
करते हैं ॥ ४७ ॥

मनुष्योंने कहा—देवाधिदेव ! हम आपके
करी मनु हैं । इस दैत्यने हमलोगोंकी धर्ममार्गा न
कर दी थी । आपने उस दुष्टको मारकर बड़ा उपकार
किया है । प्रभो ! हम आपके सेवक हैं । आज्ञा कीजिए
हम आपकी क्या सेवा करें ? ॥ ४८ ॥

प्रजापतिगणोंने कहा—परमेश्वर ! आपने हमें प्रज-
पति बनाया था । परन्तु इसके एक देनेसे हम प्रजापति
सुद्धि नहीं कर पाते थे । आपने इसकी छाती फाड़ कर
और यह अमीनपर सुर्वादाके लिये छो गया । सत्त्व
वर्ति धारण करनेवाले प्रभो ! आपको यह अफस
संसारके कल्याणके लिये है ॥ ४९ ॥

गन्धर्वोंने कहा—प्रभो ! हम आपके नाचनेकले,
अभिनय करनेवाले और संगीत सुनानेवाले सेवक हैं ।
इस दैत्यम आपने बड़, धीर्य और पराक्रमसे हमें अपना
गुलाम बना रक्खा था । उसे आपने इस दशको
पहुँचा दिया । सच है, दुष्मर्गसे बचनेवालेका भी
क्या कभी कल्याण हो सकता है ? ॥ ५० ॥

शारणोंने कहा—प्रभो ! आपन सम्मोहके हरणको
पीड़ा पहुँचानेवाले इस दुष्टको सम्मत कर लिये । इसलिये
हम आपके उन शरणकर्मियोंकी शरणमें हैं, जिनके प्रातः
होते हैं । जन्म-मृत्युसुख संसारचक्रसे छुटकरा मिल जाता
है ॥ ५१ ॥

वशोंने कहा—मगबन् ! आपने श्रेष्ठ कर्मोंके कारण
हमको आपके सेवकोंमें प्रधान गिन जाते थे । परन्तु
दिरङ्ग्यकृतिपुने हमें अपनी पाण्डुरी खानेयका कड़ा बना

तु अनपरितापं तत्कृतं जानता ये

नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥५२॥

किम्बुला उचुः

अयं किम्बुलास्त्वं तु महापुरुष ईश्वर ।

अयं कृपुरुषो नष्टो भिक्षुस्तु साधुमिर्यदा ॥५३॥

वैतास्त्रिज उचुः

समाप्तु सत्रेषु तवामलं यशो

गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ।

यत्तां ज्यनपीद् मृशमेप दुर्जनो

दिष्टया इतस्ते मगवन्वधाऽऽमयः ॥५४॥

किबरा उचु

वयमीश्वर किम्वरगणास्तनानुगा

दितिवेन विष्टिममृनानु कारिताः ।

मवता हरे स वृजिनोऽवसादितो

नरसिंह नाथ विमवाय नो भव ॥५५॥

विष्णुपर्यदा उचुः

अद्यैतश्चरिनररूपमष्टुतं ते

दृष्टं नः श्रवणं सर्वलोकशर्म ।

मोऽय ते विधिकर ईश्व विप्रशस्त-

स्तस्येदं निधनमनुप्रहाय विधः ॥५६॥

किया । प्रकृति के नियामक परमात्मा ! इसके कारण होने वाले अपने निजमनों के कष्ट जानकर ॥ आपने इसे मार डाला है ॥ ५२ ॥

किम्बुबुधों ने कहा—हम लोग अत्यन्त दुष्ट किम्बुबुध हैं और आप सर्वशक्तिमान् महापुरुष हैं । जब सत्पुरुषों ने इसका निरस्तकार किया—इसे धिक्कार, तभी आज आपने इस कुपुरुष—असुराधमको नष्ट कर दिया ॥ ५३ ॥

वैतास्त्रिकों ने कहा—मगवन् ! बड़ी-बड़ी समाजों और ज्ञानयज्ञों में आपके निर्मल यशस्व गान करके हम बड़ी प्रतिष्ठा-युवा प्राप्त करते थे । इस दुष्ट ने हमारी यह आजीविका ही नष्ट कर दी थी । बड़े सौभाग्यकी बात है कि महारोग के समय इस दुष्टको आपने नष्ट-मृत्से उखाड़ दिया ॥ ५४ ॥

किबरा ने कहा—हम किम्वरगण आपके सेवक हैं । यह दैत्य हमसे बेगारमें ही काम लेता था । भगवन् ! आपने कृपा करके आज इस पापीका नष्ट कर दिया । प्रभो ! आप इसी प्रकार हमारा अन्मुदय करते रहें ॥ ५५ ॥

अगवान् के पार्षदों ने कहा—शरणागतवास्तव ! सम्पूर्ण लोकों को शान्ति प्रदान करनेवाला आपका यह अलौकिक वृत्तिरूप हमने आज ही देखा है । भगवन् ! यह देख आपका वही आश्चर्यकारी सेवक था, जिसे समझादिने छाप दे दिया था । हम समझते हैं, आपका कृपा करके इसके उद्धार के लिये ॥ इसका वध किया है ॥ ५६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते

शैलपुत्रवने रुचिरस्तनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ततः सभात्यामुपविष्टमुत्तमे

नृपासने समुत्तेजसं विभुम् ।

अलक्षितद्वैधमत्यमर्षण

प्रचण्डपद्मं न बभाज कथन ॥३४॥

निशम्भ लोकप्रथमस्तकज्वर

तमादिदैत्य हरिणा हत सुधे ।

प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः

प्रसूनवर्षैर्बहुः सुरक्षिय ॥३५॥

तदा विमानावलिभिर्नमस्तल

विह्वलां सकुलमास नाकिनाम् ।

सुरानका दुन्दुभयोऽथ जग्मिरे

गन्धर्वसूक्ष्मा ननुतुर्जगु स्त्रियः ॥३६॥

तैन्नोपम्रज्य विभुधा प्रहोद्गिरिश्रद्धयः ।

श्रुपयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगा ॥३७॥

मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणा ।

यक्षा किम्पुरुषास्तातवेताला सिद्धकिञ्चरा ॥३८॥

ते विष्णुपापदाः सर्वे सुनन्दकुमुदादयः ।

मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुट आमीन वीजतेजसम् ।

ईडिरे नरझार्दूल नाविद्रवराः पृथक् ॥३९॥

महोवाच

नताऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये

त्रिविप्रवीयाय पवित्रकर्मण ।

विभ्रस्य सर्गम्यितिसंयमान् गुणैः

स्वलीलया संदधतेऽभ्ययास्मने ॥४०॥

श्रीरुद्र उवाच

आपकाला युगान्तस्त दत्ताऽयमसुरोऽल्पक ।

तनुतुत पापुपसुत भर्तं त भक्तवत्सल ॥४१॥

इस समय नृसिंहभगवान्का सामग्रा करनेका
दिखायी न पड़ता था। फिर भी उनके क्रोध अभी न
जा रहा था। वे हिरण्यकशिपुकी राजसभामें ऊँचे स्थान
पर जाकर विराज गये। उस समय उनके
तेजपूर्ण और क्रोधमरे मयङ्कर चेहरेको देखकर
भी साहस न हुआ कि उनके पाम जाकर ठमकी
करे ॥ ३४ ॥

युधिष्ठिर ! जब शर्माकी देवियोंको यह सुम
मिला कि तीनों लोकोंके सिरकी पीडाका मूर्ति
स्वरूप हिरण्यकशिपु युद्धमें भगवान्के हाथों मार
गया, तब आनन्दके उछाससे उनके चेहरे खिल
ये वे बार बार भगवान्पर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३५ ॥
आकाशमें विमानोंसे जाये हुए भगवान्के दर्शन
देवताओंकी भीड़ लग गयी। देवताओंके डोल
नगारे बजने लगे। गन्धर्वराज गाने लगे, अप्सराएँ ना
चने लगी ॥ ३६ ॥ तब । इसी समय यक्षा, इन्द्र, श
आदि देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महा
मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किम्बु
केताल, सिद्ध, किन्नर और सुनन्द कुमुद आदि मन्त्र
सभी पार्षन् उनके पास जाये। इन लोगोंने सिर
अञ्जलि बौधकर सिद्धासनपर विराजमान अत्यन्त तेज
नृसिंहभगवान्की बोड़ी दूरसे अलग-अलग
की ॥ ३७-३९ ॥

प्रह्लादीने कहा—प्रभा ! आप अनन्त हैं। आप
शक्तिशाली कोई पार नहीं पा सकना। आपका पवन
विध्वज और कर्म पवित्र हैं। यद्यपि गुणोंके द्वारा
कीन्हासे ही सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति, पालन और प्र
यपोषित ठगसे करते हैं—फिर भी आप उनसे को
सम्बन्ध नहीं रखते, सत्य निर्विकार रहते हैं।
आपको नमस्कार करना है ॥ ४० ॥

श्रीरुद्रने कहा—आपके क्रोध करनेका समय
कल्पके अन्तमें होता है। यदि इस कुछ दैत्यको मारने
विये ही आपन क्रोध किया है तो वह भी मरा
गुप्त। उसका पुत्र आपकी शरणमें जाया है। न
बासम् प्रभो ! आप अपने इन मन्त्रकी रक्षा कीजिये ॥ ४१ ॥

१ प्रा पा — निगम्य । २ प्रचीन प्रसिद्धे तन्त्रादिमानाश्रयिभिः संस्कारानुसृत्यैव विप्र तत्र पूज्यम् की
नती ६ । ३ प्रा पा — त उपास्यम् वि । ४ प्रा पा — विष्णुपारिपदा सर्वे । ५ प्रा पा — भवत ।

७ जनपरित्यापं वत्कृत जानता ते

नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥५२॥

किमुक्त्वा ऊचुः

१ किमुक्त्वास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ।

७ कपुरुषो नष्टो धिक्कृत साधुमिर्यदा ॥५३॥

वैतासिका ऊचुः

मभासु सन्नेषु सवामलं यशो

गीत्वा सपर्यां महतीं रुभामहे ।

यत्तां ध्यनैपीदु मृशमेव दुर्जने

दिष्टया इतस्ते मगधन्ययाऽऽमयः ॥५४॥

किबरा ऊचुः

प्रयमीश्व किन्नरगणास्तवानुगा

दिसिजेन विष्टिममृनानु कारिताः ।

भवता हरे स इजिनोऽवसादितो

नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥५५॥

विष्णुपार्यदा ऊचुः

अद्यैतद्भरिनरूपमहृतं ते

हृष्टं नः धरणद् सर्वलोकधर्म ।

तोऽय ते विधिकर ईश विप्रदत्त

मत्स्येद निधनमनुग्रहाय विधः ॥५६॥

ठिया । प्रष्टुतिके निपायक परमात्मा । इसके कारण होने वाले अपने निजमनोंके कुछ कामकर ही आपने इसे मार डाला है ॥ ५२ ॥

किमुक्त्वासे कहा—हम लोग अत्यन्त दुष्ट किमुक्त्वा हैं और आप सर्वशक्तिमान् महापुरुष हैं। अब सत्पुरुषों-ने इसका निरस्कार किया—इसे धिक्कृत, तमी काम आपने इस कपुरुष—गह्वराधमको नष्ट कर दिया ॥ ५३ ॥

वैतासिकोंसे कहा—भगन् ! बड़ी-बड़ी सभाओं और ज्ञानयज्ञोंमें आपके निर्मल यशका गान करके हम बड़ी प्रतिष्ठा पूजा प्राप्त करते थे। इस दुष्टने हमारी वह आजीविका ही नष्ट कर दी थी। बड़े सौभाग्यकी बात है कि महारोगके समान इस दुष्टको आपने नष्ट मृत्से उखाड़ दिया ॥ ५४ ॥

किन्नरोंसे कहा—हम किन्नरगण आपके सेवक हैं। यह दैत्य हमसे केगारमें ही कष्ट लेता था। भगन् ! आपने कृपा करके जान इस पापीको नष्ट कर दिया। प्रभो ! आप इसी प्रकार हमारा अम्युदय करते रहें ॥ ५५ ॥

भगवान् के पार्यदोंसे कहा—हमणागस्तवस्तल । सम्पूर्ण लोकोंको शक्ति प्रदान करनेवाला आपका यह अमौक्तिक वृत्तिहृत्प हमने जान ही देला है। भगन् ! यह दैत्य आपका वही आङ्गावरी सेवक था, जिसे सनकादिने शाप दे दिया था। हम समझते हैं, आपन कृपा करके इसके उद्धारके लिये ही इसका वध किया है ॥ ५६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रतापैश्वरिणे

श्रीमन्मन्त्रे वृत्तिहृत्प नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सं येन संसृजे पञ्चनद्वतस्त

मायानुसिंहं प्रपन्ताः सा निस्वम् ॥४६॥

माया उचुः

येन पापेन रत्नानि श्रीरत्नानि हृतानि न ।

तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥४७॥

मन्त्र उचुः

मनसो वयं तव निदेशकारिणो
दित्तिजेन देव परिभूतसेतवः ।

भवता स्तलः स उपसंहृतः प्रभो
करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥४८॥

प्रजापतय उचुः

प्रब्रज्वा वयं ते परेष्वाभिसृष्टा
न येन प्रजा वै सृजामो निविद्धाः ।

स एष त्वया भिन्नवक्षा तु श्रेते
वगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥४९॥

गन्धर्वा उचुः

वयं विभा ते नटनट्यगायका
येनत्समसाद् वीर्यकलौञ्जसा कृताः ।

स एष नीलो भवता दशामिमां
किमुत्पद्यन्मः कुञ्जलाय कल्पते ॥५०॥

चारणा उचुः

हर तवाह्मिपहृजं भवापवर्गमाधिताः ।

यदप साधुहन्त्यस्त्वयासुरः ममापितः ॥५१॥

यक्षा उचुः

वयमनुषरमुस्याः कर्मभिस्ते मनोयै
स्तं इह दित्तिमुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।

इसने व्याप कर दिया था । आपने मुझमें यहपञ्च
तरह इसको नष्ट कर दिया । अपनी भीमसे दृष्टि ।
इए आपको हम निष्क-निस्सक्त प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥

भाग्योमे कहा—इस पापीने हमारी मन्त्रियों ।
हमारी श्रेष्ठ वीर सुन्दर जियोंको भी छीन लिया व
जाय उसकी छाती फाड़कर आपने हमारी पत्नियों
वहा आनन्द दिया है । प्रभो ! हम आपको नमस्
करते हैं ॥ ४७ ॥

मनुजोंमे कहा—देवाधिदेव ! हम आपके क
कारी मनु हैं । इस दैत्यने हमकोगोत्री वर्ममर्यादा
कर दी थी । आपने उस दुष्टको मारकर वहा उप
क्रिया है । प्रभो ! हम आपके सेवक हैं । आज्ञा कीजिए
हम आपकी क्या सेवा करें ? ॥ ४८ ॥

प्रजापतियोंने कहा—परमेश्वर ! आपने हमें प्र
पति बनाया था । परन्तु इसके रोक देनेसे हम प्रजा
सृष्टि नहीं कर पाते थे । आपने इसकी छाती फाड़ बा
और यह अमीमपर सर्वदाके सिधे सो गया । उत्त
मूर्ति धारण करनेवाले प्रभो ! आपका यह क
संसारके कल्याणके लिये है ॥ ४९ ॥

गन्धर्वोंने कहा—प्रभो ! हम आपके नाकने
अमिमय करनेवाले और स्तंभित सुनानेवाले सेवक हैं
इस दैत्यन आपने वक्त, वीर्य और पराक्रमसे हमें बा
गुलाम बना रक्खा था । अब आपने इस दृष्ट
पहुँचा दिया । सच है, कुमारसे कलनेवाले
क्या कभी कल्याण हो सकता है ! ॥ ५० ॥

चारकोंने कहा—प्रभो ! आपने सज्जनोंके हृदय
पीसा पहुँचानेवाले इस दुष्टको समाप्त कर दिया । इस
हम आपके उन वरणकर्मोंकी शरणमें हैं, जिनक
होते ही जन्म-मृत्युरूप संसारबन्धसे छुटकरा मिल
है ॥ ५१ ॥

यक्षोंमे कहा—महाबन् ! आपने श्रेष्ठ कर्मोंके क
हमको आपके सेवकोंमें प्रवान गिने जाते थे । पा
। शिरष्यकशिपुने हमें अपनी पालकी होनेवाला कहा ।

नाराधितु पुरुषगुणैरघुनापि विप्रः

किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजाते ॥ ८ ॥

मन्ये धनाभिजनरूपतपःभृतौघ

स्तेजःप्रमथक्लपौरुषशुद्धियोगाः ।

नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो

भक्त्या तुतोष भगवान्गजपूषधृष ॥ ९ ॥

विप्रावु द्विपद्गुणपुतादरविन्दनाभ

पादारविन्दविभ्रान्कङ्कपच वरिष्ठम् ।

मन्ये तदर्पितमनोवचनेदितार्थ

प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमान् ॥ १० ॥

नैवत्तमन प्रसुर्यं निजलामपूर्णो

मान जनादविदुषः करुणो वृणीते ।

यद् यजनो भगवत विदधीत मानं

तथा मने प्रतिमुन्वस्य यथा मुखयी ॥ ११ ॥

तस्मादह विगतविहङ्ग ईश्वरस्य

सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।

नीचाऽनया गुणविमर्गमनुप्रविष्ट

पूयेत येन हि पुमाननुवर्णिषेन ॥ १२ ॥

मर्षे क्षमी विधिकरान्तव सत्त्वधाम्ना

प्रभ्रास्या वयमिवेष्टन चाद्विजन्त ।

धमाय भूतय उतात्ममुन्वाय चास्य

विप्रीडित भगवतो रुचिगवतारः ॥ १३ ॥

१ प्रा वा — २५२ ।

भा ८ ८ १ १०४—

अपने विविध गुणोंसे आपको जबतक भी सन्तुष्ट नहीं कर सका । फिर मैं तो धीरे धीरे आपसे जातिमें उत्पन्न हुआ हूँ ! क्या आप मुझसे सन्तुष्ट हो सकते हैं ? ॥ ८ ॥

मैं समझता हूँ कि धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ज्ञान, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, सुद्धि और योग—ये सभी गुण परमपुरुष भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं । परन्तु मन्त्रिसे तो भगवान् गजेंद्रपर भी सन्तुष्ट हो गये थे ॥ ९ ॥ मेरी समझमें इन बारह गुणोंसे कुछ ब्राह्मण भी यदि भगवान् धर्म-नामके चरण कमलोंसे विमुख हो तो उससे बह

चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर रखे हैं, क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने दुष्टताकर्मों पवित्र कर देता है और बह्मपुत्रका अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता ॥ १० ॥ सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे ही परिपूर्ण हैं । उन्हें अपने लिये कुछ पुरुषोंसे पूजा प्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है । वे करुणावशः ही मोले मर्कोंके हितके लिये उनके द्वारा की हुई पूजा स्वीकार कर लेते हैं । जैसे अपने मुखका सौन्दर्य दर्पणमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बको भी सुन्दर बना देता है, वैसे ही मछ भगवान्‌के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है, वह उसे ही प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ इस-लिये सर्वथा अयोग्य और अनधिकारी हमेपर भी मैं

जिना किसी शङ्काके अपनी मुद्रिके अनुसार सब प्रकारसे भगवान्‌की महिमाका वर्णन कर रहा हूँ । इस महिमाके गानका ही ऐसा प्रभाव है कि अविद्यावश संसार-बन्धनमें पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है ॥ १२ ॥

भगवन् ! आप सत्त्वगुणके आश्रय हैं । ये द्रव्य आदि सभी जेवना आपके आज्ञाकारी मछ हैं । ये हम देवोंकी तरह आपसे देव नहीं करते । प्रभो ! आप बड़-बड़ सुन्दर सुन्दर अवतार प्रहण करके इस जगत्‌क सम्पूर्ण एवं अमृत्युयक लिये सदा उसे आत्मानन्दकी प्राप्ति करानेके लिये अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करने दे ॥ १३ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

प्रह्लादजीके द्वारा नृसिंह भगवान्की स्तुति

नारद उवाच

एवं सुरादयः सर्वे प्रह्लादपुरातराः ।
 नोपैतुमशक्नुमन्पुनरगम्य सुपुरासदम् ॥ १ ॥
 साक्षाच्छ्रीः प्रपिता देवैर्दृष्टा तन्महद्वस्तुसम् ।
 अष्टाभुतपूर्वत्वात् सा नोपयाय शङ्किता ॥ २ ॥
 प्रह्लाद प्रेयसामास प्रह्लादस्थितमन्त्रिके ।
 तात प्रथमयोपेहि स्वपित्रे कृपित प्रभुम् ॥ ३ ॥
 तथेति धनकै रत्नन्महामागतोऽर्चकः ।
 उपैत्य भुवि कायेन ननाम विष्टताञ्जलिः ॥ ४ ॥

स्वपादमूले पतितं तमर्मक
 विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ।

उत्थाप्य तच्छीर्ष्यदधात् कराम्बुज
 फलाङ्गिर्विन्नस्तभिषां कृतामयम् ॥ ५ ॥

य तत्करस्पर्शघुताखिलाशुभः
 सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ।

तत्पादपद्मं हृदि निर्हृती दधौ
 हृष्यत्तनुः क्लिभहृदधुलोचनः ॥ ६ ॥

अस्तापीदृरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ।
 प्रमगद्गदया वाचा तन्व्यस्तुदयेक्षणः ॥ ७ ॥

प्रह्लाद उवाच

प्रपादय सुरगणा मुनयाऽथ मित्रा
 मर्त्यरुदानमतया वचसां प्रवाहं ।

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार प्रह्लाद, शंकर आदि सभी देवगण नृसिंहभगवान्के कोपामे शक्त शान्त न कर सके और न उनके पास आ सके । किसीको उसका ओर छोड़ नहीं दीसता था ॥ १ ॥ देवताओंने उन्हें शान्त करनेके लिये खप लक्ष्मीजीको भेजा । उन्होंने नाकर जब नृसिंहभगवान्का वह महान् अद्भुत रूप देख, तब मनस से भी उनके पासतक न आ सका । उन्होंने ऐसा कन्धूल रूप न कभी देखा और न सुना ही था ॥ २ ॥ तब प्रह्लादजीने अपने पास ही खड़े प्रह्लादको वह कह कर मेमा कि 'भैया ! तुम्हारे पितापर ही तो मागकर कुपित हुए थे । अब तुम्हीं उनके पास जाकर उन्हें शान्त करा' ॥ ३ ॥ भगवान्के परम प्रेमी प्रह्लाद 'जो आशा' कहकर और धीरेसे भगवान्के पास जाकर हुए जोड़ पृष्ठीपर साष्टाङ्ग लोट गये ॥ ४ ॥ नृसिंहभगवान्ने देखा कि नन्हा-सा बालक मेरे चरणोंके पास पड़ा हुआ है । तब उस हृदय दयासे भर गया । उन्होंने प्रह्लादको उठकर उनके सिरपर अपना वह कर-कमल रख दिया, जो कलसपरसे मयमसित पुरुषोंके अमयदाम करनेका है ॥ ५ ॥ भगवान्का करकमलको स्पर्श होतेही उनके बचे-बुचे अश्रुम संस्कार भी धुब गये । तत्काल उन्हें परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार हा गया । उन्होंने बड़े प्रेम और आनन्दमें मग्न होकर भगवान्के चरणकमलोंको अपने हृदयमें धारण किया । उस समय उनकी साध शरीर पुलकित हो गया, हृदयमें प्रमदी धारा प्रवाहित होने लगी और नभोंसे आमन्दामु धरन भगे ॥ ६ ॥ प्रह्लादजी भावपूर्ण हृदय और निर्ममय मननोंसे आनन्दको देख रहे थे । आश्रमाभिसे सर्व एकप्रम हुए मनके द्वारा उन्होंने भगवान्का गुणोंका चिन्तन करते हुए प्रेमप्रद वाणीसे स्तुति की ॥ ७ ॥

प्रह्लादजीन कहा—प्रह्लाद जगत् देवता, ऋषि-मुनि और सिख पुरुषोंकी शुद्ध मिररतर सरवगुणमें ही स्थित रहती है । फिर भी वे अपनी पात प्रवाद स्तुति और

नाराधितु पुरुगुणैरधुनापि पिप्रु

किं तोष्ठुमर्हति ॥ मेहरिरुज्जातेः ॥ ८ ॥

मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुताञ्च

स्तेज प्रमाथवलपौरुपयुद्धियोगाः ।

नाराधनाय हि भवन्ति परस्व पुंसो

भक्त्या तुतोप भगवान्नाजयुधपृष ॥ ९ ॥

विप्राद् द्विपद्गुणयुतादरविन्नाभ

पाशरविन्दविमुग्धा क्लृपच वरिष्ठम् ।

मन्ये सदर्पितमनोवचनेदितार्थ

प्राण पुनाति स कुलं न तु भूरिमान् ॥ १० ॥

नैरात्मन प्रसुरयं निजलाभपूर्णो

मानं जनादविदुषः करुणो वृषीते ।

यद् यजना भगवते विदधीत मानं

तच्छा मने प्रतिसुखस्य यथा सुखधीः ॥ ११ ॥

उष्मान्द विगतविकृक् ईश्वरस्य

मर्वात्मना मद्विगृणामि यथामनापम् ।

नीश्वोऽजया गुणविमर्गमनुप्रविष्ट

पूयेत येन हि पुमाननुषर्णितेन ॥ १२ ॥

मर्वेक्षमी विधिरात्मव सख्यभाक्षा

मन्नादपापमिवेन पात्रिजन्त ।

क्षमाय भूतय उता मसुम्बाय चाम्य

मिमीडित भगवता रविगवतार् ॥ १३ ॥

१ मा ॥ — प्रत्यय ।

भा ८ ५ १ १०४—

अपने विविध गुणोंसे आपको अवतक भी सन्तुष्ट नहीं कर सके । फिर मैं तो धार असुर जातिमें उत्पन्न हुआ हूँ । क्या आप मुझसे सन्तुष्ट हो सकते हैं ? ॥ ८ ॥ मैं समझता हूँ कि धन, कुलीमता, रूप, तप, विद्या, ज्ञान, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग—ये सभी गुण परमपुरुष भगवान्‌की सन्तुष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं । परन्तु भक्तिसे तो भगवान्‌ गजेन्द्रपर भी सन्तुष्ट हो गये थे ॥ ९ ॥ मेरी ममझसे इन बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान्‌ परम-नामके चरण कमलोंसे विमुक्त हो तो उससे बड़ चाण्डाल श्रेष्ठ हैं, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर रखे हैं, क्योंकि बड़ चाण्डाल तो अपने कुलतकको पवित्र कर देता है और बर्षापनक्त अभिमान रखनेवाला बड़ ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता ॥ १० ॥ सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे ही परिपूर्ण हैं । उन्हें अपना लिये कुछ पुरुषोंसे पूजा प्रार्थन करनेकी आवश्यकता नहीं है । वे करुणावश ही मोले मर्त्योंके हितके लिये उनके द्वारा की हुई पूजा स्वीकार कर लेते हैं । जैसे अपने मुख्य सौन्दर्य दर्पणमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बको भी सुन्दर बना देता है, वैसे ही मछ भगवान्‌के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है, वह उसे ही प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ इस लिये सर्वथा अयोम्य और अनधिकारी होनपर भी मैं बिना किसी शङ्काके अपनी बुद्धिके अनुसार सब प्रकारसे भगवान्‌की महिमाका वर्णन कर रहा हूँ । इस महिमाका गामक्य ही ऐसा प्रभाव है कि अविधावश संसार चक्रमें पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है ॥ १२ ॥

भगवन् 'अप सख्यगुणक आश्रय ॥ ये हृदा आदि सभी द्रव्यता आपके आश्रयकी मछ हैं । ये हम स्पर्शकी तरह आपसे स्नेह नहीं करने । प्रभो ! आप बड़-बड़ सुन्दर सुन्दर अवतार प्रार्थन करके इस जगत्‌क सम्पन्न एवं अमृतमय लिये तथा उमे आत्मात्मकी प्राप्ति करानेक लिये अनेकों प्रपञ्चकी स्वीकृति करने हैं ॥ १३ ॥

तत् मन्त्रं मन्त्रमुत्सृज्य हतस्त्वयापि

मोक्षेत् साधुरपि बुद्धिकसर्पहत्या ।

लाकाश्च निर्दोषमिताः प्रविशन्ति सर्वे

रूपमूर्तिह विभयाम जनाः स्मरन्ति ॥१४॥

नाह बिमेष्यजित तेऽतिभयानकाश्च

निह्नाकनेत्रभुङ्गीरमसोऽग्रदम्भतः ।

आन्त्रस्त्रय घटवक्त्रमरुद्भुङ्गका

मिर्शदभीतदिगिभादग्निमिश्रस्वाग्रात् ॥१५॥

यन्ताऽस्त्यहं कृपणवत्सल दुःमहोऽग्र

मसारवक्त्रकन्दनायु ग्रमतां प्रणीतः ।

वद स्वकर्मभिदशुत्तम तेऽहमिदं

प्रीताऽप्यर्ग्यघरणं ह्यसं कदा नु ॥१६॥

यस्मात् प्रियाप्रियविभागसयोगजन्म-

शोकप्रिना भक्त्यानिपु दयमानः ।

दुःस्वपथं तदपि दुःस्वमद्विधाह

मृन्मज्जामि वद मे तव दासपागम् ॥१७॥

माऽह प्रियस्य गुरुद परदयताया

मीनारुधाम्नयनुभिह विरिधगीता ।

अप्रमिनम्यनुगुण गुणविप्रमुक्ता

दुर्गाणि न पदयुगान्पदममह ॥१८॥

१ ८ २ - अथ ॥ १ ८ ३ - अथ ॥

जिस असुरको मारनेके लिये आपने क्रोध किया था, वह मारा जा चुका । जब आप अपना क्रोध शान्त करलिये । जैसे बिन्दू और सौंपकी मृत्युसे सख्त भी सुखी ही होते हैं, वैसे ही इस दैत्यके स्तब्धसे सभी भोगोंको बड़ा सुख मिला है । जब सब आपके शास्त्र स्मरण करनेकी बात जाह रहे हैं । मुसिहदेव ! मरसे मुक्त होनेके लिये भक्तजन आपके इस रूपका स्मरण करेंगे ॥ १४ ॥ परमात्मन् ! आपको कुछ बड़ा म्भावना है । आपकी जीम खपलपा रही है । जैसे सूर्यके समान हैं । जैसे चढ़ी हुई हैं । बड़ी पैनी दाढ़ें हैं । आँखोंकी माला, लपटसे लपप गरदनके बाल, बल्लेकी तरह सीधे लड़े कान और दिमल्लोंकी भी मयमीत कर देनेवाला सिंहनाद एवं सन्तुओंके पञ्च डालनेवाले आपके इन मल्लोंको देखकर मैं तलिक भी मयमीत नहीं हुआ हूँ ॥ १५ ॥ दीतकचो ! मैं मयमीत हूँ तो केवल इस अलक्ष्य और उम संसार-वर्त्मने पिसनेसे । मैं अपने कर्मपाशोंसे बँधकर इन मयझर जलुओंके बीचमें डाल दिया गया हूँ । मेरे सामी ! आप प्रसन्न होकर मुझे कब अपने उन चरणकमलोंमें मुखायेगे, जो समस्त जीवोंकी एकमात्र शरण और मोक्षस्वरूप हैं ॥ १६ ॥ जनन ! मैं जिन जिन योनियोंमें गया, उन सभी योनियोंमें प्रियक वियोग और अप्रियक संयोगसे हानिवाले शोककी आत्मे झुञ्झता रहा । उन दुःखोंको मिगनेकी जो दवा है, वह भी दुःखरूप ही है । मैं न जाने कबसे अपनेसे अनिदिष्ट वस्तुओंको आत्मा समझकर इन-उधर भटक रहा हूँ । जब आप ऐसा साधन मत राखे जिससे कि आपकी सेवा—मक्ति प्राप्त कर सकूँ ॥ १७ ॥ प्रभो ! आप हमारे प्रिय हैं । अद्वैतक जिसकी सुदृढ़ है । आप ही आत्मार्थसे सब परमात्म्य हैं । मैं ब्रह्मजीके हाथ गापी हूँ आपकी स्तीना-कपालोंका गान करता हुआ बड़ी सुमनसास रागाणि प्राप्त गुणोंसे मुक्त होकर इस गुंमारकी बटिनाहोका पार कर जाऊँगा क्योंकर आपका चरणयुगलोंमें रहनेकाय भल दासस महाकजोका गह ता मुन भिन्ना ही रहना ॥ १८ ॥

मालस्य नेह क्षरणं पितरौ नृसिंह

नार्तस्य चागदमृदन्वति मज्जतो नौः॥

तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्यद्वाञ्छसेष्ट

न्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपश्रितानाम्॥१९॥

यस्मिन्पतोयहिं येन च यस्य यस्माद्

यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा।

भावः करोति विक्रतोति पृथक्स्वभाव

सञ्चोदितस्तदखिल भवतः स्वरूपम्॥२०॥

माया मन सूचति कर्ममय बलीयः

कालन चोदितगुणानुभवेन पुनः ।

छन्दोमयं यत्प्रजयापितपोऽद्वारं

मंसारचक्रमज कोऽतिवरेत् त्वदन्य ॥२१॥

स त्व हि नित्यविजिततमगुण स्वधाम्ना

कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गगतिः॥

चक्र विसृष्टमजयश्च पादशर

निष्पाद्यमानमुपकर्ष विभाप्रपन्नम्॥२२॥

एषा मया दिवि विभाऽनिलधिष्णयाना

मायु भिया विभव इच्छति याञ्जनाऽप्यम् ।

यऽमत्पितुः इपितृहामविवम्भितम्

पिम्फुर्जितन दुन्तिता मनुष्य निरम्भः॥२३॥

मगवान् नृसिंह ! इस लोकमें दुखी जीवोंका दुःख मिटानेके लिये जो उपाय माना जाता है, वह आपके उपेक्षा करनेपर एक क्षणके लिये ही होता है । यहाँतक कि मायाप बाध्यकारी रक्ता नहीं कर सकती, ओषधि रोग नहीं मिटा सकती और समुद्रमें डूबते हुएको नौका नहीं बचा सकती ॥ १९ ॥ सत्त्वादि गुणोंके कारण भिन्न भिन्न स्वभावक भितने भी कक्षादि श्रेष्ठ और कालादि कनिष्ठ कर्ता हैं, उनको प्रेरित करनेवाले आप ही हैं । वे आपकी प्रेरणासे जिस आधारमें स्थित होकर जिस निमित्तसे जिन मिष्टी आदि उपकरणोंसे जिस समयजिन साधनोंके द्वारा जिस अष्टष्ट आदिकी सहायतासे जिस प्रयोजनके उद्देश्यसे जिस विधिसे जो कुछ उत्पन्न करते हैं या रूपान्तरित करते हैं, वे सब और वह सब आपका ही स्वरूप है ॥ २० ॥

पुरुषकी अनुमतिसे काष्ठके द्वारा गुणोंमें छोम होनेपर माया मन प्रधान चिह्नशरीरका निर्माण करती है । यह चिह्नशरीर बलवान्, कममय एवं अनेकनाम-रूपोंमें आसक्त—छन्दोमय है । यही अविधाक द्वारा कल्पित मन, दस इन्द्रिय और पाँच तन्मात्रा—इन सोलह विकाररूप अंगोंसे युक्त संसारचक्र है । जन्मरहित प्रभो ! आपसे भिन्न रहकर ऐसा कौन पुरुष है, जो इस मनरूप संसारचक्रको पार कर जाय ? ॥ २१ ॥ सर्वशक्तिमान् प्रभो ! माया इस सोलह अंगोंवाले संसारचक्रमें डालकर ईश्वरक समान मुक्त पेर रही है । आप अपनी चैतन्यशक्तिके बुद्धिके समस्त गुणोंको सर्वदा पराजित रखते हैं और काष्ठरूपसे सम्पूर्ण साध्य और साधनोंको अपने अधीन रखते हैं । मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मुझ हस्तसे बचाकर अपनी सन्निधिमें खींच लीजिये ॥ २२ ॥ मगवान् ! जिसके चिदे संसारी माग बहु लाभ्यपित रहते हैं, स्वर्गमें विजयवागी समस्त लोकपालोंकी वह आयु, मरनी और परम्य मीने गूँब देव चिदे । जिस समय मेरे पिता तनिक लाभ करके हँसते थे और उससे उनकी भीहँ पाई टीही हा जाती थी तब उन शर्माकी सम्प्रतिपोक चिदे वट्टी टिकना नहीं रह जाता था, वे छुटती मित्रा थी । किन्तु आपने मेरे जन विनाश भी मार दाहा ॥२३॥

स्वर्गं प्रगृह्य यदबोचदमद्विधिसु

स्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु वं इरामि ॥२९॥

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत् त्व

माद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मभ्यतथ ।

सुष्टा गुणव्यतिकरं निजमाययेद

नानेव तैरवसितमदनुप्रविष्टः ॥३०॥

त्वं वा इदं मदसदीश भवास्ततोऽन्यो

माया मदत्मपरबुद्धिरिमं अपार्था ।

यद् यस्य जन्म निधनं स्थितिरिक्षणं च

तद् वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वाः ॥३१॥

न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमज्ये

द्वेयेऽऽत्मना निजसुखानुभवा निरीह ।

भागेन मीलितव्यात्मनिपीतनिद्र

स्तुर्यं स्थितानस्ततो न गुणाश्च युक्छे ॥३२॥

तस्यैव ते वंपुरिद निजकालशक्त्या

मन्त्रोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।

अम्भस्वनन्तशयनाद् विरमत्समाधे

नीमेरभूत् स्वकणिकावन्महाऽग्रम् ॥३३॥

तत्सम्भव कविरसाऽन्यदपश्यमान-

स्त्वां बीजमात्मनि वसस्वद्विधिचिन्त्य ।

समज्ञता हूँ कि आपने अपने प्रेमी मक्त समझादि
अभिर्योक्त वचन सत्य करनेके लिये ही वैसा किया
था ॥ २० ॥

मगन् ! यह सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आप ही हैं ।
क्योंकि इसके आदिमें आप ही कारणरूपसे थे, अन्तमें
आप ही अन्तिके रूपमें रहेंगे और बीचमें इसकी प्रतीति-
के रूपमें भी केवल आप ही हैं । आप अपनी मायासे
गुणोंके परिणामस्वरूप इस जगत्की सृष्टि करके इसमें
पहलेसे विद्यमान रहनेपर भी प्रवेशकी नीत्य करते हैं और
उन गुणोंसे युक्त होकर अनेक माछम पक्ष रहे हैं ॥ ३० ॥
मगन् ! यह जो कुछ कार्य-कारणके रूपमें प्रतीत हो
रहा है, वह सब आप ही हैं और इससे भिन्न भी आप
ही हैं । अपने परयेका भेद-भाव तो अर्थात् हीन शब्दोंकी
माया है, क्योंकि जिससे जिसका जन्म, स्थिति, लय
और प्रकाश होता है, वह उसका स्वरूप ही होता है—
जैसे बीज और वृक्ष कारण और कार्यकी दृष्टिसे भिन्न-
भिन्न हैं, तो भी गन्ध-सम्प्राप्तकी दृष्टिसे दोनों एक
ही हैं ॥ ३१ ॥

मगन् ! आप इस सम्पूर्ण विश्वको ज्ञान ही अपने-
में समेटकर आत्मसुखका अनुभव करते हुए निष्क्रिय
होकर प्रलयकालीन अवस्था में शयन करते हैं । उस समय
अपने अत्यसिद्ध योगके द्वारा बाह्य दृष्टिको बंद कर आप
अपने स्वरूपक प्रकाशमें निद्राको विधीन कर लेते हैं
और तृतीय ब्रह्मपदमें स्थित रहते हैं । उस समय आप
न तो तमोगुणसे ही युक्त होते और न तो विद्योंको
ही स्वीकार करते हैं ॥ ३२ ॥ आप अपनी कालशक्तिसे
प्रकृतिक गुणोंको प्रेरित करते हैं, इसलिये यह ब्रह्मात्म
आपका ही शरीर है । पहले यह आपमें ही स्थित था ।
जब प्रलयकालीन अवस्थाके भीतर घोरताभ्यापन शयन करने-
वाले आपन योगनिद्राकी समाधि त्याग दी, तब बटके
बीजसे विनाश वृक्षके समान आपकी नाभिसे ब्रह्माण्ड
कमल उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ उसपर सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माभी
प्रकाश हुए । जब उन्हें कमलक सिंहा और वृक्ष भी
दिखायी आ पड़ा, तब अपनेमें बीजरूपसे ध्यात आपको
वे न जान सके और आपको अपनेसे बाहर समझकर

नाविन्ददम्बशतमन्सु निमज्जमानो

आतेऽङ्कुरे कथम् होपलमेव भीष्मम् ॥३४॥

स त्वात्मनो निरसि विस्मित आस्थितोऽञ्ज

कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभाष ।

त्वामात्मनीञ्च शुचि गन्धमिवातिसूक्ष्मं

मूतेन्द्रियाश्च यमये वितर्त ददर्श ॥३५॥

एव सहस्रवदनाक्षप्रशिरःकरोरु-

नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ।

मायामय सदुपलक्षितसन्निवेशं

दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुहं विरिञ्चः ॥३६॥

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुषं च विभ्रव

वेदमुहवतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।

हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमभ

सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥३७॥

इत्थं नृतिर्यगुपि देवर्षेणैवावतारै

लोकान् विभावयसि ईसि जगत्प्रतीपान् ।

धर्मं महापुरुष पासि युगानुह्वयं

छन्नः कर्ला र्यदभवत्त्रियुगोऽथ स स्वम् ॥३८॥

नैतमनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ

मग्नीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ।

कामातुर

हर्षशोकमेवैषणार्तं

तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३९॥

अन्के भीतर घुसकर सी वर्षतक हूँते रहे । पर
वहाँ उन्हें कुछ नहीं मिला । यह ठीक ही है, क्योंकि
जङ्गल उग आनेपर उसमें व्याप्त बीनको कोई कर
जङ्गल कैसे देख सकता है ॥ ३४ ॥ ब्रह्माको क्या
आश्चर्य हुआ । वे हारकर कमलपर बैठ गये । बहुत
समय भीतनेपर तीव्र तपस्या करनेसे अब उनके इन्द्र
शुद्ध हो गया, तब उन्हें मृत, इन्द्रिय और अन्तःकल्प-
रूप अपने शरीरमें ही ओतप्रोतरूपसे स्थित आत्म
सूक्ष्मरूपका साक्षात्कार हुआ—ठीक वैसे ही जैसे
पृथ्वीमें व्याप्त उसकी अति सूक्ष्म तन्मात्रा गन्धक
होता है ॥ ३५ ॥

त्रिपद पुरुष सहस्रों मुख, चरण, सिर, हाथ, अङ्गु-
ली, नासिका, मुख, कर्ण, नेत्र, आभूषण और आभूषणों
सम्पन्न था । चौदहों लोक उसके विभिन्न वर्णोंके रूपमें
शोभायमान थे । वह भगवान्की एक अक्षमसी मूर्ति
थी । उसे देखकर ब्रह्माजीको क्या आनन्द हुआ ॥ ३६ ॥
रत्नगुण और तमोगुणरूप मधु और कैटभ नामके दो
बड़े बालान् दैत्य थे । जब वे दोनोंको पुरुषकर से गये,
तब आपने हयग्रीव-अवतार ग्रहण किया और उन
दोनोंको मारकर सत्त्वगुणरूप भुक्तिर्षो ब्रह्माजीको भेंट
दी । वह सत्त्वगुण ही आपका अत्यन्त प्रिय शरीर है—
महाब्रह्मायोग इस प्रकार वर्णन करते हैं ॥ ३७ ॥ पुरुषोत्तम !
॥ ३८ ॥ प्रकर आप मनुष्य, पशु-पक्षी, अग्नि, देवता और
मत्स्य आदि अवतार लेकर लोकोंका पाप्मन तथा निन्दके
श्रेष्ठियोंका संहार करते हैं । इन अवतारोंके द्वारा आप
प्रत्येक युगमें उसके धर्मोंकी रक्षा करते हैं । कस्मिन्में
आप छिपकर गुप्तरूपसे हो रहते हैं, इसीन्में आपका
एक नाम त्रियुग भी है ॥ ३८ ॥

वैकुण्ठनाथ ! मेरे मनकी बड़ी दुर्दशा है । यह
पाप-वासनाओंसे तो कलुषित है ही, सत्य भी अत्यन्त
दुष्ट है । यह प्रायः ही काममात्रोंके कारण जातुर रहता
है और हर्ष-शोक, भय एवं जोर-परलोक, धन, पक्षी,
पुत्र आदिकी चिन्ताओंसे व्याकुल रहता है । ऐसे
आपकी भीषा-कथाओंमें तो इस ही नहीं मिथ्या ।
इसके बारे में दीन हो रहा हूँ । ऐसे मनसे मैं
आपके सकृपका चिन्तन कैसे करूँ ? ॥ ३९ ॥

१ मा पा—सम्पन्न । २ मा पा—हत्वा पुनः स्तिष्ठिगणम् । ३ मा पा—इत्यादि । ४ मा

पा—प्रमानिद्वियुगेऽथ । ५ मा पा—मयेऽवतारं ।

विह्वैकतोऽन्युत विकर्षति माविरसा

शिशोऽन्यतस्त्वगुदरं भवर्णं कुतश्चित् ।

घ्राणोऽन्यतश्चपलश्च कश्च कर्मक्षक्ति-

र्वह्मण्य सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥४०॥

एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्या

मन्योन्यजममरणाशनभीतभीतम् ।

पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरयैत्रं

इन्तेति पारचर पीपृहि मूढमथ ॥४१॥

को न्वत्र तेऽलिलगुरो भगवन्प्रयास

उत्तारयेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः ।

मृदेयु वै महदनुग्रह आर्तकन्धो

किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥४२॥

नैवोद्विजे पर दुरस्ययवैतरण्या

स्ववद्वीर्यगायनमहामृतमप्रचिच ।

श्रोत्रे ततो विमुल्लसत्तस इन्द्रियार्थ

मायामुखाय भरमुद्रहतो विमूढान् ॥४३॥

अप्युत ! यह कमीन अश्वानेशाही नीम मुझे खादिखरतोंकी ओर खींचती रहती है । जमनेन्द्रिय घुम्दरी छोकी ओर, लवचा सुकोमल स्पर्शकी ओर, पेठ मोजनकी ओर, कणमधुर सङ्गीतकी ओर, नासिका भीनी-भीनी घुग्घकी ओर और ये चपल नेत्र सौन्दर्यकी ओर मुझ खींचते रहते हैं । इनके सिवा कर्मेन्द्रियों भी अपने-अपने विषयोंकी ओर ले जानेको ओर लगाती ही रहती हैं । मेरी तो वह दशा हो रही है, जैसे किसी पुरुषकी बहुत-सी पत्नियाँ उसे अपने अपने शयनगृहमें ले जानेके लिये चारों ओरसे घसीट रही हों ॥ ४० ॥ इस प्रकार यह जीव अपने कर्मेक बन्धनमें पककर इस संसाररूप वैतरणी नदीमें गिरा हुआ है । जन्मसे मृत्यु, मृत्युसे जन्म और दोनोंके द्वारा कर्मभोग करते-करते यह भयभीत हो गया है । यह अपना है, यह पराया है—इस प्रकारके भेद-भावसे युक्त होकर किसीसे मित्रता करता है तो किसीसे शत्रुता । आप इस मूढ़ अवि-जातिकी यह दुर्दशा देखकर कठुणासे इवित हाँ जाइये । इस मय-नदीसे सर्वदा पार रहनेवाले भगवन् ! इन प्राणियोंको भी जब पार क्या दीजिये ॥ ४१ ॥ जगद्गुरो ! आप इस सृष्टिकी व्यवृत्ति, स्थिति तथा पालन करनेवाले । ऐसी अवस्था-में इन जीवोंको इस मय-नदीके पार उत्तार देनेमें आपको क्या प्रयास है ? दीनजनोंके परमहितैषी प्रभो ! मूढ-मृदेके मूढ़ ही मरान् पुरुषोंके प्रियेय कठुणहृत्पात्र होते हैं । हमें उसकी कोई आवश्यकता नहीं है । क्योंकि हम आपके प्रियजनोंकी सेवामें लगे रहते हैं इसलिये पार जानेकी हमें कभी चिन्ता ही नहीं होती ॥ ४२ ॥ परमात्मन् ! इस मय-वैतरणीसे पार उतरना दूसरे लोगोंके लिये अवश्य ही कठिन है, परन्तु मुझे तो इससे तनिक भी भय नहीं है । क्योंकि मेरा चित्त इस वैतरणीमें नहीं, आपकी तन सीलाओंके गानमें मग्न रहता है, जो सर्गाय अप्रतको भी तिरस्कृत करनेवाली—परमावृत-स्वरूप—है । मैं उन मूढ़ प्राणियोंके लिये शोक कर रहा हूँ, जो आपके गुणगानसे विमुक्त रहकर इन्द्रियोंके विषयोंका मायामय झूठ झुल्ला प्राप्त करनेके लिये अपने सितार सारे संसारका मार डोते रहते हैं ॥ ४३ ॥

प्रायेण देन मुनयः स्वविमुक्तिकामा

मौनं धरन्ति विज्ञेन परार्थनिष्ठाः ।

नैतान्विहाय कृपणान्विमृश एको

नान्यं स्वदस् अरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥४४॥

यन्नैषुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं

कण्डूयनेन कण्ठारिव दुःखदुःस्वप्न ।

तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःस्वभावाः

कण्डूतिबन्धनसिद्धिं विपश्येत् धीरः ॥४५॥

मौनव्रतधृततपाऽप्ययनस्वधर्म-

न्याम्यारहाजपसमाधय आपन्नार्थाः ।

प्राप्तं पर पुरुष त त्वजितेन्द्रियाणां

धाता भवन्त्युत न यात्र तु दाम्भिकानाम् ॥४६॥

रूप इमे मदमती एव वेदसूत्रं

धीजादुरागिषु न चान्यदरूपकस्य ।

युक्ताः ममद्युमुभयत्र विचिन्वते स्वां

यागन वक्षिमिष दारुणं नान्यत्र स्यात् ॥४७॥

स्य धापुरमित्यनिर्विद्यद्भ्युमाया

प्रागन्त्रिपाणि हृदयं विदनुग्रह्य ।

मेरे खासी ! कहे-कहे ऋषि-मुनि तो प्रायः अपनी सुखिने
लिये निर्बन्ध बनये आकर मौनव्रत धारण कर लेते हैं । वे
दूसरोंकी मलाईके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते ।
परन्तु मेरी दशा तो दूसरी ही हो रही है । मैं इन मूके
हुए असह्य गरीबोंको छोड़कर अकेला मुक्त होना नहीं
चाहता । और इन मटकते हुए प्राणियोंके लिये आपने
सिखा और कोई सहाय भी नहीं दिखायी पड़ता ॥४४॥

धरने पैसे हुए लोगोको जो मैथुन आदि का सुख
मिळता है, वह व्यस्त तुच्छ एवं दुःखरूप ही है—
जैसे कोई दानों हाथोंसे सुनकर रहा हो उसे उस
सुनकीये पाहले उसे कुछ बोझ-सा सुख महसूस पड़ता
है, परन्तु पीछेसे दुःख ही-दुःख होता है । किन्तु ये मूके
हुए ब्रह्मानी मनुष्य बहुत दुःख योगनेपर भी इन निरर्थके
जवाते नहीं । इसके विपरीत धीर पुरुष जैसे सुजलप्रवृत्तों
सह लेते हैं, वैसे ही कामादि वेगोंको भी सह लेते हैं ।
सहनेसे ही उनका मार्ग होता है ॥४५॥ पुरुषव्रत ।
मोक्षके दस साधन प्रसिद्ध हैं—मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-
अभ्यास, तपस्या, साध्याय, सधर्मपालन, मुक्तिमेंसे
शराबोकी व्याख्या, एकस्मत्सेवन, जप और समाधि । परन्तु
जिनकी इन्द्रियों बराये नहीं हैं, उनके लिये ये सब
जीविकाके साधन—व्यापारमात्र रह जाते हैं । और
दम्भियोंके लिये तो जबतक उनकी पीठ छुल्लती नहीं
तभीतक ये जीवननिर्वाहके साधन रहते हैं और भंगाने
हो जानेपर वह भी नहीं ॥ ४६ ॥ वेदोंमें भीम और
अनुरके समान आपके दो रूप बताये हैं—कार्य और
कारण । वास्तवमें आप प्राकृत रूपसे रहित हैं । परन्तु
इन कार्य और कारणरूपोंको छोड़कर आपके ज्ञानस्य
कोई और साधन भी नहीं है । काष्ठमय्यनके द्वारा जिस
प्रकार लज्जि प्रकट की जाती है, उसी प्रकार योगीजन
भक्तिपागण्ड्री साधनासे आपके कार्य और कारण दोनोंमें
ही कुछ निरासने हैं । क्योंकि वास्तवमें ये दोनों आपके
पृथक् नहीं हैं, आपके स्वरूप ही हैं ॥ ४७ ॥ अन्न-
प्रभं वायु अग्नि, पृथ्वी आकाश, अर, पञ्च तामात्रणं
प्रागं इन्द्रिय, मन चित्त, लक्ष्मण, साधुग जगत् एव

सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च मम

नान्यत् त्वदस्वपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥४८॥

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये

सर्वे मनःप्रभृतय महदेवमर्त्या ।

आद्यन्तवन्त उरुगाय विन्ति हि त्वा-

मेव त्रिमूर्त्य मुं धिया विरमन्ति शब्दात् ॥४९॥

तत् तद्वर्त्तमानं नमस्तुतिर्कर्मपूजाः

कर्म स्मृतिभरणयो भवण कथायाम् ।

संसेवया त्वमि विनैति पदङ्गया किं

भक्तिं जन परमहमगतां लभेत् ॥५०॥

नारद उवाच

एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुण ।

प्रहाद प्रणतं प्रीतो यतमनुरभापत् ॥५१॥

श्रीभगवानुवाच

प्रहाद भद्र भद्रं तं प्राताऽहं तदसुरोद्यम ।

वरं इगीष्वाभिमत कामपराऽस्म्यहं नृणां ॥५२॥

मामप्रीणत आपुष्पन्दग्न दुर्लभं हि म ।

एषा मां न पुनर्ननुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥५३॥

श्रीमन्ति द्यमं धीरा मयभावनमाधव ।

भयश्रामा महाभागा मरामामागिषा पतिम् ॥५४॥

सगुण और निर्गुण—सब कुछ केवल आप ही हैं ।

और तो क्या, मम और भाणीके द्वारा जो कुछ निरूपण

किया गया है, वह सब आपसे धृष्ट नहीं है ॥४८॥

समग्र कीर्तिके आशय भगवन् । ये तत्त्वादि गुण और

इन गुणोंके परिणाम महत्त्वादि, देवता, मनुष्य एवं मम

आदि कोई भी आपका स्वरूप जाननेमें समर्थ नहीं है,

क्योंकि ये सब आदि व्यक्तवाले हैं और आप अनदि

एव अनन्त ॥ । एसा विचार करके ज्ञानी मन शम्भोंकी

मायासे उत्पन्न हो जाते हैं ॥४९॥ परम पूज्य । आपकी

सेवाके छ अङ्ग हैं—ममस्कार, स्तुति, समस्त कर्मोंका

समर्पण, सेवा-पूजा, चरणकमलोंका किन्तन और स्वीक

कषाका व्यवहार । इस पदङ्ग-सेवाके बिना आपका चरण

कमलोंकी भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? और भक्तिके

बिना आपकी प्राप्ति कैसे होगी ? प्रभो ! आप तो अपन

परम प्रिय भक्तजनोके, परमहस्तोंकी ही सर्वस्व हैं ॥५०॥

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार भक्त प्रह्लादन बड़

प्रभसे प्रकृति और प्राइत गुणोंसे रहित भगवान्‌क

स्वरूपभूत गुणोंका वर्णन किया । इसके बाद वे

भगवान्‌के चरणोंमें सिर झुकाकर चुप हो गये । नृसिंह

भगवान्‌का क्रोध शान्त हो गया और वे बड़ प्रेम तथा

प्रसन्नतासे बोले ॥ ५१ ॥

श्रीनृसिंहभगवान्‌ने कहा—परम कन्यागस्वरूप

प्रहाद ! तुम्हारा कन्याग हो । देखिये ! मैं तुमपर

अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम्हारी जा अभिजाता हो, मुझमें

मौलिकी । मैं जानोंकी इच्छाओंका पूरा करनेवाला

हूँ ॥ ५२ ॥ आश्चर्य । जा मुझ प्रसन्न नहीं कर

लेगा, वैसे मरा शत्रु मित्रना बहुत ही कष्टित है ।

परन्तु जब मेरे शत्रु हो जाते हैं तब फिर प्राणीक

हृदयमें किसी प्रकारकी जन्म नहीं रह जाती ॥५३॥

मैं ममत्व मनोरथोंको पूरा करनेवाला हूँ । इन्द्रिय

मयी कन्यागस्वामी परम मायावान्‌ गापुत्रक विनेन्द्रिय

प्रायेण देव मुनयः स्वविभक्तिकामा

मौनं चरन्ति विजनेन परार्थनिष्ठाः ।

नेतान्विहाय कृपणान्विमृष्ट एको

नान्यं स्वदस्य धरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥४४॥

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छ

कण्डूयनेन कर्मचारिव दु खदु खम् ।

उप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाज

कण्डूतिवमनसिञ्ज विपहेत भीरः ॥४५॥

मौनव्रतधृततपोऽध्ययनसधर्म-

प्यास्परहाजपममाधय आपधर्मा ।

प्रायः पर पुरुष ते त्वजितनिर्गुणां

वाता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिक्यनाम् ॥४६॥

रूप इमे मदमती तत्र वेदसूत्र

मीजानुरादिव न चान्यदरूपकम् ।

पृक्ता समधुमभयत्र चिन्तिते त्वां

यागन वद्विमित्र दारुण नान्यतः श्यात् ॥४७॥

स्व पापप्रतिग्रहनिर्वियदम्बुमात्रा

प्राणन्त्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहम् ।

मेरे स्वामी ! कहे-कहे ऋषि-मुनि तो प्राय अपनी मुक्ति के लिये निर्ग्राम बनमें जाकर मौनव्रत धारण कर लेते हैं । वे दूसरोंकी भलाईके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते । परन्तु मेरी दशा तो दूसरी ही हो रही है । मैं इन मूढ़ हुए असहाय गरीबोंको छोड़कर अकेला सुख हाता नहीं चाहता । और इन भटकते हुए प्राणियोंके लिये कालके सिखा और कोई सहारा भी नहीं दिखायी पड़ता ॥४४॥

धर्ममें पैसे हुए लोगोंको जो मैथुन आदि का सुख मिलता है, वह व्यर्थतुष्ट एवं दु खरूप ही है—जैसे कोई दानों हाथोंसे लुब्धक रहा हो तो वह सुखभीमें पहले उसे कुछ बोझ-सा सुख माध्यम पड़ता है, परन्तु पीछेसे दुःख-ही-दु ख होता है । किन्तु वे मूढ़ हुए अज्ञानी मनुष्य बहुत दु ख भोगनपर भी इन विपत्तियोंका ज्ञाते नहीं । इसके विपरीत भीरुपुरुष जैसे लुब्धकप्रदोंको सह लेते हैं, वैसे ही कामादि वेगोंके भी सह लेते हैं । सहनेसे ही धनका नाश होता है ॥४५॥ पुरुषोत्तम ! मोक्षके दस साधन प्रसिद्ध हैं—मौन, ब्रह्मचर्य, शान्ति, अश्रय, तपस्या, स्वाध्याय, सधर्मपातन, मुक्तियोग, श्रद्धाकी व्याख्या, एकग्रतसेवन, जप और समाधि । परन्तु जिनकी इन्द्रियों बहाये नहीं हैं, उनके लिये ये सब नीतिवाले साधन—स्वप्नपरमात्र रह जाते हैं । और दम्भियोंके लिये तो जलतक ठनकी पोख खुलती नहीं तभीतक ये जीवननिर्वाहके साधन रहते हैं और भंडार हो जानेपर वह भी नहीं ॥ ४६ ॥ वेदोंने बीच और अक्षुरके समान आपके दो रूप बताये हैं—कार्य और कारण । वास्तवमें आप प्राकृत रूपसे रहित हैं । परन्तु इन कार्य और कारणरूपोंको छोड़कर आपके ज्ञानराज कोई और साधन भी नहीं है । काष्ठमग्निके द्वारा जिस प्रकार अग्नि प्रकट की जाती है, उसी प्रकार योगीजन मक्तियोगकी साधनासे आपका कार्य और कारण दोनों ही छूट निकलते हैं । क्योंकि वास्तवमें ये दोनों आपसे पृथक् नहीं हैं, आपके स्वरूप ही हैं ॥ ४७ ॥ अन्तः प्रज्ञा ! वायु अग्नि, पृथ्वी आकाश, जल, पद्म तन्मात्रा, प्राण इन्द्रिय, मन, चित्त, अहङ्कार, सम्पूर्ण जगत् सब

नान्यथेहावयोरथो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥

यदि रासीश मे कामान् वरास्त्वं वरदर्पभ ।

कामानां ह्यसंरोहं भवस्तु शृणे वरम् ॥ ७ ॥

इन्द्रियाणि मन प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ।

हीः श्रोस्तेज सृति सत्ययस्य नश्यन्ति अन्मना ॥ ८ ॥

विमुञ्चति यदा क्यमान्मानवो मनसि स्थितान् ।

तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कैन्पते ॥ ९ ॥

नमो भगवते तुभ्य पुरुषाय महात्मने ।

इत्येष्टुर्भूतमिहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १० ॥

तृप्तिह उवाच

नकान्तिनो मे मयि जातिवहाधिप

आशासतः प्रुत्र च ये भवद्विधा ।

अथापि मन्वन्तरमेतदत्र

दस्यश्वराणामनुब्रुहस्व भागान् ॥ ११ ॥

कथा मदीया जुषमाण प्रियास्त्व

मावेश्य मामात्मनि सन्तमकम् ।

सर्पेण भूतप्वधियक्ष्मीर्न

यत्रम्य मागन च कम दिन्वन् ॥ १२ ॥

मागन पुण्य कुण्डलन पाप

कल्बर कालज्वेन हिम्वा ।

कीर्ति विगुदां मुरलाकगीतां

विताप मामप्यग्नि मुक्तपन्थ ॥ १३ ॥

य णत्तन् कीर्तयेमर्ष स्वया गातमिदं नर ।

स्वां च मां च म्मरन्कान् कर्मवधान् प्रमुच्यन् ॥ १४ ॥

उसके सेवकोंका प्रयोजनवश स्वामी-सेवकका सम्बन्ध रहता है, वैसे तो मेरा और आपका सम्बन्ध है नहीं ॥ ६ ॥ मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी । यदि आप मुझ मुँहमें का वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज अङ्कुरित ही न हो ॥ ७ ॥ हृदयमें किसी भी कामनाके उदय होते हैं । इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, श्रुति, वेद, सृति और सत्य—ये सब-कुछ सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥ कममनन ! जिस समय मनुष्य अपने मनमें रहनेवाली कामनाओंका परित्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥ भगवन् ! आपको नमस्कार है । आप सब के हृदयमें विराजमान, उदारशिरोमणि स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं । अद्भुत मुसिहकूपारी श्रीहरिके चरणोंमें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥ १० ॥

श्रीनृसिंहभगवान्म कथा—प्रह्लाद ! तुम्हारे-जैसे मेरे एकान्तप्रेमी इस लोक अथवा परलोककी किसी भी वस्तुके लिये कभी काह कामना नहीं करते । तिर भी अधिक नहीं, कब-क एकस्मन्तरतक मेरी प्रसन्नताके लिये तुम इस लोकमें दैत्याधिपतियोंके समस्त भाग स्वीकार कर लो ॥ ११ ॥ समस्त प्राणियोंके हृदयमें यज्ञोंके भोक्ता इष्टके रूपमें मैं ही विराजमान हूँ । तुम अपने हृदयमें मुझे देखते रहना और मेरी लीला-कथाएँ, जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय हैं, सुनते रहना । समस्त कर्मोंके शत्रु मेरी ही आराधना करना और इस प्रकार अपने प्राण-वर्त्मका क्षय कर देना ॥ १२ ॥ मागक द्वारा पुण्यकर्मके फल और मिथ्याम पुण्यकर्मके द्वारा पापका नाश करत हुए समयपर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओ । दवराकमें भी त्याग तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिका गान करोगे ॥ १३ ॥ तुम्हारे शत्रु का हार मेरी इस रतुनियत्र आ मनुष्य कीर्तन करण और साथ ही मेरा बार तुम्हारा स्मरण भी करेगा । वह समयपर कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जायगा ॥ १४ ॥

१ मा व विह । २ मा वा —मयि । ३ प्राचीन टीके कथा ॥ ॥ इह व वरदानदर्शक
य तः सप्तमः स्त्री व भय भविष्ये । ४ मा व —मया । ५ मा व —भगवदुवाच । ६ मा व —
ये । ७ मा व —त । ८ मा व —दिना । ९ मा व —समय ।

एवं प्रलोम्भमानाऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ।

एकान्तिस्वाद् भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तम ॥५५॥

असुरकुलमूषण प्रह्लादनी भगवान्के जनम्य प्रेमी
थे । इसलिये बड़े-बड़े लोगोंको प्रत्येकमने बाँधनेवाले
वरोंके द्वारा प्रलोभित किये जानेपर भी उन्होंने उनकी
इच्छा नहीं की ॥ ५५ ॥

इति भीमश्लागवते महापुराणे पारमहंस्यां संज्ञितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते

भगवत्स्तोत्रं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

प्रह्लादजीके राज्याभिषेक और विपुलवृद्धिकी कथा

नारद उवाच

भक्तियोगस्य तत् सर्वमन्तरायतयार्थकः ।

मन्यमानो हृषीकेशं असमान उवाच ॥ १ ॥

प्रह्लाद उवाच

मा मां प्रलाम्भतोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः ।

तत्सङ्गभीतो निर्बिम्बो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥ २ ॥

मृत्पलघ्नपत्रिघ्नस्तुर्मर्तं कामेष्वचोदयत् ।

भवान् मंसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥ ३ ॥

नान्यथा तऽखिलगुरो र्वैतेषु करुणात्मनः ।

यस्त आश्रिप आशाम्से न स मृत्युः स वै वणिक् ॥ ४ ॥

आशासाना न र्वं मृत्युः स्वामिन्याश्रिप आत्मनः ।

न म्यामी मृत्युषु स्वाम्यमिच्छन् यांराति चाश्रिपः ॥ ५ ॥

अहं त्वकामस्त्वद्वक्तृत्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ।

नारदजी कहते हैं—प्रह्लादनीन बाबक होनेपर
मी यही समझा कि बरदान माँगना प्रेम-मत्तिका किन्ना
है । इसलिये कुछ मुसकराते हुए वे भगवान्के
बोले ॥ १ ॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो ! मैं जन्मसे ही विषय
मोगमें आसक्त हूँ, जब मुझे इन वरोंके द्वारा आप
छुमाइये नहीं । मैं उन मोगोंके सङ्गसे डरकर, उनके
द्वारा होनेवाली तीव्र वेदनाका अनुभव कर उनसे छूटने-
की अभिलाषासे ही आपकी शरणमें आया हूँ ॥ २ ॥
भगवन् ! मुझमें मत्तके लक्षण हैं या नहीं—यह जाननेके
लिये आपने अपने भक्तको बरदान माँगनेकी ओर
प्रेरित किया है । ये विषय-मोग हृदयकी गोंठको और
मी मजबूत करनेवाले तथा बार-बार जन्म-मृत्युके
चक्रमें बाँधनेवाले हैं ॥ ३ ॥ भगवदु ! परीक्षाके
लिखा ऐसा कहनेका और कोई कारण नहीं दीकृता।
क्योंकि आप परम दयालु हैं । (अपने भक्तको मोगमें
फँसायेवाला वर कैसे दे सकते हैं ?) आपसे जो सेवक
अपनी कामनाएँ पूर्ण करमा चाहता है, वह सेवक नहीं,
वह तो जेन-वेन करनेवाला निरा बनिया है ॥ ४ ॥ जो स्वामीसे
अपनी कामनाओंकी पूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं,
और जो सेवकसे सेवा करानेके लिये उसका स्वामी
बननेके लिये उसकी कामनाएँ पूर्ण करता है, वह
स्वामी नहीं ॥ ५ ॥ मैं आपका निष्कलम सेवक हूँ
और आप मेरे गिरपेक्ष स्वामी हैं । जैसे रामा और

नान्यथेहाययोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥

यदि रासीश मे कामान् वरास्त्वं वरदर्पभ ।

कामानां ह्यसरोर्ह भवस्तु वृणे वरम् ॥ ७ ॥

इन्द्रियाणि मन प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ।

ही श्रीमतेज स्मृति सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥ ८ ॥

विमुञ्चति यदा कामा मानसो मनसि स्थितः ।

तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कैल्यते ॥ ९ ॥

नमो भगवते तुभ्य पुरुषाय महात्मने ।

हरयेऽद्भुतमिहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १० ॥

तृप्तिह उवाच

नकान्तिनो मे मयि जातिहाशिप

आशासतऽमुष्य च य भवद्विधाः ।

अथापि मन्वन्तरमेतदत्र

दैत्यवराणामनुबुद्धस्व भागान् ॥ ११ ॥

फथा मदीया जुपमाण प्रियास्त्व

मावेक्ष्य मामात्मनि मन्तमकम् ।

सर्वेषु भूतप्राधिपत्रमीग

यजत्र यागन च क्रमं हिन्वन् ॥ १२ ॥

मागन पुण्यं कुशलेन पार्प

फलं च कालजवनं हित्वा ।

सीर्षि निगुदां मुगलाङ्गीतां

विताप मामप्यमि मुक्तबन्ध ॥ १३ ॥

य एतत् प्रीतयमर्षं न्यया गीतमिदं नर ।

त्वां यमां च स्मरन्त्यन्तं कर्म बन्धान् प्रमुष्यत ॥ १४ ॥

सत्ते सेवकौका प्रयोजनवश स्वामी-सेवकत्वा सम्बन्ध रहता है, पैसा तो मेरा और आपका सम्बन्ध है नहीं ॥ ६ ॥ मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी । यदि आप मुझ मुँहमौंगा वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज अङ्कुरित ही न हो ॥ ७ ॥ हृदयमें किसी भी कामना के उदय होते ही इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, ज्ञान, धी, तेज, स्थिति और सत्य—ये सब-कुछ सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥ कमलनयन ! जिन समय मनुष्य करने मनमें रहनेवाली कामनाओंका परि त्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपकी प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥ भगवन् ! आपको नमस्कार है । आप सब के हृदयमें विराजमान, उदारशिरोमणि स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं । अद्भुत वृत्तिरूपधारी श्रीहरिके चरणों में मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥ १० ॥

अनिर्दिष्टभगवान् कहत—प्रह्लाद ! तुम्हारे जैसे मेरे एकान्तप्रथी इस लोक अपना परलोककी किसी भी वस्तुके लिये कभी काह कामना नहीं करते । फिर भी अधिक नहीं, कल्प एक कल्पान्तरतक मेरी प्रसन्नताके लिये तुम इस लोकमें दैत्याधिपतियोंके समस्त मांग स्वीकार कर लो ॥ ११ ॥ समस्त प्राणियोंके हृदयमें यज्ञोंके लोका ईश्वरके रूपमें मैं ही विराजमान हूँ । तुम अपना हृदयमें मुझ देव्यते रहना और मेरी सीखा-कपाई, जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय है, सुनते रहना । समस्त कर्माके द्वारा मेरी ही आराधना करना और इस प्रकार अपना प्रारब्ध-वर्मका क्षय कर देना ॥ १२ ॥ भागवत द्वारा पुण्यकर्मके फल और निष्कर्म पुण्यकर्मके द्वारा पापका नाश करत हुए समयपर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनों से मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओ । दण्डकमें भी शयन तुम्हारी निगुद कीर्तिके गान करेंगे ॥ १३ ॥ तुम्हारे दाग का हई मरी इस रत्नविषय जा मनुष्य कीजने करेगा और साथ ही मेरा और तुम्हारा स्मरण भी करेगा वह समयपर कभीके अन्धमने मुक्त हो जायगा ॥ १४ ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १००० १००१ १००२ १००३ १००४ १००५ १००६ १००७ १००८ १००९ १०१० १०११ १०१२ १०१३ १०१४ १०१५ १०१६ १०१७ १०१८ १०१९ १०२० १०२१ १०२२ १०२३ १०२४ १०२५ १०२६ १०२७ १०२८ १०२९ १०३० १०३१ १०३२ १०३३ १०३४ १०३५ १०३६ १०३७ १०३८ १०३९ १०४० १०४१ १०४२ १०४३ १०४४ १०४५ १०४६ १०४७ १०४८ १०४९ १०५० १०५१ १०५२ १०५३ १०५४ १०५५ १०५६ १०५७ १०५८ १०५९ १०६० १०६१ १०६२ १०६३ १०६४ १०६५ १०६६ १०६७ १०६८ १०६९ १०७० १०७१ १०७२ १०७३ १०७४ १०७५ १०७६ १०७७ १०७८ १०७९ १०८० १०८१ १०८२ १०८३ १०८४ १०८५ १०८६ १०८७ १०८८ १०८९ १०९० १०९१ १०९२ १०९३ १०९४ १०९५ १०९६ १०९७ १०९८ १०९९ ११०० ११०१ ११०२ ११०३ ११०४ ११०५ ११०६ ११०७ ११०८ ११०९ १११० ११११ १११२ १११३ १११४ १११५ १११६ १११७ १११८ १११९ ११२० ११२१ ११२२ ११२३ ११२४ ११२५ ११२६ ११२७ ११२८ ११२९ ११३० ११३१ ११३२ ११३३ ११३४ ११३५ ११३६ ११३७ ११३८ ११३९ ११४० ११४१ ११४२ ११४३ ११४४ ११४५ ११४६ ११४७ ११४८ ११४९ ११५० ११५१ ११५२ ११५३ ११५४ ११५५ ११५६ ११५७ ११५८ ११५९ ११६० ११६१ ११६२ ११६३ ११६४ ११६५ ११६६ ११६७ ११६८ ११६९ ११७० ११७१ ११७२ ११७३ ११७४ ११७५ ११७६ ११७७ ११७८ ११७९ ११८० ११८१ ११८२ ११८३ ११८४ ११८५ ११८६ ११८७ ११८८ ११८९ ११९० ११९१ ११९२ ११९३ ११९४ ११९५ ११९६ ११९७ ११९८ ११९९ १२०० १२०१ १२०२ १२०३ १२०४ १२०५ १२०६ १२०७ १२०८ १२०९ १२१० १२११ १२१२ १२१३ १२१४ १२१५ १२१६ १२१७ १२१८ १२१९ १२२० १२२१ १२२२ १२२३ १२२४ १२२५ १२२६ १२२७ १२२८ १२२९ १२३० १२३१ १२३२ १२३३ १२३४ १२३५ १२३६ १२३७ १२३८ १२३९ १२४० १२४१ १२४२ १२४३ १२४४ १२४५ १२४६ १२४७ १२४८ १२४९ १२५० १२५१ १२५२ १२५३ १२५४ १२५५ १२५६ १२५७ १२५८ १२५९ १२६० १२६१ १२६२ १२६३ १२६४ १२६५ १२६६ १२६७ १२६८ १२६९ १२७० १२७१ १२७२ १२७३ १२७४ १२७५ १२७६ १२७७ १२७८ १२७९ १२८० १२८१ १२८२ १२८३ १२८४ १२८५ १२८६ १२८७ १२८८ १२८९ १२९० १२९१ १२९२ १२९३ १२९४ १२९५ १२९६ १२९७ १२९८ १२९९ १३०० १३०१ १३०२ १३०३ १३०४ १३०५ १३०६ १३०७ १३०८ १३०९ १३१० १३११ १३१२ १३१३ १३१४ १३१५ १३१६ १३१७ १३१८ १३१९ १३२० १३२१ १३२२ १३२३ १३२४ १३२५ १३२६ १३२७ १३२८ १३२९ १३३० १३३१ १३३२ १३३३ १३३४ १३३५ १३३६ १३३७ १३३८ १३३९ १३४० १३४१ १३४२ १३४३ १३४४ १३४५ १३४६ १३४७ १३४८ १३४९ १३५० १३५१ १३५२ १३५३ १३५४ १३५५ १३५६ १३५७ १३५८ १३५९ १३६० १३६१ १३६२

प्रह्लाद उवाच

वरं वरम् एतत् ते परब्रह्मान्महेश्वर ।
 यदनिन्दत् पिता मे स्वामिबिद्वांस्तन एश्वरम् ॥१५॥
 विद्वामर्पाक्षयः साध्यात् सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ।
 भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाभवान् ॥१६॥
 तस्मात्पिता मे पूयेत दुरन्ताव् दुस्तरादधात् ।
 पूतस्तेऽपाङ्गसदृष्टस्त्वा कृपयन्त्सल ॥१७॥

श्रीमद्भागवानुवाच

त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।
 यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान्मै कुलपावन ॥१८॥
 यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशन्ताः समदर्शिनः ।
 साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्वपि कीकटाः ॥१९॥
 सर्वात्मना न हिंसन्ति सूतग्रामेषु किञ्चन ।
 उवाचधेषु दैत्येन्द्र मेद्भावेन गतस्मृताः ॥२०॥
 भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्तत्त्वामनुभवा ।
 भवान्मे नन्द भक्तानां सर्वेषां प्रतिकृपञ्च ॥२१॥
 कुरु त्वं प्रतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वश्र ।
 मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकांन्यास्तपि सुप्रजा ॥२२॥
 पित्र्यं च म्यानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
 मर्यादेभ्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्पर ॥२३॥

नारद उवाच

प्रह्लादोऽपि तथा चक्र पितृव्यत्साम्परायिकम् ।

प्रह्लादजीने कहा—महेश्वर ! आप वर देनेवालोंमें
 सामी हैं। आपसे मैं एक वर और माँगता हूँ। मेरे
 पिताने आपके ईश्वरीय सेवकों और सख्तोंमें
 चराचरगुरु स्वयं आपको न जानकर आपकी बड़ी निन्दा
 की है। 'इस विष्णुने मेरे भाईको मार डाला है' ऐसी निम्न-
 दृष्टि रखनेके कारण पिताजी कोषके बेगकी सहन करने-
 में असमर्थ हो गये थे। इसीसे उन्होंने आपका मरु होने-
 के कारण मुझसे भी मोह किया ॥१५॥ १६॥ दीनबन्धु !
 यद्यपि आपकी दृष्टि पड़ते ही वे पवित्र हो चुके
 फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उस ज्ञानी
 नाश न होनेवाले दुस्तर दोषसे मेरे पिता छुत्र हो
 जायें ॥ १७ ॥

श्रीसुविद्वानुवाचने कहा—निम्नाप प्रह्लाद ।

तुम्हारे पिता स्वयं पवित्र होकर तर गये, इसकी तो बात
 ही क्या है, यदि उनकी किसी पीढ़ियोंके पितर होते
 तो उन सबके साथ भी वे तर जाते, क्योंकि तुम्हारे
 जैसा कुलको पवित्र करनेवाला पुत्र उनकी प्रश-
 हुवा ॥ १८ ॥ मेरे शान्त, समदर्शी और सुखसे सदाचार
 पालन करनेवाले प्रेमी मरुत्रम कहाँ-कहाँ निवास करते
 हैं, वे स्वाम चाहे कीकट ही क्यों न हों, पवित्र हो
 जाते हैं ॥ १९ ॥ दैत्यराज ! मेरे भक्तिमार्गसे जितनी
 कामगारें मरु हा गयी हैं, वे सर्वत्र आत्मभाव हो जाने-
 के कारण छाने-काने किसी भी प्राणीको किसी भी
 प्रकारसे कष्ट नहीं पहुँचाते ॥ २० ॥ ससारमें जो लोग
 तुम्हारे अनुयायी होंगे, वे भी मेरे मरु हा जायेंगे ।
 वेदा । तुम मेरे सभी मरुओंके आदर्श हो ॥ २१ ॥
 यद्यपि मेरे अङ्गोंका स्पर्श होनासे तुम्हारे पिता पूर्णरूपसे
 पवित्र हो गये हैं, तथापि तुम उनकी अत्यधिक निन्दा
 करो । तुम्हारे जैसी सन्तानके कारण उन्हें उचित कोश-
 की प्राप्ति होगी ॥ २२ ॥ कष्ट । तुम अपने शत्रुओंके
 पदपर स्थित हो जाओ और वेदवादी मुनियोंकी आज्ञाके
 अनुसार मुझमें अपना मन लगाकर और मेरी परामर्श
 रखकर मेरी सेवाके लिये हैं। अपने सारे कर्तव्य करो ॥ २३ ॥

नारदजी कहते हैं—सुविद्वि । भगवान्की आज्ञाके

अनुसार प्रह्लादजीने अपने पिताजी अत्यधिक निन्दा

यथाऽऽह भगवान् राजभूमिपित्तो द्विजोत्तमैः ॥ २४ ॥

प्रसादसुमुख इष्टा प्रसा नरहरिं हरिम् ।

स्तुत्वा शग्भिः पवित्राभिः प्राह दंष्ट्रादिभिर्वृतः ॥ २५ ॥

मन्त्रोपाय

देवदेवान्बिलाप्य च भूतभावन पूर्वज ।

दिष्टया ते निहतः पापा लोकास्तपनोऽसुरः ॥ २६ ॥

योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सुष्टिभिः ।

तपोयोगवैलोभश्च ममन्तनिगमानहन् ॥ २७ ॥

दिष्टया त्वं तनयः माधुर्यमाभागवतोऽर्भक ।

त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्टया त्वो समितोऽधुना ॥ २८ ॥

एतद् वपुस्ते भगवन्प्रायत प्रयत्नात्मन ।

सर्वतो गोप्स्व मन्त्रान्मृत्योरपि विषांसत ॥ २९ ॥

वृत्तिह उपाय

मैव धरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसम्भव ।

धर क्रूरनिसर्गाणामहीनाममूर्तं यथा ॥ ३० ॥

नारद उपाय

इत्युक्त्वा भगवान् राजस्तत्रैवान्तर्दधे हरि ।

अदृश्य सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिनः ॥ ३१ ॥

ततः सम्पूज्य शिरसा बध्ने परमेष्ठिनम् ।

भयं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कला ॥ ३२ ॥

ततः काव्यादिभिः सार्चं मुनिभिः क्रमस्तपसः ।

दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरात् पतिम् ॥ ३३ ॥

की, इसके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उनका ध्यामियेक किया ॥ २४ ॥ इसी समय देवता, ऋषि आदिके साथ ब्रह्माजीने वृत्तिहभगवान्को प्रसन्नबदन देखकर पवित्र वचनोंके द्वारा उनकी स्तुति की और उनसे यह बात कही ॥ २५ ॥

ब्रह्माजीने कहा—देवताओंके आराध्यदेव ! आप सर्वान्तर्यामी, नीबोंके जीवनदाता और मरे भी पिता हैं । यह पापी दैत्य लोगोंको बहुत ही सता रहा था । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपन इसे मार डाल्य ॥ २६ ॥ मैंने इसे बर दे दिया था कि मेरी सृष्टिको कोई भी प्राणी तुम्हारा वचन न कर सकेगा । इससे यह पतवाडा हो गया था । तपस्या, योग और बलके कारण तन्मूर्ख होकर इसने बेदनिधियोंका उच्छेद कर दिया था ॥ २७ ॥ यह भी बड़े सौभाग्यकी बात है कि इसका पुत्र परमयागवत् शुद्धहृदय मन्त्रसे शिशु प्रह्लादको आपने मृत्युके मुहसे छुड़ा दिया, तथा यह भी बड़े आनन्द और मङ्गलकी बात है कि वह अब आपकी शरणमें है ॥ २८ ॥ म्माक्न् ! आपके इस वृत्तिहकपक्ष प्यान नो कोई एकाग्र मनसे करेगा, उसे यह सब प्रकारके मयोंमें बचा लेगा । यहैतक कि मारनेकी इच्छासे आयी हुई मृत्यु भी उसका कुछ न बिगाड़ सकेगी ॥ २९ ॥

वृत्तिहभगवान् बोले—ब्रह्माजी ! आप दैत्योंको ऐसा बर न दिया करें । जो समाजसे ही क्रूर हैं, उनको दिया हुआ बर तो वैसा ही है जैसा सोंपोंका दूध पिलाना ॥ ३० ॥

नारदजी कहते हैं—पुनिष्ठिर ! वृत्तिहभगवान् इतना कहकर और ब्रह्माजीके हाथ की हुई पूजाको स्वीकार करते वहीं अस्तर्धान—समस्त प्राणियोंके किये अदृश्य हो गये ॥ ३१ ॥ इसके बाद प्रह्लादजीने म्माकक्षरूप ब्रह्मा-शङ्करकी तथा प्रजापति और देवताओंकी पूजा करके उन्हें माथा टककर प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ तब शुक्राचार्य आदि मुनियोंके साथ ब्रह्माजीने प्रह्लादजीको समस्त दायव और दैत्योंका अभिपति बना दिया ॥ ३३ ॥

प्रसिनन्य सतो देवा प्रयुज्य प्ररमाक्षिपः ।

स्वधामानि ययु राजन्महायाः प्रतिपूजिता ॥३४॥

एवं तौ पार्यदौ विष्णोः पुत्रस्व प्रापितौ दितेः ।

इदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥३५॥

पुनश्च विप्रश्रापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ।

कुम्भकर्णदंष्ट्रग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥३६॥

अथानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ।

तच्चितौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥३७॥

ताविहाथ पुनर्मातौ शिशुपालकैरुपजौ ।

हरौ वैरातुबन्धन पद्मवस्ते समीभतुः ॥३८॥

एनः पूर्वकृतं यत् तद्दरावानः कृष्णवैरिणः ।

जहुस्त्वन्ते तदस्मानः क्रीटः पेशस्कृतो यथा ॥३९॥

यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाभिदा ।

नृपाध्वैवाद्यः सात्सर्ग्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥४०॥

आख्यातं सर्वमतत्त्वं यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ।

दमघोषसुतादीनां हरं सात्सर्ग्यमपि द्विषाम् ॥४१॥

एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ।

अवतारकथा पुण्या यथादिदैत्ययो ॥४२॥

प्रदादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ।

भक्तिर्ज्ञानं पिरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वं हरः ॥४३॥

फिर ब्रह्मादि देवताओंन प्रह्लादका कर्मिन्त्न निज और उन्हें सुमासीर्वाद दिये । प्रह्लादजीने भी पसन्द न सक्ता सत्कार किया और वे लोग अपने-अपने मोहमें लगे गये ॥ ३४ ॥

युधिष्ठिर ! इस प्रकार भगवान् के वे दोनों पर्यन्त जब और विषय दितिके पुत्र दैत्य हो गये थे । वे भगवान् से वैरभाव रखते थे । उनके हृदयमें रहनेवाले भगवान् ने उनका उद्धार करनेके लिये उन्हें बर डाला ॥ ३५ ॥ शत्रुयोंके शापके कारण उनकी मृति नहीं हुई, वे फिरसे कुम्भकर्ण और राक्षसके रूपमें राक्षस हुए । उस समय भगवान् श्रीरामके फाकसे उनका वन्त हुआ ॥ ३६ ॥ युद्धमें भगवान् राम बाणोंसे उनका कलेबा फट गया । वहीं एक-एक पूरवर्ग की भीति भगवान् का स्मरण करते-करते उन्होंने अपने शरीर छोड़ ॥ ३७ ॥ वे ही जब इस युगमें शिशुपाल और दन्तवक्त्रके रूपमें पैदा हुए थे । भगवान् के प्रति वैरभाव होनेके कारण तुम्हारे सामने ॥ वे अपने समा गये ॥ ३८ ॥ युधिष्ठिर ! श्रीकृष्णसे शत्रुत्व रखनेवाले सभी राजा अन्तसमयमें श्रीकृष्ण परमेश्वर होकर अपने पूर्वजन्त पापोंसे सदाके लिये मुक्त हो गये । जैसे युगीके द्वारा पकड़ा हुआ कबूतर मयसे ही उत्तम स्वरूप प्राप्त कर लेता है ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार भगवान् के प्यारे भक्त अपनी मेधावर्धित जनम्य मक्तिके द्वारा भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेते हैं, वैसे ही शिशुपाल आदि नरपति भी भगवान् के वैरभावजनित जनम्य चिन्तनसे भगवान् के साक्ष्यको प्राप्त हो गये ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर ! तुमने मुझसे पूछा था कि भगवान् से वैर करनेवाले शिशुपाल आदिको उनके साक्ष्यकी प्राप्ति कैसे होती है । उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया ॥ ४१ ॥ ब्रह्मण्यदेव परमात्मा श्रीकृष्णका यह परम पत्रि वक्ताम्य चरित्र है । इसमें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु इन दोनों नेयोंके बधका वर्णन है ॥ ४२ ॥ इस प्रसङ्गमें भगवान् के परम भक्त प्रह्लादका चरित्र, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं संसारकी मुक्ति स्थिति और प्रत्येक स्त्री श्रीहि

१ - ग - गङ्गा । २ - ग - गङ्गा । ३ - ग - गङ्गा । ४ - ग - गङ्गा ।

पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना ॥५१॥

राजोवाच

कस्मिन् कर्मणि देवस्य मयाऽहञ्जगदीक्षितः ।

यथा चोपचिता कीर्तिं कृष्णेनानेन कल्पताम् ॥५२॥

नारद उवाच

निर्विता असुरा देवैर्युष्यनेनोपहृष्टैः ।

मायिनां परमाचार्य मयं क्षरणमाययु ॥५३॥

म निर्माय पुरस्तिष्ठो हैमीरौप्यायसीर्विभुः ।

दुर्लभ्यापायमयोगा दुर्धितर्क्यपरिच्छदाः ॥५४॥

ताभिन्वेऽसुरसेनान्यो लोकास्त्रीन् सेधरान् नृप ।

सरन्ता नाशयाञ्चक्रुः पूर्वैरमलक्षिता ॥५५॥

ततन्ते सेधरा लाक्य उपामाघेधरं विभो ।

ग्राहि नन्तावकान्दव विनशांसिपुरालयः ॥५६॥

अथानुगृह्य भगवान्मा मँष्टति सुरान्विभुः ।

धरं धनुषि मन्धाय पुरण्वत्त म्यमुञ्चत ॥५७॥

तताऽप्रिवर्णां श्वप उरपेतु र्यर्मण्डलात् ।

यथा मयूतर्मदोहा नारयन्त पुरा यत ॥५८॥

ते मृष्टाभ्यमव मयै निपतु म्य पुनरुम ।

तानानीय मदायागी मय कृपरमन्निपतु ॥५९॥

मिदामृतमममृणा बभ्रमारा मदीयमः ।

तव इन्ही भगवान् श्रीकृष्णने फिरसे उनके पक्षी ।
और विस्तार किया था ॥ ५१ ॥

राजा पुष्पिष्ठिरने पूछा—मारदजी ! मय रत्न
किस कार्यमें जगदीश्वर रुद्रदेवका यश मद्ध करता चाहत
था ? और भगवान् श्रीकृष्णने किस प्रकार उनके पक्षी
रक्षा की ? आप कृपा करके बताइये ॥ ५२ ॥

नारदजीने कहा—एक बार इन्ही भगवान् श्रीकृष्ण-
से शक्ति प्राप्त करके देवताओंने युद्धमें असुरोंको जीत
लिया था । उस समय सब-के-सब असुर मयविधिसे
परमगुरु मय दामवकी शरणमें गये ॥ ५३ ॥ शक्तिशाली
मयासुरने सोने, चाँदी और लोहेके तीन विमान बना
दिये । वे विमान क्या थे, तीन पुर ही थे । वे इन्ने
किसीक्षण थे कि ठगका जाना-जाना जान नहीं पड़त
था । उनमें अपरिमित सामग्रियों भरी हुई थीं ॥ ५४ ॥
पुष्पिष्ठिर ! दैत्यसेनापतियोंके मनमें तीनों व्येक-व्येक
कोकपतियोंके प्रति वैरभाव तो था ही, अब उसकी
याद करके उन तीनों विमानोंके द्वारा वे उनमें छिपे
रहकर सबका नाश करने लगे ॥ ५५ ॥ तब जो-
पात्रोंके साथ सारी प्रजा भगवान् साह्वरकी शरणमें गयीं
और उनसे प्रार्थना की कि 'प्रभो ! त्रिपुरमें रहनेवाले
असुर हमारा नाश कर रहे हैं । इस आपके हैं । जन
देवाधिदेव ! आप हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ५६ ॥

उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् साह्वरने कृपापूर्वक
शब्दोंमें कहा—'धरो मत ।' फिर उन्होंने अपने धनुष-
पर बाण चढ़ाकर तीनों पुरोंपर छोड़ दिया ॥ ५७ ॥
उनके उस बाणसे सूर्यमण्डलसे निकलनेवाली किरणोंके
समान अन्य बहुत-से बाण निकले । उनमेंसे बहुत
आगकी लपटें निकल रही थीं । उनका क्षरण उन
पुरोंका दीखना शुरू हो गया ॥ ५८ ॥ उनका हलसे
सभी विमानवासी निष्प्राण होकर गिर पड़े । महाप्रलयी
मय बहुत से उपाय जानता था, वह उन देवोंको उपा-
यान्या और अपने बनाये हुए अमृतव द्रुमों का
गिया ॥ ५९ ॥ उस दिन अमृत रसवा लहर होने लगी
असुरोंका शरीर अप्रसन्न नेत्रवाली और बने समान

उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव बह्वयः ॥६०॥

विलोक्य भगवत्कल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ।

तदाय भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥६१॥

वत्स आमीक्षदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरमंहिगौ ।

प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकृपासूतं पयौ ॥६२॥

तेऽसुरा अपि पश्यन्तो न न्यपेधन्विमोहिता ।

तं विज्ञाय महायोगी रसपालानिद अगौ ॥६३॥

स्वयं विद्वोक्तः शोकातन्मिरन्दैवगतिं च ताम् ।

द्वोऽसुरा नरोऽप्यो वा नेशरोऽस्तीह कथन ॥६४॥

आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितं द्रव्योः ।

अथासौ शक्तिमिः स्वाभिः शम्भोः प्राधानिकं व्यभात ॥

धर्मज्ञानविरक्त्युद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ।

रथं ह्यतज्जं बाहान्धनुर्वर्मं शरादि यत् ॥६६॥

सम्पन्नो रथमाभ्यास शरं धनुस्पाददे ।

शरं धनुषि सन्धाय सुहृत्तेऽभिजितीश्वरः ॥६७॥

ददाह तेन दुर्मेघा हरोऽयं त्रिपुरो नृप ।

दिवि दुन्दुभसो नेदुर्विमानशतसङ्कुलाः ॥६८॥

देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति ह्यसुयोत्तरैः ।

अवाकिरञ्जगुर्हृष्टा ननुतुषापसरोगणाः ॥६९॥

एवं दग्ध्वा पुरस्त्रिस्तो भगवापुरहा मृप ।

सुख हो गया । वे बादलोंको विदीर्ण करनेवाली विजय-
की जागृती तरह उठ खड़े हुए ॥ ६० ॥

इन्हीं भगवान् श्रीविष्णुने जब देखा कि महादेवजी तो अपना सङ्कल्प पूरा न होनेके कारण उदास हो गये हैं, तब उन असुरोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये इन्होंने एक युक्ति की ॥ ६१ ॥ यही भगवान् विष्णु उस समय गौ बन गये और ब्रह्माजी बछड़ा बने । दोनों ही मध्याह्नके समय उन तीनों पुरोंमें गये और उस सिद्धरस-के कुण्डका सारा अमृत पी गये ॥ ६२ ॥ यद्यपि उसके रक्षक दैत्य इन दोनोंको देख रहे थे, फिर भी भगवान्की मायासे वे इतने मोहित हो गये कि इन्हें रोक न सके । जब उपाय जाननेवालोंमें श्रेष्ठ मयासुरको यह बात मालूम हुई, तब भगवान्की इस लीलाका स्मरण करके उसे कोई शोक न हुआ । शोक करनेवाले अमृत-रक्षकोंसे उसन कहा—‘भार्य ! देवता, असुर, मनुष्य कबवा और कोई भी प्राणी अपने, पराये कबवा दोनोंके लिये जो प्रारब्धका विधान है, उसे मिटा नहीं सकता । जो होता था, हो गया । शोक करके क्या करना है ?’ इसके बाद भगवान् श्रीविष्णुने अपनी शक्तियोंके द्वारा भगवान् शाङ्करके युद्धकी सामग्री तैयार की ॥ ६३—६५ ॥ उन्होंने धर्मसे रथ, ज्ञानसे सारथि, वैराग्यसे ध्वजा, ऐश्वर्यसे घोड़े, तपस्यासे धनुष, विद्यासे कण्ठ, क्रियासे बाण और अपनी अन्याय्य शक्तियोंसे अन्याय्य बलुओंका निर्माण किया ॥ ६६ ॥ इन सामग्रियोंसे सज-भजकर भगवान् शाङ्कर रथपर सवार हुए एवं धनुष-बाण धारण किया । भगवान् शाङ्करने अभिहित सुहृत्में धनुषपर बाण चढ़ाया और उन तीनों दुर्मेघ विमानोंको भस्म कर दिया । युधिष्ठिर ! उसी समय स्वर्गमें दुन्दुभिर्यौ बनने लगी । सैकड़ों विमानोंकी भीषण लड़ाई ॥ ६७—६८ ॥ देवता, ऋषि, पितर और सिद्धेश्वर आनन्दसे जय-जय-कार करते हुए पुण्योंकी वर्षा करने लगे । अस्त्रारों नाचने और गाने लगी ॥ ६९ ॥ युधिष्ठिर ! इस प्रकार उन तीनों पुरोंको जयाकर भगवान् शाङ्करने ‘पुरारि’ की

ब्रह्मादिभि स्तूयमान स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥७०॥

एवंविधान्यस्य हरः स्वमायया

विदम्ब्यमानस्य नृत्ताक्रमात्मन ।

वीर्याणि गीतामृषिभिर्जगद्गुरा

लोकान् पुनानान्यपर वदामि किम् ॥७१॥

पदवी प्राप्त की और ब्रह्मादिकोंकी स्तुति सुनते हुए अपने धामको चले गये ॥ ७० ॥ भारतस्वरूप जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार धरणी मायासे जो मनुष्योंकी सी भीमार्ण करते हैं, श्रुतिलेख उन्हीं अनेकों लोकपालोंकी राखीका गान किया करते हैं । वस्तुतो, अब मैं मुझे और क्या सुनाऊँ ? ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यो संज्ञितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे

त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

मामवधर्मं वणधर्मं और स्त्रीधर्मका निरूपण

श्रीकृष्ण उवाच

धृत्वहिंसं साधुमभासभाजितं

महत्समाग्रण्य उरुक्रममात्मनः ।

युधिष्ठिरो वैत्यपतेष्टुदा युत

पप्रच्छ मृपस्तनयं स्वयम्भुवः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवच्छातुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ।

वर्णाधमाचारयुतं यत् पुमान्विन्दस्य परम् ॥ २ ॥

महाप्रजापते साक्षादात्मजः परमष्ठिनः ।

सुवानां सम्मतो ब्रह्मन्तपोयार्गममाधिभि ॥ ३ ॥

नारायणपरा विप्रा धम गुह्य पर विदुः ।

करुणाः साधवः क्षान्तास्स्वद्विधान तथापरे ॥ ४ ॥

नारद उवाच

नत्वा भगवत्तज्जाय लोकानां धर्महितवे ।

वक्ष्ये सनातनं धम नारायणमुवाच नृपतम् ॥ ५ ॥

योऽवतीयात्मनोऽश्वेन दाश्यायण्यां तु धर्मत ।

लोकानां स्वस्तयऽप्यामते तथा बदरिकाश्रमे ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णनेत्री कहते हैं—भगवन्मम प्रह्लादकी साधुसमानमे सम्मानित पत्नित्र चरित्र सुनकर संतर्पितमणि युधिष्ठिरको वक्ष्यामि स्वयम्भुवः । उन्होंने नारदकी से और भी पूछा ॥ १ ॥

युधिष्ठिरजीने कहा—भगवन् ! अब मैं वर्ण और आश्रमोंके सदाचारके साथ मनुष्योंके समातनधर्मका प्रवक्ष्य करना चाहता हूँ क्योंकि धर्मसे ही मनुष्योंको ज्ञान, भगवत्प्रेम और साक्षात् परम पुरुष भगवान्की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ आप स्वयं प्रजापति ब्रह्माकी पुत्र हैं और नारदकी । आपकी तपस्या, योग एवं समाधिके कारण वे अपने दूसरे पुत्रोंकी अपेक्षा आपको अधिक सम्मान भी करते हैं ॥ ३ ॥ आपके सम्पन्न नारायण-परायण, दयालु, सन्तोषी और शान्त ब्रह्मण धर्मके गुण से-गुण रहस्यको जैसा यथार्थरूपसे जानते हैं, दूसरे लोग वैसा नहीं जानते ॥ ४ ॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर ! जन्ममा भगवान् ही सम्पन्न धर्मोंके मूल कारण हैं । यही प्रभु चण्डबर आदिके कल्याणके लिये धर्म और दक्षपुत्री मूर्तिके द्वारा अपने अंशसे अवतीर्ण होकर बदरिकाश्रममें तपस्या कर रहे हैं । उन नारायण भगवान्को नमस्कार करके उन्हींके मुखसे सुन हूँ मनातनधर्मका मैं वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥

धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरि ।

सृष्ट च तद्विदां रावन्त्येन चात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेष्टा धर्मो दमः ।

अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥ ८ ॥

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।

नृणां विपर्षयेद्वा मौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥

अन्नाद्यादे संविभागो भूतस्य च यथार्हतः ।

तेष्वात्मदेवताशुद्धिः सुतरां नृप पाण्डव ॥ १० ॥

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।

सेवेन्यावर्तविर्दास्यं सस्यमात्मसमर्पणम् ॥ ११ ॥

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।

त्रिशङ्खध्वजवार्ताजन्तर्वात्मा येन तुष्यति ॥ १२ ॥

संस्कारा यदविच्छिन्नाः सै द्विजोऽजो जगद् यम् ।

इत्याभ्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ।

जन्मकर्मविदातानां क्रियाभ्याभ्रमचोदिताः ॥ १३ ॥

विप्रस्याभ्ययनादीनि पटन्पस्याप्रतिग्रहः ।

राज्ञा हृषिः प्रजागाप्तुरविप्राश्च कारादिभिः ॥ १४ ॥

वैश्यस्तु वाताहविश्वं नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ।

गृध्रस्य द्विजगुध्वा हृषिश्च श्यामिनो भवेत् ॥ १५ ॥

युविष्ठिर ! सर्ववैश्वरूप्य भगवान् श्रीहृषि उनका तरव ज्ञाननेवाले महर्षियोंकी श्रुतियों और जिससे आत्मस्थानि न होकर अत्यप्रसादकी उपलब्धि हा, वह कम धर्मक मूल हैं ॥ ७ ॥

युविष्ठिर ! धर्मके ये नीस लक्षण शास्त्रोंमें कहे गये हैं— सत्य, दया, तपस्या, शौच, निष्क्रिया, उचिन-अनुचितका विचार, मनका संगम इन्द्रियोंका सयम अहिंसा, ब्रह्म चर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सत्ताप समन्वर्ण, महात्माओंकी सेवा, धीरे धीरे सांसारिक भावोंकी चेष्टासे निवृत्ति, मनुष्यके अभिमानपूर्ण प्रयत्नोंका फल उच्छेद ही होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्मचिंतन, प्राणियोंका अस आदिका यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्योंमें अपने आत्म तथा इन्द्रदेवका भाव सत्ताके परम आश्रय भगवान् श्रीहृष्यके नाम गुण लीला आदिका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा पूजा और नमस्कार; उनके प्रति दास्य, सद्गुण और आत्म-समर्पण । यह तीस प्रकारका आचरण सभी मनुष्योंका परम धर्म है । इसके पालनसे सर्वार्था भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ८-१२ ॥

धमराज ! जिसके वशमें अलण्डरूपसे संस्कार होते जाये हैं और जिन्हें ब्रह्माजीने सत्कारके योग्य स्तित्तर किया है, उन्हें द्विज कहने हैं । जन्म और कर्मसे शुद्ध द्विजोंके नियम यज्ञ, अभ्ययन, दान और ब्रह्मयय आदि आश्रमोंके विशेष कर्माका विधान है ॥ १३ ॥ अभ्ययन, अभ्यापन, गान समा दान दमा और यज्ञ करना, यज्ञ करने का—ये छ कम शास्त्रगत हैं । क्षत्रियको दान नहीं लेना चाहिये । प्रजाकी रक्षा करनेवाले क्षत्रियका जीवन निर्वाह शास्त्रगतके सिवा और सबसे यथायोग्य कर तथा दण्ड (जुर्माना) आदि शर होता है ॥ १४ ॥ वैश्यको सबका शास्त्रगतशक अनुयायी रहकर गोरक्षा, हृषि एवं व्यापारके द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति काहिये । गृध्र का धर्म है द्विजानियोंकी सेवा । उनकी आर्थिकताका निर्वाह उमका सामी करना है ॥ १५ ॥

१ प्रा पा —नर्भूतमयो । २ प्रा पा —नियमप्रदेश । ३ प्रा पा —नित्यं सत्यं दायमयम ।

४ प्रा पा —यन् नराणां । ५ प्रा पा —द्विजरा वैदिकयय । ६ प्रा पा —तथा विद्वत्प्रद ।

७ प्रा पा —हृषि स्वस्वित्य ।

वार्ता विचित्रा श्रोतृनीयायावरधिलोच्छ्रनम् ।

विप्रवृत्तिश्चतुर्वेपं भेषसी चोचरोधरा ॥१६॥

वषन्त्यो नोचमां वृत्तिमनापदि भजेभरः ।

श्रुते राजन्यमापत्तु सर्वेषामपि सर्वशः ॥१७॥

श्रुतामृताभ्यां जीवेत मृतं न प्रमृतेन वा ।

सत्पानृताभ्यां जीवेत न श्रुतया कथञ्चन ॥१८॥

श्रुतमुच्छिदिलं प्रोक्तममृतं यदवाचितम् ।

मृतं तु नित्ययाज्या स्वात्प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥१९॥

सत्पानृतं तु वाणिज्यं श्रुतिर्नीचसेवनम् ।

बर्चेत् तां सदा विप्रो राजन्यश्चक्षुगुप्सिताम् ।

सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥२०॥

क्षमो दमस्तपः शौच संतोषः क्षान्तिरार्चनम् ।

ज्ञानं दयान्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥२१॥

शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मब्रमः क्षमा ।

ब्रह्मण्यता प्रसदश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥२२॥

देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ।

आस्तिक्यमृद्धमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम् ॥२३॥

शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवास्वाभिन्यमाभया ।

भमन्त्रयक्षा धस्त्येय सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥२४॥

शास्त्रणके जीवन निर्वाहके साधन भार प्रकारके हैं—वैत, शास्त्री, यायावर और शिल्पोच्छ्रन । इनमेंसे पीछे-पीछे की वृत्तियों अपेक्षाकृत छोटे हैं ॥ १६ ॥ निम्नवर्णका पुरुष बिना आपत्तिकालके उत्तम वर्णकी वृत्तियोंका व्यवहम्भ न करे ।

क्षत्रिय दान लेना छोड़कर शास्त्रणकी सेवा पाँचों वृत्तियोंका व्यवहम्भ ले सकता है । आपत्तिकालमें सभी सब वृत्तियोंको सीकार कर सकते हैं ॥ १७ ॥ श्रुत, प्रमृत इत, प्रमृत और सत्पानृत—इनमेंसे किसी भी वृत्तिका व्यवह ले, परन्तु स्थानवृत्तिका व्यवहम्भन कभी न करे ॥ १८ ॥

बाजारमें पड़े हुए वस्त्र (उच्छ) तथा सेतोंमें पड़े हुए वस्त्र (शिल्) को बीनकर 'शिल्पोच्छ' वृत्तिसे बीनकर निर्वाह करना 'श्रुत' है । बिना मोंगे जो कुछ मित्र ब्राह्म, उसी व्यापार (शास्त्रीय) वृत्तिके द्वारा जीवन-निर्वाह करना 'प्रमृत' है । नित्य मोंगकर लाना अर्थात् 'प्याग' वृत्तिके द्वारा जीवन-स्थापन करना 'मृत' है । कृषि आदिके द्वारा 'वार्ता' वृत्तिसे जीवन निर्वाह करना 'प्रमृत' है ॥ १९ ॥

वाणिज्य 'सत्पानृत' है और निम्नवर्णकी सेवा करना 'शानवृत्ति' है । शास्त्रण और क्षत्रियको इस अन्तिम निन्दित वृत्तिका कभी आज्ञा नहीं लेना चाहिये । क्योंकि शास्त्रण सर्ववेदमय और क्षत्रिय (राजा) सर्वदेवमय है ॥ २० ॥

ब्राम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरब्दा, ज्ञान, दया, महात्परायणता और सत्य—ये शास्त्रणके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ पुरुषमें उस्ता, वीरता, धीरता, तेजस्विता, त्याग, मनोजय, क्षमा, शास्त्रणोंके प्रति भक्ति, अनुग्रह और प्रजाकी रक्षा करना—ये क्षत्रियके लक्षण हैं ॥ २२ ॥

देवता, गुरु और महात्माके प्रति भक्ति, जप, धर्म और काम—इन तीनों पुरुषार्थोंकी रक्षा करना, आस्तिक्य, उपयोगशीलता और व्यावहारिक निपुणता—ये वैश्यके लक्षण हैं ॥ २३ ॥ उच्च वर्णोंके सामने विनम्र रहना, पवित्रता, साम्यकी निष्कण्ट सेवा, वैदिक मन्त्रोंसे रक्षित पशु, गोदी न करना, सत्य तथा गो-आश्रणोंकी रक्षा करना—ये शूद्रके लक्षण हैं ॥ २४ ॥

१ मा पा—शास्त्री यायावर शिल्पोच्छ्रनम् । २ मा पा—देवगुर्वच्युते भक्ति । ३ मा पा—परित्यागम् ।

१ पश्याम्वनादि करकर भन लेना । २ बिना मोंगे जो कुछ मित्र ब्राह्म उसीसे निर्वाह करना । ३ नित्यमति ब्राम्यादि मोंग लाना । ४ ज्ञानके सेत छोड़कर अन्य धर्मोंके अन्तर्गत पृथ्वीपर जो कथ पड़े रह जाते हैं उन्हें धिक् तथा बाजारमें पड़े हुए वस्त्रोंके धानोंको उच्छ करते हैं । उन शिल् और उच्छोंको बीनकर धरना निर्वाह करना शिल्पोच्छन' वृत्ति है ।

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुभ्रानुद्धलता ।

तद्गुणानुद्धतिश्च नित्यं सद्गतधारणम् ॥२५॥

समार्जनोपलेपाम्यां गृहमण्डलवर्तनैः ।

स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥२६॥

कामैरुखावचैः साध्वी प्रभयेण दमेन च ।

वाक्चैः संत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भवेत् पतिपू२७

संतुष्टालोलुपा दद्याधर्मज्ञा प्रियसत्पथाक् ।

अग्रमक्षा श्रुतिं स्निग्धा पतिं त्वपतिवत् भजेत् ॥२८॥

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिष तत्परा ।

इयममना हरेल्लोकं पत्या श्रीरिव भादते ॥२९॥

इतिः सङ्करजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् ।

अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेऽवसायिनाम् ॥३०॥

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ।

वर्देदग्निः स्मृतो राजप्रत्य चेह च धर्मकृत् ॥३१॥

धृष्या स्वभाववृत्तया वर्तमान स्वकर्मकृत् ।

दिवा स्वभावजं कर्म धननिगुणतामियात् ॥३२॥

उत्पमान मुहुः स्रष्ट स्व निर्धार्यतामियात् ।

न कल्पत पुन सूर्यं उत्पत्तीं च नश्यति ॥३३॥

एवं कामाद्य चित्तं कामानामतिसेवया ।

पतिकी सेवा करमा, उसके अनुकूल रहना, पतिके सम्बन्धियोंको प्रसन्न रखना और सर्वदा पतिके नियमोंकी रक्षा करना—ये पतिको ही ईश्वर माननेवाली पतिव्रता कियोंके धर्म हैं ॥ २५ ॥ साध्वी स्त्रीको चाहिये कि बाढ़ने-मुहारेने, मीषम तथा चौक पूरने आदिसे धरको और मनोहर वस्त्राभूषणोंसे अपन शरीरको अलङ्कृत रखे । सामग्रियोंको साफ-सुथरी रखे ॥ २६ ॥ अपने पति-देवकी छोटी-बड़ी इच्छाओंको समयके अनुसार पूरा करे । विनय, इन्द्रियसंयम, सत्य एवं प्रिय बचनोंसे प्रेमपूवक पतिदेवकी सेवा करे ॥ २७ ॥ जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे, किसी भी वस्तुके लिये लड़बाहे नही । सभी कार्यमें चतुर एवं धर्मज्ञ हो । सत्य और प्रिय बोले । अपने कर्त्तव्यमें साक्षाम रहे । पतिव्रता और प्रेमसे परिपूर्ण रहकर, यदि पति पतित न हो तो, उसका सहवास करे ॥ २८ ॥ जो लक्ष्मीजीके समान पतिपरायणा होकर अपन पतिकी वसे साक्षात् मगवान्करा स्वरूप समझकर सेवा करती है, उसके पतिदेव वैकुण्ठलोकमें मगवसारूप्यको प्राप्त होते हैं और वह लक्ष्मीजीके समान उनके साथ आनन्दित होती है ॥ २९ ॥

सुविष्टि । जो चोरी तथा अन्यन्य पाप-कर्म नहीं करते—उन अमृत्यक तथा चाण्डाल आदि अन्तेवसायी वर्णसङ्कर जातियोंकी वृत्तियों वे ही हैं जो कुरु-परम्परासे उनके वहाँ बची आयी हैं ॥ ३० ॥ वेददर्शाश्रयि मुनियोंने युग-युगमें प्राय मनुष्योंके स्वभावके अनुसार धर्मकी व्यवस्था की है । वही धर्म उनके हिमे इस जाति और परलोकमें कल्याणकारी है ॥ ३१ ॥ जो सामाजिक वृत्तिकर आश्रय लेकर अपने स्वधर्मका पालन करता है, वह धीरे-धीरे ठग स्वामाजिक कर्मसे भी ऊपर उठ जाता है और गुणातीत हो जाता है ॥ ३२ ॥ महाराज । जिस प्रकार बार-बार जोमसे सेत स्वयं ही शक्तिहीन हो जाता है और उसमें अहुर उठना पड़ता है, वही प्रसार यह विषय, जो वासनाओंका सञ्चालन है, विषयोंका अल्पत सेवन करनेसे स्वयं ही

विरन्यत यथा राजभाषितव कामविन्दुभिः ॥३४॥

यस्य यत्प्रलब्धं प्रोक्तं पुंसो वर्णामिष्यञ्जकम् ।

यदन्यथापि दृश्येत तत् सन्नेष विनिर्दिशेत् ॥३५॥

ऊष जाता है । परन्तु स्वल्प भोगोंसे ऐसा नहीं होता । जैसे एक-एक बुँद घी बाकनेसे आग नहीं बुझती, फल एक ही साथ जबिक घी पड़ जाय तो वह बुझ उठी है ॥ ३३ ३४ ॥ जिस पुरुषके वर्णको बतलानेवा जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे कर्मवादिमें मिले तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां सप्तमस्कन्धे

सुविठिरनारदसंवादे सदाचारमिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्याय

शङ्खचय और वानप्रस्थ आश्रमोंके नियम

नारद उवाच

शङ्खचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरार्हितम् ।

आचरन्दासवशीचो गुरो मुदहसौहृदः ॥ १ ॥

सार्धं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोचमान् ।

उभे सन्धे च यतवाग्व्रजपन्महा समाहितः ॥ २ ॥

छन्दांसधीयीत गुरोराहृतैश्च सुयन्त्रितः ।

उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥ ३ ॥

मन्त्रलाजितवासांसि जटादण्डकमण्डस्तु ।

विभृम्यादुपनीत च दर्मपाणिर्यथोदितम् ॥ ४ ॥

सार्धं प्रातश्चरन्ध्वं गुरवे तथिषदयेत् ।

सुझीत र्यद्यनुष्ठातो ना चेदुपपसेत् कथित् ॥ ५ ॥

गुप्तीला मितसङ्गदृष्ट्य अदधाना जितन्द्रियः ।

यावदर्थं व्यवहरत् स्नापु स्त्रीनिर्जितपु च ॥ ६ ॥

व्रजयन् प्रमदागाधामगृहस्था धृढव्रत ।

नारदजी कहत हैं—वर्मरान ! गुरुकुलमें निवस करनेवाला शङ्खचारी अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर दोस्ती का समान करनेको छोटा माने, गुरुदेवके चरणोंमें सुख अनुगृह्य करके और उनके हितके कार्य करत रहे ॥ १ ॥ सायंकाल और प्रातः काल गुरु, अग्नि, सूर्य और वेद सत्त्वोंकी उपासना करे और मीन होकर एकप्रकारे गापरीका जप करता हुआ दोनों समयकी सम्पत्ता करे ॥ २ ॥ गुरुजी जब बुझावें तभी पूर्णतया अनुशासनमें रहकर उनके वेदोंका स्थाप्याय करे । पाठके प्रारम्भ और अन्तमें उनके चरणोंमें मिर टेककर प्रणाम करे ॥ ३ ॥ शङ्खकी आवाहके अनुसार मेखला, घृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत तथा हाथमें कुश धारण करे ॥ ४ ॥ मासकाल और प्रातः काल भिक्षा माँगकर साधे और उसे गुरुजीको समर्पित करे । वे आवाह दें, तब मोक्षम करे और यदि कभी आवाह न दें तो उपवास कर ले ॥ ५ ॥ अपने शीलकी रक्षा करे । पोषा खाये । अपन कामोंको निपुणताके साथ करे । श्रद्धा रखे और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखे । स्त्री और शिष्योंके वशमें रहनेवालों के साथ जितनी आवश्यकता हो, उतना ही व्यवहार करे ॥ ६ ॥ जो गृहस्थ नहीं है और ब्रह्मचर्यका पालन करे हुए है उसे शिष्योंकी वधति ही ब्रह्मचर्य कहते हैं ॥

१ मा पा—सन्धे यदाचरतिनियम एका । २ मा पा—अग्न्य उभे । ३ मा पा—उपवेशे यन्त्रित

४ मा पा—तद्वत् ।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्त्यपि यतेर्मनः ॥ ७ ॥

केन्द्रप्रसाधनो मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम् ।

गुरुस्त्रीभिर्बुवतिभिः काग्येष्वात्मनो युवा ॥ ८ ॥

नन्वपिः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमाः पुमान् ।

सुखमपि रहो अज्ञादन्यदा यावदर्धकृत् ॥ ९ ॥

कल्पयित्वाऽऽत्मना यावदाभासमिदमीश्वरः ।

दैतं तावत् विरमेत् ततो ह्यस्य विपर्ययः ॥ १० ॥

एतत् सर्वं गृह्यस्वस्य समाम्नातं यतेरपि ।

गुरुचिर्विकल्पेन गृह्यस्वस्तुगामिनः ॥ ११ ॥

अञ्जनान्धञ्जनोन्मर्दस्थबलेल्लामिषं मधु ।

स्रग्गन्धलालकारांस्त्यजेत्तुर्ध्वं घृतप्रवाः ॥ १२ ॥

उपिस्वैवं गुरुकुले द्वित्राऽधीत्यावगुह्य च ।

त्रयी साङ्गोपनिषदं यावदर्धं यथाफलम् ॥ १३ ॥

दक्षा परमनुशाता गुरोः कर्म यदीश्वर ।

गृहं वन वा प्रविशेत् प्रयजेत् तत्र यावत्सेत् ॥ १४ ॥

अग्रौ गुरावात्मनि च सर्वभूतज्वाह्वनम् ।

भूतः स्थामभि पश्यदप्रविष्टं प्रविश्यत् ॥ १५ ॥

चाहिये । इन्द्रियों बड़ी बलवान् हैं । ये प्रयत्नपूर्वक साधन करनेवालोंके मनको भी क्षुब्ध करके खींच लती हैं ॥ ७ ॥

युवक गङ्गाधारी युवती गुरुपत्नियोंसे बाध सुगन्धाना, शरीर मन्थाना, स्नान करवाना, उष्यन् लगावाना इत्यादि कार्य न करावे ॥ ८ ॥ स्त्रियों आगके समान हैं और पुरुष धीके धड़के समान । एकान्तमें तो अपनी कन्याके साथ भी न रहना चाहिये । जब वह एकान्तमें मिला, तब भी आवश्यकताके अनुसार ही उसका पास रहना चाहिये ॥ ९ ॥

जबतक यह जीव आत्मसाक्षात्कार द्वारा इन देह और इन्द्रियोंको प्रतीतिमात्र निश्चय करके सत्तत्त्व नहीं हो जाता, तबतक 'मैं पुरुष हूँ और यह स्त्री है'—यह द्वैत नहीं मिटना और तबतक यह भी निश्चित है कि ऐसे पुरुष यदि स्त्रीके सत्त्वमें रहेंगे, तो उनकी उनमें मोह-बुद्धि हो ही जायगी ॥ १० ॥

ये सब शीघ्र-स्फादि गुण गृह्यस्वके िये और संन्यासी के लिये भी विहित हैं । गृह्यस्वके लिये गुरुकुलमें रहकर गुरुकी सेवा श्रुत्युपा वैकल्पिक है, क्योंकि श्रुतगमनके कारण उसे वहाँसे अलग भी होना पड़ता है ॥ ११ ॥

जो ब्रह्मचर्यव्रत धन धारण करें, उन्हें चाहिये कि वे सुरमा या तेल न लगावें । उष्यन् न मछें । त्रियोंके चित्र न बनावें । मांस और मधसे कोई सम्बन्ध न रखें । ऋणोंके द्वार, इत्र कुञ्ज, चन्दन और आम्रपत्रोंका त्याग कर दें ॥ १२ ॥ इस प्रकार गुरुकुलमें निवास करके द्विजातिके अपनी शक्ति और आवश्यकताके अनुसार वे,

उनके वज्र—शिक्षा, कर्तव्य आदि और उपनिषदों पर अध्ययन तथा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥ १३ ॥

किर यदि सामर्थ्य हो तो गुरुका मुँहमौला दक्षिणा दनी चाहिये । इससे बाण उनकी आज्ञासे गृह्य, बानप्रस्थ व्यवसाय संन्यास आश्रममें प्रवेश कर या आजीवन ब्रह्मचर्यका पाठन करते हुए उसी आश्रममें रहें ॥ १४ ॥

यद्यपि मगवान् स्रग्गन्ध सद्यः पदरसं ग्राह्यं, अतएव उनका कहीं प्रवेश करना या निवसना नहीं है । सत्त्वता—किर भी अग्नि गुरु, आत्मा और मनस्व प्राणिनोंमें ज्ञान आधिन जीवोंके साथ च निश्चयसे विराजमान हैं । इसलिये उनका म हाट गया इन्हीं का ॥ १५ ॥

एवविधो मन्त्राचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ।

चरन्निदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसंस्थान् ।

यानातिष्ठन् मुनिर्गच्छेदपिलोकमिहीक्षसा ॥१७॥

न कृष्टपच्यमग्नीबादकृष्ट चाप्यकाष्ठतः ।

अग्निपक्वमभाम वा अर्कपक्वमुदाहरेत् ॥१८॥

वर्षंश्चरुपुरोडाशान् निर्वपेत् काष्ठचादिवान् ।

तत्रे नवे नवेऽमाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥१९॥

अग्न्यर्धमेव शरणमुत्तमं चाद्रिचन्द्ररोम् ।

भक्षत ह्यमवाग्निवर्षाकर्तव्यपाद् स्वयम् ॥२०॥

केन्द्रामनन्वशमश्रुमज्जानि जटिलो दधन् ।

कम्पद्वरत्रिने दण्डश्चक्रजाप्रिचिच्छदान् ॥२१॥

चरद् यनं द्वादशान्दरान्ती वा चतुरो मुनिः ।

द्वावेकं वा यथा पुद्गिर्न त्रिषद्येत कृच्छ्रतः ॥२२॥

यदाह्वयः श्रुतिपायां व्याधिभिर्जरयाधवा ।

आशान्तिवर्षा वा त्रिषायां कृषादनजननादिकम् ॥२३॥

आग्नेयप्रान् ममागप्यग्नेयस्याहममात्मताम् ।

इस प्रकार आचरण करनेवाय मन्त्राचारी, वाग्यस्-
संस्थासी अथवा गृहस्थ विज्ञानसम्पन्न होकर परम्प-
रातन्त्र अनुसन्ध प्राप्त कर लेता है ॥ १६ ॥

अब मैं आप्रियोंके मतानुसार वानप्रस्थ-आश्रमके
नियम बतलाता हूँ । इनका आचरण करनेसे वानप्रस्थ-
आश्रमीको अनायास ही अतिथीके शोकमहर्लोककी प्राप्ति
हो जाती है ॥ १७ ॥ वानप्रस्थ आश्रमीको जोसी हुई
मृत्तमिं उत्पन्न होनेवाले चावल, गेहूँ आदि भक्ष्य नहीं
खाने चाहिये । बिना जोसे पैदा हुआ भक्ष्य भी नहीं
व्रतमयमें पका हो, तो उसे भी न खाना चाहिये ।
आगसे पकाया हुआ या कच्चा भक्ष्य भी न खाय । केवल
सूर्यके तापसे पके हुए कन्द, मूक, कृष्ण आदिको ही
सेवन करे ॥ १८ ॥ जंगलोंमें अपने-आप पैदा हुए पत्तों-
से नित्यनैमित्तिक चढ़ और पुराडाशका इष्टन करे । वर्ष
नये-नये भक्ष्य पक, कृष्ण आदि मिश्रने हों, तो पहले
के इच्छे किये हुए भक्षका परिष्कार कर दे ॥ १९ ॥
अग्निहोत्रके अग्निकी रक्षाके लिये ही घर, पर्जन्यकी अथवा
पद्मावती गुप्तकर आश्रय ले । श्वयंशीत, वायु, अग्नि,
वर्षा और वानप्रस्थ सहन करे ॥ २० ॥ सिरपर अथ
घाण करे और केश, रोम, मूत्र, एवं दाढ़ी-मुकुट न
कटवाने तथा श्रेष्ठको भी शरीरसे अलग न करे । कम्पकण्डू,
मृगचर्म, दण्ड, कृष्ण-वस्त्र और अग्निहोत्रकी सामग्रियों
को अपने पास रखे ॥ २१ ॥ विचारवान् पुद्गरी
चाहिये कि बारह, आठ, चार, दो या एक वर्तक
वानप्रस्थ आश्रमके नियमोंका पालन करे । स्थान यह कि
कहीं अधिक तपस्याकर क्लेश सहन करनेसे बुद्धि विगत
न जाय ॥ २२ ॥

वानप्रस्थी पुरुष जब रोग अथवा मुहावेके कारण
अनेक समय भूरे न कर सके और वैज्यत-विचार करनी
भी सामर्थ्य न रहे, तब उसे अनन्त आग्नेय प्रान् करने
चाहिये ॥ २३ ॥ अगस्त्य पूर्ण ही वह अग्नेय आश्रमी
आग्नेय अग्निवर्षा अथवा अग्नेयसे ही कर ले । पैतृक और

क्षरणेषु न्यसेत् सम्यक् संचातं तु यथार्हतः ॥२४॥

खे स्वानि यायौ नि श्वासांस्तेजस्युष्माणमात्मवान् ।

अप्ससुक्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम् ॥२५॥

वाचमग्रां सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि ।

पदानि गत्या वयसि रस्योपस्थं प्रजापतौ ॥२६॥

मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् ।

दिक्षु भोत्रं सनादेन स्पशंमध्यात्मनि त्वचम् ॥२७॥

रूपाणि चमुपा राजन् ज्योतिर्व्यभिनिवेशयेत् ।

अप्सु प्रचेतसा जिह्वां ग्रैयैर्ग्राणि क्षितौ न्यसेत् ॥२८॥

मनो मनोरथैश्च द्वे बुद्धिं बोध्यैः कवौ पर ।

कर्माप्यध्यामना रुद्रं यदहंममताक्रिया ।

सर्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञं गुणैर्ब्रह्मकारिकं पर ॥२९॥

अप्सु क्षितिमपाज्यातिव्यदा वार्या नभस्पशुम् ।

कूटस्थं सच्यं महति तदव्यक्तंऽधरं चैतत् ॥३०॥

इत्यधरतपाऽऽमानं चिन्मात्रमवशेषितम् ।

‘मरेपमका त्याग करके शरीरका उसका कारणमूल तत्त्वोंमें यथायोग्य महीमौलि लीन करे ॥२४॥ जितेन्द्रिय पुरुष अपने शरीरके छिद्राकाशोंको आकाशमें, प्राणोंको वायुमें, गरमीको अग्निमें, रक्त, वक्त्र, पीच आदि जलीय तत्त्वोंको जलमें और हृद्दी आदि ठोस वस्तुओंको पृथ्वीमें लीन करे ॥ २५ ॥ इसी प्रकार वाणी और उसके कम भाषणको उसके अधिष्ठित देवता अग्निमें, हाथ और उसके द्वारा होनेवाले कला-कौशलको इन्द्रमें, चरण और उसकी गतिको काष्ठस्वरूप त्रिष्णुमें, रति और उपस्थको प्रजापतिमें एवं पायु और मर्त्योत्सर्गको उनके आश्रयके अनुसार मृत्युमें लीन कर दे । श्रोत्र और उसके द्वारा सुने जानेवाले शब्दको दिशाओंमें, स्पर्श और त्वचाको वायुमें, नेत्रसहित रूपका अजोतिमें, मधुर आदि रसके सहित रसनन्द्रियको जलमें और पुष्पिष्ठि । प्राणेन्द्रिय एवं उसके द्वारा सुँचे जानेवाले गन्धको पृथ्वीमें लीन कर दे ॥ २६—२८ ॥ मनोरथोंके साथ मनको चन्द्रमामें, समग्रमें आनेवाले पदार्थोंके सहित बुद्धिको ब्रह्मामें तथा अहंता और ममताका क्रिया करनेवाले अहङ्कारका उसका कर्णोंक साथ रुद्रमें लीन कर दे । इसी प्रकार चेतना सहित चित्तको क्षेत्रज्ञ (जीव) में और गुणोंक ब्रह्मण विकारी-से प्रतीक होनेवाले जीवको परब्रह्ममें लीन कर दे ॥ २९ ॥ साथ ही पृथ्वीका जलमें, अन्धकाराग्निमें, अग्निका वायुमें, वायुका आकाशमें, आकाशका अहङ्कारमें, अहङ्कारका महत्तरवमें, महत्तरवका अव्यक्तमें और अव्यक्त का अविनाशी परमात्मामें लय कर दे ॥ ३० ॥ इस प्रकार अविनाशी परमात्मका रूपमें अवशिष्ट या विद्वरुष्ट है, वह अज्ञा है, वह मैं हूँ—यह जानकर अद्वितीय भावमें स्थित हो जाय । जैसे अरने आश्रय कष्टादिक

१ प्रा पा —वासे नियतेत् । २ प्रा पा —रथोनाप्यरमपिप्पनम् । ३ प्रा पा —अतिव्य ।

४ प्रा पा —मनरथे शुद्धे बुद्धौ पच तत्तदेवेत् । ५ प्रा पा —तु ।

● यहाँ मृत्युमें प्रचेतसा वं दे विषय अर्थ धारणके लिये दत्ता है । परन्तु रत्नेन्द्रियक अधिष्ठित है । भीषर ध्यायिने भी हरी माया स्वीकार किया है । परन्तु इस प्रकाशमें सर्वत्र इन्द्रिय और उक्त विषय अधिष्ठित करनेमें लय करना ब्रह्मात्मनो दे फिर रत्नेन्द्रियके द्विष हो नश कर सुखियुक्त नहीं बचता । इन्द्रिये यही भीषरधन पचतरीक मधुपुष्प प्रसन्नता पचत (अहङ्कार क्षेत्रज्ञ वचन प्रपञ्च मधुपुष्पिष्ठिगतत्वं—विद्वद्विषय विषयविषय भवतु हा व मधुपुष्पिष्ठि का प्रपञ्च है उक्त उक्त) इस अहङ्कार अहङ्कार अर्थ विषय लय दे और यही सुखियुक्त मधुपुष्प दत्त है ।

भास्वाद्योऽथ विरमेद् दग्धपोनिरिवानलः ॥ ११ ॥ मल ही नामेपर जमि क्षप्त होकर अपने सरूपे
स्थित हो जाता है, जैसे ही वह ही उपरत हो जाय ॥ ११ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां सप्तमस्कन्धे पुंभिर्हिनारादसत्तारे
सदाचारनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

यतिधर्मक्य विरूपण और अचभूत-प्रकृत-संवाह

नारद उवाच

कल्पस्त्वेवं परिब्रज्य देहमाश्राधेपितः ।
प्रायैकत्राविधिना निरपेक्षधरेन्महीम् ॥ १ ॥
विभूयाद् यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ।
त्यक्तं दम्बलिङ्गदेरन्यत् किञ्चिदनापदि ॥ २ ॥
एक एव चरेद् भिक्षुरात्मारामाऽनपाश्रयः ।
सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥ ३ ॥
पश्येदात्मन्यदो विश्वं पर सदसतोऽप्यये ।
आत्मानं च पर ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मयं ॥ ४ ॥
सुप्तप्रश्रयया सम्भाषात्मनो गतिमात्मदक् ।
पश्यन्बन्धं च मार्धं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥ ५ ॥
नाभिनन्देद् भुवं भूयुमधुब वास्य जीवितम् ।
कालं परं प्रतीक्षत भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ ६ ॥
नामच्छास्त्रपु सज्जेत नापजीवेत जीविकाम् ।

नारदजी कहते हैं—वर्मरान् । यदि कर्मब्रह्म
व्यभिचारका सामर्थ्य ही, तो शरीरके व्यक्तिक ही
सब कुछ छोड़कर वह संन्यास ले ले, तथा किसी में
व्यक्ति, वस्तु, स्थान और समयकी अपेक्षा न रख
एक गौश्वं एक ही रात ठहरनेका निम्न स्तर वृत्ति
विचरण करे ॥ १ ॥ यदि वह कर्म करने को केवल
कौपीन, जिससे उसके गुप्त वस्त्र ढक जायें । और
अन्तक कीई आपत्ति न आवे, तबका दम्ब तथा कर्ण
व्याघ्रमके बिहोंके सिवा अपनी त्वरणी हुई किसी में
वस्तुको ग्रहण न करे ॥ २ ॥ संन्यासीको चाहिये कि
वह समस्त प्राणियोंका हितैषी हो, क्षान्त रहे
भगवत्परायण रहे और किसीका आश्रय न लेकर अपने
आपमें ही ऐसे एवं अकेल्य ही निचरे ॥ ३ ॥ इस सम्य
विद्यको कार्य और कारणसे अतीत परमात्मानमें व्यक्त
जाने और कार्य-कारणरूप इस अगहमें ब्रह्मरूप
अपन आत्माको परिपूर्ण देखे ॥ ४ ॥ आत्मदर्शी संन्यासी
सुषुप्ति और जागरणकी सन्धिमें अपने सरूपका अनुभव
करे और बन्धन तथा मोक्ष दोनों ही केवल माया हैं
वस्तुतः कुछ नहीं—ऐसा समझे ॥ ५ ॥ न तो शरीरके
अस्त्य होनेवासी मृग्यका अभिमान करे और
अनिश्चित जीवनका । केवल समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति
और नाशके कारण कलकरी प्रतीक्षा करता रहे ॥ ६ ॥
अमात्य—अनात्मवस्तुका प्रतिशान्न करनेवाले शस्त्रों
प्रीति न करे । अपने जीवन-निर्वाहके लिये कोई जीवित

१ प्रा पा — स्तुते आश्रमस्थानविधिहोद । २ प्रा पा — विरूपण । ३ प्रा पा — भिक्षुरात्मारामे

४ प्रा पा — परीक्षेत ।

वादवादास्त्यजेत् तर्कान्यर्थं कंचन संभयेत् ॥ ७ ॥

न शिष्यान्तुषणीत ग्रन्थान्नेवाभ्यसेव बहून् ।

न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारमेत् कश्चित् ॥ ८ ॥

न यत्तेराधम प्रापो भर्मेदुर्महात्मन ।

छान्तस्य ध्रुमवित्तस्य विमृयादुत वा त्यजेत् ॥ ९ ॥

अव्यक्तलिङ्गे व्यक्तार्थं मनीष्यन्मत्तबालवत् ।

कविर्भूकबदात्मान स दृष्ट्वा दर्शयेन्त्नाम् ॥ १० ॥

अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम् ।

प्रज्ञादस्य च सर्वार्थं मुनेराजगरस्य च ॥ ११ ॥

तं श्रयानं धरोपस्ये कावेर्यां सद्यसाजुनि ।

रजस्रलैस्तनुदैर्निरगूढामलतेजसम् ॥ १२ ॥

ददर्श लोकान्निर्धरल्लोकतत्त्वविस्तितम् ।

इतोऽमात्यैः कविपयै प्रज्ञादो भगवत्प्रियः ॥ १३ ॥

कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिङ्गैर्वर्णाधमादिभिः ।

न विदन्ति जना यं वै साऽसाविति न वेति च ॥ १४ ॥

तं न स्वाम्यर्थं विचित्रत्वाद्यो शिरसा स्मरेन् ।

वि बिस्तुरिदमप्राक्षीन्महाभागवताऽसुर ॥ १५ ॥

विमर्षिं कार्यं पीवानं सोऽयमो भोगवान्यथा ।

त्रिसं वैकोपमवतां भागा वित्तवतामिह ।

मोगिनां त्वल्लु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा ॥ १६ ॥

न तं श्रयानस्य निरुधमस्य

प्रमन्नु हाथीं यत् एव भोग ।

१ मा पा — कथन भाषयेत् । २ मा पा — रत्नयन्त्रि । ३ मा पा — बुधुत्तया । ४ मा पा —

वत् । ५ मा पा — यत् ।

न करे, केवल वाद विवादके लिये कोई तर्क न करे और संसारमें किसीका पक्ष न ले ॥ ७ ॥ शिष्य-मण्डली

न जुटावे, बहुत-से ग्रन्थोंका अभ्यास न करे, व्याख्यान न दे और बड़े-बड़े कर्मोंका आरम्भ न करे ॥ ८ ॥

ज्ञान्त, समदर्शी एवं महात्मा संन्यासीके लिये किसी आश्रमका सम्भ्रम धर्मका कारण नहीं है । वह अपने

आश्रमके विहोको धारण करे, चाहे छोड़ दे ॥ ९ ॥ उसके पास कोई आश्रमका चिह्न न हो, परन्तु वह

आत्मानुसम्भानमें मग्न हो । हो तो अत्यन्त विचारशील, परन्तु ज्ञान पके पगल और वाष्कन्त्री तरह । वह

अत्यन्त प्रतिभाशील होनेपर भी साधारण मनुष्योंकी दृष्टिसे ऐसा जान पड़े मानो कोई गूंगा है ॥ १० ॥

सुभिष्ठिर । इस विषयमें महात्माछोग एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं । वह है दत्तात्रेय मुनि और

भक्ताराज प्रज्ञादका संवाद ॥ ११ ॥ एक बार म्हाभान्के परम प्रेमी प्रज्ञादजी कुछ मन्त्रियोंके साथ ज्योंके हृदयकी

जात जाननेकी इच्छासे ज्योंके विचारण कर रहे थे । उन्होंने देखा कि सद्य पर्वतकी लकड़ीमें कावेरी नदीके

तटपर वृष्णीपर ही एक मुनि पड़े हुए हैं । उनके शरीर की निर्मल ज्योति ज्योंके धूम्र-सूक्ष्म होनेके कारण

हकी हुई थी ॥ १२ १३ ॥ उनके कर्म, आकार, वाणी और वर्ण-आश्रम आदिके कियेसे लोग यह नहीं समझ सकते थे कि वे कोई सिद्ध पुरुष हैं या नहीं ॥ १४ ॥

म्हाभान्के परम प्रेमी भक्त प्रज्ञादजीने अपने सिरसे उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया और विचिदूर्वक

हकी पूजा करके जाननेकी इच्छासे यह प्रश्न किया ॥ १५ ॥ 'भगवन् ! आपका शरीर उषोमी और मोमी पुरुषोंके

समान हृष्ट-मुष्ट है । संसारका यह नियम है कि उषोम करनेवालोंको धन मिलता है धनवालोंका ही भोग प्राप्त होता है और मोमियोंका ही शरीर हृष्ट-मुष्ट होता है ।

और कोई दूसरा कारण तो हो नहीं सकता ॥ १६ ॥ भगवन् ! आप कोई उषोम तो करते नहीं, यों ही पड़े रहते हैं । इसलिये आपके पास धन है नहीं । फिर

अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः

पीवा यतस्तद्वद नः धर्मं चेत् ॥१७॥

कविः कृत्यो निपुणश्चक्षुश्चिप्रप्रियकथ सम ।

लोकस्य धूर्ध्वतः कर्म द्योये सद्विधितापि वा ॥१८॥

नारद उवाच

स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महाभुनिः ।

सममानस्तमभ्याह सद्भागवतयन्त्रितः ॥१९॥

माधव उवाच

वेदेदमसुरभ्रेष्ठ भवान् नन्वार्यसम्मतः ।

ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यभ्यात्मजसुया ॥२०॥

यस्य नारायणो देवो भगवाद्भूतः सदा ।

भक्त्या फेडलयाज्ञान धुनोति चान्वमर्कवत् ॥२१॥

अथापि धूम्रं प्रदोस्तं राजन्ययाधुतम् ।

सम्भावनीया हि भवानात्मन शुद्धिमिच्छताम् ॥२२॥

सृज्या भववाहिन्या याग्यैः कामैरपूरया ।

कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानापोनिषु योषित ॥२३॥

यच्छ्रुत्वा लारुमिमं प्रारितः कमभिर्भ्रमन् ।

व्यापवगयाद्वारं विरवां पुनरप्य च ॥२४॥

मशारि दम्पतानां च सुपायान्धारयन्नुत्तरे ।

आपका भोग काहोंसे प्राप्त होंगे । शास्त्रप्रवेष्ट । बिना

भोगके ही आपका यह क्षरीर इतना हृत्-मुष्ट कैसे है !

यदि हमारे धुमनेयोग्य हो, तो अक्षय्य कथाएँ ॥१७॥

आप विद्वान् समर्थ और चतुर हैं । आपकी बातें बड़ी

जटिल और प्रिय होती हैं । ऐसी अवस्थामें आप सारे

संसारको कर्म करते हुए देखकर भी समभावसे पड़े हुए

हैं, इसका क्या कारण है ? ॥ १८ ॥

नारदजी कहते हैं—वर्मरान ! जब ब्रह्मादनीने

महाभुनि दत्तात्रेयजीसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब वे

उनकी अप्रुतमयी वाणीके वशीभूत हो मुसकरते हुए

बोले ॥ १९ ॥

दत्तात्रेयजीने कहा—दैत्यराज ! सभी भ्रेष्ठ पुरुष

तुम्हारा सम्मान करते हैं । मनुष्योंको कर्त्तोंकी प्रशंसा

और उनकी निरुत्तिका क्या फल मिलता है, यह बात

तुम अपनी ज्ञानदृष्टिसे जानते ही हो ॥ २० ॥ तुम्हारी

जन्य भक्तिके कारण देवाधिदेव मगवान् नारायण सदा

तुम्हारे हृत्पथमें विराजमान रहते हैं और जैसे सूर्य

अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही वे तुम्हारे अज्ञानको

नष्ट करते रहते हैं ॥ २१ ॥ तो भी प्रहा ! मैंने

जैसा कुछ जाना है, उसके अनुसार मैं तुम्हारे प्रभोका

वचन देता हूँ । क्योंकि आत्मशुद्धिके अन्तिमपरिणाम

तुम्हारा सम्मान अवश्य करना चाहिये ॥ २२ ॥

प्रह्लादजी ! तुम्हारा एक ऐसी वस्तु है, जो शस्त्र-

नुसार भोगोंके प्राप्त होनेपर भी पूरी नहीं होती । ठीक

कारण जन्म-मृत्युके चक्रमें घटकर पड़ता है । तुम्हारा

मुझसे न जाने कितने कर्म कराये और उनके कारण

न जाने कितनी योनियोंमें मुझे दण्ड ॥ २३ ॥ क्योंकि

कारण अनेकों योनियोंमें मरते-मरते दैवतान् मुझे

यह मनुष्ययोनि मिली है जो स्वर्ग मोक्ष, निर्दयनि

तथा इस मानवदेहकी भी प्राप्ति के द्वार है—इसमें

पुण्य करें तो स्वर्ग पाय करें तो पशु-पक्षी आदिकी

यानि निवृत्त हो जायें ता मांस और दानों प्रशस्ति

कम करने आये तो फिर मनुष्य-योनिही ही प्राप्ति हो

सकती है ॥ २४ ॥ परन्तु मैं दण्ड हूँ कि संसारके

ही-पुरुष कर्म ता करते हैं सुखी प्राप्ति के । दूसरी

कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निश्चिन्तोऽपि विपर्ययम् ॥२५॥

सुखमस्मात्मानो रूपं सर्वेहोपरतिष्ठन् ।

मन संस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् २६

इत्येतदात्मनं स्वार्थं सन्तुष्टिस्तुष्टयै पुमान् ।

विचित्रामसति द्वैते घोरामामोति समुत्तिम् ॥२७॥

बलं तदुद्भवैश्छन्नं हिस्वाद्यो बलकाम्यया ।

मृगतृष्णासुषाधावेद् यथान्यत्रार्थदृक् स्वतः ॥२८॥

देहादिभिर्देवतन्त्रैरात्मन सुखमीहता ।

दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोषाः कृताः कृताः २९

आभ्यामिन्द्रादिभिर्दुःखैर्विमुक्तस्य कर्हिचित् ।

मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनर्तयैः कामैः क्रियेत किम् ॥३०॥

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुम्भानामजितात्मनाम् ।

भयादलम्बनिद्राणां सर्वतोऽभिषिद्धाक्षिणाम् ॥३१॥

राजतघोरत गृध्रोः स्वप्ननात्पशुपक्षित ।

अर्थिन्यः कालत स्वप्नामित्य प्राणार्थवद्भयम् ३२

शक्रमोहभयप्राधरागद्वन्द्वमथमादय ।

यमूताः स्युर्दृणां सघात स्युर्दृणां प्राणार्थयोर्बुध ॥३३॥

निश्चितके लिये, परन्तु उसका फल उलटा ही होता है—वे और भी दुःखमें पड़ जाते हैं । इसलिये मैं कर्मोंसे उपरत हो गया हूँ ॥ २५ ॥

सुख ही आत्माका स्वरूप है । समस्त चेष्टाओंकी मिश्रित ही उसका शरीर—उसके प्रकाशित होनेका स्थान है । इसलिये समस्त मोगोंको मनोवञ्च मात्र समझ कर मैं अपने प्रारम्भको भोगता हुआ पड़ा रहता हूँ ॥ २६ ॥ मनुष्य अपने सन्ने आप अपना बाह्यविक सुखको, जो अपना स्वरूप ही है, भूँटकर इस मिथ्या द्वैतको सत्य मानता हुआ अत्यन्त मगधुर और विचित्र जन्मों और मृत्युओंमें मटकता रहता है ॥ २७ ॥ जैसे जलानी मनुष्य जन्ममें उत्पन्न तिनके और सेवारसे इन्के हुए बलको जल न समझकर बलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ता है, वैसे ही अपनी आत्मासे भिन्न वस्तुमें सुख समझनेवाला पुरुष आत्माको छोड़कर नियोज्यकी ओर दौड़ता है ॥ २८ ॥

प्रकादभी । शरीर आदि तो प्रारम्भके कर्षण हैं । उनके द्वारा जो अपने लिये सुख पाता और दुःख मिटाना चाहता है, वह कभी अपने कर्ममें सक्त नहीं हो सकता । उसके बार बार किये हुए सारे कर्म व्यर्थ हो जाते हैं ॥ २९ ॥ मनुष्य सर्वदा शारीरिक, मानसिक आदि दुःखोंसे आक्रान्त ही रहता है । मरण-शील तो है ही, यदि उसने बड़े धर्म और कष्टसे कुछ धन और भोग प्राप्त कर ही दिया तो क्या काम है ! ॥ ३० ॥ लोभी और इन्द्रियोंके बशमें रहनेवाले धनियोंका दुःख तो मैं देखता ही रहता हूँ । मयके मारे उन्हें नींद नहीं आती । सबपर उनका सन्देह बना रहता है ॥ ३१ ॥ जो जीवन और धनके लोभी हैं—वे राजा, चोर, दण्ड, खजान, पशु-पक्षी, पाषाण और कामसे, यहाँतक कि 'कहाँ मैं मृत न कर बैठूँ, अधिक न खर्च कर दूँ—इस आशासे अपने आपसे भी सदा डरते रहते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि जिसके कारण होकर, मोह, मय क्रोध, राग, कदरता और धर्म आदिका शिकार होना पड़ता है—उस धन और जीवनकी इच्छाका त्याग कर दे ॥ ३३ ॥

मधुधरमहासर्पौ लोकेऽसिधौ गुरुतमौ ।

वैराग्यं परितोषं च प्राप्तौ यच्छिष्या वयम् ॥३४॥

विराग सर्वकामभ्यः शिषितो मे मधुमतात् ।

कृष्णार्पं मधुवद् भिषं हत्वाप्यन्यो हरेत्पविम् ॥३५॥

अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ।

नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिष सत्त्ववान् ॥३६॥

कचिदन्तं कचिद् मूरिं सुञ्जेऽन्नं स्वाद्विखादु वा ।

कचिद् मूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत कचिद् ॥३७॥

मदयोपाहतं कापि कदाचिन्मानवमिदम् ।

सुञ्जे सुक्त्वाप्य कचिद्विद् दिवानकं यदृच्छया ॥३८॥

सौमं दृष्टुमजिनं चीरं वरकलमेव वा ।

वसेऽन्वदपि सन्मार्पं दिष्टसुक्त्तुष्टभीरहम् ॥३९॥

कचिच्छये धरोपस्थे तुणपर्णाशमभस्मसु ।

कचिद् प्रासादपयङ्ग कचिपो वा परेच्छया ॥४०॥

कचिद् खाताऽनुलिप्तं च सुधासा सौमलेकृतः ।

रैवेभास्वैभरे कापि दिग्भामा ग्रहवद् विभो ॥४१॥

नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ।

पतेपां भेष आश्रसे उर्वेकार्म्यं महत्तमनि ॥४२॥

विकल्पं शृणुयाद्विचौ सां मनसार्थविभ्रमे ।

इस लोकमें मेरे सबसे बड़े गुरु हैं—बप्तर को मधुमन्थी । उनकी शिक्षासे हमें वैराग्य और सन्तान की प्राप्ति हुई है ॥ ३४ ॥ मधुमन्थी जैसे मधु एकत्र करती है, वैसे ही लोग बड़े कष्टसे जन-सम्पत्त को हैं । परन्तु दूसरा ही कोई उस धन-राशि को बाँटने मारकर उसे छीन लेता है । इससे मैंने एक शिक्षा ग्रहण की कि विषय भोगोंसे निरल ही एक आदित्य ॥ ३५ ॥ मैं बप्तरके समान निरनेत्र एक रहता हूँ और दीपका को कुछ मित्र जाता है, ऊँ-में सम्पन्न रहता हूँ । और यदि कुछ नहीं मित्र तो बहुत दिनोंतक धैर्य भरण कर यों ही पका रहता हूँ ॥ ३६ ॥ कभी थोड़ा कम खा लेता हूँ तो कभी बहुत; कभी लायिक तो कभी नीरस—वैराग्य, और कभी कमेक्टों गुणोंसे युक्त, तो कभी सर्वत्र गुणहीन ॥ ३७ ॥ कभी बड़ी बढासे प्रातः हुआ कम खाता हूँ तो कभी अपमानके साथ । और किसी किसी समय अपने-आप ही मित्र जानेपर कभी विष-में, कभी रातमें और कभी एक बार भोजन करते ही हुआ कर लेता हूँ ॥ ३८ ॥ मैं अपने प्राणके भोगमें ही सम्पुष्ट रहता हूँ । इसलिये मुझे रेकमी व सुती, सुगन्ध या चीर, कलक या और कुछ—जैसा भी कम मिल जाता है, वैसा ही पहन लेता हूँ ॥ ३९ ॥ कभी मैं धूपी, धास, पत्ते, पत्तर या एकके डेलन ही पक रहता हूँ, तो कभी सुसर्पेकी हड्डासे मडभने पक्यों और गर्दोंपर सो लेता हूँ ॥ ४० ॥ दीपका । कभी गङ्गा-बोकर, शरीरमें कन्दन लगाकर सुन्दर बन, शर्पोंके द्वार और गहने पहन रख, हाथी और बौरेन लकड़कर बहता हूँ, तो कभी विद्याके समान किमुत मग पकड़ बिखरता हूँ ॥ ४१ ॥ मनुष्योंके स्वभाव भिन्न भिन्न होते ही हैं । अतः न तो मैं किसीकी निन्दा करता हूँ और न स्तुति ही । मैं केवल इनका परम कल्याण और परमात्मासे एकता चाहता हूँ ॥ ४२ ॥ सम्पत्ता अनुसन्धान करनेवाले मनुष्योंके आदित्य कि ओ माना प्रकारके पदार्थ और उनके भेद-निन्दे

मनो वैकारिके हुत्वा सन्मायायां सुंदीत्यनु ॥४३॥

आरमानुभूती तां मायां शुभुभात् सत्यवद् मुनिः ।

ततो निरीहो विरमेत् खानुमृत्याऽऽत्मनि स्थित ॥४४॥

स्वात्मवृक्ष मेयेरथ ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ।

व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्परः ॥४५॥

नारद उवाच

धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः भुत्वासुरेश्वरः ।

पूजयित्वा ततः प्रीत आत्मन्य प्रययौ गृहम् ॥४६॥

मात्रम पक्क रह हैं, उनको विचवृत्तिमें हवन कर दे । विचवृत्तिको इन पदार्थोंके सम्बन्धमें विविध भ्रम उत्पन्न करनेवाले मनमें, मनको सार्विक अहङ्कारमें और सार्विक अहङ्कारको महत्त्वके द्वारा मायामें हवन कर दे । इस प्रकार ये सब भेद-निभेद और समका कारण माया ही है, ऐसा निश्चय करके फिर उस माय्यको आमानुभूतिमें झाड़ा कर दे । इस प्रकार आत्म-साक्षात्कारके द्वारा आत्मस्वरूपमें स्थित होकर निष्क्रिय एवं उपरत हो जाय ॥ ४३ ४४ ॥ प्रह्लादजी । मेरी यह आत्मकथा अल्पत गुप्त एवं छोक और शास्त्रसे परेकी वस्तु है । तुम भगवान्‌के अल्पत प्रेमी हो, इस लिये मैंने तुम्हारे प्रति इसका वर्णन किया है ॥ ४५ ॥

नारदजी कहते हैं—महाराज । प्रह्लादजी दत्ता त्रेय मुनिसे परमहंसोंके इस धमका श्रवण करके उनकी पूजा की और फिर उनसे विदा लेकर बड़ी प्रसन्नतासे अपनी राजधानीके लिये प्रस्थान किया ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे
वैतिथ्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

गृहस्यसम्पन्नी सशस्त्रार

युधिष्ठिर उवाच

गृहस्य ण्तां पदवीं विधिना येन स्वाञ्जमा ।

याति देवश्रपे यदि मादगो गृहमूढधीः ॥ १ ॥

नारद उवाच

गृहस्यवस्थितो राजन्क्रिया कुर्वन्गृहाधिता ।

वासुदेयार्पणं साक्षादुपासीत महाधुनीन् ॥ २ ॥

मृग्यभगरताऽभीक्ष्णमवतारकधामृतम् ।

भरधानो यथाकालमुनश्चान्नजनायुत ॥ ३ ॥

राजा युधिष्ठिरन पूछा—देवर्षि नारदजी । मेरे जैसा गृहासक्त गृहस्य विना विदोय परिश्रमक इस पद का किस साधनसे प्राप्त कर सक्ता हूँ, क्या क्या करके मुझ वतयाइये ॥ १ ॥

नारदजीम कहा—युधिष्ठिर । मनुष्य गृहस्याश्रममें रहे और गृहस्य धर्मके अनुसार सब काम करे, परगु ठहरे भगवान्‌क प्रति समर्पित कर दे और बड़े बड़े संन-महात्माओंकी सेवा भी करे ॥ २ ॥ व्यवसायके अनुसार विरक्त पुरुषमें निवास करे और बार बार मनुष्यपूर्वक मन्त्रार्क अवतारोंकी पीण सुपका दन

संसृज्जाच्छनकैः सङ्गमात्मप्राप्तमजादिषु ।

विमुष्ये मुष्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुरिधतः ॥ ४ ॥

यावदर्धमुपासीनो देहे गेहे च पण्डितः ।

विरक्तो रक्तवत् तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥ ५ ॥

ज्ञातव्यः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ।

यद् यदन्ति यद्विच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥ ६ ॥

दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं विचमन्पुनर्निर्मितम् ।

तत् सर्वमुपबुद्धान् एतत् कुर्यात् स्वतो बुधः ॥ ७ ॥

यावद् अभियेत जठरं तावत् स्वर्गं हि देहिनाम् ।

अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ ८ ॥

मृगोद्भूतमर्कस्तुसरीसृपस्त्वगमक्षिकाः ।

आत्मनः पुत्रवत् पश्येच्चैरेषामन्तरं कियत् ॥ ९ ॥

त्रिंशो नातिकृच्छ्रेण भजेत् शूद्रमेभ्यपि ।

यथादेशं यथाकालं यावद्वैशेषपादिसम् ॥ १० ॥

आश्वाघान्तेऽवसापिम्यः कामान्सर्वविभजेत् यथा ।

अप्येकमात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः ॥ ११ ॥

जज्ञाद् यदर्धं स्वप्राणा हन्याद् वा पितरं गुरुम् ।

करता रहे ॥ १॥ जैसे काम दूट जानेपर मनुष्य काम के सम्बन्धियोंसे आसक्त नहीं रहता—वैसे ही मनुष्यों से सत्सङ्ग के द्वारा बुद्धि दृढ हो, स्वो-ही-स्वो स्त्री, श्री, पुत्र, धन आदिकी आसक्ति स्वयं छोड़ता कहे । क्योंकि एक-एक दिन ये छूटनेवाले ही हैं ॥ १ ॥

बुद्धिमान् पुरुषको आवश्यकताके अनुसार ही घर और शरीरकी सेवा करनी चाहिये, अधिक नहीं । भीतरसे विरक्त रहे और बाहरसे रणिके समान जोगी साधारण मनुष्यों-जैसा ही व्यवहार कर के ॥ ५ ॥ मन्त्र-पिता, मार्ग-बन्धु, पुत्र-मित्र, जातिवाले और दूसरे जो कुछ कहें अपना जो कुछ चाहें, भीतरसे समस्त व रक्तकर उनका अनुमोदन कर दे ॥ ६ ॥

बुद्धिमान् पुरुष कर्ण आदिके द्वारा होनेवाले कष्टादि, पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले दुर्घट आदि, अकस्मात् प्राप्त होनेवाले द्रव्य आदि तथा और सब प्रकारके धन मगधान्के ही दिये हुए हैं—ऐसा समस्त प्रारब्धके अनुसार समका उपभोग करता हुआ उत्पन्न न करे, उन्हें पूर्वोक्त साधुसेवा आदि कर्मोंमें लग दे ॥ ७ ॥ मनुष्योंका अधिकार केवल अपने ही धन पर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय । इससे अधिक संपत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, ठग है दण्ड मिळना चाहिये ॥ ८ ॥ हरिण, कौट, गधा, बंदर, बूढ़ा, सरीसृप (रेंगकर चलनेवाले प्राणी), पक्षी और मक्खी आदिको अपने पुत्रके समान ही समझे । उनमें और पुत्रोंमें अन्तर ही मित्रता है ॥ ९ ॥ गुरुत्व मनुष्योंको भी धर्म, धर्म और कामके लिये बहुत काम नहीं ठागा चाहिये; बल्कि देश, काल और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भिन्न जाय, उसीसे सन्तोष करता चाहिये ॥ १० ॥ अपनी समस्त योग-सामर्थियोंको पुण्ये पतित और पाण्ड्यासपयत्न सब प्राप्तिोंको यथायोग्य भौतिक ही करने काममें खाना चाहिये । और तो क्या, अपनी श्रीको भी—जितने मनुष्य समझता है कि यह मेरी है—जनिपि आत्मीकी निर्दोष सेवामें निपुण रहते ॥ ११ ॥ जोग श्रीके लिये अपने प्राणतक दे डालते हैं । यज्ञातक कि अपने मा-बाप और गुरुको

इत्यां स्वर्गं विधां जहायु मस्तेन व्रजितो जितः ॥१२॥

कमिविद्धमग्निष्ठान्तं बद्धं तुच्छं फलेवरम् ।

क तदीयरतिर्भाषा क्वायमात्मा नभश्छदिः ॥१३॥

सिद्धं यद्वावशिष्यं कल्पयेत् पृथिमात्मनः ।

शेषे स्वस्व त्वजन्प्राप्तः पदवीं महतामिषात् ॥१४॥

देवानृषीन् नृमृताति पितृनात्मानमन्वहम् ।

स्वहृत्परागतविचित्रं यजेत पुरुषं पृथक् ॥१५॥

यस्मात्प्रमनाऽधिकपराया सर्वाः स्युषस्तसम्पदः ।

धैतानिकन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥१६॥

न अग्निमुत्ततोऽप्य वै भगवान्सर्वयज्ञशृङ्गः ।

इत्यथ हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतः ॥१७॥

सम्नां प्राप्तिगन्धेषु मत्पादिषु यथार्हतः ।

संस्तु कर्मर्षमन्त्रं सुव्रतं ब्राह्मणाननु ॥१८॥

कृपादापरपथीयं मामि प्राप्नुपद द्विजः ।

भ्रातृ प्रियायथाविच सद्यः पूर्णां च विचित्रान् ॥१९॥

अयने त्रिषु कृपाद् भ्यतीपात दिनस्ये ।

चन्द्रादिरापरगो च द्वादशीभरणेषु च ॥२०॥

उनीपायो गुह्यपथ नरम्पामथ कार्मिकः ।

भी मार बालसे हैं । उस क्षीपरसे जिसने अपनी ममता हटा ली, उसने स्वयं निर्व्यभिचारी भगवान्पर भी विजय प्राप्त कर ली ॥ १२ ॥ यह शरीर अन्तमें क्रीड़ा, विद्या या राक्षसी डेरी होकर रहगा । कहाँ तो यह तुच्छ शरीर और इसके लिये जिसमें आसक्ति होती है वह भी, और कहाँ अपनी महिमासे आकाशको भी डक रखनेवाला अनन्त आत्मा ! ॥ १३ ॥

गृहस्थको चाहिये कि प्रारम्भसे प्राप्त और पक्ष यह आदिसे बचे हुए अक्षसे ही अपना जीवन निर्वाह करे । जो युद्धिमान् पुरुष इसके सिवा और किसी वस्तुमें श्रवण नहीं रखते, उन्हें सर्वोक्त पद प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ अपनी कर्णाश्रमविक्षित वृत्तिके द्वारा प्राप्त सामप्रियोंसे प्रतिदिन देवता, श्रमि, मनुष्य, मृत और पितृगणका तथा अपने आत्माका पूजन करना चाहिये । यह एक ही परमेश्वरकी मिन मिन रूपमें आराधना है ॥ १५ ॥ यदि अपनेको अविकार आदि इसके लिये आवश्यक सब वस्तुएँ प्राप्त हों तो बड़े बड़े यह या अग्निहोत्र आदिके द्वारा भगवान्की आराधना करनी चाहिये ॥ १६ ॥ सुषिष्टि ! कैसे तो सम्स्त यज्ञोंके मोक्षा भगवान् ही हैं, परन्तु ब्राह्मणके मुखमें अर्पित किये हुए हविष्यागसे उनकी वैसी वृत्ति होती है, वैसी अग्निके मुखमें हवन करनेसे नहीं ॥ १७ ॥ इसलिये ब्राह्मण, देवता, मनुष्य आदि सभी प्राणियोंमें यथायथ्य उनके उपयुक्त सामप्रियोंके द्वारा सबके हृदयमें अन्तर्धामीरूपसे विद्यमान भगवान्की पूजा करनी चाहिये । इनमें प्रधानता ब्राह्मणोंकी ही है ॥ १८ ॥

पानी द्विजका जल धनक अनुसार आश्विन मासके शुक्लपक्षमें करने माता पिता तथा उनके बन्धुओं (पितामह, मातामह आदि) का भी प्रशान्त्य घ्रात करना चाहिये ॥ १९ ॥ इसके सिवा जपन (कर्क पर्व मकरकी संक्रान्ति), मित्र (तुल्य और देवकी संक्रान्ति), ध्यनीपात दिनश्रय, अष्टमहाद्य या सूर्यग्रहणके समय, द्वादशीके दिन सबका धनिका और अनुगमा भरणोंमें देवता गुहा मूर्तिया (अथवा मूर्तिया) कार्मिक

उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥४०॥
 पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ।
 तपसा विधया तुष्ट्या भक्तं वेद हरस्तनुम् ॥४१॥
 नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य अगदात्मनः ।
 पुनन्त पादरमसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥४२॥

प्रतिमाकी उपासना करनेपर भी सिद्धि नहीं मिल सकती ॥ ४० ॥ युधिष्ठिर ! मनुष्योंमें भी ब्राह्मण निष्ठा सुपात्र माना गया है । क्योंकि वह अपनी तपस्या, विद्या और सन्तोष आदि गुणोंसे भगवान्‌के वेदरूप शरीरको धारण करता है ॥ ४१ ॥ महाराज ! हमारी और तुम्हारी तो बात ही क्या—ये जो सर्वात्मा भगवान् भीक्षु हैं, इनके भी इष्टदेव ब्राह्मण हैं । क्योंकि उनके चरणोंकी धूलसे तीनों लोक पवित्र होते रहते हैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमर्हस्य संहितायां सप्तमस्कन्धे सदाचारमिर्णयो

नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

गृहस्थोंके लिये मोक्षधर्मकर्म वर्णन

नारद उवाच

कर्मनिष्ठा द्विजा केचित् तपोनिष्ठा नृपापर ।
 स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगवाः ॥ १ ॥
 ज्ञाननिष्ठाश्च देवानि कम्पान्मानन्त्यमिच्छता ।
 दैवे च तद्भाषे स्वादितरेभ्यो यथार्हतः ॥ २ ॥
 हो दैवे पितृकार्ये श्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
 भाजयेत् सुसमृद्धोऽपि भाद्रे कुर्यान्न विस्तरम् ॥ ३ ॥
 दक्षकाठाचित्तभद्राद्रभ्यपात्रार्हणानि च ।
 सम्पद्भवन्ति नैतानि विस्तरात् स्वधनार्पणात् ॥४॥
 दक्षे काले च सम्प्राप्तं धैर्यं न हि र्दिवतम् ।
 भद्रया विभिवत् पात्रे न्यस्त कामधुगस्यम् ॥ ५ ॥
 देवपितृभूतेभ्य आत्मने स्ववनाय च ।

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! कुछ ब्राह्मणोंकी निष्ठा कर्ममें, कुछकी तपस्यामें, कुछकी वेदोंके अध्ययन और प्रवचनमें, कुछकी आत्मज्ञानके सम्पादनमें तथा कुछकी योगमें होती है ॥ १ ॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि भद्र अपना देवपूजाके व्यवहारपर अपने कर्मका अध्ययन प्राप्त करनेके लिये ज्ञाननिष्ठ पुरुषको ही हर्ष-कम्पका दान करे । यदि वह न मिले तो योगी, प्रवचनकार आदिको पयायोग्य और यथाक्रम देना चाहिये ॥ २ ॥ देवकार्यमें दो और पितृकार्यमें तीन व्यवसायनोंमें एक-एक ब्राह्मणको भोजन करना चाहिये । अल्पवयसकी होनेपर भी ब्राह्मणको अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि सगे-सम्बन्धी आदि सम्बन्धोंको देनेसे और विस्तार करनेसे देश-कामाक्षित भद्रा, पदार्थ, पात्र और पूजन आदि टीक-टीक नहीं हो पाते ॥ ४ ॥ देश और कामके प्राप्त होनेपर श्रमि-मुनियोंके भोजन करनेयोग्य द्रव्य इषियम्पस्य मगधान्‌को भोग लगाकर अदासे विधिपूर्वक योग्य पात्रको देना चाहिये । वह समस्त कर्मजनोंको पूरा करनवाला और अक्षय होता है ॥ ५ ॥ देवता, श्रमि, नितार, अन्य

न सविमज्जन्त्येत् सर्वं वत् पुरुषात्मकम् ॥ ६ ॥

दद्यादामिषं भ्रात्रे न चाद्यात् धर्मतत्त्ववित् ।

न्यन्नेः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुर्हिसया ॥ ७ ॥

तेवाह्यः परो धर्मो नृणां सदर्ममिच्छताम् ।

न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवार्कपिजस्य यः ॥ ८ ॥

रके कर्ममयान् यस्मान् ज्ञानिनो यद्विचिताः ।

अतमसंयमनेऽनीहा जुहति ज्ञानदीपिते ॥ ९ ॥

द्रव्ययज्ञैर्यस्यमाणं दृष्ट्वा मृतानि विम्यति ।

एष माकल्पो हन्यादवन्धो असुतृषु ध्रुवम् ॥ १० ॥

तस्मात् दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ।

सन्तुष्टोऽहरहः कुर्यादभित्यतैमिचित्क्री क्रियाः ॥ ११ ॥

विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ।

अधर्मश्चात्मा पञ्चेमा धर्मोऽधर्मवत् स्यजेत् ॥ १२ ॥

धर्मबाधो विधर्मः स्वात् परधर्मोऽन्यच्चोदितः ।

उपधर्मस्तु पातण्ड्यो दम्भो वा शब्दमिच्छलः ॥ १३ ॥

यस्त्विच्छया कृत पुम्भिराभासो द्वाभमात् पृथक् ।

स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रज्ञान्तये ॥ १४ ॥

धर्मार्थमपि नेहेतु यात्रार्थं बाधनो धनम् ।

प्राणी, जलन और अपने-आपका भी अन्नका विभाजन करनेक समय परमात्मस्वरूप ही देखे ॥ ६ ॥

धर्मका मर्म जाननेवाला पुरुष आदिमें मोसका अपण न करे और न खर्य ही उसे खाय, क्योंकि पितरोंको अग्नि-मुनियोंके योग्य हविष्यामसे वैसी प्रसम्ता होती है, वैसी पशु-हिसासे नहीं होती ॥ ७ ॥ जो लोग सदर्मपाठनकी अभिगाथा रखते हैं, उनके लिये इससे बढ़कर और कोई नर्म नहीं है कि किसी भी प्राणीको मत, बाणी और शरीरसे किसी प्रकारका कष्ट न दिया जाय ॥ ८ ॥ इसीसे कोई कोई यह तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी ज्ञानक द्वारा प्रज्ज्जित आत्मसंयमरूप अग्नि में इन कर्ममय यज्ञोंका हवन कर देते हैं और बाह्य कर्म कलापोंसे उपरत हो जाते हैं ॥ ९ ॥ जब कोई इन द्रव्यमय यज्ञोंसे यजन करना चाहता है, तब सभी प्राणी डर जाते हैं; वे सोचने लगते हैं कि यह अपन प्राणों का पोषण करनेवाला निर्दयी भूईं मुझे अवश्य मार डालेगा ॥ १० ॥ इसलिये धर्मज्ञ मनुष्यको यही उचित है कि प्रतिदिन प्रारब्धके द्वारा प्राप्त मुनिजनोचित हविष्यामसे ही अपन नित्य और नैमित्तिक कर्म करे तथा उसीसे सर्वदा सन्तुष्ट रहे ॥ ११ ॥

अधर्मकी पाँच शाखाएँ हैं—विधम, परधम, आभास, उपमा और छल । धर्म पुरुष अधर्मके समान ही इनका भी त्याग कर दे ॥ १२ ॥ जिस कथकने धर्म बुद्धिसे करनेपर भी अपने धर्ममें बाधा पड़े, वह 'विधर्म' है । किसी अन्यके द्वारा अन्य पुरुषके लिये उपदेश किया हुआ धर्म 'परधर्म' है । पाण्डव या दम्भक नाम 'उपधर्म' अथवा 'उपमा' है । शास्त्रके अधर्मोंका दूसरे प्रकारका अर्थ कर देना 'छल' है ॥ १३ ॥ मनुष्य अपने आत्मके विपरीत स्वच्छासे जिसे धर्म मान लेता है, वह 'आभास' है । अपन-अपन स्वभावके अनुकूल जो वर्णायोचित धर्म हैं वे मछा किसे शान्ति नहीं देते ॥ १४ ॥

धर्ममा पुरुष निर्धन इमेपर भी धर्मके लिये अपना शरीर-निर्वाहके लिये धन प्राप्त करनेकी चेष्टा न करे ।

चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्तो शिशिरे तथा ॥२१॥
 माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ।
 राक्या चानुमत्या वामामर्द्याणि युतान्पि ॥२२॥
 द्वादश्यामनुराधा स्यान्नक्षत्राणस्तिस्र उचराः ।
 तिसृष्वेकादशी वाऽऽसुखेन्मर्षभोगयोगयुक् ॥२३॥
 एते भेषस काला नृणां भेषोविबर्चना ।
 क्षयात् सर्वात्मनैतेषु भेषोऽमोघ तदायुषः ॥२४॥
 एषु स्नान जपा होमो व्रतं देवप्रित्वार्चनम् ।
 पितृदेवनृभूतेभ्यो यद् दत्तं तद्वचनम्बरम् ॥२५॥
 संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ।
 प्रसमन्या मृताह्व कर्मण्यभ्युदये नृप ॥२६॥
 अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिभयजावहान् ।
 स वै पुण्यतमो देश सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥२७॥
 चिम्बं भगवता यत्र सवमेतद्यराचरम् ।
 यत्र ह प्राज्ञणकूल तपोविघादयान्वितम् ॥२८॥
 यत्र यत्र हररर्चा स दश भयसां पदम् ।
 यत्र गङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विभृताः ॥२९॥
 मरामि पुष्करादीनि सत्राण्यहोधिस्तान्युत ।
 कुरुक्षेत्र गयश्चित्रः प्रयागः पुलहासम ॥३०॥

शुद्धा नवमी (अक्षय नवमी), जगहन, पौष, मघ और फाल्गुन—इन चार महीनोंकी दृष्ट्याष्टमी, माघ-शुद्धा सप्तमी, माघकी मघा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा और प्रत्येक महीनेकी वह पूर्णिमा, जो अपने मास-नक्षत्र, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा आदिसे युक्त हो—पौष-चन्द्रमा पूर्ण हो या अपूर्ण, द्वादशी तिथिकर अनुष्ठान, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराश्र्विनी के साथ योग, एकादशी तिथिकर तीनों उत्तरा नक्षत्रसे योग अपना अम मक्षत्र या श्रवण मक्षत्रसे योग—ये सारे समय पितृगणोंका आश्रय करने योग्य एवं श्रेष्ठ हैं । ये योग केवल आश्रय के लिये ही नहीं, सभी पुण्य-कर्मके लिये उपयोगी हैं । ये कल्याणकी साधनाके उपयुक्त और शुभकी अविनाश करनेवाले हैं । इन अवसरोंपर अपनी पूरी शक्ति लगाकर शुभ कर्म करने चाहिये । इसीमें जीवनकी सफलता है ॥ २०-२४॥
 इन शुभ समयोंमें जो स्नान, जप, होम, व्रत तथा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा की जाती है जवना जो कुछ देवता, पितर मनुष्य एवं प्राणियोंको समर्पित किया जाता है, उसका फल अक्षय होता है ॥२५॥
 युधिष्ठिर ! इसी प्रकार कीके पुस्तकन आदि, सत्सालके जातकर्मदि तथा अपने यज्ञ-दीक्षा आदि संस्कारोंके समय, शत्रु-दाहके दिन या वार्षिक आश्रय के उपवास में अपना अन्य मातृत्विक कर्ममें दान आदि शुभ कर्म करने चाहिये ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर ! अब मैं उन स्थानोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो धर्म आदि धैर्यकी प्राप्ति करनेवाले हैं । सबसे पवित्र देश वह है, जिसमें सत्पात्र मिलते हों ॥ २७ ॥ जिसमें यज्ञ सारा घर और अक्षर जगत् स्थित हैं, उन मगध-की प्रतिभा जिस देशमें हो, जहाँ तप, विद्या एवं दण्ड आदि गुणोंसे युक्त ब्राह्मणोंके परिवार निवास करते हों तथा जहाँ-जहाँ मगधामकी पूजा होती हो और पुराणोंमें प्रसिद्ध गङ्गा आदि नदियाँ हों, वे सभी स्थान पर कल्याणकारी हैं ॥ २८-२९ ॥ पुष्कर आदि सरोवर, सिद्ध पुरुषोंके द्वारा सेविन क्षेत्र, कुरुक्षेत्र, गया प्रयाग,

नैमिषं फाल्गुन सेतु प्रभासोऽथ कुशाखली ।
 वाराणसी मधुपुरी पम्पा बिन्दुसरस्तथा ॥३१॥
 नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः ।
 सर्वे कुलाचला राजन्महन्त्रमलयादयः ॥३२॥
 एते पुण्यतमा देशा हररक्षाभिवाध ये ।
 एतान्देशान् निषेवेत श्रेयस्कामो ब्रह्मीक्ष्णशः ।
 धर्मो ब्रह्मेदितः पुंसां सहस्राधिकलोदयः ॥३३॥
 पात्रं त्वत्र निरुक्त वै कविभिः पात्रवित्तमैः ।
 हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥३४॥
 देवर्ष्यैर्हस्तु वै सस्तु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ।
 राजन्यदग्रपूजायां मठ पात्रतयाच्युतः ॥३५॥
 जीवरात्रिभिराकीर्णं आम्बकोशाक्षिणो महान् ।
 तन्मूलस्त्वादच्युतेन्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥३६॥
 पुराम्पनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ।
 छेते जीवेन रूपेण दुरेषु पुरुषो बसौ ॥३७॥
 तेष्वेषु भगवान्नात्रंस्तारतम्येन वर्तते ।
 वस्मात् पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥३८॥
 दैष्टा तेषां मिथो नृणामब्रह्मानात्मतां नृप ।
 त्रेतादिषु हररक्षा क्रियार्थं कविभिः कृता ॥३९॥
 ततोऽन्वायां हरिं क्वचित् संर्भद्राय सपर्यया ।

पुण्ड्राश्रम (शालग्राम क्षेत्र), नैमिषारण्य, फाल्गुनक्षेत्र
 सेतुबन्ध, प्रभास, द्वारका, काशी, मथुरा, पम्पासर,
 बिन्दुसरस्वर, बदरिकाश्रम, अल्बनपन्था, भगवान् सीता
 रामजीके आश्रम—अयोध्या चित्रकूटादि, महेश्वरी और मलय
 आदि समस्त कुलपर्वत और जहाँ-जहाँ भगवान्के अर्चा
 पतार हैं—ये सब-के-सब देश अत्यन्त पवित्र हैं ।
 कन्यागणकामी पुरुषको बार-बार इन देशोंका सेवन करना
 चाहिये । इन स्थानोंपर जो पुण्यकर्म किये जाते हैं,
 मनुष्योंको उनका हजारगुना फल मिलता है ॥३०-३९॥

सुप्रिष्ठिर । पात्र निर्णयक प्रसङ्गमें पात्रके गुणोंको
 जाननेवाले विवेकी पुरुषोंने एकमात्र भगवान्को ही
 सत्पात्र बतलाया है । यह चराचर जगत् उन्हींका
 स्वरूप है ॥ ३४ ॥ अभी सुन्दारे इसी यज्ञकी बात है,
 देवता, अग्नि, सिद्ध और सनकादिकोंके रहनेपर भी
 अग्रपूजाके लिये भगवान् श्रीकृष्णको ही पात्र समझा
 गया ॥ ३५ ॥ अर्चक्य जीवोंसे मत्स्य इस ब्रह्माण्डस्वरूप
 महावृक्षके एकमात्र मूल भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं । इस-
 लिये उनकी पूजासे समस्त जीवोंकी आत्मा तृप्त हो
 जाती है ॥ ३६ ॥ उन्होंने मनुष्य, पशु-पक्षी, अग्नि
 और देवता आदिक शरीररूप पुरुषों रचना की है तथा
 वे ही इन पुरुषोंमें जीवकपसे शयन भी करते हैं । इसीसे
 उनका एक नाम 'पुरुष' भी है ॥ ३७ ॥ सुप्रिष्ठिर ।
 एकरस रहते हुए भी भगवान् इन मनुष्यादि शरीरोंमें उनकी
 विभिन्नताके कारण म्यूनाधिकल्पसे प्रकाशमान हैं ।
 इसलिये पशु-पक्षी आदि शरीरोंकी अपेक्षा मनुष्य ही
 श्रेष्ठ पात्र हैं और मनुष्योंमें भी, जिसमें भगवान्का अश-
 क्त-योगादि बितना ही अधिक पाया जाता है, वह
 उत्तम ही श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥

सुप्रिष्ठिर । त्रेता आदि युगोंमें जब विद्वानों ने देखा
 कि मनुष्य परस्पर एक दूसरेका अपमान आदि करते
 हैं, तब उन लोगोंने सपासनाकी सिद्धिके लिये भगवान्
 की प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की ॥ ३० ॥ तभीसे कितने ही
 लोग बड़ी ब्रद्धा और सामग्रीसे प्रतिमामें ही भगवान्की
 पूजा करते हैं । परन्तु जो मनुष्यसे द्वेष करते हैं, उन्हें

उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषदिपाम् ॥४०॥
 पुरुषेष्वपि रामेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ।
 तपसा विधया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥४१॥
 नन्वस्य ब्राह्मणा राक्षन्कुण्डस्य जगदात्मनः ।
 पुनन्त पादरक्षसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥४२॥

प्रतिमाकी उपासना करनेपर भी सिद्धि नहीं मिल सकती ॥ ४० ॥ पुविष्ठिर । मनुष्योंमें भी ब्राह्मण विशेष सुपात्र माना गया है । क्योंकि वह अपनी तपस्या, निष्ठा और सन्तोष आदि गुणोंसे भगवान्‌के वेदरूप शरीरको धारण करता है ॥ ४१ ॥ महाराज । हमारी और तुम्हारी तो बात ही क्या—ये जो सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण हैं, इनके भी इष्टदेव ब्राह्मण ही हैं । क्योंकि उनके अरण्योंकी धूसरे तीनों लोक पवित्र होते रहते हैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्या संहितायां सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णयो

नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

गृहस्थोंके लिये मोक्षधर्मका वर्णन

नारद उवाच

कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठा नृपापरे ।
 स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोगाः ॥ १ ॥
 ज्ञाननिष्ठाय देयानि कस्यन्यान्तन्त्रमिच्छता ।
 दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथार्हवः ॥ २ ॥
 द्वौ दैवे पितृकर्म्ये त्रीनेकैक्यमयत्र वा ।
 भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि भ्रात्रे कुर्यान्न विस्तरम् ॥ ३ ॥
 देष्टव्यकालोचितभद्राग्रभ्युपात्रार्हानि च ।
 सम्यग् भवन्ति नैतानि विस्तरात् स्वन्ननार्पणात् ॥४॥
 देष्टे काले च सम्प्राप्ते ह्यन्यन्नं हरिर्वैवतम् ।
 भद्रया विधिवत् पात्रे न्यस्त कामपुण्ययम् ॥ ५ ॥
 देवर्षिपितृभूतेभ्य आरमणे सन्ननाय च ।

नारदजी कहते हैं—पुविष्ठिर । कुछ ब्राह्मणोंकी निष्ठा कर्ममें, कुछकी तपस्यामें, कुछकी वेदोंके अध्ययन और प्रवचनमें, कुछकी आत्मज्ञानके सम्पादनमें तथा कुछकी योगमें होती है ॥ १ ॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि आद्य अवस्था देवपूजाके व्यवहारपर अपने कर्मका कष्टय फल प्राप्त करनेके लिये ज्ञाननिष्ठ पुरुषको ही हस्त-कर्मका दाग करे । यदि वह न मिले तो क्षेपी, प्रवचनकार आदिको पचायोग्य और पञ्चक्रम देना चाहिये ॥ २ ॥ देवकर्ममें दो और पितृकर्ममें तीन अपना दागमें एक-एक ब्राह्मणको भोजन करना चाहिये । अत्यन्त धनी होनेपर भी आद्यकर्ममें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि सगे-सम्बन्धी आदि जनमोंको देनेसे और विस्तार करनेसे देव-कर्मोचित भद्रा, पदार्थ, पात्र और पूजन आदि ठीक-ठीक नहीं हो पाते ॥ ४ ॥ देव और कष्टक प्राप्त होनेपर अग्नि-मुनियोंके भोजन करनेयोग्य भूत इविष्यान् भगवान्‌के भोग ल्याकर अज्ञासे विभिपूर्वक योग्य पात्रको देना चाहिये । वह समस्त कर्मजाओंको पूर्ण करनेवत्ता और अक्षय होता है ॥ ५ ॥ देवता, अग्नि, पितर, एवं

अन्नं सविभजन्यदयेत् सर्वं सत् पुरुषात्मकम् ॥ ६ ॥

न दद्यादामिषं भ्रात्रे न चाद्याद् धर्मतत्त्ववित् ।

मुन्यन्नं स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुर्हिंसया ॥ ७ ॥

नैतादृशं परो धर्मो नृणां सद्वर्ममिच्छताम् ।

न्यामो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्येयजस्य यः ॥ ८ ॥

एके कर्ममयान् यन्नात् ज्ञानिनो यज्ञविधमाः ।

आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ ९ ॥

द्रव्ययज्ञैर्यस्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि विम्पति ।

एष माकुरणो हन्यादसज्जो क्षमुश्च ध्रुवम् ॥ १० ॥

तस्माद् दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ।

सन्तुष्टोऽहरहः बुभुक्षि यन्नमिच्छिषी क्रिया ॥ ११ ॥

विधर्मं परधर्मश्च आभास उपमा छल ।

अधर्मशास्त्रा पश्येमा धर्मकाऽधर्मवत् त्यजन् ॥ १२ ॥

धर्मबाधा विधर्मः स्वात् परधर्मोऽन्यथादित ।

उपधर्मस्तु पागण्डा दम्भा वा शृण्वन्मिच्छन् ॥ १३ ॥

यस्मिन्नुपमा कृतं पुम्भिर्गामामोऽथाश्रमात् पृथक् ।

न्यमाविरहिता धर्मः कस्य नेष्ट प्रज्ञान्तयः ॥ १४ ॥

धर्मार्थमपि नश्यत् यात्रार्थं पाथना धनम् ।

प्राणी, खज्जन और अपने-आपका भी ब्रह्मका विमानम
करनेक समय परमात्मस्वरूप ही दम् ॥ ६ ॥

धर्मका मम ज्ञानकाळा पुरुष आश्रमे मांमका अपण
न करे और न स्वयं ही उसे खाव, क्योंकि पितरोंको
अग्नि-मुनियोंके योग्य हविष्यामसे जन्म प्रसन्नता होती
है, वैसी पशु-हिंसासे नहीं होती ॥ ७ ॥ जा लोग
सद्वर्मपाठनकी अभिनया रखते हैं, उनके लिये इससे
बड़कर और बड़ा धर्म नहीं है कि किसी भी प्राणीका
मम, वाणी और शरीरसे किसी प्रकारका कष्ट न दिया
जाय ॥ ८ ॥ इसीसे कोई बड़ा यह तत्त्वको जाननेवाला
ज्ञानी ज्ञानके द्वारा प्रकल्पित आत्मसंयमस्वरूप अग्नि में इन
कर्ममय यज्ञोंका हवन कर दत्त है और बाह्य कर्म
बन्धनोंसे छपरत हो जाते हैं ॥ ९ ॥ जब कोई इन
द्रव्यमय यज्ञोंसे यजन करना चाहता है, तब सभी प्राणी
डर जाते हैं; वे साधन लगते हैं कि यह अपन प्राणी
का पोषण करनेवाला निदयी मूर्ख मुझ अवश्य मार
खालगा ॥ १० ॥ इसलिये धर्मज्ञ मनुष्यका यही उचित
है कि प्रतिदिन प्रारम्भक हाथ प्राप्त मुनिजनाभित
हविष्यामसे ही अपन नित्य और नैमित्तिक कर्म करे
तथा उसीसे सर्वत्र समुष्ट रह ॥ ११ ॥

अधर्मकी पाँच शाखाएँ हैं—विधर्म, परधर्म, आभास,
उपमा और छल । धर्मज्ञ पुरुष अधर्मके समान ही
इनका भी त्याग कर दे ॥ १२ ॥ जिस कष्टको धर्म
मुदिते करनेपर भी अपन धर्ममें बाधा पड़े, वह 'विधर्म'
है । किसी अल्पक द्वारा अन्य पुरुषक लिये उपदेश
दिया हुआ धर्म 'परधर्म' है । पाण्डव या दम्भक
नाम 'उपधर्म' अपवा 'उपमा' है । शास्त्रक बचनोंका
दुमरे प्रकारका अप कर नना 'छल' है ॥ १३ ॥
मनुष्य अपन आश्रमक विरहीन स्वच्छामे लिये धर्म मान
लेगा है, वह 'आभास' है । अपन-अपन स्वमात्रक
अनुराज आ वर्त्तमानाचिन्तन मम हैं व मजा लिये सामित
नहीं दत्त ॥ १४ ॥

धर्मका पुरुष निर्धर्म इन्तर भी धर्मक लिये अपना
शरीर-निर्वाहक लिये दत्त प्राप्त करनेकी चेष्टा न कर ।

अनीहानीहमानस महाहृदि वृत्तिदा ॥१५॥

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत् सुखम् ।

इतस्तत् कामलोभेन भावसोऽर्थेहया दिशः ॥१६॥

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।

सर्वराकाष्टकादिभ्यो यथोपानत्यद शिवम् ॥१७॥

सन्तुष्टः केन वा राज्ञश्च वर्तेतापि वारिषा ।

औषस्प्यजैह्वयक्षार्पणवाद् गृहपाठायते जनः ॥१८॥

असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ।

सर्वन्तीन्द्रियलौब्ध्येन ज्ञान चैवावकीर्यते ॥१९॥

कामस्यान्तश्च क्षुत्तृहस्यां क्रोधस्यैतत्कलौदयात् ।

जनो याति न लोमसं नित्वा मुक्त्वा दिशो भुवः ॥२०॥

पण्डिता बहुषो राजन्वदुष्टाः संशयच्छिदः ।

सदसस्पतयोऽप्येके असन्तोपात् पतन्मयः ॥२१॥

असङ्कल्पाजयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ।

अर्थन्यैष्यता लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥२२॥

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भ महदुपासया ।

योगान्तरायान् मोनेन हिसां कामाघनीहया ॥२३॥

मर्त्योक्ति जैसे बिना किसी प्रकारकी चेष्टा किये जनार्दन जीविका चण्डी ही है, वैसी ही निवृत्तिपटुपण पुरुषों निवृत्ति ही उसकी जीविकाका निर्वाह कर देती है ॥१५॥ जो सुख अपनी आशामें रमण करनेवाले निश्चिप सुखों पुरुषको मिलता है, वह उस मनुष्यको भय के भिन्न सकता है, जो काममा और क्रोधसे मन के लिये हान-हाय करता हुआ इधर-उधर दोरत रहता है ॥ १६ ॥ जैसे पैरोंमें गूता पहनकर चलनेवाले के कंकड़ और काँठोंसे कोई डर नहीं होता—वैसे ही जिसके मनमें सन्तोष है, उसके लिये दुर्घटा और उन कहीं सुख-ही-सुख है, दुःख ही ही नहीं ॥ १७ ॥ सुविष्टि! न जाने क्यों मनुष्य केवल असमाप्ति ही सन्तुष्ट रहकर अपने जीवनका निर्वाह नहीं कर लेता। अविष्ट रसनेश्वर और अमनेश्वरके क्षेत्रमें पकर कर बेघाग करती चौकसी करनेवाले कुपेके समान हो जाते हैं ॥ १८ ॥ जो नारायण सन्तोषी नहीं है, रत्नको भी ओछुपाने कारण उसके तेज, विद्या, तपस्य और सब छोण हो जाते हैं और वह विवेक भी खो बैठता है ॥ १९ ॥ भूख और व्यास मिट जानेपर खाने-पीनेकी कामनाका कष्ट हो जाता है। क्रोध भी अपना काम पूरा करके शांत हो जाता है। परन्तु यदि सुख पूर्णकी समस्त विद्याओंको भीत के और भोग से, तब भी कामका कष्ट नहीं होता ॥ २० ॥ वनेके लियेके श्राव्य, सङ्काओंका समाधान करके वनमें रहनेके अर्थको पैठा देनेवाले और निद्रासमर्थोंके समर्थी बड़े-बड़े विद्वान् भी असन्तोषके कारण फिर जाते हैं ॥ २१ ॥

परमजान् । सङ्कल्पोंके परिस्थानसे कामको, कामकाओंके त्यागसे क्रोधको, ससारीशोक जिसे धर्मा करते हैं उसे अनर्थ समझकर क्रोधको और तरके निवृत्तिसे मयको भीत लेना चाहिये ॥ २२ ॥ अन्धकारिवासे शोक और मोहपर, संतोषी उपासनासे दम्भपर, मोने द्वारा योगके विघ्नोंपर और शरीर-मात्र आदिसे निवृत्ति करके हिसापर विजय प्राप्त करनी चाहिये ॥ २३ ॥

कृपया भूषणं दुःखं देव ज्ञप्तात् समाधिना ।

मात्मबन्ध योगवीर्येण निद्रां सख्यनिषेधया ॥२४॥

रजस्तमस मन्वेन सख्य चोपश्रमेन च ।

एतत् सर्वगुरो भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥२५॥

यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ।

मैत्र्यासद्वीः श्रुत तस्य सख्यं ह्यङ्गमौषधत् ॥२६॥

एष वै भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ।

योगेश्वरैर्विमुन्याहिलक्रे यं मन्यते नरम् ॥२७॥

पद्मर्गसपमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः ।

तदन्ता यदि नो योगानावहेयु अमावहाः ॥२८॥

यथा वार्तादयो क्षर्षा योगस्यार्थं न विव्रति ।

अनर्थाप भवेयुस्ते पूतमिष्टं तथासतः ॥२९॥

यच्चित्तविक्षये यच्च स्वाभि सङ्क्रोऽपरिग्रह ।

एको विविक्रदारणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥३०॥

दद्रे शृणौ समे राज्ञेन्संस्थाप्यासनमात्मन ।

स्थिरं र्समं सुखं तस्मिन्मासीतर्न्यङ्ग आमिति ॥३१॥

आधिभौतिक दुःखको दयाके द्वारा, आधिदैविक वेदना-
को समाधिके द्वारा और आध्यात्मिक दुःखको योगबलसे
एवं निद्राको सात्विक मोहन, स्वप्न, सङ्ग आदिके सेवनसे
जीत लेना चाहिये ॥२४॥ सख्यगुणके द्वारा रजोगुण एवं
तमोगुणपर और उपरतिके द्वारा सख्यगुणपर विजय प्राप्त
करनी चाहिये । श्रीगुरुदेवकी भक्तिके द्वारा साधक इन
सभी दोषोंपर सुगमतासे विजय प्राप्त कर सकता है ॥२५॥
इन्द्रियमें शासका दीपक जलानेवाले गुरुदेव साक्षात्
भगवान् ही हैं । जो दुःखदि पुरुष उन्हें मनुष्य समझता
है, उसका समस्त शास्त्र-अर्थ हाथीके स्नानके समान
व्यर्थ है ॥ २६ ॥ बड़-बड़े योगेश्वर त्रिनिके चरण-
कमलोंका अनुसन्धान करते रहते हैं, प्रकृति और पुरुष
के बचीचर वे स्वयं भगवान् ही गुरुदेवक रूपमें प्रकट
हैं । उन्हें लोग भ्रमसे मनुष्य मानते हैं ॥ २७ ॥

शास्त्रोंमें जितना भी नियमसम्बन्धी आदेश हैं उनका
एकमात्र तात्पर्य यही है कि कर्म, क्वाच, क्रोध, मोह,
मद और मत्सर—इन छ छत्रुओंपर विजय प्राप्त कर
ली जाय अथवा पोंकों इन्द्रिय और मन—ये छ वशमें
हो जायें । ऐसा होनेपर यदि उन नियमोंके द्वारा
भगवान्के ध्यान-विस्तार आदिकी प्राप्ति नहीं होती, तो
उन्हें केवल श्रम-ही-श्रम समझना चाहिये ॥ २८ ॥
जैसे खेती, व्यापार आदि और उनके फल भी योग-
साधनाके फल मण्यतासि या मुक्तिके नहीं द सकते—
वैसे ही दुष्ट पुरुषके धीन-स्मार्त कर्म भी कर्मफलकारी
नहीं होते, प्रत्युत तन्मा फल दते हैं ॥ २९ ॥

जो पुरुष अपन मनपर विजय प्राप्त करनेक लिये
उपयत्न हो, वह आसक्ति और परिग्रहका त्याग करके
सम्पास ग्रहण करे । एकान्तमें अकला ही रहे और
भिक्षा-भूतिसे शरीर निवृद्धमात्रक लिये स्वल्प और
परिमित भोजन करे ॥ ३० ॥ युधिष्ठिर । पवित्र और
समान भूमिपर कपडा आसन बिछाये और सीधे स्थिर
भावसे समाज और सुखकर आसनसे तसपर बैठकर

प्राणापानौ मभिरुन्ध्यात् पूरकुम्भकरचकैः ।

यावन्मनस्त्यजेत् कामान् मनासाप्रनिरीक्षुण ॥३२॥

यतो यतो निःसरति मनः क्षमहर्तं ध्रुम् ।

ततस्तत् तपाहृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्धुम् ॥३३॥

एवमस्यसतचित्तं कालेनास्पीयमा यतोः ।

अनिष्टं तस्य निवाणं वात्यनिन्धनवद्विवत् ॥३४॥

क्षमातिभिरनाविद्धं प्रक्षान्दौस्त्रिबुचि यत् ।

चित्तं ब्रह्मसुखस्युत्तं नैवाविष्टेन कर्हिचित् ॥३५॥

य प्रव्रज्य गृह्यत् पूर्वं त्रिबगावपनात् पुनः ।

यदि सेवेत शाभिनुः स वै वाग्दानपत्रपः ॥३६॥

यं स्वदहः स्मृता नात्मा मर्त्यो विंदकुमिमममात ।

त ग्नमात्मसात्कृत्वा स्थापयन्ति ह्यसत्तमा ॥३७॥

गृह्ण्यस्य कियात्पाया प्रतत्पायो वगारपि ।

तपन्विना प्राप्तयेषा भिक्षातिन्द्रियलाभता ॥३८॥

आधमापमदा सेत स्वराधमविदम्बका ।

द्वयमायाविमूर्त्तान्नुपधेतानुकम्पया ॥३९॥

आग्मार्तयेद्रुमिवानापात पर प्रातपुताश्रय ।

किमिच्छेत्कम्पया हतादहपुष्पाति सम्पटः ॥४०॥

आहुः गगारं रथमिन्द्रियाणि

ह्यपानर्भापू मन इन्द्रियप्रम् ।

उत्कारका जप करे ॥ ३१ ॥ जबतक मन सङ्ग्रह-
विकल्पोंको छोड़ न दे, तबतक नासिकके अग्रभागपर
दृष्टि लगाकर पूरक, कुम्भक और रेचकाद्वारा प्राण तथा
अपानकी गतिको रोक ॥ ३२ ॥ कामकी योगसे बाध
चित्त श्वर-उपर चक्कर कट्टता हुआ जहाँ-जहाँ जप,
विज्ञान् पुरुषको चाहिये कि वह वहाँ वहाँ से ठसे छेदा
लाये और भीरे-भीरे हृदयमें रोके ॥ ३३ ॥ जब स्थान
भिरन्तर इस प्रकारका अभ्यास करता है, तब ईश्वरके
बिना जैसे जलमें बुझ जाती है वैसे ही वोई सत्यमें
वसक्य चित्त स्थान हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार
जब काम-वासनाएँ चोट करना बंद कर देतो हैं और
समस्त वृत्तियाँ जल्पन्त शास्त हो जाती हैं, तब चित्त
ब्रह्मानन्दके संस्पर्शमें मन हो जाता है और फिर वसक्य
कभी उदयान नहीं होता ॥ ३५ ॥

जो संन्यासी पहले तो धर्म, जप और वाक्
मूक कारण गृहस्थाधमका परित्याग कर देता है और
फिर वहाँ-वहाँ सेवन करने लगता है, वह मित्रजन्म
उत्पत्ति हुएका स्थानेवाला कुत्ता ही है ॥ ३६ ॥ जिन्होंने
ने अपन शरीरको अनामक, प्रसुप्त और विष्ट, इसी
एक राक्षस समझ लिया था—वे ही मूढ़ फिर उसे ज्ञान
मनकर उसकी प्रशंसा करने लगते हैं ॥ ३७ ॥ कर्म-
लाभी गृहस्थ, ब्रह्मपाणी ब्रह्मचारी, गौतमे रहनेवाले
तपस्वी (ब्रह्मचर्य) और इन्द्रियबोध संन्यासी-ने
चारों आधमक काटछेद और स्वयं ही आधमिकों को
करते हैं । भगवान्को वायासे निमोहित उन पूर्वोक्त
तरस साधक उनकी तपस्या पर देखी चाहिये । ३८ ३९ ।
आत्मज्ञानक द्वारा जिससी सारी वासनाएँ निर्मूल हो
गयी हैं और जिसने अपने आत्माको परब्रह्मका अंग
लिया है, वह जिस शिष्यको तथा और किम भोक्त-
की गुणिक उभे इन्द्रिय अंग होकर अपने शरीरका
पारण करेगा ? ॥ ४० ॥

उपरिर्वा मि कहागया है कि शरीर स्व है, ईश्वर
को है इन्द्रियोंवा मारी मन लगता है इस कि

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

वर्तमानि मात्रा भिषगां च सृष्टं

सत्त्वं धृष्टं यद्गुरमीशसृष्टम् ॥४१॥

अयं दृष्टप्राणमधमधर्मो

चक्रऽभिमानं रथिनं च जीवम् ।

धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति

धरं तु जीव परमेश लक्ष्यम् ॥४२॥

रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भय मद ।

मानोऽवमानोऽहंसा च माया हिंसा च मत्सरः ॥४३॥

रजः प्रमादः क्षुब्धोऽप्राप्यश्चस्त्वेवमादयः ।

रजस्तमः प्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः कश्चित् ॥४४॥

यावन्नुक्तापरममात्मवशोपकरणं

धत्ते गरिष्ठपरमार्चनया निशासम् ।

ज्ञानासिमभ्युत्थलो दधत्स्तन्मनु

स्वाराज्यमुत्पद्यतेऽन्तर्द्वं विजिज्ञात् ॥४५॥

नो चेत् प्रमथमसदिन्द्रियवाञ्छिता

नीत्वोरपथं विषमदस्सुप्तु निक्षिपन्ति ।

ते दस्यवः सहयद्यत्रमधुं तमोऽन्धे

संसाररूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥४६॥

प्रार्थयं च निर्वृणयं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।

माधर्तेतः प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥४७॥

हिंस्रं द्रुम्यमयं काम्यमभिहोत्राद्यज्ञान्तिदम् ।

दर्शयः पूर्णमासस्य चातुर्मास्य पशुः सुतः ॥४८॥

विषय मार्ग हैं, बुद्धि सारथि हैं, विषय ही मग्नान्ते द्वारा निर्मित बौध्देकी विनाश रस्ती है, दस प्राण पुरी हैं, धर्म और अधर्म पद्विये हैं और इनका अभिमानी जीव रथी कहा गया है । अन्तर ही उस रथीका प्रनुप है छुद जीशाला बाण और परमात्मा लक्ष्य है । (इस अन्तर के द्वारा अन्तरात्मको परमात्मा में डीन कर देना चाहिये) ॥ ४१ ४२ ॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अवमान, दूसरेके गुणोंमें दोष निकालना, छुद, हिंसा, दूसरेकी उन्नति देखकर जलना, तुष्णा, प्रमाद, मूख और मीढ़—ये सब, और ऐसे ही जीवोंके और भी बहुत-से शत्रु हैं । उनमें रजोगुण और तमोगुणप्रधान वृत्तियाँ अधिक हैं, कहीं-कहीं कोई-कोई सत्त्वगुणप्रधान ही होती हैं ॥ ४३ ४४ ॥ यह मनुष्य-शरीररूप रथ जबतक अपने बशमें ॥ और इसके इन्द्रिय मन आदि सारे साधन अच्छी दशामें विद्यमान हैं, तभीतक श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंकी सेवा-पूजासे ज्ञान बरायी हुई ज्ञानकी तीली तडमार लेकर मग्नान्ते काअयसे हम शत्रुओंका नाश करके अपने स्वायज्य-सिंहासनपर विराजमान हो जाय और फिर अत्यन्त शाश्वतभावसे इस शरीरका भी परित्याग कर दे ॥ ४५ ॥ नहीं तो, तनिक भी प्रमाद हो जानेपर ये इन्द्रियरूप छुद बोहे और उनसे मित्रता रखनेवाला बुद्धिरूप सारथि रथके चाली जीवकी सस्ते रास्ते से आकर विषयरूपी छुदोंके हाथमें डाल देगे । वे बाह्य सारथि और बोहोंके सञ्चित इस जीवकी दृष्टिसे अत्यन्त भयावने और अचकारमय संसारके कुर्ममें गिर देगे ॥ ४६ ॥

वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं—एक तो वे जो वृत्तियोंको ठनक विषयोंकी ओर ले जाते हैं—प्रवृत्ति परक, और दूसरे वे जो वृत्तियोंको ठनके विषयोंकी ओरसे औद्यकर शाश्वत एव आत्मसाक्षात्कारके योग्य बना देते हैं—निवृत्तिपरक । प्रवृत्तिपरक वममार्गसे बार-बार जन्म-मृत्युकी प्राप्ति होती है और निवृत्तिपरक भक्तिमार्ग या ज्ञानमार्गके द्वारा परमात्मकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ श्वेजयागप्रदि हिंसामय कर्म, जग्निहोत्र, दश, पूर्णमास चातुर्मास्य, पशुभ्यग, सोमयाग, वैश्वदेव,

एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हृतं प्रहृष्टमेव च ।

पूर्तं सुरालमारामकृपाजीव्यादिलक्षणम् ॥४९॥

द्रव्यद्रव्यस्मविपाक्यं श्रुयो रात्रिरपक्षय ।

अयत्नं दक्षिणं सोमा दद्यात् ओषधिवीरुधः ॥५०॥

अन्नं रेत इति श्लेष्म पितृयानं पुनर्मवः ।

एकैकशेषेनास्तुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह ज्ञापते ॥५१॥

निषेकादिब्रह्मज्ञानान्तैः संस्कारैः संस्कृतो द्विजः ।

इन्द्रियेषु क्रियायश्चान् ज्ञानदापपु शुद्धति ॥५२॥

इन्द्रियाणि मेनस्पृमां वाधि वैकारिकं मन ।

वार्षं वर्णसमाप्राये समोद्धारं म्यरे न्यसेत् ।

ओद्धारं विन्दो नादे च सं ॥ प्राग् महत्त्वमुम् ॥५३॥

अग्निं स्यो दिवा प्राक्षः शुद्धाराकाचं खराद् ।

विश्वं तैजसं प्राक्षस्तुर्यं आत्मा समन्वयात् ॥५४॥

बलिहरण आदि द्रव्यमय कर्म इस कहल्यो है और देवाख्य, गयीया, कूर्वा आदि ब्रह्मना तब जाऊ आदि लगाना 'पूर्ण कर्म' हैं । ये सभी प्रवृत्तिपरक कर्म हैं और सकलमग्नयसे युक्त होनेपर ब्रह्मान्तिके हैं करण बनते हैं ॥ ४८ ४९ ॥ प्रवृत्तिपरायण पुरुष मनेस चरु-पुरोडाशादि यज्ञसम्बन्धी श्रम्योंके स्रममग्नसे क्या हुआ शरीर कारणकर घुमाभिमानी देवताओंके पास जाता है । फिर क्रमशः रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायनके अभिमानी देवताओंके पास जाकर कन्द्रशेखमें पहुँचता है । वहाँसे श्लेष्म समस्त होनेपर ब्रह्मस्वके चन्द्रमग्नके समान क्षीण होकर बुद्धिद्वारा क्रमशः ओषधि, कृता, अन्न और वीर्यके रूपमें परिणत होकर पितृयान-मार्गसे पुनः सप्तारमें हैं जन्म लेता है ॥ ५० ५१ ॥ शुचिष्ठिर ! गर्वाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त सम्पूर्ण संस्कार जिनके होते हैं, उनको 'द्विज' कहते हैं । (उनमेंसे कुछ तो पूर्वोक्त प्रवृत्तिमग्नका अनुष्ठान करते हैं और कुछ आगे करे जानेवाले निवृत्तिमार्गके) निवृत्तिपरायण पुरुष इस, पूर्त आदि कर्मोंसे होनेवाले समस्त यज्ञोंको त्रिपयोका ज्ञान करनेवाले इन्द्रियोंद्वारा बन देता है ॥ ५२ ॥ इन्द्रियोंको दशानादि-सङ्कल्पक मन्त्रों, वैकारिक मनको परा वाणीमें और परा वाणीका कर्णसमुदायमें, कर्णसमुदायको 'अ त म् इ न टी न एते' के रूपमें रहनेवाले उच्चारणमें, उच्चारणको विन्दुमें, विन्दुका मादमें, मादको सूत्रस्वरूप प्राणमें तथा प्राणको ब्रह्ममें कीन कर देता है ॥ ५३ ॥ वह निवृत्तिष्ठि ज्ञानी क्रमशः अग्नि, सूर्य, दिन, सायंकाल, कृष्णपक्ष, पूर्णमासी और उत्तरायणके अभिमानी देवताओंके पास जाकर ब्रह्मलोकमें पहुँचता है और वहाँके श्लेष्म समस्त होनेपर वह स्रुजोपाधिक 'विराट्' अपनी रघुत् स्रुजोपाधिको सूक्ष्ममें कीन करके सूक्ष्मोपाधिक 'तैजस' हो जाता है । फिर सूक्ष्म स्रुजोपाधिको कारणमें ब्रह्म करके कारणोपाधिक 'प्राक्ष' रूपसे स्थित होता है ; फिर सबके साक्ष्यरूपसे सर्वत्र अनुगत होनेके कारण सबकी के ही स्वरूपमें कारणोपाधिक ब्रह्म करके 'सुदीप्त' रूपसे स्थित होता है । इस प्रकार द्रव्योक्त ब्रह्म हो जानेपर वह शुद्ध आत्मा रह जाता है । यही मोक्षपद

देवयानमिदं प्रादुर्भूत्वा मूर्त्वानुपूर्वैः ।

आत्मयान्पुपुशन्तारमा स्मारमभ्यो न निवर्तते ॥५५॥

य एते पितृदेवानामयने वेदनिमिते ।

शास्त्रेण चक्षुषा वेदं ज्ञेयस्योऽपि न मुच्यते ॥५६॥

आदावन्ते जनानां सधूः परितः परापरम् ।

ज्ञानं ध्वंयं वचो वाच्यं समो ज्योतिस्त्वथ स्वयम् ॥५७॥

आवाधितोऽपि आभासो यथा वस्तुतया स्मृत ।

दुर्धनं चार्दन्निष्कं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥५८॥

क्षित्यादीनामिहाधानां छाया न कतमापि हि ।

न मघाता विकाराऽपि न पृथङ् ज्ञान्विता मृषा ॥५९॥

धातवाऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ।

न म्युपमस्यवयवित्वमवयवयाऽन्तत ॥६०॥

हे ॥ ५४ ॥ इसे देवयान मार्ग कहते हैं । इस मार्ग से जानबाला आत्मोपासक ससारकी ओरसे निवृत्त होकर क्रमशः एकसे दूसरे देवताके पास होता हुआ ब्रह्मलोकमें आकर अपन स्वरूपमें स्थित हो जाता है । वह प्रवृत्तिमार्गके समान फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता ॥ ५५ ॥

ये पितृयान और देवयान दोनों ही वेदोक्त मार्ग हैं । जो शास्त्रीय दृष्टिसे इन्हें तत्पत्र ज्ञान लेता है, वह शरीरमें स्थित रहता हुआ भी मोहित नहीं होता ॥५६॥ पेदा होमवाले शरीरके पहले भी कारणरूपसे और उनका अन्त हो जानपर भी उनकी अव्यक्तपसे जो कार्य विद्यमान रहता है, जो योग्यरूपसे बाहर और भोक्तारूपसे भीतर है तथा ऊँच और नीच, जानना और जाननेका विषय, बाणी और बाणीका विषय, अन्वयकार और प्रकाश आदि वस्तुओंके रूपमें जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब कार्य यह तत्पत्रेष्टा ही है । इसीसे मोह उसका स्पर्श नहीं कर सकता ॥५७॥ दयण आदिमें दीख पड़नेवाला प्रतिबिम्ब विचार और पुष्टिसे बाधित है, उसका उनमें अस्तित्व है नहीं, फिर भी वस्तुके रूपमें तो वह दीखता ही है । वैसे ही इन्द्रियोंके द्वारा दीखनेवाला वस्तुओंका ये-आव भी विचार, मुक्ति और आत्मानुभवसे असम्भव होनेके कारण वस्तुतः न होनेपर भी सत्य सा प्रतीत होता है ॥५८॥ पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंसे इस शरीरका निर्माण नहीं हुआ है । वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो न तो यह उन पञ्चभूतोंका सङ्घात है और न विकार या परिणाम ॥ । क्योंकि यह अपन अवयवोंसे न तो पृथक् है और न उनमें अनुगत ही है, अतएव मिथ्या है ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार शरीरके कारणरूप पञ्चभूत भी अवयवी होनेके कारण अपन अवयवों—सूक्ष्मभूतोंसे भिन्न नहीं हैं, अवयवरूप ही हैं । अतः बहुत गान बिन करमपर भी अवयवोंके अनिश्चित अवयवीका अस्तित्व नहीं मिथ्या—वह असद ही सिद्ध होगा, तब अपन-आर ही यह सिद्ध है । जाना है कि ये अवयव भी अवयव ही हैं ॥ ६० ॥

स्यात् सादृश्यभ्रमत्वात् विकल्पे सति वस्तुनः ।

जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनियेधता ॥६१॥

भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथाऽऽत्मनः ।

वर्तयन्स्वानुस्यूह श्रीसन्नायुनुते मुनिः ॥६२॥

कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटवन्तुषत् ।

अवस्तुत्वाद् विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥६३॥

यद् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्मसमर्पणम् ।

मनोवाक्कजुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥६४॥

आत्मवायासुतादीनामन्येषां सर्वदहिनाम् ।

यत् स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥६५॥

यद् यस्य वानिपिदं स्याद् येन यत्र यथानृपा

स तेनेहेतु कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥६६॥

एतैरन्यैश्च धेदोर्कैवतमानः स्युक्रमभिः ।

गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद् राज्ञस्तद्भक्तिमाह्नरः ॥६७॥

यथा हि यूप नादत्र दुस्त्यजा

राजद्रणादुघरतात्मन प्रभा ।

यत्पदपङ्कजस्यैव यथा भवा

नद्यापीभिर्मितदिग्मात्रं कृतम् ॥६८॥

जबतक अज्ञानके कारण एक ही परमतत्वमें बनेक वस्तुओंके भेद माहूम पड़ते रहते हैं, तबतक यह मन मो रह सकता है कि जो वस्तुएँ पहले भी, वे अब भी हैं और स्वप्नमें भी जिस प्रकार नाग, कण आदि अणुआणुओंके ध्वज भ्रम अनुभव होते हैं। तथा उनमें भी विधि-नियेधके शास्त्र रहते हैं—वैसे ही जबतक इन भिन्नताओंके अस्तित्वका मोह बना हुआ है, तबतक यहाँ भी विधि-नियेधके शास्त्र हैं ॥ ६१॥

जो विचारशील पुरुष खानुमूर्तिसे आत्मिक प्रिय अद्वैतका साक्षात्कार करते हैं—वे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और वृक्षा, दहन तथा इत्येके भेदरूप स्वप्नको स्थिर देखे हैं । ये अद्वैत तीन प्रकारके हैं—भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत ॥ ६२ ॥ अब वह सूत्ररूप ही होता है, वैसे ही कार्य भी कारणमात्र ही है । क्योंकि भेद तो वास्तवमें है नहीं । इस प्रकार सबकी एकताका विचार 'भावाद्वैत' है ॥ ६३ ॥ मुनिष्ठिर ! मन, वाणी और शरीरसे होनवाले सब कर्म स्वयं परब्रह्म परमात्मानमें ही हो रहे हैं, उसीमें अणुस्त हैं—इस भावसे समस्त कर्मोंको समर्पित कर देना 'क्रियाद्वैत' है ॥ ६४ ॥ श्री-पुत्रादि सगे-सम्बन्धी एवं संसारके अन्य समस्त प्राणियोंक तथा अपने स्वार्थ और भोग एक ही हैं, उनमें अपने और परयेका भेद नहीं है—इस प्रकार का विचार 'द्रव्याद्वैत' है ॥ ६५ ॥

मुनिष्ठिर ! जिस पुरुषके जिये जिस ब्रह्मको जिस समय जिस ढपायसे जिससे प्रहण करना शास्त्राज्ञाके विरुद्ध न हो, उसे उसीसे करने सब कार्य सम्पन्न करने चाहिये; आराधिकाककी छोड़कर इससे अन्यथा नहीं करना चाहिये ॥ ६६ ॥ महाराज ! मगधक मनुष्य वेदमें कहे हुए इन कर्मोंके तथा अग्न्याम्य कर्मोंक अनुष्ठानसे घरे रहते हुए भी श्रीकृष्णकी गतिमें प्राप्त करता है ॥ ६७ ॥ मुनिष्ठिर ! जैसे तुम अपने स्वामी मगधान् श्रीकृष्णकी दया और सहायतासे बन्दी-बन्दी बंठिन विरचितियोंसे पार हो गये हो और उन्हींके धारणकर्मोंकी सेवासे समस्त मूढपण्यको जीतकर तुमन बड़े-बड़े राजसूय आग्नि पक क्रिये हैं ॥ ६८ ॥

अहं पुरामथ कश्चिद् गार्ध्व उपवर्हण ।

नास्मातीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मत ॥६९॥

रूपयेष्ठलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शन ।

स्त्रीणां प्रियतमो नित्य मर्चस्तु पुच्छलम्पटः ॥७०॥

एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणा ।

उपहृता विश्वसुग्भिर्हरिगाधोपगाधने ॥७१॥

अहं च गार्पल्यद्विद्वान् स्त्रीभिः परिहृतो गत ।

श्वात्वा विश्वसृजस्तन्म हेलनं छपुरोजसा ।

याहि त्वं शूद्रवामाशु नष्टभीः कुतश्चेन्न ॥७२॥

तावदास्यामहं ज्यैष्ठ्यं तत्रापि श्रमवादिनाम् ।

शुभ्रपयानुपङ्गव प्राप्नोऽहं ममपुत्रताम् ॥७३॥

धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्जित पापनाशन ।

गृहस्यो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामिषाद् ॥७४॥

गृप नृत्ताक वत मूर्तिभागा

रात्र पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।

यथा गृहानावसतीति साध्या

गृहं पर मन्त्र मनुष्यन्ति ॥७५॥

म वा अयं मन्त्र महदिमृष्य

वैरत्यन्तितामुष्मानुभूति ।

पूर्वजन्ममें इसके पहलेके महाशक्तमें मैं एक

गन्धर्व था । मेरा नाम था सपवर्हण और गन्धर्वोंमें मेरा

बड़ा सम्मान था ॥ ६९ ॥ मेरी सुन्दरता, सुकुमारता

और मधुरता लुब्ध थी । मेरे शरीरमेंसे सुगन्धि निकल

करती और देखनेमें मैं बहुत अच्छा लगता । स्त्रियों

मुझसे बहुत प्रेम करती और मैं सदा प्रमोदमें ही रहता ।

मैं जलन्त विवासी था ॥ ७० ॥ एक बार देवताओंके

यहाँ ज्ञानसत्र हुआ । उसमें बड़े-बड़े प्रजापति जाये थे ।

मगधान्त्री कीलका गान करनेके लिये उन जागीने

गन्धर्व और अप्सराओंको बुलाया ॥ ७१ ॥ मैं जानता

था कि वह स्तंभका समाज है और यहाँ मगधान्त्री

कीलका ही गान होता है । फिर भी मैं स्त्रियोंके साथ

कीलकी गीतोंका गान करता हुआ तन्मगच्छी तरह

बहो जा पहुँचा । देवताओंने देखा कि यह तो हम-

कागोका अनादर कर रहा है । उन्होंने अपनी शक्तिसे

मुझे छार दे दिया कि धूमने हमन्धर्वोंकी जबहलका

की है, इसलिये तुम्हारी सारी सौन्दर्य-सम्पत्ति नष्ट हो

जाय और तुम खीर ही रह जाओ ॥ ७२ ॥

उनके शापसे मैं दासीका पुत्र हुआ; किन्तु उस

शूद्र जीवनमें किये हुए महाशक्तोंके सत्सङ्ग और सेवा

शुभ्रगुणके प्रभावसे मैं दूसरे जन्ममें मन्मथीका पुत्र

हुआ ॥ ७३ ॥ मनोंकी अजीबना और सेवाका यह

मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है । मन्मथीसे ही मगधान्त्र प्रमन

होते हैं । मैंने तुम्हें गृहस्थोंका पापनाशक धर्म बतला

दिया । इस धर्मके आचरणसे गृहस्थ भी अनापास हो

सम्प्राप्तियोंको विद्वेषबाध परमप्राप्त प्राप्त कर लेता

है ॥ ७४ ॥

पुनिजि ! इस मनुष्यजातमें तुमकोन्दक भग्य

लक्ष्यत प्रशंसनीय हैं; क्योंकि तुम्हारे धर्म सारा

परम परमात्मा मनुष्यका रूप धारण करक मनुष्यसे

मेव सुखं च खलु मातुल्य
आत्मार्षणीयो विधिकृत् गुरुम् ॥७६॥

यस्य साध्याद्वचपञ्चादिभी
रूपं धिया वस्तुतयोपनर्षितम् ।

तानन भक्त्यापश्येन पूजितः
प्रसीदतामेव स सात्त्विको पति ॥७७॥

श्रीमुक्त उवाच

दशर्षिणा प्रोक्तं निश्चय्य भरतपुत्र ।

गामास सुप्रीत कृष्णं च प्रमद्विह्वल ॥७८॥

तापोयुषामन्त्र्य पूजित प्रपयौ मुनि ।

कृष्ण परं प्रश्न पार्थ परमविस्मित ॥७९॥

दासापणीनां ते पृथग्वंश प्रकीर्तिता ।

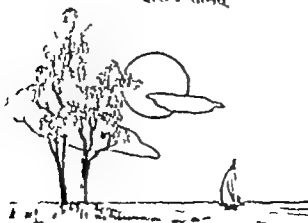
पुरमनुष्याद्या लाक्ष यत्र चराचरा ॥८०॥

स्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं—वे ही तुम्हारे प्रिय, मेरे माई, पूज्य, आकाशरी, गुरु और स्वयं श्रीकृष्ण हैं ॥ ७६ ॥ शास्त्र, ब्रह्मा आदि भी कसारी बुद्धि लगाकर खे यह हैं—इस रूपमें उन वर्णन नहीं कर सक। फिर हम तो कर ही कैसे हैं। हम मौन, भक्ति और संप्रपन्न के द्वारा ही उन पूजा करते हैं। कृपया हमारी यह पूजा स्वीकार कर भक्तकर्मज भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ७७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहल हैं—परीक्षित ! देवर्षि गार्ग्य का यह प्रश्नवन सुनकर राजा मुविष्टिसे ब्रह्म आनन्द हुआ। उन्होंने प्रेम-विह्वल होकर देवर्षि गार्ग्य और भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ ७८ ॥ देवर्षि गार्ग्य भगवान् श्रीकृष्ण और राजा मुविष्टिसे विनम्र होकर उनके द्वारा सत्कार पाकर बसे गये। भगवान् श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, यह सुनकर मुविष्टिके आश्चर्य की सीमा न रही ॥ ७९ ॥ परीक्षित ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दश-पुत्रियोंके वंशोंका वृक्ष-वृक्ष बरन सुनाया। उन्हींके वंशमें देवता, जसुर, मनुष्य आदि और सङ्ख्य चराचरकी सृष्टि हुई है ॥ ८० ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराण नैपासिक्यामश्रयणासादृशो पारमर्हस्यां संहितायां
सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरित मुविष्टिनारायणसहादे सदाचारनिर्णयो
नाम पञ्चशोऽध्याय ॥ १५ ॥

इति मत्तम स्क्न्धः समाप्त
हरिः ॐ तत्सत्



श्रीराधाकृष्णम्बो नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

अष्टमः स्कन्धः



ईशराऽप्यभवद्विभुशामनाऽपि त्रिभिः कर्म ।
श्रील्लोकान् प्रान्तवान् यो वै स कृष्णः कुरुतां कृपाम् ॥

श्रयेस्तु वेदशिरसस्तुपिता नाम पत्न्यमूत् ।
 तस्यां ऋषे ततो देवो विद्युरित्यभिभिश्चुत ॥२१॥
 अष्टासीतिसहस्राणि सूनयां ये पृतप्रताः ।
 अन्वर्षिष्वन्वत तस्य कौमारप्रसन्नचारिणः ॥२२॥

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ।
 पवनं सुञ्जयो यज्ञहोत्रायास्तस्मृता नृप ॥२३॥
 वसिष्ठवनयाः सप्त श्रपयः प्रमृदादयः ।
 सत्त्वा केदमुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यमित् ॥२४॥
 धर्मस्य स्रुतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ।
 सत्यसेन इति स्मृतो जातः सत्यव्रतैः सह ॥२५॥
 सोऽनृतव्रतदुःखीलानसता मधुराश्वसान् ।
 भूतह्रस्वो भूतगणांस्त्ववधीत् सत्यजित्सत्स ॥२६॥

चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामस ।
 र्षुः स्मार्तिर्नरः केतुरित्याद्या दश तस्मृताः ॥२७॥
 सत्यकृ हरयो वीरा देवाक्लिश्वर ईश्वरः ।
 ज्योतिर्धामादयः सप्त श्रपवस्तामसेऽन्तरे ॥२८॥
 देवा वैपृतमो नाम विष्टतेस्तनया नृप ।
 नष्टाः कालेन वैर्षेदा विष्टताः स्वेन तेजसा ॥२९॥
 तत्रापि ब्रह्मे भगवान्हरिण्यां हरिमभसः ।
 हरिरित्याहूता येन गजेन्द्रो मोक्षितो ग्रहात् ॥३०॥

राजोवाच

बादरायण यत् त्वं भोतुमिच्छामहे वयम् ।
 हरिर्यथा गजपतिं ब्राह्मणस्तमभूषत् ॥३१॥
 तत्कथां सुमहत् पुष्पं धन्यं स्वस्त्यर्थं श्रोमः ।

वेदशिरा नामके श्रुतिप्री पानी तुपिता थी । उनके गर्भसे भगवान् ने अवतार ग्रहण किया और विष्णु नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २१ ॥ वे आनीबन नैष्ठिक श्रद्धावारी थे । उन्होंने आचरणसे शिक्षा ग्रहण करके बठासी हजार व्रतनिष्ठ श्रुतियोंने भी ऋषयर्व्रतका पालन किया ॥ २२ ॥

तीसरे मनु से उत्तम । वे प्रियव्रतके पुत्र थे । उनके पुत्रोंके नाम थे—पवन, सुञ्जय, यज्ञहोत्र आदि ॥ २३ ॥ उस मन्वन्तरमें वसिष्ठजीके प्रमद आदि सात पुत्र उत्पत्ति थे । सत्य, वेदघुत और भद्र नामक देवद्वयके प्रधान गण थे । और इन्द्रका नाम था सत्यनिद्र ॥ २४ ॥ उस समय धर्मकी पत्नी सृताके गर्भसे पुरुषोत्तम-भगवान् ने सत्यसेनके नामसे अवतार ग्रहण किया था । उनके साथ सत्यव्रत नामके देवगण भी थे ॥ २५ ॥ उस समयके इन्द्र सत्यनिद्रके सखा बनकर भगवान् ने असत्यपरायण, दुःशील और दुष्ट यक्षों, राक्षसों एवं जीन्वोही भूतगणोंका संहार किया ॥ २६ ॥

चौथे मनुका नाम था तामस । वे तीसरे मनु उत्तमके सगे भाई थे । उनके पृथु, स्मार्ति, नर, केद इत्यादि दस पुत्र थे ॥ २७ ॥ सत्यकृ, हरि और ईश नामक देवताओंके प्रधान गण थे । इन्द्रका नाम था त्रिशूल । उस मन्वन्तरमें ज्योतिर्धाम आदि उत्पत्ति थे ॥ २८ ॥ परीक्षित ! उस तामस नामके मन्वन्तरमें विष्टतिके पुत्र वैपृति नामके और भी देवता हुए । उन्होंने समयके फेरसे मनुष्य वेदोंको अपनी शक्तिसे बचाया था, इसीलिये ये 'वैपृति' कहलाये ॥ २९ ॥ इस मन्वन्तरमें हरिमवा श्रुतिकी पत्नी हरिणीके गर्भसे हरिके रूपमें भगवान् ने अवतार ग्रहण किया । इसी अवतारमें उन्होंने ब्राह्मणसे गजेन्द्रकी रक्षा की थी ॥ ३० ॥

राजा परीक्षितने पूछा—सुनिश्चर । हम आपसे यह सुनना चाहते हैं कि भगवान् ने गजेन्द्रको ब्राह्मणके फेरसे कैसे बचाया था ॥ ३१ ॥ सब कथाओंमें यही कथा परम पुण्यमय, प्रशंसनीय, मङ्गलकारी और सुम है,

१ प्रा पा—शिशुमुत् । २ प्रा पा—रुपा । ३ प्रा पा—रुपा । ४ प्रा पा—धर्म । ५ प्रा पा—धर्म ।

यत्र यत्रोत्तमश्लोके भगवान्नीयते हरिः ॥३२॥

सूत उवाच

परीक्षितैव स तु नादरायणि

प्राप्तोपविष्टन कृपासु चान्ति ।

उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं

सुता सुनीना सन्ति स्म शृण्वताम् ॥३३॥

त्रिसर्गमें महात्माओंके द्वारा गान किये हुए भगवान् श्रीहरि के पवित्र यशका वर्णन रहता है ॥ ३२ ॥

सूत्रजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो । राजा परीक्षित् आभरण अनशन करके कथा सुननेके लिये ही बैठे हुए थे । उन्होंने जब श्रीशुकदेवजी महाराजको इस प्रकार कथा कहनेके लिये प्रेरित किया, तब वे बड़ आनन्दित हुए और प्रेमसे परीक्षित्का अभिनन्दन करके सुनियोंकी भी समामें कहन लगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराण पारमहंसां संहितायां अष्टमस्कन्धे मन्त्रतरांशुवर्तिते प्रथमाऽध्यायः । १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रादुर्भावेन गच्छेत्पुत्रं पश्यन्त आना

श्रीशुक उवाच

आसीद् गिरिवर्गे राज्ञि कूट इति विधुत ।

श्रीरोदेनाहृत श्रीमान्योजनापुत्रमुच्छ्रित् ॥ १ ॥

तावता विष्ठत पर्यङ्कत्रिभि शृङ्गे पयोनिधिम् ।

न्दिनं त्वं रोधयन्नास्त गन्ध्यामद्विरण्मयं ॥ २ ॥

अन्यत्र ककुभः मवा रमधातुविचित्रितं ।

नानाद्रुमलतागुन्मनिर्पोषनिर्गन्धसाम् ॥ ३ ॥

मन्वावनिन्यमानादि ममन्तावपयज्जर्मभि ।

करोति न्यामना भूमि हरिन्मरुतामभिः ॥ ४ ॥

मिद्वारणगधर्वविद्याधरमहोरग ।

किर्मरंज्यगोभिष मीढाद्रिर्जुगबन्ध ॥ ५ ॥

यत्र मगीनमन्नादनद्गुहममपया ।

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् । क्षीरसागरमें विहृत नामका एक प्रसिद्ध सुन्दर एवं श्रेष्ठ पर्वत था । वह दस हजार योजन ऊँचा था ॥ १ ॥ उसकी लम्बाई चौड़ाई भी पारों ओर इतनी ही थी । उसके चोटी, लोहे और सोनेके तीन शिखरोंकी छायासे समुद्र, निशारे और आकाश अगमगते रहते थे ॥ २ ॥ और भी उसके चित्तम ही शिखर ऐसे थे, जो रत्नों और धातुओंकी रंग-विरगी छत्रा निखाते हुए सब दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे । उनमें विविध मानिके वृक्ष लताएँ और शालीयों थीं । शरलोंकी झर झरसे बह गुंजायमान होना रहता था ॥ ३ ॥ सब आसे समुद्रकी ओर आकाश तक पवनके निचल भागसे चलाती, उस समय ऐसा आन पड़ता मानो वे पर्वताराजक पौध पत्तार रही हों । उस पर्वतके हरे पवनके तारोंसे बहोंकी भूमि पसी सौंजी हो गयी थी, जैसे ठमसर हरि-श्री दूध लग रही हो ॥ ४ ॥ उसकी कन्दराओंमें मिट्ट, चारण, गन्धर्व, निषाधर, माग विसर और अम्यारण आदि विहार करने के लिये प्रायः जन ही रहते थे ॥ ५ ॥ जब ठमके संगीतकी ध्वनि बहामोंसे टकराकर गुरुओंमें प्रतिध्वनित होने लगती थी, तब बड़-बड़ गरुडोंने मिट्ट ठम दूमे

आम्पास्य भगवान्पद्मो यश्चकार कुम्भह ॥ ६ ॥

विरक्त कामभागपु श्वतरूपापति प्रभुः ।

विसृज्य राज्य तपसे ममार्यो वनमाविशत् ॥ ७ ॥

सुनन्दायां वषट्पत पदकन शुर्वं स्पृशन् ।

तप्यमानस्तथा धारमित्मन्वाह भारत् ॥ ८ ॥

मनुष्माण

यन चतयत् विश्व विश्व चतयते न यम् ।

या जागर्ति श्यानेऽस्मिन्नायत घटं वत् स ॥ ९ ॥

आत्मावास्थमित् विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तन भुञ्जीथा मा गृध कस्यमिदमन् ॥ १० ॥

यन पश्यति पश्यन्त चक्षुर्यस्य न रिप्यति ।

त भूतनिलयं दध सुपर्णसुपभाषत् ॥ ११ ॥

न यस्याद्यन्तौ मर्ष्य च म्व परो नान्तरं वहिः ।

विश्वस्यामूनि यदु यस्याद् विश्वं च तद्वत् महत् ॥ १२ ॥

स विश्वकायः पुरुष्टत् ईश

मैरयः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ।

आकृतिके गर्भसे अवतार लेकर जो कुछ किया, उसका वणन करता हूँ ॥ ६ ॥

परीक्षित ! भगवान् स्वाम्यमुत्र मनुज समस्त कामनाओं और भोगोंसे विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया । वे अपनी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये ॥ ७ ॥ परीक्षित ! उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे पृथ्वीपर एक वेरसे छड़े रहकर सी वर्षतक वन तपस्या की । तपस्या करने समय वे प्रतिदिन इस प्रकार भगवान्की स्तुति करते थे ॥ ८ ॥

मनुजों कहना करत थे—जिनकी चेतनाके स्पष्ट भावसे यह विश्व चेतन हो जाता है, किन्तु यह विश्व जिनमें चेतनाका दान नहीं कर सकता, जो इसके छो जानपर प्रलयमें भी जागसे रहते हैं, जिनका यह नहीं जान सकता, परन्तु जो इसे जानते हैं—वही रमण हैं ॥ ९ ॥ यह सम्पूर्ण विश्व और इस विश्वमें रहने वाले समस्त घर-अवर प्राणी—सब उन परमात्मासे ही ओतप्रोत हैं । इसलिये संसारके किसी भी पदार्थमें मोह न करके उसका त्याग करते हुए ही जीवन-निराकार के लिये उपयोग करना चाहिये । तृष्णाकर सर्वत्र त्याग कर देना चाहिये । भला, ये संसारकी सम्पत्तियाँ किसकी हैं ? ॥ १० ॥ भगवान् सबके साक्षी हैं । उन्हें बुद्धि-बुद्धियों या मन आदि इन्द्रियों नहीं देख सकती । परन्तु उनकी ज्ञान शक्ति अक्षय्य है । समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले वही कणप्रकाश असत् परमात्माकी शरण ग्राहण करो ॥ ११ ॥ जिनका न आदि है न अन्त, फिर मर्यादा होगी ही कहाँ ? जिनका न कोई अपना है और न पराया, और न बाहर है न भीतर, वे विश्वके आदि, अन्त, मध्य, अपने-पराये, बाहर और भीतर—सब कुछ हैं । उन्होंने सत्यसे विश्वकी सत्ता है । वही अनन्त वास्तविक साथ पश्यते हैं ॥ १२ ॥ वही परमात्मा दिव्यरूप हैं । उनके अनन्त नाम हैं । वे सर्वशक्तिमान् सत्य, सर्वप्रकाश, अजन्म

१ मा पा —माह स । २ प्राचीन प्रसिद्धि में 'येन चेतयते विश्वं' " यह पूर्वाधिके स्थानपर पातुदेवो बल्लभेय सर्वं देवभक्त्यवच्छिन्ना पाठ है । ३ मा पा —मैरयः । ४ प्राचीन प्रसिद्धि में 'न यस्यादित्यो मर्ष्य देवदेवस्य आत्मनः । सर्वस्य मूकभूतोऽप्ये भूय येनन्तरं मनः ॥ ५ मा पा —सर्वस्य गोमा स्वकरः पुराणः ।

धत्तेऽस्य जन्माद्यजयाऽऽत्मशक्त्या

सो विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥१३॥

अथाग्रे अपय कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवः ।

ईहमाना हि पुरुष प्रायोऽनीहो प्रपद्यते ॥१४॥

ईहत भगवानीक्षो न हि सत्र त्रिपञ्चते ।

आत्महामेन पूर्णाभो नावमीदन्ति श्रेऽनुत्तम ॥१५॥

तमीहमान निरहकृत दुर्ध

निराश्रिप पूर्णमनन्यबोवितम् ।

नृम् शिष्यन्त निजवर्त्मसंभितं

प्रभु प्रपद्यऽम्बिलधर्मभावनम् ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

इति मन्त्रापनिषत् व्याहरन्त ममाहितम् ।

इष्टसुरा वातुभाना जग्धुमम्यद्रवन् सुभा ॥१७॥

तांस्थथावसितान् वीक्ष्य यश्च सर्वगसो हरि ।

यामैः परिहृता देवैर्हृताश्रयास्तु त्रिविष्टपम् ॥१८॥

म्वारोषिषा द्वितीयस्तु मनुजैः सुतोऽभवात् ।

धुमस्तुपेणरोषिष्मत्प्रभुस्त्वाम्नास्य चात्मजा ॥१९॥

तत्रन्द्रो रोषनस्त्वासीद् द्वाभ्य तुपितादय ।

ऊर्ध्वन्तम्भादय सप्त श्रपया ब्रह्मवादिन ॥२०॥

और पुराणपुरुष हैं । वे अपना मायाशक्तिके द्वारा ही विश्वसृष्टिके जन्म आन्तिको स्वीकार कर लेते हैं और अपनी विद्याशक्तिके द्वारा तमक प्रत्यक्ष करके निष्पत्य, सत्स्वरूपमात्र रहते हैं ॥ १३ ॥ इसीसे अग्नि-मुनि नष्कम्पस्त्रिणि अर्थात् ब्रह्मसे एकत्व प्राप्त करनेके लिय पहले कर्मयोगका अनुष्ठान करते हैं । प्राय कर्म करने वाला पुरुष ॥ अन्तर्मे निष्किय हाकर कर्मसे छुटी पा जाता है ॥ १४ ॥ यों तो सर्वशक्तिमान् भगवान् भी कर्म करते हैं, परन्तु वे आत्मभूते पूर्णकाम होनेक कारण उन कर्मों आसक्त नहीं होते । अत उन्हींका अनुसरण करके अगाम्य रहकर कर्म करनेवाले भी कर्मबन्धनसे मुक्त हो रहते हैं ॥ १५ ॥ भगवान् ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिये उनमें अहङ्कारवा लेश भी नहीं है । वे सर्वत परिपूर्ण हैं इसलिये उन्हें किसी वस्तुकी कर्मना नहीं है । वे बिना किसीकी प्रणामके स्वच्छन्द रूपसे ही कर्म करते हैं । वे अपनी ही बनायी हुई मर्यादामें स्थित रहकर अपने कर्मोंके द्वारा मनुष्योंका शिक्षा देते हैं । वे ही ममस्व धर्मोंके प्रवर्तक और उनके जीवनदाता हैं । मैं उन्हीं प्रभुकी शरणमें हूँ ॥ १६ ॥

श्रीशुकवर्णनी कहत हैं—परीक्षित । एक बार आयम्पुत्र मनु एकामविष्टसे इस मन्त्रमय उपनिषत् स्वरूप स्तुतिप्र पाठ कर रहे थे । उन्हें नौदम अचेत होकर बहववाते ज्ञान भूम् अवसर और राक्षस खा डालनेक क्रिये उनपर दृष्ट पड़ ॥ १७ ॥ यह देखकर अन्तर्धामी भगवान् यज्ञपुरुष अपने पुत्र याम नामक देवताओंक साथ वहाँ आये । उन्होंने उन व्या डालनेक निक्षेपसे आये हुए असुरोंका संहार कर डाला और फिर वे इन्द्रके पदपर प्रणिप्ति होकर स्वर्गात्ता शामन करने लगे ॥ १८ ॥

परीक्षित । दूसरे मनु हुए स्वात्त्रिप । वे अग्निके पुत्र थे । उनके पुत्रोंक नाम थे—धुमान्, सुपण और रोषिष्मान् आदि ॥ १९ ॥ उस मन्त्रान्तरमें इन्द्र नाम का रोषन प्रधान देवगण थे स्तुति आदि । ऊर्ध्वन्तम्भा आदि वेदवागीगण समर्पि थे ॥ २० ॥ उस मन्त्रान्तरमें



भगवान् वामन

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

अष्टमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

मन्वन्तरौक्य वर्णन

राजोपाय

स्वायम्भुवस्त्येह गुरा वशोऽयं विस्तराच्छ्रुत ।
यत्र विश्वसृजां मर्गो मनुनन्मान्वदम्ब नः ॥ १ ॥
यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ।
गुणन्ति कवयो ब्रह्मस्तानि नो वद मृण्वताम् ॥ २ ॥
यथसिन्नन्तरे प्रहसन्मगवान्निश्चभावनः ।
तवान्कुरुते कर्ता क्षतीतेऽनागतेऽथ वा ॥ ३ ॥

कपिलोवाच

नवाऽसिन्ध्यसीताः पट्टकल्पे स्वायम्भुवादय ।
अर्धस्ते कथितो यत्र देवादीनां च सम्भवः ॥ ४ ॥
राक्षसां दहहृत्पां च दुहित्रोत्पलस वै मनो ।
रैर्महानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गत ॥ ५ ॥
एतं पुरा भगवत कपिलस्यानुवर्णितम् ।

यज्ञा परीक्षितमे पृथक्—गुरुदेव । स्वायम्भुव मनुक
वंश विस्तार मैंने सुन लिया । इसी वंशमें उनकी
कन्याओंके द्वारा महीवि आदि प्रमापत्तियोंने अपनी वंश-
परम्परा चम्कयी थी । अब आप हमसे दूसरे मनुओंके
वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ ब्रह्मन् । ज्ञानी महारामा जिस-
प्रिय मन्वन्तरमें महामहिम भगवान्के जिन जिन अव-
तारों और लीलाओंके वर्णन करते हैं, उन्हें आप अवश्य
सुनाइये । हम वही ब्रह्मसे उनका श्रवण करना चाहते
हैं ॥ २ ॥ भगवन् । विश्वभावन भगवान् बीते हुए
मन्वन्तरमें जो-जो लीलाएँ कर चुके हैं, वर्तमान
मन्वन्तरमें जो कर रहे हैं और आगामी मन्वन्तरमें जो
कल करेंगे, वह सब हमें सुनाइये ॥ ३ ॥

श्रीशुक्रदेवजीने कहा—इस कल्पमें स्वायम्भुव आदि
छ मन्वन्तर बीत चुके हैं । उनमेंसे पहले मन्वन्तरका
मैंने वर्णन कर दिया, उसीमें देवता आदिकी उत्पत्ति
हुई थी ॥ ४ ॥ स्वायम्भुव मनुकी पुत्री आकृतिसे यह
पुरुषके रूपमें भर्मका उपदेश करनेके लिये तथा
देवहृत्तिसे कपिकके रूपमें ज्ञानका उपदेश करनेके लिये
भगवान्ने उनके पुत्ररूपसे अवतार ग्रहण किया था ॥ ५ ॥
परीक्षित । भगवान् कपिकका वर्णन मैं पहले ही (तीसरे
स्कन्धमें) कर चुका हूँ । अब भगवान् यह पुरुषम

१ मा वा —कथ्य च गुणे । २ प्राचीन प्रसिद्धिमें अथ विश्वसृजां मर्गो इस उपसर्गके स्थानपर अथ बर्माक्ष
विनिध्यानानुवर्णनांभिना गुमाः ऐक्य पाठ है । ३ मा वा —मन्वन्तरे हरे । ४ मा वा —सुखमन्वन्तरे । ५ मा वा —
पान्मस्यतीते । ६ मा वा —ये । ७ मा वा —आद्यः च । ८ मा वा —नु । ९ प्राचीन प्रसिद्धिमें 'बर्माक्षानुवर्णनांभिना'
से लेकर कपिलस्यानुवर्णितम् । बर्माक्षका पाठ इस प्रकार है—'उत्पत्ति सर्वकन्ता वर्णिता पुरुषार्थम् । परित
पुण्यपीठे च कपिलस्यानुवर्णितम् ॥

अपेस्तु वदशिरसस्तुपिता नाम पत्न्यभूत् ।
 तस्यां जम्ने ततो देवो विभुरित्यभिविधुत् ॥२१॥
 अष्टाश्रीतिसहस्राणि धनयां ये भूतव्रताः ।
 अन्वर्षिष्वमृत तस्य कौमारप्रज्ञाचारिणः ॥२२॥

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुता मनुः ।
 पवन सृज्यो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥२३॥
 वसिष्ठतनया सप्त अपयः प्रमदादय ।
 सस्या वेदभुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥२४॥
 धर्मस्य सन्ततायां तु भगवान्पुरुषोत्तम ।
 सत्यसेन इति स्थातो ज्ञातः सत्यव्रतैः सह ॥२५॥
 साऽनुव्रतवदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् ।
 भूतद्वहा भूतगणांस्त्ववधीत् सत्यजित्सखः ॥२६॥

चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ।
 पृथुः स्यात्तिर्नरः केतुरित्याद्या दस्य तत्सुता ॥२७॥
 सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिगिरि ईश्वर ।
 ज्योतिर्भामादयः सप्त अपयस्तामसेऽन्तरे ॥२८॥
 देवा वैभूतयो नाम विष्टतेस्तनया नृप ।
 नष्टाः कालेन यैर्वेदा विष्टताः स्वेन तेजसा ॥२९॥
 तत्रापि ब्रह्म भगवान्हरिण्यां हरिमेभसः ।
 हरिरित्याहता येन गजेन्द्रो मोषितो ब्रह्मात् ॥३०॥

राज्योपाय

बादरायण एतत् ते भोतुमिच्छामहे वयम् ।
 हरिर्यथा गजपतिं ब्राह्मणस्तममुच्यते ॥३१॥
 तत्कथा सुमहत् पुष्पं धन्यं स्वस्त्ययनं शोभम् ।

वेदशिरा नामके अग्निर्षी परनी तुपिता थी । उनके गर्भसे
 भगवान्ने अवतार ग्रहण किया और विष्णु नामसे प्रसिद्ध
 हुए ॥ २१ ॥ वे आनीबन नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे ।
 उन्होंने आचरणसे शिक्षा ग्रहण करके कठाली इन्द्र
 मतमिष्ट अग्निर्वेने भी ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया ॥२२॥

तीसरे मनु ये उत्तम । ये प्रियव्रतक पुत्र थे । इनके
 पुत्रोंके नाम थे—पवन, सृज्य, यहोत्र आदि ॥२३॥
 उस मन्वन्तरमें वसिष्ठजीके प्रमद आदि सात पुत्र
 सप्तर्षि थे । सत्य, वेदभुज और मध्य नामक देवताओंके
 प्रधान गण थे । और इन्द्रका नाम था सत्यजित् ॥२४॥
 उस समय धर्मकी पत्नी सूर्यताके गर्भसे पुत्रोत्प-
 न्न भगवान्ने सत्यसेनके नामसे अवतार ग्रहण किया था ।
 उनके साथ सत्यव्रत नामके देवगण भी थे ॥ २५ ॥
 उस समयके इन्द्र सत्यजित्के सखा बनकर भगवान्ने
 असत्यपरायण, दुःशील और दुष्ट यक्षों, राक्षसों एवं
 नीचबोही भूतगणोंका संहार किया ॥ २६ ॥

चौथे मनुका नाम था तामस । वे तीसरे मनु
 उत्तमके सगे भई थे । उनके पुत्र स्याति, नर, केतु
 इत्यादि दस पुत्र थे ॥ २७ ॥ सत्यक, हरि और वीर
 नामक देवताओंके प्रधान गण थे । इन्द्रका नाम था
 त्रिगिरि । उस मन्वन्तरमें ज्योतिर्बाम आदि सप्तर्षि
 थे ॥ २८ ॥ परीक्षित । उस तामस नामक मन्वन्तरमें
 विष्टतिके पुत्र वैभूति नामके और भी देवता हुए ।
 उन्होंने समयके फेरसे ब्रह्मप्राय वेदोंको अपनी शक्तिसे
 नष्टाया था, इसीक्रिये ये वैभूति कहलाये ॥ २९ ॥
 इस मन्वन्तरमें हरिमया अग्निर्षी पत्नी हरिणीके गर्भसे
 हरिके रूपमें भगवान्ने अवतार ग्रहण किया । इसी
 अवतारमें उन्होंने ब्राह्मसे गजेन्द्रकी रक्षा की थी ॥ ३० ॥

राजा परीक्षितके पूछा—मुनिवर ! हम आपसे यह
 सुनना चाहते हैं कि भगवान्ने गजेन्द्रको ब्राह्मके फंदेसे
 कैसे छुड़ाया था ॥ ३१ ॥ सब कथाओंमें बड़ी कथा
 परम पुण्यमय, प्रशंसनीय मङ्गलकारी और शुभ है,

यत्र यत्रोत्तमस्फोक्ते भगवान्गीयते हरि ॥३२॥

सूत उवाच

परीक्षितैवं स तु पादरायणि

प्रायोपविष्यन् कथासु चोन्तितः ।

उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं

मुना मुनीनां मन्सि स्म शृण्वताम् ॥३३॥

जिसमें महात्माओंके द्वारा गान किये हुए भगवान् श्रीहरि
क पवित्र यशका वर्णन रहता है ॥ ३२ ॥

सुगजो कहते हैं—शौनकादि ऋषियो । रामा
परीक्षित् आमरण अनशन करके क्या मुमनेके लिये ही
बैठे हुए थे । उन्होंने सब श्रीशुकदेवजी महाराजको इस
प्रकार कथा कहनेके लिये प्रेरित किया, तब वे बहु
आमन्त्रित हुए और प्रमत्त परीक्षित्का अभिमन्त्रन करक
मुनियोंकी भी समामे कहन लग ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंसां संहितायां अष्टमस्कन्धे मन्त्रतरंगनुचरिते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्राहके द्वारा भजेन्द्रका पकड़ा जाना

श्रीशुक उवाच

आसीद् गिरिवगे राज्ञस्त्रिकूट इति विभुत ।

धीरोदेनाहृत श्रीमान्योऽनापुतमुच्छ्रित् ॥ १ ॥

तानता विस्तृत पर्यक्त्रिभिः शृङ्गं पयोनिधिम् ।

निश्वः स्व रोषयन्नास्ते रौप्यायमदिरण्मयं ॥ २ ॥

अन्यत्र कटुम सवा रजधातुविचित्रितं ।

नानाद्रुमन्तागुरुमर्निषोर्पनिर्झराग्ध्रसाम् ॥ ३ ॥

म चावनिन्यमानाहि ममन्ताव पयऊर्मिभिः ।

धरोति द्यामलां भूमिं हरिन्मरुक्ताग्ध्रभिः ॥ ४ ॥

मिद्वधारणगर्ध्वविद्याधर्महोरगं ।

किर्णरग्ध्रगभिध फ्रीहृदिर्जुहृदन्तरः ॥ ५ ॥

यत्र मंगीतमन्नादिनन्दुमुहममपया ।

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् । क्षीरसागरमें
त्रिकूट नामका एक प्रसिद्ध सुन्दर एवं श्रेष्ठ पर्वत था ।
बहु दस हजार योजन ऊँचा था ॥ १ ॥ उसकी छत्र
चौड़ाई भी चारों ओर इतनी ही थी । उसके चोटी,
खेहे और सानेके तीन शिखरोंकी छायासे समुद्र, निहारें
और आकाश जगमगाते रहते थे ॥ २ ॥ और भी उसके
त्रितल ही शिखर ऐसे थे, जहाँ रत्नों और धातुओंकी रंग-
विरगी छाया दिखाते हुए सब दिशाओंको प्रकाशित कर
रहे थे । उनमें विविध मानिके वृक्ष, लताएँ और
साहियों थीं । झरनोंकी सर सरसे बहु गुंथायमान होना
रहता था ॥ ३ ॥ सब ओरसे समुद्रकी लहरें आ आकर
उस पर्वतके निचले भागसे गूँगातीं, उस समय ऐसा
आज पड़ता मानो वे पर्वतगावक पौध पसार रही हों ।
उस पर्वतके हरे पत्तोंके परपोंसे बहोंकी मृमि पसी
सौंवर्य हो गयी थी, जैसे उसपर हरी-भरी दूध लग रही
हो ॥ ४ ॥ उसकी कन्दराओंमें सिद्ध, चारण, गन्धर्व,
नियाधर, नाग, किन्नर और अप्सराएँ आदि विहार करन
के लिये प्राप बन ही रहते थे ॥ ५ ॥ जब उनके
संगोपकी ज्वलि बहानोंसे गूँगाकर गुप्तकोंमें प्रतिध्वनि
हाने लगती थी, तब बहु-बहु गरबीसे सिद्ध ठमे दूमे

अभिगर्जन्ति हरयः स्थापिनः परश्वह्या ॥ ६ ॥

नानारम्यपञ्चस्रसङ्कुलद्रोणलङ्कृतः ।

विभ्रमुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७ ॥

संस्मरोमिरच्छोर्दः पुलिनैर्मणिवल्लुकैः ।

देवकीमज्जनामोदसौरभाम्बनिलैर्धुसः ॥ ८ ॥

तस्य द्रोणां भगवतो वरुणास्य यद्वात्मनः ।

उद्यानसुतुमन्नाम आकीर्णं सुरवापिणाम् ॥ ९ ॥

सर्वताडलङ्कृतं दिव्यैर्निस्स्य पुष्पफलधुसैः ।

मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥ १० ॥

चूतैः प्रियालैः पनसैराशैराभ्रातृकरैः ।

क्रमुकैर्नीलिकैश्च तर्जुनैर्बैजपूरकैः ॥ ११ ॥

मधुकैः सालसालैश्च तसालैरसनाजुनैः ।

अरियोदुम्बरप्रवर्धनैः किशोरैश्च वनैः ॥ १२ ॥

विजुमर्दः कोविदारैः सगलैः सुरदारुभिः ।

द्राघंशुरम्बावम्भुभिर्षदर्यथाभयामलैः ॥ १३ ॥

विन्दैः कपित्थैर्बम्बीरैर्बुतो भस्मातकादिभिः ।

वस्मिन्सर सुविपुलं तसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥ १४ ॥

इमुदात्पलकङ्काशतपत्रभिषार्जितम् ।

मणपद्मदनिर्गुप्तं सङ्कुन्तश्च कलखनैः ॥ १५ ॥

इसकारमण्डवाक्षीणं चकार्द्वैः मारसैरपि ।

अलङ्कृतं कोपटिदास्युहङ्कुलरहितम् ॥ १६ ॥

मत्स्यकच्छपमञ्जारचतत्पथरसःपथः ।

कदम्बवेतमनलनीपवञ्जुलर्षितम् ॥ १७ ॥

सिंहकीर्णमि समस्तकर सह न पाते और ॥ १८ ॥

उसे दबा देनेके लिये और जोरसे गरजन म्पाते ।

उस पर्वतकी तन्महटी तरह-तरहके जंगल

सुखोंसे सुशोभित रहती थी । वनकी प्रकृति

मरे हुए श्रेयताओंके उद्यानमें सुन्दर सुन्दर पर्व

कण्ठसे बहकते रहते थे ॥ ७ ॥ उत्तर

मण्डियों और सरोवर भी थे । उनका वन बड़ा

था । उनके पुष्पपर मणियोंकी भाँति चम्पकी

थी । वनमें देवाङ्गनाएँ आन करती थीं, जिससे

वन अत्यन्त सुगन्धित हो जाता था । उसकी

झेकर पीपी पीपी बाधु चन्दरी रहती थी ॥ ८ ॥

पर्वतराज त्रिकुण्डकी तराईमें मगलधमी महाप्रम

बहुकण एक उद्यान था । उसका नाम था अश्व

उसमें देवाङ्गनाएँ क्रीड़ा करती रहती थी ॥ ९ ॥

सब और ऐसे दिव्य वृक्ष शामाफल ध, जो फूलों

झोंसे सर्वदा बदे ॥ रहते थे । उस उद्यानमें

पारिजात, गुलाब, जवाक, चम्पा, तरु-तरुह

पपाव, कटहल, आमका, सुपारी, नारियल, क

विजोय, महुआ, साल, ताड़, तमाल, वस्त्र, म

रीछ, गून्ध, पाकन, बरग, पलास, चन्दन, म

कचनार, साल, देवदारु दास ईश, बंता जमु

मेर कलश, हरे, जीवका, बैल, कैय, नीदू और निर

आदिक वृक्ष लहते रहते थे । उस उद्यानमें एक ब

आरी सरोवर था । उसमें सुमहल्ले कमल खिल

थे ॥ १०-१४ ॥ और श्री विजय आनिक दुर्गा

उत्पन्न, कलार, शतदल आदि कमलकी कन्दी

लिनक रहती थी । मणाले और गूँज रहे थे । पत्तों

पत्ती कचरव कर रहे थे । इस, करवध, पत्रक

सारम दल-के-दल मरे हुए थे । पनदुम्बी, वन

पपीह कुज रहे थे । मण्डरी और कसुओंके धननेसे कम

कण दिख जाते थे जिससे उनका पराग सब

सुन्दर और सुगन्धित बना देता था । कम्ब, के

करम्बजता येन आदि जूनोंसे बह बिरावा ॥ १५-१७ ॥

कुरवकाशोकैः शिरीषैः कुटजेहृदैः ।

वकैः स्वर्णयूधीभिर्नागपुष्पागजातिभिः ॥१८॥

कृशाश्वतपत्रैश्च माधवीजातकान्तिभिः ।

भेतं तीरज्वभार्न्यनित्यर्तुभिरल द्रुमैः ॥१९॥

प्रकटा सद्विरिकाननाश्रय

करेणुभिवारणयूथपथगन् ।

पक्वैकान् क्रीचकधेणुवधवद्

विशालगुल्म प्रकुञ्चननस्पतीन् ॥२०॥

पट्टभमाप्राद्वरयो गजन्द्रा

ध्याघ्रादया व्यालमृगा सखङ्गा ।

महोरगाश्वापि भयाद् ब्रवन्ति

सगौरकृष्णा श्वरभाभमर्य ॥२१॥

पृका बराहा महिपर्शुलया

गापुच्छसालावृकमर्कणाश्च ।

अन्यत्र मुद्रा हरिणा सशान्य

श्वरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥२२॥

स धमवतः करिभिः करेणुभिः

ईसा मदध्नुत्कलमैरनुवृष ।

गिरिं गरिम्या परितः प्रकम्पयन्

निपव्यमाणोऽलिङ्गुर्लर्मदाशनः ॥२३॥

सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूपितं

जिघ्रन्विदूरान्मद्विह्वलेक्षण ।

ईतः स्वयुधन वृषार्दितेन तत्

मरोधराभ्याश्रमपागमद् द्रुतम् ॥२४॥

विगाश सन्निभशृताम्बु निर्मल

हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् ।

पपा निकामं निधपुष्पश्रोतृवत्

मान्मानमग्निः श्रपयन्गतकलमः ॥२५॥

कुन्द, कुरवक (कुरवैया), अशोक, सिरस, वनमल्लिकार्जुन,
लिप्तोष्ण, हरसिंहार, मोनमूषी, नाग, पुष्पाग,
जानी, मल्लिका, शतपत्र, माधवी और मोगरा आदि
सुन्दर-सुन्दर पुष्पवृक्ष एवं उनके दूसरे वृक्षोंसे भी—ओ
प्रत्येक श्रुतमें हरे-भरे रहते थे—वह सरोवर शोभायमान
रहता था ॥ १८ १९ ॥

उस पर्वतके चार जगलमें बहुत-सी हयिनियोंके साथ
एक गजेन्द्र निवास करता था । वह बड़-बड़ शक्तिशाली
हाथियोंका सरदार था । एक दिन वह उसी पर्वतपर
अपनी हयिनियोंके साथ कंठिवासे क्रीचक, बौंस बेंत,
बकी-बकी हाथियों और पशोंका रौंदता हुआ घूम रहा
था ॥ २० ॥ उसकी गधमात्रसे सिंह, हाथी, बाघ, गैंड़े
आदि हिल नन्दु, नाग तथा काले-गोरे श्वरम और चमरी
गाय आदि डरकर भाग जाया करते थे ॥ २१ ॥ और
उसकी कृपासे मेहिये, सूँवर, मैसे, रीछ, हम्मय, लंगूर
तथा कुत्ते, बंदर, हरिम और खरगोश आदि सुख जीव
सब कहीं निर्मय बिखरते रहते थे ॥ २२ ॥ उसके
पीछे-पीछ हाथियोंके छोटे-छोटे बच्चे दौड़ रहे थे । बड़-
बड़े हाथी और हयिनियों भी उसे घेरे हुए चल रही
थीं । उसकी चमकसे पहाड़ एक-बारगी कँप उठता
था । उसके गण्डत्वमसे टपकते हुए मदका पान करनेवा
लिये साफ-साफ और ठंडे जा रहे थे । उनके कारण
उसके नेत्र विह्वल हो रहे थे । बड़े जोरकी धूप भी
इसलिये वह व्याकुल हो गया और उसे तथा उसके
साथियोंको व्यास भी सतात लगी । उस समय दूरसे ही
कमलके परागसे सुवासित वायुकी गन्ध सूँघकर वह उसी
सरोवरकी ओर चल पड़ा, जिसकी शीतलता और
सुगन्ध लेकर वायु आ रही थी । बोधी ही देरमें बेगले
चलकर वह सरोवरके तटपर आ पहुँचा ॥ २३ २४ ॥
उस सरोवरका अन्त अत्यन्त निर्मल एवं अप्रदूषित समान
मधुर था । सुनहले और लज्ज कलमोंकी कलसे वह
महक रहा था । गजेन्द्रने पहले तो उसमें पुसकर अपनी
मूँहसे ठठा-ठठा भी भरकर जल पीया, फिर उस जलमें
स्नान करके अपनी चक्रन मिलायी ॥ २५ ॥

१ प्रा था — कुटजयुग्मे । २ प्रा था — लकटके । ३ प्रा था — वृत्तं ल युग्मे ।

स्वपुष्करेणोवृष्टजीकराम्पुभि

निपाययन्मुखमन्यथा गृही ।

घृणी करण् कलभांश्च दुर्मदो

नाचष्ट कृच्छ्र कृपणोऽजमामया ॥२६॥

त तत्र कश्चिन्नुप दैववादिषो

प्राहो बलीयांश्चरणे रुपाग्रहीत् ।

यदृच्छयैव म्मसतं गतो गजः

यथाबलं सोऽतिबलो विषक्रमं ॥२७॥

तथाऽऽजुरं यूपपतिं करेणो

विकृम्भमाण तरसा बलीवता ।

विचुकुशुर्दीनविभोऽपरे गजाः

पार्थिवग्रहस्तारयितुं न चाशकन् ॥२८॥

निधुम्यतोरेवमिमेन्द्रनक्रयो

विकर्षणोरन्वरवो बहिर्मिथः ।

समा महस्रं व्यगमन् महीपते

सप्राणयोश्चित्रम्मसवामराः ॥२९॥

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां

कालेन दीर्घेण महानभूत् व्ययः ।

विकृम्भमाणस्य जलऽवसीदतो

निर्पर्ययोऽमृतं सकल जलौकमः ॥३०॥

इत्थं गजेन्द्र स यदाऽऽप सकृत्

प्राणस्य देही विपशो यदृच्छया ।

अपारयन्नात्मविमोक्षणं धिरं

दैव्याविर्मां शुद्धिमथाम्यपयत ॥३१॥

गजेन्द्र गृहस्य पु योकी भौति मोहप्रसू होकर अपने
सूँहसे जलज्मी कुतार छाह-छेदकर सापकी हथिनियों
और बन्धोंको नष्ट करने लगा तथा उनके मुँहमें सूँह डाल-
कर जल पिकाने लगा । भयवान्की मायासे मोहित हुए
गजेन्द्र सम्मत् हो रहा था । उस बेचारेकी इस बातका
पता ही न था कि मेरे सिरपर बहुत बड़ी विपत्ति
मँबरा रही है ॥ २६ ॥

परीक्षित् । गजेन्द्र जिस समय इतना सम्मत् होता
था, उसी समय प्रातः की प्रेरणासे एक बन्धवान् अपने
कोधमें मरकर उस पर पकड़ लिया । इस प्रकार
अकस्मात् विपत्तिमें पड़कर उस बन्धवान् गजेन्द्रने जल्दी
सत्तिके अनुसार अपनेको छुड़ानेकी बड़ी चेष्टा की,
परन्तु छुड़ा न सका ॥ २७ ॥ दूसरे दानी, हथिनियों
और उनके बन्धोंने ध्या कि उनके दानीको बन्धन
प्राह बड़े वेगसे खींच रहा है और वे बहुत बुरा रहे
हैं । उन्हें क्या कुछ हुआ । वे बड़ी निरुद्धतासे
चिन्ता करने लग । बहुतोंने उसे सहायता पहुँचाकर अपने
बाहर निकाल केना चाहा, परन्तु इसमें भी वे असमर्थ
ही रहे ॥ २८ ॥ गजेन्द्र और प्राह अपनी-अपनी ही
शक्ति अत्यन्त भिदे हुए थे । कभी गजेन्द्र प्राहको बहा
खींच जाता, तो कभी प्राह गजेन्द्रको भीतर खींच ले
जाता । परीक्षित् । इस प्रकार समस्त स्मृते-कृते एक
जनक कर्ष भीत गये और दोनों ही जीते रहे । यह
कहना देखकर देख श भी आश्चर्यमन्त्रित हो गये ॥२९॥

अन्तमें बहुत गिनौतक बार बार जन्ममें खड़े जाने-
से गजेन्द्रका सारा शिथिल पड़ गया । न तो उसके
शरीरमें बल रह गया और न मनमें संसाह । सत्ति भी
क्षीण हो गयी । इधर प्राह तो जमकर ही छेड़ता ।
इसलिये उसकी सत्ति क्षीण होनेके स्वामपर बढ़ गयी,
बढ़ बड़े उत्साह और भी बः बग़ावत गजेन्द्रको
खींचने लग्य ॥ ३० ॥ इस प्रकार देहाभिन्नानी गजेन्द्र
अकस्मात् प्राणरुद्धमें पड़ गया और अपनेको छुड़ानेमें
सर्वाथा असमर्थ हो गया । बहुत देरतक उसने अपने
छुटकारके सप्राणपर विचार किया अन्तमें वह इस निश्चय-
पर पहुँचा ॥ ३१ ॥ यह प्राह विघाताकी करीबी ही है ।

न मामिमे छातय आतुरं गजाः

कृत करिष्य प्रभवन्ति मोचितुम् ।

ग्राहेण पालेन विधातुरावृतो-

ऽप्यहं च त यासि परं परायणम् ॥३२॥

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्

प्रचण्डवेगादभिधातवो सुखम् ।

भीत प्रपन्नं परिपाति यज्ञया-

न्तृत्युः प्रधावत्परण तमीमहि ॥३३॥

इसमें फँसकर मैं आतुर हो रहा हूँ । जब मुझे मेरे बराबरके हाथी भी इस विपत्तिसे न उबार सके, तब ये बेचारी इपिनियों तो छुका ही कैसे सकती हैं । इसलिये अब मैं सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र आश्रय भगवान्की ही शरण लेता हूँ ॥ ३२ ॥ काल बसा कली है । यह सौंप के समान बड़े प्रचण्ड वेगसे सबको निगल जानेके लिये दीबता ही रहता है । इससे अत्यन्त भयभीन होकर जो कोई भगवान्की शरणमें शरण जाता है, उसे वे प्रभु अश्रय-अवश्य बचा लेते हैं । उनके भयसे भीत होकर मृत्यु भी अपना काम ठीक-ठीक पूरा करता है । वही प्रभु सबके आश्रय हैं । मैं उन्हींकी शरण प्रार्थन करता हूँ ॥ ३३ ॥

इनि श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संहिताकमष्टमस्कन्धे मेकन्तरानुवर्गने

गजद्रोपाख्याने द्वितीयेऽध्याय ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्याय

गजेन्द्रके द्वारा भगवान्की स्तुति और उसका सङ्कटसे मुक्त होना

श्रीकृत उवाच

एष ज्यषसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।

ब्रह्माय परमं ब्राह्म्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

गजद्रोपाख्याने

ॐ नमो भगवते तस्मै यत् एतद्विदात्मकम् ।

पुरुषायाद्विबीजाय परायायाभिधीमहि ॥ २ ॥

यस्मिन्निदं यत्तत्त्वेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।

योऽस्मात् परस्माच्च परस्व प्रपद्य स्वयम्भुवम् ॥ ३ ॥

य स्वात्मनीदं निजमाययापिप्तं

कचिद् विमार्तं कच तत् तिरोहितम् ।

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! अपनी मुद्रिसे ऐसा निश्चय धरके गजेन्द्रन अपने मनको हृदयमें एकप्र किया और फिर पृथग्भूतमें सीसे हुए श्रेष्ठ स्तोत्रके जप-द्वारा भगवान्की स्तुति करने लगा ॥ १ ॥

गजेन्द्रने कहा—जो जगत्के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुषके रूपमें विराजमान हैं एवं सम्स्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतनताका विस्तार होना है—उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ, प्रेमसे उनका ध्यान करता हूँ ॥ २ ॥ यह संसार उन्हींमें स्थित है उन्हींकी सत्तासे प्रतीत हो रहा है, वे ही इसके व्याप्त हो रहे हैं और सब वे ही इसके रूपमें प्रकट हो रहे हैं । यह सब होनेपर भी वे इस संसार और इसके कारण—प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं । उन स्वयंप्रकाश, स्वयंसिद्ध सत्तात्मक भगवान्की मैं शरण प्रार्थन करता हूँ ॥ ३ ॥ यह विश्व-प्रपञ्च उन्हींकी मायासे उनमें अस्पष्ट है । यह

अविद्वक्क माक्षुर्भयं वदीयते

स आत्ममूलोऽबहु मां परात्पर ॥ ४ ॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृतस्त्रयो

लोकेषु पांशेषु च सर्वदेसुषु ।

तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं

यस्तस्य पारेऽभिविराजते विश्वः ॥ ५ ॥

न बभूव देवा अप्रभः पदं विदुः

सैन्धुः पुनः क्रोशति गन्तुमौरिवृम् ।

यथा नटस्माकुविभिर्बिषेष्टो

दुरत्ययालुक्रमणः स भावतु ॥ ६ ॥

दिदृक्षुवो यस्य पदं सुमङ्गलं

विशुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवाः ।

चैन्त्यलोकप्रवृत्तमवर्णं वने

मूर्तात्ममृता सुहृदः स मे गति ॥ ७ ॥

न विद्यते, यस्य च जन्म कर्म वा

न नामरूपे गुणदोष एव हि ।

तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः

समायया तान्धनुर्कोलमुच्छति ॥ ८ ॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणऽनन्तशक्तये ।

अरूपायोरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

नम आत्मप्रदीपाय माधिणे परमात्मन ।

नमा गिरां विद्राय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥

कभी प्रतीत होता है, तो कभी नहीं । फलतः उनकी दृष्टि ज्यों-की-त्यों—एक-सी रहती है । वे इतके लचीले और उम दोनोंको ही देखते रहते हैं । न उनके मन में और अपने मूल भी खी हैं । कोई दूसरा उनका कारण नहीं है । वे ही समस्त कार्य और कारणोंसे बने प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ प्रभुके समय कोक, लोक पात्र और इन सबके कारण सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो जायें हैं । उस समय केवल अत्यन्त घना और गहरा अन्धकार ही अन्धकार रहता है । फलतः अनन्त परमात्म उससे सर्वथा परे विराजमान रहते हैं । वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥ उनकी धीमन्त्रोक्त रहस्य आत्मा बहुत ही कठिन है । वे नटकी मूर्ति वनेको बेर धारण करते हैं । उनके वास्तविक स्वरूपको न तो देखा जायते है और न श्रुति ही, फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है, जो ज्ञानिक या सके और उसका वर्णन कर सके ? वे प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ जिसके परम मङ्गलमय स्वरूप दर्शन करनेके लिये ब्रह्मसङ्गाण संसारकी समस्त वास्तविकता परित्याग कर देते हैं और अपने आकर अलम्बनको ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक वस्तुओं का पालन करते हैं तथा अपने आत्मको सबके हृदयमें विराजमान देकर सामाजिक ही सबकी भलाई करते हैं—वे ही मुनियोंके सर्वसम्मान मेरे सहायक हैं । वे ही मेरी गति हैं । उन न उनके जन्म-कर्म हैं और न नाम-रूप, फिर उनके सम्बन्धमें गुण और दोषों तो बरूपना ही कैसे ही जा सकती है ? फिर भी विद्यकी सृष्टि और संहार करनेके लिये समय-समयपर वे उन्हें अपनी मायासे सीझर करते हैं ॥ ८ ॥ उनकी अनन्त शक्तिमय सर्वदर्शक परम परमात्मको मैं नमस्कार करता हूँ । वे अहम होनेवाली भी अहंरूप हैं । उनके कर्म अत्यन्त आश्चर्यमय हैं । मैं उनके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥ सूर्यप्रकाश, सबके साक्षी परमात्मको मैं नमस्कार करता हूँ । जो मन, बाणी और विचारसे अत्यन्त दूर है—उन परमात्मको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥

सत्त्वेन प्रतिलम्पाय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।

नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११॥

नमः दान्ताय चोराय मृदाय गुणधर्मिणे ।

निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानधनाय च ॥१२॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्य सर्वाभ्युदाय साक्षिणे ।

पुरुषापात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।

असत्ताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१४॥

नमो नमस्तेऽस्तितत्कारणाय

निष्कारणान्मृतकारणाय ।

सर्वांगमात्रायमहार्जवाय

नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

गुणारणिच्छब्दविद्रूपपाय

तत्त्वोभविष्कृर्जितमानसाय ।

नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितार्गम-

स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

१ म पा—निर्वर्जिताय ।

त्रिवेकी पुरुष कर्म-संन्यास अवशा कर्म-समर्पणके द्वारा अपना अन्त-करण शुद्ध करके जिन्हें प्राप्त करते हैं तथा जो स्वयं तो नित्यसुख, परमानन्द एवं ज्ञान स्वरूप हैं ही, दूसरोंको कैवल्य-मुक्ति देनेकी सामर्थ्य भी केवल उन्हेंमि है—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥ जो सत्ता, रस, तम—इन तीन गुणों-का वर्म स्वीकार करते क्रमशः शान्त, घोर और मूढ़ अवस्था भी धारण करते हैं, उन भेदरहित सम्भावसे स्थित एवं ज्ञानधन प्रभुको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ आप सबके स्वामी, समस्त क्षेत्रोंके एक-मात्र ज्ञाता एवं सर्वसाक्षी हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आप स्वयं ही अपने कारण हैं । पुरुष और मूल प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं । आपको मेरे बार-बार नमस्कार ॥ १३ ॥ आप समस्त इन्द्रिय और उनके विषयोंके द्रष्टा हैं, समस्त प्रतीतियोंके आवार हैं । अहंकार आदि छप्परूप असत् वस्तुओंके द्वारा आपका ही अस्तित्व प्रकट होता है । समस्त वस्तुओंकी सत्ता-के रूपमें भी केवल आप ही भास रहे हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ आप सबके मूल कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है । तथा कारण होनेपर भी आपमें विकार या परिणाम नहीं होता, इसलिये आप अनोन्ने कारण हैं । आपको मेरा बार-बार नमस्कार । जैसे समस्त नदी-सरने आदिक परम आश्रय समुद्र है, वैसे ही आप समस्त वेद और शास्त्रोंके परम तात्पर्य हैं । आप मोक्षस्वरूप हैं और समस्त सत्ता आपकी ही धरण प्रज्ञा करते हैं, अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥ वैसे सबके कष्ट अरिणें अग्नि गुप्त रहती है, वैसे ही आपने अपने ज्ञानको गुणोंकी मायासे ढका रक्खा है । गुणों-में छोम होनेपर उनके द्वारा विविध प्रकारकी सृष्टि रचनाकर आप सङ्कल्प करते हैं । जो लोग कर्म-संन्यास अवशा कर्म-समर्पणके द्वारा आत्मज्ञानकी प्राप्ति करने केद-शास्त्रोंसे ऊपर उठ जाते हैं, उनके आह्वयके रूप-में आप स्वयं ही प्रकाशित हो जाते हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

माह्वप्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय

मुक्ताय मूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।

स्वांश्चन सर्वतनुमृन्मनसि प्रतीत-

प्रत्यगृह्य भगवते शृद्धते नमस्ते ॥१७॥

आत्मात्मजासृष्टविचित्रजनेषु सकै

दुःप्रापणाय गुणसंज्ञविबन्धिताय ।

मुक्तात्मभिः सहृदये परिभाविताय

ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥

य धर्मकामार्थविमुक्तिकामा

भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।

किं त्वाक्षिपो रत्सपि देहमव्ययं

करोतु मेऽद्भ्रदयो विमोक्षणम् ॥१९॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थ

वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।

अत्यद्भुतं सत्वरितं सुमङ्गल

गायन्त आनन्दसमुद्रमघाः ॥२०॥

तमधरं ब्रह्म परं परेश

मव्यक्तमाध्यात्मिकमोगगम्यम् ।

अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिवृ

मनन्तमार्घं परिपूर्णमीडे ॥२१॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।

नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च फल्गवा कृताः ॥२२॥

यथार्थिपोऽग्ने सवितुर्गमस्तपो

निपान्ति सयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।

जैसे कोई दयालु पुरुष फटेमें पड़े हुए पड़्डा
कपड़न काट दे, वैसे ही आप मेरे-जैसे क्षरणप्रसंगोंमें
फौसी काट देते हैं । आप निष्पमुक्त हैं, परम कल-
मय हैं और भक्तोंका कल्याण करनेमें आप कभी व्यस्त
नहीं करते । आपके चरणोंमें मेरा नमस्कार है ।
समस्त प्राणियोंके हृदयमें अपने वंसके द्वारा कल-
रात्माके रूपमें आप उपलब्ध होते रहते हैं । आप
सर्वैश्वर्यपूर्ण एवं अनन्त हैं । आपके मैं नमस्कार करता
हूँ ॥ १७ ॥ जो छेग शरीर, पुत्र, पुत्रजन, गृह,
सम्पत्ति और सबनमें आसक्त हैं—उन्हें आपकी प्राप्ति
अत्यन्त कठिन है । क्योंकि आप सब गुणोंकी अलक्षि-
त रहित हैं । जीवन्मुक्त पुरुष अपने हृदयमें आपका
निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं । उन सर्वैश्वर्यपूर्ण ब्रह्म-
स्वरूप भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥
धर्म, धर्म, काम और मोक्षकी कामनासे मनुष्य उनकी-
का भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते
हैं । इतना ही नहीं, वे इनको सभी प्रकारसे सुख
देते हैं और अपने ही-जैसा अविनाशी पार्श्व-शरीर भी
देते हैं । वे ही परम दयालु प्रभु मेरा उद्धार करें ॥ १९ ॥
जिनके अन्तर्मय प्रेमी भक्तजन उनकीकी शरणमें रहते हुए
उनसे किसी भी वस्तुकी—प्राप्तिक कि मोक्षकी भी
अभिलाषा नहीं करते, केवल उनकी परम दिव्य मूर्ति-
मयी श्रीव्योम्कि का गान करते हुए आनन्दके समुद्रमें निमग्न
रहते हैं ॥ २० ॥ जो अविनाशी, सर्वशक्तिमन्,
अव्यक्त, इन्द्रियातीत और अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जो अत्यन्त
निष्कट रहनेपर भी बहुत दूर जान पड़ते हैं; जो आध्या-
त्मिक योग अर्थात् ज्ञानयोग या भक्तियोगके द्वारा प्राप्त
होते हैं—उनहीं आदिपुरुष, अनन्त एवं परिपूर्ण पर-
ब्रह्म परमात्माकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥

जिनकी अत्यन्त छोटी कछसे अनेकों नाम-रूपके
भेद-भावसे युक्त ब्रह्मा आदि देवता, दे- और बटुपर
मोक्षोंकी सृष्टि हुई है, जैसे घण्टीकी हुई आवासे अपने
और प्रकाशमान सूर्यसे उनकी चिरणें बार-बार निकलती
और धीन होती रहती हैं, वैसे ही जिन सर्वप्रपन्न

तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो

बुद्धिर्मनस्तानि शरीरसर्गा ॥२३॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिरिक्

न स्त्री न पद्मो न पुमान् न जन्तुः ।

नाय गुणः कर्म न सत्त्वं चासन्

निषेधशेषो जयतांशेष ॥२४॥

जिजीविषे नाहमिहाश्रया किं

मन्तर्बहिर्भाहृतयेभयोन्मा ।

इच्छामि कालेन न यस्य विष्व

स्तस्यात्मलोकचरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

सोऽहं विश्वसुखं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।

विश्वात्मानमत्र ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२६॥

योगरन्ध्रतत्त्वमोषो हृदि योगविभाषिते ।

योगिनो य प्रपश्यन्ति योगेश्वरं नतोऽस्म्यहम् ॥२७॥

नमो नमस्तुभ्यममहादेव

शक्तिप्रयायास्त्रिलोभीगुणाय ।

प्रपद्यपालाय दुरन्तशक्तये

कन्तित्रियाणामनवाप्यचर्मने ॥२८॥

नार्षवेद स्वमा मानं यच्छतपाहविषा हतम् ।

त दुरत्ययमाहाम्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥२९॥

परमात्मासे बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीर—जो गुणोंके प्रवाहरूप हैं—बार-बार प्रकट होते तथा लीन हो जाते हैं, वे भगवान् न देवता हैं और न असुर । वे मनुष्य और पशुपक्षी भी नहीं हैं । न वे स्त्री हैं, न पुरुष और न मनुष्य । वे कोई साधारण या असाधारण प्राणी भी नहीं हैं । न वे गुण हैं और न कर्म, न कर्ष्य हैं और न तो कारण ही । स्वयं निषेध हो जानेपर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सब कुछ हैं । वे ही परमात्मा मेरे उद्धार के लिये प्रकट हों ॥ २२—२४ ॥ मैं जीना नहीं चाहता । यह हाथीकी योनि बाहर और भीतर—सब ओरसे अज्ञानरूप अन्तरणके द्वारा ढकी हुई है, इसको रखकर करना ही क्या है ? मैं तो आत्मप्रकाशको ढकने-वाले उस अज्ञानरूप आवरणसे छूटना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने-आप नहीं छूट सकता, जो केवल मगलकृत्या अथवा तत्त्वज्ञानके द्वारा ही नष्ट होता है ॥ २५ ॥ इसलिये मैं उन परब्रह्म परमव्यक्ति शरणमें हूँ, जो विशद्विस्तृत होनेपर भी विश्वके रचयिता और विश्वस्वरूप हैं—साथ ही जो विश्वकी अन्तरात्माके रूपमें विश्वरूप सत्त्वमीसे क्षीय भी करते रहते हैं उन अत्रम्य परमपद-स्वरूप ब्रह्मको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ योगीलेश योगके द्वारा कर्म, कर्म-वासना और कर्म-फलको मूल करके अपने योगशुद्ध हृदयमें त्रिन योगेश्वर भगवान् को साक्षात्कार करते हैं—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥ प्रभो ! आपकी तीन शक्तियों—सत्त्व, रज और तमके उपादि वेग असंग्रह हैं । समस्त इन्द्रियों और मनक क्रियाओंके रूपमें भी आप ही प्रतीत हो रह हैं । इसलिये जिनकी इन्द्रियों वशमें नहीं हैं, वे तो आपकी प्राप्तिकर मार्ग भी नहीं पा सकते । आपकी शक्ति अनन्त है । आप शरणागतकमल हैं । आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥ आपकी माया अहमुदिसे अन्धकार मगल टक गया है, इसीसे यह जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता । आपकी महिमा अजर है । उन सर्वशक्तिमान् एवं माधुयानि भगवान् की मैं शरण-में हूँ ॥ २९ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिविद्धेन
 प्रसादयो विविधलिङ्गभिदामिमानाः ।
 नैते यदोपसृष्टुर्निखिलतमकत्वात्
 तत्राखिलापरमयो हरिराविरामीत् ॥३०॥
 तं तद्वदार्चमुपलभ्य जगन्निवासः
 स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संसुवन्निः ।
 छन्दोमयेन गरुडेन समुद्रमान-
 वक्रायुधोऽभ्यगमदाह्युक्तो गजेन्द्रः ॥३१॥
 सोऽन्तःसरस्युत्खलेन गृहीत जातौ
 दृष्ट्वा गरुडमसि हरिं स्व उपासधकम् ।
 उत्थिष्य साम्बुजकरं गिरमाह कृष्ण-
 भारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥३२॥
 तं वीक्ष्य पीडितमनः सहसात्तवीर्यं
 सम्राट्प्राह सारसः कृपयोज्ज्वलहार ।
 प्राहाह विपाटितमुत्साहरिणा गजेन्द्रं
 संपश्यत्वा हरिरमूर्ध्वर्धुस्त्रियणात् ॥३३॥

श्रीशुकनेवमी कहते हैं—परीक्षित ! गजेन्द्रने निना
 सिन्धी भेदभावके निर्विशेषरूपसे भगवान्की स्तुति की
 थी, इसलिये भिन्न-भिन्न नाम और रूपको अपना
 स्वरूप माननेवाले ज्ञाना आदि देवता उसकी रक्षा करनेके
 भिये नहीं आये । उस समय सर्वाभ्य होनेके कारण
 सर्वदेवस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये ॥ ३० ॥
 निचके एकमात्र आधार भगवान्ने देखा कि गजेन्द्र
 व्यक्त पीडित हो रहा है । तब उसकी स्तुति सुन-
 कर वेदमय गरुडपर सवार हो चकचारी भगवान् वही
 शीघ्रतासे बाहोंके छिये पल पड़े, जहाँ गजेन्द्र व्यक्त
 समुद्रमें पड़ा हुआ था । उनका साथ स्तुति करते हुए
 देवता भी आये ॥ ३१ ॥ सरोवरके भीतर कज्जल
 ग्राहने गजेन्द्रको एकदम रक्ष्य था और वह व्यक्त
 व्याकुल हो रहा था । जब उसने देखा कि व्यक्तने
 गरुडपर सवार होकर हाथमें चक्र छिये भगवान् श्रीहरि
 आ रहे हैं, तब अपनी सूँठमें कम्बुका एक सुन्दर पुप
 लेकर उसने ऊपरको उठाया और बड़े क्रोधसे बोले—
 'नारायण ! जगद्गुरौ ! भगवन् ! आपकी मन्त्रकी
 है ॥ ३२ ॥ जब भगवान्ने देखा कि गजेन्द्र व्यक्त
 पीडित हो रहा है, तब वे एकबारगी गरुडको छेव-
 कर कूद पड़े और कहा करके गजेन्द्रके साथ ही प्रकट
 भी वही शीघ्रतासे सरोवरसे बाहर निकल आये । नि
 सब देवताओंके सामने ही भगवान् श्रीहरिने चक्रसे
 प्रकट मुँह फल दाबा और गजेन्द्रको छुका लिया ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते म्हापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे

गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गज और प्राहका पूर्वचरित्र तथा समकाल कथा

श्रीशुक उवाच

तदा देवर्षिगर्भवा प्रसोशनपुरोगमा ।

श्रीशुकनेवमी कहते हैं—परीक्षित ! उस समय
 ज्ञाना, साहू आदि देवता, ऋषि और गन्धर्व श्रीहरि

समुषु कसुमासारं शसन्तः कर्म तद्धरः ॥ १ ॥

नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननुतुर्लगु ।

श्रवणधारणाः सिद्धास्तुष्टुषु पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमार्थरूपपृष्ठ ।

मुक्तो देवलछापेन हृहर्षधर्षसद्यम ॥ ३ ॥

प्रणम्य शिरसापीशमुत्तमस्कोकमभ्यसम् ।

अगाधत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥

सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य सम् ।

लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिष ॥ ५ ॥

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शान् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ।

प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाभतुर्बुज ॥ ६ ॥

स वै पूर्वममूद् राजा पाण्ड्यो द्रविडसद्यमः ।

इन्द्रधुन इति रूपाता विष्णुव्रतपरायण ॥ ७ ॥

स एकादाऽऽराधनकाठ आत्मवान्

गृहीतमौनव्रत इत्यरं हरिम् ।

अष्टाधरस्तापस आप्तुताऽन्युत्तं

समक्षयामास कुलापलायमः ॥ ८ ॥

यच्छ्रुत्वा तत्र महापद्म मुनि

समागमच्छिष्यगणं परिधित ।

त वास्य सृष्णोमकृताङ्गादिकं

रदस्पृषामीनमृषिभुञ्जोप ॥ ९ ॥

मगवान्के इस कर्मकी प्रशंसा करने लगे तथा उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १ ॥ स्वर्गमें दुन्दुभिषों बचने लगीं, गन्धर्व नाचने-गाने लगे, श्रुति, चारण और सिद्धगण भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ इकर यह ग्राह ही परम आश्चर्यमय दिव्य शरीरसे सम्पन्न हो गया । यह ग्राह इसके पहले 'हृह' नामका एक श्रेष्ठ गन्धर्व था । देवकी शापसे उसे यह गति प्राप्त हुई थी । अब भगवान्की कृपासे वह मुक्त हो गया ॥ ३ ॥ उसने सर्वेश्वर भगवान्के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया, इसके बाद वह भगवान्के सुपदोपर गान करने लगा । वास्तवमें जति नाशी भगवान् ॥ सर्वश्रेष्ठ कीर्तिसे सम्पन्न हैं । उन्हींके गुण और मनोहर स्मरण करने केय है ॥ ४ ॥ भगवान्के कृपापूर्ण स्पर्शसे उसके सारे पाप-ताप नष्ट हो गये । उसने भगवान्की परिक्रमा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सबके देखते-देखते अपने लोककी यात्रा की ॥ ५ ॥

गजेन्द्र भी भगवान्की स्पर्श प्राप्त होते ही अज्ञानके बन्धनसे मुक्त हो गया । उसे भगवान्की ही रूप प्राप्त हो गया । वह पीताम्बरधारी एवं सत्तुर्बुज बन गया ॥ ६ ॥ गजेन्द्र पूर्वजन्में द्रविड देशका पाण्ड्यवंशी राजा था । उसका नाम था इन्द्रधुन । वह भगवान्की एक श्रेष्ठ उपासक एवं अत्यन्त पशुकी था ॥ ७ ॥ एक बार राजा इन्द्रधुन राजपाट छोड़कर मत्स्यवनपर रहने लगे थे । उन्होंने जटाएँ बढ़ा लीं, तपस्वीका वेध धारण कर लिया । एक दिन जलके बाट पूजाके समय मन-को पकड़ कर पर्व सौनवरी हाकर वे सप्तशक्तिमन् भगवान्की आराधना कर रहे थे ॥ ८ ॥ उसी समय देवयोगसे परमपद्मी अगस्त्य मुनि अपनी शिष्यगणोंके साथ वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने दण्ड किं यद् भगवा-पात्र्य और गृहस्थादिन अनिदितेश आनि धमकर परि त्याग करके तपस्वियोंकी तरह पञ्चतन्त्रे उपवास बैठकर उपव्रता कर रहा है इसीसे वे राजा इन्द्रधुनर मुन्द

तस्मा इमं शापमदादसाधु

रयं दुरात्माकृतपुद्गिरय ।

विप्राधमन्ता विञ्चतां रमोऽन्ध

मया गजः स्तम्भमतिः स एव ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

एवं शृण्वन् गतोऽगस्त्यो भगवान् नृप सानुगः ।

इन्द्रधुम्नोऽपि रामविदिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥

आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्तृविविनाशिनीम् ।

हैर्यर्चनानुभावेन मद्भक्तस्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥१२॥

एव विमोक्ष्य गजयूथपमञ्जनाभ

स्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ।

गन्धर्वसिद्धविषुधैरुपगीममान

कर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडस्तनोऽगात् ॥१३॥

एतन्महाराज तवेरितो मया

कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ।

स्वर्गं यज्ञस्यं कलिकल्मषापह

दुःखस्पर्शनाशं कुरुय्यं शृण्वताम् ॥१४॥

पथानुकीर्तयन्त्येतन्मयस्कामा दिवातयः ।

शुचयः प्रावक्तव्याः दुःखान्नापुपशान्तये ॥१५॥

इदमाह हरिः प्रीता गजेन्द्रं कुरुस्तप्तम ।

शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतममा विदुः ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

ये मां त्वां च मरुद्वेदं गिरिकन्दरकाननम् ।

धनवीचकवृण्णां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥

गृह्णाणामानि धिप्प्यानि घ्नन्ना मे शिशस्य च ।

धीराद मं प्रिय धाम श्वेतदीर्घं च आभ्यरम् ॥१८॥

भोक्त्वां कौमुदमालां गदां कौमादकीं मम ।

हो गये ॥ ९ ॥ उन्होंने राजाको यह शाप दिया—
इस राजाने गुरुजनोंसे शिक्षा नहीं ग्रहण की है,
अभिमानकर परोपकारसे निवृत्त होकर मनमानी कर रहा
है । आशुतोष अवमान करनेवाला यह हाथीके समान
जबबुद्धि है, इसलिये इसे वही घोर अज्ञानमयी हाथीकी
योनि प्राप्त होगी ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । शाप एवं क-
दान देनेमें समर्थ अगस्त्य ऋषि इस प्रकार शाप देकर
अपनी शिष्यमण्डलीके साथ वहाँसे चले गये । राजर्षि
इन्द्रधुम्नने यह समझकर स्तोत्र किन्ना कि यह मेरा
प्रारब्ध ही था ॥ ११ ॥ इसके बाद आत्माकी स्मृति
करा देनेवाली हाथीकी योनि उन्हें प्राप्त हुई । परन्तु
भगवान्की आराधनाकर ऐसा प्रमाण है कि हाथी होने-
पर भी उन्हें भगवान्की स्मृति हो ही गयी ॥ १२ ॥
भगवान् श्रीहरिने इस प्रकार गजेन्द्रकर उद्धार करके उसे
अपना पार्षद बना लिया । गन्धर्व, सिद्ध, देवता उनकी
इस स्तम्भाकर गान करने लगे और वे पार्षदरूप गजेन्द्र
को साथ ले गरुडपर सवार होकर अपने अत्यन्त
धामको चले गये ॥ १३ ॥ कुरुवंश-शिरोगेहि परीक्षित ।
मैंने भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा तथा गजेन्द्रके उद्धारकी
कथा तुम्हें सुना दी । यह प्रसङ्ग सुननेवालोंके कर्मा-
त्म और दुःखान्को मिटानेवाला एवं यश, उन्नति
और स्वर्ग देनेवाला है ॥ १४ ॥ इसीसे कल्याणकारी
त्रिजगण दुःखन आदिकी शान्तिके लिये प्राप्तकर
जगते ही पवित्र होकर इन्द्र पाठ करते हैं ॥ १५ ॥
परीक्षित । गजेन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सम्पूर्ण
एवं सर्वभूतसमस्त श्रीहरि भगवान्ने सब लोगोंके
सामने ही उसे यह बात कही थी ॥ १६ ॥

श्रीभगवान् कहता—जो लोग उनके पित्रों परलौ-
ठप्यत्र इन्द्रियनिग्रहपूर्वक पञ्चम विद्यसे भेद, त्याग
इस सत्कर, पर्वत एवं वन, वन, वेंत, वीचक और
गोंयके मुरमुट, यद्यपि निम्न वृक्ष तथा पर्वतशिरः,
मेरु, जलाजी और शिखरीक निवासस्थान, मेरु प्यारे पर्व
श्रीरामाय, प्रसन्नमय राजाजी, श्रीराम कालमुष्णि,

सुदर्शनं पाञ्चजन्य सुपर्णं पतङ्गेश्वरम् ॥१९॥
 छर्प च मत्कलां घृह्णा धियं देवीं मदाभयाम् ।
 ब्रह्माण नारदमृषिं भय ब्रह्मादमव च ॥२०॥
 मन्सकर्मवराहाघैरवतारै कृतानि मे ।
 कर्माण्यनन्तपुण्यानि ह्यस्य सोम कृताञ्जनम् ॥२१॥
 प्रणव सत्यमभ्यक्त गोविप्रान् भूममभ्ययम् ।
 दाद्यायणीर्धर्मपत्नी सोमकश्यपयोरपि ॥२२॥
 गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं मितवारणम् ।
 शुब्र ब्रह्मश्रुपीन्सप्त पुण्यश्लाकांश्च मानवान् ॥२३॥
 वत्सायापररात्रान्ते प्रयता सुसमाहिताः ।
 सरन्ति मम रूपाणि ह्युच्य ते ब्रह्मसोऽखिलात् ॥२४॥
 ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिपुष्य निशास्यये ।
 तेषां प्राणास्यये चाह ददामि विमर्ता मयिम् ॥२५॥

भीम उवाच

इत्यादिष्व ह्यीकेश प्रथमाय जलजोत्तमम् ।
 ह्ययन्निबुधानीकमाहोह स्वगाभिपम् ॥२६॥

बनमाला, मेरी कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, पक्षिराज गरुड, मेरे सूक्ष्म कलास्वरूप शोभनी, मेरे आश्रयमें रहनेवाली लक्ष्मीदेवी, ब्रह्मानी, देवर्षि नारद, शङ्करजी तथा यक्षराज ब्रह्माद, मन्स्य, कच्छप, बराह आदि अकनारोमें किये हुए मेरे अनन्त पुण्यमम चरित्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ईश्वर, सत्य, मूलप्रहृति, गौ, ब्राह्मण, अविनाशी सनातनधर्म, सोम, कश्यप और धर्मकी पत्नी दक्षकन्यारौ, गङ्गा, सरस्वती, अत्यनन्दा यमुना, ऐरावत ह्यपी, मच्छशिरोमणि ध्रुव, सप्त ब्रह्मर्षि और पवित्रकीर्ति (नव, युधिष्ठिर, जनक आदि) महा-पुरुषोंका स्मरण करते हैं—वे समस्त पापोंसे छूट जाते हैं, क्योंकि ये सब-के-सब मेरे ही रूप हैं ॥१८-२४॥
 प्यारे गजेन्द्र ! जो लोग ब्रह्मसुहृत्तमें जगत्तर तुम्हारी की हुई स्तुतिसे मेरा स्तवन करेंगे, शत्रुके समय उन्हें मैं निर्मल सुदिकष दान करूँगा ॥ २५ ॥

भीमकश्यपजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान् श्री कृष्णने ऐसा बहुर देवताओंको आनन्तित करते हुए अपना श्रेष्ठ शङ्ख बजाया और गरुडपर सवार हो गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्ध

गैत्रेयब्राह्मण नाम चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्याय

देवनामोका ब्रह्मार्थके पाल जाना और ब्रह्माह्वन भगवान्की स्तुति

भीम उवाच

रौद्रशुनूदितमतत् त इव कर्माधिनाशनम् ।
 गजन्तमाक्षर्णं पुष्पं खर्वत त्वन्तर शृणु ॥१॥
 पञ्चमा रवता नम मनुस्तामयसुत्तर ।
 शनिविष्पादपस्तस्य शुभा अनुनपूर्वका ॥२॥

भीमकश्यपजी कहते हैं—परीक्षित ! भगवान्की यह गजेन्द्रमोक्षकी पवित्र लीला समस्त पापोंका नाश करनेवाली है । इसे मैंने तुम्हें सुना दिया । अब मैं एक मन्त्रतरङ्गी कथा सुना ॥ १ ॥ पाँचवें मनुका नाम था रैवत । वे चौथे मनु तामयक संग भाई थे । उनका अशुभ बलि विष्य आग्नि का पुत्र था ॥ २ ॥

प्र पा —प्रवक्ता । २ दापीन प्रविमे भीमकश्यप उवाच —ही दे । १ प्र पा —मन्दनराजानने गजन्तमाक्षर्णने शृणु । २ प्र पा —शनिविष्पादनेतरे । ५ प्र पा —गृह्यकः ।

विष्णुर्निद्रा सुरगणा राजभूतरयादयः ।
 शिरण्यरामा वदशिरा ऊर्ध्वबाहुदयो दिव्याः ॥ ३ ॥
 पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठे सुरसप्तमे ।
 तथा स्वकलया जम्बे वैकुण्ठा भगवा स्वयम् ॥ ४ ॥
 वैकुण्ठ कविरता येन लोको लोफनमस्कृत ।
 रमया प्रार्थमानेन देव्या तत्प्रियकाम्पया ॥ ५ ॥
 तस्यानुभाव कथिता गुणाश्च परमादयाः ।
 मौमान्नेनून्स विमया विष्णोर्वर्णयन् गुणान् ॥ ६ ॥
 पृष्ठश्च चक्षुष पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनु ।
 पूरुषरूपसुषुम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥
 इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तथ देवा आप्यादयो गणाः ।
 मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मदीरकादयः ॥ ८ ॥
 तथापि दशः सम्भूत्या वैराजस्याभवत् सुत ।
 अक्षितो नाम भगवानंशेन जगत् पतिः ॥ ९ ॥
 पयाधि येन निर्मथ्य सुराणां साविता सुधा ।
 भ्रममाणाऽन्धमि घृत कर्मरूपेण मन्दर ॥ १० ॥

राजोवाच

यथा भगवता मन्त्रन्मभित क्षारगागर ।
 यदथ वा यतश्चाद्रि दधाराम्पुचगतम्ना ॥ ११ ॥
 यथाश्रुतं गुरः प्राप्तं क्रिञ्चान्यन्भवत् तत ।
 एतद् भगवत् कर्म वदम्य परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥
 त्वया मद्ब्रह्ममानेन महिम्ना मान्यतां पत ।
 नानिद्रप्यति म तिन गुणिर तापनापितम् ॥ १३ ॥

उस मन्वन्तरमे इन्द्रक नाम वा विष्णु, और भूतस्य और
 देवताओंके प्रधान गण थे । परीक्षित । उस समय
 शिरण्यरामा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि ॥ ३ ॥
 उनमें शुभ्र विकुण्ठा पत्नीका नाम था विकुण्ठ । उन्होंने
 गर्भसे वैकुण्ठ नामक श्रेष्ठ देवताओंके साथ अपने अंशसे एक
 भगवान्ने वैकुण्ठ नामक अवतार धारण किया ॥ ४ ॥ उन्होंने
 स्वामीदेवीकी प्रार्थनासे उनको प्रसन्न करनेके लिये वैकुण्ठ-
 धामकी रचना की थी । वह लोक समस्त लोकोंमें श्रेष्ठ
 है ॥ ५ ॥ उन वैकुण्ठनाथके कल्याणमय गुण और
 प्रभावका वर्णन मैं संक्षेपसे (तीसरे स्कन्धमें) कर
 चुका हूँ । भगवान् विष्णुके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो
 करे, जिसन पृथ्वीके परमाणुओंकी गिनती कर ली
 हो ॥ ६ ॥

छठे मनु ऋषुके पुत्र चाक्षुष थे । उनके पुत्र, पूरुष,
 सुषुम्न आदि कई पुत्र थे ॥ ७ ॥ इन्द्रक नाम कल्पद्रुम
 और प्रधान देवगण थे आप्य आदि । उस मन्वन्तरमें
 इतिथ्यमान् और वीरक आदि सप्तर्षि थे ॥ ८ ॥ अश्वत्थि
 भगवान्ने उस समय भी वीरानकी पत्नी सम्भूतिके गर्भसे
 अक्षित नामका अश्वत्थार गृहण किया था ॥ ९ ॥
 उन्होंने ही समुद्र-मन्थन करके देवराजोंको अमृत मिश्र
 था तथा वे ही कण्डपक्ष्म धारण करके मन्वन्तरकी
 मषातीके आशय बने थे ॥ १० ॥

राजा परीक्षितने पूछ-भागवत् । भगवान्ने क्षी-
 तसागरका मन्थन किया । उन्होंने कण्डपक्ष्म धारण
 करके किन कारण और किन उद्देश्यसे मन्दराक्षरों
 अपनी पीठपर धारण किया । ॥ ११ ॥ देवराजोंने
 उस समय अमृत पीने लिये । और भी ब्रह्म-मन्त्र-सी
 वस्तुएँ समुद्रसे निकली । भगवान्की यह वीर्य बड़ी ही
 कठिन है, आप कृपा करके अवश्य सुनाइये ॥ १२ ॥
 आप भक्तकृष्ण भगवान्की महिमापर ज्यों-ज्यों वर्णन
 करते हैं, त्यो-ही-त्यो मया इदम् उससे और भी सुनने
 के लिये उत्सु होना आ रहा है । आपने कहा तो मान
 ही नहीं लगता । क्यों न हा, बहुत श्रितोंसे यह सीखा
 गयाभीसे जयना जो रहा है ॥ १३ ॥

सूत उवाच

मृष्टा भगवानेष द्विपायनसुतो द्विजो ।

भिनन्द्य हरेत्तैर्यमम्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥

श्रीगुरु उवाच

ता युद्धसुरैर्देवा वाच्यमाना शिताशुधैः ।

तामको निपतिता नोचिष्ठेरन्स भूयश ॥१५॥

ता दुर्वासस शापात् सेन्द्रा लोकास्त्रया नृप ।

ने श्रीकाशभवस्तत्र नेशुरिन्यादय क्रियाः ॥१६॥

निशाम्यैतत् सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः ।

नाप्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ॥१७॥

सतो ब्रह्मसभां अश्रुर्मरोर्मूर्धनि सर्वश ।

सर्वं विज्ञापयाञ्चतु प्रणता परमेष्ठिने ॥१८॥

त विलोक्येन्द्रबाष्पादीन् निःसञ्चान्विगतप्रभान् ।

लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विष्ट ॥१९॥

ममाहितन मनसा सस्मरन्पुरुष परम् ।

उवाचात्कुल्लषदना देवान्स भगवान्पर ॥२०॥

अह भवा यूयमभाऽसुराण्यो

मनुष्यतिर्यग्भुमपरम्राठय ।

यस्यावतारार्ग्यकृत्वाविसर्जिता

यज्ञाम मयै गुरणं तमभ्यसम् ॥२१॥

सूतजीने कहा—शीनकादि श्रुतियो । भगवान् श्रीशुकदेवजीन राजा परीक्षित्क इस प्रश्नका अभिनन्दन करते हुए मगधान्सी समुद्र-मन्थन-लीलाका कथन आरम्भ किया ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! जिस समयकी यह बात है, उस समय असुरोंने अपने तीखे शस्त्रोंसे देवताओंको पराजित कर लिया था । उस युद्धमें बहुतोंके तो प्राणोंपर ही बन आयी, वे रणभूमिमें गिरकर फिर उठ न सके ॥ १५ ॥ दुर्वासक शापसे भी शीन लोक और स्वयं इन्द्र भी भीहीन हो गये थे । यहाँतक कि पशु-यागादि वर्ध-धर्मोक्ति भी लोप हो गया था ॥ १६ ॥ यह सब दुर्वासा देखकर इन्द्र, वरुण आदि देवताओंने आपसमें बहुत कुछ सोचा-विचार, परन्तु अगन विचारोंसे वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके ॥ १७ ॥ तब वे सबके-सब सुमेरुक शिखरपर स्थित ब्रह्माजीकी समा में गये और वहाँ उन छोगेने बड़ी नम्रतासे ब्रह्माजीकी सेवामें अपनी परिस्थितिकार बिसृत विवरण उपस्थित किया ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने स्वयं देखा कि इन्द्र, बापु आदि देवता भीहीन एवं शक्तिहीन हो गये हैं । छोगोंकी परिस्थिति बड़ी बिगड़, सङ्कटग्रस्त हो गयी है और असुर हमके विपरीत फट-फूट रह हैं ॥ १९ ॥ समर्थ ब्रह्माजीने अगना मन एकत्र करके परम पुरुष मगधान्का स्मरण किया, फिर बोड़ी देर रुककर प्रमुञ्चिन मुखसे देवताओंका सम्बोधित करते हुए कहा ॥ २० ॥ अब त्राओ ! मैं, गङ्गाजी, सुममेरा तथा असुर, दैत्य, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष और स्वर्ग आदि समस्त प्राणी जिनके विरुद्ध गणक एक आपन स्वयान्विमल अंशमें रहे गये हैं—हमगण उन अविनाशी प्रभुकी ही शरण

१ प्रा वा—इन्द्र । २ प्रा वा—बापु अमरी बन्धुमये । ३ प्रा वा—मगधपुरे । ४ प्रा वा—पुरुषोत्तम ।

• परमेश्वर विष्णुजन्ममें इस प्रकार आया है । एक बार भीमहात्मको वेदुष्टलोकमें आ रहे थे । वगैरोंसे वेदुष्टान्ध, देवराज इन्द्र मिले । उन्हीं विष्णुकी धर्मता जानकर दुर्वासाजीने अमरान्धके अन्धकी भाँति दौड़ा । विष्णु इन्द्रन देखकर भगते उग्रा। कुछ भी आरंभ कर उन देवराजके अन्धकार दूर किया । देवराजने उन गैरुमें देवर देवराज बुझा दिया । इन बुझाकीने भविष्य देकर कहा कि मैं हीने अन्धकार दूर ही भीन हूँ अन्ध ।

सोमं मना यस्य समामनन्ति
 दिवौकसां वै बलमेष आधुः ।
 इशो नगानां प्रजन प्रजानां
 प्रसीदतां नैः स महाविभूतिः ॥३४॥
 अग्निर्मुख यस्य तु जातवेदा
 क्षतः क्रियाकामनिमित्तबन्धना ।
 अन्तः सङ्ग्रेऽनुपचन् स्वभातन्
 प्रसीदतां नैः स महाविभूतिः ॥३५॥
 यक्षधुरासीत् तरपिर्देवधानं
 प्रयीमया प्रसन्न एष धिष्यस् ।
 द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः
 प्रसीदतां न स महाविभूतिः ॥३६॥
 प्रम्याद्भूद् यस्य चराचराणां
 प्राण स हो बलमोक्षधायुः ।
 अन्धास सत्राजमिवानुगा बधं
 प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३७॥
 भोत्राद् दिशो यस्य हृदय न्वानि
 प्रजङ्घिरे त्वं पुरुषस्य नाम्ना ।
 प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं
 प्रसीदतां न स महाविभूतिः ॥३८॥
 बहान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादा
 न्मन्यार्मिरीशो धिपनाद् विरिञ्चः ।
 खेम्यश्च छन्दास्पृषणो मेढतः कः
 प्रसीदतां न स महाविभूतिः ॥३९॥
 श्रीर्वधसः पितरश्चायथाऽऽसन्
 धर्मं स्तनादितरं प्रपतोऽभूत् ।
 दौर्घस्य क्षीणोऽप्सरसा विहारात्
 प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४०॥

हमपर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ श्रुतिगो कहती है कि स्वप्न
 उस प्रयुक्त मन है । यह चन्द्रमा समस्त देवताओं
 अन्न, बल एवं आयु है । वही इशोका सम्राट् एवं प्रज-
 की हृदि करनेवाण है । ऐसे मनको स्वीकार करनेको
 परम ऐश्वर्यशास्त्री प्रभु हमपर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ किन्के
 प्रयुक्त मुख है । इसकी उत्पत्ति ही इसलिये हुई है कि
 वेदके यज्ञ-यागादि कर्मकण्ड पूर्णरूपसे सम्पन्न हो सकें ।
 यह अग्नि ही शरीरके भीतर सठ्याग्निरूपसे और स्फुरके
 भीतर बबबाननके रूपसे रहकर उनमें रहनेवाले जल,
 जल आदि धातुओंका पाचन करता रहता है, को
 समस्त द्रव्योंकी उत्पत्ति भी उसीसे हुई है । ऐसे प्ल
 ऐश्वर्यशास्त्री भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ किन्के
 द्वारा जीव देवयानमार्गसे ब्रह्मलोकका प्राप्त होता है, जो
 वेदोंकी साक्षात् मूर्ति और भगवान्के ध्यान करनेसे
 प्राप्त है, जो पुण्यलोकस्वरूप होनेके कारण मुक्तिके द्वार
 एवं अमृतमय हैं और कल्याण होनेके कारण मृत्यु भी
 हैं—ऐसे सूर्य बिनके नेत्र हैं, वे परम ऐश्वर्यशस्त्री भगवान्
 हमपर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥ प्रभुके प्राणसे ही चणक-
 का प्राण तथा उन्हें ममसिक, शारीरिक और इन्द्रिय-
 सम्बन्धी बल देनेवाला वायु प्रकट हुआ है । वह कर्म-
 कर्ता सम्राट् है, तो इन्द्रियोंके अधिष्ठान-देवता हम सब
 उसके अनुचर । ऐसे परम ऐश्वर्यशास्त्री भगवान् हमपर
 प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ बिनके कर्नासे निश्चय, हृदयसे
 इन्द्रियगोष्ठ्य और नाभिसे वह आकाश उत्पन्न हुआ है,
 जो पाँचों प्राण (प्राण, अपान, उदान, समान और
 ध्यान), दसों इन्द्रिय, मन, पाँचों अक्षु (भ्रम, कर्क-
 ण्ण, देवयन् और धमय) एवं शरीरका धाम्य है—
 वे परम ऐश्वर्यशास्त्री भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥
 बिनके बलसे इन्द्र, प्रसन्नतासे समस्त देवता, अग्निसे
 शङ्कर, बुद्धिसे ब्रह्मा, इन्द्रियोंसे वेद और श्रुति तथा
 छिन्नसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं—वे परम ऐश्वर्यशास्त्री
 भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ बिनके बल स्वप्न-
 से लक्ष्मी, छायासे विदुषण स्तनसे धर्म, पीठसे जन्म,
 सिरसे आकाश और निहससे अस्तरण प्रकट हुई हैं,
 वे परम ऐश्वर्यशास्त्री भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४० ॥

विप्रो मुत्सं व्रज च यस्य गुह्यं
राजन्यं असीद् भुजगार्धल च ।
ऊर्ध्वोर्विहोत्रोऽहधिरवेदसूद्र ।

प्रसीदतां न स महाविभूति ॥४१॥
लोभोऽधरात् प्रातिरुपर्यभृष्ट भुति
नस्तः पश्य्य स्पर्शेन कामः ।
ब्रुवोर्यम पक्ष्मभवस्तु काल

प्रसीदतां नः स महाविभूति ॥४२॥
ब्रह्म धयः कर्म गुणान्विशेषं
ययोगमायाविहितान्वदति ।

यद् दुर्विभाव्यं प्रवृत्तापवाच
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४३॥

नमाऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये
स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभि
नं सज्जमानस्य नभस्वदूतये ॥४४॥

स त्वं ना दर्शयात्मानमसत्करणगोचरम् ।

प्रपन्नानां दिष्ट्युपां ससितं ते मुत्साम्बुजम् ॥४५॥

तैस्तैः स्वेच्छाभूतं रूपं काले काले स्वयं विभो ।

कर्म दुर्विपद् यन्ना भगवांस्तत् करोति हि ॥४६॥

हृद्यभूपरूपसाराणि कर्माणि विफलानि वा ।

देहिनां विपयार्तानां न तथैवापितं त्रयि ॥४७॥

जिनके मुखसे ब्राह्मण और अत्यन्त खूबसूरत वेद, मुन्नाओं-
से क्षत्रिय और बल, जङ्गाओंसे वैश्य और उनकी
वृत्ति—भ्यापारकुशलता तथा घरणोंसे वेदब्राह्मण शूद्र और
उनकी सेवा आदि वृत्ति प्रकट ॥४१॥ है—वे परम ऐश्वर्य-
शाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिनके
अधरसे लोभ और ओष्ठसे प्रीति, नासिकसे कान्ति,
स्पर्शसे पशुओंका प्रिय काम, भौंहोंसे यम और नष्टके
रोमोंसे कान्ति उत्पत्ति ॥४२॥ है—वे परम ऐश्वर्यशाली
भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४२ ॥ पञ्चभूत, काल,
कर्म, सत्तादि गुण और जो कुछ विवेकी पुरुषोंके द्वारा
भावित किये जानेयोग्य निवचनीय या अनिवचनीय विशेष
पदार्थ हैं, वे सब—के—सब भगवान्की योगमायासे ही बने
हैं—ऐसा शास्त्र कहते हैं । वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान्
हमपर प्रसन्न हों ॥ ४३ ॥ जो मायानिर्मित
गुणोंमें दर्शनादि वृत्तियोंके द्वारा आसक्त नहीं होते, जो
बापुके समान सदा-सर्वदा असङ्ग रहते हैं, जिनमें समस्त
शक्तियाँ शान्त हो गयी हैं—उन अपने आत्मानन्दके
कामसे परिपूर्ण आत्मस्वरूप भगवान्को हमारे नमस्कार
॥ ४४ ॥

प्रभो ! हम आपके शरणागत हैं और चाहते हैं कि
मन्द-मन्द मुसकनसे मुक्त आपका मुसकनल अपन
इन्हीं नेत्रोंसे देखे । आप क्या करके हमें उसका दर्शन
करावें ॥ ४५ ॥ प्रभो ! आप समय-समयपर स्वयं ही
अपनी इच्छासे अनेकों रूप धारण करते हैं और जो
काम हमारे लिये अत्यन्त कठिन होता है, उसे आप
सहजमें ही कर देते हैं । आप सबशक्तिमान् हैं, आपके
लिये हममें कौन-सी कठिनाई है ॥ ४६ ॥ जिस्योंक
होममें पड़कर जो देहामिमानी दुःख भाग रहे हैं, उन्हें
कम यत्नमें परिधम और क्लेश तब बहुत अत्रिष्ट होना
है परन्तु पञ्च बहुत कम निरुपमा है । अधिकारमें तो
उनके निरुपमा ही हाथ लगती है । परन्तु जो कर्म
आपको समर्पित किये जाते हैं, उनके करनेके समय ही
परम सुख मिष्टा है । वे स्वयं परमस्व ही ॥ ४७ ॥

न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो

नोपेक्षणीयादरणीयपक्ष ।

अपापि सर्गस्थितिसंयमार्थं

धधे रजःसत्त्वतमांमि काले ॥२२॥

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षण

सत्त्व क्षुपाप्यस्य भवाय वेदिनाम् ।

तस्माद् ब्रह्मण शरणं जगद्गुरुं

स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रिय ॥२३॥

श्रीकृष्ण उवाच

इत्थाभाष्य सुरान्वेधा सः देवैरिन्दम ।

अजितस्य पदं साक्षाजगाम तमसः परम् ॥२४॥

तत्राद्यस्वरूपाय धृतपूर्वाय विभो ।

स्तुतिमन्त्रं देवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥२५॥

श्रीकृष्ण उवाच

अविक्रियं सत्यमनन्तमार्थं

गुहाद्यर्थं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।

मनोऽग्रपानं वक्षसानिरुक्तं

नमामहे देवधरं वरेण्यम् ॥२६॥

विपश्चितं प्राणमनोभियात्मना-

मर्षन्दिवाभासमनिग्रमत्रणम् ।

छायातपो यत्र न गृध्रपक्षौ

तमधरं त्वं त्रिपुरं ब्रह्मामहे ॥२७॥

ग्रहण करें ॥ २१ ॥ यद्यपि उनकी दृष्टिमें न कोई क
का पात्र है और न रक्षाका, उनके लिये न तो वे
उपेक्षणीय हैं न कोई आदरका पात्र ही—फिर भी तब
स्थिति और प्रणयके लिये समय-समयपर वे रजोगुण
सत्त्वगुण और तमोगुणको स्वीकार किया करते ।
॥ २२ ॥ उन्होंने इस समय प्राणियोंके कल्याणके लिये
सत्त्वगुणको स्वीकार कर रक्खा है । इसलिये वह अन्ध
की स्थिति और रक्षाका व्यवहार है । वन इन स
उन्हीं जगद्गुरु परमात्मकी शरण प्रार्थन करते हैं । वे
देवताओंके प्रिय हैं और देवता उनके प्रिय । इसलिये
इस निबन्धनोंका वे अवश्य ही कल्याण करेंगे ॥ २३ ॥

श्रीकृष्णदेवकी कहते हैं—परीक्षित ! देवताओंसे
यह कहकर ब्रह्मानी देवताओंको साथ लेकर भागकर
अश्विनके निबन्धन वैकुण्ठमें गये । वह वाम तन्मने
प्रकृतिस परे है ॥ २४ ॥ इन लोगोंने भगवान्के स्वरूप
और धामके सम्बन्धमें पहचाने ही बहुत कुछ उन
रक्षा था, परन्तु वहाँ जानेपर उन लोगोंको कुछ दिखी
न पड़ा । इसलिये ब्रह्मानी एकप्र मनसे देवताओंके शरण
भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी बोले—भाग्य ! आप निर्बिकर, सत्य,
अनन्त, आदिपुरुष, सबके हृदयमें अन्तर्भावित
विराजमान, असंख्य एवं अतर्क्य हैं । मन वहाँ-वहाँ गता
है, वहाँ-वहाँ आप पहचाने ही विद्यमान रहते हैं । कभी
आपका निरूपण नहीं कर सकती । आप समस्त देव-
ताओंके आराधनीय और सर्वप्रकाश हैं । हम सब
आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ आप प्राण,
मन, बुद्धि और अहङ्कारके स्वामी हैं । इन्द्रियों और
उनके विषय दोनों ही आपके द्वारा प्रकाशित होते हैं ।
अज्ञान आपका स्पर्श नहीं कर सकता । प्रकृतिके विनाश
मरने-जीनेवाले शरीरसे भी आप रहित हैं । जीवके होने
पक्ष अविद्या और निष्ठा आपमें विद्युत् ही नहीं हैं ।
आप अविनाशी और सुखस्वरूप हैं । सत्यगुण, ज्ञान
और द्वापरमें तो आप प्रकटरूपसे ही विराजमान रहते
हैं । हम सब आपकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥

अत्रस्य चर्चं त्वज्जयेर्यमाण

मनोमय पञ्चदशारयाशु ।

त्रिणाभि त्रिषुञ्चलमष्टनेमि

यदक्षमाहुस्तमूर्तं प्रपद्ये ॥२८॥

यं एकवर्णं तमसः परं त

इडाकमन्वक्तमनन्तपारम् ।

अस्ताश्चक्रोपसुपर्णमेन-

मुपासते योगरथेन धीरा ॥२९॥

न यस्व कश्चातितितर्ति माया

यया अनो मुद्यति वेद नार्थम् ।

तं निर्विजातमात्मगुणं परेशं

नमाम भूतेषु सर्वं चरन्तम् ॥३०॥

इमे धर्मं यतिप्रययैव तन्वा

सध्वेन सृष्टा बहिरन्तराभिः ।

गतिं न वृष्मासृपयश्च विप्रहे

हृतोऽसुगदा इतरप्रधाना ॥३१॥

पादौ महीय स्वकुतैव यस्य

चतुर्विधा यत्र दि भूतसर्गाः ।

स वै महापुरुष आरमतन्त्रः

प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूति ॥३२॥

अम्भस्तु पट्रेत उदारवीय

सिष्यन्ति जीवन्त्युत वर्षमाना ।

लोक्यस्त्रयोऽप्याविललाफपालाः

प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूति ॥३३॥

१ अ पा — यदेवमर्थं मनसः पर ।

यह शरीर जीवका एक मनोमय चक्र (रथका पहिया) है। दस इन्द्रिय और पाँच प्राण—ये पंद्रह इसके अंग हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण इसकी नाभि हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये आठ इसमें नेत्रि (पहियेका वेग) हैं। स्वयं माम् इसका सञ्चालन करती है और यह बिजलीसे भी अधिक शीघ्रगामी है। इस चक्रके चुरे हैं स्वयं पर मर्यादा। वे ही एकमात्र सत्य हैं। हम उनकी हरणमें हैं ॥ २८ ॥ जो एकमात्र ज्ञानस्वरूप, प्रकृतिसे परे एवं अदृश्य हैं, जो समस्त वस्तुओंके मूलमें स्थित अक्षय्य हैं और देश, काल अपथा वस्तुसे विनका पार नहीं पाया जा सकता—वही प्रभु इस जीवके हृदयमें अन्तर्यामीरूप से निवाजमान रहते हैं। विचारशील मनुष्य भक्तियोगके द्वारा उन्हींकी आराधना करते हैं ॥ २९ ॥ जिस मायासे मोहित होकर जीव अपने वास्तविक छव्य अथवा स्वरूपको भूल गया है, वह उन्हींकी है और कोई भी उसका पार नहीं पा सकता। परन्तु सत्सङ्गिभ्यो प्रभु अपनी उस माया तथा उसके गुणोंको अपने बरामें करके समस्त प्राणियोंके हृदयमें समावेशसे विचरण करते रहते हैं। जीव अपने पुरुषार्थसे नहीं, उनकी कृपासे ही उन्हें प्राप्त कर सकता है। हम उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ यों ता हम वेचना एव अविगण भी उनके परम प्रिय सत्त्वमय शरीरसे ही उत्पन्न हुए हैं, फिर भी उनके बाहर भीतर एकत्र प्रकट वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। तब रजोगुण एवं तमोगुणप्रधान असुर आदि तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं? उन्हीं प्रभु के चरणोंमें हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥

उन्हींकी बनायी हुई यह पृथ्वी उनका चरण है। इसी पृथ्वीपर जगज्जल, अग्नि, स्वेदज और तन्निज—ये चार प्रकारके प्राणी रहते हैं। वे परम स्वतन्त्र, परम ऐश्वर्यशाली पुरुषात्मा परब्रह्म हमपर प्रसन्न हैं ॥ ३२ ॥ यह परम दाक्षिणाती जन्म उन्हींका वीर्य है। इसीसे तीनों लोक और समस्त स्रष्टाओंके लोकजन्म उत्पन्न होते, बढ़ते और जीवित रहते हैं। वे परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म

साम मना यस्य ममामनन्ति
दिवांशमां व पमपथ आयु ।
इहा नगानां प्रजन प्रजानां
प्रमीदता न म महाविमृति ॥३४॥
अग्निमूय यस्य तु जातवदा
नाल त्रिपात्राण्डनिमिषजन्मा ।
अन्त मष्ट्रुऽनुपचन म्पातुन्
प्रमीदतां न म महाविमृति ॥३५॥
यस्यसुरामीत्र सरणिर्देवपान
प्रयीमया म्रमण एष धिष्ण्यम् ।
ह्रां च सुक्तरमृत्तं च मृन्मु
प्रसादतां न म महाविमृति ॥३६॥
प्रागादमृद् यस्य चरानराणां
प्राण महा बलमाजय पायु ।
अन्यास्य मम्रात्रमिरानुगा वर्य
प्रसादतां न म महाविमृति ॥३७॥
भाशाद् विगा यस्य हृदय स्थानि
प्रवप्तिरे म पुण्यस्य नास्या ।
प्राणन्त्रिपात्रामागुर्गिरिचरं
प्रसादतां न म महाविमृति ॥३८॥
बनामहर्द्रिगा प्रसादा
यस्य गिरिगाधिराद् विमिश्र ।
मम्यप्रमृतांमृताममृत्तं च
प्रमीदतां न म महाविमृति ॥३९॥
धीवपय विहा पापपात्रमन
यन् प्रमात्रिगा तृणाभ्युत् ।
दम्य प्रमीदतांमम विहागत
प्रमीदतां न म महाविमृति ॥४०॥

हमयर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ शुनियों बानी है कि
उस प्रमुखा मन है । यह चन्द्रमा समस्त दाशमे
अस, यत्त पर्व आयु है । बड़ी हृष्टीका ममा पर्व
यदि बुद्धि फलनाल है । ऐसे मनको सीमा बनेने
परम एष्वर्षशापी प्रमु हमयर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ बनि
प्रमुखा मुख है । इसकी उत्पत्ति हा इसपिये ई है कि
वेक पद-यगा विर्मरुण्ड दूगन्पसे सग्न हो सके ।
यह अग्नि ही सीमा भीतर अद्वयितग्नसे और म्मुगते
भीतर बहवानरक ग्नसे रहार उनमें रहनवा अ,
अर आदि पातुर्गोष पावन इतरा रहता है, और
समस्त प्रमोदी उत्पत्ति भी उमीते ई है । ऐसे दा
एष्वर्षशापी भगान् हमयर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ त्रिके
दास जीव दक्षयामयगसे ब्रह्मोक्की प्राप्त होता है, जो
योंको साधार बुर्नि और भगान्क प्यन बनेने
पाम है, जो पुण्यवेक्यमपर हानेके करार मुक्ति इ
एव अमृतस्य है और काग्न्य दानेके करार मृत्त
है—एते मृत्तत्रिकेनेत्र है, व परम एष्वर्षशापी भगान्
हमयर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥ प्रमुक प्रागस ही पात्र
का प्राग ता उद्धे मनगिर, गीरित और रिद्रि-
सम्बन्धी ब दनगाय वायु प्रमृ हुआ है । वह प-
वर्गी समृद्ध है, ता इन्द्रिय अतिगुण्य इस स
उगके अनुकर । जो परम एष्वर्षशापी भगान् हमयर
प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ त्रिक बनेने रिद्रि है जो
हि पग्न्य और ममिम ब अग्न्य उगस हुआ है
जो नीलो प्रा (प्रा अन्न, उगन, मन्त्र और
व्यन), जो रिद्रि, मन नीले मृत्त (मृत्त
हृत्त, देव ग और धनप्रा) एव रिद्रिगा अ-
यस्य एष्वर्षशापी भगान् हमयर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥
त्रिक व म ह— प्रमृताम मम्य देव अ-
रह बुर्ग म ह— रिद्रि देव व और रिद्रि
हि प्रमृताम उग ह— देव दास म-
मम्य प्रमृताम मम्य हों ॥ ३९ ॥ त्रिक व म
मम्य प्रमृताम रिद्रि मम्य मम्य पर्व मम्य
मम्य प्रमृताम रिद्रि मम्य मम्य मम्य हों ॥ ४० ॥

विप्रो मुंस्त्रं प्रह्न च यस्य गुह्यं
राजस्य असीद् मुञ्जपार्वलं च ।

ऊर्वोर्विहाजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रा

प्रसीदतां न स महाविभूतिः ॥४१॥

लोभोऽधरात् प्रातिरुपर्यभूषु घृति

नन्त पञ्चन्य स्पर्धेन काम ।

मुवायमः परमभवस्तु काल

प्रसीदतां न स महाविभूति ॥४२॥

द्रव्यं वय कर्म गुणाविशेषं

ययोगमायाविरहितान्वदति ।

यद् दुर्विभाष्यं प्रपृथापराधं

प्रसीदतां न स महाविभूति ॥४३॥

नमाऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये

स्वागन्धलाभप्रतिपूरिता मने ।

गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभि

नं सञ्जमानस्य नभस्यदूतये ॥४४॥

स त्वं ना दर्शयस्मानमस्तत्करणगोचरम् ।

प्रपन्नानां दिदृक्षुणां सस्मितं त मुत्साम्बुजम् ॥४५॥

तैस्तैः स्वेष्टावृत्तं रूपं काले काले स्वर्गविभो ।

कर्म दुर्विपई यन्नो भगवांस्तत् करोषि हि ॥४६॥

द्वेष्टभूयस्वसाराणि कर्माणि विफलानि वा ।

देहिनां विपयार्तानां न सर्वैषावर्षितं त्वयि ॥४७॥

बिनके मुखसे शासन और अत्यन्त रहस्यमय वेद, मुनाओं-
से क्षत्रिय और भक्त, नङ्गाओंसे वैश्य और उनकी
वृत्ति—स्वापारकुशान्ता तथा घरणोंसे वेदवाद्य शूद्र और
उनकी सेवा आदि वृत्ति प्रकट हुई है—वे परम ऐश्वर्य
शाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ भिनके
अक्षरसे खेम और ओष्ठसे प्रीति, नासिकासे कान्ति,
स्पर्शसे पञ्चार्थोंका प्रिय काम, मौहोंसे घम और नेत्रके
रंभोंसे कलकली उत्पत्ति हुई है—वे परम ऐश्वर्यशाली
भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४२ ॥ पञ्चभूत, कल, कर्म,
सत्त्वादि गुण और जो कुछ विवेकी पुरुषोंके द्वारा
वाचित किये जानेयोग्य निवचनीय या अनिवचनीय विशेष
पदार्थ हैं, वे सब-के-सब भगवान्की योगमायासे ही बने
हैं—ऐसा शास्त्र कहते हैं । वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान्
हमपर प्रसन्न हों ॥ ४३ ॥ जो मायानिर्मित
गुणोंमें दर्शनादि वृत्तियोंके द्वारा आसक्त नहीं होते, जो
बापुके समस्त सदा-सर्वदा असङ्ग रहते हैं, बिनमें समस्त
शक्तियों शान्त हो गयी हैं—उन अपने आत्मनन्दके
आमसे परिपूर्ण आत्मस्वरूप भगवान्को हमारे नमस्कार
हैं ॥ ४४ ॥

प्रभो ! हम आपके शरणागत हैं और चाहते हैं कि
मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त आपका मुखकमल अपने
हृन्हीं नेत्रोंसे देखें । आप कृपा करके हमें उसका दर्शन
कराइये ॥ ४५ ॥ प्रभो ! आप समय-समयपर स्वयं ही
अपनी हृष्टसे अनेकों रूप धारण करते हैं और जो
काम हमारे लिये अत्यन्त कठिन होता है, उसे आप
सहजमें ही कर देते हैं । आप सर्वशक्तिमान् हैं, आपके
लिये हममें कौन-सी कठिनाई है ॥ ४६ ॥ किन्तोक
लोभमें पड़कर जो दहामिमानी दुःख भोग रहे हैं, उन्हें
कम करनेमें परिश्रम और क्लेश तो बहुत अधिक होता
है परन्तु पढ़ बहुत कम निश्चयता है । अविश्राममें तो
उमके निश्चयता ही हाथ लगती है । परन्तु जो कर्म
आपको समर्पित किये जाते हैं, उनके करनेके समय ही
परम सुख मिश्रता है । वे स्वयं परमरूप ही हैं ॥ ४७ ॥

नाम कर्मकृत्योऽपि विफलयेवरापित ।

कल्पते पुरुषस्यैव स आत्मा दमितो हि ॥४८॥

यथा हि स्कन्धशास्त्रानां तरोर्मूलावसेचनम् ।

एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥४९॥

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ।

निर्गुणाय गुणध्याय सत्त्वध्याय च साम्प्रतम् ॥५०॥

भागवान्को समर्पित किया हुआ छोटे-से-छोटे कर्मका
भी कभी विफल नहीं होता । क्योंकि भागवान् जीने
परम हितैषी, परम प्रियतम और आत्मा ही हैं ॥ ४८ ॥
जैसे वृक्षकी जड़को पानीसे सोंचना उसकी बड़ी-बड़ी
शाखाओं और छोटी-छोटी शाखियोंको भी सोंचना है,
वैसे ही सर्वात्मा भागवान्की आराधना सम्पूर्ण प्राणियोंकी
और अपनी भी आराधना है ॥ ४९ ॥ जो तीनों कर्म
और उससे परे भी एकत्र स्थित हैं, तिनकी भीजड़ों-
का रहस्य तर्क-वितर्कसे परे है, जो क्षय गुणोंसे परे
रहकर भी सब गुणोंके साम्य हैं तथा इस सम्य उत्प-
न्नगुणमें स्थित हैं—ऐसे आपको हम बार-बार नमस्कर
करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहत्स्यां संहितायामष्टमस्कन्धे

श्रुतमन्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

देयताओं और दैत्योंका मिश्रकर समुद्रमन्थनके स्त्रिये उद्योग करना

श्रीकृष्ण उवाच

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—प्रीतिवत् । जब देवताओं

एवं स्तुतः सुरगणैर्मगवान् हरिरीश्वर ।

तेषामाविरमूद् राजन्सहस्राकैश्चयद्युतिः ॥ १ ॥

तनैव महता सर्वे देवा प्रतिहतेक्षणा ।

नापश्यन्व दिशःशानिमात्मान च द्रुतो विमृम् ॥ २ ॥

विरिञ्चा भगवाच्छृणु सह क्षर्बेण तां तनुम् ।

स्वच्छा मरकतवर्णामां कञ्जगर्भाशृणुषणाम् ॥ ३ ॥

सप्तहमापदातेन ससत्त्वोदययासता ।

प्रमथन्चालमर्वाङ्गी सुमुग्धी सुन्दरभ्रुवम् ॥ ४ ॥

महामणिक्किरीटन चयूराभ्यां च भूषिताम् ।

कणाभरणनिभात्रयपालभीमुत्साम्पुजाम् ॥ ५ ॥

सर्वशक्तिमान् भागवान् श्रीहरिकी इस प्रकार श्रुति की,
तब वे उनके बीचमें ही प्रकट हो गये । उनके शरीरकी
प्रभा ऐसी थी, मानो हजारों सूर्य एक साथ ही उग गये
हों ॥ १ ॥ भागवान्की उस प्रभासे सभी देवदेवोंकी
आँखें चौंधिया गयीं । वे भागवान्को तो क्या—वायु, अग्नि,
दिशाई, पृथ्वी और अपने शरीरको भी न देख सके
॥ २ ॥ केवल भागवान् शङ्कर और कालाक्षीने उस प्र-
काश दर्शन किया । बड़ी ही सुन्दर झोंकी थी । मरकत-
मणि (फने) के समान कण्ठ सम्मिश्र शरीर, कमल-
भीतरी भागके समान सुवर्णार नेत्रोंमें माल-माल शरिर
और चमकते हुए सुन्दर रंगका रेशमी पीताम्बर ।
सर्वाङ्गसुन्दर शरीरक राम-रोमसे प्रसन्ना कड़ी पट्टी
थी । धनुषके समान टङ्गी भीड़ें और बड़ा ही सुन्दर
मुख । शिरपर महामणिमय किरीट और भूषणोंमें बा-
र-बार । कजनोंक तलकते हुए कुण्डलोंकी चमक पड़नेसे

कञ्जोक्तापवलयहारनूपुराभिधाम् ।

कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं विभ्रतीं वनमालिनीम् ॥ ६ ॥

सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्विरूपासिधाम् ।

तुष्टव देवप्रवरः सद्यर्षं पुरुषं परम् ।

सर्वामरगणैः सार्कं सर्वज्ञैरवनिं गतै ॥ ७ ॥

भक्तोपाय

अत्रावजन्मन्मिदिसयमाया-

गुणाय निर्वाणसुस्वार्णपाय ।

अथोरभिन्नेऽपरिगण्यधाम्ने

महाबुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥

रूपं तवैतत् पुरुषार्पमेत्वं

भेयोऽधिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।

योगेन धात सह नस्त्रिहोक्तान्

पद्मधाम्यमिन् तु इ विष्णुमूर्तौ ॥ ९ ॥

त्वय्यग्र आसीत् त्वमि मय्य आसीत्

त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ।

त्वमादिरन्तो वगतोऽस्य मय्य

घटस्य मृत्स्नेव पर परमात् ॥ १० ॥

त्व माययाऽऽत्माभयया स्वयैर्द

निमाय विश्वं तदनुमविष्ट ।

पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो

गुणभ्ययवेऽप्यगुण विपश्चितः ॥ ११ ॥

यथाग्निमेधस्यमूर्तं च गोषु

सुख्यभमम्पृथग्माने च वृषिम् ।

योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां

गुण्य पुदपा कथया वदन्ति ॥ १२ ॥

प ८ ८ १ ११३-

कसोख और भी सुन्दर हो उठते थे, जिससे सुखमन्त्र
झिल उठता था । कमरमें करघनीकी नदियों, हाथोंमें फलन,
गलेमें हार और चरणोंमें नूपुर शोभायमान थे । कक्ष
स्वच्छर लक्ष्मी और गलेमें कौस्तुभमणि तथा वनमाला
सुशोभित थी ॥ ३-६ ॥ भगवान्‌के निज अक्ष सुदर्शन
चक्र आदि मूर्तिमान् होकर ठमकरी सेवा कर रह थे ।
सभी देवताओंने पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ।
फिर सारे देवताओंको साथ छे शङ्करजी तथा ब्रह्माजी
परम पुरुष भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

ब्रह्माजीने कहा—जो जन्म, स्थिति और प्रकृतिसे
कोई सम्बन्ध नहीं रखते, जो प्राकृत गुणोंसे रहित एवं
मोक्षस्वरूप परमात्मन्दके महान् समुद्र हैं, जो सूक्ष्मसे भी
सूक्ष्म हैं और निनका स्वरूप अनन्त हैं—उन परम
ऐश्वर्यशाली प्रभुको हमभोग बार-बार नमस्कार करते
हैं ॥ ८ ॥ पुरुषोत्तम ! अपना कल्याण चाहनेवाले सावक
केदोक्त एवं पाञ्चराशोक्त विधिसे आपके इसी स्वरूपकी
उपासना करते हैं । मुझे भी रचनेवाले प्रभो ! आपके
इस विश्वमय स्वरूपमें मुझे समस्त देवगुणोंके सहित तीनों
लोक दिखायी दे रहे हैं ॥ ९ ॥ आपमें ही पहले यह
जगत् लीन था, मयमें भी यह आपमें ही स्थित है और
अन्तमें भी यह पुन आपमें ही लीन हो जायगा । आप
स्वयं कार्य-कारणसे परे परम स्वतन्त्र हैं । आप ही इस
जगत्क आदि, अन्त और मध्य हैं—वैसे ही जैसे
घड़ेका आदि, मध्य और अन्त मिही है ॥ १० ॥ आप
अपने ही आश्रय रहनेवाली अपनी मायासे इस संसारकी
रचना करते हैं और इसमें फिरसे प्रवेश करके अन्तर्यामी
के रूपमें विराजमान होते हैं । इसीस्विय त्रिकैत्री और
शाखल पुरुष वशी सावजानीसे अपने मनको एकत्र
करके इन गुणोंकी, विषयोंकी भीड़में भी आपके निर्गुण
स्वरूपका ही साक्षात्कार करते हैं ॥ ११ ॥ जैसे मनुष्य
युक्तिसे हवा सफाईसे आग, जैसे वपुतके समग्र दूध,
पृथ्वीसे अन्न तथा जल आर व्याघ्रासे अग्नी जानीविषय
प्राप्त कर लेते हैं—वैसे ही त्रिकैत्री पुरुष भी अपनी
शुद्ध बुद्धिसे मत्तियोग, ज्ञानयोग आदिक द्वारा आपको
इन विषयोंमें ही प्राप्त कर लेते हैं और अपनी अनुभूतिसे
अनुसार जायकर वर्गन भी करते हैं ॥ १२ ॥

त त्वां वय नाथ समुल्लिखान्
सरोजनाभातिचिरप्सितार्थम् ।

दृष्ट्वा गता निर्भूतिमद्य सर्वे

गञ्जा ठवार्ता इव गाङ्गमम्भ ॥१३॥

स त्व विभरत्तातिललाकपाला

वय मदधन्तव पादमूलम् ।

समागतास्त बहिरन्तरात्मन्

किं गान्धर्विष्ठाप्यमशेषसाक्षिणः ॥१४॥

अहं गिरिप्रथ सुरादयो वे

दृष्ट्वाद्याऽन्नेरिव फेणवस्ते ।

किं वा विदामेऽथ पृथग्भिभाता

विधत्स्व नो नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥१५॥

श्रीकृष्ण उवाच

पव विरिञ्चादिभिरीडितस्तव

विष्णाय तेषां हृदय सर्व्वम् ।

सगाद नीमूतगभीरया गिरा

पद्माञ्जलीन्सहृत्तमर्व्वकारकान् ॥१६॥

एक एवश्वरस्तस्मिन्पुण्यकार्ये सुरभ्रवर ।

विहृतुकामस्तानाह समुद्राभयनादिभि ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

इन्त प्रसन्नमहा शम्भा ह दत्ता मम भाषितम् ।

गृणुतापदिता सर्वे भयाव स्याद् यथासुरा ॥१८॥

याव तानवर्द्धतर्पेस्तावत् मधिविधीयताम् ।

कालनानुगृहीतस्तपारद् वा भय आत्मन ॥१९॥

अरयाऽपि हि गन्धया मति कार्यार्थगौरव ।

कमलनाम ! जिस प्रकार दत्तात्रिसे हुक्मसुता हुआ ।

गङ्गाजलसे बुझकी लम्बाकर सुख और शान्तिकर अनु

करने लगाता है, वैसे ही आपके आभिर्मात्रसे हम

परम सुखी और शांत हो गये हैं । स्वामी ! हमें

बहुत दिनोंसे आपके दशानोंके निचे क्षयन्त लक्षार्थ

हो रहे थे ॥ १३ ॥ आप ही हमारे बाहर और भीतर

के आत्म्य हैं । हम सब श्लेष्माज जिस उदरेयसे आप

चरणोंकी धरणमें आये हैं, उसे आप कृपा करके दू

कीजिये । आप सबके साक्षी हैं, कल ॥१४॥ किन्तु

हमलोग आपसे और क्या निवेदन करें ॥ १४ ॥ प्रभो

में, शङ्करजी, कन्य देवता, शक्ति और ऋषि आदि प्रजा

पति—सबके-सब अग्निसे जलमा हुई विनगारीकी तरह

आपके ही अंश हैं और अपनको आपसे जलमा मानते

हैं । ऐसी स्थितिमें प्रभो ! हमलोग समस्त ही क्या सकते

हैं । आराधन और देवताओंके कल्याणके लिये जो कुछ

करना आवश्यक हो, उसका आदेश आप ही दीजिये

और आप बैसा समय कर मी कीजिये ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णदेवकी कहत है—महा यदि देवताओंके

इस प्रकार स्तुति करके अपनी सारी इन्द्रियों रोक लें

और सब बड़ी सचवाणीके साथ हाम जोड़कर बड़े हो गये।

उनकी स्तुति सुनकर और उसी प्रकार उनके इन्द्रियों

वात जानकर मगधन् मेवके समस्त गम्भीर बलसे

बोले ॥ १६ ॥ परिशेष ! समस्त देवताओंके तब ब्रह्म

के एकमात्र स्वामी भगवान् बनेले ही उनका सब कर्म

करनेमें समर्थ थे, फिर श्री समुद्र-मन्थन आदि कीमार्थके

द्वारा विहार करनेकी इच्छासे वे देवताओंको सम्मोहित

करके इस प्रकार कहने लगे ॥ १७ ॥

श्रीभगवानसे कहा—महा, शङ्कर और देवताओं !

तुमलोग साक्षात् जान होकर भी समझ सुनो ! तुम्हारे

कल्याणका यही उपाय है ॥ १८ ॥ इस समय जगत्में

पर कान्ही कृपा है । इसलिये अबतक तुम्हारे अन्तर्ग

और उभयनिष्ठ समय नहीं आता, तबतक तुम स्वयं और

तनत्रोंके पाम जाकर उनसे सन्धि कर लो ॥ १९ ॥

तबताओं ' कोई शत्रु वश करना हा ता शत्रुओंसे भी

अहिमूपकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥२०॥

अमृतोत्पादने यत्नं क्रियतामविलम्बितम् ।

यस्य पीतस्य वै अन्तुर्मृत्युप्रस्तोऽमरो भवेत् ॥२१॥

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा क्षीरसृण्वलतौषधीः ।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तुंवासुकिम् ॥२२॥

सहायेन मया देवा निर्मन्थन्वमृतनिद्रिताः ।

बलेद्युभाजो भविष्यन्ति दैत्वा यूयं फलब्रह्मा ॥२३॥

यूयं तानुमोदन्व यदिच्छन्त्यसुराः सुग ।

न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥२४॥

न मेतन्मं फलकूटाद् विषाज्जलधिसम्भवात् ।

लोभः कस्येन वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥२५॥

श्रीमुक्त उवाच

इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ।

तेषामन्तर्दधे राबन्वच्छन्दर्गैरिन्द्रियैः ॥२६॥

अथ तस्मै भगवत् नमस्कृत्य पितामहः ।

मथश्च जगत्तु स्व स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥२७॥

इष्ट्वा रीनप्यस्य चाज्ञात्तु सोमान्स्वनायकान् ।

न्यपेक्षुर्दैत्यराट् स्नाक्यं सन्धिविग्रहकालवित् ॥२८॥

मेरु-मिश्रण कर लेना चाहिये । यह बात अश्रद्ध है कि काम बन ज्ञानपर उनके साथ सौंप और बृहेश्वर्य बर्तान कर सकते हैं* ॥ २० ॥ तुमन्त्रेण विना क्लिम्बके अव्युत निकलनेका प्रयत्न करो । उसे पी लेनेपर मरने बाजा प्राणी भी खपर हो जाता है ॥ २१ ॥ पहले क्षीरसागरमें सब प्रकारके घास, तिनके, लताएँ और ओषधियाँ डाल दो । फिर तुमन्त्रेण मन्दराचलकी मथानी और वासुकि नागाकी नेत्री बनकर मेरी सहायतासे समुद्र का मन्थन करो । अब आरम्भ और प्रमादका समय नहीं है । देवताओ ! विचार रखो—दैत्योको तो मित्रेण केवल धम और क्लेश, परन्तु फल मित्रेण तुम्हीं खोगोके ॥ २२ २३ ॥ देवताओ ! असुरक्षेण तुमसे जो-जो चाहें सब स्वीकार कर लो । क्षान्तिके सब काम बन जाते हैं, क्रोध करनेसे कुछ नहीं होना ॥ २४ ॥ पहले समुद्रसे कालकूट चिर निकलिया, उससे डरना नहीं । और किसी भी वस्तुके लिये कमी भी होम न करना । पहले तो किसी वस्तुकी कामना ही नहीं करनी चाहिये, परन्तु यदि कामना हो और वह पूरी न हो तो क्रोध तो करना ही नहीं चाहिये ॥ २५ ॥

श्रीपुरुषोत्तमजी कहते हैं—परीक्षित ! देवताओंको यह आदेश देकर पुरुषोत्तम भगवान् उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये । वे सवशक्तिमान् पथ परम स्वतन्त्र जो रहें । उनके चने जानेपर ब्रह्मा और शङ्करने फिरसे भगवान्की नमस्कार किया और वे अपने-अपने लोकोंको चले गये, तदनन्तर इन्द्रादि देवता राजा बलिके पास गये ॥ २७ ॥ देवताओंको विना अन्न-शक्क सामने आते देख दैत्य-सेनापतियोंके मनमें बड़ा लोभ हुआ । उन्होंने देवताओंको पकड़ लेना चाहा । परन्तु दैत्यराज बलि सन्धि और विरोधके अवसरको जाननेवाले एवं पथिव्य धर्मिसे सम्पन्न थे । उन्होंने दैत्योको ऐसा करनेसे रोक् दिया ॥ २८ ॥

१ मा पा—यत्न । २ मा पा—ब्रह्मोत्तमः । ३ मा पा—ब । ४ मा पा—नामः स्वपुत्र । ५ मा पा—मति ।

● किसी महावीर की पिछरीमें सौंप तो पहलेसे या ही संयोगवश उसमें एक चूड़ा भी न था । चूड़ेके मध्यमीन दोने-पर लौने उठे मेमसे धनकाया कि नुम शिखरीमें छेद कर दो फिर हम दोनों माग निष्कर्षते । पहले तो सौंपकी इस बातपर चूड़ेके निष्ठ न हुआ परन्तु पीछे उठने पिछरीमें छेद कर दिया । इस प्रकार काम बन जानेपर सौंप चूड़ेको निम्न गया और पिछरीसे निकल माग ।

ते वैरोचनिमासीन शुभं चासुरयूथपै ।

भिया परमया जुष्टं जितान्नेष्टपागमन् ॥२९॥

महेन्द्र फलस्पृहा वाचा सान्त्वयित्वा महामति ।

अभ्यभाषत तत् सर्वं सिद्धिर्षं पुरयोचमात् ॥३०॥

तदर्शोच्च दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ।

अम्बरोऽरिष्टनेमिष ये च त्रिपुरधासिन ॥३१॥

ततो देवासुरा कृत्वा संविद्धं कृतसौहृदाः ।

उद्यम परमं चक्रुर्मृतार्थे परन्तप ॥३२॥

ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाद्य दुर्मदाः ।

नदन्त उदधिं निन्धुः सक्ताः परिषबाहव ॥३३॥

हूरमारोहभ्रान्ताः छक्रुवैरोचनादयः ।

अपारयन्तस्तं वोढुं विषया विजडु पथि ॥३४॥

निपतन्त गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ।

चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥३५॥

तांस्तथा भग्नमनसा भग्नबाहुरुक्मन्धान् ।

विह्वाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वज ॥३६॥

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलासयामरदानवान् ।

इक्षुया जीवयामास निर्जरान् निर्घणान्यथा ॥३७॥

गिरि चारोप्य गरुडे हस्तेर्नकेन लीलया ।

आरुह्य प्रययावर्ध्निं सुरासुरगर्भैर्वृतः ॥३८॥

इसके बाद देवमालेग बलिके पास पहुँचे ।

बलिने तीनों लोकोंको जीत लिया था । वे समस्त

सम्पत्तियोंसे सेवित एवं असुर-सेनापतियोंसे सुरक्षित

होकर अपने राजसिंहासनपर बैठे हुए थे ॥२९॥

मुदिमान् इन्द्रन बड़ी मधुर वाणीसे सम्भाषते हुए राजा

बलिके से सब बातें कही, निमकी शिक्षा स्वयं मगवान्

उन्हें दी थी ॥ ३० ॥ वह बात दैत्यराज बलिके ज्ञेय

गयी । वहाँ बैठे हुए दूसरे सेनापति शम्बर, अलिनेमि

और त्रिपुरनिवासी असुरोंको भी यह बात बहुत अच्छी

लगी ॥ ३१ ॥ तब देवता और असुरोंने आपसमें सन्धि-

सम्पन्नीता करके मित्रता कर ली और परीक्षित । वे सब

मिलकर अमृतमन्थनके लिये पूर्ण तयारी करने लगे ॥३२॥

इसके बाद उन्होंने अपनी शक्तिके मन्दराक्षतको उत्सव

लिया और छच्छरते तथा गरजते हुए उसे समुद्रतटकी

ओर ले चले । उनकी मुजाएँ परिवर्तित हो गयीं । शरीरमें शक्ति थी और

अपने-अपने मन्त्रधर्म तो ब

ही ॥ ३३ ॥ परन्तु एक तो वह मन्दरपर्वत ही बहुत

मारी था और दूसरे उसे ले जाना भी बहुत दूर था ।

इससे इन्द्र, बलि आदि सब-के-सब हार गये । जब वे

किसी प्रकार भी मन्दराक्षतको जाने न ले जा सके,

तब निश्चय होकर उन्होंने उसे रास्तेमें ही पटक

दिया ॥ ३४ ॥ वह सोनेका पर्वत मन्दराक्षत बहा

मारी था । गिरते समय उसने बहुत-से देवता और

दामकोंको चकलान्तर कर डाला ॥ ३५ ॥

उन देवता और असुरोंके हाथ, कमर और कंधे टूट

ही गये थे, मन भी टूट गया । उनका उदास भाव

हुआ देख गरुडपर चढ़े हुए भगवान् सहसा वहाँ प्रकट

हो गये ॥ ३६ ॥ उन्होंने देख कि देवता और असुर

पर्वतके गिरनेसे घिस गये हैं । तब उन्होंने अपनी

अमृतमयी इक्षिके देवताओंको इस प्रकार जीवित कर

दिया, मानो उनके शरीरमें विन्मुख चोट ही न लगी

हो ॥ ३७ ॥ इसके बाद उन्होंने सेन्ही-सेन्ही एक

हाथसे उस पर्वतको उठाकर गरुडपर रख दिया और

स्वयं भी सवार हो गये । फिर देवता और असुरोंके

साथ उन्होंने समुद्रतटकी यात्रा की ॥ ३८ ॥

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात् सुपर्णः पततां वर ।
ययौ ब्रह्मन्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जित ॥ ३९ ॥

पक्षिराज भङ्गने समुद्रके तटपर पर्वतको उतार दिया । फिर
मगधान्के क्रिदा करनेपर गङ्गाजी बहोसे चले गये ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां सञ्ज्ञितायामष्टमस्कन्धेऽमृतमयने
मन्दराक्ष्यानर्पणं नाम पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

समुद्रमन्थनका आरम्भ और भगवान् वासुकि का विपदान
श्रीकृष्ण उवाच

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! देवता और

ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ।

परिवीय गिरौ तस्मिन् नेत्रमग्निं मुदान्विताः ॥ १ ॥

आरेभिर लुप्तयथा अमृताथ कुरुद्रह ।

हरि पुरस्ताच्चगृहे पूर्वं देहास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥

तन्नेच्छन् दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ।

न रुद्धीमो वयं पुच्छमहेरज्जममङ्गलम् ॥ ३ ॥

स्वाध्यायश्रुतसम्यक्ता प्रस्थाता अन्मकर्मभिः ।

इति तूष्णीं स्थितान्देव्यान् विलोक्य पुरुषोत्तम ।

सममानो विसृज्याम पुच्छं ब्रह्मा साधर ॥ ४ ॥

कृतस्थानविभागान्त एषं कश्यपनन्दना ।

ममन्यु परमायत्ता अमृताथ पयोनिभिम् ॥ ५ ॥

मन्थमानेऽर्णवे सोऽद्विगनाधारो ह्यपाऽविश्रुत् ।

ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गारवात् पाण्डूनन्दन ॥ ६ ॥

भसुरोंने नागराज वासुकिको यह कचन देकर कि समुद्र
मन्थनसे प्राप्त होनेवाले अमृतमें तुम्हाग मी हिस्सा रहेगा,
उन्हें भी सम्मिलित कर दिया । इसके बाद उन क्षेणोंने
वासुकि नागको कभीके समान मन्दराक्षरमें लपेटकर
मखीमौलि ठपन हो बड़े सस्ताह और आनन्दसे अमृत-
के लिये समुद्रमन्थन प्रारम्भ किया । उस समय पहले-
पहल अजित मगधान् वासुकिसे मुक्तकी ओर ल्या गये,
इसलिये देवता भी उधर ही आ छुटे ॥ १-२ ॥ परन्तु
मगधान्की यह चेष्टा दैत्यसेनापरियोंको परसंद न आयी ।
उन्होंने कहा कि पूँछ तो सौँकड़ा बहुत बड़ा है,
हम उसे नहीं पकड़ेंगे ॥ ३ ॥ हमने वेद-शास्त्रोंका सिधि-
पूर्वक अध्ययन किया है, ऊँचे बंशमें हमारा जन्म हुआ
है और वीरताके बड़े-बड़े काम हमने किये हैं । हम
देवताओंसे किस बातमें कम हैं ? यह कहकर वे लोग
गुस्साप एक ओर खड़े हो गये । उनकी यह मनोवृत्ति
देखकर मगधान्ने मुसकराकर वासुकिसे मुँह खोल दिया
और देवताओंके साथ उन्होंने पूँछ पकड़ ली ॥ ४ ॥
इस प्रकार अपना-अपना स्थान विधिग करके देवता
और असुर अप्रुत्पासिके लिये पूरी तैयारीसे समुद्रमन्थन
करने लगे ॥ ५ ॥

परीक्षित् ! जब समुद्रमन्थन होने लगा, तब बड़े-बड़े
भगवान् देवता और असुरोंके पत्र-पत्र चलनेपर भी आने
मारकी अधिकता और नीचे कीड़े आहार न होनेके
कारण मन्दराक्षर समुद्रमें डूबने लगे ॥ ६ ॥

त सुनिर्विण्णमनस परिम्लानमृतधियः ।

आसन् संपौरुषे नष्टे दैवेनाविषलीयता ॥ ७ ॥

विलोक्य विष्णोर्गुविधिं सदैवरा

दुरन्तवीर्योऽविविधाभिषधि ।

कृत्वा वपुः काञ्छपममृष महत्

प्रविश्य सोय गिरिमृगहार ॥ ८ ॥

तद्वत्पितृ वीर्य इलाचलं पुन

सद्वत्पिता निर्मपितुं सुरासुराः ।

दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन

प्रन्तारिणा द्वीप इषापरो महान् ॥ ९ ॥

सुरासुरन्दैर्बलवीर्यवपितं

परिभ्रमन्तं गिरिमृग पृष्ठतः ।

विभ्रत् तदसर्वतनमादिकञ्छपो

मेनञ्जकञ्चनमप्रमेयः ॥ १० ॥

तथासुरानाविषदसुरेण

रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ।

उदीपयन् देवगणांश्च विष्णु

दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥

उपसर्गेन्द्रं गिरिराजिबान्धवं

अकम्ब इस्तेन सहस्रबाहुः ।

तस्मां दिवि मल्लमवेन्द्रमृष्यै

रभिषुबन्धिः सुमनोऽमिष्टतः ॥ १२ ॥

उपसर्धमात्मनि गोत्रनेत्रयोः

परंश्च ते प्राविशता सरोधिताः ।

ममन्युरस्मिं तरसा मदोत्फटा

महात्रिणा द्योभितनकञ्चम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार अत्यन्त बागवान् दैवके द्वारा अरुना सब वि-
करणा मिठीमें मिरते देख उनका मन टूट गया । उस
मुँहपर उग्रासी छा गयी ॥ ७ ॥ उस समय भागवतने स्व
कि यह तो विप्रपञ्चकी कृतकृत है । इसलिये उन्होंने उनके
निवारणका उपाय सोचकर अत्यन्त विद्युत् एवं विवि-
काञ्छका रूप धारण किया और समुद्रके जलमें प्रवेश
करके मन्दराचलकी ऊपर उठ गया । भागवतकी
शक्ति अनन्त है । वे स्वयसहस्र हैं । उनके लिये वह
कौन-सी बली बात ही ॥ ८ ॥ देवता और असुरोंने
देखा कि मन्दराचल तो ऊपर उठ गया है, तब वे
पिरसे समुद्र-मन्यनके लिये उठ खड़े हुए । उस समय
भागवतने जम्बूद्वीपके समान एक लाख योजन फैली हुई
अपनी पीठपर मन्दराचलको धारण कर लम्बा था ॥ ९ ॥
परीक्षित । जब वह-वह देवता और असुरोंने अपने
बाहुओंसे मन्दराचलको प्रेरित किया, तब वह मन्यन-
की पीठपर धूमने लगा । अनन्त शक्तिशाली आदिकञ्च
भागवतको उस पर्वतका चकर लगाना ऐसा जान पड़ता
था, मानो कोई उनकी पीठ छुनवा रहा हो ॥ १० ॥
साथ ही समुद्र-मन्यन सम्पन्न करनेके लिये भागवतने
असुरोंमें उनकी शक्ति और कमजोर बढ़ाते हुए वपुःरूपसे
प्रवेश किया । वेसे ही उन्होंने देवताओंकी उत्सृष्टि
करते हुए उनमें देवराूपसे प्रवेश किया और वास्तुविताग-
में निद्राके रूपसे ॥ ११ ॥ इधर पर्वतके ऊपर इसी
पर्वतके समान बनकर सहस्रबाहु भागवत अपने हावों
से देवाकर स्थित हो गये । उस समय भागवतने स्व
बाहु, इन्द्र आदि उनकी स्तुति और उनके ऊपर पुष्पों
की वर्षा करने लगे ॥ १२ ॥ इस प्रकार भागवतने पर्वत-
के ऊपर उसको देवा रखनेवालेके रूपसे, नीचे उसके
आधार कञ्चपके रूपसे, देवता और असुरोंके समीप
उनकी शक्तिके रूपसे, उद्यतके रूपसे और कैरी
बने हुए वास्तुवितागमें निद्राके रूपसे—जिससे उसे सब
न हो—प्रवेश करके सब ओरसे सबकी शक्तिसम्पन्न
कर दिया । जब वे अपने लक्षके मद्दसे उमरत होकर
मन्दराचलके द्वारा वह बागसे समुद्रमन्यन करने लगे ।
उस समय समुद्र और उसमें रहनेवाले मार, मज्जी

अहीन्द्रसाहस्रकठोररक्षुस्त

भासाप्रिष्माहवर्षतोऽसुरा ।

पौलोमफालेयवलील्वलाद्यो

दशप्रिदग्धाः सरला इवाभक्नु ॥१४॥

देवाश्च तन्मृगसमिखाहवप्रभान्

धृजाम्बरसन्वरकञ्चुकाननान् ।

समन्ववर्षन्मगवद्वशा घना

वधु समुद्रोर्म्युपगूढवापवः ॥१५॥

मैम्यमानात् तथा मिन्धादेवासुरवरूपैः ।

यदा मुधा न जायेत निर्ममन्याजितः स्वयम् ॥१६॥

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविषु

न्यूभिर्भ्राजद्विललितकच स्रग्धरो रक्तनेत्र ।

जैश्रदौर्मिर्जगदभयवैर्दन्दशूकं गृहीत्वा

मयन् मया प्रविगिरिरिनाशभावायोवृष्टवाद्रिः ॥

निर्मम्यमानादुदघेरमूर्ध्विर्ध

महोत्सवर्णं हालहाहमप्रतः ।

सम्भ्रान्तमीनान्मकराहिकच्छपात्

विमिद्विपग्राहविमिज्जिलाकुलान् ॥१८॥

तदुग्रवेगं दिग्धि दिक्षुपर्यधो

विसर्पदुत्सर्पदसन्नमप्रति ।

भीता प्रजा द्रुष्टुग्न सेवरा

अरूपमाणा क्षरण सदाशिवम् ॥१९॥

विलोक्य त देवपरं त्रिलोक्या

भवाय दध्याभिमर्तं मुनानाशु ।

आदि जीव क्षुब्ध हो गये ॥ १२ ॥ नागराज वासुकिने हजारों कठोर नेत्र, मुख और आसोंसे जिसकी आभा निकलने लगी । उनके धूर्से पौलोम, फालेय, वनि, इत्येक आदि असुर निस्तेज हो गये । उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो दावानलसे झुलसे हुए सालूके पेड़ खड़े हों ॥ १४ ॥ देवता भी उससे न बच सके । वासुकिने आसुकी छपटसे उनका भी तेज प्रकाश पड़ गया । कच, माला, कचच एवं मुख धूमिल हो गये । उनकी यह दशा देखकर भगवान्की प्रेरणासे बादल देवताओंके ऊपर वर्षा करने लगे एवं वायु समुद्रकी तरङ्गोंका स्पर्श करके क्षीतलता और सुगन्धिका सन्धार करने लगी ॥ १५॥

इस प्रकार देवता और असुरोंके समुद्र-मन्थन करने पर भी जब अमृत न निकल्य, तब स्वयं अजित भगवान् समुद्र-मन्थन करने लगे ॥ १६ ॥ मेवके समान सौंफले शरीरपर सुनहल्य पीताम्बर, कर्णोंमें विजलीके समान चमकते हुए कुण्डल, सिरपर लहरते हुए घुँघराले बाव, नेत्रोंमें लाल-झल रेखाएँ और गलेमें बनमाव्य सुशोभित हो रही थी । सम्पूर्ण जगत्को अमयदान करनेवाले अपने विषमिजयी मुनदण्डोंसे वासुकिनागाको पकड़कर तथा कूर्मरूपसे पकड़कर धारणकर जब भगवान् मन्दराचलकी मथानीसे समुद्रमन्थन करने लगे, उस समय वे हूतरे पर्वतानेके समान बड़ ही सुन्दर छा रहे थे ॥ १७॥ जब अजित भगवान्ने इस प्रकार समुद्र-मन्थन किया, तब समुद्रमें बड़ी खलबली मच गयी । मछली, नागर, सौंफ और कसूर मयभीत होकर ऊपर आ गये और श्वर-उत्तर मागने लगे । निमि-निमिङ्गि आदि मछ, समुद्री हाथी और प्राइ व्याकुल ॥ गये । उड़ी समय पहल्येयहल हाकाहउ नामका अत्यन्त उग्र विष निकला ॥ १८ ॥ वह अत्यन्त उग्र विष दिशा-विनिर्दिष्ट, ऊपर-नीचे सर्वत्र उड़न और फैलने लगा । इस असहा जिससे बचसक कोइ उपाय भी तो न था । मयभीत होकर सम्पूर्ण प्रजा और प्रजापति किन्तीके द्वारा श्राग न भिन्नपर भगवान् सदा शिक्की क्षणमें गये ॥ १९ ॥ भगवान् शङ्कर सतीजीके साथ कैलास पकटपर विराजमान थे । बड़-बड़ ऋति-मुनि उनकी सेवा कर रहे थे । ५ वहाँ तीनों लोकोंके

आसीनमद्रात्रपवर्गहेतो

स्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेषुः ॥२०॥

प्रजापतय उचुः

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन ।

प्राहि नः शरणापन्नास्त्रैलोक्यमद्वहनात् विधात् ॥२१॥

त्वमेकः सर्वजगत् ईशरो बन्धमोक्षयाः ।

तं त्वामर्चन्ति ह्यललाः प्रपञ्चातिहरं गुरुम् ॥२२॥

गुणमय्यास्वस्त्यास्तसर्गास्त्यस्यप्यपान्विमो ।

भस्ते यदा स्वहृद् भूमन्त्रमविष्णुविषाभिधाम् ॥२३॥

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावाभावेन ।

नानाशक्तिभिरोभातस्त्वमात्मा अगदीश्वर ॥२४॥

त्वं सृष्ट्योनिर्जग्मदाविरात्मा

प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणसमावः ।

काल क्रतुः सत्यसृष्टं च धर्म

स्त्वय्यमरं यत् त्रिष्टुतामनन्ति ॥२५॥

अभिमतं तेऽखिलद्वेषतात्मा

सिद्धिं विदुर्लोकभवाद्भ्रमिपञ्चसम् ।

कालं गर्ति तेऽखिलदेवतात्मना

दिशश्च यणां रसन अलेखम् ॥२६॥

अभ्युत्थ्य और मोक्षक जिये तपस्सा कर रहे थे ।
प्रजापतियोंने उनकी दर्शन करके उनकी स्तुति करते
हुए उन्हें प्रणाम किया ॥ २० ॥

प्रजापतियोंने भगवान् शङ्करकी स्तुति की—
देवगार्थके आराध्यदेव महादेव । आप समस्त प्राणिकों
आत्मा और उनके जीवनदाता हैं । हममेग वाक्की
शरणमें आये हैं । श्रिलोककी भक्त करनेवाले इस छत्र
विषसे आप हमारी रक्षा करिये ॥ २१ ॥ सारे जगत्
को बँधने और मुक्त करनेमें एकमत्र आप ही ऊर्ध्व हैं ।
इसलिये निरर्थकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं ।
क्योंकि आप शरणागतकी पीडा नष्ट करनेवाले एवं
जगत्गुरु हैं ॥ २२ ॥ प्रभो ! अपनी गुणमयी शक्तियों
इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेके लिये
आप अनन्त, एकरस होनेपर भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव
आदि नाम धारण कर लेते हैं ॥ २३ ॥ आप सर्वज्ञात्मा
हैं । इसका कारण यह है कि आप परम वास्तव्य
महात्मा हैं । जितने भी देवता, मनुष्य, पशु, कीड़ी आदि
सर्प अथवा असर्प कराकर प्राणी हैं—उनको जीवन-
दान देनेवाले आप ही हैं । आपके अनिरिक्त सृष्टि की
और कुछ नहीं है । क्योंकि आप आत्मा हैं । अनेक
शक्तियोंके द्वारा आप ही जगत्स्वरूपमें भी प्रतीय हैं
॥ २४ ॥ क्योंकि आप ईश्वर हैं, सर्वसमर्थ हैं ॥ २५ ॥
समस्त जे—आपसे ही प्रकट हुए हैं । इसलिये आप समस्त
ज्ञानोंके मूलस्रोत सत सित ज्ञान हैं । आप ही वास्तवके
आदिकारण महत्तत्त्व और त्रिविध अहङ्कार हैं । एवं आप
ही प्राण, इन्द्रिय, पञ्च मन्त्रमूर्त तथा इन्द्राणि तन्त्रोंके
मिश्र-मिश्र स्वरूप और उनके मूल कारण हैं । आप
अप ही प्राणियोंकी बुद्धि और ज्ञान करनेवाले कर्ता हैं ।
उनका कल्याण करनेवाले यह हैं एवं सत्य और सदा
वाणी हैं । धर्म भी आपका ही स्वरूप है । आप ही
अ, उ, मू—इन तीन अक्षरोंसे मुक्त प्रणव हैं जपकर
त्रिगुणात्मिक प्रकृति हैं—ऐसा वेदवाणी महत्त्वा करते
हैं ॥ २५ ॥ सत्यवेदका अग्नि आपका मुखा है । शीमो
ज्योतिर्लोक अमृत्युय करनेवाले शङ्कर । यह पुरुष आपका
धारणकर्ता है । आप अविद्य देख्यरूप हैं । यह कर्ता आप-
की गति है, निरागै जान है और ब्रह्म रसानेन्द्रिय है ॥ २६ ॥

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नमस्वान

धर्म्यं यद्यपि जलं वा रेतः ।

पराश्वरात्माभयं तवात्मा

सोमो मनो घोरमगवश्छिस्तस्ते ॥२७॥

कृषिं समुद्रा गिरयोऽप्यसङ्गा

रोमाणि सर्वपथिनीरुधस्ते ।

छन्दांमि साक्षात् तव सप्त धातव

स्वामीमवात्मन् इदं सर्वधर्मः ॥२८॥

मृतानि पञ्चोपनिषदस्तवेष्ट

वैश्विस्वदयोत्तरमन्त्रवर्गः ।

यत् सञ्चिवाक्यं परमार्थतत्त्वं

द्वयं स्वयंन्योस्तिरवसितिस्ते ॥२९॥

छाया स्वधर्मोऽपि वैश्विगतो

नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमामि ।

सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेषा

छन्दांमयो द्वयं यद्यपिः पुगणः ॥३०॥

न त गिरित्राखिललोकपाल-

विरिञ्चयैकृष्टमुनेन्द्रगम्यम् ।

ज्यातिः परं यत्र रजस्तमस

सत्त्वं न यत् ब्रह्म निरस्तमेदम् ॥३१॥

कामाध्वरिपुरकालगराधनेक-

मृतबुद्धः धनपतः स्तुतये नै तत् ते ।

यस्त्वन्तकाल इदमात्मकस्तु खनय

पक्षिष्कुलिङ्गसिखया भसितं न वेद ॥३२॥

ये स्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तितारुद्रि

इन्द्र चरन्तमुनया तपसाभितप्तम् ।

आकाश मामि है, वायु पास है, सूर्य नेत्र हैं और जल धीर्य है । आपका आद्वार नीचे-ऊँचे सभी जीवोंका आश्रय है । चन्द्रमा मन है और प्रभो ! स्वर्ग आपका सिर है ॥ २७ ॥ वेदस्वरूप भगवन् । समुद्र आपकी कोख हैं । पर्वत ढ़िरीयों हैं । सब प्रकारकी ओषधियाँ और घास आपके रोम हैं । गायत्री आदि छन्द आपकी सतों वायु हैं और सभी प्रकारके धर्म आपके हृदय हैं ॥ २८ ॥ साम्नि ! सघोजातादि पौष उपनिषद् ही आपके तत्पुत्र, अवोर, सघोजात, कामदेव और ईशान नामक पौष मुख हैं । ढ़ाहीके पदच्छेदसे कइतीस फलात्फकम्भ निकले हैं । आप जब समस्त प्राणसे उपरत होकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं, तब वही स्थितिक्र नाम होता है 'शिव' । वास्तवमें वही स्वयंप्रकाश परमार्थतत्त्वं है ॥ २९ ॥ अवर्गकी दम्भ-छोम आदि तरङ्गमें आपकी छाय है जिससे विविध प्रकारकी सृष्टि होती है, ये सत्त्व, रज और तम—आपके तीन नेत्र हैं । प्रभो ! गायत्री आदि छन्दरूप सनातन वेद ही आपका चिन्तार है । क्योंकि आप ही सांख्य आदि समस्त शास्त्रोंके रूपमें स्थित हैं और उनके कर्त्तव्य भी हैं ॥ ३० ॥ माकन् ! आस्य परम श्रेष्ठिर्मय स्वरूप स्वयं ब्रह्म है उसमें न तो रजोगुण, तमोगुण एवं सत्त्वगुण है और न किसी प्रकारका मेदभाव ही । आपके उस स्वरूपकी सारे लोकमात्र—व्योक्त कि ब्रह्म, विष्णु और वैश्वानर इन्द्र भी नहीं जान सकते ॥ ३१ ॥ आपने कर्मत्रय—आपके यज्ञ त्रिपुरासुर और कच्छकूट विर (जिसका आप अमा-अमी अवश्य पी गायगे) और अनेक जोखोही असुरोंको नष्ट कर दिया है । परन्तु यह कहनेसे आपकी फेरे स्तुति नहीं होती । क्योंकि प्रलयके समय आपका बनाया हुआ यह विश्व आपकी ही मर्से निकली हुई आगकी बिजगारी एवं लपटसे जलकर भस्म हो जाता है और आप इस प्रकार प्यालमय रहते हैं कि आपका इसका पत्र ही नहीं बचना ॥ ३२ ॥ जीह्मुक्त आत्मायाम पुत्र अपने हृदयमें आपके गुण चरणोंका प्यान करते रहते हैं तथा आप स्वयं भी निरन्तर ज्ञान और तपस्यामें ही लीन रहते हैं । फिर भी मनीके माप रहते देखकर जो

कथन्त उग्रप्रसन्न निरतं क्षमयाने

ते मूढमूर्तिमविदस्तव हासललाः ॥३३॥

तत् तस्य ते सदसतोः परतः परस्य

नाञ्जः स्वरूपगमने प्रमथन्ति मूढान् ।

ब्रह्मादयः किमुत सत्त्वने वयं तु

तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

एतत् परं प्रपन्नमो न परं ते महेश्वर ।

मूढनाय हि लोकस्तव्यक्तिस्तव्यक्तकर्मणः ॥३५॥

भीतुक उवाच

तदीक्ष्य व्यसनं तांसां कृपया मुञ्चपीडितः ।

सर्वमृतसृष्ट्वा देव इदमाह सेती प्रियाम् ॥३६॥

शिव उवाच

अहो वस भवान्येतत् प्रजानां पथम वैशसम् ।

क्षीरादमपनोदत्तात् कालकूटादुपस्थितम् ॥३७॥

आतां प्राणपरीप्सतां विधेयमभय हि मे ।

एतावान्हि प्रभारथो यद् दीनपरिपालनम् ॥३८॥

प्राणै स्वै प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः ।

बह्वर्षेषु भूतेषु मोक्षित्वारममायया ॥३९॥

पुनः कृपयता भद्र मयिमा ग्रीयते हरि ।

ग्रीते हरौ भगवति ग्रीयेऽहं सचराचर ।

तप्तादिदं गरं क्षुजे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥४०॥

आपको आसक्त एवं स्मशानवासी होनेके कारण उस
अथवा निष्ठुर बतलाते हैं—वे मूर्ख आपकी क्षीमार्थ
यह सब मजा क्या जाने ! उनका वैसा कहना निर्दोष
मरा है ॥ ३३ ॥ इस कार्य और कारणरूप भाए
परे माया है और मायासे भी व्यथित परे आप हैं
इसलिये प्रभो ! आपके अनन्त स्वरूपका साक्षात् रूप
प्राप्त करनेमें सबसा ज्ञाता आदि भी समर्थ नहीं होते,
किर स्तुति तो कर ही कैसे सकते हैं । ऐसी अवस्थामें
उनके पुत्रोंके पुत्र इत्येव कह ही क्या सकते हैं ।
किर भी अपनी शक्तिके अनुसार हमने आपका कुछ
गुणगान किया है ॥ ३४ ॥ इसलिये तो केवल आपके
इसी क्षीणविहारी रूपको देख रहे हैं । आपके पर
स्वरूपको हम नहीं जानते । मनेकर । यद्यपि आपकी
कीर्ति अत्यन्त है, किर भी संसारका कल्याण करने
लिये आप व्यक्तरूपसे भी रहते हैं ॥ ३५ ॥

भीतुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! प्रजापति जब
साक्षर देखकर समस्त प्राणियोंके अकारण बन्धु देखि-
देख भगवान् शाङ्कर कदमों कृपाकर बड़ी व्याहरी ।
उन्होंने अपनी प्रिया सतीसे यह बात कही ॥ ३६ ॥
शिवाजीने कहा—देवि ! यह बड़े स्नेहकी बात है ।
वेसो तो सही, समस्त-मनसे निकले हुए बलकूट कि-
के कारण प्रजापर किस्सा बड़ा हुआ था पता है ॥ ३७ ॥
ये बेचारे किस्ती प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षा करना कहते
हैं । इस समय मेरा यह कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर
दूँ । जिनके पास शक्ति-सामर्थ्य है, उनके जीवनकी
सफरता इसीमें है कि वे दीन-दुखियोंकी रक्षा करें ॥ ३८ ॥
सज्जन पुरुष अपने क्षणभङ्गुर प्राणोंकी बलि दकर भी
दूसर प्राणियोंके प्राणकी रक्षा करते हैं । कल्याण ।
अपने ही मोहकी मायामें कैसकर संसारके प्राणी मोहित
हो रहे हैं और एक दूसरेसे बैरकी गूँठ बाँध बैठे हैं ॥ ३९ ॥
उनके ऊपर जो कृपा कर रहा है, उसपर सर्वथा भगवान्
श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं और जब भगवान् प्रसन्न हो
जाते हैं, तब चराचर जगत्के सब में भी प्रसन्न हो
जात हैं । इसलिये अभी-अभी मैं इस निरर्थके श्लोक
कहता हूँ, जिससे मेरी प्रजापति कल्याण हो ॥ ४० ॥

१ मा पा—कृपय उग्रप्रसन्न निर । २ मा पा—भूतमूर्ति । ३ मा पा—प्राणमो । ४ मा

पा—तेज । ५ मा पा—प्राणो ज्ञाय । ६ मा पा—क्षीणित चराचरम् ।

श्रीशुक उवाच

एषमामन्त्र्य भगवान्मवानीं विश्वभावनः ।

तत् वर्षं जग्धुमारेमं प्रभावहान्वयोदत् ॥४१॥

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहल विषम् ।

अमक्षयन्महादेवः कुपया भूतभावनः ॥४२॥

वस्त्राणि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकर्मण ।

यश्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विमूषणम् ॥४३॥

तप्यन्ते लोमतापेन साधव प्रायश्चो जनाः ।

परमाराधनं तद्धि पुरुषस्यासिद्धात्मनः ॥४४॥

निश्चम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य भीद्वपः ।

प्रवा दाहापयी ब्रह्मा वैकुण्ठस्य दुर्धसिरे ॥४५॥

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत् किञ्चिन्नृगृहुः स तत् ।

इमिकाहिषिपौषयो बन्धुशुक्राश्च येऽपरे ॥४६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—विश्वके जीवनदाता भगवान्

शङ्कर इस प्रकार सती देखीसे प्रस्ताव करके उस विषको खानेके लिये तैयार हो गये । देखी तो उनका प्रमाण जानती ही थी, उन्होंने हृन्त्यसे इस बातका अनुमोदन किया ॥ ४१ ॥ भगवान् शङ्कर बड़े वृषाक्ष हैं । उनकी शक्तिसे समस्त प्राणी जीवित रहते हैं । उन्होंने उस तीक्ष्ण हालाहल विषको अपनी हथेलीपर ठाठाया और मक्षण कर गये ॥ ४२ ॥ वह विष अत्यन्त पाप—मल था । उसने शङ्करजीपर भी अपना प्रमाण प्रकट कर दिया, उससे उनका कण्ठ नीखा पड़ गया, परन्तु वह तो प्रयास करपाण करनेवाले भगवान् शङ्करके लिये मूषणरूप हो गया ॥ ४३ ॥ परोपकारी सज्जन प्रायः प्रयास दुःख टारनेके लिये क्षय दुःख सेवा ही करते हैं । परन्तु यह दुःख नहीं है, वह तो सबके हृदयमें निराश्रय भगवान्की परम आराधना है ॥ ४४ ॥

वेदाधिदेव भगवान् शङ्कर सबकी कर्मना पूर्ण करने वाले हैं । उनका यह कल्याणकारी अमृत कर्म सुनकर सम्पूर्ण ब्रह्मा, दक्षकन्या सती, शङ्खनी और क्षय विष्णु-भगवान् भी उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ जिस समय भगवान् शङ्कर विरपाण कर रहे थे, उस समय उनके हाथसे पोवा-सा विष टपक पड़ा था । उसे विष्णु, सौप तथा अन्य विभिन्न जीवोंने एवं विदेही औरविजयेने मक्षण कर लिया ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंसा संहितायामष्टमस्कन्धेऽमृतमयने

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

समुद्रमे प्रसृतका प्रकट होना और भगवान्का मोहिनी बधत्तार ग्रहण करना

श्रीशुक उवाच

पीत गर वृषाङ्गण प्रीताम्बेऽमरगन्धवाः ।

सप्तपुस्तगमा मिधु इविर्धानी तताऽभयत् ॥ १ ॥

तामग्निहोत्रीमृषया अगृह्यैक्षयादिनः ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार जब भगवान्

शङ्करने विष पी लिया, तब दक्षता और अमरुणोंको वरदा प्रमन्नता हुई । वे फिर नये उष्णाहमे समुद्र मयने लगे । तब समुद्रमे कामयसु प्रकट हुए ॥ १ ॥ वह अग्निहोत्र की मायणी उत्पन्न करनेवाली था । इसलिये प्रदत्तकतव

यस्य देवमानस मेध्याय इषिये नृप ॥ २ ॥

तत उच्चै भवा नाम इषोऽयूषान्त्रपाण्डुरः ।

तस्मिन्वलि स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईशाधिष्ठया ॥ ३ ॥

तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो त्रिनिर्गतः ।

दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्दर्हरभगवतो महिम् ॥ ४ ॥

कौस्तुभाख्यममृदु रत्नं यथारागो महोदधे ।

तस्मिन्हरि स्पृहां चक्रे वयोऽलङ्कुरणे मयौ ॥ ५ ॥

ततोऽभवत् पारिजातः सुरलोकविभूषणम् ।

पूर्यत्ययिनो योऽयैः क्षमद्भुवि यथा भवान् ॥ ६ ॥

तवभास्वरसो ब्राता निर्ऋकण्यः सुवाससः ।

रमण्यः स्वर्गिणां यद्गुणतिलीतावलोकनैः ॥ ७ ॥

तवमाविरभूत् साध्याच्छ्री रमा भगवत्परा ।

रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विभुत् सौदामनी यथा ॥ ८ ॥

तस्यां चन्द्रः स्पृहां सर्वे समुरासुरमानवाः ।

रूपौदार्यरयोवर्गमहिमाधिष्ठयेत्तसः ॥ ९ ॥

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ।

भूतिमत्यः सत्तिष्ठष्टा हेमकुम्भार्जलं धुचि ॥ १० ॥

भ्रात्रिपेधनिका भूमिगाहत् सकलौषधी ।

गारः पञ्च परिश्राणि वसन्ता मधुमाधवौ ॥ ११ ॥

पृथग्मः कन्तरपाञ्चरभियेकं यथाविधि ।

अगुमद्राणि गधवा नग्धध ननुतुर्जगु ॥ १२ ॥

मया मृद्गपणवमुग्जाजकगामुवान् ।

पहुँचानेवाले यहके लिये उपयोगी पत्रित्री श्री, दृष्ट करि

प्राप्त करनेके लिये प्रज्ञावादी अधिपतिने उसे प्छन किया । २।

उसके बाद उच्चै भवा नामका भोका निवृत्ता ।

चन्द्रमाकं समान ऐतन्मण्य या । बलिने उसे छेनेही

इच्छा प्रकट की । इन्द्रने उसे नहीं चहा, क्योंकि

भगवान्ने उन्हें पक्षसे ही सिखा रक्ता या ॥ १ ॥

तदमन्तर ऐरावत नामका छेष्ट हाथी निकला । उससे

बड़े-बड़े वार दौत थे, जो उच्छ्वस्वर्ण कौस्तुबी यामसे

भी मान करते थे ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् कौस्तुभ नामका पथरा-

मणि समुद्रसे निकली । उस मणिको अपने हृत्पर

धारण करनेके लिये अजित मन्वान्ने लेना चाहा ॥ ५ ॥

परीक्षित । इसके बाद खगलोककी शोभा बढ़नेका

कल्प दृष्ट निकला । वह पञ्चवक्त्र ईश्वर उनसे

इच्छित वस्तु देख कर जैसे ही पूर्ण करवा रहा है, जैसे

पृथ्वीपर हम सबकी इच्छाएँ पूर्ण करते हो ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् अन्तरर्ष प्रकट हुई । वे सुन्दर बालसे सुसज्जित

पक्ष गलेमें खर्ण-हार पहने हुए थीं । वे बाली मल्लार

चाल और क्रियासमरी कितवनसे देवताओंको सुष्ट

पहुँचानेवाली हुई ॥ ७ ॥ इसके बाद शोभकी पूर्ण

स्वय भगवती कम्पदीक्षी प्रकट हुई । वे मन्वान्नी

नित्यशक्ति हैं । उनकी विजयके समान कमनीय पदसे

निशार्थ जगमगा उठी ॥ ८ ॥ उनके सौन्दर्य, जीवन,

यौवन, रूप-रंग और महिमासे सबका चित्त स्थिर गया ।

देवता, असुर, मनुष्य—सभीने कहा कि ये हमने कितने

आर्य ॥ ९ ॥ आप इन्द्र बनने हाथों उनके बैठनेके

लिये बड़ा विशिष्ट आसन ले आये । छेष्ट मणिको

गुर्निमान् होकर उनके आदिदेवके लिये सोनेके बर्तन

मर-मरकर पवित्र जल छ म किया ॥ १० ॥ पृथ्वीने

अभियन्तके योग्य सब औषधियाँ दी । यैरोंने पञ्चम्य

और वसन्त ऋतुने वीज वशास्त्रमें होनेवाले सब छेष्ट-छेष्ट

वपस्त्रिण कर लिये ॥ ११ ॥ हम सामर्थ्यसे आर्योंने

विधिवत्क समका अभियन्त मन्त्रन किया । मन्त्रोंने

महामय मीनिकी साम छ म । नर्तकियों माच-माच

कर गान गयी ॥ १२ ॥ बाण्य मन्दे होकर धरा

म्यनादयच्छब्दवेणुवीणास्तुमुलनिखनान् ॥१३॥

ततोऽभिपिपिषुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ।

दिगिमाः पूर्णकलशैः स्रक्तवाक्चैर्द्विजेरितैः ॥१४॥

समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ।

वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तपट्टपदाम् ॥१५॥

भूपगानि विवित्राणि विम्वकर्मा प्रजापतिः ।

हारं सरस्वती पद्ममञ्जो नागाश्च कुण्डले ॥१६॥

ततः कृतसस्त्यपनोत्पलस्रजं

नदव्द्विरेकं परिपृष्ट पाणिना ।

वचाळ वक्त्रं सुकपोलकुण्डल

सम्रीढहारं दधती सुशोभनम् ॥१७॥

स्तनद्वयं चातिकुबोदरी सभं

निरन्तर चन्दनकुङ्कुमोषितम् ।

ततस्ततो मूपुरवन्गुण्डितै

र्क्षिर्गुण्डैः हेमल्लोहैः स्या वस्रैः ॥१८॥

बिलोकयन्ती निरवधमात्मन

पदं ध्रुवं चाभ्यभिचारिसङ्गुणम् ।

गर्भवयसासुरसिद्धचारण

त्रैविष्टेपादिषु नान्वबिन्दत ॥१९॥

पूतं तपा यसा न मन्थुनिर्जया

मानं कश्चित् तथान माह्वजितम् ।

कश्चिन्महात्ससा न कामनिग्रय

म इधर किं परतोऽप्यवाश्रयः ॥२०॥

१ मा पा — वरुण ।

डमरू, डोल, नगारे, मरसिंगे, छाह, वेणु और वीणा
बड़े जोरसे बजाने लगे ॥ १३ ॥ तब भगवती स्वामी

देवी हाथमें कमल लेकर सिंहासनपर विराजमान हो
गयीं । दिगन्तोंन जलसे भरे कन्धोंसे उनके ज्ञान

कराया । उस समय ब्राह्मणगण वेदमन्त्रोंका पाठ कर रहे
थे ॥ १४ ॥ समुद्रने पीले रेशमी वस्त्र उनके पहननेके

आये दिये । वरुणने ऐसी वैजयन्ती मातृ सम्पत्ति की,
जिसकी मधुमयसुगन्धसे भरी मतवाले हा रहे थे ॥ १५ ॥

प्रजापति विषकर्माने मौनि-मौनिके गहने, सरस्वतीने
मोनिपोंका हार, वचाजीने कमल और नागोंने दो कुण्डल

सम्पत्ति किये ॥ १६ ॥

इसके बाद स्वामीजी ब्राह्मणोंके स्वस्त्यस्त-पाठ कर
चुकनेपर अपने हाथमें कमलकी मान्य लेकर उसे सर्व-

गुणसम्पन्न पुरुषके गलेमें बाँधने चलीं । माताके आस-
पास उसकी सुगन्धसे मतवाले हुए भौरे गुंजार कर रहे

थे । उस समय स्वामीजीके मुखको शोभा अकगनीय हो
रही थी । सुन्दर कानोंपर कुण्डल छटक रहे थे ।

स्वामीजी कुछ उभाके साथ मन्द-मन्द मुसकता रही
थी ॥ १७ ॥ उनके कपर बहुत पतली थी । दोनों

स्तन बिल्कुल सटे हुए और सुन्दर थे । उनपर चन्दन
और केसरका लेप किया हुआ था । जब वे इधर-उधर

चलती थीं, तब उनके पापमेवसे बड़ी मधुर हनकार
निकलती थी । ऐसा ज्ञान पढ़ना था, मनो कोई सोनेकी

वस्त्रा इधर-उधर घूम-तिर रही है ॥ १८ ॥ वे चाहती थीं
कि मुझे कोई निर्दोश और समस्त उद्यम गुणोंसे नित्ययुक्त

अविनाशी पुरुष मिले तो मैं उसे करना आश्रय बनाऊँ,
वरण करूँ । परन्तु गर्भर्य, यक्ष, असुर, सिद्ध, चारण,

देवता आदिमें कोई भी ऐसा पुरुष उन्हें न
मिला ॥ १९ ॥ (ये मन-ही-मन सोचन करतीं कि)

कोई तरलही ता है, परन्तु उन्होंने प्रयोगपर विभय नहीं
प्राप्त की है । किसीमें ज्ञान तो है, परन्तु वे पूरे अनासक्त

नहीं हैं । कोई-या है तो वह महत्प्रशान्दी, परन्तु वे
कर्मफले नहीं जी पाके हैं । किन्हींमें ऐश्वर्य भी बहुत है

परन्तु वह ऐश्वर्य किन्तु कामकाज में उन्हें दूमाँक

धर्मः क्वचित् तत्र न भूतसौहृद

त्यागः क्वचित् तत्र न मुक्तिकारणम् ।

वीर्यं न पुंसाऽस्त्यज्यवेगनिष्कृत

न हि द्वितीया गुणसङ्गवर्जित ॥२१॥

क्वचिच्चिरायुर्न हि क्षीणमङ्गलं

क्वचित् तदप्यस्ति न वेद्यमायुष ।

ययोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गल

सुमङ्गलं कथं न काङ्क्षते हि माम् ॥२२॥

एव विमृश्याच्यमिचारिसवृणौ

र्वं निजैकार्थमवतयागुणाधयम् ।

वद्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षित

रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥२३॥

तस्मात्सदेष्ट उद्यती नवकञ्जमालां

माधन्मधुवदनरूपमिरोपघुष्टाम् ।

तस्या निधाय निष्कृतदुरः स्वधाम

सप्रौढहासविक्रममयननयाता ॥२४॥

तस्या भियस्त्रिजगताजनको जनन्या

वक्षानिराममकरात् परमं विमृतेः ।

धो म्या प्रजा सङ्क्षणननिगक्षणन

यय म्यितधयत माधिपतीरित्वाकान् ॥२५॥

गन्तुपद्वर्तमानां पान्त्रिणां पृथु मन ।

दयागुमानां सरीरां नृयतां गायतामभूत् ॥२६॥

प्रदत्तमन्त्रिणामृत्या सर्वे निश्चयमवाविष्टम् ।

न पा क्वचित् । मा पा अरुणम् ।

आश्रय लेना पकता है ॥ २० ॥ किन्हींमें धर्मोत्कर्ष है, परन्तु प्राणियोंके प्रति वे प्रेमका पूरा वर्तन नहीं करते । त्याग तो है, परन्तु केवल त्याग ही तो मुक्ति कारण नहीं है । किन्हीं-किन्हींमें वीरता तो उत्पन्न है, परन्तु वे भी कालके पंजेसे बाहर नहीं हैं । वयस ही पुत्र म्हात्माओंमें विषयासक्ति नहीं है, परन्तु वे तो निस्संशय-समाधिमें ही लब्धीन रहते हैं ॥ २१ ॥ किन्हीं-किन्हींमें आयु तो बहुत लंबी प्राप्त कर ली है, परन्तु उनका शीघ्र-मङ्गल भी मेरे योग्य नहीं है । किन्हींमें शीघ्र-मङ्गल भी है, परन्तु उनकी आयुका कुछ अंश नहीं । वयस ही किन्हींमें दोनों ही होते हैं, परन्तु वे अमङ्गल-क्षेत्रमें रहते हैं । रहे एक भगवान् निष्पु । उनमें सभी मङ्गलमय गुण निर्य निवास करते हैं, परन्तु वे मुझे चाहते ही नहीं ॥ २२ ॥

इस प्रकार सोच विचारकर अन्तमें श्रीलक्ष्मीजीने अपने चिर लगीष्ट भगवान्को ही वरके रूपमें चुना, क्योंकि उनके समस्त सगुण निर्य निवास करते हैं । प्राप्त गुण उनका स्पष्ट नहीं कर सकते और अस्मिता आदि सन्देह गुण उनको चाहा करते हैं; परन्तु वे किसी-सी भी वस्त्र नहीं रखते । बालाबने लक्ष्मीजीके एकताय आश्रय भगवान् ही हैं । इसीसे उन्होंने उनकीको वरण किया ॥ २३ ॥ लक्ष्मीजीने भगवान्को गलेमें बाँध सभीन कमरोंमें सुनार मान्य पहना दी, जिसके चारों ओर हुंकार-मुंकार मधुकर गुंजार कर रहे थे । इसके बाद लक्ष्मीजीने भगवान् और प्रेमपूर्ण चित्तनसे अपने निवासस्थान उनके वर स्वल्पा देवकी हुई व उनके पास ही लक्ष्मीजी गयी ॥ २४ ॥ जगद्विद्या भगवान्ने जगज्जननी, समस्त सम्पत्तिदेयी अविष्टात् रेखा श्रीलक्ष्मीजीको अपने वर स्वस्व ही सर्वत्र निवास करनेका स्थान दिया । लक्ष्मीजीने यही निवासस्थान हास्य अपनी करुणागरी विमलसे सीने में लगी, गायपति और अपनी प्यारी प्रजाकी अभिष्टि की ॥ २५ ॥ उस समय शत्रु, दुर्ग, वृद्ध आदि पात्र वजने लग । गन्धर्व अप्सराओंके साथ माधने-ने लगे । इससे वन मारी शत्रु दोन गया ॥ २६ ॥ इन्द्र आदिस आदि सब प्रजापति पुत्ररा बने हुए

मिषः फलिरभूतेषां तदर्थं सर्पचेतमाम् ।

अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥३८॥

देवाः स्व भागमर्हन्ति ये तुत्यायासहस्रम् ।

सप्रपाग इवैतस्मिन्नेव धर्मः सनातन ॥३९॥

इति स्वाप्रत्ययेभ्यः दैतया जातमत्सरा ।

दुर्बला प्रबलान् रात्रन् गृहीतकउष्मान् मुहु ॥४०॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीभारः ।

योपिद्वामनिर्देश्यं दधार परमाहुतम् ॥४१॥

प्रक्षणीयात्पलश्यामं सर्वाभयवसुन्दरम् ।

समानकर्गाभरणं सुप्रपोलोभसाननम् ॥४२॥

नवर्षावननिर्घृष्टस्तनभारकृजोदरम् ।

सुखामादानुरक्तालिप्तद्वारोद्विप्रलाचनम् ॥४३॥

विभ्रत् स्वकशभारणं मातासुतुल्लमलिकम् ।

सुप्रापकृष्टाभरणं सुसुजाहुदमूपितम् ॥४४॥

विराजन्वसवातनितम्बद्वारापदाभया ।

काञ्च्या प्रवित्तमद्वल्लुनलपरणतूरम् ॥४५॥

मर्माहमितनिश्चितभृगिलासावलाकन ।

दपपुषपपतंगु फामगुहीपयन मुहु ॥४६॥

परीश्रित ! अमृतलोचन दैत्योंने उसके लिये बास-
में लगवा खाया हो गया । सभी कहने लगे पहले मैं
पीऊँगा, पहले मैं, तुम नहीं, तुम नहीं ॥ ३८ ॥ उनमें
जो दुर्बल थे, वे उन बलवान् दैत्योंका विरोध करने लगे
किन्तु वे फलश हीनकर अपने हाथमें स्थिर थे ।
वे ईर्ष्यावश धर्मकी दुहाई देकर उनको रोकने और बर-
बार कहने लगे कि 'भाई ! देवताओंमें भी हमारे बहुत
ही परिश्रम किया है, उनको भी यन्त्रमागके समान स्वका
भाग मिलना ही चाहिये । यही सनातनधर्म है ॥ ३९ ॥ ४० ॥
इस प्रकार इधर दैत्योंने 'ए-ए, मैं-मैं' हो रही थी और
उधर सभी उपाय जाननवालोंके सामीप्यतुल्यशोभने
समानान्ते अल्पमत अवसुत और अकर्गनीय लीला सम-
धारण किया ॥ ४१ ॥ रापीरक्ष रंग मीलनकालके समान
स्यम एव देखने ही योग्य था । अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़े ही
आकर्षक थे । दोनों कान बगल और कमरमें
सुशोभित थे । सुन्दर कपोल, जैची नासिका और ल-
णीय मुख ॥ ४२ ॥ सभी जगतीके कारण सन उभरे
हुए थे और उनकी भारसे कमर फटकी हो गयी थी ।
मुखमें निश्चिन्ता हुई सुगन्धके प्रसस्ते गुणगुनाते हुए भरे
उतपर दूत पड़ते थे, जिससे नेत्रोंमें कुछ पवनादृश
भाव आ जाता था ॥ ४३ ॥ अपने सब कलशोंमें
उन्होंने किन्तु एक प्रचण्ड माल्य गुँथ रक्खी थी ।
सुन्दर गलमें कण्ठक आभूषण और सुन्दर मुखाभेमें
बाणभूषण सुशोभित थे ॥ ४४ ॥ इनके बालोंके नुर
मधुर शोभने रुनगुन-रुनगुन कर रहे थे और मण्ड-
साक्षीसंकेतके निश्चिन्ताहीनर हाथामागमान करती अली-
कन्दरी छटा छिन्न रही थी ॥ ४५ ॥ धानी साम-
मुपगुन, नाथनी हुई निट्टी भीई और त्रिपुष्पी
विनयनस मोहिनीरूपधारी भगवान् शैवसेनापति
चित्तमें बार-बार कथादीन करन मग ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराण परमेश्वर तद्विदात्मनः

भगवन्मयोक्तं नमोऽस्तु ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

मोहिनीरूपसे भगवान्‌के द्वारा अमृत पौटा आना

श्रीकृष्ण उवाच

श्रीकृष्णदेवजी कहते हैं—परीक्षित । असुर आपसके

तेऽन्योन्यताऽमुरा पाप हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः॥

सद्भाव और प्रेमको छोड़कर एक-दूसरेकी निन्दा कर रहे थे

क्षिपन्तो दस्युधमाण आपान्ती ददृशुःस्त्रियम् ॥ १ ॥

और आकृषी तब एक दूसरेके हाथसे अप्रतप्त पट्टा छीन

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नव वय ।

रहे थे । इसी बीचमें उन्होंने देखा कि एक बड़ी सुन्दरी ली

इति ते तामभिब्रुवन् पद्मचुम्बतादृच्छया ॥ २ ॥

उनकी ओर खड़ी आ रही है ॥ १ ॥ व मोचने लगे—

कस्य कञ्जपलाशादि कुतो वा किं बिभीषसि ।

‘यैसा अनुपम सौन्दर्य है । शरीरमेंसे कितनी अद्भुत छटा

कस्यापि वद वामारु मर्मन्वीर्य मर्नासि न ॥ ३ ॥

छिन्नक रही है । तनिक इसकी नयी उम्र नो देखो !’

न पर्य त्वामरैर्दत्तै सिद्धान्धर्वचारणं ।

यस, अथ वे आपसकी लगन-टौट मूँडकर उसके पास

नास्पृष्ट्वा जानीमो लोकशैव कुतो नृभि ॥ ४ ॥

दीव गये । उन व्योर्गोंने काममोहित होकर उससे पूछा—

नूनं त्वं विधिना मुञ्च प्रपितामि शरीरिणाम् ।

॥ २ ॥ ‘कमलनयनी । तुम क्यों हो ? कहाँसे आ रही

सर्वेन्द्रियमन-प्रीतिं विधातु सृष्टन किम् ॥ ५ ॥

हो ? क्या करना चाहती हो ? सुन्दरी । तुम किसी

सात्व ने स्पधमानातामेक्यस्तुनि भानिनि ।

कल्या हो ? तुम्हें देखकर हमारे मनमें खरबकी मच

शादीनां वदवराणां च विधत्स्व सुमप्यमे ॥ ६ ॥

गयी है ॥ ३ ॥ हम समझते हैं कि अन्नप देवता,

वयं कस्यपदायाता आतुर कुतर्पाहवा ।

देव, सिद्ध, गन्धर्व, चारण और लोकपालोंन नी तुम्हें

विभजस्व यथान्याय नैव मेता यथा भवेत् ॥ ७ ॥

स्पर्शक न क्या होगा । फिर मनुष्य ना तुम्हें कैसे

इत्थुपामन्त्रिता दंत्पमावावापिदुर्दरि ।

छ पाते ॥ ४ ॥ सुन्दरी । ब्रह्म ही विजिताने दया

प्रदस्य गतिपाप्मानिरीक्षमिदमवर्षात् ॥ ८ ॥

करके क्षीरधारियोंकी सन्तान इन्द्रियों एवं मनका वृत्त

वर्धं कस्यपदायादा पुंषन्त्यां मयि सद्गता ।

बतनेके लिये तुम्हें यहाँ भेजा है ॥ ५ ॥ मनिनी !

विधानं पण्डिता ज्ञात कामिनीषु न यानि हि ॥ ९ ॥

भेसे हमारा एक ही नातिके हैं । फिर भी हम सब

श्रीभगवान्‌के कदा—आरोग्यं धर्म्मं कल्याणं पुत्र

है और मैं हूँ पुत्र्या । आरोग्य सुन्दर नन्दका भय

१ सा च —मन्त्रादि । २ सा च —दण्डेभ्यः । ३ सा च —नर्या ।

है और मैं हूँ पुत्र्या । आरोग्य सुन्दर नन्दका भय

स्वै दा रहे हैं । शिरीषी पुत्र स्वप्नानामिनी प्रियेभ्यः

१ सा च —मन्त्रादि । २ सा च —दण्डेभ्यः । ३ सा च —नर्या ।

सालाहकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ।

ससमान्याहुरनित्यानि नृनं नृनं विधिन्वताम् ॥१०॥

श्रीकृष्ण उवाच

इति ते श्रेष्ठैस्तैस्तस्या आश्रयस्तमनसोऽसुराः ।

अहसुर्मविगम्भीरं ददुश्चासूतभाजनम् ॥११॥

तथा गृहीत्वास्तमभाजनं हरि

र्षमाय ईपत्तिस्तप्तोभया गिरा ।

अथम्युपेत क च साञ्जसाधु वा

कृतं मया वो विभजे सुधामिमां ॥१२॥

इत्थमिव्याहृतं तस्या आकर्ष्यसुरपुङ्गवाः ।

अप्रमत्तापिदस्तस्मात्तत् तथैत्यन्वर्मसत ॥१३॥

अथोपोष्य कृतज्ञाना इत्वा च इविपानतम् ।

दत्त्वा भाविप्रभूतम्यः कृतस्वस्त्ययनाद्विजैः ॥१४॥

अथोपजोषं वाचांसि परिषायाहृतानि ते ।

कृतेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्नेष्वभिमूपिताः ॥१५॥

प्रादुर्मुखेषूपविष्टेषु सूर्ये दिवितेषु च ।

श्रामोदितछात्रायां बुध्यायां मान्वादीपकैः ॥१६॥

तस्मां नरेन्द्र करभोरुख्यवृक्षल

योगीश्वरालसगतिर्मदविह्वलाक्षी ।

सा कृशती कनकनूपुरशिक्षितेन

कुम्भस्तनी कलशपाणिरथानिवश ॥१७॥

तां श्रीसखी कनककुण्डलचारुकर्ण

नासाकरालवदनां परदृष्टारूपां

कमी विभास नहीं करते ॥ ९ ॥ देखो । कुते और
भूमिधारिणी श्रियोक्ती मित्रता स्थायी नहीं होती । वे
दोनों ही सदा नये-नये शिकार ढूँढा करते हैं ॥ १० ॥

श्रीकृष्णदेवकी कहते हैं—परीक्षित । मोहिनीकी
परिहासमयी बाणीसे दैत्योंने मनमें और भी विश्वास हो
गया । उन लोगोंने रहस्यपूर्ण भावसे हँसकर अमृतका
कट्या मोहिनीके हाथमें दे दिया ॥ ११ ॥ मायासे
अमृतका कट्या धूपने हाथमें लेकर तनिक मुक्तकले
हुए मीठी बाणीसे कहा—मैं उचित या अनुचित जो
कुछ भी करूँ, वह सब यदि तुम्हेंगोंकी जीवन्त हो
तो मैं यह अमृत बाँट सकती हूँ ॥ १२ ॥ नये-नये
दैत्योंने मोहिनीकी यह मीठी बात सुनकर उसकी बाणी
नहीं समझी, इसलिये सबने एक सरसे कद दिव
श्रीकर है । इसका कारण यह था कि उन्हें मोहिनी-
के वास्तविक स्वरूपका पता नहीं था ॥ १३ ॥

इसके बाद एक दिनका उपवास करके सबने स्नान
किया । इसीपसे अग्निमें इक्षुन किया । गौ, गज
और समस्त प्राणियोंको वास्त-वात्, अन्न-व्यवहारिक पक्-
वोष्पदान दिया तथा ब्राह्मणोंसे स्वस्त्यम्न कराया ॥ १४ ॥
अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सबन नये-नये कद घात
किये और इसके बाद सुन्दर-सुन्दर कामूना करन
करके सबके-सब उन पुष्पासमोपर बैठ गये, निरक
आवाज हिसा पूरकी ओर था ॥ १५ ॥ अब देखत
और दैत्य दोनों ही धूपसे सुगन्धित, माखनों की
दीपकोंसे सबे-सुभाये मग्न मनमें पूर्वकी ओर सँ
करके बैठ गये, तब हाथमें अमृतका कट्या लेकर मोहिनी
सभागण्डमें आयी । वह एक बड़ी सुन्दर साड़ी पहनें
हुए थी । नितम्बोंके मारके करम यह धीरे-धीरे का
खी थी । जौबे-मदसे बिभ्रत हो रही थी । कट्यासे
समान स्तन और गन्धशाककी सूँठके समान जहनें
थीं । उसके खर्चनूपुर अपनी कमरसे सभामनमें
मुल्लित कर रहे थे ॥ १६ ॥ सुन्दर कमलमें सोन-
के कुण्डल थे और उत्कृष्ट मांसिक कानों तथा मुण्ड
बड़े ही सुन्दर थे । सब परदेका मगान् मोहिनीके
रूपमें ऐसे जान पड़ते थे जसो लक्ष्मीकी कीर्ति से

सवीर्य्य संमुमुहुरुत्सितवीर्य्येन

दबासुरा विगलितमनपङ्क्तिरन्ताम् ॥१८॥

असुराणां सुभादान सर्पाणामिव दुर्नयम् ।

मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदन्धुत ॥१९॥

कृत्वापित्वा पृथक् पङ्क्तोरुमयेषां अगत्यपि ।

तामापवेशणामास स्वेपु स्वेपु च पङ्क्तिषु ॥२०॥

दैत्यान्मृहीतकलशो वञ्चयन्नुपसञ्चरः ।

दूरम्पान् पाययामास जरामृत्युहरां सुभाम् ॥२१॥

ते पालयन्तः ममयमसुरा स्वकृतं नृप ।

तूष्णीमासन्कृतस्नेहा स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥२२॥

तस्यां कृत्वातिप्रणया प्रणयापायकातरा ।

यहुमानेन चापदा नासु किञ्चन विप्रियम् ॥२३॥

दबतिद्वप्रतिच्छन्न स्वभानुदैवसंमदि ।

प्रतिष्ठ माममविषण्द्राक्षाम्यां च वृषित ॥२४॥

चम्रेण धुरधारण जहार पिषत गिर ।

हरिर्मम कचपन्तु सुधवाप्राविताऽपतत ॥२५॥

गिरिम्पशरतां नातमत्रा प्रदमनोवन्धुपत ।

यस्तु परगि यत्राक्षारभिषावति ईरथा ॥२६॥

पातमायऽमृत दबमगवांन्नाकभावन ।

सखी वहाँ जा गयी हा । मोहिनीने अपनी मुसकानमरी
चितवनसे देवता और दैत्योंकी ओर देखो, तो वे सब
के-सब मोहित हो गये । उस समय उनके मनोपरसे
अच्छ कुछ खिसक गया था ॥ १८ ॥ भगवान्
मोहिनीरूपमें यह विचार किया कि असुर तो जन्मसे
ही मूर्ख स्वभाववाले हैं । इनको अमृत पिछाना मर्षोको
दूध पिलानेके समान बड़ा अन्याय होगा । इसलिये
उन्होंने असुरोंको अमृतमें भाग नहीं दिया ॥ १९ ॥
भगवान् देवता और असुरोंकी अलग-अलग पङ्क्तियाँ
बना दीं और फिर दोनोंको कतार बौधकत अपन अपने
दलमें बैठ दिया ॥ २० ॥ इसके बाद अमृतका फल
हाथमें लेकर भगवान् दैत्योंके पास चले गये । उन्हें
हाथ-माथ और कटाक्षसे मोहित करके दूर बैठ हुए
देवताओंके पास जा गये तथा उन्हें वह अमृत पिछान ल्यो,
जिसे वे स्नेहपूर्वक रूपसे और मृदुका नाश हा बता
है ॥ २१ ॥ परीक्षित । असुर अपनी की दूर मन्दि-
का पालन कर रहे थे । उनका स्नेह भी हा गया था
और वे स्त्रीसे प्रगल्भनेमें अपनी निन्दा भी सम्प्रति थे ।
इसलिये वे चुपचाप बैठे रहे ॥ २२ ॥ मोहिनीने उनका
अत्यन्त प्रेम हो गया था । वे कर रहे थे कि उससे
हमारा प्रेम-सम्बन्ध टूट न जाय । मोहिनीने भी पहले
उन छगोत्र बड़ा सम्मान किया था, इससे वे अत्यन्त भी
यौन गये थे । यही कारण है कि उन्होंने मोहिनीको
का अल्पि बात नहीं कही ॥ २३ ॥

त्रिम समय भगवान् देवताओंको अमृत दिया रह
थे, उसी समय राहु दैत्य देवताओंका वर मागकर उनके
बीचमें आ बैठा और देवताओंका साथ उमन भी मृत
पी लिया । परन्तु तत्पश्चात् यन्त्रमा और मृत्यु उमकी
पाठ गये ही ॥ २४ ॥ अमृत निगल-निदान ही
भगवान् अग्न तीर्थी धारणा चक्रसे उसका मिर पट
दाग । अमृतका संज्ञा न होनेसे उमका उद नीच
मिर गया ॥ २५ ॥ परन्तु मिर अमृत हा गला और
मोहिनीने उसे प्रद बना दिया । यही राहु परसे मिर
(दूर्जिमा और अमृतप्राप्त) के अन्तर्गत अमृत मने
लिय यन्त्रमा मदा मृत्यु अमृतान्दिय कर्म
है ॥ २६ ॥ अब देवताओंने अमृत पी लिया, सब मन्त्र

पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरि ॥२७॥

एष सुरासुरगणाः समवेक्षकाल-

हेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्प्या ।

तत्राभूतं सुरगणाः फलमप्राप्ताऽऽपु

र्यत्पादपङ्कजराजं भवणाद्य दैत्या ॥२८॥

अथ युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभि-

र्देहात्मनादिषु नृभिस्तदसत् पृथक्त्वात् ।

सैरेव सत् भवति यत् क्रियतेऽपृथक्त्वात्

सर्वस्य तद्व भवति मूलनिषेधन यत् ॥२९॥

सोकोको नीकमदान करनेवाले भगवान् न बने-बने देखके सामने ही मोहिनीरूप त्याग कर अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया ॥ २७ ॥ परीक्षित । देखो—देख और दैत्य दोनों ने एक ही समय एक स्थान पर एक प्रयोग तथा एक वस्तु के लिये एक विचार से एक ही कर्म किया था, परन्तु फलमें बड़ा भेद ही गया । उनमें से देवताओं ने बड़ी सुगमता से अपने परिक्रमका फल—अमृत प्राप्त कर लिया, क्योंकि उन्होंने भगवान् के चरणकमलों की राख आश्रय किया था । परन्तु उससे विमुख होने के कारण परिक्रम करने पर भी असुराण अमृत से वञ्चित ही रहे ॥ २८ ॥ मनुष्य अपने प्राण, धन, कर्म, मन और बाणी आदि से शरीर एवं पुत्र आदिके लिये जो कुछ करता है—वह व्यर्थ ही होता है; क्योंकि उसके पूर्वमें भेदबुद्धि बनी रहती है । परन्तु उन्हीं प्राण आदि वस्तुओं के द्वारा भगवान् के लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब मेर भाव से रहित होने के कारण अपने शरीर, पुत्र और समस्त संसार के लिये सफल हो जाता है । जैसे बूझी जड़में पानी देने से उसका तना, टहनियाँ और पत्ते—सब के-सब सिंच जाते हैं, वैसे ही भगवान् के लिये कर्म करने से वे सब के लिये हो जाते हैं ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्यं संहिताप्रमहमस्कन्धेऽमृतमयने

मयमोऽध्याय ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्याय

वेयासुर-सप्तम्य

श्रीमुनि उवाच

इति दानवर्दतेषा नाविन्दममृतं नृप ।

युक्ता कर्मणि यत्ताम्र वासुधपराङ्मुखा ॥ १ ॥

साधयिन्वामृतं राजन्यापयित्वा म्बकान्पुरान् ।

पश्यतां सवभूताना ययां गम्वाहन ॥ २ ॥

सपत्नानां परामृष्टिं दृष्ट्वा मे दितिनन्ना ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित । यपनि दानव और देवोंने बड़ी सावधानी से समुद्रमंथनकी चेष्टा की थी, फिर भी भगवान् से विमुख होने के कारण उन्हें अमृतकी प्राप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ राजन् । भगवान् ने समुद्रमें मयसर अमृत निराग्न और अपने निरग्र देवताओं को शिग दिया । फिर राख के देगते-देगते वे गम्वापर समार हुए और वहाँ से चले गये ॥ २ ॥ जब शिवोंने मृग्य नि हमारे शत्रुओंको तो यही समझा

अमृष्यमाणा उत्पतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥
 तव मुरगणा सर्वे मुधया पीतयैषिताः ।
 प्रतिसंयुयुधु शस्त्रैर्नारायणपदाभया ॥ ४ ॥
 तत्र दैवासुरो नाम रण परमदारुणः ।
 रोधस्युदन्वतो राजस्तुमुलो रोमहर्षण ॥ ५ ॥
 तत्रान्यान्य सपत्नास्त सरन्ध्रमनसो रणे ।
 समासाद्यासिभिर्बाणनिजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥
 शङ्खतूर्यमृदङ्गनां मेरोढमरिणां महान् ।
 हस्तयथरथपत्नीनां नदतां निखनोऽभवत् ॥ ७ ॥
 रथिनो रथिभिस्तत्र पतिभि सह पचय ।
 हया हयैरिभाषभै समसज्जन्त संयुगे ॥ ८ ॥
 उष्ट्रं कर्चिर्दिमं कश्चित्पर युयुधुः स्वरैः ।
 कश्चिद् गारुडगैश्चर्ध्वर्द्धीपिभिर्हरिभिर्मटा ॥ ९ ॥
 गृध्रं कङ्कर्वकंरन्ये श्यनभार्तन्तिमिहिलं ।
 शरभैर्महर्षिं खड्गगोशूर्पगवयारुणं ॥ १० ॥
 शिवाभिगन्तुभि कचित्कृत्तामं शृङ्गनरं ।
 पर्वतक कृष्णसार्वभर्मरन्य च सुध्वजं ॥ ११ ॥
 अन्य शम्भ्यलग्नं मर्च्यैर्विहृतविह्वलं ।
 सेनयाभया रानत्रिभिर्गुप्तऽग्रताऽग्रत ॥ १२ ॥
 निरघ्नज्वरं गजन्तातपर्यं सिधामलं ।
 महाधनैरसदृशैर्व्यज्जनशाचाधरं ॥ १३ ॥

मिठी, तब वे उनकी बढ़ती सह न सके । उन्होंने
 तुरंत अपने हथियार ठठाये और देवताओंपर घाया बोज
 दिया ॥ ३ ॥ श्वर देवताओंने एक तो अमृत पीकर
 विशेष शक्ति प्राप्त कर ली थी और दूसरे उन्हें म्हाबान्
 के धरणकर्मोंका आश्रय था ही । वस, वे भी अपने
 अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो दैत्योंसे भिड़ गये ॥ ४ ॥
 परीक्षित ! क्षीरसागरके तटपर बड़ा ही रोमाञ्चपट्टी और
 अत्यन्त मयङ्कर संग्राम हुआ । देवता और दैत्योंकी वह
 घमासान लड़ाई ही दैवासुर-संग्रामके नामसे कही
 जाती है ॥ ५ ॥ दोनों ही एक-दूसरेके प्रबल शत्रु हो
 रह थे, दोनों ही क्रोधसे भरे हुए थे । एक-दूसरेको
 आग्ने-सामन पाकर तलवार, बाण और अन्य अनेक
 नेक अस्त्र-शस्त्रोंसे परस्पर चोट पहुँचाने लगे ॥ ६ ॥
 उस समय छद्मार्थि शङ्ख, तुण्डी, मृदङ्ग, नगारे और डमरू
 बढ़ जोरसे बजने लगे; हाथियोंकी चिंगाह, घोड़ोंकी
 हिनहिनाहट, रथोंकी धरकाहट और पैदल सेनाकी
 चिन्गाहटसे यदा बोझाहट मच गयी ॥ ७ ॥ रणभूमि-
 में रथियोंके साथ रथी, पैदलके साथ पैदल, घुड़मवारोंके
 साथ घुड़सवार एवं हाथीवालोंके साथ हाथीवाल मिट
 गये ॥ ८ ॥ उनमेंसे कोई कोई धीर ऊँचोतर, हाथियोंपर
 और गरुडपर चढ़कर लड़ रहे थे ता कोई-कोई गौरमृग,
 माण, बाघ और भिड़ोर ॥ ९ ॥ कोई-कोई सैनिक
 निड, कट्ट, बगुल, बाज और भयस पक्षियोंपर चढ़ हुए
 थे ता बहुतसे निमिह्वित मच्छ, शरभ, भैंसे, गैंडे, घैल,
 नीग्रग और जङ्गली सोंहोर सधर थे ॥ १० ॥
 मिठी-मिठीने विपामिन, घूह, मिमिठ और मुरठोर
 ही मणी कर ली थी ता बहुतसे मनुष्य, वररे,
 कृष्णमर मृग हंस और सृजोर लड़ थे ॥ ११ ॥
 इस प्रकार जब स्वयं एवं अरुणमें रहनवास तथा
 जेगनने भयङ्कर नीररुने बहुतसे प्राणियोंपर चढ़कर
 लड़ लगे तबो सेनाओंमें अग-आग घुम गयी ॥ १२ ॥
 प्रीति । उममनर (ग-मिठी) पत-राजों, लड़िन
 मी - मन्त्र रत निर्मल लगे रननेमें उट हुए लगे

१. न. य. — नारायण मुरग । २. प्रायः न. य. में दृश्यमानां रजतां निरघ्नज्वरम्
 ३. न. य. में नारायण पदाभया । ४. न. य. में नारायण पदाभया । ५. न. य. में
 नारायण पदाभया । ६. न. य. में नारायण पदाभया । ७. न. य. में नारायण पदाभया । ८. न. य. में
 नारायण पदाभया । ९. न. य. में नारायण पदाभया । १०. न. य. में नारायण पदाभया । ११. न. य. में
 नारायण पदाभया । १२. न. य. में नारायण पदाभया । १३. न. य. में नारायण पदाभया ।

वातोद्धतोत्तरोष्णीपैरर्चिर्भिर्धर्मभूपयैः ।

स्फुरद्भिर्विशदे शङ्कैः घृतरां धर्षरश्मिभिः ॥१४॥

देवदानववीरगाणां ध्वस्मिन्मौ पाण्डुनन्दन ।

रेजत्वीरभालाभिर्यदिसामिव सागरौ ॥१५॥

वैरोचनो बलिः सम्भ्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ।

बालं बैहायमं नाम कामलां मयनिर्विवम् ॥१६॥

सर्वसाङ्गप्रामिहोपतं सर्वोच्चैर्मयं प्रभो ।

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥१७॥

आस्त्रितस्तद् विमानान्म्य सर्वानीक्यधिवैवृत ।

बालन्यहनच्छत्रान्मै रेजे चन्द्र इवोदये ॥१८॥

तस्यासन्मवर्ततो दानैर्युधानां पतयोऽसुराः ।

नमुषि शम्भरो बालो विप्रविचिरयोद्गुह्यः ॥१९॥

दिम्बा कालनाभोऽर्धं ग्रहेतिहैतिरिन्वलः ।

अङ्गनिर्मृतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचन ॥२०॥

इयग्रीवः शङ्खधिरा कपिलो मेघदुन्दुभिः ।

शारङ्गकण्ठकक्षुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कल ॥२१॥

अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिप ।

अन्ये पौलोमकालेभा निवातकक्षपादय ॥२२॥

अलम्बभागा मामस्य केयलं बलंगभागिन ।

गवे एत रणमुखे यदुशा निक्षिप्तमरा ॥२३॥

सिंहनादान्विमृशन्त शङ्खान्दध्मर्द्धारयान ।

एष सपमानुत्तिक्रान्तनभित् कृपितो भृगुम् ॥२४॥

गरायत दिग्हरिणमारुतं शुभ्रमे मराट् ।

बाले बहुमूल्य पक्षों, मोरपक्षों, चक्रे और बाघसे उभरे हुए दुपहों, पगडी, कलमी, कलच, आम्रपण तथा सुर्खे किरणोंसे ढकपस्त दम्भकते हुए उच्छकल शङ्खों एवं धीरे-धीरे पक्षियोंके कारण देखा और धमुरेकी सेनामें ऐसे शोभयमान हो रही थीं, मानो जम्भ-जन्तुओंसे मरे हुए दो महासागर स्थिर रहे हों ॥ १३ १५ ॥ परीक्षित । रणभूमिमें दैत्योंके सेनापति क्रोचनपुत्र बलि मय दामनके बनाये हुए वैहायस नामक किष्कनपर सवार हुए । वह विमान चलनेशालकी जहाँ इच्छा होती थी, वहाँ चला जाता था ॥ १६ ॥ युद्धकी समस्त सम्पत्ति उसमें घुसझिता थी । परीक्षित । वह इतना व्यचर्मन था कि कभी दिखलायी पड़ता तो कभी वास्तव हो जाता । वह इस समय कहाँ है—जब इस वस्त्रधनुषधारी भी नहीं किया जा सकता था, तब कञ्चन तो कैसे जा सकता था ॥ १७ ॥ उठी श्रेष्ठ किष्कन राजा बलि सवार थे । सभी बड़े-बड़े सेनापति उनके चारों ओरसे घेरे हुए थे । उनपर श्रेष्ठ चमर डुलये जा रहे थे और छत्र तथा शङ्ख था । उस समय बलि ऐसे जान पड़ते थे, जैसे उदयपञ्चमर चन्द्रमा ॥ १८ ॥ उनके चारों ओर अपने-अपने विमानोंपर सेनापति छोटी-छोटी दुर्गकर्मियोंके ज्ञानी नमुषि, शम्भर, धन, विचिषि, अयोमुख, दिम्बा, कञ्चनाम, प्रहेति, हेति, हस्त, शकुनि, भूतसन्ताप, वज्रधृ, त्रिपुलन, इयग्रीव, शङ्खधिर, कक्षिक, मेघदुन्दुभि, वारक, चम्राध, दध्म, निङ्गुल, जम्भ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, त्रिपुराधिपति मय, पौलोम कालेय और निवातकक्षक आदि स्थित थे ॥ १९-२२ ॥ ये सबके-सब समुद्रमन्यवमें सुप्रसिद्ध थे । परन्तु इन्हें अयुक्तका ध्यान नहीं मिला, केवल कल्याणी हाथ लगा था । इन सब व्यसुरोंने एक नहीं, अनङ्क बार युद्धमें देवगर्जकोंके पराजित किया था ॥ २३ ॥ इसलिये वे यह उल्लाहसे सिंहना करने हुए अपने घोर स्वरवाले शङ्ख बजाने लगे । इन्होंने देखा कि हमारे शत्रुओंका मन भद्दा रहा है, ये मनोमत्त हो रहे हैं, तब उन्हें बड़ा क्रोध आया ॥ २४ ॥ वे अपने बाह्य देहानामक विमानपर सवार हुए । उनके कर्तव्यसे मर-मर

यथा स्रवन्मस्रनममुदयाग्रिमहर्षतिः ॥२५॥

तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहप्वज्रायुधाः ।

लोकपाला सह गणैर्वाय्वधिरुणादय ॥२६॥

तेऽन्योन्यमभिसंसृत्स्य क्षिपन्तोर्मर्ममिर्मिथः ।

आह्वयन्तो विगन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वोधिनिः ॥२७॥

युयोध बलिर्निन्द्रेण तारकेण युशोऽस्यत ।

बभूवो हेतिनायुष्मन्मित्रो रावन्प्रहेतिना ॥२८॥

यमस्तु कालनामेन विश्वकर्मा मयेन वै ।

क्षम्वरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥२९॥

अपराक्षितेन नमुविरभिनी वृषपर्वा ।

स्यो बलिमुतैर्देवो बाणन्येष्टैः क्षतेन च ॥३०॥

राहुणा च तथा सोम पुलोन्नायुयुधेऽनिलः ।

निष्कुम्भश्कुम्भमोर्देवी भद्रकाली तराखिनी ॥३१॥

इषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः ।

इत्थल सह वाताभिर्भ्रमपुत्रैरिन्दम ॥३२॥

कामदेवेन दुर्मय उत्कलो मातृभिः सह ।

वृहस्पतिमोक्षनसा नरकेण क्षनैश्वरः ॥३३॥

मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ।

विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधकलैः सह ॥३४॥

त एवमाजाबसुराः सुरेन्द्रा

द्वन्द्वेन सहस्य च युष्ममाना ।

अन्योन्यमासाद्य निष्कण्टुरोक्षसा

जिगीषवस्तीक्ष्णधरासितोमरैः ॥३५॥

सुशुण्डिभिश्चक्रादटिपिण्डिः

शक्रयुयुक्तेः प्रासपरश्वधैरपि ।

निक्षिप्तमल्लैः परिवैः सधृष्टै

सभिन्दिपालैश्च शिराधि पिच्छिदुः ॥३६॥

रहा था । इसलिये इन्द्रकी ऐसी शोभा हुई, मानो
मगधान् सूर्य उदयाश्वत्थपर आरुह्य हों और उससे अनेकों
झरने बह रहे हों ॥ २५ ॥ इन्द्रके चारों ओर अपने-
अपने बाहन, ध्वजा और आयुधोंसे युक्त देवताएँ एवं
अपने-अपने गणोंके साथ वायु, अग्नि, वरुण आदि लोक-
पाल हो किये ॥ २६ ॥

दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हो गयीं । दो-
दोकी जोषियों कन्कावर वे श्रेण लड़ने लगे । कोई आगे
बढ़ रहा था, तो कोई नाम ले-लेकर कन्कावर रहा था ।
कोई-कोई मर्मभेदी वचनोंके द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वीको
पिक्कार रहा था ॥ २७ ॥ बलि इन्द्रसे, कामिकर्तिक
तारकासुरसे, वरुण हेतिसे और मित्र प्रहेतिसे भिन्न
गये ॥ २८ ॥ यमराज कालनामसे, विश्वकर्मा मयसे, क्षम्वर-
सुर त्वष्टसे तथा सवित्रा त्रिरोचनसे लड़ने लगे ॥ २९ ॥
नमुवि अपराक्षितसे, अश्विनीकुमार वृषपर्वासे तथा सूर्य-
देव बलिके बाण आदि सौ पुत्रोंसे युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥
राहुके साथ चन्द्रमा और पुलस्त्यके साथ वायुका युद्ध
हुआ । भद्रकाली देवी निष्कुम्भ और कुम्भपर आपन
पयीं ॥ ३१ ॥ परीक्षित । जम्भासुरसे महादेवबीकरी,
महिषासुरसे अग्निदेवकी और वातापि तथा इन्द्रकसे क्सा-
के पुत्र मरीचि आदिकी लड़ गयीं ॥ ३२ ॥ दुर्मयकी
कामदेवसे, उत्कलकी मातृगणोंसे, क्लृप्ताचार्यकी वृहस्पति-
से और नरकासुरकी क्षनैश्वरसे लड़ाई होने लगी ॥ ३३ ॥
निवातकवचोंके साथ मरुगण, कवचोंके साथ वसुगणा,
पौलोमोंके साथ विश्वेदेवगण तथा क्रोधकवचोंके साथ
रुद्रगणका संग्राम होने लगा ॥ ३४ ॥

इस प्रकार असुर और देवता रणभूमिमें द्वन्द्वयुद्ध
और सामूहिक आक्रमणद्वारा एक-दूसरेसे भिन्नकर
परस्पर विनश्यत् इन्द्रसे उत्सवार्हर्षक तीक्ष्ण बाण, तम्बा
और भाँखेंसे प्रहार करने लगे । वे तरङ्ग-तरङ्गसे युद्ध
कर रहे थे ॥ ३५ ॥ सुशुण्डि, शक्र, गदा, अश्वि,
पण्डित शक्ति, उष्मुक, प्रास, पशुपता, तम्बा, माले,
मुद्र, परिव और मिन्दिपालसे एक-दूसरेका सिर काटने

गवीस्तुरङ्गा सरथा पदावय

सारोहवाहा विविधा विसृष्टिताः ।

निकृत्तबाहुरुक्षिरोधराद्ध्यय-

नित्यं च नृणां तनुश्रमपणा ॥३७॥

तेषां पदापातरथाङ्गवृत्तिषा

दायोभनादुत्थण वस्थितमदा ।

रशुदिंश न्वं पुमणि च छादयन्

न्ययततामृक्प्रतिभि परिप्लुतात् ॥३८॥

शिवमिहृदकिरीटकुण्डलं

सुखमहर्षिः परिदृष्टयुग्मे ।

महामूर्ति साभरणं सदायुधै

ना प्रास्तवा भू करभारुभिर्बभौ ॥३९॥

कथन्वास्तत्र चात्पतु पतितम्यग्निगोऽग्निभि ।

उपवापुषाण्डराधावन्तो भट्टान् मृष ॥४०॥

सन्निभेन्द्र दशभिर्गिभिर्नरायतं नर ।

ननुमिंशतुग वाहानकनागाहमाच्छयन् ॥४१॥

म तानापतन गच्छन्मरुद्भिः प्राग्रिश्रम ।

विष्णुः निमित्तमन्मयासादयन्मिर ॥४७॥

तस्य कर्मणिम वाच्य इमं घनिमाद ।

तां नरन्ती मरन्तिभो ह्यमथायतिन्दगि । ४३ ।

नमः सर्वेभ्यो नमः प्राणं नमः प्राणायामाय ।

लगे ॥ ३६ ॥ उस समय अपने सवालोंके साथ हाथी,
 घोड़े, रथ आदि उनको प्रकरक बाहन और पैदल
 सेना विष-मिश्र होने लगी । किस्तीसी मुग़ल
 किस्तीकी जहाज़, किस्तीकी गरदन और किस्तीके पैर
 कट गये तो किस्ती-किस्तीकी जहाज़, घुलुर, बख़र और
 आभूषण ही दुकड़े-दुकड़ हो गये ॥ ३७ ॥ उनके
 चरणोंकी धमक और रथके पहियोंकी राहसे धूँधि सुन
 गयी । उस समय रणभूमिसे ऐसी प्रचण्ड धूल उठी कि
 उसने दिश, आकाश और सूर्यको भी ढक दिया ।
 परन्तु बोधी हों डेरमें खूनकी धारासे भूमि आन्दोलित
 हो गयी और कहाँ धूलका नाम भी न रहा ॥ ३८ ॥
 तदनन्तर कर्ज़ाका नैदान कटे हुए सिरोंसे भर गया ।
 किस्तीके मुकुट और कुण्डल गिर गये थे, तब किस्तीसी
 जालोंसे ध्येयकी मुद्रा प्रकट हो रही थी । किस्ती-किस्ती-
 ने अपने दाँतोंसे होंठ दबा रक्खा था । बहुमूर्ते
 आभूषणों और शकोंसे सुसज्जित लंबी-लंबी मुग़ल कटकर
 गिरी हुई थी और बहुलकोंकी मोड़ी-मोड़ी जॉय बटी हुए
 पड़ी थी ॥ इस प्रकार वह रणभूमि बड़ी भीम दौलत
 रही थी ॥ ३९ ॥ तब वहाँ बहुत-से धन अपने कटकर
 गिरे हुए सिरोंके नेत्रोंसे देखकर हाथोंमें हथियार उठा
 बीरोकी ओर दीड़न और उछलन लगे ॥ ४० ॥

राजा बजिन हंस बाग इन्द्रा, तीन उनके बहन
पुष्पनर आर पुष्पनके आर बाग-भूषणों और
मुष्प महापार—इस प्रपार कुन बद्राक बर
छाड़ ॥ ७१ ॥ इन्द्र देवा सि बजिन बाग हो इमे बर
पतना ही पादत हैं । तब उन्हीने बनी पुर्तरी उन्ही
ही सींगे भूत नामक बगोसे उतपा बगोके बूबन
पदन ही दैगने-दैनन बर गान ॥ ७२ ॥ इसी ब
प्रामनीय पुर्ती दानर बाग बजि और भी बजिन ।
उन्हीने पण पट्टा बड़ी गति ॥ ७३ ॥ उन्हीने
मपन बर बड़ी ची, उन्हीने । मित्र बनी ब
उन ब ब्रह्मदे ही से—इन्हीने बड़ी बड़ी ची सि ब
उम भी बर दान ॥ ७४ ॥ इसी ब ब्रह्मदे
उन्हीने बर दान ॥ ७५ ॥ इसी ब ब्रह्मदे

यद् यच्छस्त्र समाध्यात्सर्वं तदच्छिनवृ चिसु ॥४४॥

ससर्जाधामुरी मायामन्तर्धानगतोऽमुर ।

सत प्रादुरमृच्छैल सुरानीकोपरि प्रभो ॥४५॥

सतो निपेतुस्तरको दक्षमाना दवाग्निना ।

शिला सटश्चिस्त्राभृष्टूर्णमन्त्रो द्विपटलम् ॥४६॥

महोरगा समुत्पेतुर्दन्दशूकाः सङ्घमिकाः ।

सिंहस्याघ्रवराहाश्च मर्त्यन्तो मंहसावान् ॥४७॥

यातुधान्यश्च क्षतश्च शूलहस्ता विवासस ।

छिन्धि भिन्धीति वादिन्यस्तथा रक्षोमया प्रभो ॥४८॥

ततो महापना ज्योति गम्भीरपरुषसना ।

अङ्गरान्मुमुक्षुर्वातैराहताः स्तनयित्तव ॥४९॥

सुष्टो दैत्येन सुमहान्वह्नि श्वसनसारथिः ।

सर्ववर्तक इव सप्तुग्रो विबुधश्चित्रिनीमैधाक् ॥५०॥

ततः सङ्घद्र उद्रेल सर्वतः प्रस्पृहश्यत ।

प्रचण्डवातैरुद्धततरङ्गावर्तभीषण ॥५१॥

एवं दैत्यैर्महामायैरलम्यगतिभीषणै ।

सृज्यमानासु मायासु निपेक्षु सुरसैनिकः ॥५२॥

न सत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप ।

उठायी । परन्तु ये जो जा सक हायमें उठाते, इन्द्र उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डालते । इस हस्तलाभसे इन्द्रका ऐश्वर्य और भी चमक उठा ॥४४॥

परीक्षित ! अब इन्द्रकी पुर्तसि वषट्कार पहले तो बलि अन्तर्धान हो गये, फिर उन्होंने आसुरी मयाकी सृष्टि की । तुरंत ही देवताओंकी सेनाके ऊपर एक पर्वत प्रकट हुआ ॥४५॥ उस पर्वतसे दावाग्निसे जळते हुए हृष्ट और टोंकी-जैसी तीक्ष्ण धारवाले शिखरोंके साथ जुकीझी शिखरें गिरने लगीं । इससे देवताओंकी सेना घबहानाचूर होने लगी ॥४६॥ तत्पश्चात् बड़े-बड़े लौह, दम्पशूक, विष्णु और अन्य विपैले जीव उछल-उछलकर कान्धने और डंक मारने लगे । सिंह, बाघ और सूकर देव-सेनाके बड़े बड़े हाथियोंको फरबन लगे ॥४७॥ परीक्षित ! हाथोंमें शूल लिये 'मारो-कटो' इस प्रकार चिछाती हुई सैकड़ों नंग-धनुष राक्षसियों और राक्षस भी वहाँ प्रकट हो गये ॥४८॥ कुछ ही क्षण बाद आकाशमें बादलोंकी घनघोर घटाएँ मँडरने लगीं, उनके आपसमें टकरानेसे बड़ी गहरी और कटोर गर्जना होने लगी, बिजलियों चमकने लगीं और औंधीके हकजोरनेसे बादल अंगारोंकी बर्षा करने लगे ॥४९॥ दैत्यराज बहिन प्रकृषकी अग्निके समान बड़ी भयानक आगकी सृष्टि की । वह बात की-बातमें वायुकी सहायतासे देव-सेनाको जमाने लगी ॥५०॥ घोड़ी ही देखने ऐसा जान पड़ा कि प्रबल औंधीके कपेबोंसे समुद्रमें बड़ी-बड़ी लहरें और मग्ननक भँवर उठ रहे हैं और वह अपनी मर्यादा छोड़कर चारों ओरसे देवसेनाको घेरता हुआ लम्बा जा रहा है ॥५१॥ इस प्रकार जब उन भयानक असुरोंने बहुत बड़ी मायाकी सृष्टि की और साथ अपनी मायाके प्रभावसे छिप रहे—न दीसनेके कारण उनपर प्रहार भी नहीं किया जा सकता था, तब देवताओंके सैनिक बहुत दुखी हो गये ॥५२॥ परीक्षित ! इन्द्र आदि देवताओंने उनकी मायाका प्रती पार करके लिये बहुत कुछ सोचा-विचाह, परन्तु उन्हें

प्यात प्रादुरभूत् तत्र भगवान्विद्यभाषण ॥५३॥

तत सुपर्णासकृताह्विपल्लव
पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचन ।

अदृश्यताष्टायुधबाहुल्लस
क्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरोटकण्डलः ॥५४॥

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा
माया विनेशुर्महिना महीयत ।

स्वमो यथा हि प्रतिबोध आगते
हरिस्मृति सर्वविपद्भिर्मोक्षणम् ॥५५॥

दृष्ट्वा मूचे गरुडबाहमिभारिबाह
आविष्म शूलमहिनोदध कालनेमिः ।

तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद् गृहीत्वा
तेनाहनन्तृप सबाहमरिं त्र्यधीश्व ॥५६॥

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेतुर्ध
क्षत्रम् कृत्स्निरसावध माल्यवर्त्मम् ।

आहत्य तिम्रगादयाहनदण्डजन्त्र
तवच्छिरोऽम्बिनन्तर्नदत्ताऽरिणाऽऽद्य ॥५७॥

कुछ न सूझा । तब उन्होंने विषयके जीवन-रत्न माल्य
प्यान किया और प्यान करते ही वे वहीं प्रसट हो
गये ॥ ५३ ॥ बड़ी ही सुन्दर शौकीनी । गरुडके कंधे
उनके चरणकमल विराजमान थे । नवीन कमण्डो समान
बड़े ही कोमल नेत्र थे । पीताम्बर धारण किये हुए थे ।
आठ सुजायोंमें आठ आयुध, गलेमें कौस्तुभ मणि,
मस्तकपर अमृत्य मुकुट एवं कानोंमें कुण्डल इत्यम्मा थे
थे । देवताओंने अपने नेत्रोंसे भगवान्की इस छवि
दर्शन किया ॥ ५४ ॥ परम पुरुष परमात्मके प्रकट होते
ही उनके प्रभावसे असुरोंकी वह कपटमरी माया विध्वन
हो गयी—ठीक वैैसे ही, जैसे जग जानेपर समझी
वस्तुओंका पता नहीं चलता । ठीक ही है भगवान्की
स्मृति समस्त निपटियोंसे मुक्त कर देती है ॥ ५५ ॥
इसके बाद कालनेमि दैत्यने देखा कि कदाकि मंगलमें
गरुडबाहन भगवान् आ गये हैं, तब उसने अपन सिंह
बैठे-ही-बैठे बड़े बेगसे उनके ऊपर एक त्रिशूल चमका ।
गरुडके सिरपर खलनेवाला ही था कि खल-सेमें
भगवान्ने उसे पकड़ लिया और उसी स्थानसे उसके
चानेवाले कालनेमि दैत्य तथा उसके बाहनको मर
वाला ॥ ५६ ॥ माली और सुमाली—दो दैत्य बड़ बड़-
वान् थे, भगवान्ने पुरुषमें अपने चक्रसे उनके सिर भी
कट डाले और वे निर्जीव होकर गिर पड़े । तत्पश्चात्
भगवान्ने अपनी प्रषण्ड गदासे गरुडपर बड़ बेगसे
साथ प्रहार किया । परन्तु गर्जना करते हुए भगवान्के
प्रहार करते-करते ही भगवान् चक्रसे उनके सिरको
भी धड़से अलग कर दिया ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारम्पर्या मंडितापायप्रवक्तव्य

त्रैलोक्यमन्त्रादि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

श्यामपुर-मन्त्रादि नामानि

श्रीगुरु उवाच

अथा मुनिः प्रत्युपलब्धयेतम

परस्व पुनः परयानुकम्पया ।

श्रीगुरुपुत्राया कथनं हि—यत्प्रियम् । परम पुरुष

भगवान्की अर्द्धपुत्री कृपासे दशमार्जुनी वरदाणी जाती

रही, उनमें नवीन उसका हृदय सखार हो गया । परने

जन्ममूर्धं शक्रसमीरणादय

स्तांस्तान्गे यैरभिसंहता पुरा ॥ १ ॥

वैरोचनाय सरग्धो मगवान्पाकञ्जसनः ।

उदयच्छन्दयदा वज्र प्रवाहा हेति शुक्लशु ॥ २ ॥

वज्रपाभिस्रमाहेद तिरस्कृत्य पुरःस्वितय् ।

मनस्विन सुसम्पन्न विचरन्त महाभृजे ॥ ३ ॥

नटवन्मूढ मायामिमपिशान् नो विभीषसि ।

वित्वा बालान् निषद्वाङ्मान् नटो हरति तद्वनम् ॥ ४ ॥

आरुह्यन्ति मायामिरुस्तिस्तुप्तान्ति ये दिवम् ।

तान्दस्युन्निबुनोन्महान्पूर्वशास्त्र पदोदध ॥ ५ ॥

सोऽह दुर्मायिनस्तेऽह वज्रेण शतपर्वणा ।

शिरा हरिष्ये मन्दात्मन्वटम् ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥

बलित्वा

सह्यमे वतमानानां कालचोदितकर्मणाम् ।

कीर्तिर्वयाऽजयो मृत्यु सर्वेषां स्युरुक्तमात् ॥ ७ ॥

चदिदं कालरश्मि जना पश्यन्ति हरमः ।

न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र युयमपण्डिताः ॥ ८ ॥

न वय मन्यमानानामास्थान तत्र साधनम् ।

गिराय मोघुलोन्मानां गृह्णीमो मर्मसाधना ॥ ९ ॥

भीर्तुक उपाय

इत्यादिप्य विद्म वीरो नाराचैर्वीरमर्जेन ।

इन्द्र, वायु आदि देवगण रणभूमिमें भिन-भिन दैत्योंसे
आहत हुए थे, उन्होंने ऊपर अब ये पूरी शक्तिसे प्रहार
करने लगे ॥ १ ॥ परम ऐश्वर्यशाली इन्द्रे बल्लिसे लड़ते-
लड़ते जब उनपर मोड़ करके वज्र उठायो, तब सारी
प्रजामें हाहाकार मच गया ॥ २ ॥ बलि अब-शक्तसे
द्विसज्जित होकर बड़े उत्साहसे युद्ध-भूमिमें बड़ी निर्भयता
से बटकर विचर रहे थे । उनको अपने सामने ही देखकर
हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रे उनका तिरस्कर करके
कहा ॥ ३ ॥ 'मूर्ख ! जैसे न नर्कोकी बाँछें बाँचकर
अपने जाइसे उनका वन पेट लेता है, वैसे ही तू माया
की चालोंसे हमपर विनय प्राप्त करना चाहता है । तुझे
पता नहीं कि हमसे जगत्के सभी हैं, वह हमारा कुछ
नहीं किया सकता ॥ ४ ॥ जो मूर्ख मायाके द्वारा स्वर्ग-
पर अधिकार करना चाहते हैं और उसको लौकिक
स्वरूपके लोकमें भी बाक जमाना चाहते हैं—उन छुटेरे
मूर्खोंको मैं उनके पहले स्थानसे नी नीचे पटक देता
हूँ ॥ ५ ॥ नासम्भ ! तू मायाकी बड़ी-बड़ी चालें बली
हूँ । देख ! आज मैं अपने सौ चारकले वज्रसे तेरा शिर
धक्के लकड़ किये देता हूँ । तू अपने भाई-भ्रातृओंके
साथ जो कुछ कर सकता हो, करके देख ले ॥ ६ ॥

बल्लिने कहा—इन्द्र ! जो जगत्के काल्पादिकी प्रेरणा
से अपने कर्मके अनुसार युद्ध करते हैं—उन्हें जीत या
हार, यश या अपयश अथवा मृत्यु मिलती हैं ॥ ७ ॥
इसीमे क्षानीजन इस जगत्के कालके अधीन समझकर
न तो विषय होनेपर हसि फूँक उठते हैं और न तो
अपकीर्ति, हार अथवा मृत्युसे शोकके ही बशीमूत होते
हैं । तुम लोग इस तत्त्वसे जनभिन्न हो ॥ ८ ॥ तुम
लोग अपनेका जय-पराजय आदिकर करण—कर्ता मानते
हो, इसलिये महारमाओंकी दृष्टिसे तुम शोचनीय हो ।
हम तुम्हारे मर्मस्पर्शी वचनको स्वीकार ही नहीं करते,
कि हमें दुःख क्यों होने लगा ॥ ९ ॥

भीष्मकदेवजी कहते हैं—वीर धनिने इन्द्रका इस
प्रकार पटकारा । बल्लि की पटकारासे इन्द्र कुछ झेंप
गये । तबतक वीरोका मान मान करनेवाले बलिने

१ प्रा पा—वराहपा । २ प्रा पा—जयजयो । ३ प्रा पा—उत्थि । ४ प्रा पा—न है ।

५ प्रा पा—सर्व । ६ प्राचीन प्रथिमे भीष्मक उवाच नहीं है । ७ प्रा पा—मान है ।

आकर्णपूर्वैरहनदाखेपैराहस पुन ॥१०॥
 एवं निराकृतो द्रवो धैरिणा सध्यवादिना ।
 नाम्भ्यत् सदधिषेप तोत्राहत इव द्विप ॥११॥
 प्राहृत कृतिभ्रं तस्मा अमोघं परमर्दन ।
 सयानो न्यपतद् भूमौ छिन्नपद्म इवाचल ॥१२॥
 सत्साम पतित इष्टा जम्भो बलिसत्त्वः सुहृत् ।
 अम्भयात् सौहृद सत्सुहृदस्यापि समाचरन् ॥१३॥
 स सिंहाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ।
 अत्रावताडयच्छक्र गजं च सुमहाबल ॥१४॥
 गदाप्रहतव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ।
 जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कम्पल परमं ययौ ॥१५॥
 ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्हृतः ।
 आनीतो द्विपद्युत्पुज्य रथमारुह विश्व ॥१६॥
 तस्य तत् पूजयन् कर्म यन्तुर्वानवसत्तमः ।
 शूकेन ज्वलता त तु सशमानोऽहनन्मुचे ॥१७॥
 सेहे क्वं सुदुर्मयी सत्यमालम्ब्य मातलिः ।
 इन्द्रो जम्भस्य संकुक्षो वज्रगोपाहरन्धिर ॥१८॥
 जम्भं भुत्वा हतं तस्य क्षातयो नारदादये ।
 नमुचिध्व बल पाकस्तत्रापतुस्त्वरान्विता ॥१९॥
 वधोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु ।
 शरैरवाकिरन् मेषा भाराभिरिव पर्वतम् ॥२०॥
 हरीन्द्रशशवान्याञ्चै हर्षशस्य बल शरैः ।
 तावन्निरर्दयामास युगपल्लयुहस्तवान् ॥२१॥

अपने धनुषको काननक खींच-खींचकर बहुत-से कम मारे ॥ १० ॥ सत्यश्री देशरात्रु बलिने इस प्रकार इन्द्रका अत्यन्त निरस्कार दिया । अब तो इन्द्र बहुत कम मारे हुए हाथीकी तरह और भी चिड़ गये । बलिका अकेले से सहन न कर सके ॥ ११ ॥ शत्रुघाती इन्द्र बलिने अपने अमोघ वज्रमय प्रहार किया । उसकी चोटसे बलि पंख कटे हुए पर्वतके समान अपने विमानके साथ पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ १२ ॥ बलिका एक मेषा जैसी और बलिष्ठ मित्र जम्भासुर था । अपने मित्रके गिर जानेपर भी उनको मारनेका बदला लेनेके लिये वह इन्द्रके सम्मने आ खड़ा हुआ ॥ १३ ॥ सिंहपर चढ़कर वह इन्द्रके पास पहुँच गया और बड़े वेगसे अपनी गदा उठाकर उनके अनुस्थान (हँसली) पर प्रहार किया । साथ ही उस महाबलीने ऐसाकतपर भी एक गदा जमयी ॥ १४ ॥ गदाकी धोन्से ऐसाकतको बड़ी पीड़ा हुई, उसने व्याकुलतासे धुनेटेक दिये और तिर मुँहिन हो गया ॥ १५ ॥ उसी समय इन्द्रका सारथि मातलि हजार घोड़ोंसे उबड़ा हुआ रथ ले आया और शक्तिशाली इन्द्र ऐकनको ओबकर सुरत रथपर सवार हो गये ॥ १६ ॥ दानव श्रेष्ठ जम्भने रथभूमिमें मल्लिके इस कामकी बड़ी प्रशंसा की और मुसकरकर चमकता हुआ विशुद्ध उसके ऊपर चढ़ाया ॥ १७ ॥ मातलिने वैपके साथ इस कतल पीडाको सह लिया । तब इन्द्रने क्रोधित होकर अपने वज्रसे जम्भका सिर काट डाला ॥ १८ ॥

दशर्षिनारदसे जम्भसुरकी मृत्युका समाचार जानकर उसके माह-बन्धु नमुचि, बल और पाक इन्द्रपट रणभूमिमें आ पहुँचे ॥ १९ ॥ अपनी कठोर और मर्मस्पर्शी बाणीसे उन्होंने इन्द्रको बहुत कुछ घुरा-झुम कहा और जैसे बादल पहाड़पर मूसलवार पानी बरसाते हैं, वैसे ही उनके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगी दी ॥ २० ॥ कम्भ ने जब इन्द्रका घबरे एक साथ ही एक हजार बल चलाकर इन्द्रके एक हजार घोड़ोंको घायल कर

श्रुताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् ।
 सङ्कत्संधानमाधेण सदङ्गुत्तममूव रणे ॥२२॥
 नमुचिं पञ्चदशभि स्पर्णपुङ्खैर्महेषुभिः ।
 आहत्य व्यनदस्सग्ये सतोय इव सोयव ॥२३॥
 सर्वत शरकृटेन शुक सरथसारथिम् ।
 छादयामासुरसुरा प्राहृद्वर्षमिशाम्बुदाः ॥२४॥

अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला
 निशुक्लशुद्धवर्णा सहासुगा ।
 अनायका शत्रुबलेन निर्वृता
 नगिकपथा मिश्रनवो रंधाणवे ॥२५॥
 ततस्तुरापाडिपुषद्वपञ्जराद्
 विनिर्गत साम्बरयज्जग्राग्रणीः ।

बभौ दिशः सं पृथिवी च गोचयन्
 स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्पय ॥२६॥

निरीक्ष्य पृतनां दशः परैरम्पतितां रण ।
 उदयच्छद् रिपु इन्तु वज्रं वज्रधरो रुपा ॥२७॥
 स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयो ।

श्वातीनां पश्यतां राजञ्जहार क्षनयभयम् ॥२८॥
 नमुचिन्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरूपान्वित ।

क्षिपांशुरिन्तु नृपते चकार परमोद्यमम् ॥२९॥
 अश्मसारमयं शूल धण्टावद्धमभूषणम् ।

प्रगृह्णाम्यद्रवत् क्रुद्धा इतोऽसीति पितृव्यमन ।
 प्राहिणोद् दवरज्जाप निनदन् मृगराडिव ॥३०॥

तथापयद् गगनतल महाश्रव

विचिच्छिदे हरिरिषुभि सहस्रधा ।

दिय ॥ २१ ॥ पाकने सौ बाणोंसे मातलिकों और सौ बाणोंसे रथके एक-एक अङ्गको छेद बाध । युद्धभूमिमें यह बड़ी अद्भुत घटना हुई कि एक ही बार इतने बाण उसने चढ़ाये और चलाये ॥ २२ ॥ नमुचिने बड़े-बड़े पंद्रह बाणोंसे, जिनमें सोनेके पंख लग हुए थे, इन्द्रको मारा और युद्धभूमिमें वह जगहसे भर बादलके समान गरजने लगा ॥ २३ ॥ जैसे बर्षाकालके बादल सूर्यको ढक लेते हैं, ऐसे ही असुरोंने बाणोंकी वृष्टिसे इन्द्र और उनके रथ तथा सारथिकों भी चारों ओरसे ढक दिया ॥ २४ ॥ इन्द्रको न देखकर देवता और उनके अनुचर अत्यन्त विह्वल होकर रोने-पिछाने लगे । एक तो शत्रुओंने उन्हें हरा दिया था और दूसरे अब उनका कोई सेनापति भी न रहा गया था । उस समय देवताओं की ठीक वैसी ही अवस्था हो रही थी, जैसे बीच समुद्रमें नाव टूट जानेपर व्यापारियोंकी होती है ॥ २५ ॥ परन्तु पाकी ही देरमें वायुओंके बनावे हुए बाणोंके पिंजरेसे घोड़े, रथ, चरवा और सारथिके साथ इन्द्र निकल आये । जैसे प्रातः काल सूर्य अपनी किरणोंसे दिश, आकाश और पृथ्वीको चमका देते हैं, वैसे ही इन्द्रके तेजसे सब के-सब जगमगा उठ ॥ २६ ॥ वज्रधारी इन्द्रने देखा कि शत्रुओंने रणभूमिमें हमारे सेनाको रौंद बाध है, तब उन्होंने बड़े क्रोधसे शत्रुको मार डालनेके लिये वज्रसे आक्रमण किया ॥ २७ ॥ परीक्षित । उस आठ बारबाजे पैन वज्रसे उन दैत्योंके माई वन्धुओंको भी मममीत परते हुए उन्होंने बल और पाकके सिर काट लिये ॥ २८ ॥

परीक्षित । अपन भार्येको मर हुआ देख नमुचिचक्र बड़ा शोक हुआ । यह क्रोधचक्र फरण आपसे बाहर होकर इन्द्रको मार डालनेके छिये जी-तानसे प्रयास करने लगा ॥ २९ ॥ इन्द्र ! अब तुम बच नहीं सकते—इस प्रकार अलक्षयते हुए एक विशूल उठाकर वह इन्द्रपर दृष्ट पड़ा । वह विशूल पीन्यादक बना हुआ था, सोनेके आभूषणोंसे विभूषित था और उसमें घण्ट लगे हुए थे । नमुचिने क्रोधके मारे सिंहके समान गरजकर इन्द्रपर वह विशूल चला दिया ॥ ३० ॥ परीक्षित । इन्द्रने देखा कि विशूल यह बेगमे मरी आया रहा है । उन्होंने अपने बाणोंसे आकाशमें ही उसको

तमाहनन्तूप कृलिशेन कन्धरे
 रुपान्वितस्त्रिदक्षपति शिरो हरन् ॥३१॥
 न तस्य हि त्वचमपि वज्र उज्जिता
 विभेद य सुरपतिनौजसेरित ।
 तदद्भुतं परमस्तिषीर्यद्भ्रमिन्
 तिरस्कृतो नमुचिशिरोभरत्वचा ॥३२॥
 तस्मादिन्द्रोऽविभेच्छत्रोर्वज्रं प्रतिहता यत् ।
 किमिदं दैवयोगेन भूत लोफविमोहनम् ॥३३॥
 येन मे पूर्वमग्नीनां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ।
 कृतो निर्विश्रुतां भारैः पतत्रै पततां सुवि ॥३४॥
 तपःसारमय त्वाष्ट्रं वृत्रा येन विपाटितः ।
 अन्ये चापि बलोपेता सर्वास्त्रैरक्षतस्त्वच ॥३५॥
 सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽस्पके ।
 नाहं तद्वददे दैवं प्रकृतेजोऽप्यभ्यारणम् ॥३६॥
 इति शक्रं विवोद तमाह पागशरीरिणी ।
 नाय क्षुष्कैरधो नार्त्रैर्बभर्हसि दानवः ॥३७॥
 मयास्मै यद्व वरो दत्तो मृत्युनैवार्त्रक्षुष्कयो ।
 अतोऽप्यभिविन्तनीयस्ते उपायो मयवन् रिपोः ॥३८॥
 तां दैवी गिरमाकर्ण्य मयवान्मुसमाहित ।
 ध्यायन् फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥३९॥
 न क्षुष्कम न चार्त्रेण अहार नमुचे शिर ।

हमारी दुकन्दे कर लिये और इसके बाद देवराज इन्द्र
 बड़े क्रोधसे उसका सिर काट लेनेके लिये उसकी गर्त-
 पर वज्र मारा ॥ ३१ ॥ यद्यपि इन्द्रने बड़ कोसे बड़
 वज्र खलाया था, परन्तु उस यशस्वी वज्रसे उसके कर्ण-
 पर खरोंचक नहो आयी । यह बड़ी आश्चर्यजनक बात
 हुई कि जिस वज्रने महाबली वृत्रासुरका शरीर दुकन्दे
 दुकन्दे कर डाला था, नमुभिके गलेकी त्वचने उसका
 तिरस्कार कर दिया ॥ ३२ ॥ अब वज्र नमुभिका कुछ
 न बिगाड़ सका, तब इन्द्र उससे डर गये । वे सोचने
 लगे कि दैवयोगसे संसारमत्को संशयमें डालनेकी यह
 कैसी घटना हो गयी । ॥ ३३ ॥ पहले सुगमे अब वे
 पर्वन पौछोंसे उड़ते थे और धूमते-मिरते भरके करण
 पृथ्वीपर गिर पड़ते थे, तब प्रजापति विनाश होते देख-
 कर इसी वज्रसे मैंने उन पहाड़ोंकी पौछें काट डाली
 थी ॥ ३४ ॥ त्वचकी तपस्याका सार ही वृत्रासुरके कर्ण-
 में प्रकट हुआ था । उसे भी मैंने इसी वज्रके द्वारा काट
 डाला था और भी अनेकों दैत्य, जो बहुत बचान् वे
 और किसी अक्ष-शक्रसे जिनके चमड़ेको भी चोट नहीं
 पहुँचायी जा सकी थी, इसी वज्रसे मैंने मृत्युके घाट
 उतार दिये थे ॥ ३५ ॥ वही मेरा वज्र मेरे प्रहार करने-
 पर भी इस तुच्छ असुरको न मार सका, जब मैंने
 इसे अग्नीकर नहीं कर सका । यह प्रकृतेजसे बना है
 तो क्या हुआ, जब तो निकम्मा हो चुका है ॥ ३६ ॥
 इस प्रकार इन्द्र विवाद करने लगे । उसी समय यह
 आकाशवाणी हुई—“यह दानव न तो सुखी वस्तुसे
 मर सकता है, न गीलीसे ॥ ३७ ॥ इसे मैं बर दे चुका
 हूँ कि ‘सुखी या गीली वस्तुसे तुम्हारी मृत्यु न होगी ।’
 इसलिये इन्द्र । इस शत्रुको मरनेके लिये अब तुम कोई
 दूसरा उपाय सोचो ॥ ३८ ॥ उस आकाशवाणीको
 सुनकर देवराज इन्द्र बड़ी एकाग्रतासे विचार करने लगे ।
 सोचते-सोचते उन्हें सूझ गया कि समुद्रका फन तो सुख
 भी है गीला भी, ॥ ३९ ॥ इसलिये मैं उसे सूखा कर
 सकता हूँ, न गीला । अब इन्द्रने ठम म सूने और न
 गीले समुद्र फेनसे नमुभिका सिर काट डाला । उस समय

१ मा पा—इन्द्र । २ मा पा—अक्षय । ३ मा पा—वि । ४ मा पा—वासिबले ।

५ मा पा—वज्र ।

तं तुष्टुर्मुनिगणा मन्त्र्यैर्भाषाकिरन्विष्टम् ॥४०॥

गन्धर्वमुष्यौ जगत्सर्विभावसुपरावसू ।

देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥४१॥

अन्येऽप्येव प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वन्निवरुणादय ।

स्रज्यामासुरस्त्रौघैर्मृगान्कर्मरिणो यथा ॥४२॥

ब्रह्मणा प्रपितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ।

धारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसंशयम् ॥४३॥

नारद उवाच

भवद्भिरमृत प्राप्तं नारायणसुजाभयै ।

भिया समेधिता सर्वं उपारमत विग्रहात् ॥४४॥

श्रीशुक उवाच

संयम्य मन्युसंरम्मं मानयन्तो मुनेर्वच ।

उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥४५॥

यऽवशिष्टा रणं तस्मिन् नारदानुमतेन ते ।

बलिं विपन्नमादाय अस्त गिरिमुपागमन् ॥४६॥

तत्राविनष्टावयवान् विद्यमानश्चिरोभरान् ।

उक्ष्णा जीवयामास सजीविन्या स्वविधया ॥४७॥

पतिभ्योऽशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्त्विति ।

पराजिताऽपि नान्निघल्लोकतत्त्वविषयान् ॥४८॥

बड़-बड़े ऋषि-मुनि मगधान् इन्द्रपर पुष्पोंकी कर्मा और उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ गन्धर्वशिरोमणि विष्णावसु तथा परावसु गान करने लगे, देवताओंकी दुन्दुभियों बजने लगी और नर्तकियों आनन्दसे नाचने लगी ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार वायु, अग्नि, भरुण आदि दूसरे देवताओंने भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे विपक्षियोंको वैसे ही मार गिराया जैसे सिंह हरिनोंको मार खाते हैं ॥ ४२ ॥ परीक्षित । इधर ब्रह्मानीने देखा कि दानवोंका तो सर्वथा नाश हुआ जा रहा है । तब उन्होंने देवर्षि नारदको देवताओंके पास भेजा और नारदजीन वहाँ जाकर देवताओंको छद्मेने रोक दिया ॥ ४३ ॥

नारदजीने कहा—देवताओ ! भगवान्की मुखाओंकी उज्ज्वलतासे रहकर आपत्तियोंने अमृत प्राप्त कर लिया है और छद्मीजीने भी अपनी कृपा-कोरसे आपकी अमिद्वि की है, इसलिये आपलोग अब बड़ाईवद कर दें ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवताओंने देवर्षि नारद की बात मानकर अपने कोषके वेगको शान्त कर लिया और फिर वे सब-के-सब अपने स्वेक स्वार्थके चले गये । उस समय देवताओंके अनुचर उनके यशका गान कर रहे थे ॥ ४५ ॥ युद्धमें बचे हुए दैत्योंने देवर्षि नारदकी सम्मतिसे ब्रह्मकी चोगसे मरे हुए बलिंको लेकर अस्तावज्जकी यात्रा की ॥ ४६ ॥ वहाँ शुकदाचार्यने अपनी सत्कीर्णी विद्यासे उन असुरोंको जीवित कर दिया, जिनके गरदन आदि अङ्ग कटे नहीं थे, बच रहे थे ॥ ४७ ॥ शुकदाचार्यके स्पश करते ही बलिंकी इन्द्रियोंमें जेतना और मनमें स्मरणशक्ति आ गयी । बलिं यह बात समझते थे कि सत्कारमें जीवन-मृत्यु, जय-पराजय आदि उच्छ-येत होते ही रहते हैं । इसलिये पराजित होनेपर भी उन्हें किसी प्रकारका खेद नहीं हुआ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमर्हस्या सहितायामष्टमस्कन्धे देवासुर

संग्रामे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

मोहिनीरूपको देखकर महादेवजीका मोहित होना

श्रीबादरायणिरुवाच

वृषध्वजा निशम्यर्धं योपिद्रूपेण दानवान् ।
मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥
वृषमारुह्य गिरिष्ठं सर्वभूतगर्भैर्वृत ।
सह देव्या ययौ द्रष्टुं यथास्ते मधुघट्टन ॥ २ ॥
समाजितो भगवता सादरं सामया भवः ।
अपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य अयन्हरिम् ॥ ३ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इवदेव जगद्व्यापिज्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भवाना त्वमात्मा हेतुरीश्वर ॥ ४ ॥
आद्यन्तावत्स यमपमिदमन्यदहं बहिः ।
यतोऽप्ययस्य नैतानि तत् सत्यं ब्रह्म चिद् भवान् ॥ ५ ॥
तवैव चरणाम्भोजं भयस्कामा निराश्रित ।
विसृज्याभयत सङ्गं मुनयः समुपासते ॥ ६ ॥

स्वं ब्रह्म पूर्णममृतं त्रिगुण विशोक-

मानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।

विश्वस्य हेतुस्तममितिसंयमाना

मातममरश्च तदपश्यतमानपेक्ष ॥ ७ ॥

एषस्त्वमत्र सदसत् द्वयमद्वयं च

स्वप्न कृताकृतमिवेह न यस्तु भेद ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! अब मारुत
पाहने यह सुना कि श्रीहरिनि लीला रूप धारण करते
असुरोंको मोहित कर दिया और देवनाओंको बन्दा
रित्वा दिया, सब वे सत्ती देशोंक साथ वैष्णव सत्त
समस्त भूतगणोंको लेकर वहाँ गये, जहाँ मगधन् मसूरन
निवास करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ मगधन् श्रीहरिने बड़े प्रेमसे
गौरी-शङ्कर मगधान्क स्वगन्त-सत्कार किया । वे भी
सुखसे बैठकर मगधान्क सम्मान करते सुत्तकरते हुए
बोले ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा—समस्त देवोंके अराध्यता ।
आप विश्वव्यापी, जगदीश्वर एवं जगत्करूप हैं । समस्त
चरणचर पदार्थोंके मूल कारण, ईश्वर और अन्त्या भी आप
ही हैं ॥ ४ ॥ इस जगत्क आदि, अन्त और मध्य
आपसे ही होते हैं, परन्तु आप आदि, मध्य और अन्तसे
रहित हैं । आपके अविनाशी स्वरूपमें द्रष्टा, दृश्य भेद
और मोक्षता भेदभाव नहीं है । वास्तवमें आप स्वयं
चिन्मात्र ब्रह्म ही हैं ॥ ५ ॥ कल्याणकाम्यी महात्मकों
इस लोक और परलोक दोनोंकी आराधना एवं समस्त
कामनाओंका प्रतिष्ठा करने आपके चरणमूलोंकी ही
आराधना करते हैं ॥ ६ ॥ आप अमृतकरूप, समस्त
ब्राह्मण गुणोंसे रहित, शोककृती छापसे भी रह आप
परिपूर्ण ब्रह्म हैं । आप कवच आनन्द-स्वरूप हैं । अन्त
निर्विकार हैं । आपसे भिन्न कुछ नहीं है, परन्तु आप
सम्पत्ति भिन्न हैं । आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और
प्रलयके परम कारण हैं । आप समस्त जीवोंके पुण्यपुण्य
कर्मका फल देनेवाले स्वामी हैं । परन्तु यह बात भी
जीवोंकी अपेक्षासे ही कही जाती है । वास्तवमें आप
सबकी अपेक्षासे रहित, अनपेक्ष हैं ॥ ७ ॥ स्वप्न ।
कार्य और कारण ईत और अद्वैत—बो कुछ है, यह
सब एकमय आप ही हैं, यीक कैसे ही भेदे व्यभूतोंके
रूपमें स्थित सुखी और भूत-सुखीमें कोई अन्तर नहीं है ।

१ मां वा — विषय । २ मांश्चो न प्रतिभे

श्रीमहादेव उवाच यह पाठ नहीं है । १ मां वा —

अने भूतना ल । ४ मां वा — अनन्यमन्यत् ।

अज्ञानतस्त्वपि जनैर्विदितो विकल्पो

यस्माद् गुणैर्मितिकरो निरुपाधिकस्य । ८।

त्वां ब्रह्म कश्चिदवयन्त्युत धर्ममेके

एके पर सदसतोः पुरुषं परब्रह्म ।

अन्वेऽवयन्ति नववृत्तिपुतं परं त्वां

केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९ ॥

नाहं पगपुर्ध्वपयो न मरीचिर्धुर्धुस्या

जानन्ति यद्विरचितं सत्तु सत्त्वसर्गाः ।

यन्मायया मृषितचेतस इक्ष दैत्य

मर्त्यादयः किमुत शब्दमद्रष्टृणाः ॥ १० ॥

स त्वं समीहितमदः स्थितिबन्मनाश

मृतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ।

बापुर्वधा विधत्ति त्वं च शराशरास्म

सर्वं तदात्मकतयावगमोऽवकुन्ते ॥ ११ ॥

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।

सोऽहं तद् द्रष्टुमिच्छामि यत् ते गोपिद्विपुर्ध्वतम् ॥ १२ ॥

धेनुसम्मोहितार्दस्याः पायिताम्यामृतं सुराः ।

तद्दिदृक्षुव आयाताः परं कीदृहलं हि नः ॥ १३ ॥

भीष्मके उवाच

एवमभ्यर्षितो विष्णुर्मगवान् शूरापाणिना ।

प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥

दोनों एक ही वस्तु हैं । जोगोंन आपके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण आपमें नाना प्रकारके भेदभाव और विकल्पोंकी कल्पना कर रखी है । यही कारण है कि आपमें किसी प्रकारकी उपाधि न होनेकर भी गुणोंको लेकर भेदकी प्रतीति होती है ॥ ८ ॥ प्रमा । ब्रह्म-ब्रह्म आपको ब्रह्म समझते हैं, तो दूसरे आपको धम कहकर वर्णन करते हैं । इसी प्रकार ब्रह्म आपको प्रकृति और पुरुषसे परे परमेश्वर मानते हैं तो ब्रह्म विमल, उज्ज्वली, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्ला, सत्या, ईशाना और अनुम्य—इन नौ शक्तियोंसे युक्त परम पुरुष तथा दूसरे कल्याण-आत्मिक कवनसे रहित ब्रह्मोंके भी पूर्वज, ध्वनिनाशी पुरुष-विशेषके रूपमें मानते हैं ॥ ९ ॥ प्रमा । मैं ब्रह्मा और मरीचि आदि श्रुति—जा सत्त्वगुणकी सृष्टिके अन्तर्गत हैं—जब आपकी कनायी ब्रह्म सृष्टिकर भी रहस्य नहीं जान पाते, तब आपको तो जान ॥ कैसे सकते हैं । फिर निनका चित्त मयाने अपने कर्मों कर रक्खा है और जा सर्वदा रजागुणी और तमागुणी कर्मोंमें ओ रहते हैं, वे अमुर और मनुष्य आदि ता मय जानेंगे ही क्या ॥ १० ॥ प्रमा । आप स्वर्त्मक एवं हानस्वरूप हैं । इसीप्रिये बापुके समान आकाशमें अदृश्य रहकर भी आप सम्पूर्ण शराचर जगत्में सदा-सदा विद्यमान रहते हैं तथा इसकी चेष्टा, स्थिति, जन्म, नाश, प्राणियोंके कम एव संसारके कवन मोक्ष—सभीको जानते हैं ॥ ११ ॥ प्रमा । आप जब गुणोंको स्वीकार करके ध्वन्य करनेके प्रिये बहुत-से अन्तार भ्रमण करते हैं, तब मैं उनका दर्शन करता ॥ १२ ॥ जब मैं आपको उस अवतारका भी दर्शन करना चाहता हूँ, जा आपने श्रीरूपमें भ्रमण किया था ॥ १३ ॥ जिससे दैत्योंका मारित करके आपने दशनाजोंका अमृत पिष्टक, खाभिन् । उत्तीका देखनके प्रिय हम सब आये हैं । हमारे मनमें उसके दर्शनका बड़ा कीचड़ है ॥ १४ ॥

भीष्मकेदेवकी कहान हैं—जब भावान् दादुरन विष्णुभाषान्ते यह प्राध्या की तब वे गम्भीर भावसे हैंसकर शास्त्रजीसे बोले ॥ १४ ॥

श्रीभोगवानुवाच

कौतुहलाय दंस्यानां यापिद्वपा मया कृत ।

पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥१५॥

तच्चऽह दर्शयिष्यामि दिदृक्षाः सुरसत्तम ।

कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रसवाद्यम् ॥१६॥

श्रीकृष्ण उवाच

इति ह्युवाणा मगवान्त्वर्षवान्तरभीरत ।

सर्वव्यापयन्महर्षि आस्ते सहामया ॥१७॥

ततो ददर्शोपबने वरविषं

विचित्रपुष्पाक्षपस्तपत्रुमे ।

विक्रीडती कन्दुकनीलया उसधु

इक्ष्वाकर्षन्ति तन्ममेखलाम् ॥१८॥

आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन-

प्रकटहारोदमः पद् पद् ।

प्रमत्तमानामिव मण्यवश्वलत्

पदप्रवालं नयतीं ततस्तत् ॥१९॥

दिक्षु प्रमत्तकन्दुकापलैर्भूष

प्रोदिग्नवारापतलाऽल्लोचनाम् ।

स्वर्णविभ्राजितकुण्डलोत्तमत्

कपोलनीलातफमण्डिताननाम् ॥२०॥

सपद् दुहल कषरी च विष्णुर्ता

सन्तसती धामकरण वल्लुना ।

श्रीविष्णु मगवान्मे कथा—शङ्करजी । उस सम्

अमृतका कलया दीप्तोके हाथमें खज गया था । जो

देखनावोका कम बनानेके लिये और दीप्तोका मा एक

नये कौतुहलकी ओर खोच लेनेके लिये ही मैंने वह धौ-

रूप चारण किया था ॥ १५ ॥ देखिरोमो ! का उसे

देखना चाहते हैं, इसलिये मैं आपका वह रूप

दिखलऊँगा परन्तु वह रूप तो कभी पुरुषोंका ही

आदरणीय है, क्योंकि वह कममानका उत्पत्ति करने-

वाला है ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस तरह कहते-कहते

विष्णुमगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये और मगवान् शङ्कर

सनी दीप्तोके साथ चारों ओर इष्टि दीप्तते हुए वहीं बैठे

रह ॥ १७ ॥ इतनेमें ही उन्होंने देखा कि सामने एक

बड़ा सुन्दर उपवन है । उसमें मौलि-मौलिक इधर का

रहे हैं, जो रंग-धिरंगे फूल और ऊँट-ऊँट बोटोंसे

भरे-भरे हैं । उन्होंने वह भी देखा कि उस उपवनमें

एक सुन्दरी भी गैर उलझ-उलझकर खेल रही है ।

वह बड़ी ही सुन्दर साड़ी पहने हुए है और उसकी

कमरमें कलवनीली छवियों छटक रही हैं ॥१८॥ गैरको

उलझने और छपककर फलनेसे उसके सन और

ऊपर पड़े हुए हार झिल रहे हैं । ऐसा जल पड़ा था

मानो इनके मारसे उसकी फलकी कमर फा-फाए टूटने

टूटने लग जाती है । वह अपने लकड़-लकड़ फलकोंके

समान सुकुमार चरणोंसे बड़ी कदमके साथ ठुमक-ठुमक

चल रही थी ॥ १९ ॥ उलझता हुआ गैर जब एक

उपर छत्र जाना था, तब वह छत्रकल उसे रोक

लेती थी । इससे उसकी बड़ी-बड़ी फलक जैसे कुछ

उद्दिग्म-सी हो रही थी । उसके चरणोंके कमलोंके

कुण्डलोंकी आभा जगमगा रही थी और पुँसपसी फल-

काळी कलके ऊपर छटक जाती थी, जिससे मुख और

भी उलझति हो उठता था ॥२०॥ जब कभी साड़ी सरक

जाती और चेन्नोकी केणी खुलने लगती, तब जाने

विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुक
विमोदयन्ती जगदात्ममाश्रया ॥२१॥

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषु
ग्रीवास्फुटसितविसृष्टकणामुद्यतः ।

स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्ष्यविह्वलारमा
नात्मानमन्त्रिक उमां स्वगणां च वेद ॥२२॥

तस्मा करारात् स तु कन्दुको यदा
गतो बिदूः समनुवजन्निष्पद्यः ।

वासः सद्यः लघु मार्गोऽहरश्च
भवस्य देवस्य किलानुपपद्यत ॥२३॥

एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् ।
दृष्ट्वा तस्मां मनश्चक्रे विपञ्चन्त्यां भवः किल ॥२४॥

सपापहृतमिहानस्त्वत्कृतसरविह्वलः ।
मवान्या अपि पश्यन्त्या गतहीस्तत्पदं चयौ ॥२५॥

सा समापान्तमालोक्य विवक्षा ग्रीविता सृष्टम् ।
निलीयमाना ब्रूषेपु इसन्ती नान्भवतिष्ठत ॥२६॥

तामन्वगच्छन् भगवान् भव प्रमुषितेन्द्रिय ।
कामस्य च वञ्च नीत करेणुमिव यूथपः ॥२७॥

साऽनुब्रज्यासिबेगेन गृहीत्वानिच्छतीं स्त्रियम् ।
केशवन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिपल्लवे ॥२८॥

सोपगूता भगवता करिणा करिणी यथा ।
इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥२९॥

आत्मानं मोचयित्वा सुरर्षभश्चान्तरात् ।

थिया करती । उस समय भी वह दाहिने हाथसे गेंद उछाड़-उछाड़कर सारे जगत्को अपनी कपासे माहित कर रही थी ॥२१॥ गेंदसे छेप्टे-छेप्टे उसने तनिक सुछज्ज भावसे मुसुप्राकार निरुद्धी नजरसे शाङ्करजीकी ओर देखा । वस, उनका मन हाथसे निकल गया । वे मोहिनीको निहारने और उसकी चित्तकान्धे रसमें डूबकर इतने विह्वल हो गये कि उन्हें अपने-आपकी भी सुवि न रही । फिर पास बैठी हुई स्त्री और गर्वोंकी तो यद ही कैसे रहती ॥२२॥ एक बार मोहिनीके हाथसे उछाड़कर गेंद बांकी दूर चय गया । वह भी उसीके पीछे दौड़ी । उसी समय शाङ्करजीके देखते-देखते बायुने उसकी छिनी-सी साड़ी कनवनीके साप ही ठका छी ॥२३॥ मोहिनीका एक-एक अङ्ग वहा ही रुचिर और मनोरम था । जहाँ औंखें लगा जातीं, जगि ही रहती । यही नहीं, मन भी वहाँ रमण करने लगा । उसको इस दृश्यमें देखकर भगवान् शाङ्कर उसकी ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गये । उन्हें माहिनी भी अपने प्रति आसक्त जल पकपी थी ॥२४॥ उसने शाङ्करजीका निवेक छिन छिन्न । वे उसके हाव-भावसे कम्मादुर हो गये और मकनीके सामने ही खजा छेबकर उसकी ओर चउ पडे ॥२५॥

मोहिनी कबहिन तो पहले ही हो चुकी थी, शाङ्करजी-को अपनी ओर आते देख बहुत छिन्न हो गयी । वह एक इधसे दूसरे इधकी आकमें जाकर छिय जाती और हँसने लगती । परन्तु कहीं खरती न थी ॥२६॥ भगवान् शाङ्करजी इन्द्रियों अपने वशमें नहीं रही, वे कम्पवरा हो गये थे; उन हस्मिनीके पीछे हापीकी तरफ उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे ॥२७॥ उन्होंने अत्यन्त बेगसे उत्तर पीछ करके पीछेसे उसका कक्षा पकड़ लिया और उमारी इच्छ न होनेर भी उसे दोनों मुनाजोमें मरकर हृन्पसे लगा लिया ॥२८॥ जैसे हापी हस्मिनीका आश्रितन करना है, वैसे ही भगवान् शाङ्करने उसका आश्रितन किया । वह इधर-उधर भिस्तकवत छुड़ानेकी चेष्टा करने लगी, इसी छीना-कपटीमें उसके सिरक काष्ठ पिछर गये ॥२९॥ वास्तवमें वह सुन्दरी भगवान्की रवी हुई मया ही थी, इससे उसने

प्राश्रयस्तथा पृथुभाषी मामा देवविनिर्मिता ॥३०॥

तस्मासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरभूतकर्मणः ।

प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेन विनिर्मितः ॥३१॥

तस्मानुधावतो रेतश्चस्कन्दा मोधरेतसः ।

धूमिणो यूषपस्येव वासितामनु भावतः ॥३२॥

यत्र यत्रापतन्मद्यां रेतस्तस्य महात्मनः ।

तानि रूपस्य हेन्मत्र क्षेत्राभ्यासन्महीपते ॥३३॥

सरित्सरस्तु शैलेषु बनेषूपबनेषु च ।

यत्र क वासन्तूपमस्तत्र सनिहिषो हर ॥३४॥

स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवभाषया ।

अवीकृतं नृपमेष्ट संन्यवर्तत कश्मलात् ॥३५॥

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ।

अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदु ब्रह्मणम् ॥३६॥

तमविक्रममब्रीडमालक्ष्य मधुसूदन ।

उवाच परमरीता बिभ्रतस्त्वां पौर्णी तनुम् ॥३७॥

श्रीभगवानुवाच

दिष्टया स्वविबुधमेष्ट स्त्वां निष्ठामात्मना मितः ।

यमे स्त्रीरूपया स्वैर मोहिताऽप्यज्ञमापया ॥३८॥

हो नु मेऽतितरेन्मायां विपकस्त्वष्टे पुमान् ।

दांस्तान्विसृजती भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥३९॥

सेयं गुणमयी माया न स्वामभिभविष्यति ।

किन्ती प्रकर शहरजीके भुजपाशसे अपनेको छुड़ा लिए और बड़े बेगसे मापी ॥३०॥ भगवान् शहर में उन मोहिनीवेपथारी अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुके पीछे-पीछे दौढ़ने लगे । उस समय ऐसा जान पड़ा कि मर उनके शत्रु कामदेवने इस समय उनपर विजय प्राप्त कर ली है ॥३१॥ कश्मक हथिनीके पीछे दौढ़नेके मरान्तर हाथीके समान वे मोहिनीके पीछे-पीछे दौढ़ रहे थे । यद्यपि भगवान् शहरका वीर्य लोभो है फिर भी मोहिनीकी मायास वह स्तब्ध हो गया ॥३२॥ भगवान् शहरका वीर्य पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ-वहाँ सोन, चाँदीकी खानें बन गयी ॥३३॥ परीक्षित । नदी, सरोवर, पर्वत, वन और उपवनमें एवं जहाँ-जहाँ ऋषि-मुनि निवास करते थे, वहाँ-वहाँ मोहिनीके पीछे-पीछे भगवान् शहर गये थे ॥३४॥ परीक्षित । वीर्यपात हा जानेके बाद उन्हें अपनी स्मृति हुई । उन्होंने देखा कि बड़े, भगवान्की मायने तो कुछ रूप लक्ष्म्या । वे तुरंत उस दुस्तर प्रसक्तसे कजा हो गये ॥३५॥ इसके बाद अस्मत्स्वरूप सर्वत्र मायाकी यह महिमा जानकर उन्हें कोई कार्य नहीं हुआ । वे जानते थे कि मग्न, भगवान्की शक्तियोंकी पर कौन प सकता है ॥३६॥ भगवान्ने देखा कि भगवान् शहरको इससे विनाश या कजा नहीं हुई है, तब वे पुरुष-वशीर धारण करके फिर प्रकट हो गये और वही प्रसक्तसे उनसे कहने लगे ॥३७॥

श्रीभगवान्ने कहा—देवदत्तमोने । मेरी बीर्यपिण्ड मायामे क्रियेहित होकर भी आप स्वयं ही अपनी निष्ठमें स्थित हो गये । यह बड़े ही अलान्दवी बात है ॥३८॥ मेरी माया अजर है । यह ऐसे-ऐसे हाथ-पद रखी है कि अजितेन्द्रिय पुरुष तो किन्ती प्रकार उससे छुटकारा पा ही नहीं सकते । भय, आपके अनिच्छित देस कौन पुरुष है, जो एक बार मेरी मायाके बन्धने फँसकर फिर स्वयं ही उससे नियंत्रण सके ॥३९॥ यद्यपि मेरी यह गुणमयी माया सर्वो-बर्हन्ते मोहित कर देती है, फिर भी अब यह आपको कभी मोहित नहीं करेगी ।

मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥४०॥

धीशुक उवाच

एवं भगवता राजन् भीष्मसाहेन सम्कृत ।

आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगण स्वात्म्यं वयी ॥४१॥

आत्मींश्चमृतां तां भार्या भवानीं वगवाभवाः ।

शंसतामृपिमुख्यानां प्रीत्यः ॥४२॥ चलाप भारत ॥४२॥

अपि व्यपश्यस्त्वमजस्र भार्या

परस्य पुंसः परदेवतायाः ।

अह कलानामृपमो विद्युद्यो

यैषावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥४३॥

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य मागोत्

समासहस्तात् उपारतं वै ।

अ ययं साक्षात् पुरुषः पुराणो

न यत्र काला विश्वे ते न वेदः ॥४४॥

धीशुक उवाच

इति तेऽभिहित्वा तव विक्रमं द्यार्द्धधन्वन ।

सिन्धुधार्निमबने येन वृत्तं वृष्टे मडाधलः ॥४५॥

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुमुषणो

न रिप्यते बाहु समुद्यम कश्चित् ।

यदुत्तमश्लोकगुणानुरर्णनं

ममन्त्रसारपरिभ्रमापहम् ॥४६॥

क्योंकि सृष्टि आदिके द्विजे सम्पन्न उसे शोभित करने-
वाला करता मैं ही हूँ, इसलिये मेरी इच्छाके विपरीत वह
रजोगुण आदिकी सृष्टि नहीं कर सकती ॥ ४० ॥

धीशुकवेषजी कहते हैं—परीक्षित् । इस प्रकार
भगवान् विष्णुने भगवान् शाङ्करा सन्कर किया । तब
उनसे निंदा लेकर एवं परिक्रमा करके वे अपने गणोंके
साथ कैथरात्रे चले गये ॥ ४१ ॥ मरतवंशशिरोमणे ।
भगवान् शाङ्करने वही-वही शिरोंमें सभामें अपनी
अर्द्धाङ्गिनी सती देखीसे अपने विष्णुरूपकी अंशभूषा
मायापत्नी मोहिनीका इस प्रकार वही प्रमत्ते वर्णन
किया ॥ ४२ ॥ देवि । तुमने परम पुरुष परमेश्वर भगवान्
विष्णुकी माया देखी । देखो, यों तो मैं समस्त कल्म-
षोच्छादक, विषा आदिका खापी और धन्वन हूँ, फिर भी
उस मायासे विषा होकर मोहित हो जाता हूँ । फिर
इससे जीव तो परतन्त्र हैं ही, अतः वे मोहित हो जायें—
इसमें कहना ही क्या है ॥ ४३ ॥ जब मैं एक हजार
वर्षकी समधिसे उठा था, तब तुमने मेरे पास आकर
पूछा कि तिम किस्की उपासना करते हो । वे यही
साक्षात् सनातन पुरुष हैं । न तो वक्र ही हैं अपनी
सीमामें बाँध सकता है और न वेद ही इनका वर्णन कर
सकता है । इनका वास्तविक स्वरूप अनन्त और
अनिर्वचनीय है ॥ ४४ ॥

धीशुकवेषजी कहते हैं—द्विज परीक्षित् । मैंने
विष्णुभगवान्की यह ऐश्वर्यपूर्ण छीन तुम्हारा सुनायी,
जिसमें समुद्र-मन्थनके समय अपनी गीष्म मन्दराचल
धारण करनेवाले भगवान्का वर्णन है ॥ ४५ ॥ जो
पुरुष बार-बार इसका कीर्तन और श्रवण करता है,
उसका उपासक भी और यही निष्पन्न नहीं होता ।
क्योंकि पवित्रस्मिन् भगवान्के गुण और छीन-छोटा रूप

संसारक सम्पन्न कल्या और पवित्रमय स्मिन् देनेवाला

१ मा पा — भगवान्का । २ मा पा — मन्त्रधन्वन । ३ मा पा — यथाशक्ती । ४ मा पा — यथाशक्ती । ५ मा पा — यथाशक्ती । ६ मा पा — यथाशक्ती । ७ मा पा — यथाशक्ती । ८ मा पा — यथाशक्ती । ९ मा पा — यथाशक्ती । १० मा पा — यथाशक्ती । ११ मा पा — यथाशक्ती । १२ मा पा — यथाशक्ती । १३ मा पा — यथाशक्ती । १४ मा पा — यथाशक्ती । १५ मा पा — यथाशक्ती । १६ मा पा — यथाशक्ती । १७ मा पा — यथाशक्ती । १८ मा पा — यथाशक्ती । १९ मा पा — यथाशक्ती । २० मा पा — यथाशक्ती । २१ मा पा — यथाशक्ती । २२ मा पा — यथाशक्ती । २३ मा पा — यथाशक्ती । २४ मा पा — यथाशक्ती । २५ मा पा — यथाशक्ती । २६ मा पा — यथाशक्ती । २७ मा पा — यथाशक्ती । २८ मा पा — यथाशक्ती । २९ मा पा — यथाशक्ती । ३० मा पा — यथाशक्ती । ३१ मा पा — यथाशक्ती । ३२ मा पा — यथाशक्ती । ३३ मा पा — यथाशक्ती । ३४ मा पा — यथाशक्ती । ३५ मा पा — यथाशक्ती । ३६ मा पा — यथाशक्ती । ३७ मा पा — यथाशक्ती । ३८ मा पा — यथाशक्ती । ३९ मा पा — यथाशक्ती । ४० मा पा — यथाशक्ती । ४१ मा पा — यथाशक्ती । ४२ मा पा — यथाशक्ती । ४३ मा पा — यथाशक्ती । ४४ मा पा — यथाशक्ती । ४५ मा पा — यथाशक्ती । ४६ मा पा — यथाशक्ती । ४७ मा पा — यथाशक्ती । ४८ मा पा — यथाशक्ती । ४९ मा पा — यथाशक्ती । ५० मा पा — यथाशक्ती । ५१ मा पा — यथाशक्ती । ५२ मा पा — यथाशक्ती । ५३ मा पा — यथाशक्ती । ५४ मा पा — यथाशक्ती । ५५ मा पा — यथाशक्ती । ५६ मा पा — यथाशक्ती । ५७ मा पा — यथाशक्ती । ५८ मा पा — यथाशक्ती । ५९ मा पा — यथाशक्ती । ६० मा पा — यथाशक्ती । ६१ मा पा — यथाशक्ती । ६२ मा पा — यथाशक्ती । ६३ मा पा — यथाशक्ती । ६४ मा पा — यथाशक्ती । ६५ मा पा — यथाशक्ती । ६६ मा पा — यथाशक्ती । ६७ मा पा — यथाशक्ती । ६८ मा पा — यथाशक्ती । ६९ मा पा — यथाशक्ती । ७० मा पा — यथाशक्ती । ७१ मा पा — यथाशक्ती । ७२ मा पा — यथाशक्ती । ७३ मा पा — यथाशक्ती । ७४ मा पा — यथाशक्ती । ७५ मा पा — यथाशक्ती । ७६ मा पा — यथाशक्ती । ७७ मा पा — यथाशक्ती । ७८ मा पा — यथाशक्ती । ७९ मा पा — यथाशक्ती । ८० मा पा — यथाशक्ती । ८१ मा पा — यथाशक्ती । ८२ मा पा — यथाशक्ती । ८३ मा पा — यथाशक्ती । ८४ मा पा — यथाशक्ती । ८५ मा पा — यथाशक्ती । ८६ मा पा — यथाशक्ती । ८७ मा पा — यथाशक्ती । ८८ मा पा — यथाशक्ती । ८९ मा पा — यथाशक्ती । ९० मा पा — यथाशक्ती । ९१ मा पा — यथाशक्ती । ९२ मा पा — यथाशक्ती । ९३ मा पा — यथाशक्ती । ९४ मा पा — यथाशक्ती । ९५ मा पा — यथाशक्ती । ९६ मा पा — यथाशक्ती । ९७ मा पा — यथाशक्ती । ९८ मा पा — यथाशक्ती । ९९ मा पा — यथाशक्ती । १०० मा पा — यथाशक्ती ।

असदविषयमहर्षि भावगम्य प्रपञ्चा-

नमृतममरवर्यानाद्ययत् सिन्धुगन्धम् ।

अपटयुवतिवेषो मोहयन्मः सुरारी

सप्तमहस्रपसुतानां कामपूरं नतोऽसि । ४७ ।

है ॥ ४६ ॥ दृष्ट पुरुषोंको भगवान्‌के चरणकमलोंके प्राप्ति कभी हो नहीं सकती । ये तो महिमामय रूप पुरुषोंकी ही प्राप्त होते हैं । इसीसे उन्होंने सीकर मन्मथ रूप धारण करके दैत्योंको मोहित किया और वने चरणकमलोंके धारणप्रसन्न देवताओंको समुद्र-मंथनसे निकले हुए अमृतका पान करवाया । केवल उनकी ही बात नहीं—चाहे जो भी उनके चरणोंकी शरण ग्रहण करे, वे उसकी सम्पत्त का मनाएँ पूर्ण कर देते हैं । मैं उन प्रभु के चरणकमलोंमें ममस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥

इति भीमझागवते महापुराणे परमहर्षेण संहितायामष्टमस्कन्धे

शंकरभोजनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भागामी सात मन्वन्तरोंका वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

मनुर्विवस्वत पुत्र आद्वदेव इति श्रुत ।
सप्तमो वर्तमानो यस्तद्वपत्पानि मे शृणु ॥ १ ॥
इत्स्वाकुरुर्नभगदधैव दृष्टः धर्यातिरेव च ।
नरिष्यताऽथ नाभागः सप्तमा द्रिष्ट उच्यते ॥ २ ॥
करूपस्य पूषघ्नस्य दधमा वसुमान्स्मृतः ।
मनोर्वैवस्वतस्यैत दद्य पुत्राः परन्तप ॥ ३ ॥
आदि या वसवा रुद्रा विद्वद्वया मरुद्गणा ।
अश्विना इमवा राजभिर्द्रष्टव्यां पुरन्दरः ॥ ४ ॥
कश्यपाऽग्निर्विमिष्टम विश्वामित्राऽथ गौतम ।
जमदग्निमरुद्वाज इति सप्तर्षय स्मृताः ॥ ५ ॥
अत्रापि भगवज्जम कश्यपाददितरभूत् ।
आदिरयानामवरजा विष्णुवामनरूपधृक् ॥ ६ ॥
सश्रपता मयाक्तानि मत्त मन्वन्तराणि ते ।

श्रीकृष्णलेखजी कहते हैं—परीक्षित ! विस्तारके पुत्र यशस्वी आद्वदेव ही सत्य (वैवस्वत) मनु हैं । यह वर्तमान मन्वन्तर ही उनके कार्यका है । उनकी सन्तानका कर्ण मैं बरसा हूँ ॥ १ ॥ वैवस्वत मनुके दस पुत्र हैं—इत्स्वाकुरु, मग्ना, दृष्ट, धर्याति, नरिष्यत, नाभाग, पित्र, करूप, पूषघ्न और वसुमन् ॥ २ ॥ परीक्षित ! इस मन्वन्तरमें आश्वि, अश्व, विदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और अश्व—ये देवताओंके प्रबल गण हैं और पुरन्दर उनके इन्द्र हैं ॥ ३ ॥ कश्यप, अग्नि, विमिष्ट, विश्वामित्र, गौतम, जम-मित्र और मरुद्वाज—ये सप्तर्षि हैं ॥ ५ ॥ इस मन्वन्तरमें भी कश्यपजी अश्विनीके गर्भसे आश्विनियोंके छोटे भाई वामनके रूप में भगवान् विष्णुने अवतार ग्रहण किया था ॥ ६ ॥

परीक्षित ! इस प्रकार मैंने संकेतसे तुम्हें सप्त मन्वन्तरोंका बगन सुनाया; अब भगवन्‌की शक्तिसे तुम्हें जगत् (आनेवाला) सात मन्वन्तरोंका बगन बतला

मन्विष्याम्यथ कस्यामि विष्णा गन्धान्वितानि च । ७ ॥

विषमवतश्च द्वे ज्ञेये विषयकर्मसुते उभे ।

सद्भा छाया च राजद्रु ये प्रागभिहिते तथ ॥ ८ ॥

सुवीर्या बहवामेके नासां संज्ञासुतास्त्रयः ।

यमो यमी भाद्रद्वदद्यायायाश्च सुताञ्जृषु ॥ ९ ॥

सावर्णिम्वपती कन्या भार्या सवरणस्य या ।

छनैश्चरस्तृतीयोऽभूदधिनां बहवात्मजां ॥ १० ॥

अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्मविता मनु ।

निर्मोकविरजस्वयाः सावर्णितनया नृप ॥ ११ ॥

तत्र देवा सुतपमो विरजा अभूतप्रभाः ।

तेषां विरोचनसुता बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ १२ ॥

दक्षेमां पाषमानाय विष्णवे च पदप्रथमम् ।

रादमिन्द्रपदं हिरवा ततः सिद्धिमवाप्सति ॥ १३ ॥

योऽर्सा भगवता पदं प्रीतेन सुतले पुन ।

निवेशिताञ्चिकं स्वर्गादधुनाऽऽस्ते स्वरादिव ॥ १४ ॥

शालया दीप्तिभारामो द्राणपुत्रः कृपस्तथा ।

श्रुप्यशृङ्गं पितासाकं भगवान्नादरायण ॥ १५ ॥

इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वायागत ।

इदानीमागत राक्षन् स्वस्य आश्रममण्डलम् ॥ १६ ॥

दयगुमात्सरस्ययां सार्षपाम इति प्रभु ।

स्यान् पुनर्द्रादत्त्वा बलय दाम्यतीश्वर ॥ १७ ॥

नरमा दयशावर्णिर्मनुर्बलसम्भव ।

भूतकतुर्गिप्रकतुर्गिषाद्यामस्तुता नृप ॥ १८ ॥

१ = ८ नरी १ = ८ - त्रिवीर १ १ ८ ८ - १ १ ४ = ८ - नमिन् ।

५ = ८ नृप ।

परीक्षित । यत् तो भं तुम्हें पढ़ते (छठे स्कन्धमें) क्या

सुखा हैं कि विषयान् (भगवान् स्वयं) की दो पत्नियाँ

थी—संज्ञा और छाया । ये दोनों ही विषयकर्मकी पुत्री

थी ॥ ८ ॥ कुतः अग्रे ऐसा कहते हैं कि उनकी एक

तीसरी पत्नी यद्वया भी थी । (ये विचारसे तो संज्ञाका

ही नाम बहवा ही गया था ।) उन सूपप्रतिष्ठामें सद्भासे तीन

सन्तानें हुई—यय, यमी और भाद्रदेव । छायाके भी

तीन सन्तानें हुई—सावर्णि, शानधर और तक्ष्मी नामकी

कन्या, ज्य संवरणकी पत्नी हुई । ज्य संज्ञाने बहवाका

रूप धारण कर लिया, तब उससे दानों अग्निनीकुम्भर

हूए ॥ ९ १० ॥ आठवें मन्वन्तरमें सावर्णि मनु होंगे ।

उनके पुत्र होंगे निर्मोक, विरजस्क आदि ॥ ११ ॥

परीक्षित । उस समय सुता, विरज और अभूतप्रम

नामक देवगण होंगे । इन देवताओंके इन्द्र होंगे विरो-

चनके पुत्र बने ॥ १२ ॥ विष्णुभगवान्ने वामन अवतार

ग्रहण करके इन्हींसे तीन पग पृथ्वी माँगी थी, परन्तु

इन्होंने उनको सारी मिठाई दे दी । राजा बळिके एक

बार ता भगवान्ने बौध दिया था, परन्तु फिर प्रसन्न

होकर उन्होंने इनको स्वर्गसे भी थोड़ा सुतल छोड़कर

राज्य दे दिया । वे इस समय यही इन्द्रक समान विराज-

मान हैं । आगे चलकर ये ही इन्द्र होंगे और समस्त

एकपैसे परिपूर्ण इन्द्रका भी पतित्वका पत्रके परम

सिद्धि प्राप्त करेंगे ॥ १३ १४ ॥ गान्धर्व, दीन्मिन्,

परदुगम, अश्वपामा, शराचप, श्रुप्यशृङ्ग और हयारे

विश्व भगवान्ने ध्याम—ये सब मन्वन्तरमें सर्गमें होंगे ।

इस समय व अग्रे यागयज्ञमें आनन्दमें आग्रम-मण्ड-

में स्थित हैं ॥ १५ १६ ॥ राक्षसकी पत्नी सरस्वतीका

गर्भमें सावर्णाम नामक भगवान्का अवतार होगा । ये

ही प्रभु पुनर्द्रा इन्द्रमें स्वर्गका राज्य छीनकर राजा

बनिये ॥ १७ ॥

परीक्षित । बलका पुत्र श्रुप्यशृङ्ग नरों मनु होंगे ।

भूतकतुर्गिभगवान्ने उनका पुत्र होंगे ॥ १८ ॥

पारा मरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्राऽमृतः स्मृतः ।

धृतिमत्प्रभुत्वात्तत्र भविष्यन्त्युपपत्तयः ॥१९॥

माधुष्यतोऽम्बुभारायामुपभो मगवत्कला ।

भविता येन मरादां त्रिलाक्षी मोक्षयतेऽमृतः ॥२०॥

दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ।

तत्सुता मूर्तिषेयाद्या इविष्मत्प्रभुत्वा द्विजाः ॥२१॥

इविष्मान्सुकृति सस्यो ब्रह्मो मूर्तिस्तदा द्विजाः ।

सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥२२॥

विश्वक्सेना विपून्मां तु शम्भो सस्यं करिष्यति ।

जातः स्वांशेन भगवान्मुह इविष्मत्सुबो विश्वः ॥२३॥

मनुर्वै धर्मसावर्णिरैकादशम आत्मवान् ।

अनागतास्तत्सुताश्च सस्यधर्मद्वयो दश ॥२४॥

विद्वज्जमा कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ।

इन्द्रश्च वचनस्तेषामुपपत्त्यालगादयः ॥२५॥

आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ।

वैभूतायां हरैरंघ्रिलोकीं भारयिष्यति ॥२६॥

भविता रुद्रसावर्णी राज्ञाद्दशमो मनुः ।

दशवानुदवध देवमेष्टादशः सुताः ॥२७॥

श्वतथामा च तत्राद्वा देवाश्च हरितादयः ।

श्वपयश्च तेषामूर्तिस्तपस्व्यामीघकादयः ॥२८॥

स्वधामाख्यो हररंघ्र साधयिष्यति तन्मनाः ।

अन्तरसस्यसहस्रः सन्ततायाः सुता विश्वः ॥२९॥

मनुश्चयोदशो भाष्यो देवसावर्णिरारमवान् ।

चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिवद्दशः ॥३०॥

देवा सुकर्मसुग्राममक्षा इन्द्रा दिवस्पति ।

निर्भोक्तवत्प्रदर्शया भविष्यन्त्युपपत्तयः ॥३१॥

पार, मरीचिगर्भ आदि देवताओंके गण होंगे और अमृत नामके इन्द्र होंगे। उस मन्वन्तरमें धृतिवान् और सत्सर्व होंगे ॥ १९ ॥ आधुष्यन्की पत्नी अम्बुक्सेनके गर्भसे श्वपयके रूपमें मायावान्का पश्यकार होगा। अमृत नामक इन्द्र उन्हींकी दी हुई त्रिलोकीका उनके करेंगे ॥ २० ॥

दसवें मनु होंगे उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि। उनके समस्त सद्गुण निवास करेंगे। मूर्तिगण आदि उनके पुत्र होंगे और इविष्मान्, सुकृति, सस्य, ज्य, मूर्ति आदि सत्सर्व। सुवासन, विरुद्ध आदि देवताओंके गण होंगे और इन्द्र होंगे शम्भु ॥ २१-२२ ॥ विष्णुवर्ध पत्नी विपुलिके गर्भसे मायावान् विश्वक्सेनके रूपमें अंशान्तर होगा। शम्भुण करके शम्भु नामक इन्द्रसे निवास करेंगे ॥ २३ ॥

स्यारहवें मनु होंगे अत्यन्त संपन्नि धर्मसावर्णि। उनके सस्य, धर्म आदि दस पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ विद्वज्ज, कामगम, निर्वाणरुचि आदि देवताओंके गण होंगे। अरुणादि सत्सर्व होंगे और वैभूत नामक इन्द्र होंगे ॥ २५ ॥ आर्यककी पत्नी वैभूताके गर्भसे बभ्रुसेनके रूपमें मायावान् अंशान्तर होगा और उसी रूपमें वे त्रिलोकीकी रख करेंगे ॥ २६ ॥

परीक्षित। बारहवें मनु होंगे रुद्रसावर्णि। उनके देवान्, उपदध और देवमेष्ट आदि पुत्र होंगे ॥ २७ ॥ उस मन्वन्तरमें श्वतथामा नामक इन्द्र होंगे और हरिता आदि देवगण। तपोमूर्ति, तपस्वी आदिपुत्र आदि सत्सर्व होंगे ॥ २८ ॥ सस्यसहस्रकी पत्नी सुन्तताके गर्भसे स्वधामके रूपमें मायावान् अंशान्तर होगा और उसी रूपमें मायावान् उस मन्वन्तरका पश्यन करेंगे ॥ २९ ॥

तेरहवें मनु होंगे परम नितेष्टिप्र देवसावर्णि। चित्रसेन, विचित्र आदि उनका पुत्र होंगे ॥ ३० ॥ सुकर्म और सुग्राम आदि देवगण होंगे तथा इन्द्रका नाम होय निस्पति। उस सम्पन्न निर्भय और तपवान् आदि

देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ।

योगेश्वरो हरेरक्षो बृहत्पां सम्मन्विष्यति ॥३२॥

मनुष्या इन्द्रसावर्णिभतुर्दशम एष्यति ।

उरुगम्भीरपुंक्षपाद्या इन्द्रसावर्णिषीर्यजा ॥३३॥

पवित्राभ्राक्षुपा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ।

भयिर्वाहु शुचि शुद्धो मागधास्तपस्विनः ॥३४॥

सत्रायणस्य तनयो बृहद्भ्रातुस्तदा हरिः ।

वितानायां महाराज क्रियातन्त्रिणाविता ॥३५॥

राजभतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ।

शोकान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥३६॥

सर्पिर्होने ॥ ३१ ॥ देवहोत्रक्षी पत्नी बृहतीके गर्भसे योगेश्वरके रूपमें मगवान्कर अन्नकार होगा और उसी रूपमें मगवान् दिवस्पतिके इन्द्रपद देगे ॥ ३२ ॥

महाराज ! चौदहवें मनु होने इन्द्रसावर्णि । उरु, गम्भीरबुद्धि आदि उनके पुत्र होने ॥ ३३ ॥ उस समय पवित्र, चाक्षुष आदि देवगण होने और इन्द्रका नाम होगा शुचि । अग्नि, वाहु, शुचि, शुद्ध और मागध आदि सर्पिर्होने ॥ ३४ ॥ उस समय सत्रायणकी पत्नी विताना के गर्भसे बृहद्भ्रातुके रूपमें मगवान् कवनार मरण करेंगे तथा कर्मकण्डक विस्तार करेंगे ॥ ३५ ॥

परीक्षित ! ये चौदह मन्वन्तर भूत, वनमान और भविष्य—तीनों ही कालमें चलते रहते हैं । इन्हींके द्वारा एक स्रक्ष चतुर्युगीवाले कल्पके सम्पत्ति गणना की जाती है ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यं संहितायामष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

मनु आदिके पृथक्-पृथक् कर्मोका निरूपण

राजोवाच

मन्वन्तरेषु मगध-पथा मन्त्रादयस्त्विमे ।

यस्मिन्कर्मणि ये येन निपुक्तास्तद् वदस्व मे ॥ १ ॥

श्रुतिवाच

मनसो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ।

इन्द्राः सुरगणार्थं च सर्वे पुरुषधासना ॥ २ ॥

यज्ञादयो या कथिता पौरुष्यस्तनवो नृप ।

मन्त्रादयो अगघात्रां नयन्त्यग्निं प्रचोदितः ॥ ३ ॥

चतुर्युगान्ते कालेन प्रस्ताप्नुवित्पुण्यान्यथा ।

तपसा श्रवणोऽप्यन्यतो धर्मः सनातन ॥ ४ ॥

राजा परीक्षितसे पूछ—मगध ! अन्धे द्वारा वर्णित ये मनु, मनुपुत्र, सर्पिर्होने आदि अपने-अपने मन्वन्तरमें विस्तरेके द्वारा निपुक्त होकर यज्ञ-यज्ञ-सा काम जिस प्रकार करते हैं—यह आप क्या करने मुझे मन्त्रादये ॥ १ ॥

श्रीशुक्रदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! मनु, मनुपुत्र, सर्पिर्होने और देवगण—सबको निपुक्त करनेवाले सर्व मगध ही हैं ॥ २ ॥ राजन् ! मगधन्क त्वि यज्ञ-पुरुष आदि अन्नप्र-शरीरोंका वर्णन मैंने किया है, उन्हींकी प्रणामसे मनु आदि विष-मन्वन्तराया स्रक्षान्न करते हैं ॥ ३ ॥ चतुर्युगीके अन्तमें सम्पत्ति उत्पन्न करने भूमिमें नष्टप्राप हो जाती है, तब सर्पिर्होने अपनी नपस्यासे पुन उनका साक्षात्कार करते हैं । उन शुक्तिसे ही मनातनवमन्त्रि रखा होती है ॥ ४ ॥

१ मा पा—कर्माणा । २ माचीन प्रक्षेपे व्यास शब्द नहीं है । ३ मा पा—न । ४ मा पा—
इन्द्र । ५ मा पा—यज्ञा । ६ मा पा—तत्पर्यायः पश्यन्ति य ।

ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोद्विधाः ।

युक्ताः सञ्चारयन्त्यद्या स्वे स्वे काले महीं नृप ॥ ५ ॥

पालयन्ति प्रजापाला सावदन्तं विमागश्च ।

यश्चाममसुखो देवा ये च तत्रान्विताश्च वैः ॥ ६ ॥

इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यभियमूर्जिताम् ।

सुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन् कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥

ज्ञानं चातुर्गुणं मृते हरिः सिद्धस्वरूपपृक् ।

अपिरूपधरः कर्म योगं योगेश्वरूपपृक् ॥ ८ ॥

सर्गं प्रजेश्वरूपेण दस्युन्मन्यात् खराद्वपुः ।

कालरूपेण सर्वेषाममाशाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥

स्वयमानो जनैरभिर्मायया नामरूपया ।

विमोदितहृत्प्रभिनानिर्दृष्टैर्नैर् च दृश्यते ॥ १० ॥

एतत् कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ।

यद्य मन्वन्तराभ्यामुभयतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥

राजन् ! मगधन्की प्रेरणासे अपने-अपने मन्वन्तरमें कर्म साधधानीसे सब-के सब मनु पृथ्वीपर चारों पारसे परिपूर्ण कर्मका अनुष्ठान करवाते हैं ॥ ५ ॥ मनुष्य मन्वन्तरका

काष्ठ और देश दोनोंका विभाग करके प्रजापालन तथा पालनका कार्य करते हैं । पञ्चमायक आदि कर्मों

विना अग्नि, पितर, मृत और मृत्यु आदिक सम्भव है—उनके साथ देवता उस मन्वन्तरमें पक्षक भी सीकार करते हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र मगधन्की दी हुई त्रिलोक्य

वस्तुख सम्पत्तिको उपभोग और प्रयोजन प्रयोजन करते हैं । संसारमें पण्डित कर्मा करनेका अधिकार भी उन्हीं

हैं ॥ ७ ॥ मगधन् युग-युगमें सुनक यदि सिद्धेश्वर रूप धारण करके ज्ञानका, यामक्य आदि अविनाश

रूप धारण करके कर्मका और दत्तात्रेय आदि योगेश्वरोंके रूपमें योगका उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ वे मरीचि आदि प्रजापतिवर्गोंके रूपमें सृष्टिका विस्तार करते हैं, सृष्टिके

रूपमें छुट्टीका बंध करते हैं और शीत, उष्ण आदि विभिन्न गुणोंको धारण करके कल्परूपसे सकल संसार

की ओर ले जाते हैं ॥ ९ ॥ नाम और रूपकी मायसे प्राणियोंकी बुद्धि विमूढ़ हो रही है । इसलिये वे अनेक प्रकारके दर्शनश्रवणोंके द्वारा मन्त्रित हो भागवन्की

ही गाते हैं, परन्तु उनके वास्तविक स्वरूपमें नहीं जान पाते ॥ १० ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें मगधन् और अकन्तर कल्पका परिमाण सुना दिया । पुराणकारोंके विद्वानोंने प्रत्येक अकन्तर कल्पमें बीस हजार मन्वन्तर

कहाये हैं ॥ ११ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यं संहितायामष्टमस्कन्धे

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

राजा वलिकी स्वर्गपट विजय

राजोवाच

बलेः पदप्रथं भूमेः कस्मादरिमाधत ।

राजा परीक्षितसे पूछा—भागवन् ! शत्रुहि मर्ग

ही सबने मारपी हैं । फिर उन्होंने दीन-हीनकी भीति

१ मा पा—बला । २ मा पा—वर्षस्य । ३ मा पा—छने । ४ मा पा—इत्यादि ।

५. प्राचीन मठियों में मन्वन्तराशुवर्षने इतना अधिक पाठ है ।

भूत्वेश्वर कृपणवन्तध्वार्थोऽपि बन्धनम् ॥ १ ॥

एतद् वदितुमिच्छामो महत् कौतूहल हिनः ।

यद्यश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागतः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच

पराजितभीरसुभिश्च हासितो

हीनत्रेण राजन्मृगुभिः स बीभत्तः ।

सर्वारम्भना तानमबद्ध भृगून्वलि

द्विष्यो महात्मार्यनिवेदनेन ॥ ३ ॥

तं प्राक्षणा भृगवः प्रीयमाणा

अपाश्रयन्निश्चिन्ता विणाकम् ।

जिगीषुमार्गं विधिनाभिपिच्य

महाभिपेक्षया महानुभावाः ॥ ४ ॥

सता रथ काञ्चनपद्मदा

हयाश्च हर्म्यसुरक्त्वर्णा ।

चरश्च मिहिन विराजमाना

हुताग्नादाश्च इविभिरिष्टाः ॥ ५ ॥

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनर्द

तृणावरिच्छां कवचं च दिव्यम् ।

वितामहमस्य ददा च माला

मम्यानपुष्पां अलत्र च शुक्र ॥ ६ ॥

एव म विप्राजितपाधनार्थं

एवं कश्चित्प्रमथयनाऽपि विप्रान् ।

प्रदक्षिणाकृत्य कृत्रप्रणाम

प्रदादमामभ्य नमयकार ॥ ७ ॥

अपारम्य रथ दिव्यं भृगुदत्त महारथ ।

गुप्तगन्ताय गमय धन्यो गङ्गा धृतपुत्रि ॥ ८ ॥

गया बध्तिसे तीन एव पृथ्वी क्यों भौमि ? तथा जो युद्ध
वे चाहते थे, वह मित्र जानेकर भी उन्होंने कश्चित् कोई
क्यों ? ॥ १ ॥ मेरे हृदयमें इस बातका वषः पीतहृत् है
कि स्वयं परिपूर्ण यक्षेश्वर यथाशक्त्ये द्वारा यचना और
निरपराधका बन्धन—ये दोनों ही कैसे सम्भव हुए ?
हमयोग यह जानना चाहते हैं ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवश्रीने कहा—श्रीशिव ! तब इन्होंने बधि-
को पराजित परक उनकी सफलति हीन थी और उनके
प्राण भी ले लिये, तब भृगुनन्दन शुक्रवचने उन्हें अपनी
सञ्जीवनी विधासे जीवित कर लिया । इसपर प्रजापत्य-
जीने शिष्य म्हात्मा बध्तिसे अपना सकल उनका चरणों-
पर चढ़ा दिया और वे तन-मनसे शुद्धजीव साथ ही
सम्पन्न भृगुवंशी ब्रह्मणोंकी सेवा करने लगे ॥ ३ ॥
इसमें प्रभावशाली भृगुवंशी ब्रह्मण उनपर बहुत प्रसन्न
हुए । उन्होंने स्वर्गपर विषय प्राप्त करनेकी इच्छावाले
यन्त्रिय म्हाभियन्त्रकी विधिसे अभियन्त्र परच उनसे
विश्वजित् नामका यह यन्त्र ॥ ४ ॥ यन्त्रों विधिसे
इतिव्याक द्वारा जरा अस्मिन्नेकताकी पूजा की जा तब
यन्त्रपुण्ड्रमें सानेरी चारसे मढ़ा हुआ एक वषा सुन्दर
रथ निश्चय । फिर इन्द्रक घोड़ों-त्रमे हरे रगत घोड़े
और सिल्व विह्वले शुक्र रथम पालनकी सेवा
निकली ॥ ५ ॥ साथ ही सानेय परमे मढ़ा हुआ दिव्य
धनुष कभी शत्रु न हानेवाले तो भवन नगर और
दिव्य वाज भी प्रकट हुए । तथा प्रह्लादजान यह एक
केही वाज थी जिसका कल पत्नी पुष्पागत न थे ।
तथा पुष्पावापने एक वषा दिया ॥ ६ ॥ तब प्रसार
ब्रह्मणोंकी शृंगमे शुद्धी सामग्री प्राप्त कर कर शत्रु
स्मिताचन ॥ जानकर गता बध्तिसे तब ब्रह्मणोंकी
प्रशंसा की जो नमस्कार दिया । तब तब उन्होंने
प्रह्लादजीमें सम्भवतः परक उनका चरणोंमें प्रसार
दिया ॥ ७ ॥ फिर वे भृगुवंशी ब्रह्मणोंके दिव्य हुए
दिव्य रथ सार हुए । जब मन्त्राद गता केने
कवच रगत पर धनुष, तन्त्रा, मन्त्रा, विनायक
मन्त्र पर फिर और दातरी दी है धनुष केने
पान पर थी, तब उनकी बही लगी है ॥ ८ ॥

देमाङ्गदलसङ्गाहः स्फुरन्मकरकुम्बल ।

रराव रथमारुहो धिप्पयस्व इव इक्ष्मवाद् ॥ ९ ॥

तुस्वैश्वर्यमलभोमि स्वयुदैर्वैत्ययुगपै ।

पिबद्भिरिव स्व दग्मिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥

इतो विकर्षन् महतीमासुरीं चञ्चिनीं विभुः ।

यथाविन्दुरुरीं सृष्ट्वा कम्पयन्निव रोदसी ॥ ११ ॥

रंभ्यासुरवनोधानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः ।

कृषद्भिर्हृत्तमिपुनैर्गाममचमधुव्रतैः ॥ १२ ॥

प्रबालफलपुष्पोरुमारुहास्त्रामरुध्रैः ।

इससारसचक्राङ्गकारम्बुकुलाकुला ।

नलिन्यो यत्र कीदृन्ति प्रमदाः सुरसेमिता ॥ १३ ॥

आकाशगङ्गा देव्या इतां परित्समृत्वा ।

प्राकारेणाम्निवर्णेन साङ्गालेनोभवेन च ॥ १४ ॥

रुचमपद्मपाटय द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ।

जुष्टां विभक्तप्रपथां विभक्तकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥

सभाचत्वररभ्याख्यां विमानैर्न्यर्पुदैर्धुतान् ।

शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥

यत्र नित्यवयोरूपा श्यामा विग्नवामसः ।

उनकी मुजाओंमें सोनेक धातुकर और कानोंमें मकरज कुम्बल जगमग रहे थे । उनके कारण रथपर बैठे हुए वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मनो अस्त्रिगुणमें वस्त्रि प्रशस्त हो रही हो ॥ ९ ॥ उनके साथ चन्द्रकी समान ऐश्वर्य, कल और विभूतिवाले दैत्यसेनापति अपनी-अपनी सेना लेकर हो छिये । ऐसा बान पद्मता वा मानो वे अक्षय-को पी जायेंगे और अपने हठवारे प्रशस्ति नेके सम्पत्ति दिशामोंको, क्षितिजको मल कर डालेंगे ॥ १० ॥ राधा बहिन इस बहुत बड़ी आसुरी सेनाको लेकर उठा युद्धके डंगसे सम्बालन किया तथा आकाश और अन्तरिक्षको कँपाते हुए सकल ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हनुपुरी अमरावतीपर बसाई की ॥ ११ ॥

देवताओंकी राजवली अमरावतीमें बड़े सुन्दर-सुन्दर नन्दन बन आदि उद्यान और उपवन हैं । उन उद्यानों और उपवनोंमें पक्षियोंके खेद चहकते रहते हैं । मनुष्योंमें मोरे मत्तवाल हाँकर गुनगुनाते रहते हैं ॥ १२ ॥ स्वच्छ नये-नये पत्तों, फलों और पुष्पोंसे कलशखण्डोंमें शृङ्खलें लदी रहती हैं । क्योंकि सरोवरोंमें हल, समल, चकते और धतूरेकी मीख लगी रहती है । जहाँमें देवताओंके द्वारा सम्मानित देवाङ्गनारें जङ्गीरा करती रहती हैं ॥ १३ ॥ अनेकैर्नय कलशगुणने लक्ष्मी मीनि अमरावतीको चारों ओरसे घेर रक्ख है । उसके चारों ओर बहुत ऊँचा सोनेका परकोष्ठ बना हुआ है । जिसमें स्नान-स्नानपर बड़ी-बड़ी व्यष्टियों की ईर्ष है ॥ १४ ॥ सोनेके बिनाइ द्वार-द्वारपर लगे हुए हैं और स्पष्टिप्रशङ्गे गोपुर (नगरके बहारी प्रशङ्क) हैं । उसमें जगज्जगत् बड़-बड़े राजमग हैं । सर्व विचारमय की उस पुरीका निर्माण किया है ॥ १५ ॥ समने स्थान, अत्यन्त बानूरे और रथ चटनेक बड़-बड़ मणोंमें यह शोभापमान है । दम करोड़ निमान उसमें सग विद्यमान रहते हैं और मणियोंके घड़े-बड़ बौगहे एवं हार और मृगीय भेषियों की हुई हैं ॥ १६ ॥ पौरी प्रियों सपना सोय्य करती-रही रहती हैं उनका मौल और सोनिय स्थिर रहता है । वे निमज पय पद्मन

भ्राजन्ते रूपवभार्योऽर्चिर्मिरिष बह्वय ॥१७॥

सुरस्रीकेशविभ्रटनवसौगन्धिकसज्जाम् ।

यत्राभोदसुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥१८॥

हेमबालाद्यनिर्गन्धदूमेनागुरुगन्धिना ।

पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गो यान्ति सुरप्रिया ॥१९॥

मुष्कावितानैर्मणिहेमकेतुभि

नानापताकाबलभीमिराजताम् ।

शिशुम्बिपारावतचक्रज्जादितान्

बैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम् ॥२०॥

मृदङ्गमृद्वानकदुन्दुभिम्वनै

संतालवीणामुरब्धिवेशुभि ।

नृत्यै सवाद्यैरुपदेवगीतके

मनोरमां स्वप्रभया वितप्रभाम् ॥२१॥

यां न ब्रवन्त्यधर्मिष्ठाः खला मृतहृदःशृङ्गाः ।

मानिनः कामिनो लुब्धा रभिर्हीना ब्रवन्ति चत् ॥२२॥

तां देवधानीं ॥ बह्विनीपति

र्हतिः समन्ताद् रुधे पृथग्यया ।

आचार्यदर्शं बलवं महास्वन

दम्भो प्रयुञ्जन्ममिन्द्रयोपिताम् ॥२३॥

मधवांस्तमभिप्रत्य बले परमशुचमम् ।

सर्वदेवगणोपतो गुरुमेतदुवाच ह ॥२४॥

भगवन्नुपमो मृयान्वलेर्न पूर्ववैरिणः ।

अविषममिर्म मन्ये केनोमीशजसोजितः ॥२५॥

अपने रूपकी छटासे इस प्रकार देदीप्यमान होती हैं,

जैसे अपनी आल्यकोंसे अग्नि ॥ १७ ॥ देवाङ्गनाओंके

जुहसे गिरे हुए नवीन सौगन्धिक पुष्पोंकी सुगन्ध लेकर

वहाँके मार्गमें मन्द-मन्द हवा चखती रहती है ॥ १८ ॥

सुनहली शिबितियोंमेंसे अगरकी सुगन्धसे युक्त

सपेद धूर्तों निकल-निकलकर वहाँके मार्गोंके ठक

दिख करता है । उसी मगसे देवाङ्गनार्य जाती-

आती हैं ॥ १९ ॥ स्नान-स्नानपर मोतियोंकी

झाड़ोंसे सजाये हुए धँदोवे तने रहते हैं । सोनेकी

मणिमय पताकएँ फहराती रहती हैं । छज्जोंपर बनेजों

बहियों चहराती रहती हैं । मीर, कदूर और और

कल्लान करते रहते हैं । देवाङ्गनाओंके मधुर संगीतसे

वहाँ सदा ही मङ्गल छाप रहता है ॥ २० ॥ मृदङ्ग,

शङ्ख, नगारे, ढोल, वीणा, बरी, मबीरे और श्रुष्टियों

कचती रहती हैं । गन्धर्व कनोंके साथ गाया करते हैं

और अक्सर नाचा करती हैं । इनसे अमरावती इतनी

मनोहर जान पड़ती है याने उसने अपनी छटसे छट-

की अविष्टाकी देवीको भी जीत लिया है ॥ २१ ॥

उस पुरीमें कर्म, दुष्ट, जीवजोही, टा, मानी, कमी

और छोमी नहीं जा सकते । जो इन दोषोंसे रहित

हैं वे ही वहाँ जाते हैं ॥ २२ ॥ असुरोंकी सेनाके

सामी राजा बन्धने अपनी बहुत बड़ी सेनासे बाहरकी

ओर सब ओरसे अमरावतीको घेर लिया और इन्द्रपत्नियों-

के हृदयमें भयका सञ्चार करते हुए उन्होंने युद्धकार्य-

जीने लिये हुए म्हान् दण्डको बजाया । उस दण्डकी

ध्वनि सबत्र फैल गयी ॥ २३ ॥

इन्द्रने देखा कि बन्धने युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी

की है । अब सब देवाओंके साथ वे अपने गुरु

बृहस्पतिजीक पास गये और उनसे बोले— ॥ २४ ॥

‘महान् । मेरे पुराने दण्ड बन्धने इस बार युद्धकी

बहुत बड़ी तैयारी की है । मुझे पता जान पड़ता है

कि हमयोग उनका सामना नहीं कर सकेंगे । क्या

नहीं किम गाँवसे हथकी इतनी पढ़ती हो गयी

१ मा पा—सुरप्रिया । २ मा पा—वशेषुवीणापुर । ३ मा पा—महान् ।

४ मा पा—गन्धमय । ५ मा पा—केनापि स्वेन देव्यम् ।

नैन कश्चित् कृतो वापि प्रतिभ्योद्गमभीक्षरः ।

पिबन्निव मुखेनेद लिहन्निव दिशो दध्म ।

दहन्निव दिशो दग्निः संवर्तान्निबोत्तिष्ठत ॥२६॥

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्घपत्वस्य मद्रिपोः ।

भोजः सद्यो बलं तेजो यत् एतत्समुद्यमः ॥२७॥

गुल्फपात्र

आनामि मधवच्छत्रोरुभवेरस्य कारणम् ।

श्लिष्यायोपमृतं तेजोमृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥२८॥

भवद्विभो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वर हरिम् ।

नौस्य शक्तः पुरः स्वातु कृतान्तस्य यथा वनाः ॥२९॥

तस्माधिलपमृत्सून्यं यूपं सर्वे त्रिविष्टपम् ।

यात काल प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्यय ॥३०॥

एष विप्रबलोदर्कः सम्प्रत्युर्ध्वविक्रमः ।

तेषामवैपमानेन सानुबधो विनहस्यति ॥३१॥

एव सुमन्त्रिताधाम्ने गुरुणार्थानुवर्धिना ।

हिता त्रिविष्टप बभूवुर्गोर्वाणा कामरूपिणः ॥३२॥

देवेष्वथ निर्लीनेषु बलिर्वरोचनैः पुरीम् ।

दधधानीमधिष्ठाय दध्म निर्ये अग्रयणम् ॥३३॥

तं विश्वजपिन शिष्य भृगवः शिष्यवत्मला ।

गतन हपमभानामनुयतमयाजयन् ॥३४॥

ततस्तदनुभावेन सुवनप्रयविधुताम् ।

१ प्रा य — पूर्वं । २ प्राचीन प्रतिमे व्यास शक्तः यथा वनाः यद् यथावत् मूलमे गरी दे । दिव्योर्ध्वे
इत्येव न्यायमे एव पाठान्तरात् उल्लेख्य मिश्रता दे वो इत् प्रथम दे—विश्वजपि म कोट्येन ब्रह्मतेज एवो ।

३ प्रा य — मेरावमा । ४ प्रा पा०—नि । ५ प्रा य — निना ।

है ॥ २५ ॥ मैं देखता हूँ कि इस समय जीने
कोई भी किसी प्रकारसे रोक नहीं सकता । वे प्रसन्न
आगके सम्पन्न बह गये हैं और ज्ञान पवन है मुझे
इस विश्वको पी जायेंगे, जीमसे त्यों दिशार्जोंको क
जायेंगे और नेत्रोंकी आत्मासे दिशार्जोंको मस क
देने ॥ २६ ॥ आप कृपा करम मुझ कृतार्थको कि मे
शक्तुकी इतनी कृपाकीक, जिसे किसी प्रकार भी क
नहीं जा सकता, क्या करण है ! इसके हरि, म
और इन्द्रियोंमें इतना क और इतना तेज कहाँसे अ
गया है कि इसने इतनी बड़ी मैथरी करके बर
की है ॥ २७ ॥

बेषगुण बृहस्पतिजीने कहा—इन्द्र ! मैं तुम्हारे
शत्रु बन्धि उन्नतिक परण जानता हूँ । बलकी
मृगुर्ध्विष्योंने अपने शिष्य बन्धिके महान् तेज देकर
शक्तियोंका सजाना बना दिया है ॥ २८ ॥ सर्ववि-
मान् मरुत्तन्को छोड़कर तुम य तुम्हारे-जैसा और
कोई भी बलिके सामने उसी प्रकार नहीं खर सकता,
जैसे बलके सामने प्राणी ॥ २९ ॥ इसलिये तुमको
सर्वज्ञे छोड़कर कहीं छिप नजो और उस समझी
प्रतीक्षा करो, जब तुम्हारे शत्रुका मायम्बर कटे ॥ ३० ॥
इस समय ब्राह्मणोंके तेजसे बन्धि उन्नोत्तर इति
हो रही है । उसकी शक्ति बहुत बढ़ गयी है । जब
यह उन्हीं ब्राह्मणोंका निम्नकर करेगा, तब जाने
परिवार-परिकरके साथ मट हो जायगा ॥ ३१ ॥
बृहस्पतिजी देवताओंके समस्त म्वा और परमके
ज्ञात थे । उन्होंने जब इस प्रकार देवताओंको मुझ
दी, तब वे स्वेच्छानुसार रूप धारण करके म्वा छोड़कर
फरे गये ॥ ३२ ॥ म्वाओंके छिप जानेस विरोध
नन्तन बन्धि अमापनीपुर्णपर अतना अविश्व बर
छिप और फिर तीनों परब्रह्म जीन क्रिम् ॥ ३३ ॥
अब बन्धि विश्वविजयी हो गये तब शिष्यकी मृगुर्ध्वि-
न अपने अनुगम शिष्यसे सी अश्वमेय यद् ब्रह्मण ॥ ३४ ॥
उन यज्ञोंके प्रभावसे बन्धि कीर्ति-मौमुर्गी तीनों परब्रह्म
साह्र भी द-प दिशार्जोंके पद गयी और ब मद्यज्ञे

कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेख उद्धरादिव ॥३५॥

मुमुक्षे च भियस्तदा द्विप्रदेवोपलम्बिताम् ।

कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामना ॥३६॥

राजा चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए ॥ ३५ ॥

ब्राह्मण-देवताओंकी कृपासे प्राप्त समृद्ध राज्यव्यपिक्त वे
धकी उदात्ततासे उपभोग करने लगे और अपनेको

कृतकृत्य-सा मानने लगे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमार्थ्यां संहितास्यमष्टमस्कन्धे

पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ पोटशोऽध्यायः

कल्पपञ्जीके द्वाप्य अवस्थिको पयोमत्तक्य उपदेश

श्रीकृष्ण उवाच

एव पुत्रेषु नष्टेषु देवमातादितिसदा ।

हृते त्रिविष्टपे दैर्घ्यं पर्यतप्यदनायकम् ॥ १ ॥

एकदा कश्यपस्त्वस्या आभ्रम भगवानगात् ।

निरुत्सव निरानन्द समावेर्षितभिरात् ॥ २ ॥

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ।

समाश्रितो यथान्यायमिदमाह कुरुदह ॥ ३ ॥

अप्यभद्रं न विप्रार्थां भद्र लोकेऽधुनाऽऽगतम् ।

न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योर्दृष्टन्दानुवर्तिन ॥ ४ ॥

अपि बाहुयलं किञ्चिद् गृहपु गृहमेधिनः ।

धर्मस्यार्थस्य क्रमस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५ ॥

अपि वातिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया ।

गृहादप्यमिता याताः प्रस्युत्थानेन वा कथित ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—परीक्षित ! जब देवता

इस प्रकार मायकर छिय गये और दैत्योंने स्वर्गपर
अधिकार कर लिया, तब देवमाता अदिनिके बड़ा दुःख
हुआ । वे अनाप-सी हो गयीं ॥ १ ॥ एक बार बहुत
दिनोंके बाद जब परमप्रभावशाली कश्यप मुनिकी
सम्पत्ति दृष्टी तब वे अदितिके आभ्रमपर आये ।
उन्होंने दृष्टा कि न तो कहाँ सुख-शान्ति है और न
किसी प्रकारका उत्साह या सज्जक ही ॥ २ ॥
परीक्षित ! जब वे कहाँ जाकर आसनपर बैठ गये
और अदिनिके त्रिविष्टपक उनका स्वरूप कर लिया,
तब वे अपनी पत्नी अदिनिके—विसके चेहरेपर बड़ी
उदासी छापी हुई थी—बोले ॥ ३ ॥ 'कल्याणी ! इस
समय संसारमें ब्राह्मणोंपर कहाँ विपत्ति तो नहीं आयी
है ? धर्मका पाटन तो धीक-सीक होता है ? कहके
कहाट गल्लमें पड़ हुए लोगोंका कुछ अवलोक तो नहीं
हो रहा है ? ॥ ४ ॥ प्रिय ! गृहस्थाश्रम तो, जो लोग
योग नहीं कर सकते, उन्हें भी योगका पट दनेवाला
है । इस गृहस्थाश्रममें रहकर धर्म, अर्थ और कामके
सेकनमें किसी प्रकारका विष ता नहीं हो रहा है ! ॥ ५ ॥
यह भी सम्भव है कि तुम वृन्दुम्बक मरण-योगमें
अप्य रह ही हो, अनिधि आप हाँ और हममें बिना
सम्मान पाव ही गौर गये हों तुम पत्नी होकर उनका
स्वरूप करनेमें भी असमर्थ रही हो । इससे ताँ तुम

गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ।
 यदि निर्यान्ति ते नूनं फेकुरागृहोपमा ॥७॥
 अम्यग्रयस्तु वेलायां न हुता इविषा सति ।
 त्वयोद्विग्रधिषा भद्रे प्रोपिते मयि कर्हिषिस् ॥८॥
 यत्पूजया कामदुषान्याति लोकान्गृहान्वित ।
 ब्राह्मणोऽपि न वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥९॥
 अपि सर्वे कुञ्जलिनस्तत्र पुत्रा यनखिनि ।
 लक्ष्येऽन्नस्यमात्मानं भवत्या लक्ष्मणैरहम् ॥१०॥

अदितिरुवाच

मर्द्रं द्विचगवां ब्रह्मन्भर्मसास्य जनस्य च ।
 निर्वास परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥११॥
 अग्रयोऽतिथयो मुत्पा भिक्षवो ये च लिप्सवः ।
 सर्वं भगवतो ब्रह्मसमुद्भयानां स्थिति ॥१२॥
 को नु मे भगवन्कामो न सम्पद्येत् मानसः ।
 यस्तु भवान्प्रब्रह्मस्य एव धर्मान्प्रभाषते ॥१३॥

तवैव मारीच मनःशरीरखा

प्रभा इमा सत्त्वरजस्तमोजुष ।

समो भवान्तास्तसुरादिषु प्रभो

तथापि भक्त भजते महेश्वर ॥१४॥

तस्मादीयं भजन्त्या मे भेद्यमिन्त्यथ सुप्रत ।
 इतिथियो इत्यनान्सपत्नैः पादि न प्रभा ॥१५॥
 परं निवासिता साहं मया व्यसनमागर ।

उदास नहीं हो रही हो ! ॥ ६ ॥ जिन घरों में अब
 हुए अतिथिवा जगहों में भी स्नान नहीं किया जाय
 और वे ऐसे ही छूट जाते हैं, वे घर अल्प ही गिरसों-
 के घरके समान हैं ॥ ७ ॥ प्रिये ! सम्भव है, मेरे ब्रह्म
 चक्र के जानेपर कभी तुम्हारा चित्त उद्विग्न रहा हो और
 सम्पत्पर तुमने हविष्यसे अग्नियोंमें हवन न किया
 हो ॥ ८ ॥ सर्वदेवस्य मगवान्के मुख हैं—ब्रह्म
 और अग्नि । गृहस्य पुरुष यदि इन दोनोंकी पूजा
 करता है तो उसे उन लोकोंकी प्राप्ति होती है, जो
 समस्त ब्रह्मणाओंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ प्रिये !
 तुम तो सर्वदा प्रसन्न रहती हो, परन्तु तुम्हारे बड़ोसे
 लक्ष्मणोंसे मैं देख रहा हूँ कि इस समय तुम्हारा चित्त
 व्यसक्त है । तुम्हारे सब लक्ष्मणोंके तो कुशल-व्यवस्था
 है न ? ॥ १० ॥

अदितिने कहा—भगवन् ! ब्राह्मण, गौ, बक और
 वाक्पति यह दासी—सब सज्जन हैं । मेरे बर्मे !
 यह गृहस्य-ब्राह्मण ही अर्थ, धर्म और कामकी सन्तानों
 परम सहायक है ॥ ११ ॥ प्रभो ! आपके निरन्तर
 स्मरण और कल्याण-कामनासे अग्नि, वज्रिनि, सेवक,
 मिथुक और दूसरे यक्षकोंका भी मैं तिरस्कार नहीं
 किया है ॥ १२ ॥ भगवन् ! जब आप-जैसे प्रब्रह्मणि
 मुझे इस प्रकार धर्म-पाठनका उपदेश करते हैं, तब
 भय मेरे मनकी ऐसी कड़ैनी-सी कामना है जो पूरी न
 हो जाय ? ॥ १३ ॥ कार्युत्र ! समस्त ब्रह्म—
 आदे सत्त्वगुणी, रजोगुणी या तमोगुणी हो—आत्मी
 हीं सत्पन्न है । कुछ आपके सङ्कल्पसे उत्पन्न हुए हैं
 और कुछ शरीरसे । भगवन् ! इसमें संदेह नहीं कि
 आप सब सन्तानोंके प्रति—जैसे भगवन् हों या देव-
 पत्न्या भगवन् रहने हैं, सम हैं । तपानि सर्व कामेश्वर
 भी अपने मर्कोंकी अभियन्ता पूरा किया करते हैं ॥ १४ ॥
 मेरे स्वामी ! मैं आपकी दासी हूँ । आप मेरी भवद्वि-
 सम्बन्धमें विचार कीजिये ! कर्मागारात्मक प्रभो ! शत्रुओं-
 ने हमारी सम्पत्ति और रहनसज्जानपर हीन स्थि-
 ति है । आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥ भगवन् !
 त्योंही मेरे पण्य, धन, यत्न और यत्न हीन प्रिये हैं

ऐश्वर्यं भीर्यश्च न्यानं हृतानि प्रपल्लैर्मम ॥१६॥

यथा तानि पुन साधा प्रपद्यन् ममात्मज्जाः ।

तथा विषेहि कल्याणं धिया कल्याणकृतम् ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

एवमम्परिहोऽदित्या कन्तामाह सयस्मिन् ।

अहो मायाबल विष्णोः स्नेहश्चमिदं सगत् ॥१८॥

ए देहो भौतिकोऽनात्मा क चात्मा प्रकृते परः ।

कस के पतिपुत्राया मोह एव हि कारणम् ॥१९॥

उपतिष्ठस्य पुरुष भगवन्त अनार्दनम् ।

सर्वभूतगुहावासं वासुदेव जगत्पुरुषम् ॥२०॥

स विधाम्यपि ते वरमान्हरिर्दीनानुकम्पन ।

अमाया भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥२१॥

अदितिरुवाच

केनाह विधिना ब्रह्मन्तुपस्थास्ये जगत्पतिम् ।

यथा मे सत्यमङ्गस्या विद्वयात् स मनोरथम् ॥२२॥

आदिष्ट त्वं द्विजप्रेष्ठ विधिं वतुपभावनम् ।

आशु तुष्पति मे दश सीदन्त्या सह पुत्रकै ॥२३॥

कश्यप उवाच

एत मे भगवानृष्ट प्रजाकामस्य पञ्चजः ।

यदाह त प्रवक्ष्यामि श्रुतं कण्ठघोषणम् ॥२४॥

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशार्हं पयोध्रत ।

अर्चयेद्भविन्दाशं भक्त्या परमयान्वितः ॥२५॥

तथा हमे करते बाहर निकल दिया है । इस प्रकार मैं दु खके समुद्रमें डूब रही हूँ ॥ १६ ॥ आपसे कहकर हमारी मछली करनेवाला और कोई नहीं है । इसलिये मेरे हितैषी स्वामी ! आप सोच-विचारकर अपने सङ्कल्पसे ही मेरे कल्याणकर पड़ें ऐसा उपाय कीजिये जिससे कि मेरे पुत्रोंको वे वस्तुएँ मिलसे प्राप्त हो सकें ॥ १७ ॥

श्रीशुकनेत्रजी कहने हैं—इस प्रकार अदिति जब कश्यपजीसे प्रार्थना की, तब वे कुछ निश्चिन्तसे होकर बात—बड़ आश्चर्यकी बात है । भगवान्की माया भी कैसी प्रबल है ! यह सारा जगत् स्नेहकी रज्जुसे बँधा हुआ है ॥ १८ ॥ वहाँ यह पञ्चभूतोंसे बना हुआ धनात्मा शरीर और कहाँ प्रकृतिसे पर आत्मा ? न किसीका कोई पति है, न पुत्र है और न तो सम्बन्धी ही है । मोह ही मनुष्यको नचा रहा है ॥ १९ ॥ प्रिये ! तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निराजमान, अपने मर्कोंके दुःख मित्रनेकसे जगद्गुरु भगवान् वासुदेवकी आराधना करो ॥ २० ॥ वे बड़े दीनपात्र हैं । कष्ट ही भीड़रि तुम्हारी कर्मनाएँ पूर्ण करेंगे । मेरा यह बड़ निश्चय है कि भगवान्की मक्ति कभी व्यर्थ नहीं होगी । इसक सिद्धा बड़े दूसरा उपाय नहीं है ॥ २१ ॥

अदितिने पूछा—भगवान् ! मैं जगदीश्वर भगवान्की आराधना किस प्रकार करूँ, जिससे वे सत्यसङ्कल्प प्रभु मेरा मनोरथ पूर्ण करें ॥ २२ ॥ पतिदेव ! मैं अपने पुत्रोंके साथ बहुत ही दुःख साग रही हूँ । जिससे वे शीघ्र ही मुझपर प्रसन्न हो सकें, उनकी आराधनाकी बड़ी विधि मुझे बतलाइये ॥ २३ ॥

कश्यपजीने कहा—दवि । जब मुझ मन्त्रानुसार कर्मना हुई थी तब मैंने भगवान् कृष्णजीसे यही वचन प्रार्थना की । उन्होंने मुझे भगवान्की प्रसन्न करनेवाला जिस प्रकार उपदेश दिया था, वही मैं तुम्हें बतलाया हूँ ॥ २४ ॥ पञ्चभूतोंके युक्तपक्षमें बारह दिनकर कष्ट दूष पीड़ित रह और परम भक्तिसे भगवान् कर्मजनपति पूजा करो ॥ २५ ॥ अष्टकस्थक दिन यदि मित सक

मिनीवास्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायान् क्राहविदीर्णया ।

यदि लभ्येत वै स्नातम्येत मन्त्रमुदीरयत् ॥२६॥

स्वं देव्यादिवराहण रसायाः स्नानमिच्छता ।

उद्धृताति नमस्तुभ्यं पाप्मान मे प्रणाशय ॥२७॥

निर्वर्तितात्मनियमा देवमर्चेत् समाहित ।

अर्चायां व्यम्बिले धूपे जले बहौ गुणवपि ॥२८॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।

सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिण ॥२९॥

नमोऽभ्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।

चतुर्विधगुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥३०॥

नमो द्विशीर्षो त्रिपद चतुःशृङ्गाय तन्त्रवे ।

सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविष्ठात्मने नमः ॥३१॥

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिभराय च ।

सर्षपिषाधिपतये मृतानां पतये नमः ॥३२॥

नमो हिरण्यगर्भाय प्राजाय जगदात्मने ।

मोर्गैश्वर्यशरीराम नमस्ते योगहेतवे ॥३३॥

नमस्त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ।

नारायणाय श्रपये नाराय हरये नमः ॥३४॥

तो सूअरकी श्योनी हुई मिनीसे अपना शरीर मक्का नदीमें स्नान करे । उस समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये ॥ २६ ॥ हे देवि । प्राणिमोको म्नात करने इच्छते कण्डमगमानून रसान्द्रसे तुम्हाग उदार शिव था । तुम्हें मेरा नमस्कार है । तुम मेरा पापोंका नाश कर दो ॥ २७ ॥ इसका अर्थ करने नित्य बार वैष्णव नियमोंकी पूरा पत्रक प्रकाशितसे मूर्ति, यन्त्र, धूप, जल, अग्नि और गुणज्ञ रूपमें भगवान्की पूजा करे ॥ २८ ॥ (और इस प्रकार स्तुति करते—) 'श्रमो ! श्रम स्वर्गमश्नुते । अन्तर्यामी और आगर्भनाम हैं । समस्त प्राणी आपमें और आप समस्त प्राणिमोमें निश्चय करते हैं । इसीसे आपका आशुतेष बहान हैं । आप समस्त पञ्चक जगत् और उसके कारणकी भी साक्षी हैं । आपका मेरा आशुते नमस्कार है ॥ २९ ॥ आप अत्यन्त सूक्ष्म हैं । प्रकृति और पुरुषकी रूपमें भी आप ही निहित हैं । आप चौबीस गुणोंक ज्ञाननेवाले और गुणोंकी संख्या करनेवाले सांख्यशास्त्रके प्रवक्तृ हैं । आपसे को नमस्कार है ॥ ३० ॥ आप वह यह हैं, जिसके प्रायणीय और उदयनीय—ये दो कम सिर हैं । प्रथम, मध्यम और तृतीय—ये तीन सकल ही तीन पद हैं । चारों ओर चार सींग हैं । गायत्री अग्नि सप्त रश्मि की सात हाथ हैं । यह धर्ममय रूपमरूप यह केनेके द्वारा प्रतिपादित है और इसकी आत्मा हैं सर्व जगत् । आपसे मेरे नमस्कार है ॥ ३१ ॥ आप ही स्रष्टा, रक्षक, शिव और आप ही प्रलयकारी स्व हैं । समस्त सृष्टिको कारण करनेवाले भी आप ही हैं । आपसे मेरा बार-बार नमस्कार है । आप समस्त विश्वजनोंक प्रभु हैं एवं भूतोंके स्वामी हैं । आपसे मेरा नमस्कार ॥ ३२ ॥ आप ही सबको प्राण और आप ही इस जगत्के स्वरूप भी हैं । आप योगकी कारण तो हैं ही स्वयं योग और उससे मिश्रितस्वयं देवर्षी की आप ही हैं । हे हिरण्यगर्भ ! आपसे जिये मेरे नमस्कार ॥ ३३ ॥ आप ही आपसे हैं । सबको साक्षी हैं । आप ही सारागण अद्वैत रूपमें प्रकट स्वयं भगवान् हैं । आपसे मेरे नमस्कार ॥ ३४ ॥ आपका शरीर परब्रह्ममणि

नमो मरकतदयामवपुषेऽधिततत्रिये ।

वेप्रभाय नमस्तुभ्य नमस्ते पीतपाससे ॥३५॥

त्य सर्वधरद पुसां वरेण्य वरदर्पम् ।

अतस्ते धयसे धीराः पादरेणुद्वपाससे ॥३६॥

अन्ववर्तन्त य देवाः श्रीभ तत्पादपङ्क्तयोः ।

सुहृन्त इवामोद भगवान्भ प्रसीदताम् ॥३७॥

पतैर्मर्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ।

अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्यापस्पर्शनादिभि ॥३८॥

अर्चित्वा ग भगवत्पादौः पयसा स्नानयेद् विष्टम् ।

वस्त्रापनीताभरणपाद्योपस्पर्शैर्नैस्ततः ।

गन्धधूनादिभिर्वाचैर्द्व द्वादशाक्षरविधया ॥३९॥

मृतपयैषि नैवेद्य शाल्यञ्च विभवे सति ।

सप्तविं सगुद दत्त्वा शुद्धिपामूलविधया ॥४०॥

निवेदिष्य तद् भक्त्या दद्याद् शुद्धीत वा स्वयम् ।

दत्त्वाऽऽचमनमर्चिन्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥४१॥

अपराधपरश्वस्तुवीत स्तुतिभिः प्रष्टुम् ।

कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणम्य दण्डवद्भुजा ॥४२॥

कृत्वा क्षिरमि तच्छेषां देवसुद्रासयेत् ततः ।

द्वयशराभावायेद्विप्रान्पापसेन यथाशितम् ॥४३॥

सुद्धीत तैरनुज्ञातः श्रेयं सेष्ट मभाजितैः ।

प्रज्ञाचार्यश्च तद्ग्राह्यां स्वाभूते प्रथमऽहनि ॥४४॥

ज्ञात शुचियथांकेन विधिना मुसमाहितः ।

पयसा स्नापयिस्वाचैर्द्व यावद्भूतसमापनम् ॥४५॥

पयाभक्षो व्रतमिदं चरन् विष्णुवर्चनाहत ।

समान सौम्य है । समस्त सम्पत्ति और सौन्दर्यकी देवी लक्ष्मी आपकी सेविका हैं । पीताम्बरधारी केनाथ । आप-का मेरे दादा-बाबा नमस्कार ॥ ३५ ॥ आप स्वयं प्रकाशके घर देनेवाले हैं । घर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं तथा जीवोंके एकमात्र वर्णीय हैं । यही कारण है कि वीर विवेकी पुष्ट अपने कर्मपाणके लिये आपके चरणोंकी रजकी उपालना करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनके चरणकर्मजोंकी सुगन्ध प्राप्त करनेकी लालसासे समस्त नेत्रों और स्वयं लक्ष्मीजी भी सेवामें लगी रहती हैं, वे भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ धिये । भगवान् हरीकेनाथ आवाहन फलें ही कर ले । फिर इन कर्मजोंके द्वारा पाप, अचमन आदिके साथ भस्माशुक्ल मन व्याकर पूजा करे ॥ ३८ ॥ गन्ध, माथ आदिसे पूजा करके भगवान्को दूधसे स्नान करावे । उसके बाद बत्ता, यक्षास्तीत, आम्रपुष्प, पाषाण, आचमन, गन्ध धूप आदिक द्वारा द्वादशाक्षर मन्त्रसे भगवान्की पूजा करे ॥ ३९ ॥ यदि सामर्थ्य हो तो दूधमें एकदो हल तथा बी और गुड़ मिला दूध शास्त्रिक चावलका नैवेद्य लगावे और उसीका द्वादशाक्षर मन्त्रसे हुकन करे ॥ ४० ॥ उस नैवेद्यको भगवान्को भक्तोंमें बाँट दे या स्वयं पा ३ । आचमन और पूजाका बाद ताम्बूल निवेदन करे ॥ ४१ ॥ पय सौ आठ बार द्वादशाक्षरमन्त्रका जप करे और स्तुतियों द्वारा भगवान्को स्तुति करे । प्रदक्षिणा करके दूध प्रण और आनन्दसे मूर्ध्नि छेककर दण्डवत्प्रणाम करे ॥ ४२ ॥ निर्माल्यका स्तिरसे लगाकर वेष्टाकर त्रिसर्जन करे । कर्म-सेकम ने ब्राह्मणोंको यथोक्ति रीतिसे खीरका भाजन करावे ॥ ४३ ॥ श्रद्धिगा आपसे उनपर स्तुत्य करे । इसके बाद उनसे आज्ञा लेकर अपने हृद-मित्रोंका माव वयं दूध लक्ष्मी स्वयं ग्रहण करे । उस दिन अन्नचयसे रह और दूसरे दिन प्रातः कर्म ही स्नान आदि करके पवित्रतापूर्वक पूर्वोक्त विधिसे एकत्र होकर भगवान्की पूजा करे । इस प्रकार जन्मका कर्म सम्पन्न न हो, तब तक दूधसे स्नान कराकर प्रतिदिन भगवान्की पूजा करे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ भगवान्की पूजासे आनन्द-मुक्ति मन्ने हुए

पूर्वबन्धुदुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥४६॥

एवं त्वहरदः कुर्याद् दादृशाहं पयाग्रतः ।

हरेराराधनं होममर्चनं द्विसप्तर्षिणम् ॥४७॥

प्रतिपरिनिवारम्प यावच्छुक्लप्रबोदशी ।

ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं ज्ञानं त्रिषवर्षं चरेत् ॥४८॥

वर्जयेदसदालापं भोगानुष्वावचांस्तथा ।

अहिंसः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥४९॥

प्रबोदस्यामयो विष्णोः रूपन पञ्चकैविमाः ।

कारवेच्छास्त्रचष्टेन विधिना विधिकारिदैः ॥५०॥

पूजां च महतीं कुर्याद् विदुस्त्रास्त्रविवर्जितः ।

चरुं निरूप्य पयसि क्षिपिविणायकं विष्णवे ॥५१॥

श्रुतेन तेन पुण्यं यत्नतः सुसमाहितः ।

नैवेद्यं चातिगुणवद् दद्यात्पुरुषसृष्टिदम् ॥५२॥

आचार्यं ज्ञानसम्पन्नं ब्रह्माभरणभेनुमिः ।

तापयेद्वृत्तिवर्धनं तद्विदुष्यागर्धनं हरे ॥५३॥

भोजयेत् तान् गुणवता सदन्नेन श्लिषिभिते ।

अर्थाथ ब्राह्मणाम्ब्रह्मसंवादे च तत्र समागताः ॥५४॥

दक्षिणां गुरवे दद्याद्वृत्तिवर्धनं यथार्हतः ।

अभाघोनाश्वपाकांश्च प्रीययेत्समुपागतान् ॥५५॥

सुखवशु च सर्वेषु दीनान्भर्तृपणेषु च ।

विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वांश्चुशीतसहस्रयुमिः ॥५६॥

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ।

कारयेत्तत्कथामिथ पूजां भगवतोऽन्वहसु ॥५७॥

यच्छ पयोक्त्री रहकर मद्रूप करना चाहिये । श्रुत
प्रतिनिधि हवन और ब्राह्मण-भोजन भी करना
चाहिये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पयोक्त्री रहकर कर्त्तव्य
नित्य प्रतिनिधि भगवान्की आराधना, होम और पूजा
करे तथा ब्राह्मण-भोजन करना रहे ॥ ४७ ॥

पञ्चगुण शुद्ध प्रतिपत्तसे लेकर प्रयोत्शीकृत कर्त्तव्य
से रहे, पृष्णीपर शयन करे और तीनों समय स्नान
करे ॥४८॥ झूठ न बोले । पापियोंसे वक्त न करे ।
पापकी क्षमा न करे । छुटे-बड़े सब प्रकारके भोगोंसे
त्याग कर दे । किसी भी प्राणीको किसी प्रकारसे कष्ट
न पहुँचावे । भगवान्की आराधनामें लगा ही रहे ॥४९॥
अयोदशीके दिन विविध जाननेवाले ब्राह्मणोंके द्वारा श्लोच
विविध भगवान् विष्णुको पञ्चभूतस्नान करावे ॥ ५० ॥
उस दिन वनक सबल श्लोच श्लोक भगवान्की बहुत बड़ी
पूजा करनी चाहिये । और दूधमें चक्र (सीर) पकड़कर
विष्णुभगवान्को अर्पित करना चाहिये ॥ ५१ ॥ कल्पित
एकप्रकार चित्तसे उसी पकड़े हुए चक्रे द्वारा भगवान्की
पूजा करना चाहिये और उनको प्रसन्न करनेवाला गुण-
युक्त कथा कान्ति नैवेद्य अर्पण करना चाहिये ॥ ५२ ॥
इसके बाद ज्ञानसम्पन्न आचार्य और श्रुतिजनोंके साथ,
कामूषण और गौ आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये ।
छिये ! इसे भी भगवान्की ही आराधना समझो ॥ ५३ ॥
छिये ! आचार्य और श्रुतिजनोंके द्वारा, स्तुतिक और
गुणयुक्त भोजन करना ही चाहिये दूसरे भक्षण और
आये हुए अनिषिक्तोंमें से अपनी शक्तिके अनुसार भोजन
करना चाहिये ॥ ५४ ॥ गुरु और श्रुतिजनोंके एक-
योग स्थिति में देना चाहिये । जो चाण्डाल आदि बन्ने-
वाप कालों आ गये हों, उन समीको तब दीन अथवा
और असम्पन्न पुरुषोंको भी अन्न आदि देकर सन्तुष्ट करना
चाहिये । जब सब लोग का चुकें, तब उन सबके
सम्बन्धको भगवान्की प्रसन्नताका साधन सम्पन्नते हुए
जापने मन्त्र-कथनोंके साथ सत्य भोजन करे ॥ ५५ ५६ ॥
प्रतिपत्तसे लेकर प्रयोत्शीकृत प्रतिनिधि नाच-गान, बजे-
गाने स्तुति स्वस्तिवाचन और भगवत्कथनोंसे भगवान्की
पूजा करे-करावे ॥ ५७ ॥

एतत्प्रयोजनं नाम पुरुषाराधनं परम् ।

पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥५८॥

त्वं चानेन महामागे सम्यक्धीर्णेन केशवम् ।

आत्मना हृद्धमाधेन नियतात्मा भक्षाभ्ययम् ॥५९॥

अयं वै सर्वयक्षाभ्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ।

तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥६०॥

त एव नियमाः साक्षात् एव च यमोचया ।

तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुभ्यस्त्यभोक्ष्यते ॥६१॥

तस्मादतद्व्रतं भद्रे प्रयत्ना यद्वया चर ।

भगवान्परितुष्टस्ते वरानाप्नु विधास्यति ॥६२॥

प्रिये ! यह भगवान्की श्रेष्ठ आराधना है । इसका नाम है 'प्रयोजन' । ब्रह्माग्निने मुझे जैसा बताया था, वैसा ही मैंने तुम्हें कता दिया ॥ ५८ ॥ देखि ! तुम योगवान् हो । अपनी इन्द्रियोंका कर्माँ परक हृद्ध मन एवं भद्रापूर्ण चित्तसे इस प्रकार भर्माँभौति अनुष्ठान करो और इसका द्वारा अविनाशी भगवान्की आराधना करो ॥ ५९ ॥ कल्याणी ! यह मन भगवान्को स्तुति करनेवाला है, इसलिये इसका नाम है 'स्तवयज्ञ' और 'स्तव्रतन' । यह समस्त तत्त्वज्ञोंका सार और मुख्य दान है ॥ ६० ॥ जिससे भगवान् प्रसन्न हों—य ही सच्चे नियम हैं, वे ही उत्तम यम हैं, वे ही वास्तवमें तपस्व, दान, व्रत और यज्ञ हैं ॥ ६१ ॥ इसलिये देखि ! संयम और भद्रासे तुम इस प्रकार अनुष्ठान करो । भगवान् दीप्त ही तुमका प्रसन्न होंगे और तुम्हारी अभिप्राया पूर्ण करेंगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहंस्यं संहितायामष्टमस्कंधोऽपि नि

पयान्निकर्तनं नाम पौष्ठाऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवान्का प्रकट होकर भवितिको वर देना

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तं सादृती राज्ञस्त्वभर्षा कश्यपन वै ।

अन्वविष्टुद् व्रतमिदं द्वाविंशद्विंशति ॥ १ ॥

चिन्तयन्त्यकृषा युद्धया महापुरुषमीश्वरम् ।

प्रगृह्णन्ति यदुदात्तामनसा युदिसाराथि ॥ २ ॥

मनश्चकाप्रया युद्धया भगवन्त्यविलास्यमनि ।

वासुदेवे समाधाय चचार ह पयाव्रतम् ॥ ३ ॥

तस्या प्रादुरभूतात् भगवानादिपूरुषः ।

पीतवामाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥

सं नेत्रगाधरं वीर्यं महयाम्नाय मादरम् ।

श्रीशुकव्याजी कहते हैं—परमेश्वर ! अपन पतिवचन शरीर, अत्यन्तकी उपासना प्राप्त करने अर्थात् बड़ी साधनासे काहें निनक इस प्रकार अनुष्ठान किया ॥ १ ॥ बुद्धिमान् साराथि बनाकर मनकी व्यासमें उसने इन्द्रियका दृष्ट बाह्योत्तर करने कर्माँ कर लिया और एकनिष्ठ बुद्धिमें वह पुरुषात्मा भगवान्की चिन्तन करनी गई ॥ २ ॥ उसने एकप्रकार बुद्धिसे अपने मनका सर्वांग्य भगवान् कमुत्तममें पूजाकर्मसे व्याकर प्रयासकर अनुष्ठान किया ॥ ३ ॥ वह पुरुषात्मा भगवान् उमक सामन प्रकट हुए । परमेश्वर ! वे पीताम्बर धारण किये हुए थे चार मुकुट भी और शङ्ख, चक्र, गदा किये हुए थे ॥ ४ ॥ अपने नयोंक सामन भगवान्को सहसा प्रकट हुए और अग्नि सागर उठ गई हुई और फिर

ननाम भुवि कायेन दण्डवत् प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥

सात्प्रभाम वदाम्बलिरीदितुं स्थिता

नोत्सेह प्रानन्दभलाकुलेशणा ।

बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृति

स्तरर्धनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

प्रीत्वा क्षनैर्गद्गदया गिरा हरिं

सुखाय सा वेष्मदिति कुरुद्वह ।

उद्गीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा

रमापतिं यक्षपतिं जयत्यपिमु ॥ ७ ॥

अदितिरुवाच

यक्षश्च यक्षपुरुषान्पुत तीर्थपाद

तीर्थभवः श्रवणमङ्गलनामधव ।

आपभलांकुञ्जिनापशमोदयाद्य

श्रुतः कुधीष्ट भगवन्ममि दीननाथः ॥ ८ ॥

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाद्य

स्वैरं गृहीतपुरुषक्तिगुणाय भूम्ने ।

न्वन्वाय श्रवणदुर्गद्विदपूणशोभ

व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥

आयुः परं बभूवभीष्टमनुभवलक्ष्मी

धौमूरसाः सकलपांगशुणासिर्वर्गः ।

ज्ञानं च कवलमनन्तं भवन्ति तुष्टात्

त्वत्ता नृणां किमु सपत्न्ययादिराक्षी ॥ १० ॥

भीष्मक उवाच

अदित्यैव स्तुतो राक्षसभगवान्पुष्करद्वयः ।

प्रमत्ते विह्वल होकर उसने पृथ्वीपर छेन्नकर उन्हें दण्डवत्-
प्रणाम किया ॥ ५ ॥ फिर उठकर, हाथ जोड़, माण्ड-
की स्तुति करनेकी चेष्टा की, परन्तु नेत्रोंमें अश्रु-
ओंसे उमड़ आय, उससे बोझ न गया । उसका स्वर
पुञ्जित हो रहा था, दर्शनक आनन्दोत्सवसे उसके
अङ्गोंमें कंप होने लगा था, वह क्षुब्धपण स्वी-
करी ॥ ६ ॥ परीक्षित ! इसी वरिधि अश्रु प्रेम्पूर्ण नेत्रों
लक्ष्मीपति, विश्वपति, यक्षेश्वर माण्डानको इस प्रकार देख
रही थी मन्ता वह उन्हें भी जानगी । फिर वह प्रमत्ते,
गद्गद बाणीसे, धीरे-धीरे उसने माण्डानकी स्तुति
की ॥ ७ ॥

अदितिने कहा—आप यज्ञके ताम्री हैं और स्वयं
यज्ञ भी आप ही हैं । अत्युत ! आपके चरणमन्त्रोंका
आख्य लेकर जग भवसागरसे तर जाते हैं । आपके स-
न्निर्जनका श्रवण भी संसारसे तारनेवाला है । आपके
नामोंके श्रवणमात्रसे ही कल्याण हो जाता है । यदि
पुरुष । जो आपकी शरणमें आ जाता है, उसकी सभी
विपत्तियोंका आप नाश कर देते हैं । माण्ड ! आप
दीनोंके ताम्री हैं । आप हमारा कल्याण कीर्तित ॥ ८ ॥
आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयक करण हैं ।
और विश्वरूप भी आप ही हैं । अनन्त होनेपर भी
लक्ष्मण्यतासे आप अनेक शक्ति और गुणोंकी भीतर
कर लेते हैं । आप सदा अपने स्वरूपमें ही स्थित रहते
हैं । नित्य-निरन्तर करते हुए पूर्ण वाक्मक द्वारा आप
हृदयके अन्तर्कारका नष्ट करते रहते हैं । माण्ड ! मैं
आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ९ ॥ प्रमा ! अन्त !
जब आप प्रसन्न हो जाते हैं तब मनुष्योंके ब्रह्माजीकी
नीचे आयु, उनके ही सम्पन्न निम्न शरीर प्रत्येक अमीश
वस्तु अतुलित धन, स्वर्ग, पृथ्वी पाताल, योग्यकी समस्त
सिद्धियों, अर्थ-धर्म-काम-मरण विवर्त और वेदक ज्ञानतक
प्राप्त हो जाता है । फिर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना
आदि जो छोटी-छोटी कामनाएँ हैं, उनके सम्बन्धमें तो
कहना ही क्या है ॥ १० ॥

भीष्मकनेवाजी कहत हैं—परीक्षित ! जब अदितिने
इस प्रकार कल्याणयम भगवान्की स्तुति की, तब सम्पन्न

क्षेत्रम् सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥११॥

भीमगवानुवाच

ठक्मानर्मवरया मे विज्ञातं चिरकालितम् ।

यत् सपत्नैर्हृतधीणां प्यावितानां स्वधामत ॥१२॥

तान्निनिक्षित्य समरे दुर्महानसुर्यभान् ।

प्रतिलब्धजयभीभि पुत्रैरिच्छस्युपासितम् ॥१३॥

इन्द्रज्येष्ठैः श्वतनयैर्हैतानां युधि विद्विषाम् ।

स्त्रियो रुदन्सीरामाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःस्विताः ॥१४॥

आत्मज्ञानमुमृदास्त्वं प्रयाहृतयशःश्रियः ।

नाक्रुष्टमभिष्टाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छामि ॥१५॥

प्रायोऽयुना तेऽसुरयूषनाथा

अपारणीया इति दधि मे मतिः ।

यत्तऽनुकूलेऽवरविप्रशुभा

न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥१६॥

अथाप्युपायो मम वेधि चिन्त्यः

सन्तोषितस्य व्रतचर्चया ते ।

ममाध्वनं नाहति गन्तुमन्यथा

भद्रानुरूप फलहेतुकञ्चान् ॥१७॥

त्वयाचितश्चाहमपत्यगुप्तये

पयायतेनानुगुणं ममीदितः ।

स्वांगेन पुत्रत्वमुपत्य ते मुगान्

गोप्तामि मागीचतपस्यधिष्ठित ॥१८॥

उपधार पतिं भूमे प्रजापतिमकृष्णपम् ।

मां च भावयती पत्न्यावेवंप्रमथमित्यम् ॥१९॥

नैतत् परमा आम्प्य पृष्टयामि कथंचन ।

मय मग्गघन दधि ठक्गुण शुभं वृत्तम् ॥२०॥

११७ उवाच

पतावदुक्त्वा भगवान्मिश्रवान्गधीयत ।

प्राणियौके हृदये रक्कत उनकी गति-विधि जाननेवाले
भगवान्ने यह बात कही ॥ ११ ॥

भीमगवान्ने कहा—ठक्काओंकी जन्मी अग्नि ।

तुम्हारी चिरकालीन अभिप्रायक मैं जानता हूँ । शत्रुओं-

ने तुम्हारे पुत्रोंकी सम्यग्नि छीन ली है, उन्हें उनके

लोक (स्वर्ग) से खदेड़ दिया है ॥ १२ ॥ तुम चाहती

हो कि युद्धमें तुम्हारे पुत्र उन मनवान और कपी

अधुरोंको जीतकर विजयार्ज्मी प्राप्त करें, तब तुम उनका

साथ भगवानकी उपासना करो ॥ १३ ॥ तुम्हारी इच्छा

यह भी है कि तुम्हारे इन्द्राग्नि पुत्र जय शत्रुओंका प्राप्त

करें, तब तुम उनकी गती इस दुनवी श्रियोको अपनी

आँखों देख सको ॥ १४ ॥ अग्नि ! तुम चाहती हो

कि तुम्हारे पुत्र घन और शक्तिसे समृद्ध हो जायें,

उनकी कीर्ति और पदार्थ उन्हें किरमे प्राप्त हो जायें तथा

व स्वर्गपर अधिकार जमाकर पुत्रवत् चिह्न करें ॥ १५ ॥

पशु देख ! वे असुर मेनापनि इस समय जीत नहीं

जा सकते, ऐसा मेरा निश्चय है । क्योंकि इस और

ब्रह्मण इस समय उनके अनुकूल हैं । इस समय उनके

साथ यदि लड़ाई छेदी जायगी, तो हममें सुख मित्रनेकी

आगा नहीं है ॥ १६ ॥ किन्तु भी देख ! तुम्हारे इस

बलक अनुग्रहसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिये मुझ इस

सम्बन्धमें कोई-कोई उपाय साधना ही पड़ेगा । क्योंकि

कि मेरी आज्ञावला मध्य नाहती नहीं चाहिये । उममें

ब्रह्मण अनुसार पक्ष अवश्य मित्रा है ॥ १७ ॥ तुम

करने पुत्रोंकी ग्राहक त्रि ही विधिवत् प्रयाप्तमे

ममी पूजा एवं स्तुति करी है । अब मैं आज्ञापन पदपरक

कीर्तिमें प्रवेश करूँगा और तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारी

सम्मानकी ग्राहक करूँगा ॥ १८ ॥ वन्द्यगी ! तुम करने

पनि कल्पयें मुझे इसी रूपमें स्थित दण और उन

निष्ठा प्रजापतिरि मेव करो ॥ १९ ॥ दधि ! तुम्हारे

किरीक पुत्रनम भी यह बात दूसरेकी मन बनना ।

दक्कनओंका मध्य विजना गुप्त रहता है । यन्ता ही

मन्त्र होता है ॥ २० ॥

भीमगवान्ने कहा—इन्द्राग्नि पदपर भगवान्

की कल्पना हो गयी । उस समय अग्नि पद बनकर

ननाम सुवि कायन दम्भवत् प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥

सात्याय यदाञ्जलिरीडितु स्थिता

नोत्सेह भानन्दप्रलाकुलेक्षणा ।

बभूव सृष्णी पुलकाङ्गलाकृति

स्तदर्शनात्पुत्तवगाग्रवेपथु ॥ ६ ॥

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हर्षि

तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरुद्वह ।

उद्गीक्षती सा विषतीव चक्षुषा

रमापतिं यक्षपतिं ब्रह्मन्तत्पिम् ॥ ७ ॥

अदितिरुवाच

यक्षेक्ष यक्षपुरुषान्पुत तीर्थपाद

तीर्थभवः धवणमङ्गलनामधेय ।

प्रापमलाकङ्कजिनोपसमादयाद्य

शनःकृधीक्ष भगवन्ममि दीननाथः ॥ ८ ॥

विश्वाय विश्वभवनस्मिन्मिमंयमाय

स्वरं गृहीतपुङ्गवकिङ्गुणाभ धूमने ।

स्वव्याय शशदुर्गङ्गितपूजबोध

व्यापादितामममसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥

आयुः परं वपुरभीष्टमहुरमलक्ष्मी

धाम्भूरसा सकलमागमुणासिबग ।

ज्ञान य कवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्

स्वधा नृपां किमुसपन्न जपादिगङ्गी ॥ १० ॥

भीमक उवाच

दिस्त्वं मृता राजभगवापुष्करक्षणा ।

प्रेमसे विह्वल होकर उसने पृथ्वीपर लोटकर उन्हें दम्भवत् प्रणाम किया ॥ ५ ॥ फिर उठकर, हाथ बांध भाग्य-की स्तुति करनेकी चेष्टा की, परन्तु नेत्रोंने कलन्दरे वस्त्र उमड़ आये, उससे बोध न गया । सारा शरीर पुनर्विभक्त हो गया था, दर्शनके अनन्तप्रसङ्गसे उसके अङ्गोंमें कम्प होन लगा था, वह चुपचाप खड़ी रही ॥ ६ ॥ परीक्षित । देवी अग्नि अपने प्रभूमें नेत्रोंसे अक्ष्मीपति, विश्वपति, यक्षेश्वर भगवान्को इस प्रकार देख रही थी मनों वह उन्हें भी जपती । फिर वह प्रणेत, गद्गद बाणीसे, धीरे-धीरे उसने भगवान्की स्तुति की ॥ ७ ॥

अदितिने कहा—आप यक्षके सामी हैं और तब यक्ष भी आप ही हैं । अमृत । आपके चरणमर्मोंका आश्रय लेकर श्रेय भक्त्युत्तमसे तर जाते हैं । आपके कर्म-वर्तिनका ध्वज भी संसारसे तारनवाक्य है । आपके नामोंके भवणमन्त्रसे ही कल्याण हो जाता है । यदि पुरुष ! जो आपकी शरणमें आ जाता है, उसकी स्त्री विपत्तियोंका आप नाश कर देते हैं । मरकत् । आप दीनोंके स्वामी हैं । आप हमारा कल्याण कीजिये ॥ ८ ॥ आप विश्वेश्वरी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयके कारण हैं । और विश्वरूप भी आप ही हैं । अनन्त होनेपर भी स्वच्छन्दतासे आप अनेक शक्ति और गुणोंका स्वीकार कर लेते हैं । आप सदा अपने स्वस्वमें ही स्थित रहते हैं । निरय-निरन्तर करते हुए पूर्ण बोधक हस्त धर्य हृदयक अन्वेषकरका नष्ट करते रहते हैं । माकत् । ६ आपकी नमस्कार करती हूँ ॥ ९ ॥ प्रभो ! अनन्त । जब आप प्रसन्न हो जाते हैं, तब मनुष्योंका ब्रह्मादीर्घी तीर्थ आयु, उनके ही सम्मान निम्न शरीर, प्रप्रेम जमीन वस्तु व्युत्पन्न घन, स्वर्ग, पृथ्वी, पलाय, वायवी समस्त सिद्धियाँ, अर्थ-धर्म-श्रममन्त्र विविध और केवल ज्ञानतर प्राप्त हो आता है । फिर शत्रुओंका विजय प्राप्त करना आदि जो छोटी-छोटी कामनाएँ हैं उनका सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ १० ॥

भीमकनेयमी कहाँ है — परीक्षित । जब अग्निने इस प्रकार बलमनयन भगवान्की स्तुति की, तब सम्पन्न

धेवद्र सर्वभूतानामिति हावाच भारत ॥११॥

श्रीभगवानुवाच

त्वमात्मवश्या मे विज्ञातं चिरकालितम् ।

यत् सप्तर्षैर्ह्यथाणां व्यावितानां स्वधामत ॥१२॥

तान्विनिजिग्य ममरे कर्मज्ञानसुरर्षभान् ।

प्रदत्तपञ्चयध्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युषामितुम् ॥१३॥

इन्द्रज्येष्ठं धननर्यैर्ह्यतानां पुषि विप्रिषाम् ।

श्रिया रुदन्तीरामाद्य द्रष्टुमिच्छामि दुःखिताः ॥१४॥

आत्मज्ञा गुममृदांश्च प्रयादृतयध भियः ।

नाकृष्टमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥१५॥

प्रायाऽपुना सऽसुरयुधनाथा

अपारणीया इति देवि ममतिः ।

यसऽनुकलेवरिप्रगुता

न विक्रमस्तत्र सुख ददाति ॥१६॥

अथाप्युवाचा मम देवि चिन्त्यः

मुन्तापितस्य प्रतर्चयया ते ।

ममान नादति गन्तुमयथा

अदानुरूप फनइतुकन्वान् ॥१७॥

स्वयापित्वाइमवत्पुत्रमुमे

पयात्रनानुगुणं ममाहित ।

मोहन पुत्रमनुपपन्नं न मुक्तान्

गामामि मार्गचतुष्टयधिश्रित ॥१८॥

उत्तराधर वरि भू प्रजापतिमहामयम् ।

मो च भारपती पयावत्पुत्रमवस्थितम् ॥१९॥

नैवत वयसा आम्बुय पृण्यामि कथञ्चन ।

मर मन्वन्त इति दृष्टव्यं गुप्तं नृपम् ॥२०॥

अथ उवाच

परादुवगा

भगवान्पराशरानुधीपत ।

प्राणियोके ह्यप्ये गह्वर उन्वरी गतिविधि जाननेवाले
भगवान्ने यर यान पक्षी ॥ ११ ॥

श्रीभगवानने का—पुत्राओंकी जननी अग्नि !

तुम्हारी चिरकारीन अभिरक्षा म जानता हूँ । शत्रुओं
ने तुम्हारे पुत्रोंकी सम्पत्ति छीन ली है, उन्हें उनका
लोभ (स्वार्ग) मे भगद दिया है ॥ १२ ॥ तुम चाहती
हा कि युद्धमे तुम्हारे पुत्र उन मन्त्रा और यकी
अपुत्रोंको जीतकर विजयार्थी प्राप्त करें, तब तुम उनका
साथ मगलानकी उपासना करा ॥ १३ ॥ तुम्हारी इच्छा
यह भी है कि तुम्हारे इन्द्रा पुत्र जब शत्रुओंका मार
करे, तब तुम उनकी गनी इइ दुखी श्रियोका अपनी
औंखों दस स्वयं ॥ १४ ॥ अग्नि ! तुम चाहती हो
कि तुम्हारे पुत्र धन और शक्तिसे संपन्न हो जायें,
उनकी बर्तन और पर्वर उन्हें किरमे प्राप्त हो जायें तथा
व स्वर्गपर अधिपति जमाकर पूजक पिदार करें ॥ १५ ॥

पशु देवि ! व अश्व मेनापति इस समय जीत नहीं
जा सकते, पत्ता म्मा निधय है । क्योंकि इक्ष्वा और
शक्रा इस समय उनके अनुकूल हैं । इस समय उनके
साथ पति लडाइ छेड़ी जायगी, ता उसमे मुझ मित्रेकी
आगा नहीं है ॥ १६ ॥ तब भी दवि ! तुम्हारे इस
अनक अनुग्रहमे व बहुत प्रमत्त हूँ, इसलिय मुझ इस
सम्बन्धमे पराइनकरा उपाय माचना ही पड़ेगा । क्यों
कि म्मी आगयना प्यप ताहानी नहीं काहिय । उसमे
शक्रा अनुमा व अक्षय मित्रा है ॥ १७ ॥ तुम्हारे
जाने पुत्राकी म्माक श्रिया ही विनिर्द्वय पयात्रने
भी पूजा एवं स्तुति की है । अतः म अंगारामे पदपरक
कीपमे प्रवेश करेगा और तुम्हारा पुत्र वनकर तुम्हारी
मन्तानकी रक्षा करेगा ॥ १८ ॥ कल्पगी ! तुम अपने
पति पयात्रने मुझ इसी रूपमे स्थित लवा और उन
निष्ठा प्रजापतिकी सेवा करा ॥ १९ ॥ दवि ! लवा
सिमीर पुत्रन भी व वन दमकर म्मा वनयना ।
अन्तर्जोरा रूप जिन्ना गुप्त गता है यन्ता ही
मरता दाना है ॥ २० ॥

श्रीपुत्रदुवगी वरुण—पुत्रा वहर भगवान्
वनी ॥ २० ॥ ममका अग्नि या जानकर

अदितिदुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभाः ॥२१॥

उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ।

स वै समाभियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥२२॥

प्रविष्टमारमनि हरेरंशुः शचित्तयेधनः ।

साऽदित्वां धीर्यमाधत्त तपसा चिरसम्भृतम् ।

समाहितमना रात्रन्दरारूपं यथानिलः ॥२३॥

अदितेर्भिष्टितं गर्भं भगवन्त सनातनम् ।

हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीढ गुह्यनामभिः ॥२४॥

महाबाह

जबोरुगाय भगवन्तुरुक्रम नमोऽस्तु ते ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥

नमस्ते पृथिवीर्माय वेदगर्भाय वेधसे ।

त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय क्षिपिषिष्ठाय विष्णवे ॥२६॥

स्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्य

मनन्तश्चर्त्ति पुरुषं यमाहुः ।

कल्लो भवानाक्षिपतीक्ष विभ्रं

स्रोतो यथान्तःपतित गभीरम् ॥२७॥

स्व वै प्रजानां स्थिरवज्रमानां

प्रजापतीनामसि सम्भविष्णु ।

दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां

परायणं नौरिष मन्त्रतोऽस्तु ॥२८॥

जि स्वयं भगवान् मेरे गर्भसे जन्म लेगी, अपनी कृतकृत्य बनाने करने लगी । मध्य यह कितनी दुर्लभ बात है । यह सब प्रेमसे अपने पतिदेव कश्यपजी से कहने लगी । कश्यपजी सत्यदर्शी थे । उनके नेत्रोंसे कोई छिपी नहीं रहती थी । अपने सम्भवि-योगसे उन्होंने जान लिया कि भगवान् का जन्म मेरे अंदर प्रसिद्ध हो गया है । जैसे वायु काष्ठमें अग्नि का प्रकाश करती है, वैसे ही कश्यपजीने समाहित चित्तसे अपनी तत्त्वज्ञान चिर-संश्लित धीर्यका अदितिमें आधान किया । २१-२३ । जन्म कदाभीका यह बात मालूम हुई कि अदितिने गर्भमें तो स्वयं अविनाशी भगवान् आये हैं तब वे भगवान् रहस्यमय नामोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥

ब्रह्माजीने कहा—समग्र कीर्तिके आश्रय मान् । आपकी जय हो । अनन्त शक्तियोंके अविष्टान । आपके चरणोंमें नमस्कार है । ब्रह्मण्यदेव । त्रिगुणोंके निष्पन्न । आपके चरणोंमें मेरे बार-बार प्रणाम हैं ॥ २५ ॥ प्रभिक पुत्रत्वमें उत्पन्न होनेवाले । वेदोंके समस्त ज्ञानसे अपने अंदर रखनेवाले प्रभो । वास्तवमें आप ही उनके विचारता हैं । आपके धर्म बार-बार नमस्कार करता हूँ । ये तीनों जेके आपकी नाममें स्थित हैं । तीनों जेके परे वैकुण्ठमें आप निवास करते हैं । जीवोंके कष्ट कारणमें आप सर्वदा किरतजमान रहते हैं । ऐसे सर्वज्ञ विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो । आप ही संसारके आदि, अन्त और इसत्थि मध्य में हैं । यही कारण है कि के- अनन्तरादि पुरुषके रूपमें आपका वर्णन करते हैं । जैसे गहवा खोत अपने भीतर पड़े हुए तिनकको बहा ले जाता है, वैसे ही आप काष्ठरूपमें संसारका धाराप्रवाह सञ्चालन करते रहते हैं ॥ २७ ॥ आप चराचर प्रजा और प्रजापतियोंको भी उत्पन्न करनेवाले मूक कारण हैं । देवाधिदेव । जैसे अग्नि जलसे हुए पथि मीक ही सहारा है, वैसे ही स्वर्गसे भगवान् हुए धन्याओंके लिये एकमात्र आप ही आश्रय हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराण पारमहंस्यं मंडितायामष्टमस्कन्धे बौमनाप्रादुर्भावे

सप्तमोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

वामन भगवान्का प्रकट होकर राजा पलिकी यज्ञशालामें पधारना

श्रीगुरु उवाच

इत्य विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यं

प्रादुर्बभूवामृतमूर्धित्याम् ।

चतुर्भुजं दक्षगदास्त्रधरः

पिण्डकृपासा नलिनायतेक्षणः ॥१॥

श्यामावदातो क्षपराजकुण्डल

स्विपोल्लसत्प्रीवदनाभ्युजःपुमान् ।

धीवन्तवक्षा बलयाङ्गानलमत्

किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुर ॥२॥

भधुव्रतयातविद्युन्मया ध्वया

विराजित भोजनमालया हरिः ।

प्रजापतर्वैश्वतमः श्वराधिपा

विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभ ॥३॥

दिश प्रसृज्य मलितान्गयास्तदा

प्रजा प्रहृष्टा श्रुतवा गुणान्विता ।

पारन्तरिष्व धितिरग्निजिह्वा

गात्रा दिवा संजहृपुर्नगाश्च ॥४॥

भागायां भवन्द्वादस्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ।

मर्षे नयप्रसाराद्याभ्युन्तज्जाम दक्षिणम् ॥५॥

द्वादश्यां मरितानिष्टमप्यदिनगता नृप ।

विजयानाम सा प्राक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरः ॥६॥

गङ्गाद्वन्द्वमया नदुमुदङ्गपणवानका ।

पियवादित्रन्यागां निर्घोषन्तुमुनाऽभयन् ॥७॥

प्रातापाम्पूरसाऽन्यथा गन्धर्वप्रवरा जगुः ।

श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! इस प्रकार जब
क्षत्राजीने भगवान्की दाहिं ओर खीट्यारी स्तुति की,
तब जन्म-मृत्युसहित भगवान् अनितिके सामने प्रकट हुए ।
भगवान्का स्वर सुनार्ये थी, उनमें वे शङ्ख, गङ्गा, वक्त्र
और चक्र कारण किये हुए थे । वक्त्रके समान वक्त्र
और चक्र-चक्र नेत्र थे । पीताम्बर शोभायमान हा रहा
था ॥ १ ॥ विद्युद्द श्मश्रुवक्त्र शरीर था । मकराङ्गुलि
कुण्डलें थीं परन्तिमे मुकुटमण्डली श्यामा, काजी भी,
ठाम्बित हो रही थी । वक्ष मण्डल धीकस्तथा चिह्न,
हाथोंमें फलन और मुखाभोंमें बाहुवन्, मिरार किरीट,
कमरमें कण्ठनीकी लक्ष्मि और चरणोंमें सुन्दर नूपुर
जगमग रहे थे ॥ २ ॥ भगवान्गलेमें अरुनी मन्त्रमूल
कनकात्र चारण किये हुए थे, जिसके बागों आग सुन्द
क-सुन्द मीरे गुंजार कर रहे थे । उनके परममें कौस्तुभ-
मणि सुगायित थी । भगवान्की अङ्गुलान्तिसे प्रजापति
कक्ष्याजीके वक्त्र अन्धकार नष्ट हो गया ॥ ३ ॥ उस
समय निर्वर्ण निमज्ज हो गयीं । नदी और सरावोंका
जल स्वच्छ हो गया । प्रजापति इन्द्रमें आनन्दकी पाद
आ गयी । सब श्रुतों एक साथ अरुना अरुना गुण
प्रकट करने लगीं । स्वागन्ध, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, दक्षिण
गौ, दिव्य और पवन—इन सबके इन्द्रमें हयका सञ्चार
हो गया ॥ ४ ॥

परीक्षित ! जिस समय भगवान् जन्म प्रदण दिया
उस समय वक्त्रमय श्मश्रु नक्षत्ररथ । मन्त्रा मन्त्रक
कुण्डलारी श्मश्रुनक्षत्रकारी श्मश्रु ही । अभिविद्
मुहूर्तमें भगवान्का जन्म हुआ था । सारी नक्षत्र अर
सारे भगवान्का जन्मका मङ्गलमय स्थिति कर रहे थे ॥ ५ ॥
परीक्षित ! जिस निमित्त भगवान्का जन्म हुआ था, उसे
विजया नामकी कहते हैं । जन्मक समय मृष अरुना-
क मध्यमण्डले स्थित थे ॥ ६ ॥ भगवान् अरुनाक
समय शङ्ख, गङ्गा, वक्त्र, चक्र और नाद अति बड़े
करने लगे । इन मण्डलमय चक्रों का सुनिर्देशी
मुमुक्षु पति हान लभ्य ॥ ७ ॥ अमर्ग प्रमत्त इन्द्र
कचने लगी । जगत्पति लगे लगे । मुनि, दान्य, पुरु,

तुष्टुधुर्मनसो देवा मनस पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥
 सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ।
 चारणा यसरक्षांसि सुपर्णा मृन्मगोत्तमा ॥ ९ ॥
 गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विप्रभानुगाः ।
 आदिस्मा आश्रमपदं कुतुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥

दृष्टादितिस्त निजगर्मसम्भव

पर पुमांसं मृदमाप विक्षिता ।

शूरीतदेहं निजयोगमायया

प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मित ॥ ११ ॥

यत् तद् वपुर्भाति विभूषणायुधै-

रस्यक्तचिद् व्यक्तमधारयद्भारिः ।

वभूव तेनैव स वामनो बभुः

संपद्मतोर्दिभ्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥

तं बद्धं वामन दृष्टा मोदमाना महर्षयः ।

कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥

तस्मोपनीयमानस्य सावित्रीं सविताम्रवीत् ।

बृहस्पतिर्विष्णुश्च मेतृतां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥

ददौ कृष्णाक्षिन भूमिदण्डं सामो वनस्पति ।

कौपीनाच्छादनमाता धौश्लत्रं जगत पते ॥ १५ ॥

कमण्डलुं वेदगर्मः कुशान्सहर्षयो ददु ।

अश्वमालां महाराज सरस्वत्यव्ययारमनः ॥ १६ ॥

तस्मा इत्युपनीताय मक्षगद् पात्रिकामदात् ।

भिक्षां भगवती साक्षादुमादादग्निं सती ॥ १७ ॥

स ब्रह्मवचसेनैव सर्वां सभावितो बभुः ।

वितर और अग्नि स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ सिद्ध, निष्क
 किम्पुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, फणी, मु
 मुस्त्य नागगण और नैकाओंके अनुचर नाचने-गने व
 भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे तथा उन व्यक्तियों की
 आश्रमपद पुण्योक्ती कपसि दक किया ॥ ९ ॥

जब अदिनिने अपने गर्मसे प्रकट हुए परम पु
 परमात्मको देखा, तो वह अत्यन्त आश्चर्यचकित व
 परमानन्दित हो गयी । प्रजापति कश्यपजी भी मन्त्र
 को अपनी योगप्रणालसे शरीर धारण किये हुए व
 विस्मित हो गये और कहने लगे 'जय हो ! जय हो !'
 प्रीणित ! भगवान् स्वयं अत्यन्त एवं विस्तरूप व
 उन्होंने जो परम कान्तिमय आभूषण एवं वपुर्वर्षे व
 वह शरीर श्रृङ्खल किया था, उसी शरीरसे कश्यप व
 अदिनिने देखते-देखते वामन ब्रह्मचारीका रूप क
 कर लिया—'यैव वैसे ही, जैसे नट अपना वस्त्र क
 ले । क्यों न हो, भगवान् की वीज तो बहुत
 ही । ॥ १२ ॥

भगवान्को वामन ब्रह्मचारीके रूपमें देखकर महर्षि
 को बड़ा आनन्द हुआ । उन लोगोंने कश्यप प्रजापति
 आगे करके उनके जलकर्म आदि सम्पन्न करवाये । १
 जब उनका उपनयन-संस्कार होने लगा, तब गयत्री
 अविष्टत-दक्षा स्वयं सवितान् उन्हें गायत्रीका उपदे
 किया । देवगुरु बृहस्पतिजीने यक्षोपवीत और कश्यप
 मेखला दी ॥ १४ ॥ धृष्यीने कृष्णमृगाका चर्म, कन
 खामी चर्मरूपने दण्ड बना अदिनिने कौशेय व
 कम्पिचक एवं आकशशके अभिमन्त्री देवकाने वामन-वेपवा
 मगान्को छत्र दिया ॥ १५ ॥ प्रीणित ! अग्नि
 प्रभुको ब्रह्माजीन कमण्डलु सप्तर्षियोंने कुशा और सरस
 ने रुद्राक्षकी माला समर्पित की ॥ १६ ॥ इस रीति
 जब वामनभगवान्को उपनयन-संस्कार हुआ, तब क
 राज कुशने उनको भिक्षाका पात्र और सतीमित्रोमा
 अगज्जनी स्वयं भगवती उम्हने भिक्षा दी ॥ १७
 इस प्रकार जब सब लोगोंने बहुवेपचारी भगवान्
 सम्पन्न किया तब वे सप्तर्षियोंसे मरी हुई सभामें क

१ प्राचीन मंत्रिने 'वपुर्भाति'

इस श्लोकके पहले एक दशक अधिक है जो इस प्रकार है—'एव व
 बगवदेष्टुमिच्छामासुः' अर्थात् सत्त्वमुक्तसुखमिच्छामासुः इत्येवम् । परमपुरुष पद
 अर्थोपदेशात् ।

प्रहर्षिगणसञ्जुष्टामत्परोक्षत मारिष ॥१८॥

समिद्धमाहित वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ।

परिस्तीर्य समम्यन्त्य समिद्धिरजुदोद् द्विज ॥१९॥

भुत्वाश्वमेधैर्घञ्जमानमूर्जित

बलिं भृगूणाष्टपक्षिपतैस्ततः ।

सगाम तत्राखिलसारसमृतो

भारेण गां सशमयन्पदे पदे ॥२०॥

त नर्मदायास्तत्र उत्तरे बले

र्यं श्रुत्विजस्ते भृगुकच्छसङ्गके ।

प्रवर्तयतो भृगवः क्रतुधम

व्यचक्षतारादुदितं यथा रश्मिम् ॥२१॥

त श्रुत्विजो यजमान सन्त्सा

हवत्विपो वामनतेजसा नृप ।

धर्मं क्लिष्टायां त्युत वा विभावसुः

सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥२२॥

इत्थं सञ्चिप्येषु भृगुध्वनेकधा

वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः ।

छत्रं सदृशं सज्जत कमण्डलुं

विधेयं विभ्रद्रुपमेधवाटम् ॥२३॥

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीतामिनोचरम् ।

जटिलं वामन विप्रं मायामाणषक हरिम् ॥२४॥

प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सञ्चिप्याप्ते सहामिभिः ।

प्रत्यगृह्णन्मधुस्थाप संचिप्तास्तस्य तेजसा ॥२५॥

यजमानः प्रहृदिता दर्शनीय मनोरमम् ।

रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥२६॥

प्रहतेजके कारण अत्यन्त शोभायमान हुए ॥ १८ ॥

इसके बाद भगवान्ने स्थापित और प्रशस्ति अग्निप्र
जुओंसे परिसमूहन और परिस्तरण पत्रक पूजा की और
समिधाओंसे दहन किया ॥ १९ ॥

परीक्षित । उसी समय भगवान्ने सुना कि सत्र
प्रकारकी सामग्रियोंसे सम्पन्न यज्ञस्त्री बलि भृगुवशी
माषणोंके आदेशानुसार बहुतसे अश्वमेध पक्ष पर रह
हैं, तब उन्होंने कहा कि गये यात्रा की । भगवान् सम्पदा
शक्तियोंसे युक्त हैं । उनका चरनेक समय उनके भारसे
धृष्टी पग-पगपर हुकने लगी ॥ २० ॥ नम्रा नगीके
उत्तर स्तर 'भृगुकच्छ' नामक एक पक्ष सुन्दर स्थान
है । वही बलि भृगुवशी श्रुतिव श्रेष्ठ पक्ष अनुष्ठान
कर रहे थे । उन लोगोंने दूरसे ही वामनभगवान्को
देखा, तो उन्हें ऐसा जान पड़ा माना साक्षात् सूर्यदेव-
का उदय हो रहा हो ॥ २१ ॥ परीक्षित । वामनभगवान्
के तेजसे श्रुतिव, यजमान और सत्य सत्य-सत्य
निस्तेज हो गये । वे लोग सांचेने लगे कि कभी यह
दृश्यनेके अग्रे सुन, अग्नि अपका सनत्कुमार तो नहीं
जा रहे हैं ॥ २२ ॥ भृगु पुत्र सुप्रचार्य आदि अपने
शिष्योंके साथ इसी प्रकार अनर्थक कल्पनाएँ कर रह थे ।
उसी समय हाथमें छत्र, दण्ड और जड़मे भरा कमण्डलु
अग्रे हुए वामनभगवान्ने अश्वमेध-पक्षके मण्डपमें प्रवेश
किया ॥ २३ ॥ वे वस्त्रमें भूजरी मेखला और गन्धमें
यक्षापवीत्र धारण किये हुए थे । बाल्यमें भृगुधम का और
सिरपर पत्रा की । इसी प्रकार बाने वस्त्रके वेगमें अपनी
मायासे वस्त्रधारी बन हुए भगवान्ने जब उनका पत्र
मण्डपमें प्रवेश किया, तब भृगुवशी वस्त्र उन्हे देखकर
अपने शिष्योंके साथ उनका सजने प्रमाणित एवं निष्पक्ष
हो गये । वे सत्य-सत्य अग्निओंके साथ उदय हुए और
उन्होंने वामनभगवान्का स्वागत-स्वगत किया ॥ २४-२५ ॥
भगवान्ने ध्युक्तपदे अनुक्त स्तर अग्रे छत्र-छाट
पक्ष दी मन्त्रम एवं दर्शनीय थे । उन्हें दण्ड पत्रा
पक्ष अनन्द हुआ और उन्होंने वामनभगवान्का पत्र
उत्तम असन किया ॥ २६ ॥ निरव्यक्त-नगीमें उनका

स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः ।
 अवनित्यार्चयामास मुक्तसङ्गमनोरमम् ॥२७॥
 उत्पादसौचं जनकसमपापह
 सं धर्मविन्यूष्यर्चयत् सुमङ्गलम् ।
 यद् देवदेवो गिरिशब्न्द्रमौलि
 र्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥२८॥

बलिलयाच

स्वागत ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते ।
 ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षा मन्ये त्वाऽऽर्यवपुर्धरम् ॥२९॥
 अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ।
 अद्य स्वितः क्रतुरयं यद् भवानागतो गृहान् ॥३०॥
 अधाम्नवो मे सुदुता यथाविधि
 द्विजात्मज स्वधरणावनेजनैः ।
 इतां हसो वार्मिरियं च भूरुहो
 तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥३१॥
 यद् यद् बटो बाण्डसि तत्प्रतीच्छ मे
 रवामर्चिन विप्रमुतामुत्कर्षे ।
 गां काञ्चन गुंजवद् धाम सृष्टं
 तवाभ्रपेयमुत वा विप्रकन्याम् ।
 प्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गमान् वा
 रवांस्तवाह्वयम समप्रतीच्छ ॥३२॥

अभिनन्दन करके पौव पखरे और सज्जित म्हापुरे-
 को भी कल्पन्त मनोहर छानेवाले कामनमाकनकी पूज
 की ॥ २७ ॥ भगवान् के धरणात्मर्षेका धोवन पस
 मङ्गलमय है । उससे जीवोंके सारे पाप-नाश कुछ बने
 हैं । स्वयं देवाधिदेव चन्द्रमौलि भगवान् शाङ्करने कल्प
 मक्तिमात्रसे उसे अपने सिरपर धारण किया था । जब
 वही चरणामृत धर्मके मर्मज्ञ राजा बलिने प्राप्त हुआ ।
 उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे अपने मस्तकपर रख ॥२८॥

बलिने कहा—ब्रह्मणकुमार । आप मने पखरे ।

आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आज्ञा कीजिये मैं कस-
 की क्या सेवा करूँ ? कार्य । ऐसा जान पड़ता है कि
 बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी तपस्व ही स्वयं मूर्तिमन् होकर मेरे
 सामने आयी है ॥२९॥ आज आप मेरे घर फारे, इससे मेरे
 पितर तृप्त हो गये । आज मेरा वंश पवित्र हो गया । जब
 मेरा यह यह सफल हो गया ॥ ३० ॥ ब्रह्मणकुमार !
 आपके पौव पखरनेसे मेरे सारे पाप धुल गये और
 विविर्षक यह करनेसे, अग्निमें बहुरिति जलनेसे जो कुछ
 मिलता, वह अन्तम्यस ही मिट गया । आपके इन मन्त्र-
 नन्दे धरणों और इनके धोवनसे पृथ्वी पवित्र हो
 गयी ॥३१॥ ब्रह्मणकुमार । ऐसा जान पड़ता है कि आप
 कुछ चाहते हैं । परम पूज्य ब्रह्मचारीजी । आप जो
 चाहते हैं—गाय, सोना, स्रमस्मिन्ति सुसज्जित मर,
 पत्तिर कम, पीनेकी बस्तु, विवाहके छिमे ब्रह्मचारी
 कन्या, सम्पत्तियोंसे मेरे हुए गाँव, बड़े, हाथी, रथ—
 सब सब आप मुझसे माँग लीजिये । कल्प ही वह सब
 मुझसे माँग लीजिये ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमार्थ्य संज्ञितायामष्टमस्कन्धे नामनारादुमपि
 बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

भगवान् वामनका बलिसे तीव्र पत्रा पृथ्वी मीयमा, बलिकका वचन देना
 और शुक्राचार्यकीका उम्हें रोकना

भीतिक उवाच

श्रीशुक्राचार्यकी कहते हैं—राजा बलिने ये वचन

इति वैरोचनेर्वाक्य धर्मयुक्तं स धनृतम् ।

धर्ममात्रसे मेरे और बड़े मधुर थे । उन्हें धनकर

१ प्रा पा—कुल । २ प्रा पा—स्वधर्मविष्णु । ३ प्रा पा—शुक्रवशात् धम । ४ प्रा पा—
 श्रीशुक्राचार्यमूययन् वा रवाक्ये वार्हत् ।

निश्चय भगवा प्रीत प्रतिन ददमप्रवीत् ॥ १ ॥

भीमगवानुवाच

वचन्तैस्तज्जनदेव स्रुतं

कुलोचित धर्मयुतं यशस्करम् ।

यस्य प्रमाणं मृगवः संपराये

पितामहः ह्रस्वह्रस्वः प्रशान्त ॥ २ ॥

न ह्यतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसङ्गः कृपणः पुमान् ।

प्रत्याख्याता प्रतिधृत्य यो वादाता द्विमातये ॥ ३ ॥

न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनाधिता

पराधुता ये त्वमनस्विनो नृपाः ।

पुष्पह्रस्वे यद्यशसामलेन

प्रहार उद्धाति यथाह्वयः खे ॥ ४ ॥

यतो जातो हिरण्याक्षधरन्नेक इमां महीम् ।

प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत् गदायुधः ॥ ५ ॥

य विनिश्चित्य कृन्ध्रेण विष्णुः स्मोद्धारमागतम् ।

नेतामर्न जयिनं मेने तदीय मूर्धनुस्तरन् ॥ ६ ॥

निश्चय तदप्य धाता हिरण्यकशिपु पुरा ।

हन्तुं भावृष्य मुदा जगाम निलय इरे ॥ ७ ॥

वमायान्तं ममालोक्य गूलपाणिं कृतान्तवन् ।

ममात्मा वामने यधी प्रसज्जासे उतपन्न अभिनन्दन रित्र
और पडा ॥ १ ॥

भीमगवानने कहा—राजन् ! आपने जो कुछ
कहा—यह आपकी कुशलगुणाय अनुग्रह, धर्मभावसे
परिपूर्ण, यशस्व ब्रह्मनेत्राज और अत्यन्त मधुर है । क्यों
न हो, परलोकहितकारी धर्मके सम्बन्धमें आप सगुण
पुरुषचापके परम प्रमाण जो मानते हैं । साथ ही अपने
कुशहृद निताम्ह परम शान्त प्रज्ञाजीवी आज्ञा भी तो
आप वैसे ही मानते हैं ॥ २ ॥ आपकी बंदारगुणमें
कोई धैर्यहीन अथवा हृण्ण पुरुष कभी हुआ ही नहीं ।
ऐसा भी पडा नहीं हुआ, किन्तु ब्रह्मपुत्र कभी दान
न दिया हो अथवा जाण्य बार नितीना कुछ देनेकी
प्रतिज्ञा करके काममें मुकुर गया हो ॥ ३ ॥ दानके
अस्तरपर पाचपर्वती पचवना धुनकर, और मुद्रके अस्तरपर
रात्रके कृष्णरत्नोर उतकी आरसे मुँह बाँध लनेवाय
कपूर आपके बंधमें कोई भी नहीं हुआ । क्यों न हो,
आपकी कुशलगुणमें प्रज्ञा करने निमग्न यशसे वैसे
ही होमात्मन होते हैं, जैसे आकाशमें कन्दम ॥ ४ ॥
आपने कुशमें ही हिरण्यक्ष—जैसे वीरका जन्म हुआ था ।
वह वीर जब हाथमें गदा लेकर अकेल ही दिग्विजयके
उपे निरगत, तब सारी पृथ्वीमें धूमनेर भी उमे अम्ली
जोड़कर कोई वीर न मिला ॥ ५ ॥ जब विष्णुमाता
जन्मसे पृथ्वीपर उद्धार कर रहे थे, तब वह उनके
सामने आया और बड़ी कठिनाईमें उन्होंने उत्तर
विजय प्राप्त की । परन्तु उत्तर बहुत बड़ भी
तहाँ बार-बार हिरण्यक्षरी गति और यशस्व स्मरण हो
आया करता था और उमे जीन स्मेर भी वे
जानेकी विजयी नहीं सम्पत्ते थे ॥ ६ ॥ जब
हिरण्यक्षने भई हिरण्यक्षितुरने उसके वपरा हृष्टान्त
मध्य हुआ, तब वह अपने मूढ़ता कर पनेटकर
पर हाजनेके उपे मार करके मगरान् निरालम्ब
देवगुणाम्में पड़ेगा ॥ ७ ॥ विष्णुमाता मया अपने-
कर्ममें सबम बड़े और उत्तरात् गूल पायनत है ।
जब उन्होंने दे- वि हिरण्यक्षिण भा हन्ते गत

चिन्तयामास कालञ्चो विष्णुर्भाषाविनां वर ॥ ८ ॥
 यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणमृतमिव ।
 यतोऽहमस्य हृदयं प्रवेष्टुमाणि परागद्वयः ॥ ९ ॥
 एवं स निश्चित्य रिपो शरीरं
 माधावतो निर्विविधेऽसुरेन्द्र ।
 ज्वासान्निहान्तर्हितसूक्ष्मदेह
 तत्प्राणरन्ध्रेण विविमचेता ॥ १० ॥
 स वमिकेतं परिमुष्य शून्य-
 मपश्यमानः कृपितो ननाद ।
 त्मां धां दिशःत्वं विव्रान्समुद्रान्
 विष्णु विचिन्वन् न ददर्श वीरः ॥ ११ ॥
 अपश्यन्निति शेषाच्च मयान्निष्ठमिदं जगत् ।
 भ्रातृहा मे गतो मून यतो नावर्तते पुमान् ॥ १२ ॥
 वैरानुबन्ध एतत्त्वानामुत्पातिह देहिनाम् ।
 अज्ञानप्रमथो मन्पुरइमानोपवृद्धितः ॥ १३ ॥
 पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्निश्चयत्सलः ।
 स्वमायुर्द्विबलिहोम्या देवेभ्योऽद्रात् स बावितः ॥ १४ ॥
 भवानाचरितान्धर्मानास्वितो गृहमेधिभिः ।
 प्राज्ञाभिः पूर्वैः शूरैरन्यैर्बोहामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥
 तस्मात् त्वयो महीमीश्वर इजोऽहं वरद्वर्षमात् ।
 पद्मानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पद्मा मम ॥ १६ ॥
 नान्यत् ते कामये राक्षसदान्यान्जगदीश्वरास्तु ।

लेखन काञ्ची भौति मेरे ही ऊपर जाता कर रहा है,
 तब उन्होंने विचार किया ॥ ८ ॥ जैसे संस्तरके प्राक्कि-
 के पीछे मृत्यु छापी रहती है—वैसे ही मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ
 वहाँ-वही यह मेरा पीछा करेगा । इसलिये मैं इससे हटके
 प्रवेश कर जाऊँ, जिससे यह मुझे देख न सके, क्योंकि
 यह तो बहिर्मुख है, बाहर की वस्तु ही देखता
 है ॥ ९ ॥ असुरविश्रापणे । जिस समय शिरष्पकविषु उत-
 पर झपट रहा था, उसी समय ऐसा निश्चय करके बसे
 कौयते हुए विष्णुभगवान् ने अपने शरीरको सूक्ष्म रूप
 दिया और उसके प्राणोंके द्वारा नासिकामेंसे होकर
 हृदयमें जा बैठे ॥ १० ॥ शिरष्पकविषु ने उनके श्ले-
 षको मल्लीमाली छान जाँच, परन्तु उनका वही पता न
 लगा । इसपर कोपित होकर वह सिंहाद करने लगा ।
 उस बीरने पृथ्वी, स्वर्ग, निदा, आकाश, पतन और
 समुद्र—सब वही विष्णुभगवान् परे डूँडा, परन्तु व वही
 भी उसे दिखली न दिये ॥ ११ ॥ उनका वही न
 देखकर वह बहने लगा—मैंने सारा जगत् छान रक्का,
 परन्तु वह मिला नहीं । अन्तर ही वह आतृषती उस
 श्लेष्ममें चब चब, जहाँ जफर फिर छेदना नहीं
 होता ॥ १२ ॥ वस, जब उसने वैराग्य रखनेकी
 आवश्यकता नहीं, क्योंकि वैर तो देखके साथ ही समाप्त
 हो जाता है । क्रोधावरण छाना है और वह हार
 से उलझी हुई होती है ॥ १३ ॥ राजन् । आपके
 पिता प्रह्लादनन्दन निरोक्षन बड़े ही शक्तप्रसक्त थे ।
 यहाँतक कि उनके शत्रु देखतवोंने शत्रुओंका वेग बना-
 कर उनसे उनकी आयुका दान माँगा और उन्होंने शत्रुओंके
 छत्रमें जानते हुए भी अपनी आयु दे डाली ॥ १४ ॥
 आप भी उसी धर्मका आचरण करते हैं, जिसका
 शुक्राचार्य आदि गृहस्थ ब्राह्मण, आपके पूर्व प्रह्लाद
 और दूसरे पण्डितों कीरने पतन किया है ॥ १५ ॥
 दैत्येन्द्र । आप मुँहवाली वस्तु देनेवाले थे ॥
 इसीसे मैं आपसे बोझी-सी पृथ्वी—केवल अपने पैरोंसे
 तीन बग भौंगया हूँ ॥ १६ ॥ मना कि क्या सारे
 जगत्के सामी और बड़े उदार हैं, फिर भी मैं आपसे
 इसमें अधिक नहीं माँगता । विद्वान्, पुरुषोंके केवल

नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदक्षप्रसिद्धिः ॥१७॥

पठित्वा च

अथो ब्राह्मणदापाद वाचस्ते बृद्धममता ।

त्ववालो वातिष्ठमपि स्वार्थं प्रत्यक्षुभो यथा ॥१८॥

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ।

पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपं दानुषम् ॥१९॥

न पुमान् मातुषत्रयं भूयो याचितुमदति ।

तस्माद् वृत्तिकरी भूमिं वटो कामं प्रतीच्छ मे ॥२०॥

भीमगवानुवाच

पावन्ता विपया प्रेष्टास्त्रिलोक्यामञ्जितेन्द्रियम् ।

ऋक्षुवति ते सर्वे अविपूरयितुं नृप ॥२१॥

त्रिभिः क्रमरसतुष्टा द्वीपनापि न पूर्यत ।

नक्षत्रसमेतेन सप्तद्वीपवरच्छया ॥२२॥

सप्तद्वीपाभिपतयो नृपा वैन्मगवाद्यः ।

अथै कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥

यच्छुषोषपन्नेन संतुष्टा वर्तते सुखम् ।

नान्तं तुष्टस्त्रिभिलोकरजितारमापसादितै ॥२४॥

पुंसाज्यं संभृतेर्हेतुरसंतापोऽर्थकाममा ।

यच्छुषोषपन्नेन सतापा मुक्तये स्मृत ॥२५॥

अपनी आवश्यकताके अनुसार ही दान स्वीकार करता चाहिये । इससे वह प्रतिग्रहजन्य पापसे बच जाता है ॥ १७ ॥

राजा यज्ञिने कहा—ब्राह्मणकुमार ! तुम्हारी बातें तो बुद्धों-जैसी हैं, परन्तु तुम्हारी बुद्धि अभी बच्चों-सी ही है । अभी तुम हा भी ता वाञ्छ्य ही न, इसीसे अपना हानि-हानि नहीं समझ रहे हो ॥ १८ ॥ मैं तीनों लोकोंका एकमात्र अविपति हूँ और द्वीप-यन्त्र-द्वीप दे सकता हूँ । जो मुझ अपनी वाणीसे प्रसन्न कर ले और मुझसे वचन तीन दण्ड भूमि माँगे—वह भी क्या बुद्धिमान् कहा जा सकता है ? ॥ १९ ॥ ब्रह्मचारीजी ! जो एक बार कुछ माँगनेके लिये मेरे पास आ गया, उसे फिर कभी किसीसे कुछ माँगनेकी आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये । अब अपनी इच्छाका वचनेके लिये तुम्हें किन्नी भूमि की आवश्यकता है, उतनी मुझसे माँग लो ॥ २० ॥

भीमगवान्ने कहा—राजन् ! समारके सब-कुछ अपने प्यारे विषय एक मनुष्यकी क्षमताओंको भी पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं है यदि वह अपनी इन्द्रियोंको बन्धने रखने-वाला—मत्तोपी न हो ॥ २१ ॥ जो तीन दण्ड भूमिसे संताप नहीं कर लेता, उसे नी बरासे युक्त एक द्वीप भी न दिया जाय तो भी वह संतुष्ट नहीं हो सकता । क्योंकि उसके मनमें माँगों द्वीप पानेकी इच्छा कभी ही रहेगी ॥ २२ ॥ मने सुना है कि पृथु, गय आदि नरेश सत्ताओं द्वीपों अविपति थे परन्तु उनमें क्त बार भयङ्कर साममियोंके मित्रनप भी न तृष्णाकर फिर न पा सक ॥ २३ ॥ जो कुछ प्रारब्धसे मित्र जाय, उसीसे संतुष्ट हो रहनेवाला पुण्य अपना जीवन सुखमें व्यतीत करना है । परन्तु अपनी इन्द्रियोंको बन्धने न रखनेवाला तीनों लोकोंका राज्य पानेका भी दुखी ही रहता है । क्योंकि उसके हृदयमें असन्तोष की आग धवस्तगी रहती है ॥ २४ ॥ धन और माँगोंसे संताप न होना ही जीवन-के कर्म-मुक्तके चरममें मिलनेका कारण है तथा जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसीमें संतोष कर के मुक्ति का कारण है ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण स्वर्गप्राप्त

यश्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ।

तत् प्रक्षाम्यत्यसंतापादम्मसेवाशुशुषुषिः ॥२६॥

तस्मात् त्रीणि पदान्येव हृण स्ववृ नरदर्पभात् ।

एतावसेव सिद्धोऽहं विचं यावत्प्रयाजनम् ॥२७॥

श्रीभुक्त उवाच

इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ।

वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥२८॥

विष्णुश्च क्षमां प्रदास्वन्तमुद्यता असुरेश्वरम् ।

नानधिकीर्षित विष्णो क्षिप्र्य प्राह विद्वांवरः ॥२९॥

शुक उवाच

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्विष्णुरच्ययः ।

कश्यपादितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥३०॥

प्रतिष्ठतं स्वयैतस्मै यदनर्थमवानता ।

न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगताऽनय ॥३१॥

एष ते स्थानमैश्वर्यं भ्रिय तेजो यद्यः क्षुतम् ।

दास्वन्पाच्छिद्य क्षकाय मायामाषका हरिः ॥३२॥

त्रिभिः क्रमैरिषोक्ताकान्विषकायः क्रमिष्यति ।

सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढवर्तिष्यसे कथम् ॥३३॥

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन द्विष त्रियोः ।

स्वं च कायेन महता तार्तीयस्य कृतो गतिः ॥३४॥

निष्ठां ते नरके मन्ये क्षप्रदातुः प्रतिष्ठतम् ।

वस्तुसे ही सन्तुष्ट हो रहता है, उसके तेजकी इति होती है । उसके अस्तोपी हो जानेपर उसका तेज वेसे ही शान्त हो जाता है जैसे जलसे अग्नि ॥ २६ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि आप मुझमें ही वस्तु देनेवालोंमें शिरोमणि हैं । इसलिये मैं आपसे केवल तीन पत्र भूमि ही माँगता हूँ । इतनेसे ही मेरा काम बन जायगा । धन उतना ही संग्रह करना चाहिये, जिसनेकी आवश्यकता हो ॥ २७ ॥

श्रीभुक्तदेवजी कहते हैं—भगवान् के इस प्रकार कहनेपर राजा बड़ि हँस पड़े । उन्होंने कहा—‘अभी बात है, जिनकी तुम्हारी इच्छा हो, उतनी ही ले जा ।’ यों कहकर वामनभगवान् ने तीन पत्र पृथ्वीका सहस्र पत्रनेके लिये उन्होंने जड़पत्र उठाय ॥ २८ ॥ शुक्राचार्यजी सब कुछ जानते थे । उनसे भगवान् ने यह श्रेष्ठ भी छिपी नहीं थी । उन्होंने राजा बलिवे पृथ्वी देनेके लिये तैयार देखकर उनसे कहा ॥ २९ ॥

शुक्राचार्यजीने कहा—विरोचन्तुम्हारे ! ये सब अविनाशी भगवान् विष्णु हैं । देवताओंका काम बनानेके लिये कश्यपजी पत्नी अदितिके गर्भसे उत्पत्ती हुए हैं ॥ ३० ॥ तुमने यह अनर्थ न जानकर कि ये मेरा सब कुछ छीन लेंगे, इन्हें दान देनेकी प्रवृत्ति कर दी है । यह तो दैत्योंपर बहुत बड़ा कष्ट होने जा रहा है । इसे मैं ठीक नहीं समझता ॥ ३१ ॥ सर्व भगवान् ही अपनी योगशक्तसे यह प्रकटरी बनकर बैठे हुए हैं । ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, कन्ये, तेज और विश्वविष्णुता कीर्ति—सब कुछ तुम्हारे छीनकर इन्होंने दे देंगे ॥ ३२ ॥ ये विश्वरूप हैं । तीन पत्रों तो ये सारे क्षेत्रोंको नाप लेंगे । मूर्ख ! जब तुम अपना सर्वस्व ही विष्णुको दे दोगे, तो तुम्हारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा ॥ ३३ ॥ ये विश्वमयक भगवान् एक पत्रमें पृथ्वी और दूसरे पत्रमें वायु नाप लेंगे । इनके विशाल शरीरसे बरकरा भर जायगा । सब इनका तीसरा पत्र कहाँ जायगा ! ॥ ३४ ॥ आप उसे पूरा न कर सकोगे । ऐसी दशामें मैं समझता हूँ कि प्रतिज्ञा करके पूरा न कर पानेके कारण तुम्हें नरकमें

प्रतिधुतस्य योऽनीश प्रतिपादयितुं भवान् ॥३५॥

न तद्दानं प्रयच्छन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ।

दानं यद्वस्तुतः कर्म लोके वृत्तिमयो यतः ॥३६॥

धर्माय यज्ञसेऽर्थाय कामाय स्वप्ननाय च ।

पञ्चधा विभज्यन्ति च मिहासुय च मोहते ॥३७॥

अत्रापि बहुचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ।

सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहान्तं हि तत् ॥३८॥

सत्यं पुष्पफलं विद्यादारमश्च स गीयते ।

वृक्षेऽजीवति तत्र स्यादन्तं मूलमात्मनः ॥३९॥

वदं यथा वृक्ष उ मूलः शुभ्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ।

एवं नष्टान्तं सद्य आत्मा शुभ्येत सद्य ॥४०॥

पराम् रिक्तमपूर्णं वा प्रश्नं यत् तन्नामिति ।

यत् किञ्चिदामिति श्रूयान् स न रिच्येत वै पुमान् ।

भिद्यत सर्वमोदुर्बलात् कामेन चात्मने ॥४१॥

अथैतत् पूर्णमप्यारमं यथा नेत्यन्तं वक्षः ।

ही जाना पक्वम् । क्याकि तुम अपना यह वृक्ष प्रतिष्ठा
को पूर्ण करनेमें मन्थना असमर्थ होओगे ॥ ३५ ॥

विद्वान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते, जिसका
का जीवन-निर्वाहक लिये कुछ धन ही नहीं । जिसका
जीवन-निर्वाह दीर्घकालिक चलता है—वही ससारमें
दान, यज्ञ, तप और पापशुद्धि का काम कर सकता
है ॥ ३६ ॥

जामनुष्य अपने धनका पाँच भागोंमें बाँट देता
है—कुछ उम्रके लिये, कुछ घरके लिये, कुछ धनकी
अभिवृद्धि के लिये, कुछ भोगोंके लिये और कुछ अपने
सम्बन्धीके लिये—वही इस रूप और परलोक दोनोंमें ही
सुख पाता है ॥ ३७ ॥

असुरभिरोगो । यदि तुम्हें अपनी
प्रतिष्ठा टूट जानेकी चिन्ता हो, तो मैं इस क्रियामें
तुम्हें कुछ आश्वस्त कर दूँगा कि जिससे तुम्हारा
धन नष्ट हो । धृति कहती है—जिसको कुछ दानकी
आवश्यकता हो

आवश्यकता हो वह अपना धन इस प्रकार
बाँट देता है—कुछ उम्रके लिये, कुछ घरके लिये, कुछ
धनकी अभिवृद्धि के लिये, कुछ भोगोंके लिये और कुछ
अपने सम्बन्धीके लिये—वही इस रूप और परलोक दोनोंमें ही
सुख पाता है ॥ ३८ ॥

यह शरीर एक वृक्ष है और सत्य इसका मूल-फल
है । परन्तु यदि वृक्ष ही न रहे तो फल-फल कैसे
रहे सकते हैं ? क्योंकि नष्ट होना, अपनी वस्तु
दूसरेको न देना, दूसरे शब्दोंमें अपना मूल बचाये
रखना—यही शरीरका वृक्षका मूल है ॥ ३९ ॥

जैसे जड़ न रहना वृक्ष सूखता था ही निम्नोमें गिर जाता
है, उसी प्रकार यदि धन धनमें अमीकरण न किया
जाय तो यह जीवन सुख जाता है—इसमें सन्देह
नहीं ॥ ४० ॥

हाँ मैं दूँगा—यह कल्प ही धनका
मूल होता है । इसलिये इसका उच्चाग्र ही अङ्ग
अर्थात् धनमें उत्तम कर देना चाहिये । यही कारण है
कि जो पुरुष जो मैं दूँगा—यह कहता है, वह धन
में उत्तम हो जाता है । जो वाचस्पत्य मम कुछ देना
चाहता है, वह अपने लिये भाग्यकी प्राप्ति

सामग्री नहीं रख सकता ॥ ४१ ॥ इसका विवरण मैं
नहीं दूँगा—यह जो अमीकरणका अन्वय है, वह
आपने इनका सुखीय गन्ध तथा दूध पानेका है

परन्तु ऐसा सब समय नहीं चलता आता । जो समय

सर्वं नेत्यनृतं मृपात् स दुष्कीर्तिं यत्सन्मृतः ॥४२॥

सोपु नर्मविवाहे च वृष्यर्थे प्राणसंकटे ।

गात्राद्यभार्ये हिंसायां नानृतं स्यान्ननुगुप्सितम् ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यं संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

भगवान् वामनजीका विपद रूप होकर सो ही पगसे पृथ्वी और जगत्को माप डेना
धीशुकनेवसी कहते हैं—राजन् ! जब कुशुप

बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ।

तृष्णी भूत्वा धर्मं राज्ञः पुत्राभावादिहो गुरुम् ॥ १ ॥

बलिस्थाप

सत्य भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ।

अर्थं कामं मद्यो वृत्तिं यो न बाधेत् कर्हिचित् ॥ २ ॥

स चाह विचलाभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ।

प्रतिधुरय ददामीति प्राहादिः कृतवो यथा ॥ ३ ॥

न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति हावाच भूरिषम् ।

सर्वं सादुमर्तं मये श्रुतेऽस्लीकपरं नरम् ॥ ४ ॥

नाहं विमेमि निरपाभाभन्यादसुखाणवात् ।

न म्यानस्पृशनाभ्रयोपया विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥

पदं यदासति लाकऽमिन्मरुतभनादिक्म् ।

तस्य ह्यागे निमिषं किं विप्रमुष्येभ सन चेत् ॥ ६ ॥

सभी वस्तुओंके डिये नहीं करता रहता है, उसकी
अनकीर्ति हो जाती है । यह तो जीवन रहनेमें भी
मृतकके समान ही है ॥ ४२ ॥ श्रियोंको प्रसन्न करने
के डिये, हास-परिहासमें, विवादमें, कठ्ठा आदिभी
प्रशंसा करते समय, अपनी जीविकाकी रक्षाके डिये,
प्राणसङ्कट उपस्थित होनेपर, गौ और मत्तगके हिलके
डिये तथा किसीको मृत्युसे बचानेके डिये अल्प-मत्त
भी उतना निन्दनीय नहीं है ॥ ४३ ॥

शुक्लाचार्यने इस प्रकार कहा, तब आचार्य गृहस्थ राज
बडिने एक क्षण चुप रहकर बड़ी विनय और सवजानी
से शुक्लाचार्यजीके प्रति यों कहा ॥ १ ॥

राजा बलिने कहा—भगवन् ! आपका कहना
सत्य है । गृहस्थाश्रममें रहनेवालेके डिये बड़ी धर्म है
विस्तरे धर्म, काम, मद्य और अजीविकामें कभी किसी
प्रकार बाध न पड़े ॥ २ ॥ परन्तु गृहस्थ ! मैं प्रहार
जीव्य पौत्र हूँ और एक बार देनेकी प्रतीक्षा कर चुका
हूँ । अब अब मैं धनके लालसे लाली मीति इस
लालसे कैसे कहूँ कि 'मैं धनमें नहीं हूँ' ॥ ३ ॥
इस पृथ्वीने कहा है कि 'अस्त्यसे बढ़कर कोई धर्म
नहीं है' । मैं सब कुछ सहनेमें समर्थ हूँ, परन्तु इसे
मनुष्यता और मुक्तसे नहीं सहा जाता ॥ ४ ॥ मैं
नरकसे, दरिद्रतासे, दुःखसे, मृत्युसे, अपने सम्पत्ति प्राप्ति-
से और मृत्युसे भी उतना नहीं डरता, जितना लालसे
प्रतीक्षा करके उसे धोखा देनेसे डरता हूँ ॥ ५ ॥ इस
संसारमें मर जानेका काम धन आदि जो-जो कारणों
साथ छोड़ देती है, यदि उनका डर दान आदिसे
लालोंको भी सम्पन्न न किया जा सके, तो उनका
त्यागपत्र धन ही क्या रहा ॥ ६ ॥ दधीचि, द्विज

धेयः कुर्वन्ति भूतानां साधनो दुस्त्यजास्तुभिः ।

दक्षद्विधिमृतय को विकल्पो भरादिषु ॥ ७ ॥

परिं पुमुञ्चे प्रमन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ।

तेषां कालोऽग्रसीरलोकान् न यदोऽभिवर्तं भुवि ॥ ८ ॥

सुलभा युधि विप्रपे दनिहृतास्तनुस्यजाः ।

न तथा तीर्थं प्रायाते धृदया ये धनरयजः ॥ ९ ॥

मनस्विनः कारुणिकस्य क्षोभनं

यदर्धिकामापनयेन दुर्गतिः ।

कृतः पुनर्ग्रहादिदां भवाच्छां

ततो वटारस्य ददामि बाण्डितम् ॥ १० ॥

यदन्ति यद्वक्तुर्भिर्यमाहता

भवन्त आम्नायविधानकोविदाः ।

म एव विष्णुर्दोऽस्तु वा परो

दास्याम्यमुष्मं क्षितिमीप्सितां शुने ॥ ११ ॥

यत्पसावधमेण मां वञ्चीयादनागसम् ।

तथाप्यन न हिंसिष्य भीत प्रद्वगुं रिषुम् ॥ १२ ॥

एष पाउचमश्नाहान जिहासति यद् यद् ।

इत्वा मैनां हरद् युद्ध शपीत निहता मया ॥ १३ ॥

भीमक उवाच

एवमश्रुतं शिष्यमनादश्रुत्वा गुरु ।

अगाध दयप्रदित सत्यवच मनस्विनम् ॥ १४ ॥

आदि महापुरुषोंने अपने परम प्रिय दुस्त्यज प्राणीका दान करने भी प्राणियोंकी मज्जा की है । फिर पृथ्वी आदि वस्तुओंको देनेमें साध-विचार करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ७ ॥ अहम् । पहले युगमें बड़-बड़ दैत्यराजोंने इस पृथ्वीका उपभोग किया है । पृथ्वी में उनका सामना करनेवाला पाइ नहीं था । उनके लोभ और परधन्यको तो बहुत ख गया, परन्तु उनका यदा कभी पृथ्वीपर ओ-क-सों बना हुआ है ॥ ८ ॥ गुरुदेव ! ऐसे लोग संसारमें बहुत हैं, जो गुरुमें पीठ न लिखकर अपने प्राणीकी बड़ी चढ़ा दते हैं, परन्तु ऐसे लोग बहुत दुर्नम हैं, जो सत्पात्रके प्राप्त होनेपर ग्रहाके साथ बनकर दान करें ॥ ९ ॥ गुरुदेव ! यदि उत्तर और वरुणासीक पुरुष अपात्र पात्रकी सम्मता पूर्ण करनेके दुर्गति भोगता है, तो वह दुर्गति भी उसके लिये क्षेमाकी बात होती है । फिर आप-जैसे अक्षयेश पुरुषोंको दान करनेसे दुःख प्राप्त हो तो उसके लिये क्या कहना है । इसलिये मैं इस अक्षयरीकी अभियोग अवश्य पूरा करूँगा ॥ १० ॥ महर्षे ! वन्धुविके जाननेवाले आपसमें बड़े अदरसे यज्ञ-यागदिके द्वारा बिनकी आराधना करते हैं—वे बदरानी विष्णु ही इस रूपमें हों अपना पेशे दूसरा हा, मैं इनकी इच्छा के अनुसार इन्हें पृथ्वीका दान करूँगा ॥ ११ ॥ यदि मेरे अपराध न करनेपर भी य अवश्यमें मुझ यौध लेंगे तब भी मैं इनका अनिष्ट नहीं चाहूँगा । क्योंकि मेरे शत्रु हानकर भी इन्होंने मयवीन होकर शासनका शरीर धारण किया है ॥ १२ ॥ यदि य पवित्रकीर्ति भगवान विष्णु ही हैं तो अज्ञा यश नहीं जाना चाहेंगे (अपनी मौर्फी इह वस्तु लय ही रहेंगे) मुझ युद्धमें मारकर भी पृथ्वी छीन सफल हैं । और यदि पनाचित वे पाइ दूसरा ही हैं, तो मैं बागीकी चारमे समान त्रिप ग्यमूर्धिमै सा जदेंगे ॥ १३ ॥

धीगुरुदेवजी कहत हैं—जब मुनाकापयन देव वि मग यद पिप्य गुरु प्रनि अष्टादु है तग मी अज्ञात उपहृत कर गग है, तग देवकी प्रगगमे उन्होंने गजा यकिर गग द पिय—यदरि य सप प्रपिज है उग हानर काग दानर यत्र नही

वदं पण्डितमान्यङ्गः स्तब्धाऽस्सस्सदुपेक्षया ।

मच्छासनाविगा यस्त्रमचिराद् अक्षयसे भिय ॥१५॥

एव शत मगुरुणा सरयान्न चलितो महान् ।

वामनाय ददायेनामर्षित्वोदकपूर्वकम् ॥१६॥

विष्णवलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकपालिनी ।

आनिन्य कलशं ह्रममवनेधन्यया भृतम् ॥१७॥

यत्रमान स्य तस्य भीमत पादयुग मुदा ।

अवनिज्वाहमूर्ध्नि तवयो विम्वरावनी ॥१८॥

तदासुरन्द्रं दिवि देवतागणा

गार्धर्वविद्याभरसिद्धिधारणाः ।

तत्कम सर्वेऽपि गृणन्त आर्ध्वं

प्रधनवर्षवर्षपुर्मुदान्विताः ॥१९॥

नेदुर्मुदुर्दुभयः सहस्रशः

गार्धर्वकिपूरुपकिन्नरा जगुः ।

मनस्विनानेन कृत मुदुष्कर

विद्वानशब्द यद् रिपवे भगत्प्रयम् ॥२०॥

तद् वामनं रूपमवधेतावृत

हरगन्तस्य गुणप्रयारमकम् ।

भूः तन्निश्चाद्योर्विनग पयाधय

स्तिमद्भुदया ध्रुवयो यदामस ॥२१॥

कादे बलिष्ठस्य महाविभूते

सहर्षिर्गानार्धमस्य एतत् ।

ददश रिपु त्रिगुणं गुणामप

भूतन्निपाथाशयप्रीषयुक्तम् ॥२२॥

ये ॥ १४ ॥ शुक्रवायवीने कहा—'मर्से ! तू है ते
अश्वानी, फन्सु अपनेकर बहुत मझ पण्डित मान्ता है ।
तू मेरी उपेक्षा करके गव कर रहा है । तूने मेरी अश-
क उठान्न किया है । इसलिये शीघ्र ही तू अपनी
छत्ती खा बैठेगा ॥ १५ ॥ राजा वशिष्ठ वड़ म्हन्म
ये । अपने गुरुदेवक शाप देनेपर भी वे सन्तो नहीं
डिग । उन्होंने नामनभक्तान्तर विचित्रक पूजा की
और हाथमें जल लेकर तीन फा भूमिकर सहज कर
लिये ॥ १६ ॥ उसी समय राजा वशिष्ठ अपनी
विष्वाक्ष्मी, जो मानियोंक गठनसे सुसज्जित थी,
उहाँ आयी । उसन अपने हाथों बामनभाक्तक
चरण फडारनक लिये जलसे भरा सोनेकर कहा
लकर दिया ॥ १७ ॥ यन्त्रिने स्वयं वड़ अनन्तसे
उनक सुन्दर-सुन्दर युगल चरणोंको धोया और उनके
चरणोंकर वह विद्याभक्त जो अपने सिरपर चढ़ाया ॥ १८ ॥
उस समय आकाशमें स्थित देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध,
चारण—सभी लोग राजा वशिष्ठ इस अवैश्विक रूप
तक सत्कारकी प्रशंसा करते हुए यह जानकरसे उनके
ऊपर लिये पुष्पोंकी बरसा करने लगे ॥ १९ ॥ एक छत्र
ही हजारों दुन्दुभियों वार-वार चढ़ने लगे । गन्धर्व
किम्पुत्र और किन्नर गान करने लगे—'अहा धन्य है ।
इन उदारशिलापति बन्धित पता कदम कर दिखकर, जो
दूसरोंक विष अम्पत्त करिने हैं । दसों तब सही इन्होंने
जान-बूझकर अपने गुरुदेव कीलों कोशोंकर गल कर
लिया । ॥ २० ॥

इसी समय एक यक्षी अद्भुत फना पर गयी ।
अनन भक्तान्तर वह त्रिगुणमय बामनरूप धरन ल्या ।
जो यक्षिण कहा कि 'प्रधी, आकाश, पृथिवी, वा-
युमात्र समस्त पदार्थों मनुष्य, देवता और अग्नि—सब
कन्मय त्मीर्य सम्म गये ॥ २१ ॥ अद्विज जानकर
और सन्तोष मान्य यन्त्रिने समस्त पञ्चदेव पञ्चमय
स्वामी भक्तान्तर उम त्रिगुणमय दर्शनामें पञ्चमय
लिये उनक विषय, अन्त करण और शीशोंक साप पर
मग्न त्रिगुणमय अद्भुत रूप ॥ २२ ॥ राजा वशिष्ठे

रसामषष्टाक्षिप्रतलेऽथ पादयो
 मही महीघ्रा पुरुषस्य जङ्घयाः ।
 पतत्रिणो धानुनि विधमूर्ते
 रुर्वागीश मारुतमिदं त्रसेन ॥२३॥
 संपां विभोर्वाससि गुण पेषत्
 प्रजापतीञ्जने आत्मस्युत्पान् ।
 नाम्नां नभ कुक्षिपु मममिध
 नुरुकमस्योगमि चर्धमालाम् ॥२४॥
 ह्यङ्ग धर्म स्तनयोमुगरे
 श्वत् च सत्य च मनस्येन्दुम् ।
 धियं च वधस्यरन्दिहस्तां
 कण्ठ च सामानि ममस्तरेफान् ॥२५॥
 इन्द्रप्रधानानमरान्धुजेपु
 तत्कर्णयो कङ्कभो घोष मूर्ध्नि ।
 केदेषु मेघाञ्जलसु नामिकाया-
 मन्मथोष धर्म बदने च पङ्क्तिम् ॥२६॥
 वाण्यां च छन्दांसि रसे बलेऽ
 भुवोर्निपेच च विधिं च पद्मसु ।
 अहम् रात्रि च परस्य पुंसो
 मन्थुं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥२७॥
 स्पष्टं च काम नृप रेतसोऽम्भ
 पुठे त्वधर्म क्रमणेषु यद्वध ।
 छायासु मृत्यु इविते च मायां
 तत्तुल्येऽपि भिन्नातयम् ॥२८॥
 नदीषु नाडीषु झिला नखेषु
 बुदावज्ज ठङ्गणान्नीषम् ।
 प्राप्तेषु गात्र स्मिरजङ्गमानि
 सवाणि मृतानि दर्शय वीर ॥२९॥
 मयस्मनीदं सुवन निरीक्ष्य
 सर्वेऽसुरा कण्ठमलमापुरज्ज ।
 सुवर्शन चक्रमसद्यतेजो
 धनुष शङ्ख स्तनयिस्तुषोपध् ॥३०॥
 पद्मन्यपाश जडज पाञ्चजय
 कौमादकी विष्णुगदा तरविनी ।

विशालम् भगवान्के शरणतः गताः, शरणोर्मे पृथ्वी,
 विहङ्गिण्योर्मे पक्षतः, सुप्तोर्मे पक्षी और जोशोर्मे महत्प्रवृत्ते
 दम्बा ॥ २३ ॥ इमी प्रकट भगवान्क वचोर्मे सन्ध्या,
 गुह्यम्भानोर्मे प्रजापतिगण, जघनस्थोर्मे अपन सहित
 समस्त असुरगण, नामिर्मे आकाश शरभोर्मे सानो समुद्र
 और वक्षःस्थल नक्षत्रमण्डल देव ॥ २४ ॥ उन छोटेका
 भगवान्क हृदयमें धर्म, मनोर्मे श्रुत (मन्त्र) और सत्य
 वचन, मनमें चन्द्रमा, वक्षःस्थल हाथोंमें कण्ठ जिह्वा
 छत्तीसी, कण्ठमें सामान्य अतः समुद्र मन्दमण्डल गङ्गा
 दीर्घ ॥ २५ ॥ बाहुओंमें इन्द्राणि समस्त दैवगण, कर्णोंमें
 दिव्यकर्ण समस्त स्वर्ग, कर्णोंमें मेघमण्डल, नासिक्यमें
 वायु नेत्रोंमें सूर्य और मुखमें अग्नि निखर्य पड़ ॥२६॥
 वाणीमें वचन, गन्तव्यमें वरुण, मूर्ध्निमें विधि और नियम,
 पङ्क्त्योर्मे पिन और गत । विशालका छत्रमें क्रोध और
 नीचेका छाटमें लोभक गत हुए ॥ २७ ॥ परीक्षित !
 उनका स्थानमें काम, शीर्षमें जड पीठमें श्वभ्रम, पु-
 त्रिन्यासमें यज्ञ, हृदयमें मृत्यु, हँसीमें मया और शरीरक
 गणोंमें मय प्रकटकी आपविषयी वी ॥ २८ ॥ उनकी
 नाडियोंमें मन्त्रियों नभोर्मे निशान और धुस्त्रिमें दम्बा, श्वना
 एवं श्रमिण शस्त्र पड़ । इस प्रकार वीरवर बर्जित
 भगवान्की इन्द्रियों और शरीरमें सभी श्वराचर प्राणियोंका
 नष्टन किया ॥ २९ ॥

परीक्षित ! स्वभाव भगवान्के यह मनुष्य जन्तु दम्बक
 मय-कमल अन्य अफन्त भवभीत हो गये । इमी समय
 भगवान्क पाम अमदा तबवाय सुवर्शन चक्र गजज
 रूप मयक समान भयङ्कर टङ्कम वरुणवाय शङ्खधनुष
 शस्त्रादिक तरह कम्भीर जड वरुणवाय पाञ्चजन्य शङ्ख
 विष्णुभगवान्की अत्यन्त शक्तिवत् परमात्म्या गता मी
 श्वराचर विधोपाय शस्त्र और विद्याम नामकी तरह

विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्त-
 स्तुणोत्तमावधयसायकी च ॥३१॥
 सुनन्दसुखा उपतस्फुरीर्धं
 पापदमुखाः सहलोकपालाः ।
 स्फुरतिकरीटाङ्गदमीनकुण्डल-
 श्रीवत्सरसोत्तममेखलाम्बरैः ॥३२॥
 मधुवतस्तवनमाळया श्रुतो
 ररात्र रात्रभगवानुरुक्रमः ।
 क्षिति पदैकेन बलेविचक्रमे
 नम शरीरेण दिव्यवाङ्मुनिः ॥३३॥
 पदं द्वितीय क्रमतस्त्रिचिष्टपं
 न वै हतोयाय तदीयमभयि ।
 उरुक्रमसाक्षिरुप्युपपद्यो
 महर्चनाभ्यां तपसः परं गत ॥३४॥

अक्षय बाणोंसे मरे दो तरफस तथा जेकराओंके स्त्री
 मगवान्के सुनन्द आदि पारंगम सेव करनेके वि
 उपस्थित हो गए । उस समय भगवान्की वही खेब
 हुई । मस्तकार मुकुट, बाहुओंमें कमंड, कर्णोंमें
 मकराकृति कुण्डल, कण्ठ स्थलम श्रीकमण्ड, गलेमें
 कौस्तुभमणि, कमरमें मेखला और कंधेपर पीतम्बर
 शोभायमान हो रहा था ॥ ३०-३२ ॥ वे पाँच प्रभुओंके
 पुण्योक्ति कनी वनमाला धारण किये हुए थे, जिसका
 मधुखेभी मौरि गुंजार कर रहे थे । उन्होंने अपने एक
 पगसे बहिरी सारी पृथ्वी नार की, शरीरसे अक्षय और
 मुखाओंसे त्रिचूर्ण केर धी; दूसरे पगसे उन्होंने कर्णों
 भी नाप किया । तीसरा पैर रखनेके किये बहिरी तनिक-
 सी भी कड़े बस्तु न बची । भगवान्का वह रूप का
 ही स्मरणही और जाता हुआ मूर्धन्य, जनजैक और
 तपजैकसे भी ऊपर स्वप्नजैकसे पहुँच गया ॥३३-३४॥

इति भीमश्रृंगमठे महापुराणे पारमहंस्यां संज्ञितायाम्भक्त्यवे

विचक्षणार्थं नाम विंशतिर्माध्याय ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्याय

पत्तिकर वीधा जगता

भीतुक उवाच

मत्स्यं समीक्ष्यान्ममना नखेऽङ्गुलि
 ईतस्वभामस्युतिराहताऽभ्यगात् ।
 मरीचिमिभा ज्ञेयया पृष्ठप्रता
 सनन्दनाया नरद्वय योगिनः ॥ १ ॥
 वडापवेदा नियमान्विता यमा
 स्तर्कविहासाङ्गपुराणसंहिता ।
 ये चापर योगसमीरदीपित
 ज्ञानाभिना रभितकमकम्पया ।
 बभन्दिरे यस्मिन्भानुभाषत
 न्नामभ्युपधाय गता प्रकर्मकम् ॥ २ ॥

भीतुकसेवजी कहत हैं—परिहित ! भगवान्का
 चरणकमल सत्यजैकमें पहुँच गया । उसके नखजैक
 की छत्रसे सत्यजैककी आमा फीकी पक गयी । सत्य
 प्रसा भी उसके प्रपञ्चमें डूबने लगे । उन्होंने मरीचि
 आदि श्रमियों, सुनन्दन आदि वैदिक प्रचारियों एवं
 बड़े-बड़े पाणिपोंके साथ भगवान्के चरणकमल की भावना
 की ॥ १ ॥ वे, उपवे, नियम, यम, तन, इन्द्रिज,
 वेदाङ्ग और पुराण-संहिताएँ—जो प्रत्येकमें मर्ममन्त्र
 होकर निवास करते हैं—तथा जिन जोगोंने योगरूप
 वायुसे ज्ञानाग्निज प्रज्वलित करके कर्मद्वय मम का
 डया है, यं मशरमा, सबने भगवान्के चरणकी बन्दन
 की । इसी चरणकमलक स्मरणकी महिम्नसे ये सब
 कर्मके द्वारा प्राप्त न होनेयोग प्रसानीक वाममें पहुँचे हैं ॥२॥

मया ह्यये प्रोन्नमिताय विष्णो-
 रुपाय हत् पञ्चवयोऽर्हणोदकम् ।
 समर्च्य भक्त्या म्यगुणाच्छुचि मया
 यन्नाभिपङ्के रुद्रमभवः स्वयम् ॥ ३ ॥
 धातुः कमण्डलुञ्जं तदुरुक्रमस्य
 पादावनेशनपवित्रतया नरेन्द्र ।
 स्वर्धुन्यधून्नमसि सा पतती निमार्ष्टि
 लोकत्रय भगवतो विश्वेश कीर्तिः ॥ ४ ॥
 ब्रह्मादयो लोकनाथा स्वनाथाय समाहृताः ।
 सानुगा बलिमाब्रुहः सधिसारमविभूतये ॥ ५ ॥
 तैर्यैः समहर्षैः स्रग्मिर्दिव्यगन्धालुलेपनैः ।
 धूरैर्दीपैः सुरभिभिर्लङ्कास्तफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥
 स्तंभनैर्जयसुन्दरैश्च तक्षीर्यमहिमाङ्कितैः ।
 नृत्यवादित्रगीतैश्च छङ्कदुःखिभिः स्वनैः ॥ ७ ॥
 आम्बवान्मुखाग्रस्तु मेरीशुन्दैर्मनाजव ।
 विजय दिक्षु सर्वासु महोत्सवमपोषयत् ॥ ८ ॥
 महीं सर्वां हुतां हृष्टा त्रिपदव्याजवाष्पजया ।
 ऊचुः स्वभर्तुस्तु दीक्षितस्वात्ममर्षिताः ॥ ९ ॥
 न वा अयं ब्रह्मण्युर्विष्णुर्मायाविनां धरः ।
 द्विरूपप्रतिष्ठन्ना देवकार्यं विधीयति ॥ १० ॥
 अनेन याचमानेन धातुणा बहुरुपिणा ।
 सवस्व नो ह्यं भर्तुर्नस्तदण्डस्य बहिर्वि ॥ ११ ॥

भगवान् ब्रह्माक्षी कीर्ति बड़ी पवित्र है । ये विष्णुभगवान् के
 नामिकमण्डसे उत्पन्न हुए हैं । भगवानी करनेके बाद
 उन्होंने स्वयं विश्वरूप भगवान् के ऊपर ठठे हुए चरणका
 अर्घ्य-याचसे पूजन किया, प्रक्षालन किया । पूजा करके
 यह प्रेम और मक्तिसे उन्होंने भगवान् की स्तुति की ॥ ३ ॥
 परीक्षित ! ब्रह्मके कमण्डलुका बड़ी ऊँच विश्वरूप
 भगवान् के पाँच पखारनेसे पवित्र होनेके कारण उन
 गङ्गासीके रूपमें परिणत हो गया, जो आकाश-मण्डलसे
 पृथ्वीपर गिरकर तीनों लोकोंका पवित्र करती हैं । ये
 गङ्गाजी क्या हैं, भगवान् की मूर्तिमान् उगज्ज कीर्ति । ४ ।
 जब भगवान् ने अपने स्वरूपको कुछ छत्र कर लिया,
 अपनी विभूतियोंका कुछ समेत लिया, तब ब्रह्मा आदि
 लोकप्रधानोंने अपने अलङ्कारोंके साथ बड़े आदरभावसे
 अपने स्वामी भगवान् को अनेकों प्रकारकी में समर्पित
 की ॥ ५ ॥ उन ओष्ठोंने पत्र, उपहार, मन्त्र, दिव्य
 गन्धोंसे मरे अङ्गराग, सुगन्धित मूल, दीप, छिद्र, अक्षत,
 फल, अङ्कुर, भगवान् की महिमा और प्रभावसे युक्त स्तोत्र,
 जयवाज, नृत्य, वाजे-गाजे, गान एवं शङ्ख और दुन्दुभिके
 हस्तोंसे भगवान् की आराधना की ॥ ६-७ ॥ उस समय
 आक्षराज आम्बवान् मनके समान बेगसे दीक्षित सब
 दिशाओंमें मेरी बख्त-बज्जकर भगवान् की मङ्गलमय विजय-
 की घोषणा कर आये ॥ ८ ॥

दैत्योंने देखा कि कामनखीने तीन पाग पृथ्वी मोंगनेके
 स्थाने सारी पृथ्वी ही छीन ली । तब वे सोचने लगे
 कि हमारे स्वामी बन्धि इस समय यहाँ दीक्षित हैं, ये
 तो कुछ कहेंगे नहीं । इसलिये बहुत चिढ़कर वे आपसमें
 कहने लगे ॥ ९ ॥ धरे, यह ब्रह्मण नहीं है । यह
 सबसे बड़ा मायावी विष्णु है । ब्रह्मणके रूपमें छिपकर
 यह देवताओंका काम बनाना चाहता है ॥ १० ॥ जब
 हमारे स्वामी यहाँ दीक्षित होकर किसीने किसी प्रकार
 का दण्ड देनेके लिये उतरत हो गये हैं, तब इस शत्रुने
 ब्रह्मचारीका येनाकर पहले तो याचना की और पीछे
 हमारा सबकुछ हरण कर लिया ॥ ११ ॥ यों तो हमारे

सत्प्रमत्तस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ।

नानृतं भाषितुं शक्यं प्रहस्यस्य वयावतः ॥१२॥

तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुं शूद्रभूषणं च न ।

इत्यायुधानि जगद्दुर्बलेरनुचरासुराः ॥१३॥

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिषुपाणयः ।

अनिच्छतो बले रावन् प्राद्रवन्नाशमन्ववः ॥१४॥

वानभिद्रवतो दृष्ट्वा दिवित्जानीकमानं नृप ।

प्रहसानुचरा विष्णोः प्रस्थपेधन्नुदायुधा ॥१५॥

नन्दः सुनन्दाश्च त्रयो विजयः प्रबलो बलः ।

कुमुदः कुमुदाश्च विष्णुक्सेनः पतत्रिभ्राट् ॥१६॥

जयन्तः भुवदेवश्च पुष्यदन्तोऽथ सारवतः ।

सर्वे नागायुतप्राणाश्चर्म ते अचुरासुरीम् ॥१७॥

हन्यमानान् स्वकान् दृष्ट्वा पुश्वानुचरैर्यलिः ।

वारयामास संरम्भान् क्राम्यन्नापमनुसरन् ॥१८॥

हे विप्रचित्त ह राहो ह नेमे भूयतां वधः ।

सा युष्मत् निवर्तन्व न नः कालोऽयमर्षकृत् ॥१९॥

यः प्रहः सर्वभूतानां सुसदुःखापपत्तये ।

तं नातिबलितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥२०॥

यो नो भवाय प्रागासीदभवाय विशोकसाम् ।

स एष भगवानघ वर्तते तद्विपर्ययम् ॥२१॥

बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ।

सामादिभिरुपायैश्च कालं नारयेति वै जनः ॥२२॥

स्वामी सत्ता ही सम्पनिष्ठ हैं, परन्तु यहाँ में शक्ति होने
वे इस बातका विशेष ध्यान रखते हैं । वे स्वयंसे के
मक्त हैं तथा उनके हृदयमें दया भी बहुत है । इतने
वे कभी झूठ नहीं बोल सकते ॥ १२ ॥ पत्नी अन्तसे
हमखोजेकर यही धर्म है कि हम शत्रुको मार लेंगे ।
इससे हमारे स्वामी बलिप्रति मेवा भी हावी है । वे
सोचकर राजा बलिके अनुचर अमुर्गेने अपने-अपने
हथियार उठा लिये ॥ १३ ॥ परीक्षित ! राज बलिके
इच्छा न होनेपर भी वे सब बड़ क्रोधसे रहू, परिय
आणि संस्कार वामनभावान्को मारनेके लिये दू
पड़ ॥ १४ ॥ परीक्षित ! जब विष्णुमगवान्को फँसने
देख कि दैत्योंके सेनापति आक्रमण करनेके लिये दौड़
आ रहे हैं, तब उन्होंने हँसकर अपने-अपने शस्त्र उठा
लिये और उन्हें रोक दिया ॥ १५ ॥ नन्द, सुनन्द,
जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदास, विष्णुक्सेन,
गरुड, जयन्त, कृतदेव, पुष्पन्त और सत्तन—ये सभी
भगवान्को पाँच-दस-दस हजार हाथियोंका एक रक्षक
हैं । वे अमुर्गेकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १६ ॥ ओ
जब राजा बलिके देख कि भगवान्को पाँच से सैकड़ों
का मार रहे हैं और वे भी क्रोधमें मरकर उनसे बचनेके
लिये तैयार हो रहे हैं, तो उन्होंने शुकचर्मके शस्त्र
समण करके उन्हें युद्ध करनेसे रोक लिया ॥ १८ ॥
उन्होंने विप्रचित्ति, राहु नेमि आदि दैत्योंको सम्पत्ति
करके कहा—‘माया ! मेरी बात सुनो । लड़ो मत,
बापस डींग खाओ । यह समय हमारे करके अनुकूल
नहीं है ॥ १९ ॥ शैवो ! जा बल समस्त प्राणियोंके
सुख और दुःख देनेकी सामर्थ्य रखता है—उसे यदि
बड़ा पुरुष चाहे कि मैं अपने प्रफनोंसे दबा दूँ, तो वह
उसकी शक्तिसे बाहर है ॥ २० ॥ जो पहले हमारी
उपनि और देवताओंकी कृतज्ञताके कारण हुए थे, वही
कारण हो रहे हैं ॥ २१ ॥ कष्ट, मन्त्री, बुद्धि, दुर्ग,
मन्त्र, ओषधि और सामादि उपाय—‘नमोसे मित्री की
साधनके द्वारा अपना सबके द्वारा मनुष्य कायपर नियंत्रण
नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २२ ॥ जब दीप हमखोजेके

विप्रलम्भो ददामीति स्वयाहं चाद्यमानिना ।

पदं बलीकफलं गुरुत्वं निरयं कतिचित् समा ॥ ३४ ॥

हे ॥ ३३ ॥ तुम्हें इस बातका क्या धर्म है कि मैं
क्या धनी हूँ । तुमने मुझसे पूछा—ऐसी प्रशिक्षा करने
के लिए धोखा दे दिया । अब तुम कुछ क्योंकि इस दृष्टि
फल मरक मोगो ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवत्ते मन्त्रपुराणे पारमहंस्या संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे
बलिनिग्रहा नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

बलिने द्वारा भगवायस्त्री स्तुति और भगवान्का उत्सर्ग प्रसन्न होमा

श्रीभुक्त उवाच

एष विप्रकृतो राजन् बलिर्मगवतासुरः ।

मिथ्यमानोऽप्यभिजात्मा प्रत्याहासिह्वं वचः ॥ १ ॥

बलिस्त्वाच

श्रीभुक्तनेयजी कहते हैं—परीक्षित । इस प्रकार
मगवान्ने अमुरराज बलि का निरस्त्र किया और
उन्हें धैर्यसे विचित्र करना चाहा । परन्तु व तलिक भी
विचित्र न हुए, वह धैर्यसे बोले ॥ १ ॥

वैश्वदेव बलिने कहा—दक्षताओं का अपमान
आपकी परीक्षा का ही पवित्र है । क्या आप मेरी बलिने
अस्त्य समझते हैं ? ऐसा नहीं है । मैं उसे उत्सर्ग कर
दिया जाता हूँ । आप जोखें नहीं पड़ेंगे । आप कुछ करने
अपना तीसरा पग मेरे स्तिर पर रख लीजिये ॥ २ ॥
मुझे नरकमें जानेका अवकाश रुपये से भुन होनेका मन
नहीं है । मैं पाशमें बँधने अवकाश अगर दु कमें पड़नेसे
भी नहीं करता । मेरे पास छूटी काँची भी न रहे जल्दा
आप मुझे धार लण्ड दें—यह भी मेरे माग्न कारण नहीं
है । मैं करता हूँ ता केवल अपनी आत्माजिनि ॥ ३ ॥
अपन पूजनीय गुरुजनको दण्ड दिया हुआ दण्ड ठे
जीवमात्रक त्रिय अस्पन्त काञ्चनीय है । क्योंकि केवल
दण्ड मरता, किता माइ और सुख भी मोहका नहीं है
पासे ॥ ४ ॥ आप छिपे रूपसे अवश्य ही हम अमुरोंसे
अप शिखा दिया करते हैं, कन आप हमारे परम गुरु
हैं । अब हमअग्न धम, पुत्रीनता, कन अग्निक मन्ते
अपे हा जाते हैं, मध आप उन वस्तुओंको हमसे छिन
कर हमें नेत्रान्न करते हैं ॥ ५ ॥ आपसे हमसेअप
जा उपयुक्त होता है उसे मैं क्या करताई ! अन्य
मात्रसे याग करनेवाके योग्यगण जा मिदि प्राप्त करते हैं,
यही मिदि बहुतसे अमुरोंका आपका माग्न दद ईरमा

यद्युचमस्माक भवान् ममेरित

वचो व्यलीक सुरवर्य मन्यते ।

करोम्यर्थं तन्न भवेत् प्रलम्भन

पदं तृतीयं कुरु धीर्भि मे निग्रम् ॥ २ ॥

बिमेमि नाहं निरयात् पदभ्युतो

न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात् ।

नैवार्थक्यप्राद् भवता विनिग्रहा

दसाधुबादाद् मृगशृङ्गिजे यथा ॥ ३ ॥

पुमां स्थाप्यतम मन्य दण्डमर्हत्मापितम् ।

य न माता पिता ज्ञाता सुहृदभादिद्यन्ति हि ॥ ४ ॥

त्वं नूतमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः ।

यो नाऽनेकमदाधनां निर्भ्रंशं चसुरादिशत् ॥ ५ ॥

यस्मिन् पैरानुषन्नेन रुन्नि विपुधेतराः ।

बहवा लेभिर मिदि यामु हकान्तयागिन ॥ ६ ॥

तेनाहं निगृहीताऽस्मि भरता मूरिकर्मणा ।

पदम वारुणं पार्श्वनीतिव्राट् न च व्यये ॥ ७ ॥

पितामहो मे मधदीपसमस्तः

प्रहाद आविष्कृतसाधुवाद ।

भवद्विप्रभेज

विचित्रवर्णस

सप्रापितस्त्वत्परम स्वपित्रा ॥ ८ ॥

किमाश्मनानेन जहाति कोऽन्तरः

किं रिक्कहारै रज्जनास्पदस्सुमिः ।

किं जायया संसृतिहेतुभूतया

मर्त्यस्य गहैः किमिहायुषा व्यय ॥ ९ ॥

इत्थं मे निश्चित्य पितामहा महा

नगाधपाधा भवत पादपद्मम् ।

ध्रुवं प्रपदं दक्षुताभयं जनाम्

भीतं स्वपद्मपणस्य सत्तमः ॥ १० ॥

अथाहमप्याश्मरिपास्तवान्तिर्कं

द्वेवेन नीव प्रसमं त्वावितभीः ।

इदं कृतांतान्तिरूपं वि शीघ्रित

यथाधुव स्तम्भमतिर्न पुष्पते ॥ ११ ॥

भीगुक् उवाच

तस्येत्थं मापमाणस्य प्रहाद भगवत्प्रिय ।

आश्रयाम दुरुभट्टं राक्षापतिरिवाग्निधितः ॥ १२ ॥

समिन्द्रसनं स्वपितामहं धिया

विराजमानं नलिनापतसुणम् ।

प्रांशुं रिश्रहाम्बरमञ्जनविधं

प्रलम्बहारुं सुभगं समस्रत ॥ १३ ॥

तस्मै बन्धिराजपाण्यन्त्रित

ममदणं नापजहारं पूर्ववत् ।

करनसे ही प्राप्त हो गये है ॥ ६ ॥ जिनकी पत्नी महिमा,
पत्नी अनस्त मीथर्य हैं, वही आप मुझे यह कहें
और करुणाशसे खोज रहे हैं । इसकी न ता मुझे यह
कहा है और न किसी प्रकारकी ध्या ही ॥ ७ ॥ प्रमा ।
मेरे पितामह प्रहाद जीकी धर्मि सारे जगत्में प्रसिद्ध है । वे
आपके महोमें श्रेष्ठ माने गए हैं । उनका पिता विष्णुपतिरिमुने
आपसे वर-विगाध स्मयक परग उन्हे अनेकों प्रशस्ति दू
गिये । परन्तु वे आपकी फायदा रहे, उन्होंने अपना जीवन
आपकी निष्ठा पर कर दिया ॥ ८ ॥ उन्होंने यह निश्चय
कर दिया कि शरीरका खेद क्या करना है, जब यह एक
न-एक दिन माय हो जायेगी । जो धन-संपत्ति लेनक
जिसे खाने बने हुए है, उन दाकुओंसे अन्ना स्वाध ही क्या
है । पत्नीसे भी क्या लाभ है, जब यह जन्म-मृत्युकर
संसारक चक्रमें बाधनेवाली ही है । जब मेरी जाना है,
तब धरसे यह करनेमें भी क्या आर्थ है । इन सब
वस्तुओंमें उलझ जाना ना क्या अपनी आयु ही बना
है ॥ ९ ॥ ऐसा निश्चय करके मेरे पितामह प्रहादजीन,
यह जानत हुए भी कि आप अतिशय दिये उनका भाई
कचुओंका नाश करनेवाला शत्रु है आपकी भयंकर
एक अविनाशी धरणापमर्गवै धरण प्रणय की ही ।
क्यों न हो—वे ममागसे परम विरक्त, अगाध धर्मपूजक,
उदारहृदय एवं मेनगिप्रमणि जा हैं ॥ १० ॥ आप
उम दृष्टिसे मेरे भी गुरु हैं, जिन भी रिश्तेमान मुझे प्रत्यक्ष
प्रेमप-पक्षसे अत्यन्त करक आपका नाम गढ़ैवा दिया है ।
अष्टा ही हुआ क्योंकि पक्षप-पक्षमीक परग जीकी
नुदि जड़ ही जानी है और वह पर नहीं ममस जाना
कि भला यह जीवन धुरधुर पंक्रमे पड़ा हुआ और
अनिष्ट है ॥ ११ ॥

भीगुक्त्वयसी कथनं हि—प्रीतिम् । गत्वा किं

इस प्रकार वह ही यह धरि उन्हा हाथ हुए कन्धक
ममान मगानक प्रम-प्राप्त प्रहाद जा की आ
पहुँचे ॥ १० ॥ गत्वा किन्ति एव रि मेर रिमाम
बह धर्मपूजक हैं । कसकर समन परमर नेत्र है मेरी
पत्नी मुझसे है सुख का और परमर नीतिपर
पितामह रण विजय है ॥ ११ ॥ जो इस समय
करुणासे की है यह । इसीसे प्रहादजीन जनक
मेरे परम वरनीय दूक रिज करने ध उम प्रमा

ननाम मूर्ध्नाधुविलाललोचन

सघोडनीधीनमुखा बभूव ॥१४॥

स तत्र दामानमुदीक्ष्य सत्पत्तिं

सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ।

उपेत्य मूर्ध्ना धिरसा महामना

ननाम मूर्ध्ना पुलकाधुविह्वलः ॥१५॥

प्रवाद उवाच

स्वयैव दत्त पदमैन्द्रमूर्जित

हृत तदेवाद्य तथैव शोभनम् ।

मन्ये महानस्य कृतो बलुग्रहो

विभ्रक्षितो यच्छिष्य आत्ममाहनात् ॥१६॥

यथा हि विद्वानपि ब्रूयते यत्त-

त्तु का विचष्टे गतिमात्मनो यथा ।

तस्मै नमस्त जगदीश्वराय नै

नारामण्यासिललाकसाक्षिणे ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

तस्मानुभूयतो रामन् प्रह्लादस्य कृताञ्जल ।

हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥१८॥

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी सत्पत्नी भयविह्वला ।

प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाञ्छुषी नृप ॥१९॥

विष्णुवाक्यप्रियाय

श्रीहार्षमात्मन इदं त्रिजगत् कृत वे

स्वाम्यं तु तत्र कुक्षियोऽपरश्च कुर्युः ।

कर्तुः प्रभोस्तव किमस्य तवावहन्ति

त्यक्तद्विषस्तद्वरोपितफट्वादा ॥२०॥

महावाच

मृतभाषन मृतश्च देवदत्त जगन्मय ।

न कर सके । उनके नेत्र आँसुओंसे चमक उठे।
लज्जाके मारे मुँह नीचा हो गया । उन्होंने केवल छि
मुद्राकर उन्हें नमस्कार किया ॥ १४ ॥ प्रह्लादजीने
देख्य कि भक्तकस्तु भगवान् कहीं विराजमान हैं और
सुनन्द, नन्द आदि पापान् उनकी सेवा कर रहे हैं ।
प्रभुके लक्ष्मणे प्रह्लादजात्र दरीर-पुत्रित हो गया, उनकी
आँसुओंमें आँसु लय्य आये । व आनन्दपूर्ण हृदयसे फिर
मुद्राये अपने सामीप्य के पास गये और पृष्ठीय स्ति रखर
उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ १५ ॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो ! आपने ही वस्त्रों पर
ऐश्वर्यपूर्ण हृदय दिया था, अब आज आपने ही उसे
छीन लिया । आपको देना वैसा सुन्दर है, वैसा ही
सुन्दर लेना भी ! मैं सम्मानता हूँ कि आपने इसका भी
मारी क्या की है, जो आत्मको मोहित करनेमें
गन्धर्वकीसे इसे अच्छा कर दिया ॥ १६ ॥ प्रभो !
लक्ष्मणके मदसे तो विद्वान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं ।
उसके रहते मत्त, आपने वास्तविक लक्ष्मणके ठीक-ठीक
कौन जान सकता है ? अब उस लक्ष्मणके छीनकर
महान् उपकार करनेवाले, समस्त जगत्के मन्त्र ईश्वर,
सबके हृदयमें विराजमान और सबके परम सखी
श्रीनारायणदेवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥

श्रीशुकने बड़ी कहते हैं—प्रीति । प्रह्लादजी
अपनी बौद्धिक खड़े थे । उनके सामने ही मन्त्र
प्रह्लादजीने वामनभगवान्से कुछ कहना चाहा ॥ १८ ॥
परन्तु इतनेमें ही राजा बल्लिषी परम साध्वी पत्नी विष्णुकी-
ने अपने पतिपते बँदा देखकर भयभीत हो भगवान्के
चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़, मुँह नीचा कर
कह भगवान्से बोली ॥ १९ ॥

विष्णुवाक्यप्रियाय कहा—प्रभो ! आपने अपनी प्रियके
जिसे ही इस सम्पूर्ण जगत्की रचना की है । जो खेन
कुसुमि हैं वे ही अपनेको इसका स्वामी मानते हैं ।
जब आप ही इसके कर्ता, मर्ता और स्वर्ता हैं, तब
आपकी मयासे मोहित होकर अपनेको दृष्टक कर्ता
माननेवाले निरञ्ज आकर सम्पूर्ण मया करेंगे ॥ २० ॥

प्रह्लादजीने कहा—समस्त प्राणियोंके जीवन-रक्षक
उनके स्वामी और जगत्सर्वकार्य-नेतादेव प्रभो ! अब आप

मुञ्चैन हृत्तमर्षस्व नायमर्हति निग्रहम् ॥२१॥

कृत्स्नातेऽनेन दत्ता भूलोका कर्माविताश्च ये ।

निवेदितं च सर्वस्वमात्माविकलवया धिया ॥२२॥

यत्पादयोगशुद्धीः सलिलं प्रदाय

दूर्वाङ्कुरैरपि विधाप्य सर्ती सपर्याम् ।

अप्युषमां गतिमसौ भवते त्रिलोकीं

दाम्भानविक्रमनाः कथमार्तिमुच्छेत् ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

ममन् यमनुग्रहामि तत्रिशो विधुनोम्यहम् ।

यन्मदः पुरुषः तन्वो लोक मां चावमन्वते ॥२४॥

यदा कदाचिज्जीवारमा ससरन् निबद्धकर्मभिः ।

नानायोनित्पनीशोऽयं पौरुषी गतिमाप्रजेत् ॥२५॥

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैर्धर्मधनादिभिः ।

यद्यस्य न भवेत् त्वम्भस्तप्राय मदनुग्रहः ॥२६॥

मानस्तम्भनिमित्तानां बन्मादीनां समन्ततः ।

सर्वमेयः प्रतीपानां हन्त मुक्षश्च मत्पर ॥२७॥

यद्य दानवदस्यानामग्रणी कीर्तिवर्धनः ।

अर्जपीदब्धयां मायां मीदन्नपि न मुह्यति ॥२८॥

घाणरिक्थञ्च्युतः श्मनात् क्षिप्तो यदव्यशमुभिः ।

क्षतिभिश्च परिपन्ता यातनामनुषापितः ॥२९॥

गुरुणा मस्मिन् जप्ता जडां सत्यं न मुग्रतः ।

इसे छोड़ दीजिये । आपने इसका सम्बन्ध ले लिया है,

अन जब यह दण्डवत् पात्र नहीं है ॥ २१ ॥ इसने

अपनी सारी गूमी और पुण्यकर्मोंमें उपार्जित मग आदि

छोड़, अपना सर्वस्व तथा आत्मतत्त्व आकर समर्पित

कर दिया है । एवं ऐसा करते समय इसकी बुद्धि स्थिर

रही है, यह धैर्यसे श्रुत नहीं हुआ है ॥ २२ ॥

प्रभो ! जो मनुष्य सच्चे हृदयसे कृपाप्राप्त होकर आपके

चरणोंमें जलकर अर्पण देता है और कब दूर्वादलसे भी

आपकी सखी पूजा करता है, उसे भी उत्तम गतिकी

प्राप्ति हाथी है । फिर यन्त्रिने तो बड़ी प्रसन्नतासे धैर्य

और स्मितापूर्वक आपका क्रियोक्तीकर दान कर दिया

है । तब यह दुःख भागी कत्ते हा सकता है ॥ २३ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—प्रजापति ! मैं जिसपर कृपा

करता हूँ, उसका धन हीन किया करता हूँ । क्योंकि

जब मनुष्य धनक मरसे मन्त्राश्रय हो जाता है, तब मेरा

और व्यगोचर निरस्तर बन जाता है ॥ २४ ॥ यह

जीव अपने कर्मोंके कारण विवश होकर अनेक यानियोंमें

भग्न होता रहता है, जब कभी मेरी वही कृपासे मनुष्यका

शरीर प्राप्त करता है ॥ २५ ॥ मनुष्ययोनिके अन्त

लेखन यदि कुथिनता, घम, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य

आदि धन आदिक कारण धर्म न हो जस्य ता समझना

चाहिये कि मेरी वही ही कृपा है ॥ २६ ॥ कुथिनता

आदि बहुतसे पदों कारण हैं, जो अभिमान और जड़ता

आदि उत्पन्न करके मनुष्यका कल्याणके समस्त साधनों-

से बन्धित कर देते हैं परन्तु जा मेरे दारुणमत हावे हैं,

वे इनसे माहित नहीं होते ॥ २७ ॥ यह कि दानक

और दाय गनों ही बशमें अग्रगण्य और उत्तम कीर्ति

बढ़ानेवाला है । इसने उस मन्त्रपर विश्वास प्राप्त कर ली

है, निसे जीतना असम्भव कठिन है । तुम देख ही रहे

हो इतना दुःख भोगनर भी यह माहित नहीं

हो ॥ २८ ॥ इसका धन हीन किया, राक्षसदसे अन्ध

कर दिया, तरह-तरहके आक्षेप किए, शत्रुओंने योद्धा किया,

भयञ्जक छद्मकर चले गये, इतनी यातनाएँ भोगनी

पड़ी-यहीनर कि मुश्किल भी इसका बौद्ध-मन्त्राश्रय

और गान्धर्व ने किया । परन्तु यह दण्डनीन प्रज्जी

छलैरुक्तो मया धर्मो नाय त्यजति सत्यवाक् ॥ ३० ॥
 एष मे प्रापितः स्यात् दृष्ट्वापममरैरपि ।
 सावर्णेतरस्यायं भवितेद्रा महाभय ॥ ३१ ॥
 तावत् सुतलमभ्यास्तां विश्वकर्मविभिर्मितम् ।
 यन्तावयो व्याधयश्च क्लमस्तन्त्रा पराभवः ।
 नापसर्गा निवसतां संभवन्ति भवेद्यथा ॥ ३२ ॥
 इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ।
 सुतल स्वर्गिभि प्राप्य ज्ञातिभिः परिचारितः ॥ ३३ ॥
 न त्वामभिमविष्पन्ति लोकेष्वाः किमुवापरे ।
 त्वच्छासनातिगान्दैस्याश्चक्र मसदपिष्यति ॥ ३४ ॥
 रक्षिष्ये सर्वताऽहं त्वां सानुग सपरिच्छदम् ।
 सदा सन्निहितं धीर तत्र मां ब्रूयते भवान् ॥ ३५ ॥
 तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात् ते भाव आसुरः ।
 द्यूमदनुभाव वै सद्यः कुण्डो विनश्यति ॥ ३६ ॥

प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी । मेने इससे छपमरी उसे की, मैंने
 छत्र रखकर धर्मका उपदेश किया, परन्तु इस सपत्नी-
 ने अपना धर्म न छोड़ा ॥ २० ३० ॥ अतः मेने
 वह स्थान लिया है, जो बड़े-बड़े देवताओं की भी
 कठिनाईसे प्राप्त होता है । मन्त्रार्थि मन्त्ररूपमें यह मे-
 परम भक्त इन्द्र हाथा ॥ ३१ ॥ तत्काल यह स्थान
 बनाये हुए सुतल लोकमें रहे । वहाँ रहनेवाले लोग भी छ-
 टिका अनुभव करते हैं । इसलिये उन्हें शरीर-
 अथवा मानसिक रुग्ण, पक्षवट, तन्त्रा, काँड़ी या भैरवी
 शक्तियोंसे पराजय और किसी प्रकारके विघ्नोका सामना
 नहीं करना पड़ता ॥ ३२ ॥ [वलिको सम्बोधित कर]
 महाराज इन्द्रसेन ! तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम
 अपने माइ-बन्धुओंके साथ उस सुतल लोकमें जाओ
 जिसे स्वर्गके देवता भी चाहते रहते हैं ॥ ३३ ॥ वहाँ
 बड़े लोकपाल भी अब तुम्हें पराजित नहीं कर सकेंगे,
 दूसरोंकी तो बात ही क्या है । जो दैत्य तुम्हारी कृपा-
 का उच्छ्वसन करेंगे, मेरा चक्र उनके दुष्ट-दुष्ट का
 देगा ॥ ३४ ॥ मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुकूलोंकी और
 भोगमायमियोंकी भी सब प्रकारके विघ्नोसे रक्षा करूँगा ।
 धीर बन्धि ! तुम मुझे वहाँ सदा-सदा अपने पास ही
 देखोगे ॥ ३५ ॥ दानव और दैत्योंके संसृष्टिसे तुम्हारा
 जो कुछ आसुरभाव होगा, वह मेरे प्रयाससे तुरंत दब
 जायगा और नष्ट हो जायगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यं संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिद्वय-
 संकरो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

बलिकः बन्धनसे छूटकर सुतल लोकको जाना

श्रीकृष्ण उवाच

इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं
 महानुभावोऽनिलमाधुसमतः ।
 बद्धाञ्जलिर्वाप्यकलाकुलेष्वथो
 भक्तपूद्रलो गद्गदवा गिरामधीव ॥ १ ॥
 बलिरुवाच
 महा प्रणामाय कृतः समुद्यमः
 प्रपन्नमक्तार्थविधौ समाहितः ।

श्रीकृष्णदेवकी कहते हैं—जब सनातन पुरु-
 षमानन्दे इस प्रकार कहा, तो साधुओंके अदरणीय
 महापुरुष दैत्यराजके नेत्रोंमें आँसू छक्क आये । प्रभुके
 उद्देकसे उनका गम भर आया । ये हाथ जोड़कर
 गद्गद वाणीसे भगवान्से कहने लगे ॥ १ ॥

बलिके कहा—प्रभो ! मैं तो आपके पूरा प्रणम
 भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेमें ही जोड़भर की ।
 उसीसे मुझे यह पद मिल, जो आपके चरणोंके शरणार्थी

यत्सोकपासैस्त्वदनुग्रहोऽमरै

रत्नधूपूर्वोऽपसवेऽसुरेऽर्पित ॥ २ ॥

श्रीभूत उवाच

हृत्पुक्त्वा हरिमानस्य प्रसाद्य सभय तत ।

विषय सुतल प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरै ॥ ३ ॥

एवमिन्द्राय भगवान् प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ।

पूरयित्वादिते कथममशासत् सकलं वगत् ॥ ४ ॥

रत्नधूपसाहं निर्मुक्त पौत्र वधधर बलिम् ।

निशाम्य भक्तिप्रवण प्रहाद इदमबोत् ॥ ५ ॥

प्रहाद उवाच

नेमं विरिञ्चा उभते प्रसाहं

न भीर्न शर्कः किमुतापरे ते ।

यसोऽसुराणामसि दुर्गपाला

विद्याभिवन्द्यैरपि बन्दिताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

यस्यादपधमकान्दनिपवणेन

प्रहादयः शरणदाशुवत विमूलीः ।

कसाह् वयं हृत्पुतय स्वलयोनवस्त

दाक्षिण्यदष्टिपदवींभवत प्रवीताः ॥ ७ ॥

चित्र तवेदितमहाऽमितयोगमाया

लीलाविसृष्टस्रवन्स विद्यारदस्य ।

सर्वात्मनः समदृष्टो विपद स्वभावा

भक्तिप्रिया यदसि करुणतरुमभावाः ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स प्रहाद भद्र त प्रयाहि सुतलालयम् ।

मादमान स्वर्पात्रेण ज्ञातीनां मुखमाबह ॥ ९ ॥

निम्प द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमबन्धितम् ।

भक्तोंका प्राप्त होता है । यह-यह लोकपाठ और देवताओंपर आपने जो दृष्टा करी नहीं की, वह मुझसे नीचे असुरको सहज ही प्राप्त हो गयी ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परिश्रित । यों कहते ही

वन्धि करणक पाशोंसे मुक्त हो गये । तत्र उन्होंने भगवान्, प्रसादी और शङ्करजीका प्रणाम किया और इसका बात बड़ी प्रसन्नतासे असुरोंके साथ सुनकर लोकार्थ यात्रा की ॥ ३ ॥ इस प्रकार भगवान्ने वन्धि स्वर्गका राज्य लेकर इन्द्रका गणिया, वन्धितोंकी फामना पूर्ण की और स्वयं उपेन्द्र बनकर व सारा जगत्का शासन करने लगे ॥ ४ ॥ जब प्रसादन स्वर्ग कि मर वधाधर पौत्र राजा वन्धि कवनसे छुट गये और उन्हें भगवान्का करुण-प्रसाद प्राप्त हो गया, तो व भक्ति-भावने भर गये । तब समय उन्होंने भगवान्की इस प्रकार स्तुति की ॥ ५ ॥

प्रहादजीने कहा—प्रसा ' यह कृपाप्रसाद तो करी

प्रसादी, लक्ष्मीजी और शङ्करजीका भी नहीं प्राप्त हुआ, तब दूसरोंकी बात ही क्या है । अहा ! विचित्रक क्या आनि भी विनक चरणोंकी कम्पना करते रहते हैं, यही आप हम असुरोंका दुर्गपाठ—विनकार हो गये ॥ ६ ॥

इमणागतमस्तु प्रभा ' क्या आनि कान्ताय आपका चरणकम्पनसे मकरन्द-जस सेवन करनेका कारण सृष्टि रचनाकी शक्ति आनि वन्ध विभूतियों प्राप्त करने हैं । हमारा तो जन्मसे ही मार और कुम्हारगामी हैं, हमपर आपकी कमी अनुमददृग रहि कैम हो गयी, जो आप हमारे द्वारपाठ ही बन गये ॥ ७ ॥ आपन अपनी योगप्रपास स्वर्गकी-स्वर्गमें विमुक्तकी रचना कर ही । आप सर्वत्र सर्वत्र और सम-गी हैं । फिर भी आपकी धन्यसे बड़ी विद्वान् ज्ञान पदवी हैं । आपका सम्भव कल्याणक सम्मान है । क्योंकि आप अपने भक्तोंके अपन्न प्रम करते हैं । इसीमें करी-करी उपायके प्रति हम पात और विमुक्तों प्रति निष्कन्ता भी आपमें क्या जानी है ॥ ८ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—क्या प्रहाद ' तुमारा कल्याण हो । अब तुम भी सुनकर पात्रमें जाओ । कभी अपने पौत्र बन्धि मय आनन्दपूषक गदा और जति दधुओं-को सुनि बना ॥ ९ ॥ कभी तुम मुझ निम्प ही गदा

महर्षेण महाह्लादध्वस्तकर्मनिषन्धनः ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

आज्ञां भगवतो राघवप्रहादो बलिना सह ।
बादमित्यमलप्रज्ञो मूर्धन्याधाय कृताञ्जलिः ॥११॥
परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपति ।
प्रणतस्तदनुज्ञात प्रविशेद्य महाशिलम् ॥१२॥
अथाहोशनस राजन् हरिनोगयणोऽन्तिके ।
भासीनमृत्वित्रां मन्वे सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥१३॥
ब्रह्मन्संतनु शिष्यस्य कर्म चिह्नं वितन्वतः ।
यत् तत् कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्ट सम भवत् ॥१४॥

शुक उवाच

कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ।
यज्ञेशा वज्रपुरुष सर्वभावेन पूजितः ॥१५॥
मन्यतस्तन्वतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥१६॥
तथापि वदतो भूमन् करिभ्याम्यनुशासनम् ।
एतच्छ्रय पर पुंसां यत् तवाज्ञानुपालनम् ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

अभिनन्द्य हरराज्ञामुद्यता भगवानिति ।
यद्यच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रविंशि सह ॥१८॥
एव बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामना हरिः ।
ददौ आत्रे महेन्द्राय त्रिदिश यत् परैर्हृतम् ॥१९॥
प्रजापतिपतिर्गमा दशपिपिष्ठभूमिपैः ।
दशभृगुभक्षिणाम्बुस्यै कुमारैश्च भवेन च ॥२०॥
कश्यपस्यादिते प्रीत्यै सर्वभूतभक्षाय च ।
लाकानां लाकशालानामकरोद् वामन पतिम् ॥२१॥

हाथमें त्रिये सखा देखोगे । भरे दशनके परमनन्दमें मग्न हो
के करण मुझारे सारे कमध्वन नष्ट हो जायेंगे ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! समस्त कै-
सेनाके खापी निशुद्धबुद्धि प्रहताब्धीने जो वज्र
कलकर, हाथ जोड़ भगवान्‌को आदेश मस्तफार पाया ।
फिर उन्होंने बलिके साथ आदिपुरुष भगवान्‌की परीक्षा
की, उन्हें प्रणाम किया और उनमें अनुमति लेकर
सुतल लोककी यात्रा की ॥ ११-१२ ॥ परीक्षित !
उस समय भगवान्‌ श्रीहरिने ब्रह्मचरणी शक्तिबोली समस्त
अपने पास ही बैठे हुए शुकचार्यजीसे कहा ॥ १३ ॥
‘ब्रह्मन् ! आपका शिष्य यह कर रहा था । उसमें जो
भुक्ति रह गयी है, उसे आप पूर्ण कर दीजिय । क्योंकि
कर्म करनेमें जो कुछ मूल-भूक हो जाती है, वह
ब्रह्मणोंकी कृपादृष्टिसे सुकर जाती है ॥ १४ ॥

शुकचार्यजीने कहा—भगवन् ! निश्चिन्त जला
समस्त काम समर्पित करके सब प्रकारसे यज्ञेश्वर वज्रपुरुष
आपकी पूजा की है—उसका कर्ममें कोई भुक्ति, कोई
वियमना कैसे रह सकती है ? ॥ १५ ॥ क्योंकि मन्त्रोंकी,
अनुष्ठान-गद्यतिकी, देश, काल, पात्र और वस्तुकी सारी
भूलें आपके नामसंकीर्तनमन्त्रसे सुकर जाती हैं; आपका
नाम सारी भुक्तियोंको पूर्ण कर देता है ॥ १६ ॥ तबभी
अनन्त ! जब आप स्वयं कह रहे हैं, तब मैं आपकी
आज्ञाकर अवश्य पाठन करूँगा । मनुष्यक त्रिये सबसे
बड़ा कल्याणकर साधन यही है कि वह आपकी आज्ञा-
का पाठन करे ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवन् ! शुकचार्यने
भगवान्‌ श्रीहरिकी यह आज्ञा स्वीकार करके दूतों
शक्तिबोलीके साथ, बलिके स्थानमें जो बसी रह गयी थी
उसे पूर्ण किया ॥ १८ ॥ परीक्षित ! इस प्रकार काम-
भगवान्‌ने वज्रसे पृथ्वीकी मित्रा मौनकर अपने यह भद्र
इन्द्रको स्वर्गकर राज्य दिया जिसे उनका शत्रुजने दीन
किया था ॥ १९ ॥ इसके बाद प्रजापतिबोलीके सभी
ब्रह्माजीने देवर्षि, सितर, मनु, दक्ष, सृष्ट, अत्रि,
सनातगुप्तर और शाङ्करजीके साथ कश्यप एवं अग्निरी
प्रमनताक त्रिये तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अमृत्यक नि-
समस्त लोक और लोकपालोंके व्यापीक परंपर काम-
भगवान्‌का अभिषेक कर दिया ॥ २०-२१ ॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशस धियः ।
 मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयो ॥२२॥
 उपेन्द्रं कल्पपाञ्चके पतिं सर्वविभूतये ।
 तदा सर्वाणि भूतानि मृश मृशदिरे नृप ॥२३॥
 ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ।
 लोकपालैर्दिव निम्बे प्रक्षणा चानुभोदितः ॥२४॥
 प्राप्य त्रिशुबनं चेन्द्र उपेन्द्रश्चक्षपालिष्ठः ।
 भेषा परमया लुष्टो मृशदे गतसाध्वस ॥२५॥
 तस्मा धर्मः कुमारश्च मृशपापान्मुनयो नृप ।
 पेशर सर्वभूतानि सिद्धा वैभानिकाश्च ये ॥२६॥
 उमद्वत् कर्म तद्विष्णोर्गाम्यन्त परममूर्तम् ।
 भेष्यानि म्यानि ते जगद्गुरदिति च शङ्कसिरे ॥२७॥
 त्वमेतन्मयाऽऽख्यातं भवतः कलनन्दन ।
 उरुक्रमस्य चरितं भोतृणामपमोचनम् ॥२८॥
 तारं मद्भिन्न उरु विक्रमतो गृणानो
 य पार्थिवानि विममे स रज्जांसि मर्त्यः ।
 के जायमान उत जात उपैति मर्त्य
 इत्याह मन्त्रश्चगुपि पुरुषस्य यस्य ॥२९॥
 य इदं देवदेवस्य हरेरमुतकर्मणः ।
 प्रवतारानुचरित मृशन् याति परां गतिम् ॥३०॥
 क्रयमाणे कर्मणिदं दैवे पित्र्येऽथ मातृये ।
 पत्र यत्रानुकीर्त्येत तत् तेषां मुकृतं विदुः ॥३१॥

परीक्षित । वेद, समस्त देवता, धर्म, यश, शक्ति, मङ्गल, व्रत,
 स्वर्ग और अपवर्ग—सबके रक्षकके रूपमें सबके परम
 कल्याणके लिये सदाशक्तिमान् वामनम्भावान्को उन्होंने
 उपेन्द्रका पद दिया । उस समय सभी प्राणियोंको
 अत्यन्त आनन्द हुआ ॥२२-२३॥ इसके बाद ब्रह्माजी-
 की अनुमतिसे लोकपालोंके साथ देवराज इन्द्रने वामन
 भावान्को सबसे आगे विमानपर बैठाया और अपने
 साथ स्वर्ग लीवा ले गये ॥ २४ ॥ इन्द्रको एक तो
 त्रिशुवनका गन्ध मिला गया और दूसरे, वामनमगवान्को
 करकमलमेंकी छत्रछाया ! सर्वत्रेष्ट ऐश्वर्यश्री उनकी सेवा
 करने लगी और वे निम्न होकर आनन्दोत्सव मनाने
 लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्मा, शङ्कर, सतकुमार, मृग आदि
 मुनि, पितर, सारे भूत, सिद्ध और विमानारोही देवराज
 मगवान्को इस परम अनुभूत एवं अत्यन्त मशान् कर्मपत्र
 गहन करते हुए अपने-अपने क्षेत्रको चले गये और सबन
 अस्तित्वकी भी बड़ी प्रशंसा की ॥ २६-२७ ॥

परीक्षित । तुम्हें मैंने मगवान्की यह सब छिन्न
 सुनायी । इससे सुननेवालोंके सार पाप छूट जाते
 हैं ॥ २८ ॥ मगवान्की छिन्नसे अनन्त हैं, उनकी
 महिमा अपार है । जो मनुष्य उसका पार पाना चाहता
 है, वह मानो पृथ्वीका परमाणुओंको गिन बालना चाहता
 है । मगवान्के सम्बन्धमें मन्त्रद्वय महर्षि बभ्रुवने वेदोंमें
 कहा है कि भेषा पुरुष न कभी हुआ, न है और न होगा
 जो मगवान्की महिमामत्र पार पा सके ॥ २९ ॥
 देवराजोंके आराध्यदेव अद्वैतमुक्तिप्रदारी वामनमगवान्के
 अवतार-वर्णनका जो ध्यान करता है, उसे परम गतिकी
 प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ दक्षयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्य-
 यज्ञ किसी भी क्रमसे अनुष्ठान करते समय जहाँ-जहाँ
 मगवान्की इस छिन्नका ध्यान होता है, वह क्रम
 सदाशक्तिकारक सम्पन्न हो जाता है । यह बड़-बड़
 व्याख्याओंका अनुभव है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पारमहंस्यं संहितायामष्टमस्कन्धे वामनो-

पञ्चाशतिते अष्टमः

सदाहृत्पात्मना सोऽय महाभीनोऽन्ववर्धत ॥२१॥

नैतमे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ।

निधेहि रक्षामोगेन हवे मामर्बिदासिनि ॥२२॥

इत्युक्तः सोऽन्यन्मत्स्य तत्र सत्राभिदासिनि ।

ब्रलाशये सम्मिर्तं सं समुद्रं प्राक्षिपन्क्षपम् ॥२३॥

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरावयः ।

अदन्मसिबला धीर मां नेहोत्सृज्यमुदसि ॥२४॥

एवं विमोहितस्तेन वदता वक्षुभारतीम् ।

तमाह को भवानस्मान् मत्स्वरूपेण मोहयन् ॥२५॥

नैवंवीर्यो बलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ।

यो भवान् योजनशतमह्नाभिभ्यानशे सर ॥२६॥

नूनं त्वं भगवान् साध्याद्भरिर्नारायणोऽयम् ।

अनुग्रहाय भूतानां भत्से रूपं बलौकसाम् ॥२७॥

नमस्ते पुरुषभेष्टं त्वित्युत्पत्त्यप्ययेधर ।

भक्तानां नः प्रपन्नानां दुस्स्योऽस्मात्प्रगतिर्विभा ॥२८॥

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।

ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता घृतम् ॥२९॥

न तेऽरविन्दाद्य पदोपसर्पणं

मृपा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।

यथेसरेषां पृथगात्मनां सता

मदीदृशो यद् वपुरद्भुतं हि नः ॥३०॥

एक महात्म्यका आकर धारणकर उस सोरखे क
को घेर लिया ॥ २१ ॥ और कहा—पात्र !
जलचर प्राणी हैं । इस सरोवरका जल भी मेरे
पूर्ण रहनेके लिये पर्याप्त नहीं है । इसलिये आप में
रक्षा कीजिये और मुझ विस्ती कगध सरोरखे ल
दीजिये ॥ २२ ॥ मत्स्यमगवान् के इस प्रकर कहने
वे एक-एक करके उन्हें कई अद्भुत जलजले सोरखि
ल गये, परन्तु जितना बड़ा सरोवर होना, उतने ही
बड़े वे बन जाते । अन्तमें उन्होंने उन मीनमत्स्य
समुद्रमें छोड़ दिया ॥ २३ ॥ समुद्रमें डूबते स्म
मत्स्यमगवान् ने सत्यव्रतसे कहा—धीर ! समुद्रमें बड़े-
बड़ी मत्स्य आदि रहते हैं, वे मुझे छ जायेंगे तब
आप मुझे समुद्रके जलमें मत्स्य छोड़िये ॥ २४ ॥

मत्स्यमगवान् की यह मधुर वाणी सुनकर राजा सत्य
व्रत मोहमुग्ध हो गये । उन्होंने कहा—मत्स्यका रूप
धारण करके मुझे मोहित करनेवाले आप कौन हैं ॥ २५ ॥
आपने एक ही दिनमें चार सौ करोड़के निरालस
सरोवर घेर लिया । आजतक पेसी शक्ति रखनेवाले
जलचर जीव तो न मैंने कभी देखे हैं और न सुने
ही हैं ॥ २६ ॥ अकस्य ही आप सत्कार्य सर्वलोक-
मान् सर्वान्तर्यामी अविनाशी श्रीहरि हैं । अतएव
अनुग्रह करनेके लिये ही आपने जलचरका रूप धारण
किया ॥ २७ ॥ पुरुषोत्तम ! आप जगत्पति उपरि,
स्थिति और प्रलयके स्वामी हैं । आपको मैं नमस्कार
करता हूँ । प्रभो ! हम शरणागत भक्तोंके लिये आप ही
जात्मा और आश्रय हैं ॥ २८ ॥ यद्यपि आपको सभी
धीन्यक्तार प्राणियोंके अमृत्युयके लिये ही होते हैं,
तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने यह रूप
किस उद्देश्यसे ग्रहण किया है ॥ २९ ॥ कमलसुत
प्रभो ! जैसे देहादि अनात्मद्रव्योंमें अपनेस्वरूप अतिप्र
करनेवाले संसारी पुरुषोंका आश्रय व्यर्थ होता है, उस
प्रकार आपको शरणार्थी शरण तो धर्म्य हो नहीं सकसी
क्योंकि आप सबके अद्वैतक प्रेमी, परम प्रियतम और
जाह्नव हैं । आपने इस समय जो रूप धारण करके
हमें दर्शन दिया है, यह बड़ा ही अद्भुत है ॥ ३० ॥

भीमक उवाच

इति श्रुत्वा नृपतिं जगत्पति
सत्यव्रत मत्स्यवपुर्गुणश्रये ।
विहर्तुकामः प्रलयार्णवैऽप्रवी
षिकीर्तुरेकान्तजनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

भीमगवानुवाच

सप्तमेऽप्यतनादूर्ध्वमहन्पसदरिन्दम ।
निमङ्गयत्यप्ययाम्माधौ व्रैलाक्ष्य मूर्ध्निषादिकम् ॥३२॥
त्रिलोकपां लीयमानायां सवर्ताम्भसि वै सदा ।
उपस्थास्यसिनौ कश्चिद्विघ्नालात्वां भयेरिता ॥३३॥
त्वं तावदोषधी सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ।
सप्तर्षिभिः परिश्रुत सर्वसत्त्वोपश्रुति ॥३४॥
आत्म पृथ्वीं नाव बिधरिष्यस्यविष्णुवः ।
एकार्णव निरालोक श्वपीणामेव बर्षसा ॥३५॥
दोष्यमानां तां नाव समीरेण बलीयसा ।
उपस्थितस्य मे मृङ्ग निवघ्नीहि महाहिना ॥३६॥
अहं त्वामृषिभिः साक सहनस्यमुदन्वति ।
विकर्णन् विचरिष्यामि यावदुच्चासी निष्ठाप्रभा ॥३७॥
मदीय महिमानं च पर ब्रह्मति श्रुप्तिदत्तम् ।
घत्सत्यनुगृहीत मे सप्तर्षैर्विश्रुत इदि ॥३८॥
इत्थमादिश्य रामानं हरिरन्तरधीयत ।
साऽन्ववद्यत त काल यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥
आन्ताय दमान् प्राक्कलान् राजर्षि प्रागुदश्रुत् ।
निपसाद हरः पादौ चिन्तयन् मत्सरूपिण ॥४०॥
तव समुद्र उदल सर्वतः प्रावयन् मदीयम् ।

१ भा वा —यु ।

भीमगवानुवाच—परिश्रित । भगवान् अपने अनन्य प्रेमी मर्कटों पर अत्यन्त प्रेम करते हैं, जब जगत्पति मत्स्यगवान् ने अपने प्यारे मछ गजर्षि सत्यव्रत की यह प्रार्थना सुनी तो उनका प्रिय और हित करने के लिये, साथ ही कल्पान्त के प्रलयकालीन समुद्र में विश्रान करने के लिये उनसे कहा ॥ ३१ ॥

भीमगवान् ने कहा—सत्यव्रत ! आजसे सन्तों के लिये मूर्त्येक आदि तीनों लोक प्रत्येक समुद्र में बूझ जायेंगे ॥ ३२ ॥ उस समय जब तीनों क्षीय प्रलयकाल की उत्प्राप्ति में इतने लगे, तब मेरी प्रेरणासे तुम्हारे पास एक बहुत बड़ी नौका आयी ॥ ३३ ॥ उस समय तुम समस्त प्राणिमण्डल के सुसज्जितों को लेकर समुद्र के साथ उस नौका पर चढ़ जाना और समस्त घन्य तथा छोटे-बड़े अन्य प्रकार के जीवोंको साथ रख लेना ॥ ३४ ॥ उस समय सय और एकसत्र म्हाभाग लहरी होना । प्रकट नहीं होगा । कल्प कल्पोंकी दिव्य ज्योति के सहारे ही बिना किसी प्रकारकी विमलता के तुम उस बड़ी नाव पर चढ़कर चारों ओर विचरण करना ॥ ३५ ॥ जब प्रचण्ड ज्वारी कड़ने के कारण नाव डगमगाने लगेगी, तब मैं इसी रूप में वहाँ आ जाऊँगा और तुम लंग बन्धुकि नाव के द्वारा उस नाव को भर सीने में बँध दूँगा ॥ ३६ ॥ सत्यव्रत ! इसका जपना ब्रह्माजी की गत रहेगी, तब तक मैं कल्पों के साथ तुम्हें उस नाव में बैठाकर उसे घूमता हुआ समुद्र में विचरण करूँगा ॥ ३७ ॥ उस समय जब तुम प्रदल करोगे, तब मैं तुम्हें उदरदा बँधूँगा । मैं अनुग्रहसे मेरी वास्तविक महिमा विलक्षण नाम 'मत्स्य' है, तुम्हारे हृदय में प्रवृत्त हो आयी और तुम उसे टीस-टीस जन लोग ॥ ३८ ॥ भगवान् राजा सत्यव्रत पर आत्म दत्त अर्पण ही हो गया । अब जब राजा सत्यव्रत उसी समय की प्रार्थना करने लगे, तब ही लिये भगवान् आकाश में गये ॥ ३९ ॥ पुरातन अग्रभाग पृथ्वी और बरक गजर्षि मत्स्यव्रत उत्तर पूर्वोत्तर सुमुख के गये और मत्स्य रूप भगवान् चरणों के चिह्न करने लगे ॥ ४० ॥ इनमें ही भगवान् का कथा हुआ वह समय आ पहुँचा ।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

भगवान्के मत्स्यावतारकी कथा

राशोवाच

भगवन्प्रोतुमिच्छामि हरेरमृतकर्मणः ।
 अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविदम्बनम् ॥ १ ॥
 सदर्थमवधावु रूपं मात्स्य लोकशुगुप्तिवत् ।
 तमःप्रकृतिं दुर्मयं कर्मप्रसूतं हृष्येश्वर ॥ २ ॥
 एतन्मो भगवन् सव यथावत् वक्तुमर्हसि ।
 उच्यमानं कथयितुं सर्वलोकसुखायहम् ॥ ३ ॥

सूत उवाच

इत्युक्तो विष्णुरावेन भगवान् बादरावणि ।
 उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत् कथम् ॥ ४ ॥

श्रीसुत उवाच

गाविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि वेश्वरः ।
 रक्षामिच्छस्तनूर्ध्वं धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥
 उवाच चेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ।
 नोवाचवत्सं भजते निर्गुणत्वाद्विद्या गुणैः ॥ ६ ॥
 आसीदतीव क्रूरपान्ते ब्राह्मणैर्मित्तिका लयः ।
 समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥
 कालेनागतनिद्रस्य धातुः क्षिप्रपिपोर्बली ।
 सुस्तता निःसृतान वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकऽहरत् ॥ ८ ॥
 द्वास्या तद्वानवन्दस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ।
 दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥

राजा परीक्षितमे पूछ—भगवान्के कथ वर
 हैं । उन्होंने एक बार अपनी योगप्रयासे मत्स्यकर्म
 करके बड़ी सुन्दर छीछ की थी, मैं उनके उसी छी-
 छतारकी कथा सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ मन्त्र ।
 मत्स्ययोनि एक तो यों ही लोकनिन्दित है, इससे ल-
 गुणी और अमल परम्परासे युक्त भी है । लक्ष्मि-
 मान् होनेम भी भगवान्ने कर्मकचनमें वैसे हुए जंगरी
 तरह यह मत्स्यकर्म रूप क्यों कारण किया ॥ २ ॥
 भगवन् । मत्स्यकर्मोंके कीर्तनीय भगवान्ने कर्म
 समस्त प्राणियोंको सुख देनबान्य है । बात इस छी-
 छकी वह सब छीछ हमारे सामने पूर्णरूपसे कथ
 कीजिये ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो । अब ठह
 परीक्षितुन भगवान् क्षीछकदेवजीसे यह प्रथम किम्, आ
 उन्होंने विष्णुभगवान्को यह चरित्र, जो उन्होंने मत्स्य
 कर्म करके किया था कर्ण किम् ॥ ४ ॥

श्रीसुतदेवजी कहते हैं—परीक्षित । योंतो मत्स्य
 सबके एकमात्र प्रभु हैं, फिर भी वे गै, ब्रह्मण, देव,
 साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षाके छिये हरि रक्षा
 किया करते हैं ॥ ५ ॥ वे सर्वशक्तिमान् प्रभु कस्य
 तरह नीचे-ऊँचे, छोटे-बड़े सभी प्राणियोंमें अत्यन्त
 से छीछ करते रहते हैं । पशु उन-उन प्राणियों
 बुद्धिगत गुणोंसे वे छीछे-बड़े या ऊँचे-नीचे नहीं छी
 जाते । क्योंकि वे वासकमें समस्त प्राज्ञ गुणोंसे रक्षित-
 निर्गुण हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित । निद्रसे कस्यके अपने
 ब्रह्मात्मिके सो जाननेके कारण ब्राह्म नामक नैमित्तिक
 प्रलय हुआ था । उस समय भूकेक आदि सब छी
 समुद्रमें डूब गये थे ॥ ७ ॥ प्रलय कथ का जानेके
 कारण ब्रह्माजीको नो आ रही थी, वे सोना चाहते थे ।
 उसी समय वे उनके मुम्मेसे निकल पड़े और उनके
 पास ही रहनेवाले हयग्रीव नामक वधै दैत्यने उन्हें धोकाके
 पुत्र छिन्न ॥ ८ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवन् क्षीछरिने दानका
 हयग्रीवकी यह चेष्टा जान ली । इसलिये उन्होंने मत्स्य
 कर्म करके किम् ॥ ९ ॥

तत्र राज्ञश्चपिः कश्चिन्नास्ति सत्यव्रतो महान् ।

नारायणपरोऽप्युत्पद्य स सलिलाश्रय ॥१०॥

योऽसावस्मिन् महाकल्पेऽनय स विवस्वत ।

आददेव इति स्मृतो मनुत्वे हरिणार्पितः ॥११॥

एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलवर्षणम् ।

तत्साञ्जल्युदके काचिच्छर्मेकाम्यपद्यत ॥१२॥

सम्पन्नतोऽञ्जलिगतो सह सोमेन भारत ।

उत्ससर्ज नदीतोये क्षफरीं ब्रविदधरः ॥१३॥

तमाह सातिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ।

यादोभ्योऽतिघातिभ्योऽदीनां मां दीनवत्फल ।

करं विमुञ्जसे राजन् भीतामस्मिन् सरिजले ॥१४॥

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ।

अजानन् रक्षणार्थाय शफयोः स मनो दधे ॥१५॥

तस्या दीनतरं वाक्यमाधुन्य स महीपति ।

कलशान्पु निधायैनां दयालुर्निम्ब आश्रमम् ॥१६॥

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्षमाणा कमण्डली ।

अलङ्कृताऽऽरमावकाश वा इदमाह महीपतिम् ॥१७॥

नाह कमण्डलावस्मिन् कुरुष्वस्तुमिहोत्सहे ।

कन्वयौक सुविपुल यत्राहं निवसे सुखम् ॥१८॥

म एतां तत आदाय न्यभादीदञ्जनादक ।

तत्र क्षिता मुहूर्तेन हस्तप्रयमवर्धत ॥१९॥

न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ।

पृषु ददिपद मस यत् त्वाह दारण गता ॥२०॥

तत आदाय सा राज्ञा क्षिता राजन् मराजर ।

परीक्षित ! उस समय सत्यव्रत नामके एक भई

उत्तर एक भयङ्कराकण राजर्षि कत्रउ जल पीवन तपस्त्र

कर रहे थे ॥ १० ॥ वही सत्यव्रत वर्तमान महाकल्पमें

विद्यमान (सूर्य) के पुत्र आदित्यवक् नामसे विन्यात

हुए और उन्हें मगवान्ने वैष्णवत मनु बना दिया ॥ ११ ॥

एक दिन वे राजर्षि कृतमान्य नदीमें जलसे तपण कर

रहे थे । उसी समय उनकी अश्रुजि जलमें एक छड़ी

सी गिरी आ गयी ॥ १२ ॥ परीक्षित ! ब्रविड दशक

राजा सत्यव्रतने अपनी अञ्जलिमें अपनी हुड गिरीकर

जलमें साध ही किरसे नदीमें डाल दिया ॥ १३ ॥

उस गिरीने वही वज्राक साध परम त्याग राजा

सत्यव्रतसे कहा—'राजन् ! आप उड़ दीन-याग हैं ।

आप जानते ही हैं कि जन्म रहनेवाले जन्म अपनी

जानियार्थसे भी ख बन्ते हैं । मैं उनक समयमें कृत्यन्त

म्याकुल हो गयी हूँ । आप मुस किर इसी नदीक नदीमें

क्यों छोड़ रहे हैं ?' ॥ १४ ॥ राजा सत्यव्रतको इस

वाक्य पना नहीं था कि स्वयं भवान् सुदूर प्रसन्न

होकर हुआ कृतक रूपे गिरीक रूपमें पड़े हैं ।

इसप्रिये उन्होंने उस गिरीकी रक्षा कर मन-ही-मन

साधन किया ॥ १ ॥ राजा सत्यव्रत उस गिरीकी

अप्यन्त नानतासे भी जान सुनकर वही रूपसे उसे

अपन पात्रक जलमें रख दिया और अपने आश्रमपर वे

आये ॥ १६ ॥ आश्रमपर अनेक वस्त्र पत्र गतमें ही

वह गिरी उस कमण्डलुमें अपनी वड़ गयी कि उत्तम

उमके रूपे स्थान हीन रहा । उस समय गिरीने

गजासे कहा— ॥ १७ ॥ जब ता इस कमण्डलुमें मैं

कलपूर्वक भी नहीं रह सकती, अतः मेरे रूप कल

यज्ञ-सा स्थान नियत कर मैं जहाँ मैं सुखपूर्वक रह

सकूँ ॥ १८ ॥ राजा सत्यव्रत गिरीको कमण्डलुमें

निवासकर एक बहुत बड़ पानीक पात्रकमें रख दिया ।

फन्तु वही उत्तरेय वस्त्र कलुष ही पदोंमें तीन

दाह कर गयी ॥ १९ ॥ किर उसन राजा सत्यव्रतसे

कहा—'राजन् ! अब यह मरणा भी मर दिया गया

नहीं है । समय में सुखपूर्वक नहीं रह सकती । मैं

तुम्हारी शरणमें हूँ इसप्रिये मेरे मनकाय कल वस्त्र

सा स्थान मुस ॥ २० ॥ परीक्षित ! सत्यव्रतने कल-

मे उस गिरीको उत्तरेय एक मयायम डाल दिया ।

फन्तु वह पानी ही रूपमें अपनी वड़ गयी कि उसन

वदावस्थात्मना सोऽय महाभीनोऽन्ववर्षत ॥२१॥

नैत मे स्वस्तये राक्षन्नुदकं सलिलौकस ।

निषेहि रक्षायागेन हृदे मामविदासिनि ॥२२॥

इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्य तत्र तत्राविदासिनि ।

ब्रन्नाशये सन्निभं तं समुद्रं प्राक्षिपज्ज्ञपम् ॥२३॥

क्षिप्यमाणस्तमाहृदमिह मां मकरादयः ।

अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्सृज्यमर्हसि ॥२४॥

एष विमोहितस्तेन वदता वक्ष्युभारसीम् ।

तमाह को भवानस्मान् मत्स्वरूपेण मोहयन् ॥२५॥

नैववीर्यो जलधरो द्योऽस्मामि भूतोऽपि च ।

यो भवान् योजनशतमह्नाभिम्पानश्चे सर ॥२६॥

नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्गिरिनारायणोऽन्ययः ।

अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥२७॥

नमस्ते पुरुषभेष्ट मित्युत्पश्यम्ययेधर ।

भक्तानां न प्रपन्नानां ह्युत्सोधात्मगतिर्विभो ॥२८॥

सर्वे लीलावतारान्ते भूतानां भूतिहेतवः ।

घातुमिच्छाम्यदा रूपं यदर्थं भवता भूतम् ॥२९॥

न तेऽरविन्नाथ पदापसर्पणं

भूपा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।

यधतरेषां पृथगात्मनां यता

मदीदृगा यद् वपुःशुर्व हि नः ॥३०॥

एक म्हामत्स्यक आकर धारणकर उस सरोवरके ऊपर को घेर लिया ॥ २१ ॥ और कहा—पाऊँ । जञ्चर प्राणी हूँ । इस सरोवरक जञ्च मी मेरे पूर्वक रहनेके लिये पर्याप्त नहीं है । इसलिये आप में रक्षा कीजिये और मुझे किसी अणुघ्न मगस्यमें लीजिये ॥ २२ ॥ मत्स्यमगवान्के इस प्रपन्न कहनेसे वे एक-एक करके उन्हें कई अट्ट जञ्चाले सरोवरमें ले गये, परन्तु जितना बड़ा सरोवर होता, उतने ही बड़े वे बन जाते । अन्तमें उन्होंने उन वीर्यमय्ये समुद्रमें छोड़ दिया ॥ २३ ॥ समुद्रमें डालते समय मत्स्यमगवान्ने मत्स्यप्रसे कहा—वीर ! समुद्रमें वड़-बड़ कड़ी मगर आगे रहते हैं, वे मुझे लक्ष जयोंगे इसलिये आप मुझे समुद्रके जञ्चमें मत छोड़िये ॥ २४ ॥

मत्स्यमगवान्की यह मधुर वाणी सुनकर राजा समस्त जन मोहमुग्ध हो गये । उन्होंने कहा—मत्स्यका रूप धारण करने मुझे मोहित करनेवाले आप कौन हैं ॥ २५ ॥ आपने एक ही निममें चार सौ करोड़के विस्तरका सरोवर घेर लिया । आवनक ऐसी शक्ति मन्मथज्वर जञ्चर जीव तां न मैंने कभी देखे वा और न सुने ही वा ॥ २६ ॥ अवश्य ही आप सत्पाद सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी अविनाशी धीठरि हैं । ज्वरज्वर अनुग्रह करनक लिये ही आपने जञ्चका रूप धारण किया है ॥ २७ ॥ पुरुषोत्तम ! आप जगत्पति उपरि, स्थिति और प्रपन्न स्वामी हैं । आपके मैं नमस्कार करता हूँ । प्रभो ! इस दशगुण मत्स्यको निय आप ही आत्मा और आश्रय हैं ॥ २८ ॥ यद्यपि आपके सभी लीयकताग प्राणियोंक अमृत्युके निय ही होते हैं, तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपन क्या रूप निम उद्देश्यसे धारण किया है ॥ २९ ॥ कमलपत्र प्रभो ! जैसे दाहनि अनात्मप्राणोंमें अनन्यप्राण अस्मिन् करनेवाले संसारी पुरुषोंका आश्रय व्यर्थ होता है, उस प्रपन्न आपक धारणोंकी दमन तो व्यर्थ हो नहीं सगरी क्योंकि आप सबक जहनुक प्रभो, परम प्रियतम और आत्मा हैं । आपन इस समय जा रूप धारण कर रहे हैं मैं जान लिया है, यह यद्वा ही अद्भुत है ॥ ३० ॥

श्रीशुक उवाच

इति श्रुत्वा नृपतिं अगत्यपि

सत्प्रयत्नं मत्स्यवपुर्गुणश्रुते ।

विहर्तुकामं प्रलयार्णवेऽग्रभी

विहीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

सप्तमेऽप्यतनार्द्धमहन्वेतदरिन्दम ।

निमङ्गयत्यप्ययाम्भाधौ शैलाक्ष्य मूर्ध्निषादिकम् ॥३२॥

त्रिलोक्यां स्वीयमानायां मन्वर्तामसि वै तदा ।

उपस्थास्यतिनौ काचिवृविशालात्वांमयरिता ॥३३॥

स्व तावदोपभी सवा बीजान्युष्मावचानि च ।

सप्तविंशतिं परिभूतः सर्वसत्त्वोपश्रुति ॥३४॥

आरुह्य गृहतीं नाव विचरिष्यस्यविह्वलः ।

एकार्णवे निरालाफश्चपीणामेव वर्धसा ॥३५॥

दोष्यमानां तां नाव समीरेण बलीयसा ।

उपमिवत्य मे भृङ्ग निषवनीहि महाहिना ॥३६॥

अहं त्वामृषिभि साकं सहनावसुदन्वति ।

विकर्णन् विचरिष्यामि यावदुष्प्राप्ती निश्वाप्रभा ॥३७॥

मदीय महिमानं च परं प्रसूतिं शब्दितम् ।

वत्स्यसनुगृहीतं मं सप्रदर्शयिष्यत इदि ॥३८॥

इत्यमादिभ्यः राजानं हरिरन्तरधीयत ।

साञ्ज्वर्षयत तं कलत्रं हृषाकल आदिषु ॥३९॥

आसीत्यदमानं प्राकृतान् रामपि प्रागुद्विषुत ।

निपसाद हरः पादौ चिन्तयन् मन्थरूपिणः ॥४०॥

तव समुद्र उदलः सर्वतः प्रावयन् मदीयम् ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परिभूत ! मगवान् अपन
अनन्य प्रेमी मर्कटोंपर अत्यन्त प्रेम करने हैं, जब आप्यनि
मन्थमगवान् अपने अपने प्यारे मत्त राजर्षि सत्यवन्तकी यह
प्रार्थना सुनी तो उनका प्रिय और दित करनेके लिये,
साथ ही अत्यन्तके प्रयत्नकरके समुद्रमें विहाय करनेके
लिये उनसे कहा ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—सत्यवन् ! जानने सातवें
दिन मूर्खों आदि तीनों एक प्रयत्नके समुद्रमें डूब
जायेंगे ॥ ३२ ॥ उस समय जब तीनों एक प्रयत्नकरके
की अत्यन्तमें डूबने लगे, तब मेरी प्रणालसे तुम्हारे
पास एक बहुत बड़ी नौका आयेगी ॥ ३३ ॥ उस
समय तुम समस्त प्राणियोंके मूर्खप्राणियोंके लिये
सर्पियोंके साथ उस नौकापर चढ़ जाना और समस्त
धान्य तथा छोटे-बड़े अन्य प्रकारके बीजोंके साथ रख
लेना ॥ ३४ ॥ उस समय सब आर एकत्र एकत्र सागर
छात्रता होगा । प्रकाश नहीं होगा । कब आनियोंकी
लिये अनेक सहरें हों किन्ना किन्ती प्रकारकी विपत्तियाँ
के तुम उस बड़ी नावपर चढ़कर चारों ओर विचरण
करना ॥ ३५ ॥ जब प्रयत्न और अनेक
करण नाव डगमगाने लगेगी, तब मैं इसी रूपमें बहूँ
आ जाऊँगा और तुम लोग वसुकि नावके द्वारा उस
नावपर मेरे सीमें चढ़ना ॥ ३६ ॥ सत्यवन् ! इसका
कारण अनेक ब्रह्मातीकी गत गृहीत तत्त्वके म अनेकोंके
साथ तुम्हें उस नावमें चढ़कर उसे ग्रीवता हुआ समुद्रमें
विकरण करनेका ॥ ३७ ॥ उस समय जब तुम प्रदल
करोगे, तब मैं तुम्हें उपदेश दूँगा । मेरे अनुग्रहसे मेरी
बालविक महिमा, जिसका नाम मगवान् है, तुम्हारे
हृदयमें प्रकट हो जायगी और तुम उसे दीक्षार्थक जान
लेग ॥ ३८ ॥ मगवान् राज्य सत्यवन्त पर आया
दकर अन्वर्षण हो गया । अन् अन् राजा सत्यवन्त उसी
समयकी प्रतीक्षा करने लगे, जिसके लिये मगवान् आया
दी थी ॥ ३९ ॥ पुत्रोंके अप्रत्याश पूर्णकी और करके
राजर्षि सत्यवन्त उनका पूर्वोक्त सुखसे भरा गया और मन्थ
रूप मगवान् चरणोंका चिन्तन करने लगा ॥ ४० ॥
इतनेमें ही मगवान् का ब्रह्मा हुआ वह समय आ पहुँचा ।

वर्धमानो महामेघैर्वर्षिभिः समदृश्यत ॥४१॥

प्यायन् भगवदादेशं दृष्टो नावमागताम् ।

तामारुरोह विप्रेन्द्रेरादायोऽधिधीरुध ॥४२॥

तमुचुर्मनयः प्रीता राजन् प्यायस्व केशवम् ।

स वै नः संकटादश्नाद्विता र्धं विधास्यति ॥४३॥

साऽनुप्यातस्ततो राज्ञा प्राबुरासीन्महावर्षे ।

एकमुत्तमरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥४४॥

निष्य नावं तच्छृङ्ग यथोक्तो हरिश्चा पुरा ।

वरप्रेजाहिना तुष्टस्तुष्टाव मपूच्छहनम् ॥४५॥

राजोवाच

अनापविधोपहवात्मसंविद

स्तन्मूढससारपरिभ्रमातुराः ।

मदच्छेदोपसृता यमाप्नुयु

र्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्मात्तु ॥४६॥

अनोऽपुभोऽयं निष्कर्मबन्धनः

सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुरवम् ।

यत्सेवया तां विघ्नोत्पसमर्ति

ग्रन्थि स भिन्नापुष्टदयं स नो गुरुः ॥४७॥

यत्सेवमान्नेरिष रुद्रोदरं

पुमान् बिम्बान्मलमारमनस्तमः ।

मजेत बर्षं निजमप साऽप्यथो

भूयात् स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥४८॥

न यत्प्रसादायुतभागलेख

मन्ये च देवा गुरवो अनाः स्वयम् ।

राजाने देख कि समुद्र क्षानी मर्यादा छोड़कर बह
है । प्रलयकालके भयङ्कर मेघ वर्षा करने लगे । देख-
ही-जेम्हते सारी पृथ्वी डूबने लगी ॥ ४१ ॥ तब उनके
मग्नान्धरी आकाश स्मरण किया और देख कि नाव है
जा गयी है । तब वे धान्य तथा अन्य बीजोंको लेकर
सतर्पणोंके साथ उसपर सवार हो गये ॥ ४२ ॥ स्वर्गमें
वह प्रेमसे राजा सत्यव्रतसे कहा—गान्धर्व । हम मत्स्य-
का ध्यान करो । ये ही हमें इस संकटसे बचावेंगे और
हमारा कल्याण करेंगे ॥ ४३ ॥ उनकी आज्ञासे उनके
मग्नान्धरी ध्यान किया । उसी समय उस महान् समुद्रमें
मत्स्यके रूपमें मग्नान्धर्व प्रकट हुए । मत्स्यमग्नान्धर्व क्षीर
सोनेके समान देखीपमान था और शरीरका किटार का
धार धस धसे । उनके शरीरमें एक बड़ा भारी छँद
भी था ॥ ४४ ॥ मग्नान्धर्व पहले जैसी आकाश दी थी,
उसके अनुसार वह नौका धसकि नागके द्वारा मग्नान्धर्व
संगमें बौध दी गयी और राजा सत्यव्रतने प्रसन्न होकर
मग्नान्धर्वी स्तुति की ॥ ४५ ॥

राजा सत्यव्रतने कहा—प्रभो । संसारके जीवोंका
आत्मज्ञान क्लान्ति अधिवास हो गया है । इसी कारण
वे संसारके अनेकानेक क्लेशोंके मारसे पीड़ित हो रहे हैं ।
जब अनायास ही आपके अनुग्रहसे वे आपकी शरणमें
पहुँच जाते हैं, तब आपकी प्राप्त पर स्वतः है । इसलिये
हमें कथनसे सुझाकर वास्तविक मुक्ति देनेवाले परम गुरु
आप ही हैं ॥ ४६ ॥ यह जीव अज्ञानी है, करने ही
कर्मोंसे बंधा हुआ है । वह सुखकी इच्छासे दुःखका
कर्मोंका अनुष्ठान करता है । जिनकी सेवासे उत्तम
यह अज्ञान नष्ट हो जाता है वे ही मेरे परम गुरु और
मेरे आत्मकी गौरव करने ॥ ४७ ॥ जैसे व्यक्ति
तपनेसे सोने-चौकीक मूत्र दूर हो जाते हैं और उनका
सबका स्वरूप निस्सर आता है वैसे ही आपकी सेवासे
जीव अपने अस्त-व्यस्तका अज्ञानरूप मूत्र त्याग देता है
और अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित हो जाता है । जो
सर्वशक्तिमान् अविनाशी प्रभु ही हमारे गुरुमनोंके श्री
परम गुरु हैं । जो आप ही हमारे भी गुरु हैं ॥ ४८ ॥
कितने भी देवता, गुरु और संसारके दूसरे जीव हैं—
सब यदि स्वतन्त्ररूपसे एक साथ मिश्रित भी हुआ करें,
तो आपकी श्रुतावे राम हजारों अंशोंके अंतरा भी

कर्तुं समेता प्रमदन्ति पुंश्च
 स्तमीश्वरं त्वा अरणं प्रपद्ये ॥४९॥
 अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृत
 स्तथा जनस्याबिबुषोऽपुभो गुरुः ।
 त्वमर्हद् सर्वदद्यां मयीषणो
 धनो गुरुर्न स्वर्गतिं युस्तपताम् ॥५०॥
 जनो जनस्यादिश्वरोऽसती मतिं
 यया प्रपद्यत दुरत्ययं तम ।
 त्व त्वव्यय ध्यानममोषमञ्जसा
 प्रपद्यते येन जनो निज पदम् ॥५१॥
 त्व सर्वलाकस्य मुद्ग प्रियेश्वरो
 धारमा गुरुर्ज्ञानममीष्टसिद्धि ।
 तथापि लोको न भवन्तमन्वधी
 जोनाति सन्त हृदि बद्धकाम ॥५२॥
 त स्वामह दर्ववर वरेण्य
 प्रपद्य इक्षं प्रतिबोधनाय ।
 छिन्त्यर्थदीपैर्मगवन् बभौमि
 प्रथीन् हृदय्यान् विष्णु स्वमोकः ॥५३॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवन्त नृपति भगवानादिपूरुष ।
 मत्स्यरूपी महाम्मार्धी विहरंस्त्वस्वमब्रवीत् ॥५४॥
 पुराणसंहितां दिव्यां मारुत्ययागक्रियाबतीम् ।
 सत्पत्रतस्य राक्षसैरात्मगुणमशेषतः ॥५५॥
 मधौषीदपिभिः साक्षमात्मतत्त्वमसद्वयम् ।
 नाम्पासीना भगवता शार्ङ्गं प्रक्ष सनातनम् ॥५६॥
 अतीतप्रलयापाप उन्धिताप म वेधसे ।
 इत्वागुरं हयग्रीव धदान् प्रन्याहरदरि ॥५७॥

वराधरी नहीं कर सकते । प्रभो ! आप ही सर्वशक्तिमान्
 हैं । मैं आपकी शरण भ्रष्टण करता हूँ ॥ ४९ ॥ जैसे
 कबूत जंवा अंधेको ही अपना पदप्रदर्शक बना ले, वैसे
 ही आपनी जीव अज्ञानीको ही अपना गुरु बनाते हैं ।
 आप सर्वके समान स्वर्गप्रदाता और समस्त इन्द्रियोंके
 प्रभु हैं । हम आत्मत्वक जिह्वासे आपका ही गुरुके
 रूपमें वरण करते हैं ॥ ५० ॥ अज्ञानी मनुष्य अज्ञानियों-
 को जिस ज्ञानका उपदेश करता है, वह तो अज्ञान ही है ।
 उसके द्वारा संसाररूप घोर अन्धकारकी अविनाशिक
 प्राप्ति होती है । परन्तु आप तो उस अज्ञानाशी और
 अमोघ ज्ञानका उपदेश करते हैं, जिसने मनुष्य अनायास
 ही अपने वास्तविक स्वरूपको प्राप्त कर लेता है ॥ ५१ ॥
 आप सारे लोकके सुहृद्, प्रियतम, ईश्वर और आत्मा हैं ।
 गुरु, उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान और अमायकी
 सिद्धि भी आपका ही स्वरूप है । फिर भी कर्मजाओंके
 बन्धनमें जड़ ब जाकर गेग अंधे हो रहे हैं । उन्हें इस
 यातना पता ही नहीं है कि आप उनके हृदयमें ही
 बिराममान हैं ॥ ५२ ॥ आप देवताओंके भी आराध्यदेव
 परम पूजनीय परमेश्वर हैं । मैं आपसे ज्ञान प्राप्त करनेके
 लिये आपकी शरणमें आया हूँ । भगवन् ! आप परमार्थ-
 को प्रकटित करनेवाली अपनी वाणीके द्वारा मेरे हृदयकी
 प्रथि कर दाखिये और अपने स्वरूपका प्रकाशित
 करिजिये ॥ ५३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परिशिष्ट । जब राजा

सत्यव्रतने इस प्रकार प्रार्थना की, तब मत्स्यरूपधारी
 पुरुषोत्तम भगवान्ने प्रत्यक्ष समुद्रमं विहार करत हुए
 उन्हें आत्मत्वका उपदेश किया ॥ ५४ ॥ भगवान्ने
 राजर्षि सत्यव्रतको अपने स्वरूपके सम्पूर्ण रहस्यका वर्णन
 करते हुए ज्ञान, मक्ति और कर्मयोगमें परिश्रम निव्य
 पुण्यका उपदेश किया, जिसका मन्त्रपुराण कहते
 हैं ॥ ५५ ॥ मत्स्यव्रतने श्रितियोंके साथ साक्षमें बैठे हुए
 ही सत्येहृष्टिन होकर भगवान्का द्वारा उपदिष्ट सनातन
 ब्रह्मस्वरूप आत्मत्वका अवगण किया ॥ ५६ ॥ इसके
 बाद जब पित्रके प्रत्यक्ष अन्त हो गया और प्रधावीर्य
 नील दृष्टी, तब भगवान्ने हयग्रीव अयुक्को सागर उमने
 के लीन लिये और ब्रह्माजीका लिये ॥ ५७ ॥

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ।

विष्णोः प्रसादात् कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥५८॥

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मर्यामस्यस्य शार्ङ्गिणः ।

संधार्दं महदाख्यानं श्रुत्वा शृण्वेष किरिबपात् ॥५९॥

अवतारा इरेयोऽयं कीर्तयेदन्वह नरः ।

सङ्ख्यास्तस्य सिध्यन्ति स चाति परमां गतिम् ॥६०॥

प्रलयपयसि धातुः सुतश्चतुर्मुखेभ्यः

श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त इत्था ।

दितिसमकथयन् धो ब्रह्म सत्यव्रतानां

तमहमखिलहेतु विद्वामीनं नतोऽस्मि ॥६१॥

भगवान्कीर्तयामासे राजा सत्यव्रतवान् ॥ ५८ ॥

होकर इस कल्पमें वैष्णव मनु इष्ट ॥ ५८ ॥

योगमायासे कल्परूप धारण करनेवाले भगवान्

और राजर्षि सत्यव्रतवा यह संवाद एवं श्रेष्ठ

सुनकर मनुष्य सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो

है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य भगवान्के इस अद्भुतका प्रशंसा

कीर्तन करता है, उसके सारे सङ्कल्प सिद्ध हो जाते हैं

और उसे परमाशक्ति प्राप्ति होती है ॥ ६० ॥ प्रसन्न

काम्येन ससुहृदेन जय कल्पानी सो गये थे, उनकी सुख

शक्ति छूट हो चुकी थी, उस समय उनके मुँहसे

निकासी हुई सुनियोंकी श्रुतकर इयप्रीत देख पानाभने से

गया था । भगवान्ने उसे मारकर वे सुनियों कल्पकी

छेद दी एवं सत्यव्रत तथा सत्यव्रतकी कल्पका

उपदेश किया । उन समस्त जगत्के परम करण श्री

कल्प भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैष्णवसिन्धुमहात्म्ये वास्तविक्ये पारमहंस्ये संहितायामष्टमस्कन्धे

कल्याणनारधरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ इत्यष्टमः स्कन्धः समाप्तः ॥

॥ हरिः ॐ नमः ॥



